# कहानी घर घर की महाभारत घर परिवार का (भाग-२)

*न सर झुका के जियो, न मुंह छिपा के जियो,*
*गमों का दौर भी आ जाय तो मुस्कुरा के जियो।*


* संग्रीकरण :- सौ. प्रगती प्रभाकर अकिम

* छायांकन :- श्री परमानन्द चंचलानी
स्वर्णकला प्रिंटर्स अँन्ड ॲडव्हर्टायजर्स, २४८/३, रास्ता पेठ, पुणे - २

* सौजन्य :- ट्रॅक्टो मॅटिक्स्, ६-ए, ताडीवाला रोड, दिवाडकर अपार्टमेंटस्, पुणे- ४११००१

* संशोधन, शुद्धिकरण:- श्री अशोक चांदमल सिंहल

* प्रेषक व्यवस्था :- १) श्री मोहन तुलस्यान (तुलस्यान एक्सप्रेस कुरिअर) फोन नं.२६११९२९१,
३, सागर अपार्टमेंटस्, फ्लॅट नं.८, ताडीवाला रोड, पूना-४११००१
घर-२६०५०७६१ मो.९८२३०४४८३२

२) श्री रामगोपाल केडिया (स्पीडमॅन एक्सप्रेस) फोन नं. २२०८७७५०,
१९१-बी, पहिला मजला, नाइन्थ कॅवेल एक्स-लेन,
डॉ. वेगाज स्ट्रीट, कालबादेवी रोड, मुंबई-४००००२

* कृतिकार :- श्री महेन्द्रकुमार अनन्तराम पाटोदिया

कोनार्क इन्क्लेव्ह, बी-८, बंड गार्डन रोड, पुणे - १

फोन नं. - २६१६२६७२, २६०५९६७४, २६०५९५०९

* प्रकाशन नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट
श्री नारायणी धाम, सर्व्हे नं. ७४/१-बी, प्लॉट नं. १७-१८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड, पुणे-४११०४३ फोन- २४३६५१५१


**शक्ति कभी अत्याचारों से नहीं डरती और न ही पराजित होती है।**

**जीवन उपन्यास की तरह है जिसके हर पृष्ठ पर कुछ नया इन्तजार कर रहा होता है।**

* मूल्य - आपका सक्रिय पठन

# ग्रन्थ प्राप्ति का स्थान

## सपनों से सजाया हुआ परिवार एक छोटी सी गलती से बिखर जाता है।

१) महालक्ष्मी मंदिर,
नेहरू स्टेडियम के पास,
सारस बाग, पुणे- ४११०३७

२) नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट, (राणी सती मन्दिर)
सर्व्हे नं. ७४/१-बी/२, प्लॉट नं. १८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड,
पुणे- ४११ ०४६ फोन नं. २४३६५१५१

३) अमरनाथ अग्रवाल
१०३१, बुधवार पेठ, जगोबादादा तालीम के पास,
पूना-४११००२ फोन नं. ऑ.२४४७३३१० घर-२५४३०२७४

४) श्री एस. सी नागपाल (आर्य समाज)
आर्य समाज, ए-१/१०१, ऑक्सफर्ड व्हिलेज,
वानवडी, पूना-४११०४० फोन नं. २६८५१६९०

५) श्री सिद्धार्थ सराफ
सराफ कोर्ट, यशवंत स्टेडियम के सामने, धन्तोली,
नागपूर-४४००१२ फोन नं. २५६११३८

६) श्री जगदीश बाघमल अग्रवाल
हॉटेल टूरिस्ट, मंगलवार पेठ, पुणे- २

७) श्री शाम ग्यानीराम अग्रवाल
आज का आनंद, शिवाजीनगर, पुणे-५
फोन ऑ. २५५३४८८८

८) श्री विजय चौधरी
आशिष, विमान नगर, खामगांव-४४४३०३
फोन नं. (०७२६३) २५२४०३ ऑ. २५३११६

९) श्री सुशीलजी अग्रवाल
एस-३, जनता कॉलनी, जयपूर-३०२००४
फोन नं. ऑ. ०१४१-२६०६७४६, मो. ९८२९०६०६७४

१०) श्री प्रेमप्रकाश सूतवाला
नवशील अपार्टमेंटस्, ब्लॉक नं. ५, फ्लॅट नं. २, ५६ कॅन्टोंनमेंट,
कानपूर (उ.प्र.)- २०८००४ फोन नं. २३८११७०

११) श्रीमती शारदा नेमीचंद अग्रवाल
फ्लॅट नं. ४२०, सेक्टर २८ए, नेमिशा बंगलो,
प्राधिकरण-निगडी, पुणे- ४११०४४
फोन नं. ऑ. २७४७५२८४ घर-२७६५५३३७

१२) श्री सर्वेश गर्ग
ई-९७, साकेत, इन्दौर

१३) श्री राधेलाल पाटोदिया (राधामंडल)
कोरेगांव पार्क, कृष्णकुंज,
पिंगळे गार्डन के सामने, पूना-४११००१
फोन नं. घर-६६२०५३६९, मो. ९८९००१०३३०

१४) श्री राधेश्याम गोयल
सिनर्जी इन्स्टिट्यूट ऑफ मॅनेजमेंट
फडके हॉल के ऊपर, सदाशिव पेठ,
खजिना विहार चौक, पुणे- ४११०३६
फोन २४४९७८४७, २४४९७१३० मो. ९८२२०८६४४२

१५) श्री विजय अग्रवाल
दि स्पेअर हाऊस, खामकर हाऊस,
माफको यार्ड, पूनित चेम्बर्स के बाजू में, वाशी,
नवी मुंबई-४००७०५ फोन नं. २७६८६६६३

१६) श्री देवीप्रसाद सरावगी
गोकुलधाम,२९बी-२ रा मजला, ३२/१बी,
रामकृष्ण समाधी रोड, कलकत्ता-७०००५४
फोन नं. घर-२३२०१४१४ ऑ.२३५३८७६८

१७) श्री मोतीलाल डेंगला
अरुणोदय, ११८९/ए, १३-मेन हॉल, दूसरा स्टेज
बेंगलोर- ५६०००८ फो. २५२६४२०५, मो.९३४१२६२४९३

१८) श्री सत्यनारायणजी कंसल
९१०/९११, ९ वा मजला, पृथ्वी ब्लॉक,
मायहोम द्विपा के पास, हायटेक सिटी, माधापूर,
हैद्राबाद- ५०००८१, मो. ९३९१६३६६६२

१९) श्री राजेन्द्र बेनीप्रसाद मंगल
श्री खाटू श्याम मित्र मंडल, पूना
सी.एम.ई. पुणे- ४११०३१ मो. ९७६४४५५८५५

२०) श्री. राजेश सत्यनारायण मित्तल
मित्तल स्टील, सर्वे नं. १०, कामराज नगर,
येरवडा, पुणे- ४११००६
मो. ९८९०११४३०० ऑ. २६६८६९२३

❊ सहयोगी दल ❊ १) श्री राजकुमार बन्सीलाल अग्रवाल, २) श्री ओमप्रकाश बलभद्रप्रसाद अग्रवाल, ३) श्री श्यामसुंदर बांकेलाल गोयल, ४) श्री राधेश्याम गोयल, ५) राजेन्द्र बेनीप्रसाद मंगल

# कहानी घर घर की महाभारत घर परिवार का (भाग-२)

आदमी को आदमी भरमाए है, सच किसी की समझ न आए है।
आदमी ने ही लिखा आदमी का इतिहास।
जमीन पर जीता है वह, जीता है जो आकाश।
आदमी के जोर पर दुनिया का है विकास।
मगर आदमी खुद ही है, आदमी का ही विनाश।

## * विषय उपक्रम *


| | | |
|---|---|---|
| १) | वन पर्व | ४ से १८१ |
| २) | विराट पर्व | १८२ से २८५ |
| ३) | उद्योग पर्व | २८६ से ५५४ |
| ४) | भीष्म पर्व (युद्ध पर्व) | ५५५ से ७८५ |
| ५) | श्याम-खाटू | ७८६ से ७९० |
| ६) | कर्मयोगी | ७९१ से ७९६ |
| ७) | अध्यात्म और ईश्वर | ७९७ से ८०० |


मनुष्य यह अनुभूति नहीं करता कि युद्ध कोई समाधान या समस्या का हल नहीं है। युद्ध सिर्फ विनाश करता है, निर्माण नहीं। मानवता के लिये युद्ध केवल नरक है, इसके अलावा कुछ भी नहीं।

धर्मयुद्ध में मरने के बाद भी बहुत कुछ बाकी रह जाता है,
हार को पार करके मिलती है जीत और मृत्यु को पार कर मिलता है अमृत।

जिन्दगी के कोने को अच्छाई से भर दो क्योंकि अच्छाई के उसूल कभी बदलते नहीं।

# वन पर्व

## * विषय उपक्रम *


| | | |
|---|---|---|
| १) | द्वारिका में अभिमन्यु का प्रशिक्षण | ७ |
| २) | पांडवों की गन्धमादन यात्रा | १० |
| ३) | भीम की हनुमान से भेंट | १४ |
| ४) | पार्थ और पवनपुत्र हनुमान | १८ |
| ५) | वन में भीम और घटोत्कच का मिलन तथा बदरीनाथ की यात्रा | २० |
| ६) | काशिका-दुर्योधन पुत्री लक्ष्मणा का जाम्बवन्तीनन्दन श्रीकृष्ण पुत्र साम्ब से विवाह | २२ |
| ७) | पांडवों की बदरी विशाल यात्रा | २७ |
| ८) | सौगन्धिक वन में भीम का यक्ष-राक्षसों से युद्ध | ३१ |
| ९) | जटासुर वध | ३३ |
| १०) | अर्जुन का गन्धमादन पर लौटना | ३४ |
| ११) | भीम का राजा नहुष की सर्प योनि के चंगुल में फंसना और युधिष्ठिर का सर्प के प्रश्नोत्तर तथा नहुष का स्वर्ग लौटना | ५७ |
| १२) | श्रीकृष्ण का सत्यभामा और मार्कण्डेय मुनि के साथ पांडवों के पास आना | ६१ |

१३) मार्कण्डेय मुनि का युधिष्ठिर को उपदेश ६५ से ११४

१) उत्तम ब्राह्मणों का महत्व ६५

२) तार्थ्य-सरस्वती सम्वाद ६६

३) विवस्वत मनु का मत्स्यावतार चरित्र ६७

४) श्रीकृष्ण की महिमा और प्रलय का वर्णन ६९

५) मार्कण्डेय मुनि को बालमुकुन्द का
दर्शन और प्रलय का वर्णन ७०

६) कलियुग के लक्षण और भगवान कल्कि अवतार ७३

७) मार्कण्डेय का धर्मोपदेश ७५

८) इन्द्र और बक मुनि का सम्वाद ७५

९) क्षत्रियों का महत्व ७६

१०) उशीनर पुत्र राजा शिबि का चरित्र ७६

११) दान की महिमा ७७

१२) पवित्रता, तप और मोक्ष का महत्व ७९

१३) उत्तक मुनि की तपस्या व उनका वृतान्त ८१

१४) धुंधुमार का वृत्तान्त ८१

१५) पतिव्रता स्त्री और कौशिक ब्राह्मण का संवाद ८३

१६) मिथिला में कौशिक ब्राह्मण को धर्मव्याध का धर्मोपख्यान ८५

१७) धर्मव्याध द्वारा राजा सत्यवादी हरिश्चन्द्र का वृत्तान्त
कौशिक मुनि को सुनाना ९२

१८) देव सेनापति कार्तिकेय का वृत्तान्त १०९

१४) काम्यक वन में द्रौपदी और सत्यभामा का सम्वाद ११४
१५) कृष्ण-द्रौपदी सम्वाद १२४
१६) महर्षि व्यास का पांडवों के पास आना और
दान की महिमा का प्रतिपादन १३२
१७) दुर्योधन के द्वारा दुर्वासा मुनि का अतिथि सत्कार १३६
१८) दुर्वासा ऋषि अपने शिष्यों के साथ
युधिष्ठिर के आश्रम में और कृष्ण द्वारा पांडवों की रक्षा १३९
१९) जयद्रथ द्वारा द्रौपदी हरण और
पांडवों द्वारा जयद्रथ को दंड १४६
२०) मार्कण्डेय मुनि द्वारा युधिष्ठिर की
शंका निवारण और रामचरित सुनाना १५६
२१) सावित्री चरित्र तथा यमराज और सावित्री का सम्वाद १५७
२२) पांडवों के वनवास पूर्ण होने से
शकुनि की चिन्ता और मन्त्रणा १६४
२३) दुर्योधन की पत्नी काशिका को
कुन्ती द्वारा सुख का अर्थ समझाना १६८
२४) द्वारिका में अभिमन्यु का सैनिक प्रशिक्षण १७१
२५) पांडवों का वनवास का अन्तिम बारहवां वर्ष १७२
२६) यक्ष युधिष्ठिर सम्वाद व प्रश्नोत्तर १७५

# वन पर्व

## १) द्वारिका में अभिमन्यु का प्रशिक्षण

ब्रह्मा, विष्णु और महेश के अतिरिक्त समय के लिये कोई आदरणीय नहीं है। ब्रह्मा इसलिये कि वे रचयिता हैं, विष्णु इसलिये कि वो पालनेवाले हैं और महेश इसलिये कि वो ही अन्तिम सत्य हैं। आदर और निरादर दोनों में ही बडी सावधानी की आवश्यकता हैं, क्योंकि ये दोनों ही उस रस्सी के समान है जिसकी गांठ एक बार पड जाती है तो वह सड जाती है। वर्तमान अतीत का आलोचक है। यदि वो पहिले से ही आदर या निरादर के विषय में निर्णय ले चुका होगा तो फिर वो अतीत कों किस कसौटी पर परखकर स्वीकार या अस्वीकार करेगा। इसलिये भावुकता की अंगुली पकडकर मत चलो। चेतना की अंगुली पकडकर चलना सीखो। चेतना ही मोक्ष का मार्ग है। युधिष्ठिर क्या केवल इसलिये आदरणीय है कि वह धर्मपुत्र है। किसी का पुत्र होने में तो कोई बडाई नहीं। यों ही भीष्म केवल क्या इसलिये आदरणीय है कि वो गंगा पुत्र है ? आदर कोई धरोहर नहीं कि बाप का आदर बेटे को मिल जाये। आदर कर्मों का परिणाम है। आदरणीय केवल वही होता है जो अपने कर्मोंद्वारा यह सिद्ध कर सकता है कि वो आदरणीय है। इस समय यह कथा जिस क्षण के मोड पर रूकी हुई है इसके पात्रों में द्रौपदी के अतिरिक्त कोई आदरणीय नहीं है। इन पात्रों में समय कृष्ण को नहीं गिनता क्योंकि वे पात्र नहीं है। वे महानायक हैं।

अभिमन्यु बचपन में ही द्वारिका में कृष्ण के पास अपना शैशव काल बिता रहा है। सुभद्रा कामक्य वन से कृष्ण के साथ द्वारिका आ गई। कृष्ण बोले तुम इधर-उधर क्या देख रही हो सुभद्रा ? मैं तो तुम्हारे सामने ही बैठा हुआ हूं। मां गंदी है, मां गंदी है कहकर अभिमन्यु कृष्ण के कक्ष में इधर-उधर भाग रहा था और सुभद्रा पर अपना क्रोध दिखा रहा था। सुभद्रा खडी हंस रही थी। सुभद्रा बोली आप भलीभांति जानते है भैया कि मैं किसे ढूंढ रही हूं ? कहां गया वो नटखट। कृष्ण बोला अरे यह तो मेरे अनेक नामों में से एक नाम है परन्तु तुम तो मुझे भैया ही कहा करो। यह नटखट नाम तो मुझे नन्दगांव वालों ने दिया था। उस समय था ही मैं बडा ही नटखट। कभी किसका माखन चुरा लिया तो कभी किसकी मटकी ही फोड दी। यशोदा मैया तो उलहाने सुन सुनकर परेशान ही हो जाती थी। सुभद्रा बोली मैं तो अभिमन्यु को ढूंढ रहीं हूं। कृष्ण ने कहा अच्छा। सुभद्रा बोली आप चाहे मुझे नन्दगांव में कितना ही घूमाये पर आज उसे पीटे बिना नहीं छोडूंगी। अभिमन्यु कृष्ण के पीछे आकर छिप गया और बोला बताईयेगा मत मामाश्री। कृष्ण बोला अब यह मेरी शरण में है सुभद्रा। आओ अभि। यह मत भूलना कभी सुभद्रा कि यदि यह आनेवाला न होता तो अर्जुन से तुम्हारा विवाह ही नहीं हुआ होता। यह बालक तुम्हारे जीवन का अर्थ है और यह तुम्हारे पास भविष्य की धरोहर है। यह तुम्हारा पुत्र होने के नाते यहां नहीं रह रहा है परन्तु तुम इसकी माता होने के नाते यहां रह रही हो। सुभद्रा बोली तो क्या मैं इसके चरण स्पर्श करूं ? कृष्ण बोले कदापि नहीं। यह तो इस बालक का सौभाग्य है परन्तु अपनी ममता का सारा कोष निछावर कर दो इस बालक पर सुभद्रा। अभिमन्यु तुम अपनी मां को सताया अवश्य करो क्योंकि यह तुम्हारा अधिकार है किन्तु इतना भी मत सताया करो कि मां रो पडे। मां का रोना ईश्वर को अच्छा नहीं लगता। अभिमन्यु बोला आप कहते हैं ना मुझे पिताजी के जैसा धनुर्धर बनना है। कृष्ण बोले कहता हूं वत्स और तुम्हें अर्जुन जैसा धनुर्धर बनना ही है। अभिमन्यु बोला तो फिर माताश्री को समझा दीजिये न। जब भी अभ्यास करता हूं तो कहती है भोजन का समय है, विश्राम का समय है। अभ्यास करने ही नहीं देती। सुभद्रा बोली सुन लिया आपने अपने भान्जे से। कृष्ण बोले यह तपस्वी है सुभद्रा। यही इसके मोक्ष का मार्ग है। इसे टोका मत करो।

यह बालक मानव इतिहास रचेगा और सबसे कम आयुवाला महारथी होनेवाला है और यह ऐसा युद्ध करेगा सुभद्रा कि भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों ही इसे सदैव प्रणाम करते रहेंगे। सुभद्रा बोली आप किस युद्ध की बात कर रहे हैं भैया ? कृष्ण बोले मैं उस युद्ध की बात कर रहा हूं सुभद्रा जो इस युग में सत्य और असत्य, प्रकाश और अन्धकार के बीच होनेवाला अन्तिम युद्ध होगा। निर्णायक युद्ध होगा। इस युद्ध में कोई निष्पक्ष नहीं रह पायेगा। सुभद्रा तुम अभिमन्यु बनकर इस युद्ध में भाग लोगी। सुभद्रा बोली और आप ? कृष्ण बोले सब कुछ क्या आज ही पूछ लोगी ? ले जाओ इसे और इसके प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करो। इसके धनुष में अपने आशीर्वाद का बाण लगाओ और अपने आशीर्वाद का कवच इसे पहनाओ क्योंकि मैं जिस युद्ध की बात कर रहा हूं सुभद्रा उसका एक पूरा दिन इसके नाम होनेवाला है। सुभद्रा ने पूछा भैया यह युद्ध में विजयी तो होगा न ? कृष्ण बोले यह ऐसा रण जीतेगा सुभद्रा कि संसार के सारे बडे बडे यौद्धा, बडे बडे महारथी इसे प्रणाम करेंगे। ले जाओ इसे।

**यही धरोहर वंश की यही रचे इतिहास, एक मात्र आशा यही, एक मात्र विश्वास।**

गुरु को अपने अधूरे ज्ञान से कभी शिष्य की शिक्षा आरम्भ नहीं करनी चाहिये। आज तो अन्याय बहुत दूर दिखाई दे रहा है पर यदि अभी इसे रोका नहीं गया तो वह कभी भी किसी समय हमारे द्वार पर आजायेगा। प्रकृति अकर्मण्यता की कभी रक्षा नहीं करती। धर्म सदा सबल भी है स्वतन्त्र भी उसका मार्ग कोई नहीं रोक सकता। सुभद्रा बोली वो ईश्वर, वो देवत्व ही क्या जिसकी कोई अवहेलना कर सकता। यदि मनुष्य ही ईश्वर की अवहेलना, उपेक्षा तथा विरोध में समर्थ हो जाये तो फिर ईश्वर का ईश्वरत्व कैसा ? कृष्ण बोले धन, शक्ति और सत्ता का मद व्यक्ति को सात्विक कैसे रहने दे सकता है सुभद्रा? मनुष्य जब पीडित और दु:खी होता है, प्रवंचित और प्रताडित होता है तो उसमें न्याय, धर्म, समता, त्याग, बलिदान इत्यादि की आकांक्षा प्रबल रूप से जागती है। यह आकांक्षा उसके मन से अन्याय, अत्याचार, भोग इत्यादि के भावों को निष्कासित कर देती है। देवत्व उसे आकर्षित करता है उस समय वह ईश्वर के निकट हो जाता है। जब वह स्वतन्त्र और समर्थ हो जाता है, संसार का भोग और ऐश्वर्य उसके पास संचित हो जाता है, धन सम्पत्ति आ जाती है ऐसे में उसका त्याग, समता और न्याय के प्रति आकर्षण समाप्त हो जाता है। देवत्व कभी भोग, संचय और आधिपत्य का समर्थन नहीं करेगा। इसलिये उस समय वह स्वार्थ के वशीभूत होकर देवत्व व ईश्वर की सत्ता को स्वीकारने से दूर होते जाता है। आकर्षण और विकर्षण ये प्राकृतिक नियम हैं जो स्वयं ईश्वर की इच्छा से परिचालित होते हैं। किसी की प्रकृति को तो बदला नहीं जा सकता सुभद्रा।

द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह अपने कक्ष में बैठे हुये है। भीष्म चिंतित है और विदुर आता है। विदुर ने आकर प्रणाम तातश्री किया। भीष्म बोले आओ विदुर तुम भी हमारे साथ बैठकर हस्तिनापुर के दुर्भाग्य पर आंसू बहाओ। विदुर बोले परन्तु आंसू बहाना किसी समस्या का समाधान तो नहीं है तातश्री। भीष्म बोले अगर माता मरण शैय्या पर सामने पडी हो और वैद्य उसकी नाडी पर से अपना हाथ उठा ले तो ऐसी माता का विवश पुत्र रोने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकता है ? मैं तो दो मांओं का पुत्र हूं विदुर। मेरी दूसरी मां ये हस्तिनापुर नगरी है। तुम तो महान नीतिज्ञ हो विदुर। क्या तुम्हें युद्ध से टकराकर कोई बाहर निकलने का मार्ग सूझ रहा है ? द्रोणाचार्य बोले यदि पांडव युद्ध करने का निर्णय न ले चुके होते तो अर्जुन दिव्यास्त्रों की खोज में स्वर्ग क्यों जाता महात्मा विदुर ? विदुर बोला क्या आप यह कह रहें है आचार्य कि उन्हे यह निर्णय लेने का भी कोई अधिकार नहीं ? भीष्म बोले प्रश्न अधिकार का नहीं है विदुर। प्रश्न है हस्तिनापुर के होने या ना होने का। चाहे तुम इसे मेरा निहित स्वार्थ ही कह लो किन्तु मैं यहीं चाहता हूं कि ये युद्ध ना हो। विदुर बोला आप ऐसा क्यों

चाहते है तातश्री ? भीष्म बोले कहा ना तुम्हें तुम चाहे इसे मेरा निहित स्वार्थ ही कह लो। विदुर बोले आप तो मेरे लिये आदरणीय हैं तातश्री। इसलिये मैं तो यह सुनकर चुप हो जाऊंगा किन्तु इतिहास तो चुप नहीं हो जायेगा। वो तो यह पूछेगा कि गंगा पुत्र भीष्म आप यह युद्ध क्यों नहीं चाहते ? द्रोणाचार्य बोले इतने निर्दयी मत बनो महात्मा विदुर। जिस प्रश्न का उत्तर तुम भली भांति जानते हो वही प्रश्न कर रहे हो गंगापुत्र भीष्म के बुढापे से। भीष्म बोले करने दीजिये इसे अपना प्रश्न। आचार्य करने दीजिये। मैं यह युद्ध इसलिये नहीं चाहता विदुर की यदि यह युद्ध हुआ तो यह जानते हुये भी कि धर्म मेरे प्रिय पांडवों के साथ है मैं उस दुर्योधन का साथ दूंगा जिसके साथ अधर्म ही अधर्म है। जिसने मेरी बूढी आँखों के सामने मेरी कुलवधू द्रौपदी केवस्त्राहरण का आदेश दिया है। यह घाव मेरे हृदय में अभी भरा नहीं है विदुर और जब तक मैं जीवित हूं तब तक यह घाव भरने वाला भी नहीं है। विदुर बोला एक प्रतिज्ञा को ढाल बनाकर अधर्म के पक्ष में युद्ध करना आपको शोभा नहीं देता तातश्री। भीष्म बोले मैं जानता हूं विदुर फिर भी मैं आज तुमसे यह प्रश्न कर रहा हूं महात्मा विदुर कि मुझे ऐसी परिस्थिति में क्या करना चाहिये ? मेरी प्रतिज्ञा पिताश्री और माता सत्यवती के विवाह का आधार है। महात्मा विदुर बताओ मुझे कहां और कैसे इस प्रतिज्ञा को फेंक देना चाहिये ? तुम्हारे लिये यह कहना सहज हो सकता है विदुर क्योंकि तुमने कभी कोई प्रतिज्ञा की ही नहीं। यह सोचने की भूल मत करना कि तुम्हारा पांडवों के प्रति प्रेम मेरे से अधिक गहरा है और यह भी मत सोचो कि मुझे धर्म और अधर्म, सत्य और असत्य की परिभाषा का ज्ञान नहीं है। यदि युद्ध ठहर ही गया तो अवश्य होगा और उस युद्ध में मेरे सारे अस्त्र और शस्त्र दुर्योधन के साथ होंगे और मेरे सारे आशीर्वाद युधिष्ठिर और उसके भाइयों के साथ होंगे। यह सदैव याद रखना महात्मा विदुर कि जिस दिन हस्तिनापुर का विभाजन हुआ था उस दिन गंगा पुत्र भीष्म भी बंट गया था।

दुर्योधन के कक्ष में कर्ण आता है। दुर्योधन चिंतित है। कर्ण बोला दुर्योधन तुम्हारे इस मित्र को तुम्हारा चिन्ता में झुका हुआ यह शीश अच्छा नहीं लग रहा है। दुर्योधन बोला तुम भली भांति जानते हो मित्र कि मैं कायर नहीं हूं और मैं भी यह भली भांति जानता हूं कि मृत्यु जीवन का अन्तिम सत्य है किन्तु मैं भीम के हाथों मरना नहीं चाहता और जैसे जैसे १३ वर्षों का अन्त पास आते जाता है वैसे वैसे मेरे कानों में भीम की प्रतिज्ञा का स्वर ऊंचा होते जा रहा है। कर्ण बोला तो क्या तुम भीम से डरते हो ? दुर्योधन बोला डर शब्द तो गुरु द्रोणाचार्य ने हममें से किसी को भी नहीं सिखाया। न पांडवों को और न ही हम भाइयों को। कर्ण बोला फिर तुम्हारे स्वर में यह कम्पन क्यों ? तुम तो महारथी हो। दुर्योधन बोला वो भी एक महारथी है और हम दोनों ने शस्त्र विद्या एक ही गुरु से प्राप्त की है। जो मैं जानता हूं वो भी जानता है। युद्ध कोई चौसर का खेल नहीं जो मामाश्री अपने कपटी पांसों से जीत ले। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि मित्र यदि युद्ध हुआ तो जीत मैं भी सकता हूं और जीत वो भी सकता है। हार उसकी भी हो सकती है और हार मेरी भी। मैं युद्ध से नहीं डरता परन्तु मैं भीम से हारना नहीं चाहता। कदापि हारना नहीं चाहता। युयुत्सु बोला यह तो आपको भाभीश्री द्रौपदी के वस्त्राहरण के आदेश देने के पहिले सोचना चाहिये था भ्राताश्री। दुर्योधन आंख निकाल कर युयुत्सु से बोला तुम मेरे भाई हो या पांडवों के गुप्तचर। युयुत्सु बोला वे भी हमारे भाई हैं भ्राताश्री। दुर्योधन आवेश में बोला नहीं। वे हमारे भाई नहीं है। दुशासन बोला भ्राताश्री ने बिल्कुल ठीक कहा और तुम यह भली भांति जानते हो कि वे हमारे भाई नहीं है। काकीश्री वन से लाये हुये पांच बच्चों को हमारा भाई नहीं बना सकती। केवल उनके यह कह देने मात्र से यह सिद्ध नहीं हो जाता कि वे हमारे भाई हैं। दुर्योधन बोला हां। कर्ण ने कहा यदि महारानी कुन्ती यह कह रही है कि वे पांचो पांडव पुत्र हैं तो वे पांडु पुत्र हैं राजकुमार दुशासन। माता चाहे तुम्हारी हो या किसी और की। माता सदैव आदरणीय है। दुर्योधन बोला तो क्या हस्तिनापुर हम उन्हे दे दें ? कर्ण बोला यह

राज तुम्हारा है मित्र और तुम्हारा ही रहेगा। किन्तु तुम्हे इसके लिये किसी माता की मर्यादा भंग करने का अधिकार नहीं है। दुर्योधन बोला तो ठीक है वो मेरे भाई ही सही परन्तु इस युयुत्सु को मेरे सामने से हटा दो क्योंकि यह भी काका विदुर के ही भांति उन्ही का पक्ष ले रहा है। निकल जाओ युयुत्सु। युयुत्सु बोला मुझे आज्ञा दीजिये भ्राताश्री। परन्तु आपका छोटा भाई होने के नाते आपसे यह कहना मेरा कर्तव्य है कि विनाश की चाप कभी सुनाई नहीं देती। दुर्योधन ने कटार निकाली युयुत्सु को मारने। कर्ण और दुशासन ने दुर्योधन को पकड लिया और रोका। कर्ण बोला चले जाओ युयुत्सु। युयुत्सु वहां से चला गया।

दुर्योधन बोला तुमने मुझे रोका क्यों मित्र ? कर्ण बोला क्योंकि वो तुम्हारा भाई है मित्र। दुर्योधन बोला नहीं चाहिये मुझे ऐसा भाई। जो मेरे शत्रु के हित की सोचता है वो मेरा भाई नहीं है। वो मेरा सौतेला भाई है। कर्ण बोला उन लोगों का आदर करना चाहिये युवराज दुर्योधन जो तुम्हारे सामने तुम्हारी बात काटने का साहस कर सकते हैं। इसलिये महात्मा विदुर और युयुत्सु दोनों आदरणीय हैं। अपने कानों को अपना विरोध करना सिखाओ मित्र। क्योंकि तुम्हारे सामने जो तुम्हारा विरोध कर रहा है वो अपने दृष्टिकोण से सत्य कह रहा है और वो साहसी भी है। यह युयुत्सु कदाचित मुझसे अच्छा है क्योंकि मैं तुम्हारा कभी विरोध नहीं करता। दुर्योधन बोला यदि तुम्हारा भी जी मेरा विरोध करने को चाहता है तो तुम मेरा विरोध करते क्यों नहीं ? कर्ण बोला क्योंकि मेरे जीवन के दो ही लक्ष्य हैं। तुम्हारा साथ और अर्जुन वध। एक न एक दिन जीवन का मूल्य मुझ में और अर्जुन में से किसी को चुकाना ही पडेगा। मुझे मर जाना स्वीकार है मित्र परन्तु अर्जुन के साथ एक ही युग में जीना स्वीकार नहीं।

**२) पांडवों की गन्धमादन यात्रा-** वैशम्पायन बोले जनमेजय लोमश ऋषि अब पांडवों की तीर्थयात्रा बदरिकाश्रम ले गये। लोमश मुनि बोले युधिष्ठिर यह मधुविला नदी है। इसी का दूसरा नाम समंगा है। यह कर्दमिल क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। यहीं राजा भरत का अभिषेक हुआ था। वृतासुर का वध करने पर शचिपति इन्द्र राज्य लक्ष्मी से भ्रष्ट हो गये थे तब वे इसी समंगा नदी में स्नान करके शुद्ध हुये और पापों से छुटकारा पाये। यह मैनाक पर्वत के मध्यभाग में विनशन तीर्थ है। यह कनखल नाम की पर्वत माला है। इसके पास ही यह महानदी गंगा है। पूर्वकाल में यहां सनत्कुमारों ने सिद्धि प्राप्त की थी। युधिष्ठिर इसमें स्नान करो ताकि तुम सब पापों से मुक्त हो जावोगे। यह पुण्य नामक सरोवर है। इसके आगे मृगुतुंग नामक पर्वत है। वहां उष्ण जल स्त्रोत है। यहां पर स्थूलशिरा मुनि का सुन्दर आश्रम है। यहां अपने मन से मान और क्रोध को निकाल दो। इधर यह रैभ्य मुनि का सम्पन्न आश्रम है। यह स्थल ऋषियों को अत्यन्त प्रिय है। यहां के वृक्ष सदा सर्वदा फल-फूलों से लदे रहते हैं।

युधिष्ठिर अब तुम उशीरबीज, मैनाक, श्वेत और काल पर्वत पार कर आगे आ गये हो। यहां सात प्रकार से बहती हुई भागीरथी शोभायमान है। यह बडा ही निर्मल और पवित्र स्थान है। यहां सदा ही अग्नि प्रज्ज्वलित रहती है। यह स्थान मनुष्यों के लिये अदृश है। समाधि प्राप्त करने पर ही तुम इसे देख सकते हो वर्ना भौतिक आंखों से तो नहीं। अब हम मणिभद्र पर्वत की ओर प्रस्थान करेंगे वहां पर मणिभद्र नाम का यक्ष और यक्षराज कुबेर निवास करते हैं। इस पर्वत पर ८८ हजार गन्धर्व और किन्नर तथा उनसे चौगुने यक्ष अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र धारण किये रहते हैं। वे तरह-तरह के रूप धारण करने में समर्थ होते हैं। गति में तो वे साक्षात वायु के समान हैं। ये पर्वत बडे ही दुर्गम स्थल हैं और यक्ष तथा राक्षसों के यहां रहने से सुरक्षित हैं। यहां पर कुबेर के साथी मैत्र नाम के राक्षस हैं जिनसे हमें सामना करना पडेगा। यहां कैलास पर्वत छै योजन ऊंचा है। उस पर्वत पर देवता आया करते हैं। कैलास पर्वत पर ही बदरिकाश्रम नाम का तीर्थ है। कांचन

मय से पर्वत से नीचे की ओर बहती हुई कल कल की ध्वनि करती हुई गंगा की लोमश ऋषि ने प्रार्थना की।

युधिष्ठिर अपने भाइयों से बोले यह प्रदेश बडा ही भयंकर और दुर्गम है। इसलिये यहां कोई प्रमाद न हो और द्रौपदी की सम्भाल करना। यहां मन, वाणी और शरीर से भी पवित्र रहना। कैलास पर द्रौपदी कैसे चढ पायेगी नहीं तो सहदेव सहित अन्य जन हमारे साथ आये हुये सभी पुरवासी, रथ, घोडे, सेवक इत्यादि जो रास्ते का कष्ट न सह सकते और द्रौपदी तथा ये सभी वापिस लौट जाये। मैं, नकुल और महर्षि लोमश तीनों ही अल्पाहार का नियम रख कर इस पर्वत पर चढेंगे। हम लोगों के लौटकर आने तक तुम लोग गंगा द्वार (हरिद्वार) में रहो और द्रौपदी की भली भांति देख रेख करो। भीम बोले नहीं भ्राताश्री। इस पर्वत पर राक्षसों की भरमार है। यह बडा ही दुर्गम और बीहड स्थान है। हम अकेले आपको कैसे जाने देंगे? फिर द्रौपदी भी तो आपके बिना लौटना नहीं चाहेगी। सहदेव भी आपके पीछे पीछे चलना चाहता है। यह भी नहीं लौटेगा। सभी लोग अर्जुन से मिलने के लिये उत्सुक हो रहे हैं। इसलिये सब आपके साथ ही चलेंगे। आप चिन्ता न करें, जहां जहां द्रौपदी पैदल नहीं चल पायेगी वहां मैं इसे कन्धे पर चढाकर ले चलूंगा। ये दोनों माद्री नन्दन नकुल और सहदेव यदि इन दुर्गम स्थानों पर चलने में समर्थ नहीं होंगे तो इन्हे भी मैं मेरे कन्धे पर बिठाकर पार लगा दूंगा। द्रौपदी बोली धर्मराज मैं आपके साथ ही चलूंगी, आप मेरी ओर से चिन्ता मत करें। युधिष्ठिर बोले भीम तुम इतना साहस कर रहे हो तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे बल, धर्म और सुयश की वृद्धि हो।

द्रौपदी को अर्जुन को दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिए गिरिराज हिमालय की ओर जाते हुए विदाई का दृष्य स्मरण हो आया। फाल्गुनी विदा ले रहे हैं। गांडीव और अक्षयतूणीर लिये गिरिराज हिमालय की ओर जा रहे हैं- कठोर साधना कर दिव्यास्त्र प्राप्त करने। सब भाई प्रसन्न मुख विदा दे रहे हैं। मेरे मन में प्रश्न उठता है- इतने भाई रहते अर्जुन पर कठोर साधना का भार क्यों लादा गया? इंद्र, महादेव, यम, वरुण, कुबेर आदि पंचदेवों से विभिन्न शक्तिशाली दिव्यास्त्र पाने का भार पांचों एक-एक कर नहीं बांट सकते थे? फाल्गुनी वीर हैं, निष्ठापर हैं और शक्तिशाली हैं। तो क्या उनका कोई सुख नहीं? जीवन का आधा भाग कट गया वनवास में, कठोर साधना में। सोचा था कुछ वर्ष अरण्यवास बन जायेगा। सिर्फ फाल्गुनी ही तो इन सब में अधिक कविप्राण हैं, अधिक भावुक हैं। वे हिमालय चले जायेंगे तब अरण्यवास का असली कष्ट मेरे लिए शुरू होगा। बार-बार मेरे अति प्रिय पुरुष को दूर ले जाने में प्रकृति को क्या मिलता है? मुझे कष्ट देने में, मेरे प्रतिप्रेम में व्याघात पैदा करने में नियति कितनी निष्ठुर बन जाती है। अर्जुन को दृष्टिपथ से दूरकर भी वे हृदय की आँखों से ओझल नहीं होते। शायद यह बात अदृष्ट नहीं जानता। जानता तो ऐसी निष्ठुरता करता। सोचकर ही हृदय कांप उठता है।

मैं सुख से रहूंगी- अर्जुन के विरह का दु:ख चार पतियों के मेल में भूल जाऊंगी। अबाध झरने की तरह सुख में समय काट दूंगी- अर्जुन का कैसा ख्याल है। इसी बात पर तो और भी दु:ख होता है। प्राणों के देवता को कैसे समझाऊं कि उनके स्वामित्व का जो विशेषत्व मेरे लिए है, वह और चारों से अलग है।

इस संसार में कौन किसके मन की बात समझता है? मेरे मन का दर्द अर्जुन नहीं समझते, इस बात पर दु:ख करने के सिवा कोई चारा नहीं। मैं जिन्हें हर पल पास चाहती हूं, उन्हें अदृष्ट बार-बार दूर कर देता है। कृष्ण की उपस्थिति में व्यासदेव ने जो निर्देश दिया था, उसे सिर झुकाकर ग्रहण करने के सिवा और क्या उपाय था। विवाह के बाद कदम-कदम पर लड़ना पड़ा है। पतियों की सुरक्षा की बात सोचते-सोचते चिंता में समय गुजारा।

फाल्गुनी ने छलछलायी आंखों से कहा- कृष्णा, चलता हूं शुभ कार्य के लिए। दिव्य अस्त्र पाकर लौटने के बाद तुम बनोगी हस्तिनापुर की राजरानी। कर्ण का अहंकार टूटेगा। कर्णवध करके तुम्हारे अपमान का प्रतिशोध लूंगा। कौरवों के

सारे काम में षड्यंत्र करनेवाले होते हैं शकुनि, मगर मुख्य परामर्शदाता होता है कर्ण। तुम निश्चिन्त रहो, मेरा वध करने से पहले कर्ण जीवित नहीं रहेगा।

कर्ण वध निश्चित है- मैं जानती हूं। कृष्ण जहां, विजय वहां- यह भी जानती हूं। कर्ण वध के लिए जो योजनाएं शुरू हुई हैं वे सफल होंगी, इससे धर्म की जय होगी। फिर भी कर्ण-वध वाली बात हृदय में हलचल पैदा कर देती है। मां कुंती के हृदय में कर्ण के प्रति गहरी ममता ने शायद मुझे प्रभावित किया है। सब कुछ अदृष्ट पर छोड़ दिया। हंसते-हंसते पति को विदा दी। विदा बेला में नारी सुलभ संशय प्रकट कर कहा- सुना है, देवताओं से वर पाने के लिए स्वर्ग तक जाना होगा। वहां रंभा, उर्वशी, मेनका आदि अनंत-यौवना रूपसी अप्सराएं हैं। देखो, पिछली बार जैसा ब्रह्मचर्य न रखना। पिछले वनवस की बात और थी। अब की बार जा रहे हैं बड़ा लक्ष्य लेकर। कामना आदमी को क्षणिक सुख देती है, पर लक्ष्यस्थल पर नहीं पहुंचाती।

महर्षि लोमश बोले कुन्तीनन्दन इस गन्धमादन पर्वत पर तप के प्रभाव से ही चढा जा सकता है। इसलिये हम सबको तपस्या करनी चाहिये। तप के द्वारा ही हम सब अर्जुन को देख सकेंगे। इस प्रकार आगे बढते हुये वे राजा सुबाहु के विस्तृत प्रदेश में पहुंचे। वहां पर सैकडो तंगण, किरात और पुलिन्द जाति के लोग रहते थे। जब पुलिन्द देश के राजा को पता चला कि उसके प्रदेश में पांडव लोग आये हैं तो वह बडा ही हर्षित हुआ और बडे प्रेम से उन सभी का आदर सत्कार किया। और उस दिन का पडाव पुलिन्द राजा के देश में वहां उसके पास हुआ। दूसरे दिन प्रात: सूर्योदय होने पर बर्फीले पर्वतों की ओर प्रस्थान किया। उन्होने अपने सेवक, पुरवासी, अपना अतिरिक्त समान वहीं पुलिन्द राजा के यहां छोड दिया और पैदल पैदल ही आगे बढे।

युधिष्ठिर बोले भीम हम सब अर्जुन को देखने की इच्छा से पांच वर्ष से सबको साथ लिये सुरम्य तीर्थ सरोवर और वन में भ्रमण कर रहे हैं परन्तु अभी तक सत्य सन्ध परम शूरवीर धनंजय को नहीं मिल सकने के कारण मेरा हृदय उद्विग्न हो रहा है। अर्जुन के गुणों का किस तरह बखान करूं ? यदि कोई छोटे से छोटा आदमी भी उसका तिरस्कार कर देता तो भी वह उसे क्षमा कर देता था। वह हर व्यक्ति को सुख शान्ति तथा अभय देता था। उसके साथ छल कपट से घात करनेवाला चाहे इन्द्र ही क्यों न हो वह उससे बच नहीं पाता था। उसकी शरण में आये हुये शत्रु पर भी उसका बडा उदार भाव रहता था। हम सब को तो वह बहुत बडा सहारा था। वह सभी को सुखी रखनेवाला वह शत्रुओं का दमन करने में निपुण था। उसी के बाहुबल के प्रताप से हमें त्रिलोकी की विख्यात दिव्य सुधर्मा सभा मिली। उसका पराक्रम महाबली बलराम और कृष्ण के समान टक्कर लेनेवाला है। उसी को देखने के लिये हम इस गन्धमादन पर्वत पर चढ रहे हैं। यहां की यात्रा कोई भी क्रूर व्यक्ति लोभी एवं अशान्त चित्त पुरुष नहीं कर सकता। जो लोग असंयमी होते है उनको यहां मक्खी, मच्छर, डांस, सिंह, व्याघ्र और सर्प इत्यादि से भय रहता है। संयमियों के तो ये सामने भी नहीं आते। अत: हमें संयमचित्त और अल्पाहारी होकर इस पर्वत पर चढना चाहिये।

लोमश मुनि बोले हे सौम्य युधिष्ठिर यह शीतल और पवित्र जल वाली अलकनन्दा नदी बह रही है। यह बदरिकाश्रम से निकली है। देवर्षिगण इसके परम पवित्र जल का सेवन करते हैं। आकाशचारी बाल खिल्य गण और गन्धर्व भी इसके तट पर आते जाते है। यहां मरीचि, पुलह, भृगु और अंगिरा आदि मुनिगण शुद्ध स्वर से सामगान करते हैं। हरिद्वार में भगवान शंकर ने इसी नदी का जल अपनी जटाओं में धारण किया था। तुम सब लोग इस भगवती भागीरथी को प्रणाम करो। महर्षि लोमश के कहने पर सब पांडवों ने अलकनन्दा को प्रणाम किया और आनन्दपूर्वक समस्त अन्य ऋषियों सहित आगे चलने लगे।

लोमश ऋषि बोले युधिष्ठिर ये जो सामने कैलास पर्वत के शिखर के समान सफेद सफेद जो पहाड दिखाई दे रहा है वह

नरकासुर की हड्डियों का पहाड है। पूर्वकाल में देवराज इन्द्र का हित करने भगवान विष्णु ने इसी स्थान पर नरकासुर दैत्य का वध किया था। उस दैत्य ने इन्द्रासन प्राप्त करने के लिये दस हजार वर्ष तक कठोर तपस्या की थी। अपने तपोबल और बाहुबल के कारण देवताओं के लिये वह अजेय हो गया था और सबको सताने लगा। इन्द्र इससे घबराकर भगवान विष्णु का स्मरण मनन चिन्तन करने लगे। तब भगवान विष्णु ने प्रसन्न हो इन्द्र को दर्शन दिये। सभी देवताओं और ऋषियों ने मिलकर भगवान विष्णु की स्तुति वन्दना की और अपना सारा कष्ट निवेदन किया। भगवान विष्णु बोले देवराज इन्द्र मैं जानता हूं कि तुम्हें नरकासुर से भय है। वह अपने तप के प्रभाव से तुम्हारा स्थान छीनना चाहता है। तुम अब निश्चिन्त रहो, मैं शीघ्र ही उसका वध कर दूंगा। देवराज इन्द्र से यों कहकर भगवान विष्णु ने एक घूंसे के प्रहार से ही नरकासुर का प्राणान्त कर दिया और वह चोट खाये हुये पर्वत के समान पृथ्वी पर गिर पडा। इस प्रकार भगवान विष्णु द्वारा मारे गये उस दैत्य की हड्डियों का यह ढेर सामने दिखाई दे रहा है।

इसके अलावा भगवान विष्णु का एक और कर्म दिव्य और प्रसिद्ध है। सतयुग में भगवान श्रीनारायण ही यम का कार्य करते थे। उस समय मृत्यु न होने के कारण सभी प्राणी बहुत बढ गये थे। उन सभी प्राणियों के भार से आक्रान्त पृथ्वी जल में सौ योजन डूब गयी। और पृथ्वी फिर नारायण की शरण में जाकर कहने लगी हे शरणागत वत्सल आपकी कृपा से मैं बहुत समय तक स्थिर रही परन्तु मेरा बोझ अब बहुत बढ गया है। मेरे इस भार को आप दूर करें क्योंकि अब मैं स्थिर नहीं रह पाऊंगी। मुझपर कृपा करें। पृथ्वी के इस प्रकार वचन सुनकर भगवान विष्णु बोले तू भार से पीडित है। अब मैं तेरे लिये ऐसा उपाय करूंगा जिससे तू हल्की हो जायेगी। तब भगवान एक सींग वाले वराह का रूप धारण कर उस पृथ्वी को अपनी दाढों से पकड कर जल से उबार कर अपने सींग पर रखकर सौ योजन पानी में डुबी हुई पृथ्वी को बाहर ले आये। यही वराह अवतार का प्रसंग हैं। लोमश ऋषि से यह कथा सुनकर पांडव अत्यन्त प्रसन्न हुये और फिर आगे के मार्ग पर जल्दी जल्दी चलने लगे।

चलते चलते सहदेव ने दृष्टि उठाकर दूर तक देखा हिमालय का मनोरम दृश्य अपने पूर्ण विस्तार के साथ विराट दृश्य एवं नयनाभिराम के लिये और मन अतीत की ओर लौट आया। यह मार्गशीर्ष की पूर्णिमा व्यतीत होने पर पुष्प नक्षत्र में उनकी यात्रा आरम्भ हुई थी। यात्रा का नेतृत्व लोमश ऋषि कर रहे थे। ऋषि मार्ग निर्देशन ही कर सकते थे रक्षण नहीं। रक्षा का पूरा दायित्व भीम पर था। धर्मराज युधिष्ठिर कुछ खिन्न मन से लग रहे थे तो ऋषि ने पूछ लिया धर्मराज कहो क्या बात है? लगता है आप प्रसन्न नहीं है युधिष्ठिर बोले नहीं ऋषिवर ऐसी बात नहीं है पर फिर भी मैं जब पांचाली को इस स्थिति में देखता हूं तो कभी कभी मेरी आस्था खंडित हो जाती है और लगने लगता है कि ईश्वर का भी यह कैसा न्याय है ? धर्म का पालन करने पर भी मेरे भाई, मेरी पत्नी तपस्वी वेश मे नंगे पांव, वन वन भटक रहे हैं और अधर्म का वह अधिष्ठाता दुर्योधन सुख, वैभव, अधिकार, सत्ता सब कुछ भोग रहा है। ऋषि हंसते हुये बोले युधिष्ठिर यह अकेले तुम्हारे एक का ही प्रश्न नहीं है। युगों युगों से लोग यही प्रश्न पूछते आ रहे हैं। जब मनुष्य अधर्म मार्ग से वृद्धि की ओर बढता है तो सुख समृद्धि की अपार उपलब्धि होती है। उस सुख सम्पत्ति के मोह में मनुष्य अपने अधर्म को नहीं देख पाता है परन्तु उसकी ओर अधिक से अधिक आकृष्ट होते जाता है। अधर्म उसकी सम्पदा में अधिक वृद्धि करता है। वह सम्पदा उसके मोह और अहंकार को बढाती है। अहंकार उसकी बुद्धि का नाश करता है और अन्ततः वह जड मूल सहित नष्ट हो जाता है। युधिष्ठिर बोले मुझे तो लगता है यह मात्र मन बहलाने का छलावा है। पता नहीं क्या माया है उसकी? मेरा मन तो क्षुब्ध हो रहा है और कभी कभी तो धैर्य भी टूट जाता है कि संसार में ऐसा सब क्यों होता है? ऋषि बोले युधिष्ठिर तुम्हारा मन यह भी सोचता होगा कि

क्यों वैसा नहीं होता जैसा तुम चाहते हो? क्यों सृष्टि तुम्हारी इच्छा से नहीं चलती? क्यों सृष्टि का कार्य व्यापार तुम्हारे बनाये नियमों के अनुसार सम्पादित नहीं होता?

ऋषि बोले युधिष्ठिर सृष्टि का निर्माण ईश्वर ने किया है तुमने नही। सृष्टि उसी के बनाये नियमों पर चलेगी तुम्हारी कामनाओं पर नहीं। तुम न नियम निर्माण कर सकते हो और न ही तुम उसमें परिवर्तन कर सकते हो। तुम नियमों को समझकर उसके अनुकूल आचरण कर सकते हो। जब इस प्रकृति से बन्धे हो तो नियम तो प्रकृति के ही रहेंगे। फिर अहंकार के हाथों का खिलौना बन क्यों दु:खी होते हो? जब किसी का अधर्म फलने लगता है तो समझ लो कि ईश्वर उससे रूष्ट हो रहा है। किसी का अधर्म न फले तो समझो ईश्वर उससे प्रसन्न है। धर्म फले तो समझो ईश्वर प्रसन्न है और यदि किसी का धर्म भी न फले तो समझो कि ईश्वर उससे परम सन्तुष्ट है। उस समय ईश्वर उसकी परीक्षा ले रहा होता है। पता नहीं युधिष्ठिर ऋषि की इस व्याख्या से सन्तुष्ट हुये या नहीं पर धर्मराज ऋषि का उत्तर सुनकर मौन हो गये।

इन पर्वतीय इलाकों पर छोटे छोटे ग्रामों पर धर्मराज का संरक्षण नहीं होता तो ये सब राज्य कब से छीन गये होते। उसे चाहे तो दुर्योधन छीनता, चाहे शिशुपाल, चाहे शाल्व या शल्य अथवा कोई और। जब बडी-बडी सेनायें दिग्विजय पर निकलती है तो इन जैसे छोटे छोटे राज्यों का कोई रक्षक नहीं होता। यह तो पांडवों का ही हृदय था कि वे उनके प्राणों, धन सम्पत्ति तथा राज सत्ता की रक्षा करते रहे और पांडवों के भय से किसी ने उनकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखा। क्योंकि धर्मराज के कारण बडे राजा छोटे राजाओं पर अपना मनमाना अत्याचार नहीं कर पाये इससे छोटे छोटे राज्य सुरक्षित रहे। कुलिंद, किरात, तंगण, गंधर्व, किन्नर सब चाहते है कि सारे जम्बू द्वीप में धर्मराज की सत्ता पुन: स्थापित हो ताकि उनका भविष्य सुरक्षित रहे।

**३) भीम की हनुमान से भेंट -** पांडव गन्धमादन पर्वत पर बदरिकाश्रम की ओर चढ रहे थे। अर्जुन से मिलने की तीव्र इच्छा से बदरिकाश्रम से स्वर्ग की ओर जानेवाले मार्ग की तरफ जा रहे थे कि इतने में ही दैवयोग से ईशान कोण की तरफ से बहते हुये पवन के झौंके से एक सहस्त्र कमल दल उड आया। वह पुष्प बडा ही दिव्य, साक्षात सूर्य के समान अत्यन्त कमनीय था। उसकी गन्ध बडी ही अनूठी और मनमोहक थी। पृथ्वी पर पडते ही उस कमल पर द्रौपदी की दृष्टि पडी और उसने उस सौगन्धिक कमल को उठाकर मन में अत्यन्त प्रसन्न हो भीम से बोली आर्य यह कमल मैं धर्मराज युधिष्ठिर को भेंट करना चाहती हूं। प्रिय आप मुझसे प्रेम करते हैं तो मेरे लिये ऐसे ही बहुत सारे पुष्प यहीं कहीं पास में उसका उद्यान है लेकर आइये। मैं इन्हे काम्यक वन में अपने आश्रम में ले जाऊंगी।

अग्नि तनया द्रौपदी का आशय जान कर भीम अपनी पत्नी का प्रिय करने की इच्छा से उस ओर चला जिस ओर से वायु उसे उडाकर लायी थी। अपने साथ धनुष बाण से सज्जित हो भीम मतवाले हाथी के समान उस सौगन्धिक वन की ओर जाने लगे। भीम के उस चलने की पदचाप से भीषण गर्जना हो रही थी। बाघ अपनी गुफाओं को छोड छोड कर भागने लगे व अन्य जंगली जीव जन्तु जहां तहां छिपने लगे। पक्षी भयभीत होकर उडने लगे और मृगों के झुंड घबराकर चौकडी भरने लगे। भीम की गर्जना से सारी दिशायें गूंज उठी। थोडी दूर जाने पर गन्धमादन की चोटी पर कई योजन विस्तृत केले का बगीचा दिखाई दिया। भीम उस बगीचे के भीतर घुस गये। उस वन में महावीर हनुमान जी रहते थे। उन्हे अपने भाई भीम के आने का पता चल गया। भीम का इधर से होकर स्वर्ग में जाना हनुमानजी को उचित नहीं लगा क्योंकि सम्भव है कोई उनका तिरस्कार कर दे या किसी तरह का शाप दे दे। ऐसा विचार कर भीम की रक्षा के हेतु वे केले के बगीचे से होकर जानेवाले उस संकडे मार्ग को रोककर बीचों बीच लेट गये और पडे पडे बार बार अपनी पूंछ फटकारते रहते थे। भीम जब

उधर से आ रहे थे तो उन्हे एक सफेद हृष्ट पुष्ट वानर अपनी पूंछ फैलाये लेटा हुआ दिखाई दिया और भीम का रास्ता रोके पडा है। उस वानर का मुंह लाल भौहें चंचल और दाढे दीख रही थी। उनके अंग की कान्ति प्रज्ज्वलित अग्नि के समान थी और वे अपनी पीली पीली आंखों से इधर-उधर देख रहे थे। उनका शरीर बडा ही स्थूल विशालकाय उस मार्ग को रोक कर हिमालय के समान स्थित था।

भीम उधर से उनके निकट आये और बोले वानर राज कृपया अपनी इस पूंछ को हटा लीजिये और मुझे मार्ग दें। सुना नहीं आपने कृपया अपनी पूंछ हटा ले। वह वानर बोला अरे भाई राम का नाम लो और मुझे विश्राम करने दो। भीम बोला हटाते हो या उठाकर फेंक दूं। वह वानर बोला भैया मैं तो रोगी हूं यहां आनन्द से सो रहा था, तुमने मुझे क्यों जगा दिया ? तुम्हें तो जीवों पर दया करनी चाहिये। तुम्हारी प्रवृत्ति ऐसी धर्म का नाश करनेवाली क्रूर कर्मा क्यों है। तुम मन, वाणी और शरीर से पवित्र कर्म नहीं करते। भीम फिर बोला हटाते हो या मैं उठा कर इसे हटाऊं। वानर बोला हटा सको तो हटा दो। वानर बोला तुम हो कौन और इस वन में किसलिये आये हो। यहां तो कोई मानवी भाव नहीं रह सकता न ही कोई मनुष्य। आगे तुम्हे कहां जाना है? यहां से आगे तो यह पर्वत अगम्य है इस पर कोई चढ भी नहीं सकता। अत: तुम यही विश्राम करो और वापिस लौट जाओ इसी में तुम्हारा हित है। आगे जाने में अपने प्राणों को व्यर्थ ही झंझट और जोखिम में डालोगे।

भीम ने वानर की पूंछ हटाने के लिये पूरा जोर लगाया पर वह पूंछ तनिक भी नहीं हिली। वह वानर बोला मेरी भी यही पुरानी अभिलाषा है कि कोई मेरी इस पूंछ को हटा दे। पर भीम से वह पूंछ हटी नहीं तो वह वानर फिर से बोला इतने तो हृष्ट पुष्ट हो पर तुमसे एक पूंछ नहीं हटती। हटाओ हटाओ। भीम बोला मैं क्षमा चाहता हूं। वानर बोला अरे भैय्या राम का नाम लो और पूंछ लांघ कर चले जाओ। भीम बोले चला कैसे जाऊं ? आप कोई साधारण वानर तो है नहीं। अपना परिचय दे। दर्शन दें। वानर बोला राम का नाम लो कुन्ती पुत्र। सेवक के दर्शन करके क्या करोगे ? स्वामी के दर्शनों की अभिलाषा करो। भीम बोला तो आप श्रीराम भक्त पवन पुत्र हनुमान हैं। वानर ने हनुमान के वेश में दर्शन दिये।

**पवन तनय संकट हरण, मंगलमूर्ति रूप, राम लखन सीता सहित हृदय बसो सूर भूप।**

भीम ने हनुमान जी को प्रणाम किया। हनुमान बोले यदि मैं पवन पुत्र हनुमान नहीं होता तो तुम्हें बार बार भाई क्यों कहता? भीम बोले तो फिर आप मुझे इस दशा में क्यों मिले ? हनुमान बोले यह शिक्षा भी तो देनी थी अनुज कि निर्बल और वृद्ध का आदर करना चाहिये। तुम्हें यह भी सिखाना था कि वो जो आंखे देखती है केवल उतना ही सत्य नहीं होता है। सत्य हर राम से बडा होता है। तुमने देखा एक वृद्ध वानर लेटा हुआ तुम्हारी बाहों के उस बल को चुनौती दे रहा है और तुमने चुनौती स्वीकार कर ली। क्या पता है अपनी जीवन यात्रा में तुम्हें किस मार्ग में किस रूप में कौन मिल जाये ? भीम बोले क्षमा चाहता हूं। अब ऐसी कोई भूल नहीं होगी।

वानर हनुमान बोले हे कुन्तीपुत्र मुझे भगवान श्रीराम से वर मिला हुआ है कि जब तक इस भूमंडल पर भगवान श्रीराम की पवित्र कथा होते रहेगी तब तक मैं यहां पर जीवित रहूंगा। अब यहां रहते हुये मुझे इच्छानुसार दिव्य भोग प्राप्त हो जाते हैं। इस स्थान पर गन्धर्व और अप्सरायें उनके चरित्र गा गा कर मुझे सुनाते हैं और आनन्दित करते हैं। इस मार्ग से देवता लोक आते जाते रहते हैं। यह मार्ग मनुष्यों के लिये अगम्य है। इसीसे मैंने तुम्हे आगे जाने से रोक लिया। तुम जिस सरोवर के पास जाने के लिये आये हो वह तो यहीं पर है। हनुमान जी के ऐसा कहने पर भीम अत्यन्त प्रसन्न हुये और हनुमानजी को प्रणाम कर बोले आज मेरे समान कोई बडभागी नहीं है क्योंकि आज मुझे मेरे ज्येष्ठ भ्राताश्री के दर्शन हुये। आपने बडी कृपा की। आपके दर्शनों से मुझे बडा ही सुख प्राप्त हुआ। मेरी इच्छा है कि समुद्र लांघते समय आपने जो अनुपम रूप धारण किया था उसका मैं दर्शन

करना चाहता हूं तब हनुमान हंसकर बोले तुम अब उस रूप को नहीं देख पाओगे। क्योंकि काल तो निरन्तर क्षय करता ही है। अब मेरा वह रूप है ही नहीं। उस समय त्रेता काल था और अब द्वापर। पृथ्वी, नदी, वृक्ष, पर्वत, सिद्ध, सागर, देवता और महर्षि ये सभी काल का अनुसरण करते हैं। प्रत्येक युग के अनुसार इनके देह, बल और प्रभाव में न्यूनाधिकता होती रहती है। इसलिये तुम उस रूप को देखने का आग्रह छोड दो। मुझ में तो युग युग के अनुसार बल विक्रम रहता है क्योंकि काल का अतिक्रमण करना तो किसी के भी वश में नहीं है। भीम बोले हे महात्मन आप मुझे प्रत्येक युग के आचार, युग धर्म, अर्थ और कर्म के रहस्य, कर्म के फल स्वरूप तथा उत्पत्ति और विनाश का विवेचन बताइये।

हनुमान बोले भीम सबसे पहला सतयुग उसे कृत युग भी कहते हैं। उसमें सनातन धर्म की पूर्ण स्थिति रहती है तथा किसी का भी कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता। उस समय धर्म की तनिक भी क्षति नहीं होती। पिता के सामने पुत्र की मृत्यु नहीं होती। फिर काल क्रम से उसमें गौणता आ जाती है। कृतयुग में न कोई आधि व्याधि से ग्रसित रहता है और न इन्द्रियों से ही दुर्बल। उस समय कोई किसी की निन्दा नहीं करता था, न ही किसी को दु:ख से रोना पडता था और न किसी में अहंकार या कपट था। आपस के झगडे, आलस्य, द्वेष, चुगली, भय, सन्ताप, ईर्ष्या और मत्सर का तो उस युग में नाम भी नहीं था। उस समय योगियों के परम आश्रय और सम्पूर्ण भूतों की आत्मा, परब्रह्म श्री नारायण का वर्ण शुक्ल था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये सभी वर्णशम दमादि लक्षणों से सम्पन्न रहते थे तथा प्रजा अपने अपने कर्मों में तत्पर रहती थी। सबके एक ही आश्रय परमात्मा ही थे। आचार और ज्ञान भी सबका एक ही था। सबके पृथक-पृथक धर्म होने पर भी वे एक वेद को ही माननेवाले थे और एक ही धर्म का अनुसरण करते थे। वे चारों आश्रमों के कर्मों का निष्काम भाव से आचरण कर परम गति प्राप्त करते थे। इस प्रकार आत्मतत्व की प्राप्ति करानेवाला धर्म विद्यमान हो तो वह कृतयुग समझना चाहिये। उस समय चारों वर्णों का धर्म, चारो पादों से सम्पन्न रहता है। यह तो तीनो गुणों सत्व, रजस, तम से रहित कृतयुग का वर्णन है।

भीम अब तुम त्रेता युग के विषय में जानो। उस समय यज्ञ की प्रवृति होती थी। धर्म का एक पाद नष्ट हो गया था। इसमें भगवान नारायण रक्त वर्ण के हो जाते हैं। लोगों की प्रवृत्ति सत्य में रहती है। उन्हे अपने संकल्प और भाव के अनुसार कर्म और दान के फल मिलते हैं। वे अपने धर्म से विचलित नहीं होते। धर्म, तप और दानादि करने में तत्पर रहते हैं। इस प्रकार त्रेता युग में मनुष्य अपने धर्म में स्थित और क्रियावान होते हैं। इसके पश्चात द्वापर में धर्म के केवल दो पाद रह जाते हैं। भगवान विष्णु का पीत वर्ण हो जाता है और वेद के चार भाग हो जाते हैं। उस समय कोई-कोई तो चार वेद पढते हैं वे चतुर्वेदी कहलाते हैं तब कोई तीन वेद पढ़नेवाले त्रिवेदी कहलाते हैं। कोई दो वेद पढते हैं वे द्विवेदी तथा कोई एक वेद का ही स्वाध्याय कर वेदपाठी कहलाते हैं तो कोई वेद पढते ही नहीं। इस प्रकार शास्त्रों के भिन्न-भिन्न हो जाने से कर्म में भी भेद हो जाता है तथा प्रजा, तप और दान इन दोनों धर्मों में ही प्रवृत होकर राजसी हो जाती है। सत्य में तो किसी किसी की ही स्थिति रहती है। सत्य से च्युत होने के कारण उस समय व्याधियां और कामनायें भी अनेकों हो जाती है तथा बहुत से दैवी उपद्रव भी होने लगते है। उनसे अत्यन्त पीडित होकर लोग तप करने लगते हैं तथा उनमें से अनेकों भोग और स्वर्ग की इच्छा से यज्ञानुष्ठान करते है। इस प्रकार द्वापर युग में अधर्म के कारण प्रजा क्षीण होने लगती है।

कलियुग में तो धर्म केवल एक ही पद से स्थित रहता है। इसे तमोगुणी युग भी कहते है। इस युग में भगवान विष्णु श्याम वर्ण हो जाते है। वैदिक आचार नष्ट हो जाते हैं तथा धर्म, यज्ञ और क्रिया का ऱ्हास हो जाता है। इस समय आधि व्याधि, तन्द्रा और क्रोधादि दोष तरह तरह के उपद्रव मानसिक चिन्ता और क्षुधा इन सबकी वृद्धि होने लगती है। इस प्रकार युगों

के परिवर्तन से धर्म में भी परिवर्तन होते रहता है और धर्म में परिवर्तन होने से लोक की स्थिति में भी परिवर्तन हो जाता है। जब लोक की स्थिति गिर जाती है तब उसके प्रवर्तक भावों का भी क्षय हो जाता है। अब शीघ्र ही भीमसेन कलियुग का पदार्पण होने वाला है इसलिये तुम्हें मेरा जो पूर्वरूप देखने का कौतूहल जागा है वह ठीक नहीं है। इसलिये भीम तुम आग्रह मत करो और वापिस लौट जाओ। भीम बोले मैं आपके पूर्व रूप का दर्शन किये बिना तो बिल्कुल नहीं लौटूंगा। यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है तो मुझे उस रूप का दर्शन कराइये।

भीम के इस प्रकार कहने पर और पूर्ण पूर्वाग्रह से हनुमान जी ने मुस्कुराकर अपना वह रूप दिखलाया जो उन्होने समुद्र लांघते समय दिखलाया था। उन्होने अपने शरीर को बहुत बडा कर लिया। वह लम्बाई और चौडाई में बढ गया। उनके शरीर के बढ जाने से वह केलों का उद्यान आच्छादित हो गया। कुरूपुत्र भीम हनुमानजी का यह रूप देखकर अत्यन्त विस्मित हुये और शरीर में रोमान्च व्याप्त होने लगा। हनुमानजी का यह विग्रह तेज में सूर्य के समान था और सोने के पहाड जैसा चमक रहा था मानो दैदीप्यमान आकाश ही। इससे भीम की आंखे चकाचौंध हो गई। विन्ध्यागिरि के समान उस देह को देखकर भीम भयभीत हो हाथ जोडकर प्रार्थना कर बोले हे समर्थ देव मैंने आपके शरीर का महान विस्तार देख लिया है। अब आप अपने इस स्वरूप का संवरण करे। आप तो साक्षात उदित हुये सूर्य के समान हैं। आप अपरिमित हैं। आप असीम बलशाली है। ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो आपको अप्राप्य है। हनुमानजी ने भीम को पूरी राम कथा का वृत्तान्त सुनाया और बोले भीम अब तुम जाओ और देखो यह सामनेवाला मार्ग सौगन्धिक वन को जाता है। वहां तुम्हे यक्ष और राक्षसों से रक्षित कुबेर का उद्यान मिलेगा। तुम वहां जाकर कमल पुष्प स्वयं मत चयन करना। मनुष्यों को तो देवताओं का मान करना चाहिये। तुम्हें तो धर्म का पालन करना चाहिये। श्रेष्ठ धर्म में स्थित रहकर ज्ञान सम्पादन कर व्यवहार करना।

धर्म को जाने बिना और बडों की सेवा किये बिना गुरु बृहस्पति के समान होते हुये भी तुम धर्म, अर्थ, के तत्व को नहीं जान पावोगे। किसी समय धर्म ही अधर्म हो जाता है और अधर्म धर्म बन जाता है। अत: धर्म और अधर्म का अलग-अलग ज्ञान होना चाहिये। बुद्धिहीन लोग इसमें मोहित हो जाते है। धर्म आचार से होता है, धर्म में वेद प्रतिष्ठित है। वेदों से यज्ञों की प्रवृत्ति हुई है और यज्ञों में देवताओं की स्थिति है। देवों की आजीविका वेदाचार के विधान से यज्ञों पर है। मनुष्यों का आधार बृहस्पति और शुक्राचार्य की बनाई हुई नीतियां है। ब्राह्मण वेदाध्ययन से, वैश्य व्यवसाय और क्षत्रिय दंड और प्रजा पालन से अपना निर्वाह करते हैं। इन्ही वृतियों का पालन करने से लोक यात्रा का निर्वाह हो जाता है। ब्राह्मण का मुख्य धर्म अध्ययन और अध्यापन, आत्मज्ञान तथा यज्ञ, तप, दान आदि। क्षत्रिय का मुख्य धर्म प्रजा पालन और वैश्य का मुख्य धर्म पशुपालन, कृषि तथा शूद्र का मुख्य धर्म तीनों वर्णों की सेवा करना है। शूद्र को भिक्षा, यज्ञ, तप, व्रत का अधिकार शास्त्रों ने नहीं दिया है। हे कुन्तीनन्दन तुम्हारा निज धर्म तो क्षत्रियों का प्रजा पालन धर्म ही है उसका तुम विधिपूर्वक संयम से पालन करो। जो राजा वृद्ध, साधु, बुद्धिमान और विद्वानों के साथ परामर्श करके शासन करता है, दुर्व्यसनों का तिरस्कार करता है तथा प्रजा के निग्रह और अनुग्रह में उचित रीति से प्रवृत होता है तभी लोक की मर्यादा सुव्यवस्थित होती है। अत: राजा को देश और दुर्ग में अपने शत्रु और मित्रों की सेनाओं की स्थिति का, वृद्धि और क्षय का ठीक ठीक ज्ञान होना चाहिये। साम, दाम, दंड और भेद इन चारों उपायों से दूत, बुद्धि, गुप्त विचार, पराक्रम, निग्रह, अनुग्रह और दक्षता ये गुण ही राजाओं के कार्य को सिद्ध करनेवाले हैं। राजा को साम, दाम, भेद, दंड और उपेक्षा इन पांचो साधनों से अपना काम बना लेना चाहिये। सारी नीतियों और गुप्त विचारों से जो कार्य की सिद्धि हो उसी की ब्राह्मणों के साथ

मन्त्रणा करें। स्त्री, मूर्ख, बालक, लोभी और नीच पुरुषों के साथ तथा जो उन्मादी है उनके साथ कभी भी गुप्त परामर्श नहीं करें। परामर्श विद्वानों के साथ ही करना चाहिये। जो सामर्थ्यवान हो उनसे ही कार्य कराना चाहिये और जो हितैषी हो उनसे ही न्याय कराना चाहिये। मूर्खों को तो सभी कामों से अलग रखना चाहिये। राजा धर्म कार्यों में धार्मिकों, अर्थ कार्यों में विद्वानों को और स्त्रियों में काम करने के लिये वृद्धों को नियुक्त करे तथा कठोर कर्मों में क्रूर प्रकृति के लोगों को लगावे। कर्तव्य और अकर्तव्य के विषय में, शत्रुओं के बलाबल का भी ज्ञान जाने। बुद्धिमान की भली भांति परीक्षा कर उन साधु पुरुषों पर अनुग्रह करें। मर्यादाहीन अशिष्ट पुरुषों का दमन करें। इस प्रकार हे कुन्तीनन्दन मैंने तुम्हे राजधर्म का उपदेश दिया। तुम अपने धर्मानुसार इसका विधिपूर्वक पालन करो। जिस प्रकार ब्राह्मण तप, धर्म, दान और यज्ञानुष्ठान द्वारा उत्तम लोकों को प्राप्त करता है तथा वैश्य आतिथ्य रूप धर्मों में सद्गति प्राप्त करता है उसी प्रकार तुम भी अपने धर्म में स्थित रह काम क्रोध से रहित हो, द्वेषरहित लोभहीन हो और पृथ्वी से दुष्टों का संहार कर सत्पुरुषों को प्राप्त होने वाले लोकों को प्राप्त करो। यह कहकर हनुमानजी ने अपने विराट शरीर के स्वरूप का संवरण किया।

भीम बोला हे महात्मन वन में हमारा निवास है, अधिक दूर भी नहीं है जहां मेरे अन्य भाई और पांचाली है। आप वहां चलकर विश्राम करें और मेरे भाइयों को भी आशीर्वाद दें। हनुमान बोले मेरा आशीर्वाद तो सदैव तुम लोगों के साथ है। भीम बोले आप चलकर हमें युद्ध नीति समझाये क्योंकि हम एक महायुद्ध की तैयारी कर रहे है। आपने तो रावण, मेघनाद और कुम्भकर्ण जैसे महायौद्धाओं को हराया है। हनुमान बोले मैंने युद्ध अवश्य किया था परन्तु जीत हुई थी श्रीराम की। सत्य और असत्य के तलाव में लडते तो यौद्धा ही है परन्तु विजय सत्य की ही होती है और पराजय असत्य की। इसलिये वत्स सत्य को पहिचानो और उसे दोनों हाथों से ही पकडे रहो। यही युद्ध नीति है। भीम बोला तो क्या आप सत्य और असत्य के युद्ध में सत्य की ओर से युद्ध नहीं करेंगे। हनुमान बोले यह युग मेरे युद्ध करने का नहीं है परन्तु मेरा आशीर्वाद तुम लोगों के ध्वज के साथ सदैव रहेगा। तुम्हें जब भी मेरी आवश्यकता पडे मुझे स्मरण कर लेना और मैं इस स्थान पर रहता हूं यह बात किसी से मत कहना। अब कुबेर भवन से विहार के लिये आनेवाली देवांगनाओं और अप्सराओं का समय हो गया है। मेरे दर्शनों का फल तुम्हें अवश्य मिलना चाहिये। इसलिये यदि तुम्हारी इच्छा हो तो हस्तिनापुर जाकर मैं धृतराष्ट्र पुत्रों का वध कर दूं। और यदि तुम चाहो तो पत्थरों से उस नगर को ही विनष्ट कर दूं। या चाहो तो दुर्योधन को बांध कर लाकर तुम्हारे पास ले आऊं। तुम्हारी जैसी इच्छा हो पूर्ण कर दूं। यह सुनकर भीम प्रसन्न हो बोला वाननराज मेरा काम काज तो आपने कर ही दिया। अब इनके होने में तो कोई सन्देह ही नहीं बस सदैव आपकी कृपा और आशीर्वाद बना रहे। आप हमारे रक्षक हैं इसलिये पांडव अब सनाथ हो गये। आपके प्रताप से हम शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेंगे। हनुमान बोले प्रिय भीम तुम मेरे अनुज और सुहृद होने में जिस समय तुम महायुद्ध करोगे उस समय बाणों की शक्ति में व्याप्त हो शत्रु की सेना में सिंहनाद कर भीषण शब्दों से तुम्हारी गर्जना बढा दूंगा और अर्जुन के रथ की ध्वजा पर बैठा हुआ भीषण गर्जना करते रहूंगा जिससे शत्रु भयभीत हो जायेंगे, दहल जायेंगे तो तुम सुगमता से उनका वध कर सकोगे। ऐसा कहकर हनुमान ने भीम को मार्ग दिखाया और वहां से अन्तर्धान हो गये।

**४) पार्थ और पवनपुत्र हनुमान-** अर्जुनने अकेले जाकर तपस्या करके भगवान् त्रिपुरारिको प्रसन्न किया। पाशुपतास्त्र प्राप्त किये, देवताओंके दिव्यास्त्र भी मिले।

श्रीकृष्ण सानुकूल होते हैं तो संयोग एवं सफलताएँ स्वयं आ जुटती हैं। इस यात्रामें अकस्मात् पार्थको पवनपुत्र श्री

हनुमानजी मिल गये। परस्पर परिचय हुआ। अर्जुनने अभिवादन किया।

दो भगवद्भक्त मिलेंगे तो उनमें स्वभावत भगवत्चर्चा चलेगी। अर्जुनने अपनी यात्राका उद्देश्य बतलाया कि उन्हें कौरवोंसे होनेवाले अनिवार्य युद्धमें दिव्यास्त्र प्राप्त करना है। इसके लिए तप करने वे हिमालयके इस दिव्य देशमें जा रहे हैं। इस प्रसङ्गमें श्री मारूतिने मर्यादा पुरुषोत्तमका मंगलमय चरित सुनाया।

सेतुबन्धका वर्णन सुनकर अर्जुनको आश्चर्य हुआ। वे बोले- श्री रघुनाथजी अथवा उनके अनुज सौ योजन समुद्रपर अपने शरोंका सेतु नहीं बना सकते थे क्या? कि नल-नीलको तथा आप सबको पर्वत ढोनेका श्रम करना पड़ा?

हनुमानजी हँसे और बोले- वे सर्वसमर्थ कर तो सब कुछ सकते थे किन्तु बाणों के द्वारा बँधे सेतुपर इतनी विशाल वानरी सेना कैसे पार हो सकती थी?

अर्जुनने सगर्व कहा- यह आशंका अकारण है। ऐसा सेतु तो मैं क्षणोंमें बना दे सकता हूँ कि उसपर चाहे जितनी बड़ी सेना समस्त सामग्रीके साथ पार हो जाय।

अर्जुनका यह अभिमान असह्य था। इसमें पवनकुमारको अपने आराध्यके पराक्रमकी अवगणना लगी। वे रोषपूर्वक बोले- समुद्र तो बहुत दूर, तुम इस सम्मुखके सरोवरपर शरोंका सेतु बना दो और वह मेरा भार सहन करके भंग न हो जाय तो मैं शरीर त्याग दूँ।

अर्जुन भी आवेशमें आ गये। वे बोले- मेरा बनाया बाणोंका सेतु यदि आपके भारसे भग्न हो जाये तो मैं प्रज्ज्वलित चितामें प्रवेश करके प्राण विसर्जन कर दूँगा।

श्रीहनुमानजीका आवेश उचित था। अपने आराध्यका अपमान वे सहन नहीं कर सकते थे; किन्तु अर्जुनके आवेशमें अपने पौरुषका अभिमान तथा अविवेक था। अकारण ही। बिना सोचे समझे वे ऐसी प्रतिज्ञा कर बैठे किन्तु किया क्या जाय। उनके स्वभावमें यह दुर्बलता न होती तो वे नर क्यों कहे जाते। वे सामान्य पुरुषोंके प्रतिनिधि हैं और प्राणियोंमें यह दुर्बलता दुर्गुण नहीं है, यदि वह उसे समझकर पुरुषोत्तमको अपना सखा बना सके। हम सबल ही होते तो उस सर्वसमर्थकी सहायताकी हमें क्यों अपेक्षा होती।

अर्जुनने अपना गाण्डीव चढ़ाया और बाण वृष्टि आरम्भ करदी। सचमुच सरोवरपर एक तटसे दूसरे तट तक शरोंसे निर्मित सुदृढ़ सेतु कुछ क्षणोंमें ही सम्मुख था। धनुष उतारते हुए धनंजयने कहा- अब आप इस परसे पार जा सकते हैं।

पवननन्दन उठे। उन्होंने जो भयंकर कनक भूधराकार शरीर धारण किया उसकी कल्पना भी अर्जुन ने नहीं की थी। जब उन आंजनेयने अपने दोनों हाथोंमें दो विशाल गिरि शिखर उठाये, अर्जुनका रहा सहा धैर्य भी समाप्त हो गया। अब अभिमान तो नष्ट हो ही गया, प्रज्ज्वलित चिता दीखने लगी नेत्रोंके सम्मुख। इतना भार कोई भी सुदृढ़तम सेतु सहन नहीं कर सकता यह वे समझ गये।

अर्जुनको अपने सखाका स्मरण आया। जीव जब अपने पराक्रम से निराश हो जाता है और विपत्ति मुख फाड़े निगलनेको सम्मुख आ खड़ी होती है तभी तो उसे जगन्नाथका स्मरण होता है। अर्जुन मन ही मन आर्त होकर पुकारने लगे- हृषिकेश। भक्त वत्सल। मेरी रक्षा कर लो। अपने अर्जुनको बचालो। मुझे मरनेका भय नहीं है; किन्तु मैं यहीं मर गया तो आपके आश्रित शेष पाण्डव और पांचालीके प्राण भी बचेंगे नहीं।

अज्ञानी जीव अपराध करता है और उसका फल देखकर भयातुर भगवान्को पुकारता है; किन्तु उन भक्तवत्सलने कब किसीके दोष देखे हैं। वे तो आह्वान करनेवालेकी सहायताके लिए सदा प्रस्तुत रहते हैं। अर्जुन व्याकुल पुकार रहे थे

किन्तु वे अनन्त शक्ति वहाँ उपस्थित होकर अपने दोनों अनन्य आश्रितोंकी रक्षा व्यवस्था कर चुके थे, यह दो में से एकको भी पता नहीं था।

श्रीकेसरी-किशोर यदि सेतुपर कूद पड़ते तो भी वह टूटता नहीं किन्तु उन्होंने साधारण रीतिसे ही उसपर पद रखा और दोनों पद रखते ही आश्चर्य-से चौंक गये कि उनके भारको यह बाणोंका सेतु सहन कैसे कर सका। उन्होंने अपने पदोंके पास सेतुकी ओर देखा। वहाँ नीचेसे पानी में बहुत वेगपूर्वक रक्त आ रहा था और उससे सरोवरका जल लाल होता जा रहा था। हनुमानजीने नेत्र बन्द करके ध्यान किया-यह क्या है?

क्षणार्धमें कूदकर केसरी कुमार तटपर आ गये। उन्होंने ध्यान में देख लिया कि स्वयं उनके वही नवघन सुन्दर आराध्य महाकच्छप बनकर सेतुके नीचे पीठ लगाये हैं और रक्त उनके शरीरसे ही निकल रहा है।

पवनपुत्रने हाथोंके पर्वत फेंक दिये और पार्थको हृदयसे लगाकर गद्‌गद स्वरमें बोले- धनंजय। धन्य हो तुम। तुम्हारे लिए वे सर्वेश्वरेश्वर कच्छप बनकर अपने पृष्ठपर मेरा भार ग्रहण करने आ गये। मैं अपनी पराजय स्वीकार करता हूँ।

हनुमानजी अपने वज्रनखसे अपना वक्षस्थल विदीर्ण करने ही जा रहे थे कि श्रीकृष्णचन्द्र प्रकट हो गये। उन्होंने हनुमानका हाथ पकड़ लिया और हँसकर बोले- हनुमान। तुम्हारी प्रतिज्ञा कहाँ टूटी। सेतु तुम्हारा भार तो सह नहीं सका। वह तो मैंने सहा है।

प्रभु। पवनपुत्र विह्वल होकर चरणोंपर गिर पड़े। उनका कण्ठ बोलनेमें असमर्थ हो गया। उनको बलपूर्वक उठाकर हृषिकेशने अपने हृदयसे लगा लिया।

अर्जुनको उनके इन नित्य सखाने उलाहना दिया- अकारण, अनअवसर चाहे जिससे उलझना कोई विवेक तो नहीं है। तुम्हारे लिये ये पूज्य हैं। इनकी वन्दना करनी चाहिए तुम्हें।

पार्थने धनुष पृथक रखकर पवनपुत्रके पदोंमें प्रणिपात किया तो उन्होंने उठाकर वक्षसे लगा लिया। अब पुरुषोत्तम बोले- मैं चाहता हूँ कि आप अर्जुनको अपना मित्र मान लें और युद्धमें इनके रथके ध्वज-दण्डके पास उपस्थित रहें।

आंजनेयने हाथ जोड़कर कहा- मैं प्रभुकी आज्ञाका पालन करूंगा। इस प्रकार दोनोंमें मैत्री कराके वे मधुसूदन विदा हुए। अर्जुन भी श्रीहनुमानजीकी वन्दना करके उनसे अनुमति लेकर तपस्या करने आगे चले गये।

अर्जुनके नन्दिघोष रथके ध्वज-दण्डपर हनुमानजीकी मूर्ति पहिलेसे थी। युद्धके समय उसमें आविष्ट होकर वे स्वयं उपस्थित रहे थे।

## ५) वन में भीम और घटोत्कच का मिलन तथा बदरीनाथ की यात्रा

भीम हनुमान से मिलकर वन में वापिस लौट रहा था वहां घटोत्कच राक्षस भूख से पीडित हो अपने आहार की खोज में घूम रहा था। रास्ते में कुछ ब्राह्मण कुमार आपस में बातचीत करते जा रहे थे कि कितने ब्राह्मणों को दान मिला, कितने ही ब्राह्मण यज्ञ पर बैठे थे, कितनी सामग्रियां डाली गयी उस यज्ञ में, कितनी आहुतियां पडी इतने में घटोत्कच उस ब्राह्मण मंडली के निकट आया और बोला तुममें से किसी एक को मेरे साथ चलना पडेगा। ब्राह्मणों ने पूछा कहाँ ? घटोत्चक बोला मेरी माता श्री शक्ति माता की पूजा कर रही है। बलि के लिये एक मानव की आवश्यकता है। बोलो तुममें से किस को ले जाऊं ? सब ब्राह्मण भयभीत हो गये। घटोत्कच बोला बलि कोई उत्तम होना चाहिये। ब्राह्मण कुमारों में बडा पुत्र बोला चलो मुझे ले चलो। उस कुमार का ब्राह्मण पिता बोला इसके बिना तो मैं जी नहीं सकता तब ब्राह्मण पत्नी बोली इसे तो मैं नहीं जाने दूंगी। मझला कुमार बोला बलि के लिये मुझे ले चलो आज क्योंकि बडा पिता को प्रिय है और छोटा माता

को तो फिर मैं ही मझला बचा जिस पर न पिता का स्नेह है और न ही माता की ममता। इतने में भीम वहां पर आ जाता है। भीम बोला ब्राह्मण पुत्र माता पिता पर सन्देह करना पाप है। उनसे जो भी मिले, जितना भी मिले आशीर्वाद समझकर स्वीकार करना चाहिये। मैं भी मंझला पुत्र हूं। मुझे जी भर कर के देखो और मेरे प्रति मेरी माता के स्नेह का अनुमान लगाओ। यदि तुम्हें अपना जीवन अपने माता-पिता के जीवन तथा अपने भाइयों के जीवन से अतिप्रिय है तब तो तुम बलि के योग्य ही नहीं हो क्योंकि कायर और रोगी की तो बलि कभी चढानी भी नहीं चाहिये। किसी पुत्र को कम स्नेह का दंड इसलिये तो नहीं दिया जाना चाहिये कि वो मंझला है। आपने ऐसा करके परम पिता परमेश्वर का अपमान किया है। प्रायश्चित करना न भूलियेगा और अपना दोष मानकर अपने पुत्र से क्षमा मांगने में कोई आपत्ति नहीं। मंझला पुत्र बोला नहीं मैं अपने पिताश्री को क्षमा मांगने नही दूंगा। यदि वे दोषी है तो भी मैं ही उनसे क्षमा मांगूगा।

भीम बोला मुझे ले चलो। भीम घटोत्कच के साथ उसके घर जाता है जहां राक्षसी हिडिम्बा शक्ति की पूजा कर रही होती है। घटोत्कच बोला आओ माता लो बलि ले आया हूं देखो इसे। बलि भी ऐसी लाया हूं कि देखते हुये आप प्रसन्न हुये बिना नहीं रह सकती। हिडिम्बा ने भीम को देखा और बोली आर्यपुत्र आप यहां। घटोत्कच आश्चर्य चकित हो भीम की ओर देखने लगा। हिडिम्बा बोली आश्चर्य मत करो पुत्र। ये तुम्हारे पिताश्री भीम है। भीम बोला नहीं मैं केवल एक बलि हूं। पहिले मेरी बलि चढाओ फिर अपने पुत्र को मेरा परिचय देना। तुमको यदि बलि चढानी थी तो अपने पति की चढाती, अपने पुत्र की चढाती। तुम्हें यह अधिकार किसने दिया कि तुम किसी और के पुत्र, भाई, या पति की बलि दो ? तुमने यह सोच कैसे लिया कि माता तुम्हारी बलि स्वीकार कर लेगी? क्या मैं तुम्हारा पति होने के कारण बलि के योग्य नहीं रहा ? तुम्हारा पुत्र मुझे बलि चढाने के लिये लाया है उसके श्रम को व्यर्थ मत जाने दो। हिडिम्बा बोली बलि की यही प्रथा चली आ रही है आर्यपुत्र। भीम बोला कैसी प्रथा? क्या यही प्रथा है? क्या माता ने उसकी मांग की थी? धर्म जीवन को आदरणीय और सुन्दर बनाने का मार्ग है प्रिये। धर्म से जीवन के इस अपमान से नाता मत जोडो। हिडिम्बा बोली मैं क्षमा चाहती हूं आर्य पुत्र। भीम बोला मैं कौन होता हूं क्षमा करनेवाला। क्षमा मांगो इस माता से जिसका तुम अपमान करने जा रही हो। हिडिम्बा ने शक्ति देवी से क्षमा मांगी। मुझे क्षमा कर दो माता। भीम घटोत्कच से बोला जब तक तुम्हारी मां देवी मां से क्षमा मांग रही है मेरे गले लग जाओ पुत्र। घटोत्कच बोला गले नहीं लगूंगा। चरण स्पर्श करूंगा। भीम बोला पिता की आज्ञा का पालन नहीं करोगे पुत्र। घटोत्कच बोला मुझे क्षमा करे पिताश्री। यदि यह केवल मेरी माता रही होती तो भी ईश्वर की आज्ञा पालन करने के पश्चात इन्ही की आज्ञा पालन मेरा धर्म है। ये मेरी माता ही नहीं मेरी गुरु भी है। इसलिये मुझे पहिले चरण स्पर्श की आज्ञा दीजिये।

घटोत्कच भीम के चरण स्पर्श करता है। भीम बोला आयुष्मान भव किन्तु मैं तुझे गले कैसे लगाऊं? घटोत्कच बोला जो आज्ञा पिताश्री और अपनी आसुरी माया से आकार में छोटा हो गया। भीम बोला अब तेरा आकार गोद में लेने योग्य हो गया पुत्र मैं तुझे गले लगाना चाहता हूं। घटोत्कच बोला जो आज्ञा पिताश्री और माया से बडा होकर भीम के गले लग गया। भीम बोला मेरे पुत्र का शरीर वज्र का है। घटोत्कच ने कहा नहीं पिताश्री शरीर तो उसकी माता के आशीर्वाद का है। हिडिम्बा बोली आपका पुत्र कही भागा नहीं जा रहा? पहिले कुछ खा लीजिये। भीम बोला खाऊंगा नहीं। मैं शिबिर से भोजन करके निकला था। हिडिम्बा बोली कुटीर में। आप वहां क्या कर रहे थे ? भीम बोला अकेले थोडे ही। हम पांचो भाई हैं, पांचाली है। यह एक लम्बी कथा है प्रिये और इसका निचोड यह है कि हमें बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास में बिताना है। वनवास के लगभग ५ वर्ष से अधिक व्यतीत हो चुके हैं। हिडिम्बा बोली तो वनवास के शेष दिन आप यहां

रहकर क्यों नहीं बिताते आर्य पुत्र? मुझे रानी द्रौपदी और पांचों भाइयों की सेवा करने का भी अवसर मिल जायेगा और आप सबको भी यहां कोई खोज नहीं पायेगा। भीम बोला यह सम्भव नहीं। घटोत्कच बोला क्यों नहीं क्या आप यह सोचते है कि आपका यह पुत्र आपकी रक्षा नहीं कर पायेगा? भीम बोला यह बात नहीं है पुत्र। तुम तो त्रिलोक की रक्षा कर सकते हो पुत्र और कदाचित करो भी तो यहां रहने को बनवास तो नहीं कह सकते ना और हमें तो बारह वर्ष बनवास में रहना है। थोडा समय तुम लोगों के साथ बिताने के पश्चात चला जाऊंगा। घटोत्कच बोला मैं भी आपके साथ चलूंगा। वहां चलकर ज्येष्ठ पिताश्री धर्मराज युधिष्ठिर से आशीर्वाद लूंगा और काकाश्री अर्जुन से धनुर्विद्या प्राप्त करूंगा। भीम बोला तुम्हारे काकाश्री अर्जुन तो दिव्यास्त्रों की खोज में उन्हे प्राप्त करने के लिये इन्द्रलोक में गये हुये है। घटोत्कच बोला दिव्यास्त्र क्या कोई युद्ध होनेवाला है। भीम बोला हां। महायुद्ध होनेवाला है पुत्र। यदि कोई साधारण युद्ध होता तो अर्जुन को दिव्यास्त्रों की खोज में जाने की क्या आवश्यकता थी? भीम घटोत्कच को साथ लेकर गन्धमादन पर्वत पर अपने भाइयों और द्रौपदी के पास बदरिकाश्रम पर आये।

## ६) काशिका-दुर्योधन पुत्री लक्ष्मणा का जाम्बवन्तीनन्दन श्रीकृष्ण पुत्र साम्व से विवाह

दुर्योधन, शकुनि तथा कर्ण का त्रिगुट प्रतिशोध की भावना से ग्रस्त था। तीनों के मन में एक साथ विचार मंथन चल रहा था कि कितने कम समय में पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ को एक अत्यन्त वैभवशाली एवं शक्तिशाली राज्य बना लिया। कितने कम समय में पाण्डवों ने अनेक राजाओं को अधीन कर लिया है जिनसे वे कर लेते हैं। कैसे बात की बात में महाराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ सम्पन्न कर डाला। श्रीकृष्ण एवं बलराम पाण्डवों के मित्र हैं। वृष्णिनन्दिनी सुभद्रा दुर्योधन के हाथ आते-आते रह गयी, अर्जुन उसे ले उड़े। पांचाली को अर्जुन ले गये थे। यही पुरातन व्यथा दूर नहीं हुई थी, अब तो एक नया आघात हो गया। विरोधी राजाओं को पाण्डवों ने कुचलकर फेंक दिया था, जिसमें जरासन्ध एवं शिशुपाल अत्यन्त प्रबल व शक्तिशाली शासक थे। पाण्डवों की उन्नति व सफलता कौरवों के हृदय में शूल की भाँति सतत चुभती रहती है। कैसे इस शूल को दूर किया जाये? शकुनि ने धीरे-धीरे सिर उठाया, बाहुबल एवं पराक्रम से पाण्डवों को पराजित नहीं किया जा सकता। वे महापराक्रमी हैं। दण्डनीति का यह मान्य सिद्धान्त है कि यदि शत्रु अधिक सबल हो तो उसके विरुद्ध बलप्रयोग कभी न किया जाये। साम, दाम व भेद से ही उसे पराजित किया जाये। शकुनि की छोटी-छोटी आँखें विचारमग्न होने से और भी छोटी हो गयी थीं। वह अधिक कुटिल था, दूरदर्शी था।

दुर्योधन धृतराष्ट्र के कक्ष में आया और धृतराष्ट्र से बोले अब लक्ष्मणा बड़ी हो गई है। पुत्री के बडा होने पर पिता को उसके विवाह करने की चिन्ता होनी स्वाभाविक है। मैं लक्ष्मणा का स्वयंवर आयोजित कर रहा हूं उसमें दूर दूर की सारी राज शक्तियों को आमंत्रित किया जायेगा। स्वयंवर तो मात्र एक ओट है पिताश्री। मूल लक्ष्य तो राजाओं को अपने आसपास संगठित करना है। मेरा प्रयास होगा कि हस्तिनापुर का प्रभा मंडल मगध के जरासंध से भी अधिक शक्तिशाली और विराट हो, एक-एक राजा की मैत्री का अर्थ होगा सहस्त्रों सैनिकों का बल संचय। धृतराष्ट्र ने अपने इस पुत्र दुर्योधन को इतना बुद्धिमान कभी नहीं समझा था। यह तो कूटनीति में अपने पिता से भी बढ़कर हो रहा था। धृतराष्ट्र ने पूछा क्या स्वयंवर में तुमने यादवों को भी आमंत्रित किया है क्या? दुर्योधन बोला नहीं पिताश्री। मैंने तो केवल राज समाज को आमंत्रित किया है। यादवों मे तो कोई राजा है ही कहां? वे तो सब ग्वालिये हैं। उग्रसेन को हमने कभी राजा माना ही नही। वह तो अधिक से अधिक वृष्णि, अन्धक और भोजवंशियों का मुखिया हो सकता है। अब रहा श्रीकृष्ण, उसका भी प्रबन्ध

करना पड़ेगा। किसी दिन आप यह भी सुन लेंगे कि मैंने उसे बन्दी बना लिया है। मेरा प्रयत्न होगा कि द्वारका में ही कृष्ण के विरोधियों को बल प्रदान किया जाये। धृतराष्ट्र ने पूछा पर द्वारका में कृष्ण का विरोधी कौन होगा? दुर्योधन बोला होने को तो जब लोग ईश्वर के विरोधी हो सकते है तो फिर कृष्ण ऐसी क्या चीज है। ईर्ष्या तो बडी शक्तिशालिनी होती है और महत्वकांक्षा सदा ईर्ष्या को जन्म देती है पिताश्री। कृष्ण के बड़े भाई दाऊ बलराम मेरे गुरु है तो मैं उन्हे ही कृष्ण से भिडा देना चाहता हूं। मेरा प्रयत्न होगा जब कभी पांडवों से हमारा युद्ध हो तो बलराम हमारे पक्ष से पांडवों से युद्ध करे। धृतराष्ट्र को लगा उनका यह पुत्र आसमान के तारे तोडने की योजना बना रहा है। यह कृष्ण से बलराम को पृथक करने की बात सोच रहा है। असम्भव भी कभी सम्भव हुआ है?

स्वयंवर आरम्भ होने में कुछ समय शेष था। दूर-दूर से राजकुमार आमंत्रित किये गये थे। दुर्योधन ने अपनी ओर से स्वयंवर की सारी व्यवस्था पूरी कर ली थी। वह एक प्रकार से कार्य सम्पन्नता की तृप्ति अनुभव कर रहा था। दुर्योधन कर्ण को स्वयंवर की पूरी योजना समझा रहा था। कर्ण ने पूछा मित्र सर्वथा अनियंत्रित स्वयंवर में कठिनाइयां भी हो सकती है इसलिये लक्ष्मणा की सुरक्षा की क्या व्यवस्था की है? दुर्योधन बोला हस्तिनापुर में उत्पात करने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। उसकी तो आशंका भी नहीं है। फिर भी लक्ष्मणा की रक्षा के लिये तो हम सब हैं ही पर विशेष रूप से उसका दायित्व महारथी भूरिश्रवा, सोमदत्त, शल जैसे वीरों को सौंपा गया है। दुर्योधन को वहां बैठे-बैठे एक लम्बा समय बीत गया। उसने सोचा वह उठे और कोई काम देखे किन्तु उद्यान में इस प्रकार बैठने और आल्हादित होने का अपना अलग ही आनन्द था, वह उस रंग को भंग नहीं करना चाहता था।

थोडी ही देर में कुछ न कुछ अघटनीय घट गया, कुछ सैनिक और कुछ दास-दासियां दौड़कर दुर्योधन के पास आये और बोले महाराज राजकुमारी लक्ष्मणा का अपहरण हो गया। दुर्योधन क्रोध प्रकट कर बोला किसने यह दुस्साहस किया? तुम्हे यह सूचना किसने दी है। राजकुमारी के अंगरक्षकों ने कहा यह जो कुछ हुआ वह हमारे आंखों के सामने घटित हुआ। लक्ष्मणा की दासी मुखरा बोली न जाने वो कौन था और किस प्रकार झपटकर राजकुमारी को उठा ले गया जैसे बादलों में से आकर कोई बाज अपने पंखों में छिपाकर कुक्कुट शावक को ले जाकर आकाश में लुप्त हो जाता है। अंगरक्षकों के नायक ने बताया महारथी कर्ण राजबन्धु भूरिश्रवा और राजकुमार शल उसके पीछे भागकर गये है। दुर्योधन ने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि नगर द्वार बन्द कर दिया जाये। कोई भी व्यक्ति चाहे वह कितना ही महत्वपूर्ण क्यों न हो, भले ही शक्तिशाली भी हो उसे नगर से बाहर नहीं जाने दिया जाये। अपहरणकर्ता को नगर से भाग निकलने का अवसर न दे।

स्वयं दुर्योधन रथ में बैठकर अधिकतम वेग से वर्धमान द्वार की ओर चला। उसने अपना धनुष उठाया, प्रत्यन्चा चढाई और भागकर उस अपहरण कर्ता को लक्ष्मणासहित बन्दी बना लिया। कर्ण, शल, भूरिश्रवा के रथ दुर्योधन के रथ के पीछे-पीछे आ रहे थे बन्दी के रथ के पीछे। दुर्योधन मन से प्रसन्न नहीं था। एक अकेले किशोर युवक को इतनी सैनिक वाहिनियों की सहायता से चार-चार महारथियों का एक साथ मिलकर पकडना कोई गौरवशाली विजय नहीं थी और न ही कोई उपलब्धि थी। न ही ऐसा कृत्य था जिसका यशोगान किया जा सके। यह तो चिन्ता का ही विषय था कि पराजित होकर भी वह किशोर आकर्षण का केन्द्र बन गया। लक्ष्मणा अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध ऐसे वीर की ओर आकृष्ट हो गई तो इसमें फिर क्या आश्चर्य? यह तो सब ऐसे हुआ जैसे कुंडिनपुर में भीष्मक, रूक्मी, जरासंध, शिशुपाल सब देखते रह गये और कृष्ण रूक्मिणि को हर ले गया।

रथ दुर्योधन के महल में पहुंचा। दुर्योधन रथ से नीचे उतरा। लक्ष्मणा को महल के अन्त:पुर में भेज दिया गया। सैनिकों ने उस बन्दी युवक को लाकर दुर्योधन के समक्ष खड़ा कर दिया। दुर्योधन ने पूछा तुम कौन हो? तुम्हारे साथी सहायक

कौन हैं और कहां हैं? वह युवक बोला हस्तिनापुर में मेरा कोई संगी साथी सहायक नहीं है। वे सब द्वारिका में है। दुर्योधन ने पूछा द्वारिका में कौन है तुम्हारा? युवक बोला मेरे पिता, मेरे भाई, मेरा कुटुम्ब। दुर्योधन ने फिर पूछा तुम्हारे माता-पिता कौन है? युवक ने उत्तर दिया मेरे पिता वासुदेव श्रीकृष्ण है और मैं जाम्बवती नन्दन साम्ब हूं। यह सुनकर दुर्योधन के सिर पर जैसे आकाश गिर पडा और बोला क्या तुम यादवों को कन्याओं के अपहरण का शौक है या रोग? तुम्हारे पिता ने अपहरण किया, तुम्हारे भाई प्रद्युम्न ने अपहरण किया और अब तुम आये हो। तुममें से तो कोई क्षत्रिय संस्कार नहीं है। तुम लोग प्रत्येक अवसर पर क्षत्रिय मर्यादा का उल्लंघन करते हो। साम्ब बोला मैंने अपहरण नहीं हरण किया है और हरण मेरी सामर्थ्य का प्रमाण है। दुर्योधन बोला तुम्हे मृत्यु का भय नहीं है? साम्ब बोला मुझे मेरे वध का तनिक भी भय नहीं है। यदि मेरा वध हुआ तो मेरे पिता और मेरे भाई हस्तिनापुरवालों के एक पुरुष को भी जीवित नहीं छोडेंगे। मेरा वध आपको बहुत महंगा पड सकता है। दुर्योधन ने पूछा क्या तुम लक्ष्मणा को पहिले से जानते हो? साम्ब बोला नहीं। दुर्योधन ने पूछा तो फिर तुमने उसका अपहरण क्यों किया? साम्ब बोला अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिये। दुर्योधन ने पूछा कैसा अपमान? साम्ब बोला इस स्वयंवर में यादवों को क्यों नहीं आमंत्रित किया गया? क्या यदुवंशी आपके साथ सम्बन्ध करने योग्य नहीं है? यदि आप भी शिशुपाल के समान यही मानकर चलते है कि यादव राज समाज के अंग नहीं है तो फिर आप भी उसी मार्ग से यमलोक जायेंगे जिस मार्ग से शिशुपाल गया था। यदि आप में साहस है तो मेरे साथ युद्ध करके देखिये। एक तलवार मुझे भी दीजिये और फिर देखिये यादव इन खिलौनों से कैसे खेलते हैं।

दुर्योधन के मन में एक योजना घर करने लगी और विचार आया कि साम्ब की हत्या करने से कोई लाभ नहीं होगा उल्टे इसकी हत्या कर देने से तो यादवों से युद्ध छिड़ जायेगा। कृष्ण अपने पुत्र के वध को न तो क्षमा कर पायेगा और न ही भूल पायेगा। कृष्ण अब अपनी सेना के साथ अवश्य ही हस्तिनापुर में आयेगा। उससे तो अब युद्ध क्षेत्र में ही भेंट होगी इसलिये साम्ब का वध न कर उसे अपने निजी कारागृह में रखा जाये तो कृष्ण को दुर्योधन के पास उसकी इच्छानुसार आना पडेगा और दुर्योधन से सन्धि करनी पडेगी। दुर्योधन को तो कृष्ण से कोई सन्धि करनी नहीं है। वह तो चाहता है कि कृष्ण आये और उसका वध कर दूं कृष्ण को सन्धिवार्ता के लिये अपने प्रासाद में बुलाया जाये फिर कृष्ण को साम्ब के समान ही बन्दी बनाकर उसका वध किया जाये। कृष्ण की मृत्यु के पश्चात वह अपने गुरु बलराम के चरणों में सिर रख क्षमा मांग लेगा, बलराम को किसी तरह मना लेगा। उसके पश्चात यादवों में कौनसी शक्ति रह जायेगी? दुर्योधन के मन में व्यर्थ ही अर्जुन और भीम की ओर से आशंका है यह सोचकर दुर्योधन का मन इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अभी साम्ब का जीवित रहना ही अच्छा है जब तक कृष्ण हस्तिनापुर आ जाये और अपने सेनापति को आज्ञा दी कि इसे मेरे निजी कारागृह में बन्द कर दो। सैनिक साम्ब को लेकर कारागृह में डालने के लिये चल पडे।

दुर्योधन ने लक्ष्मणा को अपने कक्ष में बुलाकर पूछा साम्ब को कब से जानती हो? लक्ष्मणा बोली मेरा उससे कोई परिचय नहीं है। दुर्योधन बोला तो फिर तुमने उसे अपने हरण के लिये नहीं बुलाया। लक्ष्मणा बोली स्वयंवर के निमन्त्रण तो सब जगह आपने भेजे थे तो फिर मैं किसे कैसे बुलाती? दुर्योधन बोला तुम्हारा हरण कर लेने के पश्चात तो तुम उसकी वीरता से परिचित हो ही गई और अब यदि वह स्वयंवर में सम्मिलत हो तो फिर? लक्ष्मणा बोली जब उसने मेरा हरण कर ही लिया तो अब स्वयंवर का क्या अर्थ? दुर्योधन ने अपनी पत्नी काशिका को पुकार कर कहा लक्ष्मणा का ध्यान रखना कहीं यह भाग न जाये। ऐसा न हो कि इसे भी बन्दी बनाकर कारागृह में रखना पडे। दुर्योधन को सन्देह हो गया कि इस अपहरण के पश्चात लक्ष्मणा मन ही मन साम्ब से प्रेम करने लगी है और उसे अपना पति मानने लगी है तथा अब उसकी

सारी सहानुभूति साम्ब के साथ है वह मन ही मन साम्ब के और निकट होती जायेगी। एक कन्या का पिता होना कितने संकट का विषय है। दुर्योधन ने शकुनि को बुलाकर कहा अब स्वयंवर स्थगित करने की घोषणा करवा दो और जम्बू दीप के सभी आमंत्रित किये हुये राजकुमारों और राजाओं को अपनी सुविधानुसार लौट जाने के लिये कहो।

हस्तिनापुर में घटित सारी घटनाओं की सूचना साम्ब के मित्रों ने कृष्ण तक पहुंचा दी। कृष्ण आश्चर्य से सोचने लगे कि साम्ब ने लक्ष्मणा के हरण की योजना बनाई ही क्यों? कृष्ण ने कभी दुर्योधन के परिवार से अपने परिवार के किसी व्यक्ति के वैवाहिक सम्बन्ध की कल्पना भी नहीं की थी। क्या लक्ष्मणा बहुत रूपवान और सुन्दर है? क्या लक्ष्मणा साम्ब को पहिले से ही प्रिय थी? साम्ब ने यह दुस्साहस क्यों किया? कृष्ण अपने इस पुत्र से भलीभांति परिचित थे। उसकी इच्छा कैसे भी पूरी होनी चाहिये। उसे लक्ष्मणा चाहिये तो चाहिये ही। वह स्वयंवर की नियमितताओं, औपचारिकताओं तथा मर्यादाओं की चिन्ता नहीं कर सकता था। न वह किसी के लिये रूक सकता था और न उनका पालन कर सकता था। तो फिर साम्ब के पास उसके हरण के सिवा और कोई मार्ग भी तो नहीं था क्योंकि हस्तिनापुर से तो इस स्वयंवर के लिये कोई निमन्त्रण आया नहीं था। जिनका मन फल में अनुरक्त होता है वे कर्म के फल के विषय में कुछ नहीं सोचते। अपूर्ण कर्म का फल तो अपूर्ण ही होगा।

साम्ब दुर्योधन के कारागृह में बन्दी था इसकी चिन्ता कृष्ण को हो रही थी किन्तु कृष्ण समझता था कि दुर्योधन कितना भी मूर्ख और दम्भी क्यों न हो वह साम्ब का वध करने की मूर्खता नहीं करेगा। यदि उसने कृष्ण पुत्र साम्ब की हत्या केवल इसलिये कर दी कि उसने लक्ष्मणा के हरण का प्रयत्न किया तो दुर्योधन की आंखों के सामने ही उसके पुत्रों और भाइयों के सिर भूमि पर कट कट कर गिरेंगे और वह स्वयं भी जीवित नहीं बचेगा। उसका सिर तो वैसे भी कब का कट कर भूमिपर गिर चुका होता यदि स्वयं युधिष्ठिर का धर्म आडे नहीं आता। पांडवों के साथ किये गये अन्याय का दंड प्राणदंड के सिवाय और क्या हो सकता था? धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा था कि तेरह वर्षों तक वे अपने धर्म का पालन करना चाहेंगे इसलिये दुर्योधन की मृत्यु तेरह वर्षों के लिये टल गई थी। कृष्ण यदि अपनी ओर से भी दुर्योधन को दंडित करना चाहते तो युधिष्ठिर का धर्म खंडित होता था। दुर्योधन की मूर्खता से साम्ब को बन्दी बना लिया गया। कृष्ण को अब अपने पुत्र को छुडाने के लिये हस्तिनापुर पर आक्रमण करने का पूरा अधिकार था। दुर्योधन को तो अपने पापों के कारण मरना ही था उसकी मृत्यु के निमित्त होने का यश चाहे पांडवों को मिले या कृष्ण को। इतने में ही साम्ब जननी जाम्बवन्ती वहाँ आई और कृष्ण से बोली आपने सुना आपका पुत्र साम्ब दुर्योधन के कारागृह में बन्दी है। आपको तो किसी की भी मोह माया है नहीं। पुत्र शत्रुओं के कारागृह में है और आप यहां फिर भी मुस्कुरा रहे है। कृष्ण बोले प्रिये मेरा तो भाग्य ही यही रहा है। कंस की मृत्यु का आव्हान करने के लिये मेरे माता-पिता को कंस के कारागार में रहना पडा और मेरे छह भाइयों को प्राण देने पडे। शायद दुर्योधन की मृत्यु को आमंत्रित करने के लिये ही मेरे पुत्र को उसके कारागार में जाना पडा हो। जाम्बवन्ती बोली शीघ्रता से साम्ब को लौटा कर लाओ।

बलराम ने सुना कि दुर्योधन ने जाम्बवन्ती पुत्र साम्ब को कैद कर रखा है अपने बन्दीगृह में तो बोले यह क्या मूर्खता की साम्ब ने। यदि साम्ब ने उन्हे बताया होता तो वे स्वयं साम्ब के साथ जाते और साम्ब स्वयंवर में सम्मिलित होता। हस्तिनापुर से औपचारिक रूप से निमन्त्रण नहीं आया तो क्या हुआ। दुर्योधन तो उनका शिष्य है। इसलिये गुरु को शिष्य के घर जाने के लिये निमन्त्रण की आवश्यकता नहीं होती। दुर्योधन ने भी यह क्या किया कि साम्ब को बन्दी बनाकर कारागृह में डाल दिया। क्या कन्या पक्षवाले साम्ब को अपने योग्य वर नहीं समझते। साधारणतया तो हरण हो जाने के पश्चात कन्या का विवाह हरण करनेवाले के साथ कर ही दिया जाता है। कोई वर को बन्दी बनाकर कैदखाने में थोडे ही डालता है। कृतवर्मा बोला कृष्ण को इसके बारे में सूचना मिल गई हैं और अब कृष्ण जा रहे हैं नारायणी सेना लेकर दुर्योधन

को दंडित करने तथा सात्यकि उनके साथ जायेगा। बलराम बोले लेकिन कृष्ण ने तो मुझे कोई सूचना दी ही नहीं। क्या वह अकेले ही हस्तिनापुर पर आक्रमण करेगा। बलराम चिंतित थे आवेश और क्रोध में कृष्ण कहीं दुर्योधन का वध न कर दे। कृष्ण दुर्योधन को जीवित नहीं छोड़ेगा। संसार का एक श्रेष्ठ गदाधारी व्यर्थ ही मारा जायेगा।

बलराम उठे और कृष्ण के पास आये। बलराम ने पूछा, तुम सेना सजा रहे हो कृष्ण? कृष्ण बोले हां, सूचना तो आपको भी मिल ही गई। आप जानते हैं दुर्योधन बड़ा ही अन्यायव्रती भी है और दम्भी भी। बलराम बोले, क्या आवश्यकता है इस विनाश की। मैं स्वयं हस्तिनापुर जाऊंगा और दुर्योधन से सीधे-सीधे साम्व को लौटा लाऊंगा साथ में साम्व की इच्छा से लक्ष्मणा को भी ले आऊंगा। कृष्ण बोले क्या दुर्योधन आपकी बात मान जायेगा? बलराम बोले वो मेरा शिष्य है और वो अपने गुरु के आदेश का उल्लंघन नहीं कर सकता। जो कार्य शान्ति से हो सकता है उसके लिये व्यर्थ में ही रक्तपात क्यों? कृष्ण बोले दाऊ वैसे तो दुर्योधन इतने पाप कर चुका है कि उसका वध ही उचित कर्तव्य है। फिर भी मैं नहीं चाहता कि व्यर्थ ही यादवों और कौरवों का रक्तपात हो पर यदि साम्व सुरक्षित नहीं लौटा तो? बलराम बोले फिर ऐसी स्थिति में मैं दुर्योधन को बन्दी बनाकर लाकर तुम्हारे चरणों में डाल दूंगा। कृष्ण बोले, तो फिर मैं अब आपकी बात नही टालूंगा। आप हस्तिनापुर जाये, मैं आपकी प्रतीक्षा करूंगा।

कृष्ण ने बलराम के साथ अपने प्रिय अन्तरंग सखा उद्धव को भी साथ भेज दिया। उद्धव की वाणी बहुत मधुर थी और उसे क्रोध भी नहीं आता था। वह शान्त मन और वाणी में तार्किक बुद्धि से अत्यन्त कटु बातें भी कह देता था पर किसी को भी उद्धव की यह अशिष्टता या अभद्रता नहीं लगती थी। बलराम उद्धव के साथ हस्तिनापुर चले गये और वहां पर वर्द्धमान द्वार के बाहर गंगा तट पर अपना शिबिर स्थापित किया। बलराम उद्धव से बोले, तुम मेरे प्रतिनिधि के रूप में कुरुओं की राजसभा में जाकर उन्हें सूचना दो कि मैं आया हूं और नगर के बाहर उनकी प्रतीक्षा कर रहा हूं।

हस्तिनापुर में महाराज धृतराष्ट्र की राजसभा में उद्धव के आने की घोषणा हुई कि उद्धव महाराज धृतराष्ट्र के दर्शन करना चाहते है। धृतराष्ट्र ने उद्धव को बुलाने का आदेश दिया। उद्धव कौरवों की राजसभा में उपस्थित हुये। सबको अभिवादन कर अपना मन्तव्य बोले, महाराज उग्रसेन के प्रतिनिधि के रूप में बलराम आपके नगर में पधारे हैं। उन्होंने अपना शिबिर नगर द्वार के बाहर गंगा तट पर स्थापित किया है। दुर्योधन बोला मेरे गुरुदेव पधारे हैं। हमें उनके स्वागत के लिये नगर द्वार पर जाना चाहिये। कौरवों ने गंगा तट पर जाने की तैयारी की किन्तु गुरु द्रोण उनके साथ नहीं गये। स्वयं धृतराष्ट्र, भीष्म, बाहलीक, सोमदत्त, भूरिश्रवा, दुर्योधन और उसके भाई सभी गंगा तटपर बलराम के शिबिर में पहुंचे।

बलराम बोले, महाराज धृतराष्ट्र मैं आपके लिये सर्वसमर्थ सम्राट उग्रसेन का आदेश लेकर आया हूँ कि आप कृष्ण पुत्र साम्व को तत्काल मुक्त कर दें तथा दुर्योधन पुत्री लक्ष्मणा को सम्मान सहित उसे प्रदान करे। मैं साम्व और लक्ष्मणा को लेने आया हूं। हमारा पुत्र तत्काल हमें लौटाओ। धृतराष्ट्र सोच रहा था बलराम के क्रोध को भडकाने का कौरवों को बहुत भारी मूल्य चुकाना पड सकता है। बलराम ने देखा सारे कौरव एक मूक सन्धि के अन्तर्गत अपना अपना रथ मोड कर नगर को लौट गये। उनमें से किसी ने भी बलराम को नगर में आने के लिये निमन्त्रित नहीं किया। क्षुब्ध बलराम खडे कौरवों को जाते हुये देखते रहे। बलराम की इस उपेक्षा से बलराम की मन ही मन इच्छा हुई कि इन अहंकारी कौरवों को इनकी नगरी समेत यहीं गंगा में डूबो दे। विरोध में भी एक प्रकार का आकर्षण होता है। बलराम ने अपने हल के अग्रभाग से गंगा तट पर बसे हस्तिनापुर का कर्षण कर दिया जिससे गंगा का जल नगर में तेजी से बढने लगा और नगर को पल्लवित कर डूबोने लगा। यह देखकर दुर्योधन चकित रह गया कि बलराम ने यह क्या किया। यह आशंका तो

थी कि बलराम से युद्ध होगा किन्तु नगर को गंगा में डूबो देने की यह योजना... सारथी संजय ने आकर दुर्योधन को सूचित किया कि महाराज की इच्छा है कि आप साम्व को तत्काल मुक्त कर राजकुमारी लक्ष्मणा को साथ लेकर बलरामजी को समर्पित कर दे तथा उनसे सन्धि कर लें।

दुर्योधन को लगा उसके मन में बनी सारी योजना ढह जायेगी। बलराम विजयी होकर द्वारिका लौट जायेगा। कृष्ण को अपना पुत्र मिल जायेगा तो फिर वह हस्तिनापुर क्यों आयेगा? किन्तु इस समय और कोई विकल्प भी तो नहीं था। हस्तिनापुर को बचाना भी आवश्यक था। इसके लिये साम्व और लक्ष्मणा को बलराम जी को सौंपना ही होगा।

उसी समय दुर्योधन के मन में एक और कल्पना घर कर गई। कृष्ण हस्तिनापुर आकर दुर्योधन के जाल में नहीं फंसा तो क्या हुआ पर दुर्योधन का पांसा तो जाल बनकर द्वारिका जा ही रहा है। लक्ष्मणा द्वारिका जायेगी कृष्ण के अपने परिवार में। इस सम्बन्ध से कृष्ण और दुर्योधन समधि हो जायेंगे। यह तो पांडवों से भी निकट का सम्बन्ध होगा। दुर्योधन का कृष्ण पर अधिकार होगा। आवश्यकता होने पर दुर्योधन भी पांडवों के समान कृष्ण से सहायता मांग सकेगा। पारिवारिक सम्बन्ध प्रेम के भरोसे चलते हैं, विरोध और घृणा से नहीं। दुर्योधन बोझिल नेत्रों से बलराम की ओर देखकर बोला आप वचन दे कि हमारे और पांडवों के किसी भी संघर्ष में आप तटस्थ भूमिका में रहेंगे, कभी किसी एक का पक्ष ग्रहण नहीं करेंगे। बलराम बोले क्या तुम दोनों में कोई संघर्ष होनेवाला है? पांडव तो बेचारे वनवास में है कोई सैन्य संगठन नहीं कर रहे। दुर्योधन बोला आपकी बहिन सुभद्रा पांडवों के परिवार में अर्जुन को ब्याही गई है, मेरी पुत्री लक्ष्मणा का विवाह अब साम्व से कर रहा हूं तो फिर आपके परिवार से हमारा और पांडवों का सम्बन्ध समान होना चाहिये फिर किसी एक का पक्ष नहीं होना चाहिये। बलराम बोला, हम कभी भी किसी एक का पक्ष नहीं लेंगे हम तो मध्यस्थ या तटस्थ रहेंगे। दुर्योधन बोला, यदि हमारा और पांडवों का सशस्त्र संघर्ष हुआ तो आपके यादवों में से कोई भी यादव शस्त्र नहीं उठायेगा न हमारे पक्ष से और न ही पांडवों के पक्ष से। बलराम हंसे और बोले मुझे नहीं लगता आप दोनों के बीच ऐसा कोई संघर्ष होगा फिर भी यदि कोई संघर्ष हुआ तो हम यादव लोग कोई भी किसी भी पक्ष के लिये शस्त्रों से युद्ध नहीं करेगा। दुर्योधन बोला, हमें कभी आपसे राजनैतिक अथवा सैनिक सहायता की आवश्यकता पडे तो आप हमें उसी प्रकार सहायता देंगे जैसी सहायता आप पांडवों को देंगे। अब की बार बलराम कुछ खींझकर बोले हां कह तो दिया तुम्हारा और पांडवों का अधिकार एक समान होगा। दुर्योधन बोला और यदि यह बात कृष्ण नहीं माने तो? बलराम बोले कृष्ण मेरी हर बात मानता है मैं उसकी ओर से भी यह वचन देता हूं। अब दुर्योधन ने काशिका को संकेत किया साम्व और लक्ष्मणा को लेकर आओ। दुर्योधन बलराम से बोला मैं इन दोनों बच्चों को आपको सौंप रहा हूं। अब हमारी लाज आपके हाथ में है। कहीं लक्ष्मणा को आपके परिवार में इस कारण से सम्मान न मिले कि वह दुर्योधन की पुत्री है। बलराम बोले पागल मत बन दुर्योधन। लक्ष्मणा अब हमारी पुत्रवधू है। वह स्वयं हमारे कुल का सम्मान है। दुर्योधन ने अपने गुरू बलराम के चरण स्पर्श किये। बलरामने अपनी सफलता से गदगद हो, आल्हादित हो दुर्योधन को हाथों से ऊपर उठा और वक्ष से लगाया और बोले तुम चरण स्पर्श मत किया करो गले मिलो अब तुम हमारे समधि हो। दुर्योधन ने लक्ष्मणा और साम्व को बलराम के साथ द्वारिका के लिये विदा किया। बलराम द्वारिका में लौटे वहां पर लक्ष्मणा और साम्व का विधिपूर्वक विवाह हुआ। श्रीकृष्ण और जाम्बवन्ती तथा पूरा यादव परिवार अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

**७) पांडवों की बदरी विशाल यात्रा-** पांडव जब गन्धमादन पर्वत पर बदरी विशाल पहुंचे तो उस समय वहां पर प्रचंड पवन वायु बह रही थी। वायु के वेग से धूल और पत्ते उड रहे थे। उस धूल उडने से आकाश, पृथ्वी, सम्पूर्ण दिशायें आच्छादित हो गई। धूल के कारण अन्धकार छा गया। थोडी देर में जब वायु वेग कम हुआ तो धूल उडनी बन्द

हो गई और जोरों से मूसलाधार वर्षा होने लगी। आकाश में बिजली चमकने लगी और वज्रपात के समान मेघों की गडगडाट होने लगी। थोडी देर बाद यह तूफान शान्त हुआ, वायु का वेग कम हुआ, बादल फट गये और बादलों की ओर से निकल कर सूर्य चमकने लगा। चलते-चलते द्रौपदी थककर शिथिल हो गई। वह सुकुमारी थी इस तरह चलने का उसे अभ्यास भी नहीं था। वह पृथ्वी पर बैठ गई और धर्मराज युधिष्ठिर की गोद में लेट गई और विचारमग्न हो गयी।

बद्रिका में मेरे व्रत के समय भीम के प्रेम का वास्तविक परिचय मिला। तब कुछ भी इच्छा करती, वे तुरंत पूरी कर देते। छाया की तरह साथ-साथ रहते। व्रत करने और फलाहार के कारण मेरी देह क्षीण होती रही, पर सौंदर्य और कांति दीपशिखा-सी उज्ज्वल-निर्मल-कोमल होती गई। भीम अपने कटुवाक्य भूल ही गए। भाषा ही मानो अब बदल गई। बड़े भैया की द्यूत-क्रीड़ा में आसक्ति, अदूरदर्शिता के कारण मैं इतना कष्ट पा रही हूं इस तरह युधिष्ठिर की वे खुलकर भर्त्सना किया करते। उधर अर्जुन स्वर्ग में विलास-व्यसन में रह नृत्य-गीत के बहाने मुझे विरह में जला रहे हैं- इस बात पर उनकी भी भर्त्सना करते। नकुल-सहदेव मेरी खबर नहीं लेते, अपने-अपने काम में लगे रहते हैं- अत: उनको भी भला-बुरा कह डालते। भीम की पहाड़-सी काया में कोमल प्रेम की मंदाकिनी है मेरे लिए। कभी-कभी अर्जुन का दु:ख भूला देते भीम।

युधिष्ठिर बोले, अहो। इस परमसुन्दरी देवी को मेरे कारण कितना कष्ट हो रहा है। इसके चरणों की सुन्दर कान्ति नष्ट हो गयी मेरे कारण। मेरी मूर्खता से आज इस राजरानी को वन-वन डोलना पड़ रहा है। अहो मैं द्यूतक्रीडा में क्यों फँस गया था। मेरे पाप से इस निर्दोष राजबाला को कितना परिश्रम, कितना शोक, कितना कष्ट सहना पड़ रहा है।

अर्धचेतना में पांचाली ने ये शब्द सुने। सरल हृदय, कोमल मन युधिष्ठिर को अपने कर्मों पर ग्लानि हो रही है। उसकी स्वयं की पीड़ा द्विगुणित हो उठी। युधिष्ठिर की अव्यावहारिकता और साधुत्व से उसे ही सर्वाधिक यन्त्रणा सहनी पड़ी। किन्तु फिर भी जब कभी वे आकुल होते तो उसका हृदय अपूर्व करुणा एवं ममत्व से भर जाता। युधिष्ठिर निरीह हैं, निर्बल व्यक्तित्ववाले हैं। लोग उनकी सरलता का अनुचित लाभ उठाते हैं। जब-जब युधिष्ठिर इस प्रकार विकलता की लहरों से आक्रान्त होते, वही तो अपने साहसभरे दृढ़ स्वर, सहानुभूति, स्नेह और सान्त्वना द्वारा उन्हें उबारती। अत: अर्धमूर्च्छित अवस्था में भी वह छटपटा उठी। धर्मराज उसके कारण विकल हैं, उसके कारण दुखी हैं। उसने प्रयास किया शक्ति बटोरने का कि उठकर बैठ जाये और धर्मराज को समझाए... सँभाले। किन्तु शरीर की शक्ति न जाने कहाँ चली गयी थी। अथाह क्लान्ति। चेतनाशून्य तन। और फिर क्या हुआ, उसे नहीं ज्ञात।

द्यूत खेलने से पहले द्रौपदी ने युधिष्ठिर को इस तरह समझाया था कि, आर्यपुत्र। बहुत हो चुका। अब आप द्यूतक्रीड़ा का नाम भी न लें। एक बार द्यूतविलास में फँसकर परिणाम देख तो लिया। अब अनर्थ न करें। अपने अनुजों एवं पत्नी को अपमान का पात्र न बनाएँ। अभी कुछ और भी अपमान शेष रहा है, जो सहना होगा? आपने तो सबको बेच दिया था। और मेरे अपमान के समय पति होते हुए भी नपुंसक की भाँति शीश झुकाये बैठे रहे। अपनी रक्षा नारी होकर भी मुझे स्वयं करनी पड़ी। यदि लीलामय की कृपा न होती तो मेरी दुर्गति किस सीमा तक होती- यह सोचा आपने? आप सबकी दासभाव से मुक्ति दिलाने की याचना भी मुझे ही करनी पड़ी। बहुत हो चुकी जगहँसाई, अब पुन: उस पाश में मत पड़िए। आर्यपुत्र। ये अधम कौरव हमें कहीं का न रखेंगे। विवेक न खोएँ धर्मराज।

धर्मराज। आपकी मति अवश्य ही देवताओं ने हर ली है। यह चुनौती क्या क्षत्रियोचित चुनौती है? युद्ध की चुनौती है जो क्षत्रिय को स्वीकार करनी ही चाहिए। चुनौती तो रणक्षेत्र में सुनी जाती है, व्यक्ति का वास्तविक क्षत्रिय रूप वहीं प्रकट होता है। जो लोग बल से नहीं लड़ पाते, वे ही छल का अवलम्ब लेते हैं। और ये कौरव घोर कपटी और अधर्मी हैं जो

आपको छल-कपट से राज्यविहीन कर देना चाहते हैं। और आप हैं कि भुक्तभोगी होकर भी सावधान नहीं हो रहे हैं। विनाशकाले विपरीत बुद्धि। आपकी धर्म की व्याख्या भी सदा ही निराली होती है।

अहो किन्तु, कैसा निष्क्रिय, कर्महीन, गतिहीन जीवन। जलप्रपात के निकट एकान्त में बैठी घण्टों वह सोचती रहती- कब तक? कब तक चलेगा ऐसा? सुदीर्घ वनजीवन, जिसका कोई क्षितिज न दिखता, छोर न दिखता। अन्तहीन। जीवनहीन जीवन। कभी-कभी वह भूल जाती- कितने प्रलम्ब वर्ष बीत चुके वन में। एकाकी क्षण उसे झँझोर डालते। सुदूर तक फैली नीरवता उसे मुँह फाड़े खाने को दौड़ती। और अनन्त पर्व-श्रृंखलाओं का वह भयावह विराटपन। अहोरात्र वायु का अरण्यरोदन उसे आक्रान्त कर देता। रात्रि के निविड़ अन्धकार में वन्य पशुओं की भीषण पुकारें रोगटें खड़े कर देतीं।

कितनी रातें उसकी आँखों में ही कट जातीं। अहोरात्रि मूक अश्रुपात। दीर्घ नि:श्वास। अवरुद्ध सिसकियाँ। अन्तर्दाह। एकाकीपन। उसका सदा प्रयास रहता चुपचाप पीड़ा सहना। अपनी पीड़ा से औरों को वह दु:खी न करना चाहती किन्तु कभी-कभी हृदय का क्षोभ विकराल ज्वार बन जाता। थके बोझिल नेत्रों को छिपाने वह अश्वत्थ तले एकान्त में पर्णक्रीड़ा करती बहुधा। सूखे पत्रों को एकत्रित करती, जोड़ती। वायु के प्रहारों से बचाती। और अन्त में पतझरी वायुवेग से हताश हो स्वयं उन्हें बिखेर देती उन्मादिनी-सी। सूखे पर्ण-पीले पात आकुल से उड़ चलते यहाँ-वहाँ-जहाँ वायु ले जाती। लक्ष्यहीन दिशाहारे सूखे पर्ण।

युधिष्ठिर बार-बार समझाते थे। भूल जाओ राजरानी। वह वैभव भूल जाओ। पर द्रौपदी भूलती नहीं। यही तो द्रौपदी का दोष है। युधिष्ठिर कहते थे भूल जाओ तुम एक राजपुत्री हो, तुम राजवधू हो। भूल जाओ कि तुम इन्द्रप्रस्थ की राजमहिषी कभी थीं। केवल यह स्मरण रखो कि इस समय तुम काषाय वस्त्रधारी संन्यासियों की पत्नी हो। युधिष्ठिर हतप्रभ थे और तीनों अनुज लज्जित। भीम ने युधिष्ठिर को मना किया था कि पांचाली के चोट खाये स्वाभिमान को न छेड़ें।

यह कितनी बार उसने धर्मराज को समझाना चाहा कि समय एवं आवश्यकतानुसार कोमल एवं कठोर व्यवहार होना चाहिए। क्षत्रिय होने के नाते अपनी खोयी हुई राजप्रतिष्ठा पुन: पाने के प्रयासों में कोई ढील नहीं होनी चाहिए, किन्तु...

हर बार यही उत्तर मिला युधिष्ठिर से। यह उनकी शाश्वत नीति थी। स्थायी उत्तर था। वह मन मसोसकर रह जाती। भीम उच्छवासें भर उठते।

भीम उसका अन्तर्दाह समझते थे क्योंकि स्वयं भी उसमें झुलस रहे थे। उन्होंने सदा पांचाली का पक्ष लिया। वह उनपर अधिकाधिक निर्भर हो चली थी। और वे सदा एक महाआश्वासन से उस पर छाये रहते। इस प्रकार वनवासी जीवन की एकरसता, उकताहट और अन्तर्दाह ने भीम और द्रौपदी को एक-दूसरे के अधिक निकट ला दिया था।

पांचाली को यह चिन्ता खाये जाती थी कि ये क्षत्रिय वीर पाण्डव बन्धु ऐसे अकर्मण्य वन्य जीवन के अभ्यस्त होकर कहीं अपना शौर्य सदा के लिए गँवा तो न देंगे। कहीं इनके क्षत्रिय गात्र सदा के लिए शिथिल तो न पड़ जाएँगे। कहीं ये शक्ति-प्रयोग भूल ही तो न जाएँगे।

वह चौंक-चौंक उठती रात्रि को। पति सो रहे हैं। कहीं ये सब युधिष्ठिर तो नहीं हो गये।

अर्जुन और भीम। ये ही दो तो थे महापराक्रमी। अर्जुन तो दिव्य अस्त्र-प्रशिक्षण हेतु इन्द्रलोक गये हुए थे। वह उस ओर से आश्वस्त थी। किन्तु महाबली भीम?

जब-जब उसकी यह आशंका बलवती हो उठती, वह भीम का शक्तिपरीक्षण कर बैठती। उन्हें उनकी शक्ति का स्मरण दिलाती रहती। उन्हें सदा संग्राम-व्यस्त रखना चाहती। जब उसके लिए वे सौगन्धिक स्वर्णपदम् लेने गये और राक्षसों का

वध करके लौटे तो कितनी प्रसन्न थी वह। कितनी आश्वस्त कि भीमसेन की प्रबल शक्ति पर इस निष्क्रिय मृगजीन का प्रभाव नहीं पड़ा। इतने में भीम और घटोत्कच वहां पर आये। भीम ने अपने पुत्र घटोत्कच का परिचय कराया। घटोत्कच ने पांडवों का आशीर्वाद लिया।

पति सिरहाने बैठे हैं। पास कोई सुन्दर किशोर बैठा है। जी-जान से पादसेवा में लगा है। देखते ही मुझे पुत्र स्मरण हो आये। किस भगवान का है यह कुंवर। कौन हैं इसके जनक। और मेरी पादसेवा किसके आदेश पर कर रहा है?

वात्सल्य में जी भर गया। धीरे-से पूछा- बेटे कौन हो? अपरिचित नारी की पादसेवा के लिए किसने कहा? कोई भी हो, मैं तुम्हारी मां हूं। बेटे के सिवा कुछ सोच ही नहीं पाती। अपना परिचय तो दो बेटे।

किशोर ने सलज्ज स्वर में कहा- पुत्र कहकर तो आपने स्वयं मेरा परिचय दे दिया। आप मां हैं, बस यही है मेरा परिचय? मैंने धीरे स्वर में पूछा- फिर भी तुम्हारे सौभाग्यशाली पिता और जन्मदात्री? उनसे भेंट करने में क्या आपत्ति है? तुम जैसे सपूत को जन्म देकर कोई भी मां गौरवान्वित होगी। मैं उसे अभिनंदिनत करना चाहूंगी। रूपवान किशोर ने भीम की ओर देखा। भीम मृदु मुस्कान में दिखे। ऐसी स्निग्ध मुस्कान भीम के चेहरे पर पहली बार देख रही थी।

जब भी हंसते हैं वे अट्टहास करते हैं। पर आज मैं उनके व्यक्तित्व की यह और दिशा देख रही हूं। चेहरा प्रशांत, उज्ज्वल, पितृत्व के गौरव में महिमामय। स्निग्ध स्वर में कहा- हिडिंबापुत्र वीर घटोत्कच। मां याज्ञसेनी को प्रणाम करो। पिता का परिचय मां याज्ञसेनी से करा सकते हो। मगर राक्षसी हिडिंबा का हस्तिनापुर की राजवधू द्रुपद-राजनंदिनी पांचाली से परिचय न कराना। क्योंकि हिडिंबा को देखते ही राजनंदिनी राजवधू विदुषी आर्य-कन्या कृष्णा अपनी शिक्षा-दीक्षा और संस्कार भूलकर राक्षसी हो जायेंगी। फिर दो राक्षसी के आमने-सामने होने पर हमारी तीर्थयात्रा की योजना खत्म हो जायेगी।

भीम की रसिकता पर सब हंस पड़े। घटोत्कच ने मुझे प्रणाम किया। तुरन्त मैंने गोद में लिया उसे। स्पर्श से ही मैं अपने पांचों पुत्रों के स्पर्श का सुख अनुभव कर वात्सल्य-ममता में भर उठी। गले लगाकर कहा- बेटे घटोत्कच, तेरी महीयसी जननी को प्रणाम। वन-जंगल का निवासी होकर भी तुम सरीखा भद्र, नम्र और शिष्ट बालक। कैसी शिक्षा दी है, यही उनका परिचय है। मुझ पर गुस्सा होने पर भीम तुम्हारी मां हिडिंबा के पास चले आते हैं। कितना परेशान करते होंगे उन्हें। सो मैं अच्छी तरह जानती हूं। हिडिंबा को शत-शत प्रणाम, कोटि-कोटि धन्यवाद कहना। हस्तिनापुर लौटने के बाद कौरवों के साथ द्वन्द्व का समाधान हो जाने के बाद हिडिंबा के साथ पिता के राज्य में आना। इसके लिए निमंत्रण की जरूरत नहीं। यह तुम्हारा अधिकार है। भीम की बात सत्य मत मान बैठना। मत सोचता कि मैं सौतिया डाह में राक्षसी बनकर कलह करने लगूंगी। सुभद्रा मेरी सौत है, वह मेरे साथ इंद्रप्रस्थ में है। छोटी बहन की तरह है। तुम्हारी मां मुझसे उम्र और अनुभव में बड़ी हैं वे बड़ी बहन हैं, नमस्य हैं। भीम के मुंह से तुम्हारी मां की भूरि-भूरि प्रशंसा सुनकर कभी-कभी ईर्ष्या जरूर हुई है। परन्तु आज तुम्हें देखकर मन में उनके लिए ममता और भक्ति ही है। मां को मेरे मन की बात कहना।

घटोत्कच ने द्रौपदी के भी चरण स्पर्श किये। धर्मराज भीम से बोले रास्ते में बहुत सारे ऊंचे नीचे पर्वत आयेंगे। बर्फ के कारण उनको पार करना भी बडा ही मुश्किल हो रहा है। उन पर यह द्रौपदी नहीं चल पायेगी। भीम बोले मैं स्वयं ही आपको, द्रौपदी तथा नकुल-सहदेव को ले चलने में समर्थ हूं। फिर मेरा पुत्र घटोत्कच भी बल से मेरे ही समान है। यह आकाश मार्ग से चल सकता है। आप की आज्ञा होने पर यह हम सबके साथ चल सकता है। भीम घटोत्कच से बोले तेरी माता द्रौपदी बहुत थक गयी है। तू इसे अपने कन्धे पर चढाकर धीमी चाल से चल ताकि इसे कष्ट न हो। उनके साथ लोमश ऋषि थे वे तो अपने तपोबल से आकाश मार्ग से चलने लगे। इस प्रकार वे सुरम्य वनों और उपवनों को देखते हुये

बदरिकाश्रम की ओर चले। मार्ग में जाते हुये उन्होने म्लेच्छों के उस देश को तथा वहां की रत्नों की खान और तरह-तरह के धातुओं से सम्पन्न पर्वत की तलेटियों को देखा। उस देश में अनेकों विद्याधर, किन्नर, गन्धर्व और किम्पुरुष विचर रहे थे तथा वहां बहुत से वानर, मयूर, चमरी गाय, रूरूमृग, शूकर, गवय, भैंसे और लंगूर घूम रहे थे। कल कल कर नदियां बह रही थी। बहुत से जल प्रपात थे।

बदरिकाश्रम धाम में पांडवों ने नर-नारायण आश्रम के दर्शन किये। यह आश्रम दिव्य वृक्षों से सुशोभित सदा ही फल-फूलों से लदा रहनेवाला तथा गोल टहनियों वाले बदरी वृक्ष के भी दर्शन किये। इस वृक्ष की छाया बडी ही सघन और शीतल है। इसके पत्ते बडे ही चिकने और कोमल है। उसमें बोर के बहुत सारे बडे बडे मीठे फल लगे हुये थे। इस आश्रम में अन्धकार नहीं था परन्तु वृक्ष की सघनता के कारण इसमें सूर्य की किरणों का भी प्रवेश नहीं होता था। यहां पर क्षुधा प्यास, शीत-उष्ण आदि दोषों की तीव्रता भी नहीं थी। इस आश्रम में प्रवेश करते ही भय, शोक अपने आप ही निवृत हो जाते थे। धर्म बहिष्कृत लोगों का इस आश्रम में प्रवेश नहीं था। जिनका तेज अग्नि और सूर्य के समान था और अन्त:करण मल तप से नष्ट हो गया था वे ही महर्षि और मुमुक्ष यतिजन वहां रहते थे। वहाँ ब्रह्मज्ञ वेदपाठी महानुभव भी रहते थे। धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित उन दिव्य ज्ञान सम्पन्न महर्षियों के पास गये और उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया। स्वाध्याय में लगे हुये उन महर्षियों ने युधिष्ठिर का सत्कार किया तथा जल, पुष्प, फल मूल समर्पण किये। बदरिकाश्रम के सब स्थानों का दर्शन कर वे सब अलकनन्दा भागीरथी के तट पर आये। वहां स्नानादि से पवित्र हो देवता, ऋषि और पितरों का तर्पण एवं जप करके कुछ दिनों के लिये वे नर नारायण आश्रम में रहने लगे।

हिडिम्बा ने भीम का नाम रखा था वृकोदर अर्थात बडे उदर वाला यानि बडे पेट वाला, विशाल पेट वाला और अब हिडिम्ब प्रदेश वृकोदर प्रदेश के नाम से जाना जाने लगा। घटोत्कच वहां से सब से विदा लेकरअपने प्रदेश वृकोदर प्रदेश में लौट आया। अलगाव और विभाजन की प्रेरणा कभी भी मानव के लिये हितकर और सुखकर नहीं होती है चाहे वह कितनी ही सुन्दर और आकर्षक तथा मनमोहक क्यों न हो ? पांडवों की पत्नियों में द्रौपदी ही एक ऐसी सती है जिसने पुत्र मोह पर विजय पाई है और अपने पुत्रों को छोडकर अपने पतियों के साथ वन में आई है।

## ८) सौगन्धिक वन में भीम का यक्ष-राक्षसों से युद्ध

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय हनुमानजी के चले जाने पर भीम गन्धमादन पर्वत की ओर बढने लगे। सौगन्धिक वन देखने की इच्छा से उन्होने मार्ग के रमणीय वन, उपवन देखे तथा सुशोभित सरोवर और नदियां देखी। इस तरह आगे चलने पर वे कैलास पर्वत के समीप कुबेर के राजभवन के समीप पहुंचे। वहां पहुंचकर भीम ने उस सरोवर का निर्मल जल पान किया। कुबेर इस सरोवर में जल क्रीडा किया करते हैं। उस सरोवर के पास ही देवता, गन्धर्व, अप्सरा और ऋषि रहते है। उस सरोवर और सौगन्धिक वन को देखकर भीम बडे प्रसन्न हुये। वहां पर कुबेर के हजारों क्रोधवश नाम के राक्षस तरह-तरह के अस्त्रों से उसकी रक्षा करते थे। उन्होने भीम से पूछा आप कौन है और आप यहां किस उद्देश्य से आये हुये हैं? भीम बोला राक्षसों मैं कुन्ती पुत्र भीम हूं महाराज पांडु का पुत्र हूं। मैं यहां अपने भाइयों सहित बदरी विशाल आया हूं। मैं यहां से द्रौपदी के लिये सौगन्धिक पुष्प लेने आया हूं। राक्षस बोले हे पुरुष प्रवर यह यक्षराज कुबेर की क्रीडास्थली है। यहां मरणाधर्म मनुष्य विहार नहीं कर सकता। यहां पर देवर्षि, यक्ष और देवता भी कुबेर की आज्ञा लेकर ही विहार व जलपान कर सकते हैं। इसलिये आप बिना कुबेर की आज्ञा के सौगन्धिक कमल नहीं ले जा सकते। आप पहिले महाराज

कुबेर की आज्ञा प्राप्त कीजिये नहीं तो आप उन कमलों की तरफ झांक कर भी नहीं देख सकेंगे।

भीम बोले राक्षसों राजा लोग कभी मांगते नही। यही सनातन धर्म है। मैं भी किसी भी प्रकार क्षात्र धर्म का त्याग नहीं कर सकता। यह सुरम्य सरोवर पहाडी झरनों से बना है। इस पर सभी का समान रूप से अधिकार होता है। इसलिये मैं किसी से भी याचना नहीं कर सकता। ऐसा कहकर भीम बलात उस सरोवर में स्नान के लिये उतरे। तब सभी राक्षसों ने उन्हे रोका और उन पर शस्त्रों से प्रहार करने लगे। भीम ने भी अपनी गदा उठाकर उन पर आक्रमण किया। इससे राक्षसों का रोष और बढ गया और वे चारों ओर से घेरकर उन पर तोमर, पट्टिश आदि की वर्षा करने लगे। भीम ने उनके शस्त्रों के टुकडे-टुकडे कर कई वीरों को मृत्यु शैय्या प्रदान की। भीम की मार से पीडित हो अचेत होकर बहुत सारे राक्षस क्रोधित हो रण छोडकर कैलाश पर्वत के शिखर पर कुबेर के पास गये और भीम के बल पराक्रम का बखान किया। राक्षसों के युद्ध की बात सुनकर कुबेर हंसने लगे और बोले मैं ये सब बातें जानता हूं। भीम को जितने कमल चाहिये उतने उसे ले जाने दो। तब वे राक्षस शान्त होकर भीम के पास आये।

इधर बदरिकाश्रम में जोरों से धूल की आंधी उडने लगी और वेगवान वायु चलने लगी। गडगडाहट के साथ उल्कापात होने लगा। बिजली चमकने लगी। सूर्य का तेज भी कम हो गया। चारों ओर की दिशायें लाल हो गई। मृग और पक्षी चीत्कार करने लगे। चारों तरफ अन्धेरा छा गया, कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। अनेको भयंकर उत्पात होने लगे। भीम को वहां न पाकर युधिष्ठिर ने द्रौपदी से पूछा पांचाली भीम कहां है? कारण की भीम तो कही भयंकर कर्म नहीं कर बैठा क्योंकि अकस्मात होनेवाले ये उत्पात किसी युद्ध या अनिष्ट की सूचना दे रहे है। तब द्रौपदी बोली राजन भीम सौगन्धिक कमलों की खोज में मेरा प्रिय करने पूर्वोत्तर दिशा की ओर गये हैं और वो इसे लेकर शीघ्र ही आते होंगे। तब धर्मराज युधिष्ठिर बोले नकुल सहदेव जिस ओर भीम गया है उसी ओर हमें भी जाना चाहिये। भीम कही ब्रह्मवादी सिद्ध पुरुषों का कोई अपराध करे उसके पहिले ही हमें वहां पहुंच जाना चाहिये। तब सभी ब्राह्मणोंसहित लोमश ऋषि को ले प्रसन्नचित्त वहां चल दिये। शीघ्र ही उस सुन्दर कमल के सरोवर को देखा। वहीं पर उन्हे भीम मिला और उसके पास ही मरे हुये अनेकों यक्ष भी देखे। भीम को देखकर युधिष्ठिर ने भीम का आलिंगन किया और बोले भीम तुम यहां क्या कर रहे हो? कभी भूलकर भी ऐसा काम मत करना।

यह समाचार सुन युधिष्ठिर चिंतित हो उठे। मुझे साथ लेकर कैलास पर्वत की ओर चलकर कुबेर के सरोवर के पास पहुंचे। भीम का युद्ध रोका। भीम पर खीझ उठे। बिना अनुमति के ऐसा काम करना ठीक न था। तब भीम ने कहा- यह काम वस्तुत: आपका है।

पत्नी की इच्छा पूरी करना पति का धर्म है।

द्रौपदी का मन स्वर्ण-पद्म पर हो गया। लाकर देना आपका कर्तव्य था। मैंने आपकी तरफ से वह कर दिया।

धन, रत्न, स्वर्ण के लिए स्त्रियों के मन में लोभ होना स्वाभाविक है। अनुचित-उचित का विचार तब वे भूल जाती हैं। परन्तु पुरुष को लोभ में हिताहित नहीं भूलना चाहिए।

भीम ने अपने कार्य की यथार्थता दिखाने के लिए कहा- अरण्यवासिनी सीता ने कभी स्वर्ण-मृग के लिए मन किया। प्रभु राम ने पत्नी की इच्छा के लिए हिताहित की बात भूला दी। स्वर्ण-मृग के पीछे दौड़े। मैं तो मामूली आदमी हूं। पत्नी की इच्छा पूरी करने के लिए राम ने पत्नी की इच्छा शिरोधार्य कर स्वर्ण-मृग लाने की प्रतिश्रुति दी। याज्ञसेनी पंचपतियों की पत्नी है। सब शौर्य, वीर्य, पराक्रम में एक से बढ़कर एक हैं। परन्तु स्वर्णिम पद्म के लिए इच्छा की मैं कैसे उपेक्षा

करता? राजनंदिनी कृष्णा ने हमारे लिए क्या कुछ त्याग नहीं किया? कितने दु:ख सहे, लांछना झेली। राज्य से आते समय अलंकार उतरवाने का अपमान सहा। और यह जरा-सी इच्छा पूरी करना मेरी भूल है। भीम इसी बीच क्रोध में भर गए थे। उत्तेजना में फूल उठे थे।

युधिष्ठिर ने शांत, शीतल धीर शब्दों में कहा- प्रभु राम स्वर्ण-मृग के पीछे चले उसका अंतिम परिणाम क्या हुआ? मां जानकी की स्वर्णकामना उन्हें कैसे दु:ख और विपद में ले गई यह भी जानते हो। राम और सीता के जीवन में यहीं से दु:ख का प्रारंभ होता है। अत: वही जगत के लोगों के लिए चेतावनी है। मैं यहां न पहुंचता तो तुम्हारा जीवन भी संकट में पड़ जाता। आगा-पीछा सोचे बिना वीरता दिखाना ठीक नहीं। विदुषी, विद्यावती, शास्त्रनिपुण याज्ञसेनी स्वर्ण के लोभ में हिताहित की बात भूल गई। याज्ञसेनी का नारी-सुलभ यह स्वर्ण की ओर आकर्षण कभी हमारे विनाश का कारण बन सकता है। सोचा था- याज्ञसेनी साधारण राजकुमारियों से ऊपर है, पर... आगे युधिष्ठिर कुछ बोल नहीं पाये। द्रौपदी इधर लज्जा, ग्लानि, मान, पश्चात्ताप में म्लान पड़ चुकी थी। कठिनाई से आंसू रोक सकी। युधिष्ठिर ने भीम के अनुचित कार्य के लिए क्षमा मांगी। तब वहां उस उद्यान के रक्षक विशालकाय यज्ञ राक्षस आये और उन सभी ने झुककर प्रणाम किया। धर्मराज युधिष्ठिर के सांत्वना देनेपर कुबेर के दूत शान्त हुये। कुबेर को भी पांडवों के आने की सूचना मिल गयी।

अर्जुन के आने की प्रतीक्षा में उन्होने कुछ समय तक गन्धमादन के शिखर पर ही निवास किया।

वहां रहते एक दिन अपने सभी भाइयों और ब्राह्मणों सहित, द्रौपदी सहित वे लोमश ऋषि के साथ बैठे हुये वार्तालाप कर रहे थे। धर्मराज युधिष्ठिर बोले यहां पहिले देवताओं और ऋषियों, मुनियों का निवास है। हमने अनेकों पवित्रों तीर्थ और मन को आनन्दित करनेवाले वनों का भ्रमण किया है। तीर्थों में स्नान व देव पूजन किया है और सत्संग किया है। पितरों का भी तर्पण किया है। महात्मा लोमश ने हमे सभी तीर्थों का दर्शन भी करा दिया है। यह सिद्धों द्वारा सेवित कुबेरजी का पवित्र मन्दिर है हम वहां पर कैसे जाये? उसी समय आकाशवाणी हुई कि तुम अब इसके आगे नहीं जा सकते। यह मार्ग बहुत दुर्गम है इसलिये तुम जिस मार्ग से आये हो, उसी से नर नारायण के दर्शन के लिये बदरिकाश्रम लौट जाओ। वहां से तुम लोग सिद्ध और चारणों से सेवित वृषपर्वा के आश्रम को जाओ जो बडा ही रमणीक है। फिर उसे पार कर तुम आर्षिटषेण के आश्रम में निवास करो। उससे आगे जाने पर तुम्हे कुबेर मन्दिर के दर्शन होंगे। उस आकाशवाणी को सुनकर राजा युधिष्ठिर महर्षि धौम्य की आज्ञा से वहां से वापिस लौटकर नर नारायण के आश्रम में आ गये।

**९) जटासुर वध-** एक दिन युधिष्ठिर के पास एक राक्षस आया और बोला वह समस्त शास्त्र वेत्ताओं में श्रेष्ठ और मन्त्र विद्या में कुशल ब्राह्मण है। वह कपटी राक्षस था उसका नाम जटासुर था। वह द्रौपदी और पांडवों को हर ले जाने की फिराक में था। उस समय भीम वन में गया हुआ था तथा लोमश आदि ऋषि स्नान करने गये थे। उस समय वह जटासुर राक्षस भयानक रूप धारण कर तीनों पांडव, द्रौपदी और उनके सारे शस्त्र लेकर उठा चला। किसी तरह सहदेव अपने पराक्रम से उसके चंगुल में से छूट गया। जब राक्षस इन्हे हरकर ले जा रहा था तो युधिष्ठिर ने कहा अरे मूर्ख इस प्रकार चोरी करने से तेरे धर्म का नाश होता है। तुझे सब प्रकार के धर्म का विचार कर ही कोई कार्य करना चाहिये। प्रामाणिक पुरुषों को गुरु, ब्राह्मण, मित्र और विश्वास करनेवालों से तथा जिसका अन्न खाया हो और जिन्होने आश्रय दिया हो उनसे द्रोह नहीं करना चाहिये। तू हमारे यहां बडे सम्मान और सुखपूर्वक रहा है। अरे दुर्बुद्धि हमारा अन्न खाकर हमें ही हरना चाह रहा है। इससे तेरा आचार, आयु और बुद्धि सभी निष्फल हो जायेंगे। व्यर्थ में क्यों मृत्यु को बुला रहे हो? अरे राक्षस तूने इन

मानवों का स्पर्श कर मानो हलाहल विष ही पी लिया है। पुरुष जिस स्त्री का हरण करता है वह उसकी हत्या नहीं कर सकता। यह सुनकर राक्षस की गति धीमी हो गयी। युधिष्ठिर ने नकुल और द्रौपदी से कहा तुम इस मूढ राक्षस से भयभीत मत होना। मैंने अपने तेज के प्रभाव से इसकी गति कुंठित कर दी है। यहां से थोडी दूर पर ही गया हुआ भीम आता ही होगा फिर तो इस राक्षस का नामोनिशान भी शेष नहीं रहेगा। सहदेव धर्मराज युधिष्ठिर से बोले भ्राताश्री यह परिस्थिति ही अब ऐसी है कि हम इससे युद्ध कर मार डाले। उन्होने राक्षस को ललकार कर कहा अरे मूढ मति खडा रह तू द्रौपदी को नहीं ले जा सकेगा। अभी हमारे हाथों यहीं मारा जायेगा।

माद्रीनन्दन सहदेव ऐसा बोल ही रहे थे कि इतने में ही गदाधारी भीम आते हुये दिखाई दिये। उन्होने जाना कि ये राक्षस उनके भाइयों और द्रौपदी को लिये जा रहा है। वे क्रोध से भर उस राक्षस से बोले अरे पापी मैंने तो तुम्हें पहिले ही पहिचान लिया था किन्तु तू हमारे यहां ब्राह्मण वेश में रहता था इसलिये मैं तुम्हे कैसे मारता? बिना अपराध के तो तुम्हें मारना उचित नहीं था और जो कोई बिना अपराध के किसी को मारता है तो वह नरक का भागी होता है। लगता है अब तेरी मौत आ गयी है, इसी से तुझे ऐसी कुबुद्धि उपजी है। अद्‌भुत कर्मा काल ने ही तुझे द्रौपदी को हरण की बात सुझायी है। अब मैं तुझे बकासुर और हिडिम्बासुर के पास ही भेजूंगा। भीम के इस प्रकार कहने पर वह राक्षस डर गया और सब को छोडकर युद्ध के लिये तैयार हो गया।

क्रोध से उस राक्षस के होठ कांपने लगे और वह बोला अरे पापी तूने जिन जिन राक्षसों को युद्ध में मारा है उन सब के बारे में मैं जानता हूं। आज मैं तेरे खून से उन सबका तर्पण करूंगा। स्त्री बल और साहस पर मुग्ध होती है और स्त्री उसीकी होती है जिस पर उसका मन मुग्ध हो जाये। पत्नी वह चाहे किसी की भी क्यों न हो परकीया के प्रेम की तीव्रता को कौन नहीं जानता? द्रौपदी उसके आधिपत्य में है। फिर उन दोनों में बडा भयंकर बाहु युद्ध होने लगा। उसके ऐसा कहने पर नकुल और सहदेव उस पर टूट पडे। परन्तु भीम ने हंसकर उन्हे रोक दिया और बोला मैं अकेले ही इसके लिये बहुत हूं। अब भीम और जटासुर दोनों आपस में बाहु युद्ध करने लगे। वे दोनों आपस में वृक्ष युद्ध करने लगे। वहां वन और उद्यान के अनेकों वृक्ष उजड गये। उन्होने वज्र के समान वेगवाली पत्थर की शिलायें उखाड उखाड कर परस्पर लडना आरम्भ किया। आपस में घूसों की लडाई लडने लगे। उसी समय भीम ने जटासुर की गर्दन पर बडे वेग से मुक्के का प्रहार किया इससे वह राक्षस ढीला पड गया। उसे थका जानकर भीम ने उसे पृथ्वी पर पटक मारा और उसके सारे अंग प्रत्यंग चूर चूर कर दिये। कोहनी की चोट से उसका सिर धड से अलग कर दिया। इस प्रकार उस राक्षस का वध किया। सभी ब्राह्मण लोग भीम की प्रशंसा करने लगे। बदरिकाश्रम में पांडव अधिक दिन नहीं टिके। जटासुर के वध के पश्चात स्वयं युधिष्ठिर का मन वहां से उखड गया। वे यह मान नहीं पा रहे थे कि इतने पवित्र तीर्थ स्थान में तपस्वी समाज में भी ऐसी घटना घटित हो सकती है। वे किस पर विश्वास करें और किस पर नहीं।जो व्यक्ति सबसे निष्ठावान लगता था वही सबसे अधिक दुष्ट निकला।

**१०) अर्जुन का गन्धमादन पर लौटना -** वैशम्पायन बोले जटासुर के मारे जाने पर युधिष्ठिर भाइयोंसहित नर नारायण के आश्रम में आकर रहने लगे। अर्जुन ५ वर्ष तक स्वर्ग लोक में अस्त्र विद्या सीखने गया हुआ था। वे सभी अर्जुन के लौटने की प्रतीक्षा में थे। फूल उद्यान में खिलते हैं या मन के आंगन में? सुवास फूल की पंखुड़ी में होती है या मन की पंखुड़ी में? कुहू-तान कोकिल के स्वर में होती है, या मनतंत्री में बजती है? वसंत वास्तव में होता है या भावना में चित्रित होता है?

पता नहीं कैसे प्रकृति की शोभा, संगीत की झंकार और मन का स्वप्न सब खो गए द्रौपदी की आंखों के आगे से- अर्जुनहीन अरण्य जीवन में। तीर्थयात्रा के लिए प्राण व्याकुल हो रहे थे। द्रौपदी का चिंतन शुरू हुआ। सोच रही थी कि तीर्थयात्रा के समय साधना में लीन योगनिष्ठ सव्यसाची के सौम्य रूप का दर्शन मिल सकेगा। उसी में मोहाविष्ट स्थिति में कुछ काल कट जायेगा। तीर्थयात्रा के लिए युधिष्ठिर को कई बार अनुरोध करने के बाद वे तैयार हो रहे थे। बीच-बीच में तीर्थ भ्रमण करते-करते ऋषियों से अर्जुन की खबर मिल जाया करती थी। अर्जुन हिमालय में साधना कर रहे हैं। उनकी कुशलता का संवाद पाकर व्याकुलता और भी बढ़ जाती है। हिमालय के निकटस्थ दुर्गम अरण्य में पहले तपस्या की, फिर वीरत्व का प्रदर्शन कर वीर फाल्गुनी ने शिव से पाशुपतास्त्र प्राप्त किया है। सुनकर हम सब उत्फुल्ल हो उठे। फिर यम से दंडास्त्र, वरुण से वरुणपाश, कुबेर से अंतर्धानकारी ओज, तेज एवं द्युतिकर प्रस्वापन अस्त्र बहुत कम दिन में प्राप्त करने की खबर मिली। लगता था, अब अर्जुन जल्दी ही लौट आयेंगे। पिता इंद्र से दिव्यास्त्र पाने में विशेष देर नहीं लगेगी। प्रतिदिन, प्रतिपल मैं उनके स्वागत की प्रतीक्षा में रहती। रातों उजागर रही। लगता था, बस आ रहे हैं। उदित सूर्य की आभा में, अस्त सूर्य की कोमल ललित बिदा-छटा में, ज्योत्स्ना की रोशनी में, वर्षा के संगीत में, रातों सपना देखती-चीख उठती मैं फाल्गुनी, तुम्हें नहीं छोडूंगी। न राज्य चाहिए, न धन, न दौलत। तुम सिर्फ मेरे पास रहो। विरह में जीवन का इतना भाग बीत गया। और बचा ही कितना होगा हमारे इस सीमित जीवन का? कम से कम इस आखिरी हिस्से में तो तुम मेरे पास रहो।

सहदेव कहते हैं याज्ञसेनी ठीक समय पर ठीक कर्तव्य करती हैं। प्रतिदिन बड़े भैया युधिष्ठिर के मन में प्रतिशोध की आग को उकसाती रहती हैं, उसमें घी डालती रहती हैं। वरना बड़े भैया जैसे अहिंसा और क्षमा के अवतार कभी प्रतिशोध का नाम लेते? अब याज्ञसेनी को विरहिणी के वेश में देखकर परिहास कर रहे हो। उनका वास्तविक रूप तुम देख लोगे तो घबरा आओगे। जितनी कोमल हैं, उतनी ही कठोर भी। क्षमाशील जितनी, प्रतिशोध-परायण भी उतनी ही हैं। समय देखकर कार्य करती हैं। इस समय विरह ऋतु का वर्णन कर काव्य रचने के सिवा कोई काम नहीं। वे काव्य रच रही हैं। फाल्गुनी के लौटने पर कुछ तो भेंट देंगी। सच, मैं इसी बीच विरह ऋतु नामक काव्य पूरा कर चुकी थी, इन सब भाइयों को पता हो गया था। हट क्या सोचते होंगे ये।

सब भाई मिलकर मेरी ओर देखते। होंठ भींचे हंसकर मेरी विरह-वेदना को हटाने की कोशिश करते। पत्थर की मूर्ति की तरह शांत सब सुनते, सब देखते निर्विकार युधिष्ठिर। समय कट जाता- मगर अर्जुन नहीं लौटते। संवाद भी नहीं मिलता। हिमालय से लौटते संन्यासी बताते कि वे नगराज छोड़कर जा चुके हैं। वहां जब तक रहे, शांति से रहे। अब कहां हैं, कोई नहीं बता पाता। प्रतीक्षा की लम्बाई बढ़ती जाती है। व्याकुलता अब उत्कंठा बनती जा रही है। मैं ही नहीं, युधिष्ठिर सहित सब अर्जुन का संवाद पाने की उत्कंठा से प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं तो एकदम फल, जल त्याग कर प्रतीक्षा कर रही हूं। कौन देगा अर्जुन की वार्ता?

तो अर्जुन स्वर्ग में क्यों रुक गए? मैंने व्याकुल स्वर में पूछ लिया। लोमश मुनि ने शांत एवं उदार भाव से कहा- इतने दिनों के बाद पुत्र को पास में पाया है इंद्रदेव ने। जीवनभर तो उनका पुत्र अरण्यवास और दारिद्र्य में रहा। अब पहुंचा है स्वर्ग में। अत: देवराज ने उन्हें कुछ दिन वहां रहकर विश्राम करने का अनुरोध किया है। पिता का अनुरोध मान लिया है। अमरावती में इंद्र की सभा देखकर अर्जुन अचंभे में भर गए। गंधर्वों का सामगान, रंभा, मेनका, स्वर्णप्रभा, उर्वशी, चित्रसेना कुंभयोनि, बरूथिनी, मित्रकेशी, चित्रलेखा, पद्मयोनि आदि अनंत-यौवना अप्सराओं के नृत्य-गीत में मोहित हो विह्वल अवस्था में हैं। पिता इंद्र के परामर्श पर गंधर्वराज चित्रसेन से नृत्य, गीत, वाद्य आदि की शिक्षा ले रहे हैं। शिक्षा समाप्त होते ही लौटेंगे। लौटते समय वहां से वज्र, अशनि आदि अस्त्र प्राप्त कर लायेंगे। अत: किसी बात की आशंका न करें।

अर्जुन की कुशल-वार्ता पाकर राहत मिली। मगर वे स्वर्ग में हैं। वे रंभा, मेनका, उर्वशी, चित्रलेखा के बीच विलास में हैं। मुझे नरक-सी दाहक यंत्रणा होने लगी। मेरे पति को भोग-विलास में उलझा देंगी वे संगीत और नृत्य के बहाने। उन पर अभिसंपात काटने लगी मैं। क्यों नहीं इनका वंशनाश हो। सोचने लगी मैं कि कहां तो शत्रुनाश के लिए अस्त्र-शस्त्र-संग्रह और कहां नृत्य-गीत की शिक्षा? स्वर्ग-सुख छोड़कर कोई लौटेगा? भला द्यूत-क्रीड़ा के समय मेरे अपमान की बात उन्हें स्मरण होगी अब? उनके भाई और स्त्री गृहहीन होकर समय बिता रहे हैं, क्या उन्हें याद रहेगा? अपने विचारों में मग्न बैठी थी। अपने दु:ख में उबलती रही। कल्पना के नेत्रों से पति का स्वर्ग देखते-देखते नरकवास को श्रेय कर रही थी।

सहदेव ने धीरज बंधाया- अर्जुन पर से विश्वास खोना ठीक न होगा। वे किसके सखा हैं, जानती हो? अर्जुन पर से विश्वास खोने का अर्थ है कृष्ण पर से विश्वास खोना। अर्जुन ने अब तक जो कुछ किया है, आर्यावर्त्त के मंगल के लिए। समय आने पर नृत्यगीत शिक्षा में भी वैसा ही कोई मंगल सिद्ध हो सकता है। किसी विषय में हो, शिक्षा महत् कार्य में लग लग सकती है। अब यदि अर्जुन यहां लौट आयें, तो भी समय न होने तक बड़े भैया हस्तिनापुर नहीं लौटेंगे, चाहे कितने ही शक्तिशाली क्यों न हो जायें हम। तेरह वर्ष वनवास भोगना होगा। अत: अर्जुन के प्रत्यावर्तन की बात पर उद्विग्न होने की क्या जरूरत? स्वर्ग में रहें कुछ समय आराम से। हम में एक तो कम से कम आराम-सुख से रहे कुछ समय।

आदमी का मन इतना जिद्दी होता है कि सहज ही कुछ मानता नहीं। दिन कट जाता लोमश मुनि के साथ तीर्थ-भ्रमण में। परन्तु रातभर वेदना से नींद पास नहीं आती। जब क्लांत होकर तंद्रा घेर लेती, दु:स्वप्नों की कतार लग जाती। कभी कुरुसभा में लांछना और अपमान का दृश्य उभर आता। कभी जाता-जल से निकाल हस्तिनापुर में सम्मानपूर्वक छोड़ आते कर्ण का दृश्य। कभी दिखता, पुत्र बिसूर रहे हैं, आंचल पकड़कर जिद कर रहे हैं- हम मां को नहीं छोड़ेंगे। और फिर कभी दिख जाते अर्जुन-अप्सराओं से घिरे। नृत्य-गीत विशारद बन चुके हैं। गंधर्वों को भी मात दे रहे हैं। अप्सराओं के बीच अर्जुन वैसे ही दिखते जैसे गोपियों के बीच रसिकराज कृष्ण लगते।

इस प्रकार रास्ते में कैलाश पर्वत, मैनाक पर्वत और गन्धमादन की तलैटी, श्वेतगिरि को तथा अनेकों पर्वतों और निर्मल नदियों को देखते हुये वे सात दिन के पश्चात हिमालय के पृष्ठभाग पर पहुंचे। मेरा मन सहदेव समझते हैं। मन बदलने के लिए वे स्थान बदलने का परामर्श देते हैं और लोमश मुनि के साथ तीर्थ-भ्रमण का। कुछ दिन नैमिषारण्य में रहने के बाद प्रयाग, गया, गंगासागर होते हुए समुद्र के किनारे-किनारे पश्चिम में हम प्रभास तीर्थ पहुंच गए। वहां कृष्ण, बलराम और यादवों ने स्वागत किया। प्रभास में सखा के आतिथ्य और सुख के बीच सारा दु:ख कहीं लोप हो गया। खुले मन से सखा के साथ बातों में अर्जुन पर भरोसा लौट आया। नयी आशा और उत्साह लेकर हम आगे बढ़े।

गंधमादन पर्वत की ओर अगम्य अरण्य है। पांडव उस तरफ बढ़ रहे थे। मैं प्रतिवाद नहीं कर पा रही थी। साथ हैं लोमश मुनि। कैसे कहूं- आगे नहीं चल पाती। लोमश मुनि को तीर्थ-भ्रमण का संदेश अर्जुन ने ही भिजवाया है। वह दायित्व युधिष्ठिर ने लिया है। मैं जी-जान से वह कर्तव्य पूरा कर रही हूं।

मुश्किल से कुछ दूर बढ़ी की आंधी-तूफान आ गए। जान बचाने को किधर भी ठिकाना नहीं दिखा। भीम मेरे पास-पास हैं। एक बाहु पकड़े हैं पेड़ की छांह के नीचे। मगर दुर्योग आता है तब सपरिवार आता है। पेड़ भी हमें आश्रय नहीं दे पाया। भरभरा कर गिर पड़ा, भीम बच गए, पर मैं चोट खा होश खो बैठी। पता नहीं, कब तक अचेत रही। आंख खोलकर देखा तब तक आकाश निर्मल था। तूफान शांत।

जहां उन्होने राजर्षि वृषपर्वा का पवित्र आश्रम देखा। वह अनेक प्रकार के पुष्पों और वृक्षों से सुशोभित था। उस आश्रम

में पहुंच कर उन्होने वृषपर्वा को प्रणाम किया। राजर्षि वृषपर्वा ने भी उन सबका यथोचित अभिनन्दन किया। पांडव अपने यज्ञ पात्र रत्न और आभूषण वहीं राजर्षि वृषपर्वा के आश्रम में छोडकर आगे जाने के लिये तैयार हुये। राजर्षि वृषपर्वा भूत और भविष्य के ज्ञाता तथा समस्त धर्मों के मर्मज्ञ थे। उनकी आज्ञा से सभी पांडव उत्तर दिशा की ओर चले। युधिष्ठिर अपने भाईयोंसहित उस मार्ग से जा रहे थे जो अनेक प्रकार के मृगों से पूर्ण था। रास्ते में पहाडों के ऊपर तरह-तरह के वृक्षों के कुंज थे। चलते चलते वे श्वेत पर्वत पर पहुंचे। श्वेताचल एक बहुत बडे बादल के समान सफेद दिखाई पड रहा था। इस पर्वत पर जल की अधिकता थी तथा मणि, स्वर्ण और चांदी की शिलायें थी। साथ में धौम्य और लोमश ऋषि चल रहे थे। इस प्रकार चलते चलते वे माल्यवान पर्वत पर पहुंच गये। उसके ऊपर चढकर उन्होने किम्पुरुष, सिद्ध और चारणों से सेवित गन्धमादन पर्वत के दर्शन किये तथा गन्धमादन वन में प्रवेश किया। युधिष्ठिर भीम से बोले यह गन्धमादन वन कैसा शोभासम्पन्न है। यह मनोहर वन में बडे ही दिव्य वृक्ष तथा पत्र, पुष्प और फलों से सुशोभित है। यहां परम पवित्र देव नदी गंगा बह रही है। यहां अनेकों कल हंस क्रीडा कर रहे हैं। इसके तट पर ऋषि और किन्नर निवास करते हैं। यहां तरह तरह के धातु, नदी, किन्नर, मृग, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा, अनेकों आकार के सर्प इस पर्वत राज पर देखे। इस पर्वत को देखते-देखते पांडवों की तृप्ति नहीं हो रही थी और वे बडे ही आनन्दित हुये। फिर उन्होने वहां फलों से लदे वृक्षों से सुशोभित राजर्षि आर्ष्टिषेण का आश्रम देखा।

राजर्षि आर्ष्टिषेण बडे ही तपस्वी थे। शरीर अत्यन्त कृश था। वे समस्त धर्मों के पारगामी थे। पांडवों ने उनके पास जाकर प्रणाम किया। राजर्षि ने भी उनको पहिचान कर यथायोग्य सत्कार किया और बैठने के लिये आसन दिया। महातपा आर्ष्टिषेण ने युधिष्ठिर से पूछा राजन तुम्हारा मन कभी असत्य में तो नहीं जाता? तुम सदैव अपने धर्म का पालन करते हो न? तुम्हारे माता-पिता की सेवा में तो कोई प्रमाद नहीं होता अपने सभी गुरु, वृद्ध पुरुष और विद्वानों का आदर सत्कार करते हो ना? पाप कर्मों में तो तुम कभी लिप्त नहीं होते ना? तुम उपकार का बदला चुकाना और अपकार को भूल जाना तो याद रखते हो ना? अपने ज्ञान का तो तुम्हें कोई अभिमान नहीं होता ना? साधु जनों का यथा योग्य सम्मान करते हो ना? वनों में रहकर तुम धर्म का अनुवर्तन करते हो ना? तुम्हारे व्यवहार से तुम्हारे पुरोहित धौम्य को तो कोई कष्ट नहीं होता है न? तुम अपने पूर्वजों का दान, धर्म, तप, शौच, आर्जव और तितिक्षा का आचरण करते हुये शील का अनुसरण कर रहे हो ना? तुम राजर्षियों के आदेशानुसार मार्ग पर चल रहे हो ना? पितृ लोक में रहनेवाले पितर लोग सन्तान होने पर हंसते भी है और शोक भी मनाते है। वे सोचते है कि पता नहीं इस सन्तान के कुकर्मों द्वारा उन्हे दु:ख भोगना पडेगा या उसके शुभ कर्मों से उन्हे सुख मिलेगा। जो पुरुष माता, पिता, अग्नि, गुरु और आत्मा का पूजन करता है वह इहलोक और परलोक दोनों को जीतता है। तब युधिष्ठिर बोले भगवन आपने धर्म के यथार्थ स्वरूप का वर्णन किया है। मैं अपनी क्षमता भर, योग्यतानुसार इसका नियमपूर्वक पालन करता हूं।

आर्ष्टिषेण राजर्षि ने कहा पूर्णिमा और प्रतिपदा की रात्रि में इस पर्वत पर केवल जल या वायु का सेवन करनेवाले मुनिगण आकाशमार्ग से आते हैं। उस समय यहां भेरी, पणाव, शंख और मृदंगों का शब्द भी सुनायी देता है आप लोग उसे अवश्य सुने। यहां से आगे जाना तुम्हारे लिये सम्भव नहीं है। क्योंकि इसके आगे अब देवताओं की विहार भूमि है। उसमें मनुष्यों की गति नहीं हो सकती। इस कैलाश के शिखर को लांघ कर केवल परम सिद्ध और देवर्षिगण ही जा सकते हैं। यदि कोई जीव या मनुष्य चपलता वश जाने का प्रयत्न करता है तो उससे समस्त पर्वतीय जीव द्वेष करने लगते हैं। इन्ही पर्वत सन्धियों पर नर वाहन कुबेर जी यही रहते हैं। इस कैलाश के शिखर पर ही देवता, दानव, सिद्धों और कुबेरों का उद्यान है। इस प्रकार पर्वत सन्धियों

पर यहां सभी प्राणियों की बहुत सी विचित्र बातें है। जब तक अर्जुन आवे तब तक तुम सब लोग यहीं निवास करो। राजर्षि आर्ष्टिषेण की बात सुनकर पांडव लोग उनके कहे अनुसार बर्ताव करने लगे। वे हिमालय पर रहकर महर्षि लोमश से नये नये उपदेश सुनते थे। राजर्षि आर्ष्टिषेण के आश्रय पर पांडव कई दिनों तक रहे।

सूर्योदय से पूर्व कभी प्रकाश नहीं होता। पांडव पुंसत्वहीन नहीं है। वे तपस्वियों के समान संयमी है। उनके जीवन में काम भोग का केवल आंशिक महत्व है। जीवन की उपलब्धि नहीं है कामसुख। वे पांचो भाई अपनी मूल्यवान से मूल्यवान वस्तु को भी व्यक्तिगत नहीं मानते। वे स्वार्थी नहीं है। वे सब कुछ परस्पर बांटते हैं। उनका प्रेम, ईर्ष्या का अभाव, स्त्री प्रसंग में भी ईर्ष्या नहीं है। गम्भीर चर्चा और ठीक ठाक निष्कर्षों के लिये व्यक्ति की दृष्टि निष्पक्ष और यथार्थदर्शनी होनी चाहिये। उसमें वासना, ईर्ष्या और संकीर्णता होगी तो उचित निष्कर्ष कहां से प्राप्त होंगे? स्त्रियां अपने रहस्य को अपने पेट में छिपा नहीं सकती।

द्रौपदी एक वृक्ष के नीचे अकेली बैठी बडी देर से अपने विचारों में लीन हो रही थी। द्रौपदी स्वयं कर्तव्यपरायण एवं कर्मनिष्ठ थी। जो प्रात: सर्वप्रथम जागनेवाली और दिनभर गृहप्रबन्ध, राज्य-कार्य, दान-दक्षिणा, सेवक-परिचारक की देखभाल करती और रात्रि में सबसे बाद शयनकक्ष में जाती वह कर्त्तव्य की उपेक्षा भला कैसे सह पाती? वह युधिष्ठिर की कर्तव्य उदासीनता की शाश्वत आलोचक थी। वैसे उसने स्थिति से बहुत समझौता कर लिया था। मन के स्वामी अभी भी सव्यसाची अर्जुन ही थे। वह अर्जुन के अपार अथाह स्नेह में डूबी हुई थी। सदा नेहभीगी रहती, प्रीतिछकी रहती। उसका मन तृप्त था अन्तर की कटुता भी शान्त हो चली थी। वह स्फूर्ति एवं कर्म की मूर्ति बन गयी थी। परम स्नेहशीला, दानशीला महारानी को पाकर इन्द्रप्रस्थ की प्रजा एवं राजमहल के परिचारक, दास-दासी आदि धन्य हो गये थे। द्रौपदी को सेवा में, कर्म में आनन्द आता। वह कर्त्तव्य धर्म के नाते ही करती थी। किन्तु इस पुण्यता के साथ करती सभी पति मुग्ध थे। वे कितना सम्मान करते थे उसका। महाराज युधिष्ठिर क्यों भूल गये कि जो राजा आय का छठा भाग कर रूप में लेता है किन्तु प्रजा को रक्षा प्रदान करने में असमर्थ रहता है, वह अधर्मी है, पापाचारी है और ऐसा राजा नरक का अधिकारी है?

पांचाली का मन झंझा में पड़े अश्वत्थ पत्र-सा आन्दोलित हो रहा था। उसकी वह पूरी सन्ध्या दुश्चिन्ताओं और आशंकाओं में व्यतीत हुई। मनुष्य चाहकर भी अतीत को भूल नहीं पाता। अतीत की स्मृति सदैव बनी रहती है। द्रौपदी उदास मन से बैठी सोच रही है। उसकी आँखों के सामने द्यूतक्रीडा का वह दृश्य घूम रहा था जब दु:शासन ने उसे भरी सभा में निर्वस्त्र करने का प्रयत्न किया।

दुर्योधन ने कुटिलता से मुस्कराते हुए एक नया जाल बिछाया और बोला, तुम बहुत धर्म-अधर्म की विवेचना में निपुण हो और तुम्हारे पति युधिष्ठिर तो साक्षात् धर्मराज ही हैं। तो क्यों न युधिष्ठिर ही निर्णय दें कि तुम दासी हो अथवा नहीं?

युधिष्ठिर कैसे कह सकते हैं कि द्रौपदी दासी नहीं। उन्होंने जीते-जागते पूरे दायित्व के साथ पूरे समाज के समक्ष स्वयं द्रौपदी को हारा है। युधिष्ठिर को यह उद्घोषणा सार्वजनिक रूप से करनी पड़ेगी कि अब द्रौपदी पर उनका कोई अधिकार शेष नहीं। यह घोषणा कि द्रौपदी दासी है। यह घोषणा कि उसके साथ दासी जैसा व्यवहार किया जाये। सभा में उसके साथ व्यवहार किसी भी सीमा तक निकृष्ट क्यों न हो, उचित है।

अथवा युधिष्ठिर यह कह दें कि द्रौपदी दासी नहीं, तो युधिष्ठिर का धर्म राजत्व गया। युधिष्ठिर के अनजाने में उनकी समस्त धर्मनिष्ठा, प्रतिष्ठा, सम्मान, उनके प्रति लोगों के मन में पूज्यभाव आज के जुए में दाँव पर लग गया था।

युधिष्ठिर कुछ नहीं बोलना चाहते द्रुपदनन्दिनी, देख लिया तुमने। इनकी तुम्हें दासीभाव से मुक्ति दिलाने में रुचि नहीं।

उनमें पराक्रम ही यदि होता तो क्या वे पत्नी को पण पर रखते? अब स्वयं देख लो, युधिष्ठिर तुम्हारी रक्षा हेतु किंचित भी आतुर नहीं। अब कहो, तुम दासी नहीं तो क्या हुई?

पाण्डवों। तुम्हारी पत्नी तुमसे निर्णय चाहती है तुम उसे मुक्ति दिला सकते हो, साहस करो। पत्नी अबला है, तुम पर निर्भर है। एक बार कह दो कि युधिष्ठिर को अधिकार न था दाँव पर उसे लगाने का। बोलो पाण्डवों, बोलो।

कर्ण बोला, वह जो अपमान की चिनगारी इसने मुझ पर तब सूतपुत्र कहकर फेंकी थी, आज ज्वालामुखी बन उठी है। यही उनका अभिषेक चिन्ह है, उनकी विजयश्री है, उनकी राजश्री है। वास्तव में याज्ञसेनी, यह तुम्हारा ही दुर्भाग्य है कि तुम्हारे पाँचों नाथों में से किसी को भी तुम्हें नाथवती की भाँति सुरक्षित रखने में रुचि नहीं। इनमें सामर्थ्य, पराक्रम और साहस का अभाव है। किन्तु अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं द्रुपदसुते। तुम चाहो तो तुम्हारे दिन अभी भी बदल सकते हैं और भाग्यदेवता अभी भी तुम पर मुस्करा सकते हैं। इन नपुंसकों को त्यागो और किसी भी कुरुश्रेष्ठ को अपना लो। सुख से जीवन व्यतीत होगा। दुर्योधन ने कुटिल मुस्कान के साथ अपनी जंघा को निरावरण किया ही था कि भीम उछल पड़े क्रोधोन्मत्त होकर।

संकट में पड़ा व्यक्ति जब सभा की शरण लेता है तो सभासदों को चाहिए कि वे धर्म एवं सत्य का विचार कर उस संकटग्रस्त व्यक्ति को शान्ति दें। विदुर बोले, महाराज धृतराष्ट्र। मुझसे यह अधर्म अब सहन नहीं हो रहा है। मैं इस सभा का तृणवत् तिरस्कार करके जाता हूं- आज्ञा दें। समस्त राजागण व मनीषियों को स्तम्भित कर महात्मा विदुर अपनी काष्ठपादुकाएँ भरी सभा में चटकाते हुए साक्षात अग्निदेवता से निकल गये। वातावरण सहम गया जो दुर्योधन को रुचिकर न लगा। वह अपनी छल-प्रपंचपूर्ण विजय को इतनी शीघ्रता से विस्मृत नहीं होने देना चाहता था। पाण्डवों को जितना अपमानित किया जाये उतना ही कम। किसी प्रकार उसके दग्ध अन्तर को शान्ति नहीं मिल पा रही। विशेष आनन्द नहीं आ रहा। और बीच-बीच में व्यवधान उत्पन्न हो जाने से उसका मन और भी खिन्न हो गया।

खिन्न मन से द्रौपदी धृतराष्ट्र को उस समय बोली थी, क्या पुत्रमोह के कारण आप ज्ञानचक्षु भी गँवा बैठे? क्या स्वर्गीय महाराज पाण्डु आपके सगे भाई न थे? क्या महापराक्रमी महाराज पाण्डु ने इस राज्य पर शासन नहीं किया? क्या उन्होंने राज्य करते समय प्रजा को प्रसन्न नहीं रखा था? राज्य का विस्तार नहीं किया था? राज्य की सीमाएँ सुदृढ़ नहीं की थीं? और उन्हीं महापावन महाराज पाण्डु के उत्तराधिकारी बनकर आपके पुत्र पापकर्म में रत हैं, आप उन्हें रोक भी नहीं पा रहे? बोलें तात। कण्ठ सूख गया है क्या? नेत्रज्योति के साथ ही वाणी भी गँवा बैठे क्या?

पांचाली बोली- आर्या गान्धारी। आप तो महान धर्माचारिणी हैं। नेत्र होते हुए भी सब जान-बूझकर अनदेखा कर रही हैं आप? आपने भी पुत्र-मोह की पट्टी जो बाँध रखी हैं। भगवन्। हस्तिनापुर में यह कैसा अन्धा राज आया। यह कैसा ज्योतिहीन युग आया। जब मेरी जैसी शक्ति सम्पन्न राज महिला का यह अनादर होगा तो हस्तिनापुर के प्रसिद्ध राज्य में दीन-दुर्बल स्त्रियों का क्या होगा? रक्षक ही भक्षक बन गये हैं? राजकुल ने सभी साध्वियों को चेरी बना लिया है क्या? वह तेजस्विनी अचूक वाक्-प्रहार कर रही थी, जैसे साक्षात् तर्कबाला खड़ी हो। एक-एक से स्पष्टीकरण माँगती, एक-एक के दोषों की मीमांसा करती, वह जैसे साक्षात् स्वयं इड़ा हो।

और आप पितामह। ऐसे शून्य से क्या बैठे हैं? किसने लूट लिया है आपको? आपकी सारी ज्ञान-पूँजी लुट गयी क्या? कौन हैं वे लुटेरे जिन्होंने आपको ऐसा मूक बना दिया है? धर्म एवं ज्ञान के कुबेर। आपके ज्ञान-पुंज में यह कैसा ग्रहण लगा है? ग्रहण लगता है तो पूर्ण चन्द्र भी कुछ समय पश्चात् राहु-ग्रास से मुक्त हो जाता है। आप क्यों ऐसे अशक्त बैठे हैं? आप इन राहुओं से मुक्त भी नहीं होना चाहते। आजीवन धर्म की मीमांसा और विवेचना करते रहे और जब आज धर्म का ऐसा घोर अतिक्रमण हो

रहा है तब आप निष्प्राण बने बैठे हैं। जिह्वा तालु से चिपक गयी है? क्या इसी प्रकार स्वर्गीय महाराज पाण्डु का ऋण चुका रहे हैं... नहीं... नहीं... कान क्यों बन्द करने लगे पितामह। कानों पर से हाथ हटा लीजिए महाराज। जब इतनी अनुचित, अनीतिपूर्ण बातें सुनने का धीरज रखे रहे तो मेरे ही धर्मोचित वचन सुनने में कौन-सा आपका धर्म चला जा रहा है?

सबको चकाचौंध करती वह थिरकती दामिनी कड़क पड़ी, नेत्र खोल दीजिए पितामह। और यदि यह सब आप अधर्म मानते हैं, अनुचित मानते हैं, अनैतिक मानते हैं, तो साहस संग्रह कीजिए तनिक और तत्काल, इसी क्षण, सत्ता-मोह त्याग दीजिए। सदा के लिए इस अधर्मी राज-समाज का परित्याग कीजिए। कौन आपको बाँधे बैठा है? किस प्रलोभन में आप पड़े हैं? किस भय से कण्ठ अवरुद्ध है आपका?

सबको क्या हो गया भगवन्। ऐसी विकट परीक्षा तो भगवती सीता की भी नहीं ली गयी थी, भगवती सीता को जब अधम रावण हरकर ले जा रहा था तो पशु-पक्षियों तक ने उनके लिए संघर्ष किया था। जटायु ने प्राणों का उत्सर्ग किया था। और ये मूर्धन्य विद्वान, शिलाओं से जड़वत् बैठे हैं। आह री कापुरुषों की सभा। एक राजन्य से भयभीत इतने महानुभाव। इतने पुरुष। ये पुरुष हैं? नहीं। पुरुष नहीं। इस राजसभा में कोई पुरुष नहीं... कोई नहीं।

ये धर्मराज युधिष्ठिर हैं, जो अपनी पत्नी भी दाँव पर लगा बैठे। द्यूत का मद ऐसा बावला भी किसी को बना देता है। धन्य है द्यूतविलास जिसने स्वयं धर्मराज को ही धर्मच्युत कर दिया। और ये महाबली भीम। पत्नी का अपमान होते देखकर भी इनका रक्त नहीं खौल रहा। ओ क्षत्रिय वीर। अपने उच्च वंश का स्मरण करो। अपनी वीर माता का स्मरण करो। और ये विश्वविजयी सव्यसाची, जिन्हें गाण्डीव को भी आज ही तिलांजलि देनी थी। मैं पतिहीना नारी नाथवती होते हुए भी अनाथिनी-सी भरी सभा में घसीटी जा रही हूँ और मेरे पाँच पति ये नरशार्दूल आज गौ की भाँति दूर्वादल चबा रहे हैं। धिक्कार है इनकी वीरता को। धिक्कार है इनके क्षत्रियत्व को।

उसका एक-एक शब्द पाण्डुपुत्रों पर विकट उल्कापात कर रहा था। कर्ण-शिखर रक्तवर्ण हो गये हैं। श्वास फूल रहा है। स्वेद कणों से पूरा तन आच्छादित हो चला। अग्नि अन्तर में शमन नहीं हो पा रही, ऊपर से पांचाली के व्यंग्यबाण जैसे घृत डाल-डालकर उसे ज्वालापूर्ण बनाये दे रहे हैं। उसका एक-एक अचूक वाक्बाण मर्मस्थल को तीक्ष्णता से वेध रहा है, हृदय विदीर्ण किये दे रहा है। इतना साहस नहीं उनमें कि उस प्रखर लौह-नारी की ओर दृष्टिपात भी करें।

गजेन्द्र की रक्षा करने कृष्ण कैसे व्याकुल होकर दौड़े। प्रल्हाद की रक्षा के लिये अपनी सिंह-शक्ति का ऐसा प्रदर्शन किया कि मुखाकृति भी कृष्ण की सिंह के समान विकराल हो गयी। और इस समय कृष्ण प्रिय सखी कृष्णा संकट में है। कृष्णा संकट में है इसमें कोई सन्देह नहीं। लोलुप व्याघ्रों एवं गृद्धों से घिरी वह एकाकिनी है- निपट एकाकिनी। किन्तु अद्भुत है उसका आत्मबल। किन्तु वह कृष्ण को तो पुकार ही नहीं रही है। एक बार भी कृष्ण का स्मरण कर ले। एक बार स्वयं को कृष्ण पर छोड़े तो वह तो नीति-अनीति का विवेचन कर रही है, उचित-अनुचित समझा रही है। जब निरुपाय होकर कोई व्यक्ति ईश्वर को स्मरण करता है तो उसकी रक्षा करना ईश्वर का नैतिक दायित्व है। गजेन्द्र ने ईश्वर को पुकारा था, प्रल्हाद ने सर्वस्व ईश्वर पर छोड़ दिया था किन्तु मनुष्य की श्रेष्ठता में अभी भी विश्वास है कि कृष्णा के पति राजपुत्र अन्ततः मनुष्य ही है।

वाह री द्रुपदसुता। इसने तो आज वह कार्य कर दिखाया जो किसी ने न किया होगा। संकट के अथाह सागर में डूबते-उतराते पाण्डव कुल के लिए तो द्रौपदी भगवान की अवतार हो गयी। बात की बात में इसने इनकी नौका पार लगा दी। धन्य है। पति तो अवश्य पत्नियों की संकट से मुक्ति करते आये हैं, यहाँ अबला पत्नी ही पाँच-पाँच पति मल्लों की रक्षक

बन गयी। विश्व में कितनी रूपमती नारियों की गाथाएँ प्रचलित हैं किन्तु उनमें से किसी ने भी ऐसा अद्भुत कार्य किया हो, यह कभी नहीं सुना गया।

कितनी कटुता थी द्रौपदी के मन में युधिष्ठिर के लिये और उसके पश्चात भीम अर्जुन तथा नकुल सहदेव के लिये भी। कभी कभी तो उसे लगने लगता था कि धृतराष्ट्र पुत्रों ने उसका अपमान किया था उनके प्रति भी उसके मन में उतनी कटुता नहीं थी जितनी उसे अपने पतियों के प्रति थी पर यह तो मन का छल मात्र ही था। ऊपरी आवरण की काई हटा कर देखने से उसके समझ में आ गया कि धार्तराष्ट्रों के प्रति उसके मन में घृणा थी, शत्रुता थी, वह उनका नाश चाहती थी, सर्वनाश। सबकी मृत्यु। मृत्यु से कम कुछ नहीं। उनके साथ उसके मन के माधुर्य का कोई एक सूत्र, कभी एक क्षण के लिये भी नहीं जुडा था। उनसे उसे कोई अपेक्षा भी नहीं थी। कटुता तो उनके प्रति थी जिनसे उसे प्रेम था, जिनसे उसे अपेक्षायें थी, जिन्हे वह अपने रक्षक मानती थी पर फिर भी पांडवों ने द्रौपदी के प्रेम में बहकर अपने धर्म को तिलांजलि नहीं दी। उन्होने अपने धर्म की रक्षा की। द्रौपदी के मन में स्पष्ट हुआ कि पांडवों के व्यवहार से जो आहत हुई वह द्रौपदी के भीतर की रूप गर्विता नारी थी। वह यह समझती थी कि पुरुष की दृष्टि उस पर पडते ही वह मदान्ध हो जाता है। उसने तो यही चाहा था कि जिस पुरुष की ओर वह एक बार देख ले कि वह पुरुष घुटनों के बल उसके सम्मुख आ गिरे। फिर तो उसका आचार व्यवहार, धर्म नीति कुछ न हो बस उसके सामने उसका रूप ही हो। पांडवों ने सदा ही उसे अपनी प्रिय पत्नी माना। उसकी हल्की सी कसक भी उनको तडपा देती थी परन्तु परीक्षा की इस घडी में उन्होने सिद्ध कर दिया कि वह उन्हे कितनी भी प्रिय हो पर उनके लिये धर्म से बढकर कुछ भी नहीं। वह एक रूप गर्विता नारी ही नहीं थी। उसका रूप भी ऐसा था जिस पर कोई गर्व कर सकता था। यह तो उसके व्यक्तित्व का एक अंश मात्र था। उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व में तो और भी बहुत कुछ था। वह धर्म को जानती थी। धर्म शास्त्र की पंडिता थी, चरित्र और संकल्प से परिचय था उसका। धृतराष्ट्र जानता था कि युधिष्ठिर उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करेंगे और वह यह भी जानता था कि द्यूत में शकुनि उनके हाथों में पांसे आने नहीं देगा। यह सब युधिष्ठिर भी जानता था। वे द्यूत का विरोध करते रहे किन्तु धृतराष्ट्र की इच्छा का विरोध नहीं किया। धृतराष्ट्र की आज्ञा की अपेक्षा में वे बैठे दांव हारते रहे। वे जानते थे कि द्रौपदी दासी नहीं है किन्तु वे स्वयं तो दास हो चुके थे। वे स्वामी के विरुद्ध शस्त्र कैसे उठाते? पत्नी की रक्षा उन्होने कुल वृद्धों, धर्म और ईश्वर के भरोसे छोड दी। अब धृतराष्ट्र भी द्रौपदी से भयभीत हुए।

महाराज धृतराष्ट्र तो पहले से ही भयातुर थे। कृष्ण की योगशक्ति के चमत्कार से आतंकित थे। उन्हें अपने पुत्रों के जीवन पर अनिष्ट की छाया डोलती दिखाई दी थी, इसलिए पुत्रों के पाप-कर्म को धोने के लिए उन्होंने शीघ्रता से पाण्डवों को मुक्ति दे दी थी, ताकि अब उनके रोष का भागी न बनना पड़े; किन्तु अभी भी वे प्रकम्पित मन ही थे। अभी भी भयभीत थे महायोगी श्रीकृष्ण से। सत्यवादी युधिष्ठिर से। महाबली भीम से। श्रेष्ठ धनुर्विद अर्जुन से। वीर नकुल से। कुपित सहदेव से। और याज्ञसेनी के सतीत्व के शाप से।

अर्जुन की गाण्डीव से छूटे तीर जब कर्ण को यमलोक पहुँचा देंगे तभी द्रौपदी के दग्ध अन्तर को शान्ति मिलेगी। वह युद्ध की देवी है। प्रचण्ड साहसी है। एक बार निश्चय कर ले तो उसे पूरा करके ही छोड़ती है वह लौह नारी।

नारी के रूप में द्रौपदी का अपमान पांडवों ने नहीं दुर्योधन ने किया था। द्रौपदी को दांव पर लगवाया था उस जुआरी शकुनि ने। द्रौपदी जितना सोचती है, वह धर्मराज पर रीझती जाती है। युधिष्ठिर प्रतिकार की बात तो करता है पर प्रतिशोध की बात कभी नहीं करता। द्रौपदी ने युधिष्ठिर से पूछा आप तो मनुष्यों में सर्वोपरि पुण्यवान होते हुये भी आपको इतना दु:ख

क्यों सहन करना पड रहा है? युधिष्ठिर बोले देखो राजपुत्री यह हिमालय कितना भव्य और सुन्दर है? यह मुझे कुछ नहीं देता पर मेरा स्वभाव ही ऐसा है कि मैं भव्य और सौन्दर्य का उपासक हूं। ईश्वर ही एक ऐसा पात्र है जिससे प्रेम करना चाहिये। मैं किसी भी बात के लिये उससे प्रार्थना नहीं करता, न ही कोई वस्तु उससे मांगता। उसकी जैसी इच्छा हो वैसे मुझे रखे। मैं प्रेम में सौदा नहीं करता।

द्रौपदी के मन में ऋषियों के द्वारा की गई ईश प्रार्थना याद आई कि हे भगवन मुझे न तो सम्पत्ति चाहिये, न सन्तति और न ही विद्या यदि तेरी इच्छा यही है कि मैं हजारों बार जन्म-मृत्यु के चक्र में पडा रहूं तो यह भी सही पर केवल इतना तो हो कि मैं फल की आशा छोडकर तेरी भक्ति करूं केवल प्रेम के लिये ही तुझ पर मेरा नि:स्वार्थ प्रेम हो। द्रौपदी को लगा कि युधिष्ठिर को जानना अवश्य ही बहुत कठिन है। जिसे स्वच्छता से प्रेम होता है वह मल को अपनी हथेली में उठाकर गर्व का अनुभव नहीं कर सकता चाहे उसमें अकूत सम्पति ही क्यों न छिपी हो। धर्मराज क्षमाशील है, शान्त है, निस्पृह है। युधिष्ठिर में कामजनित ईर्ष्या भी नहीं है। जाने माता कुन्ती ने कैसे कैसे संस्कार दिये थे? ईश्वर का वास सदा ही पवित्र हृदय में होता है। वह पवित्र हृदय में स्वयं को प्रकाशित करता है। पवित्र और निर्मल मनुष्य इसी जीवन में ईश्वर दर्शन प्राप्त कर कृतार्थ हो जाता है। जिसके हृदय में स्वयं ईश्वर प्रकाशित होता हो उसे तपस्या, साधना और योगाभ्यास की भी आवश्यकता नहीं रहती और ऐसे हृदय में सामान्य जन के समान काम, क्रोध, लोभ, मोह, घृणा-द्वेष, मद मात्सर्य, अहंकार और हिंसा ऐसे विकार नहीं रहते। ऐसा स्वच्छ हृदय था युधिष्ठिर का।

द्रौपदी अपने पुत्रों के साथ काम्पिल्य नहीं गई। पर सन्तान का स्मरण व प्रेम उसे होते रहता था। मां का हृदय शान्ति का अनुभव तभी करता है जब वह सन्तान को अपने वक्ष से लगा लेती है। द्रौपदी केवल मां ही नहीं है वह पत्नी भी है। पत्नी वह पहिले है, मां बाद में। स्त्री यदि मां बनने के लिये ही पत्नी बनती है तो अस्थायी पत्नीत्व ही उसके लिये पर्याप्त है। सन्तान पाने के पश्चात पति का महत्व गौण हो जाना तो स्त्री को साधना, तपस्या और विकास की ओर नहीं ले जाता। वह तो उसके स्वार्थ तथा अहंकार को ही पोषण करता है। पत्नी का धर्म तो पति के साथ ही विकसित होता है। वही उसका भोग भी है और वही उसका त्याग भी। वही उसका काम भी है और वही उसका वैराग्य भी। द्रौपदी अपने पतियों के साथ उन्हे सम्भालने उनकी सेवा करने वनवास के कष्ट और तपस्या करने आई थी।

व्यक्तिगत सुख का त्याग परिवार के लिए, पारिवारिक सुख का त्याग ग्राम के लिए, ग्राम के सुख का त्याग नगर के लिए एवं नगर के सुख का त्याग राज्य के लिए करना ही स्वर्णिम सिद्धान्त है। पारिवारिक नियम उतना महत्वपूर्ण नहीं जितना महत्वपूर्ण राज्य की सुरक्षा का प्रश्न है। महान कर्तव्य के लिए लघु कर्तव्य का त्याग अनुचित नहीं।

द्रौपदी भीम से बोली मुझे ढेर सारे सौगन्धिक पदम् लाकर दो मेरी इच्छा है कि जब हम वापिस लौटे तो इसे इन्द्रप्रस्थ ही नहीं हस्तिनापुर के सरोवरों में भी ऐसे ही सौगन्धिक कमल खिलाये जाये। भीम सुनकर चकित नेत्रों से द्रौपदी की ओर देखता रह गया कैसी है यह नारी? एक ही श्वास में यह श्रृंगार और विनाश की चर्चा कर गई। यह एक ही क्षण में कितनी कमनीय और कितनी भयंकर हो उठती है? यह आल्हाद कारिणी भी है और विनाशकारिणी भी। द्रौपदी नहीं भूलेगी एक क्षण के लिये भी नहीं भूलेगी यह तो रणचंडिका है। भीम बोला जितना कहोगी उतना ला दूंगा। धर्मराज युधिष्ठिर द्रौपदी के लिये श्रद्धा और भक्ति के प्रतीक थे जब कि भीम उसका प्रिय था उसके सम्मुख वह अपनी आवश्यकतायें, अपेक्षायें और मांगे प्रस्तुत करती थी। कैसा विचित्र सन्तुलन था द्रौपदी के व्यवहार में अपने पतियों के प्रति अपनी भावनाओं और सम्बन्धों को लेकर। भीम के मन में कण मात्र भी ईर्ष्या या किसी प्रकार की स्पर्धा नहीं थी। अपने प्रिय को समर्थ मानकर

प्रिया जब अनुरोध करती है तो प्रिय का मन मानो पिपासित पृथ्वी को तृप्त करने के लिये आकाश पर मंडराते मेघों के समान आकुल व्याकुल हो घुमडने लगता है।

सरिता के जीवन में ठहराव नहीं होता मात्र गति होती है। जो अपनी गति पर मुग्ध हो वह न स्वयं को संयत कर सकता है और न अपने वक्ष पर कमल खिला सकता है। राजा का अर्थ स्वेच्छाचारी, निरंकुश, अत्याचारी राक्षस नहीं होता। नियम प्रजा की सुविधा के लिये होते हैं उनके उत्पीडन के लिये नहीं। अन्याय का विरोध करना धर्म है और अपनी इच्छा को व्यवस्था पर आरोपित करना अधर्म। यदि सामर्थ्यवान लोग नियमों का सम्मान नहीं करेंगे तो संसार में व्यवस्था नहीं चल पायेगी। असाधारण को भी संसार में साधारण के समान जीना सीखना चाहिये। आतिथ्य करना न करना तो आतिथेय की इच्छा पर निर्भर होता है उसके लिये किसी को बाध्य तो नहीं किया जा सकता। पर व्यक्ति को आतिथ्य मिले या नहीं पर हर व्यक्ति को अपना सम्मान तो चाहिये। किसी के भी उपकार को कभी भी नहीं भूलना चाहिये और अपने प्रति किये गये अपकार की सदा उपेक्षा करनी चाहिये। अन्य व्यक्ति के आचरण की अधिक समीक्षा न कर हमें अपने आचरण को धर्म संगत बनाये रखने का अधिक प्रयत्न करना चाहिये। महत्व कभी भी पद का नहीं व्यक्ति का होना चाहिये।

राजर्षि आर्षिष्टेण ने कहा युधिष्ठिर तुम्हे यहां कोई कष्ट नहीं होगा। प्रकृति ने सारी सुख सुविधायें दे रखी है। मनुष्य के शरीर के पोषण तथा मन की शान्ति के लिये पर्याप्त साधन है यहां। जितने दिन रहना चाहो रहो। सतत अध्यवसाय कर अपना विकास करो। गन्धमादन अनेक अर्थों में योग भूमि है। कुबेर भवन तो तपस्या का क्षेत्र भी नहीं है। गंधर्व और किन्नर साधना तो करते है पर तपस्या नहीं करते। उनकी साधना का पुरस्कार भोग है। वैसे भी कुबेर तो भोग ही देंगे वे त्याग कैसे दे सकते हैं? कभी कभी व्यक्ति को सब कुछ भूलकर साधारण जन भी हो जाना चाहिये। कभी महत्वहीन होकर सृष्टि का एक साधारण अंग होकर जीना चाहिये। उससे थके मन तथा शरीर को भी विश्रांति मिल जाती है। जो महत्वपूर्ण होता नहीं वह स्वयं को इतना महत्वपूर्ण मानता है और जो सचमुच महिमावान है उसे इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं।

द्रौपदी भीम से बोली कि मैं चाहती हूं कि तुम्हारे बाहुबल के वेग से थर्रा कर सम्पूर्ण राक्षस इस गन्धमादन पर्वत को छोड दें। शिव स्वरूप इस उत्तम शैल शिखर को तुम्हारे सारे सुहृद भय और मोह से रहित होकर देखे। द्रौपदी की यह आमन्त्रणमय दृष्टि भीम के हृदय में उतरती गई। भीम के मन के सारे धुंधल छंट गये। द्रौपदी की इच्छा के ताप में ऋषि का निषेध, धनाध्यक्ष कुबेर की मर्यादा और धर्मराज की अप्रसन्नता सब कुछ ठहर नहीं सकी। भीम के मन में प्रकाश ही प्रकाश था। द्रौपदी की बात सुनकर भीम धनुष तलवार तरकस और गदा उठाकर बेखटके गन्धमादन पर आगे बढने लगे। ऋषि आर्ष्टिषेण ने परामर्श दिया था कि आगे का मार्ग मनुष्यों के लिये अगम्य है। क्यों अगम्य है? क्या शीत के कारण? ऊंचाई के कारण? वायु की विरलता के कारण? क्या मनुष्य शीत से अकडकर मर जाता है? क्या उस ऊंचाई पर जाने से मानव शरीर में किसी प्रकार का कोई विकार आ जाता है? क्या वह उस वायु में श्वास नहीं ले पाता? यदि सचमुच में यह मार्ग अगम्य है तो फिर अर्जुन उस मार्ग से कैसे गया होगा? और फिर लौटेगा भी तो इसी मार्ग से। वह भी तो आखिर में मानव ही है। उसके लिये मार्ग क्यों नहीं अगम्य हुआ या फिर क्यों नहीं निषिद्ध। पवन पुत्र भीम पर ग्लानि, भय, कायरता और मत्सरता का प्रभाव तो किसी समय भी नहीं होता था। भीम चल पडा। गन्धमादन का परीक्षण कर भीम तत्काल समझ गया कि यक्षों की ऐसी व्यवस्था थी कि पर्वत पर चढने का केवल एक ही मार्ग उपलब्ध हो। शेष सारे पर्वत पर जोखिम पूर्ण चढाईयां और सघन वन थे। भयंकर जल प्रपात थे। यही कारण था कि वह मार्ग मानवों के लिये अगम्य माना जाता था। संकटपूर्ण मार्ग था। भीम ने अपना अभियान सघन वन में से आरम्भ किया था। कुबेर भवन के सम्मुख पहुंचकर

भीम को ज्ञात हुआ कि अभी तक जिसे वह एक भवन समझ रहा था वो तो पूरा एक नगर था। पर्वत शिखर के ऊपर बसा हुआ एक नगर। बाहरी भाग में अनेक उद्यान थे। अधिकांश स्थानों पर विलास और मनोरंजन का वातावरण था। साधारण यक्षों का मनोरंजन करने के लिये अप्सरायें नृत्य कर रही थी। वह भवन स्वर्ण और स्फटिक से सुशोभित था। उस भवन में सब प्रकार के रत्न जगमगा रहे थे।

भीम ने अपना शंख फूंका और भीषण शब्द करके जीवों को मोहित कर दिया उस शंख के शब्द से यक्ष, राक्षस और गन्धर्वों के रोंगटे खडे हो गये। थोडी ही देर में पूर्णत: जन शून्य स्थान हो गया। वे सब यक्ष राक्षस गदा, परिघ, तलवार, त्रिशूल, शक्ति और फरसा लेकर भीम की ओर दौडे और भीम के साथ युद्ध करने लगे। भीम अपने प्रबल वेग से सभी शस्त्रों को काटने लगे। भीम के हाथों के आयुधों से कटे हुये यक्ष और राक्षसों के शरीर चारों ओर दिखने लगे। इस प्रकार अंग भंग होने से यक्ष भीम से डर कर भयंकर चीत्कार करने लगे। यक्षों के एक सेनापति ने भीम से पूछा तुम कौन हो। भीम बोला मैं भीम हूं। उस सेनापति ने पूछा कौन भीम? भीम बोला संसार में जितने भीम है क्या तुम उन सबको जानते हो? यह था कुबेर का मित्र मणिमान राक्षस वह भीम पर टूट पडा। भीम ने भी मदमस्त हाथी के समान अपनी ओर आते देख बाण चला कर उस पर प्रहार किया। मणिमान ने भी अत्यन्त क्रोध में भरकर अपनी गदा से भीम पर प्रहार किया। भीम गदा युद्ध में दक्ष व प्रवीण था। भीम ने मणिमान के प्रहार को व्यर्थ कर दिया। भीम आकाश में उछलते हुये अपनी गदा घूमाते हुये मणिमान की ओर दौडे और गर्जना करते हुये मणिमान को ऊपर उछाल फेंका। अपनी गदा के वेग से उस राक्षस का संहार कर डाला। मणिमान और उसके सैनिकों के शवों के बीच भीम अकेला खडा था। उसकी आंखों में विजय की आभा थी, अधरों पर तृप्ति की मुस्कान और मन पूर्णत: शान्त। उसने अपनी प्रियतमा के अपमान का प्रतिशोध ही नहीं लिया था बल्कि अपराधियों को आश्रय देनेवाले इस मणिमान को दंडित किया था। यह उन सारे लोगों को एक प्रकार की हिदायत थी जो अपने पद और स्थिति का लाभ उठाकर दुष्ट दलन के नाम पर दुष्ट पालन करते हैं। जब शासक ही आततायी, पापियों, गुंडों का समर्थन और संरक्षण करने लगेगा तो प्रजा की रक्षा कौन करेगा? जब बाड ही दूब को खाने लग जाये तो खेती कैसे बचेगी? जब रक्षक ही भक्षक हो जाये तो प्रजा का विनाश हर तरह से सम्भव है। पर भीम आश्वस्त था कि पांचाली का खिन्न चेहरा उभरा होगा। पांचाली की प्रसन्न मुद्रा व पांचाली की मनोकामना भी पूरी हुई।

धौम्य मुनि युधिष्ठिर के पास आये और पूछा धर्मराज मध्यम पांडव भीम इस समय कहां है? मुझे कुछ ऐसी सूचनायें मिली है कि गंधमादन पर्वत पर भयंकर युद्ध चल रहा है। कहीं भीम ही तो यह युद्ध नहीं कर रहा है? द्रौपदी बोली हां मध्य पांडव गन्धमादन पर्वत की ओर गये तो थे। द्रौपदी को लगता है कि भीम उसकी कामनाओं का दास है जबकि द्रौपदी स्वयं धर्मराज की इच्छाओं की दासी है। भीम के सम्मुख अपनी कामनाओं, अपने आग्रहों और अनुरोधों को प्रकट कर वह उस पर अनुकम्पा करती है किन्तु धर्मराज उसकी कामनाओं को धर्मपूर्वक संयत करने में सहायक हो उस पर कृपा करते हैं। सभी भीम को वहां न पाकर उदास हो गये। फिर द्रौपदी को अर्ष्टिषेण मुनि को सौंप कर वे सब वीर अस्त्र शस्त्रों सहित पर्वत पर चढने लगे। युधिष्ठिर बोले मुझे भीम की चिन्ता हो रही है। वह बिना कुछ सोचे समझे, बिना कुछ कहे, बिना कोई परामर्श किये युद्ध करने के लिये चल पडा। यदि उसे अपनी चिन्ता नहीं तो हमारी चिन्ता तो होनी चाहिये। मुझे चिन्ता हो रही है उन गन्धर्वों और यक्ष सैनिकों की भी जो कभी भीम के हाथों मारे जायेंगे। यह एक चिन्ता भाई की थी भाई के लिये और दूसरी चिन्ता धर्म और मानवता की। धर्मराज को तो दोनों की रक्षा करनी थी।

पर्वत की चोटी पर पहुंच कर युधिष्ठिर ने दृष्टि डाली तो देखा कि भीम वहां खडे है और अनेकों विशालकाय राक्षस व यक्ष

पृथ्वी पर मरे पडे हैं। युधिष्ठिर भीम से बोले तुमने यह पाप कर्म साहस किसी मोहवश ही किया है। तुम तपस्वियों का जीवन व्यतीत कर रहे हो। इस प्रकार व्यर्थ हत्यायें करना तुम्हें शोभा नहीं देता। तुम्हे ऐसा नहीं करना चाहिये। कुछ बचे हुये राक्षस बडी तेजी से दौडकर कुबेरजी को सूचित कर बोले एक मनुष्य ने बहुत सारे राक्षसों और यक्षों का संहार कर डाला है। वे सब उसकी मार से प्राणहीन हुये पडे हैं। आपका प्रिय सैनिक मणिमान भी मारा जा चुका है। अब आगे क्या करना है आदेश करें। यह समाचार सुनकर यक्षों के स्वामी कुबेरेजी बडे ही कुपित हुये और बोले यह सब कैसे हुआ? और अपने रथ पर सवार हो वे गन्धमादन पर्वत पर पहुंचे जहां पांडव थे। पांडवों को भी कुबेरजी को देखकर रोमान्च हो आया। युधिष्ठिर, नकुल तथा सहदेव ने उन्हे प्रणाम किया। कुबेर युधिष्ठिर से बोले यह भीम धर्म को नहीं जानता इसे अपने बल पर बडा अभिमान है। इसकी बुद्धि अभी बालकों के समान है तथा यह अत्यन्त क्रोधी और निर्भीक है। तुम इसे समझाकर अपने वश में रखो। इसने मेरा यह अपराध दूसरी बार किया है। इसे समझा दो ताकि यह अपराधों की पुनरावृत्ति नहीं करे। तब भीम भी कुबेर के पास आये और उन्हे प्रणाम किया। कुबेर ने भीम को आशीर्वाद देकर कहा शत्रुओं का मान मर्दन और सुहृदों का आनन्द वर्धन करनेवाले बनो। क्यों तुम अधार्मिक न होते हुये भी बार बार ऐसी उच्छृंखलतायें करते हो? तुम इस भूमि पर आधिपत्य करने के लिये आक्रमण नहीं कर रहे हो। तुम मेरे धन और अधिकार का भी अपहरण नहीं कर रहे हो। तुम्हारी क्षमताओं का लाभ देवताओं के कार्य के लिये होना चाहिये। हम तुम्हें अपना शत्रु नहीं मानते। भीम बोला संसार में जटासुर जैसा राक्षस कोई एक ही तो नहीं है और न प्रत्येक पत्नी का पति भीम के समान समर्थ है। मणिमान के कितने मित्र जटासुर के समान है। पाप को प्रश्रय देने के अपराध में मणिमान का वध करना आवश्यक था। आप तक आने वाला प्रत्येक मार्ग मानवों के लिये अगम्य घोषित कर दिया गया था। कुबेर प्रसन्न हो बोले भीम तुम्हें मेरी ओर से अधिकार है कि मेरे क्षेत्र में तुम जहां भी रहना चाहो, सुख-सुविधापूर्वक रह सकते हो। यक्ष और गन्धर्व तुम्हारी सहायता और सेवा करेंगे।

कुबेर द्रौपदी की यह अवस्था देखकर दु:ख से कहने लगे- देवी द्रौपदी स्वर्ण-कमल चाहती हैं, भीम यह बात पहले कह देते तो मैं स्वयं दस लाख स्वर्ण-कमल भेजता। भीम ने किसी से कुछ कहा नहीं, मेरी अनुमति की ओर दृष्टि भी नहीं दी, स्वर्ण-कमल तोड़ने लगे, तब यह स्थिति हो गई। खैर, जो होना था हो गया। अब भीम अपनी प्राणप्रिय पत्नी को मन इच्छा स्वर्ण-कमल भेंट दे सकते हैं। इसके अलावा दस लाख स्वर्ण-कमल मैं देवी कृष्णा को अपनी ओर से उपहारस्वरूप दे रहा हूं। उनकी पादरेणु के स्पर्श से मेरे सरोवर के स्वर्ण-कमल और भी सुंदर हो उठे हैं। ये सुगंधयुक्त पंखुड़ीवाले कमल स्वर्ण से भी सौगुने मूल्यवान हैं। इन्हें सिर्फ देवी द्रौपदी को ही अकुंठचित्त उपहार में दे सकता हूं।

द्रौपदीने प्रतिवाद किया। नम्र स्वर में कहा- आपका उपहार मैं नहीं ग्रहण कर सकूंगी। इस समय मैं धर्म-पुष्करिणी के तीर पर खड़ी हूं। यहां प्रतिज्ञा करती हूं कि कभी स्वर्ण, रौप्य, रत्नादि अलंकार धारण नहीं करूंगी और न उन्हें कभी विलास के रूप में उपयोग करूंगी। आप जानते हैं कि मैं अपनी प्रतिज्ञा पर सदा अटल रहती हूं। अत: क्षमा करना, ये कमल स्वर्णिम होने और बहुत मूल्यवान होने के कारण मैं इन्हें नहीं ले सकूंगी। वास्तव में आदमी का आभूषण अलंकार नहीं, अपने कर्म, व्यक्तित्व और गुण होते हैं। यह जानते हुए भी लोभ में पड़कर मैं भूल गई। युधिष्ठिर ने ठीक समय पर चेतावनी देकर कृतज्ञ कर दिया।

युधिष्ठिर बोले नहीं धनाध्यक्ष जी हमें तो गन्धमादन पर रहकर अर्जुन के लौटने की प्रतीक्षा करने की अनुमति प्रदान करे। कुबेर बोले तुम राजर्षि आर्ष्टिषेण के आश्रम में रहकर वहीं अर्जुन की प्रतीक्षा करो। वहीं पर यक्ष और गन्धर्व तुम्हारी सेवा करेंगे।

कुबेर ने धर्मराज युधिष्ठिर से कहा राजन एक बार कुशस्थली स्थान पर देवताओं की मन्त्रणा हुई। मैं भी मेरे तीन सौ पदम यक्षों के साथ अस्त्रों शस्त्र सहित वहां पर गया था। वहीं मार्ग में अगस्त्य मुनि मिले। वे यमुना के तटपर बडी कठोर तपस्या

कर रहे थे। उस समय यह मेरा मित्र मणिमान मेरे साथ था। उसने मूर्खता, अज्ञान, गर्व और मोह के अधीन हो अगस्त्य मुनि के ऊपर थूक दिया। तब मुनि क्रोधित हो बोले कुबेर देखो तुम्हारे इस मित्र ने मेरा तिरस्कार किया है इसलिये यह अपनी सेना सहित एक मनुष्य के द्वारा पराजित हो मारा जायेगा। जब तुम उस मनुष्य का दर्शन करोगे तभी तुम्हारा दु:ख भी दूर होगा। इस प्रकार अगस्त्य मुनि ने श्राप दिया। उस शाप से आज तुम्हारे भाई भीम ने मुझे मुक्त किया। राजन लौकिक व्यवहार में धैर्य, कुशलता, देश, काल और पराक्रम इन पाँचों साधनों की आवश्यकता पडती है। सतयुग में लोग धैर्यवान, अपने-अपने कर्म में कुशल और पराक्रमी होते थे। जो क्षत्रिय धैर्यवान, देशकाल का ज्ञान रखनेवाला और सब प्रकार की धर्म विधि में निपुण होता है वह पृथ्वी पर बहुत समय तक शासन करता है। वह संसार में यश प्राप्त करता है तथा मरने पर सद्गति पाता है। जो क्रोध के आवेश में अपने पतन पर दृष्टि नहीं रखता और जिसके मन बुद्धि पाप में रत रहते है तथा कर्मों का ठीक ठीक पता न होने के कारण वह इस लोक और परलोक में नाश को प्राप्त होता है। आपका छोटा भाई अर्जुन व्यवहार विषय में निपुण है और सब प्रकार से धर्म मर्यादा को जानता है। इसी से लोक में जितनी भी स्वर्गीय विभूतियां है वे सब उसे प्राप्त है। उनके सिवा उसमें दम, दान, बल, बुद्धि, लज्जा, धैर्य और तेज ये सब गुण भी विद्यमान हैं। कुबेर धर्मराज युधिष्ठिर को उपदेश कर अपने स्थान पर लौट गये।

सभी पांडव राजर्षि आर्ष्टिषेण के आश्रम पर लौट आये। धौम्य मुनि ने पूर्व दिशा की ओर संकेत कर युधिष्ठिर से कहा राजन यह समुद्र पर्यन्त पृथ्वी पर फैला हुआ महापर्वत मन्दराचल है। इसकी शोभा अवर्णनीय है। यह दिशा किस तरह रमणीय लग रही है। यह दिशा इन्द्र और कुबेर का निवास स्थान सर्व धर्मज्ञ, मुनिजन, प्रजाजन, सिद्ध, साध्य और देवता लोग इसी दिशा में उदित सूर्य की पूजा अर्चना करते हैं। समस्त प्राणियों के स्वामी धर्मज्ञ यमराज इस दक्षिण दिशा में संयमनिपुरी के स्वामी हैं। यहीं प्रेतराज यम का निवास स्थान है। इधर पश्चिम की ओर जो पर्वत है वह अस्ताचल के नाम से जाना जाता है। महाराज वरुण जल के स्वामी इस पर्वत और महासमुद्र में रहकर प्राणियों की रक्षा करते हैं। यह सामने उत्तर दिशा को प्रकाशित करता हुआ मेरू पर्वत है। इस पर केवल ब्रह्मवेत्ता ही गमन कर सकते हैं। इसी के ऊपर ब्रह्मसभा है और इसी पर वे स्थावर जंगम की सृष्टि कर निवास करते हैं। इसी पर वशिष्ठादि सप्तर्षि रहते हैं। तुम इस मेरू पर्वत के दर्शन करो। श्री नारायण का स्थान इससे परे चमक रहा है जो सर्व तेजोमय और परम पवित्र है। देवता लोग भी उसका दर्शन नहीं कर सकते। वह तो स्वयं अपने तेज और प्रकाश से प्रकाशित है। उसका दर्शन तो देव और दानवों को भी दुर्लभ है। उस स्थान पर अचिन्त्य मूर्ति हरि विराजते हैं। जो महान तपस्वी और शुभ कर्मों से पवित्र चित्त हो गये हैं, जो अज्ञान और मोह से रहित योगसिद्ध महात्मा यतिजन हैं वह भक्ति द्वारा वहां जा सकते हैं। वहां जाकर वे फिर वहां से लौटकर नहीं आते। राजन यह परमेश्वर का स्थान ध्रुव, अक्षय और अविनाशी है। इन्हे तुम प्रणाम करो। सूर्य, चन्द्रमा और समस्त नक्षत्र, तारागण अपनी अपनी मर्यादा में रहकर सर्वदा इस पर्वतराज मेरू की ही प्रदक्षिणा किया करते हैं। इसकी परिक्रमा करते हुये ही नक्षत्रों सहित चन्द्रमा पर्व सन्धियों का समय आने पर महिनों काविभाग करते है तथा महातेजस्वी सूर्य, वर्षा, वायु और ताप रूप सुख के साधनों से प्राणियों का पोषण करते है। हे धर्मराज सूर्य ही समस्त जीवों की आयु और कर्मों का विभाग कर दिन, रात, कला, काष्ठा आदि काल के अवयवों का निर्माण करते हैं। फिर उत्तम व्रत का पालन करनेवाले पांडव उस गन्धमादन पर्वत पर रह कर ही अर्जुन के लौटने की प्रतीक्षा करने लगे। अर्जुन ५ वर्ष तक इन्द्र की अमरावती में रहे और उन्होने इन्द्र, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, वायु, विष्णु, पशुपति परमेष्टी ब्रह्मा, प्रजापति यम, धाता, सविता, तवष्टा, कुबेर आदि देवताओं से अस्त्र प्राप्त किये। इन्द्र से आज्ञा प्राप्त कर उन्हे प्रणाम कर अर्जुन खुशी से गन्धमादन पर्वत पर

लौटे। अर्जुन इन्द्र के रथ में बैठकर गन्धमादन पर्वत पर उतरे।

गन्धमादन पर्वत की गम्भीर उदासीनता मन को ऊर्ध्वमुख कर रही थी। मन करता-सदा ऐसे ही उदास मौन में प्रकृति की शोभा देखती रहती, खोयी रहती। गन्धमादन पर्वत के निकट हम पिछले कुछ दिन से प्रतीक्षा कर रहे हैं। पांच वर्ष पूरे हो गए अर्जुन के स्वर्ग में। गन्धमादन पर स्वर्ग से मर्त्य पर अवतरण करेंगे।

आकाश मेघाछन्न था उस दिन। नीले मेघों में फाल्गुनी की श्यामल रूपशोभा का चित्रण कर रही थी। अचानक आकाश से दिव्य आलोकमण्डल उभर आया। सुसज्जित रथ धीरे-धीरे आकाशमण्डल से गन्धमादन की ओर उतरता आया। इन्द्र के सारथी मातलि अर्जुन को लिये लौट रहे हैं। पांडव आनन्द में उत्फुल्ल हो उठे। द्रौपदी निष्पलक देखती रही अर्जुन का दिव्य ज्योति में उद्भासित अनुपम रूप। स्वर्ग में पांच वर्ष रहकर उनका सौंदर्य एकदम दिव्य भाव से खिल रहा है। नैसर्गिक ज्योति में वे उद्भासित हो रहे हैं। भीम आनन्द में अर्जुन को उठाकर नाचने लगे। अर्जुन मृदु मुस्करा रहे हैं। सब-कुछ उन्हें अनुपम लग रहा है।

बड़े भैया को प्रणाम किया। छोटों को आलिंगन में भर लिया। स्वर्ग से अनेक मूल्यवान उपहार लाये हैं। युधिष्ठिर के लिए लाए हैं स्वर्ग राज्य का नक्शा, राजनैतिक मानचित्र, शासन-सम्बन्धी अनेक कागजात। भविष्य में पृथ्वी पर स्वर्ग राज्य की प्रतिष्ठा युधिष्ठिर का लक्ष्य है। इन उपहारां से वे खूब प्रसन्न हैं। भीम के लिए हैं स्वर्ग के दुर्लभ अमृतमय मिष्टान्न, फल, मूल। भीम खड़े-खड़े ही खाने लगे। नकुल के लिए है इन्द्रभवन की रत्नजड़ी घोड़े की जीन, आसान एवं शिकार के समय की पोशाक। सहदेव के लिए है ग्रह-नक्षत्रों की गतिविधि जानने का अद्भुत दर्पण। इसमें सब दिख जाता है। आगत भविष्य भी दिव्यदृष्टि में आ जाता है। उपहार पाकर सब खुश हैं।

द्रौपदी चुपचाप खड़ी है। अपलक देख रही है- किसी स्वर्गी सपने में खोयी है। भीम ने बीच में पूछा- द्रौपदी के लिए कुछ है? द्रौपदी की आंखों से आनन्दाश्रु झर गए और कहा- स्वर्ग की मोहिनी अप्सराओं से छूटकर आप लौट आये, यही बहुत है, और कुछ नहीं चाहिए मुझे।

अर्जुन अवाक् देखते रहे। कुछ नहीं समझ सके। लोमश आर्य-आर्येतर समन्वय कार्य का पूर्वापर इतिहास बता रहे थे। अर्जुन आनन्द में विह्वल हो गए। युधिष्ठिर ने कहा- सोच रहा था राजनन्दिनी द्रौपदी का ज्वालापूर्ण व्यक्तित्व सिर्फ क्रोध अहंकार, प्रतिहिंसा, प्रतिशोध से ही परिपूर्ण है, परन्तु अब समझा-इसमें कितने मानवीय, अतिमानवीय भाव और अनुभाव हैं। दया, क्षमा, करुणा और प्रेम की मंदाकिनी उनमें फल्गु की तरह अन्त:सलिता है। कितनी देर से जान पाया। याज्ञसेनी की प्रेरणा से अब अरण्य का रूप ही बदल रहा है, आदमी-आदमी के बीच का भेद दूर हो रहा है।

अर्जुन ने दोनों हाथ थामकर कहा- कृष्णा। तुम्हारी निष्ठा एकाग्र प्रेम ही मुझे स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी के प्रेमजाल को तोड़ निर्विकार बनाये रख सका है। परन्तु इसके लिए मुझे एक वर्ष का पौरुष उत्सर्ग करना पड़ा है। यह सुनकर तुम्हें दु:ख होगा। फिर भी पिता की करुणा के बल पर जीवनभर के नपुंसकत्व की जगह एक वर्ष का नपुंसकत्व लेकर उर्वशी के कब्ज से छूट आ सका हूं। मेरा एक वर्ष का नपुंसकत्व तुम सहनशील मन से स्वीकार करोगी।

अर्जुन ने शांत स्वर में कहा- उर्वशी का प्रेम-निवेदन मैं टाल गया। उसने मुझे नपुंसक होने का शाप दे दिया है। परन्तु पिता के अनुरोध पर शापपूर्ण वाक्य को एक वर्ष के नपुंसकत्व में परिवर्तित कर दिया। पिता ने मुझे सांत्वना देकर कहा है, अज्ञातवास में उर्वशी का शाप वरदान का ही काम करेगा। अब सहदेव की बात पिता के कहने से मिल गई। मेरे मन की ग्लानि दूर हो गई। ईश्वर जो करते हैं, प्राणी के मंगल के लिए ही करते हैं।

अर्जुन ने रथ से उतरकर धौम्य मुनि को प्रणाम किया और फिर धर्मराज युधिष्ठिर को प्रणाम किया। नकुल और सहदेव ने अर्जुन का अभिवादन किया। द्रौपदी ने अर्जुन को देखा वह पहिले से कुछ क्षीण परन्तु अधिक ऊर्जावान दिखाई दिया। अर्जुन ने इन्द्र के दिये हुये आभूषण उतार कर द्रौपदी को उपहार में दिये।

अर्जुन द्रौपदी से बोला- पांचाली मेरे साहस और पराक्रम की द्योतक भी तुम हो और प्रेरणा भी तुम हो। तुम्हें मैंने सर्वाधिक दु:साध्य प्रतियोगिता में पाया था। मैं तो समुद्र जलयान पर बैठा पक्षी हूं। दूर किसी अन्य अवलम्ब खोजने आधार ढूँढने फड़फड़ाता उड़ता हूँ किन्तु चारों ओर जल ही जल अपार सागर, अथाह सागर देख कष्ट देख लौट आता हूँ अपने जलयान पर ही। तुम ही मेरा अवलम्ब हो, आधार-स्तम्भ हो। अब और कुछ नहीं कहूँगा- और कुछ कह नहीं पा रहा। द्रौपदी बोली- हाँ। उस प्रतियोगिता मे आपने मुझे क्या जीता, मैं सदा के लिए स्वयं को हार गयी। जीवनभर के लिए हार गयी। आपने तभी मुझे सदा-सदा के लिए छल लिया था, ठग लिया था। मैं कहीं पराजित नहीं होती सिवा आपके सामने। आह, कैसी दुर्बलता है इस मन की। सारे विश्व का विरोध कर पाती हूँ, पर आपका नहीं। कैसी विचित्र विवशता। पांचाली के शिथिल-विवश शब्द अन्त में डबडबा आये और डबडबाते हुए डूबने लगे।

द्रौपदी को रोमान्च हो आया और बोली अच्छा हुआ तपस्या में लगे रहे और कुछ नहीं लाये अन्यथा मेरे लिये दो चार सपत्नियों का उपहार ही ले आते। अर्जुन बोला अब इस भय को त्याग दो पांचाली। अब ऐसा कभी भी नहीं होगा। द्रौपदी बोली क्यो धनंजय वृद्ध हो गया ? कुरुकुल में तो ययाति भी और शान्तनु भी तो हुये। पिता ने जीवन का भोग किया है तो पुत्रों ने उस भोग का त्याग भी किया है। अर्जुन बोला यह सत्य है कि पांचाली अब शरीर का आकर्षण ही नहीं रहा। इसकी अनुभूति मुझे तब हुई जब उर्वशी ने आकर मुझसे आत्म निवेदन किया। मुझे लगा मनुष्य का यह जीवन भोग के इस निम्न स्तर पर व्यय करने के लिये नहीं है। मुझे तुम्हारा स्नेह प्रिय है। तुम्हारे शरीर का लोभ नहीं रहा मुझे। प्रेम को शरीर की आवश्यकता नहीं होती। द्रौपदी ने पूछा ये आभूषण कहां से प्राप्त हुये? अर्जुन बोला इन्द्र ने विदाई के अवसर पर दिया यह उपहार। पांडवों ने भी इन्द्र के सारथी मातलि को प्रसन्नतापूर्वक विदा किया।

अर्जुन ने जिस प्रकार देवास्त्र प्राप्त किये वह सब वृतान्त अपने भाइयों और धौम्य मुनि के बीच बैठकर सुनाया। अर्जुन के स्वभाव से प्रसन्न होकर महादेव, इन्द्र और समस्त देवता पूर्णतया सन्तुष्ट थे। उसी समय देवराज इन्द्र अपने रथ से उस पर्वत पर उतरे। जब सभी पांडवों ने उन्हे उतरते देखा तो उनके पास आये और यथावत विधिपूर्वक उनका पूजन किया। अर्जुन ने भी देवराज को प्रणाम किया और सेवक केसमान उनके पास जाकर खडे हो गये। यह देखकर धर्मराज युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्नचित्त हुये। इन्द्र ने कहा पांडु पुत्रों तुम सब प्रसन्न रहो। तुम लोग ही इस पृथ्वी का पालन करोगे। अब तुम काम्यक वन को लौट जाओ। अर्जुन ने मुझसे सब शस्त्र प्राप्त कर लिये है। इसने मेरा प्रिय किया है। अब अर्जुन को त्रिलोकी भी नहीं जीत सकती। इस प्रकार इन्द्र पांडुओं से कहकर स्वर्ग को लौट गये। इन्द्र के चले जाने पर युधिष्ठिर ने अर्जुन से पूछा अनुज तुम्हे इन्द्र के दर्शन किस प्रकार हुये ? भगवन शंकर से तुम्हारी भेंट कहां हुई ? तुमने सभी देवताओं और लोकपालों से सारी अस्त्र विद्या किस प्रकार प्राप्त की। इन्द्र ने कहा अर्जुन ने मेरा प्रिय किया है सो तुमने उनका क्या प्रिय किया है ये सब बातें हमें विस्तार से बताओ। वो चाहे राजभवन रहा हो या वन हो तुम्हारे बिना जीवन अधूरा लगता है अर्जुन। अर्जुन बोला आप लोगों के बिना तो स्वर्ग में भी मेरा मन नहीं लग रहा था। नकुल बोला स्वर्ग कैसा लगा भ्राताश्री? अर्जुन बोला यदि हम सब साथ साथ होते तो कदाचित अच्छा लगता। अन्यथा ऐसा लगा शरीर वहां है और आत्मा यहां। सहदेव बोला पाशुपातास्त्र कैसा होता है? अर्जुन बोला अभी दिखाता हूं।

HHH(४८)HHH

अर्जुन पहिले विधिपूर्वक स्नान करके शुद्ध हुये। फिर दिव्य कवच से सुसज्जित हो गान्डीव धनुष हाथ में ले देवदत्त शंख दूसरे हाथ में लिया और विरोचित वेद धारण किया। तब पृथ्वी वृक्षों सहित कांप उठी। नदी और समुद्र में उफान आ गया। पर्वत विदीर्ण होने लगे। वायु का प्रवाह रुक गया। सूर्य की कान्ति फीकी पड गई और जलती हुई आग बुझ गयी। समस्त ब्रह्मर्षि, सिद्ध, महर्षि, सम्पूर्ण प्राणी, देवर्षि, स्वर्गवासी सब के सब वहां उपस्थित हुये। ब्रह्मा और शंकर भी अपने गणों सहित वहां पधारे।

अर्जुन ने पाशुपातास्त्र का स्मरण किया और वह अर्जुन के हाथ में आ गया। सभी भाई लोगों ने उस शस्त्र को सिर से लगाकर नमन किया। युधिष्ठिर बोले अर्जुन इसे तनिक चलाकर इसका प्रभाव तो बताओ। अर्जुन बोले कल प्रात: इन शस्त्रों का प्रभाव दिखाऊंगा। इनमें वे अस्त्र भी है जो पर्वत श्रृंगों को क्षणभर में चूर्ण बना सकते हैं पूरे वन के वन अग्नि सात कर सकते हैं। इन अस्त्रों का प्रयोग कर दिखाना धौम्य मुनि को उचित नहीं लग रहा था। अर्जुन बोला अवश्य अब इसका प्रयोग कर आप सबको इसका प्रभाव दिखाता हूं और अर्जुन ने पाशुपातास्त्र के प्रयोग की तैयारी की इतने में ही आकाशवाणी हुई जिसके पास जितनी क्षमता होती है उसके पास उतना ही संयम भी होना चाहिये। महादेव ने तुम्हे पाशुपातास्त्र पशु से पशुपति बनने के लिये दिया है। अपने भीतर के पशु का स्वामी बनो। यह तुम क्या कर रहे हो अर्जुन? सावधान अर्जुन दिव्यास्त्र कोई क्रीडा की वस्तु नहीं होते। इससे प्रकृति का विनाश होगा वो दिन मानव जाति के लिये बडे दुर्धर्ष और दुर्भाग्य का दिन होगा जिस दिन मनुष्य इन शक्तियों का दुरूपयोग करेगा। दिव्य शक्तियों का प्रयोग केवल मानव कल्याण के लिये होना चाहिये। तुम्हारे इस परीक्षण से प्रकृति का सन्तुलन बिगडेगा। असंख्य जीव जन्तु व्यर्थ ही मारे जायेंगे। इनके प्रयोग का अधिकार तुम्हे केवल उन परिस्थितियों में है जब तुम अपने शत्रुओं से अपने प्राण बचाने के लिये घिर जाओ और तुम्हारे पास और कोई चारा न हो। इस समय तुम्हे किसी भी ओर से अपने प्राणों का कोई भय नहीं है फिर तुम अन्य जीव जन्तुओं के प्राणों के लिये तुम क्यों भय बन जाना चाहते हो ? क्यों प्रभु की बनाई सृष्टि को अकारण नष्ट करना चाहते हो ?

बिना किसी लक्ष्य के इनका प्रयोग नहीं किया जाना चाहिये। यदि कोई शत्रु लक्ष्य हो तो भी जब तक वह अपने ऊपर प्रहार करके किसी तरह का कष्ट नहीं पहुंचावे तब तक इन दिव्यास्त्रों का प्रयोग मत करना अन्यथा ऐसे व्यर्थ प्रयोग से महान अनर्थ हो जायेगा। इनकी नियमानुसार सावधानी से रक्षा करने पर शक्तिशाली अस्त्र तुम्हे सुख देनेवाले होंगे। यदि तुमने इनके व्यर्थ प्रयोग से रक्षा नहीं की तो ये त्रिलोकी को नष्ट करनेवाले होंगे। युधिष्ठिर तुम इन अस्त्रों का देखने का लोभ छोडो। समय आने पर जब इनका प्रयोग होगा तब देख लेना। अर्जुन को अपना यह प्रमाद समझ में आया और तुरन्त इस परीक्षण को संवरण कर आकाश को प्रणाम किया।

युधिष्ठिर बोले चलो अर्जुन अब थोडी देर स्नान कर यात्रा की थकान उतारो और फिर भोजन के पश्चात तुम्हारे स्वर्ग की बातें सुनाओ। यह सत्य है कि शस्त्र बद्ध क्षत्रिय को शस्त्र परिचालन से विरत करना बहुत कठिन है। राजर्षि आर्ष्टिषेण बोले तुम लोगों ने अपने व्यवहार से यह सिद्ध कर दिया कि तुम्हे अपनी शक्ति का अहंकार कभी नहीं होगा। तुम्हारे हाथों में चाहे कितनी ही प्रहारक या विनाशक शक्ति आ जाये तुम उसके कारण उन्मत्त नहीं होगे और न ही अपना विवेक खोओगे। तुम्हारे पास कितने ही दिव्यास्त्र आ जाये पर तुम कभी धर्म का त्याग नहीं करोगे। देवशक्तियों ने अर्जुन को दिव्यास्त्र देकर कोई भूल नहीं करी। युधिष्ठिर बोले यदि हमारा आध्यात्मिक विकास राज्य, अधिकार भोग तथा धन सम्पत्ति इत्यादि की निरर्थकता सिद्ध कर देता है तो हमें कभी, युद्ध के लिये आतुर और प्रस्तुत होना ही नहीं पडेगा। राजर्षि आर्ष्टिषेण बोले तुम एक संन्यासी की भाषा बोलने लग गये हो युधिष्ठिर कहीं तुम्हारी कायरता ने तो यह रूप धारण नहीं कर लिया। तामसिक

त्याग से सात्विक ग्रहण श्रेष्ठतर है। युधिष्ठिर बोले यदि हम पांच भाइयों की कायरता से लाखों करोडों लोगों के प्राणों की रक्षा हो जाती है और हम एक भयंकर और नृशंस युद्ध से मानवता को बचा लेते है तो यह श्रेष्ठतर स्थिति है। राजर्षि आर्ष्टिषेण हंसे और बोले शान्ति युद्ध से सदा श्रेष्ठतर है परन्तु यदि शान्ति प्रियता की ओट में अन्याय का पोषण हो, अन्याय को बल मिले तो वह अधर्म होगा। युद्ध तो अन्तिम विकल्प होता है।

भोजन के पश्चात अर्जुन ने दिव्यास्त्र प्राप्त करने का सारा वृतान्त सुनाया और बोले जब महादेव मेरे सामने भील रूप से उस वनैले सूअर के लिये मुझसे युद्ध कर रहे थे तो मैंने उन पर बारी बारी से स्थूणाकर्ण, वारूणास्त्र, शरवर्षास्त्र, शालभास्त्र और अश्मवर्षास्त्र छोडे। वह भील उन सब अस्त्रों को भी निगल गया। उन सब अस्त्रों के ग्रस लिये जाने पर मैंने ब्रह्मास्त्र को आज्ञा दी उससे निकले हुये प्रज्वलित बाणों से वह चारों ओर से ढक गया। परन्तु उस महातेजस्वी भील ने उसे भी क्षणभर में शान्त कर दिया। ब्रह्मास्त्र के व्यर्थ हो जाने से मुझे बडा भय हुआ। फिर मैंने धनुष बाण से उस पर प्रहार किया किन्तु वह उसे भी निगल गया। इस प्रकार जब सभी अस्त्र नष्ट हो गये और मेरे सारे आयुधों को वह निगल गया तो मेरा और उसका बाहुयुद्ध होने लगा। उस युद्ध में मैं उसका सामना नहीं कर सका और अचेत सा होकर पृथ्वी पर गिर पडा तब वह फिर मेरे देखते देखते वह हंसकर अपनी स्त्रियों सहित वहीं अन्तर्धान हो गया। यह देखकर मैं चकित हो गया। तब देवाधिदेव महादेव अपने उस किरात वेश को छोडकर अपने दिव्य रूप से प्रकट हुये और उन्होने मेरे सम्मुख आकर कहा मैं तुमपर प्रसन्न हूं और उन्होने मेरे सब अस्त्र, धनुषबाण, अक्षण बाण वाले तरकस सब लौटा दिये और बोले हे वीर तुम्हारा कौनसा प्रिय कार्य करूं? तुम्हारे मन में क्या है सो कह डालो? अमरत्व को छोडकर मैं तुम्हारी सारी कामनायें पूर्ण कर दुंगा। मेरे मन में अस्त्र समाये हुये थे। मैंने हाथ जोडकर उन्हे प्रणाम कर कहा हे गौरीशंकर यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे देवताओं के दिव्यास्त्रों की प्राप्ति हो और उनके प्रयोग व उपसंहार की विधि का ज्ञान हो। यही मेरा अभिष्ट मन है। तब भगवान त्रिलोचन ने कहा अच्छा अर्जुन मैं तुम्हें यह वर देता हूं। तुम शीघ्र ही मेरा पाशुपतास्त्र प्राप्त करोगे और ऐसा कहकर उन्होने अपना पाशुपतास्त्र मुझे दे दिया।

भगवान महादेव बोले तुम इस अस्त्र का प्रयोग मनुष्यों पर कभी न करना क्योंकि यदि इसे अल्पवीर्य प्राणियों पर छोडा गया तो यह अस्त्र त्रिलोकी को भस्म कर देगा। जब तुम्हें अत्यन्त कोई कष्टदायक पीडा हो तभी इसका प्रयोग करना अथवा जब कभी शत्रु के छोडे हुये अस्त्रों को रोकना हो तब इसका प्रयोग करना। इस प्रकार भगवान शंकर के प्रसन्न होने से समस्त अस्त्रों को रोक देनेवाला और स्वयं किसीसे न रूकनेवाला दिव्य अस्त्र मूर्तिमान होकर मेरे पास आ गया और भगवान शंकर देखते देखते अन्तर्धान हो गये। थोडी ही देर में हिमालय की तलैटी में दिव्य, नवीन और सुगन्धित पुष्पों की वर्षा होने लगी। सब ओर दिव्य वाद्यों की ध्वनि सुनने लगी तथा देवराज इन्द्र की स्तुति सुनाई देने लगी। थोडी ही देर में देवराज इन्द्र अपने रथ में सवार हो वहां पधारे। उनके साथ में अन्य देवता तथा महान ऐश्वर्य सम्पन्न नर वाहन धनाध्यक्ष कुबेर भी आये। दक्षिण दिशा के स्वामी यम और पूर्व दिशा में स्थित इन्द्र तथा पश्चिम दिशा के महाराज वरुण पधारे। सबने मुझे धैर्य देते हुये कहा हे सव्यसाची हम सब लोकपाल यहां उपस्थित है। तुम्हे देवताओं के कार्य करने के लिये महादेव के दर्शन हुये। हम तुम्हे अस्त्र देंगे उन्हें ग्रहण करो। तब मैंने उन देवश्रेष्ठों को प्रणाम किया और विधिपूर्वक उन सबसे अस्त्र ग्रहण किये। तब उन्होने मुझे जाने की आज्ञा दी और स्वयं अपने अपने लोक में चले गये। इन्द्र मुझसे बोले अर्जुन तुम्हे स्वर्ग में मेरे पास आना होगा। मेरा सारथि तुम्हे लेने आयेगा। तब मैंने इन्द्र से कहा भगवन आप मुझपर कृपा करें। आप मुझे अस्त्र विद्या सिखानेवाले मेरे गुरु है। इन्द्र बोले हे भारत तुम मेरे लोक अमरावती में रहकर वायु, अग्नि, वसु, वरुण और मरुदगण सभी से अस्त्र विद्या व शिक्षा प्राप्त करना। इसी प्रकार साध्यगण, ब्रह्मा गन्धर्व, सर्प, राक्षस, विश्वेदेव

और निऋति के तथा स्वयं मेरे अस्त्रों का भी ज्ञान प्राप्त करना। इन्द्र ऐसा कहकर वहां से अन्तर्धान हो गये। मातलि इन्द्र का सारथी मुझे लेने आया। मैं हिमालय की प्रदक्षिणा कर मातलि के लाये हुये इन्द्र के उस दिव्य रथ में बैठा और मातलि ने भी उस मन और वायु के समान वेगवान घोडों को हांका। रथ के हिलने डुलने पर भी मैं स्थिरता से बैठा रहा तो मातलि आश्चर्य चकित हो बोला यह तो बडी ही विचित्र बात है कि जब इन्द्र भी इस रथ में सवार होकर चलते हैं तो वो भी हिलते हैं किन्तु तुम बिल्कुल स्थिर हो। मातलि रथ को आकाश में ऊंचा ले गया। धीरे-धीरे मुझे देवताओं के भवन तथा विमान दिखने लगे। थोडी दूर आगे देवताओं के उद्यान नन्दनवन और उपवन दिखाई देने लगे। उससे आगे इन्द्र की अमरावती पुरी दिखाई दी जहां न सूर्य का ताप है, न शीत। वहां न तो उष्ण है और न ही श्रम तथा न वहां पर वृद्धावस्था का कष्ट, न कही शोक, दीनता या दुर्बलता। वहां के निवासी विमानों में बैठकर विचरण करते है। आगे बढने पर मुझे वसु, रुद्र, साध्य, पवन, आदित्य और अश्विनीकुमारों के दर्शन हुये। सभी ने मुझे आशीर्वाद दिये बल, वीर्य, यश, तेज, अस्त्र और युद्ध में विजय प्राप्त हो। तत्पश्चात मैंने अमरावती में प्रवेश किया।

वहां पहुंच कर मैंने देवराज इन्द्र को प्रणाम किया। इन्द्र ने मुझे बैठने के लिये अपना आधा सिंहासन दिया। मैंने वहां पर अस्त्र विद्या प्राप्त की और परम प्रवीण देवताओं तथा गन्धर्वों के साथ वहां रहने लगा। वहां रहते रहते विश्वासु गन्धर्व के पुत्र चित्रसेन से मैंने पूरे गन्धर्व शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की तथा वहां रहकर तरह तरह के गान और वाद्य सीखे तथा अप्सराओं के साथ नृत्य किया।

मैंनें अस्त्र विद्या में विशेष मनोनिवेश किया। मेरी इस प्रवृति से देवराज इन्द्र प्रसन्न हुये। मेरा समय स्वर्ग में आनन्दपूर्वक बीतने लगा। मैं अस्त्र विद्या में काफी निपुण हो गया था। मुझमें सभी का विश्वास था। इन्द्र ने कहा युद्ध में मुझे देवता भी परास्त नहीं कर सकते फिर धरा पर रहनेवाले मनुष्यों की तो बात ही क्या? अर्जुन तुम युद्ध में अतुलित, अजेय और अनुपम होगे। अस्त्र युद्ध में तुम्हारा सामना अन्य कोई कर सके ऐसा कोई नहीं है। तुम व्यवहार कुशल, सत्यवादी, जितेन्द्रिय हो, ब्राह्मणसेवी हो, शूरवीर हो। तुमने यह अस्त्र प्राप्त किये है उनका प्रयोग, उपसंहार, आवृत्ति, प्रायश्चित और प्रतिघात इन सब विधियों को अच्छी तरह जानते हो। अब तुम्हारा गुरु दक्षिणा देने का समय आ गया है। निवात कवच नाम के दानव इन्द्र के शत्रु है। वे तीन करोड है और समुद्र के भीतर दुर्गम स्थान में रहते है। उन सभी के रंग रूप, बल और प्रभाव समान ही है। तुम उनका वध करो। बस तुम्हारे लिये यही गुरुदक्षिणा हो जायेगी। इन्द्रने मुझे अपना प्रभावपूर्ण रथ दिया और प्रकाशमय मुकुट मेरे सिर पर रखा। एक सुन्दर अभेद्य कवच पहिनाया। मैंने भी गांडीव धनुष पर एक अटूट प्रत्यन्चा चढ़ा दी। इस प्रकार युद्ध की सामग्री से सब प्रकार सुसज्जित हो रथ पर सवार होकर उन दैत्यों के साथ युद्ध करने के लिये चल पडा। तब सभी देवताओं ने मुझे आशीर्वाद दिया और बोले अर्जुन इस रथ में बैठकर इन्द्रने शम्बरासुर, नमुचि, बल, वृत्र और नरक आदि हजारों दैत्यों को जीता है अत: हे कुन्तीनन्दन तुम भी निवात कवचों को युद्ध में परास्त करोगे।

मार्ग में जाते जाते अनेक जगहों पर महर्षिगण मेरी स्तुति कर रहे थे। मैंने देखा अथाह और भयावह समुद्र में फेन के समान पहाडों जैसी ऊंची-ऊंची लहरें उठ रही थी, वे आपस में टकरा रही थी। सब ओर रत्नों से लदी हजारों नावें चल रही थी तथा बडे-बडे मत्स्य, तिमिंगल, कछुये और मकर जल में पडे हुये पहाड समान दिखाई पड रहे थे। वहीं उस महासागर के पास मैंने दानवों से भरा हुआ उनका नगर देखा। मेरे रथ की घरघराहट से दानवों के हृदय दहल गये। मैंने अपना देवदत्त शंख फूंका। उसके शब्द आकाश में टकराकर प्रतिध्वनि करने लगे। उससे बडे बडे जीव भयभीत होकर इधर-उधर छिपने लगे। फिर अनेकों प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित सहस्त्रों निवात कवच दैत्य नगर से बाहर आये। उन्होने हजारों

प्रकार के भीषण स्वरवाले बाजे बजाना शुरू किये। इस प्रकार निवात कवचों के साथ मेरा संग्राम छिड गया। वहां पर अनेक देवर्षि, दानवार्षि, ब्रह्मर्षि और सिद्धगण वहां आ गये। मेरी विजय की अभिलाषा से मधुरवाणी से मेरी स्तुति करने लगे। दानवों ने मेरे ऊपर गदा, शक्ति और शूलों की अनवरत वर्षा आरम्भ कर दी और वे सब मेरे रथ पर तडातड गिरने लगे। मैंने अपने प्रचंड बाणों से सबको धराशायी कर दिया। इस प्रकार मैंने सहस्त्रों असुरों का वध कर डाला। रथ के प्रहार से भी अनेक राक्षस कुचले गये। कितने ही राक्षस मैदान छोडकर भाग गये। कुछ निवात कवच मेरी गति को रोकने का प्रयास करने लगे। मैंने ब्रह्मास्त्र अभिमंत्रित कर उन सब निवात कवचों का सफाया कर दिया। तब चारों ओर से बडी-बडी चट्टानों की वर्षा होने लगी। तब मैंने वज्र समान बाणों से उन्हे छिन्न-भिन्न कर चूर चूर कर दिया। जब इन पत्थरों की वर्षा बन्द हुई तो मोटी मोटी जलधारायें गिरने लगी। इन्द्र ने मुझे विशोषण नाम का एक दीप्तिशाली दिव्य अस्त्र दिया था उसका मैंने प्रयोग कर सारा जल सुखा दिया। उसके पश्चात उन दानवों ने माया द्वारा अग्नि और वायु छोडी। मैंने जलास्त्र से अग्नि को शान्त कर दिया और शैलास्त्र द्वारा वायु को रोक दिया। तब सब दानव अदृश्य हो गये और अन्तर्धानी माया का प्रयोग कर मेरे सामने से चले गये। वे अदृश्य रहकर मेरे ऊपर अस्त्र चलाने लगे। मैं उनसे अदृश्यास्त्र द्वारा युद्ध करने लगा। इस प्रकार युद्ध क्षेत्र में मैं बहुत प्रकार से उनका संहार करने लगा। वहां पर दैत्य दानवों की लाशों से पूरा स्थान पट गया था। वहां पर तिलभर जगह भी पैर रखने के लिये नहीं बची। पत्थरों की वर्षा होने पर मैंने वजास्त्र का प्रयोग किया। मैंने जब वज्रतुल्य बाणों की वर्षा की तो उनके वेग से आहत होकर वे पर्वत समान विशालकाय दैत्य पृथ्वीपर लुढकने लगे। इतना भयंकर युद्ध होने पर भी सारथी मातलि, अश्व या रथ किसी की भी कोई क्षति नहीं हुई। इस प्रकार उन दानवों का नाश कर उस नगर में शान्ति स्थापित कर मैं मातलि के साथ फिर से देवलोक चला गया।

वापिस लौटते समय मार्ग में मुझे एक दूसरा विशाल दिव्य नगर दिखा जिसकी कान्ति अग्नि और सूर्य समान थी। उसे इच्छानुसार कहीं भी ले जाया जा सकता था। उसमें भी दैत्य लोगों का निवास था। मैंने मातलि से पूछा यह अद्भुत स्थान किसका है? तब मातलि ने बताया पुलोमा और कालिका नाम की दो दानवियां थी। उन दोनों ने हजारों दिव्य वर्षों तक बडी कठोर तपस्या की थी तब ब्रह्माजी ने प्रसन्न हो उन्हे दर्शन दे वर मांगने कहा। उन्होने मांगा हे भगवन हमारे पुत्रों को थोडासा भी कष्ट न हो। देवता, राक्षस या नाग कोई भी उन्हे मार नहीं सके। उनके रहने के लिये एक अत्यन्त रमणीय, प्रकाशपूर्ण और आकाश में विचरनेवाला मार्ग हो। ब्रह्माजी ने कालिका के पुत्रों के लिये सब प्रकार के रत्नों से सुसज्जित, अजेय, सभी प्रकार के भोगों से पूर्ण, रोग शोक से रहित यह नगर बनाया। इसे महर्षि, यक्ष, राक्षस, असुर और गन्धर्व कोई भी नहीं जीत सकते। यह नगर आकाश में उडता रहता है। इसमें कालिका और पुलोमा के पुत्र ही रहते है। वे सब प्रकार के उद्वेग और चिन्ता रहित होकर रहते है। ब्रह्मा ने इनकी मृत्यु मनुष्य के हाथ में दे रखी है। अत: अर्जुन तुम इन महाबली दैत्यों का तुम्हारे वज्र द्वारा संहार कर डालो।

मैंने मातलि से कहा तुम मुझे अभी इस नगर में ले चलो। जो दुष्ट लोग देवराज इन्द्र से द्रोह करते हैं उनका मैं वध कर डालूंगा। मातलि मुझे उस स्वर्णमय नगर के पास ले गया। मुझे आया देखकर वे दैत्य कवच इत्यादि धारण कर रथों में सवार हो बडे वेग से मेरे ऊपर टूट पडे। अत्यन्त क्रोधित हो मेरे ऊपर अनेक अस्त्रों, नाराच, नालीक, भाले, तोमर, ऋष्टि इत्यादि से वार करने लगे। मैंने उन पर शस्त्र विद्या से बाणों की वृष्टि कर उन्हे मोहित कर दिया और वे आपस में ही एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। मैंने ऐसी अवस्था में अनेकों दैत्यों का वध किया। तब वे अपने नगर में माया से उस पुरी सहित आकाश में उड गये। मैंने दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर दैत्यों सहित उस नगर को घेर लिया। मेरे बाणों से वह नगर टूट फूट कर

पृथ्वी पर गिर पडा। फिर वे साठ हजार दैत्य क्रोधित हो मुझसे युद्ध करने लगे। मानवी युद्ध से इन पर विजय पाना कठिन था तब मैंने दिव्यास्त्रों का प्रयोग आरम्भ किया परन्तु वे रथी दैत्य बडे ही विचित्र यौद्धा थे। वे मेरे दिव्यास्त्रों को काटने लगे। मैंने महादेव के अस्त्र पाशुपतास्त्र का स्मरण कर उन पर वह अस्त्र छोड दिया। वे सब दैत्य बात की बात में ही नष्ट हो गये। इस प्रकार मैंने उन दानवों का अन्त कर डाला। दैत्यों की स्त्रियां कुररी के समान विलाप करने लगी और वह नगर देखते-देखते वहां से अदृश्य हो गया।

इस प्रकार मैंने युद्ध में विजय प्राप्त की। मुझे मातलि इन्द्र के राजभवन में ले गया। मातलि ने विस्तार से सम्पूर्ण वृतान्त इन्द्र को सुनाया तब इन्द्र मुझसे बोले हे पार्थ तुमने संग्राम में देवता और असुरों को जीत लिया है। मेरे शत्रुओं का संहार कर तुमने अपनी गुरु दक्षिणा भी चुका दी है। अब तुम देवता, दानव, यक्ष, राक्षस, असुर, गन्धर्व, नाग सभी के लिये अजेय हो गये हो। तुम्हारे बाहुबल से जीती हुई धरा पर युधिष्ठिर निष्कंटक राज्य करेंगे। तुमने दिव्यास्त्र भी प्राप्त कर लिये है इसलिये भू-मंडल पर कोई भी तुम्हारा पराभव नहीं कर सकेगा। जब तुम महासमर में खडे होंगे तो भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, शकुनि कोई भी तुम्हारे सौलहवे अंश के बराबर नहीं होंगे। तब इन्द्र ने मुझे यह दिव्य अभेद्य कवच और सोने की माला आभूषण उपहार में दिये। साथ में यह दिव्य देवदत्त नाम का शंख और यह किरीट स्वयं उन्होने मेरे सिर पर रखा। स्वर्ग में गन्धर्वों के साथ मैं ५ वर्ष तक बडे सम्मान से रहा। तब इन्द्र मुझसे बोले अर्जुन अब तुम्हे धरा पर लौट जाना चाहिये तुम्हारे भाई तुम्हारा स्मरण कर रहे हैं और मैं वहां से चला आया।

युधिष्ठिर बोले अर्जुन यह हमारे लिये बडे ही सौभाग्य की बात है कि तुमने देवराज इन्द्र के दर्शन कर उनसे दिव्यास्त्र प्राप्त कर लिये और भगवान गौरीशंकर के भी दर्शन कर लिये। तुमने अपनी युद्ध कला से उन्हे सन्तुष्ट किया। तुम लोकपालों से भेंट कर कुशलपूर्वक हमारे पास लौट आये। इससे मैं बडा प्रसन्न हुआ। पांडव भी द्रौपदी सहित वहां प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे। पांडव गन्धमादन पर्वत पर अर्जुन के साथ ४ वर्ष तक रहे और शस्त्राभ्यास करते रहे।

एक दिन सभी पांडव युधिष्ठिर से बोले हमारे वनवास का यह ११ वां वर्ष चल रहा है। हम आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर मान-अपमान का विचार छोडकर निर्भयता पूर्वक वन में विचरण कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि हमारा तेरहवां वर्ष अज्ञातवास का हम सुखपूर्वक व्यतीत कर लेंगे तत्पश्चात हम उस नराधम दुर्योधन का संहार कर डालेंगे। तब धर्म और अर्थ के मर्मज्ञ महात्मा युधिष्ठिर अपने भाइयों का विचार अच्छी तरह जानकर कुबेर के उस निवासस्थान की प्रदक्षिणा कर अपने सभी भाइयों सहित ब्राह्मणों को साथ लेकर जिस मार्ग से आये थे उसी से वापिस द्वैतवन की ओर लौट पडे। महर्षि लोमश ने भी जब पांडवों को वहां से प्रस्थान करते देखा तो उन्हे एक सुन्दर उपदेश दिया और प्रसन्न हो वहां से देवताओं के स्थान पर चले गये। राजर्षि आर्ष्टिषेण ने भी पांडवों को उनके हित के लिये उपदेश दिया। वे नर श्रेष्ठ पांडव पवित्र तीर्थों, मनोहर तपोवनों और बडे-बडे सरोवरों का दर्शन करते हुये आगे बढते गये। वे कभी रमणीय वनों, तो कभी नदी तटों पर, कभी जलाशयों के किनारे और कभी पर्वत की छोटी छोटी कन्दराओं में ठहर जाते थे। चलते-चलते वे वृषपर्वा के आश्रम पर पहुंचे। वृषपर्वा ने इनका बडा आदर सत्कार किया। वहां पांडवों ने विश्राम किया। वृषपर्वा के आश्रम पर देवता और महर्षि आकर निवास किया करते थे। पांडव भी वहां एक रात्रि विश्राम कर दूसरे दिन बदरिकाश्रम विशाला नगरी में आये। वह नर नारायण के क्षेत्र में एक महिने तक रहे फिर वहां से लौटकर किरात राज सुबाहु के राज्य की ओर प्रस्थान किया। वहां चीन, तुषार, दरद, कुलिन्द देशों से होते हुये हिमालय के दुर्गम प्रदेशों को पार कर राजा सुबाहु के नगर पहुंचे।

सुबाहु ने पांडवों का अपनी नगरी की सीमा पर स्वागत किया। धरती के उपर दिखाई देनेवाला वृक्ष का सबल तना तभी

तक सबल होता है जब तक धरती के नीचे छिपी हुई उसकी जडे उसका पोषण करती रहती है। सबल जडों के बिना सबल तना नहीं हो सकता। सुबाहु ने कहा मैंने सारी व्यवस्था कर दी है आप दीर्घकाल के लिये सुख-सुविधा पूर्वक यहां रह सकते हैं। आप हमारे इन स्थानों पर एक वर्ष का अज्ञातवास भी बिता सकते हैं और फिर यहीं से हस्तिनापुर के लिये अपनी जय यात्रा आरम्भ करे। युधिष्ठिर बोले तुम्हारे स्नेह से अभिभूत हूं मित्र पर हमारा यहां रहना सम्भव नहीं हो पायेगा। इस समय हमारा प्रयत्न शान्ति की रक्षा करना है। मुझे अपने राज्य से अधिक शान्ति प्रिय है। यदि पांचो पांडवों को आजीवन वन में रहना पडे और संसार में शान्ति की रक्षा हो सके तो भी हम शान्ति ही चाहेंगे। हम सारे कष्ट इसलिये सहन कर रहे है ताकि शान्ति की रक्षा हो सके। दुर्योधन की गिद्ध दृष्टि हमारे पर लगी हुई है। ऐसे में अपने मित्रों के निकट रहना हमारे लिये सुरक्षित नहीं है। अज्ञातवास के लिये हमें वहां जाना होगा जहां दुर्योधन की कल्पना भी न जा सके। हम यह भी जानते है कि प्राण रहते तुम हम पर आंच नहीं आने दोगे। न तो हम हिंसा ही चाहते है और न ही कोई बलिदान। हम युद्ध टालना चाहते है, हम शान्ति चाहते है। युद्ध तो अन्तिम मार्ग है। सुबाहु बोला आप बनवास के बारह वर्ष पूर्ण कर अज्ञातवास भी सफलतापूर्वक पूर्ण कर ले तब भी यदि दुर्योधन ने आपका राज्य नहीं लौटाया तो फिर क्या युद्ध की बात नहीं सोचेंगे या तब भी शान्ति की ही बात करेंगे ? भीम बोला तब शान्ति की रक्षा मेरी गदा से होगी नहीं तो दुर्योधन सारे संसार में अशान्ति मचा देगा। सत्ता के केन्द्र में यदि कोई क्रूर और अन्यायी व्यक्ति बैठा हो तो सारी सृष्टि भय और अशान्ति से कांपती रहती है। राजा सुबाहु के यहां उन्होने एक रात बडे आनन्द से व्यतीत की। सुबाहु के दिये बहुत से रथ और सारथि साथ लेकर उस पर्वत पर पहुंचे जो यमुना का उदगम् स्थान यमनोत्री है। वहां झरने बह रहे थे। हिम से ढके शिखर बाल सूर्य की किरण पडने से श्वेत और अरुण रंग के दिख रहे थे। पांडवों ने उस पर्वत पर विशाल नामक वन में निवास किया। यह महान वन चैत्ररथ वन के समान था वहां पर उन्होने आनन्दपूर्वक बारहवां वर्ष व्यतीत किया।

धर्मराज युधिष्ठिर चिन्तन कर रहे थे कि भीम तथा द्रौपदी ने ऐसी प्रतिज्ञायें कर ली है। वे उनसे यह आग्रह तो नहीं कर सकते कि वे अपनी प्रतिज्ञाओं का पालन नहीं करे। प्रतिज्ञा भंग करने का आदेश वे कैसे दे सकते थे ? वे ये भी नहीं कह सकते थे, कि वे प्रतिज्ञायें करने का अधिकार नहीं था क्योंकि यह कहना भी उचित नहीं था। जितना अपमान द्रौपदी का हुआ था उसके प्रतिशोध के लिये कोई भी मनुष्य कुछ भी कर सकता था किन्तु युधिष्ठिर का मन आज भी यही चाहता था कि किसी प्रकार भीम और द्रौपदी धृतराष्ट्र पुत्रों को क्षमा कर दे। दुर्योधन तो पापी है पर भीम क्यों पापी बने ? पांचाली पाप में क्यों लिप्त हो? दुर्योधन की जंघा तोडने तथा दुशासन की छाती फाड कर रक्त पीने से पांचाली का अपमान तो अघटित नहीं हो जाता। सम्भावित अशुभ घटना का प्रतिकार कर उसे घटित होने से रोक देना तो समझ में आता है परन्तु अपने अहंकार की तुष्टि के लिये एक और अशुभ कृत्य कर दुष्कर्मों की श्रृंखला में एक और दुष्कर्म अशुभ कृत्य करना समझ में नहीं आता। यदि शान्ति से पांडवों को अपना राज्य मिल जाता तो दुर्योधन और दुशासन हस्तिनापुर में जीवित है या नहीं इससे भीम को क्या अन्तर पडेगा? दुशासन की छाती फाडकर भी भीम को वही राज्य मिलना है तो वह बिना उस दुष्कृत्य के भी तो प्राप्त किया जा सकता है। पर युधिष्ठिर यह भी जानते हैं कि न भीम का निर्णय किसी भी दशा में दुर्योधन और दुशासन को क्षमा करेगा और न ही द्रौपदी। न उनके मन को बदला जा सकता है और न ही उन्हे कोई धर्म बन्धन में बांधा जा सकता है।

राजा के रूप में युधिष्ठिर को युद्ध करना पडेगा। अपने अधिकारों के लिये, अपने भाइयों के अधिकारों की रक्षा के लिये, अपनी प्रजा पालन के लिये, दुष्टों का दमन करने के लिये, एक सुशासन के लिये। वासुदेव का धर्मराज्य स्थापित करने के लिये यह युद्ध की स्थिति युधिष्ठिर के लिये न सहज है और न सुखद ही। साधना और तपस्या की स्थिति सहज है।

ऋषियों और मुनियों तथा तपस्वियों के साथ रहना परम सुखकारक है। युद्ध की स्थिति किसी के लिये भी सहज स्थिति नहीं होती, वह तो जीवन की आपात स्थिति है फिर क्यों आपात स्थिति को ही जीवन बनाने का आग्रह किया जाये ?

अर्जुन सन्ध्योपासना कर रहा था सामने द्रौपदी खडी थी। ज्योंही अर्जुन ने नेत्र खोले तो द्रौपदी को देखकर चकित हो गये और पूछा पांचाली तुम यहां। द्रौपदी बोली सामान्यत: साधना पूरी कर साधक जब आंखे खोलता है तो उसके सामने उसके इष्टदेव उसे वरदान देने की मुद्रा में खडे रहते है पर यहां तो पार्थ तुमने नेत्र खोले और मैं वरदान मांगने की मुद्रा में तुम्हारे सामने हूं। अर्जुन बोला बोलो देवि तुम्हें क्या चाहिये? मेरे पास तो जो कुछ है वो सब तो तुम्हारा ही है। द्रौपदी बोली मुझे वचन दो कि तुम धर्मराज के उन शान्ति प्रयत्नों में सहभागी नहीं होगें। वो स्वाभिमान और स्वाधिकार खोकर करना चाहते हैं। यदि युद्ध नहीं हुआ तो मेरी की हुई प्रतिज्ञा कभी पूरी नहीं होगी। अर्जुन बोला मैं तुम्हे विश्वास दिलाता हूं कि युद्ध अवश्य होगा। दुर्योधन का शान्ति विरोध धर्मराज के सारे शान्ति प्रयत्नों पर भारी पडेगा। हस्तिनापुर के राज्य से दुर्योधन को कभी तृप्ति नहीं होगी। वह पांडवों का राज्य लौटाने के लिये कभी सहमत होगा ही नहीं। उसका वश चले तो वह यादवों का राज्य भी हडपना चाहेगा। वह तो पांचालों और मत्स्यों तक का राज्य भी छीनने का प्रयत्न करेगा। दुर्योधन के जीवित रहते तो यह युद्ध टल नहीं सकता। द्रौपदी बोली तुमने मुझे अभिष्ट वर दे दिया पार्थ।

यह वन जिसमें पांडव अपना बारहवां वर्ष बिता रहे थे वह क्षेत्र प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से बहुत समृद्ध है किन्तु कर्म की दृष्टि से यह पर्याप्त दरिद्र है। युधिष्ठिर के मन में बार बार यही आता था कि ईश्वर के इस स्वच्छ, पवित्र और सात्विक वातावरण को त्यागकर हिंसा और क्रूरता से भरे उन स्थानों को लौट जाना कैसे अच्छा लग सकता है। यहां दिन भर ऋषियों, मुनियों, साधकों और तपस्वियों से ब्रह्मचर्या का विषय बना रहता है और वहां दस्युओं, लुटेरों, हत्यारों और हिंसा जीवी लोगों का सम्पर्क बना रहेगा। सात्विक लोक से रजोगुणी संसार में लौटना पडेगा। अर्जुन बोला धर्मराज हमारे क्षत्रिय धर्म का क्या होगा? यदि दुष्ट दलन का कार्य आप नहीं करेंगे तो कौन करेगा? कृष्ण के धर्मराज्य की स्थापना के स्वप्न का क्या होगा? क्या अपनी प्रजा को जम्बू द्वीप के उन असमर्थ, अशक्त तथा कम शक्तिवाले राजाओं को जिन्होने आपको सम्राट मान लिया और स्वयं को सुरक्षित मान लिया उन सब लोगों को जो सत्य, न्याय और धर्म में आस्था रखते हैं उन्हे आप दुर्योधन, दुशासन, कर्ण और शकुनि की दया पर छोड देंगे? आप मेरे बारे में एक क्षण के लिये भी ये विचार न लाये कि मुझे राज्य, भोग, सत्ता अथवा धन सम्पत्ति की लालसा है। मैं धर्म की उपलब्धि में ही सर्वस्व प्राप्ति का अनुभव करता हूं। भगवान श्रीराम ने अपने वनवास काल में इतने युद्ध किये, इतने अत्याचारियों का वध किया वो कोई राज्य प्राप्ति के लिये नहीं था। उन्होने तो स्वयं के लिये अयोध्या का राज्य ही त्याग दिया था तो फिर किसी अन्य के राज्य के लिये युद्ध क्यों करेंगे? वे तो अत्याचारियों को दंडित कर रहे थे और निरीह प्रजा की आततायियों से रक्षा कर रहे थे। युधिष्ठिर गन्धमादन पर्वत के ऊंचे शिखरों की ओर देख कर हाथ जोडकर बोले हे शैलेन्द्र अपने मन और बुद्धि को संयम में कर अपने शत्रुओं को जय कर अपना अपहृत राज्य पुन: प्राप्त कर, सब कार्य सम्पन्न कर अपने सुहृदों के साथ पुन: तपस्या करने आपके दर्शन के लिये आऊंगा।

घृणा का विष सरलता और वेग से प्रसारित और प्रचारित होता है जब कि प्रेम का सन्देश मन्थर गति से चलता है। लोभी व्यक्ति अपनी मूर्खता में अपने सम्पूर्ण समाज को नष्ट कर देता है। मत्स्य नरेश राजा विराट अवश्य थे पर सत्ता उनके पास नहीं उनके सेनापति कीचक के पास थी और वह दुष्ट अपने राजा का मान रखना भी आवश्यक नहीं समझता था बडी

विचित्र स्थिति थी उस राज्य की। राजा विराट की अपने सेनापति के सम्मुख एक नहीं चलती थी। उनका सेनापति विराट यह नहीं चाहता था कि धर्मराज का आया कोई भी व्यक्ति विराट नगर में आश्रय पाये। मत्स्यराज विराट का सेनापति उनकी पटरानी सुदेष्णा का भाई कीचक है। जब मत्स्यराज समर्थ रहे होंगे तब उन्होने अपने साले को आश्रय दिया होगा। अब मत्स्यराज की अवस्था अधिक हो चुकी। वे पहिले के समान दुधर्ष यौद्धा भी नहीं रहे। उनकी सन्तान वृद्धावस्था की सन्तान है। युवराज उत्तम अभी छोटा है अभिमन्यु की अवस्था का ही। उनके एक छोटी कन्या है जिसका नाम उत्तरा है। सैन्य संचालन के लिये उन्हे कीचक पर ही निर्भर रहना पडता है। संयोग से कीचक ने कुछ युद्ध जीत लिये थे इसलिये स्वयं को वह यौद्धा और वीर मानने लगा। उसकी महत्वकांक्षायें भी जाग उठी। वह वृद्ध राजा और किशोर राजकुमार का दमन कर राज्य का सर्वेसर्वा बन गया। महारानी सुदेष्णा भी युवती ही थी। अवसर आने पर ही मालूम पडेगा वे हमारी क्या सहायता कर सकेंगे और हम विराट नरेश की क्या सहायता करेंगे?

धृतराष्ट्र को गुप्तचरों द्वारा सूचना मिली कि पांडव किरातराज सुबाहु के राज्य से होते हुये विशाखयूप वन में आ गये हैं। धृतराष्ट्र को लगने लगा क्या पांडव हिमालय के उन शीत प्रदेशों से जीवित और सकुशल लौट आये? उसके स्वर में हताशा थी। भीष्म बोले क्या महाराज इस बात से अप्रसन्न हैं कि उनके अनुज पुत्र उन कठिन प्रदेशों से सकुशल लौट आये। धृतराष्ट्र ने तत्काल रंग बदला और बोले नहीं मैं तो अत्यन्त प्रसन्न हूं कि मेरे अनुज पुत्र सकुशल लौट आये। मेरे वक्ष पर से तो पर्वत जैसा बोझ हट गया। मेरा ईश्वर ही जानता है कि मैं उनके हिमालय यात्रा के निर्णय से कितना चिंतित और आशंकित था। मैंने कभी नहीं चाहा कि वे संकटपूर्ण स्थानों पर जाये। वहां सूर्यदेव का ताप भी नहीं होता, अग्निदेव की प्रचंडता भी क्षीण हो जाती है, वायु की गति भी दुर्गम हो जाती है, हिमश्रृंग टूट टूट कर गिरने लगते हैं, धरती फट जाती है। इन पांडवों को किसने यह परामर्श दिया कि वे वहां जाये मेरा हृदय तो सुनकर धक धक कर रह जाता है। विदुर मन में हंसकर बोला कैसा निर्लज्ज और झूठा है ? कितना बदल गया है युग इसी हस्तिनापुर का राजा धर्म का साक्षात रूप होता था और अब उसके स्थान पर उसी राज सिंहासन पर वह व्यक्ति बैठा है जो यह मानता है कि राजनीति का अर्थ ही मिथ्या, झूठ, पाखंड और अधर्म है। जिस निर्लज्जता से राजा झूठ बोलता है उसी निर्लज्जता से मन्त्रि परिषद के सभासद उसे धर्मावतार मानकर उसकी प्रशंसा करते हैं। सत्ता का केन्द्र ही असत्य पर खडा है। धृतराष्ट्र बोला मैं तो जन्म से ही अन्धा हूं। मैं हस्तिनापुर से कभी बाहर गया नहीं। मेरा सारा ज्ञान तो सुनी सुनाई बातों पर आधारित है। इसी से मैं धोखा खा गया। मेरे पुत्र कोई मूर्ख तो हैं नहीं। वे निश्चित रूप से ऐसा कोई स्थान नहीं चुनेंगे जहां इस प्रकार का जोखिम हो। पता नहीं फिर उनके विरुद्ध मेरे कान कोई क्यों भर गया ? क्यों मेरा मन उनकी ओर से कटुता से भर गया ? क्यों मुझे ऐसे बताया गया कि वो इतने जोखिम भरे है ? कोई नहीं जानता कि यह रोष किसके विरुद्ध है। उसी समय शकुनि आया और बोला महाराज की जय हो। वे स्थान तो मानवों के लिये अगम्य हैं। धृतराष्ट्र ने पूछा तो क्या मेरे पुत्र राक्षस हैं जो वहां गये और सकुशल लौट आये ? राक्षस का क्या अर्थ ? क्या राक्षस की भुजाओं के स्थान पर पंख होते हैं? क्या राक्षस के सिर पर सींग है ? क्या उनका मुख भयानक होता है ? राक्षस होता तो मनुष्य ही। विभिन्न प्रदेशों में रहने से विभिन्न मानव जातियों मे जन्म लेने से तथा विभिन्न प्रकार के जीवन दर्शन अपना लेने से, मनुष्य समूहों के नाम विभिन्न हो सकते हैं परन्तु उनकी क्षमताओं में भेद नहीं होता। अपनी अति धूर्तता में चतुर लोग जिस सामान्य जन को मूर्ख बनाने का प्रयत्न करते हैं वे तो सामान्य जन अपनी सरलता की कसौटी पर कस कर धूर्तता को लौटाकर चतुरों की झोली में डाल देते हैं।

द्वैतवन में निवास करते समय एक दिन भीम पर्वत की कन्दरा में एक महाबली अजगर के पास जा पहुंचे जो मृत्यु के

समान भयानक और भूख से पीडित था। उसे देखते ही भीम भयभीत हो गया। उसकी अन्तरात्मा विषाद और मोह से व्यथित हो उठी। उस वन में हिंस्र जन्तु कुछ अधिक ही संख्या में थे। परिणामत: न तो वनचर सुखी थे न तपस्वियों को तपस्या करने की सुविधा थी। निरीह जीव जन्तु भी निर्भय विचरण नहीं कर पाते थे। वृक्षोंपर भी कई सर्प टंगे दिखाई देते थे। पांडवों के लिये इन हिंस्र पशुओं तथा जीव जन्तुओं का नाश करना आवश्यक था ताकि वनचर, तपस्वी पशुपक्षी सुख और शान्ति से अपना अपना लक्ष्य प्राप्त कर सके। भीम मानव निवास के निकट के क्षेत्र को हिंस्र पशुओं से शून्य करने के स्थान पर वह उन्हे मारने लगा। वह सर्पों की बांम्बियों को फोडकर सर्प बाहर निकाल कर उन्हे मारने लगा। एक दिन भीम इसी प्रकार आखेट कर रहा था कि मध्यान्ह का समय हो गया ताप और श्रम से वह शिथिल हो एक गहर में जाकर बैठ गया। थोडा विश्राम कर उठनेवाला था। उसे नींद आ गई और वह वहां पर सो गया। वह गहर एक दीर्घाकार विशालकाय अजगर का विश्राम स्थल था। अजगर अपने आवास में लौटा तो उसने अपने आवास में भीम को सोया हुआ पाया। वह भूखा था उसे कोई आहार भी नहीं मिला। उसने तत्काल भीम को अपने गुंजालक में लपेट लिया और शरीर को बांध लिया। महाराज युधिष्ठिर ने ही आकर भीम को सर्प के चंगुल से छुडाया। अब पांडव उस वन से बाहर निकले और मरू भूमि के निकट सरस्वती नदी के तीर पर जाकर द्वैतवन में निवास करने लगे।

**११) भीम का राजा नहुष की सर्प योनि के चंगुल में फंसना और युधिष्ठिर का सर्प के प्रश्नोत्तर तथा नहुष का स्वर्ग लौटना-** वैशम्पायन बोले जनमेजय इस तरह उस महाभयानक सर्प ने भीम को चारों ओर से लपेट लिया। इतना बडा अजगर भीम ने अपने जीवन में पहिले कभी नहीं देखा था। भीम ने बहुत प्रयत्न किया, विभिन्न युक्तियों का प्रयोग किया किन्तु अजगर की उस पकड को जरा भी शिथिल नहीं कर पाया। स्थिति यह हो गई कि भीम अपने हाथ पैर हिलाने में भी अक्षम हो गया। भीम ने अपनी पराजय स्वीकार कर हाथ जोड दिये। मुझे क्षमा करें सर्पराज, मेरे भाई मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। सर्प हंसा और बोला तू सर्पों की बाम्बिया फोड फोड कर उनके प्राण ले रहा था तब तूने नहीं सोचा कि तू क्या कर रहा है ? तू अपने कुल का कलंक है, वीर क्षत्रियों से तो लड नहीं पाता और वन में निरीह पशुओं की हत्यायें कर अपने क्षत्रियत्व को कलंकित कर रहा है। अजगर को मिले हुये वर के प्रभाव से उसका स्पर्श होते हुये भीम की चेतना धीरे-धीरे लुप्त होने लगी। यद्यपि भीम दस हजार हाथियों के बल के समान बलशाली था तो भी वह उस सर्प के चंगुल से छूटने में असमर्थ था और छूटने के लिये तडफडाने लगा।

इधर राजा युधिष्ठिर बडे भयंकर अनिष्टकारी उत्पात से चिंतित हो उठे कि भीम अभी तक नहीं आया। उनके आश्रम के दक्षिण वन में भयानक आग लगी और उससे डरे हुये गीदड़ अमंगल सूचक स्वर में दारुण चीत्कार करने लगे। हवा प्रचंड वेग से चल रही थी। कंकडों की वर्षा शुरू हो गई। युधिष्ठिर का बायां अंग फडकने लगा। ये सब अपशकुन देख कर युधिष्ठिर को लगा कि उन पर कोई महान विपत्ति उपस्थित होने वाली है। तब उसने भीम के पास आकर पूछा भीम यह सब कैसे हुआ और यह अजगर कौन है। धर्मराज को देखकर भीम ने पूरा समाचार कह सुनाया कि वह किस प्रकार सर्प के चंगुल में फंसकर प्रयत्न हीन हो गया है। ये महाबली सर्प उन्हे खा जाने के लिये पकडे हुये है। अजगर को देखकर युधिष्ठिर ने प्रार्थना की हे सर्पराज उसे अपनी भूख मिटाने के लिये आहार की आवश्यकता है तो पांडव उसे सम्पूर्ण आहार देंगे। यदि मनुष्य के ही मांस की भूख है तो वह भीम को छोड दे और स्वयं युधिष्ठिर को ही अपना भोजन समझकर खा ले। सर्प बोला राजन मेरे मुख के पास आकर यह आहार मुझे प्राप्त हुआ है, मैं इसे कैसे छोड सकता हूं ? तुम यहां से चले जाओ। यहां

रूकने में तुम्हारा कल्याण नहीं है। अगर यहां रूके रहे तो तुम भी मेरा आहार बन जाओगे। युधिष्ठिर बोले सर्पराज तुम कोई देवता हो या कोई दैत्य अथवा वास्तव में सर्प ही हो ? कोई ऐसी वस्तु पाकर तुम प्रसन्न हो जिससे तुम भीम को छोड दो?

वह सर्प बोला राजन मैं पहिले जन्म में तुम्हारा पूर्वज नहुष नाम का राजा था। चन्द्रमा से पांचवी पीढी में आयु नाम के राजा हुये उन्ही का मैं पुत्र हूं। मैंने अनेकों यज्ञ किये, तपस्या की, स्वाध्याय किया तथा अपने मन और इन्द्रियों पर भी विजय प्राप्त की। इन सब सत्कर्मों से अपने पराक्रम से मुझे तीनों लोकों का ऐश्वर्य प्राप्त हुआ। उस ऐश्वर्य को पाकर मेरा अहंकार बढ गया। मैंने मदोन्मत्त हो ब्राह्मणों का अपमान किया। इससे कुपित हो महर्षि अगस्त्य ने मुझे श्राप दिया। ऋषि के शाप से मैं सर्प होकर यहीं पडा हूं। महाराज अगस्त्य की कृपा से मेरे पूर्व जन्म की स्मृति बनी हुई है। ऋषि के शापानुसार दिन के छठवें भाग में तुम्हारा यह भाई मुझे आहार के रूप में प्राप्त हुआ है अत: मैं न तो इसे छोडूंगा और न ही इसके बदले दूसरा आहार स्वीकार करूंगा परन्तु यदि तुम मेरे प्रश्नों का ठीक ठीक उत्तर दे दोगे तो मैं तुम्हारे भाई भीम को छोड दूंगा। युधिष्ठिर को बहुत आश्चर्य हुआ यह कैसा सर्प है जो आहार नहीं चाहता और केवल अपने प्रश्नों का उत्तर चाहता है। युधिष्ठिर ने प्रश्नों का उत्तर देने की स्वीकृति दी।

सर्प ने पूछा बताओ ब्राह्मण कौन है ? और जानने योग्य तत्व क्या है ? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया सर्पराज जिसमें सत्य, दान, क्षमा, सुशीलता, क्रूरता का अभाव, अनृशंसता, तपस्या और दया ये सदगुण हो वही ब्राह्मण है ऐसा पुराणों और स्मृतियों का सिद्धान्त है और जानने योग्य तत्व तो वह परब्रह्म ही है जो सुख दु:ख से परे है और जहां पहुंच कर या जिसे जानकर मनुष्य शोक सागर, दु:खों से पार हो जाता है।

सर्प ने आपत्ति की सत्य, दान, अक्रोध, शूरता, क्रूरता का अभाव, अहिंसा, दया आदि सदगुण ये तो शूद्रों में भी पाये जाते हैं। ब्रह्म और सत्य तो चारों वर्णों के लिये भी हितकर तथा प्रमाण भूत है। अत: तुम्हारी मान्यता के अनुसार तो ये सब भी ब्राह्मण कहे जाने चाहिये। तुमने दु:ख और सुख से रहित जानने योग्य पद बतलाया है उसमें भी मुझे आपत्ति है कि सुख और दुख दोनों से रहित कोई दूसरा पद तो है ही नहीं। युधिष्ठिर ने उत्तर दिया यदि शूद्र में सत्य आदि उपरोक्त लक्षण है और ब्राह्मण में नहीं है तो वह शूद्र शूद्र नहीं है और वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं है। हे सर्पराज जिसमें सत्य आदि सब लक्षण हो उसे ब्राह्मण ही समझना चाहिये और जिनमें इनका अभाव हो उसे शूद्र ही कहना चाहिये। तुमने कहा सुख-दु:ख रहित कोई दूसरा पद है ही नहीं सो तो तुम्हारा मत ठीक है। वास्तव में जो अप्राप्त है और कर्मों द्वारा प्राप्त होनेवाला है ऐसा पद कोई भी क्यों न हो वह सुख-दु:ख से रहित नहीं है। जैसे शीतल जल में उष्णता नहीं रहती तथा उष्ण स्वभाववाली अग्नि में जल की शीतलता नहीं रहती, इनका परस्पर विरोध है उसी प्रकार जो वैद्य हैं जिसे केवल अज्ञान का आचरण दूर कर अपने से अभिन्न समझना है उसका कभी और कहीं भी वास्तविक सुख दु:ख से सम्पर्क नहीं होता। सर्प बोला यदि तुम आचरण से ही ब्राह्मण की परीक्षा करते हो तब तो जाति व्यर्थ है। युधिष्ठिर बोले जो तत्वदर्शी विद्वान है वे शील को ही प्रधानता देते हैं और उसे ही अभिष्ट मानते हैं। जिसमें संस्कार के साथ-साथ सदाचार की उपलब्धि हो वही ब्राह्मण है। जन्म और जाति से कोई ब्राह्मण नहीं होता। मनुष्यों में जाति की परीक्षा करना बहुत कठिन है क्योंकि इस समय सभी वर्णों का आपस में संकर (समिश्रण) हो रहा है। सभी मनुष्य सब जाति की स्त्रियों से संसर्ग कर सन्तानें उत्पन्न कर रहे हैं। बोल चाल, मैथुन, तथा जन्म मरण ये सब मनुष्य में एक जैसे होते है। जब बालक जन्म लेता है तो नाल छेदन के पहिले उसका जात कर्म संस्कार किया जाता है उससे माता सावित्री कहलाती है और पिता आचार्य। जब तक बालक का संस्कार करा कर उसे वेदाध्ययन, स्वाध्याय नहीं कराया जाय तब तक वह बालक शूद्र के समान ही रहता है। जाति विषयक सन्देह होने पर

स्वयंभू मनु ने भी यही निर्णय दिया। वैदिक संस्कार करके वेदाध्ययन करने पर भी शील और सदाचार नहीं आया तो उसमे प्रबल वर्ण शंकरता है। जिसमें संस्कार के साथ शील और सदाचार का विकास हो वह तो सर्वरूप से ब्राह्मण ही है।

युधिष्ठिर का उत्तर सुनकर वह अजगर प्रसन्न हो गया और बोला राजन सत्य, इन्द्रिय संयम, तपस्या, दान, अहिंसा और धर्म परायणता ये सभी सद्गुण सदा मनुष्यों को सिद्धि प्राप्त करानेवाले है जाति और कुल नहीं। अब मैं तुम्हारे भाई भीम को मुक्त करता हूं। युधिष्ठिर बोले सर्पराज आप तो सम्पूर्ण वेद वेदांग के ज्ञाता हो। किन कर्मों के आचरण से सर्वोत्तम गति प्राप्त होती है? सर्प ने उत्तर दिया हे भारत सत्पात्र को दान देने में, सत्य और प्रिय वचन बोलने तथा अहिंसा धर्म में तत्पर रहने से मनुष्य को उत्तम गति प्राप्त होती है। युधिष्ठिर ने पूछा दान और सत्य में कौन बडा है? अहिंसा और प्रिय भाषण इसमें किसका महत्व अधिक है? सर्प ने कहा राजन दान, सत्य, अहिंसा और प्रिय भाषण इनका गौरव लाघव कार्य की महत्तानुसार देखा जाता है। किसी दान से तो सत्य का महत्व बढ़ जाता है और किसी सत्य भाषण से दान बढ़कर होता है। कहीं पर प्रिय बोलने की अपेक्षा अहिंसा का गौरव अधिक है और कही अहिंसा से भी बढ़कर प्रिय भाषण का महत्व अधिक है। युधिष्ठिर ने पूछा मृत्युकाल में मनुष्य अपना शरीर तो यहीं त्याग देता है फिर बिना देह के ही वह स्वर्ग कैसे जाता है ? तथा कर्मों के अवश्यम्भावी फल को कैसे प्राप्त करता है ? सर्प बोला राजन कर्मों के अनुसार जीवों की तीन प्रकार की गति होती है। स्वर्गलोक की प्राप्ति, मनुष्य योनि में जन्म लेना और पशु पक्षी आदि योनियों में उत्पन्न होना। इनमें से जो मनुष्य योनि में उत्पन्न होता है यदि वह आलस्य और प्रमाद का त्याग कर अहिंसा का पालन करते हुये दान आदि शुभ कर्मों का पालन करता है तो उसे पुण्य की अधिकता के कारण स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है। इसके विपरीत कारण उपस्थित होने पर पशुपक्षी आदि योनियों में जन्म लेना पडता है। काम, क्रोध, लोभ और हिंसा में तत्पर होकर जो जीव मानवता से भ्रष्ट हो जाता है वह अपनी मनुष्य होने की योग्यता को भी खो बैठता है वही तिर्थगयोनि में जन्म पाता है। फिर सत्कर्मों का आचरण करने मनुष्य योनि में जन्म लेने के लिये उसका तिर्थगयोनि से उद्धार होता है। तदनन्तर वह जगत के भोगों से विरत होकर मुक्त हो जाता है। इन तीन गतियों को उर्ध्वगति, मध्यगति और अधोगति कहते हैं।

युधिष्ठिर ने पूछा सर्प शब्द, रूप, स्पर्श, रस और गन्ध इनका आधार क्या है। इसका यथार्थ रीति से वर्णन कर बताओ। इन सब विषयों को एक साथ ग्रहण क्यों नहीं कर सकते इसका भी रहस्य समझाओ। सर्प बोला राजन जिसे लोग आत्मा नामक द्रव्य कहते है वह स्थूल सूक्ष्म शरीर रूपी उपाधि स्वीकार करने के कारण बुद्धि आदि अन्त:करण से मुक्त हो जाता है और वह उपाधि विशिष्ट आत्मा ही इन्द्रियों के द्वारा नाना प्रकार के भोग भोगता है। ज्ञानेन्द्रिया, बुद्धि और मन ये ही इस शरीर में उसके कारण भोग साधन है। विषयों की आधारभूत ये जो इन्द्रियां है इनमें स्थित हुये मन के द्वारा यह जीवात्मा बाह्य वृत्तिद्वारा क्रमश: भिन्न विषयों का भोग करता है। विषयों के उपभोग के समय बुद्धि के द्वारा यह मन किसी एक ही विषय में लगाया जा सकता है। इसलिये एक साथ उसके द्वारा अनेकों विषयों का ग्रहण सम्भव नहीं है। जिसे हमने बुद्धि, इन्द्रिय और मन से युक्त होने पर भोक्ता बताया है वही आत्मा या अनात्मा के चिन्तन में लगी हुई उत्तम-अधम बुद्धि को रूपादि विषयों की ओर प्रेरित करता है। बुद्धि के उत्तर काल में भी विद्वान पुरुषों को एक अनुभूति दिखाई देती है जहां बुद्धि का लय और उदय होना स्पष्ट जाना जाता है वह ज्ञान ही आत्मा का स्वरूप है और वही सबका आधार है। यही क्षेत्रज्ञ आत्मा को प्रकाशित करनेवाली विधि है।

युधिष्ठिर ने पूछा हे सर्प मुझे मन और बुद्धि का ठीक ठीक लक्षण बताओ। अध्यात्मशास्त्र के विद्वानों को इसका जानना अत्यन्त आवश्यक है। सर्प बोला राजन बुद्धि को आत्मा के आश्रित समझना चाहिये इसलिये वह अपने अधिष्ठान भूत

आत्मा की इच्छा करती रहती है अन्यथा व आधार के बिना टिक नहीं सकती। विषय और इन्द्रियों के संयोग से बुद्धि उत्पन्न होती है और मन तो पहिले से ही उत्पन्न है। बुद्धि स्वयं वासनावाली नहीं है, वासनावाला तो मन ही होता है। मन और बुद्धि में बस इतना ही फर्क है। युधिष्ठिर बोले हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ आपकी इस तरह दुर्गति होने में मुझे बडी आशंका हो रही है। आपकी बुद्धि बडी ही उत्तम है। आपने बडे-बडे अद्भुत कर्म किये हैं। आपने स्वर्ग का निवास पाया और सर्वज्ञ तो आप हैं ही फिर आप कैसे इस मोह को प्राप्त हुये जो ब्राह्मणों का अपमान कर बैठे ? सर्प ने कहा राजन यह धन और सम्पत्ति बडे-बडे बुद्धिमान और शूरवीर मनुष्यों को भी मोह में डाल देते है। सुख और विलास का जीवन व्यतीत करनेवाले सभी मनुष्य मोहित हो जाते हैं। मैं भी ऐश्वर्य के मोह से मदोन्मत्त हो गया था। इस मोह के कारण मेरा पतन हो गया तब मुझे होश आया इसलिये तुम्हें भी सचेत कर रहा हूं। आपने मेरा बडा प्रिय कार्य किया। आपके द्वारा मेरा कष्टदायक शाप निवृत हो गया। पूर्वकाल में मैं स्वर्ग का राजा था और दिव्य विमानों पर चढकर आकाश में विचरता था। उस समय अहंकार के कारण मैं किसी को कुछ नहीं समझता था। ब्रह्मर्षि, यक्ष, देवता, गन्धर्व राक्षस और नाग जो भी इस त्रिलोकी में निवास करते थे सभी मेरा आदर करते थे और भेंट देते थे। राजन उस समय मेरी दृष्टि में इतनी शक्ति थी कि जिस ओर भी आंखे उठाकर देखता उसी का तेज छीन जाता था। मेरा अन्याय यहां तक बढ गया था कि एक हजार ब्रह्मर्षियों को नित्य प्रतिदिन मेरी पालकी ढोनी पडती थी। एक बार मैंने इन्द्र पत्नी शचि से समागम करना चाहा और मैंने सभी महर्षियों दुर्वासा, अगस्त्यादि को मेरी पालकी उठाने में कहार बनाकर जोत रखा था और मैंने उन्हे लात लगाकर कहा सर्प सर्प अर्थात जल्दी चलो जल्दी चलो तब वे क्रोधित हो बोले अरे जा तू सर्प हो जा और नीचे गिर। उनके इतना कहते ही मेरी सारी राजसी वेशभूषा राज चिन्ह लुप्त हो गये और मै उस पालकी से औधे मुंह किये नीचे गिरा तब मैंने अगस्त्य मुनि से याचना की भगवन प्रमादवश मैं विवेकशून्य हो गया इसलिये मुझसे यह घोर अपराध बन गया। अब आप क्षमा कर इस शाप का अन्त करें। मुझे नीचे गिरते देखकर अगस्त्य मुनि का हृदय दयार्द्र हो गया और वे बोले राजन धर्मराज युधिष्ठिर ही तुम्हें इस शाप से मुक्त करेंगे। जब तुम्हारे इस अहंकार और घोर पाप का फल क्षीण हो जायेगा तब तुम्हें फिर से तुम्हारे पुण्यों का फल प्राप्त होगा। तुम्हारे भाई भीम को मैंने अपनी फांस से मुक्त कर दिया। मैंने इसकी हिंसा नहीं की। तुम्हारा कल्याण हो अब मैं पुन: स्वर्गलोक को जाऊंगा। यह कहकर राजा नहुष ने अजगर का शरीर त्याग दिया और दिव्य देह धारण कर पुन: स्वर्ग को चले गये। धर्मराज युधिष्ठिर भी अपने भाइयों सहित, द्रौपदी सहित धौम्य मुनि को साथ ले अपने आश्रम में लौट आये और वहां एकत्रित सभी ब्राह्मणों से युधिष्ठिर ने पूरा वृत्तान्त कह सुनाया।

अपने कुल के पूर्वजों को उनके बन्धनों से मुक्त करनेवाले, उनका उद्धार करनेवाले पांडव ही है। वे कुल और जाति के गर्व और श्रेष्ठता को नष्टकर आचरण और कर्म पर बल दे रहे हैं। इससे कुरूकुल में जन्म लेकर भी दुर्योधन और उसके भाई गौरव के अधिकारी नहीं रह जाते जब कि पांडव क्षत्रिय कुल में जन्म लेकर भी ब्रह्मतत्व को प्राप्त होते हैं। वह सर्प अपनी योनि को त्याग कर मनुष्य में परिवर्तित हो गया और युधिष्ठिर को आशीर्वाद दिया कि तुम सदा धर्म पर स्थिर रहकर अपने शत्रुओं पर विजय पाओगे और इस पृथ्वी पर अखंड राज्य करोगे। दुर्योधन पांडवों की मानवता के प्रत्येक आदर्श को मूर्खता ही मानता था क्योंकि उसका लक्ष्य है केवल अपना स्वार्थ, लोभ, तृष्णा और संचय। दुर्योधन सिर्फ अपना स्वार्थ पहिचानता है, अन्य किसी का सम्बन्ध उसके लिये कोई महत्व नहीं रखता इसलिये जिन लोगों को उसने अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये संगठित किया है, अपने प्राण रहते वह उनको कभी बिखरने नहीं देगा। पांडव लोग काम्यक वन में सरस्वती नदी के तट पर निवास करने लगे। उस समय वहां कार्तिक की पूर्णिमा का पर्व था। शरद ऋतु का मौसम था।

आसपास के वनों में फलों की कोई कमी नहीं थी। वृक्ष फलों के बोझ से लदे पडे थे। मानवों की संख्या अधिक बढ जाने से हिंस्र पशु पीछे हटकर वन के अधिक सघन वन में चले गये। जल का भी वहां अभाव नहीं था।

## १२) श्रीकृष्ण का सत्यभामा और मार्कण्डेय मुनि के साथ पांडवों के पास आना

पांडवो को पता लग चुका था कि कृष्ण उनसे मिलने आ रहे हैं। प्रतिदिन अनेक मुनि तपस्वी, नैष्ठिक विद्वान, ब्राह्मण अकेले अथवा अपने परिवारसहित पांडवों के पास आ रहे हैं और उनसे मिलना चाहते हैं। पांडवों के निकट रहना चाहते हैं। वासुदेव श्रीकृष्ण इधर पांडवों के पास आ रहे हैं और वे यहां कुछ दिन रहेंगे यह सूचना मिल चुकी थी इसलिये भी बहुत सारे लोग उनके सान्निध्य का सुख भोगना चाहते थे।

ईश्वर ने मनुष्य के लिये ही नहीं अन्य जीव जन्तुओं के लिये भी उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पुष्कल मात्रा में पदार्थ उत्पन्न किये हैं। यदि सब लोग ठीक ठीक व्यवहार करे तो किसी को किसी वस्तु का अभाव नहीं हो सकता। किन्तु कुछ लोगों में बुद्धि का अभाव होता है और किसी में स्वार्थ का बाहुल्य। स्वार्थ का बाहुल्य भी तो बुद्धि का ही अभाव है। प्रकृति ने हमारे उपयोग हेतु जो शुद्ध तत्व बनाये हैं यदि हम ही स्वयं उन्हे दूषित करते रहेंगे तो यह प्रकृति मानव मात्र के जीने के अयोग्य हो जायेगी इसलिये नदी, सरोवरों के जल की रक्षा करनी चाहिये। युधिष्ठिर वासुदेव कृष्ण के लिये सारी व्यवस्था का निरीक्षण करने लगा।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय, पांडवों के पास सन्देश आया कि वासुदेव श्रीकृष्ण उनके पास पधारनेवाले हैं। इसके साथ ही दूसरा सन्देश यह भी आया कि स्वाध्याय और तपोनिष्ठ रहनेवाले कल्पान्त जीवी महात्मा मार्कण्डेय भी शीघ्र ही यहां आ रहे हैं। इतने में ही वासुदेव श्रीकृष्ण अपनी पटरानी सत्यभामा सहित रथ पर बैठकर वहां आ पहुंचे। कृष्ण ने धर्मराज युधिष्ठिर और महाबली भीम के चरणों में प्रणाम किया। धौम्य मुनि का पूजन किया। अर्जुन से गले मिले। फिर नकुल और सहदेव ने उन्हे प्रणाम किया। सत्यभामा द्रौपदी से गले मिली। सब प्रकार का शिष्टाचार समाप्त होने पर सभी पांडवों ने द्रौपदी और धौम्य मुनि सहित वासुदेव कृष्ण का स्वागत सत्कार किया। कृष्ण बोले धर्मराज धर्म का पालन राज्य की प्राप्ति से भी बढकर है। इसके लिये शास्त्र तप का उपदेश करते हैं। आपने अपने मधुर सत्य भाषण और सरल व्यवहार के कारण अपने धर्म का पालन करते हुये इहलोक और परलोक पर विजय प्राप्त कर ली है। आप निष्काम भाव से शुभ कर्मों का आचरण करते हो। धन के लोभ से स्वधर्म का त्याग नहीं करते इसीलिये आप धर्मराज कहलाते हैं। आप में दान, सत्य, तप, श्रद्धा, बुद्धि, क्षमा और धैर्य सब कुछ है। राज्य, धन, ऐश्वर्य और भोगों को पाकर भी आपने इन सद्गुणों को अपने में बरकरार रखा है। नि:सन्देह आपकी सभी मनोकामनाये पूर्ण होगी।

द्रौपदी मुस्कुराकर कृष्ण से बोली केशव तुम कह रहे थे कि मेरे पुत्र अब बडे हो गये हैं और अब वे काम्पिल्य से तुम्हारे पास आ गये हैं। कृष्ण बोले हां कृष्णे। पर पुत्र इतना बडा तो कभी नहीं होता कि मां सम्मुख उपस्थित हो और उसको उसकी आवश्यकता ही न हो। तुम्हारे सभी पुत्र प्रतिविन्ध्य, श्रुतसोम, श्रुतसेन, शतानीक, श्रुतकर्मा स्वस्थ और प्रसन्न हैं अब वे बडे हो गये है, तरुण हो गये है, आर्याव्रत के सर्वश्रेष्ठ यौद्धाओं में प्रमुख है। द्रौपदी भावना के धरातल पर भी स्वार्थी नहीं हो सकती। वह अपने पुत्रों और सुभद्रा के पुत्र में कोई भेद नहीं करती। द्रौपदी ने पूछा कृष्ण अभिमन्यु कैसा है ? सपत्नी की ईर्ष्या के स्थान पर उसने बडी बहन का स्नेह दिखाया है। यह है द्रौपदी का संयम और उसकी मर्यादा। कृष्ण बोले सुभद्रा भी सुखी है और अभिमन्यु भी स्वस्थ है। वह भी बडा हो गया। कृष्ण बोले इन बालकों को पापियों का नाश कर

एक धर्म राज्य की स्थापना करनी है। धृतराष्ट्र पुत्रों को उनके अपराधों का उचित दंड देना है। उन्हे उन पापियों से अपनी रक्षा करनी है। इन सबके लिये उन्हे शक्ति की आवश्यकता है, बल की, संगठन की, शस्त्राभ्यास की। रूक्मिणि पुत्र प्रद्युम्न उन्हे धनुर्विद्या में पारंगत बना रहे हैं। अर्जुन शिष्य सात्यकि अपना सारा सामर्थ्य उनमें ढाल रहे हैं। अभिमन्यु खडग, कला और गदा युद्ध में अद्वितीय है। उसने गदा युद्ध बलरामजी से सीखा है। वह अपने भाइयों को ये कला सिखा रहा है। रथ परिचालन और अश्वारोहण तो स्वयं सुभद्रा उन्हे सिखा रही है। याज्ञसेनी तुम्हारे सभी पुत्र बडे ही सुशील हैं। धनुर्वेद सीखने में उनका बडा अनुराग है। वे सदा ही सत्पुरुषों के आचरण का पालन करते हैं।

सहसा भीम ने कृष्ण से पूछ ही लिया कि आजकल दुर्योधन से कैसी पट रही है आपकी? और मुस्कुरा दिया। कृष्ण भी यह सुनकर चकित हुये भीम बोला अब तो वह आपका समधि हो गया। आपके महल में अब तो उसकी पुत्री लक्ष्मणा का ही आधिपत्य होगा। वह प्रतिदिन श्वसुर को भी अपने ईशारों पर चलाती होगी। कृष्ण बोले मझले भैया आपके इस विनोद के पीछे आपका संशय बोल रहा है और आपका संशय अस्वाभाविक भी नहीं है। मेरे सम्बन्ध तो धर्म से निर्धारित होते हैं मझले भैया, विवाहों से नहीं और आज भी वही है। लक्ष्मणा मेरे परिवार का अंग है और मेरे घर में रह रही है। उसका दबाव अपने पति साम्ब पर हो सकता है पर मुझपर नहीं। धर्मराज ने मुझे अपने धर्म के नाम पर बांध रखा है अन्यथा मैं तो आज ही दुर्योधन के साथ युद्ध के लिये तत्पर हूं। मैं धर्मराज के हाथों बाध्य हूं यद्यपि मुझे यह आभास होता जा रहा है कि इस युद्ध में जितना विलम्ब होगा, हमारी कठिनाइयां उतनी ही और बढती जायेगी। प्रत्येक नेतृत्व का एक अनुशासन होता है जो स्वैरिता को मर्यादित करता है। एक युग काल के पश्चात अनुचरों को अपना नेता बोझ लगने लगता है। ऐसे में धर्म का आग्रह क्रमश: अकेला और असंग हो जाता है। दर्शाह, कुकुर वृष्णि, भोज और अन्धक वंशों के वीर सदा आपकी आज्ञा का पालन करेंगे और आप जहां चाहे वहीं खडे रहेंगे। आप सदा के लिये शोक रहित हो अपना राज्य प्राप्त कर हस्तिनापुर में चले जायेंगे। पर मैं काल की गति देख रहा हूं धर्मराज। यहां कुछ भी तो स्थायी नहीं है। सब कुछ परिवर्तनशील है। यह सब कुछ ऐसा ही तो नहीं रहनेवाला। काल गति के थपेडे जाने भविष्य का कौन सा रूप हमारे सामने प्रस्तुत करेंगे? आज सभी प्रमुख प्रमुख यादव बलराम, प्रद्युम्न, साम्ब सात्यकि और कृतवर्मा सब मेरे साथ हैं और मेरी इच्छा का पालन करते हैं, मेरी आज्ञा में चलते हैं किन्तु इसके पहिले की ये लोग मेरा साथ छोडने विवश हो जाये मैं चाहता हूं कि उनके सारे गुण सामर्थ्य, सारी क्षमतायें पांडव पुत्रों में संचित हो जाये क्योंकि और कोई चाहे यह धर्म युद्ध लडे या न लडे पर पांडव पुत्रों को तो यह युद्ध लडना ही पडेगा।

अर्जुन ने चिंतित स्वर में पूछा ऐसा क्यों कह रहे हो वासुदेव कृष्ण? कृष्ण बोले क्योंकि धर्म और सत्य के नाम पर चलनेवाला क्रमश: असंग होते जाता है और अन्तत: अकेला ही रह जाता है। उसके साथ उसके भाई बन्धु, पति-पत्नी, मित्र सम्बन्धी, पुत्र शिष्य यहां तक कोई भी नहीं। अंतत: उसको अकेले ही चलना पडता है। मैं तो यहां तक कह रहा हूं अर्जुन कि पांचाली एक दिन तुम्हारा साथ छोड देगी और तुम धर्मराज युधिष्ठिर का साथ छोड दोगे। यह साथ छूटना अछा ही है अन्यथा पुत्र मित्र और सगे सम्बन्धी यदि अपना मार्ग पृथक न कर ले तो तुम्हारा ही मार्ग बदल देंगे। वे अपनी इच्छाओं और कामनाओं की कैंची से तुम्हारे ही पंख कतर डालेंगे, तुम्हे असहाय कर देंगे, तुम्हें अपने ही आदर्शों के विरुद्ध कार्य करने को बाध्य कर देंगे।

कृष्ण ने पूछा आगे के लिये आपने क्या योजना बनाई धर्मराज? अज्ञातवास के विषय में क्या विचार किया है आपने? धर्मराज बोले निश्चय तो अभी कुछ भी नहीं किया है वासुदेव परन्तु सोचता हूं कि हम कोई ऐसा शान्तिपूर्ण स्थान चुने जो

जीने के लिये सुविधापूर्वक हो। प्रकृति सुरम्य हो वहां पर न हिंस्र पशु हो तथा हस्तिनापुर से अधिक दूर भी न हो ताकि माता तथा विदुर काकाश्री से भी यदा कदा सम्पर्क बना रहे। कृष्ण बोले आप शान्ति की चर्चा कर रहे हैं धर्मराज पर सुरक्षा की नहीं। आप हस्तिनापुर के निकट कोई शान्त वन खोज रहे है किन्तु दुर्योधन आपको कहीं शान्ति से रहने देगा तब न? युधिष्ठिर बोला यदि हम उससे कुछ मांगे नहीं और उससे कुछ कहे नहीं, उसके मार्ग में ही नहीं आये तो क्यों वो हमे शान्ति से नहीं रहने देगा? कृष्ण बोले आपकी शान्ति ही तो दुर्योधन की अशान्ति है। वह मानसिक रोगी है जो आपकी पीडा और कष्ट में ही अपना सुख खोजता है। आप शान्ति से रहने में सफल हो गये तो वह उसे अपनी पराजय मानता है। उसकी विजय तो आपको पीडित करने में है। महाराज युधिष्ठिर ने कृष्ण के विचार जानकर उनकी प्रशंसा की और उनको हाथ जोडकर बोले केशव नि:सन्देह आप ही पांडवों के आश्रय हैं। सभी कुन्ती पुत्र आपकी शरण में है। हमें पूर्णत: विश्वास है कि समय आने पर हमारे लिये आप जो कुछ कर रहे हैं उससे भी बढकर हमारा प्रिय करेंगे। लगभग १२ वर्षों का समय हमने निर्जन वन में घूम फिरकर बिता दिया है और अब विधिपूर्वक अज्ञातवास की अवधि पूरी कर हम आपकी शरण लेंगे। इस प्रकार कृष्ण और युधिष्ठिर बातचीत कर ही रहे थे कि इतने में हजारों वर्षों की आयुवाले तपोवृद्ध मार्कंडेय मुनि वहां पर आये।

मार्कण्डेय मुनि अजर अमर हैं। वे रूप और उदारता आदि गुणों से युक्त है तथा सबसे वृद्ध। वहां पधारने पर समस्त पांडवों ने कृष्ण और वनवासी ब्राह्मणों ने मार्कण्डेय मुनि का पूजन कर उन्हे बैठने के लिये आसन दिया। उनका आतिथ्य करके वे आसन पर विराजमान हुये। उसी समय देवर्षि नारद भी वहां आ पहुंचे। पांडवों ने उनका भी यथायोग्य सत्कार किया। धर्मराज युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय मुनि से प्रश्न किया मुनिवर आप तो सबसे प्राचीन है। देवता, ऋषि, महात्मा और राजर्षियों आदि सबका चरित्र आपको मालूम है। धर्म का पालन करने पर भी जब मैं अपने को सुखों से वंचित पाता हूं और सदा दुराचार में ही प्रवृत्त रह रहे दुर्योधन आदि को सदा ऐश्वर्यशाली होते देखता हूं तो मेरे मन में प्राय: यह प्रश्न उठता है कि पुरुष जिन शुभ अथवा अशुभ कर्मों का आचरण करता है उनका फल किस तरह भोगता है? और ईश्वर कर्मों का नियन्ता किस प्रकार होता है? मनुष्यों को सुख अथवा दु:ख मिलने में क्या कारण है? मनुष्य को ईश्वर की क्या आवश्यकता है? क्या करना है हमें उस ईश्वर का जो संसार और समाज के सारे सुख त्याग कर प्राप्त होता है?

मार्कण्डेय मुनि बोले ईश्वर की आवश्यकता केवल उन्ही को है जो उसके अभाव से सुखी नहीं है। यदि कोई व्यक्ति संसार में रहकर संसार को पाकर, संसार में लिप्त होकर सुखी है तो वास्तव में उसे ईश्वर की आवश्यकता नहीं है। ईश्वर की आवश्यकता तो उसी व्यक्ति को है जो सारा संसार पाकर भी सुखी नहीं है। युधिष्ठिर बोले आवश्यक वस्तु तो सबके लिये आवश्यक है। कोई ऐसे तो नहीं कह सकता कि वायु किसी के लिये आवश्यक है और किसी के लिये नहीं।

मार्कण्डेय मुनि ने उत्तर दिया आवश्यक होना एक बात है और उस आवश्यकता का अनुभव होना दूसरी बात। वायु की आवश्यकता हमें हर पल रहती है और वह हमें हर पल उपलब्ध भी रहती है परन्तु उसकी आवश्यकता का हमें अनुभव नहीं होता अत: हम उसे प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करते। जल उपलब्ध होता है किन्तु उसकी आवश्यकता का अनुभव होने पर ही हम कूप, सरिता, सरोवर, नदी के तट पर जाते है। युधिष्ठिर बोले ऋषिवर इसका अर्थ तो यह हुआ कि ईश्वर हमें हर क्षण उपलब्ध है किन्तु हम संसार में सुखपूर्वक उलझे रहने के कारण उसकी आवश्यकता का अनुभव नहीं करते इसलिये हम उसे प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करते। तब एक ब्राह्मण तपस्वी ने पूछा पर ईश्वर है इसका क्या प्रमाण है ? मैं नास्तिक हूं। मैं तो मानता हूं कि यह केवल एक स्वचलित व्यवस्था की सत्ता है। मार्कण्डेय मुनि बोले भद्र उसी स्वचालित शाश्वत व्यवस्था को ही भक्त लोग ईश्वर कहते हैं। आप नास्तिक नहीं है। आपने ईश्वर को एक भिन्न नाम दे दिया है। आप

नास्तिक तब होते जब आप अपने से बडी और शक्तिशाली किसी व्यवस्था के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। आप यह भी कह सकते है कि आप ही ईश्वर हैं और आप ही जीव को प्राण देते हैं, आप ही उसका पालन-पोषण करते हैं और आप ही उसके प्राणों का हरण करते हैं। तब युधिष्ठिर बोला हम ऐसा नहीं कहते, हम प्रकृति और उसकी व्यवस्था में विश्वास करते हैं। मार्कण्डेय मुनि बोले प्रकृति ही ईश्वर का प्रकट रूप है। अप्रकट के भी कुछ प्रकट लक्षण होते है जैसे वायु में वेग है। ईश्वर प्रत्येक अस्तित्व में है, उसके केन्द्र में और उसके मूल में; मनुष्य के हृदय में विराजमान है? तब उस तपस्वी ब्राह्मण ने पूछा तो फिर वो दिखाई क्यों नहीं देता? मार्कण्डेय मुनि बोले दिखाई तो देता है यदि पदार्थ पर से अन्य आवरण हटा दिये जाये और व्यक्ति की दृष्टि में दोष न हो तो वह उस पदार्थ को देख सकता है। युधिष्ठिर ने पूछा क्या ईश्वर को देखना सम्भव है? क्या आपने ईश्वर को देखा है? मार्कण्डेय मुनि बोले ईश्वर को जानना, उसका साक्षात्कार करना, उसके निकट जाना, उसके अनुरूप बनना और अन्तत: वही हो जाना यह सब कुछ सम्भव है। ईश्वर मेरे भीतर है और उनके भीतर मैं हूं। ईश्वर का वास हमारे हृदय में है किन्तु हम उसे देख नहीं पाते क्योंकि उस पर काम, क्रोध, लोभ, मोह, घृणा, द्वेष, मद, मात्सर्य, भय, त्रास, अहंकार इत्यादि अनेक आवरण पडे हुये हैं। ईश्वर तो दया का पुंज है, करुणा का सागर है। मनुष्य उससे जो भी मांगता है ईश्वर उसे वहीं देता है। उससे संसार मांगोगे तो संसार देगा, उससे स्वर्ग मांगोगे तो स्वर्ग मिलेगा और उससे मोक्ष मांगोगे तो वह मोक्ष देगा। ईश्वर की कृपा होने पर ये आवरण हटते है, इन विकृतियों के हट जाने पर ईश्वर उद्भासित होने लगता है। युधिष्ठिर ने पूछा क्या शब्दों से अर्थात प्रार्थना करने मात्र से सब कुछ मिल जाता है ? मार्कण्डेय मुनि बोले कामना यह कर्म का पूर्व रूप है। आपने अपने हाथों में एक पक्षी को पकड रखा है और आपको निरन्तर यह भय है कि आपकी हथेलियां खुलते ही वह पक्षी उड जायेगा। जब आप अपनी मुट्ठी खोल देंगे तो सांसारिकता का पक्षी उड जायेगा और हाथ फैलायेंगे तो ईश्वर की अनुकम्पा विभूति बन आपकी हथेलियों पर प्रकट होगी। तब वह तपस्वी ब्राह्मण बोला हमारी मुट्ठी में कुछ भी तो नहीं है। हम जन्म से कंगाल है, धन सम्पति कुछ भी तो नहीं है। मार्कण्डेय बोले तुम्हारे शरीर की मुट्ठियां खुली हुई है मन की नहीं। आपको धन का त्याग नहीं करना है, धन की आसक्ति छोडनी है। संसार नहीं छोडना है, संसार की आसक्ति को त्यागना है। जिस क्षण आपके मन से काम, क्रोध, लोभ, मोह छूट जायेंगे उसी क्षण ईश्वर वहां प्रकट हो जायेंगे। युधिष्ठिर ने पूछा तो ईश्वर फिर उसकी कृपा से नहीं, हम अपने कर्मों द्वारा उसे प्राप्त कर सकेंगे? मार्कण्डेय बोले हमारे कर्मों से ही उसकी दया प्रेरित होती है। भक्ति, ज्ञान, कर्म सबमें योग है, सबमें आसक्ति रहित उद्यम है। अकर्म से ईश्वर कभी प्रसन्न नहीं होता।

युधिष्ठिर के मन में ये बाते गहरी उतरती जा रही थी कि ईश्वर तो जीव को मिलने का अनवरत प्रयत्न करता है पर जीव ही अपने विभिन्न प्रपंचों से ईश्वर को स्वयं से दूर किये हुये है। ईश्वर ने क्या इसीलिये पांडवों की सांसारिक सृष्टि का हरण कर लिया है कि ईश्वर उनके सम्मुख प्रकट होगा। कृष्ण तो ईश्वर के इतने निकट हैं जैसे उसका तो ईश्वर के साथ तादात्म्य हो ही गया। फिर कृष्ण ईश्वर के बनाये जीवों की रक्षा के लिये युद्ध से विरत क्यों नहीं होते? कृष्ण कर्मशील है पर उसके मन में किसी प्रकार की आसक्ति नहीं है। युधिष्ठिर के मन में आसक्ति है, मोह है, शायद इसी आसक्ति के कारण ही वे ईश्वर का साक्षात्कार नहीं कर पाये। मोह ही तो अज्ञान है। कृष्ण में न अहंकार है, न मोह है, न आसक्ति। हमारा धर्म है ईश्वर को जानना, उसके निकट जाना, उसके अनुरूप बनना और अन्तत: वही हो जाना।

मार्कण्डेय मुनि बोले राजन यहां जानने योग्य जो कुछ भी है वह सब तुम्हें विदित है, केवल लोकमर्यादा की रक्षा के लिये यह सब तुम मुझसे पूछ रहे हो। मनुष्य इस लोक अथवा परलोक में कैसे सुख-दु:ख उपभोग करता है इसके बारे में सुनो।

सर्वप्रथम प्रजापति ब्रह्मा उत्पन्न हुये। उन्होने जीवों के लिये निर्मल तथा विशुद्ध शरीरों का निर्माण किया। साथ ही शुद्ध धर्म का ज्ञान करानेवाले उत्तम शास्त्रों को प्रकट किया। उस समय के सभी नर-नारी उत्तम व्रतों और धर्म का पालन करते थे। उनका संकल्प कभी भी व्यर्थ नहीं होता था। वे सदा ही सत्य भाषण करनेवाले थे। सब के सब मनुष्य ब्रह्मभूत, पुण्यात्मा और दीर्घायु होते थे। सभी स्वच्छन्दतापूर्वक आकाश मार्ग से उडकर देवताओं से मिलते थे। स्वच्छन्दचारी होने के कारण जब इच्छा हुई पुन: लौट आते थे। वे स्वेच्छा से ही मरते और इच्छानुसार ही जीवन जीते थे। उन्हे किसी प्रकार की बाधा नहीं सताती थी और उन्हे न कोई भय ही होता था। वे उपद्रव रहित, पूर्णकाम, सभी धर्मों को प्रत्यक्ष करनेवाले जितेन्द्रिय, राग द्वेष रहित थे तथा हजारों वर्षों की आयु जीते थे और हजारों हजारों सन्तान उत्पन्न करने की क्षमतावाले होते थे। कालान्तर में मनुष्यों की आकाश गति बन्द हो गई और लोग पृथ्वीपर ही विचरने लगे। उन पर काम क्रोध का अधिकार हो गया। वे छल कपट से अपनी जीविका चलाने लगे और लोभ मोह के वशीभूत हो गये। इसलिये इस शरीर पर उनका अधिकार नहीं रहा। इस तरह वे बार-बार विभिन्न योनियों में जन्म-मरण का क्लेश पाने लगे। उनकी कामनाये, उनके संकल्प और उनका ज्ञान सभी निष्फल हो गये। स्मरण शक्ति क्षीण हो गई। सभी एक-दूसरे पर शंका सन्देह कर क्लेश देने लगे। इस प्रकार पाप कर्मों में लिप्त हुये पापियों की उनके कर्मानुसार आयु भी घट गई। इस संसार में मृत्यु के पश्चात जीव की गति उनके कर्मों के अनुसार मिलती है। यम के स्थापित किये हुये पाप पुण्य कर्मों के फल का भोग करनेवाला जीव प्राप्त हुये सुख-दु:ख को दूर करने में समर्थ नहीं है। कोई प्राणी इस लोक में सुख पाता है और परलोक में दु:ख। किसी किसी को परलोक में सुख मिलता है और इस लोक में दु:ख तो किसी को दोनों ही लोकों में सुख मिलता है और किसी को दोनों ही लोकों में दु:ख उठाना पडता है। जिनके पास बहुत धन होता है, वे नित्य आनन्द भोगते हैं, शरीर सुख में आसक्त हो वे इसी लोक में सुख पाते हैं। परलोक में तो उनके लिये सुख का नाम भी नहीं है। जो लोग इस लोक में योग साधना करते हैं, कठिन तपस्या करते हैं और स्वाध्याय में तत्पर रहते हैं। इस प्रकार जितेन्द्रिय एवं अहिंसा परायण होकर जो अपने शरीर को निर्बल, दुर्बल कर लेते है उनके लिये इस लोक में सुख नहीं है, पर वे परलोक में सुख पाते है। जो पहिले धर्म का आचरण करते है और धर्मपूर्वक धन का उपार्जन कर यज्ञ यज्ञादि में उस धन का सदुपयोग करते है उनके लिये यह लोक और परलोक दोनों ही सुख के स्थान है परन्तु जो मूर्ख मनुष्य विद्या, तप और दान के लिये प्रयास न कर केवल विषय सुख के ही लिये प्रयत्न करते हैं उनके लिये न तो इस लोक में सुख है और न परलोक में ही। युधिष्ठिर तुम बडे ही पराक्रमी और सत्यवादी हो। देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिये तुम भाइयों का प्रादुर्भाव हुआ है। तुम तपस्या, दम और सदाचार में सदा ही तत्पर रहनेवाले वीर हो इस संसार में बहुत बडे-बडे महत्वपूर्ण कार्य कर तुम देवता और ऋषियों को प्रसन्न करोगे और अन्त में उत्तम लोकों की प्राप्ति करोगे। अपने इस वर्तमान कष्ट को देखकर किसी प्रकार की शंका मत करो। यह दुख तो तुम्हारे भावी सुख का ही कारण है।

तदनन्तर युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय मुनि से श्रेष्ठ उत्तम ब्राह्मणों के लक्षण उनके बारे में जानने की जिज्ञासा की।

**१३) मार्कण्डेय मुनि का युधिष्ठिर को उपदेश- १) उत्तम ब्राह्मणों का महत्व-** मार्कण्डेय मुनि बोले राजन हैहर्यवंशी क्षत्रियों का परपुरंजय नाम का एक बडा ही सुन्दर अपने वंश की मर्यादा बढानेवाला राजकुमार था। एक दिन वह वन में शिकार खेलने गया। राजकुमार की दृष्टि एक मुनि पर पडी जो काला मृगचर्म ओढे थोडी दूरी पर बैठे थे। कुमार ने उन्हे काला मृग समझकर अपने आखेट का निशाना बना दिया। उस मुनि की हत्या हो गई। यह जानकर राजकुमार को बडा अनुताप हुआ। उसने अपने वंश के क्षत्रियों के पास जाकर उन्हे पूरी घटना सुनाई। वे सब यह सुनकर

बहुत दु:खी हुये। वे सब कश्यप नन्दन अरिष्टनेमी के आश्रम पर गये और मुनि श्रेष्ठ अरिष्टनेमी को प्रणाम किया। मुनिने भी उनका आतिथ्य सत्कार मधुपर्क आदि से किया। उन क्षत्रियों ने मुनि से कहा हे मुनिवर हमसे अंजाने में एक दूषित कर्म बन गया कि हम से एक ब्राह्मण की हत्या हो गई है।

ब्रह्मर्षि अरिष्टनेमी बोले आप लोगों से ब्राह्मण की हत्या कैसे हुई? और उस मरे हुये ब्राह्मण का शव कहां है? तब उन क्षत्रियों ने ब्राह्मण की हत्या का ठीक ठीक वृतान्त बता दिया और उन्हे अपने साथ लेकर उस स्थान पर आये जहां मुनि की हत्या हुई थी। किन्तु वहां उन्हे उस मरे हुये मुनि का शव नहीं मिला। मुनि श्रेष्ठ अरिष्टनेमि बोले परपुरंजय यही वो ब्राह्मण है जिसे तुम लोगों ने मार डाला था। यह मेरा ही पुत्र है जो तपोबल से युक्त है। वे सब क्षत्रिय उस मुनिकुमार को जीवित देखकर बडे ही आश्चर्य में पड गये और कहने लगे यह तो बडा ही आश्चर्य है। यह मरा हुआ ब्राह्मण यहां कैसे आ गया? इसे किस प्रकार जीवन मिला? क्या यह तपस्या के बल से पुन: जीवित हो गया? तब ब्रह्मर्षि अरिष्टनेमी बोले पुर पुरंजय मृत्यु हम लोगों पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकती। हम सदा ही सत्यभाषी हैं और सर्वदा अपने धर्म का पालन करते हैं इसलिये हमे मृत्यु का भय नहीं। हम ब्राह्मणों की कुशल और शुभ कर्मों की ही चर्चा करते है, उनकी निन्दा या उनके दोषों का बखान नहीं करते। हम अतिथियों को अन्न व जल से तृप्त करते हैं। हमारे पर जिनका पालने का भार है उन्हे हम सम्पूर्ण आहार देते हैं और उससे बचा हुआ भोजन स्वयं ग्रहण करते हैं। हम सदा शम, दान, दम, क्षमा और तीर्थ सेवन में तत्पर रहनेवाले हैं। पवित्र देश में निवास करते हैं। इन्ही सब कारणों से हमें मृत्यु का भय नहीं है। अब आप लोग भयभीत न हो ब्रह्महत्या का पाप आप लोगों को नहीं लगेगा। सभी क्षत्रियों ने मुनि अरिष्टनेमी का सम्मान व पूजन किया और वहां से अपने स्थान को लौट गये।

**२) तार्थ्य-सरस्वती सम्वाद-** वैशम्पायन बोले जनमेजय मुनि तार्क्ष्य ने देवी सरस्वती से प्रश्न किये वे सब मार्कण्डेय मुनि ने राजा युधिष्ठिर को सुनाये। मार्कण्डेय मुनि बोले तार्क्ष्य ने पूछा इस संसार में मनुष्य का कल्याण किस प्रकार हो ? किस प्रकार का आचरण करने से मनुष्य अपने धर्म से भ्रष्ट नहीं होता ? तब सरस्वती देवी ने कहा हे मुनि जो प्रमाद का त्याग कर पवित्र भाव से नित्य स्वाध्याय, प्रणव मन्त्र का जप इत्यादि करता है और अर्चि आदि मार्गों से प्राप्त होनेवाले योग्य सगुण ब्रह्म को जान लेता है वह ब्रह्मलोक में जाने का अधिकारी होता है और देवताओं के साथ उसका प्रेम सम्बन्ध हो जाता है। दान करनेवालों को भी उत्तम लोकों की प्राप्ति होती है। वस्त्र दान करनेवाला चन्द्रलोक को प्राप्त करता है। स्वर्ण दान करेनवाला देवता होता है। जो अच्छे रंग वर्ण की सरलता से दूध देनेवाली, अच्छे बछडे प्रसव करनेवाली, रस्सी तोडकर भाग जानेवाली न हो ऐसी गाय का जो दान करते हैं वे लोग गौ के शरीर में जितने रौये हो उतने वर्षों तक पुण्य लोकों में पुण्य फलों का भोग करते हैं। जो कोई कपिला गाय को वस्त्र उठाकर उसके पास कांसे की दोहने का पात्र, द्रव्य, वस्त्र इत्यादि एवं दक्षिणा सहित दान करता है उसे कामधेनु गो की प्राप्ति होती है और उसके सभी मनोरथ और कामनायें पूर्ण होती हैं। गो दान करनेवाला मनुष्य अपने पुत्र, पौत्र आदि अपनी सात पीढियों का नरक से उद्धार करता है। काम, क्रोध आदि दानवों के चंगुल में फंसकर घोर अज्ञान के अन्धकार से परिपूर्ण नरक में गिरनेवाला भी गो दान करने से अपने को बचा लेता है जैसे वायु के बहने से नाव का पाल समुद्र में डूबते हुये मनुष्य को। ब्राह्म विवाह की विधि से कन्यादान करनेवाला, ब्राह्मण को पृथ्वीदान देनेवाला और शास्त्रीय विधि के अनुसार अन्य वस्तुओं का दान करनेवाला मनुष्य इन्द्र लोक की प्राप्ति करता है। जो सदाचारी रहकर नियम पालन कर सात वर्षों तक प्रज्ज्वलित अग्नि में हवन करता है वह अपनी २१ पीढ़ियों का उद्धार करता है।

तार्क्ष्य मुनि ने पूछा देवि अग्निहोत्र के क्या नियम हैं? सरस्वती देवी ने उत्तर दिया मुने अपवित्र अवस्था में हाथ पैर धोये बिना कभी भी हवन नहीं करना चाहिये। जो वेद का पाठ और अर्थ नहीं जानता, या फिर अर्थ जानने पर भी जिसे अनुभव नहीं है वह अग्निहोत्री नहीं हो सकता। देवता यह जानना चाहते हैं कि मनुष्य किस भाव से हवन कर रहा है? देवता लोग पवित्रता चाहते हैं इसलिये वे श्रद्धाहीन पुरुष के दिये हुये हविष्य को स्वीकार नहीं करते। वेद को न जाननेवाले पुरुष को देवताओं को हविष्य प्रदान करने के कार्य में प्रयुक्त न करें। क्योंकि ऐसे मनुष्य का हवन करना व्यर्थ हो जाता है। अश्रोत्रिय पुरुष को वेद में अपूर्व अपरिचित कहा गया है। जैसे मनुष्य अपरिचित पुरुष का दिया अन्न भोजन ग्रहण नहीं करता वैसे ही अश्रोत्रिय का दिया हुआ हविष्य देवता ग्रहण नहीं करते। जो धनादि के अभिमान से रहित हो सत्यव्रत का पालन करते है और यज्ञ अवशिष्ट अन्न का ही अमृत भोजन करते हैं वे पवित्रता से गौओं के लोक को पाते हैं और वहां परमात्मा के दर्शन पाते हैं।

तार्क्ष्य मुनि ने पूछा भद्रे आप परमात्मास्वरूप क्षेत्रज्ञ भूता ब्रह्मविद्या और कर्मफल को प्रकाशित करनेवाली उत्कृष्ट बुद्धिवाली आप क्या हैं और कौन हैं? सरस्वती देवी ने उत्तर दिया मुने मैं परापर विद्या स्वरूपा सरस्वती हूं। तुम्हारी आशंकाये, संशय और सन्देह को मिटाने यहां प्रकट हुई हूं। आन्तरिक श्रद्धाभाव में मेरी स्थिति है। जहां श्रद्धा भाव हो वही मैं प्रकट होती हूं। मैंने तुम्हे तात्विक विषयों का वर्णन किया है। तार्क्ष्य ने पूछा देवि जिसे परम कल्याण स्वरूप मानते हुये मुनि जन इन्द्रियों आदि का निग्रह करते है तथा जिस परम मोक्ष स्वरूप में धीर पुरुष प्रवेश करते हैं उस शोकरहित परम मोक्ष पद के बारे में बताये। जिस परम मोक्ष पद को सांख्य योगी और कर्मयोगी जानते हैं उस सनातन मोक्ष तत्व को मैं नहीं जानता। तब देवि सरस्वती ने बताया हे मुनि स्वाध्याय रूपी योग में लगे हुये तथा तप को ही धन माननेवाले योगी व्रत, पुण्य और योग के साधनों से जिस परम पद को प्राप्त कर शोकरहित हो, मुक्त हो जाते हैं वही परात्पर सनातन ब्रह्म है। वेदवेत्ता उसी परद पद को प्राप्त होते हैं। उस परम ब्रह्म में ब्रह्माण्ड रूपी एक विशाल वेत का वृक्ष है। वह भोग स्थान रूपी अनन्त शाखाओं से युक्त तथा शब्दादि विषयों से सम्पन्न है। उस ब्रह्माण्ड रूपी वृक्ष का मूल अविद्या है। अविद्या रूपी मूल से भोग वासना मयी निरन्तर बहनेवाली अनन्त नदियां उत्पन्न होती हैं। वे नदियां ऊपर से तो रमणीय, पवित्र, सुगन्धवाली प्रतीत होती है तथा मधु के समान मधुर एवं जल के समान तृप्ति करनेवाले विषयों को बहाया करती है। वास्तव में सब भूने हुये जौ के समान फल देने में असमर्थ, अनेक छिद्रोंवाली, मांस के समान अपवित्र, सूखे शाक के समान सार शून्य और खीर के समान रुचिकर होने पर भी कीचड के समान चित्त में मलिनता उत्पन्न करनेवाली है। बालू के कणों के समान परस्पर विलग एवं ब्रह्माण्ड रूपी बेंत के वृक्ष की शाखाओं में बहनेवाली है। हे मुने इन्द्र, अग्नि और पवन आदि देवता मरूदगणों के साथ जिस ब्रह्म को प्राप्त कर यज्ञों द्वारा जिसका पूजन करते हैं वह मेरा परम पद है।

**३) विवस्वत मनु का मत्स्यावतार चरित्र-** वैशम्पायन बोले जनमेजय युधिष्ठिर ने मुनिवर मार्कण्डेय जी से पूछा महामुने आपने हजार हजार युगों के अन्तर से होनेवाले अनेकों महाप्रलय देखे है। इस संसार में आपके समान दीर्घजीवी बडी आयुवाला दूसरा कोई नहीं है। आप भगवान नारायण के पार्षदों में भी विख्यात हैं। परलोक में आपकी महिमा का सर्वत्र गान होता है। आपने ब्रह्म उपलब्धि के स्थान भूत हृदय कमल की कर्णिका का भोग कला से उद्घाटित कर वैराग्य और अभ्यास से प्राप्त दिव्य दृष्टि से विश्वरचयिता भगवान का अनेकों बार साक्षात दर्शन किया है। सबको मारनेवाली मृत्यु और सबके शरीर को क्षीण तथा दुर्बल बनानेवाली वृद्धावस्था आपका स्पर्श नहीं करती। हमें अब आप वैवस्त मनु के चरित्र का बखान कर यह बताये यह मत्स्यावतार किस प्रकर हुआ और क्यों हुआ? मार्कण्डेय बोले राजन

विवस्वान सूर्य के एक प्रतापी पुत्र हुये जो प्रजापति के समान कान्तिमान और महान ऋषि था। वे बदरिकाश्रम में आकर दस हजार वर्ष तक कठोर तपस्या करते रहे। एक दिन मनु चीरणी नदी के तटपर तपस्या कर रहे थे तो उनके पास एक छोटी मछली ने आकर कहा महात्मन मैं एक छोटीसी मछली हूं। मुझे यहां अपने से बडी मछलियों से सदा डर बना रहता है। आप मुझपर कृपा कर मेरी रक्षा करें।

वैवस्त मनु को उस मत्स्य की बात सुनकर बडी दया आई और उन्होने उसे अपने हाथ पर उठा लिया तथा पानी से बाहर निकालकर उसे एक जल पात्र कुम्भ में रख दिया। विवस्वान मनु का उस मत्स्य में पुत्र भाव हो गया। उसकी ठीक तरह से देखभाल करने के कारण वह मत्स्य उस जलपात्र में बढने लगा और पुष्ट होने लगा। कुछ ही समय में वह बढकर आकार में बडा हो गया अत: उस जल कुम्भ में उसका समाना दुष्कर हो गया। एक दिन उस मत्स्य ने मनु से कहा राजन मुझे इससे अच्छा कोई दूसरा स्थान दे, यह स्थान तो मेरे लिये छोटा हो रहा है। तब विवस्वान मनु ने उसे उस जल पात्र से निकालकर एक बहुत बडे कुएं में डाल दिया। वह कुआ दो योजन लम्बा और एक योजन चौडा था। वहां भी वह मछली अनेकों वर्षोंतक बढती रही और बढकर आकार इतना बडा हो गया कि अब उसका विशाल शरीर उस कुएं में भी नहीं समा सका। तब उस मत्स्य ने फिर मनु से कहा राजन अब तो आप मुझे समुद्र की रानी गंगा जल में डाल दे। वहां मैं आराम से रह सकूंगा।

उस मत्स्य के ऐसा कहनेपर मनु ने उसे गंगा जल में ले जाकर छोड दिया। कुछ काल तक वहां रहने के पश्चात वह और बढ गया। उसने फिर मनु से कहा राजन अब मैं इस गंगा नदी में भी नहीं रह सकता कारण मेरा शरीर इतना बडा हो गया कि मैं हिल डुल भी नहीं सकता। आप कृपा कर मुझे समुद्र में ले चलिये। तब मनु ने उसे गंगा नदी में से निकालकर समुद्र के जल में छोड दिया। समुद्र में छोडने पर उस महामत्स्य ने हंसकर मनु से कहा हे मनु तुमने मेरी हर तरह से रक्षा की है। थोडे ही समय में इस चराचर जगत का प्रलय होनेवाला है। समस्त विश्व के डूब जाने का समय उपस्थित होनेवाला है। आप एक सुदृढ नौका तैयार कर उसे मजबूत रस्सी से बांध दो और सप्तर्षियों को साथ लेकर उस पर सवार हो जाना। सब प्रकार के अन्न और औषधियों के बीजों का संग्रह कर उन्हे सुरक्षित रूप से नाव पर रखकर वहीं बैठे बैठे मेरी प्रतीक्षा करना। समय आने पर सींगवाले महामत्स्य के रूप में वहां आऊंगा इससे तुम मुझे पहिचान जाओगे। अब मैं समुद्र में रमण करने जा रहा हूं।

उस मत्स्य के कहे अनुसार मनु सब प्रकार के बीज और औषधि लेकर अपने पुत्र, पौत्र आदि सात पीढियों का उद्धार कर मत्स्य द्वारा बताई उस सुदृढ़ नौका को तैयार करवा कर उसमें बैठ गये और उत्ताल तरंगों से लहराते हुये समुद्र में तैरने लगे। उन्होंने उस महामत्स्य का स्मरण किया। तब वह श्रृंगधारी मत्स्य उनके पास आया। मनु ने नौका की रस्सी खोलकर उस मत्स्य के सींग में बांध दी। जिससे वह मत्स्य उस नाव को बडे वेग से समुद्र में खीचने लगा और नाव पर बैठे हुये सभी सप्तर्षि और वैवस्त मनु को जल के ऊपर ही तैराता रहा। उस समय समुद्र में ऊंची ऊंची लहरे उठ रही थी। पानी के वेग से उसमें गर्जना हो रही थी। प्रलयकालीन वायु के झोकों से वह नाव डगमगा रही थी। उस समय न दिशाओं का पता चल रहा था और न ही कहीं भूमि थी। सब कुछ जल मग्न था। द्यूलोक और आकाश भी जलमय हो रहा था। केवल मनु, सप्तर्षि और वह मत्स्य ये ही दिखाई पड रहे थे। इस प्रकार वह महामत्स्य बहुत वर्षों तक महासागर में उस नाव को सब ओर खींचता रहा।

प्रलय का काल समाप्त होनेपर वह मत्स्य उस नाव को खींचकर हिमालय के सबसे ऊंचे शिखर पर ले गया तब उस पर बैठे सप्तर्षियों के आदेश से उस नौका को उस शिखर से बांध दिया। आज भी वह हिमालय का शिखर नौका बन्धन नाम से जाना जाता है। वह मत्स्य बोला मैं भगवान प्रजापति हूं। मुझसे परे दूसरी कोई वस्तु नहीं होती। मैंने ही मत्स्य रूप धारण कर तुम्हें प्रलय का स्वरूप दिखाया और इस संकट से उबारा। अब मनु तुम देवता, असुर और मनुष्य आदि समस्त

प्रजा की, सम्पूर्ण लोकों की और सम्पूर्ण चराचर की सृष्टि करो। मेरी कृपा से प्रजा की सृष्टि करते समय तुम्हें मोह नहीं होगा। यह कहकर वह मत्स्य तो अन्तर्धान हो गया। इसके पश्चात मनु को सृष्टि करने की इच्छा हुई तो उन्होने तपस्या कर शक्ति प्राप्त की और सृष्टि करना आरम्भ किया। इस प्रकार युधिष्ठिर को मत्स्यावतार उपाख्यान सुनाया।

**४) श्रीकृष्ण की महिमा और प्रलय का वर्णन-** युधिष्ठिर मार्कण्डेय मुनि से बोले हे मुनिवर महाप्रलय के समय जब सूर्य, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, अन्तरिक्ष, पृथ्वी आदि कोई शेष नहीं रहता और सारे लोक जलमग्न हो जाते है, स्थावर, जंगम, देवता, असुर, नाग आदि सभी जातियां नष्ट हो जाती है उस समय पदम पत्र पर सोने वाले सर्व भूतेश्वर ब्रह्मा के पास केवल आप ही रहते हैं। हे विप्रवर यह सारा पूर्व कालीन वृत्तान्त आपका प्रत्यक्ष देखा हुआ है, अनेकों बार अनुभव भी किया हुआ है। सम्पूर्ण लोकों में कोई ऐसी वस्तु भी नहीं है जो आपको ज्ञात न हो। अत: मैं आपसे सारी सृष्टि के कारण स्वरूप कथा को विस्तार से जानना चाहता हूं। तब मार्कण्डेय मुनि बोले स्वयम्भू ब्रह्मा को नमस्कार कर कहता हूं कि ये तुम्हारे मामा के पुत्र कृष्ण यहां बैठे हुये हैं पीताम्बरधारी जनार्दन कृष्ण हैं। ये ही इस संसार की सृष्टि और संहार करनेवाले हैं। ये ही समस्त भूतों के अन्तर्यामी और उनके रचयिता हैं। ये ही परम पवित्र, अचिन्त्य एवं आश्चर्यमय तत्व हैं। ये ही सबके कर्ता हैं। पुरुषार्थ की प्राप्ति में भी ये ही कारण हैं। ये अन्तर्यामी स्वरूप से सब को जानते हैं, पर वेद भी इन्हे नही जानते। सम्पूर्ण जगत का प्रलय हो जाने के बाद इन आदि भूत परमेश्वर से ही यह सम्पूर्ण आश्चर्यमय जगत पुन: उत्पन्न हो जाता है।

४ हजार दिव्य वर्षों का एक सतयुग होता है। उतने ही सौ वर्ष उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश के होते हैं। इस प्रकार कुल ४८०० दिव्य वर्ष सतयुग के होते हैं। तीन हजार दिव्य वर्षों का त्रेतायुग होता है तथा ३०० दिव्य वर्ष उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश के होते है। इस प्रकार यह युग ३६०० दिव्य वर्षों का होता है। द्वापर का मान दो हजार दिव्य वर्षों का है तथा उतने ही २०० दिव्य वर्ष उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश है। सब मिलाकर २४०० दिव्य वर्ष द्वापर के हैं। कलियुग का मान है एक हजार दिव्य वर्ष। उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश का मान भी सौ सौ दिव्य वर्ष है। इस प्रकार कलियुग १२०० दिव्य वर्षों का होता है। कलियुग के क्षीण हो जाने पर पुन: सतयुग का प्रारम्भ होता है। इस प्रकार १२००० दिव्य वर्षों की एक चतुर्युगी होती है। १००० चतुर्युगी बीतने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है। यह सारा जगत ब्रह्मा के दिन भर रहता है। दिन के समाप्त होने पर नष्ट हो जाता है। यही विश्व का प्रलय जाना जाता है।

सहस्त्र युग की समाप्ति में जब थोडा शेष समय रह जाता है उस समय कलियुग के अन्तिम भाग में प्राय: सभी मनुष्य मिथ्यावादी हो जाते हैं। ब्राह्मण शूद्र कर्म करने लगते हैं। शूद्र वैश्य की तरह धन संग्रह करना अथवा क्षत्रिय कर्मों से अपनी जीविका चलाने लगते हैं। ब्राह्मण यज्ञ, स्वाध्याय, दंड, मृगछाला इत्यादि त्यागकर भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार छोड सभी कुछ भक्षण करने लगते हैं। जप, तप से दूर भागने लगते हैं और शूद्र लोग गायत्री का जप करने लगते हैं। इस प्रकार जब लोगों का आचार-विचार व्यवहार विपरीत हो जाते हैं तो प्रलय का प्रारम्भिक रूप आरम्भ हो जाता है। पृथ्वीपर म्लेच्छों का राज्य हो जाता है। महान पापी और असत्यवादी आन्ध्र, शक, पुलिन्द, भवन तथा आमीर जातियों के लोग राजा होते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सभी अपने अपने धर्म त्यागकर दूसरे वर्णों के कर्म करने लगते हैं। सबकी आयु, बल, वीर्य और पराक्रम घट जाते हैं। मनुष्य छोटे कद के होने लगते हैं। उनकी बातचीत में सत्य का अंश बहुत कम होता है। उस समय की स्त्रियां भी बौने कदवाली और बहुत सन्तान उत्पन्न करनेवाली होती है। उनमें शील और सदाचार नहीं रह जाता। गांव-गांव में अन्न बिकने लगता है, ब्राह्मण वेद बेचते हैं। स्त्रियां वेश्यावृति करने लगती है। गायें बहुत कम दूध

देती हैं। वृक्षों मे फल कम लगते हैं। वृक्षों पर अच्छे पक्षियों के स्थान पर अधिकांश कौएं ही बसेरा करते हैं। ब्राह्मण लोभवश पातकी राजाओं से भी दक्षिणा ग्रहण करते हैं, झूठमूठ धर्म का ढोंग रचते हैं, भिक्षा मांगने के बहाने दसों दिशाओं में घूम-घूम कर चोरी करते हैं। गृहस्थ भी अपने उपर कर भार बढ जाने से चोरी करते हैं। ब्राह्मण मुनियों का वेश बनाकर वैश्य वृत्ति से जीविका चलाते हैं तथा मदिरा पान करते हैं, गुरु पत्नी के साथ समागम करते हैं। जिससे शरीर में मांस और रक्त बढे उन लौकिक कार्यों को करते हैं। दुर्बल होने के डर से व्रत और तपस्या में अग्रसर नहीं होते। उस समय न तो समय पर वर्षा होती है और न ही ठीक तरह से कृषि। लोग बनावटी तौल नाप से व्यवहार, व्यापार करते हैं तथा वे बडे कपटी होते हैं। कोई पुरुष विश्वास कर धरोहर की भांति धन उनके यहां रख दे तो वे पापी निर्लज्ज उसकी धरोहर हडप जाने में कोई संकोच भी नहीं करते और मुकुर जाकर यह कह देते कि हमारे यहां तुम्हारा कुछ भी नहीं है। स्त्रियां अपने पति को धोखा देकर नौकरों के साथ व्यभिचार करती है। वीर पुरुषों की स्त्रियां भी अपने पति का परित्याग कर दूसरों का आश्रय लेती है। इस प्रकार जब सहस्त्र युग पूरे हो जाते हैं तो बहुत वर्षों तक वृष्टि बन्द हो जाती है, इससे थोडी शक्तिवाले जीव प्राणी भूख से व्याकुल होकर मर जाते हैं। इसके पश्चात सात सूर्यों का अत्यन्त प्रचंड तेज बढता है। वे सातों सूर्य नदी और समुद्र का पानी सोख लेते हैं। उस समय जो भी तृण, काष्ठ, सूखे-गीले पदार्थ वे सभी भस्मीभूत हो जाते हैं। संवर्तक नाम की प्रलयकालीन मेघ अग्नि वायु के सम्पूर्ण लोकों में फैल जाती है। पृथ्वी का भेदन कर वह अग्नि रसातल तक पहुंच जाती है। इससे देवताओं, राक्षसों और यक्षों में महान भय पैदा हो जाता है। नागलोक को जलाकर इस पृथ्वी के नीचे जो कुछ भी है उन सबको क्षणभर में नष्ट कर देती है। इसके बाद अशुभ वायु और अग्नि देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, नाग, राक्षस आदि से युक्त समस्त विश्व को प्रलयाग्नि में जलाकर भस्म कर देती है। नभ मंडल में मेघों की घनघोर घटा छा जाती है। बिजली कौंधने लगती है और भयंकर गर्जना करने लगती है। तब भयानक वर्षा होकर उस अग्नि को शान्त कर देती है। ऐसे संवतर्क मेघ बारह वर्ष तक वर्षा करते रहते हैं। समुद्र अपनी मर्यादा छोड देता है, पर्वत फट जाते हैं और पृथ्वी जल निमग्न हो जाती है। वायु के वेग में मेघ आपस में ही टकराकर नष्ट हो जाते हैं। तत्पश्चात ब्रह्मा उस प्रचंड वायु का पान कर उस एकार्णव के जल में शयन करते हैं। उस समय सभी जीवों का देवता, असुर, दानवों का, चराचर जीवों का नाश हो जाता है। केवल नारायण ही उस एकार्णव में उठती हुई लहरों के थपेडे खाते हुए इधर उधर भटकते फिरते है।

**५) मार्कण्डेय मुनि को बालमुकुन्द का दर्शन और प्रलय का वर्णन-** मार्कण्डेय मुनि बोले एक समय की बात है जब मैं एकार्णव जल में बडी देर तक तैरता तैरता बहुत दूर तक जाकर थक गया, तथा विश्राम लेने के लिये मेरे पास कोई सहारा ही नहीं रहा तब मैंने उस अनन्त जल राशि में एक बडा सुन्दर और विशाल वट का वृक्ष देखा। उसकी शाखा पर एक नयनाभिराम श्याम सुन्दर बालक बैठा था। मुख कमल के समान और चन्द्रमा के समान नेत्रों को आनन्द देनेवाला तथा आंखे खिले हुये कमल के समान विशाल थी। उसे देखकर मुझे बडा आश्चर्य हुआ। मैंने सोचा सारा संसार तो इस प्रलय में नष्ट हो गया फिर यह बालक यहां कैसे सो रहा है। मैं भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल का ज्ञाता हूं। मैं अपने तपोबल से ध्यान लगाने पर भी उस बालक को नहीं जान सका। उस बालक की श्याम सुन्दर कांति थी और वक्षस्थल पर श्रीवत्स शोभायमान था, बडी मधुरवाणी में कानों में अमृत उडेलता हुआ बोला मार्कण्डेय मैं जानता हूं कि तुम बहुत थके हुये हो और विश्राम करने की इच्छा करते हो अत: तुम्हे मैं यह निवास दे रहा हूं।

उस बालक के ऐसा कहने पर मुझे अपनी इस दीर्घ आयु और जीवन पर बडा खेद हुआ। उस बालक ने अपना मुंह

खोला और दैवयोग से मैं परवश हो उसके मुख में प्रवेश कर गया और उसके उदर में जा पडा। वहां मुझे समस्त राष्ट्रों और नगरों से भरी हुई पृथ्वी दिखाई पडी। मैंने उसमें गंगा, यमुना, चन्द्रभागा, सरस्वती, सिन्धु, नर्मदा और कावेरी आदि नदियों को भी देखा तथा रत्नों और जल जन्तुओं से भरा हुआ समुद्र, सूर्य और चन्द्रमा से शोभायमान आकाश तथा पृथ्वी पर अनेकों वन उपवन भी देखे। वहां पर मैंने वर्णाश्रम धर्म का पालन होते देखा। ब्राह्मण अनेकों यज्ञों द्वारा यजन कर रहे है। क्षत्रिय राजा प्रजा का अनुरंजन, पालन कर रहे हैं। सबको सुखी और प्रसन्न रख रहे हैं। वैश्य कृषि काम, उद्योग, व्यवसाय, व्यापार कर रहे हैं तथा शूद्र तीनों द्विजातियों की सेवा में संलग्न है। तदनन्तर उस महात्मा के उदर में भ्रमण करता हुआ आगे बढा तो मैंने देखा हिमवान, हेमकूट, निषध, श्वेतगिरि, गन्धमादन, मन्दराचल, नीलगिरि, मेरू, विन्ध्याचल मलय, पारियात्र जितने पर्वत है वे सब मुझे दिखाई पडे। वहां विचरते विचरते मैंने इन्द्रादि देवता, रुद्र, आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, गन्धर्व, यक्ष, ऋषि, दानव और दैत्य देखे। इस पृथ्वी पर जो कुछ भी चराचर जगत मुझे उस बालक के उदर में दिखा। मैं उस बालक के उदर में ही घूमता रहता और सौ वर्ष तक विचरता रहा फिर भी उसके शरीर का अन्त नहीं मिला। अन्त में मैंने मन वाणी से उस दिव्य बालक की शरण ली। उस बालक ने अपना मुख खोला और मैं वायु श्वास प्रश्वास के साथ अकस्मात उसके मुख से बाहर आ गया। मैंने देखा वह अमित तेजस्वी बालक पहिले की भांति सारे विश्व को अपने उदर में रखकर उसी वटवृक्ष की शाखा पर विराजमान है। मुझे देखकर उस पीताम्बर धारी बालक ने प्रसन्न हो मुस्कुराकर कहा मार्कण्डेय तुमने मेरे शरीर में विश्राम कर लिया?

मैंने उस अतुल तेजस्वी बालक के प्रभाव को देखकर चरणों में मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और विनयपूर्वक उस सर्वान्तात्मा के दर्शन किये और उनसे कहा भगवन मैंने आपके उदर में प्रवेश कर समस्त चराचर देखा है। हे प्रभो आप इस विराट विश्व को इस प्रकार उदर में धारण कर यहां क्यों विराजमान हैं? सारा संसार आपके उदर में क्यों स्थित है? इस रूप में आप कब तक रहेंगे? तब मेरी ये प्रार्थना रूपी बात सुनकर वे श्रेष्ठ देव देव परमेश्वर मुझ पर कृपा कर बोले हे विप्रवर देवता भी मेरे स्वरूप को ठीक ठीक नहीं जानते। तुम्हारे प्रेम से ही मैं तुम्हे जिस प्रकार इस जगत की रचना करता हूं वह बताता हूं। तुम पितृ भक्त हो, तुमने महान ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया है, तुम मेरी शरण में आये हो इसी कारण तुम्हे मेरे स्वरूप का दर्शन हुआ है। पूर्व काल में मैंने ही इस जल का नाम नार रखा। यह नार अर्थात जल मेरा अयन अर्थात वास स्थान है इसलिये मैं नारायण नाम से जाना जाता हूं। मैं ही सबकी उत्पत्ति का कारण सनातन और अविनाशी हूं। सम्पूर्ण भूतों की सृष्टि और संहार करनेवाला मैं ही हूं। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, कुबेर, शिव, सोम, प्रजापति कश्यप, धाता, विधाता और यज्ञ भी मैं ही हूं। अग्नि मेरा मुख है, ये पृथ्वी मेरा चरण है, चन्द्रमा और सूर्य मेरे नेत्र है। द्यूलोक मेरा मस्तक है। आकाश और दिशायें मेरे कान है। ये जल मेरे शरीर का पसीना है। वायु मेरे मन में स्थित श्वास-प्रश्वास है। पूर्वकाल में ये पृथ्वीजल निमग्न थी तब मैंने ही वाराह रूप धारण कर इसे जल से बाहर निकाल कर जल पर स्थापित किया था। ब्राह्मण मेरा मुख, क्षत्रिय मेरी भुजायें, वैश्य मेरा उरू और शूद्र मेरे दोनों चरण हैं। ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ये मुझसे ही प्रकट होते हैं और मुझमें ही लीन हो जाते हैं। शान्ति की इच्छावाले मन और इन्द्रियों पर संयम करनेवाले जितेन्द्रिय जिज्ञासु यति और श्रेष्ठ ब्राह्मण सदा मेरा ध्यान और उपासना करते हैं। आकाश के तारे मेरे रोम कूप हैं। समुद्र और ये चारों दिशायें मेरे वस्त्र शैया, और निवासस्थान हैं।

मार्कण्डेय जिन धर्मों के आचरण से मनुष्य को कल्याण की प्राप्ति होती है वे हैं सत्य, दान, तप और अहिंसा। द्विजगण

सम्यक प्रकार से वेदों का स्वाध्याय और अनेकों प्रकार के यज्ञ करके शान्त चित्त एवं क्रोध शून्य होकर मुझे ही प्राप्त करते हैं। पापी, लोभी, कृपण, अनार्य और अजितेन्द्रिय पुरुषों को मैं कभी नहीं प्राप्त होता। जब जब धर्म का ऱ्हास और अधर्म का उत्थान होता है तब तब मैं अवतार धारण करता हूं। हिंसा में प्रेम रखनेवाले दैत्य और दारुण राक्षस उत्पन्न होकर इस संसार में अत्याचार करने लगते हैं और देवता लोग भी उनका प्रतिकार नहीं कर पाते तब मैं पुण्यवानों के यहां युग युग में अवतार लेकर अत्याचारियों का संहार करता हूं। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, यक्ष, राक्षस आदि प्राणियों तथा स्थावर भूतों को भी मैं अपनी माया से रचता हूं और अपनी माया से ही उनका संहार भी करता हूं। मैं सृष्टि रचना के समय अचिन्त्य रूप धारण करता हूं और मर्यादा की स्थापना करता हूं तथा रक्षा के लिये मानव शरीर से अवतार लेता हूं। सतयुग में मेरा वर्ण श्वेत, त्रेता में लाल, द्वापर में पीला नीला और कलि में कृष्ण वर्ण का होता है। कलिकाल में धर्म का एक ही भाग शेष रहता है तथा अधर्म के तीन भाग रहते हैं। जब जगत का विनाश काल उपस्थित होता है तब महादारुण काल रूप होकर मैं अकेला ही स्थावर जंगम सम्पूर्ण त्रिलोकी को नष्ट कर देता हूं। मैं स्वयंभू, सर्व व्यापक, अनन्त, इन्द्रियों का स्वामी और पराक्रमी हूं। सब भूतों का संहार करनेवाला और सबको उद्योगशील करनेवाला निराकार कालचक्र का संचालन करनेवाला मैं ही हूं। हे मुनिवर इस प्रकार ऐसा मेरा स्वरूप है। मैं सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित हूं पर मुझे कोई नहीं जानता। मैं शंख, चक्र, गदा धारण करनेवाला विश्वात्मा नारायण हूं। सहस्त्रयुग के अन्त में जो प्रलय होता है, उसमें उतने ही समय तक सब प्राणियों को मोहित कर मैं जल में शयन करता हूं। यद्यपि मेरा स्वरूप बालक नहीं है फिर भी ब्रह्मा जब तक नहीं जागता तब तक बालक रूप धारण करके यहां रहता हूं। हे विप्रवर मैंने तुम्हे अपने स्वरूप का उपदेश किया जिसको जानना देवता और असुरों के लिये भी अत्यन्त कठिन है। जब तक ब्रह्मा का जागरण नहीं होगा तब तक तुम श्रद्धा और विश्वासपूर्वक सुख से विचरते रहो। ब्रह्मा के जागने पर मैं उनसे एकीभूत होकर आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी की तथा अन्य चराचर भूतों की सृष्टि का निर्माण करूंगा।

मार्कण्डेय बोले युधिष्ठिर इस प्रकार भगवान बाल मुकुन्द अपने स्वरूप और कारण को बताकर अन्तर्धान हो गये। इस तरह मैंने सहस्त्र युगों के अन्त की आश्चर्यमयी प्रलयलीला देखी। उस समय जिन परमात्मा का मुझे दर्शन हुआ वे तुम्हारे सम्बन्धी ये श्रीकृष्ण ही है। इन्हीं के वरदान से मेरी स्मरण शक्ति कभी क्षीण नहीं होती और दीर्घायु प्राप्त हुई तथा मृत्यु मेरे अधीन रहती है। ये वृष्णि वंशी कृष्ण वास्तव में पुराण पुरुष परमात्मा है। इनका स्वरूप अचिन्त्य होते हुये भी हमारे सामने लीला करते हुये से दीख रहे है। ये ही इस विश्व की सृष्टि पालन और संहार करनेवाले सनातन पुरुष हैं। इनके वक्षस्थल में श्री वत्स का चिन्ह है। ये गोविन्द ही प्रजापतियों के स्वामी हैं। इन्हे यहां देखकर मुझे इस घटना की स्मृति हो आयी। ये माधव ही सबके माता-पिता हैं। इन्ही की शरण में जाने से तुम्हारा कल्याण है। वैशम्पायन बोले जनमेजय मार्कण्डेय मुनि के इस प्रकार कहने पर सभी पांडवों ने द्रौपदी सहित कृष्ण को प्रणाम किया। युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय मुनि से कहा हे भार्गव श्रेष्ठ आपसे मैंने सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय के बारे में आश्चर्यमय वृतान्त सुना। अब आप कृपा करके मुझे कलियुग के विषय में बताये। कलिकाल में जब सम्पूर्ण धर्मों का लोप हो जानेपर क्या होगा? कलियुग में कैसे मनुष्य होंगे, उनका व्यवहार और पराक्रम क्या होगा? उनके आहार-विहार का स्वरूप क्या होगा। उन लोगों के आयु, आचार, कलियुग की सीमा इत्यादि का पूर्ण विगत सुनाये। ये सब बातें मुझे विस्तार से बताये।

**६) कलियुग के लक्षण और भगवान कल्कि अवतार-** मार्कण्डेय मुनि बोले युधिष्ठिर सतयुग में धर्म अपने सम्पूर्ण रूप में प्रतिष्ठित होता है, उसमें छल कपट या दम्भ नहीं होता है। उस समय उस धर्म रूपी बैल के चारों चरण रहते

हैं। त्रेता युग में एक अंश में अधर्म अपना पैर जमा लेता है, इससे धर्म का एक पैर क्षीण हो जाता है, फिर तीन ही पैरों से वह स्थित रहता है। द्वापर में धर्म आधा ही रह जाता है और आधे में अधर्म आकर मिल जाता है। फिर कलियुग के आने पर तीन अंशों से अधर्म का आक्रमण होने पर धर्म अपने चौथाई अंश में ही रह जाता है। सतयुग के बाद जिस प्रकार दूसरे युग आते है वैसे-वैसे मनुष्यों की आयु, वीर्य, बुद्धि, बल और तेज क्षीण होने लगता है। कलियुग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी जातियों के लोग हृदय में कपट रखकर धर्म का आचरण करेंगे। मनुष्य धर्म का जाल रचकर लोगों को अधर्म में फसायेंगे। अपने को पंडित माननेवाले लोग सत्य का गला घोटेंगे। सत्य की हानि होने से उनकी आयु थोडी हो जायेगी। आयु की कमी के कारण वे पूर्ण विद्या का उपार्जन नहीं कर सकेंगे। विद्याहीन होने से अज्ञानी मनुष्यों को लोभ दबा लेगा। लोभ और क्रोध के वशीभूत हुये मूढ मनुष्य कामनाओं में आसक्त होंगे, इससे उनमें आपस में बैर बढेगा, तब वे फिर एक दूसरे के प्राण लेने उतारु हो जायेंगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये सभी आपस में सन्तानोत्पादन कर वर्ण संकर हो जायेंगे। इनका विभाग करना कठिन हो जायेगा। ये सभी तप और सत्य का परित्याग कर शूद्र के समान हो जायेंगे।

कलियुग के अन्त में संसार की ऐसी ही दशा होगी। वस्त्रों में तन से बने हुये वस्त्र अच्छे लगेंगे। धानों में कोदों की प्रशंसा होगी। पुरुषों की स्त्रियों से मित्रता होगी और स्त्रियां अपने पति को छोडकर अपने पुरुष मित्रों के साथ स्वच्छन्द विहार करेगी। लोग अभक्ष्य आहार, मांस मछली का सेवन करेंगे तथा बकरी भेड का दूध पियेंगे। गाये तो देखने को भी नहीं मिलेगी। लोग एक दूसरे को लूटेंगे, मारेंगे, हत्यायें और वध आम होने लगेगा। ईश्वर में न श्रद्धा होगी और न ही भक्ति। सभी नास्तिक और चोर होंगे। पशुओं के अभाव में कृषि खेती चौपट हो जायेगी। लोग कुदाल फावडा से नदियों के तट की भूमि खोदकर अनाज बोयेंगे पर उसमें अनाज और फल की प्राप्ति कम होगी। ब्राह्मण व्रत नियम का पालन नहीं करेंगे और विपरीत वेदों की निन्दा करने लगेंगे। शुष्क तर्कवाद से यज्ञ होम हवन का भी त्याज्य कर देंगे। लोग एक साल के बछडों पर जुआं रखकर हल चलायेंगे। सभी लोग अपने को अहं ब्रह्मास्मि कहकर बकवाद करने लगेंगे। जगत में ऐसे लोगों की कोई निन्दा भी नहीं करेगा। सारा जगत म्लेच्छवत व्यवहार करेगा। सत्कर्म और यज्ञकर्म का कोई नाम भी नहीं लेगा। समस्त विश्व आनन्दहीन, उत्सव शून्य हो जायेगा। लोग प्राय: दीनों, असहायों और विधवाओं का धन हर लेंगे। क्षत्रिय लोग तो जगत के लिये कांटा बन जायेंगे। मान और अहंकार में चूर रहेंगे। प्रजा की रक्षा तो करेंगे नहीं, उनसे रूपये ऐठने के लिये लोभ अधिक रखेंगे। राजा कहलानेवाले लोगों को सिर्फ प्रजा को दंड देने का शौक होगा। लोग इतने निर्दयी हो जायेंगे कि सज्जन पुरुषों पर भी आक्रमण करके उनके धन और स्त्री का बलात्कार से उपभोग करेंगे। उन्हे रोते बिलखते देखकर भी दया नहीं आवेगी। न तो कोई किसी से कन्या की याचना करेगा और न ही कोई कन्यादान करेंगे। कलियुग में वर-कन्या अपने आप ही स्वयंवर कर लेंगे। उस समय के मूर्ख और असन्तोषी राजा सब तरह के उपायों से दूसरे के धन का अपहरण करेंगे। हाथ-हाथ को काटने लगेगा, लूटेगा। अपने सगे-सम्बन्धी ही सम्पत्ति को हरण करेनवाले हो जायेंगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों का नाम भी नहीं रह जायेगा। सभी एक ही जाति के हो जायेंगे। भक्ष्य अभक्ष्य का संकोच छोडकर सब लोग एक सा आहार ग्रहण करने लगेंगे। स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के कार्य और विचार को सहन नहीं कर पायेंगे।

श्राद्ध और तर्पण विधि बन्द हो जायेगी। न कोई किसी का उपदेश सुनेगा और न ही कोई किसी का गुरु होगा। सबके सब अज्ञान में डूबे रहेंगे। कलियुग में मनुष्य की आयु अधिक से अधिक १६ वर्ष की होगी। ५-६ वर्ष की उम्र में कन्यायें गर्भवती होकर सन्तानें उत्पन्न करने लगेगी। सात-आठ वर्ष की आयुवाले स्त्री पुरुष समागम करके सन्तान्तोत्पत्ति करेंगे। अपने पति से स्त्री, और अपनी स्त्री से पुरुष सन्तुष्ट नहीं होंगे। दोनों ही अतृप्त रहकर पर पुरुष और पर स्त्री का भोग करेंगे।

व्यापार में क्रय विक्रय के समय लोभ के कारण सभी सबको ठगने लगेंगे। क्रिया के महत्व को न जानकर भी उसे करने में प्रवृत्त होंगे। स्वभाव से सभी क्रूर तथा एक-दूसरे पर अभियोग चलानेवाले होंगे। लोग बगीचे और वृक्ष कटवा डालेंगे इसके लिये उनके हृदय में तनिक सी भी पीडा नहीं होगी। प्रत्येक मनुष्य के जीवन पर सन्देह हो जायेगा। लोभी मनुष्य ब्राह्मणों की हत्या कर उनका धन छीन कर भोगेंगे। शूद्रों से पीडित हुये द्विज मय से हाहाकार करने लगेंगे। सताये हुये ब्राह्मण नदी और पर्वतों का आश्रय लेंगें दुष्ट राजाओं के कारण प्रजा सर्वदा कर भार से दबी रहेगी। शूद्र धर्म का उपदेश करेंगे और ब्राह्मण शूद्रों की सेवा करेंगे, उनके उपदेशों को प्रामाणिक मानेंगे। समस्त लोक व्यवहार विपरीत और उलटा-पलटा होगा। लोग हड्डियों से जुडी दीवार का पूजन करेंगे, देवमूर्तियों का नही। उस समय के शूद्र द्विजातियों की सेवाश्रूषा नहीं करेंगे। महर्षियों के आश्रम, ब्राह्मणों के घर, देवस्थान, धर्मसभा आदि सभी स्थानों की भूमि हड्डियों से भरी अशुद्ध होगी। देवमन्दिर कहीं भी नहीं होंगे। यही उस युग की पहिचान है। जिस समय अधिकांश मनुष्य धर्महीन, मांसभोगी और शराब पीनेवाले होंगे, उसी समय इस युग का अन्त होगा। उस समय बिना ऋतु के वर्षा होगी। शिष्य गुरुओं का अपमान करेंगे, सदा उनका अहित करेंगे। आचार्य धनहीन होंगे, उन्हे शिष्य डरायेंगे, फटकारेंगे। धन के लालच से ही मित्र और सम्बन्धी अपने निकट रहेंगे।

कलियुग का अन्त होने पर समस्त प्राणियों का अभाव हो जायेगा। सारी दिशायें प्रज्ज्वलित हो उठेगी। तारों की चमक जाती रहेगी। नक्षत्रों और ग्रहों की गति विपरीत हो जायेगी। लोगों को व्याकुल करनेवाली प्रचंड आंधियां उठेगी। महान भय की सूचना देनेवाले उल्कापात बारम्बार होंगे। सात सूर्य एक साथ उदय होंगे और एक साथ तपेंगे। कडकती हुई बिजलीपात्त होगा। सभी दिशाओं में आग लगेगी। उदय और अस्त के समय सूर्य राहु से ग्रसित दिखाई पडेगा। बिना समय की वर्षा होगी। बोयी हुई खेती फसल नहीं उगेगी। स्त्रियां कठोर स्वभाववाली और कटुभाषिणी होगी। उन्हे रोना अधिक पसंद होगा। वे बार-बार रोयेगी और पति से अपनी मनमानी करवायेगी वे पति की आज्ञा में नहीं रहेगी। पुत्र धन के लिये माता-पिता की हत्या करेंगे। पत्नी अपने बेटे से मिलकर पति का वध कर डालेगी। अमावस्या के बिना ही ग्रहण होगा। पथिकों को कही अन्न, जल या ठहरने का आश्रय नहीं मिलेगा। वे सब ओर से निरुत्तर हो रास्तों पर ही बसेरा करेंगे। कौए, हाथी, पशु, पक्षी और मृग आदि युगान्त के समय बडी ही कठोर वाणी बोलेंगे। मनुष्य, मित्रों, सम्बन्धियों तथा अपने परिवार जनों का भी त्याग कर देंगे। स्वदेश त्यागकर परदेश में अपनी आजीविका खोजेंगे। सभी लोग हा तात, हा बेटा इस प्रकार दर्द भरी पुकार मचाते हुये भूमंडल में भटकेंगे। युगान्त में संसार की यही अवस्था होगी। एक बार इस लोक का संहार होगा।

इसके पश्चात कालान्तर में सतयुग का प्रारम्भ होगा। क्रमश: ब्राह्मणादि वर्ण शक्तिशाली होंगे। लोक के अभ्युदय के लिये पुन: दैव की अनुकूलता होगी। जब सूर्य, चन्द्रमा और ब्रहस्पति एक ही राशि में एक ही पुष्य नक्षत्र पर एकत्र होंगे उस समय सतयुग का प्रारम्भ होगा। फिर मेघ समय पर पानी बरसायेंगे। नक्षत्रों में तेज आजायेगा। ग्रहों की गति अनुकूल होगी। सबका मंगल कल्याण होगा तथा सुभिक्ष और आरोग्य का विस्तार होगा। कलियुग के अन्त में काल की प्रेरणा से सम्भल नामक ग्राम में विष्णु यश नाम के ब्राह्मण के एक बालक उत्पन्न होगा। वह ब्राह्मणकुमार बहुत बडा बलवान, बुद्धिमान और पराक्रमी होगा। मन के द्वारा चिन्तन करने पर उसके पास इच्छानुसार वाहन, अस्त्र-शस्त्र, योद्धा उपस्थित होंगे। गणेश जी धूमकेतु के रूप में अवतरित हो उसकी शिक्षा दीक्षा करेंगे। वह घोडेपर सवार होकर ब्राह्मणों की सेना साथ लेकर संसार में सर्वत्र फैले हुये म्लेछों के प्रदूषण का विनाश कर डालेंगे। उस घोडे की तेज चाल से घोडे की पूँछ से जोर हवा बहेगी वह कलियुग के मलों का नाश कर शुद्ध वायु प्रवाहित होगी। वह कल्कि सब दुष्टों का नाश कर सतयुग का प्रवर्तक होगा। धर्म के अनुसार विजय प्राप्त कर वह चक्रवर्ती राजा होगा और इस सम्पूर्ण जगत को आनन्द प्रदान करनेवाला होगा।

वैशम्पायन कहते है जनमेजय युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय मुनि से पूछा मुने प्रजा का पालन करते समय किस धर्म का आचरण करना चाहिये। मेरा व्यवहार और बर्ताव प्रजा के साथ किस प्रकार का हो जिससे मैं स्वधर्म से भ्रष्ट न होऊं?

**७) मार्कण्डेय का धर्मोपदेश-** मार्कण्डेय बोले राजन तुम सब प्राणियों पर दया करते हो। सबका हित साधने में लगे हो। किसी के गुणों में दोष नहीं देखते। सदा सत्य भाषण करते हो। सबके प्रति विनीत और कोमल हो। इन्द्रियों को अपने वश में रखो तथा प्रजा की रक्षा में तत्पर रहना। धर्म का आचरण करो और अधर्म का त्याज्य करो। देवताओं और पितरों का पूजन व तर्पण करो। यदि किसी के प्रति कोई मन के विपरीत बात, व्यवहार हो जाये तो उसे अच्छी प्रकार से दान देकर सन्तुष्ट करो। मैं सबका स्वामी हूं ऐसे अहंकार को कभी पास मत आने दो। अपने को सदा पराधीन समझो। मैंने तुम्हे जो यह धर्म बताया है इसका भूतकाल में धर्मात्मा लोग पालन करते आये है और भविष्य में भी तुम्हारे लिये इसका पालना आवश्यक है। इस पृथ्वी पर ऐसा कुछ भी नहीं है जो तुम्हे ज्ञात न हो। प्रसिद्ध कुरुवंश में तुम्हारा जन्म हुआ है अत: मन वाणी और कर्म से उसका पालन करो। युधिष्ठिर बोले हे द्विजवर आपने जो उपदेश दिया वह अत्यन्त ही कर्णप्रिय है। मैं आपकी सभी आज्ञा का पालन करूंगा। धर्म का त्याग हो जाता है लोभ और भय आदि से। मुझे न लोभ है और न भय, न ही मेरे मन में किसी के प्रति ईर्ष्या या डाह है। हे मुनिश्रेष्ठ बक और दालभ्य ये दोनों महात्मा चिरंजीवी है और देवराज इन्द्र से इनकी मित्रता है। मैं आपसे बक मुनि और इन्द्र का जो सम्वाद हुआ वो सुनना चाहता हूं।

**८) इन्द्र और बक मुनि का सम्वाद-** मार्कण्डेय बोले एक समय देवता और असुरों में बडा भारी संग्राम हुआ। उसमें इन्द्र विजयी हुआ। इन्द्र को तीनो लोकों का साम्राज्य प्राप्त हुआ। इन्द्र के राज्य में कृषि उपज अधिक हुई। प्रजा स्वस्थ थी। सभी लोग अपने धर्म में स्थित थे। प्रजा सुख चैन से रह रही थी। एक दिन इन्द्र अपनी प्रजा को देखने ऐरावत पर सवार होकर निकले। वे पूर्व दिशा में समुद्र के समीप हरे भरे वृक्षों के पास आकाश से नीचे उतरे। वहां एक बहुत सुन्दर आश्रम था जो बहुत से मृग और पक्षियों से भरा था। वह आश्रम बक मुनि का था। इन्द्र ने उस रमणीक आश्रम में बक मुनि का दर्शन किया। बक मुनि भी इन्द्र को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुये। इन्द्र को आसन देकर आर्ध्य पाद्य, कन्दफल से उनका आतिथ्य सत्कार किया। इन्द्र ने बक मुनि से प्रश्न किया ब्रह्मन आपकी उम्र एक लाख वर्ष की हो गई, आप अनुभवी है। अधिक काल तक जीवित रहनेवालों को क्या क्या दु:ख झेलना पडता है? बक मुनि बोले दीर्घजीवी मनुष्य को अप्रिय मनुष्यों के साथ बहुत लम्बे समय तक रहना पडता है। प्रिय व्यक्तियों की मृत्यु के पश्चात उनके वियोग का दु:ख सहते हुये जीवन बिताना पडता है। कभी-कभी दुष्ट मनुष्यों का संग भी प्राप्त हो जाता है। चिरंजीवी मनुष्यों के लिये इससे बढकर और क्या दु:ख हो सकता है कि अपनी ही आंखों के सामने स्त्री और पुत्रों की मृत्यु होती है, भाई-बन्धु और मित्रों का सदा के लिये वियोग हो जाता है। जीवन निर्वाह के लिये पराधीन होकर रहना पडता है। दूसरे लोग तिरस्कार करते हैं। तब इन्द्र बोले मुने चिरंजीवी मनुष्यों को सुख किस बात में है? बक मुनि बोले देवराज जो अपने परिश्रम से उपार्जन करके घर में केवल शाकाहारी रहकर आहार करता है, पर दूसरों के अधीन नहीं है, वही सुखी है। दूसरों के सामने दीनता न दिखाकर अपने घर में कन्द मूल, फल का भोजन करना सदा अच्छा है परन्तु दूसरे के घर पर तिरस्कार सहकर प्रतिदिन मिष्ठान खाना भी श्रेयस्कर नहीं है। यही सत्पुरुषों का मत मानने योग्य है। जो दूसरों का अन्न खाना चाहता है वह कुत्ते की भांति अपमान का कौर पाता है। उस दुरात्मा पुरुष के वैसे भोजन को धिक्कार है। जो श्रेष्ठ द्विज सदा अतिथियों, भूत प्राणियों तथा पितरों को अर्पण कर बलि वैश्वदेव यज्ञ करके यज्ञ अवशिष्ट अन्न स्वयं भोजन करता है, उससे बढकर

और क्या सुख हो सकता है? इस यज्ञ अवशिष्ट अन्न से बढकर पवित्र और मधुर दूसरा कोई भोजन नहीं है। जो सदा अतिथियों को भोजन करा स्वयं पीछे खाता है उसके अन्न के जितने ग्रास अतिथि ब्राह्मण भोजन करता है, उतने ही हजार गौओं के दान का पुण्य उस दाता को मिलता है। इसके अलावा युवावस्था में जो पाप बन गये है वे सब नष्ट हो जाते है। इस प्रकार देवराज इन्द्र और बकमुनि में देर रात तक उत्तम कथा वार्ता होती रही। फिर इन्द्र अपने भवन स्वर्गलोक को चले गये। युधिष्ठिर मार्कण्डेय मुनि से बोले हे मुनिवर अब मैं क्षत्रियों के महत्व के विषय में सुनना चाहता हूं।

**९) क्षत्रियों का महत्व-** मार्कण्डेय मुनि बोले राजन कुरुवंशी क्षत्रियों में सुहोत्र नाम के एक राजा हुये थे। एक दिन वे महर्षियों का सत्संग करने गये। रास्ते में लौटते समय अपने सामने की ओर उन्होने उशीनर पुत्र राजा शिबि को रथ पर आते देखा। निकट आ जाने पर एक-दूसरे ने अभिवादन कर एक-दूसरे का सम्मान किया परन्तु गुणों में अपने को बराबर जानकर एक-दूसरे को मार्ग नहीं दिया। उसी समय वहां नारदजी आ गये और पूछा क्या बात है? तुम दोनों एक-दूसरे का मार्ग रोक कर क्यों खडे हो? तब उन दोनों ने कहा मार्ग पहले अपने से बडे को दिया जाता है परन्तु हम दोनों समान है अत: पहिले कौन किसको मार्ग दे? नारदजी बोले अपने साथ कोमलता का बर्ताव करनेवाले के लिये क्रूर मनुष्य भी कोमल बन जाता है। क्रूरता तो वह क्रूरों के प्रति दिखाता है। परन्तु साधु पुरुष दुष्ट व्यक्तियों के साथ भी साधुता का ही बर्ताव करता है फिर वह सज्जनों के साथ साधुता का व्यवहार कैसे नहीं करेगा? अपने ऊपर एक बार किये हुये उपकार का बदला मनुष्य भी सौ गुना करके चुकाता है। देवताओं में ही यह उपकार का भाव होता है, ऐसा कुछ नहीं है। उस उशीनर पुत्र राजा शिबि का व्यवहार तुमसे कहीं अधिक अच्छा है। नीच प्रकृतिवाले मनुष्य को दानादि देकर वश में करे, झूठे को सत्य भाषण से जीते, क्रूर को क्षमा से और दुष्ट को शालीन व्यवहार से अपने वश में करे। तुम दोनों ही उदार हो। तुम दोनों में से एक जो अधिक उदार हो वह मार्ग छोड दे। नारदजी की बात सुनकर कुरूवंशी राजा सुहोत्र शिबि को अपनी दायीं ओर करके उनकी प्रशंसा करके चले गये। इस प्रकार राजा शिबि का महत्व बढ़ गया। इसी तरह नहुष के पुत्र राजा ययाति जब राज सिंहासन पर आसीन हुये तब एक ब्राह्मण गुरु दक्षिणा देने के लिये भिक्षा मांगने उनके पास आकर बोला मैं आपसे दक्षिणा देने की प्रार्थना करने आया हूं, मैं आपसे भिक्षा चाहता हूं। संसार में अधिकांश मनुष्य मांगनेवाले से द्वेष करते है। क्या आप मुझे मेरी अभिष्ट वस्तु दे सकोगे? तब राजा ययाति बोले मैं दिये हुये दान का कभी बखान नहीं करता परन्तु जो वस्तु देने योग्य है उसे देकर मैं अपना मुख उज्वल करता हूँ। मैं तुम्हे एक हजार लाल रंग की गायें भेट करता हूं क्योंकि न्याय युक्त याचना करनेवाला ब्राह्मण मुझे बहुत प्रिय है। याचना करनेवाले पर मुझे कभी क्रोध नहीं आता और कोई धन दान में देकर मैं उसके लिये कभी पश्चाताप नहीं करता। ऐसा कहकर राजा ने ब्राह्मण को एक हजार गायों का दान किया।

**१०) उशीनर पुत्र राजा शिबि का चरित्र-** मार्कण्डेय बोले राजा युधिष्ठिर एक बार देवताओं ने परस्पर सलाह की कि पृथ्वी पर चलकर राजा शिबि की परीक्षा ली जाये। तब अग्नि ने कबूतर का रूप धारण किया और इन्द्र ने बाज पक्षी का रूप धारण किया। बाज उस कबूतर के मांस की इच्छा से उसका पीछा करने लगा। उस समय राजा शिबि अपने दिव्य सिंहासन पर बैठे हुये थे। वह कबूतर उडते उडते जाकर राजा शिबि की गोद में जा गिरा। राजा के अपने पुरोहित ने कहा यह कबूतर इस बाज के भय से अपने प्राण बचाने के लिये आपकी शरण में आया है। इसे अभय प्रदान करें। कबूतर ने कहा महाराज ये बाज मेरा पीछा कर रहा है, इससे डर कर अपने प्राणों की रक्षा के लिये आपकी शरण में आया हूं। वास्तव में मैं कबूतर नहीं ऋषि हूं। मैंने एक शरीर से दूसरा शरीर बदल लिया है। आप प्राण रक्षक होने के कारण आप ही मेरे प्राण हैं। मैं आपकी शरण हूं। मुझे ब्रह्मचारी समझे। वेदों का स्वाध्याय करने से मेरा शरीर दुर्बल हो गया है। मैं तपस्वी

और जितेन्द्रिय हूं। मैंने आार्य के प्रति कभी कोई प्रतिकूल व्यवहार नहीं किया। मैं सर्वथा निष्पाप और निरपराध हूं अत: मुझे अभय देकर बाज से मेरी रक्षा करें। तब वह बाज बोला राजन आप इस कबूतर को लेकर मेरे शिकार के काम में विघ्न न करें। राजा शिबि बोले ये बाज और कबूतर जितनी शुद्ध और संस्कृत वाणी बोलते है वैसी कभी किसी पक्षी के मुख से नहीं सुनी। मैं किस प्रकार उनका स्वरूप जानकर उचित न्याय करूं? जो मनुष्य अपनी शरण में आये हुये भयभीत प्राणी को उसके शत्रु के हाथ में दे देता है, उसके देश में न तो समय पर पर्याप्त वर्षा होती है और न जोती हुई खेती अच्छी होती है। संकट के समय उसकी कोई रक्षा भी नहीं करता। अकालीन सन्तान की मृत्यु प्राप्त होती है, पितरों की तृप्ति नही होती। उसके स्वर्ग जाने पर उसे वहां से नीचे ढकेल दिया जाता है। इन्द्रादि देवता उसके ऊपर वज्र का प्रहार करते हैं। इसके लिये मैं अपने प्राणों को न्यौछावर कर दूंगा पर ये कबूतर तुम्हे नही दूंगा बाज। अब तुम व्यर्थ में कष्ट मत उठाओ, कबूतर को तो मैं तुम्हे किसी भी तरह नहीं दे सकता। इस कबूतर को देने के सिवा और जो भी कोई तुम्हारा प्रिय कार्य हो तो बताओ वह करने के लिये मै तैयार हूं।

बाज बोला राजन तो आप अपनी दायी जांघ से मांस काटकर इस कबूतर के वजन के बराबर के मांस को तौलो और जितना मांस चढे, वह मुझे अर्पण कर दो तभी इस कबूतर की रक्षा हो सकती है वर्ना यह कबूतर मेरा आहार है, इसे मुझे दो। तब राजा शिबि ने अपनी दायीं जांघ से मांस काटकर तराजू के एक पलडे पर रखा किन्तु वह कबूतर के बराबर तौल का नहीं हुआ। बार-बार वह काटकर अपनी जंघा का मांस तराजू के पलडे में रखता जा रहा था पर फिर भी कबूतर का ही पलडा भारी रहता था। तब इस प्रकार राजा ने अपने सारे अंगों का मांस काटकाट कर तराजू में चढाया पर फिर भी कबूतर का वजन ही भारी रहा। तब राजा शिबि स्वयं तराजू के पलडे पर चढ गये। ऐसा करने से उनके मन में तनिक भी ग्लानि या क्लेश नहीं हुआ। यह देखकर बाज पक्षी बोला राजन हो गयी कबूतर की रक्षा। आप धन्य है और यह कहकर वह बाज पक्षी वही अन्तर्धान हो गया। अब राजा शिबि उस कबूतर से बोले हे कपोत यह बाज कौन था? कबूतर ने कहा यह बाज साक्षात इन्द्र हैं और मैं अग्नि हूं। हम दोनों आपकी साधुता की परीक्षा करने आये थे। आपने जो अपना मांस काटने से घाव हो गया है उसे मैं अभी अच्छा कर देता हूं। यह पहले की तरह हो जायेगा। आपकी इस जंघा के चिन्ह के पास से आपका एक पुत्र उत्पन्न होगा जिसका नाम होगा कपोतरोमा। यह कहकर अग्नि भी चले गये। राजा शिबि से जो कोई कुछ मांगता, वे उसे दिये बिना नहीं रहते थे। एक बार राजा के मन्त्रियों ने उनसे पूछा महाराज आप किस इच्छा से ऐसा साहस करते है? क्या ये सब आप यश की इच्छा से करते है? तब राजा शिबि बोले नहीं मैं यश की कामना या ऐश्वर्य के लिये दान नहीं करता, न ही भोगों की अभिलाषा मुझे है। धर्मात्मा पुरुषों ने इस मार्ग का सेवन किया है, अत: मेरा भी यह कर्तव्य है। ऐसा समझकर ही मैं यह सब कुछ करता हूं। सत्पुरुष जिस मार्ग से चलते है वही उत्तम मार्ग है यह सोचकर मेरी बुद्धि भी उसी पथ का आश्रय ग्रहण करती है। तब युधिष्ठिर बोले हे मुनिवर मनुष्य किस अवस्था में दानादि देने से इन्द्रलोक में सुख भोगता है तथा दान आदि शुभ कर्मों का भोग उसे किस प्रकार प्राप्त होता है?

**११) दान की महिमा-** मार्कण्डेय मुनि बोले राजन जो पुरुष पुत्रहीन है, जो धार्मिक जीवन व्यतीत नहीं करते, जो सदा दूसरों का ही अन्न खाते हैं तथा जो केवल अपने लिये ही आहार करते हैं, देवता और अतिथि को भी अर्पण नहीं करते ऐसे मनुष्यों का जन्म तो व्यर्थ है। जो वानप्रस्थ या सन्यास आश्रम से पुन: गृहस्थाश्रम में लौट आया हो, उसको दिया हुआ दान तथा अन्याय से कमाये हुये धन का दान व्यर्थ है। इसी प्रकार पतित मनुष्य, चोर, ब्राह्मण, मिथ्यावादी गुरु, पापी, कृतघ्न, ग्राम याजक, वेद विक्रय करनेवाला, शूद्रों से यज्ञ करानेवाला, आचारहीन ब्राह्मण, शूद्रा के पति एवं स्त्री समूह को दिया हुआ दान भी व्यर्थ है। इन दानों का कोई फल नहीं होता। सब अवस्थाओं में सब प्रकार के दान उत्तम ब्राह्मणों को या उत्तम पात्रों को ही देना चाहिये। युधिष्ठिर ने पूछा हे मुने ब्राह्मणों को कौनसा विशेष धर्म पालन करना चाहिये जिससे वे स्वयं का कल्याण भी करे

और दूसरों को भी तार दे। मार्कण्डेय मुनि बोले राजन ब्राह्मण जप, मन्त्र, पाठ, यज्ञ, होम, स्वाध्याय, वेदाध्ययन आदि के द्वारा वेदमयी नौका का निर्माण करते हैं जिसके सहारे वे दूसरों को भी तारते हैं और स्वयं भी तर जाते हैं। जो ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करता है उस पर समस्त देवता प्रसन्न होते हैं। श्राद्ध में उत्तम ब्राह्मणों को ही भोजन कराना चाहिये। जिनके शरीर से घृणा उत्पन्न होती हो, दुर्गन्धि आती हो, जिनके नख गन्दे हो, जो कोढी और कपटी हो, पिता की जीवितवस्था में माता के व्याभाचार से उत्पन्न हो अथवा जिनका जन्म विधवा माता के गर्भ से हुआ हो और जो क्षत्रिय वृति से अपनी जीविका चलाता हो ऐसे ब्राह्मणों को श्राद्ध में त्याग करना चाहिये। क्योंकि ऐसों को भोजन कराने से श्राद्ध निन्दित हो जाता है और निन्दित श्राद्ध यजमान को उसी प्रकार नष्ट कर देता है जैसे अग्नि काठ को जलाकर भस्म कर देती है। हे राजन अन्धे, गूंगे, बहरे आदि जिनको शास्त्र में वर्जित बतलाया है उनको वेद पारंगत ब्राह्मण के साथ श्राद्ध में निमंत्रित किया जा सकता है।

जो सम्पूर्ण शास्त्रों का विद्वान हो और अपने को तथा दाता को तारने की शक्ति रखता हो, ऐसे ब्राह्मण को दान देना चाहिये। अतिथियों को भोजन कराने का भी बहुत बडा महत्व है। उन्हे भोजन कराने से अग्निदेव जितने सन्तुष्ट होते है उतना सन्तोष उन्हे हविष्य का हवन करने से भी नहीं होता है। अत: अतिथियों को भोजन देते रहने का सदा ही प्रयत्न करना चाहिये। जो लोग दूर से आये हुये अतिथि को पैर धोने के लिये जल प्रकाश के लिये दीपक, भोजन के लिये अन्न और रहने के लिये स्थान देते है उन्हे यमराज के पास नहीं जाना पडता, वे दीर्घ आयु को प्राप्त होते हैं। कपिला गो का दान करने से मनुष्य नि:सन्देह सब पापों से मुक्त हो जाता है। अच्छी कपिला गो ब्राह्मण को दान करनी चाहिये। दान पात्र ब्राह्मण क्षोत्रिय हो, नित्य अग्निहोत्र करनेवाला हो, दरिद्रता के कारण जो स्त्री और सन्तान का तिरस्कार सहता हो तथा जिनसे अपना कोई उपकार न होता हो ऐसे लोगों को ही गोदान करनी चाहिये, धनवान व्यक्ति को नही। एक गो एक ही ब्राह्मण को देनी चाहिये, बहुत से ब्राह्मणों को नहीं। क्योंकि एक ही गो यदि बहुतों को दे दी गई तो वे उसे बेचकर उसकी कीमत बांट लेंगे। दान की हुई गाय यदि बेची गई तो वह दाता को तीन पीढी तक हानि पहुंचायेगी। जो लोग कन्धे पर जुआ उठाने में समर्थ बैल बलवान बैल ब्राह्मण को दान करते है वे दु:ख और क्लेशों से मुक्त होकर स्वर्गलोक को जाते है। जो विद्वान ब्राह्मणों को भूमि दान करते है उन दाताओं के पास सभी मनोवांछित भोग अपने आप पहुंच जाते है। अन्नदान का महत्व तो सबसे बढकर है। यदि कोई दीन दुर्बल पथिक थका मांदा, भूखा-प्यासा धूल-धूसरित पैरों से आकर अन्न की याचना करे और कोई उसे अन्नदाता का पता बता दे तो उस मनुष्य को भी अन्नदाता का ही पुण्य मिलता है। इसलिये युधिष्ठिर अन्य दानों की अपेक्षा अन्नदान श्रेष्ठ है। इस जगत में अन्नदान के समान अद्भुत, पुण्य और किसी दान का नहीं है। जो अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मण को उत्तम अन्नदान करता है वह उस पुण्य के प्रभाव से प्रजापति लोक को प्राप्त करता है। वेदों मे अन्न को प्रजापति कहा गया है। प्रजापति संवत्सर माना गया है।संवत्सर यज्ञ रूप है और यज्ञ में सब की स्थिति है। यज्ञ से ही समस्त चराचर प्राणी उत्पन्न होते है। इस प्रकार अन्न ही सब पदार्थों में श्रेष्ठ है। लोग तो अधिक जलवाले जलाशय, तालाब और पोखरे खुदवाते है, अन्न का दान करते है, मधुर वाणी बोलते है। उन्हे यमराज से कोई बात भी नहीं सुननी पडती।

वैशम्पायन बोले जनमेजय यमराज का नाम सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर के मन में बडा आश्चर्य हुआ और वे महात्मा मार्कण्डेय से पूछने लगे मुनिवर इस मनुष्य लोक से यमलोक कितनी दूरी पर है? कैसा है? कितना बडा है? और किन उपायों के करने से मनुष्य उससे बचा जा सकता है? तब मार्कण्डेय मुनि बोले हे धर्मराज तुम्हारा यह प्रश्न बडा ही पवित्र, धर्म सम्मत तथा सभी के लिये आदरणीय है। इस मनुष्य लोक और यमलोक में ८६००० योजन की दूरी है। उसके मार्ग

में सुनसान आकाश है, वह देखने में बडा भयानक और दुर्गम है। वहां न वृक्षों की छाया है, न पानी है और न ही कोई ऐसा स्थान है जहां थका हुआ पथिक क्षणभर विश्राम कर सके। यमराज की आज्ञा से यमदूत यहां आते है और पृथ्वी पर रहनेवाले सभी जीवों को बलात ले जाते है। जो लोग ब्राह्मणों को नाना प्रकार के घोडे आदि वाहन दान किये हुये होते है, वे मार्ग पर उन्ही वाहनों द्वारा जाते हैं। छत्र दान करनेवाले मनुष्यों को उस समय छत्र मिलता है, जिससे वे धूप वर्षा से अपनी रक्षा कर सकते है। अन्नदान करने वाले जीव वहां पर तृप्त होकर विचरते है। जिन्होने कभी अन्नदान नहीं किया, वे भूख का कष्ट भोगते है। वस्त्रों का दान करनेवाले कपडे पहनकर चलते है। भूमि दान करने वाले सभी कामनाओं से तृप्त हो बडे आनन्द से यात्रा करते है। शस्त्र (अनाज) दान करनेवाले सुख से जाते है और मकान बनवाकर दान करनेवाले दिव्य विमानों से आरामपूर्वक यात्रा करते हैं। जल का दान करनेवालों को वहां पर प्यास का कष्ट नहीं होता है। दीप दान करनेवालों के लिये अन्धेरे में चलते समय पर्याप्त प्रकाश का प्रबन्ध रहता है। गो दान करनेवाले सब पापों से मुक्त हो जाते है। जिन्होंने एक माह तक व्रत उपवास किया है वे हंसों के विमानों पर बैठकर विचरण करते है। छै रात तक उपवास करनेवाले मयूरों के विमान से विचरते है। तीन रात तक जो एक समय का भोजन करते है उन्हे अक्षय लोक प्राप्त होते है। जल दान का प्रभाव तो अत्यन्त अलौकिक है। प्रेतलोक में जल बहुत सुख देनेवाला होता है। मरने पर जिनके लिये जल दिया जाता है, उन पुण्यात्माओं के लिये यमलोक के मार्ग में पुष्पोदका नाम की नदी आती है, वे उसका शीतल और अमृत सदृश मधुर जल का पान करते है। जो पापी, नीच जीव है उनके लिये वह नदी पीव समान हो जाती है। इस प्रकार यह नदी सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाली है। हे राजन जो ब्राह्मण अन्नदाता को पूछता हुआ घर पर आ जाये, तो उस ब्राह्मण का अतिथि सत्कार करो। ऐसा अतिथि या ब्राह्मण किसी के घर पर जाता है तो उसके पीछे इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता वहां तक जाते है। यदि वहां उसका आदर होगा तो सभी देवता भी प्रसन्न होते है और यदि वहां उसका आदर नहीं होता तो वे सब देवता निराश होकर लौट जाते है अत: हे राजन अतिथि का सदा विधिवत आदर सत्कार करते रहो।

ब्राह्मण का स्वागत करने से अग्नि, आसन देने से इन्द्र, चरण प्रक्षालन से पितर और उसको भोजन योग्य अन्न प्रदान करने से ब्रह्मा तृप्त होते हैं। गर्भिणी गाय जिस समय बछडा जन्म रही हो उस बछडे का केवल मुख और पैर ही बाहर निकला हो उसी समय ही पवित्र भाव से यदि उस गौ का दान कर दिया जाये तो पृथ्वी के दान के समान पुण्य होता है क्योंकि बच्चा जब तक पृथ्वीपर न आ जाये तब तक वह गौ पृथ्वी रूप ही मानी जाती है। उस गौ और बछडे के शरीर में जितने रोये होते है उतने हजार युगों तक दाता स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित रहता है।

**१२) पवित्रता, तप और मोक्ष का महत्व-** युधिष्ठिर बोले मुने मैं अब उस पवित्रता के बारे में जानना चाहता हूं जिसके होने से ब्राह्मण सदा शुद्ध रहता है। तब मार्कण्डेय मुनि बोले जो द्विज अपने हाथों को घुटनों के भीतर किये मौन भाव से पात्र की ओर ध्यान कर भोजन करता है व स्वयं को और दूसरों को तारने में समर्थ होता है। जो मदिरा नहीं पीते, जिनकी जगत में निन्दा नहीं होती और जो प्रतिदिन वैदिक संहिता का सुन्दर रीति से पठन करते हैं वे ही तारने में समर्थ होते हैं। श्रौत्रिय ब्राह्मण हव्य (यज्ञ बलि) कव्य (पितृ बलि) दान का उत्तम पात्र है। जैसे प्रज्वलित अग्नि में किया हुआ हवन सफल होता है वैसे ही श्रोत्रिय को दिया हुआ दान सार्थक होता है।

पवित्रता तीन प्रकार की होती है, वाणी की, कर्म की और जल की। इन तीनों प्रकार की पवित्रता से जो युक्त है वह स्वर्ग का अधिकारी है। जो ब्राह्मण प्रात: और सायं दोनों समय की सन्ध्या तथा गायत्री जप करता है, गायत्री की कृपा से उसका

पाप ताप नष्ट हो जाता है। वह सम्पूर्ण पृथ्वी का दान लेनेपर भी प्रतिग्रह दोष से दु:खी नहीं होता। गायत्री का जप करनेवाले ब्राह्मण के ग्रह यदि विपरीत भी हो तो शान्त होकर उसे सुख पहुंचाते है और भयंकर राक्षस भी उसका तिरस्कार नहीं कर पाते। ब्राह्मण सभी स्थिति में सम्माननीय है। वह वेद पढा हो या नही, उसके सब संस्कार अच्छे से सम्पन्न हुये हो या नहीं, उसका अपमान कभी भी नहीं करना चाहिये। जैसे राख से ढकी गई अग्नि पर कोई पैर नहीं रखता। जहां सदाचारी ज्ञानी और तपस्वी वेदज्ञ ब्राह्मण रहते हो वही स्थान नगर है। गोशाला हो या जंगल, जहां कही भी बहुत से शास्त्रों का ज्ञान रखनेवाले ब्राह्मण रहते हो वह स्थान तीर्थ कहलाता है। पवित्र तीर्थों में स्नान, पवित्र वेदमन्त्रों या भगवान के नाम कीर्तन एवं सत्पुरुषों के साथ संकीर्तन, सत्संग इन सब कार्यों को विद्वान पुरुष उत्तम बताते है। सज्जन पुरुष सत्संग से पवित्र हुई सुन्दर वाणी रूप जल से ही अपनी आत्मा को पवित्र मानते हैं। जो मन वाणी, कर्म और बुद्धि से कभी पाप नहीं करते वे ही महात्मा तपस्वी हैं। जो व्रत उपवासादि करके मुनि वृति से रहते हैं किन्तु अपने कुटुम्बी जनों पर तनिक भी दया नहीं करते वह कभी निष्पाप नहीं हो सकते। उनकी वह निर्दयता उस तप का नाश करनेवाली है। केवल भोजन त्याग देने से तपस्या नहीं होती। जो निरन्तर घर पर रहकर जो पवित्र भाव से रहता है और सब प्राणियों पर दया करता है उसे मुनि ही जानना चाहिये। वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है। राजन शास्त्रों में जिनका उल्लेख नहीं है, ऐसे कर्मों की अपने मन से कल्पना करके लोग तपायी हुई शिला आदि पर बैठते हैं। यह सब होता है तपस्या के नाम पर पापों को भस्मसात करने के लिये परन्तु इससे केवल शरीर को कष्ट होता है और कोई लाभ नहीं होता। जिसका हृदय श्रद्धा और भाव से शून्य है, उसके पाप कर्मों को अग्नि भी नहीं जला सकती। दया तथा मन, वाणी और शरीर की शुद्धि से ही शुद्ध वैराग्य और मोक्ष प्राप्त होते हैं। केवल फल खाने या हवा पीकर रहने से तथा सिर मुंडाने से, घर छोडने, जटा बढाने, पंचाग्नि के सेवन से, जल के भीतर खडे रहने से या खुले मैदान में जमीन पर शयन करने से कोई मोक्ष नहीं मिल जाता। ज्ञान अथवा निष्काम कर्म से ही जरा मृत्यु आदि सांसारिक व्याधियों से पिंड छूटता है और उत्तम पद की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार अग्नि में भूने हुये बीज नहीं उगते उसी प्रकार ज्ञान रूपी अग्नि से सभी अविद्याजनित क्लेशों के दग्ध हो जाने पर पुन: उनसे आत्मा का संयोग नहीं होता।

एक या आधे श्लोक से भी यदि सम्पूर्ण भूतों में विराजमान आत्मा का ज्ञान हो जाये तो मनुष्य के सम्पूर्ण शास्त्रों के अध्ययन का प्रयोजन समाप्त हो जाता है। कोई कोई तो तत् इस शब्द से ही आत्मा को जान लेते हैं, कुछ लोग मन्त्र पदों से युक्त सैकडों हजारों उपनिषद वाक्यों से आत्मतत्व को समझते हैं। जिस प्रकार भी हो आत्मतत्व का सुदृढ़ बोध ही मोक्ष है। जिसके हृदय में संशय है, आत्मा के प्रति अविश्वास है, उसके लिये न लोक है और न ही परलोक और न उसे कभी सुख ही मिलता है, ज्ञानवृद्ध पुरुषों ने ऐसा ही कहा है। इसलिये श्रद्धा और विश्वासपूर्वक निश्चयात्मक बोध ही मोक्ष का स्वरूप है। एक अविनाशी एवं सर्वव्यापक आत्मा को युक्तियों से जानना हो तो कोरा तर्कवाद छोडकर श्रुतियों, स्मृतियों और पुराणों का आश्रय लो। उनमें आत्मा का बोध करानेवाली बहुत उत्तम युक्तियां उपलब्ध होगी। जो शुष्कतर्क का आश्रय ग्रहण करता है उसे साधन की विपरीतता के कारण आत्मा की सिद्धि प्राप्त नहीं होती। आत्मा वेदों के द्वारा ही जाना जाता है क्योंकि आत्मा वेद स्वरूप है, वेद ही उसका शरीर है। वेद से ही तत्त्व का बोध होता है। आत्मा में ही वेदों का उपसंहार या लय होता है आत्मा अपनी उपलब्धि में स्वयं ही समर्थ नहीं है, उसका अनुभव सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा होता है। अत: मनुष्य को इन्द्रियों की निर्मलता के द्वारा विषय भोगों को त्याग देना चाहिये। यह इन्द्रियों के निरोध से होनेवाला अनशन (उपवास या विषयों का अग्रहण) दिव्य होता है। तप से स्वर्ग मिलता है, दान से भोगों की प्राप्ति होती है। तीर्थ स्नान से सारे पाप नष्ट होते है परन्तु मोक्ष तो ज्ञान से ही होता है।

HHH(८०)HHH

**१३) उत्तक मुनि की तपस्या व उनका वृतान्त-** युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय मुनि से पूछा मुने इक्ष्वाकुवंशी महाराज कुवलाश्व बडे प्रतापी हुये। वे राजा कुछ समय पश्चात धुंधुमार नाम से प्रसिद्ध हुये तो उनके इन नाम परिवर्तन का क्या कारण है? मार्कण्डेय मुनि बोले धर्मराज युधिष्ठिर राजा धुंधुमार का धार्मिक उपाख्यान इस प्रकार है। पूर्वकाल में उतंक नाम के प्रसिद्ध महर्षि राजस्थान में मरू प्रदेश (मारवाड) में हुये। वहां उनका एक आश्रम था। एक समय महर्षि उत्तंक ने भगवान विष्णु को प्रसन्न करने के लिये कठोर तपस्या की। बहुत लम्बे समय तक उन्होने यह कठोर तप किया तब भगवान ने प्रसन्न होकर उन्हे प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उनके दर्शन से मुनि प्रसन्न हुये और विनयपूर्वक नाना प्रकार के स्त्रोत पाठ से उनकी स्तुति करने लगे। उतंक मुनि बोले हे भगवन देवता, असुर और मनुष्य आप ही से उत्पन्न हुये है। आपने ही चराचर प्राणियों की सृष्टि की है। वेद वेत्ता ब्रह्मा, वेद तथा उनसे जो भी जानने योग्य वस्तुयें है उन सबका निर्माण आप ही से हुआ है। हे देव आकाश आपका सिर है, सूर्य और चन्द्रमा आपकी दो आंखे है, वायु सांस है और अग्नि आपका तेज है। सारी दिशायें आपकी भुजाये है, महासागर उदर है, पर्वत अरु है और अन्तरिक्ष जंघा है। पृथ्वी आपके चरण और औषधियां रोम है। इन्द्र, सोम, अग्नि, वरुण, देवता, असुर, नाग ये सब आपके सामने नतमस्तक हो नाना प्रकार की स्तुतियां करते हुये हाथ जोडकर आपको प्रणाम करते हैं। हे भुवनेश्वर आप सम्पूर्ण प्राणियों में व्याप्त हैं। बडे-बडे योगी और महर्षि भी आपकी स्तुति करते हैं।

उतंक मुनि की स्तुति सुनकर भगवान प्रसन्न हो बोले उतंक मैं तुम पर प्रसन्न हूं, कोई वर मांग लो तब उतंक मुनि बोले हे प्रभो सारे जगत को रचने वाले दिव्य सनातन पुरुष आप श्री भगवान नारायण का मुझे दर्शन मिला यही मेरे लिये सबसे बढकर वर है। विष्णु बोले हे ब्रह्मन तुम्हारा हृदय लोभ से ग्रसित नहीं है, मुझमें तुम्हारी अनन्य भक्ति है। इसलिये मैं तुम्हारे वश हो तुमसे प्रसन्न हूं। इस प्रकार भगवान ने उतंक मुनि को वर मांगने के लिये बार-बार अनुरोध किया तब उतंक मुनि हाथ जोडकर बोले हे कमल लोचन यदि आप मुझपर प्रसन्न है और वर देना ही चाहते है तो ऐसी कृपा करे जिससे मेरी बुद्धि सदा शम-दम, सत्य भाषण तथा धर्म में लगी रहे आपके भजन भक्ति का भाव कभी न छूटे। भगवान बोले मुने तुमने जो कुछ मांगा है वह उसी प्रकार पूर्ण होगा। इसके सिवा तुम्हारे हृदय में उस योगविद्या का प्रकाश होगा जिससे तुम देवताओं तथा इन तीनों लोकों का बहुत बडा कार्य सिद्ध कर सकोगे। धुंधु नामवाला एक महान असुर विश्व का विनाश करने के लिये घोर तपस्या कर रहा है। उस असुर का वध जिसके हाथ से होगा वह इच्छवाकु वंश में एक बलवान और विजयी राजा वृहदश्व नाम का होगा। उसके कुबलाश्व नाम का पुत्र होगा, वह मेरे योग बल से तुम्हारी आज्ञा से धुंधु का वध करेगा। वह इस जगत में धुंधुमार नाम से विख्यात होगा। ऐसा कहकर भगवान वहाँ से अन्तर्धान हो गये।

**१४) धुंधुमार का वृतान्त-** मार्कण्डेय बोले- युधिष्ठिर इक्ष्वाकु वंश में शशाद नाम का पुत्र राजा था। उसकी राजधानी अयोध्या थी। शशाद का पुत्र ककुत्स्थ, ककुत्स्थ से अनेना, अनेना का पृथु, पृथु का विश्वगश्व, उसका अद्रि, अद्रि का युवनाश्व और उसका पुत्र श्राव हुआ। श्राव का पुत्र श्रावस्त, श्रावस्त के पुत्र वृहदश्व हुआ, उसका पुत्र कुवलाश्व के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कुवलाश्व के २१ हजार पुत्र हुये। वे सभी विद्याओं मे पारंगत और महान पराक्रमी थे। राजा कुवलाश्व भी गुणों में अपने पिता समान उनसे बढचढ कर ही थे। जब वह राज्य सम्भालने योग्य हो गया तो उसके पिता ने उसे राज्य पर अभिषिक्त कर दिया और स्वयं तपस्या करने के लिये वन जाने को उद्यत हो गया। तब उतंक मुनि को यह मालूम पडा तो वे उसके राज्य में आये और राजा को रोकते हुये बोले राजन हम सब लोग आपकी प्रजा हैं और आपका कर्तव्य है प्रजा की रक्षा करना। सबसे पहिले आप अपने इस कर्तव्य का पालन कीजिये। आपकी कृपा से सारी प्रजा और इस पृथ्वी का उद्वेग दूर हो सकेगा। यहां रहकर प्रजा की रक्षा करने में तो बडा भारी पुण्य है, वैसा धर्म वन में जाकर तपस्या

करने में भी नहीं है। आपके बिना हम निर्विघ्नतापूर्वक तपस्या नहीं कर पायेंगे। मरु प्रदेश में हमारे आश्रम के ही निकट रेत से भरा हुआ एक समुद्र है उसका नाम है उज्जालक सागर। वह लम्बाई चौडाई में अनेक योजनों मे फैला है। वहां पर एक बडा ही भारी बलवान दानव धुंधु नाम का रहता है। वह मधु कैटभ दैत्य का पुत्र है। वह पृथ्वी के भीतर छिपकर रहता है। बालू के भीतर छिपकर रहने वाला वह दैत्य वर्षभर में एक बार सांस लेता है। जब वह सांस छोडता है उस समय पर्वत और वनोंसहित यह पृथ्वी डोलने लगती है। उसके श्वास की आंधी से रेत का इतना ऊंचा बवंडर उठता है जिससे सूर्य भी ढक जाता है। सात दिनों तक भूचाल होता रहता है। अग्नि शिखा, चिनगारियां और धुएं उठते रहते है। इन सब उत्पातों के कारण हमारा आश्रम में रहना कठिन हो गया है। अत: हे राजन मनुष्यों के कल्याण के लिये आप उस दैत्य का वध करे।

राजा वृहदाश्व हाथ जोडकर बोले ब्रह्मन, मैंने शस्त्रों का त्याग कर दिया है और मैं युद्ध से विरक्त हो गया हूं। आप जिस उद्देश्य से यहां पधारे है वो निष्फल नही होगा। मेरा पुत्र कुबलाश्व इस भूमंडल में अद्वितीय वीर है और बडा ही धैर्यवान तथा फुर्तीला है। वह आपका यह अभिष्ट कार्य अवश्य पूर्ण करेगा। उसके बलवान पुत्र भी अस्त्र शस्त्रों से युद्ध में उसका साथ देंगे। तब उतंक मुनि बोले बहुत अच्छा फिर राजर्षि वृहदाश्व ने उतंक मुनि के आदेश से उनके अभिष्ट कार्य को पूर्ण करने के लिये अपने पुत्र कुबलाश्व को आज्ञा दी और स्वयं तपोवन चले गये।

मार्कण्डेय मुनि बोले युधिष्ठिर धुंधु दैत्य मधु कैटभ दैत्य का पुत्र था। एक समय उसने एक पैर खडे रहकर बडी ही कठोर तपस्या की। उसकी तपस्या से प्रसन्न हो ब्रह्मा ने उससे वर मांगने को कहा। तब वह दैत्य धुंधु बोला मुझे यह वर दें कि देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सर्प इनमें से किसी के द्वारा भी मेरी मृत्यु न हो। ब्रह्मा ने तथास्तु कह दिया। ब्रह्मा की स्वीकृति पाकर धुंधु दैत्य ब्रह्मा के चरण स्पर्श कर वहां से चला गया। तभी से वह उतंक मुनि के आश्रम के पास अपने श्वास से आग की चिनगारियां छोडता हुआ रेती में रहने लगा। राजा वृहदश्व के वन चले जाने के पश्चात उनका पुत्र कुबलाश्व उत्तंक मुनि के साथ सेना लेकर वहां आया। २१००० तो केवल उसके पुत्रों की ही सेना थी। उत्तंक की अनुमति से भगवान विष्णु ने समस्त लोकों का कल्याण करने के लिये राजा कुवलाश्व में अपना तेज स्थापित कर दिया। कुवलाश्व ज्यों ही युद्ध के लिये आगे बढा कि आकाशवाणी हुई राजा कुवलाश्व धुन्धु का वध करेगा और धुन्धुमार नाम से विख्यात होगा देवता दुन्दुभि बजाने लगे। दिव्य पुष्पों की वृष्टि हुई। ठंडी हवाये चलने लगी, पृथ्वी पर धूल उडने लगी। इन्द्र ने धीरे-धीरे वर्षा की।

भगवान विष्णु के तेज से समाया हुआ राजा कुवलाश्व शीघ्र ही वहां पहुंचकर अपने पुत्रों से चारों ओर की रेती खुदवाने लगा। सात दिनों की खुदाई के बाद वह महान दैत्य दिखाई पडने लगा। बालू के भीतर उसका महाविशाल शरीर छिपा पडा था। प्रकट होने पर लग रहा था मानो सूर्य प्रकाशमान हो रहा हो। धुन्धु प्रलयकालीन की अग्नि के समान पश्चिम दिशा को घेरे सो रहा था। कुबलाश्व के पुत्रों ने उसे चारों ओर से घेरकर अपनी तीखे बाणों, गदा, मूसल, पट्टिश, परिघ और तलवार आदि अस्त्र-शस्त्रों से उस पर प्रहार किया। उन लोगों के साथ युद्ध करते वह महाबली दैत्य क्रोधित हो उन अस्त्र शस्त्रों को ही निगल गया। उसके मुख से संवर्तक अग्नि के समान आग की लपटे उगलने लगा और अपने तेज से उन सभी राजकुमारों को क्षण भर में भस्म कर दिया, जैसे पूर्वकाल में महात्मा कपिल ने महाराज सगर के ६०००० पुत्रों को भस्म किया था। जब सभी कुमार धुन्धु की क्रोधाग्नि में भस्म हो गये तो महातेजस्वी राजा कुवलाश्व उस दैत्य की ओर बढे। कुवलाश्व के शरीर से जल की वर्षा होने लगी जिसने धुन्धु के मुख से निकलती हुई आग को शान्त किया। महायोगी कुवलाश्व ने अपने योगबल से उस आग को बुझा दिया और ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर समस्त जग का भय दूर करने के लिये

उस दैत्य का वध कर डाला। धुन्धु दैत्य को मारने से कुबलाश्व का नाम धुन्धुमार हुआ। इस युद्ध में राजा कुवलाश्व के तीन पुत्र शेष जीवित रहे दृढाश्व, कपिलाश्व और चन्द्राश्व। इन तीनों से ही इक्ष्वाकु वंश की परम्परा आगे चली।

**१५) पतिव्रता स्त्री और कौशिक ब्राह्मण का संवाद-** युधिष्ठिर मार्कण्डेय मुनि से बोले हे मुनिवर मुझे पतिव्रता स्त्रियों के सूक्ष्म धर्म की महिमा सुनाइये। माता-पिता आदि गुरुजनों की सेवा करनेवाले बालक और पातिव्रत्य धर्म का पालन करनेवाली स्त्रियां सबके लिये आदरणीय होती है। स्त्रियां तो सदाचार की रक्षा करती हुई अपने पति को परमेश्वर मानकर जिस आदर भाव से उसकी सेवा करती है, वह कोई आसान काम नहीं है। इसी प्रकार माता-पिता की सेवा की भी बहुत बडी महिमा है। स्त्रियां तो बाल्यकाल से ही माता-पिता की और विवाह के पश्चात पति की बडी श्रद्धा और भक्ति से सेवा करती है। उनका यह धर्म निभाना बडा ही कठिन है। मुझे इससे बढकर कठिन और कोई धर्म नहीं लगता। अत: मुनिवर मुझे पतिव्रताओं के महात्म्य का वृतान्त सुनाये। मार्कण्डेय मुनि बोले राजन सती स्त्रियां पति की सेवा से स्वर्गलोक पर विजय पाती है तथा माता-पिता की सेवा करनेवाला पुत्र इस संसार में सुयश और सनातन धर्म का विस्तार कर उत्तम लोकों की प्राप्ति करता है। इसके बारे में तुम्हें एक प्रकरण सुनाता हूं।

पूर्वकाल में कौशिक नाम का एक ब्राह्मण था। वह बडा ही धर्मात्मा और तपस्वी था। वेद पारंगत था। एक दिन वह वृक्ष के नीचे बैठकर वेद पठन कर रहा था। उसी समय उस वृक्ष पर एक बगुली बैठी थी, उसने उस ब्राह्मण पर बीट कर दी। ब्राह्मण ने क्रोधित हो उस बगुली का अनिष्ट चिन्तन करते हुये उस बगुली पर दृष्टि डाली जिससे वह बगुली पेड से गिर पडी और मृत्यु को प्राप्त हुई। ब्राह्मण को अपने इस कुकृत्य पर पश्चाताप हुआ और उसके मुख से निकल पडा आज मैंने क्रोध के वशीभूत हो कैसा अनुचित्त कार्य कर डाला। वह ब्राह्मण पछता कर गांव में भिक्षा के लिये गया। उस गांव के जो लोग शुद्ध और पवित्र आचरणवाले थे उन्ही के घरों पर भिक्षा मांगता हुआ वह ब्राह्मण एक ऐसे घर पर जा पहुंचा जहांसे उसने पहिले कभी भिक्षा प्राप्त नहीं की थी। द्वार पर जाकर वह ब्राह्मण बोला भिक्षाम् देहि माई। भीतर से एक स्त्री ने आवाज लगाई ठहरो बाबा अभी लाती हूं। वह स्त्री अपने घर के जूठे बर्तन साफ कर रही थी। जैसे ही वह उस काम से निवृत्त हुई उसके पति घर पर आगये, वे बहुत भूखे थे पति को आया देख उस स्त्री को बाहर प्रतीक्षा में खडे ब्राह्मण का स्मरण नहीं रहा। वह पति सेवा में जुट गई। जल से पति के पैरों का प्रक्षालन किया, हाथ मुंह धुलवाये, बैठने का आसन देकर सुन्दर स्वादिष्ट भोजन अर्पण किया। वह स्त्री प्रतिदिन पति को भोजन करा कर उसके उच्छिष्ट को प्रसाद मानकर बडे प्रेम से भोजन करती थी। पति को ही अपना देवता समझती थी अपने स्वामी के अनुकूल ही आचरण करती थी। उसने कभी भी मन से भी कभी परपुरुष का चिन्तन नहीं किया। अपने हृदय की समस्त भावनाये, सम्पूर्ण प्रेम पति के चरणों में अर्पित कर अनन्य भाव से उनकी सेवा में ही रत रहती थी। सदाचार का पालन उसके जीवन का अंग था, उसका शरीर भी शुद्ध था और हृदय भी। वह गृहकार्य में कुशल थी, परिवार में रहनेवाले हर सदस्य का हित चाहनेवाली थी। पति के हित साधन का उसे सदा ही ध्यान रहता था, देव पूजा अतिथि सत्कार, सेवकों का भरण-पोषण और सास ससुर की सेवा का बडा ही खयाल रखती थी। अपने मन और इन्द्रियों पर उसका पूरा नियन्त्रण था।

पति की सेवा करते समय उस स्त्री को भिक्षा के लिये प्रतीक्षा करते हुये ब्राह्मण का स्मरण आया। पति सेवा का तात्कालिक कार्य पूर्ण हो चुका था। वह भिक्षा लेकर बडे संकोच से ब्राह्मण के निकट गयी, पर ब्राह्मण तो प्रतीक्षा में जला भुना खडा था। उसने देखते ही वह ब्राह्मण बोला देवि जब तुम्हें देर ही करनी थी तो ठहरो बाबा कहकर मुझे क्यों रोका? मुझे जाने क्यों नहीं दिया? तब उस सती ने बडी शान्ति से कहा पंडित बाबा मुझे क्षमा करें। मेरे सबसे महान देव मेरे पति हैं। वे भूखे प्यासे, थके

मांदे घर पर आये थे। उनको छोडकर आना मेरे लिये सम्भव नहीं था, मैं उनकी सेवा श्रुषा में लग गई।

ब्राह्मण बोला क्या ब्राह्मण बडे नहीं है? क्या पति ही सबसे बडा होता है? गृहस्थधर्म में रहते हुये भी तुम ब्राह्मणों का अपमान कर रही हो। इन्द्र भी ब्राह्मणों के सामने नतमस्तक होते है, फिर मनुष्य की तो बात ही क्या? क्या तुम ब्राह्मणों के व्यवहार को नहीं जानती? क्या कभी तुमने बडे बूढों से भी नहीं सुना? अरी ब्राह्मण अग्नि के समान तेजस्वी होते हैं, वे चाहे तो इस पृथ्वी को जलाकर खाक कर सकते है।

तब उस सती स्त्री ने कहा तपस्वी बाबा क्रोध न कीजिये। मैं वह बगुली नहीं हूं जो आप मेरी ओर यों लाल-लाल आंख करके देख रहे हैं। आप कुपित होकर भी मेरा कुछ नहीं बिगाड पायेंगे। मैं कभी ब्राह्मणों का अपमान नहीं करती। ब्राह्मण तो देवता के समान होते है। आपका अपराध मुझसे हुआ है इसके लिये क्षमा चाहती हूं। मैं ब्राह्मणों के तेज से अपरिचित नहीं हूं। मैं ब्राह्मणों के महान सौभाग्य को भी जानती हूं। ब्राह्मणों के ही क्रोध स्वरूप सागर का जल पीने योग्य नहीं रहा। ये महान तपस्वी और शुद्ध अन्त:करण मुनि ही थे जिनकी क्रोधाग्नि आज भी दंडकारिणी में नहीं बुझी। ब्राह्मणों के ही तिरस्कार से वातापि राक्षस अगस्त्य मुनि के पेट में पच गया। महात्मा ब्राह्मणों का बहुत प्रभाव होता है। महात्माओं का क्रोध और प्रसाद दोनों ही महान है। इस समय मुझसे जो आपकी उपेक्षा हो गई है उसके लिये आप से क्षमाप्रार्थी हूं। मुझे तो पति की सेवा से जिस धर्म का पालन होता है वही अधिक प्रिय है। देवताओं से भी बढकर मेरे लिये मेरे पति ही हैं। मैं तो सामान्य रूप से पातिव्रत्य धर्म का पालन करती हूं। हे ब्राह्मण देवता आप इस पति सेवा का फल प्रत्यक्ष रूप में देख लें। आपने कुपित होकर बगुली पक्षी को दग्ध किया, यह बात मैं जान गई। बाबा मनुष्यों का एक बहुत बडा शत्रु है क्रोध जो उसके शरीर में ही वास करता है। जो कोई क्रोध और मोह को जीत ले और जो सदा सत्य भाषण करे, गुरुजनों को सेवा से प्रसन्न करे और अपने अपकार करनेवाले का प्रतिकार न करे, जो अपनी इन्द्रियों को वश में कर पवित्र भाव से धर्म और स्वाध्याय में रत रहे, जिसने काम को जीत लिया है, वही देवताओं के मत मे ब्राह्मण जानने योग्य है। जिस धर्मज्ञ और मनस्वी पुरुष का सम्पूर्ण जगत के प्रति आत्मभाव है और सभी धर्मों पर अनुराग है, जो यजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन आदि ब्राह्मणोचित कर्मों को करते हुये अपने शक्ति अनुसार दान करता है, ब्रह्मचर्य अवस्था में जो सदा वेदों का अध्ययन करता है, जिसके नित्य स्वाध्याय में कभी भूल नहीं होती उसी को देवता लोग ब्राह्मण कहते हैं। ब्राह्मणों के लिये जो कल्याणकारी धर्म है उसी का उनके समक्ष वर्णन करना उचित होता है। ब्राह्मण सत्यवादी होते हैं, उनका मन कभी असत्य में नहीं लगता। ब्राह्मण के लिये स्वाध्याय, दम, आर्जव (सरल भाव) और सत्य भाषण यह परम धर्म बतलाया गया है। यद्यपि धर्म का स्वरूप समझना कठिन है तथापि वह सत्य में प्रतिष्ठित है। वृद्ध पुरुष कहते है धर्म के विषय में वेद ही प्रमाण हैं। वेदों से ही धर्म का ज्ञान होता है। धर्म का स्वरूप सूक्ष्म है। ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि वेद पढने से उसका यथार्थ रूप प्रकट हो जायेगा। अभी आपको धर्म का यथार्थ तत्व ज्ञात नहीं हुआ है। हे ब्राह्मण देव। परम धर्म क्या है? यदि यह आप जानना चाहते है तो मिथिला पुरी में माता-पिता के भक्त सत्यवादी और जितेन्द्रिय धर्म व्याघ्र से जाकर पूछिये। वे आपको धर्म तत्व समझा देंगे। आपका कल्याण हो, अब जहां इच्छा हो वहां पधारे। यदि मुझसे कुछ अनुचित बात कही गई हो तो क्षमा करें क्योंकि स्त्रियां दया योग्य होती है। तब वह ब्राह्मण बोला देवी तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हारा यह उपदेश सुनकर प्रसन्न हुआ। मेरा क्रोध दूर हुआ। तुमने मुझे उपालम्भ देकर सावधान कर दिया। इससे मेरा कल्याण ही होगा। अब मैं मिथिला जाऊंगा और अपना कार्य सिद्ध करूंगा।

## HHH(८४)HHH

उस पतिव्रता सती की बातें सुनकर वह कौशक ब्राह्मण अपराधी की भांति अपने को धिक्कारने लगा। फिर धर्म की सूक्ष्म गति पर विचार कर मन ही मन निश्चय किया मुझे उस सती के कहने पर श्रद्धा और विश्वास कर उस धर्मात्मा धर्म व्याघ्र से मिलकर धर्म सम्बन्धी जिज्ञासा करनी चाहिये। इस तरह विचार कर वह कौशिक ब्राह्मण मिथिलापुरी की ओर चल दिया। रास्ते में अनेकों नगर, ग्रामों, जंगलों को पार करते हुये राजा जनक की नगरी मिथिलापुरी पहुंचा। उस नगर की शोभा बडी ही सुन्दर थी उसमें धर्म का पालन करनेवाले मनुष्यों का निवास था और अनेकों स्थानों पर यज्ञ तथा धर्म सम्बन्धी महान उत्सव हो रहे थे। कौशिक ब्राह्मण उस नगर में पहुंचकर सब ओर घूमकर धर्मव्याघ्र का पता लगाने लगा।

**१६) मिथिला में कौशिक ब्राह्मण को धर्मव्याघ्र का धर्मोपख्यान-** वैशम्पायन कहते है जनमेजय मार्कण्डेय मुनि युधिष्ठिर को बता रहे हैं कि वह कौशिक ब्राह्मण मिथिला नगरी में ब्राह्मणों से धर्मव्याघ्र का पता पूछते-पूछते धर्मव्याध के कसाई खाने में जा पहुंचा और वहां जाकर उसने देखा धर्मव्याघ्र बैठा बैठा वहां पर मांस बेच रहा है। ब्राह्मण वहां एकान्त में जाकर बैठ गया। धर्मव्याघ्र को मालूम हो गया कि कोई ब्राह्मण मुझसे मिलने आया है तब वह शीघ्र ही ब्राह्मण के पास आकर बोला भगवन आपके चरणों में मेरा सादर प्रणाम। मैं आपका स्वागत करता हूं। मैं ही वह व्याघ्र हूं जिसे आपने ढूंढते हुये यहां तक आने का कष्ट किया है। आपका कल्याण हो। आज्ञा करें आपकी क्या सेवा करूं। उस पतिव्रता स्त्री ने ही आपको मिथिला आने के लिये प्रेरित किया है। व्याघ्र की बात सुनकर वह कौशिकी ब्राह्मण बडे विस्मय में पड गया और मन ही मन विचार करने लगा। व्याघ्र ने कहा हे ब्राह्मण देव यह स्थान आपके योग्य नहीं है। यदि स्वीकार करें तो हम दोनों मेरे घर चले। फिर ब्राह्मण ने कहा ठीक है ऐसा ही करें। आगे आगे ब्राह्मण चला और पीछे पीछे धर्मव्याघ्र। घर पहुंच कर धर्मव्याघ्र ने ब्राह्मण के पद प्रक्षालन कर बैठने को आसन दिया। वह ब्राह्मण धर्मव्याघ्र से बोला हे तात यह मांस बेचने का कर्म तुम्हारे योग्य नहीं है। तुम्हारे इस घोर कर्म से मुझे बडा क्लेश हो रहा है।

धर्मव्याघ्र उस ब्राह्मण से बोला हे विप्रवर यह कर्म मैंने अपनी इच्छा से नहीं किया है। यह व्यवसाय मेरे कुल में मेरे पूर्वजों के समय से चला आ रहा है। स्वयं मैं ऐसा कोई कार्य नहीं करता जो धर्म के प्रतिकूल हो। सावधानी से अपने बूढे माता-पिता की सेवा करता हूं। सदा सत्य बोलता हूं तथा किसी की निन्दा नहीं करता हूं और यथा शक्ति दान देता हूं। देवता, अतिथि तथा सेवकों को भोजन कराकर जो बचता है उसीसे अपनी जीविका चलाता हूं। शूद्र का कर्तव्य है अन्य तीनों वर्णों की सेवा करना, वैश्य का कर्म है कृषि करना, गो पालन करना। क्षत्रिय का कर्तव्य है युद्ध करना और रक्षा करना। ब्रह्मचर्य का पालन, तपस्या, वेदाध्ययन तथा सत्य भाषण ये ब्राह्मण के करने योग्य धर्म हैं। राजा का यह कर्तव्य है कि वह अपने-अपने धर्म पालन में लगी हुई प्रजा का धर्मपूर्वक शासन करे तथा जो लोग धर्म से च्युत हो गये उन्हें पुन: धर्म में लगावे। हे ब्राह्मण देव यहां राजा जनक के राज्य में ऐसा कोई नहीं है जो धर्म के विरुद्ध आचरण करे। चारों वर्णों के लोग अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं। राजा जनक दुराचारी को, धर्म विरुद्ध चलनेवाले को कठोर दंड देते हैं भले वह उनका अपना पुत्र ही क्यों न हो। अत: आप मुझसे या किसी अन्य मिथिलावासी से अधर्म की आशंका न करें। मैं स्वयं किसी जीव की हिंसा नहीं करता। दूसरों के द्वारा मारे गये सूअर और भैसों का मांस बेचता हूं। मैं स्वयं कभी मांस नहीं खाता। ऋतुकाल प्राप्त होनेपर ही स्त्री संसर्ग करता हूं। दिन में उपवास और रात्रि में भोजन करता हूं। कुछ लोग मेरी प्रशंसा करते हैं तो कुछ लोग निन्दा परन्तु मैं उन सबको अपने सद्व्यवहार से प्रसन्न रखता हूं।

हे विप्रवर, द्वन्दों को सहन करना, धर्म में दृढ रहना, सब प्राणियों का योग्यता के अनुसार सम्मान करना ये सब

मानवोचित्त गुण त्याग के बिना नहीं आते। व्यर्थ का विवाद नहीं करना चाहिये और बिना कहे दूसरे का भला करना चाहिये। किसी कामना से, क्रोध से या द्वेष वश धर्म का त्याग नहीं करना चाहिये। प्रिय वस्तु की प्राप्ति होनेपर हर्ष से न समाये और अपने मन के विपरीत होनेपर उद्विग्न न हो। आर्थिक संकट आ जाने पर घबराये नहीं तथा किसी भी अवस्था में अपना धैर्य न छोडे। यदि भूल से धर्म के विपरीत कोई आचरण हो जाये तो पुन: दुबारा वह काम नहीं करना चाहिये। जो विचार करने पर अपने और दूसरों के लिये कल्याणकारी प्रतीत हो, उसी काम में अपने को लगाना चाहिये। बुराई करनेवाले के प्रति बदले में भी बुराई न करे, अपनी साधुता कभी न छोडे। जो दूसरों की बुराई करना चाहता है, वह पापी अपने आप नष्ट हो जाता है। जो पवित्र भाव से रहनेवाला धर्मात्मा पुरुषों के कर्म को अधर्म मानकर उनका मजाक करते हैं वे श्रद्धाहीन मनुष्य नाश को प्राप्त होते हैं। पापी मनुष्य धौंकनी के समान व्यर्थ फूले रहते हैं, वास्तव में उनमें पुरुषार्थ नहीं होता। जो मनुष्य पाप कर्म बन जाने पर सच्चे हृदय से पश्चाताप करता है वह उस पाप से छूट जाता है, फिर ऐसा कर्म कभी नहीं करूंगा ऐसा दृढ संकल्प कर लेने पर वह भविष्य में होनेवाले अन्य पापों से बच जाता है। लोभ ही पाप का घर है, लोभी मनुष्य ही पाप करने का विचार करते हैं। पापी पुरुष ऊपर से धर्म का जाल फैलाये रहते हैं जैसे तिनकों से ढका हुआ कुँआ हो वैसे ही इनके धर्म की आड में पाप रहता है। इनमें इन्द्रिय संयम, बाहरी पतिव्रता और धर्म सम्बन्धी आचरण ये सब होते है किन्तु धर्मात्मा पुरुषों का सा शिष्टाचार नहीं होता।

मार्कण्डेय मुनि युधिष्ठिर से बोले राजन धर्मव्याघ्र का उपदेश सुनकर उस कौशिक ब्राह्मण ने धर्मव्याघ्र से पूछा हे नरश्रेष्ठ मुझे शिष्ट पुरुषों के आचरण का ज्ञान कराये, उनके व्यवहार रीति के बारे में बताये। तब धर्मव्याघ्र बोला ब्राह्मण। यज्ञ, तप, दान, वेदों का स्वाध्याय और सत्य भाषण ये शिष्ट पुरुषों के लक्षण है। जो काम, क्रोध, लोभ, दम्भ और उद्दंडता इन दुर्गुणों को वश में कर लेते है, वे ही शिष्ट (उत्तम) पुरुष कहलाते हैं। उनका शिष्ट पुरुष आदर करते हैं। वे सदा ही यज्ञ और स्वाध्याय में रत रहते हैं। कभी मनमाना आचरण नहीं करते। सदाचार का निरन्तर पालन करते हैं। ये शिष्ट पुरुषों का दूसरा लक्षण है। शिष्टाचारी पुरुषों में गुरुसेवा, क्रोध का अभाव, दानी होना तथा सत्य भाषी होना ये सद्गुण अवश्य होने चाहिये। वेदों का सार है सत्य, सत्य का सार है इन्द्रिय संयम और इन्द्रिय संयम का सार है त्याग। यह त्याग शिष्ट पुरुषों में सदा विद्यमान रहता है। जो शिष्ट है वे सदा ही नियमित जीवन व्यतीत करते हैं, धर्म के मार्ग पर चलते है और गुरु की आज्ञा का पालन करते हैं। अत: धर्म की मर्यादा भंग करने वाले नास्तिक, पापी और निर्दयी पुरुषों का संग छोड दो। सदा धार्मिक पुरुषों की सेवा में रहो। यह शरीर एक नदी समान है। पांच इन्द्रिय इसमें जल है, काम और लोभ रूपी मगर इसके भीतर वास करते हैं। जन्म-मरण के दुर्गम प्रदेश में यह नदी बह रही है। धैर्य की नदी पर सवार हो इसके दुर्गम स्थानों, जन्मादि क्लेशों को पार करो। जैसे कोई भी रंग सफेद कपडे पर ही अच्छी तरह दीखता है उसी प्रकार शिष्टाचार का पालन करनेवाले पुरुष में ही क्रमश: संचित किया हुआ कर्म और ज्ञान रूपी महान धर्म भली प्रकार से प्रकाशित और विकसित होता है। अहिंसा और सत्य इनसे ही सम्पूर्ण जीवों का कल्याण होता है। अहिंसा सबसे महान धर्म है परन्तु उसकी प्रतिष्ठा सत्य में है। सत्य के आधार पर ही श्रेष्ठ पुरुषों के सभी कार्य होते हैं। सत्य ही गौरव की वस्तु है। न्याययुक्त कर्मों का आरम्भ ही धर्म कहा गया है। इसके विपरीत जो अनाचार है उसे ही शिष्ट पुरुष अधर्म बताते हैं। जो क्रोध और निन्दा नहीं करते, जिनमें अहंकार और ईर्ष्या का भाव नहीं है, जो मन पर काबू रखनेवाले और सरल स्वभाव के पुरुष हैं उन्हे ही शिष्टाचारी कहते हैं। उनमें सत्व गुण की वृद्धि होती है। जिनका पालन दूसरों को कठिन प्रतीत होता है, ऐसे सदाचारों का भी वे आसानी से पालन करते हैं। अपने सत्कर्मों के कारण ही उनका सर्वत्र आदर सत्कार होता है। उनके हाथ से कभी

हिंसा आदि घोर कर्म नहीं होते। सदाचार पूर्वकाल से ही चला आ रहा है। यह सनातन धर्म है जिसका कभी नाश नहीं हो सकता। सबसे श्रेष्ठ धर्म तो वह है जिसे वेद प्रतिपादन करते हैं धर्मशास्त्र करते हैं। तीसरा धर्म सन्त पुरुषों का आचरण। विद्याओं में पारंगत होना, तीर्थों में स्नान करना तथा क्षमा, सत्य, कोमलता और पवित्रता आदि सद्गुणों का संचय शिष्ट पुरुषों के ही आचार में देखा जाता है। जो सब पर दया करते हैं, किसी का हृदय नहीं दुखाते, कभी कठोर वचन नहीं बोलते वे ही संत या शिष्ट पुरुष मानने योग्य हैं। जिन्हे शुभाशुभ कर्मों के परिणाम का ज्ञान है, जो न्यायप्रिय, सद्गुणी, सम्पूर्ण जगत के हितैषी और सदा सत्मार्ग पर चलनेवाले है, वे सज्जन पुरुष ही शिष्ट है। उनका दान करने का स्वभाव होता है। वे किसी भी वस्तु को पहिले सबको बांट कर पीछे स्वयं ग्रहण करते हैं तथा दीन दुखियों पर सदा कृपा करते हैं। स्त्री और सेवकों को कोई कष्ट न हो इसका भी ध्यान रखते हैं और उन्हें अपनी शक्ति से अधिक धनादि देते रहते हैं। वे सदा सत्पुरुषों का संग करते हैं। संसार में जीवन यापन किस तरह से हो, धर्म की रक्षा और आत्मा का कल्याण किस प्रकार हो? इन सब बातों पर विचार करते है। अहिंसा, सत्य, क्रूरता का अभाव, कोमलता, द्रोह और अहंकार का त्याग, लज्जा, क्षमा, शम, दम, बुद्धि, धैर्य, जीव, दया, कामना एवं द्वेष का अभाव ये सब शिष्ट पुरुषों के गुण है। इनमें भी प्रधानता है कि किसी से द्रोह न करें, दान देता रहे और सदा सत्य बोले। शान्ति, सन्तोष और मधुर वाणी ये सब भी शिष्ट पुरुषों के गुण है। शिष्टों के आचार-व्यवहार का पालन करनेवाले मनुष्य महान भय से मुक्त हो जाते है। हे ब्राह्मण इस प्रकार मैंने शिष्ट पुरुषों के आचरण का वर्णन किया।

मार्कण्डेय मुनि बोले राजन युधिष्ठिर धर्मव्याघ्र ने कौशिक ब्राह्मण को बताया वृद्ध बुद्धिमान पुरुषों के अनुसार धर्म के विषय में केवल वेद ही प्रमाण है। धर्म की गति बडी सूक्ष्म है। उनके अनेकों भेद, अनेकों शाखायें है। वेद में सत्य को धर्म और असत्य को अधर्म कहा गया है परन्तु यदि किसी के प्राणों का संकट उपस्थित हो जाये और वहां यदि असत्य भाषण से उसके प्राण बच जाते हो तो उस अवसर पर बोला हुआ असत्य भी धर्म हो जाता है। वहां असत्य से ही सत्य का काम होता है। ऐसे समय यदि वास्तव में सत्य बोला गया तो वह असत्य का फल देगा जिससे यह निष्कर्ष निकलेगा कि परिणाम में प्राणियों का अहित होगा। इस प्रकार धर्म की गति बडी सूक्ष्म है। मनुष्य जो भी शुभ या अशुभ कर्म करता है उसका फल तो उसे अवश्य भोगना पडता है। उसे बुरे कर्मों के फलस्वरूप प्रतिकूल दशा प्राप्त होती है, दु:ख भोगने पडते है तब वह देवताओं को कोसने लगता है, ईश्वर पर दोषारोपण करता है परन्तु अज्ञानवश अपने कर्मों के परिणाम पर नहीं देखता। मूर्ख, कपटी और चंचल चित्त स्वभाववाला मनुष्य सदा ही सुख दु:ख के चक्कर में पडा रहता है। उसकी सुन्दर, शिक्षा और पुरुषार्थ कोई भी उसे उन परिणामों से नहीं बचा सकते। यदि पुरुषार्थ का फल पराधीन नहीं होता तो जिसकी जो इच्छा होती, उसे ही प्राप्त कर लेता। परन्तु देखा गया है कि बडे-बडे संयमी, कार्यकुशल और बुद्धिमान मनुष्य भी अपना कर्म कर थक जाते हैं तो भी उन्हे अपनी इच्छानुसार फल प्राप्त नहीं होते। दूसरी ओर जो मनुष्य जीवों की हिंसा करता है और सदा लोगों से ठगी, धोखेबाजी करता है मौज से जिन्दगी व्यतीत करता है। कोई कोई तो बिना उद्योग किये हुये अपार सम्पत्ति का स्वामी हो जाता है और किसी को दिनभर काम करने पर भी मजदूरी नसीब नहीं होती। कितने ही दीन मनुष्य सन्तान के लिये देवी देवताओं का यजन पूजन करते है, तपस्या करते है उनके सन्तान नहीं होते और कितनों के विषय भोग में बाहुलता के कारण बहुत सी सन्तानें उत्पन्न हो जाती है, किस-किस की सन्तानें कुल को कलंकित करनेवाली होती है। और बहुत से ऐसे भी है जो अपने पिता के कमाये हुये धन धान्य तथा प्रचुर भोग विलास के साधनों के साथ जन्मते हैं और लौकिक मंगलाचार के उत्सव बडी धूमधाम से होते हैं। मनुष्यों को जो रोग, कष्ट, बीमारी होते है वे उनके कर्मों के ही फल है इसमें कोई सन्देह नहीं है। ये रोग और व्याधियां जीवों को पीडा देती रहती है। चिकित्सक कुशल

वैद्य औषधियों द्वारा उन रोगों का निवारण कर देते है जैसे आखेटक मृगों को भगा देते है। हे विप्रवर जिनके पास भोजन का भंडार भरा हो वे प्राय: संग्रहणी रोग से कष्ट पा रहे है और उसे खा नहीं सकते। इसके दूसरी ओर जिनकी भुजाओं में बल, शक्ति है जो स्वस्थ और वीर्यवान है वे धन और अन्न के अभाव में कष्ट पा रहे है। बडी कठिनता से भूख मिटा पाते है। इस प्रकार यह संसार असहाय है और मोह शोक से ग्रस्त है। कर्मों के अत्यन्त प्रबल प्रवाह में पडकर निरन्तर उसकी आधि-व्याधि के प्रचंड थपेडे सह रहा है। यदि जीव फल भोगने में स्वतन्त्र होता तो फिर कोई भी नहीं मरता ओर न ही कभी वृद्ध होता। सभी मनचाही कामनाओं को प्राप्त कर लेते, अप्रिय की प्राप्ति तो फिर कभी होती ही नहीं। जगत में सभी लोग सबसे ऊंचा होना चाहते है और इसके लिये यथाशक्ति उद्योग, पुरुषार्थ और प्रयत्न भी करते है किन्तु वैसा होता नहीं। बहुत से मनुष्य एक ही नक्षत्र और मुहूर्त, लग्न में जन्म लेते है परन्तु पृथक-पृथक कर्मों का संग्रह, संचित होने के कारण भिन्न-भिन्न फलों की प्राप्ति होती है। परिणाम में अन्तर आ जाता है। नित्य अपने उपयोग में आनेवाली वस्तु पर भी किसी का अधिकार नहीं है। श्रुति और स्मृति पुराणों के अनुसार यह जीवात्मा सनातन है और सम्पूर्ण प्राणियों का शरीर नाशवान है। शरीर पर आघात करने से शरीर का नाश हो जाता है परन्तु अविनाशी जीव नहीं मरता, वह कर्मबन्धन में बन्धा हुआ फिर दूसरे शरीर में प्रविष्ट हो जाता है।

कौशिक ब्राह्मण ने धर्म व्याघ्र से पूछा हे कर्म वेताओं में श्रेष्ठ जीव सनातन कैसे है? इसका ज्ञान मुझे कराये। धर्मव्याघ्र ने कहा देह का नाश होनेपर जीव का नाश नहीं होता। मूर्ख मनुष्य ही कहते है जीव मरता है, उनका यह कथन मिथ्या है। जीव तो इस शरीर को छोडकर दूसरे शरीर में चला जाता है। शरीर के पाँचों तत्त्वों का पृथक-पृथक पंच भूतों में मिल जाना ही शरीर का नाश कहलाता है। इस संसार में मनुष्य के किये हुये कर्मों को दूसरा कोई नहीं भोगता। उसने जो कुछ कर्म किया है वह उसे स्वयं ही भोगना पडता है। किया हुआ कर्म कभी नाश नहीं होता और वह अवश्य फल देता है। पवित्रात्मा मनुष्य पुण्य कर्मों का आचरण करते हैं और नीच पुरुष पाप कर्मों में प्रवृत होते है। वे कर्म मनुष्य का अनुकरण करते है और उनसे प्रभावित होकर वह दूसरा जन्म लेता है। तब उस कौशिक ब्राह्मण ने पूछा जीव दूसरी योनि में किस भांति जन्म लेता है? पाप और पुण्य से उसका सम्बन्ध किस प्रकार होता है? पुण्यमयी तथा पापमयी योनियों की प्राप्ति उसे किस प्रकार होती है?

तब धर्मव्याघ्र ने उत्तर दिया हे विप्रश्रेष्ठ। जीव कर्म बीजों का संग्रह करके जिस प्रकार शुभ कर्मों के अनुसार उत्तम योनियों में और पाप कर्मों के अनुसार अधम योनियों में जन्म ग्रहण करता है, उसके बारे में सुनो। केवल शुभ कर्मों का संयोग होने से जीव को देवत्व की प्राप्ति होती है, शुभ और अशुभ का मिश्रण होने पर वह मनुष्य योनि में जन्म लेता है। मोह में डालनेवाले तामस कर्मों के आचरण से वह पशु पक्षी आदि योनियों में जाता है। पापी मनुष्य नरक में जाता है। वह जन्म-मरण और वृद्धावस्था के दु:खों से सदा पीडित होता रहता है। अपने ही पापों के कारण उसे बारम्बार संसार के क्लेश भोगने पडते है। और जन्म-मरण के चक्कर में घूमते रहता है। कर्म बन्धन में बन्धे हुये जीव हजारों प्रकार की तिर्यग योनियों और नरकों में चक्कर लगाते रहते है। मृत्यु के पश्चात पाप कर्मों से दु:ख प्राप्त होता है और उस दु:ख का भोग करने के लिये ही वह जीव नीच जाति में जन्म लेता है। वहां फिर नये नये बहुत से पाप कर्म कर बैठता है, जिनके कारण कुपथ्य खा लेनेवाले रोगी की तरह उसे पुन: नाना प्रकार के कष्ट भोगने पडते हैं। इस तरह वह निरन्तर दु:ख पाते रहता है फिर भी वह अपने को दु:खी नहीं मानता, दु:ख को ही सुख समझता है। जब तक बन्धन में डालनेवाला कर्मों का भोग पूरा नहीं होता और नये-नये कर्म बनते रहते हैं तब तक अनेकों कष्टों को सहन करता हुआ वह चक्र की भांति इस संसार में चक्कर लगाते रहता है।

जब बन्धनकारक कर्मों के भोग पूर्ण हो जाते है और सत्कर्मों के द्वारा उसमें शुद्धि आ जाती है तब वह तप और योग का

आरम्भ करता है। अत: पुण्य कर्मों के फल स्वरूप उसे उत्तम लोक प्राप्त होते है, जहां जाकर उसे शोक में नहीं पडना पडता। पाप करनेवाले मनुष्य को पाप की आदत हो जाती है फिर उसके पापों का अन्त नहीं होता। इसलिये सदा पुण्य करने के लिये प्रयत्न प्रयास करने चाहिये। पाप का तो त्याग करना ही श्रेयस्कर है। जो संस्कार सम्पन्न जितेन्द्रिय, पवित्र तथा मन को वश में रखनेवाला है उस बुद्धिमान पुरुष को दोनों ही लोकों में सुख प्राप्त होता है।

प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि वह सत्पुरुषों के धर्म का पालन करे और शिष्टों के ही समान बर्ताव करे। संसार में जिससे किसी को कष्ट न हो ऐसी वृत्ति से अपनी जीविका चलाये। अपने धर्म के अनुसार ही कर्म करे जिससे कर्मों का संकर (मिश्रण) न हो। बुद्धिमान पुरुष धर्म में ही आनन्द मानता है, धर्म का ही आश्रय ग्रहण करता है और धर्म से कमाये हुये धन के द्वारा धर्म की जड सींचता है। इस प्रकार वह धर्मात्मा होता है। उसका चित्त स्वच्छ एवं प्रसन्न हो जाता है। मित्र जनों से सन्तुष्ट हो वह इस लोक और परलोक में भी आनन्दित होता है। धर्मात्मा पुरुष शब्द, रूप, स्पर्श, रस और गन्ध सभी प्रकार के विषय सुख तथा प्रभुत्व प्राप्त करता है। यह स्थिति उसके धर्म का ही फल जाना जाता है। धर्म के फलस्वरूप सांसारिक सुखों को पाकर जिसे तृप्ति या सन्तोष नहीं होता वह ज्ञान दृष्टि के कारण वैराग्य को प्राप्त करता है। बुद्धि के नेत्रों से देखनेवाला मनुष्य राग-द्वेष आदि दोषों से युक्त नहीं होता। वह विरक्त तो पूर्ण हो जाता है पर धर्म का परित्याग नहीं करता। सम्पूर्ण जगत को नाशवान समझकर वह सबको ही त्यागने का प्रयत्न करता है। तत्पश्चात प्रारब्ध के भरोसे न बैठकर वह उचित उपाय से मुक्ति के लिये उद्योग करता है। इस प्रकार वैराग्य को प्राप्त हो वह पाप कर्मों का त्याग करता है, फिर धार्मिक होकर अन्त में मोक्ष को प्राप्त होता है। जीव के कल्याण का साधन है तप और तप का मूल है शम और दम और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना। उस तप के द्वारा मनुष्य अपनी सभी मनोवांछित वस्तुयें प्राप्त करता है। इन्द्रिय संयम, सत्य भाषण और शम दम इनके द्वारा मनुष्य परम पद मोक्ष को प्राप्त करता है। उस कौशिक ब्राह्मण ने पूछा धर्मात्मन कौन कौन सी इन्द्रिया है और उनका निग्रह किस प्रकार करना चाहिये? निग्रह का फल क्या है? और उस फल की प्राप्ति किस प्रकार होती है?

धर्मव्याघ्र बोला इन्द्रियों द्वारा किसी किसी विषय का ज्ञान प्राप्त करने के लिये सबसे पहिले मनुष्यों का मन प्रवृत होता है। उसको जान लेने पर मन का उसके प्रति राग या द्वेष हो जाता है। जिसमें राग होता है उसके लिये मनुष्य प्रयत्न करता है, उसे पाने के लिये फिर बडे-बडे कार्यों का आरम्भ करता है फिर अपने अभिष्ट विषयों का बार-बार सेवन करता है। अधिक सेवन से उसमें राग उत्पन्न होता है, उसके निमित्त से दूसरों के साथ द्वेष हो जाता है, फिर लोभ और मोह बढते है। इस प्रकार लोभ से आक्रान्त और राग द्वेष से पीडित मनुष्य की बुद्धि धर्म में नहीं होती। यदि वह धर्म करता भी है तो सिर्फ कोरा दिखावा है, बहाना है। उसके स्वार्थ में स्वर्ग छिपा रहता है। स्वार्थ से धर्माचरण करनेवाला मनुष्य वास्तव में अर्थ चाहता है और धर्म के नाम पर जब अर्थ की सिद्धि होने लगती है तो वह उसी में रम जाता है। फिर उस धन से उसके हृदय में पाप करने की इच्छा जाग्रत होती है। जब उसके मित्र और विद्वान पुरुष उसे उस कर्म से रोकते है तो उसके समर्थन में वह शास्त्र समर्थ उत्तर न देते हुये उसे वेद प्रतिपादित बताता है। रागरूपी दोषों के कारण उसके द्वारा तीन प्रकार के अधर्म होने लगते हैं- १) वह मनसे पाप का चिन्तन करता है, २) वाणी से पाप की ही बात बोलता है और ३) क्रिया द्वारा भी पाप ही का आचरण करता है। अधर्म में लग जाने पर उसके अच्छे गुण नष्ट हो जाते है। अपने जैसे स्वभाववाले पापियों से उसकी मित्रता बढती है। उस पाप से इस लोक में तो दु:ख होता ही है, परलोक में भी उसे बडी दुर्गति भोगनी पडती है। इस प्रकार मनुष्य कैसे पापात्मा होता है। अब धर्म की प्राप्ति कैसे होती है इसको जानो? किस में सुख है और किसमें दु:ख? इसके विवेचन में जो कुशल है, वह अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से विषय सम्बन्धी दोषों को पहिले ही समझ लेता है। इससे वह

साधु महात्माओं का संग करने लगता है। साधु संग से उसकी बुद्धि धर्म में प्रवृत्त हो जाती है।

हे विप्रवर पंचभूतों से बना यह सम्पूर्ण चराचर जगत ब्रह्मस्वरूप है। ब्रह्मा से उत्कृष्ट पद कोई नहीं है। पंचभूत है आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। इनके विशेष गुण है शब्द, स्पर्श, रूप रस और गन्ध है। पांचभूतों के अतिरिक्त चेतना है इसी को मन कहते हैं। अन्य तत्व हैं बुद्धि तथा अहंकार। इनके सिवा ५ ज्ञानेन्द्रियां है। जीवात्मा और सत्व, रज, तम ये सब मिलकर १७ तत्वों का यह समूह अव्यक्त मूल प्रकृति कहलाता है। पांच ज्ञानेन्द्रियों के तथा मन और बुद्धि के जो अव्यक्त और व्यक्त विषय है उनको सम्मलित करने से यह समूह २४ तत्वोंवाला माना जाता है। यह व्यक्त और अव्यक्त दोनों ही प्रकार का तथा भोग्यरूप है। प्रकृति के पांच गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पृथ्वी में है। इनमें गन्ध को छोडकर शेष ४ गुण जल में भी है। तेज अर्थात अग्नि में तीन गुण है शब्द, स्पर्श और रूप। वायु के दो गुण है शब्द और स्पर्श तथा आकाश में एक ही गुण शब्द है। ये पांचों भूत एक-दूसरे के सिवा अलग से नहीं रह सकते। एकीभाव को प्राप्त होकर ही स्थूल रूप को ग्रहण कर प्रकाशित होते है। जिस समय चराचर प्राणी तीव्र संकल्प के द्वारा अन्य देह की भावना करते है, उस समय काल के अधीन हो दूसरे शरीर में प्रवेश करते है। पूर्व देह के विस्मरण को ही उसकी मृत्यु कहते है। इस प्रकार क्रमश: उनका आविर्भाव और तिरोभाव होता रहता है। देह के प्रत्येक अंग में जो रक्त और धातु दिखाई देते है वे पंचभूतों के ही परिणाम है। इनमें सारा चराचर जगत व्याप्त है। बाह्य इन्द्रियों से जिसका संसर्ग होता है वह व्यक्त है किन्तु जो विषय इन्द्रिय ग्राह्य नहीं है केवल अनुमान से ही जाना जाता है उसे अव्यक्त जानना चाहिये। अपने-अपने विषयों का अतिक्रमण न कर शब्दादि विषयों को ग्रहण करनेवाली इन इन्द्रियों को जब आत्मा अपने वश में रखता है उस समय मानो वह तपस्या करता है। इससे आत्मदृष्टि प्राप्त हो जाने के कारण वह सम्पूर्ण लोकों में अपने को व्याप्त और अपने में सम्पूर्ण लोकों को स्थित देखता है। इस प्रकार परात्पर ब्रह्मा को जाननेवाला ज्ञानी पुरुष जब तक प्रारब्ध शेष रहता है तब तक सम्पूर्ण भूतों को देखता है। सब अवस्थाओं में सब भूतों को आत्म रूप से देखनेवाले उस ब्रह्मभूत ज्ञानी का कभी भी अशुभ कर्मों से संयोग नहीं होता। जो मायामय क्लेशों को लांघ जाता है, उस योगी को लोक वृत्ति के प्रकाशक ज्ञानमार्ग के द्वारा परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति होती है। बुद्धिमान ब्रह्मा ने वेदों के द्वारा मुक्त जीव को आदि अन्त से रहित स्वयंभू, अविकारी, अनुपम तथा निराकार बताया है।

हे विप्र, सबका मूल्य है तप और तप होता है इन्द्रियों का संयम करने से ही और इसका कोई दूसरा प्रकार नहीं है। स्वर्ग नरक आदि जो कुछ भी है यह सब इन्द्रियां ही है। मन सहित इन्द्रियों को रोकना ही भोग का अनुष्ठान है। यही सम्पूर्ण तपस्या का मूल है और इन्द्रियों को अधीन न रखना ही नरक का हेतु है। इन्द्रियों का साथ देने से, उनके पीछे चलने से सभी तरह के दोष संघटित होते है और उन्ही को वश में कर लेने से सिद्धि प्राप्त होती है। अपने शरीर में ही विद्यमान मन सहित छओं इन्द्रियों पर जो विजय प्राप्त कर लेता है वह जितेन्द्रिय पुरुष पापों के जाल में नहीं फंसता, फिर अनर्थों से उसका संयोग कैसे हो सकता है? पुरुष का यह शरीर ही रथ है, आत्मा सारथि है, इन्द्रियां घोडे है। जैसे कुशल सारथि घोडों को अपने वश में कर सुखपूर्वक रथ हांकता है उसी प्रकार चतुर पुरुष अपनी इन्द्रियों को अधीन रखकर सुखपूर्वक जीवन यात्रा करता है। जो देहरूपी रथ में जुते हुये मन एवं इन्द्रियरूपी इन छै: घोडों की बागडोर ठीक से सम्भाले रखता है, वही उत्तम सारथि है। सडक पर दौडनेवाले घोडों की तरह विषयों में विचरनेवाली इन इन्द्रियों को वश में करने के लिये धैर्य से प्रयत्न करे। धीरतापूर्वक उद्योग करनेवाले को अवश्य उनपर विजय प्राप्त होती है। विषयों की ओर जानेवाली इन्द्रियों के पीछे यदि मन भी लग गया तो वह बुद्धि को इस तरह से हर लेता है जैसे नदी के मझदार में चलती हुई नाव को वायु का

झौंका आने पर डुबो देता है। इन छ: इन्द्रियों के विषय में अज्ञानी पुरुष मोहवश सुख की भावना करते है, फल की सिद्धि मानते है परन्तु जो उनके दोषों को जाननेवाला वीतराग पुरुष है वह उनका निग्रह करके आनन्द उठाता है। इसके पश्चात उस कौशिक ब्राह्मण ने धर्मव्याघ्र से पूछा अब मैं सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों का स्वरूप जानना चाहता हूं।

धर्मव्याघ्र बोला हे विप्रवर मैं उन तीनों गुणों का पृथक-पृथक स्वरूप तुम्हे बतलाता हूं। तीनो गुणों में जो तमोगुण है वह मोह उपजाने वाला है। रजोगुण कर्मों में प्रवृत्त करनेवाला है और सत्वगुण ज्ञान का प्रकाश करनेवाला है। इसलिये सत्वगुण सबसे उत्तम माना गया है। जिसमें अज्ञान अधिक है, जो मोहग्रस्त और अचेत होकर दिन रात नींद लेता रहता है, जिसकी इन्द्रियां वश में नहीं है, जो अविवेकी, क्रोधी और आलसी है ऐसे मनुष्य को तमोगुणी समझना चाहिये। जो प्रवृति की ही बात करनेवाला और विचारवान है, दूसरों के दोष नहीं देखता, सदा कर्मों में प्रवृत्त रहता है, जिसमें विनय का अभाव और अभिमान की अधिकता है उसको रजोगुणी समझो। जिसके भीतर प्रकाश (ज्ञान) अधिक है, जो धीर और निष्क्रिय है, दूसरों के दोषों को नहीं देखनेवाला और जितेन्द्रिय है तथा जिसने क्रोध त्याग दिया है, वह सात्विक पुरुष है जानने योग्य है। मनुष्य को चाहिये कि हल्का आहार करे और अन्त:करण को शुद्ध रखे। सन्ध्या काल, रात्रि के प्रथम पहर और अन्तिम पहर में मन आत्मचिन्तन में लगावे। ऐसे जो सदा अपने हृदय में आत्म साक्षात्कार का अभ्यास करता है वह प्रज्ज्वलित दीपक की भांति अपने मन:प्रदीप से निराकार आत्मा का दर्शन प्राप्त करके मुक्त हो जाता है। सब तरह के उपायों से क्रोध और लोभ की वृतियों को दबाना चाहिये। संसार में यही तप है और यही भवसागर से पार पानेवाला सेतु है। तप को क्रोध से, धर्म को द्वेष से, विद्या को मान अपमान से और अपने को प्रमाद से बचाना चाहिये। क्रूरता का अभाव (दया) सबसे बडा धर्म है, क्षमा सबसे प्रधान बल है, सत्य ही सबसे उत्तम व्रत है और आत्मा का ज्ञान ही सबसे उत्तम ज्ञान है। सत्य बोलना सदा कल्याणकारी है, सत्य में ही ज्ञान की स्थिति है। जिससे प्राणियों का अत्यन्त कल्याण हो, वही सबसे बढकर सत्य माना गया है। जिसके कर्म कामनाओं से बंधे हुये नहीं होते, जिसने अपना सब कुछ त्याग की अग्नि में हवन कर दिया है, वही बुद्धिमान और वही त्यागी है। किसी प्राणी की हिंसा न करे और सब में मित्रभाव रखते हुये विचरे। यह दुर्लभ मनुष्य जीवन पाकर किसी से बैर न करे। कुछ भी संग्रह नहीं करे, सभी परिस्थिति में सन्तुष्ट रहना, कामना और लोलुपता को त्याग देना यही सबसे उत्तम ज्ञान है और यही आत्मज्ञान का साधन है। सब प्रकार के संग्रह का त्याग कर परलोक और इहलोकों के भोगों की ओर से सुदृढ़ वैराग्य धारण कर बुद्धि के द्वारा मन और इन्द्रियों का संयम करे। जो जितेन्द्रिय है, जिनका मन पर अधिकार हो गया है और जो अजित पद को जीतने की इच्छा करता है, नित्य तपस्या में लगे रहनेवाले उस मुनि को आसक्ति पैदा करनेवाले भोगों से अलग अनासक्त रहना चाहिये। जहां गुण भी दोष हो जाते है, जो विषयों की आसक्ति से रहित है, जो एकमात्र नित्य सिद्धि स्वरूप है तथा जिसकी प्राप्ति में अज्ञान के सिवा और कोई व्यवधान नहीं है। जो अज्ञान दूर होने पर अपने से अभिन्न रूप में प्रकाशित होता है, वही ब्रह्म का पद है, वही असीम आनन्द है। जो मनुष्य सुख और दु:ख दोनों की इच्छा त्याग देता है तथा जो अत्यन्त आसक्ति शून्य हो जाता है, वही ब्रह्म को प्राप्त होता है।

इस प्रकार धर्मव्याघ्र ने मोक्ष, धर्म का वर्णन किया तब उस कौशिक ब्राह्मण ने पूछा मुझे आप सत्य के स्वरूप के बारे में बताये? सत्य का क्या महत्व है? राजा हरिश्चन्द्र ने सत्य का किस प्रकार पालन किया? ब्रह्मर्षि विश्वामित्र ने राजा हरिश्चन्द्र की किस प्रकार सत्यव्रत की परीक्षा ली? इन्द्र ने राजा हरिश्चन्द्र को अपने आधे सिंहासन पर क्यों प्रतिष्ठित किया। कौशिक मुनि की बात सुनकर धर्मव्याघ्र अत्यन्त प्रसन्न हुआ और कौशिक मुनि को विस्तार से इक्ष्वाकु वंश के राजा हरिश्चन्द्र का वृतान्त सुनाया।

HHH(९१)HHH

## १७) धर्मव्याघ्र द्वारा राजा सत्यवादी हरिश्चन्द्र का वृत्तान्त कौशिक मुनि को सुनाना

धर्मव्याघ्र बोले- हे मुनि परमात्मा ही सत्य है। वह नित्य एकरस और अविनाशी है। सत्य में कभी परिवर्तन नहीं होता। झूठा अपनी बातें बदलता रहता है, परंतु सच्चा क्या बदल सकता है? उसके पास बदलनेके लिये है ही क्या? सत्यको समझें, सत्यको ढूँढ़े और जो सत्य जान पड़े, उसपर दृढ़ रहें। वह ज्ञान शास्त्रके आधारपर हो, संतोंकी वाणीके आधारपर हो, बस, उसपर दृढ़ हो जानेमात्रसे ही परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी। दृढ़ता सत्यमें ही हो सकती है, असत्यमें नहीं। निष्ठा सत्यकी ही हो सकती है, असत्यकी नहीं। संसारका कोई भी पुरुष यह नियम नहीं ले सकता कि मैं झूठ ही बोलूँगा; झूठ ही करूँगा, क्योंकि इस नियमका पालन त्रिकालमें नहीं हो सकता। यह अव्यवहार्य है। इसके विपरीत सत्य ही बोलनेका, सत्य ही करनेका नियम लिया जा सकता है और उसका पालन भी हो सकता है। इसीसे सत्य व्यवहार्य है और वह परमात्माका स्वरूप है। संसारके व्यवहारमें सत्यकी ओटमें ही असत्यको आश्रय मिलता है। अत: सत्य ही एक नित्य तत्त्व है और असत्य सर्वथा असत्य है। इस सत्य ओर असत्यके मिश्रणसे ही जगत्में दु:खोंकी सृष्टि हुई है। असत्यको छोड़कर सत्यके आश्रयसे ही परम सुख प्राप्त किया जा सकता है। उसमें पहले कुछ दु:ख भी पड़ सकते हैं; परंतु वे क्षणिक होंगे, अन्तमें सत्यकी स्थायी विजय होगी। संसारके इतिहासमें इसके अनेकों दृष्टान्त हैं और ऐसे दृष्टान्तोंमें सत्यनिष्ठ हरिश्चन्द्रका नाम प्रधानतासे लिया जा सकता है।

त्रेतायुगकी बात है। उन दिनों अयोध्याके राजा इक्ष्वाकुवंशी हरिश्चन्द्र थे। वे सम्पूर्ण पृथ्वीके एकच्छत्र सम्राट थे, धर्ममें उनकी सच्ची निष्ठा थी और उनकी कीर्ति त्रिभुवनमें फैली हुई थी। सभीके मुँहपर हरिश्चन्द्रका नाम था, सभी उनके सद्व्यवहार, दानशीलता और सत्यनिष्ठाके कायल थे। देवता उनपर प्रसन्न थे, उनके शासनकालमें प्रजा संतुष्ट रहती थी, कभी दुर्भिक्ष नहीं पड़ता था। न कोई बीमार होता और न तो किसीकी अकाल मृत्यु होती। सभी प्रजा भगवान्की उपासना करती थी और अपने-अपने धर्ममें तत्पर थी। सब धनी थे, शक्तिशाली थे, तपस्वी थे, परंतु अभिमान किसीमें नहीं था। राजा हरिश्चन्द्र सबको समान दृष्टिसे देखते, सबसे समान प्रेम करते। अनेकों यज्ञ-याग करते रहते। सबसे बड़ी बात उनमें यह थी कि वे सत्यसे कभी विचलित नहीं होते।

उनके पुरोहित थे महर्षि वसिष्ठ। वसिष्ठकी आज्ञासे ही उनका राज-काज चलता था और वे वसिष्ठका बड़ा सम्मान करते थे। एक बार राजसूय यज्ञमें उन्होंने वसिष्ठको बड़ी दक्षिणा दी, इससे वसिष्ठकी ख्याति और भी बढ़ गयी। सब लोग उनका विशेष सम्मान करने लगे। यहाँ तक कि इन्द्रकी सभामें भी उन्हें विशिष्ट आसन मिलता। वसिष्ठ सब प्रकारसे योग्य थे, परंतु इन्द्रकी सभामें हरिश्चन्द्रका पुरोहित होनेके कारण उनको और भी अधिक सम्मान मिलता। इन्द्रकी सभामें वसिष्ठके अतिरिक्त विश्वामित्र, नारद आदि ऋषि-महर्षि भी उपस्थित होते तथा देवताओंके साथ ब्रह्मलोकसे लेकर पातालतक के सम्बन्धमें वार्तालाप करते।

एक दिन इन्द्रकी सभा लगी हुई थी। वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि ऋषि एक ओर बैठे हुए थे। देवता, गन्धव, पितर, यक्ष आदि भी यथास्थान विराजमान थे। इन्द्रके सामने ही यह चर्चा चल रही थी कि मर्त्यलोकमें आजकल सबसे बड़ा दानी, सबसे बड़ा धर्मात्मा और सबसे बड़ा सत्यवादी कौन है? सब लोग इस विषयपर विचार कर रहे थे। वसिष्ठने कहा- संसारमें ऐसे पुरुष एकमात्र हरिश्चन्द्र ही हैं। उन्होंने राजसूय यज्ञ किया है और उसमें इतनी दक्षिणा दी है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ऐसा सत्यवादी, दाता, धार्मिक और प्रजाको प्रसन्न करेनवाला और कोई नहीं है। सत्य कहता हूँ कि हरिश्चन्द्र जैसा परम धार्मिक, प्रतापी, दाता तथा सत्यवादी राजा पृथ्वीमें न कोई हुआ है और न होगा। वसिष्ठकी बातों का

समर्थन यज्ञ में भाग पानेवाले देवताओं ने किया।

**हरिश्चन्द्रसमो राजा न भूतो न भविष्यति। सत्यवादी तथा दाता शूरः परमधार्मिकः।**

भगवानकी लीला अद्भुत है। वे किसके द्वारा कब क्या करवाना चाहते हैं और कैसे करवाते हैं, इस बातको सिवा उनके और कोई नहीं जानता। उस समय भगवान्‌ने हरिश्चन्द्रकी महिमा, उनकी कीर्ति और उनकी सत्यनिष्ठाका आदर्श जगत्‌के सामने रखा। विश्वामित्रके हृदयमें ऐसे भाव उठने लगे कि हरिश्चन्द्रकी महिमा गाकर वसिष्ठने अपनी ही बड़ाई की है; क्योंकि जिसका यजमान इतना धार्मिक है, वह अवश्य ही बहुत बड़ा धार्मिक होगा। वसिष्ठने अपने महत्त्वका वर्णन करके हम लोगोंका तिरस्कार किया है। क्योंकि मैं ही उनका पुराना प्रतिद्वन्द्वी हूं। प्रतियोगिताके कारण विश्वामित्रके मनमें ऐसे कारण सूझने लगे जो वसिष्ठके मनमें तनिक भी नहीं थे। हरिश्चन्द्रके सम्बन्धमें उन्होंने यही सोचा कि वह कबका धर्मात्मा है, तनिक-सी कठिनाई पड़नेपर ही वह धर्मसे, सत्यसे विचलित हो जायगा।

विश्वामित्रने भरी सभामें वसिष्ठका विरोध किया। उन्होंने कहा- वसिष्ठने हरिश्चन्द्रकी झूठी महिमा गायी है। ये उसके यहाँ रहते हैं, उसका खाते हैं और उसीकी गाते हैं। मैं हरिश्चन्द्रको खूब जानता हूं, वह कबसे धर्मात्मा हो गया? यदि धर्मात्माका स्वाँग भरता हो तो मैं उसे क्षणभरमें ही विचलित कर सकता हूं। देवताओंने कहा- महाराज। आप क्या कह रहे हैं? क्या कभी महर्षि वसिष्ठकी वाणी भी असत्य हो सकती है? हम जानते हैं कि हरिश्चन्द्र बड़े ही धर्मात्मा हैं। विश्वामित्रने कहा- वसिष्ठ सत्य नहीं कहते हैं, इस बातको मैं प्रमाणित कर दूँगा। मैं हरिश्चन्द्रकी परीक्षा लूँगा। यदि मेरी बात ठीक रही तो इनका आजतकके अध्ययन और तपस्यासे उपार्जित पुण्य नष्ट हो जाय और यदि इनकी बात ठीक रही तो मेरा पुण्य नष्ट हो जाय। विश्वामित्रने अपने-आप यह प्रण कर लिया और वे इन्द्रसभासे उठकर चले गये।

एक दिन राजा हरिश्चन्द्र जंगलोंमें घूम रहे थे। उन्होंने एक स्थानपर देखा कि कोई तरुण तपस्विनी मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो, इस प्रकार कहती हुई रो रही है। उन्होंने दूरसे ही कहा- डरो मत, मेरे शासनकालमें यह अन्याय कौन कर रहा है? वे वेगसे उसकी ओर चल पड़े। उस समय विघ्नराजने अपने मनमें यह सोचा कि विश्वामित्र बड़ा ही भयंकर तप कर रहे हैं। ये उन विद्याओंको अपने वशमें करना चाहते हैं, जो बड़े-बड़े देवताओंको सिद्ध नहीं हैं। वे विद्याएँ इनकी तपस्याके तेजसे घबराकर दुःखी हो रही हैं। यदि मैं हरिश्चन्द्रके शरीरमें प्रवेश करके विश्वामित्रकी तपस्या रोक दूँ तो इन विद्याओंका काम बन सकता है। विघ्नराजने हरिश्चन्द्रके शरीरमें प्रवेश किया, हरिश्चन्द्र उस तपस्विनीके पास पहुँचे।

अब हरिश्चन्द्र आविष्ट हो गये थे। उन्होंने तपस्विनीके पास जाकर कहा- कौन पापी अपने कपड़ेमें आग बाँध रहा है? मेरे शासनकालमें इतना साहस। पास ही विश्वामित्र तपस्या कर रहे थे। हरिश्चन्द्रकी बात सुनकर वे क्रोधसे तिलमिला उठे। उन्हें क्रोधित देखकर वह तपस्विनी अन्तर्धान हो गयी और विश्वामित्रको देखते ही हरिश्चन्द्र थर-थर काँपने लगे। उनका आवेश उतर गया। विश्वामित्र क्रोधित हो बोले- अभी तुझे तेरे अभिमानका फल दिखाता हूं। यह सुनकर हरिश्चन्द्र हक्का-बक्का हो गये और बड़ी नम्रतासे उन्होंने ऋषिके चरणोंका स्पर्श करके कहा- महर्षे। मैंने अपराध नहीं किया है। यह तो मेरा धर्म है कि किसीको विपत्तिमें देखकर उसकी रक्षा करूँ। राजाके दो ही धर्म हैं- दान और रक्षा। तीसरा केवल यही है कि इसके लिये समय आनेपर युद्ध किया जाय।

विश्वामित्रने शान्त होकर कहा- राजन्। पहले तुम यह बतलाओ कि किसको दान देना चाहिये, किसकी रक्षा करनी चाहिये और किससे युद्ध करना चाहिये? हरिश्चन्द्रने कहा- भगवन्। ब्राह्मण और दरिद्र दानके पात्र हैं, भयभीत रक्षाके योग्य हैं और जो इस काममें बाधा डाले, उससे युद्ध करना योग्य है। विश्वामित्रने कहा- राजन। जैसे तुमने भयभीतकी

रक्षा करनेका यत्न किया है, वैसे ही क्या मुझे दान भी दे सकते हो? मैं यज्ञ करना चाहता हूँ, तुम मुझे दक्षिणा दो। विश्वामित्रकी बात सुनकर हरिश्चन्द्रको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा- भगवन्। आपको मैं क्या दूँ? जो कुछ आपको चाहिये, वह मैं दे सकता हूँ। सोना, पुत्र, पत्नी, शरीर, प्राण, राज्य, नगर, सम्पत्ति- जो कुछ माँगिये, वह सब मैं देनेको तैयार हूँ। हरिश्चन्द्रकी यह दानशीलता देखकर विश्वामित्र अवाक् हो गये। उनके मुँहसे सहसा कोई शब्द नहीं निकल सका। विश्वामित्र बोले- राजन्। जब मुझे आवश्यकता होगी, तब मैं तुमसे माँगूंगा। अभी तुम अपनी राजधानीमें जाकर राज्य सम्भालो। हरिश्चन्द्र वहाँसे चले आये।

हरिश्चन्द्रके जानेके बाद विश्वामित्र सोचने लगे कि इसी हरिश्चन्द्रके लिये इन्द्रकी सभामें मेरा और वसिष्ठका विवाद हुआ था। आज एकाएक मेरी तपस्यामें इसने विघ्न डाल दिया। अब उसकी दानशूरता को देखूँगा कि अब कितने दिनोंतक दाता बना रहता है। विश्वामित्र हरिश्चन्द्रको नीचा दिखानेका उपाय सोचने लगे।

उन्होंने एक दानवको शूकरके समान बना दिया और उसे हरिश्चन्द्रकी राजधानीमें भेजा। वह भयंकर शूकर दारुण गर्जना करता हुआ अयोध्यानरेशके उपवनमें पहुँचा। बागवान डर गये और शूकर बगीचेमें जाकर नि:शम भावसे लता-वृक्षके कुञ्जों और पुष्पोंको नष्ट करने लगा। बहुतोंने उसपर शस्त्र प्रहार किये, परन्तु वह तनिक भी भयभीत नहीं हुआ; बल्कि वृक्षोंको खोद-खोदकर, उखाड़-उखाड़कर रौंदने लगा। जब वहाँके सैनिक किसी प्रकार शूकरको भगा न सके, तब वे कातर होकर महाराज हरिश्चन्द्रकी शरण में गये। उन्हें कातर देखकर हरिश्चन्द्रने कहा- भाई। तुम लोग क्यों इतना डर रहे हो? तुमपर कौन-सा भय छाया हुआ है? वह कितना बड़ा है, कितना बली है, देवता है या दानव है, मैं अभी उसकी खबर लेता हूँ।

बागवानोंने कहा- प्रभो। न वह दैत्य है, न दानव है, वह तो एक बड़ा भारी शूकर है और हमारे बाण, पत्थर और लाठियोंसे वह तनिक भी नहीं डर रहा है, बल्कि हम लोगोंपर इतने जोरसे आक्रमण करता है कि हम उसके सामने ठहर नहीं पाते। बागवानोंकी बात सुनकर हरिश्चन्द्र स्वयं घोड़ेपर सवार हुए और उन्होंने सैनिकोंको अपने साथ चलनेकी आज्ञा दी। राजाने देखा कि सारा बगीचा नष्ट-भ्रष्ट हो गया है और वह शूकर वहीं घरघरा रहा है। उन्होंने निशाना लगाकर एक बाण छोड़ा, परन्तु शूकरने अपनेको उससे बचा लिया। दूसरे बाणके समय वह बड़े वेगसे राजा हरिश्चन्द्रको लाँघकर भागा और हरिश्चन्द्रने उसका पीछा किया। वह क्षणभर राजाके सामने रहता और दूसरे ही क्षण छिप जाता। इस प्रकार वह राजाको एक घने जंगलमें ले गया। सेना पीछे छूट गयी। उस घोर जंगलमें हरिश्चन्द्र अकेले पड़ गये। थोड़ी देर बाद शूकर अन्तर्धान हो गया और राजा चिन्तामें पड़ गये।

दोपहरका समय था, बहुत दूरतक पीछा करनेके कारण हरिश्चन्द्र थक गये थे। कड़ी धूप थी, वे भूख-प्याससे व्याकुल हो गये थे। निर्जन वनमें रास्ता भूल कर, वे दीनके समान हो गये। उन्होंने सोचा, क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, इस अज्ञात जंगलमें कौन मेरी सहायता करेगा? रास्ता मालूम नहीं, अब किस ओर चलना चाहिये। कुछ ही क्षण बाद उन्होंने देखा कि सामने ही एक निर्मल जलकी सुन्दर नदी बह रही है, उसके किनारे पर बड़े ही सुन्दर-सुन्दर वृक्ष हैं। वहाँ विश्राम करनेके लिये बड़ा ही उपयुक्त स्थान है। वे घोड़ेसे उतर पड़े, उसे जल पिलाया और एक वृक्षमें बाँधकर उन्होंने स्वयं जलपान किया। विश्राम करनेके पश्चात् उन्होंने अपनी राजधानीमें जानेका विचार किया, परंतु जाते कैसे, किस ओर जाते, उन्हें दिशाभ्रम हो गया था।

इसी समय एक बूढ़े ब्राह्मणका रूप धारण करके महर्षि विश्वामित्र उनके पास आये। राजाने उन्हें नमस्कार किया। आशीर्वाद देनेके पश्चात् बूढ़े ब्राह्मणने कहा- महाराज। इस बीहड़ वन में आप कैसे पधारे? आप अकेले ही यहाँ क्या कर रहे हैं? राजाने कहा कि मुझे अपनी राजधानीका मार्ग नहीं मालूम है। आप मुझे रास्ता दिखा दें। मेरे बड़े भाग्यसे आपके

दर्शन हुए हैं, नहीं तो मैं इस जंगलमें न जाने कहाँ-कहाँ भटकता फिरता? यदि आपको धनकी इच्छा हो, यदि आप यज्ञ करना चाहते हों तो अयोध्यामें आवें, मैं आपको बहुत-सा धन दूँगा।

हरिश्चन्द्रकी बात सुनकर बूढ़े ब्राह्मणने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने हँसकर कहा- राजन्। यह बड़ा ही पवित्र तीर्थ है। इसमें स्नान, तर्पण करनेसे बहुत बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। यह बड़ा ही सुन्दर समय है, पवित्र देश है और मैं दानके योग्य ब्राह्मण हूं। इसलिये आप स्नान करके दान दीजिये। स्वायम्भुव मनुने कहा है कि पवित्र तीर्थोंमें जाकर जो स्नान नहीं करता, वह आत्मघाती है। आपके दानसे प्रसन्न होकर मैं आपको मार्ग दिखाऊंगा, राजधानीतक पहुंचा दूँगा और आपकी सहायता करूँगा। हरिश्चन्द्रने मुनिकी कपटभरी वाणीपर विश्वास करके उस मायानदीमें स्नान किया। स्नान करते ही हरिश्चन्द्रकी बुद्धि बदल गयी, वे विश्वामित्रके पूर्णत: अधीन हो गये। हरिश्चन्द्रपर विश्वामित्रका जादू पूरा-पूरा चल गया।

राजाने कहा- भगवन्। आपकी जो इच्छा हो माँग लें। गऊ, जमीन, सोना, हाथी, घोड़े जो कुछ भी चाहें आप माँग सकते हैं। ऐसी कोई वस्तु मेरे पास नहीं है, जिसे मैं आपको न दे सकूँ। वृद्ध ब्राह्मणवेषधारी विश्वामित्रने कहा- राजन्। मैंने संसारमें आपकी बड़ी कीर्ति सुनी है। वसिष्ठने स्वयं कहा है कि हरिश्चन्द्रके समान दाता पृथ्वीमें दूसरा कोई नहीं है। उन्होंने तो यहाँ तक कहा है कि वैसा दाता न हुआ है, न होगा। इसलिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरे लड़केके विवाह के लिये पर्याप्त धन दें। हरिश्चन्द्रने विवाहके लिये धन देना स्वीकार किया।

विश्वामित्रने अपनी माया फैलायी। दस वर्षकी सुन्दर कन्या और एक सुकुमार वहाँ प्रकट हो गये। विश्वामित्रने बतलाया आज ही इनकी विवाह-विधि सम्पन्न करनी है। जो विवाहमें सहायता करता है उसे राजसूय यज्ञसे भी अधिक पुण्य प्राप्त होता है। हरिश्चन्द्रने बिना कुछ सोचे-विचारे उन्हें धन देनेकी स्वीकृति दी। विश्वामित्र हरिश्चन्द्रको साथ लेकर आश्रमपर पहुँचे और विवाहकी तैयारी करनेका स्वाँग करने लगे।

हरिश्चन्द्रके सामने ही विश्वामित्र वर-वधूका पाणिग्रहण करा रहे थे। अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही थी, विवाहमण्डप सजा हुआ था, मङ्गलाचार हो रहे थे और हरिश्चन्द्र मन्त्रमुग्धकी भाँति सब देख रहे थे। विवाहके अन्तमें विश्वामित्रने कहा- राजन्। आप जो कुछ देना चाहते हैं, विवाहके इस पवित्र अवसरपर इसी यज्ञमण्डपमें वर-वधूको दे दीजिये। हरिश्चन्द्रने कहा- भगवन्। आप क्या चाहते हैं? आपकी जो अभिलाषा हो मुझे स्पष्ट कहिये। विश्वामित्रने अपनी मायासे हरिश्चन्द्रको वश में कर कहा- राजन्। हाथी, घोड़े, रथ, रत्न और सम्पूर्ण सामग्रियोंके साथ आप अपना राज्य दे दीजिये। उस समय हरिश्चन्द्र इतना मोहित हो गये थे कि बिना विचार किये ही अचेत होकर दिया ऐसा कह दिया और निष्ठुर विश्वामित्रने भी तुरंत कह दिया- लिया।

विश्वामित्र बोले- शास्त्रोंमें दानकी साङ्गता सिद्ध होने के लिये एक प्रकारकी और दक्षिणा कही गयी है। स्वायम्भुव मनुने कहा है कि साङ्गता हुए बिना दान निष्फल ही होता है। इसलिये आप दानके योग्य ही कुछ और दक्षिणा दीजिये। हरिश्चन्द्रने विस्मयके साथ कहा- महाराज। दानके योग्य क्या दक्षिणा है, सो आप ही बतलाइये। विश्वामित्रने कहा- ढाई भार सोना इसकी दक्षिणा होगी। राजाने कहा- दूँगा।

इसी समय राजाके जो सैनिक पीछे छूट गये थे, वे उन्हें ढूँढ़ते हुए उस आश्रमपर पहुँच आये। उन्होंने राजाकी बड़ी स्तुति की, परंतु उस समय राजा कुछ नहीं बोले। वे विश्वामित्रसे अनुमति लेकर सैनिकोंके साथ अपनी राजधानीकी ओर चल पड़े।

कोई बात कह देना बड़ा सरल है, परंतु उसके अनुसार आचरण करना बड़ा कठिन है। साधारण पुरुषोंमें और महापुरुषोंमें यही अन्तर है कि साधारण लोग तो कठिनाइयोंके सामने आनेपर अपनी बातसे विचलित हो जाते हैं और महापुरुष अनजानमें, विवशतामें तथा यहाँतक कि स्वप्नमें भी जो धर्मानुकूल बात कह देते हैं, उससे तनिक भी विचलित नहीं होते।

धर्म ही सत्य है और सत्य ही धर्म है। धर्मविरोधी सत्य सत्य नहीं और सत्यविरोधी धर्म धर्म नहीं।

हरिश्चन्द्रने अपने सर्वस्व-दानकी बात कह दी थी, चाहे वह विवशतासे ही क्यों न कही गयी हो। उन्हें अपने लिये कोई चिन्ता नहीं थी। वे अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार सर्वस्व-दान करनेमें प्रसन्न ही होते; परंतु राजधानीमें आनेपर उन्हें इस बातकी बड़ी चिन्ता हुई कि अपनी सती-साध्वी धर्मपत्नी शैव्या (तारामती) से क्या कहूँ? अपने नन्हें-से शिशु रोहिताश्वको कैसे ढाढ़स बधाऊँ? हरिश्चन्द्रको धनका लालच नहीं था, राज्यका मोह नहीं था; वे अपने शरीरका बलिदान कर सकते थे; परंतु शैव्या और रोहिताश्वको दु:खी नहीं देख सकते थे। उन्होंने सोचा कि शैव्याको उसके मायके पहुँचा दिया जाय, रोहित भी वहीं रहेगा और मैं अपनेको उन तपस्वी ब्राह्मणके चरणोंमें समर्पित कर दूँगा।

शैव्या साधारण स्त्री नहीं थी, वह आदर्श सती थी, हरिश्चन्द्रकी आत्माके साथ उसकी आत्मा मिली हुई थी, उस दम्पतीके शरीर ही दो थे, आत्मा एक ही थी। वनसे लौटनेपर जब अपने पतिदेवकी सेवा-सुश्रूषा वह अपने-आप ही करने लगी, तब हरिश्चन्द्रका मनोभाव उससे छिपा न रहा। उसने सोचा कि मेरे स्वामी जब बाहरसे लौटते थे, तब इनके मुखमण्डलपर प्रसन्नता नाचती रहती थी, इनकी आँखें प्रेमसे भरी रहती थीं, इनकी भौहोंसे अनुग्रहकी वर्षा होती रहती थी; आज बात क्या है? स्वामीके मुखसे उदासीनता और चिन्ताके भाव क्यों प्रकट हो रहे हैं?

शैव्याने पूछा- स्वामिन्। आज आप इतने उदास क्यों हैं? क्या आप किसी याचकको उसकी इच्छाके अनुसार दान नहीं दे सके? क्या आपसे कोई ऐसा कार्य हो गया है, जिसको करते समय भगवान्‌की स्मृति न रही हो? क्या कर्म, वाणी अथवा मनसे आपने किसी प्राणीका तिरस्कार कर दिया है? क्या आपने कोई ऐसी बात कह दी है, जिसको पूर्ण करनेमें संदेह है? स्वामिन्। आप मुझसे कुछ न छिपावें। आपकी चिन्ता देखकर मैं व्याकुल हो रही हूँ। मुझे कुछ समझ नहीं पड़ता कि आप क्यों चिंतित हो रहे हैं? आपके शरीर में कोई पीड़ा नहीं, मेरा रोहित सकुशल है, मैं आपके सामने हूँ, फिर आपकी चिन्ताका क्या कारण है?

हरिश्चन्द्रने कहा- प्रिये। भगवान्‌की कृपासे मेरे धर्मपालनमें कोई बाधा नहीं पड़ी है। मैंने कल वनमें एक तपस्वी ब्राह्मणको सर्वस्व दान कर दिया है। अब मुझे चिन्ता इस बातकी है कि मैं तो उसका सेवक होकर रह सकता हूँ; परंतु तुम्हें और रोहिताश्वको सेवकके रूपमें कैसे रखूँगा? यही मेरे लिये असह्य हो रहा है। उस समय मैं मन्त्रमुग्ध-सा हो रहा था, मुझे कुछ सुध-बुध नहीं थी; मैंने दान कर दिया है और अब प्रसन्नताके साथ उसका निर्वाह करना है। प्रिये। ये सब चार दिन की चाँदनी हैं। आज हैं, कल नहीं हैं, इनके द्वारा यदि धर्म-जैसी नित्य-वस्तु प्राप्त हो सके तो इनके त्यागमें रखा ही क्या है?

शैव्याने कहा- नाथ। यह तो बड़ी प्रसन्नताकी बात है। राज्यके प्रपंचोंमें रहकर हम लोग पूर्णत: भगवान्‌का स्मरण भी नहीं कर सकते थे। आपको मुझसे अलग रहना पड़ता था और मैं आपकी सेवासे वञ्चित रहती थी। अब भगवानने बड़ा ही सुन्दर अवसर दिया है। अब मैं निरन्तर आपकी सन्निधिमें रहकर सेवा कर सकूँगी। राज्य अथवा सम्पत्तिमें क्या धरा है?

शैव्याकी बात सुनकर हरिश्चन्द्रकी चिन्ता मिट गयी। वे मन-ही-मन उसकी प्रशंसा करने लगे। सोचने लगे कि इसीका नाम तो आदर्श पत्नी है। मेरी इच्छामें ही इसकी इच्छा, मेरी प्रसन्नतामें ही इसकी प्रसन्नता और भगवान्‌के किये हुए प्रत्येक विधानमें कल्याणका दर्शन, बस, इससे बढ़कर और क्या चाहिये? मैं जीवनभर इसकी सेवा करूँ, इससे अलग न होऊँ, यही मुझे चाहिये। रात हो गयी। हरिश्चन्द्र और शैव्या दोनों सो गये।

दूसरे दिन हरिश्चन्द्र अभी नित्यकृत्यसे निवृत्त भी नहीं हो पाये थे कि प्रतिहारीने आकर समाचार दिया- महाराज। एक बड़े तपस्वी ब्राह्मण आये हुए हैं। वे कहते हैं कि राज्य हमारा है। शीघ्र ही जाकर महाराजसे कहो। हरिश्चन्द्रने जाकर उनका स्वागत किया और उन्हें ऊँचे आसनपर बैठाकर पूजा की। विश्वामित्रने कहा- राजन। कल तुमने अपना सम्पूर्ण

राज्य मुझे दे दिया है। तुम बड़े ही सत्यवादी और धार्मिक हो। अब अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो। राज्य छोड़ दो और मेरे लिये साङ्गतावाले ढाई भार सोनेका प्रबन्ध करो। हरिश्चन्द्रने कहा- भगवन्। राज्य आपका ही है, इसे सम्हालिये। यह तो मैंने आपको दे ही दिया है। रहा ढाई भार सोना, उसे मैं अभी मँगाये देता हूँ। हरिश्चन्द्रने कोषाध्यक्षकी ओर इशारा किया।

कोषाध्यक्ष जब सोना लेकर उपस्थित हुआ तब विश्वामित्रने पूछा- यह सोना कहाँसे आया है? क्या यह राज्यकोषसे आया है? हरिश्चन्द्र। तुम मुझसे कपट कर रहे हो। जब मुझे राज्य दे दिया, तब क्या कोष बाकी ही रहा? मेरे ही कोषसे मुझे सोना देनेका अर्थ क्या है? क्या तुम अपनी प्रतिज्ञासे विचलित हो गये? यदि तुम नहीं दे सकते तो मत दो। मैंने छोड़ दिया। विश्वामित्रकी बात सुनकर हरिश्चन्द्रने बड़ी व्याकुलतासे कहा- भगवन्। क्षमा कीजिये। मुझसे बड़ा अपराध हुआ। मैं अपनी भूल स्वीकार करता हूँ। यह कोष आपका है। कोषाध्यक्ष। सोना ले जाकर पूर्ववत कोषमें रख दो। भगवन्। इस समय तो मेरे पास सोना नहीं है। विश्वामित्रने कहा- पहली बात तो यह है कि अब यह राज्य मेरा हो गया, यह पृथ्वी तुमने मुझे दे दी, अब तुम्हें इसमें रहनेका अधिकार नहीं है। जिन आभूषणोंको तुम पहने हुए हो इन्हें अभी उतार दो और अपनी स्त्री तथा बेटेके साथ वल्कल-वस्त्र पहनकर अभी यहाँसे निकल जाओ। मैं समयकी बात कुछ नहीं जानता, जो तुमने प्रतिज्ञा की है, उसे पूरी करो। राजाने अपने स्त्री और पुत्रके साथ वल्कल धारण करके राजमहलसे प्रयाण किया।

ऐसा भी सुनने में आया है कि इन्द्रलोकसे लौटकर विश्वामित्रने योगबलसे हरिश्चन्द्रकी आत्माको अपने पास बुला लिया। हरिश्चन्द्रका शरीर राजमहलमें सो रहा था और उनकी आत्मा विश्वामित्रके सामने हाथ जोड़े खड़ी थी। विश्वामित्रने कहा- राजन्। तुम बड़े दाता हो। तुम्हारा यश त्रिलोकीमें छा रहा है, तुम अपना सम्पूर्ण राज्य मुझे समर्पित कर दो। यदि ऐसा नहीं करोगे तो तुम्हारा समग्र राज्य मैं अभी तपोबलसे भस्म कर दूँगा। हरिश्चन्द्रने सोचा कि सारे राज्यके नष्ट होनेकी अपेक्षा मेरा नष्ट हो जाना अच्छा है और इसमें नष्ट होनेकी बात ही क्या है? ऋषिराजाको सारा राज्य निवेदन कर देनेसे मैं राज्य कार्यकी झंझटोंसे मुक्त हो जाऊंगा और भगवान्‌का भजन करूँगा।

हरिश्चन्द्रने विश्वामित्रसे कहा- प्रभो। मैंने अपना सम्पूर्ण राज्य आपके चरणोंमें समर्पित किया। अब मेरा कुछ नहीं, सब आपका है। विश्वामित्रने हरिश्चन्द्रकी प्रशंसा करते हुए दानकी साङ्गता सिद्ध होनेके लिये दक्षिणा माँगी। उस समय हरिश्चन्द्रकी आत्मा राजधानीमें चली आयी और उनकी नींद खुल गयी। उन्होंने देखा कि मैं अपने राजमहलमें सो रहा हूँ। यह सब स्वप्न था। उनके सामने स्वप्नकी एक-एक घटना आने लगी- ऋषिका आश्रम, उनकी मुखाकृति और उनका नाम विश्वामित्र- सब-के-सब उनके दिमाग में घूमने लगे। वे सोचने लगे कि चाहे स्वप्नमें ही सही, मैंने अपने राज्य का दान कर दिया है। अब मैं राजा नहीं, राज्य पर मेरा कोई स्वत्व नहीं, इसका उपयोग करना मेरे लिये पापजनक है।

दूसरे दिन राजसभामें मन्त्री और सभासदोंके सामने हरिश्चन्द्रने सारी कथा कह सुनायी। मन्त्रियोंने कहा- स्वप्नकी बातका क्या प्रमाण? लोग स्वप्नमें न जाने क्या-क्या देख जाते हैं, सुन जाते हैं, कह जाते हैं। यदि सब करने लगें तब तो दुनियामें गड़बड़ी मच जाय। आप इन बातोंको भूल जाइये और पूर्ववत् राज्यका संचालन कीजिये। हरिश्चन्द्रने मन्त्रियोंकी बात अस्वीकार कर दी। उन्होंने कहा- मैंने अवश्य स्वप्नमें ही दान किया है, परंतु दान कर दिया है। मैं अब इस बातसे कभी टल नहीं सकता। राज्य उन्हीं महात्माका है। उनके आश्रमका पता मुझे मालूम नहीं। इसलिये जबतक उनका पता नहीं चल जाता, तबतक मैं राज्यकी देखभाल करूँगा; परंतु आदमियोंको भेजकर उनका पता लगवाया जाय और आजसे ही मुहर उनके नामकी कर दी जाय। राज्यके स्वामी वे रहेंगे और मैं उनका सेवक रहूँगा। हरिश्चन्द्रकी आज्ञाके अनुसार उन्हें ढूँढ़नेके लिये दूत भेज दिये गये और राज्य की मुहर बदल दी गयी। सभामें धन्य-धन्यकी ध्वनि गूँज उठी।

एकाएक विश्वामित्र सभामें आ पहुँचे। उन्हें देखते ही हरिश्चन्द्रका चेहरा खिल उठा। उन्होंने कहा- यही हैं, यही हैं। जिन्हें मैंने स्वप्नमें दान किया था, जो इस राज्यके एकछत्र स्वामी हैं, वे ही महात्मा स्वयं आ गये। कितनी कृपा है भगवान्‌की, उन्होंने मेरी स्वप्नकी बात रख ली। विश्वामित्रका स्वागत करके उन्होंने राज्य सिंहासनपर बैठाया। विश्वामित्रने कहा- हरिश्चन्द्र। सत्यवादियों में तुम्हारी बड़ी कीर्ति है। पर यह कैसा सत्य है कि रात मुझे राज्यका दान करके साङ्गता दिये बिना ही भाग आये और आज राजा बने बैठे हो। हरिश्चन्द्रने उनके नामकी मुहर दिखाकर और साङ्गताकी दक्षिणा देनेका वादा करके उन्हें शान्त किया तथा अपनी स्त्री और पुत्रको लेकर राजमहलसे निकल पड़े।

जिस समय वल्कल-वस्त्र धारण किये हुए हरिश्चन्द्र, शैव्या (रानी तारामती) और रोहिताश्व राजमहलसे नंगे पाँव और नंगे सिर निकले, उस समय सारी अयोध्यामें हाहाकार मच गया। किसीने कहा- प्रभो। हम आपके अनुयायी हैं, हमें मत छोड़ो। आप हमपर कृपा करके हमें भी अपने साथ ले चलें। कोई कह रहा था- राजन्। थोड़ी देर और ठहर जाइये। आपको हम एक बार आँखभर देख लें। पता नहीं फिर कब आपके दर्शन होंगे? कोई किसीसे कह रहा था- जिनके बाहर निकलनेपर आगे-पीछे अनेकों नरपति हाथ जोड़े चलते थे, अनेकों सेवक हाथियोंपर सवार होकर, शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होकर जिनकी रक्षा करते हुए चलते थे, वे ही महाराज हरिश्चन्द्र आज नंगे पाँव जमीनपर चल रहे हैं। यह सुकुमार राजकुमार, जिसके कोमल शरीरमें अबतक कभी रूखी हवा नहीं लगने पायी है, नंगे पाँव जमीनपर कैसे चल पायेगा? इसके लंबे-लंबे बालोंपर धूल जम जायगी, इसका मुँह मुरझा जायगा। हा दैव। तुमने यह कौन-सी विपत्ति डाल दी। कोई कह रहा था- अरे। महारानी शैव्याको तो देखो, जिन्हें सूर्यकी किरणें भी नहीं देख पाती थीं, हवा जिनके पास डरते-डरते जाती थी, महलके बाहर जिन्होंने कभी पैर नहीं रखा, दूधके फेनके समान कोमल शय्यापर जो सोती थीं, वही आज वल्कल-वस्त्र पहनकर पैदल ही जा रही हैं। ये क्या वृक्षके नीचे सोयेंगी? ये किस कर्मका फल है? इनके जैसे धर्मात्मा राजदम्पतिको क्या यही कष्ट भोगना था? राजवंशकी यह दशा देखकर कोई रो रहा था, कोई विलाप कर रहा था, कोई मूर्च्छित हो रहा था। हरिश्चन्द्र निर्विकारभावसे आश्वासन देते हुए आगे बढ़ रहे थे।

विश्वामित्रने आकर कहा- हरिश्चन्द्र। अभी तू यहीं डटा हुआ है? जल्दी निकल जा यहाँसे। दान की हुई पृथ्वीका उपभोग नहीं करना चाहिये। हाँ, एक बात तो तूने बतायी ही नहीं, मुझे बाकी दक्षिणा कब देगा? आज, कल, परसों कितने दिनोंतक मैं तेरी प्रतीक्षा करूँ? हरिश्चन्द्रने कहा- भगवन्। इस समय मेरे पास कुछ नहीं है, नहीं तो मैं तुरंत दे देता। मैं आपका ऋणी हूं, कृपा करके आप मुझे एक महीनेका अवकाश दे दीजिये। मैं अवश्य आपकी दक्षिणा चुका दूँगा। विश्वामित्रने कहा- अच्छी बात है। जा, जिस दिन एक महीना पूरा होगा, उसी दिन यदि तूने पूरी दक्षिणा नहीं दे दी तो मैं तुझे भस्म कर डालूँगा। हरिश्चन्द्रने हाथ जोड़कर स्वीकार किया।

जब वे वहाँसे चलने लगे तब प्रजाने फिर उन्हें घेर लिया। सब लोगोंने कहा- राजन्। हम बाल-बच्चे, धन-धान्य सब कुछ छोड़कर आपके पीछे-पीछे छायाकी भाँति चलेंगे। जहाँ आप रहेंगे, वहीं हम रहेंगे; जहाँ आप हैं, वहाँ सुख है। वही हमारा नगर है और वही हमारे लिये स्वर्ग है। प्रजाजनोंकी बात सुनकर हरिश्चन्द्रके हृदयमें स्नेह उमड़ आया, उनका दुःख देखकर वे स्वयं दुःखी हो गये। वे उन्हें समझाने लगे कि तुम लोगोंके चलनेसे मेरा धर्म-संकट और भी बढ़ जायगा, तुम्हें भी कष्ट होगा। तुम यहाँ रहकर धर्मपालन करो और हम भी कहीं रहकर धर्मपालन करें। यह जीवन केवल धर्मके लिये प्राप्त हुआ है।

हरिश्चन्द्र अभी समझा ही रहे थे कि विश्वामित्रने पुनः आकर डाँटना शुरू किया। उनकी आँखें क्रोधसे लाल-लाल हो रही थीं। उन्होंने कहा- तू धर्मभ्रष्ट हो गया है। झूठ बोलता है। कपट करता है। दान करके फिर लेनेकी इच्छासे प्रजामें

षडयन्त्र करता है। विश्वामित्रकी यह परूष वाणी सुनकर अभी निकल जाता हूँ कहते हुए हरिश्चन्द्रने शैव्याका हाथ पकड़ लिया और उसे खींचते हुए चलने लगे।

विश्वामित्रके इस कृत्यको देखकर पाँचों विश्वेदेवा, जो उस समय आकाशमें स्थित थे, दयासे द्रवित हो गये। उनके मुँहसे एकाएक निकल पड़ा- विश्वामित्र बड़ा पापी है। इसे नरकमें भी ठिकाना नहीं मिलेगा। हरिश्चन्द्रको इसने राज्यसे वञ्चित कर दिया, कपटसे ठग लिया। अब हम किसके यज्ञमें सोमपान करेंगे, किसकी श्रद्धाका उपभोग करेंगे? उनकी यह आवाज विश्वामित्रके कानोंतक पहुँची। उन्होंने कहा- तुमलोग देवता होकर मनुष्योंका इतना पक्षपात करते हो, इसलिये तुम भी मनुष्य हो जाओ। पीछे विश्वेदेवाने विश्वामित्रको अनुनय-विनयसे प्रसन्न कर लिया और विश्वामित्रने उनको गर्भसे पैदा होकर बिना गार्हस्थ धर्मका पालन किये ही काम-क्रोधादिसे मुक्त रहकर स्वर्गमें जानेकी छूट दे दी।

हरिश्चन्द्र अयोध्यासे तो चल पड़े, परंतु अब उनके मनमें यह प्रश्न उठा कि कहाँ जायँ? सारी पृथ्वीका दान हो गया, अब इसमें रहना नहीं चाहिये और इसके अतिरिक्त स्थान ही कहाँ है? एकाएक उन्हें काशीका स्मरण हो आया। उन्होंने सोचा- काशी तो त्रिलोकसे न्यारी है। वह त्रिशूलपर स्थित है, जन्म-मरणके चक्करसे बाहर है, भगवान शंकरकी राजधानी है, दयामयी माँ अन्नपूर्णा वहाँ सबकी खोज खबर रखती है। अब वहीं चलना चाहिये। हरिश्चन्द्र शैव्या और रोहिताश्वके साथ धीरे-धीरे काशीके लिये चल पड़े।

जब राज्य हो, सम्पत्ति हो, मित्र हो और आज्ञापालनके लिये अनेकों सेवक सामने खड़े हों, तब धर्मात्मा बनना कठिन नहीं है। तब तो धर्मात्मा न होनेपर भी धर्मात्मा होनेका स्वाँग किया जा सकता है और कहलाया जा सकता है। परंतु जब पासमें पैसे न हों, रहनेके लिये घर न हो, सहायताके लिये पशु-पक्षी भी न हों और खानेके लिये रोटीका एक टुकड़ा न मिलता हो, उस समय भी सच्चे हृदयसे प्रसन्नताके साथ धर्मपर आरूढ़ रहना किन्हीं महापुरुषोंका ही काम है। विपत्तिमें ही धर्म और धैर्यकी परीक्षा होती है।

हरिश्चन्द्र अपनी धर्मपत्नी शैव्या और नन्हें-से बालक रोहिताश्वको लेकर जब काशी पहुँचे, तब एक महीना पूरा होनेमें केवल एक ही दिन बाकी था। काशी अभी थोड़ी दूर थी, वहाँके ऊंचे-ऊंचे मन्दिर दीख रहे थे, गङ्गाकी हर-हर ध्वनि भी कानोंमें पड़ जाती थी। वे नगरमें प्रवेश करनेवाले ही थे कि शैव्या थक गयी, रोहिताश्वके पैरमें काँटा गड़ गया और वे वहीं एक वृक्षके नीचे बैठकर काँटा निकालने लगे। उन्होंने देखा कि रोहिताश्वके कोमल तलवेमें कई फफोले पड़ गये हैं, उनकी आँखोंमें आँसू आते-आते रुक गये। काँटा निकल गया, परन्तु शैव्याके अधिक थक जानेके कारण वे आगे नहीं बढ़ सके। यही कारण था कि अयोध्यासे काशी आनेमें लगभग एक महीनेका समय लग गया, नहीं तो न जाने कबके पहुँच गये होते।

रोहिताश्वने कहा- पिताजी। मुझे भूख लगी है। हरिश्चन्द्रने पुकारकर कहा- कोई है यहाँ? बच्चेको भूख लगी है, कुछ ले आओ कहते-कहते उनका मुँह संकोचसे झुक गया। रोहिताश्वने कहा- माँ। भूख लगी है। शैव्याकी आँखोंसे आँसूकी कुछ बूँदें ढुलक पड़ीं। हरिश्चन्द्रने कहा- प्रिये। दु:ख करनेकी क्या बात है? जब भगवान्‌के दिये हुए राज्यको हम प्रसन्नतासे भोगते थे, तब उनकी दी हुई विपत्तिको प्रसन्नतासे क्यों न भोगें? यह उनका प्रसाद है, इसकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिये। बड़े प्रेमसे इसे शिरोधार्य करना चाहिये। रोहिताश्वने कहा- पिताजी। मुझे भूख लगी है।

हरिश्चन्द्रने कहा- बेटा। देखो यह गङ्गा कितनी सुन्दर हैं। इनमें सारस, हंस आदि पक्षी कितनी प्रसन्नतासे क्रीडा कर रहे हैं। यह तोता है, यह कोयल कुहू-कुहू कर रही है। ये मोर अपने पिच्छ फैलाकर नाच रहे हैं। देखो, कितना आनन्द है। रोहिताश्वने कहा- यही गङ्गा है? हरिश्चन्द्रने कहा- हाँ बेटा। यही गङ्गा हैं। रोहिताश्व- यह हंस है? हरिश्चन्द्र- हाँ बेटा। यह

बड़ा सुन्दर हंस है। रोहिताश्व- पिताजी। मुझे भूख लगी है। हरिश्चन्द्रने कहा- बेटा। धीरज धरो। तुम तो राजा हो। क्या तुम भूख नहीं सह सकते? चलो, अभी अन्नपूर्णा माईके दरबारमें चलते हैं, कोई-न-कोई प्रबन्ध हो ही जायगा। रोहिताश्वने कहा- पिताजी। अब नहीं सहा जाता। कल भी तो तुमने कुछ नहीं दिया था। माँ। मैं लड्डू खाऊंगा।

यह बातें हो ही रही थीं कि उधरसे सिरपर कुछ लिये हुए एक वृद्धा स्त्री निकल आयी। हरिश्चन्द्रने उससे कहा- देवि। हमलोग दूसरे देशके हैं। रास्ता नहीं मालूम है। नगरमें कैसे जायँ? वृद्धाने कहा- महाभाग। तुम्हारे शरीरमें तो चक्रवर्ती राजाके लक्षण हैं; तुम्हारी यह अवस्था कैसे हुई? हरिश्चन्द्रने कहा- माता। अब पुरानी बातोंके कहनेसे क्या लाभ? उसे तुम जानकर भी क्या करोगी? रोहिताश्वने कहा- पिताजी। मुझे भूख लगी है। वह वृद्धा स्त्री अपनी पोटलीमें से कुछ कलेवाका सामान निकालकर रोहिताश्वको देने लगी। हरिश्चन्द्रने कहा- माता। हम किसी मनुष्यके कृपाभाजन नहीं बनना चाहते। तुम इस बच्चेको भिक्षामें कुछ मत दो। वृद्धाने कहा- अरे। क्या यह बच्चा तुम्हारा ही है, मेरा नहीं है? मैं इसे खिलाऊँगी। कलेवाका सामान देते हुए उस वृद्धा स्त्रीने नगरमें जानेका रास्ता बतला दिया और वहाँसे चली गयीं।

हरिश्चन्द्रने शैव्यासे कहा- प्रिये। आज महीना पूरा हो रहा है। अब क्या किया जाय। सत्यकी रक्षा कैसे हो? क्या प्राण रहते मैं सत्यसे विचलित हो जाऊँगा? अभी हरिश्चन्द्रकी बात पूरी भी नहीं हो पायी थी कि अचानक विश्वामित्र वहाँ आ गये। राजाने नम्रतासे उन्हें प्रणाम किया और कहा- भगवन्। ये मेरे प्राण हैं, यह मेरा बच्चा है और यह मेरी पत्नी है। हमलोग आपकी जो सेवा कर सकते हों, वह आज्ञा कीजिये। विश्वामित्रने कहा- मैं यह सब कुछ नहीं जानता। आज महीना पूरा हो रहा है। मेरी दक्षिणा दे दो। तुम अपनी प्रतिज्ञापर अटल हो न? देखो, अब दोपहर हो रहा है। हरिश्चन्द्रने कहा- भगवन्। आप आधे दिनतक और प्रतीक्षा कीजिये। सूर्यास्तके पूर्व ही मैं आपकी दक्षिणा दे दूँगा। विश्वामित्रने कहा- यही सही। मैं शामको फिर आऊँगा। यदि तुम मेरी दक्षिणा न दे सके तो अनर्थ हो जायगा। विश्वामित्र चले गये।

हरिश्चन्द्र सोचने लगे कि इनकी दक्षिणाका क्या प्रबन्ध किया जाय? ऐसे अवसरपर मुझे ऋण भी कौन दे सकता है? किसीसे दान लिया ही नहीं जा सकता। यदि बिना दिये मर गया तो मुझसे नीच और कौन होगा? अब एक ही उपाय है अपने-आपको बेच दूँ। जीवनभरके लिये किसीका सेवक बन जाऊँ। किसी प्रकार दक्षिणा देकर प्रतिज्ञा पूरी करनी ही चाहिये। हरिश्चन्द्र सोचते-सोचते व्याकुल हो गये। उन्हें कुछ सूझता ही नहीं था। शैव्याने कहा- महाराज। आप चिन्ता छोड़कर अपने सत्यका पालन करें। झूठे लोग श्मशानकी भाँति वर्जनीय हैं। सत्य ही परम धर्म है। झूठे मनुष्यके अग्निहोत्र, अध्ययन, दान सभी निष्फल हो जाते हैं। मैंने पुराणोंमें सुना है कि कृति नामके राजाने सात अश्वमेध यज्ञ किये थे, राजसूय यज्ञ किया था; परंतु झूठ बोलनेके कारण वह स्वर्गसे गिर पड़ा। महाराज। मैं एक बात कहूँ, अब मेरे गर्भसे संतान हो चुकी है। इतना कहकर शैव्या रोने लगी। हरिश्चन्द्रने कहा- कल्याणी। रोओ मत। तुम्हारा बालक तुम्हारे पास है। जो कुछ कहना चाहती हो, कहो।

शैव्याने कहा- राजन्। मुझसे संतान हो चुकी है। इसलिये मेरा पाणिग्रहण सफल हो गया है। अब आप मुझे किसीके हाथ बेच दें। मैं उसकी सेवा करूँगी और मेरा मूल्य लेकर आप विश्वामित्रको दे दीजिये। शैव्याकी बात सुनकर हरिश्चन्द्र मूर्च्छित-से हो गये। वे किसी प्रकार अपनेको सम्हालकर कहने लगे- प्रिये। यह तुमने क्या कहा? यह तो बड़े दुःखकी बात है। क्या हमारा प्रेम-बन्धन समाप्त हो चुका? क्या हम सुखके वे दिन भूल गये? मैं ऐसा निष्ठुर कार्य कैसे कर सकूँगा? मुझे धिक्कार है यह कहकर हरिश्चन्द्र भूमि पर गिर पड़े।

शैव्या समझाने लगी- राजन्। यह किस कर्मका फल है? आप भूमिपर इस तरह क्यों सो रहे हैं? इन्द्र और उपेन्द्रके समान सुख भोगनेवाले आपको मैं भूमिपर पड़ा हुआ नहीं देख सकती। इतना कहते-कहते शैव्याका गला भर आया और

वह भी मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़ी। रोहिताश्व रो-रोकर पुकारने लगा- पिताजी। उठिये। माँ। उठ। मुझे गोदमें ले ले। मुझे भूख लगी है, कुछ खिलाओ। तुम लोग क्यों रो रहे हो? मेरी बात क्यों नहीं सुनते? मेरी जीभ सूख रही है। मुझे पानी पिलाओ। इसी समय विश्वामित्र वहाँ उपस्थित हो गये।

विश्वामित्रने मूर्च्छित हरिश्चन्द्र और शैव्याके ऊपर अपने कमण्डलुका शीतल जल छिड़ककर उन्हें जगाया और कहा- राजन्। उठो। अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो। ऋणी मनुष्यका दु:ख प्रतिक्षण बढ़ता ही जाता है। हरिश्चन्द्र विश्वामित्रको देखकर पुन: मूर्च्छित-से हो गये। वे इसलिये मूर्च्छित नहीं होते थे कि देना न पड़े, बल्कि देनेका कोई उपाय न देखकर मूर्च्छित हो जाते थे। विश्वामित्रने पुन: उन्हें होशमें लाते हुए कहा- राजन्। सत्यकी बड़ी महिमा है। सत्यके बलपर सूर्य उगता है, सत्यके बलपर पृथ्वी ठहरी हुई है। सत्य ही परम धर्म है और सत्यके बलपर ही स्वर्ग टिका हुआ है। हजारों अश्वमेध-यज्ञ सत्यकी बराबरी नहीं कर सकते। तुम उठो, अपने धर्मका पालन करो। विलम्ब मत करो।

विश्वामित्रने आगे कहा- मैं तुम्हारे-जैसे दुष्टसे झूठ-मूठ सत्यकी आशा रखता हूं। आज यदि सायंकालतक मेरी दक्षिणा नहीं मिल जायगी तो अनर्थ हो जायेगा। विश्वामित्र चले गये। राजा और भी चिंतित हो गये। शैव्याने पुन: आग्रह किया कि मुझे बेचकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कीजिये। बार-बार आग्रह करनेपर हरिश्चन्द्रने कहा- अच्छी बात है। मैं यह क्रूर कर्म भी करूंगा। प्रिये। तुम वास्तव में देवी हो, तुम्हारे ही कारण मेरे सत्यकी रक्षा हो रही है। मैं तुम्हें बेचूँगा, रोहितको बेचूँगा और बड़ी प्रसन्नतासे अपनेको चाण्डालके हाथों बेच दूँगा। परंतु सत्यसे विचलित नहीं होऊँगा। सत्य ही मेरा जीवन है, सत्य ही मेरा प्राण है।

हरिश्चन्द्रने अपने पुत्र और पत्नीके साथ नगरमें प्रवेश किया। वे जोर-जोरसे पुकारकर कहने लगे- नगरवासियों। मेरी बात सुनो। क्या पूछते हो, मैं कौन हूँ, मैं क्रूर हूँ। मैं मनुष्यतारहित हूँ। मैं राक्षससे भी कठोर हूँ। मैं स्वयं ही अपनी प्राणोंसे प्यारी पत्नीको बेचनेके लिये ले आया हूँ। यदि आपमेंसे किसी सज्जनको दासीकी आवश्यकता हो तो इसे खरीद लें। हरिश्चन्द्रकी बात सुनकर बहुत-से लोक चकित हो रहे थे; कइयोंको बड़ी दया आ रही थी; बहुत-से सोच रहे थे कि इनपर कौन-सा संकट आया है, जो यह अपनी पत्नीको बेच रहे हैं। कई सहृदयोंकी आँखोंसे आँसू बहने लगे।

उसी समय एक वृद्ध ब्राह्मणने आकर कहा- मैं इसे खरीदना चाहता हूँ। मुझे एक दासीकी बड़ी आवश्यकता है। मेरी धर्मपत्नी बड़ी ही सुकुमारी है। उससे घरके काम नहीं हो पाते। बोलो क्या लोगे? हरिश्चन्द्रने कहा- भगवन्। मैं नहीं जानता कि इसका क्या मूल्य होना चाहिये। जो उचित हो, वह आप दे दीजिये। वृद्ध ब्राह्मणवेषधारी विश्वामित्रने कहा- राजन्। तुम्हारी स्त्री सब प्रकारसे योग्य है। इसे देखनेसे स्पष्ट मालूम होता है कि इसका चरित्र पवित्र है। जीवनभर यह अपने शील-व्रतकी रक्षा करेगी। इसकी अवस्था, कर्म, वय, रूप सभी उत्तम स्त्रियोंके हैं। इसलिये इसका मूल्य करोड़ स्वर्णमुद्रा होना चाहिये। इतना कहकर उन्होंने हरिश्चन्द्रके वल्कल-वस्त्रमें स्वर्णमुद्राएँ रख दीं और शैव्याको पकड़कर अपने साथ ले चलने लगे। रोहिताश्वने अपनी माँकी साड़ी पकड़ ली। उसे डाँटकर वे वृद्ध ब्राह्मण शैव्याको खींच ही रहे थे कि शैव्याके धैर्यका बाँध टूट गया, वह रोने लगी।

उसने कहा- ब्राह्मण देवता। आपने मुझे खरीद लिया। मैं आपकी दासी हो गयी। मैं आपके साथ चलनेके लिये तैयार हूँ। परंतु एक क्षणके लिये आप मुझे छोड़ दीजिये। मैं अपने बच्चेको भर आँख देख लूँ। फिर यह कब मिलेगा? उसने रोहितकी ओर देखकर कहा- बेटा। मेरा स्पर्श मत करो। राजकुमार। मैं अब दासी हो गयी। बालक रोहिताश्व माताको इस रूपमें देखकर अम्मा-अम्मा कहकर रोने लगा और जोरसे पकड़ लिया। वह किसी प्रकार अपनी माताको छोड़ता ही न था। ब्राह्मणने रोहिताश्वको डाँटकर उसे एक लात मारी, वह गिर पड़ा। शैव्या उसे उठा नहीं सकती थी। उसने गिड़गिड़ाकर

कहा- अब आप मेरे मालिक हैं। मैं इतना प्रार्थना आपसे करती हूँ कि इस बच्चेको भी खरीद लीजिये। यदि आप इसे नहीं खरीदेंगे तो मैं आपके घर जाकर भी पूरी शक्तिसे आपकी सेवा नहीं कर सकूँगी। मेरा मन तो रोहितके पास होगा। मैं काम कैसे करूँगी? ब्राह्मणने कहा- यह नहीं हो सकता। यदि मैं इसे खरीद लूँगा तो दिन-रात तुम इसके दुलार-प्यारमें ही लगी रहोगी, घरका काम कैसे करोगी? मैं इसे नहीं खरीदता। परंतु किसी तरह बालक माताको छोड़नेपर राजी नहीं हुआ।

ब्राह्मणने दया करके स्वीकार कर लिया और उसका मूल्य देकर माता-पुत्र दोनोंको ले चला। शैव्याने मन-ही-मन हरिश्चन्द्रको प्रणाम करके भगवान्‌से प्रार्थना की कि प्रभो। यदि मेरे स्वामीने सच्चे हृदयसे सत्यका पालन किया हो और मैं मन, कर्म, वाणीसे उन्हींकी दासी होऊँ तो स्वामीके साथ शीघ्र ही मिलूँ। हरिश्चन्द्रने अपना मुँह फेर लिया। शैव्याकी यह दशा उनसे देखी न गयीं। परंतु शैव्याकी अपेक्षा भी उनके हृदयमें सत्यका अधिक प्रेम था। ब्राह्मण, शैव्या और रोहितके जानेके थोड़ी देर बाद ही विश्वामित्र उपस्थित हुए।

उस समय हरिश्चन्द्र सोच रहे थे कि भगवान्‌की क्या लीला है। वायु, सूर्य, चन्द्रमा और दूसरे लोग जिसे देख नहीं सकते थे, वही शैव्या आज दूसरेकी क्रीतदासी हो गयी है। जिस रोहितके सम्बन्धमें ऐसी धारणा थी कि वह कभी सम्राट होगा, वही आज भूखों मर रहा है, दूसरोंके द्वारा मारा जा रहा है। परंतु क्या किया जाय, इसमें ही मेरा कल्याण होगा, इसीमें सबका मङ्गल होगा। वे सोच ही रहे थे कि विश्वामित्रने अपनी दक्षिणाका तकाजा किया। हरिश्चन्द्रने, जो कुछ उनके पास था, विश्वामित्रके सामने रख दिया।

विश्वामित्रने पूछा- राजन्। यह धन तुम्हें कैसे प्राप्त हुआ है? तुम दान तो ले नहीं सकते, क्षत्रिय हो, किसीसे माँग सकते नहीं, फिर इतनी सम्पत्ति तुम्हें कहाँसे प्राप्त हुई? बिना जाने तो मैं दक्षिणा ले ही नहीं सकता। न्यायोपार्जित द्रव्य ही दक्षिणाके काममें आ सकता है। मैं अन्यायोपार्जित द्रव्य कदापि ग्रहण नहीं करूँगा। हरिश्चन्द्रने सारी बातें बतायी। विश्वामित्रने कहा- राजन्। यह धन तो बहुत ही थोड़ा है। इतनेसे मेरी दक्षिणा पूरी नहीं होती। शीघ्र ही और दक्षिणा ले आइये। हरिश्चन्द्रने कहा- भगवन्। अभी मैंने अपनी पत्नी और बालकको बेचा है। कुछ समय और प्रतीक्षा कीजिये। मैं आपकी दक्षिणा पूरी कर दूँगा। मुनीन्द्र। आप क्रोध न करें। मुझे जितना प्राप्त हो सकेगा वह सब मैं आपको दे दूँगा। मैं चाण्डालकी भी दासता कर सकता हूँ, परंतु सत्यसे विचलित नहीं हो सकता।

विश्वामित्रने कहा- अब थोड़ा-सा दिन बाकी है। सूर्यास्तके पहले ही इसका प्रबन्ध करना होगा। यदि समयसे मेरी दक्षिणा नहीं मिल गयी तो मैं तुम्हें सत्यसे च्युत कर दूँगा। विश्वामित्र यह कहते हुए दूसरी ओर चले गये। हरिश्चन्द्र धैर्यके साथ कहने लगे- भाई। जबतक सूर्य है तभी तक मुझे कोई खरीद ले। मैं सब प्रकारसे उसकी सेवा करूँगा। वे यह घोषणा करते हुए आगे बढ़ ही रहे थे कि धर्मने चाण्डालका वेष धारण करके आगमन किया। उसने हरिश्चन्द्रसे कहा- मुझे दासकी आवश्यकता है, मैं तुम्हें खरीदूँगा। तुम अपना दाम बताओ। उसकी भीषण आकृति देखकर हरिश्चन्द्र सशम हो गये। उन्होंने कहा- भाई। तुम कौन हो? चाण्डालने कहा- मैं प्रवीर नामका चाण्डाल हूँ। मेरा काम है मुर्दोंका कफन लेना और जल्लादी करना। हरिश्चन्द्रकी आत्मा काँप उठी। वे सहसा यह निर्णय नहीं कर सके कि चाण्डालके हाथों बिक जाना ठीक है या नहीं। एक ओर यदि सूर्यास्तके पहले बिक नहीं जाते, दक्षिणा नहीं दे देते तो सत्यसे च्युत हो जानेका भय है और दूसरी ओर यदि बिक जाते हैं तो चाण्डालकी सेवा करनी पड़ती है। आत्माके विरुद्ध, धर्मके विरुद्ध चाण्डालकी सेवा करनेसे मेरी क्या गति होगी, इस विचारमें वे पड़ गये।

इसी समय क्रोधसे लाल-लाल आँखें किये हुए विश्वामित्र आते दीख पड़े। विश्वामित्रको देखते ही हरिश्चन्द्र उनके

चरणोंपर गिर पड़े। विश्वामित्रने कहा- जब तुम्हारा पर्याप्त मूल्य देनेके लिये चाण्डाल तैयार है तब बिकनेमें आनाकानी क्यों कर रहे हो? क्या तुम मुझे दक्षिणा देना नहीं चाहते? हरिश्चन्द्रने हाथ जोड़कर कहा- भगवन्। मैं पवित्र सूर्यवंशमें पैदा हुआ हूँ। अब तक मैंने जान-बूझकर वर्णाश्रमधर्मके विरुद्ध कोई आचरण नहीं किया है। चाण्डालकी दासता करनेको हृदय सहसा तैयार नहीं होता परंतु आप इसीमें प्रसन्न हैं और आप ऐसी ही आज्ञा देते हैं तो बिकनेकी तो बात ही क्या, मैं चाण्डालके चरणोंपर अपना बलिदान भी कर सकता हूँ। विश्वामित्रने इशारा किया और चाण्डालने करोड़ों मुहरें देकर हरिश्चन्द्रको खरीद लिया। विश्वामित्रने अपनी दक्षिणा ले ली और चाण्डाल हरिश्चन्द्रको लेकर अपने श्मशानपर गया।

कहा जाता है कि हीरा जितना ही खरादपर चढ़ाया जाता है, उतना ही अधिक वह आबदार होता है। विपत्ति ही सम्पत्तिकी जननी है। परीक्षा ही महत्त्वको प्रकट करती है। जिसके जीवनमें कठिनाइयाँ नहीं आयीं, वह आत्मशक्तिकी परीक्षा ही कब कर सकता है। भगवान् जब देखते हैं कि कोई बुरे समयमें भी अपने धर्मपर आरूढ़ है, तब प्रसन्न होकर अपनी शरण में ले लेते हैं। परीक्षाकी भी सीमा होती है और उसकी सीमा पर ही सफलताका निवास है। हरिश्चन्द्रकी अब थोड़ी-सी ही परीक्षा बाकी है, धैर्यके साथ उनके सत्यप्रेमको देखते हुए उनकी सफलताकी ओर बढ़ें।

हरिश्चन्द्र चाण्डालके यहाँ चार दिन तक तो हाथ-पैर बांधकर एक बंद कोठरीमें रखे गये। उन्हें भूख-प्यासकी तो याद ही नहीं थी और चाण्डालके घर खाना पड़ेगा, इसकी उनके मनमें सम्भावना भी नहीं थी। पाँचवें दिन उन्हें बन्धनसे निकालकर श्मशानपर लाया गया। चाण्डालने उन्हें बहुत डाँट-डपटकर उनकी ताड़ना करके बतलाया- तुम श्मशानपर रहो और जो यहाँ मुर्दा जलाने आवे, उससे कफन ले लिया करो। हरिश्चन्द्र रात-दिन बड़ी सावधानीके साथ अपना काम करने लगे।

श्मशानपर अनेकों प्रकारके लोग अपने सम्बन्धियोंको जलाने आते। हरिश्चन्द्र सबसे श्मशानका कर लेते और लोगोंको रोते-पीटते, मरते-जलते देखते। उन्हें सांसारिक जीवनसे विराग हो गया। उन्होंने श्मशानपर रहकर देखा कि इस जीवनका अन्त, इस शरीरका अन्त यही है। एक-न-एक दिन इस घाटपर सबको आना ही पड़ेगा। तब अच्छा ही है। मैं पहलेसे ही यहाँ आ गया। जिस शरीर-सुखके लिये राज्यकी, स्त्रीकी, पुत्रकी और धनकी आवश्यकता थी, उस शरीरकी जब यही गति होती है, तब उसके लिये धर्मसे विचलित होना व्यर्थ है। भगवान्ने मेरी रक्षा की, संसारके मोहसे मुझे बचा लिया। यह सोचकर हरिश्चन्द्रके मनमें शान्तिका संचार हुआ। वे प्रसन्नताके साथ भगवान्का स्मरण करते हुए उनकी इच्छासे उपस्थित अपने कर्तव्यका पालन करने लगे।

एक दिनकी बात है, आधी रातके लगभग एक स्त्रीको पकड़कर बहुत-से लोग ले आये और वह चाण्डाल भी उनके साथ था। लोगोंने हरिश्चन्द्रसे कहा- तुम अभी इस स्त्रीको मार डालो। हरिश्चन्द्रने कहा- मैं स्त्री पर शस्त्र नहीं चला सकता। मैं बिक गया हूं, यह सत्य है, परंतु मैं अपना काम कर रहा हूँ। मेरा काम स्त्रीको मारना नहीं है। चाण्डालने डाँटते हुए कहा- तुम्हारा काम कुछ नहीं है, जो काम मैं बताऊँ वही तुम्हारा काम है। तुम बिक गये हो चाण्डालके हाथों और बात करते हो देवताओंकी। तुम्हें सेवक धर्मका पता नहीं। उसेन बलात् हरिश्चन्द्रके हाथमें खंजर दे दिया और वे सब वहाँसे हट गये।

उस स्त्रीने हरिश्चन्द्रसे कहा- भाई। मैं बड़ी विपत्तिमें फँसी हूँ। मेरा एक नन्हा-सा लड़का था, वह आज जिनके यहाँ मैं रहती हूँ, उनका कुश लानेके लिये जंगलमें गया था और वहीं साँपके काटनेसे मर गया। दिनमें तो मुझे उसके पास जानेकी आज्ञा ही नहीं मिली, आधी रातको जब मैं उसके पास गयी और रोने लगी तब लोगोंने मुझे पकड़ लिया और कहने लगे कि तू राक्षसी है तथा इस मुर्देको खानेके लिये इस समय यहाँ आयी है। मैं बहुत रोयी, बहुत गिड़गिड़ायी, परंतु उन्होंने मेरी एक न सुनी। यहाँ पकड़कर मुझे ले आये और मारनेकी आज्ञा दे गये। मैं तुमसे एक प्रार्थना करती हूँ कि मुझे एक घड़ीकी छुट्टी

दे दो, मैं अपने बच्चेके शवको उठा ले आऊँ, उसका दाह-संस्कार कर दूँ, तब तुम मुझे मार डालना। मुझे अपने जीवनसे कोई मोह नहीं है। हरिश्चन्द्रने अनुमति दे दी और वह बच्चेका शव लानेके लिये चली गयी।

हरिश्चन्द्र श्मशानपर इधर-उधर टहल रहे थे। उनका मन उसी स्त्रीके सम्बन्धमें नाना प्रकारके समल्प-विकल्प कर रहा था। एकाएक उनके कानमें एक करुण-ध्वनि आयी। वे चौकन्ना हो गये। वह एक स्त्रीकी दु:खभरी आवाज थी। उन्होंने ध्यानसे सुना, वह कह रही थी- प्रियतम। तुम्हारी ऐसी अवस्था। क्या हमारा रक्षक कोई नहीं है? प्रारब्ध। तू बड़ा निष्ठुर है। विद्याधरी। तू राक्षसी है। मेरे पतिदेवकी हत्या क्यों कर रही है? हरिश्चन्द्रने सब बातें सुनीं। उन्होंने निश्चय किया कि यह किसी राजाकी पत्नी है। इसके पतिका कोई बलिदान कर रहा है। कुछ आगे बढ़कर उन्होंने पूछा- कल्याणि। तुम क्यों रो रही हो? स्त्रीने कहा- महाभाग। मुझसे क्या पूछ रहे हो? स्वयं कुछ आगे बढ़कर देख लो। हरिश्चन्द्रने जाकर देखा, एक व्यक्ति बरगदके वृक्षमें उलटा टँगा हुआ है। पैर ऊपर है, सिर नीचे, लंबे-लंबे बाल लटक रहे हैं, शरीरमें लाल चन्दन लिपटा हुआ है, पास ही तीन कुण्डोंमें अग्नि जल रही है। हरिश्चन्द्रके पूछनेपर उस व्यक्तिने बतलाया कि मैं काशी-नरेशका लड़का हूँ। यह मेरी पत्नी है। हम दोनों एक ही स्थानपर सो रहे थे। कोई राक्षसी ऊपरसे आकर हमें हर लायी। हमें हरे जानेका कष्ट नहीं है। मैं यह सोच रहा हूँ कि वह मेरा तो बलिदान करेगी, इसको व्यर्थ ही ले आय और सुनकर तुम क्या करोगे, जल्दी यहाँसे भाग जाओ। वह राक्षसी गङ्गा-स्नान करके आती ही होगी।

हरिश्चन्द्रने मन-ही-मन सोचा कि सत्यकी रक्षासे भी बढ़कर इसके प्राणोंकी रक्षा है। मैंने अबतक जो कुछ किया है, केवल बाह्य शरीरसे किया है। मेरा सत्य और मेरी सहनशक्ति केवल बाह्य है। यदि मैं अपने प्राणोंका दान करके इसके प्राणोंकी रक्षा कर सकूँ तो कितना अच्छा है। वे उस राजकुमारको छुड़ानेके लिये इतने आतुर हो गये कि उन्हें अपना दास-भाव भूल ही गया। उन्होंने राजकुमारसे कहा- महाराज। मैं आपसे एक प्रार्थना करता हूँ, आप स्वीकार कीजिये। राजकुमार। दो प्रकारके मनुष्य संसारमें दुर्लभ हैं। एक तो वे, जो किसीकी प्रार्थना विफल नहीं करते और दूसरे वे, जो कभी किसीसे प्रार्थना नहीं करते। आप मेरी प्रार्थना अवश्य सफल करेंगे, ऐसी आशा है। राजकुमारने लंबी साँस लेकर कहा- महाशय। इस समय मेरे पास कुछ नहीं है। मैं आपकी प्रार्थना कैसे पूरी कर सकता हूँ। हरिश्चन्द्रने कहा- जो आप कर सकते हैं वही तो मैं कहता हूँ। राजकुमारके स्वीकार कर लेनेपर हरिश्चन्द्रने कहा कि मैं आपका बन्धन खोल देता हूँ और स्वयं आपके स्थानपर बँध जाता हूँ। पहले तो राजकुमारने अस्वीकार कर दिया; परंतु हरिश्चन्द्र और उस स्त्रीके समझाने-बुझानेपर उन्होंने स्वीकार कर लिया। हरिश्चन्द्रने उनका बन्धन खोल दिया और स्वयं उनके स्थानपर बँध गये। राजकुमार यह सोचता हुआ कि मनकी स्थिति बड़ी विचित्र है, एक तो दूसरेकी रक्षा के लिये अपना बलिदान कर रहा है और दूसरा अपनी रक्षाके लिये पहलेके प्राणोंका कुछ महत्त्व नहीं रखता। वह अपनी स्त्री सहित वहाँसे चला गया।

विद्याधरी आयी। राजकुमारके स्थानपर हरिश्चन्द्रको देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने कहा- पहले तो मैं एक साधारण राजा होनेवालेको ले आयी थी। इसके शरीरमें तो चक्रवर्ती सम्राटके लक्षण हैं। उसने हवन प्रारम्भ किया। हरिश्चन्द्र अपने हाथों अपने मांसका टुकड़ा काट-काटकर उसे देने लगे। अब वे अपना सिर काटकर देने ही जा रहे थे कि वहाँ एक तपस्वी आ गये। विद्याधरी उनको देखते ही वहाँसे भाग गयी। उन्होंने पहले तो हरिश्चन्द्रको बहुत डाँटा; परंतु फिर दया करके उनके शरीरमें एक ऐसी औषधि लगा दी कि उनका कटा हुआ शरीर जैसे-का-तैसा हो गया। इधर चाण्डालने पुकारा- घाट छोड़कर कहाँ चले गये? हरिश्चन्द्र तपस्वीसे अनुमति लेकर घाटपर आ गये और तपस्वी चले गये।

श्मशानमें आनेपर हरिश्चन्द्रकी आँखें लग गयीं। वे स्वप्न देखने लगे। उन्होंने अपनेको चाण्डालयोनिमें देखा, सैकड़ों

वर्षोंतक मरकर नरककी यन्त्रणा भोगते रहे, पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि चौरासी लाख योनियोंमें भटकते रहे, एक जन्ममें राजा हुए तो जुएमें सब हार गये, शैव्याको रोते-चिल्लाते देखा, रोहितको कष्टमें पड़ते देखा और अन्तमें उन्होंने देखा कि कुछ यमदूत उन्हें पकड़कर यमपुरी लिये जा रहे हैं। वहाँ यमराजके दर्शन हुए। उन्होंने कहा- इतनेमें ही तुम घबरा गये? अनादिकालसे संसारमें दुःख भोगते-भोगते, भटकते-भटकते जो कुछ तुमने अनुभव किया है, उसका तो यह एक अंशमात्र है। जाओ, अब तुम जाओ। अभी तुम्हारा लड़का भी मरेगा और अभी तुम और कष्ट पाओगे, परंतु अब तुम्हें सुख भी शीघ्र ही मिलेगा। हरिश्चन्द्र स्वप्नमें यह सब देख ही रहे थे कि वह स्त्री अपने बच्चेके शवको गोदमें लेकर विलाप करती हुई वहाँ आ पहुँची और उसके विलापकी आवाज सुनकर उनका स्वप्न टूट गया।

वे उठकर उस स्त्रीके पास पहुँचे और बोले- पहले कफन दो, उसके बाद अपने बच्चेका दाह-कर्म करो। शैव्या कफन कहाँसे देती? उसके पास था ही क्या? वह अपने बच्चेको कलेजेसे सटाये रो रही थी। हरिश्चन्द्रने देखा कि बालक तो बड़ा ही सुन्दर है। इसके शरीरमें राजाके लक्षण हैं। इसकी मृत्यु साँप काटनेसे हुई है। मेरा रोहित भी इसी उम्रका होगा। भगवान् उसकी रक्षा करें। वे शैव्याको पहचान न सके। दासीका काम करते-करते उसकी आकृति बदल गयी थी। शैव्याने भी हरिश्चन्द्रको नहीं पहचाना। उसके मनमें यह कल्पना भी नहीं थी कि महाराज चाण्डालके वेषमें होंगे। वह विलाप करने लगी।

बेटा। तुम कहाँ हो? बोलते क्यों नहीं? हम किस पापका फल भोग रहे हैं? मेरे स्वामी कहाँ हैं? वे मुझे समझाते भी नहीं। तुम्हें जगानेके लिये आते भी नहीं। वे किसपर विश्वास करके इतना निश्चिन्त हो गये हैं? राज्य गया स्वेच्छासे गया, उसकी कोई चिन्ता नहीं। पत्नी और बच्चे बेच दिये, इसकी भी कोई परवा नहीं? क्योंकि इससे सत्यकी रक्षा तो हुई। परंतु सम्राटका पुत्र, राजर्षि हरिश्चन्द्रका पुत्र आज अग्नि-संस्कारके लिये श्मशानपर आया है और उसके शरीरपर कफन तक नहीं, क्या इस बातका उन्हें पता है? शैव्या विलाप कर रही थी और हरिश्चन्द्रके कानोंमें उसकी आवाज जा रही थी। अब उन्होंने शैव्याको पहचान लिया। अरे यह शैव्या है? मेरा रोहित मर गया। यह कहते हुए हरिश्चन्द्र भूमिपर गिर पड़े।

कुछ ही क्षणोंमें हरिश्चन्द्रको चेतना आयी और वे विलाप करने लगे- बेटा। कुमार। तुम्हें शवके रूपमें देखकर मेरा कलेजा फट क्यों नहीं जाता? तुम पिताजी, पिताजी कहते हुए मेरी गोदमें दौड़ आते थे; मेरे हृदयसे सट जाते थे, अब तुम कहाँ चले गये? तुम धूलभरे शरीरसे आकर मेरे कपड़ोंको मैला कर देते थे, मुझे कितना आनन्द आता था। बेटा। मैं अधम हूँ। मैंने तुम्हें तिनकेके समान बेच दिया, परंतु तुम्हें तो इतना निष्ठुर न होना चाहिये। आओ, मुझसे बोलो। मुझसे हँसो। हरिश्चन्द्रने झपटकर रोहिताश्वके शवको अपनी गोदमें ले लिया और मूर्च्छित-से हो गये। शैव्या अबतक उन्हें पहचान चुकी थी। उसे कितना कष्ट हुआ, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

राजाने सम्हलकर शैव्याके पूछनेपर अपनी सब कथा कह सुनायी और बतलाया कि मैं पराधीन हूँ। चाण्डालका सेवक हूँ, मेरा काम है कफन लेना। मैं अब अपने जीवन का प्रयोजन नहीं देखता। मैं रोहितके साथ ही चितामें जलकर मर जाता, परंतु चाण्डालकी आज्ञा लिये बिना यदि मैं अग्निमें प्रवेश कर जाऊँ तो मुझे दूसरे जन्म में भी चाण्डाल ही होना पड़ेगा। आत्महत्याके पापसे मुझे बड़े भयंकर नरक में जाना पड़ेगा। इसलिये भगवान् जैसे रखें, वैसे ही प्रसन्नतासे रहना ठीक है। शैव्याने कहा- स्वामिन्। मेरा जीवन ही किस कामका है? आप मेरे पास नहीं, रोहित था वह भी चल बसा, अब किसके लिये जीऊँ? परंतु मैं ब्राह्मणकी दासी हूँ न। उनकी आज्ञाके बिना मुझे भी मरनेका अधिकार नहीं है। यही बड़ा अच्छा है कि पुत्रके दाह-संस्कारके समय आप उपस्थित हैं।

अब हरिश्चन्द्रके सामने एक कठिन कर्तव्य आया। नियम था कि इस मरघटपर जो जलाया जाय, हरिश्चन्द्र उसका

कफन अवश्य लें। आज यदि हरिश्चन्द्र अपने पुत्रकी मृत्यु तथा पत्नीके संतापके कारण इस कर्तव्यसे विचलित हो जाते हैं तो उनकी धार्मिकता अधूरी ही रह जाती है। वे पुत्र-शोकसे चाहे जितने व्यथित क्यों न हों, आज वे पिता नहीं हैं, चाण्डालके सेवक हैं। वे जरा भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने कहा-शैव्ये। पहले कफन देकर फिर अग्नि-संस्कार करो। शैव्याने कहा- स्वामिन्। आप तो देखते ही हैं; मेरे पास क्या है? मैं कहाँसे वस्त्र दे सकती हूँ? परंतु हरिश्चन्द्रने उसकी एक न सुनी। शैव्याने कहा- यही एक साड़ी मेरे पास है। मैं इसमेंसे आधा फाड़कर दिये देती हूँ और आधेसे अपनी लज्जा-निवारण करूँगी। हरिश्चन्द्रने स्वीकार कर लिया।

परीक्षाकी हद हो गयी। हरिश्चन्द्रकी कर्तव्यपरायणता पूरी हो गयी। वे पीताम्बरधारी भगवान् श्रीकृष्णके चिन्तनमें मग्न हो गये। शैव्याने अपनी साड़ी फाड़नेके लिये हाथ बढ़ाया। उसी समय आकाश प्रकाशसे भर गया और बड़ी ही गम्भीर ध्वनि सुनायी पड़ी- महाराज हरिश्चन्द्र। आप धन्य हैं, आपका दान धन्य है, आपकी धीरता धन्य है, आपकी वीरता धन्य है, उदार, धीर ओर वीर पुरुषोंके आप आदर्श हैं। फूलोंकी वर्षा होने लगी। भगवान् नारायण, ब्रह्मा, इन्द्र, धर्म, लोकपाल, सिद्ध, गन्धर्व, रुद्र सब-के-सब हरिश्चन्द्रके सामने प्रकट हो गये। हरिश्चन्द्रने आश्चर्यचकित होकर सबको प्रणाम किया और अपलक आँखोंसे भगवान्‌की ओर देखने लगे। धर्मने कहा- बस-बस, तुम्हारी कर्तव्यपरायणताकी सीमा हो गयी। तुम्हारी सहनशक्ति, तुम्हारे सत्य और तुम्हारी धर्मनिष्ठासे मैं प्रसन्न हूँ। देखो, तुम्हें दर्शन देनेके लिये नारायण, शंकर, ब्रह्मा, और इन्द्रादि पधारे हुए हैं। स्वयं विश्वामित्र, जिन्होंने तुम्हारी इतनी कठोर परीक्षा ली है, वे तुमसे मित्रता करके क्षमा चाहते हैं। हरिश्चन्द्रने पुन: सबको प्रणाम किया।

विश्वामित्रने कहा- राजन्। मेरे कारण आपको बड़ा कष्ट हुआ है, जिस तपस्विनीको देखकर आपने क्रोध किया था वह एक माया थी। मैंने ही ब्राह्मण बनकर मायासे बालक-बालिका बनाकर तुम्हें विवाहकी लीला दिखायी और तुम्हारा सर्वस्व-दान ले लिया। मैंने ही वृद्ध ब्राह्मण बनकर तुम्हारे पुत्र और पत्नीको खरीदा। मैंने ही सर्प बनकर तुम्हारे पुत्रको डसा। जो कुछ लीला आज रातमें तुमने देखी है, वह सब मेरी माया थी। तुम्हारी धर्मनिष्ठा देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूं। सत्यवादियों में सबसे पहले तुम्हारी गणना होगी। तुम्हारी कीर्ति अजर-अमर होगी। भगवान्‌के तुम प्रेमपात्र होओगे। सत्य स्वयं भगवान् हैं। उन्हें धारण करना भगवान्‌को धारण करना है। इन्द्रने कहा- हरिश्चन्द्र। मैं इन्द्र हूँ। तुम्हारी सत्यनिष्ठासे प्रसन्न होकर स्वयं भगवान् भी तुम्हारे पास आये हैं। तुम्हें नित्यलोकोंकी प्राप्ति हुई। अपनी स्त्री और पुत्रके सहित मेरे साथ चलो। अपने पुण्यकर्मोंका फल भोगो।

भगवान्‌की प्रेरणासे इन्द्रने अमृतकी वर्षा की, चारों ओर नगारे बजने लगे। केदारेश्वरका सारा मरघट दिव्य पुरुषोंसे भर गया। रोहिताश्व जीवित होकर प्रसन्नतासे अपनी माँ के गलेसे लिपट गया। उसका शरीर पूर्ववत् स्वस्थ और सुकुमार हो गया। हरिश्चन्द्रने उसे अपनी गोदमें लेकर उसका आलिङ्गन किया। उसी क्षण हरिश्चन्द्रका शरीर दिव्य हो गया। उनके शरीरपर दिव्य वस्त्र, दिव्य आभूषण, वे स्वस्थ हो गये, उनके हृदयमें पूर्ण आनन्दका संचार हो गया। शैव्या भी दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर रोहिताश्वके साथ हरिश्चन्द्रके पास खड़ी हो गयी। भगवान् चुपचाप सब देख रहे थे और चुप क्या थे, सब देवताओंके शरीरमें प्रवेश करके हरिश्चन्द्रका सम्मान कर रहे थे।

इन्द्रने हरिश्चन्द्रसे कहा- अपनी पत्नी और पुत्रके साथ तुम्हें सद्‌गति प्राप्त हुई। अब मेरे साथ विमानपर आरोहण करो। हरिश्चन्द्रने कहा- देवराज। मेरे स्वामी तो चाण्डालराज हैं। उनकी आज्ञाके बिना मैं स्वर्गमें नहीं जा सकता। हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर धर्मने बड़ी नम्रतासे कहा- हरिश्चन्द्र। मुझे मालूम था कि आपको विश्वामित्रकी परीक्षामें बहुत-से कष्ट

उठाने पड़ेंगे। इसलिये मैंने ही चाण्डालका वेष धारण किया और आपके सामने ढिठाई की। वह चाण्डाल कोई दूसरा चाण्डाल नहीं, मैं ही था। अब अनुमति लेनेकी अपेक्षा नहीं है। इन्द्रने हरिश्चन्द्रसे पुन: प्रार्थना की कि आप स्वर्गमें चलें।

हरिश्चन्द्रने इन्द्रको नमस्कार करके कहा- देवराज। आप मुझपर प्रसन्न हैं। इसलिये नम्रताके साथ मैं आपसे एक निवेदन करता हूँ, अयोध्याके लोग मेरे वियोगसे कितने शोकाकुल हैं, उन्हें छोड़कर मैं स्वर्गमें कैसे जा सकता हूँ? जो मेरे प्रेमी हैं, मेरे आश्रित हैं, मेरे सेवक हैं, उन्हें छोड़कर मैं स्वर्ग-सुख नहीं चाहता। यदि वे सब मेरे साथ स्वर्गमें चलेंगे तो मैं भी उनके साथ स्वर्गमें जा सकता हूँ। यदि वे सब नरकमें जायँगे तो मैं भी नरकमें जाऊँगा। इन्द्रने कहा- सब लोगोंके अपने-अपने कर्म भिन्न होते हैं। उनके पाप-पुण्यका फल दूसरा है और आपके सुकृतका फल दूसरा है। सबके साथ एक ही प्रकारका भोग कैसे प्राप्त कर सकते हैं? हरिश्चन्द्रने कहा- महाराज। राजा केवल अपनी शक्तिसे ही राज्यका शासन नहीं करता। वह जो कुछ भी यज्ञादि कर्म करता है, उसमें उसके सम्बन्धियोंका भी हाथ होता है। मुझसे जो कुछ हुआ है, उसमें अयोध्यावासियोंकी सहायता प्रधान रही है। मैं स्वर्गके लोभसे उनका परित्याग नहीं कर सकता। देवराज। इसलिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि जो कुछ मैंने दान, जप आदि सुकर्म किये हों, उसमें सबका बराबर-बराबर हिस्सा हो जाय। यदि मैं अपने कर्मोंका फल अकेले ही भोगता तो बहुत दिनोंतक भोगता, परंतु आपकी कृपासे उनके साथ यदि मैं एक दिन भी उनका फल भोग सकूँ तो मुझे बड़ा आनन्द होगा।

भगवान्‌की ऐसी ही लीला थी। भक्तकी अभिलाषा भला कब अपूर्ण रह सकती है। इन्द्रने कहा- ऐसा ही होगा। भगवान् अन्तर्धान हो गये। इन्द्र और विश्वामित्रने पृथ्वीसे लेकर इन्द्रलोकतक विमानोंकी पंक्तियाँ लगा दीं। उन लोगोंने अयोध्यामें जाकर रोहिताश्वको हरिश्चन्द्रके राज्यसिंहासनपर अभिषिक्त किया और राजाके साथ वहाँके सब लोगोंको हृष्ट-पुष्ट करके सबको पत्नी, पुत्र, सेवक एवं सम्बन्धियोंके साथ स्वर्गमें ले गये। मार्गमें एक विमानसे दूसरे विमानपर चढ़ते हुए और स्वर्गकी अतुल सम्पत्ति देखते हुए प्रजाजनोंके हृदय आनन्दसे भर गये। वे हरिश्चन्द्रके आभारसे दब गये। हरिश्चन्द्र जैसे दु:खके समय भगवान्‌का स्मरण करते थे, वैसे ही सुखके समय भी भगवान्‌के स्मरणमें लीन थे।

उस समय दैत्योंके आचार्य शुक्राचार्य गायन कर रहे थे कि हरिश्चन्द्रके समान राजा कोई न हुआ और न होगा। जो दु:खी पुरुष उनकी कथा सुनेगा, उसे बड़ा सुख प्राप्त होगा, स्वर्ग चाहनेवाला स्वर्ग पावेगा, पत्नी चाहनेवाला पत्नी पावेगा, पुत्र चाहनेवाला पुत्र पावेगा और राज्य चाहनेवाला राज्य पावेगा। सहनशक्तिकी महिमा अनिर्वचनीय है। दानके महान फलका वर्णन नहीं किया जा सकता, जिससे हरिश्चन्द्रको अमरावतीकी प्राप्ति हुई, वे इन्द्रके हो गये।

सत्यव्रतका फल केवल इन्द्रत्वकी प्राप्ति अथवा स्वर्गकी ही प्राप्ति नहीं है। उसका फल तो है भगवान्‌की अनन्त प्रसन्नता। सो हरिश्चन्द्रको प्राप्त हो गयी। भगवान्‌की कृपासे उनके सत्यव्रतका संसारमें विस्तार हो और सब लोग सत्यप्रेमी बनें।

कौशिक ब्राह्मण बोले आपने जो कुछ मुझे बताया वह सब न्याययुक्त ही है। धर्म और सत्य के विषय में ऐसी कोई बात नहीं जो आपको ज्ञात न हो। धर्मव्याघ्र बोले हे ब्राह्मण देव अब मेरा प्रत्यक्ष धर्म भी चलकर देख लीजिये जिसकी बदौलत मुझे यह सिद्धि प्राप्त हुई। मेरे घर पर पधारिये और मेरे माता-पिता से भेंट करे। ब्राह्मण ने धर्मव्याघ्र के कहने पर उसके साथ घर में प्रवेश किया। उस घर में चार कमरे थे, चूने से पुताई की हुई थी। घर की शोभा से मन मोह जाता था। लगता था कि कोई देवताओं  का निवास स्थान है। देवताओं की प्रतिमाओं से वह घर और भी सुशोभित हो रहा था। एक कक्ष शयन कक्ष था और दूसरी और बैठने के लिये आसन रखे थे। वहां अगरधूप, केशर की सुगन्ध महक रही थी। उस ब्राह्मण ने देखा एक आसन पर धर्मव्याघ्र के माता-पिता भोजन करके प्रसन्नचित्त से बैठे हुये है। धर्मव्याघ्र ने अपने माता-पिता को देखते ही

उनके चरणों में अपना सिर झुका दिया और प्रणाम किया। बूढे माता-पिता बडे स्नेह से बोले पुत्र उठो तुम धर्म-को जाननेवाले हो, धर्म ही सदा तुम्हारी रक्षा करेगा। हम दोनों तेरी सेवा से, तेरे शुद्ध भाव से बहुत प्रसन्न है। तेरी आयु दीर्घ हो। तुमने उत्तम गति, तप, ज्ञान, सत्य और श्रेष्ठ बुद्धि प्राप्त की है। तुम सत्पुत्र हो, नित्य नियम से हमारा सत्कार पूजन किया है, सदा हमको ही देवता माना है। द्विजों के समान शम दम का पालन किया है। तेरे पितामह प्रपितामह आदि और हम तेरे इस सेवा भाव से अत्यन्त प्रसन्न हैं। मन वाणी और शरीर से तुम हमारी सेवा करते हो। तुम्हारी बुद्धि में हमारी सेवा के सिवा कोई दूसरा विचार नहीं है। परशुराम जी ने, श्रवणकुमार ने जिस प्रकार अपने माता-पिता की सेवा की थी उससे भी बढकर तुम हमारी सेवा सुश्रूषा कर रहे हो।

तत्पश्चात धर्मव्याघ्र ने अपने माता-पिता को उस कौशिक ब्राह्मण का परिचय कराया। उन्होंने भी उस ब्राह्मण का स्वागत सम्मान किया। ब्राह्मण ने कृतज्ञता प्रकट की और पूछा आप दोनों इस घर में पुत्र और सेवकों सहित सकुशल तो है न? आपका शरीर निरोग है न? धर्मव्याघ्र के माता-पिता ने उत्तर दिया हमारे घर में सब प्रकार से कुशल है। आपको रास्ते में तो कोई कष्ट नहीं हुआ? कुशल मंगल पूछने पर धर्म व्याध ने अपने माता-पिता की ओर देखते हुये उस कौशिक ब्राह्मण से कहा विप्रवर। मेरे माता-पिता ही मेरे लिये प्रधान देवता हैं। जो कुछ देवताओं के लिये करना चाहिये वह मैं इन दोनों के लिये करता हूं। इनकी सेवा में मुझसे कभी आलस्य या प्रमाद नहीं होता। जिस प्रकार पूरे संसार के लिये ३३ आदि देवता पूज्य है उसी प्रकार मेरे लिये मेरे ये वृद्ध माता-पिता पूजनीय है। द्विज लोग देवताओं को नाना प्रकार के उपहार समर्पण करते है उसी प्रकार मैं भी इनके लिये करता हूं। मैं रत्नों में कन्दमूल फलों से इन्हे सन्तुष्ट करता हूं। विद्वान लोग जिन्हे अग्नि कहते है, ये मेरे लिये वही है। चारों वेद और यज्ञ भी मेरे लिये मेरे माता-पिता है। ये ही मेरे लिये पुत्र, स्त्री, सखा, मित्र है। ये प्राण भी इन्ही की सेवा में समर्पित है। स्त्री बच्चों के साथ नित्य मैं इन्हीं की सेवा में रहता हूं।

मार्कण्डेय बोले इस प्रकार धर्मात्माव्याघ्र ने कौशिक ब्राह्मण को अपने माता-पिता के दर्शन करा कहा ब्राह्मण माता-पिता की सेवा मेरी तपस्या है। इसके तप के प्रभाव से मुझे दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई जिससे मैं यह जान गया कि आप उस पतिव्रता स्त्री के कहने से मेरे पास आये। जिस सती ने आपको यहां मेरे पास भेजा है वह अपने पातिव्रत्य के प्रभाव से वास्तव में ये सभी बाते जानती है। आपने वेदों का स्वाध्याय करने के लिये माता-पिता की आज्ञा लिये बिना गृह त्याग किया है इससे उन दोनों का तिरस्कार हुआ है और यह आपके लिये अनुचित कार्य है। आपके शोक से वे दोनों बूढे माता-पिता अन्धे हो गये है। अब जाकर उन्हे प्रसन्न कीजिये। ऐसा करने से आपका धर्म नष्ट नहीं होगा। आप तपस्वी महात्मा और धर्मानुरागी है, किन्तु माता-पिता की सेवा के बिना ये सब व्यर्थ है। इससे बढकर मैं और कोई धर्म नहीं समझता।

तब वह कौशिक ब्राह्मण बोला हे धर्मात्मन यह तो मेरा बडा सौभाग्य है जो मैं यहां आया और आपका सत्संग प्राप्त हुआ। आपके समान धर्म का तत्त्व समझानेवाले लोग इस संसार में दुर्लभ है। पहले तो हजारों मनुष्यों में कोई विरला ही ऐसा है जो धर्म के तत्व को जानता है पर वह भी प्राय: मिलता नहीं है। मैं आपके सत्य पर बहुत प्रसन्न हूं। जैसे स्वर्ग से भ्रष्ट हुये ययाति को उनके दौहित्रों ने बचाया था उसी प्रकार आप जैसे सन्त ने आज मेरा नरक से उद्धार कर दिया। मैं अब अपने माता-पिता की सेवा करूंगा। जिसका अन्त:करण शुद्ध नहीं वह धर्म-अधर्म का निर्णय नहीं कर पाता। आश्चर्य यह है कि यह सनातन धर्म जिसका तत्व समझना कठिन है वह शूद्र जाति के मनुष्य में भी विद्यमान है। मैं तो तुम्हे शूद्र नहीं समझता किसी कारणवश ही प्रबल प्रारब्ध के वश आपका जन्म शूद्र योनि में हुआ होगा। धर्मव्याघ्र बोले हे विप्रवर पूर्व जन्म में मैं वेदवेत्ता ब्राह्मण था। संगदोष से मुझसे कुछ ऐसे कर्म बन गये जिससे मुझे ऋषि का शाप प्राप्त हुआ और उसी

शाप के कारण मुझे शूद्र योनि में व्याघ्र होना पडा। उस कौशिक ब्राह्मण ने कहा शूद्र होने पर भी मैं आपको ब्राह्मण ही मानता हूं। जो ब्राह्मण होकर भी पापी, दम्भी और असम्मान के मार्ग पर चलनेवाला है वह शूद्र के समान जानना चाहिये और इसके विपरीत जो शूद्र होकर भी शम, दम, सत्य तथा धर्म का सदैव पालन करता है, उसे मैं ब्राह्मण ही मानता हूं, कारण सदाचार से ही मनुष्य ब्राह्मण होता है। आप ज्ञानवान है, विशाल बुद्धिमान है, धर्म के तत्त्व को जाननेवाले हो और ज्ञानानन्द से तृप्त रहते हो इसलिये कृतार्थ हो। अब मैं जाने के लिये प्रस्तुत हूं और आपकी अनुमति चाहता हूं। धर्म सदा तुम्हारी रक्षा करे। मार्कण्डेय बोले युधिष्ठिर ब्राह्मण की बात सुनकर धर्मव्याघ्र बोले बहुत अच्छा अब आप लौटे। उस कौशिक ब्राह्मण ने धर्मव्याघ्र की प्रदक्षिणा की और वहां से प्रस्थान कर लिया। घर जाकर उस ब्राह्मण ने अपने माता-पिता की पूर्ण सेवा की, उससे उसके माता पिता बडे प्रसन्न हुये। मार्कण्डेय बोले युधिष्ठिर मैंने तुम्हे पतिव्रता स्त्री और ब्राह्मण का महत्व सुनाया तथा धर्मव्याघ्र के मुख से माता-पिता की महिमा सुना दी। युधिष्ठिर बोले मुनिवर आपने धर्म के विषय में अत्यन्त बहुत ही अद्भुत उपाख्यान सुनाया। इसे सुनकर इतना अवर्णनीय सुख मिला कि बहुत सारा समय एक क्षण के समान बीत गया। अपसे यह धर्मोपख्यान सुनकर भी मैं तृप्त नहीं हो रहा हूं। हे भार्गव श्रेष्ठ अब आप मुझे स्वामी कार्तिकेय का वृतान्त सुनाये, वे अग्नि के पुत्र किस प्रकार हुये, यह प्रसंग मुझे विस्तारपूर्वक समझाये।

**१८) देव सेनापति कार्तिकेय का वृतान्त-** मार्कण्डेय बोले युधिष्ठिर पूर्वकाल में देवता और असुर आपस में झगडते रहते और संग्राम करते रहते थे। उनमें सदा ही असुरों की देवताओं पर विजय होती थी। जब इन्द्र ने बार-बार देवताओं की सेना को नष्ट होते देखा तो वे मानस पर्वत पर जाकर एक श्रेष्ठ सेनापति को पाने के बारे में विचार करने लगे। इतने में ही उनके कानों में एक स्त्री के आर्तनाद का शब्द पडा। वह बार बार चिल्ला रही थी कोई पुरुष मेरी रक्षा करो। इन्द्र ने उसका विलाप सुनकर उसे आश्वासन दिया कि डरो मत और उसके पास पहुंचकर देखा कि केशी नामका दैत्य हाथ में गदा लिये उस कन्या का हरण कर रहा है। इन्द्र ने कहा रे नीच कर्म करनेवाले तू किस प्रकार इस कन्या का हरण कर रहा है। मैं वज्रधर इन्द्र हूं। केशी बोला इन्द्र तू चले जा यहां से, इसे तो मैं वरण कर चुका हूं और यह कहकर केशी ने इन्द्र पर अपनी गदा का प्रहार किया परन्तु इन्द्र ने अपने वज्र द्वारा उसे बीच ही में काट डाला। केशी ने अत्यन्त क्रुध होकर इन्द्र पर पहाड की चट्टान फेंकी। इन्द्र ने उसके भी टुकडे टुकडे कर पृथ्वी पर गिरा दिया, उन पत्थरों की चोट केशी को लगी तब केशी भयभीत हो उस कन्या को छोडकर भाग गया। केशी के भाग जाने पर इन्द्र ने उस कन्या से पूछा हे सुमुखि तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो और यहां किस काम आयी हो? उस कन्या ने कहा हे देवाधिदेव मैं प्रजापति की पुत्री हूं और मेरा नाम देवसेना है। दैत्यसेना मेरी बहिन है उसे तो यह केशी पहिले ही ले जा चुका है। हम दोनों बहिनें प्रजापति की आज्ञा से इस मानस पर्वत पर आया करती हैं। और यह केशी दैत्य नित्य प्रतिदिन हमें अपने साथ चलने के लिये कहता है किन्तु दैत्य सेना तो इस पर रीझ गई इसलिये उसे तो वह ले गया पर मैं इसे नहीं चाहती। अब मैं आपके बल पराक्रम से बच गई। अब आप जिस दुर्जय बल विक्रम वीर को निश्चित करेंगे उसी को मैं अपना पति बनाना चाहूंगी। इन्द्र ने कहा मेरी माता दक्ष पुत्री अदिति है इसलिये देव सेना तू मेरी माता की बहिन की पुत्री होने से मेरी मौसेरी बहिन हुई। अच्छा बता तेरे लिये किस प्रकार के बल का पति होना चाहिये? देव सेना बोली जो देवता, दानव, यक्ष, किन्नर, नाग, असुर और दैत्यों को पराजय करनेवाला हो, महान पराक्रमी और अत्यन्त शक्तिशाली हो, सभी प्राणियों पर विजय प्राप्त कर ले, ऐसा ब्रह्मनिष्ठ और कीर्तिवर्धक पुरुष ही मेरा पति होने योग्य है।

मार्कण्डेय बोले युधिष्ठिर उस कन्या की बात सुनकर इन्द्र को बडा क्षोभ हुआ कि जैसा यह कन्या कह रही है वैसा तो कोई वर इसके लिये दृष्टि में नहीं आ रहा है। फिर वे देवसेना को लेकर उसे पितामह ब्रह्मा के पास ले गये और उनसे बोले भगवन आप इस कन्या के लिये कोई सद्गुणी, शूरवीर योग्य पति बताये। ब्रह्मा ने कहा देवराज तुमने इसके लिये जिस प्रकार विचार किया है वैसा ही मैंने भी सोचा है। अग्निदेव के द्वारा एक महान पराक्रमी बालक होगा वही इस कन्या का पति होगा और तुम्हारी सेना का सेनाध्यक्ष भी होगा। ब्रह्मा की बात सुनकर देवराज इन्द्र उन्हे प्रणाम कर और उस कन्या को अपने साथ लेकर प्रधान प्रधान ब्रह्मर्षि और देवर्षि थे वहां पर गये। उन दिनों वे सब महर्षिगण यज्ञ कर रहे थे। उन यज्ञों में देवता भी वहां आकर अपना भाग ग्रहण करते थे। ऋषियों के आव्हान करने पर अग्निदेव भी वहां आये। उन महर्षियों की मन्त्रोचारण पूर्वक दी हुई आहुतियों को ग्रहण करने लगे। उसी समय उन ऋषि पत्नियों को देखकर अग्निदेव की इन्द्रियां चंचल हो गई और वे काम के वेग को रोक नहीं सके। उस कामाग्नि को शान्त करने का कोई अवसर नहीं मिल रहा था कारण की सभी ऋषि पत्नियां बडी पतिव्रता और शुद्ध निष्कलंक हृदयवाली थी। तब अग्निदेव का मन बहुत संतप्त होने लगा और वे निराश हो वन में चले गये।

जब अग्नि की पत्नी स्वाहा को मालूम हुआ कि अग्निदेव ऋषि पत्नियों पर मोहित हो कामासक्त हो वन में चले गये हैं तो स्वाहा भी ऋषि पत्नी का रूप धारण कर उन्हे अपने में आसक्त करने के विचार से वहां गयी। इससे कि अग्निदेव का मेरे ऊपर प्रेम बढ जायेगा और मेरी कामवासना की भी तृप्ति होगी। यह सोचकर स्वाहा ने महर्षि अंगिरा की पत्नी रूप गुणशाली शिवा का रूप धारण किया और अग्निदेव से कहा मैं कामाग्नि से सन्तप्त हो रही हूँ, मेरी इच्छा पूर्ण करो। तब अग्नि देव ने प्रसन्न हो उसके साथ समागम किया। स्वाहा ने अग्नि के वीर्य को अपने हाथ में लिया और उसे एक सोने के कुंड में रख दिया। इस प्रकार स्वाहा ने सप्त ऋषियों में से प्रत्येक की पत्नी का रूप धारण कर अग्निदेव की कामाग्नि को शान्त किया। उनमें से महर्षि वशिष्ठ की पत्नी अरून्धति के तप और पातिव्रत्य के प्रभाव से उनका रूप धारण नहीं कर सकी। काम तप्ता स्वाहा ने प्रतिपदा के दिन छै बार अग्नि के वीर्य को उसी सुवर्ण कुण्ड में रखा। उसमें से एक ऋषि पूजित बालक उत्पन्न हुआ। स्खलित वीर्य से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम स्कन्द हुआ। उसके छै सिर, बारह आंखे, बारह कान, बारह हाथ तथा एक ग्रीवा और एक पेट था। वह द्वितीया को प्रकट हुआ, तृतीया को शिशु बना, चतुर्थी को अंग प्रत्यंगों से सम्पन्न हो गया। उस छोटे से बालक ने महादेव शंकर का त्रिपुर विनाशक दैत्यों का संहार करनेवाला धनुष उठा लिया और अपने भीषण सिंह नाद से तीनो लोकों के चराचर जीवों को संज्ञाशून्य कर दिया। उसकी महामेघ के समान भयंकर गर्जना को सुनकर बहुत से प्राणी गिर गये। उस समय जिन-जिन प्राणियों ने उनकी शरण ली वे उनके पार्षद बन गये। उन सबको स्वामी कार्तिकेय ने सांत्वना दी।

वे छै कृतिकाओं द्वारा पाले गये इसलिये उनका नाम कार्तिकेय हुआ। उन्होने श्वेत पर्वत पर खडे होकर हिमालय के पुत्र क्रौंच पर्वत को बाणों से वेध दिया। उसी छिद्र में से होकर हंस और गृद्ध पक्षी आज भी मेरू पर्वत पर जाते हैं। कार्तिकेय के बाणों से विद्ध कर क्रौच पर्वत अत्यन्त आर्तनाद करता हुआ गिर पडा। उसके गिर जाने से दूसरे पर्वत भी चीत्कार करने लगे। जब उन आर्त पर्वतों का चीत्कार सुनकर महाबली कार्तिकेय विचलित नहीं हुये और एक शक्ति लेकर सिंहनाद कर उस शक्ति को छोडा तो बडे वेग से श्वेतगिरि के एक विशाल शिखर को तोड डाला। कार्तिकेय की मार से विदीर्ण हुआ वह श्वेत पर्वत डरकर दूसरे पहाडों सहित पृथ्वी को छोडकर आकाश में उड गया। तब पृथ्वी भी भयभीत हो जहां-तहां से फट गई। व्याकुल हो स्वामी कार्तिकेय के पास गई और फिर से बलवती हो गई। उन पर्वतों ने भी स्वामी कार्तिकेय के चरणों

में सिर नवाया और फिर से पृथ्वी पर आ गये। तब से शुक्ल पक्ष की पंचमी के दिन लोग उनकी पूजा अर्चना करते है।

जब सप्तर्षियों को उस महान तेजस्वी पुत्र के उत्पन्न होने का समाचार विदित हुआ तो उन सबने अरून्धती (महर्षि वशिष्ठ की पत्नी) को छोडकर अपनी पत्नियों का त्याग कर दिया। किन्तु स्वाहा ने बार-बार सप्तर्षियों को समझाया कि वह स्वाहा का पुत्र है। आप लोग जैसी शंका कर रहे है वैसी बात नहीं है। विश्वामित्र ने अग्निदेव को जब कामात्तुर देखा तो वे भी तपस्वियों की दृष्टि रख गुप्त रूप से उनके पीछे पीछे चले गये इसलिये उन्हे इन सब बातों का ठीक ठीक पता था। उन्होंने भी सत्पर्षियों से कहा इस कार्य में आप लोगों की पत्नियां अपराधी नहीं है। किन्तु उन ऋषियों ने सब बातें सुनने के पश्चात भी अपनी पत्नियों का त्याग कर दिया।

जब देवताओं ने स्कन्द के बल पराक्रम की बातें सुनी तो उन्होंने आपस में मिलकर इन्द्र से कहा देवराज स्कन्द का बल असह्य और अपार है। यह अपनी बल शक्ति से कहीं देवताओं का राजा न बन जाये। इन्द्र को अपनी विजय में सन्देह था तो भी ऐरावत पर सवार हो देवताओं को साथ में ले स्कन्दपर धावा बोल दिया। देवताओं ने भी युद्ध क्षेत्र में पहुंचकर भीषण सिंहनाद किया। तब कार्तिकेय ने भी समुद्र समान बडी भयंकर गर्जना की। उस गर्जना को सुनकर सब देवता अवाक रह गये और चारों और सनसनी फैल गई। अग्निदेव कुमार कार्तिकेय ने क्रोधित हो अपने मुख से धधकती अग्नि की ज्वालायें लपटें छोडी। वे लपटें पृथ्वी पर देव सेना को झुलसने लगी। इससे देवताओं का शरीर, आयुध और वाहन दग्ध होने लगे तब वे सब के सब छिन्न-भिन्न तारागण के समान प्रतीत होने लगे। इस प्रकार दग्ध हो जाने से उन्होने इन्द्र को छोड अग्नि पुत्र स्कन्द की शरण ग्रहण की। तब जाकर उन्हे कुछ सुख शान्ति मिली। देवताओं के त्यागने पर इन्द्र ने स्कन्द पर वज्र छोडा। उस वज्र प्रहार ने स्कन्द के दाहिने अंग पर चोट की उससे उसके अंग से एक पुरुष प्रकट हुआ। यह पुरुष युवावस्था का था, सोने का कवच, शक्ति और दिव्य कुंडल धारण किये था। यह विशाख नाम से जाना गया। इस प्रकार स्कन्द के तेजस्वी पुरुष को उत्पन्न हुआ देखकर इन्द्र बडा भयभीत हुआ और स्कन्द की शरण में गया। स्कन्द ने भी सेना सहित इन्द्र को अभय दान दिया। तब देवता प्रसन्न होकर नृत्य करने लगे वाद्य ध्वनि होने लगी।

उस समय ऋषियों ने कहा देवश्रेष्ठ तुम सम्पूर्ण लोकों का मंगल करो। अभी तुम्हे उत्पन्न हुये छ: रात्रियाँ ही बीती है, फिर भी तुमने सारे लोकों को अपने नियन्त्रण में कर लिया है और तुमने सभी को अभय भी दिया है। अत: अब तुम्ही इन्द्र बनकर तीनों लोकों का पालन करो। स्वामी कार्तिकेय ने पूछा हे मुनिगण यह इन्द्र त्रिलोकी का कौनसा कार्य करता है और यह किस प्रकार देवताओं की रक्षा करता है? ऋषियों ने कहा इन्द्र समस्त प्राणियों को बल, तेज, प्रजा और सुख प्रदान करता है तथा प्रसन्न होने पर वह सब कामनायें पूर्ण करता है। वह दुराचारियों का संहार करता है और सदाचारियों की रक्षा करता है। प्राणियों के प्रत्येक कार्य में उसका अनुशासन रहता है। जब सूर्य नहीं होता तो वही सूर्य हो उदय होता है और चन्द्रमा के अभाव में वही चन्द्रमा होकर प्रकाशित होता है, इसी प्रकार भिन्न-भिन्न कारणों से वही अग्नि, वायु, पृथ्वी और जल बन जाता है। ये सब काम इन्द्र को करने पडते हैं क्योंकि इन्द्र में बडा बल है। हे वीरवर तुम भी बडे ही बलवान हो इसलिये तुम्ही हमारे इन्द्र बन जाओ। इन्द्र भी बोले हे महाबाहो तुम इन्द्र बनकर हम सबको सुखी करो। तुम ही वास्तव में इस पद के योग्य हो। इसलिये आज ही अपना अभिषेक कराओ। स्कन्द बोले इन्द्र आप ही निश्चिन्त होकर त्रिलोकी का शासन करने में समर्थ है। मैं तो आपके सेवक के भांति रहूंगा, मुझे इन्द्र पद की कोई इच्छा नहीं है। इन्द्र बोले वीर तुम्हारा बल अद्भुत है, तुम्हारे पराक्रम से चकित हो प्राणी मुझे हीन दृष्टि से देखेंगे। वे हमारे बीच भेद डालने का प्रयत्न करेंगे। भेद हो जाने पर तुम्हारे और मेरे बीच अनावश्यक संघर्ष होगा और उसमें विजय तुम्हारी ही होगी, इसी कारण तुम ही इन्द्र बन

जाओ। स्कन्द ने कहा शक्र इस त्रिलोकी के आप ही राजा है मैं आपकी कौनसी आज्ञा का पालन करूं? इन्द्र बोले अच्छा तुम्हारे कथानुसार इन्द्र मैं ही बना रहूंगा परन्तु मेरी आज्ञानुसार तुम देव सेनापति के पद को स्वीकार कर उस पद पर अपना अभिषेक करा लो। स्कन्द ने हां कहकर स्वीकृति दी।

मार्कण्डेय बोले राजन स्कन्द के इस प्रकार कहने पर इन्द्र ने समस्त देवताओं सहित स्कन्द को देवताओं का सेनापति नियुक्त किया। उस समय स्कन्द सभी महर्षियों से पूजित होकर बडे ही सुशोभित हुये। उनके मस्तकपर स्वर्णछत्र लगाया। इतने में ही पार्वतीसह भगवान शंकर वहां पधारे। शक्ति, धर्म, बल, तेज, कान्ति, सत्य, उन्नति, ब्रह्मण्यता, असम्मोह, भक्तों की रक्षा, शत्रुओं का संहार और लोकों की रक्षा करना ये सब गुण स्कन्द में जन्मत: ही है। इस प्रकार देवताओं ने स्कन्द को अपना सेनापति स्वीकार किया। तत्पश्चात हजारों देवसेनायें उपस्थित हुई और कहने लगी कि आप ही हमारे पति है, स्वामी है। उस समय इन्द्र को केशी दैत्य के हाथ से छुटाई हुई देव सेना का स्मरण हो आया वे उसे वस्त्रालंकारो से सुसज्जित कर स्कन्द के पास ले आये और बोले हे देवश्रेष्ठ ब्रह्मा ने आपके जन्म से पहिले ही इसे आपकी पत्नी निश्चित कर दिया है इसलिये अब आप विधिवत् मन्त्रोच्चारणपूर्वक इसके साथ पाणिग्रहण करे। उस समय मन्त्रवेत्ता बृहस्पति ने मन्त्रोचारण कर हवनादि कर विधिपूर्वक स्कन्द और देवसेना का पाणिग्रहण किया। इस तरह देवसेना स्कन्द की पटरानी हुई। उसी को विद्वान लोग, ब्राह्मण लोग अनेक नामों से षष्ठी, लक्ष्मी, आशा, सुखप्रदा, सिनीवाली, कुहु, सद्वृति, अपराजिता आदि नामों से पुकारते है।

मार्कण्डेय बोले राजन कार्तिकेय को सम्पन्न और सेनापति हुआ देख सप्तऋषियों की वे छ: पत्नियां स्कन्द के पास आयी। वे सभी धर्मयुक्ता और व्रतशीला थी फिर भी उनके ऋषि पतियों ने उनका त्याग कर दिया था। उन्होने भगवान कार्तिकेय से कहा पुत्र हमारे देवतुल्य पतियों ने अकारण ही हमारा त्याग कर दिया है इसलिये हम पुण्य लोकों से वंचित रह गयी है। उनकी गलत समझ हो गई है कि हमसे ही तुम्हारा जन्म हुआ है अत: हमारी सच्ची बात जानकर हमारी रक्षा करो। तुम्हारी कृपा से हमें अक्षय लोकों की प्राप्ति हो। इसके अलावा तुम हमारे पुत्र भी बने रहो। स्कन्द ने कहा हे निर्दोष देवियों। आप सभी मेरी मातायें है और मैं आपका पुत्र हूं। इसके अतिरिक्त भी और कोई आपकी कामना, इच्छा हो तो वो भी पूर्ण हो जायेगी। जब कार्तिकेय ने अपनी माताओं से इस प्रकार कहा तो स्वाहा बोली तुम मेरे औरस पुत्र हो और मैं चाहती हूं कि तुम मेरा प्रिय कार्य करो। मैं दक्ष प्रजापति की लाडली पुत्री हूं। बचपन से ही मेरा अग्निदेव पर अनुराग रहा है किन्तु अग्निदेव को पूर्णतया मेरे प्रेम का ज्ञात नहीं है। मैं निरन्तर उन्ही के साथ रहना चाहती हूं। तब स्कन्द बोले ब्राह्मणों के हव्य-काव्यादि जो भी पदार्थ मन्त्रों से शुद्ध किये हुये होंगे वे स्वाहा स्वाहा आपका ही नाम लेकर अग्नि में हवन करेंगे। अत: हे कल्याणी इस प्रकार अग्निदेव सर्वदा तुम्हारे साथ ही रहेंगे। स्कन्द ने ऐसा कहकर फिर स्वाहा का पूजन किया। इससे स्वाहा को बडा सन्तोष हुआ और फिर अग्नि से संयुक्त हो स्वाहा ने स्कन्द का पूजन किया। तदनन्तर ब्रह्मा स्कन्द से बोले तुम अपने पिता त्रिपुर विनाशक महादेव के पास जाओ क्योंकि सम्पूर्ण लोकों के हितार्थ भगवान रुद्र ने अग्नि में और उमा ने स्वाहा में प्रवेश कर तुम्हे उत्पन्न किया है। ब्रह्माजी की बात सुनकर कार्तिकेय भगवान शंकर के पास चले गये।

मार्कण्डेय बोले जिस समय इन्द्र ने अग्नि कुमार कार्तिकेय को सेनापति के पद पर अभिषिक्त किया उस समय भगवान शंकर प्रसन्न हो पार्वती सहित सूर्य के समान रथ में बैठकर भद्रवर को चले। कुबेर अपने पुष्पक विमान में बैठकर आगे आगे चलते थे। इन्द्र ऐरावत पर चढकर देवताओंसहित उनके पीछे चलते थे। उनकी दाहिनी ओर वसु और रुद्रों के सहित अनेकों अद्भुत देव सैनिक थे। यमराज भी मृत्यु के सहित उन्ही के साथ थे। यमराज के पीछे महादेव का अत्यन्त दारुण

विजय नाम का त्रिशूल चलता था। उसके पीछे तरह-तरह के जलचरों से घिरे हुये जलाधीश वरुण चल रहे थे। उस समय चन्द्रमा ने महादेव पर श्वेत छत्र धारण किया। वायु और अग्नि चंवर डुला रहे थे। उन सबके पीछे देवराज इन्द्र स्तुति करते चलते थे। महादेव ने कार्तिकेय से कहा तुम व्यूह की रक्षा करना और कर्म करते समय भी मुझसे मिलते रहना। मेरे दर्शन और भक्ति से तुम्हारा परम कल्याण होगा और यह कहकर कार्तिकेय को हृदय से लगाकर उन्हे विदा किया।

कार्तिकेय के विदा होते ही सहसा बडा भारी उत्पात्त होने लगा। इससे समस्त देवता मोहग्रस्त हो गये। नक्षत्रों सहित आकाश जलने लगा, संसार मुग्ध सा हो गया। पृथ्वी डगमगाने लगी। मेघ गडगडाने लगे। सर्वत्र जगत में अन्धकार छा गया। पर्वतों और मेघों के समान अनेक प्रकार के आयुधों से सुसज्जित दैत्यों की बडी भयानक सेना दिखाई दी। वह अनेक प्रकार से भीषण असंख्य थी और जोरों से कोलाहल कर रही थी। वह दैत्यों की विकट वाहिनी भगवान शंकर पर और समस्त से युद्ध करने लगी तथा अनेकों प्रकार के बाण, पर्वत, शतघनी, प्रास, तलवार, परिघ और गदाओं की वर्षा करने लगे। दानवों से पीडित हो अपनी सेना को भागती देख इन्द्र सबको ढाढस बन्धा कर बोले वीरों भय छोडकर अपने अस्त्र-शस्त्र सम्भालो, तुम सबका कल्याण होगा। पराक्रम दिखाने का साहस करो, तुम्हारा सब कष्ट दूर हो जायेगा। इन भयानक और दुशील दानवों को परास्त कर दो। इन्द्र की बात सुनकर देवताओं को धीरज बन्धा और वे इन्द्र का आश्रय लेकर दानवों से युद्ध करने लगे। वे समस्त देवता और महाबली मरूत साध्य एवं वसुगण सभी शत्रुओं से भिड गये तथा उनके छोडे हुये अस्त्र-शस्त्र और बाण दैत्यों के शरीर में चुभने लगे। बाणों की वर्षा से दानवों के शरीर छलनी हो गये और छितराये हुये बादलों के समान रणभूमि में सब ओर गिरने लगे। इस प्रकार देवताओं ने उस दानव सेना को अनेक प्रकार से व्यथित कर डाला। इतने में महिष नाम का एक दारुण दैत्य बडा भारी पर्वत लेकर देवताओं की ओर दौडा। उसके भय से देवता भागने लगे। उस दैत्य ने पीछा करके भागते हुये देवताओं पर वह पहाड पटक दिया। उसके प्रहार से दस हजार देवतागण धराशायी हो गये। फिर महिषासुर दूसरे दानवों सहित देवताओं पर टूट पडे। उसे अपनी ओर आते देख इन्द्रसहित सभी देवगण भागने लगे। तब क्रोधातुर महिषासुर तेजी से भगवान महादेव के रथ के पास पहुंचा और रथ का धुरा पकड लिया। महादेवजी ने भी महिषासुर के संहार का संकल्प कर उसके महाकाल कार्तिकेय का स्मरण किया। उसी समय कार्तिकेय रणभूमि में उपस्थित हुये। वे क्रोध से सूर्य के समान तमतमा रहे थे। लाल वस्त्र पहने हुये थे और उनके घोडे भी लाल रंग के थे। वे सुवर्ण कवच धारण किये थे तथा सूर्य के समान सुनहरी कान्तिवाले रथ में विराजमान थे। कार्तिकेय को देखकर दैत्यों की सेना रण छोडकर भागने लगी। महाबली कार्तिकेय ने महिषासुर का वध करने के लिये एक प्रज्वलित शक्ति छोडी। उस शक्ति के छूटते ही उस दैत्य का विशाल मस्तक काट डाला। सिर कटते ही महिषासुर प्राणहीन हो पृथ्वी पर गिर पडा। महिषासुर के पर्वत समान सिर ने गिरकर उत्तर कुरु देश का सौलह योजन चौडा मार्ग अवरुद्ध कर दिया। कार्तिकेय ने सहस्त्रों शत्रुओं का संहार कर डाला और अपने शत्रुओं को परास्त कर दिया जैसे सूर्य अन्धकार को, अग्नि वृक्षों को और वायु मेघों को नष्ट कर देती है।

फिर कार्तिकेय ने भगवान शंकर को प्रणाम किया और देवताओं का यजन पूजन किया। वे उस समय सूर्य के सदृश शोभायमान हो रहे थे। इन्द्र ने आलिंगन कर कहा हे कार्तिकेय यह महिषासुर ब्रह्मा से वर प्राप्त किये हुये था इसलिये सब देवता इसके लिये तृण समान थे। आज आपने इस का वध कर देवताओं का बडा भारी प्रिय कार्य किया। अब आप भगवान शंकर के समान ही संग्राम में अजेय होंगे। यह आपका प्रथम पराक्रम प्रसिद्ध हुआ। तीनो लोकों में आपकी अक्षय कीर्ति होगी। हे महाबाहो सब देवता आपके अधीन होंगे। कार्तिकेय से ऐसा कह इन्द्र शिव से आज्ञा ले वहां से चले गये। शंकरजी ने देवताओं से कहा तुम कार्तिकेय को मेरे ही समान जानो और ऐसा कहकर शिव भद्र वर को चले गये और अन्य

सब देवता अपने अपने स्थान को चले गये। अग्निकुमार कार्तिकेय ने एक ही दिन में समस्त दानवों का संहार कर त्रिलोक विजयी हुये तभी सब महर्षियों ने उनकी सम्यक प्रकार से पूजा की।

मार्कण्डेय बोले युधिष्ठिर कार्तिकेय जी इन नामों से विख्यात हुये- आग्नेय, स्कन्द, दीप्तकीर्ति, अनामय, मयूरकेतु, धर्मात्मा, भूतेश, महिषमर्दन, कामजित, कामद, कान्त, सत्यवाक्, भुवनेश्वर, शिशु, शीघ्र, शुचि, चंड, दीप्तवर्ण, शुभानन, षडानन, अमोघ, अनघ, रौद्र, चन्द्रानन, दीप्त शक्ति, प्रशान्तात्मा, भद्रकृत, कूटमोहन, षष्ठीप्रिय, मातृवत्सल, कन्याभर्ता, विभक्त स्वाहेय, रेवतीसुत, प्रभु, नेता, विशाख, नैगमय, सदुश्चर, सुव्रत, ललित, खचारी, ब्रह्मचारी, शूर, शरदवणोद्भव, विश्वामित्र प्रिय, देव सेना प्रिय, वासुदेव प्रिय और प्रियव्रत ये सब कार्तिकेय के दिव्य नाम है। जो इनका पाठ करता है, वृतान्त सुनाता है वह नि:सन्देह स्वर्ग, कीर्ति, यश और धन प्राप्ति करता है। फिर मार्कण्डेय मुनि ने षडानन स्कन्द कार्तिकेय की स्तुति करी हे स्कन्द देव आप ब्राह्मण हितैषी, ब्रह्मात्मज, ब्रह्म वेत्ता, ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्म ज्ञानियों में श्रेष्ठ, ब्राह्मणप्रिय। आप स्वाहा, स्वधा, परम पवित्र, मन्त्रोंद्वारा प्रशंसित और सुप्रसिद्ध छ: ज्वालाओं से युक्त अग्नि है। आप ही सम्वतसर, छ: ऋतुये, पक्ष, मास, अयन और दिशायें है। आप कमल नयन, कमल मुख, सहस्त्रवदन और सहस्त्र बाहु है। आप ही लोकपाल सर्वोत्तम हविष्य तथा सम्पूर्ण देवताओं और असुरों के पालक है। आप ही सेनापति प्रभु, विभु और शत्रु विजयी है। आप ही सहस्त्र भू और पृथ्वी है। आप ही सहस्त्रों प्राणियों को सन्तोष देनेवाले तथा सहस्त्र भोक्ता है। आपके रूप का कोई अन्त नहीं आपके सहस्त्रों चरण है। आप शक्ति धारण करते है। आप अपनी इच्छानुसार गंगा, स्वाहा, पृथ्व तथा कृतिकाओं के पुत्र रूप से प्रकट हुये है। षडानन आप मुर्गे से खेलते है तथा इच्छानुसार नाना प्रकार के कमनीय रूप धारण करते है। आप सदा ही दीक्षा, सोम, मरूदगण, धर्म, वायु, गिरिराज तथा इन्द्र है। आप सनातन है। आप सत्य के प्रवर्तक, दैत्य नाशक, शत्रु विजयी तथा देवताओं में श्रेष्ठ है। आप ही कार्यकारण तत्व के ज्ञाता स्वरूप है। धर्म, काम इनसे परे जो मोक्ष तत्व है उसके भी आप ही ज्ञाता है। हे महात्मन यह सम्पूर्ण जगत आप ही के तेज से प्रकाशित होता है। आपकी शक्ति से यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त है। हे बारह नेत्रों और भुजाओंवाले देव आपको नमस्कार है। इसके परे आपका जो स्वरूप है उसे मैं नहीं जानता। मैंने यथाशक्ति आपका स्तवन किया है।

## १४) काम्यक वन में द्रौपदी और सत्यभामा का सम्वाद

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय जब महात्मा पांडव तथा ब्राह्मण लोग आपस में बैठकर धर्म चर्चा कर रहे थे। कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा- धर्मका पालन राज्य प्राप्तिसे बढ़कर बतलाया गया है। शास्त्र धर्मकी प्राप्तिके लिए ही तपका उपदेश करते हैं। आपने सत्यभाषण तथा सरल व्यवहारके द्वारा इस लोक और परलोक दोनोंपर विजय प्राप्त कर ली है। आप सब निष्काम भावसे शुभ कर्म करते हो, धनके लोभसे स्वधर्मका त्याग नहीं करते अत: आपमें दान, सत्य, तप, श्रद्धा, बुद्धि, क्षमा, धैर्य आदि सब कुछ हैं। राज्य पाकर भी आप इन सद्गुणोंमें स्थित रहें और विपत्तिमें भी इनसे विचलित नहीं हुए अत: नि:सन्देह आपकी सब कामनाएँ पूर्ण होंगी। जो धर्मके परमप्रभु हैं उनकी प्रसन्नताके लिए ही तो धर्माचरणकी सार्थकता है। उनको सुप्रसन्न देखकर धर्मराज सब भाइयोंके साथ आनन्दित हुए।

काम्यक वन हमारी प्रतीक्षा में था। जंबु, कंबु, किर्मीक, किरात व विरात आदि शबर बंधु उत्सुकता से प्रतीक्षा में थे। हमारे पहुंचने के बाद सखा कृष्ण द्वितीय पटरानी सत्यभामा के साथ हमें पूछने आए। अर्जुन स्वर्ग से दिव्य शस्त्र पाकर लौटे हैं, इस बात पर कृष्ण आनन्दित हो गए। अर्जुन से स्वर्ग के हालचाल पूछे। अर्जुन ने स्वर्ग की आमोदप्रद कहानी

सुनाकर सखा का मनोरंजन किया।

कृष्ण के देखते-देखते द्रौपदीने गुमान में कहा- इतने दिन बाद सखा के चरण इधर कैसे पड़े हैं? अर्जुन स्वर्ग में थे तब हम जीते हैं या मरते हैं, कभी खबर नहीं ली। आज इनके लौटते ही हमारी याद आ गई?

कृष्ण आकाश से गिरने की तरह अचंभे में भर गए- देखो सखा नारी मन कितना अकृतज्ञ, कितना निर्दय होता है। तुम जब तक स्वर्ग में रहे, मैं द्वारका का सारा सुख-भोग छोड़ बंधु-पत्नी का देहरक्षी बना अरण्य के दुर्गम पथ में पीछे-पीछे फिरता रहा। पांच वर्ष तक द्वारका में अपनी पत्नियों का मुंह तक नहीं देख सका। उसके लिए धन्यवाद तो दूर, उलटे दोष मढ़ रही हैं।

श्रीकृष्णने द्रौपदीको उनके पुत्रोंका समाचार दिया- याज्ञसेनी। तुम्हारे सब पुत्र सुशील हैं। उनका धनुर्वेद सीखनेमें अनुराग है। वे द्वारिकामें बहुतसे मित्र पा गये हैं। उनके साथ सत्पुरुषों के आचारका पालन करते हुए प्रद्युम्नसे अस्त्र-ज्ञान प्राप्त करनेमें उत्साहपूर्वक लगे हैं। युधिष्ठिरने गद्‌गद स्वरमें कहा- केशव। पाण्डवोंके आप ही आश्रय हैं। हम सब आपकी ही शरणमें है। अब हमने वनवासके बारह वर्षोंमें-से अधिकांश घूम-फिरकर व्यतीत कर दिये हैं। आपकी कृपासे एक वर्ष अज्ञात रहकर काट देंगे और तब आपके आदेशका पालन करेंगे। कृष्ण ने सत्यभामा को द्रौपदी के बारे में बताया।

पांचाल नरेश की कन्या द्रौपदी बड़ी व्यवहारकुशल, चतुर कर्मठ एवं कार्यदक्ष है। अर्जुन के प्रति समर्पिता होकर भी उसने बड़े चातुर्य से सभी पाण्डवों का मन हर लिया है। वे सब उसके वश में हैं, उसमें अनुरक्त हैं। राज्य-संचालन में भी उसकी राय ली जाती है। वह बड़ी नीति-निपुण है। बड़ी-बड़ी राजनीतिक समस्याओं का निदान बहुधा वह उसी दक्षता से निकाल लेती है जैसे दण्डनीति मैं स्वयं निकाल पाता हूं। पाण्डव बन्धु इसीलिए उसका कुलदेवी का-सा सम्मान करते हैं। उनमें परस्पर ईर्ष्या द्वेष नहीं है। द्रौपदी सबकी सेवा करती है। सेवकों की भी स्वयं देखभाल करती है। उसके परिवार में या राज्य में कहीं भी कोई उससे असन्तुष्ट नहीं है।

पाण्डवों की सफलता की मुख्य आधारशिला पांचाली है। उसकी बुद्धि पाण्डवों से कहीं अधिक परिपक्व है। पाण्डवों के पास पराक्रम है। शारीरिक बल है। उसका पूरक गुण बौद्धिकबल पांचाली के पास है। एक बार पाण्डवों को मूर्ख बनाया जा सकता है, उन्हें छला जा सकता है, किन्तु उस स्त्री को नहीं। पाँचों पति उसकी रक्षा कर पाएँ अथवा नहीं किन्तु वह ढाल बनकर उनकी रक्षा करती है। और दुर्योधन और कर्ण भी जानते थे कि जब तक युधिष्ठिर पांचाली के कहने पर चलेंगे, इन्हें परास्त नहीं किया जा सकता। जिस दिन वे पांचाली के प्रभाव से मुक्त होंगे, स्वयं अन्धकूप में गिरेंगे और पूरे परिवार का सर्वनाश कर देंगे।

द्रौपदी राजनीति की मर्मज्ञ है। जब इसके भाइयों को बृहस्पति-नीति की शिक्षा दी जाती थी तब यह भी वहाँ बैठकर सब सुनती थी। यह साम, दाम, भेद, दण्ड सब समझती है। यह किसी के झाँसे में न आ सकेगी। जबकि युधिष्ठिर सीधे और सरल हैं, अल्पबुद्धि हैं। दण्डनीति का सिद्धान्त मानकर चलो कि शक्तिशाली शत्रु के विरुद्ध बलप्रयोग करोगे तो स्वयं कच्चे मृत्तिका-कुम्भ की भाँति फूटकर चूर-चूर हो जाओगे। शक्तिशाली शत्रु बल से नहीं, छल से जीता जाता है। द्रौपदी ही पाण्डवों की मेरुदण्ड है। द्रौपदी गाण्डीव की प्रत्यंचा भी है और भीम के गदा की लौह शक्ति भी है। यही पाण्डवों की एकता की सूत्र है। यही उनकी शक्ति है। यह तेजस्विनी ही उनके हृदयों को आलोकित रखती है। वह विलक्षण सौन्दर्य की धनी है। बुद्धि, नीति और तेजसम्पन्न मानिनी है। कैसा अनुपम सौन्दर्य है। शक्ति-साहस, धीरज और विवेक की जीती-जागती मूर्ति दिखती है यह। बुद्धि इसकी कुशाग्र है। तर्क इसके अकाट्य हैं। बड़ी-बड़ी वैधानिक शंकाओं को सूक्ष्मता से निकाल लेती है, जो हम लोग भी नहीं कर सकते। पाण्डवों का आधा राज-काज तो यही सँभालती है।

उसी समय द्रौपदी और सत्यभामा भी एक ओर जाकर एक साथ सुखपूर्वक बैठी और अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक परस्पर

हास्य विनोद करने लगी। दोनों ने एक दूसरे को बहुत दिनों के बाद देखा था इसलिये परस्पर प्रिय लगनेवाली बातें करने लगी। कुरुकुल और यदुकुल से सम्बन्धित अनेक विचित्र बातें उनके चर्चा की विषय थी। पटरानी सत्ताजित कुमारी सत्यभामा को फल फूल भरे काम्यकवन की शोभा एवं शान्तिपूर्ण परिवेश में रहते रहते पूरा सप्ताह बीत गया, फिर भी जी नहीं भरा। दो सखियों की तरह दोनों हंसती खेलती, सुख-दु:ख, हास-परिहास करती मन खोले रहती। ममता पाकर सत्या और भी प्रगल्भ हो उठी। वह सप्ताह भर द्रौपदी के अपने पंच पतियों के साथ दाम्पत्य जीवन का मधुर प्रवाह देखती रही, अभिभूत होती रही, इतना ही नहीं बहु नारियों के काम्य पुरुष अपने पति कृष्ण को द्रौपदी के प्रति आकर्षण और अनुराग उन्हे विस्मित कर रहा था। मन ही मन तनिक सी ईर्ष्या भी हो रही थी। द्रौपदी सत्यभामा को अपने कुटीर कक्ष में ले आई। एक उच्च पर्यक पर देवी सत्यभामा अपनी रूप राशि की दिव्य प्रभा बिखेरती सी बैठी। निकट ही दूसरे पर्यक पर महारानी द्रौपदी अपने रत्नाभूषणों से सौन्दर्य प्रभा छिटका रही थी महारानी द्रौपदी के हाथ में एक सुन्दर विजन (हाथ पंखा) था जिसके नन्हे नन्हे रजत नुपूर हिलते ही छुनछुन कर उठते। दोनों देवियां एक-दूसरे से कुशलक्षेम पूछ रही थी और बीच बीच में स्वर्ण पिंजरों में टंगे हुये दक्ष एवं वाचाल शुक सारिकाओं की रस भरी वार्ता का आनन्द ले रही थी। द्रौपदी एक साथ पांच-पांच पतियों की प्रेम भाजन है और सुखी होने के साथ-साथ सबको सुखी और खुश रखती है। इस पर सत्यभामा को विस्मय हो रहा था। इतना ही नहीं कृष्ण के साथ भी द्रौपदी का बे रोक-टोक मेल-जोल एवं अकुंठ स्नेह आदर को द्रौपदी के पति कैसे उदार हृदय से ग्रहण कर रहे हैं। वो इस बारे में सोच भी नहीं पा रही कृष्ण द्रौपदी को अपनी सखी मानता है वैसे ही द्रौपदी भी कृष्ण को उसे अपना सखा, भाई मानती थी। भीम सा भयंकर असन्तुष्ट पुरुष द्रौपदी कैसे सम्भाल पाती है, यह देखकर भी वह आश्चर्य से भर गई। इन सात दिनों में द्रौपदी के सखा कृष्ण के साथ उनका तर्क-वितर्क और राग द्वेष भी हुआ। हर बार कृष्ण ने द्रौपदी को ही मध्यस्था के लिये बुलाया। द्रौपदी का अपने पंच पतियों के साथ तर्क वितर्क तो दूर, मान गुमान की भनक तक सत्यभामा को नहीं मिली जब कि परिवार की सभी चर्चाओं में द्रौपदी भाग लेती थी। अपने विचार रखती, जरूरत पडने पर पतियों के विचारों का, मतोंका खंडन-मंडन करती थी। युधिष्ठिर तक की बातों का प्रतिवाद किया है और भीम के तर्कों पर उन्हे समझाया है फिर भी उनके बीच कोई रागद्वेष, मनो मालिन्य नहीं दिखा। उल्टे हर बात से पांचो पांडव द्रौपदी का मत मांगते और बिना उसके कोई महत्वपूर्ण निर्णय नहीं लेते। यह सब देखकर सत्यभामा एकदम अचम्भे में थी। द्रौपदी के साथ-साथ छाया की तरह रहकर द्रौपदी के सारे कामकाज देखती रहती कि द्रौपदी के सफल दाम्पत्य जीवन का क्या राज है? पारिवारिक जीवन में पत्नी की उचित मर्यादा का सूत्र ढूंढ रही थी। कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

द्रौपदी ने सत्यभामा से पूछा कहो सत्या तुम हमसे मिलने के लिये द्वारका से यहां तक की यात्रा करके आई हो या मुक्त भ्रमण और देशाटन है? सत्यभामा मुक्त कंठ से हंसी और बोली तुम्हारे सखा श्यामसुन्दर के पास न भ्रमण का अवकाश है और न देशाटन का। यदि उनकी पत्नियां इस प्रतीक्षा में रहे कि कब उन्हे अवकाश प्राप्त होगा और कब वे उन्हे भ्रमण के लिये ले जायेंगे तो सारी आयु ब्रजबालाओं के समान प्रतीक्षा में ही बीत जायेगी। यहां तो स्थिति यह है कि जब वे द्वारिका से चलने का संकल्प करें तो जिसे अवसर मिले वह उनके साथ हो ले। मैं साथ न आती तो जाम्बवती आती या फिर रूक्मिणि आती। कोई न कोई तो अवश्य आती। द्रौपदी बोली कोई अपने स्थान पर बैठकर साधना कर रहा है तो कोई अपने स्थान पर नहीं बैठकर। सखा केशव को तो सारी सृष्टि का ध्यान रखना ही पडता है। कब किसको उनकी कहां आवश्यकता होती है। किसे समाचार पहुंचाने है, किसके सुख-दु:ख से सम्मिलित होना है, कब किसे सान्त्वना देना है?

किसे शस्त्रों की आवश्यकता है और किसे सेना की, किसकी कहां रक्षा करनी है, किसका मनोबल बढाना है? किस पर बरसना है और किस पर प्रहार करना है? किसे फटकारना है? जाने कहां कहां दौडे फिरते है? तो फिर उन्हे मनोरंजन का अवकाश ही कहां मिलेगा? सत्यभामा बोली मैं उनसे इतना प्रेम करती हूं, उनके इतना निकट रहती हूं। उनको जानने समझने का प्रयत्न करती हूं किन्तु यह व्यक्ति मेरी समझ के बाहर है। इन्हे कभी विश्राम की आवश्यकता ही महसूस नहीं होती। इन्हे कभी कोई मनोरंजन चाहिये ही नहीं। इन्हे कभी कुछअपने लिये नहीं और फिर भी सदा परम आनन्द में रहते हैं। कभी कोई दु:ख नहीं, विषाद नहीं, अभाव नहीं, अवसाद नहीं।

द्रौपदी बोली दु:ख को जितना कृष्ण ने जाना है उसकी तो तुम कल्पना भी नहीं कर सकती सत्या? जिसके निर्दोष माता-पिता को अत्याचारी राजा कंस ने बन्दी बनाकर कारागृह में डाल दिया हो, जिसके छ: सद्यजात भाइयों का वध कर दिया गया, जिसका स्वयं का जन्म बन्दीगृह में हुआ, जिसके प्राण लेने के लिये इतने सारे प्रयत्न किये गये, जिसने अपनी, अपने समाज की और धर्म की रक्षा के लिये कितने युद्ध किये वह मेरे और तुम्हारे समान मात्र एक व्यक्ति का जीवन तो नहीं जीता। जिसने अपने जीवन, अपने सुख-दु:ख और अपनी सम्पूर्ण क्षमताओं को मानवमात्र के सुख के लिये नियोजित कर दिया हो, जिसका अपना व्यक्तिगत और निजी कुछ हो ही नहीं उसके पास दु:ख विषाद और अवसाद का अवकाश ही कहां है? जिसने अपने स्व का इतना विस्तार कर लिया हो, उसके पास न संकीर्ण अहं है और न ही अभाव। सबका आनन्द ही कृष्ण का आनन्द है। किसी भी सात्विक व्यक्ति का सुख कृष्ण का सुख है, किसी भी दीन-हीन, पीडित की पीडा, कृष्ण की पीडा है। धर्मराज को सिंहासन पर बैठाकर वे सुखी होते हैं। उन्होंने अपने लिये कभी नहीं सोचा कि इस सिंहासन पर वे स्वयं आसीन हो सकते है। सत्यभामा बोली यह ठीक है कृष्णे पर वे द्रौपदी से सहमत नहीं हो पा रही थी और बोली वे यह तो देखते है कि संसार के किस कोने में कौन-कौन दुखी व्यक्ति है पर यह नहीं देखते कि उनकी अपनी पत्नियां भी उनकी अनुपस्थिति में कितनी दु:खी है उन्हें भी श्यामसुन्दर का सान्निध्य चाहिये। द्रौपदी बोली सत्या तुम चाहो तो उनके साथ तुम भी उन दीन दुखियों के पास जा सकती हो जिनकी केशव को चिन्ता है। दूसरी ओर श्यामसुन्दर को अपने पास अटका कर तुम उनके मार्ग की बाधा बन सकती हो पर यदि उनकी प्रियतमा बनना है तो उनकी संगिनी बनो न की उनके मार्ग की बाधा।

सत्यभामा द्रौपदी की बात सुनकर कुछ क्षणों के लिये मौन रह गई फिर मन में एक प्रश्न भली प्रकार सोच-विचार कर पूछा महारानी द्रौपदी मुझे बडा आश्चर्य होता है कि तुम अपने पांचो पतियों को कैसे एकसाथ में वश में रखती हो? किस प्रकार उन्हे रिझा पाती हो? कैसे सबको एक साथ में प्रसन्न कर पाती हो देवी? किस तरह तुम अपने पंच पतियों को सन्तुष्ट कर पाती हो? किसी भी इच्छा को पूरी करने को वे सदा तैयार दिखते है। तुम्हारे युग्म जीवन में कहीं कोई अशान्ति या असन्तुष्टि का लेशमात्र भी नहीं दिखता। हम द्वारिका में कृष्ण की आठ पटमहिषिया और असंख्य उपपत्नियां होते हुये उन्हे अपने प्रेमपाश मे बांध नहीं रख पाती। वे कब किधर जाते हैं, क्या कुछ करते हैं हमें पता भी नहीं चलता। हमारी स्नेह ममता की डोर को पीछे ढकेल कब किसके स्नेह से बंध जाते हैं। तुमने पांचो को वश में रखने को कोई मन्त्र-तन्त्र, जादू टोना या कोई जडी बूटी कर रखी है, मुझे सब विस्तार से समझाओ। हमारी समस्या तुमसे कुछ भिन्न है। श्यामसुन्दर किसी एक के अनुकूल होते हैं तो दूसरी को उससे ईर्ष्या होने लगती है। तुम एक पति के अनुकूल होती होगी तो क्या दूसरा तुमसे रूष्ट नहीं हो जाता? तुम्हारी सपत्नियां तुम्हारे विरुद्ध कोई षडयन्त्र का प्रयत्न आरम्भ नहीं कर देती। हे द्रुपद कुमारी किस बर्ताव से तुम हृष्ट पुष्ट अंगोवाले लोकपालों के समान वीर पांडवों के हृदय पर अधिकार रखती हो? क्या वे तुम पर कभी कुपित नहीं होते? हे प्रियदर्शने क्या कारण है कि

पांडव सदा तुम्हारे अधीन रहते हैं और तुम्हारे मुंह की ओर देखते रहते हैं? हे द्रुपद नंदिनी मुझे भी कोई ऐसा व्रत, तप, स्नान, मन्त्र, वशीकरण मन्त्र, औषध, विद्या शक्ति, जडी-बूटी, जप, होम बताओ जो यश और सौभाग्य वृद्धि करनेवाला हो तथा जिससे श्यामसुन्दर मेरे अधीन रहे। ऐसा कहकर यशस्विनी सत्यभामा चुप हो गयी।

तब महाभागा द्रौपदीने जीभ दाँतों में दबाकर कनखियों से सत्यभामा की ओर देखा और जानकारी ले रही थी कही यह कोइ व्यंग का पुट या कटाक्ष तो नहीं। पांडव पट्टरानी द्रौपदी अपने ऊपर कठोर संयम रखकर बोली छि छि। तुम बडी चंचल हो सत्या और हंसकर बोली देवी वैसे यह समस्या मेरे साथ नहीं है। मुझे लगता है कि इस परिवार में अपने लिये कोई कुछ मांगता ही नहीं है। इन लोगों की व्यक्तिगत अपेक्षायें कुछ है ही नहीं। जो कुछ भी कामना की जाती है वह सबके लिये सामूहिक रूप में। अपने लिये तो केवल त्याग की बात सोची जाती है। धर्मराज को अपने लिये राज्य नहीं चाहिये। उन्हे राज्य चाहिये अपने माता, अपने भाइयों और अपनी पत्नियों तथा सन्तानों को सुख देने के लिये। उनके भाइयों को राज्य चाहिये ताकि वे धर्मराज को सिंहासन पर आसीन कर सके। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि इनमें से एक भी भाई किसी वस्तु की कामना व्यक्त कर दे तो वे अन्य चारों भाई तत्काल उस वस्तु को उसे दे देंगे। मैं उन पांचों के साथ प्रेम देकर, सेवा कर उन पांचो के साथ छटी बनकर उन्हे प्रसन्न रखती हूं। मैं कोई उनसे पृथक नही हूं कि उनसे कुछ मांगू। जो कुछ उनका है, वह सब मेरा है जो मेरा है वह सब उनका है। सुख-दु:ख, भाव-अभाव, सम्पत्ति-विपत्ति सब कुछ। वे जब सम्राट थे, मैं साम्राज्ञी थी। वे द्यूत क्रीडा में दांव पर लगे मैं भी दांव पर लगी। वे अपमानित हुये मैं भी हुई। वे प्रतिशोध लेंगे मैं भी उनका साथ दूंगी। वे वन में रह रहे है मैं भी उनके साथ-साथ रह रही हैं। वे राज प्रसाद या महल में रहेंगे मैं भी उनके साथ रहूंगी। मैंने जिन्हे अपना प्रेम अर्पित किया है अपनी ईर्ष्या भी मैंने उन्हे ही अर्पित कर दी। इस अवस्था में भी मैं सन्तुष्ट हूं और मुझे मेरे पतियों से इस परिस्थिति का भी कोई उपालम्भ नहीं है। सत्या ये पांचो भाई पांडव देवतुल्य है। उनमें से किसी के भी स्वभाव में कोई विकृति नहीं है। वे सदा ही प्रसन्न रहते हैं। मैं पूरा समय उनकी सेवा में रत रहती हूं। मैं प्रात: ब्रह्म मुहूर्त में उठकर भगवत उपासना पूजा कर गृह प्रबन्ध में लग जाती हूं और रात्रि में दास-दासी, सेवक परिचारिका आदि सबके पश्चात सोती हूं। पूरे समय यह ध्यान रखती हूं कि पांडु नन्दनों को किसी प्रकार का अभाव न हो, किसी प्रकार का कोई कष्ट न हो। यह बडा ही दुरुह कार्य है। तुम तो सौभाग्यवती हो जो कि एक पति की पूजा, अपने आराध्य के युगल चरणों की उपासना करना तुम्हारे लिये कितना सरल, कितना सहज है, कितना स्वाभाविक है। तुम संसार की सभी सौभाग्यवती नारियों की भांति भाग्यवान हो।

देवी सत्यभामा गहन चिन्ता में मग्न थी। उनके सुन्दर मुखमंडल पर पीडा की रेखायें उभर रही थी। सत्यभामा बोली महारानी द्रुपद सुता भाग्यवती तो तुम हो। तुम नहीं जानती कि एक पति को भी वश में रखने के लिये मुझे कैसे कैसे प्रयास करने पडते है, किन किन उपायों का अवलम्ब लेना पडता है। मैं तो अपने एक पति को नहीं सम्भाल पाती। सदा आशंकित रहती हूं, भयभीत रहती हूं कि कहीं देवि रुक्मिणी उन्हे नहीं रिझा ले। कहीं देवी जाम्बवती उन्हे अपने वश में न कर ले। मुझे तो सतत सतर्कता रखनी पडती है। सबकी ईर्ष्या का पात्र बनना पडता है। हम सब पत्नियों में भयंकर स्पर्धा चलती है। महारानी इसीलिये तो कहती हूं तुम वास्तव में भाग्यवती हो। तुम महान हो जो पांचो पांडव तुमसे प्रसन्न रह रहे हैं और वे अन्यत्र कहीं आश्रय नहीं खोजते। तब द्रौपदी बोली नहीं देवि। <u>नारी वही सबसे अधिक प्रसन्न है जिसका एक आराध्य है और जिसकी उपासना के लिये वह पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है</u>। मैं तो अनेक मर्यादाओं से घिरी हुई हूं, दबी हुई हूं। प्रयास अवश्य करती हूं कि कर्तव्य पालन में कोई दोष या प्रमाद न रह जाये क्योंकि नारी धर्म से पातिव्रत धर्म ही तो सब

कुछ है। यह तो ईश्वर ही जाने, मैं सबके प्रति न्याय कर पाती हूं या नहीं। यदि सब समान रूप से सन्तुष्ट न हुये तो अवश्य ही मुझे नरकों की गति प्राप्त होगी इसलिये तुम ही वास्तव में भाग्यवती हो सत्या और यह कहकर पांचाली चुप हो गई।

सत्यभामा बोली किन्तु याज्ञसेनी तुम कितनी सौभाग्यशालिनी हो कि तुम्हारे कोई भी पति तुमसे विरक्त नहीं होते। तुम कितनी भाग्यशालिनी हो कि दूसरी नारी की ओर उनका ध्यान तक नहीं जाता। नहीं तो ऐसे परम मेधावी और ऐसे उच्च राजवंश के कुलदीपक पांडुनन्दन, इन्हे दूसरी पत्नियां लाने में भला क्या संकोच और क्या विलम्ब हो सकता है। आर्य धनंजय कितने वीर व पराक्रमी हैं। उनकी यशोगाथायें तो सुदूर जन पदों तक प्रसारित प्रचलित है। मैं इतना भी जानती हूं कि कितने सुदूर प्रान्तों की राजपुत्रियां वीर धनंजय का नाम सुनकर ही रोमांचित हो उठती है, आह्लादित होती है। कितनी राजकन्यायें नहीं चाहती कि आर्य अर्जुन उन्हे पत्नी रूप में स्वीकार करे? कितनी कुमारियों ने तो उनका स्वप्न में वरण किया है। किन्तु फिर भी धन्य हो तुम पांचाली और धन्य है पार्थ। जिसका ध्यान तुमसे तनिक भी विमुख नहीं हो पाता। अन्य पति भी तुममें कैसे अनुरक्त है इसीलिये तो कह रही हूं द्रुपद कुमारी तुम भाग्यवती हो। इससे अधिक किसी नारी को क्या चाहिये कि पति उसके, वश में रहे? यही तो सौभाग्य का पुनीत लक्षण है। परन्तु महारानी पांचो पतियों को केवल तुमने सेवा सुश्रूषा से वशीभूत किया है इस पर सहसा मुझे विश्वास नहीं हो रहा। कहीं कोई तुम मन्त्र, तन्त्र अथवा अभिचार पद्धति आदि का तो प्रयोग नहीं करती।

अबोधमना पांचाली अवाक रह गई। द्रुपद नंदिनी श्वास रोके सब कुछ सुन रही थी। उसे मन ही मन गर्व हो उठा किन्तु भविष्य के लिये चिन्ता भी। यह बिल्कुल ठीक है कि आज वे सब उसके पति उसमें अनुरक्त है किन्तु कल की कौन जाने? पुरुषों का क्या विश्वास? अन्य किसी पति के लिये द्रौपदी को चिन्ता नहीं थी। कोई पति यदि अन्य भार्या ले भी आये तो उसे ईर्ष्या नहीं होगी परन्तु यदि अर्जुन पर से उसका एकाधिकार उठ गया तो, यदि अर्जुन किसी स्त्री पर मोहित हो जाये तो कैसी भयंकर कष्ट कल्पना। लेकिन कृष्ण पत्नी सत्यभामा ही तो स्वयं बता रही है कि कितनी राजपुत्रियां अर्जुन पर आसक्त है, उसकी वीर रस की चर्चा सुनती रहती है और विभोर हो उठती है। द्रौपदी के मन में एक नया आन्दोलन जन्म ले चुका था। एक नयी दुश्चिन्ता ने मन में घर कर लिया था। सावधानी, आशंका और सन्देह उसके मन में धीरे-धीरे गहरे बैठते जा रहे थे। द्रौपदी बोली- मन्त्र, तन्त्र, अभिचार पति के साथ। नहीं देवी मेरा इन बातों पर विश्वास नहीं है। मैं कर्म पर विश्वास करती हूं, लगन से पति सेवा करती हूं। इन क्षुद्र निम्न क्रियाओं पर अन्ध विश्वासों में मेरा तनिक भी विश्वास नहीं है। कृष्ण वल्लभा सत्यभामा बोली जब तुम कह रही हो तो विश्वास करना ही पडेगा। लेकिन मैं तो स्वयं अत्यन्त विचलित हो जाती हूं कभी कभी। मैंने सोचा यदि तुमको कोई मन्त्र-तन्त्र ज्ञात हो तो मैं भी उनका प्रयोग करूं। मेरे पति के समान तो कोई रसिक छलिया नहीं। समझ में नहीं आता अपने अद्भुत पतिदेव को कौनसे मन्त्र से वश में करूं। मैं तो पता नहीं कहां कहां से मन्त्र औषधि आदि ढुंढवाती रहती हूं। कभी कभी तो कितनी व्याकुल हो उठती हूं क्योंकि ये द्वारकाधीश में नारी परिग्रह का बडा ही विकट मोह है। कृष्णप्रिया सत्यभामा के मुख से ऐसी बात सुनकर पांचाली आश्चर्यचकित हो बोली सत्यभामे यह सर्वथा अनुचित है कि तुम इन निम्न वृतियों का अवलम्बन लो। केशव कोई छलिया नहीं है, वे तो प्रेम के उपासक है उनका मन प्रेम से जीतो, वे सदा के लिये तुम्हारे रहेंगे। उनके लिये कभी भी ऐसे क्षुद्र-तुच्छ उपाय कदापि प्रयुक्त नहीं करना। यह घृणित कुत्स विचार है। इसे छोड दो, मेरे कहने से छोड दो। पांचाली का स्वर दृढ हो गया। सत्यभामा ग्लानि से दब गई। उसे अपनी भूल अनुभव हुई। पांचाली के तेज एवं कर्मनिष्ठ व्यक्तित्व की प्रशंसा उन्होने सदैव मधुसूदन के मुख से सुनी थी। आज वे उसकी स्पष्ट वक्तता, दृढता तथा कर्तव्यनिष्ठा से अधिभूत हो उठी।

पतिपरायणा द्रौपदी बोली सत्ये तुम मुझसे जिस विषय में कह रही हो वह साध्वी स्त्रियों का मार्ग नहीं बल्कि दुराचारिणी और कुलटा स्त्रियों का आचरण है। जिस मार्ग का दुराचारिणी स्त्रियों ने अवलम्बन किया है उस मार्ग पर हम कैसे चल सकती हैं? इस प्रकार के प्रश्न अपने स्वामी के स्नेह में सन्देह उत्पन्न करता है। तुम्हारे जैसी साध्वी स्त्री के लिये यह कदापि उचित नहीं है। तुम बुद्धिमत्ता होने के साथ ही श्यामसुन्दर की प्रियतमा पट्टरानी भी हो। जब पति को यह मालूम पड जाये कि उसकी पत्नी उसे वश में करने के लिये किसी मन्त्र-तन्त्र, जडी बूटी का सहारा ले रही है तो वह उससे उद्विग्न हो उठता है जैसे घर में घुसे हुये सर्प से लोग शंकित रहते है। फिर उद्विग्न व्यक्ति को शान्ति कैसी और अशान्त को सुख कहां? अत: मन्त्र तन्त्र का प्रयोग करने से पति अपनी पत्नी के वश में कदापि नहीं हो सकता है और मधुर दाम्पत्य सम्बन्धों में खट्टास आ जाती है। इसके सिवा ऐसे अवसरों पर धोखे से शत्रुओं द्वारा भेजी हुई औषधि खिलाकर कितनी ही स्त्रियां अपने पतियों को अत्यन्त भयंकर रोगों से पीडित कर देती है। किसी को मारने की इच्छा से कई लोग उसकी स्त्री के हाथ में यह जडी बूटी है कहकर विष दे देते है कि यह पति को वश में करनेवाली जडी बूटी औषधि है। ऐसे लोगों के दिये हुये चूर्ण इत्यादि ऐसे होते है जिन्हे पति यदि जिव्हा अथवा त्वचा का भी स्पर्श कर ले तो नि:सन्देह उसी क्षण उसकी मृत्यु हो जाती है। कितनी ही स्त्रियों ने अपने पतियों को वश में करने की आशा से हानिकारक दवायें खिला कर उन्हे जलोदर, कोढ का रोगी, असमय में ही वृद्ध, नपुंसक, अन्धा, गूंगा और बहरा बना दिया है। इस प्रकार पापियों का अनुसरण करनेवाली वे पापिनी स्त्रियां अपने पतियों को अनेक प्रकार की विपतियों में डाल देती है। अत: साध्वी स्त्री को चाहिये कि वह कभी भी किसी प्रकार पति का अप्रिय न करे। ऐसे कर्मों से पति की आस्था और विश्वास टूट जाते हैं। ऐसी स्त्रियां अपने पति को खो बैठती है। ये मूर्खता भरी बातें कभी नहीं सोचना वरना तुम्हारे पति तुम्हे कालसर्पिणी की भांति अपनी शैय्यापर तुमसे घृणा करने लगेंगे।

हे यशस्विनी सत्यभामे मैं स्वयं महात्मा पांडवों के साथ जैसा बर्ताव व्यवहार करती हूं वह तुम्हें बताती हूं। द्रौपदी ने निर्मल हृदय एवं सरलमना सत्या को अपने पतियों के साथ लाड चाव का रहस्य बताया। सत्या यदि कर सको तो अपने जीवन को पति के लिये लगाना। अपने अन्दर के अहंकार को दूर कर अपने नारीत्व को पूजा के फूल की तरह निष्काम प्रेम के जल से सुरभित कर उडेंल देना। मैं अहंकार और काम, क्रोध छोडकर सदा पूरी तरह से पांडवों की और उनकी अन्यान्य स्त्रियों की सेवा करती हूं। अपनी इच्छाओं का दमन करके भी मन को अपने आपे में रखते हुये अपने पतियों का मन रखती हूं। अहंकार और अभिमान को अपने पास फटकने भी नहीं देती। मैं सदा सावधान रहती हूं कि कहीं मेरे मुख से अनुचित और बुरी बात न निकल जाये। असभ्य की भांति कहीं भी खडी नहीं होती। निर्लज्ज की तरह कभी भी दृष्टि नहीं डालती। बुरी जगह पर कभी नहीं बैठती। दुराचार से बचती हूं तथा चलने फिरने में भी असभ्यता कहीं प्रकट न हो इसका सतत ध्यान रखती हूं। पतियों के अभिप्राय पूर्ण संकेत का सदैव पालन करती हूं। किसी भी परिस्थिति में ईर्ष्यातुर न होने का प्रयत्न करती हूं। सहज रहने का मेरा लक्ष्य रहता है। माता कुन्ती के पांचो पुत्र मेरे पति हैं। वे सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी, चन्द्रमा के समान साल्हाद प्रदान करनेवाले, महारथी, दृष्टिमात्र से ही शत्रुओं का नाश करनेवाले, सभी बल पराक्रम एवं प्रताप से युक्त, मैं सदा सर्वदा उनकी सेवा में रत रहती हूं। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, युवक, बडा, धनवान, परम सुन्दर भले कैसा ही पुरुष क्यों न हो मेरा मन पांडवों के अतिरिक्त और कहीं नहीं जाता। मेरे अपने पतियों को और उनके सेवकों को भोजन कराये बिना मैं स्वयं कभी भोजन नहीं करती। उनके स्नान होने के बिना मैं भी स्नान नहीं करती और पतिदेव जब तक शयन नहीं करे तब तक मैं सोती भी नहीं हूं। उनके जागने से पहले मैं जागती हूं। उनके कार्य में कभी

आलस्य या प्रमाद नहीं करती हूं। खेत से या वन से अथवा गांव से, बाहर से जब कभी मेरे ये पति घर लौटते हैं तो उस समय उनकी प्रतीक्षा में उनके आनेपर उनका अभिनन्दन करती हूं तथा आसन और जल अर्पण कर उनका स्वागत सत्कार करती हूं। उनके लिये विश्राम का आसन प्रस्तुत करती हूं। असंख्य दास-दासियां और सेवकों के होने पर भी घर के कामकाजों की निगरानी रखती हूं। पांडवों का प्रिय भोजन अपने हाथ से बनाती हूं और बैठकर स्वयं भोजन कराती हूं। मैं घर के जूठे बर्तनों को धो-मांजकर स्वच्छ कर रखती हूं। मन और इन्द्रियों को संयम में रख घर में गुप्त रूप से अनाज का संचय रखती हूं और घर को लीप पुतकर, झाड-बुहार कर सदा स्वच्छ एवं पवित्र रखती हूं। मैं मुख से ऐसी कोई बात नहीं कहती जिससे किसी का तिरस्कार हो। दुष्ट व निम्न कोटि की स्त्रियों से सदा दूर रहती हूं और अपने पतियों के अनुकूल बर्ताव करती हूं। पति के अलावा किसी अन्यों से अन्य समय में कभी हास परिहास नहीं करती। दरवाजों पर भी कुलटा स्त्रियों की भांति बार-बार खडी नहीं होती, ऐसे गन्दे स्थानों पर जहां कूडे करकट फेंके जाते हो वहां नहीं ठहरती और बगीचों में भी बहुत देर तक अकेले घूमने नहीं जाती। नीच पुरुषों से बात नहीं करती। मन में असन्तोष को कभी स्थान नहीं देती। परायी चर्चा तथा निन्दा से दूर रहती हूं। न ही अधिक हंसती हूं तथा न अधिक क्रोध करती हूं। सदा सत्य भाषण करती हूं तथा पतियों की सेवा में लगे रहना ही मेरा धर्म है। अपनी दु:ख या दुश्चिंता का बोझ अपने पतियों के माथे पर नहीं डालती। स्वयं उनकी चिन्ताओं में भागीदार बन अपना मत प्रकट करती हूं। अपने पतियों के बिना किसी भी स्थान में अकेली रहना मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। मेरे स्वामी बाहर परदेश चले जाने पर उन दिनों मैं प्रसाधन, रूप-सज्जा, वेशभूषा का विन्यास नहीं करती, श्रृंगार धारण नहीं करती और निरन्तर ब्रह्मचर्य के व्रत का पालन करती हूं। मेरे पति जिस भक्ष्य अभक्ष्य को खाते नहीं, पान नहीं करते या जिसका सेवन नहीं करते वह सब भी मेरे लिये त्यागे हुये हैं। पतियों के दूर होने से मैं भी प्रसाधनादि से दूर ही रहती हूं। उनकी नापसन्दवाले काम मैं कभी करती नहीं। मैं उनकी पसन्द नापसन्द बिना बताये ही जान जाती हूं। व्यर्थ की बहस कभी मैं करती नहीं। न ही मैं व्यर्थ में हंसती या विनोद करती।

हे सुन्दरी शास्त्रों में स्त्रियों के लिये जिन कर्तव्यों का उपदेश किया है उन सबका मैं यथावत पालन करती हूं। अपने अंगों को वस्त्राभूषणों से, मांगलिक चिन्ह धारण कर, अपने को विभूषित रख मैं अपने पति के प्रिय एवं हित साधनों में संलग्न रहती हूं। मेरी सास माता कुन्ती ने अपने परिवार के लोगों के साथ जिस धर्म का पालन करने का आदेश दिया था उन सबका मैं आलस्य रहित हो निरन्तर पालन करती हूं। मैं समयानुसार भिक्षा दान, बलि वैश्वदेव यज्ञ, श्राद्ध, पर्वकालो चित, स्थाली पाक यज्ञ, मान्य पुरुषों का आदर सत्कार, विनय, नियम तथा अन्य जो जो धर्म व कर्तव्य मुझे ज्ञात है उन सबका भली प्रकार यथोचित पालन करती हूं। मेरे पतिदेव बडे ही सज्जन मृदुल स्वभाव के हैं, सत्यवादी तथा सत्य धर्म का निरन्तर पालन करनेवाले धर्मनिष्ठ हैं। क्रोध में भरे हुये विषैले सर्पों से जिस प्रकार लोग भयभीत रहते हैं उसी प्रकार मैं अपने पतियों से डरती हुई उनकी सेवा में संलग्न रहती हूं। पति के आश्रम में रहना ही स्त्रियों का सनातन धर्म है। पति ही उनका धर्म है, देवता है और पति ही उनकी गति है। पति के सिवा नारी को दूसरा कोई सहारा आश्रय नहीं होता है। ऐसे पति देवताओं का भला कौनसी नारी अप्रिय करेगी? अपने पतियों की इच्छा के विरुद्ध मैं कभी कोई आभूषण धारण नहीं करती। मैं न कभी अपनी सास माता कुन्ती की निन्दा करती और अपने आपको सदा नियन्त्रण में रखती हूं। चाल चलन, आचार-विचार, भोजन और विश्राम में भी संयम बरतती हूं। मैं मेरे पतियों पर कभी भी शंका या किसी प्रकार का सन्देह नहीं करती हूं। न ही कभी अनावश्यक शिकायतें करती हूं। न ही कोई बात अपने पतियों से गोपन रखती हूं। पांचो पतियों के प्रति समता रखने का प्रयास करती हूं। किसी एक के गुण दोषों को दूसरे के आगे बखान नहीं करती हूं। शौर्य, वीर्य,

ऐश्वर्य, रूप से, गुण से परिपूर्ण पुरुष नारी का काम्य होता है परन्तु जो उनमें से नारी की बात समझ लेता है वह सिर्फ काम्य ही नहीं ध्येय होता है। ऐसे नारी का मन समझनेवाले कितने पुरुष होते हैं। मेरे ये पांचो पति उनमें से हैं।

हे सौभाग्यशालिनी सत्या मैं सदा प्रात:काल उठकर सर्वदा समुचित सेवा के लिये सनद्ध रहती हूं। गुरुजनों की सेवा सुश्रूषा से ही मेरे पति मेरे अनुकूल रहते हैं। पति किसी दासी या सेवक को कोई आदेश दे इससे पहिले ही मैं तत्पर हो उठती हूं। कभी भी अपने पीहर का ठाट-बाट, विलास, ऐश्वर्य बडप्पन कभी अपने पतियों के सामने बखान नहीं करती हूं। इसी तरह किसी अन्य पुरुष के धन, ऐश्वर्य, बल, वीर्य की तुलना कर अपने भाग्य को कभी नहीं कोसती। यहां तक कि अपने पतियों के आगे किसी अन्य नारी की अपने से अधिक सौभाग्यवती के रूप में तुलना नहीं करती। अपनी अजस्त्र कामनाओं को भी अपने पतियों को बताने की जरूरत नहीं समझती।

अपनी सास वीर जननी सत्यवादिनी माता कुन्ती देवी के भोजन, वस्त्र और जल आदि की व्यवस्था भी मैं स्वयं देखती हूं। वस्त्र, आभूषण और भोजनादि में भी कभी उपेक्षा या प्रमाद नहीं होने देती। मेरी सास पृथ्वी के समान क्षमाशील है। महाराज युधिष्ठिर के महल में प्रतिदिन आठ हजार विप्रगण स्वर्णथाल में भोजन करते हैं उन सबका प्रबन्ध मैं ही देखती थी। महाराज युधिष्ठिर के यहां ८८००० स्नातक गृहस्थ थे जिनके भरण-पोषण का जिम्मा उन्होने ले रखा था। उनमें से प्रत्येक की सेवा में तीस तीस सेवक दासियां रत थी। इनके सिवा १०००० हजार उर्ध्वरेता यति सन्यासी वहीं रहते थे उनके लिये स्वर्णथाल में परोस कर अन्न पहुंचाने का जिम्मा मेरा था। मैं उन सब वेदपाठी, वेदवादी ब्राह्मणों का आहार अर्पण कर भोजन, वस्त्र और जल के द्वारा उनकी यथायोग्य सेवा पूजा करती थी। युधिष्ठिर के एक लाख दास दासियों, सेवकों की देखरेख उनका भोजनादि की व्यवस्था इत्यादि का प्रबन्ध मेरा दायित्व था। वे सभी दास-दासियां नृत्य और गीत कला में निपुण और कौशल युक्त थी। उन सबके नाम रूप, आदि भली-भांति मुझे ज्ञात थे। किसने क्या काम किया और किसने नहीं किया यह कोई बात मुझसे छिपी नहीं रहती थी। महाराज युधिष्ठिर के दास-दासियां प्रतिदिन आये हुये अतिथियों को भोजन कराने की सेवा में रत रहती थी। जिन दिनों महाराज युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थ में रहते हुये इस पृथ्वी का पालन कर रहे थे उस समय उनके पास एक लाख घोडे और एक लाख हाथी थे जिनकी गणना मैं जानती थी और उनके लिये आवश्यक प्रबन्ध करती थी। अन्त:पुर के नौकरों, सेवकों तथा ग्वालों और गडरियों से लेकर सभी सेवकों के कार्यों की देखभाल मैं ही करती थी कि किसने कौनसा काम किया और कौनसा अधूरा रह गया। इन सब बातों की विस्तार रूप से जानकारी रखती थी।

हे मानिनी कल्याणी एवं यशस्विनी सत्यभामे महाराज युधिष्ठिर के आय व्यय और बचत के हिसाब की जानकारी मैं अकेली रखती हूं। हे वरानने पांडव लोग कुटुम्ब का सारा भार मुझपर सौंपकर पूजा पाठ उपासना में लगे रहते और आये गये का आदर स्वागत सत्कार करते थे और मैं सब प्रकार के सुख छोडकर उन सबकी सम्भाल करती थी। इस कार्य को दुष्ट स्वभाव के स्त्री-पुरुष नहीं कर सकते। मेरे धर्मात्मा पतियों का भरा पूरा खजाना वरुण के भंडार और परिपूर्ण महासागर के समान अक्षय एवं अगम्य था उसका पता भी सिर्फ मुझे ही था। मैं रात दिन भूख प्यास का कष्ट सहन कर कुरुकुल पांडवों की सेवा में लगी रहती उस समय मेरे लिये दिन रात समान हो गये। सत्ये मैं सबसे पहले उठती और सबसे पीछे सोती थी। यह पति भक्ति और सेवा ही मेरा वशीकरण मन्त्र है। पति को वश में करने का यही सबसे महत्वपूर्ण उपाय मैं जानती हूं जो तुम्हें बताया। दुराचारिणी स्त्रियां जिन उपायों का अवलम्बन करती है उन्हे मैं न तो जानती हूं और न ही मैं करती हूं तथा न ही मुझे अच्छे लगते है और न मैं चाहती हूं। निर्जन में अन्यपुरुष के साथ कभी समय नहीं बिताती। खल प्रवृति की स्त्रियों से सदा बचकर रहती हूं। पति के सामने स्वयं को सतेज, सुन्दर, चिर यौवना के रूप में रखने का प्रयास

करती हूं। पति के कारण ही हम सन्तानवती हैं, सौभाग्यवती हैं, गृहकर्ता और सुखी हैं। सख्य, सुरक्षा, सामाजिक मान एवं मातृत्व प्रदान में पति कभी कुंठित नहीं होते। सुभद्रा की तरह मैं भी पीहर में रह सकती थी, क्यों बनवास का दु:ख भोग रही हूं? पतियों का सुख ही हमारा नहीं है, उनका दु:ख भी हमारा है। दु:ख में विपदा में पति को साहस देना, शक्ति देना, स्त्री धर्म है। यह मेरा कर्तव्य है कि उन्हे यह अनुभव कराती रहूं कि मैं अपना प्रेम उन्हे सदैव प्रदान करती हूं।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय द्रौपदी की धर्मयुक्त बातें सुनकर धर्मपरायणा पांचाली का आदर करते हुये सत्यभामा बोली पांचाल राजकुमारी याज्ञसेनी मैं तुम्हारी शरण में आयी हूं। मैंने तुमसे जो अनुचित प्रश्न किया उसके लिये क्षमा करें। सखियों में परस्पर ऐसे हास-परिहास की बातें हुआ करती है। द्रौपदी की बात सुनकर सत्यभामा विस्मित हो उठी और बोली बस करो पांचाली। ये सब बातें करना तो दूर। हम से तो यह सब कुछ होने का नहीं। लगता है लायक और योग्य पत्नी हो सकना भी कोई एक साधना का फल है। द्रौपदी बोली यही तो भूल कर रही हो सत्या। कृष्ण तुम्हारे हो, यह क्यों नहीं सोचती कि तुम कृष्ण की क्यों नहीं बन पाती। बस इसी में तो वे तुम्हारे बंध जायेंगे। चन्द्रावली सखी गोपियों में अन्यतम है, कृष्ण की परम प्रेमिका। चन्द्रावली और श्री राधा में भागवत् भेद क्या है? चन्द्रावली का कृष्ण के प्रति भाव है त्वं ममैव अर्थात तुम मेरे हो। जब कि राधा कहती है तवैवाह अर्थात मैं तुम्हारी हूं। बस इसी भेद के कारण श्री राधा चन्द्रावली से श्रेष्ठ हो जाती है। मेरा भी कृष्ण के प्रति यही भाव है। मैं कहती हूं हे कृष्ण यह कृष्णा आपकी है। जन्म से ही यही भाव लेकर कृष्ण के प्रति मैं समर्पित हुई। मेरे इस समर्पण के भाव को जो लोग गलत समझते हैं वे अभी तक कृष्ण को समझ नहीं पाये। कृष्ण प्रेम मानवीय श्रृंगार धर्मी प्रेम नहीं है। इस बात को मेरे पति अच्छी तरह समझते हैं अत: कृष्ण प्रेम को वे अपना सौभाग्य समझते हैं। हे सखी मैं अपने स्वामी के मन का आकर्षण करने का तुम्हें एक उपाय सुझाती हूं जिसमें भ्रम अथवा छल कपट के लिये तनिक भी स्थान नहीं है। यदि तुम ठीक से इसी पथ पर चलती रहोगी तो अपने स्वामी के चित्त को अपनी सौतों से हटाकर अपनी ओर आकर्षित कर सकोगी।

सत्ये स्त्रियों के लिये देवताओं सहित सम्पूर्ण लोकों में पति के समान दूसरा कोई देवता नहीं है। पति के प्रमाद से नारी की सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण हो सकती है। यदि पति ही कुपित हो जाये तो वह नारी की सारी आशाओं पर पानी फेर देता है। सेवा द्वारा प्रसन्न किये हुये पति से स्त्रियों को उत्तम सन्तान, भांति भांति के भोग, शैय्या, आसन, सुन्दर वस्त्र, सुगन्धित पदार्थ, स्वर्गलोक तथा महान यश की प्राप्ति होती है। हे सखी इस जगत में कभी सुख के द्वारा सुख प्राप्त नही होता है। पतिव्रता स्त्री दु:ख उठाकर ही सुख पाती है। तुम सौहार्द्र, प्रेम, सुन्दर वेशभूषा, सुन्दर आसन, समर्पण, उदारता, सुगन्धित द्रव्य एवं व्यवहार कुशलता से श्याम सुन्दर की निरन्तर आराधना करती रहो। उनके साथ ऐसा बर्ताव करो जिससे वे ये समझे कि सत्यभामा को मैं ही अधिक प्रिय हूं। जब वे महल के द्वार पर आये और उनके आने की भनक कानों में पडे उसी समय उठकर खडी होकर उनके स्वागत के लिये तैयार रहो और जब वे आ जायें तो आसन दो और पैर प्रक्षालन के लिये जल देकर उनका सत्कार करो। यदि वे किसी काम के लिये दासी या सेवक को आज्ञा दे तो तुम स्वयं उठकर उनके सब काम करो। कृष्ण को ऐसा लगे कि तुम सब प्रकार उन्हे ही चाहती हो। तुम्हारे पति यदि तुमसे कोई ऐसी बात कहे जो छिपाने योग्य न भी हो तो भी तुम्हें उस बात को गुप्त ही रखना चाहिये। पति के जो प्रिय, स्नेही और हितैषी हों उन्हे तरह-तरह के व्यंजनों से प्रसन्न करो तथा जो उनके शत्रु उपेक्षणीय हो और अशुभ चिन्तक हो अथवा उनके प्रति कपट भाव रखते हो उनसे सर्वदा दूर रहो। दूसरे पुरुषों के समीप अहंकार और प्रमाद का परित्याग कर मौन रहकर अपने मनोभाव प्रकट मत होने दो। कुमार प्रद्युम्न और साम्ब यद्यपि तुम्हारे पुत्र हैं फिरभी तुम्हे एकान्त में कभी उनके पास नहीं बैठना

चाहिये। अत्यन्त ऊंचे कुल में उत्पन्न और पापाचार से दूर रहनेवाली स्त्रियों के साथ ही तुम्हे सखी भाव से रहना चाहिये। अत्यन्त क्रोधी, मदहोश, अधिक आहारवाली, चोरी की आदत वाली, दुष्ट और चंचल स्वभाव की स्त्रियों से मेल-जोल नहीं रखकर उन्हे दूर से ही त्याग देना चाहिये। इस प्रकार तुम अपने पति की सेवा करो। इससे तुम्हारे यश और सौभाग्य की वृद्धि होगी तथा अन्त में स्वर्ग प्राप्त करोगी और तुम्हारे शत्रुओं और विरोधियों का दमन होगा।

सुख के द्वारा सुख नहीं मिलता। सुख पानेके लिए दु:ख और श्रम करना पडता है। अत: अपने सुख, अपनी सुविधा, अपने सम्मानको भूलकर सदा प्रेम, परिचर्या, सौहार्द तथा कुशलतासे अपने स्वामीकी सेवा करो।

छल छलाये नेत्रों से दोनों हाथ पकड सत्यभामा बोली पांचाली बहनअपने पति तो जीते ही तुमने, तुमने तो कृष्ण को भी जय कर लिया। मेरे पति को तुमने जैसा समझा है वैसा तो हम कोई भी नहीं समझ पायी। कृष्ण मेरा है, कृष्ण मेरे है यही कहकर हम आठों पट्टरानियोंमें खिंचातानी चलती है और कृष्ण किसी के भी नहीं हो पाते। हमें द्वारिका में छोड वे बने हैं तुम्हारे। आज से तुम मेरी गुरु हुई। तुम्हारी सीख मान कर चलूंगी तो कृष्ण मेरे हो सकेंगे। द्रौपदी सुनकर हंस उठी और बोली सत्या फिर भटक रही हो। कृष्ण मेरे हो सकेंगे नहीं बोलो मैं कृष्ण की हूं। पता नहीं कबसे कृष्ण और अर्जुन यह सम्वाद सुन रहे थे। कृष्ण बोले लगता है अब सत्या की तरह उन आठों महारानियों को भी तुम्हारे पास ही भेजना पडेगा कृष्णा तभी उस खींचा तानी से मुझे छुटकारा मिल सकेगा।

**१५) कृष्ण-द्रौपदी सम्वाद-** द्रौपदी के निर्भीक, निडर, स्पष्टवादिता, साहसी ये गुण कृष्ण को अच्छे लगे। एक अद्‌भुत नारी। कृष्ण की वंशी की ध्वनि सुन नारी मात्र झूम जाती है, व्याकुल हो जाती है, बेसुध हो जाती है, खो जाती है और कृष्ण की वंशी के जादू भरे स्वर से द्रौपदी अप्रभावित रहती है। वेणु ही मौन कर दी। प्रभावहीन कर दी। इन सब गुणों से रीझकर कृष्ण द्रौपदी से बोले पांचाली तुम अद्‌भुत हो। तुम मेरी वंशी पर मुग्ध नहीं हो। मैं जिस कुशलता और बुद्धिमत्ता से दंडनीति का संचालन करता हूं तुम इसकी भक्त हो। तुम मेरी शक्ति पर मुग्ध हो। जिन विषयों से, वस्तुओं से, जिन गुणों से नारियां आकर्षित होती है तुम उनमें से नहीं हो कृष्णा। अन्य नारियों को कोमल मधुर ध्वनि कर्ण प्रिय है, सज्जा, विन्यास, आभूषण और अलंकार प्रिय है। कृष्णा तुम्हे तो टंकार प्रिय है, गांडीव की टंकार प्रिय है, हुंकार प्रिय है, पराक्रमी पुरुष की पुकार। समस्त स्त्रियां अपना सम्पूर्ण समय इस चर्चा में व्यतीत करती है। प्रेमचर्चा और श्रृंगार सज्जा में व्यतीत करती है पर याज्ञसेनी तुम तो उच्च कूटनीतिक, राजनीतिक चर्चा में व्यस्त रहती हो। दंड विधि एवं आचार शास्त्र की पंडिता, शास्त्रार्थ में सम्मिलित होती हो। पांडवों के राज संचालन का आधा भार तुम पर है। पांडव बन्धु तुम्हारे अमूल्य परामर्श के विपरीत कोई कार्य नहीं करते। तुम्हारे भीतर विलक्षण प्रतिभा है, अनूठे, अद्वितीय गुणों का समागम है। हां कृष्णे जिन नारियों से मेरी मित्रता है वह अधिकतर प्रेम अथवा श्रद्धा पर ही आधारित है, भावनात्मक धरातल पर आधारित है। तुमसे मेरी मैत्री वैचारिक अधिक है, तार्किक, बौद्धिक एवं सैद्धान्तिक धरातल पर है भावनात्मक नहीं। तुम भावनाओं में बहनेवाली नहीं हो। तुम हृदय से अधिक प्रेरित न होकर बुद्धि से प्रेरित हो। सत्यभामा में नारी सुलभ समस्त संस्कार हैं। स्त्रियोचित लक्षण विद्यमान है, वह मेरी भार्या है, अत्यन्त रूप गर्विता है, मानिनी है, मुझपर एकाधिकार बनाये रखने को सतत प्रयास रत रहती है। मेरी अन्य पत्नियों के प्रति उसके मन में स्वाभाविक ईर्ष्या है, प्रतिद्वन्दिन्ता है, प्रतिस्पर्धा है। छल कपट से भी वह प्रेरित होती है। मुझपर भी अभिचार तन्त्र, मन्त्र माया आदि का प्रयोग करती रहती है ताकि मैं उसके वश में रहूं। सत्यभामा में संग्रह की प्रवृति भी विकट है। इतनी अधिक की वह तो देवराज इन्द्र के कानन

का कल्पवृक्ष भी मांग लायी अपनी तुष्टि के लिये। किसी में साहस है जो उस अभिमानी की बात को पूरा न कर सके? रूष्ट हो गई तो जाकर सो जायेगी सात प्रकोष्टों के भीतर कोप भवन में, मेरे लिये तो भोजन पाना भी दुर्लभ हो जायेगा। मान अभिमान की स्पर्धा में तो उसे कोई जीत भी नहीं सकता कौन उसकी मनुहार कर सकता है। मैं तो बस हाथ जोडे खडा रहता हूं इस भवानी के आगे। यह कहकर कि जो आज्ञा शिरोधार्य। पांचाली यह जानती थी तभी तो सत्यभामा द्रौपदी से मन्त्र-तन्त्र पूछ रही थी पति को वश में करने के लिये।

कृष्ण बोले- कृष्णे सत्यभामा का इसमें कोई दोष नहीं। अधिकांश स्त्रियां इसी कोटि की होती है। मेरी प्रिया राधा प्रेम, श्रद्धा एवं त्याग की मूर्ति है। राधा केवल देना जानती है। दान की उसकी क्षमता अटूट है, अपार है और प्रतिदान की अपेक्षा भी नहीं करती। कृष्णा एक नारी तू है। तेरी जैसी कोई नहीं। विद्या, दंडनीति, विधिनीति एवं धर्म की प्रकांड पंडिता, कुशाग्र बुद्धि। साक्षात इडा है, तू धरातल पर तेरे पांचों पतियों में से कोई उस ऊंचाई को नहीं पा सकता। बौद्धिक एवं वैचारिक दृष्टि से तू उनसे बहुत ऊपर है कृष्णे। यह मुझे बडी रूचिकर लगती है कि तू कितनी भिन्न है अन्य स्त्रियों से और तू वीर है, साहसी है, सहनशील है अन्य नारियों की भांति भीरू नहीं हो। उचित को उचित और अनुचित को अनुचित कहनेवाली स्पष्टवादिनी हो, निडर और निर्भीक। अर्जुन और सभी पांडव धन्य है तुम्हें पाकर। तू ही उनकी मूल प्रेरणा शक्ति है, तेरी बुद्धि कुशाग्र है।

द्रौपदी बोली बस करें वासुदेव, अब और नहीं बस मैं धन्य हूं। स्वयं आप श्री मुझपर कृपालु हैं।

द्रौपदी के मन में बार बार यही आता है दाम्पत्य जीवन कोई भाइयों वाला बंटवारा तो है नहीं जो बडे भाई छोटे भाई के अनुपात में अपना स्नेह, ममता, प्रेम और मान का बटवारा कर पांचो भाइयों को उनका हिस्सा थमा दे। एक समय में एकाधिक पति की पत्नी की भूमिका में उतरना अत्यन्त पीडादायक और निन्दनीय है। नारी होती है जननी जाया और भगिनी। जननी और भगिनी के रूप में हर समय सभी पांडवों के पास कर्तव्य सम्पादित करे। बन्धु पत्नी के अनुरोध के आगे पत्नी का मोह युग युग से तुच्छ माना गया है। अपूर्णता की जगह अपमान किसी भी पुरुष के लिये अधिक कष्टदायी होता है। जो अग्नि से जन्मी है वह आग से क्या भय करेगी। मन की ज्वाला से देह की ज्वाला बहुत हल्की होती है।

द्रौपदी पूछ रही थी माधव। आप मुझ पर इतने प्रसन्न हैं, इसीलिए आप भी मेरे प्रति हुए अन्याय में भागी हुए।

कृष्ण बोले- अन्याय। तेरे प्रति? कैसा अन्याय कृष्णे?

द्रौपदी बोली- तभी तो मैंने कहा कि आप अद्‌भुत हैं। आपका हर कार्य अद्‌भुत होता है जिसे मेरी जैसी सामान्य बुद्धिवाला व्यक्ति समझ ही नहीं सकता। किन्तु उसकी विलक्षणता पर अभिभूत अवश्य हो उठता है। मेरे प्रति क्या अन्याय हुआ, यह भी आपको ज्ञात नहीं? बुद्धि और विद्या एक ओर है गोविन्द। किन्तु... अन्तत: तो मैं नारी हूँ। स्त्रियोचित समस्त दुर्बलताएँ, कोमलताएँ और कठोरताएँ सभी मेरे अन्तर में विद्यमान हैं। मेरे प्रति अन्याय हुआ- यह भी क्या आप नहीं जानते? क्योंकि आपने भी तो उस अन्यायपूर्ण कार्य को उचित ठहरा दिया जिसे वेद-उपनिषद, पुराण अब तक अनुचित कहते आये? आप विलक्षण हैं, अद्‌भुत हैं। पूरे इतिहास, धर्मशास्त्र और आचारशास्त्र को आपने झुठला दिया? वह भी कैसे सहज, सरल भाव से अत्यन्त स्वाभाविकता के साथ। धन्य हैं माधव। आप जैसा तो इस धरा पर न कोई अवतरित हुआ, न कोई होगा।

कृष्ण बोले- तुम्हारी इस प्रखरता... और वाक्‌पटुता का ही तो मैं भक्त हूं कृष्णे। तुम ऐसे कह रही हो, जैसे मैं बड़ा धूर्त हूँ, कुटिल हूँ, किन्तु जिसे तुम अन्याय कह रही हो, वह एक राजनीतिक अनिवार्यता थी और राजनीति अथवा राजधर्म तो

सभी शास्त्रों का शिरोमणि है, यह तो तुम जानती ही हो। नीति बाद में है। धर्म बाद में है। परिवार भी बाद में। सर्वप्रथम राजधर्म है। और पांचाली। यह अत्यन्त दूरदर्शिता के साथ, भली भांति सोच-समझकर किया गया है। अन्याय जिनके प्रति हो चुका है, उन्हें न्याय दिलाने के लिए तुम्हारा विलक्षण विवाह आवश्यक था।

पांचाली। कृष्णे। कौरव सौ भाई हैं। उनके वृद्ध पिता हस्तिनापुर के महाराज हैं। उनकी वृद्धा माँ भी हैं। वे सब एक हैं। एकता के सूत्र में आबद्ध। वह एकता का सूत्र है- राजसिंहासन, राजसत्ता, राजमुकुट। अन्यायपूर्वक उपलब्ध इस राज्य की रक्षा हेतु, उसे अपने लिए बनाये रखने को वे सदा एक रहेंगे, एक होकर भयंकर से भयंकर शत्रु का सामना कर लेंगे। किन्तु दूसरी ओर? पाण्डवों के पास क्या है? यह खाण्डवप्रस्थ। स्वेच्छा से कौरवों का दिया हुआ? वे लोग कपटी हैं, धूर्त हैं, उनपर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता और कौरव छल-प्रपंच से कभी भी पाण्डवों को खाण्डवप्रस्थ से वंचित कर सकते हैं। पाण्डव अति सज्जन हैं, धर्मात्मा हैं। पाण्डव छिन्न-भिन्न हो जाएँगे। उनको एक करनेवाला कोई तत्त्व नहीं।

द्रौपदी बोली- क्यों मधुसूदन? जिस प्रकार महाराज धृतराष्ट्र एवं माता गान्धारी कौरवों के लिए एकतासूत्र हैं, माता कुन्ती पाण्डवों के लिए हैं। और ये पाण्डव बन्धु वास्तव में एक-दूसरे के प्रति अगाध प्रेम रखते हैं। यह परस्पर प्रेम ही उनकी एकता का सूत्र है।

कृष्ण बोले- भातृत्व अथवा बन्धुप्रेम कई बार स्थायी नहीं हो पाता कृष्णे। धर्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन एवं सव्यसाची- तीनों पिता पाण्डु आर्या कुन्ती के पुत्र हैं। नकुल एवं सहदेव देवी माद्री के सुपुत्र हैं। साम, दाम, भेद, दण्ड- चारों उपायों का अवलम्बन राजन्यगण लेते हैं। यदि कौरव चाहें पाण्डवों में भेद डालना तो उनके लिए कुन्ती-पुत्रों एवं माद्री-पुत्रों को पृथक् करना अधिक कठिन न होगा। माद्री-पुत्रों को प्रलोभन देकर, उच्च पद एवं राजसत्ता आदि देकर कुन्ती-पुत्रों से उन्हें विमुख किया जा सकता है। यह क्या बहुत दुरूह है? राजनीति की गति बड़ी जटिल और रहस्यमयी होती है- जहाँ बड़े-बड़े ज्ञानी भी बिना समझे फँस जाते हैं। विशेष रूप से कृष्णे। दुर्दिन में स्वार्थवश सहोदर भी अपना नहीं हो पाता। अरे तुम ही तो पाण्डवों की एकता की सूत्र हो। पाँचों को एकसाथ बाँधे रखनेवाली श्रृंखला। ऊपर से उन्हें दिखे कि कितनी मृदुल श्रृंखला में बँधे हैं वे- और वास्तव में मुझे ज्ञात है कि पाँचों कैसी लौह- श्रृंखला में जकड़ गये हैं। वे पाण्डव बन्धु तुम्हारे लिए प्राणोत्सर्ग भी कर सकते हैं। उन्हें प्रेरणादायिनी स्रोत की, शक्ति की एवं एकता की आवश्यकता है। तुम उन्हें एक रखो कृष्णे।

द्रौपदी बोली- आप तो स्वयं भविष्यद्रष्टा हैं केशव। अपनी योगशक्ति से देख पा रहे हैं तो अभी ही क्यों नहीं बता देते कुछ?

कृष्ण बोले- देख पा रहा हूँ कृष्णे। तभी तो कह रहा हूँ। पाण्डव सज्जन हैं, धर्मोन्मुख हैं- यह गुण उनके लिए भविष्य में दुर्बलता बन सकता है। विशेष रूप से धर्मराज युधिष्ठिर अत्यन्त सरल संकोची एवं धर्मभीरु हैं। पाण्डवों को एक शक्तिशाली आधार चाहिए, सम्बल चाहिए। एक सशक्त मेरुदण्ड चाहिए। नहीं तो ये अपनी उदारता एवं उच्च मानवीय गुणों के कारण विषम चक्र में फँस जाएँगे। वह शक्ति तुम ही हो पांचाली।

द्रौपदी बोली- माधव, किस कार्य के लिए हेतु बनाकर पाँच पतियों की सामान्य भार्या तो मुझे बना दिया गया किन्तु मेरा धर्मसंकट कोई समझा? मैं कैसे सबसे समान व्यवहार कर सकती हूँ? अपने अन्तर की नारी कैसे मार दूँ?

कृष्ण बोले-हाँ। मैं इस तथ्य से भलीभाँति अवगत हूँ कि गाण्डीव की टंकार करनेवाले धनंजय पर तू मन-प्राण से न्यौछावर है। तू नहीं जानती क्या मेरी तो कितनी पत्नियाँ हैं।

द्रौपदी ने कहा- और आप क्या उन सबको समान रूप से प्रेम करते हैं?

कृष्ण ने कहा- किन्तु कृष्णे। मेरी वे एक सौ आठ रानियाँ- सभी मुझसे सन्तुष्ट हैं।

द्रौपदीने कहा- मैं तो आपके मन की बात पूछ रही हूँ आपको क्या सब समान रूप से प्रिय हैं? आप समान रूप से सबको स्नेह करते हैं? नहीं करते। कर नहीं सकते। सच कहिए वासुदेव। आप अन्य की तुलना में देवी रुक्मिणी को, सत्यभामा को, जाम्बवती को, लक्ष्मणा को और मित्रविन्दा को अधिक नहीं चाहते? और वह... वह वृन्दावन की परम सौभाग्यशालिनी गौरी तो विवाहित पत्नी न होते हुए भी आपकी सर्वस्व है।

कृष्ण बोले- सच कहती हो याज्ञसेनी।

द्रौपदी ने कहा- किन्तु गोविन्द। इतनी बड़ी संख्या में पत्नियाँ। मुझे तो इसका कोई औचित्य नहीं दिखता।

कृष्ण बोले- हाँ याज्ञसेनी। अपने हर कार्य का औचित्य तर्क से सिद्ध करना ही पड़ेगा मुझे। तेरी आलोचना से कोई बच सकता है क्या? कृष्णे। नरकासुर ने सौ राजकन्याओं को अपने महल में बन्दी बना रखा था। ये राजपुत्रियाँ उच्च कुलों की थीं। अत्यन्त अल्पवयस थीं। सुनीता थीं। सुशीला थीं। उनमें कई अविवाहिताएँ थीं, कई विवाहिताएँ थीं जब भौमासुर उन्हें अपहृत कर लाया था। उनमें से कुछ अबोध बालाओं के साथ भौमासुर ने बलपूर्वक विवाह भी किया था। नरकासुर के वध करने के बाद इतनी बड़ी संख्या में उन अरक्षित, असहाय एवं व्याकुल रमणियों को देख मैं चौंक गया। मुझे अचम्भा हुआ, पश्चाताप भी। किन्तु उस दुष्ट का वध तो करना ही था। मैं विचलित हो उठा यह सोचकर कि इन निरपराध, निर्दोष एवं निष्पाप राजकन्याओं का भविष्य अब क्या होगा। कौन उनका भरण-पोषण करेगा? उन सुकुमार नववयस सुकन्याओं के अरक्षित एवं वैधव्यपूर्ण जीवन की विभीषिका की कल्पना करके आतंकित हो उठा। उनका दायित्व सँभालने, उनका भरण-पोषण करने कोई वीर आगे न बढ़ा। उनके पितृकुलों ने उन्हें अस्वीकार कर दिया। उनके पतियों ने उन्हें अस्वीकार कर दिया। और वे निष्पाप थीं। पांचाली वे तो उस राक्षस की बलपूर्वक बनायी गयी बन्दिनी थीं। वे गाय-सी सीधी-सरल एवं दु:खविह्वल थीं। मैंने सोचा, मैं ही उनके ऐसे दुर्भाग्य का हेतु हूँ तो लोकनिन्दा की उपेक्षा कर, आगे बढ़कर मुझे ही उनका उद्धार करना चाहिए। मैंने उन्हें अपनाया, आश्रय दिया। पत्नीपद दिया। सम्मान दिया। सौभाग्य दिया। क्या यह अनुचित है?

पांचाली अश्रुविगलित हो उठी। कैसा विशाल हृदय है इस महापुरुष का। संवेदनशील। धन्य हो दयानिधे। कैसा चमत्कारपूर्ण पौरुष कि वास्तव में लोकनिन्दा का भय त्याग उन अल्पवयस बन्दिनियों एवं विधवाओं को संरक्षण ही नहीं, उन्हें सम्मान एवं सौभाग्य से विभूषित कर दिया। वे भौमासुर की पत्नी हैं अथवा उसकी बन्दिनी रही हैं इसलिए श्रीकृष्ण की पत्नी नहीं हो सकतीं, ऐसा कोई विचार ही नहीं मन में और श्रीराम ने लोकनिन्दा के कारण स्वयं भी दारुण वेदना का विषपान किया और रावण की बन्दिनी रही महासती भगवती सीता का इसी आधार पर परित्याग कर दिया था। धन्य हो महामना। महाप्राण।

द्रौपदी बोली- इस महान् परोपकारी कार्य की कौन निन्दा कर सकता है माधव। परन्तु केशव। मैं तो पुरुष नहीं। मेरे अन्दर तो नारी-हृदय है। पुरुष के तो कई पत्नियाँ प्राय: होती हैं। अपवाद केवल दशरथनन्दन श्रीराम ही थे जिन्होंने भगवती सीता का परित्याग करके भी कठोर एक-पत्नीव्रत का आजीवन पालन किया।

कृष्ण ने कहा- श्रीराम से मेरी तुलना न करो पांचाली। वे पुरुषोत्तम थे- मर्यादा पुरुषोत्तम। वह युग त्रेतायुग, एक श्रेष्ठतर युग था जिसका महात्मा राम प्रतिनिधित्व करते थे। अब हम एक सोपान नीचे आ गये हैं। आदर्शों एवं मूल्यों में ऱ्हास हुआ है। मनुष्य एवं लोक का नैतिक पतन हुआ है। हम लोग द्वापरयुग में हैं। अर्थात् कलियुग के द्वार पर?

द्रौपदी बोली- तो जनार्दन। कहीं मुझे कलियुग की ही तो प्रतिनिधि नारी का रूप नहीं दिया गया? जो कुछ नैतिक दृष्टि

से सतयुग में उचित न माना गया, त्रेता में उचित न माना गया उसे मेरे लिए उचित ठहराया गया?

कृष्ण बोले- नहीं कृष्णे। ऐसा नहीं। पाँचों पाण्डवों में प्रेरणा फूँकने के लिए तुम्हारी आवश्यकता थी। तुम अपनी ज्योति से उन पाँचों के हृदय आलोकित कर सकोगी, समय आने पर उनमें शक्ति एवं शौर्य संचार कर सकोगी।

द्रौपदी ने कहा- यह तर्क मुझे नहीं समझ में आया। वे तो वीर हैं ही। आर्य भीम महाबली हैं। आर्य सव्यसाची पराक्रमी हैं। फिर कैसा भय? इतने। या नितान्त शौर्यशून्य। मेरा कहना उचित नहीं... किन्तु मधुसूदन... जिन्हें आपने धर्मराज के विरुद्ध से मण्डित कर रखा है, वे तो कदापि वीर नहीं।

कृष्ण ने कहा- वे धर्मराज हैं। उनके लिए वीर होना आवश्यक नहीं। उनका केवल धीर होना पर्याप्त है? हाँ, वे धैर्यवान् हैं, सहनशील हैं। सज्जन, सरल और धर्मोन्मुख हैं। वे आवेश एवं क्रोध से दूर, महान् शान्तिप्रिय व्यक्ति हैं। उनका दृष्टिकोण परम उदार एवं शुद्ध मानवतावादी है। उनके समान क्षमाशील एवं करुणामय कोई दूसरा नहीं विश्व में। वे शान्तिदूत हैं, इसलिए असाधारण हैं।

कृष्ण समझ गये थे कि पांचाली की तीक्ष्ण बुद्धि एवं आलोचनात्मक दृष्टि से उनकी कोई चाल छिपी नहीं रह सकती। प्रत्येक बात का स्पष्टीकरण। प्रत्येक बात का औचित्य। प्रत्येक बात को वह नीर-क्षीर की कसौटी पर कसती है। तर्क और प्रमाण से ही सन्तुष्ट हो सकती है। वे मुग्ध थे।

कृष्ण बोले- एक सीमा तक यह भी एक कूटनीतिक अनिवार्यता है। तुमसे कुछ भी छिपाना व्यर्थ है। पाण्डवों के पास धन नहीं, सत्ता नहीं, राज्य नहीं, मान्यता नहीं। अभी जो कुछ है, उस पर अधिक विश्वास करके अवलम्बित नहीं रहा जा सकता है। और केवल गदा एवं गाण्डीव से उद्देश्यपूर्ति नहीं हो पाती।

द्रौपदी बोली- इसलिए आर्यपुत्र युधिष्ठिर की समस्त दुर्बलताओं पर धर्मराजरूपी आवरण डाल दिया आपने?

कृष्ण बोले- किन्तु वे दुर्बल कहाँ याज्ञसेनी? उन्हें साधारण मनुष्य न गिनना। तुम अर्जुन एवं भीम की तुलना में कह रही हो?

द्रौपदी बोली- वे दुर्बल हैं। किसी से तुलना करके नहीं कह रही किन्तु क्षत्रियोचित गुणों का उनमें अभाव निश्चित रूप से है। कैसे? वे अपने प्रति, अपने परिवार के प्रति बालपन से होते आ रहे अन्यायों से विचलित नहीं होते। वे स्वयं को किसी भी स्थिति में अपमानित नहीं पाते। वे द्यूत-विलासी हैं। और तो और, ईश्वर मुझे क्षमा करे... किन्तु मुझे सदा ही इस बात से आश्चर्य होता रहा है कि महायशस्वी स्वर्गीय महाराज पाण्डु के ज्येष्ठ पुत्ररत्न एवं युवराज को किसी भी राजा ने अपनी पुत्री सौंपने की इच्छा नहीं की। कोई राजकन्या स्वयं भी उनकी ओर आकृष्ट नहीं हो पायी। न ही वे अपने शौर्य एवं पराक्रम से ही अपने लिए किसी नारी-रत्न को खोज पाये।

कृष्ण बोले- क्यों, तुम तो हो उनकी नारी-रत्न।

द्रौपदी बोली- मैं। उनका नारीरत्न। मुझे तो आर्य अर्जुन जीतकर लाये थे स्वयंवर से। और मैंने उनको ही वरा था। गोविन्द... अन्तर्यामी से क्या छिपा है। मेरे मन में तो अर्जुन ही हैं। कैसी विडम्बना। कैसा दुर्भाग्य है मेरा। मेरे अन्तर की नारी मरती नहीं गोविन्द... क्या करूं?

द्रौपदी सहसा बोल उठी- जनार्दन। आप सदा प्रसन्नवदन रहते हैं, उल्लास बिखेरते हैं, क्रन्दनरत दु:खी हृदय को भी हास्यपूरित कर सकते हैं, किन्तु कई बार कितने गम्भीर, खिन्न मन और उदास से एकान्त में बैठे रहते हैं, सुदीर्घ अवधि तक। अचल। पुरातन हिमराज की भाँति। क्या चिन्तन करते हैं? कभी-कभी अट्टहास करते हुए अचानक मध्य में ही आप गुरुगम्भीर हो उठते हैं और विषाद तथा पीड़ा के भाव आपके मुख पर स्पष्ट उभर आते हैं। माधव। यह कैसी विचित्र

पीड़ा है आपके अन्तर में? कैसा क्लेश। जिसे किसी को बताते भी नहीं। एकाकी ही किस कारण व्यथापान करते जाते हैं? इस वेदना का कारण क्या... मूल क्या अच्युत?

कृष्ण ने कहा- कृष्णे। स्थिति अत्यन्त गम्भीर दिख रही है। मैं देख रहा हूँ। धरा पर कालमेघ की भाँति अधर्म छाया जा रहा है। कालभुजंग-सा धरा को घेरे ले रहा है अधर्म। वसुन्धरा के निर्मल उज्ज्वल सौन्दर्य पर जैसे राहु की कालिमायुक्त छाया प्रतिपल बढ़ रही है। धर्म-नक्षत्र डूबे जा रहे हैं। मानव तो श्रेष्ठ जाति है, सृष्टि की अनुपम कृति। और मानव श्रेष्ठ है धर्म के कारण। धर्म ही मानव का आभूषण है- किरीट है। धर्म न रहेगा तो मानव नष्ट हो जाएगा। मानव नष्ट हो जाएगा तो सृष्टि में शेष क्या रहा?

द्रौपदी बोली- किन्तु वासुदेव। आप तो ऐसे चिन्ता कर रहे हैं जैसे समस्त सृष्टि का भार आप ही पर हो। सच बताएँ माधव आप अवतार हैं?

कृष्ण बोले- यह तो समय ही बताएगा। किन्तु कृष्णे, मैं विचलित हो उठता हूँ देखकर कि धर्म-ध्वजा झुकी जा रही है। दुराचार, दुष्प्रवृत्ति, दुष्कर्म आदि वर्षा-प्लावन का रूप धारण किये ले रहे हैं। भारती। मुझे चिन्ता है कि नियम-अनुशासन भंग हो रहे हैं। कोई भी धर्माचरण एवं नैतिकता को नहीं मान रहा है? कहीं अन्त है इसका?

द्रौपदी ने कहा- क्या देख पा रहे हैं वासुदेव?

कृष्ण ने कहा- देख रहा हूँ द्वार पर खड़ा कलियुग। भयंकर कापालिक-सा। शीश से कटि तक लटकती रक्तवर्णी दीर्घ रूखी जटाएँ। निर्वस्त्र। नग्न। हिंसक पशु-सा। किन्तु कण्ठ में असंख्य स्वर्णमालाएँ। हाथ में नग्न रक्तरंजित खड्ग। क्रूर पाशविक मुखाकृति। मदोन्मादी हिंसक नेत्रों में बीभत्स भाव। कण्ठ में धारे है चरम भौतिकता। जड़ता। और प्रवेश को आतुर। अधीरता से गहन उच्छवासें भरता कि कब प्रवेश पा जाये तो अपनी विराट अधर्मी ज्वालाओं से भस्मीभूत कर डाले मानव-सौन्दर्य, सृष्टि-सौन्दर्य, धर्म-सौन्दर्य। अनाचार फैलाकर नष्ट कर डाले धर्म का शेष तत्त्व भी। मुझे सन्देह हो उठता है कहीं उसने द्वार पार कर द्वापर में एक पैर रख तो नहीं दिया? अभी उसके आने में विलम्ब है। जब तक मैं हूँ अधर्म फल नहीं पाएगा। मैं उसका काल बना बैठा न रहूँगा सुदर्शनचक्र धारे। और कृष्णे। इन धर्मपालक, धर्मरक्षक नरेशों को क्या हो गया है आज। कैसे कुकृत्यों में संलग्न हैं वे। प्राचीन मान्यताएँ, सिद्धान्त, यम-नियम, विधान सब जैसे क्षीर सागर में डुबो दिये। ये प्रजापालक हैं? उद्दण्ड। स्वेच्छाचारी, सिद्धान्तहीन। निरंकुश शासक। न प्रजापालन करते हैं, न धर्मपालन। रक्षक ही भक्षक बन गये हैं। ये प्रजा के समक्ष क्या आदर्श, क्या दृष्टान्त रख सकते हैं? स्वयं उच्छृंखल एवं अनुशासनहीन हो अधर्मरत हैं ये तो। इन क्षत्रिय नरेशों ने समूचे भूतल पर अनाचार मचा रखा है। विधि, न्याय, दण्ड, राजधर्म सबकी घोर उपेक्षा हो रही है इन मदान्ध महीपालों द्वारा।

पांचाली बोली- वासुदेव, आप तो अधर्मी शासकों का वध करते आये हैं। आपने मथुरानरेश कंस का वध किया। अभी राजसूय यज्ञ में शिशुपाल का वध कर चुके हैं, और...

कृष्ण बोले- ये तो कुछ भी नहीं, भारती। यह तो अन्त का आदि मात्र था। धृतराष्ट्र के शतपुत्रों के कार्यकलाप देखो। वे कैसे राजमद से स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश हो उठे हैं। उनपर किसी का नियन्त्रण नहीं। माता, पिता, गुरु किसी को नहीं मानते वे। धर्म-विधान भी नहीं मानते। सत्परामर्श भी नहीं। मन्त्रणा भी नहीं। मुझे भय है, ये नहुष, वेन, कंस, शिशुपाल, जरासन्ध एवं दशमुख रावण जैसे आततायी शासकों के पदचिन्हों पर अपने विनाश हेतु ही अग्रसर हो रहे हैं। स्वार्थ, भोग-विलास एवं अनाचार में लिप्त। केवल सुख, मदपान, सत्ता एवं अधिकार- ये इनके आदर्श हैं। कर्तव्य नहीं, धर्म नहीं। और

भारती। तुझे आश्चर्य नहीं होता देखकर कि इनका कोई विरोध नहीं करता। धर्मरत राजा भी विरोध नहीं करते। यह भी एक पतनोन्मुखी प्रवृत्ति है कि क्षत्रियत्व का भी ऱ्हास हो रहा है। धरा शौर्यहीन हो रही है। सिंह जैसे सिंहत्व खोकर भेढ बने जा रहे हैं- क्षत्रिय ऐसे क्षत्रियत्व खोये दे रहे हैं। जो धर्मरत हैं, वे दुर्बल हैं इस प्रकार। जो अधर्मी हैं, वे प्रबल हैं इस प्रकार। तो वसुधा का उद्धार कैसे होगा? धर्म का उद्धार कौन करेगा? शान्त बैठकर अनाचार नहीं देखूँगा, सुमंगले। वृथा जन्म नहीं लिया मानव-शरीर में। वृथा अवतरित नहीं हुआ हूँ धरा पर। कुछ विशिष्ट प्रयोजन पूर्ण करना होगा।

पांचाली बोली- क्यों नहीं इनका मूलोच्छेदन कर देते अपनी योगशक्ति से गोविन्द?

कृष्ण बोले- नहीं कृष्णे योगशक्ति का प्रयोग मैं जब-तब नहीं करता। शक्ति संचित रहनी चाहिए। उसका दुरुपयोग अथवा अपव्यय नहीं होना चाहिए। भारती। मैं योगशक्ति से मारता नहीं जिलाता हूँ। योगशक्ति को पुनर्जीवित करने हेतु प्रयुक्त करता हूँ। जब जिसकी आवश्यकता हो। जो अधर्म से मारा गया हो। भविष्य बताएगा। मैं योगशक्ति से नहीं मारता। लोकशक्ति से मारता हूँ। धर्म की पुन:स्थापना, धर्म का पुनरभ्युदय। साधुओं-सज्जनों की दु:खमुक्ति। दुष्टों का विनाश। अधर्मियों को दण्ड। नैतिकमानदण्डों की पुन:स्थापना नैतिक मूल्यों की पुन:स्थापना। कृष्णे। बोल, तू बनेगी मेरी सहयोगिनी? देवकीनन्दन श्रीकृष्ण की गहन दृष्टि एकटक पांचाली का अन्तस्तल तक भेद गयी।

द्रौपदी बोली- आपकी सहयोगिनी?

कृष्ण ने कहा- हाँ। मैंने तेरा चयन किया है। धर्मध्वजा को उठाकर चलनेवाला व्यक्ति शक्तिवान और सबल होना चाहिए। तू चल सकेगी कर्मपथ पर- बिना गिरे बिना झुके?

द्रौपदी बोली- माधव। बताते नहीं आप वास्तव में अवतार हैं? अवतार पुरुष हैं क्या? वार्ष्णेय। मैं तो कृतकृत्य हो गयी आपकी कृपा से किन्तु मैं अकिंचन हूँ। क्यों भूले जा रहे हैं अपनी प्राणवल्लभा, वृन्दावनवासिनी, अपनी आराधिका श्री राधिका को राधाधिराज?

कृष्ण बोले- राधारानी का उल्लेख आज बहुत हो गया। क्यों व्यथित करती है कृष्णे? ज्ञानवती होकर भी। भारती। प्रत्येक का अपना निर्दिष्ट कर्म है- उसके स्वभाव के अनुरूप, चरित्र-गुण के अनुरूप। सबका अपना-अपना धर्म है। राधा का कार्यक्षेत्र पृथक् है। उसका धर्म पृथक् है, कर्म पृथक् है। राजा ने जगत् को भक्ति का सन्देश दिया है। भविष्य में भी वह भक्ति की ही स्रोत रहेगी, प्रेरणा बनी रहेगी। भक्ति का दायित्व राधिका ने जिस परिपूर्णता से निर्वाह किया है, मैं उससे चकित हूँ, यह दृष्टान्त अनुपम है, अद्वितीय है। किन्तु अब मुझे चाहिए द्रौपदी, जो जगत् को शक्ति का सन्देश दे सके। उनको, जो धर्मानुयायी होते हुए भी दुर्बल हैं, जो योग्य होते हुए भी अकर्मण्य हैं, ऐसे दिशाहारे भ्रमित जनों में शक्ति संचार करने हेतु। जो धर्मरत हैं किन्तु कर्मरत नहीं- उनको शक्ति का सन्देश, ओज का सन्देश, कर्तव्य का सन्देश देने का दायित्व तुझे सौंपना चाहता हूँ। तेरे अन्दर वह प्रखरता, बुद्धिमत्ता, साहस, शौर्य एवं विलक्षण तेज है जो समूचे विश्व को दहका उठे। बोल कृष्णे कर सकेगी मेरे साथ धर्मस्थापना का पुण्य कर्म? नवीन विषयवस्तु। नवीन विचार। अपने अन्तर की ये बातें वासुदेव किसी से नहीं कहते जो आज उससे कह रहे थे। वह अभिभूत थी।

द्रौपदी बोली- मैं तो मन्दबुद्धि हूँ, मधुसूदन। अबला हूँ। स्पष्ट बताएँ, क्या करना होगा?

कृष्ण ने कहा- विद्रोह। और भारती। तू अबला नहीं। तुझे सबला बनाकर प्रस्तुत करूँगा। तुझमें शक्ति का अथाह स्रोत है। तुझे द्वापरयुग की सर्वाधिक शक्तिशाली महिमामयी नारी बनाकर प्रस्तुत करूँगा विश्व के समक्ष। हाँ भारती। विद्रोह। मैं जन्मजात विद्रोही रहा। निरंकुशता के विरुद्ध, आततायी शासकों के विरुद्ध। दमन एवं अत्याचार के विरुद्ध।

शोषण एवं उत्पीड़न के विरुद्ध। सिद्धान्तहीनता व अधर्म के विरुद्ध। अन्याय एवं स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध। देखा नहीं, कंस ने क्या दुर्दशा कर रखी थी अबोध निरीह ब्रजवासियों की? मधुपुरी के तपोनिष्ठ ब्राह्मणों की? उनको मैंने संगठित किया नेतृत्व दिया। तो वे नि:शस्त्र ग्रामीण, वे गोप-ग्वाले कितने शक्तिशाली सिद्ध हुए। और विद्रोह सफल हुआ।

द्रौपदी बोली- माधव, दुर्गम से दुर्गम पथ पर भी चल सकूँगी, शक्ति तो आपकी ही रहेगी। बल आपसे मिलेगा। पथप्रदर्शक, मार्गदर्शक तो माधव हैं। आप ज्योतिस्तम्भ-सम साथ रहेंगे तो अन्धकार में भी धर्मध्वजा उठाकर चल सकूँगी। झुकूंगी नहीं।

कृष्ण बोले- मैं तो सदा साथ रहूँगा, भारती। किन्तु मात्र मेरे साथ रहने से तू पूर्ण मनोयोग से कर्म न कर सकेगी।

द्रौपदी बोली- ऐसा न कहें माधव। ऐसा आक्षेप न लगाएँ कि मैं पूर्ण मनोयोग से आपका बताया कार्य न कर सकूँ।

पांचाली का उद्वेलित मन शान्त हुआ समझकर, लोकशक्ति से ही विनाश होगा अधर्मियोंका। अर्जुन धर्मात्मा हैं। वे धर्मरथ पर आरूढ़ होंगे। मैं तो मात्र सारथी बना रहूँगा। मैं संचालन करूँगा, कर्म वे करेंगे। अर्जुन वध करेंगे। तू विविध प्रकार के कार्य करेगी। कभी भीमसेन की हुंकार बनना, तो कभी गाण्डीव की टंकार। कभी भर्त्सना, तो कभी चुनौती। कभी रणभेरी, तो कभी रणचण्डी। कभी बन उठना मेरे पांचजन्य का रोमहर्षक उद्घोष तो कभी वैजयन्ती-पताका। किन्तु सदा, हर स्थिति में निरन्तर फहराती रहना। समझ ले, श्वेतवाहन के श्वेत अश्ववाले धर्मरथ पर सतत फहराती ध्वजा है तू। हाँ-हाँ, वानरी बना दूँगा तुझे। और वासुदेव भी हँस पड़े वेग से। कभी-कभी तुझे वानरी भी बनना होगा नहीं तो किट-किटाएगा कौन शत्रुओं पर? बीच-बीच में क्रोध से किटकिटा-किटकिटा पड़ना दुष्टों पर। हाँ, अपने प्रियतम पर भी किटकिटाती रहना बीच-बीच में- बस। फिर पार्थ सही मार्ग पर लगा रहेगा।

द्रौपदी बोली- लेकिन केशव। आप ऐसा वर्णन कर रहे हैं जैसे हम सब किसी युद्धक्षेत्र में हों तो क्या युद्ध होगा? क्या नरसंहर होगा? तो मुझे नरसंहार का निमित्त बनाएँगे लीलामय? रक्तपात का हेतु? वह भय एवं आशंका से विचलित हो उठी।

कृष्ण बोले- क्यों ज्ञानमयी पण्डिते। यदि धर्म की रक्षा हेतु नरसंहार करना पड़े तो आपत्ति क्या? कंस और शिशुपाल का वध नहीं किया मैंने धर्महेतु? तो धर्म-संस्थापना कैसे हो सकेगी? धर्म के पक्ष में अधर्मियों का वध अनिवार्य हो जाये तो क्या अनुचित है?

अब द्रौपदी बोली- नहीं, अनुचित नहीं। धर्म के लिए सब स्वीकार्य है। व्यक्तिगत सुख-दु:ख कुछ भी नहीं, माधव। धर्म के अभ्युत्थान के लिए सम्पादित कर्म-श्रृंखला तो कर्म-गंगा की भाँति निर्मल है। उसमें वध भी पवित्र है। धर्म सर्वोपरि है, धर्म सर्वस्व है। गम्भीर तेज से उस भारती का दिव्य ललाट चमक उठा।

कृष्ण बोले- धन्य है तू भारती। महान है तू कृष्णे। मुझे तुझसे यही आशा थी। मेरा अटूट विश्वास है तुझ पर। कहते-कहते वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण की वाणी स्नेहसिक्त हो आयी, नयन सजल-तरल हो उठे। तभी उनकी दृष्टि पड़ी अर्जुन पर।

पांचाली ने बिना समझे मुड़कर देखा- खड़े थे आर्य अर्जुन विशाल देवदार वृक्ष सम।

कृष्ण अर्जुन से बोले- अरे। यह यज्ञकुण्ड से उत्पन्न याज्ञसेनी अग्निज्वाला है- अग्निज्वाला। मुझे किंचित् भी सन्देह नहीं, यह इतनी प्रखर है कि अवश्य यह महाभारत रचाएगी।

महाभारत। अर्जुन के मुख से विस्मय से निकला।

महाभारत। वह क्या जनार्दन? द्रौपदी ने उत्कण्ठा से पूछा।

कृष्ण बोले- महाभारत अर्थात् महायुद्ध। अर्जुन ने पूछा। युद्ध होगा क्या?

कृष्ण बोले- निश्चय। भरतवंशियों में परस्पर युद्ध होगा। कुरुवंश के बन्धु-बन्धु में युद्ध होगा। गुरु और शिष्य में युद्ध होगा। ज्येष्ठ और कनिष्ठ में युद्ध होगा। वृद्ध और युवक में युद्ध होगा। कौरवों और पाण्डवों में युद्ध होगा। भारत और भारत में युद्ध होगा। महायुद्ध-महाभारत।

अर्जुन ने कहा- ऐसा न कहें वासुदेव। अत्यन्त दारुण कल्पना है। त्रासदायी है।

सीधा-सपाट प्रश्न था द्रौपदी का विजय किसकी होगी? कृष्ण बोले- तुम्हारी। कृष्णा की विजय। पाण्डवों की विजय। कौरवों का सर्वनाश होगा। होगा ऐसा ही। याज्ञसेनी पाण्डवगृह की अखण्ड ज्योति है। उसका निरादर जो करेगा, वही भस्म होगा। अर्जुन आतंकित थे, विचलित थे। वे अभी भी नेत्र मूँदे भयभीत हो शीश हिला रहे थे। श्रीकृष्ण ने विषय विषयान्तर कर दिया। किन्तु पार्थ। यह कृष्णा केवल अपनी प्रखरता, बुद्धिमत्ता एवं साहस के ही कारण अद्‌भुत नहीं है।

अर्जुन बोले- तो और किस अर्थ में द्रौपदी अद्‌भुत है गोविन्द?

कृष्ण ने कहा- यह अग्निज्वाला अक्षतज्वाला है। इसके क्रोध में समूचे विश्व को भस्म कर डालने की शक्ति है। बड़ी निडर व्याघ्रनी है। समूचे विश्व के समक्ष तो यह गर्व से तनी, निर्भीक सिंहनी-सी गरजती फिरती है लेकिन अपने प्राणवल्लभ नर-शार्दूल धनंजय के निकट आते ही रूप बदल, भयातुर हिरनी बनकर कातर दृष्टि से तुम्हें निहारने लगती है। तुम्हारा स्नेह पाने को नील लोचनों में याचना-भाव लिये कैसी भोली-भाली मृग बन जाती है।

श्रीकृष्ण अब द्वारिका जाने की तैयारी करने लगे तो उन्होंने सत्यभामा से चलने के लिये कहा। सत्यभामा द्रौपदी से गले मिलकर अपने मतानुसार द्रौपदी को ढाढस बंधाते हुये बोली कृष्णे तुम चिन्ता मत करो, व्याकुल मत होओ। इस प्रकार चिंतित हो रात-रातभर जागना छोड दो। तुम्हारे देवतुल्य पति फिर से अपना राज्य प्राप्त करेंगे। तुम्हारे समान शील सम्पन्न और आदरणीय महिलायें अधिक दिन दु:ख नहीं भोगा करती। मैंने महापुरुषों से सुना है कि तुम निष्कंटक होकर अपने पतियों सहित इस पृथ्वी का राज्य करोगी। तुम शीघ्र ही दुर्योधन का नाश देखोगी, पृथ्वी पर महाराज युधिष्ठिर का शासन अधिकार होगा। तुम्हे दु:ख में देखकर भी जिन्होने तुम्हारा अप्रिय और अपकार किया है उन सबको नरक की प्राप्ति होगी। युधिष्ठिर नकुल, सहदेव, भीम और अर्जुन से उत्पन्न हुये तुम्हारे पांचो पुत्र प्रतिविन्ध्य, सुतश्रोम, श्रुतसेन, शतानीक, श्रुतकर्मा वे सभी शस्त्र विद्या में निपुण वीर हैं। वे अभिमन्यु की तरह बडे ही आनन्द से द्वारिका में रह रहे है। देवी सुभद्रा उनकी सब प्रकार से तुम्हारे समान ही देखरेख करती है। वह किसी प्रकार का भी भेदभाव न रखते हुये उन पर निश्छल स्नेह रखती है तथा उनके दुख में दु:खी और सुख में सुखी रहती है। प्रद्युम्न माता रुक्मिणि भी उन सबका लाड चाव करती है। बलराम आदि सब अन्धक, वृष्णि वंशी यादव उनकी सब प्रकार की सुविधा और प्रशिक्षण आदि की देखभाल करते हैं। वसुदेव जी भी उन्हे अपने पौत्रों के भांति प्रीति देते हैं। ऐसी बहुत सी प्रिय लगनेवाली, सत्य, आनन्द दायिनी और मनोनुकूल बातें कहकर सत्यभामा ने कृष्ण के साथ रथ पर चढने की तैयारी की। उन्होने द्रौपदी की परिक्रमा की और रथ पर चढ गयी। कृष्ण ने मुस्कराकर द्रौपदी को धीरज बन्धाया और फिर पांडवों को लौटा कर दारूक के साथ रथ में द्वारिकापुरी चले गये।

## १६) महर्षि व्यास का पांडवों के पास आना और दान की महिमा का प्रतिपादन

वैशम्पायन बोले जनमेजय इस प्रकार वन में पांडवों के ११ वर्ष बीत गये वे कन्दमूल फल खाकर ही रहते थे। सुख भोगने योग्य होकर भी महान कष्ट भोगते थे। चुपचाप सब दुख सहन कर रहे थे। वे सभी पांडव श्रेष्ठ उत्तम गुणों वाले थे। युधिष्ठिर सदा यही सोचते रहते थे कि मेरे भाइयों पर जो यह महान दु:ख आ पडा है यह मेरे ही कारण उन्हे इतना कष्ट भोगना पड रहा है। इसी चिन्ता से युधिष्ठिर रात्रि में सुखपूर्वक सो भी नहीं पाते थे। उसी समय एक दिन सत्यवती नन्दन

महर्षि व्यास वहां पर पधारे। युधिष्ठिर ने उनका आदर सत्कार किया, पद प्रक्षालन कर उन्हे आसन दिया। पांडवों ने उनके आगमन पर आनंदित हो प्रसन्न मन से उन्हे प्रणाम किया। युधिष्ठिर अपनी इन्द्रियों को संयम मे रखते हुये महर्षि के चरणों में बैठ गये। तब महर्षि पांडवों पर कृपा करते हुये उनसे बोले हे धर्मराज युधिष्ठिर संसार में जिन लोगों ने तपस्या नहीं की है वे महान सुख की प्राप्ति नहीं कर सकते। मनुष्य बारी बारी सुख और दु:ख का सेवन करता है। कोई भी इस जगत में ऐसा सुख नहीं पाता जिसका कभी अन्त न हो। उत्तम बुद्धिवाला ज्ञानयुक्त पुरुष ही उत्पत्ति, स्थिति और लय के अधिष्ठाता परम पुरुष परमात्मा को जानकर कभी हर्ष और शोक नहीं करता है। अत: विवेकी पुरुष के लिये यही उचित है कि प्राप्त हुये सुख का सेवन करे और अपने आप प्राप्त हुये दु:खों को भी स्वीकार करे। जिस तरह किसान प्रारब्धानुसार जो अन्न मिलता है उसे ही ग्रहण करता है। उसी प्रकार मनुष्य भी समयानुसार दैव वश प्राप्त हुये सुख दु:ख को स्वीकार करे। तप से बढकर दूसरा कोई साधन नहीं है। तप ही से मनुष्य महलद (ईश्वर) को पा जाता है। तपस्या से कुछ भी असाध्य नहीं है। सत्य, सरलता, क्रोध का अभाव, देवता और अतिथियों को अन्न दान आदि, इन्द्रिय संयम, मनो निग्रह, दूसरे के दोषों को नहीं देखना, हिंसा न करना, बाहर भीतर की पवित्रता, तथा सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करना ये पुण्यात्मा पुरुषों के सद्गुण और लक्षण है। जो लोग अधर्म में रूचि रखते हैं वे मूढ मानव पशु-पक्षी की तिर्यक योनियों मे जन्म लेते है। उन कष्टदायक योनियों में पडकर कभी भी सुख नहीं पाते। इस लोक में जो भी कर्म किया जाता है उसका फल परलोक में भोगना पडता है, इसलिये हे धर्मराज तप करें और नियमों का पालन करें। राजन समय पर यदि कोई अतिथि आ जाये तो क्रोधरहित हो प्रसन्न चित्त अपनी शक्ति और क्षमतानुसार उसे दान दें और विधिवत आदर सत्कार कर प्रणाम करें। सत्यवादी पुरुष दीर्घ आयु, क्लेश रहित जीवन जीता है और सरलता प्राप्त कर सुखी रहता है। जो क्रोध नहीं करता उसे परमानंद की प्राप्ति होती है। जो अपने मन का निग्रह करता है उसे कभी कोई क्लेश का सामना नहीं करना पडता। जिसने अपने मन को वश में कर लिया, वह दूसरों की सम्पत्ति वैभव देखकर उद्विग्न व संतप्त नहीं होता। जो देवताओं को और अतिथियों को उनके भाग का भोग समर्पित करता है वह सदा भोगों से सम्पन्न होता है। दान करनेवाला मनुष्य सदा सुखी होता है। जो किसी प्राणी की हिंसा नहीं करता उसे उत्तम आरोग्य स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। जो माननीय पुरुषों का सम्मान करता है वह उत्तम कुलों में जन्म पाता है। जितेन्द्रिय पुरुष कभी भी दुर्व्यसनों के जाल में नहीं फंसता है। उसे इस लोक और परलोक में भी सुख प्राप्त होता है। जिसकी बुद्धि शुभ कर्मों में ही आसक्त होती है वह मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होने पर शुभ संयोगों से शुभ उच्च जन्म पाता है। युधिष्ठिर ने पूछा मुनिवर दान धर्म एवं तपस्या इन दोनों में किसका फल अधिक श्रेष्ठ है और इन दोनों में कौनसा दुष्कर है?

महर्षि व्यास बोले युधिष्ठिर दान से बढकर दुष्कर कार्य इस पृथ्वीपर और कोई नहीं है। लोगों को धन का लोभ अधिक होता है और धनकी प्राप्ति होती है बडे कष्ट से। कितने ही साहसी मनुष्य रत्नों के लिये प्राणों का मोह त्याग कर समुद्र में गोते लगाते हैं तथा कितने ही धन के लिये घोर जंगलों में भटकते हैं। कुछेक लोगों ने तो कृषि और गौपालन को ही अपनी जीविका बना रखा है तो कुछ लोग धन की इच्छा से नौकरी पेशे के लिये घरों से दूर दराज स्थानों पर परदेश तक जाते हैं। अत: दु:ख सह कर कमाये हुये धन का परित्याग करना बहुत कठिन होता है। ऐसे कष्ट से कमाये गये धन का दान करना सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्य न्यायोचित धन को उत्तम देश, काल और पात्र की जांच कर, विचार कर उत्तम लोगों को दें। अन्याय से प्राप्त किये हुये धन का दान करने से मनुष्य की महान भय से रक्षा नहीं होती और न ही ऐसा दान कभी फलता है। यदि विशुद्ध मन से दिया गया दान परलोक में भी अनन्त फल देनेवाला माना गया है। इस विषय में तुम्हें मैं प्राचीन ऋषि मुद्गल

जिसने एक द्रोण धान (१६ सेर) का दान करके महान फल प्राप्त किया था उसका आख्यान सुनाता हूं।

राजन कुरुक्षेत्र में मुद्गल नामक एक ऋषि रहते थे, वे बडे ही धर्मात्मा और जितेन्द्रिय थे। वे उच्छ वृत्ति अर्थात (गिरे हुये अन्न को बीनना, उठाना उच्छ वृत्ति कहलाती है) से अपनी जीविका चलाते थे। सदा सत्य भाषण करते थे और न ही किसी की निन्दा करते थे। वे बडे ही कर्मनिष्ठ तपस्वी थे सदा अतिथियों की सेवा करते थे। उनके मन में किसी के भी प्रति कोई ईर्ष्याभाव नहीं था। वे प्रत्येक पक्ष में दर्श एवं पौर्णमास यज्ञ कर देवताओं और अतिथियों को उनका भाग निकालते थे और शेष अन्न से अपना जीवन यापन करते थे। प्रत्येक पर्व पर देवराज इन्द्र उनके यज्ञ में प्रत्यक्ष रूप से अपना भाग ग्रहण करते थे। एक दिन महर्षि दुर्वासा ऋषि मुद्गल की ख्याति सुनकर मुद्गल के पास आये और बोले विप्रवर इस समय मुझे बडी भूख लगी है और मैं भोजन की इच्छा से यहां आया हूं। मुद्गल ऋषि ने कहा महर्षे आपका स्वागत है और आर्ध्य पाध्य चरण प्रक्षालन कर आसन दिया। तत्पश्चात ऋषि मुद्गल ने उन्हे भोजन अर्पित किया। दुर्वासा को यह अन्न बडा स्वादिष्ट लगा। दुर्वासा को बडी जोर से भूख लगी हुई थी वे पूरा परोसा हुआ भोजन खा गये। मुद्गल ऋषि ने फिर उन्हे परोसा और इस तरह मुनि दुर्वासा पूरा भोजन उदरस्थ कर गये। इस प्रकार हर पर्वकाल पर दुर्वासा आ जाते और उच्छ वृत्ति से निर्वाह करनेवाले उन मनीषी मुद्गल के यहां का सारा अन्न खा जाते। मुनि इतने दिनों से निराहार रह कर बार-बार अन्न के दाने बीनते फिर भी भूख का कष्ट मुद्गल ऋषि के मन में कोई विकार उत्पन्न करने में समर्थ नहीं रहा। मुनि के निश्छल हृदय में न कोई क्रोध, द्वेष, भय या अपमान था। दुर्वासा ऋषि बार-बार मुद्गल ऋषि का धैर्य छुडाने का प्रयत्न करते रहे किन्तु मुद्गल मुनि के मन में कोई विकार नहीं आया। दुर्वासा ने ऋषि मुद्गल को सदा शुद्ध और निर्मल ही पाया तब दुर्वासा प्रसन्न हो मुद्गल से बोले ब्रह्मन इस संसार में ईर्ष्या रहित हो दान देनेवाला पुरुष तुम्हारे समान दूसरा कोई नहीं है। भूख बडे-बडे लोगों को धर्मज्ञान से विचलित कर देती है, धैर्य रहित हो जाता है। भोजन ही प्राणों का पोषण करता है। चंचल मन और स्वाद से रसना को रोक पाना अत्यन्त कठिन है। मन और इन्द्रियों का एक रूप होना ही तप है। परिश्रम से उपार्जित धन का दान करना अत्यन्त दुष्कर है परन्तु हे श्रेष्ठ ऋषि आपने यह सब कुछ यथार्थ रूप से सिद्ध कर दिया। आपसे मिलकर मुझे प्रसन्नता हुई। इन्द्रिय संयम, धैर्य दान, शम, दम, दया, सत्य और धर्म ये सब गुण पूर्ण रूप से आप में विद्यमान हैं। आपके जैसा शुद्ध अन्त:करण वाला दूसरा कोई नहीं है। अपने शुभ कर्मों से आपने सभी लोकों को अपने वश कर लिया है। स्वर्ग में देवताओं ने भी आपके दान की घोषणा की है। हे उत्तम व्रत का पालन करनेवाले महर्षे आप सदेह स्वर्ग लोक की प्राप्ति करोगे।

दुर्वासा मुनि के इस प्रकार कहने पर उसी समय देवलोक से एक देवदूत एक दिव्य विमान लिये मुद्गल ऋषि के पास आया। उस विमान के वाहक हंस और सारथ थे। वह विमान देखने में बडा ही सुन्दर और इच्छानुसार चलनेवाला था। देवदूत ने कहा मुने यह विमान आपको आपके शुभ कर्मों से प्राप्त हुआ है। आप परमसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। आप इस पर सवार होकर चलेंगे। देवदूत के ऐसा कहने पर मुद्गल ऋषि ने पूछा देवदूत मैं तुमसे स्वर्ग में निवास करनेवालों के गुण प्रभाव सुनना व जानना चाहता हूं। उनकी तपस्या कैसी है? उनके विचार कैसे है? स्वर्ग में क्या सुख है और क्या-क्या दोष है? सत्पुरुषों के साथ सात कदम चलने से ही मित्रता हो जाती है ऐसा कुलीन पुरुष कहते है। मैं उसी सत्संग को आपसे सुनना चाहता हूं।आपके सत्य वचन सुनने के ही पश्चात मैं अपना कर्त्तव्य निश्चित करूंगा।

देवदूत बोला महर्षि आपकी बुद्धि बडी उत्तम है। जिस स्वर्गीय सुख को लोग महान मानते है वह स्वत: आपको प्राप्त है फिर भी आप अनजान की भांति इसके गुण दोषों की समीक्षा करना चाहते है। जिसे स्वर्गलोक कहते है वह यहां से बहुत ऊपर है वहां जाने का मार्ग उत्तम है। वहां लोग सदा विमानों पर विचरा करते हैं। जिन लोगों ने तपस्या नहीं की है, बडे-

बडे यज्ञों द्वारा यजन पूजन नहीं किया है, जो असत्यवादी और नास्तिक हैं वे उस लोक में प्रवेश नहीं पा सकते। हे ब्रह्मन धर्मात्मा पुरुष जो मन को वश में रखते हैं, शम दम से सम्पन्न, ईर्ष्यारहित, दान-धर्म परायण शूरवीर, इन्द्रिय संयमी तथा मनोनिग्रह योगी सत्पुरुषों द्वारा सेवित पुण्यवानों के लोक को प्राप्त करते हैं। वहां पर देवता, साध्यगण, विश्वेदेव, महर्षिगण, याम, धाम, गन्धर्व तथा अप्सरायें इन सभी के अलग-अलग अनेक प्रकाशित लोक हैं जो इच्छानुसार प्राप्त होनेवाले भोगों से सम्पन्न, तेजस्वी तथा मंगलकारी है। स्वर्गलोक में मेरु गिरि नाम का एक तैंतीस हजार योजन का सुवर्णमय ऊंचा पर्वत है। स्वर्ग में देवताओं के नन्दन आदि पवित्र उद्यान तथा पुण्यात्मा पुरुषों के विहार स्थल हैं। वहां किसी को भूख-प्यास नहीं लगती न ही मन में कभी ग्लानि होती। न ही गर्मी और सर्दी का कष्ट होता है और न ही वहां कोई भय है। वहां कुछ भी घृणा करने योग्य नहीं है और न ही कुछ अशुभ है। वहां सब कुछ मनोरम, सुन्दर, सुखदायक, कर्णप्रिय, शोकरहित, जरा जन्म से रहित, न ही कोई करुणाजनक विलाप या शोक और न ही क्लान्त थकान इत्यादि है। स्वर्ग लोक ऐसा ही है जो अपने सत्कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त होता है। मनुष्य अपने किये हुये कर्मों के परिणाम स्वरूप ही वहां रह पाते है। स्वर्गवासियों के शरीर में तैजस तत्व की प्रधानता रहती है। उनके ये शरीर पुण्य कर्मों से ही उपलब्ध होते है। माता की योनि से उनकी उत्पत्ति नहीं होती। उनके शरीरों में कभी पसीना नहीं निकलता, उनके शरीर से दुर्गन्ध नहीं निकलती और न ही उन शरीरों से मल मूत्र की क्रिया होती है। उनके वस्त्र भी कभी मलिन नहीं होते, वे सदा दिव्य रहते है। ब्रह्मन स्वर्ग के सभी निवासी इसी तरह के विमानों से सम्पन्न होते हैं। उनमें किसी के प्रति कोई ईर्ष्या नहीं होती। वे कभी शोक और थकान का अनुभव नहीं करते। वे मोह तथा मात्सर्य (द्वेष भाव) से सदा दूर रहते हैं। वे अपने सत्कर्मोंद्वारा स्वर्ग पर विजय पा चुके, वहां वे बडे सुख से जीवन व्यतीत करते हैं।

देवताओं के इस प्रकार के जो लोक हैं उन सब से ऊपर अन्य कितने ही विविध गुण सम्पन्न दिव्य लोक हैं। उनसे ऊपर ब्रह्मलोक है जो अत्यन्त तेजोमय और कल्याणकारी है। वहां अपने कर्मों द्वारा ऋषि, मुनि उसका सेवन करते है। वहां ऋभु नाम के देवता रहते हैं जो देवगणों के आराध्य देव हैं। देवता भी यज्ञोंद्वारा उनका पूजन करते हैं देवलोकों से भी उनका स्थान उत्कृष्ट है। उनके उत्तम लोक स्वयं प्रकाशित, तेजस्वी और सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति करनेवाले हैं। उन्हे स्त्रियों के लिये कभी सन्ताप नहीं होता और अन्य लोकों के ऐश्वर्य और भोगों के लिये उनके मन में कभी ईर्ष्या नहीं होती। वे देवों की तरह आहुतियां ग्रहण कर अपना जीवन यापन नहीं करते न ही वे सोम रस का पान करते। उनके शरीर दिव्य ज्योतिर्मय होते हैं और उनकी कोई विशेष आकृति भी नहीं होती। वे सुख में ही प्रतिष्ठित रहते हैं पर सुख की कामना नहीं करते। वे सनातन हैं और देवों के भी देव हैं। कल्प का अन्त होने पर भी उनकी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता। उनमें जरा मृत्यु की सम्भावना ही नहीं है। हर्ष, प्रीति, सुख आदि का भी उनमें अभाव है। उनमें सुख-दु:ख, राग-द्वेष कभी नहीं होते। स्वर्गवासी देवता भी उन ऋभु नामक देवताओं की परम गति पाने की इच्छा रखते हैं। विषय भोगों की इच्छा रखने वालों की वहां तक पहुंच नहीं होती। यह परा सिद्धि की अवस्था है जो अत्यन्त दुर्लभ है। ये लोकों की प्राप्ति मनीषी पुरुषों द्वारा उत्तम नियमों के आचरण विधिपूर्वक दान के देने से प्राप्त होती है। आपने अपने दान के प्रभाव से यह स्वर्गीय सुख सम्पत्ति प्राप्त कर ली है। अपनी तपस्या के तेज से देदीप्यमान हो अब तुम अपने पुण्यों से अर्जित उन दिव्य भोगों और वैभव का उपभोग करो। यही स्वर्ग का सुख है और इसी तरह वहा भांति भांति के लोकों का मैंने वर्णन किया और वहां के गुण बतायें और अब वहां के दोषों को भी जान लो।

अपने किये हुये सत्कर्मों का जो फल होता है वह वही स्वर्गलोक में भोगा जाता है। वहां कोई नया कर्म नहीं किया जाता।

स्वर्ग में कर्मों का भोग समाप्त होते ही पतन हो जाता है। जिनका मन सुख भोगों में लगा हुआ है उनका वहां से पतन होने पर कैसा दु:खदायी होता है। स्वर्ग में भी जो लोग नीचे के स्थानों में स्थित हैं उन्हे अपने ऊपर के लोकों की समुज्ज्वल श्री सम्पति, ऐश्वर्य, वैभव देखकर असन्तोष और सन्ताप होता है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। स्वर्गलोक से नीचे गिरते समय वहां के निवासियों की चेतना विलुप्त हो जाती है। उनकी बुद्धि में विकार आ जाता है। उनके पतन की सूचना मिलते ही उनके मन में बडा भारी शोक और भय हो जाता है। ब्रह्मलोक पर्यन्त ये जितने लोक हैं उन सब में ये दोष देखे जाते हैं। स्वर्ग लोक में तो रहते समय उन पुण्यात्माओं में सहस्त्रों गुण रहते हैं परन्तु वहां से भ्रष्ट होनेपर भी जीवों में एक अन्य श्रेष्ठ गुण रहता है कि वे अपने शुभ कर्मों के संस्कार से युक्त होने से मनुष्य योनि में ही जीवन ग्रहण करते हैं। वहां भी वह महाभाग मानव सुख के साधनों से सम्पन्न श्रीमानों के घर ही उत्पन्न होता है। परन्तु यदि मानव योनि में आकर वह अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं करे तो उसे उससे भी नीची योनि प्राप्त होती है। इस पृथ्वी पर मानव शरीर द्वारा जो कर्म किया जाता है, उसी को परलोक में भोगा जाता है। हे ब्रह्मन यहां कर्मभूमि और परलोक में फल भोग की भूमि मानी गयी है। देवदूत से सब गुण-दोषों का बखान सुनकर मुद्दगल मुनि बोले हे देवदूत तुमने स्वर्ग के सभी दोषों का वर्णन किया परन्तु स्वर्ग की अपेक्षा यदि कोई दूसरा लोक इन दोषों से सर्वथा रहित हो तो मुझे उसका वर्णन बताये।

तब वह देवदूत बोला ब्रह्मा के लोक से भी ऊपर भगवान विष्णु का परम धाम है। यह लोक शुद्ध सनातन और ज्योतिर्मय लोक है। जिनका मन विषय भोगों में रचा पचा रहता है वे लोग इसे नहीं प्राप्त कर सकते। दम्भ, लोभ, महाक्रोध, मोह और द्रोह से युक्त पुरुष वहां नहीं पहुंच सकते। जो कोई ममता और अहंकार से रहित, सुख-दु:ख द्वन्दों से ऊपर उठे हुये, जितेन्द्रिय तथा ध्यान योग में तत्पर है वे मनुष्य ही उस लोक को प्राप्त कर सकते हैं। तुमने जो कुछ पूछा वो सब मैंने बताया। अब हमें स्वर्ग लोक की अविलम्ब यात्रा करनी चाहिये। देवदूत की बात सुनकर मुद्दगल ऋषि ने विचार कर उस देवदूत से कहा हे महाभाग आप सुखपूर्वक प्रस्थान करो। स्वर्ग का सुख महान दोषों से युक्त है इसलिये मैं वहां नहीं जाना चाहता। स्वर्ग से पतन होने के बाद जीवों को अत्यन्त भयंकर महान दु:ख और अनुताप होता है और फिर उनको इसी मर्त्य लोक में आना पडता है इसी कारण मुझे स्वर्ग में जाने की इच्छा नहीं है। जहां जाकर मनुष्य शोकरहित हो, व्यक्ति न हो तथा जहां से विचलित न हो, केवल उसी अक्षय धाम को मैं प्राप्त करने का प्रयत्न करूंगा। यह कहकर मुद्दगल मुनि ने उस देवदूत को विदा कर दिया।

मुद्दगल मुनि की दृष्टि में निन्दा और स्तुति समान हो गयी। मिट्टी के ढेले, पत्थर और स्वर्ण में उनकी दृष्टि में कोई अन्तर नहीं रहा और विशुद्ध ज्ञानयोग से नित्य ध्यान में तत्पर रहने लगे। परम वैराग्य का बल पाकर उन्हे उत्तम बोध प्राप्त हुआ। उससे उन्होंने सनातन मोक्ष की परम सिद्धि प्राप्त कर ली। व्यास बोले हे कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर अब तुम भी समृद्धिशाली राज्य से च्युत होने के कारण शोक रहित हो तप द्वारा अपने गये हुये राज्य को प्राप्त करो। मनुष्य पर सुख के बाद दु:ख और दु:ख के बाद सुख क्रमश: आते ही रहते हैं। जैसे आरे की धुरि से जुडे होने पर पहिया ऊपर नीचे घूमता है उसी प्रकार मनुष्य का सम्बन्ध सुख-दु:ख से रहता है। अब १३ वें वर्ष के बाद अपने राज्य को तुम प्राप्त कर सकोगे इसलिये तुम्हारी मानसिक चिन्ता को दूर करो। ऐसा कहकर महर्षि व्यास वहां से विदा हो पुन: अपने आश्रम की ओर चले गये।

**१७) दुर्योधन के द्वारा दुर्वासा मुनि का अतिथि सत्कार-** वैशम्पायन बोले जनमेजय जिस समय महात्मा पांडव काम्यक वन में निवास कर रहे थे उस समय दुशासन, कर्ण और शकुनि की मन्त्रणा से दुर्योधन ने जिस प्रकार बर्ताव किया वह तुम्हें बताता हूं। जब दुर्योधन ने सुना पांडव लोग तो वन में भी बडे आनन्द से रह रहे हैं तो छल कपट की विद्या में निपुण वह खलमंडली इकट्ठी हो पांडवों का अप्रिय हो इसके बारे में विचार विमर्श करने लगे।

दुर्योधन का पाण्डव द्वेष उसे शान्तिसे सोने नहीं देता था। उसे बहुत बेचैनी थी कि पाण्डुके पुत्र वनमें भी नगर निवासियोंके समान आनन्दसे रहते हैं। वहाँ भी युधिष्ठिर बहुतसे ब्राह्मणोंको भोजन कराके भोजन करते हैं। वहाँ भी उनके साथ अनेक लोग हैं। पाण्डवोंको तंग करने, उनकी हानि करने, उन्हें पीड़ा पहुँचानेका दुर्योधन तथा उसके साथियोंका उद्योग व्यर्थ हुआ। उलटे वनमें इस प्रयत्नमें ससैन्य जाकर गन्धर्वराज चित्ररथके हाथों पराजय प्राप्त हुई। अर्जुनने सहायता करके छुड़ाया न होता तो वह पाण्डवोंका मित्र गन्धर्व तो दुर्योधन को बन्दी बना ही चुका था।

शकुनि, कर्ण आदिके साथ दुर्योधन इसी कुमन्त्रणामें लगा था कि कैसे पाण्डवोंको वनमें नष्ट किया जाय। यह चिन्ता इसलिए भी बहुत बढ़ गयी थी क्योंकि वनवासके बारह वर्ष पाण्डव प्राय: पूरा कर चुके थे। इसी समय महर्षि दुर्वासा शिष्योंके साथ अकस्मात हस्तिनापुर आ गये। परम क्रोधी दुर्वासाजीके पास दुर्योधन भाइयोंके साथ गया और नम्रतापूर्वक़ उन्हें निमन्त्रित किया। विधिपूर्वक उनकी पूजा की और स्वयं दासकी भाँति उनकी सेवामें खड़ा रहा।

परम क्रोधी दुर्वासा मुनि को राजभवन में आया देख कृत्रिम विनय दिखाता हुआ शकुनि और दुर्योधन भाइयोंसहित मुनि के पास गया और उनका अतिथि सत्कार किया और स्वयं दास की भांति उनकी सेवा में खडा रहा। दुर्वासा कई दिन वहां ठहरे। मुनि दुर्वासा का भी स्वभाव विचित्र था। कभी कहते मुझे बडी भूख लगी है, शीघ्र भोजन तैयार कराओ और ऐसा कहकर स्नान करने चले जाते और काफी देर के पश्चात लौटते। आने पर कह देते मुझे तो आज बिल्कुल भूख नहीं है। आज मैं भोजन नहीं करूंगा। कभी यह कहकर दृष्टि से ओझल हो जाते। इस प्रकार का बर्ताव बारम्बार करते। दुर्योधन और शकुनि मुनि दुर्वासा को भोजन करा रहे हैं और और कहकर परोस रहे हैं। शकुनि बोला ऋषिवर आप लोगों की सेवा करना ही हमारा धर्म है। लीजिये ऋषिवर थोडा और लीजिये। दुर्योधन थोडी दूर परे धीरे से एकान्त में शकुनि से बोला अब इस ऋषि को यहां से विदा करो। शकुनि बोला भान्जे ये ऋषि दुर्वासा हैं। ये विदा नहीं किये जाते। ये तो भेजे जाते जब भी जाना चाहे और सुनो यदि ये प्रसन्न ना हो तो शाप भी उनके मुंह की जीभ पर रखा रहता है। दुर्वासा ने शकुनि और दुर्योधन की इस तरह कानाफूसी होते हुये देख ली। दुर्वासा बोले- वत्स दुर्योधन, आज तक तो मैंने यही सुना था कि तुम्हें तपस्या और तपस्वियों में कोई रुचि ही नहीं है। मुझे ज्ञात है कि आज तक किसी भी तपस्वी के प्रति तुम्हारा व्यवहार सम्मानजनक नहीं रहा। तुमने हृदय से कभी किसी साधक का आदर सत्कार नहीं किया, किसी को आमंत्रित करना तो बहुत दूर की बात है। न तो मैं अपने विषय में किसी भ्रम में हूं न तुम्हारे विषय में। मैं जानता हूं कि जो लोग मेरे प्रति श्रद्धा और भक्ति दर्शाते है उनके मन में या तो भय होता है अथवा लोभ। तुम्हारे द्वार पर मैं स्वयं नहीं आया हूं। तुम्हारे बार-बार आग्रह से बुलाने पर आया हूं। तुम्हारे एक-एक कामना में सौ-सौ वासनाएँ है, याचनाएँ हैं। मुझे तुमसे न धन चाहिए, न राज्य, न सत्ता। मेरे पास कोई ऐसी सांसारिक संपदा भी नहीं है, जिससे मैं वंचित किया जा सकूँ। हम तो केवल यह देखते हैं कि किसने हमारा कितना आदर और कितना अनादर किया। दुर्योधन बोला- अहो भाग्य। आपने हमारा निमन्त्रण स्वीकार किया। हस्तिनापुर राज्य में इतना सामर्थ्य तो है ही कि वह ऋषियों तथा आपके प्रिय शिष्यों की सेवा कर सकें।

दुर्वासा बोले गान्धार नरेश। शकुनि ने कहा आज्ञा ऋषिवर। दुर्वासा बोले मुझे लगता है कि ऋषि सेवा से तुम लोगों का मन ऊब चुका है। शकुनि बोला ये आप क्या कह रहे हैं ऋषिवर। आपकी सेवा का अवसर तो बडे भाग्य से मिलता है। दुर्वासा मुनि बोले दुर्योधन के मुख मंडल पर तो यह आनन्द दिखाई नही देता। यदि ऐसा कुछ है तो हम... शकुनि बोला नहीं ऋषिवर, क्रोधित मत होइये। पुत्र दुर्योधन तो मुझसे कह रहा था कि भाई पांडव भी यदि यहां होते तो उन्हे भी आपका आशीर्वाद प्राप्त हो जाता। वो आपसे यह बात कहने का साहस तो नहीं कर सकता ना कि आप स्वयं कृपा करके अपने

सारे १०००० शिष्यों सहित वहां पधारे। दुर्योधन बोला ऋषिवर मैं तो बस यही चाह रहा था और मामाश्री से कह रहा था कि आपसे अनुरोध करे। युधिष्ठिर हमारे कुल में सबसे बडे है वे इस समय अपने भाइयों सहित वन में निवास कर रहे हैं। वे बडे ही गुणवान और सुशील हैं।

दुर्योधन बोला- हां महाराज। पांडवों का क्या है। वृक्षों से फल तोड़ लेंगे, मृगों का आखेट कर लेंगे। वन में रहते हैं किंतु राजाओं के समान रहते हैं। अरण्यक ब्राह्मण उनके साथ हैं, जो प्रतिदिन उनकी स्तुति करते हैं। पांडव राजाओं के समान उन ब्राह्मणों को दान देते हैं। उनके सेवक और सेवकों के परिवार उनके साथ रहते हैं। उनके पास रथ और अश्व हैं। अस्त्र और शस्त्र हैं। ठीक है कि वन में रहते हैं, इसलिए राज्य नहीं है, सेना नहीं है, कोष नहीं है; किंतु न भिक्षुकों के समान रहते हैं, न तपस्वियों के समान। राजाओं के समान नहीं तो राजर्षियों के समान तो रहते ही हैं। उनका धर्म है आप जैसे ऋषियों की सेवा करना। उनका आतिथ्य ग्रहण करने में आपको क्या असुविधा है महाराज।

जैसे अपने शिष्यों के साथ हमारे अतिथि हुये हैं उसी प्रकार उनका भी आतिथ्य ग्रहण करें। दुर्वासा बोले प्रिय दुर्योधन तुम्हारे प्रेम के कारण हम अति प्रसन्न हैं। तुम्हारा भ्रातृ प्रेम अत्यन्त घनिष्ठ है। हम उन सबको आशीर्वाद देने अवश्य वहां जायेंगे। मैं तुम्हें यह वचन नहीं दे सकता कि तुम युधिष्ठिर को पीड़ा से कराहते हुए उस प्रकार देख सकोगे, जिस प्रकार तुम देखना चाहते हो। वह कदाचित मेरे सामर्थ्य में नहीं है। वह शायद तुम्हारे सामर्थ्य में भी नहीं है। मुझे लगता है दुर्योधन कि न तो किसी को बाहर से सुख दिया जा सकता है, न दु:ख। ये दोनों ही भाव हमारे लिये अपने हृदय में विद्यमान रहते हैं। युधिष्ठिर के हृदय में संतोष और शांति विराजमान है, इसलिए वह सब कुछ खोकर भी सुखी है। दुर्योधन के हृदय में ईर्ष्या और द्वेष का नाग फन काढ़कर बैठा है। इसलिए सब कुछ पाकर भी दुखी है। दुर्योधन तुम्हारे हृदय में संचित विष तुम्हें सुख कैसे दे सकता है। युधिष्ठिर को सुखी होने के लिए बाहर से कुछ नहीं चाहिए। तुम उसकी हथेलियाँ तो खाली कर सकते हो, किंतु उसके हृदय को संतोष से रिक्त करना, तुम्हारे वश में नहीं है। और यह कहकर दुर्वासा जैसे आये थे वैसे अपने शिष्यों को लेकर वहां से चले गये और शकुनि बोला धन्य हो ऋषिवर, धन्य हो।

दुर्योधन की सेवा से तुष्ट होकर दुर्वासा उसके अनुरोध पर दस हजार शिष्यों के साथ कल आधी रात गए कम्यक वन पहुंचे। प्रभात से पहले अक्षयपात्र खाली है, वे जानते थे। पांडवों के अतिथि बने। सारे शिष्यों के लिए अविलंब भोजन की व्यवस्था करने पांडवों से कहते। पांडव लाचार होकर दुर्वासा के क्रोध के शिकार होकर अभिशाप में ध्वंस होते। <u>स्वयं आगे बढ़कर विपत्ति को आमंत्रित करना तो बुद्धिमत्ता नहीं है</u>।

कुन्ती ने सुना कि दुर्योधन ने अपने प्रासाद में, दुर्वासा को आमंत्रित किया है; और दुर्वासा अपने सहस्त्रों शिष्यों के साथ हस्तिनापुर पधारे हैं। उसका हृदय किसी बड़े अनिष्ट की आशंका से कराह उठा। दुर्वासा को कभी कोई अपने घर पर आमंत्रित नहीं करता। जिसके द्वार पर वे पहुँच जाते हैं, वह मान लेता है कि ग्रहों की कुदृष्टि के कारण, उस पर कोई महान् संकट आया है, जिसे उसे धैर्यपूर्वक सहन करना है। जिस दिन दुर्वासा किसी के घर से विदा होते हैं, उस दिन लोग हाथ जोड़कर प्रभु का धन्यवाद करते हैं कि एक दुष्ट ग्रह टल गया। उस दुर्वासा को दुर्योधन ने स्वयं अपने घर पर आमंत्रित किया था।

कुन्ती जानती है, दुर्वासा के प्रति किसी के मन में श्रद्धा नहीं है। लोग उनसे भयभीत रहते हैं। ऋषि अप्रसन्न न हों, ऋषि शाप न दे दें। कुन्ती ही जानती है कि ऋषि को प्रसन्न रखने के लिए उसे क्या-क्या प्रयत्न करना पड़ा था। कितना और कैसा मूल्य चुकाया था उसने।

पर उस तपस्या का भी क्या लाभ, जिससे तपस्वी अपना क्रोध ही न जीत पाए। तितिक्षा तो तपस्या का पहला लक्षण

है और दुर्वासा में वही नहीं है। वे तो कुछ भी सहन नहीं कर सकते। अपने आदेश की अवज्ञा और असम्मान तो बहुत दूर की बात है, वे तो अपनी इच्छा के विरोध की संभावना मात्र की आशंका से ही, क्रोध से जल उठते हैं। उनसे किसी प्रकार की सज्जनता की अपेक्षा नहीं की जा सकती। कैसी तपस्या है उनकी, जिसने न क्रोध को जीता, न अहंकार को। लोग साधना तो करते हैं, किंतु यह नहीं जानते कि साधना का लक्ष क्या है। मार्ग अवरोधकों को ही वे अपनी उपलब्धि मानकर, उन्हीं पर मुग्ध हो जाते हैं। कुछ ऐसा ही हुआ है, दुर्वासा के साथ भी। साधक तो वे हैं, उग्र तपस्वी भी हैं। कदाचित उन्होंने प्रकृति से कुछ असाधारण शक्तियाँ भी प्राप्त कर ली हैं किंतु उनके व्यक्तित्व का विकास नहीं हुआ। प्रभु की लीला तो अद्भुत है। प्रभु धन देते हैं, तो एक व्यक्ति दान करता है और दूसरा व्यक्ति उसी धन को पाकर भोग में आकंठ लिप्त हो जाता है। सत्ता मिलती है, तो एक न्याय करता है, अत्याचार का दमन करता है; और दूसरा उसी सत्ता का दुरुपयोग कर, अन्याय को बल प्रदान करता है, स्वयं अत्याचारी हो जाता है। शारीरिक बल मिलता है तो एक दुर्बलों की रक्षा करता है, और दूसरा उसी बल से दुर्बलों का दमन करता है। ज्ञान मिलता है तो एक में विनय प्रस्फुटित होती है, वह अपने ज्ञान से अपने और दूसरों के बंधन काटता है, और दूसरा उसी ज्ञान से अहंकारी हो कर, अबोध लोगों का शोषण करता है, उन्हें भ्रम में डालता है। कितने ही उदाहरण हैं, इतिहास में कि एक व्यक्ति ने उग्र साधना की, स्वयं को तपाया, ईश्वर को प्रसन्न किया, किंतु उससे उसकी भक्ति न माँग, अपने लिए कोई शक्ति माँग ली... और फिर उसी शक्ति के अहंकार में वह राक्षस हो गया। तपस्या कर, साधना कर, अंत में व्यक्ति राक्षस हो जाए- इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है। हे प्रभु। तू और कुछ दे, न दे, मनुष्य को सात्विक बुद्धि अवश्य दे, ताकि वह अपनी क्षमताओं का उचित उपयोग कर सके।

## १८) दुर्वासा ऋषि अपने शिष्यों के साथ युधिष्ठिर के आश्रम में और कृष्ण द्वारा पांडवों की रक्षा

वैशम्पायन बोले जनमेजय पांडवों ने तो वन स्वीकार कर ही लिया क्योंकि वे बात के धनी थे चाहे कपट द्वारा हराये गये हो, पर विवश हो हार गये तो हार मान ली। दुर्योधन तो वो पेड था जो नफरत की खाद डालने पर जी रहा था। वो भला इससे सन्तुष्ट कैसे हो सकता? वो तो पांडवों की तरफ अपमान के तीर पर तीर चलाना चाहता था लेकिन इस बार उसने जो ऋषि दुर्वासा का बाण चलाया है वो तो अचूक है। वो जानता है कि श्राप तो दुर्वासा की जीभ पर धरा रहता है। वो यह भी जानता है कि पांडव भला वन में उनकी क्या सेवा कर पायेंगे? और यदि सेवा न कर पायेंगे तो ऋषि का शाप उन्हे अवश्य नष्ट कर देगा और वहां पांडव इस विपत्ति से बेखबर एक और ही आग में जल रहे हैं। श्रीकृष्णके चरणाश्रितोंका अमंगल करनेमें समर्थ शक्ति न कभी उत्पन्न हुई, न हो सकती।

अमृतमयी जननी होती है नारी। संतान के जन्म लेते ही पुरुष हो जाता है जनक और नारी हो जाती है जननी। पर उसके भूखे मुंह में अमृत का झरना झरा देती है नारी। पुरुष में ऐसी कोई शक्ति नहीं। अत: नारी मात्र अमृतमयी, अन्नपूर्णा होती है। औरों के भूखे पेट को भरने की स्पृहा और आनंद नारी की सहजात प्रवृत्ति होती है। द्रौपदी जब नारी है, फिर अन्नपूर्णा के अंश से उसका जन्म है, औरों की भूख-प्यास मिटाना उसके लिए आनन्द की बात है। अत: धर्मदेव ने उसके हाथ में अक्षय पात्र दिया था। वह उनके प्रति चिरकृतज्ञ है।

दुर्योधन जानता है, आधी रात में अक्षयपात्र खाली हो जाता है। द्रौपदी अन्नपूर्णा नहीं रह जाती अत: यही समय दुर्वासा के ब्रह्मशाप के उपयुक्त होगा। पर विपद बंधु कृष्ण जिसके सखा हैं, वे दुर्वासा के शाप से क्यों जलने लगे? आश्रम के प्रांगण में शिला पर बैठी द्रौपदी चिन्तामग्न थी। महर्षि दुर्वासा का क्रोध कौन नहीं जानता? उनके क्रोध से कौन नहीं

काँपता? कैसा धर्मसंकट। दुर्वासा मुनि एवं उनके सहस्त्रों शिष्यों को भोजन कराना ऐसी दुरवस्था में सम्भव है? घर में अन्न का कण तक नहीं। उसका चमत्कारिक अक्षय पात्र खाली पड़ा था और चूल्हा बुझा हुआ। सघन था अत्यन्त काम्यक-वन-प्रान्त। वहीं पाण्डव अपने वनवास के दिन काट रहे थे। परम तपस्वी पुरोहित धौम्य एवं महर्षि तृणबिन्दु की छत्र-छाया में उन्होंने इस वन में अपनी पर्णशाला डाल ली थी।

वन में नकुल और सहदेव लकडी काट रहे थे। युधिष्ठिर ने पूछा ये क्या सहदेव? प्रकृति से उतना ही लेना चाहिये अनुज जितने की आवश्यकता हो। यदि मनुष्य इसका ध्यान रखना छोड देगा तो प्रकृति का तो कोष ही रिक्त हो जायेगा। अन्य पांडव और द्रौपदी सभी लोग भोजन से निवृत हो विश्राम कर रहे थे कि इतने में ही दस हजार शिष्यों सहित महर्षि दुर्वासा युधिष्ठिर के पास आ गये। युधिष्ठिर देखकर चौंक कर बोले यह तो ऋषि दुर्वासा है। अपने क्रोध को छिपा नकुल नहीं तो ये ऋषि समझेंगे कि हम उनके आने से प्रसन्न नहीं हुये। युधिष्ठिर ने आगे बढकर ऋषि का स्वागत सत्कार कर प्रणाम किया। हमारी कुटिया में आपका स्वागत है। दुर्वासा ऋषि बोले ऋषि कोई शोभा बढाने की वस्तु नहीं होती राजन। युधिष्ठिर बोले क्षमा चाहता हूं ऋषिवर। दुर्वासा ने कहा यदि तुम कुन्ती पुत्र नहीं होते तो मैं तुम्हे क्षमा नहीं करता। मैं हस्तिनापुर गया था वहां पुत्र दुर्योधन ने मेरी बडी सेवा की और फिर हाथ जोड प्रार्थना कर बोला भ्राता युधिष्ठिर भी निकट ही वन में है उन्हे भी आपका आशीर्वाद प्राप्त हो। इसलिये मैं तुम्हे अपने शिष्यों सहित आशीर्वाद देने चला आया। युधिष्ठिर बोला ऋषियों के पधारने से तो हमारे सौभाग्य के द्वार खुल गये। दुर्वासा का स्वभाव ही है कि वे दूसरोंकी सुविधा-असुविधा नहीं देखते। उन्हें अपनी धुन रहती है और दूसरोंको अविलम्ब उनकी आज्ञा स्वीकार करनी चाहिए। उन्होंने कहा- राजन। हम सब भूखे हैं। स्नान के पश्चात हम भोजन करेंगे राजन। हमारे लिये भोजन का प्रबन्ध करो। युधिष्ठिर बोले जो आज्ञा ऋषिवर। मुनि भी अपने शिष्यों के साथ नदी पर स्नान करने चले गये। मुनि ने उस समय तनिक भी मन में यह विचार नहीं किया कि ये इस समय दुपहर में हमें कैसे भोजन करायेंगे?

नकुल बोला भ्राताश्री इस समय अब भोजन कहां होगा? अब तक तो पांचाली भी भोजन कर चुकी होगी। लगता है यह तो भ्राता दुर्योधन का एक और उपहार है। वो जानते हैं कि पांचाली के खा चुकने पर कोई भोजन शेष नहीं होगा और यदि कोई भोजन नहीं बचा तो फिर ऋषि दुर्वासा का क्रोध। द्रौपदी ने सुना और सिर पकड़ लिया। अब क्या हो? सूर्यके द्वारा मिले पात्रमें दिनमें एक ही बार रन्धन किया जा सकता था और द्रौपदीके भोजनके पश्चात वह रिक्त हो जाता था। उससे अब कुछ पाया नहीं जा सकता। युधिष्ठिर अपने भाइयों से बोला चलो अनुजों कुछ प्रबन्ध करें। इधर सभी ऋषि नदी में स्नान कर रहे होते हैं। पाण्डव बन्धु उनके अनायास आगमन एवं इतने शिष्यों के लिए भोजन की व्यवस्था का आदेश पा आतंकित हो उठे। वनवासी जीवन में कहाँ से भोजन? स्वयं के लिए कठिनाई से व्यवस्था कर पाते थे। वे पाँचों भाई निकल गये अन्न-संग्रह के लिए।

युधिष्ठिर द्रौपदी से बोले पांचाली ऋषि दुर्वासा अपने दस हजार शिष्यों सहित यहा आये हैं। द्रौपदी बोली तो फिर चिन्ता कैसी? नकुल बोला वे भोजन करेंगे। द्रौपदी बोली भोजन। द्रौपदी ने तो अक्षय पात्र साफ कर मांज कर भी रख दिया था। उससे अब कुछ पाया नहीं जा सकता। और महर्षि दुर्वासा जैसे प्रसिद्ध क्रोधीसे कुछ कहा जा नहीं सकता। यह तो सर्वनाश सम्मुख उपस्थित कर देगा। पतिव्रता द्रौपदी बडी चिंतित हो रही थी कि अब अन्न के लिये क्या उपाय करे।

अब क्या होगा भगवन्। अब कैसे होगा। आश्रम के प्रांगण में शिला पर बैठी द्रौपदी चिन्तामग्न थी। महर्षि दुर्वासा का क्रोध कौन नहीं जानता? उनके क्रोध से कौन नहीं काँपता? कैसा धर्मसंकट। दुर्वासा मुनि एवं उनके सहस्त्रों शिष्यों को भोजन कराना- ऐसी दुरवस्था में सम्भव है? घर में अन्न का कण तक नहीं। उसका चमत्कारिक अक्षय पात्र खाली पड़ा

था और चूल्हा बुझा हुआ।

द्रौपदी बोली भला किसने यह कभी सोचा भी होगा कि इन्द्रप्रस्थ के सम्राट यह सुनकर चिंतित भी हो सकते हैं। दस हजार ब्राह्मणों को भोजन करवाना है और इन्द्रप्रस्थ की पट्टरानी की रसोई में चावल का एक कण भी नहीं है। पांचाली चिन्तित थी। महर्षि तो अब तक स्नान भी कर चुके होंगे- आते ही होंगे। ब्राह्मण वैसे ही अग्निमय होते हैं। भोजन तैयार न मिलने पर भूखे ब्राह्मण देवता की क्रोधाग्नि भभक उठेगी और वे भी दुर्वासा- जैसे ब्राह्मणदेव। क्या होगा?

द्रौपदी बोली- धर्म में चतुराई और युक्तियों से काम नहीं चलता। हम व्यावहारिक कठिनाइयों से मुख कैसे मोड़ सकते हैं? हमारे पास अन्न का कितना भंडार है। यहाँ कितने प्राणी अपने भोजन के लिए हम पर निर्भर है। हमें अपने संचित अन्न को कितने दिन तक चलाना है। दुर्योधन हमारे साथ प्रत्यक्ष युद्ध में असफल रहा तो परोक्ष युद्ध कर रहा है। अपने वैभव के प्रदर्शन से हमें पीड़ित नहीं कर सका तो हमारी निर्धनता और अकिंचनता को प्रदर्शित ही नहीं रेखांकित कर, हमें मानसिक यातना देना चाहता है। हमारे यहाँ एक ऐसा टिड्डी दल आ रहा है, जो हमारी इच्छा के विरुद्ध हमारा सारा अन्न भंडार खाकर हमें पीड़ित और अपमानित करना चाह रहा है। युधिष्ठिर बोले- ठीक है पांचाली तुम ठीक कह रही हो। किन्तु वास्तविक दान वही है, जहाँ आप स्वयं भूखे रहकर याचक को अपना भोजन दे देते हैं। वस्तुत: यह ही हमारे धर्म की परीक्षा है। महाराज युधिष्ठिर स्वधर्म से क्षत्रिय नहीं है। अन्य पाण्डव वंश से, व्यवसाय से, प्रवृत्ति और स्वधर्म से क्षत्रिय है। युधिष्ठिर की धातु ब्राह्मण है। वे मात्र आत्मरक्षा और दुष्ट-दलन से प्रसन्न हो पाएंगे क्या? जब वे वारणावत जा रहे थे तब भी वे जानते थे कि वहाँ उनको उनके भाइयों के साथ जलाने का पूरा प्रबन्ध किया गया है। जब द्यूत के लिए आमंत्रित होकर हस्तिनापुर आए, तो भी वे जानते थे कि वहाँ क्या होनेवाला है; फिर भी उन्होंने धृतराष्ट्र की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया। आत्म विसर्जन की यह प्रवृत्ति ब्राह्मण वृत्ति का ही परिणाम है।

पांडवों ने अपना इंद्रप्रस्थ का साम्राज्य खो दिया, अपना सारा स्वर्ण, धन-वैभव खो दिया- तो क्या हो गया? आज भी वे लोग एक सुखी परिवार के समान, इस वन में जीवनयापन कर रहे हैं। वे लोग यदि अपने अपमान को भुला सकें, तो उन्हें क्या कष्ट है, इस वन में? स्वच्छ सात्विक और उल्लसित जीवन। एक-दूसरे का प्रेम कितना बड़ा संबल है। भगवान राम ने भी तो सीता अपहरण से पहले तक, वन में अपनी पत्नी, भाई तथा वनवासी संगी-साथियों के साथ आनन्दमय जीवन ही व्यतीत किया था। जीवन की आवश्यकताएँ तो बहुत थोड़ी सी ही हैं। प्रकृति उन सबकी पूर्ति कर देती है। किंतु यदि अपने धर्म से स्खलित होना पड़े, अपनी मर्यादाओं का उल्लंघन करना पड़े, व्यक्ति अपने सत्य का पालन न कर सके, तो वस्तुत: जीवन एक यातना हो जाए। ठीक कहते हैं धर्मराज। प्रभु जिस स्थिति में रखना चाहता है, उसे तो स्वीकार करना ही पड़ता है। तो फिर हम अपनी चिंताएँ, अपने दु:ख, अपनी समस्याएँ, उसी को सौंप कर, क्यों निश्चिंत नहीं हो जाते? कृष्ण ने कितनी बार कहा है उन लोगों से कि अपने कर्म कर, निश्चिंत हो जाओ, परिणाम की चिंता मत करो। धर्मराज कदाचित वही कर रहे हैं। वैसे भी मनुष्य जब सर्वथा असहाय हो जाता है, तभी तो ईश्वर को पुकारता है। अपनी अक्षमता की घड़ी में ही तो ईश्वर के सामर्थ्य के दर्शन होते हैं। जब तक मनुष्य का अपने सामर्थ्य का भ्रम नहीं टूटता, तब तक उसे ईश्वर की शक्ति के दर्शन कहाँ होते हैं।

युधिष्ठिर द्रौपदी को अन्नपूर्णा कहते हैं। यह रसोई द्रौपदी की रसोई कहलाती है इस संकट से कौन उबारेगा उसको? ईश्वर? किंतु वह तो किसी ईश्वर को नहीं जानती। वह जानती है तो बस अपने सखा कृष्ण को। लोग कहते हैं कि अर्जुन और कृष्ण नर और नारायण के अवतार हैं। हैं या नहीं, द्रौपदी नहीं जानती। वह तो बस इतना ही जानती है कि उसे प्रत्येक

संकट में कृष्ण का ही स्मरण आता है, वही उसकी अक्षुण्ण शक्ति का स्रोत है, वह उसका सहारा और संबल है, वही उसकी श्रद्धा और भक्ति है, वही उसका बल और ईश्वर है। कृष्ण कहाँ हो तुम?

द्रौपदी ने श्रीकृष्णको पुकारना प्रारम्भ किया- हे अशरण शरण। भक्तवत्सल। आर्ति विनाशन वासुदेव। आप ही इस विपत्ति से रक्षा करो। प्रपन्नपाल गोपाल। पधारो और अपने पाण्डवों को इन महर्षि के रोषसे बचा लो। देव देव। अपनी इस साधनहीना दीना सखी की इस असाधारण आपत्ति में सहायता करो। हे मुरारि, मधुसूदन, लाज रखना। सदा तो संकट में साथ दिया है, वासुदेव। आज ज्ञात नहीं, किस शाप से ग्रस्त होना पड़े। वैसे भी वर्तमान स्थिति किसी शापग्रस्त स्थिति से कम तो नहीं। द्रौपदी ने मन ही मन कृष्ण का स्मरण किया हे महाबाहु कृष्ण, हे देवकी नन्दन कृष्ण, हे वासुदेव, जगदीश्वर। आप ही सम्पूर्ण जगत के स्वामी हो, आत्मा हो। सृष्टि को बनाना संहार करना आप ही की क्रीडा है। आप ही अविनाशी हो, शरणागत की रक्षा करनेवाले गोपाल मैं तुम्हे प्रणाम करती हूं। हे सबके वरण करने योग्य अनन्त मेरे पुकारने पर मेरी रक्षा के लिये आयें। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई सहारा देनेवाला नहीं है। हे पुराण पुरुष अपने इन असहाय भक्तों की सहायता करो। प्राण और मन की वृतियां तुम तक नहीं पहुंच पाती। हे सबके साक्षी परमात्मन मैं आपकी शरण हूं। हे शरणगत वत्सल कृपा करें। नील कमल सदृश श्याम सुन्दर आप सभी भूतों के आदि और अन्त हैं, और परम आश्रय हैं। आप परात्पर, ज्योतिर्मय, सर्वव्यापक और सर्वात्मा हो। ज्ञानी पुरुष ही आपको इस जगत का परम बीज और सम्पूर्ण सम्पदाओं का अधिष्ठान मानते हैं। हे देवेश आप ही मेरे रक्षक हो। मुझपर आई इन विपतियों के भय से बचाओ। जैसे सभा में दुशासन के भय से मेरी रक्षा की उसी प्रकार इस विपत्ति संकट से मेरा उद्धार करो। द्रौपदी ने इस प्रकार भक्त वत्सल कृष्ण की स्तुति की।

कृष्ण को मालूम हो गया कि मेरी सखी कृष्णा पर संकट आ पडा है। वे अचिन्त्य गति से वहां आ पहुंचे। अचानक गरुड़ध्वज रथ आया और उससे श्रीकृष्ण उतरे। पाण्डव उठे किन्तु इस बार श्रीद्वारिकाधीशने किसीकी ओर देखा ही नहीं। वे शीघ्रतासे पांचालीके पास गये। हाँ। सामने खड़े थे वे ही विशाल नेत्रों में परिहासमयी ज्योति लिये। उसे विश्वास नहीं हो रहा था। हर्ष एवं आश्चर्य से बावली-सी हो गयी। कृष्ण को आया देख द्रौपदी के आनन्द का पार नहीं रहा। उसने कृष्ण को प्रणाम किया। द्रौपदी बोली- वासुदेव इस समय यहाँ। द्वारिका से। आपकी लीला कभी कोई समझ सका? आप कैसे आये? तुम आ गये मैं तुमको ही पुकार रही थी। युधिष्ठिर बोला वासुदेव आप। कृष्ण बोला लगता है आप लोग मेरे आने से प्रसन्न नहीं हुये। द्रौपदी बोली ये आपने क्या कह दिया वासुदेव? हमारे जीवन में आपके सिवा और कौन सी प्रसन्नता है? मेरी सुभद्रा कैसी है? कृष्ण बोले अरे। न तो बैठने को कहती है न जल देती है पाद-प्रक्षालन हेतु कृष्णे। और मैं किस प्रकार क्षुधा-व्याकुल हुआ जा रहा हूँ। ला, दे कुछ भोजन शीघ्र। पहले मुझे भोजन दो। बडी भूख लगी है कृष्णा। पहिले कुछ खिलाओ तो बताऊंगा। इस समय मैं बहुत थका हुआ हूं। द्रौपदी बोली- भोजन। भोजन। तीनों लोक घूम गये। समूची पृथ्वी वेग से घूमी जा रही थी। अन्धकार जैसे छाया जा रहा था। दुर्वासा ऋषि को भोजन। उनके सहस्त्रों शिष्यों को भोजन और भोजन के नाम पर दाना तक नहीं। और अब श्रीकृष्ण को भी भोजन। आज ही इनको भी भूखा आना था। कैसा संयोग भगवन्। भोजन की तो कोई व्यवस्था ही नहीं। पाण्डव अब तक लौटे नहीं। कैसा दुर्भाग्यपूर्ण दिन आज का। अतिथि पर अतिथि आ रहे हैं, और स्वर्गीय महाराज पाण्डु के राजपुत्रों के यहाँ अन्नकण नहीं। इस भोजनकी समस्यासे व्याकुल होकर ही तो तुम्हें पुकार रही थी। महर्षि दुर्वासा दस हजार शिष्योंके साथ आये हैं। उन्हें भोजन देना है। कृष्ण बोले- अरे कृष्णे। मैं भोजन माँग रहा हूँ और तू खड़े-खड़े सो रही है जैसे। द्रौपदी ने दुर्वासा का पूरा वृतान्त सुनाया। द्रौपदी बोली- माधव। भोजन कहाँ ? एक अन्न का कण तक नहीं घर में। अभी महर्षि दुर्वासा अपने सहस्त्रों शिष्यों के साथ भोजन हेतु पधारनेवाले ही होंगे

स्नान करके... किन्तु भोजन...। कहाँ से लाऊँ माधव? घोर विवशता और असहायता के स्वर में पांचाली ने संकुचित होकर कहा। कृष्ण बोले पहिले शीघ्र मुझे कुछ खाने को दो, फिर सारा प्रबन्ध करती रहना। उन्हें पीछे भोजन देना।

द्रौपदी रो पड़ी, तुम मेरी बात समझते क्यों नहीं हो सखा। कि मैं इसी कारण से इस उलझन में हूँ कि मेरे पास किसी को खिलाने के लिए कुछ भी नहीं। तुम्हें खिलाने के लिए भी नहीं। उसी प्रकार निष्ठुर भाव से बोले, तुम मुझे खिलाना नहीं चाहती हो कृष्णे। इसलिए झूठ बोल रही हो। द्रौपदी के लिए यह आरोप किसी निष्ठुर और नृशंस आघात के समान था। आँखों में अश्रु, अधरों पर पीड़ा, और वाणी में क्रोध भर कर बोली, तुम कितने निर्दयी हो केशव। मैं तुमसे झूठ बोलूँगी? तुम तो जो मेरे सबसे बड़े हितैषी हो, जो मेरे सखा हो, मेरे ईश्वर हो। तुम्हें खिलाना नहीं चाहूँगी, जिसके मुख में एक ग्रास डालकर, मेरे जन्म-जन्मांतर तृप्त हो जाते हैं। तुम्हारा सत्कार नहीं करूँगी, जिसके चरणों को अपनी बरौनियों से स्वच्छ करूँ, तो मेरी आत्मा अपनी सार्थकता पा जाए। किंतु कृष्ण कहाँ माननेवाले थे। उन्होंने जैसे द्रौपदी की वह करुण वाणी सुनी ही नहीं थी।

कृष्ण बोले अरे तेरा वह अक्षय पात्र कहाँ गया? उसके रहते कोई भूखा कैसे रहेगा। उसमें अवश्य कुछ तो होगा। कृष्ण की बात सुनकर द्रौपदी को बडी शर्मिन्दगी महसूस हुई और बोली किन्तु मधुसूदन। मेरे भोजन कर चुकने के बाद उसमें कुछ नहीं रहता और दुर्भाग्यवश मैं भोजन कर चुकी हूं। वह ग्लानि से घुटी जा रही थी। मधुसूदन भूखे हैं और वह उँगली पर उत्तरीय का अंचल लपेट रही थी, नतनयन हो पैर के अँगूठे से भूमि कुरेद रही थी। भगवन सूर्यनारायण का दिया हुआ वह अक्षय पात्र (बटलोई) जिससे हमें जितना चाहे अन्न मिलता है वह जब तक मैं भोजन नहीं करूं। आज मैं अब भोजन कर चुकी हूं और उससे सब कुछ भी शेष नहीं रहा। मैंने उसे धो पौंछ कर स्वच्छ कर रख दिया है। अब कहां से आपको भोजन करवाऊं? यही तो विकट समस्या खडी है। द्रौपदीको इतनी व्यथा तो दुर्वासाके शापके भयसे भी नहीं हुई थी। ये उसके आराध्य भूखे हैं, भोजन माँगते हैं और वह कुछ देनेमें समर्थ नहीं।

कृष्ण बोले मुझे तो भूख लग रही है और तुम्हे हंसी आ रही है। जल्दी से मुझे वह बटलोई दिखा। अच्छा, तू ले तो आ। देखूँ- शायद उसमें कुछ थोड़ा-बहुत लगा हो... मुझसे तो बिल्कुल भूखा नहीं रहा जा रहा। तब द्रौपदी वह अक्षय पात्र (बटलोई) कृष्ण के पास लेकर आई कृष्ण ने देखा उस बटलोई में शाक व चावल का एक पत्ता और कण चिपका हुआ है श्रीकृष्ण ने झाँका उसमें। धन्य है तू। इसमें तो बहुत है... और तू कह रही थी, कुछ नहीं है। पात्र के कण्ठ पर थोड़ा-सा शाक लगा था। श्रीकृष्ण ने तर्जनी से पोंछकर निकाला। मुँह में डाला, बोले, कृष्णार्पण। और बोले आनन्द आ गया। उसे देखकर द्रौपदी बोली पात्र में केवल एक दाना चावल चिपका रह गया है उसी में से आधा आप खा लीजिये और आधा संसार को खिला कर तृप्त कीजिये। कृष्ण ने पात्र हाथ में लिया और बोले इतना तो बहुत है कृष्णा। कृष्ण ने वह चावल कण उस पात्र में से निकाल कर खा लिया और डकार ली। अन्न कण को ग्रहण कर कृष्ण का विश्वात्म तृप्त हो गया। वे विश्वात्मा तृप्त हो गये तो सृष्टिमें उस समय कोई भी प्राणी अतृप्त कहाँ रहा। समूची सृष्टिके सभी जीवोंको लगा कि उनका उदर आकण्ठ भर गया है। द्रौपदी बोली- आनन्द आ गया? तर्जनी से शाक चाटकर ही तृप्त हो लिये माधव। कैसे विचित्र हैं आप। उसके नेत्र विस्फारित रह गये। हाँ। बिल्कुल तृप्त हो गया कृष्णे। तृप्त हो नहीं गया, तृप्त हो गये। कृष्ण ने भोजन पाया, फिर कौन भूखा रह सकता है विश्व में? द्रौपदी बोली- किन्तु माधव। तृप्ति कैसे हो गयी?

कृष्ण बोले- तृप्ति नहीं, अपार तृप्ति। और वे हँस पड़े। वही उन्मुक्त अट्टहास। पांचाली अवाक् खड़ी रह गयी। और फिर वह दिनभर प्रतीक्षा करती रही। पाण्डव-बन्धु प्रतीक्षा करते रहे। दुर्वासा मुनि नहीं आये। वे जब तक स्नान करके यमुना से निकले तब तक इधर कृष्णार्पण जो हो गया था। अचानक क्षुधा लुप्त हो गयी सबकी। इधर श्रीकृष्ण ने मुख में ग्रास

डाला, उधर अद्‌भुत तृप्ति। परम तृप्ति की डकारें। सबको डकारें। दुर्वासा मुनि को डकारें। शिष्यमण्डली को डकारें। डकार पर डकार। और विश्वात्म तृप्त होते ही दुर्वासा एवं उनके दस हजार शिष्य भी तृप्त हो गए। अरण्य में प्रवेश करते न करते उदर की भूख मिट गई, पेट गले तक भर गया। यह सब कृष्ण की ही माया है। कृष्ण बोले इस साग की पत्ती के द्वारा सम्पूर्ण जगत के यज्ञ भोक्ता परमेश्वर तृप्त एवं सन्तुष्ट हुये।

कृष्ण चमत्कारी पुरुष हैं, कुछ लोग उन्हें योगीराज और योगेश्वर मानते हैं। योगशास्त्र कहता है कि योग की सिद्धि से मनुष्य, मानव शरीर की सीमाओं का अतिक्रमण कर, अपने मूल स्वरूप अर्थात ईश्वर के निकट पहुँच जाता है। कार्य-कारण संबंध और प्रकृति के सामान्य नियम, उस पर लागू नहीं होते। उससे व्यक्ति की क्षमताएँ असीम हो जाती हैं। वह ईश्वर के समान ही सर्वव्यापक हो जाता है। वह सहस्त्रों योजन दूर का शब्द सुन सकता है। एक ही समय में एक से अधिक स्थानों पर प्रकट हो सकता है। संभव है, कृष्ण ने यह सब अपने योगबल से किया हो।

दुर्वासा अपने साथियों सहित नदी में स्नान कर रहे थे। वे अपने शिष्यों से बोले अब हमें चलना चाहिये। महारानी द्रौपदी भोजन के लिये प्रतीक्षा कर रही होगी। ऋषिवर अब तो भूख बडी तीव्र हो चुकी है। दुर्वासा बोले चलो। ऋषि लोग दुर्वासा से बोले ब्रह्मन आश्चर्य की बात है बिना खाये ही पेट पूरा भरा हुआ है। खाने के लिये पेट में कोई जगह ही नहीं है। अभी तो भरपेट खीर खाई है। मुंह मे स्वाद खीर ही का है। हमें तो बडे जोरों से नींद भी आ रही है। सब एक दूसरे की ओर देखने लगे। दुर्वासा बोले नींद की मत सोचो। कोई बुलाने आ गया तो क्या करोगे, क्या कहोगे? डकार लेते-लेते चिन्तित हो उठे और राजा युधिष्ठिर ने जो इतने विशाल जनसमूह के लिए भोजन की विराट व्यवस्था की होगी, अब उसका क्या होगा? राजा युधिष्ठिर के घर कौन खाएगा? कोई नहीं। कोई नहीं। सब तो तृप्त हो चुके थे- कौन खाता। लेकिन इतना भोजन। इतना अन्न। इतनी व्यवस्था। क्या होगा? वे वीर पाण्डव रुष्ट हो जाएँगे यदि उनके अन्न का अनादर किया। हाँ। वे लोग परम वीर हैं। क्षत्रिय हैं। क्रोध में आ जाते हैं तो सीधे शस्त्रों पर हाथ जाता है उनका। भाग चलो यहां से।

कृष्ण ने हिचकी ली और बोले कृष्णा तुमने बडी उत्तम खीर बनाई और इसे खाकर नींद आने लगी। युधिष्ठिर बोले सो जाओ वासुदेव। वासुदेव बोले यही तो कठिनाई है बडे भैय्या कि मैं सो ही नहीं सकता। युधिष्ठिर बोले अनुज सहदेव तनिक देखो तो ऋषिवर स्नान कर चुके हो तो उन्हे बुला लाओ। कृष्ण बोले अरे बैठो सहदेव। ऋषियों को कोई बुलाता थोडे ही है। यदि उन्हे आना होगा तो स्वत: ही चले आयेंगे। युधिष्ठिर बोले उन्होने भोजन के लिये कहा था वासुदेव। कृष्ण बोले तब उनका यही निर्णय रहा होगा कि किसी और के अतिथि बन गये होंगे।

दुर्वासा अपने शिष्यों से बोले सचमुच ही व्यर्थ में भोजन तैयार करवा कर हम लोगों ने राजर्षि युधिष्ठिर का महान अपराध कर दिया है। अभी तक मैं राजा अम्बरीश का प्रभाव नहीं भूला हूं। इसीसे मैं भगवान के भक्तों से सदा डरते रहता हूं। सभी पांडव वैसे भी महात्मा है। वे धार्मिक, शूरवीर, विद्वान, व्रतधारी, तपस्वी, सदाचारी तथा वासुदेव के भजन आदि में लगे रहनेवाले हैं। जैसे आग रूई के ढेर को जला देती है, उसी प्रकार क्रोधित होने पर पांडव हमें भी नष्ट करने की क्षमता रखते हैं इसलिये शिष्यों हमारा कल्याण इसी में है कि हम बिना पांडवों से पूछे यहां से अन्यत्र भाग जाये। दुर्वासा मुनि की बात सुनकर सभी शिष्य पांडवों के भय से सभी दिशाओं में भाग गये। दुर्वासा शिष्यों को लेकर लज्जा में भरे लौट गए चुपचाप। आ गये पाण्डव। और अपने-अपने दण्ड-कमण्डलु सँभालते, गिरते-पड़ते सिर पर पाँव रखकर समूचा साधु-समुदाय वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

सहदेव ने जब देवनदी गंगा में उन मुनियों को नहीं देखा तो वे घूमकर आसपास के घाटों में घूम-घूमकर देखने लगे। वहां रहनेवाले तपस्वी ऋषियों से उनके भाग जाने का समाचार सुना तब उसने युधिष्ठिर के पास आकर पूरा वृतान्त सुनाया।

श्रीकृष्ण ने पांडवों से कहा परम क्रोधी दुर्वासा के शाप से भयभीत हो कृष्णा ने मेरा स्मरण किया था, इससे मैं तुरन्त चला आया। अब आप लोगों को दुर्वासा से तनिक भी भय नहीं है। वे आपके तेज से डरकर भाग गये हैं। द्रौपदी ने उस शाक पात से कृष्ण को तृप्त किया था। कृष्ण की डकार से पूरा विश्व तृप्त हो गया। इसलिये भगवान का एक नाम विश्वम्भर भी हुआ। कृष्ण बोले जो सदा धर्म में तत्पर रहते हैं, वे कभी दु:ख में नहीं पडते हैं। मधुसूदनने बतलाया कि दुर्योधनकी प्रार्थनाके अनुसार दुर्वासाजी आये थे; किन्तु इस विपत्तिमें द्रौपदीने उन्हें पुकार लिया। कोई आर्त होकर पुकारे तो वे कहाँ दूर रहते हैं। अब दुर्वासा तृप्त होकर भाग चुके हैं। अब मैं आप लोगों से जाने की आज्ञा चाहता हूं। आप लोगों का सब प्रकार कल्याण हो। पांडव बोले आपको ही अपना रक्षक पाकर हम लोग बडी-बडी विपत्तियों से पार हुये है गोविन्द। तुम्ही हमारे सहायक हो जैसे महासागर में डूबते हुये को कोई जहाज मिल जाये। इसी तरह आप भक्तों का कल्याण करते हो। पांडवों की अनुमति लेकर कृष्ण द्वारिका को प्रस्थान कर गये। और पांडव एक वन से दूसरे वन में घूमते हुये प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे। कृष्ण ने जाने से पहिले पूछा कि इस समय भीम कहां है? युधिष्ठिर ने कहा अनुज अर्जुन तो बाहर गये हुये है पर भीम तो भीम ही है वह घूम फिर कर लौट आयेगा। युधिष्ठिर बोले अब सूर्यास्त का समय हो गया है वासुदेव, जाना है तो कल चले जाना। द्रौपदी बोली क्या इन्हे भी घास के बिछौने पर सुलाओगे? आप भीम की प्रतीक्षा नहीं करे तो ही अच्छा है। वे बडे क्रोधित होकर निकले हुये हैं। न जाने कब लौटें।

वैसे तो सारी प्रकृति ईश्वर का ही रूप है फिर भी ईश्वर को पृथ्वी पर प्रकट होना होता है, तो वह कोई न कोई रूप तो धारण करता ही है। वह अपने लिए तो पृथ्वी पर आता नहीं। आता तो वह मनुष्यों के लिये ही है। तो उसे उसी रूप में आना होगा, जिसे हम जैसे मनुष्य समझ सकें, पहचान सकें। कृष्ण, ईश्वर के अवतार है या नहीं, वे स्वयं ईश्वर है या नहीं यह तो कोई नहीं जानता किन्तु पांचाली तो पूरी निष्ठा से मानती है कि संसार में यदि धर्म कहीं है तो वह कृष्ण के रूप में ही है। इसलिये अधर्म उनके निकट नहीं फटक सकता। दुर्वासा जैसा अधर्म वहाँ फटक ही कैसे सकता है। क्या कृष्ण अपनी योग शक्ति से एक ही समय में एक से अधिक स्थानों पर प्रकट हो सकते हैं? चीर हरण के समय भी द्रौपदी की करुण पुकार थी, और यहाँ भी। यदि कृष्ण मायावी है और कोई न कोई माया तो रचते ही रहते हैं तो फिर पाण्डव इतना कष्ट क्यों पा रहे है?

यह सृष्टि माया की सृष्टि है और ईश्वर भयंकर मायावी है। कृष्ण ईश्वर की शक्ति लेकर उत्पन्न हुये हैं तो फिर उनका जन्म कारागार में क्यों हुआ? जिनके गर्भ से स्वयं ईश्वर जन्म लेनेवाला था उस माता को इतना कष्ट क्यों सहना पड़ा? उसके इतने भाइयों का वध क्यों हुआ? ईश्वर क्या सुख में बसता है? धन में, सम्पत्ति में, सत्ता में, शक्ति में, इन्द्र सुख में अधिकांशत: पाप ही बसता है। धृतराष्ट्र को ही देखो। ईश्वर अपने प्रियजनों को पाप से दूर ही रखता है। वह उन्हें धर्म देता है। सात्विकता देता है, दिव्यता और उदात्तता देता है। स्थूल सांसारिक सुख तो मनुष्य को ईश्वर से दूर ही करते हैं। वह अपने प्रियजनों को ऐसे पदार्थ ही क्यों देगा, जिससे वे उससे दूर चले जाएँ? मन में संसार हो तो ईश्वर नहीं मिलता। वह पाण्डवों की इतनी कठोर परीक्षा क्यों ले रहा है? जब तक मनुष्य कहता है यह काम स्वयं उसका है उसे वह अपनी शक्ति से कर लेगा ईश्वर खडे खडे मुस्कुराता रहता है और जब मनुष्य स्वयं को पूर्णत: असहाय पाकर सब कुछ उसी पर छोड देता है तो ईश्वर स्वयं प्रकट होकर उसका काम कर देता है। परन्तु स्वयं प्रकट होने से पहले ईश्वर अपने भक्त को असहाय, अकिंचन सर्वस्व से वंचित कर देता है। ईश्वर को पाने के लिये भक्त अपना सर्वस्व अर्पण करता है। अपना संसार, अपने प्राण जब उसके और ईश्वर के मध्य कोई व्यवधान नहीं रह जाता, जब उसके प्रत्येक श्वास में वही होता है, तभी ईश्वर प्रकट होता है।

द्यूतसभा में द्रौपदी को अपनी विद्वत्ता का अवलंबन त्यागना पड़ा। पिता द्रुपद तथा भाई धृष्टद्युम्न उसके लिये कुछ भी

नहीं कर सके। पितामह भीष्म ने भी अपना सिर झुका लिया। महावीर भीम एड़ियां रगड़कर रह गया। गाण्डीवधारी अर्जुन की धनुर्विद्या कुंठित हो गई। धर्मराज का धर्म असहाय हो गया। द्रौपदी भरी सभा में निर्वस्त्र की स्थिति में आ गयी। तब उसे अपनी भुजाएँ उठा कर कहना पड़ा ईश्वर के सिवाय उसका कोई नहीं है। उस समय कोई नहीं था उसके और ईश्वर के बीच। न शासन, न समाज, न कोई रिश्तेदार-सम्बन्धी, न पति, पद, सत्ता, सम्पत्ति, सहायक कोई नहीं। और उस समय ईश्वर प्रकट हुआ उसने द्रौपदी की ही नहीं, पांडवों की, धर्म की, सब की लाज रख ली।

ईश्वर को देखने के लिये वैसी आँखें चाहिये। मनुष्य के शरीर में आया प्रत्येक जीव ऊपरसे देखने में एक जैसा लगता है किन्तु उसकी प्रकृति, प्रवृत्तियों और आकांक्षाओं में अंतर होता है। कोई ईश्वर से धन माँगता है और कोई ईश्वर से धन से मुक्ति माँगता है। दुर्योधन अधर्मपूर्वक पाण्डवों का राज्य पाने के लिये कितनी बार उनकी हत्या का प्रयत्न कर चुका और युधिष्ठिर ने अनायास ही गन्धर्वों के बन्दी हुये दुर्योधन को सायास मुक्त कराया। कोई अपने विलास के लिये दूसरे के मुँह का अन्न छिन लेता है तो कोई दूसरे का पेट भरने के लिये स्वयं का अन्न उसे दे देता है। यह महानता रन्तीदेव के चरित्र से सिखने को मिलती है। इसलिये ऐसी दृष्टि हो तो ईश्वर में दिखाई देता है। कृष्ण मानवता के उद्धारक हैं, स्वयं ईश्वर हैं। यदि कृष्ण ईश्वर नहीं है तो फिर ईश्वर कैसा होगा ? दु:ख उसके लिये होता है जिसके लिये सुख भी होता है। कृष्ण तो परम आनंदमय हैं। उनके लिए सुख और दुख का भेद नहीं है। ईश्वर जब अपनी माया के माध्यम से प्रकट होता है, तो प्रकृति के नियमों के अधीन ही शरीर धारण करता है और उन्ही नियमों के अधीन देह का त्याग करता है। कृष्ण ने शरीर धारण किया है, तो वे उसका त्याग भी करेंगे। जय पराजय तो उसकी अपनी लीला है। जो मार्ग से नियत किया है, वह उस पर चलेगा भी और वह पाण्डवों के लिये वह सारे द्वार भी बन्द कर देगा जो उनके लिये अहितकर है। केवल वही एक द्वार खुला रखेगा जो उनके लिये कल्याणकारी है।

## १९) जयद्रथ द्वारा द्रौपदी हरण और पांडवों द्वारा जयद्रथ को दंड

दुर्योधन अपनी मल्लशाला में गदा युद्ध का अभ्यास कर रहा होता है उसी समय कर्ण आया और दुर्योधन से बोला मित्र दुर्योधन तुम तो युद्ध की तैयारी में इतने मग्न हो रहे हो कि तुम अपने लौकिक कार्यों से भी आंख चुराने लग गये हो। जो स्वयंवर शाल्व में होने जा रहा है वहां तुम्हारा जाना आवश्यक है क्योंकि शाल्व राज तुम्हारे मित्र हैं। दुशासन बोला अंगराज कर्ण बिल्कुल ठीक कह रहे है भ्राताश्री? दुर्योधन बोला यह मैंने कब कहा कि मेरा मित्र कर्ण ठीक नहीं कह रहा है, परन्तु आजकल मेरी आंख को भीम और अर्जुन के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं दे रहा है। कर्ण बोला किन्तु यह तो सोचो मित्र कि बृहदश्व पुत्र सिन्धु नरेश जयद्रथ का सन्देशा आ चुका है कि वो तुम्हारे साथ ही शाल्व जायेंगे तब उनसे क्या कहेंगे? दुर्योधन बोला मैं उनसे कह दूंगा मित्र अर्जुन स्वर्ग जाकर सारे दिव्यास्त्र बटोर लाया है, इसका अर्थ यह है कि उन्होने युद्ध की ठान ली है और हो सकता है कि अज्ञातवास में जाने के पहिले ही आक्रमण कर दे। इसलिये मेरा हस्तिनापुर से दूर रहना भी उचित नहीं है। जयद्रथ स्वयं नरेश हैं। वे राजनीति के इस विषय और दबाव को भलीभांति समझ जायेंगे।

वैशम्पायन बोले जनमेजय एक समय की बात है पांडव पुरोहित धौम्य की आज्ञा से आखेट के लिये वन में गये हुये थे। द्रौपदी ने वनगमन स्वेच्छा से स्वीकारा था। पाण्डु-बन्धुओं की वह एकता की सूत्र थी, धुरी थी। वह न होती तो क्या होता। वह खो गयी स्मृति की सघन वंकिम वीथिकाओं में। नन्ही कोमलांगी किशोरी राजकन्या। आभूषण-अलंकार एवं

रक्त कौशेय परिधानों में कैसे उसने एक दरिद्र ब्राह्मण को वरा। और उसके पीछे-पीछे उस कण्टकमय धूलधूसरित ऊबड़-खाबड़ पथ पर पहली बार कोमल अलक्तरंजित अनभ्यस्त चरण रखती चली आयी। दरिद्रता का आलिंगन किया- वैभव-विलास को ठोकर मारकर। कैसे उसने धर्म और नीति के पाथ पढ़-पढ़कर, उपदेश सुन-सुनकर, पाँचों पतियों के प्रति आदर भाव जगाया मन में। और कैसे-कैसे उसे कठिनाई से कण्ठ में धारण किया। अपने पितृकुल एवं श्वसुर कुल की मर्यादा एवं प्रतिष्ठा ध्यान कर उस अन्याय को आत्मसात् कर गयी। इन्द्रप्रस्थ का राज्य मिला। धन-धान्य, वैभव-सम्पन्नता के मध्य उस दर्पभरी राजरानी ने राज्य के उत्कर्ष के लिए कठोर परिश्रम किया। उत्कर्ष हुआ। और वह उत्कर्ष कितनों की आँखों में खटकने लगा। फिर। एक ही पासे में पलट गया सब कुछ। द्यूतविलासी युधिष्ठिर अपने अनुजों, पत्नी व स्वयं को दाँव पर रखते गये... हारते गये। द्यूतक्रीड़ा। पराजय। दासत्व, अपमान। चीरहरण। क्या-क्या नहीं हुआ। और परिणामस्वरूप यह वनवास। विलासों की महारानी अब पत्रकुटीर में तपस्विनी-सा जीवन व्यतीत कर रही है। रूखे केशों में उसकी उँगलियाँ अपने आप घूमने लगीं। अतीत के आघात सद्य: हो उठे।

कितनी संयत हो चली थी अब वह। यौवन की चंचलता का स्थान अब गाम्भीर्य ने ले लिया था। विधि के विधान के समक्ष नत होकर उसने सब कुछ स्वीकार कर लिया था। जो घटना किसी नारी के साथ नहीं घटी, वह अभूतपूर्व घटना एक विलक्षण दाम्पत्य के रूप में उसके साथ घटी थी। अर्जुन से उसने प्रतिज्ञा की थी कि अपने दु:ख को वह बाहर न आने देगी। सुदीर्घ अन्तर्द्वन्द्व के पश्चात उसने अपने सर्वथा विचित्र विवाह के अभिशाप को पाषाण हृदय होकर धारण किया और विधि के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया।

जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया, उसकी समस्याएँ विषम से विषमतर होती गयीं। विचित्र से विचित्रतम होती गयीं। जो विलक्षणतम क्रूर उपहास उसने झेले, कभी किसी राजमहिला ने नहीं सहे थे। जीवन की जटिलताएँ कार्तवीर्य अर्जुन की सहस्त्रभुजाओंसी बढ़ चलीं। विकराल मुख फैलाये रक्तबीज दानव की भाँति एक समस्या से दूसरी का जन्म होता गया होता गया। वे समस्याएँ अधिक ज्वलन्त थीं, महत्त्वपूर्ण थीं। इनमें जीवनप्रतिष्ठा, राजऐश्वर्य, आत्मसम्मान, स्वाभिमान, परिवार- सब दाँव पर लग गया था। और इस प्रकार इन महती समस्याओं के समक्ष उसके अद्‌भुत दाम्पत्य की समस्या दिन-पर-दिन गौण होती गयी।

और तब से वह निरन्तर हृदय में दो नारी पाल रही थी। उसके मन की एक नारी अत्यन्त कोमलमना, आतुर प्रेमिका एवं आराध्य के प्रति समर्पिता पत्नी थी। दूसरी वज्रशिला-सी कठोर थी जो आघातों को सहकर भी व्याघ्री-सी निडर हो निर्भीक गर्जन कर सकती थी।

इस सदाचैतन्य, प्रखर एवं तेजयुक्त पांचाली ने दूसरी, भावुक उपासिका पांचाली को, वेदनाकुल प्रेमिका को और मर्मपीड़िता को बलपूर्वक सुला दिया था। कठोरमना द्रौपदी ने बहुत प्रयास किये- कोमलमना द्रौपदी को नष्ट कर देने के; किन्तु नष्ट नहीं कर पायी। केवल प्रगाढ़ निद्रा में उसे लीन कर पायी। और इसलिए अन्तर की वह विकलमना उदास नारी अब भी जब-तब अर्धजाग्रत् हो करवटें लेने लगती। कभी चौंक उठती। जाग जाती, तो कभी रुदन कर उठती। किन्तु तब शक्तिशालिनी सिंहनी-सी दूसरी नारी जैसे अपने दोनों सबल हाथों से उस कातर पांचाली का मुख दृढ़ता से बन्द कर देती और पुन: अशक्त प्रेमिका तन्द्रालीन हो जाती।

उस भयंकर वन में वह नितान्त एकाकिनी असहाय मृगी स्वयं अपनी रक्षा कर रही थी, उन हिंसक नर-पशुओं से।

द्रौपदी नदी तट पर पानी भरने गई थी। उसी समय सिन्धु नरेश जयद्रथ धृतराष्ट्र के दामाद, दुशाला के पति शाल्व नरेश के यहां जाने के लिये हस्तिनापुर आ रहे थे। मार्ग में उन्होने द्रौपदी को पानी का घट लाते हुये देखा। जयद्रथ ने द्रौपदी को देखकर अपने सारथी से रथ रोकने के लिये कहा और रथ से नीचे उतर कर द्रौपदी के निकट आये और द्रौपदी का मार्ग रोक कर बोले पांचाली। द्रौपदी बोली जवांई राज आप। जयद्रथ बोला मैं तो शाल्व जा रहा था तुम्हें देखा तो रूक गया। हे वरारोहे तुम सब लोग सकुशल तो हो न तुम्हारे पति, पिता और भ्राता सब तो सकुशल है न?

द्रौपदी बोली हां महादेव की कृपा से सकुशल हैं सिन्धुराज। आशा है ईश्वर कृपा से आप भी धर्म के मार्ग पर चल रहे होंगे। दुशाला कैसी है? जयद्रथ को द्रौपदी का मन्तव्य समझने में तनिक भी कठिनाई नहीं हुई। वह जानता था कि उसके अस्तित्व को घेरकर चलनेवाले अधर्म को रोकने का द्रौपदी के पास और कोई उपाय नहीं था इसलिये वह धर्म की चर्चा कर रही थी। द्रौपदी मन ही मन विचार कर रही थी कि यह व्यक्ति इतना सरल भी नहीं है कि उसपर किसी भी रूप में विश्वास किया जा सके। जयद्रथ बोला दुशाला अच्छी है पांचाली परन्तु तुमसे अच्छी नहीं। महाराज युधिष्ठिर कहां है? द्रौपदी बोली- वे सब तो आखेट पर गये है, आते ही होंगे। हमारी कुटिया यहां से अधिक दूर नहीं है। आश्रम में वृक्षों की छाया में थोडा विश्राम कर जलपान कीजिये तब तक मेरे पति आते ही होंगे। वे आपका यथायोग्य सत्कार करेंगे। धर्मराज तो अतिथि को देव समान ही पूजते हैं, आपकी आवभगत होगी। वहां चलने को आपको तनिक भी कष्ट नहीं होगा।

जयद्रथ बोला एक बात कहूं पांचाली तुम्हारी यह अवस्था मुझसे देखी नहीं जाती। तुम्हारी यह दशा देखकर मुझे बहुत कष्ट और दु:ख हो रहा है। द्रौपदी बोली तुम क्यों दु:खी हो गये। जयद्रथ बोला राजभवन में पली बडी हुई और राज भवन में ब्याह कर आई। तुम्हारे पास न कोई दास, दासी है और ना ही कोई अंगरक्षक। तुम्हारी यह कंचन सी काया इस प्रकार कष्ट सहने के योग्य भी नहीं है। तुम्हारी यह दुर्दशा देखकर मुझे तुम्हारे पति पांडवों पर भी बहुत क्रोध आ रहा है। जयद्रथ की मुद्रा का कलुष द्रौपदी को सावधान कर रहा था। जयद्रथ की दृष्टि का मल और वाणी का छल द्रौपदी को एक प्रकार की चेतावनी दे रहा था। द्रौपदी झपटकर बोली मेरी इस दुर्दशा के लिये पांडव नहीं वह दुर्योधन उत्तरदायी है। तुम्हे उस पर क्यों नहीं क्रोध आता? देखिये जवाईराज सुख और दु:ख का सम्बन्ध राजमहल और कुटी से नहीं होता। मैं राजभवन में भी सुखी थी और इस वन में भी सुखी हूं। जयद्रथ बोला तुम चाहे कुछ भी कहो पर मुझसे तुम्हारी यह दशा देखी नहीं जाती द्रौपदी। द्रौपदी ने कहा आपको मेरा नाम लेकर मुझे पुकारने का अधिकार नहीं है जवांईराज। आप मेरी छोटी ननंद के पति हैं इसलिये इस नाते का आधार मानने से तो मैं आपसे बडी हूं। जयद्रथ बोला नातों का आधार बदलने में देर ही कितनी लगती है द्रौपदी। मैं तुम्हारी ननद का पति हूं। यदि तुम चाहो तो मैं तुम्हारा पति भी बन सकता हूं। अब भी कुछ नहीं बिगडा है आओ मेरे साथ आओ। मेरे रथ पर सवार हो जाओ। हम अभी इसी क्षण यहां से अपने राज्य में भाग जायेंगे। तुम्हे मैं संसार का सारा सुख दुंगा। उन कंगले पांडवों के साथ अपना जीवन नष्ट करने से क्या लाभ?

सुन्दर नारी को भोगना पुरुष का गौरव है, तुम जैसी सुन्दरी को पाने पर गौरव बढेगा। पांडव तो ऐसे रत्न के लायक ही नहीं। तुम्हारे समान विदूषी नारियां निर्धन पतियों की उपासना नहीं करती। नारी को पुरुष के साथ तभी तक रहना चाहिये जब तक उसके पास धन और यौवन हो। द्रौपदी के मन का सारा आक्रोश उमड कर वाणी से व्यक्त हुआ और बोली जयद्रथ। मैं किसी असहाय के आंगन में उगा हुआ कोई बेरी का पेड नहीं हूं जिसपर हर आता जाता पत्थर फेंक मारता हो। मैं इन्द्रप्रस्थ की पटरानी द्रौपदी हूं। मैं सम्राट युधिष्ठिर का भाला हूं तो भीमसेन की गदा हूं और अर्जुन का गांडीव हूं मैं। नकुल और सहदेव की तलवार हूं। मैं महाराज द्रुपद की पुत्री, स्वर्गीय महाराज पांडु की पुत्रवधू और महारथी पांडवों की

पत्नी हूं जिनके नाम से नाग, देवता, यक्ष, किन्नर, मनुष्य तक कांप उठते है मैं राजवधू हूं मूर्ख। तुम दु:शला के पति हो इस सम्बन्ध से तुम मेरे भाई हो। ऐसी बात कहने में तुम्हे शर्म आनी चाहिये। तुम्हे तो मेरी रक्षा करनी चाहिये और तुम इस प्रकार का निंदनीय प्रस्ताव कर रहे हो। यह तो तुम्हारे कुलशील के अनुकूल व्यवहार नहीं है।

जयद्रथ जोरों से हंसा और बोला क्रोध में तो तुम और सुन्दर लगती हो द्रौपदी और उसके कन्धे को पकड कर खडा हो बोला अगर ऐसी बात है तो तुम्हारे लिये मै दु:शला को त्याग दूंगा, मेरी भार्या बन जाओ तो तुम्हारी रक्षा का दायित्व भी मुझपर होगा। मैं इन दुष्ट पांडवों के समान तुम्हे वन में इस प्रकार अकेली छोडकर नहीं जाऊंगा। दुर्योधन भी तुम्हे कोई कष्ट नहीं दे पायेगा। मेरी प्रिया होकर रहोगी तो सम्पूर्ण सिन्धु और सौवीर का राज्य तुम्हारा होगा। द्रौपदी कडककर बोली बहुत देखा है मैंने ये राज्य और राज्य बल। राजसूय यज्ञ में तुम्हारे जैसे सैकडों राजाओं ने मेरे चरणों पर अपने मणि जडित मुकुट रखे थे। ऐसा कहकर उसका हाथ कन्धे से झटक कर बोली अरे निर्लज्ज तू मेरा नन्दोई है। मैं तेरी बडी बहिन समान हूं और यों भी ब्याहता नारी का सम्मान करना सीख मूर्ख क्योंकि तेरी माँ भी ब्याहता नारी थी। जयद्रथ बोला ठीक कहती हो। तुम्हे फिर से वही सम्मान मिलेगा। मेरी अंकशायिनी बन जाओ तो जीवन का सारा सुख भोगोगी। संसार के मनीषियों का कहना है कि रत्न तथा स्त्री ये अमूल्य वस्तुयें होती है अत: उन पर बलशाली पुरुषों का ही अधिकार है। पांडवों में शक्ति थी वो तुम्हे काम्पिल्य से ले आये और आज मेरे पास बल है मैं तुम्हे अपने साथ ले जाऊंगा। द्रौपदी बोली अरे नीच बहुत अहंकार है तुझे अपने बल पर तो पांडवों के आने की प्रतीक्षा कर तब बताना तुम कितना वीर है? जब अर्जुन का गांडीव बाण वर्षा करेगा तो तेरी वीरता धरी रह जायेगी। चोरों के समान एक अबला स्त्री को अपनी वीरता का बखान मत कर। विवाहिता स्त्री का यों अपमान कर कोई जीवित रह सकता है? इस पाप का प्रायश्चित करना ही पडेगा तुम्हे किसी न किसी दिन। तुम सिंह की गुफा में घुसनेवाले श्रृंगाल हो।

जयद्रथ बोला समय नष्ट मत करो मेरी रानी। बहुत वाद विवाद में क्या है क्योंकि तुम्हारी सहायता करनेवाला यहां कोई नहीं है। मैं वीर हूं मूर्ख नहीं हूं। हाथ आये इस अमूल्य पदार्थ को त्याग किसी की प्रतीक्षा में तो बैठा नहीं रह सकता। जब पांडव आयेंगे तो उनसे कैसे निबटना है देख लूंगा। पांडवों के पराजित हो जानेपर मुझसे दया की भीख मांगती घिसटती चलेगी। उससे तो कही अच्छा और सम्मानजनक है कि अपनी इच्छा से ही मेरे साथ चल। अब यह निर्णय तुम करो कि अपने पैरों से चलकर चलोगी या बल जोरी से। द्रौपदी का स्वर तेजस्वी हो गया और वह बोली जयद्रथ मुझे भगवान पर पूरा भरोसा है। उनकी शरण में जाने से मेरा कोई तनिक सा भी अहित नहीं कर सकता। यदि मैंने अपने पतियों के प्रति पूर्ण निष्ठा निभाई है तो देखूंगी कि शीघ्र ही पांडव तुम्हे परास्त कर रस्सियों में बांध भूमि पर घसीट रहे होंगे।

पांचाली दावाग्नि सी भभक उठी और बोली मैं भगवत कृपा पर अटूट विश्वास रखनेवाली, ईश्वर की न्यायशीलता में मेरी गहन आस्था है सौवीर राज। वह उचित समय पर दुष्टों को दंड देता ही है। अपना हित समझ कर अब भी सम्भल जाओ। क्योंकि बलपूर्वक डरा धमकाकर, आतंकित कर मुझसे दीन वचन नहीं निकला सकते सिन्धुराज। मैं कोई तुमसे गिडगिडानेवाली या भिक्षा मांगनेवाली नहीं हूं। मेरे विषय में कोई भ्रम न पालना। मुझे नारी या अबला समझकर अकेली पा मुझे दुर्बल समझने की भ्रान्ति में न रहना मूढ।

दुर्योधन ने भी यही सोचा था कि मैं असहाय हूं वो मेरा अपमान कर सकता है। कम से कम तू यह भूल मत कर। जयद्रथ हंसकर बोला वे जब घसीटेंगे तब देखा जायेगा और आगे बढकर द्रौपदी को हाथ से पकडा। द्रौपदी बोली अरे दुष्ट हंस मत यह तेरे विनाश का संकट है। स्वयं के छुडाने के प्रयत्न में द्रौपदी ने उसे बलपूर्वक धक्का दिया और असावधान जयद्रथ

भूमिपर गिर पडा। जयद्रथ का धीरज टूट चुका था और उतावली व क्रोध में हिंसक पशु सा हो उठा काम वासना से उतृप्त हो, विक्षिप्त हो द्रौपदी को धमकाकर बोला देख तेरे ये पौरुषहीन नपुंसक पति क्या करेंगे तुझे बलपूर्वक उठा ले जाऊंगा। वाचाल राजकन्या तू सदा अभागिनी ही रही। तूने सदा सौभाग्य को ठुकराया। द्रौपदी पीछे हट कर जयद्रथ का तिरस्कार कर बोली मेरे पति महान यशस्वी है, सदा धर्म में स्थित रहनेवाले मेरे महारथी वीरों की शान के खिलाफ इस तरह की ओछी बाते कहने से तुझे शर्म नहीं आती? अरे बेवकूफ जैसे बांस, केला और नरकुल ये फल देकर अपना नाश कर लेते है, केकडों की मादा अपनी मृत्यु के लिये ही गर्भ धारण करती है उसी प्रकार तू भी अपनी मौत के लिये ही मेरा अपहरण करना चाहता है। गर्मी में आग जैसे तिनकों को जलाती है वैसे ही मेरे पति तुझे भस्म कर डालने में समर्थ है। जिस समय तू गांडीव धनुष से छोडे बाणों की वर्षा को टिड्डी दल की भांति वेग से उडते देखेगा तेरे छक्के छूट जायेंगे और महापराक्रमी वीर अर्जुन की दृष्टि तुझपर पडेगी उस समय अपने इस कुकर्म को याद कर अपनी बुद्धि को धिक्कारेगा। जब भीम हाथ में गदा ले दौडेंगे तथा नकुल और सहदेव क्रोधजन्य विष उगलते हुये तेरी ओर टूट पडेंगे तब तुझे बडा पश्चाताप होगा। यदि मैंने कभी मन से भी अपने पूजनीय पतियों का उल्लंघन नहीं किया, यदि मेरा अखंड पातिव्रत्य सुरक्षित है तो मेरे तप के प्रभाव में पांडव तुझे जीतकर वश में कर बलपूर्वक घसीट रहे होंगे, तू नृशंस है।

जयद्रथ ने खडे हो आगे बढकर द्रौपदी की भुजा पकड ली और उसे अपनी गोद में उठाकर रथ में जबरन बिठाकर रथ हांकने का संकेत किया। द्रौपदी बोली अरे दुष्ट तुम क्षत्रिय धर्म को कलंकित कर रहे हो। न तुम्हे धर्म का भय है और न ही अपने प्राणों का। रथ तेजी से चल पडा। उस पापात्मा से लात मार कर छुटकारा पाने रथ से कूदने जा रही थी कि जयद्रथ ने दोनों हाथों से कसकर पकड लिया द्रौपदी को। लाचारी में द्रौपदी कृष्ण कृष्ण पुकार रही थी। व्याकुल द्रौपदी जल बिन मीन-सी छटपटाती अपने हाथों से माथा ठोक रही थी। यह क्या अनर्थ भगवन्। यह क्या। यह किस पाप का दण्ड है? किस भूल का परिणाम ? यह अनुचित है, अनैतिक है, अधर्म है, अन्याय है। पुरोहित धौम्य यह देखकर पांडवों को खबर देने वन की ओर दौडे। दु:ख कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसका कोई निदान न हो। दु:ख और सुख तो जीवन में आते जाते रहते है पर धर्मज्ञ कभी उनसे विचलित नहीं होते।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय जब पांडव वन में अपनी कुटिया अपने शिबिर में लौट रहे थे उस समय एक गीदड बडे जोरों से रोता हुआ उनके बायें भाग से निकल गया। इस अपशकुन को जानकर धर्मराज युधिष्ठिर पांडवों से बोले यह गीदड हम लोगों की बांयी ओर से निकलकर रोते हुये गया है इससे लगता है कि पापी कौरवों ने यहां आकर भी कोई महान उत्पात किया है। वन में आज बहुत कुछ असाधारण सा लग रहा था। वन्य पशुओं के जीवन में तो अवश्य ही कुछ अघटित सा हुआ लग रहा है। वन में सब कुछ सामान्य नहीं था। वन तो ईश्वर की सम्पत्ति होते हैं जिसका लाभ कोई भी व्यक्ति उठा सकता था। अनेक लोगों की आजीविका वनों पर ही निर्भर थी। यहां इतनी प्रकार की प्राकृतिक सम्पदा है कि जो चाहे मां प्रकृति से याचना कर अपनी झोली फैलाकर ले जा सकता है। युधिष्ठिर पांडवों से बोले तत्काल आश्रम की ओर लौटो वहां कुटिया में पांचाली अकेली है अपनी दासी धात्रेयिका के साथ। सभी पांडव वन में कुटीर पर आये और देखा कि कुटीर के सामने भूमिपर धात्रेयिका दासी अस्त व्यस्त बैठी हुई है और उसकी आंखों से अश्रु बह रहे थे। पांडवों को देखकर वह उच्च स्वर में क्रन्दन करने लगी। पांडवों ने पूछा देवी पांचाली कहां है? धात्रेयिका दासी ने बताया सिन्धुराज जयद्रथ अपने कुछ साथियों के साथ आया था, वह बलात देवी द्रौपदी का अपहरण कर उन्हे अपने रथ पर बिठा ले भाग गया है तथा धौम्यमुनि उनके पीछे पीछे द्रौपदी की सहायता के लिये गये हैं। आप लोग जल्दी जाइये कहीं ऐसा कुछ न हो कि

देवी द्रौपदी के साथ कोई अनहोनी घट जाये। अभी रथ बहुत दूर नहीं गया होगा।

भीम बोला द्रौपदी इस कुटिया में रहती है बडे भैय्या। ये कोई कारागृह नहीं है, हमारा घर है। सहदेव बोला बडे भैया से इतने कठोर स्वर में बात न करें मझले भैया। युधिष्ठिर बोला तुम अपना मन मैला मत करो सहदेव। इसके ये कठोर स्वर भी मेरे प्रति इसकी भक्ति और स्नेह ही की पहिचान है। प्रिय भीम अर्जुन के साथ जाकर देखो द्रौपदी के साथ वन में किसी भी प्रकार की दुर्घटना हो सकती है। भीम बोला जो आज्ञा। अर्जुन और भीम अपने रथों पर सवार हो वन में पांचाली को ढूंढने निकले। पांडव बार बार क्रुद्ध सर्प की भांति फुफकार छोडते धनुष की टंकार करते उसी मार्ग से चले। कुछ ही दूर जाने पर एक फूटी गागर के टुकड़े दिखाई दिये। भीम बोला अर्जुन यह तो पांचाली के गागर के टुकडे है। वे और आगे बढे तो उन्हे अश्वों के पद चिन्ह दिखाई दिये। वे लोग उसी दिशा में आगे जा रहे थे कि रास्ते में धौम्य मुनि मिले उन्होने बताया सिन्धु नरेश जयद्रथ देवी द्रौपदी का हरण कर इस दिशा में रथ भगा ले गया है। वे दौडकर रथ की दिशा में पीछे-पीछे भागे और अर्जुन ने धनुष पर बाण चढाकर जयद्रथ के रथ को आगे बढने से रोक दिया। पांडवों को आया देख जयद्रथ के तो होश ही उड गये। भीम के हाथ में शैक्य नामक लौह की गदा थी। भीम की गदा के प्रहारों को रोकना कठिन था। अर्जुन का गांडीव तन गया और बाणों की वर्षा होने लगी। द्रौपदी जयद्रथ से बोली इस बाण को पहिचान अरे मूर्ख, यह अर्जुन के गांडीव से चला बाण है। सैनिकों का रक्तपात देखकर द्रौपदी प्रसन्न हो रही थी। वह कोई साधारण भीरू नारी तो थी नहीं, वो तो रक्त प्यासी देवी चामुंडा ही थी। उसका तो मानो जन्म ही इसलिये हुआ हो कि धरती की रक्त पिपासा शान्त हो। अपने साथियों के मारे जाने पर जयद्रथ भयभीत हो गया और द्रौपदी को नीचे उतार रथ छोडकर वन की ओर भाग गया। द्रौपदी बोली भागता कहां है कायर? पापात्मा मैं तेरी लाश भी नहीं देखना चाहती। बिजली के साथ वर्षा की बौछार के समान द्रौपदी की आंखों से आंसू बह रहे थे। तेरी यह कलुषित देह वन में श्रृंगालों को फेंक दी जाये। अर्जुन भीम से बोला मझले भैया जयद्रथ भाग गया है अब इन और अन्य निरीह व्यक्तियों के वध का कोई अर्थ नहीं। धौम्य मुनि, नकुल सहदेव द्रौपदी को लेकर अपनी कुटीर में आये। द्रौपदी बोली उसे जीवित लाने की कोई आवश्यकता नहीं। धर्मराज के चरणों में लाकर डाल देने से तो वह क्षमा मांग कर स्वतन्त्र हो जायेगा, उसका वहीं वध कर देना उचित होगा। युधिष्ठिर बोले नहीं पांचाली क्रोधित मत हो, वह जो भी है, जैसा भी है हमारी बहन दु:शला का पति है। माता गान्धारी और ज्येष्ठ पिताश्री धृतराष्ट्र के बारे में विचार करो। उसे दंडित करो पर उसके प्राणों को हरने की आज्ञा मत दो। भीम बोला आप द्रौपदी को शान्त करें ज्येष्ठ भ्राताश्री। मैं तो उस दुराचारी जयद्रथ को जीवित नही छोडूंगा। भले ही वह पाताल में क्यों न जाकर छिप जाये। स्वयं इन्द्र भी उसकी सहायता के लिये आ जाये तो भी वह हमसे छिपकर भाग नहीं पायेगा। युधिष्ठिर के आश्रम में जब वे द्रौपदी को लेकर आये तो वहां युधिष्ठिर सहित मार्कण्डेय मुनि तथा अन्य और भी बहुत से ब्राह्मण ऋषि द्रौपदी के लिये शोक कर रहे थे। सिन्धु नरेश जयद्रथ की पराजय का समाचार सुनकर सभी ऋषि और ब्राह्मण प्रसन्न हुये।

द्रौपदी युधिष्ठिर से बोली जयद्रथ पिशाच के समान हंसकर मुझे बोला विदुषी स्त्रियां पुरुष के साथ तब तक ही रहती है जब तक कि पुरुष के पास सम्पत्ति होती है। उसे तो माता कुन्ती का तनिक भी स्मरण नहीं हुआ, आपको ही क्यों प्रत्येक अवसर पर माता गान्धारी और ज्येष्ठ पिताश्री का स्मरण हो आता है? युधिष्ठिर बोले पांचाली मैं जयद्रथ नहीं हूं, मैं मनुष्य हूं इसलिये मानवीय सम्बन्ध मेरे लिये बहुत महत्वपूर्ण हैं। मैं अपने शत्रुओं को भी कष्ट में देखकर कोई सुख नहीं पाता। क्रूरता मेरे मन को आल्हादित नहीं करती। न्याय तथा अपनी रक्षा के लिये हम क्षत्रिय धर्म का अवलम्बन ग्रहण करते हैं किन्तु अस्त्र-शस्त्र हाथ में आ जाने पर हमें राक्षस नहीं बन जाना चाहिये। याज्ञसेनी तुमसे ऐसी निष्ठुरता की आशा न थी।

जयद्रथ ने पाप किया है। हर पाप की सजा मृत्युदंड ही हो तो पृथ्वी पर कोई जीवित ही नहीं रहता। पुरुष मात्र ही सुन्दर नारी का आसक्त होता है। विवेकी पुरुष अपनी कामना को नियन्त्रण में कर लेता है। जयद्रथ ठहरा विवेकहीन अत: अपनी भ्रष्ट बुद्धि से तुम्हारा अपमान कर बैठा।

द्रौपदी तडफ कर जल भुन हो युधिष्ठिर से बोली तो सारा दया धर्म हमारे ही भाग में क्यों लिखा है? लोग हम पर अत्याचार करते जायें और हम उन्हे क्षमा करते जायें? आप मर्यादा पुरुषोत्तम राम से भी अधिक क्षमाशील हैं। सीता हरण के अपराध में रावण जैसे ज्ञानी का वध राम ने किया था। पर जयद्रथ अपना बहनोई है इसलिये आप उस पापात्मा को दंड नही देना चाहते। स्त्री का अपमान आपको कष्ट नहीं देता न ही उत्तेजित करता। शास्त्र तो कहते हैं कि स्त्री हरण करनेवाला, राज्य हरण करनेवाला शरण में आ भी जाये तो भी उसे जीवित नहीं छोडना चाहिये। वह तो आततायी है समाज का घोर शत्रु है। युधिष्ठिर बोले नहीं तो क्या हमें भी उन दुष्टों का अनुसरण कर राक्षस बन जाये? सारे विरोधी परिवेश में भी हम अपने परिवेश में टिके रहे, इसी में हमारा श्रेय है पांचाली। हमें अपना धर्म नहीं छोडना है। भीम ने द्रौपदी का समर्थन किया। युधिष्ठिर द्रौपदी को क्षमा का महत्व समझाने लगे और धीरे-धीरे उग्रा हो गई द्रौपदी को शान्त करने लगे। द्रौपदी बोली जयद्रथ जीवित रहने योग्य नहीं है। यह जीवित रहा तो न जाने कितनी असहाय नारियों का अपमान और अपहरण करेगा। सारी स्त्रियों के पति इतने वीर और सामर्थ्यवान नहीं होते कि वे अपनी पत्नी के सम्मान की रक्षा कर सके। द्रौपदी अपने मन को समझाने लगी वास्तव में इस पृथ्वी पर आदमी में इतनी पाप इच्छायें भरी है कि पग पग पर धर्म, न्याय, सत्य विपन्न हो रहे है। हर पाप की सजा मृत्युदंड तो नहीं हो सकती नहीं तो धरती पर आदमी ही नहीं रहेगा। हमारे समाज का चलन ही ऐसा है कि पाप के लिये नारी को जीवन भर दु:ख सहना पडता है। जयद्रथ के पाप कर्म के कारण उसे मृत्यु दंड दिया जाये तो ननंद दुशला को जीवन भर वैधव्य का दु:ख भोगना पडेगा अत: दंड जयद्रथ को नहीं यह तो दुशला को दिया जायेगा। बहु नारी भोग करने में पुरुष को पाप नहीं लगता, उसके पौरूष का गौरव बढता है। कुछ क्षेत्रों में उसे पाप मान भी लिया जाय तो भी कोई उसे अक्षम्य अपराध नहीं कहेगा। इसी कारण से तो पुरुष में इतना दम्भ हो गया है। सुन्दर नारी को देख अपहरण के अनेक उदाहरण हैं। अत: जयद्रथ ने भी समाज के बाहर जाकर तो कोई कार्य नहीं किया। वह पुरुष है, फिर राजा है और उसे राजकीय अधिकार प्राप्त है। द्रौपदी समाज पर क्रोधित हुई। अपने पति पर और फिर सृष्टा पर गुमान हो आया। जिसके अदृष्ट में दु:ख लिखा होता है उसे ही ईश्वर सुन्दर नारी के रूप में जन्म देते हैं, दुशला भी मेरी तरह ही नारी है सदाचारिणी है, पतिव्रता है, ममतामयी है फिर वह बिना दोष क्यों यह चरम दु:ख सहे।

भीम और अर्जुन ने दौडकर जयद्रथ को वन की ओर भागते देखा जो भागने में अपना पराक्रम दिखा रहा है तो उन्होने उसका पीछा करते हुये कहा लौटो लौटो राजकुमार, तुम्हारा भागना व्यर्थ है। क्या इसी बल पर जोर जबर्दस्ती से परायी नारी को हरण कर ले जा रहे थे? अर्जुन के इस तरह कहने पर भी सिन्धुराज जयद्रथ नहीं लौटा तब महाबली भीम ने बडे वेग से दौड कर उसका पीछा किया और पकड कर घूसों से मार पिटाई करने लगा तब अर्जुन को जयद्रथ पर दया आई और बोला मझले भैया छोडो, इसे बांधकर महाराज के पास ले चलो। हमें इसको दंड देने का अधिकार नहीं है। भीम बलात जयद्रथ को कन्धे पर उठाकर पांडवों की कुटिया में ले आया। युधिष्ठिर यह सब कुछ देखकर बोले यह क्या भीम? भीम बोला इसे क्षमा करने का समय नहीं है महाराज उसे मृत्यु दंड देना ही उचित है इसने जबरन पांचाली का हरण किया है। भीम जयद्रथ के प्राण लेने उद्यत सिन्धुराज पर छाये खडे थे। जयद्रथरूपी हिंस्त्र पशु अब निरीह, मूक प्राणी बना नेत्रों में

जीवन दान की याचना लिये बैठे था। भीम ने उसे धक्का दिया और वह युधिष्ठिर के चरणों में जा गिरा। जयद्रथ का सारा शरीर धूलि धूसरित था जैसे वह बार बार भूमि पर गिरा हो, मिट्टी में बार बार लोटा हो या घसीटा गया हो। उसके अस्त व्यस्त वस्त्र मलिन हो चुके थे। वह हाथ जोडे हुये भय से कांप रहा था।

युधिष्ठिर बोले प्रिय अनुज भीम मैं इसे मृत्युदंड नहीं दे सकता अर्जुन बोले क्यों नहीं? क्या न्याय इसे मृत्युदंड देने की मांग नहीं करता महाराज? युधिष्ठिर बोले यह हमारी बहिन दु:शला का पति है अर्जुन। सहदेव बोला ज्येष्ठ भ्राताश्री यह कब से नातों का आदर करने लगा? इसे तो मृत्युदंड ही मिलना चाहिये। मैं इस दंड की मांग इसलिये नहीं कर रहा है कि इसने पांचाली के हरण करने का अपराध किया है। मैं तो यह दंड इसलिये चाहता हूं कि इसने एक ब्याहता नारी का जबरन हरण करने का पाप किया है और जिस राज्य में स्त्री का अपमान करनेवाला सिर्फ इसलिये छूट जाये कि वो राजा का बहनोई है तो फिर वो राज्य भले लोगों के रहने के योग्य नहीं। युधिष्ठिर बोले न्याय-अन्याय का प्रश्न उठाने से पहिले यह बताओ कि वादी कौन है तुम लोग या पांचाली? हम लोगों पर स्वयं ही यह आरोप लग सकता है कि हम इस सुनसान वन में द्रौपदी को असहाय छोडकर गये क्यों? तुम बताओ पांचाली इसे क्या दंड दिया जाना चाहिये क्योंकि इसने तुम्हारा अपराध किया है? पांचाली बोली कोई भी ऐसा दंड जिसकी आंच दु:शाला की मांग तक न पहुंचे। दु:शाला ने तो कोई अपराध किया नहीं है। इसे दास बना कर रख लीजिये। जयद्रथ बोला मुझपर दया करो देवी, जयद्रथ तुमसे दया की भीख मांगता है। मुझे मृत्यु दंड स्वीकार है पर दासत्व नहीं। पांचाली बोली दंड अपराधी की इच्छानुसार नहीं मिलता सिन्धु नरेश। द्रौपदी के मन में वैधव्य की कल्पना उठी कि वैधव्य कितना त्रासदायी, सन्ताप दायी। पांचाली का मन कांप उठा। जयद्रथ अधम था किन्तु उसके कुकर्मों का दंड वैधव्य के रूप में निष्पाप दु:शाला क्यों भोगे? द्रौपदी को उसके प्राण नहीं चाहिये। क्षमादान। जयद्रथ के घोर अपराध को उस उदारमना द्रौपदी ने हृदय से क्षमा कर दिया और बोली जयद्रथ का वध कर देने से तो समाज के नीति नियम यदि नहीं बदलते तो फिर दु:शला का जीवन क्यों दु:खमय करे? नारी की तरह पुरुष के लिये भी यदि पर स्त्री की कामना अक्षम्य अपराध और लज्जाजनक होती तो संसार में इतना पाप, इतना व्यभिचार नहीं रहता। सती सीता का जीवन भी दु:खमय न होता। रावण वध और लंका विध्वंस, धन वैभव की तरह स्त्री भी पुरुष के लिये जय की एक वस्तु हो गई है। जिसका बल अधिक वही औरों की स्त्री जय कर लेता है। पति को युद्ध में परास्त कर किसी की स्त्री को जीत लेना क्षत्रिय धर्म का प्रतीक बन गया है। जयद्रथ पराजित हो गया, यही मेरा भाग्य है। जयद्रथ यदि जीत जाता तो न्यायत: मैं उसकी रक्षिता बन जाती। मैंने जयद्रथ को क्षमा किया परन्तु समाज के नीति नियमों में असमता पर नारी जन्म को कोसने लगी। भीम को बोली अब इसका सिर मूंडकर पांच शिखायें (चोटियां) छोड दो आर्य पुत्र। भीम बोला अरे दास अब स्वामी महाराज युधिष्ठिर के चरण दबा। जयद्रथ युधिष्ठिर के चरणों को हाथ लगाने के लिए जैसे ही उद्यत हुआ द्रौपदी बोली इसका दंड पूरा हुआ अब इसे दासत्व से मुक्त करो आर्य पुत्र।

यही इसका वास्तविक स्वरूप है। पाप और वासनाओं के इस दास का। इसको मुक्त कर देने से यह भी देख ले कि यह नीच मेरे जिन पतियों को कंगले, निर्धन तथा लक्ष्मी हीन कहकर त्याग देने का उपदेश दे रहा था अब उसकी क्या सामर्थ्य है? अब यह देखले कि मेरे पति कितने वीर है, वे इसको पराजित कर सकते हैं। मैं स्वामिनी के रूप में इसे क्षमा किये बिना भी इसको मुक्त कर रही हूं क्योंकि ये आपकी बहिन दु:शला का पति हमारा बहनोई है। मेरे पति कितने महान हैं जो जीवन भर इसे अपना दास बनाकर रख सकते हैं पर वे ऐसा करते नहीं। भीम ने आगे बढ जयद्रथ के बन्धन खोल दिये थे और उसे

मुक्त कर दिया था। और बोला फिर कभी तू मुझे दिखाई मत देना नही तो तुझे यमराज के पास ही सीधा भेज दूंगा। पांडवों के प्रति अब भी उसके मन में कृतज्ञता का भाव नहीं था। वहां तो मात्र भय था।

भीम ने जयद्रथ का सिर मुंडाकर पांडवों की दासता स्वीकार करायी। द्रौपदी के चरण पकड कर साष्टांग प्रणिपात करवाया और क्षमा मंगवायी। प्राणों के भय से जयद्रथ ने वह सब किया। घृणा से पांचाली ने मुंह फेर लिया। विवेकहीन कामुक पुरुष का स्पर्श तो दूर उसकी छाया तक को देखना सती नारी के लिये अनुचित है। वह तो द्रौपदी के चरणों तक की धूल के स्पर्श करने के भी योग्य नहीं है। मुंडित सिर, अर्ध नग्न जयद्रथ लम्बे पसरे प्रणिपात कर रहे थे। यह देखकर भीम, नकुल, सहदेव सभी ठहाका मार कर हंस पडे। द्रौपदी वहां से चली गयी। जयद्रथ बन्धन से मुक्त कर दिया गया। उसने विह्वल हो राजा युधिष्ठिर को तथा वहां बैठे हुये सभी ऋषि मुनियों को प्रणिपात किया। युधिष्ठिर बोले जा तुझे दास भाव से मुक्त कर दिया। फिर कभी ऐसा मत करना। तू स्वयं नीच है। तूने परायी स्त्री को अपनाने की इच्छा की है।

धिक्कार है तुझे। भला कौन तेरे सिवा अन्य कोई पुरुष होगा जो इतना अधम होगा जो ऐसा खोटा कर्म करे। जयद्रथ जा अब कभी पाप में मन मत लगाना। युधिष्ठिर की ओर हाथ जोड उसने प्रणाम किया और सिर झुकाये खडा रहा।

युधिष्ठिर बोले जाओ सिन्धुराज हमारी ओर से तुम मुक्त हुये। पर पापाचारी यह स्मरण रखना कि प्रभु ने किसी को शक्ति इसलिये नहीं दी है कि वह स्त्रियों का अपहरण करे। उसे शक्ति इसलिये मिली है कि वह दुर्बलों की रक्षा करे। मैं तुम्हारे व्यसनों से परिचित हूं। यदि तुमने फिर ऐसा कोई प्रयत्न किया और हमें कष्ट देने का प्रयत्न किया तो वह तुम्हारा अन्त ही होगा। भगवान तुम्हे सद्बुद्धि दे। जयद्रथ सिर झुकाये जितनी जल्दी सम्भव था वहां से निकल गया। पांडवों से पराजित और अपमानित होने के कारण जयद्रथ को महान दु:ख प्राप्त हुआ अत: वह अपने निवास स्थान को न जाकर हरिद्वार चला गया और वहां जाकर भगवान शिव की शरण होकर उसने बहुत बडी कडी तपस्या की।

गान्धार नरेश शकुनि उस जुआरी की तरह है जो दांव पर दांव हार रहा है पर खेल खत्म करने पर तैयार नहीं है। यही तो जुए की पकड है किन्तु शकुनि पांडवों से इतना जलता है कि उसे इस जलन ने अन्धा ही कर दिया। इस राजभवन में अन्धों की गिनती बढती जा रही है। धृतराष्ट्र जन्म से अन्धा है। गान्धारी ने आंखों पर पट्टी बांध रखी है। दुर्योधन कर्ण से अन्धा है और शकुनि पांडवों के प्रति अपनी नफरत से और इन्हे इस जयद्रथ का पता ही नहीं जिसे उसे उसकी वासना ने अन्धा कर दिया और जो अपने अपमान की छाल बिछाये तपस्या के मार्ग में अपमान के लक्ष्य तक पहुंचना चाहता है।

जयद्रथ तपस्या में बैठा भगवान शंकर की आराधना कर रहा होता है। उसी समय दुर्योधन उसे ढूंढते हुये वहां पर आता है। जयद्रथ को एक पेड के नीचे शंकर की तपस्या करते देखता है। दुर्योधन जयद्रथ के निकट जाकर बोला सिन्धु नरेश भ्राता जयद्रथ आप यहां क्या कर रहे हैं? आपने अपनी यह क्या दशा बना रखी है? वहां दु:शला आपके लिये चिंतित है और मुझे आपकी खोज के लिये निकलना पडा। जयद्रथ ने समाधि से आंखे खोली और बोला ये मैं नहीं ये मेरे मलिन और दूषित, कलुषित, आत्मसम्मान का शव है मित्र दुर्योधन। मैं यह अपना मुंह न तो मित्रों को दिखा सकता हूं और न ही अपने शत्रुओं को। युवराज दुर्योधन, मित्र दुर्योधन, प्रिय दुर्योधन ये पांचो चोटियां देख रहो हो ना ये पांच चोटियां नहीं है, पांच सर्प है जो दिन रात लगातार रूके बिना मेरे सिर पर मंडराते रहते है और मुझे डसते रहते है। दुर्योधन बोला वो कौन है जिसने आपका अपमान करने का साहस और जुर्रत की? और वो भी हमारे राज्य की सीमाओं के भीतर। जयद्रथ बोला यह वही पंचशूल है युवराज जो तुम्हारे हृदय में भी फंसा हुआ है, पांडव। दुर्योधन बोला पांडव। उन्होने इस नाते का भी

शील संकोच नहीं किया कि आप उनके बहनोई है और दु:शला उनकी बहिन है। आपकी यह दशा बनाकर उन्होने सर्प की बाम्बी मे हाथ डाला है भ्राताश्री और दुर्योधन उन्हे इस अपराध के लिये उन्हे कभी क्षमा नहीं करेगा। तुम चाहो तो उन्हे क्षमा कर भी दो परन्तु यह अपमानित जयद्रथ उन्हे कभी क्षमा नहीं करेगा युवराज। मेरी ये पांच चोटियां नहीं ये उन पांचो की मृत्यु के आदेश पत्र है जिस पर उनके रक्त से मैं हस्ताक्षर करूंगा। मैं तुम्हे वचन देता हूं युवराज मैं इस अपमान के घाव को तब तक भरने नहीं दूंगा जब तक मैं उनसे इस अपमान का प्रतिशोध नहीं ले लेता। दुर्योधन बोला उन्होने मेरी छाती में एक और घाव कर दिया है। दु:शला अनाथ नहीं है सिन्धु नरेश। उसके पति का अपमान करनेवालों को इस अपराध के लिये कई कई बार मरना पडेगा। आप हस्तिनापुर चलिये। जयद्रथ बोला नहीं। अभी मैं न तो सिन्धु देश जा सकता हूं और ना ही हस्तिनापुर। पहिले तो मैं तपस्या करके महादेव से उनपर विजय प्राप्त करनेका प्रयत्न करूंगा। यह कहकर जयद्रथ फिर से महादेव की तपस्या में लग गया और दुर्योधन वहां से चला गया।

कैलाश पर शिव पार्वती बैठे हैं। पार्वती शिव से बोली आप किस चिन्ता में है प्रभु? शिव ने कहा मैं इसलिये चिंतित हूं देवी की सिन्धुनरेश जयद्रथ पांडवों पर विजय पाने के लिये तपस्या कर रहा है। पार्वती बोली तो आप क्या करेंगे प्रभु। पांडव तो पृथ्वी पर सत्य और धर्म के प्रतिबिम्ब है और स्वयं नारायण की कृपा छाया में है। शिव बोले यदि मेरे स्थान पर तुम होती तो क्या करती। पार्वती बोली मैं उसे कोई वर दिये बिना ही लौटाती प्रभु। शिव बोले मांगनेवाले को लौटाना नहीं चाहिये। यदि मेरे पास कोई कुछ मांगने आता है तो मैं उसकी भक्ति का ऋणी हो जाता हूं और ऋण तो चुकाना ही पडता है। मैं मांगने वाले को रिक्त हाथ लौटाना नहीं चाहता। पार्वती ने पूछा तो भगवन क्या आप? शिव बोले यही तो चिन्ता है जो मैं नहीं दे सकता वो तो मैं नहीं दूंगा किन्तु उसे कुछ न कुछ तो अवश्य देना पडेगा और उसे कुछ न कुछ दूंगा भी अवश्य। तुम चिन्ता ना करो। जो हो रहा है उसे चुप चाप देखती जाओ। रक्त के सागर मन्थन की घडी निकट आते जा रही है। जयद्रथ अपने प्रतिशोध के लिये तपस्या कर रहा है पश्चात्ताप के लिये नहीं, मन शुद्धि के लिये नहीं। पश्चाताप तो ऐसा भाव है जिसके सम्मुख पत्थर पिघल जाता है। वह तपस्या कर कुछ अलौकिक शक्तियों को संचित करना चाह रहा है। कैसे कैसे मूर्ख लोग होते हैं इस संसार में कि जिस तपस्या से ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है उस तपस्या को वे मात्र अपनी शत्रुता का विस्तार करने का माध्यम बनाते है। उस सर्व मंगल कर्ता से किसी का अनिष्ट मांगने से वह नहीं मिलता क्योंकि वह किसी का अनिष्ट करता ही नहीं।

शिवने जयद्रथ की तपस्या से प्रसन्न हो प्रत्यक्ष प्रकट हो उसे वर मांगने कहा तो जयद्रथ ने कहा मैं युद्ध में पांचो पांडवों को जीत लूं यही वर मुझे दें। शिव बोले ऐसा तो नहीं हो सकता। पांडवों को तो युद्ध में न तो कोई जीत सकता है और न ही कोई उनका वध कर सकता है। केवल एक दिन तुम अर्जुन को छोडकर अन्य शेष चारों पांडवों को युद्ध में सिर्फ पीछे हटा सकोगे। तुम्हारे वर मांगने का उद्देश्य मुझे मालूम है। तुम उन्हे हराकर पर नारी द्रौपदी को क्षत्रिय धर्म के अनुसार पाने को व्याकुल हो रहे हो पर मैं तो अपना सर्वाधिक शक्तिशाली पशुपतास्त्र पहिले ही अर्जुन को दे चुका हूं। अर्जुन पर तुम्हारा वश इसलिये नहीं चलेगा कि वे देवताओं के स्वामी नर के अवतार हैं जिन्होने बदरिकाश्रम में भगवान नारायण के साथ तपस्या की है। उन्हे तो सारा विश्व भी नहीं जीत सकता है, वे देवताओं के लिये भी अजेय है। अर्जुन ने अन्य लोकपालों से भी दिव्यास्त्र प्राप्त किये हैं। इस समय दुष्टों का नाश और धर्म की रक्षा के लिये भगवान विष्णु ने कृष्ण रूप में यदुवंश में अवतार लिया है। वे अनादि, अनन्त, अजन्मा, श्रीकृष्ण ही सदा अर्जुन की रक्षा करते है। फिर मनुष्यों में ऐसा कौन है जो उन्हे जीत सकेगा? ऐसा कहकर पार्वती सहित भगवान गौरी शंकर वहां से अन्तर्धान हो गये और मूढ़ बुद्धि जयद्रथ वहां से अपने सिन्धु देश लौट गया।

# २०) मार्कण्डेय मुनि द्वारा युधिष्ठिर की शंका का निवारण और रामचरित सुनाना

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय जयद्रथ की पराजय होने पर द्रौपदी को जयद्रथ के चंगुल से मुक्त करा धर्मराज युधिष्ठिर मुनिमंडली सहित बैठे थे। महर्षि लोग भी पांडवों पर आये इस संकट के लिये बार बार शोक प्रकट कर रहे थे। युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय मुनि से पूछा ऋषिवर आप तो त्रिकालदर्शी भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों के ज्ञाता हैं। देवर्षि में भी आप श्रेष्ठ हैं। मेरे मन में बार बार शंका होती है, मैं जानना चाहता हूं कृपया मेरी शंकाओं का निवारण कीजिये। यह सौभाग्यशालिनी द्रुपद कुमारी पांचाली जो यज्ञ वेदी से प्रकट हुई है, इसे गर्भवास का भी कष्ट नहीं सहना पडा। महात्मा पांडु की पुत्र वधू होने का इसे गौरव मिला है। इसने कभी भी पाप या निन्दित कर्म नहीं किया है। यह धर्म का तत्व जाननेवाली और उसका पालन करती है। ऐसी स्त्री का भी पापी जयद्रथ ने अपहरण किया और उसका यह अपमान हमें देखना पडा। अपने सगे सम्बन्धियों से दूर वन में रहकर हमें तरह-तरह के कष्ट भोगने पड रहे हैं। क्या आपने हमारे समान मन्द भाग्य पुरुष इस जगत में कभी कोई हुआ है? देखा या सुना है? यह कहते हुये युधिष्ठिर के नेत्रों में जल छलक आया। धर्म की ज्ञाता, विदुषी, धर्माचरण करनेवाली पतिव्रता स्त्री को अपहरण का अपमान और कलंक क्यों सहना पडा मुनिवर? मैंने और मेरे भाइयों ने ऐसा क्या किया कि हमें अपने ही बन्धुओं भाइयों के हाथों अपने राज्य से निष्कासित होना पडा? विधाता हमें क्यों इतना कष्ट दे रहा है? कभी कभी तो मैं अपने आप से भी पूछता हूं कि क्या संसार में मुझसे भी अधिक दु:खी कोई अन्य व्यक्ति है? कोई मुझसे भी अभागा उत्पन्न हुआ है इस धरती पर?

मार्कण्डेय मुनि हंसे और बोले युधिष्ठिर ऐसा कोई दु:ख, ऐसी कोई समस्या नहीं जिसका समाधान न हो और ऐसा कोई सुख नहीं जो सदा सर्वदा स्थिर हो। यह तो चलता चक्र है जो आता जाता रहता है अपनी धूरी पर फिरता है। न तुम इस सृष्टि के पहिले मनुष्य हो जो यह कष्ट भोग रहे हो और न ही अन्तिम। सुख-दु:ख के कष्ट तो प्रत्येक मनुष्य के जीवन में आते ही है। ये तो हर क्षण, हर पल मनुष्य के साथ लगे हुये है। क्या तुम श्रीराम से अधिक धर्माचारण वाले हो? वे भी अपनी ही सौत माता के कारण राज्य से निष्कासित हुये थे। उनको भी वनवास और अपनी सती पत्नी सीता का स्त्री वियोग का महान कष्ट भोगना पडा था। राक्षस राज दुरात्मा रावण अपने कपट जाल से वन में आश्रम में से श्रीराम की पत्नी सीता का हरण कर ले गया था। जटायु श्रीराम का दास जिसने अपने प्राणों पर खेल कर उसे बचाने का प्रयत्न किया था अकारण उससे भी लडाई कर उसे मार डाला था रावण ने। तत्पश्चात सुग्रीव की सहायता से समुद्र पर सेतु बांधकर लंका में गये थे और विभीषण की सहायता से, हनुमान ने लंका दहन किया। सभी वानरों के सहयोग से दुष्ट रावण का संहार कर सीता को वापिस लौटा लाये थे। तुम्हारे साथ तो तुम्हारे ये चार-चार महापराक्रमी भाई है परन्तु श्रीराम को तो रावण से युद्ध करने के लिये अपने सहायक खोजने पडे थे। द्रौपदी क्या जनक सुता सीता से अधिक पवित्र और सती है क्या? अपहरण और कष्ट तो सीता को भी सहना पडा था। सती सावित्री भी तो वैधव्य के द्वार तक जाकर अपने पति को यमराज से छीनकर ले आयी थी। मार्कण्डेय युधिष्ठिर से बोले धर्मराज हमें अपने दुर्भाग्य के विषय में नहीं अपने सौभाग्य के विषय में सोचना चाहिये कि प्रभु ने हमें क्या क्या दिया है? हमें तो प्रभु के प्रति कृतज्ञ होना चाहिये। आप यह क्यों नहीं सोचते कि प्रभु तुम पर इतने कृपालु है कि उन्होने तुम्हारा मन पापी दुर्योधन जैसा नहीं बनाया अन्यथा तुम भी अपने भाइयों की सम्पत्ति छीनने के लिये षडयन्त्र रच रहे होते।

युधिष्ठिर बोले क्या करूं ऋषिवर जब यह मन बार-बार संसार की ओर देखता है तब उससे प्रभावित हुये बिना नहीं रहता। अपने कर्मों का नही, ईश्वर के कर्मों का विश्लेषण करने लगता है। अपने दोष तो देखता नहीं और ईश्वर में दोष

ढूंढने लगता है, उस विराट की लीला को समझने का प्रयत्न ही नहीं करता और मन में उसके प्रति कोई न कोई विरोध पाल लेता है। मार्कण्डेय मुनि बोले सबसे बडी कठिनाई तो यह ही है धर्मराज कि हम अपनी उस तुच्छ क्षुद्र बुद्धि से, तर्क से उस ईश्वर को समझना चाहते है जो बुद्धि द्वारा अगम्य है, जो अपनी क्षमता में उस विराट की तुलना में बहुत ही छोटी है। हम यह अहंकार पता क्यों पालते है कि हमारी बुद्धि उस चैतन्य को भी उसी प्रकार देख समझ सकती है जैसे हम सांसारिक विषयों को, व्यापार व्यवहार को देख समझ सकते है। एक चींटी अपनी बुद्धि से मनुष्यों के मन और मनुष्यों के संसार, कर्म, व्यवहार को नहीं जान सकती, समझ सकती। वैसे ही मनुष्य की बुद्धि भी उस सृष्टि कर्ता चैतन्य को नहीं समझ सकती। मनुष्य अपनी बुद्धि से जो देखता है, सोचता है, समझता है उसी के आधार पर उस ईश्वर का एक चित्र अपने मन में बना लेता है और उस पर सारे मानवीय गुण और दोष आरोपित करने लगता है। वह प्रभु के बारे में भी सारे मानवीय तर्क वितर्कों की कल्पना करता है और उससे वैसे ही व्यवहार की अपेक्षा करता है। मनुष्य की बाध्यता यह है कि उसके पास सोचने समझने के जो उपकरण हैं वे इतने सीमित और संकुचित हैं कि उनसे ईश्वर को, उस सृष्टिकर्ता चैतन्य को नहीं समझा जा सकता है और उन उपकरणों का त्याग कर अपने अन्त:करण से, श्रद्धा और विश्वास से उस ईश्वर को जानना नहीं चाहता। मनुष्यों में सबके अपने अपने आसमान होते हैं और प्रत्येक की उनकी अपनी अपनी ऊंचाई होती है। दुर्योधन की तुच्छ बुद्धि कभी नहीं समझ पायेगी कि तुम वन में इसलिये आये की धृतराष्ट्र की आज्ञा का मान रखा, अपने ज्येष्ठ पिताश्री की आज्ञा को अस्वीकार करना तुम्हारे लिये अधर्म था। वह तो यही सोचता है कि तुम मूर्ख हो इसलिये तुम दुष्ट दुर्योधन के षडयन्त्रों को नहीं जान पाये। तुम द्यूत खेलने इसलिये नहीं हस्तिनापुर गये थे कि द्यूत तुम्हारा व्यसन है पर वह ऐसा ही मानता है। तुम्हारा वन स्वीकार करना वह तुम्हारी दुर्बलता और भय मानता है। वह नहीं सोचता कि तुमने अपने ज्येष्ठ पिताश्री की आज्ञा मानकर अपना धर्म पालन किया। वह ऐसा सोचता है कि तुममें क्षत्रियोंवाला लड मरनेवाला तत्व ही नहीं है। वह यह कभी नहीं मानेगा कि तुम युद्ध के पक्ष में नहीं हो, शान्ति चाहते हो, तुम नृशंस नहीं हो। वह तो यह मानता है कि तुम युद्ध इसलिये नहीं चाहते कि तुम दुर्बल और कायर हो। इसलिये धर्मराज मनुष्य को पहिले अपने आकाश को ऊंचा करना चाहिये फिर सात्विकता का मूल्यांकन करो और ईश्वर को समझने के लिये उसी की शरण में जाओ।

युधिष्ठिर बोले मुनिवर मैं पुण्यकर्मा श्रीराम का चरित्र सुनना चाहता हूं उनका चरित्र मुझे विस्तार से सुनाये। तब मार्कण्डेय मुनि ने धर्मराज युधिष्ठिर को पूरा रामचरित (रामकथा) सुनाया और बोले धर्मराज इस प्रकार प्रभु श्रीराम बनवास का भयंकर कष्ट पाये। युधिष्ठिर तुम क्षत्रिय हो शोक मत करो अपने बाहुबल से कर्मों से प्रत्यक्ष फल देनेवाले मार्ग पर प्रशस्त हो। तुम्हारा इसमें अणुमात्र भी अपराध नहीं है। इस संकटपूर्ण स्थिति में इन्द्रसहित सभी देवता और असुरों को भी आना पडा है। युधिष्ठिर बोले इस द्रौपदी के लिये मुझे जैसा शोक हो रहा है वैसा न तो अपने लिये होता है और न ही मेरे इन भाइयों के लिये और न ही राज्य छिन जाने से। यह जैसी पतिव्रता है, वैसी क्या कोई दूसरी सौभाग्यवती नारी इससे पहिले कभी हुई आपने देखी या सुनी?

## २१) सावित्री चरित्र तथा यमराज और सावित्री का सम्वाद

मार्कण्डेय बोले युधिष्ठिर राजकन्या सावित्री ने जिस प्रकार श्रेष्ठ कुलीन स्त्रियों का परम सौभाग्य रूप पातिव्रत्य का सुयश प्राप्त किया था वह वृतान्त तुम्हे बताता हूं। मद्र देश में अश्वपति नाम का एक बडा ही धार्मिक और ब्राह्मण सेवी राजा था। वह बडा ही उदार हृदय, सत्यनिष्ठ, जितेन्द्रिय, दानी, चतुर, पुरवासी और देशवासियों का प्रिय तथा समस्त प्राणियों के

हित में तत्पर रहनेवाला, क्षमाशील था। उस नियम निष्ठ राजा की धर्मशीला ज्येष्ठा पत्नी शैव्या को गर्भ रहा और यथा समय उसने एक कमलनयनी सूर्य प्रभा सम कन्या को प्रसव किया। राजा ने प्रसन्न हो उस कन्या के जात कर्म संस्कार आदि कराये और सविता मन्त्रों के हवनादि करने से राजा ने उसका नाम सावित्री रखा। मूर्ति मती लक्ष्मी के समान वह कन्या धीरे-धीरे बढने लगी और समय आने पर युवावस्था में आ गई। कन्या को युवती जान विवाह की चिन्ता में एक दिन महाराज अश्वपति ने अपनी पुत्री से कहा पुत्री तू विवाह के योग्य है। इसलिये तू स्वयं अपने योग्य वर की तलाश कर। शास्त्र कहते है जो व्यक्ति विवाह योग्य होने पर कन्यादान नहीं करता, वह पिता धिक्कारने योग्य है, जो ऋतुकाल में स्त्री समागम नहीं करता, वह पति निन्दनीय है तथा पति के मर जाने पर विधवा माता का पालन नहीं करता वह पुत्र जीवित रहने योग्य नहीं है। सावित्री तू शीघ्र अपने लिये वर की खोज कर ले जिसमे मैं देवों की दृष्टि में अपराधी न बनूं। पुत्री से ऐसा कहकर राजा ने अपने बूढे मन्त्रियों को आज्ञा दी आप सब लोग सावित्री के साथ जाये। सावित्री सकुचा कर पिता की आज्ञा पालन कर, पिता को प्रणाम कर बूढे मंत्रियों सहित रथ में बैठ वर की खोज करने निकली। वह राजर्षियों के तपोवन में विचरती रही। वह सभी तीर्थों में श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दान धर्म करती विभिन्न प्रदेशों में घूमती रही।

एक दिन मद्र नरेश अश्वपति अपनी राजसभा में बैठे हुये थे कि इतने में देवर्षि नारद वहां आये। उसी समय मन्त्रियों सहित सावित्री सभी तीर्थों का भ्रमण कर मद्र देश अपने पिता के पास लौटी। वहां नारदजी को देख उनके चरणों में प्रणाम किया। उसे देखकर नारदजी ने पूछा राजन यह आपकी पुत्री कहां से आ रही है? यह युवती हो गयी है, विवाह योग्य है। तब महाराज अश्वपति बोले यह इसी काम के लिये अपने पति की खोज में गई थी और यह आज ही लौटी है। यही बतायेगी इसने अपने लिये किसे चुना है? पिता के कहने पर सावित्री ने बताया शाल्व देश में द्युमत्सेन नाम के एक विख्यात बडे धर्मात्मा राजा हैं जो अन्धे हो गये हैं। राजा के अन्धे हो जाने पर, उनके पूर्व शत्रु पडोसी राजा ने उनका राज्य हर लिया है। तब वे अपने बालक पुत्र और अपनी भार्या शैव्या सहित वन में जाकर बडे व्रतों का पालन करते हुये तपस्या करने लगे। वन में रहते-रहते उनका पुत्र बडा हो गया जो कुमार सत्यवान है वो मेरे अनुरूप है और मन से मैंने उसी को अपने पति रूप से वरण किया है।

यह सुनकर नारद बोले राजन लगता है सावित्री से बडी भूल हो गयी है जो इसके विषय में जाने बिना ही गुणी समझकर सत्यवान को वर लिया है। राजा अश्वपति सत्य भाषण करते है और माता भी सत्यवादिनी ही है इसी कारण ब्राह्मणों ने इनके पुत्र का नाम सत्यवान रखा। राजा ने पूछा देवर्षि यह राजा का लाडला पुत्र सर्वगुण सम्पन्न तेजस्वी, बुद्धिमान, क्षमावान और शूरवीर तो है न? नारद बोले यह द्युमत्सेन का पुत्र सूर्य के समान तेजस्वी, बृहस्पति के समान बुद्धिमान, इन्द्र के समान वीर और पृथ्वी के समान क्षमाशील, रन्तिदेव के समान दाता, उशीनर के पुत्र शिबि के समान ब्रह्मण्य और सत्यवादी, ययाति के समान उदारमना, चन्द्र के समान प्रियदर्शन और अश्विनीकुमारों के समान अद्वितीय रूपवान है। वह जितेन्द्रिय है, मृदुल स्वभाव है, शूरवीर है, सत्यवादी है, मिलनसार है, ईर्ष्याहीन है, लज्जाशील है और तेजस्वी है। तप और शील में बड़े ब्राह्मण ऐसा कहते हैं उनमें सरलता का निरन्तर निवास रहता है और उसमें उसकी अविचल स्थिति हो गयी है। अश्वपति बोले आप तो उसे सभी गुणों से सम्पन्न बता रहे हैं यदि उसमें कोई दोष हो तो मुझे बताये? नारद बोले राजन उसमें एक ही दोष है जिसके कारण उसके सब गुण दबे हुये है और वह दोष किसी प्रयत्न से भी निवृत नहीं किया जा सकता, उसके सिवा उसमें और कोई दोष नहीं है। आज से एक वर्ष पश्चात सत्यवान की आयु समाप्त हो जायेगी और वह देह त्याग कर देगा।

राजा अश्वपति सावित्री से बोले पुत्री नारदजी कह रहे है कि सत्यवान अल्पायु है तो फिर तू किसी अन्य वर की खोज करे

तो अच्छा होगा। सावित्री बोली नहीं पिताश्री। काष्ठ पाषाणादि का टुकडा एक बार ही जुडता है और अलग होता है, कन्यादान भी एक ही बार किया जाता है। वाग्दान का संकल्प भी एक ही बार होता है। इसलिये अब तो मैंने जिसे वरण कर लिया वो चाहे दीर्घायु हो या अल्पायु, गुणवान हो या गुणहीन, वही मेरा पति होगा, मैं किसी अन्य पुरुष को वरण नहीं कर सकती। पहिले मन से निश्चय किया जाता है फिर वाणी से कहा जाता है और फिर कर्म द्वारा परिणित किया जाता है। यही मेरा दृढ निश्चय है। नारद बोले राजन तुम्हारी पुत्री की बुद्धि निश्चयात्मिका है। यह किसी भी प्रकार धर्म से विचलित नहीं होगी। सत्यवान में जो जो गुण है वे किसी दूसरे पुरुष में है ही नहीं। अत: आप अच्छा समझ इसका कन्यादान करे। अश्वपति बोले देवर्षि आपने जो बात कही वह मैं मानता हूं तथा होनी कभी टाली नहीं जाती। मैं आपके कहे का पालन करूंगा। मेरे तो गुरु आप ही है। फिर नारदजी की आज्ञा शिरोधार्य कर विवाह का सम्बन्ध निर्णय करने के लिये वृद्ध ब्राह्मणों और पुरोहितों सहित, सभी ऋत्विजों को बुलाकर शुभ लग्न मुहूर्त में कन्या सहित राजा द्युमत्सेन के आश्रम में पहुंचे। राजा अश्वपति ने द्युमत्सेन से सकुशल क्षेम पूछ कर भेंट की और विनीत हो अपना परिचय दिया। राजा द्युमत्सेन ने पूछा कहिये किस कारण आपका आगमन हुआ तब महाराज अश्वपति ने कहा हे राजर्षि मेरी यह पुत्री सावित्री अत्यन्त रूपवती सुलक्षणी कन्या है इसे धर्मानुसार अपनी पुत्र वधू के रूप में इसे स्वीकार करे। द्युमत्सेन बोले राजन हम तो राज्य से भ्रष्ट हो चुके हैं और यहां वन में सुखपूर्वक रहकर संयम से तपस्वियों का जीवन व्यतीत करते हैं। आपकी कन्या तो यह सब कष्ट सहने योग्य नहीं है। वह यहां इस आश्रम में वनवास के दु:खों और कष्टों को सहन करते हुये कैसे रह पायेगी? अश्वपति बोले महाराज सुख और दु:ख तो आने जानेवाले होते है, इस बात को मैं और मेरी पुत्री भली भांति जानते हैं। मैं तो सब प्रकार से निश्चय करके ही आपके पास आया हूं। द्युमत्सेन बोले राजन मैं तो पहिले से ही आपके साथ सम्बन्ध करने को इच्छुक था किन्तु राज्यच्युत होने के कारण मैंने यह विचार छोड दिया था लेकिन अब यदि मेरी यह अभिलाषा स्वत: ही पूर्ण होना चाहती है तो मुझे स्वीकार है। आप तो मेरे अभीष्ट विशेष अतिथि है।

तत्पश्चात सभी ब्राह्मणों से दोनों राजाओं ने विधिवत् विवाह संस्कार कराया और यथायोग्य रीति से वर कन्या आदि को उपहार आभूषण आदि दिये। राजा अश्वपति बडे आनन्द से अपनी राजधानी मद्र देश को लौटे। उस सर्वगुणसम्पन्ना सावित्री को पत्नी रूप में पाकर सत्यवान को बडी प्रसन्नता हुई तथा सावित्री को भी बडा आनन्द हुआ। सावित्री सास-ससुर की सेवा, गुण, विनय संयम और सबके मन अनुसार करती थी। सभी को उससे सन्तोष था। वह मधुरवाणी से सबको सन्तुष्ट कर मधुर भाषण, कार्यकुशलता, शान्ति और एकान्त सेवा कर सभी को प्रसन्न किया। इस प्रकार तपस्या करते-करते उस आश्रम में कुछ समय बीत गया।

बहुत दिनों के पश्चात एक दिन वो भी आया जिस दिन सत्यवान की मृत्यु होनी थी। सावित्री के हृदय में नारदजी के कहे हुये वचन स्मरण थे। वो समय एक-एक दिन गिनती रहती थी। जब सत्यवान की मृत्यु में चार दिन शेष रह गये तो सावित्री ने तीन दिन का व्रत किया और स्थिर हो बैठी। दूसरे दिन कल जब पति के प्रयाण इस चिन्ता में बैठे बैठे सारी रात्रि बितायी। दूसरे दिन प्रात: यह सोच कर कि आज ही वो दिन है इसलिये सूर्योदय होते ही नित्य के आहिलक कृत्य समाप्त कर यज्ञ की प्रज्वलित अग्नि में आहुतियां दी। स्त्री ब्राह्मण, वृद्ध जनों, सास-श्वसुर को प्रणाम कर हाथ जोडे खडी रही। उस तपोवन के सभी तपस्वियों ने उसे अवैधव्य के शुभ आशीर्वचन दिये। उसी समय सत्यवान कन्धे पर कुल्हाडी उठाकर वन में समिधा लाने को तैयार हुआ। सावित्री ने उसे रोककर कहा आप अकेले न जाये, मैं भी आपके साथ चलूंगी। सत्यवान बोला प्रिये तुम वहां पहिले कभी वन में गयी नहीं हो, वन का रास्ता बडा कठिन दुर्गम है और उपवास के कारण तुम दुर्बल हो रही हो फिर इस विकट मार्ग में पैदल

नहीं चल पाओगी। सावित्री बोली हे स्वामी उपवास के कारण मुझे किसी प्रकार की भी शिथिलता नहीं है, आपके साथ चलने के लिये मन में उत्साह है, इसलिये आप मुझे रोकिये मत। आगे आप जैसी आज्ञा करे। सत्यवान ने कहा देवि यदि तुम्हे चलने का उत्साह है तो मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं परन्तु तुम माता-पिता से भी आज्ञा ले लो। इस प्रकर अपने सास-श्वसुर की आज्ञा पाकर यशस्विनी सावित्री अपने पति सत्यवान के साथ चली गई। वह ऊपर-ऊपर से तो हंस रही थी परन्तु हृदय में दु:ख से व्याकुल थी। वीर सत्यवान ने वन में फलों को बीन कर टोकरी भर ली और फिर लकडियां काटने लगा। लकडिया काटने के परिश्रम के कारण सत्यवान के सिर में दर्द होने लगा तथा सारे अंग और हृदय में जलन होने लगी। वह अपनी पत्नी सावित्री से बोला आज लकडी काटने के परिश्रम से मेरा सिर दर्द कर रहा है तथा सारे अंगों और हृदय में दाह सा हो रहा है। मेरा शरीर अस्वस्थ सा लग रहा है। ऐसा लग रहा है मानो मेरे सिर में कोई बर्छी से छेद कर रहा है। हे कल्याणी अब मैं सोना चाहता हूं, मुझमें बैठने की शक्ति नहीं है।

यह सुनकर सावित्री अपने पति के पास आकर बैठी और अपने पति का सिर गोद में रखा। फिर वह नारदजी की बात का स्मरण कर मुहूर्त, क्षण और दिन का हिसाब करने लगी। इतने में ही उसे एक लाल वस्त्र पहिने पुरुष दिखाई दिया। वह तेजस्वी होने के कारण मूर्तिमान सूर्य समान जान पडता था। उसके नेत्र लाल-लाल थे, हाथ में पाश था और देखने में बडा भयानक लगता था और वह सत्यवान के पास खडा हो उसे देख रहा था। उसे देखकर सावित्री का हृदय धडकने लगा और वह अत्यन्त आर्त स्वर से हाथ जोड बोली मैं समझती हूं आप कोई देवता है क्योंकि आपका यह मानव शरीर सा नहीं लग रहा है तो फिर आप कौन है और क्या करना चाहते है? तब पुरुष ने कहा सावित्री तू पतिव्रता तपस्विनी है, तू मुझे यमराज जान। तेरे पति राजकुमार सत्यवान की आयु पुरी हो चुकी है। अब इसे पाश में बांधकर मैं यमपुरी ले जाऊंगा। सावित्री बोली मैंने तो सुना था कि मनुष्यों को लेने के लिये आप के दूत आया करते है और यहां तो आप स्वयं ही पधारे है। यमराज बोले सत्यवान, धर्मात्मा, रूपवान और गुणों का सागर है, इसलिये यह मेरे दूतों द्वारा ले जाने योग्य नहीं है, इसी कारण मैं स्वयं आया हूं। यमराज ने अपनी शक्ति से सत्यवान के शरीर में से अंगुष्ठ मात्र परिणामवाला जीव निकालकर अपने पाश में बांधा औरउसे लेकर दक्षिण दिशा की ओर चल दिये। तब दु:ख से आतुर हो सावित्री भी यमराज के पीछे-पीछे चल दी। यमराज बोले सावित्री तू यहां से लौट जा और अपने पति के शरीर का और्ध्व दैहिक संस्कार कर, अंत्येष्टि कर, अब तू पति सेवा के ऋण से मुक्त हुई। पति के पीछे जहां तक तुझे आना था वहां तक तू आ चुकी। सावित्री बोली मेरे पतिदेव को आप जहां भी ले जायेंगे अथवा जहां वे स्वयं जायेंगे वहां मुझे भी जाना चाहिये। यही पत्नी का सनातन धर्म है। तपस्या गुरु भक्ति पति प्रेम, व्रत आचरण और आपकी कृपा से मेरी गति कही भी रूक नहीं सकती।

यमराज बोले सावित्री तेरे स्वर, अक्षर, व्यंजन एवं युक्ति युक्त बात सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हूं। तू सत्यवान के जीवन के सिवा कोई भी वर मांग ले। मैं तुझे सब प्रकार का वर देने को तैयार हूं। सावित्री ने कहा मेरे श्वसुर अपने राज्य से भ्रष्ट होकर वन में विचरते है और उनकी दृष्टि भी चली गयी है, वे नेत्रहीन हो गये है। वो अब आपकी कृपा से नेत्रों में ज्योति प्राप्त करे, शक्तिशाली हो तथा अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी हो जाये। यमराज बोले साध्वी मैं तुम्हे यह वर देता हूं। तथास्तु, तूने जैसा कहा है वैसा ही होगा। तू मार्ग चलने में शिथिल लग रही है, अब तू लौट जा। सावित्री बोली हे ब्रह्मन पतिदेव के पास रहते मुझे कैसा श्रम? जहां मेरे प्राणनाथ वही मेरा निश्चल आश्रय। हे देवेश्वर जहां आप मेरे पति को ले जा रहे है वही मेरी भी गति होनी चाहिये। सत्पुरुषों का तो एक बार का समागम भी अत्यन्त अभीष्ट होता है। उससे बढकर उनके साथ प्रेम हो जाता है। संत समागम कभी निष्फल नहीं होता अत: सर्वदा सत्पुरुषों का संग करना चाहिये।

यमराज बोले सावित्री तूने जो हित की बात कही है वो मेरे मन को बहुत अच्छी लगी उससे विद्वानों की बुद्धि का विकास होता है। अत: अब तू इस सत्यवान के जीवन के सिवा कोई भी दूसरा वर मांग ले। सावित्री बोली हे देव। मेरे मतिमान श्वसुर जो अपने राज्य से भ्रष्ट हो चुके है वह उन्हे स्वत: प्राप्त हो और वे अपने धर्म का त्याग न करे। यह मैं आपसे दूसरा वर मांगती हूं। यमराज बोले राजा द्युमत्सेन शीघ्र ही स्वत: अपना राज्य प्राप्त करेंगे और वे अपने धर्म का भी त्याग नही करेंगे। जा तेरी इच्छा पूर्ण होगी। अब तू वापिस लौट जा जिससे तुझे व्यर्थ श्रम न हो। सावित्री बोली हे देव इस सारी प्रजा का आप नियम से पालन करते है। संयम कर नियमन से उसे अभिष्ट फल देते है इससे आप यम नाम से प्रसिद्ध है। मन, वचन और कर्म से समस्त प्राणियों के प्रति अद्रोह, सब पर कृपा करना और दान देना यह सत्पुरुषों का सनातन धर्म है। सभी मनुष्य अपनी शक्ति नुसार कोमलता से बर्ताव करते है किन्तु जो सत्पुरुष है वे तो अपने पास आये शत्रुओं पर भी दया करते हैं।

यमराज बोले कल्याणी प्यासे आदमी को जैसे जल पाकर आनन्द होता है वैसी ही तेरी यह बात है जो प्रिय लगनेवाली है। इस सत्यवान के जीवन के बिना तू फिर कोई अभिष्ट वर मांग। सावित्री बोली मेरे पिता मद्र नरेश अश्वपति पुत्र हीन है उनके अपने कुलवृद्धि करनेवाले सौ औरस पुत्र जन्म ले। यह मेरा आपसे तीसरे वर का निवेदन है। यमराज बोले सुमुखि तेरे पिता के कुल की वृद्धि करनेवाले सौ तेजस्वी पुत्र होंगे। अब तू लौट जा बहुत दूर तक तू आ गई है। सावित्री बोली पतिदेव के सानिध्य के कारण यह दूरी कुछ दूरी नहीं जान पडती। मेरा मन तो बहुत दूर-दूर की दौड लगाता है। आप विवस्वान सूर्य के प्रतापी पुत्र हैं इसलिये विद्वान आपको वैवस्त भी कहते है। आप शत्रु मित्रादि के भेदभाव को छोडकर समान रूप से न्याय करनेवाले हैं। इसी कारण सारी प्रजा धर्म आचरण में संलग्न रहती है और आप धर्मराज नाम से विख्यात है। इसके सिवा मनुष्य सत्पुरुषों का जैसा विश्वास करता है, वैसा अपना भी नहीं करता है। इसलिये वह सबसे अधिक सत्पुरुषों में ही प्रेम करना चाहता है और विश्वास भी सभी जीवों को सुहृदता के कारण हुआ करता है। सुहृदता की अधिकता के कारण ही सब लोग सन्तों में विशेष रूप से विश्वास किया करते हैं।

यमराज बोले राजपुत्री तूने जैसी बात कही है, वैसी मैंने तेरे सिवा और किसी से भी नहीं सुनी, इस कारण मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूं। तू इस सत्यवान के जीवन के अतिरिक्त कोई भी चौथा वर मांग ले और यहां से वापिस लौट जा। सावित्री बोली मैं आपसे यह चौथा वर मांगती हूं कि मेरे सत्यवान के द्वारा कुलवृद्धि करनेवाले बडे बलवान शक्तिशाली सौ औरस पुत्र हो। यमराज बोले सुन्दरी अबले, तेरे बल और पराक्रम से सम्पन्न सौ पुत्र प्राप्त होंगे जिनसे तुझे बहुत ही आनन्द प्राप्त होगा। अब तू यहां से लौट जा जिससे तू श्रमरहित हो क्योंकि तू बहुत दूर आ गयी है। सावित्री बोली नहीं ब्रह्मन। सत्पुरुषों की वृति निरन्तर धर्म में रहती है। वे कभी भी दु:खित, व्यथित नहीं होते। सत्पुरुषों के साथ जो सत्पुरुषों का समागम होता है वह कभी निष्फल नहीं होता और सन्तों से सन्तों को कभी भय भी नहीं होता। सत्पुरुष सत्य के बल से सूर्य को भी अपने समीप बुला लेते हैं। वे अपने तप से पृथ्वी को धारण किये हुये है। सन्त ही भूत और भविष्य के आधार है, उनके बीच रहकर सत्पुरुषों को कभी खेद नहीं होंता। यह सनातन सदाचार सत्पुरुषों द्वारा सेवित है। सत्पुरुष यह जानकर परोपकार करते हैं और प्रत्युपकार की ओर कभी दृष्टि भी नहीं करते।

यमराज बोले हे पतिव्रते। जैसे जैसे तू मुझे गम्भीर अर्थों से युक्त एवं चित्त को प्रिय लगनेवाली धर्म संगत बातें सुनाती है वैसे वैसे वैसे तेरे प्रति मेरी श्रद्धा अधिकाधिक बढती जाती है। अब तू सत्यवान के जीवन को छोडकर मुझसे कोई अनुपम वर मांग ले। सावित्री बोली हे मानद आपने जो मुझे पुत्र प्राप्ति का वर दिया है वो तो बिना दाम्पत्य धर्म के पूर्ण नहीं हो सकता। अत: मैं आपसे यही वर मांगती हूं कि ये सत्यवान जीवित हो जाये। इससे आपका ही वचन सत्य होगा क्योंकि पति के बिना तो मैं जी

भी नहीं सकती। मैं तो मौत के द्वार पर खडी हूं। पति के बिना मुझे कैसा ही सुख प्राप्त हो उसकी मुझे इच्छा नहीं है। पति के बिना तो मुझे स्वर्ग की भी कामना नहीं है। पति के बिना यदि लक्ष्मी भी आवे तो मुझे उसकी भी आवश्यकता नहीं है। पति के बिना तो मैं जीवित रहना भी नहीं चाहती। आप ही ने मुझे सौ पुत्रों के होने का वर दिया है और फिर भी आप मेरे पति को लिये जा रहे है। अत: मैं यह वर मांग रही हूं कि यह सत्यवान जीवित हो इससे आपका ही वचन सत्य होगा। यह सुनकर सूर्यपुत्र यमराज बडे प्रसन्न हुये और ऐसा ही होगा कहते हुये सत्यवान के पाश का बन्धन खोल दिया और यम बोले हे कुल नंदिनी कल्याणि मैं तेरे पति को छोडता हूं। अब यह सर्वथा निरोग होगा। इसे तू अपने घर ले जा, तेरे सभी मनोरथ पूर्ण होंगे। यह तेरे साथ ४०० वर्ष की आयु भोगेगा तथा धर्मपूर्वक यज्ञानुष्ठान कर लोक में यश कीर्ति प्राप्त करेगा। इससे तेरे गर्भ से सौ पुत्र उत्पन्न होंगे। इस प्रकार सावित्री को वर दे यमराज अपने लोक को चले गये।

यमराज के चले जाने पर सावित्री अपने पति के सूक्ष्म शरीर के साथ वहां आई जहां सत्यवान का शव पडा था। पति को पृथ्वी पर पडा देखकर उसके शव को अपनी गोद में रखा। थोडी ही देर में सत्यवान के शरीर में चेतना लौटी और वह सावित्री की ओर प्रेम भरी दृष्टि से बातें करने लगा मानो बहुत चिरकाल की निद्रा से सोकर उठा हो। वह बोला मैं बडी देर तक सोते रहा, तुमने मुझे जगाया क्यों नहीं? और वो काले रंग का पुरुष कौन था जो मुझे पाश में बांधकर खींचे लिये जा रहा था। सावित्री ने कहा हे पुरुष श्रेष्ठ आप बडी देर से मेरी गोद में सोये हुये थे। वे श्याम वर्ण के पुरुष प्रजा का नियन्त्रण करनेवाले देवश्रेष्ठ यमराज थे। अब भय की कोई बात नहीं है, वे अपने लोक को चले गये है। सूर्य अस्ताचल की ओर है, रात्रि गहन होती जा रही है। इस समय तो आप उठकर माता पिता के दर्शन करे। सत्यवान बोले ठीक है, अब मेरे सिर में दर्द भी नहीं है, न ही मेरा कोई अंग पीडा दे रहा है। मैं पूर्णत: से स्वस्थ हूं। मैं अपने वृद्ध माता-पिता के दर्शन करना चाहता हूं। प्रिये मैं किसी दिन भी विलम्ब करके आश्रम में नहीं जाता। जब कभी भी मैं आश्रम से बाहर रहता तो मेरे माता-पिता मेरे लिये चिंतित रहते और वे अधीर हो आश्रमवासियों को साथ ले मुझे ढूंढते। अत: हे कल्याणि मुझे इस समय मेरे माता-पिता की चिन्ता हो रही है उतनी मुझे अपने इस शरीर की भी नहीं है। मेरे माता-पिता मेरे लिये आज कितना सन्ताप सह रहे होंगे।

पति की बात सुनकर सावित्री ने खडी हो सत्यवान को उठाया और दोनों साथ साथ चले। सत्यवान बोला हे देवि इस रास्ते से मैं परिचित हूं कारण इस रास्ते से आने जाने का अभ्यस्त हूं। हम जिस रास्ते पर कल फल बीन रहे थे वही यह रास्ता है इसलिये इसी मार्ग से चलो। ऐसा कहकर वे जल्दी जल्दी आश्रम की ओर चलने लगे।

मार्कण्डेय बोले द्युमत्सेन को दृष्टि प्राप्त हो गई। पुत्र के न आने से उन्हे बडी चिन्ता हो रही थी वे अपनी रानी शैव्या सहित अपने पुत्र को सब आश्रमों में खोजते फिर रहे थे। फिर उनके पास समस्त आश्रमवासी ब्राह्मण उन्हे धीरज बंधाने आये। उन्हे तरह तरह की प्राचीन कथायें सुनाकर धीरज रखने के लिये प्रेरणा देने लगे। सुवर्ण नाम का एक सत्यवादी ब्राह्मण बोला सत्यवान की पत्नी सावित्री, तप, इन्द्रिय संयम और सदाचार का पालन करनेवाली है इसलिये वह अवश्य ही जीवित होगा। एक दूसरे ब्राह्मण गौतम ने कहा मैंने वेदांग का अध्ययन किया है और तपस्या भी की है तथा कुमारावस्था में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये गुरु और अग्नि को तृप्त भी किया है। इस तपस्या के प्रभाव से मैं दूसरों के मन की बात को जानता हूं। मेरी बात सत्य मानो कि सत्यवान अवश्य जीवित है। फिर सभी ऋषि और ब्राह्मण कहने लगे सत्यवान की स्त्री सावित्री में अवैधव्य के सूचक सभी शुभ लक्षण विद्यमान है अत: निश्चय ही सत्यवान जीवित है। दाल्भ्य मुनि ने कहा राजन आपको दृष्टि मिली है और सावित्री व्रत का पारण किये बिना ही सत्यवान के साथ गयी है, इन्ही सब कारणों से वह अवश्य जीवित होना चाहिये। जब ऋषियों ने द्युमत्सेन को इस प्रकार समझाया और धीरज बन्धाया तो वे उन सबकी बात

मानकर स्थिर हो गये। थोडी ही देर में सावित्री सहित सत्यवान, प्रसन्न मन से आश्रम में प्रवेश किया। तब ब्राह्मण बोले राजन तुम्हारा पुत्र आ गया है। तब उन सबने सत्यवान से पूछा राजकुमार तुम अपनी पत्नी के साथ गये थे सो इतनी रात बीतने पर लौटे, ऐसी कौनसी अडचन आ गई जो जल्दी नहीं आ सके। आज तो तुमने अपने माता-पिता और हम सबको बडी चिन्ता में डाल दिया क्या कारण हुआ?

सत्यवान बोले मैं पिता की आज्ञा लेकर सावित्री सहित वन में गया था वहाँ लकडी काटते समय मेरे सिर में जोरों से दर्द होने लगा। उस कारण ऐसा लगा कि मैं वहां बहुत देर तक सोता रहा। अब आप लोग किसी प्रकार की चिन्ता मत करे, बस इसी कारण हमें यहां आने में देरी हुई। गौतम बोले सत्यवान तुम्हारे पिता द्युमत्सेन को अकस्मात दृष्टि प्राप्त हो गई। तुम्हे इसका वास्तविक कारण ज्ञात नहीं है परन्तु ये सब बातें सावित्री जानती है, वो ही बता सकती है, इसे भूत भविष्य की बातों का ज्ञान भी है। यदि यह गोपनीय न हो तो हमें यह वृतान्त सुनाओ। सावित्री बोली आप जैसा समझ रहे है, यह वैसी ही बात है। आपका यह विचार मिथ्या नहीं है। मैं सब सत्य आपको सुनाती हूं। नारदजी ने मुझे बताया था कि अमुक दिन तेरे पति की मृत्यु होगी। वह दिन आज ही था, इसी से मैंने अपने पति को अकेले नहीं जाने दिया जब ये मेरी गोद में सोये हुये थे उसी समय साक्षात रूप में यमराज आये और इन्हे अपनी पाश मे बांधकर दक्षिण दिशा की ओर ले चले। तब मैंने सत्य वचनों से देव श्रेष्ठ की स्तुति की। इससे प्रसन्न हो उन्होंने मुझे पांच वर दिये। वे इस प्रकार थे कि मेरे श्वसुर को नेत्र ज्योति प्राप्त हो तथा उनका खोया हुआ राज्य उन्हे फिर से प्राप्त हो। मेरे पिताश्री को सौ पुत्रों की प्राप्ति हो और सौ पुत्र मुझे प्राप्त हो। इस प्रकार ये चार वर थे इसी तरह पांचवा वर उन्होने मेरे पति को ४०० वर्ष की आयु हो का वर दिया। पति की जीवन प्राप्ति के लिये मैंने यह व्रत किया था। इस प्रकार मैंने यह सब वर प्राप्त यमराज से किये वो सब कारण विस्तार से मैंने आप सबको बता दिया। वहां के सभी ऋषि-मुनि बोले सावित्री तू सुशीला, व्रतशीला और पवित्र आचरणवाली है। तूने उत्तम कुल में जन्म लिया है। राजा द्युमत्सेन का दु:खान्त परिवार आज तेरे कारण अन्धकार मय गड्ढे में डूबने से बच गया।

मार्कण्डेय मुनि बोले राजन वहाँ इकट्ठे हुये सभी ऋषियों ने इस प्रकार प्रशंसा करके स्त्री रत्न सावित्री का सत्कार किया तथा राजा द्युमत्सेन से आज्ञा लेकर अपने अपने स्थान पर चले गये। दूसरे दिन शाल्व के राजकर्मचारियों ने आकर द्युमत्सेन को बताया शाल्व में जो राजा था उसको उन्ही के मन्त्री ने मार डाला। उस राजा के किसी सहायक और स्वजन को भी जीवित नहीं छोडा। शत्रु की सेना भाग गयी है और सारी प्रजा ने एकमत हो निश्चय किया कि किसी प्रकार आप उनके राजा हो। हे राजन ऐसा निश्चय करके वे सब राजकर्मचारी यहां आये है। वे द्युमत्सेन के लिये सवारी तथा चतुरंगिणी सेना लेकर आये थे। अब हमारे साथ चलने की कृपा करे। नगर में आपके नाम का जयघोष कर दिया गया है। अब आप अपने पैतृक राज्य पर चिरकाल तक प्रतिष्ठित रहे। राजा द्युमत्सेन ने आश्रम के ब्राह्मणों का अभिवादन किया और उन सब से सत्कृत हो अपनी राजधानी को चल दिये। वहां पहुंचने पर पुरोहितों ने बडी प्रसन्नता से राजा द्युमत्सेन का राज्याभिषेक किया और उनके पुत्र सत्यवान को युवराज बनाया। इसके बाद सावित्री के सौ पुत्रों ने जन्म लिया जो यश की वृद्धि करनेवाले शूरवीर थे। उसी प्रकार मद्र नरेश अश्वपति की महारानी मालवी, सावित्री की माता के गर्भ से सौ पुत्र उत्पन्न हुये। सावित्री ने अपने तथा माता-पिता, सास-श्वसुर और पति के कुल इन सभी को संकट से उबार कर सभी का उद्धार किया। मार्कण्डेय बोले युधिष्ठिर इसी प्रकार यह पांचाली सावित्री के समान शीलवती, कुलकामिनी, कल्याणी भी आप सब लोगों का उद्धार करेगी। इस प्रकार मार्कण्डेय मुनि के समझाने पर युधिष्ठिर संताप रहित हो प्रसन्न हो रहने लगे। यही सावित्री और सत्यवान का वृतान्त है। सावित्री इस प्रकार अपने पति सत्यवान को यमराज के पास से लौटा लाई।

HHH(१६३)HHH

## २२) पांडवों के वनवास पूर्ण होने से शकुनि की चिन्ता और मन्त्रणा

शकुनि अपने कक्ष में बैठा कुछ सोच रहा है और उदास प्रतीत हो रहा था। इतने में ही कर्ण वहां आया और प्रणाम किया। शकुनि बोला आओ अंगराज बैठो। कर्ण बोला मैं तो यह समझा करता था कि चिन्ता करना केवल हम मूर्खों का काम है पर आज तो आप भी चिंतित होकर मेरे और दुर्योधन की श्रेणी में आ गये। शकुनि बोला सारी चिन्ताये एक समान नहीं होती है अंगराज। कुछ लोग तो चिन्ता का विश्लेषण ही नहीं करते। मैं परिणामों के परे तक देखने का प्रयत्न करता हूं। दुर्योधन को तो नेत्रहीनता की धरोहर ही मिली हुई है। जीजाश्री तो नेत्रहीन है ही और मेरी बहिन गान्धारी ने तो नेत्रहीनता ओढ रखी है। किन्तु तुम्हे क्या हो गया अंगराज? तुम्हारा निहित स्वार्थ दुर्योधन के होने में है, ना होने में नहीं अंगराज। कर्ण बोला मेरा कोई निहित स्वार्थ है ही नहीं मामाश्री। मैं तो दुर्योधन के उपकारों के बोझ तले दबा हुआ हूं। इसलिये एक बात समझ लीजिये मामाश्री मेरे जीते हुये दुर्योधन के न होने का तो प्रश्न ही नहीं उठ जाता। उसके होने और न होने के बीच यह सूत पुत्र कर्ण खडा है और सूर्य की सौगन्ध एक बार दुर्योधन की ओर बढते हुये यमराज को भी पीछे ढकेल दुंगा। जब तक कर्ण है तब तक दुर्योधन के न होने की सम्भावना पर विचार ही मत कीजिये। शकुनि बोला मेरी इन बूढी आखों ने असम्भव के सम्भव और सम्भव के असम्भव होते कई खेल देखे है अंगराज। क्रीडा जीता तो मैं परन्तु विजय पवन की भांति मेरी पकड में ही नहीं आती। मीन की भांति मेरे हाथ से छिटक जाती है। पांडवों का वनवास अब समाप्त होने ही वाला है और उनका अज्ञातवास ही मेरा अन्तिम दांव है अंगराज। इधर कई दिनों से मैं देख रहा हूं अंगराज कि मेरा भान्जा दुर्योधन मुझपर पहिले जैसा विश्वास ही नहीं कर रहा है। अब वह मुझसे प्रश्न करने लगा है, प्रश्न इसलिये आज मैंने तुम्हे अपने पास बुलाया है। तुम उसके अभिन्न मित्र हो और अभी तुम पर से उसका विश्वास डिगा नहीं है। इसलिये उसे कहो पांडवों का पता लगाते रहने के लिये गुप्तचर भेजे। अभी उसके पास पूरा एक वर्ष है और यदि हम लोग इस एक वर्ष मे उन्हें न खोज पाये तो अगले वर्ष के पहिले ही मोड पर युद्ध निश्चित है। मुझे तुम लोगों की वीरता पर तनिक भी सन्देह नहीं है। परन्तु युद्ध फिर भी युद्ध होता है। इसलिये मैं चाहता हूं कि दुर्योधन युद्ध किये बिना ही पांडवों से जीत जाये। उसे समझाओ अंगराज। गुप्तचर भेजना कितना आवश्यक है इससे पहिले कि वो सांप की भांति किसी बिल में जा छिपे। उन्हे पकड लो अंगराज।

**जहां सत्य का साथ है, वही धर्म का वास, जहां धर्म का वास है, वही विजय की आस।**

पुरुष के अहंकार के आगे असहाय हो जाती है नारी। न्याय और नियम को पकडकर दाम्पत्य जीवन मे मिलन, विरह, राग, द्वेष नहीं चलते। मन्दिर में, विद्यालय में, सभा मंडप में, युद्ध क्षेत्र में, नीति-अनीति, धर्म-अधर्म की चर्चा होती है उसे मानना पडता है परन्तु प्रेम व्यवहार में यह सब नहीं चलता। कभी-कभी सीधे रास्ते से हटकर बांका तिरछा भी चलना पडता है। उपस्थित सुख को पाने के लिये वह भविष्य के विकट इंगित को अग्राह्य कर चरम दुर्दशा को स्वयं ही आमंत्रित कर लेता है। कोई हंस रहा है उसकी हंसी और आनन्द का कारण जाने बिना दूसरा आदमी नहीं हंस सकता परन्तु किसी के अश्रु, शोक-दु:ख देखकर उसकी व्यथा का मूल कारण बिना समझे भी आदमी एक बार तो अचानक व्यथित हो जाता है, आंखे छल छला जाती है। द्रवीभूत हो उठता है। विषाद ऐसी ही वर्षा की तरह औरों को भिगो दिया करता है। आकाश से आंसू झरते है और धरती का आंचल भीग उठता है। सूरज को मेघ आच्छादित कर लेते है।

कर्ण ने आल्हाद से शकुनि की ओर देखा और बोला मैं आपका आशय पूर्णतया समझ गया मामाश्री। मैं कैसे बताऊ कि आपकी योजनायें कितनी बहुमूल्य है। मैं समझता हूं कि दुर्योधन की पत्नी काशिका ही दुर्योधन को काम्यक वन जाने के लिये

तैयार कर लेगी किन्तु किसी कारणवश यदि वह उसे सहमत नहीं कर पाई तो यह मुझपर छोडो, यह दायित्व मैं पूर्ण कर लुंगा। शकुनि बोला अंगराज कर्ण अरे तुम्हारे जैसा सहयोगी हस्तिनापुर में और कौन है? तुम्हे बताना कम पडताहै तो भी तुम अधिक समझ जाते हो। दुर्योधन पर तुम्हारा प्रभाव भी बहुत है। युधिष्ठिर को जितना विश्वास अपने भाइयों भीम और अर्जुन पर है, उससे कहीं अधिक दुर्योधन तुम पर विश्वास करता है। कर्ण बोला मैं भली भांति जानता हूं कि दुर्योधन मेरी बात नहीं टालेगा, परन्तु आप स्वयं यह बात उससे क्यों नहीं कहते? शकुनि हंसा और मदिरा का एक चषक की घूंट ले बोला तुम नहीं समझोगे अंगराज। कर्ण बोला क्या नहीं समझ पाऊंगा मामाश्री? क्या कोई बहुत जटिल बात है या मैं ही मन्द बुद्धि हूं। शकुनि बोला नही। ये दोनों बाते नही है। बस यही मान लो कि शकुनि ही अभागा है। मैं ऐसा भाग्य लेकर आया हूं कि मैं किसी के लिये अपने प्राण भी त्याग दूं तो भी वह यह कहेगा कि तुमने अपने प्राण त्याग कर भी मुझे कलंकित कर दिया। कर्ण बोला मैं आपका आशय समझा नहीं मामाश्री। कर्ण वास्तव में बडे असंमजस में था।

शकुनि ने मदिरा अवश्य पी रखी थी किन्तु इतनी भी नहीं कि उसकी चेतना में विकार हो जाये और वह अनर्गल बकने लगे। इस समय शकुनि की आंखों में आहत भाव था और बोला यही तो कह रहा हूं अंगराज कि तुम नहीं समझोगे। किसी के दुर्भाग्य को समझना बहुत कठिन होता है कुछ लोग जन्म से ही ऐसे अभागे होते है, कि वे बहुत चतुर माने जाते है और उनकी यह ख्याति ही उनकी शत्रु हो जाती है। अपने जिस आत्मीय के लिये वे अपने प्राण दे देते है वह आत्मीय भी समझता है कि वे उसके साथ चतुराई कर रहे है। कठिन होता है किसी के लिये अपना सारा जीवन समर्पित करना। जब आप तिल तिल जलकर अपना जीवन किसी को समर्पित करते है तो आपको अपने त्याग का पुरस्कार मिलना चाहिये, तब वह कहता है कि आप उसके लिये अपना जीवन दान नहीं कर रहे बल्कि उसके साथ चतुराई कर रहे है। वह न आपका पिछला जीवन लौटा सकता है और न आप अपना शेष जीवन उसके लिये समर्पित करना चाहते। अंगराज चतुराई का अर्थ बुद्धिमत्ता नहीं है। उसके लिये तो चतुराई का अर्थ है धूर्तता। धूर्तता में विश्वसनीयता का कोई भाव नहीं होता, उसमें सन्देह है, संशय है, स्वार्थ का आरोप है। अंगराज अब तुम मन में कल्पना करो उस दृश्य की वन में पांचाली वल्कल वस्त्रों में खडी है और दुर्योधन की रानियां अपने वस्त्राभूषणों से सज्जित उसके सामने से निकलेगी तब उसके मन की क्या दशा होगी? अंगराज तुम द्यूतसभा में भी उसे जितना क्लेश नहीं दे पाये उससे अधिक कष्ट होगा उसे अपनी इन देवरानियों के ऐश्वर्य और वैभव को देखकर। उसका हृदय लपटों में जल उठेगा। तुम नारी के मन की ईर्ष्या को नहीं जानते अंगराज। वह एक बार दुर्योधन की रानियों का साज श्रृंगार देख ले तो अपने पतियों को इतना पीडित कर देगी जितना उन्हे जीवन भर में तुम लोग नहीं कर पाये। शकुनि यह कहकर मौन हो गया क्योंकि वह उसके आगे अपना भाव बताना नहीं चाहता था पर यह कहकर उसने स्पष्ट कर दिया कि पांडवों की वह प्रताडना पांडवों को युद्ध के लिये प्रेरित करेगी और कुरुकुल का विनाश कैसे और कितना निकट आ रहा है।

कर्ण ने दुर्योधन के कक्ष में प्रवेश किया, वहां पर शकुनि और दुशासन पहिले से ही उपस्थित थे। दुर्योधन ने उठकर कर्ण का स्वागत किया आओ मित्र। क्या बात है इतनी देरी से? क्या रातभर पांडवों के विषय में कोई स्वप्न देख रहे थे? मैंने भी कल रात सपने में देखा वन में भोजन न मिलने से पांडव अत्यन्त दुर्बल और क्षीण हो गये और पांचाली उनकी ताडना करती हुई कह रही थी कि इससे अधिक सुखी तो वह दुर्योधन की दासी बनकर भी रह सकती थी। शकुनि बोला अरे वह पांचाली तो स्वप्न में भी सत्य ही बोलती है। कर्ण बोला सुनो मित्र चारों ओर पांडवों की चर्चा अकारण नहीं हो रही है। जब तक वे लोग हिमालय के उच्च क्षेत्रों में विचरण कर रहे थे, हम लोगों से दूर थे तब तक न तो कोई उनकी चर्चा

होती थी और न ही कोई उनके विषय में सपने देखता था। लेकिन अब जैसी सूचनायें प्राप्त हो रही है कि वे लोग हस्तिनापुर के पर्याप्त निकट आ गये हैं। परिणाम यह है कि वे लोग हमें अपना समाचार भेजे या ना भेजे, कोई न कोई व्यक्ति उनके विषय में सूचना अवश्य दे जाता है। अब उनकी बृहदाकार छाया हस्तिनापुर पर पडने लगी है जो कि उचित नहीं है। कर्ण ने आगे कहा होना अब यह चाहिये मित्र उनकी दृष्टि अगर हस्तिनापुर की ओर उठे तो उनकी आंखों में आंसू आ जाये। उनके पैर इस दिशा में उठे तो भय से लडखडा कर गिर पडे। उनपर ही हस्तिनापुर की ऐसी छाया पडे कि उसे देखते ही भय से कांपने लगे, और मुख पीला पड जाये।

दुर्योधन सहमत था बोला पर क्या यह सम्भव होगा मित्र? कर्ण बोला सम्भावना तो यही है मित्र और सत्य भी है। वनवास करते-करते पांडव मन और शरीर से तो दुर्बल हो ही गये। एक बार वे तुम्हारे वैभव और ऐश्वर्य को देखलें कि तुम इतने विस्तृत और समृद्ध राज्य के स्वामी हो और वे राज्य भ्रष्ट वनवासी। ये तो वे लोग हैं जो बाध्य से वन में रहने गये हैं, वे वनवासी नहीं वनचर हैं। तुम तो संसार की सर्वोत्कृष्ट श्री से सम्पन्न हो मित्र और वे सर्वथा श्रीहीन। तुम विपुल समृद्धिशाली हो और वे सर्वथा निर्धन। वे सन्ताप भोग रहे हैं। तुम्हारा वैभव देख लेने के पश्चात तो वे कभी इस दिशा में दृष्टि उठाने का साहस भी नहीं करेंगे। कर्ण की बात सुनकर शकुनि बोला भान्जे पांडव जब तुम्हे समृद्धि और सुख के इस शिखर पर देखेंगे तो शायद ही वे हस्तिनापुर की ओर दृष्टि उठाकर देखे। पर्वत शिखर पर खडा व्यक्ति जब भूतल की ओर देखता है तो उसे आकार में सब कुछ छोटा बहुत छोटा दिखाई देता है तथा महल और स्वभाव में बहुत हीन और तुच्छ। स्वयं को उन सबसे बहुत ऊंचा पाकर उसे जो सुख मिलता है उसकी संसार में कोई तुलना नहीं। वैसे ही मनुष्य सुख-सुविधा, सत्ता, अधिकार के श्रृंग पर खडा हो अपने विपक्षियों को संकट और विपन्नता की स्थिति में देखता है तो उसके लिये इससे बढकर अन्य कोई सुख नहीं। कर्ण पुन: बोला मित्र अपने शत्रुओं की दुर्दशा देखकर मनुष्य को जो प्रसन्नता होती है वह धन, पुत्र तथा राज्य प्राप्ति पर भी नहीं होती है। दुर्योधन बोला कल रात मेरी प्रिय रानी काशिका भी यही कह रही थी कि वे लोग अपने वस्त्राभूषणों से सज्जित हो अपने वैभव का प्रदर्शन पांचाली के सम्मुख करे। किन्तु यह सुनकर उस समय मुझे लगा कि स्त्रियां की यह ईर्ष्या, उनका क्लेश कलह हमारे लिये हमारी राजनीति में कोई संकट उत्पन्न न कर दे। कर्ण ने टोक कर बोला नहीं मित्र। यह स्त्रियों की ईर्ष्या का प्रश्न नहीं है। उनका यह प्रदर्शन तुम्हारे ही वैभव का प्रदर्शन है। तुम्हारी रानियां सोने और चांदी की तारों जडित साडियां पहिन कर चले और शरीर पर हीरे जवाहरात, सुवर्ण विभूषित अमूल्य रत्नों के आभूषण जगमगा रहे हो और वलक्ल तथा मृगचर्म लपेटे, दुख में डूबी वह अहंकारिणी द्रौपदी अपनी कुटिया के द्वार पर खडी उन्हे देखे तथा देख देख कर सन्ताप करे तो उसे लगेगा कि इतनी अपमानित तो वह सर्वथा सम्पूर्ण नग्न होकर भी नहीं होती। दुर्योधन को लगा रात को जब काशिका उससे कह रही थी तब वह उसका मन्तव्य ही नहीं समझ पाया। वह तो उसी के वैभव प्रदर्शन और उससे प्राप्त सुख की बात कह रही थी। कंगले पांडवों के सम्मुख दुर्योधन का वैभव प्रदर्शन। उस वैभव की सार्थकता ही क्या जिसे देखकर पांडवों के हृदय न फट जाये। दुर्योधन के मन में अवसाद हुआ और बोला कदाचित पिताश्री हमे वहां जाने की अनुमति नहीं दे जहां पांडव निवास करते हैं। कर्ण बोला क्यों पर? क्या द्वैतवन पांडवों की पैतृक सम्पत्ति है ? दुर्योधन बोला नहीं परन्तु पिताश्री यह समझते है कि पांडवों को असहाय दशा में अपने सम्मुख पाकर हम लोग अपनी मर्यादाओं को भूल जाते हैं और उन्हे हम इतना अपमानित करते हैं जो हमारी अपनी सुरक्षा के लिये संकटपूर्ण होता है।

यह सुनकर शकुनि की भृकुटि वक्र हो गई और बोला क्या जीजाश्री नहीं चाहते कि पांडवों का राज्य और उनकी धन

सम्पदा तुम्हे मिल जाये। क्या जीजा महाराज पांडवों को तुमसे अधिक समृद्ध और सुखी तथा शक्तिशाली देखना चाहते है। दुर्योधन बोला नहीं, ऐसा तो नहीं है। वे चाहते है कि पांडवों से सब कुछ छीन लिया जाये परन्तु उन्हे पीडा का अनुभव न होने दिया जाये। उनसे ऐसा व्यवहार किया जाये कि वे स्वयं अपने हाथों अपना राज्य हमें सौंप कर वन चले जाये और इस विश्वास से जीवित रहें कि वे अपने धर्म का पालन कर रहे हैं। पिताश्री यह चाहते हैं कि यदि पांडवों को कोई पीडा का अनुभव हो तो उन्हे यह समझाया जाये कि उस पीडा के लिये अन्य कोई व्यक्ति दोषी नहीं है, उसके लिये वे स्वयं ही उतरदायी है। ताकि सब कुछ छिन जाने पर भी पांडव हमसे रूष्ट न हो। वे हमे अपना शत्रु न माने और हमें अपना भाई ही मानते रहे तथा हमारे पर कोई संकट आने पर सदा हमारी सहायता करे। कर्ण अपनी वितृष्णा प्रकट करते हुये बोला मेरी समझ में नहीं आता कि महाराज इन पांडवों के रोष से इतने चिंतित क्यों रहते हैं? दुर्योधन बोला मित्र वे चिंतित नहीं भयभीत रहते हैं। मैं आज तक उन्हे यह नहीं समझा पाया कि हम पांडवों से दुर्बल नहीं है। वे तो आज भी यही समझते है कि भीम मुझसे अधिक शक्तिशाली है। अर्जुन संसार का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर है। उसके पास गांडीव धनुष है जो स्वयं अग्निदेव ने उसे दिया है और अब तो वह दिव्यास्त्र भी प्राप्त कर चुका है। कर्ण बोला तो क्या हुआ? हमारे पास भी बहुत कुछ है। पितामह भीष्म और गुरु द्रोणाचार्य हमारे साथ हैं।

दुर्योधन बोला पिताश्री को अभी तक यह विश्वास नहीं है कि वास्तविक युद्ध की स्थिति में पितामह भीष्म और गुरु द्रोणाचार्य हमारे ही पक्ष से युद्ध लडेंगे। वे मन ही मन जिन्हे अपना शत्रु समझते हैं उन लोगों को यह भी मालूम नहीं पडे कि हम उन्हे अपना शत्रु मानते हैं। पिताश्री के लिये गोपनीयता तथा कूटनीति का बहुत महत्व है। उन्होने अपना सम्पूर्ण जीवन इसी नीति के आधार पर व्यतीत किया है। अपने भाई महाराज पांडु तक को ज्ञात नहीं था कि उनके मन में क्या है। वे सार्वजनिक तो घोषित रूप में किसी का विरोध नहीं करते। उनका मत है कि दिखने में तो हमारे सम्बन्ध सभी से मधुर प्रकट होने चाहिये। किसी के प्राण भी ले लिये जाये तो इस प्रकार माधुर्य से कि वह यही समझता रहे हम उसके परम मित्र है। पिताश्री का विश्वास किसी से छीनने में नहीं मात्र ठगने में है। वे युद्ध में नहीं मात्र अपहरण में विश्वास करते हैं। वह भी अत्यन्त गोपनीय तरीकों से, चतुराई से। उनका क्षत्रियत्व सारे संसार से अनूठा और निराला है। हम पांडवों से इतने शक्तिशाली हैं कि जब चाहे उन्हे मसल डाले फिर भी महाराज पता नहीं उनसे इतने भयभीत क्यों रहते हैं। कर्ण बोला गुप्तचर की सूचना से तो यही मालूम पडा कि सम्यक आहार के अभाव में पांडव आतप, भूख प्यास से दुर्बल और क्षीण हो गये हैं। शकुनि बोला यह तो बडा ही शुभ समाचार है, अगर क्षीण हो गये तो अज्ञातवास के अन्त तक तो रोग शोक से पीडित हो स्वयं ही मर मरा जायेंगे। दुर्योधन बोला लेकिन महाराज तो यह सोचते हैं और मानते है कि सिंह भूखा रहने पर कष्ट पाने पर अधिक हिंस्र हो जाता है। दुशासन बोला मैं तो उन्हे बहुत समझाने का प्रयत्न करता हूं परन्तु वे हमारे विचारों से सहमत ही नहीं होते। इस समय वे पांडवों से भयभीत ही नहीं पूर्णत: त्रस्त हैं। वे यह मानते हैं कि द्यूत सभा में उनके साथ हुये व्यवहार से पांडव बहुत क्रुद्ध हैं। पांडवों की सफलता में उनको तनिक भी सन्देह नहीं है। वे भीम और अर्जुन की हुई प्रतिज्ञाओं को लेकर चिंतित रहते हैं।

शकुनि का मन भीतर ही भीतर बुझता सा जा रहा था। यदि दुर्योधन इसी प्रकार सोचता रहा तो उसके सारे किये कराये पर पानी फिर जायेगा। दुर्योधन को अपने अन्धे पिता से इस प्रकार सहमत नहीं होना चाहिये। उनकी इच्छा अनिच्छा की इस प्रकार चिन्ता नहीं करनी चाहिये। शकुनि उसे यह तो नहीं कह सकता कि वह अपने पिताश्री की आज्ञाओं का पालन न करे। गान्धारी तो शकुनि को कह ही चुकी कि उसका सान्निध्य दुर्योधन के लिये अच्छा नहीं है। अपूर्णता की जगह

अपमान किसी भी पुरुष के लिये अधिक कष्टदायी होता है। मन की ज्वाला से देह की ज्वाला बहुत हल्की होती है।

कुछ ही दिनों में इन्द्रप्रस्थ का ऐश्वर्य, सौन्दर्य और शोभा हस्तिनापुर के पार कर गई थी। इन्द्रप्रस्थ के निर्माण कार्य में मन उंडेल दिया था उन पांचों भाईयों ने। कुछ ही दिनों में पूरा नगर बस जाने के बाद पांडवों में प्रसन्नता उत्फुल्ल हो उठी। इधर कौरव ईर्ष्या से जलने लगे। हस्तिनापुर के अनेक विद्वान और प्रजा इन्द्रप्रस्थ की ओर खिंचकर युधिष्ठिर के धर्मराज्य में आश्रय लेने चल पडे। इन्द्रप्रस्थ में सुख, सुविचार, आनन्द उत्सव उन्हे हस्तिनापुर से विमुख करने लगा।

## २३) दुर्योधन की पत्नी काशिका को कुन्ती द्वारा सुख का अर्थ समझाना

एक दिन कुन्ती दुर्योधन के भवन में उसकी पत्नी काशिका के पास आई जिसकी काशिका ने कभी कल्पना भी नहीं की थी। काशिका सोचती है काकी कुन्ती को किसी प्रकार का वैमनस्य, झगडा या विरोध करना अथवा किसी प्रकार की याचना करनी होती तो वह सास गान्धारी के पास जाती, यहां किसलिये आई। काशिका ने आगे बढकर कुन्ती के चरण स्पर्श किये और स्वागत सत्कार कर बिठाया। कुन्ती के मन में कोई उद्विग्नता भी नहीं थी और न ही वह किसी प्रकार का मनोमालिन्य लेकर आई थी। यदि मन वैमनस्य से आन्दोलित होता तो उसका व्यवहार ऐसा नहीं हो सकता था पर काशिका सामान्य व्यवहार नहीं कर पा रही थी। काशिका बोली आपको काकी श्री कहूं या राजमाता? कुन्ती मुस्कुराकर बोली मैं बचपन में राजकुमारी भी रही हूं, महारानी भी और राजमाता भी किन्तु अब उनमें से कुछ भी नहीं हूं। दूसरी ओर तुम्हारी मैं थी और अब भी हूं। पद तो कभी होता है और कभी नहीं भी होता किन्तु सम्बन्ध तो ईश्वर के बनाये हुये है, वे कभी भी नष्ट नहीं होते। कल यदि दुर्योधन मेरे पुत्रों का वध भी कर दे अथवा स्वयं मेरे पुत्रों द्वारा वीर गति पा जाये तो भी इन नैसर्गिक सम्बन्धों को तो विश्व की कोई ताकत भी इनकार नहीं कर सकती। काशिका बोली कहिये आज इधर आने का कष्ट कैसे किया काकीश्री? कुन्ती बोली सोचा हस्तिनापुर में विदुर के घर रहते बहुत दिन हो गये, यदि मेरी पुत्र वधुयें मुझसे मिलने नहीं आ सकती तो मैं ही उनसे मिल आऊं। यदि कोई असुविधा न हो तो दुशासन और विकर्ण की पत्नियों को भी यहीं बुला लो और भानुमती कहां है? काशिका बोली किसी को बुलाने की आवश्यकता नहीं है काकी। आपको आते देखकर थोडी ही देर में वे सब यहीं आपके सम्मुख होगी। कुन्ती बोली मैं समझी नहीं, क्या तुमने कोई ऐसी व्यवस्था कर रखी है? तभी भानुमति ने आकर कुन्ती का अभिवादन किया और दुशासन की पत्नी ज्योत्स्ना आकर सामने खडी हो गई। उसने कुन्ती को प्रणाम नहीं किया और काशिका से पूछ बैठी यह वृद्धा स्त्री कौन है?

कुन्ती समझ गई ज्योत्स्ना के मन में कुन्ती के लिये कोई आदर या सौहार्द्र नहीं है, वह उसे अपमानित और उत्तेजित करने का प्रयास कर रही है। कुन्ती बोली मेरे पास बैठो तो तुम्हे बताऊं कि मैं कौन हूं। ज्योत्स्ना कुन्ती के कहने पर एक ओर बैठ गई। कुन्ती बोली जिस व्यक्ति में दूसरों की तुलना में किसी प्रकार की वृद्धि है वही वृद्ध है। मैं वृद्धा हूं, अवस्था में, अनुभव में, लोकाचार में और भी बहुत सारे क्षेत्रों में। मैं स्मरणशक्ति में भी वृद्धा हूं क्योंकि तुम्हे स्मरण नहीं कि मैं कौन हूं परन्तु मुझे स्मरण है कि तुम दुशासन की पत्नी ज्योत्स्ना हो। मैं उस महावीर भीम की माता हूं जिसने तुम्हारे पति का वक्ष चीरकर रक्त पीने की प्रतिज्ञा की हुई है। दुर्योधन की दूसरी पत्नी बडे ही कोमल स्वर में बोली आप उन प्रसंगों को न छेडे काकीश्री। कुन्ती बोली ठीक कहती हो पुत्रवधू। वे प्रसंग किसी के लिये भी मधुर एवं सुखकर नहीं है पर अपने सम्मान की रक्षा तो करनी ही पडती है। सम्बन्ध में तुम्हारे पति की काकी हूं। यदि तुम लोग भी सुसंस्कृत परिवार में जन्मी हो और तुम्हे शिष्टाचार का किंचित भी ज्ञान है तो तुम मुझे काकी मां कह कर सम्बोधित कर सकती हो।

ज्योत्स्ना बोली मैं तो समझी थी की आप अपने शूरवीर पुत्रों के साथ वनवास कर रही होंगी परन्तु आप तो अभी तक यहीं है हस्तिनापुर में। काशिका ने उसे टोक कर कहा क्या बोल रही हो ज्योत्स्ना? कुन्ती बोली कहने दो उसे वधू, मत रोको क्योंकि उसको भी अपने पति के समान अन्य नारियों की मर्यादा का उल्लंघन करने का अवसर मिलना चाहिये। यह सब नहीं करेगी तो फिर उसमें पति के गुण कैसे प्रतिबिंबित होंगे?

ज्योत्स्ना कुछ बोले उससे बिना कोई दुर्भावना के ही भानुमती ने जिज्ञासा की और कुन्ती से बोली काकीजी आप अपने पुत्रों के साथ न जाकर यहां हस्तिनापुर में कैसे रह गई? ऐसी स्थिति में तो कोई भी माता अपने पुत्रों के साथ रहना ही अधिक श्रेयस्कर मानती। ज्योत्स्ना बोली सुख किसे अच्छा नहीं लगता? वन में यह सब कहां मिलता जो कुछ यहां उपलब्ध है। भानुमति बोली ज्योत्स्ना तुम्हारा तात्पर्य यदि सुविधाओं से ही है तो काकी अपने भतीजों के साथ द्वारिका जा सकती थी। अपनी किसी पुत्रवधू के साथ उसके मायके में जाकर रह सकती थी और यदि हस्तिनापुर में रहना था तो स्वयं महाराज से किसी भी प्रकार की सुख-सुविधा से सम्पन्न कोई प्रासाद मांगकर रह सकती थी। उस महामन्त्री विदुर के घर में ही क्या है? इतने में विकर्ण की पत्नी मृदुला ने आकर कुन्ती के चरण स्पर्श कर प्रणाम किया और बोली मालूम पडा कि आप यहां आई हुई है तो सोचा आपके दर्शन कर आऊं। ज्योत्स्ना कटाक्ष करते हुये बोली इनका क्या तुम चाहो तो तुम्हे दर्शन देने तुम्हारे घर आ जायेगी बस जरा अच्छा सा स्वादिष्ट भोजन करा देना। कुन्ती मुस्कुराकर बोली ज्योत्स्ना के मुख में इस समय जले हुये करेलों का स्वाद है। वह इस वक्त अन्य किसी और स्वाद का अनुभव नहीं कर पायेगी, न ही वात्सल्य रस का और न ही सौहार्द्र का तथा न ही शान्ति का। मैं यदि वनवास की असुविधाओं से बचने के लिये अपने पुत्रों के साथ नहीं गई तो मुझे हस्तिनापुर में उस घर में रहना चाहिये था जहां सबसे अधिक सुख उपलब्ध होता था। और यदि यह निर्णय विदुर के घर रहने का मैंने किया तो अपने सुख के लिये ही किया। अब पहले यह तो जान लो कि सुख है क्या?

ज्योत्स्ना ने सबसे पहले उत्तर दिया और बोली काकी सुख वही है जो आपके पुत्रों से छीन लिया गया और वह हमारे पास है। कुन्ती बोली मेरे पुत्रों से जो छिना गया वह उनका सुख नहीं, वे उनकी सुविधायें थी। उनका सुख उनके धर्म पालन में है। अगर लोगों के अनुसार यह मान भी लें कि सुख सुविधाओं में है कि जिसके पास जितनी अधिक सुविधाये हैं वह उतना ही अधिक सुखी है तो फिर बताओ कि महाराज धृतराष्ट्र के पास अधिक सुविधायें है या महात्मा विदुर के पास? काशिका ने उत्तर दिया महाराज धृतराष्ट्र के पास। कुन्ती बोली पर ऐसा कितनी बार हुआ कि उद्विग्न मन हो महाराज ने विदुर को उसके आवास से अपने पास बुलाया कि वह आकर उनके मन को किसी प्रकार शान्त करे? भानुमती ने कहा यह तो अनेकों बार हुआ है, प्राय: हुआ है। कुन्ती बोली और ऐसा कितनी बार हुआ कि दु:खी होकर विदुर शान्ति अथवा सुख की याचना करने महाराज के पास गया हो? मृदुला बोली ऐसा तो कदाचित कभी भी नहीं हुआ। ज्योत्स्ना चिढकर बोली आपका तात्पर्य तो यही है कि अपने पास कोई धन सम्पत्ति ही न रखे क्योंकि उसमें कोई सुख नहीं है तो फिर आपके पुत्र अपना राज्य त्याग वन जाने के नाम पर इतने दु:खी क्यों थे?

कुन्ती बोली वे अपने अपमान के कारण दु:खी थे। अपनी पत्नी के अपमान के कारण दु:खी थे। अपनी सुविधाओं और अधिकारों के छिन जाने के कारण दु:खी थे। मेरे पुत्रों की बात छोडो, उनके बारे में सोचो जिनके पास सारी सुविधायें उपलब्ध है, जिसे सामान्यत: सुख मान लिया जाता है वह पदार्थ में है या अपने मन में? जैसे तुम्हारे पास असाधारण मणियों का एक बहुमूल्य हार है और तुम उसे आभूषण पेटिका में रखकर अधिक सुखी होगी या उसे धारण कर सर्व सभा

में सबके सामने सम्मिलित होने में? तुम्हारे अपने सुख के लिये वह मणियों का हार ही अपने आप में पर्याप्त होगा या उसे तुम्हारी सम्पत्ति के रूप में देखकर स्वयं को हीन समझ, अपमानित होनेवाला व्यक्ति भी आवश्यक है? काशिका बोली उस हार को आभूषण पेटिका में बन्द कर रखने की क्या तुक है, उसमें क्या सुख हो सकता है? हम सब आभूषण किसलिये धारण करती है? एक तो इसलिये कि हमारा रूप संवरे और सजे, उसमें निखार आये और दूसरा इसलिये कि लोग देखें कि हमारे पास क्या क्या है, यदि अपना वैभव और ऐश्वर्य ही प्रदर्शन न कर पाये तो उस पदार्थ का क्या सुख? कुन्ती बोली प्रदर्शन का अर्थ है कि देखो ये हमारे पास है और तुम्हारे पास नहीं है। तो फिर सुख न पदार्थ में है और न ही पदार्थ के स्वामित्व में। सुख न उसको धारण करने में है, न ही अपने रूप सौन्दर्य में। सुख मिलता है अपने अहंकार की वृद्धि में। यह तो हमारा अहंकार ही है जो अपने वैभव के प्रदर्शन से तृप्त होता है और हम सुखी होते है। कुन्ती ने स्पष्टीकरण किया आभूषण के प्रदर्शन से दूसरे को हीन सिद्ध कर अपने अहंकार की तुष्टि होती है पर वस्तुत: वह सुख नहीं है। वह तो सुख का भ्रम मात्र है। वह स्वत: पूर्ण नही है, स्वतन्त्र नहीं है, वह किसी अन्य पर निर्भर है। उसके लिये किसी अन्य का अस्तित्व भी अनिवार्य है। सागर की लहरें बहुत सुन्दर और बलशाली होती है। वे सुखी है अत: वे अपने स्थान पर रहकर आत्ममग्न होकर ही सुखी है। उन्हे सुखी होने के लिये किसी अन्य को हीन भाव से ग्रस्त नहीं करना पडता। यदि वे अपना सौन्दर्य का प्रदर्शन करने के लिये धरती की यात्रा प्रारम्भ कर दे तो सारी सृष्टि ही नष्ट भ्रष्ट हो जायेगी। हिमालय के हिम ढके श्रृंग बहुत सुन्दर है परन्तु वे अपने स्थान पर ही शान्त खडे है। वे अपने सौन्दर्य का वैभव दिखाने और जल हीन मरू भूमि को अपमानित करने के लिये यदि मरूभूमि के पास चले जाये तो सारा हिम गलकर बह जायेगा और उन श्रृंगों का सारा सौन्दर्य ही नष्ट हो जायेगा। सरोवर में खडा सौगन्धिक पदम बहुत सुन्दर है पर उसके पास सन्तोष है। उसके सौन्दर्य को देखने के लिये कोई उस दुर्गम सरोवर के तट पर स्वयं आये, वह चलकर कहीं नहीं जाता। यदि वह पदम अपना सौन्दर्य प्रदर्शित करने सरोवर के बाहर आ जाये तो उसका सौन्दर्य ही नष्ट नहीं उसका अस्तित्व भी नष्ट होगा। मैं तो तुम लोगों को इतना ही कहती हूं कि यदि तुम्हारे पास कोई विभूति है तो उसके लिये ईश्वर की कृतज्ञ होकर सात्विक भाव से उस विभूति का सुख भोगो। मन में सात्विकता न हो तो सम्पत्ति, सुविधायें तथा अधिकार किसी को कोई सुख नहीं दे सकते।

कुन्ती बोली अब मैं तुम्हे बताना चाहती हूं कि मैंने हस्तिनापुर में रहने के लिये महात्मा विदुर का ही घर और परिवार क्यों चुना? विदुर की जीवनशैली कभी देखी है तुम लोगों ने? वे हस्तिनापुर जैसे विराट साम्राज्य के महामन्त्री होते हुये भी वैभव का नहीं साधना का जीवन जी रहे हैं। उनका घर प्रासाद न होकर एक तपस्वी के आश्रम समान है। समृद्धि ईर्ष्या का कारण न बने बल्कि ईश्वर को प्राप्त करने का साधन बने। विदुर की अपनी कोई सन्तान नहीं परन्तु नगर के कितने ही अक्षम पुरुष, असहाय नारियां तथा अनाथ बच्चे विदुर के परिवार जन के रूप में पलते रहते हैं। उस दम्पती के कही भी अपने और पराये का कोई भेदभाव नहीं है। विदुर का स्नेह सबसे है पर मोह किसी से भी नहीं। उस परिवार में सात्विकता का जो परिवेश है उसमें रहकर कोई भी व्यक्ति सुखी हो जाता है क्योंकि मन शान्त रहता है। रजोगुणी अशांति वहां नहीं है। वहां महाराज धृतराष्ट्र के राज प्रासाद की सी सुविधायें भले ही न हो परन्तु सुख की अनुभूति तो है। मैं भौतिक दृष्टि से ओर कही भी रहती तो अपनी होकर भी पराई होकर ही रहती। विदुर के घर में पराये भी पराये नहीं है तो फिर मैं कहां से पराई होती। मुझे वहां सुख की प्राप्ति ही नहीं, आत्मीयता भी बहुत मिलती है। वहां कोई यह नहीं पूछता कि यह वृद्धा कौन है? विदुर के घर में अपने व्यवहार से वे पराये लोगों को भी आत्मीयजन बना लेते है। वहां रहने पर एक सात्विक सुख की प्राप्ति होती है और तुम्हारे राजप्रासादों में तो आत्मीय जनों को भी पराया माना जाता है और उन्हे पराया बनाने का उपक्रम किया जाता है।

और कुन्ती चलने को तैयार हुई। कुन्ती यह सब कहकर वहां से चली गयी। किसी अन्य को उसके सुख से वंचित करना धर्म नहीं है। किसी की धर्म संगत निर्धनता उसके अपमान का कारण तो नहीं हो सकती। अधर्म के बल पर एकत्रित किया गया वैभव और धन लज्जा का विषय हो सकता है। ईर्ष्या, तृष्णा, तुलना, प्रतिस्पर्धा और लोभ में भी पीडा होती है। बनिये का शकट (छकडा) खींचनेवाला गधा कभी वणिक नहीं बन सकता, वह तो गधेका गधा ही रहता है उसी प्रकार ज्योत्स्ना को कितना भी सुख के बारे में बताया गया, समझाया गया पर उसकी विकृत बुद्धि सिर्फ ईर्ष्या के अलावा कुछ भी जानने और समझने को तैयार नहीं। निष्क्रियता प्रकृति की शक्ति को जड कर देती है और वही जब सक्रिय हो उठती है तो उसकी मादकता की कोई सीमा नहीं रहती।

पांडवों का दीर्घकाल का अति वन प्रवास। वृक्षों, पशु-पक्षियों, झरनों और नदियों के मध्य ठहरा सा जीवन। जीवन ठहरा सा था या समय ही ठहर गया था। पांचाली समझ न पाती। दिन जैसे आगे ही नहीं बढ रहे थे।

**२४) द्वारिका में अभिमन्यु का सैनिक प्रशिक्षण-** द्वारिका में श्रीकृष्ण भवन में अभिमन्यु की शिक्षा हो रही है। वो धर्म हो या अधर्म, चाहे सत्य हो या असत्य, वो शून्य में नहीं जी सकता। उसे भी उगने और पनपने के लिये समाज की उपजाऊ भूमि चाहिये। कोई युधिष्ठिर चाहिये, प्रकाश के लिये सूर्य चाहिये, चन्द्रमा चाहिये, कोई दीया चाहिये। कहने का तात्पर्य यह है कि इन शब्दों की खोज में किसी शून्य के मरूस्थल में भटकने से कुछ नहीं मिलेगा। न शब्द ही और न ही उसका अर्थ। यही तो बताने के लिये समय ने हजारों-हजारों वर्ष पुरानी यह कहानी बतायी है। जब स्वयं नारायण को भी शब्दों का अर्थ समझाना होता है तो वे मानव रूप इस धरा पर अवतीर्ण होते हैं और जीवन जी कर दिखलाते हैं कि मनुष्य वो सब कुछ कर सकता है, उसके लिये सब कुछ सम्भव है और जीने की कला भी सिखाते हैं।

कृष्ण का शिष्य सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु सैनिक वेशभूषा में तैयार हो रहा है। सुभद्रा बोली पुत्र अभिमन्यु। अभिमन्यु ने कहा प्रणाम माताश्री। सुभद्रा ने कहा आयुष्मान भव। क्या तुम कहीं युद्ध के लिये जा रहे हो पुत्र? अभिमन्यु बोले नहीं माताश्री। मामाश्री कृष्ण यह कहते हैं कि जब तक मैं खडग युद्ध में यादवों के सेनापति कृतवर्मा को युद्ध में परास्त नहीं कर लेता तब तक वे मुझे यौद्धा नहीं कहेंगे। सुभद्रा बोली तो तुम क्या द्वारिका के सेनापति को परास्त करोगे मेरे लाल? अभिमन्यु बोला क्यों नही माताश्री? महारथी बनने के लिये तो महारथी को ही परास्त करना पडता है। आप यह न भूलें कि मैं अपने मामाश्री वासुदेव कृष्ण का शिष्य हूं। वे प्रतिदिन मुझसे कहते हैं पुत्र अभिमन्यु इतिहास तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है किन्तु वो यह नहीं बताते कि इतिहास मेरी प्रतीक्षा कहां और क्यों कर रहा है? सुभद्रा बोली यदि तुम्हारे मामाश्री यह कह रहे हैं वत्स की इतिहास तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है तो इतिहास अवश्य ही तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा होगा परन्तु तुम्हे यह सिद्ध करना पडेगा पुत्र कि तुम इतिहास की प्रतीक्षा के योग्य हो। अभिमन्यु बोला आपका आशीर्वाद चाहिये माताश्री। सुभद्रा बोली मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ है पुत्र। आयुष्मान भव।

अभिमन्यु अब १४ वर्ष का बालक हो गया। कृतवर्मा और अभिमन्यु में तलवार बाजी युद्ध का प्रदर्शन होता है। कृष्ण बोले कभी-कभी जीवन मूल्यों की रक्षा करने हेतु भी युद्ध करना पडता है और ऐसे युद्ध में कोई किसी का रिश्ते नातेदार नहीं होता। इसलिये तलवार उठाओ और कृतवर्मा का सामना करो वत्स। अभिमन्यु बोला जो आज्ञा मामाश्री। कृतवर्मा बोला युद्ध आरम्भ करो। दोनो में तलवारों से युद्ध होता है, कृतवर्मा पराजित हो जाता है। कृतवर्मा बोला हे वासुदेव ये बालक तो ऐसा है जिस पर भीम और अर्जुन भी गर्व करेंगे। कृष्ण बोले इस पर तो स्वयं मुझे गर्व है। कृतवर्मा यह वो यौद्धा है जिसका नाम इसके शत्रु भी सदा आदर से लेंगे। अभिमन्यु बोला लेकिन मेरे शत्रु कौन होंगे मामाश्री? कृष्ण बोले कोई साधारण व्यक्ति तो तुम्हारा शत्रु हो

ही नहीं सकता वत्स। कोई महावीर, कोई महारथी ही तुम्हारा शत्रु होने का साहस कर सकता है।

हस्तिनापुर में दुर्योधन गदा से भीम की धातु की बनी प्रतिमा को मारने का अभ्यास कर रहा होता है। इतने में ही दुशासन आ जाता है और बोला यह क्या भ्राताश्री। दुर्योधन बोला क्या तुम कोई शुभ समाचार लेकर नहीं आये? दुशासन बोला भ्राताश्री गुप्तचर निराश होकर लौट आये। दुर्योधन बोला निराश होकर परन्तु वे तो परछाई की भांति उनके पीछे लगे हुये थे। दुशासन बोला वे कहते है कि एकदम धूल की वर्षा होने से जब धुआं छट जाने के पश्चात उनका कोई अता पता नहीं चला। दुर्योधन बोला पता क्यों नहीं था? क्या वे धरती में समा गये? क्या आकाश में चले गये? दुशासन, उनसे कहो कि वे पांडवों के पीछे उनका पता लगाते रहे नहीं तो उनको इस बूत के स्थान पर खडा करके गदा मार-मार कर मार डालूंगा। दुर्योधन यहकर वहां से चला गया।

**२५) पांडवो के बनवास का अन्तिम बारहवां वर्ष-** वैशम्पायन बोले जनमेजय ऋतु में परिवर्तन आ गया। तृण बिन्दु सरोवर में भी जल का स्तर नीचे आ गया। ग्रीष्मऋतु के प्रकोप के साथ निकट भविष्य में जल की मात्रा कम हो जाने की सम्भावना थी तथा जल स्वच्छ रहने की भी आशा नहीं थी। सघन वन में जल के अन्य स्त्रोतों के सूख जाने से वन के पशु जल की खोज में वन से बाहर आ सकते थे तब आश्रम की सुरक्षा की ओर से भी इतने निश्चिन्त नहीं रहा जा सकता था। द्रौपदी का जयद्रथ द्वारा अपहरण करनेवाली घटना से भी पांडवो को बडा भारी कष्ट हुआ। इससे वे अत्यन्त दु:खी होकर पांडव काम्यक वन छोडकर द्वैतवन में आ गये। आने को पृथ्वीपर स्थान की कोई कमी नहीं थी, न दिशाओं की। बारहवां वर्ष व्यतीत होने जा रहा था। द्यूत की प्रतिज्ञा के अनुसार १३ वां वर्ष उन्हें मानव समाज के मध्य अज्ञात रहकर बिताना था। पांडव नहीं चाहते थे कि वे किसी अज्ञात दिशा में किसी ऐसे स्थान पर जा पहुंचे जहां अज्ञातवास असुविधाजनक हो। युधिष्ठिर चिंतित था क्योंकि कर्ण ने अर्जुन वध की प्रतिज्ञा कर रखी थी। द्वैतवन में सुस्वादु फल मूलादि की प्रचुरता के कारण वह वन अत्यन्त रमणीय जान पडता था। वहां वे मिताहारी रहकर फलाहार करते हुये द्रौपदी के सहित रहने लगे। वन में रहते द्रौपदी भांति भांति की स्मृतियां मन में संजोये चिन्ताकुल रहने लगी। युधिष्ठिर भी चिंतित हो रहे हैं। अपने प्राणों की भी क्या चिन्ता। वे यह भली भांति जानते है जिसने भी इस संसार में जन्म लिया है वह मृत्यु को भी प्राप्त होगा ही। यह अटल निश्चित सत्य है। जिस किसी ने शरीर धारण किया है वह शरीर का त्याग करेगा ही तो फिर चिन्ता किसलिये? किन्तु आश्चर्य तो यही है कि प्रत्येक व्यक्ति के अपने मन में यही धारणा है कि उसकी मृत्यु कभी नहीं होगी। आज तक कभी किसी को भी अपनी मृत्यु स्मरण आई है? कैसा मोह है कि जिस मृत्यु को हम संसार में नित्य देखते हैं, उसे अपने संदर्भ में सदा ही विस्मृत कर बैठते हैं। दुर्योधन, कर्ण और शकुनि नित्य सोते जागते उठते बैठते पांडवों की मृत्यु की कामना करते रहते हैं पर क्या उन्होने कभी अपनी मृत्यु के विषय में सोचा? क्या यह अज्ञान नहीं तो और क्या? यह अज्ञान तो तब हो जब वो इसे जानते न हो। क्या वे नहीं जानते कि प्राणी के जन्म के साथ ही उसकी मृत्यु भी निहित है, शरीर के निर्माण में ही उसका क्षय भी सम्मिलित है। परन्तु जानते हुये भी मोहवश भूले बैठे हैं। मोह आंखे तो खुली रखता है किन्तु सत्य का साक्षात्कार नहीं करने देता। मोह ही किसलिये, उन्हे तो अहंकार भी तो है। मोह के कारण अहंकार है अथवा अहंकार के कारण मोह है?

अहंकार सिर्फ दुर्योधन में ही तो नहीं है। अहंकार भीम में भी है अपने बल का। दुर्योधन दम्भी है पर भीम में दम्भ नहीं है। युधिष्ठिर का चिन्तन सक्रिय हो रहा है कि अहंकार व्यक्ति के चैतन्य का हरण कर लेता है। व्यक्ति एक प्रकार से अचेत हो जाता है। सामने उपस्थित सत्य दिखाई नहीं देता। युधिष्ठिर को कई बार लगता है भीम का चैतन्य नष्ट हो जाता है, भले ही

शारीरिक रूप से वह अचेत नहीं होता किन्तु विवेक से उचित अनुचित का निर्णय नहीं करता। ऐसा व्यक्ति मृत तो नहीं होता किन्तु उसे जीवित भी कैसे कहा जाये जहाँ विवेक ही लुप्त हो जाये? चैतन्य शून्यता रूपी इस मृत्यु में जीवन लौटाने के लिये ज्ञान की आवश्यकता है। शास्त्र ज्ञान की। पर भीम को क्या शास्त्रज्ञान ही नहीं है क्या? शास्त्रों का अध्ययन तो उसने भी किया है। शास्त्रों को तो उसने ही नहीं हजारों लोगों ने पूरी तरह से चाट रखा है, शास्त्र जैसे घोंट कर पी गये हो फिर भी मूर्ख के मूर्ख ही रह गये है। उनके आचरण पर उस ज्ञान का कोई प्रभाव दिखाई नहीं पडता। वे शास्त्र से कुछ भी ग्रहण नहीं करते, केवल अपना व्यसन पूरा करते हैं। व्यसन किसी का विकास नहीं कर सकता। विकास करता है आचरण। जब तक आचरण में सात्विकता नहीं आयेगी तब तक आचरण में से अहंकार लुप्त नहीं होगा, तब तक शास्त्रों का ज्ञान किस काम का? जो अपने धर्म में तत्पर रहने का तप नहीं करता उसे शास्त्राभ्यास का क्या लाभ?

धर्म क्या है? चार पुरुषार्थों में से एक। काम भी पुरुषार्थ और धर्म भी पुरुषार्थ, अर्थ भी पुरुषार्थ। काम सुख प्राप्त करना हो तो धर्म की रक्षा होगी क्या? पत्नी की इच्छा को धर्म विरोधी कहकर टाला तो नहीं जायेगा तो फिर कामसुख कैसे पाया जायेगा? फिर या तो पत्नी संग कर लो या फिर धर्म के साथ रह लो। पत्नी मांगेगी धन वह उस धन को व्यय करना चाहेगी। धन भी क्या कभी धर्म से कमाया जाता है? धर्म पर टिके रहे तो धन अर्जित नहीं कर सकोगे। ब्राह्मण को धर्म चाहिये इसलिये वह भिक्षा पर जीवित रहता है। धर्म न धन के साथ रहता है, न काम के साथ। जैसे भर्ता धर्म से च्युत हो जाये तो भर्ता को कष्ट होता है वैसे ही भार्या धर्म की विरोधनी हो जाये तो भर्ता को कष्ट होगा। प्रश्न तो यह है कि भर्ता और भार्या एक-दूसरे के विरोधी है अथवा अविरोधी। युधिष्ठिर को तो आज तक नहीं लगा कि उनका और पांचाली का पक्ष एक दूसरे का विरोधी है। देविका ने कभी उन्हे धर्म विरुद्ध चलने को नहीं कहा फिर पत्नी ऐसा कैसे कर सकती है। पत्नी तो पति की दैवकृत सहचरी होती है। गृहवासी की सबसे घनिष्ठ मित्र पत्नी ही होती है। तो फिर भार्या अपने भर्ता की विरोधिनी नहीं हो सकती। जब भार्या और धर्म एक-दूसरे के अविरोधी हैं तो भर्ता को कामसुख भी प्राप्त होता है, अर्थ का उपार्जन भी होता है और उसका सुख भी मिलता है। पत्नी ही तो है जो काम को आन्दोलित भी करती है और मर्यादित भी। पत्नी ही तो है जो अर्थोपार्जन नियोजित भी करती है और लोभ का निराकरण कर सन्तोष का आह्वान भी करती है। इसका मतलब यह हुआ कि वास्तविक रोग तो लोभ है। धर्म का विरोधी लोभ है पत्नी नहीं। अनन्त रोग है लोभ, लोभ चाहे किसी भी क्षेत्र का क्यों न हो?

पांडव बारह वर्ष पूरा करने वन वन भटक रहे हैं। पांडव बेचारे जीवन भर बनवास, ब्रह्मचर्य, साधना और दुश्चिन्ता में ही जी रहे। सत्य के आगे सिर झुकाने के सिवा आदमी को कोई चारा नहीं। कभी न कभी तो सभी मरते हैं।

**चलन चली का चलने देता, कोई इसकी चाल न जाने,**
**हार गये बडे सयाने, पार न पाते वेद पुराण, सब दिन होत न एक समान**
**इनकी एक भूल से इनको पडा काटना दिन दिन इनको**
**ऐसे ही बारह वर्ष बिताये, पर्वत जैसे कष्ट आये, रखा धर्म ध्वजा का मान**
**साधो समय बडा बलवान, सिर पर रखी है तलवार, पैरों तले बिछी है अंगार**
**परन्तु धैर्य का न छोडा साथ, दुखों से दु:ख तनिक न मोडा**
**मन में बसा रखा भगवान, सब दिन होत न एक समान**
**पांचो पांडव वन वन भटके, संग द्रौपदी नार, साधो समय बडा बलवान, सब दिन होत न एक समान।**

एक दिन उस वन में एक ब्राह्मण के अरणी सहित मन्थन करनेवाले काष्ठ से एक हरिण अपना सींग खुजलाने लगा। दैवयोग से वह काष्ट उसके सींग में फंस गया। वह एक महामृग था बडे ही डील डौल वाला। वह उसे लेकर भागते हुये उछलता कूदता दूसरे आश्रम में चला गया। वह ब्राह्मण अग्नि होत्र की रक्षा के लिये भय से शीघ्रता से पांडवों के पास जाकर पुकार कर कहने लगा महाराज एक महामृग मेरी अरणि लेकर वन की ओर भाग गया है। अब उस महामृग को पकडकर मेरा वह मन्थन काष्ठ ला दीजिये जिससे मेरी अग्निहोत्र क्रिया लोप न हो। ब्राह्मण की बात सुनकर महाराज युधिष्ठिर को बहुत दु:ख हुआ और वे भाइयों सहित धनुष लेकर उस मृग के पीछे वन में भागे। सब भाइयों ने उसे पकडने का प्रयत्न किया किन्तु वे सफल नहीं हुये और देखते देखते वह महामृग उनकी आंखों से ओझल हो गया। उसे न देखकर वे हतोत्साह हो गये और उन्हे बहुत दु:ख हुआ। घूमते-घूमते वे वन में एक वटवृक्ष के पास पहुंचे और भूख प्यास से शिथिल हो क्लान्त हो चुके थे। सबको प्यास लगी हुई थी। भीम बोला ज्येष्ठ भ्राताश्री थोडा विश्राम कर लिया जाये। युधिष्ठिर बोले भीम यहां आस पास कोई सरोवर तो देखो। वे लोग एकदम अपरिचित स्थान पर पहुंच गये थे। विकट प्यास उन्हे सता रही थी। जल की आवश्यकता उन सभी को थी। द्रौपदी बोली आर्य पुत्र तनिक विश्राम कर लें। प्यास भी जोरों से लगी है।

युधिष्ठिर सहदेव से बोले तनिक इस वृक्ष पर चढकर देखो कहीं कदाचित जल के दर्शन हो जाये। प्यास के कारण सब की जीभ पर कांटे पड गये। सहदेव बोला जो आज्ञा। सहदेव ने निकट के एक ऊंचे वृक्ष पर चढकर चारों ओर नजर दौडा कर देखा कि जल के पास होनेवाले बहुत से वृक्ष दिखाई दिये तथा सारसों का शब्द भी सुनाई दे रहा था। कुछ पक्षी भी थे जो कि सरोवर के निकट ही रहते थे। उनके पंख भीगे हुये थे। वे अभी किसी सरोवर में जल क्रीडा कर निकले थे इसलिये यहां पर जल अवश्य होना चाहिये। युधिष्ठिर बोले सौम्य तुम वहां शीघ्र जाओ और पानी ले आओ।

बडे भाई की आज्ञा मानकर नकुल बहुत अच्छा कहकर बडी तेजी से उस सरोवर की ओर चले और शीघ्र ही उस सरोवर के पास पहुंच गये। वहां उस सरोवर में निर्मल जल देखकर पानी पीने के लिये झुके कि इतने में ही किसी ने आवाज दी ठहरो, मेरे प्रश्नों के उत्तर दिये बिना तुम यह पानी नहीं पी सकते। नकुल बोला अगर पी लिया तो क्या करोगे? आवाज आई पीकर तो देखो। नकुल को बडी प्यास लगी हुई थी उन्होने उस आवाज की कोई परवा नहीं करी और शीतल जल पीने लगे। ज्योंही उन्होने वह शीतल जल पीया उसे पीते ही वे भूमि पर अचेत हो गिर पडे। नकुल को जल लेकर आने में देर हुई देखकर युधिष्ठिर ने सहदेव से कहा सहदेव तुम जाकर देखो। नकुल को गये बहुत देर हो गई उन्हे साथ में ले आवो और जल लाकर दो। सहदेव बोला जो आज्ञा ज्येष्ठ भ्राताश्री ऐसा कहकर उसी दिशा में चल पडा जहां नकुल गये थे। उन्होंने अपने भाई नकुल को अचेतन अवस्था में पृथ्वी पर पडे देखा। सहदेव प्यास से पीडित हो रहे थे और पीने के लिये अंजुलि भर रहे थे तो आवाज आई सावधान  मेरे प्रश्नों के उत्तर दिये बिना तुम यह जल नहीं पी सकते। सहदेव ने भी उस वाणी की कोई परवा नहीं की और जल पी लिया तथा जल पीते ही वे भी अचेतन हो भूमिपर गिर पडे। युधिष्ठिर उधर वृक्ष के नीचे बैठे चिंतित हो रहे थे कि नकुल और सहदेव अभी तक आये नहीं।

युधिष्ठिर अर्जुन से बोले प्रिय अर्जुन मुझे चिन्ता हो रही है तनिक तुम जाकर तो देखो कोई दुर्घटना तो नहीं हो गई? तुम जाकर उन्हे लिवा लाओ और जल भी लेते आओ। तुम ही हमारे आश्रय हो। युधिष्ठिर की व्याकुलता बढती जा रही थी। अर्जुन बोला आप किसी प्रकार की चिन्ता मत करो भ्राताश्री, मैं अभी जाकर देखता हूं। अर्जुन भी सरोवर के पास आये और अपने भाइयों को मूर्च्छित अवस्था में सोये हुये देखा तब वे गरज कर बोले सामने आ हत्यारे। किसने मारा मेरे भाइयों

को? उपर से आवाज आयी इनकी हत्या मैंने की है द्रोण शिष्य अर्जुन। अर्जुन बोला क्या बिगाडा था उन्होने तुम्हारा ? एक यक्ष उस वृक्ष पर से प्रकट हो बोला यह सरोवर मेरा है। इन दोनों ने मेरे रोकने के पश्चात भी इस सरोवर के जल पीने का अपराध किया है। अर्जुन बोला तो क्या हुआ ये प्यासे थे। यक्ष ने कहा प्यासे होने का अर्थ यह नहीं कि तुम दूसरे का जल छीन लेने के अधिकारी हो। यक्ष बोला यदि तुम्हे जल चाहिये तो पहिले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो नहीं तो तुम्हारी भी यही दशा होगी कुन्तीनन्दन जो तुम्हारे इन दोनो भाइयों की हुई है। अर्जुन बोला जल और पवन पर किसी का एकाधिकार नहीं होता है। इस पर तो हर प्राणी का अधिकार होता है इसलिये इस सरोवर पर मैं तुम्हारा अधिकार स्वीकार नहीं करूंगा। कभी नही इसलिये मैं जल पीऊंगा भी और अपने साथ ले भी जाऊंगा। यदि तुमने रोकने का प्रयास किया तो एक ही बाण में सूखा दूंगा इस सरोवर को। सुना तुमने। यक्ष बोला तुम जल नहीं पी सकते अर्जुन, मैं तुम्हे फिर से कहता हूँ द्रोण शिष्य अर्जुन मेरे प्रश्नों का उत्तर दिये बिना कोई भी यह जल नहीं पी सकता। अर्जुन ने जबरन जल पी लिया और उसकी भी वही दशा हुई। वो भी वहां पर अचेत होकर गिर गया। युधिष्ठिर उन तीनों के न आने से बहुत चिंतित हो भीम से बोले अर्जुन को भी गये बहुत देर हो गये अभी तक नहीं लौटा। तुम उन्हे जाकर लौटा लाओ और साथ में जल भी ले आओ। पांचाली प्यासी है।

भीम बोला मैं अभी देखता हूँ ज्येष्ठ भ्राताश्री यह कहकर भीम भी उस स्थान पर आये जहां उसके तीनों भाई अचेतन अवस्था में पडे हुये थे। उन्हें देखकर भीम को बडा दु:ख हुआ। उन्हे लगा यह काम यक्ष या राक्षसों का है और मुझे उनसे युद्ध करना होगा। पहिले पानी पीकर अपनी प्यास बुझा लू फिर उनसे निपटूंगा। भीम बोला कौन है हत्यारा वो सामने आये। यक्ष बोला हां। भीम बोला तो क्या तुम मेरे भाइयों के हत्यारे हो? यक्ष बोला यदि मेरे प्रश्नों का उत्तर दिये बिना मेरे जल को पीने का प्रयत्न किया तो तुम्हारी भी यही दशा होगी। भीम बोला पहिले मैं यह जल पीकर सिद्ध कर दूंगा कि इस जल पर तेरा कोई अधिकार नहीं फिर तुम्हे इन हत्याओं के लिये दंडित करूंगा। यक्ष बोला व्यर्थ साहस मत करो भीम। अतुलित तेजस्वी यक्ष के ऐसा मना करने पर भी भीम ने यक्ष के प्रश्नों का उत्तर दिये बिना ही जल पी लिया और पीते ही अचेत हो भूमिपर गिर पडे। द्रौपदी अपने आप को कोस रही थी कि मैं ही इस संसार में महापातकी हूं। युधिष्ठिर द्रौपदी को समझाते हुये बोले तुम तो विदुषी हो पांचाली। मेरे सब भाई इस असमय में कहां चले गये यही दु:ख का विषय है। युधिष्ठिर चिन्ता कर रहे थे कि उनके भाई तो ऐसा कभी नहीं करते पता नहीं आज जाने क्या हो गया। युधिष्ठिर का चित शंकाओं से संतप्त हो उठा और स्वयं वे अपने भाईयों को ढूंढने के लिये जाने को उद्यत हुये।

**२६) यक्ष युधिष्ठिर सम्वाद व प्रश्नोत्तर-** वैशम्पायन बोले जनमेजय युधिष्ठिर थोडे ही समय में सरोवर के निकट पहुंच गये। सरोवर का जल स्वच्छ और पारदर्शी था। उनके चारों भाई सरोवर के तट पर अचेतन अवस्था में लेटे हुये देखा। युधिष्ठिर ने अपने चारों भाइयों की नाडी परीक्षण कर देखा। वे जीवित तो थे पर न तो उनका श्वास चल रहा था न ही उनकी नाडी सक्रिय थी। युधिष्ठिर सोच रहे थे किसी घाव का निशान भी नहीं है। क्या इस सरोवर का जल ही विषैला है जो मेरे भाइयों की यह दशा हुई? ऐसा लगता तो नहीं। पर गान्धार नरेश शकुनि का भी क्या भरोसा। परंतु शरीरों पर भी तो विष का कुछ प्रभाव दिखाई नहीं देता। फिर भी जो कुछ है वह तो इस सरोवर के जल से ही है। कैसे मेरे भाइयों की यह दशा हो गई?

युधिष्ठिर ने जलाशय की ओर कदम बढाये। अंजुली भर कर जल पीने के लिये उद्यत हुये थे कि आवाज आई ठहरो सावधान युधिष्ठिर मेरे प्रश्नों का पहिले यथार्थ उत्तर दो वरना तुम्हारी भी तुम्हारे भाइयों के समान ही दशा होगी। मैं यक्ष हूं इस जलाशय का स्वामी। तुम्हारे इन चारों भाइयों ने बिना मेरे प्रश्नों के उत्तर दिये जलपान करने का प्रयत्न किया इसलिये उसका यह तुम्हारे

सामने परिणाम देख रहे हो। युधिष्ठिर को लगा इन पुरुष श्रेष्ठों का सामना तो साक्षात यमराज भी नहीं कर सकता। युधिष्ठिर ने कहा मैं आपसे पूछता हूं कि आप रुद्र, वसु, मरुत आदि प्रधान देवताओं मे कौन है जो मुझे इस प्रकार कह रहे है? यक्ष बोला मैं कोई जलचर या पक्षी नहीं हूं। मैं यक्ष हूं और मैंने ही तुम्हारे इन महान तेजस्वी भाइयों को मारा है और यह कहकर यक्ष प्रकट हो गया। मैंने सबको रोका था कि मेरे सरोवर का जल न पीये इससे पहिले वे मेरे प्रश्नों का उत्तर दे परन्तु वे नहीं माने और अपने हठ तथा अहंकार से मारे गये। यदि तुम्हे भी जल ले जाना है या पीना है तो पहिले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो।

युधिष्ठिर ने देखा एक विकट नेत्रों वाला विशाल काय बडा ही दुर्धष ताड के समान लम्बा, अग्नि समान तेजस्वी, पर्वत के समान विशाल, अमावस्या के समान काला, क्रूर, आंखे बडी ही भयंकर वह यक्ष बोला यदि तुम्हे अपने प्राण बचाने हैं तो मेरे सरोवर का जल तुम्हे नहीं पीना चाहिये यह स्थान मेरा है। युधिष्ठिर बोले मैं आपके अधिकार की वस्तु को ले जाना नहीं चाहता पर आज तक तो जल और वायु जैसे पदार्थ किसी के हुये नहीं। यह तो ईश्वर की सम्पत्ति है। अब यदि उन पर भी यक्षों और मनुष्यों का व्यक्तिगत अधिकार आधिपत्य हो जायेगा, ये उसके स्वामी हो जायेंगे तो फिर साधारण व्यक्ति जल और वायु कैसे प्राप्त करेगा? वह उनके बिना कैसे जीवित रहेगा? बिना इनके यह सृष्टि कैसे चलेगी? अब मुझे बताये आपकी अनुमति प्राप्त करने के लिये मुझे क्या करना है। यक्ष बोला युधिष्ठिर मेरे प्रश्नों का उत्तर दो। यदि तुम मेरे प्रश्नों का सन्तोषप्रद उत्तर दोगे तो तुम इस सरोवर का जल पी सकोगे अन्यथा नहीं। युधिष्ठिर बोले मैं आपके प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करूंगा। आप प्रश्न कीजिये कोई पुरुष स्वयं ही अपनी प्रशंसा करे इसका सत्पुरुष अनुमोदन नहीं करते। मैं अपनी यथा मति आपके प्रश्नों का उत्तर दूंगा।

यक्ष ने पूछा- १) पृथ्वी से भारी क्या है? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया माता पृथ्वी से बढकर अर्थात भारी है। धरती वनस्पति को जन्म दे सकती है मनुष्य को नहीं। माता का गौरव पृथ्वी से अधिक गरिमापूर्ण है। २) यक्ष ने पूछा आकाश से ऊँचा क्या है? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया पिता आकाश से भी ऊंचा है। ३) यक्ष ने पूछा वायु से अधिक गतिवान कौन है? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया मन वायु से भी तीव्रगामी है। ४) यक्ष ने पूछा तिनको की संख्या से अधिक क्या है? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया चिन्ता अनन्त है। उनके जीवन की चिन्तायें कभी समाप्त ही नहीं होती। चिन्ताओं की संख्या तिनकों से अधिक है। ५) यक्ष ने पूछा मृत्यु के समीप हुये पुरुष का मित्र कौन है? प्रवासी का मित्र कौन है? रोगी का मित्र कौन है? गृहवासी का मित्र कौन है? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया मृत्यु के समीप हुये पुरुष का मित्र दान है। प्रवासी का मित्र उसका सहयात्री होता है। गृहवासी का मित्र उसकी पत्नी है। वैद्य रोगी का मित्र है। ६) यक्ष ने पूछा धर्म, यश और स्वर्ग का मुख्य स्थान क्या है? सुख का मुख्य स्थान क्या है? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया धर्म का मुख्य स्थान दक्षता है, यश का मुख्य स्थान दान है, स्वर्ग का मुख्य स्थान सत्य है और सुख का मुख्य स्थान शील है। ७) यक्ष ने पूछा मनुष्य का आत्मा क्या है? उसका दैवकृत मित्र कौन है? उसके उपजीवन का सहारा क्या है? उस आत्मा का परमाश्रय क्या है? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया पुत्र मनुष्य का आत्मा है, स्त्री उसकी दैवकृत सखा है, मेघ उपजीवन है और दान परम आश्रय है। ८) यक्ष ने पूछा जगत को किसने ढक कर रखा है? किसके कारण वह प्रकाशित नहीं होता? मनुष्य मित्रों को किसलिये त्याग देता है और वह स्वर्ग किस कारण से नहीं जा पाता? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया जगत अज्ञान से ढका हुआ है, तमोगुण के कारण वह प्रकाशित नहीं होता। लोभ के कारण मनुष्य मित्रों को त्याग देता है। आसक्ति के कारण वह स्वर्ग में नहीं जा सकता। ९) यक्ष ने पूछा आलस्य क्या है? सुखी कौन है? सच्चा स्नान कौनसा है? काजल से अधिक काला क्या है? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया धर्म न करना

आलस्य है। जो ऋणी न हो वही सुखी है। जो अपने घर में साग फल खाकर ही जीवन बिताने लगे वही सुखी है। सच्चा स्नान वही है जो मन का मैल धो डाले। काजल से भी अधिक काला कलंक है। १०) यक्ष ने पूछा लोक में श्रेष्ठ धर्म क्या है? नित्य फल वाला धर्म क्या है? किसको वश में रखने से क्षोभ नहीं होता? किसके साथ की हुई सन्धि नष्ट नही होती। युधिष्ठिर बोले लोक में दया ही श्रेष्ठ धर्म है। वेदों में कहा गया धर्म नित्य फलवाला है। मन को वश में रखने से क्षोभ नहीं होता और सत्पुरुषों के साथ की हुई सन्धि नष्ट नहीं होती। ११) यक्ष ने पूछा लज्जा क्या है? क्षमा क्या है? तप का लक्षण क्या है? दम क्या है? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया न करने योग्य काम से दूर रहना लज्जा है, द्वन्दों को सहना क्षमा है। अपने धर्म में स्थित रहना तप है और मन का संयम दमन ही दम है। १२) यक्ष ने पूछा दया क्या है? राष्ट्र की मृत्यु का क्या कारण होता है? ब्राह्मणत्व का प्रमाण क्या है? कुल, चरित्र, शिक्षा या शास्त्र का ज्ञान? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया सबके सुख की इच्छा करना दया है। अराजकता ही राष्ट्र की मृत्यु का कारण है। कुल, शिक्षा और शास्त्र ज्ञान ब्राह्मणत्व को सिद्ध नहीं करता। ब्राह्मणत्व का प्रमाण तो नि:सन्देह उसका चरित्र ही है। अच्छे चरित्रवाला शूद्र उस ब्राह्मण से अच्छा है जो जन्म से तो ब्राह्मण हो और शास्त्रों का ज्ञान रखता है परन्तु जिसका चरित्र अच्छा न हो। सदाचार की रक्षा करनी चाहिये। ब्राह्मण को इस पर विशेष रूप से दृष्टि रखना आवश्यक है। जिसका सदाचार अक्षुण्ण है उसका ब्राह्मणत्व भी बना हुआ है। जिसका आचार नष्ट हो गया वो तो स्वयं भी नष्ट हो गया। पढनेवाले, पढानेवाले तथा शास्त्र का विचार करनेवाले ये सब तो व्यसनी और मूर्ख ही है। पंडित तो वही है जो अपने कर्तव्य का पालन करता है। चारों वेद पढा होकर भी यदि कोई दूषित कर्म आचरण करता है वह तो शूद्र से बढकर है। जो अग्निहोत्र में तत्पर और जितेन्द्रिय है वही ब्राह्मण कहलाने योग्य है। रावण ब्राह्मण होकर अपने आचरण से ब्राह्मण नहीं रह सका और विदुर शूद्र योनि से उत्पन्न होकर भी ब्राह्मण है तो फिर इसमें वंश, व्यक्ति का जन्म, स्वधर्म तथा व्यवसाय क्या करेगा। १३) यक्ष ने पूछा धर्म क्या तप में है? क्या वो ऋषियों की विचार धारा में है? धर्म को सम्पूर्ण सत्य क्यों कहा? युधिष्ठिर बोले धर्म न तप में है न ही ऋषियों की विचार धारा में क्योंकि किसी एक ऋषि की विचारधारा दूसरे से भिन्न हो सकती है। उनमें मतभेद होता है। किसी भी ऋषि के पास सम्पूर्ण सत्य नहीं है। व्यक्ति के हृदय की गुफा में सत्य रहता है। १४) यक्ष ने पूछा जीवन का उत्तम मार्ग कौनसा है? युधिष्ठिर बोले संसार में सब लोग अपनी बुद्धि से चलते हैं किन्तु बुद्धि हो तो व्यक्ति प्रत्येक तर्क को अपनी इच्छानुसार तोड मोड लेता है इसलिये तर्क शास्त्र का मार्ग नहीं है। शास्त्र अनेक हैं और नये रचे भी जा सकते हैं। ऋषि कोई एक नहीं है जिसके मत को प्रमाण माना जाये इसलिये उत्तम व श्रेष्ठ मार्ग वही है जिस पर महापुरुष चलते हैं। १५) यक्ष ने पूछा सूर्य को कौन उदित करता है उसके चारों ओर कौन चलते हैं? उसे अस्त कौन करता है और वह किसमें प्रतिष्ठित है? युधिष्ठिर बोला ब्रह्म सूर्य को उदित करता है, देवता उसके चारों ओर चलते हैं। धर्म उसे अस्त करता है और वह सत्य में प्रतिष्ठित है। १६) यक्ष ने पूछा नींद आ जाने पर आंखे पलक कौन नहीं मूंदता? उत्पन्न होने पर चेष्टा प्रयत्न कौन नहीं करता? हृदय किसमें नहीं है और वेग से कौन बढता है? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया मछली सो जाने पर भी पलक नहीं झेपती, खुली रखती है। अंडा उत्पन्न होने पर भी चेष्टा नहीं करता। पत्थर में हृदय नहीं होता और नदी वेग से बढती है? १७) यक्ष ने पूछा समस्त प्राणियों का अतिथि कौन है? सनातन धर्म क्या है? अमृत क्या है? और यह सारा जगत क्या? युधिष्ठिर बोले ये अग्नि ही समस्त प्राणियों का अतिथि है। गौ का दूध अमृत है। अविनाशी नित्य धर्म ही सनातन धर्म है। यह वायु ही सारा जगत है। १८) यक्ष ने पूछा मनुष्य श्रोत्रिय कैसे होता है? वह महत पद किसके द्वारा प्राप्त करता है? किसके द्वारा वह

द्वितीयवान होता है? और किस प्रकार बुद्धिमान होता है? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया श्रुति के द्वारा मनुष्य श्रोत्रिय होता है। तप से महत् पद प्राप्त करता है। द्यूति से द्वितीयवान (ब्रह्मरूप) होता है और बुद्ध पुरुषों की सेवा से बुद्धिमान होता है। १९) यक्ष ने पूछा अकेला कौन विचरता है? एक बार उत्पन्न होकर पुन: कौन उत्पन्न होता है? शीत की औषधि क्या है? और महान क्षेत्र क्या है? युधिष्ठिर बोले सूर्य अकेले विचरता है। चन्द्रमा एक बार जन्म लेकर पुन: जन्म लेता है। अग्नि शीत की औषधि है और पृथ्वी बडा भारी क्षेत्र है। २०) यक्ष ने पूछा ब्राह्मणों में देवत्व क्या है? उनमें सत्पुरुषों का धर्म क्या है? और असत् पुरुषों का सा आचरण क्या है? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया स्वाध्याय ही ब्राह्मणों में देवत्व है, तप सत्पुरुषों का धर्म है, मरना मानुषी भाव है और निन्दा करना असत्पुरुषों का आचरण है। २१) यक्ष ने पूछा क्षत्रियों में देवत्व क्या है? उनमें सत्पुरुषों का सा धर्म क्या है? मनुष्यता क्या है? और उसमें असत् पुरुषों का सा आचरण क्या है? युधिष्ठिर ने कहा बाण विद्या, धनुर्विद्या क्षत्रियों का देवत्व है। यज्ञ उनका सत्पुरुषों का सा धर्म । भय मानवी भाव है और दीनों की रक्षा न करना असत् पुरुषों का सा आचरण है। २२) यक्ष ने पूछा ऐसा कौन पुरुष है जो इन्द्रियों के विषयों को अनुभव करते हुये, श्वास लेते हुये तथा बुद्धिमान, लोक में सम्मानित और सब प्राणियों का माननीय होकर भी वास्तव में जीवित नहीं है? युधिष्ठिर बोले जो देवता, अतिथि, सेवक, माता-पिता और आत्मा इन पांचों का पोषण नहीं करता वह श्वास लेने पर भी जीवित नहीं है। २३) यक्ष ने पूछा किस पुरुष को पंडित समझना चाहिये? नास्तिक कौन कहलाता है? मूर्ख कौन है? काम क्या है? तथा मत्सर किसे कहते है। युधिष्ठिर ने कहा धर्मज्ञ को पंडित समझना चाहिये। मूर्ख नास्तिक कहलाता है और नास्तिक मूर्ख है। जो जन्म-मरण रूप संसार का कारण है वह वासना काम है और हृदय का ताप ही मत्सर है। २४) यक्ष ने पूछा अहंकार किसे कहते है? दम्भ क्या कहलाता है? जिसे परमदेव कहते हैं वह क्या है? पैशुन्य किसे कहते हैं? युधिष्ठिर बोले महान अज्ञान ही अहंकार है। अपने को झूठमूठ बडा धर्मात्मा प्रसिद्ध करना दम्भ है। दान का फल दैव कहलाता है और दूसरों को दोष लगाना पैशुन्य (चुगली) है। २५) यक्ष ने पूछा धर्म, अर्थ और काम ये परस्पर विरोधी है। इन नित्य विरोधों का एक स्थान पर कैसे संयोग होता है? युधिष्ठिर बोले जब धर्म और भार्या परस्पर वशवर्ती हो तो धर्म, अर्थ और काम तीनों का संयोग हो सकता है। २६) यक्ष ने पूछा राजन मोह किसे कहते है? मान क्या है? आलस्य किसे जानना चाहिये? शोक किसे कहते है? युधिष्ठिर बोले धर्ममूढता ही मोह है। आत्माभिमान ही मान है, धर्म न करना आलस्य है और अज्ञान ही शोक है। २७) यक्ष ने पूछा मनुष्यों का दुर्जय शत्रु कौन है? अनन्त व्याधि क्या है? साधु किसे कहते हैं? और असाधु किसे कहते हैं। युधिष्ठिर ने कहा क्रोध दुर्जय शत्रु है। लोभ अनन्त व्याधि है। जो समस्त प्राणियों का हित करनेवाला हो वह साधु है और निर्दय पुरुष असाधु है। २८) यक्ष ने पूछा कौन वस्तु यज्ञीय साम है? कौन यज्ञीय यजु है? कौनसी वस्तु यज्ञ का वरण करती है और किस एक का याज्ञ अतिक्रमण नहीं करता? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया प्राण ही यज्ञीय साम है, मन ही यज्ञीय यजु है, एक मात्र ऋक ही यज्ञ का वरण करती है और एक मात्र ऋक का ही यज्ञ अतिक्रमण नहीं करता। २९) यक्ष ने पूछा देवतर्पण करनेवालों के लिये कौन वस्तु श्रेष्ठ है? निवपन (पितर तर्पण) करनेवालों के लिये क्या श्रेष्ठ है? प्रतिष्ठा चाहनेवालों के लिये कौन वस्तु श्रेष्ठ है? तथा सन्तान चाहनेवालों के लिये क्या श्रेष्ठ है? युधिष्ठिर बोले देव तर्पण करनेवालों के लिये वर्षा श्रेष्ठ फल है। निवपन (पितर तर्पण) के लिये वीज धन धन्यादि सम्पत्ति श्रेष्ठ है। प्रतिष्ठा चाहनेवालों के लिये गौ श्रेष्ठ है तथा सन्तान चाहनेवालों के लिये पुत्र श्रेष्ठ है। ३०) यक्ष ने पूछा धन्यवाद के योग्य पुरुषों में उत्तम गुण क्या है? धनों में उत्तम धन क्या है? लाभों में प्रधान लाभ क्या है और सुखों में श्रेष्ठ सुख क्या है? युधिष्ठिर बोले

धन्य पुरुषों में दक्षता ही उत्तम गुण है, धनों में शास्त्रज्ञान प्रधान है। सभी प्रकार के लाभों में आरोग्य प्रधान है और सुखों में सन्तोष सबसे श्रेष्ठ सुख है। ३१) यक्ष ने पूछा किस वस्तु के त्यागने से मनुष्य प्रिय होता है? किसे त्यागने पर शोक नहीं करता? किसे त्यागने पर वह अर्थवान होता है? और किसे त्यागकर सुखी होता है? युधिष्ठिर बोले मान को त्यागने से मनुष्य प्रिय होता है। क्रोध को त्यागने पर शोक नहीं करता, काम को त्यागने पर वह अर्थवान होता है और लोभ को त्याग कर सुखी होता है। ३२) यक्ष ने पूछा ब्राह्मण को किसलिये दान दिया जाता है? नट और नर्तकों को क्यों दान देते है? सेवकों को दान देने का क्या प्रयोजन है? और राजा को क्यों दान दिया जाता है? तब युधिष्ठिर बोले- ब्राह्मण को धर्म के लिये दान दिया जाता है। नट नर्तकों को यश के लिये पुरस्कार दिया जाता है। सेवकों को उनके भरण-पोषण के लिये दान या वेतन दिया जाता है तथा राजा को भय के कारण दान कर रूप में देते है। ३३) यक्ष ने पूछा पुरुष किस प्रकार मरा हुआ कहा जाता है? राष्ट्र किस प्रकार मरा हुआ कहलाता है? श्राद्ध किस प्रकार मृत हो जाता है और यज्ञ कैसे मृत हो जाता है? युधिष्ठिर बोले दरिद्र पुरुष मरा हुआ ही है, बिना राजा का राज्य मरा हुआ ही जानो। श्रोत्रिय ब्राह्मण के बिना श्राद्ध मृत हो जाता है और बिना दक्षिणा का यज्ञ मरा हुआ ही है। ३४) यक्ष ने पूछा दिशा क्या है? जल क्या है? अन्न क्या है? विष क्या है? और श्राद्ध का समय क्या है? युधिष्ठिर बोले सत्पुरुष ही दिशा है क्योंकि वे भगवत प्राप्ति का मार्ग बताते है। आकाश जल है। गौ अन्न है क्योंकि गौ आदि हव्य होता है। उससे हवन यज्ञ होता है। यज्ञ से वर्षा होती है और वर्षा से अन्न होता है। कामना ही विष है और ब्राह्मण ही श्राद्ध का समय है। ३५) यक्ष ने पूछा राजन ज्ञान किसे कहते है? शम क्या है? दया किसका नाम है? और आर्जव (सरलता) किसे कहते है? युधिष्ठिर बोले वास्तविक वस्तु को ठीक ठीक जानना ही ज्ञान है। चित्त की शान्ति शम है। सबके सुख की इच्छा ही दया है और समचित्त होना आर्जव (सरलता) है। ३६) यक्ष ने पूछा ऋषियों ने स्थिरता किसे कहा है? धैर्य क्या कहलाता है? स्नान किसे कहते है? और दान किसका नाम है? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया अपने धर्म में स्थिर रहना ही स्थिरता है, इन्द्रिय निग्रह धैर्य है, मानसिक मलों को छोडना स्नान है और प्राणियों की रक्षा करना दान है। ३७) यक्ष ने पूछा हे नर श्रेष्ठ अक्षय नरक किस पुरुष को प्राप्त होता है? युधिष्ठिर ने कहा जो पुरुष भिक्षा मांगनेवाले किसी अकिंचन ब्राह्मण को स्वयं बुलाकर फिर उसे नहीं देता, वह अक्षय नरक प्राप्त करता है। जो पुरुष वेद, धर्म शास्त्र, ब्राह्मण, देवता और पितृ धर्मों में मिथ्या बुद्धि रखता है वह अक्षय नरक प्राप्त करता है तथा धन पास रहते हुये भी जो लोभवश दान और भोग से रहित है तथा पीछे से यह कह देता है कि मेरे पास है ही नहीं, वह अक्षय नरक को प्राप्त करता है। ३८) यक्ष ने पूछा मधुर वचन बोलने वाले को क्या मिलता है? सोच विचार कर काम करनेवाला क्या पाता है? जो बहुत से मित्र बना लेता है उसे क्या लाभ होता है? जो धर्म निष्ठ है उसे क्या मिलता है ? युधिष्ठिर बोले मधुर वचन बोलनेवाला सबको प्रिय होता है। सोच-विचार कर काम करनेवाले को सफलता मिलती है इसलिये पीछे पछताना नहीं पड़ता। जो बहुत से मित्र बना लेता है वह सुख से रहता है जो धर्मनिष्ठ है उसे सद्गति मिलती है। ३९) यक्ष ने पूछा सबसे बडा धनी कौन है? पुरुष क्या है? और वार्ता क्या है?

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया जिसकी दृष्टि में प्रिय-अप्रिय, सुख-दु:ख और भूत-भविष्य ये द्वन्द समान है वहीं सबसे धनी पुरुष है। जिस व्यक्ति के पुण्य कर्मों की कीर्ति का शब्द जहां तक स्वर्ग और भूमि को स्पर्श करता है, वही तक वह पुरुष भी है। इस महामोह रूप कडाहे को काल समस्त प्राणियों को मास और ऋतु रूप करछे से उलट-पलटकर सूर्य रूप अग्नि और रात दिन रूप ईन्धन के द्वारा पका रहे हैं यही वार्ता है। ४०) यक्ष बोला तुमने मेरे सब प्रश्नों का उत्तर ठीक ठीक दिये

अब मैं तुम्हें अन्तिम प्रश्न कर रहा हूं। इस संसार में सबसे बडा आश्चर्य क्या है? युधिष्ठिर ने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि उसके भाइयों की भी कभी मृत्यु हो सकती है। अपनी मृत्यु के विषय में तो उन्होंने कभी कुछ सोचा ही नहीं। क्या धृतराष्ट्र ने कभी सोचा है कि जिस राज्य के लिये वह ये सारे षडयन्त्र कर रहा है वे यही रह जायेंगे और उसे संसार छोडकर जाना पडेगा। युधिष्ठिर बोले संसार में प्रत्येक जीव को मरते देख कर भी व्यक्ति इस भ्रम में जीता है कि उसकी मृत्यु तो कभी होगी ही नहीं इससे बडा आश्चर्य और क्या हो सकता है? रोज रोज प्राणी यमराज के घर जा रहे हैं फिर भी प्राणी सर्वदा जीने की इच्छा करता है। हर व्यक्ति यह जानता है कि मृत्यु ही जीवन का अन्तिम सत्य है फिर भी वह यह नहीं सोचता है कदाचित उसके जीवन का अन्तिम सत्य मृत्यु नहीं है। ४१) यक्ष ने पूछा समाज की रक्षा कौन करता है? युधिष्ठिर बोला राज्य की रक्षा राजा करता है परन्तु राष्ट्र और समाज की रक्षा ब्राह्मण करता है।

यक्ष बोला राजन तुमने मेरे सारे प्रश्नों के ठीक उत्तर दिये मैं तुमसे प्रसन्न हूं इसलिये अपने भाइयों में से जिस किसी एक को चाहो मांग लो वो ही जीवित हो जायेगा तुम अपनी इच्छानुसार जल पी सकते हो। युधिष्ठिर बोले यक्ष यह जो श्याम वर्ण, अरुण नयन, सुविशाल शाल वृक्ष के समान ऊँचा और चौडी छाती वाला महाबाहु माद्री नन्दन नकुल है, मैं चाहूंगा वो जीवित हो जाये। यक्ष बोला हे कुन्तीनन्दन भीम और अर्जुन तुम्हारे सहोदर भाई है। अपने अन्य भाइयों को छोडकर तुमने नकुल के ही जीवित होने की कामना क्यों की? राजन जिसमें दस हजार हाथियों के समान बल है, उस भीम को छोडकर तुम नकुल को ही क्यों जीवित देखना चाहते हो? जिसके बाहुबल का सभी पांडवों का पूरा भरोसा है उस अर्जुन को छोडकर तुम्हे सिर्फ नकुल के जीने की इच्छा ही क्यों हुई? युधिष्ठिर बोले धर्म का नाश होने पर धर्म कर्ता को भी नष्ट कर देता है और यदि उसकी रक्षा की जाये तो वही कर्ता की रक्षा भी कर लेता है। इसी से मैं धर्म का त्याग नहीं कर सकता जिससे कि नष्ट होकर धर्म ही मेरा नाश कर दे। सबके प्रति समान भाव रखना परम धर्म है। मेरी दो मातायें है कुन्ती और माद्री। कुन्ती का एक पुत्र मैं जीवित हूं। यदि मैं कुन्ती के ही दूसरे पुत्र को जीवित करने का आग्रह करूंगा तो माता माद्री के प्रति न्याय नहीं होगा अत: नीति और धर्मानुसार नकुल को ही जीवन दान मिले। मेरे लिये जैसे कुन्ती है वैसे ही माता माद्री है। उन दोनों में मेरे लिये कोई अन्तर नहीं है। माता कुन्ती के तीन पुत्रों में से मैं एक जीवित हूं इसलिये मैं माता माद्री के भी एक पुत्र को जीवित देखना चाहता हूं ताकि माता माद्री कभी ये न सोचे कि मैंने उनके साथ न्याय नहीं किया। यक्ष बोला यदि मैं यह कहूँ कि तुम्हारे दो भाई जीवित हो सकते हैं तो तुम दूसरा किसे जीवित देखना चाहते हो। युधिष्ठिर बोले तब मैं सहदेव का नाम लेता हूँ क्योंकि वो भीम और अर्जुन दोनों से छोटा है। यक्ष बोला युधिष्ठिर तुम्हारे इस वाक्य ने मुझे अति प्रसन्न किया। हे भरत श्रेष्ठ तुम भरत वंश के गौरव हो। तुमने अर्थ और काम से अधिक दया और समता का आदर किया। तुमने सिद्ध कर दिया कि तुम्हे शास्त्र का ज्ञान ही नहीं तुम उस पर आचरण भी कर रहे हो। इसलिये तुम्हारे सभी भाई जीवित हो जायेंगे। तब यक्ष के कहते ही सब पांडव उठकर खडे हो गये तथा एक ही क्षण में उनकी सब भूख प्यास जाती रही। सब मानो नींद से उठकर जगे हो।

युधिष्ठिर बडी देर तक सोच कर बोले भगवन आप यक्ष तो नहीं है क्योंकि यक्ष जीवन दान नहीं दे सकता। आप तो कोई देव श्रेष्ठ ही हो सकते है कृपया अपना परिचय दीजिये। आप वसुओं, रुद्रो, मरूतों में से तो कोई नहीं है अथवा स्वयं देवराज इन्द्र है। आप हमारे कोई सुहृद या हमारे पिताश्री कौन हैं आप? तब यक्ष ने आशीर्वाद दिया और धर्म के रूप में प्रकट होकर बोले हे कुन्ती पुत्र मैं यह देखकर अति प्रसन्न हुआ कि शम, दम, उपरति, तितिक्षा और समाधान इन पांचो

साधनों पर तुम्हारी प्रीति है। मैं धर्म हूं और तुम्हे देखने के लिये यहां आया हूं। भूख, प्यास, शोक, मोह और जरा, मृत्यु को तुमने जीत लिया है तुम्हारा मंगल हो। तुम में यश, सत्य, शौच, मृदुता, लज्जा, अचंचलता, दान, तप और ब्रह्मचर्य ये सब मेरे शरीर हैं तथा अहिंसा, समता, शान्ति, अमत्सर ये मेरे मार्ग हैं। मैं धर्म हूं तुम्हारा व्यवहार जानने की इच्छा से यहां आया हूं। हे राजन तुम्हारी सम दृष्टि के कारण मैं तुम पर प्रसन्न हूं, तुम कोई अभिष्ट वर मांग लो। जो मेरे भक्त है उनका कभी नाश नहीं होता। युधिष्ठिर बोले हमें वन में रहते १२ वर्ष व्यतीत हो गये। अब तेरहवां वर्ष आ गया है इसमें कोई हमें पहिचान नहीं पाये। यह सुनकर धर्म बोले तुम पृथ्वी पर ही विचरोगे तथा तुम में से जो जो जैसा चाहेगा वैसा ही रूप धारण कर लेगा। युधिष्ठिर तुम मेरे पुत्र हो और विदुर भी मेरे ही अंश से है अत: तुम दोनों मेरी दृष्टि में समान हो। युधिष्ठिर बोले भगवन आप सनातन देवाधि देव हैं। आज साक्षात आपके दर्शन हुये इसलिये अब मेरे लिये क्या दुर्लभ है? मैं चाहता हूं कि मैं, लोभ मोह और क्रोध को जीत सकूं तथा दान, तप, और सत्य में सर्वदा मेरा मन प्रवृत रहे। धर्म बोले हे पांडुनन्दन इन गुणों से तो तुम स्वभाव से ही सम्पन्न हो और यह कहकर भगवान धर्म अन्तर्धान हो गये और सब पांडव साथ साथ अपने आश्रम में लौट आये। लौट कर उन्होंने उस तपस्वी ब्राह्मण को उसकी अरणी लौटा दी। जो लोग इस आख्यान को सुनेंगे उनके मन में अधर्म की प्रवृति नहीं होगी, दूसरों का धन हरण करने में, पर स्त्री गमन में अथवा कृपणता में प्रवृत नहीं होंगे। सदाचार तुम्हें तुम्हारे अहंकार से मुक्त कर सकेगा।

# वन पर्व समाप्त

**जैसे बीते काल, बिता देना ही होगा, जो कुछ देगा दैव, हमे लेना ही होगा।**
**दु:ख, शोक जब जो आ पड़े, सो धैर्यपूर्वक सब सहो, होगी सफलता क्यों नहीं कर्त्तव्य-पथ पर दृढ़ रहो।।**

**महाभारत समाज शास्त्र है। आज समाज में ऐसा कोई घर नहीं, जहां महाभारत न हो;**
**दु:शासन और दुर्योधन न हो। दुर्योधन अधर्म और युधिष्ठिर धर्म का स्वरूप है।**

**लोभी व्यक्ति सारा संसार प्राप्त कर लेनेपर भी भूखा ही रहता है।**

**झूठ में आकर्षण हो सकता है पर सत्य जैसी स्थिरता नहीं।**

**दु:ख आयेंगे और चले जायेंगे लेकिन मर्यादा तथा धर्म के साथ गौरव और कीर्ति अमिट रहेंगे।**

**धन जब धर्म विरुद्ध होता है तभी वह कलह का कारण बनता है।**

**रिश्ते बनाने में जिन्दगी बीत जाती है टूटने में एक पल भी नहीं लगता।**

**मरने से पहले ऐसा कुछ लिख जाओ जिसे पढ़ा जाय या फिर ऐसा कुछ कर जाओ जिस पर कुछ लिखा जाय।**

**जीवन का सुख दूसरों को सुखी करने में है, उनको लूटने में नहीं।**

**सुबह कोहरा हो तो जरूरी नहीं कि दिन भर भी बादल ही रहेंगे।**

# विराट पर्व


१) शकुनि गांधारी सम्वाद १८४

२) सपने में धृतराष्ट्र को अपने पूर्वजों से कडी फटकार १८७

३) पांडवों का अज्ञातवास १९१

४) धौम्यका युधिष्ठिरको राजाके यहाँ रहनेका ढंग बताना १९२

५) पाण्डवोंका अज्ञातवास के लिये विराट नगर को प्रस्थान १९४

६) पाण्डवों का मत्स्यदेश में जाना, शमी वृक्षपर अस्त्र रखना १९६

७) पांडव मत्स्य प्रदेश में राजा विराट के महल में १९७

८) सहदेव, अर्जुन और नकुलका विराट के भवन में प्रवेश २०१

९) सैरन्ध्री महारानी सुदेष्णा के अन्त:पुर में २०३

१०) सैरन्ध्री अन्त:पुर में उत्तरा के नृत्य कक्ष में बृहन्नला के पास २०६

११) द्रौपदी पर कीचक की मदान्ध आसक्ति २०९

१२) कीचक के द्वारा द्रौपदी का अपमान २१०

१३) महारानी सुदेष्णा और द्रौपदी (सैरन्ध्री का सम्वाद) २१६

१४) दु:खी द्रौपदी का भीम के पास

प्रलाप और कीचक वध की योजना २१८

१५) कीचक वध २२६

१६) शकुनि पुत्र उल्लूक का गान्धार से हस्तिनापुर में आना २३२

१७) दुर्योधन की पांडवों का अज्ञातवास

भंग करने के विषय में मन्त्रणा व प्रयास २३३

१८) विराट और त्रिगर्त नरेश सुशर्मा का

युद्ध तथा सुशर्माका पराभव २४१

१९) पाण्डवों का अज्ञातवास पूर्ण होना व कौरवों का

राजा विराट का गौ-हरण और पाण्डवोंद्वारा उनकी पराजय २४६

२०) अज्ञातवास पूर्ण कर पाण्डवोंका विराट नगर में

अपने वास्तविक स्वरूप की पहचान २६८

२१) अभिमन्यु के साथ उत्तराका विवाह २७८

# विराट पर्व

**१) शकुनि गांधारी सम्वाद-** एक बार गांधारी ने अपने भाई स्वयं शकुनि को आग्रहपूर्वक अपने प्रासाद में निमंत्रित कर, शकुनि का ऐसा स्वागत सत्कार किया था, जैसा राजप्रासादों में भी बहुत आत्मीय और सम्माननीय अतिथियों का, अत्यंत असाधारण अवसरों पर ही किया जाता है। शकुनि से भोजन करने का अनुरोधपूर्वक आग्रह किया था। शकुनि की समझ में नहीं आ रहा था कि आज गांधारी के मन में क्या था। किस प्रेरणा से आज उसके प्रासाद में, शकुनि का यह सम्मान सत्कार हो रहा था। गांधारी का व्यवहार सहज तो था; किंतु सामान्य नहीं था। शकुनि उसका सगा भाई था। उन्होंने सारा शैशव एक साथ व्यतीत किया था। उनका वंश एक था, उनका लक्ष्य एक था।

शकुनि ने भोजन समाप्त किया वह सोच ही रहा था कि क्या अब उसे, गांधारी से सहज भाव से विदा माँग चुपचाप चला जाना चाहिए? गांधारी बोली- भ्राताश्री तुमसे एक बात कहनी है। दुर्योधन मेरा पुत्र है। वह महाराज धृतराष्ट्र का ही पुत्र नहीं है। वह मेरा भी पुत्र है; और उससे मैं उतना ही प्रेम करती हूँ, जितना कोई भी माँ अपने पुत्र से कर सकती है। उसे अपना जीवनाश्व, विनाश के मार्ग पर सरपट दौड़ाए लिए जाने की अनुमति नहीं दे सकती। मैंने उसे समझाने का बहुत प्रयत्न किया किंतु पता चला कि जब तक तुम उसे समझा रहे हो, तब तक वह किसी और के समझाने से कुछ नहीं समझेगा।

क्या शकुनि नहीं जानता कि दुर्योधन गांधारी का पुत्र है? वह इस प्रकार बता रही है जैसे शकुनि अनभिज्ञ है। गांधारी की आँखों में तनिक भी मधुर भाव नहीं था। शकुनि कुछ नहीं बोला। गांधारी क्या समझाना चाहती है उसे? गांधारी बोली- वह आत्म-विकास और आत्म-विनाश का अंतर पहचाने। वह विनाश के मार्ग पर आगे न बढ़े।

शकुनि बोला- तो इसमें समझाने को क्या रखा है? वह अपने शत्रुओं को उनकी धन संपत्ति, सेना सत्ता सबसे वंचित कर चुका है। बहुत संभव है, कि निकट भविष्य में वह उनका वध करने में भी सफल हो जाए। विनाश तो शत्रुओं का होगा गांधारी और शत्रुओं का संहार ही अपना उत्थान होता है। इसमें तुम्हें दुर्योधन का विनाश कहाँ से दिखाई पड़ रहा है?

गांधारी ने कहा- मैं तुमसे तर्क करना नहीं चाहती। केवल इतना कहना चाहती हूँ कि तुम दुर्योधन को उपलब्धियों की मृगतृष्णा में उलझाकर मृत्यु की ओर मत धकेलो। विकास के छद्म मार्ग से उसे विनाश के मार्ग पर मत ले जाओ।

शकुनि का स्वर कुछ कठोर हो गया। क्यों? उपलब्धियों में क्या दोष है? दुर्योधन के पास आज जो कुछ भी है वह सब मेरे ही कारण है। यदि मैंने उसे अपने अधिकार के लिए लड़ना सिखाया, तो क्या अनुचित किया? शत्रुओं का सर्वस्व हरण करने में यदि मैंने उसकी सहायता की, तो उसका क्या अहित किया? यदि मैंने उसे एक शक्तिशाली सम्राट के रूप में हस्तिनापुर के सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया, तो क्या मैंने उसका अकल्याण किया?

गांधारी बोली- नहीं। इनसे विरोध नहीं है मेरा। किंतु तुमने उसके मन में ईर्ष्या की अग्नि जलाई, तुमने उसे धर्म के मार्ग से विरत किया, तुमने उसे नारी का अपमान करना सिखाया। ये सारे मार्ग विनाश के द्वार तक ही जाते हैं। तुमने उसकी हीनतर वृत्तियों को प्रोत्साहित किया। उसे पशु बनाया। उसे उदात्ततर जीवन जीना नहीं सिखाया, वरन् उससे उसे पूर्णत: विरत कर दिया।

शकुनि सुनकर स्तब्ध रह गया। शकुनि बोला-तो तुम मुझसे और क्या अपेक्षा करती हो? मैं कोई ऋषि नहीं हूँ। व्यास नहीं हूँ मैं। मैं शकुनि हूँ। शकुनि कूटनीतिज्ञ है। कूटनीति सांसारिकता ही सिखाती है। अपने भान्जे को त्याग नहीं सिखा सकता मैं। कायरों के समान, अपना अधिकार शत्रुओं को सौंप, पलायन की शिक्षा नहीं दे सकता, मैं उसे। द्यूत में

पांचाली को दाँव पर लगाने का प्रस्ताव अवश्य रखा था मैंने; किंतु उसका अपमान करने जैसी कोई बात नहीं कही थी। उसे वेश्या कहनेवाला वह धर्मात्मा कर्ण था, और पांचाली को निर्वस्त्र करने का आदेश देने का महाकार्य भी उसी ने किया था। उसे बुला कर समझा चुकी क्या?

गांधारी ने उसकी बात का उत्तर नहीं दिया। गान्धारी बोली- मुझे लगता है भ्राताश्री तुम्हारा सान्निध्य मेरे पुत्रों के लिए हितकर नहीं है। तुम उन्हें इतना महत्त्वाकांक्षी बना रहे हो कि वे धर्म-अधर्म को ही नहीं भूले, अपनी सुरक्षा-असुरक्षा को भी भूल गए हैं। तुमने उन्हें एक अंतहीन, अंधी, भयंकर और वेगवती दौड़ में जोत दिया है, जो उनके वश की नहीं है। तुम देख रहे हो कि वे हाँफ रहे हैं, उनकी क्षमताएँ क्षीण हो चुकी हैं। तुम जानते हो कि वे अधिक नहीं दौड़ पाएँगे; फिर भी तुम उन्हें दौड़ाते जा रहे हो। तुम चाहते हो कि वे दौड़ते-दौड़ते गिर पड़ें? हाँफते-हाँफते अपने प्राण दे दें? शकुनि ने कुछ इस दृष्टि से गांधारी को देखा, जैसे उसे संदेह हो रहा हो कि सामने बैठी यह स्त्री उसकी अपनी बहन ही थी, अथवा गांधारी के वेश में वहाँ कोई और आ बैठा था। और बोला सहसा उसका आक्रोश जागा, जहाँ तक मैं समझता हूँ महारानी। मैं अपने लक्ष्य से कणभर भी विचलित नहीं हुआ हूँ।

गांधारी मौन रही। उसकी आँखों पर पट्टी बँधी थी। शकुनि उसके आँखों के भाव नहीं देख सकता था; किंतु इतना तो वह समझ ही सकता था कि गांधारी का यह मौन, उसके लिए शुभ नहीं था।

अंतत: गांधारी की आँखों में बंद भाव उसके चेहरे पर प्रकट हुआ। उसका चेहरा क्रोध से तमतमा गया था। उसके शब्द अत्यंत कठोर थे और गांधारी बोली- तुम्हें मैं भली प्रकार जानती हूँ भ्राताश्री। तुम्हारी ही बहन हूँ। किंतु अब हस्तिनापुर की महारानी के रूप में तुम्हें आदेश देती हूँ। दुर्योधन को कामनाओं की सूली पर मत चढ़ाओ; अन्यथा हस्तिनापुर में तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं होगा। जाओ। विवाद अथवा प्रतिवाद की अनुमति नहीं है तुम्हें। जाओ। स्वयं को संयत रखने के लिए शकुनि को बहुत प्रयत्न करना पड़ा। गांधार में वह युवराज था। वह बड़ा भाई था, गांधारी उसकी छोटी बहन थी। उसकी आँखों में सीधे देखकर बात करने का साहस भी नहीं कर सकती थी वह। और आज वह उसे आदेश दे रही थी। हस्तिनापुर से निष्कासन की धमकी दे रही थी। किंतु क्या कर सकता था शकुनि। सत्य यही था कि हस्तिनापुर में शकुनि कुरुओं का आश्रित था; और गांधारी हस्तिनापुर की महारानी थी। उसके आदेश से शकुनि हस्तिनापुर से निष्कासित भी हो सकता था, बंदी भी हो सकता था; और बधिकों को समर्पित भी किया जा सकता था। शकुनि बिना एक भी शब्द कहे, उठ खड़ा हुआ।

शकुनि अपने भवन में चला गया। आज तक वह यही समझता रहा कि इस पराए राज्य में कोई और उसके साथ हो या न हो, उसकी बहन उसके साथ थी। वे दोनों बहन और भाई एक ही लक्ष्य के लिए, संकल्पबद्ध होकर कार्य कर रहे थे। उनका जीवन समान ध्येय को समर्पित था। उनमें कहीं कोई मतभेद नहीं था। किंतु आज पता लगा था कि वह सब तो शकुनि का भ्रम ही था...

वर्षों पहले, जब उसकी युवावस्था अपनी आँखे खोल ही रही थी, इसी हस्तिनापुर के एक दूत के संदेश ने, गांधार के राजप्रासाद तथा राजवंश को हिला कर रख दिया था। कुरुकुल का भीष्म अपने नेत्रहीन भ्रातृपुत्र धृतराष्ट्र के लिए गांधार राजकुमारी का दान माँग रहा था। गांधार नरेश सुबल इतने शक्तिशाली नहीं थे।तब गांधारों ने ऐसे अवसरों के लिए, अपना परंपरागत मार्ग अपनाया था- धीरता का और धूर्तता का। शकुनि ने अपने जीवन के सारे स्वप्नों को छिन्न-भिन्न कर दिया था और कुरुओं द्वारा किए गए गांधारों के इस अपमान के प्रतिशोध को अपने जीवन का एक मात्र लक्ष्य मान, वह अपनी बहन के साथ हस्तिनापुर चला आया था। उसे यहीं रहना था। इन्हीं लोगों के मध्य। उनका अपना बनकर। उसे

उनकी महत्त्वाकांक्षाओं को जगाना था, उकसाना था। महत्त्वपूर्ण आकांक्षाओं को नहीं, अपने व्यक्तिगत महत्त्व की आकांक्षाओं को जगाना था। कितना सुविधापूर्ण था नेत्रहीन धृतराष्ट्र को समझाना कि राज्य तो वस्तुत: उसी का था किंतु उसे उससे वंचित कर दिया गया था; इसलिए उसे किसी भी प्रकार इसे प्राप्त करके ही दम लेना चाहिए। वह तो गांधारी को ही स्मरण कराता रहता था। और फिर यह भी लगा कि धृतराष्ट्र को कुछ सिखाने पढ़ाने की आवश्यकता ही नहीं थी। उसके अपने ही भीतर इतना लोभ, मोह और स्वार्थ भरा हुआ था कि पूरे कुरुकुल को नष्ट करने के लिए, वह अकेला ही पर्याप्त था। वह तो कहो कि भीष्म और विदुर उसके मन में जलनेवाली ज्वाला पर शीतल जल के छींटे डालते रहते थे, अन्यथा वह अग्नि कब की, भरत वंश को जलाकर राख कर चुकी होती। शकुनि और गांधारी को इतना ही करना था कि वे धृतराष्ट्र को भीष्म और विदुर के धर्म से प्रभावित न होने देते।

शकुनि सोच रहा है कि उसका और गांधारी का मार्ग कब से पृथक् हो गया; और उसे उसका आभास भी नहीं हुआ। यह आभास तो आज ही हुआ, जब गांधारी ने उसे अपने कक्ष में बुलाकर कहा, दुर्योधन मेरा पुत्र है भ्राताश्री। आज धृतराष्ट्र गांधारी का मनभावन पति था। तो शकुनि ही मूर्ख था, जिसने अपना राज्य, राजधानी, कुल परिवार त्याग कर अपना सारा जीवन अपने कुल और अपनी बहन के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए खपा डाला था। आज गांधारी उसी वंश की रक्षा के लिए, अपने भ्राताश्री को डाँट रही थी, जिसे नष्ट करने के लिए वे दोनों यहाँ आए थे।

शकुनि यह क्यों नहीं समझ सका कि भाई बहन का एक परिवार तभी तक होता है, जब तक अपनी संतान नहीं हो जाती। वह तो आज तक यही मानता रहा कि उसका और गांधारी का एक ही परिवार है। उसने क्यों नहीं जाना कि इन संबंधों की प्रकृति बड़ी विचित्र है। मनुष्य की ममता अपने दाएँ-बाएँ खड़े बहन-भाइयों से तब तक ही होती है, जब तक उसको अपने सम्मुख खड़ी अपनी संतान दिखाई नहीं पड़ती। एक बार संतान हो जाए, तो बहन भाई साधन और माध्यम हो सकते हैं, ममता के पात्र नहीं रहते।

यदि गांधारी ने धृतराष्ट्र को अपना पति, कुरुकुल को अपना श्वसुर कुल तथा धृतराष्ट्र के पुत्रों को अपने पुत्र स्वीकार कर लिया था, तो उसने उसी दिन शकुनि से क्यों नहीं कह दिया, भ्राताश्री तुम अब अपने परिवार और राज्य में लौट जाओ। जब मैंने इन परिस्थितियों को स्वीकार कर ही लिया है, तो तुम भी उन्हें स्वीकार कर लो।

आज जैसे शकुनि की आँखें खुल रहीं थी। क्यों कहती गांधारी यह सब उससे। अब वह कुरुकुल के विनाश की नहीं, धार्तराष्ट्रों के विकास की इच्छुक थी। वह अपने पति को भी राजा बनाना चाहती थी और अपने पुत्र को भी। शकुनि ही मूर्ख था कि वह समझ नहीं सका कि वह कैसे अपने शत्रुओं के लिए उपयोगी हो गया था आज गांधारी उसकी भर्त्सना कर रही है कि वह दुर्योधन को अधर्म के मार्ग पर ले जा रहा है। अधर्म का मार्ग विनाश का मार्ग है; तो उस दिन क्यों नहीं बोली, जब पांडवों को वारणावत भेजा गया था; उस दिन क्यों नहीं बोली, जब पांडवों को खांडव वन दिया गया था; उस दिन क्यों नहीं बोली, जब युधिष्ठिर को द्यूत के लिए हस्तिनापुर आने का आदेश दिया गया था?

क्यों बोलती तब? तब तो उसके पति और पुत्रों का अभ्युत्थान हो रहा था... अब, जब पांडवों का सर्वस्व हरण कर लिया गया था; दुर्योधन सारे वैभव का स्वामी हो चुका था; और उसकी स्थिति एक शक्तिशाली सम्राट की सी हो गई थी... अब यदि शकुनि को बीच से, दूध की मक्खी के समान निकालकर फेंक दिया जाए, तो दुर्योधन का क्या बिगडेगा? अब गांधारी को अपने पुत्रों की सुरक्षा का ध्यान आ रहा था। अब उनके लिए शकुनि का सान्निध्य हानिकारक हो गया था।

क्या गांधारी सचमुच इतनी चतुर राजनीतिज्ञ थी कि उसने शकुनि और अपने पुत्रों को तब तक तनिक भी नहीं टोका था, जब

तक शकुनि उन्हें उन्नति के मार्ग पर ले चल रहा था; और अब वह समझ गई थी कि आरोह का समय समाप्त हो चुका था और अवरोह का क्षण आ गया था, इसलिए शकुनि को बीच में से हटा दिया जाना चाहिए? क्या वह जान गई थी कि उसके पुत्रों को अब शकुनि के माध्यम से कोई उपलब्धि नहीं होनेवाली। अब शकुनि उन्हें उस मार्ग पर ले चलेगा, जिस पर चलने की तैयारी में, उसने अपना सारा जीवन हस्तिनापुर में व्यतीत किया था? तो शकुनि अब धार्तराष्ट्रों के लिए अनावश्यक हो गया था? दुर्योधन, पांडवों से कुछ और छीनना चाहे, तो पांडवों के पास अब और है ही क्या? तो गांधारी ने ठीक ही पहचाना था कि पांडव अब और वंचित नहीं हो सकते थे। ऐसे में अब हस्तिनापुर में शकुनि की क्या आवश्यकता थी।

शकुनि ने अपने मस्तक को एक झटका दिया। वह स्वयं को इस प्रकार प्रवंचित नहीं होने देगा। हस्तिनापुर में वह असहाय अवश्य है, किंतु इतना असहाय भी नहीं है कि अपना सारा यौवन नष्ट कर, मस्तक लटकाए चुपचाप गांधार लौट जाए। गांधारी समझती है कि अब शकुनि की आवश्यकता नहीं है; किंतु दुर्योधन तो अभी ऐसा नहीं सोचता। इससे पहले कि दुर्योधन भी कुछ ऐसा ही सोचने लगे, शकुनि को कुछ करना होगा। क्या कर सकता है, शकुनि? दुर्योधन के सम्मुख अब वह कौनसा ऐसा प्रलोभन रख सकता है, जिससे शकुनि दुर्योधन के लिए परम आवश्यक बना रहे? और यदि शकुनि दुर्योधन के लिए आवश्यक बना रहेगा, तो उस पर गांधारी का आदेश नहीं चल सकता। शायद गांधारी यह नहीं जानती है कि हस्तिनापुर में आज्ञा ही नहीं, इच्छा भी दुर्योधन की ही चलती है। राजा चाहे कोई भी हो, और महारानी चाहे गांधारी ही क्यों न हो।

और शकुनि के मन में एक योजना आकार ग्रहण करने लगी... लोभ का अस्तित्व बाहर किसी भौतिक पदार्थ में होता है, अथवा मनुष्य के अपने मन में? मनुष्य का अहंकार अपनी उपलब्धियों से अधिक तृप्त होता है, अथवा अपने शत्रुओं की वंचना से? दुर्योधन के लिए अपना वैभव अधिक सुखद है अथवा युधिष्ठिर की अकिंचनता? शत्रु को अभावों के कष्ट में तड़पते देखने में जो सुख है, वह अपनी बड़ी से बड़ी उपलब्धि में भी नहीं है। ठीक है कि शकुनि अब दुर्योधन को और कुछ भी उपलब्ध नहीं करवा सकता; किंतु वह उसे पांडवों की पीड़ा का सुख तो प्राप्त करवा ही सकता है।

शकुनि मन ही मन मुस्कराया। गांधारी कुरुओं की रक्षा करना चाहती है। उन कुरुओं की, जिन्होंने गांधारों का अपमान किया था। उस अपमान के प्रतिशोध का अवसर पाने के लिए शकुनि ने जीवन भर उनकी सेवा की। अब, जब वह अवसर इतना निकट है, उसके सामने खड़ा है, तो गांधारी चाहती है कि वह चुपचाप गांधार लौट जाए। वह भूल गई है कि वह गांधारी है, गांधार राजकन्या। शायद अपने आपको कौरवी समझने लगी है।

शकुनि की आँखों में एक कठोर भाव जन्मा। यदि उसकी अपनी बहन गांधारी से कौरवी हो गई है, तो उसे भी शकुनि की क्रोधाग्नि में जलना होगा। शकुनि के लिए तो बस एक ही काम शेष रह गया है। शकुनि की इच्छा हुई कि वह जोर का एक अट्टहास करे। इतने जोर का कि वह गांधारी के कानों में ही नहीं, उसके मन में भी देर तक गूँजता रहे।

**२) सपने में धृतराष्ट्र को अपने पूर्वजों से कडी फटकार -** धृतराष्ट्र अपने राजभवन में अकेला बैठे-बैठे सोच रहा था कि इतने में ही धृतराष्ट्र के मन में कौरव पूर्वज महाराज भरत ने दर्शन दिया। महाराज भरत धृतराष्ट्र से बोले शकुन्तला पुत्र भरत हस्तिनापुर नरेश धृतराष्ट्र से न्याय मांगने आया है। धृतराष्ट्र बोले बैठिये और स्वयं सिंहासन पर से उठा। भरत बोला बैठिये पुत्र। तुम वर्तमान हो और वर्तमान को केवल भविष्य के लिये उठना चाहिये। यदि तुम उसके लिये नही उठोगे तो वह तुम्हे स्वयं उठा देगा। मैं तो तुम्हारा अतीत हूं, जो वर्तमान के भविष्य के लिये स्थान रिक्त कर चुका है। मैं केवल तुम्हे यह बताने के लिये आया हूं पुत्र कि यह राज्य सभा तुम्हारी उच्चाकांक्षा का आमोद गृह नहीं है। यह

तुम्हारा तपोवन है। राजनीति तुम्हारी समस्या है। इसलिये सिंहासन पर आसीन रहो क्योंकि आज तुम्हारा एक पूर्वज तुम से न्याय मांगने आया है। धृतराष्ट्र बोला न्याय परन्तु मैं आपके साथ कैसे अन्याय कर सकता हूं? आप तो अतीत हैं और वर्तमान अपने अतीत के साथ न्याय या अन्याय कैसे कर सकता है? भरत बोले क्या तुम यह कहना चाहते हो कि वर्तमान होने के नाते उस अतीत के सामने उत्तरदायी नहीं। जब मनुष्य वर्तमान बनेगा तो अतीत बन चुका। तुम्हारे कहने का तात्पर्य यह कि वर्तमान भूत और भविष्य दोनों का उत्तरदायी नहीं और स्वयं आप ही अपना स्वामी है। यदि ऐसा है तो इसका अभिप्राय यह है कि तुम इसका अर्थ ही नहीं समझते। वर्तमान अतीत का उत्तराधिकारी होता है नरेश इसलिये मुझे तुमसे प्रश्न करने का अधिकार है। धृतराष्ट्र बोले है तातश्री। भरत ने कहा तातश्री नही वत्स। तुम राजा हो और मैं वादी। मेरा वाद सुनो और मुझे न्याय दो। आज तुम उस सिंहासन पर बैठे हो जिस पर कभी मैं बैठा करता था। महाराज मुझपर बहुत बडा अत्याचार हुआ है। धृतराष्ट्र बोले किसने किया है यह अत्याचार आप पर? भरत बोला स्वयं महाराज ने। धृतराष्ट्र ने कहा मैंने। भरत बोला हां महाराज। तुम कैसे राजा हो? उन जीवन मूल्यों की सुरक्षा करना तो दूर, तुम उनका अपमान कर रहे हो। घसीट रहे हो उन्हे अपनी उच्चाकांक्षाओं के दल दल मे। तुमने मेरा और मेरी इस धरोहर का अपमान किया है। तुम कैसे भूल गये धृतराष्ट्र कि स्वयं मैंने अपने पुत्रों को राजमुकुट के योग्य न पाकर भरद्वाज पुत्र मन्यु को राजा बना दिया और तुम अपने अयोग्य पुत्र को राजा बनाने के लिये अपने अनुज पांडु पुत्र युधिष्ठिर के साथ अन्याय कर रहे हो। ऐसा करते लाज भी आई तुम्हे? मरने को भी जी नहीं चाहता तुम्हारा? हस्तिनापुर नरेश मेरा उपालम्भ भी सुनो और यदि हो सके तो मेरे साथ न्याय करो। महाराज मेरे एक वंशज ने मुझे और मेरे सिंहासन को अपमानित किया है। अपनी धरोहर का वध किया है। उसने अपने पुत्र मोह में पडकर देशप्रेम और राजनीति की मर्यादा को भंग किया है। उसने अपने अनुज पांडु पुत्रों के साथ कपट किया है। अपनी ही भरी सभा में अपनी कुलवधू के वस्त्र हरण को अपने मौन के द्वारा सहमति दी है। हे हस्तिनापुर नरेश न्याय के उत्तराधिकारी, हे धर्म ध्वज रक्षक, मेरे उस उत्तराधिकारी ने मेरे वंश को कलंकित किया है। उसे कडा से कडा दंड देकर मेरे साथ न्याय कीजिये महाराज। धृतराष्ट्र बोला किन्तु मैं अपने पुत्र दुर्योधन को अयोग्य नहीं मानता। मैं स्वर्गीय महाराज विचित्रवीर्य का ज्येष्ठ पुत्र हूं और दुर्योधन मेरा ज्येष्ठ पुत्र है। इस नाते यदि वो योग्य है तो मेरे पश्चात इस सिंहासन पर पहिला अधिकार उसका है और वर्तमान अतीत की परिभाषायें सुनकर उनके आधार पर कोई निर्णय नहीं ले सकता। आप के युग में योग्यता की परिभाषा कुछ और रही होगी। मैं यह नहीं कहता कि आपने जो निर्णय लिया था वो ठीक नहीं था। वो तो आप जाने और आपका युग परन्तु ये मेरा युग है और मैंने जो निर्णय लिया है वो मेरे और मेरे युग के बीच में है। इसलिये मैं आपसे क्षमा चाहता हूं। मैं आपके सामने उत्तरदायी नहीं हूं और यदि हूं तो यह बतलाइये कि आप यह दुखडा, यह तलवार, यह कलम लेकर अपने वंशज शान्तनु के पास क्यों नहीं गये, जिन्होंने स्त्री मोह में पडकर अपने पुत्र देवव्रत के सभी अधिकार छीन कर अपने उस पुत्र को दे दिये थे जिसका जन्म भी निश्चित नहीं था। उसी समय भीष्म और शान्तनु की छाया भी सपने में आती है।

शान्तनु बोले झूठ मत बोलो धृतराष्ट्र। धृतराष्ट्र कल्पना में खो गया। शान्तनु बोले महाराज बनकर पूछो मेरे पुत्र से कि अभी-अभी तुमने मुझ पर आरोप लगाया है वो कितना निराधार है। मैं सत्यवती के वियोग में भले ही अपने प्राण त्याग देता परन्तु मैं अपने पुत्र और हस्तिनापुर के साथ इतना बडा अन्याय कभी नहीं करता। परन्तु तुमने तो जीती जागती मक्खी ही निगल ली है धृतराष्ट्र। इस अपराध के लिये भरतवंश और भारत वर्ष तुम्हें कभी क्षमा नहीं करेगा। तुम अपने पुत्र के साथ मेरे पुत्र की तुलना कर रहे हो। अपनी प्रतिज्ञा की डोरी मे बन्धे हुये इस श्वेत आत्मा को, महान यौद्धा के महान तपस्वी,

महान राजनीतिज्ञ को अपने निहित स्वार्थ के क्रीडागृह में गेंद की भांति उछाल रहे हो। तुमने उसकी विवशता को अपनी ढाल बना लिया है धृतराष्ट्र। तुम उस दिन क्या करोगे जिस दिन यह ढाल टूट जायेगी। तुम केवल नेत्रहीन हो पुत्र, बुद्धिहीन नहीं हो। तुम भली भांति जानते हो कि तुम क्या कर रहे हो? पर आज जो कुछ हस्तिनापुर में हो रहा है उसका उत्तरदायित्व केवल तुम पर है। मैं हस्तिनापुर और अपने पुत्र भीष्म के अपमान पर तुम्हें कभी क्षमा नही करूंगा। नहीं। धृतराष्ट्र बोला मैं क्या करूं? दुर्योधन मेरे ही व्यक्तित्व का परिक्षेपण है। धृतराष्ट्र का सपना टूटता है और अचानक जाग उठता है।

गान्धारी पास में बैठी थी। धृतराष्ट्र बोला गान्धारी वो पता नहीं सपना था या सत्य किन्तु जो कुछ भी था बहुत बडा भयानक था। वो कह रहे थे, वो मांग कर रहे थे, वो आदेश दे रहे थे कि तुम्हे दुर्योधन को किसी सडे हुये अंग की भांति काट कर फेंक देना चाहिये। गान्धारी बोली वे कौन। धृतराष्ट्र ने कहा वो मेरे पूर्वज। क्या वास्तव में मैंने अपने अनुज पुत्रों के साथ अन्याय किया है। मैंने उन्हे अपना आधा राज्य दे दिया। वे उस राज्य को द्यूत क्रीडा में हार गये तो मैं क्या करूं? जो राजा अपना राज्य अपने अनुज, अपनी रानी को द्यूत में हार जाये वो राजा बनने योग्य नहीं है। गान्धारी बोली वे हारे नहीं आर्यपुत्र। वे तो कपट द्वारा हराये गये थे। धृतराष्ट्र बोला मान लिया फिर भी अपनी सम्पत्ति, अपना मुकुट, अपने अनुज, अपनी रानी को स्वयं युधिष्ठिर ने ही तो दांव पर लगाया था। अब उस परिणाम का दंड मेरा दुर्योधन क्यों भुगते? गान्धारी बोली इस का दंड दुर्योधन इसलिये भुगतेगा आर्यपुत्र कि उसका संकल्प कुलीन और शुभ नहीं था। धृतराष्ट्र बोला तो क्या पांडु पुत्रों का कोई दोष नहीं था? गान्धारी बोली अवश्य था और अपने दोष का दंड वे भुगत रहे हैं आर्यपुत्र। यदि आप सचमुच दुर्योधन की रक्षा ही करना चाहते है तो प्रिय पांडवों को वापिस बुलवा लीजिये। उन्हे आशीर्वाद दीजिये और उन्हे कहिये कि वो इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान करें। धृतराष्ट्र बोला यह सम्भव नहीं है गान्धारी क्योंकि यदि मैंने ऐसा किया तो दुर्योधन कहेगा कि उनका अज्ञातवास टूट गया और उसके फल स्वरूप वे फिर से १२ वर्ष का बनवास ले। गान्धारी बोली आप राजा और पिता होने के नाते यह आदेश दे सकते हैं। धृतराष्ट्र बोला मैं नेत्रहीन धृतराष्ट्र उन्हे खोजने कहां जाऊं? किसे पता है कि अपने अज्ञातवास का यह वर्ष वे कहाँ और कैसे बिता रहे हैं?

विदुर और भीष्म पितामह आपस में बात कर रहे हैं। भीष्म बोला अज्ञातवास का वर्ष आरम्भ हो चुका है विदुर। यह वर्ष हस्तिनापुर के लिये बहुत महत्वपूर्ण है। मैं तो कभी यह सोच कर डर जाता हूँ कि यदि दुर्योधन के गुप्तचरों ने उन्हे पहिचान लिया तो क्या होगा? विदुर बोले न पहिचाना तो क्या होगा? भीष्म बोले तब क्या होना है? लौटकर आयेंगे और धृतराष्ट्र से आशीर्वाद लेकर इन्द्रप्रस्थ चले जायेंगे। विदुर बोले क्या आपको विश्वास है कि उनके लौट आने के पश्चात दुर्योधन उन्हे उनका इन्द्रप्रस्थ दे देगा? भीष्म बोले क्यों नही देगा? वो तो उसे देना ही पडेगा। विदुर बोले यदि ऐसा है तातश्री तो फिर मैंने दुर्योधन को ठीक से समझा ही नहीं। यदि ऐसा होनेवाला होता तो फिर द्यूतक्रीडा की आवश्यकता ही क्या थी? द्रौपदी वस्त्राहरण क्यों होता? और अज्ञातवास की भी क्यों ठहरती? बोलिये तातश्री। भीष्म बोला दुर्योधन ऐसा तो नहीं कर सकता विदुर। विदुर बोले आप अपने मन को बहलाने का प्रयत्न कर रहे हैं तातश्री। यह आप भली प्रकार जानते हैं कि दुर्योधन क्या कर सकता है? दुर्योधन तो वो अन्धकार है तातश्री और यदि उस अन्धकार में प्रकाश का अंकुर फूटने भी लगता है तो गान्धार नरेश शकुनि उस अंकूर पर अपना अन्धेरा उंडेल देते हैं तातश्री। यदि आप चाहते हैं कि यह युद्ध न हो और आप दुर्योधन के पक्ष में युद्ध करने के अपमान से बचना चाहते हैं तो महादेव से प्रार्थना कीजिये कि पांडव अज्ञातवास में सफल ना हो। हां तातश्री। भीष्म बोले मैं यह भी नहीं चाहता कि मेरे प्रिय पांडवों को उनके अधिकारों से वंचित रह जाना पडे विदुर। मैं तो यही प्रार्थना कर सकता हूं कि दोनों सुखी रहे, एक हस्तिनापुर में और दूसरा इन्द्रप्रस्थ में। विदुर बोले

परन्तु आप यह असम्भव की प्रार्थना क्यों कर रहे हैं तातश्री? भीष्म बोले क्या तुम जानते हो या किसी ने कहा है? विदुर बोले वो अज्ञातवास में है। भीष्म ने कहा मुझे अपनी बातों के चक्र में फंसाने का प्रयत्न मत किया करो विदुर। लाक्षागृह की दुर्घटना के समय भी तुमने यही किया था और पांडवों का यह अज्ञातवास उसी का परिणाम है। यदि तुमने मुझे कर्ण, शकुनि और दुर्योधन के षडयन्त्र की सूचना दे दी होती तो महादेव की सौगन्ध वही युधिष्ठिर और उसके भाइयों के विरुद्ध षडयन्त्र करने पर महाराज से मैंने उन सबके लिये मृत्युदंड की मांग कर ली होती। महाराज का पुत्र मोह भी उन्हे बचाने में सफल नहीं हो पाता किन्तु आज मैं भी विवश हूं और तुम भी विवश हो। हम दोनों ही उन वृक्षों की भांति है जो चाह कर भी उस स्थान को नहीं छोड सकते जिस पर वे उगे हुये है। अपनी छाया पर भी हमें वश नहीं रह गया है। हम केवल सौदामिनी की प्रतीक्षा कर सकते हैं जो हम पर गिर कर हमें भस्म कर देवे। यह धृतराष्ट्र और शकुनि जैसों के युग में जन्म लेना हमारे लिये अभिशाप है विदुर अभिशाप। हस्तिनापुर की राजनीति का आधार केवल निहित स्वार्थ बनकर रह गया है जिसमें देश प्रेम के लिये कोई स्थान नहीं है विदुर। ये मेरे लिये तो दुर्भाग्य है विदुर किन्तु यह मेरे हस्तिनापुर के लिये भी दुर्भाग्य है। हस्तिनापुर मेरे सपनों का खंडहर बनकर रह गया विदुर। मेरी मातृ भूमि मृत्यु शैय्या पर पडी है विदुर, उसे बचाने का प्रयत्न करो और उसकी औषधि राजनीति नहीं देश प्रेम है विदुर। मैंने कभी यह नहीं सोचा था कि मेरा हस्तिनापुर एक दिन अपने ध्रातृराष्ट्रों, शकुनि और दुर्योधन के हाथों का खिलौना बनकर रह जायेगा। हे मातृभूमि अपने इस गंगापुत्र भीष्म को क्षमा कर दे। यह जो कुछ हो रहा है वो मैंने कभी सोचा भी नहीं था, चाहा भी नहीं था। जो कुछ हो रहा है उसे रोक पाना भी मेरे वश में नहीं है क्योंकि वर्षों पहिले मैंने तेरे ही हक में नीति ज्ञान की आंखों पर पट्टी बांध ली थी।

**देश प्रेम पर स्वार्थ ने विष का किया प्रयोग, भीष्म विदुर दोनो विवश हैं असाध्य यह रोग।**

क्या मातृभूमि से क्षमा मांग ले तो इस पश्चाताप से देश के विपरीत किये जानेवाले कर्म से व्यक्ति मुक्त हो सकता है? समय इस प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहता। इस प्रश्न का उत्तर दे गंगापुत्र भीष्म या स्वयं हस्तिनापुर किन्तु गंगापुत्र भीष्म के हृदय में यह फांस तो अवश्य खटक रही थी। यह बात और है कि किसी ने इस फांस को देखने का प्रयत्न ही नहीं किया। लेकिन ये फांस अकेले गंगापुत्र भीष्म के हृदय में ही नहीं खटक रही थी। ये फांस तो हर उस हृदय में खटक रही थी जो हस्तिनापुर का शुभ चिन्तक था परन्तु किसी न किसी कारण विवश होकर दुर्योधन के साथ था। इन्ही हृदयों में से एक हृदय गान्धारी का भी था। गान्धारी विदुर के घर कुन्ती से मिलने आयी हुई है।

गान्धारी बोली मैं तो दिन रात महादेव से यही वर मांगती हूं कुन्ती कि मेरे पांडव सुरक्षित लौट आये और इन्द्रप्रस्थ का राजमुकुट लेकर इन्द्रप्रस्थ चले जाये तो मैं चैन की सांस लूं। मैं तो उसका आभार मानती हूं जिस दिन मैंने अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली थी क्योंकि मैं इतनी लज्जित हूं कि मैं न तो हस्तिनापुर की ओर देख सकती हूं और न ही तुम्हारी ओर कुन्ती। कुन्ती बोली आप तो उस राजनीति की चौसर पर है ही नहीं दीदी तो फिर आप क्यों लज्जित है? गान्धारी बोली लज्जित क्यों न हूं? यदि तुम मुझे निर्दोष समझती तो फिर इन १२ वर्षों में एक बार भी अपनी दीदी को प्रणाम करने नहीं आती। कुन्ती बोली प्रणाम का परिणाम तो आशीर्वाद होता है दीदी तो फिर आप मुझे क्या आशीर्वाद देती? आपका हर आशीर्वाद दुर्योधन के निहित स्वार्थ के विरुद्ध जाता। मेरे लिये आपका हर आशीर्वाद उसके लिये श्राप हो सकता है दीदी। मैं भी उसकी मां ही हूं दीदी। महादेव साक्षी है मैंने कभी उसको अपने पुत्रों से कम स्नेह नहीं दिया है दीदी तो फिर मैं आपसे आशीर्वाद लेकर उसे शापित कैसे होने देती दीदी? माता का शाप तो उसके आशीर्वाद से कहीं अधिक शक्तिशाली होता है। मेरी तो यही प्रार्थना है कि भगवान हम दोनों माताओं की ममता की लाज रख ले।

उसी समय वहां पर विदुर पत्नी पारसंवी आती है। गान्धारी बोली तुम हमारे पास आकर क्यों नहीं बैठती? तुम भी तो हमारी भांति हस्तिनापुर और इन्द्रप्रस्थ की भागीदारनी हो। पारसंवी बोली तुला में दो ही पलडे होते हैं महारानी। गान्धारी बोली किन्तु तौलने के बाट तो तुम ही हो। यदि तुम नहीं होगी तो यह कैसे पता चलेगा कि कौनसा पलडा भारी है? पारसंवी बोली हस्तिनापुर में आज बाटों की मर्यादा भी भंग हो चुकी है महारानी। आज तो सभी निष्ठा और अनिष्ठा के दो राहों पर खडे हैं और ये निर्णय नहीं ले पा रहे है कि किधर जाना चाहिये? गान्धारी बोली यदि हस्तिनापुर तुम से यह प्रश्न करे तो तुम क्या उत्तर देती? पारसंवी बोली हस्तिनापुर अपनी नारियों को यह सम्मान नहीं देता महारानी। यदि ऐसा होता तो युधिष्ठिर द्रौपदी को दांव पर नहीं लगाता और ना ही दुर्योधन द्रौपदी वस्त्रहरण का घिनौना आदेश देता इसलिये आप निश्चिन्त रहिये। हस्तिनापुर यह प्रश्न न आपसे करेगा और न मुझसे। गान्धारी बोली तुम भी विदुर के ही भांति कडवे सत्य बोलने में निपुण लगती हो पारसंवी। यह तो बता सकती हो कि यदि तुम मेरे स्थान पर होती तो क्या करती? पारसंवी बोली वही करती जो आपने किया महारानी। मैं भी दुर्योधन से कहती वो आगे बढकर मेरा वस्त्र हरण करे। गान्धारी बोली तो क्या तुम उसे श्राप देती। कुन्ती बोली श्राप किसी समस्या का समाधान नहीं है दीदी। श्राप देने का अर्थ तो यह हुआ श्राप देनेवाले ने परिस्थितियों से हार मान ली है। आप हार ना मानिये दीदी। आप ही तो तुला हैं और आप ही उसके बाट भी। उस पलड़े को तौलने के क्रम को विस्तृत रखिये। जब तक दोनों पलडे समान न हो जाये और तब दुर्योधन का भविष्य दुर्योधन को और युधिष्ठिर का भविष्य युधिष्ठिर को। गान्धारी बोली किन्तु इसका भी तो कोई उपाय बताओ कुन्ती। मेरी अन्तरात्मा को तो दोनों का ही भविष्य ठीक दिखाई नहीं दे रहा कुन्ती।

धृतराष्ट्र अपने कक्ष में गान्धारी के साथ बैठे बातचीत कर रहा है। धृतराष्ट्र बोला क्या तुम यह समझती हो प्रिये कि ज्येष्ठ कुरु होने के नाते मैं अपना दायित्व नहीं समझता? किन्तु मैं क्या करूं? कोई वृक्ष अपने फल से तो नहीं लड सकता? मैं नाग फणि के पौधे पर चमेली के फूल तो नहीं उगा सकता। दुर्योधन नेत्रहीन उच्चाकांक्षा का परिणाम है। मेरे सपनों के धनुष से निकला हुआ बाण। वो मेरे मुख से निकला हुआ वाक्य है। मैं उसे नहीं लौटा सकता। इसलिये यही प्रार्थना करो प्रिये कि पांडव अपने अज्ञातवास में सफल न हो। गान्धारी बोली यह क्या कह रहे हैं आर्यपुत्र? धृतराष्ट्र बोला अपनी विवशता मान लेने से दायित्व का बोझ कुछ कम हो जाता है गान्धारी। जीना कुछ सहज हो जाता है।

**३) पांडवों का अज्ञातवास-** वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय पांचाली भी भाग कर वहीं उस सरोवर के पास आ जाती है। युधिष्ठिर ने पूछा क्या हुआ पांचाली? द्रौपदी बोली दुर्योधन के गुप्तचर हमें खोजते हुये यहां तक आ पहुंचे। अर्जुन बोला- चिन्ता मत करो पांचाली और अर्जुन ने अपना गांडीव चढाया और बाण छोड दिया चारों तरफ अन्धकार फैल गया। सत्य पराक्रमी पांडव अज्ञात रहने के लिये १३ वे वर्ष में गुप्त रूप से रहे। वे सब बडे नियम व्रतादि का पालन करते थे।

दुर्योधन अपने कक्ष में गुप्तचरों के साथ मन्त्रणा कर रहा है। दुर्योधन अपने प्रधान गुप्तचर शर्वनाग से बोला तुम हस्तिनापुर के बडे प्रसिद्ध गुप्तचर हो। जो इस बात का भी पता चला सकते हो कि सूर्य के कोष में कितनी धूप है और चन्द्रमा के कोष में कितनी चांदनी है? और तुम इतना पता नहीं लगा पाये कि चूहे पांडव किस बिल में जाकर छिपे हैं? यदि जीने से जी भर गया हो तो ऐसा कहो। नहीं तो जाओ और फिर इस वर्ष के समाप्त होने से पहिले आकर मुझे बताओ कि पांडव कहां है? और किस रूप में छिपे है? वे चाहे आकाश में हो चाहे पाताल में। मुझे उनके ठौर ठिकाने का पता चाहिये नहीं तो जाकर अपनी माताओं

से कह दो कि वो भूल जाये कि उन्होंने तुम्हें कभी जन्म भी दिया था। यदि तुम मुझे यह शुभ समाचार नहीं दे सके कि वे पांडव कहां है तो मैं केवल तुम्हें ही नहीं तुम्हारे सम्पूर्ण परिवार को मृत्युदंड दूंगा। तुम जैसे व्यक्ति को अब तक काल कोठरी तक पहुंच जाना चाहिये था उसे अब तक मैंने गुप्तचर प्रमुख बना रखा है। यदि मुझे तनिक भी यह अनुमान या आभास होता कि मेरा गुप्तचर प्रमुख संसार का सबसे बडा महामूर्ख है तो मैं अपना कोई और प्रबन्ध कर लेता। शर्वनाग मुंह खोले खडा दुर्योधन को देखता रहा। उसकी समझ में यह नहीं आया कि उससे भूल कहां हुई। पांडव लोग दुर्योधन के चरों के पहुंचने से पहिले ही अपने आश्रम से विदा हो चुके थे। दुर्योधन बोला तुम्हारे प्रवंचित होते रहने से मैं तुम पर निर्भर रहकर स्वयं वंचित रहा। हाथ में आया हुआ इन्द्रप्रस्थ का राज्य तुम्हारी मूर्खता के कारण हाथ से निकल रहा है। यदि शीघ्र ही तुम पांडवों के विषय में कोई निश्चित सूचना नहीं लाये तो तुम जानते ही हो तुम्हारा अन्त क्या होगा। जाओ।

एक दिन पाण्डव अपने तपस्वियों के साथ बैठे चर्चा कर रहे थे कि अब उन्हे अज्ञातवास के लिये जाना है उन्होंने हाथ जोडकर कहा मुनिगण हमने १२ वर्ष तक वन में तरह तरह की कठिनाइयां सह कर निवास किया। अब हमारे अज्ञातवास का १३ वां वर्ष शेष है इसमें हम छिपकर रहेंगे। अब इसके लिये आप हमें प्रस्थान करने की आज्ञा दें। दुरात्मा दुर्योधन, कर्ण और शकुनि ने हमारे पीछे अपने गुप्तचर लगा रखे हैं तथा पुरवासी और स्वजनों को सावधान कर दिया है कि यदि उनमें से किसी ने हमें कोई आश्रय दिया तो उसके साथ कठोरता का बर्ताव किया जायेगा। अत: इसके लिये हमें अब कोई अन्य राष्ट्र में जाना होगा, आप हमें प्रसन्नता से अन्य स्थान पर जाने की अनुमति दे। तब समस्त वेद वेत्ता मुनियों और यतियों ने उन्हे आशीर्वाद दिया और अपने अपने आश्रमों में चले गये। फिर धौम्य मुनि के साथ पांचो पांडव द्रौपदी सहित वहां से चल दिये। वे थोडी दूर जाकर अज्ञातवास आरम्भ करने के विषय में विचार करने बैठ गये। युधिष्ठिर बोले मेरी समझ में नहीं आता कि ये मेरे तेजस्वी भाई छिप कैसे सकते हैं? नकुल बोला भीम भैया रसोईया के वेश में बहुत अच्छे लगेंगे। द्रौपदी बोली भोजन में रुचि भी बहुत है। रसोई घर में रहेंगे तो एक वर्ष पंछी की तरह उड जायेंगे। युधिष्ठिर बोले मेरे भीम को इस प्रकार सताया मत करो पांचाली परन्तु सुझाव अनुकूल है अर्जुन। नकुल बोला मैं किसी घुडसाल में जम जाऊंगा और सहदेव कोई गौशाला सम्हाल लेगा। द्रौपदी बोली और महाराज किसी राजा के सभासद बन जायेंगे परन्तु यह गांडीव धारी कैसे छिपा रहेगा?

**४) धौम्यका युधिष्ठिरको राजाके यहाँ रहनेका ढंग बताना-** वैशम्पायनजी कहते हैं- द्रौपदीसहित सब भाइयों की बातें सुनकर राजा युधिष्ठिरने कहा- विधाताके निश्चयके अनुसार जो-जो कार्य तुमलोग करनेवाले हो, सो सब तुमने सुना दिये; मुझे भी अपनी बुद्धिके अनुसार जो कुछ उचित जान पड़ा, वह अपना कर्तव्य बताया। अब पुरोहित धौम्य मुनि सेवकों और रसोइयोंके साथ राजा द्रुपदके घरपर जाकर रहें और हमारे अग्निहोत्रकी रक्षा करें। इन्द्रसेन आदि सारथि और सेवकगण खाली रथ लेकर द्वारिका चले जायें। तथा ये सब स्त्रियां और द्रौपदीकी दासियाँ रसोइयों और नौकरोंसहित पञ्चालको लौट जायें। किसीके पूछनेपर सबको यही बताना चाहिये कि हमें पाण्डवोंका पता नहीं है, वे हमको द्वैतवनमें ही छोड़कर न जाने कहाँ चले गये।

इस प्रकार परस्पर निश्चय करके पाण्डवोंने धौम्य मुनिसे सलाह ली। धौम्यने उनके समक्ष अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया- पाण्डवों। तुमने ब्राह्मण, सुहृद्, सेवक, वाहन, अस्त्र-शस्त्र और अग्नि आदिके सम्बन्धमें जैसी व्यवस्था की है अब मैं तुम्हें बताता हूं कि राजाके घर में रहकर कैसा बर्ताव करना चाहिये। राजासे मिलना हो तो पहले द्वारपालसे मिलकर

उनकी आज्ञा माँग लेना चाहिये; राजाओंपर पूर्ण विश्वास कभी नहीं करना चाहिये। अपने लिये वही आसन पसंद करे, जिसपर दूसरा कोई बैठनेवाला न हो। समझदार मनुष्यको कभी राजाकी रानियोंसे मेल-जोल नहीं बढ़ाना चाहिये। इसी प्रकार जो अन्त:पुरमें जाने-आनेवाले हों, उन लोगोंसे तथा राजा जिनसे द्वेष रखते हों या जो लोग राजासे शत्रुता करते हों, उनसे भी मित्रता नहीं करनी चाहिये। छोटे-से-छोटे कार्य भी राजाको बताकर ही करे, ऐसा करनेसे कभी हानि नहीं उठानी पड़ती। अग्नि और देवता के समान मानकर प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक राजाकी परिचर्या करनी चाहिये। जो उनके साथ कपटपूर्ण बर्ताव करता है, वह नि:संदेह मारा जाता है। राजा जिस-जिस कार्यके लिये आज्ञा दे, उसका ही पालन करे; लापरवाही, घमंड और क्रोधको सर्वथा त्याग दें। प्रिय और हितकारी बात कहे; प्रियसे भी हितकर वचनका महत्व विशेष है। सभी विषयों और सब बातोंमें राजाके अनुकूल रहें। जो चीज राजाको पसंद न हो, उसका कदापि सेवन न करे; उसके शत्रुओंसे बातचीत करना छोड दे और कभी भी अपने स्थानसे विचलित न हो। ऐसा बर्ताव करनेवाला मनुष्य ही राजाके यहाँ रह सकता है। विद्वान पुरुष राजाके दाहिने या बायें भागमें बैठे; जो शस्त्र लेकर पहरा देनेवाले हों, उन्हें राजाके पिछले भागमें रहना चाहिये। यदि राजा कोई अप्रिय बात कह दे, तो उसे दूसरोंके सामने प्रकाशित न करें। मैं शूरवीर हूँ, बड़ा बुद्धिमान हूँ, ऐसा घमंड न दिखाये, सदा राजाको प्रिय लगनेवाला कार्य करते रहें। अपने दोनों हाथ, ओठ और घुटनोंको व्यर्थ न हिलावे; बहुत बातें न बनावे। किसीकी हँसी हो रही हो तो बहुत हर्ष न प्रकट करे। पागलोंकी तरह ठहाका मारकर भी न हँसे। जो किसी वस्तुके मिलनेपर खुशीके मारे फूल नहीं उठता, अपमान हो जानेपर बहुत दु:खी नही होता और अपने काममें सदा सावधान रहता है, वही राजाके यहाँ टिक सकता है। यदि कोई मन्त्री पहले राजाका कृपापात्र रहा हो और पीछे अकारण उसे दण्ड भोगना पड़े, तो भी यदि वह उसकी निन्दा नहीं करता तो फिर उसे सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है। सदा अपना ही लाभ सोचकर राजाकी दूसरोंके साथ अधिक बातचीत नहीं करानी चाहिये। युद्ध आदि योग्य अवसरोंपर राजाको सब प्रकारकी राजोचित शक्तियोंसे विशिष्ट बनानेका प्रयत्न करते रहना चाहिये। जो सदा उत्साह दिखानेवाला, बुद्धि-बलसे युक्त, शूरवीर, सत्यवादी, दयालु, जितेन्द्रिय और छायाकी भाँति राजाके पीछे चलनेवाला हो, वही राजाके घरमें गुजारा कर सकता है। जब दूसरेको किसी कामके लिये भेजा जा रहा हो, उस समय जो स्वयं ही उठकर आगे आ जाय और पूछे- मेरे लिये क्या आज्ञा है? वही राजभवनमें टिक सकता है। राजाके समान अपनी वेष-भूषा न बनावे, उनके अत्यन्त निकट न रहे तथा अनेकों प्रकर की विरुद्ध सलाह न दिया करें। ऐसा करनेसे ही मनुष्य राजाका प्रिय हो सकता है। यदि राजाने किसी कामपर नियुक्त कर दिया हो, तो उसमें दूसरोंसे रिश्वत रूपमें थोड़ा भी धन न लेवे; क्योंकि जो चोरीका धन लेता है, उसे किसी-न-किसी दिन बन्धन अथवा वधका दण्ड भोगना पड़ता है। पाण्डवों। इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक अपने मनको वशमें रखकर अच्छा बर्ताव करते हुए तेरहवाँ वर्ष पूर्ण करो; इसके बाद अपने देशमें आकर स्वच्छन्द विचरना। युधिष्ठिर बोले- ब्रह्मन। आपने हमलोगोंको बहुत अच्छी सीख दी। हमारी माता कुन्ती और महा बुद्धिमान विदुरजीको छोड़कर दूसरा कोई नहीं है, जो ऐसी बात बता सके। अब हमें इस दु:खसे छुटकारा दिलाने, यहाँसे प्रस्थान करने और विजयी होनेके लिये जो कर्तव्य आवश्यक हो, उसे आप पूरा करें।

वैशम्पायनजी कहते हैं- राजा युधिष्ठिरके ऐसा कहने पर ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ धौम्यजीने यात्राके समय जो कुछ भी शास्त्रविहित कर्त्तव्य हैं, उसका विधिवत् सम्पादन किया। पाण्डवोंकी अग्निहोत्र सम्बन्धी अग्निको प्रज्वलित करके उन्होंने उनकी समृद्धि और विजयके लिये वेदमन्त्र पढ़कर हव.न किया। इसके बाद पाण्डवोंने अग्नि, ब्राह्मण और तपस्वियोंकी प्रदक्षिणा की और द्रौपदीको आगे करके वे अज्ञातवासके लिये चल दिये। उनके चले जानेपर धौम्यजी उस आहवनीय अग्निको लेकर पञ्चाल देश में चले गये तथा इन्द्रसेन आदि सेवक द्वारिका जाकर रथ और घोड़ोंकी रक्षा करते हुए आनन्दपूर्वक रहने लगे।

HHH(१९३)HHH

**५) पाण्डवोंका अज्ञातवास के लिये विराट नगर को प्रस्थान-** जनमेजय ने वैशम्पायन से पूछा हे ब्रह्मन, मेरे प्रपितामहों पाण्डवों ने दुर्योधन के भय से कष्ट उठाते हुए विराट नगर (काठमाण्डू) नेपाल में अपने अज्ञातवास का समय किस प्रकार पूरा किया? तथा दु:ख पर दु:ख उठानेवाली पतिव्रता द्रौपदी वहाँ कैसे अज्ञात रह सकी? वैशम्पायन बोले, राजन। तुम्हारे प्रपितामहोंने यक्ष वरदान पानेके पश्चात एक दिन धर्मराज राजा युधिष्ठिर ने अपने सब भाइयोंको पास बुलाकर कहा राज्य से बाहर होकर वनमें रहते हुए हम लोगोंके बारह वर्ष बीत गये, अब यह तेरहवाँ वर्ष बीत रहा है। इसमें बड़े कष्ट और कठिनाइयोंका सामना करते हुए हमें अज्ञात रूपसे रहना होगा। अर्जुन तुम कोई अच्छा सा स्थान बताओ जहाँ हम सब लोग चलकर एक वर्ष तक वास करें और शत्रुओंको इसकी खबर भी न हो। अर्जुन बोले- भ्राताश्री हम स्वच्छदंतापूवर्क इस पृथ्वीपर विचरेंगे। मैं अज्ञातवास करने के योग्य कुछ रमणीय एवं गुप्त प्रदेशोंके नाम बताता हूं जो कुरु प्रदेशके आसपास और सुरम्य है। जहाँ अन्न की बाहुलता है। भौगोलिक रूप से हमारे निकट के राज्य में वे पांचाल, चेदी, मत्स्य, शूरसेन, पटच्चर, दशार्ण, नवराष्ट्र, मल्ल, शाल्व, युगन्धर, कुन्तिराष्ट्र, सुराष्ट्र और अवन्ती (उज्जैन)। अब हमें निर्णय करना है कि हमें कहा जाना हमारे लिये सर्वाधिक हितकर और सुरक्षित कौनसा राज्य होगा। इनमेंसे आप किसी भी देश में रहना पसंद करे वहीं हम सब लोग रहेंगे। भीम बोला- जहाँ तक मुझे ज्ञात है, इनमें सबसे अच्छी स्थिति पांचाल की है और पांचाल तो हमें जाना नहीं है। उसके पश्चात मत्स्य देश है, जहाँ का राजा विराट हमारा शत्रु नहीं है। राजा विराट स्वभाव से दयालु और धार्मिक है। मत्स्य देश के राजा मत्स्यराज राजा विराट धर्मपरायण और प्रजापालक राजा हैं। वे कायर नहीं थे किन्तु असमर्थ अवश्य थे। उनके पुत्र शंख तथा उत्तरकुमार भी कोई वीर योद्धा नहीं थे। उनकी पहली पत्नी सुरथा के पुत्र श्वेत का कोई महत्व नहीं था। किन्तु इन सब परिस्थितियों के लिए उत्तरदायी कौन था। संभवत: राजा विराट का अपनी पत्नी के प्रति अतिरिक्त मोह और महारानी सुदेष्णा की अपने पितृगृह के प्रति असाधारण आसक्ति। राजा विराट को कोई आवश्यकता नहीं थी कि वे अपने शालीग्राम, रानी सुदेष्णा के भाई कीचक को सेनापति बनाते, तथा उसे अपनी सभा में इतना महत्व देते। विराट इतने असमर्थ तो नहीं थे कि अन्य राजाओं के समान, विभिन्न शक्तियों से संधि कर अपनी प्रजा की रक्षा न कर पाते, अथवा प्रजा-पालन के धर्म का निर्वाह न कर सकते। या फिर राजा विराट को राजधर्म का उचित ज्ञान नहीं था? राजा की शक्ति या तो उसके धर्म में होती है, या फिर उसकी सेना में। राजा विराट ने जब धर्म अपनी पत्नी को समर्पित कर दिया और सैन्य शक्ति कीचक को सौंप दी, तो कीचक को सेवाधर्म से मुक्त होकर उच्छृंखल होना ही था। सेनापति, राजा के बंधन से मुक्त हो, परम स्वतंत्र हो जाए, तो राज्य, राजा की आज्ञा से नहीं सेनापति की आज्ञा से ही चलता है।

युधिष्ठिर को तो केवल अपनी पहचान को गुप्त रखना था। विराट उन्हें पहचान नहीं पाएँ। चिन्तन था द्रौपदी के लिये कि वह कहाँ और कैसे रहेगी? पति की अनुपस्थिति में पत्नी सुरक्षित नहीं रहती। किसी भी पुरुष की दृष्टि उस पर पडकर लुब्ध हो सकती है। द्रौपदी का रूप भी ऐसा ही है। युधिष्ठिर बोले- अज्ञात रहने के लिये वन ही उत्तम स्थान है जहाँ सामान्य जन का आवागमन होता ही नहीं। किंतु जिस प्रतिज्ञा के अंतर्गत हमें अज्ञातवास करना है, उसमें स्पष्ट है कि हम जन-समाज में रहकर ही अज्ञातवास करेंगे। अत: हम वन में तो नहीं रह सकते। हमें किसी नगर का ही चयन करना होगा अन्यथा दुर्योधन हमारे अज्ञातवास को स्वीकार नहीं करेगा? युधिष्ठिर बोले हमें कालगणना का ध्यान रखना होगा। हम अपनी दृष्टि से अज्ञातवास की सीमा निश्चित करेंगे। हमारे लुप्त होने और प्रकट होने की तिथियों की गणना हमें सावधानी से करनी होगी। हमें समय से पूर्व लुप्त

होकर समय के पश्चात ही प्रकट होना चाहिये। ताकि दुर्योधन किसी प्रकार की भी चालाकी न कर पाएं।

जब भावी अज्ञातवास के स्वरूप के विषय में पाँचों पाण्डव धीमे स्वर में चर्चा कर रहे थे, पांचाली ने द्वार की ओट में खड़े हो शब्दश: सब सुन लिया था। उनका अन्तर्द्वन्द्व एवं धर्मसंकट देखकर हृदय उमड़ पड़ा था उसका। वे अपनी-अपनी भूमिका निश्चित कर रहे थे किन्तु पांचाली का नाम कोई नहीं ले पा रहा था। प्रेम एवं पीड़ा से वे पाँचों आर्त थे, लज्जित थे। उन पाँचों की पत्नी होकर द्रुपदसुता को क्या-क्या कष्ट न झेलने पड़े हैं। और अब पुन: जीवन का अत्यन्त अपमानमय परिच्छेद प्रारम्भ होना था। हम पाँचों तो कोई भी सेवा कार्य कर सकेंगे; किन्तु क्या होगा चारुशीला हमारी भार्या का? अहो, वह तो माता की भाँति परिपालन योग्य है। वह तो अग्रजा की भाँति आदर की पात्र है। वह सुकुमारी राजबाला एक अन्य परिवार में क्या सेवा कार्य कर सकेगी? वह कैसे स्वयं को छिपा सकेगी वह तो स्वयं उद्भासित है? अहो उससे क्या कहें? किस मुख से कहें?

द्रौपदी बोली- हम काम्पिल्य अथवा द्वारका तो जायेंगे ही नहीं। हमें तो उसी राजा की राजसभा में जाना चाहिये जो हमें पहचानता ही नहीं हो, जो राजा दुष्ट न हो, धर्मपरायण हो और दुर्योधन का मित्र न हो।

युधिष्ठिर बोले- मुझे सबसे अधिक चिन्ता पांचाली की है। पांचाली ने कभी सेवा-कर्म नहीं किया और हम चाहते भी नहीं की उसे कभी दासी बनकर रहना पडे। तो फिर ऐसा कौनसा काम हो सकता है जो उसे राजा और राज्य परिवार के लिये उपयोगी सिद्ध हो और उसकी स्थिति भी दासी की सी न हो। द्रौपदी बोली- आप विचलित न हों धर्मराज। मैं सैरन्ध्री बनूँगी। मैं सैरन्ध्री का कार्य भलीभाँति कर सकूँगी। आप सब निश्चित हो। मैं यह तो नहीं जानती कि हम किस राजा के सभा अथवा परिवार में जाएंगे और वहाँ किस काम का सम्मान अधिक है किन्तु अवश्य ही अंत:पुर में प्रवेश का सरलतम मार्ग, राजमहिषियों के प्रसाधन, केश विन्यास, रूपसज्जा से हो सकता है। मैं यह सिद्ध कर पाऊंगी श्रृंगार कर्म में मेरी दक्षता उन राजमहिषियों के रूप और सौंदर्य को और अधिक आकर्षक बना सकती है, तो शायद मुझे वहाँ स्थान पाने में तनिक भी कठिनाई नही होगी।

युधिष्ठिर ने धीरे से अपने अश्रु पोंछे और बोले- धन्य हो देवी तुम। प्रियंवदे। मृदुभाषिणी। तुमने सदा इस कुल का कल्याण चाहा है। यही उच्च कुल में जन्मी नारी का प्रमुख लक्षण है। कल्याणी। हमारा धर्मसंकट हरनेवाली। हमारा पुन: तुमने उद्धार कर दिया। तुम धन्य हो पांचाली।

अर्जुन बोला- यदि हम सचमुच सफल अज्ञातवास करना चाहते है तो हमें अपने प्रियजनों को अपमानजनक स्थिति में निकृष्ट कार्य करते हुए भी देखना पडेगा। यह सम्भव नहीं है कि सैरंध्री कर्म करते हुए द्रौपदी महारानी बनी रहे। मैं अपने विषय में सोचता हूं कि मैं किसी राजकुल के राजकुमारों को धनुर्विद्या का प्रशिक्षण करूंगा तो तत्काल पहचान लिया जाऊंगा इसलिए मैंने अपनी कल्पना अन्त:पुर की बालाओं को, राजकुमारियों को नृत्य और संगीत सिखानेवाले एक नपुंसक के रूप में की है। मैं बृहनल्ला बनकर उन्हें नृत्य की मुद्राएँ सिखाऊंगा। द्रौपदी को लगा कि अब किसी भी नारी का सौंदर्य अर्जुन के मन में कामना नहीं जगा सकेगा। युधिष्ठिर बोले- तुम सब अपमान झेलोगे। पांचाली भी दासी के रूप में रहेगी तो अकेला मैं ही कैसे गरिमापूर्ण जीवन जी सकता हूं। जो सबके साथ होगा वही मेरे साथ भी होगा। तुम सब अपमान झेलोगे तो मैं भी झेलूँगा। कहीं ऐसा न हो कि मेरी अवज्ञा या उपेक्षा देखकर तुम लोग अपनी उत्तेजना और आक्रोश में कोई ऐसा कार्य कर बैठो, जो हमारे लिए हानिकारक सिद्ध हो। हमें सब कुछ सहन करने का अभ्यास होना चाहिए। अभिनय तो तभी सजीव होता है जब उस पात्र के जीवन को हम सहज रूप में जी सकें। हमें अपने आपको यह भुला देना है कि हम

कौन हैं, क्या हैं। अज्ञातवास करने के लिए राजा का सहचर बन, राजा के मनोरंजनार्थ, उनका द्यूत-सहचर बनकर रहूँगा। द्यूतक्रीडा मेरा व्यसन नहीं है न ही उसमें मेरी तनिक सी आसक्ति है। जहाँ कहीं भी हम जायेंगे वहाँ मैं न युधिष्ठिर हूंगा, न मेरे साथ मेरे चार भाई होंगे, न वहाँ मेरी पत्नी द्रौपदी होगी। हम सबके छद्म वेष के नाम होंगे। परस्पर हमारा कोई सम्बन्ध नहीं होगा और हमारा एक-दूसरे से कोई परिचय ही नहीं है ऐसे हम दिखायेंगे। हम अपने निजी प्रयोग के लिय, हमारे नाम जय, जयंत, विजय, जयत्सेन तथा जयद्बल रखेंगे। सार्वजनिक रूप से मैं अपना नाम कंक घोषित करता हूं। मेरा काम होगा राजा, मन्त्री तथा राजाके सम्बन्धियों को पासा खेलकर प्रसन्न रखना। पांचाली के प्राणवल्लभ आजानुबाहू, वृषभस्कन्ध नरशार्दूल धनंजय। अर्जुन के ये शब्द उसके कानों में जैसे तप्त तरल सीसा उँडेल रहे थे। अब स्थिति यहाँ तक आ गयी थी कि अज्ञातवास की अवधि के लिए श्वेतवाहन गाण्डीवधारी अर्जुन बृहन्नला बने, महाराज विराट के समक्ष आजीविका की याचना करने। अर्जुन ने अपना नाम बृहन्नला रखा। मध्यम पाण्डव भीम राजा के रसोई के अधीक्षक बनना चाहते है। वे रसोई बनाने के काम में चतुर है। उन्होंने अपना नाम बल्लव रसोइया रखा क्योंकि रसोई घर में छिपे हुए व्यक्ति को क्या तो कोई जानेगा और क्या कोई जानना चाहेगा। नकुल अश्वों के पालन-पोषण का काम बड़ी कुशलता से करता है तथा अश्वोंके रोगोंकी चिकित्सा इत्यादि उसने अपना नाम ग्रंथिक रखा। सहदेव राजा की गोशाला में काम करने का इच्छुक है, सहदेव गौओंको नियंत्रण करना जानता है, गौओंके दुहने और परीक्षा करने में भी कुशल है। गौओंके जो लक्षण या चरित्र मङ्गलमय होते हैं, उनका भी अच्छा ज्ञान है। वह उन शुभ लक्षणोंवाले बैलों को भी जानता है जिनके मूत्र को सूँघ लेने मात्रसे बाँझ स्त्री भी गर्भधारण कर सकती है। इसलिये उसने अपना नाम तंतिपाल घोषित किया।

युधिष्ठिर बोले ठीक है हमारा निर्णय यहीं है कि पहले हम राजा विराट की सभा में जाएं। यदि कोई प्रतिकूलता दिखाई पड़े तो फिर और कहीं जायेंगे अन्यथा अपने अज्ञातवास का समय वहीं व्यतीत करेंगे।

पांडुपुत्र पंचपांडवों के अज्ञातवास की यह है भूमिका। अब द्रुपद-सुता की विडंबना का क्या कहना। द्रौपदी विराट की रानी सुदेष्णा का केश-विन्यास करनेवाली परिचारिका थी- सैरन्ध्री। अजीब दृश्यों से भरा है द्रौपदी के जीवन-नाटक का यह विडंबित अंक। मत्स्य देश की राजधानी विराट नगरी के राजप्रासाद में सब छदम्वेश में आश्रय लिये हैं।

## ६) पाण्डवों का मत्स्यदेश में जाना, शमी वृक्षपर अस्त्र रखना

वैशम्पायन कहते हैं- तदनन्तर महापराक्रमी पाण्डव यमुनाके निकट पहुँचकर उसके दक्षिण किनारेसे चलने लगे। उनकी यात्रा पैदल ही हो रही थी। वे कभी पर्वतकी गुफाओंमें और कभी जंगलोंमें ठहरते जाते थे। आगे जाकर वे दशार्णसे उत्तर और पञ्चालसे दक्षिण यकृल्लोम और शूरसेन देशोंके बीचसे होकर यात्रा करने लगे। उनके हाथ में धनुष और कमर में तलवार थी। धीरे-धीरे वनका मार्ग तै करके वे मत्स्यदेशमें जा पहुँचे और क्रमश: आगे बढ़ते हुए विराटकी राजधानीके निकट पहुँच गये। तब युधिष्ठिरने अर्जुनसे कहा- अनुज। नगरमें प्रवेश करनेके पहले यह निश्चय हो जाना चाहिये कि हमलोग अपने अस्त्र-शस्त्र कहाँ रखेंगे। तुम्हारा यह गाण्डीव धनुष बहुत बड़ा है, संसारके सब लोगोंमें इसकी प्रसिद्धि है; अत: यदि हमलोग अस्त्रोंको साथ लेकर नगरमें प्रवेश करेंगे, तो इसमें कोई संदेह नहीं कि सब लोग हमें पहचान लेंगे। ऐसी दशामें हमें अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार फिर बारह वर्षके लिये वनवास करना पड़ेगा। भीम बोले- हम सदा के लिए तो शस्त्र-त्याग नहीं कर रहे कि उन्हें कहीं भी फेंककर मुक्त हो जाये। हम जहां कहीं भी हो हमारे शस्त्र हमारे इतने निकट होने चाहिये कि संकट के समय हम तत्काल उन्हें प्राप्त कर सकें।

मध्यम का संकेत श्मशान की ओर है। अर्जुन ने कहा, वह नगर से बहुत दूर नहीं होता; किंतु सामान्यत: लोग न्यूनतम समय में अपना कार्य संपन्न कर वहाँ से चले जाते हैं। वहाँ कोई टहलता नहीं। कोई निरीक्षण नहीं करता कि कहाँ क्या है।

अर्जुनने कहा- राजन्। श्मशान नगरसे बहुत दूर नहीं होता; सामान्यत: लोग वहां जाते ही नहीं है। वहाँ कोई ठहरता नहीं, कोई निरीक्षण नहीं करता कि वहाँ क्या है? वहाँ जानेवाला व्यक्ति अच्छी मानसिकता में नहीं होता। श्मशानभूमिके निकट एक टीलेपर यह शमीका बहुत बड़ा सघन वृक्ष दिखायी दे रहा है; इसकी शाखाएँ बड़ी भयानक हैं, अत: इसके ऊपर किसीका चढ़ना कठिन है। इसके सिवा इस समय यहाँ ऐसा कोई मनुष्य भी नहीं है, जो हमलोगोंको इसपर शस्त्र रखते देख सके। यह वृक्ष रास्तेसे बहुत दूर जंगलमें है, इसके आस-पास हिंसक जीव और सर्प आदि रहते हैं। इसलिये इसीपर हम अपने अस्त्र-शस्त्र रखकर नगरमें प्रवेश करें; और वहाँ जैसा सुयोग हो, उसके अनुसार समय व्यतीत करें।

वैशम्पायन कहते हैं- धर्मराजसे यों कहकर अर्जुन अस्त्र-शस्त्रोंको वहाँ रखनेका उद्योग करने लगे। पहले सबने अपने-अपने धनुषकी डोरी उतार ली; फिर चमकती हुई तलवारों, तरकसों और छुरेके समान तीखी धारवाले बाणोंको धनुषके साथ बाँधा। तब युधिष्ठिरने नकुलसे कहा- वीर। तुम शमीपर चढ़कर ये धनुष रख दो। आज्ञा पाते ही नकुल उस वृक्षपर चढ़ गये और उसके खोड़रेमें, जहाँ वर्षाका पानी पड़नेकी सम्भावना नहीं थी, सबके धनुष रखकर उन्होंने एक मजबूत रस्सीसे शाखाके साथ बाँध दिया। इसके बाद पाण्डवोंने एक मुर्देकी लाश लाकर उसे उस वृक्षपर लटका दिया, जिससे उसकी दुर्गन्धके कारण कोई मनुष्य वृक्षके निकट न आ सके। फिर अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार अज्ञातवास करनेके लिये उन्होंने विराटके बहुत बड़े नगरमें प्रवेश किया।

नगरमें प्रवेश करते समय महाराज युधिष्ठिरने भाइयोंके साथ मिलकर त्रिभुवनेश्वरी दुर्गाका स्तवन किया। देवी प्रसन्न हो गयीं। और उन्होंने प्रकट होकर विजय तथा राज्य प्राप्ति का वरदान दिया और यह भी कहा कि विराट नगरमें तुम्हें कोई पहचान नहीं सकेगा। तदनन्तर वे राजा विराटकी सभामें गये।

**७) पांडव मत्स्य प्रदेश में राजा विराट के महल में -** धृतराष्ट्र ने यह तो ठीक ही कहा कि उसे यह पता नहीं कि वे पांडव अपना अज्ञातवास कहां और कैसे बिता रहे हैं? लेकिन समय तो सब यह जानता है कि पांडवों ने बहुत सोच-विचार कर के बाद मत्स्य देश को अज्ञातवास के लिये चुना कि वहां का राजा विराट शक्तिशाली भी था और पांडवों का शत्रु भी नहीं था तो वे सब वहां राजा विराट के नगर में उसके महल में पहुंच गये। वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय वहां नगर से थोडी दूर बाहर श्मशान में उगे हुये शमी पेड पर अपने अस्त्र-शस्त्र सुरक्षित रखकर उसके उपरान्त एक-एक करके राजा विराट के यहां नौकर हो गये।

राजा विराट राजसभामें बैठे थे। सबसे पहले युधिष्ठिर उनके दरबार में पहुँचे, वे एक वस्त्र में पासे बाँधकर ले गये थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने राजासे निवेदन किया कि सम्राट। मैं एक ब्राह्मण हूँ; मेरा सर्वस्व लुट गया है, इसलिये मैं आपके यहाँ जीविकाकी खोज में आया हूँ। आपकी इच्छाके अनुसार सब कार्य करते हुए आपहीके निकट रहनेकी मैं इच्छा करता हूँ।

राजाने बड़ी प्रसन्नताके साथ उनका स्वागत किया और उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। फिर प्रेमपूर्वक पूछा- ब्राह्मण देवता। मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुमने किस राजाके राज्यसे यहाँ पधारनेका कष्ट किया है, तुम्हारा नाम और गोत्र क्या है, तथा तुम कौन-सी कला जानते हो।

युधिष्ठिर बोले- राजन्। मैं व्याघ्रपाद गोत्रमें उत्पन्न हुआ हूँ। मेरा नाम है कंक। पहले मैं राजा युधिष्ठिरके साथ रहता था।

जुआ खेलनेवालों में पासा फेंकनेकी कलाका मुझे विशेष ज्ञान है।

विराटने कहा- कंक। मैंने तुम्हें अपना मित्र बनाया; जैसी सवारीमें मैं चलता हूँ, वैसी ही तुम्हें भी मिलेगी। पहननेके वस्त्र और भोजन-पान आदिका प्रबन्ध भी पर्याप्त मात्रामें रहेगा। बाहरके राज्य, कोष और सेना आदि तथा भीतरके धन-दारा आदिकी देखभाल तुमपर छोड़ता हूँ। तुम्हारे लिये राजमहलका फाटक सदा खुला रहेगा, तुमसे कोई परदा नहीं रक्खा जायगा। जो लोग जीविकाके बिना कष्ट पाते हों और तुम्हारे पास आकर याचना करें, उनकी प्रार्थना तुम हर समय मुझको सुना सकते हो; तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि उन याचकोंकी सभी कामनाएँ मैं पूर्ण करूँगा। तुम मुझसे कुछ भी कहते समय भय या संकोच न करना।

युधिष्ठिर कंक बनकर महाराज विराट की राजसभा में द्यूतक्रीडा से मनोरंजन करने नियुक्त हुये। वे सोच रहे थे कि अभ्यास करते-करते वे द्यूतकला में पारंगत हो जायेंगे और कभी न कभी अपना राज्य बिना शौर्य के ही पांसो के बल से प्राप्त कर लेंगे। युधिष्ठिर खूब मजे में है। रात दिन विराट के साथ खेलने में लगे रहते हैं। उन्ही के साथ भोजन आदि करते हैं। युधिष्ठिर ने राजा के सम्मुख खडे हो अपना परिचय दिया महाराज मेरा नाम कंक है। मैं इन्द्रप्रस्थ के सम्राट युधिष्ठिर की सभा में था। राजा की आज्ञा मानी जाये तो राजा का सम्मान कभी कम नहीं होता। महाराज विराट ने पूछा कि महाराज युधिष्ठिर की सभा में तुम क्या करते थे कंक? युधिष्ठिर बोले महाराज मैं युधिष्ठिर धर्मराज के द्यूत सहयोगी के रूप में काम करता था। आप मुझे जो भी दायित्व देंगे वह मुझे स्वीकार होगा। महाराज विराट ने सोच-विचार कर कहा तुम्हारी नियुक्ति राजा के द्यूत सहचर और द्यूत शिक्षक के रूप में हुई। कंक ने राजा विराट को सम्मति दी कि द्यूत की पहली चाल स्वरूप राजसत्ता के स्थान पर अपनी गृहसत्ता पर अपना पूर्ण और दृढ़ नियन्त्रण स्थापित करने का प्रयत्न करे महाराज। पहले उन स्थानों और विभागों पर अपनी पकड करे जिन पर सेनापति कीचक ने नियन्त्रण नहीं कर रखा हो। कंक की बातोंसे विराट सचमुच बहुत प्रसन्न था।

राजासे इस प्रकार बातचीत करके युधिष्ठिर बड़े सम्मानके साथ वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे। उनका गुप्त रहस्य किसीपर प्रकट न हुआ। युधिष्ठिर अपने को कंक बता कर राजा विराट का दरबारी हो गया।

राजा विराट बोले- ऊपर से देखने पर तो सब कुछ मेरे ही अधिकार में है, किंतु वास्तविकता यह है कि मेरा अंत:पुर भी मेरे अधिकार में नहीं है। वहाँ महारानी सुदेष्णा का शासन है; और वह कीचक की बहन है। वह मेरी प्रत्येक इच्छा का विरोध कर सकती है, किंतु कीचक की किसी इच्छा का विरोध नहीं कर सकती। महाराज विराट का मुख क्षोभ से ताम्रवर्णी हो रहा था।

तदनन्तर सिंहकी-सी मस्त चालसे चलते हुए भीमसेन राजाके दरबारमें उपस्थित हुए। उनके हाथ में चमचा, करछी और साग काटनेके लिये एक लोहेका काला छुरा था। वेष तो रसोइयेका था, पर उनके शरीरसे तेज निकल रहा था। उन्होंने आते ही कहा- राजन्। मेरा नाम बल्लव है। मैं रसोईका काम जानता हूँ, मुझे बहुत अच्छा भोजन बनाना आता है। आप इस कामके लिये मुखे रख लें।

विराटने कहा- बल्लव। मुझे विश्वास नहीं होता कि तुम रसोइये हो, तुम तो इन्द्रके समान तेजस्वी और पराक्रमी दिखायी देते हो। भीमसेन बोले- महाराज। विश्वास कीजिये, मैं रसोइया हूं और आपकी सेवा करने आया हूं। राजा युधिष्ठिरने भी मेरे बनाये हुए भोजनका स्वाद लिया है। इसके सिवा, जैसा कि आपने कहा है, मैं पराक्रमी भी हूं; बलमें मेरे समान दूसरा कोई नहीं है। पहलवानीमें भी मेरी बराबरी कोई नहीं कर सकता। मैं सिंहों और हाथियोंसे युद्ध करके आपको प्रसन्न किया करूँगा।

विराटने कहा- अच्छा, भैया। तुम अपनेको भोजन बनानेके काम में कुशल बताते हो तो यही काम करो। यद्यपि मैं यह काम तुम्हारे योग्य नहीं समझता, तथापि तुम्हारी इच्छा देखकर स्वीकार कर रहा हूँ। तुम मेरी पाकशालाके प्रधान

अधिकारी रहो। जो लोग पहलेसे उसमें काम कर रहे हैं, मैं तुम्हें उन सबका स्वामी बना रहा हूँ। इस प्रकार भीमसेन राजा विराटकी पाकशालाके प्रधान रसोइये हुए। उन्हें कोई पहचान न सका। राजाके वे बड़े ही प्रिय हो गये। भीम बल्लव नाम से राजा की पाकशाला का मुख्य अधीक्षक प्रधान रसोइया हो गया और अर्जुन बृहन्नला नाम से उत्तरा राजा विराट की कन्या को नृत्य गायन सिखाने लगा। नकुल ने घुडसाल सम्हाल ली और सहदेव ने गौशाला।

इसके बाद द्रौपदी सैरन्ध्रीका-सा वेष बनाये दुखियाकी तरह नगरमें भटकने लगी। उस समय राजा विराटकी रानी सुदेष्णा अपने महलसे नगरकी शोभा देख रही थीं, उनकी दृष्टि द्रौपदीपर पड़ी। वह एक वस्त्र धारण किये अनाथा-सी जान पड़ती थी। रूप तो उसका अद्भुत था ही। रानीने उसे अपने पास बुलाकर पूछा- कल्याणी। तुम कौन हो और क्या करना चाहती हो? द्रौपदीने कहा- महारानी। मैं सैरन्ध्री हूं और अपने योग्य काम चाहती हूँ; जो मुझे नियुक्त करेगा, मैं उसका कार्य करूँगी। सुदेष्णा बोली- भामिनि। तुम्हारी-जैसी रूपवती स्त्रियाँ सैरन्ध्री नहीं हुआ करतीं। तुम तो बहुत-से दास और दासियोंकी स्वामिनी जान पड़ती हो। बड़ी-बड़ी आँखे, लाल-लाल ओठ, शफ्के समान गला, नस और नाडियाँ मांससे ढकी हुई और पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखमण्डल। यह है तुम्हारा सुन्दर रूप, जिससे लक्ष्मी-सी जान पड़ती हो। अत: सच सच बताओ, तुम कौन हो? यक्ष या देवता तो नहीं हो? अथवा तुम कोई अप्सरा, देवकन्या, नागकन्या या चन्द्रपत्नी रोहिणी या इन्द्राणी तो नहीं हो? अथवा ब्रह्मा या प्रजापतिकी देवियोंमेंसे कोई हो?

द्रौपदी बोली- रानी। मैं सच कहती हूँ- देवता या गन्धर्वी नहीं हूँ, सेवाका काम करनेवाली सैरन्ध्री हूँ। बालों को सुन्दर बनाना और गूँथना जानती हूँ, चन्दन या अङ्गराग भी बहुत अच्छा तैयार करती हूँ। मल्लिका, उत्पल, कमल और चम्पा आदि फूलोंके बहुत सुन्दर एवं विचित्र-विचित्र हार गूंथ सकती हूँ। आजसे पहले मैं महारानी द्रौपदीकी सेवामें रह चुकी हूँ। जहाँ-तहाँ घूम-फिर कर सेवा करती रहती हूँ और भोजन तथा वस्त्रके सिवा और कुछ नहीं लेती। वह भी जितना मिल जाय, उतनेसे ही संतोष कर लेती हूँ। सुदेष्णाने कहा- यदि राजा तुमपर मोहित न हों तो मैं तुम्हें अपने सिरपर रख सकती हूँ। किंतु मुझे संदेह है कि राजा तुम्हें देखते ही सम्पूर्ण चित्तसे तुम्हें चाहने लगेंगे। सुंदर नारी शरीर के मोहक आकर्षणों के सम्मुख किसी भी प्रकार के काम-विकार को उत्पन्न भी न होने देना, साधारण कार्य नहीं था।

किसी की कला को परखे बिना, उसके विषय में अपनी धारणाएँ नहीं बना लेनी चाहिए। कलाकार अत्यंत संवेदनशील होता है। उसकी कला का अपमान हो तो वह राजाओं और राजाज्ञाओं तक का तिरस्कार कर सकता है।

द्रौपदी बोली- महारानी। राजा विराट अथवा कोई भी परपुरुष मुझे प्राप्त नहीं कर सकता। पाँच तरुण गन्धर्व मेरे पति हैं, जो सदा मेरी रक्षा करते रहते हैं। जो मुझे अपनी जूठन नहीं देता, मुझसे पैर नहीं धुलवाता, उसके ऊपर मेरे पति गन्धर्वलोग प्रसन्न रहते है; परन्तु जो मुझे अन्य साधारण स्त्रियोंके समान समझकर मेरे ऊपर बलात्कार करना चाहता है, उसको उसी रातमें शरीरत्याग करना पड़ता है; मेरे पति उसे मार डालते हैं। अत: कोई भी पुरुष मुझे सदाचारसे विचलित नहीं कर सकता।

सुदेष्णाने कहा- नन्दिनि। यदि ऐसी बात है, तो मैं तुम्हें अपने महलमें रक्खूँगी। तुम्हें पैर या जूठन नहीं छूने पड़ेंगे।

विराटकी रानीने जब इस प्रकार आश्वासन दिया, तब पातिव्रतधर्मका पालन करनेवाली सती द्रौपदी वहाँ रहने लगी; उसे भी कोई पहचान न सका । द्रौपदी सैरन्ध्री जानी गई। वह विराट राजा की महारानी सुदेष्णा के श्रृंगार का दायित्व उसके जिम्मे आया। रानीने पूछ तो लिया, किंतु तत्काल ही उनके मन में जैसे उनचासों पवन हरहरा उठे। धरती के नीचे मानों शेषनाग का फन डोलने लगा। वे क्या कर रही हैं? इस स्त्री को अपने घर में आश्रय देना चाहती हैं, जिसे देखते ही राजा विराट अपने संपूर्ण चित्त से उसमें आसक्त हो जाएँगे। इस दिव्य रूप को एक बार देख लेने के पश्चात् वे पलट कर

सुदेष्णा की ओर देखेंगे भी? वे ऊपर उठने के लिए वृक्ष पर चढ़ना चाहती हैं। अथवा गिर कर आमहत्या करने के लिए? वे क्या मादा केकड़े के समान गर्भ धारण करना चाहती हैं कि प्रसव के होते ही उनकी मृत्यु हो जाए। वे इस रूप की ज्वाला को अपने घर में रखना चाहती हैं, जिसकी उपस्थिति मात्र से उनके घर में आग लग सकती है?

कितने अजीब दृश्यों से भरा है जीवन नाटक का यह विडम्बित अंक, मत्स्य देश की राजधानी विराट नगरी के राजप्रासाद मे पांडव छदम वेश में आश्रय लिये है। एक वर्ष निर्विघ्न व्यतीत हो जाये तो इस दु:खमय रंगमंच पर अभिनय करते पर्दा पडे। अब पांडवों के लिये एक नया पर्व प्रारम्भ हुआ, पीडा का वह नया पर्व। त्रास का नया पर्व, अपमान और अन्याय का नया पर्व। जिन कार्यों को कभी नहीं किया था पांडव उन कार्यों को कर रहे थे। जिनकी स्वयं की सेवा मे असंख्य दास दासी सेवक, परिचारिकायें जुटी रहती थी वे स्वयं आज दीन हीन सेवक बने है। जो आज्ञा देते थे, वे आज आंखे मूंदकर आज्ञा पालन कर रहे है। जो महादानी थे और असंख्य लोगों को दान देकर उपकृत करते थे वे स्वयं विनम्रता से दान ले रहे है। कैसे-कैसे उस तेजस्विनी भारती का स्वाभिमान शेषनाग या सहस्त्र फण काढे फुफकार उठता और अन्त में केवल वह एक दीर्घ नि:श्वास लेकर रह जाती।

कितने प्रयास किये थे द्रौपदी ने पर कैसे छिपता रूप ज्योति जो अंशुमाली की सहस्त्रों रश्मियों सी निखरी पडी थी। सूर्य किरण जाल को पर्वत शिखर पर अधिक समय तक छिपाया जा सकता है क्या? इसलिये महारानी सुदेष्णा चकित हुई उसके रूपश्री को देखकर। सुदेष्णा को लगा उसके शारीरिक चिन्ह लक्षण सैरन्ध्री जैसे नहीं राजकन्याओं जैसे है। उनका सन्देह हटाने पांचाली ने समझाया कि वह महारानी द्रौपदी की सैरन्ध्री रह चुकी है और महारानी ने उसका नाम मालिनी रखा था। अब चूकि पांडव वन भ्रमण पर है अत: उस दीन को अवलम्ब चाहिये, जीविका चाहिये। महारानी सुदेष्णा सहसा विश्वास नहीं कर पायी। मन में भय व ईर्ष्या अंकुरित हो गई। उन्होने देखा राजमहल का पुरुषवर्ग वहां एकत्रित हो गया उस रूपमती सैरन्ध्री को देखने और यदि स्वयं महाराज विराट कहां से...

इस रूपसी को सेवा में रखना महारानी सुदेष्णा के लिये कितना अनिष्टकारी हो सकता है किन्तु जब उन्हे ज्ञात हुआ कि सैरन्ध्री के पांच गन्धर्वपति है जो सदा उसकी रक्षा करते है तथा वह स्वयं कितनी सत्यनिष्ठ है, सुशीला है, कर्तव्य परायणा है तो महारानी उसके गुणों पर मुग्ध हो गई। उस सैरन्ध्री का लावण्य ही उसकी सबसे गम्भीर समस्या बनते जा रही थी। जितना वह अपने दीन मलिन वस्त्रों से अपने सौन्दर्य को ढांकती कितना वह तो ओर ओर कस्तुरी की सुगन्ध सा प्रखर निखर होकर प्रकट हो जाता। महारानी सुदेष्णा भयभीत भी थी आशंकित भी थी। द्रौपदी जैसी रूपवती नारी को राजप्रासाद में रखकर कहीं उसके वृद्ध पति महाराज उस सैरन्ध्री की ओर आकृष्ट न हो जाये। द्रौपदी ने विनयपूर्वक महारानी से कहा था कि महारानी वह एक विवाहित नारी है। उसके पांच पति गन्धर्व है जो भाग्यादोष के कारण देश देशान्तरित है। अत: जीविका के लिये आपके आश्रय में है। उसके पति जब लौटेंगे तो वे उसे सम्मानपूर्वक घर ले जायेंगे। अत: उसके रूप की कोई चिन्ता न करे, न ही वह किसी को आकृष्ट करना चाहती है और जो कोई आकृष्ट होगा भी तो उसका भला नहीं होगा। उसके गन्धर्व पति ऐसे व्यक्ति को कठोर दंड देने से पीछे नहीं हठेंगे। बस एक अनुरोध है किवह किसी पर पुरुष की आज्ञा नहीं मानेगी और न ही किसी का जूठन खायेगी, स्पर्श करेगी।

किंतु अपने जिस दैवी रूप को वे आज अपने दर्पण में देख रही थीं, वे उसे खोना नहीं चाहती थीं। उस रूप के रहते राजा विराट को मुग्ध करने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। और फिर कीचक था वहाँ। राजा विराट कीचक की इच्छा के विरुद्ध तो जा ही नहीं सकते थे।

नहीं रानी। रक्षा तो अंग-रक्षक भी नहीं करते। स्त्री हो या पुरुष, व्यक्ति हो या समाज। रक्षा तो बस धर्म ही करता है। इसीलिए कहा जाता है कि धर्म का तिरस्कार नहीं होना चाहिए, न राजा के द्वारा, न सेनापति के द्वारा। मेरी रक्षा भी मेरा धर्म ही करेगा; इसलिए आपसे मुझे यह वरदान चाहिए कि मुझे अपने धर्म पर चलने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी। मनुष्य को केवल धर्म से डरना चाहिए। अधर्म से तो टकराना चाहिए।

आप मुझे अपने सिवाय और किसी की सेवा में नहीं भेजेंगी; और मैं अपनी इच्छानुसार अवगुंठनवती रह सकूँगी। सैरंध्री बोली, मेरी कला का सम्मान होगा, अत: मुझे एक कलाकार की प्रतिष्ठा मिलेगी, दासी का स्थान नहीं। न मुझे किसी का उच्छिष्ट भोजन छूना पड़ेगा, न किसी के चरण।

ठीक है सैरंध्री। मुझे तुम्हारी दोनों बातें स्वीकार हैं। तुम केवल मेरी सेवा में रहोगी और जिस स्त्री अथवा पुरुष के सम्मुख तुम नहीं आना चाहोगी, उसके लिए तुम्हें कोई भी बाध्य नहीं करेगा। तुम न किसी के चरण छुओगी, न किसी का उच्छिष्ट भोजन।

तब से वह सैरन्ध्री रानी सुदेष्णा की विश्वस्त सहचरी बन महारानी व राजकन्या उत्तरा के ही केश विन्यास और उनके प्रसाधन श्रृंगार में ही व्यस्त अन्त:पुर में रहने लगी। रानी द्रौपदी को देखकर स्तब्ध रह गई। यह सैरन्ध्री तो जैसे कोई उल्का ही थी। उसकी दंतावली देखकर किसी का हृदय भी पिघलकर बूंद बूंद बह जायेगा और यदि कही कोई वह पुरुष हृदय हुआ तो उसका स्पंदित होना ही कठिन होगा। सैरन्ध्री की मुस्कान भी थी शरण पूर्णिमा की उजास। महारानी ने पहली बार उसके अधरों को देखा तो लगा यह कामदेव का पुष्प धनुष ही साक्षात प्रकट हो गया। सैरन्ध्री बोली मेरी कला का चमत्कार किसी दासी के भाग्य में नहीं है। यदि मेरी कला का चमत्कार ही देखना है तो या तो आप ही यह कष्ट करे अथवा राजकुमारी उत्तरा को अनुमति दे। किसी की कला को परखे बिना उसके विषय में अपनी धारणायें नहीं बना लेनी चाहिये। कलाकार अत्यन्त संवेदनशील होता है। उसकी कला का अपमान हो तो वह राजाओं और राजाओं तक का तिरस्कार कर सकता है। सैरन्ध्री ने महारानी को बता दिया था कि वह पाप पूर्ण जीवन व्यतीत करना नहीं चाहती। न ही वह भिक्षा पर निर्भर रहना चाहती। प्रभु से उसे सक्षम शरीर मिला है और हाथों में कला। महाराज विराट ने भी सैरन्ध्री को एक नजर देखा। और उसका सौन्दर्य महाराज के हृदय को भी स्पर्श कर गया। विराट बहुत देर तक सोने का प्रयत्न करते रहे; किंतु क्लांति का अनुभव होते हुए भी उनको नींद नहीं आ रही थी। मन में बार-बार प्रात: देखी हुई सैरंध्री की छवि साकार हो उठती थी। बहुत निकट से अथवा बहुत ध्यान से तो वे उसे देख भी नहीं पाए थे। रानी के पुकारने पर उसने एक बार आँखे उठाकर उस ओर देखा भर था; और विराट को लगा था कि वैसे नयन तो उन्होंने आज तक देखे ही नहीं थे, काव्य में पढ़े और कवियों के मुख से सुने अवश्य थे। आज तक तो वे यही समझते आए थे कि यह कवियों की कल्पना मात्र ही थी; किंतु आज उन्होंने जाना था कि कवियों के उस वर्णन का आधार क्या था। वे नयन उनके वक्ष में जैसे गड़ से गए थे; और उनकी चुभन थी कि तीव्र से तीव्रतर होती जा रही थी। वे अपनी आँखें मूँद लेते, तो भी वे नयन, अदृश्य नहीं होते थे। उनकी वे अधखुली पलकें, उनकी वे लंबी बरौनियाँ, जैसे किसी छायादार वृक्ष की कोई इंद्रधनुषी टहनी। तन को तो दूर से भी जाना जा सकता है, मन को जानने के लिए तो बहुत निकट जाना पड़ता है।

**८) सहदेव, अर्जुन और नकुलका विराट के भवन में प्रवेश -** वैशम्पायन कहते हैं तदनन्तर सहदेव भी ग्वालेका वेष बनाकर वैसी ही भाषा बोलता हुआ राजा विराट की गोशालाके निकट आया। उस तेजस्वी पुरुषको बुलाकर राजा स्वयं उसके समीप गये और पूछने लगे- तुम किसके आदमी हो, कहाँसे आये हो? कौन-सा काम करना चाहते हो? ठीक-ठीक बताओ। सहदेवने कहा- मैं जातिका वैश्य हूँ, मेरा नाम अरिष्टनेमि है; पहले मैं पाण्डवोंके यहाँ

गौओंकी सँभालके लिये रहता था, पर अब तो वे पता नहीं कहाँ चले गये। बिना काम किये जीविका नहीं चल सकती और पाण्डवोंके बाद आपके सिवा दूसरा कोई राजा मुझे पसंद नहीं है, जिसके यहाँ नौकरी करूँ।

राजा विराटने कहा- तुम्हें किस कामका अनुभव है? किस शर्तपर यहाँ रहना चाहते हो? और इसके लिये तुम्हें क्या वेतन देना पड़ेगा? सहदेव बोले- मैं यह बता चुका हूँ कि पाण्डवोंकी गौओंको सँभालनेका काम करता था। वहाँ लोग मुझे तन्तिपाल कहते थे। चालीस कोसके अंदर जितनी गौएँ रहती हैं उनकी भूत, भविष्य और वर्तमान कालकी संख्या मुझे सदा मालूम रहती है; कितनी गौएँ थीं, कितनी हैं और कितनी होंगी- इसका मुझे ठीक-ठीक ज्ञान रहता है। जिन उपायोंसे गौओंकी बढ़ती होती रहे, उन्हें कोई रोग-व्याधि न सतावे- उन सबको मैं जानता हूँ। इसके सिवा मैं उत्तम लक्षणोंवाले ऐसे बैलों की भी पहचान रखता हूँ, जिनका मूत्र सूँघने मात्रसे वन्ध्या स्त्रीको भी गर्भ रह जाता है।

विराटने कहा- मेरे पास एक ही रंगके एक लाख पशु हैं, उनमें सभी उत्तम गुणोंका सम्मिश्रण है। आजसे उन पशुओं और उनके रक्षकोंको मैं तुम्हारे अधिकारमें सौंपता हूँ। मेरे पशु अब तुम्हारे ही अधीन रहेंगे, इस प्रकार राजासे परिचय करके सहदेव वहाँ सुखसे रहने लगे; उन्हें भी कोई पहचान न सका। राजाने उनके भरण-पोषणका उचित प्रबन्ध कर दिया।

तदनन्तर वहाँ एक बहुत सुन्दर पुरुष दीख पड़ा, जो स्त्रियोंके समान आभूषण पहने हुए था, उसके कानोंमें कुण्डल और हाथोंमें शंख तथा सोनेकी चूड़ियाँ थीं। उसके लंबे-लंबे केश खुले हुए थे। भुजाएँ बड़ी-बड़ी और हाथीके समान मस्तानी चाल थी। मानो वह अपने एक-एक पगसे पृथ्वीको कँपाता चलता था। वह वीरवर अर्जुन था। राजा विराटकी सभामें पहुँचकर उसने अपना इस प्रकार परिचय दिया- महाराज। मैं नपुंसक हूँ, मेरा नाम बृहन्नला है। मैं नाचता-गाता और बाजे बजाता हूँ। नृत्य और संगीतकी कलामें बहुत प्रवीण हूँ। आप मुझे उत्तराको इस कलाकी शिक्षा देनेके लिये रख लें। मैं महारानीके यहाँ नाचनेका काम करूँगा।

विराटने कहा- बृहन्नले। तुम्हारे जैसे पुरुषसे तो यह काम लेना मुझे उचित नहीं जान पड़ता; तथापि मैं तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार करता हूँ, तुम मेरी बेटी उत्तरा तथा राज परिवारकी अन्य कन्याओंको नृत्यकलाकी शिक्षा दिया करो।

यह कहकर मत्स्यनरेशने बृहन्नलाकी संगीत, नृत्य और बाजा बजानेकी कलाओंमें परीक्षा की। इसके बाद अपने मन्त्रियोंसे यह सलाह ली कि इसे अन्त:पुरमें रखना चाहिये या नहीं। फिर तरुणी स्त्रियाँ भेजकर उसके नपुंसकपनेकी जाँच करायी। जब सब तरहसे उसका नपुंसक होना प्रमाणित हो गया, तब उसे कन्याके अन्त:पुरमें रहनेकी आज्ञा मिली। वहाँ रहकर अर्जुन उत्तरा और उसकी सखियोंको तथा अन्य दासियोंको भी गाने, बजाने और नाचनेकी शिक्षा देने लगे; इससे वे उन सबके प्रिय हो गये। कपट वेषमें कन्याओंके साथ रहते हुए भी अर्जुन सदा अपने मनको पूर्ण रूपसे वशमें रखते थे। इससे बाहर या भीतरका कोई भी उन्हें पहचान न सका।

इसके बाद नकुल अश्वपालका वेष धारण किये राजा विराटके यहाँ उपस्थित हुआ और राजभवनके पास इधर-उधर घूम-फिरकर घोड़े देखने लगा। फिर राजाके दरबारमें आकर उसने कहा- महाराज। आपका कल्याण हो। मैं अश्वोंको शिक्षा देनेमें निपुण हूँ, बड़े-बड़े राजाओंके यहाँ आदर पा चुका हूँ। मेरी इच्छा है कि आपके यहाँ घोड़ोंको शिक्षा देनेका काम करूँ।

विराटने कहा- मैं तुम्हें रहनेके लिये घर, सवारी और बहुत-सा धन दूँगा। तुम हमारे यहाँ घोड़ोंको शिक्षा देनेका काम कर सकते हो। किंतु पहले यह तो बताओ तुम्हें अश्वसम्बन्धी किस कलाका विशेष ज्ञान है। साथ ही अपना परिचय भी दो।

नकुलने कहा- महाराज। मैं घोड़ोंकी जाति और स्वभाव पहचानता हूँ, उन्हें शिक्षा देकर सीधा कर सकता हूँ। दुष्ट घोड़ोंको ठीक करनेका भी उपाय जानता हूँ। इसके सिवा घोड़ोंकी चिकित्साका भी मुझे पूरा ज्ञान है। मेरी सिखायी हुई

घोड़ी भी नहीं बिगड़ती, फिर घोड़ोंकी तो बात ही क्या है? मैं पहले राजा युधिष्ठिरके यहाँ काम करता था, वहाँ वे तथा दूसरे लोग भी मुझे ग्रन्थिक नामसे पुकारते थे।

विराट बोले- मेरे यहाँ जितने घोड़े और वाहन हैं, उन सबको मैं आजसे तुम्हारे अधीन करता हूँ। घोड़े जोतनेवाले पुराने सारथि लोग भी तुम्हारे अधिकारमें रहेंगे। तुमसे मिलकर आज मुझे उतनी ही प्रसन्नता हुई है, जितनी राजा युधिष्ठिरके दर्शनसे होती थी।

इस प्रकार राजा विराटसे सम्मानित होकर नकुल वहाँ रहने लगे। नगरमें घूमते समय भी उस सुन्दर युवकको कोई पहचान नहीं पाता था। जिनके दर्शनमात्रसे ही पापोंका नाश हो जाता था, वे समुद्रपर्यन्त पृथ्वीके स्वामी पाण्डवलोग इस तरह अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार अज्ञातवासकी अवधि पूरी करने लगे।

**९) सैरन्ध्री महारानी सुदेष्णा के अन्त:पुर में -** महारानी सुदेष्णा बोली तुम श्रृंगार कला में निपुण हो। रानी द्रौपदी तो तुमसे बहुत प्रसन्न रही होगी। सैरन्ध्री बोली मैं उन्हें याद नहीं करती महारानीजी। सुदेष्णा बोली मैं समझ सकती हूँ कि उन्हें याद करने से तुम्हारे हृदय में टीस उठती होगी। मुझे तो उन महाभाग पांडवों पर आश्चर्य होता है जो कभी युद्ध में नहीं हारे वो भला सब कुछ सम्पत्ति, राजमुकुट, अपना तेज और अपनी रानी द्यूत के कपट में कैसे हार गये? सैरन्ध्री बोली यदि सम्राट युधिष्ठिर यह सब कुछ न हारते तो संसार को यह उपदेश कैसे मिलता कि द्यूत कितना सर्वनाश का बीज, अशुभ, अकुशंक, कितना खोटा, कितना विनाशकारी होता है। महारानी सुदेष्णा बोली यह तो तुमने सच कहा सैरन्ध्री। मैं अपने महाराज विराट से कितनी बार कहती हूं कि वे चौसर की लत छोडिये पर वो कहते है धनुष और चौसर क्षत्रिय की पहिचान है। और एक दिन जब मैंने बहुत हठ की तब वे बोले मैं तुम्हे वचन देता हूं कि तुम्हे दांवपर नही लगाऊंगा। और अब तो महाराज को वह युधिष्ठिर का चाटुकार कंक मिल गया है। रात दिन उसी के साथ लगे रहते हैं। भगवान लम्बी आयु दे मेरे भाई कीचक को जिसके कारण जिसके भुजबल से यह राज्य बचा हुआ है। अरे हां तुमने तो इस कंक को वहां देखा होगा। क्या वहां भी यह सम्राट युधिष्ठिर का ऐसा ही मुंह लगा था? सैरन्ध्री बोली महाराज युधिष्ठिर के प्राण तो उनके अनुजों में बसते थे। वो स्वयं ही अपने उतने निकट नहीं है जितने अनुज। महारानी सुदेष्णा बोली यह तो अच्छी बात है। अब यह तो बता क्या द्रौपदी को लेकर क्या पांचों पांडवों में कभी कोई खिंचाव नहीं हुआ? सैरन्ध्री बोली मैने तो वहां कोई खिंचाव अनुभव नहीं किया। महारानी ने कहा फिर तो यह बडे ही आश्चर्य की बात है और यदि तुम यह सच कह रही हो तो रानी द्रौपदी बहुत आदरणीया नारी है। उन्होने अवश्य ही कोई मोहिनी खिला दी होगी पांचो पांडवों को, वैसे भी वो होगी तो बहुत सुन्दर। तनिक उनके सौन्दर्य का बखान तो कर।

सेना कीचक के अधिकार में है। वह स्वयं योद्धा है और महाराज विराट के पास कोई ऐसा यौद्धा नहीं है जो कीचक से लोहा ले सके। कीचक के अनेक भाई भी विराट नगर में आकर अपने पैर जमा चुके है। महाराज विराट के अधिकार में क्या है? ऊपर से देखने पर तो सब कुछ महाराज विराट के ही अधिकार में है किन्तु वास्तविकता तो यह है कि उनका अन्त:पुर भी उनके अधिकार में नहीं है। वहां पर महारानी सुदेष्णा का शासन है और वह है कीचक की बहन। वह महाराज की प्रत्येक इच्छा का विरोध कर सकती है किन्तु कीचक की किसी भी इच्छा का विरोध नहीं कर सकती। महारानी का व्यवहार भी अपने भाई के प्रेम से नहीं उसके भय से संचालित होता है।

उसी समय विराट पुत्री उत्तरा अपनी माता के कक्ष में आती है। महारानी सुदेष्णा बोली उत्तरा तुम हिरनी नहीं पुत्री। कन्या हो। क्या बृहन्नला ने तुम्हे चलना नहीं सिखाया। उत्तरा बोली- क्षमा चाहती हूँ माताश्री। महारानी बोली बृहन्नला क्या वास्तव

में संगीत और नृत्य कला में निपुण है सैरन्ध्री? सैरन्ध्री बोली यह तो आप स्वयं सोच लीजिये महारानी जी जिसे चित्रसेन ने गायन और नृत्य की शिक्षा दी होगी वो कैसे होगी? उनके पखावट का स्वर तो इन्द्र लोक तक जाता होगा और अप्सरायें नृत्य करने लगती है। अर्जुन नपुंसक बन वृहन्नला नाम से आया और महाराज विराट से बोला कि वह धर्मराज युधिष्ठिर के अन्त:पुर में था और उनके परिवार की स्त्रियों को संगीत और नृत्य की शिक्षा दिया करता था। विभिन्न परीक्षण और परीक्षाओं के पश्चात कि वह पुंसत्वहीन है विराट ने उसे राजकुमारी उत्तरा के नृत्य और संगीत शिक्षक के रूप में नियुक्त कर दिया। बृहन्नला का ही काम सबसे कठिन था परन्तु अर्जुन की क्षमता में तो कोई शंका सन्देह नहीं था। परन्तु किसी सुन्दर नारी शरीर के मोहक आकर्षणों के सम्मुख किसी भी प्रकार के काम विकार को उत्पन्न भी न होने देना साधारण कार्य नहीं था। बृहन्नला को नृत्य और संगीत का सम्यक ज्ञान है। अर्जुन राजकुमारी उत्तरा और महारानी सुदेष्णा के मनोरंजन में समय बिताते है। अन्त:पुर में ही रहते हैं। रनिवास में दास-दासियां, सेविकायें, परिचारिकों के साथ हंसी ठठा करते रहते हैं। जिसका शौर्य और पौरुष ही द्रौपदी के कौमार्य जीवन का सपना था उसका आज यह नपुंसक बृहन्नला का अभिनय।

बृहन्नला संगीत व नृत्य विराट कुमारी उत्तरा को सिखा रहा है। बृहन्नला बोली- अच्छा राजकुमारी अब एक आवृतिवाला तोडा करो। नृत्य में आंखे, विकटों और अंगुलियों का बोलना आवश्यक है। और नृत्य में देखनेवालों की आँखों को कान बनाने की कला है। कुछ कहना न पडे और सामनेवाले की आंखे कान बनकर तुम्हारी बातें सुन ले। नृत्य गुरु है। जो शब्द का अर्थ बतलाता है इसलिये नृत्य को मनोरंजन समझने की भूल न करो। नृत्य सभ्यता की तपस्या है। साधना करो, तपस्या करो। मुझे देखो और अब तुम अभ्यास करो।

सैरन्ध्री बोली- राजकुमारी की जय हो, महारानी अपने कक्ष में आपकी प्रतीक्षा कर रही है। उत्तरा बोली- आज्ञा है और बृहन्नला को प्रणाम कर जाती है। बृहन्नला बोला- आओ सैरन्ध्री। पांचाली अपनी आंखों से यह परिवाद का काजल पौंछ डालो। द्रौपदी बोली- मेरी आंखों में परिवाद तो है ही नहीं यह तो उस चेतना का रंग है कि मैं कारण हूं तुम सबकी इस दुर्दशा का। सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर, गाण्डीवधारी अर्जुन बृहन्नला के वेश में हवज बजाता हुआ, पवन जैसा शक्तिशाली भीम एक रसोइया बना हुआ, सम्राट युधिष्ठिर एक राजा का चाकर। अर्जुन बोला- परिस्थिति के ऊपर रोना तुम्हे शोभा नहीं देता पांचाली। ये परीक्षा के दिन है। इन्हें न मेरे बाण काट सकते है और न नकुल, सहदेव की तलवार। बडे भैय्या का भाला इन्हें छेद नहीं सकता और मझले भैया की गदा इन्हें तोड नहीं सकती पांचाली। दिन को तो स्वयं उसके क्षण काटते है पांचाली स्वयं उसके क्षण। बारह वर्ष का वनवास तो कट ही गया ना। अब यह एक वर्ष का अज्ञात वास भी कट ही जायेगा। क्या महारानी सुदेष्णा का व्यवहार उचित नहीं था? द्रौपदी बोली- यह बात नहीं है किन्तु वह सदैव पांडवों और मेरी ही बात करती है। अर्जुन बोले- वो तुमसे तुम्हारी बातें अधिक करती होगी। सुन्दर स्त्रियों के बारे में पूछताछ करना स्त्रियों का जन्मसिद्ध अधिकार है। एक दिन तुम उन्हें बता ही डालो कि इन्द्रप्रस्थ की पटरानी दिखने में कैसी है? परन्तु नहीं ना बताना। यदि बता दिया तो वह यह सोचकर तुमसे जलने लगेगी कि तुम संसार की सबसे सुन्दर स्त्री की सेवा में रह चुकी हो। द्रौपदी बोली- ऐसे में भी तुम ठिठोली कर सकते हो? अर्जुन बोला- संकट में ही तो संकट पर हंसना चाहिये पांचाली। सच पूछो तो संसार में संकट के अतिरिक्त, हंसी उडाने योग्य कुछ है ही नहीं। पांचाली तनिक यह तो सोचो कि भ्राता दुर्योधन हमें खोजने के लिये कितना छटपटा रहा होगा? और वो मामाश्री उनकी तो नींद ही उड़ गई होगी? द्रौपदी बोली- मैं उन सबके विषय में सोचना भी नहीं चाहती। सोचती हूं तो मेरा रक्त खौलने लगता है। मेरे ये खुले केश मेरे गले में फन्दा डालने लगते है।

बृहन्नला को गुरु मानकर उत्तरा अत्यन्त प्रसन्न है। अन्त:पुर की स्त्रियों में संगीत और नृत्य को लेकर एक नया उत्साह

उत्पन्न हो गया है। उन्हे इस प्रकार का जीवंत शिक्षक पहली बार मिला है। बृहन्नला का कंठ किन्नर कंठ है। उससे संगीत की धारा बहती है वह दिव्य है। महाराज युधिष्ठिर तो धन्य है जिसकी सभा में कितने सारे दिव्य रत्नों को पाकर भी उन्हे तनिक सा भी अहंकार नहीं था और उस दुराचारी दुष्ट ने युधिष्ठिर को नष्ट करना चाहा।

बल्लव रसोइया जिससे स्नेह करता है अथवा जिसका सम्मान करता है उसके प्रति उसका पूर्ण समर्पण है और निष्ठावान है। बलशाली मल्ल है। भीम रात दिन खूब परिश्रम करते हैं। स्वादिष्ट भोजन बनाकर वे सबको परासेते हैं। सबके खा चुकने के बाद स्वयं हांडी बर्तन लेकर बैठ जाते है और सारा पदार्थ उदरस्थ कर लेते हैं। रसोई बनने के बाद सबसे पहिले खानेवाले जीव है। भोजन परोसने में तनिक देर नहीं हुई कि तूफान खडा कर देते हैं। भोजन के सामने उनका धैर्य, ज्ञान सब कुछ लोप हो जाता है। और यहाँ कितनी मुश्किल कि आखिर तक बिना खाये रहते हैं तथा औरों को भोजन पहिले करवाते हैं। मुंह किये अपने लोभ का संवरण कर परोसते हैं। भीम जब भोजन लेकर बैठते तो दासियों, रसोईये सेवक वगैरह सब तमाशा देखने उन्हे विदूषक समझकर उन्हे घेर कर खडे हो जाते है। महाबली भीम महाराज विराट की पाकशाला में बल्लव बनकर सूपकार नियुक्त हुये थे। विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों के ज्ञाता महापराक्रमी भीम ने पाकशास्त्र व सुस्वादु व्यंजन बनाने में अपनी निपुणता गा-गाकर बतायी कि आजीवन वे यही कार्य करते रहे। परम सुन्दर नकुल अश्वशाला में ग्रन्थिक बने और सहदेव तन्तिपाल नाम का गोपाल तथा चारुशीला पांचाली सैरन्ध्री। इस प्रकार सभी पांडव विराट के यहां रहने लगे। राजा विराट के महल में नकुल घोडों को घास डाल रहा है। सहदेव नकुल के पास आता है। नकुल बोला बडे भैय्या ने कहा है कि हमें खुलकर नहीं मिलना चाहिये। सहदेव बोला तुम्हे दो महिनों से देखा नहीं था। बडे भैया, मझले भैया और छोटे भैया के दर्शनों को तो कुछ ही दिनों में चार महिने हो जायेंगे। नकुल बोला क्या तुम यह समझते हो कि मेरा जी नहीं चाहता उनसे मिलने को। अरे हम तो एक-दूसरे से अलग तो हुये ही नहीं पर क्या करे विवश हैं। एक दिन मैं महाराज के लिये अश्व लेकर राजभवन गया था तो उनके दास ने कहा भोजन करके जाना। नया रसोइया बहुत स्वादिष्ट भोजन बनाता है। वो स्वादिष्ट भोजन क्यों न बनाये? सम्राट युधिष्ठिर की पाकशाला का रसोइया जो ठहरा तो फिर मैं रसोई में चला गया। मझले भैय्या इतने प्रसन्न हुये कि वो रो पडे। मैं उनकी रसोई में चला गया यह देखकर रसोई का सेवक बोला यह क्या बल्लभ महाराज आप रो रहे हैं? भीम बोला आंखों में धुआं लग गया था। सेवक बोला इसे तो आप जानते होंगे यह महाराज युधिष्ठिर की अश्वशाला सम्हालता था। भीम बोला हां एक आध बार देखा था वहां। मुझसे बोले कैसे हो भैया? मैंने कहा भगवान की कृपा है और आपकी दया। भीम बोला अब तुम आ ही गये हो तो भोजन करके जाना। सेवक बोला इसीलिये तो इसे साथ लेकर आया हूं। बेचारा एक दिन तो उत्तम भोजन कर ले। आप इसे खाना खिलाये मैं अभी आता हूं।

भीम बोले नकुल सहदेव कैसा है। नकुल बोला १२-१६ दिन पहिले मैं अश्वों को चराने निकला था तब उससे भेंट हुई। वो भी ठीक है। व्याकुल है आपके दर्शनों के लिये। भीम बोला उसको कहो थोडे दिन और व्याकुल रहे। यदि मुझे पता होता तुम आ रहे हो तो मैं तुम्हारी रुचि का भोजन तैयार करता। सेवक नकुल के लिये भोजन लेकर आता है। भीम बोला यह दाल खाओ तो माताश्री की याद आजायेगी। बचपन में यह दाल बहुत खाई हम लोगों ने। नकुल बोला बडे भैया कैसे हैं? भीम बोला यदि कोई सम्राट सेवा चाकरी करे तो कैसा होगा? बस ऐसे ही है वो। चाकरी किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा दिया हुआ काम होता है जो हम आजीविका के लिये करते हैं किन्तु अपना काम तो अपने मन की मौज का होता है। नकुल ने पूछा और अर्जुन कैसे है? भीम बोला बृहन्नला के रूप में राजकुमारी उत्तरा को नृत्य सिखा रहा है। और हजारों दासियां जिस द्रौपदी के केश विन्यास करती थी

वो द्रौपदी आज मत्स्य देश की पटरानी के केश संवार रही है। भीम नकुल को अपने हाथ से खाना खिला रहा है। नकुल सहदेव से बोला उसके पश्चात मैं भी कभी राजभवन गया ही नहीं। सहदेव बोला रोओ मत नकुल। तुम यहां रोओगे तो क्या वहां माताश्री को पता नही चलेगा? इस दु:ख की पीडा को सहो नकुल। नकुल बोला मुझमे तुम्हारी जितनी सहनशक्ति कहां है? सहदेव बोला तो आज मेरी एक बात सुन लो नकुल। मझले भैय्या ने दुर्योधन और दुशासन को उनके वध के लिये चुन लिया है, छोटे भैय्या ने तो उस सूत पुत्र कर्ण को चुना है परन्तु उस कपटी शकुनि को सब भूल गये जो हमारे और हमारे कुल के अपमान के वृक्ष की जड है। आज मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि वो कपटी शकुनि मेरे हाथों मारा जायेगा, हां मेरे हाथों।

**प्राण हरुंगा शकुनि के, कहता दु:खी सदैव, आज प्रतिज्ञा कर रहा पांडु पुत्र सहदेव।**

**१०) सैरन्ध्री अन्त:पुर में उत्तरा के नृत्य कक्ष में बृहन्नला के पास -** बृहन्नला उत्तरा को भरत नाट्यम् नृत्य का अभ्यास करा रही है। सैरन्ध्री ने आकर कहा उत्तरा तुम्हें महारानी अपने कक्ष में बुला रही है। उत्तरा अपने गुरू बृहन्नला से अनुमति ले वहां से चली गई। अब बृहन्नला को सैरन्ध्री से बात करने को एकान्त मिल गया। बृहन्नला ने निकट आकर पूछा कैसी हो सैरन्ध्री। सैरन्ध्री के मुख से शब्द नही फूटा वह जैसे अपने कंठ मे सिसकी दबाये बृहन्नला की ओर देखती रही। उसकी आंखो में आंसू उमड आये। बृहन्नला ने मुस्कुरा कर सैरन्ध्री की ओर देख कर कहा तुम मेरे इस रूप को देख कर दु:खी हो रही हो सैरन्ध्री। ये तो बाह्य रूप है जो माया है, वह सत्य नहीं है। कृष्ण कहा करते है न कि असत् की कोई सत्ता नही होती और सत का कभी अभाव नहीं है। कहो ग्रंथिक और तंतिपाल के बारे में कोई समाचार? सैरन्ध्री बोली नहीं अभी तो कोई समाचार नहीं है। रानी को मेरी कला कुछ इतनी भा गई कि मुझे तनिक भी अवकाश नहीं मिलता उनकी रूपसज्जा और केश विन्यास से। इसीलिये कहीं आ जा नहीं पाई। नारी को भगवान ने बनाया ही कुछ ऐसा है कि वह प्राण भले ही त्याग दे परन्तु अपना सुन्दर रूप बने रहना कभी नहीं त्याग सकती। अब यह बताओ बृहन्नला अन्त:पुर में तुम्हारा निर्वाह कैसा हो रहा है। नपुंसक मान कर तुम्हारा कोई अपमान तो नहीं करता? बृहन्नला बोला यहां कोई मैं अकेला ही नपुंसक थोडे ही हूं। यहां तो पूरा राज परिवार नपुंसकों से भरा पडा है। सैरन्ध्री बोली सुना है राजकुमारी उत्तरा तुम्हारा बहुत सम्मान करती है? बृहन्नला ने कहा हां वह तो बेचारी कुछ अधिक ही सम्मान करती है अपने इस कलाकार गुरु का। वह सम्मान ही नहीं करती बहुत स्नेह भी करती है। मालूम पडता है कि पुत्री का स्नेह क्या होता है? दु:ख होता है कि हमारी कोई पुत्री नहीं है। सैरन्ध्री बोली सखि बृहन्नले नपुंसक के सन्तान नहीं होती फिर पुत्र क्या और पुत्री क्या? सैरन्ध्री विनोद में यह कह तो गई परन्तु उसके मन में पुत्री का भाव जगा दिया। पता नहीं पुत्री का स्नेह प्रत्येक पिता को विह्वल करता है अथवा केवल उनको जिनकी अपनी पुत्रियां नहीं होती। सैरन्ध्री बोली मैं चाहती हूं कि किसी को भी मेरे अस्तित्व का यहां पता न चले। हमारे अज्ञातवास के लिये किसी भी प्रकार का प्रचार नुकसानदायक हो सकता है। बृहन्नला ने पूछा महारानी तुम्हारी सुरक्षा के लिये इतनी चिंतित क्यों रहती है सैरन्ध्री?

सैरन्ध्री बोली सम्भवत: मेरी कला से मुग्ध हो महारानी अपने यौवन और सौन्दर्य को अधिक मादक और मोहक आकर्षक बनाये रखना चाहती है। रसिक पुरुषों को मुझसे दूर रखने का रानी सतत प्रयास करती रहती है। वे राजा से उस कष्ट का प्रतिशोध लेना चाहती हो जो उन्हे अवस्था में स्वयं से इतने बडे राजा से विवाह करने पर हुआ था। वे मुझे सम्मुख रख राजा के मन में कामना जगाना चाहती हो परन्तु राजा को मेरी ओर आकर्षित होने से रोकने के लिये कर रही हो। बृहन्नला ने कहा कदाचित यह ही हो। सत्यवती ने भी तो महाराज शान्तनु से इसी प्रकार प्रतिशोध लिया था। कैकयी ने

भी राजा दशरथ से इसी प्रकार अपनी प्रतिशोध की ज्वाला को शान्त किया था। मुझे लगता है कि माता गान्धारी ने भी अब तक महाराज धृतराष्ट्र से अपना प्रतिशोध ही लिया है अन्यथा हस्तिनापुर में शकुनि का इतना महत्व नहीं होता।

सैरन्ध्री बोली मैं आज भोजन में कोई दोष निकाल कर झगडने के बहाने बल्लभ रसोइये से भेंट करने का प्रयत्न करूंगी, अवश्य ही उसके पास ग्रंथिक और तंतिपाल का कोई समाचार होगा। बृहन्नला ने कहा हमें किसी न किसी बात को लेकर बल्लभ से मिलते रहना चाहिये। हम लोग बल्लभ के माध्यम से एक-दूसरे के सम्पर्क में आ सकते हैं। सैरन्ध्री बोली अब मुझे चलना चाहिये और यह कहकर सैरन्ध्री बल्लभ महाराज से मिलने चली गई।

बृहन्नला उत्तरा को नृत्य कक्ष में नृत्य की शिक्षा दे रहे हैं कि इतने में ही महाराज विराट के वहां पधारने की सूचना मिली। महाराज विराट और रानी सुदेष्णा वहां नृत्य देखने के लिये नृत्य कक्ष में आते हैं। उत्तरा ने अपने माता-पिता को प्रणाम किया। विराट नरेश बोले तुमने तो हमारी उत्तरा का मन मोह लिया है बृहन्नला। उठते बैठते वो तो तुम्हारी ही बातें करती रहती है। कहती है कि इन्द्र की अप्सरायें भी नृत्य और गायन का प्रदर्शन तुमसे अच्छा नहीं कर सकती। बृहन्नला बोली ये तो अपने गुरु के लिये राजकुमारी का आदर पूर्ण स्नेह है नहीं तो कहां मैं और कहां नृत्य? महारानी सुदेष्णा बोली हम आज यह देखने आये थे कि तुमने हमारी उत्तरा को सिखाया क्या है? बृहन्नला बोली ऐसा कहकर महारानी मेरी परीक्षा ले रही है या उत्तरा की। विराट नरेश बोले माना की तुम्हारा सम्बन्ध इन्द्रप्रस्थ से है। वो लोग कलाओं के परख में निपुण है। हम भी कलाओं की थोडी बहुत समझ तो रखते ही हैं। बृहन्नला बोली जो आज्ञा महाराज, विराजिये और देखिये। महाराज और महारानी विराट उत्तरा का नृत्य देखने लगे। राजा विराट बोले बृहन्नला तुमने तो हमारा मन मोह लिया। महारानी बोली उत्तरा से अच्छा नृत्य स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी भी नहीं कर सकती। बृहन्नला बोली उर्वशी। वो तो माता है महारानी। महाराज और महारानी उत्तरा की नृत्य शिक्षा देखकर प्रसन्न हुये।

विराट अपने राज दरबारी कंक के साथ अपने राजभवन में चौसर का खेल खेल रहे हैं। विराट बोले यह बृहन्नला तो नृत्य और गायन में निपुण है। कंक बोला नृत्य और गायन में ही नहीं महाराज वो तो शस्त्रज्ञान में भी निपुण है। विराट हंसने लगता है और बोला क्या बात करते हो बृहन्नला और शस्त्र, कंक पांसे फेंको। उसी समय वहां महारानी सुदेष्णा आती है। महारानी बोली कंक मैं यह पूछती हूं कि महाराज युधिष्ठिर की दुर्दशा देखकर भी इन्हे समझाने के बदले इनके साथ रात दिन चौसर खेलते रहते हो। क्या इनकी भी वही दुर्दशा देखने के उपरान्त जाओगे? विराट अपनी महारानी को डांटकर बोले महारानी। महारानी सुदेष्णा बोली क्या मेरा प्रश्न ठीक नहीं है? कंक बोले आपका प्रश्न तो ठीक है महारानी परन्तु परिस्थिति कभी अशुभ प्रश्न करती ही नहीं। महारानी बोली तो फिर मेरे प्रश्न का उत्तर दो कंक। कंक बोले महाराज के आदेश का पालन करना मेरा कर्तव्य है। महारानी बोली पर तुम्हारे महाराज युधिष्ठिर को किसने आदेश दिया था? कंक बोला क्षत्रिय मर्यादा ने महारानी।

महारानी सुदेष्णा बोली और क्या क्षत्रिय मर्यादा ने यह आदेश भी दिया था कि वे अपने राज्य के साथ-साथ अपनी पत्नी सहित अपने भाइयों को भी दांव पर लगा दे? मैं तो यह समझ नहीं पा रही कि वे कैसे धर्मराज हैं। कंक बोला यदि वे सब कुछ दांव पर न लगाते महारानी तो यह कैसे सिद्ध होता की द्यूत क्रीडा कितनी अशुभ और व्यक्ति विनाशक क्रीडा है। द्यूत की पकड इतनी गहरी होती है महारानी कि न तो जीतनेवाला ही उठना चाहता है और न ही हारनेवाला। महारानी बोली अच्छा ये बताओ कंक एक बार सब कुछ हारने के पश्चात फिर महाराज युधिष्ठिर क्यों खेलने बैठ गये? महाराज धृतराष्ट्र ने तो एक बार तो सब कुछ लौटा भी दिया था। कंक बोला यदि कोई क्षत्रिय किसी की कृपा से राजा हो जाये तो फिर वो कैसा क्षत्रिय? कैसा राजा? राज्य किसी की कृपा से नहीं महारानीजी अपने बाहुबल से लिया जाता है। सम्भवत: ज्येष्ठ

पिताश्री से मिला हुआ वह राज्य मछली के कांटे की भांति उनके गले में अटक गया हो। महारानी बोली यह मैं नहीं मानती कंक। महाराज धृतराष्ट्र उनके ज्येष्ठ पिता हैं तो उनका आशीर्वाद अस्वीकारणीय कैसे हो सकता था? कंक बोले आप यह नहीं मानती महारानी तो फिर यह मानिये की दूसरे द्यूत का आदेश भी उन्होने ही दिया था और उनके आदेश का पालन करना ज्येष्ठ कुन्ती पुत्र का कर्त्तव्य था। कदाचित भाग्य रेखा भी उसी दिशा में जा रही थी।

इतने में ही चर ने आकर सूचना दी महावीर सेनापति कीचक राजधानी में पधारे है और राजभवन में आ रहे हैं। महारानी बोली मेरे भाई आ गये। कीचक ने आकर महारानी को प्रणाम किया।

**दुर्जनता के वृक्ष पर फल लगता जो श्राप, कीचक ऐसा श्राप है और ऐसा पाप।**

सुदेष्णा ने पूछा कैसे हो भैय्या? कीचक बोला मैं प्रसन्न हूं, सुखी हूं, आनंदित हूं किन्तु देख रहा हूं कि तुम तो मुझसे भी बहुत अधिक सुखी स्थिति में हो। सुदेष्णा बोली हां भ्राताश्री मैं तो परम सुख की स्थिति में हूं। जिस बहन के वीर भाई उसे सारी सुख सुविधायें उपलब्ध कराने को तत्पर हो वह बहन तो परम सुख की स्थिति में ही होगी। आप नहीं होते तो विराट नगर का जीवन जैसे थम ही जाता है, कोई गति विधि ही नहीं रहती। कीचक वहां से निकलकर अपने भवन चला गया।

सैरन्ध्री महारानी सुदेष्णा के केशों की सज्जा कर रही होती है। महारानी सुदेष्णा बोली सैरन्ध्री। सैरन्ध्री बोली जो आज्ञा महारानी। महारानी बोली बहुत दिनों से मैं तुम्हे एक बात पूछना चाह रही थी कि तुम्हारे केश ये जो इतने मृदुल, घने और लम्बे हैं, तुम इनकी देख रेख की ओर ध्यान क्यों नहीं देती? हर समय खुले ही रहते हैं। क्या तुम्हे अपने इन घने लम्बे और कोमल केशों से लगाव अथवा प्रेम नहीं? सैरन्ध्री बोली पहिले तो मैं इन्हे बांधे रखती थी महारानीजी। महारानी बोली लेकिन अब क्यों इन्हे खुला छोड दिया है? जैसे ये केश तुम्हारे अपने न हो। किसी और के हो। सैरन्ध्री बोली जी नहीं चाहता। महारानी ने पूछा तो किन्तु जी क्यों नहीं चाहता? सैरन्ध्री बोली वो क्या है महारानीजी मैं यहां आने से पहिले इन्द्रप्रस्थ की पटरानी द्रौपदी की सेवा में थी और उन्होंने अपने केश खोल रखे हैं। उनके प्रति मेरी निष्ठा अपने केश बांधने नहीं देते। जिस दिन वो अपने केश बांध लेगी उसी दिन मेरे ये केश भी बन्ध जायेंगे। महारानी बोली मुझे तो उनके केश बन्धना सम्भव नहीं लगता सैरन्ध्री। दुशासन ने हस्तिनापुर की शक्ति के राज्य का कवच पहन रखा है। मुझे तो यह भी नहीं लगता कि उनका अज्ञातवास सफल भी हो पायेगा। हस्तिनापुर के गुप्त चरों की सेना उन्हे चारों दिशा में खोज रही होगी। तनिक विचार करो सैरन्ध्री। गांडीवधारी अर्जुन, गदाधारी भीम, धर्मराज युधिष्ठिर बांका नकुल, सजीला सहदेव ये भला छिपे कैसे रह सकते हैं। ये तो कदाचित सम्भव है कि खोजनेवाले को चन्द्रमा न भी मिले परन्तु चन्द्रवंशी पांडव न मिले यह तो सम्भव ही नहीं। सैरन्ध्री बोली क्या आप यह चाहती है कि महारानी अज्ञातवास का वर्ष समाप्त होने से पहिले ही पांडव हस्तिनापुर वालों को मिल जाये। महारानी बोली मैं यह कदापि नहीं चाहती। सच पूछो तो जब मैं द्रौपदी के विषय में सोचती हूं तो मेरी आंखे भर आती है। जुआ खेले धर्म राज और दंड भुगत रही है वो। एक स्त्री का अपमान कोई स्त्री कैसे सहन कर सकती है? कभी-कभी तो मेरा मन करता है कि उन्हे श्राप दे दूं धर्मराज युधिष्ठिर को। सैरन्ध्री बोली नहीं। नहीं महारानीजी भगवान के लिये ऐसा मत कीजिये। दोष न तो धर्मराज का है और न ही द्रौपदी का। जो कुछ हुआ है उसमें थोडा बहुत हाथ द्रौपदी के भी अभिमान का भी था। और यह भी हो सकता है कि आगे जो कुछ भी होनेवाला है उसकी भूमिका हो। महारानी बोली हां तो तुम भाषा तो क्षत्रियों की तरह बोलती हो सैरन्ध्री। सैरन्ध्री बोली मुझे महाराज द्रुपद के राजभवन में यही भाषा सिखाई गई थी महारानीजी। महारानी बोली अच्छा-अच्छा तो तुम काम्पिल्य से ही द्रौपदी के संग हो। सैरन्ध्री बोली संग न होता

कैसे? महारानीजी मैं तो उनकी परछाई हूं। महाराज मुझे पुत्री कह कर बुलाया करते थे। और युवराज को मैं भाई कहा करती थी और सैरन्ध्री रोने लगी बोली मैं क्षमा चाहती हूं। महारानी बोली मैं तुम्हारे आंसुओं की भाषा समझती हूं सैरन्ध्री। तुम्हारी जैसी दासी मिलना तो सौभाग्य की बात है। अब तुम जाओ।

**११) द्रौपदी पर कीचक की मदान्ध आसक्ति -** जैसे ही द्रौपदी कक्ष से निकलकर बाहर आयी थी कि सामने से महाराज विराट का श्याला महारानी का भाई कीचक आ गया और बीच रास्ते में खडा हो गया। द्रौपदी बोली क्षमा चाहती हूं और हाथ जोड कर एक तरफ से निकल गई। कीचक उसे देखता रहा। महारानी सुदेष्णा बोली भैया आप यहां क्यों खडे है? कीचक बोला यह दासी राजभवन में कब आई तुमने अभी तक मुझे बताया नहीं। महारानी बोली एक वर्ष के लगभग हो गया, दुखिया है बेचारी। महारानी द्रौपदी की प्रसाधिका थी। कीचक बोला चलो द्रौपदी को तो नहीं देखा तो उसकी प्रसाधिका को ही देख लिया। इसके सौन्दर्य में तो अग्नि की लपट है बहिन। निकट से गई तो एक आंच सी लगी। महारानी बोली यह क्या भैय्या। कीचक बोला मैं जल गया हूं। सुदेष्णा यह अग्नि तो अब बुझानी ही पडेगी। उसकी चाल की शालीनता देखी। दासियां ऐसे नहीं चलती। ये तो देवियों के चलने की शैली है। तुमने इसे दासी बना कर इसके साथ बडा अन्याय किया है। इसे कहो कि आकर मेरा भवन सम्हाले। सुदेष्णा बोली मेरे रोकने भर से तो आप रूकनेवाले नहीं।

एक दिन द्रौपदी महाराज विराट के उद्यान में बैठी हुई थी कि इतने में कीचक वहां पर आया और बोला सैरन्ध्री तुम यहां क्यों बैठी हो क्या कर रही हो? इस वाटिका के खिले हुये सारे फूल तो तुम्हारे इस अभिन्न अपूर्व सौन्दर्य से जल रहे है। सुदेष्णा भला तुम्हारे सौन्दर्य को क्या मान सम्मान दे सकती है? तुम्हारे इस मुखडे के दर्शन कर लेने के उपरान्त अब मैं पूर्णमासी के चन्द्रमा की ओर कभी नहीं देखूंगा। उसने नि:सन्देह तुम्हारे इस उज्ज्वल मुखडे से भिक्षा में चांदनी पाई होगी। तुम सैरन्ध्री नहीं हो सकती। हां तुम कमल पर बैठी हुई श्री शुभ हो सकती हो। तुम प्रेम की देवी रति अवश्य हो सकती हो अर्जुन और कर्ण जैसे धनुर्धारी भी तुम्हारे नयनों के बाणों का सामना नहीं कर सकते। ये बाण उनकी छाती छेदकर उनके हृदय में उतर जायेंगे। कामदेव के बाणों से घायल कीचक पर अब दया करो। मेरी कामना की तपती भूमिपर सावन बनकर बरस जाओ सुन्दरी। तुम स्त्री नहीं हो, तुम तो सौन्दर्य का हस्ताक्षर हो। तुम्हारे लिये मैं अपनी सारी पत्नियों को त्याग दूंगा। उन्हे तुम्हारी दासियां बना दूंगा। यह कह तरह-तरह के अश्लील इंगित करने लगा ताकि हृदय में काम जागे। द्रौपदी को पुरुष के शौर्य, वीरता और पांडित्य के प्रति जितना आदर और आकर्षण है उसकी अन्धी कामवासना से उतनी ही घृणा और वितृष्णा है। अत: कीचक के प्रति घृणा पैदा हो गई। फिर भी कीचक निर्लज्ज ही बना रहा। कामुक पुरुष पशु के समान होता है। पशु को लज्जा कैसी? उसका क्या मान-अपमान?

द्रौपदी बोली हे महारथी मैं तो केवल सैरन्ध्री हूं। एक साधारण सी प्रसाधिका। मैं इस सम्मान के योग्य भी नहीं। मनुष्य वही महान है जो यौद्धा है, जो अपने वैवाहिक जीवन की खींची हुई लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन न करे। धर्मानुसार दूसरों की पत्नियों का आदर करना चाहिये। और मां-बहन के समान उनके सम्मान की रक्षा करनी चाहिये। मैं भी एक ब्याहता हूं। मेरे सिर पर मर्यादा की ओढनी है और सेनापति होने के नाते उस ओढनी की रक्षा करना आपका कर्तव्य है। कीचक बोला परन्तु ये सब मैं जानता हूं किन्तु तुम्हे पाने के लिये मैं अपने धर्म को भी त्याग सकता हूं। और मैं तुम्हे तुम्हारे धर्म के हाथों से छीन भी सकता हूं। मुझे स्वीकार कर तुम अच्छा नहीं कर रही हो सैरन्ध्री। मैं यहां का राजा नहीं हूं परन्तु इस राज्य और राजनीति की नदी मेरी ही भुजाओं से निकलती है। सैरन्ध्री बोली आप स्वयं आपने जीवन के शत्रु क्यों बन रहे है सेनापति

कीचक? मै सैरन्ध्री अवश्य हूं परन्तु असहाय नहीं हूं न अनाथ ही हूं। पांच शूरवीर मेरे सम्मान और शरीर के रक्षक है। मै पांच गन्धर्व महावीरों की पत्नी हूं और उन्हे इसकी तनिक सी भनक पड गई कि आपने इस वाटिका में मुझे रोककर मेरा अपमान तिरस्कार किया है तो मेरी महारानी को आपके शव पर रोना पडेगा इसलिये मेरी बात सुनिये अपनी मृत्यु को मत आमंत्रित कीजिये मैंने आपकी बहिन का नमक खाया है, मैं उनके भाई की मृत्यु का कारण नहीं बनना चाहती। मेरी प्रतिष्ठा मेरा सम्मान एक पर्वत है और यदि आप इससे टकरायेंगे तो उस पर्वत का तो कुछ नहीं बिगडेगा परन्तु आप कण-कण होकर बिखर जायेंगे। कीचक वहां से क्रोधित हो चला गया।

**१२) कीचक के द्वारा द्रौपदी का अपमान -** कीचक क्रोधित हो सुदेष्णा के कक्ष में उसके पास आता है। सुदेष्णा बोली आप यहां। कीचक बोला प्रिय बहिन सुदेष्णा तुम यह चाहती हो कि मैं जीवित रहूं तो तुम्हारी इस सैरन्ध्री को समझाओ की वह मुझे स्वीकार करे। क्योंकि यदि उसने ऐसा नहीं किया तो मैं अपने प्राण दे दूंगा। सैरन्ध्री को तुमने अपने श्रृंगार के लिये रखा है इतना तो तुम जानती हो कि वह तुम्हारी अपेक्षा मेरे लिये कही अधिक काम की चीज है। तुम्हारा श्रृंगार तो कोई भी सैरन्ध्री कर देगी किन्तु मेरे जीवन को तो वो ही धन्य कर सकती है। महारानी के मन में अनेक प्रकार के संकल्प विकल्प एक साथ ही आकार ग्रहण कर रहे थे। क्या कीचक को इस प्रकार की मांग करने का कोई नैतिक आधार है? क्या उसे कीचक की बात मान लेनी चाहिये? महारानी ने सैरन्ध्री को वचन दिया था कि वे उसे किसी और की सेवा में नहीं भेजेगी। क्या वे कीचक को मना कर पायेगी? यदि वे मना कर भी दे तो क्या कीचक मान जायेगा? महारानी सुदेष्णा बोली भ्राताश्री आप नहीं जानते कि वो विवाहिता है और वो मेरी शरण में है। सैरन्ध्री के विषय में ऐसा सोचकर मुझे लज्जित मत करो। कीचक बोला क्या इससे पूर्व संसार में कभी किसी विवाहिता स्त्री का सम्बन्ध अपने प्रेमी से नहीं हुआ? सुदेष्णा बोली लेकिन यह वैसी स्त्री नहीं है जैसी तुम समझ रहे हो। कीचक बोला लगता है तुम पहिले ही उससे मेरे विषय में पूछ चुकी हो। सुदेष्णा बोली वो किसी पुरुष के सामने जाना भी नहीं चाहती, बहुत ही पतिव्रता स्त्री है। कीचक बोला मैं ऐसी स्त्रियों को बहुत अच्छी तरह से जानता हूं। उनके पति तो होता ही नहीं और अपना भाव बढ़ाने के लिये सतीत्व का पाखंड रचती है।

कीचक बोला प्रत्येक व्यक्ति की प्रेम की अपनी अवधारणा होती है। कोई अपने स्थान पर बैठकर किसी को स्मरण कर रोने को प्रेम कहता है और हम जैसे क्षत्रिय वीर अपने बाहुबल से किसी को प्राप्त कर लेने की इच्छा को प्रेम कहते हैं। सुदेष्णा बोली वैसे तो त्याग का भाव ही प्रेम है पर आप जैसे कुछ लोग बलात आधिपत्य के भाव को भी प्रेम कहते है। यदि तुम्हे अपने जीवन से और अपनी बहिन से प्रेम है तो अपने हृदय से इस भावना को यों निकाल दो जैसे मिथ्याचारी दास को घर से निकाल दिया जाता है। तुम्हारी इस भूल का परिणाम पूरे परिवार को भुगतना पडेगा। कीचक बोला तो यह है तुम्हारा अपने भाई के लिये स्नेह। सुदेष्णा बोली मैं पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म का अन्तर जानती हूं भैया परन्तु तुम मेरे भाई हो इसलिये मैं तुम्हे त्याग नहीं सकती। नरक के मार्ग पर भी मैं तुम्हारे साथ चलूंगी। कीचक बोला ठीक है मैं अपने भवन में उसकी प्रतीक्षा करूंगा। सुदेष्णा अपने भाई के स्नेह और भय से यह घिनौना कर्म करने के लिये भी तैयार हो गई।

द्रौपदी के मन में विचार आया कि यदि कीचक के इंगित इशारे व्यवहार के बारे में युधिष्ठिर को बताये जाय क्योंकि अर्जुन इस समय बलहीन, पौरुषरहित और फिर निरस्त है। यदि भीम को बता देती है तो वो ऐसा कोई कर्मकांड कर बैठेगा कि बस सारा भेद ही खुल सकता है। हमारे स्वामी है युधिष्ठिर उन्हे बता देने से सोचा था दु:ख मिट जायेगा परन्तु वे ठहरे निर्विकार। न्याय, धर्म, सहनशीलता, क्षमा, उदारता के आगे स्त्री की मर्यादा, लाचारी, दु:ख दर्द, अपमान उनके लिये

कुछ नहीं था। पांचाली की घबराहट, लाचारी, क्रोध, घृणा देखकर नीति वचन सुनाते याज्ञसेनी तुम तो विदुषी हो, विद्यावती भी। स्वयं अपनी रक्षा न करने पर आदमी को कोई भी नहीं बचा सकता। सावधानी से कीचक की कामना का शिकार बनने से बचकर दूर रहो। ऐसा कुछ न कर बैठना कि पांडवों का भेद, रहस्योदघाटन हो जाये, नहीं तो फिर से विपन्न हो जायेंगे। अभी परिचय देने का समय नहीं आया है। विराट के अन्त:पुर में अनेक सुन्दरी ललनाओं के रहते कीचक की निगाहे सैरन्ध्री पर ही क्यों पडी उसे तो बहुत पहिले ही सावधान हो जाना चाहिये था।

सुदेष्णा ने कीचक को समझाया था कि सैरन्ध्री कोई ऐसी वैसी स्त्री नहीं है पर कीचक ने कह दिया था कि ऐसी स्त्री और वैसी स्त्री क्या होती है। स्त्री तो होती ही है भोग्या। उसे तो वह स्त्री चाहिये, चाहे जैसी भी हो। सुदेष्णा ने कीचक को बताया था क्षत्रियों में कन्या हरण होता है पर किसी अन्य की भार्या का हरण नहीं होता। विवाहिता का हरण किया था रावण ने और उसके लिये उसे अपने प्राण देने पडे। प्रयत्न किया था उस मूर्ख जयद्रथ ने द्रौपदी का हरण करने का। उसे भी उसका फल भोगना पडा। अब यदि नहीं मान रहे तो स्वयं भी प्रयत्न कर देख ले। सुदेष्णा के स्वर में न अधिकार रहा न वह तेज। सुदेष्णा जानती है कि सैरन्ध्री की इच्छा के विरुद्ध कुछ हुआ तो वह विराटनगर छोडकर ही चली जायेगी। सुदेष्णा ने कीचक को समझाया था कि जिस पुरुष की कामना को स्त्री का मन स्वीकार नहीं करे, भला वह उस पुरुष को क्या सुख देगी? कीचक ने सुदेष्णा से कहा कुछ स्त्रियां मानने में विलम्ब करती है, दिखावा करती है। उन्हे मनाने के लिये श्रम करना पडता है। मन मे तो हां हां हाहाकार उठा रहता है पर ऊपर से ना में सिर हिलाती रहती है।

कीचक ने सुदेष्णा से कहा किसी पर्व, त्यौहार के दिन किसी उत्सव पर किसी भी बहाने से उसे मेरे प्रासाद में भेज देना। वह वहां आयेगी और मेरा वैभव देखेगी, मेरी क्षमता और शक्ति को पहिचानेगी तब एकान्त में मैं उसे मना लूंगा। एकान्त में ही सुविधा रहेगी। सबके सामने तो उसे भी संकोच होगा। प्रत्येक स्त्री चाहती है कि वह संसार की सबसे सुन्दर नारी हो किन्तु सौन्दर्य कितना बडा संकट है इसकी ओर उसका ध्यान आकृष्ट नहीं होता। यदि सैरन्ध्री इतनी सुन्दर नहीं रही होती साधारण से ही रंग रूप की होती तो महारानी सुदेष्णा इस प्रकार के संकट में तो नहीं घिरती। सुदेष्णा ने अपना मन कठोर बनाया अपने भाई कीचक के समान।

एक दिन कीचक माधवी के मद में था और ऊंचे में गगन विहार कर रहा था। कीचक को लग रहा था सब लोग वचन तो दे देते हैं किन्तु पूरा उन्हे कोई नहीं करता। कीचक चाह रहा था कि सुदेष्णा अपनी सैरन्ध्री को समझाकर भेजे कि वह उसके साथ माधवी पान करे, स्वीकार कर उसके साथ समागम करे। केवल राज प्रसाद में आ जाने से ही क्या होगा? सैरन्ध्री को सुरक्षा का वचन महारानी सुदेष्णा ने दिया था वो पूरा नहीं कर पा रही तो फिर असमर्थ व्यक्ति के वचन का मूल्य ही क्या? न्याय तो वही कर सकता है जो समर्थ हो। सैरन्ध्री नहीं जानती कि राजा और राज परिवार के लोग समय आने पर स्वेच्छाचारी भी हो जाते हैं। दासियां, परिचारिकायें, सैरन्ध्रियां भी राजपरिवार के पुरुषों की इच्छाओं की अवमानना करने लग जाये तो फिर यह संसार कैसे चलेगा? किसी को वचन देने में कहने और करने में कितना अन्तर होता है। कहने भर से किसी का क्या बनना या बिगडना होता है किन्तु उस वचन के कर्म में परिणित होते ही स्थितियों में बदलाव आ जाता है। सुदेष्णा ने सैरन्ध्री से कहा सर्व सुन्दर केश विन्यास तो तुमने कर दिया। आज की ऋतु अनुसार श्रेष्ठ माधवी भी तो चाहिये जो मेरी और महाराज की प्यास मिटा सके। आज हम छक कर पी सकें। वो कौनसी मादक माधवी है?

सैरन्ध्री बोली महारानी जी मैं तो सैरन्ध्री हूं मैं यह सब क्या जानूं? मेरा माधवी से क्या सम्बन्ध? यह कार्य तो मधुबालाओं का है? सुदेष्णा बोली सारी माधवियों में सबसे बढ़कर मादक केकय माधवी है जा लेकर आजा। जानती है कहां से

मिलेगी? सैरन्ध्री बोली नहीं महारानी। सुदेष्णा बोली मेरे भाई कीचक ने वह सुगंधित सुवासित मादक माधवी केकय देश से मंगवाई है, उनके प्रासाद में कल ही आई है भागकर जा तत्काल ले आ। जा रिक्त मद्यपात्र ले जा। उस दिन विराट नगर के अन्त:पुर में किसी विशेष उत्सव का आयोजन था। उत्सव की कर्ता धर्ता थी स्वयं महारानी सुदेष्णा। नृत्य गीत एवं पान भोजन का विपुल आयोजन। युधिष्ठिर भोजन के पश्चात महाराज के साथ पांसे खेल रहे हैं। भीम पाकशाला में दौड धूप कर रहे। अर्जुन नृत्य परिवेषण में लगे हुये। नकुल अतिथियों के अश्वों की देखरेख के दायित्व में तथा सहदेव सदा की तरह गौशाला में व्यस्त। रानी सुदेष्णा बृहन्नला का नृत्य शिक्षण देखकर मुग्ध हो रही। पर सैरन्ध्री अन्दर ही अन्दर मन में घुट रही थी। जो फाल्गुनी स्वयंवर सभा में पृथ्वी के सारे वीरों को जय कर कृष्णा को लाये वो ही आज स्त्रियों के बीच अन्त:पुर में मनोरंजन के लिये नृत्य कर रहे हैं। वाह रे विधाता।

सैरन्ध्री का क्रोध सहस्त्र धार में बरस पडा विराट पत्नी महारानी सुदेष्णा पर। महारानी ने कीचक के साथ षडयन्त्र में शामिल हो जानबूझ कर उसे कीचक के राजमहल में अपने लिये कोई श्रेष्ठ मदिरा लाने के लिये भेजना चाहा। जब महारानी ने उसे वहां जाने का आदेश दिया तभी उसी समय उसकी अन्तरात्मा विद्रोह कर उठी। साहसपूर्वक, दृढ़तापूर्वक वह नि:संकोच भाव से आहत स्वर में बोली नहीं महारानी जी मैं नहीं वहां जा सकूंगी। क्या आप जानती नहीं है वह कैसा व्यक्ति है? वह जब तब भी मुझे छेडखानी करते रहता है, अपमानित करता है। मैंने पहिले ही आपको बता दिया था कि मैं कोई नीच कार्य नहीं करूंगी। इस समय अत्यधिक मद्यपान कर सेनापति कीचक उन्मत अवस्था में है, ऐसी स्थिति में किसी कामान्ध पुरुष के कक्ष में जाना किसी भी नारी के लिये असम्मानजनक और विपदपूर्ण होगा। अत: मुझे इसके लिये क्षमा करें। मुझे याद है महारानीजी परन्तु कदाचित आप यह भूल गई है कि मैं एक पत्नी हूं। मदिरा लाने के लिये आप किसी और सेविका को भेज दें। आपकी सेवा में जब आई थी तब आपने मुझे वचन दिया था कि आप मुझे किसी और की सेवा में नहीं भेजेगी। आप अपना वचन भूल रही हैं महारानी।

रानी सुदेष्णा कठोर स्वर में बोल उठी मैं तुम्हे ही भेजना चाहती हूं मेरे आदेश का अमान्य मत करो। मैं तुम्हे अपने भाई की सेवा में नहीं तुम मेरी ही सेवा में हो। माधवी की आवश्यकता मुझे है, पिपासिता मै हूं फिर क्या यह मेरी सेवा नहीं है। सैरन्ध्री बोली आप तो जानती हैं कि वो कैसा निर्लज्ज है? मैं अपने पतियों की दृष्टि में व्यभिचारिणी और स्वेच्छाचारिणी होकर आपके राजप्रासाद में नहीं रह सकती। आप तो जानती हैं कीचक कैसे काम मद से उन्मत हो रहा है? सुदेष्णा ने आग्रह कर कहा व्यर्थ आशंकित मत हो सैरन्ध्री। जाओ और अविलम्ब मदिरा ले आओ। सैरन्ध्री बोली जो आज्ञा महारानी परन्तु परिणाम की उत्तरदायी भी आप ही होंगी।

**जब मन बेबस होकर करे कोई अनुचित काम, तब उसका ना दीखता क्या होगा परिणाम।**

रिश्ते नाते के चक्कर भी अजीब होते हैं। उनका मोह कभी कभार बहका भी देता है। मोह और भक्ति में यही तो अन्तर है। भक्ति अपने आप से अलग होने का नाम है और मोह सबको अपने अन्दर समेट लेने का इस कथा में मोह और भक्ति दोनों ही धाराये साथ-साथ बह रही है। धृतराष्ट्र पुत्र मोह का प्रतीक है और भीष्म पितृ भक्ति का। विराट रानी सुदेष्णा भातृमोह की मृगतृष्णा में भटक गई है। उसने द्रौपदी को कीचक के पास भेजने की भूल कर ही डाली और परिणाम के विषय में नहीं सोचा क्योंकि मोह तो परिणाम के विषय में सोचना जानता ही नहीं। कीचक के भवन में जाती हुई द्रौपदी नहीं वो तो महारानी सुदेष्णा के मोह का परिणाम है।

द्रौपदी वहां से उठ खडी हुई। महारानी सुदेष्णा अपने भाई की काम वासना चरितार्थ करने के लिये षडयन्त्र कर रही है।

सैरन्ध्री की विवशता थी। कुछ दिनों के लिये महारानी का आश्रय और चाहिये था। सैरन्ध्री जानती थी कि वह लपलपाती अग्नि शिखा में प्रवेश कर रही है। सागर की अतल गहराई की ओर बढ रही है। हिंस्र व्याघ्र की रक्त पिपासा शान्त करने उसके आहान की ओर बढ रही है। कीचक के शारीरिक बल के आगे वो नगण्य है। सैरन्ध्री का नारीत्व विपन्न अवस्था में है फिर भी पांव आगे बढाने होंगे जैसे शूली का आसामी भी खूंटे तक चल कर जाता है। वह अपनी इच्छा से नहीं चलता है पर उसके पांव राजा के आदेश का पालन कर आगे उस रास्ते पर बढाने पडते है, सैरन्ध्री की दशा भी ठीक वैसी ही थी। भूखे बाघ के पिंजडे में कूद पडना और कीचक के कक्ष में पांव धरना समान ही था। कीचक के द्वार पर लाचार हो एकदम असहायता से टूट गई। कृष्ण का स्मरण कर सैरन्ध्री बोली हे सखा तुम्ही मेरे ईश्वर हो, प्रियतम हो। तुम्हारी यह प्रिय सखी कृष्णा का मान-सम्मान सब तुम्हारा ही है। अब इसकी लाज रखना। अन्त में विवश, असहाय द्रौपदी को क्षोभ के अश्रु ज्वाल को हृदय में समेटे जाना ही पडा।

कृष्ण क्या नहीं जानता? कृष्ण के लिये क्या अज्ञात है। अर्जुन ने भी तो कहा था कि पांचाली तुम्हारी जैसी सती नारी के तेज के सम्मुख कौनसा आततायी ठहर पायेगा? कौन परगामी स्त्री लम्पट तुम्हारी दृष्टि की अग्नि को सहन कर पायेगा? द्रौपदी का वेश बदला है किन्तु अब भी वह द्रुपद सुता कृष्णा तो है ही। मन ने कहा कृष्ण की सखी तो हूं ही इसलिये निर्भय होकर जाओ।

द्रौपदी कीचक के भवन में गई और बोली सेनापति कीचक की जय हो। कीचक सैरन्ध्री की प्रतीक्षा में तो बैठा ही था बोला आओ सैरन्ध्री आओ माधवी का पान करो। मेरी स्वामिनी बनो और मेरा प्रिय कार्य करो। मेरी मनोकामना पूर्ण करो सुन्दरी। सैरन्ध्री बोली, मैं महाराज के लिये मदिरा लेने आई हूं, महारानी ने मंगवाई है। कीचक बोला मदिरा तो तुम स्वयं ही हो सैरन्ध्री और आज मैं तुम्हें जी भर के पीऊंगा। द्रौपदी बोली दूर हटिये सेनापति। कीचक ने देखते ही दोनों भुजायें बढाकर उसे ग्रस जाने को आगे आया। सैरन्ध्री ने उसे जोर से धक्का दिया, वह अपना सन्तुलन खोकर गिर पडा। इसी बीच में सैरन्ध्री त्रस्त होकर हिरणी की तरह बाहर दौड पडी। कीचक भी उठकर अपने को सम्भालकर जोर जोर से असभ्य हंसी में हंसता हुआ उसके पीछे भागने लगा और बोला मत्स्य देश में कीचक से भागकर छिपने का कोई स्थान ही नहीं है। सैरन्ध्री अपनी पूरी क्षमता भर भाग रही थी। कीचक को किसी से भय भी नहीं था और न ही लज्जा। सैरन्ध्री प्राण पण से दौडती दौडती राजसभा में आ गई जहां राजा विराट और कंक थे और बोली दुहाई है महाराज, अपनी प्रजा की रक्षा कीजिये। बल्लभ रसोइया भी वहाँ यह शोर सुन कर आ गया था। राजा के साथ-साथ कंक तथा बल्लभ ने ही नहीं पूरी राजसभा ने देख लिया था। उधर कीचक भी उन्मत दशा में पीछे-पीछे आ गया और सबके सामने सैरन्ध्री के खुले केश पकडकर घसीट नीचे डाल दिया और पैर से चोट खाकर अश्लील गालियां देने लगा। उस निर्मम बाज के भयंकर पंजों से किसी प्रकार भयातुर हो वन कपोती पंख फडफडाती हुई सी भाग कर महाराज विराट की राजसभा में छटपटाती हुई सी आ गिरी। पीछे पीछे वह मद्यप पान से क्रोध में बावला हुआ दौडता कीचक वहां आ पहुंचा और आते ही उसने पांचाली पर कसकर पद प्रहार किया युधिष्ठिर कंक के वेश में वही बैठे सब कुछ चुपचाप देखते रहे। युधिष्ठिर देख रहा होता है, अपना सिर झुका लेता है परन्तु मौन रहता है और दांत पीस कर रह जाता है। भीम कहीं जा रहा होता है वह पांचाली की आवाज सुनकर वहां आ जाता है। कीचक सबके सामने द्रौपदी की हंसी उडा रहा होता है। लज्जा और अपमान से जर्जर हो सैरन्ध्री ने युधिष्ठिर की ओर इशारा कर राजा विराट से कहा नारी के लिये न्याय का मार्ग चारों ओर से बन्द है। कामुक पुरुष उसे बलात्कार करे और सबके आगे अपमान करे, उसे मामूली सा वाद मानकर राज्यशासन इसमें हस्तक्षेप न करे यह कहां का न्याय है। राजा अपने विलास में सुख से पांसा खेलने में लगा रहे। राजा यदि किसी नारी की रक्षा नहीं कर सके

तो फिर उसे आत्महत्या की अनुमति प्रदान करें महाराज।

विराट राजा अभी भी चुप है। कीचक के बाहुबल के भरोसे पर ही तो वे राजा हैं फिर वे क्या उत्तर दें? सैरन्ध्री का गुस्से में फूट पाने का अवसर भी नहीं है। चीख कर हल्की भी तो नहीं हो सकती। आंसू झराकर असहायता समझाने लायक पति युधिष्ठिर है ही नहीं। कभी इनके आगे आंसू बहाने का कोई अर्थ ही नहीं। मान को जो महत्व नहीं देते उनके आगे गुमान करना हास्यपद ही है। यदि किसी के आगे आंसू बहाना ही पडे तो उन्मुक्त मना स्पष्टवादी भीम के सामने ही। वो द्रौपदी के आंसुओं की यथार्थता समझ ले तो फिर सागर तक लांघ जाने की क्षमता रखते हैं। सैरन्ध्री बने स्वयं को ईश्वर के भरोसे छोड दिया। पति होता है स्त्री का ईश्वर। वह यदि पत्नी की रक्षा करने में असमर्थ है तो वह ईश्वर कैसे बनेगा? ईश्वर वही पुरुष हो जो रक्षक हो। द्रौपदी सखा कृष्ण को ही ईश्वर आसन पर बैठाकर पूजा करती। वे ही उसके विपद बन्धु है, त्राण हर्ता है, ईश्वर है, हृदयेश्वर, प्रात: स्मरणीय प्रिय बांधव है। दूर भी हो तो हर पल हर समय उन्हे हृदय में स्थापित कर विपद टालती जाती। जब उस अधम कीचक का पाद प्रहार सहना पडा तो पांचाली शत शत ज्वालाओं सी दहक उठी।

युधिष्ठिर अविचलित पांसा फेंकते रहे और सिर उठाकर भी सैरन्ध्री की ओर नहीं देखा। भीम को वहां देखकर बोले बल्लभ महाराज आप यहां क्या कर रहे हैं? क्या बात है? आपका यहां क्या काम है? ईन्धन चाहिये तो बाहर जाओ परन्तु एक बात स्मरण रखना जो वृक्ष छाया देता हो उसकी एक-एक पत्ती भी आदरणीय होती है समझे। कंक का आदेश सुनकर भीम अपना क्रोध संवरण कर वहां से चला गया। सैरन्ध्री के गिर जाने में मुंह से खून गिरने लगा। महाराज विराट चुपचाप अपने साले की यह घृणित करतूत देखते रहे पर कुछ न बोले। द्रौपदी बोली प्रजा राजा की सन्तान होती है महाराज। राजमुकुट के साथ यह प्रतीज्ञा भी जुडी होती है कि वह राजा अपनी प्रजा की रक्षा के लिये उत्तरदायी है। जिस सिंहासन पर आप विराजमान है वह धर्म का स्थान है। मैं एक असहाय अबला नारी हूं, आपसे गुहार कर रही हूं कि मेरी रक्षा कीजिये। मैं सेनापति कीचक पर यह आरोप लगा रही हूं कि इसने मेरे सतीत्व के चांद पर ग्रहण लगाने का प्रयत्न किया है और वह भी यहां महाराज के सामने। उसने मुझपर हाथ उठाया है, उसके साक्षी आप स्वयं महाराज की आंखे भी है और वो सारी आंखे जो यहां पर उपस्थित है। मेरे इस अपमान का साक्षी यह लहू भी है जो मेरे निर्दोष होठों से बह रहा है। अब आप मेरे इन साक्षियों का प्रमाण मानकर सेनापति कीचक को उसके अपराध का दंड दे महाराज। फिर भी राजा विराट चुप रहते है और कुछ नहीं बोलते।

राजा ने सब कुछ देखा। निश्चित रूप से राजसभा के सम्मुख राजा की उपस्थिति में बिना कोई कारण बताये हुये एक स्त्री को इस प्रकार अपमानित करना उदंडता की पराकाष्ठा थी। राजा के मन में भी आक्रोश जागा था। उनका मन आक्रोश से जल रहा था। वे देख रहे थे कि कीचक मद्यपान के प्रभाव में था और उसके प्रभाव में वह कुछ भी कर सकता था। सभासदों ने देखा सैरन्ध्री का अपमान हुआ है। उनमें से कई समवेत स्वर में चिल्लाये यह अन्याय है महाराज। दुष्ट कीचक को इसका दंड मिलना ही चाहिये। सैरन्ध्री बोली राजन जैसे कोई ममतामयी मां अपने अबोध शिशु की रक्षा करती है वैसे ही धर्म प्राण राजा को अपनी प्रजा का पालन करना चाहिये। मैं अनाथ हूं अब क्या इस पापी को दंडित करना आपका धर्म नहीं है? राजा बोले सैरन्ध्री तुम दोनों में जो कलह हुई है, वह हमारे सामने नहीं हुई है। उस सारी बात को जाने बिना कोई राजा न्याय कैसे कर सकता है? इसलिये हमारे को सारी बातें जानना आवश्यक है कि तुमने सेनापति कीचक को अपने किस कृत्य से क्रोधित कर दिया। सेनापति का अपराध तो सबने देखा किन्तु हमको तुम्हारे अपराध के बारे में भी जानना तो होगा। राजा कीचक की ओर देखकर बोले सेनापति कीचक तुम्हे स्मरण रहना चाहिये कि राजसभा की अपनी मर्यादा

होती है। मदिरा पान कर राजसभा में प्रवेश कर उत्पात करना शोभनीय नही है। भविष्य में इस प्रकार का व्यवहार न हो।

द्रौपदी बोली हे मत्स्य नरेश या फिर आप भी हस्तिनापुर नरेश की भांति एक नारी का अपमान चुप चाप सहन कर जायेंगे। आप लोग यह न समझे सैरन्ध्री का अपमान करेनवाला जीवित रह सकता है? महादेव की सौगन्ध यह असम्भव है। मैं उन महावीरों की पत्नी हूं जिनका नाम सुनते ही बडे बडे धनुर्धारियों के कन्धों से धनुष सरक जाता है और गदा धारियों के हाथों से उनकी गदायें। मैं उन दानवीरों की पत्नी हूं जो मांगनेवालों को मांगने से पहिले ही दे देते हैं। ताकि वो हाथ फैलाने की लज्जा से बच जाये। हे मत्स्य नरेश क्या आपका धर्म इस कीचक को बस यही दंड दे सकता है कि आप उसे केवल यह कह दें कि यह उसे शोभा नहीं देता।

पांचाली तडफ उठी न्याय की गुहार करने। राजसभायें विलास के लिये होती है, न्याय के लिये नहीं। युधिष्ठिर ने जब देखा पांचाली ने तर्क प्रारम्भ कर धर्म विवाद छेड दिया है तो युधिष्ठिर पांचाली को समझाकर बोलने लगे। सैरन्ध्री के लिये यह सब असह्य था वह तो जैसे भूल ही गई थी कि वह अपने पतियों के साथ अज्ञातवास कर रही है। उसका अपमानित हृदय प्रतिशोध के लिये चीत्कार कर रहा था। वह बोली महाराज कीचक आपका परिजन होने के कारण आपने उसका अपराध अनदेखा किया है। राजा विराट बोले यह तुम भूल कर रही हो सैरन्ध्री। सेनापति कीचक को चेतावनी दे दी गई है। उन्होने किस कारण यह अभद्र व्यवहार किया है इसकी शोध करना अभी बाकी है। सैरन्ध्री बोली महाराज जो लोग ऊंचे पदों पर बैठे हैं, वे धर्म और न्याय के विधान से क्या मुक्त है? पद उन्हे प्रजा की रक्षा का दायित्व देता है या प्रजा पर अत्याचार करने का अधिकार? राजा बोले उच्चपद, धन अथवा बल के कारण किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार तो नहीं है कि वह धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करे, राजा के विधान को भंग करे।

कंक को लग रहा था कि स्थिति बिगडती जा रही है। राजा विराट कीचक को दंडित करने में असमर्थ थे। ऐसे में यदि सैरन्ध्री हठ करेगी तो राजा का अपमान भी हो सकता है। शायद राजा यह भी जानने को उत्सुक हो जाये कि यह तेजस्वी नारी कौन है। एक साधारण सैरन्ध्री तो ऐसा साहस नहीं कर सकती। कंक बोले सैरन्ध्री वास्तव में घटना क्या है यह हम नहीं जानते हैं। अत: कैसे न्याय करें। तुम अन्त:पुर में चली जाओ। स्त्रियों की बातों की सभागृह में चर्चा नहीं हो सकती। अन्त:पुर के दायित्व में जो है वह इसकी खोज खबर करेंगे। शान्ति से महारानी सुदेष्णा के महल में चली जाओ। वही अधिक सुरक्षित स्थान है। बडे बडे नीति वचन उन्होने सुनाये। उनकी तो धर्म व्याख्या सदा से ही अनोखी रही है। आंख मूंदकर पति सेवा व पति की आज्ञा पालन करनेवाली साध्वी पतिलोक पर विजय पा जाती है। शत्रुओं द्वारा अपमानित होकर भी साध्वी स्त्रियां अपने पति पर क्रोधित नही होती। मत्स्य राजाओं के द्यूतविलास में विघ्न मत डाल सैरन्ध्री। धीरज रख। सहनशील बन और महारानी की शरण में जा। युधिष्ठिर को यही एकमात्र निदान समझ में आया इस समस्या का। अपना अन्तिम निर्णय दे दिया उन्होने। अब शीघ्र रात्रि भोजन की व्यवस्था करो। तुम भी अभी धर्म की मर्यादा का उल्लंघन मत करो। राजा प्रजा का पिता होता है परन्तु पिता भी तो अपनी सन्तान की सारी इच्छायें तत्काल पूरी नहीं कर सकता। हे क्षमाशीले क्षमा मनुष्य का सबसे उत्तम धर्म है। क्षमा सत्य है, क्षमा दान है, क्षमा धर्म है, क्षमा के बारह अंग है और तीन सौ साठ आरे है। उस कालचक्र को पूरा होने में अभी तीस आरे कमी है। कालचक्र पूरा होते ही सब आनंदित हो जायेंगे। कालचक्र पूर्ण होने तक तुम क्षमा दान करो। हे सैरन्ध्री कदाचित तुम्हारे गन्धर्व पति अभी तुम्हारे सामने आकर तुम्हारी रक्षा करना उचित नहीं समझते और यह भी समझ लो कि क्षमा से उत्तम कोई धर्म नहीं है। क्षमा ही दया है, क्षमा ही तपस्या है। तुम्हारे पति अवश्य यह जानते हैं कि तुम्हारे साथ यहां क्या हुआ? निर्णय उन पर छोडो और जाकर

महारानी के केश संवारो। इस वक्त तुम्हारे लिये यही कर्तव्य उचित है।

सैरन्ध्री समझ रही थी कि कंक का क्या सन्देश है? उनके अज्ञातवास को पूर्ण होने में केवल एक मास शेष रह गया। एक मास पूरा होते ही उनकी यह प्रतिज्ञा पूरी हो जायेगी फिर उन्हे अज्ञात रहने की कोई बाध्यता नही होगी परन्तु अभी ऐसे अपमानों को पूरा एक महिने तक सहते रहना है। जाओ सैरन्ध्री महारानी सुदेष्णा के पास जाओ। तुम वहीं सुरक्षित हो। वहां तुम्हारा कोई अपमान भी नहीं करेगा। अगर तुम्हारा मन न माने तो कुछ समय बृहन्नला के पास नृत्य व संगीत का आनन्द उठाने में व्यतीत करो। महाराज की द्यूतक्रीडा में कोई व्यवधान मत करो। सैरन्ध्री का क्षोभ तनिक भी कम नहीं हो पा रहा था। वह यह भी जानती थी कि क्षमा ही उत्तम धर्म है किन्तु वह कंक के समान क्षमाशील नहीं थी। जब तक वह कीचक का वध कर अपने अपमान का प्रतिशोध न ले ले तब तक उसके हृदय की ज्वाला शान्त नहीं हो सकती थी। सैरन्ध्री की भृकुटि तन गई। आग्नेय नेत्र से युधिष्ठिर की ओर देखा। मन पर पाषाण रख कर वह दु:ख विह्वला चुपचाप वहां से चली गयी परन्तु उसका मन हुआ तत्क्षण ऊंचे स्वर में घोषणा कर कहे ताकि पूरा संसार जान ले वह परिचारिका नही, दासी नहीं, सैरन्ध्री नहीं वो तो महाराज द्रुपद की राजपुत्री, महाराज पांडु की पुत्रवधू। इन्द्रप्रस्थ की पट्टमहिषी पांचो पांडवों की पत्नी है। अहा कैसी विडम्बना है? यह मन की अग्निशमन करनी पड रही है कि उसके साथ ऐसा साधारण अरक्षित दासी जैसा दुर्व्यवहार। कंक और राजा को प्रणाम कर सैरन्ध्री राजसभा से बाहर निकल गई।

राजा विराट बोले हे कंक मैं आज तुम्हारी समझदारी का लोहा मान गया। क्योंकि मैं सोच भी नहीं पा रहा था मैं सैरन्ध्री से कहूं तो क्या? इसी बीच कीचक बोला यदि कंक बीच में न बोल पडता महाराज और यदि यह आप सोच भी लेते कि आपको मुझसे क्या कहना चाहिये तब भी आप कीचक को कुछ नहीं कह सकते थे। कीचक ने एक क्रुध दृष्टि राजा पर डाली और राज दरबार से बाहर चला गया। राजा विराट बोले सैरन्ध्री कीचक को दंड दिलाये बिना मानती नहीं और मैं कीचक को दंड देने का साहस नहीं करता। सैरन्ध्री को समझाकर तुमने मेरा बडा उपकार किया कंक।

कंक ने फिर से पांसे फेकने का खेल आरम्भ कर दिया। द्रौपदी आंसू छिपाये महारानी के पास लौट पडी। शायद द्रौपदी का सतीत्व लूट जाने के बाद ही उन गंधर्व पतियों को होश आये। युधिष्ठिर द्रौपदी के ज्येष्ठ पति पांसे के खेल में बाधा नहीं सह सकते। वे किसी की जान की परवाह ही नहीं करते। जड और संवेदनशून्य सी सैरन्ध्री अपने पैर घसीटती हुई महारानी सुदेष्णा के कक्ष में राज महिलाओं, दासी और परिचारिकाओं के बीच ऐसी आयी जैसे उन्मत्त प्रभंजन का कोई प्रबल वेगवान झंकोरा हो। महारानी सैरन्ध्री जिसने उसे कीचक के प्रासाद में भेजा था उसे भी तो पता चले कि नारी जब अपमानित होती है तो उसे कैसे पीडा होती है। सैरन्ध्री ने तो सुदेष्णा से अपेक्षा की थी कि वह उसकी रक्षा करेगी पर महारानी ने तो स्वयं ही उसे पाप और अपमान के घृणित जीवन की ओर धकेल दिया।

**घायल शेरनी, पैरों तले कुचली नागिन और अपमानित नारी अपना प्रतिशोध लेकर ही रहती है।**

**१३) महारानी सुदेष्णा और द्रौपदी (सैरन्ध्री का सम्वाद)-** रानी सुदेष्णा की दृष्टि सैरन्ध्री पर पडी और उसे देखकर उसका मुंह आश्चर्य से खुला ही रह गया। सैरन्ध्री के केश बिखरे हुये, आंखों से लगातार अश्रु बह रहे, मलिन वस्त्र और मुख से बहा हुआ लहू होठों पर जो अभी तक पौंछा नहीं गया। महारानी सुदेष्णा ने सैरन्ध्री से पूछा यह क्या सैरन्ध्री? कहाँ से आ रही है? क्या हुआ तुम्हे? सुदेष्णा के मन भय था। सैरन्ध्री को कीचक भवन भेजते समय ही वह जानती थी कि वह सुरक्षित नहीं लौट पायेगी पर सैरन्ध्री का यह रूप होगा यह तो उसने सोचा ही नहीं था। सैरन्ध्री की दृष्टि सुदेष्णा की ओर

उठी उसे सह पाना सुदेष्णा के लिये कठिन था। उसमें जिनता धिक्कार और भर्त्सना का भाव था उससे सुदेष्णा बहुत छोटी हो गई थी। सैरन्ध्री बोली क्या आप नहीं जानती मैं कहां गई थी? जानकर अनजान मत बनिये महारानी। आपके भाई के भवन में तो स्वयं आपने ही मुझे भेजा था। महारानी आपने मुझे समझने की भूल की है। मैं सैरन्ध्री अवश्य हूं। आपकी सेविका। अपना कर्तव्य पालन मैं एकाग्र चित्त से करती हूं। आपकी सेवा पूर्ण मनोयोग से करती हूं देवी किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि मैं अपना सतीत्व ही विक्रय कर दूं। मैं व्यभिचारिणी नहीं न ही मैं स्वेच्छाचारिणी। सुदेष्णा थरथरा उठी। ऊंगलिया कांप गई। वह दीन हीन दासी, निराश्रित परिचारिका। साधारण सी सैरन्ध्री पर कितनी गर्वीली। दर्दयुक्त वाणी में वह अपनी स्वामिनी पर वज्रधारिणी सी गरज रही थी। सुदेष्णा ने पूछा क्या महाराज ने सेनापति को दंडित नहीं किया? अच्छा मैं महाराज से कहूंगी कि वे सेनापति को उसके इस अनुचित कार्य के लिये दंडित करे। रानी ने सैरन्ध्री के सम्मुख अभिनय किया।

सैरन्ध्री का स्वर भयंकर कटुता और घृणा लिये हुये था। वो बोली आप रहने ही दें महारानी। दंड देनेवाला एक राजा ही तो नहीं है। सृष्टि में मूल दंड विधान तो ईश्वर का बनाया हुआ है, व्यक्ति के लिये, समाज के लिये और देश के लिये भी। कीचक को दंडित करनेवाले का क्या रूप होगा अब यह कौन जानता है? उसे दंडित करने के लिये ईश्वर अपनी इच्छा से अपनी माया से जाने किस रूप में प्रकट हो जाये। सैरन्ध्री के इस स्वर में रहस्य था। वह स्वर सैरन्ध्री के कंठ से नहीं प्रकृति के हृदय से उद्भूत हो रहा हो। विराट पत्नी सुदेष्णा सैरन्ध्री के सतीत्व के तेज से आक्रान्त हो उठी। कौन नहीं जानता कि सैरन्ध्री का आचरण अन्य दासियों से अत्यन्त उच्च, उज्वल एवं निर्मल है। कौन नहीं जानता कि सैरन्ध्री कितने कठोर संयम-नियम से रहती है। कितना दीर्घ समय सन्ध्योपासना में लगाती है। वह तो शापग्रस्त कोई मुनिबाला ही है, वह तपस्विनी है। अन्त:पुर की समस्त महिलाये उसका मान-सम्मान आदर करती थी। वे सबकी सब सैरन्ध्री का स्वर सुनकर अवाक खडी रह गई प्रस्तर प्रतिमाओंसी।

महारानी सुदेष्णा बोली हां मैं तुम्हारी अपराधिनी हूं सैरन्ध्री। मुझे भ्रातृ मोह ने विवश कर दिया था और विवशता के उसी क्षण में मैं यह भूल गई थी कि स्त्री की मर्यादा भाई के मोह से कहीं अधिक मूल्यवान होती है। यदि तुम कहो तो तुम्हे छूनेके अपराध का उसे कडा दंड दिलवा दूं। सैरन्ध्री बोली आपके दंड देने से मेरे अपमान का घाव नहीं भरेगा महारानी। कीचक ने केवल मेरा ही अपमान नहीं किया है। उसने मेरे शक्तिशाली पतियों का भी अपमान किया है। अब आप उसकी गिनती जीवितों में मत कीजिये। द्रौपदी उद्विग्न हो बोली उसके क्रिया कर्म की तैयारी आरम्भ करें। आप अपने उस दुराचारी भाई का जीवित श्राद्ध ही कर डालें। अपने उस प्रिय भाई को अन्तिम बार यथेष्ट भर कर देख भी लें। अब वह काल पाश में बंध चुका है। अब उसका जीवित रहना असम्भव है। मेरे गन्धर्व पति उसके इस कामोन्मत शरीर के टुकडे-टुकडे कर डालेंगे। आपके भाई कीचक कल का सूर्योदय नहीं देखेंगे। मैं आपके भाई को कोई श्राप नहीं दे रही हूं क्योंकि वो तो मेरे श्राप के भी योग्य नहीं है। मैं तो आपको उसकी मृत्यु की सूचना दे रही हूं और उसका शव देखे बिना अपने होठों से बह जानेवाला यह लहू भी तब तक नहीं पौछूंगी । और न ही वस्त्र बदलूंगी और न ही स्नान करूंगी। महारानी सुदेष्णा बोली इतने कठोर शब्द मत बोल सैरन्ध्री। सैरन्ध्री बोली यह कठोर शब्द मैं इसलिये बोल रही हूं रानीजी कि इससे अधिक कठोर शब्द मेरे शब्द कोष में है ही नहीं। महारानी बोली क्षमा ही दया है सैरन्ध्री। क्षमा धर्म है, क्षमा तीर्थ है, क्षमा ही यज्ञ है। क्षमा ही सत्य है। अब मेरे भाई को क्षमा कर दो सैरन्ध्री। सैरन्ध्री बोली आप यह अपमानित वस्त्र पहिन कर अपने होठों पर मेरा यह लहू लगाकर यह आदेश दे सकती हैं तो आदेश दीजिये तो मैं उस शूद्र राक्षस को क्षमा कर दूंगी। क्या आप यह कर सकती

है? महारानी बोली नहीं। सैरन्ध्री ने कहा फिर अपनी आंखों से कहिये कि भाई कीचक के शव पर रोने की तैयारी करे। महारानी बोली नहीं सैरन्ध्री नहीं नहीं ये नहीं।

सैरन्ध्री की बात महारानी के भीतर कहीं बहुत गहरे तक थरथरा गई थी। सबके बीच ही सैरन्ध्री ने कीचक की मृत्यु के लिये दीक्षा ले डाली। भयातुर महारानी उसे समझाने लगी, अनुनय-विनय करने लगी। समस्त महिलायें उसे शान्त करने में लग गई किन्तु निष्फल थे सबके प्रयास। वह अग्निमयी दासी अडिग थी अपने कहे पर, अपने निर्णय पर। अद्‌भुत थी वह सैरन्ध्री। उस परिचारिका ने राजकुल की उच्छृंखलता के समक्ष झुकना स्पष्ट रूप से, मुक्त कंठ से और अन्तिम रूप से अस्वीकार कर दिया था। अपनी स्वामिनी के समक्ष ही इसके दुष्परिणाम की स्पष्ट घोषणा कर दी। उसने व्रत धारण कर लिया और दिन रात एकाग्र चित्त हो कीचक के वध की अभीष्ट पूर्ति के लिये ईश्वर से प्रार्थना करती और महिला समाज को स्तब्ध कर गयी। द्रौपदी मन ही मन सोचती कि क्या वह पतिविहीना है? क्या कहीं किसी पुराण गाथा में किसी राजरानी का इतना अपमान सुना है? क्या कभी ऐसा सुना है कि पत्नी अपमानित हुई हो, प्रताडित हुई हो और पति निर्विकार बैठा रहा हो। जब कोई दृष्टान्त ही नहीं सुनने में देखने में आया तो वह हतभागा व्याकुल हो उठी।

## १४) दु:खी द्रौपदी का भीम के पास प्रलाप और कीचक वध की योजना

देर तक सैरन्ध्री पत्थर सी बनी बैठी रही। उसके मन में उठते झंझावत रूक नहीं पा रहे थे। वह सोच रही थी कि उसके पति उसके इस अपमान का प्रतिशोध लेंगे या नहीं। किन्तु आहत अभिमान और क्रोध की उस स्थिति में भी उसका विवेक कह रहा था कि वह ऐसी कोई मूर्खता न कर बैठे जिससे उन सबको फिर से १२ वर्षों का वनवास करना पडे और इन्द्रप्रस्थ लौटने का एक सपना ही बनकर रह जाये। उन्हे कभी अपना राज्य वापिस ही न मिले और उसके पति पुत्र उस राज्य से वंचित होकर उसका भोग नहीं कर पाये। सैरन्ध्री को लगा कीचक से बडी अपराधिनी तो सुदेष्णा है जिसने उसे कीचक के भवन में भेजने का षडयन्त्र किया पर उसका अपमान तो कीचक ने किया और वह अभी तक जीवित है फिर द्रौपदी का अग्निकुंड में से जन्म लेने का क्या लाभ? अब उसे उस ईश्वर को खोजना होगा जो भौतिक रूप में प्रकट हो कीचक का वध करे। द्रौपदी का ध्यान बार-बार अर्जुन और भीम की ओर ही जा रहा था। कंक (महाराज युधिष्ठिर) से तो कोई ऐसी अपेक्षा ही नहीं की जा सकती। वे तो पहिले ही उसे क्षमा का पाठ पढा चुके हैं, क्योंकि उन्हे क्रोध नहीं आता, वे किसी आवेश में नहीं आते, उन्हे धर्म का त्याग करने के लिय सहमत नहीं किया जा सकता फिर उनसे तो कीचक वध की अपेक्षा भी नहीं की जा सकती किन्तु भीम के क्रोध को तो भडकाया जा सकता है। वह उसे अपने प्रतिशोध के लिये तैयार कर सकती है।

शैय्या पर लेटे लेटे इधर से उधर करवटें लेती हुई गर्म गर्म उच्छवासें लेकर मन मसोस कर सोच में डूबी पांचाली स्मरण करती रही अपने दुखडों का वो केष कर्षण, चीरहरण, जयद्रथ से अपहरण और अब कीचक से पद प्रहार। वह फफक पडी, कितनी अकेली, कितनी दु:खी, कितनी असहाय। कोई सांत्वना देनेवाला नहीं। कोई धीरज बन्धानेवाला नहीं। कोई उसकी दुखों और कष्टों की गाथा और कथा सुननेवाला नहीं। कोई स्नेह के दो शब्द बोलनेवाला नहीं। कोई उसके अपमान का प्रतिशोध लेनेवाला नहीं। आज की रात कैसे व्यतीत हो पायेगी, कहां जाये, किससे कहे अपना दु:खड़ा धनंजय वह तो बृहन्नला बना बैठा है क्लीव, वह तो अन्तर से भी। बृहन्नला एक ऐसी वृत्ति है जो अर्जुन पर जब तब पिशाचिनी सी बैठी है कि उसकी सारी शक्तियों को अपने वशीभूत कर उसे पौरुषहीन बना दिया। भीम को छोडकर अन्य पांडवों में तो पौरुष है ही नहीं। अर्जुन में पौरुष है पर वो तो अपने मन की दुर्बलता से इस प्रेतनी के वशीभूत हो गया। प्रेम से रत्नमाला नाम

से पुकारनेवाला समाज उसे सैरन्ध्री कहकर पुकार रहा है। बृहन्नला की तो राजकन्या उत्तरा प्रतीक्षा कर रही होगी। वो तो नृत्य संगीत व गीत गाथाओं की स्वर लहरी में डूबा होगा। यहां तो बस केवल मैं ही दु:खी हूं उससे किसी को क्या अन्तर पडता है। क्यों न अपने आपको सुखी समझूं क्योंकि पांडवों की पत्नी जो हूं। मेरा जीवन बिना सुख, शांति और निश्चिन्तता से कितना अपूर्ण है? सुख मेरे भाग्य में नहीं। दिनभर कठोर परिश्रम करना पडता है अपमानित होते रहती हूं। नीच व्यक्तियों के पाद प्रहार सहती हूं। रातों अकेले सोच-सोच कर घूटती हूं। इससे बढकर और क्या सौभाग्य चाहिये? सहसा सैरन्ध्री के मन में आया भीम, महाबलशाली वृकोदर, वल्लभ महाराज। हां वह वीर है, शान्ति दे सकता है। वह उसके अन्याय का प्रतिशोध लेने में सामर्थ्यवान है।

यशस्वनी द्रौपदी भीम का स्मरण कर उठकर रात्रि के समय भीम के पास गयी। उस समय भीम पाकशाला में सो रहा था और उठाकर उसे जगाकर बोली, भीम तुम तो यहां निश्चिन्तापूर्वक सो रहे हो। इस प्रकार चैन से सोनेवाले सर्वश्रेष्ठ गदाधर धन्य हो तुम। जिस शूरवीर की पत्नी का यों अपमान हुआ हो उसे इस प्रकार सोना शोभा देता है। यदि तुम स्वयं अपना शव नहीं हो तो उठो। भीम गहरे सुख की निद्रा में तल्लीन था। द्रौपदी दु:ख और ईर्ष्या से भीम को सोते देख तिलमिला उठी। द्रौपदी को लग रहा है सभी तो सुखी हैं, सब मग्न हैं, एक वही अकेली अर्धरात्रि बीत गई पर घूम रही है, मग्न हृदय लिये प्रेतनी सी, सबसे छिपते छिपाते, सबकी दृष्टि से ओझल। युधिष्ठिर द्यूत विलास में रत और बृहन्नला राग रागिनियों में वृकोदर सुस्वादु व्यंजनों की गन्ध से भोजन से तृप्त होकर सोने में। महाकाय भीम को सोया देख कि यह दिनभर परिश्रम करनेवाला रात को कैसे थक हार कर सोया हुआ। वह तो स्वयं पीडा भरी आयी थी पर भीम को देख द्रवित हो उसका स्पर्श कर कहने लगी। परस्पर उन्होने अपने सम्बन्ध भी किसी को नहीं बताये थे। वे लोग परस्पर एक-दूसरे से मिलते भी नहीं थे, न ही बात करते थे। पति-पत्नी, भाई-भाई सब एक दूसरों के प्रति अपरिचितों की भांति दूरी का व्यवहार रखते थे और आज अचानक पांचाली भीम के कक्ष में। पांचाली आपत्तिग्रस्त होकर आयी है। भीम कातर हो तुरन्त उठ बैठे और बोले क्या हुआ कृष्णे, क्या कष्ट है तुम्हें पांचाली?

द्रौपदी बोली मुझसे कष्ट पूछ रहे हो एक हो तो बताऊं। मेरे अपमानों को ऊंगली पर गिना जा सकता है क्या महाबाहो? महाराज युधिष्ठिर की पत्नी हूं और कष्ट न हो क्या यह सम्भव है? मेरे पतिगण तो नृत्य, संगीत, द्यूत, सुस्वाद भोजन इत्यादि में मग्न हैं, मैं कहा जाऊं? कौन है मेरा सहायक? कहो हे महाबाहु मेरे जीने का कुछ प्रयोजन है? अपमान की ज्वाला में दग्ध हुई जा रही हूं दिन प्रतिदिन। भरी सभा में कभी और किसी राजरानी का अपमान हुआ है क्या? केशकर्षण के समय ली हुई शपथ आपको स्मरण है? कितने देश-विदेश की यात्रा कर भटक रही हूं मैं? कितने जनपदों की धूल फांकी है? कितने वर्षों से कन्दमूल फल का आहार कर रही हूं ? दूसरों की सेविका बनी हुई हूं पर अपने पतियों की सेवा नहीं कर पाती। महाराज विराट की सेवा में लगी हुई उनकी परिचर्या करनी पडती है। भीम बोला यदि ज्येष्ठ भ्राताश्री ने न रोक लिया होता तो मैं वहीं उस राजसभा में कीचक को यूं चीर डालता जैसे लकडी चीर डालता। द्रौपदी बोली तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता तो रोकने में निपुण है, वे तो केवल अपने पांसा फेंकनेवाले हाथ को ही नहीं रोक पाते। मैं तो तुमसे केवल यह पूछने आई हूं कि तुम लोग कब तक मेरे अपमान के इन दृश्यों को चुपचाप देखते रहोगे, सहन करते रहोगे। हे कुन्ती पुत्र मुझे एक कारण तो बताओ कि मैं जीवित रहूं और यदि तुम चाहते हो कि मैं जीवित रहूं तो एक विशाल हाथी की भांति उस कीडे को कुचल दो जिसका नाम कीचक है और जिसके हाथों ने तुम्हारी पत्नी के वस्त्रों तक पहुंचने की जुर्रत की है।

पांचाली के मन का समस्त आक्रोश युधिष्ठिर पर केन्द्रित था। जिस दिन से उसने पांडव गृह में चरण रखा, दु:खों के मूल में

युधिष्ठिर ही रहा है। रह रहकर उसका मन युधिष्ठिर के विरुद्ध विद्रोह कर उठता पर हर बार सव्यसाची ने उसे रोक दिया। द्रौपदी बोली आर्यपुत्र क्या आपको ज्ञात है मत्स्यराज विराट और जो धर्मराज मेरे पति हैं उनके सम्मुख उस दुष्ट कीचक ने मुझे अपमानित किया, उनके सामने उसने मुझपर पाद प्रहार किया और वे मेरे पति धर्मराज चुपचाप देखते रह गये। कोई अन्त है मेरे कष्टों का? कोई सीमा है मेरी सहनशीलता की? आर्यपुत्र युधिष्ठिर का यह व्यवहार मुझसे सहन नहीं हो रहा। वे तो दिन रात द्यूत में मत्त मद रहने लगे। उनकी इस द्यूत आसक्ति ने हमें कहीं का ना रखा। उनकी इस नासमझी के कारण और उनकी द्यूत लिप्सा के कारण ही हम पर यह दुर्भाग्य का पहाड टूट पडा और वे मूढ की भांति अभी भी उसी में लिप्त है। अपनी खोयी हुई राज्यलक्ष्मी को पुन: प्राप्त करने का प्रयत्न भी नहीं करते। कैसे पुरुष हैं वे? क्या उनकी जीविका द्यूत है? वे राजसूय यज्ञ सम्पन्न कर चुके हैं फिर भी उन्हे अपनी परतन्त्रता तनिक भी नहीं अखरती? कितने राजा, ऋषि-मुनि उनकी उपासना करते थे वे आज स्वयं एक अन्य राजा की उपासना कर रहे हैं। राजा विराट की सभा के एक साधारण सदस्य बने हुये हैं किन्तु उनका स्वाभिमान लेशमात्र भी उन्हे नहीं जगा पा रहा। वृकोदर आपको वल्लब रसोइये के रूप में देख देखकर मेरा हृदय कचोटता है। अन्त:पुर की महिलायें एवं महारानी आप पर हंसती है। आप सबके हास परिहास के विषय बने हुये है। उनके उपहास के पात्र है। विराट नरेश जब आपको गजों से लडवाते है तो वे सब हंसते है, मनोरंजन करते है पर मेरा हृदय अपमान से छटपटा जाता है। कितना संयम रखूं स्वयं पर? कितना आत्म नियन्त्रण। अपने पतियों से मिल नहीं पाती। पतियों से भी अपरिचितों का सा व्यवहार करना पडता है। गुप्त रूप से छिप कर रहने से मेरा मन व्याकुल हो उठा है। किसी से कुछ कह नहीं पाती। कितनी घुटन होती है मन ही मन। यह भी कैसी विधि की विडम्बना कि पति को सबके समक्ष पति नहीं कह सकती। अपने पतियों के लिये कुछ भी नहीं कर पाती। क्या ये सब आपको कभी क्षुब्ध नहीं करता आर्यपुत्र? भीम समझ गये ये सब तो सत्य है कितने कष्ट मिले हैं महाराज द्रुपद की राजकन्या को। भीम विचलित हुये।

द्रौपदी बोली हे महाबाहु उस धनंजय को देखो जो देवताओं और मनुष्यों पर जिसने विजय पायी थी क्या इसलिये कि वे आज राजकन्याकों को नृत्य सिखाये? कहां गई उनकी सारी शक्ति, उनकी विजय। वे कोमल ललित प्रणय गीत गा रहे हैं। कहां गया उनका शौर्य और गांडीव? उनका वह श्वेतवाहन रथ? उनका कपिध्वज सूर्य सा चमकता किरीट? हे भीम अब तक तुम्हारा सहारा न होता तो अपने प्राण दे चुकी होती। द्रौपदी सुबक सुबक कर बोली यहां हम लोग किस दयनीय स्थिति में पडे है? कहां हैं हमारी धर्मशीला मां कुन्ती, कहां हैं हमारे पांचो किशोर पुत्र? जिन्हे देखने मेरा मन तडफ-तडफ उठता है? सब कुछ होते हुये भी मेरे पास कुछ भी नहीं है। क्या माता कुन्ती को पता है कि कुन्ती पुत्र धनंजय इस प्रकार कन्याओं की सेवा में है? मुझे तो चारों ओर अन्धकार ही दिख रहा है, कोई आशा की किरण दिखाई नहीं दे रही। कोई राह नहीं। हम लोग सदा सदा ऐसे ही रहेंगे क्या? आजीवन? क्या माता की यही तपस्या थी आप पांचो भाइयों के पालन-पोषण के पीछे? इसी स्थिति के लिये माता कुन्ती ने कष्ट सहकर आप लोगों को बडा किया था? उनकी साधना का क्या। यही अन्त है, क्या यही फल है? माता को स्मरण कर भीम का स्पंदन तीव्र हो गया। पांचाली बोली और महाबाहु क्या स्वर्गीय महाराज पांडु के पुत्र नकुल अश्वों की सेवा करने हेतु जन्मे हैं? आर्य सहदेव क्या गोप बनने के लिये है? सहदेव तो माता के सर्वाधिक प्रिय पुत्र है, वो ही आज गो वत्स के चर्म पर सोते हैं। महाराज पांडु आज होते तो क्या यह स्थिति देख पाते? यह सब देखकर मुझे ज्वर चढ आता है महाबाहु। इन सब दु:खों का कारण है वे ही अक्ष धूर्त आर्य युधिष्ठिर। केवल एक व्यक्ति की द्यूत लिप्सा एवं अकर्मण्यता के कारण हम दु:ख भोग रहे है। पांचाली का वश चलता तो वह चारों भाइयों को युधिष्ठिर के विरुद्ध खडा कर देती, विद्रोह करवा देती। यह सब सुनकर भीम विकल हो उठे। पांचाली आगे बोली हे वृकोदर

इन महाराज युधिष्ठिर ने हमें कहीं का ना रखा। न तो ये अग्रज के कर्त्तव्य निभा पाये, न पति के, न पुत्र के, और न पिता के ही। इनके क्रिया कलापों में माता कुन्ती तो है ही नहीं। और हम कहां? इस वृद्धावस्था में कोई माता की सेवा कर पाता है क्या? वे कितने कष्ट में है। समूचा परिवार ही विश्रृंखलित हो गया है, टूट गया है। चारों अनुज कितनी यातना सह रहे हैं? पांचो पुत्रों का लालन-पालन पोषण द्वारिका में हो रहा है हम उनकी झलक पाने को तरस जाते हैं, व्याकुल हो जाते हैं, कितने लालायित हैं? बालकों का स्मरण कर पांचाली रो पडी।

द्रौपदी फिर बोली और पत्नी के प्रति तो उन्होंने कभी कोई कर्त्तव्य निभाया नहीं। उन्ही के कारण द्वारकाधीश श्रीकृष्ण की अनन्य सखी, महाराज द्रुपद की पुत्री, महाराज पांडु की पुत्रवधू और पांडवो की पत्नी मै पन्य बनाकर जुए के दांव पर रखी गई। केवल महाराज युधिष्ठिर के ही कारण आज महारानी सुदेष्णा की चेरी बनी उनकी परिचर्या करती हूं। देखो कैसा मेरा फूटा भाग्य? कभी स्वप्न में भी सोचा था कि जैसे परिचारिकायें मेरी सेवा करती थी वैसे किसी दिन मुझे किसी रानी की करनी होगी। और आज तक किसी संकट से मेरी रक्षा नहीं की। उस द्यूत विलासी ने मुझे द्यूत में हार कर भरी सभा में दासी कहलाया और अब दासी बना दिया। अहो आर्य पुत्र तुम क्यों नहीं हुये ज्येष्ठ भ्राता और पुन: पांचाली का स्वर रूदन कर पडा। हे आर्यपुत्र मुझे अपना वनवास नन्दन कानन सा प्रतीत होता है, स्वर्ग सा प्रतीत होता है तब हम स्वतन्त्र थे, स्वाधीन तो थे। स्वच्छन्दता से शैल शिखरों पर विचरा करते थे। उन्मुक्त वायुमंडल में खुलकर श्वास लेते थे। वनवास के कष्ट कष्ट नहीं मालूम पडते थे। परन्तु हे वृकोदर अब यह पराधीनता, यह दासत्व मेरा गला घोट रहा है। यह अपमान सहा नहीं जाता और आपके अक्ष धूर्त अग्रज के कारण कदम-कदम पर अपमान झेलना पड रहा है। अपमान, ताडना, तिरस्कार, आदेश, धमकियां और अब पद प्रहार। हम लोग स्वाभिमान से तो जिये होते, हम पराधीन तो न रहे होते। सच है पराधीन सपने हुं सुख नाही।

पांचाली पर जैसे उन्माद छा गया। वह विक्षिप्त सी हो उठी। दुर्बल कृशकाय हाथों में न जाने कहां से अपूर्व बल आ गया था। भीम के वज्र कठोर बलिष्ठ कन्धों को पकड कर झकोरने लगी और असहाय भीम ने व्याकुल हो उस उन्मादिनी को अपनी भुजाओं में कस लिया, बुझती हुई दीप शिखा को ऊंचा किया भीम ने और उसे दिखाई पडी श्रीहीन, शोभाहीन, कान्तिहीन पांचाली। कितनी कृशकाय, पीतवर्णा। उसके लावण्यमय मुखमंडल की श्री पता नहीं कहां चली गई, आभा लुट गयी थी जैसे। विशाल नेत्रों के नीचे कष्ट की काली छाया उभर आयी थी। रुखे केश, श्रृंगार नहीं, कोई रूप सज्जा नहीं। दु:ख और करुणा की उस साक्षात मूर्ति को भी विस्फारित नेत्रों से देखते रह गये, यह क्या हो गया पांचाली को? यह कैसी हो गई? पांचाली बोली लेकिन धन्य है आप सबकी सहनशीलता को, धन्य है आपका यह धैर्य परन्तप। अपनी पत्नी को सुदेष्णा की चेरी बनाकर भी आपका मन नहीं कचोटता महाबाहु। मेरी यह कृशकाया देखकर, मेरी मृतप्राय स्थिति देखकर भी कुछ असर नहीं होता, मेरा कैसा दुर्भाग्य। मेरी दुर्दशा देखकर रनिवास में रहनेवाले मेरे पति की अन्तरात्मा भी नहीं दु:खती? कहां गयी उनमें रहनेवाली अग्नि ज्वाला? धधककर लपलपा क्यों नहीं उठती? कहां गया आप नरशार्दूलों का सिंह धर्म? कैसे मृगों की भांति घास चरने लगे। ओ भगवन मुझे क्यों नहीं पुरुष बनाया यदि तूने इन सबका पौरुष हरना ही था, तब मैं अपने अपमान का प्रतिशोध स्वयं लेती। भय के मारे हाथ जोडे मैं महारानी सुदेष्णा के समक्ष खडी रहती हूं, कांपते रहती हूं। हे महाबाहो देखो मेरे ये हाथ कैसे छाले पड गये है इनमें? भीम का कठोर संयम पिघलता जा रहा था। कृशकाया पीतवर्णा प्रियतमा के दुर्बल रूखे निर्जीव से हाथों में दर्दनाक छाले। अहा भीम कितने असहाय थे, विवश। पांचाली के वे निर्बल हाथ उनके बलिष्ठ हाथों में थे किन्तु उनके स्वयं के बलिष्ठ हाथ कांप रहे थे। उनका पूरा महाकाय शरीर कम्पित सा हो रहा था। पांचाली के मन में युधिष्ठिर के प्रति जो भयंकर वितृष्णा आ गयी थी

भीम उससे भी विचलित हुये। भीम ने द्रौपदी के मुख मंडल को अपनी हथेलियों में लेकर कहा ऐसा मत कहो पांचाली अब मात्र एक मास रह गया है उसके पश्चात मैं कीचक क्या दुर्योधन को भी उसके कृत्यों के लिये दंडित करूंगा। तुम्हारे ये केश इस प्रकार बिखरे नहीं रहेंगे। तुम रानी हो और रानी बनकर रहोगी।

द्रौपदी की आंखों में आंसू भर आये और वह बोली यह सब ठीक है भीम किन्तु राज्य से बढकर सम्मान है। मैं कब तक इस प्रकार अपमानित होती रहूंगी? और वह भी तुम लोगों की उपस्थिति में, तुम लोगों की आंखों के सामने? जिसकी इच्छा हो वह तुम्हारी प्रिया के बाल पकडकर घसीटता रहे? जिसकी जो इच्छा हो वह उसे अपशब्द निंदित वचन बोलता रहे? जिसकी इच्छा हो वह जबरन रथ में डाल ले और जिसकी इच्छा हो वह उसे चरण प्रहार करे। भीम का हृदय एक ऐसी पीडा का अनुभव कर रहा था जिसे सहना उसके वश में नहीं था। उसे लग रहा था कि यदि वह इस समय अपनी पत्नी के आंसू नहीं पौंछ पाया तो उसकी छाती ही फट जायेगी। वह पांचाली को इस प्रकार दु:खी नहीं देख सकता था। वह उसका दुख दूर करने हेतु कुछ भी कर सकता था। भीम बोला मैं तो आज प्रात: ही राजभवन में उस कीचक का वक्ष फाडकर उसे चील कौवों को खिला देता किन्तु मुझे कंक ने रोक दिया यह कहकर वल्लभ पाकशाला के इन्धन के लिये सूखे वृक्ष खोजने लगे।

द्रौपदी बोली क्या तुम कंक को नहीं जानते? उन्होने तो क्रोध को जीत लिया है, उन्हे तो क्रोध नहीं आता इसलिये उन्हें कोई भी घटना विचलित नहीं करती। वे कभी आवेश में भी नहीं आते। वे धर्म को भी कभी नहीं भूलते। इतना ही नहीं वे तो किसी को भी क्षमा कर सकते हैं और मुझे तुम अच्छी तरह जानते हो कि मैं किसी को क्षमा नहीं कर सकती। यदि इस दुष्ट कीचक ने कल का सूर्योदय देख लिया तो तुम्हारी यह पांचाली कल का सूर्यास्त नहीं देखेगी। मेरा दु:ख समझो कुन्ती पुत्र भीम। ये महारथी महावीर पांडवों की पटरानी द्रौपदी का दु:ख है। मेरे उन महावीर पतियों की दशा को देखो। उनकी गर्दन में भारी पत्थरों से अधिक भारी धर्मराज युधिष्ठिर के पांसों का बोझ है और वो अपमान के गहरे समुद्र में डूबे पडे है। यदि तुमने इस कीचक से आज रात ही मेरे इस अपमान का प्रतिशोध नहीं लिया तो मैं तुम्हें भी कभी क्षमा नहीं करूंगी। भीम बोला पांचाली मैं तुम्हारी क्षमा नहीं, तुम्हारा प्रेम चाहता हूं और उससे अधिक मैं तुम्हारी प्रसन्नता चाहता हूं। तुम्हारी प्रसन्नता से अधिक तुम्हें सुखी देखना चाहता हूं। तुम्हे कष्ट में देखकर मैं स्वयं सुखी नहीं रह सकता। मेरा सारा सुख तुम्हारे सुख के अधीन है, आश्रित है। द्रौपदी बोली जिसके पति युद्ध वीर न होकर धर्मवीर हो गये हो उस पत्नी का जीवित रहना बस अपमान सहना ही है। द्रौपदी की आंखो में निरन्तर अश्रु बह रहे थे। भीम बोला तुम्हें दु:खी देखकर तो मुझे धर्म को जय नहीं करना है। आवश्यकता पडने पर उसे भी त्याग सकता हूं पर डर है कि उसमें अज्ञातवास की प्रतिज्ञा टूट जाये, उसका पालन नहीं हो।

द्रौपदी बोली तो न होगी अज्ञातवास की प्रतिज्ञा का पालन। मेरा अपमान करा मुझे किसी प्रतिज्ञा का पालन नहीं करना है। क्या होगा यदि हम पहचाने गये तो? यही ना कि दुर्योधन हमारा इन्द्रप्रस्थ का राज्य नहीं देगा, नहीं लौटायेगा, हड़प जायेगा। वह तो वैसे भी सारी प्रतिज्ञायें पूर्ण करने पर भी राज्य नहीं लौटानेवाला। मै पूर्णत: आश्वस्त हूं कि सफल अज्ञातवास करने के पश्चात भी यदि तुम लोगों को अपना राज्य चाहिये तो उसके लिये दुर्योधन से युद्ध करना ही पडेगा द्रौपदी का स्वर और कटु हो गया और तडफकर बोली मेरी समझ में तो तुम इन पांचो भाइयों की बुद्धि नहीं आती। तुम लोग राज्य भी चाहते हो और युद्ध भी नहीं करना चाहते। युद्ध किये बिना कभी किसी को कोई राज्य या अधिकार मिला है? भीम बोला पांचाली मेरी बात तो सुनो। द्रौपदी बोली नहीं वीर वर आज पहिले तुम मेरी बात सुनो मै वो अभागिन नारी हूँ जिसके पांच पतियों ने अग्नि को साक्षी मानकर उसकी रक्षा की प्रतिज्ञा की थी। कहां गई वो प्रतिज्ञा? भीम बोला धिक्कार है हमारे बाहुबल पर, धिक्कार है उस अर्जुन के गांडीव पर किन्तु दुर्योधन की जंघा तोडने और तुम्हारे केशों को धोने के लिये तथा दु:शासन की छाती का लहू लाने के लिये

हमारे अज्ञातवास का सफल होना आवश्यक है। इसी कारण से बडे भैया ने मुझे रोक दिया था।

द्रौपदी बोली तो क्या तुम यह कहना चाहते हो मेरे इस अपमान का विष तुम चुपचाप पी जाओगे। भीम बोले नहीं बस अब और नही और पांचाली के आभूषण हीन दुर्बल हाथों से अपना मुख ढांप कर रो पडे। धीरज टूट गया, संयम टूट गया उनका विराट शरीर हिलने लगा। कितनी बार मन ने विद्रोह किया युधिष्ठिर की नीतियों के विरुद्ध उनकी दुर्बलता, कायरता, भीरूता और अकर्मण्यता के विरुद्ध। किन्तु हर बार अर्जुन ने उन्हे मना कर दिया। वही अर्जुन जो आज स्वयं बृहन्नला बना हुआ अन्त:पुर की ललनाओं को प्रणय पदावली पर भाव नृत्य सिखा रहा है। भीम रो रहा है, फूट फूट कर रोने लगी पांचाली। ग्लानि, पश्चाताप, दु:ख, क्रोध और विवशता सब से मिश्रित अश्रुधारा बह रही थी। भीम संयत हो उस आहत कपोती समान पांचाली को समझाते हुये बोले कल्याणी धीरज धारण करो। मैं उस अधम कीचक को वैसे ही पांव तले कुचल डालने में समर्थ हूं जैसे क्रीडारत गजरात वृक्ष को मसल डालता है। किन्तु हे भारती तुम आर्य युधिष्ठिर को उपालम्ब मत दो। वे चाहे जितने दुर्बल हो, दोषयुक्त हो किन्तु वे हमारे परिवार के ज्येष्ठ है। वे चाहे जितने स्खलित हो किन्तु वे निष्कपट हैं, निश्छल हैं, सरल हैं। अपनी सरलता के ही कारण वे एक के बाद एक त्रुटि करते जाते हैं। किन्तु देवी यदि तुम ही उनको उपालम्भ दोगी तो वे दु:खी होंगे। वे दुर्बल चित्त के भावुक व्यक्ति हैं और यह सह नहीं सकेंगे। तुम्हारा उपालम्ब घातक सिद्ध हो सकता है, वे पलायनवादी है पांचाली। कहीं तुम्हारे इस उपालम्ब से ग्लानिवश हो वे अपने प्राण त्याग न कर दे। वे ऐसा कर सकते है। वे इच्छा शक्तिहीन व्यक्ति है। अन्य सभी अनुज भी तुम्हारी बातें सुनकर ग्लानि से भर जायेंगे। नि:सन्देह तुम्हारी रक्षा में वो सब असमर्थ रहे हैं किन्तु ऐसी बात कहकर तुमने उन सबको नपुंसक बना दिया। ऐसा कठोर पौरुष वचन सुनकर किस पति का हृदय विदीर्ण हो विचलित नही होगा। तुम पर सब कितना निर्भर करते हैं, तुम तो सबके जीवन की आधार हो, प्रेरणा हो। तुमसे तो सब साहस संचित करते हैं कि नारी होकर पांचाली इतने कष्ट सह रही है। तुम्हारा एक शब्द ही उनके साहस को ध्वस्त करने के लिये पर्याप्त है। हे सुश्रोणि भाग्य सदा ही बडा बलवान है। तुम तो धर्म की ज्ञाता हो। क्या तुम नहीं जानती कि जनक नंदिनी वैदेही सीता ने कितने कष्ट सहे? यहां तक की श्रीराम ने अपनी साध्वी निर्दोष पत्नी का भी एक रजक के कहने से परित्याग कर दिया किन्तु धन्य है वह भगवती सीता जिसने हृदय पर पाषाण रख कर उस महान वेदना को भी झेल लिया पर श्रीराम को कभी उपालम्भ नहीं दिया। शान्त हो जाओ।

द्रौपदी पीडित हो बोली हां आर्यपुत्र भगवती सीता महान थी। मै चाह कर भी कितना प्रयास करती हूं कि उनकी जैसे धैर्यशीला, सहनशीलता बन सकूं किन्तु हे महाभाग कष्टों की ऐसी सतत श्रृंखला, अपमानों का ऐसा अनादि अनन्त प्रवाह भगवती सीता को भी नहीं झेलना पड़ा। एक एक घटना, मेरे हृदय को विदीर्ण किये जा रही है। अपमान पर अपमान सहते कदाचित मै सन्तुलन गंवा बैठी हूं। मेरे अन्तर में कैसा तिक्त भाव स्थायी रूप से घर कर गया है। मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता है। लगने लगा कि मेरा जीवन व्यर्थ है, निष्प्रयोजन है, केवल अपमान सह कर जीना भी कोई जीवन है? क्या मैं कीचक के अधीन रहूंगी? इसकी अपेक्षा तो मृत्यु का स्वागत करना बेहतर है, सहर्ष मृत्यु का ही वरण करुंगी। हे महाभाग यदि वह अधम कल के बाद जीवित रह गया तो मैं विष पीकर आत्महत्या कर लूंगी। या वह जीवित रहेगा या मैं। यह सुनकर भीम का मन सिहर उठा। पांचाली जैसी दृढ़ प्रतिज्ञ है ये किसी से छिपा नहीं है। वह एक बार जो कहती है वह अवश्य करती है। कितने वर्षों से उसके केश खुले हुये हैं बस इस प्रतीक्षा में दुशासन के वक्ष का रक्त। भीम आतुर हो दृढ़ता से उसका मुख बन्द कर बोले मेरे होते ऐसा मत कहो पांचाली। तुम स्वयं शौर्य की मूर्ति हो। तुम ही यदि ऐसा वचन बोलोगी तो साधारण लोगों का क्या होगा। तुम निर्जीव में प्राण फूंक सकती हो, दुर्बल में शक्ति का संचार कर सकती हो। मिट्टी के शेर में सिंह की हुंकार भर सकती हो।

तुम ही हताश होकर मृत्यु की कामना करने लगी। द्रुपद सुता तुम अपने पराक्रमी पिता को भूल रही हो, अपने वीर भाई की उपेक्षा कर रही हो। तुम वीर माता हो तुम्हारे पांचों किशोर पुत्र और तुम्हारी आंखों का तारा अभिमन्यु जो तुमसे ही प्रेरणा ले रहा है वे सुनेंगे तो क्या होगा कल्याणी? धीरज रखो तुम्हारा कहा कभी टल नहीं सकता। तुम्हारी जटासुर से रक्षा हुई, जयद्रथ से भी रक्षा हुई। तुम अपनी इसी पीडा के कारण आवेश में हो नहीं तो ऐसी बात नहीं कहती।

द्रौपदीने कहा- मेरा दु:ख क्या तुमसे छिपा है? सब कुछ जानकर भी अनजान बने हो? क्या उस दिनकी बात भूल गये हो, जब कि प्रतिकामी मुझे दासी कहकर भरी सभामें घसीट ले गया था? उस अपमानकी आगमें मैं सदा ही जलती रहती हूं। संसार में मेरे सिवा दूसरी कौन राजकन्या है, जो ऐसा दु:ख भोगकर भी जीवित हो? वनवास के समय दुरात्मा जयद्रथने जो मेरा स्पर्श किया, वह मेरे लिये दूसरा अपमान था; पर उसे भी सहना ही पड़ा। अबकी बार पुन: यहाँके धूर्त राजा विराटकी आँखोंके सामने उस दिन कीचकके द्वारा अपमानित हुई। इस प्रकार बारंबार अपमान का दु:ख भोगनेवाली मेरी जैसी कौन स्त्री अपने प्राण धारण कर सकती है? ऐसे अनेकों कष्ट सहती रहती हूं, पर तुम भी मेरी सुध नहीं लेते; अब मेरे जीनेसे क्या लाभ है? प्रतिदिन सैरन्ध्रीके वेषमें मुझे राज महलमें देखकर कहता है- तुम मेरी स्त्री हो जाओ। रोज-रोज उसके पापपूर्ण प्रस्ताव सुनते-सुनते मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। इधर धर्मात्मा युधिष्ठिर को जब अपनी जीविका के लिये दूसरे राजाकी उपासना करते देखती हूं तो बड़ा दु:ख होता है। जब पाकशालामें भोजन तैयार होनेपर तुम विराटकी सेवामें उपस्थित होते और अपनेको बल्लव-नामधारी रसोइया बताते हो, उस समय मेरे मनमें बड़ी वेदना होती है। यह तरुण वीर अर्जुन, जो अकेले ही रथमें बैठकर देवताओं और मनुष्योंपर विजय पा चुका है, आज विराटकी कन्याओंको नाचना सिखा रहा है। धर्ममें, शूरतामें और सत्यभाषणमें जो सम्पूर्ण जगत्के लिये एक आदर्श था, उसी अर्जुनको स्त्रीके वेषमें देखकर आज मेरे हृदय में कितनी व्यथा हो रही है। तुम्हारे छोटे भाई सहदेवको जब मैं गौओं के साथ ग्वालोंके वेषमें आते देखती हूं तो मेरे शरीरका रक्त सूख जाता है। मुझे याद है, जब वनको आने लगी उस समय माता कुन्तीने रोकर कहा था- पाञ्चाली। सहदेव मुझे बड़ा प्यारा है, यह मधुरभाषी, धर्मात्मा तथा अपने सब भाइयोंका आदर करनेवाला है। किंतु है बड़ा संकोची; तुम इसे अपने हाथसे भोजन कराना, इसे कष्ट न होने पाये। यह कहते-कहते उन्होंने सहदेवको छातीसे लगा लिया था। आज उसी सहदेवको देखती हूं- रात-दिन गौओंकी सेवामें जुटा रहता है। यह सब दु:ख देखकर भी मैं किसलिये जीवित रहूँ? समयका फेर तो देखो- जो सुन्दर रूप, अस्त्र-विद्या और मेधा-शक्ति- इन तीनोंसे सदा सम्पन्न रहता है, वह नकुल आज विराटके घर घोड़ोंकी सेवा करता है। उनकी सेवामें उपस्थित होकर घोड़ोंकी चालें दिखाता है। क्या यह सब देखकर भी मैं सुखसे रह सकती हूँ? राजा युधिष्ठिरको जुएका व्यसन है और उसीके कारण मुझे इस राजभवनमें सैरन्ध्रीके रूपमें रहकर रानी सुदेष्णाकी सेवा करनी पड़ी। पाण्डवोंकी महारानी और द्रुपदनरेशकी पुत्री होकर भी आज मेरी यह दशा है। इस अवस्थामें मेरे सिवा कौन स्त्री जीवित रहना चाहेगी? मेरे इस क्लेशसे कौरव, पाण्डव तथा पञ्चालवंशका भी अपमान हो रहा है। तुम सब लोग जीवित हो और मैं इस अयोग्य अवस्थामें पड़ी हूं। एक दिन समुद्रके पासतककी सारी पृथ्वी जिसके अधीन थी आज वही द्रौपदी सुदेष्णाके अधीन हो उसके भयसे डरी रहती है। कुन्तीनन्दन। इसके सिवा एक और असह्य दु:ख, जो मुझपर आ पड़ा है। मेरे हाथोंमें गड्ढे पड़ गये हैं, पहले ऐसे नहीं थे।

ऐसा कहकर द्रौपदीने भीमको अपने हाथ दिखाये। फिर वह सिसकती हुई बोली- न जाने देवताओंका मैंने कौन-सा अपराध किया है, जो मेरे लिये मौत भी नहीं आती।

फिर आन्तरिक क्लेशसे पीड़ित होकर भीम बोले- कृष्णे। मेरे बाहुबलको धिक्कार है। अर्जुनके गाण्डीव धनुषको भी धिक्कार

है, जो तुम्हारे लाल-लाल कोमल हाथ आज काले पड़ गये। उस दिन सभामें मैं विराटका सर्वनाश कर डालता अथवा ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हुए कीचकका मस्तक पैरोंसे कुचल डालता; किंतु धर्मराजने रुकावट डाल दी, उन्होंने कनखियोंसे देखकर मुझे मना कर दिया। इसी प्रकार राज्यसे च्युत होनेपर भी जो कौरवोंका वध नहीं किया गया, दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दु:शासनका सिर नहीं काट लिया गया- इसके कारण आज भी मेरा शरीर क्रोधसे जलता रहता है; वह शूल अब भी हृदयमें काँटेकी तरह कसकता रहता है। सुन्दरी। तुम अपना धर्म न छोड़ो। बुद्धिमती हो, क्रोधका दमन करो। पूर्वकालमें भी बहुत-सी स्त्रियोंने पतिके साथ कष्ट उठाया है। भृगुवंशी च्यवन मुनि जब तपस्या कर रहे थे, उस समय उनके शरीरपर दीमकोंकी बाँबी जम गयी थी। उनकी स्त्री हुई राजकुमारी सुकन्या। उसने उनकी बड़ी सेवा की। सीता घोर वनमें पतिदेव श्रीरामचन्द्रकी सेवामें रहती थी। एक दिन उसे राक्षस हरकर लंकामें ले गया और तरह-तरहके कष्ट देने लगा; तो भी उसका मन श्रीरामचन्द्रजी में ही लगा रहा और अन्तमें वह उसकी सेवामें पहुँच भी गयी। इसी प्रकार लोपामुद्राने सांसारिक सुखोंका त्याग करके अगस्त्य मुनिका अनुगमन किया था। सावित्री तो अपने पति सत्यवानके पीछे यमलोकतक चली गयी थी। इन रूपवती पतिव्रता स्त्रियोंका जैसा महत्व बताया है, वैसा ही तुम भी हो; तुममें भी वे सभी सद्गुण मौजूद हैं। कल्याणी। अब तुम्हें अधिक दिनोंतक प्रतीक्षा नहीं करनी है। वर्ष पूरा होनेमें सिर्फ एक महीना रह गया है। तेरहवाँ वर्ष पूर्ण होते ही तुम राजरानी बनोगी।

द्रौपदी बोली- नाथ। इधर बहुत कष्ट सहना पड़ा है; इसलिये आर्त होकर मैंने आँसू बहाये हैं, उलाहना नहीं दे रही हूं। अब इस समय जो कार्य उपस्थित है उसके लिये उद्यत हो जाओ। पापी कीचक सदा मेरे आगे प्रार्थना किया करता है। एक दिन मैंने उससे कहा- कीचक। तू कामसे मोहित होकर मृत्युके मुखमें जाना चाहता है, अपनी रक्षा कर। मैं पाँच गन्धर्वोंकी रानी हूँ, वे बड़े वीर और साहस के काम करनेवाले हैं। तुझे अवश्य मार डालेंगे। मेरी बात सुनकर उस दुष्टने कहा- सैरन्ध्री। मैं गन्धर्वोंसे तनिक भी नहीं डरता। संग्राममें यदि लाख गन्धर्व भी आवें तो मैं उनका संहार कर डालूँगा। तुम मुझे स्वीकार करो।

इसके बाद उसने रानी सुदेष्णासे मिलकर उसे कुछ सिखाया। सुदेष्णा अपने भाईके प्रेमवश मुझसे कहने लगी- कल्याणी। तुम कीचकके घर जाकर मेरे लिये मदिरा लाओ। मैं गयी; पहले तो उसने अपनी बात मान लेनेके लिये समझाया। किंतु जब मैंने उसकी प्रार्थना ठुकरा दी, तो उसने कुपित होकर बलात्कार करना चाहा। उस दुष्टका मनोभाव मुझसे छिपा न रहा; इसलिए बड़े वेगसे भागकर मैं राजाकी शरणमें गयी। वहाँ भी पहुँचकर उसने राजाके सामने ही मेरा स्पर्श किया और पृथ्वीपर गिराकर लात मारी। कीचक राजाका सेनापति है, राजा और रानी दोनों ही उसे बहुत मानते हैं। परंतु है वह बड़ा ही पापी और क्रूर। प्रजा रोती-चिल्लाती रह जाती है और वह उसका धन लूट लाता है। सदाचार और धर्मके मार्गपर तो वह कभी चलता ही नहीं। उसका भाव मेरे प्रति खराब हो चुका है; जब मुझे देखेगा, कुत्सित प्रस्ताव करेगा और ठुकरानेपर मुझे मारेगा। इसलिए अब मैं अपने प्राण दे दूँगी। वनवासका समय पूरा होनेतक यदि चुप रहोगे तो इस बीचमें पत्नीसे हाथ धोना पड़ेगा। <u>क्षत्रियका सबसे मुख्य धर्म है शत्रुका नाश करना</u>। परंतु धर्मराजके और तुम्हारे देखते-देखते कीचकने मुझे लात मारी और तुम लोगोंने कुछ भी नहीं किया। तुमने जटासुरसे मेरी रक्षा की है, मुझे हरकर ले जानेवाले जयद्रथको भी पराजित किया है। अब इस पापीको भी मार डालो। यह बराबर मेरा अपमान कर रहा है। यदि यह सूर्योदयतक जीवित रह गया, तो मैं विष घोलकर पी जाऊंगी। भीम। इस कीचकके अधीन होनेकी अपेक्षा तुम्हारे सामने प्राण त्याग देना मैं अच्छा समझती हूं। यह कहकर द्रौपदी भीमके वक्षपर गिर पड़ी और फूट-फूटकर रोने लगी।

भीम धैयपूर्वक बोले यह सत्य है कि मेरे भाइयों को राज्य नहीं, धर्म चाहिये। वे राज्य पाने के लिये धर्म अर्जित करने के लिये जन्मे हैं। मैं भी धर्म पर ही चलना चाहता हूं पर मैं अपने शत्रु को अधर्म करते देख धर्म पर स्थिर नहीं रह सकता।

मैं अभी चल कर कीचक का वध कर दूंगा। कहो तो राजा को भी उसके अन्याय का दंड आज की रात दे दूं किन्तु उसका परिणाम होगा हमारा अज्ञातवास सफल नहीं होगा। मैं तो तुम्हे कूटनीति की बात कह रहा हूं कि जो योद्धा आवेश में आकर युद्ध करता है उसके पराजित होने की सम्भावना अधिक है। जीतता वही है जो योजना बनाकर शान्त मन से लडता है। मैं शपथपूर्वक कहता हूं कि उस कामोन्मत पापी को मैं पाषाण पर पटक पटक कर मिट्टी के घट की भांति टुकडे टुकडे कर दूंगा परन्तु तुम विषपान के विषय में सोचो ही नहीं।

उसका वध उसके भवन में न होकर उसे एकान्त स्थान पर आमंत्रित करो जहां मैं छिपकर जाकर उसका वध कर सकूं। कोई हमें वहां पर युद्ध करते न देखे। भीमने उसे हृदयसे लगाकर आश्वासन दिया, उसके आँसुओंसे भीगे हुए मुखको अपने हाथसे पोंछा और कीचकके प्रति कुपित होकर कहा- कल्याणी। तुम जैसा कहती हो, वही करूँगा; आज कीचक को उसके बन्धु-बान्धवोंसहित मार डालूँगा। तुम उसे कल रात को ऐसे स्थान पर अभिसार के लिये आमंत्रित करो जहां रात को पूर्णत: एकान्त और गोपनीयता हो। वह वहां आ जाये और मैं तुम्हारे स्थान पर वहां रहूंगा। शेष मैं अपने आप देख लूंगा। यदि तुम चाहती हो कि वो कल का उदय होता सूर्य नहीं देखे तो कीचक कल का उदय होता सूर्य नहीं देखेगा। तुम अपना दु:ख और शोक दूर कर आज सायंकालमें उसके साथ मिलने का संकेत कर दो। राजा विराटने जो नयी नृत्यशाला बनवायी है, उसमें दिनमें तो कन्याएँ नाचना सीखती हैं परंतु रातमें अपने घर चली जाती हैं। वहाँ एक बहुत सुन्दर मजबूत पलंग भी बिछा रहता है। तुम ऐसी बात करो, जिससे कीचक वहाँ आ जाय। वहीं मैं उसे यमपुरी भेज दूँगा। तुम कीचक से कहो कि तुम उस पर मोहित हो गई हो किन्तु अपने गन्धर्व पतियों से डरती हो। इसलिये वो आज रात नृत्यशाला में गुप्तरूप से रात्रि के प्रथम पहर में आ जाये तुमसे मिलने। मैं वहीं उसका मृत्यु से परिचय करवा दूंगा। वहां नृत्यशाला में रात को कोई नहीं होता। इसलिये अब तुम यहां से जाओ कही कोई तुम्हे मेरे साथ देख न ले। विह्वल पांचाली ने भीम के चरण स्पर्श किये। भीम ने अन्तिम निर्देश दिये, सांत्वना दी स्नेह दिया और विदा किया। बाहर निकल कर जाते समय पांचाली धीर थी गम्भीर थी, शान्त थी, आश्वस्त थी और निडर थी। उसका टूटा मनोबल लौट आया था।

**१५) कीचक वध-** वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय पांचाली अब निर्भीक दृष्टि और सिंह की सी चाल, हुंकार भरती, दर्प से दमकता मुख, नेत्रों में दृढता एवं गर्व। उसे जो नीचा दिखाने का प्रयत्न करेगा वह खंडित हो जायेगा। जो कोई उसका अनिष्ट चाहेगा वह नष्ट हो जायेगा। सैरन्ध्री प्रात: राजमहल की वाटिका में नृत्य कर रही थी और गायन कर रही थी। गीत सुनकर सेनापति कीचक वहां पर आ जाता है। कीचक बोला अरे सैरन्ध्री गाते गाते रूक क्यों गई। गाओ सैरन्ध्री गाओ। तुम तो गायन कला में भी निपुण हो। द्रौपदी बोली हे महारथी आप इस असहाय के शत्रु क्यों बने हुये हैं? मेरे गन्धर्व पति आपका तो कुछ नहीं बिगाड पायेंगे परन्तु मुझे जीता नहीं छोडेंगे। यही कारण है कि मैं आप को चाह कर भी अपने होठों तक आती हुई मुस्कान को पीछे धकेल देती हूं। पता नहीं कौन उनका गुप्तचर हो और जाकर मेरे पतियों को लगा, बुझा दे। कीचक आदेशात्मक स्वर में बोला समझने का प्रयत्न करो सैरन्ध्री, मेरा बल और रणकौशल तो तुम जानती हो कोई मेरा विरोध कर जीवित नहीं रह सकता राजा भी। मैं विराटनगर का सेनापति हूं। सभा में राजा के सामने ही मैंने तुम पर पद प्रहार किया और वो मेरा कुछ नहीं बिगाड सका। अब तुम मुझ जैसे बलवान के हाथों पड चुकी हो। कोई तुम्हे मुझसे बचा नहीं सकता। सारा का सारा सैनिक बल मेरे अधीन है। राजा कभी भी मुझसे विरोध नहीं करेगा। वह तो नाम मात्र का राजा है। सत्ता सम्पूर्ण रूप से मेरे पास है। तुम्ही मेरा भाग्य हो। तुम्हे प्राप्त किये बिना नही मानूंगा अत: तुम मेरा अनुरोध स्वीकार कर लो। तुम अपने पतियों से

बिल्कुल मत डरो। मैं उनका वध कर दूंगा। तुम खुशी-खुशी मुझे स्वीकार करो मैं तुम्हारा दास बन जाऊंगा।

सैरन्ध्री के स्वर में न आक्रोश था, न भय था, न समर्पण। आज सैरन्ध्री का स्वर बदला हुआ था। आज उसमें विरोध नहीं उपालम्ब था और उपालम्ब किसी न किसी सम्बन्ध के आधार पर ही होता है। सैरन्ध्री बोली तुम मेरा महत्व क्यों नहीं समझ रहे हो महारथी? कीचक बोला जान तो रहा हूं तुम्हारा महत्व तभी तो सेवकों के समान तुम्हारे पीछे पीछे घूम रहा हूं। तुम्हारी चाटुकारिता में लगा हुआ हूं। तुम्हे लुभा रहा हूं, मना रहा हूं। तुम्हे वचन देता हूं कि तुम्हारे आदेशों का पालन करूंगा। जो कामना करोगी उसे पूर्ण करूंगा। तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूं। तुम्हारे लिये मर रहा हूं। तुम्हारे पीछे मारा मारा फिर रहा हूं। तुम्हारे लिये तो अपनी अन्य पत्नियों तक को छोडने को तैयार हूं, उन्हें तुम्हारी दासियां बनाने को प्रस्तुत हूं और फिर भी तुम कहती हो मैं तुम्हारा महत्व नहीं समझता। तुम तो मेरे हृदय की स्वामिनी बन चुकी हो। मेरी हृदयेश्वरी, मेरी प्रेयसी, मेरी प्राणेश्वरी, मेरी प्राण बल्लभा हो। सैरन्ध्री बोली तभी तो तुमने मेरे साथ राजसभा में ऐसा व्यवहार किया, मेरे बाल पकडकर घसीटकर, पैरों में ठुकरा कर, क्या यही मेरा सम्मान था? जब अपनी प्रेयसी से ऐसा व्यवहार करते हो तो फिर दासी से कैसा व्यवहार करोगे? ऐसा तो कोई क्रीतदासी से भी नहीं करेगा। कोई गणिका से भी ऐसा व्यवहार नहीं करेगा। कीचक ने सैरन्ध्री की पीडा को समझा और बोला सैरन्ध्री मुझे क्षमा कर दो, मैं तो तुमसे प्रेम करता हूं। पिछली बातों को भूल जाओ।

सैरन्ध्री बोली वीर वर कीचक वह तो कोई प्रेम निवेदन या प्रेम याचना नहीं थी? न ही प्रेम प्रदर्शन था? वह तो निश्चित रूप से अपमानजनक दंड विधान था। एक सैरन्ध्री कर्म करनेवाली प्रेमिका नहीं हो सकती महावीर कीचक और जो प्रेमिका हो जाती है वह फिर दासी नहीं रह जाती। पहिले तुम अपने मन में यह निश्चय करो कि मैं तुम्हारी कौन हूं? कीचक बोला तुम तो मेरी सर्वस्व हो। मैं जानता हूं कि मनुष्य जीवन में उसकी प्रिया का क्या स्थान होता है? तुम्हारे प्रति मेरी आकांक्षा इतनी प्रबल है कि मेरा तो विवेक ही काम नहीं करता। तुम्हारे पाने के मार्ग में जब भी कोई बाधा आती है तो मै उन्मत्त हो उठता हूं, विक्षिप्त हो जाता हूं। उस दिन मुझसे विक्षिप्त मन से उन्मादी कृत्य हो गया। सैरन्ध्री बोली नहीं सेनापति कीचक वह तुम्हारा उन्माद नहीं अहंकार था और यह समझ लो कि प्रेम में अहंकार के लिये कोई स्थान नहीं होता है। या तो प्रेम ही कर लो या फिर अपने अहंकार की ही पुष्टि कर लो। कीचक बोला समझता हूं, अब मुझे यह बताओ प्रिये मेरी कामना कब पूर्ण होगी। मेरी अंक शायनी कब बनोगी। सैरन्ध्री बोली जब तक मैं तुमपर पूर्ण अधिकार न पा लूं तब तक तुम मुझपर अधिकार कैसे पा सकते हो? नारी तो आत्मसमर्पण उसी को करती है जिस पर वह अपना आधिपत्य पूर्णत: स्थापित और सिद्ध कर लेती है। प्रेमी को धैर्य छोडने का अधिकार नहीं है। प्रिया पहिले प्रेमी को तौलती है। उसे अपने मन की कल्पना के अनुसार ढालती है। समर्पण से पहिले उसका मूल्य आंकती है। प्रेम में अहंकार नहीं होता ऊंच नीच नहीं होती छोटा बडा नहीं होता, इच्छायें और स्वार्थ नहीं होता। प्रेम से बलात अपनी इच्छा आरोपित नहीं की जाती। दूसरों की अघोषित इच्छाओं की पूर्ति में अपना सर्वस्व जीवन होम दिया जाता है, जीवन दान कर दिया जाता है। सच्चा प्रेमी तो वही है जो अपना अहंकार, अपना स्वार्थ, अपना मान-अपमान, अपना सर्वस्व अपने प्रेमास्पद को दे डाले। उसके संकेत मात्र से अपने प्राण न्यौछावर कर दे। प्रेमी युगल एक दूसरे को प्राप्त करने के लिये आजीवन प्रतीक्षा रत रहते है। तत्काल शारीरिक सौन्दर्य का भोग प्रेम के क्षेत्र में महामूर्खता है। उससे तो नारी के मन में अंकुरित प्रेम तत्काल नष्ट हो जाता है। और यदि नारी के मन में प्रेम न हो तो प्रेम क्रीडा में फिर पुरुष को क्या सुख मिल सकता है? मैं तो किसी की विवाहिता पत्नी हूं। मैं किसी भी पुरुष से घोषित रूप से तो प्रेम नहीं कर सकती। यदि तुम मुझे चाहते हो तो मेरी शर्त

स्वीकार करो रसिकराज। कीचक बोला जैसा तुम कहोगी वैसा ही करूंगा सुन्दरी। सैरन्ध्री बोली राज नृत्यशाला जहां दिन के समय बृहन्नला राजकुमारियों को नृत्य का अभ्यास करवाती है, रात्रि के समय सर्वथा निर्जन होती है, वहां न कोई प्रहरी रहता है। न ही प्रकाश होता है। एकान्त होता है। रात्रि के प्रथम पहर सन्ध्या होते ही चुपके से वहां चले आना। किसी को भी मालूम नहीं पडना चाहिये। वह नृत्यशाला रात में सूनी रहती है। हम लोग छिपकर वहां ही मिला करेंगे। किसी को कानोंकान खबर भी नहीं होगी और किसी को पता भी नहीं चलेगा हमारे प्रेम का। यदि आप ऐसा कर सकते है तो मैं आपकी हो जाऊंगी। कीचक बोला तुम्हें अपना बनाने के लिये तो मैं कुछ भी कर सकता हूं। सैरन्ध्री बोली तो फिर आज रात नृत्य शाला में आइये, मैं वही आपकी प्रतीक्षा करूंगी और वह वेगपूर्वक उस वाटिका से बाहर चली गई। कीचक को यह पता नहीं था कि सैरन्ध्री के रूप में उसकी मृत्यु आ गई है।

मनुष्य अपनी रक्षा का प्रबंध करता है। सैनिक रखता है। अंगरक्षक रखता है। दंडधर रखता है। बाहर से संभावित सारे आक्रमणों से अपनी रक्षा के लिए, घर के सारे कपाट बंद कर देता है, किसलिए? जबकि उन कपाटों के भीतर उसके साथ रहनेवाले लोग ही उसके हितैषी नहीं हैं। उसकी अपनी पत्नी ही उसकी हत्या कर सकती है। किस माया मोह में भ्रमित घूम रहा है मनुष्य?

उस दिन की सन्ध्या में कीचक उन्मादित हो फिर रहा था। आसव पान किये हुये आरक्त नेत्र, मिथ्याभिमान से तना सीना (वक्ष)। उसने अपने अंगों में बहुमूल्य आभूषण धारण किये। एक ऐसी अपूर्व सुन्दरी ने, पृथ्वीपर बेजोड आज रात्रि विराट की नृत्यशाला में अभिसार के लिये आमंत्रित किया है। दिन में उस नृत्यशाला में नृत्य संगीत गुंजरित होते रहता किन्तु रात्रि को वह जनशून्य हो जाती। आज रात्रि वहीं वह सौन्दर्य कामिनी मिलेगी जिसके पीछे महीनों से बावला पागल हुआ फिरते रहता है। वह जानता है नारी हृदय कैसे वश में किया जाता है। रूपगर्विता उस सैरन्ध्री ने आरम्भ में उसके कितने प्रणय निवेदन प्रस्ताव ठुकराये थे और अब वह अबला स्वयं ही झुक गई उसके लिये तैयार हो गई। लातों के दीप भला बातों से कब माननेवाले होते है। वह बडी घमंडी है। महल के दास-दासियों, सेवक, सैनिक, परिचारिकाओं से तो बात भी नहीं करती, बडी गर्वीली है। पता नहीं किस गर्व, दर्प से तनी रहती है? किन्तु कीचक ने आज उसका दर्प चूर कर दिया। आज वह नृत्यशाला में अपूर्व श्रृंगार और सौन्दर्य के साथ कीचक की प्रतीक्षा करती मिलेगी। स्वागत करेगी। आत्म समर्पण करेगी। रेशमी वस्त्र, बहुमूल्य आभूषण, स्वर्णाभूषण, रत्न जटित किरीट आदि से सजकर अधिक आकर्षक हो रूप सज्जा से तैयार हो रहा था कीचक।

कीचक स्वयं अपने रूप को दर्पण में देखकर मोहित हो रहा था कि आज वह गर्वीली सैरन्ध्री उसके रूप को देखकर लुट जायेगी। कीचक का रूप आज द्विगुणित हो सबको लुभा रहा था। वैसे तो साधारण से साधारण नारी की दृष्टि रूप पर टिकती है वह पुरुष के वस्त्रों को देखती है, आभूषणों को, केश संवारने के विन्यास को निहारती है तथा उसके पादत्राणों को भी। सैरन्ध्री दूसरी स्त्रियों से भिन्न है। उसने कभी भी कीचक के धन को महत्व नहीं दिया न ही उसने कीचक से कभी कोई अनुरोध किया किसी अपेक्षा के लिये। सन्ध्या हो गई और पृथ्वी पर अन्धकार उतर आया। कीचक उठ खडा हुआ नृत्यशाला जाने के लिये। कीचक का मन बल्लियों उछल रहा था। भीम रात्रि के समय नृत्यशाला में जाकर छिप कर एक पर्यंक पर जाकर बैठ गये और कीचक की प्रतीक्षा करने लगे जैसे वन में सिंह मृग की घात में बैठा रहता है। उस समय वह नृत्यशाला भवन सब ओर अन्धकार से व्याप्त था। उन्मत्त चरणों से वह अन्धकार एवं एकान्त में स्थित नृत्यशाला में पहुंचा और गदगद हो उठा। आज

कीचक का स्वप्न सत्य हो रहा है। नारियों को आकर्षित करने का वशीकरण मन्त्र तो वह भली भांति जानता है। वह मग्न हो उठा। उसे क्या पता था कि मृगचर्म की चादर ओढे कोई साक्षात नर व्याघ्र ही उसकी प्रतीक्षा कर रहा है।

कीचक वहां आया और बोला यह अन्धेरा ओढे हुये सन्नाटा कितना भावुक है? द्रौपदी भी वहां कक्ष में छिपी हुई थी और बोली क्षणभर में हमारे मिलन का प्रकाश फैल जायेगा महानुभाव। अब उस प्रकाश में तुम्हे मेरा एक अलग ही रूप दिखाई देगा। कीचक उस चादर ओढे व्यक्ति के पास आकर उसे झकझोर कर बोला हां मेरी बाहें तुम्हारे गले में पडने के लिये व्याकुल हो रही है सैरन्ध्री। सैरन्ध्री बनी द्रौपदी बोली तो तुम्हारी बाहों को रोक कौन रहा है महाशय? कीचक मदान्ध हो बोला बस इसी क्षण की प्रतीक्षा थी। इसी क्षण के लिये तो मैं व्याकुल हो रहा था। शैया के किनारे बैठ उस कीचक ने आतुर हो अपना हाथ आगे बढाया और बोला हे शुभ्रे तुम्हे मैं अपनी लावण्यमयी रानियां, रत्न भंडार सम्पत्ति सब कुछ अर्पण कर रहा हूं। हे भामिनी आज तुम्हारा भाग्य भंडार खुल गया। हे कोमलांगी प्रियतमें तुम्हे क्या बताऊं कि मुझपर तो बडी बडी सती साध्वी नारियाँ तक मरती  है पर मैं तो तुम्हे देखकर विह्वल हो गया। उसने झुककर सैरन्ध्री समझ पर्यक पर बैठे कोमल कर को अपने हाथ में लेना चाहा कि एक भयंकर चीत्कार कीचक के मुख से फूट पडा। समझ नहीं पाया यह अकस्मात क्या हुआ उसे। भीम उत्तरीय वस्त्र चादर ओढे बैठा था, कीचक ने जैसे ही वह वस्त्र सैरन्ध्री का है समझकर हटाया सामने भयंकर गर्जना करते उसे चादर में छिपा भीम पुरुष रूप में दिखाई दिया और बोला आप तो बडे दर्शनीय है। आपने ऐसा स्पर्श पहले कभी नहीं किया होगा। और उसके हाथ को सैरन्ध्री का हाथ मोडे डाल रहा था, तोडे डाल रहा था। असहाय पीडा से छटपटाता वह मदान्ध कीचक पुकार पुकार कहने लगा यह क्या सैरन्ध्री तुम्हारे इन कोमल हाथों में इतना बल। उस चादर का आवरण फेंक भीम उछल बैठे और अट्टहास कर कीचक का हाथ दबा हाथ मरोडने लगे। कीचक आर्तनाद करने लगा। भीम बोले अधम। धूर्त। अभी तक स्पर्श से भी नहीं पहिचान पाता कि नारी का हाथ है या तेरे काल का। मद्यपी दुराचारी बडा कामशास्त्र का प्रकाण्ड ज्ञाता बना हुआ है। और उसके केश पकड़कर उसे झटक दिया। भीम बोले अरे पापी तू पर्वत के समान बडे डीलडौलवाला है किन्तु सिंह जैसे एक विशाल गजराज को घसीटता है उसी प्रकार तुझे पृथ्वीपर मसल डालूंगा और तेरी बहिन महारानी सुदेष्णा यह सब देखेगी। बाहें तो मेरी तेरे गले में पडने को व्याकुल हो रही है और उठा कर घूमाकर कीचक को पृथ्वी पर पटक दिया। दोनो पैंतरे बदल-बदल कर आपस में एक दूसरे के साथ मल्लयुद्ध करने लगे। भीम कीचक की छातीपर चढ बैठा।

कीचक भी बडा बलवान था अपने को भीम की फांस से छुडा कर उठ खडा हो बड़ी फुर्ती से दोनों हाथों से भीम को पकड लिया। फिर क्रोधित हो उन पुरुष सिंहो में परस्पर बाहु युद्ध होने लगा। दोनों ही बडे वीर थे। उनकी भुजाओं की रगड से बांस फटने के कडक के समान बडा भारी शब्द हुआ। फिर जिस प्रकार प्रचंड आंधी वृक्षों को झकोड डालती है वैसे ही भीम कीचक को पकड उठाकर नृत्यशाला में घूमाने लगे। महाबली कीचक ने भी अपने घुटनों की चोट से भीम को आहत कर भूमि पर गिरा दिया फिर भी भीम दंडपाणि यमराज के समान वेग से उछलकर खडा हो गया। भीम और कीचक दोनों ही बडे बलवान थे। आपसी इस युद्ध की स्पर्धा के कारण दोनों भी उन्मत हो रात्रि के समय उस निर्जन नृत्यशाला में एक दूसरे को रगडते हुये क्रोधित हो भयंकर गर्जना करने लगे, जिससे वह भवन बार-बार गूंज उठता था। दोनों क्रोध से तिलमिला उठे और आपस में गूंथ गये। दोनों प्रवृद्ध वृषभों की भांति आपस में टकरा रहे थे। क्रोधोन्मत मतंगों की भांति लड रहे थे। अन्ततः कीचक दुर्बल मृग की भांति उस नर शार्दूल के हाथों में छटपटाने लगा। भीम तो इस समय यमराज

का पाश बना हुआ था, उससे कैसे बच पाता कीचक? भयंकर ध्वनियां निकालता हुआ चैतन्य संज्ञाहीन हो चला था कीचक। अन्त में भीम ने क्रोधित हो उसके केश पकड कर उसे थका जान अपनी भुजाओं में कसकर पकड लिया जैसे रस्सी से पशु को बांध देते है। अब कीचक फूटे हुये नगाडे के समान जोर-जोर से डकराने और उसकी भुजाओं से छूटने के लिये छटपटाने लगा। किन्तु भीम ने उसे कई बार पृथ्वी पर रगडकर घूमाकर गला ही पकड लिया और द्रौपदी के क्रोध को शान्त करने के लिये उसका गला ही घूटने लगे। क्रोध से विक्षिप्त गजराज जैसे अपनी सूंड में लपेटकर अपने शत्रु को घूमाता है वैसे ही वृकोदर ने उसे उठाकर घूमाकर उसका कंठ दबा दिया। गला घोट दिया।

कीचक के नेत्र फट पडे। उसे भूमिपर डाल प्रचंड हुंकारे भर कर उस पर चढ गये। उस मरणासन्न अधम को पांवो तले रौंद रौंदकर मार डालने से भी भीम को सन्तोष नहीं हुआ। भीम ने उसके हाथ पैर तोडकर उसके धड में घुसा दिया। इस प्रकार जब उसके सब अंग चकनाचूर हो गये और आंखे बाहर निकल आयी तो उन्होने उसकी पीठ पर अपने घुटने टेक अपनी भुजाओं से मरोड पशु की भांति उसे मार डाला। भीम ने कीचक को मारकर उसके हाथ पैर सिर सारे अंग उसके शरीर पिंड में ही घुसा दिया और उसे मांस का एक लौंदा बना दिया और फिर मांस पिंड के उस वीभत्स आकार को देखकर उन्मत रूप से उठ द्रौपदी से बोले। देखो याज्ञसेनी कामोन्मत्त की यही स्थिति होती है। इसके अस्थि, चर्म मांस मैंने चूर्ण कर मांस पिंड बना दिया। यह मनुष्य दिखने योग्य भी नहीं था न ही मनुष्य कहलाने योग्य। मैंने इसे नीच योनि का कच्छप बना दिया देखो इस काम के कीडे की क्या गति बनाई है मैने। हे भीरू जो कोई तुम पर कुदृष्टि डालेगा वह मारा जायेगा और उसकी यही गति होगी। मैंने तुम्हारी बात रखली पांचाली। यह अब कल का उदय होता सूर्य कभी नहीं देखेगा। इस प्रकार पांचाली की प्रसन्नता के लिये भीम ने यह दुष्कर कर्म किया। पांचाली हतप्रभ सी खडी स्तम्भ के सहारे खडी सोच रही थी कि वह लीलामय प्रभु किन किन पापियों और दुराचारियों की मृत्यु का निमित्त बनायेगा मुझे। भीम का क्रोध शान्त हुआ तो वह द्रौपदी से पूछकर पाकशाला में चला गया।

**चाहा छूना आग को गई कीचक की जान, द्रौपदी के अश्रु को मिला आत्मसम्मान।**

कीचक का वध कर द्रौपदी बडी प्रसन्न हुई और उसका सारा सन्ताप जाता रहा। उसने नृत्यशाला की रक्षा करनेवालों से कहा यह कीचक यहां मरा पडा है। मेरे गन्धर्व पतियों ने उसकी यह दशा की है। नृत्यशाला में सहस्त्रों प्रज्वलित उल्कायें लिये रक्षकों की भीड भय, आतंक और कौतुक से देख रही थी खून में सने उस अंगहीन मांस पिंड को जो कच्छप समान हुआ पडा था कीचक का शव। उसी समय कीचक के बन्धु बांधव उपकीचक एकत्रित हो उस शव को घेरकर विलाप करने लगे और कीचक के शव की अन्त्येष्टि की तैयारी करने लगे। वहीं उन सबकी दृष्टि दूर खडी द्रौपदी पर पडी। तब उपकीचकों ने कहा यह सब इस दुष्टा के कारण ही हुआ है इसलिये इसे भी यहीं मार डालना चाहिये। यह सोचकर सबने राजा विराट से जाकर कहा कीचक की मृत्यु इस सैरन्ध्री के कारण हुई है। अत: हम इसे कीचक के साथ ही जला डालकर मार देंगे। राजा ने उपकीचकों के पराक्रम से भयभीत हो सैरन्ध्री को कीचक के साथ जला डालने की सहमति दे दी। उपकीचकों ने भी भयभीत हुई उस अचेत सैरन्ध्री द्रौपदी को पकड कीचक की अर्थी पर डाल दिया और कीचक व द्रौपदी सहित उस अर्थी को उठाकर श्मशान की ओर ले चले। पांचाली सनाथा होनेपर भी उन उपकीचकों के चंगुल में पडकर अनाथों की भांति विलाप करने लगी और सहायता के लिये चिल्ला कर पुकारने लगी। भीम ने पांचाली का विलाप सुना और बडे वेग से श्मशान घाट पहुंच गये। भीम ने वहां पर एक विशाल वृक्ष उखाडकर दंडपाणि यमराज के समान उन १०६ उपकीचकों के ऊपर फेंकना शुरू किया और उन्हे

यमपुरी पहुंचा दिया। व्यथित पांचाली रह रहकर उस नील कलेवर को स्मरण करती और कहती कितना संहार भगवन। मुझे किस किस की मौत का निमित्त बनाकर किस किस अधर्मी को दंडित करेंगे। सब नगरवासियों ने सारा प्रकरण जान महाराज विराट से निवेदन किया। कीचक और उपकीचकों के वध से भयभीत हो महाराज अपनी रानी सुदेष्णा से बोले। देखो यह क्या हो गया। अब सैरन्ध्री जब यहां आये तो उसे कह देना कि अब उसकी जहां इच्छा हो वही चले जाये महाराज उसके पति गन्धर्वों से भयभीत है। द्रौपदी नृत्यशाला से लौट रही थी उस समय वह बृहन्नला बने अर्जुन से मिली। बृहन्नला ने पूछा तू उन पापियों से कैसे बच पायी? सैरन्ध्री बोली मेरे कष्ट पीडा को तुम क्या जानो बृहन्नले। तुम तो आनन्द से हो इन राज बालाओं के साथ नृत्य शिक्षा देने में। बृहन्नला ने कहा कल्याणी मैं भी इस नपुंसक योनि में महान दुःख भोग रही हूं। मनुष्य कभी क्या दूसरों की पीडा समझ पाया है क्या? मेरे कष्टों का तुम क्या अनुमान लगा सकती हो। मेरे अन्तर्द्वन्द्व को तुम क्या जानो मेरी जैसी शोचनीय स्थिति किसी की भी हुई है क्या?

प्रतिशोध तो कभी भी धर्म तथा न्याय पर आधृत नहीं होता। धर्म की रक्षा, केवल राजा का ही कर्तव्य तो नहीं है। वह तो प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है और स्त्री की रक्षा करना तो प्रत्येक पुरुष का धर्म है। कर्त्तव्य का पालन न तो अधिकारों की अपेक्षा करता है और न पुकार की प्रतीक्षा। नारी के शरीर का सौन्दर्य दोषी नहीं होता, पुरुष के मन की वासना दोषी होती है। इसलिये नियन्त्रण मन और वासना का होना चाहिए। जो पर स्त्री के रूप को देखकर अपना स्वयं खो देता है। एक संपत्ति सौंदर्य की सैरन्ध्री के पास थी और धन राजा विराट के पास। किसी के मन में उसका रूप देखकर उसे पाने की इच्छा होती थी तो किसी के मन में राजा के धर्म को देखकर उसे पाने की इच्छा होती थी। राजा विराट की दृष्टि में भय भी था, आश्चर्य भी और विरोध भी। पाप पदार्थ में नहीं, व्यक्ति के मन में होता है। हमने जो समाज बनाया है, राज्य बनाया है और धर्मशास्त्र बनाया है। वह इसलिए कि हम सबके अधिकारों को मान्यता देते हुए समाज में सम्मानपूर्वक सुरक्षित रहें। उसके लिए आवश्यक है कि हम अपने लोभ पर नियंत्रण रखें। अपने स्वामित्व के अधिकार के समान दूसरों के स्वामित्व के अधिकार का भी सम्मान करें। अपने मनोविकारों का नियंत्रण करें। पराई स्त्री और पराए धन का लोभ न करें। जो इस प्रकार के लोभ को त्याग नहीं कर सकता वह दण्डनीय है, पदार्थ अथवा गुण का वास्तविक स्वामी नहीं। वासना तो एक मनोविकार है। इसलिए वह मन में है नारी के मन में अथवा पुरुष के मन में। राम के सौदर्न्य को देखकर यदि शूर्पणखा के मन में वासना जागी, तो दोष राम का था या शूर्पणखा का। सीता के रूप को देखकर रावण के मन में वासना जागी तो दोष सीता के सौन्दर्य का था अथवा रावण की वासना का। यदि सैरन्ध्री के सौंदर्य को देखकर कीचक के मन में वासना जागी तो दोष सैरन्ध्री का था या कीचक का? चाहे विराट नगर क्यों न हो सत्य का रूप तो नहीं बदल सकता। किंतु विराट नगर में सैरन्ध्री की उपस्थिति से राजा भयभीत थे। बृहन्नला ने कहा था, जो भी होता है उस ईश्वर की इच्छा से। सैरन्ध्री चिढ़कर बोली, क्या आवश्यकता थी उस ईश्वर को उसे ऐसा संसार बनाने की। क्या मिल जाता है मनुष्य को पीड़ित करके? क्या वह ऐसा संसार नहीं बना सकता था जिसमें पीड़ा और यातना न हो। जिसमें पाप और अपराध न हो। ऐसा क्या है जिसका निर्माण उसके वश में नहीं है? किन्तु ऐसे संसार में स्वच्छ रहने का कोई महत्व नहीं है, जिसमें धूल मिट्टी और धुँआ न हो। इस पृथ्वी पर इस वायुमंडल में, जहाँ मलिन होने के सारे उपकरण है, उन सबके होते हुए भी स्वच्छ रहने का महत्व है। सुख और दुःख उस ईश्वर ने नहीं बनाए हैं ये तो हमारे ही बनाए हुए हैं। यह हमारा अहंकार है जो हमें दूसरों से पृथक कर इस शरीर तक सीमित करता है तो फिर स्वयं को बड़ा-छोटा, सुखी-दुखी मानता है। स्वयं को इस शरीर से पृथक कर

तटस्थ भाव से संसार को देखो तो हमें पता चलेगा कि न सुख है न दु:ख है। यह सब तो हमारे बनाये हुए भ्रममात्र है। कष्ट हमें हमारा मन ही देता है। मन में घृणा न हो, तो संसार में कहीं घृणा नहीं है। मन में हिंसा न हो तो संसार में हिंसा नहीं है।

तत्पश्चात द्रौपदी राजभवन गयी और सुदेष्णा ने जैसे महाराज विराट ने कहा था वैसे ही बोली भद्रे महाराज को तुम्हारे गन्धर्व पतियों से डर है। तू भी तरुणी है और संसार में तेरे समान कोई रूपवती नारी भी नहीं है। पुरुषों को तो विषय सेवन स्वभाव से ही प्रिय होता है। तुम्हारा सौन्दर्य अद्वितीय है और पुरुषों को विषय-भोग प्रिय है। तेरे गन्धर्व पति बडे ही क्रोधी है। अत: अब तेरी इच्छा हो जब यहां से चली जा। मेरी ओर से तुम पूर्णत: स्वतन्त्र हो।

सैरन्ध्री बोली मुझे किस अपराध के लिए आप निष्कासित कर रही है। कीचक आपका भाई था यह सत्य है। उसकी मृत्यु का दु:ख भी आपको होगा ही। किन्तु उसे मैंने नहीं मारा वह तो अपने कर्मों के कारण मारा गया। सैरन्ध्री ने निवेदन कर कहा महारानी अब मुझे १३ दिनों के लिये और क्षमा कर दें इसके पश्चात मेरे गन्धर्व पति यहां आयेंगे और मुझे अपने साथ ले जायेंगे। इस बीच भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है वे आपका भी हित करेंगे।

रानी अपना भय नहीं छिपा सकीं और बोली मैं नहीं जानती कि तुम कौन हो और क्या हो। पर तुम एक साधारण सैरन्ध्री नहीं हो। तुम जब तक चाहो स्वामिनी बनकर यहाँ रहो किन्तु मुझे एक वचन दो मेरे परिवार का कोई अनिष्ट नहीं होगा। सैरन्ध्री बोली- मुझसे भय न करो महारानी और मुझे सैरन्ध्री समझकर ही अपने आश्रय में कुछ दिन और रहने दो। मैं आपको वचन देती हूं मेरे कारण आपका कोई अनिष्ट नहीं होगा।

## १६) शकुनि पुत्र उल्लूक का गान्धार से हस्तिनापुर में आना

महाभारत में प्रतिज्ञा और वचन का बडा महत्व है। कदाचित इसका कारण यह है कि मानव जाति में यही बात बार-बार कहना आवश्यक है कि वचन तोडने के लिये नहीं दिये जाते इसलिये जिधर देखिये उधर ही कोई न कोई किसी वचन, किसी प्रतिज्ञा से बन्धा खडा है। कहीं गंगा पुत्र भीष्म खडे है, कहीं शिखंडी, तो कहीं भीष्म बन्धे हुये है, कहीं अर्जुन, कहीं द्रौपदी अपने बालों से बन्धी खडी है। कहीं पांचाल नरेश द्रुपद प्रतिहिंसा की डोरियों से जकडे हुये है। स्वयं शकुनि ने भी अपने आपको एक वचन दे रखा था परन्तु वो देख रहा था कि उसके वचन की यात्रा के कोष दिन ब दिन कडे होते जा रहे है। शकुनि अपने कक्ष में बैठा अपनी तलवार को धार लगा रहा था।

द्वारपाल ने आकर सूचना दी गान्धार नरेश की जय हो। युवराज उलूक आपके दर्शनों की आज्ञा चाहते हैं। शकुनि बोला वो गान्धार से कब आये। द्वारपाल ने कहा सूर्यास्त के समय। शकुनि बोला बुलाओ उन्हे वो मेरा पुत्र है। उलूक आया, शकुनि ने आशीर्वाद दिया आयुष्मान भव, कीर्तिवान भव। आओ मेरे निकट बैठो। यह तो बताओ मेरा गान्धार कैसा है? उलूक बोला वैसा ही सुन्दर है जैसा आप छोडकर आये थे। शकुनि बोला मैं गान्धार को कभी छोडकर नहीं आया। हर रात मेरे सपने मुझे गान्धार ले जाते। मैं तो गान्धार की गलियों को प्रणाम करता हूँ। उसकी सुगंधित वायु में सांस लेता हूँ और फिर लौट आता हूं। उलूक बोला पिताश्री आप फिर एक बार वहां क्यों हो नहीं आते ? शकुनि बोला मैं वहां अभी नहीं जा सकता। देखता नहीं पुत्र मैं अपनी तलवार को धार लगा रहा हूं। अब अपने शस्त्रों के निकट रहने के दिन आ गये हैं, ऋतु बदल रही है उलूक। मैंने तो अपने पांसे भी बन्द कर रख दिये हैं। देखो मेरे ये खाली हाथ, बिन पांसों के ये कैसे अधूरे लग रहे हैं? जीतने को तो मेरे पांसों ने कई दांव जीते परन्तु अब मुझे ऐसा लग रहा है जैसे मैं जीत कर भी सब कुछ हार गया। सब कुछ। पांडवों का अज्ञातवास भी अब समाप्त होने जा रहा है पुत्र। परन्तु हम अभी तक उनके छदम वेश को पहिचान नहीं पाये। इसलिये औपचारिकता से शत्रुओं से युद्ध

तो करना पडेगा पुत्र और यह युद्ध युद्ध नहीं होगा पुत्र, यह तो कोई महायुद्ध होगा।

युद्ध का परिणाम तो कोई नहीं जानता परन्तु इस युद्ध में शकुनि का एक स्वप्न साकार हो जायेगा, विनाश हो जायेगा कुरुवंश का। सर्वनाश। उनके शवों को उठाने कोई नहीं बचेगा कोई नहीं। उलूक बोला यह आप क्या कह रहे हैं पिताश्री? शकुनि बोला मेरी बहिन गान्धारी से नेत्रहीन धृतराष्ट्र के साथ विवाह का प्रस्ताव लाकर गंगा पुत्र भीष्म ने जो गान्धार का अपमान किया है उलूक मैं उसे कभी नहीं भूल सकता। कभी नहीं। मैं जब भी राजभवन जाता हूं उस कमलनयनी मेरी बहिन गान्धारी को देखता हूँ तो मेरा खून खौलने लगता है और मेरा क्रोध अपने लम्बे लम्बे सांसों से मेरा हृदय खरोचने लगता है उलूक। परन्तु तुम ना डरो पुत्र, तुम तो गान्धार के दीप हो पुत्र और कदाचित कुरूवंश से उठनेवाली इस आंधी से तुम तो बच ही जाओगे पुत्र। उलूक बोला परन्तु पिताश्री हमें कौरवों और पांडवों के युद्ध से क्या लेना? हम तो गान्धार लौट सकते हैं। शकुनि बोला नहीं पुत्र नहीं मैं एक जुआरी हूं, हार कर तो उठ ही नहीं सकता। दुःख तो केवल यह है कि इस द्यूत क्रीडा का अन्तिम दाव किसी द्यूत क्रीडा गृह में नहीं लगेगा, रणभूमि में लगेगा और दोनों ही ओर से पांसे फेंकेगा काल। मैं युद्ध कला में निपुण अवश्य हूं परन्तु काल तो फिर काल ही होता है फिर मैं उस सूत पुत्र कर्ण की भांति ऐसा तो नहीं कर सकता कि विजय और पराजय के विषय में सोचे बिना ही रणभूमि की ओर चल पडे। कर्ण जैसों का जीना बहुत सहज होता है पुत्र। दुष्ट व्यक्ति जब किसी को स्मरण करता है तो किसी दुर्गुण के कारण ही करता है। शकुनि ने किसी के गुण का तो उसने कभी स्मरण ही नहीं किया होगा।

## १७) दुर्योधन की पांडवों का अज्ञातवास भंग करने के विषय में मन्त्रणा व प्रयास

पांडवों का अज्ञातवास समाप्त हो रहा है यह जानकर भीष्म पितामह को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। इस प्रसन्नता के कारण उनके भवन में असंख्य दीपक जगमगा रहे थे। गान्धार कुमार शकुनि भीष्म के भवन के पास से जा रहे थे। उस जगमगाते प्रकाश को देखकर वह भीष्म के भवन में चला गया। शकुनि बोला पितामह इतनी जगमगाहट। प्रणाम तातश्री। भीष्म बोले आओ गान्धार नरेश। शकुनि बोला यों उठकर मुझे लज्जित मत कीजिये तातश्री। भीष्म बोले यहाँ विराजिये। शकुनि ने कहा मैं बहिन गान्धारी के यहां से लौट रहा था कि आपके भवन की जगमगाहट देखकर आश्चर्य में पड गया कि आज तो दीपावली की रात भी नहीं है तातश्री। भीष्म बोले इतने दिन अन्धेरों से जी ऊब चुका था गान्धार नरेश। तो सोचा कि जी भरकर प्रकाश को देख लूं। और फिर इन दीयों का जीवनकाल भी क्या? क्या पता कब किधर पवन का झौंका आ जाये और ये सारे के सारे दीये बुझ जाये और यह भवन वापिस अन्धकार मय हो जाये किन्तु जब तक ये दीये जल रहे हैं तब तक ये कितने अच्छे लग रहे हैं गान्धार नरेश। शकुनि बोला ये तो अनगिनत ही होंगे न तातश्री। भीष्म बोला मैंने बाहर के दीये तो गिने नहीं गान्धार नरेश पर मेरे कक्ष के भीतर १०५ दीये जलकर प्रकाश कर रहे हैं और मेरा हृदय यह चाहता है गान्धार नरेश कि न ही इस रात का कभी अन्त हो और न ही ये दीपक कभी बुझे। शकुनि भीष्म पिता से बात कर वहां से चला गया।

दुर्योधन के सारे गुप्तचर विभिन्न राज्यों और प्रदेशों में खोज कर दुर्योधन के पास लौट आए। उन सबने बड़े विस्तार से उसे बताया था कि उन्होंने पांडवों को किस किस वन में खोजा, किस किस नगर में ढूँढ़ा, किस-किस राज्य में उनके विषय में पता लगाया, किस किस राजसभा में उनकी महीनों प्रतीक्षा की, किन्तु उनमें से किसी ने भी ऐसी कोई सूचना नहीं दी कि उन्होंने पाण्डवों अथवा जैसे लगनेवाले किन्ही लोगों को देखा, अथवा उनके विषय में सुना। स्वयं को धुरंधर खोजी

माननेवाले उसके गूढ़ पुरुषों ने भी बड़े विस्तार से वर्णन कर बताया कि किन असहनीय कठिन परिस्थितियों में तथा किन दुर्गम स्थानों पर उन्होंने पांडवों को खोजा। गुप्तचरों ने बताया कि पांडव कहीं नहीं मिले। दुर्योधन ने पूछा, तो फिर पाण्डव गये कहाँ? क्या उन्हें धरती निगल गयी, या आकाश खा गया? गुप्तचर बोले महाराज कदाचित् वन के भयंकर पशु उन्हें खा गये हों। गुप्तचर अपनी असफलता को छिपाने के लिए पाण्डवों की मृत्यु की संभावना पर बहुत अधिक बल दे रहे थे। दुर्योधन यह स्वीकार नहीं कर सकता था कि पाण्डवों की मृत्यु हो गयी होगी। जो पाण्डव लाक्षागृह की आग में भी जीवित बच गये। हिडिंब वन में सुरक्षित निकल आये। वे पाण्डव अब इतने सफल और समर्थ मित्रों और संबंधियों के होते हुए कठिन जीवन के अपने इतने अनुभव के पश्चात अज्ञातवास में किसी दुर्घटना के शिकार हो मृत्यु की गोद में चले जाए। धृतराष्ट्र पाण्डवों के शत्रु हैं किन्तु उनके मन में पाण्डवों के लिये घृणा नहीं है। मन में भय अवश्य है। दुर्योधन डर रहा था यदि एक सप्ताह में पाण्डवों को अज्ञातवास में नहीं खोज पाया तो उनका अज्ञातवास का समय पूर्ण हो जायेगा और वह अपना राज्य मांगने के लिए आ खड़े होंगे। दुर्योधन सोच रहा है भीष्म पितामह किसका पक्ष लेंगे? उनकी भूमिका क्या होगी? भीष्म पितामह क्या दुर्योधन की सहायता करेंगे वे तो यही चाहेंगे कि पाण्डवों को उनका राज्य दे दिया जाए और पाण्डव सुख से रहें। भीष्म पितामह ने तो सदा यही कहा है कि वो दोनों को समान रूप से प्रेम करते हैं। वे तो चाहेंगे कि युधिष्ठिर और दुर्योधन दोनों ही सुखी रहें। पर भीष्म पितामह तो हस्तिनापुर सिंहासन के प्रति निष्ठावान हैं और निष्ठा के निर्वाह के मार्ग में न व्यक्तिगत संबंध आना चाहिए न तटस्थता। दुर्योधन को तो शुद्धनिष्ठता चाहिये राज सिंहासन के प्रति। भीष्म के लिये कर्त्तव्य का पालन ही सबसे श्रेष्ठ धर्म है। उसमें न तो कोई व्यक्तिगत भावनाओं के लिए कोई स्थान है और न व्यक्तिगत संबंधों के लिए। द्रोण क्या करेंगे और कृपाचार्य क्या करेंगै? वे किस पक्ष में से युद्ध करेंगे? युद्ध तो राजनीति प्रेरित होते हैं उनका कारण न धर्म है, न संबंध। किसी सेनापति को राजा यह अनुमति नहीं दे सकता कि युद्ध के समय वह यह सोचने लगे कि वह अपना पद त्याग कर, धर्म के लिए, न्याय के लिए, व्यक्तिगत संबंधों के लिए, अपने स्नेह और प्रेम के लिए युद्ध करेगा। संधि-विग्रह का निर्णय केवल राजा करता है, और उसका आधार राजनीतिक स्वार्थ होता है। भीष्म को न यह अधिकार है कि वे यह निर्णय करें कि कौन-सा युद्ध करें और कौन सा नहीं। न यह अधिकार है कि वे यह तय करें कि किसके साथ युद्ध होगा, किसके साथ नहीं। यह निर्णय तो दुर्योधन ही करेगा। भीष्म को तो सेना का संचालन करना होगा। कर्ण बोला, मित्र मैं यह नहीं कहता कि तुम्हारे गुप्तचर योग्य नहीं है अथवा उन्होंने पाण्डवों को खोजने का प्रयत्न नहीं किया। पर पाण्डवों को सही प्रकार खोजने का सोचकर कार्य नहीं किया। जहाँ कहीं जन संकुल स्थान में भीड़ होगी, उसके साथ गतिविधि अधिक होगी, काम भी बहुत होगा, व्यापार भी होगा। वहाँ का व्यवसायी, उद्यमी और उत्पादक, सदा ही सस्ते श्रम की खोज में रहता है। उस समय वहाँ जो भी कम पारिश्रमिक पर अधिक श्रम करने को प्रस्तुत होगा, वह उसे काम पर नियुक्त कर लेगा। वह यह जानने का प्रयत्न नहीं करेगा कि वह व्यक्ति कौन है कहाँ से आया है, चोरी करके तो नहीं आया? कोई हत्या तो नहीं की? वह तो देखता है कि वह कम से कम पैसे में काम कर रहा है या नहीं? इसी नियम के अन्तर्गत धनी और व्यवसाय प्रधान राज्यों में बाहर के प्रवासियों का सदा आवागमन होता है। निर्धन, विदेशी और प्रवासी लोग अपनी आजीविका की खोज में कम पारिश्रमिक पर अधिक कार्य करते हैं। उनका स्वामी यह भी जानता कि वे लोग अवैध रूप से कार्य कर रहे हैं। वे लोग अधार्मिक अथवा अपराधी वृत्ति के भी होते हैं। वे अपना पता किसीको भी नहीं देते क्योंकि उनके इन्हीं अज्ञात कारणों के कारण अधिक से अधिक शोषण किया जा सकता है। उसे नियम, विधान, शास्त्र, धर्म,

राज्य, समाज और राजा की चिंता नहीं होती। वह तो उस समय केवल अपना स्वार्थ देख रहा होता है।

समाज-सापेक्षता का दर्शन और प्रयोग है, इसलिए प्रत्येक बात साक्षेप है, श्रम और स्वावलंबन भी साक्षेप है। व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह अपना अवलम्बन स्वयं बने। यह प्रमुख बात है किंतु दूसरे का सहारा लेना भी अवांछनीय और गलत नहीं है। यह एक सामाजिक विद्या है। जीवनशैली का एक सूत्र है शोषण मत करो। शोषण मुक्त होना धर्म का बड़ा आचार है। किसी भी मात्रा में, किसी भी दृष्टिकोण से, जिसका जितना श्रम है, उसे अस्वीकार न करें, उसका शोषण न करें। श्रम शब्द साक्षेप है। उसका तात्पर्य है अपना काम स्वयं करें। यदि दूसरे से काम लें तो उसका शोषण न करें। यह मनुष्य की वृत्ति रही है कि वह काम ज्यादा कराना चाहता है और वेतन कम देना चाहता है। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप यह वृत्ति बन गई कि काम करनेवाला काम नहीं करना चाहता और पारिश्रमिक अधिक लेना चाहता है। समस्या दोनों ओर उलझ गई। जितना काम-उतना दाम, यह व्यवस्था होती तो समस्या कभी उलझती नहीं। सामाजिक दृष्टि से आज यह माना जाता है कि यदि किसी से काम लेना है तो पर्याप्त दो। दीर्घकालिक दृष्टि से देखें तो काम देना लाभदायक नहीं है। नीति बहुत स्पष्ट है, किंतु आदमी लोभवश दूसरे का शोषण करता है और जहां शोषण होता है वहां समस्याएं पैदा होती हैं। गत शताब्दी का सर्वाधिक चर्चित शब्द है शोषण। शोषणयुक्त समाज की बात बहुत प्रिय लगती है। प्राय: यह देखा जाता है कि सामान्य परिवार में जो जन्म लेता है, वह परिश्रमी और सहनशील होता है। जो आर्थिक संकट में पलता-बढ़ता है, वह प्राय: अधिक अच्छा होता है। दुनिया में जितने बड़े-बड़े लोग हुये हैं, वे प्राय: साधारण गांवों के बहुत साधारण घरों में जन्मे जहां दूसरे का शोषण नहीं होता, दूसरों के लिए कुछ करने की बात होती है, वह समाज अपने आप में अनूठा समाज होता है, विवेक के शिखर को छूनेवाला समाज होता है। यदि धार्मिक दृष्टि से देखें तो किसी के श्रम का शोषण करना हिंसा है, अहिंसा का अतिचार है। दूसरे की वृत्ति का शोषण न करना अहिंसाव्रत का एक नियम है। जिसने अहिंसा का व्रत स्वीकार किया है, यदि वह यह संकल्प स्वीकार करता है कि मैं किसी प्राणी का संकल्पपूर्वक वध नहीं करूंगा, यदि व्यक्ति दूसरे का शोषण करता है तो इस व्रत को बाधा पहुंचाता है।

दुर्योधन बोला मेरा प्रश्न तो यह है कि अभी इस एक सप्ताह में उन्हें कैसे खोजा जाए? उनके कहाँ होने की संभावना है? दुर्योधन पाण्डवों को खोजने के लिए अत्यन्त व्यग्र था। कर्ण बोला- चिंता क्यों करते हो मित्र? यदि अज्ञातवास का वर्ष पूरा समाप्त हो चुका है तो हो जाने दो उसे। इसी वर्ष की भाँति अगले वर्ष तक पाण्डव भी समाप्त हो जाएंगे। दुर्योधन बोला- मेरी चिन्ता का कारण अज्ञातवास नहीं है मित्र। मेरी चिन्ता का कारण है मेरे गुप्तचरों की असफलता। गुप्तचर तो शासन का एक हाथ होते हैं मित्र। यदि वो कुछ पता लगा नहीं सकते, किसी को खोज नहीं सकते, तो फिर उस राज्य और राजा की सुरक्षा तो असम्भव होगी ना। शास्त्र अटकल की अंगुली तो पकड कर नहीं चल सकता मित्र। मैं हस्तिनापुर के होनेवाले राजा के नाते यह जानना चाहता हूँ कि इस राज्य के वे पाँच शत्रु कहाँ छिपे हुए हैं और किसने उन्हें आश्रय देकर अपने जीवनकाल के क्षण कम कर लिये हैं। पाण्डवों से क्या डरना मित्र। नकुल और सहदेव तो बालक हैं और यदि वे यौद्धा भी होते तो मेरे अन्य ९९ भाई उनके लिये बहुत है। युधिष्ठिर तो धर्म के व्यूह में फंसा हुआ है। बेचारे विवश है। रहे भीम और अर्जुन। तो भीम की तो चिन्ता ही नहीं, ये तेरह वर्ष उसने बनवास में बिताये है और मैंने तेरह वर्ष गदायुद्ध के अभ्यास में। अब रहा अर्जुन भला वो तुम्हारे सामने क्या टिकेगा? काकाश्री की नीति यह ठीक ही कहती है कि राजा के लिये आवश्यक है कि उसे अपने शत्रुओं के साथ, अपने मंत्रियों और अपने अंगरक्षकों को देखते रहना चाहिये। तो मैं

अपने गुप्तचरों का क्या करूं मित्र? जो इसका पता नहीं लगा सके कि मेरे सबसे बडे शत्रु कहां छिपे है। यह चिन्ता का विषय है। बहुत बडी चिन्ता का विषय। इतने में दुशासन वहाँ आ गया। कर्ण बोला- लगता है कोई गम्भीर समाचार तुम्हारे पास है। दुशासन बोला- अच्छा सुना देता हूँ। मूल्यांकन कीजिये। पिताश्री को सूचना मिली की मत्स्यदेश के सेनापति कीचक का वध हो गया है। कर्ण बोला- क्या हत्या? असम्भव। दुर्योधन बोला- परन्तु क्यों? कर्ण बोला- कीचक वध की योग्यता केवल छ: योद्धाओं में है। तुम्हारे पितामह भीष्म, कृष्ण, दाऊ बलराम, तुम्हारे गुरु द्रोणाचार्य, स्वयं तुम, मैं और भीम। तो फिर उसका वध कौन कर सकता है? न पितामह न आचार्य द्रोण, तुमने और मैंने तो उसका वध किया नहीं। तो फिर उसे उसी योद्धा ने मारा होगा जिसे खोजने में आजतक हमारे गुप्तचर सफल नहीं हुए। मुझे बधाई दो मित्र मैंने उनके अज्ञातवास के रहस्य को तोड़ दिया है। चलो सेना लेकर चलें और मत्स्य नरेश पर आक्रमण कर दें। क्योंकि मत्स्य नरेश को पाण्डवों का आश्रय देनेका दण्ड भी देना है। उनसे युद्ध करने को तो मैं सदैव तैयार रहता हूं। आक्रमण करने के लिये महाराज की आज्ञा तो आवश्यक है। पर मुझे नहीं लगता महात्मा विदुर और गंगापुत्र भीष्म उन्हें यह आज्ञा देने देंगे। दुर्योधन बोला- यह न भूलो मित्र, महात्मा विदुर, आचार्य द्रोण और पितामह भीष्म यह सब राजकीय कोष से वेतन पाते हैं। इनमें से कोई भी राजद्रोह का अपराध नहीं करेगा। इन लोगों के पास निष्ठा और कर्तव्य का मापदंड ही कुछ और है। यह सभी राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि मानते हैं। यह अपने नरेश का विरोध कर ही नहीं सकते। कर्ण बोला- इसका अर्थ यह है कि निर्णय महाराज के हाथ में है। दुर्योधन बोला- स्वयं महाराज मेरे हाथ में। शकुनि बोला- अपने पिताश्री के विषय में इतने विश्वास के साथ कुछ न कहो पुत्र। वे अपने हाथ के अतिरिक्त किसी और के हाथ में है ही नहीं। दुर्योधन बोला- तो क्या हमें उनके अज्ञातवास को भंग नहीं करना चाहिये। शकुनि बोला- यदि उसे भंग करने का विचार न होता तो हमने उसकी माँग ही क्यों कि होती पुत्र। कर्ण बोला- आप कभी तो दो बोल सीधे बोल लिया कीजिये मामाश्री। शकुनि बोला- सीधे बोल बोलने वाला सतयुग तो कब का समाप्त हो चुका अंगराज। ये तो टेढे बोल बोलनेवाला युग है। यदि जीना चाहते हो तो यह कला भी सीख लो। कहो कुछ और अर्थ निकले कुछ और। गंगापुत्र भीष्म भी सत्य बोलते हैं। आचार्य गुरु द्रोण भी सत्य बोलते हैं और कुलगुरु कृपाचार्य भी सत्य बोलते हैं। परन्तु यह सब के सब अपने होठों को सीयें हुए क्यों बैठे हैं? अंगराज बोलो। सत्य तो केवल ऋषियों और महर्षियों का रूचिकर बनकर रह गया है। करने योग्य वहीं है जिसमें तुम्हारा लाभ हो और तुम्हारा लाभ पुत्र दुर्योधन की लाभ की छाया है। तुम एक महान योद्धा हो अंगराज। तुम अपनी वीरता को सम्भालकर रखो। जब आवश्यकता होगी तब मैं स्वयं तुमसे यह कहूँगा कि हे अंगराज कर्ण उठाओ अपना धनुष्य और चढ़ाओ प्रत्यंचा। मुझे पुत्र दुर्योधन का सुझाव ठीक लग रहा है। मत्स्य देश पर आक्रमण तो करना ही पडेगा। वे पाँचो वीर पुरुष उस राज्यपर आक्रमण होता नहीं देख सकेंगे जिसने उन्हें आश्रय दिया है। वे अपना अज्ञातवास तोड़कर अवश्य सामने आयेंगे और लडेंगे भी। और यदि वे जीत भी गयें तो उन्हें १२ वर्ष के लिये बनवास तो जाना ही पड़ेगा। दुर्योधन बोला चलो राजसभा में चलते हैं मामाश्री। पिताश्री से आक्रमण की आज्ञा ले लें। शकुनि बोला- तुम इतने उतावले क्यों हो रहे हो भान्जे? यदि उस दासी पुत्र विदुर या गंगापुत्र भीष्म को तनिक भी भनक पड गई कि तुम पांडवों के अज्ञातवास को भंग करने के लिए मत्स्य देश पर आक्रमण करना चाहते हो और कुछ न करके महाराज को आक्रमण करने से रोक देंगे। दुर्योधन बोला तो पिताश्री की आज्ञा के बिना ही आक्रमण कर देते हैं। शकुनि बोला नहीं ऐसी भूल कभी नहीं करना भान्जे। तुम तो युवराज हो। महाराज के विरुद्ध तो कुछ कर ही नहीं सकते इसलिये महाराज को जाकर अर्धसत्य बोलो।

उनसे कहो की कीचक वध के उपरान्त मत्स्य देश अनाथ हो गया है और उसकी सीमायें छोटी सी नदी की भाँति हस्तिनापुर के विशाल राज्य के सागर में मिलने के लिये व्याकुल है, गंगापुत्र भीष्म भी इसका विरोध नहीं कर पायेंगे भान्जे।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय भाइयोंके सहित कीचक को अकस्मात मारा गया देखकर सभी लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ तथा उस नगर और राष्ट्र में जहाँ-तहाँ वे आपस में मिलकर ऐसी चर्चा करने लगे- महाबली कीचक अपनी शूरवीरताके कारण राजा विराटको बहुत प्यारा था, उसने अनेकों सेनाओंका संहार किया था; किंतु साथ ही वह दुष्ट परस्त्रीगामी था, इसीसे उस पापी को गन्धर्वोंने मार डाला। महाराज। शत्रुसेनाका संहार करनेवाले दुर्जय वीर कीचकके विषयमें देश-देशमें ऐसी ही चर्चा होने लगी। इस समय अज्ञातवासकी अवस्थामें पाण्डवोंका पता लगाने के लिये दुर्योधन ने जो गुप्तचर भेजे थे वे अनेकों ग्राम, राष्ट्र और नगरों में उन्हें ढूँढकर हस्तिनापुरमें लौट आये।

दुर्योधन, दुशासन, कर्ण, शकुनि सभी राज्यसभा में गये और वहां पर आचार्य द्रोण, कृपाचार्य और धृतराष्ट्र, पितामह भीष्म बैठे थे। प्रमुख गुप्तचर सर्वनाग ने कहा राजन पाण्डवोंका पता लगानेके लिये हम सदा ही बड़ा प्रयत्न करते रहे किन्तु वे किधर निकल गये यह हम जान नहीं पाये। हमने पर्वतों के ऊंचे-ऊंचे शिखरों पर, भिन्न-भिन्न देशों में, जनताकी भीड़ में तथा गाँव और नगरोंगमें भी उनकी बहुत खोज की; परंतु कहीं भी उनका पता नहीं लगा। दुर्योधन बोला- पाण्डवों के अज्ञातवास के १३ वर्ष पूरा होने में बहुत थोड़े दिन शेष रह गये है। यदि यह समाप्त हो गया तो सत्यवादी पाण्डव मदमाते हाथी और विषधर सर्पोंके समान क्रोधातुर होकर कौरवों के लिये महा दु:खदायी हो जायेंगे। वे सभी समयका गणित रखने वाले है। इसलिए कहीं दुर्विज्ञेय रूपमें छिपे होंगे। इसलिये शीघ्र ही उनका पता लगाना आवश्यक है जिससे की हमारा यह राज्य सब प्रकार के विघ्न बाधाओं और विरोधियोंसे मुक्त होकर चिरकाल तक अक्षुण्ण बना रहे।

दुर्योधन ने आचार्य द्रोण से पूछा, आप तो पाण्डवों के गुरु है, उनकी प्रवृत्ति, प्रकृति व स्वभाव से भलीभाँति परिचित है। क्या आप बता सकते है कि पाण्डवों ने अपना अज्ञातवास कहाँ किया होगा। आचार्य को दुर्योधन का व्यवहार अपमानजनक लगा। दुर्योधन जब उनका शिष्य होता है तो उनके चरणों में बैठता है, और जब युवराज होता है तो उनके सिर पर चढ़कर बैठता है। तब तत्वार्थदर्शी परम पराक्रमी द्रोणाचार्य बोले- पाण्डव लोक शूर-वीर, विद्वान, बुद्धिमान, जितेन्द्रिय, धर्मज्ञ, कृतज्ञ और अपने ज्येष्ठ भ्राता धर्मराजकी आज्ञामें चलनेवाले है। इतनी बड़ी पृथ्वी पर पाण्डव कहीं भी जा सकते है। मैं कैसे कह सकता हूँ कि वे लोग कहाँ गये होंगे। जिन राज्यों पर ध्यान नहीं दिया था, वहाँ ध्यान दो। विभिन्न राजसभाओं में स्थानीय सूत्रों से नहीं, अपने गुप्तचरों से सूचनाएँ एकत्रित करवाओ। दूसरों के सहारे से मत चलो अपने बलबूते पर यह काम करो। उनके लिये तो इतना ही पर्याप्त है कि पाण्डव धर्मनिष्ठ लोग हैं वे परस्पर प्रेम करते हैं और अपने बड़े भाई धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा में रहते हैं। पाण्डव न तो नष्ट हुये हैं। ऐसे धर्मनिष्ठ लोगों का तिरस्कार तो प्रकृति भी स्वीकार नहीं कर सकती और न ही किसीसे तिरस्कृत होते हैं। उनमें तो धर्मराज बड़े शुद्धचित्त, गुणवान सत्यवान, नीतिमान, पवित्रात्मा और तेजस्वी है। उन्हें तो आँखोंसे देख लेनेपर भी कोई नहीं पहचान सकेगा।

दुर्योधन ने पितामह भीष्म से पूछा- क्या आप बता सकते है पितामह पाण्डव अपना अज्ञातवास कहाँ कर रहे होंगे? पितामह भीष्म बोले- मैं आचार्य से सहमत हूं कि युधिष्ठिर तथा उसके भाई अपने गुणों के कारण, अपनी सात्विकता के कारण, अपने धर्म के कारण नष्ट होने, अथवा कष्ट पाने के योग्य नहीं है। वे जहाँ भी होंगे, सम्मानपूर्वक होंगे। जो नीतिमान पुरुष होते हैं उनकी नीतिको अनीतिपरायण लोग नहीं ताड़ सकते। जहाँ राजा युधिष्ठिर होंगे, वहाँ के लोगों का अकल्याण

नहीं हो सकता। जहाँ राजा युधिष्ठिर होंगे, वहाँ पाप का नाश हो रहा होगा और धर्म की शक्तियाँ वर्द्धमान हो रही होंगी। प्रजा में धर्म की वृत्ति सबल होगी और राजा अधर्मियों के प्रभाव से मुक्त होगा। वहाँ प्रकृति मनुष्य के अनुकूल होगी। जहाँ राजा युधिष्ठिर होंगे, वहाँ राजा और प्रजा सुखी होंगे। जहाँ राजा युधिष्ठिर होंगे, वहाँ भय का नाश हो गया होगा, और साधारण जन सुखी और संपन्न होंगे। जहाँ युधिष्ठिर होंगे, वहाँ पराई स्त्री तथा पराए धन की ओर कोई आँख उठाकर भी नहीं देखेगा। राजा युधिष्ठिर जिस नगर या राष्ट्र में होगी वहाँ की जनता भी दानशील, प्रियवादी, संयमी, सत्यपरायण, हृष्टपुष्ट, पवित्र और कार्यकुशल होंगे। जहाँ उनकी स्थिति होगी, वहाँके मनुष्य स्वयं ही धर्ममें तत्पर होंगे तथा वे गुणों में दोषका आरोप करनेवाले, ईर्ष्यालु, अभिमानी और मत्सरी नहीं होंगे। वहाँ हर समय वेदध्वनि होती होगी, यज्ञोंमें पूर्णाहुतियाँ दी जाती होंगी तथा बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले बहुत-से यज्ञ होते होंगे। वहाँ मेघ निश्चय ही ठीक-ठीक वर्षा करता होगा तथा वहाँकी भूमि धन-धान्यपूर्ण और सब प्रकारके आतमोंसे शून्य होगी। वहाँ आनन्ददायी पवन चलता होगा, धर्मका स्वरूप पाखण्डशून्य होगा और किसी प्रकारका भय नहीं होगा। उस स्थानपर गौओंकी अधिकता होगी और वे कृश या दुर्बल न होकर खूब हृष्टपुष्ट होंगी। उनके दूध, दही और घी भी बड़े सरस और गुणकारक होंगे। राजा युधिष्ठिर अत्यन्त धर्मनिष्ठ हैं। उनमें सत्य, धैर्य, दान, शान्ति, क्षमा, लज्जा, श्री, कीर्ति, तेज, दयालुता और सरलता निरन्तर निवास करते हैं। अत: अन्य साधारण पुरुष तो क्या, ब्राह्मणलोग भी उन्हें नहीं पहचान सकते। अत: जहाँ ऐसे लक्षण पाये जायें, वहीं मतिमान् पाण्डवलोग गुप्त रीतिसे रहते होंगे। धूप को वहीं खोजना चाहिए, जहाँ धरती सूखी हो। जल को वहीं खोजना चाहिए, जहाँ हरीतिमा हो। धर्मराज को वहीं खोजना चाहिए, जहाँ अधर्म पराजित हो रहा हो। दुशासन कान में शकुनि से बोला लग रहा है यह बुद्धा बौरा गया है। हमें मूर्ख बना रहा है।

दुर्योधन ने कृपाचार्य से पूछा कुलगुरु आपका क्या कहना है? कृपाचार्य बोले, मैं बहुत विवाद के पक्ष में नहीं हूँ। इसलिए चर्चा से अधिक कर्म पर बल है मेरा। विचार का विरोधी नहीं हूँ, किंतु व्यवहार के पक्ष में हूँ। मैं आचार्य द्रोण से सहमत हूँ कि पांडवों के नष्ट होने की संभावना बहुत नगण्य है। इसलिए यह मानकर कि वे अब जीवित नहीं हैं उनकी खोज स्थगित नहीं करनी चाहिए। महामना भीष्म से भी सहमत हूँ कि युधिष्ठिर को वहीं खोजो, जहाँ धर्म विद्यमान है। अपनी ओर से यही कहना चाहता हूँ कि पांडवों को वहाँ खोजो, जहाँ अब तक नहीं खोजा है। अज्ञातवासकी अवधि समाप्त होते ही महाबली पाण्डवोंका उत्साह बहुत बढ़ जायगा। उनका तेज तो अतुलित है ही। अत: इस समय तुम्हें अपनी सेना, कोष और नीतिकी सँभाल रखनी चाहिये, जिससे कि समय आनेपर हम उनके साथ यथावत् संधि कर सकें। बुद्धिसे भी तुम्हें अपनी शक्तिकी जाँच करते रहना चाहिये और इस बातका भी पता रहना चाहिये कि तुम्हारे बलवान और निर्बल मित्रोंमें निश्चित शक्ति कितनी है। तुम्हें अपनी श्रेष्ठ, निकृष्ट और मध्यम कोटिकी सेनाका रूख देखकर यह निश्चय करना चाहिये कि वह तुमसे संतुष्ट है या नहीं। उसके अनुसार ही हमें शत्रुओंसे संधि या विग्रह करने होंगे- यदि सेना संतुष्ट होगी तो हम शत्रुओंके प्रति अपने धनुष सँभालेंगे और यदि वह असंतुष्ट होगी तो उनसे संधि कर लेंगे। साम (समझाना), दान (धन आदि देना), भेद (फोड़ लेना), दण्ड और कर लेना- यह नीति है। इससे शत्रुको आक्रमणद्वारा, दुर्बलोंको बलसे दबाकर, मित्रोंको हेलमेल करके और सेनाको मिष्टभाषण और वेतनादि देकर अपने काबूमें कर लेना चाहिये। इस प्रकार यदि तुम अपने कोष और सेनाको बढ़ा लोगे तो ठीक-ठीक सफलता प्राप्त कर सकोगे। सैनिक किसी न्यायी व्यक्ति के अधीन कार्य करते हैं तो प्रजा के रक्षक बन जाते हैं और जब वे ही किसी दुष्ट की आज्ञा के अधीन होते हैं तो राक्षस हो जाते हैं। जिस राज्य का सेनापति धर्म त्याग दे और राजा उसके सम्मुख असहाय हो जाए, वहाँ तो न राजा सुरक्षित है, न रानी। प्रजा का तो कहना ही क्या।

इतने में ही त्रिगत नरेश सुशर्मा वहाँपर आये। भीष्म चिंतित है। धृतराष्ट्र की राजसभा में। विराटनगर से मेरे गुप्तचर समाचार लाए हैं कि मत्स्यों के सेनापति सूतपुत्र कीचक का किसी अज्ञात व्यक्ति ने रात के अंध:कार में वध कर दिया है। सुशर्मा ने कहा, मेरे लिए तो इतना ही पर्याप्त है कि त्रिगर्तों को प्रताड़ित करनेवाला कीचक अब जीवित नहीं है। राजा विराट हम लोगों के सम्मुख वैसे ही असहाय हैं, जैसे हम कीचक के सम्मुख थे। अब हमारी बारी है। हम मत्स्यों को उनके किए का दंड देना चाहते हैं। कीचक की मृत्यु का यह आकस्मिक समाचार दुर्योधन को क्षणभर के लिए स्तब्ध कर गया और बोला- कीचक मारा गया? त्रिगर्तराजकी बात सुनकर कर्णने राजा दुर्योधनसे कहा, राजा सुशर्माने बड़ी अच्छी बात कही है। यह समय के अनुसार और हमारे बड़े काम की है। अत: हम सेना सजाकर, उसे छोटी-छोटी टुकड़ियोंमें बाँटकर अथवा जैसी आपकी सलाह हो, वैसे ही तुरंत उस देशपर चढ़ाई कर दें।

भीष्म बोले- मत्स्य देश से तो हमारे मैत्री के सम्बन्ध है। दुर्योधन बोले- तब ही तो हम उन्हे आश्रय देना चाहते हैं पितामह। सूचना मिली है कि त्रिगत देश का राजा सुशर्मा मत्स्य देश पर आक्रमण करने निकलने वाला है। यदि उसके आक्रमण करने से पहिले मत्स्य देश यदि हस्तिनापुर से मिल चुका हो तो सुशर्मा उसकी ओर देखने का साहस भी नहीं कर पायेगा। धृतराष्ट्र बोले- दुर्योधन यह तो ठीक कह रहा है तातश्री। दुर्योधन बोले- मैं धरोहर में पाई हुई सीमाओं से सन्तुष्ट कैसे हो जाऊं पितामह और क्या यह क्षत्रिय धर्म की माँग नहीं है? भीष्म बोले- क्षत्रिय धर्म की तो और भी मांगे हैं पुत्र। दुर्योधन बोला अर्थात आप यह निर्णय ले चुके हैं पितामह कि आप दुर्योधन के किसी भी प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करेंगे। भीष्म बोले- क्या मैं लाक्षागृह स्वीकार कर लेता पुत्र? क्या मैं द्यूतक्रीडा स्वीकार कर लेता पुत्र? क्या मैं पुत्रवधू का वस्त्र हरण स्वीकार कर लेता पुत्र? तनिक विचार तो करो कि तुम प्रस्ताव लाते हो तो कैसे कैसे लाते हो। द्यूतक्रीडा के उपरान्त मैंने सोना त्याग दिया है। यदि पूर्वजों ने सपनों में आकर प्रश्न करना आरम्भ कर दिया तो मैं क्या करूंगा मैं क्या उत्तर दूंगा उन्हें? भीष्म बोले, परन्तु यदि तुम मत्स्य देश को जीतना ही चाहते हो तो चलो पुत्र। मैं तो हस्तिनापुर के ध्वज का ध्रुव हूं। जहां जहां ध्वज जायेगा वहां वहां मुझे चलना ही पडेगा।

**भीष्म पितामह यह सोचते, सोचते कांपते आज, नाश निमन्त्रण दे रहा दुर्योधन का पाप।**

दुर्योधन बोला, पहले सुशर्मा आक्रमण करेंगे उसके एक दिन बाद हमारा कूच होगा। उन ग्वालियोंपर आक्रमण करके विराटका गोधन छीन लेंगे और राजा विराट की एक लाख गौओं का हरण करेंगे।

मनुष्य के लिये कार्यसिद्धि को अपना लक्ष मानना उचित है या अपने सम्मान को? यदि कार्यसिद्धि उसका लक्ष है तो किसी भी सीमा तक अपमान सहा जा सकता है; किंतु ऐसी स्थिति में किसी भी सीमा तक अधर्म भी किया जा सकता है। कर्ण ने कार्यसिद्धि को अपना लक्ष्य माना, इसलिये उसने अपने गुरु परशुराम से अपना सत्य छुपाया। असत्य कथन किया। पर युधिष्ठिर ऐसा नहीं करेगा। न वह अपना धर्म छोड़ेगा, न अपना सम्मान। युधिष्ठिर उतना ही धैर्य धारण करेगा जितना सम्मानजनक है। उस धैर्य का क्या लाभ, जिससे मनुष्य कायर समझा जाए। नारीत्व का अपमान ऐसा अपराध नहीं है, जिसके पश्चात भी धैर्य धारण किया जाए। पर युधिष्ठिर का व्रत है कि धर्म पर आरूढ़ हो। तो फिर व्रत क्या है?

व्रत-त्यौहार हमारे सामाजिक और धार्मिक जीवन की रीढ़ हैं। व्रतों के बिना धार्मिक जीवन जीया नहीं जा सकता। ऊर्जस्वी जीवन जीने के लिए व्रत की साधना आवश्यक है। व्रत का अर्थ किसी कार्य को करने या न करने का मानसिक निर्णय है। व्यवहार की भाषा में इसे संकल्प कह सकते हैं, किंतु व्रत और संकल्प में अंतर है। संकल्प मानसिक निर्णय ही है। निर्णय शुभ तथा अशुभ दोनों प्रकार के हो सकते हैं, पर व्रत सदा शुभ ही होता है। वह जीवन को नियंत्रित करनेवाली

स्वेच्छा से स्वीकृत मर्यादा है।

व्रत एक अटल निश्चय है। जब तक मनुष्य कोई व्रत नहीं लेता, तब तक उसका मन इधर-उधर डोलता रहता है, बुद्धि निश्चल नहीं हो पाती। व्रत एक प्रकार की प्रतीज्ञा है। व्रत को ग्रहण करना, एक प्रकार से प्रतिज्ञाबद्ध होना है। प्रतिज्ञाबद्ध व्यक्ति निश्चल हो जाता है।

एक तालाब है, यदि उस तालाब में ऊंची मेड़ नहीं हो तो वर्षा ऋतु में वह जब पानी से लबालब भर जाता है, तब खतरे का कारण भी बन जाता है। वही स्थिति बिना तट के नदी की है। जब उसमें बाढ़ आती है, तब वह प्रलय का दृश्य उपस्थित कर देती है। व्रतविहीन व्यक्ति तटहीन नदी की भांति उच्छृंखल और स्वच्छंद है, वह कभी भी प्रलय की स्थिति उत्पन्न कर सकता है। व्रत मानव-जीवन के लिए तटबंध के सदृश है, जो स्वछंद जीवन-प्रवाह को मर्यादित बनाता है।

व्रत का अर्थ है स्वेच्छा से मर्यादा को स्वीकार करना। व्रत के पालन में और कानून के पालन में अंतर है। कानून स्वेच्छा से स्वीकार नहीं किया जाता। वह एक सामाजिक मर्यादा सिखाती है। किंतु व्रत निजी प्रतिज्ञा है। हम इसे स्वेच्छा से स्वीकार करते हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जो वस्तु जबरन लादी जाती है, उस वस्तु को भंग करने के लिए मन चाहता है। पर जो स्वेच्छा से स्वीकृत है, उसको वह व्यक्ति प्राणपण से निभाता है। पतंजली ने योग-साधना के लिए यम और नियम पर बल दिया है। यम और नियम दोनों ही व्रत हैं। पाश्चात्य संस्कृति में पले-बढ़े व्यक्तियों का यह मानना है कि जीवन में व्रतों की आवश्यकता नहीं है। व्रतों को ग्रहण करना एक प्रकार से इच्छाओं का दमन करना है अपने आपको बंधन में आबद्ध करना है, जिससे जीवन नीरस बन जाता है और मन में एक प्रकार से अहंकार पैदा हो जाता है। व्रत ग्रहण करने से स्वतंत्रता नष्ट हो जाती है। इसलिए व्रत ग्रहण करना अनावश्यक है।

ऐसे चिंतकों का यह भी विचार है कि नियमों का पालन करना उचित है। किंतु उसके लिए व्रत लेने की आवश्यकता नहीं है। व्रत लेना मन की निर्बलता का प्रतीक है। वह हानिप्रद भी हो सकता है, क्योंकि व्रत लेने के बाद यदि कोई बाधा उपस्थित हो गई, तो उस समय व्रत बंधनकारी बन जाएगा। वह भार रूप प्रतीत होगा। इसलिए जान कर अपने आपको बंधन में डालना उचित नहीं है। अपनी इस बात को पुष्ट करने के लिए वे इस प्रकार के उदाहरण भी देते हैं कि यों तो मदिरा पीना अच्छा नहीं है, किंतु कभी दवा के रूप में उसे ग्रहण कर लिया जाए तो कोई हानि नहीं है।

व्रत अटल निश्चय का प्रतीक है। कितनी भी कठिनाइयां आएं, व्रती उन असुविधाओं से विचलित नहीं होता। उसके व्रतों को निखारने के लिए ही वे सारी असुविधाएं होती है। कोई भी व्रत क्रोध, मान माया और लोभ के आवेश में आकर ग्रहण नहीं किया जाता। आवेश में ग्रहण किया गया व्रत-सुव्रत नहीं होता, अपितु वह अभिनय मात्र होता है। भगवती सूत्र में ऐसे त्याग को दुस्त्याग कहा गया है। कोई भी व्यसन ग्रहण करना जितना आसान है उतना ही कठिन उसका त्याग करना है। व्रतधारी के मन में यह पूर्ण निश्चय होना ही चाहिए कि यदि इससे मेरी कोई तात्कालिक हानि हो रही हो, तब भी मैं अपना व्रत नहीं भंग करूंगा। निश्चय से भरी यही भावदशा मनुष्य के मन को उर्ध्वदिशा की ओर अग्रसर करता है। राजा विराट ने अपने भाई शतानीक को सेनापति बनाया और शतानीक ने नगर की सुरक्षा का दायित्व ग्रहण किया। कीचक के बिगड़े सैनिकों को नियंत्रित किया। राजा विराट ने अपने ज्येष्ठ पुत्र श्वेत को मत्स्यदेश का युवराज नियुक्त किया।

राजा विराट ने बल्लव रसोइये को अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में देखा और राजा पूछ बैठे- आप बड़े प्रसन्न लग रहे हो। क्या मिल गया तुम्हे? बल्लव बोला-मुझे क्या चाहिए। पाना और खोना तो विशिष्ट लोगों को होता है महाराज। साधारण जन तो सत्य और धर्म की जय देखकर ही प्रसन्न हो जाता है। मैंनें दिनभर देखा है, आपके सैनिकों का व्यवहार बदल गया है।

जहाँ कल तक वे किसी भी निर्बल और असहाय को देखकर उसे लूटने की सोचते थे, वहीं आज वे उसकी सहायता करते दिखाई दिए। मुझे लगता है महाराज। शक्तिशाली और प्रशासन में ऊँचे पदों पर बैठे लोगों को, जब उनके अपराधों का दंड नहीं दिया जाता तो समाज की शुभ तथा कल्याणकारी शक्तियाँ हतोत्साहित हो जाती हैं। सामान्य जन भयभीत हो जाता है। वह अधिक और फिर उससे भी अधिक कायर होता जाता है। उसके विपरीत संसार की अशुभ शक्तियों का साहस और भी बढ़ने लगता है। वे मानते हैं कि उन्हें रोकनेवाला कोई नहीं है। वे अधिक से अधिक पाप करने लगते हैं, जैसे कीचक ने महारानी की सैरन्ध्री तक पर अत्याचार करना चाहा और उसे आपकी उपस्थिति में गिरा कर लात मारी। उसी का परिणाम था कि साधारण सैनिक भी किसी स्त्री को देखते ही, उसका अपमान करने पर तत्पर हो जाता था। अपराध का दंड वैसे तो सबको ही मिलना चाहिए, किंतु समाज के महत्त्वपूर्ण लोगों को तो उनके अपराधों का दंड तत्काल और कठोरता से मिलना चाहिए। मैं तो साधारण जनों में रहता हूँ, इसलिए उनके मन की बात जानता हूँ। सामान्यत: राजा को केवल अपने राज्य की चिंता होती है, किंतु साधारण जन को संसार में कहीं भी होता हुआ अन्याय चुभता है। उसका तादात्म्य किसी से भी हो सकता है, क्योंकि उसे किसी राजा से कुछ लेना-देना नहीं है। उसका स्वार्थ, न्याय के मार्ग में आड़े नहीं आता। वह तो बस सत्य, न्याय तथा धर्म की जय देख कर ही प्रसन्न हो जाता है। जैसे आज विराटनगर में प्रत्येक नागरिक प्रसन्न है। मत्स्यदेश की प्रत्येक स्त्री स्वयं को सुरक्षित मानने लगी है। संसार में कोई किसी को स्वतंन्त्र नहीं रहने देता महाराज। स्वतंत्रता तो अपने साहस, आत्मबल और बलिदान से प्राप्त की जाती है और निरंतर तपस्या से उसकी रक्षा की जाती है। स्वतंत्र तो वही रह सकता है, जो दासता और मृत्यु में से मृत्यु का वरण करता है, दासता का नहीं।

उत्तरा बोली- मेरी गुरु बृहन्नला को एक साधारण नपुंसक मानकर उसकी उपेक्षा नहीं कर देनी चाहिए। न जाने अपने किस पाप के कारण उन्होंने यह शरीर पाया है। वैसे वे महान कलाकार और साधक तो हैं ही, महान आत्मा भी हैं। मैंने उन्हें आज तक कभी कोई छिछोरी बात करते नहीं सुना। ऐसी गुरु तो किसी पुण्य के आधार पर ही मिल सकती हैं।

राजा को लगा, उन्होंने अपनी इस रानी को कभी नहीं पहचाना। उन्होंने उसे जितना भी जाना, कम जाना। उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि कोई नारी किसी भी अन्य नारी के शीलभंग में सहायक हो सकती है; और यहाँ उनके अपने घर में उनकी अपनी पत्नी ने अपने भाई की सहायता से सैरन्ध्री जैसी नारी का सतीत्व भंग करवाने का प्रयत्न किया। सैरन्ध्री जो अपने रूप के आकर्षण से जिस दिन चाहे किसी भी राजा की महारानी बन सकती है; किंतु वह सैरन्ध्री का कार्य कर रही है। ऐसी सती नारी के साथ इस प्रकार का छल। पति से भी निकट पत्नी के लिए और कौन हो सकता है।

रानी सुदेष्णा बोली, हाँ महाराज। यही तो सोच रही हूँ कि मैं आपसे डरती रही, कीचक से डरती रही, सैरन्ध्री से डरती रही; किंतु उससे नहीं डरी, जिससे डरना चाहिए था। न अधर्म से डरी, न अन्याय से, न पाप से डरी न अपराध से। डरना मुझे अपने मन से चाहिए था और मैं जिस तिस से डरती रही।

## १८) विराट और त्रिगर्त नरेश सुशर्मा का युद्ध तथा सुशर्माका पराभव

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय सुशर्मा ने अपने पूर्व वैरका बदला लेने के लिये त्रिगर्तदेशके सभी रथी और वीरों को लेकर विराट की गौएँ हरण करने के लिये विराट नगर पर आक्रमण किया। और दूसरी ओर कौरवों की सेना ने मिलकर विराट की हजारों गौएँ पकड़ ली। अब छदम् वेष में छिपे हुए पाण्डवों का १३ वर्ष भलीभाँति समाप्त हो चुका।

भारत वर्ष में चारों ओर युद्ध का वातावरण है जो लोग युद्ध नहीं चाहते वो भी यह जानते हैं। वो लहू के छीटों से अपना वस्त्र नहीं बचा सकते। स्थिति ऐसी है कि अब किसी न किसी ध्वज तले युद्ध करने के लिये विवश हैं। ऐसी ही दो पात्र हैं

गंगापुत्र भीष्म और गान्धार नरेश शकुनि किन्तु इन दोनों में एक अन्तर है। गंगापुत्र भीष्म अपनी विवशता जानते हैं इसलिये वो विजय या पराजय के प्रश्न पर सोच ही नहीं रहे हैं। वो तो दुखी हैं परन्तु गान्धार नरेश शकुनि चौसर का निपुण खिलाडी है। वह पराजय की गोटियों के आगे के बढ़ने का मार्ग बन्द करके खेलना चाहते है। मामा शकुनि और दुर्योधन, कर्ण, दुशासन अपने कक्ष में आकर मन्त्रणा कर रहे हैं। शकुनि बोले- विजय यात्रा के निकलने से पहिले पराजय के सारे मार्ग बन्द कर देने चाहिये भान्जे। कर्ण बोले- पराजय कैसी गान्धार नरेश? शकुनि बोले- यह मत भूलो अंगराज कि अर्जुन के पास दिव्यास्त्र है। कर्ण बोले- रणभूमि में अस्त्र नहीं लडते मामाश्री चाहे वो दिव्यास्त्र ही क्यों न हो? रणभूमि में यौद्धा लडते हैं और उन्ही की जीत या हार होती है। दुशासन बोला- परन्तु सावधान रहने में तो कोई हानि नहीं है। दुर्योधन बोला- मामाश्री आप क्या चाहते हैं? शकुनि बोले- मैं यह चाहता हूं भान्जे कि त्रिगर्त नरेश तुम्हारे मित्र हैं। यदि वे एक दिन पहिले आक्रमण कर दे तो फिर हमारा सारा काम ही सहज हो जायेगा। मत्स्य देश पर बहुत दिनों से उनकी दृष्टि है। कई युद्ध हो चुके हैं सुशर्मा और मत्स्य देश में और सुशर्मा हर युद्ध में अपमानित हुआ है। राज वो ले ले और पांडवों को हम भान्जे। कर्ण बोला- यह तो शुभ समाचार है। दुर्योधन तो फिर चले। शकुनि बोले- विजयी भव। पांडवों।

नकुल वन में घोडे चरा रहा था कि इतने में ग्रामीण ने आकर पूछा मथुरा से जो गायें यहाँ आकर चर रही थी क्या हुआ उस गाय का। सर्प ने काट लिया तो छटपटा रही है। नकुल बोले- तुम मेरे घोडे सम्हालो मैं जाकर देखता हूं।

राजा विराट कंक के साथ चौसर खेल रहा है। विराट बोले- कंक मेरी समझ में यह नहीं आता की जब तुम चौसर में निपुण हो और महाराज युधिष्ठिर के साथ चौसर खेला करते थे तो गान्धार नरेश से हार कैसे गये। कंक बोले- युद्ध की भांति द्यूत में हार जीत का व्याकरण नहीं होता महाराज। कभी-कभी उत्तम श्रेणी का खिलाडी भी हार जाता है महाराज। महाराज बोले- परन्तु मैंने तो सुना था कि गान्धार नरेश ने कपट किया। युधिष्ठिर बोले- यदि उन्होंने कपट भी किया तो इन्द्रप्रस्थ नरेश तो हार ही गये। और यदि उन्होंने कपट किया तो ज्येष्ठ गंगापुत्र भीष्म ने उन्हे टोकना उचित नहीं समझा। आचार्य द्रोण और कृपाचार्य भी मौन ही रहे। और स्वयं ज्येष्ठ पांडुपुत्र युधिष्ठिर ने भी यह प्रश्न नहीं उठाया इसलिये वहां जो कुछ हुआ उसे आप पांडवों के लिये छोड दीजिये महाराज। अब आप पासे फेंकिये। इतने में ही प्रधान गोप गौशाला का आनन्दस्वरूप आया और उसने सूचना दी कि त्रिकट देश के सुशर्मा अपनी सेना लेकर आये और चरवाहों की हत्या करके पशु चरते आपकी गायों को हांक ले गये। महाराज। अनर्थ हो गया। गोप का स्वर रुदन मिश्रित था, त्रिगर्तों की सेना ने आज उषाकाल में, आपकी गोशाला पर आक्रमण कर दिया। हमने उन्हें रोकने का बहुत प्रयत्न किया। हमारे पास जितने शस्त्र थे, हमने उनका भी प्रयोग किया; किंतु हम किसी सेना से युद्ध कर सकने योग्य योद्धा तो हैं नहीं। वे युद्ध में हमें जीत कर; और भाई बंधुओं सहित हमारा तिरस्कार कर, आपका सारा गोधन हाँक कर ले गए। आपका दक्षिण गोष्ठ, गोधन से सर्वथा शून्य हो गया है। अपना गोधन लौटा लाने का तत्काल कोई उपाय करें महाराज। वे लोग हमारे गोधन को किस ओर हाँक कर ले गए हैं? राजा ने पूछा। वे अपने राज्य की सीमा की ओर जाते देखे गए थे। गोप ने बताया।

बल्लव कंक से बोला, यह भी संभव है कि सुशर्मा, विराट से अपना प्रतिशोध लेने आया हो; और यह भी संभव है कि उसे दुर्योधन ने भेजा हो। कंक बोले, जो भी हो। हमें विराट की सहायता करनी है। मेरे गणित से आज अज्ञातवास की अवधि समाप्त हो रही है। यदि हमारा रहस्य खुल भी गया तो हमारी कोई हानि नहीं होगी। वैसे अच्छा यही है कि अभी विराट को हमारी वास्तविकता ज्ञात न ही हो। उसे यह युद्ध कर लेने दो।

सहसा राजा ने कंक को संबोधित किया, आर्य कंक। देखा आपने। ये लोग स्वयं को राजा कहते हैं। अपने मन पर तो शासन कर नहीं पाते, और प्रजा पर शासन करना चाहते हैं। जब लुटेरे और दस्यु लोग सत्ता के केन्द्र में आ जाएँ, तो कौन सुरक्षित रहेगा इस संसार में? कंक ने कहा, महाराज। सत्ता हाथ में आ जाए तो दस्यु-कर्म सरल हो जाता है। वे तो प्रयत्न करेंगे ही कि वे दस्यु के समान सबका धन लूट भी लें और राजा और सम्राट का सम्मान और अधिकार भी पाएँ। आप ठीक कह रहे हैं। पहले यह स्थिति कीचक के कारण थी, अब वही सुशर्मा के कारण हो गई है। ये लोग प्रजापालन के इतिहास में दुर्घटनाएँ हैं महाराज। राजनीति के आकाश के धूमकेतु। स्थायी नहीं रहेंगे। ऐसे ही लोगों के कारण आवश्यक हो जाता है कि आप जैसे न्यायी लोग सत्ता पर अपनी पकड़ दृढ़ करें। जब देवचरित लोग शासन नहीं कर पाते, तो राक्षसों का राज्य होने लगता है।

विराट बोले- कीचक के न होनेपर सुशर्मा का इतना साहस हो गया। वह यह समझने लग गया कि मत्स्य देश में कोई क्षत्रिय नहीं बसते। हमारा रथ तैयार किया जाये।

कंक ने कहा, महाराज। आज यदि आप अपनी गौवों की रक्षा नहीं करेंगे, तो कल वे आपके परिवार की स्त्रियों को हाँक कर ले जाएँगे; और परसों आप भी उनके बंदी के रूप में उनके रथों के साथ घिसटते दिखाई देंगे। आप क्या समझते हैं कि केवल आपका गोधन ले गए हैं। यह किसी के राज्य को अंशों में हड़पने की पद्धति है। मेरा निश्चित मत है कि आज उन्होंने आपके गोशाला क्षेत्र पर आक्रमण किया है, कल वे आपके गोष्ठों पर भी आक्रमण करेंगे। राजनीति में युद्ध की उपेक्षा नहीं हो सकती। राजा न चाहे तो भी उसे लड़ना ही पड़ता है।

बल्लव मन ही मन मुस्कराया- यह सब कंक कह रहे थे, तो उसके पीछे उनके मन में अपनी परिस्थितियाँ भी होंगी ही। वे कभी भी युद्ध के पक्ष में नहीं रहे; किंतु आज वे युद्ध की आवश्यकता स्वीकार कर रहे हैं, चाहे आपद्धर्म के रूप में ही सही। उनके मन में है कि वनवास और अज्ञातवास का काल समाप्त हो गया है। पता नहीं दुर्योधन अब भी उनका राज्य लौटाएगा अथवा नहीं। और यदि वह उनका राज्य नहीं लौटाता है, तो युद्ध तो उनको भी करना ही पड़ेगा। राजा न भी चाहे तो उसे लड़ना पड़ता है।

सहसा कंक ने कहा, यह आक्रमण बहुत आकस्मिक है। आपकी सेना तैयार नहीं है। आपका सेनापति तथा उसके सहायक भी मारे गए हैं। मुझे लगता है कि आपके पास पर्याप्त योद्धा नहीं है। मैं अपनी क्षमता के अनुसार आपकी सेवा करना चाहता हूँ। आपने हमारा पालन किया है। संकट की हर घड़ी में आपके साथ रहना हमारा धर्म है। युद्ध में मैं भी आपके साथ चलना चाहता हूँ।

कंक बोला- यदि आप आज्ञा दे तो मैं कुछ निवेदन करूं? विराट आज्ञा है। कंक- मैंने भी एक ऋषि से धनुर्विद्या सीखी है महाराज। विराट बोले- तुम तो ब्राह्मण हो कंक। तुमने कभी युद्ध किया है। कंक बोले, ब्राह्मण तो परशुराम और द्रोणाचार्य भी हैं महाराज। मैंने भी योग्य गुरु से शस्त्रों की शिक्षा प्राप्त की है। राजा विराट बोले, अवश्य चलो।

हां महाराज आपका रसोइया बल्लभ भी शस्त्र प्रयोग में निपुण है। और अरिष्टनेमि ग्रंथी और तंतीपाल भी उत्तम सैनिक है। यदि इन तीनों को भी रथ मिल जाये तो महाराज की विजय निश्चित है। विराट बोले- यह क्या कह रहे हो कंक? चरवार भी भला युद्ध कैसे कर सकता है? क्या घुड़साल में रहनेवाला, घोड़ों की सेवा करनेवाला यौद्धा कैसे हो सकता है? कंक बोला- मैं ठीक कह रहा हूं महाराज। स्वयं कुन्ती पुत्र इन तीनों को अपने साथ रखते थे।

राजा बोले, तुम कीचक के स्थानापन्न के रूप में बल्लव का नाम ले रहे हो? कीचक विकट योद्धा था। उसके भय से ही यह सुशर्मा कभी मत्स्यों की ओर देखने का साहस नहीं कर सका था।

कंक बोला, हाँ महाराज। बल्लव आपको कीचक का अभाव अनुभव नहीं होने देगा। वह बहुत योग्य अंगरक्षक है। आपके समीप रहेगा, तो शत्रु निकट भी नहीं फटक सकेगा। बल्लव वीर था या नहीं, किंतु राजा देख रहे थे कि वह बलिष्ठ था। वह अपनी शारीरिक क्षमता से भी बहुत कुछ कर सकता था। सैनिक बोला- जो आज्ञा। विराट युद्ध के लिये चला। विराट की सेना विदा हुई। किंतु राजकुमार उत्तर नगर में नगर रक्षा के लिए रहा। राजकुमारियों, दासियों और परिचारिकाओं के मध्य घिरे बैठा था वह अपनी डींगे हाँक रहा था।

रात निर्विघ्न व्यतीत हो गई। कहीं से कोई भी शुभ अथवा अशुभ समाचार नहीं आया। प्रात: उठकर स्नान के पश्चात रानी साधना कक्ष में आ बैठी। बहुत देर तक ध्यान करने का प्रयत्न किया, किंतु ध्यान लगा ही नहीं। बहुत प्रयत्न कर लेने पर भी जब सफलता नहीं मिली, तो जप करने बैठ गई। उसे लगा, ऐसी व्याकुल मन:स्थिति में जप ही उत्तम है। हठपूर्वक ध्यान नहीं हो सकता किंतु हठपूर्वक जप हो सकता है। वह बड़ी देर तक जप करती रही।

विराट और त्रिगर्त देश की सेनाओं में युद्ध होता है। युधिष्ठिर ने आज्ञा की वल्लभ जाओ और त्रिगर्त नरेश को बन्दी बना लो।

विराट की वह सेना बड़ी ही भली जान पड़ती थी। वह गौओंके खुरोंके चिन्ह देखती आगे बढ़ने लगी। मत्स्यदेशीय वीर नगरसे निकलकर व्यूहरचनाकी विधिसे चले और उन्होंने सूर्य ढलते-ढलते त्रिगर्त्तोंको पकड़ लिया। बस, दोनों ओरके वीर परस्पर शस्त्र-संचालन करने लगे और उनमें देवासुर-संग्रामकी तरह बड़ा ही भयंकर और रोमाञ्चकारी युद्ध छिड़ गया। उस समय इतनी धूल उड़ी कि पक्षी भी अंधे-से होकर पृथ्वीपर गिरने लगे और दोनों ओरसे छोड़े गये बाणोंकी ओटमें सूर्यनारायण भी दीखने बंद हो गये। रथी रथियोंसे, पदाति पदातियोंसे, घुड़सवार घुड़सवारोंसे और गजारोही गजारोहियोंसे भिड़ गये। वे क्रोधमें भरकर एक-दूसरेपर तलवार, पट्टिश, प्रास, शक्ति और तोमर आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार करने लगे। परंतु परिधके समान प्रचण्ड भुजदण्डोंसे प्रहार करनेपर भी वे अपना सामना करनेवाले वीरको पीछे नहीं हटा पाते थे। बात-की-बातमें सारी रणभूमि कटे हुए मस्तक और छिदे हुए देहोंसे पटी-सी दिखायी देने लगी। सुशर्मा बड़ा बाँकुरा रणवीर था। उसने मत्स्यराजकी सारी सेनाको अपने प्रबल पराक्रमसे रौंद डाला और फिर राजा विराटकी ओर दौड़ा। उसने विराटके रथके दोनों घोड़ोंकी तथा अङ्गरक्षक और सारथिको मारकर उन्हें जीवित ही पकड़ लिया और अपने रथमें डालकर चल दिया। यह देखकर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने भीमसे कहा, महाबाहो। विगर्त्तराज सुशर्मा महाराज विराटको लिये जा रहा है, तुम उन्हें झटपट छुड़ा लो; ऐसा न हो वे शत्रुओंके पंजेमें फँस जायँ। तब भीमने कहा, महाराज। आपकी आज्ञासे मैं इन्हें अभी छुड़ाता हूँ। इस सामनेवाले वृक्षकी शाखाएँ बहुत अच्छी हैं, यह तो गदारूप ही जान पड़ता है; इससे उखाड़कर इसीके द्वारा मैं शत्रुओंको चौपट कर दूँगा।

धर्मराजसे ऐसा कहकर भीमने बड़ी फुर्तीसे अपना श्रेष्ठ धनुष उठाया और मेघ जैसे जल बरसाता है, वैसे ही सुशर्मापर बाणोंकी वर्षा करने लगे। यह देखकर भाइयोंके सहित सुशर्मा धनुष चढ़ाकर लौट पड़ा और एक निमेषमें ही वे रथी भीमसे भिड़ गये। भीमने गदा लेकर विराटके सामने ही सैकड़ों-हजारों रथी, गजारोही, अश्वारोही और प्रचण्ड धनुषधारी शूरवीरोंको मारकर गिरा दिया तथा अनेकों पैदलोंको भी कुचल डाला।

अन्तमें भीम सुशर्माके पास आये और अपने पैने बाणोंसे उसके घोड़ोंको तथा अङ्गरक्षकोंको मार डाला। फिर उसके सारथिको रथके जुएपरसे गिरा दिया। इतने ही में वृद्ध होनेपर भी राजा विराट रथसे कूद पड़े और गदा लेकर बड़े जोरसे उसपर झपटे। रथहीन हो जानेसे सुशर्मा प्राण लेकर भागने लगा। तब भीमने कहा, राजकुमार। लौटो, तुम्हें युद्धसे पीठ दिखाना उचित नहीं है। क्या इसी पराक्रमसे तुम जबरदस्ती गौओंको ले जाना चाहते थे? ऐसा कहकर वे झट अपने रथसे कूद पड़े और सुशर्मा

के प्राणोंके ग्राहक होकर उसके पीछे दौड़े। उन्होंने लपककर सुशर्मा के बाल पकड़ लिये और उसे उठाकर पृथ्वीपर पटककर रगड़ने लगे। सुशर्मा रोने-चिल्लाने लगा, तब भीमने उसके सिरपर लात मारी और उसकी छातीपर घुटने टेककर उसके ऐसा घूँसा मारा कि वह अचेत हो गया। महारथी सुशर्माके पकड़ लिये जानेपर त्रिगर्त्तोंकी सारी सेना भयभीत होकर भागने लगी। तब महारथी पाण्डवोंने समस्त गौओंको फेर लिया तथा सुशर्माको परास्त करके उसका सारा धन छीन लिया।

भीम के नीचे पड़ा हुआ सुशर्मा अपने प्राण बचानेके लिये छटपटा रहा था। उसका सारा अंग धूलसे भर गया था और चेतना लुप्त-सी हो गयी थी। भीमने उसे बाँधकर अपने रथपर रख लिया और महाराज युधिष्ठिरके पास ले जाकर उन्हें दिखाया। भीम बोला- महाराज की जय हो यह रहा आपका अपराधी। कंक बोला- महाराज मेरा प्रस्ताव यह है कि इसे क्षमा कर दो। क्योंकि क्षमा ही सबसे उत्तम धर्म है? विराट बोला- क्या सम्राट युधिष्ठिर इसे क्षमा कर देते कंक। भीम बोला- उनकी तो न पूछिये महाराज वे तो अपने अतिरिक्त सभी को क्षमा करते रहते हैं। विराट बोले- जाओ तुम्हारा अपराध क्षमा करने योग्य तो नहीं था परन्तु कंक के प्रस्ताव पर हम तुम्हे क्षमा करते है। जाओ त्रिगर्त नरेश।

युधिष्ठिर उसे देखकर हँसे और भीमसे बोले, भैया। इस नराधमको छोड़ दो। भीमने सुशर्मासे कहा, रे मूढ। यदि तू जीवित रहना चाहता है तो तुझे विद्वानों और राजाओंकी सभामें यह कहना पड़ेगा कि मैं दास हूँ। तभी तुझे जीवनदान कर सकता हूँ। इसपर धर्मराजने प्रेमपूर्वक कहा, भैया। यदि तुम मेरी बात मानकर इस पापकर्मा सुशर्माको छोड़ दो। यह महाराज विराटका दास तो हो ही चुका है। फिर त्रिगर्तराजसे कहा, जाओ, अब तुम दास नहीं हो; फिर कभी ऐसा साहस मत करना। युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर सुशर्माने लज्जासे मुख नीचा कर लिया और जब भीमसेनने उसे छोड़ दिया तो उसने राजा विराटके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया। इसके पश्चात वह अपने देशको चला गया। फिर मत्स्यराज विराट ने प्रसन्न होकर कंक से कहा, एक अश्वारोही अभी अभी विराट नगर की ओर प्रस्थान करे चिंतित नगर वासियों को हमारी विजय का शुभ समाचार सुनाये। हम सेना सहित यहीं विश्राम करेंगे।

एक चर ने विराट नगर में आकर सूचना दी। द्वारपालों ने कहा युवराज से जाकर कहो शुभ समाचार लेकर आया है। विराट पुत्र उत्तर राजसभा में बैठा बोला तुम शुभ समाचार लेकर आये हो सैनिक। यात्रा ने तुम्हे थका भी दिया होगा। परन्तु तुम पिताश्री के पास जाओ और उनसे कहो कि कुछ दिन वहीं विश्राम करें क्योंकि ये नगर अवश्य ही यह चाहेगा कि वे विजय यात्रा से लौटे तो यह नगर उनके स्वागत के लिये नगर के द्वार की थाली से आरती के दीपों की भांति लहराता मिले। चर बोला, जो आज्ञा युवराज। उत्तर अपनी अन्त:पुर की सेविकाओं के साथ बोला यदि मैं पिताश्री के साथ गया होता तो हमारे इतने सैनिक न मारे गये होते और स्वयं पिताश्री भी घायल नहीं हुये होते।

साधना कक्ष से निकल कर रानी ने उत्तर को ढूँढ़ा। वह राजकुमारियों, दासियों और परिचारिकाओं में घिरा बैठा था और बहुत प्रसन्न था, जैसे किसी खिलदड़े बच्चे को बहुत सारे खिलौने एक साथ मिल गए हों। वे सब भी उसके साथ ऐसे ठिठोली कर रही थीं, जैसे वह उनका राजकुमार न हो, थोड़ी देर के लिए आया, विनोदी स्वभाव का कोई प्राघुण हो। राजकुमार इतना प्रसन्न था कि उसे देखकर लगता ही नहीं था कि उसके राज्य को कहीं से किसी भी प्रकार के संकट का सामना करना पड़ रहा है, अथवा मत्स्यदेश पर किसी अन्य राजा ने आक्रमण किया है, अथवा उसके परिवार में इतने सारे लोग युद्ध के लिए गए हैं, और वहाँ किसी के प्राणों पर कोई संकट है। उसे किसी अशुभ समाचार की आशंका है अथवा वह किसी शुभ समाचार की प्रतीक्षा में है। वह तो सब कुछ भूलकर परम आनन्द की स्थिति में था। ऐसा लग रहा था कि वे सब लोग किसी मांगलिक उत्सव के अवसर पर एकत्रित हुए हैं। ये लोग जैसे उनके लौटने की प्रतीक्षा कर रहे हैं, और

अपने अवकाश के क्षण हास-परिहास में व्यतीत कर रहे हैं।

महारानी सुदेष्णा आती है। उत्तर बोला प्रणाम माताश्री। महारानी बोली- युद्ध के विषय में कोई समाचार आया पुत्र। उत्तर बोला- जी माताश्री। पिताश्री घायल तो हो गये परन्तु चिन्ता की कोई बात नहीं और हमारी विजय तो होनी ही थी। मैं भी इन दासियों से यही कह रहा था कि यदि पिताश्री मुझे अपने साथ ले गये होते तो कदाचित उनके घायल हुये बिना ही विजयश्री हमें प्रणाम कर लेती। परन्तु वो तो अश्वपालों, चरवाहों और रसोइयों को अपने साथ ले गये। इसलिये घायल तो उन्हे होना ही था। उत्तरा बृहन्नला के साथ सभा भवन में। उत्तरा पूछती है क्या समाचार आया प्रिय अनुज। उत्तर बोला- विजय के अतिरिक्त और क्या समाचार हो सकता है दीदी। पिताश्री के स्वागत की तैयारिया करो। बृहन्नला तो कह ही रही थी कि अब जिस सेना के साथ बल्लभ जायेगा। उसकी पराजय कभी हो ही नहीं सकती। उत्तर बोला- तुम और तुम्हारी बृहन्नला।

## १९) पाण्डवों का अज्ञातवास पूर्ण होना व कौरवों का राजा विराट का गौ-हरण और पाण्डवोंद्वारा उनकी पराजय

पक्षियों के सुमधुर सामगान से पांचाली की निद्रा टूटी। और आज मन स्वयमेव ही प्रफुल्लित-सा लगा, जैसे किसी ने युगों से हृदय पर रखी विराट शिला का बोझ हटा दिया हो। वह शय्या पर पड़ी मन्द-मन्द मुस्कराती रही। नयनों में प्रात: रश्मियों के साथ ही आशा की चमक आ गयी थी। अरुणोदय की लालिमा जैसे कपोलों पर भी छा गयी। गवाक्ष से झाँका तो देखा, भगवान भास्कर सप्तरंग अश्वों के स्वर्णरथ पर आरूढ़ हो अपना रत्नकिरीट झिलमिलाते सरिता, पार उदय हो रहे थे। पांचाली ने एक उन्मुक्त अँगड़ाई ली, और एकाएक पूर्णत: भारहीन हो गयी।

आज अज्ञातवास का अन्तिम दिवस था। बारह वर्ष का सुदीर्घ वनवास और एक वर्ष का वह प्राणलेवा अज्ञातवास। घुटन, पीड़ा, अन्तर्दाह और आत्मपीड़न के दीर्घ तेरह वर्ष पूरे हो गये। भोर वास्तव में सुहावनी थी। सुरभित मलय के झंकोरे उसकी घुँघराली अलकों से अठखेलियाँ कर रहे थे। सुखद भविष्य का स्वप्न उस गवाक्ष की चौखट में धीरे-धीरे रूप लेता जा रहा था। धीरज, साहस, सहिष्णुता से प्रतीक्षा का युग समाप्त हुआ और अब अपमानपूर्ण दासत्व का युग भी गया। सब कुछ देख लिया। अपमान और उत्पीड़न भयंकर सर्पों की भाँति उसे सदा चारों ओर से घेरे फूत्कार करते रहे, दंश करते रहे। उनके प्रत्येक विकराल रूप से उसका साक्षात्कार हो चुका था। असुरक्षा, आक्रमण, दासत्व, चीरहरण, अपहरण, बलात्कार के प्रयास सब तो भुगत लिये।

गवाक्ष के ऊपर शाखाओं में आम्रमंजरियाँ हौले-हौले डोल रही थीं, झूल रही थीं। वसन्त आ गया? कब से तो वसन्त आता ही न था। कितने वर्षों से वह वसन्त, फाल्गुन, श्रावण आदि विस्मृत कर चुकी थी। आज उसके कक्ष में आम्र बौर की मादक सुगन्ध व्याप्त थी। शान्त शीतल मलय की सुखानुभूति में वह डूबी हुई पड़ी थी। कोकिल का पंचम स्वर अभी मुखरित नहीं हुआ था किन्तु किसी सघन वृक्ष के ऊँचे शिखर पर विख्यात गायिका की भाँति वह अस्फुट स्वर-सन्धान कर रही थी। पूर्वाभ्याससा। कूकने को आतुर... किन्तु पंचम अभी फूटा न था।

अर्जुन पांचाली के प्रति वे स्वयं को अपराधी पाते। किन्तु कितने असहाय थे वे। पूरे वर्ष पांचाली विभिन्न आपत्तियों की लक्ष्य होती रही। अपमानित हुई। प्रताड़ित हुई। सम्मान के लिए भय, जीवन के लिय भय- क्या नहीं सहा पांचाली ने। वे राजकन्याओं के कोलाहल के मध्य सब सुनते और मौन रह जाते। क्या करते। सान्त्वना भी न दे पाते। पांचाली किस प्रकार दिन-प्रतिदिन कृशकाय हुई जा रही है। मुखमण्डल कैसा निस्तेज, पीतवर्ण पत्र-सा पड़ा जा रहा है। वे मौन रह

जाते। सेवक-परिचारक उससे ठिठोली करते, वे चुप रह जाते। उसके लिए कुछ नहीं कर पाते, यही दाह उन्हें खाये जाता था। वे उद्विग्न होते उसकी झलक पाने को, किन्तु पांचाली स्वयं को उनसे कोसों दूर रखती। उनकी स्थिति देख उसकी स्वयं की पीड़ा जो द्विगुणित हो उठती थी। आज शापमुक्त होते ही वे उनींदे नयनों से अपनी अभिमानिनी प्रिया के निकट आ गये थे। अर्जुन बृहन्नला के रूप में पांचाली से बोले, भारती। अब दिन लौटेंगे। बस, आज और बुद्धिमत्ता, धीरज, चतुराई और सहनशीलता चाहिए। कौरवगण महाराज विराट की गौओं का अपहरण कर ले गये हैं। राजकुमार उत्तर कौरवों के विरुद्ध युद्ध पर जाना चाहते हैं, किन्तु उनके पास कुशल सारथी नहीं है। जाओ उत्तरा को समझाओ कि बृहन्नला पहले पाण्डुपुत्र अर्जुन की सारथी रह चुकी है, रथ-संचालन में उसकी कोई तुलना नहीं। मैं राजकुमार उत्तर का रथचालन करके अपनी प्रतिभा सिद्ध करूँगा, तब अपना परिचय दूँगा। महाराज विराट हमारे ऋणी रहेंगे। उनका गोधन वापस मिल जाएगा तो वे हमारे मित्र बन जाएँगे और भविष्य में हमारी सहायता करेंगे। तुम ऐसा उपाय करो कि उत्तर मुझे सारथी बनाएँ, और कौरवों को मैं पराजित करके आऊँ।

पांचाली का मुखारविन्द जैसे रवि के संस्पर्श से खिल पड़ा हो, कौरवों को पराजित करने। आज ही की शुभवेला में। इससे अधिक और क्या शुभ हो सकता है पार्थ। कौरवों को पराजित करके ही आना। सबको अपने शौर्य से स्तम्भित कर, चकित कर, तब परिचय देना उचित होगा। कौरवों को भी ज्ञात हो जाये, हम जीवित हैं, मृत नहीं। अकेले नहीं, हमारे साथ महाराज विराट हैं। और तब मेरे अपमान का प्रतिशोध लेना पार्थ।

कीचक वध की खबर बिजली की तरह चारों ओर आर्यावर्त में फैल गई। कौरवों की जीभ लपलपा उठी। विराट का धन-वैभव लूटने के लिए आक्रमण कर दिया। कीचक के न रहने पर विराट कमजोर हो चुके थे। पराजय निश्चित थी। राजा आत्मसमर्पण की तैयारी करने लगे। पर पांडवों ने चतुराई के साथ कौरवों एवं कर्ण को परास्त कर दिया। विराट की स्वतंत्रता अक्षुण्ण रह गई।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय। जब मत्स्यराज विराट गौओंको छुड़ानेके लिये त्रिगर्त्तसेनाकी ओर गये तो दुर्योधन भी मौका देखकर अपने मन्त्रियोंके सहित विराट नगरपर चढ़ आया। भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप, अश्वत्थामा, शकुनि, दु:शासन, विविंशति, विकर्ण, चित्रसेन, दुर्मुख, दु:शल तथा और भी अनेकों महारथी दुर्योधनके साथ थे। ये सब कौरव वीर विराटकी साठ हजार गौओंको सब ओरसे रथोंकी पंक्तिसे रोककर ले चले। उन्हें रोकनेपर जब मार-पीट होने लगी तो ग्वालिये उन महारथियोंके सामने न ठहर सके और उनकी मार खाकर जोर-जोरसे चिल्लाने लगे। तब ग्वालियोंका सरदार रथपर चढ़कर अत्यन्त दीनकी तरह रोता-बिलखता नगरमें आया। वह सीधा राजमहलके दरवाजेपर पहुँचा और रथसे उतरकर भीतर चला गया। वहाँ उसे विराटका पुत्र भूमिञ्जय (उत्तर) मिला। गोपराजने उसीको सारा समाचार सुना दिया और कहा, राजकुमार। आपकी साठ हजार गौओंको कौरव लिये जा रहे हैं। आप राज्यके बड़े हितचिन्तक हैं; इस समय अपनी अनुपस्थितिमें महाराज आपको ही यहाँका प्रबन्ध सौंप गये हैं और सभामें वे आपकी प्रशंसा करते हुए यह कहा भी करते हैं कि मेरा यह कुलदीपक पुत्र ही मेरे अनुरूप और बड़ा शूरवीर है। अत: इस समय आप तुरंत ही गौओंको छुड़ानेके लिये जाइये।

राजकुमार अन्त:पुरमें स्त्रियोंके बीचमें बैठा था। जब उससे ग्वालियेने ये बातें कहीं तो वह अपनी बड़ाई करता हुआ कहने लगा, भाई। आज मैं जिस ओर गौएँ गयीं हैं, उधर अवश्य जाऊंगा। मेरा धनुष तो काफी मजबूत है; किंतु किसी ऐसे सारथीकी आवश्यकता है, जो घोड़े चलानेमें बहुत निपुण हो। इस समय मेरी निगाहमें कोई ऐसा आदमी नहीं है, जो मेरा सारथी बन सके। अत: तुम शीघ्र ही मेरे लिये कोई कुशल सारथी तलाश करो। फिर तो, इन्द्र जैसे दानवोंको भयभीत कर

देते हैं उसी प्रकार मैं दुर्योधन, भीष्म, कर्ण, कृपाचार्य, द्रोण और अश्वत्थामा- इन सभी महान धनुर्धरोंके छक्के छुड़ाकर एक क्षणमें ही अपनी गौओंको लौटा लाऊंगा। जिस समय वे युद्धमें मेरा पराक्रम देखेंगे, उस समय उन्हें यही कहना पड़ेगा कि यह साक्षात पृथापुत्र अर्जुन ही तो हमें तंग नहीं कर रहा है।

उस आनन्द महोत्सव के विघ्नस्वरूप एक सैनिक आता है और बोला युवराज की जय हो। वह असाधन रूप से उत्तेजित था। उसने प्रणाम किया। उत्तर बोला- क्या शुभ समाचार लाये हो? सैनिक बोला- मैं अशुभ समाचार लेकर आया हूं युवराज। हां अशुभ समाचार। राजकुमार आप यहाँ बैठे है और वहाँ वे आपका सारा गोधन हाँके लिए जा रहे हैं। उन्होंने गोष्ठों में आग लगा दी है। वहाँ हाहाकार मचा है। जिसने भी उन्हें रोकने का प्रयत्न किया, वही मारा गया। समाचार यह है कि गंगापुत्र भीष्म, आचार्य द्रोण, कुलगुरु, कृपाचार्य, अंगराज कर्ण, राजकुमार दुशासन और युवराज दुर्योधन, महारथी अश्वत्थामा, कुमार विकर्ण जैसे रथों की गडगडाट से मत्स्य देश की सीमा कांप रही है। वहीं सैरन्ध्री उपस्थित थी बोली, तत्काल कोई उपाय कीजिए राजकुमार। उन्होंने आपका गोधन लूट लिया है अब वे शायद राजधानी को भी लूटने के लिए आएँगे। उत्तर के चेहरे पर स्पष्ट घबराहट उभरी; किंतु उसने स्वयं को सँभाल लिया। वह इतनी सारी युवतियों के सम्मुख ऐसी कोई बात नहीं कहना चाहता था, जिससे उनकी दृष्टि में उसका सम्मान कुछ कम हो।

उत्तर बोला- परन्तु कुरुवंश से तो हमारी मित्रता है। बृहन्नला बोली- राजनीति में शत्रुता और मित्रता को भिन्न करनेवाली रेखा बहुत पतली होती है युवराज। उत्तर बोला- तुम ठीक कहती हो। तुम अशुभ समाचार नहीं लाये। बहुत शुभ समाचार लाये हो। महारानी सुदेष्णा बोली- तुम इस समाचार को शुभ समाचार कहते हो पुत्र। उत्तर बोला- जी माताश्री। नामों से भयभीत हो जाना किसी क्षत्रिय को शोभा नहीं देता। गंगापुत्र भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य तो अब बूढ़े हो चुके है और धृतराष्ट्र पुत्र और अंगराज तो भला मेरे सामने कैसे टिक सकेंगे? हां यदि उस युद्ध में भीम और अर्जुन जैसे यौद्धा होते तब युद्ध का रंग कुछ और ही जमता। क्या स्वयं पिताश्री ने भरी सभा में बार बार यह घोषित नहीं किया था कि उनका पुत्र उत्तर यौद्धाओं का भी यौद्धा है। तो उनके इन वाक्यों को सत्य करने का अवसर मैं भला अपने हाथों से कैसे निकल जाने दूं? आप पिताश्री के स्वागत की तैयारी कीजिये। मैं यह गया और उन्हें हराकर यह आया। महारानी बोली- यह तो सोचो पुत्र कि गंगापुत्र भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, दुर्योधन, दुशासन, कर्ण, अश्वत्थामा ये सब साधारण यौद्धा नहीं है पुत्र। उत्तर बोला- साधारण यौद्धाओं से युद्ध करना भी तो आपके पुत्र का अपमान है माताश्री। बृहन्नला बोली- युवराज ठीक कह रहे हैं महारानीजी। तनिक सोचिये यदि हारे तो किससे हारेंगे? और यदि ये जीते तो किन्हे हराकर। गंगापुत्र भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और ये वो यौद्धा है जो पराजय का स्वाद नहीं जानते। उत्तर बोला- मेरे पराजय का तो प्रश्न ही नहीं उठता बृहन्नला। तुम इतना सोचो कि मैं उन्हें हराकर तुम्हारे पांडवों और महारानी द्रौपदी के अपमानों का बदला लूंगा।

उत्तर बोला- इन दुष्टों ने जान बूझकर वह समय चुना है, जब हमारी सेना एक अभियान पर गई हुई है। पिताश्री, युवराज श्वेत, शंख भैया और सेनापति भी यहाँ नहीं हैं। फिर भी यहाँ कौन इन कौरवों से डरता है। मैं अकेला ही भीष्म, द्रोण, दुर्योधन, कर्ण सबको नाकों चने चबवा देता, पर मेरे पास कोई अच्छा सारथी नहीं है। जब से मेरा सारथी युद्ध में मारा गया है, तब से मेरा युद्ध में जाना कठिन हो गया है। स्वयं पांडुपुत्र अर्जुन भी सारथी के बिना युद्धक्षेत्र में नहीं जा सकते। मुझे अभी कोई अच्छा सारथी मिल जाए, तो अभी जाकर इन कौरवों को दिखा दूँ कि किसी वीर राजा का पशुधन चुरा लेने का परिणाम क्या होता है। चोर कहीं के। बड़े योद्धा बने हैं। समझा होगा कि विराटनगर सूना पड़ा है, जाएँगे और लूट लाएँगे। एक बार सामना हो जाए, तो उनको भी स्वीकार करना पड़ेगा कि यह राजकुमार उत्तर नहीं, स्वयं अर्जुन ही है, जो अपने

दिव्यास्त्रों से उनको पीड़ा पहुँचा रहा है। सैरन्ध्री ने पूछा क्या राजकुमार का अर्जुन से साक्षात्कार हुआ? आपने उन्हें कभी देखा है? उत्तर बोला- कौन है जो अर्जुन से समता कर सके। अर्जुन से तो थर-थर काँपते हैं दुर्योधन और कर्ण। नहीं साक्षात्कार तो नहीं हुआ है किंतु मन ही मन मैं उनको अपना गुरु मानता हूँ। तो यदि आपको वह सारथी मिल जाए, जो कभी अर्जुन का भी सारथ्य कर चुका है, तो? सैरंध्री ने पूछा।

सैरन्ध्री बोली- युवराज से एक निवेदन है कि यदि राजकुमार, बृहन्नला को अपना सारथी बना ले तो इनके विजय में कोई सन्देह नहीं रह जायेगा। तो फिर मैं आपको एक रहस्य की बात बताती हूँ। आपकी नाट्यशाला में राजकुमारियों को संगीत और नृत्य की शिक्षा देनेवाली बृहन्नला है न। वह नृत्य और संगीत सीखने से पहले तो अर्जुन की सारथी ही थी। खांडव वन के दाह के समय, वही तो अर्जुन का सारथ्य कर रही थी। जब राजपुत्रने स्त्रियोंके बीचमें बार-बार अर्जुनका नाम लिया तो द्रौपदीसे न रहा गया। वह स्त्रियोंमेंसे उठकर उत्तरके पास आयी और उससे कहने लगी, यह जो हाथीके समान विशालकाय और दर्शनीय युवक बृहन्नला नामसे विख्यात है, पहले अर्जुनका सारथी ही था। यदि यह आपका सारथी हो जाय तो आप निश्चय ही सब कौरवोंको जीतकर अपनी गौएँ लौटा लायेंगे।

उत्तर जोर से हँसा, वह नपुंसक और अर्जुन का सारथी। सैरन्ध्री, तुमने भांग तो नहीं खा ली? आप उसे बुला लें। उससे अच्छा सारथी आपको और कहाँ मिलेगा? सैरन्ध्री देख रही थी, राजकुमार द्वन्द्व में था। यदि वह बृहन्नला को सारथी स्वीकार कर ले, तो उसे युद्ध के लिए जाना पड़ता। युद्ध के लिए वह जाना नहीं चाहता था, किंतु वह सैरन्ध्री के प्रमाण को मिथ्या सिद्ध कैसे कर सकता था। उत्तर बोला। अब मैं राजकुमार होकर पुरुष होकर, उस नपुंसक से सहायता की प्रार्थना करूँ? आप प्रार्थना न करें राजकुमार। सैरन्ध्री बोली, आप राजकुमारी उत्तरा से कहें। वे तो बृहन्नला की शिष्या हैं। उन्हें उससे प्रार्थना करने में संकोच नहीं होगा।

उत्तर बोला- बृहन्नला। हंसने लगा। मैं कोई संगीतशाला में नहीं जा रहा हूं सैरन्ध्री। मैं तो रणभूमि की ओर जा रहा हूं। सैरन्ध्री बोली- इसीलिये मैं यह निवेदन करती हूं राजकुमार क्योंकि महारथी अर्जुन भी कई युद्धों में इन्हे अपना सारथी बना चुके है। उत्तर बोला- महारानी अर्जुन क्या इस कलीव को अपना सारथी बना लेते थे? यह सुनकर तो ऐसा लगता है कि तुम महारथी अर्जुन को जानती ही नहीं। सैरन्ध्री बोली- क्षमा करे युवराज। मैं जो जानती थी सो मैंने कह दिया। महारानी सुदेष्णा बोली- सैरन्ध्री झूठ नहीं कहती पुत्र। कीचक के विषय में उसने जो कहा था वही हुआ।

उत्तरा चकित थी कि जिस बृहन्नला को वह वर्षभर से अत्यंत दक्ष नर्तक और गायक के रूप में जानती है, वह सारथ्य भी कर सकती है। उसे युद्ध का अनुभव भी है। कैसी विचित्र बात है। युद्ध से मनुष्य कठोर होता है, और कलाओं से कोमल; तो फिर बृहन्नला में ये इतने आत्मविरोधी गुण कैसे हैं? बृहन्नला में तो प्रकृति ने पुरुष और स्त्री दोनों के ही गुण रखे हैं। यह भी तो आत्मविरोधी ही है पर तभी उसने स्वयं को सुधार लिया। उसमें पुरुष और स्त्री दोनों के ही गुण नहीं हैं। प्रकृति की अद्भुत सृष्टि है यह बृहन्नला भी। जो क्षमताएँ एक साधारण से साधारण जीव में भी होती हैं, प्रकृति ने बृहन्नला को वे भी नहीं दी; किंतु दूसरी ओर उसी बृहन्नला को कितना कुछ दिया है प्रकृति ने। किन्नर कंठ ऐसा लचीला शरीर, असाधारण साधना, आध्यात्मिक मन, उत्कृष्ट कोटि की बुद्धि और निर्लोभी चिंतन। राजकुमारी ने कितनी बार चाहा कि उसकी गुरु उससे कोई उपहार ग्रहण करे, कोई बहुमूल्य वस्तु। किंतु बृहन्नला का वीतराग मन कभी नहीं पसीजा। उसने कभी कुछ स्वीकार नहीं किया। सैरन्ध्रीके ऐसा कहनेपर उसने अपनी बहिन उत्तरासे कहा, बहिन। तू शीघ्र ही जाकर बृहन्नलाको लिवा ला। भाईके कहनेसे उत्तरा तुरंत ही नृत्यशालामें पहुँची।

उत्तरा ने अपनी गुरु को प्रणाम किया, गुरुदेवी। अभी-अभी सैरन्ध्री ने बताया है कि आप एक अद्‌भुत सारथी भी हैं, और इससे पहले कुंतिपुत्र अर्जुन का सारथ्य कर चुकी हैं। हम लोग अत्यन्त संकट में हैं। कौरवों ने हमारे गोष्ठों पर आक्रमण कर दिया है और हमारी गौवों को हाँक कर लिए जा रहे हैं। नगर में और कोई है नहीं। भैया उत्तर को ही यह युद्ध करने जाना होगा। उत्तरा ने कहा, उनका सारथी पिछले युद्ध में मारा गया था। उसके पश्चात् से उनके पास कोई सारथी नहीं है। बृहन्नलाने अपनी सखी राजकुमारी उत्तराको देखकर पूछा, कहो, राजकन्ये। कैसे आना हुआ? तब राजकन्याने बड़ी विनय दिखाते हुए कहा, बृहन्नले। कौरवलोग हमारे राष्ट्रकी गौओंको लिये जा रहे हैं, उन्हें जीतनेके लिये मेरा भाई धनुष धारण करके जा रहा है। तुम मेरे भाईके सारथी बन जाओ और कौरवलोग गौओंको दूर लेकर जायँ, उससे पहले ही रथ उनके पास पहुँचा दो। बृहन्नला बोली, विचित्र लीला है उस प्रभु की। कभी-कभी पुरुषों को युद्ध में उतारने का काम नपुंसकों को करना पड़ता है।

उत्तरा बोली- ठीक है तुम सारथी बनो। बृहन्नला बोली- जो आज्ञा। सैरन्ध्री बृहन्नला से बोली, तुम्हारा चिंतन तो यही रूका खड़ा है, जहाँ उस समय था, जब तुम लोग गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। तब से अब तक बहुत सारा समय व्यतीत हो चुका है और बहुत कुछ परिवर्तित हो चुका है। वे जो तुमसे प्रेम करते थे और करते हैं, वे तुम्हारे पितामह तथा आचार्य है। जो लोग सेना लेकर आक्रमण करने आए हैं, वे दुर्योधन की सभा और सेना के पदाधिकारी हैं। वे लोग अपने ही लोगों के विरुद्ध लड़ते हैं और पराए लोगों से अधिक क्रूर हो जाते हैं। बृहन्नला बोली, धर्मराज से पूछे बिना स्वयं को प्रकट करना भी उचित नहीं है। किंतु किसी भी स्थिति में कौरवों को रोकना ही पड़ेगा और विराट राज का गोधन भी वापस लौटाना पड़ेगा। कुमारी उत्तराके इस प्रकार कहनेपर अर्जुन उठे और राजकुमार उत्तरके पास आये।

बृहन्नलाको दूरहीसे आते देखकर राजकुमारने कहा, बृहन्नले। जिस समय मैं गौओंको बचानेके लिये कौरवोंके साथ युद्ध करूँ, उस समय तुम मेरे घोड़ोंको उसी प्रकार अपने काबूमें रखना जिस प्रकार पहलेसे रखते आये हो। मैंने सुना है पहले तुम अर्जुनके प्रिय सारथी थे और तुम्हारी सहायतासे ही पाण्डवप्रवर अर्जुनने सारी पृथ्वीको जीता था। युद्धक्षेत्र तो युद्धक्षेत्र ही होता है, गुरुकुल नहीं; कि वहाँ कोई तुम्हें सारथ्य की शिक्षा देता रहे। उत्तर बोला, मैं तुम्हें बाणों और व्यूहों का अंतर ही समझाता रहा जाऊँ और वह बूढ़ा भीष्म हमें अंगूठा दिखा दे, ऐसी मूर्खता तो मैं नहीं कर सकता।

बृहन्नलाने पूछा, राजकुमार आपको भय तो नहीं लग रहा? उत्तर बोला, क्या कह रही हो बृहन्नले। भय क्या होता है यह तो मैंने आज तक जाना ही नहीं। रथ को कौरवों की ओर ले चलो। आज मैं अकेला ही सारे कौरवों को युद्धभूमि में सुला दूँगा। उत्तरा बोली- बृहन्नला न जाने क्यों मेरा हृदय कहता है अब जीत मेरे भ्राताश्री की ही होगी। हाँ और मैंने सुना है कि कुरु बडे ही अच्छे वस्त्र पहनते है। लौटते समय मेरी गुड़ियों के लिये उनके वस्त्र लाना। बृहन्नला बोली- जो आज्ञा राजकुमारी। युवराज की विजय के उपरान्त शवों के वस्त्र उतारने में कितना समय लगेगा। परन्तु गंगा पुत्र भीष्म, द्रोणाचार्य वे तो श्वेतवस्त्र पहिनते है राजकुमारी। उत्तरा बोली- अच्छा तो ठीक है उनके वस्त्र नहीं लाना। जो आज्ञा प्रणाम कर बृहन्नला उत्तरा का सारथी बनकर उत्तर के साथ युद्ध करने के लिये निकल पडे। और बृहन्नला ने अश्वों को हाँका। रथ ने तत्काल गति पकड़ ली। उत्तर बोला- तुम देख लेना बृहन्नला मैं उन कुरुओं को ऐसे काँट दूंगा जैसे किसान खेत काटता है और हम पिताश्री के आने से पहिले ही विराट नगर में होंगे। और जब पिताश्री को यह पता चलेगा कि उनके पुत्र ने कुरु शक्ति की पीट को धूल चटा दी है तो वे कितने प्रसन्न होंगे।

अब राजकुमार उत्तर राजधानीसे निकलकर बाहर आया और अपने सारथीसे बोला, तुम जिधर कौरवलोग गये हैं, उधर ही रथ ले चलो। यहाँ जो कौरवलोग विजयकी आशासे आकर इकट्ठे हुए हैं, उन सबको जीतकर और उनसे गौएं लेकर मैं

बहुत जल्द लौट आऊंगा। तब पाण्डुपुत्र अर्जुनने उत्तरके घोड़ोंकी लगाम ढीली कर दी। अर्जुनके हाँकनेसे वे हवासे बात करने लगे और ऐसे दिखायी देने लगे मानो आकाशमें उड़ रहे हों। थोड़ी ही दूर जानेपर उत्तर और अर्जुनको महाबली कौरवोंकी सेना दिखायी दी। वह विशाल वाहिनी हाथी, घोड़े और रथोंसे भरी हुई थी। कर्ण, दुर्योधन, कृपाचार्य, भीष्म और अश्वत्थामाके सहित महान् धनुर्धर द्रोण उसकी रक्षा कर रहे थे। उसे देखकर उत्तरके रोंगटे खड़े हो गये और उसने भयसे व्याकुल होकर अर्जुनसे कहा, मेरी ताब नहीं है कि मैं कौरवोंके साथ लोहा ले सकूँ; देखते नहीं हो, मेरे सारे रोंगटे खड़े हो गये हैं? इस सेनामें तो अगणित वीर दिखायी दे रहे हैं। यह तो बड़ी ही विकट है, देवतालोग भी इसका सामना नहीं कर सकते। मैं तो अभी बालक ही हूँ, शस्त्रास्त्रका भी विशेष अभ्यास नहीं किया है; फिर मैं अकेला ही इन शस्त्रविद्याके पारगामी महावीरोंसे कैसे लड़ूंगा। इसलिये बृहन्नले। तुम लौट चलो।

युद्धभूमि में सुसज्जित यौद्धाओं की सेवा देखकर उत्तर भयभीत हो गया। बृहन्नला बोली- यह ध्वज गंगापुत्र भीष्म का है। यह आचार्य द्रोण का है, वो नीला ध्वज कुलगुरु कृपाचार्य का है और वो ध्वज बीच में लहरा रहा है वो दुर्योधन का है, और वो दुशासन है। वो सुतपुत्र कर्ण और वो द्रोण पुत्र अश्वत्थामा है। उत्तर बोला- ये सेना है या सागर। इस सेना से तो देवताओंकी सेना भी नहीं छूट सकती। इस सेना सागर का तो दूसरा तट भी दिखाई नहीं दे रहा। मेरा धनुष मेरे कन्धे से सरका जा रहा है। मेरे बाण मेरे तूणीर में छिपने का स्थान खोज रहा है। गंगापुत्र भीष्म, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, महारथी दुर्योधन, कर्ण, विकर्ण, दु:शासन, अश्वत्थामा। अरे बृहन्नला इनसे तो इन्द्र भी युद्ध की नहीं सोच सकते है। पिताश्री तो स्वयं सेना लेकर सुशर्मा से जुझने चले गये और मुझे इन महारथियों के वन को काटने अकेला छोड गये। नहीं बृहन्नला नहीं। मुझे तो युद्ध का अनुभव ही नहीं। बृहन्नला चलो लौट चलते हैं। चलो लौट चलो। बृहन्नला बोली- उसे लौटना नहीं भागना कहेंगे युवराज। आप एक क्षत्रिय हैं और युद्ध आरम्भ होने से पहिले ही पराजय स्वीकार कर ले रहे हैं। राजकुमारी अपनी गुड़ियों के लिये मुझसे कपडे मांगेगी तो मैं क्या करूँगा?

बृहन्नला ने कहा, तुमने स्त्री-पुरुषोंके सामने अपने पुरुषार्थकी बड़ी प्रशंसा की थी और तुम शत्रुसे लड़नेके लिये ही घरसे निकले हो, फिर अब युद्ध क्यों नहीं करते? यदि तुम इन्हें परास्त किये बिना घर लौट चलोगे तो सब स्त्री-पुरुष आपसमें मिलकर तुम्हारी हँसी करेंगे। मुझसे भी सैरन्ध्रीने तुम्हारा सारथ्य करनेको कहा था, इसलिये अब बिना गौएँ लिये नगरकी ओर जाना मेरा काम नहीं है। उत्तर बोला- बृहन्नले। कौरवलोग मत्स्यराजकी बहुत-सी गौएँ लिये जाते हैं तो ले जायँ और स्त्री-पुरुष मेरी हँसी करें तो करते रहें, किंतु अब युद्ध करना मेरे वशकी बात नहीं है। मुझे अपने प्राणों की पड़ी हुई है और तुम इस समय गुड़िया के लिये कपड़ों की बात कर रहे हो। बृहन्नला बोली, आप कुरु सेना को हराने का वचन दे चुके हों युवराज और मैं गुड़ियों के लिये वस्त्र लाकर देने का वचन दे चुका हूं। वहाँ तो नारियों के सामने बडी डींगे मार रहे थे। आप युद्ध करे या न करें मैं युद्ध अवश्य करूँगा। मैं विराट नगर की नारियों के व्यंग के बाण खाने को तैयार नहीं हूं युवराज। उत्तर बोला- हां। नारियां व्यंग करती है तो करें परन्तु मैं इन महारथियों के साथ युद्ध नहीं कर सकता। और उत्तर रथ से कूद पड़ा रथ छोड़कर भाग गया। और सारी मान-मर्यादा को तिलांजलि देकर धनुष बाण फेंककर भागा। यह देखकर बृहन्नला उसके पीछे पीछे भागी। उत्तर बोला- बृहन्नला। मुझे भाग जाने दो। मैं तुम्हें स्वर्ण की सौ मुद्रायें दूँगा, और एक सोने का रथ दूँगा। दस हाथी भी ले लो। मुझे भाग जाने दो।

बृहन्नला ने कहा, शूरवीरों की दृष्टि में युद्धक्षेत्र से भागना क्षत्रियों का धर्म नहीं है। क्षत्रियोंके लिये युद्ध में मरना ही अच्छा है। पीठ दिखाना अच्छा नहीं होता। बृहन्नलाने राजकुमार के पीछे दौड़कर बड़ी तेजी से उसको बलात् पकड़कर रथ पे

बिठाया। उत्तर कायरों की तरह दीन होकर रोने लगा और बोला कल्याणी, बृहन्नले। तुम जल्दी रथ लौटा ले चलो। देखो, जिंदगी रहेगी तो अच्छे दिन भी देखनेको मिलेंगे। इसी प्रकार घबराकर बहुत अनुनय-विनय करता रहा और अर्जुन हँसते हँसते रथ के पास ले आये और बोले, राजकुमार यदि शत्रुओंसे युद्ध करने का तुम्हारा साहस नहीं है तो मेरे स्थान पर तुम बैठ जाओ और घोड़ोंकी रास सम्भालो। मैं युद्ध करूँगा क्योंकि मैं रणभूमि से भाग नहीं सकता इसलिए युद्ध तो अवश्य होगा। आपके स्थान पर मैं युद्ध करूँगा। क्षत्रिय तो वहीं है जो भय से अपनी शक्ति बना लें। डरना लज्जा की बात नहीं पर डरकर भागना किसी भी क्षत्रिय को शोभा नहीं देता युवराज। शत्रुओं के सामने आकर घबराना कैसा? मैं इस दुर्जय सेनामें कौरवोंसे लडूंगा और तुम्हारी गौएं छुड़ाकर लाऊँगा। इसप्रकार उस बृहन्नला ने युद्ध से डरकर भागते हुए उत्तर को समझाकर रथपर चढ़ाकर अपना सारथी बनाया और उसे श्मशान में उस शमी वृक्षके पास ले गये जहाँ अर्जुन ने अपने गाण्डीव धनुष छिपा रखा था। बृहन्नला कुमार उत्तर से बोली, पुरुष नपुंसकों के समान बोलेंगे तो नपुंसकों को पुरुषों के समान बोलना ही पड़ेगा। अब उठो और जो कुछ मैं कह रहा हूं वह करो। उत्तर बोला, क्या करना होगा? बृहन्नला ने कहा, इस शमीवृक्ष पर चढ़ जाओ और ऊपर टँगे, श्वेतवस्त्र में लिपटे, हमारे शस्त्र उतार लाओ। उतारने को तो मैं भी यह शस्त्र उतार सकता हूँ यदि मैं वृक्ष पर चढ़ गया तो तुम स्वयं डरकर भाग जाओगे। मुझे दुर्योधन से युद्ध करना है और तुम्हारा गोधन भी लौटाना है उसके बिना मैं विराट नगर नहीं लौट सकता। मैं अपनी शिष्याओं के परिहास का पात्र नहीं बनना चाहता। अर्जुन बोले- क्योंकि तुम्हारा यह धनुष तो एक खिलौना है। उस वृक्ष पर चढ जाओ वहां पर एक पोटली रखी है उसे ले आओ। जाओ युवराज। उत्तर वृक्ष पर चढता है और अर्जुन का गांडीव धनुष उतार कर लाता है।

उत्तर समझ नहीं पा रहा था कि वह बृहन्नला के इस नए रूप से प्रभावित था या भयभीत था। उसके मन में अनेक शंकाएँ उठीं। पता नहीं, यह कौन है, क्या चाहता है? कौरव महारथियों से अकेला युद्ध करने की तैयारी कर रहा है। जैसे देवराज इन्द्र हो या स्वयं अर्जुन। उत्तर ने शस्त्र नीचे उतार दिये और पूछा यह किन महावीरों के शस्त्र है? बृहन्नला ने कहा यह पाण्डवोंके शस्त्र छिपाये हुए है। उत्तर से पूछे बिना नहीं रहा गया तो फिर पाण्डव कहाँ है? बनवास के पश्चात तो उन्हें अज्ञातवास के लिये जाना था। इन्हें देख कर भी डर लगता है। अर्जुन ने शस्त्रों को प्रणाम किया और बोला यह गांडीव अर्जुन का धनुष है और यह कुन्ती पुत्र भीम की गदा है। ये भाला सम्राट युधिष्ठिर का है और ये तलवारे नकुल और सहदेव की है। उत्तर बोले, परन्तु इन महारथियों के अस्त्र-शस्त्र इस श्मशान में क्या कर रहे है। यदि ये उनके अस्त्र-शस्त्र है तो वे स्वयं कहा हे। बृहन्नला बोली, कुन्ती पुत्र अर्जुन तो मैं स्वयं हूं युवराज। उत्तर बोले, क्या तुम सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी अर्जुन हो। अर्जुन बोले, हां मैं द्रोण शिष्य अर्जुन हूं और जो कंक है ना वो सम्राट युधिष्ठिर है। तुम्हारे गौ शाला सम्भालने वाला है सहदेव और घुड़साल में तुम्हारे घोड़ों की सेवा कर रहा है मेरा नकुल। रसोइया बल्लभ सर्वश्रेष्ठ गदाधारी भीम है और तुम्हारी माताश्री की सैरन्ध्री हमारी पांचाली। उत्तर बोले, मैं नहीं मानता यदि तुम अर्जुन हो तो अर्जुन के दसों नाम बताओ। अर्जुन बोले, धनंजय, विजय, श्वेतवाहक, फाल्गुनी, विभासु किरीटी, सव्यसांची, अर्जुन, जिष्णु और कृष्ण।

मैं अनेक देशों को जीतकर, उनसे कर रूप में केवल धन लेकर धन के मध्य ही स्थित था इसलिए मैं धनंजय कहलाया। अर्जुन ने उसकी ओर देखा, मेरे रथ के अश्व श्वेत होते हैं, इसलिए मैं श्वेतवाहन हूँ। मेरा जन्म उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र में हुआ था, इसलिए मैं फाल्गुन कहलाता हूँ। इन्द्र ने मेरे सिर पर मुकुट रखा था, इसलिए मैं किरीटी कहलाता हूँ। युद्ध में मैं कोई बीभत्स कर्म नहीं करता, इसलिए मुझे बीभत्सु भी कहते हैं। मैं अपने दाएँ और बाएँ दोनों हाथों से गांडीव खींचता हूँ, इसलिए मेरा नाम सव्यसाची है। मैं सबके प्रति समभाव रखता हूँ, इसलिए अर्जुन हूँ। इंद्र का पुत्र हूँ, इसलिए जिष्णु कहलाता हूँ। मेरा वर्ण

श्यामल है और मैं लोगों के चित्त को आकर्षित कर लेता हूँ। इसलिए कृष्ण भी कहलाता हूँ। किंतु राजकुमार। नामों और उनका अर्थ जान लेना इस बात का पर्याप्त प्रमाण नहीं है कि मैं अर्जुन हूं। मेरा परिचय तो मेरा धनुष्य ही देगा।

उत्तर बोले, हे कुन्ती पुत्र, हे द्रोण शिष्य हे अर्जुन मुझे क्षमा करो। मेरे लिये तो तुम्हारा दास होना भी गौरव की बात है। मेरा तो जैसे जन्म-जन्मान्तर से देखा गया, अपूर्ण स्वप्न पूरा हुआ। वीरवर अर्जुन का सारथी बनना तो जाने कितने जन्मों के पुण्य का प्रभाव है। अर्जुन बोले, कभी भूल से भी और परिहास में भी दासत्व की बात मत करना। मैं जानता हूं यह बात तुमने नम्रता से कही है। परंतु यह बात कभी नम्रता से भी नहीं कहना। मैं दासत्व का सम्वाद जानता हूं युवराज। नम्रता का अर्थ यह नहीं कि सिंह घास की ओर देखता रहे। अर्जुन ने धनुष की टंकार से अपना रथ बुलवा लिया। अर्जुन बोले- आश्चर्य न करो युवराज। अब हम इस रथ पर चलेंगे। यह शस्त्र अपने रथ में रख लो।

अर्जुन बोले- हमारे अज्ञातवास का काल पूरा हो गया है, इसलिए मैं तो स्वयं ही प्रकट हो रहा हूँ। और मैं अपने नाम की घोषणा कर रहा हूँ। मेरा परिचय मेरा वेश अथवा मेरा परिधान नहीं है युवराज। मेरा परिचय मेरा गाण्डीव है, मेरा आचरण है। युद्ध में जब मेरे ये धनुष बाण छूटेंगे, वे ही सबको मेरा परिचय दे देंगे।

वैशम्पायन कहते हैं, राजन। जब भीष्म द्रोण आदि प्रधान-प्रधान कौरव महारथियोंने उस नपुंसकवेषधारी पुरुषको उत्तरको रथमें चढ़ाकर शमीवृक्षकी ओर जाते देखा तो वे अर्जुनकी आशंका करने मन-ही-मन बहुत डरे। तब शास्त्रविद्याविशारद द्रोणाचार्यजीने पितामह भीष्मसे कहा, गङ्गापुत्र। यह जो स्त्रीवेषधारी दिखायी देता है, वह इन्द्रका पुत्र कपिध्वज अर्जुन जान पड़ता है। यह अवश्य ही हमें युद्धमें जीतकर गौएँ ले जायगा। इस सेनामें मुझे तो इसका सामना करनेवाला कोई भी योद्धा दिखायी नहीं देता। सुनते हैं कि हिमालयपर तपस्या करते समय अर्जुनने किरात वेषधारी भगवान शंकरको भी युद्ध करके प्रसन्न कर लिया था। इसपर कर्ण बोला, आचार्य। आप सदा ही अर्जुनके गुण गाकर हमारी निन्दा किया करते हैं, किंतु वह मेरे और दुर्योधनके तो सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं है। दुर्योधनने कहा, और कर्ण। यदि यह अर्जुन है, तब तो मेरा काम ही बन गया; क्योंकि पहचान लिये जानेके कारण अब पाण्डवोंको फिर बारह वर्षतक वनमें विचरना पड़ेगा। और यदि कोई दूसरा पुरुष नपुंसकके रूपमें आया है तो मैं इसे अपने पैने बाणोंसे धराशायी कर ही दूँगा। तब अर्जुनने अपना शंख निकाला और उसे अपने पूरे बल से फूँका। उत्तर को लगा, उसने शंख की ऐसी ध्वनि पहले कभी नहीं सुनी थी। उसके कानों के पर्दे जैसे फट रहे थे; किंतु उसका उत्साह पहले से भी दोगुना हो गया था। अर्जुन ने गाण्डीव धनुष पर डोरी चढ़ाकर उसकी टंकार की। उत्तर बोला पाण्डव श्रेष्ठ आप तो अकेले ही है। इन शस्त्र-अशस्त्र के पारगामी है। कौरवों की घोषयात्रा के समय मैंने महाबली गन्धर्वोंसे अकेले ही युद्ध किया था। द्रौपदी के स्वयंवर में मुझे अनेक राजाओं का सामना करना पडा था। तुम अपने मानसिक भयों को त्यागो और जल्दी से रथ हाँको। अर्जुन के स्मरण करने पर अग्निदेवके दिये हुए रथका ध्यान किया। आकाश से एक ध्वजा पताकासे सुशोभित दिव्य रथ उतरा। अर्जुनने उसकी प्रदक्षिणा की और इस वानरकी ध्वजावाले रथमें बैठकर धनुषबाण धारण कर उस ओर बढे जहाँ कौरव राजा विराट के गोधन का हरण कर रहे थे। अर्जुनने अपने गाण्डीव की भीषण टंकार से पर्वत, गुफा, दिशा और चट्टानों को विदीर्ण कर दिया। रथकी घरघराहटसे धरती दहल उठी।

दुर्योधन बोले- यह तो अर्जुन का देवदत्त शंख है मित्र। इसका अर्थ यह है कि हमने उनके अज्ञातवास को भंग कर दिया है। कर्ण बोले, बधाई हो मित्र। दुर्योधन बोले- सारथी रथ लेकर पितामह की ओर ले चलो। दुर्योधन भीष्म के पास आकर बोला हे पितामह, हे गुरु द्रोणाचार्य, हे कुलगुरु कृपाचार्य, आप सबने गांडीव की प्रत्यन्चा की ध्वनि अवश्य पहिचान ली

होगी और उस शंख की नाद को अवश्य ही सुना होगा। इसलिये आपसे मैं एक बात कहने जा रहा हूं जो मैं पहिले भी कई बार कह चुका हूं। द्यूत का बडबन्ध यही था यदि अज्ञातवास भंग हो जाता तो १२ वर्ष का वनवास फिर शुरु हो जायेगा। भीष्म बोले- हां पुत्र वो अशुभ दिन मुझे विस्तार से याद है। दुर्योधन बोले, इसलिये आप तीनों साक्षी है कि मैंने पांडवों के अज्ञातवास को भंग कर दिया है। पितामह आप हम दोनों के बडे है। रथ को आगे बढाइये और अर्जुन को आदेश दीजिये कि वो अपने भाइयों के साथ दूसरे वनवास में जाने की तैयारी करे। भीष्म बोले- पुत्र हम यहां मत्स्य देश जीतने आये थे या यहां तुम्हारे भाइयों का अज्ञातवास भंग करने। दुर्योधन बोला क्या मैंने अर्जुन से यह कहा था कि वो मत्स्य नरेश की रक्षा करने में यह भूल जाये कि अज्ञातवास का वर्ष अभी पूरा नहीं हुआ। कर्ण बोला, सम्भवत: बनवास उनको भा गया है और यही कारण है कि वे स्वयं ही उसे भंग करना चाहते है। द्रोण बोले, अंगराज कर्ण यह एक परिवार की समस्या है। इसमें ना मेरा बोलना उचित है और न तुम्हारा। मैं तो फिर भी दोनों का गुरु हूं किन्तु तुम तो बाहरवाले हो। अपनी जीभ से व्यंग की प्रत्यन्चा उतार लो। कर्ण बोले- कौरवों के इतिहास में आप जैसा गुरु कदाचित ही मिले जो सदैव सबके सामने अपने एक शिष्य के पक्ष में है और दूसरे शिष्य के विरोध में।

देखिये न, अर्जुन को आते देखकर ये उसकी प्रशंसा करने लगे हैं। इससे हमारी सेनापर क्या प्रभाव पड़ेगा? इसलिये ऐसी नीतिसे काम लेना चाहिये, जिससे हमारी सेनामें फूट न पड़े। जिस समय ये अर्जुनके घोड़ोंकी हिनहिनाहट सुनेंगे, उसी समय इनके घबरानेसे सारी सेना अव्यवस्थित हो जायगी। इस समय हम विदेशमें हैं और बड़े भारी जंगलमें पड़े हुए हैं गर्मीकी ऋतु है तथा शत्रु हमारे सिरपर आ बोला है; इस लिये ऐसी नीतिका आश्रय लेना चाहिये, जिससे हमारी सेना घबराहटमें न पडे। आचार्य तो दयालु, बुद्धिमान और हिंसासे विरुद्ध विचारवाले हुआ करते हैं। जब कोई बड़ा संकट आ पड़े तो इनसे किसी प्रकारकी सलाह नहीं लेनी चाहिये। पण्डितोंकी शोभा तो मनोरम महलोंमें, सभाओंमें और बगीचोंमें चित्रविचित्र कथाएँ सुनानेमें ही है। अथवा बलिवैश्वदेवादिके द्वारा अन्न का संस्कार करनेमें तथा कीटादि गिर जानेसे उसके दूषित हो जानेपर भी पण्डितोंकी सम्मति काम दे सकती है। अत: शत्रुकी प्रशंसा करनेवाले इन पण्डितलोगोंको पीछेकी ओर रखकर ऐसी नीतिका आश्रय लो, जिससे शत्रुका नाश हो। सब गौओंको बीचमें खड़ी कर लो। उनके चारों ओर व्यूहरचना कर दो तथा रक्षकोंको नियुक्त करके रणक्षेत्रकी सँभाल रक्खो, जहाँसे कि हम शत्रुओंसे युद्ध कर सकें। मैं पहले प्रतिज्ञा कर ही चुका हूं। उसके अनुसार आज संग्राम भूमिमें अर्जुनको मारकर दुर्योधनका अक्षय ऋण चुका दूँगा।

यह सुनकर कृपाचार्यने कहा- कर्ण। युद्धके विषय में तुम्हारी बुद्धि सदा ही बड़ी कड़ी रहती है। तुम न तो कार्यके स्वरूपपर ध्यान देते हो और न उसके परिणामका विचार करते हो। विचार करनेपर तो यही समझ में आता है कि हमलोग अर्जुनसे लोहा लेनेमें समर्थ नहीं हैं। देखो, उसने अकेले ही चित्रसेन गन्धर्वके सेवकोंसे युद्ध करके समस्त कौरवोंकी रक्षा की थी तथा अकेले ही अग्निदेवको तृप्त किया था। जब किरात वेषमें भगवान् शमर उसके सामने आये तो उनसे भी उसने अकेले ही युद्ध किया था। निवातकवच और कालकेय दानवोंको तो देवता भी नहीं दबा सके थे। उन्हें भी उसने युद्धमें अकेले ही मारा था। अर्जुनने तो अकेले ही अनेकों राजाओंको अपने अधीन कर लिया था; तुम्हीं बताओ, तुमने भी अकेले रहकर कभी कोई ऐसी करतूत करके दिखायी है? अर्जुनके साथ युद्ध करनेकी सामर्थ्य तो इन्द्रमें भी नहीं है; तुम जो उसके साथ भिड़नेकी बात कह रहे हो, इससे मालूम होता है तुम्हारा मस्तिष्क ठिकाने नहीं है। हाँ, द्रोण, दुर्योधन, भीष्म तुम, अश्वत्थामा और हम सब मिलकर अर्जुनका सामना करेंगे; तुम अकेले ही उससे भिड़नेका साहस मत करो।

कृपाचार्य की बात सुनकर अश्वत्थामा बोले, अभी तो हमने गौओंको जीता भी नहीं है और न हम मत्स्यराजकी सीमापर

ही पहुँचे हैं, हस्तिनापुर भी अभी बहुत दूर है; फिर तुम ऐसे बढ़-बढ़कर बातें क्यों बनाते हो? दुर्योधन तो बड़ा ही क्रूर और निर्लज्ज है; नहीं तो जूएमें राज्य जीतकर भला, किस क्षत्रियको संतोष होगा? अत: जिस प्रकार तुमने जूआ खेला था इन्द्रप्रस्थको जीता था और द्रौपदीको बलात्कारसे सभामें बुलाया था, उसी प्रकार अब अर्जुनके साथ संग्राम करना। अरे। काल, पवन, मृत्यु और बड़वानल जब कोप करते हैं तो कुछ-न-कुछ शेष छोड़ देते हैं; किंतु अर्जुन तो कुपित होनेपर कुछ भी बाकी नहीं छोड़ता। अत: जिस प्रकार तुमने द्यूतसभामें शकुनिकी सलाहसे जूआ खेला था, उसी प्रकार तुम मामाश्री की देख-रेखमें ही अर्जुनसे लड़ लो। और कोई भी वीर युद्ध करे, मैं तो अर्जुनसे लडूंगा नहीं। यदि गौएँ लेनेके लिये मत्स्यराज विराट आया तो उससे मैं अवश्य युद्ध करूँगा।

गुरु द्रोण दुर्योधन से बोले, तुम कहते रहो कि अभी उनका अज्ञातवास समाप्त नहीं हुआ है। किंतु किसी भी गणित से उनका अज्ञातवास पूर्ण हो चुका है। इसलिए धर्मत: तो तुम उन्हें अब बनवास दे नहीं सकते। मत्स्यों की उन गौओं को तो जो तुमने अपने अधिकार में कर ली हैं, वह छीन कर ले ही जाएगा। इसलिए पुत्र दुर्योधन तुम गौवों को लेकर हस्तिनापुर की ओर शीघ्रता से प्रस्थान करो। और दुर्योधन तो गुरु द्रोण के प्रति अपने मन में विष पाल रहा है। उनके विरुद्ध ही नहीं उन सबके विरुद्ध जिनसे वे प्रेम करते है। जो उन्हें प्रिय है। यह व्यक्ति किसी का सम्मान नहीं कर सकता। यह किसी से प्रेम नहीं करता। यह केवल अपने अहंकार से प्रेम करता है।

कर्ण कदाचित और भी कुछ कहता तब कृपाचार्य बोले राधापुत्र। तुम्हे युद्ध के औचित्य अथवा अनौचित्य का कुछ भी ज्ञान नहीं है। तुम न कार्य को समझते हो न कार्य के परिणाम को। तुम तो केवल क्रूरता को जानते हो। यह भूल जाते हो कि युद्ध वहीं करना चाहिए, जहाँ वह अत्यंत आवश्यक हो। अनावश्यक युद्ध की कोइ सार्थकता नहीं है। पांडवों को हमने पहले ही अन्यायपूर्वक तेरह वर्षों तक उनके राज्य से वंचित रखा है। अब उनके साथ फिर एक बार अत्याचार करना पाप है। हम अर्जुन से केवल इसलिए युद्ध नहीं कर सकते, क्योंकि एक रथ बनानेवाले सूत के हाथों में धनुष आ गया है और उसकी इच्छा जिस-तिस से जूझने की होती रहती है। उसका मस्तिष्क भ्रष्ट हो गया है। उस विक्षिप्त के रोग का उपचार किसी वैद्य से होना चाहिए। वह युद्ध की आवश्यकता और अनावश्यकता का चिंतन करने योग्य नहीं है। वे दुर्योधन की ओर घूमे, हम में से किसी को भी अकेले जाकर अर्जुन से भिड़ने की आवश्यकता नहीं है। यदि लड़ना ही है तो उपयुक्त व्यूह की रचना कर सब मिलकर युद्ध करें। यदि हम सब महारथी मिलकर युद्ध करें तो कदाचित हम अर्जुन से युवराज को बचा सकें।

भीष्म बोले, अंगराज कर्ण। न तो अभी हमने मत्स्यों की गौवों को जीता है, न हम मत्स्यों की सीमाओं से बाहर निकले हैं, न हम हस्तिनापुर की सीमाओं में सुरक्षित पहुँच गए हैं, तो तुम इतनी बकवाद क्यों कर रहे हो। सैकड़ों युद्ध जीतकर विश्व भर से अपनी शक्ति का लोहा मनवा कर भी कोई वीर इस प्रकार प्रलाप नहीं करता, जिस प्रकार तुम कर रहे हो। तुम्हें आत्मप्रशंसा का रोग हो गया है। तुममें न तो शालीनता है, न विनय और न शिष्टाचार। तुम आचार्य द्रोण का अपमान कर रहे हो। द्यूत में किसी का राज्य जीतना न तो वस्तुत: राज्य जीतना है, न किसी को उससे संतोष होता है। ऐसा संतोष तो तुम जैसे मूर्ख को ही हो सकता है। युवराज। तुमने अथवा तुम्हारे इस मित्र ने पांडवों में से किसी एक भाई को भी कभी द्वन्द्व में जीता है? इंद्रप्रस्थ का राज्य तुमने पांडवों को युद्ध में पराजित कर जीता है? तुम लोगों ने निर्दोष द्रुपदपुत्री पांचाली को जिस प्रकार रजस्वला और एकवस्त्रा होने पर भी केशों से घसीटकर सभा के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया था, उसका प्रतिशोध लेने पार्थ अर्जुन आ रहा है। अब तुम लड़ लो उससे, या तुम्हारा यह अहंकारी मित्र लड़ ले। जिसने द्यूत खेला था, या तुम्हारा वह मामा लड़ ले। हम तो मत्स्यों से युद्ध करने आए हैं, मत्स्यों से ही युद्ध करेंगे। अर्जुन से मैं तो युद्ध नहीं

करूंगा। अश्वत्थामा और कृपाचार्य का विचार बहुत ठीक है। कर्ण तो क्षत्रियधर्मके अनुसार युद्ध करनेपर ही तुला हुआ है। किसी भी समझदार आदमीको आचार्य द्रोणपर आरोप नहीं लगाना चाहिये। और जब अर्जुन हमारे सामने आ गया है तो आपसमें विरोध करनेका अवसर तो यह है ही नहीं। आचार्य कृप, द्रोण और अश्वत्थामाको भी इस समय क्षमा करना चाहिये। बुद्धिमानोंने सेनासे सम्बन्ध रखनेवाले जितने दोष बताये हैं उन सबमें फूट सबसे बड़कर है। कर्ण बोला, रथ पहिलेवाले स्थान पर ले लो सारथी। यहां तो घरवालों का वाद-विवाद चल रहा है।

भीष्म बोले- बडों का आदर करना सीखो अंगराज कर्ण। सभी लोग तुम्हे अधरथी कहते हैं और मैं तुम्हे महारथी। अभी-अभी तुमने जिस व्यक्ति से असभ्य शब्दों में असभ्य बात कही है उसके धनुष पर तुम प्रत्यन्चा भी नहीं चढा सकते। गुरु परशुराम के अतिरिक्त संसार भर में इनसे बात करने योग्य उनके अतिरिक्त कोई व्यक्ति नही है। इसलिये अपना स्थान पहिचानो और अपने स्थान पर जाओ। दुर्योधन बोले- पितामह यदि आपके अतिरिक्त किसी और ने मेरे मित्र का अपमान किया होता तो आप ही की सौगन्ध आज उसका रथ रिक्त हो गया होता। वो अपने रथ पर न होता और मैंने उसका शव काट कर धरती पर फेंक दिया होता। मैं तुमसे क्षमा चाहता हूं मित्र और प्रार्थना करता हूं कि यही मेरे साथ खडे रहो। कृपाचार्य बोले, अंगराज कर्ण जिस दिन तुम सत्य का बाण सहन करना सीख जावोगे उस दिन तुम महारथी हो जाओगे। आचार्य द्रोण ने ठीक ही कहा था कि यह कुरु परिवार की समस्या है। तुम इस परिवार के नहीं हो, युवराज तुम्हे अंगराज तो बना सकते है पर वे तुम्हे कुरुवंशज नहीं बना सकते। यह क्रोध जो कोई वीर पी ले तो वह अमृत समान होता है। इसीलिये प्रिय दुर्योधन तुम भी गंगापुत्र से क्षमा मांगो। भीष्म बोले- यह किस किस अपराध के लिये क्षमा मांगेगा आचार्य मैं तो उस दिन से डर रहा हूं जब इसे क्षमा करते करते मेरी झोली रिक्त हो जायेगी। दुर्योधन बोले- मैं क्षमा चाहता हूं पितामह किन्तु मैं विवश हूं मुझसे मेरे क्रोध का अश्व सधना नहीं चाहता। भीष्म बोले, कही ऐसा न हो पुत्र जब यह अश्व सध जाये तो यह देखो कि तुम अश्वरोहण के योग्य ही नहीं हो। परन्तु मैं वो दिन देखने के लिये जीवित नहीं रहना चाहता पुत्र। इसलिये मेरा कहा मानो और सेना को लेकर हस्तिनापुर की ओर लौट चलो पुत्र। चाहे युद्ध हो या द्यूत कपट नहीं करना चाहिये पुत्र। जब चौसर का अन्तिम दांव लगा था तब मैं वहां पर था पुत्र। तब यह नहीं ठहरी थी कि तुम अपने गुप्तचरों को लेकर पांडवों के अज्ञातवास को भंग करने का प्रयत्न करोगे। दुर्योधन बोले, यह विवाद यहाँ से विजयी लौटने के बाद कर लेंगे पितामह। अभी तो इस क्षण का सत्य यह है कि उनका अज्ञातवास भंग हो चुका है और उन्हे १२ वर्ष के बनवास को स्वीकार करना ही पडेगा। भीष्म बोले- इस समय मत्स्य सेना से युद्ध करने की बात करो पुत्र। अज्ञातवास की बात मत करो। गणित के अनुसार पांडवों का अज्ञातवास समाप्त हो चुका है। दुर्योधन बोले, यो हंसने के लिये क्षमा चाहता हूं पितामह किन्तु आप गणित भूल चुके। भीष्म बोले, भारतवर्ष के सारे गणिताचार्यों को एकत्रित करो और उनसे पूछो कि गणित मैं भूला हूं या तुम्हारी ईर्ष्या को गणित आती ही नहीं। कला, काष्ठा, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, नक्षत्र, ग्रह, ऋतु और संवत्सर ये सब मिलकर एक कालचक्र बने हुए हैं। वह कालचक्र कलाकाष्ठादिके विभागपूर्वक घूमता रहता है। उनमें सूर्य और चन्द्रमा नक्षत्रोंको लाँघ जाते हैं तो कालकी कुछ वृद्धि हो जाती है। इसीसे हर पाँचवें वर्ष दो महीने बढ़ जाते हैं। इसलिये मेरा ऐसा मत है कि पाण्डवोंको अब तेरह वर्षसे पाँच महीने और बारह दिनका समय अधिक हो गया है। पाण्डवोंने जो-जो प्रतिज्ञाएँ की थीं, उनका ठीक-ठीक पालन किया है। इस समय इस अवधिका भी अच्छी तरह निश्चय करके ही अर्जुन हमारे सामने आया है। ये सभी बड़े महात्मा तथा धर्म और अर्थके मर्मज्ञ हैं। भला, युधिष्ठिर जिनके नेता हैं वे धर्मके विषयमें कोई चूक कैसे कर सकते हैं? पाण्डवलोग निर्लोभ हैं, उन्होंने बड़ा दुष्कर कर्म किया है; इसलिये वे राज्यको भी किसी नीतिविरुद्ध

उपायसे लेना नहीं चाहेंगे। पराक्रमपूर्वक राज्य लेनेमें तो वे वनवासके समय भी समर्थ थे, किंतु धर्मपाशमें बँधे होनेके कारण वे क्षात्रधर्मसे विचलित नहीं हुए। इसलिये जो ऐसा कहेगा कि अर्जुन मिथ्याचारी है, उसे मुँहकी खानी पड़ेगी। पाण्डवलोग मौतको गले लगा लेंगे किंतु असत्यको कभी नहीं अपनावेंगे। साथ ही उनमें ऐसी वीरता भी है कि समय आनेपर उनका जो हक होगा उसे वे वज्रधर इन्द्रसे सुरक्षित होनेपर भी नहीं छोड़ेंगे। इसलिये राजन्। युद्धोचित अथवा धर्मोचित कोई भी काम शीघ्र ही करो, क्योंकि अब अर्जुन समीप ही आ गया है।

अनावश्यक युद्ध संसार का क्रूरतम और सर्वाधिक जघन्य अपराध है। अर्जुन अकेला ही हम सबसे युद्ध कर सकता है। दुर्योधन बोले- पितामह युद्ध की आवश्यकता ही क्या है? अर्जुन के हमारे सम्मुख आते ही उसकी प्रतिज्ञा भंग हो जायेगी। अज्ञातवास में पहचाने जाने के कारण उन्हें फिर से बनवास करना होगा। भीष्म ने उसे डाँट दिया, मूर्ख हो तुम। मैंने कहा ना उनकी अज्ञातवास की अवधि समाप्त हो चुकी है। एक प्रकार से उनका अज्ञातवास पाँच महिने पहिले ही पूरा हो चुका है। तुम किसी भी गणिताचार्य से गिनती करनवा लो। मैं नहीं चाहता की तुम लोगों में युद्ध हो। और मैं जानता हूं कि अर्जुन भी युद्ध-लोलुप नहीं हैं। मेरी बात मानो, और उनका राज्य उन्हें लौटा दो। बिना युद्ध के उनके साथ सन्धि कर लो। दुर्योधन बोला- राज्य तो मैं किसी भी स्थिति में नहीं लौटाऊंगा पितामह। वह एक नहीं ३६ अज्ञातवास भी पूरी कर लें। भीष्म बोले, तो फिर युद्ध के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।

दुर्योधन बोले, आपके सन्तोष के लिये यह भी करूंगा पितामह किन्तु आप मेरे साथ युद्ध करने आये है। युद्ध कीजिये। कृपाचार्य बोले, यदि पराजय के लिये युद्ध करना चाहते हो तो युवराज युद्ध अवश्य करो। जिस अर्जुन ने अकेले ही अग्नि को पराभूत कर लिया हो उसका यह सेना क्या बिगाड सकती है। कर्ण बोले, हस्तिनापुर के आचार्यों का तो ढंग ही निराला है। वहा युद्धभूमि में गुरु अपने शिष्यों का उत्साह बढाने के स्थान पर शत्रु की वीरता का बखान करते है, उनका साहस घटाने का प्रयत्न करते है। सामने यदि अर्जुन है तो होने दीजिये। मैं आपको वचन देता हूं कि जैसे गरुड सर्प को उठा लेता है वैसे ही मैं अर्जुन को उसके रथ से उठा लूंगा। यदि आप अर्जुन का सामना करने से डरते है तो मुझे आज्ञा दीजिये। कृपाचार्य बोले, अपने अहंकार के रथ के लिये कोई उपयुक्त सारथी खोजो। तुम अपने सारे शरीर में घी लगाकर कौशेय वस्त्र पहिन कर अग्निकुंड में क्यो फलांग लगाना चाहते हो। अर्जुन एक अग्निकुंड है और तुम कौशेय का एक लच्छा। तुम्हें अपने भस्म होने के समय का भी अनुभव नहीं मिलेगा। नदी की मछली भी तैरने में निपुण होती है। वो तैरकर सागर को पार नहीं कर सकती। अंगराज कर्ण यह भी मत भूलो की अर्जुनने उस अपमान का कवच भी पहिन रखा होगा जिसे १३ वर्ष पहिले कुरु राज्य सभा में किया गया था। तुम्हारे बाण उस कवच को नहीं भेद सकते। दुर्योधन बोला, कुलगुरु क्या वह पितामह, आचार्य द्रोण आपसे भी बडा धनुर्धर है? भीष्म बोले, पिता को आकार का मापदंड देकर पुत्र को मापने की भूल न करो। पुत्र दुर्योधन यह भूल न करो। दुर्योधन बोला- अर्थात आप यह युद्ध नहीं करेंगे? भीष्म बोले- युद्ध कैसे नहीं करूंगा युद्ध करने के लिये तो आया हूं। महाराज ने तुम्हारे साथ आने और तुम्हारे पक्ष में युद्ध करने का आदेश दिया है। यदि मेरा प्रिय अर्जुन भी मेरे सामने है तो भी मैं तुम्हारे साथ तुम्हारे पक्ष में हूं। दुर्योधन मेरे विचार से तुम चौथाई सेना लेकर हस्तिनापुर की ओर चले जाओ। दूसरा चौथा हिस्सा सेना गौओंको लेकर चली जायँ। शेष आधी सेना के साथ हम सब अर्जुन का मुकाबला करेंगे। अर्जुन युद्ध के लिये आ रहा है। भीष्म ने पहले तो दुर्योधन और गौओं को विदा किया।

अर्जुनने उत्तर से कहा हमारे पितामह भीष्म को देखो ये राजलक्ष्मी से सम्पन्न होकर भी दुर्योधन के अधीन हो रहे हैं। यह बात मेरे मन को सदा संतप्त करती रहती है। अर्जुन ने अपना शंख उठाया और उच्च स्वर में फूंककर कहा मैं तृतीय पांडव

कुन्तीपुत्र अर्जुन अपने पितामह तथा आचार्यों को इस युद्धभूमि में प्रणाम करता हूं। अर्जुन रणभूमि में आ गया।

भीष्म बोले, लो अर्जुन का ध्वज आ गया है। अर्जुन ने गाण्डीव धनुष पर बाण चढा प्रणाम किया। फिर दूसरा बाण छोडकर सूचना दी। द्रोणाचार्य बोले- मैं इन बाणों को पहचान गया हूं आचार्य। भीष्म बोले- धूल में धंसे इन दो बाणों से अर्जुन ने आपके चरण स्पर्श किये हैं। और वो जो दो बाण आपके कर्णों को छूकर निकल गये है उनमें अर्जुन ने आपको चुनौती दी है। मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि १३ वर्ष के उपरान्त जब अर्जुन से भेंट होगी तो इस तरह रणभूमि में होगी। सामने देखिये वो अपने रथ पर बैठा हुआ ऐसा लग रहा है कि जैसे घी का वस्त्र पहिने हुये हवन कुंड की अग्नि। युद्ध के लिये आपस में दोनों सेनायें आमने-सामने आ जाती है। दुर्योधन विराट का गौधन लेकर चला तो दोनों सेनाओं में टकराव हुआ। अर्जुन बोले, युवराज रथ को ले जाकर रथ को सेना के सामने वहा रोको जहां वो मेरे बाणों की सीध में हो और सबसे निकट दुर्योधन हो।

इसके बाद अर्जुनने सारी सेनापर दृष्टि डालकर देखा, किंतु उन्हें दुर्योधन कहीं दिखायी नहीं दिया। तब वे कहने लगे, मुझे दुर्योधन तो यहाँ दिखायी नहीं देता। मालूम होता है वह दक्षिणी मार्गसे गौएँ लेकर अपने प्राण बचाने के लिये हस्तिनापुरकी ओर भाग गया है। अच्छा, इस रथसेनाको तो छोड़ दो; उस ओर चलो, जिधर दुर्योधन गया है।

उत्तर बोले- मुझे तो युवराज दुर्योधन कहीं दिखाई नहीं दे रहा। वो हमारा गौधन लेकर दक्षिण की ओर निकल गये है। अर्जुन चलो पीछा करो उनका। उत्तर बोले- जो आज्ञा। कृपाचार्य बोले, लगता है अर्जुन तो सीधे दुर्योधन की खोज में निकल गया है। भीष्म बोले- तो उसे रोकिये कुलगुरु। कृपाचार्य बोले- वो हममें से किसी एक को रोके नहीं रूक सकता गंगापुत्र। भीष्म ने बाण चलाया।

**बाण चढाकर धनुष पर करते भीष्म विचार, प्राणों से प्रिय जो मुझे कैसे करू प्रहार।**

अर्जुनकी आज्ञा पाकर उत्तरने उसी ओरको रथ हाँक दिया, जिधर दुर्योधन गया था। दुर्योधनके पास पहुँचकर अर्जुन अपना नाम सुनाकर उसकी सेनापर टिड्डियोंके समान बाण बरसाने लगे। उनके छोड़े हुए बाणोंसे ढक जानेके कारण पृथ्वी और आकाश दिखायी देने बंद हो गये। अर्जुनके शफ्की ध्वनि, रथके पहियोंकी घरघराहट, गाण्डीवकी टंकार और उनकी ध्वजामें रहनेवाले दिव्य प्राणियोंके शब्दसे पृथ्वी काँप उठी तथा गौएँ पूँछ उठाकर रँभाती हुई सब ओरसे लौटकर दक्षिणकी ओर भागने लगीं।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय अर्जुन धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ था, उसने शत्रुसेनाको बड़े वेगसे दबाकर गौओंको जीत लिया। इसके बाद युद्धकी इच्छासे वह दुर्योधनकी ओर चला। कौरव वीरोंने देखा गौएँ तो तीव्र गतिसे विराटनगरकी ओर भाग गयीं और अर्जुन सफल होकर दुर्योधनकी ओर बढ़ा आ रहा है, तो वे बड़ी शीघ्रतासे वहाँ आ पहुँचे। कौरवोंकी उस सेनाको देखकर अर्जुनने विराटकुमार उत्तरसे कहा- राजपुत्र। आजकल दुर्योधनका सहारा पाकर कर्ण बड़ा अभिमानी हो रहा है, वह मुझसे युद्ध करना चाहता है; अत: पहले उसीके पास मुझे ले चलो। जैसे इस कथा के मार्ग में आनेवाला गीता का मोड पास आता जा रहा है वैसे ही समय के पास कहने योग्य बातें कम होती जा रही है क्योंकि जो कुछ वो कहेंगे तो उनके अतिरिक्त और कोई कह ही नहीं सकता परन्तु दु:ख इसका है कि चूंकि समय सामने भी देख सकता है इसलिये आज से बहुत आगे की क्षितिजों के उसपार बैठी हुई शताब्दियां उस गोविन्द वाक्य को पुस्तक बनाकर सिर पर रखेगी किन्तु उसका कहा मानेगी या नहीं मानेगी यह समय अभी नहीं कह सकता। ऐसे ही दूसरे अर्थ पूर्ण वाक्यों का भी यही परिणाम होनेवाला है। धर्म सिकुड जायेगा लोग कर्म और कर्तव्य जैसे शब्दों को तो याद रखेंगे। इनके अर्थों को भूल जायेंगे या फिर इन्हे अपने निहित स्वार्थ की दलदल में धकेल देंगे और फिर समय तब भी आज की तरह विवश खडा सब कुछ देखता रहेगा। क्योंकि यह समय है हस्तक्षेप नहीं कर सकता, आशीर्वाद नहीं दे सकता। शाप नहीं दे सकता। और यदि समय को

हस्तक्षेप का अधिकार रहा होता तो समय गंगापुत्र देवदत की जीत पर अपनी अंगुली रख देता और उनसे कहता कि पितृ मोह में पडकर प्रतिज्ञा मत करो। जो कुछ हो रहा है वह उसी प्रतिज्ञा का परिणाम है, जो अर्जुन बचपन में जिस पितामह की गोद में बैठा रहा करता था और गुरु श्रेष्ठ द्रोणाचार्य से आशीर्वाद लिया करता था वही अर्जुन आज उन्ही पितामह और उन्ही गुरु श्रेष्ठ पर तीर चलाने जा रहा है। भीष्म ने अपना तीर चला दिया। युद्ध आरम्भ हो गया।

उत्तरने अर्जुनका रथ युद्धभूमिके मध्यभागमें ले जाकर खड़ा किया। इतनेमें चित्रसेन, संग्रामजित, शत्रुसह और जय आदि महारथी वीर उसके मुकाबलेमें आ डटे। युद्ध छिड़ गया। अर्जुनने इनके रथोंको उसी प्रकार भस्म कर दिया, जैसे आग वनको जला डालती है। जब यह भयानक संग्राम हो रहा था, उसी समय कुरुवंशका श्रेष्ठ योद्धा विकर्ण रथपर बैठकर अर्जुनके ऊपर चढ़ आया। अर्जुनने उसका धनुष काटकर रथकी ध्वजाके टुकडे-टुकड़े कर दिये। विकर्ण तो भाग गया, किंतु शत्रुन्तप नामक राजा सामने आकर अर्जुनके हाथसे मारा गया। फिर तो जैसे प्रचण्ड आँधीके वेगसे बड़े-बड़े जङ्गलोंके वृक्ष हिल उठते हैं, उसी प्रकार अर्जुनकी मार खाकर कौरवसेनाके वीर काँपने लगे। कितने ही आहत हो प्राण त्यागकर पृथ्वीपर गिर पड़े। इस युद्धमें इन्द्रके समान पराक्रमी वीर भी अर्जुनके द्वारा परास्त हुए। वह शत्रुओंका संहार करता हुआ युद्धभूमिमें विचर रहा था, इतनेमें कर्णके भाई संग्रामजितसे उसकी मुठभेड़ हो गयी। अर्जुनने उसके रथमें जुते हुए लाल-लाल घोड़ोंको मारकर एक ही बाणसे उसका सिर काट लिया। भाईके मारे जानेपर कर्ण अपने पराक्रमके जोशमें आकर अर्जुनकी ओर दौड़ा और अर्जुनको बींध डाला, उसके घोड़ोंको छेद दिया और राजकुमार उत्तरके हाथमें भी चोट पहुँचायी। यह देख अर्जुन भी जैसे गरुड़ नागकी ओर दौड़े उसी प्रकार, कर्णपर टूट पड़ा। ये दोनों वीर सम्पूर्ण धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ, महाबली और सब शत्रुओंका प्रहार सहनेवाले थे। इनका युद्ध देखनेके लिये सभी कौरव वीर ज्यों-के-त्यों खड़े हो गये।

अपने अपराधी कर्णको सामने पाकर अर्जुन क्रोध और उत्साहसे भर गया और एक ही क्षणमें उसने इतनी बाणवृष्टि की कि रथ, सारथी और घोड़ोंसहित वह छिप गया। इसके बाद कौरवोंके अन्यान्य योद्धाओंको भी अर्जुनने रथ और हाथियोंसहित बेध डाला। भीष्म आदि भी अपने रथसहित अर्जुनके बाणोंसे ढक गये। इससे उनकी सेनामें हाहाकार मच गया। इतनेमें कर्णने अर्जुनके तमाम बाणोंको काट दिया और अमर्षमें भरकर उसके चारों घोड़ों तथा सारथीको बींध दिया। साथ ही रथकी ध्वजाको भी काट डाला। इसके बाद उसने अर्जुनको भी घायल किया। कर्णके बाणोंसे आहत होकर अर्जुन सोते हुए सिंहके समान जाग उठा और उसके ऊपर पुन: बाणोंकी वर्षा करने लगा। अपने वज्रके समान तेजस्वी बाणोंसे उसने कर्णके बाँह, जङ्घा, मस्तक, ललाट और कण्ठ आदि अंगोंको बींध डाला। अर्जुन बोले- यह किसकी सेना है? जो द्रोण शिष्य अर्जुन का मार्ग रोकने का साहस कर रही है। सावधान। अर्जुन ने अपने गांडीव से दुर्योधन की सेना को मार गिराया। दूसरी बार बाण चला कर सेना का मार्ग आरुद्ध कर दिया। अर्जुन बोले- युवराज चलिये उधर और गायें ले जाते हुये दुर्योधन के पीछे हो गये। कर्ण बोला सावधान। अर्जुन बोला, तुम से तो युद्ध करना मेरे लिये तो अपमान का विषय है सूत पुत्र कर्ण किन्तु क्या करूं तेरी जीभ में गांठ लगाने की प्रतिज्ञा कर चुका हूं और मैं अपनी प्रतिज्ञा अवश्य पूरी करूंगा। कर्ण बोला- व्यंग के बाण मत चला असभ्य बालक। अपना गांडीव उठाओ और दिखलाओ मुझे तुम्हारे आचार्य द्रोण ने तुम्हे क्या सिखलाया है? सावधान अर्जुन और दोनों ने आपस में बाण चलाये। अर्जुन के बाण से कर्ण भागने लगा। अर्जुन बोला, भाग मत कायर यह अर्जुन का गांडीव है। कर्णका शरीर क्षत-विक्षत हो गया, उसे बड़ी पीडा होने लगी। फिर तो, जैसे एक हाथीसे हारकर दूसरा हाथी भाग जाता है, उसी प्रकार वह युद्धके मैदानसे भाग खड़ा हुआ।

कर्णके भाग जानेपर दुर्योधन आदि वीर अपनी-अपनी सेनाके साथ धीरे-धीरे अर्जुनकी ओर बढ़ आये। तब अर्जुनने हँसकर दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करते हुए कौरवसेनापर प्रत्याक्रमण किया। उस समय उस सेनाके रथ, घोडे, हाथी और कवच आदिमेंसे कोई भी ऐसा नहीं बचा था जिसमें दो-दो अंगुलपर अर्जुनके तीखे बाणोंका घाव न हुआ हो। अर्जुनके दिव्यास्त्रका प्रयोग, घोड़ोंकी शिक्षा, उत्तरकी रथ हाँकनेकी कला, पार्थके अस्त्रसंचालनका क्रम और पराक्रम देखकर शत्रु भी बड़ाई करने लगे। अर्जुन प्रलयकालीन अग्निके समान शत्रुओंको भस्म कर रहा था; उस समय उसके तेजस्वी स्वरूपकी ओर शत्रु आँख उठाकर देख भी न सके। उसके दौड़ते हुए रथको समीप आनेपर एक ही बार कोई भी शत्रु पहचान पाता था, दुबारा उसे इसका अवसर नहीं मिलता; क्योंकि अर्जुन तुरंत ही उस शत्रुको रथसे गिराकर परलोक भेज देता था। समस्त कौरव सैनिकोंके शरीर उसके द्वारा छिन्न-भिन्न होकर कष्ट पा रहे थे; वह अर्जुनका ही काम था दूसरेसे उसकी तुलना नहीं हो सकती थी।

तब विराटकुमार उत्तरने अर्जुनसे कहा- विजय। अब आप किस सेनामें चलना चाहते हैं? आज्ञा दीजिये, मैं वहीं रथ ले चलूँ। अर्जुनने कहा- उत्तर। जिस रथके लाल-लाल घोड़े हैं, जिसपर नीली पताका फहरा रही है, उस रथपर बैठे हुए जो अत्यन्त कल्याणकारी वेषमें व्याघ्रचर्मधारी महापुरुष दिखायी पड़ते हैं, वे हैं कृपाचार्य और वही है उनकी सेना। तुम मुझे उसी सेनाके निकट ले चलो। और देखो। जिनकी ध्वजामें सुवर्णमय कमण्डलुका चिन्ह है, वे ही ये सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ आचार्य द्रोण हैं। तुम मेरे रथसे इनकी प्रदक्षिणा करो। जब ये मुझपर प्रहार करेंगे, तभी मैं भी इनपर शस्त्र छोड़ूँगा; ऐसा करनेसे ये मुझपर कोप नहीं करेंगे। इनसे थोड़ी ही दूरपर, जिसके रथकी ध्वजामें धनुष का चिन्ह दिखायी देता है, यह आचार्य द्रोणका पुत्र महारथी अश्वत्थामा है। तथा जो रथोंकी सेनाओंमें तीसरी सेनाके साथ खड़ा है, सुवर्णका कवच पहने है, जिसकी ध्वजाके ऊपर सुवर्णमय हाथीका चिन्ह बना है, वही यह धृतराष्ट्रका पुत्र राजा दुर्योधन है। जिसकी ध्वजाके अग्रभागमें हाथीकी सुन्दर श्रृंखलाका चिन्ह दिखायी दे रहा है, यह कर्ण है; इसे तो तुम पहले ही जान चुके हो। तथा जिनके सुन्दर रथपर सुवर्णमय पाँच मण्डलवाली नीले रंग की पताका फहराती है, जो हस्तत्राण पहने हुए हैं, जिनका धनुष बहुत बड़ा और पराक्रम महान है, जिनके उत्तम रथपर सूर्य और ताराओंके चिन्हवाली अनेकों ध्वजाएँ हैं, मस्तकपर सोनेका टोप और उसके ऊपर श्वेत छत्र शोभा पा रहा है, जो मेरे मनमें भी उद्वेग पैदा करते रहते हैं ये हैं हम सब लोगोंके पितामह शान्तनुनन्दन भीष्मजी। इनके पास सबसे पीछे चलना चाहिये; क्योंकि ये मेरे कार्यमें विघ्न नहीं डालेंगे।

अर्जुनकी बातें सुनकर उत्तर सावधान हो गया और जहाँ कृपाचार्यका रथ खड़ा था, वहीं अर्जुनका रथ भी ले गया। वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय विराट कुमारने रथ बढ़ाकर कृपाचार्य की प्रदक्षिणा की और फिर उनके सामने उसे ले जाकर खड़ा कर दिया। अर्जुन का रथ कृपाचार्य के सम्मुख पहुँचा ही था कि अर्जुन ने अपना अस्त्र छोड़ दिया।

तदनन्तर, अर्जुनने अपना नाम बताकर परिचय दिया और देवदत्त नामक बड़े भारी शफ्को जोरसे बजाया। उससे इतनी ऊँची आवाज हुई, मानो पर्वत फट रहा हो। वह शफ्नाद आकाशमें गूँज उठा और उससे जो प्रतिध्वनि हुई, वह वज्रपातके समान जान पड़ी। युद्धार्थी महारथी कृपाचार्यने भी अर्जुनपर कुपित हो अपना शफ जोरसे बजाया। उसका शब्द तीनों लोकोंमें व्याप्त हो गया। फिर उन्होंने अपना महान् धनुष हाथमें ले उसकी टमार की और विकट गर्जना की। तब अर्जुनने भल्ल नामक तीखा बाण मारकर कृपाचार्यका धनुष और हस्तत्राण काट दिया और कवचके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। किंतु उनके शरीरको तनिक भी क्लेश नहीं पहुँचाया। कृपाचार्यने दूसरा धनुष उठाया, पर अर्जुनने उसे भी काट दिया। इस प्रकार जब कृपाचार्यके कई धनुष काट डाले तो उन्होंने प्रज्ज्वलित वज्रके समान दमकती हुई एक शक्ति अर्जुनके ऊपर फेंकी। फिर कृपाचार्यके रथका जुआ काट दिया, घोड़े मार दिये और सारथीका सिर धड़से अलग कर दिया। धनुष, रथ,

घोड़े और सारथीके नष्ट हो जानेपर कृपाचार्य हाथमें गदा लेकर कूद पड़े और उसे अर्जुनके ऊपर फेंका। यद्यपि कृपाचार्यने उस गदाको बहुत सँभलकर चलाया था, तो भी अर्जुनने बाण मारकर उसे उलटे लौटा दिया। तब कृपाचार्यकी सहायता करनेवाले योद्धा कुन्तीनन्दनको चारों ओरसे घेरकर बाण बरसाने लगे। यह देख विराटकुमार उत्तरने घोड़ोंको बायीं ओर घुमाया और शत्रुओंकी गति रोक दी। तब कृपाचार्य ने बाण चलाये। अर्जुन ने बाण चलाकर कृपाचार्य के बाण तोड डाले। कृपाचार्य की छाती में बाण लगाकर कवच तोड डाला। तब वे रथहीन कृपाचार्यको साथ ले अर्जुनके निकटसे भाग गये। कृपाचार्य अपने धनुष को सम्भालते ही रह गये और वे अपनी स्थान से गिरकर भूमिपर आ गये। अब वे रथविहीन होकर खुले क्षेत्र में गांडीवधारी अर्जुन के सामने खड़े थे।

जब कृपाचार्य रणभूमिसे हटा लिये गये तो लाल घोड़ोंवाले रथपर बैठे हुए आचार्य द्रोण धनुष-बाणसे सुसज्जित हो अर्जुनके ऊपर चढ़ आये। दोनों ही अस्त्रविद्याके पूर्ण ज्ञाता, धैर्यवान और महान बलवान थे; दोनों ही युद्धमें पराजित होनेवाले नहीं थे। इन दोनों गुरु-शिष्योंकी आपसमें मुठभेड़ होते देख भरतवंशियों की वह विशाल सेना बारंबार काँपने लगी। महारथी अर्जुन अपना रथ द्रोणाचार्यके पास ले गया और अत्यन्त हर्षमें भरकर मुसकराते हुए उसने गुरुको प्रणाम करके कहा- युद्धमें सदा ही विजय पानेवाले गुरुदेव। हमलोग आजतक तो वनमें भटकते रहे हैं, अब शत्रुओंसे बदला लेना चाहते हैं; आपको हम लोगोंपर क्रोध नहीं करना चाहिये। जबतक आप मुझपर प्रहार नहीं करेंगे, मैं भी आपपर अस्त्र नहीं छोड़ूँगा। अब अर्जुन का रथ आचार्य द्रोण के रथ की परिक्रमा कर, उनके सम्मुख खड़ा हो गया। द्रोण ने अपना धनुष सँभाल लिया। उनके बाण चले और लगा कि निमिष भर में ही जैसे अर्जुन उसका सारथी तथा अश्व सब ही आहत हो गए। अर्जुन ने अपने दिव्यास्त्र प्रकट करने आरंभ किए। क्रमश: उसका वेग बढ़ता चला गया और द्रोण मंद पड़ते रहे। दोनों ओर से शस्त्रास्त्र चल रहे थे। आचार्य द्रोण ने बाण चलाये। अर्जुन ने द्रोण के बाण काट उसे परास्त किया। दोनों ही दोनोंपर समान भावसे बाणवर्षा करने लगे। दोनों ही विख्यात पराक्रमी और अत्यन्त तेजस्वी थे। दोनोंका वेग वायुके समान तीव्र था और दोनों ही दिव्यास्त्रोंका प्रयोग जानते थे। अत: बाणोंकी झड़ी लगाते हुए वे वहाँ खड़े हुए राजाओंको मोहित करने लगे। युद्धके मुहानेपर खड़े हुए वीर विस्मयके साथ कहते थे, भला, अर्जुनके सिवा दूसरा कौन है जो युद्धमें द्रोणाचार्यका सामना कर सके। क्षत्रियका धर्म भी कितना कठोर है, जिसके कारण अर्जुनको गुरुके साथ लड़ना पड़ रहा है। द्रोणाचार्य ऐन्द्र, वायव्य और आग्नेय आदि जो-जो अस्त्र अर्जुनपर छोड़ते थे, उन सबको वह दिव्यास्त्रोंके द्वारा नष्ट कर देता था। आकाशचारी देवता आचार्य द्रोणकी प्रशंसा करते हुए कहते, सब दैत्यों और देवताओंपर विजय पानेवाले प्रबल प्रतापी अर्जुनके साथ जो द्रोणाचार्यने युद्ध किया, यह बड़ा ही दुष्कर कार्य है। अर्जुनको युद्ध-कलाकी अच्छी शिक्षा मिली थी; वह निशाना मारने में कभी चूकता नहीं था, उसके हाथोंमें बड़ी फुर्ती थी और वह दूरतक अपने बाण फेंकता था। यह सब देखकर आचार्य द्रोण को भी बड़ा विस्मय होता। गाण्डीव धनुषको ऊपर उठाकर अमर्षमें भरा हुआ अर्जुन जब दोनों हाथोंसे खींचता, उस समय टिड्डियोंके समान बाणोंकी वर्षासे आकाश छा जाता और देखनेवाले आश्चर्यमें पड़कर धन्य-धन्य कहकर उसकी सराहना करने लगते थे। जब आचार्यके रथके पास लाखों बाणों की वर्षा होने लगी और वे रथसहित ढक गये, तब उस सेनामें बड़ा हाहाकार मच गया। द्रोणाचार्यके रथकी ध्वजा कट गयी थी, कवच के टुकड़े-टुकड़े हो गये थे और उनका शरीर भी बाणोंसे क्षत-विक्षत हो रहा था; अत: वे जरा-सा मौका मिलते ही अपने शीघ्रगामी घोड़ोंको हाँककर तुरंत रणभूमि से बाहर हो गये।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय तदनन्तर अश्वत्थामाने अर्जुनके ऊपर धावा किया। जैसे मेघ पानी बरसाता है, उसी प्रकार

उसके धनुषसे बाणोंकी वृष्टि होने लगी। उसका वेग वायुके समान प्रचण्ड था, तो भी अर्जुनने सामना करके उसे रोक दिया और उसके घोड़ोंको अपने बाणोंसे मारकर अधमरा कर दिया। घायल हो जानेके कारण उन्हें दिशाका भान न रहा। महाबली अश्वत्थामाने भी अर्जुनकी जरा-सी असावधानी देख एक बाण मारा और उसके धनुषकी प्रत्यञ्चा काट दी। उसके इस अलौकिक कर्मको देखकर देवताओंने प्रशंसा की और द्रोण, भीष्म, कर्ण तथा कृपाचार्यने भी प्रशंसा की। तत्पश्चात् अश्वत्थामाने अपने धनुष से अर्जुनकी छातीमें कई बाण मारे। अर्जुन खिलखिलाकर हँस पड़ा और उसने गाण्डीवको बलपूर्वक झुकाकर तुरंत ही उसपर नयी प्रत्यञ्चा चढ़ा दी। फिर उन दोनोंमें रोमाञ्चकारी युद्ध आरम्भ हो गया। दोनों ही शूरवीर थे; इसलिये अपने सर्पाकार प्रज्वलित बाणोंसे वे एक-दूसरेपर चोट करने लगे। अर्जुनके पास दिव्य तरकस थे, जिसमें कभी बाणोंकी कमी नहीं होती थी; इसलिये वह युद्धमें पर्वतके समान अचल था। इधर अश्वत्थामा जल्दी-जल्दी प्रहार कर रहा था, इसलिये उसके बाण समाप्त हो गये; अत: उसकी अपेक्षा अर्जुनका जोर अधिक रहा। अश्वत्थामा भी परास्त हुआ।

इसी समय महाबली दु:शासन, विकर्ण, दु:सह और विविंशति इन चार वीरोंने आकर धनञ्जयको चारों ओरसे घेर लिया। दु:शासनने एक बाणसे विराटनन्दन उत्तरको बींधा और दूसरेसे अर्जुनकी छातीमें चोट पहुँचायी। अर्जुनने भी तीखी धारवाले बाणसे दु:शासनका सुवर्णजटित धनुष काट दिया। उन बाणोंसे उसको बड़ी पीड़ा हुई और वह युद्ध छोड़कर भाग गया। इसके बाद विकर्ण अपने तीखे बाणोंसे अर्जुनको घायल करने लगा। तब अर्जुनने उसके ललाटमें एक बाण मारा। उसके लगते ही घायल होकर वह रथसे गिर पड़ा। तदनन्तर दु:सह और विविंशति दोनों एक साथ आकर अपने भाईका बदला लेनेके लिये अर्जुनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। अर्जुन तनिक भी विचलित नहीं हुआ, उसने दो तीखे बाण छोड़कर उन दोनों भाइयोंको एक ही साथ बींध दिया और उनके घोड़ोंको भी मार डाला। जब सेवकोंने देखा कि दोनोंके घोड़े मर गये और शरीर घायल होकर लहू-लुहान हो रहे हैं, तो वे उन्हें दूसरे रथपर बिठाकर युद्धभूमिसे हटा ले गये। और जिसका निशाना कभी खाली नहीं जाता था, वह महाबली अर्जुन रणभूमिमें चारों ओर घूमने लगा। दुशासन भी युद्ध करने आया। वह दुशासन को मारना चाहता है पर उसी समय अर्जुन को भीम की प्रतिज्ञा याद आ जाती है। अर्जुन ने दुशासन को बाण मारकर निहत्था कर दिया। दुर्योधन के ये भाई लोग अपनी अनुभवहीनता से अर्जुन के सम्मुख आ गए। यदि ये स्वयं ही भाग न गये होते तो वे मारे जाते।

जनमेजय। धनञ्जयके ऐसे पराक्रम देखकर दुर्योधन, कर्ण, दु:शासन, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा तथा महारथी कृपाचार्य अमर्षसे भर गये और उसे मार डालनेकी इच्छासे अपने दृढ धनुषोंकी टमार करते हुए पुन: चढ़ आये। वहाँ आकर सब एक साथ अर्जुनपर बाण बरसाने लगे। उनके दिव्यास्त्रोंसे सब ओरसे आच्छन्न हो जानेके कारण उसके शरीरका दो अंगुल भाग भी ऐसा नहीं बचा था, जिसपर बाण न लगे हों। ऐसी अवस्थामें अर्जुनने तनिक हँसकर अपने गाण्डीव धनुषपर ऐन्द्र अस्त्रका सन्धान किया और बाणोंकी झड़ी लगाकर समस्त कौरवोंको ढक दिया। वर्षा होते समय जैसे बिजली आकाशमें चमककर सम्पूर्ण दिशाओं और भूमण्डलको प्रकाशित करती है, उसी प्रकार गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा सारी दिशाएँ आच्छन्न हो गयीं। रणभूमिमें खड़े हुए हाथीसवार और रथी सब मूर्च्छित हो गये। सबका उत्साह ठंडा पड़ गया, किसीको होश न रहा। सारी सेना तितर-बितर हो गयी; सभी योद्धा जीवनसे निराश होकर चारों ओर भागने लगे।

सामने कौरव सेना व्यूहबद्ध खड़ी थी। अर्जुन ने अपनी दृष्टि घुमाई और भीष्म पितामह को खड़े देखा। किन्तु न तो वहाँपर दुर्योधन था और न ही गोष्ठ से चुराया हुआ गोधन। गौएं कहाँ गयीं। क्या इन लोगों ने दुर्योधन के साथ हस्तिनापुर भेज दिया। अर्जुन उत्तर से बोला- राजकुमार यहाँ न तो तुम्हारा गोधन है और न ही दूसरों का धन लुटनेवाला वह दस्यु दुर्योधन। यहाँ व्यर्थ युद्ध की आवश्यकता नहीं है। हमें वहाँ चलना चाहिये जहाँ गोधन है और दुर्योधन है। उत्तर ने तत्काल

अपने अश्वों को मोड़ लिया और बिना तनिक भी विलंब किए रथ को पूरे वेग से दौड़ाया। भीष्म ने आदेश दिया, अंगराज भागकर अर्जुन का पीछा करो वह किसी भी प्रकार दुर्योधन तक न पहुंच जाएँ। दुर्योधन के सैनिकों में कोई भी अर्जुन से युद्ध करने का इच्छुक नहीं था। उन्होंने गौओं को रोकने का प्रयत्न नहीं किया। अपने प्राणों की रक्षा के लिये भागकर सघन वन में छिप गए। अर्जुन के बाणों की बौछार से दुर्योधन रूक गया अब दुर्योधन और अर्जुन आमने-सामने थे। उत्तर में अपना रथ इस प्रकार दौड़ाया जैसे उसके सम्मुख खुला मार्ग हो। दुर्योधन को भी अनेक बाण मारकर घायल किया।

कर्ण ने अर्जुन का पीछा किया दुर्योधन की रक्षा के लिये। अर्जुन कर्ण पर झपटा। कर्ण के रक्षक उसका भाई आया। जब कर्ण के भाई और अन्य रक्षक उसके मार्ग में आ गये तो अर्जुन ने अपना गाण्डीव उनकी ओर मोड दिया। तब कहीं से भागता हुआ दौड़ता हुआ विकर्ण बीच में आ गया। विकर्ण दुर्योधन का भाई था। अर्जुन को स्मरण था कि उसने द्यूतसभा में पांचाली के अपमान का विरोध किया था। अर्जुन का मन नहीं चाहता था कि विकर्ण मारा जाए। विकर्ण अपने प्राण बचाने के लिये पलायन कर गया। कर्ण का भाई संग्रामजित अर्जुन के हाथों मारा गया।

कर्ण वापिस लौट आता है। अर्जुन ने कर्ण के बाण काट दिये। यह देखकर कर्णने अपने धनुषकी टमार की; उसकी आवाज सुनकर अर्जुनने जब उधर देखा तो कर्णपर उसकी दृष्टि पड़ी। देखते ही अर्जुन क्रोधमें भर गया और कर्णको मार डालनेकी इच्छासे आँखे फाड़-फाड़कर उसकी ओर देखने लगा। फिर अश्वत्थामाको छोड़कर उसने सहसा कर्णपर धावा किया और निकट जाकर कहा- कर्ण। तू सभामें जो बहुत डींग हाँकता था कि युद्धमें मेरे समान कोई है ही नहीं, उसे सत्य करके दिखानेका आज यह अवसर प्राप्त हुआ है। मुझसे मुकाबला हुए बिना ही जो तू बड़ी-बड़ी बातें बना चुका है, आज इन कौरवोंके बीच मेरे साथ युद्ध करके उसको सत्य सिद्ध कर। याद है, सभाके बीचमें दुष्टलोग द्रौपदीको कष्ट पहुँचा रहे थे और तू तमाशा देख रहा था? आज उस अन्यायका फल भोग। उन दिनों धर्मके बन्धनमें बँधे रहनेके कारण मैंने सब कुछ सहन कर लिया था, किंतु आज उस क्रोधका फल इस युद्धमें मेरी विजयके रूपमें तू देख।

कर्णने कहा- अर्जुन। तू जो कहता है, उसे करके दिखा। बातें बहुत बढ़-बढ़कर बनाता है; पर काम जो तूने किया है, वह किसीसे छिपा नहीं है। पहले जो कुछ तूने सहन किया है, उसमें तेरी असमर्थता ही कारण थी। हाँ, आजसे यदि देखूँगा, तो तेरा पराक्रम भी मान लूँगा। और मुझसे लड़नेकी जो तेरी इच्छा है, यह तो अभी-अभी हुई है; पुरानी नहीं जान पड़ती। अच्छा, आज तू मेरे साथ युद्ध कर और मेरा बल भी देख।

अर्जुनने कहा- राधापुत्र। अभी थोड़ी ही देर हुई, तू मेरे सामने युद्धसे भाग गया था; इसीलिये तेरी जान बच गयी, केवल तेरा छोटा भाई ही मारा गया। भला, तेरे सिवा दूसरा कौन मनुष्य होगा, जो अपने भाईको मरवाकर युद्ध छोड़कर भाग भी जाय और सत्पुरुषोंके बीच खड़ा होकर ऐसी बातें भी बनावे।

ऐसा कहकर अर्जुन कर्णके ऊपर कवचको भी छिन्न-भिन्न कर देनेवाले बाणोंका प्रहार करने लगा। कर्ण भी बाणोंकी वृष्टि करता हुआ मुकाबलेमें डट गया। अर्जुनने पृथक-पृथक् बाण मारकर कर्णके घोड़ोंको बींध डाला, उसका हस्तत्राण काट दिया। तब कर्णने भी तरकससे तीर निकाले और अर्जुनके हाथोंको बींध दिया, इससे उसकी बँधी हुई मुट्ठी खुल गयी। तत्पश्चात् महाबाहु अर्जुनने कर्णके धनुषको काट दिया। धनुष कट जानेपर उसने शक्तिका प्रहार किया; किंतु अर्जुनने बाणोंसे उसके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये। यह देख कर्णके अनुगामी योद्धाओंने एक साथ अर्जुनपर आक्रमण किया; परंतु गाण्डीवसे छूटे हुए बाणोंद्वारा वे सब-के-सब यमलोकके अतिथि हो गये। इसके बाद अर्जुनने कानतक धनुष खींचकर कई तीखे बाणोंसे कर्णके घोड़ोंको बींध डाला। घायल हुए घोड़े पृथ्वीपर गिरकर मर गये। फिर अर्जुनने एक तेजस्वी बाण

कर्णकी छातीमें मारा। वह बाण कवचको भेदकर उसके शरीरमें घुस गया। कर्ण बेहोश हो गया, उसकी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। भीतर-ही-भीतर पीड़ा सहता हुआ वह युद्ध छोड़कर उत्तर दिशाकी ओर भाग गया। कर्ण ने भी अर्जुन पर बाणवर्षा आरम्भ कर दी। किन्तु वे बाण उद्भ्रांत से हो गए लगते थे। अर्जुन के बाणों से कर्ण के अश्व मर गए। सारथी मूर्छित हो गया। कर्ण का शरीर बाणों से बिंध गया। वह कूदकर टूटे रथ से नीचे आया और छिपकर भाग गया। महारथी अर्जुन तथा उत्तर उच्च स्वरसे गर्जना करने लगे।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय कर्णपर विजय पानेके अनन्तर अर्जुनने उत्तरसे कहा- जहाँ रथकी ध्वजामें सुवर्णमय ताड़का चिन्ह दिखायी दे रहा है, उसी सेनाके पास मुझे ले चलो। वहाँ मेरे पितामह भीष्मजी, जो देखनेमें देवताके समान जान पड़ते हैं, रथमें विराजमान हैं और मेरे साथ युद्ध करना चाहते हैं। उत्तरका शरीर बाणोंसे बहुत घायल हो चुका था। अत: उसने अर्जुनसे कहा, वीरवर। अब मैं आपके घोड़ोंको काबूमें नहीं रख सकता। मेरे प्राण संतप्त है, मन घबरा रहा है। आजतक किसी भी युद्धमें मैंने इतने शूरवीरोंका समागम नहीं देखा था। आपके साथ जब इन लोगोंका युद्ध देखता हूँ, तो मेरा मन डाँवाडोल हो जाता है। गदाओंके टकरानेका शब्द, शर्खोंकी ऊँची ध्वनि, वीरोंका सिंहनाद, हाथियोंकी चिङ्घाड़ तथा बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान गाण्डीवकी टंकार सुनते-सुनते मेरे कान बहरे हो रहे हैं, स्मरणशक्ति क्षीण हो गयी है। अब मुझमें चाबुक और बागडोर सँभालनेकी शक्ति नहीं रह गयी है।

अर्जुनने कहा- नरश्रेष्ठ। डरो मत, धैर्य रक्खो; तुमने भी युद्धमें बड़े अद्भुत पराक्रम दिखाये हैं। तुम राजाके पुत्र हो। शत्रुओंका दमन करनेवाले मत्स्यनरेशके विख्यात वंशमें तुम्हारा जन्म हुआ है। इसलिये इस अवसरपर तुम्हें उत्साहहीन नहीं होना चाहिये। राजपुत्र। भलीभाँति धीरज रखकर रथपर बैठो और युद्धके समय घोड़ोंपर नियन्त्रण रक्खो। अच्छा, अब तुम मुझे भीष्मजीकी सेनाके सामने ले चलो और देखो कि मैं किस प्रकार दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करता हूँ। आज सारी सेनाको तुम चक्रकी भाँति घूमते हुए देखोगे। इस समय मैं तुम्हें बाण चलानेकी तथा अन्य शस्त्रोंके सञ्चालनकी भी अपनी योग्यता दिखाऊँगा। मैंने मुट्ठीको दृढ़ रखना इन्द्रसे, हाथोंकी फुर्ती ब्रह्माजीसे तथा संकटके अवसरपर विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेकी कला प्रजापतिसे सीखी है। इसी प्रकार रुद्रसे रौद्रास्त्रकी, वरुणसे वारुणास्त्रकी, अग्निसे आग्नेयास्त्रकी और वायु देवतासे वायव्यास्त्रकी शिक्षा प्राप्त की है। अत: तुम भय मत करो, मैं अकेले ही कौरवरूपी वनको उजाड़ डालूँगा।

अश्वत्थामा देख रहा था कि उसके वृद्ध पिता क्रमश: शिथिल होते जा रहे थे। अश्वत्थामा रथ की वाहिनी लेकर बीच में घुस आया और उसने अर्जुन को चारों ओर से घेर लिया। अर्जुन ने आचार्य को घेरने, रोकने अथवा और कठिन परिस्थितियों में डालने का कोई प्रयत्न नहीं किया। अश्वत्थामा ने पार्थ पर प्रबल प्रहार किया। आचार्य अपनी घायल अवस्था में युद्धभूमि से हट गए। कर्ण फिर से अपना रथ शस्त्रोंसे भरकर लौट आया। अर्जुन उसे देखकर हँसा और बोला अभी थोड़ी देर पहले तू मेरे सामने से पीठ दिखाकर भाग गया था इसलिए अब तक जीवित है और कर्ण से युद्ध करना आरम्भ किया। अर्जुन के तीखे बाण वज्र के समान उसके वक्ष में लगे। उसका कवच टूट गया। कर्ण को मूर्छा आ गई। उसके सैनिकों ने उसे तत्काल घेर लिया और उसे हटा ले गए। कर्ण की सहायता के लिये दुशासन बढ़कर आगे आ गया किंतु उससे युद्ध करने के लिए अर्जुन को रुकने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। वह अर्जुन के बाणों की एक बौछार भी नहीं झेल सका।

इसप्रकार अर्जुनने जब धीरज बँधाया, तब उत्तर उसके रथको भीष्मजीके द्वारा सुरक्षित सेनाके पास ले गया। भीष्म पितामह देख रहे थे। कौरवोंपर विजय पानेकी इच्छासे अर्जुनको अपनी ओर आते देख निष्ठुर पराक्रम दिखानेवाले गङ्गानन्दन भीष्मने धीरतापूर्वक उसकी गति रोक दी। तब अर्जुनने बाण मारकर भीष्मजीके रथकी ध्वजा जड़से काटकर गिरा दी।

भीष्म ने युद्ध आरंभ ही दिव्यास्त्रों से किया। उनके प्रहारों को झेलने के लिये अर्जुन को भी दिव्यास्त्रों का प्रयोग करना पड़ा। अब युद्धके लिये पितामह भीष्म आये। दोनों मे आपस में जोरों से बाण वर्षा हुई। भीष्म का धनुष काट गिराया। और छाती में अनेक बाण धंस गये। अर्जुन ने पितामह पर एक भी घातक प्रहार नहीं किया। उसकी भी कोई इच्छा नहीं थी कि वह पितामह को पीड़ा पहुँचाए। यह देखकर शान्तनुनन्दन भीष्मने सुवर्णजटित धनुष और मर्मभेदी बाण लेकर अर्जुनके ऊपर धावा किया। उससे अर्जुनकी ध्वजापर स्थित हुए वानरको बड़ी चोट पहुँची और उसके अग्रभागमें रहनेवाले भूत भी घायल हुए। तब अर्जुनने एक बहुत बड़े भालेसे भीष्मका छत्र काट डाला; कटते ही वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। साथ ही उसने उनकी ध्वजापर भी बाणोंसे आघात किया और शीघ्रतापूर्वक उनके घोड़ोंको, पार्श्वरक्षकको तथा सारथीको भी घायल कर दिया। भीष्म पितामह इस बातको सहन नहीं कर सके। उन्होंने अर्जुनपर दिव्यास्त्रोंका प्रहार किया। उस समय इन दोनों वीरोंमें बलि और इन्द्रके समान रोमाञ्चकारी संग्राम होने लगा। कौरव प्रशंसा करते हुए कहने लगे- भीष्मने अर्जुनके साथ जो युद्ध ठाना है, यह बड़ा ही दुष्कर कार्य है। अर्जुन बलवान है, तरुण है, रणकुशल और फुर्ती करनेवाला है; भला युद्धमें भीष्म और द्रोणके सिवा दूसरा कौन इसके वेगको सह सकता है? अर्जुन और भीष्म दोनों ही महापुरुष उस युद्ध में प्राजापत्य, ऐन्द्र, आग्नेय, रौद्र, वारुण, कौबेर, याम्य और वायव्य आदि दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करते हुए विचर रहे थे। अर्जुन के अगले ही बाण ने भीष्म के धनुष की प्रत्यंचा काट डाली। पितामह अर्जुन के बाणों से अचेत और मूर्छित हो गए।

अर्जुन और भीष्म सभी अस्त्रोंके ज्ञाता थे। पहले तो इनमें दिव्यास्त्रोंका युद्ध हुआ, इसके बाद बाणोंका संग्राम छिड़ा। अर्जुनने भीष्मका सुवर्णमय धनुष काट दिया। तब महारथी भीष्मने एक ही क्षणमें दूसरा धनुष लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी और क्रुद्ध होकर वे अर्जुनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। उन्होंने अपने बाणोंसे अर्जुनकी बायीं पसली बींध डाली। तब उसने भी हँसकर, तीखी धारवाला एक बाण मारा और भीष्मका धनुष काट दिया। उसके बाद बाणोंसे उनकी छाती बींध डाली। इससे भीष्मजीको बड़ी पीड़ा हुई और वे रथका कूबर थामकर देरतक बैठे रह गये। भीष्मको अचेत जानकर सारथीको अपने कर्तव्यका स्मरण हुआ और वह उनकी रक्षाके लिये उन्हें युद्धभूमिसे बाहर ले गया। सारथी ने तत्काल पितामह को वहाँ से हटाकर ले गया।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय जब भीष्मजी संग्राम का मुहाना छोड़कर रणसे बाहर हो गये, उस समय दुर्योधन अपने रथकी पताका फहराता तथा गर्जता हुआ हाथमें धनुष ले धनञ्जयके ऊपर चढ़ आया। उसने कानतक धनुष खींचकर अर्जुनके ललाटमें बाण मारा; वह बाण ललाटमें धँस गया। इससे अर्जुन का क्रोध बढ़ गया और वह विषाग्निके समान तीखे बाणोंसे दुर्योधनको बींधने लगा। इस प्रकार अर्जुन दुर्योधनको और दुर्योधन अर्जुनको बींधते हुए आपसमें युद्ध करने लगे। तत्पश्चात् अर्जुनने एक बाण मारकर दुर्योधनकी छाती छेद दी और उसे घायल कर दिया। दुर्योधन को भी अनेक बाण मारकर घायल किया। फिर उन्होंने कौरवोंके मुख्य-मुख्य योद्धाओंको मार भगाया। योद्धाओंको भागते देख दुर्योधनने भी अपना रथ पीछे लौटाया और युद्धसे भागने लगा। अर्जुनने देखा दुर्योधनका शरीर घायल हो गया है और वह मुँहसे रक्त वमन करता हुआ बड़ी तेजीके साथ भागा जा रहा है; तब उसने युद्धकी इच्छासे अपनी भुजाएँ ठोककर दुर्योधनको ललकारते हुए कहा- धृतराष्ट्रनन्दन। युद्धमें पीठ दिखाकर क्यों भागा जा रहा है, अरे। इससे तेरी विशाल कीर्ति नष्ट हो रही है। तेरे विजयके बाजे जैसे पहले बजते थे, वैसे अब नहीं बज रहे हैं। तूने जिन्हें राज्यसे उतार दिया है, उन्हीं धर्मराज युधिष्ठिरका आज्ञाकारी यह मध्यम पाण्डव अर्जुन युद्धके लिये खड़ा है। राजाके कर्त्तव्यका तो स्मरण कर। वीर पुरुष दुर्योधन। अब आगे-पीछे तेरा कोई रक्षक नहीं दिखायी देता, इसलिये भाग जा और इस पाण्डवके हाथसे अपने प्यारे प्राणोंको बचा ले। इस प्रकार युद्धमें अर्जुनके ललकारनेपर अंकुशकी

चोट खाये हुए मत्त गजराजके समान दुर्योधन लौट पड़ा। अपने क्षत-विक्षत शरीरको किसी तरह सँभालकर उसे पुन: युद्धमें आते देख कर्ण उत्तर ओरसे उसकी रक्षा करता हुआ अर्जुनके मुकाबलेमें आ गया।

दुर्योधन ने चीत्कार किया पितामह। अर्जुन जा रहा है उसे रोकिये और उसे मारिए। पश्चिमसे उसकी रक्षा करनेके लिये भीष्मजी धनुष चढ़ाये लौट आये। भीष्म के मुख से धिक्कार निकला और बोले, जब तुम्हारे सामने अर्जुन था तो उसे क्यों नहीं पकड़ लिया। अर्जुन कोई निर्दय व्यवहार नहीं करता। वह पापाचार में प्रवृत्त नहीं होता। वह बड़े से बड़े लोभ के लिए भी धर्म को नहीं छोड़ता। अवसर मिलने पर भी उसने युद्ध में तुम्हारे प्राण नहीं लिये। अच्छा है कि अब तुम सुरक्षित हस्तिनापुर लौट जाओ। इसीमें तुम्हारा कल्याण है। और पितामह ने विराट के गौओं के लिये युद्ध करना अस्वीकार कर दिया। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा पर तो दुर्योधन को पहले विश्वास नहीं था अर्जुन इस समय अपने पूर्ण उत्कर्ष पर था। कौरव सेना को हस्तिनापुर लौट चलने का आदेश दे दिया गया।

दिव्य अस्त्र धारण किये हुए उन योद्धाओंने अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया और जैसे बादल पहाड़के ऊपर सब ओरसे पानी बरसाते हैं, उसी प्रकार वे उसपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। अर्जुनने अपने अस्त्र छोड़कर शत्रुओंके अस्त्रोंका निवारण कर दिया और कौरवोंको लक्ष्य करके सम्मोहन नामक अस्त्र प्रकट किया, जिसका निवारण होना कठिन था। इसके बाद उसने भयमर आवाज करनेवाले अपने शफ्को दोनों हाथोंसे थामकर उच्च स्वरसे बजाया। उसकी गम्भीर ध्वनिसे दिशा-विदिशा, भूलोक तथा आकाश गूँज उठे। अर्जुनके बजाये हुए उस शफ्की आवाज सुनकर कौरव वीर बेहोश हो गये, उनके हाथोंसे धनुष और बाण गिर पड़े तथा वे सभी परम शान्त निश्चेष्ट हो गये।

अर्जुन ने सम्मोहन अस्त्र सब पर चला दिया। सभी युद्ध में परास्त हो वहीं सो गये। उत्तर ने पूछा- यह कैसा बाण है? अर्जुन बोले- यह सम्मोहन बाण है। उत्तर बोला- इन्हे सुलाने से क्या फायदा इन्हे मार डालिये। अर्जुन बोले- नहीं। इन्हे मार डाला तो इनके वस्त्र अशुद्ध हो जायेंगे। क्या आप राजकुमारी की गुड़ियों के लिये मृतकों के वस्त्र उतारेंगे युवराज? यह आपको शोभा नहीं देता और अब जाइये और कर्ण के गुलाबी, दुर्योधन के लाल और अश्वत्थामा के वस्त्र उतार लाईये। परन्तु पितामह के वस्त्र मत उतारियेगा। उन्हे मेरे सम्मोहन बाण नहीं सुला सकते। अब जाइये युवराज। उन्हें अचेत हुए देख अर्जुनको उत्तराकी बातका स्मरण हो आया; अत: उसने उत्तर से कहा- राजकुमार। जबतक इन कौरवोंको होश नहीं होता, तबतक ही तुम सेनाके बीचसे निकल जाओ और द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्यके श्वेत, कर्णकेपी ले तथा अश्वत्थामा एवं दुर्योधनके नीले वस्त्र लेकर लौट आओ। मैं समझता हूं पितामह भीष्म सचेत हैं, क्योंकि वे इस सम्मोहनास्त्रको निवारण करना जानते हैं। इसलिये उनके घोड़ोंको अपनी बायीं ओर छोड़कर जाना; क्योंकि जो होशमें हैं, उनसे इसी प्रकार सावधान होकर चलना चाहिये।

अर्जुन का रथ पितामह और आचार्यों के रथों की ओर बढ़ा। उसने उनकी परिक्रमा कर उनको प्रणाम किया और उत्तर को आज्ञा दी, राजकुमार उत्तर, उत्तरा की गुड़ियों के लिये इनके वस्त्र उतार लो और नगर की ओर लौट चलो। उत्तर जो आज्ञा कह रणभूमि में मूर्च्छित दुर्योधन, अश्वत्थामा, कर्ण इनके वस्त्र ले आता है और लाकर अर्जुन को देता है। उत्तर बोला, अब तो उनकी हत्या करने में कोई बाधा नहीं। अब तो मैं उनके वस्त्र भी ले आया हूं। अर्जुन बोले- बाधा तो अब भी है युवराज। अब मर्यादा की बाधा है। मूर्च्छित योद्धाओं की हत्या एक क्षत्रिय की मर्यादा नहीं। ये जो मूर्च्छित पडे हैं युवराज ये ऐसे यौद्धा हैं युवराज कि ऐसे यौद्धा आनेवाले युगों में कदाचित ही जन्म ले। मैं यह नहीं चाहता कल इतिहास कुन्तीपुत्र पर यह आरोप लगाये कि अपने दिव्यास्त्र की सहायता से उन्हे मूर्च्छित कर उनका वध कर दिया। यदि मुझे तुम्हारी चिन्ता न होती युवराज तो मैं उन्हे कदाचित मूर्च्छित भी नहीं करता। इसलिये अब राजधानी लौट जाइये और यदि महाराज लौट आये होंगे तो वे आपकी

ओर से चिंतित होंगे। अर्जुनके ऐसा कहनेपर विराटकुमार उत्तर घोड़ोंकी बागडोर छोड़कर रथसे कूद पड़ा और महारथियोंके वस्त्र ले पुन: शीघ्र ही उसपर आ बैठा। तदनन्तर वह रथ हाँककर अर्जुनको युद्धके घेरेसे बाहर ले चला। फिर उन्हें युद्धभूमिमें छोड़कर वह रथियोंके समूहसे बाहर आ गया। उस समय बादलोंसे प्रकट हुए सूर्य की भाँति उसकी शोभा हुई।

इसके बाद सभी कौरव वीर धीरे-धीरे होशमें आ गये। दुर्योधनने जब देखा कि अर्जुन युद्धके घेरेसे बाहर होकर अकेले खड़ा है, तो वह भीष्मजीसे घबराहटके साथ बोला- पितामह। यह आपके हाथसे कैसे बच गया? अब भी इसका मान-मर्दन कीजिये, जिससे छूटने न पावे। भीष्मने हँसकर कहा- कुरुराज। जब तू अपने विचित्र धनुष और बाणोंको त्यागकर यहाँ अचेत पड़ा हुआ था, उस समय तेरी बुद्धि कहाँ थी, पराक्रम कहाँ चला गया था? अर्जुन कभी निर्दयताका व्यवहार नहीं कर सकता, उसका मन कभी पापाचारमें प्रवृत्त नहीं होता; वह त्रिलोकीके राज्यके लिये भी अपना धर्म नहीं छोड़ सकता। यही कारण है कि उसने इस युद्धमें हम सब लोगोंके प्राण नहीं लिये। अब तू शीघ्र ही कुरुदेशको लौट चल, अर्जुन भी गौओंको जीतकर लौट जायगा। मोहवश अब अपने स्वार्थका भी नाश न कर; सबको अपने लिये हितकर कार्य ही करना चाहिये।

पितामहके ये हितकारी वचन सुनकर दुर्योधनको अब इस युद्धमें किसी लाभकी आशा न रही। वह भीतर-ही-भीतर अत्यन्त अमर्षका भार लिये लंबी साँसें भरता हुआ चुप हो गया। युद्ध करनेसे तो अर्जुनरूपी अग्नि उत्तरोत्तर प्रज्ज्वलित ही होती जाती थी, इसलिये दुर्योधनकी रक्षा करते हुए सबने लौट जानेकी ही राय पसंद की। कौरव बुरी तरह हारकर हस्तिनापुर लौट गये।

कौरव वीरोंको लौटते देख अर्जुनको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अपने पितामह शान्तननुन्दन भीष्म और आचार्य द्रोणके चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम किया तथा अश्वत्थामा, कृपाचार्य और अन्यान्य माननीय कुरुवंशियोंको बाणोंकी विचित्र रीतिसे नमस्कार किया। इस प्रकार माननीय वीरोंका सत्कार कर उसने गाण्डीव धनुषकी टमारसे जगत्को गुंजायमान कर दिया। इसके बाद सहसा देवदत्त नामक शफबजाया, जिसे सुनकर शत्रुओंका दिल दहल गया। उस समय अपने रथकी सुवर्णमालामण्डित ध्वजासे समस्त शत्रुओंका तिरस्कार करके अर्जुन विजयोल्लाससे सुशोभित हो रहा था। जब कौरव चले गये तो अर्जुनने प्रसन्न होकर उत्तरसे कहा- राजकुमार। अब घोड़ोंको लौटाओ; तुम्हारी गौओंको हमने जीत लिया और शत्रु भाग गये; इसलिये अब आनन्दपूर्वक अपने नगरकी ओर चलो।

कौरवोंका अर्जुनके साथ होनेवाला यह अद्भुत युद्ध देखकर देवतालोग पड़े प्रसन्न हुए और अर्जुनके पराक्रमका स्मरण करते हुए अपने-अपने लोकको चले गये।

उत्तर सारथी के स्थान पर रथ पर बैठने लगता है तो अर्जुन बोला, ठहरो युवराज यह स्थान बृहन्नला का है। आप अपना स्थान ग्रहण कीजिये। उत्तर बोला, आपको पहिचान लेनेके पश्चात मैं ऐसा नहीं कर सकता। हे द्रोण शिष्य अर्जुन मुझे अपना सारथी ही रहने दो। अर्जुन बोला, नहीं। यह उचित नहीं। यदि महाराज को यह पता चला कि वे पांडवों से सेवा लेते रहे तो इस सूचना के बोझ उनकी मृत्यु भी हो सकती है। ये युद्ध आपने जीता है युवराज आपने। आप अब उनसे यह कहेंगे जिस सेना में गंगापुत्र भीष्म, गुरुवर द्रोणाचार्य, कुलगुरु कृपाचार्य, दुर्योधन, अश्वत्थामा और कर्ण जैसे शूरमा थे आपने उस सेना को यों हटा दिया जैसे पवन अपने नाखुनों से फाडकर बादलों को आकाश में बिखेर देता है। यह सूचना सुनकर उनकी आयु दुगनी हो जायेगी युवराज। अब आप अपना स्थान ग्रहण कर लें युवराज और मुझे अपने स्थानपर बैठने दीजिये। उत्तर ने कौरव महारथियों के वस्त्र उतारें और विराट नगर की ओर लौट चलें। इसतरह पाण्डवों का वनवास युद्ध में ही समाप्त हो गया। भविष्य में क्या है, कौन जानें ?

## २०) अज्ञातवास पूर्ण कर पाण्डवोंका विराट नगर में अपने वास्तविक स्वरूप की पहचान

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय इस प्रकार उत्तम दृष्टि रखनेवाला अर्जुन संग्राममें कौरवोंको जीतकर विराटका वह महान गोधन लौटाकर ले आया। जब धृतराष्ट्रके पुत्र इधर-उधर सब दिशाओंमें भाग गये, उसी समय बहुत-से कौरवोंके सैनिक, जो घने जङ्गलमें छिपे हुए थे, निकलकर डरते-डरते अर्जुनके पास आये। वे भूखे-प्यासे और थके-माँदे थे; परदेश में होनेके कारण उनकी विकलता और भी बढ़ गयी थी। उन्होंने प्रणाम करके अर्जुनसे कहा- कुन्तीनन्दन। हमलोग आपकी किस आज्ञाका पालन करें? अर्जुनने कहा तुम लोगोंका कल्याण हो। डरो मत, अपने देशको लौट जाओ। मैं संकटमें पड़े हुएको नहीं मारना चाहता। वह अभयदानयुक्त वाणी सुनकर वहाँ आये हुए सभी योद्धाओंने आयु, कीर्ति तथा यश देनेवाले आशीर्वादोंसे अर्जुनको प्रसन्न किया। उसके बाद अर्जुनने उत्तरको हृदयसे लगाकर कहा- तात। यह तो तुम्हें मालूम ही हो गया है कि तुम्हारे पिताके पास पाण्डव निवास करते हैं; परंतु अपने नगरमें प्रवेश करके तुम पाण्डवोंकी प्रशंसा न करना, नहीं तो तुम्हारे पिता डरकर प्राण त्याग देंगे।

अर्जुन सारथी बन रथ चला रहा है। अर्जुन बोले, लौटना तो आपके ही रथपर पडेगा और हां ये अस्त्र-शस्त्र भी उसी वृक्ष पर रखने पडेंगे। उत्तर बोला, जो आज्ञा पर क्या पिताश्री यह मान लेंगे कि मैंने कुरुसेना को परास्त किया है। अर्जुन बोले, वो चाहनेवाले पिता हैं वो अवश्य मानेंगे।

लोग कहते हैं समय बडा बलवान है। यह सुनकर समय को हंसी आ जाती है। क्योंकि समय तो शक्ति और अशक्ति के क्षितिजों के उस पार है। समय के सन्दर्भ में तो उन दोनों शब्दों का कोई अर्थ ही नहीं है। समय तो तुला की डन्डी है। तुला है स्वयं जीवन और बाट है कर्म। समय तो यह देखता रहता है कि कोई डंक न मारने पाये नहीं तो जो डंडी मारने का प्रयत्न करेगा वो अन्त में भुगतेगा भी। शकुनि, दुर्योधन, कर्ण, दुशासन इत्यादि अभी तक डंडी मारते आये है परन्तु आज देखें कि घाटे में कौन रहा? आज रणभूमि में नग्न कौन पडा है और किसका ध्वज विजय श्री का प्रणाम स्वीकार कर रहा है।

राजा विराट के महल में विराट चिंतित है कि उत्तर अभी तक लौट के नहीं आया। विराट बोले- अभी तक तो चर भी नहीं लौटे। कुमार को अकेले नहीं जाना चाहिये था। सुदेष्णा तुमने उन्हे जाने ही क्यों दिया? क्या तुम नहीं जानती थी कि उस सेना के साथ किस किस के ध्वज जायेंगे? भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य उन सब में से किसी एक को भी इन्द्र तक नहीं ललकार सकते। और उस सेना के साथ तो कदाचित तीनों भी आये होंगे। कंक बोला, आप युवराज की ओर से चिंतित न हो महाराज। कुमार के विजयी लौटने के शुभ समाचार की प्रतीक्षा कीजिये। विराट बोले- बृहन्नला वो क्या हरायेगी गंगापुत्र भीष्म को, द्रोणाचार्य को, कृपाचार्य को, दुर्योधन को। तुम विक्षिप्त तो नहीं हो गये हो कंक। कंक बोला- बृहन्नला कोई साधारण व्यक्ति नहीं है महाराज। विराट बोले- वो कलीव, नपुंसक। वो तो पूरा व्यक्ति भी नहीं अधूरा व्यक्ति मेरे पुत्र की क्या रक्षा करेगा? राजभवन के सारे दीप बुझा दिये जाये कि हम अपने पुत्र की चिन्ता में है।

अर्जुन ने अपने सारे शस्त्र शमी वृक्ष पर उसी प्रकार छिपा कर रख दिए, जैसे वे पहले थे और स्वयं बृहन्नला का वही रुप धारण कर लिया, जिसमें वह विराटनगर से चला था। उत्तर को आश्चर्य हुआ, यह आप क्या कर रहे हैं धनंजय? युद्ध में कौरवों के सम्मुख अपना नाम पुकार कर घोषणा कर चुके, तो आपको विराटनगर में बृहन्नला के रूप में रहने की क्या अनिवार्यता है? तदनन्तर, अर्जुन पुन: श्मशानभूमिमें आया और उसी शमी वृक्षके पास आकर खड़ा हुआ। उसी समय उसके रथकी ध्वजापर बैठा हुआ अग्निके समान तेजस्वी विशालकाय वानर भूतोंके साथ ही आकाश में उड़ गया। इसी प्रकार जो माया

थी, वह भी विलीन हो गयी। फिर रथपर सिंहके चिह्नवाली राजा विराटकी ध्वजा चढ़ा दी गयी और अर्जुनके सब शस्त्र, गाण्डीव धनुष तथा तरकस पुन: शमीवृक्ष में बाँध दिये गये। तत्पश्चात् अर्जुन सारथी बनकर बैठा और उत्तर रथी बनकर आनन्दपूर्वक नगरकी ओर चला। अर्जुनने बृहन्नलाके वेषमें होकर घोड़ोंकी बागडोर सँभाली। रास्तेमें जाकर उसने उत्तरसे कहा- राजकुमार। अब इन ग्वालोंको आज्ञा दो कि वे शीघ्र ही नगर में जाकर प्रिय समाचार सुनावें और तुम्हारी विजयकी घोषणा करें।

अर्जुनकी बात मानकर उत्तरने तुरंत ही दूतोंको आज्ञा दी- तुमलोग नगर में पहुँचकर खबर दो कि शत्रु हारकर भाग गये, अपनी विजय हुई और गौएँ जीतकर वापस लायी गयी हैं।

जनमेजय। सेनापति राजा विराटने भी दक्षिण दिशासे गौओंको जीतकर चारों पाण्डवोंको साथ लिये बड़ी प्रसन्नताके साथ नगरमें प्रवेश किया। उसने संग्राममें त्रिगर्तोंपर विजय पायी थी। जिस समय अपनी सब गौएँ साथ लेकर पाण्डवोंसहित वहाँ पदार्पण किया, उस समय उसकी विजयश्रीसे अपूर्व शोभा हो रही थी। राजसभामें पहुँचकर उसने सिंहासनको सुशोभित किया; उसे देखकर सुहृद्-सम्बन्धियोंको बड़ा हर्ष हुआ। सब लोग पाण्डवोंके साथ मिलकर राजाकी सेवा करने लगे। इसके बाद राजा विराटने पूछा कुमार उत्तर कहाँ गया है? इसके उत्तरमें रनिवासमें रहनेवाली स्त्रियों और कन्याओंने निवेदन किया- महाराज। आपके युद्धमें चले जानेपर कौरव यहाँ आये और गौओंको हरकर ले जाने लगे। तब कुमार उत्तर क्रोधमें भर गया और अत्यन्त साहसके कारण अकेले ही उन्हें जीतने के लिये चल दिया। साथमें सारथीके रूपमें बृहन्नला है। कौरवों की सेनामें भीष्म, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा ये छ: महारथी आये हैं।

विराटने जब सुना कि मेरा पुत्र अकेले बृहन्नलाको सारथी बनाकर केवल एक रथ साथ में ले कौरवोंसे युद्ध करने गया है तो उसे बड़ा दु:ख हुआ और अपने प्रधान मन्त्रियोंसे बोला- मेरे जो योद्धा त्रिगर्तोंके साथ युद्धमें घायल न हुए हों, वे बहुत-सी सेना साथ लेकर उत्तरकी रक्षाके लिये जायँ। सेनाको जानेकी आज्ञा देकर उसने पुन: मन्त्रियोंसे कहा- पहले शीघ्र इस बातका पता लगाओ कि कुमार जीवित है या नहीं। जिसका सारथी एक नपुंसक है, उसे अबतक जीवित रहनेकी तो सम्भावना ही नहीं है।

राजा विराटको दुखी देखकर धर्मराज युधिष्ठिरने हँसकर कहा- राजन्। यदि बृहन्नला सारथी है तो विश्वास कीजिये, आपका पुत्र समस्त राजाओं, कौरवों तथा देवता, असुर, सिद्ध और यक्षोंको भी युद्धमें जीत सकता है। इतनेमें उत्तरके भेजे हुए दूत विराट नगरमें आ पहुँचे और उन्होंने उत्तर कुमारकी विजयका समाचार सुनाया।

दासी ने आकर सूचना दी बधाई हो महाराज। विराट बोले- किस बात की बधाई मूर्ख। क्या समाचार लेकर आई है। क्या यह समाचार है कि मेरा पुत्र वीरगति को प्राप्त हुआ। दासी बोली-युवराज रण जीतकर लौट रहे हैं महाराज। विराट बोले- क्या। कंक बोला- यह ठीक कह रही होगी महाराज। बृहन्नला जो युवराज के साथ है। विराट बोले- फिर वही बृहन्नला। तुम्हे यह समाचार किसने दिया। दासी बोली- सारा नगर इस शुभ समाचार के बसन्ती रंग से होली खेल रहा है। महाराज। की जय हो। विराट बोले- सुना तुमने कुमार ने कुरु सेना को पराजित कर दिया। कंक बोला- बृहन्नला तो विजय का ध्वज है ही महाराज। विराट बोले- राजभवन की ओर आनेवाले मार्ग पर झन्डे लगाये जाये। देवी-देवताओं की मूर्तियों को फूलों की माला से सुसज्जित किया जाये। मत्स्य देश के यौद्धा राज परिवार के सारे सदस्य गायक और नर्तक कुमार के स्वागत के लिये जाये और उसको सीधे मेरे पास लाये ताकि मैं अपने विजयी पुत्र का सिर चुम सकूं। उत्तरा से कहा जाय कि अपने विजयी भ्राता के लिये द्वार पर स्वागत के लिये प्रतीक्षा करे।

उत्तरने बृहन्नला से पूछा, हे सव्यसाची आपने युद्धमें स्वयं को इस प्रकार कौरवों के सम्मुख प्रकट क्यों कर लिया। अर्जुनने कहा, मैं न भी बताता तो मेरे गांडीव से, मेरी युद्धशैली से, मेरी क्षमताओं से कौरव मुझे पहचान ही लेते। अर्जुन ने कहा, दूसरे यह कि जितनी देर मैं बृहन्नला के रूप में लड़ता और वे मुझे पहचान न पाते, उतनी देर तक उनके मन में अर्जुन का भय नहीं जागता, जो उन्हें हतोत्साहित करने के लिए आवश्यक था। इसलिए युद्ध की नीति के रूप में, आरंभ में ही, मैंने अपना परिचय दे दिया। अर्जुन ने उत्तर की ओर देखा, दुर्योधन के साथ होने मात्र से पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण तथा कृपाचार्य अर्जुन के शत्रु नहीं हो जाते। यदि वे मुझे नहीं पहचानते तो अपना शत्रु मानकर मुझसे युद्ध करते। पहचान लेने के पश्चात उन्होंने मेरे साथ वैसा ही युद्ध किया, जैसा वे अर्जुन के साथ करना चाहते थे। यह रहस्य मेरा ही तो नहीं है राजकुमार। मैं प्रकट हो जाऊँगा तो मेरे भाइयों को भी प्रकट होना पड़ेगा; और इसके लिए धर्मराज की आज्ञा आवश्यक है। उत्तर बोला, आपका कथन उचित ही है। किंतु जो पराक्रम आपने किया है, कौन विश्वास करेगा कि वह सब कुछ नृत्य गान करनेवाले एक बृहन्नला ने किया है। अर्जुन उन्मुक्त मन से हँसा और बोला, युद्ध में वह पराक्रम बृहन्नला ने नहीं, मत्स्यराज के वीर पुत्र राजकुमार उत्तर ने किया है। विराटनगर में तुम अपने पिता से यही कहोगे कि उन कौरव महारथियों को तुमने ही मार भगाया है।

उत्तर बोला- सव्यसाची। जबतक आप इस बातको प्रकाशित करनेके लिये स्वयं मुझसे नहीं कहेंगे, तबतक पिताजीके निकट आपके विषय में मैं कुछ भी नहीं कहूँगा। मन्त्रीने राजाके पास आकर कहा- महाराज। उत्तरने सब गौओंको जीत लिया, कौरव हार गये और कुमार अपने सारथीके साथ कुलशपूर्वक आ रहे हैं।

युधिष्ठिर बोले- यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि गौएँ जीतकर वापस लायी गयीं और कौरव हारकर भाग गये। किंतु इसमें आश्चर्य करनेकी आवश्यकता नहीं है; जिसका सारथी बृहन्नला हो, उसकी विजय तो निश्चित ही है।

पुत्रकी विजयका समाचार सुनकर राजा विराटके हर्षका ठिकाना न रहा। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। दूतोंको इनाम देकर उन्होंने मन्त्रियोंको आज्ञा दी कि सड़कोंके किनारे विजय पताका फहरानी चाहिये। फूलों तथा नाना प्रकारकी सामग्रियोंसे देवताओंकी पूजा होनी चाहिये। सब कुमार और प्रधान-प्रधान योद्धा गाजे-बाजेके साथ मेरे पुत्रकी अगवानीमें जायँ। तथा एक आदमी हाथीपर बैठकर घंटा बजाते हुए सारे नगर में मेरी विजयका समाचार सुनावे।

राजाकी इस आज्ञाको सुनकर समस्त नगरनिवासी, सौभाग्यवती तरुणी स्त्रियाँ तथा सूत-मागध आदि माङ्गलिक वस्तुएँ हाथ में ले गाजे-बाजेके साथ विराटकुमार उत्तर को लेनेके लिये आगे गये। इन सबको भेजनेके पश्चात् राजा विराट बड़े प्रसन्न होकर बोले- सैरन्ध्री। जा, पासे ले आ; कंक। अब जूआ आरम्भ करना चाहिये। यह सुनकर युधिष्ठिरने कहा- मैंने सुना है, अत्यन्त हर्षसे भरे हुए चालाक खिलाड़ीके साथ जूआ नहीं खेलना चाहिये। आप भी आज आनन्दमग्न हो रहे हैं, अत: आपके साथ खेलनेका साहस नहीं होता। भला, आप जूआ क्यों खेलते हैं? इसमें तो बहुत-से दोष हैं। जहाँतक सम्भव हो, इसका त्याग ही कर देना उचित है। आपने युधिष्ठिरको देखा होगा, अथवा उनका नाम तो सुना ही होगा; वे अपना विशाल साम्राज्य तथा भाइयोंको भी जूएमें हार गये थे। इसीलिये मैं जूएको पसंद नहीं करता। तो भी यदि आपकी विशेष इच्छा हो तो खेलेंगे ही। जूआका खेल आरम्भ हो गया।

सैरन्ध्री पासे लाओ। सैरन्ध्री बोली जो आज्ञा महाराज। विराट बोले- उत्तर के आने तक हम कंक के साथ चौसर खेलेंगे। कंक बोला- मादकता और द्यूत का कोई मेल नहीं है महाराज। आनन्द का अपना एक विशेष बंध होता है

महाराज। विराट बोले- तुम यही सोच रहे हो न कि आज तुम मुझे हरा दोगे। आज मैं तुमसे हारने के लिये ही खेलना चाहता हूं कंक। क्योंकि युद्ध में तुमने जो मेरी सहायता की थी उसका तुमने पारितोषिक नहीं लिया। आज चौसर में मेरा पराजय ही तुम्हारा पारितोषिक होगा। कंक बोला- जो आज्ञा महाराज। विराट बोले- बैठो कंक मैं यह सोच-सोच कर फूला नहीं समा रहा कंक कि मेरे पुत्र ने भीष्म पितामह की सेना को पराजित कर दिया है। कंक बोला- बृहन्नला जैसा साथी हो तो विजय पर आश्चर्य नहीं करना चाहिये महाराज। द्रौपदी पांसे लेकर आती है। विराट बोला- उस नपुंसक से मेरे पुत्रकी तुलना करता है कंक। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण जैसे यौद्धाओं को वह कलीव पराजित करेगा। कंक बोला- बृहन्नला से तो राजकुमार की तुलना हो ही नहीं सकती। राजा बोले, अधम ब्राह्मण। तू मेरे बेटेकी प्रशंसा एक हिंजड़ेके साथ कर रहा है? मित्र होनेके कारण मैं तेरे इस अपराधको तो क्षमा करता हूँ; किंतु यदि जीवित रहना चाहता है, तो फिर कभी ऐसी बात न कहना। राजा युधिष्ठिरने कहा- राजन्। जहाँ द्रोणाचार्य, भीष्म, अश्वत्थामा, कर्ण, कृपाचार्य और दुर्योधन आदि महारथी युद्ध करनेको आये हों वहाँ बृहन्नलाके सिवा दूसरा कौन है जो उनका मुकाबला कर सके। जिसके समान किसी मनुष्यका बाहुबल न हुआ है न आगे होनेकी आशा है, जो देवता, असुर और मनुष्योंपर भी विजय पा चुका है, ऐसे वीरको सहायक पाकर उत्तर क्यों न विजयी होगा? विराटने कहा- अनेकों बार मना किया, किंतु तेरी जबान बंद न हुई। सच है, यदि कोई दण्ड देनेवाला न रहे तो मनुष्य धर्मका आचरण नहीं कर सकता। यह कहते-कहते राजा कोपसे अधीर हो गया और पासा उठाकर उसने युधिष्ठिरके मुँहपर दे मारा। फिर डाँटते हुए कहा- अब फिर कभी ऐसा न करना। आवेश में आकर राजा विराट ने कंक पर चौसर की गोटी दे मारी। पासा जोरसे लगा। युधिष्ठिरकी नाकसे रक्त बहने लगा। उसकी बूँद पृथ्वीपर पड़नेके पहले ही युधिष्ठिरने अपने दोनों हाथोंमें उसे रोक लिया और पास ही खड़ी हुई द्रौपदीकी ओर देखा। द्रौपदी अपने पतिका अभिप्राय समझ गयी। वह जलसे भरा हुआ एक सोनेका कटोरा ले आयी और उसमें वह सब रक्त उसने ले लिया।

नगरद्वार पर उनके स्वागत का पूरा प्रबंध था। द्वार और राजपथ पुष्पों और दीपों से सुसज्जित थे। नगर के प्रमुख लोग उनका स्वागत करने के लिए वहाँ विद्यमान थे। स्वागत करने वालों का नेतृत्व राजकुमारी उत्तरा कर रही थी।

तदनन्तर राजकुमार उत्तरने नगरमें बड़ी प्रसन्नताके साथ प्रवेश किया। विराट नगरके स्त्री-पुरुष तथा आसपासके प्रान्तके लोग भी उसकी अगवानीमें आये थे; सबने कुमारका स्वागत-सत्कार किया। इसके बाद राजभवनके द्वारपर पहुँचकर उसने पिताके पास समाचार भेजा। द्वारपालने दरबारमें जाकर विराटसे कहा- महाराज। बृहन्नलाके साथ राजकुमार उत्तर दरवाजेपर खड़े हैं। इस शुभ संवादसे राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने द्वारपालसे कहा- दोनोंको शीघ्र ही भीतर लिवा लाओ, मैं उनसे मिलने को उत्सुक हूँ। इसी समय युधिष्ठिरने द्वारपालके कानमें धीरेसे जाकर कहा- पहले सिर्फ उत्तर को यहाँ ले आना, बृहन्नलाको नहीं; क्योंकि उसने यह प्रतिज्ञा कर रक्खी है कि जो संग्रामके सिवा कहीं अन्यत्र मेरे शरीरमें घाव कर देगा या रक्त निकाल देगा, उसका प्राण ले लूँगा। मेरे बदनमें रक्त देखकर वह क्रोधमें भर जायगा और उस दशामें वह विराटको उनकी सेना, सवारी तथा मन्त्रियोंसहित मार डालेगा।

तत्पश्चात् पहले उत्तरने ही सभा भवनमें प्रवेश किया। आते ही पिताके चरणों में सिर झुकाया, फिर कंकको भी प्रणाम किया। उसने देखा, कंककी नासिकासे रक्त बह रहा है और वे एकान्तमें भूमिपर बैठे हुए हैं, साथ ही सैरन्ध्री उनकी सेवामें उपस्थित है। तब उसने बड़ी उतावलीके साथ अपने पितासे पूछा- राजन्। इन्हें किसने मार दिया? किसने यह पाप कर डाला? विराटने कहा- मैंने ही इसे मारा है, यह बड़ा कुटिल है; इसका जितना आदर किया जाता है, उतनेके योग्य यह कदापि नहीं है।

देखो न, जब तुम्हारे शौर्यकी प्रशंसा की जाती है उस समय यह उस हिंजड़ेकी तारीफ करने लगता है। उत्तर बोला- महाराज। आपने बहुत बुरा काम किया; इन्हें जल्दी प्रसन्न कीजिये, नहीं तो ब्राह्मणका क्रोध आपका समूल नष्ट कर देगा।

बेटेकी बात सुनकर राजा विराटने कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरसे क्षमायाचना की। राजाको क्षमा माँगते देख युधिष्ठिर बोले- राजन्। क्षमाका व्रत तो मैंने चिरकालसे ले रक्खा है, मुझे क्रोध आता ही नहीं। मेरी नाकसे निकला हुआ यह रक्त यदि पृथ्वीपर गिर पड़ता तो इसमें कोई संदेह नहीं कि राज्यके साथ ही तुम्हारा विनाश हो जाता; इसीलिये रक्तको मैंने गिरने नहीं दिया था।

जब युधिष्ठिरका लोहू निकलना बंद हो गया, तब बृहन्नलाने भी भीतर पहुँचकर विराट और कंकको प्रणाम किया। विराटने अर्जुनके सामने ही उत्तरकी प्रशंसा शुरू की - सुदेष्णानन्दन तुम्हें पाकर आज मैं वास्तवमें पुत्रवान हूँ। तुम्हारे-जैसा पुत्र न तो मेरे हुआ और न होनेकी सम्भावना है। बेटा। जो एक साथ एक हजार निशाना मारनेमें भी कभी नहीं चूकता उस कर्णके साथ, इस जगत्में जिनकी बराबरी करनेवाला कोई है ही नहीं उन भीष्मजीके साथ तथा कौरवोंके आचार्य द्रोण, अश्वत्थामा और योद्धाओंको कँपा देनेवाले कृपाचार्यके साथ तुमने कैसे मुकाबला किया? तथा दुर्योधनके साथ भी तुम्हारा किस प्रकार युद्ध हुआ? यह सब मैं सुनना चाहता हूँ।

दासी बोली- महाराज की जय हो, युवराज ने राजभवन में प्रवेश किया और राजकुमारी उत्तरा उनकी आरती उतार रही है। कंक बोले- द्रौपदी सुनो इसका प्रयत्न करो कि कुमार के साथ अर्जुन यहां नहीं आये। क्योंकि तुम तो जानती हो कि वह मेरा बहता हुआ लहू नहीं देख सकता। वो महाराज को मार डालेगा। चली जाओ। उत्तर बृहन्नला के साथ विराट भवन में आता है। उत्तर बोला- उत्तरा दीदी आरती तो तुम... अर्जुन बोले- राजकुमारी की गुड़ियों के लिये कुरू यौद्धाओं के वस्त्र भी आये है। उत्तरा बोली- सच। यह सुनकर तो तुमने मुझे बहुत प्रसन्न कर दिया बृहन्नला। द्रौपदी अर्जुन के पास आती है। द्रौपदी बोली- आप कैसे हैं। अर्जुन बोला- तुम कैसी हो। उत्तर महाराज के पास आता है। विराट बोले- आओ पुत्र। आयुष्मान भव। पिताश्री। युधिष्ठिर को देखकर इन्हे क्या हुआ। विराट बोले- इस दुष्ट को मैंने मारा है पुत्र। उत्तर बोला- आपने। युधिष्ठिर मैं महाराज की ओर से क्षमा चाहता हूं। कंक बोला- मैंने तो उन्हे चोट लगने से पहिले ही क्षमा कर दिया था युवराज किन्तु यदि मेरे रक्त की एक बूंद भी उस भूमिपर टपक गई होती तो इस राज्य की सीमा रेखा मिट गयी होती। और मैं यह नहीं चाहता था कि इस राज्यने मुझे तब आश्रय दिया था जब मुझे इसकी आवश्यकता थी।

**लहू धर्म का जब गिरे, करे धरा का नाश, सैरन्ध्री आगे बढी लिये धर्म विश्वास।**

उत्तरने कहा- महाराज। यह मेरी विजय नहीं है। यह सब काम एक देवकुमारने किया है। मैं तो डरकर भागा आ रहा था, किंतु उस देवपुत्रने मुझे लौटाया और स्वयं ही उसने रथपर बैठकर गौओंको जीता और कौरवोंको हराया है। उसीने कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, भीष्म, अश्वत्थामा, कर्ण और दुर्योधन- इन छ: महारथियोंको बाण मारकर रणभूमिसे भगाया है। उसीने उनकी सारी सेनाको हराकर हँसते-हँसते उनके वस्त्र भी छीन लिये।

विराट बोले- वह महाबाहु वीर देवपुत्र कहाँ है? मैं उसे देखना चाहता हूँ। उत्तरने कहा, वह तो वहीं अन्तर्धान हो गया कल-परसोंतक यहाँ प्रकट होकर दर्शन देगा।

उत्तरका यह संकेत अर्जुनके ही विषयमें था, पर नपुंसक-वेषमें छिपे होनेके कारण विराट उसे पहचान न सका। उनकी आज्ञासे बृहन्नलाने वे सब कपड़े, जो युद्धसे लाये गये थे, राजकुमारी उत्तराको दे दिये। उन बहुमूल्य एवं रंग-बिरंगे वस्त्रोंको

पाकर उत्तरा बहुत प्रसन्न हुई। इसके बाद अर्जुनने राजा युधिष्ठिरके प्रकट होनेके विषयमें उत्तरसे सलाह करके उसके अनुसार कार्य किया।

बृहन्नला बोली, प्रणाम महारानी, प्रणाम महाराज। विराट बोले- ऐ पुत्र यहाँ आओ और मेरे निकट बैठो कि मैं तुम्हारे मुखडे का तेज देखूं। मुझे विस्तार से बतलाओ भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य जैसे महारथी तुम्हारे बाणों की वर्षा से भागते हुये कैसे दीख रहे थे? और वो कर्ण जो एक साथ सैकडों बाण चला सकता है उससे कैसे लडा? उत्तर बोले- यह युद्ध तो मैंने नहीं जीता है पिताश्री। मैं तो शरद ऋतु में झडी हुई किसी पत्ती की भांति रणभूमि से पैरों को पंख लगाकर भाग खडा हुआ ना फिर एक देव पुत्र ने मुझे रथपर बिठाया और मुझे अपना सारथी बनाया और मेरे स्थान पर कुरुसेना से युद्ध किया। हे पिताश्री ये उसके धनुष से निकले हुये बाण थे। भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कर्ण जैसे यौद्धाओं के छक्के छुडा दिये। यह विजय उसी की है मेरी नहीं। और यही सत्य है, सम्पूर्ण सत्य। विराट बोले- वो महायोद्धा कहां है पुत्र जिसने तुम्हारी और मेरे राज्य की रक्षा की। उसके प्रति आभार प्रकट करना मेरा कर्तव्य है। उत्तर बोला- वो तो युद्ध के समाप्त होते ही लुप्त हो गये थे। विराट बोले- बृहन्नला हम तुमसे अतिप्रसन्न है। तुमने बडे जोखिम में हमारे पुत्र का साथ दिया। बृहन्नला बोली - यह तो मेरा कर्तव्य था महाराज और ये तो राजकुमार की नम्रता है जो ऐसा कह रहे हैं। इस विजय में ये बराबर के भागीदार है। माना कि वो यौद्धा युद्ध विद्या जानता था परन्तु यदि सारथी निपुण न हो तो कोई महारथी युद्ध नहीं जीत सकता महाराज। विराट बोले- परन्तु तुमने तो उसे युद्ध करते देखा होगा। कौन था वो यौद्धा। उत्तरा आई और बोली पिताश्री यह देखिये कुरु यौद्धाओं के वस्त्र। ये लाल वस्त्र दुर्योधन के हैं। ये नीले वस्त्र अश्वत्थामा के है और ये गुलाबी वस्त्र अंगराज कर्ण के हैं। महारानी बोली अब ये बालपन के खेल छोडो पुत्री। गुडियों के खेल में लगी हुई हो। ये तो स्वयं तुम्हारे ब्याह के दिन है। विराट बोले- मेरी पुत्री मुझपर कोई बोझ नहीं है। सदैव तुम इसे भगाने की योजना बनाती रहती हो। महारानी सुदेष्णा- क्या उसे ब्याहना ही नहीं है। पुत्री तो पराया धन होती है आर्यपुत्र। उसके प्रति इतना मोह ठीक नहीं। विराट बोले- पुत्री पराया धन होती है तो क्या किसी की भी झोली में डाल दूं। पहले कोई उसके योग्य वर तो मिल जाये। पुत्री अपनी माताश्री को कहने दे। पुत्री उस दिन बडी होती है जिस दिन कोई उसके योग्य वर मिल जाये। उत्तर बोला- आज से अपने जाने के दिन गिन लो दीदी।

नृत्यशाला में अर्जुन अभ्यास रियाज कर रहा है और उत्तरा आती है प्रणाम करती है। अर्जुन बोला- आओ उत्तरा बैठो। कल महारानी ने विवाह की जो बात की थी उसका रंग तो राजकुमारी के मुखडे से उतरा नहीं। उत्तरा बोली- अच्छा एक बात बताइये आपने गांडीवधारी अर्जुन के साथ दिन बिताये है। भरतवंश के सभी महारथियों को निकट से देखा होगा। अर्जुन बोला- देखा तो है। उत्तरा बोली- बताइये यदि मेरा स्वयंवर हो तो मेरी वरमाला के योग्य कौन है? अर्जुन बोले- जो भा जाये। भारतवर्ष तो यौद्धाओं का देश है राजकुमारी। यह न पूछो कि तुंम्हारी वरमाला के योग्य किसका कंठ है? यह पूछो कि तुम्हारी वरमाला किस कंठ के योग्य है। उत्तरा बोली- चलिये यों ही सही। अर्जुन बोला- जिन्हे युवराज ने रणभूमि में पराजित किया है उनमें से ऐसा कोई नहीं जिसे मेरी शिष्या अपनी वरमाला से सम्मानित करे। उत्तरा बोली- हां तो फिर बचा कौन? अर्जुन बोला- मेरे ध्यान मे तो केवल एक कंठ ऐसा है जो तुम्हारी वरमाला को सम्मानित कर सके। यदि तुम्हारी वरमाला के योग्य है तो महाराज पांडु का पौत्र श्रीकृष्ण का भान्जा सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु। उत्तरा बोली- आपने तो सुभद्रा पुत्र को देखा होगा। अर्जुन बोले- देखा तो अवश्य है राजकुमारी जब वो बहुत छोटे थे। १३ वर्ष हो गये सुभद्रा पुत्र

को देखे हुये। वहां उत्तर आया और अर्जुन को प्रणाम किया। और बोला हां आज मेरी बहिन बडी प्रसन्न दिखाई दे रही है। अर्जुन बोले- आइये युवराज। उत्तर बोला- अब तो ये वेश छोडिये तात। बडे भैया की आज्ञा के अनुसार कल हम हमारे वेश में आयेंगे और महाराज से जाने की आज्ञा भी लेंगे। उत्तर बोला- कल क्यों आज क्यों नहीं। अर्जुन बोला- हम लोग बडे भैया से प्रश्न नहीं करते कुमार। हम लोग तो केवल उनकी आज्ञा का पालन करते हैं। उत्तर बोला- और उनकी आज्ञा पालन का दंड भी झेलते हैं। अर्जुन बोला- जिसे तुम दंड कह रहे हो कुमार वो पारितोषिक भी तो हो सकता है। अब हम जन समुदाय से पूरे विश्वास से यह कह सकते हैं कि द्यूत एक सम्मान लेवा रोग है कि द्यूत मर्यादाओं को आत्महत्या की सीमाओं तक ले जा सकता है, कि द्यूत भाइयों और पत्नी को व्यक्ति से वस्तु बना सकता है। अपनी इस यात्रा से जनसमुदाय के लिये उपहार लेकर इन्द्रप्रस्थ लौटेंगे। इसे ध्यान से देखो तो यह सौदा महंगा नहीं है। इसलिये ऐ महान यौद्धा उत्तर उनकी आलोचना न करो। उनकी आलोचना के लिये तो ऋषियों, और महर्षियों के मुंह छोटे पड जाते है और छोटे मुंह को बडी बात शोभा नहीं देती। उत्तर बोला- मैं क्षमा चाहता हूं। अर्जुन बोला- तनिक ध्यान दो कुमार कि यदि मैं अकेला कुरु सेना को पराजित कर सका और यदि हम पांचो भाई धनुष उठा लेते तो कौनसी सेना हमारे सामने टिक सकती थी? यह जानते हुये भी गान्धार नरेश ने हमारे साथ कपट किया है हमने अपनी हार को स्वीकार किया क्योंकि नारायण के अतिरिक्त कोई भी ऐसा नहीं जिसे कभी न कभी पराजय का सामना न करना पडे। तो हमने पराजय का स्वाद चखा। पराजय बहुत कडवी होती है युवराज बहुत कडवी। आत्मसम्मान की जीभ इसकी कडवाहट में ऐठ जाती है। अर्जुन को बृहन्नला बना देती है, भीम को बल्लभ रसोइया बना देती है। धर्मराज युधिष्ठिर को कंक बना देती है। और द्रौपदी जैसी रानी को सैरन्ध्री। इसलिये तुमसे जो कोई हार जाये कुमार उसका भी कभी अपमान मत करना क्योंकि युद्ध में हारनेवाला भी आदरणीय होता है। उत्तर बोले- तभी तो कह रहा हूं द्रोण शिष्य के साथ सबका बडा अपमान हुआ है। कंक समझकर पिताश्री ने धर्मराज महाराज युधिष्ठिर को घुडका भी दिया होगा। सैरन्ध्री समझकर माताश्री ने महारानी द्रौपदी का अपमान भी किया होगा। उन्हे दासी समझकर मेरे मामा कीचक ने उन्हे अपनी वासना की दलदल में घसीटने का प्रयत्न तो कर ही डाला था। आप इस राज्य परिवार और राज्य को क्षमा कर दीजिये। अर्जुन बोला- जिस राज्य में हमें आश्रय मिला राजकुमार वो राज्य हमारे लिये सदैव आदरणीय रहेगा परन्तु तुम राजा बननेवाले हो। इसे समझो कि एक दासी भी नारी होती है। आत्मसम्मान पर किसी दासी का किसी महारानी से अधिकार कम नहीं होता। दास या दासी होना तो केवल दुर्भाग्य है तो किसी को उसके दुर्भाग्य के लिये तिरस्कृत करना विधाता का तिरस्कार करना है। इसलिये अपने दास और दासियों के साथ सदैव अच्छा व्यवहार करो क्योंकि तुम यह क्या जानो कि आज जो दास है वो कल कौन था? भगवान करे तुम्हे कभी वो दिन नहीं देखने पडे जो हमें देखने पडे।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय तदनन्तर इसके तीसरे दिन पाँचों महारथी पाण्डवोंने स्नान करके श्वेत वस्त्र धारण किये और राजोचित आभूषणोंसे भूषित हो युधिष्ठिरको आगे करके सभा भवनमें प्रवेश किया। सभामें पहुँचकर वे राजाओंके योग्य आसनपर विराजमान हो गये। इसके बाद राजकार्य देखनेके लिये स्वयं राजा विराट वहाँ पधारे। अग्निके समान तेजस्वी पाण्डवोंको राजासनपर बैठे देख राजाको बड़ा क्रोध हुआ। फिर थोड़ी देरतक मन-ही-मन विचार करके उसने कंकसे कहा- तुम तो पासा खेलनेवाले जुआरी हो। तुम्हारा यह साहस। क्षत्रियों के वस्त्र पहन कर वो स्थान ग्रहण किये हुये है जो राजाओं के लिये नियुक्त है। उत्तर बोला- पिताश्री इनका यह स्थान ग्रहण करने से हमारी राज्य सभा का मान बढ गया

है पिताश्री। विराट बोले- युवराज यह तुम क्या कह रहे हो। सभामें पासा बिछानेके लिये मैंने तुम्हें नियुक्त किया था। आज इस प्रकार बन-ठनकर सिंहासनपर कैसे बैठ गये?

राजाने यह वाक्य परिहासके भावसे कहा था। उसे सुनकर अर्जुनने मुस्कराते हुए कहा- राजन्। तुम्हारे सिंहासनकी तो बात ही क्या है, ये तो इन्द्रके भी आधे आसनपर बैठनेके अधिकारी हैं। ये ब्राह्मणोंके रक्षक, शास्त्रोंके विद्वान, त्यागी, यज्ञकर्ता और दृढ़ताके साथ अपने व्रतका पालन करनेवाले हैं। ये मूर्तिमान धर्म हैं, पराक्रमी पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं; इस जगत्में सबसे अधिक बुद्धिमान और तपस्याके आश्रय हैं। जिन अस्त्रोंको देवता, असुर, मनुष्य, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, सर्प और बड़े-बड़े नाग भी नहीं जानते, उन सबका इन्हें ज्ञान है। ये दीर्घदर्शी, महातेजस्वी और अपने देशवासियों के प्रेमपात्र हैं। ये महर्षियोंके समान हैं, राजर्षि हैं और समस्त लोकोंमें विख्यात हैं। महारथी, बलवान, धर्मपरायण, धीर, चतुर, सत्यवादी और जितेन्द्रिय हैं। ऐश्वर्य और धनमें ये इन्द्र और कुबेरके समान हैं। इनका नाम है- धर्मराज युधिष्ठिर। ये कौरवोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। उदयकालीन सूर्यकी शान्त प्रभाके समान इनकी सुखदायिनी कीर्ति समस्त संसारमें फैली हुई है। ये धर्मराज जब कुरु देशमें रहते थे, उस समय इनके पीछे दस हजार वेगवान हाथी तथा अच्छे घोड़ोंसे जुते हुए सुवर्णमालमण्डित तीस हजार रथ चलते थे। जैसे देवता कुबेरकी उपासना करते हैं, वैसे ही सब राजा और कौरवलोग इनकी उपासना किया करते थे। इन्होंने इस देशके सब राजाओंसे कर लिया है। इनके यहाँ प्रतिदिन अट्ठासी हजार स्नातक ब्राह्मणोंकी जीविका चलती थी। ये बूढ़े, अनाथ, लँगड़े-लूले और अन्धे मनुष्योंकी रक्षा करते थे। प्रजाको तो ये सदा पुत्रके समान मानते थे। इनके सद्गुणोंको गिनाया नहीं जा सकता। ये नित्य धर्मपरायण और दयालु हैं। राजन्। ऐसे उत्तम गुणोंसे युक्त होकर भी ये आपके राजासनपर बैठनेके अधिकारी क्यों नहीं हैं?

अर्जुन बोला- युवराज ठीक कह रहा है महाराज। आपने जिस व्यक्ति को यह स्थान ग्रहण करने से रोका है यह तो वो महात्मा है यदि ये इन्द्र के सिंहासन पर विराजमान हो जाये तो स्वयं इन्द्र भी उनका आभार प्रकट करे कि इन्होने उसके सिंहासन पर विराज कर उनका मान बढाया है। इनका इस राज्यसभा में होना इस राज्य के लिये गौरव की बात है क्योंकि यही ज्येष्ठ कुन्तीपुत्र सम्राट युधिष्ठिर है महाराज। विराट बोले- सम्राट युधिष्ठिर। ये सम्राट युधिष्ठिर हैं तो अब तुम यह कहोगे कि यह रसोइया बल्लभ सर्वश्रेष्ठ गदाधारी भीम है और तुम स्वयं द्रोण शिष्य अर्जुन हो। अर्जुन बोला- नि:सन्देह महाराज और ये मेरे अनुज नकुल और सहदेव हैं।

विराटने कहा- यदि ये कुरुवंशी कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिर हैं, तो इनमें इनका भाई अर्जुन और महाबली भीमसेन कौन हैं? नकुल, सहदेव अथवा यशस्विनी द्रौपदी कौन है? जबसे पाण्डवलोग जूएमें हार गये, तबसे कहीं भी उनका पता नहीं लगा।

अर्जुनने कहा- राजन्। ये जो बल्लभ-नामधारी आपके रसोइया हैं, ये ही भयमर वेग और पराक्रमवाले भीमसेन हैं। कीचकको मारनेवाले गन्धर्व भी ये ही हैं। यह नकुल है, जो अबतक आपके यहाँ घोड़ोंका प्रबन्ध कर रहा है और यह है सहदेव, जो गौओंकी सँभाल रखता रहा है। ये ही दोनों महारथी माता माद्रीके पुत्र हैं। तथा यह सुन्दरी, जो आपके यहाँ सैरन्ध्रीके रूपमें रही है, द्रौपदी है; इसके ही लिये कीचकका विनाश किया गया है। मेरा नाम है अर्जुन। अवश्य ही आपने मेरा नाम भी सुना होगा।

अर्जुनकी बात समाप्त होनेपर कुमार उत्तरने भी पाण्डवोंकी पहचान करायी। इसके बाद अर्जुनके पराक्रम का बखान किया। पिताजी। ये ही युद्धमें गौओंको जीतकर ले आये हैं; इन्होंने ही कौरवोंको हराया है। इन्हींके शफ्की गम्भीर ध्वनि

सबको दहला गयी। युधिष्ठिर बोले- आपके प्रति आभार प्रकट किये बिना चले जाना हमने उचित नहीं जाना महाराज। आपने हमपर जो उपकार किया है उन्हे हम पांचों कुन्तीपुत्र सदैव याद रखेंगे। क्योंकि हमने अपना अज्ञातवास आपकी छत्रछाया में बिताया है। उत्तर बोला- अपनी राज्यसभा में इनका स्वागत कीजिये पिताश्री। भारत वर्ष का इतिहास सदैव आपका नाम आदर सहित लेगा कि आप वर्षभर इन पांडवों के आतिथेय रहे हैं। विराट बोले- यदि ये पांडव हैं तो महारानी द्रौपदी कहां है? उत्तर बोला- माताश्री के प्रसादिका के रूप में आपने उन्हे देखा है पिताश्री। यह सुनकर राजा विराट बोले - उत्तर। अब हमें पाण्डवोंको प्रसन्न करनेका शुभ अवसर प्राप्त हुआ है।

विराट बोले- हे ज्येष्ठ कुन्ती पुत्र, हे धर्मराज, हे राजेश्री, हे सम्राट युधिष्ठिर अनजाने में आपका मैंने हर दिन अपमान किया है। महारानी द्रौपदी को सैरन्ध्री जानकर अपमान किया है आपके, महारथी भ्राताओं का अपमान किया है। आप दया और धर्म के प्रतिबिम्ब है मुझे क्षमा कीजिये महाराज। आप यहां नहीं बल्कि उस राज सिंहासन पर विराजिये क्योंकि इस राजसभा में केवल एक वही स्थान है जिस पर आप विराजमान हो सकते हैं। मेरा नम्र निवेदन स्वीकार कीजिये सम्राट युधिष्ठिर। युधिष्ठिर बोले- हे राजन वो क्षत्रिय नहीं हो सकता। जो अपने आतिथेय की राजसभा में स्वयं उसके सिंहासन पर बैठ जाये। वो आपका स्थान है। अपना स्थान ग्रहण कीजिये महाराज। विराट बोले- कुछ न कुछ तो आपको स्वीकार करना ही पडेगा सम्राट। युधिष्ठिर बोले- हम पांचों भाई आपका स्नेह तो स्वीकार कर ही चुके हैं महाराज। द्रोण शिष्य ने मेरे पुत्र को जीवन दान दिया है सम्राट इसलिये मैं अपने स्नेह पर अपने हस्ताक्षर के रूप में अपनी पुत्री उनको भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त करना चाहता हूं। अर्जुन बोले- उत्तरा। उत्तरा तो मेरी शिष्या है महाराज। उसमें सदैव मैंने अपनी पुत्री का रूप देखा है। परन्तु मैं आपका पुरस्कार अस्वीकार भी तो नहीं कर सकता। यदि राजकुमारी को कोई आपत्ति न हो तो मैं उन्हें अपनी पुत्रवधू के रूप में स्वीकार करता हूं। मेरा पुत्र श्रीकृष्ण का चहेता है। राजन यदि संसार के सारे महारथी एकत्रित हो जाये तो मेरा पुत्र अभिमन्यु उन सारे महारथियों में अपने तेज द्वारा दूर से पहिचाना जा सकता है। राजा विराट बोले- वैसे तो मुझे इस संबंध में भी कोई आपत्ति नहीं है; किंतु मैं जानना चाहता हूं कि आप उसे अपनी पत्नी के रूप में क्यों ग्रहण करना नहीं चाहते? क्या आप उसे इस योग्य नहीं पाते?

अर्जुनने कहा, महाराज अब मेरी अवस्था विवाह योग्य नहीं है। मेरी मानसिकता भी ऐसी नहीं है। ये सब मेरी अयोग्यताएँ हैं, उत्तरा की नहीं। मैंने वर्षभर उत्तरा को अपनी शिष्या के रूप में देखा है। उसके प्रति मेरे मन में वात्सल्य का भाव है। यदि मैं उसे अपनी पुत्रवधू के रूप में स्वीकार करता हूँ, तो यह उसके तथा मेरे-दोनों के चरित्रों की शुद्धता का प्रमाण है। यदि मैं उसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करता हूं, तो यह शंका सदा ही उठेगी कि उस वर्षभर में भी हमारे संबंध पिता पुत्री के से नहीं थे।

राजा विराट उत्तर से बोले, तुम्हारी सहमति हो तो मैं अर्जुनसे कुमारी उत्तराका ब्याह कर दूँ। उत्तर बोला- पाण्डवलोग सर्वथा श्रेष्ठ, पूजनीय और सम्मानके योग्य हैं; तथा इसके लिये हमें मौका भी मिल गया है। इसलिये आप इनका सत्कार अवश्य करें। विराटने कहा- युद्धमें मैं भी शत्रुओंके फंदेमें फँस गया था; उस समय भीमने ही मुझे छुड़ाया और गौओंको भी जीता है। मैंने अनजानमें राजा युधिष्ठिरको जो कुछ अनुचित वचन कहे हैं, उनके लिये धर्मात्मा पाण्डुनन्दन मुझे क्षमा करें।

इस प्रकार क्षमाप्रार्थना करके राजा विराटको बड़ा संतोष हुआ और उसने पुत्रके साथ सलाह करके अपना सारा राज-पाट और खजाना युधिष्ठिरकी सेवामें सौंप दिया। फिर पाण्डवों और विशेषत: अर्जुनके दर्शनसे अपने सौभाग्यकी सराहना की। सबका मस्तक सूँघकर प्यारसे गले लगाया। इसके बाद वह अतृप्त नेत्रोंसे उन्हें एकटक देखने लगा और अत्यन्त प्रसन्न होकर युधिष्ठिरसे बोले- बड़े सौभाग्य की बात है, जो आपलोग कुशलपूर्वक वनसे लौट आये। और यह भी अच्छा हुआ कि

इस कष्टदायक अज्ञातवासकी अवधिको आपने पूरा कर लिया। मेरा सर्वस्व आपका है, इसे नि:संकोच स्वीकार करें। विराटके ऐसा कहनेपर युधिष्ठिरने अर्जुनकी ओर देखा। तब अर्जुनने मत्स्यराजको इस प्रकार उत्तर दिया- राजन्। मैं आपकी कन्याको अपनी पुत्रवधूके रूपमें स्वीकार करता हूँ। मत्स्य और भरतवंशका यह सम्बन्ध उचित ही है। युधिष्ठिर बोले, मेरा विचार है कि धनंजय का निर्णय सर्वमान्य है। मैं अर्जुन के बड़े भाई के रूप में, और इस परिवार के मुखिया के रूप में यह संबंध स्वीकार करता हूं।

भीमने पूछा अब हमें हस्तिनापुर चलना चाहिये और अपने होने की सूचना पितामह, धृतराष्ट, दुर्योधन को भिजवानी चाहिये। अर्जुन बोले, मत्स्यराज विराट का आग्रह है कि हम अभी हस्तिनापुर न जायें। वे हमें अपने नगर उपप्लव्य में निवास करने का निमंत्रण दे रहे हैं। वे चाहते है कि हम उसे अपना अस्थायी निवास मान लें। अपने सारे संबंधियों को वहीं आमंत्रित करें और वहीं अभिमन्यु और उत्तरा का विवाह हो। सबसे पहले तो हमें सबको अपने अपने सम्बन्धियों, मित्रों तथा शत्रुओं को सूचना देनी है कि हमने अपना वनवास और अज्ञातवास सफलतापूर्वक पूरा कर लिया है। हमें अपना राज्य प्राप्त करने के लिए सबसे संपर्क करना है। हमें विवाह में आमंत्रित करने के लिए सबसे संपर्क करना है। युधिष्ठिर बोले, हम सबसे पहले उपप्लव्य नगर में अपना शिबिर स्थापित करेंगे। वहीं से सबको अभिमन्यु के विवाह का निमंत्रण भेजेंगे और उसके पश्चात् परामर्श और विचार विमर्श भी करेंगे कि अपना राज्य माँगने का उपक्रम कैसे शुरू किया जाए? भीम बोले, युद्ध तो होगा ही। यह तो संभव ही नहीं है कि आप हस्तिनापुर पहुँचकर कहें कि हमने द्यूत की सारी प्रतिज्ञाएँ पूर्ण कर दी हैं और दुर्योधन आपको आपका राज्य अपने आप लौटा दे। युद्ध के बिना दुर्योधन आपको राज्य लौटाएगा ही नहीं। ऐसी स्थिति में हमें पहले शक्ति संचय करनी चाहिए और उसके लिए विवाह के बहाने सबको एकत्रित कर लेना सबसे सरल होगा। बीच में द्रौपदी बोली, बरात के बहाने सेना एकत्रित होगी और बहू को घर लाएँगे तो रणलक्ष्मी भी साथ ही आएगी। युधिष्ठिर बोले, भीम विवाह का निमन्त्रण प्रेषित करो- द्वारका, काम्पिल्य, काशी, चेदि, हस्तिनापुर आदि सब स्थानों पर। अब अर्जुन विराटराज को अपनी योजनाओं से अवगत करा आओ। इस बार उपप्लव्य से ही पांडवों के जीवित ही नहीं विजयी होने का भी उद्घोष हो धर्मस्थापना की घोषणा हो।

बारह वर्ष का वनवास एवं एक वर्ष का अज्ञातवास एक दीर्घ दु:स्वप्न की भाँति रहा। इस अवधि में अपमान, असुरक्षा, अपहरण, बलात्कार के प्रयास, विवशता, दैन्य, सब शिरोधार्य कर झेला था। वह अवधि अन्तत: समाप्त हुई और अब पाण्डवों का भविष्य के लिए चिन्तित होना स्वाभाविक था। वे सत्ताच्युत थे। राज्यच्युत थे। उनके पास आजीविका नहीं थी, और वे राजपुत्र थे। महाराज विराट उनकी सेवा से प्रसन्न थे, विशेष रूप से अर्जुन ने जिस प्रकार उनकी ओर से कौरवों को परास्त कर दिया था, उससे वे अभिभूत हो उठे और अन्त में जब उनका परिचय मिला तो वे अवाक् रह गये। ये परमप्रतापी पाण्डुनन्दन उनके राजप्रासाद में दीन परिचारक बनकर रहे। राजरानी द्रुपदसुता स्वयं सैरन्ध्री बनी उनकी सेवा में रत रही। परिचय जानकर वे और भी हर्ष गद्गद हो उठे और अपनी अति लाड़ली राजपुत्री उत्तरा को उन्होंने अर्जुन को सौंपना चाहा। अर्जुन उसे पुत्रीवत् नृत्य-संगीत की शिक्षा दे चुके थे। वे अपनी पूर्व पत्नियों से प्रसन्न थे, सन्तुष्ट थे और दु:खिता पांचाली के सतत हृदयदाह को स्वयं विजन बनकर और बढ़ाना नहीं चाहते थे। अत: अत्यन्त विनम्रता से उन्होंने उत्तरा को सौभाद्र, अभिमन्यु के लिए स्वीकार कर लिया। महाराज विराट, महाराज द्रुपद, द्वारकाधीश श्रीकृष्ण- इस प्रकार पाण्डवों से वैवाहिक सूत्रों के सम्बन्धों में आब्द हो चुके थे और इस प्रकार पाण्डवों की स्थिति अपेक्षाकृत सुदृढ़ हो गयी थी। तेरह वर्ष के वनवास के दु:ख के बाद पहली इच्छा पूरी

हुई उत्तरा-अभिमन्यु के शुभ परिणय में। विराट ने प्रस्ताव दिया कि उत्तरा का विवाह वीर फाल्गुनी से हो। परन्तु सच्चरित्र, विवेकशील फाल्गुनी ने समझा दिया- मैं उत्तरा का नृत्यगुरु हूं, पिता सदृश। अत: अर्जुन के पुत्र वीर अभिमन्यु के साथ इसका विवाह स्पृहणीय होगा। पहली बार द्रौपदी के मन की बात को फाल्गुनी भाषा दे रहे थे।

**२१) अभिमन्यु के साथ उत्तराका विवाह-** वैशम्पायनजी कहते हैं जनमेजय अर्जुनकी बात सुनकर राजा विराटने कहा- पाण्डवश्रेष्ठ। मैं स्वयं तुम्हें अपनी कन्या दे रहा हूँ, फिर तुम उसे अपनी पत्नीके रूपमें क्यों नहीं स्वीकार करते? अर्जुनने कहा- राजन्। मैं बहुत कालतक आपके रनिवासमें रहा हूँ और आपकी कन्याको एकान्तमें तथा सबके सामने पुत्रीभावसे ही देखता आया हूँ। उसने भी मुझपर पिताकी भाँति ही विश्वास किया है। मैं नाचता था और सङ्गीतका जानकार भी हूँ; इसलिये वह मुझसे प्रेम तो बहुत करती है, परंतु सदा मुझे गुरु ही मानती आयी है। वह वयस्क हो गयी है और उसके साथ एक वर्षतक मुझे रहना पड़ा है। इस कारण तुम्हें या और किसीको हमपर कोई अनुचित संदेह न हो इसलिये उसे मैं अपनी पुत्रवधूके रूपमें ही वरण करता हूँ। ऐसा करके ही मैं शुद्ध, जितेन्द्रिय तथा मनको वशमें रखनेवाला हो सकूँगा और इससे आपकी कन्याका चरित्र भी शुद्ध समझा जायगा। मैं निन्दा और मिथ्या कलमसे डरता हूँ, इसलिये उत्तराको पुत्रवधूके ही रूपमें ग्रहण करूँगा। मेरा पुत्र भी देवकुमारके समान है, वह भगवान श्रीकृष्णका भान्जा है। वे उसपर बहुत प्रेम रखते हैं। उसका नाम है अभिमन्यु। वह सब प्रकारकी अस्त्रविद्यामें निपुण है और तुम्हारी कन्याका पति होनेके सर्वथा योग्य है।

विराटने कहा- पार्थ। तुम कौरवोंमें श्रेष्ठ और कुन्तीके पुत्र हो। तुममें धर्माधर्मका इतना विचार होना उचित ही है। तुम सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाले और ज्ञानी हो। अब इसके बादका जो कुछ कर्त्तव्य हो, उसे पूर्ण करो। जब अर्जुन मेरा सम्बन्धी हो रहा है, तो मेरी कौन-सी कामना अपूर्ण रह गयी?

विराट के ऐसा कहनेपर अवसर देखकर राजा युधिष्ठिरने भी इन दोनोंकी बातोंका अनुमोदन किया। फिर विराट और युधिष्ठिरने अपने-अपने मित्रोंके यहाँ तथा भगवान् श्रीकृष्णके पास दूत भेजा। अब तेरहवाँ वर्ष बीत चुका था, इसलिये पाण्डव विराटके उपप्लव्य नामक स्थानमें जाकर रहने लगे।

द्वारका में बलराम सुभद्रा के कक्ष में आता है। और सुभद्रा गहने सजा रही होती है। बलराम बोला- ये सारे कक्ष में तुमने ये आभूषण क्यों फैला रखे है सुभद्रा। सुभद्रा बलराम को प्रणाम कर बोली क्या भैया ने तुम्हे नहीं कहा? कल सन्ध्या के वक्त आये और बोले क्या तुम अभिमन्यु का विवाह नहीं करोगी। तो मैंने कहा करूंगी क्यों नहीं किन्तु उसके पिताश्री को तो आ जाने दीजिये। तो वे बोले तुम्हारे और पार्थ के बीच में तो मैं पडता नहीं किन्तु तुम अपनी पुत्रवधू के लिये आभूषण चुनना तो आरम्भ करो। क्या पता कब पार्थ का पत्र आ जाये कि अभिमन्यु को लेकर आ जाओ। उसका विवाह करना है। ये सारे आभूषण तो मैं अपनी पुत्रवधू के लिये इन्द्रप्रस्थ से ही बनवाती चली आ रही हूं भैया। बलराम बोले- अच्छा इसका अर्थ यह हुआ कि उसको यह सूचना मुझसे पहिले मिल गयी। सुभद्रा बोली- सूचना कैसी दाऊं। बलराम बोले- आज ही विराट नगर से अर्जुन का पत्र आया कि मत्स्य नरेश की पुत्री सौभाग्यकांक्षिणी उत्तरा से अभिमन्यु का शुभलग्न निश्चित हो गया है और सम्राट युधिष्ठिर ने भारतवर्ष के सारे राजाओं को आमंत्रित भी किया है। सुभद्रा बोली- क्या हस्तिनापुरवालों को भी? बलराम बोले- अवश्य किया होगा क्योंकि वे तो घरवाले हैं।

**ब्याह बने अभिमन्यु का कुरू कुल मिलन सुयोग, इसकी आस विश्वास पर किये निमंत्रित लोग।**
**कुल दर्पण में दर्प की जब जब पडे दरार, विकृत रूप संवारना, मन चाहे हरबार।**

उपप्लव्य में पांडवों के शिबिर में द्रौपदी अर्जुन के कक्ष में प्रवेश करती और बोली, फाल्गुनी मुझे तो विश्वास ही नहीं हो रहा कि हमारा बनवास ही नहीं अज्ञातवास भी पूरा हो गया है और मेरे लिए तो यह कल्पना करना भी कठिन हो रहा है कि हमारा पुत्र अभिमन्यु इतना बड़ा हो गया है कि उसका विवाह होने जा रहा है। अभी तक तो मैं सास के रूप में माता कुन्ती को ही देखती आयी हूं। अपने को तो उस रूप में कल्पना भी नहीं कर पाती। अर्जुन बोले, सत्य है। हम पहली बार जिसको जिस रूप में देखते हैं उसे उस रूप में स्वीकार करते हैं और फिर उसमें परिवर्तन करना कठिन होता है। मैं सोच रहा था, हमारे पुत्रों में सबसे पहले अभिमन्यु का विवाह हो रहा है। वह न तो अपने भाइयों में सबसे बड़ा है और न ही तुम उसकी जननी हो। क्या तुम्हें यह बात माता कुंती के समान कोंचती नहीं होगी कि बड़े होते हुए भी किसी द्रौपदेय का विवाह नहीं हो रहा है। द्रौपदी मुस्कराई और बोली, अब सोचती हूं कि माता कुंती के ही समान मेरे मन में परिवेदन का विचार क्यों नहीं आया? माता ने हमारे विवाह के समय जो कुछ सोचा था वह उनका स्वार्थ नहीं, धर्म ही था। अर्जुन बोला तुम्हे किसी प्रकार ईर्ष्या नहीं हो रही कि प्रतिविंध्य के अविवाहित रहते अभिमन्यु का विवाह हो रहा है। द्रौपदी बोली, ईर्ष्या मेरे स्वभाव में नहीं है, ऐसा मैं नहीं कहती किन्तु उदारता भी मुझमें है। सुभद्रा से जो ईर्ष्या की थी तब की बात और थी। जब उसे मैंने अपनी बहन मान लिया तो उसके गर्भ से जन्मे अपने ही पुत्र से क्या ईर्ष्या। वह मेरे प्रिय फाल्गुन का औरस पुत्र है। भले ही वह सपत्नी के माध्यम से ही सही। सखा कृष्ण का भागिनेय है अभिमन्यु। सुभद्रा की उदारता का कोई प्रतिदान नहीं है मेरे पास। उसने अपने अभिमन्यु के साथ मेरे ही पांचों पुत्रों को समान प्रेम से पाला है तेरह वर्ष। मेरे अपने पुत्र अपने मातुल और मातामह के पास नहीं रहे। वे अपनी माता सुभद्रा के पास रहे। मैंने तो फिर भी पाँच पुत्रों को जन्म दिया है। सुभद्रा का तो एक ही पुत्र था और सन्तान पालने का उसे कौनसा अनुभव था उसको कि मेरे पांच पुत्रों को भी इतनी ममता दे सकती। वह कृष्ण की सहोदरा है। उसके मन में भी अथाह प्रेम है। वह कृपण नहीं है। तो फिर उसके प्रति अथवा उसके पुत्र के प्रति मैं अपने वन में ईर्ष्याभाव कैसे ला सकती हूं। तुम जो चाहे कहो और समझो फाल्गुनी। मैं तो यह समझ रही हूं विवाह तो मेरे पुत्र का हो रहा है। द्रौपदी वस्तुत: प्रसन्न दिखाई दे रही थी।

द्रौपदी वहाँसे निकलकर अपने कक्ष में आयी और भीम को अपने कक्ष में बुलाया।

द्रौपदी अपनी पुरानी बातों को स्मरण कर रही थी। मैंने हस्तिनापुर के विलास, ऐश्वर्य और राजप्रासाद की कभी कामना नहीं की थी। मैंने कामना की थी हस्तिनापुर की राजवधू के अधिकार की, स्वीकृति की। पर वह मुझे मिला खांडवप्रस्थ की झोंपड़ी में और मैं सोचती थी वहाँ भी मैं परिपूर्णता पा सकूंगी। पर कृष्ण जिसके सखा हैं, खांडवप्रस्थ को इन्द्रप्रस्थ करने में क्या देर लगेगी? कुछ ही दिनों में इंद्रप्रस्थ का ऐश्वर्य, सौंदर्य और नवनिर्मित नगरी की शोभा हस्तिनापुर को पार कर गई। इंद्रप्रस्थ का सभागार सर्वाधिक आकर्षक बना था।

कृतज्ञता प्रकट करने के लिए मय ने श्रीकृष्ण के साथ परामर्श कर युधिष्ठिर से अनुमति लेकर सभागार बनाया था। पृथ्वी पर किसी राज्य में ऐसा सभागृह नहीं बना था। चार हजार हाथ लंबी-चौड़ी जमीन पर सत्तर हाथ लंबा-चौड़ा यह सभागृह बनाया गया था। दीवार और छत में मणि, फर्श पर मुक्त और स्फटिक जड़े थे। छत में मणि-माणिक्य इस तरह लगाए गए थे कि आकाश के ग्रह-नक्षत्र जैसे प्रतीत होते। छत का रंग भी ऐसे कौशल से लगाया गया कि सुबह और संध्या के आकाश की तरह उसका वह रंग बाहर सूर्यलोक के साथ ताल देकर पल-पल परिवर्तित होता रहता। गृह में बैठकर भी मुक्त आकाश के नीचे बैठने का भ्रम हो जाता मन में। गृह का फर्श स्फटिक से निर्मित होने के कारण जल की तरह स्वच्छ दिख रहा था। छत के गृह-

नक्षत्र उस पर प्रतिफलित होकर मन में जल का भ्रम पैदा कर देते। दीवारों पर दर्पण ऐसे सजे थे कि सभा कार्य चलते समय महाराज युधिष्ठिर का प्रतिबिंब दर्शक अपनी दोनों ओर देख पाते। सामने स्वयं महाराज। स्पष्ट भाग में भी दर्शक को दर्पण में युधिष्ठिर का ही प्रतिबिंब दिखता। सभागृह में बैठा आदमी युधिष्ठिर की व्यक्तिसत्ता में खोये बिना नहीं रहता।

सभागृह के सामने उद्यान में फूलों के झाड़। बीच-बीच में स्वर्ण-निर्मित पौधों पर मणि-माणिक्य के फूल सजाए गए। दूर से देखने पर मन करता जैसे स्वप्नलोक के उद्यान में सुख-सौभाग्य के फूल मणि-माणिक्य बनकर झर रहे हैं। उद्यान के बीच में स्वर्णनिर्मित बाड़ से घिरी पुष्करिणी खुदी है। इसकी सीढ़ियां स्फटिक निर्मित। पुष्करिणी में स्वर्णिम शतदल सजाए गए हैं। हीरे-नीलम की नकली मछलियां तैरने की स्थिति में रखी गई। सोने की दीवार के किनारे-किनारे पर संगमरमर का स्तर और उस पर मुक्ता झलमला रहे हैं। पुष्करिणी का जल इतना स्वच्छ कि तल तक सब-कुछ दिखाई दे जाता। जल-विहार के लिए हीरे-खचित नौका बंधी थी एक ओर।

सभागृह के बीच युधिष्ठिर के बैठने के लिए जो सिंहासन बनाया गया था, उसका निर्माण-कौशल और सौंदर्य वर्णनातीत था। स्वर्ग में इंद्र भी इस सिंहासन से लुभा कर नीचे उतर आयें।

सारा सभागृह छाया-शीतल करने के लिए नाना प्रकार के फल-पुष्पों से भरे वृक्ष रोपे गए। पुष्पों की महक से भर उठा था सभागृह। खांडवप्रस्थ में इंद्रप्रस्थ जैसा यह सभागृह देखकर लोग उसे ही इंद्रप्रस्थ कहने लगे। युधिष्ठिर इंद्रप्रस्थ के राज-सिंहासन पर अभिषिक्त हुए और मैं बनी थी इंद्रप्रस्थ की राजरानी।

इंद्रप्रस्थ के निर्माण कार्य में मन उंड़ेल दिया था पाँचों भाइयों ने। कुछ ही दिनों में पूरा बन जाने के बाद पांडव प्रसन्नता में उत्फुल्ल हो उठे। उधर कौरव ईर्ष्या में जलने लगे। हस्तिनापुर के अनेक विद्वान और प्रजा इंद्रप्रस्थ की ओर खिंचकर युधिष्ठिर के धर्मराज्य में आश्रय लेने चल पड़े। इंद्रप्रस्थ में सुख, सुविचार, आनंद-उत्सव उन्हें हस्तिनापुर से विमुख करने लगा। कौरव ईर्ष्या-द्वेष में जलने लगे, नूतन सभागृह की प्रतिष्ठा का दिन भी आया। पर मैं कौरवों और उनके बंधु कर्ण, जामाता जयद्रथ आदि कुटुंबियों को निमंत्रित करने के पक्ष में नहीं थी। दुष्ट एवं ईर्ष्या परायण लोगों को अपना ऐश्वर्य दिखाना विज्ञ लोगों का काम नहीं है। इससे शत्रुता ही बढ़ती है। आनंद के लिए उत्सव किए जाते हैं। ईर्ष्या या दु:ख जताने के लिए नहीं। इन्द्रप्रस्थ के सभागृह प्रतिष्ठा का उत्सव ने कौरवों को घोर दु:ख दिया। मैंने युधिष्ठिर को बता दिया था। पर युधिष्ठिर का उत्तर था- गृह-प्रतिष्ठा उत्सव में आत्मीयजनों को न बुलाकर अतिथियों की आवभगत संभव नहीं। इसके अलावा कौरवों को निमंत्रण न करने पर लोग क्या कहेंगे? जो अपने बंधु-कुटुंबीजनों के साथ संपर्क नहीं रखता वह प्रजा के साथ क्या संपर्क रखेगा? कोई ईर्षातुर होगा तो क्या दुनिया से आनंद महोत्सव लोप ही हो जायेंगे? जो ईर्षातुर है वे सदा ही दु:खी रहते हैं। कौरवों को न बुलाने पर भी वे हस्तिनापुर में रहते हुए सारी समाचार पायेंगे। अधिक ईर्ष्या में डूबेंगे, अधिक दु:खी होंगे। अत: बुलाकर सौहार्द बनाना उचित होगा। युधिष्ठिर का तर्क सुनकर मैं चुप रहीं। सहसा द्रौपदी का ख्वाब टूटा।

भीम ने आकर पूछा क्या बात है प्रिये? द्रौपदी बोली, मेरे मन में एक बात आयी है अभिमन्यु के विवाह के अवसर पर संबंधियों और कुटुंबियों को तो आमंत्रित किया जाएगा न? भीम बोले, हाँ प्रिये, क्यों नहीं। बिना अतिथियों के भी कभी विवाह हुआ है क्या? द्रौपदी बोली, क्या इस बार भी राजसूय यज्ञ के अवसर के ही समान तुम लोग हस्तिनापुर से अपने हस्तिनापुरवालों को आमंत्रित करोगे और उनकी प्रसन्नता के लिए मेरे पिता और भाइयों की अवमानना करोगे। भीम बोले, तुम्हारी यह आशंका महत्वपूर्ण है। द्रौपदीने आग्रहपूर्वक पूछा, क्या इस बार भी ऐसा ही होगा? भीम बोले कह नहीं सकता

कि धर्मराज के मन में क्या है, किंतु मेरा विचार है कि हम दुर्योधन से अपना भ्रातृत्व बहुत निभा चुके। वह हमारा भाई कभी नहीं बना, न ही बन सकता है। मुझे पितामह पर भी संदेह है कि वे कभी दुर्योधन का साथ छोड़ेंगे। जो हमारे नहीं है उन्हें प्रसन्न करने के लिए हम अपनों की अवज्ञा बहुत कर चुके। मैं धर्मराज से आग्रह करूँगा कि वे जहाँ चाहें निमंत्रण भेजें, किंतु हस्तिनापुरवालों को आमंत्रित न करें और अपने मित्रों की अवहेलना भी न करें। युद्ध की स्थितियाँ बन रही हैं। हम पांचालों की सहायता के बिना तो युद्ध कर ही नहीं सकते। अपने स्नेह अथवा संबंधों के कारण न सही, अपने स्वार्थ के कारण ही सही, हमें पांचालों को पूर्ण सम्मान देकर आग्रहपूर्वक निमंत्रित करना होगा। यह तो धर्मराज की विचित्र लीला है कि जो हमारा सिर काट ले उसे तो वे आदरपूर्वक बुलाएँगे और जो हमारे लिए अपने प्राण देने को तैयार बैठे हैं उनकी ओर देखेंगे भी नहीं। इस विवाह में हस्तिनापुरवालों के लिए कोई स्थान नहीं है। वस्तुत: विवाह के निमंत्रण के छदम् में हम युद्ध-निमंत्रण भेज रहे हैं। हम वर-यात्रा की नहीं, सेना की प्रतीक्षा कर रहे हैं। सैनिक सहायता तो हमें काम्पिल्य से ही मिलेगी। पितामह और आचार्य हमारी ओर से दुर्योधन के विरुद्ध युद्ध नहीं करेंगे। उनके विरुद्ध तो महाराज द्रुपद, दृष्टद्युम्न और महारथी शिखंडी ही हमारी सहायता करेंगे। महाराज द्रुपद के आनेसे उनके विरोध के कारण हस्तिनापुर से कोई भी इस विवाह में सम्मिलित नहीं होगा। द्रौपदी को स्थिति स्पष्ट कर भीम वहाँ से चला गया। द्रौपदी के मन में प्रतिशोध की ज्वाला भड़क रही थी और उसका प्रतिशोध का संकल्प। आज पाण्डवोंका अपना और कोई नहीं था कोई था तो बस काम्पिल्य का राजवंश, द्रौपदी के पिता और भाई।

अभिमन्यु, श्रीकृष्ण तथा अन्यान्य दाशार्हवंशियोंको बुलवाया गया। काशिराज और शैव्य ये एक-एक अक्षौहिणी सेना लेकर युधिष्ठिरके यहाँ प्रसन्नतापूर्वक पधारे। राजा द्रुपद भी एक अक्षौहिणी सेनाके साथ आये। उनके साथ शिखण्डी और धृष्टद्युम्न भी थे। इनके सिवा और भी बहुत-से नरेश अक्षौहिणी सेनाके साथ वहाँ पधारे। राजा विराटने यथोचित सत्कार किया और सबको उत्तम स्थानोंपर ठहराया। भगवान् श्रीकृष्ण, बलदेव, कृतवर्मा, सात्यकि, अक्रूर और साम्ब आदि क्षत्रिय अभिमन्यु और सुभद्राको साथ लेकर आये। जिन्होंने द्वारिकामें एक वर्षतक वास किया था वे इन्द्रसेन आदि सारथी भी रथोंसहित वहाँ आ गये। भगवान श्रीकृष्णके साथ दस हजार हाथी, दस हजार घोड़े, एक अरब रथ और एक निखर्व (दस खरब) पैदल सेना थी। वृष्णि, अन्धक और भोजवंशके भी बलवान राजकुमार आये थे। श्रीकृष्णने निमन्त्रणमें बहुत-सी दासियाँ, नाना प्रकारके रत्न और बहुत-से वस्त्र युधिष्ठिरको भेंट किये।

इस संसार में बहुत से लोग ऐसे भी हैं जो वर्तमान से अतीत की व्याख्या का अधिकार छीन लेना चाहते हैं। ऐसे लोग व्याख्या और विरुपण में अन्तर नहीं कर पाते। या अतीत में अपने निहित स्वार्थ के कारण अन्तर करना चाहते ही नहीं किन्तु वर्तमान अपने यथार्थ के आधार पर अतीत की व्याख्या ही नहीं करेगा तो उससे लाभ कैसे उठायेगा? कोई वर्तमान अतीत की ओर लौट तो सकता नहीं। वो तो भविष्य की ओर जाने के लिये विवश है। अतीत चाहे जितना आदरणीय हो पर उसे जिया नहीं जा सकता। हां अपने वर्तमान को सुधारने का उसे समझने का प्रयत्न अवश्य किया जा सकता है और यह प्रयत्न करना वर्तमान का कर्त्तव्य भी है। ये चिन्ता का एक और विषय है। बहुत से विद्वान भी कथन और चित्रण को एक ही माध्यम समझे बैठे हैं। कवि तो यह कह देगा कुछ सुनकर पात्र बहुत दुखी या सुखी हुआ परन्तु यह बहुत क्या है? चित्रण के माध्यम को तो यह निर्णय लेना पडेगा क्योंकि कवि तो इस सिलसिले में कोई सहायता तो कर नहीं सकता। समय कहना यह चाहता है कि ये अधिकार तो सबको है। वो किसी व्याख्या से सहमत हो न हो किन्तु व्याख्या को विरुपण कहना ठीक नहीं है। समय जो कथा सुना रहा है वह वर्तमान बनकर सुना रहा है। इस कथा को सुन अपने यथार्थ का वस्त्र पहनाने का प्रयत्न करे।

भीष्म के कक्ष में चर ने आकर सूचना दी महाराज धृतराष्ट्र आपके कक्ष में पधार रहे हैं। धृतराष्ट्र भीष्म के कक्ष में आ गये। धृतराष्ट्र ने प्रणाम तातश्री किया और भीष्म ने उठकर सुखी रहो का आशीर्वाद दिया तथा बैठने को आसन दिया कि यहाँ बैठो और बोले अब मुझे बताओ कि आज इतने दिनों के उपरान्त तुम्हे अपना यह बूढा तात कैसे याद आया? धृतराष्ट्र बोले- मेरा दुर्भाग्य यह है तातश्री आप भी मुझे अनुज पुत्रों का शत्रु समझने लगे हैं। भीष्म बोले- मेरे समझने या ना समझने का प्रश्न ना उठाओ। मुझे तो अब अपने आप पर भी भरोसा नहीं रह गया है। मुझे छोडो। यदि मैं किसी गिनती में होता तो दुर्योधन यह मान गया होता कि जिस दिन उसका और अर्जुन का सामना हुआ था उस दिन महिनों पहिले पांडु पुत्रों का अज्ञातवास समाप्त हो चुका था। मेरे ही हस्तिनापुर में मुझपर पक्षपात का आरोप लगाया जा रहा है पुत्र और कोई मेरे बचाव में बोलनेवाला नहीं रह गया है। मेरे ये श्वेतकेश अब अकेले रह गये हैं। धृतराष्ट्र बोले- ऐसा न कहिये तातश्री। गान्धारी पुत्र भी आपके हैं और कुन्ती पुत्र भी आपके हैं। और मैं तो आपका सेवक हूं ही। भीष्म बोले, सेवा की आवश्यकता मुझे नहीं है पुत्र। सेवा की आवश्यकता हस्तिनापुर को है। मेरे और तुम्हारे पूर्वजों की धरोहर हस्तिनापुर को है। तनिक सोचो धृतराष्ट्र कि जो यौद्धा युद्ध करते हैं तो किसी को विजय प्राप्त होती है तो किसी के भाग्य में पराजय आती है। कोई विजय का ध्वज फहराये हुये अपने घर लौटता है और कोई रणभूमि में वीरगति को प्राप्त करता है। किन्तु नगर किसी वृक्ष की भांति अपनी जडों से बन्धा वही खडा रहता है और घायल होता रहता है। अरे उसके भाग्य में तो वीरगति को प्राप्त होना भी नहीं लिखा है। नगर तो केवल बीती हुई शताब्दियों के मलबे में दबकर गुम हो सकता है। परन्तु मैं तो कभी कभी यह सोचकर डर जाता हूं अगर ये नगर शताब्दियों के मलबे से बाहर निकलता और इतिहास ने उससे मेरे विषय में, तुम्हारे विषय में कोई प्रश्न किया तो वो क्या उत्तर देगा? क्या वो कहेगा कि हम लोग अच्छे लोग थे? धर्म के रक्षक थे? कर्मयोगी थे? मैं तो ऐसा नहीं समझता पुत्र और मेरा दुर्भाग्य तो देखो पुत्र मैं जीवित रहने के लिये विवश हूं। अब मेरे भाग्य में सुख का कदाचित एक क्षण भी नहीं रहा। अरे पुत्र अब तो पांडवों का अज्ञातवास भी समाप्त हो चुका है। उन्हे बुलाओ और छाती से लगाओ। उनका इन्द्रप्रस्थ उन्हें वापिस कर दो। धृतराष्ट्र बोले, मैं आपसे इसी विषय में बात करने आया हूं तातश्री। मत्स्य देश के उपप्लव्य नगर से पुत्र युधिष्ठिर का पत्र आया है कि अर्जुन पुत्र अभिमन्यु के विवाह पर अभिमन्यु और उसकी वधू राजकुमारी उत्तरा को आशीर्वाद देने अवश्य आयें। भीष्म बोले, युधिष्ठिर का पत्र तो मेरे पास भी आया है किन्तु मैं जाना उचित नहीं समझता। क्योंकि कुछ पता नहीं दुर्योधन वहां क्या कर बैठे। पांडवों को वर्षों के पश्चात् सुख का एक अनुभव मिला है। वहां जाकर उसे भंग ना करो पुत्र। मैंने आचार्य द्रोण से भी यही कहा है। वहां द्रुपद होंगे और आचार्य द्रोण और द्रुपद का आमना सामना उचित नहीं है पुत्र।

द्रुपद के राजमहल में द्रुपद बैठे हैं। चर ने आकर सूचना दी कि राजकुमार शिखंडी महाराज के दर्शनों की आज्ञा चाहते हैं। द्रुपद बोले, बुलाओ। शिखंडी ने कक्ष में प्रवेश किया, अभिवादन पिताश्री। द्रुपद ने कहा आयुष्मान भव। आओ हमारे निकट बैठो। महाराज युधिष्ठिर का पत्र तो तुम्हे मिल ही गया होगा। शिखंडी बोले- जी पिताश्री। परन्तु अर्जुन ने मुझे जो पत्र लिखा है उसमें भी यही लिखा है कि यदि हम सब लोग विवाह के लिये उपप्लव्य नहीं गये तो वे लोग यह समझेंगे कि हम उनके पुत्र अभिमन्यु को अपना नहीं मानते। इसलिये हम सब का वहाँ जाना आवश्यक है। मैं तो यह चाहता हूं कि हम अपनी पूरी सैनिक शक्ति के साथ वहां चलें। हो सकता है कि वहां यह निर्णय ले लिया जाये कि विवाह के उपरान्त हम तुरन्त हस्तिनापुर पर आक्रमण कर दे। मैं द्रोण की प्रतीक्षा में बूढा हो गया। शिखंडी जो आज्ञा। मैं भी तो एक युद्ध की

प्रतीक्षा कर रहा हूं पिताश्री। आपने तो एक ही जन्म की प्रतीक्षा से थक गये पिताश्री। कभी-कभी ऐसे प्रतीक्षाओं के लिये एक जन्म भी छोटा पड जाता है। जीवन स्वयं एक प्रतीक्षा है। अपने लक्ष्य की ओर भागता रहता है। यदि वो लक्ष्य सामने से हट जाये तो जीवन दिशाहीन, अर्थहीन हो जाता है। इसलिये आप प्रतीक्षा से न घबराइये पिताश्री। द्रुपद बोले, कभी कभी तुम्हारी बातें मेरी समझ में नहीं आती पुत्र। और फिर तुम हमसे कितना अलग-थलग रहते हो। जब मैं राजसूय यज्ञ के लिये इन्द्रप्रस्थ गया था तो वो पांडव... पांडवों की बात छोडो वे अपने हैं। गंगापुत्र भीष्म भी तुम्हें याद कर रहे थे। शिखंडी बोले, उनसे मिलने के लिये तो मैं स्वयं व्याकुल हूं। परन्तु आप चिन्ता न कीजिये पिताश्री। जैसे आपने एक विशेष लक्ष्य के लिये धृष्टद्युम्न की कामना की और वो अग्नि से उत्पन्न हुआ वैसे भी मैं भी अपने एक विशेष लक्ष्य के लिये अपनी चिता की राख से उत्पन्न हुआ हूं। आपने मुझे भगवान से नहीं मांगा। मैं स्वयं आपके घर आया था और इसका अर्थ यह है कि मेरे लक्ष्य की ओर जानेवाला मार्ग कदाचित यहीं से निकलता है।

अभिमन्यु व अन्य पाँचों पांडव पुत्र श्रुतसेन, सोमश्रुत, प्रतिविन्ध्य आदि द्रौपदी के पास मिलने जा रहे हैं। शतानीक बोला, भ्राताश्री समस्या यह है कि इतने वर्षों के उपरान्त माताश्री की सेवा में जा रहे हैं। अभिमन्यु बोले, तो इसमें इतनी घबराने की क्या आवश्यकता है? शतानिक बोला, क्या माताश्री हमें पहचान लेगी? अभिमन्यु बोले- पहचान क्यों नही लेगी। माताओं के पास अपने पुत्रों को देखने के लिये और पहचानने के लिये एक तीसरी आंख जो होती है। और ये तीसरी आंख तो अपने पुत्रों को पहिचानने में भूल कर ही नहीं सकती। फिर भी यदि हमारा परिचय करवाने कृष्ण मामा साथ होते तो असमंजस की यह समस्या ही खडी नहीं होती। श्रुतकर्मा बोले, इसमें तो बडा पराया पन लग रहा है कि मैं चरणस्पर्श के बाद कहूं कि हे माताश्री मैं अर्जुनपुत्र श्रुतकर्मा हूं। वो तुम्हें यह कहने का अवसर ही नहीं देगी। श्रुतसेन बोला, फिर भी यदि कृष्ण मामा साथ होते तो अच्छा ही होता। आप तो चिन्ता ही न करे सोम भैया। यदि वे परिचय न भी दे तो भी आप पहिचान लिये जायेंगे कि आप मझले ताऊ भीम के पुत्र है। सोमश्रुत बोले, देखो शतानीक यदि मैंने नकुल काका को बता दिया कि तुम मुझे सताते रहते हो। शतानीक बोले- क्षमा करना भैया। श्रुतसेन बोले- फिर भी समस्या तो वही की वही है। उनसे अपना परिचय करवाने में असमंजस की स्थिति तो है। सहदेव पुत्र, वो मुझे तो ठीक से याद भी नहीं माताश्री। चिन्ता न करो श्रुतसेन। हम उन्हें भली भांति याद होंगे। चलो।

द्रौपदी के भवन में सुभद्रा और कृष्ण- द्रौपदी बोली, यह तो बडा अन्याय है केशव। मेरे पुत्रों को अपने साथ क्यों नहीं लाये? सुभद्रा बोली, मैंने तो भैया से बहुत कहा दीदी। परन्तु ये भला किसकी सुनते हैं। कृष्ण बोले, अच्छा तो अब द्रौपदी से मिल गई। द्रौपदी बोली, इसमें मिलने न मिलने का क्या प्रश्न है? ये तो स्वयं मां है। मां की पीडा को मां ही समझ सकती है। १३ वर्षों के वियोग का अर्थ तो आप समझते होंगे देवकीनन्दन। कृष्ण बोले, इसे मेरा निहीत स्वार्थ मान लो। भाई से मिलने का स्वाद पुत्रों से मिलने के स्वाद से भिन्न होगा द्रौपदी। और मैं ये दोनों स्वाद लेना चाहता था। फिर इस दृश्य से अच्छा तो कोई और दृश्य हो ही नहीं सकता कि स्वयं माता अपने पुत्रों का चुम्बन ले रही है। और मैं यह दृश्य चैन से बैठकर देखना चाहता था। इसलिये सुभद्रा को लेकर मैं पहिले ही तुम्हारे पास चला आया। द्रौपदी बोली, और सबसे तो मिल चुके होंगे। कृष्ण बोले, नहीं, पुत्रों पर पहिला अधिकार केवल माता का होता है।

पांचो पांडव पुत्र श्रुतसेन, प्रतिविन्ध्य, श्रुतसोम, सुतकर्मा, शतानीक आते हैं। आकर द्रौपदी को प्रणाम किया। अभिमन्यु ने द्रौपदी का चरणस्पर्श किया। द्रौपदी बोली, तुम्हारे केशों से तो मेरी सुभद्रा की सुगन्ध आ रही है। तो तुम

सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु हो। आयुष्मान भव। कृष्ण बोले, यह क्या घीसा फिटा आशीर्वाद दे दिया द्रौपदी। ये आयुष्मान भव ये तो जो कोई चरणस्पर्श करता है वो यह आशीर्वाद तो पा ही जाता है। मुझे अपने भान्जे के लिये यह आशीर्वाद स्वीकार नहीं है। यह एक विशेष व्यक्ति है इसे कोई विशेष आशीर्वाद दो। द्रौपदी तो फिर आप ही बताइये कि मैं इसे क्या आशीर्वाद दूं? कृष्ण बोले, तुम माता हो। तीनो लोक तुम्हारी मुट्ठी में है जो चाहे दे दो। इसे तो कोई ऐसा आशीर्वाद दो कि लोग इसे पहिचान लें कि ये तो द्रौपदी का दिया हुआ और अभिमन्यु को मिला हुआ आशीर्वाद है। जो आशीर्वाद इसे तुमने दिया वो तो ब्राह्मणों का आशीर्वाद है। तुम तो कोई ऐसा आशीर्वाद दो जिससे क्षत्रियता की सुगन्ध आवे। द्रौपदी बोली, भगवान तुम्हारे आत्मसम्मान और आत्मबल की रक्षा करे। इतिहास सदैव तुम्हारा नाम उसी आदर के साथ ले जिसके साथ वो तुम्हारे पिताश्री का नाम लेनेवाला है। हे सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु मैं तुम्हे आशीर्वाद देती हूं कि तुम स्वयं ही अपना परिचय बनो और तुम्हारा नाम वीरता का प्रतीक बन जाये। भगवान तुम्हे.... कृष्ण बीच में बोल उठा क्या अपने शेष पुत्रों के लिये कोई आशीर्वाद बचाकर नहीं रखोगी कृष्णा? प्रतिविन्ध्य ने द्रौपदी के चरण स्पर्श किये। द्रौपदी बोली पुत्र प्रतिविन्ध्य मैं ब्राह्मणवाला आशीर्वाद तो दे नहीं सकती फिर ये आशीर्वाद देती हूं कि तुम धर्मराज के पुत्र हो तो धर्म के काम आओ। शतानीक बोले- किन्तु आपने बडे भैया को पहिचाना कैसे माताश्री। द्रौपदी बोली- जैसे तुम्हारी चंचलता से पहिचाना कि तुम शतानीक हो वैसे ही इसकी शील और दृढ़ता से पहिचाना कि यह प्रतिविन्ध्य है। श्रुतसोम बोला- बडे भैया ठीक ही कहा करते थे कि माताश्री के पास तीसरी आंख भी होती है। माताश्री। द्रौपदी बोली, माता के पास केवल तीसरी आंख ही नहीं होती पुत्र श्रुतसोम, इसके पास एक और हृदय भी होता है जिसमें केवल उसके पुत्र रहते हैं। कृष्ण बोला देख रही हो न सुभद्रे ऐसा लगता है जैसे इस कक्ष में तुम और मैं है ही नहीं। मैं तो चला। द्रौपदी बोली, ऐसे न कहो माधव। भला तुम किसी कक्ष में समा सकते हो? तुम्हारे लिये तो बडे से बडा हृदय भी छोटा पड जाये। परन्तु ममता से ईर्ष्या तो मत करो। मैंने इन छओं को तेरह वर्षों के पश्चात देखा है। जाओ तुम लोग। मैं तुम लोगों की ओर नहीं देखूंगी। कृष्ण बोले, पांचाली मैं तो केवल ठठोल कर रहा था। माता और पुत्र का सम्बन्ध भगवान और भक्त के सम्बन्ध से भी कहीं अधिक भरपूर होता है। और यदि ऐसा न होता तो तुम जिसे नारायण कहती हो वह प्रकट होता, जन्म नहीं लेता। इसलिये जी भर के इन पुत्रों का लाड करो। मुझे तो इस शुभ विवाह के लिये आये हुये अतिथियों की देखभाल करनी है। ये विवाह भरतवंशियों के लिये बहुत महत्वपूर्ण है।

राजा विराटके घर शफ, भेरी और गोमुख आदि भाँति-भाँतिके बाजे बजने लगे। अन्त:पुरकी सुन्दरी स्त्रियाँ नाना प्रकार के आभूषण और वस्त्रोंसे सज-धजकर कानोंमें मणिमय कुण्डल पहने रानी सुदेष्णाको आगे करके महारानी द्रौपदीके यहाँ चलीं। वे राजकुमारी उत्तराका सुन्दर श्रृङ्गार करके उसे सब ओरसे घेरे हुए चल रही थीं। द्रौपदीके पास पहुँचकर उसके रूप, सम्पत्ति और शोभाके सामने सब फीकी पड़ गयीं। अर्जुनने सुभद्रानन्दन अभिमन्युके लिये सुन्दरी विराटकुमारीको स्वीकार किया। उस समय वहाँ इन्द्रके समान वेष-भूषा धारण किये राजा युधिष्ठिर भी खड़े थे, उन्होंने भी उत्तराको पुत्रवधूके रूपमें स्वीकार किया। श्रीकृष्णके सामने अभिमन्यु और उत्तराका विवाह हुआ। विवाहकालमें विराटने प्रज्वलित अग्निमें विधिवत् हवन करके ब्राह्मणोंका सत्कार किया और दहेजमें वरपक्ष को वायुके समान वेगवाले सात हजार घोड़े, दो सौ हाथी तथा बहुत-सा धन दिया। साथ ही राजपाट, सेना और खजानेसहित अपनेको भी सेवामें समर्पण किया।

विवाह सम्पन्न हो जानेपर युधिष्ठिरने भगवान श्रीकृष्णसे भेंटमें मिले हुए धनमें से ब्राह्मणोंको बहुत कुछ दान किया।

हजारों गौएँ, रत्न, वस्त्र, भूषण, वाहन, बिछौने तथा खाने-पीनेकी उत्तम वस्तुएँ अर्पण कीं। उस महोत्सवके समय हजारों-लाखों हृष्टपुष्ट मनुष्योंसे भरा हुआ मत्स्यनरेश का वह नगर बहुत ही शोभायमान हो रहा था। अभिमन्यु का विवाह विराट नगर में उत्तरा के साथ बडे धूमधाम से हुआ। उत्तरा और अभिमन्यु ने सबसे आशीर्वाद लिया। द्रौपदी ने उत्तरा को सौभाग्यवती भव का आशीर्वाद दिया।

खूब आडंबर के साथ अभिमन्यु और उत्तरा का विवाह संपन्न हुआ। सुभद्रा, बलराम, आठों पटरानियां, द्रौपदी के पांचों पुत्र, द्रौपदी के पिता, भाई एवं अन्य अनेक राजा विवाह में सम्मिलित होने पधारे थे। बस मां कुंती नहीं आ पायीं। विदुर के महल में ही अस्वस्थ होकर पड़ी रहीं। राजा विराट ने उत्तरा की विदाई की।

**तितली सी सुंदर होती है बेटियाँ। घर में खुशियाँ लाती है बेटियाँ।**
**हिरनी सी छलाँगे भरती घर भर। मोरनी सी नाचती फिरती है बेटियाँ।।**
**घर आँगन में ोनक उनकी उपस्थिती से। चिडियों की चहक होती है बेटियाँ।।**
**रोशन करेगा बेटा तो एक ही कुल को। दो-दो कुल की लाज होती है बेटियाँ।।**
**कोई नहीं है यारों, एक दुसरे से कम। हीरा अगर है बेटा तो, मोती है बेटियाँ।।**
**बेटी पीछे नहीं बेटे से एक भी कदम। बेटा सभ्यता, तो संस्कृति होती है बेटियाँ।।**
**काँटों की राह पर खुद ही चलती रहेगी। पर औरों के लिए फूल बोती है बेटियाँ।।**
**विधि का विधान है यही, समाज की है परम्परा। अपनों को छोड़, पिया के घर जाती है बेटियाँ।।**
**बेटी तो धन होती है पराया, यह सुनते आये है। दर्द विदाई का क्या होता, वो आज समझ पाये है।।**
**गम और खुशी का रिश्ता कैसा, बड़ा ही अजीब है। यह अपनी परछाई अपने से ले रही है आज विदाई।।**

किशोरी नववधू उत्तरा की अनिंद्य रूप-शोभा पर मुग्ध हो सुभद्रा कहने लगी- जीजी तुम्हारी बहू रूप में वैसे तुमको पार नहीं पा सकेगी, मगर इस जैसी सुंदरी पाना कठिन है। अब बहू ढूंढने का दायित्व तुम्हीं पर छोड़ दूंगी। द्रौपदी के और पांच पुत्र हैं, चुन-चुन कर रूपवती राजकुमारी लाना।

सुभद्रा की बात पर सब हंसी का ठहाका लगा रहे थे। द्रौपदी ने दीर्घ सांस छोड़कर कहा- पहले वे लायक आदमी बनें। जन्म से ही तो इधर-उधर बिखर रहे हैं। पता नहीं क्या लिखा है भाग्य में...

इतने दिन बेटों को छोड़ वन में फिरती रही। आज उन्हें अपना कहने को साहस नहीं होता। फिर भी सुभद्रा की बात सुन मां के मन की कितनी बातें जाग उठीं। कल्पना नेत्रों से देखने लगी- मुकुट पहने पांचों पुत्र हैं- उनके पास अनिंद्य सुंदरी राजकन्यायें। नेत्र सजल हो उठे। सोचा- और कौन-सा सुख चाहिए- बस। यही सपना सफल हो जाये, तो वानप्रस्थ ले लें। विवाह के बाद अभिमन्यु और उत्तरा को साथ लेकर सुभद्रा चल पड़ी विदुर के महल की ओर। मां कुंती का आशीर्वाद लेना था। बेटों के दु:ख में छटपटाती मां कुंती को शायद इस विवाह पर सर्वाधिक आनंद हुआ। परिणत वयस में रोग शैया पर लेटी जीवन के नाना दु:ख दर्दों को भुलाने के लिए किशोर बहू उत्तरा मन मुग्धकर एक खिलौना थी। उत्तरा के सुखमय दांपत्य में मातामही कुंती शायद अपने विडंबित दांपत्य और दु:खपूर्ण मातृत्व की कसक भूल गई होंगी।

# विराट पर्व समाप्त

HHH(२८५)HHH

# उद्योग पर्व


१) कृष्ण और सांब का सम्वाद २८८

२) विराट सभा में पांडवों का राज्य
वापिस लौटाने के बारे में विचार विमर्श २९३

३) भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और विदुर की
धृतराष्ट्र को समझाने के लिये मन्त्रणा २९८

४) हस्तिनापुर में शान्तिदूत के आने की प्रतिक्रियायें २९९

५) द्रुपद के राजपुरोहित का कौरवों की राजसभा में
पांडवों का राजदूत बनकर आना ३०२

६) धृतराष्ट्र का संजय को बुलाकर उसे समझाना
और पांडवों के पास भेजना ३०४

७) उपप्लव्य में संजय का आना और
युधिष्ठिर को धृतराष्ट्र का सन्देश सुनाना ३०६

८) संजय की धृतराष्ट्र से भेंट ३१३

९) धृतराष्ट्र को विदुर का उपदेश (विदुर नीति) ३१५

१०) विदुर नीति ३१६

११) सनत्सुजात ऋषिका उपदेश ३४३

१२) संजय का कौरवों की राजसभा में
युधिष्ठिर का सन्देश सुनाना ३५५

१३) अर्जुन और दुर्योधन का श्रीकृष्ण से
सहायता मांगने के लिये द्वारिका जाना ३६७

१४) कौरवों की सभा में कृष्ण का
शान्ति दूत बनकर जाने की प्रस्तुति ३७२

१५) शान्ति दूत कृष्ण पर पांचाली का आक्रोश ३८५

१६) श्रीकृष्ण का शान्तिदूत बनकर हस्तिनापुर के लिये प्रस्थान ३९९
१७) कृष्ण का शान्तिदूत बनकर हस्तिनापुर में आगमन ४०४
१८) कृष्ण का कौरवों की राजसभा में सन्धि प्रस्ताव प्रस्तुत करना ४१८
१९) कृष्ण की दुर्योधन के साथ संधि वार्ता विफल व
कुन्ती का युधिष्ठिर को सन्देश ४३४
२०) श्रीकृष्ण का एकान्त में कर्ण से
कर्ण के जन्म का रहस्योद्घाटन ४४५
२१) सूर्य का कर्ण को इन्द्र से सावधान रहने का सन्देश ४५९
२२) इन्द्र का कर्ण से कवच-कुण्डल लेकर
अमोघ शक्ति प्रदान करना ४६५
२३) कुन्ती की कर्ण से भेंट और माँ-पुत्र का सम्वाद ४७०
२४) श्रीकृष्ण का पांडवों के पास आकर
युद्ध होने का निश्चय बताना ४९१
२५) दुर्योधन का पितामह भीष्म को
अपनी सेना का प्रधान सेनापति बनाना ५०४
२६) विदुर का मन्त्रीपद से त्याग ५१५
२७) धृष्टद्युम्न को पांडवों की सेना का सेनापति बनाना ५१७
२८) बलराम का युद्ध से तटस्थ हो तीर्थयात्राके लिये प्रस्थान ५२३
२९) दुर्योधनका शकुनि पुत्र उलूक को
पांडवों के पास अपना सन्देश भेजना ५२७
३०) मद्र नरेश शल्य का दुर्योधन के साथ युद्ध में ५३६
कर्ण का सारथी बनने का पद ग्रहण करना
३१) युद्धकी प्रस्तुति और दोनों सेनाओंका
युद्धभूमि कुरुक्षेत्र के लिये प्रस्थान ५४३

# उद्योग पर्व

## १) कृष्ण और सांब का सम्वाद

प्रात: जब सांब और लक्ष्मणा कृष्ण को प्रणाम करने आए तो कृष्ण की दृष्टि से यह छिपा नहीं रह सका कि लक्ष्मणा के चेहरे पर सदा के समान वह सहज उल्लास नहीं था। वे लोग लौटने लगे तो कृष्ण ने सांब को रोक लिया और पूछा, क्या बात है पुत्र। लक्ष्मणा प्रसन्न नहीं दीखती? तुम लोगों में परस्पर कोई कहा-सुनी हुई है क्या?

सांब कुछ अटपटाया और फिर बोला, वह... पिताजी। इन दिनों उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं है।

यही तो पूछ रहा हूं कि क्या हुआ है? क्या कष्ट है उसको?

सांब चुपचाप खड़ा उनकी ओर देखता रहा, जैसे सत्य बोल न सकता हो और झूठ बोलना न चाहता हो।

कृष्ण बोले, बैठो। इसका अर्थ है कि कोई साधारण-सी बात नहीं है। कुछ ऐसा है कि उस विषय में मुझे बताते हुए भी तुम्हें संकोच हो रहा है। हमारे परिवार में दुराव की परंपरा नहीं है पुत्र। बात चाहे कितनी भी अप्रिय क्यों न हो। यदि परिवार में दुराव हो तो परिवार बिखरने में देर नहीं लगती। सांब बोला, नहीं। ऐसी तो कोई बात नहीं है पिताजी। वह प्रसन्न नहीं है। नहीं। यह बात भी नहीं है। वस्तुत: वह चिंतित और आशंकित है। कृष्ण बोले, क्या चिंता है? कैसी आशंका है?

सांब बोला, पांडवों का वनवास और अज्ञातवास पूर्ण हो गया है। और उसे चिंता है कि पाण्डव अपना राज्य वापस माँगेंगे। कृष्ण बोले, तो इसमें चिंता की क्या बात है? इसके कारण लक्ष्मणा अपनी किसी संपत्ति से वंचित नहीं होगी। पांडव अपना अधिकार ही तो माँगेंगे। उन्हें अपना राज्य न माँगना होता तो वे लोग वनवास और अज्ञातवास जैसी कठोर प्रतिज्ञाएँ क्यों पूर्ण करते। सांब ने उत्तर दिया, वह तो ठीक है। किंतु उसकी मान्यता है कि उसके पिता, पांडवों से अपने राज्य की रक्षा करना चाहेंगे। कृष्ण बोले, दुर्योधन के राज्य को पांडवों से किसी प्रकार का कोई भय नहीं है। वह अपने राज्य की रक्षा करेगा अथवा पांडवों का राज्य पचा जाना चाहेगा?

सांब ने कहा, वह इस ढंग से नहीं सोचती। वह अपने पिता के ही समान यह मानती है कि जो राज्य एक बार उसे पिता को मिल गया, वह उनका हो गया; चाहे वह किसी भी प्रकार मिला हो। अब उसकी रक्षा करना उनका धर्म है। इसलिए यदि पांडव उसके पिता से इंद्रप्रस्थ का राज्य वापस माँगेंगे, तो अनिवार्यत: युद्ध होगा।

कृष्ण बोले, पांडवों द्वारा अपना राज्य माँगे जाने पर युद्ध नहीं होगा। युद्ध होगा, दुर्योधन द्वारा द्यूत के अवसर पर की गई प्रतिज्ञा पूरी न करने पर। सांब बोला, यह तो एक ही बात है। कृष्ण बोले, एक ही बात है?

सांब बोला, एक ही बात तो है कि युद्ध होगा। चाहे पांडव राज्य मांगें अथवा चाहे कुरुराज उसे न लौटाएं। परिणाम तो एक ही होगा। वैसे भी उसके पिता यह मानते हैं कि यदि युद्ध में जीते गए राज्य की रक्षा की जाती है और वह धर्मसंगत है, तो द्यूत में जीते गए राज्य की भी रक्षा होनी चाहिए और उसकी रक्षा के लिए किया गया युद्ध भी धर्मसंगत है।

कृष्ण बोले, किसी दूसरे के राज्य को छीनना अधर्म है, चाहे वह युद्ध के माध्यम से ही क्यों न छीना गया हो। द्यूत के माध्यम से तो किसी के राज्य को छीनने की कल्पना भी अधर्म है। दस्यु का धन अपना नहीं होता अत: उसकी रक्षा के लिए किया गया रक्तपात क्षात्र-धर्म नहीं होता। यह धर्म-अधर्म की चर्चा फिर कभी करेंगे। अभी तो यह बताओ कि लक्ष्मणा अस्वस्थ क्यों है? क्या वह युद्ध से भयभीत है?

सांब बोला, नहीं। वह युद्ध से भयभीत क्यों होगी। यदि युद्ध हुआ तो यह उसके पिता का पहला युद्ध तो नहीं होगा। उसकी आशंका यह है कि ऐसी स्थिति में यादवों की सेना पांडवों के पक्ष में उसके पिता के विरुद्ध लड़ेगी।

कृष्ण बोले, तो इसमें अनुचित क्या है? यादवों ने सदा धर्म के पक्ष में युद्ध किया है।

सांब बोला, वह चाहती है कि यादव अधर्म के विरुद्ध चाहे युद्ध करते रहें किंतु उसके पिता के विरुद्ध न लड़ें। वे भी तो हमारे वैसे ही संबंधी हैं, जैसे पांडव हैं। वरन् मुझे तो यह भी लगता है कि हम समान रूप से दोनों पक्षों के संबंधी हैं, इसलिए हमें प्रयत्नपूर्वक इस युद्ध को रोकने का प्रयत्न करना चाहिए।

कृष्ण बोले, हम युद्धप्रिय रक्तपिपासु हिंस्र जीव नहीं हैं। इसलिए हमने सदा ही युद्ध को रोकने का प्रयत्न किया है; किंतु शांति के नाम पर अधर्म-स्थापना के पक्षधर नहीं हैं हम। क्या यह सब मुझसे कहने के लिए लक्ष्मणा ने तुमसे कहा है?

सांब बोला, नहीं। उसने कहा तो नहीं; किंतु वह ऐसा चाहती अवश्य है।

कृष्ण बोले, तो तुम उसको बता दो कि अब वह स्वस्थ हो सकती है। तुमने वह सब मुझसे कह दिया है। कृष्ण मुस्करा रहे थे, यदि यह एक पुत्री की अपने पिता की सुरक्षा के लिए चिंता मात्र है, तो अत्यंत शुभ है; किंतु यदि इस प्रकार दुर्योधन यादवों को प्रभावित करने का प्रयत्न कर रहा है, तो तुम्हें उससे सावधान रहना चाहिए पुत्र।

सांब बोला, क्यों क्या अपने संबंधियों से सहायता लेना पाप है, अधर्म है? क्या मुझे अपनी पत्नी की प्रसन्नता का ध्यान नहीं रखना चाहिए? कृष्ण बोले, अपनी पत्नी हो, अपना भाई हो अथवा अपना पिता-किसी के लिए भी धर्म के मार्ग को अवरुद्ध करना पाप है। अपने संबंधियों का समर्थन करने और धर्म का विरोध करने के स्थान पर अपने संबंधियों को धर्म के मार्ग पर चलाने का प्रयत्न अधिक श्रेयस्कर है। युद्ध को रोकना चाहते हो, तो दुर्योधन को अधर्म करने से रोको। युद्ध रुक जाएगा। दुर्योधन की रक्षा करनी है तो उसे धर्म की रक्षा करने को कहो। उसकी रक्षा धर्म कर लेगा।

सांब बोला, पिताजी। वह चाहती है कि आप उसके पिता की रक्षा का वचन दें। कृष्ण बोले, मैंने आज तक केवल धर्म की रक्षा का वचन दिया है। वही अब भी दे रहा हूँ। इससे अधिक कुछ नहीं कह सकता। सांब ने प्रतिवाद किया, इसी बात से तो भयभीत है वह। वह यह मानती है कि आप धर्म की आड़ लेकर उसके पिता का विरोध करेंगे। कृष्ण बोले, मेरा किसी से कोई विरोध नहीं है; किंतु अधर्म से मेरी मैत्री भी नहीं है। इसलिए मुझसे भयभीत होने का कोई कारण नहीं है। भयभीत ही होना है तो अधर्म से हो। धर्म से मैत्री कर लो तो मुझसे स्वत: मैत्री हो जाएगी। सांब बोला, उसके पिता मानते हैं कि अपने राज्य की रक्षा करना उनका धर्म है। कृष्ण बोले, तो धर्म से उनका परिचय नहीं है। व्यक्ति की स्वार्थ बुद्धि से धर्म परिवर्तित नहीं हो जाता। धर्म तो एक ही रहेगा और वह सबकी रक्षा करेगा। दुर्योधन को पहले धर्म से अपना परिचय करना चाहिए। सांब बोला, सबका अपना-अपना धर्म होता है पिताश्री। आवश्यक तो नहीं कि जिसे आप धर्म समझते हैं, उसी को सब लोग धर्म मानें। मेरे लिए अपनी पत्नी को सुखी रखना भी धर्म है। वह अपने पिता की सुरक्षा के लिए चिंतित है, तो कुछ अनुचित तो नहीं है। मैं उसे सुखी देखना चाहता हूँ तो मुझे उसे उसके पिता की रक्षा की ओर से आश्वस्त करना होगा। कृष्ण बोले, मुझे खेद है सांब कि तुम मेरे पुत्र होते हुए भी अपनी पत्नी की अपेक्षाओं और अपने धर्म में अंतर नहीं कर पा रहे हो। धर्म व्यापक मानवता के हित में होता है। प्रकृति के नियमों के अनुकूल होता है। ईश्वर की इच्छा के अनुसार चलने में होता है। पत्नी को उसके अधर्म में सहयोग देना तुम्हारा धर्म नहीं है। पत्नी को प्रसन्न रखने के लिए उसके पिता के पापों में सहयोगी और सहभागी होना तुम्हारा धर्म नहीं है। सबका अपना-अपना धर्म नहीं होता। धर्म

परस्पर विरोधी नहीं हो सकता। सांब बोला, आप मनुष्य के व्यापक हित की बात कर रहे हैं, पांडवों के पक्ष से लड़कर अपने प्राण देने में यादवों का क्या हित है? हमने सदा ही उन्हें दिया है। जहाँ तक आपका वश चला, आपने उनके लिए अपना घर खाली कर दिया। वे तो उसे भी सँभाल नहीं सके। अब हस्तिनापुर जैसे राज्य से शत्रुता मोल लेकर उन पांडवों की ओर से युद्ध कर हम अपने प्राण दे देंगे तो किसका हित होगा? आप समझते हैं कि इस कार्य में यादव आपका साथ देंगे?

कृष्ण हंसकर बोले, तुम क्या समझते हो पुत्र कि धर्म का आचरण करनेवाला, उस आचरण से पहले यह सोचता है कि कौन उसका साथ देगा और कौन नहीं देगा? यदि ऐसा सोचते हो तो तुम्हें संसार का ज्ञान नहीं है। धर्म का आह्वान ईश्वरीय आह्वान है। वह अलंघ्य है। उसके लिए संगी-साथियों की प्रतीक्षा नहीं की जा सकती और न अपने सगे-संबंधियों से उसकी अनुमति ली जाती है। तुम यदि मुझसे यह कहना चाहते हो, अथवा तुम्हारी पत्नी तुमसे यह वचन चाहती है कि यदि दुर्योधन से युद्ध हुआ तो तुम उसके विरुद्ध नहीं लड़ोगे, तो मैं तुम्हारा मंतव्य समझ गया हूँ। कृष्ण धर्म का आचरण न यादवों के भरोसे करता है, न अपने पुत्रों के भरोसे।

सांब बोला, आप सदा सब पर अपनी ही इच्छा आरोपित करना क्यों चाहते हैं? माँ का भी सदा आप से यही विरोध रहा है। कृष्ण बोले, शांत मन से सोचो सांब। मैं पिता होकर अपनी इच्छा को तुम पर आरोपित नहीं कर रहा हूँ और तुम पुत्र होकर मुझे आदेश दे रहे हो। जांबवती का विरोध भी इसी कारण है। मैंने सदा उसे स्वेच्छा से जीवन जीने की स्वतंत्रता दी है, किंतु वह मुझे ऐसी स्वतंत्रता नहीं देना चाहती। स्मरण रहे जो दूसरों को स्वतंत्रता दे नहीं सकता, वह स्वतंत्रता की अपेक्षा भी नहीं कर सकता। सांब खीझकर बोला, आप पर कौन अपनी इच्छा आरोपित कर सकता है। और यदि मैं कह भी रहा हूँ तो क्या मैं यादवों को युद्ध में कटवाने के लिए कह रहा हूँ?

कृष्ण हँसकर बोले, जो लोग धर्म के लिए युद्ध नहीं करेंगे, वे क्या मरेंगे नहीं? उनका शरीर अमर रहेगा? ये सारे शरीर अपने समय पर नष्ट होंगे सांब। समय आने पर वे घर में, वन में, कहीं भी काल के गाल में समा जाएँगे; और समय न आया हो तो वे युद्ध के मध्य में से भी सुरक्षित लौट आएँगे। अच्छा है कि मनुष्य का जीवन धर्म-स्थापना के हित काम आए। अधर्म की रक्षा के लिए इस शरीर को बचाए रखने का क्या लाभ?

सांब बोला, मेरी समझ में आपकी ये बातें नहीं आतीं। मैं तो केवल यह सूचना आप तक पहुँचाना चाहता था कि सामान्य यादवों को धर्म के नाम पर पांडवों की ओर से युद्ध करने में कोई रुचि नहीं है। कृष्ण बोले, अच्छा है कि तुमने अपनी बुद्धि से यादवों का मूल्यांकन कर मुझे सूचित कर दिया। सांब के रुक जाने के पश्चात लक्ष्मणा सीधी चलती चली गई थी।

वह जैसे किसी आवेश में चल रही थी। अपनी और अपने परिवेश की उसे कोई चेतना नहीं थी। उसकी कल्पना अनेक चित्र बना और बिगाड़ रही थी। वह बहुत जीवंत रूप में देख रही थी कि इस समय पिता और पुत्र में क्या बातें हो रही थीं। श्रीकृष्ण ने सांब को रोक लिया था, उसे नहीं। अवश्य ही वे अपने पुत्र से लक्ष्मणा की उपस्थिति में चर्चा करना नहीं चाहते थे। ऐसी कौन-सी चर्चा थी जो वे अपनी पुत्रवधू के सामने नहीं करना चाहते थे। निश्चित रूप से वह उसके मायके के संबंध में ही रही होगी। वह पहले दिन से ही जानती थी कि उसके पिता उसके श्वसुर कृष्ण को प्रिय नहीं थे। वह यह भी जानती थी कि उसके पति अपने पिता के विरुद्ध नहीं जा सकते। श्रीकृष्ण पांडवों से वैसे ही बहुत प्रेम करते हैं। सदा ही उनकी सहायता के लिए भागदौड़ करते रहते हैं। अर्जुन पर तो जैसे वे अपने प्राण ही न्यौछावर कर देने को सदा तत्पर रहते हैं। उसके पति सांब ने भी अर्जुन से धनुर्विद्या प्राप्त की है। वह भी अपने गुरु से प्रेम करता है। ऐसे में वे पांडवों के विरुद्ध

कैसे जा सकते हैं। ऊपर से बुआ सुभद्रा स्वयं द्वारिका में उपस्थित हैं। वे जितनी कठोर महिला हैं, उनसे कोई कैसे आशा कर सकता है कि वे किसी को क्षमा कर देंगी। वे तो पहले ही दिन से अपने पुत्रों को युद्धाभ्यास में लगाए हुए हैं कि उन्हें बड़े होकर कौरवों का नाश करना है।

जाने इस समय उसके श्वसुर उसके पति को क्या कह रहे होंगे। कैसा आदेश दे रहे होंगे। वह यह कैसे देखेगी कि उसका यह सारा श्वसुरकुल शस्त्रास्त्र-सज्जित होकर उसके पितृकुल के लोगों की हत्या करने जाए। पांडव और किसी को क्षमा कर भी दें; किंतु वे उसके पिता को कभी क्षमा नहीं करेंगे। वह भीम तो जाने कब से उसके पिता के रक्त का पिपासु है। एक दासी ने आकर सूचित किया कि बलरामजी आपसे भेंट करने आ रहे हैं। लक्ष्मणा के मुख से अनायास ही निकला। ताऊजी। वह संभलकर बैठ गई और बोली, जा सादर लिवा ला।

लक्ष्मणा को लगा कि बलराम एकदम ठीक समय पर आए हैं। इस समय उनसे अधिक उपयुक्त व्यक्ति और कोई हो ही नहीं सकता था। सारी द्वारिका में यदि किसी को उसके पिता से वास्तविक प्रेम है, तो वे बलराम ही हैं। वह स्वयं सोचती भी तो कदाचित् उसके मन में उनका नाम न आता। यह तो प्रभु की ही कृपा है कि उन्होंने स्वत: ही ताऊजी को इस ओर आने के लिए प्रेरित कर दिया। बलराम के द्वार पर प्रकट होते ही लक्ष्मणा ने लपककर आतुरतापूर्वक उनके चरण स्पर्श किए।

बलराम बोले, दीर्घायु प्राप्त करो। सुखी रहो। सदा सुखी रहो। कैसी हो पुत्री? लक्ष्मणा बोली, आपकी कृपा है ताऊजी।

बलराम बोले, तो मेरा वह दुष्ट भतीजा जो संयोग से तुम्हारा पति है, कहां है? मुझे आते देखकर छुप गया है क्या?

लक्ष्मणा बोली, हम लोग पिताजी को प्रणाम करने गए थे। मैं तो प्रणाम कर चली आई, किंतु पिताजी ने उन्हें रोक लिया। बलराम बोले, उसे अकेले को रोक लिया। अरे तो क्या कृष्ण उसे तुम्हारे सामने नहीं पीट सकता था कि तुम्हें भेज दिया। लक्ष्मणा बोली, ताऊजी। वहाँ आर्यपुत्र को नहीं, आपके प्रिय शिष्य दुर्योधन को पीटने की तैयारी हो रही है।

बलराम बोले, क्या बात है पुत्री। तुम इतनी दुखी क्यों हो? ऐसा क्या अघटनीय घट गया कि मेरी पुत्री की आँखों से अश्रु ढुलक रहे हैं? लक्ष्मणा बोली, पांडवों का अज्ञातवास पूर्ण हो गया है ताऊजी। वे उपप्लव्य में प्रकट हो गए हैं। बलराम बोले, तो अच्छा ही हुआ। बेचारे बड़े कष्ट में थे। लक्ष्मणा बोली, वह तो ठीक है। किंतु अब वे लोग मेरे पिता से इंद्रप्रस्थ का राज्य माँगेंगे। पिता अपने राज्य की रक्षा करना चाहेंगे तो पांडव उनपर शस्त्र उठाएँगे। और उनके सबसे बड़े सहायक होंगे यादव। मैं यह कैसे देखूँगी कि मेरा श्वसुरकुल, मेरे पितृकुल का वध करने के लिए शस्त्र उठाए। मैं अपने पति की आरती उतारकर उन्हें युद्ध में भेजूँगी कि वे जाकर मेरे पिता तथा मेरे भाइयों का वध कर के आएँ। और यदि युद्ध में वे उनका वध नहीं करेंगे तो क्या वे अपने प्राण गँवाएँ। मैं तो दोनों ही ओर से मारी गई ताऊजी। लक्ष्मणा के अश्रु इस बार कुछ अधिक ही बह निकले।

बलराम बोले, पहले तुम अपने अश्रु पोंछो लक्ष्मणा। स्वयं को सँभालो, पुत्री। तुम जो कुछ कल्पना कर बैठी हो, अभी उसमें से कुछ भी घटित नहीं हुआ है। पांडव उपप्लव्य में बैठे हैं। तुम व्यर्थ ही व्याकुल हो रही हो। दुर्योधन तुम्हारा ही पिता नहीं है। वह मेरा परमप्रिय शिष्य है। तुम क्यों समझती हो कि वह असहाय है, अनाथ है, अक्षम है।

लक्ष्मणा बोली, आप बहुत भोले हैं ताऊजी। आप नहीं जानते कि वहाँ सैनिक तैयारियाँ हो रही हैं। मैंने देखा है, सुभद्रा बुआ सदा ही अपने पुत्रों को युद्ध की शिक्षा देती रही हैं। युद्ध तो होगा ही ताऊजी। पर आप मुझे वचन दीजिए, आप अपने शिष्य का वध करने नहीं जाएँगे। और सहसा ही लक्ष्मणा पर जैसे उन्माद छा गया, केवल पांडव ही तो आपके

संबंधी नहीं हैं। मेरे पितृकुल से भी तो आपका संबंध है। सुभद्रा बुआ अर्जुन की पत्नी हैं तो मैं भी तो आपकी पुत्रवधू हूँ। आप एक संबंध को स्वीकार करेंगे और दूसरे को अनदेखा कर जाएँ, यह तो उचित नहीं है। आप मध्यस्थ हैं, तो फिर आप एक ही पक्ष की सहायता कैसे कर सकते हैं? बलराम बोले, लक्ष्मणा। धैर्य धारण करो पुत्री। अभी ऐसा कुछ नहीं हुआ, जिसका कारण तुम इतनी व्याकुल हो रही हो। मैं तुम्हें वचन देता हूँ।

लक्ष्मणा झपटकर बोली, आप वचन तो दे देते हैं, पर उससे क्या होता है। होता तो वही है, जो श्रीकृष्ण चाहते हैं। आपने तो पहले भी, हमारे विवाह से पूर्व, पिताजी को वचन दिया था। पिताजी ने कहा था कि पांडवों की तुलना में आप हमें अपना शत्रु ही मानते हैं। और आपने कहा था कि आपने तो कभी ऐसा नहीं माना। बलराम ने लक्ष्मणा की ओर देखकर बोला, मुझे स्मरण है। अंतत: बलराम बोले, तुम व्यर्थ ही आशंकित हो पुत्री। मेरा विश्वास करो, तुम्हारा अथवा तुम्हारे पितृकुल का कोई अनिष्ट नहीं होगा; और यादवों के हाथों तो ऐसा अनिष्ट होने की कोई संभावना ही नहीं है।

लक्ष्मणा बोली, आप कहते हैं तो मैं मान लेती हूँ; किंतु मेरा मन बार-बार कहता है कि कुछ बहुत भयंकर होनेवाला है। पांडव प्रकट हो गए हैं। कुछ ही दिनों में उनका कोई न कोई दूत वहाँ आ पहुँचेगा और सारे यादव रणसज्जित होकर उनकी सहायता के लिए पहुँच जाएँगे। बलराम बोले, मुझ पर विश्वास कर सकती हो तो इसे निश्चित जानो कि तुम्हारी आशंकाएँ सत्य प्रमाणित नहीं होंगी। किंतु लक्ष्मणा को अब भी संतोष नहीं हो पा रहा था। वह विश्वास नहीं कर पा रही थी कि पांडवों अथवा श्रीकृष्ण का दुर्योधन विरोध समाप्त करने के लिए इतना ही पर्याप्त था। पर्याप्त था या नहीं, पर उसकी इच्छा थी कि वह अपनी सास जांबवती के सम्मुख भी अपनी चिंता प्रकट कर दे। अपने पति का विरोध करने में पत्नी जितनी समर्थ होती है, उतना कोई और हो ही कैसे सकता है।

अब द्रौपदी पांडवों की पटरानी और सुदेष्णा की समधन ही नहीं, उत्तरा की सास भी थीं। सुदेष्णा ने अपनी प्यारी पुत्री द्रौपदी को सौंप दी थी। अपने दु:स्वप्नों के क्षणों में वह देखती थी कि द्रौपदी, सुदेष्णा के व्यवहार का प्रतिशोध उसकी पुत्री से ले रही है। द्रौपदी को न कोई रोक सकता था, न परामर्श अथवा उपदेश दे सकता था। पांचों पांडव ही उसकी रक्षा को तत्पर नहीं थे, उसके अपने पिता और भाई भी यहाँ उपस्थित थे। विराट और उनकी सेना तो पाँच पांडवों का ही प्रतिकार नहीं कर सकती थी, पांचालों के आ जाने से तो स्थिति ही बदल गई थी। पांचाल ही क्यों, यादव भी तो थे। यादवों के महानायक, कृष्ण। पांडवों से उनका जो संबंध था, वह तो था ही, वे द्रौपदी के सखा भी थे।

ओम् शांति: शांति: शांति:। एक ओर शांति स्थापना की चेष्टा। दूसरी ओर युद्धंदेहि की ललकार। इसी में द्रौपदी के बाकी जीवन के सारे सपने धूल में मिल गए। बारह वर्ष वनवास के बाद एक वर्ष अज्ञातवास का समय पूरा कर दिया पांडवों ने। न्यायत: आधा राज्य इंद्रप्रस्थ वापस मिल जाना चाहिए। पर सारी चेष्टा व्यर्थ ही गई। अहंकारी, ईर्ष्यालु, दुराचारी कौरवों की स्वार्थ और अधर्म बुद्धि। इसके आगे महासमर को छोड़ दूसरा मार्ग ही कहां था।

शांतिपूर्ण मेल हो सके तो फिर युद्ध की आवश्यकता ही क्या? आदमी शांतिप्रिय होता है, पशु ही हर बात में कलह, रक्तपात, मारपीट करता है। सृष्टि पर आदिम युग से हालाँकि आदमी-आदमी के बीच अनेक कारणों से युद्ध होता रहा है। पर हर बार युद्ध का अंतिम फल मृत्यु, हाहाकार, रक्तपात, ध्वंस ही हुआ। एक पक्ष जीतता है, परंतु दोनों पक्षों की खूब क्षति होती है। दुर्लभ मानव जीवन अकाल में ही कुम्हला जाता है। सभ्यता की क्षति होती है। अर्थहानि, प्राणहानि, भय, शंका, दुश्चिंता, दु:ख दोनों पक्षों को क्षतिग्रस्त करते हैं। युद्ध से समाज की जो क्षति होती है, विजयी के लिए जय-पराजय फिर समान हो जाती है। अत: अंत तक युद्ध को टालना ही उचित है और समस्या का शांतिपूर्ण समाधान निकालने में ही लगे रहे युधिष्ठिर।

## २) विराटसभा में पांडवों का राज्य वापिस लौटाने के बारे में विचार विमर्श

वैशम्पायन बोले जनमेजय कुरु प्रवीर पांडव अभिमन्यु का विवाह कर उपप्लव्य नगर में थे। उसी समय विवाह में यादव श्रीकृष्ण, बलराम, सात्यकि, कृतवर्मा, श्रीकृष्ण पुत्र साम्ब, प्रद्युम्न आदि सभी उस ब्याह में सम्मिलत होने आये हुये थे। विवाह के दूसरे दिन प्रात: महाराज विराट की सभागृह में इन आये हुये अतिथियों का, सम्बन्धियों का समाज जुडा। महाराज विराट अपने पुत्र उत्तर सहित अपने आसनों पर आसीन हुये फिर वसुदेवजी सहित बलराम, श्रीकृष्ण विराजमान हुये। वहां पर पांचाल नरेश महाराज द्रुपद अपने पुत्रों सहित धृष्टद्युम्न और शिखंडी सहित आसनों पर विराजमान हुये। तत्पश्चात भीम, नकुल, अर्जुन, सहदेव तथा उनके पुत्र प्रतिविन्ध्य, श्रुतकर्मा, श्रुतसोम, शतानीक, अभिमन्यु इत्यादि सभी सुवर्णजटित मनोहर सिंहासनों पर आसीन हुये। सब लोगों के आ जानेपर सब लोग आपस में मिलकर तरह-तरह की परस्पर बातचीत करने लगे।

महाराज द्रुपद उठकर बोले अब तो वासुदेव कृष्ण भी पधार चुके हैं मत्स्यदेश के नरेश राजा विराट यदि आज्ञा दे तो हम कौरवों के विरुद्ध होनेवाले युद्ध की योजना का परामर्श करें। कृष्ण बोले क्या युद्ध युद्ध के प्रश्न पर तो विचार करना उचित नहीं लगता। द्यृष्टद्युम्न उठ खडा हो बोला ये आप क्या कह रहे हैं मधुसूदन? कृष्ण बोले अभी तो मैंने कुछ कहा ही नहीं है प्रिय द्यृष्टद्युम्न पर कुछ कहने अवश्य जा रहा हूँ। मैं भी कौरवों और पांडवों का इतिहास जानता हूँ। जानता हूँ कि गान्धार नरेश सुबल पुत्र शकुनि ने कैसा घोर कपट किया और यह भी जानता हूं कि इस कपट के कारण धर्मराज युधिष्ठिर क्या-क्या हारे? बनवास की सारी कथा भी जानता हूँ और अज्ञातवास का इतिहास भी। पांडव लोग उस समय भी अपना राज्य लेने में समर्थ थे परन्तु वे सत्यनिष्ठ थे इसलिये उन्होंने तेरह वर्षोंतक अपने कठोर व्रत नियम का पालन किया। ये पांडव चाहते तो पृथ्वी और स्वर्ग दोनों को भी जीत सकते थे। केवल अपने प्रण की मर्यादा को सम्भाले चुपचाप वन-वन भटकते रहे और १३ वे वर्ष में मत्स्य नरेश के भवन में दासों के जैसा जीवन व्यतीत किया। मैं यह सब कुछ जानता हूँ वत्स द्यृष्टद्युम्न। शिखंडी उठ खडा हो बोला फिर भी आप युद्ध को उचित नहीं समझते वासुदेव। कृष्ण बोले युद्ध तो अन्तिम चयन होता राजकुमार जब शान्ति के सारे मार्ग बन्द हो चुके हो। वह तो अन्तिम विकल्प होता है। अभी तक तो महाराज युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर नरेश से यह भी नहीं कहा है कि उन्होंने अपना प्रण पूरा कर लिया है। इसलिये उन्हे उनका इन्द्रप्रस्थ मिल जाना चाहिये। हम सब अभिमन्यु के विवाह के अवसर पर यहां पांडवों का सुख बांटने आये है। यदि सुख बांटने का हमें अधिकार है तो उनका दु:ख बांटना भी हमारा कर्त्तव्य है। धृतराष्ट्र ने पांडवों का पैतृक राज्य छीनने के लिये उनके शैशवकालसे ही कितने प्रयत्न किये हैं। जब वे अन्यायपूर्ण ढंग से पांडवों का वध नहीं कर पाये तो धर्मराज युधिष्ठिर को उनके धर्म बन्धन में बांधकर ज्येष्ठ पिता के रूप में द्यूत खेलने की आज्ञा दी। युधिष्ठिर न तो कोई द्यूतविद्या में पारंगत या ज्ञानी है और न ही वे द्यूत खेलने के व्यसनी किन्तु वे अपने ज्येष्ठ पिताश्री की आज्ञा शिरोधार्य कर द्यूत खेले और कपट से हराये गये। हारनेवाले के साथ द्यूत की शर्त भी उन्होंने पूरी कर ली। अब उन्हे उनका अपना राज्य मिलना चाहिये। धर्मराज अधर्म से मिला हुआ तो इन्द्र का राज्य भी नहीं चाहते। वे हस्तिनापुर का अपना पैतृक राज्य भी नहीं मांग रहे। वे तो अपने बाहुबल से अर्जित अपनी सम्पत्ति की मांग कर रहे हैं। हम सबको मिलकर अब वह मार्ग खोजना है जिससे धर्म और न्याय पर चलते हुये कौरवों से उनके सम्बन्धों की क्षति न पहुंचाते हुये युधिष्ठिर और दुर्योधन दोनों का हित हो। दुर्योधन ने युधिष्ठिर का यह राज्य पांडवों को किसी युद्ध में पराजित कर नहीं जीता है। उसने अधर्मपूर्वक कपट द्यूत में उनके राज्य का अपहरण किया है। हम सब मिलकर दुर्योधन के इस बढ़ते हुये लोभ को रोकें। अब पांडव और उत्पीड़न

नहीं सहेंगे। इस बार यदि दुर्योधन ने उनका राज्य नहीं लौटाया तो ये पांडव सक्षम हैं वे उन सबका वध कर देंगे। दुर्योधन ने इसके लिये यदि युद्ध छेडा तो पांडव उसका दृढ़ प्रतिरोध करेंगे। अब आप लोग कोई ऐसा उपाय सोचकर बताये जो कौरव और पांडवों के लिये धर्मानुकूल और कीर्तिकर हो। यदि धर्म और अर्थ से युक्त हो तो ये एक गांव का आधिपत्य स्वीकार करने में भी कोई आपत्ति नहीं करेंगे। यद्यपि धृतराष्ट्र पुत्रों के कारण इन्हें असह्य कष्ट भोगने पडे है फिर भी वे अपने सुहृदों सहित सर्वदा उन कौरवों का मंगल ही चाहते रहे हैं। बाल्यकाल से ही कौरव अपने स्वभाव वशीभूत इनसे द्वेष कर इनके पीछे पडे हुये है और इनका राज्य हडपने के लिये तरह-तरह के षडयन्त्र रचते रहे हैं। इतने में महाराज विराट उठकर बोले क्या आप यह समझते है कि धृतराष्ट्र इनके स्वर्गीय पिता के सिंहासन पर बैठे इनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब धर्मराज युधिष्ठिर अपना राज मांगे और वे उन्हें उनका राज्य लौटा दें। कृष्ण बोले मैं महाराज धृतराष्ट्र का अभिभाषक नहीं हूँ मत्स्य नरेश। अभी हम नहीं जानते कि दुर्योधन के मन में क्या है? दूसरी तरफ का विचार जाने बिना आप किसी कर्त्तव्य का ठीक-ठीक निश्चय भी कैसे कर सकते हैं? इसलिये मैं प्रस्ताव करता हूँ कि पहिले महाराज युधिष्ठिर का कोई दूत वहां जाये जो पवित्रात्मा, धर्मप्राण, कुलीन, शालीन और सावधान व्यक्ति हो, बातचीत की कला में निपुण हो जो कुरु वृद्धों से बात कर सके। जाकर उन्हें समझाये और कोई ऐसा शान्ति मार्ग या प्रस्ताव निकाले जिससे दोनों पक्षों का हित हो, उनके धर्म न्याय और यश की रक्षा हो। यह कहकर श्रीकृष्ण मौन हो गये और हाथ जोड सबको प्रणाम कर अपने स्थान पर बैठ गये।

बलराम उठकर बोले कृष्ण ने बहुत सुविचारित वक्तव्य दिया है। मैं अनुज कृष्ण से पूर्ण सहमत हूं। श्रीकृष्ण का वक्तव्य बडा ही धर्मयुक्त मधुर और पक्षपात शून्य है। युद्ध का तो प्रश्न ही क्या है? जो कुछ हुआ है महाराज युधिष्ठिर के द्यूत व्यसन के कारण हुआ है। तो फिर हम गान्धार नरेश शकुनि, अंगराज कर्ण और दुर्योधन को कैसे उत्तरदायी ठहरा सकते हैं? युधिष्ठिर और दुर्योधन दोनों ही हमारे सम्बन्धी है इसलिये हम दोनों के ही हित की आकांक्षा करते है। हम दोनों के बीच मध्यस्थ रहेंगे। वीर कुन्ती पुत्र पांडव आधा राज्य कौरवों के लिये छोडकर शेष आधे के लिये प्रयत्न करे तो ठीक है। अत: यदि दुर्योधन उन्हे आधा राज्य दे दे तो बडी प्रसन्नता और आनन्द से रह सकता है। मैं चाहता हूं कि उचित यही है कि कोई ऐसा व्यक्ति दूत बनकर जाये जो महाराज धृतराष्ट्र को युधिष्ठिर का दृष्टिकोण समझा सके। वो भी आक्रमक स्वरों में नहीं नम्रता के साथ। ये रक्त सम्बन्धियों की बात है। व्यर्थ जल बहाना भी जल का अपमान है और आप लोग तो रक्त बहाने की बात कर रहे हैं। इसलिये जो भी जाये वो शान्ति दूत बनकर जाये क्योंकि शान्ति द्वारा पायी हुई विजय ही शुभ विजय होती है, शुद्ध भी। वह तटस्थ व्यक्ति हो तथा भीष्म, धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य इत्यादि से चर्चा कर कोई शान्तिपूर्ण समाधान निकाले। दुर्योधन और उनके सहयोगियों को उत्तेजित करनेवाली कोई बात न करे। युद्ध के विषय में तो कोई चर्चा ही नहीं करे। युद्ध से किसी का भला नहीं होता। हम दुर्योधन के भी शुभ चिन्तक हैं अत: उसके बढे हुये लोभ को रोकना चाहिये। परधर्म के नाम पर पांडवों की असंगत मांग का समर्थन भी नहीं करना चाहिये। सारा दोष दुर्योधन का ही नहीं है। युधिष्ठिर को द्यूत का व्यसन नहीं होता तो ऐसी स्थिति आती ही नहीं। द्यूत खेलने तो वे स्वयं बैठे थे, इसमें शकुनि का क्या दोष? वे रोष और आवेश में खेलते ही चले गये। अब यदि राज्य और सारी सम्पत्ति दुर्योधन ने जीत ली है तो वह उसका त्याग क्यों करेगा? कोई भी व्यक्ति हाथ आई सम्पत्ति छोडना नहीं चाहता। वह उसके स्वाभाविक भी है। पांडव वीर योद्धा है किन्तु कोई ऐसे शक्तिशाली भी नहीं है कि उनके भय से दुर्योधन अपना राज्य त्याग दे। यदि पांडवों के पास अपने सहायक हैं तो दुर्योधन के पास भी अपने सहायकों और यौद्धाओं की कमी नहीं है। उसने भी बलवान होकर ही पांडवों के राज्य पर

आधिपत्य जमाया है। दुर्योधन को पांडवों से तो कोई भयभीत होने का कारण ही नहीं है। इसलिये उनसे युद्ध की तो बात ही नहीं करनी चाहिये। युद्ध में किसी का भी भला नहीं होता। युद्ध में दोनों ही पक्ष अनीति, अधर्म और अन्याय का सहारा लेते हैं। अन्याय से संसार की किसी भी समस्या का समाधान नहीं होता। हमें शान्ति का व्यवहार करना चाहिये। वहां जो दूत जाये उसे जिस समय सभा से सभी वृद्ध कुरुश्रेष्ठ भीष्म, धृतराष्ट्र, द्रोण, अश्वत्थामा, महात्मा विदुर, कृपाचार्य, शकुनि, कर्ण तथा धृतराष्ट्र पुत्र उपस्थित हों तब उन्हे प्रणाम कर राजा युधिष्ठिर का कार्य सिद्ध करनेवाला मन्तव्य कहना चाहिये। किसी भी अवस्था में कौरवों को कुपित नहीं करना चाहिये। युधिष्ठिर को जूए में आसक्ति थी और अपने प्रिय द्यूत का आश्रय लेनेपर ही उन्होंने उसके राज्य का हरण किया इसमें शकुनि का कोई अपराध नहीं हुआ।

कृष्ण केवल देख रहे थे पर वे कुछ बोले नहीं क्योंकि वे पहिले से ही जानते थे कि बलराम ये सब कहनेवाले हैं। तभी युयुधान सात्यकि आवेश में उठकर खडा हो बोला मैं तो आपको कायर भी नहीं कह सकता हलधर बलराम पर बातें तो आप उन्ही जैसी कर रहे हैं। यह आलोचना नहीं है पर मुझे इस पर आश्चर्य है कि यहां पर एकत्रित वीर, महावीर आपकी बातें सुन कैसे रहे हैं? कैसे सहन कर रहे? मुझे कृपया यह भी बताये कि महाराज युधिष्ठिर अपना हाथ पसारने वहां क्यों जाये? बेचारे अपना अधिकार मांग रहे हैं। कृपया अधिकार को भिक्षा मत बनाइये। मैं शब्दों का दुरुपयोग नहीं करना चाहता। मैं दुर्योधन के साथ नम्र बनकर नम्रता का अपमान नहीं कर सकता। मैं शब्दों द्वारा नहीं अपने बाणों द्वारा कहूंगा। यदि उन्होंने धर्मात्मा युधिष्ठिर के चरण स्पर्श कर क्षमा नहीं मांगी तो मैं दुर्योधन को उनके मित्रों और सहयोगियों सहित यमलोक भेज दूंगा। हे बलराम यह मेरा अभिमान नहीं बोल रहा है परन्तु आप ही बताइये गाण्डीवधारी अर्जुन का सामना उनमें से कौन कर सकता है? उस चक्रधारी चक्र का उत्तर किसके पास है? सर्वश्रेष्ठ गदाधर भीम को रणभूमि में देखकर किसका साहस पानी नहीं हो जायेगा। द्यृष्टद्युम्न और महारानी द्रौपदी के पांचों पुत्रों के सामने कौन टिक पायेगा? अभिमन्यु के प्रताप से कौन बच सकता है? और आप यह चाहते है कि ऐसे महारथियों का दूत भिखारी बनकर हस्तिनापुर जाये मैं तो कभी सोच भी नहीं सकता था कि महारथियों की सभा में इस प्रकार की बातें भी हो सकती है। पुरुष का जैसा चित्त होता है वह वैसी ही बात कहता है। आपका भी जैसा हृदय है वैसी ही बात कही है। संसार में शूरवीर भी होते हैं और कायर भी। यह सत्य है कि धर्मराज जूआ खेलना नहीं जानते हैं और शकुनि इस विद्या में पारंगत है परन्तु युधिष्ठिर की इसमें श्रद्धा नहीं थी इसलिये उनकी हार धर्मानुकूल नहीं थी। आप कौरवों की जीत को धर्माचरण धर्मानुकूल कैसे कह सकते हैं? पांडवों को तो बुलाकर कपटपूर्वक हराया गया था। महाराज युधिष्ठिर बनवास की अवधि की शर्ते पूरी कर अब स्वतन्त्र हैं और अपने पैतृक राज्य के अधिकारी हैं ऐसी स्थिति में अपने राज्य के लिये भीख मांगे यह कैसे हो सकता है? भीष्म, द्रोण, विदुर ने कौरवों को बहुत भांति समझाया है पर पांडवों को उनकी पैतृक सम्पत्ति देने की इच्छा ही नहीं हो रही। रणभूमि में कोई भी महाराज द्रुपद, वीरवर विराट और मेरा सामना कर नहीं पायेंगे। काल और सूर्य के समान पराक्रमी गद, प्रद्युम्न आदि के प्रहारों को और वेग को सहन करने का ताव रखता है? आततायी शत्रुओं को तो मारने में कोई दोष भी नहीं है। शत्रुओं से तो भीख मांगना अधर्म और अपयश का ही कारण है। अत: युधिष्ठिर के हृदय की अभिलाषा पूरी कर उनका अभिषेक करे। वे महाराज धृतराष्ट्र के देने से ही अपना राज्य प्राप्त करे। या तो अब उन्हें अपना राज्य मिल जाना चाहिये नहीं तो फिर सारे कौरव युद्ध में मारे जायेंगे। शान्ति हमें भी प्रिय है, हम भी कोई रक्त पिपासु नहीं है किन्तु हमारे लिये धर्म अपने मोह को छिपाने के लिये ओट नहीं है। हम न्याय और सम्बन्धों में से न्याय के पक्ष में जायेंगे। क्षत्रिय होने से हम कोई युद्ध की धमकियों से भयभीत

होनेवाले नहीं है। अत: पांडुनन्दन युधिष्ठिर को न्यायत: अपना राज्य मिल जाना चाहिये।

एक पांडव ऐसे थे कि जिन्होंने अपने असमर्थ ज्येष्ठ भ्राता का कठिन से कठिन परीक्षा में भी साथ नही छोडा क्योंकि वह धर्म के मार्ग पर था और एक यादवों का परिवार जो कृष्ण का परित्याग केवल इसलिये कर रहा है कि कृष्ण धर्म के मार्ग पर चल रहा है। सात्यकि की बातें सुनकर बलराम की भृकुटि वक्र हो रही थी क्योंकि उनको सात्यकि की बातें अच्छी नहीं लग रही थी। बलराम ने कृष्ण की ओर दृष्टि उठाई, कृष्ण ने बलराम को शान्त रहने के लिये संकेत से समझा दिया उसी समय पांचाल नरेश महाराज द्रुपद उठ खडे हुये और बोले मान्य राज समाज मैं बलराम के विचारों से सहमत हूँ कि मधुर स्वभाव और शान्ति प्रियता मनुष्य का गुण है किन्तु दुर्योधन मधुर व्यवहार से कोई राज्य वापिस लौटानेवाला नहीं है। अपने पुत्र मोह के कारण महाराज धृतराष्ट्र उसका ही अनुसरण करनेवाला है। भीष्म, द्रोण अपनी निष्ठाओं से बन्धे हैं और शकुनि तथा कर्ण अपनी मूर्खता वश उनका साथ दे रहे हैं। बलरामजी का यह कहना मुझे बहुत उचित नहीं जान पडता कि दुर्योधन से मेल-जोल कर हम अपनी बात कर अपना राज्य लें। दुर्योधन पापपूर्ण विचार रखनेवाला अधर्मी है। जो पापी और मूर्ख होते है वे सज्जनता का सम्मान नहीं करते। वे तो उसे कायरता और शक्तिहीनता मानते हैं, वे तो केवल बल की भाषा ही समझते हैं। इसलिये हमें अपने मित्र राजाओं और सहयोगियों के पास सैनिक संगठन का सन्देश भेजना चाहिये ताकि वे हमारे लिये सैन्य संग्रह का उद्योग करें। दुर्योधन भी तो यह सब कर रहा होगा। सज्जन राजा लोग पहिले मिलनेवाले युद्ध निमन्त्रण को स्वीकार करेंगे और उस पक्ष की सहायता करेंगे। बलराम बोले दुर्योधन क्यों नहीं लौटाने देगा पांडवों का राज्य? महाराज धृतराष्ट्र ने क्या द्यूत में जीती हुई सारी सम्पत्ति पांडवों को एक बार लौटायी नहीं थी क्या? और फिर वहा गंगा पुत्र भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य जैसे आदरणीय महापुरुष विद्यमान हैं वे ऐसा क्यों करेंगे? द्रुपद बोले उन महापुरुषों के न्याय की गाथाओं से तो इतिहास भरा पडा है वो सब मेरी पुत्री द्रौपदी से सुनो। हे मधुसूदन आपको यह सब बतलाने की आवश्यकता नहीं कि गंगा पुत्र भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और महात्मा विदुर के होते हुये भी पांडवों के साथ कैसे-कैसे अत्याचार अनाचार हुये हैं? जब मैं अपनी पुत्री के अपमान के विषय में सोचता हूँ तब मेरी नसों में रक्त खौलने लगता है जैसे मेरे मन का ज्वालामुखी फटनेवाला हो। पांडवों ने किसी भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया और दु:ख भोगा परन्तु अब पांडवों की ओर हस्तिनापुर की भ्रष्ट राजनीति के बीच केवल एक रणभूमि ही रह गई है बस। पांडवों ने सदा ही धर्म के मार्ग का अवलम्बन किया। कौरवों के लिये तो ना कोई मर्यादा है और ना ही कोई प्रण तो फिर हे चक्रधारी बतलाइये कि आक्रमण करने में विलम्ब का क्या कारण है? इसलिये हमें शीघ्रता से शल्य, धृष्टकेतु, जयत्सेन, केकय, इन सभी के पास दूत भेजना चाहिये। अमितौजा, उग्र कृतवर्मा, अन्धक दीर्घप्रज्ञ रोचमान इत्यादि के पास भी दूत भेजकर अपना सन्देश दें सुबाहु रूक्मी देवक, एकलव्य, सुशर्मा और पंचनद राजाओं को भी आमंत्रित करो। यदि दूत ही भेजना है तो ये मेरे पुरोहित बडे ही विद्वान ब्राह्मण है, इन्हे अपना सन्देश देकर राजा धृतराष्ट्र के पास भेजो। कौरवों को जाकर इन्हे जो कुछ कहना है वह समझा दें। यह सब कहकर द्रुपद अपने स्थान पर बैठ गये।

तभी कृष्ण फिर से उठ खडे हुये और बोले महाराज द्रुपद जो अवसर के विपरीत व्यवहार करता है वह मूर्ख समझा जाता है। हमारा पांडवों और कौरवों के साथ एक सा सम्बन्ध है। दोनों भी हमारे अनुकूल व्यवहार करते हैं। विलम्ब का तो एक ही कारण है महाराज द्रुपद। अपने निहित स्वार्थ के लिये आक्रमण करना मानवता मूल्यों के विपरीत है। धृष्टद्युम्न बोला क्या अपनी बहिन के अपमान का प्रतिशोध लेना मानव मूल्यों के विरुद्ध है देवकीनन्दन? क्या कपटी जुआरियों के कपट

को दंड देना निहित स्वार्थ है? क्या एक सती को वेश्या कहनेवाले को इस असभ्यता के लिये दंड देना हर कोई व्यक्ति का कर्त्तव्य नहीं है? कृष्ण बोले अवश्य है राजकुमार किन्तु वो सैनिक जो उधर से युद्ध करेंगे उन्होने तो द्रौपदी का अपमान नहीं किया था न धृष्टद्युम्न। यहां किसी साधारण युद्ध की चर्चा नहीं हो रही है। इस युद्ध में तो इतने शव गिरेंगे कि उन्हें तो गिनना भी असम्भव हो जायेगा। इस युद्ध के महाभोज को आमंत्रित करने से पहिले हमें यह भी सोचना आवश्यक है ये अनगिनत शव अपने कन्धों पर उठाने के लिये तैयार है महाराज द्रुपद? मैं तो इसके लिये तैयार नहीं हूं। इसलिये पहिले सन्धि की भाषा बोलनी चाहिये। पांडवों को पहिले अपने अधिकारों की उनसे मांग करनी चाहिये। युद्ध की भाषा तो उन्हे बोलने दीजिये महाराज द्रुपद। यदि दुर्योधन न्याय के अनुसार शान्ति स्वीकार करेगा तो कौरव और पांडवों में परस्पर सौहार्द्र स्थापित होगा और संसार एक व्यापक संहार से बच जायेगा। राजा विराट खडे होकर बोले क्या सन्धि प्रस्ताव को वो लोग हमारी दुर्बलता नहीं समझेंगे मधुसूदन? कृष्ण बोले वहां सभी लोग दुर्योधन की भांति नासमझ नहीं हैं विराट नरेश क्षत्रिय समाज भी दुर्योधन पर अपने वचन का पालन करने का दबाव डाल सकता है और ऐसे लोगों को एक अवसर तो देना ही चाहिये। यह एक अवसर। महाराज द्रुपद आप यहां आयु में हम सबसे बडे है इसलिये आप ही हमें बताये कि हमें वहां क्या सन्देश भिजवाना चाहिये। शान्ति सदैव युद्ध से अच्छी होती है। अत: राजा धृतराष्ट्र के पास आप ऐसा सन्देश भिजवाइये जो पांडवों की कार्यसिद्धि करनेवाला हो। आप उन्हें जो भी सन्देश भिजवायेंगे वह हम सबको अवश्य मान्य होगा। यदि मोहवश अभिमान के वशीभूत दुर्योधन ने सन्धि करना स्वीकार न किया तो वह अर्जुन के कुपित होनेपर अपने सगे-सम्बन्धियों सहित विनाश को प्राप्त होगा। पर पांडव युद्ध की तैयारी तभी करें जब दुर्योधन किसी भी प्रकार सन्धि की बात ना माने।

भीम बोला फिर मेरी प्रतिज्ञा का क्या होगा मधुसूदन? पांचाली के खुले हुये केशों का क्या होगा? अब हम सन्धि करके इन्द्रप्रस्थ लौट जाये और द्रौपदी से यह कहें कि उम्रभर वो अपने केश खुले रखे। कृष्ण बोले क्या तुम्हारी प्रतिज्ञा मानव कल्याण से अधिक मूल्यवान है कुन्ती पुत्र भीम? यदि आपकी प्रतिज्ञा के बदले शान्ति मिले तो समझिये कि शान्ति बहुत सस्ती मिली है। अब हम सर्व सम्मति से यह निर्णय ले रहे हैं कि पहले हमें महाराज धृतराष्ट्र के पास अपना एक दूत भेजना चाहिये। इसके पश्चात राजा विराट ने श्रीकृष्ण व उनके बन्धु-बान्धवों का सत्कार कर द्वारिका के लिये विदा किया। कृष्ण के द्वारिका चले जानेपर युधिष्ठिर आदि पांचो भाई और राजा विराट उपलव्य में युद्ध की तैयारियां करने लगे। राजा विराट, द्रुपद और उनके सम्बन्धियों ने सब राजाओं के पास पांडवो को सहायता देने के लिये संदेश भेजे और वे सभी राजा लोग पांडवों का विराट और द्रुपद का निमन्त्रण पाकर बडी प्रसन्नता से आने लगे। उस समय कौरवों और पांडवों की सहायता के लिये आनेवाले राजाओं से सारी पृथ्वी व्याप्त हो गई।

राजा द्रुपद ने अपने राज पुरोहित को बुलाकर कहा हे पुरोहित श्रेष्ठ सर्व भूतों में प्राणधारी श्रेष्ठ है, प्राणियों में बुद्धिधारी जीव श्रेष्ठ है। बुद्धियुक्त जीवों में मनुष्य श्रेष्ठ है तथा मनुष्यों में द्विज श्रेष्ठ है। द्विजों में विद्वानों का दर्जा ऊंचा है। विद्वानों में सिद्धान्त के ज्ञाता श्रेष्ठ है और सिद्धान्तों में ब्रह्मवेत्ता श्रेष्ठ है। आप सिद्धान्त वेत्ताओं में प्रमुख है। आपका कुल भी श्रेष्ठ है तथा आयु और शास्त्रज्ञान की दृष्टि से भी आप श्रेष्ठ है, ज्येष्ठ है। आपकी बुद्धि शुक्राचार्य और बृहस्पति के समान है। यह बात आप भलीभांति जानते हैं कि कौरवों ने पांडवों को छलपूर्वक ठगा था। शकुनि ने कपट द्यूत से युधिष्ठिर को धोखा दिया था। अब वे स्वयं तो किसी प्रकार युधिष्ठिर को उसका राज्य देंगे नही। परन्तु आप तर्कों से महाराज धृतराष्ट्र को तर्कयुक्त बातें बताकर उनके वीरों का चित्त बदल दे। महात्मा विदुर भी आपके वचनों का समर्थन करेंगे। आपकी बात की संगति से धृतराष्ट्र आपकी धर्मानुकूल बात

मान ले। आप स्वयं धर्मनिष्ठ है अत: मेरा ऐसा विश्वास है कि उनके साथ धर्मानुकूल आचरण करके कृपालु, पुरुषों के आगे पांडवों के क्लेशों की बात कहकर और वृद्ध जनों के सामने पूर्वजों के बरते हुये कुलधर्म की चर्चा कर उनके चितों को बदल दे। अत: आप युधिष्ठिर की कार्यसिद्धि के लिये पुष्य नक्षत्र और विजय मुहूर्त में प्रस्थान करें। द्रुपद के इस प्रकार समझाने पर उनके सदाचार सम्पन्न और अर्थनीति विशारद पुरोहित पांडवों के हित के लिये हस्तिनापुर को चल दिये।

## ३) भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और विदुर की धृतराष्ट्र को समझाने के लिये मन्त्रणा

भीष्म के कक्ष में विदुर, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य विचार विमर्श कर रहे होते हैं। विदुर बोले हमें कोई न कोई निर्णय तो अवश्य लेना चाहिये तातश्री। भीष्म ने कहा निर्णय तो एक ही लिया जा सकता है विदुर और सबसे पहिले तुम्ही उसके आगे में किन्तु और परन्तु के रोडे डालना आरम्भ कर दोगे। विदुर बोले मुझे किन्तु से प्रेम नहीं है तातश्री। आप ही इन शब्दों के बिना कुछ कहने का प्रयत्न तो करके देखिये। जिस राज्य से निष्ठाये अलग-अलग डोरियों से बन्धी हो उसमें इन शब्दों के सहारे के बिना जीना सम्भव नहीं है। आपकी निष्ठा तो फिर भी मेरी समझ में आ जाती है किन्तु आचार्य द्रोण और आचार्य कृप की विवशता मेरी समझ के बाहर है। हम जाकर महाराज से यह क्यों नहीं कहते कि उससे पहिले पांडवों का दूत यहां आये वो स्वयं अपने दूत को भेजकर उन्हे आमंत्रित करे और उनका राजमुकुट उन्हे लौटा दे। कृपाचार्य बोले क्या महाराज हमारा कहना मान लेंगे? विदुर बोले वो महाराज जाने कुलगुरु किन्तु क्या उनसे निवेदन करना हम सब लोगों का कर्त्तव्य नहीं है आचार्य? कृपाचार्य बोले अवश्य यह कहना हमारा कर्त्तव्य है। हम सब हस्तिनापुर के शुभ चिन्तक है। द्रोणाचार्य बोले आप ठीक कह रहे है कृपाचार्यजी परन्तु... भीष्म बोले फिर वही परन्तु। यह आप लोग किन्तु परन्तुओं के शब्दों की मृगतृष्णा से बाहर निकलने का प्रयत्न क्यों नहीं करते। ये शब्द कायरों की ढाल है आचार्य। द्रोणाचार्य बोले मुझे किसी ढाल की आवश्यकता नहीं है गंगापुत्र भीष्म परन्तु मैं हस्तिनापुर के राजध्वज के साथ विश्वासघात नहीं कर सकता। विदुर बोले भले ही वह ध्वज आपको धर्म के मार्ग से भटका ही न दे आचार्य। द्रोणाचार्य बोले मैं धर्म की परिभाषा अच्छी तरह जानता हूं महात्मा विदुर। हस्तिनापुर की रक्षा करना ही मेरा धर्म है। विदुर बोले आप हस्तिनापुर की रक्षा नहीं कर रहे हैं आचार्य द्रोण। आप रक्षा कर रहे है महाराज धृतराष्ट्र के पुत्र मोह और दुर्योधन की महत्वाकांक्षा की। आप रक्षा कर रहे हैं गान्धार नरेश शकुनि के कपट की। आप रक्षा कर रहे हैं कर्ण और दुशासन की असम्भव वीरता की। आप बचा रहे हैं विश्व के उन गद्दारों को जो बच गये तो न हस्तिनापुर बचेगा और न ही भरतवंश की मर्यादा। अब भी कुछ नहीं बिगडा है आचार्य द्रोण। हस्तिनापुर की रक्षा हस्तिनापुर के ध्वज की छाया में नहीं। तातश्री आप महाराज के पास जाइये और कहिये उनसे उन्हे यह आदेश दीजिये कि यदि वे हस्तिनापुर को बचाना चाहते है तो पांडवों को इन्द्रप्रस्थ लौटा दे क्योंकि अर्जुन के बाणों की बौछार न आपके रोके रूकेगी और न ही आचार्यों के रोकने से। हां तातश्री। द्रोण बोले ब्राह्मण को डराने का प्रयत्न मत कीजिये महात्मा विदुर। भीष्म बोले यह डरा नहीं रहा है आचार्य, यह तो बता रहा है। युद्ध में आपको कोई नहीं हरा सकता। मुझे भी इच्छा मृत्यु का वरदान मिला हुआ है। परन्तु क्या पांडवों को हरा देने से ही सचमुच हमारी जीत होगी आचार्य? यदि युद्ध हुआ तो विजयश्री का वरदान चाहे दुर्योधन को मिले या युधिष्ठिर को परन्तु आपकी और कृपाचार्य की हार तो सुनिश्चित है क्योंकि इस युद्ध में जो घाव लगेगा वो हमी को लगेगा और जो शव गिरेगा वो हमारा ही शव होगा। इसलिये यदि युद्ध हुआ तो ना हस्तिनापुर के हित में होगा और न ही हमारे। कृपाचार्य बोले परन्तु हम करें क्या गंगापुत्र? भीष्म बोले हम युद्ध को रोकने का प्रयत्न करें आचार्य। हम चलकर महाराज से यह निवेदन करें कि वो घडी भर पुत्र के विषय में सोचना छोडकर हस्तिनापुर के विषय में सोचने का कष्ट करें। पांडवों को उनका इन्द्रप्रस्थ वापिस लौटा दे।

भीष्म, विदुर, महाराज धृतराष्ट्र के कक्ष में आते हैं और महाराज धृतराष्ट्र से इस विषय में चर्चा करते हैं। धृतराष्ट्र बोले क्या यह उचित नहीं होगा तातश्री कि हम इस विषय में पुत्र दुर्योधन से भी पूछ लें? भीष्म बोले राजा तुम हो या दुर्योधन? हस्तिनापुर की रक्षा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है तुम्हारा। धृतराष्ट्र बोला किन्तु दुर्योधन हस्तिनापुर का युवराज है तातश्री। विदुर बोला यह किस नीतिशास्त्र में लिखा है कि युवराज की आज्ञा लिये बिना महाराज कोई निर्णय ही नहीं ले सकते। धृतराष्ट्र बोले कभी कभार मीठा बोलने का प्रयत्न करके देखो विदुर। विदुर बोले यह कडवे बोल बोलने का समय नहीं है भ्राताश्री। किन्तु कडवे सत्य के लिये कडवा स्वर ही उचित होता है। इतने में एक चर ने आकर सूचना दी महाराज की जय हो। महाराज द्रुपद के राज पुरोहित सम्राट युधिष्ठिर का सन्देश लेकर हस्तिनापुर आये हैं और महाराज के दर्शनों के अभिलाषी है। भीष्म बोले जो मैं नहीं चाहता था वो ही हुआ है। अब बात ध्यान में रखना पुत्र कि शान्ति का मार्ग बन्द नहीं हुआ है और वो अब भी खुला हुआ है। धृतराष्ट्र बोले विदुर। विदुर ने कहा आज्ञा महाराज। धृतराष्ट्र बोले युधिष्ठिर के दूत से मैं कल राजसभा मे मिलूंगा। विदुर बोले आप यही क्यों नहीं मिल लेते महाराज? धृतराष्ट्र बोले यदि स्वयं प्रिय युधिष्ठिर यहां आया होता तो मैं उससे यही मिलता परन्तु किसी राजा के दूत से राज्यसभा में मिलना ही उचित होगा।

## ४) हस्तिनापुर में शान्तिदूत के आने की प्रतिक्रियायें

दुर्योधन के कक्ष में कर्ण, शकुनि, दुशासन बैठे हैं। दुर्योधन चिल्लाकर बोला कौन, कैसा दूत, किसका दूत? शकुनि बोला पर परन्तु इतना चिल्लाने की क्या आवश्यकता है भान्जे? हम कोई बहरे थोडे ही है? कर्ण बोला यदि दूत आया है तो वो चले भी जायेगा। दुर्योधन बोला पिताश्री ने उसे लौटा क्यों नहीं दिया? उन निर्लज्जों ने यह नहीं सोचा कि दूत भेजने के स्थान पर उन्हे १२ वर्ष के वनवास के लिये चले जाना चाहिये था क्योंकि मैंने उनके अज्ञातवास को भंग कर दिया है। बडा धर्मराज बना फिरता है। हारना नहीं जानता तो फिर खेलता ही क्यों है? पितामह, गुरुद्रोण, कृपाचार्य सब मिलकर पिताश्री पर दबाव डालेंगे। कर्ण बोला द्यूत महाराज ने नहीं जीता था दुर्योधन, तुमने जीता था। उन्हे महाराज पर दबाव डालने दो। महाराज तुम पर तो दबाव डालने से रहे। शकुनि बोला अंगराज ठीक कह रहे हैं भान्जे। काम्पिल्य के राज पुरोहित तुम्हारे भ्राताश्री युधिष्ठिर के दूत बनकर आये है। अरे पता तो चले उनका अभिप्राय क्या है? फिर देख लेंगे। दुशासन बोला अरे मामाश्री वो बहुत ही सिखाया पढाया हुआ आया होगा। शकुनि बोला तो यहां बैठे लोग कौनसे अशिक्षित है पुत्र? वे उसे सिखा पढाकर वैसे ही लौटा देना भी जानते है किन्तु वो जो कुछ कहने आया है पहिले उसे ध्यान से सुन तो लो। युधिष्ठिर के चारों ओर तो एक से एक बढकर मूर्ख भरे पडे हैं हां खटका तो केवल एक वासुदेव कृष्ण से ही है। वो बडा चतुर है। वो सीधे-सीधे कभी युद्ध का प्रस्ताव नहीं रखेगा। पहिले तो वो शब्दजाल फेंकेगा। दूत का अभिप्राय जानने के उपरान्त ही पता चल सकेगा कि वो देवकीनन्दन क्या सोच रहा है? यदि तुम इस एक व्यक्ति को मार्ग से हटा लो पुत्र तो मैं पांडवों को उनके मित्रों सहित एक और अज्ञातवास के वन खंड में सडने के लिये छोड आऊं। बस तुम उस मायावी कृष्ण पर दृष्टि लगाये रखो दुर्योधन। अपने क्रोध के इस कोष को यूं न लुटाओ भान्जे। क्योंकि युद्ध यदि होता है तो पता नहीं इस क्रोध की तुम्हे आवश्यकता पडेगी। इसे बचा कर रखो। मैं उस वसुदेव के पुत्र कृष्ण को भलीभांति जानता हूँ। वो पहिले अवश्य शान्ति का पांसा फेकेगा।

**जब जब होती धर्म को सत्य शान्ति की चाहत, तब तब शीश अधर्म का उठे रोकने राह।**

राजनीति का आधार कर्तव्य का ज्ञान है और कर्तव्य दूसरों के अधिकारों को प्रणाम करके उन्हे स्वीकार करने का नाम है। राजा का अधिकार प्रजा का कर्त्तव्य है और प्रजा का अधिकार राजा का कर्त्तव्य। यह यात्रा दोनों दिशाओं में होती है।

ऐसा नहीं कि धृतराष्ट्र इसे जानते ही नहीं हो फिर भी उनमें जो राजा था वो पिता से दबा हुआ था। पिता के अधीन था और पुत्र कल्याण के विषय में सोचना कोई पाप भी नहीं है। यह तो हर पिता का कर्त्तव्य है। प्रश्न यह है कि देश बडा है या पुत्र? गान्धारी को भी दुर्योधन अतिप्रिय था किन्तु उसने अपनी सोच पर ममता की पट्टी नहीं बांधी और वो कदाचित चाहती भी यही थी कि पांडवों के साथ कोई अन्याय न हो। इसलिये वो चिंतित थी और डर भी रही थी कि कहीं दुर्योधन के प्रेम के दबाव में आकर हस्तिनापुर नरेश कहीं बात बिगाड न दे। और स्वयं हस्तिनापुर नरेश महाराज धृतराष्ट्र बडी व्याकुलता से विदुर के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

विदुर आता है और धृतराष्ट्र को प्रणाम कर आसन ग्रहण करता है। धृतराष्ट्र बोला तुमने तो बहुत ही प्रतीक्षा करवाई। विदुर बोला क्षमा चाहता हूं महाराज। मैं अपने निवास पर पहुंच भी नहीं पाया था कि आपका आदेश मिलते ही लौट पडा। कहिये क्या आज्ञा है? धृतराष्ट्र बोला विषय बहुत गम्भीर है विदुर। विदुर बोला जब तक आप स्थान ग्रहण नहीं करते तब तक मैं कैसे स्थान ग्रहण करूं? धृतराष्ट्र बोले हर समय सभ्यता का पाठ मत पढ़ाया करो। तुम्हे ज्ञात हो कि युधिष्ठिर ने दूत क्यों भेजा है? विदुर बोला यह तो आप भली-भांति जानते है महाराज। धृतराष्ट्र बोले वो युधिष्ठिर स्वयं क्यों नहीं आया? विदुर बोला वो कदाचित महाराज को लज्जित नहीं करना चाहते। धृतराष्ट्र बोला मैं। मैं क्यों लज्जित होऊंगा? क्या मैंने द्यूत में हारा हुआ सारा का सारा राजपाट, धन-सम्पत्ति लौटा नहीं दिया था? विदुर बोले द्रौपदी वस्त्राहरण के समय आप चुप भी रहे थे महाराज और जो राज्य आपने लौटाया वो कोई लौटाना भी नहीं था। वो तो आपने द्रौपदी के श्राप से बचने के लिये भयभीत हो घबराकर एक ढाल उठा ली थी। धृतराष्ट्र चिढ़कर क्रोधित हो बोला महादेव की सौगन्ध यदि तुम मेरे अनुज न होते तो मैं तुम्हारे यह कहने पर मृत्युदंड देता कि तुम महाराज भरत के वंशज पर कायरता का आरोप लगा रहे हो विदुर। विदुर बोला नहीं महाराज। मैं आप पर कोई आरोप नहीं लगा रहा हूं। महामन्त्री होने के नाते अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा हूँ। मन्त्री का एक यह भी कर्त्तव्य है महाराज कि वो किसी के क्रोध से डरे बिना उन्हे उनके हित की बातें बताता रहे। धृतराष्ट्र बोला तो फिर मुझे मेरे हित की बात बताओ। विदुर बोला हस्तिनापुर की कुशलता में ही आपका हित है महाराज। यदि हस्तिनापुर कुशल नहीं तो आपका हित भी कुशल नहीं रह सकता। हे राजन देश राजा से नहीं होता। राजा देश से होता है। धृतराष्ट्र बोला मैं यह सब जानता हूँ कि राजा देश के लिये होता है किन्तु पिता किसके लिये होता है? विदुर बोले पिता तो स्वयं ब्रह्मा है महाराज जैसे वो सबके लिये है वैसे ही राजा केवल अपने पुत्र के लिये पिता नहीं हो सकता। सारा जनसमुदाय उसके लिये पुत्र समान होना चाहिये महाराज और फिर यों भी आप पांडवों के ज्येष्ठ पिताश्री है। युधिष्ठिर यों भी आपका ज्येष्ठ पुत्र है महाराज और यदि भ्राता पांडु का स्वर्गवास न हो गया होता तो आप दुर्योधन के सिर पर राजमुकुट देखने का स्वप्न भी न देख पाते इसलिये हे महाराज तातश्री का कहना मानिये और इससे पहिले कि युधिष्ठिर का दूत आकर अपनी मांगे प्रस्तुत करे आप पांडवों को सकुशल रहने के साथ-साथ उनका इन्द्रप्रस्थ उन्हे लौटा दीजिये। धृतराष्ट्र बोला यदि वो स्वयं आया होता तो मैं अपने हाथों से इन्द्रप्रस्थ का राजमुकुट उसके शीश पर रख उसे आशीर्वाद देता परन्तु उसने अपने ज्येष्ठ पिताश्री के पास अपना दूत भेजा है इसलिये अब तो मुझे सोचना पड़ेगा विदुर कि मैं प्रिय युधिष्ठिर के दूत को क्या उत्तर दूं? मुझे सोचने दो विदुर।

भीष्म के कक्ष में विदुर आता है और बोला प्रणाम तातश्री। आप अभी तक सोये नहीं? भीष्म बोले क्या तुम सो रहे थे पुत्र? क्या हस्तिनापुर के भविष्य का सपना देखनेवाली कोई आंख सो रही होगी पुत्र? क्या यह साधारण बात है कि युधिष्ठिर

ने धृतराष्ट्र के पास अपना दूत भेजा है? यह कोई साधारण बात नहीं है पुत्र। कान लगाकर सुनो पुत्र और मेरे बूढे कानों को बताओ कि इस दूत के पीछे तुम्हे आनेवाले प्रलय की आहट तो सुनाई नहीं दे रही। ये मेरे कान बता रहे है या सचमुच कोई आहट है? मुझे ऐसा क्यों लग रहा है कि कटे हुये शवों के खेत में मैं अकेला खड़ा हूं। क्यों लग रहा है ऐसा मुझे? विदुर बोला आप अकेले नहीं है तातश्री। भीष्म बोले हम सब अकेले हैं पुत्र। मैं, तुम, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य सब के सब बिल्कुल अकेले है और मैं यही सोच रहा था कि जो समाज अपने चिन्तकों को अकेला छोड दे उस समाज की आयु कितनी होगी? यह प्रश्न अत्यन्त प्रासंगिक है विदुर। यदि ऐसा नहीं है तो मैं क्यों जाग रहा हूँ? तुम क्यों जाग रहे हो? तुम अपने निवास स्थान पर क्यों नहीं हो? विदुर बोला मैं तो अपने निवास स्थान पर पहुंचा भी नहीं था तातश्री। मुझे तो बीच में ही महाराज ने बुला लिया। भीष्म बोले बीच में ही बुला लिया पर क्यों? विदुर बोला यह बतलाने के लिय यदि युधिष्ठिर स्वयं यहां आया होता तो वे उसे अवश्य ही इन्द्रप्रस्थ लौटा देते परन्तु उसने तो अपना दूत भेजा है इसलिये उन्हे यह सोचना पडेगा कि वो दूत को क्या उत्तर दे? भीष्म बोले सोचना पडेगा पर इसमें सोचने का है ही क्या? विदुर बोले कदाचित वो यह सोच रहे होंगे कि आचार्य द्रोण जो १३ वर्षों से इन्द्रप्रस्थ राज्य को सम्हाल रहे है, उसकी देखरेख कर रहे है उनकी क्या प्रतिक्रिया होगी? इन्द्रप्रस्थ बहुत विशाल राज्य है तातश्री। भीष्म बोले क्या तुम यह कह रहे हो... विदुर बोले मैं कुछ नहीं कह रहा हूं तातश्री। और मैं कह भी क्या सकता हूँ? कुछ कहे या ना कहे पर आप तो ज्येष्ठ कुरु है। भीष्म बोले मैं ज्येष्ठ कुरु अवश्य हूं पुत्र विदुर पर मुझे यहां ज्येष्ठ मानता कौन है? कोई न मुझे कुछ पूछता है और ना ही कहीं मेरा कहा मानता है। मैं अरण्य में एक ध्वनि बन गुंजता रह गया हूं पुत्र केवल ध्वनि। हे भगवन मेरे हस्तिनापुर की रक्षा करो।

धृतराष्ट्र राजसभा में जाने की तैयारी कर रहा है कि गान्धारी कक्ष में आती है और दासियों से बोली एकान्त। धृतराष्ट्र बोला अब ये कौन बतायेगा कि मुकुट सिर पर ठीक से लगा या नहीं। गान्धारी बोली पहिले आप इस विषय पर तो विचार कर लीजिये आर्यपुत्र कि ये मुकुट आपके सिर पर रहेगा भी या नहीं। धृतराष्ट्र बोला क्या? ये तुम क्या कह रही हो गान्धारी? गान्धारी बोली यदि आपसे भी मैं अपने हृदय की बात न कहूं तो फिर किससे कहूं? मैं भी दुर्योधन से प्रेम करती हूं। वो हमारा ज्येष्ठ पुत्र है। यदि उसका जन्म ठीक समय पर हो गया होता तो कदाचित मेरे पुत्रों और कुन्ती पुत्रों के बीच जो तनाव है, उस तनाव का प्रश्न ही नहीं उठता और उसको युवराज पद पर अपना अधिकार सिद्ध नहीं करना पडता। परन्तु वो युधिष्ठिर से तो है छोटा ही और यह राजमुकुट जो आपके शीश पर शोभित है वह वास्तव में युधिष्ठिर के पिता पांडु का है। धृतराष्ट्र बोला परन्तु महाराज विचित्र वीर्य का ज्येष्ठ पुत्र मैं हूं। गान्धारी बोली जो अन्याय नहीं था उसे अन्याय कहते कहते कब थकेंगे? जो हुआ वही ठीक था और होना भी वही चाहिये था। यदि आप तब राजा बन गये होते तो आज आप जैसे दुर्योधन के वश में है वैसे आप किसी और के वश में रहते। इसलिये आर्यपुत्र एकबार राजा बनकर देखिये और फिर वो निर्णय लीजिये जो एक राजा को शोभा देता है। धृतराष्ट्र बोले तुम चाहती क्या हो? गान्धारी बोली मेरे चाहने से न पूछिये। मैं तो यह चाहती हूं कि भविष्य आपको अपने पूर्वजों के साथ बिठाने में हिचकिचाये नहीं। मैं तो यह चाहती हूँ कि मेरे पुत्रों को लम्बी आयु मिले। मैं तो यह चाहती हूँ कि इतिहास मेरे पुत्रों का नाम उसी आदर से ले जिस आदर से वे पांडु पुत्रों का नाम लेंगे। किन्तु लगता है मेरे चाहने से क्या? मेरी इच्छाओं का कोई अर्थ नहीं। धृतराष्ट्र बोला तुम ऐसा क्यों कह रही हो? गान्धारी बोली रातभर जागती रही हूँ आर्यपुत्र। धृतराष्ट्र बोला क्यों? क्यों जागती रही? गान्धारी बोली मैं यह सोचती रही कि कल आप न्याय करेंगे या अन्याय? कुन्ती पुत्रों को उनका इन्द्रप्रस्थ लौटाना न भूलियेगा आर्यपुत्र। मैं यह

तो नहीं जानती कि इन्द्रप्रस्थ पा लेने के पश्चात भी द्रौपदी वस्त्राहरण के उस भयानक दृश्य को वे भूल पायेंगे या नहीं किन्तु हमें प्रयत्न तो करना चाहिये कि वे भरतवंश के उस अपमान को भूल ही जाये और मेरे पुत्रों को क्षमा कर दे।

## ५) द्रुपद के राजपुरोहित का कौरवों की राजसभा में पांडवों का राजदूत बनकर आना

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय तदनन्तर वह द्रुपद का राज पुरोहित राजा धृतराष्ट्र के पास पहुंचा। धृतराष्ट्र की राजसभा में विदुर, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भीष्म पितामह, कर्ण, शकुनि, दुशासन और दुर्योधन सभी बैठे हैं। धृतराष्ट्र बोला अनुज पुत्र युधिष्ठिर के दूत को उपस्थित किया जाये। विदुर बोले जो आज्ञा महाराज। दूत राजसभा में उपस्थित हुआ। सभी ने उस दूत का सत्कार किया। दूत ने भी महाराज की जय हो कहा और बोला राजन आपकी दीर्घआयु हो, आपकी प्रजा सुखी और सुरक्षित रहे। पुरोहित ने पहले अपने पक्ष का कुशल समाचार सुनाया फिर उन सबकी कुशल पूछी। और बोला हे राजन पांचाल का यह राज पुरोहित आपकी सेवा में आपके अनुज पुत्र इन्द्रप्रस्थ सम्राट युधिष्ठिर का प्रणाम और सन्देश लाया है। धृतराष्ट्र बोला यहां से लौटकर प्रिय अनुज पुत्र युधिष्ठिर को मेरा आशीर्वाद दीजियेगा। अब आप यह बताईये कि आप अब कौनसा सन्देश लेकर आये है? जिसे प्रिय युधिष्ठिर स्वयं आकर हमसे नहीं कह सकता था।

राज पुरोहित बोला उन्होंने आपके चरण स्पर्श के लिये आने की आज्ञा मांगी है। यह बात सर्व विदित है कि धृतराष्ट्र और पांडू दोनों एक पिता के पुत्र है अत: पिता की सम्पत्ति पर दोनों का समान अधिकार है परन्तु धृतराष्ट्र पुत्रों को तो उनका पैतृक धन मिल गया है पर पांडु पुत्रों को नहीं मिला है। कौरवों ने अनेकों बार कई उपाय करके पांडवों के प्राण लेने का प्रयत्न किया परन्तु उनकी आयु शेष रहने के कारण वे उनका वध नहीं कर पाये। इतना कष्ट सहने के बाद भी महात्मा पांडवों ने अपने बल से अपने राज्य की वृद्धि की। किन्तु धृतराष्ट्र पुत्रों ने शकुनि के साथ मिलकर छल कपट से उनका सारा राज्य छीन लिया। राजा धृतराष्ट्र आपने भी इस कर्म का अनुमोदन किया और पांडव तेरह वर्ष तक वन में रहने को विवश हुये। प्रण के अनुसार बारह वर्षों का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास वे पूरा कर चुके हैं। अब यदि उनके ज्येष्ठ पिताश्री आज्ञा दें तो वे आकर आशीर्वाद के साथ अपना राजमुकुट ले जाये। वे उपरोक्त अपराधों को भूलकर भी कौरवों के साथ समझौता करने तैयार हैं। अत: पांडवों और दुर्योधन के बर्ताव पर मित्र, सहयोगियों और सम्बन्धियों तथा हितैषियों का कर्तव्य है कि वे दुर्योधन को समझावे। पांडव वीर है फिर भी वे कौरवों के साथ युद्ध करना नहीं चाहते। उनकी इच्छा है कि युद्ध में जनसंहार किये बिना ही उन्हे उनका राज्य मिल जाये। दुर्योधन जिस लाभ को सामने रखकर युद्ध करना चाहता है वह कभी सिद्ध नहीं होगा क्योंकि पांडव कोई कम शक्तिशाली नहीं है। पांडवों की सेना की प्रबलता, अर्जुन का पराक्रम और कृष्ण की बुद्धिमत्ता देखकर कौन उनसे युद्ध करने के लिये तैयार होगा? अत: धर्म और समय का विचार कर आप लोग पांडवों को उनका राज्य शीघ्र लौटा दे। यह उपयुक्त अवसर हाथ से न निकलने दे। पांडव कुरुवंश के ही अंग है और यहीं के बनकर रहना चाहते है।

दुर्योधन तिलमिला उठा और उठ खडा हो बोला कैसा राजमुकुट? कैसा राज पुरोहित? उनके अज्ञातवास को स्वयं मैने विराट देश में भंग कर दिया था। जाकर उनसे कह दो प्रण के अनुसार हमारे कहे बिना ही १२ वर्ष के वनवास को स्वीकार कर लेना चाहिये था। पांडवों को अपना दूत भेजते लाज नहीं आई? राजपुरोहित ने पूछा मेरे लिये क्या आज्ञा है राजन? धृतराष्ट्र बोले मुझे विचार करने दीजिये कि मैं अपने प्रिय अनुज पुत्र युधिष्ठिर के लिये अपने आशीर्वाद के अतिरिक्त और क्या भेजूं? अज्ञातवास के विषय में कुछ उलझने है। कुछ गणित शास्त्री यह कहते हैं कि विराट युद्ध से पहिले अज्ञातवास समाप्त हो गया

और कुछ गणितज्ञ यह कहते है कि अज्ञातवास अभी समाप्त नहीं हुआ। राजपुरोहित बोला गंगापुत्र भीष्म और कृपाचार्य इस विषय में क्या कहते है राजन्? दुर्योधन तमककर बोला तुम कौन होते हो प्रश्न करनेवाले? तुम केवल दूत हो और प्रश्न करना दूत की मर्यादा नहीं है। भीष्म उठ खडे हुये और बोले शान्त रहो दुर्योधन। जो आयु और ज्ञान दोनों में तुमसे बड़ा हो उन्हे तुम कहकर सम्बोधित करना भरतवंश के छोटों की मर्यादा नहीं है पुत्र दुर्योधन। किसी दूत का अपमान करना किसी युवराज को शोभा नहीं देता और कोई जब पिता से कुछ कह रहा हो पुत्र का बीच में बोल उठना पुत्र की असभ्यता सिद्ध करता है। इसलिये अपना स्थान ग्रहण करो। राजपुरोहित बोला सभ्यता कोई धरोहर में नहीं मिलती गंगापुत्र।

विदुर ने दूत की बात का समर्थन किया और कहा कि पांडवों को उनका राज्य लौटा देना चाहिये। राज्य न लौटाने का तो कोई औचित्य ही नहीं है। अर्जुन का पराक्रम अद्भुत है। पांडव धर्म में तत्पर हैं। अर्जुन बलवान, अस्त्र विद्या में निपुण और महारथी है। युद्ध में इन्द्र भी उसका मुकाबला नहीं कर सकता। तीनों लोकों में एकमात्र समर्थवीर है। भीष्म ने विदुर के कहे का समर्थन किया तो कर्ण की ईर्ष्याग्नि भडक उठी और कर्ण बोला इस समय अतीत की चर्चा करना व्यर्थ है। यह तो सभी जानते है कि पांडवों ने अज्ञातवास की प्रतिज्ञा पूरी नहीं की है। वे एक वर्ष अज्ञातवास का पूरा होने के पहिले ही प्रगट हो गये अत: उन्हे धर्मपूर्वक पुन: १२ वर्ष के लिये वनवास चले जाना चाहिये। शकुनि ने दुर्योधन के लिये युधिष्ठिर को द्यूत में हराया था तभी वे उस शर्त को मानकर वन गये थे पर अब उस शर्त को पूरा किये बिना ही वे मत्स्य और पांचालों के भरोसे मूर्ख की भांति अपना राज्य वापिस लेना चाहते है परन्तु उनके डर से दुर्योधन राज्य का चौथाई भाग भी नहीं देगा। तो फिर उन्हे प्रतिज्ञानुसार नियत समय तक पुन: वनवास करना चाहिये।

भीष्म क्रोधित हो बोले पांडव मत्स्य और पांचालों की सेना के बल पर राज्य लेना नहीं चाहते। तुम्हे तो अपने बल पर अहंकार हो गया है। आज तक पांडवों के विरुद्ध किसी युद्ध में तुम ढंग से लडे हो राधापुत्र। प्रत्येक युद्ध में हार कर अथवा डरकर भाग जाते हो। क्या किया तुमने द्रुपद के साथ हुये युद्ध में, क्या किया गन्धर्वों के विरुद्ध घोषयात्रा में हुये युद्ध में? क्या किया तुमने विराट के गो-हरण के अवसर पर हुये युद्ध में? सदा ही युद्ध छोडकर भागनेवाले प्रथम व्यक्ति तुम ही थे। तुम्हारे भरोसे तो हस्तिनापुर की सेना सदा ही युद्ध हारती रहेगी। धृतराष्ट्र ने कर्ण को शान्त कर चुप करा दिया और भीष्म को प्रसन्न करने कर्ण से बोले पितामह भीष्म जो कह रहे है इसमें हम सबका कल्याण और हित है।

कर्ण बोला आप बडे भाग्यशाली है राजपुरोहित कि आप एक ब्राह्मण भी है और राजदूत भी। यदि न होते तो युवराज दुर्योधन का यों अपमान करने पर दंड पाते। जाईये और जाकर युधिष्ठिर से कहिये अभी वो १२ वर्ष के वनवास पर चला जाये। उसकी समाप्ति के पश्चात देखा जायेगा। राजपुरोहित बोला बडे आश्चर्य की बात है राजन कि आपकी राजसभा में केवल आप ही नहीं बोलते, शेष सभी लोगों को बोलने का अधिकार है। मैं इन्द्रप्रस्थ नरेश युधिष्ठिर की ओर से यह वचन देता हूँ कि यदि गंगापुत्र भीष्म, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, महात्मा विदुर इनमें से कोई एक भी यह कह दे कि विराट युद्ध में अर्जुन और दुर्योधन का सामना होने से पहिले उनका अज्ञातवास समाप्त नहीं हुआ था तो पांडव फिर से बारह वर्ष का वनवास स्वीकार करेंगे। धृतराष्ट्र बोला कुलगुरु कृपाचार्य आपके उत्तर पर इसका आधार है कि शान्ति रहेगी या युद्ध होगा। कृपाचार्य ने नक्षत्र विद्या की गणित से हिसाब लगाकर कहा कि चन्द्र और सौर्य दोनों की गणना यह कहती है पांडवों का अज्ञातवास विराट युद्ध में युवराज दुर्योधन और कुन्ती पुत्र अर्जुन का सामना होने से पहिले ही समाप्त हो चुका था। दुर्योधन क्रोधित हो उठा और बोला कुलगुरु जिस थाली में खाते हो उसी में छेद करते हो। चन्द्र और सौर्य की गणनाये

कुछ भी कहती हो परन्तु मैं गान्धारी पुत्र दुर्योधन यह कहता हूँ कि पांडवों का अज्ञातवास भंग हो चुका था और जो मैं कहता हूँ वहीं सत्य है और वैसा ही होगा। राजपुरोहित ने पूछा राजन तो क्या मैं महाराज युधिष्ठिर के पास उनके सन्देश के उत्तर में हस्तिनापुर का यही सत्य असत्य लेकर जाऊं महाराज। धृतराष्ट्र बोले नहीं राजपुरोहित। आप प्रिय युधिष्ठिर से कहियेगा की मैं शीघ्र ही अपने किसी दूत के द्वारा अपना प्रस्ताव भेजूंगा। अब आप शीघ्र ही लौट जाये। ऐसा कहकर धृतराष्ट्र ने पुरोहित का सत्कार कर उसे पांडवों के पास भेज दिया।

## ६) धृतराष्ट्र का संजय को बुलाकर उसे समझाना और पांडवों के पास भेजना

महाराज द्रुपद के राज पुरोहित द्वारा पांडवों की ओर से राज्य की मांग कौरवों के समक्ष प्रस्तुत कर दी ताकि शान्ति से समस्या सुलझ जाये एवं युद्ध की अग्नि की लपटों से पांडव और कौरव कुल बच जाये पर दुर्योधन की सर्वविदित जग विख्यात हठ ने स्पष्ट कर दिया कि वह पांडवों का राज्य किसी मूल्य पर भी नहीं लौटायेगा। इससे महाराज धृतराष्ट्र व्याकुल हो गये। श्रीकृष्णसहित वृष्णि, अन्धक पांडवों के सखा हैं। पांचाल एवं मत्स्यराज भी पांडवों के सखा हैं। कही ये सब शूरवीर पांडव इन सबकी सहायता से कौरवों पर आक्रमण तो नहीं कर देंगे। उन्होंने संजय को बुलाकर पांडवों के पास भेजा, उनकी सैन्य स्थिति का आंकलन करने, उनके मन्तव्य को समझने के लिये। वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय अज्ञातवर्ष का एक वर्ष भी पांडवों ने पूरा कर लिया। महाराज विराट ने अर्जुन पुत्र अभिमन्यु के साथ अपनी पुत्री उत्तरा का विवाह कर दिया। द्वारिका से यादव महारथी सात्यकि कृष्ण के साथ वहां पधारे। अपने कक्ष में धृतराष्ट्र ने संजय को बुलाया।

संजय ने आकर प्रणाम किया। धृतराष्ट्र बोले आओ संजय। समय तो मुट्ठी में से रेत की भांति कण-कण करके फिसलता जा रहा है? सरका जा रहा है और तुम्हारे इस नरेश के पास तुम्हारे अतिरिक्त और ऐसा कोई नहीं है जिसके पास कोई अपना निहित स्वार्थ न हो। मुझे ऐसा लग रहा है कि काल का हाथ धीरे-धीरे मेरे मुकुट की ओर बढ़ रहा है और मेरे इन हाथों में अब शक्ति भी नहीं रही है कि मैं काल की कलाई को मोड दूं। संजय बोला ऐसा आप क्यों कह रहे है महाराज? धृतराष्ट्र बोला मैं इसलिये ऐसा कह रहा हूं कि नंगे सिर मुझे जीना आता नहीं। नीति चाहे कुछ भी कहे पर यह सिंहासन मेरा है। मैं अपने सिंहासन पर बैठा हूं। इस पर मेरे उपरान्त मेरे पुत्र दुर्योधन को बैठना चाहिये। संजय बोला भगवान आपको लम्बी आयु दे महाराज। आपके उपरान्त तो राजमुकुट पर युवराज का ही अधिकार है और उस अधिकार की रक्षा करने के लिये गंगापुत्र भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और अंगराज कर्ण जैसे सभी महारथी उपस्थित है। धृतराष्ट्र बोले ये सारे महारथी तो विराट युद्ध में भी उपस्थित थे। वे सब एक अकेले अर्जुन का सामना नहीं कर पाये इसलिये युद्ध हमारे हित में नहीं है संजय।

संजय ने पूछा तो मेरे लिये क्या आदेश है राजन? धृतराष्ट्र बोला पांडव विराट नगर में उपलव्य में रह रहे है तुम वहां जाकर उनकी सुध लो और जाकर अजात शत्रु युधिष्ठिर से आदरपूर्वक कहना। अनुज पुत्रों से कहना कि मेरा यही आशीर्वाद है कि वे जहां है वही सुखी रहे। दुर्योधन की हठधर्मी के अतिरिक्त यहां कोई उनका विरोधी नहीं है और यहां अंगराज कर्ण उसकी हठधर्मी को हवा देता रहता है। गान्धार नरेश शकुनि सतत उसे उकसाते रहता है, भडकाते रहता है। दुशासन तो उसका भक्त है ही, उसकी हां में हां मिलाते रहता है और स्वयं मैं पुत्र मोह का रोगी हूं। उसकी सब हठे पूरी करते रहता हूं। वो पांडवों को युद्ध में हराना चाहता है। मैं उसकी यह हठ कैसे पूरी करूं? पांडव वनवास के योग्य कदापि नहीं है फिर भी वह कष्ट उन्हे भोगना पडा। इतने पर भी पांडवों का हम लोगों पर क्रोध नहीं है। वास्तव में बडे ही निष्कपट और सज्जनों का उपकार करनेवाले है। पांडवों ने कभी कोई बेईमानी नहीं की। उन्होंने अपने पराक्रम से ही लक्ष्मी प्राप्त कर

मेरे ही अधीन कर दी थी। हम सदा ही उनमें दोष ढूंढते रहे पर कभी भी कोई दोष उनमें नहीं पाया जिससे वे निन्दा के पात्र हो। वे समय पडने पर मित्रों, बन्धु-बांधवों को धन भी देते है। प्रवास काल में भी सबके साथ इनकी मित्रता में कोई कमी नहीं आयी। मूर्ख दुर्योधन पांडवों के जीते जी उनके राज्य का अपहरण कर लेना सरल समझता है। जिस युधिष्ठिर के पीछे अर्जुन, नकुल, कृष्ण, भीम, सात्यकि, सहदेव और सम्पूर्ण क्षत्रियवंशी वीर है उनका राज्य पहिले ही दे देने में कल्याण है। त्रिलोक में ऐसा कोई पराक्रमी वीर नहीं है जो इन महारथियों को ललकार सके। गाण्डीवधारी अर्जुन अकेले ही सारी पृथ्वी को अपने अधीन कर सकता है। सुनता हूँ कि अर्जुन पुत्र अभिमन्यु भी अर्जुन से कम नहीं है। फिर सबसे कठिन समस्या तो यह है संजय कि वे सब देवकीनन्दन कृष्ण के सुदर्शन चक्र की छत्रछाया में है। भीम के समान गदाधारी हाथी पर सवार होनेवाले के समान कोई है ही नहीं। उसके साथ यदि बैर हुआ तो वह मेरे पुत्रों को जलाकर भस्म कर डालेगा। साक्षात इन्द्र भी इन पांडवों को नहीं हरा सकते। नकुल और सहदेव भी शुद्ध चित्त और पराक्रमी है। जैसे दो बाज पक्षियों के समूह को नष्ट कर दे उसी प्रकार ये दोनों भाई शत्रुओं से भिड जाते है। पांडव पक्ष में द्रुपद पुत्र ध्रृष्टद्युम्न एक बहुत वीर यौद्धा है जो बडे वेग से युद्ध करता है। मत्स्य देश का राजा विराट भी अपने पुत्रोंसहित पांडवों का सहायक है। पांडव नरेश भी अपने बहुत से वीरों के साथ पांडवों की सहायता के लिये आया है। सात्यकि तो पांडवों की अभीष्ट सिद्धि में रत है। इन सब को देख मैं बहुत डरा हुआ हूं संजय। वे अपने बाणों की दिशा मेरी ओर तो नहीं करेंगे क्योंकि वे मर्यादा पुरुष है परन्तु मेरे दुर्योधन का क्या होगा? वह कवच अर्जुन के बाणों को नहीं रोक पायेगा? कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर बडे ही धर्मात्मा, लज्जाशील और बलवान है। उनके मन में शत्रुभाव तो कभी आया ही नहीं। परन्तु दुर्योधन ने तो उनके साथ भी छल ही किया। कही वे क्रोध करके मेरे पुत्रों को जलाकर भस्म नहीं कर दे। मैं राजा युधिष्ठिर के कोप से जितना भयभीत हूँ उतना भय मुझे अन्य किसी भी वीरों से नहीं है क्योंकि युधिष्ठिर बडा ही तपस्वी है, उसने नियमानुसार ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया है। अत: वे अपने मन में जो भी संकल्प करते है वो पूरा होता है। कृष्ण पांडवों से प्रेम करते है। पांडव उन्हे अपनी आत्मा के समान मानते है। कृष्ण सदा पांडवों के हित साधन में लगे रहते है, बडे विद्वान है। वे यदि सन्धि के लिये कोई भी प्रस्ताव करेंगे तो युधिष्ठिर मान लेगा, उनकी बात नहीं टालेगा। संजय यह भी तो सत्य ही है कि मेरी ही राजसभा में मेरे पुत्र दुर्योधन ने मेरी कुलवधू के वस्त्राहरण का आदेश दिया था। मेरे पुत्र दुशासन ने उसका वस्त्र हरण करने का प्रयत्न किया था और फिर यह भी असत्य नहीं है संजय कि कर्ण ने मेरी कुलवधू को वेश्या कहा था। मैंने उसे दंड देना तो दूर अपने कान तक बन्द नहीं किये थे। तो अब मैं उन्हे किस मुख से कहूं कि पुत्रों भूल जाओ तुम्हारे साथ क्या-क्या हुआ। जिस दिन अर्जुन ने विराट में हस्तिनापुर की सेना को हरा दिया जिसमें तातश्री भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य सभी थे उसी दिन से मेरी इन नेत्रहीन आंखों ने सपना देखना भी छोड दिया था कि मेरा पुत्र दुर्योधन पांडु पुत्रों को युद्ध में हरा सकता है तो फिर सन्धि के अतिरिक्त और रह ही क्या जाता है? परन्तु दुर्योधन यह बात नहीं समझेगा और यदि वो समझने का प्रयत्न भी करेगा तो यह गान्धार नरेश शकुनि तथा अंगराज कर्ण जैसे व्यक्ति उसे समझने भी नहीं देंगे। इसलिये हे संजय रथ लेकर तुम उपलव्य जाओ और युधिष्ठिर को समझाने का प्रयत्न करो। पांडवों में एक वह ही ऐसा है जो अपने क्रोध को जीत चुका है। उसे कहो कि उसका ज्येष्ठ पिता युद्ध नहीं चाहता है। शान्ति चाहता है। उसे विश्वास दिलाओ और यदि तुम उसे यह विश्वास दिला पाये तो हस्तिनापुर राज्य और अपने नरेश पर तुम्हारा उपकार होगा। उनके पास राजाओं की सभा में समयानुसार जो भी उचित हो बात कर समझाना। तुम स्वयं ही समझदार हो। जिस किसी तरह से भरतवंशियों का

हित हो, परस्पर क्रोध का मनमुटाव न बढे तथा युद्ध का कारण भी उपस्थित न होने पावे ऐसी बातें उनसे करना। महाराज धृतराष्ट्र की बातें सुनकर संजय बोला जो आज्ञा महाराज पर उपकार की बात मत कीजिये। यह संजय क्या उपकार करेगा हस्तिनापुर और उसके नरेश पर? मैं तो स्वयं आपकी कृपा का ऋणी हूं। अब मुझे आज्ञा दीजिये। धृतराष्ट्र बोला जाओ और सफल होकर लौटो। महाराज धृतराष्ट्र ने दुर्योधन की ढेर सारी निन्दा कर कहा था कि संजय युधिष्ठिर से कहना दुर्योधन के सिर पर तो मृत्यु मंडरा रही है, वह किसी की भी बात नहीं सुनता है इसलिये युधिष्ठिर उसी की बात मान ले और युद्ध के स्थान पर प्रेम और सौहार्द्र से काम ले।

## ७) उपप्लव्य में संजय का आना और युधिष्ठिर को धृतराष्ट्र का सन्देश सुनाना

वैशम्पायन कहते है जनमेजय राजा धृतराष्ट्र ने जैसा कहा उसे पांडवों को समझाने के लिये संजय उपप्लव्य में युधिष्ठिर की राजसभा में आता है। वहां पर विराट नरेश, द्रुपद तथा सभी पांडव उपस्थित थे। युधिष्ठिर ने संजय को प्रणाम किया। संजय बोला इस सूतपुत्र के लिये इतना आदर उचित नहीं महाराज। युधिष्ठिर बोले आदर तो किसी के पिता के पुत्र की धरोहर नहीं है संजय। आदर व्यक्ति की सम्पत्ति है और आप मेरे लिये सदा आदरणीय है क्योंकि आप मेरे ज्येष्ठ पिताश्री के सारथी है। संजय बोला सारथी तो तब रहूंगा ना महाराज जब रथ होगा। युधिष्ठिर बोले पहले मेरे निकट आसन ग्रहण करो संजय। आइये। और अब ये बताइये ज्येष्ठ पिताश्री और बडी मां कैसी है? पता नहीं मेरी आंखों से उनके दर्शनों का सावन कब बरसेगा? पता नहीं इस मृगतृष्णा से हम कब निकलेंगे? संजय बोला ऐसे प्रश्नों के उत्तर तो केवल विधाता के पास होते हैं महाराज। महाराज कुशल हैं और उन्होने आप के लिये आशीर्वाद भेजा है। युधिष्ठिर बोले मैं कैसा भाग्यवान हूं संजय कि कडवाहटों के सागर के दूसरे तट पर खडे हुये ज्येष्ठ पिताश्री के पास अब भी इस अनुज पुत्र के लिये आशीर्वाद हैं कि किन्तु आपने यह नहीं बताया संजय की बडी मां कैसी है? संजय बोला क्या आप अपनी माताश्री महारानी कुन्ती के विषय में कुछ नहीं पूछेंगे? युधिष्ठिर बोले उनके विषय में क्या पूछना संजय? वे भरत कुलवधू हैं अवश्य ही सुरक्षित होंगी। भरतवंश एक ही भूल दो बार तो नहीं कर सकता। पितामह दो बार तो चुप नहीं रह सकते। आचार्य द्रोण और कुलगुरु कृपाचार्य एक ही अपमान को दो बार तो सहन नहीं कर सकते। इसलिये हे संजय मैं माताश्री की ओर से बिल्कुल भी चिंतित नहीं हूं। हां अब यह बताओ कि पितामह कैसे हैं? और वो मेरा प्रिय अनुज दुर्योधन कैसा है?

महाराज धृतराष्ट्र ने आपकी कुशल पूछी है? भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव सब तो कुशलपूर्वक हैं न? सत्य का आचरण करनेवाली वीर पत्नी महारानी द्रौपदी सब प्रकार से कुशल है न? युधिष्ठिर बोले हम सब अपने भाइयों के साथ प्रसन्न हैं। हमारे पितामह की कुशल कहो? उनका हम लोगोंपर पूर्ववत स्नेहभाव है न? अपने पुत्रोंसहित महाराज धृतराष्ट्र तथा बाहलीक सब तो प्रसन्नता से है ना? सोमदत्त, भूरिश्रवा, राजा शल्य, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य ये दोनों प्रधान धनुर्धर भी स्वस्थ है न? भरतवंश की वृद्ध मातायें तथा बहुओं को तो कोई कष्ट नहीं ना? दासियां, दास, पुत्र, भान्जे, बहिने और दौहित्र सब निष्कपट भाव से है न? राजा दुर्योधन पहिले ही की भांति ब्राह्मणों के साथ यथोचित बर्ताव करते हैं ना? मैंने ब्राह्मणों की वृत्ति जो दी थी उसको छीनता तो नही है ना? क्या कभी सब कौरव इकट्ठा होकर धृतराष्ट्र और दुर्योधन से मेरा राज्य लौटाने के लिये कहते है? राज्य में लुटेरों के दल को देखकर कभी उन्हे अपने वीराग्रणी अर्जुन की याद आती है? भीम जब गदा हाथ में लेता है तो उसे देखकर शत्रु समूह कांप उठता है, ऐसे पराक्रमी भीम को भी कभी स्मरण करते है। महाबली एवं अतुल पराक्रमी नकुल, सहदेव को भूल तो नहीं गये। मन्द मूढबुद्धि दुर्योधन घोषयात्रा के लिये वन गये थे

उस समय गन्धर्वों से युद्ध में पराजित हो शत्रुओं के बन्दी बन गये थे उस समय भीम और अर्जुन ने उनकी रक्षा की थी क्या वे यह बात भूल गये? यदि हम लोग दुर्योधन को सर्वथा पराजित न कर सके तो केवल एक बार उसकी भलाई कर देने मात्र से उसको वश में करना बहुत कठिन है। संजय बोला हे पांडुनन्दन महाराज युधिष्ठिर आपने जो कुछ कहा वह सर्वथा ठीक है। जिन जिनकी कुशल आपने पूछी है वे सभी कुरुश्रेष्ठ सानन्द है। दुर्योधन शत्रुओं को दान देता है फिर वो ब्राह्मणों की दी हुई वृत्ति को कैसे छीन सकता है? धृतराष्ट्र अपने पुत्रों को आपसे द्वेष करने की कभी आज्ञा नहीं देते। वे तो उन्हे द्रोह करते सुनकर मन ही मन बहुत संतप्त होते है। वे अपने यहां आये हुये ब्राह्मणों से सदा सुनते हैं कि मित्रद्रोह सब पातकों से भारी पाप है। युद्ध की चर्चा होनेपर महाराज धृतराष्ट्र, वीर अर्जुन, गदाधारी भीम तथा रणवीर नकुल, सहदेव को स्मरण करते है। हे अजातशत्रु अब आप ही अपनी बुद्धि से कोई ऐसा मार्ग निकाले जिससे कौरवों और पांडवों को सुख प्राप्त हो।

संजय बोला महाराज हस्तिनापुर में हस्तिनापुर के अतिरिक्त सभी कुशल है। वे कुरुवंश में दरार पड जाने के कारण वो सब दु:खी है। युधिष्ठिर बोले इस कारण से तो हम भी बहुत दु:खी है किन्तु यह तो आप भी जानते है कि दु:ख के वृक्ष का बीज हमने नहीं बोया। संजय बोला बीज किसी ने भी बोया हो महाराज पर वृक्ष तो सामने खडा है। भीम आवेश में आकर बोलने लगा इस वृक्ष का नाम दुर्योधन है संजय और हम अवश्य उस वृक्ष को काटकर रहेंगे। बीच ही में कृष्ण बोले यह तो शान्ति की भाषा नहीं है मझले भैय्या और यदि महाराज युधिष्ठिर को शान्ति नहीं चाहिये तो फिर पांचाल नरेश के राज पुरोहित को राजदूत बनाकर क्यों भेजा था? युधिष्ठिर बोले वासुदेव ठीक कह रहे हैं प्रिय अनुज। आप हमारे सन्देश के उत्तर में क्या सन्देश लेकर आये हैं संजय? अर्जुन बोले सन्देश सुनने से पहिले भ्राताश्री इनसे यह तो पूछ लीजिये कि ये आदेश लाये किसका? दुर्योधन और दुशासन के पिता धृतराष्ट्र का? या हस्तिनापुर नरेश धृतराष्ट्र का या फिर हमारे ज्येष्ठ पिताश्री धृतराष्ट्र का। संजय बोला ये तीनों तो एक ही है कुन्ती पुत्र अर्जुन। कृष्ण बोले ये तीनों एक कैसे हैं संजय? ये तीनों एक नहीं है। यदि ये तीनों एक ही होते तो पांडवों के ज्येष्ठ पिताश्री और हस्तिनापुर नरेश ने गान्धार नरेश को द्यूत में कपट करने से रोक दिया होता। जो महापुरुष उस कपट द्यूत में दुर्योधन की जीत पर प्रसन्न हो रहे थे वे केवल दुर्योधन के पिताश्री धृतराष्ट्र ही थे। जिन्होने हस्तिनापुर का विभाजन किया वे केवल दुर्योधन के पिताश्री धृतराष्ट्र ही थे और जो अपनी कुलवधू द्रौपदी के वस्त्रहरण को अपनी निर्लज्जता से देखते रहे वो भी केवल दुर्योधन के पिताश्री धृतराष्ट्र ही थे। आज हस्तिनापुर के राज सिंहासन पर कोई राजा तो है नही। उस सिंहासन पर तो केवल एक पिता विराजमान है इसलिये पार्थ का प्रश्न मुझे तो सर्वथा उचित लगता है संजय। यह बतलाना अत्यन्त आवश्यक है कि आप किसके दूत बनकर आये है? संजय बोला हे देवकीनन्दन कदाचित मैं तीनों का ही दूत हूँ। और हे गिरधर मेरी बूढी आंखे जो कुछ भी सामने देख रही है वो शुभ नहीं है। कृष्ण बोले तो हे संजय कृपया यह बतलाईये कि आपकी ये अनुभवी आंखे क्या देख रही है? संजय बोला मेरी आंखे तो सामने युद्ध देख रही है मधुसूदन और युद्ध भी कैसा एक ओर सम्राट युधिष्ठिर का ध्वज और आपके आशीर्वाद की छाया में पांचाल नरेश द्रुपद, युवराज धृष्टद्युम्न, गांडीवधारी अर्जुन, सर्वश्रेष्ठ गदाधर भीम, महारथी नकुल, सहदेव, महारथी अभिमन्यु और दूसरी ओर हस्तिनापुर के ध्वज तले गंगापुत्र भीष्म, आचार्य द्रोण, कुलगुरु कृपाचार्य, अश्वत्थामा स्वयं दुर्योधन, दुशासन, अंगराज कर्ण जैसे महारथी। हे केशव इन दोनों सेनाओं में से कोई भी सेना पराजित हुई दिखाई नहीं देती। तो यह होगा मधुसूदन की इच्छा मृत्यु की लकडी का सहारा लिये गंगापुत्र भीष्म भरत वंशजों के शवों के बीच अकेले खडे रह जायेंगे। कृष्ण बोले आपकी अनुभवी आंखे यहीं तो धोखा खा गई संजय। हे राजदूत संजय जब दो सेनायें

युद्ध करती है तो उनमें से एक की विजय तो निश्चित है। संजय बोला तो मैं क्या करू वासुदेव श्रीकृष्ण? इन दोनों सेनाओं में से पराजय किसी की भी हो, मेरा हृदय तो अवश्य ही लहुलुहान होगा। हे केशव मैंने इन सारे राजकुमारों को अपनी गोदी में खिलाया है। इन सबका बालपन देखा है अब मैं इनके शव देखना नहीं चाहता। युधिष्ठिर बोले किन्तु युद्ध की बात कौन कर रहा है संजय? हम तो स्वयं ही कोई विकल्प खोज रहे हैं। शान्ति का एक मार्ग अब भी बचा है यदि ज्येष्ठ पिताश्री हमें हमारा इन्द्रप्रस्थ लौटा दें तो हम और सब कुछ भूल जाने का प्रयास कर सकते हैं। भीम बोला क्या भैया आप?... युधिष्ठिर बोला अपने बडे भाई को इस तरह टोका नहीं करते प्रिय अनुज। यदि हम युद्ध चाहते संजय तो फिर हम दूत क्यों भेजते? हम सेना लेकर ही आते और हस्तिनापुर के द्वार खटखटाते इसलिये कृपया यह बतलाईये कि हमारे ज्येष्ठ पिताश्री महाराज धृतराष्ट्र ने हमारे प्रस्ताव के उत्तर में क्या प्रस्ताव दिया है?

संजय बोला मैं कोई प्रस्ताव लेकर नहीं आया हूं महाराज। मैं तो केवल महाराज का एक आशीर्वाद लेकर आया हूँ। युधिष्ठिर बोले अब आप महाराज धृतराष्ट्र का सन्देश सुनाये। संजय बोला मेरे महाराज धृतराष्ट्र ने कहा है आप सब बडे धर्मशील हैं। महाराज धृतराष्ट्र भी युद्ध नहीं, शान्ति चाहते है इसमें पांडवों का हित ही होगा। हे कुन्तीपुत्र आप अपने दिव्य शरीर, नम्रता और सरलता आदि कारणों से सब धर्मों एवं उत्तम गुणोंसे युक्त है। उत्तम कुल में आपका जन्म हुआ हैं। आप बडे ही दयालु और दानी है। आप स्वभाव में संकोची, शीलवान और कर्मों के परिणाम को जाननेवाले, आपका हृदय सत्त्वगुणों से परिपूर्ण है अत: आपसे कोई दुष्कर्म तो बन ही नहीं सकता। क्या सफेद वस्त्र में कभी कोई काला दाग छिप सकता है? अत: आप में किसी दोष का होना असम्भव है और यदि होता तो वह स्वत: प्रकट हो जाता। जिसके करने में सबका विनाश दिखाई पडता है, सब प्रकार से पाप का उदय होता है और अन्त में नरक का द्वार देखना पडे उस युद्ध जैसे कठोर कर्म में कौन समझदार पुरुष प्रवृत्त होगा? वहां तो जय और पराजय दोनों समान है। फिर कुन्तीपुत्र अन्य अधम पुरुषों के समान ऐसा घोर कर्म करने के लिये कैसे तैयार हो गये जो न धर्म का साधक है और न ही अर्थ का। सन्धि ही शान्ति का सर्वोत्तम उपाय है। गंगापुत्र भीष्म और राजा धृतराष्ट्र की भी यही सम्मति है।

युधिष्ठिर बोले संजय तुमने मेरे बारे में ऐसी क्या बात सुनी जिससे कि मेरी युद्ध की इच्छा जानकर भयभीत हो रहे हो? युद्ध करने की अपेक्षा उसे न करना ही अच्छा है। सन्धि का अवसर पाकर भी कौन युद्ध करना चाहेगा? बिना युद्ध किये यदि थोडा भी लाभ हो तो उसे बहुत मानना चाहिये। तुम यह भी जानते हो कि हमने वन में कितना क्लेश उठाया है फिर भी हम कौरवों के अपराध को क्षमा कर सकते हैं। कौरवों ने हमारे साथ पहले भी जो व्यवहार किया है वह किसी से छिपा नहीं है। अब भी वैसा ही कुछ हो रहा है। हम शान्ति धारण कर लेंगे, यह तभी सम्भव है जब वह हमारा राज्य इन्द्रप्रस्थ वापिस करने को तैयार हो। संजय बोला हे पांडुनन्दन आपका प्रत्येक कर्म और प्रयत्न धर्मानुसार होता है। यह सर्वविदित भी है। यद्यपि यह जीवन अनित्य है तथापि इस जीवन में महान सुयश की प्राप्ति हो सकती है इस बात को विचारकर आप अपनी कीर्ति का नाश न करे। यदि कौरव युद्ध किये बिना आपका राज्य न लौटाये तो भी अन्धक और वृष्णि वंश के राजाओं के राज्य में रहकर अपना जीवनयापन करना श्रेयस्कर है परन्तु युद्ध कर राज्य पा लेना अच्छा नहीं है। मनुष्य का जीवन बहुत थोडे समय तक रहनेवाला है, वह सदा ही क्षीण होनेवाला दु:खमय और चंचल है। अत: हे पांडवराज यह नरसंहार तुम्हारे यश के अनुकूल नहीं है। तुम युद्धरूपी पाप में प्रवृत मत होओ। इस संसार में धन की तृष्णा संसार बन्धन में डालनेवाली है, उसमें फंस जाने से धर्म पालन में बाधा आती है। जो धर्म की राह पर चलता है वही ज्ञानी है। भोगों की

इच्छा रखनेवाला मनुष्य अर्थ सिद्धि से भ्रष्ट हो जाता है। जो ब्रह्मचर्य और धर्माचरण का त्याग कर अधर्म में प्रवृत्त होता है तथा जो मूर्खतावश परलोकपर अविश्वास करता है वह अज्ञानी मरणोपरान्त बडा कष्ट पाता है। परलोक में जानेपर भी अपने पहिले किये पुण्य पापरूपी कर्मों का नाश नहीं होता। पहिले तो पाप-पुण्य ही मनुष्य के पीछे चलते हैं फिर मनुष्य को इनके पीछे चलना पडता है। इस शरीर के रहते हुये ही कोई भी सत्कर्म किया जा सकता है। मरने के बाद तो कुछ भी नहीं हो सकता। आपने तो परलोक में सुख देनेवाले अनेकों पुण्यकर्म किये है जिनकी सत्पुरुषों में बडी प्रशंसा की है। इतने पर भी आपको यदि युद्ध रूपी पाप कर्म ही करना है इससे अच्छा तो चिरकाल के लिये जाकर वन में रहे। वनवास में दु:ख तो होगा पर वह है धर्म। हे कुन्तीनन्दन आपकी बुद्धि कभी भी अधर्म में प्रवृत्त नहीं होती। आपने कभी भी क्रोध वश हो पापकर्म किया हो ऐसा भी कोई जान नहीं पडता फिर किस कारण से आप अपनी सोच के विपरीत कार्य करना चाहते है?

युधिष्ठिर बोले संजय सन्धि का आधार न्याय होता है और पांडवों को इन्द्रप्रस्थ लौटाया नहीं गया तो फिर कैसे हमारे साथ न्याय होगा तब कैसे सन्धि हो पायेगी? संजय का तर्क कुछ ऐसा ही था कि दुर्योधन तो अधर्मी है वह तो कोई धर्म पर चलनेवाला नहीं, माननेवाला नहीं। युधिष्ठिर तो धर्मात्मा है इसलिये उसे धर्मपर चलना चाहिये और युद्ध करना धर्म नहीं है। अर्थात् दुर्योधन तो दुष्ट है उसे दुष्टता करनी दी जाये। युधिष्ठिर भला आदमी है वह सदा कष्ट उठाते रहे, अन्याय सहे, पीडा सहे। युधिष्ठिर बोले संजय तुम्हारा यह कहना बिल्कुल उचित है कि सब प्रकार के कर्मों से धर्म ही श्रेष्ठ है परन्तु जो कर्म मैं करने जा रहा हूं उसे आप बिना ठीक-ठीक जाने कैसे कह सकते हैं कि ये धर्म है या अधर्म? कहीं तो अधर्म ही धर्म का चोला पहिन लेता है, कहीं पूरा का पूरा धर्म-अधर्म के रूप में दिखाई देता है और कहीं धर्म अपने स्वरूप में ही रहता है। विद्वान अपनी बुद्धि से इसे जान लेते है। एकवर्ण के लिये जो धर्म है वह दूसरों के लिये अधर्म भी हो सकता है। इसप्रकार धर्म और अधर्म नित्य रहनेवाले हैं तथापि आपत्तिकाल में इनकी व्याख्या की अदल-बदल होती है। जो धर्म जिसके लिये मुख्य होता है वह उसीके लिये प्रमाणभूत है। दूसरों के द्वारा उसका व्यवहार आपत्ति काल में होता हैं। आजीविका साधन सर्वदा नष्ट हो जानेपर जिस वृत्ति का आश्रय लेने से जीवन की रक्षा एवं सत्कर्मों का अनुष्ठान हो सके उसका आश्रय लेना चाहिये। जो आपत्तिकाल न होनेपर भी उस समय के धर्म का पालन करता है तथा जो वास्तव आपत्तिग्रस्त होकर भी उसके अनुसार जीविका नहीं चलाता वे दोनों ही कर्म निन्दा के पात्र हैं। जीविका मुख्य साधन न होनेपर ब्राह्मणों का नाश न हो इसके लिये विधाता ने अन्य वर्णों की वृत्ति से जीविका चलाकर उसके लिये विधान बनाया है। इस व्यवस्था के अनुसार यदि तुम मुझे विपरीत आचरण करते देखो तो अवश्य मेरी निन्दा करने के योग्य हो। मनीषी पुरुषों को तत्वादि के बन्धन से मुक्त होने के लिये सन्यास के पश्चात सत्पुरुषों, सद्गृहस्थों के यहां से भिक्षावृत्ति लेकर जीवन निर्वाह करने का विधान है, परन्तु जो ब्राह्मण नहीं है तथा जिनकी ब्रह्मविद्याओं में निष्ठा नहीं है उन सबके लिये अपने-अनेक धर्मों का पालन करना ही श्रेष्ठ है। मेरे पूर्वज जिस मार्ग को मानते रहे तथा यज्ञ की इच्छा से जो जो कर्म करते रहे मैं भी उन्ही कर्मों के मार्ग का अनुसरण करता हूँ इसके अतिरिक्त नहीं। संजय मैं कोई नास्तिक नहीं हूँ। इस पृथ्वी पर जो कुछ भी धन है, देवताओं और प्रजापतियों तथा ब्रह्मा के लोक में जो भी वैभव है वे सब भी यदि मुझे प्राप्त हो तो भी मैं उन्हे अधर्म से लेना नहीं चाहता। यहां यदुकुल भूषण कृष्ण है जो समस्त धर्मों के ज्ञाता, कुशल, नीतिमान, ब्राह्मण भक्त और मनीषी है। बडे-बडे बलवान राजाओं तथा भोजवंशियों पर शासन करते हैं। यदि मैं सन्धि का प्रस्ताव त्याग युद्ध करने से अपने धर्म से भ्रष्ट हो निन्दा का पात्र बन रहा हूं तो ये वासुदेव इस विषय में अपना विचार प्रकट कर मेरा मार्गदर्शन करे

क्योंकि इन्हे दोनों पक्षों का हित साधन अभिष्ट है। ये प्रत्येक कर्म का अन्तिम परिणाम जानते हैं, विद्वान हैं। हमारे लिये इनसे श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है। वे हमे सबसे बढकर प्रिय है। वे हमारे लिये जो भी कहेंगे व निश्चित ही है, हम इनकी बात कभी टाल नहीं सकते। संजय ने निर्लज्जता पूर्ण सन्देश में केवल पांडवों को उपदेश दिया था कि वे युद्ध कर नरसंहार न करे। धन तृष्णा बडी ही अनर्थकारी होती है। जब कोई सम्पत्ति दबाये बैठा हो और दूसरों का स्वत्व न देकर केवल उपदेश करे तो उसके उपदेश का क्या महत्व? संजय ने कहा था कि युधिष्ठिर की दृष्टि में क्षमा महान धर्म है इसलिये उसे वही करना चाहिये। सारे पापों की जड जो क्रोध है उसका त्याग करे। भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा अन्य लोगों का वध कर युधिष्ठिर जिन भोगों को प्राप्त करना चाहते है वे इतने महत्वपूर्ण नहीं है। इससे तो अच्छा है कि युधिष्ठिर अपना सर्वस्व त्यागकर वानप्रस्थ ग्रहण करें।

कृष्ण बोले संजय जिस प्रकार से मैं पांडवों को विनाश से बचाना चाहता हूँ उनको उनका ऐश्वर्य वैभव दिलाना चाहता हूं, उनका प्रिय करना चाहता हूँ। उसी प्रकार राजा धृतराष्ट्र के पुत्रोंसहित उनके भी अभ्युदय की शुभकामना करता हूँ। मैं यही चाहता हूँ कि दोनों पक्ष शान्त रहे। युधिष्ठिर को भी शान्ति ही प्रिय है परन्तु शान्ति का होना कठिन ही लगता है। जब धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंसहित लोभवश पांडवों का राज्य भी हडप लेना चाहता है तो फिर कलह तो बढेगा ही। तुम भलीभांति यह जानते हो कि युधिष्ठिर या मेरे द्वारा कभी धर्म का लोप हो ही नहीं सकता। युधिष्ठिर के धर्म पालन करने में तो शंका का कोई कारण ही नहीं है। वे तो पहिले से ही शास्त्रमतानुसार परिवार में रह रहे हैं। वे तो अपने स्वामित्व के राज्य को प्राप्त करने का प्रयास कर रहे हैं उसे तुम धर्म का लोप किस प्रकार बता रहे हो? गार्हस्थ जीवन के विधान का ही वो पालन कर रहे है इसे छोडकर तो वनवासी जीवन व्यतीत करने का विचार तो ब्राह्मणों का होना चाहिये। कोई तो गृहस्थ आश्रम में रहकर कर्मयोग के द्वारा पारलौकिक सिद्धि प्राप्त करना चाहते है और कुछ लोग कर्म को त्याग कर ज्ञान के द्वारा ही सिद्धि का प्रतिपादन करना चाहते हैं। परन्तु खाये पिये बिना किसी की भी भूख नहीं मिट सकती। इसीसे ब्रह्मवेता ज्ञानी के लिये भी गृहस्थों के घर भिक्षा का विधान है। इस ज्ञानयोग की विधि का भी कर्म के साथ ही विधान है। ज्ञानपूर्वक किया हुआ कर्म उच्छिन्न हो जाता है पर बन्धनकारक नहीं होता। इसमें कर्म को त्यागकर केवल सन्यास आदि को ही जो लोग उत्तम मानते हैं वे दुर्बल हैं और उनके कहने का कोई मूल्य नहीं है। संजय तुम तो सम्पूर्ण लोकों के धर्म को जाननेवाले हो। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों का धर्म भी तुम्हे पूर्णतया ज्ञात है। ऐसे ज्ञान से परिपूर्ण होकर भी तुम नाहक कौरवों के लिये हठ कर रहे हो। राजा युधिष्ठिर शास्त्रों का स्वाध्याय, मनन करनेवाले, अश्वमेघ और राजसूय यज्ञों का अनुष्ठान करनेवाले, सभी शस्त्रों से सुसज्जित, आयुधों के सम्पन्न स्वधर्मानुसार अपने कर्त्तव्य का पालन करते और क्षत्रियोचित युद्धकर्म में प्रवृत्त होकर यदि दैववश मृत्यु को भी प्राप्त हो जाय तो भी उनकी मृत्यु श्रेष्ठ ही समझी जायेगी। यदि तुम सब कुछ छोडकर शान्ति धारण करने को ही धर्म मानते है तो फिर यह बताओ युद्ध करने से राजाओं के धर्म का पालन होता है या युद्ध छोडकर भाग जाने से। पांडवों का जो राज्य है उसे धर्म के अनुसार उन्हे प्राप्त होना चाहिये पर धृतराष्ट्र उसे अधर्मपूर्वक सहसा हडप लेना चाहता है। उसके समस्त पुत्र कौरव भी उसी का साथ दे रहे है। कोई प्राचीन राजधर्म की ओर दृष्टि नहीं डालता। लुटेरा, डाकू छिपे रहकर धन चुरा लेता है अथवा सामने आकर बलपूर्वक डाका डाले। दोनों ही दशा में वह निन्दा का पात्र है संजय। दुर्योधन और उन चोर डाकुओं में फिर क्या अन्तर रहा? दुर्योधन तो क्रोध के वशीभूत हो रहा है। इसने जो छल से राज्य का अपहरण कर लिया है उसे लोभ के कारण धर्म मानता है और राज्य को हडपना चाहता है। पर पान्डवों

का राज्य तो शर्तानुसार धरोहर के रूप में रखा हुआ है। दुर्योधन ने जिन्हे युद्ध के लिये एकत्रित किया है वे मूर्ख राजा लोग घमंड के कारण मौत के फन्दे में आ फंसे है। संजय महाराज धृतराष्ट्र की भरी सभा में कौरवों ने जो बर्ताव किया था उस महान पाप कर्म पर भी तनिक दृष्टि डालो। पांडवों की प्यारी पत्नी सुकुमारी सुमुखी सुशीला द्रौपदी रजस्वला अवस्था में ही सभा में लायी गयी तो भी भीष्म आदि प्रधान-प्रधान कौरवों ने उसकी उपेक्षा कर दी और उस जघन्य कर्म को अपनी आंखों के सामने हो जाने दिया। उस समय यदि बालक से लेकर वृद्ध तक सभी कौरव दुशासन को रोक देते तो कोई शुभ कार्य होता और धृतराष्ट्र पुत्रों का हित होता। सभा में बहुत से राजा एकत्रित थे परन्तु दीनतावश किसी ने भी उस अन्याय का विरोध नहीं किया। केवल विदुर ने अपना धर्म समझकर मूर्ख दुर्योधन का विरोध किया। संजय वास्तव में धर्म को समझे बिना ही तुम इस सभा में पांडु नन्दन युधिष्ठिर को ही धर्म का उपदेश कर रहे हो। द्रौपदी ने धृतराष्ट्र की सभा में बडा ही दुष्कर कार्य किया। उसने अपने पतियों को संकट से उबार लिया तब उसे वहां कितना अपमान सहना पडा। सभा में वह अपने ताऊ श्वसुर के पास खडी थी तब ही उसे लक्ष्य कर सूतपुत्र कर्ण ने कहा याज्ञसेनी अब तेरे लिये दूसरी कोई गति नहीं। दासी बनकर दुर्योधन के महल में चली जाओ। तेरे पति तो जुए में दाव हार चुके हैं। अब किसी दूसरे पति का वरण कर लो। जहां पांच-पांच पति है वहां एक और सही। जब पांडव वन में जा रहे थे उस समय दुशासन ने कितनी कडवी बात कही कि ये सब के सब नपुंसक है और चिरकाल के लिये नरक के गर्त में गिरेंगे। संजय तुम्हें कहां तक बताया जाये द्यूत के समय कितने निन्दनीय वचन कहे। ये सब तुम्हे ज्ञात है। तो भी इस बिगडे हुये कार्य को सुधारने के लिये मैं स्वयं हस्तिनापुर चलने को तैयार हूं। यदि पांडवों का स्वार्थ नष्ट किये बिना ही कौरवों के साथ सन्धि कराने में सफल हो सका तो मैं अपने इस कार्य को बहुत ही पुनीत और अभ्युदयकारी समझूंगा और कौरव भी मौत के फन्दे से छूट जायेंगे। कौरव लता के समान है और पांडव वृक्ष की शाखा के समान। इन शाखाओं का सहारा लिये लतायें कभी बढ नहीं सकती। पांडव महाराज धृतराष्ट्र की सेवा के लिये भी तैयार है और युद्ध के लिये भी। अब महाराज धृतराष्ट्र को जो अच्छा लगे वह स्वीकार करें। पांडव धर्म का आचरण करनेवाले हैं यद्यपि वे शक्तिशाली यौद्धा है तो भी सन्धि करने को तैयार है। तुम ये सब बातें धृतराष्ट्र को अच्छी तरह समझा देना। श्रीकृष्ण ने कहा संजय कौरव एक महावन है और पांडव उसमें विचरण करनेवाले व्याघ्र। वन यदि व्याघ्रों की रक्षा करेगा तो व्याघ्र भी वन की रक्षा करेंगे। यदि वन ने व्याघ्र को मार डाला तो वन के निकट जाने, उसमें प्रवेश करने तथा उसका उजाड करने में किसी को कोई भय नहीं रहेगा। इसलिये कौरव यदि अपनी रक्षा करना चाहते है तो उन्हे पहिले पांडवों की रक्षा करनी चाहिये। संजय बोला मेरे महाराज ने कहा है कि पांडव जहां है वही रहे और सुखी रहे। युधिष्ठिर बोले महाराज धृतराष्ट्र से कहना कि इन्द्रप्रस्थ उनकी आत्मा है और वे वही सुखी रहेंगे और हे संजय हस्तिनापुर के ध्वज के तले खडे होनेवाले जिन महारथियों का तुमने नाम लिया है वे सब आदरणीय है। वे विराट में अर्जुन से युद्ध भी कर चुके है। यह हमारा सौभाग्य है कि हमने गंगापुत्र भीष्म, आचार्य द्रोण, कुलगुरु कृपाचार्य, महात्मा विदुर इनके युग में जन्म लिया। इनके चरण स्पर्श ही हमारी पूजा है परन्तु इसका तात्पर्य यह तो नहीं कि यदि वे अधर्म के ध्वज के तले खडे हो तो हम अधर्म को प्रणाम करके अपना अधिकार छोड दें।

दुर्योधन अनुज है और आकर कहे कि भ्राताश्री मुझे इन्द्रप्रस्थ दे दीजिये तो कदाचित मैं उसे इन्द्रप्रस्थ भी दे दूं। परन्तु उसे कहिये कि वो हमे गंगापुत्र भीष्म और आचार्य द्रोण की धमकी देनेकी भूल न करे। दुर्योधन का अहंकार तो तभी तक है जब तक वो भीम की गदा के सामने नहीं आता। इसलिये हे संजय ज्येष्ठ पिताश्री से यह अवश्य कह देना किउनके अनुज पुत्र युद्ध

और शान्ति दोनों के लिये तैयार है। यदि वे युद्ध का आदेश देंगे तो युद्ध होगा और यदि वे शान्ति चाहेंगे तो शान्ति होगी।

**धर्म तुला में आ पडा, युद्ध शान्ति का भार, देखिये अब क्या होता है, युद्ध खडा उस पार,**
**भूले जब घर के बडे सत्य शान्ति का सार, धर्मराज का धर्म भी फंसे बीच मझदार।**

संजय ने कहा पांडुनन्दन अब मैं जाता हूँ, इसके लिये जाने की अनुमति चाहता हूँ। मैंने मानसिक आवेश के कारण वाणी से कुछ कह दिया हो तो आपको कोई कष्ट न हो। युधिष्ठिर बोले तुम तो हमें कष्ट देनेकी बात कभी सोचते भी नहीं। हम सभी जानते है कि तुम्हारा हृदय शुद्ध व निर्मल है। तुम तो न किसी के पक्षपाती हो। तुम तो मध्यस्थ हो, तुम विश्वसनीय हो, तो तुम्हारी बातें सदा ही कल्याणकारी होती है। तुम शीलवान और सन्तोषी हो। इसलिये सबके प्रिय भी हो। तुम्हारी बुद्धि भी कभी मोहित नहीं होती। कटु वचन कहनेपर भी तुम्हे कभी क्रोध नहीं आता। संजय तुम हमारे प्रिय हो और विदुर के समान ही हो। हस्तिनापुर जाकर वहाके स्वाध्यायरत, ब्राह्मणों, सन्यासियों तथा वनवासी तपस्वियों से, सभी से हमारा प्रणाम कहना, सबसे हमारा कुशल समाचार बताना। जो प्रजा का पालन करते है उन क्षत्रियों को, और जो व्यापार करके अपनी आजीविका चलाते है उन वैश्यों से भी कुशल क्षेम से पूछना। आचार्य द्रोण, अश्वत्थामा से प्रणाम कह उनकी कुशल पूछना और कृपाचार्य इन सभी से उनका चरण स्पर्श करना। जिनमें शूरता, नृशंसता का अभाव, तपस्या, बुद्धि, शील, शास्त्रज्ञान, सत्त्व, धैर्य आदि सद्गुण विद्यमान है उन पितामह भीष्म के चरणों में हमारा प्रणाम कहना। महाराज धृतराष्ट्र हमारे ज्येष्ठ पिताश्री को हमारी ओर से प्रणाम कर हमारी कुशल बताना। हस्तिनापुरवालों से सभी से कुशल पूछना। संजय गम्भीर बुद्धिवाले, दीर्घदर्शी महात्मा विदुर हमारे प्रेमी, गुरु, स्वामी, माता-पिता, मित्र और मन्त्री है। उनको भी मेरी ओर से कुशल क्षेम पूछना कुरुकुल की जो सर्वगुण सम्पन्ना बडी-बूढ़ी स्त्रियां, वृद्ध हमारी मातायें है उन सबको हमारा प्रणाम कहना तथा वहां जो हमारे भाइयों की पत्नियां है उन सबको हमारा यथायोग्य कहना और कहना वे सब सुन्दर नीतियुक्त और प्रशंसनीय आचरणवाली नारियां सुरक्षित रहकर सावधानी से अपने गृहस्थधर्म का पालन करे। उन सबसे यह भी पूछना देवियों तुम सब अपने श्वसुरों के साथ कल्याणकारी कोमल बर्ताव करती है न? तुम लोगों पर तुम्हारे पति जिस प्रकार प्रसन्न हो वैसा व्यवहार करती है न? संजय सेवकों से पूछना धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन प्राचीन सदाचार का पालन कर रहा है न? उन्हे सब प्रकार के भोग तो दे रहा है न? अपाहिज और अपंग काने, कुबडे, लंगडे-लूले, अन्धे, बहरे, दरिद्र तथा बौने मनुष्यों से भी जिनका पालन दुर्योधन करता है न उनसे कुशल पूछना। दुर्योधन से कहना मैंने कुछ ब्राह्मणों के लिये वृत्तियां नियुक्त कर रखी थी पर तुम्हारे कर्मचारी उनके साथ ठीक से व्यवहार नहीं करते। उनकी वृत्तियां पुन: पूर्ववत चालू रहे। इसी प्रकार राजा के यहां जितने अभ्यागत अतिथि और दूत पधारे हैं उन सबकी कुशलक्षेम पूछना। शत्रु का नाश करने के लिये धर्म ही महाबलवान है संजय दुर्योधन को यह बात समझा देना। तुम्हारे हृदय को यह कामना पीडा देती रहती है कि मैं कौरवों का निष्कंटक राज्य करूं सो इसकी सिद्धि का कोई उपाय नहीं है। हम ऐसे नहीं है जो चुपचाप तुम्हारा यह प्रिय कार्य हो जाने देंगे। या तो इन्द्रप्रस्थ का हमारा राज्य हमें दो अथवा हमसे युद्ध करो। संजय सज्जन-असज्जन, बालक-वृद्ध, निर्बल तथा बलवान सब विधाता के वश में है। मेरे सैनिक बल की जिज्ञासा करने पर तुम सबको ठीक-ठीक मेरी स्थिति बता देना। राजा धृतराष्ट्र के पास जाकर उन्हे प्रणाम कर मेरी ओर से उनका कुशल पूछना और कहना आपके ही पुण्य प्रताप पराक्रम से पांडव सुखपूर्वक जीवन बिता रहे है। जब वे बालक थे तब आपकी ही कृपा से उन्हे राज्य मिला था। उनको पहिले राज्य पर बिठाया, अब उनकी उपेक्षा न कीजिये। यह राज्य किसी एक ही के लिये

पर्याप्त नहीं है इसलिये हम सब लोग मिलकर साथ रहकर जीवन व्यतीत करे। ऐसा होने पर वे कभी भी शत्रुओं के वश में नहीं होंगे। इसी तरह पितामह भीष्म को भी मेरा नाम ले मेरी ओर से सिर झुकाकर प्रणाम कर कहना पितामह यह शान्तनु का वंश एक बार उजड चुका था, आप ही ने इसका पुन: उद्धार किया है। अब अपनी बुद्धि से विचार कर ऐसा कोई उपाय करे जिससे आपके सभी पौत्र परस्पर प्रेमपूर्वक जीवन धारण कर सके। इसी प्रकार महात्मा विदुर से भी कहना सौम्य आप युद्ध न होने की कोई सलाह दे क्योंकि वे तो सदा ही युधिष्ठिर का हित चाहनेवाले है। तत्पश्चात् दुर्योधन से भी बार-बार अनुनय विनय कर कहना तुम कौरवों के नाश का कारण मत बनो। पांडव अत्यन्त बलवान होने पर भी बडे-बडे क्लेश सह चुके है। ये बाते तुम लोग भली-भांति जानते हो। तुम्हारी ही अनुमति से दुशासन ने द्रौपदी के केश पकडकर उसका तिरस्कार किया इस अपराध का भी उन्होंने कोई विचार नहीं किया। किन्तु अब पांडव अपने राज्य का उचित अधिकार लिये बिना मानेंगे नहीं। तुम दूसरे के धनपर से अपनी लोभयुक्त बुद्धि हटा लो। ऐसा करने से ही शान्ति होगी और परस्पर प्रेम भी बना रहेगा। संजय मैं शान्ति रखने में भी समर्थ हूं और युद्ध करने में भी। मैं समयानुसार कोमल भी हो सकता हूं और कठोर भी। तदनन्तर राजा युधिष्ठिर की आज्ञा से संजय वहां से चला गया।

## ८) संजय की धृतराष्ट्र से भेंट

सुख और दु:ख तो समय के दो किनारे है जिसके बीच में वह बहता रहता है। उसके पास न तो कोई अपना सुख है और न ही कोई अपना दु:ख। न तो समय रोता है और न ही समय हंसता है परन्तु चूंकि समय को पिछली सब बातें मालूम है इसलिये कभी कभार यह ज्ञान समय के होठों पर हंसी जैसी या समय की आंखों में आंसू जैसी कोई चीज लाता ही रहता है। आज समय एक ऐसे मोड पर है भरतवंश जैसे आदरणीय की यह दुर्दशा हुये जा रही है और कोई ऐसा नहीं जो इस बिखराव को रोक सके। धृतराष्ट्र विराट में कौरवों की पराजय के बाद विजय के सपने तो नहीं देखता पर राजनीति के खजाने पर सर्प की भांति बैठे रहना अवश्य चाहता है और इतिहास को यह मंजूर नहीं है। सबके उसकी आहट को पहचाननेवाला धृतराष्ट्र इतिहास की आहट नहीं सुन रहा है। या शायद उसकी महत्वाकांक्षा इतिहास की आहट सुनने नहीं दे रही हो इसीलिये वो युद्ध से घबरा तो रहा है लेकिन शान्ति के लिये तैयार नहीं है।

धृतराष्ट्र अपने कक्ष में लेटा हुआ सपनों में खोया हुआ है। चर ने आकर महाराज को प्रणाम किया। सहसा धृतराष्ट्र हक्का बक्का सा उठ बैठा और बोला क्या है? चर ने बताया महाराज न्यायमूर्ति राज सारथी संजय हस्तिनापुर लौट आये हैं और आपके दर्शनों के अभिलाषी है। वे बाहर खडे हैं और आपकी अनुमति की प्रतीक्षा कर रहे हैं। धृतराष्ट्र बोला बुलाओ उन्हे। उन्हे मेरे कक्ष में बिना आज्ञा लिये, बिना प्रतीक्षा किये सीधे मेरे पास आने का अधिकार है। संजय आया और महाराज की जय हो कहकर प्रणाम किया।

धृतराष्ट्र ने पूछा संजय क्या समाचार लाये हो? क्या कहा है युधिष्ठिर ने। संजय बोला मैं पांडवों से मिलकर आया हूं, महाराज युधिष्ठिर ने आपको प्रणाम कहा है और आपकी कुशल पूछी है। उन्होने बडी प्रसन्नता से आप सभी व आपके पुत्रों, सभी कुटुम्बीजनों, नगरवासियों की कुशल पूछी और अभिवादन किया है। महाराज उन्होने कहा है कि धर्म से उत्तम कोई सम्पत्ति नहीं और धर्म के पालन में ही सम्पूर्ण आनन्द है। महाराज इस यात्रा में मैंने भी सोच विचार किया। धृतराष्ट्र बोला उस सोच का क्या परिणाम निकला मित्र संजय? संजय बोला मैंने यह परिणाम निकाला महाराज देर से बोले जानेवाला सत्य असत्य से कहीं अधिक हानिकारक है। धृतराष्ट्र ने कहा तो फिर उस सत्य को बोलो संजय। मुझे सत्य

सुनना आता है। क्या है तुम्हारा सत्य? संजय बोला यही तो सत्य है कि आप सत्य सुनना नहीं चाहते। राजन आपका कर्म आपके धर्म के मार्ग को काट रहा है। आपने अपनी आत्मा को पुत्र मोह के भाले से घायल कर दिया है। आपकी आत्मा लहू लुहान है स्वामी। उसकी सेवा कीजिये। धृतराष्ट्र बोला अब तुम भी मुझपर आरोप लगाने लगे। संजय बोला नहीं महाराज मैं आपपर कोई आरोप नहीं लगा रहा हूं। ये तो केवल एक विवरण है। यदि इस जन्म में उसे नहीं सुनेंगे तो अगले जन्म में इतिहास से यही वक्तव्य बार-बार सुनना पडेगा महाराज। महाराज हस्तिनापुर के भविष्य को दांव पर मत लगाइये। आप औरों का कहा तो मान लेते हो पर अपने शुभ चिन्तकों का कहा न सुनते हो और न मानते हो। पांडवों को उनका इन्द्रप्रस्थ लौटा दीजिये, इसी में युवराज की भलाई है। वे अपना राज्य चाहते है। वे विशुद्ध भाव से धर्म और अर्थ का सेवन करनेवाले मनस्वी, विद्वान तथा शीलवान हैं। आप अपने कर्मों की ओर दृष्टि डालकर देखें। धर्म और अर्थ से युक्त जो श्रेष्ठ पुरुषों का व्यवहार है उससे बिल्कुल विपरीत व्यवहार आप कर रहे है। इस कारण इस लोक में आपकी बहुत निन्दा हो रही है। आपका यह अनुचित कर्म परलोक में भी आपका पीछा करेगा। आप अपने पुत्रों के वश में होकर पांडवों के बिना ही सारा राज्य अपने अधीन कर लेना चाहते हैं राजन। इससे आपके द्वारा पृथ्वी पर बडा ही अनर्थ होगा और चारों ओर अधर्म व्याप्त होगा। यह कर्म कदापि आपके योग्य नहीं है महाराज। बुद्धिहीन, दुराचारी कुल में उत्पन्न, क्रूर, दीर्घ काल तक बैर रखनेवाले, भयभीत, पराक्रमहीन और अशिष्ट व्यक्ति ही ऐसा आचरण करते हैं और उन पर ही विपत्तियों का महासागर टूट पडता है। जो सदाचारी कुल में उत्पन्न, बलवान, यशस्वी और विद्वान तथा जितेन्द्रिय है वह प्रारब्ध के अनुसार अपनी सम्पत्ति को प्राप्त करता है। आपके ये सभी चाटुकार मन्त्री, सलाहकार नित्य आपसे बैठक करते है इन्होंने पांडवों को राज्य न लौटाने का प्रबल निश्चय कर लिया है वह कभी भी कौरवों के नाश का कारण होगा। यदि अपने पाप के कारण कौरवों का असमय में ही विनाश होगा तो इसका सारा का सारा दायित्व आप पर होगा महाराज। इसलिये राजन इस जगत में प्रिय-अप्रिय, सुख-दु:ख, निन्दा-प्रशंसा ये सभी द्वन्द्व मनुष्य को प्राप्त होते रहते हैं परन्तु निन्दा उसी की होती है जो अपराध करता है तथा प्रशंसा भी उसी की होती है जिसका व्यवहार बहुत उत्तम श्रेणी का होता है। सारे जगत में पुत्र के अधीन हो मैंने आपही को देखा है। आपने ऐसे लोगों का संग्रह किया है जो कदापि विश्वास के योग्य नहीं है तथा अपने विश्वास पात्रों को दंडित किया है। इस प्रकार अपनी इस दुर्बलता से आप पृथ्वी की रक्षा करने में कभी समर्थ नहीं होंगे। धृतराष्ट्र बोले मैंने तुमसे यह सब नहीं पूछा है संजय। क्या युधिष्ठिर ने युद्ध की धमकी दी है? संजय बोला नहीं महाराज। धमकी देना उनका स्वभाव नहीं है। उन्होंने तो बस यही कहा है कि ज्येष्ठ पिताश्री से यह कहना कि उनके अनुज पुत्र शान्ति और युद्ध दोनों ही के लिये तैयार है। यदि आप युद्ध का आदेश देंगे तो युद्ध होगा और यदि आप शान्ति चाहेंगे तो शान्ति रहेगी। धृतराष्ट्र बोला तुम लम्बी यात्रा कर आये हो। इस यात्रा ने तुम्हे थका दिया होगा। संजय जाओ और विश्राम करो। फिर कल राजसभा में एकत्र होकर सबके सामने युधिष्ठिर का सन्देश सुनाना। बडे-बूढ़े सभी तुम्हारा सन्देश विवरण कल राजसभा में सुनेंगे इस समय रात्रि भी काफी व्यतीत हो रही है। संजय महाराज धृतराष्ट्र को प्रणाम कर चला गया। युधिष्ठिर समझ गये संजय के माध्यम से भेजा गया धृतराष्ट्र का सन्धि प्रस्ताव कोई प्रस्ताव ही नहीं था वह तो मात्र एक पाखंड था। वे बात तो सन्धि की करते किन्तु पांडवों का राज्य लौटाने का मन नहीं। वे पांडवों को सब कुछ त्याग कर पूर्ण आत्मसमर्पण करने के लिये कह रहे थे और उसे सन्धि का नाम दे रहे थे। उन्होंने युधिष्ठिर को युद्ध के दोष बता कर युद्ध से विरत करने का प्रयत्न किया किन्तु युद्ध के मूल कारण को दूर करने में कोई रूचि नहीं दिखाई। पांडवों को राज्य लौटाने

की कोई चर्चा ही नहीं की। धृतराष्ट्र चाहता था कि जिस प्रकार पांडवों ने अब तक वनवास किया है वैसे ही अपने जीवन के शेष दिन भी काट ले। दुर्योधन बिना साम्राज्य जी नहीं सकता था तो फिर वैसे ही चलता रहे और यथा स्थिति बनी रहे। दुर्योधन साम्राज्य भोगता रहे और पांडव वन तपस्या करते रहे।

## ९) धृतराष्ट्र को विदुर का उपदेश (विदुर नीति)

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय संजय के चले जाने पर महाराज धृतराष्ट्र अत्यन्त चिंतित और व्याकुल थे कि पता नहीं युधिष्ठिर ने क्या कहा है? संजय कल कौरव सभा में युधिष्ठिर का क्या सन्देश सुनानेवाला है? मन उद्विग्न हो रहा था। राजा धृतराष्ट्र ने द्वारपाल को आज्ञा दी विदुर को बुलाओ और मेरे कक्ष में भेजो।

विदुर पत्नी पारसंवी ने पूछा ज्येष्ठश्री महाराज ने इस समय क्यों बुलाया है? क्या बात है? विदुर बोले यह तो वहां पहुंचने के पश्चात ही पता चलेगा। विदुर धृतराष्ट्र के पास आता है और प्रणाम करता है। धृतराष्ट्र बोला यह राजसभा नहीं है विदुर। यहा एकान्त में तो मुझे अपना भ्राता ही कहा करो। विदुर बोला जो आज्ञा महाराज। धृतराष्ट्र बोला यहां मैं तुम्हारा महाराज नहीं हूं विदुर। आओ मेरे निकट आओ और आसन ग्रहण करो। संजय युधिष्ठिर के पास से लौट आया है। उसने अभी तक युधिष्ठिर के साथ भेंट होने का पूरा वृतान्त नहीं बताया है। अधिक समय मुझे ही दोषी ठहराने में गंवा दिया। युधिष्ठिर के सारे सुझाव वह कल राज्यसभा में सबके सामने सुनायेगा। संजय के चले जाने के बाद मेरी नींद भी चली गई, मैं सो नहीं सका इसलिये तुमसे सलाह करने तुम्हे बुला लिया। मेरे लिये जो कल्याणकारी हो वह मुझे कहो क्योंकि तुम धर्म और अर्थ के ज्ञान में निपुण हो। जब से संजय पांडवों के यहां से लौटकर आया है तब से मेरे मन को पूर्ण शान्ति नहीं है। सारी इन्द्रियां विकल हो रही है। विदुर बोले जिसे आप संजय का दोष लगाना ठहरा रहे है भ्राताश्री वो आपके प्रति उसका शुभ चिन्तन रहा होगा। उन्होने जो कुछ कहा होगा वो अवश्य ही आपके हित में कहा होगा। आपका सारथी होने के नाते वो सब कुछ कहकर उन्होने धैर्य और कर्तव्य का पालन किया है। हे भ्राताश्री आपने बार-बार पांडवों के साथ अन्याय किया है। तनिक सोचिये महाराज कि आपने स्वयं अपने राज्य का विभाजन करके अपने दुर्योधन और अपने हस्तिनापुर के साथ कैसा घोर अन्याय किया है? राजा होने के नाते राज्य की सीमा का विस्तार व आदर करना आपका कर्त्तव्य था परन्तु आपने राज्य का विभाजन कर अपने राज्य को छोटा भी कर लिया और मर्यादा का भी उल्लंघन किया है महाराज परन्तु युधिष्ठिर चुपचाप इस अन्याय को सह गया। यह विभाजन आपने हस्तिनापुर के हितों को ध्यान में रख कर नहीं किया है, आपने दुर्योधन को ध्यान में रखकर यह निर्णय लिया है। आप उसे राजा बनाने के लिये कोई भी मूल्य चुकाने को तैयार है। मैं यह नहीं जानता भ्राताश्री कि हस्तिनापुर आपको इस विभाजन के अपराध के लिये कभी क्षमा कर पायेगा या नहीं। धृतराष्ट्र बोला और तुम विदुर। विदुर बोला मैं तो आपको कभी क्षमा नहीं करूंगा और कदाचित आप भी अपने आपको क्षमा नहीं कर पायेंगे भ्राताश्री। मेरी माता आपकी माताश्री की दासी थी और मैं तो बन्धा हुआ उस दासत्व की डोरी से महाराज। बन्धा हुआ हूं। अब आप चाहे न्याय करे या अन्याय। मैं आपको छोड भी नहीं सकता। धृतराष्ट्र बोले बोलते जाओ विदुर आज मुझे तुम्हारे कडवे शब्द उतने कडवे नहीं लग रहे। और क्या किया मैंने?

विदुर बोले आपने और जो कुछ किया भ्राताश्री मैं उसे दोहराना नहीं चाहता। लाक्षागृह, द्यूतक्रीडा, द्रौपदी वस्त्रहरण ये सब की सब बडी ही दु:खद यादें हैं भ्राताश्री और भुलाई भी नहीं जा सकती। क्या कभी आपकी आत्मा के आंगन में द्रौपदी की आर्त पुकार नहीं गुंजती? क्या उसके उठाये हुये प्रश्न बिच्छु की भांति आपको डंक नहीं मारते? इसलिये हे भ्राताश्री

अब आप पुत्र मोह की ओर से ध्यान हटाकर देश प्रेम के मार्ग पर ध्यान रखे। न्याय कीजिये महाराज न्याय और यदि पांडव इन्द्रप्रस्थ लेकर द्रौपदी के अपमान को भूल जाये तो उनका आभार मानिये। धर्म के सुरक्षा चक्र में आजाइये भ्राताश्री। क्योंकि यदि युद्ध की ठहरी तो न ये हस्तिनापुर बचेगा और न ही यह कुरुवंश। हे महाराज अपनी महत्वाकांक्षाओं को धिक्कार दीजिये, इन्हें धीमी करें, इन्हें हवा न दें क्योंकि यही आपकी शत्रु है और अपने शत्रु के निवास स्थान पर अन्धेरे में कभी नहीं जाना चाहिये। धृतराष्ट्र बोले चुप क्यों हो गये विदुर? बोलते रहो? विदुर बोले अन्त में मुझे तो यही कहना है महाराज कि अपने स्थान पर अपने पुत्र मोह को सोचने मत दीजिये। हस्तिनापुर आपका दायित्व है सिर्फ आपका। धृतराष्ट्र बोला और दुर्योधन। विदुर बोला वो आपका दायित्व नहीं है महाराज, वो तो आपका एक रोग है।

**द्विविधा में धृतराष्ट्र है राजा बने कि बाप, राजा का यही पुत्र मोह बना राष्ट्र का श्राप।**

महाराज जिसका बलवान के साथ विरोध हो गया है उस साधनहीन दुर्बल मनुष्य को जिसका सब कुछ हर लिया गया हो उसको, कामी तथा चोर को रात में जागने का रोग लग जाता है। हे राजन कहीं आपको भी तो इन महान दोषों से सम्पर्क नहीं हो गया। कही पराये धन के लोभ के कारण तो आप कष्ट नहीं पा रहे है? धृतराष्ट्र बोले मैं तुम्हारे धर्मयुक्त और कल्याणकारी वचन सुनना चाहता हूँ क्योंकि इस राजर्षिवंश में केवल तुम्ही विद्वानों में अग्रणी और माननीय हो इसलिये तुम्हारा उपदेश ग्रहण करने योग्य होगा। विदुर ने धृतराष्ट्र को इस समय जो उपदेश किया वही ज्ञान विदुर नीति कहलाया।

धर्मराज महात्मा विदुर का समस्त जीवन लोककल्याण की साधना में बीता। मानव जीवन की सुख-शान्ति में नित्य ही जिन अनदेखे शत्रुओं का आक्रमण हो रहा है और जिन्होने समस्त प्राणी जगत की शान्ति भंग कर रखी है उनसे समाज का बचाव तब तक सम्भव नहीं हो सकता जब तक निर्दिष्ट धर्मनीति और उसे आधारभूत सिद्धान्तों को न समझा जायेगा। यही कारण है कि विदुर की नीतियां और सिद्धान्तों पर चलनेवाला प्राणी जीवन के किसी भी क्षेत्र में सहज ही हार स्वीकार नहीं कर सकता।

**१०) विदुर नीति-** विदुरजी बोले- महाराज धृतराष्ट्र। श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त राजा युधिष्ठिर तीनों लोकों के स्वामी हो सकते हैं। वे आपके आज्ञाकारी थे, परन्तु आपने उन्हें वन में भेज दिया। आप धर्मात्मा और धर्म के जानकार होते हुए भी आंखों से अन्धे होने के कारण उन्हें पहचान नहीं सके, इसी कारण उनके कट्टर विरोधी बनकर उन्हें राज्य का भाग देने में आपने अपनी सहमति नहीं दी। महाराज युधिष्ठिर दया, धर्म, सत्य तथा पराक्रम के मूर्त रूप हैं। उनमें क्रूरता नहीं है, वे आपको अपना पूज्य मानते हैं। इसी कारण किंवा उपर्युक्त सद्गुणों के कारण वे सोच-विचार कर चुपचाप अनेक क्लेश सह रहे हैं मुझे बड़ा आश्चर्य है कि आप दुर्योधन, शकुनि, कर्ण तथा दु:शासन जैसे अयोग्य व्यक्तियों पर शासन का भार सौंपकर राज्य की ऐश्वर्य वृद्धि चाहते हैं।

जिस मनुष्य को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान, उद्योग, दु:ख सहने की शक्ति और धर्म में आस्था रहती है, उसे कौन पुरुषार्थ से च्युत कर सकता है। वस्तुत: वही पण्डित कहलाने का अधिकारी है। जो मनुष्य बुरे कर्मों को त्याग कर अच्छे कर्मों का कर्ता होता है, जो आस्तिक है, श्रद्धालु है, उसके यही गुण उसे पण्डित बनाते हैं। जिस मनुष्य को काम, क्रोध, हर्ष, गर्व, लज्जा, उद्दण्डता तथा स्वयं को पूज्य समझना जैसे भाव पुरुषार्थ से च्युत नहीं करते, वही पण्डित है। दूसरे लोग जिसकी सलाह, कर्तव्य अथवा पहले से किये गये विचार को नहीं जान पाते बल्कि काम पूरा होने के पश्चात जानते हैं, वही पण्डित है। जिस मनुष्य के कार्यों में सर्दी, गर्मी, भय, प्रीति, ऐश्वर्य अथवा दरिद्रता विघ्न नहीं डाल पाते, वही पण्डित है। जो मनुष्य भोग को त्याग पुरुषार्थ का वरण करता है, जिसकी बुद्धि धर्म और अर्थ का ही अनुसरण करती है, वही

पण्डित कहा जाता है। जो विवेकपूर्ण बुद्धिवाले पुरुष हैं वे अपनी सामर्थ्यानुसार कार्य करने की इच्छा रखते हैं और करते भी हैं तथा किसी वस्तु को तुच्छ समझकर उसकी अवहेलना नहीं करते।

विद्वान पुरुष किसी विषय को भले ही देर तक सुने मगर समझ शीघ्र ही लेता है, समझकर कर्तव्य बुद्धि से कार्य में लगता है, कामना से नहीं। बिना पूछे किसी के विषय में कोई टिप्पणी नहीं करता, यही पण्डित होने की पहचान है। जो मनुष्य पण्डितों जैसी बुद्धि रखता है, वह दुर्लभ वस्तु की कामना नहीं करता, खोई वस्तु के विषय में शोक नहीं करता तथा विपत्ति में कभी नहीं घबराता। जो व्यक्ति समय को व्यर्थ नहीं गंवाता, सर्वप्रथम निश्चय करके ही कार्य आरम्भ करता है तथा कार्य को बीच में नहीं छोड़ता, वस्तुत: वही पण्डित कहा जाता है।

भरत कुलभूषण। जो पण्डित जन हैं वे श्रेष्ठ कर्मों में ही रुचि रखते हैं, उन्नति की ओर ही अग्रसर होते हैं तथा जो लोग भलाई का कार्य करते हैं, उनके दोष नहीं निकालते। जो व्यक्ति अनादार होने पर संतप्त नहीं होता, आदर पाने पर गर्व से फूला नहीं समाता, गंगाजी के कुण्ड के समान जिसके चित्त को क्षोभ नहीं होता, वही पण्डित है। जो समस्त कार्यों को करने में कुशल है, तरीके जानता है, मनुष्यों में सबसे अधिक उपायों को जानता है, समस्त भौतिक पदार्थों की असलियत को जानता है, वही मनुष्य पण्डित कहलाने का अधिकारी है। जो विचित्र तरीके से बातचीत करता है, वाणी को विराम नहीं देता, तर्क में निपुण और प्रतिभाशाली है, किसी ग्रन्थ के तत्त्वार्थ को शीघ्रता से बतला सकता है, वही पण्डित कहा जाता है। जिसकी बुद्धि विद्या का और विद्या बुद्धि का अनुसरण करती है तथा जो शिष्ट और मान्य व्यक्तियों की बातों का उल्लंघन नहीं करता, वही पण्डित कहा जाने योग्य है।

दरिद्र होकर भी अमीरों जैसा आचरण करनेवाले, बिना विद्या प्राप्त किये ज्ञान पर गर्व करनेवाले, बिना पुरुषार्थ धन पाने की लालसा रखनेवाले मनुष्य को पण्डित जन मूर्ख कहा करते हैं। जो मनुष्य स्व-कर्तव्य को त्याग अन्य के कर्तव्य का पालन करता है तथा मित्र के साथ असत् व्यवहार किंवा घात करता है, वह मूर्ख कहा जाता है।

जो न चाहनेवालों को चाहता है तथा चाहनेवालों को त्याग देता है तथा अपने से बलवान के साथ वैर साधता है, वही मूढ़ विचारवाला मनुष्य कहा जाता है। जो मित्र को द्वेषवश कष्ट देता है तथा शत्रु से मित्रवत् व्यवहार करता है तथा सदैव बुरे कर्मों में ही लिप्त रहता है, उस मनुष्य को मूढ़ चित्तवाला जानो।

जो सभी को सन्देह के घेरे में रखता है, अपने कर्मों का व्यर्थ फैलाव करता है तथा कार्य समाप्ति में व्यर्थ ही (जान-बूझकर) विलम्ब करता है, वह मूर्ख है। जो देवार्चन नहीं करता, अपने पितरों का श्राद्ध नहीं करता, जिसे सज्जन मित्र नहीं मिलता, उस मनुष्य को ही मूढ़ चित्त वाला कहते हैं। जो व्यक्ति बिना आज्ञा लिये किसी के घर में भीतर चला जाता है, तथा अविश्वसनीय लोगों पर विश्वास करता है, वही अधम मनुष्य मूढ़ चित्त वाला कहलाता है।

स्वयं दोषी होकर भी जो दूसरों पर दोषारोपण करता है तथा असमर्थ होकर भी व्यर्थ क्रोध करता है, वह मनुष्य महामूर्ख है। जो व्यक्ति न पाने योग्य वस्तु को पाने की इच्छा करता है, अपने बल को न समझकर बिना पुरुषार्थ किये धर्म और अर्थ के विरुद्ध आचरण करता है, वह मूढ़ बुद्धि है। जो मनुष्य अनाधिकारी को उपदेश देता है, कृपण का आसरा लेता है तथा शून्य की उपासना करता है, वह मूढ़चित्त वाला है।

जिस मनुष्य को बहुत धन मिल जाये, विद्या प्राप्त हो जाये अथवा वह ऐश्वर्यशाली हो जाये लेकिन इतने पर भी गर्व न करे, वही पण्डित कहा जाता है। जो भी अपने द्वारा भरण-पोषण किये जाने योग्य हैं, उन्हें त्याग कर जो मनुष्य स्वयं

सुस्वादु भोजन करता है, उत्तम वस्त्र धारण करता है वह महान् क्रूर है। जो मनुष्य पाप कर्म से धनार्जन कर अनेक का भरण-पोषण क्यों न करता हो, तब भी उसे छोड़कर अन्य दूसरे लोग पाप के भागी नहीं होते अर्थात् पाप करनेवाला ही दण्ड का भागी होता है, अन्य नहीं।

किसी धनुर्धारी के द्वारा संधान किया तीर भले ही किसी को मारे या न मारे परंतु बुद्धिमान द्वारा प्रयुक्त की हुई बुद्धि राजा के साथ-साथ सम्पूर्ण राष्ट्र का विनाश कर डालती है।

एक से दो अर्थात् बुद्धि से कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निश्चय करके चार से तीन को अर्थात् साम-दाम-दण्ड-भेद से शत्रु-मित्र तथा उदासीन को वश में कीजिए। पांच को जीतकर छ: अर्थात् पांच इन्द्रियों को वश में कर सन्धि-विग्रह-यान-आसन-द्वैधभाव और समाश्रयरूप गुणों को जानकर तथा सात (स्त्री-जुआ-आखेट-मद्य-कठोर वचन, दण्ड की कठोरता, अन्याय से धनोपार्जन) को छोड़कर सुखी हो जाइए।

विष का रस मात्र पीनेवाले को ही मारता है, शस्त्र से एक बार में एक का ही वध होता है लेकिन मन्त्र (भेद) के फूटने से राष्ट्र-प्रजा और राजा सभी का विनाश हो जाता है।

बहुत से सोये लोगों में अकेला जगनेवाला, अकेला स्वादिष्ट भोजन करनेवाला, किसी महत्वपूर्ण बात का अकेला निर्णय करनेवाला तथा अकेला रास्ता चलनेवाला सदैव घाटे में रहता है। जैसे नदी पार जाने का एकमात्र नाव ही साधन है, वैसे ही स्वर्ग जाने का एकमात्र साधन सत्यपालन है, दूसरा नहीं लेकिन आप इसे नहीं समझ रहे।

क्षमाशील मनुष्य को एक ही दोष लगता है, दूसरे किसी दोष की सम्भावना भी नहीं होती और एकमात्र वह दोष है कि लोग उसे कायर समझते हैं। किन्तु क्षमाशील पुरुष का वह दोष मानना नहीं चाहिए क्योंकि क्षमा बहुत बड़ा बल है। क्षमा समर्थ मनुष्य का भूषण और असमर्थ का गुण है।

इस संसार में क्षमा ही वशीकरण रूप है, क्षमा से क्या सिद्ध नहीं हो सकता? जिस पुरुष के हाथ में शान्ति रूपी तलवार है उसका दुष्ट लोग क्या बिगाड़ लेंगे?

तृणरहित स्थान में गिरी आग अपने आप बुझ जाती है, क्षमाहीन पुरुष अपने को तथा दूसरे को भी दोष का भागी बना देता है। केवल धर्म ही परम कल्याणकारक है, एकमात्र क्षमा ही शान्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय है। एक विद्या ही परम सन्तोष को देनेवाली है और एकमात्र अहिंसा ही से सुख मिलता है।

बिल में रहनेवाले चूहे आदि जीवों को जैसे सर्प खा जाता है, उसी प्रकार यह धरती शत्रुओं से विरोध न करनेवाले राजा और परदेश-वास न करनेवाले ब्राह्मण दोनों को ही खा जाती है।

जो व्यक्ति न तो कठोर सम्भाषण करता है, न ही दुष्ट पुरुषों का आदर करता है, वही इन दो कर्मों का कर्ता इस लोक में सम्मान प्राप्त करता है। किसी दूसरी स्त्री द्वारा चाहे गये पुरुष की कामना करनेवाली स्त्रियां तथा दूसरों के द्वारा पूजित मनुष्य का आदर करनेवाले पुरुष- ये दोनों ही प्रकार के जीव दूसरों के विश्वास पर जीते हैं। जो निर्बल होकर भी क्रोध करता है तथा निर्धन होकर बहुमूल्य वस्तुओं की कामना करता है, ये दोनों ही अपने देह को सुखानेवाले कांटे के समान हैं।

प्रपंच में लगा साधु तथा अकर्मण्य गृहस्थ- ये दोनों ही अपने विपरीत कर्म के कारण सम्मान नहीं पाते।

शक्तिशाली होकर भी क्षमा करनेवाला तथा निर्धन होकर भी दूसरों को दान देनेवाला- ये दोनों ही स्वर्ग से भी उत्तम सुख को पाते हैं। न्यायपूर्वक कमाये धन के दो ही दुरुपयोग हैं जैसे सत्पात्र को न देना और अपात्र को दान करना। जो व्यक्ति

धनी होकर भी दान नहीं देता और निर्धन होकर कष्ट सहन नहीं कर सकता- इन दोनों प्रकार के लोगों के गले में भारी पत्थर बांधकर नदी में फेंक देना चाहिए। संग्राम में लड़ते हुए मारा गया योद्धा तथा योगयुक्त संन्यासी- ये दोनों ही प्रकार के लोग सूर्यमंडल को भेदकर ऊर्ध्वगति को प्राप्त होते हैं।

भरतश्रेष्ठ। मनुष्यों की कार्यसिद्धि के लिए उत्तम, मध्यम और अधम-ये तीन प्रकार के उपाय सुने जाते हैं जिन्हें वेदवेत्ता विद्वान जानते हैं राजन्। उत्तम, मध्यम और अधम- ये तीन प्रकार के लोग होते हैं, इनको यथायोग्य तीनों प्रकार के कर्मों में लगाना चाहिए। राजन्। स्त्री, पुत्र और दास- ये तीनों धन के अधिकारी नहीं होते बल्कि ये जो कुछ भी कमाते हैं, वह धन उसीका होता है जिसके अधीन वे होते हैं। निन्द्य उपायों से दूसरे के धन को छीन लेना, परायी स्त्रियों के साथ व्यभिचार करना और सुहृद मित्र का परित्याग- ये तीनों कर्म मनुष्य की आयु, धर्म और यश का विनाश करते हैं। काम, क्रोध और लोभ- ये आत्मा के नाश करनेवाले नरक के तीन द्वार हैं अत: इन तीनों को ही त्याग देना चाहिए।

भारत। राज्य की प्राप्ति, पुत्र का जन्म, मनोअभिलषित पदार्थों का पाना- ये तीनों बातें एक ओर तथा शत्रु के कष्ट से मुक्त होना एक ओर, वे तीन और यह एक बराबर ही हैं।

पूर्व के सेवक, भक्त तथा मैं मात्र आप ही का हूं ऐसा कहनेवाले- इन तीन प्रकार के मनुष्यों को संकट पड़ने पर भी नहीं छोड़ना चाहिए। अल्पज्ञ (थोड़ी बुद्धिवाले), दीर्घसूत्री, जल्दबाज और चापलूसी करनेवालों के साथ गुप्त मन्त्रणा किसी भी बुद्धिमान राजा को नहीं करनी चाहिए, महाबली राजा को चाहिए कि इन चारों का त्याग कर दे।

हे तात। गृहस्थ धर्म में स्थित धन-धान्य से भरपूर आपके घर में चार प्रकार के व्यक्तियों को अवश्य ही आश्रय मिलना चाहिए- वृद्ध सम्बन्धी, कष्ट में लिप्त उच्च कुल का व्यक्ति, धनहीन मित्र और सन्तानहीन बहन। हे राजेन्द्र। देव गुरु बृहस्पति ने देवराज इन्द्र के पूछने पर जिन चार बातों को तत्काल फल देनेवाली बतलाया था, वे हैं- देवों का संकल्प, बुद्धिमानों का वर्चस्व, विद्वानों की विनम्रता तथा दुर्गुणों का परित्याग। मनुष्य द्वारा किये गये चार कर्म- निष्ठा के साथ अग्निहोत्र, आदरपूर्वक किया गया मौनव्रत, आस्था और विश्वास से किया स्वाध्याय शास्त्रानुसार किया गया यज्ञ अभय प्रदाता माने गये हैं परन्तु शास्त्र विपरीत अर्थात् दिखाने के लिए किये जाने पर ये भी महान् भय को देनेवाले अनर्थकारी हो जाते हैं।

हे भरतश्रेष्ठ। पिता, माता, अग्निहोत्र, आत्मा और गुरु- इन पांच अग्नियों की मनुष्य को प्रयत्नपूर्वक सेवा करनी चाहिए। देवता, पितर, अकस्मात् आया अतिथि, मनुष्य एवं संन्यासी- इन पांचों की सेवा करनेवाला व्यक्ति संसार में महान् यश को पा लेता है। राजन्। मित्र शत्रु, उदासीन-आश्रय देनेवाले तथा पानेवाले आप जहां-जहां जाएंगे, वहीं-वहीं ये पांच आपके पीछे लगे रहेंगे। पांच ज्ञानेन्द्रियोंवाले पुरुष की यदि एक भी इन्द्रिय दोषयुक्त हो जाये तो उसकी बुद्धि उससे इस प्रकार बाहर निकल जाती है जैसे मशक से पानी। ऐश्वर्य किंवा उन्नति चाहनेवाले व्यक्ति को निद्रा, तन्द्रा डर, क्रोध, आलस्य तथा दीर्घसूत्रता अर्थात शीघ्रता से होनेवाले कार्य में अनावश्यक देरी करना- इन छ: दुर्गुणों को त्याग देना चाहिए। उपदेश न देनेवाले आचार्य, मन्त्रोच्चारण न करनेवाला होता, रक्षा करने में असमर्थ राजा, कटु वचन बोलनेवाली स्त्री, गांव में रहने की इच्छा करनेवाले ग्वाले और वन में रहने की इच्छा करनेवाला नाई- इन छ: का साथ इसी प्रकार त्याग दें जैसे समुद्र की सैर करनेवाला व्यक्ति जीर्ण नौका को त्याग देता है।

मनुष्य को इन छ: गुणों-सत्य, दान, कर्मण्यता, गुणों में दोष दिखाने की प्रवृत्ति का अभाव (अनसूया), क्षमा तथा धैर्य का कभी भी परित्याग नहीं करना चाहिए। राजन्। धन की आय, नित्य नीरोगता, स्त्री का अनुकूल तथा प्रियवादिनी होना,

पुत्र का आज्ञाकारी होना तथा धनार्जन की विधि में कुशल होना - ये छ: बातें मृत्युलोक में सुखदायिनी कही गयी हैं।

मन में नित्य रहनेवाले छ: शत्रु- काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, तथा मात्सर्य- को जो वश में कर लेता है, वह जितेन्द्रिय पुरुष पापों से लिप्त नहीं होता, फिर उनसे उत्पन्न होनेवाले अनर्थों की तो बात ही क्या है।

निम्नांकित छ: प्रकार के मनुष्य छ: प्रकार के लोगों से अपनी जीविका चलाते हैं, सातवें की उपलब्धि नहीं होती। चोर असावधान पुरुष से, वैद्य रोगी से, मतवाली स्त्रियां कामियों से, पुरोहित यजमानों से राजा झगड़नेवालों से तथा विद्वान पुरुष मूर्खों से अपनी जीविका चलाते हैं। क्षणभर भी देख-रेख न करने से गौ, सेवा, खेती, स्त्री, विद्या तथा शूद्रों से मेल-ये छ: चीजें नष्ट हो जाती हैं। ये छ: सदा अपने पूर्व उपकारी का अनादर करते हैं- शिक्षा समाप्त हो जानेपर शिष्य आचार्य का, विवाहित बेटे माता का, कामवासना की शान्ति हो जाने पर मनुष्य स्त्री का, कृतकार्य पुरुष सहायक का, नदी की दुर्गम धारा पार कर लेनेवाले पुरुष नाव का तथा रोगी पुरुष रोग छूटने के बाद वैद्य का तिरस्कार कर देते हैं।

राजन। नीरोग रहना, ऋणी न होना, परदेस में न रहना, अच्छे लोगों के साथ मेल होना, अपनी वृत्ति से जीविका चलाना और निडर होकर रहना- ये छ: मनुष्य लोक के सुख हैं।

ईर्ष्या करनेवाला, घृणा करनेवाला, असंतोषी, क्रोध, सदा शंकित रहनेवाला और दूसरे के भाग्य पर जीवन-निर्वाह करनेवाला- ये छ: सदा दुखी रहते हैं। स्त्री विषयक आसक्ति, जुआ, शिकार, मद्यपान, वचन की कठोरता, अत्यन्त कठोर दण्ड देना और धन का दुरुपयोग करना- ये सात दु:खदायी दोष राजा को सदा त्याग देने चाहिए। इनसे दृढ़मूल राजा भी प्राय: नष्ट हो जाते हैं। विनाश के मुख में पड़नेवाले मनुष्य के आठ पूर्व चिन्ह हैं- प्रथम तो वह ब्राह्मणों से द्वेष करता है, फिर उनके विरोध का पात्र बनता है, ब्राह्मणों का धन हड़प लेता है, उनको मारना चाहता है, ब्राह्मणों की निन्दा में आनन्द मानता है, उनकी प्रशंसा सुनना नहीं चाहता, यज्ञ-यागादि में उनका स्मरण नहीं करता तथा कुछ मांगने पर उनमें दोष निकालने लगता है। इन सब दोषों को बुद्धिमान मनुष्य समझे और समझकर त्याग दे।

भारत। मित्रों से समागम, अधिक धन की प्राप्ति, पुत्र का आलिंगन, मैथुन में प्रवृत्ति, समय पर प्रिय वचन बोलना, अपने वर्ग के लोगों में उन्नति, अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति और जनसमाज में सम्मान- ये आठ हर्ष के सार दिखाई देते हैं और ये ही अपने लौकिक सुख के भी साधन होते हैं। बुद्धि, कुलीनता, इन्द्रिय-निग्रह, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, अधिक न बोलना, शक्ति के अनुसार दान और कृतज्ञता- ये आठ गुण पुरुष की ख्याति बढ़ा देते हैं। जो विद्वान पुरुष (आंख, कान आदि) नौ दरवाजेवाले, तीन (वात, पित्त तथा कफरूपी) खंभोंवाले, पांच (ज्ञानेन्द्रिय रूप) साक्षीवाले, आत्मा के निवास स्थान इस शरीररूपी गृह को जानता है, वह बहुत बड़ा ज्ञानी है।

महाराज धृतराष्ट्र। दस प्रकार के लोग धर्म को नहीं जानते, उनके नाम सुनो- नशे में मतवाला, असावधान, पागल, थका हुआ, क्रोधी, भूखा, जल्दबाज, लोभी, भयभीत और कामी। ये दस हैं। अत: इन सब लोगों में विद्वान पुरुष आसक्ति न बढ़ावे। इसी विषय में असुरों के राजा प्रल्हाद ने सुधन्वा के साथ अपने पुत्र के प्रति कुछ उपदेश दिया था। नीतिज्ञ लोग उस पुराने इतिहास का उदाहरण देते हैं। जो राजा काम और क्रोध का त्याग करता है और सुपात्र को धन देता है, विशेषज्ञ है, शास्त्रों का ज्ञाता और कर्तव्य को शीघ्र पूरा करनेवाला है, उसे सब लोग प्रमाण मानते हैं। जो मनुष्यों में विश्वास उत्पन्न करना जानता हो, जो प्रमाणित अपराधी को ही दण्ड देता है जो दण्ड देने की न्यूनाधिक मात्रा तथा क्षमा का उपयोग जानता है, उस राजा की सेवा में सम्पूर्ण सम्पत्ति चली आती है। जो किसी दुर्बल का अपमान नहीं करता, सदा

सावधान रहकर शत्रु के साथ बुद्धिपूर्वक व्यवहार करता है, बलवानों के साथ युद्ध पसंद नहीं करता तथा समय आने पर पराक्रम दिखाता है, वही धीर है। जो धुरन्धर महापुरुष आपत्ति पड़ने पर कभी दुखी नहीं होता, बल्कि सावधानी के साथ उद्योग का आश्रय लेता है तथा समय पर दु:ख सहता है, उसके शत्रु तो पराजित ही हैं। जो निरर्थक विदेशवास, पापियों से मेल, परस्त्री गमन, पाखण्ड, चोरी, चुगलखोरी तथा मदिरापान नहीं करता, वह सदा सुखी रहता है।

जो क्रोध या उतावली के साथ धर्म, अर्थ तथा काम का आरम्भ नहीं करता, पूछने पर यथार्थ बात ही बतलाता है, मित्र के लिए झगड़ा पसंद नहीं करता, आदर न आने पर क्रुद्ध नहीं होता, विवेक नहीं खो बैठता, दूसरों के दोष नहीं देखता, सब पर दया करता है, दुर्बल होते हुए किसी की जमानत नहीं देता, बढ़कर नहीं बोलता तथा विवाद को सह लेता है, ऐसा मनुष्य सब जगह प्रशंसा पाता है। जो कभी उद्दण्ड का-सा वेष नहीं बनाता, दूसरों के सामने अपने पराक्रम की भी डींग नहीं हांकता, क्रोध से व्याकुल होने पर भी कटु वचन नहीं बोलता, उस मनुष्य को लोग सदा ही प्यारा बना लेते हैं।

जो शान्त हुई वैर की आग को फिर प्रज्वलित नहीं करता, गर्व नहीं करता, हीनता नहीं दिखाता तथा मैं विपत्ति में पड़ा हूं, ऐसा सोचकर अनुचित काम नहीं करता, उस उत्तम आचरणवाले पुरुष को आर्यजन सर्वश्रेष्ठ कहते हैं।

जो अपने सुख में प्रसन्न नहीं होता, दूसरे के दु:ख के समय हर्ष नहीं मानता और दान देकर पश्चात्ताप नहीं करता, वह सज्जनों में सदाचारी कहलाता है। जो मनुष्य देश के व्यवहार, लोकाचार तथा जातियों के धर्मों को जानने की इच्छा करता है, उसे उत्तम, अधम का विवेक हो जाता है। वह जहां कहीं भी जाता है, सदा महान् जनसमूह पर अपनी प्रभुता स्थापित कर लेता है। जो बुद्धिमान दम्भ, मोह, मात्सर्य, पाप कर्म, राजद्रोह, चुगलखोरी, समूह से वैर और मतवाले, पागल तथा दुर्जनों से विवाद छोड़ देता है वह श्रेष्ठ है। जो दान, होम, देव-पूजन मांगलिक कर्म, प्रायश्चित तथा अनेक प्रकार के लौकिक आचार- इन नित्य किये जाने योग्य कर्मों को करता है, देवता लोग उसके अभ्युदय की सिद्धि करते हैं।

जो अपने बराबरवालों के साथ विवाह, मित्रता, व्यवहार तथा बातचीत करता है, हीन मनुष्यों के साथ नहीं; और गुणों में बढ़े-चढ़े पुरुषों को सदा आगे रखता है। उस विद्वान की नीति श्रेष्ठ है।

जो अपने आश्रित जनों को बांटकर थोड़ा ही भोजन करता है, वह बहुत अधिक काम करके भी थोड़ा सोता है तथा मांगने पर, जो मित्र नहीं है, उसे भी धन देता है, उस मनस्वी पुरुष को सारे अनर्थ दूर से ही छोड़ देते हैं।

जिसके अपनी इच्छा के अनुकूल और दूसरों की इच्छा के विरुद्ध कार्य को दूसरे लोग कुछ भी नहीं जान पाते, मन्त्र गुप्त रहने और अभीष्ट कार्य का ठीक-ठीक सम्पादन होने के कारण उसका थोड़ा भी काम बिगड़ने नहीं पाता।

जो मनुष्य सम्पूर्ण भूतों को शान्ति प्रदान करने में तत्पर, सत्यवादी, कोमल, दूसरों को आदर देनेवाला तथा पवित्र विचारवाला होता है, वह अच्छी खान से निकले और चमकते हुए श्रेष्ठ रत्न की भांति अपनी जाति वालों में अधिक प्रसिद्धि पाता है। जो स्वयं ही अधिक लज्जाशील है, वह सब लोगों में श्रेष्ठ समझा जाता है। वह अपने अनन्त तेज, शुद्ध हृदय एवं एकाग्रता से युक्त होने के कारण कान्ति में सूर्य के समान शोभा पाता है।

अम्बिकानन्दन। शाप से दग्ध राजा पाण्डु के जो पांच पुत्र वन में उत्पन्न हुए, वे पांच इन्द्र के समान शक्तिशाली हैं, उन्हें आप ही ने बचपन से पाला और शिक्षा दी है, वे भी सदा आपकी आज्ञा का पालन करते रहते हैं।

तात। उन्हें उनका न्यायोचित राज्य भाग देकर आप अपने पुत्रों के साथ आनन्द भोगिए। हे नरेन्द्र। ऐसा करने पर आप देवता तथा मनुष्यों की आलोचना के विषय नहीं रह जाएंगे। धृतराष्ट्र बोले- तात। मैं चिन्ता से जलता हुआ अभी तक

जाग रहा हूं, तुम मेरे करने योग्य जो कार्य समझो, उसे बताओ, क्योंकि हम लोगों में तुम्हीं धर्म और अर्थ के ज्ञान में निपुण हो। उदारचित्त विदुर। तुम अपनी बुद्धि से विचारकर मुझे ठीक-ठीक उपदेश करो। जो बात युधिष्ठिर के लिए हितकर और कौरवों के लिए कल्याणकारी समझो, वह सब अवश्य बताओ। विदुर। मेरे मन में अनिष्ट की आशंका बनी रहती है, इसलिए मैं सर्वत्र अनिष्ट ही देखता हूं, अत: व्याकुल हृदय से मैं तुमसे पूछ रहा हूं- अजातशत्रु युधिष्ठिर क्या चाहते हैं, सो सब ठीक-ठीक बताओ।

विदुरने कहा- मनुष्यों को चाहिए कि वह जिसकी पराजय नहीं चाहता, उसको बिना पूछे भी कल्याण करेनवाली या अनिष्ट करनेवाली अच्छी अथवा बुरी, जो भी बात हो, बता दे। इसलिए राजन्। जिससे समस्त कौरवों का हित हो, वही बात आपसे कहूंगा। मैं जो कल्याणकारी एवं धर्मयुक्त वचन कह रहा हूं, उन्हें आप ध्यान देकर सुनें।

भारत। असत् उपायों (जुआ आदि) का प्रयोग करके जो कपटपूर्ण कार्य सिद्ध होते हैं, उनमें आप मन मत लगाइए।

इसी प्रकार अच्छे उपायों का उपयोग करके सावधानी के साथ किया गया कोई कर्म यदि सफल न हो तो बुद्धिमान पुरुष को उसके लिए मन में ग्लानि नहीं करनी चाहिए। किसी प्रयोजन से किये गये कर्मों में पहले प्रयोजन को समझ लेना चाहिए। खूब सोच-विचारकर काम करना चाहिए, जल्दबाजी से किसी काम का आरम्भ नहीं करना चाहिए। धीर मनुष्य को उचित है कि पहले कर्मों के प्रयोजन, परिणाम तथा अपनी उन्नति का विचार करके फिर काम आरम्भ करे या न करे। जो राजा स्थिति, लाभ, हानि, कोष देश तथा दण्ड आदि की मात्रा को नहीं जानता, वह राज्य पर स्थिर नहीं रह सकता। जो इनके प्रमाण को ठीक-ठीक जानता है तथा धर्म और अर्थ के ज्ञान में दत्तचित्त रहता है, वह राज्य को प्राप्त करता है।

अब तो राज्य प्राप्त हो ही गया ऐसा समझकर अनुचित बर्ताव नहीं करना चाहिए। उद्दण्डता सम्पत्ति को उसी प्रकार नष्ट कर देती है, जैसे सुन्दर रूप को बुढ़ापा। मछली बढ़िया चारे से ढकी हुई लोहे की कांटी को लोभ में पड़कर निगल जाती है, उससे होनेवाले परिणाम पर विचार नहीं करती। अत: अपनी उन्नति चाहनेवाले पुरुष को वही वस्तु खानी (या ग्रहण करनी) चाहिए जो खाने योग्य हो तथा खायी जा सके, खाने (या ग्रहण करने) पर पच सके और पच जाने पर हितकारी हो। जो पेड़ से कच्चे फलों को तोड़ता है, वह उन फलों से रस तो पाता नहीं, उल्टे उस वृक्ष के बीज का नाश होता है। परंतु जो समय पर पके हुए फल को ग्रहण करता है, वह फल से रस पाता है और उस बीज से पुन: फल प्राप्त होता है।

जैसे भौरा फूलों की रक्षा करता हुआ ही उनके मधु का आस्वादन करता है, उसी प्रकार राजा भी प्रजाजनों को कष्ट दिये बिना ही उनसे धन ले। जैसे माली बगीचे में एक-एक फूल तोड़ता है, उसकी जड़ नहीं काटता उसी प्रकार राजा प्रजा की रक्षापूर्वक उससे कर (टैक्स) ले। कोयला बनानेवाले की तरह जड़ नहीं काटनी चाहिए। इसे करने से मेरा क्या लाभ होगा और न करने से क्या हानि होगी। इस प्रकार कर्मों के विषय में भली-भांति विचार करके फिर मनुष्य करे या न करे।

कुछ ऐसे व्यर्थ कार्य हैं, जो नित्य प्राप्त होने के कारण आरम्भ करने योग्य नहीं होते, क्योंकि उनके लिए किया हुआ पुरुषार्थ भी व्यर्थ हो जाता है। जिसकी प्रसन्नता का कोई फल नहीं और क्रोध भी व्यर्थ है, उसको प्रजा स्वामी बनाना नहीं चाहती। जैसे स्त्री नपुंसक को पति नहीं बनाना चाहती। जिनका मूल (साधन) छोटा और फल महान् हो, बुद्धिमान पुरुष उनको शीघ्र ही आरम्भ कर देता है, वैसे कामों में वह विघ्न नहीं आने देता। जो राजा मानो आंखों से पी जायेगा, इस प्रकार प्रेम के साथ कोमल दृष्टि से देखता है, वह चुपचाप बैठा रहे तो भी प्रजा उससे अनुराग रखती है।

राजा वृक्ष की भांति अच्छी तरह फूलने (प्रसन्न रहने) पर भी फल से खाली रहे (अधिक देनेवाला न हो), यदि फल से

युक्त (देनेवाला) हो तो भी जिस पर चढ़ा न जा सके, ऐसा (पहुंच के बाहर) होकर रहे। कच्चा (कम शक्तिवाला) होने पर भी पके (शक्तिसम्पन्न) की भांति अपने को प्रकट करे। ऐसा करने से वह नष्ट नहीं होता। जो राजा नेत्र, मन, वाणी और कर्म- इन चारों से प्रजा को प्रसन्न करता है, उसी से प्रजा प्रसन्न रहती है। जैसे व्याध से हिरन भयभीत होता है, उसी प्रकार जिससे समस्त प्राणी डरते हैं, वह समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का राज्य पाकर भी प्रजाजनों के द्वारा त्याग दिया जाता है।

अन्याय में स्थित हुआ राजा बाप-दादों का राज्य पाकर भी अपने ही कर्मों से उसे इस तरह भ्रष्ट कर देता है जैसे हवा बादल को छिन्न-भिन्न कर देती है। परम्परा से सज्जन पुरुषों द्वारा किये हुए धर्म का आचरण करनेवाले राजा के राज्य की पृथ्वी धन-धान्य से पूर्ण होकर उन्नति को प्राप्त होती है और उसके ऐश्वर्य को बढ़ाती है। जो राजा धर्म को छोड़ता और अधर्म का अनुष्ठान करता है, उसकी राज्यभूमि आग पर रखे हुए चमड़े की भांति संकुचित हो जाती है।

जो यत्न दूसरे राष्ट्रों का नाश करने के लिए किया जाता है, वही अपने राज्य की रक्षा के लिए करना उचित है।

धर्म से ही राज्य प्राप्त करे और धर्म से ही उसकी रक्षा करे, क्योंकि धर्ममूलक राज्यलक्ष्मी को पाकर न तो राजा उसे छोड़ता है और न वही राजा को छोड़ती है।

निरर्थक बोलनेवाले पागल तथा बकवाद करनेवाले बच्चे से भी सब ओर से उसी भांति तत्व की बात ग्रहण करनी चाहिए, जैसे पत्थरों में से सोना ले लिया जाता है। जैसे उच्छवृत्ति से जीविका चलानेवाला एक-एक दाना चुगता रहता है, उसी प्रकार धीर पुरुष को जहां-तहां से भावपूर्ण वचनों, सूक्तियों और सत्कर्मों का संग्रह करते रहना चाहिए।

गौएं गंध से, ब्राह्मण लोग वेदों से, राजा जासूसों से और अन्य साधारण लोग आंखों से देखा करते हैं।

राजन्। जो गाय बड़ी कठिनाई से दुहने देती है, वह बहुत क्लेश उठाती है, किंतु जो आसानी से दूध देती है, उसे लोग कष्ट नहीं देते। जो धातु बिना प्रयास के मुड़ जाते हैं उन्हें आगमें नहीं तपाते। जो काठ स्वयं झुका होता है, उसे कोई झुकानेका प्रयत्न नहीं करते। इस दृष्टांत के अनुसार बुद्धिमान पुरुष को अधिक बलवान के सामने झुक जाना चाहिए। जो अधिक बलवान के सामने झुकता है, वह मानो इन्द्र देवता को प्रणाम करता है। पशुओं के रक्षक या स्वामी हैं बादल, राजाओं के सहायक हैं मन्त्री, स्त्रियों के बन्धु (रक्षक) हैं पति और ब्राह्मणों के बान्धव हैं वेद। सत्य से धर्म की रक्षा होती है, योग से विद्या सुरक्षित होती है, सफाई से सुन्दर रूप की रक्षा होती है और सदाचार से कुल की रक्षा होती है।

तोलने से अनाज की रक्षा होती है, फेरने से घोड़े सुरक्षित रहते हैं, बारंबार देखभाल करने से गौओं की तथा मैले वस्त्र से स्त्रियों की रक्षा होती है। मेरा ऐसा विचार है कि सदाचार से हीन मनुष्य को केवल ऊंचा कुल मान्य नहीं हो सकता क्योंकि नीच कुल में उत्पन्न मनुष्यों को भी सदाचार श्रेष्ठ माना जाता है। जो दूसरों के धन, रूप, पराक्रम, कुलीनता, सुख, सौभाग्य और सम्मान पर डाह करता है, उसका यह रोग असाध्य है। न करने योग्य काम करने से, करने योग्य काम से प्रमाद करने से तथा कार्य सिद्ध होने के पहले ही मन्त्र प्रकट हो जाने से डरना चाहिए और जिससे नशा चढ़े, ऐसा पेय नहीं पीना चाहिए। विद्या का मद, धन का मद और तीसरा ऊंचे कुल का मद है। ये घमंडी पुरुषों के लिए तो मद हैं, परंतु सज्जन पुरुषों के लिए दम के साधन हैं। कभी किसी कार्य में सज्जनों द्वारा प्रार्थित होने पर दुष्ट लोग अपने को प्रसिद्ध दुष्ट जानते हुए भी सज्जन मानने लगते हैं। मनस्वी पुरुषों को सहारा देनेवाले संत हैं, संतों के भी सहारे संत ही हैं, दुष्टों को भी सहारा देनेवाले संत हैं, पर दुष्ट लोग संतों को सहारा नहीं देते। अच्छे वस्त्रवाला सभा को जीतता (अपना प्रभाव जमा लेता) है, जिसके पास गौ है, वह मीठे स्वाद की आकांक्षा को जीत लेता है, सवारी से चलनेवाला मार्ग को जीत (तय कर)

लेता है और शीलवान पुरुष सब पर विजय पा लेता है। पुरुष में शील ही प्रधान है, जिसका वही नष्ट हो जाता है, इस संसार में उसका जीवन धन, और बन्धुओं से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

भरतश्रेष्ठ। धनोन्मत्त पुरुषों के भोजन में मांस की, मध्यम श्रेणीवालों के भोजन में गोरस की तथा दरिद्रों के भोजन में तेल की प्रधानता होती है। दरिद्र पुरुष सदा स्वादिष्ट ही भोजन करते हैं, क्योंकि भूख उनके भोजन में स्वाद उत्पन्न कर देती है और वह (भूख) धनियों के लिए सर्वथा दुर्लभ है। राजन्। संसार में धनियों को प्राय: भोजन करने की शक्ति नहीं होती, किंतु दरिद्रों के पेट में काठ भी पच जाते हैं। अधम पुरुषों को जीविका न होने से भय लगता है, मध्यम श्रेणी मनुष्यों को मृत्यु से भय होता है, परंतु उत्तम पुरुषों को अपमान से ही महान् भय होता है।

यों तो पीने का नशा आदि भी नशा ही है, किंतु ऐश्वर्य का नशा तो बहुत ही बुरा है क्योंकि ऐश्वर्य के मद से मतवाला पुरुष भ्रष्ट हुए बिना होश में नहीं आता। वश में न होने के कारण विषयों में रमनेवाली इन्द्रियों से यह संसार उसी भांति कष्ट पाता है, जैसे सूर्य आदि ग्रहों से नक्षत्र तिरस्कृत हो जाते हैं। जो जीवों को वश में करनेवाली सहज पांच इन्द्रियों से जीत लिया गया, उसकी आपत्तियां शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भांति बढ़ती हैं। इन्द्रियों सहित मन को जीते बिना ही जो मन्त्रियों को जीतने की इच्छा करता है या मन्त्रियों को अपने अधीन किये बिना शत्रु को जीतना चाहता है, उस अजितेन्द्रिय पुरुष को सब लोग त्याग देते हैं। जो पहले इन्द्रियों सहित मन को ही शत्रु समझकर जीत लेता है, उसके बाद यदि वह मन्त्रियों तथा शत्रुओं को जीतने की इच्छा करे तो उसे सफलता मिलती है। इन्द्रियों तथा मन को जीतनेवाले, अपराधियों को दण्ड देनेवाले और जांच-परखकर काम करनेवाले धीर पुरुष की लक्ष्मी अत्यन्त सेवा करती है।

राजन्। मनुष्य का शरीर रथ है, बुद्धि सारथी है और इन्द्रियां इसके घोड़े हैं। इनको वश में करके सावधान रहनेवाला चतुर एवं धीर पुरुष काबू में किये हुए घोड़ों से रथी की भांति सुखपूर्वक यात्रा करता है।

शिक्षा न पाये हुए तथा काबू में न आनेवाले घोड़े जैसे मूर्ख सारथी को मार्ग में मार गिराते हैं, वैसे ही ये इन्द्रियां वश में न रहने पर पुरुष को मार डालने में समर्थ होती हैं। इन्द्रियां वश में न होने के कारण अर्थ को अनर्थ और अनर्थ को अर्थ समझकर अज्ञानी पुरुष बहुत बड़े दु:ख को भी सुख मान बैठता है। जो धर्म और अर्थ का परित्याग करके इन्द्रियों के वश में हो जाता है, वह शीघ्र ही ऐश्वर्य, प्राण, धन तथा स्त्री से भी हाथ धो बैठता है। जो अधिक धन का स्वामी होकर भी इन्द्रियों पर अधिकार नहीं रखता, वह इन्द्रियों को वश में न रखने के कारण ही ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो जाता है।

मन, बुद्धि और इन्द्रियों को अपने अधीन कर अपने से ही अपने आत्मा को जानने की इच्छा करे, क्योंकि आत्मा ही अपना बन्धु और आत्मा ही अपना शत्रु है। जिसने स्वयं अपनी आत्मा को ही जीत लिया है, उसकी आत्मा ही उसका बन्धु है। वही सच्चा बन्धु है और वही नियत शत्रु है।

राजन्। जिस प्रकार सूक्ष्म छेदवाले जाल में फंसी हुई दो बड़ी-बड़ी मछलियां मिलकर जाल को काट डालती हैं, उसी प्रकार ये काम और क्रोध- दोनों विशिष्ट ज्ञान को लुप्त कर देते हैं।

जो इस जगत में धर्म तथा अर्थ का विचार कर विजय-साधन-सामग्री का संग्रह करता है, वही उस सामग्री से युक्त होने के कारण सदा सुखपूर्वक समृद्धिशाली होता रहता है। जो चित्त के विकारभूत पांच इन्द्रियरूपी भीतरी शत्रुओं को जीते बिना ही दूसरे शत्रुओं को जीतना चाहता है, उसे शत्रु पराजित कर देते हैं।

इन्द्रियों पर अधिकार न होने के कारण बड़े-बड़े साधु भी कर्मों से तथा राजा लोग राज्य के भोग-विलासों से बंधे रहते हैं।

पापाचारी दुष्टों का त्याग न करके उनके साथ मिले रहने से निरपराध सज्जनों को भी उनके समान ही दण्ड प्राप्त होता है, जैसे सूखी लकड़ी में मिल जाने से गीली भी जल जाती है, इसलिए दुष्ट पुरुषों के साथ कभी मेल न करें। जो पांच विषयों की ओर दौड़नेवाले अपने पांच इन्द्रियरूपी शत्रुओं को मोह के कारण वश में नहीं करता, उस मनुष्य को विपत्ति ग्रस लेती है। गुणों में दोष न देखना, सरलता, पवित्रता, संतोष, प्रिय वचन बोलना, इन्द्रिय दमन, सत्य भाषण तथा अचंचलता- ये गुण दुरात्मा पुरुषों में नहीं होते। भारत। आत्मज्ञान, अक्रोध, सहनशीलता, धर्मपरायणता, वचन की रक्षा तथा दान- ये गुण अधम पुरुषों में नहीं होते। मूर्ख मनुष्य विद्वानों को गाली और निन्दा से कष्ट पहुंचाते हैं। गाली देनेवाला पाप का भागी होता है और क्षमा करनेवाला पाप से मुक्त हो जाता है।

दुष्ट पुरुषों का बल है हिंसा, राजाओं का बल है दण्ड देना, स्त्रियों का बल है सेवा और गुणवाचकों- गुणवानों का बल है क्षमा। राजन्। वाणी का पूर्ण संयम तो बहुत कठिन माना ही गया है, परंतु विशेष अर्थयुक्त और चमत्कारपूर्ण वाणी भी अधिक नहीं बोली जा सकती। राजन्। मधुर शब्दों में कही हुई बात अनेक प्रकार से कल्याण करती है, किंतु वही यदि कटु शब्दों में कही जाय तो महान अनर्थ का कारण बन जाती है।

बाणों से बींधा हुआ तथा फरसे से काटा हुआ वन भी पनप जाता है, किंतु कटु वचन कहकर वाणी से किया हुआ भयानक घाव नहीं भरता। कर्णि, नालीक और नाराच नामक बाणों को शरीर से निकाल सकते हैं परंतु कटु वचनरूपी कांटा नहीं निकाला जा सकता, क्योंकि वह हृदय के भीतर धंस जाता है।

वचनरूपी बाण मुख से निकलकर दूसरों के मर्म पर ही चोट करते हैं, उससे आहत मनुष्य रात-दिन घुलता रहता है। अत: विद्वान पुरुष दूसरों पर उनका प्रयोग न करे। देवता लोग जिसे पराजय देते हैं, उसकी बुद्धि को पहले ही हर लेते हैं, इससे वह नीच कर्मों पर ही अधिक दृष्टि रखता है। विनाशकाल उपस्थित होने पर बुद्धि मलिन हो जाती है, फिर तो न्याय समान प्रतीत होनेवाला अन्याय हृदय से बाहर नहीं निकलता। भरतश्रेष्ठ। आपके पुत्रों की वह बुद्धि पाण्डवों के प्रति विरोध से व्याप्त हो गयी है, आप इन्हें पहचान नहीं रहे हैं। महाराज धृतराष्ट्र। जो राजलक्षणों से सम्पन्न होने के कारण त्रिभुवन का भी राजा हो सकता है, वह आपका आज्ञाकारी युधिष्ठिर ही इस पृथ्वी का शासक होने योग्य है। वह धर्म तथा अर्थ के तत्व को जाननेवाला, तेज और बुद्धि से युक्त, पूर्ण, सौभाग्यशाली तथा आपके सभी पुत्रों से बढ़-चढ़कर है।

राजेन्द्र। धर्मधारियों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर दया, सौम्य भाव तथा आपके प्रति गौरव-बुद्धि के कारण बहुत कष्ट सह रहा है।

धृतराष्ट्र ने कहा- महाबुद्धे। तुम पुन: धर्म और अर्थ से युक्त बातें कहो, इन्हें सुनकर मुझे तृप्ति नहीं होती। इस विषय में तुम अद्भुत भाषण कर रहे हो। विदुरजी बोले- सब तीर्थों में स्नान और सब प्राणियों के साथ कोमलता का बर्ताव- ये दोनों एक समान हैं, अथवा कोमलता के बर्ताव का विशेष महत्व है।

विभो। आप अपने पुत्र कौरव-पाण्डव दोनों के साथ समान रूप से कोमलता का बर्ताव कीजिए। ऐसा करने से इस लोक में महान सुयश प्राप्त करके मरने के पश्चात आप स्वर्गलोक में जायेंगे।

पुरुषश्रेष्ठ। इस लोक में जब तक मनुष्य की पावन कीर्ति का गान किया जाता है, तब तक वह स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है। इस विषय में उस प्राचीन इतिहास का उदाहरण दिया करते हैं, जिसमें केशिनी के लिए सुधन्वा के साथ विरोचन के विवाद का वर्णन है।

राजन्। एक समय की बात है, केशिनी नामवाली एक अनुपम सुन्दरी कन्या सर्वश्रेष्ठ पति को वरण करने की इच्छा से

स्वयंवर-सभा में उपस्थित हुई। उसी समय दैत्यकुमार विरोचन उसे प्राप्त करने की इच्छा से वहां आया। तब केशिनी ने वहां दैत्यराज से इस प्रकार बातचीत की। केशिनी ने कहा- विरोचन। ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं या दैत्य? यदि ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं तो सुधन्वा ब्राह्मण ही मेरी शैय्या पर क्यों न बैठे। अर्थात् मैं सुधन्वा से विवाह क्यों न करूं।

विरोचन ने कहा- केशिनी। हम प्रजापति की श्रेष्ठ संतानें हैं, अत: सबसे उत्तम हैं। यह सारा संसार हम लोगों का ही है। हमारे सामने देवता क्या है और ब्राह्मण कौन चीज है?

केशिनी बोली- हे विरोचन। यहीं पर हम दोनों प्रतीक्षा करें। प्रात:काल सुधन्वा जब आएगा, तब मैं तुम दोनों को देखूंगी। विरोचन बोला- कल्याणि। तुम जैसा कहती हो, वही करूंगा। भीरु। प्रात:काल मुझे और सुधन्वा को एक साथ उपस्थित देखोगी। विदुरजी कहते हैं- राजाओं में श्रेष्ठ धृतराष्ट्र। इसके बाद जब रात बीती और सूर्यमण्डल का उदय हुआ, उस समय सुधन्वा उस स्थान पर आया, जहां विरोचन केशिनी के साथ मौजूद था। भरतश्रेष्ठ। सुधन्वा प्रल्हादकुमार विरोचन और केशिनी के पास आया। ब्राह्मण को आया देख केशिनी उठ खड़ी हुई और उसने उसे आसन, पाद्य और अर्घ्य निवेदन किया। सुधन्वा बोला- प्रल्हादनन्दन। मैं तुम्हारे इस सुवर्णमय सुन्दर सिंहासन को केवल छू लेता हूं, तुम्हारे साथ इस पर बैठ नहीं सकता, क्योंकि ऐसा होने से हम दोनों एक समान हो जायेंगे। विरोचन ने कहा- सुधन्वन्। तुम्हारे लिए तो पीढ़ा, चटाई या कुश का आसन उचित है, तुम मेरे साथ बराबर के आसन पर बैठने योग्य हो ही नहीं।

सुधन्वा ने कहा- पिता और पुत्र एक साथ एक आसन पर बैठ सकते हैं, दो ब्राह्मण, दो क्षत्रिय, दो वृद्ध, दो वैश्य और दो शूद्र भी एक साथ बैठ सकते हैं, किंतु दूसरे कोई दो व्यक्ति परस्पर एक साथ नहीं बैठ सकते।

तुम्हारे पिता प्रल्हाद नीचे बैठकर ही मेरी सेवा किया करते हैं। तुम अभी बालक हो, घर में सुख से पले हो, अत: तुम्हें इन बातों का कुछ भी ज्ञान नहीं है। विरोचन बोला- सुधन्वन्। हम असुरों के पास जो कुछ भी सोना, गौ, घोड़ा आदि धन है, उसकी मैं बाजी लगता हूं, हम तुम दोनों चलकर जो इस विषय के जानकार हों, उनसे पूछें कि हम दोनों में कौन श्रेष्ठ है?

सुधन्वा बोला- विरोचन। सुवर्ण गाय और घोड़ा तुम्हारे ही पास रहें, हम दोनों प्राणों की बाजी लगाकर जो जानकार हों, उनसे पूछें। विरोचन ने कहा- अच्छा, प्राणों की बाजी लगाने के पश्चात् हम दोनों कहां चलेंगे? मैं तो न देवताओं के पास जा सकता हूं और न कभी मनुष्यों से ही निर्णय करा सकता हूं। सुधन्वा बोला- प्राणों की बाजी लग जाने पर हम दोनों तुम्हारे पिता के पास चलेंगे। (मुझे विश्वास है कि) प्रल्हाद अपने बेटे के लिए भी झूठ नहीं बोल सकते हैं।

विदुर कहते हैं- इस तरह बाजी लगाकर परस्पर क्रुद्ध हो विरोचन और सुधन्वा दोनों उस समय वहां गये, जहां प्रल्हादजी बैठे थे। प्रल्हाद ने (मन-ही-मन) कहा- जो कभी भी एक साथ नहीं चले थे, वे ही दोनों, ये सुधन्वा और विरोचन आज सांप की तरह क्रुद्ध होकर एक ही राह से आते दिखाई देते हैं। फिर विरोचन से कहा- विरोचन। मैं तुमसे पूछता हूं, क्या सुधन्वा के साथ तुम्हारी मित्रता हो गयी है? फिर कैसे एक साथ आ रहे हो? पहले तो तुम दोनों कभी एक साथ नहीं चलते थे। विरोचन बोला- पिताजी। सुधन्वा के साथ मेरी मित्रता नहीं हुई है। हम दोनों प्राणों की बाजी लगाये आ रहे हैं। मैं आपसे यथार्थ बात पूछता हूं। मेरे प्रश्न का झूठा उत्तर न दीजिएगा।

प्रल्हाद ने कहा- सेवकों। सुधन्वा के लिए जल और मधुपर्क लाओ। (फिर सुधन्वा से कहा-) ब्राह्मण। तुम मेरे पूजनीय अतिथि हो, मैंने तुम्हारे लिए सफेद गौ खूब मोटी-ताजी कर रखी है।

सुधन्वा बोला- प्रल्हाद। जल और मधुपर्क तो मुझे मार्ग में ही मिल गया है। तुम तो जो मैं पूछ रहा हूं, उस प्रश्न का

ठीक-ठीक उत्तर दो। ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं अथवा विरोचन? प्रह्लाद बोले- ब्राह्मण। मेरे एक ही पुत्र है और इधर तुम स्वयं उपस्थित हो, भला, तुम दोनों के विवाद में मेरे जैसा मनुष्य कैसे निर्णय दे सकता है। सुधन्वा बोला- मतिमन्। तुम्हारे पास गौ तथा दूसरा जो कुछ भी प्रिय धन हो, वह सब अपने औरस पुत्र विरोचन को दे दो, परंतु हम दोनों के विवाद में तो तुम्हें ठीक-ठीक उत्तर देना ही चाहिए। प्रह्लाद ने कहा- सुधन्वा। अब मैं तुमसे यह बात पूछता हूं- जो सत्य न बोले अथवा असत्य निर्णय करे, ऐसे दुष्ट वक्ता की क्या स्थिति होती है? सुधन्वा बोला- सौतवाली स्त्री, जूए में हारे हुए जुआरी और भार ढोने से व्यथित शरीरवाले मनुष्य की रात में जो स्थिति होती है, वही स्थिति झूठा न्याय देनेवाले वक्ता की भी होती है।

जो झूठा निर्णय देता है, वह राजा नगर में कैद होकर बाहरी दरवाजे पर भूख का कष्ट उठाता हुआ बहुत-से शत्रुओं को देखता है। पशु के लिए झूठ बोलने से पांच पीढ़ियों को, गौ के लिए झूठ बोलने पर दस पीढ़ियों को, घोड़े के लिए असत्य भाषण करने पर सौ पीढ़ियों को और मनुष्य के लिए झूठ बोलने पर एक हजार पीढ़ियों को मनुष्य नरक में धकेलता है।

सोने के लिए झूठ बोलनेवाला भूत और भविष्य सभी पीढ़ियों को नरक में गिराता है। पृथ्वी तथा स्त्री के लिए झूठ कहनेवाला तो अपना सर्वनाश ही कर लेता है, इसलिए तुम भूमि या स्त्री के लिए कभी झूठ न बोलना।

प्रह्लाद ने कहा- विरोचन। सुधन्वा के पिता अंगिरा मुझसे श्रेष्ठ है, सुधन्वा तुमसे श्रेष्ठ है, इसकी माता भी तुम्हारी माता से श्रेष्ठ है, अत: तुम आज सुधन्वा से हार गये। विरोचन। अब सुधन्वा तुम्हारे प्राणों का मालिक है। सुधन्वा। अब यदि तुम दे दो तो मैं विरोचन को पाना चाहता हूं। सुधन्वा बोला- प्रह्लाद। तुमने धर्म को ही स्वीकार किया है, स्वार्थवश झूठ नहीं कहा है, इसलिए अब इस दुर्लभ पुत्र को फिर तुम्हें दे रहा हूं। प्रह्लाद। तुम्हारे इस पुत्र विरोचन को मैंने पुन: तुम्हें दे दिया है किंतु अब यह कुमारी केशिनी के निकट चलकर मेरा पैर धोए।

विदुर कहते हैं- इसलिए राजेन्द्र। आप पृथ्वी के लिए झूठ न बोलें। बेटे के स्वार्थवश सच्ची बात न कहकर पुत्र और मन्त्रियों के साथ विनाश के मुख में न जाएं। देवता लोग चरवाहों की तरह डंडा लेकर पहरा नहीं देते। वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं उसे उत्तम बुद्धि से युक्त कर देते हैं। मनुष्य जैसे-जैसे कल्याण में मन लगाता है, वैसे-ही-वैसे उसके सारे अभीष्ट सिद्ध होते हैं- इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। कपटपूर्ण व्यवहार करनेवाले मायावी को वेद पापों से मुक्त नहीं करते, किंतु जैसे पंख निकल आने पर चिड़ियों के बच्चे घोंसला छोड़ देते हैं, उसी प्रकार वेद भी अन्तकाल में उसे त्याग देते हैं। शराब पीना, कलह, समूह के साथ वैर, पति-पत्नी में भेद पैदा करना, कुटुम्बवालों में भेदबुद्धि उत्पन्न करना, राजा के साथ द्वेष, स्त्री और पुरुष में विवाद और बुरे रास्ते- ये सब त्याग देने योग्य बताये गये हैं। हस्तरेखा देखनेवाला, चोरी करके व्यापार करनेवाला, जुआरी, वैद्य, शत्रु, मित्र और नर्तक- इन सातों को कभी भी गवाह नहीं बनाना चाहिए।

आदर के साथ अग्निहोत्र, आदरपूर्वक मौन का पालन, आदरपूर्वक स्वाध्याय और आदर के साथ यज्ञ का अनुष्ठान- ये चार कर्म भय को दूर करनेवाले हैं, किंतु वे ही यदि ठीक तरह से सम्पादित न हों तो भय प्रदान करनेवाले होते हैं।

घर में आग लगानेवाला, विष देनेवाला, जारज संतान की कमाई खानेवाला, सोमरस बेंचनेवाला, शस्त्र बनानेवाला, चुगली करनेवाला, मित्रद्रोही, परस्त्रीलम्पट, गर्भ की हत्या करनेवाला, गुरुस्त्रीगामी, ब्राह्मण होकर शराब पीनेवाला, अधिक तीखे स्वभाववाला, कौए की तरह कांय-कांय करनेवाला, नास्तिक, वेद की निन्दा करनेवाला, घूसखोर, पतित, क्रूर तथा शक्ति रहते हुए रक्षा के लिए प्रार्थना करने पर भी जो हिंसा करता है- ये सब के सब ब्रह्म हत्यारों के समान हैं।

जलती हुई आग से सोने की पहचान होती है, सदाचार से सत्पुरुष की, व्यवहार से साधु की, भय आने पर शूर की,

आर्थिक कठिनाई में धीर की और कठिन आपत्ति में शत्रु एवं मित्र की परीक्षा होती है। बुढ़ापा सुंदर रूप को, आशा धीरता को, मृत्यु प्राणों को, दोष देखने की आदत धर्माचरण को, क्रोध लक्ष्मी को, नीच पुरुषों की सेवा सत्स्वभाव को काम लज्जा को और अभिमान सर्वस्व को नष्ट कर देता है। शुभ कर्मों से लक्ष्मी की उत्पत्ति होती है, प्रगल्भता से वह बढ़ती है, चतुरता से जड़ जमा लेती है और संयम से सुरक्षित रहती है। आठ गुण पुरुष की शोभा बढ़ाते हैं- बुद्धि, कुलीनता, दम, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, बहुत न बोलना, यथाशक्ति दान देना और कृतज्ञ होना। तात। एक गुण ऐसा है, जो इन सभी महत्वपूर्ण गुणों पर हठात् अधिकार जमा लेता है। जिस समय राजा किसी मनुष्य का सत्कार करता है, उस समय यह एक ही गुण (राजसम्मान) सभी गुणों से बढ़कर शोभा पाता है। राजन्। मनुष्यलोक में ये आठ गुण स्वर्गलोक का दर्शन करानेवाले हैं, इनमें से चार का संतों के साथ नित्य सम्बन्ध है- उनमें सदा विद्यमान रहते हैं और चार का सज्जन पुरुष अनुसरण करते हैं। यज्ञ, दान अध्ययन और तप- ये चार सज्जनों के साथ नित्य सम्बद्ध हैं और इन्द्रियनिग्रह, सत्य सरलता तथा कोमलता- इन चारों का संत लोग अनुसरण करते हैं। यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, दया और अलोभ- ये धर्म के आठ प्रकार के मार्ग बताये गये हैं। इनमें से पहले चारों का दम्भ के लिए भी सेवन किया जा सकता है, परंतु अन्तिम चार तो जो महात्मा नहीं हैं, उनमें रह नहीं सकते।

जिस सभा में बड़े-बूढ़े नहीं, वह सभा नहीं, जो धर्म की बात न कहें, वे बूढ़े नहीं, जिसमें सत्य नहीं, वह धर्म नहीं और जो कपट से पूर्ण हो वह सत्य नहीं है। सत्य, विनय का भाव, शास्त्रज्ञान, विद्या, कुलीनता, शील, बल, धन, शूरता और चमत्कारपूर्ण बात कहना- ये दस स्वर्ग के साधन हैं। पाप-कीर्तिवाला मनुष्य पापाचरण करता हुआ पापरूप फल को ही प्राप्त करता है और पुण्यकर्मा मनुष्य पुण्य करता हुआ अत्यन्त पुण्यफल का ही उपभोग करता है। इसलिए प्रशंसित व्रत का आचरण करनेवाले पुरुष को पाप नहीं करना चाहिए, क्योंकि बारंबार किया हुआ पाप बुद्धि को नष्ट कर देता है।

जिसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, वह मनुष्य सदा पाप ही करता रहता है। इसी प्रकार बारंबार किया हुआ पुण्य बुद्धि को बढ़ाता है। जिसकी बुद्धि बढ़ जाती है, वह मनुष्य सदा पुण्य ही करता है। इस प्रकार पुण्यकर्मा मनुष्य पुण्य करता हुआ पुण्यलोक को ही जाता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह सदा एकाग्रचित्त होकर पुण्य का ही सेवन करे।

गुणों में दोष देखनेवाला, मर्म पर आघात करनेवाला, निर्दयी, शत्रुता करनेवाला और शठ मनुष्य पाप का आचरण करता हुआ शीघ्र ही महान कष्ट को प्राप्त होता है। दोषदृष्टि से रहित शुद्ध बुद्धिवाला पुरुष सदा शुभ कर्मों का अनुष्ठान-करता हुआ महान सुख को प्राप्त होता है और सर्वत्र उसका सम्मान होता है। जो बुद्धिमान पुरुषों से सद्बुद्धि प्राप्त करता है, वही पण्डित है, क्योंकि बुद्धिमान पुरुष ही धर्म और अर्थ को प्राप्त कर अनायास ही अपनी उन्नति करने में समर्थ होता है।

दिन-भर में ही वह कार्य कर ले जिससे रात में सुख से रह सके और आठ महीनों में वह कार्य कर ले, जिससे वर्षा के चार महीने सुख से व्यतीत कर सके। पहली अवस्था में वह काम करे, जिससे वृद्धावस्था में सुखपूर्वक रह सके और जीवन-भर वह कार्य करे, जिससे मरने के बाद भी सुख से रह सके। सज्जन पुरुष पच जाने पर अन्न की, निष्कलंक जवानी बीत जाने पर स्त्री की, संग्राम जीत लेने पर शूर की और तत्त्वज्ञान प्राप्त हो जाने पर तपस्वी की प्रशंसा करते हैं। अधर्म से प्राप्त हुए धन के द्वारा जो दोष छिपाया जाता है, वह तो छिपता नहीं, उससे भिन्न और नया दोष प्रकट हो जाता है।

अपने मन और इन्द्रियों को वश में करनेवाले शिष्यों के शासक गुरु हैं, दुष्टों के शासक राजा हैं और छिपे-छिपे पाप करनेवालों के शासक सूर्यपुत्र यमराज हैं। ऋषि, नदी, महात्माओं के कुल तथा स्त्रियों की दुश्चरित्रता का मूल नहीं जाना

जा सकता। राजन्। ब्राह्मणों की सेवा-पूजा में संलग्न रहनेवाला दाता, कुटुम्बीजनों के प्रति कोमलता का बर्ताव करनेवाला और शीलवान राजा चिरकाल तक पृथ्वी का पालन करता है। शूर, विद्वान और सेवाधर्म को जाननेवाले- ये तीन प्रकार के मनुष्य पृथ्वी से सुवर्णरूपी पुष्प का संचय करते हैं।

भारत। बुद्धि से विचारकर किये हुए कर्म श्रेष्ठ होते हैं, बाहुबल से किये जानेवाले कर्म मध्यम श्रेणी के हैं, जिज्ञासा से होनेवाले कार्य अधम हैं और भार ढोने का काम महा अधम है। राजन्। अब आप दुर्योधन, शकुनि, मूर्ख दु:शासन तथा कर्ण पर राज्य का भार रखकर ऐश्वर्य कैसे चाहते हैं? भरतश्रेष्ठ। पाण्डव तो सभी उत्तम गुणों से सम्पन्न हैं और आपमें पिता का-सा भाव रखकर बर्ताव करते हैं, आप भी उनपर पुत्रभाव रखकर उचित बर्ताव कीजिए।

विदुर कहते हैं- इस विषय में दत्तात्रेय और साध्य देवताओं के संवाद रूप इस प्राचीन इतिहास का उदाहरण दिया करते हैं, यह मेरा भी सुना हुआ है। प्राचीन काल की बात है, उत्तम व्रतवाले महा बुद्धिमान महर्षि दत्तात्रेयजी हंस (परमहंस) रूप में विचर रहे थे, उस समय साध्य देवताओं ने उनसे पूछा। साध्य बोले- महर्षे। हम सब लोग साध्य देवता हैं, आपको केवल देखकर हम आपके विषय में कुछ अनुमान नहीं कर सकते। हमें तो आप शास्त्रज्ञान से युक्त, धीर एवं बुद्धिमान् जान पड़ते हैं, अत: हम लोगों को विद्वत्तापूर्ण अपनी उदारवाणी सुनाने की कृपा करें।

हंस ने कहा- देवताओं। मैंने सुना है कि धैर्य-धारण, मनोनिग्रह तथा सत्य-धर्मों का पालन ही कर्त्तव्य है, इसके द्वारा पुरुष को चाहिए कि हृदय की सारी गांठ खोलकर प्रिय और अप्रिय को अपने आत्मा के समान समझे। दूसरों से गाली सुनकर भी स्वयं उन्हें गाली न दे। क्षमा करनेवाले का रोका हुआ क्रोध ही गाली देनेवाले को जला डालता है और उसके पुण्य को भी ले लेता है। दूसरे को न तो गाली दें और न उसका अपमान करें, मित्रों से द्रोह तथा नीच पुरुषों की सेवा न करें, सदाचार से हीन एवं अभिमानी न हो, रूखी तथा रोषभरी वाणी का परित्याग करें। इस जगत् में रूखी बातें मनुष्यों के मर्मस्थान, हड्डी, हृदय तथा प्राणों को दग्ध करती रहती हैं, इसलिए धर्मानुरागी पुरुष जलानेवाली रूखी बातों का सदा के लिए परित्याग कर दें। जिसकी वाणी रूखी और स्वभाव कठोर है, जो मर्म पर आघात करता और वाग्बाणों से मनुष्यों को पीड़ा पहुंचाता है, उसे ऐसा समझना चाहिए कि वह मनुष्यों में महादरिद्र है और वह अपने मुख में दरिद्रता अथवा मौत को बांधे हुए ढो रहा है। यदि दूसरा कोई इस मनुष्य को अग्नि और सूर्य के समान दग्ध करनेवाले तीखे वाग्बाणों से बहुत चोट पहुंचाए तो वह विद्वान पुरुष चोट खाकर अत्यन्त वेदना सहते हुए भी ऐसा समझे कि वह मेरे पुण्यों को पुष्ट कर रहा है।

जैसे वस्त्र जिस रंग में रंगा जाय वैसा ही हो जाता है, इसी प्रकार यदि कोई सज्जन, असज्जन, तपस्वी अथवा चोर की सेवा करता है तो वह उन्हीं के वश में हो जाता है- उस पर उन्हीं का रंग चढ़ जाता है। जो स्वयं किसी के प्रति बुरी बात नहीं कहता, दूसरों से भी नहीं कहलाता, बिना मार खाये स्वयं न तो किसी को मारता है और न दूसरों से ही मरवाता है, मार खाकर भी अपराधी को जो मारना नहीं चाहता, देवता भी उसके आगमन की बाट जोहते रहते हैं। बोलने से न बोलना अच्छा बताया गया है, किंतु सत्य बोलना वाणी की दूसरी विशेषता है, यानी मौन की अपेक्षा भी दूना लाभ-प्रद है। सत्य भी यदि प्रिय बोला जाय तो तीसरी विशेषता है और वह भी यदि धर्मसम्मत कहा जाय तो वह वचन की चौथी विशेषता है।

मनुष्य जैसे लोगों के साथ रहता है, जैसे लोगों की सेवा करता है और जैसा होना चाहता है, वैसा ही हो जाता है।

मनुष्य जिन-जिन विषयों से मन को हटाता जाता है उनसे उसकी मुक्ति होती जाती है। इस प्रकार यदि सब ओर से निवृत्ति हो जाए तो उसे लेशमात्र दु:ख का भी कभी अनुभव नहीं होता। जो न तो स्वयं किसी से जीता जाता, न दूसरों को

जीतने की इच्छा करता है, न किसी के साथ वैर करता और न दूसरों को चोट पहुंचाना चाहता है, जो निन्दा और प्रशंसा में समान भाव रखता है, वह हर्ष-शोक से परे हो जाता है। जो सबका कल्याण चाहता है, किसी के अकल्याण की बात मन में भी नहीं लाता, जो सत्यवादी, कोमल और जितेन्द्रिय है, वह उत्तम पुरुष माना गया है। जो झूठी सान्त्वना नहीं देता, देने की प्रतिज्ञा करके दे ही डालता है, दूसरों के दोषों को जानता है, वह मध्यम श्रेणी का पुरुष है।

दुर्योधन गन्धर्वों द्वारा पीटा गया, अस्त्र-शस्त्रों से विदीर्ण किया गया, (उस समय पाण्डवों ने उसकी रक्षा की) तो भी वह कृतघ्न क्रोध के वशीभूत हो पाण्डवों की बुराई से मुंह नहीं मोड़ता। वह दुरात्मा किसी का भी मित्र नहीं है। ऐसी चित्तवृत्ति अधम पुरुषों की ही हुआ करती है। जो अपने ही ऊपर संदेह होने के कारण दूसरों से भी कल्याण होने का विश्वास नहीं करता, मित्रों को भी दूर रखता है, अवश्य ही वह अधम पुरुष है। जो अपनी उन्नति चाहता है, वह उत्तम पुरुषों की ही सेवा करे, समय आ पड़ने पर मध्यम पुरुषों की भी सेवा कर ले, परंतु अधम पुरुषों की सेवा कदापि न करे।

मनुष्य दुष्ट पुरुषों के बल से, निरन्तर के उद्योग से, बुद्धि से तथा पुरुषार्थ से धन भले ही प्राप्त कर ले, परंतु इससे उत्तम कुलीन पुरुषों के सम्मान और सदाचार को पूर्णरूप से कदापि नहीं प्राप्त कर सकता।

धृतराष्ट्र ने कहा- विदुर। धर्म और अर्थ के नित्य ज्ञाता एवं बहुश्रुत देवता भी उत्तम कुल में उत्पन्न पुरुषों की इच्छा करते हैं। इसलिए मैं तुमसे यह प्रश्न करता हूँ कि महान् (उत्तम) कुल कौन हैं? विदुरजी बोले- जिनमें तप, इन्द्रिय संयम, वेदों का स्वाध्याय, यज्ञ, पवित्र विवाह सदा अन्नदान और सदाचार- ये सात गुण विद्यमान हैं, उन्हें महान् (उत्तम) कुल कहते हैं। जिनका सदाचार शिथिल नहीं होता, जो अपने दोषों से माता-पिता को कष्ट नहीं पहुंचाते, प्रसन्न चित्त से धर्म का आचरण करते हैं तथा असत्य का परित्याग कर अपने कुल की विशेष कीर्ति चाहते हैं, वे ही महान कुल हैं। यज्ञ न होने से, निन्दित कुल में विवाह करने से, वेद का त्याग और धर्म का उल्लंघन करने से उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं।

देवताओं के धन का नाश, ब्राह्मण के धन का अपहरण और ब्राह्मणों की मर्यादा का उल्लंघन करने से उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं। भारत। ब्राह्मणों के अनादर और निन्दा से तथा धरोहर रखी हुई वस्तु को छिपा लेने से अच्छे कुल भी निन्दनीय हो जाते हैं। गौओं, मनुष्यों और धन से सम्पन्न होकर भी जो कुल सदाचार से हीन हैं, वे अच्छे कुलों की गणना में नहीं आ सकते। थोड़े धनवाले कुल भी यदि सदाचार से सम्पन्न हैं, तो वे अच्छे कुलों की गणना में आ जाते हैं और महान यश प्राप्त करते हैं। सदाचार की रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिए, धन तो आता और जाता रहता है। धन क्षीण हो जाने पर भी सदाचारी मनुष्य क्षीण नहीं माना जाता, किंतु जो सदाचार से भ्रष्ट हो गया, उसे तो नष्ट ही समझना चाहिए।

जो कुल सदाचार से हीन हैं, वे गौओं, पशुओं, घोड़ों तथा हरी-भरी खेती से सम्पन्न होनेपर भी उन्नति नहीं कर पाते।

हमारे कुल में कोई वैर करनेवाला न हो, दूसरों के धन का अपहरण करनेवाला राजा अथवा मन्त्री न हो और मित्रद्रोही, कपटी तथा असत्यवादी न हो। इसी प्रकार माता, पिता, देवता एवं अतिथियों को भोजन कराने से पहले भोजन करनेवाला भी न हो। हम लोगों में से जो ब्राह्मणों की हत्या करे, ब्राह्मणों के साथ द्वेष करें तथा पितरों को पिण्डदान एवं तर्पण न करे, वह हमारी सभा में न जाए।

तृण का आसन, पृथ्वी, जल और चौथी मीठी वाणी सज्जनों के घर में इन चार चीजों की कभी कमी नहीं होती। महाप्राज्ञ राजन्। पुण्यकर्म करनेवाले धर्मात्मा पुरुषों के यहां ये तृण आदि वस्तुएं बड़ी श्रद्धा के साथ सत्कार के लिए उपस्थित की जाती हैं। नृपवर। छोटा-सा भी रथ भार ढो सकता है, किंतु दूसरे काठ बड़े-बड़े होने पर भी ऐसा नहीं कर सकते। इसी

प्रकार उत्तम कुल में उत्पन्न उत्साही पुरुष भार सह सकते हैं, दूसरे मनुष्य वैसे नहीं होते।

जिसके कोप से भयभीत होना पड़े तथा शंकित होकर जिसकी सेवा की जाय, वह मित्र नहीं है। मित्र तो वही है, जिस पर पिता की भांति विश्वास किया जा सके, दूसरे तो संगी मात्र हैं।

पहले से कोई सम्बन्ध न होने पर भी जो मित्रता का बर्ताव करे, वही बन्धु, वही मित्र, वही सहारा और वही आश्रय है।

जिसका चित्त चंचल है, जो वृद्धों की सेवा नहीं करता, उस अनिश्चितमति पुरुष के लिए मित्रों का संग्रह स्थायी नहीं होता। जैसे हंस सूखे सरोवर के आस-पास ही मंडराकर रह जाते हैं भीतर प्रवेश नहीं करते, उसी प्रकार जिसका चित्त चंचल है, जो अज्ञानी और इन्द्रियों का गुलाम है, उसे अर्थ की प्राप्ति नहीं होती। दुष्ट पुरुषों का स्वभाव मेघ के समान चंचल होता है, वे सहसा क्रोध कर बैठते हैं और अकारण ही प्रसन्न हो जाते हैं। जो मित्रों से सत्कार पाकर और उनकी सहायता से कृतकार्य होकर भी उनके नहीं होते, ऐसे कृतघ्नों के मरने पर उनका मांस मांसभोजी जन्तु भी नहीं खाते। धन हो या न हो, मित्रों का तो सत्कार करे ही। मित्रों से कुछ भी न मांगते हुए उनके सार-असार की परीक्षा न करे। संताप से रूप नष्ट हो जाता है, संताप से बल नष्ट होता है, संताप से ज्ञान नष्ट होता है और संताप से मनुष्य रोग को प्राप्त होता है।

अभीष्ट वस्तु शोक करने से नहीं मिलती, उससे तो केवल शरीर को कष्ट होता है और शत्रु प्रसन्न होते हैं इसलिए आप मन में शोक न करें। मनुष्य बार-बार मरता और जन्म लेता है, बार-बार हानि उठाता और बढ़ता है, बार-बार स्वयं दूसरे से याचना करता है और दूसरे उससे याचना करते हैं तथा बारंबार वह दूसरों के लिए शोक करता है और दूसरे उसके लिए शोक करते हैं। सुख-दु:ख, उत्पत्ति-विनाश, लाभ-हानि और जीवन-मरण ये बारी-बारी से सबको प्राप्त होते रहते हैं इसलिए धीर पुरुष को इनके लिए हर्ष और शोक नहीं करना चाहिए। ये छ: इन्द्रियां बहुत ही चंचल हैं, इनमें से जो-जो इन्द्रिय जिस-जिस विषय की ओर बढ़ती है, वहां-वहां बुद्धि उसी प्रकार क्षीण होती है, जैसे फूटे घड़े से पानी सदा चू जाता है। धृतराष्ट्र ने कहा- काठ में छिपी हुई आग के समान सूक्ष्म धर्म से बंधे हुए राजा युधिष्ठिर के साथ मैंने मिथ्या व्यवहार किया है अत: वे युद्ध करके मेरे मूर्ख पुत्रों का नाश कर डालेंगे। महामते। यह सब कुछ सदा ही भय से उद्विग्न है, मेरा यह मन भी भय से उद्विग्न है, इसलिए जो उद्वेगशून्य और शान्त पद हो, वही मुझे बताओ।

विदुर बोले- पापशून्य नरेश। विद्या, तप, इन्द्रियनिग्रह और लोभत्याग के सिवा और कोई आपके लिए शान्ति का उपाय मैं नहीं देखता। बुद्धि से मनुष्य अपने भय को दूर रखता है, तपस्या से महत् पद को प्राप्त होता है, गुरु-शुश्रूषा से ज्ञान और योग से शान्ति पाता है। मोक्ष की इच्छा रखनेवाले मनुष्य दान के पुण्य का आश्रय नहीं लेते, वेद के पुण्य का आश्रय नहीं लेते, किंतु निष्काम भाव से राग-द्वेष से रहित हो इस लोक में विचरते रहते हैं। सम्यक् अध्ययन, न्यायोचित युद्ध, पुण्यकर्म और अच्छी तरह की हुई तपस्या के अन्त में सुख की वृद्धि होती है। राजन। आपस में फूट रखनेवाले लोग अच्छे बिछौनों से युक्त पलंग पाकर भी कभी सुख की नींद नहीं सोने पाते, उन्हें स्त्रियों के पास रहकर तथा सूत-मागधों द्वारा की हुई स्तुति सुनकर भी प्रसन्नता नहीं होती। जो परस्पर भेदभाव रखते हैं, वे कभी धर्म का आचरण नहीं करते। सुख भी नहीं पाते। उन्हें गौरव नहीं प्राप्त होता तथा शान्ति की वार्ता भी नहीं सुहाती। हित की बात भी कही जाय तो उन्हें अच्छी नहीं लगती। उनके योगक्षेम की भी सिद्धि नहीं हो पाती। राजन्। भेदभाववाले पुरुषों की विनाश के सिवा और कोई गति नहीं है। जैसे गौओं में दूध, ब्राह्मण में तप और युवती स्त्रियों में चपलता होना अधिक सम्भव है, उसी प्रकार अपने जाति-बन्धुओं से भय होना भी सम्भव ही है।

नित्य सींचकर बढ़ायी हुई पतली लताएं बहुत होने के कारण बहुत वर्षों तक नाना प्रकार के झोंके सहती हैं, यही बात सत्पुरुषों के विषय में भी समझनी चाहिए। वे दुर्बल होने पर प्रज्ज्वलित हो उठती हैं। इसी प्रकार जाति-बन्धु भी फूट होने पर दु:ख उठाते हैं और एकता होने पर सुखी रहते हैं।

धृतराष्ट्र। जो लोग ब्राह्मणों, स्त्रियों, जातिवालों और गौओं पर ही शूरता प्रकट करते हैं, वे डंठल से पके हुए फलों की भांति नीचे गिरते हैं। यदि वृक्ष अकेला है तो वह बलवान् दृढ़तम तथा बहुत बड़ा होने पर भी एक ही क्षण में आंधी के द्वारा बलपूर्वक शाखाओं सहित धराशायी किया जा सकता है। किंतु जो बहुत-से वृक्ष एक साथ रहकर समूह के रूप में खड़े हैं, वे एक-दूसरे के सहारे बड़ी-से-बड़ी आंधी को भी सह सकते हैं। इसी प्रकार समस्त गुणों से सम्पन्न मनुष्य को भी अकेला होने पर शत्रु अपनी ताकत के अंदर समझते हैं, जैसे अकेला वृक्ष को वायु। किंतु परस्पर मेल होने से और एक से दूसरे को सहारा मिलने से जातिवाले लोग उसी प्रकार वृद्धि को प्राप्त होते हैं, जैसे तालाब में कमल। ब्राह्मण, गौ, कुटुम्बी, बालक, स्त्री, अन्नदाता और शरणागत- ये अवध्य होते हैं।

राजन्। आपका कल्याण हो, मनुष्य में धन और आरोग्य को छोड़कर दूसरा कोई गुण नहीं है, क्योंकि रोगी तो मुर्दे के समान है। महाराज। जो बिना रोग के उत्पन्न, कड़वा, सिर में दर्द पैदा करनेवाला, पाप से सम्बद्ध, कठोर, तीख और गरम है, जो सज्जनों द्वारा पान करने योग्य है और जिसे दुर्जन नहीं पी सकते- उस क्रोध को आप पी जाइए और शान्त होइए।

रोग से पीड़ित मनुष्य मधुर फलों का आदर नहीं करते, विषयों में भी उन्हें कुछ सुख या सार नहीं मिलता। रोगी सदा ही दुखी रहते हैं। वे न तो धनसम्बन्धी भोगों का और न सुख का ही अनुभव करते हैं। राजन्। पहले जुए में द्रौपदी को जीती गयी देखकर मैंने कहा था, आप द्यूतक्रीड़ा में आसक्त दुर्योधन को रोकिए, विद्वान लोग इस प्रवंचना के लिए मना करते हैं। किंतु आपने मेरा कहना नहीं माना। वह बल नहीं, जिसका मृदुल स्वभाव के साथ विरोध हो, सूक्ष्म धर्म का शीघ्र ही सेवन करना चाहिए। क्रूरतापूर्वक उपार्जन की हुई लक्ष्मी नश्वर होती है, यदि वह मृदुलतापूर्वक बढ़ायी गयी हो तो पुत्र-पौत्रों तक स्थिर रहती है। राजन्। आपके पुत्र पाण्डवों की रक्षा करें और पाण्डु के पुत्र आपके पुत्रों की रक्षा करें। सभी कौरव एक-दूसरे के शत्रुओं को शत्रु तथा मित्र को मित्र समझें। सबका एक ही कर्त्तव्य हो, सभी सुखी और समृद्धिशाली होकर जीवन व्यतीत करें। अजमीढकुलनन्दन। इस समय आप ही कौरवों के आधार हैं, कुरुवंश आपके ही अधीन है। तात। कुन्ती के पुत्र अभी बालक हैं और वनवास से बहुत कष्ट पा चुके हैं, इस समय अपने यश की रक्षा करते हुए पाण्डवों का पालन कीजिए। कुरुराज। आप पाण्डवों से सन्धि कर लें, जिससे शत्रुओं को आपका छिद्र देखने का अवसर न मिले। नरदेव। समस्त पाण्डव सत्य पर डटे हुए हैं, अब आप अपने पुत्र दुर्योधन को रोकिए।

विदुर कहते हैं- राजेन्द्र। विचित्रवीर्यनन्दन। स्वयम्भुव मनुजी ने कहा है कि नीचे लिखे सत्रह प्रकार के पुरुषों को पाश हाथ में लिये यमराज के दूत नरक में ले जाते हैं- जो आकाश पर मुष्टि से प्रहार करता है, न झुकाये जा सकनेवाले वर्षाकालीन इन्द्रधनुष को झुकाना चाहता है, पकड़ में न आनेवाली सूर्य की किरणों को पकड़ने का प्रयास करता है, शासन के अयोग्य पुरुष पर शासन करता है, मर्यादा का उल्लंघन करके संतुष्ट होता है, शत्रु की सेवा करता है, स्त्री-रक्षा के द्वारा अपनी जीविका चलाता है, याचना करने से अयोग्य पुरुष से याचना करता है तथा आत्मप्रशंसा करता है, अच्छे कुल में उत्पन्न होकर भी नीच कर्म करता है, दुर्बल होकर भी बलवान से वैर करता है, श्रद्धाहीन को उपदेश करता है, न चाहने योग्य वस्तुओं को चाहता है, श्वसुर होकर पुत्रवधू के साथ परिहास पसंद करता है तथा पुत्रवधू की सहायता से

संकट से छूटकर भी पुन: उससे अपनी प्रतिष्ठा चाहता है, परस्त्री में अपने वीर्य का आधान करता है, आवश्यकता से अधिक स्त्री की निन्दा करता है, किसी से कोई वस्तु पाकर भी याद नहीं है ऐसा कहकर उसे दबाना चाहता है, माँगने पर दान देकर उसके लिए अपनी डींग हांकता है और झूठ को सही साबित करने का प्रयास करता है।

जो मनुष्य अपने साथ जैसा बर्ताव करे, उसके साथ वैसा ही बर्ताव करना चाहिए- यही नीति धर्म है। कपट का आचरण करनेवाले के साथ कपटपूर्ण बर्ताव करें और अच्छा बर्ताव करनेवाले के साथ साधु-भाव से ही बर्ताव करना चाहिए।

बुढ़ापा रूप का, आशा धैर्य का, मृत्यु प्राणों का, असूया धर्माचरण का, काम लज्जा का, नीच पुरुषों की सेवा सदाचार का, क्रोध लक्ष्मी का और अभिमान सर्वस्व का ही नाश कर देता है। धृतराष्ट्र ने कहा- जब सभी वेदों में पुरुष को सौ वर्ष की आयुवाला बताया गया है, तो वह किस कारण से अपनी पूर्ण आयु को नहीं पाता। विदुर बोले- राजन्। आपका कल्याण हो। अत्यन्त अभिमान, अधिक बोलना, त्याग का अभाव, क्रोध, अपना ही पेट पालने की चिन्ता और मित्रद्रोह- ये छ: तीखी तलवारें देहधारियों की आयु को काटती हैं। ये ही मनुष्यों का वध करती हैं, मृत्यु नहीं।

भारत। जो अपने ऊपर विश्वास करनेवाले की स्त्री के साथ समागम करता है, जो गुरुस्त्रीगामी है, ब्राह्मण होकर शूद्र की स्त्री से सम्बन्ध रखता है शराब पीता है तथा जो बड़ों पर हुक्म चलानेवाला, दूसरों की जीविका नष्ट करनेवाला, ब्राह्मणों को सेवा कार्य के लिए इधर-उधर भेजनेवाला और शरणागत की हिंसा करनेवाला है- ये सब-के-सब ब्रह्महत्यारे के समान हैं, इनकी संगति हो जाने पर प्रायश्चित करें- यह वेदों की आज्ञा है। बड़ों की आज्ञा माननेवाला नीतिज्ञ, दाता, यज्ञशेष अन्न का भोजन करनेवाला, हिंसारहित, अनर्थकारी कार्यों से दूर रहनेवाला, कृतज्ञ, सत्यवादी और कोमल स्वभाववाला विद्वान स्वर्गगामी होता है। राजन्। सदा प्रिय वचन बोलनेवाले मनुष्य तो सहज में ही मिल सकते है, किंतु जो अप्रिय होता हुआ हितकारी हो, ऐसे वचन के वक्ता और श्रोता दोनों ही दुर्लभ हैं। जो धर्म का आश्रय लेकर तथा स्वामी को प्रिय लगेगा या अप्रिय- इसका विचार छोड़कर, अप्रिय होने पर भी हितकारी बात कहता है, उसी से राजा को सच्ची सहायता मिलती है।

कुल की रक्षा के लिए एक मनुष्य का, ग्राम की रक्षा के लिए कुल का, देश की रक्षा के लिए गांव का और आत्मा के कल्याण के लिए सारी पृथ्वी का त्याग कर देना चाहिए। आपत्ति के लिए धन की रक्षा करे, धन के द्वारा स्त्री की रक्षा करे और स्त्री एवं धन दोनों के द्वारा सदा अपनी रक्षा करे। पहले के समय में जुआ खेलना मनुष्यों में वैर डालने का कारण देखा गया है, अत: बुद्धिमान मनुष्य हंसी के लिए भी जुआ न खेले।

प्रतीपनन्दन। विचित्रवीर्यकुमार। राजन्। मैंने जुए का खेल आरम्भ होते समय भी कहा था कि यह ठीक नहीं है, किंतु रोगी को जैसे दवा और पथ्य नहीं भाते, उसी तरह मेरी वह बात भी आपको अच्छी नहीं लगी। नरेन्द्र। आप कौओं के समान अपने पुत्रों के द्वारा विचित्र पंखवाले मोरों के सदृश पाण्डवों को पराजित करने का प्रयत्न कर रहे हैं, सिंहों को छोड़कर सियारों की रक्षा कर रहे हैं, समय आने पर आपको इसके लिए पश्चात्ताप करना पड़ेगा। तात। जो स्वामी सदा हित साधन में लगे रहनेवाले अपने भक्त सेवक पर कभी क्रोध नहीं करता, उस पर भृत्यगण विश्वास करते हैं और आपत्ति के समय भी नहीं छोड़ते। सेवकों की जीविका बंद करके दूसरों के राज्य और धन के अपहरण का प्रयत्न नहीं करना चाहिए, क्योंकि अपनी जीविका छिन जाने से भोगों से वंचित होकर पहले के प्रेमी मन्त्री भी उस समय विरोधी बन जाते हैं और राजा का परित्याग कर देते हैं। पहले कर्त्तव्य, आय-व्यय और उचित वेतन आदि का निश्चय करके फिर सुयोग्य सहायकों का संग्रह करें, क्योंकि कठिन-से-कठिन कार्य भी सहायकों द्वारा साध्य होते हैं।

HHH(३३३)HHH

जो सेवक स्वामी के अभिप्राय को समझकर आलस्यरहित हो समस्त कार्यों को पूरा करता है, जो हित की बातें करनेवाला स्वामीभक्त, सज्जन और राजा की शक्ति को जाननेवाला है, उसे अपने समान समझकर कृपा करनी चाहिए। जो सेवक स्वामी के आज्ञा देने पर उनकी बात का आदर नहीं करता, किसी काम में लगाये जाने पर इनकार कर जाता है, अपनी बुद्धि पर गर्व करने और प्रतिकूल बोलनेवाले उस भृत्य को शीघ्र ही त्याग देना चाहिए। अहंकाररहित, कायरताशून्य, शीघ्र काम पूरा करनेवाला, दयालु, शुद्धहृदय, दूसरों के बहकावे में न आनेवाला नीरोग और उदार वचनवाला इन आठ गुणों से युक्त मनुष्यों को दूत बनाने योग्य बताया गया है। सावधान मनुष्य विश्वास करके सायंकाल में कभी किसी दूसरे अविश्वस्त मनुष्य के घर न जाए, रात में छिपकर चौराहे पर न खड़ा हो और राजा जिस स्त्री को ग्रहण करना चाहता हो, उसे प्राप्त करने का यत्न न करे। दुष्ट सहायकोंवाला राजा जब बहुत लोगों के साथ मंत्रणा समिति में बैठकर सलाह ले रहा हो, उस समय उसकी बात का खण्डन न करे, मैं तुम पर विश्वास नहीं करता। ऐसा भी न कहें, अपितु कोई युक्तिसंगत बहाना बनाकर वहां से हट जाए। अधिक दयालु राजा, व्यभिचारिणी स्त्री, राजकर्मचारी, पुत्र भाई, छोटे बच्चोंवाली विधवा, सैनिक और जिसका अधिकार छीन लिया गया है वह पुरुष इन सबके साथ लेन-देन का व्यवहार न करे।

ये आठ गुण पुरुष की शोभा बढ़ाते हैं- बुद्धि, कुलीनता, शास्त्रज्ञान, इन्द्रियनिग्रह, पराक्रम, अधिक न बोलने का स्वभाव, यथाशक्ति दान और कृतज्ञता। तात। एक गुण ऐसा है, जो इन सभी महत्त्वपूर्ण गुणों पर हठात् अधिकार कर लेता है। राजा जिस समय किसी मनुष्य का सत्कार करता है, उस समय वह गुण (राजसम्मान) उपर्युक्त सभी गुणों से बढ़कर शोभा पाता है। नित्य स्नान करनेवाले मनुष्य को बल, रूप, मधुर स्वर, उज्ज्वल वर्ण, कोमलता, सुगन्ध, पवित्रता, शोभा, सुकुमारता और सुन्दरी स्त्रियां- ये दस लाभ प्राप्त होते हैं। थोड़ा भोजन करनेवाले को निम्नलिखित छ: गुण प्राप्त होते हैं- आरोग्य, आयु, बल और सुख तो मिलते ही हैं, उसकी संतान सुंदर होती है तथा यह बहुत खानेवाला है ऐसा कहकर लोग उसपर आक्षेप नहीं करते। अकर्मण्य, बहुत खानेवाले, सब लोगों से वैर करनेवाले, मायावी, क्रूर, देश-काल का ज्ञान न रखनेवाले और निन्दित वेष धारण करनेवाले मनुष्य को कभी अपने घर में न ठहरने दें।

बहुत दुखी होने पर भी कृपण, गाली बकनेवाले, मूर्ख, जंगल में रहनेवाले, धूर्त, नीचसेवी, निर्दयी, वैर बांधनेवाले और कृतघ्न से कभी सहायता की याचना नहीं करनी चाहिए। क्लेशप्रद कर्म करनेवाला, अत्यन्त प्रमादी, सदा असत्यभाषण करनेवाला, अस्थिर भक्तिवाला, स्नेह से रहित, अपने को चतुर माननेवाला- इन छ: प्रकार के अधम पुरुषों की सेवा न करे। धन की प्राप्ति सहायक की अपेक्षा रखती है और सहायक धन की अपेक्षा रखते हैं। ये दोनों एक-दूसरे के आश्रित हैं, परस्पर के सहयोग बिना इनकी सिद्धि नहीं होती। पुत्रों को उत्पन्न कर, उन्हें ऋण के भार से मुक्त करके, उनके लिए किसी जीविका का प्रबन्ध कर दे फिर कन्याओं का योग्य वर के साथ विवाह कर देने के पश्चात् वन में मुनिवृत्ति से रहने की इच्छा करें।

जो सम्पूर्ण प्राणियों के लिए हितकर और अपने लिए भी सुखद हो, उसे ईश्वरार्पणबुद्धि से करे, सम्पूर्ण सिद्धियों का यही मूलमन्त्र है। जिसमें बढ़ने की शक्ति, प्रभाव, तेज, पराक्रम, उद्योग और निश्चय है, उसे अपनी जीविका के नाश का भय कैसे हो सकता है। पाण्डवों के साथ युद्ध करने में जो दोष है, उन पर दृष्टि डालिए उनसे संग्राम छिड़ जाने पर इन्द्र आदि देवताओं को भी कष्ट ही उठाना पड़ेगा। इसके सिवा पुत्रों के साथ वैर, नित्य उद्वेगपूर्ण जीवन, कीर्ति का नाश और शत्रुओं का आनन्द होगा। इन्द्र के समान पराक्रमी महाराज। आकाश में तिरछा उदित हुआ धूमकेतु जैसे सारे संसार में अशान्ति और उपद्रव खड़ा कर देता है, उसी तरह भीष्म, आप, द्रोणाचार्य और राजा युधिष्ठिर का बढ़ा हुआ कोप इस संसार का

संहार कर सकता है। आपके सौ पुत्र, कर्ण और पाँच पाण्डव- ये सब मिलकर समुद्रपर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वी का शासन कर सकते हैं। हे राजन्। आपके पुत्र वन के समान हैं और पाण्डव उसमें रहनेवाले व्याघ्र हैं। आप व्याघ्रों सहित समस्त वन को नष्ट न कीजिए तथा वन से उन व्याघ्रों को दूर न भगाइए। व्याघ्रों के बिना वन की रक्षा नहीं हो सकती तथा वन के बिना व्याघ्र नहीं रह सकते, क्योंकि व्याघ्र वन की रक्षा करते हैं और वन व्याघ्रों की। जिनका मन पापों में लगा रहता है, वे लोग दूसरों के कल्याणमय गुणों को जानने की वैसी इच्छा नहीं रखते, जैसी कि उनके अवगुणों को जानने की रखते हैं।

जो अर्थ की पूर्ण सिद्धि चाहता है, उसे पहले धर्म का ही आचरण करना चाहिए। जैसे स्वर्ग से अमृत दूर नहीं होता, उसी प्रकार धर्म से अर्थ अलग नहीं होता। जिसकी बुद्धि पाप से हटाकर कल्याण में लगा दी गयी है, उसने संसार में जो भी प्रकृति और विकृति है- उन सबको जान लिया है। जो समयानुसार धर्म, अर्थ और काम का सेवन करता है, वह इस लोक और परलोक में भी धर्म, अर्थ और काम को प्राप्त करता है। हे राजन्। जो क्रोध और हर्ष के उठे हुए वेग को रोक लेता है और आपत्ति में भी धैर्य को खो नहीं बैठता, वही राजलक्ष्मी का अधिकारी होता है।

हे राजन्। आपका कल्याण हो, मनुष्यों में सदा पाँच प्रकार का बल होता है। जो बाहुबल नामक बल है, वह कनिष्ठ बल कहलाता है, मन्त्री का मिलना दूसरा बल है, मनीषी लोग धन के लोभ को तीसरा बल बताते हैं, और हे राजन्। जो बाप-दादों से प्राप्त हुआ मनुष्य का स्वाभाविक बल (कुटुम्ब का बल) है, वह अभिजात नामक चौथा बल है। भारत। जिससे इन सभी बलों का संग्रह हो जाता है तथा जो सब बलों में श्रेष्ठ बल है, वह पांचवां बुद्धि का बल कहलाता है।

जो मनुष्य का बहुत बड़ा अपकार कर सकता है, उस पुरुष के साथ वैर ठानकर इस विश्वास पर निश्चित न हो जाय कि मैं उससे दूर हूं (वह मेरा कुछ नहीं कर सकता)। ऐसा कौन बुद्धिमान होगा जो स्त्री, राजा, सांप, पढ़े हुए पाठ, सामर्थ्यशाली व्यक्ति, शत्रु, भोग आयुष्य पर पूर्ण विश्वास कर सकता है। जिसको बुद्धि के बाण से मारा गया है, उस जीव के लिए न कोई वैद्य है, न दवा है, न होम, न मन्त्र, न कोई मांगलिक कार्य, न अथर्ववेदोक्त प्रयोग और न भलीभांति सिद्ध बूटी ही है।

भारत। मनुष्य को चाहिए कि वह साँप, अग्नि, सिंह और अपने कुल में उत्पन्न व्यक्ति का अनादर न करे, क्योंकि ये सब बड़े तेजस्वी होते हैं। संसार में अग्नि एक महान् तेज है, वह काठ में छिपी रहती है, किंतु जब तक दूसरे लोग उसे प्रज्वलित न कर दें, तब तक वह उस काठ को नहीं जलाती। वही अग्नि यदि काष्ठ से मथकर उद्दीप्त कर दी जाती है, तो वह अपने तेज से उस काठ को, जंगल को तथा दूसरी वस्तुओं को भी जल्दी ही जला डालती है। इस प्रकार अपने कुल में उत्पन्न वे अग्नि के समान तेजस्वी पाण्डव क्षमाभाव से युक्त और विकारशून्य हो काष्ठ में छिपी अग्नि की तरह शांत भाव से स्थित हैं। अपने पुत्रों सहित आप लता के समान हैं और पाण्डव महान शालवृक्ष के सदृश हैं, महान वृक्ष का आश्रय लिये बिना लता कभी बढ़ नहीं सकती।

राजन्। अम्बिकानन्दन। आपके पुत्र एक वन हैं और पाण्डवों को उसके भीतर रहनेवाले सिंह समझिए । तात। सिंह से सूना हो जाने पर वन नष्ट हो जाता है और वन के बिना सिंह भी नष्ट हो जाते हैं। विदुर कहते हैं- जब कोई माननीय वृद्ध पुरुष निकट आता है, उस समय नवयुवक व्यक्ति के प्राण ऊपर को उठने लगते हैं, फिर जब वह वृद्ध के स्वागत में उठकर खड़ा होता है और प्रणाम करता है, तो पुन: प्राणों को वास्तविक स्थिति में प्राप्त करता है।

धीर पुरुष को चाहिए जब कोई साधु पुरुष अतिथि के रूप में घर पर आवे तो पहले आसन देकर, जल लाकर उसके चरण पखारे, फिर उसकी कुशल पूछकर अपनी स्थिति बताए, तदनन्तर आवश्यकता समझकर अन्न भोजन कराए।

वेदवेत्ता ब्राह्मण जिस घर दाता के लोभ, भय या कंजूसी के कारण जल, मधुपर्क और गौ को नहीं स्वीकार करता, श्रेष्ठ पुरुषों ने उस गृहस्थ का जीवन व्यर्थ बताया है। वैद्य, चीरफाड़ करनेवाला (जर्राह), ब्रह्मचर्यभ्रष्ट, चोर क्रूर, शराबी, गर्भ-हत्यारा, सेनाजीवी और वेदविक्रेता- ये यद्यपि पैर धोने के योग्य नहीं तथापि यदि अतिथि होकर आएं तो विशेष प्रिय यानी आदर के योग्य होते हैं। नमक, पका हुआ अन्न, दही, मधु, तेल, घी, तिल, मांस, फल, मूल, साग, लाल कपड़ा, सब प्रकार की गन्ध और गुड़- इतनी वस्तुएं बेचने योग्य नहीं हैं।

जो क्रोध न करनेवाला, ढेला-पत्थर और सुवर्ण को एक-सा समझनेवाला, शोकहीन, सन्धि-विग्रह से रहित, निन्दा-प्रशंसा से शून्य, प्रिय-अप्रिय का त्याग करनेवाला तथा उदासीन है, वही भिक्षुक (संन्यासी) है।

जो नीवार (जंगली चावल), कन्द मूल, इंगुद (लिसौड़ा) और साग खाकर निर्वाह करता है मन को वश में रखता है, अग्निहोत्र करता है, वन में रहकर भी अतिथि सेवा में सदा सावधान रहता है, वही पुण्यात्मा तपस्वी (वानप्रस्थी) श्रेष्ठ माना गया है। बुद्धिमान् पुरुष की बुराई करके इस विश्वास पर निश्चित न रहें कि मैं दूर हूं। बुद्धिमान की बाहें बड़ी लंबी होती हैं। सताये जाने पर वह उन्हीं बांहों से बदला लेता है।

जो विश्वास का पात्र नहीं है, उसका तो विश्वास करे ही नहीं, किंतु जो विश्वासपात्र है, उसपर भी अधिक विश्वास न करें। विश्वास से जो भय उत्पन्न होता है, वह मूल का ही उच्छेद कर डालता है। मनुष्य को चाहिए कि वह ईर्ष्यारहित, स्त्रियों का रक्षक, सम्पत्ति का न्यायपूर्वक विभाग करनेवाला, प्रियवादी, स्वच्छ तथा स्त्रियों के निकट मीठे वचन बोलनेवाला हो, परंतु उनके वश में कभी न हो। स्त्रियां घर की लक्ष्मी कही गई हैं, वे अत्यन्त सौभाग्यशालिनी, पूजा के योग्य, पवित्र तथा घर की शोभा हैं अत: इनकी विशेष रूप से रक्षा करनी चाहिए। अन्त:पुर की रक्षा का कार्य पिता को सौंप दे, रसोई-घर का प्रबन्ध माता के हाथ में दे दे, गौओं की सेवा में अपने समान व्यक्ति को नियुक्त करे और कृषि का कार्य स्वयं करे।

सेवकों द्वारा वाणिज्य-व्यापार करे और पुत्रों के द्वारा ब्राह्मण की सेवा करे। जल से अग्नि, ब्राह्मण से क्षत्रिय और पत्थर से लोहा पैदा हुआ है। इनका तेज सर्वत्र व्याप्त होने पर भी अपने उत्पत्ति स्थान में शान्त हो जाता है।

अच्छे कुल में उत्पन्न, अग्नि के समान तेजस्वी, क्षमाशील और विकारशून्य संत पुरुष सदा काष्ठ में अग्नि की भांति शांतभाव से स्थित रहते हैं। जिस राजा के मन्त्री को उसके बहिरंग एवं अन्तरंग सभासद तक नहीं जानते, सब ओर दृष्टि करनेवाला वह राजा चिरकाल तक ऐश्वर्य का उपभोग करता है। धर्म, काम और अर्थसम्बन्धी कार्यों को करने से पहले न बतावे, करके ही दिखावे। ऐसा करने से अपनी मन्त्रणा दूसरों पर प्रकट नहीं होती। पर्वत की चोटी अथवा राजमहल पर चढ़कर एकान्त स्थान में जाकर या जंगल में तृण आदि से अनावृत स्थान पर मन्त्रणा करनी चाहिए।

भारत। जो मित्र नहीं मित्र होने पर पण्डित न हो, पण्डित होने पर भी जिसका मन वश में न हो, वह अपना गुप्त मन्त्र जानने के योग्य नहीं है। राजा अच्छी तरह परीक्षा किए बिना किसी को अपना मन्त्री न बनावे।

क्योंकि धन की प्राप्ति और मन्त्र की रक्षा का भार मंत्री पर ही रहता है। जिसके धर्म, अर्थ और कामविषयक सभी कार्यों को पूर्ण होने के बाद ही सभासद्गण जान पाते हैं, वही राजा समस्त राजाओं में श्रेष्ठ है। अपने मन्त्र को गुप्त रखनेवाले उस राजा को नि:संदेह सिद्धि प्राप्त होती है। जो मोहवश बुरे कर्म करता है, वह उन कार्यों का विपरीत परिणाम होने से अपने जीवन से भी हाथ धो बैठता है। उत्तम कर्मों का अनुष्ठान तो सुख देनेवाला होता है, किंतु उन्हीं का अनुष्ठान न किया जाए तो वह पश्चाताप का कारण माना गया है। जैसे वेदों को पढ़े बिना ब्राह्मण श्राद्ध का अधिकारी नहीं होता, उसी प्रकार

सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय नामक छ: गुणों को जाने बिना कोई गुप्त मन्त्रणा सुनने का अधिकारी नहीं होता। राजन्। सो सन्धि-विग्रह आदि छ: गुणों की जानकारी के कारण प्रसिद्ध है, स्थिति वृद्धि और ऱ्हास को जानता है तथा जिसके स्वभाव की सब लोग प्रशंसा करते हैं, उसी राजा के अधीन पृथ्वी रहती है।

जिसके क्रोध और हर्ष व्यर्थ नहीं जाते जो आवश्यक कार्यों की स्वयं देखभाल करता है और खजाने की भी स्वयं जानकारी रखता है, उसकी पृथ्वी पर्याप्त धन देनेवाली ही होती है। भूपति को चाहिए कि अपने राजा नाम से और राजोचित छत्र धारण से संतुष्ट रहे। सेवकों को पर्याप्त धन दे, सब अकेले ही न हड़प ले। ब्राह्मण को ब्राह्मण जानता है, स्त्री को उसका पति जानता है, मन्त्री को राजा जानता है और राजा को भी राजा ही जानता है।

वश में आए हुए वध योग्य शत्रु को कभी छोड़ना नहीं चाहिए। यदि अपना बल अधिक न हो तो नम्र होकर उसके पास समय बिताना चाहिए और बल होने पर उसे मार ही डालना चाहिए क्योंकि यदि शत्रु मारा न गया तो उससे शीघ्र ही भय उपस्थित होता है। देवता, ब्राह्मण, राजा, वृद्ध, बालक और रोगी पर होनेवाले क्रोध को प्रयत्नपूर्वक रोकना चाहिए।

निरर्थक कलह करना मूर्खों का काम है, बुद्धिमान पुरुष को इसका त्याग करना चाहिए। ऐसा करने से उसे लोक में यश मिलता है और अनर्थ का सामना नहीं करना पड़ता। जिसके प्रसन्न होने का कोई फल नहीं तथा जिसका क्रोध भी व्यर्थ होता है, ऐसे राजा को प्रजा उसी भांति नहीं चाहती, जैसे स्त्री नपुंसक पति को। बुद्धि से धन प्राप्त होता है और मूर्खता दरिद्रता का कारण है- ऐसा कोई नियम नहीं है। संसार-चक्र के वृत्तान्त को केवल विद्वान पुरुष ही जानते हैं, दूसरे लोग नहीं। भारत। मूर्ख मनुष्य विद्या, शील, अवस्था, बुद्धि, धन और कुल में बड़े माननीय पुरुष का सदा अनादर किया करता है। जिसका चरित्र निन्दनीय है, जो मूर्ख, गुणों में दोष देखनेवाला अधार्मिक, बुरे वचन बोलनेवाला और क्रोधी है, उसके ऊपर शीघ्र ही अनर्थ (संकट) टूट पड़ते हैं।

ठगी न करना, दान देना, बात पर कायम रहना और अच्छी तरह कही हुई हित की बात- ये सब सम्पूर्ण भूतों को अपना बना लेते हैं। किसी को भी धोखा न देनेवाला, चतुर, कृतज्ञ, बुद्धिमान और सरल राजा खजाना खत्म हो जाने पर भी सहायकों को पा जाता है, अर्थात् उसे सहायक मिल जाते हैं। धैर्य, मनोनिग्रह, इन्द्रियसंयम, पवित्रता, दया, कोमल वाणी और मित्र से द्रोह न करना- ये सात बातें लक्ष्मी को बढ़ानेवाली होती हैं। राजन्। जो अपने आश्रितों में धन का ठीक-ठीक बंटवारा नहीं करता तथा जो दुष्ट, कृतघ्न और निर्लज्ज है, ऐसा राजा इस लोक में त्याग देने योग्य है। जो स्वयं दोषी होकर भी निर्दोष आत्मीय व्यक्ति को कुपित करता है, वह सर्पयुक्त घर में रहनेवाले मनुष्य की भांति रात में सुख से नहीं सो सकता। भारत। जिनके ऊपर दोषारोपण करने से योग और क्षेम में बाधा आती हो उन लोगों को देवता की भांति सदा प्रसन्न रखना चाहिए। जो धन आदि पदार्थ, स्त्री, प्रमादी, पतित और नीच पुरुषों के हाथ में सौंप दिए जाते हैं, वे संशय में पड़ जाते हैं। राजन्। जहाँ का शासन स्त्री, जुआरी और बालक के हाथ है, वहाँ के लोग नदी में पत्थर की नाव पर बैठनेवालों की भांति विपत्ति के समुद्र में डूब जाते हैं।

जो लोग जितना आवश्यक है, उतने ही काम में लगे रहते हैं, अधिक में हाथ नहीं डालते उन्हें मैं पण्डित मानता हूँ, क्योंकि अधिक में हाथ डालना संघर्ष का कारण होता है। जुआरी जिसकी तारीफ करते हैं, चारण जिसकी प्रशंसा का गान करते हैं और वेश्याएं जिसकी बड़ाई किया करती हैं, वह मनुष्य जीता ही मुर्दे के समान है।

भारत। आपने उन महान् धनुर्धर और अत्यन्त तेजस्वी पाण्डवों को छोड़कर यह महान् ऐश्वर्य का भार दुर्योधन के ऊपर

रख दिया है। इसलिए आप शीघ्र ही उस ऐश्वर्यमद के मूढ़ दुर्योधन को त्रिभुवन के साम्राज्य से गिरे हुए बलि की भांति इस राज्य से भ्रष्ट होते देखेंगे।

धृतराष्ट्र ने कहा- विदुर। यह पुरुष ऐश्वर्य की प्राप्ति और नाश में स्वतन्त्र नहीं है। ब्रह्मा ने धागे से बंधी हुई कठपुतली की भाँति इसे प्रारब्ध के अधीन कर रखा है, इसलिए तुम कहते चलो, मैं सुनने के लिए धैर्य धारण किए बैठा हूं।

विदुर बोले- भारत। समय के विपरीत यदि बृहस्पति भी कुछ बोलें, तो उनका अपमान ही होगा और उनकी बुद्धि की भी अवज्ञा ही होगी। संसार में कोई मनुष्य दान देने से प्रिय होता है, दूसरा प्रिय वचन बोलने से प्रिय है और तीसरा मन्त्र तथा औषध के बल से प्रिय होता है, किंतु जो वास्तव में प्रिय है, वह तो सदा प्रिय ही है।

जिससे द्वेष हो जाता है, वह न साधु, न विद्वान और न बुद्धिमान ही जान पड़ता है, प्रियतम के तो सभी कर्म शुभ ही प्रतीत होते हैं और दुश्मन के सभी काम पापमय। राजन्। दुर्योधन के जन्म लेते ही मैंने कहा था कि केवल इसी एक पुत्र को तुम त्याग दो। इसके त्याग से सौ पुत्रों की वृद्धि होगी और इसका त्याग न करने से सौ पुत्रों का नाश होगा।

जो वृद्धि भविष्य में नाश का कारण बने, उसे अधिक महत्व नहीं देना चाहिए और उस क्षय का बहुत आदर करना चाहिए, जो आगे चलकर अभ्युदय का कारण हो। महाराज। वास्तव में जो क्षय वृद्धि का कारण होता है, वह क्षय ही नहीं है, किंतु उस लाभ को भी क्षय ही मानना चाहिए, जिसे पाने से बहुतों का नाश हो जाए।

धृतराष्ट्र। कुछ लोग गुण के धनी होते हैं और कुछ लोग धन के धनी। जो धन के धनी होते हुए भी गुणों के कंगाल हैं, उन्हें सर्वथा त्याग दीजिए। धृतराष्ट्र ने कहा- विदुर। तुम जो कुछ कह रहे हो, परिणाम में हितकर है, बुद्धिमान लोग इसका अनुमोदन करते हैं। यह भी ठीक है कि जिस ओर धर्म होता है, उसी पक्ष की जीत होती है, तो भी मैं अपने बेटे का त्याग नहीं कर सकता। जो दूसरों की निन्दा में ही लगे रहते हैं, दूसरों को दु:ख देने और आपस में फूट डालने के लिए सदा उत्साह के साथ प्रयत्न करते हैं, जिनका दर्शन दोष से भरा (अशुभ) है और जिनके साथ रहने में भी बहुत बड़ा खतरा है, ऐसे लोगों से धन लेने में महान् दोष है और उन्हें देने में बहुत बड़ा भय है। दूसरों में फूट डालने का जिनका स्वभाव है, जो कामी, निर्लज्ज, शठ और प्रसिद्ध पापी हैं, वे साथ रखने के अयोग्य-निन्दित माने गये हैं।

उपर्युक्त दोषों के अतिरिक्त और भी जो महान् दोष हैं, उनसे युक्त मनुष्यों का त्याग कर देना चाहिए। सौहार्द्रभाव निवृत्त हो जाने पर नीच पुरुषों का प्रेम नष्ट हो जाता है, उस सौहार्द्र से होनेवाले फल की सिद्धि और सुख का भी नाश हो जाता है। फिर वह नीच पुरुष निन्दा करने के लिए यत्न करता है, थोड़ा भी अपराध हो जाने पर मोहवश विनाश के लिए उद्योग आरम्भ कर देता है। उसे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती। वैसे नीच, क्रूर तथा अजितेन्द्रिय पुरुषों से होनेवाले संग पर अपनी बुद्धि से पूर्ण विचार करके विद्वान पुरुष उसे दूर से ही त्याग दे।

जो अपने कुटुम्बी, दरिद्र, दीन तथा रोगी पर अनुग्रह करता है, वह पुत्र और पशुओं से समृद्ध होता है और अनन्त कल्याण का अनुभव करता है। राजेन्द्र। जो लोग अपने भले की इच्छा करते हैं, उन्हें अपने जाति-भाइयों को उन्नतिशील बनाना चाहिए, इसलिए आप भली-भाँति अपने कुल की वृद्धि करें। राजन्। जो अपने कुटुम्बीजनों का सत्कार करता है, वह कल्याण का भागी होता है। भरतश्रेष्ठ। अपने कुटुम्ब के लोग गुणहीन हों, तो भी उनकी रक्षा करनी चाहिए। फिर जो आपके कृपाभिलाषी एवं गुणवान हैं, उनकी तो बात ही क्या है। राजन्। आप समर्थ हैं, वीर पाण्डवों पर कृपा कीजिए और उनकी जीविका के लिए कुछ गांव दे दीजिए। नरेश्वर। ऐसा करने से आपको इस संसार में यश प्राप्त होगा। तात। आप वृद्ध हैं,

इसलिए आपको अपने पुत्रों पर शासन करना चाहिए।

भरतश्रेष्ठ। मुझे भी आपके हित की बात कहनी चाहिए। आप मुझे अपना हितैषी समझें। तात। शुभ चाहनेवाले को अपने जाति-भाइयों के साथ कलह नहीं करना चाहिए, बल्कि उनके साथ मिलकर सुख का उपभोग करना चाहिए। जाति-भाइयों के साथ परस्पर भोजन, बातचीत एवं प्रेम करना ही कर्तव्य है, उनके साथ कभी विरोध नहीं करना चाहिए। इस जगत में जाति-भाई तारते और डुबाते भी हैं। उनमें जो सदाचारी हैं, वे तो तारते हैं और दुराचारी डुबा देते हैं। राजेन्द्र। आप पाण्डवों के प्रति सद्व्यवहार करें। मानद। उनसे सुरक्षित होकर आप शत्रुओं के आक्रमण से बचे रहेंगे।

विषैले बाण हाथ में लिये हुए व्याध के पास पहुंचकर जैसे मृग को कष्ट भोगना पड़ता है, उसी प्रकार जो जातीय बन्धु अपने धनी बन्धु के पास पहुँचकर दु:ख पाता है, उसके पाप का भागी वह धनी होता है। नरश्रेष्ठ। आप पाण्डवों को अथवा अपने पुत्रों के मारे गए सुनकर पीछे संताप करेंगे। अत: इस बात का पहले ही विचार कर लीजिए। इस जीवन का कोई ठिकाना नहीं है। जिस कर्म के करने से अन्त में खाट पर बैठकर पछताना पड़े, उसको पहले से ही नहीं करना चाहिए।

शुक्राचार्य के सिवा दूसरा कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो नीति का उल्लंघन नहीं करता, अत: जो बीत गया सो बीत गया। अब शेष कर्त्तव्य का विचार आप जैसे बुद्धिमान पुरुषों पर ही निर्भर है।

नरेश्वर। दुर्योधन ने पहले यदि पाण्डवों के प्रति यह अपराध किया है, तो आप ही इस कुल में बड़े-बूढ़े हैं आपके द्वारा उसका मार्जन हो जाना चाहिए। नरश्रेष्ठ। यदि आप उनको राजपद पर स्थापित कर देंगे, तो संसार में आपका कलंक धुल जाएगा और आप बुद्धिमान पुरुषों के माननीय हो जाएंगे। जो धीर पुरुषों के वचनों के परिणाम पर विचार करके उन्हें कार्यरूप में परिणत करता है वह चिरकाल तक यश का भागी बना रहता है। कुशल विद्वानों के द्वारा भी उपदेश किया हुआ ज्ञान व्यर्थ है, यदि उससे कर्तव्य का ज्ञान न हुआ अथवा ज्ञान होने पर भी उसका अनुष्ठान न हुआ।

जो विद्वान पापरूप फल देनेवाले कर्मों का आरम्भ नहीं करता, वह बढ़ता है, किंतु जो पूर्व में किए पापों का विचार न करके उन्हीं का अनुसरण करता है, वह खोटी बुद्धिवाला मनुष्य अगाध कीचड़ से भरे हुए बीहड़ नरक में गिराया जाता है।

बुद्धिमान पुरुष मन्त्रभेद के इन छ: द्वारों को जाने और धन को रक्षित रखने की इच्छा से इन्हें सदा बंद रखे- नशे का सेवन, निद्रा, आवश्यक बातों की जानकारी न रखना, अपने नेत्र-मुख आदि का विकार, दुष्ट मन्त्रियों में विश्वास और मूर्ख दूत पर भी भरोसा रखना। राजन्। जो इन द्वारों को जानकर सदा बंद किए रहता है, वह अर्थ, धर्म और काम के सेवन में लगा रहकर शत्रुओं को भी वश में कर लेता है।

बृहस्पति के समान मनुष्य भी शास्त्रज्ञान अथवा वृद्धों की सेवा किए बिना धर्म और अर्थ का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। समुद्र में गिरी हुई वस्तु नष्ट हो जाती है, जो सुनता नहीं, उससे कही हुई बात नष्ट हो जाती है, अजितेन्द्रिय पुरुष का शास्त्रज्ञान और राख में किया हुआ हवन भी नष्ट ही है। बुद्धिमान पुरुष बुद्धि से जाँचकर अपने अनुभव से बार-बार उनकी योग्यता का निश्चय करे फिर दूसरों से सुनकर और स्वयं देखकर भली-भांति विचार करके विद्वानों के साथ मित्रता करे।

विनय-भाव अपयश का नाश करता है, पराक्रम अनर्थ को दूर करता है, क्षमा सदा ही क्रोध का नाश करती है और सदाचार कुलक्षण का अंत करता है। राजन्। नाना प्रकार की भोगसामग्री, माता, घर, स्वागत-सत्कार के ढंग और भोजन तथा वस्त्र के द्वारा कुल की परीक्षा करे। देहाभिमान से रहित पुरुष के पास भी यदि न्याययुक्त पदार्थ स्वत: उपस्थित हो तो वह उसका विरोध नहीं करता, फिर कामासक्त मनुष्य के लिए तो कहना ही क्या है। जो विद्वानों की सेवा में रहनेवाला,

वैद्य, धार्मिक, देखने में सुन्दर, मित्रों से युक्त तथा मधुरभाषी हो, ऐसे सुहृद् की सर्वथा रक्षा करनी चाहिए। अधम कुल में उत्पन्न हुआ या उत्तम कुल में- जो मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता, धर्म की अपेक्षा रखता है, कोमल स्वभाववाला तथा सलज्ज है, वह सैकड़ों कुलीनों से बढ़कर है। जिन दो मनुष्यों का चित्त से चित्त, गुप्त रहस्य से गुप्त रहस्य और बुद्धि से बुद्धि मिल जाती है, उनकी मित्रता कभी नष्ट नहीं होती। मेधावी पुरुषों को चाहिए कि दुर्बुद्धि एवं विचारशक्ति से हीन पुरुष का तृण से ढके हुए कुएं की भांति परित्याग कर दे, क्योंकि उसके साथ की हुई मित्रता नष्ट हो जाती है।

विद्वान पुरुष को उचित है कि अभिमानी, मूर्ख, क्रोधी, साहसिक और धर्महीन पुरुषों के साथ मित्रता न करे। मित्र तो ऐसा होना चाहिए जो कृतज्ञ, धार्मिक, सत्यवादी, उदार, दृढ़ अनुराग रखनेवाला, जितेन्द्रिय, मर्यादा के भीतर रहनेवाला और मैत्री का त्याग न करनेवाला हो।

इन्द्रियों को सर्वथा रोक रखना तो मृत्यु से भी बढ़कर कठिन है और उन्हें बिल्कुल खुली छोड़ देना देवताओं का नाश कर देता है। सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति कोमलता का भाव, गुणों में दोष न देखना, क्षमा, धैर्य और मित्रों का अपमान न करना- ये सब गुण आयु को बढ़ानेवाले हैं- ऐसा विद्वान लोग कहते हैं। जो अन्याय से नष्ट हुए धन को स्थिर बुद्धि का आश्रय ले अच्छी नीति से पुन: लौटा लाने की इच्छा करता है, वह वीर पुरुषों का-सा आचरण करता है। जो आनेवाले दु:ख को रोकने का उपाय जानता है, वर्तमान-कालिक कर्तव्य के पालन में दृढ़ निश्चय रखनेवाला है और अतीत-काल में जो कर्तव्य शेष रह गया हैं, उसे भी जानता है, वह मनुष्य कभी अर्थ से हीन नहीं होता। मनुष्य मन, वाणी और कर्म से जिसका निरन्तर सेवन करता है, वह कार्य उस पुरुष को अपनी ओर खींच लेता है। इसलिए सदा कल्याणकारी कार्यों को ही करे।

मांगलिक पदार्थों का स्पर्श, चित्तवृत्तियों का निरोध, शास्त्र का अभ्यास, उद्योगशीलता, सरलता और सत्पुरुषों का बारंबार दर्शन- ये सब कल्याणकारी हैं। उद्योग में लगे रहना- उससे विरत न होना, धन, लाभ और कल्याण का मूल है। इसलिए उद्योग न छोड़नेवाला मनुष्य महान हो जाता है और अनन्त सुख का उपभोग करता है।

तात। समर्थ पुरुष के लिए सब जगह और सब समय में क्षमा के समान हितकारक और अत्यन्त श्रीसम्पन्न बनानेवाला उपाय दूसरा नहीं माना गया है। जो शक्तिहीन है, वह सब पर क्षमा करे ही, जो शक्तिमान है वह भी धर्म के लिए क्षमा करे तथा जिसकी दृष्टि में अर्थ और अनर्थ दोनों समान हैं, उसके लिए तो क्षमा सदा ही हितकारिणी होती है।

जिस सुख का सेवन करते रहने पर भी मनुष्य धर्म और अर्थ से भ्रष्ट नहीं होता, उसका यथेष्ट सेवन करे, किंतु मूढ़व्रत (आसक्ति एवं अन्यायपूर्वक) विषयसेवन न करे। जो दु:ख से पीड़ित, प्रमादी, नास्तिक, आलसी, अजितेन्द्रिय और उत्साहरहित हैं, उनके यहाँ लक्ष्मी का वास नहीं होता। दुष्ट बुद्धिवाले लोग सरलता से युक्त और सरलता के ही कारण लज्जाशील मनुष्य को अशक्त मानकर उसका तिरस्कार करते हैं। अत्यन्त श्रेष्ठ, अतिशय दानी, अति ही शूरवीर, अधिक व्रत-नियमों का पालन करनेवाले और बुद्धि के घमंड में चूर रहनेवाले मनुष्य के पास लक्ष्मी भय के मारे नहीं जाती।

यह न तो बहुत-से गुणों को चाहती है और न गुणहीन के प्रति ही अनुराग रखती है। उन्मत्त गौ की भांति यह अन्धी लक्ष्मी कहीं-कहीं ही ठहरती है। वेदों का फल है अग्निहोत्र करना, शास्त्राध्ययन का फल है सुशीलता और सदाचार, स्त्री का फल है रति-सुख और पुत्र की प्राप्ति तथा धन का फल है दान का उपभोग। जो अधर्म के द्वारा कमाये हुए धन से परलोकसाधक यज्ञादि कर्म करता है, वह मरने के पश्चात् उसके फल को नहीं पाता, क्योंकि उसका धन बुरे रास्ते से आया होता है। घोर जंगल में, दुर्गम मार्ग में, कठिन आपत्ति के समय, घबराहट में और प्रहार के लिए शस्त्र उठे रहने पर भी

सत्त्व (मनोबल) सम्पन्न पुरुषों को भय नहीं होता। उद्योग संयम, दक्षता, सावधानी, धैर्य, स्मृति और सोच-विचारकर कार्यारम्भ करना- इन्हें उन्नति का मूल मंत्र समझिए। तपस्वियों का बल है तप, वेदवेत्ताओं का बल है वेद, असाधुओं का बल है हिंसा और गुणवानों का बल है क्षमा। जल, मूल, फल, दूध, घी, ब्राह्मण की इच्छापूर्ति, गुरु का वचन और औषध- ये आठ व्रत के नाशक नहीं होते। जो अपने प्रतिकूल जान पड़े, उसे दूसरों के प्रति भी न करे। थोड़े में धर्म का यही स्वरूप है। इसके विपरीत जिसमें कामना से प्रवृत्ति होती है- वह तो अधर्म है।

अक्रोध से क्रोध को जीते, असाधु को सद्व्यवहार से वश में करे, कृपण को दान से जीते और झूठ पर सत्य से विजय प्राप्त करे। स्त्री, धूर्त, आलसी, डरपोक, क्रोधी, पुरुषत्व के अभिमानी, चोर, कृतघ्न और नास्तिक का विश्वास नहीं करना चाहिए। जो नित्य गुरुजनों को प्रणाम करता है और वृद्ध पुरुषों की सेवा में लगा रहता है, उसकी कीर्ति, आयु, यश और बल-ये चारों बढ़ते हैं। जो धन अत्यन्त क्लेश उठाने से, धर्म का उल्लंघन करने से अथवा शत्रु के सामने सिर झुकाने से प्राप्त होता हो, उसमें आप मन न लगाएं। विद्याहीन पुरुष, संतानोत्पत्तिरहित स्त्री-प्रसंग, आहार न पानेवाली प्रजा और बिना राजा के राष्ट्र के लिए शोक करना चाहिए।

अधिक राह चलना देहधारियों के लिए दु:खरूप बुढ़ापा है, बराबर पानी गिरना पर्वतों का बुढ़ापा है, सम्भोग से वंचित रहना स्त्रियों के लिए बुढ़ापा है और वचनरूपी बाणों का आघात मन के लिए बुढ़ापा है। अभ्यास न करना वेदों का मल है, ब्राह्मणोचित नियमों का पालन न करना ब्राह्मण का मल है, बाह्लीक देश (बलख-बुखारा) पृथ्वी का मल है तथा झूठ बोलना पुरुष का मल है, क्रीड़ा एवं हास-परिहास की उत्सुकता पतिव्रता स्त्री का मल है, और पति के बिना परदेश में रहना स्त्रीमात्र का मल है। सोने का मल है चांदी, चांदी का मल है रांगा, रांगे का मल है सीसा और सीसे का मल है मल।

सोकर नींद को जीतने की इच्छा न करे। कामोपभोग के द्वारा स्त्री को जीतने की इच्छा न करे, लकड़ी डालकर आग को जीतने की आशा न करे और अधिक पीकर मदिरा की आदत को जीतने का प्रयास न करे। जिसका मित्र धन-दान के द्वारा वश में आ चुका है, शत्रु युद्ध में जीत लिये गये हैं और स्त्रियां खान -पान के द्वारा वशीभूत हो चुकी हैं, उसका जीवन सफल है। जिनके पास हजार है, वे भी जीवित हैं, तथा जिनके पास सौ हैं, वे भी जीवित हैं, अत: महाराज धृतराष्ट्र। आप अधिक का लोभ छोड़ दीजिए, इससे भी किसी तरह जीवन रहेगा ही। इस पृथ्वी पर जो भी धान, जौ, सोना, पशु और स्त्रियां हैं, वे सब-के-सब एक पुरुष के लिए भी पूरे नहीं हैं- ऐसा विचार करनेवाला मनुष्य मोह में नहीं पड़ता। राजन्। मैं फिर कहता हूं, यदि आपका अपने पुत्रों और पाण्डवों में समान भाव है तो उन सभी पुत्रों के साथ एक-सा बर्ताव कीजिए।

विदुर कहते हैं- जो सज्जन पुरुषों से आदर पाकर आसक्तिरहित हो अपनी शक्ति के अनुसार अर्थ-साधन करता रहता है, उस श्रेष्ठ पुरुष को शीघ्र ही सुयश की प्राप्ति होती है। क्योंकि संत जिस पर प्रसन्न होते हैं, वह सदा सुखी रहता है।

जो अधर्म से उपार्जित महान् धनराशि को उसकी ओर आकृष्ट हुए बिना ही त्याग देता है, वह जैसे सांप अपनी पुरानी केंचुल को छोड़ता है उसी प्रकार दु:खों से मुक्त हो सुखपूर्वक शयन करता है। झूठ बोलकर उन्नति करना, राजा के पास तक चुगली करना, गुरु से भी मिथ्या आग्रह करना- ये तीन कार्य ब्रह्महत्या के समान हैं। गुणों में दोष देखना एकदम मृत्यु के समान है, कठोर बोलना या निन्दा करना लक्ष्मी का वध है। सुनने की इच्छा का अभाव या सेवा का अभाव, उतावलापन और आत्मप्रशंसा- ये तीन विद्या के शत्रु हैं। आलस्य, मद-मोह, चंचलता, गोष्ठी, उद्दण्डता, अभिमान और लोभ- ये सात विद्यार्थियों के लिए सदा ही दोष माने गये हैं। सुख चाहनेवाले को विद्या कहां से मिले। विद्या चाहनेवाले के

लिए सुख नहीं है। सुख की चाह हो तो विद्या को छोड़े और विद्या चाहे तो सुख का त्याग करे।

ईंधन से आग की, नदियों से समुद्र की, समस्त प्राणियों से मृत्यु की और पुरुषों से कुलटा स्त्री की कभी तृप्ति नहीं होती।

आशा धैर्य को, यमराज समृद्धि को, क्रोध लक्ष्मी को, कृपणता यश को और सार-संभाल का अभाव पशुओं को नष्ट कर देता है। इधर एक ही ब्राह्मण यदि क्रुद्ध हो जाय तो सम्पूर्ण राष्ट्र का नाश कर देता है। बकरियां, कांसे का पात्र, चांदी, मधु, अर्क खींचने का यंत्र, पक्षी, वेदवेत्ता, ब्राह्मण, बूढ़ा, कुटुम्बी और विपत्तिग्रस्त कुलीन पुरुष- ये सब आपके घर में सदा मौजूद रहें। भारत। मनुजी ने कहा है कि देवता, ब्राह्मण तथा अतिथियों की पूजा के लिए बकरी, बैल, चन्दन, वीणा, दर्पण, मधु, घी, जल, तांबे के बर्तन, शंख, शालिग्राम और गोरोचन- ये सब वस्तुएं घर पर रखनी चाहिए।

तात। अब मैं आपको यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं सर्वोपरि पुण्यजनक बात बता रहा हूं- कामना से, भय, से, लोभ से तथा इस जीवन के लिए भी कभी धर्म का त्याग न करें। धर्म नित्य हैं, किंतु सुख-दु:ख अनित्य हैं, जीव नित्य है, पर इसका कारण (अविद्या) अनित्य है, आप अनित्य को छोड़कर नित्यों में स्थित होइए और संतोष धारण कीजिए, क्योंकि संतोष ही सबसे बड़ा लाभ है। धन-धान्यादि से परिपूर्ण पृथ्वी का शासन करके अन्त में समस्त राज्य और विपुल भोगों को यहीं छोड़कर यमराज के वश में गए हुए बड़े-बड़े बलवान एवं महानुभाव राजाओं की ओर दृष्टि डालिए।

राजन्। जिसको बड़े कष्ट से पाला-पोसा था, वही पुत्र जब मर जाता है तो मनुष्य उसे उठाकर तुरंत अपने घर से बाहर कर देते हैं। पहले तो इसके लिए बाल छितराये करुण स्वर में विलाप करते हैं, फिर साधारण काठ की भांति उसे जलती चिता में झोंक देते हैं। मरे हुए मनुष्यों का धन दूसरे लोग भोगते हैं, उसके शरीर की धातुओं को पक्षी खाते हैं या आग जलाती है। यह मनुष्य पुण्य-पाप से बंधा हुआ है, इन्हीं दोनों के साथ परलोक में गमन करता है।

तात। बिना फल-फूल के वृक्ष को जैसे पक्षी छोड़ देते हैं, उसी प्रकार उस प्रेत को उसके जातिवाले सुहृद् और पुत्र चिता में छोड़कर लौट आते हैं। अग्नि में डाले हुए पुरुष के पीछे तो केवल उसका अपना किया हुआ बुरा या भला कर्म ही जाता है इसलिए पुरुष को चाहिए कि वह धीरे-धीरे प्रयत्नपूर्वक धर्म का ही संग्रह करे। इस लोक और परलोक से ऊपर और नीचे तक सर्वत्र अज्ञान-रूप महान् अंधकार फैला हुआ है, वह इन्द्रियों को महान् मोह में डालनेवाला है राजन्। आप इसको जान लीजिए जिससे यह आपका स्पर्श न कर सके। मेरी इस बात को सुनकर यदि आप सब ठीक-ठीक समझ सकेंगे तो इस मनुष्य लोक में आपको महान यश प्राप्त होगा और इस लोक तथा परलोक में आपके लिए भय नहीं रहेगा।

भारत। यह जीवात्मा एक नदी है, इसमें पुण्य ही तीर्थ है, सत्यस्वरूप परमात्मा से इसका उद्गम हुआ है, धैर्य ही इसके किनारे हैं, इसमें दया की लहरें उठती हैं, पुण्यकर्म करनेवाला मनुष्य इसमें स्नान करके पवित्र होता है, क्योंकि लोभरहित आत्मा सदा पवित्र ही है। काम-क्रोधादिरूप ग्राह से भरी पांच इन्द्रियों के जल से पूर्ण इस संसार नदी के जन्म-मरणरूप दुर्गम प्रवाह को धैर्य की नौका बनाकर पार कीजिए। जो बुद्धि, धर्म, विद्या और अवस्था में बड़े अपने बंधु को आदर-सत्कार से प्रसन्न करके उससे कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के विषय में प्रश्न करता है, वह कभी मोह में नहीं पड़ता।

शिश्न और उदर की धैर्य से रक्षा करें अर्थात् कामवेग और भूख की ज्वाला को धैर्यपूर्वक सहे। इसी प्रकार हाथ-पैर की नेत्रों से, नेत्र और कानों की मन से तथा मन और वाणी की सत्कर्मों से रक्षा करे।

जो प्रतिदिन जल से स्नान-संध्या-तर्पण आदि करता है, नित्य यज्ञोपवीत धारण किये रहता है, नित्य स्वाध्याय करता है, पतितों का अन्न त्याग देता है, सत्य बोलता है और गुरु की सेवा करता है, वह ब्राह्मण कभी ब्रह्मलोक से भ्रष्ट नहीं होता।

वेदों को पढ़कर अग्निहोत्र के लिए अग्नि के चारों ओर कुश बिछाकर नाना प्रकार के यज्ञों द्वारा यजन कर और प्रजाजनों का पालन करके गौ और ब्राह्मणों के हित के लिए संग्राम में मृत्यु को प्राप्त हुआ क्षत्रिय शस्त्र से अन्त:करण पवित्र हो जाने के कारण ऊर्ध्वलोक को जाता है। वैश्य यदि वेद-शास्त्रों का अध्ययन करके ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा आश्रितजनों को समय-समय पर धन देकर, उनकी सहायता करे और यज्ञों द्वारा तीनों अग्नियों के पवित्र धूम की सुगन्ध लेता रहे तो वह मरने के पश्चात् स्वर्ग लोक में दिव्य सुख भोगता है। शूद्र यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की क्रम से न्यायपूर्वक सेवा करके इन्हें संतुष्ट करता है तो वह व्यथारहित हो पापों से मुक्त होकर देह-त्याग के पश्चात् स्वर्गसुख का उपभोग करता है।

महाराज। आपसे यह मैंने चारों वर्णों का धर्म बताया है, इसे बताने का कारण भी सुनिए। आपके कारण पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर क्षत्रिय धर्म से च्युत हो रहे हैं, अत: आप उन्हें पुन: राजधर्म में नियुक्त कीजिए।

धृतराष्ट्र ने कहा- विदुर। तुम प्रतिदिन मुझे जिस प्रकार उपदेश दिया करते हो, वह बहुत ठीक है। सौम्य। तुम मुझसे जो कुछ भी कहते हो, ऐसा ही मेरा भी विचार है। यद्यपि मैं पाण्डवों के प्रति सदा ऐसी ही बुद्धि रखता हूं, तथापि दुर्योधन से मिलने पर फिर बुद्धि पलट जाती है। प्रारब्ध का उल्लंघन करने की शक्ति किसी भी प्राणी में नहीं है। मैं तो प्रारब्ध को ही अचल मानता हूँ, उसके सामने पुरुषार्थ तो व्यर्थ है।

**११) सनत्सुजात ऋषिका उपदेश-** धृतराष्ट्र बोले- विदुर। यदि तुम्हारी वाणीसे कुछ और कहना चाहते हो तो कहो मुझे उसे सुनने की इच्छा है। विदुरने कहा- भरतवंशी धृतराष्ट्र। सनत्सुजात नामसे विख्यात जो ब्रह्माजीके पुत्र परम प्राचीन सनातन ऋषि हैं, उन्होंने एक बार कहा था- मृत्यु है ही नहीं। महाराज। वे समस्त बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं, वे ही आपके हृदयमें स्थित व्यक्त और अव्यक्त सभी प्रकारके प्रश्नोंका उत्तर देंगे। धृतराष्ट्रने कहा- विदुर। क्या तुम उस तत्त्वको नहीं जानते, जिसे अब पुन: सनातन ऋषि मुझे बतावेंगे? यदि तुम्हारी बुद्धि कुछ भी काम देती हो तो तुम्हीं मुझे उपदेश करो।

विदुर बोले- राजन। मेरा जन्म शूद्रा स्त्री के गर्भसे हुआ है, अत: इसके अतिरिक्त और कोई उपदेश देनेका मेरा अधिकार नहीं है। किंतु कुमार सनत्सुजातकी बुद्धि सनातन ब्रह्मको विषय करनेवाली है, मैं उसे जानता हूँ। ब्राह्मण योनिमें जिसका जन्म हुआ है, वह यदि गोपनीय तत्त्वका भी प्रतिपादन कर दे तो भी देवताओंकी निन्दाका पात्र नहीं बनता। यही कारण है कि मैं स्वयं उपदेश न करके आपको सनत्सुजातका नाम बतलाता हूँ।

धृतराष्ट्रने कहा- विदुर। उन परम प्राचीन सनातन ऋषिका पता मुझे बताओ। भला मैं उनको कैसे प्राप्त कर सकता है?

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय। तदनन्तर विदुरने उत्तम व्रतवाले उन सनातन ऋषिका स्मरण किया। उन्होंने भी यह जानकर कि विदुर मेरा चिन्तन कर रहे हैं, प्रत्यक्ष दर्शन दिया। धृतराष्ट्रने भी शास्त्रोक्त विधिसे पाद्य-अर्घ्य, मधुपर्क आदि अर्पण करके उनका स्वागत किया। इसके बाद जब वे सुखपूर्वक बैठकर विश्राम करने लगे तो विदुरने उनसे कहा- भगवन्। धृतराष्ट्रके हृदयमें कुछ संशय खड़ा हुआ है, जिसका समाधान मेरे द्वारा कराना उचित नहीं है। आप ही इस विषयका निरूपण करनेके योग्य है। जिसे सुनकर ये नरेश सब दु:खोंसे पार हो जायँ और लाभ-हानि, प्रिय-अप्रिय, जरा-मृत्यु, भय-अमर्ष, भूख-प्यास, मद-ऐश्वर्य, चिन्ता-आलस्य, काम-क्रोध तथा उन्नति अवनति ये द्वन्द्व इन्हें कष्ट न पहुँचा सकें।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय तदनन्तर बुद्धिमान एवं महामना राजा धृतराष्ट्रने विदुरके कहे हुए उस वचनका अनुमोदन करके अपनी बुद्धिको परमात्माके विषयमें लगानेके लिये एकान्त में सनत्सुजात मुनिसे प्रश्न किया।

धृतराष्ट्र बोले- सनत्सुजातजी। मैं यह सुना करता हूँ कि मृत्यु है ही नहीं ऐसा आपका सिद्धान्त है। साथ ही यह भी सुना

है कि देवता और असुरोंने मृत्युसे बचनेके लिये ब्रह्मचर्यका पालन किया था। इन दोनोंमें कौन-सी बात ठीक है?

सनत्सुजातने कहा- राजन्। तुमने जो प्रश्न किया है, उसमें दो पक्ष हैं। मृत्यु है और वह कर्मसे दूर होती है- एक पक्ष; और मृत्यु है ही नहीं यह दूसरा पक्ष। परंतु वास्तवमें यह बात जैसी है, वह मैं तुम्हें बताता हूँ; मेरे कथन में संदेह न करना। क्षत्रिय। इस प्रश्न के उक्त दोनों ही पहलुओंको सत्य समझो। कुछ विद्वानोंने मोहवश इस मृत्युकी सत्ता स्वीकार की है। किंतु मेरा कहना तो यह है कि प्रमाद ही मृत्यु है और अप्रमाद अमृत है। प्रमादके ही कारण आसुरी सम्पत्तिवाले मनुष्य मृत्युसे पराजित हुए और अप्रमादसे ही दैवी सम्पत्तिवाले महात्मा पुरुष ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं। यह निश्चय है कि मृत्यु व्याघ्रके समान प्राणियोंका भक्षण नहीं करती; क्योंकि उसका कोई रूप देखनेमें नहीं आता। कुछ लोग मेरे बताये हुए प्रमादसे भिन्न यम को मृत्यु कहते हैं और हृदयसे दृढ़तापूर्वक पालन किये हुए ब्रह्मचर्यको ही अमृत मानते हैं। यम देवता पितृलोकमें राज्य-शासन करते हैं। वे पुण्यकर्म करनेवालोंके लिये सुखदायक और पापियोंके लिये भयमर हैं। इन यमकी आज्ञासे ही क्रोध, प्रमाद और लोभरूपी मृत्यु मनुष्योंके विनाश में प्रवृत्त होती है। अहंकारके वशीभूत होकर विपरीत मार्गपर चलता हुआ कोई भी मनुष्य आत्माका साक्षात्कार नहीं कर पाता। मनुष्य मोहवश अहंकारके अधीन हो इस लोकसे जाकर पुन: पुन: जन्म-मरणके चक्करमें पड़ते हैं। मरने के बाद उनके मन, इन्द्रिय और प्राण भी साथ जाते हैं। शरीरसे प्राणरूपी इन्द्रियोंका वियोग होनेके कारण मृत्यु मरण संज्ञाको प्राप्त होती है। प्रारब्धकर्मका उदय होनेपर कर्मके फलमें आसक्ति रखनेवाले लोग स्वर्गादि लोकोंका अनुगमन करते हैं; इसीलिये वे मृत्युको पार नहीं कर पाते। देहाभिमानी जीव परमात्मसाक्षात्कारके उपाय को न जाननेके कारण भोगकी वासनासे सब ओर नाना प्रकारकी योनियोंमें भटकता रहता है। इस प्रकार जो विषयोंकी ओर झुकाव है, वह अवश्य ही इन्द्रियोंको महान् मोहमें डालनेवाला है; और इन झूठे विषयोंमें राग रखनेवाले मनुष्यकी उनकी ओर प्रवृत्ति होनी स्वाभाविक है। मिथ्या भोगोंमें आसक्ति होनेसे जिसके अन्त:करणकी ज्ञानशक्ति नष्ट हो गयी है, वह सब ओर विषयोंका ही चिन्तन करता हुआ मन-ही-मन उनका आस्वादन करता है। पहले तो विषयोंका चिन्तन ही लोगोंको मारे डालता है, इसके बाद वह काम और क्रोधको साथ लेकर पुन: जल्दी ही प्रहार करता है। इस प्रकार ये विषय-चिन्तन, काम और क्रोध ही विवेकहीन मनुष्यों को मृत्युके निकट पहुँचाते हैं। परंतु जो स्थिरबुद्धिवाले पुरुष हैं, वे धैर्यसे मृत्युके पार हो जाते हैं। अत: जो मृत्युको जीतनेकी इच्छा रखता है उसे चाहिये कि विषयोंके स्वरूपका विचार करके उन्हें तुच्छ मानकर कुछ भी न गिनते हुए उनकी कामनाओंको उत्पन्न होते ही नष्ट कर डाले। इस प्रकार जो विद्वान विषयोंकी इच्छाको मिटा देता है, उसको (साधारण प्राणियोंकी) मृत्युकी भाँति मृत्यु नहीं मारती, अर्थात वह जन्म-मरणसे मुक्त हो जाता है। कामनाओंके पीछे चलनेवाला मनुष्य कामनाओंके साथ ही नष्ट हो जाता है और कामनाओंका त्याग कर देनेपर जो कुछ भी दु:खरूप रजोगुण है, उस सबको वह नष्ट कर देता है। यह काम ही समस्त प्राणियोंके लिये मोहक होनेके कारण तमोगुण और अज्ञानरूप है तथा नरक के समान दु:खदायी देखा जाता है। जैसे मतवाले पुरुष चलते-चलते गड्ढेकी ओर दौड़ पड़ते हैं, वैसे ही कामी पुरुष भोगोंमें सुख मानकर उनकी ओर दौड़ते हैं। जिसके चित्तकी वृत्तियाँ कामनाओंसे मोहित नहीं हुई हैं, उस ज्ञानी पुरुषका इस लोकमें तिनकोंके बनाये हुए व्याघ्रके समान मृत्यु क्या बिगाड़ सकती है? इसलिये राजन्। इस कामकी आयु (सत्ता) नष्ट करनेकी इच्छासे दूसरे किसी भी विषयभोगको कुछ भी न गिनकर उसका चिन्तन त्याग देना चाहिये। राजन्। यह जो तुम्हारे शरीरके भीतर अन्तरात्मा है, मोहके वशीभूत होकर यही क्रोध, लोभ, और मृत्युरूप हो जाता है। इस प्रकार मोहसे होनेवाले मृत्युको जानकर जो

ज्ञाननिष्ठ हो जाता है, वह इस लोकमें मृत्युसे कभी नहीं डरता। उसके सामने आकर मृत्यु उसी प्रकार नष्ट हो जाती है, जैसे मृत्युके अधिकारमें आया हुआ मरणधर्मा मनुष्य।

धृतराष्ट्र बोले- द्विजातियोंके लिये यज्ञोंद्वारा जिन पवित्रतम, सनातन एवं श्रेष्ठ लोकोंकी प्राप्ति बतायी गयी है, यहाँ वेद उन्हींको परम पुरुषार्थ कहते हैं; इस बातको जाननेवाला विद्वान उत्तम कर्मोंका ही आश्रय क्यों न ले?

सनत्सुजातने कहा- राजन्। अज्ञानी पुरुष ही इस प्रकार भिन्न-भिन्न लोकोंमें गमन करता है तथा वेद कर्मके बहुत-से प्रयोजन भी बताते हैं। परंतु जो निष्काम पुरुष है, वह ज्ञानमार्गके द्वारा अन्य सभी मार्गोंका बोध करके परमात्मस्वरूप होता हुआ ही परमात्माको प्राप्त होता है।

धृतराष्ट्र बोले- विद्वन्। यदि वह परमात्मा ही क्रमश: इस सम्पूर्ण जगत्के रूपमें प्रकट होता है, तो उस अजन्मा और पुरातन पुरुषपर कौन शासन करता है? अथवा उसे इस रूपमें आनेकी क्या आवश्यकता है और क्या सुख मिलता है- यह सब मुझे ठीक-ठीक बताइये।

सनत्सुजातने कहा- तुम्हारे प्रश्नमें जो अनेकों विकल्प किये गये हैं, उनके अनुसार भेदकी प्राप्ति होती है और उसे स्वीकार कर लेनेसे महान् दोष आता है; क्योंकि अनादि मायाके सम्बन्धसे जीवोंका नित्य प्रवाह चलता रहता है- ऐसा माननेसे इस परमात्माकी महत्ता नष्ट नहीं होती और उसकी मायाके सम्बन्धसे जीव भी पुन: पुन: उत्पन्न होते रहते हैं। यह जो दृश्यमान जगत् है, वह परमात्माका स्वरूप है और परमात्मा नित्य है। वह विकार यानी मायाके योगसे इस विश्वको उत्पन्न करता है, तथा माया उस परमात्माकी शक्ति है- ऐसा माना जाता है। और ऐसे अर्थके प्रतिपादनमें वेद प्रमाण हैं।

धृतराष्ट्र बोले- इस जगत्में कुछ लोग ऐसे हैं, जो धर्मका आचरण नहीं करते तथा कुछ लोग उसका आचरण करते हैं। अत: मैं पूछता हूँ कि धर्म पापके द्वारा नष्ट होता है या धर्म ही पापको नष्ट कर देता है?

सनत्सुजातने कहा- राजन्। धर्म और पाप दोनोंके दो प्रकारके फल होते हैं और उन दोनोंका ही उपभोग करना पड़ता है। परमात्मामें स्थित होनेपर विद्वान पुरुष उस नित्य वस्तुके ज्ञानद्वारा अपने पूर्वकृत पाप और पुण्य दोनोंका सदाके लिये नाश कर देता है। यदि ऐसी स्थिति नहीं हुई तो देहाभिमानी मनुष्य कभी पुण्यफलको प्राप्त करता है और कभी क्रमश: प्राप्त हुए पूर्वोपार्जित पाप के फलका अनुभव करता है। इस प्रकार पुण्य और पाप के जो स्वर्ग-नरक-रूप दो अस्थिर फल हैं, उनका भोग करके वह इस जगत्में जन्म ले पुन: तदनुसार कर्मोंमें लग जाता है। किंतु कर्मोंके तत्त्वको जाननेवाला निष्काम पुरुष धर्मरूप कर्मके द्वारा अपने पूर्वपापका यहाँ ही नाश कर देता है। इस प्रकार धर्म ही अत्यन्त बलवान है; इसलिये धर्माचरण करनेवालोंको समयानुसार अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है।

धृतराष्ट्र बोले- विद्वन्। पुण्यकर्म करनेवाले द्विजातियोंको अपने-अपने धर्मके फलस्वरूप जिन सनातन लोकोंकी प्राप्ति बतायी गयी है, उनका क्रम बतलाइये; तथा उससे भिन्न जो अत्यन्त उत्कृष्ट मोक्षसुख है, उसका भी निरूपण कीजिये। अब मैं सकाम कर्मकी बात नहीं जानना चाहता।

सनत्सुजातने कहा- जैसे बलवान् पहलवानोंमें अपना बल बढ़ानेके निमित्त एक-दूसरेसे लाग-डाँट रहती है, उसी प्रकार जो निष्कामभावसे यम-नियमादिके पालनमें दूसरोंसे बढ़नेका प्रयास करते हैं, वे ब्राह्मण यहाँसे मरकर जानेके बाद ब्रह्मलोकमें अपने तेजका प्रकाश फैलाते हैं। जिनकी वर्णाश्रमधर्ममें स्पर्धा है, उनके लिये वह ज्ञानका साधन है; किंतु वे ब्राह्मण यदि सकामभावसे उसका अनुष्ठान करें तो मृत्युके पश्चात यहाँसे देवताओंके निवासस्थान स्वर्गमें जाते हैं।

ब्राह्मणके सम्यक् आचारकी वेदवेत्ता पुरुष प्रशंसा करते हैं। किंतु अपनेमें वर्णाश्रमका अभिमान रखनेके कारण जो बहिर्मुख है, उसे अधिक महत्व नहीं देना चाहिये। जो निष्कामभावसे श्रौतधर्मका पालन करनेसे अन्तमुर्ख हो गया है, ऐसे पुरुषको श्रेष्ठ समझना चाहिये। जैसे वर्षा ऋतुमें तृण-घास आदिकी बहुतायत होती है, उसी प्रकार जहाँ ब्रह्मवेत्ता संन्यासीके योग्य अन्न-पान आदिकी अधिकता मालूम पड़े उसी देशमें रहकर जीवन-निर्वाह करे। भूख-प्याससे अपनेको कष्ट न पहुँचावे। किंतु जहाँ अपना माहात्म्य प्रकाशित न करनेपर भय और अमङ्गल प्राप्त होता हो, वहाँ रहकर भी जो अपनी विशेषता प्रकट नहीं करता वही श्रेष्ठ पुरुष है, दूसरा नहीं। जो किसीको आत्मप्रशंसा करते देख जलता नहीं, तथा ब्राह्मणके धनका अपहरण करके उपभोग नहीं करता, उसके अन्नको स्वीकार करनेमें सत्पुरुषोंकी सम्मति है। जैसे कुत्ता अपना वमन किया हुआ भी खा लेता है, उसी प्रकार जो अपने पराक्रम या पाण्डित्यका प्रदर्शन करके जीविका चलाते हैं वे संन्यासी वमन-भोजन करनेवाले हैं, और इससे उनकी सदा ही अवनति होती है। जो कुटुम्बीजनोंके बीचमें रहकर भी अपनी साधनाको उनसे सदा गुप्त रखनेका प्रयत्न करता है, ऐसे ब्राह्मणको ही विद्वान पुरुष ब्राह्मण मानते हैं। इसलिये उपर्युक्त रूपसे जीवन बितानेवाले क्षत्रियको भी ब्रह्मका प्रकाश प्राप्त होता है, वह भी अपने ब्रह्मभावको देखता है। इस प्रकार जो भेदशून्य, चिन्हरहित, अविचल, शुद्ध एवं सब प्रकारके द्वैतसे रहित आत्मा है, उसके स्वरूपको जाननेवाला कौन ब्रह्मवेत्ता पुरुष उसका हनन (अध:पतन) करना चाहेगा? जो उक्त प्रकारसे वर्तमान आत्माको उसके विपरीतरूपसे समझता है, आत्माका अपहरण करनेवाले उस चोरने कौन-सा पाप नहीं किया? जो कर्तव्यपालनमें कभी थकता नहीं, दान नहीं लेता, सत्पुरुषोंमें सम्मानित और शान्त है, तथा शिष्ट होकर भी शिष्टताका विज्ञापन नहीं करता, वही ब्राह्मण ब्रह्मवेत्ता एवं विद्वान है। जो लौकिक धनकी दृष्टिसे निर्धन होकर भी दैवी-सम्पत्ति तथा यज्ञ-उपासना आदिसे सम्पन्न हैं, वे दुर्धर्ष और निर्भय हैं; उन्हें ब्रह्मकी साक्षात् मूर्ति समझना चाहिये। यदि कोई इस लोकमें अभीष्ट सिद्ध करनेवाले सम्पूर्ण देवताओंको जान ले, तो भी वह ब्रह्मवेत्ताके समान नहीं होता। क्योंकि वह तो अभीष्ट फलकी सिद्धिके लिये ही प्रयत्न कर रहा है। जो दूसरोंसे सम्मान पाकर भी अभिमान न करे और सम्माननीय पुरुषको देखकर जले नहीं तथा प्रयत्न न करनेपर भी विद्वान लोग जिसे आदर दें, वही वास्तवमें सम्मानित है। जगत्में जब विद्वान पुरुष आदर दे तो सम्मानित व्यक्तिको ऐसा मानना चाहिये कि आँखोंके खोलने-मीचनेके समान अच्छे लोगोंकी यह स्वाभाविक वृत्ति है, जो आदर देते हैं। किंतु इस संसारमें जो अधर्म में निपुण, छल-कपट में चतुर और माननीय पुरुषोंका अपमान करनेवाले मूढ मनुष्य हैं, वे आदरणीय व्यक्तियोंका कभी आदर नहीं करेंगे। यह निश्चित है कि मान और मौन सदा एक साथ नहीं रहते; क्योंकि मानसे इस लोक में सुख मिलता है और मौनसे परलोकमें। ज्ञानीजन इस बातको जानते हैं। राजन्। लोकमें ऐश्वर्यरूपा लक्ष्मी सुख का घर मानी गयी है, किंतु वह भी कल्याण मार्गमें लुटेरोंकी भाँति विघ्न डालनेवाली है। प्रज्ञाहीन मनुष्यके लिये तो ब्रह्मज्ञानमयी लक्ष्मी सर्वथा दुर्लभ है। संत पुरुष यहाँ उस ब्रह्मसुखके अनेकों द्वार बतलाते हैं, जो कि मोहको जगानेवाले नहीं हैं तथा जिनको कठिनतासे धारण किया जाता है। उनके नाम हैं- सत्य, सरलता, लज्जा, दम, शौच और विद्या।

धृतराष्ट्र बोले- विद्वन्। यह मौन किसका नाम है? वाणीका संयम और परमात्माका स्वरूप- इन दोमेंसे कौन-सा मौन है? यहाँ मौन-भावका वर्णन कीजिये। क्या विद्वान पुरुष मौनके द्वारा मौनरूप परमात्माको प्राप्त होता है? मुने। संसारमें लोग मौनका आचरण किस प्रकार करते हैं?

सनत्सुजातने कहा- राजन्। जहाँ मनके सहित वाणीरूप वेद नहीं पहुँच पाते, उस परमात्माका ही नाम मौन है; इसलिये

वही मौनस्वरूप है। वैदिक तथा लौकिक शब्दोंका जहाँसे प्रादुर्भाव हुआ है, वे परमेश्वर तन्मयतापूर्वक ध्यान करनेसे प्रकाश में आते हैं। धृतराष्ट्र बोले- जो ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद को जानता है तथा पाप करता है, वह उस पापसे लिप्त होता है या नहीं? सनत्सुजातने कहा- राजन्। मैं तुमसे असत्य नहीं कहता; ऋक, साम अथवा यजुर्वेद- कोई भी पाप करनेवाले अज्ञानीकी उसके पापकर्मसे रक्षा नहीं करते। जो कपटपूर्वक धर्मका आचरण करता है, उस मिथ्याचारीका वेद पापोंसे उद्धार नहीं करते। जैसे पंख निकल आनेपर पंछी अपना घोंसला छोड़ देते हैं, उसी प्रकार अन्तकालमें वेद भी उसका परित्याग कर देते हैं। धृतराष्ट्र बोले- विद्वन्। यदि धर्मके बिना वेद रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हैं, तो वेदवेत्ता ब्राह्मणोंके पवित्र होनेका प्रलाप चिरकालसे क्यों चला आता है?

सनत्सुजातने कहा- महानुभाव। परमात्माके ही नाम आदि विशेषरूपोंसे इस जगत्की प्रतीति होती है। यह बात वेद अच्छी तरह निर्देश करके कहते हैं। किंतु वास्तव में उसका स्वरूप इस विश्वसे विलक्षण बताया जाता है। उसीकी प्राप्तिके लिये वेदमें तप और यज्ञका प्रतिपादन किया गया है। इन तप और यज्ञोंके द्वारा उस श्रोत्रिय विद्वान पुरुषको पुण्यकी प्राप्ति होती है। फिर उस पुण्यसे पापको नष्ट कर देनेके पश्चात् ज्ञानके प्रकाश से वह अपने सच्चिदानन्दस्वरूपका साक्षात्कार करता है। इस प्रकार विद्वान पुरुष ज्ञानसे आत्माको प्राप्त होता है। अन्यथा धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिवर्ग-फलकी इच्छा रखनेके कारण वह इस लोकमें किये हुए सभी कर्मोंको साथ लेकर उन्हें परलोकमें भोगता है तथा भोग समाप्त होनेपर पुन: इस संसारमार्गमें लौट आता है। इस लोकमें तपस्या की जाती है और परलोकमें उसका फल भोगा जाता है- यह सबके लिये साधारण नियम है। परंतु अवश्य पालन करने योग्य तपमें स्थिर रहनेवाले ब्रह्मवेत्ता पुरुषों के लिये तो यही लोक है- उन्हें यहीं (जीवनकालमें ही) ज्ञानरूप फल प्राप्त हो जाता है।

धृतराष्ट्र बोले- सनत्सुजातजी। एक ही तपकी कभी वृद्धि और कभी हानि कैसे होती है? आप इसे इस प्रकार बताइये, जिससे हम भलीभाँति समझ सकें। सनत्सुजातने कहा- जो किसी कामना या पापरूप दोषसे युक्त नहीं होता, उसे विशुद्ध तप कहते हैं। केवल वही तप ऋद्ध और समृद्ध होता है। किंतु जब उस तपमें कामना या पापरूप दोषका संसर्ग होता है, तो उसकी हानि होने लगती है। राजन्। तुम जो कुछ मुझसे पूछ रहे हो, यह सब तपस्यामूलक- तप से प्राप्त होनेवाला है; वेदवेत्ता विद्वान इस तपसे ही परम अमृत (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं। धृतराष्ट्र बोले- सनत्सुजातजी। मैंने दोषरहित तपस्याका महत्व सुना; अब तपस्याके जो दोष हैं, उन्हें बताइये, जिससे मैं इस सनातन गोपनीय तत्वको जान सकूँ।

सनत्सुजातने कहा- राजन्। तपस्याके क्रोध आदि बारह दोष हैं। तथा तेरह प्रकारके क्रूर मनुष्य होते हैं। पितरों और ब्राह्मणोंके धर्म आदि बारह गुण शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, असंतोष, निर्दयता, असूया, अभिमान, शोक, स्पृहा, ईर्ष्या और निन्दा मनुष्योंमें रहनेवाले ये बारह दोष सदा ही त्याग देने योग्य हैं। नरश्रेष्ठ। जैसे व्याध मृगोंको मारने का अवसर देखता हुआ उनकी टोह में लगा रहता है, उसी प्रकार इनमें से एक-एक दोष मनुष्योंका छिद्र देखकर उनपर आक्रमण करता है। अपनी बहुत बड़ाई करनेवाले, लोलुप, अहंकारी, निरन्तर क्रोधी, चञ्चल और आश्रितोंकी रक्षा नहीं करनेवाले-ये छ: प्रकारके मनुष्य पापी हैं। महान् संकट में पड़नेपर भी ये निडर होकर इन पापकर्मोंका आचरण करते हैं। संभोग में ही मन लगानेवाले, विषमता रखनेवाले, अत्यन्त मानी, दान देकर पश्चात्ताप करनेवाले, अत्यन्त कृपण, अर्थ और कामकी प्रशंसा करनेवाले तथा स्त्रियोंके द्वेषी- ये सात और पहलेके छ:, कुल तेरह प्रकारके मनुष्य नृशंस-वर्ग (क्रूर-समुदाय) कहे गये हैं। धर्म, सत्य, इन्द्रियनिग्रह, तप, मत्सरताका अभाव, लज्जा, सहनशीलता, किसीके दोष न देखना, यज्ञ करना, दान देना, धैर्य

और शास्त्रज्ञान- ये ब्राह्मणके बारह व्रत हैं। जो इन बारह व्रतों (गुणों) पर अपना प्रभुत्व रखता है, वह इस सम्पूर्ण पृथ्वीके मनुष्योंको अपने अधीन कर सकता है। इनमें से तीन, दो या एक गुणसे भी जो युक्त है, उसके पास सभी तरह का धन है- ऐसा समझना चाहिये। दम, त्याग और आत्मकल्याणमें प्रमाद न करना- इन तीन गुणों में अमृतका वास है। जो मनीषी (बुद्धिमान) ब्राह्मण हैं, वे कहते हैं कि इन गुणोंका मुख सत्यस्वरूप परमात्माकी ओर है अर्थात ये परमात्माकी प्राप्ति करानेवाले हैं। दम अठारह गुणोंवाला है। निम्नामित अठारह दोषोंके त्यागको ही अठारह गुण समझना चाहिये- कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के विषय में विपरीत धारणा, असत्यभाषण, गुणों में दोषदृष्टि, स्त्री विषयक कामना, सदा धनोपार्जनमें ही लगे रहना, भोगेच्छा, क्रोध, शोक, तृष्णा, लोभ, चुगली करने की आदत, डाह, हिंसा, संताप, चिन्ता, कर्त्तव्यकी विस्मृति, अधिक बकवाद और अपनेको बड़ा समझना- इन दोषोंसे जो मुक्त है, उसीको सत्पुरुष दान (जितेन्द्रिय) कहते हैं।

मदमें अठारह दोष हैं; ऊपर जो दमके विपर्यय सूचित किये गये हैं, वे ही मदके दोष बताये गये हैं। (आगे मदके स्वतन्त्र दोष भी कहे जायेंगे।) त्याग छ: प्रकारका होता है, वह छहों प्रकारका त्याग अत्यन्त उत्तम है; किंतु इनमें तीसरा अर्थात् कामत्याग बहुत ही कठिन है, उसके द्वारा मनुष्य नाना प्रकारके दु:खोंको निश्चय ही पार कर जाता है। कामका त्याग कर देनेपर सब कुछ जीत लिया जाता है। राजेन्द्र। छ: प्रकारका जो सर्वश्रेष्ठ त्याग है, उसे बताते हैं। लक्ष्मीको पाकर हर्षित न होना- यह प्रथम त्याग है; यज्ञ-होमादिमें तथा कुएँ, तालाब और बगीचे बनाने आदिमें धन खर्च करना दूसरा त्याग है और सदा वैराग्यसे युक्त रहकर कामका त्याग करना-यह तीसरा त्याग कहा गया है। तथा ऐसे त्यागीको सच्चिदानन्दस्वरूप कहते हैं। अत: यह तीसरा त्याग विशेष गुण माना गया है। पदार्थोंके त्यागसे जो निष्कामता आती है, वह स्वेच्छापूर्वक उनका उपभोग करनेसे नहीं आती। अधिक धन-सम्पत्तिके संग्रहसे भी निष्कामता नहीं सिद्ध होती, तथा उसका कामनापूर्तिके लिये उपभोग करनेसे भी कामका त्याग नहीं होता। किये हुए कर्म सिद्ध न हों तो उनके लिये दु:ख न करे, उस दु:खसे ग्लानि नहीं उठावे। इन सब गुणोंसे युक्त मनुष्य यदि द्रव्यवान् हो, तो भी वह त्यागी है। कोई अप्रिय घटना हो जाय तो भी कभी व्यथाको न प्राप्त हो। यह चौथा त्याग है। अपने अभीष्ट पदार्थ- स्त्री पुत्रादिकी कभी याचना न करे यह पांचवाँ त्याग है। सुयोग्य याचकके आ जानेपर उसे दान करे यह छठा त्याग है। इन सबसे कल्याण होता है। इन त्यागमय गुणोंसे मनुष्य अप्रमादी होता है। उस अप्रमादके भी आठ गुण माने गये हैं- सत्य, ध्यान, समाधि, तर्क, वैराग्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। ये आठ गुण त्याग और अप्रमाद दोनोंके ही समझने चाहिये। इसी प्रकार जो मदके अट्ठारह दोष पहले बताये गये हैं, उनका सर्वथा त्याग करना चाहिये। प्रमादके आठ दोष हैं, उन्हें भी त्याग देना चाहिये। भारत। पाँच इन्द्रियाँ और छठा मन- इनकी अपने-अपने विषयोंमें जो भोगबुद्धिसे प्रवृत्ति होती है- छ: तो ये ही प्रमादविषयक दोष हैं और भूतकालकी चिन्ता तथा भविष्य की आशा- दो दोष ये हैं। इन आठ दोषोंसे मुक्त पुरुष सुखी होता है। राजेन्द्र। तुम सत्यस्वरूप हो जाओ, सत्यमें ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित हैं। वे दम, त्याग और अप्रमाद आदि गुण भी सत्यस्वरूप परमात्माकी प्राप्ति करानेवाले हैं; सत्यमें ही अमृतकी प्रतिष्ठा है। दोषोंको निवृत्त करके ही यहाँ तप और व्रतका आचरण करना चाहिये- यह विधाताका बनाया हुआ नियम है। सत्य ही श्रेष्ठ पुरुषोंका व्रत है। मनुष्यको उपर्युक्त दोषोंसे रहित और गुणोंसे युक्त होना चाहिये। ऐसे पुरुषका ही विशुद्ध तप अत्यन्त समृद्ध होता है। राजन्। तुमने जो मुझसे पूछा है, वह मैंने संक्षेपमें बता दिया। यह तप जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्थाके कष्टको दूर करनेवाला, पापहारी तथा परम पवित्र है।

धृतराष्ट्रने कहा- मुने। इतिहास-पुराण जिनमें पाँचवाँ है, उन सम्पूर्ण वेदोंके द्वारा कुछ लोगोंका विशेषरूपसे नाम लिया जाता है (अर्थात वे पञ्चवेदी कहलाते हैं)। दूसरे लोग चतुर्वेदी और त्रिवेदी कहे जाते हैं। इसी प्रकार कुछ लोग द्विवेदी,

एकवेदी तथा अनृच कहलाते हैं। इनमेंसे कौन-से ऐसे हैं, जिन्हें मैं निश्चितरूपसे ब्राह्मण समझूँ?

सनत्सुजातने कहा- राजन्। एक ही वेदको न जाननेके कारण बहुत-से वेद कर दिये गये हैं। उस सत्यस्वरूप एक वेदके सारतत्त्व परमात्मामें तो कोई बिरला ही स्थित होता है। वही ब्राह्मण मानने योग्य है)। इस प्रकार वेदके तत्त्वको न जानकर भी कुछ लोग मैं विद्वान हूँ ऐसा मनने लगते हैं; फिर उनकी दान, अध्ययन और यज्ञादि कर्मोंमें लौकिक एवं पारलौकिक फलके लोभसे प्रवृत्ति होती है। वास्तवमें जो सत्यस्वरूप परमात्मासे च्युत हो गये हैं, उन्हींका वैसा संकल्प होता है। फिर सत्यरूप वेदके प्रामाण्यका निश्चय करके ही उनके द्वारा यज्ञोंका विस्तार (अनुष्ठान) किया जाता है। किसीका यज्ञ मनसे, किसीका वाणीसे तथा किसीका क्रियाके द्वारा सम्पादित होता है। पुरुष संकल्पमय है और वह अपने संकल्पके अनुसार प्राप्त हुए लोकोंका अधिष्ठाता होता है। किंतु जबतक संकल्प शान्त न हो, तबतक दीक्षित-व्रतका आचरण अर्थात् यज्ञादि कर्म करते रहना चाहिये। यह दीक्षित नाम दीक्ष ब्रतादेशे इस धातुसे बना है। सत्पुरुषोंके लिये सत्यस्वरूप परमात्मा ही सबसे बढ़कर है। क्योंकि परमात्माके ज्ञानका फल प्रत्यक्ष है और तपका फल परोक्ष है (इसलिये ज्ञानका ही आश्रय लेना चाहिये)। बहुत पढ़नेवाले ब्राह्मणको केवल बहुपाठी (बहुज्ञ) समझना चाहिये। इसलिये क्षत्रिय। केवल बातें बनानेसे ही किसीको ब्राह्मण न मान लेना। जो सत्यस्वरूप परमात्मासे कभी पृथक नहीं होता, उसीको तुम ब्राह्मण समझो। राजन्। अथर्वा मुनि एवं महर्षिसमुदायने पूर्वकालमें जिनका गान किया है, वे ही छन्द (वेद) हैं। किंतु सम्पूर्ण वेद पढ़ लेनेपर भी जो वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य परमात्माके तत्त्वको नहीं जानते, वे वास्तवमें वेदके विद्वान नहीं है। नरश्रेष्ठ। छन्द (वेद) उस परमात्मामें स्वच्छन्द सम्बन्धसे स्थित हैं (अर्थात् स्वत:प्रमाण हैं)। इसलिये उनका अध्ययन करके ही वेदवेत्ता आर्यजन वेद्यरूप परमात्माके तत्त्वको प्राप्त हुए हैं। राजन्। वास्तवमें वेदोंके तत्त्वको जाननेवाला कोई नहीं है, अथवा यों समझो कि कोई बिरला ही उनका रहस्य जान पाता है। जो केवल वेदके वाक्योंको जानता है, वह वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य परमात्माको नहीं जानता। किंतु जो सत्यमें स्थित है, वह वेदवेद्य परमात्माको जानता है। जो ज्ञेय मन आदि अचेतन हैं, उनमेंसे कोई ज्ञाता नहीं है। इसीलिये मनुष्य मन आदिके द्वारा न तो आत्माको जानते हैं और न अनात्माको। जो आत्माको जान लेता है, वही अनात्माको भी जानता है। जो केवल अनात्माको जानता है, वह सत्य आत्माको नहीं जानता। जो पुरुष (ज्ञाता) वेदोंको जानता है, वही वेद्य (जगत् आदि) को भी जानता है; परंतु उस ज्ञाताको न वेदपाठी जानते हैं और न वेद ही। तथापि जो वेदवेत्ता ब्राह्मण हैं, वे उस आत्मतत्त्वको वेदके द्वारा ही जानते हैं। द्वितीयाके चन्द्रमाकी सूक्ष्म कलाको बतानेके लिये जैसे वृक्षकी शाखाकी ओर संकेत किया जाता है, उसी प्रकार उस सत्यस्वरूप परमात्माका ज्ञान करानेके लिये ही वेदोंका भी उपयोग किया जाता है- ऐसा विद्वान पुरुष मानते हैं। मैं तो उसीको ब्राह्मण समझता हूँ, जो परमात्माके तत्त्वको जाननेवाला और वेदोंकी यथार्थ व्याख्या करनेवाला हो, जिसके अपने संदेह मिट गये हों और दूसरोंके भी सम्पूर्ण संशयोंको मिटा सके। इस आत्माकी खोज करनेके लिये पूर्व, दक्षिण, पश्चिम या उत्तरकी ओर जानेकी आवश्यकता नहीं है; फिर आग्नेय आदि कोणोंकी तो बात ही क्या है? इसी प्रकार दिग्विभागसे रहित प्रदेशमें भी उसे नहीं ढूँढ़ना चाहिये। आत्माका अनुसंधान अनात्म पदार्थोंमें तो किसी तरह करे ही नहीं, वेदके वाक्योंमें भी न ढूँढ़कर केवल तपके द्वारा उस प्रभुका साक्षात्कार करें। सब प्रकारकी चेष्टासे रहित होकर परमात्माकी उपासना करें, मनसे भी कोई चेष्टा न करें। राजन्। तुम भी अपने हृदयाकाशमें स्थित उस विख्यात परमेश्वरकी उपासना करो। मौन रहने अथवा जंगलमें निवास करने मात्रसे कोई मुनि नहीं होता। जो अपने आत्माके स्वरूपको जानता है, वही श्रेष्ठ मुनि कहलाता है। सम्पूर्ण अर्थोंको व्याकृत (प्रकट) करनेके कारण ज्ञानी पुरुष वैयाकरण कहलाता है। यह समस्त

अर्थोंका प्रकटीकरण मूलभूत ब्रह्मसे ही होता है, अत: वही मुख्य वैयाकरण है; विद्वान पुरुष भी ब्रह्मभूत होनेके कारण इसी प्रकार अर्थोंको व्याकृत (व्यक्त) करता है, इसलिये वह भी वैयाकरण है। जो सम्पूर्ण लोकोंको प्रत्यक्ष देख लेता है, वह मनुष्य उन सब लोकोंका द्रष्टामात्र कहलाता है (सर्वज्ञ नहीं होता)। किंतु जो एकमात्र सत्यस्वरूप ब्रह्ममें ही स्थित है, वह ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण सर्वज्ञ हो जाता है। राजन्। पूर्वोक्त धर्म आदिमें स्थित होनेसे तथा वेदोंका विधिवत् अध्ययन करनेसे भी मनुष्य इसी प्रकार परमात्माका साक्षात्कार करता है।

धृतराष्ट्रने कहा- सनत्सुजातजी। आप जिस सर्वोत्तम और सर्वरूपा ब्रह्मसम्बन्धिनी विद्याका उपदेश कर रहे हैं, उसमें विषय-भोगोंकी चर्चा बिल्कुल नहीं है। कुमार। मेरा तो यह कहना है कि आप इस परम दुर्लभ विषयका पुन: प्रतिपादन करें।

सनत्सुजातने कहा- राजन्। तुम जो मुझसे प्रश्न करते समय अत्यन्त हर्षसे फूल उठते हो, सो इस प्रकार जल्दबाजी करनेसे ब्रह्मकी उपलब्धि नहीं होती। बुद्धिमें मनके लय हो जानेपर सब वृत्तियोंका निरोध करनेवाली जो स्थिति है, उसका नाम है ब्रह्मविद्या और वह ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे ही उपलब्ध होती है।

धृतराष्ट्रने कहा- जो कर्मोंद्वारा आरम्भ होने योग्य नहीं है, तथा कार्यके समय भी जो इस आत्मामें ही रहती है, उस अनन्त ब्रह्मसे सम्बन्ध रखनेवाली इस सनातन विद्याको यदि आप ब्रह्मचर्यसे ही प्राप्त होने योग्य बता रहे हैं, तो मेरे-जैसे लोग ब्रह्मसम्बन्धी अमृतत्व (मोक्ष) को कैसे पा सकते हैं? सनत्सुजातजी बोले- अब मैं अव्यक्त ब्रह्मसे सम्बन्ध रखनेवाली उस पुरातन विद्याका वर्णन करूँगा, जो मनुष्योंको बुद्धि और ब्रह्मचर्यके द्वारा प्राप्त होती है, जिसे पाकर विद्वान पुरुष इस मरणधर्मा शरीरको सदाके लिये त्याग देते हैं तथा जो वृद्ध गुरुजनोंमें नित्य विद्यमान रहती है। धृतराष्ट्रने कहा- ब्रह्मन। यदि वह ब्रह्मविद्या ब्रह्मचर्यके द्वारा ही सुगमतासे जानी जा सकती है, तो पहले मुझे यही बताइये कि ब्रह्मचर्यका पालन कैसे होता है।

सनत्सुजात बोले- जो लोग आचार्यके आश्रम में प्रवेश कर अपनी सेवासे उनके अन्तरङ्ग भक्त हो ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, वे यहां ही शास्त्रकार हो जाते हैं और देह त्यागके पश्चात् परम योगरूप परमात्माको प्राप्त होते हैं। इस संसारमें रहकर जो सम्पूर्ण कामनाओंको जीत लेते हैं और ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करनेके लिये ही नाना प्रकारके द्वन्द्वोंको सहन करते हैं, वे सत्त्वगुणमें स्थित हो यहाँ ही मूँजसे सींककी भाँति इस देहसे आत्माको (विवेकके द्वारा) पृथक् कर लेते हैं। भारत। यद्यपि माता और पिता- ये ही दोनों इस शरीरको जन्म देते हैं, तथापि आचार्यके उपदेशसे जो जन्म प्राप्त होता है, वह परम पवित्र और अजर-अमर है। जो परमार्थ-तत्त्वके उपदेशसे सत्यको प्रकट करके अमरत्व प्रदान करते हुए ब्राह्मणादि वर्णोंकी रक्षा करते हैं, उन आचार्यको पिता-माता ही समझना चाहिये। तथा उनके किये हुए उपकार का स्मरण करके कभी उनसे द्रोह नहीं करना चाहिये। ब्रह्मचारी शिष्यको चाहिये कि वह नित्य गुरुको प्रणाम करे। बाहर-भीतरसे पवित्र हो प्रमाद छोड़कर स्वाध्यायमें मन लगावे, अभिमान न करे, मनमें क्रोधको स्थान न दे। यह ब्रह्मचर्यका पहला चरण है। जो शिष्यकी वृत्तिके क्रमसे ही जीवन-निर्वाह करता हुआ पवित्र हो विद्या प्राप्त करता है, उसका यह नियम भी ब्रह्मचर्यव्रत का पहला ही पाद कहलाता है। अपने प्राण और धन लगाकर भी मन, वाणी तथा कर्मसे आचार्यका प्रिय करे- यह द्वितीय पाद कहा जाता है। गुरुके प्रति शिष्यका जैसा श्रद्धा और सम्मानपूर्ण बर्ताव हो, वैसा ही गुरुकी पत्नी और पुत्रके साथ भी होना चाहिये। यह भी ब्रह्मचर्यका द्वितीय पाद ही कहलाता है। आचार्यने जो अपना उपकार किया, उसे ध्यानमें रखकर तथा उससे जो प्रयोजन सिद्ध हुआ, उसका भी विचार करके मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न होकर शिष्य आचार्यके प्रति जो ऐसा भाव रखता है इन्होंने मुझे बड़ी उन्नत अवस्थामें पहुँचा दिया- यह ब्रह्मचर्यका तीसरा पाद है। आचार्यके उपकारका बदला चुकाये बिना अर्थात गुरुदक्षिणा आदिके द्वारा उन्हें संतुष्ट किये बिना विद्वान शिष्य वहाँसे अन्यत्र न जाय। (दक्षिणा देकर

या सेवा करके) कभी मनमें ऐसा विचार न लावे कि मैं गुरुका उपकार कर रहा हूँ, तथा मुँहसे भी कभी ऐसी बात न निकाले। यह ब्रह्मचर्यका चौथा पाद है। ब्रह्मचारी शिष्य पहले गुरुके निकट शिक्षा और सदाचारका एक चरण प्राप्त करता है, फिर उत्साहपूर्वक तीक्ष्ण बुद्धिके द्वारा उसे दूसरे पादका ज्ञान होता है। तत्पश्चात अधिक कालतक मनन करनेसे वह तीसरे पादका ज्ञान प्राप्त करता है, फिर शास्त्रके द्वारा सहपाठियोंके साथ विचार करनेसे वह चौथे पादको जानता है। पूर्वोक्त बारह धर्म आदि जिसके स्वरूप हैं, तथा दूसरे-दूसरे यम-नियमादि जिसके अङ्ग एवं उत्साह-शक्ति बल है, वह ब्रह्मचर्य आचार्यके सम्पर्कमें रहकर वेदके अर्थका तत्त्व जाननेसे ही सफल होता है- ऐसा विद्वानोंका कथन है। इस तरह ब्रह्मचर्यपालन में प्रवृत्त होकर जो कुछ भी धन प्राप्त हो सके, उसे आचार्यको अर्पण करना चाहिये। ऐसा करनेसे वह शिष्य सत्पुरुषोंकी अनेक गुणोंवाली वृत्तिको प्राप्त होता है। गुरुपुत्रके प्रति भी उसकी यही वृत्ति होती है। ऐसी वृत्तिसे रहनेवाले शिष्यकी इस संसारमें सब प्रकारसे उन्नति होती है। वह बहुत-से पुत्र और प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। सम्पूर्ण दिशा-विदिशाएँ उसके लिये सुखकी वर्षा करती हैं तथा उसके निकट बहुत-से दूसरे लोग ब्रह्मचर्य-पालनके लिये निवास करते हैं। इस ब्रह्मचर्यके पालनसे ही देवताओंने देवत्व प्राप्त किया और महान् सौभाग्यशाली मनीषी ऋषियोंको ब्रह्मलोककी प्राप्ति हुई। इसीके प्रभावसे गन्धर्वों और अप्सराओंको दिव्य रूप प्राप्त हुआ। इस ब्रह्मचर्यके ही प्रतापसे सूर्यदेव समस्त लोकोंको प्रकाशित करनेमें समर्थ होते हैं। रसभेदरूप चिन्तामणिसे याचना करनेवालोंको जैसे उनके अभीष्ट अर्थकी प्राप्ति होती है, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य भी मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करनेवाला है- ऐसा समझकर ये ऋषि-देवता आदि ब्रह्मचर्यके पालन से वैसे भावको प्राप्त हुए। राजन्। जो इस ब्रह्मचर्यका आश्रय लेता है, वह ब्रह्मचारी यम-नियमादि तपका आचरण करता हुआ अपने सम्पूर्ण शरीरको भी पवित्र बना लेता है। तथा इससे विद्वान् पुरुष निश्चय ही आत्मबलको प्राप्त होता है और अन्त-समयमें वह मृत्युको भी जीत लेता है। राजन्। सकाम पुरुष अपने पुण्यकर्मोंके द्वारा नाशवान् लोकोंको ही प्राप्त करते हैं; किंतु जो ब्रह्मको जाननेवाला विद्वान है, वही उस ज्ञानके द्वारा सर्वरूप परमात्माको प्राप्त होता है। मोक्षके लिये ज्ञानके सिवा दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

धृतराष्ट्र बोले- विद्वान पुरुष यहाँ सत्यस्वरूप परमात्माके जिस अमृत एवं अविनाशी परमपदका साक्षात्कार करते हैं, उसका रूप कैसा है? क्या वह सफेद-सा, लाल-सा अथवा काजल-सा काला या सुवर्ण-जैसे पीले रंगका प्रतीत होता है?

सनत्सुजातने कहा- यद्यपि श्वेत, लाल, काले, लोहेके सदृश अथवा सूर्यके समान प्रकाशमान- अनेकों प्रकारके रूप प्रतीत होते हैं, तथापि ब्रह्मका वास्तविक रूप न पृथ्वीमें है, न आकाशमें। समुद्रका जल भी उस रूपको नहीं धारण करता। ब्रह्मका वह रूप न तारोंमें है, न बिजलीके आश्रित है और न बादलोंमें ही दिखायी देता है। इसी प्रकार वायु, देवगण, चन्द्रमा और सूर्यमें भी वह नहीं देखा जाता। राजन्। ऋग्वेदकी ऋचाओंमें, यजुर्वेदके मन्त्रोंमें, अथर्ववेदके सूक्तोंमें तथा विशुद्ध सामवेदमें भी वह नहीं दृष्टिगोचर होता। रथन्तर और बार्हद्रथ नामक साममें तथा महान् व्रतमें भी उसका दर्शन नहीं होता; क्योंकि वह ब्रह्मनित्य है। ब्रह्मके उस स्वरूपका कोई पार नहीं पा सकता, वह अज्ञानरूप अन्धकारसे परे है। महाप्रलयमें सबका अन्त करनेवाला काल भी उसीमें लीन हो जाता है। वह रूप उस्तरेकी धारके समान अत्यन्त सूक्ष्म और पर्वतोंसे भी महान् है। वही सबका आधार है, वही अमृत है, वही लोक, वही यश तथा वही ब्रह्म है। सम्पूर्ण भूत उसीसे प्रकट हुए और उसीमें लीन होते हैं। विद्वान कहते हैं- कार्यरूप जगत वाणीका विकारमात्र है। किंतु जिसमें यह सम्पूर्ण जगत प्रतिष्ठित है, उस नित्य कारणस्वरूप ब्रह्मको जो जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं। वह ब्रह्मरोग, शोक और पापसे रहित है और उसका महान् यश सर्वत्र फैला हुआ है।

सनत्सुजात कहते हैं- राजन्। शोक, क्रोध, लोभ, काम, मान, अत्यन्त निद्रा, ईर्ष्या, मोह, तृष्णा, कायरता, गुणोंमें दोष

देखना और निन्दा करना- ये बारह महान् दोष मनुष्योंके प्राणनाशक हैं। राजेन्द्र। एक-एक करके ये सभी दोष मनुष्यको प्राप्त होते हैं, जिनसे आवेशमें आकर मूढबुद्धि मानव पापकर्म करने लगता है। लोलुप, क्रूर, कठोरभाषी, कृपण, मन-ही-मन क्रोध करनेवाले और अधिक आत्मप्रशंसा करनेवाले- ये छः प्रकारके मनुष्य निश्चय ही क्रूर कर्म करनेवाले होते हैं। ये धन पाकर भी अच्छा बर्ताव नहीं करते। सम्भोगमें मन लगानेवाले, विषमता रखनेवाले, अत्यन्त अभिमानी, थोड़ा देकर बहुत डींग हाँकनेवाले, कृपण, दुर्बल होकर भी अपनी बहुत बड़ाई करनेवाले और स्त्रियोंसे सदा द्वेष रखनेवाले- ये सात प्रकारके मनुष्य ही पापी और क्रूर कहे गये हैं। धर्म, सत्य, तप, इन्द्रियसंयम, डाल न करना, लज्जा, सहनशीलता किसीके दोष न देखना, दान, शास्त्रज्ञान, धैर्य और क्षमा ये ब्राह्मणके बारह महान् व्रत हैं। जो इन बारह व्रतोंसे कभी च्युत नहीं होता, वह इस सम्पूर्ण पृथ्वीपर शासन कर सकता है। इनमेंसे तीन दो या एक गुणसे भी जो युक्त है, उसका अपना कुछ भी नहीं होता- ऐसा समझना चाहिये (अर्थात् उसकी किसी भी वस्तुमें ममता नहीं होती)। इन्द्रियनिग्रह, त्याग और अप्रमाद इनमें अमृतकी स्थिति है। ब्रह्म ही जिनका प्रधान लक्ष्य है, उन बुद्धिमान ब्राह्मणोंके ये ही मुख्य साधन हैं। सच्ची हो या झूठी, दूसरोंकी निन्दा करना ब्राह्मणको शोभा नहीं देता। जो लोग दूसरोंकी निन्दा करते हैं, वे अवश्य ही नरकमें पड़ते हैं। मदके अठारह दोष हैं, जो पहले सूचित करके भी स्पष्ट रूपसे नहीं बताये गये थे- लोकविरोधी कार्य करना, शास्त्रके प्रतिकूल आचरण करना, गुणियोंपर दोषारोपण, असत्यभाषण, काम क्रोध, पराधीनता दूसरोंके दोष बताना, चुगली करना, धन का दुरुपयोग, कलह डाह, प्राणियोंको कष्ट पहुँचाना, ईर्ष्या, हर्ष, बहुत बकवाद, विवेक-शून्यता तथा गुणोंमें दोष देखनेका स्वभाव। इसलिये विद्वान पुरुषको मदके वशीभूत नहीं होना चाहिये; क्योंकि सत्पुरुषोंने इसकी सदा ही निन्दा की है। सौहार्द्र (मित्रता) के छः गुण हैं, जो अवश्य ही जानने योग्य हैं। सुहृदका प्रिय होनेपर हर्षित होना और अप्रिय होनेपर मनमें कष्टका अनुभव करना- ये दो गुण हैं। तीसरा गुण यह है कि अपना जो कुछ चिरसंचित धन है, उसे मित्रके माँगनेपर दे डालें। मित्रके लिये अयाच्य वस्तु भी अवश्य देने योग्य हो जाती है; और तो क्या, सुहृदके माँगनेपर वह शुद्ध भावसे अपने प्रिय पुत्र, वैभव तथा पत्नीको भी उसके हितके लिये निछावर कर देता है। मित्रको धन देकर उसके यहाँ प्रत्युपकार पानेकी कामनासे निवास न करे- यह चौथा गुण है। अपने परिश्रमसे उपार्जित धनका उपभोग करें (मित्रकी कमाईपर अवलम्बित न रहे)- यह पाँचवाँ गुण है। तथा मित्रकी भलाईके लिये अपने भलेकी परवाह न करे- यह छठा गुण है। जो धनी गृहस्थ इस प्रकार गुणवान, त्यागी और सात्त्विक होता है, वह अपनी पाँचों इन्द्रियोंसे पाँचों विषयोंको हटा लेता है। जो वैराग्यकी कमीके कारण सत्त्वसे भ्रष्ट हो गये हैं ऐसे मनुष्योंके दिव्य लोकोंकी प्राप्तिके संकल्पसे संचित किया हुआ यह इन्द्रियनिग्रहरूप तप समृद्ध होनेपर भी केवल ऊर्ध्वलोकोंकी प्राप्तिका कारण होता है (मुक्तिका) नहीं। क्योंकि सत्यस्वरूप ब्रह्मका बोध न होनेसे ही इन सकाम यज्ञोंकी वृद्धि होती है। किसीका यज्ञ मनसे, किसीका वाणीसे और किसीका क्रियाके द्वारा सम्पन्न होता है। संकल्पसिद्ध अर्थात सकाम पुरुषसे संकल्परहित यानी निष्काम पुरुषकी स्थिति ऊँची होती है। किंतु ब्रह्मवेत्ताकी स्थिति उससे भी विशिष्ट है। इसके सिवा एक बात और बताता हूँ, सुनो। यह महत्त्वपूर्ण शास्त्र परम यशरूप परमात्माकी प्राप्ति करानेवाला है, इसे शिष्योंको अवश्य पढ़ाना चाहिये। परमात्मासे भिन्न यह सारा दृश्य-प्रपञ्च वाणीका विकारमात्र है- ऐसा विद्वानलोग कहते हैं। इस योगशास्त्रमें यह परमात्मविषयक सम्पूर्ण ज्ञान प्रतिष्ठित है; इसे जो जान लेते हैं, वे अमर हो जाते हैं। राजन्। केवल सकाम पुण्यकर्मके द्वारा सत्यस्वरूप ब्रह्मको नहीं जीता जा सकता। अथवा जो हवन या यज्ञ किया जाता है, उससे भी अज्ञानी पुरुष अमरत्वको नहीं पा सकता। तथा अन्तकालमें उसे शान्ति भी नहीं मिलती। सब प्रकारकी चेष्टासे रहित होकर एकान्तमें उपासना करें, मनसे भी कोई चेष्टा न होने दें। तथा स्तुतिसे प्रेम और

निन्दासे क्रोध न करें। राजन्। उपर्युक्त साधन करनेसे मनुष्य यहाँ ही ब्रह्मका साक्षात्कार करके उसमें स्थित हो जाता है। विद्वन्। वेदोंमें क्रमश: विचार करके जो मैंने जाना है, वही तुम्हें बता रहा हूँ।

सनत्सुजात कहते हैं- जो प्रसिद्ध ब्रह्म है वह शुद्ध, महान् ज्योतिर्मय, देदीप्यमान एवं विशाल यशरूप है; सब देवता उसीकी उपासना करते हैं। उसीके प्रकाशसे सूर्य प्रकाशित होते हैं, उस सनातन भगवान्‌का योगीजन साक्षात्कार करते हैं। शुद्ध सच्चिदानन्द परब्रह्मसे हिरण्यगर्भकी उत्पत्ति होती है, तथा उसीसे वह वृद्धिको प्राप्त होता है। वह शुद्ध ज्योतिर्मय ब्रह्म ही सूर्य आदि सम्पूर्ण ज्योतियोंके भीतर स्थित होकर प्रकाश कर रहा है; वह दूसरोंसे प्रकाशित न होकर स्वयं ही सबका प्रकाशक है, उसी सनातन भगवान्‌का योगीजन साक्षात्कार करते हैं। शुद्ध सच्चिदानन्द परब्रह्मसे हिरण्यगर्भकी उत्पत्ति होती है, तथा उसीसे वह वृद्धिको प्राप्त होता है। वह शुद्ध ज्योतिर्मय ब्रह्म ही सूर्य आदि सम्पूर्ण ज्योतियोंके भीतर स्थित होकर प्रकाश कर रहा है; वह दूसरोंसे प्रकाशित न होकर स्वयं ही सबका प्रकाशक है उसी सनातन भगवान्‌का योगीजन साक्षात्कार करते हैं। परमात्मासे आप अर्थात् प्रकृति उत्पन्न हुई, प्रकृतिसे सलिल यानी महतत्त्व प्रकट हुआ, उसके भीतर आकाशमें सूर्य और चन्द्रमा- ये दो देवता आश्रित हैं। जगत्‌को उत्पन्न करनेवाले ब्रह्मका जो स्वयंप्रकाश स्वरूप है, वही सदा सावधान रहकर इन दोनों देवताओं तथा पृथ्वी और आकाशको धारण करता है। उस सनातन भगवानका योगीजन साक्षात्कार करते हैं। उक्त दोनों देवताओंको, पृथ्वी और आकाशको, सम्पूर्ण दिशाओंको तथा इस विश्वको वह शुद्ध ब्रह्म ही धारण करता है। उसीसे दिशाएँ प्रकट हुई हैं, उसीसे सरिताएँ प्रवाहित होती हैं और उसीसे बड़े-बड़े समुद्र प्रकट हुए हैं। उस सनातन भगवान्‌का योगीजन साक्षात्कार करते हैं। स्वयं विनाशशील होनेपर भी जिसका कर्म भोगे बिना नष्ट नहीं होता, उस देहरूपी रथके मनरूपी चक्रमें जुते हुए इन्द्रियरूपी घोड़े, बुद्धिमान दिव्य एवं अजर नित्य नवीन जीवात्माको जिस परमात्माकी ओर ले जाते हैं, उस सनातन भगवानका योगीजन साक्षात्कार करते हैं।

उस परमात्माका स्वरूप किसी दूसरेकी तुलना में नहीं आ सकता, उसे कोई चर्म-चक्षुओंसे नहीं देख सकता। जो निश्चयात्मिका बुद्धिसे, मनसे और हृदयसे उसे जान लेते हैं, वे अमर हो जाते हैं; उस सनातन भगवान्‌का योगीजन साक्षात्कार करते हैं। दस इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि- इन बारहका समुदाय जिसके भीतर मौजूद है तथा जो परमात्मासे सुरक्षित है, उस अविद्यानामक नदीके विषयरूप मधुर जलको देखने और पीनेवाले लोग संसारमें भयंकर दुर्गतिको प्राप्त होते हैं; इससे मुक्त करनेवाले उस सनातन परमात्माका योगीजन साक्षात्कार करते हैं। जैसे शहदकी मक्खी आधे मासतक मधुका संग्रह करके फिर आधे मासतक उसे पीती रहती है, उसी प्रकार यह भ्रमणशील संसारी जीव पूर्वजन्म के संचित कर्मको इस जन्ममें भोगता है। परमात्माने समस्त प्राणियोंके लिये उनके कर्मानुसार अन्नकी व्यवस्था कर रक्खी है; उस सनातन भगवान्‌का योगीलोग साक्षात्कार करते हैं जिसके विषयरूपी पत्ते सुवर्णके समान मनोरम दिखायी पड़ते हैं, उस संसाररूपी अश्वत्थ वृक्षपर आरूढ़ होकर पंखहीन जीव कर्मरूपी पंख धारणकर अपनी वासनाके अनुसार विभिन्न योनियोंमें पड़ते हैं; किंतु जिसके ज्ञानसे जीवोंकी मुक्ति होती है, उस सनातन परमात्माका योगीजन साक्षात्कार करते हैं। पूर्ण परमेश्वरसे पूर्ण चराचर प्राणी उत्पन्न होते हैं, पूर्णसे ही वे पूर्ण प्राणी चेष्टा करते हैं, फिर पूर्णसे ही पूर्ण ब्रह्ममें उनका उपसंहार होता है तथा अन्तमें एकमात्र पूर्ण ब्रह्म ही शेष रहता है; उस सनातन परमात्माका योगीलोग साक्षात्कार करते हैं। उस पूर्ण ब्रह्मसे ही वायुका आविर्भाव हुआ है और उसीमें उसकी स्थिति है। उसीसे अग्नि और सोमकी उत्पत्ति हुई है, तथा उसीमें इस प्राणका विस्तार हुआ है। कहाँतक गिनावें, हम अलग-अलग वस्तुओंका नाम बतानेमें असमर्थ हैं; तुम इतना ही समझो कि सब कुछ उस परमात्मासे ही प्रकट हुआ है। उस सनातन भगवान्‌का योगीलोग साक्षात्कार करते हैं।

अपानको प्राण अपनेमें लीन कर लेता है, प्राणको चन्द्रमा, चन्द्रमाको सूर्य और सूर्यको परमात्मा अपनेमें लीन कर लेता है; उस सनातन परमेश्वरका योगीलोग साक्षात्कार करते हैं। इस संसार-सलिलसे ऊपर उठा हुआ हंसरूप परमात्मा अपने एक अंशको ऊपर नहीं उठा रहा है; यदि उसे भी वह ऊपर उठा ले तो सबका बन्ध और मोक्ष सदाके लिये मिट जाय। उस सनातन परमेश्वरका योगीजन साक्षात्कार करते हैं। हृदयदेशमें स्थित वह अङ्गुष्ठमात्र अन्तर्यामी परमात्मा लिङ्गशरीरके सम्बन्धसे जीवात्माके रूपमें सदा जन्म-मरणको प्राप्त होता है। उस सबके शासक, स्तुतिके योग्य, सर्वसमर्थ, सबके आदिकारण एवं सर्वत्र विराजमान परमात्माको मूढ पुरुष नहीं देख पाते; किंतु योगीजन उस सनातन परमेश्वरका साक्षात्कार करते हैं। कोई साधनसम्पन्न हों या साधनहीन, सब मनुष्योंमें समान रूपसे यह ब्रह्म दृष्टिगोचर होता है। यह बद्ध और मुक्तमें भी समभावसे स्थित है; अन्तर इतना ही है कि इन दोनोंमेंसे जो मुक्त पुरुष हैं, वे आनन्दके मूल स्रोत परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं। उसी सनातन भगवान्‌का योगीलोग साक्षात्कार करते हैं। विद्वान पुरुष ब्रह्मविद्याके द्वारा इस लोक और परलोक दोनोंको व्याप्त करके ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। उस समय उसके द्वारा यदि अग्निहोत्र आदि कर्म न भी हुए हों तो भी वे पूर्ण हुए समझे जाते हैं। राजन्। यह ब्रह्मविद्या तुममें लघुता न आने दे; तथा इसके द्वारा तुम्हें वह प्रज्ञा प्राप्त हो, जिसे धीर पुरुष ही प्राप्त करते हैं। उसी प्रज्ञाके द्वारा योगीलोग उस सनातन परमात्माका साक्षात्कार करते हैं। इस प्रकार परमात्मभावको प्राप्त हुआ महात्मा पुरुष अग्निको अपनेमें धारण कर लेता है। जो उस पूर्ण परमेश्वर को जान लेता है, उसका प्रयोजन नष्ट नहीं होता। (अर्थात् वह कृतकृत्य हो जाता है)। उस सनातन परमात्माका योगीलोग साक्षात्कार करते हैं। कोई मनके समान वेगवाला क्यों न हो, और दस लाख भी पंख लगाकर क्यों न उड़े; अन्तमें उसे हृदयस्थित परमात्मामें ही आना पड़ेगा। उस सनातन परमात्माका योगीजन साक्षात्कार करते हैं। इस परमात्माका स्वरूप देखनेमें नहीं आता; जिनका अन्त:करण अत्यन्त विशुद्ध है, वे ही उसे देख पाते हैं। जो सबके हितैषी और मनको वशमें करनेवाले हैं, तथा जिनके मनमें कभी दु:ख नहीं होता- ऐसे होकर जो संन्यास लेते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं। उस सनातन परमात्माका योगीलोग साक्षात्कार करते हैं। जैसे साँप बिलोंका आश्रय ले अपनेको छिपाये रहते हैं, उसी प्रकार कुछ दम्भी मनुष्य अपनी शिक्षा और व्यवहारकी आड़में अपने गूढ़ पापोंको छिपाये रखते हैं। मूर्ख मनुष्य उनपर विश्वास करके अत्यन्त मोहमें पड़ जाते हैं। और जो यथार्थ मार्ग यानी परमात्माके मार्गमें चलनेवाले हैं, उन्हें भी वे भयमें डालनेके लिये मोहित करनेकी चेष्टा करते हैं; किंतु योगीजन भगवत्कृपासे उनके फंदेमें न आकर उस सनातन परमात्माका ही साक्षात्कार करते हैं। राजन् मैं कभी किसीके असत्कारका पात्र नहीं होता। न मेरी मृत्यु होती है न जन्म, फिर मोक्ष तो हो ही कहाँसे सकता है? (क्योंकि मैं नित्यमुक्त ब्रह्म हूँ।) सत्य और असत्य सब कुछ मुझ सनातन सम ब्रह्ममें स्थित है। एकमात्र मैं ही सत् और असत्‌की उत्पत्तिका स्थान हूँ। मेरे स्वरूपभूत उस सनातन परमात्माका योगीजन साक्षात्कार करते हैं। परमात्माका न तो साधु कर्मसे सम्बन्ध है और न असाधु कर्मसे। यह विषमता तो देहाभिमानी मनुष्योंमें ही देखी जाती है। ब्रह्मका स्वरूप सर्वत्र समान ही समझना चाहिये। इस प्रकार ज्ञानयोगसे युक्त होकर उस आनन्दमय ब्रह्मको ही पानेकी इच्छा करे। उस सनातन परमात्माका योगीलोग साक्षात्कार करते हैं। इस ब्रह्मवेत्ता पुरुषके हृदयको निन्दाके वाक्य संतप्त नहीं करते। मैंने स्वाध्याय नहीं किया, अग्निहोत्र नहीं किया इत्यादि बातें भी उसके मनको क्लेश नहीं पहुँचातीं। ब्रह्मविद्या शीघ्र ही उसे वह स्थिर बुद्धि प्रदान करती है, जिसे धीर पुरुष ही प्राप्त करते हैं। उस बुद्धिके द्वारा जो प्राप्त होने योग्य है, उस सनातन परमात्माका योगीजन साक्षात्कार करते हैं।

इस प्रकार जो समस्त भूतोंमें परमात्माको निरन्तर देखता है, वह ऐसी दृष्टि प्राप्त होनेके अनन्तर अन्यान्य विषय-भोगोंमें

आसक्त मनुष्योंके लिये क्या शोक करे? जैसे सब ओर जलसे लबालब भरे बड़े जलाशयके प्राप्त होनेपर जलके लिये अन्यत्र जानेकी आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार आत्मज्ञानीके लिये सम्पूर्ण वेदोंकी जरूरत नहीं रह जाती। यह अङ्गुष्ठमात्र अन्तर्यामी परमात्मा सबके हृदयके भीतर स्थित है, किंतु किसीको दिखायी नहीं देता। वह अजन्मा, चराचरस्वरूप और दिन-रात सावधान रहनेवाला है। जो उसे जान लेता है, वह विद्वान परमानन्दमें निमग्न हो जाता है।

धृतराष्ट्र। मैं ही सबकी माता और पिता हूँ, मैं ही पुत्र हूँ और सबका आत्मा भी मैं ही हूँ। जो है, वह भी और जो नहीं है, वह भी मैं ही हूँ। भारत। मैं ही तुम्हारा बूढ़ा पितामह, पिता और पुत्र भी हूँ। तुम सब लोग मेरे ही आत्मामें स्थित हो; फिर भी न तुम हमारे हो और न हम तुम्हारे हैं (क्योंकि आत्मा एक ही है)। आत्मा ही मेरा स्थान है और आत्मा ही मेरा जन्म (उद्गम) है। मैं सबमें ओतप्रोत और अपनी अजर (नित्य-नूतन) महिमामें स्थित हूँ। मैं अजन्मा, चराचरस्वरूप तथा दिन-रात सावधान रहनेवाला हूँ। मुझे जानकर विद्वान पुरुष परम प्रसन्न हो जाता है। परमात्मा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म तथा विशुद्ध मनवाला है, वही सब भूतोंमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान है। सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयकमलमें स्थित उस परम पिताको विद्वान पुरुष ही जानते हैं।

## १२) संजय का कौरवों की राजसभा में युधिष्ठिर का सन्देश सुनाना

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय इस प्रकार सनत्सुजात और विदुर के उपदेश सुनते-सुनते महाराज धृतराष्ट्र की सारी रात बीत गयी। प्रात: होते ही कौरवों की राजसभा में भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, शल्य, जयद्रथ, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, बाहलीक, विदुर, युयुत्सु, दुशासन, शकुनि, दुर्मुख, दु:सह, कर्ण, उलूक, विविशति इत्यादि सभा में एकत्रित हुये वे सभी संजयद्वारा लाये हुये युधिष्ठिर का सन्देश सुनना चाहते थे। सभी संजय की प्रतीक्षा कर रहे थे। संजय आता है। राजदरबार के सेवक ने कहा महाराज की जय हो धृतराष्ट्र बोला संजय को बुलाओ। संजय ने आकर महाराज को प्रणाम किया, महाराज की जय हो। धृतराष्ट्र बोला वहां से क्या प्रस्ताव लेकर आये हो संजय? संजय बोला महाराज युधिष्ठिर ने वृद्ध, प्रतिष्ठित सभी व्यक्तियों को सादर प्रणाम प्रेषित किया है और अनुजों के लिये स्नेह का उपहार भेजा है महाराज। दुर्योधन बोला काम की बात करो राज सारथी संजय। शकुनि बोला धैर्य से काम लो प्रिय दुर्योधन। दुर्योधन बोला मेरे पास धैर्य का कोष रिक्त हो चुका है मामाश्री। मैं गदा से काम लेने की भाषा जानता हूं। भीष्म क्रोधित हो बोले गदायें तो उधर भी है पुत्र दुर्योधन। दुर्योधन बोला जानता हूँ पितामह किन्तु इन पांडवों ने बारह वर्ष का वन स्वीकार नहीं किया तब तो गदायें टकरा जायेगी। कृपाचार्य बोले पहिले यह तो सुनो युवराज कि पांडु पुत्रों ने क्या सन्देश भेजा है? दुर्योधन बोला आप जिस युद्ध को टालना चाहते है कुलगुरु, वो टल नहीं सकता। क्योंकि युद्ध को मैं टलने नही दूंगा। यह पांडव केवल मेरी गदा और मेरे मित्र कर्ण के बाणों की भाषा समझनेवाले लोग है। सुनाओ राज सारथी संजय उपलब्य से क्या समाचार लेकर आये हो।

संजय बोला हे महाराजाधिराज मैंने आपका सन्देश ज्येष्ठ कुन्तीपुत्र को दिया। धृतराष्ट्र ने पूछा वहां कौन-कौन उपस्थित थे? संजय बोले पांडुपुत्रों के अतिरिक्त विराट नरेश थे, पांचाल नरेश महाराज द्रुपद थे। युवराज धृष्टद्युम्न, शिखंडी और वासुदेव श्रीकृष्ण भी। धृतराष्ट्र बोले तो युधिष्ठिर ने क्या कहा? संजय बोले पहिले मैं वो बताता हूं महाराज जो कुन्तीपुत्र अर्जुन ने युवराज दुर्योधन के लिये कहलवाया है। धृतराष्ट्र बोला युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर या बिना युधिष्ठिर की आज्ञा बिना। संजय बोला ज्येष्ठ कुन्तीपुत्र ने उन्हे टोका तो नहीं महाराज। धृतराष्ट्र बोला तो फिर बताओ कि मेरे अनुज पुत्र अर्जुन ने मेरे पुत्र दुर्योधन के लिये क्या सन्देश भेजा है? संजय बोला अर्जुन ने मुझसे कहा था कि हे संजय उस असभ्य दुर्योधन को उस सूतपुत्र कर्ण के सामने कहना कि यदि उसने इन्द्रप्रस्थ नहीं लौटाया तो कायर अपनी सभ्यता और

अहंकार के कारण वो रणभूमि में किसी सूखे हुये वृक्ष की भांति कटकर गिरा हुआ दिखाई देगा। इसलिये हे संजय उस मूर्ख को यह समझाना कि शान्ति के मार्ग पर चलना सीखे। महादेव की सौगन्ध जब मेरे बाणों की वर्षा होगी तो अग्नि बरसेगी और वो अग्नि कुरुसेना और सेनापतियों को जलाकर यो भस्म कर देगी जैसे ग्रीष्म ऋतु सूखी घास को जलाकर राख कर देती है। तब दुर्योधन उत्तेजित हो तमतमा कर बोला ऐ संजय तुम सन्देश सुना रहे हो या ज्येष्ठ कुरु पुत्र दुर्योधन को डराने का प्रयत्न कर रहे हो। कृपाचार्य बोले ज्येष्ठ कुरुपुत्र तो गंगापुत्र भीष्म है युवराज। दुर्योधन बोला यह भी जानता हूं कुलगुरु। ज्येष्ठ कुरुपुत्र तो गंगापुत्र पितामह भीष्म है। मैं क्षमा चाहता हूं और साथ में यह घोषणा भी करता हूं कि यदि पिताश्री ने किसी को मेरा उत्तर लेकर अर्जुन के पास नहीं भेजा तो मैं स्वयं उपलव्य जाकर उसकी वह असभ्य जीभ खींच लूंगा जो उसे व्यंग बोल बोलती है और उसकी प्रत्यन्चा बना लूंगा। धृतराष्ट्र बोला धीरज रखो पुत्र धीरज। दुर्योधन बोला धीरज और धैर्य जैसे शब्द मेरे लिये नहीं बने है पिताश्री। संजय ने फिर से कहना आरम्भ किया जो काल के गाल मे, मन्द बुद्धि, महामूढ़ सूतपुत्र सदा ही मुझसे युद्ध करने के लिये अपनी डींग हांकते रहता है उस कटुभाषी दुरात्मा कर्ण को सुनाकर कहना, और जो अन्य राजा लोग पांडवों के साथ युद्ध करने के लिये बुलाये गये है उन्हें भी सुनाकर मेरा सन्देश कहना जिससे मन्त्रियों सहित वह पापात्मा दुर्योधन भी सुन सके कि गाण्डीवधारी अर्जुन युद्ध के लिये उत्सुक भी है और प्रस्तुत भी। अर्जुन ने आंखें निकाल कर कहा है। यदि दुर्योधन हमारा इन्द्रप्रस्थ लौटाने के लिये तैयार नहीं तो अवश्य ही धृतराष्ट्र पुत्रों का कोई ऐसा पापकर्म बन गया है जिसका फल उन्हे भोगना शेष है। यदि दुर्योधन यही चाहता है कि भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, वासुदेव कृष्ण, सात्यकि, द्यृष्टद्युम्न, शिखंडी, अपने संकल्पमात्र से पृथ्वी एवं आकाश को भस्म करनेवाले महाराज युधिष्ठिर के साथ युद्ध हो तो फिर ठीक है। इससे तो पांडवों का मनोरथ पूर्ण होगा। पांडवों के हित की दृष्टि से आपको सन्धि करने की कोई आवश्यकता नहीं है। फिर तो युद्ध ही होने दे। महाराज युधिष्ठिर तो नम्रता, सरलता, तप, दम, धर्मरक्षा और बल इन सभी गुणों से सम्पन्न है। वे बहुत दिनों से कष्ट उठाते हुये भी सत्य ही बोलते है तथा आप लोगों के कपट व्यवहार को सहन कर रहे हैं परन्तु जिस समय वे अपने संचित क्रोध को आप पर छोडेंगे उस समय आप लोगों को पछताना पडेगा। जिस समय भीम क्रोधवश अपना विष उगलेगा उस समय दुर्योधन को उसके साथ युद्ध करने पर पश्चाताप होगा। जिस प्रकार सूखी घास से बनी झौंपडिया आग से जलकर खाक हो जाती है वैसी ही दशा कौरवों की होगी। जिस प्रकार बिजली गिरने से खेत नष्ट हो जाता है उसी प्रकार अपनी विशाल सेना वाहिनी को नष्ट भ्रष्ट होते हुये देखेगा दुर्योधन। दुर्योधन को युद्ध छेड़ने के लिये पछताना पडेगा। जब वीरवर नकुल युद्ध स्थल में कौरव वीरों के सिरों का ढेर लगा देगा, जब सत्यवादी समस्त धर्मों का आचरण करनेवाला फुर्तीला सहदेव शत्रुओं का संहार करता हुआ शकुनि पर आक्रमण करेगा, जब द्रौपदी के रथ युद्ध विशारद पुत्रों को कौरवों से युद्ध करते देखेगा दुर्योधन, जब शूरवीर महान धनुर्धर, कृष्ण के समान ही बली अभिमन्यु अपने अस्त्रों-शस्त्रों से सुसज्जित हो मेघों के समान बाण वर्षा कर तुम लोगों को संतप्त करेगा उस समय दुर्योधन इस रण करने के लिये पछतायेगा। जिस समय वृद्ध महारथी महाराज विराट और पांचाल नरेश अपनी-अपनी वाहिनियों सहित रण में सुसज्जित होकर धृतराष्ट्र पुत्रों पर आक्रमण करेंगे तब दुर्योधन को अपनी भूलों का एहसास होगा और पछतायेगा। जब कौरवों के अग्रण्य सन्त शिरोमणि महात्मा पितामह भीष्म शिखंडी से युद्ध करेंगे तो उन्हे पराजित होते देख दुर्योधन शोक में डूबेगा। जब अतुल तेजस्वी द्यृष्टद्युम्न पांडवों का सेना नायक अपने तीखे बाणों से धृतराष्ट्र पुत्रों को पीडित कर द्रोणाचार्य पर आक्रमण करेगा उस समय दुर्योधन की क्या दशा होगी? सोमवंश में श्रेष्ठ यादव महाबलि सात्यकि जिस सेना का नेता हो तो शत्रु उसका वेग नहीं सह सकते। तुम दुर्योधन से जाकर कहना अब तुम राज्य

हडपने की आशा छोड दो क्योंकि हमने शिनि के पौत्र युद्ध में अद्वितीय रथी, महारथी सात्यकि को अपना साथी बना लिया है। वह सर्वथा निर्भय और अस्त्र-शस्त्र विद्या में कुशल, निपुण व पारंगत है। जिस समय दुर्योधन कृष्ण को उनके दिव्य पांचजन्य शंख, उनके रथ से जुते घोडे, अक्षय तुणीर, और मेरे देवदत्त शंख के साथ मुझे युद्ध में देखेगा तो उसके छक्के छूट जायेंगे। जिस समय युद्ध करने के लिये एकत्रित हुये उन लुटेरों को नष्ट कर नवीन युग को प्रवृत्त करने के लिये मैं अग्नि सदृश प्रज्वलित हो कौरवों को भस्म करने का उद्योग करूंगा उस समय पुत्रोंसहित महाराज धृतराष्ट्र को बडा कष्ट होगा। दुर्योधन का सारा गर्व गलित हो जायेगा और अपने भाई, सेना तथा सेवकों के सहित राज्य से भ्रष्ट होकर वह मन्द मति हमारे हाथों से मारा जायेगा। मैंने वज्रधर इन्द्र से यह वर मांगा था कि कृष्ण हमारे सहायक हो। अर्जुन ने बताया एक समय की बात है कि पूर्वान्ह के समय वह जप कर रहा था तब एक ब्राह्मण ने आकर पूछा अर्जुन तुम्हे अपने शत्रुओं के साथ युद्ध करना है, दुष्कर्म करना है तुम क्या चाहते हो? उच्चैश्रवा घोडे पर सवार हो वज्र हाथ में धारण कर इन्द्र तुम्हारे शत्रुओं का नाश करते आगे-आगे चले या सुग्रीव आदि घोडों से जुते हुये दिव्य रथ पर सवार हो वासुदेव कृष्ण तुम्हारी रक्षा करते हुये पीछे पीछे चले। उस समय मैंने वज्रपाणि इन्द्र को छोडकर इन डाकुओं का वध करने के लिये सहायक रूप में कृष्ण का वरण किया। अब लगता है कि यह देवताओं का ही किया हुआ विधान है। कृष्ण भले ही युद्ध न करे फिर भी यदि वे किसी का मन से जय का अभिनन्दन करे तो शत्रु अवश्य परास्त होगा भले ही देवता और इन्द्र भी उसके शत्रु हो फिर मनुष्यों की तो बात ही क्या? इन्ही वासुदेव कृष्ण ने सौम देश के स्वामी नभचारी महा भयंकर मायावी राजा शाल्व से युद्ध किया था और सौम के दरवाजे पर ही शाल्व द्वारा छोडी गई शत्घनी को हाथों से पकड लिया था फिर भला इनके वेग को कौन मनुष्य सहन कर पायेगा? मैं राज्य प्राप्ति की इच्छा से पितामह भीष्म, पुत्र सहित आचार्य द्रोण और कुलगुरु कृपाचार्य को प्रणाम कर युद्ध करूंगा। कोई भी पापात्म इन पांडवों से युद्ध में लडेगा उसका विनाश धर्मत: निश्चित है। इसलिये हे संजय मैं तुम्हे स्पष्ट बता देता हूं कि धृतराष्ट्र के पुत्रों का जीवन यदि बच सकता है तो युद्ध से दूर रहनेपर ही सम्भव है, युद्ध करने पर तो कोई भी नहीं बचेगा। मेरे लिये यह बात निश्चित है कि युद्धभूमि में कर्ण और धृतराष्ट्र पुत्रों को मारकर कौरवों का सारा राज्य जीत लूंगा। अजात शत्रु महाराज युधिष्ठिर भी शत्रुओं के संहार में सफल है वैसे ही अदृष्ट के ज्ञाता वासुदेव श्रीकृष्ण भी। इसमें कोई शंका या सन्देह नहीं है। मुझे तो इस युद्ध का भावी रूप ऐसा ही दिखाई देता है। युद्ध करने पर धृतराष्ट्र पुत्र जीवित नही बचेंगे जैसे प्रज्वलित अग्नि गहन वन को जला डालती है मैं अपनी अस्त्र विद्या के विभिन्न साधनों और तरीकों से जैसे स्थूणाकर्ण, पाशुतापास्त्र, ब्रह्मास्त्र और इन्द्रास्त्र आदि अस्त्रों का प्रयोग कर किसी को भी शेष नहीं छोडूंगा संजय तुम उन लोगों से स्पष्ट कह देना मेरा यह दृढ़ निश्चय है और ऐसा करने पर ही मुझे शान्ति मिलेगी। उन्हे वैसा ही करना चाहिये जो वयोवृद्ध भीष्म, कुलगुरु कृपाचार्य, आचार्य द्रोण, अश्वत्थामा और महात्मा विदुर सम्मति दे। उनकी सम्मति से ही कौरव जिन्दा रह सकते है। तब दुर्योधन आवेश में उठकर बोला संजय यह अनर्गल सन्देश बन्द करो। ये तो सिर्फ धमकियां है, कोई सन्देश नहीं। तब शान्तनुनन्दन गंगापुत्र भीष्म दुर्योधन से बोले वत्स दुर्योधन मेरी बात ध्यान से सुनो। तुमने धर्म और अर्थ दोनों से ही अपना नाता तोड लिया है। तुम ही कुरुवंश की पतनशीलता का कारण भी हो तुम ही। अब भी यदि तुमने अपनी आंखे नहीं खोली तो समझ लो पुत्र कि अपने महारथियों के शव देखना तुम्हारी नियति बन चुकी है। तुम वासुदेव कृष्ण और अर्जुन को ठीक से पहिचानते नहीं हो। ये वे ही है जो नर नारायण थे अब इस धरा पर अवतरित हुये है मैं तुम्हे उनका वृतान्त बताता हूं।

एक समय गुरु बृहस्पति, शुक्राचार्य, देवराज इन्द्र, देवगण ब्रह्मा के पास गये उसी समय दो प्राचीन ऋषि अपने तेज से

सबके चित्त एवं तेज को हर सब को लांघकर चले गये तब बृहस्पति ने ब्रह्मा से पूछा हे ब्रह्मन ये दोनों कौन है? जो आपकी उपासना, अर्चना, अभ्यर्थना किये बिना ही चले गये तब ब्रह्मा बोले ये महा पराक्रमी प्रबल नर और नारायण है जो अपने तेज से पृथ्वी और स्वर्ग को प्रकाशित करते हैं। इन्होंने अपने कर्म से सम्पूर्ण लोकों के आनन्द को बढाया है। इन्होने परस्पर अभिन्न होते हुये भी असुरों का विनाश करने हेतु दो शरीर धारण किये हुये हैं। वे अत्यन्त बुद्धिमान और शत्रुओं को संतप्त करनेवाले है। समस्त देवता तथा गन्धर्व इनकी पूजा करते है। इस युद्ध में अर्जुन और कृष्ण एकत्र हैं ये ही दोनों नर नारायण नाम के प्राचीन देवता है। इन्हे इस संसार में देवता, इन्द्र और असुर भी नहीं जीत सकते। इनमें कृष्ण नारायण है और नर अर्जुन। जिस समय तुम कृष्ण को शंख, चक्र, गदा धारण किये और अनेकों शस्त्रों-अस्त्रों से सज्जित भयंकर गाण्डीव धनुष लिये अर्जुन को देखोगे तो तुम्हे मेरी बात का स्मरण होगा कि इनसे कौरवों का अन्त होनेवाला है। तुम्हारी बुद्धि अर्थ और धर्म से भ्रष्ट हो गई है। हे पुत्र दुर्योधन तनिक सोचकर देखो, विचारो। तुम तो इन तीन व्यक्तियों की ही बाते सुनते हो। उनमें से पहला यह अधम जाति का सूतपुत्र गुरु परशुराम द्वारा शापित अंगराज कर्ण और दूसरा है गान्धार नरेश कपटी, सुबल पुत्र शकुनि तथा तीसरा यह क्षुद्र बुद्धि पापात्मा दुराचारी तुम्हारा अनुज दुशासन।

इस पर कर्ण बोल उठा पितामह आप जैसी बातें कह रहे है वह आप जैसे वयोवृद्ध के मुख से अच्छी नहीं लगती। यूं भी भरी सभा में मेरी निन्दा करना क्या आवश्यक था? आदरणीय पितामह क्षत्रिय धर्म के पालन के अतिरिक्त मैंने और किया ही क्या? कभी अपने धर्म का तो परित्याग नहीं किया। मेरा ऐसा कौनसा दुराचार है जिसके कारण आप मेरी निन्दा कर रहे है? मैंने दुर्योधन का कभी कोई अनिष्ट नहीं किया। मैंने तो यही शपथ ली थी ना कि मैं अपने मित्र दुर्योधन के शत्रु पांडवों का वध करूंगा। अब आप ही बताये मैं यह शपथ नहीं लेता तो क्या करता? मैं कूटनीति की मधुर भाषा नहीं जानता पितामह क्योंकि मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं। यौद्धा हूं; मैं केवल यौद्धा और धनुष बाण की भाषा ही जानता हूं, समझता हूं। हे पितामह यह बात आप ध्यान से सुन लीजिये मेरी निष्ठा कुरुवंश के प्रति नहीं है। मेरी निष्ठा केवल महाराज और दुर्योधन के प्रति है।

कर्ण की बात सुनकर भीष्म बोले निष्ठा जैसे शब्दों का तरोड मरोड कर दुरूपयोग मत करो अंगराज कर्ण। तुम तो जिस छतनार वृक्ष की छाया में बैठे हो उसी की जडे काट रहे हो और अपनी इस अनिष्ठा को निष्ठा में कहे जा रहे हो। ना भडकाओ अपने मित्र दुर्योधन को ना भडकाओ। तुम हो ही क्या? हम सब मिलकर भी अर्जुन का सामना नहीं कर सकते। उस विराट युद्ध में तुम भी थे और मैं भी था और तुम्हारा यह मित्र दुर्योधन भी था और आज जिस सभा में बैठकर ये डींगे मार रहा है कि अर्जुन की जिव्हा काट कर अपने धनुष की प्रत्यन्चा बना लेता। हे महाराज मेरी विनती सुनिये यह कर्ण पांडवों के सोलहवें अंश के भी बराबर नहीं है। तुम्हारे दुष्ट पुत्रों को जो फल मिलनेवाला है वह सब इस दुष्टबुद्धि सूतपुत्र की ही करतूत है। तुम्हारा यह मन्दमति पुत्र दुर्योधन भी इसी का बल पाकर पांडवों का तिरस्कार कर रहा है। पांडवों ने मिलकर, अलग-अलग जैसे दुष्कर्म किये है वैसा इस सूतपुत्र ने कौनसा पराक्रम किया है? जिस समय अर्जुन ने अकेले ही समस्त कौरवों पर आक्रमण कर इन्हे परास्त किया और इनके वस्त्र छीन लिये तो उस समय यह क्या कहीं बाहर गया था? गन्धर्वों के साथ घोष यात्रा में जब तुम्हारे पुत्र दुर्योधन को बन्दी कर लिया था तो उस समय यह कहां था? अब तो बडा बैल की तरह गरज रहा है। वहां भी प्रिय भीम और अर्जुन ने ही मिलकर गन्धर्वों को पराजय किया। हे भरतश्रेष्ठ ये बडा ही बकवादी है। इसकी सब बातें मिथ्या है। यह तो धर्म और अर्थ दोनों को ही चौपट कर गर्त में डाल देनेवाला है। दुर्योधन की आत्मा में घुसा हुआ यह शकुनि, कर्ण और दुशासन का त्रिशूल निकाल फेंकिये। यह युद्ध की बातें तो बहुत करता है परन्तु युद्ध करना और बात है महाराज। यदि आप चाहते है आपके पुत्रों की आयु लम्बी हो तो पांडवों को उनका इन्द्रप्रस्थ लौटा दीजिये।

दुर्योधन चिल्लाकर उठ बैठा और बोला नहीं पितामह नहीं। पहिले वे बारह वर्ष का वनवास स्वीकार करे और तब हमारे पास आये। धृतराष्ट्र ने पूछा आपके विचार में हमें क्या करना चाहिये आचार्य द्रोण?

द्रोणाचार्य बोले मैं पितामह गंगापुत्र भीष्म से सहमत हूं। यदि महाराज युद्ध का आदेश देंगे तो युद्ध अवश्य होगा किन्तु मेरे मतानुसार गंगापुत्र भीष्म का प्रस्ताव स्वीकारणीय है। संसार की कोई भी सेना पांडवों की सेना को नहीं हरा सकती जिसमें अर्जुन जैसा यौद्धा युद्ध कर रहा हो। जिसके पक्ष में भीम की गदा हो, जिसके हाथ में युधिष्ठिर का भाला हो। जो लोग अर्थ और काम के ही गुलाम हैं उनकी बातें तो कभी नहीं माननी चाहिये। मैं तो युद्ध से पहिले पांडवों से सन्धि करना ही अच्छा समझता हूं। अर्जुन के समान तीनों लोकों में कोई धनुर्धर नहीं है। आचार्य के कथन पर दुर्योधन चिढ गया और क्रोधित हो बोला गुरुवर यदि हमारे शिबिर में आप जैसे यौद्धा हो और पांडवों के शुभ चिन्तक होंगे तब तो हम युद्ध करने से पहिले ही हार जायेंगे। दुर्योधन का कथन आचार्य द्रोण को बहुत ही बुरा लगा और वे क्रोध से लाल-लाल आंखे कर उठ खडे हो बोले जब हम सभा में बोल ही नहीं सकते, हमारा मत देने की ही स्वतन्त्रता नहीं है महाराज तो फिर हमारा इस राजसभा में होनेका कोई अर्थ या तात्पर्य क्या है? मुझे आज्ञा दीजिये मैं सभा छोडकर जा रहा हूं महाराज। जो शिष्य अपने गुरु का आदर करना नहीं जानता उसका तो कोई भविष्य है ही नहीं महाराज। जब आप आदेश देंगे तो रणभूमि में अवश्य आ जाऊंगा और उस अर्जुन के विरुद्ध युद्ध करूंगा जो मेरा सबसे प्रिय शिष्य है। द्रोणाचार्य सभा छोडकर जाने के लिये उद्यत हुये तभी भीष्म ने पुकार कर कहा आचार्य मेरे हस्तिनापुर को छोडकर ना जाइये। धृतराष्ट्र बोले मैंने आपका विचार जान लिया है आचार्य। विराजिये।

धृतराष्ट्र ने भीष्म और द्रोणाचार्य के कथन पर कोई ध्यान नहीं दिया और संजय से बोले अर्जुन तो अग्नि शिखर है संजय। उसके कहे से क्या मन मैला करना? तुम तो यह बताओ कि स्वयं धर्मराज युधिष्ठिर ने कौनसा प्रस्ताव दिया? यों भी द्यूत में वत्स अर्जुन नहीं हारा। वो तो स्वयं युधिष्ठिर हारा था तो उनकी ओर से निर्णय लेने का अधिकार भी युधिष्ठिर को ही है। क्या वो भी युद्ध की तैयारी कर रहा है? यदि ऐसा है तो बताओ कि वहां ऐसा कोई भी था जो युद्ध के प्रस्ताव का विरोध कर रहा हो। हमारी विशाल सेना का समाचार पाकर राजा युधिष्ठिर ने क्या कहा? वहां युद्ध के लिये क्या-क्या तैयारियां हो रही है? यह भी बताओ पांडव किसकी सहायता बल पाकर हमारे ऊपर आक्रमण करने की तैयारी कर रहे हैं। संजय बोला वासुदेव कृष्ण के अतिरिक्त वहां कोई भी शान्ति की भाषा नहीं बोल रहा था महाराज। धृतराष्ट्र बोला मैं युधिष्ठिर के रोष और वासुदेव की शान्ति के अतिरिक्त और किसी से नहीं डरता। क्या तुम्हारे कहने का तात्पर्य यही है कि वे युद्ध चाहते हैं। संजय बोला उनके पास दो ही विकल्प है महाराज इन्द्रप्रस्थ या युद्ध। धृतराष्ट्र बोले युद्ध में तो फिर हमारी पराजय निश्चित है। दुर्योधन बोला इन्द्रप्रस्थ दे देना भी पराजय ही है पिताश्री।

संजय बोला महाराज सम्राट युधिष्ठिर की ओर देखकर विराट और पांचाल दोनों ही कुटुम्ब युद्ध के लिये प्रस्तुत है। ग्वालिये और गडरियों से लेकर पांचाल वीर, कैकय और मत्स्य देशों के राजवंश तक सभी युधिष्ठिर का सम्मान करते हैं और अपना समर्थन देने को तैयार हैं। पांडवों के पक्ष में युद्ध करने के लिये वीरवर द्यृष्टद्युम्न, घटोत्कच, भीम, अर्जुन, कृष्ण, नकुल-सहदेव, शिखंडी इत्यादि सभी प्रधान प्रधान यौद्धा है। महाराज विराट, काशीराज उनकी सेना के प्रधान यौद्धा है, अर्जुन पुत्र अभिमन्यु कृष्ण के ही समान और संयम में महाराज युधिष्ठिर के समान भी महावीर यौद्धा है। शिशुपाल पुत्र द्युष्टकेतु, जरासन्ध का पुत्र सहदेव और जयत्सेन भी बडे पराक्रमी है और वे पांडवों की ओर से ही युद्ध करेंगे इस प्रकार पूर्व और उत्तर दिशा के बहुतेरे सभी राजा पांडवों के पक्ष में है जिनकी सहायता से धर्मराज युधिष्ठिर युद्ध की तैयारी कर रहे है। धृतराष्ट्र बोला संजय तुमने जिन राजाओं के बारे में बताया वे सभी बडे ही उत्साही है। अन्य जीव सिंह से डरते है वैसे

मुझे भीम से बहुत डर लगता है। उसके डर से मैं ठीक से सो भी नहीं पाता हूं और रातभर गर्म-गर्म सांसे लेता हुआ जागता रहता हूँ। कुन्तीनन्दन भीम बडा ही असहनशील, कट्टर शत्रुता करनेवाला, उन्मत्त, सदा ही वक्र दृष्टि रखनेवाला, महान गर्जना करनेवाला, बडा ही उत्साही और वेगवान, बडा बली विशाल बाहुवाला है। वह अवश्य ही युद्ध में मेरे अल्पवीर्य पुत्रों को मार डालेगा। उसको स्मरण कर मेरा मन, हृदय धडकने लगता है। वह बाल्यकाल में ही खेल-खेल में मेरे पुत्रों को हाथी की तरह मसल डालता था। जिस समय वह रणभूमि में क्रोधित होगा उस समय वह अपनी गदा, रथ, हाथी, मनुष्य और घोडे सभी को कुचल डालेगा। वह मेरी सेना को तितर-बीतर कर देगा। रणभूमि में गदा लेकर नृत्य सा करता हुआ प्रलय मचा देगा। जिस मगध देश के सम्राट महाबली जरासन्ध ने सारी पृथ्वी अपने वश में कर रखी थी तब भीम ने कृष्ण की सहायता से उसके ही अन्त:पुर में जाकर उसे मार दिया। भीम में अतुल अपार बल है। भीम के बल को भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य सभी जानते है। विदुर ने आरम्भ में ही जो रोना रोया था वो आज सामने आ रहा है। शोक तो मुझे उन लोगों के लिये है जो पांडवो के साथ युद्ध कर मारे जायेंगे। इस समय कौरवों पर जो महान विपत्ति आनेवाली है उसका मुख्य कारण द्यूत ही है, वह दुर्योधन नहीं देख रहा है। मैं बडा ही भयभीत हूँ। ऐश्वर्य और लोभ के कारण ही मुझसे यह महान पाप हो गया। संजय अब तुम ही बताओ मैं क्या करूं? कैसे करूं? कहां जाऊं? ये सब मन्दमति कौरव तो काल के अधीन होकर अपने विनाश की ओर जा रहे है। हाय जब मुझे अपने सौ पुत्रों के मरने पर विवश हो उनकी पत्नियों का करुण क्रन्दन सुनना पडेगा तो मेरी क्या दशा होगी? धृतराष्ट्र युद्ध की विभित्सका देखकर सोचकर चिंतित हो रहा था। संजय युधिष्ठिर ने मुझे कोई असत्य बात नहीं कही। अर्जुन जैसा वीर उसके पक्ष में है इसलिये वह त्रिलोकी का राज्य पाने में भी समर्थ है। रातदिन विचार करने पर भी मुझे अर्जुन जैसा-यौद्धा दिखाई नहीं देता कि जो अर्जुन का सामना कर सके। महाबली कर्ण और आचार्य द्रोण भी उसे रण में जीत ले सन्देह ही है। अर्जुन तो सारे देवताओं को भी जय कर चुका है, पराजय तो उसने कही स्वीकार की ही नहीं इसलिये इन सब कारणों को देखते हुये मुझे मेरी हार निश्चित लगती है। कृष्ण उसके सारथी होंगे तब तो विधाता के रचे हुये सर्व संहारक काल के समान वह सबको पराजय करने में समर्थ होगा। इस युद्ध में सब ओर से भरतवंश पर विनाश का ही आक्रमण होगा।

हे संजय जैसे पांडव लोग विजय के लिये उत्सुक है वैसे ही उनके सभी साथी भी विजय के लिये कटिबद्ध और पांडवों के लिये अपने प्राणों तक उत्सर्ग करने को तैयार है। तुमने जिन-जिन महारथियों के नाम लिये है वो सब महापराक्रमी है। वासुदेव कृष्ण तो जगतसृष्टा है, वह इच्छामात्र से इन्द्र सहित समस्त लोकों को अपने वश में करने में समर्थ है। उनके मन में भी पांडवों की विजय निश्चित है। सात्यकि भी अर्जुन का शिष्य है जिसने सारी धनुर्विद्या अर्जुन से सीखी है। महारथी द्रृष्टद्युम्न भी बडा भारी शस्त्रज्ञ, वह भी हमारे पक्ष के वीरों से युद्ध करेगा। मैं तो सदा ही युधिष्ठिर के कोप और अर्जुन के पराक्रम तथा नकुल-सहदेव और भीम से भयभीत रहता हूँ। युधिष्ठिर सर्व सम्पन्न है और प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी है, फिर ऐसा कौन मूढ़ है जो पतंगे की तरह उसमें गिरकर जलना चाहेगा? मैं तो पांडवों के साथ युद्ध करना अच्छा नहीं समझता हूं। पांडवों के साथ युद्ध करने पर निश्चय ही सारे कुल का नाश सम्भव है। यदि मेरे पुत्र सन्धि के लिये तैयार हो जाये तो सन्धि का प्रयत्न करना चाहिये। संजय बोला आप जैसा सोच रहे है महाराज वह ठीक ही है। मुझे भी समस्त क्षत्रियों का नाश दिखाई दे रहा है। यह कुरु जंगल राज्य तो पैतृक सम्पत्ति है जिस पर कौरवों और पांडवों का समान अधिकार है पर शेष सारी भूमि आपको पांडवों ने ही जीत कर दी है परन्तु आप इसे अपनी विजय की हुई मानने लगे है। जब घोषयात्रा में आपके पुत्र दुर्योधन को गन्धर्व राज चित्रसेन ने बन्दी बना लिया था तब उसकी कैद, उसके चंगुल से महाबली भीम और श्रेष्ठ धनुर्धारी अर्जुन ही उसे छुडाकर लाये थे। सब धनुर्धारियों में अर्जुन श्रेष्ठ है। धनुषों में गांडीव श्रेष्ठ

है। समस्त प्राणियों में श्रीकृष्ण श्रेष्ठ है और ध्वजाओं में वानर चिन्ह से अंकित ध्वजा श्रेष्ठ है। अर्जुन कालचक्र के समान सब जनों का नाश कर डालेगा इसलिये हे भरतश्रेष्ठ यह निश्चय जान ले जिस युधिष्ठिर के सहायक कृष्ण, भीम और अर्जुन है, यह सारी पृथ्वी उसी की है। धृतराष्ट्र बोला यह नेत्रहीन धृतराष्ट्र अपने सौ पुत्रों के शव नहीं देखना चाहता संजय पर क्या करूं? यदि इन्द्रप्रस्थ मेरे पास होता तो मैं अवश्य यह पांडु पुत्रों को दे देता परन्तु इन्द्रप्रस्थ तो पुत्र दुर्योधन के पास है संजय। इसलिये लगता है कि कुरुवंश को अपना यह दुर्भाग्य स्वीकार करना ही पडेगा।

महाराज धृतराष्ट्र के इस प्रकार कहने पर दुर्योधन बोला महाराज आप भयभीत न हो। हमारे विषय में इस तरह चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। हम सभी बहुत ही शक्तिशाली है और शत्रुओं को पराजित कर सकते है। जब पांडव वनवासी थे उस समय उन्हे मिलने वहां बहुत सारे राजा और महारथी एकत्रित हुये थे। वहां पर उन सबों ने आपकी और कौरवों की बहुत निन्दा की तथा पांडवों को उकसा रहे थे कि वे अपना राज्य वापिस लौटा ले। तो हमारे नाश की आशंका से यह बात मैंने पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण और कुलगुरु कृपाचार्य से भी कही थी कि अब पांडव लोग ही राजसिंहासन पर बैठेंगे। कृष्ण तो हम सबका उच्छेद कर युधिष्ठिर को ही कौरवों का एक छत्र सम्राट बनाना चाहते है। ऐसी स्थिति में हमें क्या करना चाहिये? क्या सिर झुका देना चाहिये या डर कर भाग जाना चाहिये? युधिष्ठिर के साथ तो हमारी ही पराजय होगी क्योंकि सभी राजा उन्हीं के साथ है। हम लोगों से वे प्रसन्न नहीं है, कई मित्र भी रूठे हुये है। सब परिवारवाले भी हमसे अप्रसन्न हो निन्दा करते है। मेरी यह बात सुनकर आचार्य द्रोण, गुरु पुत्र अश्वत्थामा, कुलगुरु कृपाचार्य और पितामह भीष्म ने कहा था जिस समय हम लोग युद्ध में खडे होंगे तो शत्रु हमें जीत नहीं सकते। हम में से प्रत्येक अकेला ही इन सारे राजाओं को जीत सकता है। हम उनका गर्व दलित कर देंगे। पहिले तो यह सारी की सारी पृथ्वी इन राजाओं के अधीन थी परन्तु अब यह सब की सब हमारे पास है। हमारे पक्ष में लडने के लिये यहां जो राजा एकत्रित हुये है वे सब भी हमारे सुख-दु:ख में काम आनेवाले हैं। समय आनेपर ये सब मेरे लिये अग्नि में भी प्रवेश करने को तैयार है, समुद्र में भी डूबने को, पिताश्री। आप यह भली भांति निश्चय मान ले। आप संजय के बताने से शत्रुओं के विषय में बढ़-बढ़कर बातें सुनने से विचलित हो रहे है दु:खी हो रहे है। इससे आप इन राजाओं के हंसी के पात्र हो रहे है। इनमें से प्रत्येक राजा अपने आपको पांडवों से युद्ध का सामना करने में समर्थ व सक्षम समझता है। इसलिये आप जिस भय से भयभीत हो गये उसे दूर कीजिये।

पिताश्री अब तो युधिष्ठिर भी मेरे प्रभाव को जानकर भयभीत रहने लगे है। आप भीम को बडा ही बली समझते है यह भी आपका भ्रम मात्र ही है। आपको मेरे बलाबल और प्रभाव का ठीक ठीक पता नहीं है। इस धरा पर गदा युद्ध में मेरे समान कोई नहीं है। न कोई पहिले था और न ही आगे कोई होगा। जिस समय युद्ध भूमि में भीम पर मेरी गदा गिरेगी, उसके सारे अंग चूर-चूर हो जायेंगे और वह मृत्यु को प्राप्त होगा। इसलिये इस युद्ध में भीम का डर ना करे। इसके सिवा भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, प्राग्ज्योतिषपुर के भगदत शल्य और जयद्रथ इत्यादि अन्य राजा लोग जो हमारे पक्ष में है वे प्रत्येक पांडवों से लौहा लेने में समर्थ है। फिर जिस समय यह सब मिलकर उनपर आक्रमण करेंगे तो पांडव यमलोक गये ही समझना। गंगापुत्र पितामह भीष्म के पराक्रम को तो देवता भी नहीं सह सकते। उनको तो मारनेवाला भी इस संसार मे कोई नहीं है। क्योंकि उनके पिता महाराज शान्तनु ने प्रसन्न हो इच्छामृत्यु वरदान दिया था। भरद्वाज पुत्र आचार्य द्रोण पुत्र अश्वत्थामा सहित शस्त्रास्त्र में पारंगत है। कृपाचार्य भी अजेय और अमर है। ये सब महारथी देवताओं के सदृश ही बलवान है, अर्जुन तो इनमें से किसी की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखेगा। मेरा मित्र कर्ण भी भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य के ही समान है। वह अर्जुन का वध करने में सर्व समर्थ है। हे राजन फिर व्यर्थ में ही पांडवों से इतने भयभीत क्यों

है? भीम के मारे जाने पर फिर उनमें से हमारे साथ युद्ध करनेवाला ही कौन है? पांडवों की सेना में ये पांचों पांडव, घृष्टद्युम्न तथा सात्यकि ये सात ही तो प्रधान प्रधान यौद्धा है किन्तु हमारी ओर इनसे भारी-भारी कितने ही है जो मैंने सब आपको बताये। फिर हमारी हार कैसे सम्भव है? आप मेरी सेना की सबलता देखकर अपने भय का त्याग करे।

संजय बोला राजन अर्जुन के रथ की ध्वजा में देवताओं ने माया से अनेक प्रकार की छोटी-छोटी बडी दिव्य और बहुमूल्य मूर्तियां बना दी है। पवनपुत्र हनुमान ने उसपर अपनी मूर्ति स्थापित की है। उस ध्वजा का वितान एक योजन तक फैला हुआ है। दैव विधान से वृक्षादि के कारण भी अर्जुन के रथ की गति में कोई बाधा नहीं आती। उस रथ में चित्ररथ गन्धर्व के उपहार में दिये हुये सफेद घोड़े जुते है जो वायु के समान गतिवाले है। उनकी गति पृथ्वी, आकाश और स्वर्गादि किसी भी स्थान में नहीं रूकती। यदि उनमें से कोई एक अश्व मर भी जाता है तो वर के प्रभाव से उसके स्थान पर नया घोडा उत्पन्न हो स्वत: ही रथ में जुत जाता है। उनकी संख्या में कोई कमी नहीं होती। संजय ने महाराज धृतराष्ट्र को पांडवों के पक्ष के वीरों के विषय में बताया कि वहां पर अन्धक और वृष्णिवंश के यादवों में श्रीकृष्ण प्रधान है तथा चेकितान और सात्यकि भी पराक्रमी वीर वहां थे। वहां पर पांचाल नरेश द्रुपद अपने दस पुत्रों सत्यजित और घृष्टद्युम्न सहित वहां आये हुये है। महाराज विराट अपने पुत्र शंख और उत्तर के साथ तथा सूर्यदत्त और मदिराक्ष इत्यादि वीरों के साथ युधिष्ठिर के पास आये है। इनके अलावा केकय देश के पांच सहोदर राजा पांडवों के पास आये हुये है। राजन संग्राम में भीष्म के सामने शिखंडी, उसके पृष्ठ भाग में मत्स्य देशीय वीर राजा विराट होंगे। महाराज मद्र नरेश शल्य युधिष्ठिर के सामने होंगे। दुर्योधन और उसके अन्य सौ भाई भीम से मुकाबला करेंगे। कर्ण, विकर्ण, अश्वत्थामा और जयद्रथ का सामना अर्जुन करेंगे। इसके सिवा अन्य जिन राजाओं के साथ युद्ध करना सम्भव नहीं है उन सबके साथ अर्जुन युद्ध करेंगे। दुर्योधन और दुशासन के पुत्रों का सामना वीरवर अभिमन्यु करेगा। द्रौपदी के पांचो पुत्र द्रुपद पुत्र घृष्टद्युम्न के नेतृत्व में रहकर उनके साथ आचार्य द्रोण से युद्ध करेंगे। चेकितान सोमदत्त के साथ रथयुद्ध करेंगे। भोजवंशी कृतवर्मा के साथ सात्यकि उनका सामना करेंगे। माद्रीनन्दन सहदेव सुबल पुत्र शकुनि का सामना करेंगे तथा माद्री पुत्र नकुल, उलूक, कैतव्य और सारस्वतों के साथ युद्ध करेंगे। राजन घृष्टद्युम्न ने मुझे कौरवों से जाकर कहने को कहा कि जो दुर्योधन के पक्ष में वीर है उनसे कहना महाराज युधिष्ठिर से ठीक तरह का व्यवहार करे। कहीं ऐसा न हो अर्जुन तुम लोगों का वध करे। तुम शीघ्र ही धर्मराज को उनका राज्य लौटा दो। युधिष्ठिर लोक में सुप्रसिद्ध वीर है, तुम सब उनसे क्षमा प्रार्थना करो। सव्यसाची अर्जुन जैसा पराक्रमी यौद्धा इस पृथ्वी पर कोई दूसरा नहीं है। कोई भी मनुष्य उसे जीत नहीं सकता इसलिये तुम सब युद्ध में उपरत हो जाओ तो तुम्हारा हित है।

यह सुनकर राजा धृतराष्ट्र ने अपने पुत्र दुर्योधन को समझाया पुत्र दुर्योधन तुम्हे युद्ध का विचार छोड देना चाहिये। कोई भी महापुरुष ने युद्ध को किसी भी परिस्थिति में अच्छा नहीं बताया है, इसलिये पुत्र तुम पांडवों को उनका राज्य दे दो। तुम्हारे और तुम्हारे निज जनों के निर्वाह के लिये तुम्हारे पास पर्याप्त सम्पत्ति है। न तो मैं युद्ध चाहता हूं और न ही ये सब वयोवृद्ध भीष्म, द्रोण, कुलगुरु कृपाचार्य, बाहलीक, अश्वत्थामा, यह संजय, सोमदत्त, शल्व, कोई भी तो युद्ध होने के पक्ष में नहीं है। इनके सिवा सत्यव्रत पुरूजित, जय, भूरिश्रवा भी युद्ध के पक्ष में नहीं है। मैं समझता हूं कि तुम भी अपनी इच्छा से यह युद्ध नहीं कर रहे हो बल्कि पापात्मा शकुनि, कर्ण और दुशासन की बलात इच्छा से ही तुमसे यह काम करा रहे है। दुर्योधन बोला पिताश्री यह युद्ध मैंने, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, संजय, भीष्म, कम्बोज नरेश, सत्यव्रत, पुरुमित्र, भूरिश्रवा अथवा अन्य राजाओं के भरोसे आमंत्रित नहीं किया है। इस युद्ध में पांडवों का संहार तो मैं, कर्ण और दुशासन ये

तीनों मिलकर ही कर सकते है। या तो पांडवों को मारकर मैं ही इस पृथ्वी का शासन करूंगा या फिर पांडव मुझे मारकर इस पृथ्वी का राज्य भोगेंगे। मैं जीवन, राज्य और धन ये सब छोड सकता हूं पर पांडवों को राज्य नहीं लौटा सकता। धृतराष्ट्र बोला मुझे सभी कौरवों के लिये बडा शोक है। संजय बोला मैंने हाथ जोडकर कृष्ण और अर्जुन को आपका सन्देश सुनाया उस समय कृष्ण और अर्जुन एक आसन पर दोनों एक साथ बैठे हुये थे। मैं उनके चरण स्पर्श कर भूमिपर बैठ गया। उन्होने अन्नादि से मेरा सत्कार किया। मैंने उन्हे आपका संदेश सुनाया तब कृष्ण अपनी मधुरवाणी से पर - परिणाम में कठोर हो मुझसे बोले। संजय बुद्धिमान धृतराष्ट्र, कुरुवृद्ध भीष्म और आचार्य द्रोण इन सबको मेरी ओर से यह सन्देश देना। उन बडों को मेरा प्रणाम कहना और छोटों से कुशल पूछना और कहना आप ज्येष्ठ है, आपकी मति किस प्रकार से विनाश के लिये तैयार हो गई। आपके सिर पर बडा भारी संकट मंडराने लगा है इसलिये अनेक प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करो, ब्राह्मणों को दानादि दो और अपने स्त्री-पुत्रों के साथ कुछ दिन और आनन्द भोग लो। द्रौपदी के वस्त्राहरण के समय उसने मुझे आर्त पुकार से पुकारा था कि हे गोविन्द मैं असहाय हूं मेरी रक्षा करो। उसका ऋण मेरे ऊपर है। भला जिसके साथ मैं हूं उस अर्जुन से युद्ध करने की क्षमता किसमे हैं? किसके सिरपर काल नाच रहा है? मुझे तो देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व और नागों में भी ऐसा कोई दिखाई नहीं देता जो रणभूमि में अर्जुन का सामना कर सके। बल, वीर्य, तेज, फूर्ति, दक्षता अविषाद और धैर्य ये सारे गुण अर्जुन के सिवा और किसी एक व्यक्ति में नहीं मिलते।

भीष्म से अपमानित हो कर्ण वह सभा छोडकर चला गया। भीष्म दुर्योधन से बोले इसका धर्म और तप तो तभी नष्ट हो गया जब उसने गुरु परशुराम से झूठ बोल कर अपने को ब्राह्मण बताकर उनसे शस्त्र विद्या ग्रहण की थी। दुर्योधन बोला जब हम और पांडव दोनों ही अस्त्र संचालन विद्या में समान है तथा दोनों ही मनुष्य जाति के है फिर आप यह कैसे कहते है कि विजय पांडवों की ही होगी? तब उठकर विदुर बोले वृद्ध पुरुष इस लोक में दम को ही कल्याण का साधन बताते है। जो पुरुष दम, दान, तप, ज्ञान और स्वाध्याय का अनुसरण करता है उसी को दान, क्षमा और मोक्ष यथावत रूप से प्राप्त होते है। तेज की वृद्धि होती है। दम पवित्र और श्रेष्ठ है। इस प्रकार जिसका पाप निवृत्त होकर तेज बढ़ गया है वह पुरुष परम पद प्राप्त कर लेता है। राजन जिस पुरुष में क्षमा धृति, अहिंसा, समता, सत्य, सरलता, इन्द्रिय निग्रह, धैर्य, मृदुलता, लज्जा, अचंचलता, अदीनता, अक्रोध, सन्तोष और श्रद्धा इतने गुण है वह दान्त अर्थ दमयुक्त कहा जाता है। दमनशील पुरुष काम, लोभ, दर्प, क्रोध, निद्रा, बढ बढकर बाते बनाना, मान, ईर्ष्या और शोक इन्हे तो अपने पास ही नहीं फटकने देता। कुटिलता और शठता से रहित होना तथा शुद्धता से रहना यह दमशील पुरुष का लक्षण है। जो पुरुष लोलुपता रहित, भोगों के चिन्तन से विमुख और समुद्र के समान गम्भीर होता है वह दमशील कहा गया है। अच्छे आचरण वाला, शीलवान, प्रसन्नचित्त, आत्मवेत्ता और बुद्धिमान पुरुष इस लोक में सम्मान पाकर मरने पर सद्गति प्राप्त करता है।

हे तात हमने पूर्व पुरुषों के मुख से सुना था कि किसी समय एक चिडीमार ने चिडियों को फंसाने के लिये पृथ्वी पर जाल बिछाया। उस जाल में साथ-साथ रहनेवाले दो पक्षी फंस गये। वे दोनों पक्षी उस जाल को ही लेकर उड चले। चिडीमार उन्हे आकाश में उड़ते देखकर मन से उदास हो गया और जिधर-जिधर वे जाते, उधर-उधर ही वह उनके पीछे दौड पडता। इतने में ही एक मुनि की दृष्टि उन पर पडी। उस मुनि ने उस व्याध से पूछा अरे व्याध मुझे यह विचित्र लगता है कि तू उडते हुये पक्षियों के पीछे पृथ्वी पर भटक रहा है। व्याध बोला ये दोनों पक्षी आपस में मिल गये है और मेरे जाल को लिये जा रहे है। अब जहां इनमें झगड़ा होने लगेगा वही ये मेरे वश में हो जायेंगे। थोडी ही देर में काल के वशीभूत हो उन पक्षियों में झगडा होने लगा और वे लड़ते-लड़ते पृथ्वी पर गिर पडे। चिडीमार ने चुपचाप उनके पास जाकर उन दोनों को

पकड़ लिया। इसी प्रकार जब दो कुटुम्बियों या परिवारवालों में सम्पत्ति के लिये परस्पर झगडा होता है तो वे शत्रुओं के चंगुल मे फंस जाते है। आपसदारी के काम तो साथ बैठकर भोजन करना, आपस में बैठकर प्रेम से वार्तालाप करना, एक-दूसरे के सुख-दु:ख में काम आना और आपस में मिलते जुलते रहना, विरोध नहीं करना। जो शुद्ध हृदय पुरुष समय आनेपर गुरुजनों का आश्रय लेते है, वे सिंह से सुरक्षित वन के समान किसी के भी दबाव में नहीं आते। एक बार कई भील और ब्राह्मणों के साथ हम लोग गन्धमादन पर्वत पर गये थे। वहां हमने एक शहद से पूर्ण मधुमक्खी के छत्ते को देखा। अनेकों विषधर सर्प उस छत्ते की रक्षा कर रहे थे। उस छत्ते का शहद ऐसा गुणयुक्त था कि यदि कोई पुरुष उसे पी ले तो वह अमर हो जाये, अन्धा उसका सेवन करते तो उसे दीखने लग जाये और बुढा पी ले तो युवा हो जाये। यह बात उन ब्राह्मणों ने बताई थी। भील लोग उसे प्राप्त करने का लोभ नहीं रोक सके। उन्होने उस सर्पोंवाली गुफा में प्रवेश किया। भयंकर विषधर सर्पों के दंश के कारण वे सब भील नष्ट हो गये। इसी प्रकर आपका यह पुत्र दुर्योधन अकेला ही सारी पृथ्वी को भोगना चाह रहा है। इसे मोहवश शहद तो दिख रहा है किन्तु अपने नाश का सामान दिखाई नहीं देता। द्रुपद, विराट और क्रोध से भरा हुआ अर्जुन ये सभी युद्ध में किसी को भी जीता नहीं छोड़ेंगे। अत: हे राजन आप महाराज युधिष्ठिर से विरोध न करे, उन्हे अपना बनाकर उनके साथ सद्व्यवहार करे अन्यथा युद्ध होनेपर विनाश दोनों ओर से होगा। युद्ध में जीत किसकी होगी यह कोई नहीं जानता। यह तो समय ही बतायेगा।

विदुर की बात समाप्त होनेपर राजा धृतराष्ट्र ने अपने पुत्र को समझाया। पुत्र दुर्योधन तुम अनजान बटोही के समान इस समय कुमार्ग को ही सुमार्ग समझ रहे हो। इसीसे तुम पांडवों को अपने तेज से दबाने का विचार कर रहे हो परन्तु उन्हे जीतने का विचार करना अपने प्राणों को संकट में डालना है। कृष्ण अपने देह, गेह, स्त्री, कुटुम्बी और राज्य को एक तरफ तथा अर्जुन को दूसरी ओर मानते है। उसके लिये वे इन सभी का त्याग कर सकते है। जहां अर्जुन रहते है वही कृष्ण है और जिस सेना में स्वयं वासुदेव कृष्ण है उसका वेग तो पृथ्वी के लिये भी असह्य हो जाता है। तुम्हे सत्पुरुषों और तुम्हारे हित की बात कहनेवाले सुहृदों की बात मानकर आचरण करना चाहिये। इन वयोवृद्ध पितामह भीष्म की बात सुनो। मैं स्वयं भी सदा कौरवों के हित की ही बात सोचता हूं। तुम्हे आचार्य द्रोण, कुलगुरु कृपाचार्य, विकर्ण एवं महाराज बाहलीक की बातों पर भी गौर करना चाहिये। ये सब धर्म के मर्मज्ञ तथा पांडव और कौरवों पर समान स्नेह रखनेवाले है। अत: तुम पांडवों को अपने भाई जानकर उनका राज्य लौटा दो। इसी में तुम्हारा कल्याण है। ऐसा समझाकर धृतराष्ट्र राजसभा बर्खास्त कर संजय और दुर्योधन सहित अन्त:पुर में चला गया। सभी राजा लोग अपने-अपने शिबिर में चले गये। उस दुर्बुद्धि दुर्योधन को शान्ति की वार्ता या पांडवों में सन्धि कर उनका राज्य लौटा देना बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगता था।

धृतराष्ट्र ने एकान्त में अपने कक्ष में संजय से कहा संजय तुम्हे तो दोनों पक्षों के बलाबल का ज्ञान है। यो भी तुम धर्म और अर्थ का रहस्य भलीभांति जानते हो तथा और किसी भी बात का परिणाम तुमसे छिपा नहीं है। इसीलिये तुम ठीक-ठीक बताओ कि इन दोनों पक्षों में कौन सबल है और कौन निर्बल? उसी समय भ्रमण करते हुये महर्षि वेदव्यास भी धृतराष्ट्र के प्रसाद में आ गये। धृतराष्ट्र ने आवभगत से उनका आदर सत्कार किया और महर्षि ने उन्हे कल्याण भव का आशीर्वाद दिया और आसन ग्रहण किया। वेद व्यास बोले धृतराष्ट्र तुम अपने अनुज पुत्रों के साथ क्या अन्याय कर रहे हो? क्यों नहीं उनका न्यायोचित राज्य उन्हे वापिस नहीं लौटा रहे हो? क्या तुम इस अन्याय का परिणाम जानते हो? वासुदेव कृष्ण जिनके साथ है क्या उन जैसे महात्मा पांडवों से विरोध करना तुम्हे उचित लगता है? अकारण तुम आर्यावत में अशान्ति फैला रहे हो। क्या तुम नहीं जानते तुम्हारे सन्धि न करने पर युद्ध की विभिषिका क्या होगी? धृतराष्ट्र बोला मुनिवर मैं यह

सब जानता हूं। मैं संजय से अभी इसी विषय पर विचार विमर्श कर रहा था। मैं क्या करूं अबोध दुर्योधन समझता नहीं है, अपनी हठ पर है, मानने को प्रस्तुत नहीं है। अच्छा हुआ आप आ गये। अब आप ही इसे समझाये। इतने में ही अन्त:पुर से महारानी गान्धारी ने कक्ष में प्रवेश किया और महर्षि के चरण स्पर्श कर सौभाग्यवती भव का आशीर्वाद लिया। गान्धारी बोली ऋषिवर हम तो बहुत प्रयत्न कर रहे है किसी भी प्रकार दुर्योधन मान जाये और अपने भाइयों पांडवों के साथ मेल जोल कर शान्तिपूर्वक रहे और उनके भाग का राज्य उन्हे लौटा दें। अब आप ही इस विषय में इसे उचित परामर्श दें। व्यास कुछ देर के लिये वही बैठे बैठे ध्यानमग्न हुये।

संजय बोला महाराज अर्जुन और कृष्ण दोनों ही बडे सम्मानित धनुर्धर है। नरकासुर, शम्बरासुर, कंस और शिशुपाल जैसे महावीरों को कृष्ण ने परास्त कर उन्हे मार गिराया। यदि एक ओर सारा संसार तथा दूसरी ओर कृष्ण को रखा जाये तो कृष्ण ही बल में सबसे अधिक होंगे। वे अपने संकल्पमात्र से ही संसार को भस्म कर सकते है। श्रीकृष्ण तो वही रहते है महाराज जहां सत्य, धर्म, लज्जा और सरलता का निवास होता है और विजयश्री भी वही होती है। उन सर्वान्तर्यामी पुरुषोत्तम से ही पृथ्वी, आकाश और स्वर्गलोक प्रेरित है। वे ही सबको अपनी माया से मोहित कर पांडवों को निमित्त बनाकर आपके अधर्म में प्रवृत्त पुत्रों का विनाश करना चाहते है। वे केशव ही अपनी इच्छाशक्ति अहर्निश कालचक्र, युगचक्र घुमाते हैं। एक मात्र वे ही काल, मृत्यु और सम्पूर्ण स्थावर, जंगम जगत के स्वामी है तथा अपनी माया के द्वारा लोकों को मोह में डाले रहते है। जो लोग उनकी शरण में रहते है वे ही मोह को प्राप्त नहीं होते। धृतराष्ट्र बोले संजय श्रीकृष्ण समस्त लोकों के अधीश्वर है इस बात को तुम कैसे जानते हो और मैं अभी तक क्यों नहीं जान पाया? इसका रहस्य मुझे समझाओ?

संजय बोला राजन पुत्र मोह वश आप पर ज्ञान का कोई असर नहीं हो रहा है। आपकी आंखों पर अज्ञान का पर्दा पडा है और मेरी ज्ञानदृष्टि कभी मन्द नहीं पडती। जो पुरुष ज्ञानहीन है वह श्रीकृष्ण के वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचान सकता। मैं ज्ञानदृष्ट से प्राणियों की उत्पत्ति, विनाश करनेवाले मधुसूदन को भलीभांति जानता हूं। धृतराष्ट्र ने पूछा संजय श्रीकृष्ण में सर्वदा तुम्हारी जो भक्ति रही है उसका स्वरूप क्या है? संजय बोला मैं कभी भी कपट का आश्रय नहीं लेता, किसी भी व्यर्थ धर्म का आचरण नहीं करता, मेरा भाव शुद्ध है। शास्त्रोंद्वारा मुझे श्रीकृष्ण के स्वरूप का ज्ञान है। धृतराष्ट्र दुर्योधन से बोले पुत्र संजय हमारे हितकारी और विश्वासपात्र है अत: तुम भी उन हृषीकेश, जनार्दन, श्रीकृष्ण की शरण में जाओ। दुर्योधन अहंकारवश बोला देवकीनन्दन कृष्ण भले ही तीनो लोकों को भस्म कर डाले। वे अर्जुन के सखा है, वे ऐसा बता चुके है इसलिये सहायता के लिये मैं उनकी शरण में नहीं जा सकता। तब धृतराष्ट्र ने गान्धारी से कहा गान्धारी तुम्हारा यह दुर्बुद्धि और अभिमानी पुत्र दुर्योधन ईर्ष्यावश सत्पुरुषों की बातें न मानकर उनकी अवहेलना कर अधोगति की ओर जा रहा है। गान्धारी बोली दुर्योधन तु बडा ही मन्द बुद्धि, कुटिल बुद्धि और मूढ हो रहा है। तू ऐश्वर्य के लोभ मे फंस कर अपने बजुर्गों, वयोवृद्धों की आज्ञा का उल्लंघन कर रहा है। तू अपने ऐश्वर्य मे मदान्ध हो अपने माता-पिता, अपने जीवन सभी से हाथ धोना चाहता है। हे ऋषिवर इसे आप ही कोई सद्बुद्धि दे।

महर्षि व्यास बोले धृतराष्ट्र तुम श्रीकृष्ण के प्रिय हो। तुम्हारे पास संजय जैसा दूत है जो तुम्हे कल्याण के मार्ग पर ले जायेगा। इसे पुराण पुरुष हृषीकेश कृष्ण के स्वरूप का पूरा ज्ञान है। यदि तुम इसकी सुनकर मानकर वैसा ही करोगे तो यह तुम्हे जन्म-मरण के महान भय से मुक्त करेगा। जो लोग कामनाओं से अन्धे हो रहे है वे अन्धे के समान अपने कर्मानुसार बार-बार मृत्यु के मुख में पडते है। मुक्ति का मार्ग तो सबसे निराला है उसे बुद्धिमान पुरुष ही पकडकर वे महापुरुष मृत्यु से पार हो जाते है और उनको कहीं भी आसक्ति नहीं रहती। धृतराष्ट्र तुम ऐसे निर्भय पथ पर चलो जिस पर चलकर कृष्ण

की प्राप्ति कर सको और परम पद को प्राप्त करो। कोई अजितेन्द्रिय पुरुष उन श्री हृषीकेश को प्राप्त नहीं कर सकता। इसके सिवा उन्हे पाने का अन्य और कोई मार्ग नहीं है। इन्द्रियां बडी उन्मत्त है। इन्हे जीतने का वश में करने का साधन भोगों से उपराम होना है। प्रमाद और हिंसा से दूर रहना है। ये ही ज्ञान के मुख्य स्त्रोत है। इसी को विद्वान लोग ज्ञान कहते है। वास्तव में यही ज्ञान है और यही मार्ग है जिससे कि बुद्धिमान लोग उस परमपद की ओर बढते है।

व्यास दुर्योधन से बोले वत्स दुर्योधन जिस मार्ग की शरण तुम ले रहे हो वह अधर्म और अन्याय का मार्ग है। इसमें कौरव वंश का हित नही है यह तुम्हारे सर्वनाश का मार्ग है। तुम्हे पांडवों को उनका न्यायोचित राज्य दे देना चाहिये। नही देने पर महासमर होगा, जिसकी विभिषिका तुम नहीं जानते हो। कितनी माताये विधवा होगी? कितने बच्चे अनाथ होंगे? कितने परिवार उजड़ जायेंगे? कितने राजा-महाराजा अपने राज्य से भ्रष्ट हो जायेंगे? इतना होने पर भी अन्याय से तुम धर्मराज युधिष्ठिर का राज्य नहीं पा सकोगे। तुम जब सन्तोष और शान्ति नहीं प्राप्त करोगे तो फिर उस पथ पर चलना छोड़ क्यों नहीं देते हो जिसमे तुम्हारा कल्याण नहीं है?

युद्ध से राज्य पाकर भी क्या शान्ति मिलेगी? युद्ध से बन्धु-बान्धव, मित्रों का नाश कर जो राज्य हडप भी लोगे तो कौनसा सुख पाओगे? क्षण स्थायी जीवन में रक्त पात से पाये सुख का क्या मूल्य है? वह तो दु:ख का ही दूसरा नाम है। यदि रक्तपात कर ही राज्य लेने की आशा है तो फिर तेरह वर्ष का वनवास क्यों दिया पांडवों को? दुर्योधन तुम चाहे कितने ही महावीर हो, धन और राज्य के लिये युद्ध जैसा घोर अधर्म कर्म न करे।

दुर्योधन बोला ऋषिवर आप जो कहते है वह ठीक ही है। मैं यह सब भलीभांति जानता हूं। युद्ध करने से बहुत बडी क्षति होगी। मैं यह भी जानता हूँ कि अन्त में विजयश्री युधिष्ठिर को ही वरण करेगी। युधिष्ठिर सदाचारी और न्याय के मार्ग पर चल रहा है और मैं जिस मार्ग का अनुसरण कर रहा हूं वह हितकारी नहीं होकर विनाशकारी है। ऋषिवर ये मैं न चाहते हुये भी कर रहा हूं, स्वेच्छा से कर रहा हूं। मेरे अन्त:करण में कोई तो एक ऐसा पुरुष बैठा है जो बलात मुझसे यह सब करा रहा है ऐसा क्यों ऋषिवर? मुनि व्यास बोले वत्स दुर्योधन इसमें तुम्हारे पूर्व संचित कर्म, वातावरण, स्थान अभी तुम जिन लोगों की संगति में रहते हो और दूषित अन्न का सेवन करते हो ये सभी बातें प्रधान है जिससे तुम्हारे मन और चित्त का निर्माण होता है वही तुमसे यह सब करा रहा है। अत: तुम्हे सत्पुरुषों का आचरण करना चाहिये व उनके साथ ही सत्संग करना चाहिये जिससे तुम्हे परम कल्याण प्राप्त हो। श्रीकृष्ण की शरणागति में चले जाओ।

दुर्योधन बोला मुझसे यह सब होना सम्भव नहीं है जब पूर्वजन्म के कर्मों से परिणाम निश्चित है और इस जन्म का वृतान्त भी निश्चित है कि मेरे माता, पिता, संगी-साथी, घर-परिवार फिर मेरा इसमें क्या वश है जो मैं अपनी परिणिती शुभ कर्मों से कर पाऊं? ऋषि व्यास बोले पुरुष अपने उद्योग और सदाचरण से, न्याय और धर्म के मार्ग पर प्रशस्त हो अपने जीवन की भाग्यरेखा को बदल सकता है। इसके लिये सत्मार्ग पर चलना ही एक सही मार्ग है। दुर्योधन पर अपने अहंकार के कारण ऋषि व्यास के उपदेश का कोई असर नहीं हुआ और बोला ऋषिवर सो तो ठीक है, आपके कथन अनुसार यदि सभी उस मार्ग पर चलने लगे तो संसार से क्या बुराई मिट जायेगी? क्या इस सृष्टि में सभी अच्छे ही लोग रहेंगे? मनुष्य के ये शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या ये सभी सदा के लिये विदा हो जायेंगे?

दुर्योधन की बुद्धि तो काल ने भ्रान्त कर रखी थी इससे वह विदुर, ऋषि, व्यास आदि किसी का कहना मानने-सुनने के लिये प्रस्तुत नहीं था। ऋषिवर मैं भी आपके बताये मार्ग पर चलने का प्रयत्न करूंगा। ऋषि ने देखा दुर्योधन अभी बहुत मत्सर पर है इसे उनकी बात का प्रभाव दिखाई नहीं पडा। वे तो इतना ही कह कर, समझाकर दुर्योधन को आशीर्वाद देकर

वहां से चले गये। दुर्योधन से बोले भगवान तुम्हारा कल्याण करे।

धृतराष्ट्र ने पूछा संजय तुम मुझे उन श्रीकृष्ण के स्वरूप का वर्णन कर उनके नाम और कर्मों का रहस्य समझाओ तो मैं उन्हे प्राप्त कर पाऊं। संजय बोला मैंने कृष्ण के नामों की व्युत्पत्ति महर्षियों से सुनी है उनमें से जितना मुझे स्मरण है वह सब आपको सुनाता हूं। श्रीकृष्ण वास्तव में किसी प्रमाण के विषय नहीं है। उन अनन्त के तो अनन्त नाम है। हरि नाम अनन्त, हरि कथा अनन्ता। समस्त प्राणियों को अपनी माया से आवृत करने से तथा देवताओं के जन्म-स्थान होने से वे वासुदेव कहे जाते हैं। व्यापक तथा महान होने के कारण विष्णु कहे जाते है। मौन, ध्यान और योग से प्राप्त होने के कारण माधव कहलाते है। मधु दैत्य का वध करनेवाले और सर्व तत्वमय होने से मधुसूदन भी कहलाते है। यदुकुल में अवतीर्ण हुये सभी के चित्त को आकर्षण करने में समर्थ कृष्ण भी कहलाते है। पुंडरीक (श्वेत कमल) हृदय रूप उनका नित्य आलय अविनाशी परम स्थान है इसलिये वे पुंडरीकाक्ष भी कहे जाते है। दुष्टों का दमन और संहार करने के कारण जनार्दन भी कहे जाते है। सत्त्वगुण से कभी च्युत नहीं होने के कारण और न कभी सत्त्व की उनमे कमी होती है इसलिये वे शाश्वत भी जाने जाते है। उपनिषदों द्वारा प्रकाशित होने पर आर्षभ नाम से भी पुकारे जाते है। वेद ही उस महापुरुष के नेत्र है अत: वृषभेक्षण भी कहे जाते है। किसी भी जन्मशील प्राणी से उत्पन्न न होने के कारण अजन्मा अथवा अज कहलाते है। उदरादि सभी इन्द्रियों के प्रकाशक और उनका दमन करनेवाले होने से दामोदर कहे जाते है। वृति सुख और स्वरूप सुख का नाम हर्षिक है इनके ईश होने के कारण हृषिकेश कहे जाते है। अपनी भुजाओं के बल से पृथ्वी और आकाश को धारण करनेवाले होने से महाबाहु है। आप कभी अध: (नीचे की ओर) क्षीण नहीं होते इसलिये अधोक्षज भी जाने जाते है। नरों के, जीवों के अयन (आश्रय) स्थान होने से नारायण कहे जाते है। जो सब में पूर्ण और सबका आश्रय होने से पुरुष कहे जाते है और उनमें भी श्रेष्ठ होने से आप पुरुषोत्तम हैं। आप सत और असत सबकी उत्पत्ति और लय के स्थान है तथा सर्वदा उन सबको जानते है इसलिये सर्व है। कृष्ण सत्य में प्रतिष्ठित है और सत्य उनमें प्रतिष्ठित है इसलिये वही सत्य है। उनका एक नाम सत्य भी है। वे विश्व को व्याप्त करने तथा विक्रम करने के कारण विष्णु कहलाते है, सबको जय करने के कारण जिष्णु है। नित्य होने के कारण अनन्त है। गो-अर्थात इन्द्रियों के ज्ञाता होने के कारण गोविन्द है। वे अपनी सत्ता स्फूर्ति से असत्य को सत्य का रूप दिखा कर सारी प्रजा को मोह में डाल देते हैं। निरन्तर धर्म में स्थित रहनेवाले भगवान मधुसूदन का स्वरूप ऐसा है राजन। वे श्री अच्युत कौरवों को नाश से बचाने के लिये आपके यहां पधारनेवाले हैं। संजय ने सम्मति दी कि उनके आनेपर उनकी बातों को गौर से सुनो। उनकी बात मान लेने में ही कौरवों का हित है।

धृतराष्ट्र बोला हे संजय जो लोग अपने नेत्रों से भगवान के तेजोमय दिव्य स्वरूप का दर्शन करते हैं ऐसे नेत्रवान पुरुषों के भाग्य की लालसा मुझे भी है। मैं उन आदि, मध्य और अन्त से रहित अनन्त कीर्ति, तथा ब्रह्मादि से भी श्रेष्ठ उन पुराण पुरुष श्रीकृष्ण की शरण में हूं। जिन्होने तीनों लोकों का निर्माण किया है, जो देवता, असुर, नाग और राक्षस सभी की उत्पत्ति के निमित्त है तथा राजाओं और विद्वानों में श्रेष्ठ है उन इन्द्र के अनुज श्रीकृष्ण की शरण में हूँ। धृतराष्ट्र को संजय की सम्मति उचित और आचरण करने योग्य लगती थी किन्तु उनका अपने पुत्र मोह के कारण अपने पुत्रों पर वश नहीं था। उनके इस मोह ने उन्हे विवश कर दिया था और वे केवल दुर्योधन के हाथ की कठपुतली बनकर रह गये।

## १३) अर्जुन और दुर्योधन का श्रीकृष्ण से सहायता मांगने के लिये द्वारिका जाना

कर्ण अपने कक्ष में बैठा हुआ किसी चिन्ता, शोक में मग्न हो बैठा विचार कर रहा था कि इतने में ही शकुनि, दुर्योधन,

दु:शासन उसके पास आते हैं। कर्ण बोला आओ मित्र। इतनी रात कैसे आना हुआ? दुर्योधन बोला क्या मित्र के पास समय देखकर जाना पडता है? मैं तो बहुत पहिले आ गया होता मित्र परन्तु अपने क्रोध की अग्नि को ठंडा करने के पश्चात ही आना चाहता था। मैं तो तुमसे क्षमा चाहता हूं मित्र। कर्ण बोला क्षमा किसलिये? दुर्योधन बोला आज राजसभा में पितामह भीष्म ने तुम्हारा अपमान कर दिया उसके लिये। कर्ण बोला यदि कोई सूतपुत्र को सूतपुत्र कह दिया जाये तो इसमें अपमान कैसा? अपमान तो उन्होंने तुम्हारा और दुशासन का किया है परन्तु वो तुम्हारे पितामह हैं। वो तुम लोगों से कुछ भी कह सकते है। परन्तु मेरे विषय में एक बात याद रखना भूल गये कि मेरे बाणों ने उनके प्रिय गांडीवधारी अर्जुन को भी बींधकर रख दिया था। उन्हे तो केवल मेरे घाव दिखाई दिये। अर्जुन से तो मेरा द्वन्द्व युद्ध अब होगा और इतिहास साक्षी होगा और वो ही आनेवाले युगों को बतायेगा कि तुम्हारा मित्र कर्ण क्या था और कैसा था? इसलिये तुम मेरी चिन्ता मत करो मित्र। यदि पितामह द्वारा मेरा अपमान हुआ तो भी इस समाचार ने उस अपमान के घाव पर स्नेह लेप लगा दिया क्योंकि पांडवों से युद्ध की तो अब ठहर ही गई है।

शकुनि बोला मैं तो फिर भी यही कहुंगा। दुर्योधन तमक कर बोला मामाश्री। अब आप कुछ नहीं बोलेंगे। युद्ध आपका कार्यक्षेत्र नहीं है। आपके षडयन्त्रों के कारण हम लोग भरतवंश के इतिहास को मुंह दिखाने लायक भी नहीं रहे। युद्ध का निर्णय लिया जा चुका है और अब मैं यौद्धाओं की भांति चैन से सो सकूंगा। शकुनि बोला मैं तो युद्ध को इसलिये टाल रहा था भान्जे कि पांडवों को हराने का केवल एक उपाय है परन्तु तुम वो उपाय करोगे नहीं। नहीं करोगे वो उपाय क्योंकि तुम्हारा अहंकार तुम्हे किसी के आगे हाथ बढ़ाने की आज्ञा ही नहीं देगा। दुर्योधन बोला मैं किसी के आगे हाथ नहीं फैलाऊंगा। शकुनि बोला जीजाश्री ने ठीक ही कहा था कि पराजय तुम्हारे दुर्भाग्य में है और यह दुर्भाग्य तुम्हे स्वीकार करना ही पडेगा। दुशासन बोला आप किसके आगे हाथ फैलाने को कह रहे है मामाश्री। मुझे बताये मैं भ्राताश्री की ओर से उनके आगे हाथ फैला लूंगा। शकुनि बोला ऐसे विषयों में प्रतिनिधित्व नहीं चलता पुत्र। किन्तु यदि यह युद्ध दुर्योधन जीतना चाहता है तो उसे स्वयं जाकर कृष्ण से सहायता मांगनी ही पडेगी। वे युद्ध में शक्तिशाली है, उनकी नारायणी सेना पूरे भारतवर्ष की सबसे उत्तम सेना है। हां यदि युद्ध हारना चाहते हो तो मत जाओ वासुदेव के पास। परन्तु यदि यह युद्ध जीतना चाहते हो तो वासुदेव की उपेक्षा नहीं कर सकते पुत्र। जाओ वासुदेव के पास अभी। यह कहकर शकुनि, दुर्योधन और दुशासन वहां से निकल गये।

निभृत कक्ष में बैठे कर्ण अपने जीवन वृतान्त का रहस्य खोज रहा है कौन है तेरा पिता? कौन है मां? और भीम का वह परिहास कि दया कर किसी को सिंहासन पर बिठाया जा सकता है पर उसकी देह में राजवंश का रक्त तो प्रवाहित नहीं किया जा सकता, भीम के शब्द कानों में गूंज रहे हैं। क्रोध और रोष में कर्ण की देह उत्तप्त हो रही थी, मन खंडित हो रहा। उसे राजा बनाकर दुर्योधन ने अपनी दानशीलता दिखाई है महानता का परिचय दिया है। वो धन्यवाद का पात्र है। कर्ण की तो इसमें जरा भी रूचि नहीं है। बारबार उसका हृदय कचौट रहा है कि वो तो सूतपुत्र है। ये नृत्यसंगीत, रंग रास कर्ण के असहाय पौरुष का उपहास कर रहे है। नृत्य एंव संगीत ताल-ताल पर बता रहे है कि उसकी देह में राजरक्त न होनेपर भी दुर्योधन की दया और अनुकम्पा के कारण वह आज अंगराज है। कर्ण को उसका कृतज्ञ होना चाहिये था। कर्ण तो अनुगृहीत है, आश्रित है। मनाकर दे वह अंगदेश का यह राजपद, राज सिंहासन, राजमुकुट पर ऐसा करने से लोग कहेंगे कि कर्ण राजपद के योग्य नहीं है, राजसिंहासन ने उसे भयभीत कर दिया है। राजमुकुट अब उस पर शोभा नहीं देता है। दुर्योधन ने अपात्र को दान दिया है। वरन वह इस दुनिया को यह दिखा दे कि सिर्फ राजपुत्र होना ही राजा बनने के योग्य

नहीं होता है। योग्य पुरुष ही राजापद के लायक होता है। मेरे माता-पिता का भी तो मेरा कोई परिचय नहीं। व्यक्तित्व और पौरुष का परिचय ही वास्तव में मानवता का परिचायक है। कर्ण फिर सोचने लगा कौन है मेरे माता-पिता? मैं तो अब तक यही जानते और मानते आया हूँ कि सारथी अधिरथ का पुत्र हूं मैं और राधा मेरी मां है। तब तक तो पृथ्वी के सभी चपलमति बालकों की तरह सुखी था। मैंने तो कभी सोचा ही नहीं कि राजकुमार बनकर पैदा क्यों नहीं हुआ? संसार में सभी तो राजकुमार बनकर जन्म नहीं लेते। पर सबके माता-पिता उनके बच्चोंको राजारानी की तरह ही लगते है। तब कर्ण भी अपने माता-पिता के साथ खुश था। गंगापुत्र भीष्म के कहे हुये शब्द सूतपुत्र मन को बार-बार आहत कर रहा था और कचौट रहा था। उसी अपमान की ज्वाला में अशान्त है क्षुब्ध है कर्ण। कर्ण और अर्जुन में अन्तर यही है कि अर्जुन नम्र है, उदार है, अहंकार रहित है।

दुर्योधन दैवी शक्ति को एकदम हेय मानता है। द्वारिका में दुर्योधन आया। वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय। द्वारिका में कृष्ण अपने कक्ष में थके होने के कारण निद्रा में सोये हुये हैं। उसी दिन पांडव कुमार अर्जुन भी द्वारिका में गया हुआ था। वहां पहुंचकर दोनों ने श्रीकृष्ण को अपने कक्ष में सोता हुआ पाया। तब दुर्योधन शयनकक्ष में जाकर वासुदेव कृष्ण के सिरहाने जाकर एक आसन पर बैठ गया। उसके पीछे उस शयनकक्ष में हाथ जोडे अर्जुन भी आया और झुककर कृष्ण के चरणों में अभिवादन कर चरणों की ओर खडा हो गया। दोनों भी कृष्ण के जगने की प्रतीक्षा करने लगे। जब दो महत्वपूर्ण व्यक्ति मिलते है तो दूरगामी महत्व के राजनीतिक निर्णय लिये जाते हैं। दुर्योधन युद्ध के लिये सहायता मांगने शिष्टता, प्रेम और सम्बन्ध के आवरण में कृष्ण के निकट पहुंचे। कृष्ण अपने कक्ष में अचेत सो रहा था। दुर्योधन को लग रहा था कि निद्रा टूटते ही कृष्ण के आंख खोलने पर कृष्ण उसे देखेगा। अर्जुन श्रीकृष्ण के पास स्वयं को समर्पित किये हुये है लेकिन दुर्योधन अहंकारी है प्रतिहिंसा परायण है। ईश्वर से अधिक अपनी शक्ति पर आस्था है। पुरुष का भूषण है उसका शौर्य, पौरुष शक्ति। उस दृष्टि से कर्ण किसी भी प्रकार अर्जुन से कम नहीं। सिर्फ अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिये वह कौरवों के साथ हुआ है। वरना कर्ण कौरवों की सहायता के बिना भी अपनी वीरता और शौर्य के बल पर पृथ्वी का अधीश्वर हो सकता था। कर्ण के प्रति कुन्ती के मन में राग-द्वेष की जगह सहानुभूति और संभ्रम बढता ही गया। कर्ण यदि पांडव विरोधी है तो इसके पीछे क्या यह यथेष्ठ तर्क नहीं कि अपमान का प्रतिशोध लेना क्या पुरुषोचित नहीं है? पर कर्ण जैसे बुद्धिमान, शौर्यवान पुरुष यदि कौरवों की खल बुद्धि द्वारा परिचालित होंगे तो फिर इन्द्रप्रस्थ में क्या पांडव शान्ति से राज्य शासन कर सकेंगे? यह सोच-सोच कर कर्ण की अन्तरात्मा उस क्षण कांप उठी।

दुर्योधन वहां बैठे बैठे सोच रहा है यदि कृष्ण ने उसे सहायता न दी तो वह अपने गुरु बलराम से सहायता मांग लेगा। अपनी पुत्री लक्ष्मणा के पास जाकर अपने दामाद साम्ब को उत्तेजित कर उससे सहायता ले लेगा। वह सात्यकि का परम विरोधी कृतवर्मा जो कृष्ण की पुत्री चारुमती का श्वसुर है उसके पास चला जायेगा। कैसा संयोग है कि दुर्योधन भी कृष्ण का समधी है और कृतवर्मा भी। कृतवर्मा भी कृष्ण से उतना खुश नहीं है वह बलराम के पक्ष का है और सात्यकि का विरोधी जो कृष्ण के पक्ष में है। इसलिये वह कृतवर्मा के पास जायेगा वह अवश्य ही उसकी सहायता करेगा। वह कृष्ण पर पक्षपात, भेदभाव का आरोप लगाकर उग्रसेन के विरोधी अक्रूर से भी सहायता ले सकता है। वह साम्ब को उसके पिताके विरुद्ध भडका सकता है। वह कृष्ण के घर और परिवार के भीतर ऐसी कलह मचा देगा कि कृष्ण कौरवों और पांडवों का युद्ध तो भूल जायेगा और अपनी आंखों के सम्मुख अपने ही वंश के लोगों को एक-दूसरे के विरुद्ध लडते देखेगा। दुर्योधन को लगा जैसे कृष्ण मुस्कुराकर कह रहे हैं मूर्ख तू मुझे सोया हुआ समझ रहा है, अचेत पर मैं तो तब भी जाग रहा होता हूं

जब यह सारा जग सो रहा होता है।

अर्जुन ने बिना कोई शब्द कहे हाथ जोडकर दुर्योधन को प्रणाम किया। दुर्योधन के मन ने कहा बडी मैत्री दिखा रहा है। दुर्योधन भी फिर धूर्तता में कौनसा कम है। दुर्योधन ने भी हाथों की मुद्राके संकेत से पूछा यहां कैसे? अर्जुन ने अंगुली के संकेत से बता दिया उसे कृष्ण से मिलना है? अर्जुन ने रूककर खडे होकर कृष्ण का मुख देखा कैसा शान्त और प्रसन्न, कैसी प्रगाढ निद्रा में सोया हुआ। इस तरह निश्चिंत होकर कितने लोग सो पाते है?

सहसा कृष्ण के श्वासों की गति बदली। कदाचित कृष्ण की निद्रा पूरी हो गई होगी। अर्जुन को स्मरण था कि कृष्ण कहा करते थे कि न बहुत सोनेवाला योगी होता है और न ही सर्वथा न सोनेवाला। न बहुत अधिक खानेवाला योगी होता है और न बहुत कम खानेवाला। कृष्ण के नेत्र खुले, उनके सम्मुख अर्जुन बैठा था। अर्जुन ने हाथ जोडकर प्रणाम वासुदेव किया। दुर्योधन ने सोचा तो कृष्ण जाग गया है। दुर्योधन बोला हां वासुदेव मैं भी अर्जुन से पहिले आया हुआ हूं। कृष्ण बोला अच्छा है दुर्योधन तुम भी पधारे हो। यह तो बडा ही शुभ प्रभात है कि ऐसे ऐसे महानुभाव मेरे यहां पधारे है। अर्जुन ने पूछा आज इतनी देर तक सोये रहे वासुदेव कोई विशेष कारण? कृष्ण मुस्कुरा रहे थे, उनके चेहरे पर तन्द्रा अथवा आलस्य का कोई लक्षण नहीं था। कृष्ण बोले अज्ञान के अन्धकार में नेत्र खुल भी जाये तो वह जागरण नहीं होता है धनंजय जागरण के लिये तो ज्ञान के सूर्य उदय होने की प्रतीक्षा करनी ही पडती है। कृष्ण ने एक दार्शनिक जैसा उत्तर दे दिया।

कृष्ण ने पूछा आप लोगों के आने का कोई विशेष प्रयोजन? दुर्योधन बोला क्षमा करें वासुदेव आपके विश्राम में व्याघात हुआ किन्तु आप तो जानते ही है कि विपत्ति मनुष्य से कुछ भी करा लेती है। पांडवों के साथ हमारा जो युद्ध होगा उसमें आप... कृष्ण बीच ही में बोल उठे पांडवों के साथ युद्ध करना क्या निश्चित हो चुका है? दुर्योधन बोला युद्ध तो होगा ही। पांडवों को हमने अज्ञातवास की अवधि समाप्त होने से पहिले ही पहिचान लिया था पर वे इस सत्य को स्वीकार करना नहीं चाहते और न ही अपने राज्य की अधर्म पूर्ण मांग छोडना चाहते हैं तो फिर युद्ध ही होगा। कृष्ण जानता है सत्य क्या है? दुर्योधन भी जानता है कि सत्य क्या है किन्तु वह इसे स्वीकार नहीं कर पा रहा है। कृष्ण स्वयं भी मिथ्या का प्रतिवाद करने में समर्थ है। दुर्योधन बोला उस युद्ध में मैं आपसे सहायता मांगने आया हूं और मैं अर्जुन से पहिले भी आया यहां बैठा हूं। आपके जैसे अर्जुन से सम्बन्ध है वैसा ही हमसे भी है। हम दोनों का सम्बन्ध एक जैसा ही है। सत्पुरुष उसी का साथ दिया करते है जो पहिले आया है। वासुदेव बोले अच्छा तो मैंने पहिले पार्थ को देखा है। अर्जुन बोला नहीं वासुदेव ये मुझसे पहिले के आये हुये है। कृष्ण बोले अर्जुन तुम भी सहायता के लिये आये होंगे पर ऐसा क्यों? कृष्ण बोला यह तो ठीक है दुर्योधन कि पहिले आप आये परन्तु मैंने देखा पहिले पार्थ को अब इसलिये मुझे तो आप दोनों की ही सहायता करनी पडेगी। दुर्योधन बोला लेकिन आप दोनों की तरफ से युद्ध कैसे कर सकते है? कृष्ण बोला अर्जुन अवस्था में तुमसे छोटा भी है इसलिये उसे मांगने का अधिकार तुमसे पहिले है। मैंने यह नहीं कहा है कि मैं तुम्हारी सहायता नही करूंगा। मेरे पास एक अक्षौहिणी नारायणी सेना है और दूसरी तरफ मैं निहत्था अकेला और न ही मैं युद्ध करूंगा। शस्त्र ग्रहण भी नहीं करूंगा। अर्जुन चुनाव का अधिकार पहिले तुम्हारा है तुम्हे क्या चाहिये नारायणी सेना या कृष्ण? जो मन आये सो चुन लो। दुर्योधन के मन में खलबली मच गई कही अर्जुन ने नारायणी सेना मांग ली तो फिर दुर्योधन के लिये क्या बच जायेगा। वह इस निहत्थे नि:शस्त्र कृष्ण को लेकर क्या करेगा?

अर्जुन ने दृष्टि उठाकर कृष्ण की ओर देखा और बोले हे माधव मैं नारायणी सेना से सहायता मांगने नहीं आया था वासुदेव। मैं तो सहायता आपसे मांगने आया था। मैं नारायणी सेना लेकर क्या करूंगा। मुझे नहीं चाहिये नारायणी सेना।

मैं तो आपको लूंगा। मुझे तो मेरे साथ आप चाहिये। नारायणी सेना अर्थात संसार। एक ओर कृष्ण है तो दूसरी ओर संसार। अर्जुन को संसार चाहिये या कृष्ण? संसार का मोह कृष्ण को प्राप्त नहीं करने देगा। संसार चाहिये तो कृष्ण को त्यागना पडेगा पर अर्जुन कृष्ण को त्यागना नहीं चाहता था। अर्जुन को संसार की आवश्यकता नहीं थी, कृष्ण की आवश्यकता थी। कृष्ण तुम्हे पा लिया तो मैंने सब कुछ पा लिया। कृष्ण फिर से बोले मित्रता के मोह में कही कोई भूल न कर बैठना अर्जुन। मेरे साथ मेरी सेना नहीं है। प्रतिज्ञानुसार मैं शस्त्र भी धारण नही करूंगा और तुम एक महायुद्ध के कगार पर खडे हो। अर्जुन बोला केशव मैं तो मोह से मुक्त हो रहा हूं, मोहग्रस्त नहीं। दुर्योधन प्रसन्न हो शीघ्रता से बोला ठीक है ठीक है मैं ही नारायणी सेना ले लेता हूं। अब मैं अपने अनुज का हृदय भी तो नहीं तोड सकता। इसके पश्चात वह महाबली दुर्योधन प्रसन्नचित्त हो कृष्ण को प्रणाम कर वहां से चला और बोला अब जाकर दाऊ को भी मिलकर प्रणाम करता हूं। कृष्ण बोले हां हां दाऊ को प्रणाम करना आवश्यक है और दुर्योधन वहां से चले जाता है। दुर्योधन वहां से बलराम के पास गये तब बलराम दुर्योधन से बोले हे पुरुषश्रेष्ठ मैं न तो अर्जुन की सहायता करूंगा और न ही तुम्हारी। हम यादव लोग युद्ध में तटस्थ ही रहेंगे। फिर भी श्रीकृष्ण ने जो निर्णय किया है वह उत्तम ही है। दुर्योधन यह समझकर कि नारायणी सेना को लेकर आज मैंने अपनी बुद्धि से श्रीकृष्ण को ठग लिया है।

जब दुर्योधन कृष्ण के महल से चला गया तो कृष्ण ने अर्जुन से पूछा अच्छा यह तो बताओ पार्थ जब तुम मेरी नारायणी सेना मांग सकते थे तो फिर इस निहत्थे कृष्ण को क्यों मांग बैठे? अर्जुन बोला वासुदेव युद्ध में यौद्धा से अधिक महत्व सारथी का होता है। इस महायुद्ध में मुझे एक ऐसा सारथी चाहिये जिस पर मुझे सम्पूर्ण विश्वास हो। अपने आपको जिसे सौंपकर मैं अपनी सारी चिन्ताओं से मुक्त हो जाऊं। ऐसा सारथी आपके अतिरिक्त और कौन हो सकता है वासुदेव? आप सारी दिशायें जानते हैं, सारे मार्ग जानते है। आप मुझे रणभूमि में भटकने नहीं देंगे वासुदेव। हे केशव आप मेरे सारथी बनकर मुझे सम्मानित कीजिये। जैसे आप जीवन में हमारा सारथ्य कर रहे है युद्ध में भी मेरा सारथ्य करे। मुझे नारायणी सेना नहीं चाहिये, मुझे नारायण चाहिये केवल नारायण। कृष्ण बोले ठीक है अर्जुन युद्ध में नि:शस्त्र यौद्धा तो एक सारथी ही होता है। अच्छा तुम्हारी कामना पूर्ण हो मैं तुम्हारा सारथ्य करूंगा। पार्थ मैंने तो कदाचित तुम्हारा सारथी बनने के लिये ही जन्म लिया हो। अर्जुन बोला यह तो मेरा सौभाग्य है वासुदेव। अब मेरी विजय निश्चित हो गई। इसीसे कृष्ण का एक नाम पार्थ सारथी भी हुआ। कृष्ण बोले परन्तु दाऊ से सहायता मांगना मत भूलना पार्थ। अर्जुन कृष्ण को प्रणाम कर वहां से चले जाता है। और बलराम के पास आकर युद्ध में सहायता के लिये प्रार्थना करता है। बलराम बोला नहीं अर्जुन नहीं। दुर्योधन भी मेरे पास सहायता के लिये आया था मैंने उससे भी यही कहा था कि भाइयों के बीच युद्ध नहीं होना चाहिये। कौन सच्चा है और कौन सच्चा नहीं इस पर वाद-विवाद करने से कोई लाभ नहीं होगा। युद्ध में जो शव गिरेंगे वो तो एक ही परिवार के होंगे ना। अत: इस युद्ध में मैं न तो दुर्योधन के साथ हूं और ना ही तुम्हारे। इसलिये ना तो मैंने दुर्योधन को विजय श्री का आशीर्वाद दिया है और न ही तुम्हे दूंगा। अर्जुन बलराम को प्रणाम कर वहां से चला गया।

दुर्योधन अपने कक्ष में कृष्ण से मिलकर लौटकर आता है और अपने मित्र कर्ण, दुशासन और अपने मामा शकुनि को वो सब बताता है कि किस प्रकार उसने कृष्ण से नारायणी सेना मांग ली। दुर्योधन अत्यन्त प्रसन्न होकर हंसकर बोला मामाश्री पहिले तो मैं बहुत घबराया कि अर्जुन इस अवसर को हाथ से जाने नहीं देगा और वो नारायणी सेना मांग लेगा पर मामाश्री अर्जुन तो बहुत बडा मूर्ख निकला। बोला कि मैं इस नारायणी सेना से सहायता मांगने नहीं आया हूं और उसने उस

निहत्थे वासुदेव को मांग लिया। तब मैंने अपना मुंह लटका कर कहा ठीक है यह नारायणी सेना ही मुझे दे दो मैं अपने अनुज का मन तो नहीं दु:खा सकता न। शकुनि बोला यह सौदा तुम्हे बड़ा महंगा पड़ेगा भान्जे दुर्योधन बड़ा महंगा पड़ेगा। वो मायावी कृष्ण निहत्था हो चाहे ना हो पर हर सेना पर भारी है।

## १४) कौरवों की सभा में कृष्ण का शान्ति दूत बनकर जाने की प्रस्तुति

संजय के चले जाने पर युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से कहा मित्रवत्सल कृष्ण हमें आपतियों से बचानेवाले परमाश्रय तो आप ही है। आपके सिवा हमारा अन्य कोई और कौन है? आपके सहारे से ही हम निर्भय है। आपके बल पर ही तो हम हमारा राज्य दुर्योधन से मांग रहे है। कृष्ण बोले धर्मराज मैं तो सदा आपकी सेवा में उपस्थित हूं। आप अपना अभिप्राय नि:संकोच बताये। आप जो भी आज्ञा करेंगे उसे पूर्ण करूंगा। युधिष्ठिर के पास ही उसके सब भाई भीम, नकुल, सहदेव, अर्जुन बैठे हुये थे और परस्पर आगे की भूमिका के लिये विचार विमर्श कर रहे थे।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय युधिष्ठिर सोच में पडे हुये व्याकुल हो रहे थे। वे तो सदा से ही युद्ध विरोधी थे। परन्तु युद्ध न कर वापिस अरण्य में लौट जाना भी क्षत्रिय के लिये उचित नहीं था। दुर्योधन हठधर्मी है। ज्येष्ठ पिताश्री महाराज धृतराष्ट्र अपने पुत्र को सन्मार्ग पर ला सके ऐसी सामर्थ्य उनमें नहीं। अब पांडव अपना जीवन कैसे यापन करेंगे। युद्ध के नाम से धर्मराज का हृदय कांप गया युद्ध की विभिषिका की कल्पना कर कि युद्ध नहीं होना चाहिये किसी भी स्थिति में। क्या कोई ऐसा नहीं जो महाराज धृतराष्ट्र को समझावे? जो पितामह भीष्म को इस युद्ध की विभीषिका से परिचित करा सके? जो द्रोणाचार्य को युद्ध से विमुख कर सके? कौरव भी श्रीकृष्ण का अत्यन्त आदर करते है। पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, महात्मा विदुर, कृपाचार्य आदि सभी, महाराज धृतराष्ट्र व महारानी गान्धारी आदि सब द्वारकाधीश कृष्ण को पूज्य भाव से देखते है। युधिष्ठिर के मन में था यदि यदुश्रेष्ठ स्वयं कौरवों को समझाये तो निश्चय ही युद्ध टल सकता है। यदुनन्दन दोनों कुलों में पूज्य है। वे ही एकमात्र दोनों कुलों में सन्धि कराने योग्य है, नहीं तो युद्ध की सम्भावना निश्चित है, किसी एक परिवार वालों का नाश सम्भव है। यह सोचकर धर्मराज का हृदय प्रकम्पित हो उठा, नहीं... नहीं... युद्ध नहीं... सन्धि ही उचित है। विचलित हृदय युधिष्ठिर के मुख से युद्ध के लिये स्वीकृति नहीं है यह जनार्दन ने देखा। वे क्या नहीं जानते थे? क्या छिपा था उनसे? वे युधिष्ठिर के मनोभावों को अच्छी तरह समझ रहे थे? क्या वे अर्जुन को नहीं जानते? वे सब शान्त चित्त रहे।

युधिष्ठिर बोले वासुदेव क्या आप कोई ऐसा उपाय नहीं कर सकते जिससे हम युद्ध से बच सकें? कोई ऐसा उपाय जिससे भयंकर रक्तपात के उत्पात से कुरुकुल सुरक्षित बच जाये? मेरी अन्तरात्मा मुझे युद्ध के लिये प्रेरित नहीं कर रही है। युद्ध किसी भी परिस्थिति में अच्छा नहीं होता है, कभी भी अच्छा नहीं है। मैं शान्ति का उपासक हूं। मैं मित्रता, बन्धुत्व, सौहार्द्र एवं मानवता में विश्वास रखता हूं। यह प्राचीन गौरवपूर्ण कुरुवंश विघटित होने से, खंडित होने से बच जाये। ऐसा कोई उपाय आप ही कर सकते हैं अच्युत। कृष्ण बोले आप क्या उपाय चाहते है धर्मराज? आपके मन में किस प्रकार के उपाय की कल्पना है? युधिष्ठिर बोले हे मधुसूदन हमें युद्ध नहीं करना है। हम कोई रक्त पिपासु नहीं है, हम आततायी नहीं है, हत्यारे नहीं है, हम तो शान्ति चाहते है केवल शान्ति वो भी सिर्फ हमारी अपनी ही नहीं, समस्त पांडवों की शान्ति, कौरवों की शान्ति, सम्पूर्ण विश्व की शान्ति। जनार्दन आप यदि मध्यस्थता करेंगे तो निश्चित रूप से शान्ति का मार्ग प्रशस्त होगा। आप हमारे तो पूज्य है ही परन्तु कुरुश्रेष्ठ भी आपको अत्यन्त सम्मान देते है। आप ही उन्हे ठीक से समझा सकते है, वे आपकी बातों का आदर करेंगे। हमारी ओर से हमारा सन्धि का प्रस्ताव आप ही उनके पास भलीभांति प्रस्तुत कर

सकेंगे। वे आपकी बात भलीभांति मान जायेंगे। वहां पूरी निस्तब्धता थी। लीलामय कृष्ण गम्भीर थे, मौन थे, शान्त थे। उनके मौन से युधिष्ठिर और प्रोत्साहित हुये। युधिष्ठिर फिर बोले हे केशव, हिंसा कोई अच्छी वस्तु नहीं है, युद्ध कभी भी श्रेयस्कर नहीं होता है। हिंसा सर्वथा अनुचित है। नीच व्यक्तियों का भी वध अनुचित है यहां तक की शत्रुओं का भी वध अनुचित है, पाप है। फिर अपने ही सग्गे सम्बधियों, गुरूजनों, भाइयों तथा सखाओं का वध कैसे उचित हो सकता है? युद्ध कितने अनुचित एवं क्रूर तथ्यों पर आधारित है वार्ष्णेय। अधर्म एवं अन्याय पर आधारित युद्ध कैसे धर्मोचित एवं न्यायोचित हो सकता है? हिंसा, क्रूरता, निर्ममता एवं नृसंशता का पोषक है वासुदेव। युद्ध मुझे कभी भी रास नहीं आया और न ही मुझे कभी प्रभावित कर पाया। हिंसा मुझे कभी भी उचित नहीं लगती। और वार्ष्णेय यह क्षत्रिय धर्म अन्तत: है क्या? केवल हिंसा? बलशाली की विजय? निर्बल का पराभव, क्या यही है क्षात्रधर्म? जो बलशाली होता है, वह अपनी क्रूरता के आधार पर विजयी होता है तो क्या वह मत्स्य न्याय नहीं? बडा मत्स्य छोटे मत्स्य को निगल जाता है। मत्स्य ही मत्स्य की आजीविका है, भोजन है, तृप्ति का साधन है। इसी प्रकार एक क्षत्रिय सदा दूसरे क्षत्रिय को मिटा देने को आतुर रहता है। क्षमा करे मधुसूदन। किन्तु यह धर्म मेरा मर्म स्पर्श नहीं कर पाता। यह क्षात्र धर्म क्या श्वान धर्म की भांति नहीं? एक श्वान दूसरे श्वान को देखते ही भौंककर उस पर झपट पडता है। एक श्वान दूसरे श्वान के अस्तित्व को सह नहीं पाता। जैसे एक नारी, दूसरी नारी अपनी सौत को सह नहीं पाती। हम क्षत्रियगण क्या ऐसा ही आचरण नहीं कर रहे? क्षुद्र आचरण? हम क्या पशुवत आचरण नहीं कर रहे? कितना क्रूर है यह क्षात्र धर्म? यह है निर्दयता पूर्ण, घृणित कर्म। और माधव युद्ध में कितने ही धन जन की हानि होती है। जो विजयी होता है वह भी बाद में सुख शान्ति अनुभव कर पाता है क्या? विशाल नरसंहार करके अपने मन की सुख शान्ति का भी संहार नहीं हो जाता क्या? विजय प्राप्ति के पश्चात तो स्थायी शत्रुता का आधार तैयार होता है। शत्रुता परस्पर स्थायी हो जाती है। विजयी सदा पराजित की ओर से आशंकित बना रहता है। पराजित सदैव दु:ख और अपमान से पीडित रहता है और प्रतिशोध की ज्वाला से सुलगता रहता है। अशान्ति और क्लेश उसे पलभर भी चैन नहीं लेने देते। नहीं जनार्दन नहीं हमें युद्ध नहीं चाहिये। कुरुश्रेष्ठ महाराज धृतराष्ट्र से हमारी याचना, हमारा शान्ति सन्देश, हमारी विनती आप ही प्रस्तुत करें हे मधुसूदन। मेरा यह अनुरोध आप अवश्य स्वीकार करें। आपके कथन का प्रभाव श्रेष्ठ होगा। यह मेरा दृढ़ विश्वास है। हमारी समस्या सुलझ जायेगी बिना किसी रक्तपात के, बिना युद्ध किये। राजा धृतराष्ट्र और उनके पुत्र जो कुछ करना चाहते है वो तो आपने संजय के मुख से सुन ही लिया। वह बात संजय की तो थी नहीं, वह तो मात्र दूत था। वह अपने स्वामी का अभिप्राय ही प्रकट कर रहा था। ज्येष्ठ पिताश्री महाराज धृतराष्ट्र किसी भी तरह हमारा स्वत्व देना नहीं चाहते है यद्यपि हमने वन में बहुत कष्ट सहन कर उनकी आज्ञा का पालन किया। राजा धृतराष्ट्र को राज्य का बडा लोभ है इसीसे वे हमारे और कौरव के प्रति समान भाव न रखकर हमें राज्य दिये बिना ही सन्धि करना चाहते है। हमने तो यही समझा कि धृतराष्ट्र अपने वचन का पालन करेंगे किन्तु उन्हे तो बडा ही लोभ है। और वे धर्म का कुछ भी तो विचार नहीं कर रहे है। लोभ से धर्म का नाश होता है। वे अपने मूर्ख पुत्र के मोहपाश में बन्धे होने के कारण उसके कथनानुसार ही चलते है। किसी की भी सम्मति उनके काम नहीं आती। हमारे साथ तो उनका कृत्रिम, पाखंडी व्यवहार है। वे अपने पुत्रों के लिये हमारा स्वत्व भी हडप लेने के प्रयत्न में है तथा दुर्योधन की बुद्धि, विवेक लोभ के कारण नष्ट होते जा रही है। बुद्धि नष्ट होने से लज्जा का त्याग हो जाता है। लज्जा के साथ ही धर्म का ऱ्हास होने लगता है। धर्म के चले जाने पर लक्ष्मी भी विदा हो जाती है। ऐश्वर्य, क्षमता और आडम्बर ये ही तो आदमी को अन्धा कर देते है। धनहीन पुरुष से स्वजन, सुहृद और ब्राह्मण लोग दूर रहने लगते है जैसे पुष्पहीन, फलहीन वृक्ष को

छोड़कर पक्षी उड़ जाते है। निर्धन अवस्था बड़ी ही दु:खदायी होती है। कोई कोई तो इस अवस्था में पहुंचकर मृत्यु का वरण करने के लिये तैयार हो जाते है। जो लोग जन्म से ही निर्धन उन्हे उसका उतना कष्ट नहीं जान पडता जितना कि धन पाकर सुख में पले लोगों को धन का नाश होने पर होता है। युद्ध होने में तो सर्वदा कलह ही रहता है और प्राण संकट में रहते है। नीति का आश्रय लेने पर मैं राज्य भी नहीं छोडना चाहता हूं और न ही कुल का नाश चाहता हूं। मेरी इच्छा है जैसे भी हो साम, दाम, दंड, भेद इन सभी उपायों में से कोई उपाय कर लेना चाहिये परन्तु यदि थोड़ी विनम्रता से भी कार्य हो जाये तो इससे बढ़कर और क्या होता है? आप ही हमारे परम प्रिय हितैषी है। इस संकट के समय हमें क्या करना चाहिये जिससे हम धर्म और अर्थ दोनों से वंचित न हो इस विषय में हमारा मार्गदर्शन करे।

कृष्ण को लगता था कि बात केवल इतनी ही नहीं थी कि वह समझता था कि पांडव हस्तिनापुर की सेना को पराजित कर पायेंगे या नहीं। कही यह बात भी मन में जमी हुई थी कि पांडव उनसे युद्ध नहीं करेंगे जिन्हे वे अपना पिता मानते हैं। वे धृतराष्ट्र से युद्ध कर अपना राज्य नहीं छीनेंगे। वे भीष्म और द्रोण के विरुद्ध अस्त्र-शस्त्र नहीं उठायेंगे। कृष्ण का यह सोचना सत्य से दूर भी नहीं था। युधिष्ठिर किसी का भी वध करना श्रेयस्कर नहीं मानते थे फिर वे अपने ज्येष्ठ पिता और पितामह का वध कैसे करते? वे इसे नृशंसता मानते थे। युधिष्ठिर ने तो अनृशंसता का व्रत ले रखा था। वे तो किसी भी प्रकार की सन्धि के लिये प्रस्तुत थे ताकि उन्हे भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य जैसे कुलवृद्धों से युद्ध न करना पडे। कृष्ण ने तो उन्हे पराक्रम दिखाने का परामर्श दिया था। क्षत्रिय के लिये तो भीख मांगना अधर्म है। कृष्ण तो चाहते थे कि या तो युद्ध में विजय प्राप्त करे या फिर युद्ध में प्राणोत्सर्ग और धृतराष्ट्र पुत्र तो वधयोग्य ही है। उसमें किसी भी प्रकार का द्वन्द्व उचित नहीं। कृष्ण युधिष्ठिर को अभी तक यह नहीं समझा पाये थे कि यदि भरतवंशियों का विनाश होगा तो वह दुर्योधन के अधर्म के कारण होगा, युधिष्ठिर के कर्म के कारण नहीं। युधिष्ठिर की यह मोहग्रस्त स्थिति कृष्ण को चिंतित किये हुये थी। युधिष्ठिर यह सब न समझ रहे होते तो उन्हे समझाया जा सकता था। वे युद्ध के लिये सहमत न होते तो उन्हे सहमत किया जा सकता था किन्तु इस मोह ग्लानि और अपराध बोध से ग्रसित एक अनमने से युद्ध का क्या लाभ? कृष्ण की चिन्ता का कारण केवल यही था। शत्रु को जीवित रख कर दांव साधा जाता है मारकर नहीं साधा जाता। कृष्ण को पांडवों के मन में से क्षत्रिय वृत्ति का सा लोप होता सा दिखाई पड रहा था जो किसी भी रूप में शुभ नहीं था। जिन्हे शान्ति की चिन्ता नहीं थी उन्हे न तो कोई सन्धि करने के लिये कह रहा था और न ही कोई उन्हे सम्भावित युद्ध के लिये दोषी ठहरा रहा था। धृतराष्ट्र और दुर्योधन तो सारा प्रचार यही कर रहे थे कि पांडव मानवता के शत्रु है क्योंकि वे अपने तुच्छ स्वार्थ के लिये युद्ध जैसे भयंकर विनाश को आमंत्रित कर रहे है। वे चाहते थे कि वे दुर्योधन से अपना राज्य न मांगे। चुपचाप भिक्षुकों के समान जीवन व्यतीत कर ले। सारा दोष तो पांडवों का ही था क्यों वे अपना राज्य मांग रहे है? द्वारिका में बलराम भी शान्ति दूत बने हुये थे। वे भी यही समझ रहे थे कि कृष्ण व्यर्थ ही पांडवों को युद्ध के लिये प्रेरित कर रहा है। क्यों नहीं दुर्योधन और युधिष्ठिर में समझौता, सन्धि करवा देता। पर बलराम यह नहीं बताता कि कैसे सन्धि हो? किस प्रकार की सन्धि? दुर्योधन से राज्य भी मांगा न जाये और उसे किसी प्रकार दंडित भी न किया जाये। अर्थात दुर्योधन को तो उसकी दुष्टता के लिये भी पुरस्कार दिया जाये और पांडवों को उनकी सज्जनता के लिये हर प्रकार से वंचित किया जाये। कृष्ण यह सोचते हैं कि दुष्ट दलन के अभाव में बिना उनसे जुझे धर्म स्थापना कैसे हो सकती है? ऐसी शान्ति का वे क्या करेंगे? पर इस समय तो क्षत्रियों में यह हवा चल रही थी कि न्याय और धर्म की मांग भी जैसे अपराध हो गई थी। धर्मराज युधिष्ठिर शान्तिपूर्ण सन्धि के लिये आतुर थे और कृष्ण को केवल धर्म की चिन्ता थी। युधिष्ठिर बोले मैं विनाश नहीं शान्ति चाहता हूं। कृष्ण

बोले जिसमें विनाश न हो ऐसा कोई युद्ध नहीं होता धर्मराज। युद्ध तो मैं भी नहीं चाहता। मानवता से प्रेम करनेवाला कोई भी व्यक्ति युद्ध नहीं चाहेगा। हमे सन्धि के लिये एक और प्रयत्न करके देखना चाहिये। किन्तु याचना करना क्षत्रिय का नैष्ठिक अथवा स्वाभाविक कर्म नहीं है। क्षत्रिय को तो भिक्षावृत्ति अपनाना कभी भी उचित नहीं है और आप तो ऐसे प्रतापी अजमीढ़ वंश के श्रेष्ठ क्षत्रिय होकर भिक्षा मांगने को तत्पर है। आश्चर्य है आपकी बातें सुनकर। पुरुषार्थ से पांच ग्राम उपलब्ध करना तो क्या एक ग्राम उपलब्ध करना भी श्रेयस्कर है किन्तु यदि भिक्षा में एक सहस्त्र ग्राम भी मिले तो क्षत्रिय को नहीं लेना चाहिये धर्मराज। क्षत्रिय का स्वाभाविक कर्म है दान देना, दान लेना नहीं। दान लेना उसका कर्म भी नहीं और धर्म भी नहीं। संग्राम होने दीजिये और उसमें यदि एक ग्राम की भी उपलब्धि हो तो भी वह अधिक सम्मानपूर्ण होगा आपके लिये। किन्तु भिक्षा में असंख्य ग्राम भी प्राप्त कर ले तो अपमान पूर्ण स्थिति से कभी भी उबर न पाओगे राजन। क्षत्रिय के समक्ष दो ही विकल्प है या तो युद्ध या फिर प्राणोत्सर्ग। यही सनातन धर्म है। यही क्षत्रिय का स्वधर्म। दीनता नही, क्षत्रिय में तो वीरता होनी चाहिये। कायरता नहीं शूरता होनी चाहिये। आप क्या सोचते है वे नीच पातकी कुरुपुत्र आपके गिडगिडाने से, आपे दीन वचनों से पिघल जायेंगे? जब तक आप ऐसी विनयभरी वाणी बोलेंगे वे आपको तिनके भर भूमि भी नही देंगे बल्कि आपकी कायरता पर वे हसेंगे। आपका उपहास होगा। आपकी दुर्बलता को जानकर और भी अधिक दर्प से ऐठेंगे। बोलते-बोलते कृष्ण का स्वर ऊंचा उठने लगा और शनै: शनै: प्रखर होता चला।

श्रीकृष्ण ओजपूर्ण वाणी में गरजकर बोलने लगे अब। हे धर्मराज वे दुष्ट कुरुपुत्र इतने अधम है कि आपको जो आप उनके ज्येष्ठ भ्राता हैं कौपीन धारण करा दी। आपको दीर्घकाल के लिये वनवास के कष्ट दिये। और ऐसे अधर्मियों से आप याचना कर रहे हैं? झोली फैलाकर भीख मांग रहे है? पितामह गंगापुत्र भीष्म, आचार्य द्रोण, कुलगुरु कृपाचार्य, महाराज धृतराष्ट्र एवं चर्तुवर्ण समाज की उपस्थिति में देखते-देखते द्यूत क्रीडा द्वारा छल से आपको ठग लिया। किसी ने भी उठकर कोई प्रतिवाद किया? क्या बाद में भी किसी ने लज्जा प्रकट की? किसी ने आपसे क्षमा याचना की? किसी ने आपसे यह अनुरोध किया कि जो कुछ अतीत में उसे वे भूलना चाहते है? और आप ऐसे दुराचारियों का वध करने में हिचकिचा रहे है। आप है न्याय तुलाधारी धर्मराज। कहां गया आपका धर्माधर्म विवेक? आपकी न्याय भावना? राजा का कर्त्तव्य है कि निष्पक्ष भाव से न्याय करे और न्याय करते समय अपने और पराये का भेद मिटा दे। यदि अपने सगे भ्राता ने भी दुराचार किया है तो नि:संकोच भाव से उसे कठोर दंड देना राजधर्म है। पर आप कैसे राजा हैं? न्याय के आसन पर बैठकर भी आप अपराधी को अपराधी नहीं कह सकते? दोषी को दोषी करार नहीं देते? ऐसे दुराचारी कुपात्रों को दान दया करना चाहते है। क्या यह आपकी मोहजनित मूढता नहीं? कूटनीति का प्राचीन सिद्धान्त है कि शत्रु बलवान हो पाये उसके पहिले ही उसे नष्ट कर देना चाहिये। शक्ति संचय कर पाने के पूर्व ही शत्रु को कुचल देना चाहिये ताकि वह सिर उठा ही न पाये। जीवनभर संग्राम करते-करते पौरुष की प्रतिष्ठा के लिये प्राण गंवाना ही वीर के लिये श्रेयस्कर है।

जिस दिन भातृ विरोध की दुहाई देकर अन्धे राजा धृतराष्ट्र ने एक राष्ट्र के दो भाग कर दिये, दो राजधानी हस्तिनापुर और इन्द्रप्रस्थ बना दी। ये कलह के बीज तो उसीदिन से बोये गये। धृतराष्ट्र यह नहीं जानते थे कि कभी अनुर्वर, बंजर भूमि पर भी निष्ठा, साधना और एकाग्रता, धर्म विचार तथा पुण्य कार्यों के बल पर सुन्दर पुष्पोद्यानों की सृष्टि भी हो सकती है। अत: अनुर्वर खांडवप्रस्थ भतीजों को देकर सदाशया दिखाई है, ऐसा सन्तोष उन्हे हो गया। पर अब इन्द्रप्रस्थ की प्रगति कौरवों के लिये ईर्ष्या का कारण बन गयी। ईर्ष्या से उनके मन में सारे इन्द्रप्रस्थ के लिये शत्रुता पैदा हो गयी और इस प्रकार दोनों राजधानी में अशान्ति अनिश्चितता का अम्बार लग गया। ऐसे में पांडव निश्चिंत सुख में कैसे समय बिताते है? कभी

कभी सारी बातें जानकर भी कुछ ऐसे फैसले जीवन में लेने ही पडते है। किसी महत्तर उद्देश्य के लिये रास्ते में क्षति हो तो सहनी होती है। त्याग स्वीकार करना पडता है। आर्यावर्त का विभाजन इस महत्तर उद्देश्य के साधन में प्रथम आहुति है। अधर्म का राजत्व न रहे तो धर्म को कौन समझेगा? अन्याय और अविचार का शिकार हुये बिना न्याय और धर्म की प्रतिष्ठा के लिये हस्तिनापुर में कौरवों के राजत्व की भी क्या आवश्यकता है? कृष्ण बोले धर्म के लिये प्रचार और विज्ञापन की जरूरत नहीं होती। जरूरत है जीवनानुभूति और आत्मचिन्तन की। राष्ट्र के सभी इलाके उन्नत होने पर भी एकता और समन्वय के अभाव में देश का भविष्य घोर अन्धकार छन्न की ही माना जाता है। एक राज्य का हर क्षेत्र उन्नत है और दूसरा खंड विखंड अवस्था में तो फिर उसकी स्वाधीनता का सूर्य दिग्वलय की ओर चला जाता है धर्मराज। गृह युद्ध लगे रहने पर बहि: शत्रु देश को पराधीन करने का पूरा पूरा अवसर पा जाते है। किसी भी राष्ट्र की प्रगति और उन्नति उसकी राष्ट्रीय एकता पर निर्भर करती है। पूरे आर्यावर्त में धर्म स्थापना और राष्ट्रगत ऐक्य स्थापन मेरा प्रधान कर्तव्य है। पांडवों के प्रयत्नों से मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण होगी। अत: तुम्हारे जीवन में जडता और आलस्य के लिये कोई स्थान नहीं है महाराज युधिष्ठिर। कृष्ण का उद्देश्य बहुत महान है पर वह उद्देश्य पूरा करने के लिये पांडवों को अधर्म, अविचार और असत्य के साथ जीवन भर संघर्ष करना होगा, समझौता नहीं। कौन जाने जय किसकी होगी। युधिष्ठिर का मन अचानक अशुभ की आशंका से सिहिर उठा सोचने लगे समुचे हस्तिनापुर की हमें क्या जरूरी है?

कृष्ण के होठ फडक उठे और बोले धर्मराज परोपकार के लिये कभी नियम भंग करने का दोष नहीं होता। सत्य की रक्षा करने के लिये कभी असत्य का सहारा लेना पडे तो उसमें दोष नहीं है। रोना तो दुर्बलता का प्रतीक है, अपनी निर्बलता प्रकट करने का लक्षण है। अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा कर कभी भी पूजा-अर्चन से पुण्य नहीं मिलता। हर मनुष्य के जीवन में कभी अस्थिर पल भी आते है पर मनुष्य का लक्ष्य होता है स्थिरता, प्रशान्ति और परिपूर्णता। राजपुत्र को बचपन से ही वनवास, विपदा, अनादार, अर्धाहार, दारिद्र्य और भाग्य के साथ संग्राम करना होता है। धर्मराज यह जीवन सुख के लिये है, उपभोग और आनन्द के लिये है। सुख की आशा में ही आदमी असहनीय दु:ख भी सह लेता है।

कृष्ण ने युधिष्ठिर को उकसाया और बोले धर्मराज मुझे आश्चर्य है कि आप इतनी शीघ्र भूल गये, उस कुटिल दुर्योधन ने क्या कहा था? दुर्योधन ने अत्यन्त अपमानजनक शब्दों में कहा था कि पांडवों के पास अब अपना स्व का निजी कहलाने योग्य किंचित मात्र वस्तु भी नहीं रह गयी है। केवल अपने नाम एवं गोत्र को छोडकर और उनके नाम गोत्र भी शीघ्र ही मिट जायेंगे। हे सत्यवादी युधिष्ठिर दुर्योधन के तिक्त वाक्य को आप मधुर पेय सा पान कर गये तथा इस वाक्य ने आपके अन्तर में कोई दाह भी उत्पन्न नहीं किया। मुझे तो बडा ही आश्चर्य है आप अपनी सुमंगला प्रिय भार्या का जिसकी रक्षा, जिसके सम्मान की रक्षा का दायित्व आप पर है, उसका अपमान तक भूल गये। आपके रहते पापी दुशासन यह दु:साहस कर सका कि पवित्रमना मेरी सखी कृष्णा, इस भारती के केश पकडकर घसीटते हुये उसे राजसभा में ले गया। आपके रहते उसे अनाथ, असहाय गौ कहा गया। उस निर्दोष, एकाकिनी अबला को सामूहिक रूप से अपमानित किया गया। आपकी पत्नी को निर्वस्त्र करने का प्रयास वे दुराचारी करते रहे और आप धर्मराज धर्म की आड में बैठे देखते रहे? यह धर्मराज शब्द से सर्वप्रथम मैंने ही आपको उद्बोधित किया था क्योंकि आप में सरलता, उदारता, दया, करुणा व विनय आदि सभी मानवीय अपार गुण विद्यमान है किन्तु धर्माधर्म का विचार आप में न होगा, यह तो मैंने कभी भी नहीं सोचा था। धर्मराज की उपाधि से अलंकृत होकर भी आप अधर्म के सहायक हुये और स्वयं पर आश्रित अपनी अर्धांगिनी उस निर्बल द्रुपद सुता पर अधर्म होते देखते रहे। यदि उस समय आप दास धर्म में बद्ध थे तो अब क्या बाधा है? अभी इस

क्षण भी वह सब स्मरण करके आपको ग्लानि क्यों नहीं होती? प्रतिशोध की ज्वाला नहीं धधकती आपके क्षत्रिय अन्तर में? महाप्रतापी महाराज पांडु के उत्तराधिकारी ज्येष्ठ पुत्र युवराज क्या धर्मराज युधिष्ठिर की शिराओं में धमनियों मे रक्त नहीं खौलता? आप कैसे क्षत्रिय है और आप रहे हैं राजा इन्द्रप्रस्थ के, आप धर्मराज हैं?

कृष्ण बोले राजन सन्धि तो समकक्षों से की जाती है और यह अधम पापी दुर्योधन कहां से, कब से आपके समकक्ष हो गया? आपका यह कथन इनसे सन्धि करना चाहते है यह तो इनका वध करने से बचने को आप धर्म की दुहाई दे रहे है। किन्तु स्मरण रहे धर्मराज जिस प्रकार सर्प सदा वध योग्य है और सर्प वध से पाप नहीं लगता, उसी प्रकार यह दुराचारी दुर्योधन वध्य है। वह पतित व्यक्ति ऐसे वृक्ष के समान है जिसका मूल नष्ट हो गया है। मानवमात्र का मूल धर्म में होता है और वो तो अधर्मी है। ऐसे कुपात्र पर अपने दया भाव का अपव्यय न करे महाराज युधिष्ठिर। इसमें द्विधा का प्रश्न ही क्यों उठता है? क्षत्रिय का मार्ग एक है वो है पराक्रम का मार्ग। वही उसके लिये सुपथ है वही धर्म है। पराक्रम दिखाइये महाराज। शौर्य से अधर्मियों को समाप्त कर पृथ्वी का भार हल्का कीजिये। असहाय पत्नी के अपमान का प्रतिशोध लीजिये। आपकी पत्नी आप पर आश्रित है। उसे निराधार छोडना अधर्म है। उसकी रक्षा का दायित्व आपका था, आप नहीं निभा पाये किन्तु अब तो समय रहते प्रतिशोध लीजिये। पत्नी के प्रति आपका क्या कोई कर्त्तव्य नहीं?

युधिष्ठिर के चिन्ताकुल चेहरे को देख भीम बोला ज्येष्ठ भ्राताश्री भिक्षा ब्राह्मण का धर्म हो सकता है, वह क्षत्रिय के लिये अधर्म होगा। आप क्या कौरवों के अन्याय, द्रौपदी के अपमान, लाक्षागृह का षडयन्त्र, अनुर्वर खांडव प्रस्थ को हमें देने यह सभी बातें भूल गये क्या? कौरवों का यह अधर्म आज ही नहीं है। अन्धे धृतराष्ट्र की ईर्ष्या के कारण हमारे, धर्मवान, शान्तिप्रिय पिता पांडु हस्तिनापुर के सम्राट होते हुये भी जीवनभर अपनी पत्नियों के कारण घोर अरण्य में जीवन बिताने के लिये बाध्य हुये, यहां तक की अरण्य में ही उनकी मृत्यु हुई। हमारी माता कुन्ती राजरानी है, राजमाता है परन्तु दु:ख दारिद्र्य के कारण और चिन्ता में मामा वसुदेव का आश्रय लिये रही। हमारी बात तो छोडो, जन्म से आज तक जो कुछ सहा है, सिर्फ कौरवों का अन्याय, अधर्म, असत्य, अविचार का परिणाम है। युद्ध कर दूसरे की सम्पत्ति या स्त्री हरण अन्याय है। अपने न्याय को पाने के लिये संघर्ष करना तो पौरुष का गौरव है। अब तक सब सहा और नहीं सहा जायेगा। द्रौपदी के अपमान के प्रतिशोध का अवसर छोड देने पर जीवन ही व्यर्थ हो जायेगा? दुर्योधन ने जलती हुई दृष्टि से द्रौपदी की ओर देखा था मानो उस दृष्टि में कामना की लपट थी। प्रतिशोध के अंगारे है, विभत्स और नृशंस लालसा की आग जल रही थी। पर स्त्री का जो अपमान, असम्मान करता है वह नराधम, पर जो असम्मान का चुपचाप अनुमोदन करता है या प्रोत्साहन देता है वो तो महापापी है उनमें कर्ण भी ऐसा ही है। नारी की प्राणरक्षा से अधिक उसके सम्मान की रक्षा करना वीर पुरुष को अधिक स्पृहणीय है दुर्योधन अहंकारी है ज्येष्ठ भ्राताश्री। अहंकार झूठा हो या सच्चा, अहंकार दूर करना ही होता है और अहंकार मिटाने के लिये मर मिट जाना भी होता है, समर्पित भी हो जाना पडता है।

अर्जुन ने शान्त स्वर में कहा उत्तेजित न हो मझले भैया। यहां हमारे सखा कृष्ण आर्यावर्त के श्रेष्ठ ज्ञानी, नीतिज्ञ पुरुष हैं। वे ही स्थिर करेंगे हमारे भविष्य का कार्य पथ। जीवन पथ में अपने लक्ष्य स्थल की ओर जाते-जाते आदमी यदि अपने बन्धु-बान्धवों, परिजनों, देश, समाज का हित न साध पाये तो फिर कैसा जीवन? क्या मूल्य उस देह का? सागर तृष्णा नहीं मिटता पर नदी का मधुर जल मिटाता है। जो सम्पदा औरों का दारिद्र्य दूर नहीं कर सकती वह सम्पदा किस काम की? युधिष्ठिर बोले हिंसा एवं क्रोध दु:ख का कारण होते हैं। ये दोनों पक्ष के लिये अहितकारी हैं। हिंसा से मिली विजय में धन, सम्पत्ति, राज्य, क्षमता पा सकते है पर उसमें शान्ति, प्रीति, आनन्द नहीं मिलता। विप्लव की धारा हिंसा के मार्ग पर

चलना ठीक नहीं। शत्रु को वश में प्रेम से भी किया जा सकता है। याज्ञसेनी काम्यक वन में शान्ति से रहने की व्यवस्था भलीभांति करने में निपुण है।

कृष्ण गम्भीर स्वर में बोल उठे आदमी औरों को छोटा बौना बनाकर स्वयं पर ऊठना चाहता है, वह अन्याय है, अधर्म है जो दूसरों को दबा देता है। धर्मराज उपकारी के तो लोग सौ उपकार भूल जाते हैं परन्तु एक अपकार एवं अपमान की बात जीवन भर याद रहती है। जो अपनी गृह लक्ष्मी की मर्यादा रखने में असमर्थ होकर युद्ध टालने के लिये राजमर्यादा की भी रक्षा नहीं कर सका, उलटे वैराग्य और अहिंसाव्रत धारण करता है वह धर्मात्मा हो सकता है परन्तु है तो वो कापुरुष। ऐसे पुरुष के प्रति मन में भक्ति हो सकती है पर प्रेम नहीं। प्रेम वीर से किया जाता है। मैं उभय कौरवों और पांडवों दोनों का मंगल चाहता हूं। उनके द्वन्द्व का समाधान चाहूंगा। अभी भी शान्ति का द्वार बन्द नहीं हुआ है। शान्ति प्रयास जारी रहेगा। सम्पूर्ण आर्यावर्त में धर्म-शान्ति आज विपन्न है। पुन: इसकी प्रतिष्ठा हो यही हमारा लक्ष्य है। यदि शान्ति पर कौरव राजी नहीं होते तो फिर युद्ध ही अन्तिम उपाय होगा। अब बात कौरव पांडवों के व्यक्तिगत विवाद की नहीं रही। अब यह संघर्ष पारिवारिक नहीं रह जायेगा। यह संघर्ष होगा धर्म-अधर्म का, न्याय-अन्याय का, सत्य-असत्य का, पाप-पुण्य का, आदर्श-अनादर्श का और यदि मानव कल्याण के लिये आवश्यक हुआ तो रक्तपात, जीवन नाश, अर्थक्षय तथा नाना प्रकार की क्षति सहना इत्यादि उपकरण हो सकते है। इस समय सारे आर्यावर्त की एकता और अखंडता विपन्न है। आर्यावर्त खंड खंड हो जाता है तो देवता हो या दानव वे अवसर पाते ही इसे निगल जायेंगे। आर्यावर्त की अपनी सत्ता का लोप हो जायेगा और फिर आयेगा पराधीनता का अन्धकार और समय, उसमें कौरव पांडव ही नही सारे आर्यावर्त के निरीह नागरिक भी सुख-शान्ति सौभाग्य खो बैठेंगे। अत: अब प्रश्न है देश की अखंडता का, धर्मरक्षा का है। कौरव योग्य है या पांडव, जो भी योग्य है वही न्यायपूर्ण अपना अधिकार नहीं पाये तो समूह स्वार्थ के लिये युद्ध का ही आश्रय लेना पडेगा। पांडव राज्य मोह छोडकर अरण्यवासी बने तो भी उनकी क्षति तो नहीं होगी। क्षति होगी आर्यावर्त की अगणित जनता की। धर्मात्मा सुशासक, न्याय विचारक के हाथ में देश का शासन दंड रहना उचित है। गौ, ब्राह्मण शिशु, नारी, धर्म, परम्परा आज विपिन्न है। इस महासमर का लक्ष्य होगा उनकी रक्षा करना। यदि सन्धि का प्रस्ताव उन्हे स्वीकार नहीं होगा तो फिर युद्ध की प्रस्तुति। कृष्ण के इस मत पर सब राजी हो रहे थे। सब तो पहिले से ही युद्ध की बात सोच रहे थे पर किसी-किसी के मन में किन्तु परन्तु थी। बिना युद्ध किये पापी को उचित दंड कैसे मिलेगा? कौरव दंडित न हुये तो आगामी वंश धर पाप से क्यों डरेंगे? प्रतिदिन प्रत्यक्ष दिन दोपहर में नारी का वस्त्राहरण, बलात्कार, नारी का सतीत्व लूटते फिरेंगे।

वैशम्पायन बोले जनमेजय महाराज युधिष्ठिर के कहने पर कृष्ण बोले मैं दोनो पक्षों के हित के लिये कौरवों की राजसभा में जाने का प्रस्ताव रखता हूं और वहां आपके लाभ में किसी भी प्रकार की बाधा न पहुंचे कोई सन्धि हो जाये तो वह अवश्य कराऊंगा और मैं समझूंगा कि मुझसे बडा भारी पुण्य कर्म बन गया। सम्भव है कि महाराज द्रुपद के राज पुरोहित वे बातें न कह पाये हो जो मैं कह सकता हूँ। मैं मध्यस्थ के समान दोनों पक्षों के हितों का ध्यान रखकर कोई ऐसा मार्ग निकालने का प्रयत्न करूंगा जिससे युद्ध न हो और विश्व में शान्ति बनी रहे। मैं हस्तिनापुर जाकर कौरवों की युद्ध विषयक तैयारी सम्बन्धी सूचनाओं से अवगत होकर आपकी विजय की शुभ कामना लिये पुन: यहीं लौट आऊंगा। परन्तु दुर्योधन द्वारा किये गये अनर्थ एवं कुकर्मों को जग जाहिर करूंगा। जो भूपालगण अभी तक अनभिज्ञ है, उन्हे दुराचारियों के अधर्म से अवगत कराऊंगा। कुरुपुत्रों के दुर्गुणों का सबके समक्ष उद्‌घाटन करूंगा। विभिन्न नरेशों को उनसे विमुख करने का मेरा प्रयास होगा। आपके धर्म के पक्ष में प्रस्ताव दूंगा। चारों वर्णों को उनका उद्देश्य समझाऊंगा। ये सब बाते वहां के

नगरवासियों को मालूम पडे, वह बताऊंगा। पुरवासियों को समझाऊंगा। आबाल, वृद्ध स्त्री पुरुष सबको बारी-बारी से समझाऊंगा कि कुरुपुत्र दुर्योधन कितना पतित है और महाराज धृतराष्ट्र पुत्र मोह में कितने ग्रसित है कि उचित-अनुचित, और नीति-अनीति का पाठ और अपना विवेक भी होमचुके है। सबको बताऊंगा कि पुत्रों के दुराचार को ज्ञान चक्षु हीन माता-पिता ने जान-बूझकर अनदेखा किया है। इससे मैं सबको प्रभावित करूंगा। आपके पक्ष में सुदृढ़ जनमत होगा ताकि युद्ध के समय आये हुये बुद्धिमान नृपति, राजागण और महीधर आपके पक्ष में युद्ध में भाग ले और उन क्रूर कर्मियों का नि:संकोच होकर संहार करे। मुझे लग रहा है युद्ध अवश्यम्भावी है अनिवार्यता है। हो न हो युद्ध होकर रहेगा और सारे कौरव परास्त होंगे उनका वंश निर्मूल हो जायेगा। राजन ऐसे कुटिल स्वभाव और आचरणवालों के साथ आप मेल-मिलाप का विचार और प्रयत्न भी न करे। वे आप ही के नहीं वे तो सभी लोगों के वध्य है। धर्मराज दुर्योधन कैसा पापी है यह मैं स्पष्ट रूप से जानता हूं किन्तु यदि हम अपनी ओर से सब बातें बता देंगे तो संसार मे कोई भी राजा हमें दोषी नहीं ठहरा सकेगा। मेरे लिये तो दुर्योधन से कोई भय है नहीं। जिस तरह सिंह के शावक के सामने दूसरे जंगली पशु भी नहीं ठहर सकते उसी प्रकार यदि मैं क्रोध करूं तो संसार के सारे राजा मिलकर भी मेरा सामना नहीं कर पायेंगे। मेरा वहां जाना किसी भी रूप में निरर्थक तो हो ही नहीं सकता। सम्भव है वहां जाने पर काम बन जाये और यदि काम न भी बना तो कम से कम आप निन्दा से तो बच जायेंगे। यह निश्चय जान लें कि जब तक दुर्योधन जीवित है तब तक वह आप को तो क्या किसी को भी कुछ नहीं देगा।

अनायास ही भीम का विचलित कंठ स्वर डोल उठा और उसे सुनकर सब स्तम्भित रह गये। भीम बोला नहीं नहीं जनार्दन ऐसा नहीं, नही। वासुदेव युद्ध की उस भयंकर विभिषिका से कृपया वृद्ध कुरुवंशियों को भयभीत न करे। दुर्योधन कुकर्मी है फिर भी उसके पाप कर्मों के लिये वयोवृद्ध कुरुवंशियों को क्यों दंडित किया जाये? भरतवंशियों का विनाश न हो माधव। भरत वंशियों का संहार किसी प्रकार न हो। इतना प्राचीन वंश इतना गौरवशाली वंश निर्मूल न हो, नष्ट न हो जनार्दन। आर्य युधिष्ठिर युद्ध विरत है। अर्जुन स्वभाविक रूप से ही दयालु है। मैं भी अनावश्यक संहार नहीं चाहता अपने बन्धुओं का। युद्ध नहीं अच्युत नहीं। युद्ध अत्यन्त दारुण होगा। एक परिवार में होगा। भरतवंशी आपस में ही भरतवंशी को मारेंगे। भारत भारत को मारेंगे और वार्ष्णेय विजयी किसी की भी हो यह परिवार तो नष्ट हो ही जायेगा, निर्मूल हो जायेगा। युद्ध का परिणाम भयंकर होता है अत: हे अच्युत युद्ध नहीं। आप कौरवों से कोई ऐसी बात करे जिससे वे सन्धि करने को भी तैयार हो जाये दुर्योधन बड़ा ही असहनीशल, अहंकारी, अदूरदर्शी, क्रोधी, निष्ठुर, हिंसाप्रिय व्यक्ति है। वह मिट जायेगा किन्तु अपनी ऐठ नहीं छोडेगा जैसे रस्सी जल जायेगी पर अपनी गांठ पडी ऐंठन नहीं छोडती। दुर्योधन के क्रोध से सभी भरतवंशी भस्म हो जाने का भय है। हे केशव कलि, मुदार्वत, जनमेजय, बहुल, वसु, अजबिन्दु, रूषर्धिक, अर्कज, द्योतमूलक, हयग्रीव, वरयु, बाहु, पुरुरवा, सहज, वृषध्वज, धारण, विगाहन और शाम ये अठारह राजा हुये है। जिन्होंने अपने ही सजातीय, सुहृद और बन्धु बान्धवों का संहार कर डाला था। इस समय हम कुरुवंशियों के संहार का समय आया है इसीसे कालगति से यह कुलांगार पापात्मा दुर्योधन उत्पन्न हुआ है। अत: आप जाकर कुछ भी कहे वह मधुर और कोमल वाणी से धर्म और अर्थ से युक्त उनके हित की बात कहे। वह बात अधिकतर उनके मन के अनुकूल ही हो नहीं तो वे आपका कहा स्वीकारेंगे नहीं। हम सब तो दुर्योधन के नीचे रहकर भी नम्रतापूर्वक उसका अनुसरण करने को भी तैयार है पर हमारे कारण किसी प्रकार भी भरतवंश का नाश न हो। आप कौरव सभा में जाकर हमारे वृद्ध पितामह और अन्य सभासदों से ऐसा करने के लिये कहे जिससे भाई-भाइयों में मेल बना रहे और दुर्योधन भी शान्त हो जाये। दुर्योधन टूट जायेगा पर झुकेगा नहीं।

श्रीकृष्ण विस्मय से प्रचंड भीम को देखते रह गये। सभी यह देख सुनकर अवाक रह गये। किसी को भी अपने कानों पर

विश्वास नहीं हो रहा। पांचाली भी हतप्रभ थी। उसके नेत्र तो वृकोदर पर विस्फारित होकर रह गये। क्या किसी ने भीम पर जादू टोना कर दिया? क्या यह भीम ही बोल रहा है? क्या कभी सागर का गम्भीर गर्जन भी सरिता की कोमल कल-कल में बदल सकता है? क्या कभी विशाल पीपल भी माधवी लतिका सा वायु प्रकम्पित हो लहराने लगता है? असंख्य पशुपक्षियों के आश्रयदाता महाकाय वट वृक्ष को भी क्या कोई पक्षी चंचु में तृणवत दबाकर उड सकता है? नगाधिराज हिमालय क्या कभी नवनीत से आच्छादित किया जा सकता है? पांचाली तो सोचती रह गयी कि भविष्य में कभी कोई मान सम्मान रख सकेगा तो वह है स्पष्टवादी, निर्मलहृदय क्षण कोपी भीम ही। पर पांचाली की आशाओं पर तो जैसे तुषाराघात हो गया।

भीम अपने अग्रज के प्रभाव में है इसलिये की अग्नि अपने अन्तर में सुप्त है। कृष्ण से किसके अन्तर की दुर्बलता छिपी है? उस अग्नि को दहकाना है। सुप्त को जागृत करना है। तत्काल कृष्ण प्रबल प्रभंजनकारी बन बैठे ताकि भीम के शौर्य की सुप्त अग्नि उद्विप्त हो ज्वालामयी बन बैठे। कृष्ण मन्द मन्द मुस्कुराते हुये बोले भीम तुम्हारे मुख से यह कैसे दीन वचन निसृत: हो रहे है? तुम्हारा नाम भीम है वह तो आज सार्थक नहीं हो रहा है तुम्हारा नाम तो दीन सेन होगा। तुम जो अब तक प्रतिशोध की भावना से सदा उद्वेलित रहते थे आज सन्धि की बात कर रहे हो? तुम तो प्रतिशोध की भावना से इतने व्यग्र रहते थे कि रातों को ठीक से सो भी नहीं पाते थे। तुम्हारी जगविख्यात क्षुधा ही उड गयी थी और आज उस भीम के अन्तर में कहां से यह करुणा का स्त्रोत फूट पडा, उत्स निकल पडा? हे शाश्वत उद्विग्न भीम सदा से अशान्त मन रहनेवाले आज ही यह क्या शान्ति सूझी तुम्हे? तिल भर की बात में उत्तेजित हो उठनेवाले शूरवीर वृकोदर मझले भैया आप तो अपने क्रोध एवं भावावेश के लिये जग प्रसिद्ध रहे हो। तुम्हे प्रतिशोध की ज्वाला से सतत उद्भासित पा लोगों को तुम्हारे उन्मादित होने का भ्रम हो रहा है। तुम्हे लोग विक्षिप्त समझने लगेंगे। अपमान पूर्ण विगत इतने वर्ष तुमने कैसे कैसे काटे होंगे? यह सब मुझसे छिपा नहीं है। सच बताओ अपनी विवशता पर एकान्त में तुम कितनी बार रोया करते थे? दीर्घ निश्वासे लेकर करवटे बदल-बदलकर कितनी रातें जाग जागकर काटी है तुमने? आंखे मूंदकर प्रहरों बैठकर कुरूवंशियों को दंडित करने के लिये क्या-क्या योजनायें नहीं बनायी तुमने? तुम बावरे पागल के समान घूमते थे कि जैसे ही वह तेरह वर्ष की अवधि समाप्त हो तुम कुरुपुत्रों से अपना राज्य ले उन्हे मसल डालो। पांडु नन्दन भीम एकान्त में ओष्ठ चबा चबाकर और भृकुटि टेढ़ी कर तुमने कितनी बार शपथ ली है कि अपनी गदा से उन दुराचारियों के तन को चूर्ण चूर्ण कर दोगे? तुम तो उनके प्राणों को हरने उतारु थे और तुम आज युद्ध से भयभीत हो उठे। क्या भूल गये अपनी प्रतिज्ञायें? वाह रे क्षत्रिय पुत्र। क्या पांच ग्राम लेकर सन्तुष्ट हो जायेगा तुम्हारा दग्ध अन्तर? शान्ति तुम्हारे लिये अचानक इतनी महत्वपूर्ण हो गई कि तुम नपुंसकों और कायरों की भाषा बोलने लगे। तुम्हारा पुरुषत्व भी गया, तुम्हारा तो सिंहत्व भी गया और तुम एक साधारण सा मेष बने मिमिया रहे हो। वाह रे दीन सेन। मोह का आवरण तुम्हारे भी ज्ञानचक्षु पर पड गया क्या? क्या मन शिथिल पड गया? क्या तन भी शिथिल पड गया? क्षत्रिय तो वृद्ध होनेपर भी युद्ध करता है। तुम क्या वृद्ध हो गये? तपस्या करने की इच्छा हो रही है क्या? क्या हिमालय की कन्दरा में जाना चाहते हो? बोलो वृकोदर यह कहां तक तुम्हारे लिये उचित है? तुम्हारे इस शान्ति प्रस्ताव से मैं अचम्भित हो रहा हूं। अपने कुल का स्मरण करो। पराक्रमी स्वर्गीय पिताश्री पांडु महाराज का स्मरण करो। अपनी माता के कष्टों का स्मरण करो। अपना अपमान हुआ उसे स्मरण करो। अपनी उस व्याकुल सुलक्षणा भार्या के प्रति की गयी नीचता का स्मरण करो तब क्षत्रिय धर्म का विचार कर तदनुसार अपने कर्तव्य रत रहो। हे भरतनन्दन अपने कुल, जन्म और कर्मों को दृष्टि में रख प्रस्तुत हो जाओ। व्यर्थ ही किसी प्रकार का विषाद मत करो और अपने क्षत्रियोचित कर्मपर डटे रहो। तुम्हारे चित्त में जो इस समय बन्धु वध के कारण युद्ध से ग्लानि का भाव उत्पन्न हुआ है वह तुम्हारे योग्य नहीं है। क्योंकि क्षत्रिय

पुरुष जिसे पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता उस चीज को वह अपने उपभोग या काम में नहीं लाता। कितना रोमहर्षक था कृष्ण का समुचा वक्तव्य। यह सुनकर भीम के कर्ण शिखर दग्ध हो उठे।

भीम बोला अच्युत ऐसे कठोर वचन कहकर मुझे तिरस्कृत एवं लज्जित क्यों कर रहे हैं? पके हुये घाव को ऐसी निर्ममता से क्यों चीर रहे हैं? मैं कैसा युद्ध करता हूं और कर सकता हूं यह किसीसे क्या छिपा है? वासुदेव मैं तो कुछ और ही करना चाहता था किन्तु आप दूसरी ही बात समझ गये। मेरा बल और पुरुषार्थ अन्य पुरुषों के पराक्रम से कुछ भी समता नहीं रखता। अपने मुंह अपनी बडाई करना यह सत्पुरुषों की दृष्टि में अच्छी बात नहीं है। परन्तु आपने मेरे पुरुषार्थ की निन्दा की है इसलिये मुझे अपने बल का वर्णन करना ही पडेगा। लोहे के मोटे डन्डों के समान आप मेरे इन भुजदंडों को देखे। इनके बीच में ऐसे कोई जीवित निकल जाये ऐसा मुझे कोई दिखाई नहीं देता। जिस पर मैं आक्रमण करूं उसकी रक्षा तो इन्द्र भी नहीं कर सकता। पांडवों पर अत्याचार करनेवाले उन समस्त युद्धोत्सुक क्षत्रियों पर तो बहुत भारी पडेगा। मैंने जिस जिस प्रकार राजाओं को जीतकर अपने अधीन किया था वो सब क्या आप भूल गये? यदि सारा संसार भी मुझपर कुपित होकर टूट पडे तो भी मुझे भय नहीं होगा। द्रुपद सुता पांचाली पर कुदृष्टि डाली थी कीचक ने, मैंने क्या हाल किया था उसका? एक सौ छै उपकीचकों के शवों से भूमि पाट दी थी मैंने। मेरे ऊपर वृद्धावस्था आरोपित की है जनार्दन आपने वह ठीक नहीं। मेरी मज्जा मेरी देह अभी तक शिथिल नहीं हुई है, न ही मेरा हृदय कांप रहा है। न मैं युद्ध की सम्भावना से भयभीत हूं। मैंने जो शान्ति की बात कही है वह तो केवल मेरा सौहार्द्र ही है। मैं दुर्योधन को केवल एक अवसर और देना चाहता हूं ताकि यदि उसमें सद्बुद्धि का प्रादुर्भाव हो जाये तो कुरुकुल विनाश से बच जाये। अपने वंश को बचाने के लिये मैं सर्वस्व त्याग कर सकता हूं। क्लेश, कष्ट सब सहने को तैयार हूं किन्तु यदि युद्ध टाला नहीं जा सका तो अपने प्राणों की तनिक भी चिन्ता किये बिना उस महायज्ञ में आहुति के समान स्वाहा भी हो जाऊंगा। मैं दयावश ही सब कष्ट सह लेता हूं और इसीसे चाहता हूं कि भरतवंशियों का नाश न हो।

भीम का मन्तव्य सुनकर कृष्ण आश्वस्त हुये। कृष्ण बोले मैंने तो तुम्हारा भाव जानने को प्रेम से ये बाते कहीं है, अपनी बुद्धिमानी दिखाने या क्रोध के कारण ऐसा नहीं कहा है। मैं तुम्हारे प्रभाव और पराक्रम से भलीभांति परिचित हूं। मैंने तुम्हारा तिरस्कार नहीं किया है। अब मैं धृतराष्ट्र के पास जाकर आप लोगों के स्वार्थ की रक्षा करते हुये सन्धि का प्रयत्न करूंगा। यदि उन्होंने सन्धि कर ली तो मुझे चिरस्थायी यश मिलेगा। आप लोगों का काम हो जायेगा और उनका बडा भारी उपकार होगा। और यदि उन्होंने अभिमानवश मेरी बात नहीं मानी तो फिर युद्ध जैसा भयंकर कर्म अनिवार्य है। भीम इस युद्ध का समस्त भार तुम पर अवलम्बित होगा या फिर अर्जुन को इसकी धुरी धारण करनी पडेगी तथा और सब लोग तुम्हारी आज्ञा में रहेंगे। यदि युद्ध हुआ तो मैं अर्जुन का सारथी बनूंगा। जब तुमने कायरता की सी बातें की तो मुझे तुम्हारे विचार पर सन्देह हो गया और मैंने ऐसी बातें कहकर तुम्हारे तेज को उकसा दिया। कृष्ण की दृष्टि अब सव्यसाची की ओर घूमी। अर्जुन अत्यन्त कोमल मन है भावुक हृदय है।

अर्जुन बोले वसुदेव नन्दन। यदि आपकी दृष्टि में कौरव वध उचित है तो वही होगा। उस पापी बुद्धि दुशासन ने द्रुपद सुता को कितना कष्ट दिया वो मैं भूल नहीं सकता। वह अपमान का विष घूंट में कंठ से नीचे नहीं उतरा है और उसके आस्वादन से मेरा जीवन तिक्त हो गया है। उसी अपमान के कारण जयद्रथ एवं कीचक जैसे नारकीय वीरों ने भी दु:साहस किया है, मैं तब भी कुछ नहीं कर पाया। किन्तु वासुदेव अब मैं शान्त नहीं बैठ सकता। किन्तु नारायण यदि रक्तपात होने से बचाया जाये तो अति उत्तम। अपनी ओर से एक अवसर उन अधर्मियों को देने में हमारी ही उदारता है। मुझे ज्ञात है वह

दुष्ट दुर्योधन सन्धि प्रस्ताव स्वीकार नहीं करेगा। वह राजमद वैभव से उन्मादित हो गया है। अहंकार एवं दम्भ से विक्षिप्त गजराज की भांति उसे ठीक राह तक नहीं सूझ रही है। मरूभूमि में या उसर भूमि में क्या बीज बोये जा सकते है? अधर्मी हृदय में न्याय एवं धर्म का अंकुरण हो सकेगा क्या? मुझे तो सन्देह है फिर भी एक बार प्रयास कर देखने में कुछ भी अनुचित नहीं। पांच ग्रामों की हमारी मांग सर्वथा उचित है और पांच ग्राम भी हमें मिल जाये तो फिर ठीक है फिर यह युद्ध क्यों? हमारी मांग पूरी हो जानेपर हम प्रसन्न व सन्तुष्ट हो जायेंगे। अहंकारी पुरुष में प्रतिशोध का नशा कितना भयंकर होता है, जैसे जल से उबर कर आग का सामना। गर्व किसी का सदा नहीं रहता। यह पृथ्वी कितनी विराट है उसमें आदमी कितना छोटा, बौना और असहाय है। आदमी का अहंकार फिर धूलकण सा कितना अलीक है, असार है। पलभर में टूट जाता है। कितना हास्यपद बना देता है उसे। कितना मनस्ताप से भर जाता है प्राणों में क्या पता? जो कुछ करना था वह तो महाराज युधिष्ठिर आपको कह ही चुके है। आपकी बातें सुनकर लगता है कि धृतराष्ट्र के लोभ और मोह के कारण आपको सन्धि होनी सहज नहीं लगती। किन्तु यदि कोई काम ठीक से रीतसर किया जाये तो वह सफल भी हो ही जाता है। आपकी जैसी इच्छा हो वैसा करे। आप जो कुछ भी करेंगे वो हमको मान्य है। किन्तु जो धर्मराज के पास लक्ष्मी देखकर सहन न कर सका और कपटद्यूत जैसे कुटिल उपाय से उनकी राज्यलक्ष्मी भी हर ली वहा दुरात्मा दुर्योधन क्या अपने पुत्र पौत्र और बान्धवों सहित मृत्यु के मुख में झौंकने योग्य नहीं है? उस पापी ने जिस प्रकार सभा के बीच द्रौपदी को अपमानित कर क्लेश पहुंचाया था यह तो आपको भली-भांति विदित ही है। हमने तो उसे भी सहन कर लिया। क्या वही दुर्योधन सन्धि हो जानेपर अब पांडवों के साथ अच्छा व्यवहार बर्ताव कर सकेगा? ऊसर भूमि में बोये हुये बीज के अंकुरित होने की क्या सम्भावना, आशा की जा सकती है? अत: आप जो भी उचित समझे तथा पांडवों का हित हो वही काम करे तथा हमारे लिये आगे जो कुछ करना है उसका मार्ग प्रशस्त कर दे। पांचाली आहत नेत्रों से फाल्गुनी को देखती रह गई। विश्वविजयी अर्जुन आज पांच ग्रामों की मांग को उचित मानकर भी सन्तोष मान रहे है। क्या हुआ है इस क्षत्रिय को? क्या हुआ है क्षत्रिय जाति को? क्या हुआ है महाराज पांडु के प्रतापी पुत्रों को? क्या हो गया है परम प्रतापी अजमीढ़ कुल के वंशजों को? दीनता और दरिद्रता में वर्षों व्यतीत करने के बाद क्या वे सदा के लिये दीन हो गये? महाराज विराट की परिचर्या करते करते क्या अपनी वास्तविक स्थिति पूर्णत: भुला बैठे क्या? कल्पना से वास्तविकता बहुत दूर है। क्या ये अब सदा के लिये याचक बने रहेंगे? क्या दरिद्र बने रहेंगे? अपने पुनरुभ्युदय के लिये कुछ नहीं करेंगे? परिस्थिति कितना असहाय कर देती है आदमी को और फिर आदमी बदल भी देता है परिस्थिति को। आदमी अपने उद्यम और पौरुष के बल पर परिस्थिति को नियंत्रित करता है। उसे बदल सकता है। विपद से अधिक विपद की आशंका ही आदमी को डराती है। विपद सामने आ जाने के बाद उसका सामना करने की शक्ति पता नहीं आदमी में कहां से आ जाती है। न मालूम कहां से इतना साहस आ जाता है? सन्धि प्रस्ताव को पक्ष में बहुमत था। यह भी निश्चित था कि प्रस्ताव यदि अस्वीकृत हो जायेगा तो युद्ध अनिवार्य हो जायेगा किन्तु अभी भी पांडव मोहवश थे।

श्रीकृष्ण ने कहा हे महाबाहो अर्जुन तुम जो कुछ कह रहे हो ठीक है। मैं भी वही काम करूंगा जिसमें कौरव और पांडवों का हित होगा। किन्तु प्रारब्ध को बदल देना तो मेरे वश की बात भी नहीं है। पोथी का पन्ना पलटना पडता है पर भाग्य का पन्ना तो स्वत: ही पलट जाता है। जीवन का हर कदम भाग्य ही नियंत्रित करता है। अत: अन्यथा न सोचकर जीवन खेल में भाग लेना ही विधेय है। अनुचित आशायें और आकांक्षायें ही अफसोस का कारण बनती है। दुष्ट दुर्योधन की निगाहें इन्द्रप्रस्थ के ऐश्वर्य पर है। उसे पाने पर भी क्या वह शान्त हो जायेगा? वह जानता है कि पांडव पांचाली के अपमान का

प्रतिशोध लिये बिना मानेंगे नहीं। अत: वह नहीं चाहता कि आप इन्द्रप्रस्थ लौट जाये। वह आप लोगों को देशान्तर कर देना चाहता है किसी तरह। अर्जुन वही मनुष्य महान है जो दूसरों के दोष स्मरण न रखकर केवल उसके गुणों को स्मरण करता है। दुरात्मा दुर्योधन तो धर्म और लोक दोनों ही को तिलांजलि देकर स्वेच्छाचारी हो गया है। ऐसे कर्मों से उसे पश्चाताप भी नहीं होता। उसके सलाहकार शकुनि, कर्ण और दुशासन भी उसकी उस पापमयी कुमति को बढ़ावा देते रहते है। इसलिये आधा राज्य भी आपको देकर उन्हे चैन नहीं पडेगा। उसका तो परिवारसहित नाश होने पर ही शान्ति होगी। तुम्हे तो दुर्योधन के मन और मेरे विचार व मत का पता है ही अर्जुन। पृथ्वी का भार हरण हेतु ही देवता लोग इस पृथ्वी पर अवतीर्ण हुये है। इस विधान को जानते हुये बताओ फिर सन्धि की क्या सम्भावना है? फिर भी मुझे तो धर्मराज की आज्ञा का पालन करना है। यह सर्वथा सही है धनंजय कि भूमि को चाहे जितनी भलीभांति जोत ली जाये किन्तु बिना वर्षा के, बिना दैव कृपा के मनोकूल उपज नहीं मिलती। दैव एवं पुरुषार्थ दोनों के समन्वय से ही लोकहित सम्पादित होता है। मैं अपने पुरुषार्थ के प्रभाव से प्रयास करूंगा जिससे सम्मानपूर्वक सन्धि हो सके। एक भारी उत्तरदायित्व मुझपर सौंपा गया है। किन्तु प्रारब्ध समक्ष है। तुम्हे तो ज्ञात है पार्थ कि दुर्योधन ने मुझे आप लोगों से पृथक करने के कितने अथक प्रयास किये है। मेरे द्वारा प्रस्तुत तुम्हारे पक्ष की बातें वह कभी स्वीकार करेगा ही नहीं। किन्तु दंड नीति अथवा राज धर्मानुसार साम, दाम, दंड, भेद का प्रयोग कर पहल कर तभी दंड अथवा बल प्रयोग को अन्तिम उपाय मानकर प्रयुक्त करूंगा। यदि तुम सब उन्हे एक ओर अवसर देना चाहते हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। कृष्ण देख रहे थे कि नकुल और सहदेव अपने बडे भाइयों की इस शान्ति प्रियता से तनिक भी प्रसन्न नहीं थे। वे मानते थे कि उनके लिये न्याय प्राप्त करने के समस्त मार्ग बन्द हो चुके है और अब युद्ध के सिवा कोई विकल्प नहीं बचा है और ऐसे समय में उनके बडे भाई धर्म को भूलकर शान्ति की आकांक्षा करने लगे है। आजतक पांडव धर्म बन्धन में बन्धे होने के कारण अपना अधिकार नहीं मांग रहे थे परन्तु अब जब ऐसा कोई कारण नहीं है तो फिर युद्ध ही उनका धर्म है। धर्मराज उस धर्म की उपेक्षा कर शान्ति और भरतवंश की रक्षा की चिन्ता क्यों करने लगे है?

नकुल बोला हे माधव मझले भैया भीम, ज्येष्ठ भ्राता महाराज युधिष्ठिर तथा गांडीवधारी अर्जुन सबने अपने-अपने मत प्रकट कर दिये। सो हे पुरुषोत्तम अब आप शत्रु का विचार जानकर वही करे जो उचित समझे। हम देखते है कि वनवास और अज्ञातवास के समय हमारा विचार और था और अब दूसरा। वन में रहते समय हमारा राज्य पाने में इतना अनुराग नहीं था जितना कि अब है। आप कौरवों की सभा में पहिले तो सन्धि की बात करें, फिर युद्ध के लिये धमकी दे। भला ऐसा कौन पुरुष है जो संग्राम भूमि में महाराज युधिष्ठिर, मझले भैया भीम, अर्जुन, सहदेव, आप, बलरामजी, सात्यकि, महाराज विराट, पांचाल नरेश द्रुपद, उत्तर, द्यृष्टद्युम्न, काशिराज, चेदिराज धृष्टकेतु और मेरे सामने टिक सके? आपके समझाने पर कुरुवृद्ध भीष्म, द्रोण, विदुर और बाहलीक कौरवों के हित की बात समझ सकेंगे और बाद में वे राजा धृतराष्ट्र और उनके सलाहकारों व दुर्योधन को भी समझा देंगे।

सहदेव बोला महाराज युधिष्ठिर ने जो कुछ कहा है वह तो सनातन धर्म ही है किन्तु आप तो ऐसा प्रयत्न करें जिसमें युद्ध हो। यदि कौरव लोग सन्धि करना चाहे तो भी आप उनके साथ युद्ध होने का ही रास्ता निकाले। हे कृष्ण कौरवसभा में महारानी द्रौपदी की हुई दुर्गति देखकर मुझे उस अधम दुर्योधन पर क्रोध हुआ वह अभी तक मेरे मन से शान्त नहीं हुआ है। उसके प्राण लिये बिना वह शान्त भी नहीं होगा। सात्यकि ने भी सहदेव का समर्थन किया कि युद्ध होना ही चाहिये।

देर रात बीत गई पर पांडव किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाये। किसी का मत था सन्धि हो तो किसी का युद्ध हो। कृष्ण

ने कहा अब देर बहुत हो चुकी है। अब यह निर्णय कल प्रात: उपप्लव्य में विराट राजसभा में सब राजाओं और महाराजाओं और सामन्तों के बीच लेंगे।

उपलव्य में विराट की राजसभा में द्रुपद, महाराज विराट, कृष्ण, ध्रृष्टद्युम्न शिखंडी, उत्तर, सात्यकि सभी पांडव विचार विमर्श करने के लिये बैठै हुये है। युधिष्ठिर उठकर खडे हुये और बोले इन बातों का तो यही तात्पर्य है ना कि अब युद्ध का कोई विकल्प नहीं। कृष्ण बोले आप धर्मराज हैं बडे भैय्या। निर्णय लेने में इतनी शीघ्रता न दिखलाइये। महाराज द्रुपद बोले प्रश्न शीघ्रता या विलम्ब का नहीं है वासुदेव। यह तो स्वयं आप भी देख रहे होंगे कि आरम्भ से युद्ध के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं खुला है। ये दूतों का आना जाना तो केवल तर्क वितर्क की क्रीडा है। अधिक से अधिक ये आप नहीं चाहते कि आक्रमण का आरोप पांडवों के सिर लगे। शिखंडी बोला आक्रमण का आरोप पांडवों के सिर कैसे होगा पिताश्री? क्या द्यूत में कपट इन्होंने किया था? क्या द्रौपदी वस्त्राहरण का आदेश इन्होंने दिया था? युद्ध इनका विकल्प नहीं अधिकार है। कृष्ण बोले युद्ध तो कोई विकल्प हो ही नहीं सकता शिखंडी। मेरा प्रस्ताव यह है कि यदि आप सब लोगों को मुझपर विश्वास हो तो शान्ति का प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर मैं जाऊंगा। महाराज विराट बोले आप पर विश्वास न होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता देवकीनन्दन। यदि आप जाना चाहते है तो अवश्य जाइये। भीम बोला जहां हमने इतने दिनों तक अपमान का विष पिया है तो कुछ दिन और पी लेंगे। कृष्ण बोला यौद्धा केवल धर्म की रक्षा के लिये युद्ध करते है मझले भैया। उन्हे युद्ध के लिये व्याकुल होना शोभा नहीं देता। ये न भूलिये कल इतिहास यौद्धाओं को अपने मूल्य की तुला में तौलेगा और यह इतिहास न आपका सम्बन्धी है और न दुर्योधन का। क्या आप यह चाहेंगे कि इतिहास के तुला में तौलते हुये आपका पलडा हल्का पड जाये? भीम बोला मैं कोई शान्ति विरोधी नही हूँ वासुदेव किन्तु... कृष्ण बोले शान्ति के बीच किन्तु जैसे शब्दों को नहीं बैठने दीजिये मझले भैय्या। तो अब यह निश्चित हुआ कि शान्ति दूत बनकर हस्तिनापुर मै जाऊंगा।

**भाई भाई में युद्ध ना हो और रहे धर्म का मान, चले शान्ति प्रस्ताव ले स्वयं कृष्ण भगवान।**

युधिष्ठिर के मन पर से तो जैसे पर्वत का सा भारी बोझ हट गया। यदि कृष्ण शान्ति दूत बनकर हस्तिनापुर जायेंगे तो वहाँ ऐसा कौन है जो कृष्ण के तर्कों का उत्तर दे सके अथवा उनका तिरस्कार कर सके। युधिष्ठिर की प्रसन्नता अधिक देर नहीं टिकी। वे कुछ चिंतित होकर बोले कृष्ण मेरी इच्छा है कि आप स्वयं हस्तिनापुर जाये क्योंकि मैं शान्ति चाहता हूं परन्तु मैं आपकी सुरक्षा के लिये चिंतित हूं और सम्मान के लिये भी। सम्भव है कि दुर्योधन आपका अपमान करना चाहे, आपको किसी प्रकार की हानि पहुंचाने का प्रयत्न करे। अपनी सारी सद्भावना के बाद भी मैं जानता हूं कि हस्तिनापुर में पितामह का नहीं दुर्योधन का राज्य है और उसके सहयोगी मन्त्री शकुनि, कर्ण और दुशासन जैसे लोग है।

माधव आपको कष्ट होने पर तो हमें धन, सुख, देवत्व और समस्त देवताओं पर अधिपत्य भी प्रसन्न नहीं कर सकेगा। कृष्ण ने कहा मैं सावधान रहूंगा और आप मेरी चिन्ता न करे बडे भैया। सात्यकि बोला दुरात्मा दुर्योधन के सद्भाव पर भरोसा कर हम आपको अकेले तो हस्तिनापुर नहीं जाने देंगे। हम जानते है कि आप सर्वसमर्थ है। आप चक्र उठा लें तो प्रलयंकर भी आपका वेग सहन नहीं कर सकते किन्तु वे उन्मादी, दुष्ट, दुर्वृति लोग क्या करेंगे इसका कुछ भी भरोसा नहीं है। आप यादवों के सर्वस्व है। आपका सम्मान सम्पूर्ण यदुवंश का सम्मान है और आपका अपमान समस्त यदुकुल का अपमान है। अत: मैं तो आपकी सेवा में आपके साथ चलुंगा। आप कृपा करके इसके विपरीत कोई आदेश न करें। कृष्ण ने हंसकर अनुमति दे दी और बोले हे महावीर सात्यकि तुम्हारे साथ की तो मुझे स्वयं आवश्यकता है। चिन्ता की बात नहीं है। वहां सब दुर्योधन के ही समर्थक नहीं है। सद्भाव सम्पन्न लोग भी वहां है।

## १५) शान्ति दूत कृष्ण पर पांचाली का आक्रोश

ओम शान्ति, शान्ति इस मन्त्र जाप के दिन है क्योंकि समाज आज एक ऐसे ज्वालामुखी के मुंह पर खडा है जो अब किसी क्षण भी फट सकता है और यह विस्फोट समाज की नींव हिला सकता है। तभी तो कृष्ण ने द्यृष्टद्युम्न से यह कहा था कि वो अपने और शान्ति के बीच में किन्तु जैसे शब्दों को नहीं बैठने दे। शायद यही कारण है कि द्रौपदी कभी ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं करती जो युद्ध के किसी विकल्प का द्वार खोल सकता है। उसे तो अपने खुले हुये केशों के लिये दुशासन की छाती का लहू चाहिये। जब उसने यह सुना कि स्वयं कृष्ण शान्तिदूत बनकर हस्तिनापुर जा रहे है तो उसने भी अपने शब्दों को चबाये बिना ही वासुदेव कृष्ण के पास आकर अपना दुखडा रो-रोकर कह सुनाया। अश्रु दुर्बलता के प्रतीक है पर कभी-कभी आंसू भी आदमी की लाचारी में साथी होते है। हृदय का दु:ख कुछ घटा देते है। नई शक्ति संचय के निमित्त ग्लानि और क्षोभ को धो देते है। समय चलते जाता है हालांकि वह कभी खत्म नहीं होता है। देह को दु:ख सहने की आदत पड जाती है। कितनी ही असहनीय हो चाहे। सूरज उगता है और अस्त होता है। दिन पर दिन बीतते जाते है। अपना दरदी बन्धु देखने पर दु:ख की नदी का तटबन्ध टूट जाता है। अपने प्रिय की प्रतीक्षा कितनी सुखकर होती है। विरह के बाद मिलन का आनन्द इतना अधिक होता है, विरह न होता तो पता ही कैसे चलता? दरदी बन्धु करुणामय कृष्ण के आगे हृदय खोलकर आंचल मुंह पर ढापे कृष्णा फफक उठी। कुरुसभा की लांछना के बाद आज तक पतियों के लिये एक शब्द भी नही बोली थी जो पति उसके दु:ख के कारण बने थे और न ही कभी किसी से अपने पतियों की भर्त्सना की थी। जो पति शक्तिशाली होकर भी कृष्णा के सहायक नहीं बन पाये फिर उनके आगे मान गुमान का क्या मूल्य था। पतियों के आगे अब जीवन में और क्या मान करेगी। आज कृष्ण जैसे दरदी बन्धु को पाकर द्रौपदी कब तक अपनी व्यथा सम्भालकर रखती? कुछ भी हो आखिर तो नारी ही है।

धन, ऐश्वर्य, क्षमता, यश, आत्मीयजन, स्वजन, पति, पुत्र, कन्या, स्त्री सबमें आदमी का कोई एक तो दरदी बन्धु होना चाहिये। जरूरी है जो सुख में सुख मिलाकर आनन्द को सौ गुना कर दे, दु:ख में भाग बंटाकर व्यथा को कम कर दे। सचमुच में गोविन्द ऐसे ही एक हृदयवान दरदी मीत है। मीत के पास मन खोल देने पर आकाश की तरह उन्मुक्त, उदार और आलौकित हो जाता है हृदय। पर गोविन्द तो मन के ऐसे पारखी है कि मन खोलकर उन्हे कुछ कहना नहीं पडता। उन्हें देखते ही भोर के सूरज की छुवन से फूल की सारी पंखुडियां खुल जाने की तरह मन खुल जाता है। हृदय में कही कुछ गोपनीय नहीं रह जाता है। उनकी दृष्टि सूरज के प्रकाश की भांति होती है और मन जैसे खिलता हुआ फूल। अत: मन में जब वेदना असहनीय हो जाती है तब कृष्णा को गोविन्द के दर्शनों की कामना हो जाती है। उनके सिवा मन की इतनी सारी अव्यक्त वेदना और कही उडेली भी तो नहीं जा सकती। संसार की सारी बातें हर किसी के आगे भी कही नहीं जा सकती। ऐसी ही कई व्यथाये है, भावनाये है जो पति के आगे भी पूरे जीवनभर तक अव्यक्त रह जाती है। मगर गोविन्द के आगे सारी गोपनीयता, सारी कुंठाये, पता नहीं कैसे सारे अन्तराय दूर हो जाते है, सोच सोच कर भी अचम्भा लगता है। द्रौपदी के धैर्य का बान्ध टूट गया। नयनों से अश्रु ढलकने लगे। आकाश के अश्रु ढलकाने पर सागर के जलस्तर में घट बढ नहीं होती है। सागर निर्विकार है और उदार है। उसके हृदय में जाने के लिये क्या स्थान की कमी है? सागर क्या नदी की वेदना समझेगा?

कृष्ण के नेत्र ऊपर उठे और सम्मुख देखा याज्ञसेनी खडी है। दृग युगल परस्पर मिले। अथाह वेदना का पोषण करनेवाले उसके नयनों ने कृष्ण का मर्मभेद कर रख दिया। पीडाश्रु केवल एक ही नेत्र में था लेकिन क्रोध दोनों नेत्रों में। हताश

सुकुमार उंगलियां सखी, सुदीर्घ लम्बे घुंघराले अलकों में वेग से घूम रही थी। पीडा एवं क्रोध का ऐसा अनोखा मिलन कदाचित ही देखने को मिलता है। वह नारी थी किन्तु पौरुष की अनन्य उपासिका। शौर्य की पुजारिन। क्षत्रिय पुत्री, क्षत्रिय पत्नी एवं क्षत्रिय माता। यही साम्य था कृष्ण और कृष्णा में। परस्पर सखा भाव था। जो पौरुष पांडवों में नहीं था वह कृष्ण में था, वह पांचाली में था। कृष्ण और कृष्णा का सम विचार धरातल था। दोनों के चरित्रवान गुण एक ही है। दोनों के स्वभाव गुण भी एक जैसे ही है। दोनों भी बौद्धिक धरातल पर एक दूसरे के अनन्य प्रशंसक। उन दोनों के बौद्धिक धरातल पर पहुंचनेवाला वहां के उपस्थित महानुभावों में से कोई न था। श्रीकृष्ण एवं याज्ञसेनी कृष्णा एक-दूसरे के मन को समझते थे, मन रखते थे, एक-दूसरे की पीडा को समझते थे। अद्‌भुत सखा भाव था दोनो में। दोनों एक-दूसरे के प्रशंसक, भक्त एवं सखा एक साथ थे। द्रौपदी की व्यग्र उंगलियां वेग पकडती जा रही थी जैसे वह अपने खुले केशों में से एक एक केश को पकड कर एक-एक कौरव समझकर समूल उखाड देना चाहती थी, नष्ट कर देना चाहती थी।

वृष्णि कुलभूषण यदुनन्दन उठ खडे हुये थे प्रस्थान के समायोजन हेतु ठिठके हुये से थे। वे जानते थे कि कृष्णा कुछ कहना चाहेगी। पूरे समय वे पांचाली के मनोभावों का सूक्ष्म निरीक्षण करते रहे। कभी उसके मुख पर सहजभाव, आहतभाव तो कभी दैन्य भाव तो कभी क्रोध। कभी नयन डबडबाकर उठ रहे थे तो कभी उंगलियां रूखी-सुखी अलक राशि में व्यग्रता से दौडने लगती। पांचाली ने उन्हे अपने आर्द्र स्वर से रोक कर बोली क्या माधव मेरी बात सुनने को नही रूकोगे। हे शान्तिदूत आपकी यह सखी कृष्णा आपसे कुछ कहना चाहती है। कृष्ण ने द्रौपदी की ओर देखा। वे उसके उस एक वाक्य से ही ध्वनित अथाह पीडा का हाहाकार सुन रहे थे। पांचाली अपने एक हाथ में अपने रूखे खुले केश दिखाती खडी थी। भौंहे तनी हुई थी। लाल रक्त से भरे नयन सूजे हुये थे और स्वर भी आर्द्र होते हुये दृढ था। कृष्ण बोले बोलो कृष्णे।

द्रौपदी बोली शान्ति किसे प्रिय नहीं होती? युद्धक्षेत्र में पडे असंख्य शवों को देखना किसी के लिये भी प्रिय दृश्य नहीं हो सकता। किन्तु पीडित मानवता की रक्षा के लिये और उसे सान्त्वना देने के लिये अपराधियों को दंडित करना भी राजधर्म है या नहीं? पापियों को दंडित न करना अधर्म है या नहीं? कृष्ण मैं नहीं चाहती कि आप शान्तिदूत बनकर हस्तिनापुर जाये। तुम हस्तिनापुर जा रहे हो गोविन्द। सन्धिवार्ता करते समय तुम कही मुझे तो नहीं भूल जाओगे। जो कुछ पांडु नन्दनों ने कहा है वही केवल ध्यान में मत रखना। जो कुछ मेरे साथ घटित हुआ है उसे भी स्मरण रखना मधुसूदन। समूची धरा पर मेरे समकक्ष कोई नारी है क्या? पराक्रमी पांचाल नरेश महाराज द्रुपद की एकमात्र राजपुत्री यज्ञवेदी से जन्मी, वीरवर धृष्टद्युम्न की बहिन, द्वारकाधीश वृष्णि कुलनन्दन कृष्ण की अन्तरंग सखी, परम प्रतिष्ठित अजमीढ कुल एवं भरतवंश के घराने की कुलवधू, यशस्वी महाराज पांडु की पुत्रवधू, पांच विख्यात यौद्धाओं पांडवों की वीर पत्नी, ज्वालापुत्री, अग्नितनया, पांच महारथी पुत्रों की जननी इन्द्रप्रस्थ की पटरानी क्या हुआ मेरे साथ? ऐसी सर्व प्रतिष्ठित, सुसम्मानित सौभाग्यशालिनी पांचाली के साथ कैसा व्यवहार किया उन दुष्ट भरत वंशियों ने? जहां मेरे साथ यह व्यवहार हो सकता है वही किसी साधारण स्त्री का कितना सम्मान ये लोग कर सकते है इसकी तुम कल्पना करो गोविन्द। नारी धर्म ऐसा वीभत्स, बर्बरीक अत्याचार कभी इतिहास में मिटेगा नहीं। इस देश के उत्तर दायी इसलिये कुरुपति को निंदित करेंगे। कुरुवंश का यह स्वेच्छाचार, अन्याय, अत्याचार सारी पुरुष जाति को अनन्त काल तक हीन बना देगा। भरतवंश की सती स्त्री तथा सारी पृथ्वी की नारी जाति को अपमानित कर देगा। इस अपमान की कोई क्षमा नहीं, इस पाप का कोई प्रायश्चित नहीं।

अनादि काल से आज तक और इसके बाद महाकाल स्त्रोत में आगामी सारे युगों में ऐसा नारकीय लोमहर्षक बर्बरकांड भी नहीं हुआ है और न कभी होगा भी नहीं। सती सीता का रावण जब हरण कर ले जा रहा था तो पेड, पौधे, पशु-पक्षी

सबने आंसू बहाये। पक्षी जन्म पाकर भी जटायु ने उसका प्रतिरोध किया और अपने प्राणों की बलि दी। सीता का उद्धार करने के लिये वानर भालुओं की सेना ने जीवन उत्सर्ग किया। मगर गुरुजनों की उपस्थिति में सभा के बीच सबके सामने इस द्रौपदी के साथ अश्राव्य, वीभत्स अपमान और लांछना की लीला चलती रही, पर सब चुपचाप जड की तरह खडे देखते रहे। उल्टे सब के सब नाटक के किसी रोमांच दृश्य की प्रतीक्षा में बैठे हो। हाय कभी धर्मराज युधिष्ठिर के व्यक्तित्व की राम के व्यक्तित्व से तुलना कर देखो। अपने अशेष गौरव के अनुभव करते थे। सती सीता के गौरव की रक्षा के लिये राम ने कितना दु:ख दर्द नही सहा? लोगों के सामने उसके सतीत्व को प्रमाणित करने को अग्नि परीक्षा का प्रश्न उठाकर घोर वेदना और विरह सहा। जब कि मेरे पति मुझे दांव पर रख औरों के हाथों मे सौंपकर चुपचाप बैठे रहे। मेरी लांछना और अपमान को एक मूक दृष्टा की भांति देखते रहे। ये दुरात्मा कौरव दानव रावण से कितने हीन और नीच है। रावण सीता को हर ले गया पर बलात्कार नहीं किया। एकान्त पाकर भी अशोभनीय आचरण नहीं किया। अपनी कुत्सित लालसा के वश होकर भी कभी अशोकवन में सीता के अंग का स्पर्श नहीं किया। सीता के आगे प्रेम भिक्षा ही मांगता रहा, वह तो स्वाभाविक भी था। मगर यहां दुरात्मा दुर्योधन कुत्सित वासना के वश होकर भरतवंश की कुलवधू को अनाहूत कर उसकी देह को सभा के बीच नग्न करने का हर सम्भव प्रयास किया। हे कृष्ण वासुदेव आप मेरे अन्तर्यामी है पृथ्वी के जिस प्रान्तर में हो, दुरात्मा कौरवों से आपकी यह सखी कृष्णा कैसे पीडित हुई क्या आप यह नहीं जानते? पृथ्वी के इतने लम्बे इतिहास में सर्वाधिक कलंकित और नारकीय अध्याय लिखा गया है, क्या तुम्हे इसकी खबर नहीं? हे गोविन्द गोपीजन वल्लभ यह असह्य लज्जा और दु:ख कभी किसी नारी के जीवन में कभी नहीं आया होगा। भगवान करे कभी किसी नारी के जीवन में इसकी पुनरावृत्ति न हो। हे सृष्टिकर्ता यह तो आप जानते है आदिम आरण्यक मानव उलग्न अवस्था में विचरण करता था तब भी एक नारी की नग्न देह को शताधिक पुरुषों ने एक साथ यों वीभत्स लालसापूर्ण निगाहों से नहीं देखा होगा। तब भी कोई संस्कृति रही होगी। तब भी नारी की स्वतन्त्र सत्ता थी, सम्मान था। मगर राजनंदिनी कृष्णा पर यह अत्याचार उन कुत्सित वासना की कामना के भेडियों के कारण त्रिभुवन के सारे कलंकों को पार कर गया है। यह असह्य लज्जा और विपद इससे तुम्ही ने उद्धार किया गोविन्द वल्लभ।

द्रौपदी उच्छवास भरे शब्दों में बोली हे प्रभु आप तो इच्छामय है बिना आपके जाने कहीं कुछ हो सकता है। कुरुसभा में द्रौपदी की लांछना उस दिन आप बिना कौन मेट सकता था? जब दुशासन मेरे केश खींचकर भरी सभा में मुझे घसीटते ले आया था, उस समय मैं रजस्वला थी, एक वस्त्रा थी। और आप जानते हैं ऋतुमति नारी अस्पृश्य होती है। फिर भी दुशासन और दुर्योधन की अश्लील भाषा, इंगित इशारे, उस सूतपुत्र कर्ण के श्लेषपूर्ण निन्दनीय वाक्य अभी भी मेरे हृदय को टूक-टूक कर रहे हैं। राजसभा में गुरुजन, ज्ञानीजन वीर सभी बैठे हुये थे, जब मुझे दुशासन निर्वस्त्र करने लगा पर उस समय मेरा कोई सहायक नहीं हुआ। उस दिन मुझे लगा न मेरा कोई पति है, न कोई पुत्र, न ही पिता-माता, न कोई बन्धु भ्राता और न ही कोई शुभेच्छु और सोहार्द्र। ईश्वर के सिवा कोई नहीं। कैसी दारुण असहाय हो रही थी मैं। कौन समझेगा उसे? भीम और अर्जुन का पराक्रम और पौरुष पता नहीं कहां चला गया था? नकुल-सहदेव की शुद्धता, नीति, शीतलता का क्या मूल्य रहा? युधिष्ठिर की नम्रता, धर्म परायणता वही थी। जिस देश में नारी का सम्मान रखने पुरुष उद्यत नहीं होते उस देश का ध्वंस अवश्यम्भावी है। वहां की पुरुष जाति निंदित और कलंकित हो जाती है। ऐसी अवस्था में दीन हीन होकर आप पर भरोसा कर आपको पुकारा था। सबसे मेरी आस्था टूट गई थी, तब आपके आगे स्वयं को अपनेको आपको समर्पित कर दिया था। आपकी उस अलौकिक सहायता ने सिर्फ मेरा ही मान नहीं रखा, इस देश की समूचि नारी जाति

का मान रख दिया, ईश्वर पर आस्था रख दी। भारत की पवित्र माटी पर नारी अमर्यादित नहीं होती, यह प्रमाणित कर दिया। मैं चाहे लांछित होऊं पर इस माटी का महत्व जगत में उजागर हुआ। यही मेरे लिये हृदय की बडी सान्त्वना की बात हुई। हे कृष्ण मैं आपके चरणों की दासी बन मेरा जीवन काट देना चाहती हूं। तभी शायद यह आपका ऋण चुका पाऊं। ऋणभार कष्टदायी होता है। वासुदेव किन शब्दों में अपनी कृतज्ञता प्रकट करूं? आपकी कीर्ति युग-युग के लिये आर्तजनों को धीरज देने के नाम रह गई। मैं तो जन्म-जन्मान्तर में चरणों की दासी बन बन्ध गई।

युग-युग के लिये कलंक पृथ्वी के इतिहास में लिपिबद्ध होकर रह जायेगा। इसके लिये क्या कृष्णा उत्तरदायी है? क्या यह कृष्णा ने चाहा था तो फिर इस अपमान की व्यथा वो क्यों ढोती रहे? यह तो युद्ध कातर युधिष्ठिर ने क्या युद्ध टालने के लिये द्यूत निमन्त्रण को स्वीकार किया था? शायद उन्हे आशंका थी कि किसी समय धन रत्न के लोभ से कौरव युद्ध घोषित कर सकते है। धन, रत्न, ऐश्वर्य की बाजी हारने में कोई दु:ख नहीं पर जीवन सुरक्षित रहे, शान्तिपूर्ण रहे। यही युधिष्ठिर का लक्ष्य था या फिर अहंकार उन्हे अन्धे की तरह भाग्यवादी बना चुका था। भाग्य बलवान होने पर भी मनुष्य को कर्मफल तो भोगना ही पडता है पर यह बात प्राज्ञ युधिष्ठिर नहीं विचार सके। उस दिन यदि मेरा कहा, मेरा अनुरोध मान लेते तो मेरे जीवन का वह चरम दुर्योग टाला जा सकता था। स्त्री, द्यूत, मृगया और मदिरापान पुरुष की श्री भ्रष्ट कर देते है।

उस दिन भी मैंने अन्तर में कृष्ण का भरोसा पाकर आन्तरिक शक्ति का अनुभव किया। द्रौपदी ने दृढ़ स्वर में सबके सामने कहा था कि हे सखा कुरुसभा में द्रौपदी की जो लाज दांव पर लगाई उस कारण वीभत्स लांछना हुई, पापात्माओं ने जो दुर्व्यवहार किया इसके लिये वे यदि उचित दुत्कार व दंड नही पायेंगे तो भारत का इतिहास नारी निर्यातन की कलंकित कहानी से भर जायेगा। राजा महाराजा अपनी कुत्सित वासना की तृप्ति के लिये सुन्दरी रमणियों को पतिगृह से उठा ले जायेंगे, सभा में सबके सामने वीवसना करेंगे। नारी के नग्न सौन्दर्य को वीभत्स लालसा पूर्ण दृष्टि में उपभोग करना कामुक पुरुषों का एक साधारण विलास बन जायेगा। आदमी की कामना और वासना ही तो दुष्ट दानव है। जब वासनारूपी दानव बलवान हो जाता है तो सिर पर खून सवार हो जाता है। वासना निगल जाती है विवेक को। नारी का यौवन पुरुष को लुभाता है इसमें दोष किसका है। जिन्होने भर दिया नारी में सौन्दर्य और पुरुष नेत्रों में भर दी सौन्दर्य की पिपासा। नारी के प्रति पुरुष मन का आकर्षण सहजता है स्वाभाविक है।

हे सखा मेरे लिये तो आप हैं फिर मुझे चिन्ता किसलिये? पर दुशासनों और दुर्योधनों को इस पाप का फल नहीं मिला तो भविष्य में नारी समाज घोर दुर्दिन भोगेगा। मुझे तो आश्चर्य यह है कि मुझे कुरुसभा में विवसना करने के प्रयास के बाद भी उन दुष्टों की मृत्यु नहीं हुई और वे अभी तक जीवित बचे रहे। जब वे पापात्मा मुझे विवसना कर रहे थे, निरूपाय होकर सती सीता की तरह मैं भी अपनी लज्जा छिपाने को वसुधा के गर्भ में चली जा सकती थी, समा जाती। मेरे अनुनय करने से क्या धरती दो भागों में नहीं हो जाती? पर मैं ऐसा नहीं कर सकी। यदि ऐसा करती तो मेरी लाज चाहे छिप जाती पर दुरात्माओं को कभी भी सजा नहीं मिलती। भविष्य में नारी समाज की इस समस्या का समाधान भी नहीं हो पाता। सहिष्णुता नारी का आभूषण है, पर अन्याय को सिर झुका कर सह जाना नारी धर्म नहीं। पति अन्याय मार्ग पर चले पत्नी चुप रहकर सह ले तो सबकी क्षति होगी। पति का अनुगमन करना स्त्री धर्म है। पृथ्वीपर पाप भार बढने से पाप का फल निष्पाप मानवों को भोगना पडेगा। जिस धरती पर पौरुष की कोई मर्यादा नहीं वहां जीने में क्या गौरव है? व्यक्तित्व और पौरुष का परिचय ही वास्तव में मानवता का परिचायक है।

अत: उस भयंकर लांछना और असहनीय अपमान के बाद भी मैं देहधरे जीवित हूं। सुख सम्पदा, राजभोग मेरे जीवन का

लक्ष्य नही। कृष्ण सिर्फ भोजन, कपड़ा और घर पाकर ही कोई जी सकता है? जीने के लिये चाहिये सामाजिक प्रतिष्ठा, सम्मान और सबकी सहृदयता, समर्थन। नरकासुर के बन्दीगृह में भी भोजन, कपडे और आवास की कमी नहीं थी। तब भी उनके प्रति लोगों की सहानुभूति थी, सम्मान था। ऐसे में कपडा, भोजन दे देने में क्या उन बालाओं का सामाजिक सम्मान लौट आया? नारी के प्रति समाज जो अन्याय करता है उसके लिये क्या प्रतिकार किया? नारी का शरीर ही नारी नहीं है, कोई खिलौना नहीं है, नारी की आत्मा भी होती है। शरीर बन्दी बना लेनेपर आत्मा बन्दी नहीं होती। शरीर का बलपूर्वक भोग कर लेने से ही मात्र आत्मा पतित नहीं होती। आत्मा से आत्मा का प्रेम पार्थिव नेत्रों से नही दिखता, सिर्फ आत्मा ही उसे देख सकती है। अनुभव और अनुभूति से ही उस प्रेम की कला, प्रेम विज्ञान को सीखा जा सकता है।

द्रौपदी बोली जीवन के सब शेष दिन अन्याय, अधर्म, पाप के विरुद्ध संग्राम करूंगी। मैंने प्रतिज्ञा कर रखी है माधव जब तक इस दुष्ट दुशासन की छाती के रक्त से अपने केशों को नहीं धो डालूंगी अपने इन केशों की कबरी का बन्धन नहीं करूंगी भले ही ये केश सदा के लिये खुले रह जाये। चाहे इसके लिये मुझे जग राक्षसी कह दे। पर जगत यह जान ले नारी सृष्टि करती है, कल्याणी है व पापात्मा दुरात्मा की संहारकारिणी भी होती है। नारी को दुर्बल समझ जिस दुशासन ने मेरे बाल पकडकर खींचे थे, मुझे घोर अपमानित किया था उसीके लहू से मैं अपने केशों को धोऊंगी। तभी जग जानेगा कि नारी हृदय कोमल होता है पर दुर्बल नहीं। हे कृष्ण मेरी प्रतिज्ञा पूरी करने में यदि आप सहायक नहीं हुये तो आपकी यह सुन्दर सृष्टि पाप के भार से ध्वंस हो जायेगी।

हस्तिनापुर जाने में वो दुराचारी, दुर्योधन और दुष्ट दुशासन और वो विषैला सूतपुत्र कर्ण आपका अपमान करे वह मैं नहीं चाहती। पिताश्री के राजपुरोहित के साथ जो दुर्व्यवहार हुआ है वो आपसे छिपा नहीं है। कृष्ण बोले मुझसे तो कुछ भी नहीं छिपा है कृष्णे? परन्तु यदि पांडवों के लिये शान्ति मिले तो मुझे अपना अपमान भी स्वीकार है। यदि इस सौदे के लिये मुझे पांडवों के आत्मसम्मान का मूल्य चुकाना पडे तो वह शान्ति मैं नहीं लूंगा कृष्णे, मैं तुम्हे यह वचन देता हूं। द्रौपदी बोली जब तक मेरे केश खुले हुये है केशव तब तक क्या पूर्ण शान्ति सम्भव है? क्या ये मेरे खुले हुये केश अपमान के ध्वज के भांति कुन्तीपुत्र के स्वाभिमान के शिखर पर लहराते नहीं रहेंगे? जिसे आप शान्ति कह रहे है केशव कहीं वो आत्मसमर्पण तो नहीं। वे दुष्ट शान्ति के नहीं दंड के अधिकारी है। तनिक याद कीजिये केशव १३ वर्ष पहिले की ये द्रौपदी हवन कुंड से उत्पन्न हुई याज्ञसेनी को इन्ही केशों से पकडकर घसीटी गई, और कुरुराज सभा में लाई गई थी। जिसमें सिंहासन पर भरत वंशियों की परम्परा के उत्तराधिकारी ज्येष्ठ पिताश्री महाराजाधिराज धृतराष्ट्र विद्यमान थे। वो सभा कुरुओं और उनके शुभ चिन्तकों से भरी हुई थी। परन्तु आपके अतिरिक्त मेरी मर्यादा की रक्षा करने के लिये कोई आगे नहीं बढा। हे वासुदेव मैं न तो उनसे आशीर्वाद लेने को तैयार हूं और न ही उन्हे आशीर्वाद देने को। कृष्ण बोला क्या मैं नहीं जानता हूँ कृष्णे मैं यह सब जानता हूं।

वासुदेव जो यज्ञकुंड से जन्म लेता है वह अस्वस्थ नहीं होता है। दीपशिखा जलती है या बुझ जाती है। पर होमशिखा बुझती है पूर्णाहुति के बाद, पहिले नहीं। पूर्णमासी और अमावस्या के बीच एक निर्दिष्ट समय का अन्तर होता है। पर सुख के बाद दु:ख किस क्षण आयेगा कोई नहीं जान सकेगा। द्रौपदी भी स्वयं उस दिन सुख, समृद्धि, ऐश्वर्य एवं सौभाग्य के चरम सोपान पर खडी सोच रही थी कि आर्यावर्त में उस जैसी रमणी और कोई है ही नहीं। इसके बाद और कौनसा सुख इस पृथ्वी पर अलभ्य है जो उसकी धारणा में नहीं था। लगता था यदि कोई सुख और इस संसार में है भी तो वह उसके पतियों के लिये कभी दुष्प्राप्य नहीं। वह चाहे तो उसके पांवो तले चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र तोड लायेंगे। राज चक्रवर्ती जिसके पति हो उसे क्या अलभ्य है?

खांडव प्रस्थ को इन्द्रप्रस्थ में विकसित करने में कितना त्याग, साधना, दु:ख, कष्ट सहना पडा। सारी साधना और भ्रम

का इतिहास द्रौपदी के प्राणों के पृष्ठ पर लिपिबद्ध है। मेरे पांचों पतियों का बोझ मुझ अकेली को सहना पडा वासुदेव। आज द्रौपदी के पति चक्रवर्ती हैं। इन्द्रप्रस्थ आर्यावर्त का सबसे समृद्धिशाली नगर है। धन, ऐश्वर्य, प्राकृतिक शोभा, सम्पदा, कला, संगीत, नृत्य, साहित्य, युद्ध कला विद्या की दृष्टि से भी इन्द्रप्रस्थ हर राज्य के लिये आदर्श है।

महात्मा विदुर ने दु:ख और दुश्चिन्ता में सत्य प्रकट कर दिया। इन्द्रप्रस्थ का ऐश्वर्य और यश दुर्योधन को असहिष्णु कर रहा है। पांडवों का धन वैभव उसे लोभातुर किये दे रहा है। वह भली-भांति जानता है कि सात जन्म में भी वह पांडवों की समता नहीं कर पायेगा। अत: दुष्ट बुद्धि मामा शकुनि के परामर्श पर महाराज धृतराष्ट्र से सम्मत करा द्यूतक्रीडा का आह्वान भेजा। बल से न सही कौशल, यहां तक की अधर्म पथ पर चलकर पांडवों की सारी धन सम्पदा लूट लेना ही इस द्यूतक्रीडा का उद्देश्य था। दुर्योधन की ओर से पांसे शकुनि ने फेंके। पांसे के खेल में कौशल दिखाकर जीतने में शकुनि के मुकाबले में तो त्रिभुवन में भी कोई नहीं माधव।

सामने बैठे थे मेरे वीर पुंगव क्षत्रिय सन्तान पंचपति चुपचाप अपराधी की भांति। आंखों के आगे लांछित हो रही थी पत्नी। वे बैठे है निरूपाय नीरव। दूसरी तरफ बैठे हैं मेरे ज्येष्ठ अन्धे श्वसुर जो देख नहीं सकते पर क्रन्दन तो सुन ही रहे थे। मेरी लाचारी से परिचित तो है ही, वहां थे गंगापुत्र पितामह भीष्म ज्ञानी, वीर, आजन्म ब्रह्मचारी। वे भी नीरव दर्शक। गुरु द्रोण, कुल गुरु कृपाचार्य जैसे गूंगे हो गये। मेरी यह दशा देख कर्ण निष्ठुर प्रतिशोध भरे उल्लास में आत्मसन्तोष पा रहे थे। मेरी ओर विद्रूप भरी तिर्यक दृष्टि से देखते रहे। उपस्थित सज्जनवृंद, राजा महाराजा सबके सब मौन, नीरव दृष्टि बने रहे। मेरे लिये तो इस पृथ्वीपर तुम्हारे सिवा सखा कोई सहायक ही नहीं है। मैंने सबके सामने ही कहा मैं किसी से दया की भीख नहीं मांगती, न्याय मांगती हूं। नारी के सम्मान की रक्षा करना राजधर्म है फिर अपने ही वंश की कुलवधू की अमर्यादा करना भरतवंशी कुरुओं को शोभा नहीं देता है। मैं यह जानना चाहती थी कि मेरे पति धर्मराज युधिष्ठिर स्वयं को हार जाने के पश्चात मुझे दांव पर लगाकर हारे वह उनका क्या न्याय संगत कार्य था? नारी क्या पुरुष की स्थावर जंगम सम्पत्ति है? अब भी सब चुप रहे। केवल भीष्म ही शान्त स्वर में बोले पराये धन को दांव पर रखने का अधिकार पराधीन व्यक्ति का नहीं होता, परन्तु स्त्री सदा पति के अधीन होती है। युधिष्ठिर स्वयं को हारने के बाद तुम्हे दांव पर लगा सकते या नहीं यही वास्तव में द्वन्द्व भरा प्रश्न है, वे उसका उत्तर देने में सर्वथा असमर्थ थे। धर्म और नीति के नियम अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं, धर्म की व्याख्या करना सहज नहीं है। युधिष्ठिर का तो धर्म ही प्राण है, वो तुम्हारा पति है और तुम्हारा पति ही इस दु:सह लांछना को जब चुपचाप सह रहा है। मेरे अन्य पति भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव भी इसकी उपेक्षा कर सभा में दर्शक बने बैठे है तो फिर धर्म के बारे में पितामह क्या उत्तर दे? उस समय मैं क्रोध में बोली मेरे पति युधिष्ठिर सिर्फ धर्मात्मा ही नहीं है। ये अत्यन्त सरल, सीधे साधु स्वभाव के व्यक्ति हैं। उनके इन गुणों का लाभ उठाकर ही उन्हे अन्यायपूर्वक खेल में हराया गया है। एक राजा से एक राजा ही खेल सकता है पर वहां तो कपटी शकुनि दुर्योधन का प्रतिनिधि बनकर खेला था जब कि द्यूतक्रीडा में एक की जगह दूसरा नहीं खेल सकता, यह द्यूतक्रीडा का नियम है। परम्परा और संस्कृति पर कितनी श्रद्धा है? कितना सम्मान है? मैं अपने गुरुजनों की निन्दा नहीं कर सकती, पर माननीय गुरु वहां उपस्थित थे। वहां अर्जुन भीम को उपदेश कर रहे थे जबकि अन्य लोग पत्नी को लांछित और अपमानित कर रहे थे। मेरे पति यह सब कुछ देखकर भी सब सह रहे थे, पत्नी की लाज लूट रही थी, उसे बचाने धर्म उनके आडे आ रहा था। कृष्ण क्या यही धर्म है? यह क्या भारतीय परम्परा और संस्कृति का परिचायक है? क्या यह आर्यकुल की रीति रही?

मेरा विलाप तो दु:शासन को और उत्साहित कर रहा था। वह जितनी शक्ति लगाकर मेरा वस्त्राहरण कर रहा था उतने ही

बल से मैं अपने दोनो हाथों से बल लगाकर भींचती रही। अपने वक्ष की लज्जा रखने का प्रयत्न जी जान से करती रही। नासाग्र तक जल में डूबे रहने पर भी मूढ़ व्यक्ति में अपने पर कितना भरोसा रहता है। आदमी अपने अहंकार में कितना दयनीय और विपन्न हो जाता है। मैं अपनी रक्षा स्वयं करूंगी पर एकदम व्यर्थ ही रही। पूर्ण समर्पण किये बिना ईश्वर की करूणा नहीं मिलती। यह विचार आते ही लज्जा, संकोच, संभ्रम भूल कर अपना वह एक मात्र शरीर का वस्त्र छोड दोनों हाथ ऊपर उठाकर कातर हो तुम्हे पुकारा गोविन्द कि हे प्रभु मैं अपनी नहीं हूं। यह शरीर मेरा नहीं है। अत: इस द्रौपदी का दायित्व भी तुम्हारा है तुम जानो। सब कुछ तुम्हारा है। मेरा यह मान-अपमान, लाज संकोच सब तुम जानो। तुम्ही सारे कारणों के कारण हो, मैं कुछ नहीं जानती। तुम भी तो अहंकारशून्य की ही पुकार सुनते हो गोविन्द। मेरे चारों ओर क्या हो रहा था मैं कुछ भी नहीं जान पायी। मुझे तो तुम्हारा सुदर्शन चक्र घूमता दिख रहा था और उसमें से पसर आता हुआ कृष्ण का करुणामय हाथ दिखाई दिया। उसमें से पर्त के पर्त परिधान मेरी नग्न देह को ढक रहे थे। मन्त्रजल की करुणा झर रही थी मुझपर। मुझे मालूम ही नहीं पडा मेरे अन्दर की लज्जा और अपमान पता नहीं कहां दुबक भाग गये।

दु:शासन खींचता जा रहा था मेरा परिधान। क्लान्त और अवसन्न होने तक खींचता रहा दोनों हाथों से। जितना खींच लेता, मेरी देह उतने ही मूल्यवान वस्त्र से फिर आवृत होती जाती। यह अद्‌भुत दृश्य देख सारी सभा स्तब्ध हो गई। जय ध्वनि से सारा सभागृह मुखरित हो उठा। क्लान्त, परास्त, अवसन्न और पराजित दु:शासन वस्त्र के पहाड पर लडखडा कर गिर पडा। उसकी यह हास्यास्पद स्थिति देखकर उस पापी दुर्योधन की सहचरी कुटिला, जटिला, कामना, वासना, उस सूतपुत्र कर्ण की सहचरी अस्मिता आदि उनकी कटुक्तियों में हां मे हां मिला रही थी। उस समय दुर्योधन अपनी जंघा उघाड उसे थपथपाकर पीटता हुआ मेरी ओर अश्लील इंगित कर मुझे उस पर बैठने के लिये कह रहा था। जलकर राख हो जाती तो शान्ति मिलती पर मैं अग्नि से जात जो ठहरी अत: क्षोभ और क्रोध की अग्नि मुझे भस्म ही नहीं करती सिर्फ दग्ध कर रही थी दग्ध वेदना में अस्थिर होकर इतस्तत: हो रही थी। इतनी लांछना के बाद संसार में और क्या होनेवाला है इस प्रतीक्षा में थी। भीम का क्रोध और उत्तेजना तो सीमा लांघ गये। वह गरज उठा कि पापात्मा दुशासन की छाती का लहू पीऊंगा। इस असभ्य दुर्योधन के इस उरू को भंग कर पितृ पुरुषों को शान्ति दूंगा। और मेरी भी उसी समय की हुई प्रतिज्ञा है कि मैं दुशासन की छाती के लहू से मेरे इन खुले केशों को प्रक्षालन नहीं कर लूंगी तब तक ये इसी तरह खुले रहेंगे। अब केशव मेरे इन खुले केशों को देखो और इन्हे स्मरण रखना।

उसी समय भरी सभा में उठकर विदुर दादा ने कहा था भीम की ऐसी प्रतिज्ञा कुरुकुल के लिये घोर विपद का कारण होगी। भीम अपनी प्रतिज्ञा पालन में बहुत निष्ठा पर है और फिर सती द्रौपदी की प्रतिज्ञा तो और भी भयंकर है क्योंकि वह ज्वालापुत्री है। जो होना था सो हो गया पर अब तो यह सब बन्द करो। युधिष्ठिर का स्वयं को दांव पर हार जाने के बाद पांचाली को दांव पर लगाना तर्क सम्मत नहीं लगता। अर्जुन ने गम्भीर स्वर में कहा द्यूतक्रीडा से पहिले और द्यूतक्रीड़ा के समय युधिष्ठिर ही हमारे अधीश्वर थे परन्तु स्वयं को दांव पर हार जाने के बाद वे किसके प्रभु होंगे हम नहीं जानते? जो हार गया, दु:ख उसका। जीतनेवाला तो ताली पाता है, हारने वाले के लिये कोई समवेदना की आह कब निकालता है।

यही होगा माधव पांडव जहां भी जायेंगे, इन्द्रप्रस्थ की तरह राजधानी बसाकर सुख से रहेंगे। ऐश्वर्य और सुख पांडवों के लिये राह की धूल की तरह है पर जब तक हे गोविन्द आप साथ हो तो पांडव क्या कुछ नहीं कर सकते? कृष्ण बोले कृष्णा तुम स्वयं जानती हो कि तुम लक्ष्मी की अंशभूता हो, इस युग में मेरी सखी हो?

मैंने क्रोधित होकर अपने पतियों से पूछा था कि मुझपर जो अकथनीय लांछना और अपमान हुआ फिर भी आपके मन

को शान्ति नहीं? क्या यही आपका धर्म है? अन्याय का आह्वान स्वीकार करना कभी धर्म नहीं होता। यह तो आपका अहंकार है। अपने को अक्षम जानकर भी सिर झुकाने को प्रस्तुत नहीं। स्त्री, पुत्र, भाई, राज्य सबकी शान्ति, सुख सम्मान सुरक्षा को पददलित कर आप अपनी धर्म परायणता और विनम्रता दिखाना चाहते हैं। क्या यही राजा का धर्म है? विनयी बनना अच्छा है पर स्वयं को हीन मानना ठीक नहीं। मेरे अहंकार को अदृष्ट उपहास कर रहा था। अदृष्ट दृश्यमान नहीं होता कभी तभी तो आदमी में इतना अहंकार है। मैंने कहा आपने कार्य किया और मैंने उसमें सहयोग भर दिया। धर्म ही केवल पृथ्वी की रक्षा करता है अत: आपके हाथ में धर्मरक्षा का दायित्व राजसूय यज्ञ के माध्यम से दिया गया। आदमी धर्म की रक्षा करता है। धर्म ही आदमी की रक्षा करता है। इसे कभी न भूलना चाहिये।

पांडवों में सदा हस्तिनापुर का सिंहासन वापस लेने के विषय पर चर्चा होती रही मगर युधिष्ठिर उसमें कभी दिलचस्पी नहीं दिखाते और न ही भाग लेते। मुझे उनके उस मौन पर गुस्सा आ जाता। मैं सोचती जिनकी अदूरदर्शिता के कारण पूरा परिवार अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव आदि वीर एवं द्रुपद नंदिनी स्वयं मैं राज्य से विताडित होकर अरण्य में विचर रहे हैं और ये इस अन्याय के प्रतिकार के बारे में कुछ सोचते विचारते ही नहीं। क्षमाशील हृदय ईश्वर का वास स्थल होता है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि शत्रु एवं पापी को क्षमा करना क्षत्रिय धर्म है। क्या सिर्फ मृदुता या उग्रता दिखानेवाला आदमी सुपुरुष नहीं होता? पुरुष को जहां आवश्यक हो मृदु होना चाहिये और जहां जरूरी हो वहां उग्र और कठोर होना चाहिये। मेरी बात सुनकर युधिष्ठिर शान्ति से बोले सुनो कृष्णा भरतवंश के विनाश का समय पास आते जा रहा है। दुर्योधन राजपद पर है वह क्षमा का पाठ नहीं जानता। राजा स्वयं यदि क्षमा को आश्रय नहीं देता है तो वह स्वयं अक्षम्य अपराधों और दुराचार में लिप्त हो जाता है। और उसमें देश एवं जाति दोनों विनाश के कगार पर पहुंच जाते है इसीलिये मैंने क्षमा और धर्म का सहारा लिया है। अहिंसा और सत्य को प्रश्रय दिया है। भरतवंश विनाश से बच पाता है क्या? तभी मेरी साधना सफल होगी। काम, क्रोध, लोभ ये तीनों ही नरक के द्वार है। क्रोध और लोभवश होने पर कभी कामना का अन्तिम फल नहीं मिलता। अत: हमे शान्तचित्त हो भाग्य परिवर्तन के शुभ समय तक प्रतीक्षा करनी होगी। तब तो वनवास प्रारम्भ ही हुआ था फिर हस्तिनापुर पर आधिपत्य की बातों पर विचार किसलिये? कर्म के बिना क्षणिक सुख या नित्य सुख कुछ नहीं मिलता। भाग्य भी कर्म से ही नियंत्रित होता है। कर्म किये बिना भाग्य कैसे बदल सकता है? युधिष्ठिर शान्त हो बोले धर्म में रहो तो तुम्हारी रक्षा धर्म करेगा। धर्म: रक्षति धर्म: सखा साक्षी है कि युधिष्ठिर धर्म का किसी भी स्थिति में त्याग नहीं कर सकते? मैं स्वयं विदुषी हूं फिर धर्म रक्षा का महत्व मुझसे बढकर कौन समझेगा? ये धर्मराज जरूरत पडने पर चारों भाइयों और अपनी पत्नी तक को भी छोड देंगे पर धर्म को नहीं छोडेंगे। नारी विदुषी हो या विद्यावती हो तो क्या उसकी बात कोई नहीं सोचता? किसी में उसके प्रति स्नेह, स्नेहाभूति, सम्वेदना नहीं होती? वह क्या पत्थर है, निष्प्राण प्रतिमा होती है? विदुषी बनने की कोशिश करना नारी का सबसे बडा अपराध है। विद्यावती एवं ज्ञानवती बनने के कारण ही इसकी यह दशा हुई है। ज्ञान और शक्ति जैसे पुरुष का सौन्दर्य बढाते है अज्ञानता और असहायता नारी की शोभा बढा देते है। फाल्गुनी ने कहा था द्यूतक्रीडा, आनन्द, मनोरंजन, ये सब शौक के लिये होते हैं। खेल में हार जीत के साथ जीवन का सम्पर्क क्या? स्त्रियां तो वैसे भी संवेदनशील होती है। वे तो हर बात को तिर्यक दृष्टि से ही आदतानुसार देखती है तभी तो वे अधिक दु:ख भोगती है। पांडव कैसे जीये यह बात भी कभी उन्हे विचलित नहीं करती। मेरी लांछना, हमारा अरण्यवास यह सब उनका धर्म उनकी रक्षा कैसे कर रहा है? यह सब आप भली-भांति देख रहे हो मधुसूदन। युधिष्ठिर भी जानता था और उसने कहा भी था इन्द्रप्रस्थ वापिस मिल जाने पर भी कौरव क्या हमें शान्ति से बैठकर शासन करने देंगे? अत: फिर

भाग्य का खेल देखने में कुंठा कैसी? उनका तो सदा शान्ति से ही लगाव रहा है। उनका तो यही आदर्श है कलह से किसी विवाद का समाधान नहीं होता वरना राज्य के राज्य नष्ट हो जाते हैं।

जब मेरा इन पंच पांडवों के साथ विवाह हुआ था तब ये राज्य हीन राजपुत्र थे तो भी मैं दु:खी नही हुई। तब जो सुख और आनन्द मुझे मिला था वो इन्द्रप्रस्थ की पट्टमहिषी बनने पर भी कभी वैसी सुख शान्ति नहीं मिली। धन, ऐश्वर्य से सुखी होनेवाले संस्थानों और उपादानों से मैं नहीं बनी। पर बार-बार अन्याय के आगे आह्वान के आगे युधिष्ठिर धर्म का नाम लेकर विनम्र होकर आत्मसमर्पण कर देते है यह मैं सह नहीं पाती। मुझे द्यूतक्रीडा में दांव पर लगाकर मेरे मन की सारी शान्ति नष्ट हो गई है। इस अशान्ति और अपमान की ज्वाला से तो किसी वनचारी दीनहीन पुरुष की पत्नी होकर जीवन बिता देना किसी भी रूचिशील नारी के लिये श्रेयस्कर होगा। पत्नी के कहनेपर श्रीराम स्वर्णमृग के पीछे दौड दौडकर दु:ख बुला लाये परन्तु युधिष्ठिर तो द्यूतक्रीडा के पीछे अन्धे होकर दौडे और अपनी पत्नी को भी हार बैठे।

पांडवों के वनवास की बात तो बिजली की तरह चारों ओर फैल गई। भोज राजा, अन्धक, कुष्णीक, चेदिराज, द्यृष्टकेतु, महावीर केकय, वीर द्यृष्टद्युम्न मेरे पिता महाराज द्रुपद सभी तो हमसे मिलने वन में पहुंचे थे। सबने समझा बुझाकर हमसे विदा ली थी पिता द्रुपद ने मुझे साथ ले जाना चाहा था किन्तु मैंने कहा था मुझे नारी धर्म पालन से वंचित न करें पिताश्री। अपने पति के साथ सती सीता ने कितना दु:ख और कष्ट नहीं सहा? आज वैसा ही अवसर मेरे जीवन मे आया है। मेरे सामने किसी रावण का डर नहीं क्योंकि जीवन में सर्वाधिक लांछनाये तो घट चुकी थी। अब तो जो दु:ख दैन्य आयेगा वो सब मामूली होगा। आप निश्चित रहे। जिसने लांछना से रक्षा की है वही आगे भी सहायक होगा। जीवन में इसके बाद कोई दु:ख दर्द कातर नहीं कर सकेगा।

मुझे लात पाद प्रहार करने के लिये कीचक और उसके परिवारजनों को अपने प्राण गंवाने पडे थे। हस्तिनापुर के ये द्यृष्ट अपराधी इसलिये तो स्वच्छन्द नहीं घूम सकते कि वे पांडवों के सम्बन्धी है या वे इतने शक्तिशाली है कि यदि उनपर हाथ डाला जायेगा तो शान्ति भंग होगी विप्लव हो जायेगा और उस स्थिति को सम्भालने के लिये एक विराट महाभारत होगा। अपराधी को उपरोक्त इन कारणों के लिये क्षमा करना कि वह किसी का रिश्ते-नातेदार है या शक्तिशाली है वह न तो धर्म है, न राजधर्म। आप तो राजा भी नहीं है न ही कोई शासक हो गोविन्द और न ही न्यायाधीश किन्तु तुम संसार में धर्म संस्थापना करने आये हो इसलिये मेरी तुमसे यह करबद्ध प्रार्थना है कि मुझे न्याय चाहिये उसके लिये चाहे कितना ही रक्तपात हो। मैं जानती हूं गोविन्द करुणा एक महान गुण है किन्तु पीडित व्यथित को ऐसी करूणा अच्छी नहीं लगती जिससे पीडक लाभान्वित हो। क्षमा व्यक्ति का धर्म हो सकता है पर वह सामाजिक धर्म नहीं हो सकता। अपराधियों को क्षमा कर कोई समाज जीवित नहीं रह सकता।

कृष्ण एक बात मैं साफ-साफ कह देना चाहती हूं मेरे ये खुले केश जिन्हे पापी दुशासन ने बलात पकडा था, खींचा था आज भी उसी दिन से खुले हैं। यदि ये का-पुरुष पांडव इनका प्रतिशोध नहीं लेना चाहते तो इन केशों को तो न्याय दे। प्रतिहिंसा और प्रतिशोध कोई उदात्तभाव नहीं है किन्तु न्याय तो सर्वथा सात्विक भाव है। मुझे न्याय दो केशव। यदि पांडव न्याय नहीं कर सकते तो तुम मुझे धर्म दो माधव। अपनी सखी को धर्म न दे सको तो पीडित प्रजा को धर्म दो। सहसा जैसे द्रौपदी के चारों ओर कोई अग्निकुंड धधक उठा। वह अग्नि की किसी विशाल लपट का रूप धारण कर चुकी थी और वह ज्वाला पुत्री बोल उठी और लीलाधारी यदि तुमने भी धर्म न दिया तो यह युद्ध टल भी नहीं सकेगा। युद्ध तो हर परिस्थिति मे होगा। न्याय के लिये संघर्ष करना कोई अधर्म नहीं है। कोई यह कहदे कि पांडवों का राज्य छीनना अधर्म

नहीं था तो मैं मान लूंगी पर द्रौपदी को उस स्थिति मे केशों से पकडकर घसीटते हुये राज्यसभा में लाना तथा उसके साथ दुर्व्यवहार करना कोई अधर्म नहीं था, वह मैं नही मानूंगी और उस अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाऊंगी। कोई कह दे कि पांडव राज्य के बिना भी जीवित रह सकते है, वो भी मैं स्वीकार कर लूंगी किन्तु द्रौपदी आपकी यह सखी अपने इस अपमान के साथ जीवित नहीं रहना चाहती। छलकपट से किसी सम्राट का राज्य छीन कर कोई जीवित भले रह जाये किन्तु स्त्रीत्व का अपमान कर कोई जीवित नहीं रह सकता। इसलिये हे गिरधारी यदि पांडव नहीं लडेंगे तो पांचाल लडेंगे। धर्मराज नही लडेंगे तो मेरे वृद्ध पिता द्रुपद लडेंगे। भीम और अर्जुन युद्ध नहीं लडें तो मेरा भाई महावीर द्युम्न और महारथी शिखंडी लडेंगे। शूरवीर यादव नहीं लडेंगे तो उनका दौहित्र अभिमन्यु लडेगा, मेरे अपने वीर पुत्र लडेंगे। मां का सम्मान विश्व शान्ति से अधिक महत्वपूर्ण है केशव। जिन्हे आज शान्ति प्रिय हो गई है उन्हे उस समय सोचना चाहिये था जब वे अग्निकुंड से उत्पन्न हुई याज्ञसेनी कृष्णा के केश खींच रहे थे, उसे निर्वस्त्र करने का प्रयत्न कर रहे थे। कहां गई थी उनकी शालीनता और शान्ति उस समय? जो स्थान पाप से मलिन होता है वह पापियों के रक्त से धुलकर पवित्र भी हो जाता है।

कृष्ण बोले तुम्हारे खुले केश मैं देख रहा हूं कृष्णे। उनमें भरी हुई कुरुराज सभा की धूल भी मैं देख रहा हूं और धूल की दुर्गन्ध भी मुझ तक आ रही है कृष्णे फिर भी शान्ति शान्ति ही है। द्रौपदी बोली परन्तु मैं तो केवल यह कह रही हूं केशव कि शान्ति की बात करते समय यह न भूल जायेगा कि दुशासन के मैले हाथों ने मेरे केशों को स्पर्श किया था। मुझे छुआ था। दुर्योधन ने मुझे देखकर भरी सभा में अपनी जंघा पीटी थी। और उस सूतपुत्र कर्ण ने मुझे कुरुपुत्रों की कुलवधू को कुरु राजसभा में पण्य वेश्या कहा था। हे देवकीनन्दन नन्दलाल मैं नहीं चाहती कि उसी कुरु राजसभा में हमारी ओर से उन लोगों के पास कोई शान्ति दूत बनकर जाये।

हे धर्मज्ञ मधुसूदन दुर्योधन ने जिस क्रूरता का आश्रय लेकर पांडवों को राजसुख से वंचित किया, संजय ने ज्येष्ठ पिताश्री महाराज धृतराष्ट्र का सन्देश सुंनाया वो सब आपको मालूम ही है वह कोई आपसे छिपा नहीं है इसलिये यदि दुर्योधन बिना हमारा राज्य लौटाये सन्धि करना चाहे तो आप उसे किसी भी प्रकार स्वीकार न करे। इन दुर्योधन के पक्ष के वीरों के साथ पांडव लोग अच्छी तरह मुकाबला करने में सक्षम है। साम, दाम, दंड, भेद द्वारा कौरवों से अपना प्रयोजन सिद्ध होने की कोई आशा नहीं है इसलिये आप उनके लिये कोई कोमलता या ढील ढाल का बर्ताव न करे क्योंकि जिसको अपनी जीविका बचाने की इच्छा हो उसे साम या दाम से काम में न आनेवाले शत्रु के प्रति दंड का ही प्रयोग करना चाहिये। अत: हे अच्युत आपको भी पांडवों को लेकर उन्हे शीघ्र ही कडे से कडा दंड देना चाहिये। हे जनार्दन शास्त्र का मत है कि जो दोष अवध्य का वध करने में है वही वध्य का वध न करने में भी है अत: आप भी पांडवों व अन्य महावीर राजाओं को साथ लेकर ऐसा काम करे जिससे यह दोष आपको न लगे। यदि दुर्योधन अब भी एक मुहूर्त भी जीवित रहता है तो अर्जुन की धनुर्धरता और भीम की बलवत्ता को धिक्कार है। यदि आप मुझे अपनी कृपापात्री समझते हैं और वास्तव में मेरे प्रति आपकी दया दृष्टि है तो आप धृतराष्ट्र पुत्रों पर अपना पूरा-पूरा कोप वृष्टि करिये।

मैं उन भरतवंशियो द्वारा ही दासी कहकर पुकारी गयी... सब के सब वृद्ध भरतवंशी कुरुजन मूक बने देखते रहे... मैंने बहुत दारुण क्लेश सहा है माधव, भयंकर तम यन्त्रणा सही है। इन मेरे पतियों से अच्छे तो वे समस्त विप्रदेव थे जिन्होने अधर्म का विरोध करने हेतु उस सन्ध्या कौरव गृहों में अग्निहोत्र भी सम्पन्न नहीं किया, बल्कि कौरव महलों में अपना चरण भी नहीं रखा। और ये क्षत्रिय हैं जो भिक्षा के लालच में उनही के द्वार पर खडे हैं। मेरे कारण ही ये परमवीर कहलानेवाले भरतवंशी उस दिन दासत्व से मुक्त हुये और मेरा दुर्भाग्य तो देखो केशव कि यह दुराचारी दुर्योधन, यह पापी दु:शासन आज

भी जीवित है। गोविन्द यदि चीरहरण के समय आपने मेरी लाज न रख ली होती तो क्या ये पांडव मुख दिखाने योग्य भी रहे होते? आप जा रहे हैं तो अवश्य जाये परन्तु यह तो बताते जाये मुझे मैं इन का पुरुषों का क्या करूं? पांचाली का श्वास वेग तेज से चल रहा था। करुणा एवं क्रोध की उस अनमोल प्रतिमा के अग्निमुख से व्यंग्योक्तियां एवं कटूक्तियां उल्काओं सी नि:सृत हो रही थी। हे लीलामय विधाता की भी गति कुछ समझ नहीं पडती। यह कैसा विचित्र विधान है जहां पापी फलते-फूलते है और साधु पुरुष कष्ट झेलते है? अन्याय करनेवाला राज्य करता है और निर्दोष मन मारा द्वार-द्वार भटकता फिरता है। कहां कोई निश्चित नियम नहीं। निश्चित विधान का अस्तित्व ही प्रतीत नहीं होता कहीं। अपमान पर अपमान, तिरस्कार पर तिरस्कार मैं किस प्रकार सहती गयी हूं वो आपसे कोई छिपा नहीं है। मैंने इस अपमान के अनुताप में स्वयं को तिल तिल जलाया है, बूंद बूंद जलाया है। यह शोक क्या मेरा ही है? यह अपमान क्या मेरा व्यक्तिगत अपमान है? समस्त पांडवों पांचालों और कौरवों का अपमान है। समस्त भारतों का अपमान है माधव। यह आपका भी अपमान है। मेरी स्थिति देखकर कौन पुरुष है जो द्रवित न हो जाये? किस की बाहुये शत्रुदमन करने के लिये फडक न उठे? किन्तु हे जनार्दन मैं परम दुर्भागिनी हूं। इतना कष्ट इतना अपमान तो भगवती सती सीता ने भी नहीं झेला। धन्य है दशरथनन्दन श्रीराम जिन्होने पत्नी के अपमान एवं कष्ट का प्रतिशोध लिया, पापी रावण का मस्तकोच्छेद कर, उसके दसों मस्तकों में से एक भी उसके कन्धों पर शेष नहीं रह गया। किन्तु केशव दुर्योधन जीवित है उसके तो कोई दस शीश भी नहीं है बस एक ही शीश है और मेरे तो पांच पांच पति है एक ही नहीं फिर भी दुर्योधन जीवित है, ऐसी स्थिति में मुझ अभागिनी को तो स्वयं मर जाना चाहिये किन्तु देखो विधि की विडम्बना कि मैं अपमान सहने को जीवित हूं, दुर्योधन को जीवित देखने को जीवित हूं। धिक्कार है इस परमवीर वृकोदर को, धिक्कार है इस गांडीवधारी पार्थ को। धिक्कार है इन नर शार्दूलों को जो भीरू मृगों के समान कौरवोंद्वारा डाली गयी सूखी दूर्वा चरने को तत्पर हो गये। ये अपने आपको क्षत्रिय कहते है, ये महाराज पांडु के पुत्र कहलाते है। देवी कुन्ती ने इनको जन्म दिया है क्या ये सिंह हैं? आज इनका वास्तविक रूप प्रगट हो गया। ये सिंह नहीं सिंह चर्म ओढे ये मेष हैं, ये दीन हैं, ये याचक हैं।

कठोर संयम रखते हुये भी अब उसके विशाल विस्फारित नेत्र कमल पर शिशिर कण टिक पा रहे थे अविरल अश्रु धारा बहते जा रही थी। वे नयन तो नन्हे प्रहरी मात्र थे, कहां तक रोक पाते उस दुर्दान्त प्रवाह को, जो धीरज की सुदृढ़ प्राचीरें और बांध तोडता हुआ उमडता चला आ रहा था। श्रीकृष्ण गम्भीर थे। आंखे जैसे कही दूर तक खोयी हुई। याज्ञसेनी के वाक्य अग्निबाण से छूटकर पांडवों के मर्मस्थल वेधी हो रहे थे। एक-एक शब्द तप्त लोहपिंड सा आघात कर रहा था। कंपते हाथों से द्रौपदी अपने रूखे कुन्तलराशि केश दिखा रही थी और स्वर डबडबाया हुआ था।

पांचाली बोली इन केशों को स्मरण रखना केशव। राजसूय यज्ञ के पावन अवसर पर ये मन्त्रजल से अभिषिक्त हुये थे और दुराचारी दुशासन के स्पर्श से ये दूषित भी हुये। दीर्घ तेरह वर्ष से केश ऐसे ही खुले हुये है। राजसूय यज्ञ कभी अहिंसा, शान्ति या मैत्री का विरोध नहीं करता। वरन राजसूय वास्तव में धर्मरक्षक राजा को स्वीकृति प्रदान करता है, प्रतिष्ठा देता है, पृथ्वी पर धर्म की ध्वजा उडाता है। विगत तेरह वर्षों से ये केश ऐसे ही खुले पडे हैं रूखे और शुष्क। इनमें तेल नहीं पडा है तेरह वर्षों से। इन्हे न भूलना माधव और वासुदेव यह भी कि सन्धि हो जाने पर भी मेरे केशों की वेणी नहीं बन्धेगी। पांच ग्राम प्राप्त भी हो गये तो भी मेरे केश तो खुले ही रहेंगे। सन्धि हो जाने से और पांच ग्राम की उपलब्धि का इनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। इससे पांडव प्रसन्न हो सकते हैं, सुखी होंगे किन्तु मेरे ये केश खुले ही रहेंगे। शान्ति और सन्धि के उपरान्त भी अथाह पीडा का सागर मेरे मन में उमडता रहेगा। कष्ट और अपमान की यातना मुझे जैसे अभी झुलसाती रहती

है तब भी झुलसाती रहेगी। पांच ग्राम पाकर क्या मैं अपने अपमान की यातना से मुक्ति पा जाऊंगी? अश्रु धीरे-धीरे सूख चले पर पुन: ओज उभर आया और बोली यदुवर यदि पांडव पराक्रम शून्य हो चुके हैं तो भी मैं साहस नहीं हारूंगी, आशा नही छोडूंगी, क्योंकि पृथ्वी पर और भी ऐसे-ऐसे वीर भरे पडे है जो मेरे अपमान का प्रतिशोध लेंगे। जितना बडा पाप कौरवों ने किया है उतना ही बडा प्रतिकार भी होगा और उतना ही कठोर दंड भी उन्हे मिलना चाहिये। द्रौपदी ये सब बातें कृष्ण से दांत भींच भींच कर कह रही थी। श्रीकृष्ण गदगद हो उठै और बोले धन्य है तू भारती।

द्रौपदी ने पुन: कहना प्रारम्भ किया कि ये पांडव पुत्र पांच ग्रामों की प्राप्ति मात्र से शूल सम अपमान को भले ही भुला दे किन्तु मैं वह दुर्दिन कैसे भुला पाऊंगी जब दुष्ट दु:शासन ने, दास-दासी, सेवक, परिचारकों और चातुर्वर्ण्य नागरिकों के समक्ष केशाकर्षण किया था। इतना भयंकर अपमान क्या पांच ग्राम पा जाने से ही भुला दूं? ऐसा विष घूंट भोग विलास में लिप्त होकर भुला दूं? मेरे अन्तर का सतत दाह क्या पांच ग्राम की बूंदो मात्र से ही शीतल हो जायेगा? मैं इतनी क्षुद्र हूं कि तुच्छ सी वस्तु पाकर अपना स्वाभिमान और आत्मसम्मान लुटा दूं? बहा दूं उसे? क्या जीवन में रेशमी वस्त्र ही सब कुछ है क्या स्वर्णाभूषण पाकर ही आनन्दमग्न हो जाऊं? नख शिख तक रत्नजटित मंडित होकर धन्य हो जाऊंगी क्या? क्या वे खचित रत्नजटित रत्न मालायें मेरे अन्तर की ज्वाला बुझा देगी? क्या मेरे अन्दर आत्मसम्मान नहीं? स्वाभिमान नहीं? जो कौरवों के फेंके हुये अन्न पिंडों से सन्तुष्ट हो जाऊं? मैं क्या भिक्षुकों की पत्नी हूँ? नहीं माधव नही। मैं भिक्षा के टुकड़ो पर पलनेवाली नारी नहीं...। हे वासुदेव। सुदीर्घ तेरह वर्ष मैंने हर प्रकार के कष्ट और यातना झेलकर बिताये है तो अब मुझे पांच ग्रामों के वैभव में क्या प्रलोभन हो सकता है? मैं आजीवन वैभवहीन रह सकती हूं। तेरह वर्षों से मैं क्रोध की प्रचंड अग्नि को अन्तर में धारण किये उन्मादित सी होकर घूम रही हूं। बाबली सी, पगली सी, विक्षिप्त सी घूम रही हूँ कि कभी तो अपमान का प्रतिकार होगा। प्रत्येक बार मुझे सुललित भाषा में नीति वचन मिले, प्रत्येक बार धीरज और संयम के मधुर उपदेश मिले। मैं प्रतीक्षा करती रही। जानती हूँ जय-पराजय तो होती है। मैं प्रतीक्षा कर रही हूँ पांडवों के अभ्युदय की। मैं धीरज रखी रही। मेरी सहिष्णुता को कौन चुनौती दे सकता है? परन्तु प्रत्येक बार दुगने वेग से ही मुझपर प्रहार हुआ।

कृष्णा बोली वासुदेव कब तक कब तक यह सब? बोलो माधव कब तक इस दारुण ज्वाला को अपना अन्तर्दाह करने दूं। मेरा हृदय फट नही गया, यही क्या कम है? अब मेरा संयम मेरा धीरज टूटा जा रहा है गोविन्द। अब अजेय आर्यपुत्र भीम सन्धिपर उतर आये है। सन्धि करना तो मैं इसे अवनति ही कहूंगी, नीचे उतरना ही कहूंगी क्योंकि क्षत्रिय की उन्नति युद्ध से होती है तथा सन्धि तो अधोगामी है। भीम अपने श्रेष्ठ क्षत्रिय स्तर से नीचे उतर आये हैं। उनके सन्धि सम्बन्धी कोमल स्वर अभी भी कसक रहे है। उनकी विह्वल मोहपूर्ण वाणी तीक्ष्ण बाणों सी मेरे अन्त:स्तल में गडी पडी है। अब नहीं माधव अब और नहीं... जब तक उस नीच दुराचारी दु:शासन की कटी हुई भुजा को भूमि पर लौटते न देख लूं मैं शान्त नहीं हो पाऊंगी। रघुकुल शिरोमणि श्रीराम ने तो पत्नी के अपहरण करनेवाले उस दशानन की बीसों भुजाओं को धूल-धूसरित किया था, मैं तो केवल दु:शासन की एक भुजा को भूमि पर लुंढित होना देखना चाहती हूं, जिस अस्पृश्य भुजा ने मेरा चीर हरण करने का अधम प्रयास किया था और मेरे केशों का स्पर्श किया था। दीर्घ अश्रु मालायें प्रवाहित हो चली, वक्ष प्रकम्पित था। द्रौपदी की हिचकियां रूक नहीं रही थी। वह संघर्ष कर रही थी। आत्मसंयम खोना नहीं चाहती थी किन्तु कृष्ण के समझ सारे बन्धन ढीले पड गये। वह जितने तार कसती जाती उतने ही स्वर शिथिल पडने लगे। इतना कहकर विशालाक्षी द्रौपदी का कंठ भर आया, आंखों से आंसुओं की झडी लग गयी, ओठ कांपने लगे और वह फूट-फूटकर रोने लगी।

श्रीकृष्ण की भृकुटि तन चुकी थी। नेत्र रक्तिम हो उठे। हाथ की मुठियां भीच चुकी थी। द्रौपदी बोली यदि युधिष्ठिर

धर्मध्वजा, धर्म के प्रकांड विद्वान, सर्वश्रेष्ठ गदाधारी भीम, गांडीव धारी अर्जुन, महावीर नकुल, महारथी सहदेव यदि शान्ति चाहते हैं तो वो अवश्य अपने स्वाभिमान से मूल्य चुका दें और शान्ति ले लें। मेरे इन खुले हुये केशों के लिये मेरे बूढे पिता महाराज द्रुपद दुशासन की छाती का लहू लेकर लायेंगे। मेरा युवा भाई कर्ण की जीभ काटेगा और मेरे पांच वीर महारथी पुत्र दुर्योधन की जंघा तोडेंगे। कृष्ण द्रौपदी की दृढ़ वाणी सुनकर प्रसन्न थे वे कृष्णा को विश्वास दिलाकर बोले सखि तुम्हारा रोष और प्रतिज्ञा यथार्थ है। जो तुम्हे अपमानित कर गये, जिन्होने तुम्हे सभा बीच लालसापूर्ण दृष्टि से देखा, पापको प्रोत्साहित किया वे सब तुम्हारे पति फाल्गुनी के शरों से युद्ध में निहत्त होंगे। महासमर में ध्रृष्टद्युम्न द्रोण का विनाश करेगा, शिखंडी भीष्म का नाश करेगा। भीम की गदा से दुर्योधन की जांघ टूटेगी। धनंजय के हाथों कर्ण का वध होगा। तुम्हारे कारण अनेक क्षत्रियों का विनाश होगा। कुरुसभा में तुम्हारी लांछना के बाद यह पृथ्वी महासमर से बच नहीं सकती। युग-युग में दुष्टों का विनाश करनेवाली धरती माता की छाती रक्तरंजित होती है। आकाश चाहे टूटकर खंड-खंड हो जाये, हिमालय पाताल में धंस जाये, सूर्यचन्द्र भूमिपर गिर पडे, भूमंडल का शतधा विदीर्ण हो जाये पर तुम्हारी प्रतिज्ञा अवश्य पूरी होगी कृष्णा। मैं पांडवों की सहायता में कोई कसर बाकी नही रखूंगा सखी, मेरा विश्वास करो, रोओ मत, शोक मत करो। मेरी प्रतिश्रूति कभी अन्यथा नहीं होती। रोना तो दूसरी कुरू नारियों का दुर्भाग्य बन चुका है। हे याज्ञसेनी रोना तुम्हारी आंखों में शोभा नहीं देता। तुम्हारी इन आंखों से भारतवर्ष के सूर्य को उदय होना है याज्ञसेनी मैं शान्ति दूत बनकर हस्तिनापुर जा रहा हूं क्योंकि हम शान्ति नष्ट कर पृथ्वी को रक्त स्नान के लिये बाध्य नहीं करना चाहते किन्तु शान्ति का आधार तो न्याय और धर्म होता है। धर्म की हत्या कर शान्ति कभी स्थापित नहीं होती। संसार का कोई भी अपराध क्षम्य हो सकता है किन्तु नारीत्व का अपमान कर कोई अपराधी दंड न पाये यह सम्भव ही नहीं है। इस संसार को धारण करनेवाला तत्व है धर्म, उस धर्म का विश्वास रखो। पाप क्षय का प्रतिनिधि है धर्म निर्माण का। न यह सृष्टि क्षय का पक्ष लेती है और न ही इसका स्रष्टा। आततायी अपने पाप का दंड न पाये यह कभी भी सम्भव नहीं। तुम चाहे अपनी जिव्हा से कुछ न भी कहो तो भी तुम्हारे इन खुले केशों की कथा, दुहाई तीनों लोकों में प्रतिध्वनित हो रही है। जहां इतने दिन धैर्य धारण किया है सखी तो फिर मेरे हस्तिनापुर से लौट आने तक थोडे और दिन स्वयं को संयत रखो। तुम्हारे ये अश्रु अनुतरित नही रहेंगे। हे भारती जिस प्रकार तुझे आज रूदन करना पड रहा है शीघ्र ही इसी प्रकार कुरुवंश की स्त्रियां रुदन करेगी। उस प्रकांड बलशाली राजनीतिज्ञ के मुख से यह गम्भीर उद्घोष निकला तो उपस्थित जन रोमांचित हो उठे। उन यदुनन्दन ने कहा जो तुम्हारे कोपभाजन है उन शत्रुओं के स्वजन, सुहृद और सेनादि के नष्ट हो जानेपर उनकी पत्नियां, स्त्रियां इसी प्रकार रोयेगी। यदि काल के वश में पडे हुये धृतराष्ट्र पुत्र मेरी बात नही सुनेंगे तो युद्ध में मारे जाकर कुत्ते और गीदडों के भोजन बनेंगे। कृष्णे अपने इन आंसुओं को रोको, मैं सच्ची प्रतिज्ञा कर कहता हूं कि तुम शीघ्र ही शत्रुओं के मारे जाने से अपने पतियों को श्री सम्पन्न देखोगी। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन ये सब भले ही शौर्य गंवा दे किन्तु मैं तो हूं। तू मेरी सखी कोई ऐसे ही नहीं है। तेरी यह अस्त-व्यस्त बिखरी सूखी केश राशि मुझे सदा स्मरण रहेगी। जब तक न तेरा अभिष्ट पूरा करूं तेरे ये श्यामल नागफणि केश मुझपर सदा फुफकारते रहेंगे याज्ञसेनी। मेरी यह प्रतिज्ञा है कि तेरे अपमान का प्रतिकार होगा। और असहाय पांचाली विह्वल हो कृष्ण के चरणों में गिर पडी अन्ततः उसे आश्रय मिल गया। कोई तो उसकी मर्म व्यथा समझा। वह आतुरा फूट-फूट कर रोने लगी। निर्मल प्रेम, अन्तर का स्नेह ही संजीवनी है। न्याय के लिये अन्याय करना, पुण्य कमाने के लिये पाप मार्ग पर चलना, परोपकार के लिये नियमों का उल्लंघन करना ये सब भी एक प्रकार के दोष और पाप है। कृष्ण को चाहने से द्रौपदी का सतीत्व या पात्यव्रत धर्म क्षुण्ण नहीं होता। कृष्ण प्रेम पवित्र है, अनाविल

है, आशा प्रत्याशा से बहुत उपर है। अत: अपने सतीत्व और पातिव्रत्य पर कभी-कभी द्रौपदी में भी अहंकार हो जाता।

द्रौपदी बोली साधना का भी एक स्वाद है, जिसने वह स्वाद नहीं चखा वो सोचता है साधना कष्टदायी है। मन को अपनी इच्छा के अधीन करना दुनिया में सबसे कठिन काम है। द्रौपदी बोली मैं जानती थी मधुसूदन मेरी रक्षा आप ही कर सकते है, आप ही करेंगे। आप ही ने चीरहरण के समय मेरी लाज रखी थी। आप ही मेरी अब भी लाज रखेंगे। आपके सिवा और कौन है मेरा रक्षक? पांडव यदि रक्षा करते मेरी तो केवल एक ही कारण से कि मैं इनकी पत्नी हूं किन्तु माधव आपके द्वारा मेरी रक्षा के कई कारण है। आप मेरे सम्बन्धी है, मैं आपकी सखी हूं, मेरा जन्म पवित्र यज्ञ वेदी से हुआ है, आप यज्ञ पुरुष है और आप ही रक्षा हेतु समर्थ है कृष्ण। मेरा और कोई नहीं है और वह पुन: विकल हो गई।

कृष्ण बोले अश्रु रोको कृष्णे। तू अश्रु बहाने के लिये नहीं है। तेरे ये अश्रु व्यर्थ गंवाने के लिये नहीं है। तेरा एक-एक अश्रु मूल्यवान है। तेरा अब एक भी अश्रु व्यर्थ नही जायेगा। मैं अब प्रमुख रूप से तेरे ही कारण हस्तिनापुर जाऊंगा और उन कौरवों का मान मर्दन कर ईंट से ईंट बजा दुंगा। एक गम्भीर, गुरुतर उत्तरदायित्व लेकर जा रहा हूं पांचाली। तेरी प्रतिष्ठा और सम्मान में मैं अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान ढूंढूंगा। मैं न्याय की स्थापना कराने का प्रयत्न करूंगा। निर्दोष और निर्बल को सम्मान दिलाऊंगा तथा दोषी को कठोर से कठोर दंड। यही लक्ष्य लेकर जा रहा हूं। तू विचलित मत हो और धैर्य रख। सदा की भांति मुझ पर विश्वास रख। भारती तू जानती है कि मैं सिर्फ कहता ही नहीं हूं, करता भी हूं। तुने तो अपनी सब बात मुझसे कह दी। अब सब कुछ मुझपर छोड दे अब जो कुछ करना है, सम्भालना है, मेरा काम है। तू निश्चिन्त रह, तू व्यथित मत हो। स्नेहपूर्ण दृष्टि कातर कृष्णा पर डाली। वाम हस्त उसके शीश पर परम स्नेह से फेरा। पांचाली के सिरपर हाथ फेर जैसे उन लीलामय ने उसकी सारी चिन्ता का भार अपने हाथों में समेट लिया। विकलमना पांचाली का अनुताप धुल गया। अन्तर में वर्षों तक जमा भार सम व्यथा का विशाल मेघ खंड जैसे हट गया। अन्तर में जैसे वर्षों बाद ज्योत्स्ना निखर आयी। कृश काया पांचाली उस पुरुष सिंह को अपने सामने से जाते देख रही थी। अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपने प्रिय सखा को विदाई दी। विदा का यह सुफल होता है कि वह सारे विद्वेष धो देता है। सारी बातें भूल जाना ही श्रेयस्कर होता है। घर में भाई-भाई के बीच, क्रोध, मान, गुमान बंटवारा चलता ही रहता है। समय फिर सारी बातें समान कर देता है, भूला देता है। दूरी और अदर्शन फिर से विछिन्न को निकट कर देते है। तेरह वर्ष बाद वापिस अपने राज्य में लौटने पर सब कुछ भूलकर हम निकटतर हो जायेंगे आशा है कृष्ण भी उन सब बातों को भूलकर सुख से रहेगी। पर कृष्ण ने जैसे सोचा था वह हुआ नहीं। आदमी-आदमी के बीच किसी भी तरह के सम्पर्क से बहुत ऊंचा है परस्पर का सम्पर्क। इस सम्बन्ध की संज्ञा निरूपित करना मानव शक्ति और ज्ञान में सम्भव नहीं। कृष्ण पौरुष का मूर्तिमान रूप। समूची धरा पर एकमात्र पुरुष, एक मात्र निर्भिक वीर। निर्भिकता एवं शक्ति की साक्षात मूर्ति। अगाध श्रद्धा से, भक्ति से उसके नयनों मे पवित्र गंगा जैसे उमड आयी हो और बोली धन्य हो वासुदेव। डूबतों के सेवनहार। असहाय के अवलम्ब, न्याय के उपासक। शोषण के विनाशक कृष्ण धन्य हो।

कृष्ण के आश्वासन के पश्चात द्रौपदी ने एक शब्द भी नहीं कहा। वह जानती थी कि कृष्ण ने जो कुछ कहा था वह उसे मात्र सान्त्वना देने के लिये नही, न ही वह शिष्टाचार मात्र था। कृष्ण के शब्दों को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। कृष्ण का प्रत्येक शब्द जीवन जीने की कला की शिक्षा है। साधुपुरुष किसी बात की पहिले से घोषणा नहीं करते न ढिंढोरा पीटते। जो करना होता है वो तो समय आने पर ही करके दिखा देते है। जन्म पर आदमी का कोई नियन्त्रण नहीं होता है लेकिन कर्म पर है। कर्म और कर्त्तव्य से अपने पौरुष की पताका उडाने को दृढ़ संकल्प है। पराजित शत्रु को अपनी जीत के गीत, गाथा सुनाना बुद्धिमत्ता का कार्य नहीं है। उल्टे ईर्ष्यावश शत्रुता ही बढती है, कम नहीं होती। जल में रहकर भी

पदमपत्र जलमय नहीं होता। इसी प्रकार संसार में रहकर संसार को अपने ऊपर हावी मत होने दो। संसार में आसक्त मत बनो। सबकी मृत्यु का लक्ष्य एक है, हालांकि जन्म का लक्ष्य एक नहीं होता। कोई जन्म लेता है अपने लिये, जीवित रहने और कोई-कोई तो जन्म लेता है जगत के लिये, दीन, दलित, पतित जनों के लिये। जो अपने रहने के लिये जीता है वह तो मृत्यु का वरण करता है और जो जगत के लिये जीता है वह मरकर भी मृत्यु के मुख में नहीं जाता, उसकी गिरफ्त से दूर रहता है। आदमी की कामना अविनाशी है, संसार की हर उत्कृष्ट वस्तु से घर सजाकर भी मन खाली रहता है। जितना पाता है उतना पाने पर भी इच्छा और बढ जाती है यही हुआ दुर्योधन के साथ।

## १६) श्रीकृष्ण का शान्तिदूत बनकर हस्तिनापुर के लिये प्रस्थान

कृष्ण के पास शिखंडी आता है। शिखंडी आकर द्वारपाल से बोला वासुदेव कृष्ण से कहो मैं द्रुपद पुत्र शिखंडी मिलने की आज्ञा चाहता हूं। द्वारपाल बोला आप प्रवेश कीजिये राजकुमार शिखंडी। शिखंडी बोला नहीं आज मैं आज्ञा लिये बिना नहीं जाऊंगा। द्वारपाल ने आकर कृष्ण को सूचना दी कुमार शिखंडी दर्शन की आज्ञा चाहते है। कृष्ण बोले उन्हे अन्दर भेज दो। शिखंडी ने आकर कृष्ण को प्रणाम किया। कृष्ण बोले पधारिये कुमार, विराजिये। शिखंडी बोला मैं आपका अधिक समय नहीं लूंगा। कृष्ण बोले अधिक समय तो किसी के पास होता भी नहीं कुमार, कोई देगा भी तो कहां से? समय का कोई धनी नहीं होता इसलिये और भूमिका की कोई आवश्यकता नहीं है। शिखंडी बोला मैं तो केवल यह जानना चाहता हूं कि कौरवों और पांडवों के बीच युद्ध होगा या नहीं। कृष्ण बोले यह मैं अभी से कैसे कहूं कुमार। अभी तो मैं शान्तिदूत बनकर जा रहा हूं। यही प्रश्न लेकर आपके पिताश्री भी आये थे। कुमार धृष्टद्युम्न ने भी यही प्रश्न किया था? कहीं ऐसा तो नहीं कुमार कि द्रुपद परिवार शान्ति चाहता ही न हो? शिखंडी बोला क्या अपमान का घाव शान्ति लेप से भर सकता है वासुदेव? कृष्ण बोले यह आप किस अपमान की बात कर रहे कुमार क्योंकि द्रौपदी का अपमान आपका अपमान नहीं है। वो तो पांडवों के भाग का है और आप लोग अपने अपने भाग का अपमान भी पांडवों की गणित से जोडे जा रहे हो। या तो सब अपनी-अपनी रणभूमि ढूंढिये कुमार या फिर प्रतीक्षा कीजिये। शिखंडी बोला प्रतीक्षा ही तो कर रहा हूं देवकी नन्दन परन्तु आप हस्तिनापुर जा रहे है तो हस्तिनापुर सिंहासन और गंगापुत्र भीष्म से प्रणाम कह देना। वो मुझे दिन रात याद आते है।

**कौन राह किसकी तके भला बताये कौन, प्रतीक्षा समय की धरे धैर्य और मौन।**

वैशम्पायन कहते है जनमेजय श्रीकृष्ण, शरदऋतु के अन्त में, हेमन्त के प्रारम्भ में कार्तिक मास रेवती नक्षत्र चैत्र मूहुर्त में हस्तिनापुर के लिये प्रस्थान किया। साथ में सात्यकि को लिये अपने रथ में शंख, चक्र, गदा, तरकस आदि शस्त्र लेकर रथ में सवार होकर जाने के लिये प्रस्तुत हुये। दारुक सारथी ने शैव्य, सुग्रीव, मेघवाहक और बलाहक नाम के अश्वों को जोडकर रथ की ध्वजा पर पक्षी राज गरुड विराजमान हुये। कृष्ण के प्रस्थान करने पर कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, चेकितान, चेदिराज, धृष्टकेतु, द्रुपद, काशिराज, शिखंडी, धृष्टद्युम्न, पुत्रोंसहित राजा विराट और केकय राज भी उन्हे विदा करने आये। युधिष्ठिर ने कृष्ण को हृदय से लगाकर कहा हमारी माता कुन्तीने हमें बाल्यपन से ही पाल पोसकर बडा किया है जो निरन्तर तप और उपवास में रत हमारी कुशल क्षेम का सदा प्रयत्न करती रहती है। मेरी माता का देवताओं और अतिथियों के सत्कार और गुरुजनों की सेवा में बडा अनुराग है। उसे हर समय हमारा शोक सालता रहता है। आप हमारी ओर से उन्हे प्रणाम कर कुशलक्षेम पूछे। क्या कभी वह समय भी आयेगा कृष्ण जब हम इस दु:ख से छूटकर हमारी दुखियारी मां को सुख पहुंचा सकेंगे। राजा धृतराष्ट्र और सभी वयोवृद्धों से, तथा सभी भरतवंशियों से हमारा यथायोग्य

अभिवादन कहे एवं कौरवों के प्रधान धर्मज्ञ बुद्धिमान मन्त्री महात्मा विदुर से भी हमारा आलिंगन करे। फिर अर्जुन ने कहा गोविन्द पहिले मन्त्रणा के समय हमें राज्य देने की बात हुई थी उसे सब लोग जानते है। यदि दुर्योधन ऐसा करने को उद्यत हो तो अच्छी बात है वह भी कई आपत्तियों से मुक्त हो जायेगा और यदि ऐसा उसने नहीं किया तो अवश्य ही उसके पक्ष के समस्त वीरों का नाश होगा। अर्जुन की बात सुनकर भीम भी बडा प्रसन्न हुआ। सबने अपना निश्चय सुनाकर कृष्ण को हस्तिनापुर के लिये विदा किया। रास्ते में अनेकों महर्षि कृष्ण को देखने के लिये पंक्तिबद्ध खडे थे। वे जाते हुये कृष्ण को प्रणाम कर रहे थे। उन्हे देखकर कृष्ण रथ से उतर पडे और ऋषियों और ब्राह्मणों को प्रणाम कर बोले, आप लोगों के लोक में सब कुशल है न? धर्म का ठीक-ठीक पालन कर रहे हो? आप लोग इस समय कहां से आ रहे है और किधर जा रहे है? आपका क्या कार्य है? मैं आपकी क्या सेवा करूं? आप सब पृथ्वी तल पर किस निमित्त पधारे है?

तब परशुराम कृष्ण से बोले ये सब देवर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षि और महर्षि और राजा लोग प्राचीन काल के अनेकों देवता और असुरों को देख चुके है। इस समय ये हस्तिनापुर में एकत्रित हुये क्षत्रिय राजाओं को, सभासदों को और आपको देखने के लिये जा रहे है। वहां कौरवों की राजसभा में आप जो धर्म और अर्थ के अनुकूल वक्तव्य करेंगे उसे सुनने की हमारी इच्छा है। उस सभा में गंगापुत्र भीष्म, द्रोण और महामंत्री विदुर जैसे महापुरुष तथा आप भी उपस्थित रहेंगे, उस समय हम आपके दिव्य वचन सुनने की इच्छा करते है। उनकी स्तुति करते तथा मधुपर्क और अनेकों मांगलिक द्रव्यों से सत्कार करते ब्राह्मण वर्ग चल रहा था। वे चलते-चलते शालीय वन नामक स्थान में पहुंचे। वहां के निवासियों ने कृष्ण का बडा आदर सत्कार किया। सायंकाल तक वे वृकस्थल नाम के गांव पहुंचे। वहां रात्रि विश्राम किया। सन्ध्या वंदन किया। कृष्ण ने वहां के निवासियों से कहा हम लोग राजा युधिष्ठिर के कार्यहेतु हस्तिनापुर जा रहे हैं और रात्रि का विश्राम यहीं करेंगे। ग्रामवासियों ने उनके ठहरने का उचित प्रबन्ध कर दिया और खान पान की उत्तम समुचित व्यवस्था जुटा दी। फिर ग्राम के प्रधान-प्रधान ब्राह्मणों ने आशीर्वाद और मांगलिक वचन कहे। इसके पश्चात कृष्ण ने सभी को सुस्वादु आहार करा स्वयं भोजन कर उस रात बडे आनन्द से वही रहे। दूसरे दिन वृकस्थल से निकल कृष्ण हस्तिनापुर पहुंचे।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय कृष्ण के आने का समाचार हस्तिनापुर में चारों ओर सूचित हो गया कि कृष्ण शान्तिदूत बनकर आया है। हस्तिनापुर में भीष्म आचार्य द्रोण के साथ अपने कक्ष बैठै हुये थे। भीष्म बोले क्या आचार्य हमारी बाहों में इतना बल है कि वो रणभूमि और हस्तिनापुर के बीच के अन्तर को घटने से रोक दे। यह अन्तर प्रतिदिन ही नहीं प्रतिक्षण घटते चला जा रहा है। वर्षों की तपस्या हाथ बढाकर कर्म फल तोडना चाहती है। सारे वचनों और सारी प्रतिज्ञाओं के हाथ में धनुष है। कोई अभिमान के रथ पर सवार है तो कोई आत्मसम्मान के रथपर। वो चाहे गंगापुत्र भीष्म हो, चाहे द्रुपद पुत्र शिखंडी। हे आचार्य चाहे आप हो या वो धृष्टद्युम्न, वो चाहे दुर्योधन हो चाहे भीम। चाहे कर्ण हो या मेरा प्रिय अर्जुन। नींद किसी को भी नहीं आ रही आचार्य विराट युद्ध की बात और थी आचार्य। वो युद्ध कौरवों और पांडवों के बीच नहीं परन्तु अब के होनेवाला युद्ध आचार्य हृदय के दुर्ग की ईंट से ईंट बजाकर रख देगा। क्या हमारी बूढी छातियां कर्ण और अर्जुन के बाणों को रोक पायेगी? क्या हमारे बुढापे का कवच भीम और दुर्योधन की गदाओं की चोट से बचा पायेगा? द्रोण बोले कदाचित नहीं गंगापुत्र कदाचित नहीं। परन्तु हम अपने शवों से हस्तिनापुर की दीवारों को बचाने का प्रयत्न अवश्य कर सकते हैं। जब तक युद्ध का शंख न बजे गंगापुत्र तब तक यह आशा करते रहिये कि कृष्ण युद्ध का कोई न कोई विकल्प अवश्य निकाल लेंगे।

भीष्म अपने कक्ष में गवाक्ष से गंगा की ओर देख रहे होते हैं कि इतने में विदुर उनके कक्ष में आकर बोले प्रणाम तातश्री। शरद ऋतु में आप खुली खिडकी के पास खडे है क्यों? ठंडी हवा चल रही है। कहीं आपको... भीष्म बोले क्या तुम नहीं

जानते विदुर मैंने इच्छा मृत्यु की चादर ओढ रखी है? ऋतु मेरा क्या बिगाड लेगी? अकेला था विदुर यहां खडा माताश्री के दर्शन कर लेता हूं। मेरी प्रतिज्ञा और मेरे अन्त:करण में भयंकर युद्ध चल रहा है विदुर और स्वयं मैं ही रणभूमि हूं। देख रहा हूं इस युद्ध को और देखे चले जा रहा हूं। हस्तक्षेप नहीं कर सकता। मेरी प्रतिज्ञा मुझे दुर्योधन की ओर खींच रही है और मेरा अन्त:करण कह रहा है कि गंगापुत्र भीष्म तुम कहां खडे हो? मैं तो अभागा व्यक्ति हूं विदुर जो जीवित रहना नहीं चाहता पर जीवित रहने के लिये विवश हूं। मुझे बताओ विदुर इस वृद्ध भीष्म के विषय में तुम्हारी नीति क्या कहती है? विदुर बोले यह प्रश्न नीति का नहीं है तातश्री इसलिये यह खिडकी बन्द कर दीजिये। आपकी आत्मा आपके वस्त्र की भांति श्वेत है आप दु:खी ना हो, आप तो इतने महान है तातश्री कि कीचड की कोई छींट उड़कर आपके श्वेत वस्त्रों तक नहीं आ सकती। यह भारतवर्ष सदैव इस बात पर गर्व करेगा कि इस भूमिपर आप जैसा छतनार वृक्ष होगा और यदि भविष्य में कभी इस देश में विद्वानों की भीड लगी तो अकेले दुकेले साधारण आकार के व्यक्तियों को आपका दृष्टान्त उनकी ढाढस बन्धा लेगा। वो आपका नाम लेकर भारतवर्ष को उन बाणों से बचाने का प्रयत्न करेंगे। हे तातश्री मैं अपनी ओर से, इस देश की ओर से आपको प्रणाम करता हूं। जो भार उठाये आप जीवित है उसका आधा भार भी आपके शिष्य विदुर को उठाना पड जाता तो कदाचित उसकी उदासी के साथ-साथ उसकी नीति की कमर भी टूट चुकी होती हां तातश्री। विदुर जाकर भीष्म के चरणों में नीचे बैठ गया। भीष्म बोले यह क्या विदुर? विदुर बोले यह मेरा सौभाग्य है तातश्री जब मैं चाहूं इन चरणों में बैठ सकता हूं। यह मेरा सौभाग्य मुझसे न छीनिये। मेरे पास यो भी कर्त्तव्य तो बहुत है किन्तु अधिकार बहुत कम है तातश्री। बहुत कम। भीष्म बोले यदि मैं यह जानता न होता कि तुम इन परिस्थितियों में सुखी रह ही नहीं सकते अन्यथा तुम्हे सुखी रहने का आशीर्वाद देने का बहुत जी चाह रहा है। विदुर बोले तातश्री ये आशीर्वाद उस हस्तिनापुर के लिये रखिये जो हमारे अस्त हो जाने के पश्चात सूर्योदय देखने के लिये जीवित रहनेवाला है।

भीष्म बोले ऐसा कौनसा समाचार लेकर आये हो पुत्र? विदुर बोला यह सूचना मिली है तातश्री कि वासुदेव कृष्ण शान्ति की आशा अब भी नहीं छोड़े हुये है और वो स्वयं शान्तिदूत बनकर आ रहे हैं। भीष्म बोले क्या वासुदेव कृष्ण? वो तो आशा और निराशा दोनों से परे है विदुर। यह तो सम्भव ही नहीं कि श्रीकृष्ण कुछ चाहे और वो ना हो। वो यदि आ रहे है तो तुमसे, मुझसे, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य से यह कहने आ रहे है युद्ध का कोई विकल्प नहीं रह गया है। वो हमसे यह कहने आ रहे है विदुर कि आप लोग देखें की पांडव तो शान्ति का द्वार खुला रखना चाहते है। वो तो वृद्ध लोगों से युद्ध की आज्ञा लेने आ रहे है पुत्र आज्ञा। तुम देख लेना। दुर्योधन उठेगा और सारे शान्ति के मार्ग बन्द कर देगा। विदुर बोला महाराज को समझाइये तातश्री। भीष्म बोले तुम्हारा महाराज समझाने, समझने की सारी की सारी सीमायें कब का पार कर चुका है विदुर। उसकी ये महत्वाकांक्षाये हस्तिनापुर के हितों से उठाकर बहुत दूर ले जा चुकी है विदुर। विदुर बोले जानता हूं फिर भी आप एक बार उनको कहकर तो देखिये तातश्री। मेरी तो वो सुनते ही नहीं। उनसे कहिये तातश्री वो हस्तिनापुर की सुरक्षा के लिये उत्तरदायी है। इतिहास दुर्योधन पर आरोप नहीं लगायेगा, वो तो उन्हीं को दोषी ठहरायेगा। इसलिये वो हस्तिनापुर के साथ न्याय नहीं कर सकते तो न करे किन्तु उस पर दया तो करे। उनसे कहिये कि वासुदेव कृष्ण जो प्रस्ताव लेकर आ रहे है उसे स्वीकार करे। इसके अतिरिक्त हस्तिनापुर की सुरक्षा के लिये सारे मार्ग स्वयं वो ही बन्द कर चुके है। आप हस्तिनापुर की सुरक्षा के लिये वचनबद्ध है तातश्री वचनबद्ध है।

वैशम्पायन बोले जनमेजय धृतराष्ट्र के मन्त्रणा कक्ष में धृतराष्ट्र के साथ दुर्योधन और शकुनि बैठे है। वहीं पर विदुर सहित गंगापुत्र भीष्म भी वहां आते है। भीष्म धृतराष्ट्र से बोले सुना है पांडवों के काम से कृष्ण शान्तिदूत बनकर हमसे मिलने आ

रहे है। हस्तिनापुर आना कोई साधारण बात नहीं है पुत्र। वे सब प्रकार हमारे माननीय और पूज्य है। सारे लोक व्यवहार उन्हीं में अधिष्ठित है। वे समस्त प्राणियों के ईश्वर है उनमें धैर्य, वीर्य, प्रज्ञा, ओज सभी गुण विद्यमान है। वे सनातन धर्मस्वरूप है इसलिये सब प्रकार सम्मान पाने योग्य है। उनका सत्कार करने में ही सुख है, असत्कृत होने पर वे दु:ख के निमित्त कारण बन जाते है। यदि हमारे सत्कार से सन्तुष्ट हो गये तो सभी राजाओं के समान हमारे सभी अभीष्ट सिद्ध हो जायेंगे। वो कोई काम्पिल्य के राजपुरोहित नहीं है। वो वासुदेव है इसलिये उनके सामने अपनी महत्वाकांक्षा को मुंह न खोलने देना पुत्र। वे तुला है उसपर यदि तुम खरे न उतरे तो तुम्हारे पास न कोई वर्तमान है और न कोई भविष्य। ये बातें याद रखना कि वे दुर्योधन के पिताश्री के पास या पांडवों के ज्येष्ठ पिताश्री के पास नहीं आ रहे है शान्ति दूत बनकर। वे हस्तिनापुर नरेश के पास आ रहे है। वे राजा कुरु और महाराज भरत के उत्तराधिकारी के पास आ रहे हैं। उनका शान्ति प्रस्ताव सुनने के पश्चात तुम जो कुछ भी कहोगे उसीपर हस्तिनापुर का भविष्य निर्भर है पुत्र।

धृतराष्ट्र बोले कितने दिनों के पश्चात आपने मुझे पुत्र कहा है तातश्री। आपके मुंह से यह सुनने के लिये मेरे कान तरस गये थे। भीष्म बोले तुमने पुत्र कहने का अवसर ही नहीं दिया। तुम सबसे नाता तोडकर अपनी महत्वाकांक्षा के होकर रह गये हो। जब मैं पुत्र कहता तो मेरा नाद तुम्हारी महत्वाकांक्षा की चट्टान से टकराकर लौट आता। हे पुत्र दुर्योधन को बहुत चाह चुके अब तनिक हस्तिनापुर को भी चाह कर देखो। धृतराष्ट्र बोले मैं क्षमा चाहता हूं तातश्री। वासुदेव के स्वागत का कार्यभार आप ही सम्भालिये। भीष्म बोले नहीं पुत्र। यह काम तो विदुर और पुत्र दुर्योधन को करना चाहिये। किन्तु ऐ दुर्योधन ध्यान रहे वासुदेव कृष्ण सम्पूर्ण सत्य है। उन्हे अपने अभिमान के कांटे से मत छूना। सत्य का अपमान सम्भव नहीं परन्तु सत्य के अपमान का परिणाम शुभ नहीं होता। धृतराष्ट्र बोला दुर्योधन के अतिरिक्त मेरे सारे पुत्र वासुदेव के स्वागत हितार्थ नगरद्वार से दस कोस आगे तक जायेंगे। अनगिनत नर्तकियां नृत्य करती हुई जायेंगी जो वासुदेव को राजभवन के द्वार तक लायेगी। जहां दुर्योधन स्वयं उनका स्वागत करेगा। धृतराष्ट्र ने आज्ञा दी विदुर आदेश दो कि मार्ग पर छिडकाव किया जाये ताकि धूल न उडे। हमारे स्त्री-पुरुष, बालक, वृद्ध जितनी प्रजा है उसे साक्षात सूर्य के समान कृष्ण के दर्शन करने चाहिये। उनके आने के मार्ग को झाड बुहार कर जल छिडकवा दो। सब ओर बडी-बडी ध्वजा पताका फरहा दो। दु:शासन का भवन दुर्योधन के भवन से बडा है, अच्छा है, उसे शीघ्र ही साफ करा अच्छी तरह से सुसज्जित करो। उस भवन में बडे-बडे शयन कक्ष और अट्टालिका है, उसमें सब प्रकार के सुखदायक, आरामदायक उपकरण है और वहां पर एक ही समय सब ऋतुओं का आनन्द मिल सकता है। मेरे और दुर्योधन के भवन में जो भी सर्वोत्तम वस्तुये है वे सब वहां ले जाकर सजा दो। उनमें जो-जो पदार्थ कृष्ण के योग्य हो वो सब उन्हे भेंट करो। वहीं पर वासुदेव के ठहरने का प्रबन्ध करो। मैं स्वयं वासुदेव की पूजा करूंगा। सोलह-सोलह रथ जिसमें बालक अश्व जुते होंगे। आज का वो मदगज, सौ कुआरी दासियां और उतने ही दास, १८००० मृदुल उन की कम्बल अनगिनत मृग छाले और एक रथ भेंट करूंगा जो रात को भी दिन के भांति दमके।

विदुर बोले महाराज आप तीनों लोकों में बडे सम्मानित है और इस लोक में बडे प्रतिष्ठित तथा सम्मानीय माने जाते हैं। पर महाराज इस मिथ्याचार से क्या लाभ होगा? शकुनि बोला आप तो अपने ही महाराज पर महाराज को उनके ही कक्ष में मिथ्याचारी बता रहे हैं। विदुर बोले हे गान्धार नरेश मन्त्रियों का यही कर्तव्य है कि वो अपने नरेश के सामने सदैव सच बोले और जो अपने नरेश के सामने सच नहीं बोल सकता उसका मन्त्री होने का कोई अधिकार ही नहीं है। हे गान्धार नरेश यदि राज्य के मन्त्री अपने ही नरेश से झूठ बोलने लगे तो समझना चाहिये कि उस राज्य का सूर्य अस्त होनेवाला है। मैं इस

राज्य के सूर्य को अस्त होने से रोकना चाहता हूं और इसीलिये सच बोल रहा हूं। महाराज वासुदेव कृष्ण को आप जो कुछ भी भेंट करना चाहते है वो वास्तव में उपाहार नहीं उत्कोच है। परन्तु हे महाराज कोई उत्कोच वासुदेव को अर्जुन से अलग नहीं कर सकता। अर्जुन उनका मित्र नहीं बल्कि आता जाता श्वास है, फिर भी उन्हे यह भेंट देने की भूल न करे। आप धन देकर या किसी भी प्रयत्न से कृष्ण को अर्जुन से अलग नहीं कर पायेंगे मैं कृष्ण की महिमा भलीभांति जानता हूं। पांडवों पर उनका सुदृढ़ अनुराग है। अर्जुन तो उन्हे प्राणों के समान प्रिय है, उसे तो वे छोड ही नहीं सकते। वे अर्ध्य पाद के सिवा आपसे कुछ भी नहीं चाहेंगे। वे अतिथि सत्कार और सम्मान के योग्य है। उनके आने का तात्पर्य ही यह है कि वे शान्ति चाहते है; उनके अतिरिक्त वहां शान्ति चाहनेवाला और कोई नहीं है। उनका आना पांडवों से कहीं अधिक आपके हित में है। समस्त हस्तिनापुर के हित में है। इसीलिये महाराज वो जो कुछ भी कहे उसे मान लेने का ही प्रयत्न कीजिये महाराज। वे तो पांडवों के साथ आपकी और दुर्योधन की सन्धि कराना चाहते है। महाराज आप पांडवों के भी पिता है वे आपके पुत्र है। आप वृद्ध है, वे आपके सामने बालक है। वे आपके साथ पुत्रों जैसा ही बर्ताव कर रहे है। आप भी उनके साथ पिता जैसा बर्ताव करें।

दुर्योधन बोला आज मैं पहिली बार काकाश्री विदुर से सहमत हो रहा हूं। पिताश्री यह भेंट देने का अवसर नहीं है। वो यह भी तो सोच सकते है कि हम सब उनसे डर रहे है। आप चाहे उन्हे कितना भी प्रसन्न करने का प्रयत्न कर देख ले तातश्री परन्तु युद्ध की ठहर चुकी है वो युद्ध तो होगा ही। भीष्म बोले तो फिर उनका स्वागत करो या ना करो पुत्र। वासुदेव तो वही करेंगे जो करने का निर्णय वे ले चुके है। यह न सोचो पुत्र कि यदि तुमने उन्हे भेंट नहीं दी, पूजा अर्चा नहीं की उनकी तो उनका अपमान हो जायेगा। अरे वे तो मान-अपमान से परे है। उनका अपमान तो हो नहीं सकता और ये भी मत सोचो कि अर्जुन उनका मित्र है इसलिये वे उसका पक्ष लेंगे। वो धर्म के अतिरिक्त किसी के पक्ष में हो ही नहीं सकते पुत्र। दुर्योधन बोला पितामह मुझे यह बात कतई मंजूर नहीं कि मैं इस राजलक्ष्मी को पांडवों के साथ बांट कर भोगूं। क्या आप यह कहना चाहते है पितामह कि मैं पांडवों के जीवनकाल में सम्राट हो ही नहीं सकता। तो फिर यदि ऐसा है तो मैं वासुदेव कृष्ण को बन्दी बना लूंगा। उन्हे बन्दी बनाते ही समस्त यादव, सारी पृथ्वी और सभी पांडव मेरे अधीन हो जायेंगे।

कृष्ण के विषय में दुर्योधन के ये विचार सुनकर सब के मन में बडी चोट लगी और सब उठकर खडे हो गये। धृतराष्ट्र बोले ऐसा ना कहो पुत्र, ऐसा नहीं। यदि तुम यह भूल भी जाओ कि वे कौन है तो यह अवश्य याद रखना कि वे शान्तिदूत बनकर आ रहे है और उनकी ओर से हमें कोई क्षति भी नहीं पहुंची। तुम उन्हे बन्दी बनाने की सोच भी कैसे सकते हो? यह तुम जो सोच रहे हो वह सनातन धर्म के विरुद्ध है। वे हमारे सम्बन्धी और सुहृद हैं तथा उन्होने कौरवों का कुछ नहीं बिगाडा है। भीष्म बोले तुम्हारी ये क्रूर सोच सर्वनाश को आमंत्रित कर रही है वत्स दुर्योधन। अपनी सोच की दिशा बदलो। हे महाराज मैं आपके इस पथभ्रष्ट पुत्र की बातें और नहीं सुन सकता इसलिये जाते-जाते आपसे यह अवश्य कह देना चाहता हूं कि यदि सभा में वासुदेव कृष्ण का अपमान करने का प्रयत्न किया गया तो अपने इस पुत्र पर रोने के लिये आपको आँसुओं की भी कमी पड जायेगी। धृतराष्ट्र लगता है तुम्हारा यह मन्दमति महामूर्ख पुत्र मौत के फन्दे में पड गया है। इसके सुहृद और सम्बन्धी कोई भी इसके हित की बात बताते है तो भी यह अनर्थ को ही गले लगाता है। यह पापी तो कुमार्ग से ही चलना चाहता है पर तुम भी इसके साथ अपने हितैषियों की बात न मानकर इसी के मार्ग का अनुसरण कर रहे हो। तुम नहीं जानते कि यह दुर्बुद्धि यदि कृष्ण के मुकाबले में खडा हो गया तो एक ही क्षण में अपने सलाहकारों सहित नष्ट हो जायेगा। इस पापी ने तो धर्म को तिलांजली दे ही दी है, त्याग दिया है। यह बडा ही कठोर हृदय का है। अब और मैं इसकी अनर्थपूर्ण बातें नहीं सुन सकता। ऐसा कह कर पितामह भीष्म अत्यन्त क्रोध में भर उत्तेजित हो उस सभा को छोड उठ कर वहां से चले गये।

## १७) कृष्ण का शान्तिदूत बनकर हस्तिनापुर में आगमन

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय भीष्म धृतराष्ट्र के यहां से लौटकर अपने भवन के कक्ष में आते है। वहां पर कर्ण पितामह भीष्म को मिलने आता है। भीष्म बोले अरे अंगराज कर्ण तुम। कर्ण बोला प्रणाम गंगापुत्र पितामह। भीष्म ने आशीर्वाद दिया आयुष्मान भव। विराजिये। कहो अंगराज कैसे आना हुआ। कर्ण बोला आपको आश्चर्य तो हो रहा होगा कि मैं आपके कक्ष में क्यों आया हूं? परन्तु आपसे अधिक आश्चर्य तो मुझे हो रहा है। भीष्म बोले मुझे आश्चर्य नही है अंगराज। मैंने अपने जीवन में इतनी अनहोनी घट जाये देख ली है कि मैंने आश्चर्य करना छोड़ दिया है। मैं यह सोच भी नहीं सकता था कि भरत वंशज कुरु कुमार द्यूत में कपट भी कर सकता है। कौन सोच सकता था कि महाराज के सामने हस्तिनापुर के भरे राज-दरबार में अपनी कुलवधू का वस्त्राहरण भी होगा? परन्तु यह सब कुछ हुआ है अंगराज कर्ण। इसलिये अपने आने पर आश्चर्य मत करो। कहो तुम्हे मेरी याद कैसे आई? कर्ण बोला इस समय मैं पितामह भीष्म के पास नहीं आया। मैं आया हूँ परशुराम शिष्य भीष्म के पास। मैं आपका गुरु भाई हूं गंगापुत्र। भीष्म बोले नि:सन्देह परन्तु तुम्हारी समस्या क्या है? कर्ण बोला मेरी पहिली समस्या यह है गंगापुत्र कि मैं अपने आपको सूतपुत्र नहीं मानता। भीष्म बोले तुम केवल सूतपुत्र नहीं हो। तुम कर्म से क्षत्रिय भी हो। तुम सूत पुत्र भी हो, क्षत्रिय भी। किसी का पुत्र होना या ना होना इसपर तुम्हारा कोई वश नहीं इसलिये क्षत्रिय धर्म की डोरी को कसकर पकडे रहो पुत्र। जन्म पर आदमी का नियंत्रण नहीं पर कर्म पर तो नियंत्रण है। कर्ण बोला कैसे पकड रहूं गंगापुत्र? मैं गुरु श्रेष्ठ परशुराम का शिष्य अवश्य हूं। धनुर्विद्या में निपुण और आपकी भांति ही महान यौद्धा भी। आप यह न समझिये कि मेरा यह अहंकार बोल रहा है। मैंने अपनी विजय यात्रा में भारतवर्ष के समस्त राजाओं और यौद्धाओं को पराजित किया है परन्तु जब जब मेरा अर्जुन से सामना हुआ है तब तब मेरे भाग्य में पराजय आई है ऐसा क्यों है गंगापुत्र? मुझे उत्तर दीजिये गंगापुत्र। भीष्म बोले ऐसा इसलिये है कि तुम क्षत्रिय धर्म का पालन नहीं कर रहे। तुम्हे धर्म का साथ देना चाहिये जब कि तुम अधर्म के शिबिर में बैठे हो। दुर्योधन अधर्म का प्रतीक है कर्ण। उसकी विषैली छाया से निकलकर भाग जाओ वरना जीवन भर पराजय का मुंह देखोगे। क्या तुमने यह नहीं देखा भरद्वाज पुत्र द्रोण और यह गंगापुत्र भीष्म भी उस विराट युद्ध में अर्जुन से हार गये थे। क्यों? इसलिये कि हम सब लोग अधर्म का साथ दे रहे थे। कर्ण बोला तो फिर क्या आप दुर्योधन को छोड सकते हैं? भीष्म बोले यही तो मेरी विवशता है कि मैं सब कुछ जानते हुये भी दुर्योधन को नहीं छोड सकता। कर्ण बोला मुझे मेरे प्रश्न का उत्तर मिल गया गंगापुत्र। आप ही की भांति मैं भी दुर्योधन का त्याग नहीं कर सकता। वो मुझे आज भी हर विजय से अधिक प्रिय है। कर्ण ने कहा प्रणाम गंगापुत्र और यह कहकर कर्ण वहां से चला गया।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय फिर ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर कृष्ण हस्तिनापुरकी ओर चल दिये। सब धृतराष्ट्रपुत्र तथा भीष्म, द्रोण और कृप आदि उनकी अगवानीके लिये आये। उनके सिवा अनेकों नगरनिवासी भी कृष्णदर्शनकी लालसासे पैदल और तरह-तरहकी सवारियोंमें बैठकर चले। रास्तेमें ही भीष्म, द्रोण और सब धृतराष्ट्रपुत्रोंसे भगवान्‌का समागम हो गया और उनसे घिरकर उन्होंने हस्तिनापुरमें प्रवेश किया। श्रीकृष्णके सम्मानके लिये सारा नगर खूब सजाया गया था। राजमार्गमें तो अनेकों बहुमूल्य और दर्शनीय वस्तुएँ बड़े ढंगसे सजायी गयी थीं। श्रीकृष्णको देखनेकी उत्कण्ठाके कारण उस दिन कोई भी स्त्री, बूढ़ा या बालक घरमें नहीं टिका। सभी लोग राजमार्गमें आकर पृथ्वीपर झुक-झुककर श्रीकृष्णकी स्तुति कर रहे थे।

हस्तिनापुर के द्वार पर सभी छोटे-बड़े, श्रीकृष्ण का स्वागत करने आए थे, एक दुर्योधन और धृतराष्ट्र को छोड़कर। स्वागत करनेवालों में से कदाचित् किसी को भी स्मरण नहीं था कि श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के दूत बनकर आए हैं, उस युधिष्ठिर के, जिस के

पास इस समय कोई राज्य नहीं था और जो दुर्योधन से किसी भी प्रकार संधि कर अपने लिए राज्य प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा था। श्रीकृष्ण के पास कोई पद होता न होता, उन पर किसी राजा की छत्रछाया होती न होती, श्रीकृष्ण तो श्रीकृष्ण ही थे। राजा धृतराष्ट्र ने अपने पुत्रों तथा राज्य के पदाधिकारियों को भेज कर अपना उत्साह दिखाया था। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, विदुर आदि लोग श्रीकृष्ण के प्रति अपने सम्मान के कारण आए थे। प्रजा यह देखना चाहती थी कि जिस श्रीकृष्ण के विषय में उस ने इतनी कथाएँ सुनी थीं, वे श्रीकृष्ण कैसे थे। वीथियाँ, मार्ग, राजमार्ग सभी की सज्जा की गई थी। नगरद्वार से लेकर राजप्रासाद तक के मार्ग के दोनों ओर अपार जनसमूह खड़ा था, अटारियाँ अटी पड़ी थीं। जनसमूह सब ओर से निरंतर पुष्प-वर्षा कर रहा था। आज तक न तो किसी राजा के स्वागत में इतना उत्साह दिखाई पड़ा था, और न कोई शासक अपने किसी अतिथि के स्वागत के लिए प्रजा में ऐसा उत्साह भर सकता था। यह तो जन सामान्य का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम ही था।

कृष्णने इस सारी भीड़को पार करके महाराज धृतराष्ट्रके राजभवनमें प्रवेश किया। यह महल आस-पासके अनेकों भवनोंसे सुशोभित था। इसमें तीन ड्योढ़ियाँ थीं। उन्हें लाँघकर श्रीकृष्ण राजा धृतराष्ट्रके पास पहुँच गये। श्रीयदुनाथके पहुँचते ही कुरुराज धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण आदि सभी सभासदोंके सहित खड़े हो गये। उस समय कृपाचार्य, सोमदत्त और बाह्लीकने भी अपने आसनोंसे उठकर श्रीकृष्ण का सत्कार किया। श्रीकृष्णने राजा धृतराष्ट्र और पितामह भीष्मके पास जाकर वाणीद्वारा उनका सत्कार किया। इस प्रकार उनकी धर्मानुसार पूजा कर वे क्रमश: सभी राजाओंसे मिले और आयुके अनुसार उनका यथायोग्य सम्मान किया। श्रीकृष्णके लिये वहाँ एक सुन्दर सुवर्णका सिंहासन रक्खा हुआ था। राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञासे वे उसपर विराज गये। महाराज धृतराष्ट्रने भी उनका विधिवत् पूजन करके सत्कार किया।

रथों का यह सार्थ सीधे धृतराष्ट्र के भवन पर आकर रुका। श्रीकृष्ण भवन की तीन ड्योढ़िया पार कर धृतराष्ट्र के कक्ष में प्रविष्ट हुए। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और धृतराष्ट्र ने अपने आसन से उठकर उनका स्वागत किया। पुरोहितों को बुलाकर शास्त्रीय विधि से उनका सत्कार किया और कहा, आपने बहुत कृपा की श्रीकृष्ण कि आप स्वयं पधारे।

उसने उनसे एक-एक कर सबकी कुशलता संबंधी प्रश्न किए। अपना सौहार्द्र दिखाया और उनके इस प्रकार हस्तिनापुर आने के लिए कृतज्ञता प्रकट की।

कुरुसभा में देवकीनन्दन वासुदेव श्रीकृष्ण पधार रहे हैं। सभी ने उनका स्वागत किया। विदुर बोले, हस्तिनापुर में आपका स्वागत है वासुदेव। सबने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। धृतराष्ट्र बोले, हे शान्तिदूत वासुदेव कृष्ण मेरी ओर से यह स्नेह की भेंट स्वीकार करें। एक गाय स्वर्ण सींगों से मंडित भेंट की। कृष्ण बोले, हे महाराज आपने यह भेंट देकर मेरा मान बढ़ाया है परन्तु इसके बदले में देने के लिये मेरे पास शान्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं है। भीष्म बोले, पहले तनिक विश्राम कर लो वासुदेव ताकि यात्रा की थकान मिट जायें। कृष्ण बोले- जो आज्ञा पितामह। धृतराष्ट्र बोले, पुत्र दु:शासन वासुदेव को अपने भवन में ले जाओ। दुशासन बोला- जो आज्ञा पिताश्री। दुर्योधन बोले- नहीं पिताश्री पहले मैं उन्हें अपने भवन में ले जाऊंगा और भोजन के पश्चात फिर दु:शासन भले ही अपने भवन में ले जावे। कृष्ण बोले, नहीं युवराज। भोजन केवल दो स्थानों पर ही किया जाता है या तो अपने अतिथेय के निवासस्थान पर या फिर अपने मित्र के निवास स्थान पर। ना आप मेरे आतिथेय है और न ही मित्र। इसलिये मैं जाऊंगा।

श्रीकृष्ण ने भी व्यक्तिगत धरातल पर सबसे मिलने, उनका आदर-सत्कार करने और कुशल-मंगल की जिज्ञासा कर, विदा होने के लिए अनुमति माँगी। धृतराष्ट्र ने कुछ चकित होकर बोले, कहाँ जाएँगे आप? हमने आपके ठहरने की व्यवस्था, दु:शासन के प्रासाद में की है। वह मेरे अपने भवन से भी बड़ा और श्रेष्ठतर है।

श्रीकृष्ण बोले, कोई बात नहीं महाराज। आप जानते हैं कि मुझे सुविधाओं से अधिक सम्मान प्रिय है। आपके पुत्र दु:शासन की ख्याति ऐसी नहीं कि उसके भवन के अवरोध में कोई स्वयं को सुरक्षित मान सके। आपके पुत्रों का पूज्यपूजनधर्म से परिचय नहीं है। दु:शासन तड़पकर बोला, क्या किया है मैंने?

कृष्ण बोले, ईश्वर की उपासना से भी पहले, मनुष्य को नारीत्व का सम्मान सीखना होता है, तुमने अभी वह भी नहीं सीखा। जो लोग अपने भाइयों और माता को प्रासाद में बंदी कर उन्हें जीवित जला देते हैं, उनके प्रासादों में अतिथि होना तो किसी का दुर्भाग्य ही हो सकता है, सम्मान नहीं दु:शासन। अधर्मी के लिए न कोई नैतिकता होती है, न धर्म, न नियम और न सिद्धान्त। धृतराष्ट्र ने कुछ उतावली में कहा, पर श्रीकृष्ण। मैंने तो अभी आपको कोई उपहार भी नहीं दिया है।

कृष्ण मुस्कराए और बोले, कोई बात नहीं महाराज। आज तो मैं केवल आपके दर्शन करने आया हूं। इसलिए मैं महात्मा विदुर के यहाँ जाऊंगा वहाँ कुन्ती बुआ भी है आज्ञा दें महाराज। कल प्रात: आपकी राजसभा में आऊँगा और स्वयं आप से एक उपहार की याचना करूंगा। आशा है कि आपकी उदारता मुझे निराश नहीं करेगी। आईये विदुरजी यह कहकर कृष्ण भवन से बाहर निकल आए और सारथी दारूक से बोले महामंत्री विदुर के आवास पर चलो दारुक।

इसके पश्चात् कुरुराजसे आज्ञा लेकर वे विदुरके भव्य भवनमें आये। विदुरने सब प्रकारकी माङ्गलिक वस्तुएँ लेकर उनकी अगवानी की और अपने घर लाकर पूजन किया। फिर वे कहने लगे- कमलनयन। आज आपके दर्शन करके मुझे जैसा आनन्द हो रहा है, वह मैं आपसे किस प्रकार कहूँ; आप तो समस्त देहधारियोंके अन्तरात्मा ही हैं। अतिथिसत्कार हो जानेपर धर्मज्ञ विदुरने भगवान्‌से पाण्डवोंकी कुशल पूछी। विदुर पाण्डवोंके प्रेमी तथा धर्म और अर्थमें तत्पर रहनेवाले थे, क्रोध तो उन्हें स्पर्श भी नहीं करता था। अत: श्रीकृष्णने, पाण्डवलोग जो कुछ करना चाहते थे, वे सब बातें उन्हें विस्तारसे सुना दीं।

श्रीकृष्ण को अपने द्वार पर आया देख विदुर को आश्चर्य हुआ, आप यहाँ श्रीकृष्ण? हाँ महात्मन्। मैं हस्तिनापुर में और किसके द्वार पर जा सकता हूं। कृष्ण बोले, विदुर के मन में सहस्त्रों बातें घूम गई। क्या कह रहे थे श्रीकृष्ण। ईश्वर सात्विक मनुष्य के द्वार पर ही जाता है। ईश्वर निर्मल मन में ही प्रकट होता है क्या विदुर की साधना फलित हुई है?

श्रीकृष्ण जानते थे कि विदुर का आवास एक प्रकार के आश्रम का ही रूप है। उनका व्यक्तित्व भी कुछ वैसा ही था। वे महामंत्री तो अब भी थे; किंतु अब न उनके पास कोई सत्ता थी और न धन। उनका आवास गंगातट पर एक खुली भूमि में था, किंतु वह प्रासाद नहीं था। उनकी अपनी कोई संतान नहीं थी किंतु उनके इस आश्रम में पलनेवाले अनेक बालक-बालिकाओं के लिए वे और उनकी पत्नी माता-पिता ही थे। तब तक पारंसवी भी आ गई। कृष्ण ने उन्हें अपनी बुआ के ही समान प्रणाम किया। पारंसवी ने उनके प्रणाम को उसी गरिमा से स्वीकार कर आशीर्वाद दिया, किंतु उनकी आँखों में आए कृतज्ञता के अश्रु किसी से भी छुप नहीं पाए। उन्होंने श्रीकृष्ण के लिए जल, अर्घ्य और मधुपर्क प्रस्तुत किया। सत्कार कर पारंसवी भीतर चली गईं।

विदुर ने पूछा, श्रीकृष्ण। क्या आप सचमुच ही संधि का प्रस्ताव लेकर कल सभा में जाएंगे? कृष्ण मुस्कराए और बोले, क्यों? क्या संधि का प्रस्ताव शोभनीय नहीं है? विदुर बोले, नहीं। संधि को अशोभनीय कैसे कहा जा सकता है वासुदेव। किंतु आप नहीं जानते कि कौरवों की राजसभा में आपके विषय में क्या चर्चा हुई है। कृष्ण मुस्करा रहे और बोले, क्या दुर्योधन ने मुझे बंदी करने की इच्छा प्रकट की है? आश्चर्य से विदुर बोले, क्या आप यह जानकर भी फिर भी आप हस्तिनापुर में आए हैं? कृष्ण ने विदुर की ओर देखा और बोले, मैं जानता नहीं हूँ। मेरा अनुमान है। दुर्योधन मुझसे नारायणी सेना ले चुका है। बलराम भैया प्रत्यक्ष रूप से उसके पक्ष में हैं। यादवों में अधिकांश लोग मध्यस्थ हैं और कुछ

अन्य लोग दुर्योधन के पक्ष में भी हैं। ऐसे में अब उसे मुझसे कुछ भी और मिलने की कोई संभावना नहीं है, अत: यह स्पष्ट रूप से अपनी शत्रुता प्रकट कर सकता है। पर यहाँ क्या चर्चा हुई?

विदुर बोले, आपके आने की सूचना पर धृतराष्ट्र ने बहुत प्रसन्नता प्रकट की और बताया कि वे कितनी बहुमूल्य वस्तुएँ आपको भेंट करने की सोच रहे हैं। मैंने उनसे पूछा कि क्या वे समझते हैं कि इतनी सारी बहुमूल्य वस्तुएँ देकर वे श्रीकृष्ण को पांडवों से विलग कर लेंगे? कृष्ण बोले, क्या कहा उन्होंने?

विदुर बोले, वही। जो ऐसे सारे अवसरों पर वे कहते है। उन्होंने बहुत विस्तार से मुझे समझाया कि उनके मन में आपके लिए कितना सम्मान और कितनी श्रद्धा है। वे पांडवों से कितना प्रेम करते हैं। उन्होंने स्नेह, प्रेम, ममता, मैत्री, शांति और त्याग को लेकर ऐसी-ऐसी आदर्शवादी बातें कीं कि मुझे लगने लगा कि मैं किसी अत्यंत महान आत्मा के सम्मुख बैठा हूं और उनकी स्वच्छता और सात्विकता के सम्मुख अत्यंत मलिन और तुच्छ व्यक्ति हूं।

कृष्ण बोले, यह उनका सबसे बड़ा अस्त्र है। वे स्वयं जानते हैं कि वे असत्य बोल रहे हैं और फिर भी लोग उनके कथन को सत्य मान रहे हैं तो मन ही मन कितना हँसते होंगे वे?

विदुर ने बताया कि, तब दुर्योधन बोला कि यह सब करने की कोई आवश्यकता नहीं है। कृष्ण को किसी प्रकार का कोई उपहार देना व्यर्थ है। उसे प्रसन्न कर हमें क्या लेना है? दुर्योधन ने स्पष्ट रूप से कहा कि वह कृष्ण को बंदी बना लेगा और कारागार में डाल देगा। पांडवों का सबसे बड़ा सहारा कृष्ण ही है। उसे बंदी कर लिया तो पांडवों का बल, साहस और भविष्य सब कुछ ही बंदी हो जाएगा। युद्ध का अवसर ही नहीं आएगा। कृष्ण मेरा बंदी होगा तो सारे यादव भी मेरे अधीन होंगे और तब तीनों लोकों में ऐसी कौन-सी शक्ति है जो मेरे सामने खड़ी हो सके। तब पितृव्य भीष्म उठे। उन्होंने कहा कि मंदबुद्धि दुर्योधन अब काल के वश हो गया है। वह अपने हितैषियों के समझाने पर भी अनर्थ करने पर ही तुला हुआ है। धृतराष्ट्र भी सद्विचारों को न मानकर कुमार्ग पर चलनेवाले इस पापात्मा का अनुसरण कर रहे हैं। दुर्योधन ने धर्म का सर्वथा त्याग कर दिया है। वे उस पापी और क्रूर दुर्योधन की बातें और नहीं सुन सकते। यह कहकर वे सभा से उठकर चले गए। यह सब जानकर भी आप सभा में जाएँगे?

कृष्ण बोले, महात्मा विदुर। मैं हस्तिनापुर में आया हूँ तो कौरवों की सभा में भी जाऊंगा ही।

विदुर के स्वर में कातरता थी और बोले, क्या करने जाएंगे? संकट में फँसने? दुर्योधन ने स्पष्ट रूप से मना कर दिया है कि वह इस जीवन में तो पांडवों के साथ मिलकर अपनी संपत्ति का भोग नहीं कर सकता। संधि की कोई संभावना नहीं है। अब जानने को क्या शेष रह गया है गोविंद।

मेरे जानने को कुछ शेष नहीं है। मैं तो सदा से ही यह सब जानता रहा हूं। किंतु कुछ और लोग हैं, जिन्हें अभी और बहुत कुछ जानना है। मैं कल प्रात: सभा में जाऊँगा ताकि वे लोग जानने योग्य जान सकें।

विदुरने बड़े उत्साहसे श्रीकृष्णका पूजन किया। फिर उन्होंने उन्हें अनेक प्रकारके उत्तम और गुणयुक्त भोज्य और पेय पदार्थ दिये। उन पदार्थोंसे श्रीकृष्णने पहले ब्राह्मणोंको तृप्त किया और फिर अपने अनुयायियों सहित बैठकर स्वयं भोजन किया। जब भोजनके पश्चात भगवान विश्राम करने लगे तो रात्रिके समय विदुरने उनसे कहा- केशव। आप यहाँ आये, यह विचार आपने ठीक नहीं किया। मन्दमति दुर्योधन धर्म और अर्थ दोनोंहीको छोड़ बैठा है। वह क्रोधी और गुरुजनोंकी आज्ञाका उल्लंघन करता है; धर्मशास्त्रको तो वह कुछ समझता ही नहीं, अपनी ही हठ रखता है। उसे किसी सन्मार्गमें ले जाना असम्भव ही है। वह विषयोंका कीड़ा, अपनेको बड़ा बुद्धिमान् माननेवाला, मित्रोंसे द्रोह करनेवाला, सभीको शमाकी

दृष्टिसे देखनेवाला, कृतघ्न और बुद्धिहीन है। इनके सिवा उसमें और भी अनेकों दोष हैं। आप उससे हितकी बात कहेंगे, तो भी वह क्रोधवश कुछ सुनेगा नहीं। भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा और जयद्रथके कारण उसे इस राज्यको स्वयं ही हड़प जानेका पूरा भरोसा है। इसलिये उसे सन्धि करनेका विचार ही नहीं होता। उसे तो पूरा विश्वास है कि अकेला कर्ण ही उसके सारे शत्रुओंको जीत लेगा। इसलिये वह सन्धि नहीं करेगा। आप तो सन्धिका प्रयत्न कर रहे हैं; किंतु धृतराष्ट्रके पुत्रोंने तो यह प्रतिज्ञा कर ली है कि पाण्डवोंको उनका भाग कभी नहीं देंगे। जब उनका ऐसा विचार है तो उनसे कुछ भी कहना व्यर्थ ही होगा। मधुसूदन। जहाँ अच्छी और बुरी दोनों तरहकी बातको एक ही तरह सुना जाय, वहाँ बुद्धिमान् पुरुषको कुछ नहीं कहना चाहिये। वहाँ कोई बात कहना तो बहरोंके आगे राग अलापनेके समान व्यर्थ ही है।

श्रीकृष्ण। पहले जिन राजाओंने आपके साथ बैर ठाना था, उन सबने अब आपके भयसे दुर्योधनका आश्रय लिया है। वे सब योद्धा दुर्योधनके साथ मेल करके अपने प्राणतक निछावर करके पाण्डवोंसे लड़नेको तैयार हैं। अत: आप उन सबके बीचमें जायँ- यह बात मुझे अच्छी नहीं लगती। यद्यपि देवतालोग भी आपके सामने नहीं टिक सकते और मैं आपके प्रभाव, बल और बुद्धिको अच्छी तरह जानता हूँ, तथापि आपके प्रति प्रेम और सौहार्द्रका भाव होनेके कारण मैं ऐसा कह रहा हूँ। कमलनयन। आपका दर्शन करके आज मुझे जैसी प्रसन्नता हो रही है, वह मैं आपसे क्या कहूँ? आप तो सभी देहधारियों के अन्तरात्मा हैं, आपसे छिपा ही क्या है?

श्रीकृष्णने कहा- विदुर। एक महान बुद्धिमान्‌को जैसी बात कहनी चाहिये और मुझ-जैसे प्रेम-पात्रसे आपको जो कुछ कहना चाहिये तथा आपके मुखसे जैसा धर्म और अर्थसे युक्त सत्य वचन निकलना चाहिये, वैसी ही बात आपने माता-पिताके समान स्नेहवश कही है। मैं दुर्योधनकी दुष्टता और क्षत्रिय वीरोंके वैरभाव आदि सब बातोंको जानकर ही आज कौरवोंके पास आया हूँ। मनुष्यका कर्त्तव्य है कि वह धर्मत: प्राप्त कार्यको करे। यथाशक्ति प्रयत्न करनेपर भी यदि वह उसे पूरा न कर सके, तो भी उसे उसका पुण्य तो अवश्य ही मिल जायगा- इसमें मुझे संदेह नहीं हैं। दुर्योधन और उसके मन्त्रियोंको भी मेरी शुभ, हितकारी और धर्म एवं अर्थके अनुकूल बात माननी ही चाहिये। मैं तो निष्कपटभावसे कौरव, पाण्डव और पृथ्वीतलके समस्त क्षत्रियोंके हितका ही प्रयत्न करूँगा। इस प्रकार हितका प्रयत्न करनेपर भी यदि दुर्योधन मेरी बातमें शमा करे, तो भी मेरा चित्त तो प्रसन्न ही होगा और मैं अपने कर्तव्यसे उऋण भी हो जाऊँगा। श्रीकृष्ण सन्धि करा सकते थे, तो भी उन्होंने क्रोधके आवेशमें आये हुए कौरव-पाण्डवोंको रोका नहीं- यह बात मूढ़ अधर्मी न कहें, इसलिये मैं यहाँ सन्धि करानेके लिये आया हूँ। दुर्योधनने यदि मेरी धर्म और अर्थके अनुकूल हितकी बात सुनकर भी उसपर ध्यान न दिया तो वह अपने कियेका फल भोगेगा। वह सारी रात महात्मा विदुर और श्रीकृष्णके इसी प्रकार बात करते करते बीत गयी।

इसके बाद कृष्ण अपनी बुआ कुन्तीके पास मिलने गये। श्रीकृष्णको आये देख वह उनके गलेसे चिपट गयी और अपने पुत्रोंको याद करके रोने लगी। आज पाण्डवोंके सहचर श्रीकृष्णको भी उसने बहुत दिनोंबाद देखा था। इसलिये उन्हें देखकर उसकी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी। कुंती, अपने कक्ष के बाहरवाले प्रकोष्ठ में ही बैठी थी। कृष्णे ने आगे बढ़कर चरण-स्पर्श किए। चिरंजीवी हो पुत्र। कुंती ने कृष्ण के सिर पर हाथ रखा, महाराज से मिल कर आ रहे हो? कृष्ण बोले, हाँ बुआ। कुन्ती बोली, संधि कर आए अथवा युद्ध होगा? कृष्ण बोले, संभावना तो युद्ध की ही है किंतु अभी संधि का प्रयत्न होगा। उसके विषय में निश्चित रूप से तो कल ही बता पाऊँगा। आप कैसी हैं? कुंती ने कहा, जैसी हो सकती हूँ, वैसी ही हूँ पुत्र। जानती हूँ कि अपने भाइयों की तुम पूरी देखभाल कर रहे हो। जानती हूँ कि एक सीमा के पश्चात् कोई माता-पिता अपनी संतान के लिए कुछ नहीं कर सकते, फिर भी अपने पुत्रों की चिंता करती हूँ। कृष्ण मुस्कराए और

बोले, क्यों चिंता करती हैं बुआ? आपके पुत्र महावीर हैं। वे सब प्रकार से समर्थ हैं। वे धर्म की छत्रछाया में हैं। फिर भी उनकी चिंता करती हैं? कुंती ने कहा चिंता तो मैं इसलिए करती हूँ, क्योंकि मैं उनकी माँ हूँ। न मैं उनकी असहायता और निर्धनता भूल पाती हूँ और न अपनी पुत्रवधू का अपमान।

जब अतिथिसत्कार हो जानेपर श्रीश्यामसुन्दर बैठ गये तो कुन्तीने गद्‌गद्‌कण्ठ होकर कहा, माधव। मेरे पुत्र बचपनसे ही गुरुजनोंकी सेवा करनेवाले थे। उनका आपसमें बड़ा स्नेह था, दूसरे लोग उनका आदर करते थे और वे भी सबके प्रति समानभाव रखते थे। किंतु इन कौरवोंने कपटपूर्वक उन्हें राज्यच्युत कर दिया और अनेकों मनुष्योंके बीचमें रहनेयोग्य होनेपर भी वे निर्जन वनमें भटकते रहे। वे हर्षशोकको वशमें कर चुके थे, ब्राह्मणोंकी सेवा करते थे और सर्वदा सत्यभाषण करते थे। इसलिये उन्होंने उसी समय राज्य और भोगोंसे मुँह मोड़ लिया और मुझे रोती छोड़कर वनको चल दिये। भैया। जब वे वनको गये थे, मेरे हृदयको तो उसी समय अपने साथ ले गये थे। मैं तो अब बिल्कुल हृदयहीना हूँ। जो बड़ा ही लज्जावान्, सत्यका भरोसा रखनेवाला, जितेन्द्रिय, प्राणियोंपर दया करनेवाला, शील और सदाचारसे सम्पन्न, धर्मज्ञ, सर्वगुणसम्पन्न और तीनों लोकोंका राजा बननेयोग्य है, समस्त कुरुवंशियोंमें श्रेष्ठ वह अजातशत्रु युधिष्ठिर इस समय कैसा है? जिसमें दस हजार हाथियोंका बल है, जो वायुके समान वेगवान् है, अपने भाइयोंका नित्य प्रिय करनेके कारण जो उन्हें बहुत प्यारा है, जिसने भाइयोंके सहित कीचक तथा क्रोधवश, हिडिम्ब और बक आदि असुरोंको मार डाला था, अत: जो पराक्रममें इन्द्र और क्रोधमें साक्षात् शंकरके समान है, उस महाबली भीमका इस समय क्या हाल है? जो तेजमें सूर्य, मनके संयममें महर्षि, क्षमामें पृथ्वी और पराक्रममें इन्द्रके समान है तथा समस्त प्राणियोंको जीतनेवाला और स्वयं किसीके वश में आनेवाला नहीं है, वह तुम्हारा भाई और सखा अर्जुन इस समय कैसे है? सहदेव भी बड़ा ही दयालु, लज्जालु, अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञाता, मृदुल स्वभाव, धर्मज्ञ और मुझे अत्यन्त प्रिय है। वह धर्म और अर्थमें कुशल तथा अपने भाइयोंकी सेवा करनेमें तत्पर रहता है। उसके शुभ आचरणकी सब भाई बड़ी प्रशंसा किया करते हैं। इस समय उसकी क्या दशा है? नकुल भी बड़ा सुकुमार, शूरवीर और दर्शनीय युवा है। अपने भाइयोंका तो वह बाह्य प्राण ही है। वह अनेक प्रकारके युद्ध करनेमें कुशल है तथा बड़ा ही धनुर्धर और पराक्रमी है। कृष्ण। इस समय वह कुशलसे है न? पुत्रवधू द्रौपदी तो सभी गुणोंसे सम्पन्न, परम रूपवती और अच्छे कुलकी बेटी है। मुझे वह अपने सब पुत्रोंसे भी अधिक प्रिय है। वह सत्यवादिनी अपने प्यारे पुत्रोंको भी छोड़कर वनवासी पतियोंकी सेवा कर रही है। इस समय उसका क्या हाल है?

कुन्ती कृष्ण को देखकर फफक-फफक कर रो पड़ी। कुन्ती बोली, ये आंसू बरसों से रूके हुये थे कृष्ण। कृष्ण बोले- अच्छा किया बुआ कि पुराने आंसू बहाकर अपनी आंखे रिक्त कर ली क्योंकि अब हम आंसुओं की सीमा में प्रवेश करनेवाले है। कुन्ती बोली, यह तुमने क्या कहा। कृष्ण बोले, आप चिंता न करें बुआ। आपके पाँचो पुत्र अवश्य सुरक्षित रहेंगे। मुझे चिंता है कि अपनी उदारता और क्षमाप्राण बुद्धि के कारण युधिष्ठिर कहीं महाराज धृतराष्ट्र का संधि प्रस्ताव मान ही न ले। कृष्ण बोले, संधि प्रस्ताव मानने में आपको क्या आपत्ति है बुआ? उससे अट्ठारह अक्षौहिणी सेना नष्ट होने से बच जाएगी। उनके परिवारों का शोक टल जाएगा। क्या आपको यह अच्छा नहीं लगेगा?

कुन्ती बोली, इधर जो भी है वो भी तो मेरे पुत्र ही हैं देवकीनन्दन। कृष्ण बोले, क्या आप दुर्योधन और दु:शासन जैसों को लाक्षागृह की दुर्घटना, द्यूतक्रीडा, द्रौपदी वस्त्राहरण, पांडवों का वनवास और अज्ञातवास के लिये क्षमा कर पायेंगी बुआ? प्रश्न यह नहीं है कि कौन पुत्र है और कौन पुत्र नहीं है। प्रश्न है धर्म और अधर्म का बुआ। मैं पाण्डवों के पक्ष में इसलिये नहीं हूँ कि वो मेरी कुन्ती बुवा के पुत्र हैं। मैं उनके पक्ष में केवल इसलिये हूं कि आज धर्म उनके पक्ष में है। मेरी

निष्ठा धर्म के प्रति है। मैं धर्म की रक्षा कर रहा हूं।

कुन्ती बोली, कृष्ण। मेरी दृष्टिमें कौरव और पाण्डवोंमें कभी कोई भेदभाव नहीं रहा। उसी सत्यके प्रभावसे अब मैं शत्रुओंका नाश होनेपर पाण्डवोंके सहित तुमको राज्यसुख भोगते देखूँगी। परंतप। अर्जुनका जन्म होनेपर मैं प्रसव में थी, उस रात्रिमें मुझे जो आकाशवाणी हुई थी कि तेरा यह पुत्र सारी पृथ्वीको जीतेगा, इसका यश स्वर्गतक फैल जायगा, यह महायुद्धमें कौरवोंको मारकर उनका राज्य प्राप्त करेगा और फिर अपने भाइयोंके सहित तीन अश्वमेध यज्ञ करेगा उसे मैं दोष नहीं देती; मैं तो सबसे महान नारायणस्वरूप धर्मको ही नमस्कार करती हूं। वही सम्पूर्ण जगत्का विधाता है और वही सम्पूर्ण प्रजाको धारण करनेवाला है। यदि धर्म सच्चा है तो तुम भी वह सब काम पूरा कर लोगे, जो उस समय देववाणीने कहा था।

कुन्ती बोली, पाप, अधर्म और अन्याय की रक्षा के लिए शांति का प्रस्ताव एक सुंदर तर्क है। जिन्हें संधि इतनी ही प्रिय है, उनसे कहो कि वे मानवता के इस विनाश को बचाने के लिए थोड़ा त्याग करें। अपने पुत्र दु:शासन को उसके अपराध का दंड भोगने के लिए भीम को सौंप दें। यह भी न कर सकें तो दुर्योधन को कोई पाँच ग्राम देकर, सत्ता, पूर्व-युवराज युधिष्ठिर को सौंप दें। शांति की रक्षा के लिए सारा मूल्य सदा पांडव ही क्यों चुकाएँ? इस संसार में शांति बनाए रखने के लिए धृतराष्ट्र का सिंहासन पर बैठे रहना और मेरे पुत्रों का वनों में भटकते रहना क्यों आवश्यक है। शांति के लिए द्रौपदी ही क्यों अपमानित होती है, दुर्योधन क्यों थोड़ा-सा कष्ट नहीं सहता। नहीं केशव। यह धर्म नहीं है। जिस संधि से अधर्म सत्तासीन होता है, मैं उसकी समर्थक नहीं हूँ। धर्मक्षेत्र को पापियों के रक्त से धुलना ही होगा, तभी वह धर्मक्षेत्र हो पाएगा। शांति के उपासकों से कहो कि यदि सैनिकों को मृत्यु से बचाना है तो वे दुर्योधन को कहें कि वह भी जरासंध के समान भीम से अकेले लड़कर इस युद्ध का निर्णय कर ले। जो विजयी हो, वह राजा हो और अपराधियों को दंडित करने का उसे अधिकार हो। कृष्ण बोले, ठीक कहती हैं बुआ। पापी को दंडित होना ही चाहिए, किंतु दंडित केवल पापी ही नहीं होगा, पाप में उसका सहायक, उसका रक्षक और उस पाप के फल का भोक्ता भी होगा। कृष्ण बोले, न्याय सूची देखकर तो नहीं होता बुआ। इसलिये बुआ मुझे आप यह बताइये लौटकर मैं आपके पुत्रोंको आपकी ओर से क्या सन्देश दूँ।

कुन्ती बोली, माधव। तुम धर्मप्राण युधिष्ठिरसे कहना कि तुम्हारे धर्मकी बड़ी हानि हो रही; बेटा। तुम उसे इस प्रकार व्यर्थ बरबाद मत होने दो। कृष्ण। जो स्त्री दूसरोंकी आश्रिता होकर जीवन निर्वाह करे, उसे तो धिक्कार ही है। दीनतासे प्राप्त हुई जीविकाकी अपेक्षा तो मर जाना ही अच्छा है। तुम अर्जुन और नित्य उद्योगशील भीमसे कहना कि क्षत्राणियाँ जिस कामके लिये पुत्र उत्पन्न करती हैं, उसे करनेका समय आ गया है। ऐसा अवसर आनेपर भी यदि तुम युद्ध नहीं करोगे तो इसे व्यर्थ ही खो दोगे। तुम सब लोकोंमें सम्मानित हो; ऐसे होकर भी यदि तुमने कोई निन्दनीय कर्म कर डाला तो मैं फिर कभी तुम्हारा मुँह नहीं देखूँगी। अरे। समय आ पड़े तो अपने प्राणोंका भी लोभ मत करना। माद्रीके पुत्र नकुल-सहदेव सर्वदा क्षात्रधर्मपर डटे रहनेवाले हैं। उनसे कहना कि प्राणोंकी बाजी लगाकर भी अपने पराक्रमसे प्राप्त हुए भोगोंकी ही इच्छा करना; क्योंकि जो मनुष्य क्षात्रधर्मके अनुसार अपना जीवन व्यतीत करता है, उसके मनको पराक्रमसे प्राप्त किये हुए भोग ही सुख पहुँचा सकते हैं। शत्रुओंने राज्य छीन लिया- यह कोई दु:खकी बात नहीं है। जूएमें हारना भी दु:खका कारण नहीं है। मेरे पुत्रोंको वनमें रहना पड़ा- इसका भी मुझे दु:ख नहीं है। किंतु इससे बढ़कर दु:खकी और कौन बात हो सकती है कि मेरी युवती पुत्रवधूको, जो केवल एक ही वस्त्र पहने हुए थी, घसीटकर सभामें लाया गया और उसे उन पापियोंके कठोर वचन सुनने पड़े। हाय। उस समय वह रजस्वला थी। किंतु अपने वीर पतियोंकी उपस्थितिमें भी वह क्षत्राणी अनाथा-सी हो गयी। हे पुरुषोत्तम। मैं पुत्रवती हूं, इसके सिवा मुझे तुम्हारा, बलरामका और प्रद्युम्नका भी पूरा-पूरा

आश्रय है। फिर भी मैं ऐसे दु:ख भोग रही हूँ। हाय। दुर्धर्ष भीम और युद्धसे पीठ न फेरनेवाले अर्जुनके रहते मेरी यह दशा।

कुन्ती पुत्रोंके दु:खसे अत्यंत व्याकुल थी। उसकी ऐसी बातें सुनकर कृष्ण बोले- बुआजी। तुम्हारे समान सौभाग्यवती और कौन स्त्री होगी। तुम राजा शूरसेनकी पुत्री हो और महाराज अजमीढ़के वंशमें विवाही गयी हो। तुम सब प्रकारके शुभगुणोंसे सम्पन्न हो और अपने पतिदेवसे भी तुमने बड़ा सम्मान पाया है। तुम वीरमाता और वीरपत्नी हो। तुम-जैसी महिलाएँ ही सब प्रकारके सुख-दु:खोंको सह सकती हैं। पाण्डवलोग निद्रा-तन्द्रा, क्रोध-हर्ष, क्षुधा-पिपासा, शीत-घाम- इन सबको जीतकर वीरोचित आनन्दका भोग करते हैं। उन्होंने और द्रौपदीने आपको प्रणाम कहलाया है और अपनी कुशल कहकर तुम्हारा कुशल-समाचार पूछा है। तुम शीघ्र ही पाण्डवोंको नीरोग और सफलमनोरथ देखोगी। उनके सारे शत्रु मारे जायेंगे और वे सम्पूर्ण लोकोंका आधिपत्य पाकर राजलक्ष्मीसे सुशोभित होंगे।

कृष्ण बोले, तो क्या आप मेरे साथ अपने पुत्रों के पास चलना नहीं चाहोगी? कुन्ती बोली, नहीं वत्स। मेरी कर्मभूमि तो हस्तिनापुर है। मैं तातश्री भीष्म, ज्येष्ठश्री धृतराष्ट्र, दीदी गान्धारी को तो नहीं छोड़ सकती। मुझे देखकर इन सबको यह याद तो रहता होगा कि इन लोगों ने मेरे पुत्रों के साथ कैसे-कैसे अन्याय किये हैं? मैं इस राजपरिवार की कुलवधू ही नहीं हूँ वत्स मैं इन सबका अन्तिम विवेक भी हूँ। हे शान्तिदूत मुझे केवल इतना बता दो कि यह युद्ध होगा या नहीं होगा? कृष्ण बोले, बुआ मैं तो केवल शान्तिदूत हूँ। इसलिये युद्ध का निर्णय तो मैं नहीं ले सकता। यह निर्णय तो हस्तिनापुर नरेश के हाथ में है। यदि उन्होंने न्याय करने का साहस किया तो युद्ध नहीं होगा, कदापि नहीं। परन्तु यदि फिर उन्होंने अज्ञान ही करना चाहा तो युद्ध अवश्य होगा। सच पूछिये तो बुआ यह निर्णय उनके हाथ में भी नहीं है दुर्योधन के हाथ में है। कुन्ती बोली, तब तो यह युद्ध अवश्य होगा देवकीनन्दन।

श्रीकृष्णके इस प्रकार ढाढ़स बँधानेपर कुन्तीने अपने अज्ञानजनित मोहको दूर करके कहा- कृष्ण। पाण्डवोंके लिये जो-जो हितकी बात हो और उसे जिस-जिस प्रकार तुम करना चाहो उसी-उसी प्रकार करना, जिससे कि धर्मका लोप न हो और कपटका आश्रय न लेना पड़े। मैं तुम्हारे सत्य और कुलके प्रभावको अच्छी तरह जानती हूं। अपने मित्रोंका काम करनेमें तुम जिस बुद्धि और पराक्रमसे काम करते हो। हमारे कुलमें तुम मूर्तिमान् धर्म, सत्य और तप ही हो। तुम सबकी रक्षा करनेवाले हो, तुम्हीं परब्रह्म हो और तुममें ही यह सारा प्रपञ्च अधिष्ठित है। तुम जैसा कह रहे हो, तुम्हारे द्वारा वह बात उसी प्रकार सत्य होकर रहेगी। इसके पश्चात् कृष्ण उठ खड़े हुए और बोले, चलूँ और हस्तिनापुर के युवराज दुर्योधन से भेंट कर आऊँ। क्योंकि दुर्योधन मुझे न हस्तिनापुर के नगरद्वार पर मिला न ही महाराज की राजसभा में।

कुन्ती बोली, कृष्ण तुम तो निर्बंध, स्वच्छन्द पवन के समान हो। कोई तुम्हें कहीं जाने से कैसे रोक सकता है। इसके पश्चात महाबाहु श्रीकृष्ण कुन्तीसे आज्ञा ले अपनी बुआ की प्रदक्षिणा कर दुर्योधन के महल की ओर चले।

दुर्योधन के कक्ष में शकुनि दुर्योधन से कहता है पुत्र धैर्य से काम लो केवल यह देखना है कि पांडवों ने उस मायावी कृष्ण को क्या प्रस्ताव देकर भेजा है? दुर्योधन बोले, वो हमारा कुछ नहीं बिगाड सकता। इतने में कृष्ण वहां दुर्योधन के कक्ष में आ जाता है, दुर्योधन बोला आइये वासुदेव। शकुनि बोले आइये विराजिये।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय दुर्योधन का प्रासाद पर्वत के समान ऊँचा और विराट था। उसको सुंदर और असाधारण बनाने के लिए बहुत सारा धन और स्वर्ण व्यय किया गया था, किंतु उसमें कहीं भी भव्यता और पवित्रता का आभास नहीं होता था। धन का अहंकार और प्रदर्शन अवश्य झलकता था। कृष्ण मन ही मन मुस्कराए, वैभव का आतंक इसे ही कहते हैं। परिचारिकाएँ कृष्ण को सीधे दुर्योधन के कक्ष में ले गईं। प्रासाद में अनेक लोग दिखाई पड़ रहे थे, जैसे सारा कुरुकुल

वहाँ एकत्रित हो; किंतु दुर्योधन के कक्ष में केवल दु:शासन, कर्ण और शकुनि ही थे। उन्होंने कृष्ण का समारोहपूर्वक स्वागत किया। जल, मधुपर्क और अर्घ्य निवेदित किया।

श्रीकृष्णके पहुँचते ही दुर्योधन अपने मन्त्रियोंसहित आसनसे खड़ा हो गया। भगवान् दुर्योधन और उसके मन्त्रियोंसे मिलकर फिर वहाँ एकत्रित हुए सब राजाओंसे उनकी आयुके अनुसार मिले। स्वागत-सत्कारके अनन्तर राजा दुर्योधनने भोजनके लिये प्रार्थना की, किंतु श्रीकृष्णने उसे स्वीकार नहीं किया। तब दुर्योधनने श्रीकृष्णसे आरम्भमें मधुर किंतु परिणाममें शठतासे भरे हुए शब्दोंमें कहा, जनार्दन। हम आपको जो अच्छे-अच्छे खाद्य और पेय पदार्थ तथा वस्त्र और शय्याएँ भेंट कर रहे हैं, उन्हें आप स्वीकार क्यों नहीं करते? आपने तो दोनों ही पक्षोंको सहायता दी है और आप हित भी दोनोंहीका करना चाहते हैं। इसके सिवा आप महाराज धृतराष्ट्रके सम्बन्धी और प्रिय भी हैं। धर्म और अर्थका रहस्य भी आप अच्छी तरह जानते ही हैं। अत: इसका क्या कारण है, यह मैं जानना चाहता हूँ।

दुर्योधन बोला- मुझे सदैव इस बात का दु:ख रहेगा वासुदेव आपने भोजन के लिये मेरे प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। कृष्ण बोले- सदैव बहुत फैला हुआ शब्द है युवराज और फिर मैं तो एक शान्तिदूत हूँ। जबतक सन्धि न हो जाये तब तक मैं आपकी कृपायें कैसे स्वीकार कर सकता हूं। इसलिये हे ज्येष्ठ गान्धारी पुत्र आइये पहिले हम एकमत तो हो लें। शकुनि बोले- हे केशव आपकी यह अभिवृत्ति तो मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आ रही। वाद विवाद की सफलता या असफलता का अतिथि और आतिथेय की मर्यादा से भला क्या सम्बन्ध है। कर्ण बोला- आपसे तो हमारी कोई लड़ाई है नहीं। इसलिये यह बात हमारी समझ में नहीं आ रही कि आप जैसे मर्यादित पुरुष अपने आतिथेय का अपमान कैसे कर सकते हैं। दुर्योधनके इस प्रकार पूछनेपर महामना मधुसूदन बोले- राजन्। ऐसा नियम है कि दूत अपना उद्देश्य पूर्ण होनेपर ही भोजनादि ग्रहण करते हैं। अत: जब मेरा काम पूरा हो जाय, तब तुम भी मेरा और मेरे मन्त्रियोंका सत्कार करना।

हे अंगराज, मैं काम, क्रोध, द्वेष, स्वार्थ, कपट अथवा लोभमें पड़कर धर्मको किसी प्रकार नहीं छोड़ सकता। भोजन या तो प्रेमवश किया जाता है या आपत्तिमें पड़कर किया जाता है। कोई किसी के साथ तब भोजन करता है जब आपस में प्रेम हो या फिर भूखा हो। और मैं भ्राता दुर्योधन का प्रिय भी नहीं हूँ और भूखा भी नहीं हूँ। सो तुम्हारा तो मेरे प्रति प्रेम नहीं है और मैं किसी आपत्तिमें ग्रस्त नहीं हूँ। देखो, पाण्डव तो तुम्हारे भाई ही हैं; वे सदा अपने स्नेहियोंके अनुकूल रहते हैं और उनमें सभी सद्गुण विद्यमान हैं। फिर भी तुम बिना कारण जन्मसे ही उनसे द्वेष करते हो। उनके साथ द्वेष करना ठीक नहीं हैं। वे तो सर्वदा अपने धर्ममें स्थित रहते हैं। उनसे जो द्वेष करता है, वह तो मुझसे भी द्वेष करता है और जो उनके अनुकूल है, वह मेरे भी अनुकूल है। धर्मात्मा पाण्डवोंके साथ तो तुम मुझे एकरूप हुआ ही समझो। जो पुरुष काम और क्रोधका गुलाम है तथा मूर्खतावश गुणवानोंसे विरोध और द्वेष करता है, उसीको अधम कहते हैं। तुम्हारे इस सारे अन्नका सम्बन्ध दुष्ट पुरुषोंसे है, इसलिये यह खानेयोग्य नहीं है। दुर्योधन बोला- यह आप कैसे कह सकते हैं कि आप मुझे प्रिय नहीं है? कृष्ण बोले, क्योंकि मैं यदि आपको प्रिय रहा होता भ्राता दुर्योधन तो द्वारिका में आप पार्थ से झगड पडे होते। उसने मेरी नारायणी सेना नहीं मुझे ये निहत्था वासुदेव चाहिये ऐसा कहा। शकुनि बोले- परन्तु हे मधुसूदन इससे तो कुछ सिद्ध नहीं होता कि कुन्तीपुत्र अर्जुन तो आपसे आपको मांग ही चुके थे। आप तो उनके पहिले ही हो चुके थे। कृष्ण बोले- तो मैं पहिले ही जब कुन्ती पुत्र अर्जुन का हो चुका हूँ गान्धार नरेश तो युवराज दुर्योधन की कृपायें कैसे स्वीकार कर सकता हूँ? जो पांडवों का मित्र नहीं है गान्धार नरेश वह मेरा मित्र कदापि नहीं हो सकता। क्योंकि धर्म पांडवों के शिबिर में है और जहां धर्म है वहीं मैं हूँ और मैं यहाँ केवल पांडवों का दूत बनकर नहीं आया हूँ मैं धर्मदूत भी हूँ। यदि मैं आपका भोजन करता भ्राता दुर्योधन तो वो धर्म की

मर्यादा का उल्लंघन हो जाता। क्रोध में मत आओ ज्येष्ठ गान्धारी नन्दन। क्रोध का कवच नम्रता के बाणों को रोक नहीं सकता और आज मैं तुमसे यहीं बात करने आया हूँ कि तुमसे मेरी कोई लड़ाई नहीं इसलिये मेरी बात ध्यान से सुनो। शान्ति का मार्ग उन्नति का मार्ग है। प्रगति का मार्ग है और युद्ध का मार्ग सीधा श्मशान की ओर जाता है।

वह तो ठीक है किंतु आपको मेरे यहाँ भोजन करने में क्या असुविधा है? दुर्योधन के मधुर शब्दों और शिष्ट व्यवहार के आवरण के भीतर से भी उसकी खीज प्रतिबिंबित हो रही थी, हम समधी हैं। हमारे द्वारा निवेदित अन्न, जल, वस्त्र और शैया को आपने इस प्रकार तिरस्कृत कर दिया है, जैसे आप हमसे कोई संबंध ही नहीं रखना चाहते।

कृष्ण बोले, मैं दूत हूँ और दूत अपने प्रयोजन के सिद्ध हो जाने पर ही भोजन तथा सम्मान स्वीकार करता है। आप भी मेरे प्रयोजन की सिद्धि के पश्चात् मेरा और मेरे मंत्रियों का सत्कार कर सकते हैं।

दुर्योधन का क्षोभ कुछ मुखर हो उठा, आप केवल दूत ही तो नहीं हैं। हमारे और पांडवों के संबंधी भी हैं। आप मध्यस्थ हैं और संभावित युद्ध के लिए आपने दोनों पक्षों की सहायता की है। मैं आपसे पूछ सकता हूँ कि आप तो हमारा इस प्रकार तिरस्कार क्यों कर रहे हैं? आपका उद्देश्य सफल हो या न हो, हम निरंतर आपका सम्मान करने का प्रयत्न कर रहे हैं; किंतु उसमें हमें तनिक भी सफलता नहीं मिल रही है। आप हमारे आतिथ्य का निरादर क्यों कर रहे हैं। आपसे हमारा न कोई वैर है न कोई झगड़ा। और तब दुर्योधन बोला, कृष्ण। चलिए हम पहले भोजन कर लें और फिर आप मेरे इसी भवन के सर्वश्रेष्ठ विश्राम कक्ष में रात के लिए विश्राम करें।कृष्ण ने उठने की कोई तत्परता नहीं दिखाई, नहीं युवराज। मैं भोजन करने के विचार से नहीं आया हूँ और न ही आपके प्रासाद में रात्रि विश्राम की मेरी कोई योजना है। मेरे हस्तिनापुर प्रवेश से लेकर अब तक आपके दर्शन नहीं हुए थे, इसलिए मैंने सोचा कि आपसे भेंट तो कर ही आऊँ।

कृष्ण बोले, पांडव तुम्हारे भाई हैं। वे सर्वगुण संपन्न हैं और सदा धर्म पर चलते हैं। उन्होंने कभी तुम्हारा कोई अहित नहीं किया। तुम सदा ही उनसे अकारण द्वेष करते रहे हो। जो पांडवों प्रेम करता है, वह मुझसे भी प्रेम करता है। जो उनसे घृणा करता है, वह मुझसे भी घृणा करता है। उनका मित्र मेरा मित्र है और उनका शत्रु मेरा शत्रु है। इसका अर्थ यह है कि जो द्वेष करता हो, न तो उसका अन्न खाना चाहिए, न उसे अन्न खिलाना चाहिए। तुम पांडवों से द्वेष करते हो और पांडवों में मेरे प्राण हैं। तुम्हारा यह सारा अन्न दुर्भावना से दूषित है, अत: यह मेरे खाने योग्य नहीं है।

दुर्योधन बोला- भोजन का समय है वासुदेव मैं आपसे फिर से यही निवेदन करता हूँ कि पहिले आप मेरे साथ भोजन करे तो मैं उसे आशीर्वाद समझूंगा। कृष्ण बोले, राजन। मैं काम, क्रोध, लोभ, द्वेष, अथवा स्वार्थवश कभी धर्म का त्याग नहीं कर सकता। किसी के घर का अन्न या तो प्रेमवश ग्रहण किया जाता है अन्यथा किसी आपत्ति में पड़कर। प्रेम तुम्हारे मन में नहीं है और मैं किसी आपत्ति में नहीं पड़ा हूं। दुर्योधन का स्वर आदेशात्मक हुआ और बोला, आपसे किसने कह दिया कि मेरे मन में प्रेम नहीं है?

कृष्ण बोले- तुम यदि सचमुच मुझे भोजन करवाना चाहते हो युवराज दुर्योधन तो अब तक तुम मेरा शान्ति प्रस्ताव मान चुके होते। मेरा तो यही विचार है कि मुझे केवल विदुरजीका अन्न खाना चाहिये। भोजन तो मैं विदुरजीके घर ही करूँगा। दुर्योधन स्तंभित-सा कृष्ण को देखता रह गया। उसने तो सोचा था कि वे संधि करने आए हैं इसलिए वे सदा उसके अनुकूल रहने का प्रयत्न करेंगे, उसका विरोध करने से बचेंगे, पर कृष्ण तो...

कृष्ण उठ खड़े हुए, मैं जा रहा हूँ दुर्योधन। आशा है कल कौरवों की सभा में तुमसे भेंट होगी। दुर्योधनसे ऐसा कहकर श्रीकृष्ण उसके महलसे निकलकर विदुरके घर आ गये।

कर्ण दु:शासन और शकुनि किंकर्तव्यविमूढ़ से बैठे रह गए। उनकी समझ में ही नहीं आया कि कृष्ण इतनी जल्दी सब कुछ समाप्त कर उठकर कैसे चले गए। वे संधि करने आए थे अथवा संधि न होने देने की पृष्ठभूमि बनाने आए थे। कृष्ण वस्तुत: संधि चाहते हैं या नहीं चाहते? पर यदि वे संधि नहीं चाहते तो वे हस्तिनापुर क्या करने आए हैं? दुर्योधन तो संधि के लिए तैयार ही नहीं है। यदि कृष्ण भी संधि नहीं चाहते तो उनकी इच्छा तो हस्तिनापुर आए बिना ही पूरी हो रही थी। फिर उन्होंने हस्तिनापुर आने का संकट क्यों उठाया? दुर्योधन तो राजसभा में कह चुका है कि वह कृष्ण को बंदी बना लेगा... और यह संभव नहीं है कि सभा में सार्वजनिक रूप से कही गई ऐसी बात की सूचना कृष्ण को न मालूम हो। तो फिर वे हस्तिनापुर क्यों आए?

दुर्योधन अपने सहयोगियोंसे बोला, नहीं ये ग्वाला अपने आपको समझता ही क्या है? मैं तो इसे अपने साथ भोजन कराके इस ग्वाले को मान देना चाहता था पर यह ग्वाला तो इसी योग्य है कि उस दासीपुत्र के घर जाके साग रोटी खाये। मामाश्री मैं आपको वचन देता हूँ कि यदि कल राजसभा में इसने कोई भी अटपटी बात कहीं तो मैं उसी समय उसे बन्दी बना लूंगा। **जब बुद्धि विपरीत हो, सचमुच काल विनाश, लगता है कुरुवंश का नाश नाश। बस नाश।**

कृष्ण विदुर के आवास पर लौटे ही थे कि उन्हें पितामह भीष्म के आने की सूचना मिली। कृष्ण ने आकर उन्हें प्रणाम किया और बोले, पितामह। आपने आने का कष्ट किया। मुझे बुला लिया होता।

भीष्म बोले, बुलाने ही तो आया हूँ श्रीकृष्ण। मुझे सूचना मिली कि अपने हस्तिनापुर प्रवास में आपने दु:शासन अथवा दुर्योधन के भवन में ठहरना अस्वीकार कर दिया है। इसलिए मेरा धर्म है कि मैं आपको अपने आवास पर ठहरने के लिए आमंत्रित करूँ। आशा है कि आप मेरा यह निमंत्रण स्वीकार करेंगे।

कृष्ण बोले, इस निमंत्रण के लिए मैं आपका आभारी हूँ पितामह। पर क्या आपको यह नहीं लगता कि महात्मा विदुर के घर रहकर भी मैं आपका ही अतिथि हूँ। क्या आप आर्य विदुर को अपनी ही संतान नहीं मानते?

भीष्म हँसे और बोले, घर तो यह भी मेरा ही है; किंतु इस तर्क से तो दुर्योधन का घर भी मेरा ही घर है। विदुर ने अपने अपरिग्रही स्वभाव के कारण अपने यहाँ वे सारी सुविधाएं नहीं जुटाई हैं, जिनके आप अभ्यस्त हैं। संभवत: यहां रूकने से आपको तो असुविधा हो ही, कहीं विदुर को भी संकुचित न होना पड़े।

इस बार कृष्ण भी हँसे तो आप हम दोनों को ही धर्मसंकट से बचाना चाहते हैं। पर पितामह। मैं यहां इसलिए तो नहीं आया कि एक महात्मा को संकुचित करूँ। आप जानते हैं कि अपने ऐश्वर्य के होते हुए भी मैं एक गोपाल हूँ। प्रकृति के निकट रहना मुझे माँ की गोद में रहने जैसा लगता है। मुझे आर्य विदुर के घर में कोई असुविधा कैसे हो सकती है? सहसा कृष्ण रुक गए वैसे मेरी इच्छा है कि मैं आपके घर पर आपके साथ कुछ समय व्यतीत करूँ। आपका आतिथ्य ग्रहण करूँ। किंतु पितामह। मैंने दुर्योधन से कहा है कि पांडव मेरे प्राण हैं। मैं उनके साथ एकरूप हूँ। जो उनसे द्वेष करता है, वह मुझसे भी द्वेष करता है, जो उनका शत्रु है, वह मेरा भी शत्रु हैं। कृष्ण ने भीष्म की आंखों में देखा, मैं उस व्यक्ति का अन्न नहीं खा सकता, जो पांडवों के विरुद्ध युद्ध करेगा। क्या आप मुझे यह आश्वासन दे सकते हैं कि यदि युधिष्ठिर और दुर्योधन में युद्ध हुआ तो आप दुर्योधन के पक्ष से नहीं लड़ेंगे? आप दुर्योधन की रक्षा नहीं करेंगे?

भीष्म बोले, श्रीकृष्ण। मैं नहीं चाहता कि यह युद्ध हो; किंतु लगता है कि मैं इसे रोक नहीं पाऊंगा।

कृष्ण बोले, प्रश्न युद्ध का नहीं, आपकी मध्यस्थता का है। क्या आप धर्म का पक्ष लेकर पांडवों की ओर से दुर्योधन की सेना के विरुद्ध युद्ध करने को प्रस्तुत हैं? अथवा आप एक मध्यस्थ के समान युद्ध से तटस्थ रह सकते हैं?

भीष्म बोले, श्रीकृष्ण। आपसे यह छिपा नहीं है कि मेरा मन आपके सम्मुख समर्पण कर चुका है। आपसे मेरा कोई विरोध नहीं है। विरोध मेरा पांडवों से भी नहीं है। वे मेरे पौत्र हैं और मुझे दुर्योधन से अधिक प्रिय हैं। किंतु मैं अपने धर्म के बंधन में बँधा हूँ। मैं धर्म के विरुद्ध नहीं जा सकता। जहाँ धर्म मुझे खड़ा करेगा, मैं आपको वहीं खड़ा मिलूँगा।

कृष्ण बोले, क्या ऐसा नहीं हो सकता पितामह कि कोई अपना धर्म समझने में ही भूल कर रहा हो। वह अपने मोह को ही धर्म मानकर चल रहा हो। भीष्म बोले, मैंने आजीवन धर्म की साधना की है। मुझसे ही धर्म को समझने में भूल हो रही है? कृष्ण बोले, कोई वृद्धा इस कारण तो संसार की सर्वश्रेष्ठ पाककला विशेषज्ञा नहीं हो सकती, क्योंकि उसने अपनी किशोरावस्था से अपने ढंग की रोटियाँ सेंकी हैं। कोई वृद्ध श्रमिक इसलिए तो सर्वश्रेष्ठ वास्तुशिल्पी नहीं माना जा सकता, क्योंकि उसे ईंटें जोड़ते हुए पचास वर्ष हो गए हैं। मेरी बात आपको बहुत कठोर लग सकती हैं, किंतु पितामह। आप जिसे धर्म समझ रहे हैं, वह आपका बंधन मात्र है। धर्म बाँधता नहीं, मुक्त करता है। धर्म और मोह का निर्वाह एक साथ नहीं हो सकता। आपने धर्म की निर्ममता को नहीं पहचाना क्या?

भीष्म बोले, सत्य कहते हैं कृष्ण। धर्म उनका बंधन नहीं था, पर भीष्म ने तो धर्म को सदा बंधन के रूप में ही देखा है।

कृष्ण बोले, जहाँ इतना कुछ कहा है, वहाँ एक और कठोर बात कहने की अनुमति चाहता हूँ पितामह। आपके प्रति अपनी ममता से बाध्य हूँ। कहे बिना रह नहीं पाऊंगा। महाराज प्रतीप और शांतनु के समय की कौरवों की राजसभा और धृतराष्ट्र तथा दुर्योधन के समय की राजसभा में बहुत अंतर है, यह तो आप भी देख रहे होंगे। कभी इसके कारण पर विचार किया है आपने? भीष्म बोले, हमारी अगली पीढ़ियाँ पतनोन्मुखी होती गई हैं।

कृष्ण बोले, क्यों होती गई हैं? कौन उत्तरदायी है उसके लिए? वे लोग ही तो, जो अपने मोह के कारण अधर्म को अधर्म नहीं कह सके। वे लोग ही तो जो पारिवारिक शांति के लिए, धर्मराज युधिष्ठिर के साथ होता हुआ अन्याय देखकर मौन रहे और उससे दुर्योधन का समर्थन करते रहे। अपने उत्तराधिकारी को चुनने की भूल ही तो कारण है इसका। आज फिर दुर्योधन और युधिष्ठिर आमने-सामने खड़े हैं। आप से धर्म आज भी पूछ रहा है, किसे चुनेंगे आप? आज फिर आप दुर्योधन का पक्ष लेंगे युधिष्ठिर के वध का कारण बनेंगे और समय को कोसेंगे कि कलियुग आ गया है अथवा आ रहा है। युग तो आपके कर्म में है पितामह। आप सत्य का पक्ष लें तो सत्ययुग है और आप असत्य का संरक्षण करें तो कलियुग है ही। भीष्म उठ खड़े हुए और बोले, अच्छा श्रीकृष्ण। कदाचित मेरे भाग्य में आपका आतिथ्य करना नहीं बदा है, किंतु हस्तिनापुर में आकर किसी प्रकार की असुविधा झेलने को आप बाध्य नहीं है। विदुर के लिए मेरा घर पराया नहीं है। भीष्म चले गए।

द्रोणाचार्य कृष्णसे मिलने आये। आचार्य ने आकर कृष्ण की मंगलकामना की और बोले, मुझे मालूम पड़ा कि आपको दुर्योधन और दु:शासन का निमन्त्रण असुविधाजनक लगा। मैं चाहता हूँ कि मेरे लिये स्वर्णअवसर होगा कि मैं आपको अपने आश्रम में आमन्त्रित करूँ। आप मेरे सर्वप्रिय शिष्य अर्जुन के अभिन्न मित्र हैं इसलिये आपको मेरा अन्न पराया नहीं लगेगा क्योंकि पिता और गुरु का अन्न पराया नहीं होता और फिर आप धर्म के ज्ञाता है, आपके साथ सत्संग का लाभ होगा। कृष्ण बोले, आचार्य आपके इस निमन्त्रण के लिये मैं आपका आभारी हूँ। मैं पाण्डवों का दूत हूँ और धर्मराज युधिष्ठिर का दूत हूँ। द्रोण बोले, क्या कृष्ण आप यह नहीं चाहते कि सन्धि हो, क्या आप शान्ति के पक्षधर नहीं है। कृष्ण का स्वर प्रखर था और बोले, मैं तो धर्म का पक्षधर हूँ। मैं धर्म स्थापना के पक्ष में हूँ। शान्ति और समृद्धि के माध्यम से जो हो जाये वो सबसे अच्छा। मेरा गन्तव्य न शान्ति है, न युद्ध। मेरा गन्तव्य तो धर्म है और धर्म में द्वेष का कोई काम नहीं। यदि आप महाराज द्रुपद के प्रति अपना द्वेष और बैर त्याग सकें तो मैं इसी समय आपके साथ चलने को प्रस्तुत हूँ। द्रुपद

के मन में क्षत्रिय धर्म होते हुए भी कोई द्वेष नहीं है। आचार्य आपने उनके राज्य का प्रण किया है? क्या यह सत्य है? द्रोण बोले, वह मेरा प्रतिशोध था। कृष्ण बोले, प्रतिशोध तो यह तब होता जब द्रुपद ने आपका राज्य छिना होता, आपके धन का अपहरण किया होता। आप ही अपने अहंकार में उसे सामान्य से सामाजिक सत्य को अपमान मानकर अपनी शक्ति के उन्माद में उनका अपमान कर बैठे। द्रुपद उसे विस्मृत कर सकते हैं। अपनी प्रतिहिंसा और प्रतिशोध के भावों को त्याग सकते हैं। किन्तु पहले आप अपना लोभ तो छोड़ें। उनका राज्य तो उन्हें लौटाएँ। अपने अपराधों का परिमार्जन किए बिना तो किसी की प्रतिहिंसा शान्त नहीं की जा सकती आचार्य। भय में किया गया परिमार्जन, प्रायश्चित अथवा त्याग तो परिमार्जन, प्रायश्चित तथा त्याग होता ही नहीं। त्याग तो धर्म की दृष्टि से होना चाहिए। कृष्ण बोले दुर्योधन ने युधिष्ठिर सम्पत्ति का अपहरण किया और आपने महाराज द्रुपद की। दोनों पराये धन का लोभ संवरण नहीं कर पा रहे हो। फिर शांति कैसे स्थापित हो सकती है। मैं यहां सन्धि मांगने आया भी नहीं मैं तो न्याय माँगने आया हूँ, धर्म स्थापित करने आया हूँ उसका माध्यम चाहे जो भी हो। द्रोण उठकर कृष्ण को अभिवादन कर चले गये।

विदुर बोले, क्या कृष्ण सत्य ही कल कौरवों की सभा में सन्धि का प्रस्ताव लेकर जायेंगे? कृष्ण बोले, मैं उसी उद्देश्य से तो आया हूँ महात्मा विदुर। आप जानते हैं केशव कि दुर्योधन मंदबुद्धि और धर्मनाशक है। वह अपने लिए दूसरों से सम्मान मांगता तो है; किंतु किसी का सम्मान करना उसे नहीं आता। वह गुरुजनों और धर्मशास्त्रों की आज्ञा को नहीं मानता। वह हठी, अहंकारी और स्वयं को पंडित माननेवाला है। वह भोगासक्त, मित्रद्रोही, कृतघ्न, असत्य प्रेमी और विवेकशून्य है। उसपर आपके समझाने का कोई प्रभाव नहीं होगा। संभव है, वह आपका अपमान ही कर बैठे। फिर भी आप सभा में जाएँगे।

मनुष्य ने केवल विचार ही किया हो, विचार को कर्म में परिणत न किया हो तो उसे उस कर्म का कर्ता नहीं मान लेना चाहिए। संभव है कि वह उसे कर्म में परिणत न करे और उसका विचार भी बदल जाए। इसलिए मैं सभा में जाऊंगा। कृष्ण बोले, आप जो कुछ बता रहे हैं, वह सब मैं जानता हूँ, फिर भी पृथ्वी को विनाश से बचाने का एक प्रयत्न करना चाहता हूँ। शान्ति के लिए मैं धर्म और अर्थ के अनुकूल हिंसारहित प्रस्ताव करना चाहता हूँ, परिणाम जो भी हो। मैं आपको पहले भी बता चुका हूं, वहाँ आपके प्राणों के लिए संकट भी हो सकता है। कृष्ण के अधरों पर जैसे एक मायावी मुस्कान उभरी और बोले, मुझे इससे भय नहीं लगता विदुर काका।

अभिमान जन्म ही से अन्धा होता है वो केवल अपने आपको टटोलकर छू सकता है और बस इसीलिये वो अशक्त और असहाय होता है और हर आहट पर डर जाता है कि कहीं कोई उसकी घात में तो नहीं। यही हाल दुर्योधन का है। वो यह नहीं देख सकता कि स्वयं हस्तिनापुर का अस्तित्व खतरे में है? वो यह नहीं देख सकता कि भरतवंश की मर्यादा खतरे मैं है। वो स्वयं अपने मान-अभिमान की डोरियों में जकडा केवल यह सोच सकता है कि कृष्ण ने उसका सत्कार अस्वीकार करके उसका अपमान किया है। वह मूर्ख नारायण को स्वादिष्ट भोजन खिलाकर जैसे कि उन्हे सम्मानित कर रहा था। वो यह जानता ही नहीं था कि महात्मा विदुर के साग की तो बात ही कुछ और है। कृष्ण का गरुड़ध्वज रथ द्वार पर रूका। कृष्ण विदुर के घर आते हैं और चाची-चाची पुकारकर द्वार खट-खटा रहे है। महाभागा विदुर पत्नी पारसंवी ने कृष्ण की वह पुकार सुनी और स्नान करते-करते गीले वस्त्रोंसहित उठकर भागी द्वार की ओर। उसे यह स्मरण ही नहीं रहा कि वे स्नान कर रही थी। शरीरपर कोई उत्तरीय वस्त्र भी नहीं था। श्रीकृष्ण आ गये। दौड़कर विदुरपत्नी ने द्वार खोला। उस मयूरमुकुटीने अपना पीतपट झट उतारकर विदुर-पत्नीके ऊपर डाल दिया और बोले काकी मुझे बहुत भूख लग रही है और स्वयं एक आसन पर बैठ गये। दुर्योधन के अत्यन्त परिश्रम से प्रस्तुत किये गये अन्न पकवानों की चर्चा से ही जिनको

अरुचि हो गयी थी, जिनकी क्षुधा समाप्त प्राय: हो गयी थी वे परिपूर्ण काम विदुरके घर पहुँचते ही बुभुक्षु हो उठे थे। इस प्रेमधन को कहाँ भूख लगती है, यह तो इनके पादपदमोंमें प्रीति रखनेवाले ही पहिचान सकते हैं। विदुर पत्नी तो इनको देखते ही शरीर और संसार की सुध विस्मृत हो गयी। उन्हें तो स्मरण ही नहीं था कि उन्होंने कृष्ण के लिये क्या-क्या प्रस्तुत किया है। शीघ्रता में केलेका गुच्छा मिल गया उसीको लेकर श्रीकृष्णके सम्मुख बैठ गयीं। वे केले छिलकर कृष्ण के हाथ में देने लगी। उसके मन-प्राण तो उन भुवन मोहनमें लगे थे, उसे यह भी भान नहीं रहा कि वे केलेका केवल छिलका कृष्ण के दिये जा रही हैं और गूदा फेंकते जा रही है और कृष्ण यज्ञभोक्ता परमपुरुष भी भूल गये कि वो क्या खा रहे हैं। वो पदार्थ तो कभी खातें नहीं और जब आराधक आत्मविस्मृत हो चुका, तो आराध्य उसके प्रेममें तन्मय हुए बिना रह कैसे सकता है। जैसे जन्म-जन्मके भूखे हों, ऐसे श्रीकृष्ण उन केलेके छिलकों को खाये जा रहे थे और बोले ओह। कितने स्वादिष्ट हैं ये। अचानक विदुरजी आ पहुँचे। उन्हें पता लगा कि गरुड़ध्वज रथ उनके भवनपर खड़ा है। वे शीघ्रता से घर के भीतर आयें और देखा तो अपनी पत्नी पारसंवी को डाँटा और बोले तू इन परम सुकुमार कृष्ण को क्या खिला रहीं हो? तब विदुर पत्नी चौंकी। विदुर ने पत्नी के हाथसे केले ले लिये और केले छीलकर खिलाना शुरू किया। विदुर कृष्ण के चरणोंको अंक में लेकर बोले आपके पधारने से मेरा यह गृह आज तीर्थ बन गया, पवित्र हो गया। मेरे पितर परिपूत हुए। आप पुरुषोत्तमने मुझे अपनाकर इस जनको धन्य कर दिया। कुन्ती, पारसंवी, विदुर सब मिलकर कृष्ण को स्वादिष्ट भोजन करा रहे हैं। कृष्ण भोजन कर रहे है।

**सबसे ऊंची प्रेम सगाई सन्तो सबसे ऊंची, दुर्योधन के मेवा त्यागे, साग विदुर घर खाये,**
**जूठे फल शबरी के खाये, बहु विधि स्वाद बताये, सबसे ऊंची प्रेम सगाई।**
**प्रेम के बस प्रभु सेवा किनी और आप बने हरजाई, सबसे ऊँची प्रेम सगाई।**
**राजसूय यज्ञ युधिष्ठिर कीनौ, तामे जूठ उठाई, सबसे ऊंची प्रेम सगाई।**
**प्रेम के बस पार्थ रथ हाक्यों भूल गये ठकुराई, सबसे ऊंची प्रेम सगाई।**
**ऐसी प्रीति भई वृंदावन गोपिन नाच नचाई, सबसे ऊँची प्रेम सगाई।**
**सुर कूर इही लायक नाही, कहन की कंस बडाई, सबसे ऊँची प्रेम सगाई।**
**दुर्योधन के मेवा त्यागे, साग विदुर घर खायो। सबसे ऊँची प्रेम सगाई।**

कृष्ण महात्मा विदुर के घर भोजन कर रहे हैं। कृष्ण बोले, आप क्या सोच रहे हैं महात्मा? विदुर बोले- मुझे तुमसे इस अविवेक की आशा नहीं थी वासुदेव। कृष्ण बोले, अविवेक। विदुर बोले- यह अविवेक नहीं तो और क्या? तुम्हे मेरे यहां नहीं ठहरना चाहिये था। दुर्योधन तो पहिले ही दुरात्मा है। वो तुम्हारे यहां ठहरने का ना जाने क्या अर्थ निकालेगा? यदि तुम दु:शासन के भवन में ठहर लिये होते तो वो कदाचित तुम्हारी बात मान भी लेता परन्तु अब तो वो बिल्कुल नहीं मानेंगे। कृष्ण बोले- सुनाना मेरा कर्त्तव्य है महात्मा सुनना या न सुनना दुर्योधन का कार्य है। यदि सुनना चाहेगा तो सुनेगा और यदि नहीं सुनना चाहेगा तो नहीं सुनेगा। विदुर बोले- उसने अपने कान में तातश्री, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, द्रोण पुत्र अश्वत्थामा और अंगराज कर्ण कि वीरता की रूई भर रखी है वासुदेव। उसके कान बन्द है वो सुनना चाहे तो भी नहीं सुन सकता। वो यह सोचता है कि पांडव उस सेना के सामने आने की असभ्यता नहीं दिखला सकते जिसकी सेना में तातश्री और आचार्य द्रोण भी होंगे। कृष्ण बोले, परन्तु ये दोनों तो विराट में भी थे। विदुर बोले, विराट की बात और थी वासुदेव, वो युद्ध अर्जुन का अपना नहीं था। अर्जुन मत्स्य नरेश का आभारी था और दुर्योधनने मत्स्य देश पर आक्रमण किया था परन्तु यदि

अब युद्ध हुआ तो वो अर्जुन का अपना युद्ध होगा। कृष्ण बोले, यह तो वो जानते हैं महात्मा यदि युद्ध हुआ तो उन्हे गंगापुत्र भीष्म और आचार्य द्रोण के विरुद्ध शस्त्र उठाना ही पडेगा। विदुर बोले- तो हो जाने दो युद्ध। ढह जाने दो हस्तिनापुर को कि इसके खंडहर पर एक नवीन, स्वस्थ और सुन्दर हस्तिनापुर का निर्माण हो सके। वासुदेव तुम अपना शान्ति प्रस्ताव लेकर राज्यसभा न जाओ क्योंकि वहां जो तुम्हारी बात सुनेंगे वो विवश है और जो विवश नहीं है वो तुम्हारी बात नहीं सुनेंगे। कृष्ण बोले- मैं यह जानता हूं महात्मा जानता हूं। फिर भी शान्तिदूत बनकर आया हूं तो अपने कर्त्तव्य पालन के उपरान्त ही जाऊंगा।

बात इतनी सत्य थी कि विदुरजी इसके विरुद्ध कुछ कह नहीं सकते थे। इतने विरोधियोंके मध्य उनको अधर्मी, अन्याय परायण जानते हुए भी वे कुछ भी कर सकते हैं यह आशंका रहते हुए इतने अल्प सहायकोंके साथ उन विरोधियोंका हितचिन्तन करके आनेवाले ये सर्वसुहृद्। सर्वसमर्थ मधुसूदन ही हो सकते हैं।

## १८) कृष्ण का कौरवों की राजसभा में सन्धि प्रस्ताव प्रस्तुत करना

स्नान-ध्यान तथा संध्या-उपासना से निवृत्त होकर कृष्ण सभा में जाने के लिए प्रस्तुत हुए। दुर्योधन पाण्डवों से किसी प्रकार की संधि का इच्छुक नहीं था। जब वो सन्धि ही नहीं चाहता तो फिर कृष्ण को सभा में उपस्थित क्यों होना है? दुर्योधन को सन्धि नहीं चाहिये इसलिये उसने यह नहीं चाहा कि कृष्ण राजसभा में आये। कृष्ण सभा में भी आये और सन्धि ना हो। ताकि कृष्ण को युद्ध का अपराधी ठहराया जा सके। सबको बताया जा सके कि कृष्ण ने सन्धि नहीं होने दी, कृष्ण शान्ति नहीं चाहते पर कृष्ण को इसप्रकार कलंकित करने से दुर्योधन को क्या लाभ? कृष्ण का अपयश फैलेगा तो उससे दुर्योधन का कौनसा लोभ तृप्त हो पायेगा? दुर्योधन को अपने यश-अपयश की कोई चिंता कभी नहीं रही, अन्यथा वह पांडवों के साथ इस प्रकार का व्यवहार कभी न करता। निकृष्ट कर्म करके भी समाज की दृष्टि में भले बने रहने की चिंता धृतराष्ट्र को होती है दुर्योधन को नहीं।

कृष्ण के मन में चिंतन की प्रक्रिया चलती रही। दुर्योधन नहीं चाहता था कि कृष्ण को कोई महत्त्व दिया जाए। तो फिर उसने अपने भवन में उन्हें आमंत्रित क्यों किया? वह सामान्य शिष्टाचार नहीं हो सकता। उसने शिष्टाचार और सामाजिक मर्यादा की कभी चिंता नहीं की। उसका जीवन सात्विक आदर्शों तथा सामाजिक धर्म से नहीं, मात्र पाशविक वृत्तियों से प्रेरित और संचालित होता है। वह लोभ और स्वार्थ से प्रेरित होकर किसी के भी सम्मुख घुटने टेक सकता है; किंतु किसी को स्वयं से श्रेष्ठ मानकर उसका सम्मान नहीं कर सकता। वह अपनी क्षति के भय से, किसी प्रकार की आशंका से पीड़ित होकर, किसी की चाटुकारिता तो कर सकता है, किसी के गुण से प्रभावित होकर उसकी प्रशंसा नहीं कर सकता। गंधर्वों द्वारा बंदी किए जाने पर वह युधिष्ठिर को पुकार-पुकार कर घिघियाया था, किंतु मुक्त हो जाने पर उसके मन में कहीं कृतज्ञता का लेशमात्र भी नहीं बचा था। दुर्वासा के माध्यम से पांडवों को पीड़ित करने के लिए वह उनके सामने बार-बार माथा टेकता रहा था, किंतु पूजा भाव से तो उसने कभी देवर्षि नारद को भी प्रणाम नहीं किया। कुछ पाने के लोभ में उसने महर्षि वेदव्यास को पितामह कहकर भी पुकारा हो सकता है, किंतु उनके धर्म के सम्मुख नतमस्तक तो वह कभी नहीं हुआ। तो आज भी उसे कृष्ण से शांति पाने की लालसा नहीं है। वह तो अपने लोभ में बंधा अपनी जिह्वा लपलपाता आया है। कृष्ण को अपनी सभा में घेर कर बंदी करने का लोभ। कृष्ण के वध का लोभ। उसे भय होगा कि कृष्ण कहीं हस्तिनापुर छोड़ कर भाग ही न जाएँ। कृष्ण सभा में न आएँ और अपनी सेना में घिरे बैठे रहें। वह कृष्ण से युद्ध नहीं चाहता। वह उन्हें ललकार कर बंदी करना नहीं चाहता। वह तो उन्हें घेर कर बंदी करना चाहता है।

कृष्ण के पीछे उन्हींके रथमें समस्त धर्मोंको जाननेवाले विदुर भी सवार हो गये। धीरे-धीरे कृष्णका रथ राजसभाके

द्वारपर आ गया और वे उससे उतरकर भीतर सभामें गये। जिस समय श्रीकृष्ण विदुर और सात्यकीका हाथ पकड़कर सभाभवनमें पधारे, उस समय उनकी कान्तिने समस्त कौरवोंको निस्तेज-सा कर दिया। दरबारी ने सूचना दी, महारथी महावीर सुदर्शन चक्रधारी मधुसूदन शान्तिदूत वासुदेव श्रीकृष्ण महाराज धृतराष्ट्र की राजसभा में विदुर के साथ पधार रहे हैं। सभा में पहुँचनेपर उनका मान करनेके लिये राजा धृतराष्ट्र तथा भीष्म, द्रोण आदि सभी लोग अपने-अपने आसनोंसे खड़े हो गये। श्रीकृष्णके लिये राजसभामें महाराज धृतराष्ट्रकी आज्ञासे सर्वतोभद्र नामका सुवर्णमय सिंहासन रक्खा गया था। उसपर बैठकर श्रीश्यामसुन्दर कृष्ण मुसकराते हुए राजा धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण तथा दूसरे राजाओंसे बातचीत करने लगे तथा समस्त कौरव और राजाओंने सभामें पधारे हुए श्रीकृष्णका पूजन किया।

कृष्ण बोले- शान्तिदूत का प्रणाम स्वीकार कीजिये महाराज। धृतराष्ट्र बोले, हे वासुदेव स्थान ग्रहण करके मेरी राज्यसभा का मान बढ़ाये। विदुर बोले- स्थान ग्रहण कीजिये वासुदेव। कृष्ण बोले, प्रणाम पितामह। कृष्ण बैठता है। धृतराष्ट्र बोले, हे वासुदेव अब यह बताइये कि आप मेरे अनुज पुत्रों की ओर से क्या प्रस्ताव लाये हैं? सभा में नारद, कण्व और परशुराम भी उपस्थित थे। दुर्योधन और कर्ण कृष्ण के निकट ही एक ही आसन पर बैठे। सब लोग बैठ गए तो कृष्ण धृतराष्ट्र से सम्बोधित हो बोले, हे कुरुश्रेष्ठ मैं एक विशेष प्रयोजन से हस्तिनापुर आया हूँ। इस समय आपकी और हमारी समस्या एक ही है। मैं चाहता हूँ कि क्षत्रियों का संहार हुए बिना कौरवों और पांडवों में संधि हो जाए। संसार एक विराट संहार से बच जाए और सब लोग शांति के सुख का भोग करें। युद्धरत देश कभी समृद्ध नहीं हो सकता। बिना शांति के समाज का विकास नहीं होता। मैं जानता हूं कि कुरुओं में शील है।

कृष्ण बोले, हे महाराज गंगापुत्र भीष्म को प्रणाम करने के उपरान्त मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि मैं किसी की ओर से कोई प्रस्ताव लेकर नहीं आया हूं। मैं तो स्वयं अपनी ओर से आया हूं। अपना ही प्रस्ताव लाया हूं। परन्तु यह विश्वास अवश्य दिलाता हूं कि जो कुछ मैं स्वीकार कर लूंगा उसे स्वीकार करने में पांडव संकोच नहीं करेंगे। हे महाराज आप तो स्वयं ज्ञानी हैं और जानते हैं कि शान्ति कोई प्रस्ताव नहीं जिस पर कोई वाद-विवाद चले। शान्ति एक आवश्यकता है। युद्ध में पराजय तो एक ही की होती है किन्तु दोनों ओर से लड़नेवाले यौद्धा वीरगति को प्राप्त होते है। इस राजसभा में गंगापुत्र भीष्म जैसे ज्ञानी और महात्मा उपस्थित हैं। कृप और द्रोण जैसे आचार्य विराजमान हैं। यौद्धाओं की जो भीड इस सभा में है वो कदाचित संसार की और किसी राजसभा में नहीं है। और इसलिये इस राजसभा का दायित्व भी सबसे अधिक है। यदि युद्ध हुआ तो महात्माओं और यौद्धाओं का यह जमघट नि:सन्देह ही बिखर जायेगा महाराज। हे महाराज यदि ऐसा हुआ तो इतिहास उन सारे आंसुओं का उत्तरदायी आपको ठहरायेगा जो इस महायुद्ध के उपरान्त बहाये जायेंगे। हे नरेश आप भरत के वंशज हैं आपके पास धर्म की धरोहर है। मर्यादाओं का निक्षेप है। इतिहास की थाती है। आप न्यायधारी हैं। आप जैसे न्यायधारी के होते न्याय का भंग नहीं होना चाहिये। और इसीलिये हे धर्म ध्वजरक्षक मैं जो कहने जा रहा हूं उसे ध्यान से सुनिये। शान्ति कभी असम्भव नहीं हो सकती। इसीलिये कुरुवंश को शान्ति के मार्ग पर ले चलिये महाराज। इसी में भरतवंश और भारतवर्ष की भलाई है। इतिहास गान्धार नरेश शकुनि से यह नहीं पूछेगा कि उन्होने द्यूत क्रीडा में कपट क्यों किया था? क्योंकि वो कपट आपकी सभा में हुआ था महाराज। इतिहास युवराज दुर्योधन से भी यह नहीं पूछेगा महाराज कि इन्होने भरी सभा में कुलवधू द्रौपदी को क्यों बुलवाया? इतिहास यह भी आप ही से पूछेगा महाराज क्योंकि दुर्योधन आपके युवराज है। इतिहास दु:शासन से भी यह नहीं पूछेगा कि इन्होंने दुर्योधन के कहने पर भरतवंश कि कुलवधू द्रौपदी के वस्त्रहरण करने की असभ्यता क्यों दिखाई? इतिहास इसके लिये भी आपही को उत्तरदायी व आप ही को दोषी

ठहरायेगा महाराज। इसलिये यह जान लीजिये कि शान्ति का कोई विकल्प नहीं है।

इस समय श्रीकृष्णने सभाके भीतर ही अन्तरिक्षमें नारदादि ऋषियोंको खड़े देखा। तब उन्होंने धीरेसे शान्तनुनन्दन भीष्मसे कहा, इस राजसभाको देखनेके लिये ऋषिलोग आये हुए हैं। उनका आसनादि देकर बड़े सत्कारसे आह्वान कीजिये। उनके बिना बैठे यहाँ कोई भी बैठ नहीं सकेगा। इन शुद्धचित्त मुनियोंकी शीघ्र ही पूजा कीजिये। इतनेहीमें मुनियोंको सभाके द्वारपर आया देख भीष्मने बड़ी शीघ्रतासे सेवकोंको आसन लानेकी आज्ञा दी। वे तुरंत ही बहुत-से आसन ले आये। जब ऋषियोंने आसनोंपर बैठकर अर्घ्यादि ग्रहण कर लिया तो श्रीकृष्ण तथा अन्य सब राजा भी अपने-अपने आसनोंपर बैठ गये। राजाओंको श्रीकृष्णका बहुत दिनोंपर दर्शन हुआ था; अत: जैसे अमृत पीते-पीते कभी तृप्ति नहीं होती, उसी प्रकार वे उन्हें देखते-देखते अघाते नहीं थे। उस सभामें सभीका मन श्रीकृष्णमें लगा हुआ था, इसलिये किसीके मुखसे कोई भी बात नहीं निकलती थी।

भीष्म बोले- युद्ध तो कदाचित कोई नहीं चाहता केशव। जब सभामें सब राजा मौन होकर बैठ गये तो श्रीकृष्णने महाराज धृतराष्ट्रकी ओर देखते हुए बड़ी गम्भीर वाणीमें कहा- राजन्। मेरा यहाँ आनेका उद्देश्य यह है कि क्षत्रिय वीरोंका संहार हुए बिना ही कौरव और पाण्डवोंमें सन्धि हो जाये। इस समय राजाओंमें कुरूवंश ही सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। इसमें शास्त्र और सदाचार का सम्यक् आदर है तथा और भी अनेकों शुभ गुण हैं। अन्य राज्यवंशोंकी अपेक्षा कुरुवंशियोंमें कृपा, दया, करुणा, मृदुता, सरलता, क्षमा और सत्य ये विशेषरूपसे पाये जाते हैं। इस प्रकारके गुणोंसे गौरवान्वित इस वंशमें आपके कारण यदि कोई अनुचित बात हो तो यह उचित नहीं है। यदि कौरवोंमें गुप्त या प्रकटरूपसे कोई असद्व्यवहार होता है तो उसे रोकना तो आपहीका काम है। दुर्योधनादि आपके पुत्र धर्म और अर्थकी ओरसे मुँह फेरकर क्रूर पुरुषोंके-से आचरण करते हैं। अपने भाइयोंके साथ इनका अशिष्ट पुरुषोंका-सा आचरण है तथा चित्तपर लोभका भूत सवार हो जानेसे इन्होंने धर्मकी मर्यादाको एकदम छोड़ दिया है। ये सब बातें आप जानते ही हैं। यह भयमर आपत्ति इस समय कौरवोंपर ही आयी है और यदि इसकी उपेक्षा की गयी तो यह सारी पृथ्वीका विनाश कर देगी। यदि आप अपने कुलको नाशसे बचाना चाहें तो अब भी इसका निवारण किया जा सकता है। मेरे विचार से इन दोनों पक्षोंमें सन्धि होनी बहुत कठिन नहीं है। इस समय शान्ति कराना आपके और मेरे ही वश में है। आप अपने पुत्रोंको मर्यादामें रखिये और मैं पाण्डवोंको नियम में रक्खूँगा। यदि ये आपकी आज्ञामें रहेंगे तो इनका बड़ा भारी हित हो सकता है। महाराज। आप पाण्डवोंकी रक्षामें रहकर धर्म और अर्थका अनुष्ठान कीजिये। आपको ऐसे रक्षक प्रयत्न करनेपर भी नहीं मिल सकते। हे भरतश्रेष्ठ। जिनके अंदर भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, विविंशति, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, बाल्हीक, युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, सात्यकी और युयुत्सु-जैसे वीर हों, उनसे युद्ध करनेकी किस बुद्धिहीनकी हिम्मत हो सकती है। कौरव और पाण्डवोंके मिल जानेसे आप समस्त लोकोंका आधिपत्य प्राप्त करेंगे तथा शत्रु आपका कुछ भी न बिगाड़ सकेंगे; तथा जो राजा आपके समकक्ष या आपसे बड़े हैं, वे भी आपके साथ सन्धि कर लेंगे। ऐसा होनेसे आप अपने पुत्र, पौत्र, पिता, भाई और सुहृदोंसे सब प्रकार सुरक्षित रहकर सुखसे जीवन व्यतीत कर सकेंगे। यदि आप पाण्डवोंको ही आगे रखकर इनका पूर्ववत् आदर करेंगे तो इस सारी पृथ्वीका आनन्दसे भोग कर सकेंगे। महाराज। युद्ध करनेमें तो मुझे बड़ा भारी संहार दिखायी दे रहा है। इस प्रकार दोनों पक्षोंका नाश करानेमें आपको क्या धर्म दिखायी देता है। अत: आप इस लोककी रक्षा कीजिये और ऐसा कीजिये, जिसमें आपकी प्रजाका नाश न हो। यदि आप सत्त्वगुणको धारण कर लेंगे तो सबकी रक्षा ठीक हो जायगी। इस समय आपका पुत्र दुर्योधन धर्म और अर्थ को विस्मृत कर क्रूर आचरण कर रहा है। वह अपने ही

बंधुओं से अशिष्ट, अभद्र तथा क्रूर व्यवहार कर रहा है। लोभ में लिप्त होकर धर्म की मर्यादा का हनन कर रहा है।

धर्मराज युधिष्ठिर ने आपके लिए संदेश भेजा है कि आज भी वे आपको अपने पिता के स्थान पर मानते हैं। द्यूत के छल में उनका राज्य और संपत्ति उनसे छीन ली गई, फिर भी इस आशा से उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा का तेरह वर्ष तक पालन किया कि उसके पश्चात् आप धर्मपूर्वक अपने वचनानुसार उनका राज्य लौटा देंगे और उन्हें अपने पुत्रों के रूप में स्वीकार कर लेंगे। यदि आज भी आप उनको स्वीकार करें तो आप उनके द्वारा सुरक्षित होकर उनके द्वारा जीते हुए राज्य का अनंत काल तक भोग कर पायेंगे। पर यदि आप न उनको उनकी संपत्ति लौटाते हैं, न उनको स्वीकार करते हैं तो विनाश उपस्थित है महाराज। विनाश उपस्थित अवश्य है, किंतु उसका निवारण अब भी संभव है। आप अपने पुत्रों को मर्यादा में रखिए। मैं पांडवों को नियंत्रित करूँगा। आप अपने पुत्रों का शासन कर संधि का प्रयत्न करें। दोनों पक्षों का हित इसी में है। आप पांडवों से सुरक्षित रहकर संसार के राज्य का भोग भी कर सकते हैं और संसार को विनाश के गर्त में धकेल भी सकते हैं। आपके पुत्र युधिष्ठिर ने कहा है कि वह आपकी सेवा के लिए भी प्रस्तुत है और युद्ध के लिए भी। आपके सारे साम्राज्य में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है, जो युधिष्ठिर के समान आपकी सेवा कर सके और आपकी सेना में एक भी ऐसा योद्धा नहीं है, जो अर्जुन को युद्ध में पराजित कर सके। युद्ध और सेवा में आप जो चाहते हैं वो होगा। पितामह आपने कहा युद्ध तो कदाचित ही कोई चाहता है।

कृष्ण बोले- यदि कोई युद्ध नहीं चाहता पितामह तो फिर यह कदाचित क्यों? कदाचित यह तो आप भी जानते हैं पितामह और मैं भी कि युद्ध चाहनेवाले इधर भी हैं और उधर भी। इसलिये कदाचित जैसे शब्दों को आज इस राजसभा में निकाल दीजिये पितामह। क्योंकि कदाचित जैसे शब्दों में शान्ति की बात नहीं हो सकती। हे पितामह समझाइये अपने नरेश को कि यदि कौरवों और पांडवों में मिलाप हो जाये तो यह सारा संसार उनका हो सकता है। उनके राज्य की सीमा के अतिरिक्त और कोई सीमा रह ही नहीं जायेगी। किन्तु यदि युद्ध हुआ महाराज तो आपके पास कुछ भी नहीं रह जायेगा महाराज। न पुत्र और न ही अनुज पुत्र। क्या पता आपको किस-किस के शव पर रोना पडे महाराज। क्या आपके पास किसी अपने अनुजपुत्र का शव आये महाराज तो क्या उसे शत्रु का शव मानकर आनन्द अनुभव कर पायेंगे? हे वृद्ध नरेश इससे पहिले कि आप प्राण त्यागें कुल को एकत्र कीजिये नरेश। पांडव आपके स्नेह की छाया में पले बडे है। आपके स्नेह और आशीर्वाद पर उनका भी उतना ही अधिकार होना चाहिये। इसलिये हे धर्म ध्वजरक्षक इन्द्रप्रस्थ उन्हे लौटा दीजिये।

महाराज। पाण्डवोंने आपको प्रणाम कहा है और आपकी प्रसन्नता चाहते हुए यह प्रार्थना की है कि हमने अपने साथियोंके सहित आपकी आज्ञासे ही इतने दिनों तक दु:ख भोगा है। हम बारह वर्षतक वनमें रहे हैं और फिर तेरहवाँ वर्ष जनसमूहमें अज्ञातरूपसे रहकर बिताया है। वनवासकी शर्त होनेके समय हमारा यही निश्चय था कि जब हम लौटेंगे तो आप हमारे ऊपर पिताकी तरह रहेंगे। हमने उस शर्तका पूरी तरह पालन किया है; इसलिये अब आप भी जैसा ठहरा था, वैसा ही बर्ताव कीजिये। हमें अब अपना राज्य मिल जाना चाहिये। आप धर्म और अर्थका स्वरूप जानते हैं, इसलिये आपको हमारी रक्षा करनी चाहिये। गुरुके प्रति शिष्यका जैसा गौरवयुक्त व्यवहार होना चाहिये, आपके साथ हमारा वैसा ही बर्ताव है। इसलिये आप भी हमारे प्रति गुरुका-सा आचरण कीजिये। हमलोग यदि मार्गभ्रष्ट हो रहे हैं तो आप हमें ठीक रास्तेपर लाइये और स्वयं भी सन्मार्गपर स्थित होइये। इसके सिवा आपके उन पुत्रोंने इन सभासदोंसे भी कहलाया है कि जहाँ धर्मज्ञ सभासद हों, वहाँ कोई अनुचित बात नहीं होनी चाहिये। यदि सभासदोंके देखते हुए अधर्मसे धर्मका और असत्यसे सत्यका नाश हो तो उनका भी नाश हो जाता है। इस समय पाण्डवलोग धर्मपर दृष्टि लगाये चुपचाप बैठे हैं।

उन्होंने धर्मके अनुसार सत्य और न्याययुक्त बात ही कही है। राजन्। आप पाण्डवोंको राज्य दे दीजिये- इसके सिवा आपसे और क्या कहा जा सकता है? इस सभामें जो राजालोग बैठे हैं, उन्हें कोई और बात कहनी हो तो कहें। यदि धर्म और अर्थका विचार करके मैं सच्ची बात कहूँ तो यही कहना होगा कि इन क्षत्रियोंको आप मृत्युके फंदेसे छुड़ा दीजिये। हे भरतश्रेष्ठ। शान्ति धारण कीजिये, क्रोधके वश मत होइये और पाण्डवोंको उनका यथोचित पैतृक राज्य दे दीजिये। ऐसा करके आप अपने पुत्रोंके सहित आनन्दसे भोग भोगिये। राजन्। इस समय आपने अर्थको अनर्थ और अनर्थको अर्थ मान रक्खा है। आपके पुत्रोंपर लोभ ने अधिकार जमा रक्खा है, आप उन्हें जरा नियंत्रण में रखिये। पाण्डव तो सदा आपकी सेवाके लिये भी तैयार हैं। यह कहकर कृष्ण मौन हो गए और बैठ गये। सारी सभा अवाक् होकर उनको सुन रही थी।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय, जब कृष्णने ये सब बातें कहीं तो सभी सभासदोंको रोमाञ्च हो आया और वे चकित से हो गये। वे मन-ही-मन तरह-तरहसे विचार करने लगे। उनके मुखसे कोई भी उत्तर नहीं निकला। सब राजाओंको इस प्रकार मौन हुआ देख उस सभामें बैठे हुए महर्षि परशुरामजी उठकर कहने लगे, राजन्। तुम सब प्रकारका संदेह छोड़कर मेरी एक सत्य बात सुनो। वह तुम्हें अच्छी लगे तो उसके अनुसार आचरण करो। पहले दम्भोद्भव नामका एक सार्वभौम राजा हो गया है। वह महारथी सम्राट नित्यप्रति प्रात:काल उठकर ब्राह्मण और क्षत्रियोंसे पूछा करता था कि क्या ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंमें कोई ऐसा शस्त्रधारी है, जो युद्धमें मेरे समान अथवा मुझसे बढ़कर हो? इस प्रकार कहते हुए वह राजा अत्यन्त गर्वोन्मत्त होकर इस सम्पूर्ण पृथ्वीपर विचरता था। राजाका ऐसा घमंड देखकर कुछ तपस्वी ब्राह्मणोंने उससे कहा, इस पृथ्वीपर ऐसे दो सत्पुरुष हैं, जिन्होंने संग्राममें अनेकोंको परास्त किया है। उनकी बराबरी तुम कभी नहीं कर सकोगे। इसपर उस राजाने पूछा, वे वीर पुरुष कहाँ हैं? उन्होंने कहाँ जन्म लिया है? वे क्या काम करते हैं? और वे कौन हैं? ब्राह्मणोंने कहा, वे नर और नारायण नामके दो तपस्वी हैं, इस समय वे मनुष्यलोकमें ही आये हुए हैं; तुम उनके साथ युद्ध करो। वे गन्धमादन पर्वतपर बड़ा ही घोर और अवर्णनीय तप कर रहे हैं।

राजाको यह बात सहन नहीं हुई। वह उसी समय बड़ी भारी सेना सजाकर उनके पास चल दिया और गन्धमादनपर जाकर उनकी खोज करने लगा। थोड़ी ही देर में उसे वे दोनों मुनि दिखायी दिये। उनके शरीरकी शिराएँ तक दीखने लगी थीं। शीत, घाम और वायुको सहन करनेके कारण वे बहुत ही कुश हो गये थे। राजा उनके पास गया और चरणस्पर्श कर उनसे कुशल पूछी। मुनियोंने भी फल, मूल, आसन और जलसे राजाका सत्कार करके पूछा, कहिये, हम आपकी क्या सेवा करें? राजाने उन्हें आरम्भसे ही सब तों सुनाकर कहा कि इस समय मैं आपसे युद्ध करनेके लिये आया हूँ। यह मेरी बहुत दिनोंकी अभिलाषा है, इसलिये इसे स्वीकार करके ही आप मेरा आतिथ्य कीजिये। नर-नारायणने कहा, राजन्। इस आश्रम में क्रोध-लोभ आदि दोष नहीं रह सकते; यहाँ युद्धकी तो कोई बात ही नहीं है, फिर अस्त्र-शस्त्र या कुटिल प्रकृति के लोग कैसे रह सकते हैं? पृथ्वीपर बहुत-से क्षत्रिय हैं, तुम किसी दूसरी जगह जाकर युद्धके लिये प्रार्थना करो। नर-नारायणके इसी प्रकार बार-बार समझानेपर भी दम्भोद्भवकी युद्धलिप्सा शान्त न हुई और इसके लिये उनसे आग्रह करता ही रहा।

तब भगवान नरने एक मुट्ठी सींकें लेकर कहा, अच्छा, तुम्हें युद्धकी बड़ी लालसा है तो अपने हथियार उठा लो और अपनी सेनाको तैयार करो। यह सुनकर दम्भोद्भव और उसके सैनिकोंने उनपर बड़े पैने बाणोंकी वर्षा करना आरम्भ कर दिया। भगवान् नरने एक सींकको अमोघ अस्त्रके रूपमें परिणत करके छोड़ा। इससे यह बड़े आश्चर्य की बात हुई कि मुनिवर नरने उन सब वीरोंके आँख, नाक और कानोंको सींकोंसे भर दिया। इसी प्रकार सारे आकाशको सफेद सींकोंसे भरा देखकर राजा दम्भोद्भव उनके चरणोंमें गिर पड़ा और मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो इस प्रकार चिल्लाने लगा। तब

शरणागतवत्सल नरने शरणापन्न राजासे कहा, राजन्। तुम ब्राह्मणोंकी सेवा करो और धर्मका आचरण करो; ऐसा काम फिर कभी मत करना। तुम बुद्धिका आश्रय लो और लोभको छोड़ दो तथा अहंकारशून्य, जितेन्द्रिय, क्षमाशील, मृदु और शान्त होकर प्रजाका पालन करो। अब भविष्यमें तुम किसीका अपमान मत करना।

इसके बाद राजा दम्भोद्भव उन मुनीश्वरोंके चरणोंमें प्रणाम कर अपने नगरमें लौट आया और अच्छी तरह धर्मानुकूल व्यवहार करने लगा। इस प्रकार उस समय नरने यह बड़ा भारी काम किया थां इस समय नर ही अर्जुन हैं। अत: जब तक वे अपने श्रेष्ठ धनुष गाण्डीवपर बाण न चढ़ावें, तभीतक तुम मान छोड़कर अर्जुनकी शरण ले लो। जो सम्पूर्ण जगत्के निर्माता, सबके स्वामी ओर समस्त कर्मोंके साक्षी हैं, वे नारायण अर्जुनके सखा हैं। इसलिये युद्धमें उनके पराक्रमको सहना तुम्हारे लिये कठिन होगा। अर्जुनमें अगणित गुण हैं और श्रीकृष्ण तो उससे भी बढ़कर हैं। कुन्तीपुत्र अर्जुनके गुणोंका तो तुम्हें भी कई बार परिचय मिल चुका है। जो पहले नर और नारायण थे, वे ही इस समय अर्जुन और श्रीकृष्ण हैं। उन दोनोंको तुम समस्त पुरुषोंमें श्रेष्ठ और बड़े वीर समझो। यदि तुम्हें मेरी बात ठीक जान पड़ती हो और मेरे प्रति किसी प्रकारका संदेह न हो तो तुम सद्बुद्धिका आश्रय लेकर पाण्डवोंके साथ सन्धि कर लो।

श्रीकृष्ण ने जो कुछ कहा है उसका यदि पालन करोगे तो इससे अधिक उदार कोई और क्या हो सकता है? जो पक्ष सबल भी है और पीड़ित है, जिन लोगों के साथ तुमने सदा अत्याचार किया है वे लोग तुमसे राज्य नहीं माँग रहे है केवल स्नेह माँग रहे है, याचना कर रहे है। हस्तिनापुर का सारा राज्य पैतृक उत्तराधिकारी के रूप में उनका है। इन्द्रप्रस्थ का राज्य उन्होंने अपने बाहुबल से अर्जित और विकसित किया है। रक्तपात से बचने के लिये, शान्ति स्थापित करने के लिये, उन्होने अपने सम्पूर्ण राज्य की माँग पहले ही छोड़ दी थी आज वे इन्द्रप्रस्थ का भी त्याग कर रहे हैं और तुमसे स्नेह से सन्धि करना चाहते है। क्यों आप मानवता के विनाश के लिये तुले हुए हो।

परशुरामजीका वक्तव्य सुनकर महर्षि कण्व भी दुर्योधन-से कहने लगे- लोकपितामह ब्रह्मा और नर-नारायण ये अक्षय और अविनाशी हैं। अदितिके पुत्रोंमें केवल विष्णु ही सनातन, अजेय, अविनाशी, नित्य और सबके ईश्वर हैं। उनके सिवा चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, ग्रह और तारे ये सभी विनाशका कारण उपस्थित होनेपर नष्ट हो जाते हैं। जब संसारका प्रलय होता है तो ये सभी पदार्थ तीनों लोकोंको त्यागकर नष्ट हो जाते हैं और सृष्टिका आरम्भ होनेपर बार-बार उत्पन्न होते रहते हैं। इन सब बातोंपर विचार करके तुम्हें धर्मराज युधिष्ठिरके साथ सन्धि कर लेनी चाहिये, जिससे कौरव और पाण्डव मिलकर पृथ्वीका पालन करें। दुर्योधन। तुम ऐसा मत समझो कि मैं बड़ा बली हूं। संसारमें बलवानोंकी अपेक्षा भी दूसरे बली पुरुष दिखायी देते हैं। सच्चे शूरवीरोंके सामने सेनाकी शक्ति कुछ काम नहीं करती। पाण्डवलोग तो सभी देवताओंके समान शूरवीर और पराक्रमी हैं। ये स्वयं वायु, इन्द्र, धर्म और दोनों अश्विनीकुमार ही हैं। इन देवताओंकी ओर तो तुम देख भी नहीं सकते। इसलिये इनसे विरोध छोड़कर सन्धि कर लो। तुम्हें इन तीर्थस्वरूप श्रीकृष्णके द्वारा अपने कुलकी रक्षाका प्रयत्न करना चाहिये। यहाँ महातपस्वी देवर्षि नारदजी विराजमान हैं। ये श्रीविष्णु भगवान्के माहात्म्यको प्रत्यक्ष जानते हैं और वे चक्र-गदाधर श्रीविष्णु ही यहाँ श्रीकृष्णरूपमें विद्यमान हैं।

महर्षि कण्वकी यह बात सुनकर दुर्योधन लंबी-लंबी साँस लेने लगा, उसकी त्यौरी चढ़ गयी और वह कर्णकी ओर देखकर जोर-जोरसे हँसने लगा। उस दुष्टने कण्वके कथनपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और ताल ठोककर इस प्रकार कहने लगा, महर्षे। जो कुछ होनेवाला है और जैसी मेरी गति होनी है, उसीके अनुसार ईश्वरने मुझे बनाया है और वैसा ही मेरा आचरण है। उसमें आपके कथनसे क्या फरक पड़ेगा।

वैशम्पयान कहते हैं- राजन्। भगवान वेदव्यास, भीष्म और नारदजीने भी दुर्योधनको अनेक प्रकारसे समझाया। उस समय नारदजीने इसप्रकार कहा, उन्होंने कहा, संसारमें सहृदय श्रोता मिलना कठिन है और हितकी बात कहनेवाला सुहृद् भी दुर्लभ है; क्योंकि जिस संकटमें अपने सगे-सम्बन्धी भी साथ छोड़ देते हैं, वहाँ भी सच्चा मित्र संग बना रहता है। अत: कुरुनन्दन। तुम्हें अपने हितैषियोंकी बातपर अवश्य ध्यान देना चाहिये; इस तरह हठ करना ठीक नहीं है, क्योंकि हठका परिणाम बड़ा दु:खदायी होता है। धृतराष्ट्रने कहा- भगवन्। आप जैसा कह रहे हैं, ठीक ही है। मैं भी यही चाहता हूँ, परंतु ऐसा कर नहीं पाता।

इसके बाद वे श्रीकृष्णसे कहने लगे- केशव। आपने जो कुछ कहा है वह सब प्रकार सुखप्रद, सद्गति देनेवाला, धर्मानुकूल और न्यायसंगत है; किंतु मैं स्वाधीन नहीं हूँ। मन्दमति दुर्योधन मेरे मनके अनुकूल आचरण नहीं करता और न शास्त्रका ही अनुसरण करता है। आप किसी प्रकार उसे समझानेका प्रयत्न करें। वह गान्धारी, बुद्धिमान विदुरजी तथा भीष्मादि जो हमारे अन्य हितैषी हैं, उनकी शुभ शिक्षापर भी कुछ ध्यान नहीं देता। अब स्वयं आप ही इस पापबुद्धि, क्रूर और दुरात्मा दुर्योधनको समझाइये। यदि इसने आपकी बात मान ली तो आपके हाथसे अपने सुहृदोंका यह बड़ा भारी काम हो जायगा। तब सब प्रकारके धर्म और अर्थके रहस्यको जाननेवाले श्रीकृष्ण मधुर वाणीमें दुर्योधनसे कहने लगे- कुरुनन्दन। मेरी बात सुनो। इससे तुम्हें और तुम्हारे परिवारको बड़ा सुख मिलेगा। तुमने बड़े बुद्धिमानोंके कुलमें जन्म लिया है, इसलिये तुम्हें यह शुभ काम करना चाहिये। तुम जो कुछ करना चाहते हो, वैसा काम तो वे लोग करते हैं, जो नीच कुल में पैदा हुए हैं तथा दुष्टचित्त, क्रूर और निर्लज्ज हैं। इस विषयमें तुम्हारी जो हठ है वह बड़ी भयमर, अधर्मरूप और प्राणोंकी प्यासी है। उससे अनिष्ट ही होगा। उसका कोई प्रयोजन भी नहीं है और न वह सफल ही हो सकती है। इस अनर्थको त्याग देनेपर ही तुम अपना तथा अपने भाई, सेवक और मित्रोंका हित कर सकोगे तथा तुम जो अधर्म और अपयशकी प्राप्ति करानेवाला काम करना चाहते हो, उससे छूट जाओगे। देखो, पाण्डवलोग बड़े बुद्धिमान्, शूरवीर, उत्साही, आत्मज्ञ और बहुश्रुत हैं; तुम उनके साथ सन्धि कर लो। इसीमें तुम्हारा हित है और यही महाराजा धृतराष्ट्र, पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, विदुर, कृपाचार्य, सोमदत्त, बाल्हीक, अश्वत्थामा, विकर्ण, सञ्जय, विविंशति तथा तुम्हारे अधिकांश बन्धु-बान्धवों और मित्रोंको प्रिय भी है। सन्धि करनेमें ही सारे संसारकी शान्ति है। तुममें लज्जा, शास्त्रज्ञान और अक्रूरता आदि गुण भी हैं। अत: तुम्हें अपने माता-पिताकी आज्ञामें ही रहना चाहिये। पिताश्री जो कुछ शिक्षा देते हैं, उसे सब लोग हितकारी मानते हैं। जब मनुष्य बड़ी भारी विपत्तिमें पड़ जाता है, तब उसे अपने पिताकी सीख ही याद आती है। तुम्हारे पिताश्रीको तो पाण्डवोंसे सन्धि करना अच्छा मालूम लगता है। अत: तुम्हें और तुम्हारे मन्त्रियोंको भी यह प्रस्ताव अच्छा लगना चाहिये। जो पुरुष मोहवश हितकी बात नहीं मानता, उस दीर्घसूत्रीका कोई काम पूरा नहीं होता और कोरा पश्चात्ताप ही उसके पल्ले पड़ता है। किंतु जो हितकी बात सुनकर अपने मतको छोड़ पहले उसीका आचरण करता है, वह संसारमें सुख और समृद्धि प्राप्त करता है। जो पुरुष अपने मुख्य सलाहकारोंको छोड़कर नीच प्रकृतिके पुरुषोंका संग करता है, वह बड़ी भारी विपत्तिमें पड़ जाता है और फिर उसे उससे निकलनेका रास्ता नहीं मिलता।

तात। तुमने जन्मसे ही अपने भाइयोंके साथ कपटका व्यवहार किया है; तो भी यशस्वी पाण्डवोंने तुम्हारे प्रति सद्भाव ही रक्खा है। तुम्हें भी उनके प्रति वैसा ही बर्ताव करना चाहिये। वे तुम्हारे बन्धु बान्धव हैं; उनपर तुम्हें रोष नहीं रखना चाहिये। श्रेष्ठ पुरुष ऐसा काम करते हैं जो अर्थ, धर्म और कामकी प्राप्ति करानेवाला हो; और यदि उससे इन तीनोंकी सिद्धि होनेकी सम्भावना नहीं होती तो वे धर्म और अर्थको ही सिद्ध करनेका प्रयत्न करते हैं। अर्थ, धर्म और काम- ये तीनों

अलग-अलग हैं। बुद्धिमान् पुरुष इनमेंसे धर्मके अनुकूल रहते हैं, मध्यम पुरुष अर्थको प्रधान मानते हैं और मूर्ख कलहके हेतुभूत कामके गुलाम बने रहते हैं। किंतु जो पुरुष इन्द्रियोंके वशीभूत होकर लोभवश धर्मको छोड़ देता है, वह दूषित उपायोंसे अर्थ और कामप्राप्तिकी वासनामें फँसकर नष्ट हो जाता है। अत: जो मनुष्य अर्थ और काम के लिये उत्सुक हो उसे पहले धर्मका ही आचरण करना चाहिये। विद्वानलोग धर्मको ही त्रिवर्गकी प्राप्तिका एकमात्र कारण बताते हैं। जो पुरुष अपने साथ सद्व्यवहार करनेवाले लोगोंसे दुर्व्यवहार करता है, वह कुल्हाड़ीसे वनके समान आप ही अपनी जड़ काटता है। मनुष्यको चाहिये कि जिसे नीचा दिखानेकी इच्छा न हो, उसकी बुद्धिको लोभसे भ्रष्ट न करे। इस प्रकार जिसकी बुद्धि लोभसे दूषित नहीं है, उसीका मन कल्याण-साधनमें लग सकता है। ऐसा शुद्ध बुद्धिवाला पुरुष, पाण्डवोंका तो क्या, संसारमें किन्हीं साधारण मनुष्योंका भी अनादर नहीं करता। किंतु क्रोधके चंगुलमें फँसा हुआ मनुष्य अपना हिताहित कुछ नहीं समझता। लोक और वेदमें जो बड़े-बड़े प्रमाण प्रसिद्ध हैं, उनसे भी वह गिर जाता है। अत: दुर्जनोंकी अपेक्षा यदि तुम पाण्डवोंका सङ्ग करोगे तो तुम्हारा कल्याण ही होगा। तुम जो पाण्डवोंकी ओर मुँह मोड़कर किसी दूसरेके भरोसे अपनी रक्षा करना चाहते हो तथा दु:शासन, कर्ण और शकुनिके हाथमें अपना ऐश्वर्य सौंपकर पृथ्वीको जीतनेकी आशा रखते हो; सो ये तुम्हें ज्ञान, धर्म और अर्थकी प्राप्ति नहीं करा सकते। पाण्डवोंके सामने इनका कुछ भी पराक्रम नहीं चल सकता। तुम्हें साथ रखकर भी ये सब राजा पाण्डवोंकी टक्कर नहीं झेल सकते। तुम्हारे पास यह जितनी सेना इकट्ठी हुई है, यह क्रोधित भीमके मुखकी ओर तो आँख भी नहीं उठा सकती। ये भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा और जयद्रथ मिलकर भी इस अकेले अर्जुनका मुकाबला नहीं कर सकते। अर्जुनको युद्धमें परास्त करना तो समस्त देवता, असुर, गन्धर्व और मनुष्योंके भी वशकी बात नहीं है। इसलिये तुम युद्धमें अपना मन मत लगाओ। अच्छा। भला, तुम ही इन सब राजाओंमें कोई ऐसा वीर दिखाओ जो रणभूमिमें अर्जुनका सामना करके फिर सकुशल घर लौट सकता हो। इसके लिये विराटनगरमें अकेले अर्जुनकी अनेकों महारथियोंसे युद्ध करनेकी जो अद्भुत बात सुनी जाती है, वही पर्याप्त प्रमाण है। जिसने संग्राममें साक्षात् श्रीशंकरको भी संतुष्ट कर दिया, उस अजेय और विजयी वीर अर्जुनको तुम जीतने का साहस रखते हो? फिर जब मैं भी उसके साथ हूँ तब तो, साक्षात् इन्द्र ही क्यों न हो, ऐसा कौन है जो अपने मुकाबलेमें आये हुए अर्जुनको युद्धके लिये ललकार सके। जो पुरुष युद्धमें अर्जुनको जीतनेकी शक्ति रखता है वह तो अपने हाथोंसे पृथ्वीको उठा सकता है, क्रोधसे सारी प्रजाको भस्म कर सकता है और देवताओंको भी स्वर्गसे गिरा सकता है। तुम तनिक अपने पुत्र, भाई, बन्धु-बान्धव और सम्बन्धियोंकी ओर तो देखो। ये तुम्हारे लिये नष्ट न हों। कौरवोंका बीज बना रहने दो, इस वंशका पराभव मत करो; अपनेको कुलघाती मत कहलाओ और अपनी कीर्तिको कलंकित मत करो। महारथी पाण्डव तुम्हें ही युवराज बनायेंगे और इस साम्राज्यपर तुम्हारे पिता धृतराष्ट्रको ही स्थापित करेंगे। बड़े उत्साहसे अपने पास आती हुई राजलक्ष्मीका तिरस्कार मत करो और पाण्डवोंको आधा राज्य देकर यह महान् ऐश्वर्य प्राप्त कर लो। यदि तुम पाण्डवोंसे सन्धि कर लोगे और अपने हितैषियोंकी बात मानोगे तो चिरकालतक अपने मित्रोंके साथ आनन्दपूर्वक सुख भोगोगे।

हे जनमेजय। श्रीकृष्णका यह मनोविचार सुनकर शान्तनुनन्दन भीष्मने दुर्योधनसे कहा- तात। अपने सुहृदोंका हित चाहनेवाले कृष्णने जो तुम्हें समझाया है, इसका यही आशय है कि तुम अब भी मान जाओ और व्यर्थ असहिष्णुता छोड़ दो। यदि तुम महामना श्रीकृष्णकी बात नहीं मानोगे तो तुम्हारा कभी हित नहीं हो सकता और न तुम सुख ही पा सकोगे। श्रीकेशवने जो कुछ कहा है, वह धर्म और अर्थके अनुकूल है। तुम उसे स्वीकार कर लो, व्यर्थ प्रजाका संहार मत कराओ। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो तुम्हें तथा तुम्हारे मन्त्री, पुत्र और बन्धु-बान्धवोंको अपने प्राणोंसे भी हाथ धोने पड़ेंगे।

भरतनन्दन। श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र और विदुरके नीतियुक्त वचनोंका उल्लङ्घन करके तुम अपनेको कुलघ्न, कुपुरुष कुमति और कुमार्गगामी मत कहलाओ तथा अपने माता-पिताको शोकसागरमें मत डुबाओ।

इसके बाद द्रोण बोले- राजन्। श्रीकृष्ण और भीष्मजी बड़े बुद्धिमान, मेधावी, जितेन्द्रिय, अर्थनिष्ठ और बहुश्रुत हैं। उन्होंने तुम्हारे हितकी ही बात कही है, तुम उसे मान लो और मोहवश श्रीकृष्णका तिरस्कार मत करो। जो लोग तुम्हें युद्धके लिये उत्साहित कर रहे हैं, उनसे तुम्हारा कुछ भी काम नहीं बन सकेगा; ये तो संग्राममें शत्रुओंके प्रति वैर-विरोधका घण्टा दूसरोंके ही गलेमें बाँधेंगे। तुम अपनी प्रजा और पुत्र तथा बन्धु-बान्धवोंके प्राणोंको संकटमें मत डालो। यह बात निश्चय मानो कि जिस पक्षमें श्रीकृष्ण और अर्जुन होंगे, उसे कोई भी जीत नहीं सकेगा। यदि तुम अपने हितैषियोंकी बात नहीं मानोगे तो पीछे तुम्हें पछतावा ही हाथ लगेगा। परशुरामजीने अर्जुनके विषयमें जो कुछ कहा है, वास्तवमें वह उससे भी बढ़कर है, तथा देवकीनन्दन श्रीकृष्ण तो देवताओंके लिये भी दु:सह हैं। किंतु राजन्। तुम्हारे सुख और हितकी बात कहनेसे बनता क्या है? अस्तु, तुमसे सब बातें समझाकर कह दी गयीं; अब जो तुम्हारी इच्छा हो, वह करो। मैं तुमसे और अधिक कुछ नहीं कहना चाहता।

तब विदुर बोल उठे- दुर्योधन। तुम्हारे लिये तो मुझे कोई चिन्ता नहीं है; मुझे तो तुम्हारे इन बूढ़े माँ-बापकी ओर देखकर ही शोक होता है, जो तुम्हारे जैसे दुष्टहृदय पुरुषके संरक्षणमें होनेसे एक दिन अपने सब सलाहकार और सुहृदोंके मारे जानेपर कटे हुए पक्षियोंके समान असहाय होकर भटकेंगे।

अन्तमें राजा धृतराष्ट्र कहने लगे- दुर्योधन। महात्मा कृष्णने जो बात कही है, वह सब प्रकार कल्याण करनेवाली है। तुम उसपर ध्यान दो और उसीके अनुसार आचरण करो। देखो, पुण्यकर्मा श्रीकृष्णकी सहायतासे हम सब राजाओंसे अपने अभीष्ट पदार्थ प्राप्त कर सकते हैं। तुम इनके साथ राजा युधिष्ठिरके पास जाओ और वह काम करो, जिससे सब भरतवंशियोंका मङ्गल हो। मेरी समझमें तो यह सन्धि करनेका ही समय है, तुम इसे हाथसे मत जाने दो। देखो, श्रीकृष्ण सन्धिके लिये सुझाव दे रहे हैं और तुम्हारे हितकी बात कह रहे हैं। इस समय यदि तुम इनकी बात नहीं मानोगे तो तुम्हारा पतन किसी प्रकार नहीं रुक सकेगा। धृतराष्ट्र ने कुछ अधिक ही भक्तिपूर्ण स्वर में कहा, मैं आपसे पूर्णत: समहत हूँ भगवन्। श्रीकृष्ण की महानता को भी समझता हूँ और स्वीकार करता हूँ; किंतु मेरे वश में कुछ नहीं है। मेरे पुत्र मेरे अधीन नहीं हैं। दुर्योधन ने मुझे इस सिंहासन से अभी उतारा नहीं है किंतु मेरे हाथ में कोई अधिकार नहीं है। मेरा यह मंदबुद्धि और दुराचारी पुत्र दुर्योधन मेरी कोई आज्ञा नहीं मानता। मैं उसे समझा ही तो सकता हूँ किंतु वह समझने से इंकार करता है। श्रीकृष्ण। जनार्दन। यदि आप ही इसे समझा सकें तो समझाएँ। संभव है कि वह आपकी बात मान जाए।

नारद चकित थे... एक वह पुत्र है, युधिष्ठिर जो यह जानते हुए भी कि धृतराष्ट्र उसके राज्य का अपहरण करने के लिए उसे द्यूत के लिए आमंत्रित कर रहा है, मन में द्यूतविरोध होते हुए भी जूआ खेलने बैठ गया, ताकि पिता की आज्ञा का उल्लंघन न हो; और एक पुत्र है यह दुर्योधन, जिसके विषय में राजसभा में सार्वजनिक रूप से कहा जा रहा है कि वह पिता की आज्ञा नहीं मानता, और फिर भी वह उठकर यह कहने के लिए खड़ा नहीं होता कि वह पिता की आज्ञा का पालन करेगा। कैसा और किस सीमा तक का निर्लज्ज है यह?

कृष्ण ने भी धृतराष्ट्र की बात सुनी। उनकी कातरता देखकर किसी को भी उन पर दया आ सकती थी। सिंहासन पर बैठा एक सार्वभौम सत्ताधारी राजा कह रहा था कि उसका पुत्र उसकी आज्ञा का पालन नहीं करता। तो वह क्यों अपने युवराज को पदच्युत नहीं करता? उसके पास भीष्म द्रोण, कृपाचार्य और अश्वत्थामा जैसे योद्धा हैं। क्यों वह उन्हें आदेश नहीं

देता कि वे दुर्योधन को बंदी करें? क्यों वह अपने मन की बात मनवाने के लिए, अपनी आज्ञाओं का पालन करवाने के लिए अपनी सत्ता और अपने अधिकारों का प्रयोग नहीं करता? यदि दुर्योधन उसकी आज्ञा का पालन नहीं करता और युधिष्ठिर उसका आज्ञाकारी पुत्र है तो वह पूर्व युवराज, युधिष्ठिर को ही फिर से युवराज क्यों नहीं बनाता? क्या उसकी इच्छा ही नहीं है कि दुर्योधन उस की आज्ञा का पालन करे, अर्थात् पांडवों को उनका राज्य लौटा दे? वह नहीं चाहता कि पांडवों को राज्य का कोई एक छोटा-सा अंश भी दिया जाए? वह अपनी इच्छा को सार्वजनिक रूप से स्वीकार नहीं करना चाहता, इसलिए दुर्योधन को अपनी ढाल बनाए हुए हैं? दुर्योधन में अपने पिता से अधिक नैतिक बल है, वह अपनी इच्छा को अपनी इच्छा के रूप में स्वीकार तो कर रहा है। पर यह भी तो संभव है कि धृतराष्ट्र उग्रसेन के ही समान असहाय हो गया हो? पर नहीं। भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य के होते हुए, वह उग्रसेन के समान असहाय कैसे हो सकता है? और यदि वह सचमुच ही पाप का समर्थन नहीं करता, अधर्म की रक्षा करना नहीं चाहता तो अपनी अक्षमता को स्वीकार करते हुए, उसे अपना पद त्याग देना चाहिए। जो राजा अपनी आज्ञाओं का पालन नहीं करवा सकता, उसके राजा बने रहने का क्या अर्थ? संभव है कि वह अपना लोभ न छोड़ पा रहा हो। एक दुर्योधन उसकी आज्ञाओं का पालन नहीं करता, किंतु शेष लोग तो करते हैं। उसे सभा में राजा का सम्मान तो मिलता है। उसके विलास के साधन तो उसे उपलब्ध होते हैं।

यह भी तो संभव है कि वह अपना राज्य दुर्योधन के बल पर ही चला रहा हो। दुर्योधन के हटते ही उसे अपने सिंहासन के छिन जाने का भय हो। गुंडों के बल पर राज्य करनेवाला राजा गुंडों का दमन कैसे कर सकता है। पर यदि धृतराष्ट्र अपने भोग विलास और अपने अहंकार की तुष्टि के लिए पाप और पापियों की रक्षा कर रहा है तो कृष्ण को उससे सहानुभूति कैसे हो सकती है। फिर भी यदि वह दुर्योधन को समझाने को कह रहा है, तो अपनी बात कहने में कोई हानि नहीं है।

कृष्ण बोले, मुझे जो कुछ कहना था, मैं कह चुका हूँ कुरुराज। किंतु मैं आपके पुत्र युवराज दुर्योधन से इतना तो अवश्य कहना चाहता हूँ कि जो अपने सर्वगुण संपन्न आत्मीय जनों से द्वेष पालता है और पराए लोगों से अपनी रक्षा की आशा रखता है, उसका भार यह पृथ्वी सहन नहीं करती।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय ये अप्रिय बातें सुनकर राजा दुर्योधनने श्रीकृष्णसे कहा, केशव। आपको अच्छी तरह सोच-समझकर बोलना चाहिये। आप तो पाण्डवोंके प्रेमकी दुहाई देकर उल्टी-सीधी बातें कहते हुए विशेषरूपसे मुझे ही दोषी ठहरा रहे हैं। सो क्या आप बलाबलका विचार करके ही सर्वदा मेरी निन्दा किया करते हैं? मैं देखता हूँ आप, विदुर, पिताश्री, आचार्य द्रोण और पितामह अकेले मेरे ही ऊपर सारे दोष लाद रहे हैं। मैंने तो खूब विचारकर देख लिया, मुझे अपना कोई भी बड़े-से-बड़ा या छोटे-से-छोटा दोष दिखायी नहीं देता। पाण्डवलोग अपने ही शौकसे जूआ खेलनेमें प्रवृत्त हुए थे; उसमें मामा शकुनिने उनका राज्य जीत लिया, इसीसे उन्हें वनमें जाना पड़ा। बताइये, इसमें मेरा क्या अपराध था, जो हमारे साथ वैर ठानकर वे विरोध कर रहे हैं? हम जानते हैं पाण्डवोंमें हमारा सामना करनेकी शक्ति नहीं है, फिर भी बड़े उत्साहके साथ वे हमारे प्रति शत्रुओंका-सा बर्ताव क्यों कर रहे हैं? हम उनके भयानक कर्मोंको देखकर या आपलोगोंकी भीषण बातोंको सुनकर डरनेवाले नहीं हैं। इस प्रकार तो हम इन्द्रके सामने भी नहीं झुक सकते। कृष्ण। हमें तो ऐसा कोई भी क्षत्रिय दिखायी नहीं देता, जो युद्धमें हमें जीतनेकी हिम्मत रखता हो। भीष्म, द्रोण, कृप और कर्णको तो देवतालोग भी युद्धमें नहीं जीत सकते; पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है? फिर स्वधर्मका पालन करते हुए हम यदि युद्धमें काम ही आ गये तो स्वर्ग प्राप्त करेंगे। यह तो क्षत्रियोंका प्रधान धर्म है। इस प्रकार यदि हमें युद्धमें वीरगति प्राप्त हुई तो कोई पछतावा नहीं होगा; क्योंकि उद्योग करना ही पुरुषका धर्म है।

ऐसा करते हुए मनुष्य चाहे नष्ट भले ही हो जाय, किंतु उसे झुकना नहीं चाहिये। मुझ जैसा वीर पुरुष तो धर्मरक्षाके लिये केवल ब्राह्मणोंको नमस्कार करता है, और किसीको तो कुछ नहीं समझता। यही क्षत्रियका धर्म है और यही मेरा मत है। पिताश्री मुझे पहले जो राज्यका भाग दे चुके हैं, उसे मेरे जीवित रहते कोई ले नहीं सकता। मेरी बाल्यावस्थामें अज्ञान या भयके कारण ही पाण्डवोंको राज्य मिल गया था। अब वह उन्हें फिर नहीं मिल सकता।

केशव। मैं यह मानता हूँ कि आप पक्षपात कर रहे हैं। आप, विदुर, आचार्य और पितामह ही नहीं मेरे अपने पिता भी अकारण ही मुझसे द्वेष करते हैं। इस सारे प्रसंग में मुझे तो अपना रंचमात्र भी अपराध दिखाई नहीं देता। युधिष्ठिर द्यूत में अपना राज्य हार गया तो क्या उसके लिए मैं दोषी था? पांडव अपने अज्ञातवास में प्रकट हो गए और पहचान लिए गए तो क्या उसके लिए मैं अपराधी हूँ? दुर्योधन का स्वर कुछ कठोर हुआ, अब पांडव अकारण ही पांचालों के साथ मिलकर कौरवों का वध करना चाहते हैं, तो आप लोग चाहते हैं कि मैं भयभीत होकर अपना राज्य उन्हें दे दूँ और स्वयं वनवास के लिए चला जाऊँ। आपका कौन-सा धर्म कहता है कि शत्रु को देखकर क्षत्रिय, युद्ध को छोड़कर शांति की बात करने लगे। आप लोग मुझे विनाश से डरा रहे हैं तो मैं आपको बता दूँ कि क्षत्रिय का धर्म युद्ध में प्राण दे देना है, भयभीत होकर भागना नहीं। मैं यह मानता हूँ कि पांडवों को खांडवप्रस्थ देना भी अनुचित था। उस पर उनका कोई अधिकार नहीं था। और अब तो जो राज्य मेरे पिता ने मुझे दे दिया है, उसे पांडवों को लौटाने का कोई प्रश्न नहीं है।

कृष्ण बोले, तुम्हारे पिता ने छलपूर्वक पांडवों के पिता का राज्य हथिया लिया। तुमने अपने शैशव में ही भीम को विष दिया। तुमने उन्हें वारणावत के लाक्षागृह में जीवित जलाकर मार डालने का षडयंत्र रचा। पांडवों की समृद्धि को देख ईर्ष्या से जलकर तुमने इस छलपूर्ण द्यूत का प्रपंच रचा। तुम्हारे पिता ने पिता के रूप में आज्ञा देकर पांडवों को द्यूत के लिए बुलाया, अन्यथा धर्मप्राण पांडव द्यूत में सम्मिलित क्यों होते। तुम्हारे संकेत पर शकुनि ने युधिष्ठिर को द्यूत में छलपूर्वक वंचित किया। तुम लोगों ने सब कुछ हार जाने पर भी युधिष्ठिर को द्यूत से उठने नहीं दिया। द्रौपदी को उनकी संपत्ति बताकर दाँव पर लगाने को बाध्य किया। किसी भी स्त्री के साथ जो व्यवहार पाप है, वैसा व्यवहार तुमने अपने बड़े भाई की पत्नी के साथ सार्वजनिक रूप से किया। तुमने, कर्ण ने और दु:शासन ने जो कुछ द्रौपदी और पांडवों को कहा, वह सब तुम्हारा काल बुलाने के लिए पर्याप्त है। तुम्हारा सौभाग्य है कि मैं उस समय वहाँ आ नहीं सका, नहीं तो तुम तीनों के मस्तक अपने सुदर्शन चक्र से काटकर द्रौपदी के चरणों में चढ़ा देता। उन्होंने बारह वर्षों का वनवास काटा, एक वर्ष का अज्ञातवास किया। तुम काल-गणना को झूठलाना चाहते हो और कहते हो कि वे एक वर्ष से पहले पहचान लिए गए। उस पर भी तुम कह रहे हो कि तुम्हें अपना कोई अपराध दिखाई नहीं पड़ता। नेत्रहीन हो तुम। विवेकशून्य हो। कृष्ण क्षण-भर के लिए रुके, बहुत आतुर हो वीरगति पाने को, तो वह तुम्हें बहुत शीघ्र मिलेगी। दुर्योधन। पांडवों द्वारा याचना करने पर और कुलवृद्धों द्वारा आदेश दिए जाने पर भी जो राज्य, आज तुम पांडवों को नहीं देना चाहते, वही तुम युद्धक्षेत्र में शव के रूप में गिरकर उन्हें दोगे।

दुर्योधनकी ये बातें सुनकर श्रीकृष्णकी त्यौरी चढ़ गयी और बोले, दुर्योधन। बड़ा भारी जन-संहार होगा। और तुम जो ऐसा मानते हो कि पाण्डवोंके साथ मेरा कोई दुर्व्यवहार नहीं हुआ, सो इस विषयमें यहाँ जो राजा लोग उपस्थित हैं वे ही विचार करें। देखो, पाण्डवोंके वैभवसे जल-भुनकर तुमने और शकुनिने ही तो जूआ खेलनेकी खोटी सलाह की थी। जूआ तो भले आदमियों-की बुद्धिको भ्रष्ट करनेवाला है ही। जो दुष्ट पुरुष इसमें प्रवृत्त होते हैं, उनमें कलह और क्लेशकी ही वृद्धि होती है। और तुमने द्रौपदीको सभामें बुलाकर खुल्लमखुल्ला जैसी-जैसी अनुचित बातें कही थीं, अपनी भाभीके साथ ऐसी कुचाल क्या कोई भी कर सकता है? अपने सदाचारी, अलोलुप और सर्वदा धर्मका आचरण करनेवाले भाइयोंके साथ कौन

भला आदमी ऐसा दुर्व्यवहार कर सकता है? उस समय कर्ण, दु:शासन और तुमने क्रूर और नीच पुरुषोंके समान अनेकों कटु शब्द कहे थे। तुमने वारणावतमें बालक पाण्डवोंको उनकी माताके सहित जला डालनेका बड़ा भारी यत्न किया था। उस समय पाण्डवोंको बहुत-सा समय अपनी माताके सहित छिपे-छिपे एकचक्रा नगरीमें रहकर बिताना पड़ा था। इसके सिवा विष देने आदि अनेकों उपायोंसे तुम पाण्डवोंको मारनेका यत्न करते रहे। परंतु तुम्हारा कोई उद्योग सफल नहीं हुआ। इस प्रकार पाण्डवोंके प्रति तुम्हारी सर्वदा खोटी बुद्धि और कपटमय आचरण रहा है। फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि महात्मा पाण्डवोंके प्रति तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। यदि तुम पाण्डवोंको उनका पैतृक भाग नहीं दोगे तो पापात्मन्। याद रक्खो, तुम्हें ऐश्वर्यसे भ्रष्ट होकर और उनके हाथसे मरकर वह देना पड़ेगा। तुमने कुटिल पुरुषोके समान पाण्डवोंके साथ अनेकों न करनेयोग्य काम किये हैं और आज भी तुम्हारी उल्टी चाल ही दिखायी दे रही है। तुम्हारे माता, पिता, पितामह, आचार्य और विदुरजी बार-बार कह रहे हैं कि तुम सन्धि कर लो; फिर भी तुम सन्धि करनेको तैयार नहीं हो। अपने इन हितैषियोंकी बातको न मानकर तुम कभी सुख नहीं पा सकते। तुम जो काम करना चाहते हो, वह तो अधर्म और अपयशका ही कारण है।

जिस समय कृष्ण ये सब बातें कह रहे थे, उस समय बीचहीमें दु:शासन दुर्योधनसे इस प्रकार कहने लगा, राजन्। आप यदि अपनी इच्छासे पाण्डवोंके साथ सन्धि नहीं करेंगे तो मालूम होता है ये भीष्म, द्रोण और हमारे पिताश्री आपको, मुझे और कर्णको बाँधकर पाण्डवोंके हाथमें सौंप देंगे। भाईकी यह बात सुनकर दुर्योधनका क्रोध और भी बढ़ गया और वह साँपकी तरह फुफकार मारता हुआ विदुर, धृतराष्ट्र, बाह्लीक, कृप, सोमदत्त, भीष्म, द्रोण और श्रीकृष्ण- इन सभीका तिरस्कार कर वहाँसे चलनेको तैयार हो गया। दुर्योधन उठकर खड़ा हो गया, मुझे इस सभा में बैठकर इन मूर्खों की बातें सुनने की कोई बाध्यता नहीं है। उसे जाते देख उसके भाई दु:शासन, कर्ण, शकुनि तथा उनके मंत्री और सब राजालोग भी सभा छोड़कर चल दिये। वह सभा छोड़कर बाहर निकल गया।

भीष्म ने उसे जाते देखा तो बोले, जो धर्म को त्यागकर क्रोध का अनुसरण करता है, उसका नाश दूर नहीं है। लगता है कि क्षत्रियों की फसल पक चुकी है और कट जाने को तैयार है। राजकुमार दुर्योधन बड़ा दुष्टचित्त है। यह दूषित उपायोंका ही आश्रय लेता है। इसे राज्यका झूठा अभिमान है तथा क्रोध और लोभने इसे दबा रक्खा है। इसीसे अपने मन्त्रियोंके सहित ये सब दुर्योधनका अनुसरण कर रहे हैं। भीष्मकी ये बातें सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा- कौरवोंमें जो वयोवृद्ध हैं, उन सभीकी यह बड़ी भूल है कि वे ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त दुर्योधनको बलात्कारसे कैद नहीं कर लेते। इस विषयमें मुझे जो बात स्पष्टतया हितकी जान पड़ती है, वह मैं आपको बता देता हूँ। भोजराज उग्रसेनका पुत्र कंस बड़ा दुराचारी और दुर्बुद्धि था। उसने पिताके जीवित रहते उनका राज्य छीन लिया था। अन्तमें उसे प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा। अत: आपलोग भी दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दु:शासन- इन चारोंको बाँधकर पाण्डवोंको सौंप दीजिये। कुलकी रक्षाके लिये एक पुरुषको, ग्रामकी रक्षाके लिये कुलको, देशकी रक्षाके लिये ग्रामको और अपनी रक्षाके लिये सारी पृथ्वीको त्याग देना चाहिये। इसलिये आपलोग भी दुर्योधनको कैद करके पाण्डवोंसे सन्धि कर लीजिये। इससे आपके कारण इन सब क्षत्रियोंका नाश तो न होगा। समस्त कुल के हित के लिए एक व्यक्ति को, ग्राम के हित के लिए एक परिवार को, जनपद के हित के लिए एक ग्राम को, और आत्मा के कल्याण के लिए समस्त भूमंडल का त्याग श्रेयस्कर है। भरतवंशियो। यदि आप अपने वंश का कल्याण चाहते हैं तो दुर्योधन, दु:शासन और कर्ण को बंदी कर पांडवों को सौंप दें।

धृतराष्ट्र के मुख से अनायास ही निकला। देवी गांधारी को बुलाओ। गांधारी को बुलाओ। वह दुर्योधन को समझाए। कदाचित माँ के कहने से दुर्योधन मान जाए और संधि कर ले।

विदुर ने कहा, यदि आप सत्य ही पांडवों के साथ संधि के इच्छुक हैं, तो आप वह कर सकते हैं। उसके लिए दुर्योधन की सहमति आवश्यक नहीं है। यदि आप उसे सहमत करना ही चाहते हैं तो समझाना ही तो एकमात्र उपाय नहीं है। समाज के हित के लिए कभी-कभी कठोर होकर हाथ में दंड भी ग्रहण करना पड़ता है महाराज। श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर राजा धृतराष्ट्रने विदुरसे कहा- भैया। तुम परम बुद्धिमती गान्धारीके पास जाओ और उसे यहाँ लिवा लाओ। मैं उसके साथ दुरात्मा दुर्योधनको समझाने का प्रयत्न करूँगा। अच्छा महाराज। विदुर गांधारी को बुलाने के लिए चले गए।

धृतराष्ट्र का दम घुटने लगा था। वह स्वयं ही बोला, यह मूर्ख दुर्योधन ऐश्वर्य के लोभ में पड़कर अपना राज्य भी गँवाएगा और प्राण भी। मर्यादा का उल्लंघन कर यह मूढ़ अपने हितैषी गुरुजनों की उपेक्षा कर सभा को छोड़कर चला गया है।

धृतराष्ट्र की कल्पना में द्यूत के पूर्व के दिन घूम गए। इंद्रप्रस्थ से लौटकर दुर्योधन कैसे एड़ियाँ रगड़-रगड़कर उनके सम्मुख रोया था। युधिष्ठिर की संपत्ति देख आने के पश्चात् उसको रात को नींद नहीं आती थी। वह उस सारी संपत्ति पर अधिकार करना चाहता था। वह लोभ ही तो था। वह संपत्ति भी उसे मिल गई तो फिर पांडवों को अपमानित करने का क्या औचित्य था। उस समय दुर्योधन और उसके मित्रों को धर्म-बंधन में बँधे असहाय पांडवों को अपमानित ही नहीं किया था उसने। वस्तुत: अपने मन में छिपे गुप्त काम को ही सार्वजनिक रूप से प्रकट किया था उसने। लोभ, अहंकार और काम की विकृतियों ने उसकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी थी। अपना हित-अहित भी सोच नहीं पाया वह। उसे तो जो हुआ सो हुआ, धृतराष्ट्र को क्या हुआ था? उन्होंने तो न द्रौपदी का रूप देखा था, न युधिष्ठिर की संपत्ति। क्यों सहमत होते चले गए वे दुर्योधन से। उनका पुत्र-मोह उनकी बुद्धि भ्रष्ट कर देता है। जब वह उनके सम्मुख रोने लगता है, हठ करता है, एड़ियाँ रगड़ता है, प्राण देने की धमकी देता है, तो वे वह सब कुछ करने को सहमत हो जाते हैं, जो वह चाहता है। उसके उस अधर्म की रक्षा वे ही तो कर रहे हैं यह उनका पुत्र-मोह ही है, या सत्ता का मद चढ़ जाता है उनको और वे भी विकृतियों में सुख अनुभव करने लगते हैं? वे असहाय थे अपने पुत्र की सत्ता के सम्मुख अथवा द्रौपदी का निर्लज्ज अपमान होते जान तथा पांडवों को असहाय देख उन्हें अपनी सत्ता का अनुभव होने लगा था? धृतराष्ट्र ने कहा, अपने इस हठी पुत्र को समझाओ गांधारी। न किसी की मानता है, न किसी की सुनता है। सभा से ही उठकर चला गया है।

पर शायद धृतराष्ट्र लोगों को दिखाने के लिए कोई नाटक ही करना चाहते हैं। उन्हें दुर्योधन की इस दस्युवृत्ति में अपनी शक्ति की अनुभूति होती है। यदि सचमुच पांडवों को उनका राज्य दे दिया गया और वे शक्तिशाली हो गए, तो कौन जाने वे अपना वचन पूरा करें न करे। महाराज धृतराष्ट्र ने तो आज तक कोई वचन पूरा करने के लिए दिया ही नहीं, तो वे यह आशा कैसे कर सकते हैं कि कोई अपना वचन पूरा करेगा। यदि दुर्योधन को समझाना ही चाहते, तो आज तक उन्हें दुर्योधन को समझाने का समय नहीं मिला था क्या?

तब विदुरजी दीर्घदर्शिनी गान्धारीको सभामें ले आये। उससे धृतराष्ट्रने कहा, गान्धारी। तुम्हारा यह दुष्ट पुत्र मेरी बात नहीं मानता। इसने अशिष्ट पुरुषोंके समान सब मर्यादा छोड़ दी है। देखो, वह हितैषियोंकी बात न मानकर इस समय अपने पापी और दुष्ट साथियोंके साथ सभासे चला गया है।

गांधारी आयी और बोली, जो इसप्रकार... किसे समझाऊँ? दुर्योधन सभा में है क्या? धृतराष्ट्र ने कहा, नहीं। वह सभा छोड़कर चला गया है। विदुर। बुलाओ उसको। उससे कहो कि मेरे आदेश और अपनी माता की आज्ञा से यहाँ आए और देवी गांधारी की बात सुने। विदुर चले गए। वे जानते थे कि दुर्योधन अपने मंत्रियों के साथ सभाभवन के अपने कक्ष में होगा।

पतिकी यह बात सुनकर यशस्विनी गान्धारीने कहा- राजन। आप पुत्रके मोहमें फँसे हुए हैं, इसलिये इस विषयमें तो आप ही

अधिक दोषी हैं। आप यह जानकर भी कि दुर्योधन बड़ा पापी है, उसीकी बुद्धिके पीछे चलते रहे हैं। दुर्योधनको तो काम, क्रोध और लोभने अपने चंगुलमें फँसा रक्खा है। अब आप बलात्कारसे भी उसे इस मार्गसे नहीं हटा सकेंगे। आपने इस मूर्ख, दुरात्मा, कुसङ्गी और लोभी पुत्रको बिना कुछ सोचे-समझे राज्यकी बागडोर सँभला दी; उसीका आप यह फल भोग रहे हैं। आप अपने घरमें जो फूट पड़ रही है, उसकी उपेक्षा क्यों करते हैं? इस तरह स्वजनोंके फूटनेपर तो शत्रुलोग आपकी हँसी करेंगे। देखिये, यदि साम या भेदसे ही विपत्ति टल सकती हो तो कोई भी बुद्धिमान् स्वजनोंके दण्डका प्रयोग क्यों करेगा?

इसके बाद राजा धृतराष्ट्र और गान्धारीके कहनेसे विदुरजी दुर्योधनको फिर सभामें लिवा लाये। दुर्योधनकी आँखे क्रोधसे लाल हो रही थी और वह सर्पके समान फुफकारें-सी भर रहा था। इस समय माता क्या कहती है- यह सुननेके लिये फिर राजसभामें आ गया। दुर्योधन बोला, क्या कहना चाहती हैं माता? तब गान्धारीने दुर्योधनको फटकारकर सन्धि करनेके लिये इस प्रकार कहा। पुत्र दुर्योधन। अपने इन सुहृदों की बात मान लो। तुम संसार को जीतना चाहते हो, किंतु उससे पहले तुम्हें अपने मन को जीतना चाहिए। कोई भी अपनी इच्छा मात्र से न तो राज्य प्राप्त कर सकता है, न उसकी रक्षा और न उसका उपभोग। पहले अपने काम और क्रोध को जीतो पुत्र। तब राज्य की बात सोचना। दूसरों पर शासन करने से पहले स्वयं पर शासन करना पड़ता है। गांधारी बोली तुम जिनके बल पर युद्ध जीतने की कामना किए बैठे हो, उन पितृव्य भीष्म, आचार्य द्रोण तथा कृपाचार्य को पांडव भी उतने ही प्रिय हैं, जितने तुम। वे राज्य से अधिक महत्व धर्म को देते हैं। वे तुम्हारी सेना में खड़े भी हो जाएँगे तो वहाँ उनका तन ही होगा, उनका मन निश्चित रूप से पांडवों के पक्ष में खड़ा होगा। इस संसार में केवल लोभ से कोई उपलब्धि नहीं होती। लोभ से कुछ भी सिद्ध होनेवाला नहीं है। तुम मेरी बात मानो। बेटा दुर्योधन। मेरी यह बात सुनो। इससे तुम्हारा और तुम्हारी संतानका हित होगा तथा भविष्यमें भी तुम्हें सुख मिलेगा। तुमसे तुम्हारे पिता, पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और विदुर जो बात कही है उसे तुम स्वीकार कर लो। यदि तुम पाण्डवोंसे सन्धि कर लोगे तो, सच मानो, इससे पितामह भीष्मकी, पिताश्रीकी, मेरी और द्रोणाचार्य आदि अपने हितैषियोंकी तुम्हारे द्वारा बड़ी सेवा होगी। राज्यको पाना, बचाना और भोगना अपने वशकी बात नहीं है। जो पुरुष जितेन्द्रिय होता है, वही राज्यकी रक्षा कर सकता है। काम और क्रोध तो मनुष्यको अर्थसे च्युत कर देते हैं। इन दोनों शत्रुओंको जीतकर तो राजा सारी पृथ्वीको जीत सकता है। जिस प्रकार उद्दण्ड घोड़े मार्गहीमें मूर्ख सारथीको मार डालते हैं, उसी प्रकार यदि इन्द्रियोंको काबूमें न रक्खा जाय तो वे मनुष्यका नाश करनेके लिये भी पर्याप्त हैं। जो पुरुष पहले अपने मनको जीत लेता है, उसकी अपने मन्त्रियों और शत्रुओंको जीतने की इच्छा भी व्यर्थ नहीं जाती। इस प्रकार इन्द्रियां जिसके वशमें हैं, मन्त्रियोंपर जिसका अधिकार है, अपराधियोंको जो दण्ड दे सकता है और जो सब काम सोच-समझकर करता है उसके पास चिरकालतक लक्ष्मी बनी रहती है। तात। भीष्म और द्रोणाचार्यने जो कुछ कहा है वह ठीक ही है। इसलिये तुम श्रीकृष्णकी शरण लो। यदि ये प्रसन्न रहेंगे तो दोनों ही पक्षोंका हित होगा। युद्ध करनेमें कल्याण नहीं है। उसमें धर्म और अर्थ ही नहीं हैं, तो सुख कहाँसे होगा? युद्धमें विजय मिल ही जायगी- ऐसा भी नहीं कहा जा सकता; इसलिये तुम युद्धमें मन मत लगाओ। यदि तुम अपने मन्त्रियोंसहित राज्य भोगना चाहते हो तो पाण्डवोंका जो न्यायोचित भाग है, वह उन्हें दे दो। पाण्डवोंको जो तेरह वर्षतक घरसे बाहर रक्खा गया, यह भी बड़ा अपराध हुआ है। अब सन्धि करके तुम इसका मार्जन कर दो। तुम जो पाण्डवोंका भाग भी हड़पना चाहते हो, वैसा करनेकी तुम्हारी शक्ति नहीं है। और ये कर्ण तथा दु:शासन भी ऐसा नहीं कर सकेंगे। तुम्हारा जो ऐसा विचार है कि भीष्म, द्रोण और कृप आदि महारथी अपनी पूरी शक्तिसे तुम्हारी ओरसे युद्ध करेंगे- यह भी सम्भव नहीं है; क्योंकि इन आत्मज्ञोंकी दृष्टिमें तो तुम्हारा और पाण्डवोंका

समान स्थान है। इसलिये इनके लिये तुम दोनोंका राज्य और प्रेम भी समान ही है तथा धर्मको ये उससे अधिक मानते हैं। इस राज्यका अन्न खानेके कारण ये अपने प्राण भले ही त्याग दें किंतु राजा युधिष्ठिरकी ओर कभी टेढ़ी दृष्टि नहीं करेंगे। तात। संसारमें लोभ करनेसे किसीको सम्पत्ति नहीं मिलती। अत: तुम लोभ छोड़ दो और पाण्डवोंसे सन्धि कर लो।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय माताके कहे हुए इन नीतियुक्त वाक्योंपर दुर्योधनने कुछ भी ध्यान नहीं दिया और बोला, वासुदेव यह शान्ति प्रस्ताव मुझे स्वीकार नहीं है। भीष्म बोले- सोच लेते पुत्र। दुर्योधन बोला, इसमें सोचना क्या है पितामह? प्रण के अनुसार उन्होने १२ वर्ष का वनवास स्वीकार कर लेना चाहिये था और वो राज मांग रहे है। द्रोण बोले, अपनी नाद की आंच को धीमी करो दुर्योधन। जैसे कुल्हाडी वृक्ष को काट कर गिरा देती है वैसे ही व्यक्ति का कपट स्वयं कुल्हाडी बनकर उसे काटता है। भीष्म बोले- और यह भी देखो वत्स वासुदेव मित्र की भाषा बोल रहे है। दुर्योधन बोला, और तो मित्र की भाषा यह कह रही थी कि मैं अपना आधा राज्य उन्हे दे दूं। यदि यह मित्रता है तो मुझे शत्रुता की परिभाषा समझाइये पितामह। कृपाचार्य बोले, शत्रुता वो है युवराज जो किसी यौद्धा को किसी अनुचित युद्ध के लिये भडकाये। जो कुछ वासुदेव ने कहा वो ही धर्म है। दुर्योधन बोले- इन्द्रप्रस्थ तो मैं कभी नहीं दूंगा कुलगुरु। हां यदि वासुदेव के पास और कोई प्रस्ताव हो तो मैं उस पर विचार कर सकता हूं। कृष्ण बोले, आप लोग दुर्योधन के शुभचिन्तक हैं उसे समझाइये क्योंकि भरतवंश के यौद्धाओं को इस नासमझ की महत्वाकांक्षाओं की बलि नहीं चढ़ाया जा सकता। और यदि प्रस्ताव ही का प्रश्न है युवराज तो मेरे पास एक और भी प्रस्ताव है। यदि दुर्योधन इन्द्रप्रस्थ रखना चाहे महाराज तो अवश्य रख ले। मैं पांडवों की ओर से पांच गांव मांग रहा हूं। अवस्थल, वारणावत, वृकस्थल, माकन्दि, व एक और कोई गांव। केवल पांच गांव। हे नरेश यदि ये पांच गांव भी उन्हे दे दे तो पांडव उन्हे पाकर सन्तुष्ट हो जायेंगे। दुर्योधन बोला, पांच गांव। वो भी उन पांडवों को मैं उन पांडवों को सूई की नौक भर भूमि भी नहीं दूंगा।

सारी राजसभा मेरी यह निर्भीक वाणी सुने, पांडवों को हस्तिनापुर, इंद्रप्रस्थ अथवा किन्हीं पाँच ग्रामों का राज्य तो क्या मेरे जीतेजी उन्हें सूई की नोक बराबर भूमि भी नहीं मिल सकती। वे युद्ध के लिए सैन्य संचय कर रहे हैं तो हम भी प्रस्तुत हैं। अब शांतिदूतों का भेजना बंद करें और जो निर्णय करना है, युद्ध क्षेत्र में कर लें?

कृष्ण बोले, हे दुर्योधन अपनी माता शिवभक्तिनी गान्धारी को अपने शव पर विलाप करने क्यों आमंत्रित कर रहे हो? दुर्योधन बोला, वासुदेव यदि तुम दूत न रहे होते तो मैं तुम्हारे यह कहने पर... भीष्म बोले- दुर्योधन। कृष्ण बोले, इन्हे बोलने दीजिये पितामह बोलने दीजिये। यदि मैं दूत न होता तो क्या कर लेते युवराज? दुर्योधन बोले- मेरी माताश्री की बात करने पर मैं तुम्हारी जीभ खींच लेता और तुम्हे बन्दी बनाकर कारागृह में डाल देता। कृष्ण बोले- क्या राजदूत को बन्दी बनाओगे युवराज? उस अतिथि को बन्दी बनाओगे जिसके स्वागत के लिये कुरुश्रेष्ठ गंगापुत्र भीष्म और सर्वश्रेष्ठ द्रोण और कृप गये थे। हे अहंकारी दुर्योधन यदि हमें बन्दी बना सकते हो तो अवश्य प्रयत्न करके देखो। यह कहकर वासुदेव उठ खडे होकर जाने लगे उसी समय दुर्योधन ने आदेश दिया, सैनिक इस ग्वाले को बन्दी बना लो।

शकुनि बोले- अरे मूर्ख क्या कर रहा है? इसके बाद विदुरजी बोले- दुर्योधन। तुम मेरी बात सुनो। देखो, श्रीकृष्णको कैद करनेका विचार नरकासुरने भी किया था; किंतु सब दानवोंके साथ मिलकर भी वह ऐसा नहीं कर सका। फिर तुम इन्हें अपने बलबूतेपर पकड़नेका साहस कैसे करते हो? इन्होंने बाल्यावस्थामें ही पूतना और बकासुरको मार डाला था, गोवर्धन पर्वतको हाथपर उठा लिया था तथा अरिष्टासुर, धेनुकासुर, चाणूर, केशी और कंसको भी धूलमें मिला दिया था। इनके सिवा ये जरासन्ध, दन्तवक्र, शिशुपाल, बाणासुर तथा और भी अनेकों राजाओंको नीचा दिखा चुके हैं। साक्षात् वरुण, अग्नि और इन्द्र

भी इनसे हार मान चुके हैं। अपने अन्य अवतारोंमें ये मधु-कैटभ और हयग्रीवादि अनेकों दैत्योंको पछाड़ चुके हैं। ये सम्पूर्ण प्रवृत्तियोंके प्रेरक हैं, किंतु स्वयं किसीकी भी प्रेरणासे कोई काम नहीं करते। ये ही सकल पुरुषार्थोंके कारण हैं। ये जो कुछ करना चाहें, वही काम अनायास कर सकते हैं। तुम्हें इनके प्रभावका पता नहीं है। देखो, यदि तुम इनका तिरस्कार करनेका साहस करोगे तो उसी प्रकार तुम्हारा नाम-निशान मिट जायगा, जैसे अग्निमें गिरकर पतंगा नष्ट हो जाता है।

विदुरका वक्तव्य समाप्त होनेपर भगवान् कृष्णने कहा- दुर्योधन। तुम जो अज्ञानवश यह समझते हो कि मैं अकेला हूँ और मुझे दबाकर कैद करना चाहते हो, सो याद रक्खो, समस्त पाण्डव और वृष्णि तथा अन्धकवंशी यादव भी यहीं है। वे ही नहीं, आदित्य, रुद्र, वसु और समस्त महर्षिगण भी यहीं मौजूद हैं। ऐसा कहकर शत्रुदमन श्रीकृष्णने अट्टहास किया। बस, तुरंत ही उनके सब अङ्गोंमें बिजलीकी-सी कान्तिवाले अङ्गुष्ठाकार सब देवता दिखायी देने लगे। उनके ललाटदेशमें ब्रह्मा, वक्षःस्थलमें रुद्र, भुजाओंमें लोकपाल और मुखमें अग्निदेव थे। आदित्य, साध्य, वसु, अश्विनीकुमार, इन्द्रके सहित मरुद्गण, विश्वेदेव, तथा यक्ष, गन्धर्व और राक्षस- ये सब उनके शरीरसे अभिन्न जान पड़ते थे। उनकी दोनों भुजाओंसे बलभद्र और अर्जुन प्रकट हुए। उनमें धनुर्धर अर्जुन दाहिनी ओर और हलधर बलराम बायीं ओर थे। भीम, युधिष्ठिर और नकुल-सहदेव उनके पृष्ठभागमें थे तथा प्रद्युम्नादि अन्धक और वृष्णिवंशी यादव अस्त्र-शस्त्र लिये उनके आगे दीख रहे थे। उस समय श्रीकृष्णके अनेकों भुजाएँ दिखायी देती थीं। उनमें वे शफ, चक्र, गदा, शक्ति, शार्ङ्ग धनुष, हल और नन्दक खड्ग लिये हुए थे। उनके नेत्र, नासिका और कर्णरन्ध्रोंसे बड़ी भीषण आगकी लपटें तथा रोमकूपोंमेंसे सूर्यकी-सी किरणें निकल रहीं थीं।

उसी समय कृष्ण ने उस राजसभा में अपना विराट विश्व रूप दिखाया उसके तेज से सबकी आंखे चकाचौंध हो गई। देखने के लिए दृष्टि की आवश्यकता होती है और दृष्टि न नेत्रों में होती है, न सूर्य की किरणों में। दृष्टि तो सृष्टा की वह शक्ति है जिसके माध्यम से ये आँखें देखती हैं। उसे सिर्फ भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य ने, विदुर ने उस रूप को देखा। उठकर इन सभी महात्माओं ने कृष्ण को प्रणाम किया। दुर्योधन बोला, ये तो बाजीगर और नट और जादूगरों के काम है। वो भी इस तरह के रूप बना सकते हैं। बहुत से राजा लोग और राजसभा के सदस्य जो वहाँ बैठे थे कृष्ण के उस विराट स्वरूप को देखकर भयभीत हो राजसभा छोड़कर भाग गये।

**विश्व अब दिखला रहे विश्वम्भर भगवान, आंखे जिनके पास हो लेकिन वो ही सकते पहिचान।**

श्रीकृष्णके इस भयंकर रूपको देखकर सब राजाओंने भयभीत होकर नेत्र मूँद लिये। केवल द्रोणाचार्य, भीष्म, विदुर, सञ्जय और ऋषिलोग ही उसका दर्शन कर सके; क्योंकि भगवान्‌ने उन्हें दिव्य दृष्टि दे दी थी। सभाभवनमें भगवान्‌का यह अद्भुत कृत्य देखकर देवताओंकी दुन्दुभियोंका शब्द होने लगा तथा आकाशसे पुष्पोंकी झड़ी लग गयी। फिर भगवान्‌ने उस स्वरूपको तथा अपनी दिव्य, अद्भुत और चित्र-विचित्र मायाको समेट लिया। इसके पश्चात् वे ऋषियोंसे आज्ञा ले सात्यकि और कृतवर्माका हाथ पकड़े सभाभवनसे चल दिये। उनके चलते ही नारदादि ऋषि भी अन्तर्धान हो गये।

श्रीकृष्णको जाते देख राजाओंके सहित सब कौरव भी उनके पीछे-पीछे चलने लगे। किंतु श्रीकृष्णने उन राजाओंकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इतनेहीमें दारुक उनका दिव्य रथ सजाकर ले आया। भगवान् रथपर सवार हुए। उनके साथ ही महारथी कृतवर्मा भी चढ़ता दिखायी दिया। इसप्रकार जब वे जाने लगे तो महाराज धृतराष्ट्रने कहा, जनार्दन। पुत्रोंपर मेरा बल कितना काम करता है- यह आपने प्रत्यक्ष ही देख लिया। मैं तो चाहता हूँ कि किसी प्रकार कौरव-पाण्डवोंमें मेल हो जाय और इसके लिये प्रयत्न भी करता हूँ। किंतु अब मेरी दशा देखकर आप मुझपर संदेह न करें।

इसपर भगवान कृष्णने राजा धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य, भीष्म, विदुर, कृपाचार्य और बाल्हीकसे कहा- इस समय कौरवोंकी

सभामें जो कुछ हुआ है, वह आपने प्रत्यक्ष देख लिया तथा यह बात भी आप सबके सामनेहीकी है कि मन्दबुद्धि दुर्योधन किस प्रकार फुनककर सभासे चला गया था। महाराज धृतराष्ट्र भी इस विषयमें अपनेको असमर्थ बता रहे हैं। अत: अब मैं आप सबसे आज्ञा चाहता हूँ और राजा युधिष्ठिरके पास जाता हूँ। इस प्रकार आज्ञा लेकर जब भगवान् रथमें चढ़कर चलने लगे तो भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर, धृतराष्ट्र, बाल्हीक, अश्वत्थामा, विकर्ण और युयुत्सु आदि कौरव वीर कुछ दूर उनके पीछे गये। इसके बाद उन सबके देखते-देखते भगवान अपनी बुआ कुन्तीसे मिलने गये।

## १९) कृष्ण की दुर्योधन के साथ संधि वार्ता विफल व कुन्ती का युधिष्ठिर को सन्देश

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय भगवान ने विदुर के आवास में जाकर अपनी बुआ कुन्तीके चरण स्पर्श किए तथा कौरवों की सभा में जो कुछ हुआ वह विस्तार से सुनाया। कृष्ण ने और ऋषियोंने तरह-तरह की युक्तियोंसे अनेकों माननेयोग्य बातें कही। परन्तु दुर्योधन संधि के लिए तैयार नहीं हुआ और कृष्ण ने कुन्ती को पूरी कथा इस तरह विस्तार से सुनायी।

वृष्णिकुलनन्दन श्रीकृष्ण क्रोध में भरे हुए द्रौपदी के पास से चले थे और वैसे ही हस्तिनापुर में कौरवसभा में जा पहुँचे। कुशल कूटनीतिज्ञ एवं प्रकाण्ड राजनीतिज्ञ की भाँति उन्होंने साम, दाम, भेद- तीनों उपायों से कौरवपुत्रों को सत्पथ पर लाने का प्रयास किया; किन्तु विनाशकाले विपरीत बुद्धि:। दुर्योधन ने हठवादिता न छोड़ी। मूरख टेक गही सो गही। श्रीकृष्ण का राजदूतत्व असफल हुआ। वे विक्षुब्ध थे।

वे विक्षुब्ध थे किन्तु निराश नहीं। वे तो प्रारम्भ से ही युद्ध के पक्ष में थे। इसलिए कि युद्ध में ही पाण्डवों का सम्मान था। पांचाली के शब्द वे क्षणभर विस्मृत न कर पा रहे थे। उसने तो स्पष्ट शब्दों में चुनौती दी थी कि लीलामय की सृष्टि में कहीं न्याय नहीं है, दुष्ट जन फलते-फूलते हैं और साधुजन यातनाओं में घुलते हैं। यह बात लीलामय के मर्म को भेद गयी थी और इसलिए सन्धिवार्ता विफल हो जाने से वे मन-ही-मन सन्तुष्ट थे। यह दुष्टसमूह शीघ्र ही नाशवान है। दुर्योधन, दु:शासन, भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि के जगमगाते किरीटयुक्त मस्तकों पर श्रीकृष्ण ने अपनी योगदृष्टि से मृत्यु की काली छाया देख ली थी। उन्हें सन्धिवार्ता के विफल होने का क्षोभ किंचित मात्र न था। किन्तु दुर्योधन के धृष्टतापूर्ण व्यवहार से वे कुपित हो उठकर चले आये थे अपनी पूज्या अपनी बुआ वृष्णि-कुलनन्दिनी आर्या कुन्ती से मिलने।

पाण्डुपत्नी पृथा विगत तेरह वर्षों से पुत्रों एवं पुत्रवधू से विलग थी। हस्तिनापुर में उन्हें रहना प्रतिपल दंश देता था। निपट विवशता में वे वहाँ थीं। उन्हें पाण्डवों के असीम कष्टों के समाचार घूम-फिरकर मिलते और उनका मन हाहाकार कर उठता। प्रारम्भ से ही पांचाली के प्रति अपने मन में वे अथाह सहानुभूति पाले हुए थी, तब से जब वह अल्पवयस अत्यन्त भोली नववधू बनकर अर्जुन की पत्नी के रूप में उनके घर आयी थी। कुन्ती उसके प्रति किये हुए अपने अन्याय से स्वयं को कभी मुक्त न कर पाती, स्वयं को कभी क्षमा न कर पायी। वह अबोध बाला उन्हीं के कारण विषम स्थिति में पड़ गयी थी। कुन्ती उसके हृदय की वेदना भली भाँति समझती रही थी। धनंजय के प्रति उसके अनुराग को उन्होंने अत्यन्त स्वाभाविक पाया। उन्होंने सदा पांचाली की रक्षा की। उसके ऊपर उनकी ममता बरस पड़ती। जिस कौशल और चतुराई से कालान्तर में उसने पाँच पतियों की पत्नी की अनोखी भूमिका शिरोधार्य की थी, देवी कुन्ती मुग्ध हो गयी थीं। जिस प्रकार उसने इन्द्रप्रस्थ के राज्य-संचालन को सँभाला था, उस पर कुन्ती मोहित थी।

और उसी सर्वगुणसम्पन्न उनकी लक्ष्मी-सी राजवधू का जब कुरु-राजसभा में केशकर्षण किया गया तो वे हाहाकार कर उठी। और जब चीरहरण पर वे निकृष्ट, अधम कौरव उतर आये- तो वे विकल हो गोविन्द-गोविन्द पुकार उठी थी। अपनी

लाड़ली पुत्रवधू का उस गृद्धसभा में कुररी-सा विलाप सुन उनका मर्म जैसे शत-शत खण्डों में टूटकर बिखर जाना चाहता था। वही सुकुमार राजपुत्री फिर बारह वर्ष काम्यक वनादि में पर्णशाला बनाकर रही थी। माता कुन्ती व्याकुल हो परमात्मा से प्रार्थना करती- द्रौपदी के कष्टों का निवारण करो। कहीं से वह उन्हें अपने पुत्रों से भी अधिक प्रिय थी। पुत्रों की वे चिन्ता न करती, किन्तु पुत्रवधू की चिन्ता में घुली जाती। उन्होंने जयद्रथ द्वारा द्रौपदी का अपहरण सुना। उन्होंने उसका सैरन्ध्री बनकर मत्स्य देश की महारानी सुदेष्णा की परिचर्या करना सुना, वे तिलमिला उठी। वे स्वयं राजपुत्री थी। राजपत्नी थी, राजमाता थी। वे जानती थी कि याज्ञसेनी की मनोदशा कैसी होगी। वे जानती थी कि वह परम तेजस्विनी किस सहनशीलता, साहस और धीरज से निरन्तर अन्याय के विषघूँटों का पान करती रही थी। उसका अपमान पृथा को अपना अपमान लगने लगा था। उन्होंने कीचक के दुष्प्रयासों के विषय में भी सुना तो उनका हृदय उमड़ आया अपनी आरक्षिता कोमल पुत्रवधू के लिए। वर्षों हो गये पुत्रों और पुत्रवधू से विलग हुए। कैसे उन्होंने ये दिन काटे हैं कुरु-राजप्रासाद में, वे ही इस वेदना को जानती थी। अब जब ये युगकल्प-से तेरह वर्ष व्यतीत हो गये तो वे आतुर थी पुत्रवधू को अपने अंक में ले लेने के लिए। अपने वक्ष में परम दुखी पांचाली को छिपा लेने के लिए। अपने हृदय से लगाकर उसे शान्ति देने के लिए। और इसलिए जब श्रीकृष्ण उनसे मिलने आये, तो वे पाण्डवों की माता नहीं, जैसे स्वयं द्रौपदी की माँ के रूप में उनके समक्ष खड़ी थी।

श्रीकृष्ण को समक्ष पाकर अविरल अश्रुधारा बह चली। उन्होंने स्वयं क्या कम कष्ट झेले थे। क्या कम अपमान सहा था। पुत्र और पुत्रवधू जिन लोगों के कारण सुख-वैभवहीन जीवन व्यतीत कर रहे थे, वे स्वयं उन्हीं दुराचारी कौरवों की राजधानी में थी। उन्हीं के अन्नपिण्ड पर जीवित थी। स्वाभिमानी तेजयुक्त पृथा ने कैसे-कैसे पल-पल वहाँ काटे हैं। श्रीकृष्ण ने उन्हें पाण्डवों के समाचार दिये। यह भी सूचना दी कि सन्धिवार्ता विफल हो गयी है, और पाण्डवों की पाँच ग्राम की याचना भी कौरवों द्वारा ठुकरा दी गयी है। चलते समय श्रीकृष्ण ने अपनी बुआ कुन्ती से पूछा कि क्या वे कुछ सन्देश अपने पुत्रों को देना चाहेंगी? माता कुन्ती का वृष्णिवंशी रक्त खौल उठा। वर्षों की सुलगती अग्नि समिधा पाकर हाहामयी बन उठी। प्रचण्ड वाग्धारा उस महिमामयी माँ भारती के मुख से नि:सृत हो चली।

जो होनेवाला होता है, वह होकर ही रहता है। भगवान्‌की इच्छा, जीवोंका प्रारब्ध और प्रकृतिकी अनुल्लंघनीय धाराका किसी प्रकार उल्लंघन नहीं किया जा सकता। सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म, शीत-उष्ण और पाप-पुण्यका किसी प्रकार मेल नहीं हो सकता। न्याय और अन्यायमें कभी समझौता नहीं हो सकता। ये सब बातें अटल हैं? इनके विपरीत जो चेष्टा करते हैं, वे कभी सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। पाण्डवके जीवनमें हम यह बात बहुत ही स्पष्टरूपसे देखते हैं कि उनका कौरवोंके साथ मेल करानेके लिये बड़े-बड़े महापुरुषोंने प्रयत्न किये, परंतु वह सफल नहीं हुए। ऐसा क्यों हुआ? इसका उत्तर यही है कि दैवी सम्पत्ति और आसुरी सम्पत्तिका समन्वय कभी हो ही नहीं सकता। यदि कभी होता हुआ-सा दीखता है तो वह क्षणिक होता है और फिर टूटते देर नहीं लगती।

युद्ध की तैयारियां पूरी हो रही थी। फिर भी सखा कृष्ण स्वयं युधिष्ठिर का अनुरोध मानकर हस्तिनापुर गए। सिर्फ पांच गांव मांगे थे पांचों पांडवों के लिए। बस, इसी में वे धर्म-बल से आर्यावर्त्त में शांति प्रतिष्ठा में लगे रहेंगे। परन्तु दुराचारी दुर्योधन ने पांडवों की वीरता जानते हुए भी कर्ण के बल पर संधि प्रस्ताव को ठुकरा दिया। कृष्ण का अपमान तक करने से भी वह नहीं चूका। कर्ण का परामर्श था- एक बार पांच गांव उन्हें दे दिए तो बुद्धिमान सखा कृष्ण के कूट-कपट से हस्तिनापुर का राजपद पांडवों के हाथ जाने में देर नहीं लगेगी। अत: उन्हें हस्तिनापुर से सूच्यग्र भूमि भी नहीं देनी। सखा कृष्ण लौट आये। महासमर की बात चारों ओर फैल गई। आर्यावर्त्त स्तब्ध था। धर्म की जय सुनिश्चित है, पर युद्ध की

भयावह परिणति कौन नहीं जानता? कौरवों के स्वार्थ और व्यक्तिगत लाभ के कारण सारा आर्यावर्त्त संकट में है, युद्ध की विभीषिका में घसीटा जा रहा है। कृष्ण ने बारंबार धृतराष्ट्र को समझाया, उन्हें ही इस समय के लिए दायी किया। अंधे राजा औरों के भले-बुरे में जैसे अंधे थे, पुत्रस्नेह में भी वैसे ही अंधे हैं। यही थी पांडवों के दु:ख की बात। न्यायपूर्ण हक में बाधा थी। धृतराष्ट्र चाहेंगे तो यह युद्ध टल सकता है। पुत्र की जिद, कुटिल प्रकृति तो धृतराष्ट्र का बहाना भर है। इतना सब कहने पर भी कृष्ण का संधि प्रस्ताव ठुकरा दिया। वे युद्ध घोषणा कर हस्तिनापुर की सभा से विदा हो लौट आये।

चिरंजीवी हो पुत्र। कुंती ने कृष्ण के सिर पर हाथ रखा, कुरुओं की राजसभा से आ रहे हो?

कृष्ण बोले हाँ बुआ। राजसभा में जो कुछ हुआ, वह सब आपको महात्मा विदुर विस्तार से बता देंगे। किंतु एक बात मैं भी कहना चाहता हूँ। कुन्ती बोली, क्या है पुत्र? कृष्ण बोले, अब युद्ध होकर रहेगा। उसे कोई नहीं रोक सकता। अच्छा हो कि आप मेरे साथ उपप्लव्य चलें। युद्ध की स्थिति में आपका यहाँ रहना ठीक नहीं है।

कुंती बोली, प्रश्न तो यह है कि क्या युधिष्ठिर ने भी युद्ध का निश्चय कर लिया है। कृष्ण बोले, युद्ध तो होगा ही। धर्मराज चाहें तो, धर्मराज न चाहें तो भी। कुंती बोली, मुझे संदेह है पुत्र। फिर भी, मुझे तो किसी भी स्थिति में यहीं रहना है। वनवास के लिए विदा करते हुए, मैंने युधिष्ठिर से यही कहा था कि वह माने कि उसके राज्य के साथ, उसकी माता भी हस्तिनापुर में बंदिनी है। वह युद्ध कर, अपनी राज्यलक्ष्मी तथा अपनी माता-दोनों को ही मुक्त करा कर ले जाए।

कृष्ण बोले, आपका मन अपने पुत्रों से मिलने का नहीं होता बुआ?

कुंती ने उत्तर दिया, क्यों नहीं होता। किंतु अपनी संतान के हित के लिए ही अनेक बार माता-पिता को तपना पड़ता है। मैं उनके पास चली गई , तो जाने युधिष्ठिर युद्ध करे, न करे। कृष्ण बोले, युद्ध तो अब होगा ही, इसकी आश्वस्ति आप मुझसे लें। अधर्म की खेती पक चुकी है उसकी कटाई अब होगी ही। कुन्ती बोली, तो पुत्र। मेरा हस्तिनापुर में रहना, अब भी आवश्यक है। कृष्ण बोले, क्यों बुआ?

कुन्ती धीरे से बोली, दो कारण हैं। एक कारण तो दुर्योधन को युद्ध के लिए अनवरत उत्तेजना देना है। तुमने सुना होगा, पिछले कुछ समय से मैं अपना एकांतवास त्याग कर, कुरुओं के सारे उत्सवों, सभा-समारोहों में सम्मिलित होने लगी हूँ। मैं दुर्योधन के प्रासाद में भी आती-जाती हूँ। वह मुझे देखता है और उसे मेरे पुत्रों का स्मरण हो आता है। उनके साथ किया गया अन्याय भी उसकी स्मृति में जागता होगा, और उनके प्रति द्वेष और शत्रुता भी। मैं चाहती हूँ कि अपने क्षोभ में, वह किसी दिन मेरी हत्या कर दे, ताकि युधिष्ठिर का धर्म जागे। एक और कारण यह है कृष्ण कि युद्ध की स्थिति में मैं दुर्योधन को कुछ दुर्बल भी करना चाहती हूँ। उसके लिए मेरा हस्तिनापुर में बने रहना बहुत आवश्यक है। कृष्ण बोले, तो मैं चलता हूँ बुआ। धर्मराज के लिए कोई संदेश हो तो कहें। अपने पुत्रों के लिए कोई आदेश; अपनी पुत्रवधू के लिए कोई आशीष।

कुंती ने कुछ क्षणों तक शांत दृष्टि से कृष्ण की ओर देखा और फिर जैसे उनके हृदय में आक्रोश का कोई उत्स फूट निकला... मेरे पुत्र युधिष्ठिर से कहना कि वह धर्मराज है, इसलिए वह धर्म की रट ही न लगाए, उसे समझने का प्रयत्न भी करे। वेद के अर्थ को न जाननेवाले अज्ञ वेदपाठी की सारी बुद्धि केवल मंत्रों की आवृत्ति में ही नष्ट हो जाती है, वैसे ही युधिष्ठिर की बुद्धि केवल शांति को बनाए रखने में ही नष्ट हो रही है। वैश्य का धर्म केवल शांति तक सीमित रहता है; किंतु क्षत्रिय का धर्म युद्धक्षेत्र तक भी जाता है। युधिष्ठिर शांति-धर्म का पालन कर रहा है; और प्रजापालन रूपी धर्म की हानि कर रहा है। प्रजापालक के लिए, युद्धरूपी कठोर धर्म का भी निर्वाह करना पड़ता है। राजा दंड-नीति के प्रयोग में पूर्णत: न्याय से काम लेता है, तो जगत् में सत्य युग नामक उत्तम काल का आविर्भाव होता है। राजा का कारण काल है, अथवा

काल का कारण राजा है- ऐसा संदेह मन में नहीं उठना चाहिए। राजा ही काल का कारण है केशव। उससे कहना कि वह राजाओं तथा राजर्षियों का आचरण करे। भिक्षा का उसे निषेध है; कृषि भी उसके योग्य नहीं है। वह तो प्रजा को क्षति से त्राण देनेवाला क्षत्रिय है। उसे वैसा ही आचरण करना चाहिए। वह साम, दाम, दंड, भेद से किसी भी प्रकार अपने पैतृक राज्य का उद्धार करे। अपने बाहुबल से आजीविका अर्जित करे। राजधर्म के अनुसार युद्ध करे। अपने शत्रुओं का आनन्द न बढ़ाएं, उन्हें ताप दे। मैं, उसकी माता, उसे जन्म देकर भी अनाथा की भाँति, दूसरों के दिए, अन्नपिंड की आशा में आकाश की ओर दृष्टि लगाए रहती हूँ।

मधुसूदन। मेरे गोलोकवासी परम यशस्वी पति महाराज पाण्डु के पुत्रों को क्या हो गया है? उनका आचरण किसी भी वीर माता को पीड़ित एवं क्षुब्ध करनेवाला है। यही नहीं, वे जिस प्रकार का व्यवहार कर रहे हैं, वह उनके पराक्रमी पितृगण को पीड़ित करनेवाला ही नहीं, लज्जित करनेवाला भी है। अच्युत। मुझे विश्वास नहीं होता, ये वे ही वीर पाण्डव हैं जिन्होंने मेरी कुक्षि से जन्म लिया है? आज वे अपनी माता के लिए लज्जा की विषयवस्तु बन बैठे हैं।

नारायण। मेरा एक उपकार करना- तुम स्थिति सँभाल सकते हो। मेरे कहने से तुम युधिष्ठिर को क्षात्रधर्म में प्रवृत्त करो। युधिष्ठिर से कहना कि ब्रह्मा की भुजाओं से उत्पन्न क्षत्रिय होकर भी वे कैसे हैं जो स्वयं क्षत्रिय-बाहुबल का तिरस्कार कर रहे हैं? युधिष्ठिर श्रेष्ठ राजवंश में जन्म लेकर भी राजधर्म भुला बैठे हैं और याचना-धर्म का गान कर रहे हैं। वे अनुचित मार्ग पर जा रहे हैं अच्युत, उन्हें रोको। उन्हें रोको अच्युत। उन्हें स्मरण दिलाना कि यह भिक्षा-धर्म तो उनके पितृ-पितामहों ने उन्हें कभी नहीं सिखाया, न ही उनकी युधिष्ठिर से कभी ऐसी अपेक्षा रही थी। वे तेजस्वी इतिहास पुरुष पराक्रमी कर्मयोगी थे जो राजधर्म जानते थे... जिन्होंने बाहुबल से, अपने शौर्य से वसुन्धरा जीती थी। अपने उद्यम पर, बाहुबल पर उन्हें विश्वास था और उसी के आधार पर वे प्रजापालन करते थे। युधिष्ठिर को स्मरण दिलाना कि उनके पूज्य पितृश्री स्वर्गीय महाराज पाण्डु जगविख्यात धुरन्धर योद्धा थे जिन्होंने इस कुरुराज्य की समृद्धि की थी, और उन्हीं महामना पाण्डु के पुत्र होकर भी युधिष्ठिर कैसे आज राजधर्म से च्युत हो गये?

वार्ष्णेय। युधिष्ठिर का यह पतन मुझे प्रतिपल क्लेश देता है, यह तुम उन्हें बता देना। जिस मार्ग पर वे जा रहे हैं, उस मार्ग के लिए मैंने उन्हें कभी प्रेरित नहीं किया। न ही उनके पिता ने ऐसा आशीर्वाद दिया। न ही पितामह ने ऐसी इच्छा की थी। मैंने, स्वर्गीय महाराज पाण्डु ने तथा हमारे अन्य पूज्य पितामहों ने सदा शौर्य, बल, ओज एवं बुद्धि के लिए आशीर्वाद दिये थे। क्या हमारे ये आशीर्वाद मिथ्या हो जाएँगे? क्या हमारी समस्त आशाएँ हमारे पुत्र खण्डित कर देंगे? मैंने स्वप्न सँजोया था कि युधिष्ठिर अपने स्वर्गीय पिता के पदचिन्हों पर चलेंगे और इतिहास में एक परमवीर तेजस्वी सम्राट के रूप में विख्यात होंगे। मेरा स्वप्न पूर्णत: ध्वस्त करने का ही युधिष्ठिर ने सोचा है क्या?

श्रीकृष्ण। तुम तो स्वयं धर्माधर्म का अत्यन्त सूक्ष्मता से विचार कर लेते हो- बताओ, मेरा कथन क्या धर्मसंगत नहीं? तुम युधिष्ठिर को अपनी ओर से भी समझाना और मेरी भी भावनाओं को उन तक प्रेषित कर, मेरी ओर से भी समझाना। ये पाण्डुनन्दन क्या नहीं कर सकते? उनके पास शौर्य, बुद्धि, बल किसका अभाव है? फिर क्यों वे दूसरों के मुख निहार रहे हैं? क्यों वे जीविकाहीन बने बैठे हैं? यह कितनी लज्जा की बात है कि महाराज पाण्डु के पुत्र आज वृत्तिहीन हैं। यह स्थिति क्या दारुण क्लेशदायक व त्रासदायक नहीं?

अच्युत। वे पाँच ग्रामों की भिक्षा माँग रहे हैं दीन ब्राह्मणों की भाँति। जिन्हें दान देना चाहिए, वे दान की याचना कर रहे हैं। कैसी दुर्बुद्धि है उनकी? मैं सोच-सोचकर विकल हो उठती हूँ श्रीकृष्ण, कि एक तो युधिष्ठिर ने अपने स्वर्गीय पिता की राज्य-

सम्पत्ति द्यूतविलास में गँवा दी और अब उसका उद्धार करने को भी सचेत नहीं हो रहे। इतिहास और पुराणगाथाएँ भरी पड़ी हैं कि राजन्यों ने किस प्रकार अपने राज्य के लिए प्राणों का उत्सर्ग किया है। और मेरा ज्येष्ठ पुत्र ही दण्डनीति से विमुख हो अकर्मण्य बना बैठा है। युधिष्ठिर साम, दाम, भेद एवं दण्डरूपी प्राचीन राजसिद्धान्त भी विस्मृत कर गये। क्या उनका ध्यान अपनी परम दुखिता माता की ओर भी नहीं जाता? पाँच पुत्रों के होते हुए भी उनकी माता निराश्रित और अनाथा-सी दूसरों के अन्नपिण्ड पर जीवित है, यह सोचकर उनका शीश लज्जा से झुक नहीं जाता? उन्हें ग्लानि नहीं होती? उनका रक्त नहीं खौल उठता? इसी प्रकार क्या वे पितृऋण चुका रहे हैं? महान पिता के कायर पुत्र होकर वे पिता के पुण्य को भी क्षीण करना चाहते हैं? वार्ष्णेय। उनसे कहना कि वे बुद्धि से प्रेरित हों। राजधर्म के अनुसार अपनी खोयी प्रतिष्ठा प्राप्त करें, युद्ध करें- अन्यथा उनकी माता उन्हें क्षमा न कर सकेगी और इतिहास तथा उनके भावी वंशज उन्हें कायर कहेंगे, नपुंसक कहेंगे। वार्ष्णेय चकित थे। पृथा की अनोखी वक्तृत्वप्रतिभा का ऐसा परिचय कभी किसी ने न पाया था।

कुन्तीने कहा- केशव। मेरी ओरसे तुम राजा युधिष्ठिरसे कहना कि पृथ्वीका पालन करना तुम्हारा धर्म है। उसकी बड़ी हानि हो रही है। सो अब तुम इसे वृथा मत खोना। बेटा। क्षत्रियोंको प्रजापति ब्रह्माने अपनी भुजाओंसे उत्पन्न किया है, अत: उन्हें अपने बाहुबलसे ही आजीविका करनी चाहिये। पूर्वकालमें कुबेरने राजा मुचुकुन्दको यह सारी पृथ्वी दे दी थी, परंतु मुचुकुन्दने इसे स्वीकार नहीं किया। जब उसने अपने बाहुबलसे इसे प्राप्त किया, तभी क्षात्रधर्मका आश्रय लेकर उसने इसका यथावत् शासन भी किया। राजासे सुरक्षित रहकर प्रजा जो कुछ धर्म करती है, उसका चतुर्थांश राजाको मिलता है। यदि राजा धर्मका आचरण करता है तो देवलोक प्राप्त करता है और अधर्म करता है तो नरकमें पड़ता है। यदि वह दण्डनीतिका भी ठीक-ठीक प्रयोग करे तो उससे चारों वर्णोंके लोग अधर्म करनेसे रुककर धर्ममार्गमें प्रवृत्त होते हैं। वास्तवमें सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि- इन चारों युगोंका कारण राजा ही है। इस समय अपनी बुद्धिसे तुम जिस संतोषको लिये बैठे हो, उसे तो तुम्हारे पिता पाण्डुने, मैंने अथवा तुम्हारे पितामहने भी कभी नहीं चाहा। मैं सर्वदा तुम्हारे यज्ञ, दान, तप, शौर्य, प्रज्ञा, संतानोत्पत्ति, महत्ता, बल और ओजकी ही कामना करती रही हूँ। धर्मात्मा पुरुषको चाहिये कि वह राज्य प्राप्त करके किसीको दानसे, किसीको बलसे और किसीको मिष्टभाषणसे अपने अधीन करे। ब्राह्मण भिक्षावृत्तिसे रहे, क्षत्रिय प्रजापालन करे, वैश्य धनसंग्रह करे और शूद्र इन सबकी सेवा करे। तुम्हारे लिये भिक्षावृत्ति निषिद्ध है और कृषि करना भी उचित नहीं है। तुम क्षत्रिय हो, प्रजाको भयसे बचानेवाले हो; बाहुबल ही तुम्हारी आजीविकाका साधन है। महाबाहो। तुम्हारे जिस पैतृक अंशको शत्रुओंने हड़प लिया है तुम्हें साम, दान, दण्ड, भेद या नीति आदि किसी भी उपायसे उसका उद्धार करना चाहिये। इससे बढ़कर दु:खकी बात क्या होगी कि तुम-सा पुत्र पाकर भी मैं दूसरोंके टुकड़ोंपर दृष्टि लगाये रहती हूँ। अत: क्षात्रधर्मके अनुसार तुम युद्ध करो। कुंती के स्वर का क्षोभ इतना प्रखर था कि कृष्ण भी उससे अप्रभावित न रह सके। बोले, बुआ। मैं धर्मराज को ठीक इन्हीं शब्दों में आपका संदेश दे दूँगा। आप निश्चिंत रहें, पांडव अवश्य ही युद्ध करेंगे। ठीक है पुत्र। जब तुमने उनकी भुजा पकड़ी है, तो मुझे किस बात की चिंता। कुंती, जैसे पुन: ऊर्जस्वित हो उठीं, तुम उसे विदुला और उसके पुत्र संजय की कथा सुनाना।

विदुला और उसके पुत्रका संवाद इसप्रकार है। विदुला क्षत्राणी थी। वह बड़ी यशस्विनी, तेज स्वभाववाली, माननीय, जितेन्द्रिया, कुलीना, संयमशीला और दीर्घदर्शिनी थी। राजसभाओंमें उसकी अच्छी ख्याति थी और शास्त्रका भी उसे अच्छा ज्ञान था। एक बार उसका औरस पुत्र सिन्धुराजसे परास्त होकर बड़ी दीन दशामें पड़ा हुआ था। उस समय उसने उसे फटकारते हुए कहा, अरे अप्रियदर्शी। तू मेरा पुत्र नहीं है और न तूने अपने पिताके वीर्यसे ही जन्म लिया है। तू तो

शत्रुओंका आनन्द बढ़ानेवाला है। तुझमें जरा भी आत्माभिमान नहीं है, इसलिये क्षत्रियोंमें तो तू गिना ही नहीं जा सकता। तेरे अवयव और बुद्धि आदि भी नपुंसकोंके-से है। अरे प्राण रहते तू निराश हो गया। यदि तू कल्याण चाहता है तो युद्धका भार उठा। तू अपने आत्माका निरादर न कर और अपने मनको स्वस्थ करके भयको त्याग दे। कायर। खड़ा हो जा। हार खाकर पड़ा मत रह। इस प्रकार तो तू अपना मान खोकर शत्रुओंको आनन्दित कर रहा है। इससे तेरे सुहृदोंका तो शोक बढ़ रहा है। देख; प्राण जानेकी नौबत आ जाय तो भी पराक्रम नहीं छोड़ना चाहिये। जैसे बाज नि:शंक होकर आकाशमें उड़ता रहता है, वैसे ही तू भी रणभूमिमें निर्भय विचर। इस समय तो तू इस प्रकार पड़ा है, जैसे कोई बिजलीका मारा हुआ मुर्दा हो। बस, तू खड़ा हो जा; शत्रुओंसे हार खाकर पड़ा मत रह। तू साम, दान और भेदरूप मध्यम, अधम और नीच उपायोंका आश्रय मत ले। दण्ड ही सर्वश्रेष्ठ है। उसीका आश्रय लेकर शत्रुके सामने डटकर गर्जना कर। वीर पुरुष रणभूमिमें जाकर उच्च कोटिका मानवोचित पराक्रम दिखाकर अपने धर्मसे उऋण होता है। वह अपनी निन्दा नहीं करता। विद्वान पुरुष, फल मिले या न मिले, इसके लिये चिन्ता नहीं करता। वह तो निरन्तर पुरुषार्थसाध्य कर्म करता रहता है। उसे अपने लिये धनकी भी इच्छा नहीं होती। तू या तो अपना पुरुषार्थ बढ़ाकर जय लाभ कर, नहीं तो वीरगतिको प्राप्त हो। इस प्रकार धर्मको पीठ दिखाकर किसलिये जी रहा है? अरे नपुंसक। इस तरह तो तेरे इष्ट-पूर्त आदि कर्म और सुयश-सभी मिट्टीमें मिल गये हैं तथा तेरे भोगका साधन जो राज्य था, वह भी नष्ट हो गया है; फिर तू किसलिये जी रहा है?

दान, तप, सत्य, विद्या और धनसंग्रहका प्रसङ्ग चलने पर जिस पुरुषका सुयश नहीं गाया जाता, वह तो अपनी माताकी विष्ठा ही है। सच्चा मर्द तो वही है जो अपनी विद्या, तप, ऐश्वर्य और पराक्रमसे दूसरे लोगोंको दंग कर देता है। तुझे भिक्षावृत्तिकी ओर नहीं ताकना चाहिये। वह तो अकीर्तिकारिणी, दु:खदायिनी और कायरोंके कामकी है। अरे सञ्जय। मालूम होता है, पुत्ररूपसे मैंने कलियुगको ही जन्म दिया है। तुझमें जरा भी स्वाभिमान, उत्साह या पुरुषार्थ नहीं है। तुझे देखकर शत्रुओंको ही सुख होता है। कोई भी कामिनी ऐसे कुपुत्रको उत्पन्न न करे। जो अपने हृदयको लोहेके समान करके राज्य और धनादिकी खोज करता है और शत्रुओंके सामने डटा रहता है, वही पुरुष है। जो स्त्रियोंकी तरह किसी प्रकार अपना पेट पाल लेता है, उसे पुरुष। कहाना व्यर्थ ही है। यदि शूरवीर, तेजस्वी, बली और सिंहके समान पराक्रम करनेवाला राजा वीरगति पा जाता है, तो भी उसके राज्यमें प्रजाको प्रसन्नता ही होती है। जिस प्रकार सभी प्राणियोंकी जीविका मेघके अधीन है, उसी प्रकार ब्राह्मणलोग तथा तेरे सुहृदोंकी जीविका तुझपर ही निर्भर होनी चाहिये।

जा, किसी पर्वतीय किलेमें जाकर रह और शत्रुके ऊपर आपत्काल आनेकी प्रतीक्षा कर। वह अजर-अमर तो है ही नहीं। बेटा। तेरा नाम तो सञ्जय है, किंतु मुझे तुझमें ऐसा कोई गुण दिखायी नहीं देता। तू संग्राममें जय प्राप्त करके अपने नामको सार्थक कर। जब तू बालक था, उस समय एक भूत-भविष्यको जाननेवाले बुद्धिमान् ब्राह्मणने तुझे देखकर कहा था कि यह एक बार बड़ी भारी विपत्तिमें पड़कर फिर उन्नति करेगा। उस बातको याद करके मुझे तेरी विजयकी पूरी आशा है, इसीसे मैं तुझसे कह रही हूँ और फिर भी बराबर कहती रहूँगी। शम्बर मुनिका कथन है कि जहाँ आज भोजन नहीं है, न कलके लिये ही कोई प्रबन्ध है- ऐसी चिन्ता रहती है, उससे बढ़कर बुरी कोई दशा नहीं हो सकती। जब तू देखेगा कि आजीविका न रहनेसे तेरे कामकाज करनेवाले दास, सेवक, आचार्य, ऋत्विज और पुरोहित तुझे छोड़कर चले गये हैं तो तेरा वह जीवन किस कामका होगा? पहले मैंने या मेरे पतिने कभी किसी ब्राह्मणसे नहीं कहा। अब यदि मुझे नहीं कहना पड़ा तो मेरा हृदय फट जायगा। हम सदा दूसरोंको आश्रय देते रहे हैं। दूसरेकी आज्ञा सुननेकी हमें आदत नहीं है। यदि मुझे किसी दूसरेके आसरे जीवन काटना पड़ा तो मैं प्राण त्याग दूँगी। देख, यदि तूने जीवनका लोभ न किया तो तेरे सभी

शत्रु परास्त किये जा सकते हैं। तू युवा है तथा विद्या, कुल और रूपसे सम्पन्न है। यदि तुझ-जैसा यशस्वी और जगद्विख्यात पुरुष ऐसा विपरीत आचरण करे और अपने कर्तव्य-भारको न उठावे तो मैं इसे मृत्यु ही समझती हूँ। यदि मैं तुझे शत्रुके साथ चिकनी-चुपड़ी बातें बनाते या उसके पीछे-पीछे चलते देखूँगी तो मेरे हृदयको कैसे शान्ति होगी? इस कुलमें ऐसा कोई पुरुष नहीं जन्मा, जो अपने शत्रुका पिछलग्गू होकर रहा हो। तुझे शत्रुका सेवक होकर जीना किसी प्रकार उचित नहीं है। जिस पुरुषने क्षत्रियकुलमें जन्म लिया है और जिसे क्षात्रधर्मका ज्ञान है, वह भयसे अथवा आजीविकाके लिये कभी किसीके सामने नहीं झुक सकता। वह महामना वीर तो मतवाले हाथीके समान रणभूमिमें विचरता है और केवल धर्मरक्षाके लिये सर्वदा ब्राह्मणके सामने ही झुकता है।

विदुला पुत्र संजय कहने लगा, माँ। तुम वीरोंकी-सी बुद्धिवाली, किंतु बड़ी ही निष्ठुर और क्रोध करनेवाली हो। तुम्हारा हृदय तो मानो लोहेका ही गढ़कर बनाया गया है। अहो। क्षत्रियोंका धर्म बड़ा ही कठिन है, जिसके कारण स्वयं तुम्हीं दूसरेकी माताके समान अथवा जैसे किसी दूसरेसे कह रही हो, इस प्रकार मुझे युद्धके लिये उत्साहित कर रही हो। मैं तो तुम्हारा इकलौता पुत्र हूँ। फिर भी तुम मुझसे ऐसी बात कह रही हो। जब तुम मुझीको नहीं देखोगी तो इस पृथ्वी, गहने, भोग और जीवनसे भी तुम्हें क्या सुख होगा? फिर तुम्हारा अत्यन्त प्रिय पुत्र मैं तो संग्राममें काम आ जाऊंगा।

विदुला माताने कहा- सञ्जय। समझदारोंकी सब अवस्थाएँ धर्म या अर्थके लिये ही होती हैं। उनपर दृष्टि रखकर ही मैं तुझे युद्धके लिये उत्साहित कर रही हूँ। यह तेरे लिये कोई दर्शनीय कर्म करके दिखानेका समय आया है। इस अवसरपर यदि तूने कुछ पराक्रम न दिखाया तथा अपने शरीर या शत्रुके प्रति कड़ाईसे काम न लिया तो तेरा बड़ा तिरस्कार होगा। इस तरह जब तेरे अपयशका अवसर सिरपर नाच रहा है, उस समय यदि मैं तुझसे कुछ न कहूँ तो लोग मेरे प्रेमको गधीका-सा कहेंगे तथा उसे सामर्थ्यहीन और निष्कारण बतावेंगे। अत: तू सत्पुरुषोंसे निन्दित तथा मूर्खोंसे सेवित मार्गको छोड़ दे। जिसका आश्रय प्रजाने ले रक्खा है, वह तो बड़ी भारी अविद्या ही है। मुझे तो तू तभी प्रिय लगेगा, जब तेरा आचरण सत्पुरुषोंके योग्य होगा। जो पुरुष विनयहीन, शत्रुपर चढ़ाई न करनेवाले, दुष्ट और दुर्बुद्धि पुत्र या पौत्र को पाकर भी सुख मानता है, उसका संतान पाना व्यर्थ है। जो अपना कर्त्तव्यकर्म नहीं करते बल्कि निन्दनीय कर्मका आचरण करते हैं, उन अधम पुरुषोंको तो न इस लोकमें सुख मिलता है और न परलोकमें ही। प्रजापतिने क्षत्रियोंको तो युद्ध करने और विजय प्राप्त करनेके लिये ही रचा है। युद्धमें जय या मृत्यु प्राप्त करनेसे क्षत्रिय इन्द्रलोक प्राप्त कर लेता है। शत्रुओंको वशमें करके क्षत्रिय जिस सुखका अनुभव करता है, वह तो इन्द्रभवन या स्वर्गमें भी नहीं है।

संजय बोला- माता। यह ठीक है, किंतु तुम्हें अपने पुत्रके प्रति तो ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिये। उसपर जड और मूकवत् होकर तुम्हें दयादृष्टि ही रखनी चाहिये।

विदुला माताने कहा- बेटा। जिस प्रकार तू मुझे मेरा कर्त्तव्य बता रहा है, उसी प्रकार मैं तुझे तेरा कर्त्तव्य सूझा रही हूँ। जब तू सिन्धुदेशके सब योद्धाओंका संहार कर डालेगा तभी मैं तेरी प्रशंसा करूँगी। मैं तो तेरी कठिनतासे प्राप्त होनेवाली विजय ही देखना चाहती हूँ। संजय ने कहा- माता। मेरे पास न तो खजाना है और न कोई सहायक ही है; फिर मेरी जय कैसे होगी? इस विकट परिस्थितिका विचार करके मैं तो स्वयं ही राज्यकी आशा छोड़ बैठा हूँ, ठीक वैसे ही जैसे पापी पुरुष स्वर्गप्राप्तिकी आशा नहीं रखता। यदि इस स्थितिमें भी तुम्हें कोई उपाय दिखायी देता हो तो मुझे बताओ; मैं, जैसा तुम कहोगी, वैसा ही करूँगा।

माता विदुला बोली- बेटा। यदि आरम्भसे ही अपने पास वैभव न हो तो इसके लिये अपना तिरस्कार न करें। ये धन-

सम्पत्ति पहले न होकर पीछे हो जाते हैं तथा होकर नष्ट हो जाते हैं। अत: डाहवश किसी भी प्रकार अर्थसंग्रहकी ही नादानी नहीं करनी चाहिये। उसके लिये तो बुद्धिमान् पुरुषको धर्मानुसार ही प्रयत्न करना चाहिये। कर्मोंके फलके साथ तो सदा ही अनित्यता लगी हुई है। कभी उनका फल मिलता है और कभी नहीं मिलता, तो भी मतिमान् पुरुष कर्म किया ही करते हैं। जो कर्म ही नहीं करते, उन्हें तो कभी फल नहीं मिल सकता। अत: प्रत्येक मनुष्यको यह निश्चय रखकर कि मेरा अभीष्ट कर्म सिद्ध होगा ही उसे करनेके लिये खड़ा हो जाना चाहिये, सावधान रहना चाहिये और ऐश्वर्यप्राप्तिके कार्योंमें जुटे रहना चाहिये। कर्ममें प्रवृत्त होते समय पुरुषको माङ्गलिक कर्म करने चाहिये। तथा ब्राह्मण और देवताओंका पूजन करना चाहिये। ऐसा करनेसे राजाकी उन्नति होती है। जो लोग लोभी, शत्रुके द्वारा दलित और अपमानित तथा उससे डाह करनेवाले हैं, उन्हें तू अपने पक्षमें कर ले। ऐसा करनेसे तू अपने बहुत-से शत्रुओंका नाश कर सकेगा। उन्हें पहलेहीसे वेतन दे, रोज सबेरे ही उठ और सबके साथ प्रियभाषण कर। ऐसा करनेसे वे अवश्य तेरा प्रिय करेंगे। जब शत्रुको यह मालूम हो जाता है कि मेरा प्रतिपक्षी प्राणपणसे युद्ध करेगा तो उसका उत्साह भंग हो जाता है।

कैसी भी आपत्ति आनेपर राजाको घबराना नहीं चाहिये। यदि घबराहट हो भी तो घबराये हुएके समान आचरण नहीं करना चाहिये। राजाको भयभीत देखकर प्रजा, सेना और मन्त्री भी डरकर अपना विचार बदल लेते हैं। उनमेंसे कोई तो शत्रुओंसे मिल जाते हैं, कोई छोड़कर चले जाते हैं और कोई, जिनका पहले अपमान किया होता है, राज्य छीननेको तैयार हो जाते हैं। उस समय केवल वे ही लोग साथ देते हैं, जो उसके गहरे मित्र होते हैं; किंतु हितैषी होनेपर भी शक्तिहीन होनेके कारण वे कुछ कर नहीं पाते।

मैं तेरे पुरुषार्थ और बुद्धिबलको जानना चाहती थी, इसीसे तेरा उत्साह बढ़ानेके लिये तुझसे ये आश्वासनकी बातें कही हैं। यदि तुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं ठीक कह रही हूँ तो विजय प्राप्त करनेके लिये कमर कसकर खड़ा हो जा। हमारे पास अभी बड़ा भारी खजाना है। उसे मैं ही जानती हूँ, और किसीको उसका पता नहीं है। वह मैं तुझे सौंपती हूँ। सञ्जय। अभी तो तेरे सैकड़ों सुहृद् हैं। वे सभी सुख-दु:खको सहन करनेवाले और संग्राममें पीठ न दिखानेवाले हैं।

राजा सञ्जय छोटे मनका आदमी था। किंतु माताके ऐसे वचन सुनकर उसका मोह नष्ट हो गया। उसने कहा- मेरा यह राज्य शत्रुरूप जलमें डूब गया है; अब मुझे इसका उद्धार करना है, नहीं तो मैं रणभूमिमें प्राण दे दूँगा। अहा। मुझे भावी वैभवका दर्शन करानेवाली तुम-जैसी पथप्रदर्शिका माता मिली है। फिर मुझे क्या चिन्ता है? मैं बराबर तुम्हारी बातें सुनना चाहता था, इसीसे बीच-बीचमें कुछ कहकर फिर मौन हो जाता था। तुम्हारे अमृतके समान वचन बड़ी कठिनतासे सुननेको मिले थे। उनसे मुझे तृप्ति नहीं होती थी। अब मैं शत्रुओंका दमन करने और जय प्राप्त करनेके लिये अपने बन्धुओंके सहित युद्ध करूँगा।

विदुला बोली, शत्रुरूपी साँप के दाँत तोड़ता हुआ तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो जा। प्राण जाने का संदेह हो, तो भी शत्रु के साथ युद्ध में पराक्रम ही प्रकट कर। तू तिंदुक की जलती हुई लकड़ी के समान, चाहे दो ही घड़ी के लिए, पर प्रज्ज्वलित हो उठ; किंतु भूसी की ज्वालारहित आग के समान, केवल धुआँ मत कर। पुत्र ने चकित होकर पूछा, तू मेरी माता होकर भी मेरे प्रति इतनी निर्दय क्यों हैं? मैं ही जीवित नहीं रहूँगा, तो जीवन में तेरे लिए कौनसा सुख शेष रह जाएगा? विदुला ने उत्तर दिया, तू मुझे तब ही प्रिय हो सकता है, जब तेरा आचरण सत्पुरुषों के योग्य हो। यदि तू अपने शत्रुओं के प्रति क्रूरतापूर्ण व्यवहार नहीं करेगा, तो सब ओर तेरा अपयश फैलेगा।

धन्य थी महारानी विदुला जिन्होंने अपने कायर पुत्र संजय में अपनी वाक्शक्ति से ही वीरता का संचार कर दिया था। किन्तु

मैं वह भी नहीं कर पा रही, माधव। उस वीरमाता ने पुत्र से स्पष्ट कह दिया था कि ऐसा क्रोधशून्य पुत्र क्षत्रिय जाति के उपयुक्त नहीं। पुत्र से स्वयं माता ने कहा था कि विषधर का दन्त तोड़ने के प्रयास में तेरा तत्काल मृत्यु प्राप्त करना अधिक श्रेयस्कर है, घर में घुसकर पड़े रहने से। उस अग्निमयी माता ने उसे कठोरतम शब्दों में ताड़ना देते हुए ललकारा था कि आजीवन धूम छोड़ते हुए सुलगते रहने से श्रेष्ठ है मुहूर्त भर के लिए भी प्रज्ज्वलित हो जाना। धूम की भाँति न उठ पुत्र। मुहूर्त भर के लिए प्रज्ज्वलित होकर शत्रुओं पर छा जा। क्या मेरी स्थिति महारानी विदुला जैसी दयनीय नहीं श्रीकृष्ण? आश्रय देनेवाले आज स्वयं दूसरों के आश्रय में पड़े हैं। मैं इतनी दरिद्रता के दिन भोग रही हूँ कि कोई ब्राह्मण मुझसे भिक्षा माँगे तो मुझे लज्जित होकर नहीं करनी पड़ेगी। किन्तु क्या युधिष्ठिर को सन्ताप नहीं माता की दुर्दशा देखकर भी?

कुन्ती कहती है- श्रीकृष्ण। माताके वाग्बाणोंसे बिंधकर चाबुक खाये हुए घोड़ेके समान उसने माताके आज्ञानुसार सब काम किये। यह आख्यान बड़ा उत्साहवर्धक और तेजकी वृद्धि करनेवाला है। जब कोई राजा शत्रुसे पीड़ित होकर कष्ट पा रहा हो, उस समय मन्त्री उसे यह प्रसंग सुनावे। इस इतिहासको सुननेसे गर्भवती स्त्री निश्चय ही वीर पुत्र उत्पन्न करती है। यदि क्षत्राणी इसे सुनती है तो उसकी कोखसे विद्याशूर, तपःशूर, दानशूर, तेजस्वी, बलवान्, धैर्यवान्, अजेय, विजयी, दुष्टोंका दमन करनेवाला, साधुओंका रक्षक, धर्मात्मा और सच्चा शूरवीर पुत्र उत्पन्न होता है।

कुंती बोली, और अर्जुन तथा भीम से कहना पुत्र। कि मैंने कहा है कि जिस क्षण के लिए क्षत्राणि पुत्र को जन्म देती हैं, वह क्षण आ गया है। उनसे कहना कि वे युधिष्ठिर का अनुकरण न करें। वे मेरी पुत्रवधू पांचाली की इच्छा पूर्ण करें। द्यूतसभा में उसके अपमान के समय निष्क्रिय रहकर, जो पाप उन्होंने किया है, उसके प्रायश्चित का अवसर आ गया है। उनसे यह भी कहना कृष्ण कि मुझे उनके राज्य के छिन जाने से भी उतना कष्ट नहीं हुआ, जितना कृष्णा के अपमान से हुआ है। वे उसका निराकरण करें, तो ही इस क्षत्राणी का पुत्र-प्रसव सार्थक होगा।

नारायण। युधिष्ठिर से मेरी पीड़ा निवेदन करना। किन्तु उन पर अधिक निर्भर न होना। तुम मेरे प्रचण्ड वीर पुत्र धनंजय को प्रेरित करना। उसके जन्म के समय जो दिव्य आकाशवाणी हुई थी, मेरी सारी आशाएँ उसी पर केन्द्रित हैं। वह आकाशवाणी मिथ्या न होगी अच्युत, कि यह वीर पुत्र पैतृक राज्य का उद्धार करेगा और तीन अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान करेगा। और श्रीकृष्ण। मेरे उस सर्वाधिक बलशाली पुत्र भीम को उसकी शक्ति स्मरण दिलाना। मेरे इन दोनों वीर पुत्रों से कहना कि क्षत्राणी जिस कार्य के लिए पुत्र को जन्म देती है, वह उपयुक्त अवसर आ गया है। अब वे बैठे न रहें। अपनी दीन माता का उद्धार करें। पुत्रों से कहना, तुम पाँचों के रहते महापराक्रमी भारतवंश की पुत्रवधू से भरी सभा में जो दुर्वचन कहे गये, क्या कोई वीर पुरुष उन्हें क्षमा कर सकता है?

अपनी लाड़ली सुकमार पुत्रवधू का उल्लेख आते ही माता की ओजमयी स्वरमाला डूबने लगी। वाणी भावविगलित हो चली। मधुसूदन। मुझे राज्यहरण का उतना दुःख नहीं। मुझे द्यूतक्रीड़ा में पराजय का उतना कष्ट नहीं। पुत्रों के वनवास का भी महान् दुःख नहीं... किन्तु... किन्तु मेरी फूलसी सुकोमल सुन्दर पुत्रवधू को अश्रु बहाते-बहाते नराधम दुर्योधन के जो कटु वचन सहने पड़े थे... माधव, मेरे उर में वे विषदन्त की भाँति गड़े हैं। जब तक न पापी दुर्योधन का पराभव देख लूँ, वह शूल उर में गड़ा हुआ पकता रहेगा, आजीवन मुझे मर्मान्तक पीड़ा देता रहेगा। मेरी परम साध्वी पुत्रवधू को किन-किन निकृष्ट उपायों से राजसभा में अपमानित किया गया। मेरा हृदय छलनी हो गया है। उस अबला को कोई रक्षक न मिला। और वह साध्वी अपने पतियों की सेवा हेतु नन्हे शिशुओं का विछोह भी सह गयी। आह अच्युत। वह सुकुमार राजलतिका झंझाओं और प्रभंजनों से संघर्ष करती करती- कुम्हला गयी किन्तु उस महिमामयी

भारती ने धर्म के वटवृक्ष को न छोड़ा। केशव। उसे मेरी ओर से धीरज बँधाना, सान्त्वना देना, साहस देना। तुम अधिक ज्ञानी हो, बुद्धिमान हो। तुम उपयुक्त वाणी और शब्दों से सम्पन्न हो, तुम यह कर सकोगे। उसे देखकर मेरा तो स्वयं का धीरज समस्त मर्यादाओं की प्राचीरों को तोड़ बहेगा।

कितने अपशब्दों, भर्त्सना और लांछना का विषपान उस राजबाला ने किया है। पाण्डुकुल में उसको यही सब मिला। अच्छा होता जो वह अविवाहित ही रह जाती तो अपने पितृकुल में अपमानित और लांछित तो न होती इस प्रकार...

केशव। उसे मेरा अपार स्नेह देना, मेरे पुत्रों से भी अधिक... और केशव। भीम और अर्जुन से कहना कि यदि उनके उर में अपमान की ज्वाला नहीं है, मेरे मन में तो है। महाराज पाण्डु का राजपरिवार ऐसी दयनीय-शोचनीय स्थिति में द्वार-द्वार भटक रहा है, वे सह लें। किन्तु मेरा स्वाभिमान मुझे सहने नहीं देता। और स्मरण रखना माधव। दुर्योधन और दु:शासन रूपी सर्पों के नीच वचन मेरे उर में विषदन्त की भाँति आजीवन गड़े रहेंगे, पक-पककर मेरी टीस प्रतिदिन प्रतिपल द्विगुणित त्रिगुणित करते जाएँगे। पूछना- उन पाँचों पुत्रों में कोई सपूत भी है क्या, जो अपनी माता को उन विषदन्तों की मर्मान्तक पीड़ा से मुक्ति दिलाए? वे पाँचों मेरे पुत्र हैं। कहने में लज्जा होती है हतभागा कुन्ती।

यह एक ऐसा दारुण प्रसंग है जिसकी कल्पना मात्र से मन में उथल-पुथल मच जाती है। द्रौपदीके जीवनकी यह सबसे करुण घटना है। इस प्रकारकी असहाय अवस्थामें द्रौपदी और कहीं नहीं देखी गयी। ऐसी करुणा, जिसने द्वारिकासे भगवान श्रीकृष्णको खींच लिया; ऐसी करुणा, जिसे देखनेसे अस्वीकार कर दिया भीष्म, द्रोण और विदुरकी आँखोंने, ऐसी करुणाजनक घटना, जो संसारके इतिहास में भरी सभामें इस प्रकार कभी कहीं नहीं घटी। ऐसी ही घटना घट गयी और लोगोंने उसे देखा, उसमें सम्मिलित होकर भाग लिया, मानो सबने अपने हृदयकी निष्ठुरता व्यक्त करके जगत्के सामने रख दी हो। इस घटनाके वर्णन करनेमें केवल एक ही बात ऐसी है, जो प्रोत्साहित करती है। वह यह कि आश्रयहीन द्रौपदी भी आश्रयहीन नहीं है। जगत्का आश्रय छूटते ही उसे सर्वाश्रयका आश्रय मिल जाता है। हम देखते हैं और जान पाते हैं कि भगवान निराश्रयके आश्रय हैं, अशरणके शरण है, दुखियोंके त्राता हैं, दीनजनोंके अपने हैं। वे सच्चे हृदयसे पुकारनेपर दौड़े आते हैं और अवश्य आते हैं। बस, यदि यही बात नहीं होती, द्रौपदीने सच्चे हृदयसे श्रीकृष्णको न पुकारा होता और श्रीकृष्ण आये न होते, उसकी लज्जाकी रक्षा न हुई होती तो इस प्रसङ्गकी चर्चा इतनी कठोर हो जाती कि उसका वर्णन करना कठिन हो जाता। इसमें केवल कौरवोंके अत्याचार, पाण्डवोंकी सरलता और द्रौपदीके अपमान का वर्णन होता जिसे न सुनना ही हृदयके लिये शान्तिकर होता; परंतु इसमें तो द्रौपदीकी श्रद्धा, उसका विश्वास और भगवान् श्रीकृष्णका वस्त्ररूपमें प्रकट हो जाना- जीवनके लिये इतना आशाप्रद हो जाता है।

द्रौपदी नारीत्व का एक आह्वान है। कर्म, ज्ञान, भक्ति और शक्ति का मूर्त रूप है। विश्व में अब तक ऐसी नारी कोई नहीं हुई जो याज्ञसेनी द्रौपदी की तरह यातना लांछन, मानसिक संकट एवं संघर्ष के सामने हुई हो।

नारी का रूप पुरुष की आंखों में पहली चीज हो सकता है। रूप के साथ प्रज्ञा और व्यक्तित्व का मेल होने पर ही वह अनिर्वचनीय सौंदर्य बनकर पुरुष की आत्मा को आछन्न करता है। सुन्दर, कलावती, विदुषी नारी के प्रति पुरुष मन में आकर्षण किसी भी तरह की बातों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। कामांध पुरुषोंद्वारा सुन्दर नारी युग-युग में यातना पाती और अपमानित होती आयी है। परन्तु भ्रातृविवाद, ईर्ष्या और असूया के अधीन हो अपने ही वंश की कुलवधू अनेक ज्ञानी, गुणी, मानी पुरुषों के सामने विवसना हो और सब चुपचाप निर्वसना की अंग-शोभा देखने बैठे रहें, इससे बढ़कर कलंक-भरा अध्याय विश्व के लिखित-अलिखित इतिहास में कहीं नहीं मिलेगा। यहां तक कि काव्य, कविता, कहानी,

नाटक में भी किसी नारी के यों निर्यातन की बात नहीं मिलेगी। इतना ही नहीं, सास के अनजाने मुंह से जो बात निकल गई, उसके लिए राजनंदिनी कृष्णा को बाध्य होकर पंचपति वरण करने पड़े। पर सभ्य समाज के इतिहास में यह सिहरा देनेवाली बात है। अपने सतीत्व की पराकाष्ठा के कारण कृष्णा का नाम पंचसतियों में रहा। पर पंचपति वरण के कारण कौरवों द्वारा और कर्ण द्वारा कृष्णा को वह पुरुषभोग्या, वार नारी कहकर बार-बार निंदा की गई है। पंचपांडवों के सुख-दु:ख की चिरसहचरी कृष्णा के जीवन में नाना दु:खों का तांता लगा रहा। पर मनोबल कभी न टूटा।

द्रौपदीसे कहना कि बेटी। तू अच्छे कुलमें उत्पन्न हुई है। तूने मेरे सभी पुत्रोंके साथ धर्मानुसार बर्ताव किया है- यह तेरे योग्य ही है। तथा नकुल और सहदेवसे कहना कि तुम अपने प्राणोंकी भी बाजी लगाकर पराक्रमसे प्राप्त हुए भोगोंको भोगने की इच्छा करो। कृष्ण। मुझे राज्य जाने, जूएमें हारने या पुत्रोंको वनवास होनेका दु:ख नहीं है; किंतु मेरी युवती पुत्रवधूने सभामें रुदन करते हुए जो दुर्योधनके कुवचन सुने थे, वे ही मुझे बड़ा दु:ख दे रहे हैं। वे भीम और अर्जुनके लिये तो बड़े ही अपमानजनक थे। तुम उन्हें उनकी याद दिला देना। फिर द्रौपदी, पाण्डव तथा उनके पुत्रोंसे मेरी ओरसे कुशल पूछना और उन्हें बार-बार मेरी कुशल सुना देना। अश्रुवर्षा से उनके कपोल सिंचित थे। उनका वक्ष सिंचित था। उनका अंचल, उनके वस्त्र उस वेगवती अश्रुधारा से भीग चले थे। किन्तु... वे अकेली नहीं रो रही थीं। द्वारकाधीश श्रीकृष्ण के दोनों विशाल लोचनों से जैसे स्वयं गंगा-यमुना प्रवाहमयी हो बही आ रही थीं। एक के बाद एक अश्रुमोतियों की माला बनाते से झरते चले आ रहे थे। वार्ष्णेय रो रहे थे। त्रिकालदर्शी श्रीकृष्ण के दृग-युगल अश्रुप्लावित थे। बुआ पृथा चौंक पड़ीं। अविश्वसनीय। कुन्ती बोली, यह क्या वसुदेवनन्दन? तुम्हारे नेत्रों में जल। कभी किसी ने सुना क्या? कभी किसी ने देखा... अश्रु क्यों तात? मैंने आवेश में कुछ अनुचित कहा क्या? कुछ अनर्गल कहा क्या? अधर्म कहा मैंने?

भावविह्वल यदुनन्दन ने आगे बढ़कर यदुनन्दिनी कुन्ती की चरणरज अपने मस्तक पर लगा दी और बोले, तुम धन्य हो वीरमाता। बुआ। देवी। तुमने यदुकुल, वृष्णिकुल तथा कुरुकुल को तार दिया। समूचे क्षत्रिय समाज को धन्य कर दिया। अबला कही जानेवाली नारी का मस्तक गर्व से उठा दिया। तुम्हारे तेज, स्वाभिमान और आत्मसम्मान के समक्ष नतमस्तक हूँ, भारती। जो ओजभरी वाणी अभी कृष्णा की सुनकर आ रहा हूँ, वही तुमसे सुन रहा हूँ। यही स्वाभिमान कृष्णा में है, जो तुम्हारी वाणी में परिलक्षित हुआ। यह कैसा आश्चर्य बुआ। मुझे लगा कि पाण्डवों ने नहीं, अपितु तेजमयी उस कृष्णा लौहभारती ने जैसे तुम्हारी कुक्षि से जन्म लिया हो। और यह भी कितने आश्चर्य की बात कि आज क्षत्रिय पुरुष शौर्यहीन हुए बैठे हैं। युद्धप्रेरित करना पड़ रहा है उन्हें और क्षत्रिय महिलाओं के हृदय में वीरता और स्वाभिमान की प्रेरणा हिलोरें मार-मार कर तरंगित हो रही हैं। समस्त प्राचीन मान्यताएँ धारणाएँ और पूर्वाग्रही कथन छिन्न-भिन्न हुए जा रहे हैं कि पुरुष स्वभाव से ही वीर होते हैं और स्त्रियाँ भीरु।

बुआ। कितने खेद का विषय है कि मेरे पाण्डव-बन्धु तुम्हारे पुत्र होते हुए भी मूढ़ता से ग्रस्त हैं। किन्तु याज्ञसेनी के उर में स्वाभिमान की वही अग्नि धधक रही है जो तुम्हारे उर में है। जब तक दु:शासन की कटी बाहु को भूलुण्ठित न देख लेगी, श्रृंगारसज्जा का स्पर्श भी न करेगी। सत्य कहता हूँ बुआ, यदि कृष्णा पुरुष होती तो नीच दुर्योधन और दु:शासन अनाचार करने के लिए अब तक जीवित न रह पाते। तुम दोनों नारी धन्य हो, जो ज्योतिहीन पुरुषों को पुरुषार्थ का मार्ग दिखा रही हो। जो शौर्यहीन पुरुषों में वीरोचित गुणों को उत्साहित कर रही हो। तुम दोनों के ओज और शौर्य से मैं अभिभूत हूँ... नतमस्तक हूँ। धन्य है तुम्हारा त्याग, जो तुम स्वाभिमान के लिए इतिहास प्रसिद्ध महारानी विदुला की भाँति अपने पुत्रों को कालमुख में सौंप देने को आतुर हो। मेरा अभिनन्दन स्वीकार करो वीरमाता। तुम्हारे चरणों में मेरा शत-शत प्रणाम अर्पित है।

HHH(४४४)HHH

दोनों अपने-अपने अश्रु पोंछ रहे थे। दोनों स्वयं को संयत कर रहे थे। कुछ पल की निस्तब्धता के उपरान्त पाण्डुपत्नी पृथा शान्त स्वर में बोली- श्रीकृष्ण। युद्ध अवश्य होना चाहिए। मेरे पथभ्रष्ट पुत्रों को समझाना। वे बुद्धिमान हैं। समझाने से सत्पथ पर आ जाएँगे। किन्तु मेरा विशेष सन्देश नरव्याघ्र अर्जुन को देना। अच्युत। तुम पार्थ को एकान्त में ले जाना और उससे कहना कि माता का आदेश है कि वह ठीक वैसा ही करे जैसा पांचलराजपुत्री द्रौपदी उससे करने को कहे। याज्ञसेनी के बताये मार्ग पर ही चले। माधव। अर्जुन द्रौपदी का कहा अधिक समय तक नहीं टाल सकते। और मेरी आज्ञा का कभी उन्होंने उल्लंघन नहीं किया। मेरी अज्ञानवश दी गयी आज्ञा तक का पालन करने में उन्होंने महान् एवं अपूर्व त्याग किया है- तुम जानते ही हो। केशव। अपनी पत्नी, अपना व्यक्तिगत हर्ष सब उन्होंने त्याग दिया था, मेरे कहने से। और द्रौपदी को पाँचों भाइयों की सामान्य पत्नी बनाना नतमस्तक हो स्वीकार किया था। पार्थ अत्यन्त त्यागी पुरुष हैं, वीर हैं और पांचाली के अनन्य अनुरागी हैं। मेरी आज्ञा वे न टालेंगे और फिर जब पांचाली के आग्रह से वे युद्धोन्मुख हो उठेंगे तो सभी भ्राता उनके साथ रणभूमि में आ जाएँगे। यही कहूँगा बुआ। पाण्डवरूपी पांचजन्य शंख में प्रचण्ड भारती याज्ञसेनी ही प्राण फूँककर युद्ध का उद्घोष कर सकती है। मैं सदा उनके साथ रहूँगा। तुम चिन्ता न करना। कुन्ती बोली, अब तुम जाओ मेरे पुत्रोंकी रक्षा करते रहना। तुम्हारा मार्ग निर्विघ्न हो।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय तब भगवान कृष्णने कुन्तीको प्रणाम किया और उसकी प्रदक्षिणा करके बाहर आये। वहाँ आकर उन्होंने भीष्म आदि प्रधान-प्रधान कौरवोंको विदा किया। कृष्ण, अपनी बुआ के मन की स्थिति समझ रहे थे। वे यदि धैर्यपूर्वक बैठकर सुनते तो वे और भी बहुत कुछ कहती; किंतु कृष्ण के मन में और भी अनेक योजनाएँ थीं। वे उठ खड़े हुए, आप निश्चिंत रहें बुआ। आपका कहा हुआ, एक-एक शब्द आपके पुत्रों तक पहुँच जाएगा; और परिणाम भी आपके मनोनुकूल ही होगा। श्रीकृष्ण ने वीरमाता की पुन: चरणरज ली। प्रदक्षिणा की एवं अतुल बलशाली विजयी सिंहराज की भाँति चल दिये।

## २०) श्रीकृष्ण का एकान्त में कर्ण से कर्ण के जन्म का रहस्योद्घाटन

हस्तिनापुर से कृष्ण को विदुर विदा कर रहे हैं। विदुर भी साथ-साथ पीछे पीछे चलकर जा रहे हैं। कृष्ण बोले इतने उदास ना हो महात्मा विदुर क्योंकि जो होने जा रहा है उसे रोकना आपके वश में नहीं है। विदुर बोले- किन्तु आपके वश में तो है केशव। कृष्ण बोले- नहीं महात्मन। जो होने जा रहा है उसे रोकना तो मेरे वश में भी नहीं है। क्योंकि किसी के कर्म पर तो मेरा अधिकार नहीं है। मैं समझा सकता हूं और मैंने समझाया भी किन्तु जिन्हे समझा रहा था उन्होंने अपने कान बन्द कर लिये और जिन्हें मार्गदर्शन करा रहा था उन्होंने अपनी आंखे बन्द कर ली। इसलिये हे महात्मा जो हो रहा है उसे देखिये और सहन कीजिये। होनी का उत्तरदायित्व भी आप पर नहीं है। सच पूछिये तो होनी का उत्तरदायित्व दुर्योधन पर भी नहीं है। उत्तरदायी है महाराज धृतराष्ट्र। केवल महाराज धृतराष्ट्र। क्योंकि वृक्ष तो वही है दुर्योधन तो केवल उस वृक्ष का एक फल है। विदुर बोले, परन्तु मेरा हस्तिनापुर महाराज के कर्मों का फल तो नहीं है ना कृष्ण। कृष्ण बोले- फल कैसे नहीं महात्मा? क्या द्यूतक्रीडा में आपके हस्तिनापुर ने गान्धार नरेश शकुनि का हाथ पकड़ा? क्या राजसभा में आकर हस्तिनापुर ने उस दुशासन का हाथ पकडा जो द्रौपदी वस्त्राहरण कर रहा था। क्या उसने द्रौपदी को वेश्या कहनेवाली जीभ को काटने का प्रयत्न किया? यदि नहीं तो हस्तिनापुर को भी कौरवों के दुर्भाग्य में भागीदार बनना पडेगा।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय कुन्तीने श्रीकृष्णको जो संदेश दिया था, उसे सुनकर महारथी भीष्म और द्रोणने राजा दुर्योधनसे कहा- राजन्। कुन्तीने श्रीकृष्णसे जो अर्थ और धर्मके अनुकूल बड़े ही उग्र और मार्मिक वचन कहे हैं, वे तुमने

सुने? अब पाण्डवलोग श्रीकृष्णकी सम्मतिसे वैसा ही करेंगे। वे आधा राज्य लिये बिना शान्तिसे नहीं बैठेंगे। इसलिये तुम अपने माँ-बाप और हितैषियोंकी बात मान लो। अब सन्धि या युद्ध करना तुम्हारे ही हाथ है। यदि इस समय तुम्हें हमारी बात अच्छी नहीं लगती तो रणाङ्गणमें भीमका भीषण सिंहनाद और गाण्डीवकी टंकार सुनकर अवश्य याद आवेगी।

यह सुनकर राजा दुर्योधन उदास हो गया। उसने मुँह नीचा कर लिया तथा भौंहें सिकोड़कर टेढ़ी निगाहसे देखने लगा। उसे उदास देखकर भीष्म और द्रोण आपसमें एक-दूसरेकी ओर देखकर बात करने लगे। भीष्मने कहा, युधिष्ठिर सदा ही हमारी सेवा करनेको तत्पर रहता है, वह कभी किसीसे ईर्ष्या नहीं करता तथा ब्राह्मणोंका भक्त और सत्यवादी है। उससे हमें युद्ध करना पड़ेगा- इससे बढ़कर दु:खकी और क्या बात होगी। द्रोणाचार्य बोले- पुत्र अश्वत्थामाकी अपेक्षा भी अर्जुनमें मेरा अधिक प्रेम है। वह भी बड़ा विनीत है और मेरा बड़ा मान करता है। अब क्षात्रधर्मका आश्रय लेकर पुत्रसे भी बढ़कर प्रिय उस धनञ्जय से ही मुझे युद्ध करना पड़ेगा। इस क्षात्रवृत्तिको धिक्कार है। दुर्योधन। तुम्हें कुरुवृद्ध भीष्म, मैं, विदुर और कृष्ण सभी समझाकर हार गये। परंतु तुम्हें अपने हितकी बात सुहाती ही नहीं। देखो। हम तो बहुत दान, हवन और स्वाध्याय कर चुके हैं; हमने धनादि देकर ब्राह्मणोंको भी खूब तृप्त किया है और हमारी आयु भी अब बीत चुकी है। इसलिये हमने, तो जो करना था, सो कर लिया। किंतु पाण्डवोंसे वैर ठानकर तुम्हें बड़ी विपत्ति भोगनी पड़ेगी। तुम्हारे सुख, राज्य, मित्र और धन- सभीका विनाश हो जायगा। अत: उन वीरोंके साथ युद्ध करनेका विचार छोड़कर तुम सन्धि कर लो। इसीमें कुरुकुलकी भलाई है। अपने पुत्र, मन्त्री और सेनाका पराभव न कराओ।

जिन मनस्वियों ने लोभ को तिलाञ्जलि दे दी है, जो वचन के धनी हैं, शरणागत रक्षक और कृतज्ञ हैं जिनके लिये धर्म ही सब कुछ है, जो अपने वचनों के सामने संसार की सभी सम्पत्ति का त्याग कर सकते हैं, उन मनस्वी, तपस्वी, तेजस्वी, महात्माओं के चरणों में हमारा बार-बार प्रणाम है।

निश्चय हो गया कि कौरवों पाण्डवों में युद्ध होगा। युद्ध की सब तैयारियाँ हो चुकीं। भूमण्डल के सब राजाओं ने भी निश्चय कर लिया, दोनों पक्षों में से हम किसकी ओर लड़ेंगे। पांडवों की ओर से लड़ने पाण्डवों के मामा शल्य आनेवाले हैं। दुर्योधन की ओर बहुत राजा थे, पाण्डवों की ओर कम थे। किन्तु जहाँ श्रीकृष्ण हैं वहाँ सब हैं। जहाँ श्रीकृष्ण पीठ फेरे बैठे हैं, वहाँ कुछ भी नहीं है। धर्मराज को अपनी विजय की चिन्ता नहीं थी। चिन्ता इस बात की थी, उनके कारण कुरुकुल का विनाश होगा। वे ही इस कुल-विनाश का कारण बनेंगे। वे चाहते थे, किसी तरह युद्ध न हो। अत्यन्त मार्मिक शब्दों में अपनी यह इच्छा उन्होंने भगवान् वासुदेव के सम्मुख प्रकट की। वे तो त्रिकालज्ञ हैं। उन्हें क्षण-क्षण का पता है, काल उनके अधीन है। सब कुछ जानते हुए भी धर्मराज के गौरव को बढ़ाने के लिये, दोनों पक्षों में मेल कराने के लिये स्वयं कंस-निषूदन भगवान् वासुदेव सन्धिदूत बनकर हस्तिनापुर गये।

हस्तिनापुर में कृष्ण ने सभी प्रकार से कौरवों को समझाया। प्रेम से, डराकर, धमकाकर, भविष्य का चित्र खींचकर, हित-अहित बताकर भाँति-भाँति से दुर्योधन को समझाया। उसकी तो बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी। इसलिये उसकी समझ में कुछ नहीं आया। उलटे उसने कृष्ण को कैद करने की ठानी। मधुसूदन ने अपना प्रभाव दिखाकर सबको चमत्कृत कर दिया। जब सब प्रयत्न विफल हो गये, तब कृष्ण वासुदेव कुन्ती से मिलकर पाण्डवों के पास लौटने लगे, सभी लोग कृष्ण को पहुँचाने नगर से बाहर तक आये। सभी से मिल-भेंटकर कृष्ण विदा हुए। संकेत से उन्होंने कर्ण को बुलाया। कर्ण रथ पर से उतरकर वासुदेव के समीप जा बैठे। कृष्ण ने अपने सारथी दारूक से कहा- रथ बढ़ाओ। कर्ण को कृष्ण ने साथ ले लिया।

अब कृष्ण ने कर्ण का हृदय टटोला। साम, दाम, भेद और दण्ड चार नीति के उपाय हैं। जब तक शान्ति से काम चले

तब तक शक्ति भर शत्रुदण्ड का प्रयोग करना नीति कुशलता नहीं समझी जाती। इसलिये कृष्ण साम का आश्रय लेकर सन्धिदूत बनकर आये थे। सन्धि न हो सकी, साम से काम न चला। शान्ति की आशा नहीं रही। अब कृष्ण ने दाम और भेद का आश्रय लिया। असल में तो सर्वज्ञ प्रभु सब जानते थे किन्तु संसार में वे भक्तों की कीर्ति बढ़ाना चाहते हैं। इस समय यदि कृष्ण कर्ण से बातें न करते तो संसार में कर्ण की इतनी निर्दोष कीर्ति कैसे फैलती? उनके हृदय के भाव कैसे व्यक्त होते? उनकी महानता, दूरदर्शिता, निर्लोभता, निष्कपटता, सत्यपरायणता, कृतज्ञता और निस्पृहता आदि महान गुण संसार के सम्मुख कैसे आते?

कर्ण बोला प्रणाम वासुदेव। प्रणाम महात्मा विदुर। प्रणाम सात्यकि, प्रणाम कृतवर्मा। विदुर ने आयुष्मान भव का आशीर्वाद दिया। कृष्ण बोले- इधर से कहीं जा रहे थे और हमें देखकर रूक गये क्या या यहीं आ रहे थे? कर्ण बोला- मैं अपने मित्र दुर्योधन की असभ्यता पर क्षमा मांगने आया हूं वासुदेव। कृष्ण बोले- अपनी असभ्यता पर मनुष्य को स्वयं अपने आप से क्षमा मांगनी चाहिये। मेरा तो अपमान हुआ ही नहीं अपमान तो हुआ स्वयं दुर्योधन का, अपमान हुआ हस्तिनापुर राजसभा का तो उन्हें क्षमा करनेवाला भला मैं कौन?

कर्ण हाथ जोड़कर बोला, फिर भी हे वासुदेव। कृष्ण बोले, वास्तव में दुर्योधन की ओर से क्षमा मांगने आये हो। थोडी दूर हमारे साथ हमारे रथ में चलिये अंगराज। कर्ण बोले- यदि आप मुझे अपना सारथी बनने का विशेष अधिकार दें तो अवश्य आपके साथ चलूंगा। कृष्ण बोले- परन्तु पहिले एक वचन दीजिये कि आप मेरे रथ को हांकते हुये अपने प्रिय मित्र दुर्योधन के शिबिर में ले जाने का प्रयत्न नहीं करेंगे। कर्ण बोला- आपकी आज्ञा के बिना भला आपको कोई कहां ले जा सकता है वासुदेव? कृष्ण बोले- सात्यकि, कृतवर्मा आप थोडी दूर अंगराज के रथ में आइये। प्रणाम महात्मा विदुर।

वासुदेव बोले, मुझे विदा करने के लिए नगरद्वार तक नहीं चलोगे महावीर? कर्ण बोला, क्यों नहीं। मैं आपके साथ चलूंगा। कृष्ण बोले, अपने सारथी को कह दो, वह पीछे-पीछे आए। चलोगे तो तुम, मेरे ही रथ में, मेरे साथ। मुझे तुमसे कुछ बातें करनी है। कृष्ण ने उसे अत्यंत मधुर स्वर में संबोधित किया, महावीर कर्ण। तुम्हें आश्चर्य हो रहा होगा कि मुझे तुमसे ऐसी कौन-सी बात करनी है कि उसके लिए तुम्हें अपने साथ रथ में ले आया।

कर्ण बोला, चकित तो मैं हुआ हूँ वासुदेव। किंतु कोई इतना अधिक आश्चर्य भी नहीं हुआ, जिससे मन का संतुलन प्रभावित हो जाए। कृष्ण मुस्कराए और बोले, क्यों? अधिक क्यों नहीं?

कर्ण बोला, क्योंकि आपका व्यवहार ऐसा ही रहता है। जो व्यक्ति दुर्योधन से शत्रुता करे और फिर अपनी नारायणी सेना उसे दे दे- उसकी किस बात से मैं चकित हो सकता हूँ? जो व्यक्ति अपने परम प्रिय सखा को कहे कि अपनी सारी सेना तो मैं तुम्हारे शत्रु को दूँगा, किंतु मित्र तुम्हारा ही रहूँगा; जो यह कहे कि रहूँगा तो तुम्हारे ही पक्ष में, किंतु युद्ध में शस्त्र नहीं उठाऊँगा- उसके व्यवहार से चकित होने के स्थान पर, उसे समझने का प्रयत्न करना चाहिए। कर्ण मुस्कराया- ऐसा भी सोचा जा सकता है। मेरे मन में कहीं यह है कि आप जैसे शक्तिशाली पुरुष को रुष्ट कर दुर्योधन ने अपना हित नहीं साधा। उसे आप के साथ यह व्यवहार नहीं करना चाहिए था। कर्ण बोला, एक बात और आती है, मेरे मन में। आप और बलराम- दोनों भाई हैं। दोनों शूर-वीर और यौद्धा हैं। दोनों मिलकर जिस किसी के पक्ष में हो जाएँ, वह पक्ष पराजित नहीं हो सकता। तो आप दोनों एक साथ क्यों नहीं है।

कृष्ण बोले, भाइयों को एक साथ रहना चाहिए? कर्ण बोला, क्यों नहीं। भाइयों से बढ़कर और कौन है संसार में। दुर्योधन के भाई उसके साथ हैं; युधिष्ठिर के भाई उसके साथ। कृष्ण बोले, तो तुम क्यों अपने भाइयों को त्याग, अपने

शत्रुओं के साथ मिल बैठे हो? कर्ण बोला, मैं तो अपने भाइयों के ही साथ हूँ। कृष्ण बोले, तुम अपने भाइयों के साथ तो नहीं ही हो; तुम अपने भाइयों को जानते तक नहीं हो। तुम अधिरथ और राधा के पुत्र नहीं हो।

कर्ण बोला, जानता हूँ, वे मेरे जननी-जनक नहीं हैं; किंतु मेरे माता-पिता तो वे ही हैं। कर्ण कुछ चकित दृष्टि से कृष्ण को देख रहा था; कृष्ण उसे वह सत्य बतानेवाले थे, जो हस्तिनापुर का बच्चा बच्चा जानता था।

कर्ण उन्हें छोड़ने कुछ दूर तक आये। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि महारथी बाध्य होकर कौरवों के पक्ष का समर्थन कर रहे थे, परंतु कर्ण ही वास्तव में उनका मानसिक बल है। उनकी शक्ति का उत्स है। अंतिम कोशिश कर कर्ण को समझाया। शायद राजी हो जाये तो दुर्योधन उसकी बात मान ले।

युद्ध निश्चित जान कृष्ण एवं कर्ण दोनों गंभीर हैं। संधि प्रस्ताव पर पुन: विचार का परामर्श दिया, परंतु एक ही शब्द में कर्ण ने इन्कार कर दिया। अहंकार भरे स्वर में कहा- वीर की जन्मकुंडली में पीछे हटना नहीं लिखा होता। एक बार ठुकरा देने के बाद संधि की बात दुर्योधन नहीं मानेंगे। मैं उन्हें कैसे ऐसा परामर्श दूं? बाद में व्यंग्य में भरकर बोले, अर्जुन स्वर्ग, मर्त्य, पाताल में घूम-फिर कर अस्त्र संग्रह कर चुके हैं। वनवास में कृष्णा की चेष्टा से समूची शबर गोष्ठी पांडवों के साथ हो गई है। आर्य-आर्येतर हर गोष्ठी का समर्थन मिलेगा पांडवों को। इस युग के अलौकिक पुरुष कृष्ण का भी समर्थन उनके पक्ष में है। फिर युद्ध से इतना भय क्यों? भीरू क्यों हैं वे।

कृष्ण के रथ में कर्ण सारथी बन कृष्ण को कुछ देरतक आगे ले जाता है। कृष्ण बोला, रथ रोकिये अंगराज। आइये अंगराज। रथ के नीचे उतरकर थोडी दूर पैदल चलते हैं। बाकी लोगों को वहीं प्रतीक्षा करने के लिये कृष्ण ने कह दिया और स्वयं कर्ण के साथ पैदल वन में चलने लगे। कृष्ण बोले आपको आश्चर्य तो अवश्य हो रहा होगा कर्ण कि यह देवकी पुत्र आपको कहां ले आया? कर्ण बोला, आपके स्थान पर यदि कोई होता तो अवश्य आश्चर्य करता। आप तो किसी भी आश्चर्य की सीमा में समा नहीं सकते वासुदेव। कृष्ण बोले, हे राधेय आप तो एक उत्तम व्यक्ति हैं। सच्चे व्यक्ति हैं। आपने जिसे धर्म माना, उस धर्म का कभी उल्लंघन नहीं किया तो फिर आप दुर्योधन जैसे अधर्मी के शिविर में क्या कर रहे हैं? आप तो धर्म की एक-एक परत का ज्ञान रखते हैं अंगराज। आप तो यह सोच नहीं सकते कि दुर्योधन का मार्ग धर्म का मार्ग है, सत्य का मार्ग है। कर्ण बोला, परन्तु मेरे और दुर्योधन के सम्बन्ध का आधार न तो धर्म है और न सत्य है केशव। इस सम्बन्ध का आधार स्नेह है। वो मेरा मित्र है। वो मेरा कृष्ण तो नहीं पर मैं उसका सुदामा अवश्य हूं। क्षत्रियों के समाज ने मुझे केवल इसलिये नहीं स्वीकार किया कि मैं एक सूतपुत्र हूँ परन्तु दुर्योधन एक ऐसा अकेला क्षत्रिय है जिसने कभी भी मेरे और उसके बीच इस विशेषण की दूरी नहीं रखी। वर्षों पहिले जब क्षत्रिय समाज के सामने द्रोणाचार्य और कृपाचार्य जैसे गुरुश्रेष्ठ मेरा अपमान कर रहे थे तो केवल दुर्योधन मेरी सहायता के लिये उठा उसने मुझे अंग का राजा बनाकर यह अधिकार दिलाया कि मैं उस स्वाभिमानी कुन्ती पुत्र अर्जुन को ललकार सकूं। और यही कारण है देवकीनन्दन कि जब मुझे उसका कोई दोष दिखाई देने लगता है तो मैं अपनी आंखे मूंद लेता हूँ।

इस संसार में दो ही ऐसे प्राणी हैं जिनसे मैं प्रेम करता हूँ। एक तो दुर्योधन और दूसरी वह देवी जिसने मुझे जन्म तो नहीं दिया परन्तु वो मेरे लिये उस माता से भी अधिक महत्वपूर्ण है जिसने मुझे जन्म तो दिया परन्तु जन्म देते ही त्याग दिया। मैं तो दुखी होता हूं तो इन दोनों को दु:खी देखकर और सुखी होता हूं तो भी इन दोनों को सुखी देखकर। मेरे पास अपना न तो कोई सुख है और ना ही कोई दुख। मुझे स्वयं अपने जीवन में कोई लगाव नहीं। किन्तु मैं जब तक जीवित हूं मेरे हृदय में इन दोनों के अतिरिक्त किसी और के लिये कोई स्थान नहीं बन सकता। कृष्ण बोले, यह ठीक है अंगराज कृतघ्नता का

ऋण उतारना सहज नहीं। सबसे भारी ऋण यही होता है परन्तु फिर भी बात सत्य और असत्य, धर्म और अधर्म, प्रकाश और अंधकार के बीच आ फंसे तो क्या असत्य, अधर्म और अन्धकार का पक्ष लेकर भी ये ऋण उतारना उचित है? क्या ऐसा ऋण उतारने से ऋणी रह जाना ही उचित नहीं है अंगराज? कर्ण बोला, यह तो मुझे ऋण लेते वक्त ही कह देना चाहिये था वासुदेव परन्तु अब एक बार ऋणी हो गया तो ऋण चुकाने में कभी आनाकानी नहीं करनी चाहिये चाहे परिणाम जो भी हो। कृष्ण बोले, हां यह भी एक दृष्टिकोण हो सकता है परन्तु आप यह क्यों नहीं सोचते अंगराज कि दुर्योधन उस क्रीडा में लज्जित हो चुका था और वो अपने लिये अर्जुन का एक प्रतिद्वन्द्वी मोल लेना चाह रहा था। कही ऐसा तो नहीं कि उसने अंगदेश देकर आपको मोल ले लिया हो। कर्ण बोला, हे वासुदेव यदि उसने मुझे मोल ले भी लिया हो तब भी अपने को बेचा तो स्वयं मैंने ही था न। कृष्ण बोले, कभी आप अपने जन्म और पहिचान के विषय में सोचते हो कर्ण ? कर्ण बोला, यदि सोचूं भी तो मिलेगा क्या? कर्ण अर्थात आप नहीं जानते कि आप कौन है? कर्ण बोला, जानता तो नहीं पर अनुमान लगा सकता हूं मेरी माता अवश्य किसी आदरणीय परिवार की पुत्री रही होगी कदाचित कोई राजकुमारी जिनका भवन गंगा तट पर होगा। जब तो मेरे जन्म लेते ही मुझे सहजता से गंगा में बहा दिया और मैं यह अनुमान लगा सकता हूँ कि मेरी माता को अपने पुत्र से कहीं अधिक अपना यश प्रिय था। उन्होंने अपने पुत्र को त्याग दिया और लज्जावश अपनी प्रतिष्ठा को सम्भाल कर रख लिया। कृष्ण बोले, हां अपनी माता को खोजने के लिये कभी आपका हृदय भी नहीं मचला। कर्ण बोला, जिस माता ने मुझे त्याग दिया हो और उसे खोजकर भी क्या करूंगा और उसे पाकर भी क्या करूँगा वासुदेव? और सम्भवत: मेरे जन्म के उपरान्त किसी आदरणीय कुल में किसी महाराजा से उसका विवाह भी हो गया होगा। और अब वह और पुत्रों की माता हो जिसे उन्हे त्यागने की आवश्यकता ही नहीं पडी हो। परन्तु हे कृष्ण अब मुझे इस बात का दु:ख नहीं कि मैंने अपनी माता की ममता का स्वाद नहीं चखा। मेरी माता का नाम तो राधा है वासुदेव और मैं उन्ही के नाम से जाना जाता हूं राधेय। किन्तु आप अचानक मेरे अतीत की समाधि की ओर क्यों निकल गये? मैं तो उधर कभी जाता ही नहीं। वर्तमान की बात कीजिये वासुदेव। कृष्ण बोले, आपने ठीक ही अनुमान लगाया अंगराज आपकी माता एक बहुत बडे ही आदरणीय परिवार की पुत्री है इसलिये जब आपका जन्म हुआ तो समाज की परिनिन्दा से वो डर गयी। आज वो कई पुत्रों की माता है परन्तु उनके हृदय में एक सन्नाटा है राधेय। उनका हृदय एक रिक्त स्थान है। वे दिन रात अपने उस पुत्र के विषय में सोचती रहती है जो कवच कुंडल पहिने हुये जन्मा था।

कर्ण बोला, क्या आप यह कहना चाहते हैं कि मैं सूतपुत्र नहीं हूं? क्या आप यह कहना चाहते है कि मैं क्षत्रिय हूं? क्या मेरा यह अनुमान भी ठीक है कि आप मेरी माता को जानते है? हे वासुदेव क्या मेरी माता जीवित है? क्या मैं उनके दर्शन कर सकता हूँ? मुझसे मेरा परिचय करवाइये वासुदेव? कृष्ण बोले, हे दानवीर, हे महारथी क्या आप सत्य को सहन कर पायेंगे? कर्ण बोला, सत्य का घाव अपमान के घाव से तो गहरा नहीं होता ना वासुदेव? कृष्ण बोले, आपकी माता आपके अतिरिक्त, पांच और महारथियों की माता है और वो पांचों महारथी ऐसे यौद्धा है कि उन्होंने आज तक पराजय का स्वाद नहीं चखा। कर्ण बोले, पांच महारथी। आप कहीं उन पांडवों की बात तो नहीं कह रहे। कृष्ण बोले, उनके अतिरिक्त और कौनसे ऐसे पांच यौद्धा है कर्ण जिन्होने कभी पराजय का स्वाद न चखा हो। हां कुन्ती पुत्र हां मैं पांडवों की ही बात कर रहा हूँ। मेरी बुआ कुन्ती आपकी माता है। आप पांडवों के ज्येष्ठ भ्राता हैं। सुनकर कर्ण रोने लगा और बोला मेरे पिता, मेरे पिता कौन है वासुदेव? कृष्ण बोले, यही आपके इष्टदेव आपके पिता हैं कर्ण। कर्ण बोला, तो मैं सूर्यपुत्र हूं। मेरे दुर्भाग्य की सीमाओं को क्या आप माप सकते हैं वासुदेव? मैं सूर्यपुत्र कर्ण राधेय के नाम से जाना जाता हूं। मैं कुन्ती पुत्र कर्ण राधेय

के नाम से जाना जाता हूं, मैं कुलीन युधिष्ठिर, शक्तिशाली भीम, शूरवीर अर्जुन, सुन्दर नकुल और बुद्धिमान सहदेव का ज्येष्ठ भ्राता कर्ण राधेय के नाम से जाना जाता हूं। सारा संसार मुझे सूतपुत्र कहता रहा और मैं सुनता रहा। तनिक सोचिये वासुदेव, तनिक मेरी पीडा समझने का प्रयत्न कीजिये और इसका उपचार बताइये। हे देवकीनन्दन आप तो यह सब कुछ पहिले से जानते रहे होंगे ना। तो फिर आपने मुझे बताया क्यों नहीं? वासुदेव बताया क्यों नहीं और आज मुझे क्यों बता रहे है आप? मैं तो पांडवों के लिये अपनी घृणा की पूंजी लिये जी रहा था और अपने को धनी समझ रहा था मैं। आपने मुझे यह सब कुछ बताकर मेरा मानसिक सन्तुलन क्यों बिगाड दिया। मुझसे मेरी घृणा छीनकर मुझे निहत्था क्यों कर दिया? क्यों? आपने ऐसा क्यों किया? अब मैं अपने बाणों की दिशा अर्जुन की ओर कैसे कर पाऊंगा। हे मधुसूदन आपने तो मुझे युद्ध के आरम्भ के पहिले ही परास्त करा दिया। आपने ऐसा क्यों किया मधुसूदन क्यों किया। कृष्ण बोले, हे मेरे प्रिय भ्राता कुन्ती पुत्र कर्ण मैंने ऐसा इसलिये किया कि मैं यह नहीं चाहता कि ज्येष्ठ पांडुपुत्र अपने अनुजों के विरुद्ध युद्ध करें। आप बुआ कुन्ती के विवाह के पहिले जन्म ले चुके थे इसलिये नियमानुसार आप बुआ कुन्ती के पति महाराज पांडु के ज्येष्ठ पुत्र हैं। आप ज्येष्ठ पांडव हैं कर्ण ज्येष्ठ पांडव। मेरे साथ चलिये कर्ण। इन्द्रप्रस्थ का मुकुट आपके सिर पर होगा। आपके अनुज आपका चरणस्पर्श करेंगे। सर्वश्रेष्ठ गदाधर भीम आपके सिर पर छत्र छाया रखेंगे। अर्जुन आपका सारथी होगा और स्वयं मैं नकुल और सहदेव के संग सदैव आपके रथ के पीछे चलेंगे। हे कर्ण, हे प्रिय पांडु पुत्र धर्म पालन में आप युधिष्ठिर के जैसे है। धनुर्धर में आप अर्जुन जैसे है। सौंदर्य में आप नकुल जैसे है और यौद्धाओं की शालीनता में आप सहदेव जैसे है। मुझे तो आश्चर्य हो रहा है कि अब तक यह सब किसने देखा तक क्यों नहीं? अब तक आपको किसने पहचाना क्यों नहीं? मेरे साथ चलिये अंगराज मेरे साथ। मैं सारे संसार को आपके चरणों में डाल दूंगा और इससे ऊपर ये कि आपको पांच भाई मिल जायेंगे और आपको अपनी माता मिल जायेगी। कर्ण बोला, आप जो कुछ कह रहे है वो सब ठीक है परन्तु मैं दुर्योधन का ऋणी हूं। आपने उस ऋण के विषय में तो कुछ कहा ही नहीं। मैं आपके लिये भी अपने आपसे झूठ नहीं बोल सकता केशव। मैं जानता हूं कि पांडव तो आपकी कृपा की सुरक्षा छत्र के नीचे हैं। मैं तो क्या युद्ध में तो उनको कोई भी नहीं हरा सकता और मैं यह भी जानता हूं कि केशव कौरव सेना की पराजय निश्चित है फिर भी मैं दुर्योधन के ध्वज के तले ही युद्ध करूंगा। दुर्योधन के लिये मेरा आत्मविश्वास पराजय स्वीकार करने को भी तैयार है। हे मधुसूदन, अब यह जान लेने के पश्चात कि अर्जुन मेरा अनुज है, मैं उसके प्राण लेनेवाले बाण तो उसकी ओर नहीं भेज सकता मैं फिर भी युद्ध करूंगा। अर्जुन से युद्ध करूंगा। आप तो यह अच्छी तरह जानते थे ना कि मैं दुर्योधन की मित्रता को कभी नहीं त्यागूंगा। फिर भी आपने मुझसे मेरे जन्म का रहस्य बता कर अर्जुन के प्राणों की रक्षा कर ली। हे केशव, यदि आपने ऐसा नहीं किया होता तो अच्छा होता। तो अब आप मुझे एक वचन दीजिये। मेरे वीरगति को प्राप्त होने तक आप मेरे अनुजों को यह नहीं बतायेंगे। यदि युधिष्ठिर को यह पता चल गया कि मैं उनका ज्येष्ठ भ्राता हूं तो वे अपने सिर पर मुकुट रखना कभी स्वीकार नहीं करेगा और राजा बनने योग्य तो मेरा अनुज युधिष्ठिर ही है। यदि उसने मुझे यह मुकुट दे दिया तो मैं अंगदेश का ऋण उतारने के लिये उसके सिर पर यह मुकुट रख दूंगा और यह उस मुकुट से बडा अन्याय होगा।

कर्ण को निवृत्त करने का प्रयास असफल होते देख कृष्ण ने कहा- कर्ण, तुम कुंती के धर्मपुत्र हो। शिव का चरणामृत लेकर तुम्हें धर्मपुत्र के रूप में ग्रहण किया है, इसके पीछे उनके लाचार मातृत्व का नीरव विलाप है। तुमने कभी उसे सुनने का प्रयत्न नहीं किया। उनकी जैसी दुखियारी नारी दूसरी कोई है आर्यावर्त्त में? वसुषेन। तुम कुंती के कुमारी जीवन के समय गर्भ से उत्पन्न संतान हो। अनंत आलोक के उत्स, प्रचंड पुरुष सूर्यदेव तुम्हारे पिता हैं। तुम कुंती की प्रथम संतान

हो। लोकलाज और समाज के भय से तुम्हें काष्ट की मंजूषा में रख नदी के स्त्रोत में बहा दिया। परन्तु हृदय हर धड़कन में तुम्हारी करुण स्मृति वहां विद्यमान है। राधा के घर में तुम्हें देखने के बाद तुम्हारी जन्मकथा सुन तुम्हें पहचान लिया। धर्मपुत्र के रूप में ग्रहण करके हृदय की मौन व्यथा को शमित करने का प्रयत्न है। धर्मत: तुम पांडु के ज्येष्ठ पुत्र हो, पांडवों के ज्येष्ठ भ्राता। महासमर प्रारंभ होने से पहले तुम्हें बता देना मेरा कर्त्तव्य था। क्योंकि मैं तुम्हारा ममेरा भाई हूं, शुभेच्छु हूं। तुम अब तक अपने भाइयों से ही शत्रुता करते आये हो। अपनी अनुजवधू को ही बार-बार लांछित किया है, अपमानित किया है। अब भी तुम अपने सहोदर भाइयों के विरुद्ध युद्ध करने की बात पर दृढ़ हो। मां कुंती इसी चिंता में मरणांतक कष्ट पा रही हैं। अब सोचकर देखो-किसका पक्ष लेना तुम्हारा कर्तव्य होगा।

कर्ण स्तब्ध हुए बैठे और सोचने लगे, मैं कुंतीपुत्र हूं। साक्षात् सूर्यदेव मेरे पिता हैं। और मैं जीवनभर नीच कुल-जाति कहाकर अपने न्यायपूर्ण हक से वंचित होता रहा। पग-पग पर अपमान और लांछना ही पायी। कुंती ने भिन्न-भिन्न देवों के औरस से तीन पुत्रों को जन्म दिया। उसी तरह कर्ण को सूर्यदेव के औरस से कुंती के गर्भ में आना हुआ। सच कहा जाये तो कर्ण है निष्पाप कुमारी कन्या का प्रथम पूजा अर्घ्य। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन को जन्म देने तक वे पांडु तथा अन्य देवताओं की भोग्या हो चुकी थी। इस दृष्टि से कर्ण निष्कलंक देवशिशु है। ऋषि आशीर्वाद से ही जन्मा है। जबकि माता-पिता के झूठे अहंकार, सामाजिक प्रतिष्ठा और सम्मान मोह के कारण कलंकित पुरुष के रूप में समाज के पथ पर सिर झुकाये चल रहा है। आज अंतिम क्षणों में यह सब दु:ख और क्षोभ बढ़ रहा है। प्रशमित नहीं कर पाता। इतने विलम्ब से कृष्ण ने रहस्य खोला है, कि कर्ण का गतिपथ और बदल नहीं सकेगा।

कृष्ण मौन कर्ण का द्वंद्व चिंतन देखते रहे- वीर कर्ण। अभी भी समय है। आओ, पांडवों के साथ मिलो। मां कुंती का आशीर्वाद ग्रहण करो। पांडवों के साथ तुम्हारा मिलन समूची पृथ्वी को तुम्हारे चरणों में लाकर रख देगा। अतीत का सारा दु:ख भूलकर पांडवों के पक्ष में युद्ध करो। सारी पृथ्वी को भोग करने के साथ-साथ द्रौपदी को भी प्राप्त कर अपना पौरुष प्रतिपादन करो। एकदम हाथ के पास पृथ्वी की श्रेष्ठतम सुंदरी और असंख्य पुरुष वांछिता कृष्णा दूसरी ओर पुरुष का अहंकार, अपनी प्रतिज्ञा और विवेक का संघर्ष। एक ओर स्वर्ग सुख-दूसरी ओर मृत्यु। परन्तु स्वर्गसुख कृष्ण का दान होगा। मृत्यु पौरुष के आह्वान पर युद्ध में लड़ते-लड़ते प्राणबलि देना श्रेय है या कृष्ण का आशीर्वाद पाकर प्राणों के लोभ में, राज्य और नारी के आकर्षण में अंतिम क्षणों में पालन करनेवाले माता-पिता तथा मित्र दुर्योधन को धोखा देकर वचन न रख दल-बदल देना श्रेय होगा? कर्ण मृत्यु से डरता नहीं, क्योंकि जन्म के अगले क्षण ही उसे मृत्यु की गोद में फेंक दिया था। कर्ण डरता है भय-भीरूता, कापुरूषता और अपयश से। अत: कर्ण मृत्यु की ही कामना करता है।

कर्ण ने गंभीर स्वर में कहा, मैं जानता हूं, कृष्ण जहां हैं, विजय वहीं है। युद्ध में कौरवों का पक्ष लेने का अर्थ मृत्यु है, फिर भी अपनी शक्ति पर मुझे यथेष्ट आस्था है। अभी भी मैं पंचपांडवों को परास्त करने का विश्वास रखता हूं। क्योंकि मैं अपनी शक्ति के भरोसे पर वीर हूं। जो कुंती अपने सम्मान, सुख और मंगल के लिए शैशव में मुझे मृत्यु के मुंह में धकेल चुकी, उनसे आशीर्वाद लेने की बजाय मुझे पालनेवाली राधा का आशीर्वाद अधिक काम्य होगा। जिस मित्र दुर्योधन ने पग-पग पर मेरे दलित पौरुष को ऊपर उठाया, असमय में मेरी सहायता की, उसकी पराजय निश्चित जानकर भी मैं उन्हें नहीं छोड़ सकूँगा। मृत्यु भय से कर्ण कभी विश्वासघात नहीं कर सकता। न राज्य लोभ से बुढ़ापे में अपनी पालने-वाली मां को अस्वीकार करेगा। अहंकारी पुरुष की आंखें गीली थीं। उनके स्वर में युधिष्ठिर के लिए ममता का स्पर्श। फिर भी अपने मत पर अटल रहे। कृष्ण का आशीर्वाद और शुभकामना को जो दया और अनुकंपा मानता है, उनके जैसे अहंकारी पुरुष की मृत्यु ही प्रिय मित्र है।

तुम मेरी बुआ कुंती के कानीन पुत्र हो- पांडवों के बड़े भाई। अत: तुम भी पांडव हो। कर्ण बोला, क्या कह रहे हैं वासुदेव? कृष्ण बोले, कन्या के विवाह के पूर्व उसकी जो संतान जन्म लेती है, वह कानीन संतान कहलाती है। जो उसके गर्भ में तो विवाह से पूर्व आए, किंतु जिसका जन्म विवाह के पश्चात् हो, वह सहोढ है। जो भी हो, स्त्री जिस पुरुष से विवाह करती है, उसकी संतान का पिता, वह पुरुष ही होता है। तुम कुंतीपुत्र होने के कारण हस्तिनापुर के महाराज पांडु के ज्येष्ठ पुत्र हो। धर्मराज युधिष्ठिर के बड़े भाई। हस्तिनापुर और इंद्रप्रस्थ के राजसिंहासन तुम्हारे हैं। दुर्योधन ने तुम्हें अंगदेश का राजा स्वीकार मात्र किया है। कुछ दिया नहीं है। तुम अपने भाइयों के पक्ष में आ जाओ, तो वे सम्राट के रूप में तुम्हारा अभिषेक करेंगे।

कृष्ण बोले, तुमने कुन्तीकी कन्यावस्थामें उसीके गर्भसे ही जन्म लिया है। इसलिये धर्मानुसार तुम पाण्डुके ही पुत्र हो। अत: शास्त्रदृष्टिसे तुम्हीं राज्यके अधिकारी हो। तुम्हारे पितृपक्षमें पाण्डव हैं और मातृपक्षमें यादव। तुम मेरे साथ चलो, पाण्डवोंको भी यह मालूम हो जाय कि तुम युधिष्ठिरसे भी पहले उत्पन्न हुए कुन्तीके पुत्र हो। फिर तो पाँचों पाण्डव, पाँचों द्रौपदीके पुत्र और अभिमन्यु तुम्हारे चरण छूएँगे। तथा पाण्डवोंका पक्ष लेनेके लिये एकत्रित हुए राजा, राजपुत्र और वृष्णि तथा अन्धकवंशके सब यादव भी तुम्हारा चरणवन्दन करेंगे। मेरी इच्छा है कि धौम्यमुनि आज ही तुम्हारे लिये होम करें और चारों वेदोंके ज्ञाता ब्राह्मणलोग तुम्हारा अभिषेक करें। हम सब लोग भी मिलकर तुम्हारा ही राज्याभिषेक करेंगे। धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर तुम्हारे युवराज होंगे और हाथमें श्वेत चँवर लेकर तुम्हारे पीछे रथपर बैठेंगे। तुम्हारे मस्तकपर भीम बड़ा भारी श्वेत छत्र लगायेंगे। अर्जुन तुम्हारा रथ हाँकेंगे। अभिमन्यु सर्वदा तुम्हारे पास रहेगा तथा नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पाँच पुत्र, पञ्चालराजकुमार और महारथी शिखण्डी तुम्हारे पीछे चलेंगे। मैं भी तुम्हारे पीछे ही चला करूँगा। इस प्रकार अपने भाई पाण्डवोंके साथ तुम राज्य भोगो तथा जप, होम और तरह-तरह के मङ्गलकृत्योंका अनुष्ठान करो।

कर्णने कहा, केशव। आपने सुहृदता, स्नेह तथा मित्रताके नाते और मेरे हितकी इच्छासे जो कुछ कहा है, वह ठीक है। इन सब बातोंका मुझे भी पता है और, जैसा आप समझते हैं, धर्मानुसार मैं पाण्डुका ही पुत्र हूं। कुन्तीने कन्यावस्थामें सूर्यदेवके द्वारा मुझे गर्भमें धारण किया था और फिर उन्हींके कहनेसे त्याग दिया था। उसके बाद अधिरथ सूत मुझे देखकर घर ले गये और उन्होंने बड़े स्नेहसे मुझे अपनी स्त्री राधाकी गोदमें दे दिया। उस समय मेरे स्नेहके कारण राधाके स्तनोंमें दूध उतर आया और उसीने उस अवस्थामें मेरा मल-मूत्र उठाया। अत: धर्मशास्त्रको जाननेवाला मुझ-जैसा कोई भी पुरुष राधाके पिण्डका लोप कैसे कर सकता है? इसी प्रकार अधिरथ सूत भी मुझे अपना पुत्र ही समझते हैं और मैं भी स्नेहवश उन्हें सदासे अपना पिता ही समझता रहा हूँ। उन्हींने मेरे जातकर्मादि संस्कार भी कराये थे तथा ब्राह्मणोंके द्वारा वसुषेण नाम रखवाया था। युवावस्था होनेपर उन्होंने सूत जातिकी कई स्त्रियोंसे मेरा विवाह कराया था। अब उनसे मेरे बेटे-पोते भी पैदा हो चुके हैं। उन स्त्रियोंमें मेरा हृदय प्रेमवश काफी फँस चुका है। अब मैं सम्पूर्ण पृथ्वी या सोनेकी ढेरियाँ मिलनेसे अथवा किसी प्रकारके हर्ष या भयसे भी इन सम्बन्धियोंको छोड़ नहीं सकता। दुर्योधनने भी मेरे ही भरोसे शस्त्र उठानेका साहस किया है और इसीसे इस संग्राममें मुझे अर्जुनके साथ द्विरथयुद्धके लिये नियत किया गया है। मैं मृत्यु, बन्धन, भय और लोभके कारण दुर्योधनको धोखा नहीं दे सकता। अब यदि मैंने अर्जुनके साथ द्विरथयुद्ध न किया तो इससे अर्जुन और मेरी दोनोंहीकी अपकीर्ति होगी।

किंतु मधुसूदन। आप एक नियम इस समय कर लें। वह यह कि हमारी जो गुप्त बात हुई है, वह यहींतक रहे। यदि धर्मात्मा और जितेन्द्रिय युधिष्ठिरको इस बातका पता लग गया कि कुन्तीका प्रथम पुत्र मैं हूँ तो वे राज्य ग्रहण नहीं करेंगे और मुझे वह विशाल साम्राज्य मिला तो मैं उसे दुर्योधनको ही दे दूँगा। परंतु मेरी तो यही इच्छा है कि जिनके नेता श्रीकृष्ण और यौद्धा अर्जुन हैं, वे धर्मात्मा युधिष्ठिर ही सर्वदा राज्यशासन करें। मैंने दुर्योधनकी प्रसन्नताके लिये पाण्डवोंके विषयमें

जो कटुवाक्य कहे हैं, अपने उस कुकर्मके लिये मुझे बड़ा पश्चात्ताप है। श्रीकृष्ण। जिस समय आप मुझे अर्जुनके हाथसे मरा हुआ देखेंगे, जब भीषण गर्जना करते हुए भीम दु:शासनका रक्त पीयेंगे, जिस समय पाञ्चालकुमार धृष्टद्युम्न और शिखण्डी द्रोणाचार्य और भीष्मका वध करेंगे तथा महाबली भीम दुर्योधनको मार देंगे, उसी समय राजा दुर्योधनका यह रणयज्ञ समाप्त होगा। केशव। कुरुक्षेत्र तीनों लोकोंमें अत्यन्त पवित्र है। वहाँ यह सारा वैभवशाली क्षत्रिय समाज शस्त्राग्निमें स्वाहा हो जायगा। आप इस सम्बन्धमें ऐसा करें, जिससे ये सब क्षत्रिय स्वर्ग प्राप्त कर लें। क्षत्रियका धन तो संग्राममें जय पाना या पराक्रम दिखाते हुए मर जाना ही है। अत: आप हमारे इस विचारको गुप्त रखते हुए ही अर्जुनको मेरे साथ युद्ध करनेके लिये ले आइयेगा। कर्ण ने कहा, मधुसूदन। आप ऐसा उद्योग करें कि क्षत्रियों की वृथा मृत्यु खाट पर पड़े बीमारी से न हो, वे युद्ध में शस्त्र से मरकर वीर क्षत्रियों की गति को पावें। स्वर्ग में सुख भोगें।

कृष्ण ने कहा- देखो, कर्ण तुम मूर्ख नहीं हो। तुमने वेदशास्त्रों का विधिवत् अध्ययन किया है। तुम शास्त्रों के मर्म को भली-भाँति जानते हो। वृद्ध और ब्राह्मणों की सेवा करके तुमने सद्गुणों की वृद्धि की है। तुम विनयी, दानी और यशस्वी हो। संसार में तुम्हारा यश व्याप्त है। फिर भी तुम नीचों के सङ्ग में पडकर इन अत्याचारियों का पक्ष ले रहे हो। तुम सूतपुत्र नहीं हो। तुम मेरी बुआ के लड़के मेरे सगे फुफेरे भाई हो। तुम युधिष्ठिर के बड़े भाई और मेरे भी पूज्य हो, भगवान सूर्य के वरदान से तुम मेरी फुफी कुन्ती के गर्भ से कुमारी अवस्था में ही पैदा हुए थे। ऐसे पुत्र को शास्त्र में कानीन कहते हैं। विवाह होने पर जो पुत्र होता है, उसे सहोढ़ कहते हैं। ये दोनों ही पुत्र जिसके साथ माता का विवाह हो, उसी पति के समझे जाते हैं। धर्मपूर्वक तुम महाराज पांडु के सबसे बडे पुत्र हो। पांडव तुम्हारे पिता के पक्ष के हैं और हम सब वृष्णि-वंशीय तुम्हारी माता के पक्ष के हैं। न्यायत: कुरुकुल सिंहासन के एकमात्र तुम्ही अधिकारी हो। समस्त पृथ्वी के तुम्ही सम्राट बनने योग्य हो। तुम मेरे साथ चलो, हमारे साथ मिल जाओ। अभिमन्यु सदा हाथ जोड़े तुम्हारे सामने खड़ा रहेगा। इनके अतिरिक्त नकुल, सहदेव, पाञ्चाली द्रौपदी, अंधक, वृष्टिवंश के सब राजा और राजकुमार तथा स्वयं मैं तुम्हारी समस्त आज्ञाओं का पालन करेंगे। लड़ाई-झगड़ा ठीक नहीं। तुम्हीं इन सबके प्राण हो। ये सब तुम्हारे बल भरोसे पर ही उछल कूद रहे हैं। इस प्रकार पृथ्वी के असंख्यों योद्धा मरने काटने से बच जायँगे। अब इन दोनों पक्षों के रक्षक तुम्हीं हो। तुम चाहो तो इस कुल क्षय को रोक सकते हो। शुभस्य शीघ्रम अच्छी बात को कल के लिये नहीं छोड़ना चाहिये। अभी इसी रथ पर तुम मेरे साथ ही चलो। आज ही तुम्हारा अभिषेक हो और फिर आज ही यह अनर्थकारी युद्ध रुक जाय। इतना कहकर कृष्ण कर्ण के मुख की ओर देखने लगे। सम्राट युधिष्ठिर की महारानी, द्रुपदपुत्री कृष्णा, तुम्हारी साम्राज्ञी होगी। पांडवों के पुत्र तुम्हारे पुत्र होंगे- तुम्हारे आज्ञाकारी पुत्र। कृष्ण बोले, वैसे तो मेरे वचनों को साक्षी की आवश्यकता नहीं होती... किंतु तुम्हारा जीवन दुर्योधन के साथ व्यतीत हुआ है, जिसका प्रत्येक श्वास झूठ बोलता है। इसलिए तुम किसी का भी अविश्वास कर सकते हो। इससे कोई हानि नहीं। अच्छा है कि तुम दुर्योधन से भी उसके वचनों का प्रमाण माँगो। कर्ण बोला, वह मेरा मित्र है।

कृष्ण बोले, अंगराज कर्ण। तुम जानते हो कि मैं हाथ में शस्त्र लूँ या न लूँ, इस युद्ध में दुर्योधन की विजय नहीं हो सकती। महाराज धृतराष्ट्र का भय सर्वथा मिथ्या नहीं है। वे जानते हैं कि पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, तथा कृपाचार्य के पास चाहे कितने भी दिव्यास्त्र तथा देवास्त्र हों, किंतु दुर्योधन के अपने पास केवल भैया बलराम की दी हुई गदा विद्या ही है। न उसने धनुर्विद्या का समुचित अभ्यास किया है, न उसके पास दिव्यास्त्र तथा देवास्त्र हैं। पितामह तथा आचार्य के शरीर हस्तिनापुर में हैं, किंतु उनके मन पांडवों के निकट उपप्लव्य में बसते हैं। और जहाँ आचार्य हैं, वहीं अश्वत्थामा और कृपाचार्य भी हैं। योद्धाओं में से दुर्योधन केवल तुम पर ही विश्वास कर सकता है। और दिव्यास्त्रों की

प्राप्ति में तुम्हें कोई विशेष सफलता नहीं मिली है। आचार्य द्रोण ने तुम्हें विद्या का दान दिया नहीं; परशुराम ने विद्या कम दी शाप अधिक दिया। अब तुम चाहो भी तो न तपस्या का समय है, न साधना का। इस समय अपनी यह स्वर्णिम त्वचा भी उतार कर देवताओं के चरणों में समर्पित कर दो तो कदाचित ही तुम्हें कोई शक्तिशाली दिव्यास्त्र मिल सकें।

कर्ण बोला, वीर लोग जय-पराजय को पूर्वनिश्चित कर, युद्ध-क्षेत्र में नहीं उतरते; और न ही जय-पराजय की संभावनाओं को देखकर अपना पक्ष निर्धारित किया जाता है। दुर्योधन को मैंने अपना मित्र माना है, तो मैत्री का निर्वाह अंत तक करूंगा। पराजय और मृत्यु के क्षणों में भी मैं दुर्योधन का साथ नहीं छोड़ सकता।

कर्ण का चेहरा गम्भीर हो गया था। उनकी दोनों आँखें आँसुओं से भरी हुई थी। उनका कण्ठ रूँधा हुआ था। कर्ण बोले- मधुसूदन। आपने जो कहा है, मेरे हित के ही लिये कहा है। आप मुझसे इतना स्नेह रखते हैं, यह स्मरण करके मेरी छाती फटी जाती है। आप सत्य स्वरूप हैं। आप झूठ तो बोलेंगे नहीं। मैं भी यह जानता हूँ कि मैं माता कुन्ती का पुत्र हूँ। मुझे यह भी पता है कि माता ने सूर्य भगवान् की आज्ञा से मुझे जल में बहा दिया था और सूतराज अधिरथ ने मेरा लालन-पालन किया। वास्तव में मैं सूतपुत्र नहीं हूँ। आप मेरे सगे मामा के लड़के हैं। पांडव मेरे छोटे भाई हैं कुन्ती मेरी माता है और पांडु मेरे उसी प्रकार पिता हैं जिस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर के। मेरा यह परम सौभाग्य है कि आप मुझे इस समस्त भूमंडल का राज्य दे रहे हैं। मैं इस बात पर भी अविश्वास नहीं करता कि पांडव आपकी आज्ञा न मानेंगे। आपकी तो वे उचित अनुचित जैसी भी आज्ञा होगी, उनका सिर झुकाकर पालन करेंगे ही, किन्तु आप आज्ञा न भी दें, धर्मराज युधिष्ठिर को इस बात का केवल पता ही भर लग जाय कि मैं उनका बड़ा भाई हूँ तो वे चाहे संसार एक ओर हो जाय सिंहासन पर कभी न बैठेंगे, मुझे ही राज्य दे देंगे। इसलिये न तो राज्य पाने में ही मुझे कोई सन्देह हैं, न ग्रहण करने में ही कोई आपत्ति, क्योंकि न्यायत: मेरा राज्य-सिंहासन पर अधिकार हैं। किन्तु प्रभो। मुझपर अप्रसन्न न हो। मेरी धृष्टता को क्षमा करें, यह तब तक किसी प्रकार सम्भव भी हो सकता था, जब रङ्गभूमि में कृपाचार्य ने मेरा कुल गोत्र पूछा था। उस समय यदि माता कुन्ती सबके सामने कह देती कि यह सूर्य के संसर्ग से उत्पन्न हुआ मेरा बड़ा पुत्र और धर्मराज का सबसे बड़ा भाई है तब तो बात बन जाती थी। अब इस समय राज्य-सिंहासन ग्रहण करने में मेरे साथ कितनी-कितनी कठिनाइयाँ हैं।

माता ने मेरा त्याग निर्दयतापूर्वक किया था। उनके लिये तो मैं मर ही गया था। अधिरथ सूतराज ने मुझे दयावश पकड़ा। उन्होंने अपनी पत्नी राधा को दिया, राधा ने अपने सगे पुत्र की तरह मेरा पालन-पोषण किया। मुझे सूखे में सुलाया, आप गीले में सोयीं। मेरा मलमूत्र उठाया। पाल पोषकर इतना बड़ा किया। उन्हीं के कारण मैं संसार में राधा का पुत्र राधेय नाम से विख्यात हुआ। वे मुझे सगे पुत्र की तरह मानती हैं। आज मैं उन्हें छोड़कर पांडवों में मिल जाऊँगा तो यह मेरी सबसे बड़ी मातृ कृतघ्नता होगी। अधिरथ ने मुझे अपने सगे पुत्र की तरह माना है। जात कर्म से लेकर अब तक जो मेरे संस्कार हुए हैं, सूत कुल की रीति से हुए हैं। उन्होंने मेरा नाम वसुषेण रखा है। उनको जलपिंड देनेवाला मैं ही हूँ। यदि आज मैं उन्हें छोड़कर पांडु-वंश में मिल जाऊँ तो उन्हें कितना दु:ख होगा। यह सबसे बड़ी कृतघ्नता समझी जायगी। मेरा विवाह बहुत-सी सूत कन्याओं के साथ हुआ है। उनसे मेरे पुत्र, पौत्र तक हो गये हैं। आज मैं उन सबको छोड़कर राजवंश में मिल जाऊँ तो यह मेरी वंश कृतघ्नता होगी। मैंने सूत जाति के अपने भाइयों के साथ बहुत बड़े-बड़े यज्ञ किये हैं। उनके साथ मेरा रोटी-बेटी का सम्बन्ध है। वे मुझे अब तक अपने कुल में सबसे श्रेष्ठ समझते हैं। आज उन्हें छोड़कर मैं क्षत्रियों में मिल जाऊँ तो यह मेरी असहनीय जाति कृतघ्नता होगी। दुर्योधन आदि कौरवों ने मेरे ही बल भरोसे पर युद्ध का निश्चय किया है। वे मेरे ही विश्वास पर पांडवों को हराना चाहते हैं। आज उन्हें छोड़कर मैं पांडव पक्ष की ओर

मिल जाऊँ तो यह कभी भी क्षमा न होनेवाली मित्र-कृतघ्नता मानी जायगी। इनकी परवाह न करके यदि मैं आपकी आज्ञा से राज्य-सिंहासन ग्रहण कर भी लूँ तो भी इसमें बड़े अनर्थ हैं।

राज्य हमेशा सुख के लिये और कीर्ति के लिये किया जाता है। सुख की तो अब भी मुझे कोई कमी है नहीं। दुर्योधन के राज्य का भोग मैं अपने राज्य की भाँति करता हूँ। बस, इतनी ही कसर है कि मैं सम्राट के सिंहासन पर नहीं बैठता। आपके कहने से मैं धर्मराज युधिष्ठिर को हटाकर उनके सिंहासन पर बैठ जाऊँ तो इसमें मेरी कीर्ति न होकर अपकीर्ति ही होगी। माता कुन्ती ने सबके सामने तो मुझे जल में छोड़ा नहीं था। उन्होंने तो मुझे छिपकर रात्रि के समय जल में बहाया था। अब तक मैं अधिरथ का पुत्र राधेय या सूतपुत्र के नाम से विख्यात हूँ। अब मैं ठीक युद्ध के समय में पांडु पुत्र बनकर सिंहासनारूढ़ हो जाऊँ तो अन्य राजा इस बात पर विश्वास न करेंगे। सब मिलकर यही कहेंगे कि धर्मराज ने कर्ण को प्रसन्न करने की रिश्वत देकर यह चालाकी चली है।

अर्जुन से मेरी सदा लाग डाँट रही है। सबके सामने उसे मैंने मारने की प्रतिज्ञा भी की है। कौरवों ने भी द्वन्द्व युद्ध में मुझे अर्जुन के साथ ही चुना है। आज ठीक युद्ध के समय मैं पांडवों से मिल जाऊँ तो बहुत से कहेंगे कर्ण ने डरकर पांडवों से सन्धि कर ली। बहुत से यह भी कह सकते हैं कि अर्जुन ने डरकर कर्ण को अपना भाई मान लिया, जिसका कल तक वे सूतपुत्र कहकर सबके सामने अपमान, तिरस्कार करते थे। इस तरह मेरी और अर्जुन दोनों की ही इसमें अपकीर्ति है। इन सब बातों को सोचते हुए हे वासुदेव। अब जो हो गई, सो हो गई। अब तो जो आपने सोच रखा है वही होगा। हे मधुसूदन। आप सर्वज्ञ हैं, सबके स्वामी और एकमात्र गति हैं। आप चराचर के स्वामी हैं। भगवन्। पृथ्वी पर असंख्यों क्षत्रिय बढ़ गये हैं। खाट पर पड़े-पड़े मरेंगे तो सबको नरक जाना पड़ेगा। हे चराचर के स्वामी। इन क्षत्रियों को नरक से बचाइये। युद्ध में शस्त्र से मारकर इन्हें स्वर्ग की प्राप्ति कराइये। आप सर्व समर्थ हैं। आप सन्धि कराना चाहें तो आपकी आज्ञा का उल्लंघन कौन कर सकता है? इसलिये अब आप सन्धि की चर्चा छोड़कर, ऐसा ही प्रयत्न करें कि सब क्षत्रिय युद्ध में मरकर स्वर्ग में सुख भोगें। इस युद्ध का प्रधान कारण आपने मुझे ही बना रखा है और दुर्योधन, दु:शासन, शकुनि भी है। जो आप कराना चाहेंगे उसके लिये कौन मना कर सकता है, दुर्योधन ने ठीक ही कहा है-

**यन्त्रस्य ममदोषेण क्षम्यतां मधुसूदन। अहं यन्त्रं भवान् यन्त्री मम दोषो न दीयताम्॥**

ईश्वर तो सर्वज्ञ हैं, सर्वान्तर्यामी हैं, सर्वेश्वर हैं, सर्वनियन्ता हैं, जगदाधार हैं सर्व स्वतन्त्र हैं। उन्हें कौन सिखा सकता है, कौन समझा सकता है। किन्तु वे अपनी शक्ति देकर स्वयं ही भक्तों की ख्याति के लिये उनसे स्वयं ही कहलाते हैं, उपदेश दिलाते हैं। अपनी कीर्ति से बढ़कर भगवान को भक्त की कीर्ति प्यारी लगती है। जब पितामह भीष्म ने कृष्ण से पूछा- प्रभो। आप ज्ञानस्वरूप हैं, सर्व वेदशास्त्र आपकी नि:स्वास हैं, फिर आप धर्मराज युधिष्ठिर को स्वयं ही उपदेश न देकर मुझसे उपदेश क्यों दिला रहे हैं? तब मुस्कराते हुए मधुसूदन बोले- पितामह। आप ठीक कह रहे हैं। मेरे लिये कुछ भी असम्भव नहीं। फिर भी संसार में तुम्हारी ख्याति हो, तुम्हारा नाम अजर-अमर बना रहे, इसीलिये स्वयं मैं अपनी शक्ति देकर आपके मुख से कहला रहा हूँ। क्या कर्ण नहीं जानते थे कि भगवान को क्या करना है? क्या भगवान से कर्ण के मनोगत भाव छिपे थे? नहीं, कभी नहीं। वे सर्वज्ञ प्रभु घट-घट में विचरण करने वाले सब कुछ जानते थे फिर भी उन्हें कर्ण का यश प्रकट करना अभीष्ट था। कर्ण यदि लोभ में आ जाते और दुर्योधन को छोड़ देते तो सम्राट चाहे भले ही बन जाते, किन्तु उनका जगत व्यापी यश नष्ट हो जाता। संसार में उनकी अक्षुण कीर्ति न रहती। कृष्ण को यह अभीष्ट ही नहीं था कि कर्ण बदनाम हों- वे देवता से मनुष्य कहलावें। कर्ण का उत्तर सुनकर कृष्णने कहा- कर्ण तुम्हारे भाग्य में सम्राट पद

लिखा ही नहीं है। तभी तो तुम मेरे प्रस्ताव को इस तरह ठुकरा रहे हो? यह सुनकर कर्ण ने अत्यन्त विनीत भाव से कहा- प्रभो। आप क्यों मुझे ठगना चाहते हैं? मैं आपके भुलावे में आना नहीं चाहता। युद्ध करना चाहते हैं आप और नाम ले रहे हैं मेरा। आप रोकना चाहें तो किसकी शक्ति है, जो युद्ध कर सके। स्वयं को ठगना इतना सहज नहीं होता।

कृष्ण बोले- युद्ध में विजय पांडवों की ही होगी, इसे तुम निश्चय समझ रखना। धनुर्धर वीर अर्जुन को कौन जीत सकता है? जिस समय गदा लेकर भीम सिंहनाद करेंगे उस समय कौन यौद्धा उनके सामने ठहर सकता है?

कर्ण ने कहा- प्रभो। यह तो मैं नहीं मानता। हाँ, इतना मानता हूँ कि जिधर आप हैं उधर जय है। आप उनके पक्ष को छोड़ दें तो जैसे वे वैसे ही हम। आप देखें, कौन जीतता है, कौन हारता है। किन्तु आपकी लीला को कौन समझ सकता है कि आप क्या करना चाहते हैं?

अत: हे कृष्ण। कृपा कर मेरा जन्म-परिचय बाहर प्रकट न करें। अन्यथा युधिष्ठिर जैसा धार्मिक, उदार हृदय सब कुछ मेरे पांवों में लाकर रख देगा। आप जानते हैं कि दान, दया, करुणा लेने से मैं बहुत घबराता हूं। अत: युधिष्ठिर की जय हो- यही ज्येष्ठ भ्राता के रूप में मेरी कामना है। थोड़ी देर सोचकर और आँखों में आँसू भरकर कर्ण ने पुन: कृष्ण से कहा- मधुसूदन। एक बात मैं कहना चाहता हूँ। आप यदि मेरी प्रार्थना स्वीकार करें तो? कृष्ण ने स्नेह से कर्ण की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा- हाँ हाँ, कहो कहो? क्या कहना चाहते हो? संकोच की कोई बात नहीं।

कर्ण ने आँसू पोंछकर कहा- वासुदेव। मेरी यह प्रार्थना है कि मेरे आपके बीच में जो बातें हुई हैं, उन्हें आप धर्मराज युधिष्ठिर से कभी भूल में भी न कहें।

**यदि जानाति मां राजा धर्मात्मा संयतेन्द्रिय:। कुन्त्या: प्रथमजं पुत्रं न स राज्यं ग्रहीष्यति।।**

कर्ण ने भगवान से कहा, प्रभो। आप ये बातें धर्मराज से न कहें। यदि उन सत्यात्मा महाराज युधिष्ठिर को यह मालूम पड़ जायगा कि मैं कुन्ती का पहला पुत्र हूँ उनका बड़ा भाई हूँ तो वे कभी भी राज्य ग्रहण न करेंगे। (मुझे राज्य दे देंगे)।

वे साक्षात धर्म के अवतार हैं। यदि उन्हें किसी भी तरह यह बात मालूम हो जाय कि मैं उनका बड़ा भाई हूँ, तो वे फिर कभी भी युद्ध न करेंगे। अपना समस्त राज्य मुझे दे देंगे। मैं दुर्योधन की कृतज्ञता के भार से इतना दब गया हूँ कि मैं समस्त भूमंडल का राज्य उसके चरणों में समर्पित कर दूँगा। इससे बड़ा अनर्थ होगा। मेरे सगे भाई जंगलों में भटकते होंगे। दुर्योधन बड़ा नीच है, वह सम्राट होने योग्य नहीं। मेरी हार्दिक इच्छा है कि धर्मराज समस्त समुद्र-पर्यन्त समस्त पृथ्वी के एकमात्र अधीश्वर बने। वे ही उसके उपयुक्त हैं, जिनके आप रक्षक और सहायक हैं। गांडीव धनुषधारी अर्जुन और गदापाणि वृकोदर जिनके आज्ञाकारी हैं, उनकी विजय तो निश्चित ही है, किसी को इसमें सन्देह करने की बात ही नहीं। धर्मराज युद्ध से नहीं डरते, वे कुल के नाश से, अपकीर्ति और अधर्म से डरते हैं।

कृष्ण ने कहा- तुम्हारा कहना ठीक है। धर्मराज तो केवल पाँच गाँव लेकर दुर्योधन के अधीन रहना चाहते हैं, वे केवल कुलनाश के भय से ऐसा करना चाहते हैं। भय से अथवा मृत्यु के डर से नहीं।

कर्ण बोले, मृत्यु का डर तो प्रभो। मुझे भी नहीं, मुझे निश्चय है कि संग्राम में आपके द्वारा मेरी मृत्यु अर्जुन के बाणों से होगी। द्यृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य को मारेंगे। शिखण्डी के हाथ से भीष्म की मृत्यु है। भीम धृतराष्ट्र के १०० पुत्रों का नाश करेंगे। रणचण्डी का प्रत्यक्ष नृत्य मुझे अभी से दिखाई दे रहा है। पांडव की आप मङ्गल कामना करते हैं, फिर उनका कोई भी बाल बाँका नहीं कर सकता। किन्तु एक बात सहस्त्रों सुइयों की तरह सदा मेरे हृदय में चुभती रहती है। मैंने दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिये पांडवों को बहुत कड़ी-कड़ी बातें कहीं है। महारानी द्रौपदी के लिये भी मैंने अपशब्दों का प्रयोग किया है।

ये बातें जब भी मुझे याद आ जाती है, तभी मेरे दु:ख का पारावार नहीं रहता। यह मैंने बड़ा पाप किया है। सो हे सर्वज्ञ। हे अन्तर्यामी। आप सब जानते ही है। यह मैंने कृतज्ञता के बोझ से दबकर किया। इसके लिये मैं आपसे क्षमाप्रार्थी हूँ। यह कहते-कहते कर्ण फूट-फूटकर रोने लगे। देवी द्रौपदी को अनुजवधू जाने बिना कई तरह से अपमानित करता गया, बस उसी पर दु:ख है। अनुजवधू के रूप में वह मेरी पुत्रवधू सरीखी है। और मैं उसके लांछन और अपमान का पट्टा-पुरोधा बनता रहा। उसके लिए आपसे क्षमा मांग लेता हूं। कर्ण ने छलछलाये नेत्रों से कृष्ण के हाथ पकड़ लिए। कंठावरोध।

कृष्ण ने कहा, हां। कृष्णा अपमान का प्रतिशोध लेने की प्रतीक्षा में हैं, परन्तु वह भी तुम्हारा यथार्थ परिचय पाने पर क्षमा कर देगी। उसका हृदय बहुत कोमल, उदार है। समय आने पर सब जान जायेगी, तुम्हें उचित सम्मान देगी। कर्ण। तुम्हें मैंने सारी पृथ्वी देनी चाही, कृष्णा भी तुम्हारी हो जाती। पांडवों के बड़े भाई के रूप में कुन्ती के वचन के अनुसार न्यायत: कृष्णा तुम्हारी भी पत्नी होनी चाहिए। वह भी तुम्हें पांडव पक्ष का समर्थन करने के लिए लुभा न सकी। अब मैं तुम्हारे लिए क्या कामना करूं? दैवी शक्ति पर तुम्हारे मन में विश्वास नहीं, शुभेच्छा तथा मंगलकामना को तुम दया समझते हो। अत: आखिरी बात यही कहूंगा- पौरुष और अहंकार एक ही बात नहीं है। तुम्हारे पौरुष की जय हो। अहंकार चूर्ण हो। बस यही कामना करूंगा।

कृष्ण बोले, कहो अंगराज? कर्ण बोला, क्या युधिष्ठिर और उसके भाई, मेरे साथ अपने इस संबंध से परिचित हैं?

कृष्ण गम्भीर होकर बोले, नहीं। यदि तुम इस संबंध को स्वीकार कर, अपने भाइयों के साथ आने को सहमत हो, तो मैं उन्हें तुम्हारे विषय में सब कुछ बता दूंगा; और यदि तुम्हें दुर्योधन का मित्र बने रहना है, पांडवों के विरुद्ध युद्ध करना है, उनके प्राणों का हरण करना है, उनसे उनका राज्य छीन कर दुर्योधन को देना है, तो मैं उन्हें यह रहस्य बताने के पक्ष में नहीं हूँ। यदि उन्हें ज्ञात हो गया कि तुम उनके सहोदर हो, तो वे तुमसे युद्ध नहीं करेंगे, चाहे तुम उनका वध ही क्यों न कर दो। इस संबंध से अनभिज्ञ होने पर, वे कम से कम अपनी रक्षा में, युद्ध तो तत्परता से कर सकेंगे। तुम चाहो तो दुर्योधन को बता दो, ताकि वह इसे प्रचारित कर, पांडवों को युद्ध से निरस्त कर दे। पांडव अनस्तित्व में विलीन हो जाएंगे। युद्ध के बिना ही तुम्हें विजय प्राप्त हो जाएगी। कृष्ण मुस्कराकर बोले।

कर्ण बोला, मैं यह भी नहीं चाहता। मैंने अब तक नीचता के अनेक कार्य किए हैं; किंतु अब मैं पांडवों से युद्धक्षेत्र में सम्मुख युद्ध करना चाहता हूं। मैं उन्हें अपनी रक्षा का पूर्ण अवसर देना चाहता हूं। इसलिए...। देवी कुंती से...।

कृष्ण ने उसकी बात काट दी। वे तुम्हारी जननी हैं कर्ण। कर्ण बोला, वह ठीक है। इसलिए देवी कुंती से कहिएगा कि जैसे आज तक इस रहस्य को गुप्त रखा है, वैसे ही युद्ध की समाप्ति तक इसे गुप्त ही रखें।

कृष्ण बोले, तुम्हारा ध्यान कदाचित इस ओर नहीं गया अंगराज कि यदि दुर्योधन इस रहस्य को जान गया, तो वह तुम पर भी विश्वास नहीं कर पाएगा। वह सदा ही आशंकित रहेगा कि जाने कब, तुम्हारा मन अपने भाइयों के पक्ष में चला जाए। तुम उसके मित्र रहो, न रहो; वह तुम्हारा मित्र नहीं रह पाएगा। कृष्ण की दृष्टि शिलाओं के आर-पार देखती है और उनके अधरों की मुस्कान पर्वतों को भी पिघला देती है। कर्ण अब भी उनके सम्मुख खड़ा रहा, तो कदाचित उसका आत्मनियंत्रण उसका साथ छोड़ जाएगा।

कृष्ण चलने को तैयार हुए। तब उन्होंने कहा- तब युद्ध का ही निश्चय रहा न? अच्छी बात है, कौरवों से कह देना कि शीघ्र ही तैयारी कर लें। युद्ध के लिये यही महीना अच्छा है। युद्धोपयोगी सामग्री भी इस महीने में प्रचुरता से होती हैं। आज से सातवें दिन अमावस्या से युद्ध शुरू हो जाना चाहिये, वही शुभ-मुहूर्त है। कर्णकी यह बात सुनकर श्रीकृष्ण बोले, कर्ण। तो क्या तुम्हें यह राज्यप्राप्तिका उपाय भी मंजूर नहीं है? तुम मेरी दी हुई पृथ्वीका भी शासन नहीं करना चाहते? इसमें तो

तनिक भी संदेह नहीं है कि जय पाण्डवोंकी ही होगी। अच्छा, अब तुम यहाँसे जाकर द्रोणाचार्य, भीष्म और कृपाचार्यसे कहना कि यह महीना अच्छा है। इस समय फलोंकी अधिकता है, मक्खियाँ कम हैं, कीच सूख गयी है, जलमें स्वाद आ गया है तथा विशेष गर्मी या ठंड भी नहीं है। अच्छा सुखमय समय है। वहाँ और भी जो-जो राजालोग आवें, उन सबको यह समाचार सुना देना। तुम्हारी इच्छा युद्ध करनेकी है तो मैं उसीका प्रबन्ध किये देता हूँ। दुर्योधनके अधीन जो भी राजा और राजपुत्र हैं, वे शस्त्रोंसे मरकर उत्तम गति प्राप्त करेंगे। कृष्ण ने परोक्ष रूप में युद्ध संवाद देने के लिए कहा- तो कर्ण, तुम पांडव पक्ष समर्थन के मेरे प्रस्ताव पर राजी नहीं हुए। अब युद्ध के लिए तैयार रहना। आज से सात दिनों बाद मार्गशिर्ष अमावस्या तिथि है। उसी दिन पुण्यतोया सरस्वती की शुष्क शैया में स्थित पंचह्रद के किनारे कुरुक्षेत्र में पांडव-कौरव महासमर आरंभ होगा। कुरुक्षेत्र का अर्थ है कर्मक्षेत्र। सत्कर्म ही कर्म है। असतकर्म तो दुष्कर्म है। अत: कुरुक्षेत्र का वास्तव में अर्थ है सतकर्म का क्षेत्र। न्याय प्रतिष्ठा के लिए युद्ध करना सत्कर्म है। अन्याय की आशा पूरी करने युद्ध में लड़ना असत्कर्म होगा। अत: कुरुक्षेत्र में सत्कर्म और सत्य की जय होगी। कौरवों को युद्ध की तिथि बता देना।

कर्ण ने फिर कहा- वासुदेव। मेरे अपराधों को क्षमा करें। मैंने स्वप्न में अनेक ऐसे लक्षण देखे, जिनसे मुझे निश्चय हो गया है कि विजय पांडवों की होगी। पृथ्वी पर भी जो अपशकुन हो रहे हैं, उनसे भी यही प्रतीत होता है कि जनसंहारी महायुद्ध होगा। उसमें समस्त देश के राजा, महाराजा, वीर योद्धा स्वाहा हो जायँगे। केवल आपकी कृपा से पांडव ही सुरक्षित बच जायँगे। भावी को अपने पुरुषार्थ से अन्यथा करने में समर्थ कौन हो सकता है? आपको जो कराना होगा, वही होगा। तब कर्णने श्रीकृष्णका सत्कार करते हुए कहा- महाबाहो। आप सब कुछ जान-बूझकर भी मुझे क्यों मोहमें डालना चाहते हैं। यह तो पृथ्वीके सर्वथा संहार का समय ही आ गया है। इसमें शकुनि, मैं, दु:शासन और धृतराष्ट्रकुमार दुर्योधन तो निमित्तमात्र हैं। दुर्योधनके अधीन जो राजा और राजपुत्र हैं, वे सब शस्त्राग्निमें भस्म होकर यमराजके घर जायँगे। इस समय बड़े भयानक स्वप्न और भयंकर शकुन तथा उत्पात भी दिखायी दे रहे हैं। इन्हें देखकर शरीरके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ये स्पष्ट ही दुर्योधनकी हार और युधिष्ठिरकी विजय सूचित करते हैं। पाण्डवोंके हाथी-घोड़े आदि वाहन प्रसन्न दिखायी देते हैं तथा मृग उनके दायें होकर निकल जाते हैं- यह उनकी विजयका लक्षण है। कौरवोंकी बायीं ओर होकर मृग निकलते हैं- इससे उनकी पराजय सूचित होती है। श्रीकृष्णने कहा- कर्ण। निस्संदेह अब यह पृथ्वी विनाशके समीप पहुँच चुकी है, इसीसे तो मेरी बात तुम्हारे हृदयको स्पर्श नहीं करती। जब विनाशकाल समीप आ जाता है तो अन्याय भी न्याय-सा दीखने लगता है। जीते रहे तो फिर कभी इसी तरह बैठकर घुल-मिलकर बातें करेंगे, नहीं तो मरकर स्वर्ग में तो भेंट होगी। मुझे तो यही विश्वास है कि अब तो स्वर्ग में ही सब परस्पर चलके मिलेंगे। कर्णने कहा- श्रीकृष्ण। अब तो यदि इस महायुद्धसे बच गये तभी आपके दर्शन होंगे। नहीं तो स्वर्गमें तो हमारा आपसे समागम होगा ही। अच्छा अब तो फिर युद्धमें ही मिलना होगा। आप पुराण पुरुष हैं। आपकी लीला का पार कौन पा सकता है? मेरे ऊपर आपकी इसी प्रकार कृपा बनी रहे। अन्त में कर्ण ने कहा, मधुसूदन मेरी एक और ऐसी इच्छा है कि रणभूमि में यदि मैं मृत्यु को प्राप्त हो जाऊँ तो मेरी अन्त्येष्टि आप करें और ऐसे स्थान पर करें जहाँ पृथ्वी पर इसके पहले कभी किसी की अन्त्येष्टि नही हुई हो। यह कहते-कहते कर्ण रोने लगे। उन्होंने श्रीकृष्ण को खींच कर बड़े जोरों से अपनी छाती से चिपटा लिया। अब तो भाई-भाई का नाता हो गया था। भाई भी छोटे बने, अत: शिशु की तरह कृष्ण कर्ण की छाती से चिपटे रहे। हे मधुसूदन अब हमारी भेंट रणभूमि में ही होगी तब तक के लिये मुझे आज्ञा दीजिये। प्रणाम।

कर्ण कृष्ण को आलिंगन में भरकर विदा हो चले आये। उदास स्वर में कहा- जब आपका सख्य चाहा, पांडवों से शत्रुता

कर उसे गंवा दिया। जब सख्य मिल ही रहा है। मैं ग्रहण करने की स्थिति में नहीं। क्योंकि कौरवों को वचन दे चुका हूं। अत: हे कृष्ण। महासमर के अंत में यदि जीवित रहा तो आपका सख्य मुझे मिलेगा, वरना उस पार प्रतीक्षा करूंगा आपकी। दारुक ने रथ को खड़ा कर दिया। कर्ण का सारथी रथ बढ़ाकर आगे ले आया। कर्ण यथायोग्य मिल भेंटकर रथ से उतर पड़े। कृष्ण का रथ घर-घर शब्द करता वायुवेग से आगे बढ़ा और थोड़ी ही देर में आँखों से ओझल हो गया। जब तक रथ की धूलि दिखाई दी, तब तक कर्ण वहीं खड़े रहे। जब धूलि भी उड़ गई, गरुड़ के चिह्न से चिह्नित ध्वजा भी आँखों से ओझल हो गई तो आँसू पोंछते हुए कर्ण हस्तिनापुर को लौट आये।

**पश्चिम से सूरज उगे, चाहे दिन बन जाये रात किन्तु कभी ना मित्र से कर्ण करेगा विश्वासघात।**

तथा सात्यकिके सहित श्रीकृष्ण सारथीसे बार-बार चलो-चलो ऐसा कहते हुए बड़ी तेजीसे पाण्डवोंके पास चल दिये।

कृष्णके जानेपर कौरवलोग आपसमें मिलकर उनके विषयमें अनेकों अद्‌भुत और आश्चर्यजनक बातें करने लगे। नगरसे बाहर आकर श्रीकृष्णने कर्णके साथ कुछ गुप्त बातें कीं और फिर उसे विदा करके घोड़े हाँक दिये। वे इतनी तेजीसे चले कि उस लंबे मार्गको बात-की-बातमें तय करके उपप्लव्य में पहुँच गये।

## २१) सूर्य का कर्ण को इन्द्र से सावधान रहने का सन्देश

कर्ण की विचित्र स्थिति थी। वह तो कृष्ण को जय करने गया था और कृष्ण ने जय-पराजय, दोनों को ही निरर्थक कर दिया। वह स्वयं ही अपने-आपको समझ नहीं पा रहा था; वह प्रसन्न था अथवा अवसन्न? उसे कुछ नया प्राप्त हुआ था, अथवा पिछला भी छिन गया था? वह पहले से कुछ अधिक विराट हो गया था, अथवा मात्र उसका क्षरण ही हुआ था? उसका कोई नया जीवन आरंभ हो रहा था अथवा आज तक के जीवन पर भी प्रश्नचिन्ह लग गया था?

दुर्योधन का यह मित्र, पांडवों का सदा का शत्रु, आज किस कारण से पांडवों के इस मित्र को विदा करने, उसके भक्तों के साथ उसके पीछे-पीछे चला आया था? कृष्ण को जय करने? उन्हें दुर्योधन के पक्ष में लाने? दुर्योधन के व्यवहार का परिमार्जन करने? लोग कहते हैं कि कृष्ण तांत्रिक है, उसके पास विचित्र शक्तियां हैं कहीं उसने कर्ण को अपनी सम्मोहिनी शक्ति से अपनी ओर खींच तो नहीं लिया, ताकि वह उसे यह भेद बता सके।

पर नहीं। कर्ण का मन इतना दुर्बल नहीं है कि कोई उसको इस प्रकार सम्मोहित कर उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे अपने निकट खींच ले। वह तो कर्ण का अपना ही मन था, जो उसे वहाँ ले गया था।

उसने कृष्ण की निर्भीकता देखी थी। केवल कृष्ण ही इस प्रकार अकेले और नि:शस्त्र अपने शत्रुओं के घर में घुस सकते थे, उनकी सभा में आ सकते थे, उन्हें धमकी और चुनौती दे सकते थे। कृष्ण ही थे कि अपने घोषित शत्रु को अपनी सेना दे सकते थे। जैसे उनके मन में किसी के प्रति प्रतिशोध की भावना न हो, प्रतिहिंसा न हो, क्रोध न हो, घृणा न हो।

वह एक संदेश देने गया था श्रीकृष्ण को और उन्होंने उसे अपना संदेश दे दिया था... कि जिनके प्रति शत्रुता स्वीकार करने गया था, वे उसके भाई निकले। जिस स्त्री को अपमानित किया था, वह उसके अपने भाइयों की पत्नी थी।

अब निर्णय तो तुम्हें करना है। तुम्हें अपनी जननी की गोद में जाना है या नहीं। पर नहीं जाने का क्या अर्थ हुआ। अब तक तो तुम्हें ज्ञात ही नहीं था, किंतु जान लेने के पश्चात् कोई ऐसा भी अभागा होता है, जो अपनी जननी का अनादर करे।

किंतु कर्ण का एक और मन निरंतर अस्वीकार की मुद्रा बनाए अपने स्थान पर डटा हुआ था। मैंने यह तो चाहा था कि मुझे क्षत्रिय स्वीकार किया जाए; किंतु यह तो कभी नहीं चाहा था कि बदले में, जो कुछ मेरा है, वह सब कुछ मुझसे छीन लिया जाए। वे राधा माता, जिनके विषय में वह सारा जीवन सुनता आया है कि उसे गोद में लेते ही वात्सल्य प्रेरित होकर

उनके स्तनों में दूध उतर आया था, वे राधा माता, जिन्होंने उस अबोध, अज्ञात कुलशील, अपरिचित शिशु का मल-मूत्र धोना स्वीकार किया। वे ही राधा माता, अब उसकी माँ न रहें? अधिरथ, जिन्होंने उसे अपनी वृद्धावस्था का अवलंबन माना दत्तक पुत्र के रूप में उसे अपना समग्र उत्तराधिकार दिया... वे अधिरथ उसके बाबा न रहें? पांचाली उसकी महारानी होगी, तो उन सूत कन्याओं का क्या होगा, जो अब तक उसकी सखियाँ थीं, पत्नियाँ थीं, उसकी संतान की माताएँ थीं?

कर्ण के जीवन में क्या वही बात मनुष्यों को लेकर नहीं होने जा रही? उसके जीवन में कुंती आएगी तो राधा के लिए वहाँ कोई स्थान नहीं रहेगा। एक बार देवकी के पास आ जाने पर कृष्ण कभी यशोदा के नहीं हो सके। कर्ण को नए भाइयों के रूप में पांडव मिलेंगे तो अधिरथ के पुत्र उसके भाई नहीं रहेंगे। उसके पिता सम्राट पांडु हैं, तो अधिरथ सूत उसका पिता कैसे हो सकता है? द्रौपदी उसके जीवन में आए तो वे सूत कन्याएं दासियों में परिणत नहीं हो जाएगी क्या? कृष्ण की मैत्री का अर्थ है, दुर्योधन से वियोग।

अपने कक्ष में आकर वह लेटा ही था कि एक नया विचार, उसके मन में कौंधा... उसने कृष्ण के कहने भर से, इस संबंध को स्वीकार कैसे कर लिया? संभव है कि यह कृष्ण का षड्यंत्र मात्र हो। दुर्योधन को दुर्बल करने के लिए। वह कर्ण और दुर्योधन के मध्य किसी भी प्रकार का कोई भेद उत्पन्न करना चाहता हो और उसके लिए इस प्रकार के संबंध के आविष्कार से श्रेष्ठतर और क्या मार्ग हो सकता है? कृष्ण ने इस संबंध का कोई प्रमाण तो प्रस्तुत किया ही नहीं है।

कर्ण का मन था कि किसी निश्चय पर टिक ही नहीं रहा था। ये सारे निश्चय तो जैसे नदी की धारा में दिखाई देनेवाले पत्थर थे। वह जिस पत्थर को आधार मान कर, उस पर अपना पैर रखता था, वही जल में डूबने लगता था। तब उसे ज्ञात होता था कि वस्तुत: वह पत्थर नहीं पत्ता था, जो स्वयं पराश्रित होकर जल के सहारे तैर रहा था। जो स्वयं निराधार था, वह कर्ण के लिए आधार का काम कैसे कर सकता था और कर्ण के पग दूसरी ओर बढ़ जाते थे।

कर्ण का एक और मन जैसे तड़पकर उठ खड़ा हुआ। जब-जब कोई उसे सूतपुत्र कहकर संबोधित करता है, कैसे धिक्कार की वर्षा होती है उस पर। कैसे उसके वक्ष पर वज्र-सा लगता है। क्यों वह सूतपुत्र पुकारनेवालों के मुँह ही नहीं नोच लेना चाहता, उनकी जिह्वा भी खींच लेना चाहता है? क्या यह कम प्रमाण था कि वह अपने सूत माता-पिता से संतुष्ट नहीं था? वह अपने लिए क्षत्रिय माता-पिता चाहता था। और आज यह अवसर आया है कि वह अपनी आत्मा को आश्वस्त कर सके कि वह सूतपुत्र नहीं है, तो वह उस अवसर से मुँह क्यों चुराने लगा है? क्यों नहीं वह सीधा कुंती के पास चला जाता और पूछता कि यदि वे ही उसकी जननी हैं तो इतने वर्षों से हस्तिनापुर में रहते हुए, उसे क्यों नहीं बताया कि वे ही उसकी माता हैं? क्यों उन्होंने उसे पुत्र कहकर संबोधित नहीं किया? कर्ण का चिंतन थम गया। जब कभी, जहाँ कहीं भी कुंती से उसका साक्षात्कार हुआ था और संभाषण का तनिक-सा भी अवसर आया था, कुंती ने उसे सदा पुत्र कहकर ही संबोधित किया था। पांडवों ने उसके प्रति चाहे जितना भी विरोध जताया हो, अपनी घृणा प्रकट की हो, कुंती ने तो उसका स्वागत सदा मुस्कान से ही किया था। वे कर्ण की ही आँखें थीं, जो शत्रुता और मात्सर्य से रंजित होने के कारण, कुंती की मुस्कान में से छलकते वात्सल्य को नहीं देख पाईं; अन्यथा कुंती की ओर से तो माधुर्य का अभाव कभी नहीं था।

पर कर्ण का व्यवहार? कैसा था कर्ण का व्यवहार? कर्ण ने सदा ही कुंती और उनके पुत्रों का तिरस्कार किया था। उनका अपमान किया था। वह सदा ही बहुत कठोर रहा था, उनके प्रति। सदा घृणा और शत्रुता से परिपूर्ण। जिन्हें उसने सदा नष्ट करना चाहा- वे उसके सहोदर निकले; और जिसे उसने कभी शांति से जीने नहीं दिया, वह उसकी जननी।

कर्ण की इच्छा हुई कि वह अपना मस्तक दीवार से दे मारे। क्या करता रहा, वह आज तक? अपने शत्रुओं की सेवा?

अपने सहोदरों की हत्या का प्रयत्न?

कर्ण का चिंतन, जैसे फिर एक बार ठिठककर खड़ा हो गया... क्या हो गया है उसे? उसने कृष्ण की सूचना को उसकी पूर्णता में स्वीकार कर लिया है। वह कुंती को अपनी माँ और पांडवों को अपना भाई मानने लग गया है। इसका अर्थ है, दुर्योधन की शत्रुता। राधा और अधिरथ उसके माता-पिता नहीं रहेंगे; किंतु उसके पालक तो वे रहेंगे ही। वे उसके अमित्र अथवा शत्रु तो नहीं बन जाएँगे... किंतु दुर्योधन? दुर्योधन उसका शत्रु हो जाएगा... नहीं। कर्ण इतना कृतघ्न नहीं हो सकता।

संसार में संग्रह ही दुख का कारण है और त्याग में ही सुख, शान्ति और कीर्ति है। संग्रह से महानता का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। सबसे बड़ा महान वह है जो सबसे बड़ी वस्तु का हँसते-हँसते त्याग कर सके। लोग माता, पिता, स्त्री, पुत्र को त्याग देते हैं, युद्ध में पैसों के लिये प्राणों को भी त्याग देते हैं, किन्तु जान बूझकर अपने शरीर में से ऐसी वस्तु को निकालकर दे देना जिसके निकालने से दाता की मृत्यु अवश्यम्भावी है, यह बहुत ही कठिन बात है। भूल में, असावधानी में, चाहे मनुष्य का सर्वस्व चला जाय किन्तु जान बूझकर धन का त्याग करनेवाले कोई विरले ही होते हैं। अनजान में चाहे हमारे ऊपर वज्र भी क्यों न आकर गिर पड़े, किन्तु समझ सोचकर अपने आप शरीर में काँटा चुभाने से भी कष्ट होता है और इसके लिये बड़े-बड़े शूरवीर भी हिचकते हैं। किन्तु जिन्होंने सत्य को ही अपना व्रत बना रखा है, जो कीर्ति और असत्य की अपेक्षा मृत्यु को तुच्छ समझते हैं, वे सत्य की रक्षा के लिये अपनी निर्मल शाश्वत कीर्ति के लिये सब कुछ कर सकते हैं। दुस्तजं किं धृतात्मानम्। धैर्यवान पुरुषों के लिये ऐसी कौनसी वस्तु है जिसका वे त्याग न कर सकें?

धर्मराज युधिष्ठिर जब रात्रि-दिन कर्ण के बल-वीर्य का स्मरण करके व्याकुल रहने लगे, तब देवराज इन्द्र ने लोमश ऋषि के द्वारा सन्देश भिजवाया- कि आप चिन्ता न करें, मैं अर्जुन की भलाई के लिये सबकुछ करूँगा जिस कर्ण की आपको सदा चिन्ता रहती है, उसे परास्त करने का मैंने उपाय सोचा है। इन्द्र ने क्या उपाय सोचा होगा, धर्मराज यह सब नहीं जानते थे। उनकी चिन्ता बनी ही रही। इधर देवराज इन्द्र इस घात में रहे कि जैसे बने तैसे कर्ण के दिव्य कुण्डल, कवचों को उसके शरीर से पृथक् करना चाहिये। जब तक उसके शरीर पर कुंडल कवच हैं, तब तक संसार में उसे कोई जीत नहीं सकता। भगवान ने संसार में पिता पुत्र का सम्बन्ध कैसा ममतापूर्ण बनाया है। पिता को पुत्र के प्रति इतना मोह, ऐसा ममत्व न हो तो यह संसार नरक हो जाय। पिता चाहे कैसा भी पतित हो उसकी इच्छा रहती है- पुत्र यशस्वी हो।

सच्चा पिता अपने पुत्र का निरन्तर कल्याण ही सोचता रहता है। वह अपने मोह को, अपने हृदय के स्नेह को पुत्र पर प्रगट नहीं होने देता, किन्तु उनकी आन्तरिक अभिलाषा सदा उसके मङ्गल के ही लिये रहती है। पुत्र के मुख में कितना आकर्षण है, बेटे का मुख दर्शन कितना सुखद है, पुत्र को शिक्षा देने में, डाँटने-डपटने और उसे कर्तव्य बताने में कितना रस, कैसा महान आनन्द आता है इसे बिना पिता बने कोई अनुभव नहीं कर सकता। ममता ही बन्धन का कारण है। मोह ही संसार है। यदि इस पृथ्वी पर माता-पिता, भाई-बन्धु से मोह न हो तब तो संसार का अत्यन्ताभाव ही है। मोह के क्षय का नाम ही मोक्ष है। किन्तु मोह का क्षय होना अत्यन्त ही कठिन है। मनुष्य ही नहीं देवता भी मोह के वशीभूत होकर ऐसे-ऐसे घृणित, निन्दित और लज्जास्पद कार्य करते हैं कि जिन्हें स्मरण करके भगवान् की मोहमयी माया की प्रबलता का अनुमान होता है।

अर्जुन इन्द्र के पुत्र थे। उन्हें इस बात की सदा चिन्ता लगी रहती थी कि अर्जुन सदा विजयी हो। दिव्यास्त्र देकर भी देवराज शान्त नहीं हुए। उन्हें कर्ण के दिव्य कुण्डल और कवच से सदा खटका ही बना रहता था। उन्होंने अपने मन में सोचा- कर्ण की प्रतिज्ञा है कि मेरे पास जो भी मनुष्य जिस वस्तु की याचना करने आवेगा उसे मैं मना नहीं करूँगा। यह प्रतिज्ञा कहने भर को ही नहीं है, वह अक्षरश: उसका पालन भी करता है। आज तक कोई उसके पास से भग्नाश, विमुख

होकर नहीं लौटा। ब्राह्मणों ने आज तक उससे जो कुछ भी माँगा है उसने दिया है। यदि ब्राह्मण वेष में जाकर मैं उससे कवच कुण्डल माँगू तो वह मना नहीं करेगा। इसके अतिरिक्त उसके शरीर से कवच कुण्डल पृथक करने का दूसरा साधन कोई नहीं। जिन कुण्डलों में से सदा अमृत टपकता रहता है, जो मेरी माता अदिति से सूर्य को प्राप्त हुए थे और सूर्य ने कर्ण को दिये थे, उन्हें लड़कर बलात्कार कर्ण से कोई छीन नहीं सकता। यह सब सोच-समझकर इन्द्र चिंतित हो रहे थे।

स्वर्ग में इन्द्र चिंतित है। उर्वशी आती है और बोली, हे देवेन्द्र इस चिन्ता का कारण क्या है? जिसने सन्ध्या की भांति आपके मुखमंडल के सूर्य को ढक दिया है। इन्द्र बोले, मेरी चिन्ता का कारण सूर्यदेव है। उर्वशी बोली- सूर्यदेव? इन्द्र बोले- हाँ और मैं उन्हें उलाहना तो भी नहीं दे सकता। उर्वशी बोली, ऐसा क्या कर दिया है सूर्यदेव ने? इन्द्र बोले, देवी कुन्ती को एक पुत्र देकर मेरे लिये समस्या खडी कर दी है। उर्वशी बोली- देवि कुन्ती को तो एक पुत्र आपकी कृपा ने भी दिया है देवेन्द्र। इन्द्र बोले- यही तो एक समस्या है उर्वशी, जो मुझे चैनसे बैठने नहीं देती। उर्वशी पृथ्वी पर एक महायुद्ध होनेवाला है। पृथ्वी के महायुद्ध से हमें क्या देवेन्द्र? इन्द्र बोले- तुम्हे तो कुछ नहीं उर्वशी किन्तु उस युद्ध का कांटा मेरे और सूर्यदेव के हृदय में अवश्य अटका है। सूर्यपुत्र कर्ण इस युद्ध में एक ओर होगा और मेरा पुत्र अर्जुन दूसरी ओर। उर्वशी बोली, यह तो चिन्ता का विषय नहीं हो सकता क्योंकि अर्जुन सारे दिव्यास्त्र लेकर गया है यहां से। उसे भला कोई क्या क्षति पहुंचा सकता है? इन्द्र बोले- कर्ण के कवच और कुंडल को कोई भी दिव्यास्त्र भेद नहीं सकता इसलिये मैं अर्जुन की ओर से चिंतित हूं। स्वर्ग में अस्त्र तो बहुत है किन्तु कवच वो एक ही है। कुंडलों की वही अकेली जोडी है जिन्हे दिव्यास्त्र प्रणाम करके लौट आये। उर्वशी बोली, तब तो यह अवश्य ही चिन्ता का विषय है। इन्द्र बोले, सूर्यपुत्र पांडवों से इतनी घृणा करता है और विशेषतर अर्जुन वध के लिये तो वह जी ही रहा है। जब तक उसके पास वो कवच है और कुंडल है तब तक अर्जुन सुरक्षित नहीं है। उर्वशी बोली, परन्तु कवच और कुंडल उसके साथ है ही देवेन्द्र। इन्द्र बोले, एक उपाय है सूर्य देवता उसके इष्ट देवता है वह तो हर प्रहर में उनकी पूजा करता है। यदि पूजा की समाप्ति के पश्चात उससे कोई कुछ मांगे तो वह कभी ना नहीं करता। उर्वशी बोली- तो फिर आप। इन्द्र बोले- यही तो विचार कर रहा हूं क्योंकि कर्ण को उस कवच में रणभूमि की ओर नहीं जाने दूंगा।

इन्द्र ने ब्राह्मण वेष से ही कवच कुण्डल माँगने के लिये कर्ण के पास जाने का निश्चय कर लिया।

इधर देवराज के मन की बात सूर्यदेव समझ गये। उन्हें भी तो पुत्र का स्नेह था। वे देवराज की इस क्रूर भावना से दु:खी हुए। पुत्र स्नेह से उनका हृदय भर आया। उन्हें यह उचित जान पड़ा कि वे अपने पुत्र को इस षडयन्त्र की सूचना दे दें, इन्द्र की धोखेबाजी समझा दें, जिससे कर्ण ठगा न जाय। इन्द्र तो मायावी हैं ही, उनकी धोखेबाजी में पड़कर मेरे पुत्र का सर्वनाश क्यों हो? जब वे अपने पुत्र की भलाई के लिये ऐसा नीच, ऐसा घृणित लोक निन्दित काम करने को तैयार हैं तो उसकी सूचना देने में, अपने पुत्र को सावधान करने में मुझे क्या दोष लगेगा?

यही सब सोचकर सूर्यदेव ने ब्राह्मण वेष में रात्रि के समय कर्ण को सपने में दर्शन दिये। मनस्वी कर्ण अपनी स्वच्छ धवल दुग्ध फेन के समान सफेद शैया पर विचार करते करते सो गये। उसी समय स्वप्न में उन्हें एक परम तेजस्वी ब्राह्मण दिखाई दिये। कर्ण ने उनका स्वागत-सत्कार किया। तब ब्राह्मण वेषधारी सूर्य ने कहा- बेटा कर्ण। मैं तुम्हारे हित के लिये एक बात कहने आया हूं।

वैशम्पायनजी कहते हैं जब पाण्डवोंके वनवासके बारह वर्ष बीत गये और तेरहवाँ वर्ष आरम्भ हुआ तो पाण्डवोंके हितैषी इन्द्र कर्णसे उनके कवच और कुण्डल माँगनेको तैयार हुए। जब सूर्यदेवको इन्द्रका ऐसा विचार मालूम हुआ तो वे कर्णके पास आये। ब्राह्मणसेवी और सत्यवादी वीरवर कर्ण अत्यन्त निश्चिन्त होकर एक सुन्दर बिछौनेवाली बहुमूल्य सेजपर सोये

हुए थे। सूर्यदेव पुत्रस्नेहवश अत्यन्त दर्याद्र होकर वेदवेत्ता ब्राह्मणके रूपमें स्वप्नावस्थामें उनके सामने आये और उनके हितके लिये समझाते हुए इस प्रकार कहने लगे, सत्यवादियों में श्रेष्ठ महाबाहु कर्ण। मैं स्नेहवश तुम्हारे परम हितकी बात कहता हूँ। पाण्डवोंका हित करनेकी इच्छासे देवराज इन्द्र ब्राह्मणके रूपमें तुम्हारे पास कवच और कुण्डल माँगनेके लिये आयेंगे। वे तुम्हारे स्वभावको जानते हैं तथा सारे संसारको भी तुम्हारे इस नियमका पता है कि किसी सत्पुरुषके माँगनेपर तुम उसकी अभीष्ट वस्तु दे देते हो और स्वयं कभी किसीसे कुछ नहीं माँगते। किंतु यदि तुम अपने जन्मके साथ ही उत्पन्न हुए इन कवच और कुण्डलोंको दे दोगे तो तुम्हारी आयु क्षीण हो जायगी और तुम्हारे ऊपर मृत्युका अधिकार हो जायगा। तुम सच मानो, जबतक तुम्हारे पास ये कवच और कुण्डल रहेंगे, तुम्हें युद्धमें कोई भी शत्रु नहीं मार सकता। ये रत्नमय कवच-कुण्डल अमृतसे उत्पन्न हुए हैं; इसलिये यदि तुम्हें प्राण प्यारे हैं तो इनकी अवश्य रक्षा करनी चाहिये।

कर्ण सोया हुआ है। कर्ण को सपना आता है। कर्ण को अपना अतीत याद आता है। इतने में सूर्य देव मूर्त रूप में आकर कर्ण को जगाते है। कर्ण ने उन्हें प्रणाम किया। कर्ण बोला, मेरे अहोभाग्य कि आपके दर्शन हुये। सूर्यदेव ने कहा- हे दानवीर मुझे आना ही पड़ा। तुम प्रतिज्ञाबद्ध हो कि बीच दोपहर मेरी पूजा समाप्ति के पश्चात यदि तुमसे कोई कुछ मांगेगा तो तुम उसे निराश नहीं करोगे। इन्द्रदेव तुम्हारी इसी प्रतिज्ञा का लाभ उठाने के लिये तुम्हारे पास आनेवाले है। इसलिये कि तुमसे तुम्हारा कवच और कुंडल मांगेंगे। हे दानवीर महापुरुष उन्हे दोनों वस्तु ना देना।

कर्ण ने कहा- मैं ब्राह्मणों की चरणों की धूलि को सदा मस्तक पर चढ़ाता हूँ। मेरे आराध्य, मेरे पूज्य, माननीय और सर्वस्व ब्राह्मण ही हैं। विप्रदेव। मेरे लिये क्या आज्ञा है। ब्राह्मण ने कहा, देखो बेटा। देवताओं के राजा ब्राह्मण वेष धारण करके तुम्हें छलने आवेंगे। वे तुमसे तुम्हारे दिव्य कवच कुंडल माँगेंगे। तुम मेरी इस बात को मान लो, चाहे वे कितना भी प्रयत्न करें तुम अपने कवच कुंडल कदापि मत देना।

ब्राह्मण को माँगने पर मत देना। ये शब्द सुनते ही कर्ण चौंक पड़े। यह तेजस्वी व्यक्ति कौन है? जो मुझे अपने धर्म से विचलित कर रहा है। सत्य से हटानेवाला, प्रतिज्ञा से छुड़ानेवाला यह व्यक्ति कौन है। कहीं साक्षात् धर्म ही तो मेरी परीक्षा नहीं ले रहे हैं। यह सन्देह उत्पन्न होने पर कर्ण ने नम्रतापूर्वक पूछा- भगवन्। आप कौन है? इतने तपस्वी होकर आप मेरे हित के लिये इतने चिन्तित क्यों हैं? पुत्र की तरह स्नेह प्रकट करनेवाले और मेरे कल्याण की बात सोचनेवाले आप कोई देवता प्रतीत होते हैं। पहिले मैं आपका परिचय प्राप्त कर लूँ, तब आपकी बातों का उत्तर दूँगा।

कर्णने पूछा- भगवन्। आप मेरे प्रति अत्यन्त स्नेह दिखाते हुए मुझे उपदेश कर रहे हैं। यदि इच्छा हो तो बताइये इस ब्राह्मणवेषमें आप कौन हैं? ब्राह्मणने कहा, हे तात। मैं सूर्य हूँ; मैं स्नेहवश ही तुम्हें ऐसी सम्मति दे रहा हूँ। तुम मेरी बात मानकर ऐसा ही करो। इसीमें तुम्हारा विशेष कल्याण है।

कर्ण बोले, जब स्वयं भवगान् भास्कर ही मुझे मेरे हितकी इच्छासे उपदेश कर रहे हैं तो मेरा परम कल्याण तो निश्चित ही है; किंतु आप मेरी यह प्रार्थना सुननेकी कृपा करें। आप वरदायक देव हैं, आपको प्रसन्न रखते हुए मैं प्रेमपूर्वक यह निवेदन करना चाहता हूं कि यदि आप मुझे प्यार करते हैं तो इस व्रतसे मुझे विचलित न करें सूर्यदेव। संसारमें मेरे इस व्रतको सभी लोग जानते हैं कि मैं श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको माँगनेपर अपने प्राण भी अवश्य दान कर सकता हूँ। यदि देवश्रेष्ठ इन्द्र पाण्डवोंके हितके लिये ब्राह्मणका वेष धारण करके मेरे पास भिक्षा माँगनेके लिये आयेंगे तो मैं उन्हें अपने ये दिव्य कवच और कुण्डल अवश्य दे दूँगा। इससे तीनों लोकोंमें जो मेरा नाम हो रहा है, उसे अपयश नहीं होगा। मेरे-जैसे लोगोंको यशकी ही रक्षा करनी चाहिये, प्राणोंकी नहीं। संसारमें यशस्वी होकर ही मरना चाहिये। यह तो सम्भव ही नहीं है भगवन्।

उस समय तो मुझसे कोई मेरे प्राण भी मांग ले तो मैं उसे दे दूंगा।

सूर्यदेव ने कहा- बेटा कर्ण। मैं तेरा पिता सूर्य हूँ। तेरे कल्याण के लिये, तेरी दीर्घायु के लिये ही मैं तुझसे ये बातें कह रहा हूं। तू मेरी बातों पर सन्देह न कर। मैं जो कहता हूँ उसे तू मान ले, इसी में तेरा कल्याण है।

अत्यन्त विनीत भाव से कर्ण ने कहा, मैं देवाधिदेव भगवान् सविता के चरणों में मस्तक नवाकर बार-बार प्रणाम करता हूँ। आज मैं धन्य हुआ, आज मेरा जीवन सफल हुआ। अब मैं कृतार्थ हो गया। जो तीनों लोकों के स्वामी मेरे कल्याण के लिये इस प्रकार चिन्तित हैं। किन्तु मैं अत्यन्त विनीत भाव से आपके चरणों में निवेदन करता हूँ कि प्रभो। मुझे मेरी प्रतिज्ञा से आप न डिगाइये मुझे सत्य से विचलित न कीजिये।

सूर्यदेव ने अत्यन्त ही आश्चर्य के साथ कहा- तुम यह कैसी बातें कर रहे हो? इसमें असत्य की कौन-सी बात हैं? प्रतिज्ञा से तुम विचलित कहाँ हुए? तुम्हारी प्रतिज्ञा तो ब्राह्मणों के लिये है, न कि कपटी छली और छद्मवेषधारियों के लिये। कर्ण ने कहा, भगवन्। आप ठीक कहते हैं, किन्तु इन्द्र तो मेरे पास ब्राह्मण वेष से ही आवेंगे। उन्हें मैं मना कैसे कर सकता हूँ। सूर्यदेव ने अपनी बात पर दृढ़ता प्रकट करते हुए कहा- तुम अपना हित अहित नहीं समझते। तुम्हें उसके परिणाम का पता नहीं। कवच कुंडल देने से तुम्हें अर्जुन युद्ध में मार डालेगा। कवच कुंडलों के रहते हुए संसार में तुम्हें कोई मार नहीं सकता। कर्ण ने कहा- स्वामिन्। परिणाम चाहे जो हो, मैं माँगनेवाले को मना नहीं कर सकता। आप अर्जुन से तनिक भी न डरें। मेरे पास बडे-बडे दिव्यास्त्र हैं। मैं युद्ध में अर्जुन को पछाडूँगा। आप मुझे मेरे बल पर छोड़ दें।

सूर्यदेव बोले, ये कवच भाग्य के बाण रोक सकता है वत्स। कर्ण बोला, मैं क्षमा चाहता हूं भगवन क्योंकि यह जान लेने के उपरान्त भी उस समय यदि कोई मुझसे मेरा कवच और कुंडल मांगेगा तो मैं उसे निराश नहीं करूंगा। मुझे अपने जीवन में कहीं अधिक प्रिय मेरी प्रतिज्ञा है। हे भगवान इस संसार में मेरी मां राधा और मेरे मित्र दुर्योधन के अतिरिक्त किसी ने मुझे अपमान के सिवा और कुछ नहीं दिया इसलिये मैं चाहता हूं कि जब मैं जाऊं तो लोगों को ऋणी छोड जाऊं।

सूर्यने कहा- कर्ण। तुम देवताओंकी गुप्त बातें नहीं जान सकते। इसलिये इसमें जो रहस्य है, वह मैं तुम्हें नहीं बताना चाहता; समय आनेपर तुम्हें वह स्वयं ही मालूम हो जायगा। किंतु मैं तुमसे फिर भी कहता हूं कि तुम माँगनेपर भी इन्द्रको अपने कुण्डल मत देना, क्योंकि इन कुण्डलोंसे युक्त रहनेपर तो अर्जुन और उसका सखा स्वयं इन्द्र भी तुम्हें युद्धमें परास्त करनेमें समर्थ नहीं हैं। इसलिये यदि तुम अर्जुनको जीतना चाहते हो तो ये दिव्य कुण्डल इन्द्रको कदापि मत देना।

सूर्यदेव ने फिर कहा- तुम जान-बूझकर बेटा। मौत को मुँह मत लगा, मेरी बात मान जाओ। क्या तुम मेरा इतना भी आदर नहीं करते? कर्ण ने उनके चरणों में मस्तक टेक दिया और भरे हुए कण्ठ से कहा- पिता। मैं समस्त देवताओं में आपको श्रेष्ठ समझता हूं। जितना आदर मैं आपका करता हूँ, उतना दूसरे किसी भी देवता का नहीं करता। फिर भी मैं अपनी प्रतिज्ञा से विचलित न हूँगा। ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र यदि मेरे प्राण भी माँगे तो मैं दूँगा, फिर कवच कुंडल की तो बात ही क्या है? मैं अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर अपयश का भागी न बनूँगा। अकीर्ति की अपेक्षा मुझे सत्य प्रिय है। सत्य की अवहेलना करके अपयश के साथ जीने से मैं मृत्यु को हजार गुनी श्रेष्ठ समझता हूँ। आप के कहने से मैं सब कुछ कर सकता हूँ। जलती हुई अग्नि में कूद सकता हूँ, किन्तु अपनी प्रतिज्ञा को नहीं तोड़ सकता। याचक ब्राह्मण की आशा को भग्न नहीं कर सकता, माँगनेवाले को मना नहीं कर सकता हूँ।

सूर्यदेव का समस्त परिश्रम विफल हुआ। किसी तरह भी कर्ण ने उनकी बात नहीं मानी। बहुत सोच समझकर उन्होंने कहा- बेटा। मैं तेरा पिता हूं पितृ-स्नेह से मैं तुमसे ये बातें कर रहा हूँ। तू मेरे वीर्य से कुन्ती के गर्भ में उत्पन्न हुआ है।

इसीलिये मेरा तुझपर अधिकार है। कर्ण ने कहा- आप मेरे गुरु, पिता, देवता, इष्ट और सर्वस्व हैं, मैं आपका दास, किमर, पुत्र और भक्त हूँ। किन्तु मैं इन्द्र के माँगने पर अपने कवच कुण्डल उन्हें अवश्य दूँगा। इससे मरने पर संसार में मेरी कीर्ति रहेगी और इन्द्र की अपकीर्ति होगी। मैं प्राण देकर कीर्ति मोल लेनेवाले सौदे को सस्ता समझता हूँ। इसमें मुझे ही लाभ अधिक होगा। इन्द्र मुझे ठगने आवेंगे किन्तु वास्तव में ठगे वे ही जायेंगे।

**विभेमि न तथा मृत्योर्यथाविभ्येऽनृतादहम्। विशेषेणाद्विजातिनां सर्वेषांसर्वदा सताम्।।**

**इदं त्वमनुजानीहि सुरश्रेष्ठ व्रतं मम। भिक्षते वज्रिणे दद्यामपि जीवितमात्मन:।।**

सूर्यदेव ने जब कर्ण को इन्द्र के लिये कवच कुण्डल देने से मना किया तब कर्ण बोले, भगवन्। मैं उतना मृत्यु से नहीं डरता जितना कि असत्य से डरता हूं। विशेषकर सज्जन ब्राह्मण मुझसे जो भी माँगने आवेंगे, मैं उन्हें सब कुछ दे दूँगा। हे सूर्यदेव। आप मेरे व्रत को समझ लें, यदि इन्द्र आकर मेरे प्राण भी माँगे तो मैं दे दूँगा। माँगनेवाले को कभी विमुख नहीं लौटाऊँगा। कर्णने कहा, सूर्यदेव। आपके प्रति मेरी जैसी भक्ति है, वह आप जानते ही हैं; तथा यह बात भी आपसे छिपी नहीं है कि मेरे लिये अदेय कुछ भी नहीं है। भगवन्। आपके प्रति मेरा जैसा अनुराग है वैसा प्रेम तो स्त्री, पुत्र, शरीर और सुहृदोंके प्रति भी नहीं है। इसमें भी संदेह नहीं कि महानुभावोंका अपने भक्तोंपर अनुराग रहा ही करता है। अत: इस नातेसे आप जो मेरे हितकी बात कह रहे हैं उसके लिये मैं आपको प्रणाम करता हूँ और आपको प्रसन्न रखते हुए बार-बार यही प्रार्थना करता हूं कि आप मेरा अपराध क्षमा करें तथा मेरे इस व्रतका अनुमोदन करें, जिससे कि याचना करनेपर मैं इन्द्रको अपने प्राण भी दान कर सकूँ। सूर्यदेव ने जब देखा कि मेरी बात कर्ण किसी भी तरह मानने को तैयार नहीं, तब उन्होंने कहा- अच्छा, यदि तू नहीं ही मानता है तो इन्द्र को अपने कवच कुण्डल दे देना, किन्तु उसके बदले में तू भी उनसे एक अमोघ शक्ति माँग लेना, जो कभी भी व्यर्थ नहीं जाती। समय आने पर तू उसके द्वारा अर्जुन से अपने प्राणों की रक्षा कर सकेगा। अच्छा, यदि तुम अपने ये दिव्य कवच और कुण्डल दो ही तो अपनी विजयके लिये उनसे यह प्रार्थना करना कि देवराज। आप मुझे अपनी शत्रुओंका संहार करनेवाली अमोघ शक्ति दीजिये, तब मैं आपको कवच और कुण्डल दूँगा। महाबाहो। इन्द्रकी वह शक्ति बड़ी प्रबल है। जबतक वह सैकड़ों-हजारों शत्रुओंका संहार नहीं कर लेती तबतक छोड़नेवालेके हाथमें लौटकर नहीं आती। तो तुम ऐसा करना कवच और कुंडल पा लेने के उपरान्त जब वो तुम्हे वर मांगने की आज्ञा दे तो तुम उनसे उनका शक्ति अस्त्र मांग लेना। यह कहकर सूर्य अन्तर्ध्यान हो गये।

दूसरे दिन जप समाप्त करनेके अनन्तर कर्णने वे सब बातें सूर्यनारायणसे कहीं। उन्हें सुनकर भगवान् भास्करने मुसकराकर कहा, यह कोरा स्वप्न ही नहीं है, सब सच्ची घटना है। तब कर्ण भी उन बातोंको ठीक समझकर शक्ति पानेकी इच्छासे इन्द्रकी प्रतीक्षा करने लगे।

## २२) इन्द्र का कर्ण से कवच-कुण्डल लेकर अमोघ शक्ति प्रदान करना

कर्ण अपने निवास स्थान पर अपने कक्ष में बाणों को छांट रहा होता है उसी समय दुर्योधन आया और बोला मित्र कैसे हो और आपस में गले मिलते है। दुर्योधन बोला- क्या बात है? आज बहुत प्रसन्न दिखाई दे रहे हो। कर्ण बोला- हां मित्र। आनन्द ही की तो घडी है। दुर्योधन बोला- अपने आनन्द का भागीदार मुझे भी बनाओ कर्ण। कर्ण बोला- तुम्हारे अतिरिक्त इस आनन्द का भागीदार मैं किसी और को तो बना ही नहीं सकता। मेरी मां इस आनन्द की भनक पाते ही डर जायेगी। मेरी दो प्रेमिकायें है मित्र। दुर्योधन बोला- और तुमने उन दोनों प्रेमिकाओं को मुझसे छिपा कर रखा। मित्र

बताओ तो सही वे कौन है और यदि उनका अपहरण करना हो तो मुझे बताओ। कर्ण बोला, इन प्रेमिकाओं का हरण नहीं किया जा सकता मित्र और इन्हे मिलन सम्भवत: एक ही के साथ हो सकता है। दुर्योधन बोला- पहेलिया ना बुझाओ अंगराज कौन है ये प्रेमिका? कहां है ये प्रेमिका? और इनका अपहरण होगा कैसे नहीं? मैं स्वयं जाकर इनका अपहरण करूंगा। कर्ण बोला- मैं जानता हूं मित्र किन्तु ये प्रेमिकायें ऐसी है यदि इनका अपहरण मेरे अलावा और किसी ने किया तो वे दूषित हो जायेगी। दुर्योधन बोला, मैं समझा नहीं मित्र। कर्ण बोला, इनमें से एक अर्जुन की मृत्यु है और दूसरी स्वयं मेरी मृत्यु। अर्जुन वध के अतिरिक्त मेरे जीवन का कोई और लक्ष्य ही नहीं। क्या तुम अर्जुन का वध करके मेरे भाग का आनन्द मुझसे छीन सकते हो? अर्जुन वध तो उन अपमानों के सारे घावों पर स्नेह लेप लगायेगा जो जीवनभर मुझपर रिसते रहे। अर्जुन वध तो यह सिद्ध करेगा कि यह सूतपुत्र राधेय कर्म से क्षत्रिय है। हे गान्धारी नन्दन मैं तुम्हारे लिये मुझपर तुम्हारा यह और उपकार होगा तुमने अर्जुन से मेरे इस अन्तिम युद्ध का प्रबन्ध कर दिया। ये बात भलीभांति समझ लो मित्र कि मैं केवल तुम्हारे जीवन और अर्जुन की मृत्यु के लिये जी रहा हूं। मुझे अपने अपमानों का एक-एक क्षण याद आ रहा है। वो क्षण दिन रात मुझे बिच्छू की भांति डंक मारते रहते है। मेरे शरीर में रक्त नहीं है मित्र। विष भरा हुआ है। सोते जागते वो सारे दृश्य मेरी आंखों के सामने आते रहते है। मुझे सांस तक नहीं लेने देते। परन्तु मेरे अपमान की कथा समाप्त होने की घडी निकट आ रही है। हर हर क्षण के साथ निकट आती जा रही है। दुर्योधन बोला- मित्र। कर्ण बोला, घबराओ मत मित्र। मुझे बधाई दो कि अब शीघ्र ही अपनी दो प्रेमिकाओं में से एक के संग अवश्य ही मेरा मिलन होनेवाला है।

कवच-कुंडलधारी कर्ण की प्रतिज्ञा है- अर्जुन को निहत करूंगा। कवच-कुंडल सहित जन्म लेने के कारण वह अपराजेय है। अत: दुर्वासा के अभिशाप द्वारा पांडवों के निधन का षडयन्त्र विफल होने के बाद दुर्योधन ने फिर से कर्ण की प्रतिज्ञा याद करा दी। कर्ण ने गुरू गम्भीर स्वर में कहा- पांडवों के निधन का प्रथम सोपान है अर्जुन वध। पृथ्वी की कोई शक्ति उसे मृत्यु मुख से बचा नहीं सकती। अर्जुन के वध के लिए ही मेरा जन्म है। स्वयं भगवान भी उसे मुझसे नहीं बचा पायेंगे। भगवान ही यदि सब करते तो आदमी को फिर इतने अंग-प्रत्यंग, मस्तिष्क आदि क्यों देते?

जब मनुष्य के मन में माँगने की इच्छा होती है, तब उसके सभी गुण संकुचित हो जाते हैं। नीतिकारों ने भिक्षुक को तृण से भी हल्का बताया है। बलि के यज्ञ में माँगते समय भगवान् को भी अपना वामन रूप धारण करना पड़ा था। आशा ही दु:ख का कारण है। आशा कभी शान्त नहीं होती। जिन्होंने आशा का त्याग कर दिया है, उनके मन से दीनता चली जाती है। वे किसी के सामने गिड़गिड़ाते नहीं और उन्हें किसी को प्रसन्न करने के लिये असत्य की शरण लेनी पड़ती है। दीनता, चापलूसी, भय, क्षुद्रता ये सब तो आशा में, याचना में, लोभ में ही हैं। लोभ का कारण मोह है। मोह से ही लोभ उत्पन्न होता है और समस्त पापों का बाप लोभ ही है। लोभी पुरुष किसी की ओर निर्भर होकर देख नहीं सकता। उसे सदा सर्वदा, सर्वत्र शमा बनी रहती है।

महात्मा कर्ण का नियम था, वे बहुत प्रात: अरुणोदय में ही उठते। शौचादि से निवृत्त होकर भगवती भागीरथी के भव्य कमनीय कूल पर चले जाते। वहाँ जाकर वे वेद मन्त्रों द्वारा विधिवत् स्नान करते। स्नान करके सुन्दर स्वच्छ रेशमी वस्त्र धारण करते और फिर सूर्य के सम्मुख खड़े हो जाते। जब तक सूर्य भगवान उनकी पीठ के पीछे नहीं आ जाते तब तक वे खड़े-खड़े गायत्री मन्त्र का जाप करते रहते। जब सूर्य ढल जाते, तीसरा प्रहर हो जाता, तब वे अपने भवन को जाते। उस समय जो भी ब्राह्मण जिस वस्तु की याचना करता, वे उसे देते, कभी किसी को मना नहीं करते।

कवच कुण्डल माँगने के लिये देवराज इन्द्र भी ब्राह्मण का वेष धारण करके कर्ण के पास आये। कर्ण उस समय जप कर

रहे थे। ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र उनकी प्रतीक्षा में ठहरे रहे। जब कर्ण अपना जाप समाप्त कर चुके, तब देवराज ब्राह्मण के वेष में उनके समीप गये। महात्मा कर्ण ने उनका स्वागत सत्कार किया। चरण वन्दना करके उनकी पूजा की और आने का कारण पूछते हुए कहा- द्विजवर। मैं आपका अभिनन्दन करता हूँ। आपने मुझे दर्शन देकर बड़ी कृपा की। कहिये, मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ?

इन्द्र ने आवाज दी कर्ण। इन्द्र ब्राह्मण का वेश बनाकर वहाँ आया। कर्ण ने प्रणाम किया। इन्द्र ने आशीर्वाद दिया। कर्ण बोला, आप मुझे यह आशीर्वाद मत दीजिये ब्राह्मण देवता किन्तु आदेश दीजिये की मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ? इन्द्रबोला मैं दूसरे ब्राह्मणों की भांति मैं तुमसे धन मांगने नहीं आया हूं। कर्ण बोला, इससे क्या होता? आप यदि कुछ मांगने ही आये है तो मैं आपकी मांग अवश्य पूरी करूंगा। क्या चाहिये आपको?

छद्मवेषी ब्राह्मण ने कहा- मैं आपसे कुछ याचना करने आया हूँ। आप दानियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। आपकी ख्याति तीनों लोकों में फैली हुई है। आपके यश से जगत् व्याप्त है।

कर्ण ने कहा- भगवन्। जो आपको माँगना हो, उसकी मुझे आज्ञा कीजिये। आप सुवर्ण चाहते हों तो मैं आपको इच्छानुसार सुवर्ण दूँगा। गाँवों की इच्छा हो तो समृद्धिशाली जितने आप चाहेंगे उतने गाँव दूँगा। कन्याओं की जरूरत हो तो मैं सुन्दरी सुवर्ण के अलमारों से अलंकृत, दास-दासियों से युक्त विप्र कन्यायें दूँगा। आपको जो अभीष्ट वस्तु हो वह मुझसे नि:सम़ोच भाव से माँग लीजिये।

ब्राह्मण ने कहा, मुझे इनमें से कुछ भी नहीं चाहिये। मुझे जो वस्तु चाहिये, उसे सम्भव है आप न दे सकें।

कर्ण ने कहा- हे द्विजश्रेष्ठ। आप यह कैसी भूली-भूली-सी बातें कर रहे हैं। कर्ण को ब्राह्मण को देने के लिये कोई भी वस्तु अदेय नहीं है। आप माँगिये?

ब्राह्मण ने कहा, हाँ, यह तो मुझे विश्वास है, किन्तु वह वस्तु आपको अत्यन्त प्रिय है। मैं आपके इन दिव्य कवच और कुण्डलों की याचना करने आया हूँ। क्या आप दे सकेंगे? यह कहते-कहते इन्द्र का मुँह छोटा पड़ गया। कर्ण मन-ही-मन मुस्कराये और फिर बोले, आप ब्राह्मण होकर इन वस्तुओं को क्या करेंगे? लाखों, करोड़ों गोएँ जिनके सींग सुवर्ण से मढ़े हों, जिन पर बहुमूल्य सुवर्णमय रेशमी झूल पड़ी हों उन्हें मैं आपको दूँगा। लाखों, करोड़ो दास-दासी, अत्यन्त सुवर्णराशि, हजारों समृद्धशाली गाँव मैं आपको भेंट करूँगा। आप इन सबको लेकर आनन्द से सुख भोगिये। मेरे यहाँ से सन्तुष्ट होकर जायँ किन्तु ये मेरे दिव्य कवच कुण्डल न माँगे।

ब्राह्मण ने कहा- मुझे यह सब कुछ भी नहीं चाहिये। मैं तो पहिले ही कहता था, आप दे न सकेंगे, मुझे तो आपके कवच कुण्डलों की आवश्यकता है। यदि आप वास्तवमें सत्यप्रतिज्ञ हैं तो आपके जो ये जन्मके साथ उत्पन्न हुए कवच और कुण्डल हैं, ये ही उतारकर हमें दे दीजिये। आपसे मुझे इन्हींको लेनेकी बहुत उतावली है, मेरे लिये यह सबसे बढ़कर लाभकी बात होगी। कर्ण ने अपनी हँसी को रोककर फिर कहा- देखिये, इन दिव्य कवच कुण्डलों को देने से शत्रु मुझे युद्ध में मार डालेंगे। इन वस्तुओं को धारण किये ही मैं माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ हूँ। ये मेरे शरीर में खाल की तरह चिपटे हुए हैं, इन्हें मैं कैसे दे सकता हूँ? आप समस्त पृथ्वी का निष्कण्टक राज्य माँगे तो मैं अभी आपको दे दूँगा।

कर्णने कहा- विप्रवर। मेरे साथ उत्पन्न हुए ये कवच और कुण्डल अमृतमय हैं। इनके कारण तीनों लोकोंमें मुझे कोई नहीं मार सकता। इसलिये इन्हें मैं अपनेसे विलग करना नहीं चाहता। इसलिये आप मुझसे विस्तृत और शत्रुहीन पृथ्वीका राज्य ले लीजिये, इन कवच और कुण्डलोंको देकर तो मैं शत्रुओंका शिकार बन जाऊँगा।

ब्राह्मण ने कहा- मैं पृथ्वी लेकर क्या करूँगा। यदि आप को देना हो तो कवच कुण्डल दे दीजिये, न देना हो तो मना कर दीजिये, व्यर्थ वाद विवाद क्यों करते हैं?

जब ऐसा कहनेपर भी इन्द्रने दूसरा वर नहीं माँगा तो कर्णने हँसकर कहा, देवराज। मैं आपको पहले ही पहचान गया हूँ। मैं आपको कोई वस्तु दूँ और उसके बदलेमें मुझे कुछ भी न मिले, यह उचित नहीं है। आप साक्षात् देवराज हैं; आपको भी मुझे कोई वर देना चाहिये। आप अनेकों अन्य जीवोंके स्वामी और उनकी रचना करनेवाले हैं। देवेश्वर। यदि मैं आपको कवच और कुण्डल दे दूँगा तो शत्रुओंका वध्य हो जाऊँगा और आपकी भी हँसी होगी। किसी प्रकार मैं इन्हें दे नहीं सकता। कर्ण हँसते-हँसते बोले- देवराज। मैं आपकी सब चालाकी समझता हूँ। मुझे पहले से ही पता था कि आप मेरे पास कवच कुण्डल माँगने आवेंगे। मैं मना करनेवाला थोडे ही हूँ। जो आप माँगेंगे वह मैं दूँगा, किन्तु कवच कुण्डल लेकर ही चले जायँगे या मुझे भी कुछ आत्मरक्षा की वस्तु देंगे?

इन्द्र का चेहरा फीका पड़ गया, किन्तु स्वार्थी निर्लज्ज हो जाता है। अर्थो दोषं न पश्यति। स्वार्थी को अपने प्रयोजन से काम। इन्द्र कर्ण की यह बात सुनकर सिटपिटा गये और अपनी झेंप मिटाने के लिये बोले- तुम से यह बात किसने कही? देवता भी मेरे अभिप्राय को नहीं जानते थे। अवश्य ही तुम्हारे पिता सूर्य ने तुम्हें सचेष्ट कर दिया है। वे ही मेरे मन की बात को जान गये थे। अच्छी बात है, कवच कुण्डल तो मैं लेकर ही जाऊँगा। तुम मेरे वज्र के सिवाय और जो कुछ माँगना चाहते हो मुझसे माँग लो। इन्द्र बोले, मैंने तो सुना है तुम बडे दानवीर हो और कर्ण ने इन्द्र को प्रणाम किया। इन्द्र ने कहा, यह दूसरा प्रणाम किसलिये। कर्ण बोला, पहला प्रणाम ब्राह्मण देव को था और दूसरा प्रणाम इन्द्रदेव को। इन्द्र अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुये। कर्ण बोला, परन्तु आप चिन्ता मत कीजिये मैं जानता हूं कि आप मुझसे मेरे कवच और कुंडल क्यों मांग रहे हैं? किन्तु हे इन्द्रदेव मैं प्रतिज्ञाबद्ध हूं। आपने मुझसे मांगा ही ऐसे समय है कि मैं आपको ना नहीं कर सकता। यह मेरे लिये बडे गर्व की बात है कि मैं एक ऐसा मानव हूँ जिसके आगे स्वयं इन्द्रदेव हाथ फैला रहे हैं और उसी समय अस्त्र से कर्ण ने अपने शरीर से कवच और कानों से कुंडल काट कर इन्द्र को दे दिये। पूरा शरीर लहूलुहान हो गया। इन्द्र ने कर्ण को आशीर्वाद दिया और बोले हे कर्ण कदाचित परम पिता ब्रह्मा के लिये तुम्हारे जैसा दानवीर बनाना सम्भव नहीं। सूर्यदेव ने तुम्हे बता दिया था कि मैं आनेवाला हूं। उन्होंने तुम्हे यह भी बताया कि मैं क्या मांगनेवाला हूं फिर भी तुमने इस पल के लिये पीठ नहीं दिखाई। तुमने केवल इस पल का सामना किया बल्कि उसे पराजित किया। कोई वर मांगो वत्स, जो जी चाहे मांगो मैं तुमसे प्रसन्न हूं। इन्द्र ना नहीं करेगा। कर्ण बोला, हे भगवान कुछ देने के उपरान्त कुछ मांगना सभ्यता के विरुद्ध है यदि कुछ मांग लिया तो मेरे देने का अर्थ ही निकल जायेगा। उसका यश भंग हो जायेगा। मैं क्षमा चाहता हूं भगवन्। किन्तु इस समय कुछ मांगकर दान की मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर सकता। परन्तु आपको वर्तमान और भविष्य की परिनिन्दा से बचाने के लिये अवश्य मैं कुछ मांगूंगा।

इन्द्रने कहा, मैं तुम्हारे पास आनेवाला हूँ, यह बात सूर्यको मालूम हो गयी थी; नि:संदेह उन्हींने तुम्हें भी सब बातें बता दी होंगी। सो, कोई बात नहीं; तुम जैसा चाहते हो, वैसा ही सही। तुम एक वज्रको छोड़कर मुझसे कोई भी चीज माँग सकते हो। मुझे आपके वज्र की इच्छा नहीं है। यदि आप उचित समझें तो आपके पास जो अमोघ शक्ति है, जो हजारों, लाखों शत्रुओं को मारकर फिर आपके पास लौट आती है उस शक्ति को आप मुझे दे दीजिये।

इन्द्र बोले, मेरे हाथसे छूटनेपर यह शक्ति अवश्य ही सैकड़ों शत्रुओंका संहार करती है और फिर मेरे ही हाथमें लौट आती है; सो यह जब तुम्हारे हाथ से छूटेगी तो जो गरज-गरजकर तुम्हें अत्यन्त संतप्त कर रहा होगा, ऐसे एक ही प्रबल शत्रुको

मारकर फिर मेरे ही हाथमें आ जायगी। कर्णने कहा- देवराज। मैं भी केवल एक ही ऐसे शत्रुको मारना चाहता हूँ, जो घनघोर युद्धमें गरज-गरजकर मुझे संतप्त कर रहा हो और जिससे मुझे भय उत्पन्न हो गया हो।

इन्द्र बोले- तुम युद्धमें गरजते हुए एक प्रबल शत्रुको मारोगे तो सही; किंतु जिसे तुम मारना चाहते हो उसकी रक्षा तो भगवान श्रीकृष्ण करते हैं, जिन्हें वेदज्ञ पुरुष अजित, वराह और अचिन्त्य नारायण कहते हैं।

कर्णने कहा, भगवन्। भले ही ऐसी बात हो; तथापि आप मुझे एक वीरका नाश करनेवाली अमोघ शक्ति दीजिये, जिससे कि मैं अपनेको संतप्त करनेवाले शत्रुका संहार कर सकूँ। इन्द्र बोले, एक बात और है। यदि दूसरे शस्त्रोंके रहते हुए और प्राणान्त संकट उपस्थित होनेसे पहले ही तुम प्रमादवश इस अमोघ शक्तिको छोड़ दोगे तो यह तुम्हारे ही ऊपर पड़ेगी। कर्णने कहा- इन्द्र। आपके कथनानुसार मैं आपकी इस शक्तिको बड़े भारी संकटमें पड़नेपर ही छोड़ूँगा, यह मैं सच-सच कहता हूं। इन्द्र ने कहा तथास्तु और शक्ति बाण दिया और कहा तुम इसका प्रयोग केवल एक बार ही कर सकते हो फिर मेरा यह अस्त्र मेरे पास लौट आयेगा। कर्ण बोला, मैं इसका प्रयोग दो बार करना भी नहीं चाहता देवराज क्योंकि संसार में केवल मेरा एक ही शत्रु है एक ही। इन्द्र अन्तर्ध्यान हुये।

**जन्मजात कुंडली कवच, थे अंगों के अंग, वही काटकर दे दिये अद्‌भुत दिव्य प्रसंग।**

कथा का यह भाग सूर्यपुत्र दानवीर कर्ण की भेंट करता हूं। इस महान कथा का यह पात्र आदरणीय है क्योंकि इसने अपनी निष्ठा की रक्षा के लिये अपने जीवन को समर्पित करने का निश्चय किया। इसकी महानता यह है कि जीवन में कड़वाहट थाती जो उसके सुपुर्द की थी उसे पीकर भी वो जीता रहा इसीलिये जब युद्ध की ठहर ही गई तो यह जानते हुये भी कि वो एक हारनेवाली सेना के साथ है उसने उसीकी ओर से लडने का निश्चय किया। वो यह भी जानता था कि जहां धर्म है वहां कृष्ण है और जहां कृष्ण है वहीं विजय है। इस प्रकार कर्णको ठगकर और उन्हें संसारमें यशस्वी बनाकर इन्द्रने निश्चय किया कि अब पाण्डवोंका काम सिद्ध हो गया। इसके पश्चात् वे हँसते-हँसते देवलोकको चले गये। जब धृतराष्ट्रके पुत्रोंको कर्णके ठगे जानेका समाचार मालूम हुआ तो वे बडे ही दुखी हुए और उनका सारा गर्व ढीला पड़ गया तथा पाण्डवोंने कर्णको ऐसी परिस्थितिमें पड़ा सुना तो वे बड़े प्रसन्न हुए।

इससे पहिले कर्ण का नाम वसुषेण था; शरीर से कवच कुण्डल कतरने के कारण संसार में उसी दिन से वे कर्ण कहलाये।

महावीर कर्ण। महात्मा वसुषेण। तुम धन्य हो। ऐसा दुष्कर कर्म तुम्हारे सिवाय दूसरा कौन कर सकता है? यद्यपि तुम इन्द्र द्वारा ठगे गये और इसी से शत्रुओं ने छलकर तुम्हें मार डाला, किन्तु मरकर भी तुम अमर हो। तुम्हारी कभी न मरनेवाली कीर्ति जब तक संसार में तुम्हारे पिता सूर्य भगवान हैं तब तक इसी प्रकार निर्मल बनी रहेगी। तुम मरकर भी अमर हो, पराजित होने पर भी विजित हो, न रहने पर भी विद्यमान हो। तुम्हारा त्याग, सत्यवादिता दृढ़ प्रतिज्ञता ये सभी गुण प्रशंसनीय, श्लाघनीय और अनुकरणीय हैं। शत्रु भी आपके गुणों की श्लाघा करते हैं। हे वीर। तुम ठगे नहीं गये किन्तु इन्द्र को ही तुमने ठग लिया। पिता सूर्य तुम्हारी इस सत्यप्रियता से जितने प्रसन्न हुए होंगे, उतने तब प्रसन्न न होते जब तुम प्राणों के मोह से इन्द्र को कवच, कुंडल देने से इनकार कर देते। पुत्र की ममता दूसरी बात है और गुणों का आदर दूसरी वस्तु है। देवराज इन्द्र कर्ण के कवच कुण्डल लेकर और उन्हें अपनी अमोघ शक्ति देकर अपने लोक को चले गये। इस घटना से कौरवों को शोक और पाण्डवों को हर्ष होना स्वाभाविक ही था, किन्तु उस धनुर्धर स्वाभिमानी महात्मा को न हर्ष हुआ न शोक। वह उसी तरह अपने बल पर भरोसा रखकर सत्य पर अड़ा रहा।

## २३) कुन्ती की कर्ण से भेंट और माँ-पुत्र का सम्वाद

कर्ण नदी तट आता है और सूर्यदेव को प्रणाम कर ऊपर हाथ उठाकर ऊपर आकाश की तरफ हाथ उठाकर बोलता है, हे विधाता आज तेरे लिखे हुये भाग्यपर प्रश्नचिन्ह लगा रहा हूं? मैं राधेय मैं कौन्तेय मुझे मेरी पहिचान दे। सूर्यदेव यदि कोई अपराध है तो अपराधिनी मेरी माता है तो फिर उनके अपराध का दंड मैं क्यों भोगूं? सूर्यदेव तो अपने प्रकाश बिन्दु है। मेरी माता भी राजभवन में सुरक्षित है और मैं तो केवल परिणाम भुगत रहा हूं। ये कैसा न्याय है? तूने मेरा जो भाग्य लिखा है उसे पढ़कर तो देख और देख हे न्याय विधाता मुझे बता सूर्य के भाग का दंड धूप क्यों भुगते? रणभूमि में अपने अनुजों के विरुद्ध युद्ध करता दिखाई तो मैं ही दूंगा तो फिर तूने मुझे दुर्योधन का ऋणी क्यों बनाया? मुझे बताओ कि मुझे यह बताने की क्या आवश्यकता थी कि मैं कोई जड़ वृक्ष नहीं हूं। मुझे तो यों ही जीने का अभ्यास हो गया था और मैंने सन्धि कर ली थी अपने दुर्भाग्य से। तो फिर तुमने वासुदेव को यह सब बताने के लिये रोका क्यों नहीं? उससे यह तो कहा होता कि यदि उन्होंने मुझे यह सब बतलाया तो मेरे साथ कितना घोर अन्याय हो जायेगा? मैं वो बाण कैसे चलाऊंगा जो पांडवों की छाती भेद जाये। परन्तु मैं करूंगा यही क्योंकि यही मेरा कर्तव्य है। तूने धर्म और अधर्म के होनेवाले महायुद्ध में अधर्म का पक्ष लेने हेतु मेरा कर्तव्य क्यों बनने दिया? मैं पांच-पांच महारथियों का भाई हूँ किन्तु अकेला। जिधर देखता हूं मुझे दुर्योधन का कोई न कोई किया हुआ उपकार सामने दिखता है। तू मुझे त्याग सकता है विधाता, मेरी माता मुझे त्याग सकती है विधाता लेकिन मैं दुर्योधन को नहीं त्याग सकता। कभी नहीं त्याग सकता।

संसार में परिस्थितियाँ मनुष्य को कैसे-कैसे बन्धनों में जकड़ देती हैं। जिनसे हम मिलना चाहते हैं, परिस्थिति से विवश होकर हम उनसे मिल नहीं सकते और जिनसे मिलना नहीं चाहते, उनसे स्वार्थवश हर समय मिलना पड़ता है। आर्य संस्कृति को माननेवाली जो कुल-कामिनी एकान्त में अपने पति को शरीर अर्पण कर देती हैं, वही सबके सामने पति से बोलना तो अलग, आँखें भरकर देख भी नहीं सकतीं।

कर्ण जानते थे कि कुन्ती मेरी सगी माता है। कुन्ती को भी पता था कि कर्ण मेरा पुत्र है, किन्तु दोनों मिल नहीं सकते थे। कर्ण जब भी अपनी जननी को देखते मन-ही-मन प्रणाम कर लेते। कुन्ती जब कर्ण को देखती उनका हृदय भर आता और अपने लाल की मङ्गल कामना करती। न तो कुन्ती अपने हृदय के टुकड़े को छाती से चिपटा सकती थी, न कर्ण ही अपनी जननी के चरणों का चुम्बन कर सकते थे। समाज के निर्दय बन्धन ने समीप रहते हुए भी माता पुत्र के बीच में हिमालय पहाड़ खड़ा कर दिया था। भाग्य ने दोनों को अलग-अलग फेंक दिया था, शरीर से न मिलने पर माता पुत्र का हृदय भला पृथक कैसे हो सकता है? १४ वर्ष जो माता विदुर के घर में रहकर अपने पाँचों पुत्रों के वन से लौटने की बाट देख रही थी, जब उसने विदुर के मुख से सुना कि युद्ध नहीं रूकेगा, आज से सातवें दिन युद्ध आरम्भ हो जायगा, तब उसके शोक का ठिकाना नहीं रहा। १४ वर्ष से पुत्रों के मुख को माता ने नहीं देखा है। पास ही उपप्लव्य नगर में ठहरे हुए पुत्रों के पास माँ जा नहीं सकती। अब युद्ध होगा। कौन जीतेगा? कौन हारेगा? भगवान् ही जानें। युद्ध के परिणाम की कल्पना करके माता काँप उठी। उसका हृदय धड़कने लगा। एक-एक करके वे दोनों दल के योद्धाओं के बलाबल के विषय में सोचने लगीं। माता-पिता का हृदय सदा शमित रहता है। प्रेम में पग-पग पर शमा होती है। स्नेह में अनिष्ट की अशमा बनी रहती है। मेरे पुत्रों से कौन-कौन लड़ेंगे? सहज ही उसके मन में संसार को जीतनेवाले भीष्म, कर्ण और द्रोण की ये तीन मूर्तियाँ आ गयीं। माता ने सोचा- द्रोण तो अपने शिष्यों पर बड़ा स्नेह करते हैं। वे जान-बूझकर अपने बाणों से मेरे

बेटों का वध कभी न करेंगे। पितामह भी अपने पौत्रों से प्रेम करते हैं। वे भी उन्हें अपने बाणों से न मारेंगे, एक कर्ण ही ऐसा है जो दुर्योधन के स्नेह से जी-जान से लड़ेगा, प्राणों की बाजी लगाकर संग्राम करेगा। सबसे अधिक खटका मुझे कर्ण का ही है। हाय। कर्ण अपने सहोदर भाइयों के खून का प्यासा बना हुआ है। कैसा नृशंस कार्य है। क्षत्रिय धर्म को धिक्कार है। फिर उस बेचारे का भी क्या दोष? दोष तो मेरा ही है। मैंने ही अभी तक उससे इस बात को छिपा रखा है। उसे क्या पता कि कुन्ती मेरी माता है, पांडव मेरे भाई हैं? वह तो अपने को सूतपुत्र ही समझता है, अधिरथ को पिता और राधा को ही अब तक वह माता माने बैठा है। आज जैसे भी हो मैं उसके भ्रम को दूर करूँगी। आज लज्जा त्यागकर मैं उसे सब बातें बता दूँगी। आज मैं उसे बिछुड़े भाइयों से मिला दूँगी। यह सोचकर वह कर्ण के पास जाने को तैयार हुई।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय, जब श्रीकृष्ण पाण्डवोंके पास चले गये तो विदुरने कुन्तीके पास जाकर कुछ खिन्नसे होकर कहा, देवी। तुम जानती हो मेरा मन तो सर्वदा युद्धके विरुद्ध ही रहता है। मैं चिल्ला-चिल्लाकर थक गया, किंतु दुर्योधन मेरी बातको सुनता ही नहीं। अब श्रीकृष्ण सन्धिके प्रयत्न में असफल होकर गये हैं। वे पाण्डवोंको युद्धके लिये तैयार करेंगे। यह कौरवोंकी अनीति सब वीरों का नाश कर डालेगी। इस बातको सोचकर मुझे न दिनमें नींद आती है और न रातमें ही।

विदुरकी यह बात सुनकर कुन्ती दु:खसे व्याकुल हो गयी और लंबी-लंबी साँस लेकर मन-ही-मन विचारने लगी- इस धनको धिक्कार है। हाय। इसीके लिये यह बन्धु-बान्धवोंका भीषण संहार होगा। इस युद्धमें अपने सुहृदोंका ही पराभव होनेवाला है। पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य और कर्ण दुर्योधनके पक्षमें रहेंगे। इससे मेरा भय और भी बढ़ जाता है। आचार्य द्रोण तो अपने शिष्योंके साथ कदाचित मन लगाकर युद्ध न भी करें। पितामह भी पाण्डवोंपर स्नेह न करें- यह नहीं हो सकता। किंतु यह कर्ण बड़ी खोटी दृष्टिवाला है। यह मोहवश दुर्बुद्धि दुर्योधनका ही अनुवर्तन करके निरन्तर पाण्डवोंसे द्वेष किया करता है। इसने बड़ा भारी अनर्थ करनेका हठ पकड़ रक्खा है। अच्छा, आज मैं कर्णके मनको पाण्डवोंके प्रति अनुकूल करनेका प्रयत्न करूँ और उससे उसके जन्मका वृत्तान्त सुना दूँ।

पारसंवी बोली, मेरी तो समझ में नहीं आता कि कैसा ईश्वर है कि सामने खड़े रहता है और दुर्योधन जैसे लोग उन्हें पहचान नहीं पाते। यदि वे अवतार हैं तो उनका प्रभाव फिर दुर्योधन पर क्यों नहीं पड़ा। दुर्योधन के सम्मुख आते ही बार-बार असफल क्यों हो जाते है? विदुर बोला, तुम्हारे प्रश्न का ठीक ठीक उत्तर तो मैं नहीं जानता। मैं तो केवल इतना जानता हूँ कि ईश्वर को देखने के लिये ईश्वर का सामने आना आवश्यक नहीं है। उसके लिये तो अपने पास आँखें होनी चाहिए। ईश्वर तो प्रत्येक कण में हैं, हमारे पास उसे देखने के लिए आँखे नहीं है। मनुष्य अपने-आपको ही नहीं पहचान पाता, तो ईश्वर को पहचानना तो दूर की बात है। पारसंवी बोली, वे कौनसी विशेष आँखे हैं धृतराष्ट्र के पास जो दुर्योधन के पास नहीं है। विदुर बोले, इन प्राकृतिक आँखों से ईश्वर को नहीं देखा जा सकता। उसके लिए निर्मल चरित्र चाहिए। मैं धृतराष्ट्र को तो पाखंडी मान सकता हूँ किन्तु तातश्री भीष्म और आचार्य द्रोण को नहीं। सचमुच मनुष्य का अहंकार एकदम व्यर्थ है। तातश्री भीष्म आज तक यही सोचते रहे, कि वे कुरुकुल की रक्षा कर रहे हैं, इसलिए उन्होंने दुर्योधन को कुछ नहीं कहा। अब सिद्ध होने जा रहा है कि दुर्योधन के अत्याचारों की अनदेखी कर भीष्म कुरुकुल की रक्षा नहीं कर रहे थे, उसके विनाश के बीज बो रहे थे। धृतराष्ट्र अपने पुत्र के लिए भोग के असंख्य साधन जुटा रहे थे और अब वे देखेंगे कि वे उसकी मृत्यु का प्रबंध कर रहे थे। सब जानते हैं कि युद्ध से विनाश होगा और फिर भी क्षण प्रति क्षण युद्ध की ओर बढ़ते जा रहे हैं। क्या अर्थ है इस सबका? क्या इसका अर्थ यह नहीं कि ईश्वर ही विनाश का इच्छुक हैं? मनुष्यों के देखते-सुनते, प्रयत्न करते, होता वही है, जो ईश्वर की इच्छा होती है।

मनुष्य की बुद्धि तो इतनी सीमित और अदूरदर्शी है कि अपने से बाहर कुछ देख ही नहीं पाती। ईश्वर को जानना और समझना तो बहुत दूर की बात है। ईश्वर को तो वही जान सकता है, जिसे स्वयं ईश्वर जानने की क्षमता दे। विदुर बोले, ये ईश्वर की कृपा ही तो है। पारसंवी बोली, यह ईश्वर की कृपा है कि उसने आपको दासी के गर्भ से जन्म दिया। कुरु साम्राज्य के महामंत्री रहे और सदा ही अपमानित होते रहे, यह सब दया है ईश्वर की? सब कुछ होते हुए भी एक संतान तक नहीं दी। यह दया है ईश्वर की?

विदुर की आँखों में अश्रु आ गए। कंठ रूँध गया, कृतघ्न मत बनो पारसंवी। ईश्वर की कृपा है कि दासी के गर्भ से जन्म लेकर भी मैं राजपरिवार का सदस्य रहा। महाराज पांडु और धृतराष्ट्र का भाई रहा। यह भगवान की कृपा है कि दुर्योधन की सारी उपेक्षा के बाद भी मैं कुरु साम्राज्य का महामंत्री रहा उसने मुझे इस काया से जन्मी संतान नहीं दी किंतु पांडवों जैसे असाधारण पुत्र दिए। अपना परिवार तो देखो, कितने लोग पल रहे हैं तुम्हारे आश्रय में। वह तुम्हारा परिवार ही तो है। प्रभु की कृपा तो देखो कि श्रीकृष्ण, हस्तिनापुर के महाराज और युवराज के घर भोजन नहीं करते और मेरे यहाँ आकर भोजन कर मुझे कृतार्थ करते हैं। भाभी जैसी महारानी और राजमाता अपनी इच्छा से हमारी इस कुटिया में हमारे साथ निवास करती हैं। और कौन-सा गौरव चाहिए तुम्हें पारसंवी?

पारसंवी और विदुर एक-दूसरे को देखते रहे। वे समझ नहीं पा रहे थे कि एक-दूसरे से क्या कहें।

कुंती हँसी, बोलो पारसंवी। बोलो। कहो कि प्रभु ने विदुर की बुद्धि ही भ्रष्ट कर रखी है कि उसे जीवन का कोई दु:ख, दु:ख ही नहीं लगता। उसे सुख और दु:ख की परख ही नहीं है।

भीगे नेत्रों से पारसंवी बोली, नहीं भाभी। मुझे हाथ जोड़कर उस प्रभु का धन्यवाद करना चाहिए कि इस हस्तिनापुर में रहते हुए भी, धृतराष्ट्र का अन्न खाते हुए भी एक मेरे ही पति की बुद्धि सात्विक रही है यहाँ। इन्होंने पुत्र युधिष्ठिर को पहचाना, इन्होंने श्रीकृष्ण को पहचाना। मेरा सौभाग्य कि इनकी संगति से मेरी बुद्धि भी कुछ सात्विक हुई। पारसंवी ने अपनी आँखें पोंछ लीं।

विदुर के घर में पारसंवी और कुन्ती बैठे हुये हैं। पारसंवी बोली, चिन्ता न कीजिये दीदी। यदि युद्ध हुआ भी तो विजय आप ही के पुत्रों की होगी। कुन्ती बोली, मुझे विजय की ओर से चिन्ता नहीं है। मुझे दुर्योधन की ओर से चिन्ता है। वो चाहे जैसा भी हो है तो पुत्र ही। मैं उसका शोक प्रकट करने दीदी के सामने कैसे जाऊंगी? और क्या कहुंगी उनसे? इतने में विदुर आ जाते हैं। प्रणाम भाभीश्री। कुन्ती बोली, आयुष्मान भव। विदुर बोला, यह आशीर्वाद मत दीजिये भाभीश्री। क्या करूंगा मैं लम्बी आयु लेकर। यदि हस्तिनापुर के सभी वृद्धजनों की मृत्यु हो जाये तो यह उनके लिये बडा अच्छा होगा। उनके निर्बल कन्धे कितने शव उठा पायेंगे? उनकी वृद्ध आँखों के पास इतने आंसू कहां है? जो अपने हर वीर पर बहा सके। पारसंवी बोली, क्या युद्ध रूकने का कोई आसार नहीं? विदुर बोला, यदि आशा होती भाग्यवान तो फिर भाभीश्री का आशीर्वाद क्यों लौटाता? कुन्ती बोली, तातश्री ने क्या कहा विदुर? विदुर बोलो, वो कौरव सेना के प्रधान सेनापति नियुक्त हो चुके हैं भाभीश्री। और मेरी समझ में यह नहीं आता कि पांडु पुत्र उनका सामना कैसे कर पायेंगे? इच्छा मृत्यु का कवच पहननेवाले यौद्धा का कोई क्या बिगाड सकता है। कुन्ती बोली, परन्तु क्या वे अपने पौत्रों और प्रपौत्रों के शव देखने के उपरान्त जीना चाहेंगे विदुर? वे भरतवंश के गौरव के प्रतिक है विदुर। उनके जीने का कोई मार्ग निकालो। विदुर बोले, यह मार्ग कहां से निकालूं भाभीश्री? कैसे निकालूंगा यह मार्ग? आज हस्तिनापुर की ओर आनेवाला और हस्तिनापुर से निकलनेवाला हर मार्ग उसके विनाश का मार्ग है। कुन्ती दु:खी होकर चली तो पारसंवी ने पूछा कहां जा रही हो दीदी?

कुन्ती बोली, यहि कहीं जा सकती तो अवश्य चली जाती परन्तु मैं भी हस्तिनापुर के विनाश की भागीदारनी हूं। मेरे इन आंखों के भाग्य के जो आँसू हैं वो तो बहाने ही पडेंगे। कुन्ती अपने शयनकक्ष में विचलित हो रही है जग रही है। नींद नहीं आ रही है। कुन्ती सपना देख रही है रणभूमि में अर्जुन और कर्ण एक-दूसरे पर बाण चला रहे हैं। दोनों एक-दूसरे को युद्ध में हताहत कर रहे हैं। कुन्ती भय से रोने लगती है। उसको अपना अतीत स्मरण हो आता है कर्ण के जन्म की कहानी उसने किस प्रकार कर्ण को जन्म के समय नदी में प्रवाहित किया था। कुन्ती को उस दिन की रंगशाला का दृश्य स्मरण हो आया। कुन्ती को रह-रह कर अपने पुत्र की स्मृति विचलित करने लगी। कुन्ती जग गई और फफक-फफक रोने लगी। कर्ण मुझे क्षमा कर दे। विदुर ने निश्चित् सूचना दी थी कि कर्ण को कृष्ण अपने रथ में अपने साथ लेकर तो गए थे; किंतु कुछ समय पश्चात् कर्ण अपने रथ पर हस्तिनापुर लौट आया था और अब हस्तिनापुर में ही था। विदुर से कुंती यह नहीं पूछ सकती थी कि कृष्ण ने कर्ण से क्या बातें कीं। उसे उसका रहस्य बता दिया था अथवा नहीं?

किंतु यदि कर्ण हस्तिनापुर में ही विद्यमान था, तो उसका अर्थ यह था कि वह दुर्योधन को छोड़कर पांडवों के पक्ष से लड़ने को तैयार नहीं था, अन्यथा उसे इस समय उपप्लव्य में, पांडवों के शिबिर में होना चाहिए था। यदि उसने पांडवों के अनुकूल कोई भी निर्णय किया होता, तो कृष्ण उसकी सूचना अवश्य भिजवाता। किसी भी प्रकार की सूचना के अभाव में तो यही मानना होगा कि कर्ण ने दुर्योधन का साथ छोड़ना स्वीकार नहीं किया है। ऐसे में कुंती को उससे मिलना ही होगा। वह बिना कोई प्रयत्न किए, विदुर के घर में बैठी-बैठी, अपने पुत्रों के परस्पर युद्ध और एक-दूसरे की हत्या के समाचार नहीं सुन सकतीं।

मनुष्य का मन अपना जय-जयकार सुनकर जितना पुलकित होता है, ईश्वर का मन नहीं होता होगा। ईश्वर में अहंकार नहीं है कि वह जय-जयकार सुनकर प्रसन्न हो जाए और स्वर्णमुद्राओं की वर्षा कर दे। वह मनुष्य के शब्दों को नहीं सुनता, उसके मन को देखता है। तृष्णाहीन सात्विक मन की सारी आवश्यकताएँ तो वह स्वयं ही पूरी कर देता है।

कुंती ने अपने चिंतन को जैसे बलात् रोका। कर्ण उसका पुत्र है। पुत्र का यश सुनकर, उसका महत्व देखकर, माँ को प्रसन्न होना चाहिए और वे हैं कि पुत्र के गुणों में भी दोष निकालने लगी हैं... युधिष्ठिर में सात्विकता है, और कुंती चाहती हैं कि उसके मन में रजोगुण की वृद्धि हो। कर्ण में राजसिकता है और वे चाहती हैं कि उसमें सात्विकता जागे। युधिष्ठिर युद्ध करना नहीं चाहता और कुंती की इच्छा है कि वह युद्ध करे। कर्ण युद्ध के लिए आतुर है और कुंती चाहती हैं कि वह युद्ध न करे। कुंती ने अपने सिर को झटका... वे ऐसा कुछ नहीं चाहतीं। उनकी तो एकमात्र इच्छा है कि युधिष्ठिर धर्म के लिए, अपने सम्मान के लिए, युद्ध करे और कर्ण अधर्म के पक्ष से न लड़े। वे चाहती हैं कि नारीत्व का अपमान करनेवालों को कठोरतम दंड मिले। वे चाहती हैं कि युधिष्ठिर सम्राट बनने के लिए चाहे न लड़े, किंतु द्रौपदी के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए अवश्य खड्ग उठाए। वे तो इतना ही चाहती हैं कि उनके पुत्रों को उनका अधिकार मिले और वे परस्पर एक-दूसरे का वध करने के स्थान पर, मिलकर प्रेमपूर्वक रहें।

उसका मन अपना ताना-बाना बुनता जा रहा था और उसकी आंखें कर्ण को निहार रही थीं। कर्ण ने स्नान किया, सूर्य की उपासना की; और अब वह ब्राह्मणों को दान दे रहा था कुन्ती को हँसी आ गई। जिनको दान दिया जा रहा था, वे दान की कामना में आए तो साथ थे; किंतु दान पाते ही विदा होते जा रहे थे। दान प्राप्त कर लेने के पश्चात्, दाता से उनका कोई रागात्मक संबंध नहीं रह जाता था। अब दाता के साथ वे याचक नहीं, दाता का अपना पुण्य मात्र था।

सबकी दृष्टि बचाकर नौकर चाकर और विदुर से छिपकर माता अपने पुत्र से मिलने चली।

कुन्ती एक सफेद साड़ी पहने हुए थी। एक चदरा ओढ़कर वे धीरे से पैदल ही धूप में गङ्गा किनारे की ओर चल दी।

उसका हृदय धड़क रहा था। मन में पुत्र मिलन का उछाह था। पुत्र-स्नेह से उसके स्तनों से दूध बह रहा था। वह विचारों में मग्न हुईं तेजी के साथ चली जा रही थी। कभी-कभी शमित दृष्टि से इधर-उधर घूम-फिरकर देख लेतीं कि उन्हें कोई देख तो नहीं रहा है। गङ्गा किनारे जाकर उन्होंने अपने हृदय के टुकड़े को अपने महाबली लाल को ताड़ वृक्ष की भाँति ऊपर बाहु उठाये देखा। सुवर्ण के कमणों से मंडित उनकी विशाल भुजाओं को देखकर माता का हृदय भर आया। ऊपर हाथ उठाये महावीर कर्ण सूर्य की उपासना कर रहे थे। गायत्री मन्त्र के जप में वे अपने शरीर को भी भूले हुए थे।

कुन्ती अपने रथ पर बैठकर आयी और रथ को पेड़ की ओट में रखा। और धीरे-धीरे वह तट पर एक निर्जन स्थल की ओर बढ़ी। कुन्ती इतनी दूर पैदल आने से थक गयी थी। उनके मुख मण्डल से पसीने की धारायें बह रही थी। वृद्धावस्था के कारण उसकी साँस जोर से चलने लगी। वह धीरे से आकर अपने लाल के पीछे बैठ गयी, धूप में तेजी थी। अपने बेटे के शरीर की शीतल छाया में बैठकर माता ने अपनी थकान मिटाई और वे एकटक अपने बच्चे के मुख की ओर देखती हुई उसके जप की समाप्ति की प्रतीक्षा करने लगी। सूर्य जब सिर को तपाकर कर्ण की पीठ को तपाने लगे, दोपहर जब ढल गया तब सूर्य की ओर कर्ण मुड़े। उनकी दृष्टि सहसा कुन्ती पर पड़ी। सामने कुन्ती को देखकर वे सकपका गये। बड़े विनीत भाव से दोनों हाथों की अञ्जलि बाँधकर कर्ण ने कहा, देवी। मैं सूतपुत्र राधेय आपके चरणों में प्रणाम करता हूं, हे कुरुकुल की महारानी आपने इतना कष्ट क्यों किया?

महारानी कुन्ती को देखते ही कर्ण समझ गये थे कि यह मुझे समझाने आई है। श्रीकृष्ण की बातें भी उनके हृदय में अभी तक ज्यों-की-त्यों अमित थी। इसलिये जान-बूझकर कर्ण ने अपने को अधिरथ और राधा का पुत्र कहा।

सूर्यप्रणाम करने के बाद कर्ण ने मुंह फेरा। कुंती को देखकर पानी उठाया धार से और चरणों को छूकर प्रणाम किया- कुंती वृक्षों के झुरमुट से निकलकर आगे बढ़ी और कर्ण के सम्मुख आ गईं।

कौन है? कर्ण ने पूछा। कुंती ने धीरे से कहा, एक याचक। मुझे महाराज से एकांत में कुछ माँगना है।

कर्ण को कुछ आश्चर्य हुआ। कंठ नारी का सा था; किंतु उसकी ऊँचाई पुरुष होने का सा भ्रम उत्पन्न कर रही थी। कौन है यह याचक? किंतु एकांत में क्यों? संभवत: कोई स्वाभिमानी व्यक्ति है, जिसके लिए दान लेने का निषेध हो, किंतु दान के बिना उसका कोई काम रुक रहा हो। देवी। असमय में आप यहां? अधिरथ पुत्र राधेय आपको प्रणाम करता है। आपकी क्या सेवा करे? बोलो, क्या चाहिए? यहाँ एकांत ही तो है।

कुंती ने कहा, अभी एकांत है, किंतु किसी भी क्षण कोई आ सकता है। संभव है कि अपनी बात कहने में मुझे कुछ समय लग जाए। मुख्य मार्ग से हटकर यदि आप इधर वृक्षों के पीछे आ जाएँ।

लगता है आपको धूप का अभ्यास नहीं है। कुन्ती बोली, धूप तो स्वयं मेरे भीतर बहुत कडी है पुत्र। मैं तुमसे कुछ मांगने आई हूं। कर्ण बोला, मैं जानता हूं देवी। मेरे पास जो भी आता है कुछ मांगने ही आता है। किन्तु मांगने से पहिले क्या आप मुझे अपना परिचय देगी। क्योंकि जिस प्रकार आपने मांगा है वो मांगनेवालों की शैली नहीं थी। मुझे ऐसा लगा कि आप पहिली बार किसी से कुछ मांग रही हो। यदि मांगना नहीं आता है देवी तो मांगिये मत। आदेश दीजिये। कुन्ती बोली, नहीं नहीं मुझे तुम्हें आदेश देने का कोई अधिकार नहीं है। तुम्हें आदेश देने का अधिकार तो केवल तुम्हारी माता राधा को है। मैं उस देवी को प्रणाम करती हूं जिसे तुम जैसा पुत्र मां कहकर पुकारता होगा और उस मां का आशीर्वाद पाता होगा।

कर्ण एकदम अकेला था और इसी क्षण की प्रतीक्षा थी कुन्ती को। सम्भवत: कर्ण से मिलने के लिए कोई और न आ जाए। क्या कुन्ती को फिर उससे बात करने के लिए वांछित एकान्त न मिले।

उधर परम रूपवान कर्ण संध्यास्नान कर वेदपाठ कर रहे थे। उनका अंग सौष्ठव अस्त गामी सूर्यरश्मियों में अपूर्व शोभामय दिख रहा था। निर्मल, पवित्र, आभा मानो छिटक कर आ रही है समूचे चेहरे से।

कुंती का उत्तरीय उनके सिर और चेहरे से हटता हुआ, कंधों पर आ गया।

ओह आप। कर्ण के मन में जैसे ज्वार उठा; किंतु उसे अपना संकल्प विस्मृत नहीं हुआ था। उसे तनिक भी कोमलता नहीं दिखानी थी। उसे तो कठोर बनना था; क्रूरता की सीमा तक।

कुंती ने कहा, मैं याचक बनकर आई हूं अंगराज। इसलिए मुझे याचिका की पूर्वपीठिका स्पष्ट करनी होगी।

आज तक कर्णने जिस कुंती को देखा था, वह पांडवों की माता थी, उसके शत्रुओं की माता। आज जो कुंती उसके सम्मुख खड़ी थी, वह उसकी अपनी जननी थी। उसने कुंती को अगणित बार देखा था; किंतु अपनी जननी को तो वह पहली ही बार देख रहा था।

कर्ण बोला, क्या आप मेरी मां को जानती है। कुन्ती बोली, भारत वर्ष में ऐसा कौन है जो तुम्हारी माता को नहीं जानता हो? कर्ण बोला, भारतवर्ष की बात छोडिये देवी अपनी माता को तो स्वयं मैं भी नहीं जानता। मेरी माता ने तो मुझे जन्म देते ही त्याग दिया था और बहा दिया था इसी गंगा में परन्तु जिस देवि का आपने अभी अभी नाम लिया है वो मेरी माता नहीं है वो मेरी माता से अधिक है। जो लोरी गा-गाकर मेरी माता को मुझे सुलाना चाहिये था मैंने उसे उस देवी से सुनी है। उसी देवी के मृदुल हाथों ने मुझे थपथपाया है। उसी देवी की सुगंधित गोद में मुझे नींद भी आयी है। आज भी जब मेरी आत्मा के घाव दुखने लगते है तो वही देवी ममता का स्नेह लेप लगाती है फिर भी मेरा जीवन एक शून्य सा लगता है। मेरे हृदय में उस माता का स्थान रिक्त ही है ना जिसने मुझे कभी स्वीकार नहीं किया। कभी कभी जी चाहता है कि वो मुझे कहीं मिल जाये और मैं उनको चरण स्पर्श के पश्चात यह पूछूं कि हे माता मुझे मेरा दोष तो बताओ कि मैं किस अपराध का दंड भुगत रहा हूं? कुन्ती बोली, यदि तुम्हारी माता ने अपनी विवशता समझा दी तो क्या करोगे? कर्ण बोला, विवशता? भगवान तो विवश हो भी सकते है देवी किन्तु माता कभी विवश नहीं हो सकती। कुन्ती बोली, माता भी विवश हो सकती है राधेय। मैं जानती हूं तुम्हारी माता की विवशता। कर्ण बोला, आप जानती है मेरी माता की विवशता। आप कैसे जानती हैं?

कर्ण मौन खड़ा था। कुंती उसके बोलने की प्रतीक्षा दीर्घकाल तक नहीं कर सकती थी।

कुन्ती बोली, मैं ऐसे जानती हूं क्योंकि मैं ही वो विवश मां हूं। कुन्ती रोते रोते बोली जिसे अपना पहिला पुत्र त्यागना पडा। कर्ण बोला, आप मेरी माता हैं। कुन्ती बोली, हां पुत्र। कर्ण बोला, तो मैं इन्द्रप्रस्थ की राजमाता को सादर प्रणाम करता हूं। कुन्ती बोली, पुत्र। कर्ण बोला, मुझे पुत्र न कहिये। मैं राधा का सूत पुत्र राधेय हूं। नहीं। आप राजमाता कुन्ती हैं पांडव जैसे महारथियों की माता। यह कितने आश्चर्य की बात है कि राजमाता कुन्ती इस सूतपुत्र कर्ण के पास कुछ मांगने आयी है। मांगिये महारानी कुन्ती मांगिये। आपकी सेवा करना तो मेरे सौभाग्य की बात है। कुन्ती बोली, पुत्र। कर्ण बोला, मुझे पुत्र कहकर न मांगिये। कुन्ती बोली, क्यों न मांगू पुत्र कहकर। तू मेरा पुत्र है कर्ण। कर्ण बोला, मैं तब भी आपका पुत्र था जब आपने मुझे त्याग दिया था अब आज भी आपको मेरे लिये आपकी ममता यहां नहीं लाई होगी? आपका कोई उद्देश्य लाया होगा आपको मेरे पास। आपका कोई स्वार्थ लाया होगा आपको मेरे पास।

राधेय। तुम्हारा पालन-पोषण अधिरथ के घर में हुआ हैं; किंतु क्या तुम जानते हो कि तुम्हारी जननी मैं हूँ? तुमने मेरी कुक्षि से जन्म लिया है पुत्र।

महारानी कुन्ती सहम गयी। लज्जा से कुन्ती का सिर झुक गया, फिर धीरे-धीरे कहने लगीं- बेटा तुम मेरे सामने अपने

को सूतपुत्र और राधेय मत कहा करो। पुत्र। तुम्हें पता नहीं तुम मेरे पुत्र हो। जब मैं कन्या थी तब पिता के घर में दुर्वासा मुनि के मन्त्र के प्रभाव से सूर्य भगवान के द्वारा तुम्हारा जन्म मेरे उदर से हुआ था। बेटा। तुम मेरे पुत्र हो, पांडवों के बड़े भाई हो। बिना जाने दुष्ट दुर्योधन के बहकाने से तुम अपने भाइयों से सदा द्वेष करते हो। मेरे लाल। आज मैं तुम्हें इसी बात को समझाने आई हूँ, तुम अपने भाइयों से वैर-भाव छोड़कर उनके साथ राज्य-सुख भोग करो। आज संसार समझ ले कर्ण सूतपुत्र नहीं पांडुपुत्र है। वे राधा के तनय नहीं कुन्ती कुमार कौन्तेय हैं। माता-पिता की सेवा करना पुत्र का परम धर्म है। इस वृद्धावस्था में तुम मेरी इस बात को मान लो और आज पाँचों भाई से हृदय-से-हृदय मिलाकर मेरे सामने मिलो। मुझे कितनी प्रसन्नता होगी। तुम ६ भाइयों को एक साथ अपने हाथ से भोजन कराती हुई मैं आनन्द से फूली न समाऊँगी। यह कहते-कहते कुन्ती की आँखों में आँसू भर आये। तुम कुछ बोलते क्यों नहीं पुत्र? क्या तुम्हारे लिए यह सूचना कोई अर्थ नहीं रखती। क्या तुम अपनी खोई हुई माता और भाइयों को पाकर प्रसन्न नहीं हो?

कुन्तीने कहा, कर्ण। तुम राधाके पुत्र नहीं हो, कुन्तीके लाल हो। अधिरथ भी तुम्हारे पिता नहीं है। तुमने सूतकुलमें जन्म नहीं लिया। इस विषयमें मैं जो कुछ कहती हूँ, वह सुनो। पुत्र। जिस समय मैं राजा कुन्तिभोजके ही भवनमें थी, उस समय मैंने तुम्हें गर्भमें धारण किया था। तुम मेरी कन्यावस्थामें उत्पन्न हुए मेरे सबसे बड़े पुत्र हो। स्वयं सूर्यनारायणने ही तुम्हें मेरे उदरसे उत्पन्न किया है। जन्मके समय तुम कुण्डल और कवच धारण किये थे तथा तुम्हारा शरीर बड़ा ही दिव्य और तेजस्वी था। पुत्र। अपने भाइयोंको न पहचाननेके कारण तुम जो मोहवश धृतराष्ट्रके पुत्रोंके साथ रहते हो, यह तुम्हारे योग्य नहीं है। मनुष्योंके धर्मका विचार करनेपर यही निश्चय किया गया है कि जिससे पिता और माता प्रसन्न रहें, वही धर्मका फल है। पहले अर्जुनने जो राज्यलक्ष्मी सञ्चित की थी, उसे पापी कौरवोंने लोभवश छीन लिया। अब तुम उसे उनसे छीनकर भोगो। तुम्हें पाण्डवोंके साथ भ्रातृभावसे मिला देखकर ये पापी तुम्हें सिर झुकाने लगेंगे। जैसी कृष्ण और बलरामकी जोड़ी है, वैसी ही कर्ण और अर्जुनकी जोड़ी बन जाय। इस प्रकार जब तुम दोनों मिल जाओगे तो तुम्हारे लिये संसारमें कौन बात असाध्य रहेगी। तुम सब गुणोंसे सम्पन्न हो और अपने भाइयोंमें सबसे बड़े हो; तुम अपनेको सूतपुत्र मत कहो, तुम तो कुन्तीके पराक्रमी पुत्र हो।

मां ने निर्भीक भाव से कर्ण की ओर देखा- मुक्त स्वर में कहा- बेटे, सत्याश्रयी आदमी दु:ख नहीं पाता। मैं सत्य प्रकट कर दु:ख-मोचन करने तेरे पास आयी हूं। पुत्र। तू सूर्यदेव के औरस से मेरे कुमारी गर्भ से जन्मा है। राधा या अधिरथ का पुत्र नहीं उनका नाम लेकर मुझे आहत मत करो। मैं चाहती हूं तुम पांडवों के साथ रहो। वे तुम्हारे सहोदर भाई हैं। उनके साथ मार काट कर भाई-भाई आपस में कटोगे, मरोगे। मैं नहीं सह सकूंगी। कर्ण-अर्जुन के मिलन पर जगत धन्य हो जायेगा। मेरा जीवन धन्य हो जायेगा। कर्ण। मेरे वचन रखकर द्रौपदी ने मेरे पांचों पुत्रों को स्वीकार किया। तुम भी वैसे ही मेरा कहना मानोगे, इसी भरोसे आयी हूं।

कुन्ती बोली, तू दानवीर कर्ण है। तू इतना कठोर कैसे हो सकता है पुत्र? कर्ण बोला, यह कठोरता नहीं है माते यह तो मेरे हृदय की पीडा है। मेरे भाग्य की सारी ममता उन तीन पुत्रों और माद्री पुत्रों में बांट दी और आप मुझे कठोर कह रही है। इस सूर्यपुत्र कर्ण को संसार सूतपुत्र कहकर अपमानित करते रहा और आप चुप बैठी रही और आज आपको यह त्यागा हुआ पुत्र अचानक कैसे याद आ गया? अपने त्यागे हुये अभागे पुत्र से आपको क्या चाहिये? जो कुछ मांगना है वह शीघ्र मांगिये और राजभवन लौट जाइये? कि कहीं कोई आपको इस सूतपुत्र के साथ देखकर आपको यह पूछ ना बैठे कि हे महारानी आप इस सूतपुत्र के पास क्यों आई? आप उस पूछनेवाले से यह नहीं कह पायेगी कि मैं किसी सूतपुत्र के पास नहीं आई

मैं तो अपने पुत्र के पास आई। आपकी विवशता उस दिन थी माताश्री जिस दिन मैंने जन्म लिया था। वही विवशता आपको आज भी है। कुन्ती बोली, पलभर के लिये अपनी इस कडवाहट के कवच को उतार दो कर्ण और इसे मेरी गोदी में रख दो पुत्र ताकि मैं तुम्हारा सिर सहला सकूं पुत्र। मेरे पुत्र। कर्ण बोला, यह राधेय का सिर है। सूतपुत्र राधेय का राजमाता। यह आपकी गोद के योग्य नहीं है। मैं आपकी गोद में अपना सिर रखकर उसे अशुद्ध नहीं करना चाहता। कुन्ती बोली, ऐसा मत कहो पुत्र। कर्ण बोला, मैं आपका पुत्र नहीं हूं। मैं अपने आपको आपका पुत्र कहकर उस देवि का अपमान नहीं कर सकता राजमाता कुन्ती जिसने मुझे आप बनकर पाला। आप यहां पर मेरी मां बनकर नहीं आई हो। आप अर्जुन की ढाल बनकर आई हो। यदि आप मेरी मां बनकर आती तो यहां न आती। महात्मा विदुर के निवास स्थान पर आप अपने रथपर बैठती और अपने सारथी से कहती हे सारथी मुझे अपने ज्येष्ठ पुत्र कर्ण के घर ले चलो। वहां रथ से उतरकर द्वारपाल को आदेश देती कि जाओ कर्ण से जाकर कहो उसकी माता उसका माथा चूमकर उसे आशीर्वाद देने आई है किन्तु आपने ऐसा नहीं किया क्योंकि आप मुझे कुछ देना ही नहीं चाहती। इसलिये आपने ऐसे समय और स्थान का चुनाव किया जब आप जानती हो कि मैं किसी मांगनेवाले को रीते हाथ लौटा ही नहीं सकता। आप मुझे अपने पुत्र होने का यहां सम्मान देने नहीं आई। आप मुझसे अर्जुन का जीवन दान मांगने आई है। इसलिये ममता का यह मुखौटा उतारिये और जो कुछ मांगना है सो मांगिये। क्या आपने उस दिन रंगभूमि में मेरा कवच और कुंडल देखकर मुझे पहिचान नहीं लिया था। यदि पहिचान लिया था तो तब भी अर्जुन और भीम मुझे सूतपुत्र कह रहे थे तो आपने फिर उन्हें टोका क्यों नहीं? आपने उन्हे यह क्यों नहीं कहा कि वे राधेय के विषय में ऐसी असभ्य बातें न करे? क्योंकि यह तो राधेय है ही नहीं। कौरवों की भरी सभा में मेरे अनुजों से यह क्यों नहीं कहा कि जिसे वे सूतपुत्र कह रहे है वो सूत पुत्र नहीं है, उन्हीं की भांति कौन्तेय है। आपने उन्हे आदेश क्यों नहीं दिया कि मेरे चरण स्पर्श कर मुझसे आशीर्वाद लें क्योंकि मैं उनका ज्येष्ठ भ्राता हूं। ऐसा नहीं है माता कि मैं उस माता के लिये बिलखा नहीं हूं जिस माता ने मुझे जन्म देते ही त्याग दिया था। मैं आपके विषय में सोचता रहता था कि आप कैसी होगी? मेरी कल्पना आपका कभी कोई रूप बनाती तो कभी कोई मैं तरसता रहा उन चरणों के स्पर्श के लिये। कभी-कभी मैं यह सोचकर रो भी लिया करता था कि ऐसी ही कोई विवशता रही होगी कि मेरी माता ने मुझे त्यागने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं पाया। नहीं तो कोई मां अपने बच्चे को त्याग सकती है क्या भला? यही सोचकर मेरे हृदय की पीडा कम हो जाया करती थी। परन्तु आज आपने ममता को राजनीति बनाकर मेरे हृदय के सारे घाव हरे कर दिये हैं। आप ममता लेकर नहीं आई है मेरे पास। आप कटोरे में ममता की छाया लेकर आई हैं मेरे पास। आज तो आपने अन्याय की हर सीमा पार कर दी है माता। माता माता यह शब्द गुड की डली की भांति मेरे मुख में पिघला जा रहा है। जानती है आप कि मेरा सारा लड़कपन आप को माता कहने के लिये तरसता बीत गया परन्तु आपकी ममता तो आपके पांच पुत्रों में सन्तुष्ट रही ना और अब आज आप अपनी गोद में मेरा सिर रखने का अधिकार देने आई है। जब कि आप भलीभांति जानती हैं कि आपका यह अभागा पुत्र इस सम्मान को स्वीकार नहीं कर सकता जब मुझे आपकी आवश्यकता थी तब तो आप मुझे मिली नहीं और आपने मुझे अपमानों के कटीले वन में भटकने अकेला छोड दिया। और मुझे लहूलुहान होता देखती रही तो जब आपको आज आपके पुत्रों के लिये इस त्यागे हुये पुत्र की आवश्यकता हुई तो वो आपको क्यों मिले। बताइये माता वो आपको क्यों मिले? कर्ण यह कहकर रोने लगा। कुन्ती ने कर्ण का सिर सहलाया।

कर्ण बोला, किंतु मैं सोचता हूँ कि जो सूचना आप सबने वर्षों तक मुझसे छुपाए रखी, अब अकस्मात् ही वह इस प्रकार क्यों उद्घाटित की जा रही है? उसने रूककर कुंती की ओर देखा, क्या महत्त्व है, इस सूचना का मेरे लिए? इससे मुझे यह

ज्ञात नहीं हुआ कि मेरे माता-पिता कौन हैं। इससे मुझे ज्ञात हुआ कि मेरी इस दुर्दशा के लिए उत्तरदायी कौन हैं। कौन है वह, जिसने अपने मिथ्या सामाजिक सम्मान के लिए एक नवजात शिशु की सुख-सुविधा, कीर्ति-यश की बात तो जाने दीजिए, उसके जीवन की भी चिंता नहीं की और जीवन की बाजी लगा दी। बहा दिया उसे नदी की धारा में, डूबने के लिए मरने के लिए। आज मुझे यह ज्ञात नहीं हुआ कि मुझे जन्म किसने दिया, मुझे यह ज्ञात हुआ कि मेरी हत्या का प्रयत्न किसने किया। इस बार कुंती की प्रतिक्रिया, कर्ण की अपेक्षा के सर्वथा प्रतिकूल हुई। उसने सोचा था कि कुंती लज्जित होंगी, उनकी वाणी लड़खड़ा जाएगी, उन्हें शब्द नहीं मिलेंगे, संभव है कि नयनों से अश्रु टपकने लगें। कदाचित वे पश्चात्ताप प्रकट करें। संभवत: क्षमा माँगें किंतु कुंती का चेहरा तो क्षोभ के मारे कठोर ही नहीं, कुछ प्रदीप्त भी हो उठा। कुन्ती बोली, तो तलवार निकालो। कर दो मेरा वध। प्रतिशोध नहीं लोगे? वैसे भी तुम्हारी तो हत्यारिणी हूँ मैं। माता तो मैं उनकी हूँ, जिन्हें आजीवन पीड़ित, अपमानित और वंचित करना, तुम्हारे अस्तित्व का एकमात्र लक्ष्य रहा है। मेरा वध कर दोगे, तो उन्हें पीड़ा भी होगी वे वंचित भी होंगे और स्वयं को अपमानित भी अनुभव करेंगे। उससे तुम्हें अपार हर्ष होगा। तुम्हारे मित्रों को स्वर्गिक आनन्द मिलेगा। कर्ण बोला, मेरी शूरवीरता एक असहाय वृद्धा की हत्या से गौरवान्वित नहीं होगी। कुन्ती बोली, तुम्हारी शूरवीरता तो केवल एक असहाय युवती को सार्वजनिक रूप से निर्वस्त्र कर गौरवान्वित होती है न। कुंती की आँखों में से जैसे कोई हिंस्र जीव झाँक रहा था, अपनी वीरता का अधिक बखान मत करो। तुम नहीं जानते थे कि मैं तुम्हारी जननी हूँ; किंतु मैं जानती थी कि मैंने तुम्हें जन्म दिया है और अपने पुत्र की वीरता देख-देखकर, एकांत में सिर पटक-पटककर वर्षों रोती रही हूँ मैं।

कर्ण की आँखें आश्चर्य से फैलकर कुछ और बड़ी हो गईं। इस माता को अपने पुत्र कर्ण जैसे पुत्र की वीरता पर गर्व नहीं है? वह अपने पुत्र के कृत्यों से पीड़ित होती रही है? कर्ण की आँखों में दमित आक्रोश प्रकट हुआ ये लोग आज तक उसका तिरस्कार किसी और पद्धति से करते रहे थे। आज इस नई पद्धति का आविष्कार किया है इन्होंने।

कर्ण का स्वर पूर्णत: आश्वस्त था, वह मेरा प्रतिशोध था। द्रौपदी ने अपने स्वयंवर में मुझे सूतपुत्र कहा था।

कुंती बोली, वह तो यही जानती थी कि तुम अधिरथ के पुत्र हो; तो वह तुम्हें ऋषिपुत्र कैसे कह देती। महाराज धृतराष्ट्र जब संजय को सूतपुत्र कहते हैं, तो संजय उनके परिवार की स्त्रियों को अपमानित करने पर उतारू नहीं हो जाता।

कर्ण बोला, धृतराष्ट्र संजय का सम्मान करते हैं; किंतु उसने मेरा अपमान करने के लिए वह सब कहा था। यदि वह मेरा अपमान न करती तो मैं उसका अनादर क्यों करता? अन्यथा मैं स्त्रियों का बहुत सम्मान करता हूं।

कुंती बोली, प्रतिशोध ही लेना था तो वीर पुरुषों के समान लेते। निकाल लेते खड्ग और उसके रक्षकों का सम्मुख युद्ध में वध कर, उसका हरण कर लाते। यह प्रतिशोध है तुम्हारा। राजसभा में बुलाकर, उसके वीर पतियों को धर्म के बंधन में बाँध, एक असहाय स्त्री के नारीत्व से प्रतिशोध। कुंती की दृष्टि कर्ण पर लक्ष-लक्ष धिक्कारों की वर्षा कर रही थी, और जानती हूँ, कितना सम्मान करते हो तुम स्त्री का। जो स्त्री तुम्हारे विरुद्ध कहे, तुम्हारी कामनापूर्ति में विघ्न बने उसे तुम वेश्या कह कर पुकार सकते हो। उसे सार्वजनिक रूप से निर्वस्त्र कर उसकी पीड़ा से आनंदित होते हो, उसके अपमान से गौरवान्वित होते हो। कुंती के स्वर में जैसे कोई तरल तप्त धातु बह रही थी, अपने अपमान का दु:ख है तुमको। जो अपमान तुम लोगों ने पांचाली का किया है, जो अपमान तुम लोगों ने पांडवों का किया है। द्यूतसभा में उनके वस्त्र उतरवा लिए और उन महावीरों के सम्मुख उनकी पत्नी को वेश्या कहकर, उसे नग्न करने का प्रयत्न किया, उसे रति-निमंत्रण दिया। उसे दूसरा पति चुन लेने को कहा... उस अपमान से बड़ा अपमान किया था पांचाली ने तुम्हारा? तुम्हारे उस नीच

कर्म को देखकर भी क्या प्रतिक्रिया थी पांडवों की? उन्होंने युद्ध की प्रतिज्ञा की, धर्म की प्रतिज्ञा की और चुपचाप चले गए उठकर। यदि वे भी धर्म को भूलकर, अपने अपमान का प्रतिशोध लेने को तत्पर होते, अपने शस्त्र उठा लेते, तो देखती मैं तुम लोगों की वीरता। और तुम्हें यह भी सूचित कर दूँ, महावीर कि उसने तुम्हारा अपमान नहीं किया था, केवल तुमसे विवाह करने की अनिच्छा प्रकट की थी। यदि यह अपमान था तो तुम जानते ही होगे कि प्रत्येक स्वयंवर में नारी, सम्मान तो केवल एक ही पुरुष का करती है, शेष सबका तो अपमान ही होता है।

कर्ण बोला, यदि पांचाली मुझसे विवाह नहीं करना चाहती थी, तो यही कहती। उसने जाति की बात क्यों कहीं? किंतु उसकी वाणी में विश्वास का बल नहीं था।

कुंती बोली, इसलिए कि वह यह नहीं कह सकती थी कि वह उस आततायी से विवाह नहीं करेगी, जो निर्दोष लोगों को उनकी निद्रावस्था में जलाकर मार डालने का षड्यंत्र करता है, करवाता है; और ऐसे षडयन्त्र करनेवालों का साथ देता है।

कर्ण कुछ और बिफरकर बोला, उस कांड के लिए मुझसे बड़ा दोषी दुर्योधन है। पांचाली ने उसे क्यों नहीं रोका? क्यों नहीं लगाया उस पर आरोप? मेरी ही जाति। कुंती ने उसे डाँटकर बोला, चुप रहो तुम। तुम आज तक यही करते आए हो। केवल अपनी रट लगाए रहते हो, दूसरे की सुनते नहीं। अपना ही पक्ष जानते हो, दूसरे का पक्ष जानना नहीं चाहते। आज तुम पहले मेरी बात सुनो। कर्ण उन्हें अपनी माँ माने या न माने, वे तो उसे अपना पुत्र मानती ही हैं। मानती क्या है, वह उनका पुत्र है। कुंती बोली, दुर्योधन को रोकने की कोई आवश्यकता नहीं थी पांचाली को। उसमें सामर्थ्य ही नहीं था कि वह स्वयंवर की प्रतिज्ञा पूरी कर सकता। इसलिए उस का स्वयंवर में सम्मिलित हो, असफल रह अपमानित होना अधिक बड़ा दंड था। तुम्हारे सफल होने की कुछ संभावना थी, इसी भय के कारण उसने तुम्हें रोक दिया। कुंती ने रुककर उसकी ओर देखा, और सूत एक व्यवसाय है, जाति नहीं। अपने व्यवसाय से संबंधित होने पर वही अपमान का अनुभव करता है जो स्वयं उसे हीन मानता है। तुम सूत के व्यवसाय को हीन मानते हो; अधिरथ और संजय, ऐसा नहीं मानते। तुम राधेय कहलाने में आज अपमान का अनुभव नहीं करते; कल यदि तुम्हारे मन में, यह भाव उठे कि राधा एक साधारण स्त्री है, हीन स्त्री है, तुम्हारी माता होने के योग्य नहीं है, तो तुम राधेय पुकारे जाने पर भी अपमान का अनुभव करोगे।

कर्ण को कोई उत्तर नहीं सूझा। सत्य ही कह रही है कुंती। आहत तो उसका अहंकार होता था अन्यथा धनुर्धर के रूप में अर्जुन की श्रेष्ठता की चर्चा सुनकर, वह क्यों तड़प उठता था। अधिरथ के परिवार में पलने और बढ़ने के बाद भी सूतपुत्र सुनते ही, उसके तन-बदन में आग क्यों लग जाती थी। उसका मन कभी इस प्रकार स्वयं से तटस्थ होकर, अपने ऊपर अभियोग लगाने, अथवा लगाए गए अभियोग पर विचार करने को तैयार नहीं हुआ था। पर आज... कर्ण को लगा कि उसके अहंकार का कोई कगार टूटकर गिर गया था। मन कैसा तो विगलित-सा हो गया था। वह अपने अधरों में ही फुसफुसाया, आप अब तक कहाँ थीं देवी। मुझे समझाने पहले क्यों नहीं आईं?

कुंती के तेवर वैसे ही वक्र थे वो बोली, देवी क्यों कहता है, हत्यारिणी कह। तू अपनी व्यथा की बात कहता है पुत्र। कभी उस कुंती की व्यथा पर भी विचार कर। बहुत छोटी थी, जब मेरे जनक शूरसेन ने मुझे अपने पितृष्वसीय कुंतिभोज को दे दिया था। पिता कुंतिभोज के घर में क्या अवस्था रही होगी मेरी, सोच। दुर्वासा जैसे औघड़ और क्रोधी ऋषि को प्रसन्न रखने का दायित्व सौंपा गया था मुझे। पिता का आदेश। उनके सम्मान की रक्षा। दुर्वासा को मैं किसी भी प्रकार अप्रसन्न नहीं होने दे सकती थी। उनके रोष को रोकना था, जैसे भी हो यह उनकी ही मंत्रणा थी कि तेरा जन्म हुआ। यह कैसे संभव था पुत्र कि मेरे जैसी अबोध बालिका मात्र, उस प्रासाद में रहते हुए, अपने पिता से अपना गर्भ छिपा लेती, उनके अज्ञान

में ही यह प्रसव हो जाता और अपने नवजात शिशु को मरने के लिए मैं अश्व नदी के जल में प्रवाहित कर आती? पर इसमें तेरा भी क्या दोष। तुझे तो राधा और अधिरथ ने यही बताया होगा कि तू उन्हें गंगा की धारा में बहता हुआ मिला।

कर्ण चौंका, तो क्या उन्होंने मुझे गंगा की धारा में नहीं पाया?

कुन्ती बोली, कभी उस सारे भूगोल पर दृष्टि डाली होती, तो तुझे इस कथा के सत्य का ज्ञान हो गया होता। न मैं ईश्वर से विवाद करती हूँ, न उसकी इच्छा का विरोध। किंतु ईश्वर की बनाई इस प्रकृति के भी कुछ नियम हैं। सहस्त्रों योजन की यात्रा में किसी लहर ने उस मंजूषा को नहीं डुबोया, कहीं जल उसमें प्रविष्ट नहीं हुआ, किसी महामत्स्य अथवा ग्राह ने उस पर आक्रमण नहीं किया, कोई डोंगी, कोई नौका अथवा जलपोत उसके मार्ग में नहीं आया, किसी भँवर ने उस मंजूषा को नहीं घेरा, उस नवजात शिशु को इतने दीर्घकाल तक न भूख ने पीड़ित किया, न प्यास ने। वह तो जैसे अमृत पीकर सोया हुआ था। सहस्त्रों योजनों की उस यात्रा में मार्ग में किसी और मनुष्य ने उस मंजूषा को नहीं देखा, किसी ने उसे नहीं रोका। वह सीधे अधिरथ के पास जा पहुँची, जैसे उसपर अधिरथ का नाम और पता लिखा हुआ था।

कर्ण कुछ रोषपूर्वक बोला, मैंने कहा न कि यह ईश्वर की इच्छा थी। वह मेरे जीवन की रक्षा करना चाहता था।

कुंती बोली, जब अपने जीवन की रक्षा को तू ईश्वरीय विधान मानकर संतुष्ट है, तो जननी द्वारा अपने त्याग और अधिरथ सूत के घर पालन-पोषण को भी ईश्वरीय विधान क्यों नहीं मानता? उसके लिए तू अपनी माँ से क्यों रूष्ट है? पर तू वह क्यों मानेगा, जिसमें किसी दूसरे को अपना अपराधी घोषित कर, उसे दंडित न कर सके। वैसे भी तुझे अभ्यास हो गया है, स्वयं को एक दिव्य पुरुष मानने का। तू सूर्यपुत्र है। अलौकिक रूप पाया है तूने। मंजूषा में रख तुझे जल में प्रवाहित किया गया और ईश्वर अपने हाथों से मंजूषा को खेकर, अधिरथ के पास ले गए, और आदेश दिया, इसका पालन-पोषण करो। यह दिव्य संतान है। बड़े होकर बहुत सारे असाधारण कार्य करने हैं इसे। कुलवधुओं का अपमान करना है, माता को हत्यारिणी घोषित करना है... भाइयों का वध करने की प्रतिज्ञा करनी है इसे? मैं तो हत्यारिणी हूँ। मुझ हत्यारिणी की गोद में तुझ जैसा एक दिव्य पुरुष कैसे पलता।

कर्ण बोला, तो सत्य क्या है माता? कुंती चौंकी। कर्ण ने उसे माता कहकर संबोधित किया था। इसका कुछ तो अर्थ होगा उसका मन कहीं तो थोड़ा पिघला होगा। कुंती बोली, सत्य यह है पुत्र कि मेरे पिता महाराज कुंतिभोज, न अपनी पुत्री की कानीन संतान को समाज के सम्मुख स्वीकार करना चाहते थे, न उसकी हत्या का पाप अपने सिर लेना चाहते थे। इसलिए किन्हीं सूत्रों से संतानहीन राधा और अधिरथ से संपर्क कर, तुम्हें उन्हें सौंप वे सन्तुष्ट हो गए। मैं तब इस स्थिति में नहीं थी कि उनके मन को जान पाती, अथवा उनके द्वारा की गई सारी व्यवस्था की जानकारी प्राप्त करने में सफल हो पाती। मैं तो बस इतना ही जान पाई कि तुझे हस्तिनापुर के युवराज ने वरण किया, ताकि हस्तिनापुर आ सकूँ। यहाँ रह सकूँ। तुझे खोज सकूँ। जानती थी कि हस्तिनापुर की साम्राज्ञी होकर भी तुझे पुन: प्राप्त नहीं कर सकती। तुझे न तो मेरा पितृकुल स्वीकार करेगा, न श्वसुरकुल। किंतु मन चाहता था कि तुझे देख सकूँ। दूर से ही सही, पर निहार सकूँ। तुझे गोद में न भी ले सकूँ, तो तेरे सम्मुख तो बैठ सकूँ। तेरे मुख से अपने लिए माता संबोधन न भी सुन सकूँ, तो तुझे पुत्र कहकर तो पुकार सकूँ। कुंती का स्वर रूँध गया। वे आगे बोल नहीं सकी।

कर्ण का प्रतिरोध जैसे पिघलने लगा था। वह आकर कुंती के सम्मुख खड़ा हो गया। उसने अपनी तर्जनी से कुंती के अश्रु पोंछें, पर ऐसा क्यों हुआ माता? पराशर ने कृष्णद्वैपायन व्यास को स्वीकार किया था कि नहीं?

कुंती बोली, पराशर ऋषि थे। ऋषि प्रत्येक जन्म को दिव्य मानता है। दुर्वासा भी यही मानते थे। किंतु कुंतिभोज राजा हैं।

राजपरिवारों में कानीन पुत्रों को मान्यता नहीं मिलती पुत्र। शांतनु ने कृष्णद्वैपायन व्यास को अपना पुत्र स्वीकार नहीं किया। सत्यवती भी मेरे ही समान अपने पति तथा श्वसुरकुल को अपनी कानीन संतान की सूचना नहीं दे सकी। वे अपने हाथों उसका पालन-पोषण नहीं कर सकी। महाराज शांतनु की मृत्यु के पश्चात् व्यास समर्थ ऋषि होकर, इस वंश की सहायता के लिए ही हस्तिनापुर के राजप्रासाद में प्रवेश पा सके। यदि महाराज शांतनु ने दीर्घायु पाई होती, अथवा कुरुवंश संतानहीनता के संकट में नहीं पड़ा होता, तो शायद माता सत्यवती भी महर्षि को राजप्रासाद में बुलाने का साहस न कर पाती। कर्ण बोला, पर यदि ऋषि स्वीकार करते हैं, तो राजवंशों को इसमें क्या आपत्ति है? धर्म के नियामक तो ऋषि ही हैं। कुंती वितृष्णा से मुस्कराई और बोली, तुम नहीं जानते क्या? ऋषि का चिंतन समाजहित से प्रेरित होता है और राजवंश का स्वार्थ से। ऋषि के पास देने के लिए केवल ज्ञान है, जो कि वह किसी भी योग्य पात्र को दे सकता है। एक को दे देने से उसका ज्ञान चुक नहीं जाता, कि दूसरे को उत्तराधिकार में कुछ दे न सके। राजा के पास राज्य है, जिसे वह अपनी मृत्यु के पश्चात् भी अपनी संतान के माध्यम से अपने ही पास रखना चाहता है। यदि कानीन पुत्र को पुत्र मान लिया जाए, तो वह सारे पुत्रों में ज्येष्ठ होगा। राजा को अपनी औरस संतान के होते हुए भी अपना राज्य अपने कानीन पुत्र को ही देना पड़ेगा। हाँ। औरस पुत्र का जन्म न हो तो राजा क्षेत्रज अथवा दत्तक पुत्र को स्वीकार करता है; किंतु कानीन पुत्र को वह तब भी मान्यता नहीं देता।

कर्ण के मस्तिष्क में निरंतर विस्फोट हो रहे थे, कर्ण बोला, जन्म के समय कुछ नहीं कर सकी, तो बाद में हस्तिनापुर आकर क्यों नहीं खोजा मुझे? कुंती बोली, खोजना तो बहुत चाहा तुझे। किंतु क्या कहकर खोजती तुझे? मैं तो बस एक नाम जानती थी कि तू अधिरथ के घर में है। किंतु अधिरथ कौन है? कहाँ हैं? तेरा नाम क्या है? कर्ण बोला, क्यों, तुम किसी से भी पूछकर अधिरथ के घर आ सकती थी। मुझे बता सकती थी। कर्ण का आक्रोश जैसे मिट ही नहीं रहा था। कुंती के तर्कों से वह सागर की लहरों के समान पीछे हट जाता था; और थोड़ी देर में दूसरी लहर के रूप में पुन: लौट आता था। कुंती अपने क्षोभ के मध्य भी हँसीं, यदि इस प्रकार पूछ-पड़ताल कर, मैं अधिरथ के घर पहुँचकर, तुझे गोद में उठाकर कहती, पुत्र। मैं तेरी जननी हूँ। तो उस रहस्य की रक्षा कैसे होती, जिसके लिए तुझे स्वयं से पृथक् करना पड़ा था? अपने पितृकुल और श्वसुरकुल के सम्मान की रक्षा कैसे करती मैं? कुंती कुछ रुकी, किंतु उन्होंने कर्ण को बोलने का अवसर नहीं दिया, मैंने तुझे तब जाना, जब तू रंगशाला में अर्जुन से प्रतिस्पर्धा कर चुका था और अधिरथ ने आकर, तुझे पुत्र के रूप में संबोधित किया था।

कर्ण बोला, उस समय भी यदि बता देती तो कौन-सा आकाश गिर पड़ता? कुंती बोली, आकाश गिरने के लिए नहीं बना पुत्र। इसलिए वह तो नहीं गिरता, न ही गिरा; किंतु मेरे मन-मंदिर में बने अनेक स्वर्णिम प्रासाद गिर गए। मेरी आशाएँ ध्वस्त हो गईं। मेरी इच्छाएं जलकर क्षार हो गईं। तब तक तू दुर्योधन का परम मित्र बन चुका था। उस दुर्योधन का, जिसने भीम को विष खिलाकर, अचेतावस्था में उसे बाँधकर, नागों से दंशित करवाने के लिए गंगा की धारा में डाल दिया था तब तक तू अर्जुन का शत्रु बन चुका था। तू आचार्य द्रोण से रुष्ट हो चुका था। भगवान परशुराम से झूठ बोलकर षडयंत्रपूर्वक, उनकी विद्या चुराने का अपराधी बन चुका था।

कर्ण बोला, क्यों? मुझे द्रोण से विद्या सीखने का अधिकार क्यों नहीं था? क्योंकि मैं सूतपुत्र था? कितना अपमानित हुआ हूँ मैं। कितना। कुन्ती बोली, मैं आचार्य का पक्ष नहीं लेती। उसकी कोई बाध्यता नहीं है मेरे लिए; किंतु विद्या का दान तो गुरु की इच्छा से ही मिलता है, उनकी सेवा कर। हम किसी के कंठ पर अपना चरण धरकर, उससे बलात् विद्या नहीं सीख सकते। विद्या दस्युवृत्ति से नहीं मिलती पुत्र। सेवावृत्ति से मिलती है।

कर्ण बोला, किंतु मैं सुपात्र था। क्षत्रियों का ऐसा कौन-सा गुण है, जो किसी और में है और मुझमें नहीं है?

कुंती बोली, कौन कहेगा कि एकलव्य सुपात्र नहीं था। तू अपनी तुलना एकलव्य से कर। गुरु ने उसका तिरस्कार किया, तो उसने हठ नहीं की। नीचता पर नहीं उतरा वह। किसी से झगड़ा नहीं किया। मनुष्य की धातु उसके असफलता के क्षणों में ही पहचानी जाती है। एकलव्य किसी और गुरु के पास नहीं गया। आचार्य को ही अपना गुरु माना और साधना की। जिस गुरु ने उसका तिरस्कार किया था, उसी को उसने गुरुदक्षिणा दी। मैं नहीं कहती कि आचार्य ने उचित किया। यह भी नहीं कहती कि प्रत्येक व्यक्ति को एकलव्य का सा आचरण करना चाहिए। केवल तुझे बता रही हूँ कि तेरे साथ कोई अत्याचार नहीं हुआ। कोई ऐसा अन्याय अथवा अधर्म नहीं हुआ कि तू पांडवों के प्राणों का ग्राहक हो गया। आज तक तू उनका शत्रु बना हुआ है और उनका वध करने को प्रयत्नशील है।

कर्ण कटु स्वर में बोला, तो पांडवों ने कौन-सा मेरे साथ उचित व्यवहार किया। भीम और अर्जुन ने क्या कहनी-अनकहनी नहीं कही मुझे। वे मेरे प्राणों के ग्राहक नहीं हैं क्या? कुंती बोली, कितनी बार उन्होंने तेरे प्राण लेने का प्रयत्न किया? कितनी बार उन्होंने तेरी हत्या का षड्यंत्र रचा? कितनी बार उन्होंने सेना लेकर तेरे वध का अभियान किया?तेरा तिरस्कार आचार्य ने किया और तू अर्जुन का शत्रु हो गया, क्योंकि वह आचार्य को प्रिय था। तू क्या समझता है कि तू अर्जुन का वध कर देगा तो आचार्य तुझसे प्रेम करने लगेंगे? अर्जुन उनका सर्वाधिक प्रिय शिष्य हैं, फिर भी उन्होंने अश्वत्थामा को उससे अधिक शिक्षा दी है। तू उससे ईर्ष्या क्यों नहीं करता? उसके वध के लिए षड्यंत्र क्यों नहीं रचता?

कर्ण बोला, पांडवों से तो मेरी शत्रुता इसलिए है, क्योंकि वे मेरे मित्र दुर्योधन के शत्रु हैं।

कुन्ती बोली, पांडव दुर्योधन के शत्रु नहीं हैं। दुर्योधन पांडवों का शत्रु है। दुर्योधन ने उनके प्राण लेने के प्रयत्न किए, उसने उनका राज्य छीना, उन्हें अपमानित किया और उसकी प्रतिक्रिया में पांडवों ने क्या किया? आज भी युधिष्ठिर पांच ग्राम लेकर संधि के लिए तत्पर बैठा है। वह आज भी दुर्योधन को अपना भाई मानता है। उसके मन में आज भी दुर्योधन के लिए घृणा नहीं है। कर्ण बोला, और भीम? कुंती बोली, भीम ने अवश्य प्रतिज्ञाएँ की हैं; किंतु वह भी धर्मराज की आज्ञा से बाहर नहीं है। अब जब तू सब कुछ जान ही गया है तो अपनी वृद्धा माँ को सहारा दे, अपने भाइयों की भुजा थाम, छोड़ दे अपना यह तामसिक हठ। कुरुवंश को उसके संपूर्ण नाश से बचा। कर्ण बोला, यह संभव नहीं है माँ। मैं दुर्योधन को नहीं छोड़ सकता। मेरा मन अब भी यही कहता है कि हस्तिनापुर में सब ने मेरी महत्वाकांक्षाओं का दमन किया, मेरा तिरस्कार किया। बस एक दुर्योधन ही था, जिसने अपनी मित्रता निभाई। मुझे मान दिया, सम्मान दिया, धन दिया, पद दिया। मैं उससे विश्वासघात नहीं कर सकता। क्यों? तुम सहमत नहीं हो माँ।

कुंती का स्वर कठोर था और बोली, नहीं। तेरी महत्वाकांक्षाएँ अपने स्थान पर ठीक थी; किंतु यदि किसी की महत्वाकांक्षा पूरी न हो, तो उसे यह अधिकार नहीं है कि वह अधर्म पर उतर आए, वह दस्यु बन जाए, अथवा दस्युओं के दल में सम्मिलित हो जाए। युधिष्ठिर जानता था कि धृतराष्ट्र उसे लूट रहे हैं, फिर भी उसने पिता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया। वह जानता था कि उसके साथ छल हो रहा है, फिर भी वह अपने वचन से पीछे नहीं हटा। तेरी महत्वाकांक्षा क्या है? दुर्योधन जैसे पापी के चरण धो-धोकर पीना? इस आकांक्षा में कौन-सी महान्ता है? हाँ। अपने महत्त्व की आकांक्षा है। महत्वाकांक्षा तो युधिष्ठिर की है, जो इस सारे राज्य को त्याग कर केवल तपस्या करना चाहता है। वह राज्य नहीं चाहता, धर्म चाहता है, सत्य चाहता है, ईश्वर चाहता है। महत्वाकांक्षा तो अर्जुन की है, जो तपस्या के वरदान सी मिली उर्वशी को त्याग आया। पांडवों को अधर्म नहीं चाहिए। अधर्म के माध्यम से कोई सुख-सुविधा नहीं चाहिए।

कर्ण ने कुंती की बात काट दी और कहा, युधिष्ठिर की बात तो मैं फिर भी कुछ-कुछ समझता हूँ। किंतु मेरे सम्मुख

अर्जुन का बखान मत करो। क्या है अर्जुन? एक साधारण-सा निस्पृह प्राणी... क्या महानता है उसमें?

कुंती किसी अलौकिक शक्ति से आविष्ट हो गई थीं और बोली, मेरी बात सुन। जिस पांचाली ने तुझे स्वयंवर में भाग लेने से रोक दिया और तू इतनी क्षुद्रता पर उतर आया कि नारी का ऐसा अपमान करने लगा, उस पांचाली को जय करके लाया था अर्जुन। मेरे एक संकेत पर उसने पांचाली धर्मराज को सौंप दी। तनिक-सा मोह नहीं किया उसने। स्वयंवर में उसने जिसे स्वयं जीता था, उस पांचाली को भाई के साथ एकांत में देख लेने मात्र के अपराध में बारह वर्षों तक इंद्रप्रस्थ से बाहर भटकता रहा वह। हिमालय पर बैठ वर्षों तपस्या कर पशुपतास्त्र पाया उसने। किसी गुरु से झूठ बोल, पाखंड कर, धनुर्विद्या पाने का प्रयत्न नहीं किया। कुंती ने आगे बढ़, उसके हनु के नीचे अपनी तर्जनी रख, उसका मुख ऊपर उठाया, ऐसा क्या असाधारण है तुझ में कि स्वयं को इतना महान मानता है तू? असाधारण गिनता है स्वयं को? दिव्य पुरुष समझने लगा है स्वयं को। उषा-सी सुनहली त्वचा पाकर मनुष्य महान नहीं हो जाता। मनुष्य महान होता है अपने आचरण से, अपने कर्मों से। धर्म, अधर्म की पहचान नहीं है तुझको। एक पापी से महत्त्व मिला तो उसी का हो गया। उसे मित्र कहता है तू? जानता है दुर्योधन की मैत्री क्या है? तेरी आत्मा का हनन। मित्र वह होता है जो मित्र का हित साधता है, उसे धर्म के मार्ग पर ले चलता है, उसकी आत्मा का उन्नयन करता है। तेरे मित्र तेरे साथ क्या कर रहे हैं? या तू उनके साथ मिलकर क्या कर रहा है- राक्षसी कृत्य। नारकीय योजनाएँ। कहाँ जाकर रुकेगी तेरी आत्मा? रसातल में? एक पांडवों का मित्र है कृष्ण।

कर्ण बोला, मैं समझता हूँ कृष्ण और दुर्योधन का अंतर। मुझे भी कृष्ण मिले होते। कुंती बोली, कृष्ण मिला है, इसलिए पांडव धर्म पर नहीं चल रहे। पांडव धर्म पर चल रहे हैं, इसलिए कृष्ण उनका मित्र बना। कृष्ण को धर्म चाहिए। तुझे केवल मैत्री चाहिए। मैत्री चाहे हत्यारों की हो, पापियों की हो, आततायियों की हो। कर्ण बोला, कैसी माँ हो तुम, जिसे अपने महावीर पुत्र में कोई गुण दिखाई नहीं देता। क्या मुझमें कोई गुण नहीं है, तो मुझे खोजती हुई यहाँ तक क्यों आई हो देवी। उसके इस परिवर्तन से कुंती सर्वथा अप्रभावित रहीं। उतनी ही कठोरता से वे भी बोली, भाइयों को एक-दूसरे का रक्त बहाने से रोकना चाहती हूँ। अपने पाँच पुत्रों की जीवन-रक्षा की इच्छा से आई हूँ। अपने छठे पुत्र को अपनी आत्मा के हनन से रोकना चाहती हूँ। किंतु तेरा अहंकार कुछ गले तब न। तेरी हृदय-शिला में अपने भाइयों के लिए स्नेह का कोई उत्स फूटे। कर्ण बोला, मुझमें कोई गुण तो देखो मां। कुंती की फटकार से कर्ण का मन जैसे रो पड़ा, कब से प्रयत्न कर रहा हूं कि मेरे भी किसी गुण को मान्यता मिले। जिसने निर्गुण ब्रह्म को नहीं पहचाना, उसकी शालिगराम की भक्ति को भी सराहा जाता है। मैंने जिन्हें भाइयों के रूप में जाना ही नहीं, उनके लिए स्नेह कहाँ से लाऊँ। हाँ। जिसे मित्र माना है, जिसे अपने शैशव से प्रेम और सम्मान की दृष्टि से देखा है, उसके प्रति अब कठोर नहीं हो सकता। जीवन में और कोई उदार कर्म किया हो या न किया हो, किंतु अपनी मैत्री का निर्वाह तो कर रहा हूँ। धर्म के प्रति न सही, किंतु मित्र के प्रति तो निष्ठा में कोई कमी नहीं है। कुंती हँसी और बोली, कितने गर्व से कह रहा है, पाप के प्रति तो निष्ठा है मुझमें। अच्छा होता कि यह निष्ठा तुझमें न होती।

कर्ण बोला, तुम जो कुछ भी कहो, माँ। किंतु अब मैं दुर्योधन को नहीं छोड़ सकता। श्रीकृष्ण ने जब से मुझे तुम्हारे विषय में बताया है, तब से ही मेरे मन ने बहुत चिंतन-ममन किया है; किंतु मुझे और कोई मार्ग नहीं मिला है। मैं पांडवों की सी वृत्ति अंगीकार नहीं कर सकता। यदि मैं उनके ज्येष्ठ सहोदर के रूप में उनके साथ खड़ा हो गया, तो न मैं युधिष्ठिर के मार्ग पर चल पाऊँगा, न वे अपना मार्ग त्याग मेरे साथ चल पाएँगे। कुन्ती बोली, कौतूहल भरे क्षणों में पहली बार मैंने राधा के साथ एकांत चर्चा में सुना था उसका यह पुत्र राजलक्षणों से संपन्न हैं। वह अधिरथ से बोली, कि कौन कहेगा कि यह सारथी तेरा पुत्र है। इसका चेहरा देख। हस्तिनापुर के राजकुमारों के साथ खड़ा होगा तो सब को लांघ जायेगा। उफ ये

कवच-कुंडल कितने सुंदर दिखते हैं इस पर। देखकर पता नहीं क्यों मन करता है इसे गोद में भर लूं। काश। यह मेरा पुत्र होता। सच, इसे राजपुत्र बनकर ही जन्म लेना था।

राधाने कहा था, यह हमारा पुत्र नहीं है, यह बात तो ज्यों-ज्यों बड़ा होता जा रहा है त्यों त्यों लोग इसका रूप-गुण देखकर कहने लगे हैं। सत्य छिपाकर क्या होगा? वास्तव में यह हमारा पुत्र नहीं। किसी अभागिनी ने जन्म देकर इसे मंजूषा में रख यमुना स्त्रोत में बहा दिया था। स्नान के समय इसे पाकर ईश्वर का वरदान समझा। जन्म से ही ये अमृत कवच-कुंडल हैं। मैंने सोचा, हाय। उस निष्ठुर जननी पर वज्र क्यों नहीं गिर पड़ा?

बारह वर्ष के कर्ण के जीवन में नया अध्याय शुरू हुआ तब से वे ढूँढ रहे हैं अपना पितृ परिचय। उसने अपने हृदय का दु:ख अपने माता-पिता अधिरथ और राधा को कभी नहीं कहा। उनका सुख नष्ट करने का कोई अधिकार नहीं है उसे। उस यमुना के स्त्रोत से निकालकर उन्होंने ही आश्रय दिया था, वरन् उस बालक की मृत्यु तो निश्चित ही थी। इस दुर्लभ मानव जीवन की अनुभूति उसे नहीं मिलती। अत: हर कदम पर माता-पिता के प्रति अपना कर्त्तव्य करते आये हैं। कभी-कभी कर्ण सोचने लगता मैं राजपुत्र क्यों नहीं बना? आज भी वे ढूंढ रहे हैं अपनी उसी पाषाण हृदया जननी को। भीम की बात ने कर्ण को गहरे चोट की है और उसे घायल कर दिया। नारी होने के कारण उस लाचार जननी की वेदना कुन्ती समझ रही थी। आज वह जीवित रहते हुये भी तुम्हें याद कर पल-पल मृत्यु जैसी यंत्रणा भोग रही है और वही उसका प्रायश्चित है। इससे बड़ी सजा और क्या हो सकती है? बेटे कर्ण। समझ लो वह अभागिन मर चुकी है। आज से मैं तेरी मां हूं। तू आज से कुंतीपुत्र कौन्तेय है। कर्ण ने निगाह उठाकर देखा कुंती की ओर। पीला मुर्झाया चेहरा, ज्वर में जीर्णशीर्ण काया, व्याकुल-विह्वल दृष्टि और विषाद भरी आँखों में छलछलाते आंसू। कर्ण विमूढ़, विवश होकर देखता रहा। कर्ण भी अश्रुपूर्ण हुए बिना न रह सका। मातृत्व की मूर्त्तिमंत देवी की क्या आजन्म मातृस्नेह से वंचित राजाश्रित कर्ण उपेक्षा कर देगा? ठुकरा देगा? कर्ण ने स्वगत की तरह कहा- मां कुंती। कुंतीपुत्र बनने के गौरव के पास अपने पौरुष को बलि देने में जरा भी कुंठित नहीं। मगर प्रकाश्य में कहा- मां, आपका पुत्र होता तो धन्य हो जाता। दया और अनुकम्पा से मुझे घृणा है। और आपकी दया को स्वीकार करने में मुझे गौरव का अनुभव हो रहा है। आपको सदा मां की तरह ही देखते आया हूं। आज से यही सोचूंगा कि आप मेरी जननी हैं, गर्भधारिणी हैं। शायद मेरे विडंबित जीवन में कुछ सांत्वना प्राप्त हो।

कुंती को आघात लगा। अश्रु गिर पड़े। कहा-यह कोई दया या अनुकम्पा नहीं है, कर्ण। मेरे हृदय का उच्छ्वास है। इसमें छलना नहीं, दिखावा नहीं। जननी का हृदय कभी-भी पुत्र नहीं समझ सकेगा। क्योंकि वह पुरुष है। यही जननी का दु:ख भी है। माँ का हृदय सागर की तरह विशाल होता है। वात्सल्य की वन्या बहा दो पृथ्वी के अगणित दीन, दुखी, पतितों के लिए। सबको स्नेह दान दो। देखना फिर तुम-सा सुखी कोई न होगा पृथ्वी पर। जननी का हृदय सागर होता है। जितनी संतान गोद में आएं, वात्सल्य वारि किसी के लिए कम नहीं होता है।

जननी के पास तो सब शिशु समान हैं। वहां जाति-धर्म, राजा-प्रजा का भेदभाव कैसा। जननी के पास आदमी का एकमात्र परिचय है संतान-अमृतमय संतान। अचानक देवर्षि नारद ने खबर दी कि कर्ण अब कवच-कुंडल-युक्त नहीं रहा। अत: अर्जुन का नहीं, कर्ण का जीवन विपन्न है। अर्जुन के पिता इंद्र कर्ण की प्रतिज्ञा सुन ब्राह्मण वेश में कर्ण के पास पहुंचे, दान में कवच-कुंडल मांग लाये। कवच-कुंडल ही कर्ण की शक्ति थे। सब जानकर भी दाता के अहंकार में कर्ण ने अपनी शक्ति और सौन्दर्य को अर्जुन के पिता को अकुंठचित्त दे दिया।

अर्जुन का जीवन निष्कंटक जानकर मैं निश्चिन्त थी, पर हृदय के निभृत कोने में कहीं करुण स्वर रह-रह कर बज

उठता था। उफ। कर्ण यदि अनाथ न होता, उसका पितृपरिचय यदि होता। उसके पिता भी पुत्र-रक्षा के निमित्त कुछ न कुछ जरूर करते। मगर वह असहाय, अनाथ। जानबूझ कर स्वयं को मृत्यु के मुंह में धकेल दिया। मां कुन्ती को इससे क्या सुख मिलेगा? कर्ण उनका धर्मपुत्र है। जन्मे हुए पुत्र से धर्म के पुत्र का आसन अधिक ऊंचा होता है।

ऊपर से सूर्य मण्डल में सूर्य भगवान ने स्पष्ट रूप से ये बचन कहे- पुत्र। कुन्ती जो कह रही है बिल्कुल सच है। तुम इसकी बात मान लो। इसी में तुम्हारा कल्याण है मुझे भी इसी बात में प्रसन्नता होगी।

सूर्य की और कुन्ती की बात सुनकर कर्ण का हृदय भर आया। कौशल से उन्होंने अपने आँसुओं को पोंछकर बड़ी गम्भीरता के साथ कहा- देवी। मैं आपकी बात पर अविश्वास नहीं करता हूँ। सम्भव है मैं आपका पुत्र ही होऊँ। किन्तु आपको यह बात तब मालूम नहीं थी क्या जब रङ्गभूमि में भीम ने मेरा सूतपुत्र कहकर उपहास और अपमान किया था। आप भी तो वहाँ बैठी थीं। सूर्य भगवान् तब कहाँ चले गये थे? तब तो सूर्यमण्डल में से भी नहीं बोले- यह मेरा पुत्र है। आज आप दोनों मुझसे कहते हैं- तुम सूत-पुत्र नहीं, राधेय नहीं, कुन्ती-नन्दन और सूर्य तनय हो। तुम्हारी दृष्टि में तो मैं मर ही गया था, तुमने तो मुझे निर्दयता-पूर्वक पानी में फेंक ही दिया था। तब तुम्हें अपने पुत्र पर दया नहीं आई? जिसने पाल-पोस कर इतना बड़ा किया अब आप कहती हैं उसे माँ मत कहो। तुमने मेरे साथ माता का कौन-सा व्यवहार किया? जैसे लोग मलमूत्र को शरीर से निकालकर फेंक देते हैं और फिर उसकी ओर ध्यान भी नहीं देते, वैसे ही तुमने मुझे फेंक दिया। आज तक तो तुमने कभी कहा नहीं कि तुम मेरे पुत्र हो। आज तब तुम्हारा काम आकर अटका है तब माता बनने आई हो, मुझे धर्म सिखा रही हो। पुत्र का ही धर्म है, माता का कुछ धर्म नहीं क्या? पानी में फेंककर जाति से, प्रतिष्ठा से, यश से मुझे भ्रष्ट बना दिया। मेरे क्षत्रियों जैसे संस्कार होते, राजकन्याओं से विवाह होता, राजसिंहासन पर बैठता, छत्र-चँवर मेरे ऊपर लगते। इन सबसे आपने मुझे वञ्चित कर दिया। अब ठीक युद्ध के समय आप मेल कराने आई हो। यह कहते-कहते कर्ण का चेहरा दमदमाने लगा। रोष के कारण उसके अङ्ग फड़कने लगे। माता उसका ऐसा रूप देखकर डर गयी। लज्जा, समोच, भय के कारण उन्होंने सिर नीचा कर लिया। उनकी आँखों से दो अश्रुओं की धारा बह रही थी, कर्ण चुप नहीं हुए वे कहते ही गये- आज से ४, ५ दिन बाद युद्ध आरम्भ होनेवाला है और आज आप मुझसे सलाह और भाइयों से मेल करने की बातें कह रही है। आपने तो पुत्र के साथ विश्वासघात किया ही था, अब मुझे भी मित्र के साथ विश्वासघात करने की सम्मति देती हैं। इतने दिन जो मैंने यहाँ रहकर आनन्द भोगा हैं, राज्य सुख भोगा है, धन-ऐश्वर्य भोगा है। अब ठीक उसी समय यदि मैं पांडवों से मिल जाऊँ तो दुनियाँवाले मेरे ऊपर धूल फेंकेगे। सभी मुझे नमक हराम और कृतघ्नी कहेंगे। इस बात को भी जाने दो, अर्जुन की वीरता जगत् प्रसिद्ध है, चराचर के स्वामी भगवान् वासुदेव उसके सहायक हैं। युद्ध में वह मुझसे प्रतिस्पर्धा रखता है। अब मैं उससे मेल कर लूँ तो सब यही कहेंगे कर्ण डर गया। उसने अर्जुन के भय से सन्धि कर ली। आप किस-किस का जाकर मुँह बन्द करेंगी। इसलिये अर्जुन मेरा भाई ही सही, आप मेरी भले ही जननी हों, माता की आज्ञा उल्लङ्घन का भले ही मुझे पाप लगे मैं त्रिकाल में भी तुम्हारी बात मानकर दुर्योधन को तो नहीं छोड़ूँगा, न ही तुम्हारे पुत्रों से युद्ध करने में पीछे हटूँगा। मैं प्राणों की बाजी लगाकर तुम्हारे पुत्रों से लड़ूँगा। या तो युद्ध करते-करते मर जाऊँगा, या उन्हें मार डालूँगा। मैं रुक नहीं सकता चाहे आप कहें या पिता सूर्यदेव कहें। दुर्योधन से जो मैंने वचन कहे थे उन्हें अवश्य पूरा करूँगा। आपकी बात नहीं मानूँगा। यह कहते-कहते कर्ण काँपने लगे और मुँह ढाँप कर रोने लगे। हा। उस समय का दृश्य कैसा करूणापूर्ण था, एकान्त में माता पुत्र मिल रहे थे, स्नेह से दोनों का हृदय भरा हुआ था। दोनों ही अपने मन की वेदना को निकाल रहे थे। पिता आकाश मंडल में उन दोनों की बातें सुन रहे थे। कुन्ती

के पास इन बातों का कुछ उत्तर नहीं था। सचमुच वह अपने स्वार्थ से आई थी।

किन्तु कर्णका धैर्य सच्चा था। माता कुन्ती और पिता सूर्यके स्वयं इस प्रकार कहनेपर भी उसकी बुद्धि विचलित नहीं हुई। उसने कहा, क्षत्रिये। तुम्हारी इस आज्ञाको मानना तो अपने धर्मनाशके द्वारको ही खोल देना है। माँ। तुमने मुझे त्यागकर तो मेरे प्रति बड़ा ही अनुचित व्यवहार किया है। इसने तो मेरे सारे यश और कीर्तिका नाश कर दिया। मैंने क्षत्रियजातिमें जन्म तो लिया, किंतु तुम्हारे ही कारण मेरा क्षत्रियोंका-सा संस्कार तो नहीं हो पाया। इससे बढ़कर मेरा अहित कोई शत्रु भी क्या करेगा। तुमने पहले तो माताके समान मेरे हितका प्रयत्न किया नहीं अब केवल अपने हितसाधनकी इच्छासे मुझे समझा रही हो। पहले-से तो मैं पाण्डवोंके भाईरूपसे प्रसिद्ध हूँ नहीं, युद्धके समय यह बात खुली है। अब यदि मैं पाण्डवोंके पक्षमें हो जाता हूँ तो क्षत्रियलोग मुझे क्या कहेंगे? धृतराष्ट्रके पुत्रोंने ही मुझे सब प्रकारका ऐश्वर्य दिया है। अब मैं उनके उन उपकारोंको व्यर्थ कैसे कर दूँ? अब यह दुर्योधनके आश्रितोंके मरनेका समय आया है। इसलिये इस समय मुझे भी अपने प्राणोंका लोभ न करके अपना ऋण चुका देना चाहिये। जिन लोगोंका पालन-पोषण किया जाता है, वे समय आनेपर अपना काम करनेसे ही कृतार्थ होते हैं; केवल चञ्चलचित्त पापीलोग ही उपकारको भूलकर कर्त्तव्य छोड़ बैठते हैं। वे राजाके अपराधी और पापी हैं। उनका न यह लोक बनता है, न परलोक। मैं धृतराष्ट्रके पुत्रोंके लिये अपना पूरा बल और पराक्रम लगाकर तुम्हारे पुत्रोंसे युद्ध करूँगा। तुम्हारे सामने मैं झूठी बात नहीं कहूँगा। मुझे सत्पुरुषोंके समान दया और सदाचारकी रक्षा करनी चाहिये। इसलिये अपने कामकी होनेपर भी मैं तुम्हारी बात स्वीकार नहीं कर सकता।

कर्ण ने सीधे मां की ओर देखा। स्वर स्पष्ट था- पिता-माता ही पुत्र का धर्म हैं, भगवान हैं। परन्तु आपकी बात रखने पर मेरा धर्म नष्ट होगा। मेरे माता-पिता हैं राधा एवं अधिरथ। संतान को जन्म देना अपने हाथ की बात नहीं, पालन-पोषण करना तो अपने हाथ की बात है। आपने जब स्वयं मां का कर्त्तव्य नहीं किया, तो मुझसे पुत्र के कर्त्तव्य की कैसे आशा करती हैं? जो सूर्यदेव सारे पदार्थ दृश्यमान करते हैं, वे मेरे पितृ परिचय को दृश्यमान करने में अब तक कुंठित क्यों रहे? मेरा पौरुष, अहंकार मान-सम्मान जब सबके सामने भूलूंठित हो रहा था, आप कहां थे? शैशव से अब तक जितना अपमान, ग्लानि सह चुका हूं। कौन है उसका दायी? द्रौपदी स्वयंवर में जब धृष्टद्युम्न ने मेरा परिचय पूछा- सूर्यदेव क्या आकाश में न थे? मैं आकाश को देखकर अपना अदृश्य जन्म रहस्य खोजता रहा, वे चुपचाप सब देखते रहे, तब क्या पिता का कर्त्तव्य किया? कुंतीपुत्र होने के कारण भीम, अर्जुन को सारे मौके मिले, सुविधायें मिलीं, मुझे कुछ भी मिला? मेरा सारा अपमान ग्लानि आप सहते रहे। चुप रही जीवनभर? आज अन्तिम क्षण इस परिचय प्रदान का क्या मूल्य रहा? मैं वचनभ्रष्ट नहीं हो पाऊंगा, यह बात कृष्ण को भी मैंने बता दी है। सारी पृथ्वी के साथ द्रौपदी को पाने का प्रलोभन भी मैंने ठुकरा दिया है। यशोदा को रुलाकर कृष्ण मथुरा चले आये, मैं ऐसा नहीं कर पाऊंगा। कौरवों के पास मैं अनेक प्रकार से ऋणी हूं। धर्म पर हो या अधर्म पर, उनका ऋण उतारना पुरुष का धर्म है। बिना कसूर के आपकी सती-साध्वी बहू द्रौपदी के अपमान और लांछना में मैं सहयोग करता रहा। इसी दु:ख के मारे गड़ा जा रहा हूं। अपनी उसी स्वार्थी मां का मानकर मैंने द्रौपदी से प्रतिशोध लिया- आज समझ रहा हूं। मां, अब आपकी बात नहीं रख पाऊंगा। क्षमा करना। द्रौपदी से भी क्षमा मांग लेता हूं। वे सौभाग्यवती रहें। पांडवों की जय हो।

मां फफक उठी- बेटे, तेरा गुमान करना स्वाभाविक है। परन्तु तू पांडवों के विपक्ष में लड़ा तो द्रौपदी के सौभाग्यवती रहने का प्रश्न ही नहीं उठता। पिता का घर छोड़ने के बाद वह दु:ख ही दु:ख भोगने यहां आयी है। कर्ण ने जोर देकर कहा- मां, अब आपके आने का उद्देश्य समझा।

कुन्ती भी फफक कर रोने लगी और बोली हे मेरे पुत्र? कर्ण बोला, आपके आंसुओं की गंगा में स्नान करके मैं तो धन्य हो गया माता। अब बतलाइये कि इस राधेय के लिये क्या आदेश है? कुन्ती बोली, नहीं कर्ण तुम राधेय नहीं कौन्तेय हो पुत्र कौन्तेय। मेरे ज्येष्ठ पुत्र तुम्हारी माता होना मेरे लिये गर्व की बात है। मैं संसार से कहूँगी कि मैं पांच नहीं मैं छै महारथियों की जननी हूं पुत्र। कर्ण बोला, अब यह कहने से क्या होगा माता। कृपया मुझे राधेय ही रहने दीजिये। यह राधेय कुछ लोगों का ऋणी है माते। और राधेय स्वयं अपना ऋण उतारेगा। इसलिये आप यह बताइये कि आप मुझसे क्या मांगने आई थी? कुन्ती बोली, निराश तो नहीं करोगे पुत्र? कर्ण बोला, यदि आप जो कुछ मांग रही है वो देना मेरे वश में होगा तो आपकी आज्ञा का पालन अवश्य करूंगा। आदेश दीजिये। कुन्ती बोली, यह जान लेने के पश्चात कि तुम ज्येष्ठ कौन्तेय हो तुम्हारे लिये अपने अनुजों से युद्ध करना उचित नहीं है पुत्र। मैं तुम्हे लेने आई हूं। अपने अनुजों के पास चलो। वे तुम्हे सिर आंखों पर बिठायेंगे और तुम संसार पर राज करोगे पुत्र। कर्ण बोला, दो दिनों में यह दूसरी बार है कि मुझे संसार पर राज करने के लिये आमंत्रित किया जा रहा है। कल यही उत्कोच वासुदेव देना चाह रहे थे और आज वही उत्कोच देने का प्रयत्न आप कर रही हैं। कुन्ती बोली, नहीं कर्ण नहीं। यह उत्कोच नहीं है। यह तुम्हारा अधिकार है पुत्र अधिकार। कर्ण बोला, मेरा हृदय मेरी उदासियों और कड़वाहटों से इतना भरा हुआ है कि अब किसी ओर मनोवृत्ति के लिये कोई स्थान नहीं बचा। आपकी इस आज्ञा का पालन करना मेरे वश में नहीं है। कुन्ती बोली, किन्तु क्यों नहीं है तुम्हारे वश में, क्यों नहीं पुत्र? कर्ण बोला, क्योंकि कौन्तेय तो मैं अब बना हूं। समझिये कि मेरा दूसरा जन्म हुआ है। जो मैं कौन्तेय बन गया तो इस सूतपुत्र राधेय का ऋण कौन उतारेगा माता। जब मेरी माता माता न थी, मेरे अनुज मेरे अनुज न थे, जब संसार में मेरा कोई मित्र न था तब दुर्योधन ने मुझे मित्र कहा था माते। तो क्या आपके इस पुत्र को शोभा देगा कि अपने उस मित्र को त्यागकर अपने अनुजों के शिबिर में चला जाऊं। यह आभार का ऋण है माते। मैं इस ऋण को चुकाये बिना इस लोक को भी त्यागना नहीं चाहता। वो मेरे भरोसे तो पांडवों से युद्ध करने के लिये तैयार हुआ है। तो क्या अब मैं उसके पास जाकर यह कहूं कि हे मित्र दुर्योधन, पांडु तो मेरे अनुज निकले तुम और कोई मित्र ढूंढ लो। मेरे सिर पर गुरु परशुराम और एक ब्राह्मण का श्राप तो है ही। इन्द्र जब आकर मेरा कवच और कुंडल मांग कर ले गये और अब वासुदेव और आपने मुझे निहत्था कर दिया। हे माते मैं अब भी दुर्योधन के पक्ष में युद्ध करने उतना ही विवश हूं जितनी विवश आप मुझे त्यागने के लिए थी। परन्तु हे माते आप मुझसे कुछ मांगने आई थी और मैं आपको दे नहीं पाया इसलिये मैं आपसे क्षमा चाहता हूं। किन्तु मैं आपको रीते हाथ नहीं लौटाऊंगा।

माताश्री। आपका यह उद्योग निष्फल नहीं होगा। यद्यपि आपके सभी पुत्रोंको मैं मार सकता हूँ, तो भी एक अर्जुनको छोड़कर मैं युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव इनमेंसे किसीको नहीं मारूँगा। युधिष्ठिरकी सेनामें केवल अर्जुनसे ही मुझे युद्ध करना है। उसे मारनेसे ही मुझे संग्राम करनेका फल और सुयश प्राप्त होगा। इस प्रकार हर हालतमें आपके पाँच पुत्र बचे रहेंगे मेरे सहित। अर्जुन न रहा तो वे कर्णके सहित पाँच रहेंगे और मैं मारा गया तो अर्जुनके सहित पाँच रहेंगे।

ठीक है, मैं आपके आने का उद्देश्य समझा। मैं वचन देता हूं अर्जुन को छोड़ चारों पुत्रों पर अस्त्र नहीं उठाऊंगा। क्योंकि अगर अस्त्र उठाया तो उनकी मृत्यु होगी। अर्जुन मेरे समयोद्धा ठहरे। उसके साथ बाल प्रतिद्वंद्विता है। उसके कारण मेरा पौरुष पग-पग पर दलित हुआ है। बस उसीसे युद्ध करूंगा। मेरे कवच-कुंडल उसके पिता ले गए हैं। अत: शायद उसके हाथों में मरूं। अर्जुन जी कर राज्य भोग करे। वरना वही मृत्यु पायेगा और फिर मुझे भी मृत्युलोक जाना होगा। लड़ते-लड़ते मैं या तो मर गया, वरना अर्जुन की मृत्यु हो गई- मेरी भी साथ में मृत्यु होगी। भाई के साथ प्रतिद्वंद्विता में विजय पाकर आनन्द मिलता है। परन्तु वध कर भातृशोक से मुक्ति नहीं मिलेगी। सारे जीवन जिसके भातृस्नेह से वंचित रहा,

उसके लिए शोक वरण करने के दु:ख से वंचित क्यों रहूंगा? अत: दोनों ओर अवांछित, जन्म से मां-बाप द्वारा परित्यक्त कर्ण की मृत्यु ही सत्य है, श्रेय है। कर्ण मृत्यु से नहीं डरता। वह दया, करूणा, विश्वासघात से डरता है।

कुंतीने रूँधे हुए कंठ से अपने को सँभालते हुए नीची दृष्टि किये हुए ही कहा- तब क्या पुत्र। मैं तुम्हारे पास से निराश होकर ही लौटूँ? अच्छा जैसी भगवान की इच्छा।

इतना सुनकर कर्ण का हृदय भर आया। वे फूट-फूटकर रोने लगे। रोते-रोते उन्होंने कहा- मेरे जीवन को धिक्कार है। हाय। संसार में मैं क्यों जन्मा? मेरे जन्म से न तो किसी को सुख मिला, न मुझे ही कोई यश या लाभ की प्राप्ति हुई। गर्भ में आया तो माता को क्लेश दिया, पैदा हुआ तो माता के लिये लज्जा-जनक बना, मलमूत्र की तरह माता के द्वारा फेंका गया। दूसरों के टुकड़े खाकर पला, दूसरों के अधीन रहकर इस पापी पेट को भरा। न मेरी कोई जाति रही, न मेरा वर्ण। शुद्ध क्षत्रिय वंश में उत्पन्न होकर भी मैं सूतपुत्र और नीच कहलाया। अपने जन, पराये हो गये। सगे भाई शत्रु बन गये जिनका मुझे पालन करना चाहिये था, उन भाइयों को जहर दिलाकर अग्नि में जलाकर मारने की मंत्रणा दी। जिन पिता और पितामह के द्वारा मुझे सम्मान और प्यार प्राप्त होना चाहिये था, उन्हीं के द्वारा मैं तिरस्कृत हुआ। मेरे सगे बाबा सबके सामने मुझे नीच-कुल-कलमी, सूतपुत्र कहकर तिरस्कार करते हैं और मैं वज्र का हृदय बनाकर सब सुनता हूँ। अकारण मुझे ब्राह्मण का शाप मिला। विद्या का अधिकारी होने पर भी मुझे विद्या प्राप्ति के लिये झूठ बोलना पड़ा। जिन्होंने मुझे पाला-पोसा उनकी भी यथोचित सेवा न कर सका, सदा आश्रयदाता की चापलूसी में ही लगा रहा। जिन्होंने सगे पुत्र की तरह मेरा पालन किया उनके शेष सुपुत्रों को विराट नगर में मैंने अर्जुन के हाथों मरवा दिया। आज मैं अपनी सगी जननी को निराश कर रहा हूँ। पिता सूर्य की आज्ञा का उल्लंघन कर रहा हूँ। मेरे जन्म को धिक्कार है। जो समर्थ होने पर भी माता-पिता को प्रसन्न नहीं कर सका, उनकी एक आज्ञा का भी पालन न कर सका। मेरे पिता सूर्य ने त्रिलोकेश होकर भी साधारण पिता की तरह मुझे कवच, कुण्डल देने से बहुत रोका। इसमें उनका कोई लाभ नहीं था। केवल मेरे हित के लिये, मेरी कल्याण भावना से प्रेरित होकर उन्होंने ये बात कही थीं। मैं ऐसा अभागा निकला कि उनकी उस आज्ञा का भी मैंने पालन नहीं किया। भाग्य को कोई मेट नहीं सकता। चराचर के जो स्वामी कहाते हैं, वेद-वेत्ता ऋषिगण जिनकी नित्य नियम से उपासना करते हैं, जो सम्पूर्ण जगत् के प्राणियों के जीवनदाता हैं, उन भगवान सूर्य का पुत्र होकर और जगत् विख्यात सती साध्वी कुन्ती के उदर में उत्पन्न होकर भी आज मैं संसार में तिरस्कृत अपमानित और जाति बहिष्कृत हो रहा हूं, इसे भाग्य के सिवाय और कह ही क्या सकते हैं? जननी। मेरे अपराधों को क्षमा करो। इस बात को मत कहो कि मैं निराश होकर जाऊँ? कर्ण के द्वार से अभी तक किसी याचक की आशा भग्न नहीं हुई है। इसीलिये मैं तुम्हें निराश कैसे कर सकता हूँ? तुम अपने पाँच पुत्रों के कल्याण की भावना से मेरे पास आई हो। अर्जुन से लड़ने की मैंने सबके सामने प्रतिज्ञा की है। अत: अर्जुन से बिना लड़े तो मैं मानूँगा नहीं, अपनी शक्ति भर उसे मारने का प्रयत्न करूँगा मैं जानता हूँ, उसे मैं मार न सकूँगा। जिसके रक्षक भगवान वासुदेव हैं उसे संसार में कोई मार नहीं सकता। जाके रथ पै केशो, ताको कौन अँदेशो। फिर भी मैं मार सका तो युद्ध में अर्जुन को अवश्य मारूँगा। यदि अर्जुन को मैं युद्ध में मार सका तो मुझे लेकर आपके पाँच पुत्र फिर भी बने रहेंगे और अर्जुन ने मुझे मार दिया तब भी पाँचों पाण्डव है ही। हाँ अर्जुन को छोड़कर शेष चार भाई चाहे मेरे वश में भी क्यों न पड़ जायँ, चाहे उन्हें मारने में मैं समर्थ भी क्यों न होऊं तो भी उनको मैं नहीं मारूँगा। इससे अधिक मैं और कुछ न कर सकूँगा।

युधिष्ठिर अपना सिंहासन मुझे दे देगा; और मैं उसे दुर्योधन के चरणों में अर्पित कर दूँगा। पांडवों को क्या मिलेगा माँ।

मुझे अग्रज के रूप में प्राप्त कर? जो राज्य वे दुर्योधन से लड़कर, उसे जय कर प्राप्त कर सकते हैं- वह भी उनसे छिन जाएगा। वे सर्वथा कंगाल हो जाएँगे। मुझे अग्रज के रूप में पाकर वे कुछ नहीं पाएँगे माँ।

कुंती धीरे से बोली, तू उस अधर्मी दुर्योधन का संग छोड़ दे पुत्र। अपने भाइयों के पास लौट आ। तुझे मित्र ही चाहिए तो कृष्ण से मैत्री कर। कर्ण बोला, अब यह सम्भव नहीं है माँ। सत्य है कि लता का जन्म भूमि से होता है; किंतु जिस वृक्ष से लिपटकर वह आकाश की ओर उठती है, यदि उस वृक्ष से उसे पृथक् करोगी, तो वह लता छिन्न-भिन्न तो होगी ही, जीवित भी नहीं रह पाएगी। यह जानकर भी कि तुम मेरी जननी हो, जैसे मैं अपनी माता राधा को त्याग नहीं सकता, वैसे ही यह जानकर भी कि युधिष्ठिर मेरा सहोदर है, मैं दुर्योधन को त्याग नहीं सकता।

कुंती बोली, पुत्र, तू पांडवों के पक्ष में नहीं आना चाहता, तो मत आ। किंतु दुर्योधन का पक्ष तो त्याग दे। मैं नहीं चाहती कि मेरी ही संतान, परस्पर युद्ध कर, एक-दूसरे का रक्त बहाए।

कर्ण बोला, तुम बहुत देर से आई हो माँ। मेरे मन में बहुत कटुता थी। तुम्हारे लिए। माँ के वात्सल्य का अमृत जो नहीं पाया था। वंश का चाहे कोई महत्त्व न हो, जाति चाहे जन्म से नहीं कर्म और आचरण से निर्धारित होती हो; किंतु मैंने उसी के कारण बहुत विष पीया है। मेरा रक्त उससे बहुत विषाक्त हुआ है। अब शायद तुम्हारे स्नेह का अमृत मेरे दग्ध हृदय को कुछ शांति दे, मेरे आचरण में परिवर्तन आए; किंतु क्षत्रिय होकर मैं युद्ध से पीछे नहीं हट सकता। यदि मेरा और अर्जुन का युद्ध न हुआ, तो हम दोनों ही क्षत्रिय समाज में कलंकित होंगे कि युद्ध से पलायन के लिए हम दोनों ने इस संबंध की कल्पना कर ली है। कर्ण ने रुक कर कुंती की ओर देखा, सत्य कहूँ तो इस युद्ध के लिए दुर्योधन भी उतना उत्सुक नहीं था, जितना मैं था। इस युद्ध का सूत्रधार मैं ही हूँ माँ। मेरे ही भरोसे दुर्योधन ने इस युद्ध को आमंत्रित किया है। अब यदि मैं ही युद्ध से पलायन कर गया, तो मैं कौन सा पुण्य कमाऊँगा माँ। अब तक बहुत से पाप किए हैं मैंने किंतु युद्ध का त्याग उन सबसे बड़ा पाप होगा। कुंती बोली, तो ठीक है। युद्ध में अपने सहोदरों का वध करने का पुण्य कमा। अपनी मैत्री के प्रमाण में अपने सहोदरों के शव दुर्योधन को भेंट कर। सहोदरों के रक्त से अपनी मित्रता की लता को सींच। इस धरती पर से धर्म का बिरवा उखाड़ फेंक और अधर्म के वृक्ष की छाया में सदा के लिए बैठा रह। पुण्य-सलिला को पाट दे और पाप के सागर में निमग्न हो जा। कर्ण बोला, नहीं मां। अब यह नहीं होगा। अपने संचित कर्मों के प्रभाव से मैं मुक्त नहीं हो सकता। कर्म-बंधनों को मैं काट नहीं सकता; किंतु कोई नया कुकर्म भी नहीं करूंगा। तेरे वात्सल्य का अमृत, मेरे रक्त के विष का कुछ निराकरण तो करेगा ही। मैं पिछले दो दिनों में बहुत बदल गया हूं माँ। वह परिवर्तन तुम्हें मेरे आचरण में भी दिखाई देगा।

मैं दुर्योधन को त्याग नहीं सकता माँ। मैंने अर्जुन के वध की प्रतिज्ञा की है। मैं अपनी प्रतिज्ञा से स्खलित नहीं हो सकता। उसने कुंती की आँखों में देखा, किंतु एक वचन तुम्हें भी देता हूँ। मैं शेष चार पांडवों का वध नहीं करूँगा। वे मेरे हाथ में आ भी गए, तो उन्हें जीवित छोड़ दूँगा। उन्हें जीवन का दान दूँगा। कुन्ती बोली, तो मैं केवल चार पांडवों की माता रह जाऊँगी? आप पांच पुत्रों की माता है और ये तो मेरे आपके और सूर्यदेव के अतिरिक्त कोई नहीं जानता कि आप छ: पुत्रों की माता है। तो हे माता युद्ध का परिणाम जो भी हो आपके पांच पुत्र जीते अवश्य रहेंगे। यदि मैं वीरगति को प्राप्त हो गया तो अर्जुन रहेगा और यदि अर्जुन वीर गति को प्राप्त हो गया तो मैं रहूंगा। आप के पुत्रों की गिनती नहीं बिगडेगी माते। नहीं बिगडेगी। कर्ण बोला, नहीं माँ। तू पाँच पुत्रों की माता रहेगी। यदि मैं अर्जुन के हाथों मारा गया तो तू पांच पांडवों की माता रहेगी और यदि विधि ने अर्जुन की अल्पायु लिखी है यदि युद्ध में उसे मेरे हाथों वीरगति प्राप्त हुई, तो भी तेरे पांच ही पुत्र जीवित रहेंगे।

**न ते जातु नशिष्यन्ति पुत्रा: पञ्च यशस्विनि। निरर्जुना: सकर्णा वा सार्जुना वा हते मयि।।**

कर्ण ने अपनी माता कुन्ती से कहा- हे यशस्विनी। तुम्हारे पांच पुत्र कभी भी नहीं मर सकते। यदि मैंने अर्जुन को मार डाला तब मुझे लेकर पाँच शेष रहेंगे। यदि अर्जुन ने ही मुझे मार गिराया तब तो तुम्हारे पाँच हैं ही।

**माता तेरे दूधको नहीं लगेगी आंच। कर्ण रहे, अर्जुन रहे, पुत्र सदा ही पांच।**

अर्जुन के लिए जितना उद्वेग है, तुम्हारे लिए उससे भी अधिक। तुम उनके कुमारी जीवन की संतान हो, अत: लज्जा और कुंठा के कारण मुंह खोलकर कुछ कह नहीं पातीं। परन्तु तुम्हारे लिए ही इस समय वे चिंतित है।

कर्ण ने दु:खी हृदय से कह दिया- मां का यह दु:ख कृतकर्मों का फल है।

कर्ण ने चाहे साम्राज्य की तृष्णा जय कर ली हो, किंतु अर्जुन के प्रति अपनी ईर्ष्या से वह पराजित ही हुआ था। वह न अपने अहंकार को पहचान पा रहा था, न अपनी ईर्ष्या को। वह उन सबको दुर्योधन के प्रति निष्ठा का नाम दे कर स्वयं को गौरवान्वित करना चाहता था, किंतु यह नहीं जानता था कि मोह और अहंकार को सुंदर शब्दों का आवरण दे भी दिया जाए, तो उनका स्वरूप बदल नहीं जाता। कर्ण दया, करुणा, विश्वासघात से डरता है और बोला, विदा दें। इस जन्म की यही अन्तिम भेंट है। अन्तिम बेला में आपने अपना कहकर स्वीकार किया, अधम राधा-पुत्र इसके लिए कृतज्ञ है। कुंतीपुत्र का गौरव लेकर जीने का समय बीत चुका है। जीवन में यह अफसोस रह गया। कर्ण ने मां की चरणधूलि ली। मां ने आलिंगन कर कहा- पुत्र। अभागिन मां की आशीष यशस्वी बनो। कर्ण हंस उठा- मैं जानता हूँ, विजयी बनो या दीर्घजीवी बनो कहकर आशीष नहीं देंगी। इससे पांचों पुत्रों के मंगल का पथ रुद्ध होगा। एक पुत्र एवं पंचपुत्र में पंचपुत्र का जीवन ही काम्य होगा। खैर। आपके आशीष को पाथेय बनाकर यशस्वी होने की चेष्टा करूंगा। रणभूमि में वीरोचित मृत्यु वरण ही पुरुष को यशस्वी करती है। आपका आशीष सत्य होगा।

अन्तिम पल जीवनभर का मान संचित कर मां को आहत कर अभिमानी कर्ण चले गए। लाचार जननी कुंती ठगी-सी आंसू पोंछती खड़ी रही। भीगी बालू पर कर्ण के पदचिन्हों को दोनों हाथ में समेट कर- कर्ण, कर्ण। बेटे कर्ण। तुझ से पहले मेरी मृत्यु हो जाये। कहती रो उठी। धूल में वहीं लौट गई। कर्ण की यह बात सुनकर कुन्ती को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने कहा- अच्छा पुत्र। तू अपनी बात का ध्यान रखना अर्जुन को छोड़कर अपने शेष चारों भाइयों पर दया करके उन्हें कभी मत मारना। यह कहकर कुन्ती चलने को तैयार हुई। आगे बढ़कर कर्ण ने माता के पैर छुए। यही माता का सबसे पहिला और अन्तिम मिलन था। इसके पश्चात इन शरीरों से वे फिर कभी नहीं मिले।

फिर कुन्तीने अपने अविचल धैर्यवान् पुत्र कर्णको गले लगाकर कहा, कर्ण। विधाता बड़ा बलवान है। मालूम होता है तुम जैसा कहते हो, वैसा ही होना है। अब कौरव नष्ट हो जायँगे। किंतु पुत्र। तुमने जो अपने चार भाइयोंको अभयदान दिया है, इस प्रतिज्ञाका तुम ध्यान रखना। इसके बाद कुन्तीने उसे सकुशल रहनेका आशीर्वाद दिया और कर्णने तथास्तु कहा। फिर वे दोनों अपने-अपने स्थानोंको चले गये। मां इस समय बालिका हो गईं। सारा दु:ख द्रौपदी के आंचल में ढाल कह बैठी- खैर, कोई तो मेरे अन्तर की व्यथा जानता है। पंचपांडव मेरे पुत्र होने पर भी मेरी वेदना नहीं समझ सकेंगे। क्योंकि वे पुरुष हैं। जननी की व्यथा कैसे समझेंगे? कुन्ती ने सन्देश भेजा कि युधिष्ठिर या अन्य भाई को कर्ण का परिचय न बताना। क्यों? वरन् युद्ध के समय अधिक सावधान रहेंगे, उनके प्राण नहीं लेंगे। मैंने बिना सोचे कह डाला।

मां ने शांत स्वर में कहा- कोई दया कर मृत्यु से उसे बचाये, यह भी नहीं सहेगा। फिर आज का युद्ध कर्ण-अर्जुन के बीच नहीं है। यह विश्वयुद्ध में परिणत हो चुका है। एक ओर न्याय है, दूसरी ओर अन्याय। एक ओर देवी शक्ति के प्रति आस्था, दूसरी ओर स्वार्थ एवं अहंकार की विकटता है। यहां व्यक्तिगत लाभ-हानि की बात नहीं है। कर्ण चाहे विपन्न हो, धर्म विपन्न न हो।

कर्ण यदि विजय प्राप्त करेगा तो राज्य दुर्योधन को मिलेगा फिर तो पृथ्वी से न्याय और धर्म का लोप हो जायेगा। महासमर में कूदकर जगतवासी धर्मन्याय की प्रतिष्ठा चाहते हैं। समूह स्वार्थ और जगत कल्याण का पथावरोध कर व्यक्तिगत स्वार्थ को प्रधानता न दी जाये। अत: जगत के मंगल के लिए मुझे दु:ख सहना पड़ेगा। और दूसरी कोई गति नहीं। मां कुंती असहाय बालिका से महीयसी विश्वजननी में परिणत हो गई हैं। विश्व उन्हें मन ही मन प्रणाम कर धन्य हो गया।

## २४) श्रीकृष्ण का पांडवों के पास आकर युद्ध होने का निश्चय बताना

दुर्योधन के कक्ष में कर्ण आता है। दुर्योधन सो रहा होता है। द्वारपाल ने आकर सूचना दी युवराज की जय हो। अंगराज कर्ण आपसे भेंट करना चाहते है। दुर्योधन बोला, अंगराज और वो भी इस समय। उन्हें यहां ले आओ। कर्ण ने दुर्योधन के कक्ष में प्रवेश किया। दुर्योधन बोला इतनी रात गये मित्र तुम। कर्ण बोला, तुम्हारी नींद भंग करने के लिये क्षमा चाहता हूं मित्र। दुर्योधन बोला, हम दोनों मित्रों के बीच क्षमा जैसा शब्द कहां से आ गया? और एक बात याद रहे मित्र कि मेरी जान और नींद पर तुम्हारा अधिकार मेरे अधिकार से कम नहीं है। परन्तु इतनी रात आने का कष्ट कैसे किया? कर्ण बोला, बस जी चाहा तुम्हारे पास आऊं और तुम्हें बताऊं कि कदाचित यह सम्भव भी हो सकता है कि तुम्हारी परछाई तुम्हारा साथ छोड़ दे किन्तु यह सूतपुत्र राधेय तुम्हारा साथ कभी नहीं छोड़ सकता। दुर्योधन बोला, तो तुम केवल मुझे यह बताने आये हो परन्तु ये तो तुम्हारे बताये बिना भी मैं जानता हूँ। कर्ण बोला, हो सकता है कि समय साक्षी बनकर तुमसे यह कहने आया है कि मित्र धूप सूर्य का साथ छोड़ सकती है। उपज धरती का साथ छोड़ सकती है। दिशा बाण का साथ छोड़ सकती है किन्तु ये कर्ण दुर्योधन का साथ कभी नहीं छोड़ सकता। कभी नहीं छोड़ सकता।

दशार्हकुलभूषण श्रीकृष्ण वापस आ गये थे। वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय। हस्तिनापुरसे उपप्लव्य-पड़ावमें आकर कृष्णने कौरवोंके साथ जो-जो बातें हुई थीं, वे सब पाण्डवोंको सुना दीं। उन्होंने कहा, हस्तिनापुरमें जाकर मैंने कौरवोंकी सभामें दुर्योधनसे बिल्कुल सच्ची, हितकारी और दोनों पक्षोंका कल्याण करनेवाली बातें कहीं। परंतु उस दुष्टने कुछ नहीं माना। सर्वप्रथम उनकी भेंट अर्जुन से ही हुई। श्रीकृष्ण उनके विशाल स्कन्ध पर हाथ रखकर उन्हें एकान्त में ले गये। पार्थ। वीरमाता वृष्णिनन्दिनी पृथा ने तुम्हारे लिए अन्य भ्राताओं से पृथक् सन्देश भेजा है। भाग्यवान हूँ जनार्दन। माता की आज्ञा सदा शिरोधार्य रही है। आप आदेश दें। कृष्ण बोले, उन्होंने कहा है कि सव्यसाची से कहना, वह द्रुपदसुता के बताये मार्ग पर चलें... एक क्षण अर्जुन समझ न पाये... दूसरे ही क्षण सब स्पष्ट हो गया। अर्जुन बोले, क्या माता ने मुझे यह विशेष रूप से आज्ञा दी है?

कृष्ण बोले, हाँ पार्थ। उनके अनुसार द्रुपदकुमारी की उनके पाँचों पतियोंद्वारा भरपूर उपेक्षा हो चुकी है। तुम्हारी पूज्या माता उसके लिए अत्यन्त चिन्तित हैं। यदि पांचाली ऐसे ही अपमान में घुलती रही, तो क्या अधिक समय जीवन धारण कर पाएगी? सव्यसाची। तुमसे अधिक उसका मन कौन समझता है? तुमसे अधिक उसका कौन ध्यान रख सकता है? कौन सान्त्वना दे सकता है? सन्धिवार्ता विफल हो चुकी है। मैं विस्तार में सबके समक्ष बताऊँगा इस विषय को। अब युद्ध के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। तुम्हारी माता ने भी यही कहा है। तेजस्विनी कृष्णा यही प्रारम्भ से कहती आयी है। पार्थ। तुम्हें बता नहीं सकता कि तुम्हारी यशस्विनी माता अपनी तेजमयी पुत्रवधू के कष्टों का उल्लेख करते हुए किस प्रकार भावविगलित हो अश्रुमयी हो उठी थीं। मैंने इन दोनों स्त्रियों के स्वभाव में अद्भुत साम्य पाया। दोनों परम स्वाभिमानिनी एवं सही अर्थ में क्षत्राणी, वीरपत्नी एवं वीरमाताएँ हैं। तुम स्वयं सोचो, क्या कृष्णा इसी प्रकार सदा उपेक्षिता रहेगी? अपमान की ज्वाला में स्वयं को तिल-तिल जलाती रहेगी? आजीवन? स्मरण रखो पार्थ। सन्धिवार्ता विफल हो जाने के उपरान्त अब भी यदि तुम उसके अपमान का प्रतिशोध न लेकर चुपचाप बैठे रह गये तो वह अवश्य प्राण त्याग कर देगी।

अर्जुन कातर हो बोले, नहीं... मधुसूदन, नहीं। ऐसा न कहें। मैं तो स्वयं... पांचाली की दशा देखकर चिन्तातुर हूँ... किन्तु सान्त्वना का एक शब्द भी कह पाने में असफल हूँ माधव। किसी प्रकार अटकते-अटकते अर्जुन ने बात पूरी की।

श्रीकृष्ण ने विस्मय से कहाँ, क्यों? अर्जुन असमंजस में थे, कुछ लज्जित भी स्वयं को अनुभव कर रहे थे। श्रीकृष्ण का क्यों प्रश्न उनके कर्णकुहरों से टकराकर किसी विराट घण्ट ध्वनि-सा टन्ना उठा। अर्जुन बोले, जनार्दन। आपके जाने के उपरान्त से ही वह बहुत उद्विग्न रहने लगी है। साथ ही, हम सबसे अत्यन्त रूष्ट हैं, असन्तुष्ट है। और फिर बोलती कुछ भी नहीं, मौन रहती है। हम सब द्विविधा में हैं, कोई उससे कुछ नहीं कह पाता।

क्यों? श्रीकृष्ण के विशाल नेत्रों से तीक्ष्ण शर-सा छूटा प्रश्न अर्जुन के मर्म में बिंधा रह गया। अर्जुन प्रहार से विचलित थे। इधर-उधर देख रहे थे किन्तु उस तीक्ष्ण दृष्टि से बचकर कहाँ जाते।

अर्जुन बोले, मधुसूदन। वह हम सबसे विलग रहती है। साथ बैठी हो तो भी ऐसे जैसे वहाँ हो ही नहीं। और... माधव... विशेष रूप से वह मुझसे अधिक रुष्ट है, ऐसा मुझे अनुभव होता है।

कृष्ण बोले, यदि तुमसे असन्तुष्ट है तो उचित ही करती है... अर्जुन बोले, क्यों जनार्दन?

कृष्ण बोले, क्यों। तुम ही से तो उसकी सारी आशाएँ बँधी हैं। तुम ही से तो बँधी सीधी सरल गौ-सी वह छोड़ आयी अपने पिता पांचालनरेश का राजवैभव, सुख-सुविधा। तुम ही पर तो वह प्राण न्यौछावर करती है अपने, और तुम ही उसका साथ छोड़ विश्वासघात करने को उद्यत हो।

अर्जुन बोला, यह क्या कह रहे हैं द्वारिकेश? विश्वासघात। पांचाली से।

कृष्ण बोले, क्यों। उस दिन सन्धिप्रस्ताव में तुम ही तो युधिष्ठिर की हाँ में हाँ मिला रहे थे। एक बार भी दृष्टिपात तक नहीं किया अपनी कातर पत्नी पर? अर्जुन बोले, वे मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं, जनार्दन।

कृष्ण बोले, जानता हूँ। किन्तु पत्नी का अपमान, पत्नी की सुरक्षा कुछ नहीं? उसका दु:ख तुम्हें करुणा से विगलित नहीं कर देता? तुम तो अत्यन्त भावुक हृदय हो। उसके अन्तर की ज्वालाएँ तुम्हारे अन्तर को नहीं दहका देतीं? पार्थ। तुमने यह भी देखने में समय न गँवाया कि वह चारों भाइयों की बात से उतनी दु:खी न थी, किन्तु तुम्हारी बात सुनते ही जैसे उसकी सम्पूर्ण आशा-माल्य ही टूट गयी। उसके विश्वास का सर्वाधिक प्रदीप्त नक्षत्र तत्क्षण टूटकर धराशायी हो गया। कैसे कातर होकर दौड़ती हुई मेरे पास आयी थी। तुमने उसे सबसे बड़ा- सबसे गहरा आघात दिया। वह अन्य-अन्य से उपेक्षा सह सकती है किन्तु तुमसे नहीं। उस सुन्दर नलिना को तुमने कैसा मलिना बना डाला है पार्थ। तुम स्वयंवर से उसे लेकर आये थे, क्या इसी दुर्दशा हेतु?

अर्जुन बोले, मधुसूदन। माधव। केशव। यह... यह क्या कह रहे हैं गोविन्द? जो कुछ हुआ, उसमें सारा मेरा दोष। क्या आप भी मुझसे रुष्ट हैं...? अचानक द्रौपदी के प्रवेश से वार्तालाप रुक गया।

श्रीकृष्ण ने मुस्कराते हुए कृष्णा का हार्दिक स्वागत किया और बोले, यह आ गयी महाभारती। आओ कृष्णे। वह म्लानमुखी अत्यन्त गम्भीर और उदास-सी उनके निकट आ खड़ी हुई।

द्रौपदी बोली, माधव। क्या प्रात:स्मरणीया माता कुन्ती ने मुझे स्मरण नहीं किया? मेरे लिए कुछ सन्देश नहीं दिया?

कृष्ण बोले, ऐसा क्या सम्भव है कृष्णे कि मेरी स्नेहशीला बुआ तुझे विस्मृत कर दें? प्रतिपल, प्रतिक्षण वे अपनी प्राणप्रिया पुत्रवधू को स्मरण करती हैं। तेरे कष्टों को स्मरण कर-करके विकल हो-हो उठती हैं। उन्हें अपने पुत्रों की चिन्ता नहीं, किन्तु पुत्रवधू की चिन्ता उन्हें घुलाये दे रही है। वे तेरे साहस, धीरज, सहनशीलता एवं शौर्य की प्रशंसा करते

नहीं थकतीं और अपने पुत्रों की कठोरतम शब्दों में निन्दा करती हैं, भर्त्सना करती हैं, जिनके कारण उनकी राजवधू की यह दशा हुई है। उन्होंने तेरे लिए आशीर्वाद एवं अपार स्नेह भेजा है। तेरी चर्चा करते-करते वे सागर-सी उमड़ पड़ती हैं। जैसे स्वयं कपिला गौ अपने वत्स को बिना देखे कातर हो, ऐसे ही वे तुझे देखने को आतुर हैं। जिस क्षण तू उनके समक्ष होगी, वे तुझे अपने अंक में भर लेंगी, हृदय से लगाकर तेरे मन का सारा अनुताप हर लेंगी, तेरी समस्त पीड़ा अपने अन्तर में भर लेंगी। वे विशालहृदया हैं। उदारमना हैं। वे महान् वीरमाता हैं।

श्रीकृष्ण के भावपूर्ण उद्‌गार सुनते ही पांचाली आँचल मुख से लगा विह्वल हो रो पड़ी। सव्यसाची पहले से श्रीकृष्ण के शब्दों से मर्माहत-से खड़े थे। उन्होंने धीमे से अपना मुख दूसरी दिशा में फेर लिया, नयनकोरों में डबडबाये अश्रुओं को छिपाने के लिए, और हौले से दाहिने हाथ की तर्जनी से अपने अश्रुकण पोंछ डाले।

तब... जब वे मुड़े, श्रीकृष्ण वहाँ नहीं थे। द्रौपदी आँचल से मुख ढाँके भूमि पर बैठी अभी भी रो रही थी। अपने परम आदरणीय सखा के कटुवचन अर्जुन भुला नहीं पा रहे थे। किन्तु श्रीकृष्ण केवल कटु बोलकर ही नहीं गये थे, कितना सत्य कहकर गये थे कि पांचाली को लेकर तो सव्यसाची ही आये थे। और उन्होंने उसके प्रति अपने कितने दायित्व आज तक निभाये? कितना सुख उसे दिया? अपराध-भावना एवं आत्मग्लानि में आकण्ठ डूबे अर्जुन कुछ क्षण जड़वत् खड़े रह गये। पांचाली की तीक्ष्ण उलाहनाभरी दृष्टि का सामना करने का उनमें साहस न था। विगत कितने दिनों से वे उस मर्मभेदी दृष्टि से चोरों की भाँति बचते रहे हैं। पांचाली की मनोदशा से व्याकुल हो उसे समझाना चाहते, धीरज बँधाना चाहते किन्तु याज्ञसेनी का दर्प उन्हें अपने निकट फटकने न देता। अन्य सबसे आवश्यकता पड़ने पर वह बोलती भी, किन्तु अर्जुन के प्रति भरपूर उपेक्षा दिखा रही थी। कुछ क्षण किंकर्तव्यविमूढ़ से खड़े रहने के बाद, जैसे-तैसे साहस बटोरकर उन्होंने द्रौपदी के शीश पर अपना नेह-पुलकित हाथ हौले से रखा।

द्रौपदी बोली, माधव। मुझे एक बार माता कुन्ती के दर्शन नहीं मिल सकते क्या? मेरी व्यथा किसी ने समझी है। तो उन्होंने मुहूर्तभर के लिए मुझे उनके पास ले चलो जनार्दन। उन ममतामयी से कब कहूँगी- सब कुछ। कहूँगी, मुझे दु:शासन, दुर्योधन, जयद्रथ एवं कीचक भी उतना दु:खी नहीं बना पाये जितना मुझे मेरे पाँच पतियों ने दीन बना दिया, आर्त बना डाला। मुझे कहीं का न रखा इन महावीरों ने। पांचाली अर्जुन के हाथ को श्रीकृष्ण का हाथ समझे सिसकते हुए अस्फुट शब्दों में कह उठी। श्रीकृष्ण वहाँ नहीं थे। असहाय अर्जुन उसके उद्‌गार सुन रहे थे- भावपूरित नेत्रों से उसे निहारने का असफल प्रयास करते से। नयनकोर में पुन: अश्रु डबडबा आये थे। कण्ठ अवरुद्ध था। साश्रुकण्ठ बड़े प्रयास से बोले, पांचाली। विद्युत् तरंग का झटका लगा हो जैसे, तड़ित् गति से पांचाली उनका हाथ छोड़ खड़ी हो गयी।

द्रौपदी बोली, मुझे क्षमा करें पार्थ। अर्जुन बोले, तो क्या मेरी एक बात भी नहीं सुनोगी? द्रौपदी बोली, क्यों, अभी और भी कुछ सुनने को शेष है मेरे लिए? उस दिन तो आपके सारे वीर-वचन सुन चुकी हूँ और वह आँधी की भाँति सन्नाती हुई वहाँ से निकल गयी। अर्जुन स्तम्भित थे। अवाक् थे। मर्माहत थे। पांचाली उनसे रुष्ट थी। माता कुन्ती उनसे रुष्ट थीं। सखा श्रीकृष्ण उनसे रुष्ट थे। श्रीकृष्ण वहाँ से धर्मराज युधिष्ठिर के निकट चले आये थे। वहाँ सबको उन्होंने कौरवसभा में हुई चर्चा का सार एवं माता का सन्देश शब्दश: प्रस्तुत करना था। पांचाली भी आकर पीछे बैठ गयी थी। सबसे बाद में आये सव्यसाची अन्यमनस्क से। धीमी चाल, चिन्तित मुखमुद्रा, शिथिल चरण। आकर चुपचाप एक ओर बैठ गये। श्रीकृष्ण ने एक उड़ती-सी दृष्टि से परख लिया- प्रियसखा अर्जुन उद्वेलित हैं, उद्विग्न हैं। अशान्त हैं, व्यथित हैं। शुभ लक्षण है। दूसरी ओर माता कुन्ती के सन्देश से बल पाकर पांचाली का खोया साहस एवं ओज लौट आया था। उसका

पीतवर्ण मुर्झाया मुखमण्डल पुन: पूर्व आभा से प्रदीप्त हो उठा।

कृष्ण पांडवों के पास आता है। युधिष्ठिर ने पूछा आप हस्तिनापुर जाकर आ रहे हैं ज्येष्ठ पिताश्री का स्वास्थ्य कैसा है वासुदेव। अर्जुन बोला, पहिले माताश्री के बारे में तो पूछ लीजिये। युधिष्ठिर बोले, वे ज्येष्ठ हैं प्रिय अनुज। भीम बोला, तो फिर पितामह के लिये ही पूछ लीजिये। युधिष्ठिर बोला, वे राजा नहीं है प्रिय अनुज। नकुल बोला, वे ऐसे राजा हैं जिन्होंने अपने अनुज पुत्रों के अधिकारों का अपहरण किया है। युधिष्ठिर बोले, सभ्यता की रक्षा करना भी क्षत्रियों का धर्म है प्रिय अनुज। और जिस दिन क्षत्रिय अपने धर्म का पालन त्याग देंगे उस दिन धूप का रंग काला पड़ जायेगा। ज्येष्ठ पिताश्री कैसे हैं वासुदेव? कृष्ण बोले, स्वस्थ और चिंतित हैं। चिंतित और स्वस्थ तो गंगापुत्र भीष्म और दोनों आचार्य श्रेष्ठ भी हैं। किन्तु महाराज की चिन्ता किसी और प्रकार की है और इन महापुरुषों कि किसी और प्रकार की। महाराज युद्ध की ओर से चिंतित हैं और ये दोनों महापुरूष युद्ध के परिणाम से। अर्जुन बोला, अर्थात युद्ध की तो ठहर ही गई। कृष्ण बोले, हां पार्थ युद्ध की तो ठहर ही गई। मैंने इस युद्ध के परिहार के सारे जतन करके देख लिये किन्तु दुर्योधन युद्ध ही चाहता है इसलिये युद्ध तो होगा। सहदेव बोला, तो अब यह बताइये कि माताश्री कैसी हैं? कृष्ण बोले, बुआ ने पांचों भाइयों के लिये एक विशेष सन्देश भेजा है सहदेव। उन्होंने मुझसे यह कहा है कि मैं तुम लोगों से यह कहना न भुलूं कि क्षत्राणिया इसी विशेष दिन के लिये पुत्रों को जन्म देती है। सहदेव बोला, किन्तु आप उन्हें अपने साथ लाये क्यों नहीं? हमारी माताश्री का हमारे शत्रुओं के शिबिर में रहना उचित नहीं है। भीम बोला, युद्ध नीति तो यही कहती है वासुदेव। कृष्ण बोले, यह युद्ध दूसरे युद्धों जैसा नहीं है। यह युद्ध केवल उस चौसर के टुकडे पर नहीं खेला जायेगा। बाणों से बाण और गदाओं से गदायें टकरा रही होगी। जहां अश्वों की टापों से उड़नेवाली धूल सूर्य को ढक देगी और कदाचित दिन पर रात का होने का धोखा होने लगेगा। इस युद्ध में तो लगभग हर हृदय भी एक रणभूमि ही है इसलिये सब अपने अपने सद्कर्मों की खोज में है। बुआ भी इस युद्ध में भाग ले रही है और उन्होंने अपनी रणभूमि चुन ली है। वे वहीं रहेगी और यदि छोटी मां कहकर दुर्योधन चरण स्पर्श करेगा तो वो उसे आयुष्मान होने का निष्फल आशीर्वाद देगी।

कृष्ण, अर्जुन, द्रौपदी व अन्य चारों भाई और द्यृष्टद्युम्न मन्त्रणा के लिये बैठे हुए हैं। युधिष्ठिर बोले, अब मैं क्या करू वासुदेव? कृष्ण बोले, निर्णय लीजिये बड़े भैया, निर्णय। द्रौपदी बोली, ये क्या निर्णय लेंगे देवकीनन्दन। इनको तो कदाचित स्मरण ही न हो कि मेरे केश सदैव खुले क्यों रहते हैं? निर्णय तो अब मैं लूंगी और द्रौपदी ने युद्ध घोषित करने के लिये शंख फूंक दिया। युधिष्ठिर बोले, पांचाली को समझाइये वासुदेव। ये ज्येष्ठ कुन्तीपुत्र कायर नहीं है। किन्तु वो केवल एक यौद्धा ही नहीं बल्कि एक राजा भी है। राजा के कर्त्तव्य यौद्धाओं के कर्त्तव्य से कहीं अधिक गम्भीर होते है। जो लोग मेरे पक्ष में युद्ध करने आये है उनकी रक्षा का भार भी मेरे ही कन्धों पर है। ये भार मेरे अनुजों के कन्धोपर नहीं। तुम्हारे ये खुले केश दिनरात सर्प की भाँति मुझे भी डसते रहते हैं। किन्तु मैं केवल एक पति ही नही हूं पांचाली। द्रौपदी बोली, मैं भी केवल पत्नी ही नहीं हूं धर्मराज। आप जिस इन्द्रप्रस्थ के नरेश हैं राजन, मैं भी उसी इन्द्रप्रस्थ की पट्टमहिषी हूँ। मुझे इन्द्रप्रस्थ नहीं चाहिये। मुझे दु:शासन की छाती का लहू चाहिये ताकि मैं उस लहू से इन केशों से भरे हुये अपमान की धूल धो सकूं। भीम बोले, तुम्हे वो लहू अवश्य मिलेगा पांचाली। भरतवंश में केवल भीष्म पितामह ही प्रतिज्ञा करना नहीं जानते। कृष्ण बोले, क्रोध के गहरे पानी में इतनी दूर मत जाइये मझले भैया कि स्वयं डूब जाये। सेनापति जैसी बात कीजिये। ये सोचिये कि कौरवों की सेना आपकी सेना से बडी है। ११ और ७ का अनुपात है। और यह अनुपात यह सोचने से और भी बढ जाता है कि उस सेना के प्रधान सेनापति स्वयं गंगापुत्र भीष्म है जिनकी मृत्यु स्वयं उनकी मुठ्ठी में

बन्द है। फिर परशुराम शिष्य द्रोणाचार्य और कर्ण है। कृपाचार्य है, स्वयं दुर्योधन और दु:शासन है। सहदेव बोला हमारे भी सरकंडे के योद्धा नहीं है। महाराज द्रुपद, विराट नरेश, भ्राता धृष्टद्युम्न, महावीर शिखंडी, महावीर सात्यकि, मझले भैय्या भीम, छोटे भैय्या अर्जुन, उधरवालों में से इनका सामना कौन करेगा? अर्जुन बोला, और यह न भूलिये मधुसूदन हमारे साथ आप हैं, आप। कृष्ण बोले, किन्तु मैं तो निहत्था हूँ पार्थ। अर्जुन बोले, हमें आपका वरदहस्त ही तो चाहिये। हमें आपके आशीर्वाद का हाथ ही तो चाहिये वासुदेव। अस्त्र-शस्त्र हमारे पास बहुत हैं और उनके पास भी बहुत हैं परन्तु उनके पास पांचाली के खुले हुये केश नहीं है वासुदेव और उनके पास आप भी तो नहीं है।

राजा युधिष्ठिरने कहा- श्रीकृष्ण। जब दुर्योधनने अपना कुमार्ग नहीं छोड़ा तो कुरुवृद्ध पितामह भीष्मने उससे क्या कहा? तथा आचार्य द्रोण, महाराज धृतराष्ट्र, माता गान्धारी, धर्मज्ञ विदुर और सभामें बैठे हुए सब राजाओंने उसे क्या सलाह दी? यह सब मुझे सुनाइये।

श्रीकृष्णने कहा, राजन्। कौरवोंकी सभामें राजा दुर्योधनसे जो बातें कही गयी थी, जब मैं अपना वक्तव्य समाप्त कर चुका तो दुर्योधन हँसा। इसपर भीष्मने क्रोधित होकर कहा, दुर्योधन। इस कुलके कल्याणके लिये मैं जो बात कहता हूँ वो सुनो, उसे सुनकर तू अपने कुटुम्बका भला कर। तू कलह मत कर। आधा राज्य पाण्डवोंको दे दे। भला, मेरे जीवित रहते यहाँ कौन राज्य कर सकता है? तू मेरी बातको मत टाल। मैं तो सर्वदा तुम सबका हित चाहता हूँ। मेरी दृष्टिमें पाण्डवोंमें और तुझमें कोई अन्तर नहीं है। और यही सलाह तेरे पिता, माता और विदुरकी भी है। तुझे बड़े-बूढ़ोंकी बातपर ध्यान देना चाहिये। मेरे कथनमें संदेह नहीं करना चाहिये। ऐसा करनेसे तू अपनेको और सारी पृथ्वीको नष्ट होनेसे बचा लेगा।

भीष्मके ऐसा कहनेपर फिर आचार्य द्रोणने उससे कहा, दुर्योधन। जिस प्रकार महाराज शान्तनु और भीष्म इस कुलकी रक्षा करते रहे हैं, वैसे ही महात्मा पाण्डु भी अपने कुलकी रक्षामें तत्पर रहते थे। यद्यपि धृतराष्ट्र और विदुर राज्यके अधिकारी नहीं थे, तो भी उन्होंने इन्हींको राज्य सौंप रक्खा था। वे धृतराष्ट्रको सिंहासनपर बैठाकर स्वयं अपनी दोनों भार्याओंके सहित वनमें जाकर रहने लगे थे। विदुर भी नीचे बैठकर दासकी तरह अपने बड़े भाईकी सेवा करते रहे हैं और उनपर चँवर डुलाते रहे हैं। विदुरको कोशकी सँभाल करने, दान देने, सेवकोंकी देखभाल करने और सबका पालन-पोषण करनेके कामपर नियुक्त किया गया था तथा महातेजस्वी भीष्म राजाओंके साथ सन्धि-विग्रह करने और उनके साथ लेन-देन करनेका काम करते थे। उन्हींके कुलमें उत्पन्न होकर तुम कुलमें भेद डालनेका प्रयत्न क्यों कर रहे हो। अपने भाइयोंके साथ मेल करके तुम इन भोगोंको भोगो। मैं किसी प्रकारके भय या स्वार्थके कारण यह बात नहीं कह रहा हूँ। मैं तो भीष्मकी दी हुई चीज ही लेना चाहता हूँ, तुमसे मुझे कुछ भी लेना नहीं है। यह तुम निश्चय मानो कि जहाँ भीष्मजी हैं, वहीं द्रोण भी है। अत: तुम पाण्डवोंको आधा राज्य दे दो। मैं तो जैसा तुम्हारा गुरु हूँ, वैसा ही पाण्डवोंका भी हूँ। मेरे लिये दोनोंमें कोई भेद नहीं है। परंतु जय तो उसी पक्षकी होती है, जिधर धर्म रहता है।

इसके बाद विदुर ने पितामह भीष्मकी ओर देखते हुए कहा- तातश्री। मैं जो निवेदन करता हूँ, वह सुनिये। यह कुरुवंश तो एक प्रकारसे नष्ट ही हो चुका था। आपहीने इसका पुनरुद्धार किया है। अब आप इस दुर्योधनकी बुद्धिका अनुसरण करने लगे हैं। किंतु इसपर तो लोभ सवार है। यह बड़ा ही अनार्य और कृतघ्न है। देखिये न, यह अपने धर्म और अर्थका विचार करनेवाले पिताश्रीकी आज्ञाका भी उल्लंङ्घन कर रहा है। इस दुर्योधनके कारण ही इन सब कौरवोंका नाश होगा। महाराज। आप कृपा करके ऐसा कीजिये, जिससे इनका नाश न हो। कुलका नाश होता देखकर आप उपेक्षा न करें। मालूम होता है कुरुवंशका नाश समीप आ जानेसे ही आज आपकी बुद्धि ऐसी हो गयी है। आप या तो मुझे और राजा

धृतराष्ट्रको साथ लेकर वनको चलिये, नहीं तो इस क्रूरबुद्धि दुष्ट दुर्योधनको कैद करके पाण्डवोंसे सुरक्षित इस राज्यकी व्यवस्था कीजिये। ऐसा कहकर बार-बार साँस लेते हुए विदुर मौन हो गये।

इसके पश्चात् कुटुम्बके नाशसे भयभीत गान्धारीने क्रोधमें भरकर ये धर्म और अर्थयुक्त बातें कहीं, दुर्योधन। तू बड़ा ही पापबुद्धि और क्रूरकर्म करनेवाला है। अरे। इस राज्यको तो कुरुवंशी महानुभाव क्रमशः भोगते आये हैं। यही हमारा कुलधर्म है। किंतु अब अन्यायसे तू इस कौरवोंके राज्यको नष्ट कर देगा। इस समय इस राज्यपर महाराज धृतराष्ट्र और उनके छोटे भाई विदुर विराजमान हैं, फिर मोहवश तू इसे कैसे लेना चाहता है? भीष्मके सामने तो ये दोनों भी पराधीन ही हैं। महात्मा भीष्म धर्मज्ञ हैं, इसलिये अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेके लिये राज्य स्वीकार नहीं करते। वास्तवमें तो यह राज्य महाराज पाण्डुका ही है; अतः इसे लेनेका अधिकार उनके पुत्रोंको ही है, किसी दूसरेको नहीं। इसलिये कुरुश्रेष्ठ महात्मा भीष्म जो कुछ कहते हैं, वह हमें बिना किसी आनाकानीके मान लेना चाहिये। अब महाराज धृतराष्ट्र और पितामह भीष्मकी आज्ञासे धर्मपुत्र युधिष्ठिर ही इस कुरुवंशके पैतृक राज्यका पालन करें।

गान्धारीके इस प्रकार कहनेपर फिर महाराज धृतराष्ट्रने कहा, पुत्र। यदि तुम्हारी दृष्टिमें पिताका कुछ गौरव है तो मैं तुमसे जो बात कहता हूँ, उसे सुनो और उसीके अनुसार आचरण करो। पहले कुरुवंशकी वृद्धि करनेवाले नहुषके पुत्र ययाति नामके राजा थे। उनके पाँच पुत्र हुए। उनमें सबसे बड़े यदु थे और सबसे छोटे पुरु। पुरु राजा ययातिकी आज्ञा माननेवाले थे और उन्होंने उनका एक विशेष कार्य भी किया था। इसलिये छोटे होनेपर भी ययातिने उन्हें ही राजसिंहासनपर बैठाया। इस प्रकार यदि बड़ा पुत्र अहमारी हो तो उसे राज्य नहीं मिलता, और छोटा पुत्र गुरुजनोंकी सेवा करनेसे राज्य प्राप्त कर लेता है। मेरे प्रपितामह महाराज प्रतीप भी इसी प्रकार समस्त धर्मोंके जाननेवाले और तीनों लोकोंमें विख्यात थे। उनके देवताओंके समान यशस्वी तीन पुत्र हुए। उनमें बड़े देवापि थे, उनसे छोटे बाह्लीक हैं और इनसे छोटे हमारे पितामह शान्तनु थे। देवापि यद्यपि उदार, धर्मज्ञ, सत्यनिष्ठ और प्रजाके प्रेमपात्र थे, तो भी चर्मरोगके कारण वे राजसिंहासनके योग्य नहीं माने गये। बाह्लीक पैतृक राज्यको छोड़कर अपने मामाके यहाँ रहने लगे थे। इसलिये पिताकी मृत्यु होनेपर बाह्लीककी आज्ञासे जगद्विख्यात शान्तनु ही राज्यपर अभिषिक्त हुए। इसी प्रकार पाण्डुने भी मुझे यह राज्य सौंप दिया था। मैं उनसे बड़ा था, तो भी नेत्रहीन होनेके कारण राज्यके अधिकारसे वञ्चित रहा और छोटे होनेपर भी पाण्डुको राज्य मिला। अब पाण्डुके मरनेपर तो यह राज्य उन्हींके पुत्रोंका है। मैं तो राज्यका प्रतिनिधि हूँ। तुम भी न राजपुत्र हो और न राज्यके स्वामी हो; फिर दूसरेका अधिकार कैसे छीनना चाहते हो? महात्मा युधिष्ठिर राजपुत्र है, अतः न्यायतः यह राज्य उसीका है। युधिष्ठिरमें राजाओंके योग्य क्षमा, तितिक्षा, दम, सरलता, सत्यनिष्ठा, शास्त्रज्ञान, अप्रमाद, जीवदया और सदुपदेश करनेकी क्षमता ये सभी गुण हैं। इसलिये तुम मोह छोड़कर आधा राज्य युधिष्ठिरको दे दो और आधा अपने भाइयोंके सहित अपनी जीविकाके लिये रख लो।

इस प्रकार भीष्म, द्रोण, विदुर, गान्धारी और राजा धृतराष्ट्रके समझानेपर भी मन्दमति दुर्योधनने कुछ ध्यान नहीं दिया। बल्कि उनके कथनका तिरस्कार कर क्रोधसे आँखें लाल किये वहाँसे चल दिया। उसके पीछे ही, जिन्हें मृत्युने घेर रक्खा है वे राजालोग भी चले गये। उन राजाओंको दुर्योधनने यह आज्ञा दी कि आज पुष्य नक्षत्र है, इसलिये आज ही सब लोग कुरुक्षेत्रको कूच कर दो। अब आप भी जो कुछ उचित जान पड़े, वह करें। मैंने भाइयोंमें प्रेम बना रहे- इस दृष्टिसे पहले तो सामका ही प्रयोग किया था। किंतु जब वे सामनीतिसे नहीं माने तो भेदका भी प्रयोग किया। मैंने सब राजाओंको ललकारा, दुर्योधनका मुँह बंद कर दिया तथा शकुनि और कर्णको भय दिखाया। फिर कुरुवंशमें फूट न पड़े, इस विचारसे सामके साथ दानकी भी बातें कहीं। मैंने दुर्योधनसे कहा कि सारा राज्य तुम्हारा ही रहा, तुम केवल पाँच गाँव दे दो; क्योंकि

तुम्हारे पिताको पाण्डवोंका पालन भी अवश्य करना चाहिये। ऐसा कहनेपर भी उस दुष्टने आपको भाग देना स्वीकार नहीं किया। अब, उन पापियोंके लिये मुझे तो दण्डनीतिका आश्रय लेना ही उचित जान पड़ता है; और किसी प्रकार वे समझनेवाले नहीं हैं। वे सब विनाशके कारण बन चुके हैं और मौत उनके सिरपर नाच रही है।

दुर्योधन, श्रीकृष्ण एवं माता कुन्ती की बातें सुनकर युधिष्ठिर गहन ऊहापोह में पड़ गये थे। दीर्घ नि:श्वास लेकर बोले- तो जनार्दन। अब स्पष्ट बताएँ, क्या करना होगा? पांचाली तड़प उठी। विद्युत-सी कौंध उठी। द्रौपदी बोली, अब इतना सब सुन चुकने के उपरान्त भी पूछ रहे हैं कि क्या करना होगा? आह री आपकी बुद्धि। क्या माता कुन्ती का आदेश पर्याप्त नहीं कि आप क्षत्रिय धर्म के अनुकूल आचरण करें? आपको माता की आज्ञा के औचित्य पर भी सन्देह हो रहा है? ऐसे सदा अनिर्णय की स्थिति में रहे धर्मराज तो हमारा दु:ख दिन-दूना रात चौगुना बढ़ता जाएगा। हम दिन-प्रतिदिन और भी दरिद्र एवं दीन होते जाएँगे। युधिष्ठिर बोले, देवी। तुम बहुत क्षुब्ध हो। अधिक सन्ताप न करो। विधाता ने जो भाग्य में लिखा है, वह सहना ही पड़ेगा। अच्छा हो, उसे धीरज के साथ सहा जाये और उदारता से स्वीकार किया जाये।

पांचाली बोली, नहीं धर्मराज। पांचाली का स्वर ऊँचा हो प्रखर हो गया, आपके समान हर विपत्ति को मैं प्रारब्ध नहीं मान सकती। मनुष्य का पुरुषार्थ भी कुछ है। इस प्रकार आप द्यूतक्रीड़ा के दोष से स्वयं को मुक्त करना चाह रहे हैं? द्यूत-लिप्सा में पड़कर पलक झपकते आपने वासुदेव के किये-कराये पर पानी फेर दिया। खाण्डववन जलाकर वहाँ इन्द्रप्रस्थ राज्य बसाना, जरासन्ध का वध करवाना, राजसूय यज्ञ कराना, आपको सम्राट् पद पर विभूषित कराना- इन सबके पीछे किसका कठोर परिश्रम व संघर्ष रहा? और कैसे आपने कृतज्ञताज्ञापन की उनके प्रति। कपूर-सा उड़ा दिया वह वैभवशाली साम्राज्य। यह सत्य है कि यदि आप ऐसे द्यूतव्यसनी न होते तो हमारी यह दुर्गति न हुई होती। धर्मराज। कितने आश्चर्य की बात है कि ऐसी विलक्षण अपमानजनक स्थितियों में होकर भी आपका रक्त नहीं खौल उठा। आप पुरुष हैं, वह भी क्षत्रिय और वह भी अजमीढ़वंशी फिर भी कैसे साहसशून्य, क्रोधशून्य हो गये हैं?

पांचाली बोली, आपने कभी विचार किया कि क्या वीरवर अर्जुन का जन्म राजकन्याओं को नृत्यशिक्षा देने के लिए हुआ था? बलशाली आर्य भीम बल्लव बनकर सूपकार बनने योग्य थे? और इन सुकुमार, सौन्दर्य से सम्पन्न आर्य नकुल एवं आर्य सहदेव को अश्वों एवं गौओं की सेवा मात्र के लिए स्वर्गीया माता माद्री ने जन्म दिया था? ये आपके भाई हैं। महाराज पाण्डु के तेजस्वी पुत्र। इन्हें अपने कृत्यों से आपने कहाँ किस निम्नतम स्थिति में उतार दिया, यह कभी सोच पाते हैं? और फिर भी आपको कौरवों के प्रति लेशमात्र क्रोध नहीं होता? थोड़ा विचारिए धर्मराज। आपने किसके प्रति इस जीवन में अपने कर्त्तव्य निभाये। तनिक सोचें तो, क्या आपने अग्रज के दायित्व पूर्ण किये? क्या पति के कर्त्तव्य निभाकर पत्नी के अपमान का प्रतिशोध लिया? सदा आपके श्रीमुख से सुनती आयी- पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। किन्तु क्या मेरी रक्षा की आपने? क्या पिता होने के नाते अपने पाँचों पुत्रों का पालन-पोषण कर सके? उनकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध कर सके? वे द्वारकाधीश की कृपा से पल रहे हैं। उन्हें पिता व माता के स्नेह से आपने वंचित नहीं कर दिया क्या? और तनिक विचारिए धर्मराज, क्या आपने पुत्र के नाते अपने दायित्व पूर्ण किये? अपनी वृद्धा माता की सुख-सुविधा का ध्यान रखा? वे कौरव-राजप्रासाद में कैसे अपमान के दिन काट रही हैं, इस पर आपका ध्यान नहीं जाता? चारों अनुजों ने जो अपना रक्तस्वेद एक कर आपके इन्द्रप्रस्थ राज्य का उत्कर्ष किया, उसे आपने अपनी मूढ़ता से कैसे क्षणभर में कपूर-सा उड़ा दिया और पश्चात्ताप से आप क्षुब्ध नहीं हो जाते, यह जानकर भी कि यह सब आपकी ही हठवादिता थी? लेशमात्र भी ग्लानि नहीं होती आपको? इच्छा जाग्रत नहीं होती कि उन शत्रुओं को कुचलकर रख दें? तो महाभाग। आप स्वयं को क्षत्रिय कैसे सिद्ध करते हैं?

युधिष्ठिर बोले, पांचाली। तुम क्रोध में हो और क्रोध में मनुष्य तर्क और विवेक खो बैठता है। क्रोध त्यागो भद्रे।

पांचाली बोली, धर्मराज। आप तो क्षत्रियत्व ही गँवा बैठे हैं। माता कुन्ती ने जो इतने विस्तार में महारानी विदुला की कथा जनार्दन से कहलवायी, उससे क्या शिक्षा मिली अन्ततः आपको? वीरमाता विदुला ने अपने पुत्र से यही तो कहा था कि क्रोधशून्य व्यक्ति क्षत्रिय कहलाने योग्य नहीं। माता कुन्ती ने यह कथा क्यों कहलवायी आपसे? वह क्षत्रिय क्या जिसमें क्रोधाग्नि बुझ चुकी हो? राजा होते हुए भी आप राजधर्म एवं कूटनीति भुला बैठे कि शत्रु को कभी क्षमा नहीं करना चाहिए। यदि ऐसे ही आप दीनताप्रिय हैं, तो अच्छा होता कि आप किसी ब्राह्मण कुल में जन्मे होते। इस गौरवशाली अजमीढ़ कुल में क्यों जन्म लिया आपने?

युधिष्ठिर बोले, पांचाली। यह सब हमारे पूर्वजन्म के ही कर्मों का फल है जो हमें भुगतना पड़ रहा है। अतः इतना आकुल होने की आवश्यकता नहीं। पांचाली बोली, अहो... हो-हो। धन्य है आपकी सहनशीलता। अपार है आपका धीरज। किन्तु धर्मराज। विधाता और भाग्य पर सब छोड़ देने से ही राज्य चलता है क्या? ईश्वर की परमशक्ति पर मेरा अडिग विश्वास है। भाग्य को भी मैं मानती हूँ किन्तु क्या पुरुषार्थ कुछ भी नहीं आर्य? कभी-कभी मुझे ईश्वरीय न्याय पर सन्देह अवश्य हो उठता है। ईश्वर भी कैसा है जो साधुसम पाण्डवों को श्रृंखलाबद्ध रूप में अपार कष्ट दिये जा रहा है और कुरुवंशियों को समृद्धि एवं सुख दे रहा है। आर्यपुत्र। मैं ऐसे ईश्वर की निर्भीक और स्पष्ट निन्दा करूँगी जो निरपराध पाण्डवों को अनवरत यातनाएँ देता है और इस प्रकार अन्याय को प्रश्रय देता है।

युधिष्ठिर बोले, शान्त। शान्त रहो पांचाली। तुम भावावेश में आकर नास्तिक मत का प्रतिपादन कर रही हो।

पांचाली बोली, नहीं, कदापि नहीं महाराज। मैंने कभी धर्म की उपेक्षा नहीं की, न करती हूँ। न कभी ईश्वर की महिमा मैंने कम करके गिनी है। मेरा कथन केवल इतना है कि ज्ञानी पुरुष को भी कर्म करना चाहिए। आप सोचिए तनिक, आप, ये पाण्डव वीर और मैं हम लोग सब वृक्ष और पर्वत तो नहीं जो बिना कर्म किये ही, बिना श्रम किये ही उन्नति कर लें, संवृद्धि पा लें। बिना श्रम के ही जीवन में सफलता मिल जाएगी यह सोचकर आँख मूँद लेना, मेरी दृष्टि से, सिवा नितान्त मूर्खता के और कुछ नहीं। श्रेष्ठ पुरुष वह है जो कर्म में आस्था रखता है। वही प्रशंसा का पात्र है। आलस्य में पड़े रहकर, सब कुछ पूर्वजन्म के कर्मों और दैव पर छोड़नेवाले को क्या मिलेगा सिवा दरिद्रता के?

युधिष्ठिर बोले, क्षमा धर्मः क्षमा यज्ञः क्षमा वेदाः क्षमा श्रुतम् क्षमा तपः क्षमा शौचं क्षमयेदं धृतं जगत्। युधिष्ठिर की दृष्टि सुदूर क्षितिज पर टिकी हुई थी। आत्मविस्मृत दार्शनिक से वे बोले जा रहे थे, क्षमा ब्रह्म क्षमा सत्यं क्षमा भूतं च भावि च।

पांचाली के स्वर में झुँझलाहट शमित न हो पा रही थी और बोली, अहो धर्मराज। लगता है, आप शुद्ध अहिंसा पर आधारित कोई नया पन्थ पृथ्वी पर प्रारम्भ करनेवाले हैं।

युधिष्ठिर बोले, मैं नहीं तो भविष्य में कोई महापुरुष अवतरित होगा जो अहिंसा एवं क्षमा की महिमा से जगत् को परिचित कराएगा और...

पांचाली बोली, असम्भव नहीं। जब आप क्षत्रिय होकर क्रोधशून्य हैं, तो आश्चर्य क्या यदि कोई ब्राह्मण कभी भविष्य में धरा पर अहिंसा पन्थ प्रचलित कर दे। युधिष्ठिर बोला, ब्राह्मण क्यों? अहिंसा पन्थ चलानेवाला क्षत्रिय कुल में भी उत्पन्न हो सकता है। द्रौपदी बोली, किन्तु आप तो नहीं महाराज। आपने जीवन में सदा दया, परोपकार, क्षमा, शान्ति और उदारता से पुण्य ही अर्जित किया है। अतः आप तो पुनर्जन्म निश्चित रूप से न पाएँगे।

युधिष्ठिर बोले, कौन कह सकता है कल्याणी कि मेरे मन में कभी कोई विकार आया ही नहीं। और फिर सदा की

रक्तरंजित, दु:खपीड़िता वसुन्धरा के हृदय पर अहिंसा का सुशीतल लेप लगाने हेतु यदि मुझे बार-बार भी जन्म लेना पड़े तो मुझे कोई आपत्ति नहीं, सुश्रेणि। द्रौपदी ने तिक्त वाक्य में कहा, हाँ आप तो सदा ही कितनी दु:खपीड़िताओं के हृदय पर सुशीतल लेप लगाते आये हैं। देवकीनन्दन कृष्ण मुग्ध थे पांचाली की तर्कशक्ति एवं वाक्चातुर्य पर। किन्तु उसकी यही प्रतिभा युधिष्ठिर को असहनीय थी।

युधिष्ठिर बोले, पांचाली। तुम वाक्पटु हो। तुम तर्क को महत्त्व देती हो। जब अवसर मिलता है, अपनी वाक्प्रतिभा से सबको विमोहित कर भ्रमित कर देती हो। किन्तु तर्क ही सब कुछ नहीं तर्कबाले।

द्रौपदी बोली, मैं तर्क न करती महाराज, यदि आप भावनाओं का ही महत्त्व समझे होते। वह भी आप न कर सके। आपके द्वारा सम्पादित प्रत्येक अन्याय का विषपान मैंने किया। कौन है जो मेरी सहनशक्ति और साहस को चुनौती दे सके धर्मराज? युधिष्ठिर बोले, कोई नहीं याज्ञसेनी। तुम्हारा धैर्य और सहनशक्ति अपार है। तुम्हारी कर्त्तव्यपरायणता, सेवाभाव, कर्मठता से कौन नहीं अभिभूत हुआ? तुम्हारे गुणों की जितनी प्रशंसा...

द्रौपदी बोली, बस करें धर्मराज। मेरा गुणगान न करें कृपया। मेरा गुणगान कर-करके ही तो आपने मुझे दाँव पर लगाया था। अब नहीं। आप मेरा गुणगान करते हैं तो मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं भय से कि कहीं फिर से पण्य तो नहीं बना दी जाऊँगी। कहीं दाँव पर तो नहीं रख दी जाऊँगी। नहीं महाराज। आपके मुख से मेरी आलोचना ही श्रेयस्कर है। वही आपको अधिक शोभा भी देती है। मेरे हाथ-पाँव भय से काँपने लगे हैं, धर्मराज। पण्य, दासत्व, वस्त्रहरण। जयद्रथ द्वारा अपहरण। अहो। असह्य हैं सब कुछ। कृपया निन्दा करें मेरी, प्रशंसा नहीं। गुणगान नहीं। अब मुझे पण्य न बनाएँ महाराज। मुझ पर दया करें धर्मराज। यदि मैं एक साधारण नारी होती तो यह अपमान इस प्रकार तिल-तिल न घुलाता। किन्तु मैं एक साधारण नारी नहीं- यही मेरा दुर्भाग्य है। मैं यशस्वी पांचालनरेश महाराज द्रुपद की आत्मजा हूँ। यह भी दुर्भाग्य ही है स्यात् कि महिमामय स्वर्गीय महाराज पाण्डु की पुत्रवधू हूँ। परम प्रभावयुक्त शक्तिशाली वसुदेवनन्दन की सखी और महाराज युधिष्ठिर तथा उनके प्रतापी अनुजों की राजरानी हूँ। मैं पाँच महारथी पुत्रों की जननी हूँ। यह सब होते हुए भी मुझे जो अपमान के विषघूँट पीने पड़े हैं ईश्वर, किसी नारी को न पीने पड़ें। बताएँ महाराज, पूरे इतिहास में है कोई दृष्टान्त जहाँ कोई उच्चवंशीय महिला ऐसे कष्टों की श्रृंखला में सुदीर्घ काल तक आबद्ध रही हो? और आप कहते हैं, मैं बोलूँ नहीं। आप कहते हैं, मुझे कष्ट न हो। मैं अन्याय का प्रतिवाद न करूँ। अपमान का प्रतिकार न करूँ। दीन बनी भिक्षा की झोली उन निरंकुश अन्यायियों और सिद्धान्तहीन दुराचारियों के द्वार पर फैलाये रहूँ? धन्य हैं वे ब्राह्मण जो भिक्षा से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। किन्तु मैं क्षत्रिय हूँ। मैं ब्राह्मण-पत्नी नहीं। उत्तम होता यदि आप ब्राह्मण हुए होते।

भीम पांचाली के एक-एक शब्द से उद्वेलित हो रहे थे, एक-एक शब्द उन्हें कसमसा देता। उनका संयम समाप्त हो चला था। अन्ततः अन्तर का सुप्त स्त्रोत वाणी निःसृत हो चला और भीम बोला, सत्य कह रही है पांचाली। हमारे जीवित रहते हुए भी धर्मराज, आपके कारण हमारा पैतृक राज्य कैसे हमारे हाथ से भाप -सा उड़ गया? जैसे लूले व्यक्ति से किसी ने बेलफल छीन लिया हो। इसका कोई दूसरा दृष्टान्त किसी क्षत्रिय कुल में न मिलेगा। मुझे भी प्रतीत होता है कि अति वैराग्य के कारण आप कहीं साहसशून्य ही तो नहीं हो गये, जो माता के आदेश से भी आपका हृदय उद्वेलित नहीं हो पा रहा। याज्ञसेनी के तप्त वाक्बाणों से भी आपके उर में ऊष्मा नहीं उत्पन्न हो रही? युद्ध से भयभीत हैं महाराज, तो आप पृष्ठभूमि में रहिए। मैं एवं अर्जुन उन पापियों के लिए पर्याप्त हैं। आप रणक्षेत्र में जाइए भी नहीं। किन्तु अपने कुल के अपमान का प्रतिशोध लेना हमारा पुनीत कर्तव्य है। आप अपने इस दायित्व को भय के कारण ही नहीं निभाना चाहते? हममें क्या अभाव है? क्या कारण है जो संग्राम

करके अपनी खोयी राजलक्ष्मी पुन: नहीं पा सकते? महाराज। मुझसे यह नपुंसकों का-सा जीवन सहा नहीं जा रहा। प्रतिदिन अधर्मी दुर्योधन के दूत आ-आकर हमें अपमानित कर जाते हैं। सुना नहीं शकुनि हमारे लिए क्या-क्या कह गया। हमारी दीनता की चारों ओर हँसी हो रही है जबकि हम किसी से हीन नहीं। केवल अपनी सज्जनता एवं आपकी आज्ञापालन के कारण हम उपहास के पात्र हो गये हैं। लज्जा के कारण हम कहीं शीश उठाने योग्य नहीं रह गये।

पांचाली अब धुआँधार बरस पड़ीं और बोली, धर्मराज। एक पल के लिए भी तो मैं विस्मृत नहीं कर पाती कि आप सबके उपस्थित रहते हुए भी उस पापी दु:शासन का दु:साहस हुआ कैसे मेरे केशों को हाथ लगाने का? और आप सब अपनी प्राणप्रिया भार्या को अपमान सहने के लिए एकाकी छोड़ शीश झुकाये बैठे रहे- कापुरुषों की भाँति। नपुंसकों की भाँति। दोष मेरे पिताश्री का ही रहा जो उन्होंने मुझे आप लोगों को सौंपा, आजीवन मैं उनके इस अन्याय की वेदना झेलती रहूँगी। क्या ही उत्तम होता यदि वे इन पाँच पाण्डवों से मेरा विवाह न करते किसी पुरुष से करते। धिक्कार है इन नरश्रेष्ठ भीम के अतुल बल को जिन्होंने अवसर पर बल प्रयोग नहीं किया। धिक्कार है इन गाण्डीवधारी को जिनके मन में सदा बृहन्नला नागिन-सी बैठी रहती है कुण्डली मारे, और जब-जब प्रेतनी-सी चिपट जाती है इनसे। धिक्कार है पाँचों के पुरुषत्व को। इनके क्षत्रियत्व को। एक साधारण व्यक्ति भी पत्नी के सम्मान की रक्षा करता है परन्तु इन पाण्डुपुत्रों का तो कीर्तिमान ही अनोखा है इतिहास में। शत्रु इनके समक्ष ही इनकी भार्या से दुर्व्यवहार करते रहे और ये पराक्रमी भरतवंशी नरशार्दूल मूक, करुण कपिला की भाँति बैठे-बैठे तकते रहे। मैंने विवाह किया था भिक्षुक ब्राह्मण पाँच भाइयों के साथ। वे निकले हस्तिनापुर के राजपुत्र। फिर हृत राज्य वापस पा गए। तब राज्य के लिए सहोदरों के बीच ईर्ष्या और अशांति से दूर रहने के लिए अरण्य से भरे अनुर्वर वारुणावंत में अपनी राजधानी बसानी पड़ी।

पाण्डवों के मुखमण्डल विवर्ण हो चले। कर्णशिखर आरक्त थे। भाल पर स्वेद कण छलछला आये। आरक्तमुख धनंजय बार-बार बाहु के पृष्ठभाग से ललाट पोंछ रहे थे। उस अग्निमयी लौहमहिला के मुख से तप्त लौहपिण्डों की तीव्र बौछार हो रही थी जैसे। युधिष्ठिर ने भीम को क्रोध में भरे देख संभाला। शांत स्वर में समझाया।

अर्जुन बोला, संयत हो याज्ञसेनी। प्रतिशोध की अग्नि से जलती हुई तुम कितना प्रलाप करोगी? कितना अनर्गल कहती जाओगी? प्रतिशोध, किंतु एक निम्न मनोवृत्ति है, तुम उससे ग्रस्त हो। उदार बनो, क्षमाशील बनो। क्षमा के समान श्रेष्ठ गुण नहीं देवी। श्रीकृष्ण की भृकुटि तत्क्षण तन उठीं। पांचाली और उग्र हो उठी, जैसे अग्नि में घृत की आहुति पड़ी हो। पांचाली बोली, राम-राम कहिए धर्मराज राम-राम। स्मरण करिए तनिक रघुकुलशिरोमणि श्रीराम का। अपनी साध्वी भार्या के अपमान का प्रतिशोध लिया था श्रीराम ने- दशमुख के दशों मस्तक काट करके। उसकी बीसों बाहुओं को काटकर रख दिया था उन्होंने। उसके पूरे कुल का संहार कर दिया था पत्नी की मर्यादा हेतु। राम-राम जपिए धर्मराज। शायद राम-स्मरण से ही आपके किसी अंग में क्षत्रियत्व का स्फुरण हो उठे। वीरता का अंकुरण हो उठे। इसीलिए कह रही हूँ- राम-राम कहिए महाराज-राम-राम। माधव। मुझे तो लगने लगा है, मैं सर्वथा अरक्षणीया हूँ, अनाथा हूँ। मेरा कोई नहीं है इस जगत् में। न पति, न पुत्र, न पिता, न बन्धु, न तुम। मैं सर्वथा उपेक्षिता हूँ। सबने मुझे चरम पीड़ा दी है। असीम पीड़ा दी है और निदान के लिए कोई भी तत्पर नहीं। मुझे दु:ख है, ईश्वर ने मुझे पुरुष क्यों नहीं बनाया। तब मैं इन्हें पौरुष का पाठ पढ़ाती और स्वयं ही तत्काल उन नराधमों को यमलोक पहुँचाती। तब इन कापुरुषों का आश्रय-अवलम्ब तो न लेना पड़ता जो क्षत्रियत्व से हीन हैं। शौर्यशून्य हैं। किन्तु क्या करूँ मधुसूदन। मेरी धमनियों में तो मेरे वीर पिता का रक्त दौड़ रहा है। धर्मराज। मैं अपने हाथ के चूड़े एवं कंकण उतार देती हूँ, आप उन्हें पहनकर घर में नववधू-से बैठिए। मेरे अपमान का प्रतिकार मेरे वृद्ध पिता एवं वीर भ्राता कर

सकते हैं, वे ही करेंगे आप लोगों को स्त्रियोचित कार्य अधिक शोभा देंगे।

भीम के विशाल नेत्रों में अपमान और क्षोभ की कटुता तैर आयी। भीम बोला, बस करो याज्ञसेनी। अब सुना नहीं जा रहा। द्रौपदी बोली, क्यों? क्यों नहीं सुना जाता वृकोदर? स्मरण नहीं शकुनि ने क्या-क्या कहा था? क्या नहीं कहा उसने? उस धृष्ट ने आप सबके मुख पर दुर्योधन के कटु वाक्य नहीं कहे क्या कि विडालव्रत का ढोंग छोड़ो। बहुत रच लिया धर्माचरण का स्वाँग। यदि ऐसे ही धर्मनिष्ठ हो तो क्षत्रियधर्म में प्रवृत्त क्यों नहीं होते? छल-छदम् त्यागकर पुरुष बनो और अपनी दु:खकातर माता के अश्रु पोंछो। आर्यपुत्र। भूल गये, दुर्योधन ने केशव से कहलवाया था कि पंचग्राम की आपकी याचना भी इसीलिए ठुकरायी है ताकि आप लोगों में पौरुष का संचार तो हो किसी प्रकार। पुरुषोचित मार्ग तो अपनाएँ आप लोग किसी प्रकार एवं याचना तो न करें क्षत्रिय वीर होकर। अर्जुन बोले, क्षमा करो पांचाली। हमारे पौरुष और वीरता के विषय में कौरव तब समझेंगे जब उचित अवसर पर हम उनका वाणी से नहीं शस्त्र से उत्तर देंगे। प्रखर व्यंग्य से द्रौपदी बोली। धन्यभाग्य। महाभाग। कब आएगी वह पुण्य-वेला? अर्जुन बोले, तुमसे छिपा नहीं है पांचाली, कि हम केवल अपने पितृतुल्य अग्रज धर्मराज युधिष्ठिर के सम्मान के कारण ही चुप हैं अन्यथा...।

द्रौपदी बोली, आहा हा हा- हतभागी पांचाली आप सभी लोगों की मति एकसाथ मारी गयी आर्यपुत्र? महाराज युधिष्ठिर तो पुरातन व्यसनी रहे हैं द्यूतक्रीड़ा के। इस घृणास्पद व्यसन से क्या नहीं आपत्तियाँ बुलवा दीं महाराज ने हमारे ऊपर। ज्येष्ठ भ्राता पितृतुल्य होता है। किन्तु वह यदि धर्मविरुद्ध, नीतिविरुद्ध आचरण करे तो भी आप अन्धानुगमन करते जाएँ, यह उचित है क्या? अनुजों को दाँव पर लगा देना, पत्नी को दाँव पर लगा देना किस नीति के अनुकूल है? तो आप भी क्या धर्म एवं नीति के उल्लंघन के दोषी नहीं हुए आर्यपुत्र? पूर्णत: विवेकशून्य से बैठे रहे और नीति-अनीति का विचार ही न रहा त्रिलोकविख्यात धनुर्धर को। यह सोचा आपने कि मैं जहाँ जाऊँगी, लोग मुझे इंगित कर कहेंगे- यही है वह महाराज पाण्डु की पुत्रवधू, पाण्डवों की भाग्यहीना भार्या जिसके केश पकड़कर भरी सभा में खींचे गये, जिसे भरी सभा में वेश्या कहा गया, जिसे भरे समाज में विवस्त्र करने की कुचेष्टा की गयी और जिसके पाँच महाशूरवीर पतियों में से एक ने भी उठकर पत्नी के सम्मान की रक्षा न की। जो भी स्वयं को पुरुष मानता, वह उस समय क्या शान्त बैठ सकता था? आप क्षत्रियों से श्रेष्ठ तो वहाँ उपस्थित विप्रवर थे। चीरहण होगा- सुनते ही कैसे महर्षि धौम्य, सोमदत्त एवं अन्य तेजस्वी, धर्मरक्षक ब्राह्मणगण पादुकाएँ चटकाते राजसभा का तिरस्कार कर उठकर बाहर निकल गये थे। उनमें नीति-अनीति का विवेक था। विरोध प्रकट करने का साहस था। और महानुभाव। आपसे अच्छी तो कुरुकुल की नारियाँ थीं। मुझे घसीटते हुए अपरिचित पुरुषों से भरी सभा में लाया जाते देख कैसा हाहाकार मचा डाला था उन महिलाओं ने। उचित-अनुचित का विवेक उनमें भी था। किन्तु पतिदेव। आप शान्त ही बैठे रहे। पाण्डवश्रेष्ठ। अपनी असहाय भार्या का अपमान नहीं, तो अपने पुण्यश्लोक पिताश्री के नाम को स्मरण करके तो प्रतिशोध ले लेते। उनकी पुत्रवधू ऐसे ही व्यवहार के योग्य है? क्या तात पाण्डु जीवित होते तो मेरी यह दुर्गति हुई होती? गाण्डीवधारी साधु। अपनी माता के ही कष्टों का विचार किया होता। कितने विशेषणों से अलंकृत है आपका यशस्वी शुभनाम। परमवीर, महापराक्रमी, सव्यसाची, विश्वविजेता इत्यादि, इत्यादि, इत्यादि। देखूँ तो आप कहाँ से वीर हैं। किस कोण से वीर हैं। तभी तो दुर्योधन ने कहलवाया कि यह चार हाथ का सुदीर्घ गाण्डीव किस दिन काम आएगा? इसका प्रयोजन क्या है? इसको लिये-लिये भी पार्थ विलाप ही करते रहे और राज्य का स्वर्णपक्षी हाथ से फुर्र हो गया। दुर्योधन तेरह वर्ष तक शासन करता रहा, और आप गाण्डीव हाथ में लिये बैठे रहे। आर्यपुत्र। दुर्योधन के ही पौरुष का चमत्कार था जो महाबली भीम को मत्स्यराज विराट के लिए साधारण बल्लव बनकर

भोजन बनाना पड़ा। सुकुमार राजपुत्र नकुल एवं सहदेव को जीविका उपार्जन हेतु गौ एवं अश्वों की सुश्रूषा करनी पड़ी। यह दुर्योधन का ही पौरुष था जिसने महाधनुर्धर अर्जुन को नचा डाला उन्हें नचाने और गाने को बाध्य कर दिया। यह कौरवश्रेष्ठ दुर्योधन का ही पौरुष था कि द्रौपदी को एक दीन परिचारिका बनाकर छोड़ा। आर्य धनंजय। शकुनि-पुत्र कैसे धृष्टतापूर्वक ठहाका लगाकर बोला था कि आर्य दुर्योधन ने तो कौरवसभा में ही पाण्डवों को षण्ढतिल कहा था नपुंसक कहा था। किन्तु बाद में वह कैसा सत्य सिद्ध हुआ। आप उसी पिशाचिनी बृहन्नला के वश में रहे। और अब भी क्या वही बृहन्नला-प्रेतनी आप पर चढ़ी बैठी है? क्यों बार-बार ललाट का स्वेद पोंछ रहे हैं आर्यपुत्र? इस मिथ्या साधुत्व, दया, उदारता एवं अग्रज के प्रति आदर के ढोंग के पीछे वास्तव में आप अपनी स्वाभाविक कायरता ही छिपा रहे हैं- यह तथ्य उजागर हो गया है। किन्तु आप क्षत्रियत्व से मुख मोड़ लें- मैं नहीं मोड़ सकती। और मेरे हृदय में सतत हाहाकार मचा ही रहेगा जब तक दुर्योधन, दु:शासन, कर्ण एवं शकुनि का वध ही न हो जाये। अर्जुन बोला, एवमस्तु। यही होगा।

गुरुगम्भीर रोमांचकारी उद्घोषण हुआ। सब चौंक पड़े। वासुदेव का श्रीमुख क्रोध से तमतमा रहा था। गम्भीर उच्छवासें भरते वे भयंकर विषधर से फुफकार रहे थे। कितने धैर्य के साथ वे अब तक मौन रहे थे। कितने समय से वे पाण्डवों के दुर्बल तर्क सुन रहे थे। पाण्डवों की अतिशय दीनता, विनय, युद्धविमुखता एवं सन्त-प्रवृत्ति से वह कर्मयोगी क्षुब्ध हो उठा। एक ओर पांचाली की मर्मान्तक पीड़ा और दूसरी ओर भावशून्य, शौर्यशून्य, प्रस्तरखण्ड से ये महान् भरतवंशी। क्रोधप्रकम्पित श्रीकृष्ण अग्निदेवता- सम भभक उठे और बोले, यही होगा कृष्णे। यही घटित होनेवाला है। एक सती के शाप से ही समूचा कुरुवंश भस्म हो जाएगा। बहुत हो गया। चन्द्रवंशियों ने सदा नारी का निरादर किया है। सदा अपमानित किया है- सदा प्रताड़ित किया है। ययातिपुत्री माधवी से लेकर अब तक क्या किया है। काशीराज की तीनों पुत्रियों- अम्बा, अम्बालिका एवं अम्बिका के साथ क्या किया गया था? उनके स्वयंवर के मध्य से गंगानन्दन भीष्म उन्हें बलपूर्वक अपहरण कर लाये थे। वे अपने मन का वर नहीं चयन कर पायीं। अम्बा शाल्व के प्रति अनुरक्त थी तो भी भीष्म उसे अपने भाई विचित्रवीर्य के लिए अन्यायपूर्वक उठा ले आये और अन्तत: अम्बा ने आत्महत्या करके कष्टों से मुक्ति पायीं। और क्या किया इन्हीं शान्तनुनन्दन भीष्म ने? अम्बालिका एवं अम्बिका का बलपूर्वक विवाह कराया विचित्रवीर्य से और शीघ्र ही उन नवलतिकाओं को वैधव्यरूपी विष भी पान करा दिया। यही नहीं, वंश चल सके इस हेतु भीष्म पितामह ने अपनी माता सत्यवती के साथ मिलकर इन दोनों सुशील, धर्मशीला, काशीराजपुत्रियों की इच्छा के विरुद्ध उन्हें महर्षि वेदव्यास से पुत्रोत्पत्ति करने को बाध्य किया। वे दोनों सुकुमार रमणियाँ महर्षि के भयंकर स्वरूप से आतंकित हो उठीं। एक ने भय से नेत्र मूँद लिये। धृतराष्ट्र का जन्म हुआ। दूसरी भय से पीली पड़ गयी- पाण्डु का जन्म हुआ। किन्तु इस पर भी सन्तोष नहीं हुआ। पुन: अम्बालिका को उद्यत किया किन्तु तब वह पुनीतमना वितृष्णा एवं घृणा से भर उठी, उसने अपनी दासी को भेज दिया महर्षि के पास। उसीसे विदुर का जन्म हुआ।

इन्होंने सदा राजधर्म का, संविधान का भी उल्लंघन किया। नीति का उल्लंघन किया। महाराज शान्तनु ने वासना के वशीभूत होकर अपने ज्येष्ठ पुत्र देवव्रत को राजसिंहासन से अन्यायपूर्वक वंचित किया ताकि सत्यवती के पुत्र राजसिंहासन पर बैठ सकें। देवव्रत महान् निकले जिन्होंने भीष्मप्रतिज्ञा भी की और उसका पालन भी किया। किन्तु पुन: अब ज्येष्ठ राजपुत्र युधिष्ठिर को राजसिंहासन से अन्यायपूर्वक, अवैधानिक ढंग से वंचित किया गया है ताकि कनिष्ठ राजपुत्रों को राजमुकुट उपलब्ध हो सके। अन्त है कहीं इनकी अनैतिकता, धर्मविहीनता, अवैधानिकता का? इनकी सिद्धान्तहीनता का?

इसी प्रकार अम्बा, अम्बालिका एवं अम्बिका के प्रति किये दारुण अन्याय से भी जब इन चन्द्रवंशियों का हृदय शीतल

नहीं हुआ तब द्रुपदनन्दिनी का भरी सभा में निर्लज्जतापूर्वक अपमान किया। इनके हाथों में नारी हृदय सदा छटपटाता रहा, नारी की आत्मा सदा प्रताड़ित रही, पीड़ित रही। नारी को इनके कुल में सदा हाहाकार करना पड़ा, सदा तिरस्कार सहना पड़ा। उपस्थित जन। नारी की हा हा खा जाएगी इस कुरुकुल को। भस्म कर डालेगी। अरण्य की अपार शोभा में द्रौपदी तो जैसे खो ही गई याद ही नहीं रहा कि वह राजनन्दिनी द्रौपदी हैं, इंद्रप्रस्थ की महारानी कृष्णा हैं, पंच पांडवों की पांचाली है। मन का सारा दु:ख दर्द, अवसाद-अफसोस सब धो दिया था पवित्र प्रकृति ने। और द्रौपदी मंत्रमुग्ध सी उस प्रकृति में खो गई थी। जयद्रथ ने बलात् वन में पानी भरने के लिए गयी हुई द्रौपदी का अपहरण किया।

यह केवल द्रुपदसुता का अपमान नहीं, सम्पूर्ण नारीजाति का अपमान है। केशकर्षण, इन धृष्ट, धर्महीन पुरुषों ने केवल पांचाली का नहीं किया- समूची मातृजाति का किया है।

कृष्ण बोले, मैंने सदा निर्बल का, प्रताड़ित का, शोषित और पीड़ित का पक्ष लिया है। मैंने नारी को गौरवमण्डित किया है। महिमामण्डित किया है। स्मरण रखें- जहाँ नारी प्रतिष्ठित है, पूज्य है, वहीं सुख, समृद्धि, शान्ति एवं विकास है। वहीं देवताओं का वास है। और क्या हुआ इस कुल में? नारी को पण्य बनाया गया। हा धर्मराज। यह तुमने क्या किया? कृष्ण के नेत्रों में क्षोभ और विषाद के अश्रु थे। कण्ठ करुणा से अवरुद्ध हो गया।

वहाँ शान्ति ऐसी छायी हुई थी कि जैसे कोई श्वास भी न ले रहा हो। कृष्ण फिर बोले, मैं नारी के सम्मान की पुन:स्थापना करूँगा। शरणागत की रक्षा का दायित्व मेरा है। जब कौरवसभा में चीरहरण की कुचेष्टा हो रही थी, तब कर्ण ने विकर्ण से कहा था, पीछे की बातें भूल गए? इसी याज्ञसेनी के कारण एक दिन सब राजकुमार अपमानित और परास्त नहीं हुए? आज इतना दर्द क्यों? युधिष्ठिर का द्रौपदी पर जितना अधिकार है उतने में उसे दांव पर रखने में कोई अन्याय नहीं फिर तुम सोचते हो कि नारी की लांछना अन्याय और धर्मविरोधी है, तो सोचो इस नारी ने न्याय और धर्म का विरोध नहीं किया? स्वयंवर की शर्त थी लक्ष्यभेद, अर्थात् पौरुष, शौर्य और सामर्थ्य। वहां जाति, जन्म, इतिहास और वंश परिचय के प्रश्न क्यों उठे? वह अन्याय और धर्म रहित न था? यदि फाल्गुनी ही उनके अभीष्ट थे, स्वयंवर का प्रहसन करने की क्या जरूरत थी? सारे राजपरिवार को लांछित क्यों किया गया? अन्तिम बात है नारी का सतीत्व, संकोच, लाज, शालीनता। देवताओं ने भी एक नारी के लिए एक पुरुष का विधान किया था, पर इन्होंने पंचपति वरण कर अपनी लज्जा, संकोच और नारीत्व को जलांजलि दे दी। पति के प्रिय सखा गोविन्द के साथ फिर अभेद प्रीत। सुना है कि उस प्रीत की कोई पार्थिव संज्ञा नहीं वह अपार्थिव, स्वर्गीय बताते हैं। अत: जो नारी पंचपतियों के अलावा अन्य पुरुष की भी प्रिय है, उसे इस सभा में विवसना करने में कोई अधर्म या अन्याय नहीं। क्योंकि हमने पांडवों का सारा राज्य, धन, संपत्ति जीत ली है। अपने किसी परिधान पर भी उनका अधिकार नहीं। पहले पंच पांडवों को विवस्त्र करो- फिर याज्ञसेनी के उचित सम्मान की व्यवस्था हो। द्रौपदी स्तब्ध बनी सुनती रही। विचारवान, ज्ञानी, गुणी, महान, सुन्दर, सुदर्शन पुरुष, कुंती के परमप्रिय धर्मपुत्र कर्ण का इतने दिनों का अवदमित अपमान उफन कर बाहर आ रहा था। ऐसी भाषा कर्ण ही बोल सकते हैं? फिर द्रौपदी के लिए? जिसे वे कभी चाहते थे। मन ही मन जिसकी पूजा करते हैं? कृष्णा ने तुम लोगों से आशा छोड़, दोनों हाथ जोड़, कातर होकर गोविन्द-गोविन्द पुकारा था। तब मैं सुदूर द्वारकापुरी में था। किन्तु तब से कृष्णा की उस कातर पुकार का ऋण मेरे ऊपर बढ़ता ही जा रहा है। अब जब तक उन अधर्मियों को नष्ट न कर दूँ, इस ऋण-भार से मुक्त न हो सकूँगा।

कृष्णे। तू व्यथित न हो। शंख क्या स्वयं कभी उद्घोष करता है? प्रत्यंचा क्या स्वयमेव टकराती है? तीर क्या स्वयं छूट सकते हैं? काष्ठ क्या स्वयं प्रज्ज्वलित हो उठता है? वीरांगने। इन भरतवंशियों को चाहिए कोई ओजस्वी स्वर, कोई प्रखर वाणी

जो ऐसे ही ललकार-ललकारकर इनसे शंखनाद करा दे। शर-वर्षा करा दे। टंकार करवा दे। हुंकार भरवा दे। और इन भारतों में प्राण फूँकनेवाली संजीवनी तू ही है। तेरी सहनशीलता, धैर्य, तेरा ओज, शौर्य-सब श्रेष्ठ है। तू महान् है भारती। यदि तेरे दु:ख और कष्टों से भी इनमें वीरता का संचार नहीं होता, यदि तेरे प्रखर सुतीक्ष्ण वाक्बाणों से भी ये उत्तेजित नहीं हो उठते तो अपनी सत्यवादिता खुले मन से स्वीकार कर लेना चाहिए। पाण्डुनन्दनों। लोग कहते है कृष्ण तुम्हारी ख्याति तो अकारण ही, संयोगवश ही लोक में फैल गयी है। किन्तु तुम्हारे उपासक, तुम्हारे पूजक, तुम्हारे सखा एवं अनुयायी तो षण्ढ हैं नपुंसक हैं। क्यों, सुना था न दुर्योधन का यह सन्देश मेरे नाम अर्जुन? बोलो वृकोदर। तुम लोग क्या सोचते हो कि उन अधर्मियों के मुख से अपने तेजस्वी सखाओं की यह प्रशंसा सुनकर मेरा हृदय प्रसन्नता से गद्गद हो उठा होगा? यदि ये पुरुषत्व से हीन ही हैं, तो भी कृष्णे। मैं हूँ। जो मेरी शरण आया, उसका मैं संकटमोचन करता हूँ, और करूँगा। अभी तक तुझ दु:खविह्वला को तेरे पतियों के पुरुषार्थ की परीक्षा लेने हेतु इनके अवलम्ब पर छोड़ दिया था।

किन्तु अब नहीं। अब समय आ गया है। मैं जानना चाहता हूँ स्पष्ट, कि क्या वास्तव में मेरे पूजक, मेरे प्रिय सखा षण्ढ ही हैं? क्या अभी भी तुम्हारे शस्त्र शमी वृक्ष में रखे रहेंगे? वृकोदर। कहाँ है तुम्हारा गदा? पार्थ।

अर्जुन बोला, नहीं दशार्हकुलभूषण। बातों से उत्तर वे ही देते हैं जो और किसी प्रकार नहीं दे सकते। वे क्लीब होते हैं। इन पापियों की गर्ववाणी का उत्तर, आपकी आज्ञा पाते ही, मैं गाण्डीव द्वारा दूँगा।

श्रीकृष्ण की दोनों आजानुबाहुएँ हर्ष व प्रशंसा से विस्तार में फैल गयीं। और बोले, साधु-साधु। तुम्हारा नाम सार्थक हुआ अर्जुन। तुमने ज्ञान अर्जित किया। अब अपने अन्य नामों को भी सार्थक करो सव्यसाची। गाण्डीव सँभालो। वृकोदर, उठो। बहुत विश्राम दे दिया अपनी महाबली काया को। भीम तुरन्त हुंकार भरके उठ खड़े हुए। रक्तनयन अर्जुन का हाथ पहुँच गया गाण्डीव धारण करनेवाले स्कन्ध-चिन्ह पर। नकुल-सहदेव में नवशक्ति का स्फुरण हुआ जैसे, नवस्फूर्ति से वे तत्काल उठ खड़े हुए। श्रीकृष्ण हेमजाल आच्छादित अपने पांचजन्य महाशंख के मुख को करतल से ठोक रहे थे- फूँकने को तत्पर। और सबके मध्य-गहन, रूखी केशराशि बिखराये साक्षात् रणचण्डी कालिका बनी खड़ी थी लोहितनयना याज्ञसेनी- गाण्डीव की प्रत्यंचा सी तनी हुई। भीम के गदा की लौहशक्ति-सी वह लौहनारी। वासुदेव के पांचजन्य के रोमहर्षक विराट उद्घोष-सी-लौहभारती। महाभारती। इस तरह कृष्ण ने सबको उत्तेजित कर पाण्डवों को युद्ध के लिय तैयार कर लिया।

## २५) दुर्योधन का पितामह भीष्म को अपनी सेना का प्रधान सेनापति बनाना

जनमेजयने कहा, मुनिवर। जब दुर्योधनको मालूम हुआ कि महाराज युधिष्ठिर युद्ध करनेके लिये सेनासहित कुरुक्षेत्रमें आ रहे हैं तो उसने क्या किया? कुरुक्षेत्रमें कौरव और पाण्डवोंने जो-जो कर्म किये थे, उन्हें मैं विस्तारसे सुनना चाहता हूँ।

वैशम्पायन बोले जनमेजय। श्रीकृष्णके चले जानेपर राजा दुर्योधनने कर्ण, दु:शासन और शकुनिसे कहा, कृष्ण अपने उद्देश्यमें असफल होकर ही पाण्डवोंके पास गये हैं। इसलिये वे क्रोधमें भरकर निश्चय ही उन्हें युद्धके लिये उत्तेजित करेंगे। वास्तवमें श्रीकृष्णको पाण्डवोंके साथ मेरा युद्ध होना ही अभीष्ट है तथा भीम और अर्जुन तो उन्हींके मतमें रहनेवाले हैं। युधिष्ठिर भी अधिकतर भीमके वशमें रहते हैं। इसके सिवा पहले मैंने उनका और उनके भाइयोंका तिरस्कार भी किया ही है। विराट और द्रुपदसे भी मेरा वैर है ही। वे दोनों सेनाके सञ्चालक और श्रीकृष्णके इशारेपर चलनेवाले हैं। इस प्रकार यह युद्ध बड़ा ही भयंकर और रोमाञ्चकारी होगा। अत: अब सावधानीसे युद्धकी सब सामग्री तैयार करानी चाहिये। कुरुक्षेत्रमें बहुत-से डेरे डलवाओ, जिनमें काफी अवकाश रहे और शत्रु अधिकार न कर सकें। उनके पास जल की व्यवस्था होनी

चाहिये। उनमें ऐसे रास्ते रहने चाहिये, जिनसे जानेवाली वस्तुओंको शत्रु रोक न सकें तथा उनके आसपास ऊँची बाड़ बना देनी चाहिये। उनमें तरह-तरहके हथियार रखवा दो तथा अनेकों ध्वजा-पताकाएँ लगवा दो और अब देरी न करके आज ही घोषणा करा दो कि कल सेनाका कूच होगा। तब उन तीनोंने जो आज्ञा ऐसा कहकर बड़े उत्साहसे दूसरे ही दिन समस्त राजाओंके ठहरनेके लिये शिबिर तैयार करा दिये। दुर्योधन रातभर सोचता रहा।

दूसरे दिन प्रात:काल कर्ण दुर्योधन के कक्ष में आता है। शकुनि वहां बैठा है। कर्ण आकर प्रणाम करता है मामाश्री। शकुनि चिन्ता ग्रस्त है। कर्ण बोला, मामाश्री आपके मुख मंडल पर विश्वास का प्रकाश हुआ करता था वो कहां चला गया। दुर्योधन बोला, मामाश्री ने उसकी सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए उसे गान्धार भेज दिया है। दुर्योधन बोला, अरे मामाश्री हंसिये हंसिये। इतने वर्षों से हम जिस युद्ध की प्रतीक्षा कर रहे थे वो युद्ध सामने खडा है। शकुनि बोला, इसीलिये मैं नहीं हंस रहा भान्जे। क्योंकि अब युद्ध उस पार खडा हो तो हंसना नहीं चाहिये। सोचना चाहिये। सोचना चाहिये।

बड़ी देर के पश्चात् दुर्योधन ने अपना सिर उठाकर अपने मित्रों की ओर देखा, मेरी तो समझ में नहीं आता कि यह कृष्ण क्या करता है। शकुनि बोला, क्या करता है। अपनी तंत्रविद्या का प्रयोग करता है और सब को मूर्ख बनाता है। है कुछ भी नहीं, बस नेत्रों का भ्रम है। वह हम लोगों की दृष्टि बांध देता है। दुर्योधन ने ही पूछा, तुम्हारा क्या विचार है मित्र।

कर्ण बोला, मुझे तो यह सारा जीवन ही तंत्र-विद्या का खेल लगने लगा है। कहीं कोई किसी की दृष्टि बाँध देता है और कहीं कोई किसी की दृष्टि खोल देता है और श्रीकृष्ण जिस दक्षता से इस खेल को खेलते हैं, वह तो अद्वितीय है।

दु:शासन ने कहा, लगता है अंगराज की भी दृष्टि खुल गई है? कृष्ण को श्रीकृष्ण कह रहे हैं। किसी खेल की भी चर्चा है। यह कैसा खेल है भाई। कर्ण बोला, क्या कहूँ। कर्ण अब भी अन्यमनस्क था, कुछ कह नहीं सकता। अब तो यह सोचने लगा हूँ कि दृष्टि खुलना कहते किसको हैं। शकुनि बोला, इसे तो व्यास या शुकदेव के पास भेज दो। आज इसमें कोई आश्रमवासिनी आत्मा समा गई है।

दुर्योधन बोला, नहीं। हस्तिनापुर की सबसे सुंदर मधुबाला को कहो, कर्ण को आज छककर गंधार की सर्वश्रेष्ठ माधवी पिलाए। इसकी आँखें तभी खुलेंगी। मुझे लगता है कि आजकल इसका अपनी रानियों से कुछ अधिक ही झगड़ा हो रहा है। कर्ण उठकर खड़ा हो गया और बोला, मुझे तो लगता है कि आजकल मेरा अपने-आपसे ही झगड़ चल रहा है। अभी चलता हूँ। मन शांत होगा तो आ जाऊँगा।

दुर्योधनने उसका हाथ पकड़ लिया और बोला, अरे तुम तो रुष्ट ही हो गए। बैठो। तुमने शायद नहीं सुना। मुझे पितामह ने क्या कहा है। इस बार तो उन्होंने मेरी भी दृष्टि पूर्णत: खोल दी है। उन्होंने बताया कि उनका सारा जीवन केवल दो लक्ष्यों से प्रेरित रहा है। एक तो कुरुकुल का उच्छेद न हो और दूसरा, उसके यश का निरंतर विस्तार होता रहे। वे चाहते हैं कि मैं भी इन दो लक्ष्यों को सिद्ध करने में उनका साथ दूँ। वे यह मानते हैं कि हस्तिनापुर के राजा पांडु थे, धृतराष्ट्र नहीं। इसलिए पांडु के पुत्र ही अपने पिता की संपत्ति के उत्तराधिकारी हैं। इसलिए मुझे कलह नहीं करनी चाहिए और चुपचाप आधा राज्य पांडवों को दे देना चाहिए।

शकुनि बोला, तो इसमें नई बात क्या है। वे तो सदा ही तुम्हारी आँखें खोलने का प्रयत्न करते रहे हैं। अब तुम ही न खोलो तो वे क्या कर सकते हैं। दुर्योधन हँसा और बोला, नया यह है कि उन्होंने मुझे सारा राज्य पांडवों को देने को नहीं कहा। यदि राज्य पांडु का था और अब उसके उत्तराधिकारी पांडव ही हैं तो फिर ये लोग सारा राज्य युधिष्ठिर को दिए जाने की बात क्यों नहीं कहते? वृद्ध भीष्म की बात सुनकर महाराज ने भी मुझसे कहा कि ज्येष्ठ पुत्र यदि अहंकारी हो तो उसे

राज्य की प्राप्ति नहीं होती। उन्होंने मुझे बताया कि देवापि और बाह्लीक दोनों ही शांतनु से बड़े थे, किंतु अनेक कारणों से राज्य उनको न मिलकर शांतनु को मिला। उसी प्रकार पिताश्री भी अंगहीन थे, इसलिए राज्य उनको नहीं दिया गया, उनसे छोटे पांडु को दिया गया। अत: अब पांडु के पश्चात् राज्य के उत्तराधिकारी उसके पुत्र हैं। पिताश्री तो राज्य के अधिकारी थे ही नहीं, तो फिर उनका पुत्र होकर मैं स्वयं को राज्य का उत्तराधिकारी कैसे समझता हूँ। जो राजा का पुत्र नहीं है, वह उसके राज्य का अधिकारी कैसे हो सकता है। अत: मैं पराये धन का अपहरण करना चाहता हूँ। युधिष्ठिर राजा का बेटा है, इसलिए न्यायत: प्राप्त हुए राज्य पर उसी का अधिकार है। अत: मैं सारा नहीं तो आधा राज्य पांडवों को दे दूँ। अन्यथा मैं अपने साथ-साथ अपने छोटे भाइयों की मृत्यु का कारण बनूँगा।

शकुनि जैसे अपने आपसे पूछ रहा था, क्या हो गया है महाराज को?

दुर्योधन बोला, कुछ नहीं। डर गए हैं। पांडवों की शक्ति के वर्णन से डर गए हैं। कृष्ण के जादू-टोने से डर गए हैं। सारा जीवन, उन्होंने विलास का सेवन किया है। राजसिंहासन पर बैठे हैं और आदेश दिए हैं। न युद्ध किया है, न रक्त बहाया है। भोग किया है किंतु कभी उसका मूल्य नहीं चुकाया है उन्होंने। इसलिए अब भयभीत हैं। उन्हें लगता है कि उनके सारे पुत्र मारे जाएँगे और यह राज्य भी उनसे छिन जाएगा। कौन जाने उनके अंतिम दिन कारागार में कटें, उग्रसेन के समान। यदि युद्ध न हो तो कम से कम वे राजसिंहासन पर तो बैठे रहेंगे। यदि मन में इतना ही सत्य और धर्म होता और वे सच्चे मन से मान रहे होते कि राज्य पांडु का है तो क्यों अब तक बैठे हुए थे उस सिंहासन पर? क्यों पांडवों को वन भेज रखा था। बैठा देते उन्हें सिंहासन पर और स्वयं उनके स्थान पर वन चले जाते। अपना सारा जीवन तो सिंहासन पर बैठ कर व्यतीत किया, अब मेरी बारी आई है तो उन्हें स्मरण हो आया है कि राज्य पांडु का था।

शकुनि को लगा कि दुर्योधन सर्वथा सत्य कह रहा है। नहीं तो गांधारी वह सब कहती दुर्योधन से। शकुनि ने स्वयं उसे कहते सुना था कि वस्तुत: हस्तिनापुर का राज्य पांडु का ही था और उसी के पुत्र उसके उत्तराधिकारी हो सकते थे। उसने तो यहाँ तक कह दिया था कि पूर्वजों के जीवित रहते और किसी का राज्य पर अधिकार ही कैसे हो सकता है। भीष्म के जीवित होते हुए, सिंहासन पर धृतराष्ट्र का कोई अधिकार नहीं है तो भीष्म, धृतराष्ट्र, विदुर और युधिष्ठिर के जीवित रहते हुए, दुर्योधन कैसे हस्तिनापुर के राजसिंहासन पर बैठने की कल्पना कर सकता है।

हाँ। गांधारी भी डर गई थी। शकुनि सोच रहा था... अपनी मृत्यु से नहीं। अपने पुत्रों की मृत्यु से। पुत्र-मोह में भी कितनी शक्ति है। शकुनि ने तो अपना सारा जीवन हस्तिनापुर में व्यतीत कर दिया था कि किसी प्रकार कुरुवंश समूल नष्ट हो और वह अपना प्रतिशोध ले सके और उसकी बहन आज उसी कुरुवंश को जीवित रखने के लिए हस्तिनापुर का सिंहासन भी छोड़ना चाहती है। पुत्रों से बहुत मोह हो गया है उसको। कुरुवंश को अपना वंश मानने लगी है। भूल गई गांधारों के अपमान को। शकुनि ने पूछा, तो दुर्योधन। अब करना क्या है? दुर्योधन बोला, करना क्या है। बघारने दो धर्म इन सबको। हमारी सेना प्रस्तुत है। युद्धक्षेत्र की ओर प्रयाण करो। मेरा तो विचार है कि पांडवों को उपप्लव्य से चलने ही नहीं देना चाहिए। हमें उनके चलने से पहले ही उपप्लव्य पर आक्रमण कर देना चाहिए। कर्ण बोला, नहीं। राजा दुर्योधन। तुम भूल रहे हो कि तुम पांडवों पर आक्रमण नहीं कर रहे, पांडवों के आक्रमण का प्रतिकार कर रहे हो। दुर्योधन बोला, वैसे उपप्लव्य पर आक्रमण करने में भी क्या हर्ज है। पर नहीं। हमारे कुलवृद्ध व्यर्थ ही दुखी होंगे।

वह तो है ही, उसके अतिरिक्त, उपप्लव्य में पांडव कुछ सामरिक लाभ में रहेंगे। हमें हस्तिनापुर दूर पड़ जाएगा। पीछे से सहायता और भोजन सामग्री इत्यादि ले जाने में कठिनाई होगी, जबकि वे विराट और पांचाल दोनों के ही निकट पड़ेंगे।

दुर्योधन बोला, तो ठीक है पांडव उपप्लव्य से चलेंगे, तो उन्हें हस्तिनापुर तक नहीं आने देना है। उन्हें मार्ग में ही कहीं रोक लेना है। कहाँ उचित होगा कर्ण? कर्ण ने कहा, कुरुक्षेत्र। उन्हें उससे आगे मत आने दो। हस्तिनापुर के द्वार पर युद्ध क्यों हो? वैसे भी वहाँ सेनाओं के रुकने के लिए पर्याप्त स्थान और सुविधा है। स्कंधावार निर्माण के लिए उपयुक्त भूमि है, सैनिकों के लिए जल उपलब्ध है। सुरक्षित अस्थायी दुर्गों का निर्माण हो सकता है। पांडव यदि कुरुक्षेत्र से आगे बढ़ आए तो फिर उन्हें हस्तिनापुर तक पहुँचने से नहीं रोका जा सकता।

दुर्योधन बोला, ठीक है। उपयुक्त स्थान है। दु:शासन सारे राजाओं को सूचित करो कि वे अपनी सेनाओं के साथ कुरुक्षेत्र पहुँचें। स्कंधावार निर्माण के सामान और कर्मकरों के प्रस्थान का भी आज ही प्रबंध कर दो। दु:शासन बोला, वह तो हो जाएगा। पर अपने प्रधान सेनापति के विषय में भी क्या कुछ निश्चित किया है? किसका अभिषेक करेंगे, इस पद पर? शकुनि बोला, भरी सभा में उस वासुदेव कृष्ण ने जो चमत्कार दिखाया था उसके प्रभाव के विषय में सोचो। उस मायावी ने उस दिन न जाने कितनी ही आत्माओं की आयु में अपनी भक्ति के दीपक जला दिये होंगे। यह जो श्रद्धा होती है न भान्जे वो एक अचूक अस्त्र है और कवच भी है। इससे सदैव सावधान रहना चाहिये। तुम्हारे न जाने कितने ही काठ के यौद्धाओं को उसकी माया दीपक की भांति चाट चुकी है अब तक और यदि चाट नहीं चुकी तो चाट रही होगी। इसलिये अपने महारथियों को कसकर पडकने का प्रयत्न करो भान्जे और एक एक से पूछो कि वो तुम्हारे पक्ष में युद्ध करेगा या नहीं। मुझसे पूछो इस महारथी अंगराज से पूछो? कर्ण बोला, क्या मुझसे भी मामाश्री। शकुनि बोले, मैं तो अपने से भी पूछने को कह रहा हूं। आज निष्ठायें बड़े दबाव में है अंगराज। कर्ण बोला, जो निष्ठा दबाव में आ जाये मामाश्री वो निष्ठा नहीं केवल निष्ठा का भ्रम है। मैं एक धनुर्धर हूं जिस लक्ष्य भेदन का संकल्प कर लिया सो कर लिया। मेरा लक्ष्य अर्जुन वध था अर्जुन वध है और अर्जुन वध रहेगा। आप अपने आप से पूछिये। शकुनि बोला, यदि चीता अपना रूप बदलना भी चाहे तो भी नहीं बदल सकता अंगराज। मैं तो पांडवों को कुशल देख ही नहीं सकता। कर्ण बोला, तो फिर चिन्ता का कारण? दुर्योधन बोला, चिन्ता का कारण यह है वत्स कि हम अपनी सेना का प्रधान सेनापति किसे नियुक्त करे। कर्ण बोला, तुम किसे चाहते हो? दुर्योधन बोला, मैं तो तुम्हें चाहता हूं मित्र। और मेरे विचार से यही उचित है। शकुनि बोला, मूर्खों के सिर पर सींग नही होते। दुर्योधन बोला, मामाश्री। कर्ण बोला, मामाश्री ठीक कह रहे हैं दुर्योधन। क्षत्रिय क्या किसी सूतपुत्र को स्वीकार कर लेंगे? दुर्योधन बोला, क्या मैं क्षत्रिय नहीं हूँ? और यदि मैं तुम्हे प्रधान सेनापति स्वीकार कर सकता हूं तो फिर किसी और क्षत्रिय को तुम्हे प्रधान सेनापति स्वीकार करने में क्या आपत्ति हो सकती है? शकुनि बोला, ये युद्ध जीतने के लक्षण नहीं है भान्जे दुर्योधन। दुर्योधन थोड़ी देर मौन रहा और फिर बोला, मैं जिस पर विश्वास करता हूँ, उसे सेनापति बना दूँ तो भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा के विषय में सोचना पड़ेगा कि वे क्या करेंगे। भीष्म यह युद्ध ही नहीं चाहते। सहस्त्रों बार समझाया कि द्रुपद की सेनाएँ कुरुओं पर आक्रमण कर रही हैं, पर उनकी बुद्धि में कुछ समाए तब न। मुझे लगता है कि इन वृद्धों की बुद्धि मूढ़ता की स्थिति तक पहुंच गई है। दु:शासन ने पूछा, और द्रोण?

कहाँ तो मैं समझ रहा था कि द्रोण द्रुपद से लड़ने को आतुर होंगे और कहाँ वे मुझे उपदेश दे रहे थे कि पांडु ने यह राज्य धृतराष्ट्र और विदुर को धरोहर के रूप में सौंपा था। सत्यप्रतिज्ञ विदुर तो कोष को सँभालने, दान देने, भृत्य वर्ग की देखभाल करने तथा सब के भरण-पोषण के कार्य में संलग्न रहे और भीष्म संधि-विग्रह के कार्य में व्यस्त हो, राजाओं से सेवा और कर प्राप्त करते रहे। इसलिए उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया कि कैसे धृतराष्ट्र ने राज्य पर आधिपत्य जमा लिया और

अब तुम उसके उत्तराधिकारी बन बैठे हो। मैं तुमसे आजीविका नहीं पाना चाहता हूँ। मैं भीष्म का दिया हुआ पाना चाहता हूँ, तुम्हारा दिया नहीं। जहाँ भीष्म हैं, वहीं द्रोण हैं। इसलिए भीष्म जो कहते हैं, उसी का पालन करो।

शकुनि बोला, तो द्रोण को सेनापति बनाना भी सुरक्षित नहीं है। दु:शासन बोला, वह पांडवों से जा मिलेगा। अर्जुन उसका प्रिय शिष्य है। दुर्योधन मुस्कराया और बोला, वहाँ उस आचार्य के स्वागत के लिए द्रुपद, धृष्टद्युम्न और शिखंडी बैठे हैं। दुर्योधन ने रुककर अपने मित्रों की ओर देखा, ये हमें उपदेश देते हैं, अपने विषय में नहीं सोचते। अपने-अपने पापों के कारण इनके भी हाथ-पाँव बँधे हैं। मैं जानता हूँ कि उनके पास भी कोई विकल्प नहीं है, किंतु मैं उन लोगों को रुष्ट नहीं करना चाहता, क्योंकि यदि कोई लड़ना नहीं चाहेगा तो वह तीर्थाटन के बहाने से चल देगा। वन में तपस्या करने बैठ जाएगा। शकुनि बोला, और कोई जाए तो जाए, किंतु द्रोण अब वन में नहीं रह सकते। उन्हें तो राजाश्रय चाहिए ही।

दुर्योधन बोला, ठीक है। मैं उनकी बात नहीं मानूँगा। पांडवों को राज्य नहीं दूँगा, पर इससे आगे बढ़कर उन दोनों वृद्धों को रुष्ट नहीं करूँगा। जहाँ तक संभव है, प्रयत्न करूँगा कि वे युद्ध करें और हमारे पक्ष से करें। उसके लिए कुछ विनम्र होना पड़े तो वह भी कर लूँगा। पितामह को मनाना आवश्यक है। द्रोण तो वहीं होंगे, जहाँ भीष्म हैं। दुर्वासा को भी तो मनाया ही था मैंने। सोच लूँगा कि एक बार फिर से वही उद्योग कर रहा हूँ।

दु:शासन बोले, पर अंगराज कर्ण को क्या हुआ है? कहीं ये प्रधान सेनापति न बनाए जाने के कारण तो रुष्ट नहीं है? कर्ण ने हँसने का प्रयत्न किया और बोले, नहीं। मैं तो अभी कृष्ण में ही उलझा हूँ। उन्होंने क्या किया कि हस्तिनापुर के सारे कुलवृद्ध एक ही वाणी बोलने लगे और सब ने युवराज को राज्य पांडवों को दे देने का उपदेश दे दिया। तुम्हें नहीं लगता कि कृष्ण का वह प्रचंड रूप देखकर कोई भी डर सकता है। वस्तुत: उन्होंने सारे हस्तिनापुर को डरा दिया है। दुर्योधन निर्भीक स्वर में बोला, मैं तो नहीं डरा। यदि मैं डर गया होता तो मैं उसे बंदी करने की बात कैसे सोचता? कर्ण बोला, तुम डरे नहीं, क्योंकि तुम अचेत हो गए थे। तुमने देखा ही नहीं कि कृष्ण का क्रोध कैसा था। दुर्योधन बोला, अरे, एक मनुष्य का क्रोध हो ही कैसा सकता है? भीम से अधिक भयंकर था क्या वह? दु:शासन बोला, हाँ युवराज। भीम क्रुद्ध होता है तो लगता है कि एक व्यक्ति क्रुद्ध हुआ है, कृष्ण क्रुद्ध होता है तो लगता है कि प्रकृति ही क्रुद्ध हो गई है। भीम का क्रोध आँखें देखती हैं और शरीर डरता है, कृष्ण का क्रोध तो मन देखता है और आत्मा डर जाती है। उसके हाथ में सुदर्शन देख लूँ तो कदाचित् भाग ही जाऊँ। पर उसने तो युद्ध में शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा की है न। इसलिए पलायन की कोई संभावना नहीं है।

कर्ण हँसा और बोला, होना क्या है। जीवन में न जाने कब किसकी आँख खुल जाए और उसकी समझ में आए कि उसने जब अपने जीवन की दिशा निश्चित की थी, तब वह कितना अज्ञानी था। पर जीवन जी चुकने के पश्चात् न तो अपनी की जा चुकी यात्रा में संशोधन किया जा सकता है, न उसे फिर से आरंभ किया जा सकता है।

दुर्योधन उसकी ओर देखता रहा और सोचता रहा। क्या यह अपनी पत्नी से इतना दु:खी है कि सोच रहा है कि उससे विवाह ही न किया होता तो यह अधिक सुखी रहता? यही जीवन पुन: एक बार जीने को मिले और फिर से विवाह करने का अवसर आए तो यह वृषाली से विवाह नहीं करेगा? संभव है, यह झगड़ा वृषाली से न हो, किसी और पत्नी अथवा उपपत्नी से हो। पर वह इस चिंता को छोड़ क्यों नहीं देता? जो पत्नी अधिक प्रिय हो, उसके साथ समय बिताए। जो अप्रिय लगने लगी हो, उससे दूर रहे। न जाए उसके पास। कोई भी प्रिय न लगती हो तो और विवाह कर ले। पत्नियों से न पटती हो तो गणिकाएँ हैं, रक्षिताएँ हैं, दासियाँ हैं। इसमें इस प्रकार मेढ़क का सा चेहरा बनाए रखने की क्या आवश्यकता है।

दुर्योधन ने उसे समझाने का प्रयत्न किया और बोला, तुम अपनी पत्नीयों की चिंता छोड़कर युद्ध के विषय में क्यों नहीं

सोचते? पत्नियों का महत्व मैं समझता हूँ, किंतु युद्ध उससे अधिक महत्वपूर्ण है।

कर्ण कुछ अटपटा कर बोला, कौन-सी पत्नियाँ? किंतु वह तत्काल ही दुर्योधन की बात समझ गया। अच्छा है कि यह वही मानता रहे, उसने सोचा और बोला, युद्ध की ही बात सोचता हूँ। जीवन भी तो एक संग्राम ही है। युद्ध के शस्त्रों और व्यूहों के विषय में मनुष्य सोचता है तो जीवन के शस्त्रों और व्यूहों के विषय में भी सोचना पड़ता है। ठीक कहते हो मित्र। बड़ी समस्या तो पांडवों से मुक्ति की है, पत्नियों का क्या है। जब तक नहीं मिलती, तब तक पुरुष उसे पाने के लिए तड़पता है। मिल जाए तो उससे मुक्त होने को व्यग्र रहता है। हम पांडवों को पाने को तो नहीं तड़पे थे। वे ही बार-बार आकर हमारे कंठ में लटक जाते हैं। उनसे तो मुक्ति ही चाहिए।

दुर्योधन रातभर व्याकुल रहा। उसे नींद नहीं आ रही थी। मन में जैसे विचारों की सेनाएँ एक-दूसरे के विरुद्ध व्यूहबद्ध हो रही थीं। यह सत्य था कि उसने बहुत बड़ी संख्या में राजा और उनकी सेनाओं को एकत्रित कर लिया था। उसके पास ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी और पांडवों के पास केवल सात अक्षौहिणी। यदि संख्या का कोई भी महत्त्व था तो यह युद्ध वह जीत ही चुका था; किंतु केवल संख्या के बल पर वह इतना आश्वस्त नहीं हो सकता था। विराटनगर में गोहरण के समय उसके पास कितनी सेना और महारथी थे और अर्जुन अकेला था, फिर भी अर्जुन विराट की गौवें लौटा ले गया था। घोषयात्रा के समय भी उसके पास योद्धाओं की कमी नहीं थी। महत्व तो सेनानायकों का है। उत्तम व्यूह रचना होनी चाहिए। सेना का श्रेष्ठ नेतृत्व होना चाहिए। व्यक्तिगत शौर्य का बहुत महत्व हैं, किंतु सेना को बिखरने से भी तो बचाना होगा। उसका सबसे विश्वसनीय योद्धा कर्ण है; किंतु पितामह और आचार्य दोनों ही कर्ण के विरुद्ध व्यूहबद्ध हो जाएँगे। वे कर्ण के नेतृत्व में युद्ध करना स्वीकार नहीं करेंगे और दुर्योधन न पितामह को छोड़ सकता है, न आचार्य को। तो क्या कर्ण उनके सेनापतित्व में युद्ध कर लेगा?

रात निकल जानेपर जब प्रात:काल हुआ तो राजा दुर्योधनने अपनी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका विभाग किया। उसने पैदल, हाथी, रथ और घुड़सवार सेनामेंसे उत्तम, मध्यम और निकृष्ट श्रेणियोंको अलग-अलग करके उन्हें यथास्थान नियुक्त कर दिया। वे सब वीर अनुकर्ष (रथकी मरम्मतके लिये उसके नीचे बँधा हुआ काष्ठ), तरकस, वरूथ (रथको ढकनेका बाघ आदिका चमड़ा), उपासङ्ग (जिन्हें हाथी या घोड़े उठा सकें, ऐसे तरकस), शक्ति, निषङ्ग (पैदलोंद्वारा ले जाये जानेवाले तरकस), ऋष्टि (एक प्रकारकी लोहेकी लाठी), ध्वजा, पताका, धनुष-बाण, तरह-तरहकी रस्सियाँ, पाश, बिस्तर, कचग्रहविक्षेप (बाल पकड़कर गिरानेका यन्त्र), तेल, गुड़, बालू, विषधर सर्पोंके घड़े, रालका चूरा, घण्टफलक (घुँघरुओंवाली ढाल), खड्गादि लोहेके शस्त्र, औंटा हुआ गुड़का पानी, ढेले, साल, भिन्दिपाल (गोफियाँ), मोम चुपड़े हुए मुगदर, काँटोंवाली लाठियाँ, हल, विष लगे हुए बाण, सूप तथा टोकरियाँ, दराँत, अमुश, तोमर, काँटेदार, कवच, वृक्षादन (लोहेके काँटे या कील आदि), बाघ और गैंडेके चमड़ेसे मढ़े हुए रथ, सींग, प्रास, कुठार, कुदाल, तेलमें भीगे हुए रेशमी वस्त्र, घी तथा युद्धकी अन्यान्य सामग्रियाँ लिये हुए थे। सब रथोंमें चार-चार घोड़े जुते हुए थे और बाण रक्खे गये थे। उनपर एक-एक सारथी और दो-दो चक्ररक्षक थे। वे दोनों ही उत्तम रथी और अश्वविद्यामें कुशल थे। जिस प्रकार रथ सजाये गये थे, वैसे ही हाथियोंको भी सुसज्जित किया गया था। उनमेंसे दो पुरुष अमुश लेकर महावतका काम करते थे। दो धनुर्धर योद्धा थे, दो खड्गधारी थे तथा एक शक्ति और त्रिशूलधारी था। इसी प्रकार अच्छी तरहसे सजाये हुए लाखों घोड़े और सहस्त्रों पैदल भी उस सेनामें चल रहे थे।

फिर राजा दुर्योधनने अच्छी तरहसे जाँचकर विशेष बुद्धिमान और शूरवीर पुरुषोंको सेनापतिके पदपर नियुक्त किया।

उसने कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, शल्य, जयद्रथ, सुदक्षिण, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, शकुनि और बाह्लीक इन ग्यारह वीरोंको एक-एक अक्षौहिणी सेनाका नायक बनाया। वह प्रतिदिन उनका बार-बार सत्कार करता रहता था।

दुर्योधन के मन में अनेक दृश्य उभर रहे थे, जब कर्ण और पितामह में विवाद हुआ था। पितामह ने कर्ण की निन्दा की थी और कर्ण ने भी क्षमता भर उनका अपमान किया था। दुर्योधन अपने मन को टटोलता है तो पाता है कि उसके मन में पितामह की अपेक्षा कर्ण के प्रति अधिक सहानुभूति है; किंतु वह युद्ध के इस अवसर पर पितामह को छोड़ नहीं सकता। महाराज धृतराष्ट्र ने एक बार विदुर को हस्तिनापुर से निकाला था तो वह सीधा पांडवों के पास चला गया था। दुर्योधन ने यदि भीष्म की अवमानना की तो युधिष्ठिर के निकट खड़े दिखायी देंगे। उसे तो सबको अपने साथ रखना था। और पितामह को अपने साथ रखना था तो उन्हें सेनापतित्व सौंपना पड़ेगा। और किसी के सेनापतित्व में वे युद्ध नहीं करेंगे। पितामह सेनापति होंगे तो आचार्य को भी कोई आपत्ति नहीं होगी। वे पितामह को अपना आश्रयदाता मानते हैं। किंतु कर्ण के सेनापतित्व में तो कदाचित् आचार्य भी युद्ध न करें। पर पितामह को अपनी सेना का नियंत्रण सौंप देना उचित था क्या? वे परिस्थितिवश आज उसके साथ हैं, किंतु मन तो उनका आज भी पांडवों के ही साथ है। वस्तुत: यह सारी समस्या ही पितामह की खड़ी की हुई है। यदि उन्होंने विचित्रवीर्य के पश्चात् धृतराष्ट्र को ही हस्तिनापुर का राजा मान लिया होता, तो यह संकट क्यों खड़ा होता? पांडु के पश्चात् भी तो वर्षों राज्य किया है धृतराष्ट्र ने। तो उस समय भीष्म ने कैसे यह निर्णय कर लिया कि एक नेत्रहीन व्यक्ति राजा नहीं हो सकता। वह भूल हो ही गई थी तो जिस समय अपने पुत्रों को लेकर कुंती हस्तिनापुर आई थी, उसी समय कह देते कि ये लड़के कुंती के पुत्र हो सकते हैं, उन्हें पांडुपुत्र कैसे माना जा सकता है। भीष्म ने तत्काल उनको पांडुपुत्र मान लिया और वे राज्य के अधिकारी हो गए। आज अपनी सेना की बागडोर पितामह के हाथ सौंपकर कहीं दुर्योधन भी कोई वैसी ही भूल तो नहीं कर रहा।

पर भीष्म के जीवित रहते, उनको पृथक् कर कोई युद्ध नहीं लड़ा जा सकता। और भीष्म को अपने साथ रखना है तो उन्हें प्रधान सेनापति बनाना ही होगा। और यह यथाशीघ्र हो जाना चाहिए। विलंब घातक भी हो सकता है।

भीष्म का मन बार-बार अतीत की ओर लौट रहा था।

गवाक्ष से गंगा की धार को देखते रहे और सोचते रहे? क्या युद्ध को कोई नहीं टाल सकता?

एक नाम उनके मन में आता है- श्रीकृष्ण का। श्रीकृष्ण युद्ध टाल सकते हैं। उन्होंने टालना तो चाहा था। उन्होंने पांडवों के लिए केवल पाँच ग्राम माँगे थे। दुर्योधन ने उन्हें मना ही नहीं कर दिया, उन्हें बंदी करने का भी प्रयत्न किया। यह तो उनका अपना शौर्य था कि वे सुरक्षित निकल गए, अन्यथा दुर्योधन की ओर से तो कोई कसर नहीं थी। तो फिर श्रीकृष्ण इस युद्ध को क्यों टालना चाहेंगे। उनकी यह कम कृपा थी कि उन्होंने उसी क्षण सुदर्शन चक्र निकालकर दुर्योधन का वध नहीं कर दिया। उन्होंने तो अपनी मध्यस्थता की घोषणा करने के लिए दुर्योधन को अपनी सारी सेना दे दी और स्वयं शस्त्र न उठाने का प्रण कर लिया। पर दुर्योधन ने उनको भी बंदी करने का प्रयत्न किया। कैसी लीला है भगवान की। कैसे-कैसे लोग बनाता है वह। एक ओर अपनी मध्यस्थता प्रमाणित करने के लिए सेना और शस्त्र त्यागनेवाला वीर है और दूसरी ओर इतनी बड़ी सहायता पाकर भी उस कृष्ण को बंदी करने का प्रयत्न करनेवाला दुर्योधन। अब श्रीकृष्ण क्यों युद्ध टालना चाहेंगे?

पर इस स्थिति में भी भीष्म युद्ध रोकने की बात सोच सकते हैं? कैसे रोकेंगे युद्ध। अभी किसी भी क्षण दुर्योधन उनके पास आ सकता है। वह आकर उनसे अपनी ओर से लड़ने का निवेदन करेगा। भीष्म को तत्काल निर्णय करना होगा। वे इस युद्ध में भाग लेंगे अथवा नहीं? अस्वीकार वे कर नहीं सकते और स्वीकार वे करना नहीं चाहते। अस्वीकार कर देंगे, तो

भी युद्ध रुक जाएगा क्या? वे अपने प्रासाद में बैठे-बैठे, धृतराष्ट्र के समान अपने पुत्रों के वध के समाचार सुनते रहेंगे। धृतराष्ट्र तो केवल दुर्योधन के पक्ष को अपने पुत्रों का पक्ष समझता है। पांडवों को वह अपना शत्रु मानता हैं; किंतु भीष्म के लिए तो दोनों ही उनके पुत्रों के पक्ष हैं। वे किसी भी एक पक्ष की जय नहीं चाहते। वे तो दोनों की जय चाहते हैं। और वह तो तभी संभव है, जब युद्ध न हो।

दुर्योधन ने उन्हें बहुत उकसाया है कि पांडवों का पक्ष पांचालों का पक्ष है। पांचालों में द्रुपद हो अथवा धृष्टद्युम्न- वे दोनों ही भीष्म से प्रसन्न नहीं हैं। भीष्म ने उनके शत्रु द्रोणाचार्य को आश्रय दिया था और द्रुपद का पुत्र है शिखंडी, जो उनके वध का प्रण किए बैठा है। पांचालों का वश चले तो न भीष्म सुरक्षित हैं न द्रोणाचार्य। पर इन बातों से भीष्म को भय नहीं लगता। उन्हें पांचालों का भय होता तो वे द्रोणाचार्य को आश्रय ही क्यों देते। भीष्म को न अपनी मृत्यु का भय है, न पांचालों की जय का। वे पूर्णत: आश्वस्त हैं कि पांडवों के शस्त्र अवसर मिलने पर भी अपने पितामह का वध नहीं करेंगे। भीष्म दुर्योधन की रक्षा में खड़े होंगे, तो भी पांडव उनका वध नहीं करेंगे। पर कौरवों द्वारा कौरवों का वध होते देखा तो भीष्म स्वयं ही मर जाना चाहेंगे। वे यह युद्ध नहीं चाहते। इस युद्ध को टालना ही होगा।

यदि वे युद्ध करना अस्वीकार कर दें, तो भी दुर्योधन लड़ेगा? हां। लड़ेगा। यह द्रोणाचार्य के बल पर लड़ेगा। द्रोण के साथ कृप है, अश्वत्थामा है। वे तो लड़ेंगे ही, उधर से पांचाल जो आ रहे हैं। पर उधर अर्जुन भी तो है। द्रुपद को बाँधकर द्रोणाचार्य के चरणों में डाल देनेवाला अर्जुन ही तो था। आचार्य अपने उस शिष्य के विरुद्ध लड़ेंगे?

द्रोण लड़ें न लड़ें, दुर्योधन कर्ण के बल पर लड़ेगा। कर्ण को रोकना कठिन है। उसका तो सारा अस्तित्व ही युद्ध की संभावना पर टिका है। युद्ध का संकट जितना अधिक होगा, दुर्योधन को उसकी उतनी अधिक आवश्यकता होगी। कर्ण को युद्ध से कैसे रोका जा सकता है? दुर्योधन किसी भी प्रकार कर्ण को नहीं छोड़ेगा। कर्ण तो जैसे सृष्टि ने विनाश के लिए ही रचा है। उसकी प्रवृत्ति धर्म की ओर है ही नहीं। अन्यथा न वह दुर्योधन को युद्ध के लिए उकसाता और न दुर्योधन के लिए अपने प्राण न्यौछावर करने के लिए इतना व्याकुल होता। कर्ण पर और किसी का वश नहीं है। न उसके पिता का, न उसके भाइयों का, न उसके गुरु का। वह तो शुद्ध रूप से दुर्योधन के ही नियंत्रण में है और उसने अर्जुन के वध की प्रतिज्ञा कर रखी है।

दुर्योधन अपने मित्रों के पास बैठा और बोला, मैं पितामह को प्रधान सेनापति नियुक्त नहीं कर सकता क्योंकि वे पांडवों के शुभ चिन्तक हैं। कर्ण बोला, मित्र दुर्योधन प्रधान सेनापति बनने का अधिकार तो केवल गंगापुत्र भीष्म को ही है। शकुनि बोला, और राजनीति के साथ-साथ युद्धनीति की भी यही मांग है। कुन्ती का ऐसा कौनसा पुत्र है जो गंगापुत्र भीष्म पर बाण चला पायेगा। क्या सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर के बाणों में गंगापुत्र भीष्म की छाती भेदने की शक्ति है। नहीं। अरे आधी विजय तो उन्हे प्रधान सेनापति के नियुक्त करने के साथ-साथ ही हो जायेगी। बाकी बची आधी तो उसका प्रबन्ध करने के लिये अनेक महारथी हैं। रणभूमि में उनके ध्वज का दर्शन ही पांडवों के नैतिक पतन के लिये बहुत है और वासुदेव पुत्र भी गंगापुत्र भीष्म के विरोध में कुन्ती पुत्रों को कोई पट्टी नहीं पढा पायेगा। कर्ण बोला, यह भी तो सोचो मित्र दुर्योधन महारथियों का अहं यौद्धाओं को तो प्रणाम नहीं करता। किन्तु गंगापुत्र की बात तो और है। उन्हे तो मेरा अहं भी प्रणाम करते रहता है। यदि किसी और को प्रधान सेनापति नियुक्त कर दिया तो मित्र हमारी सेना में फूट पड सकती है। शकुनि बोला, हां दुर्योधन।

भीष्म अपने कक्ष में चिंतित हो रहे है। कृपाचार्य और द्रोणाचार्य बैठे हुये है। भीष्म बोला, हमारे मौन के नख भी अत्यन्त नुकीले हैं। लहूलूहान किये जा रहे हैं हमारे अन्त:करण को। कृपाचार्य बोले, यह मौन इसलिये है गंगापुत्र कि हमारे पास कहने योग्य कुछ नहीं रह गया। हम स्वयं से भी कुछ कहना चाहे तो क्या कहे? द्रोण बोले, और अपने अतिरिक्त कोई

सुननेवाला है कहां आचार्य? किसी गुरु के लिये इससे अधिक दुर्भाग्य का विषय और क्या हो सकता है। कि वो रणभूमि की ओर देखे तो दोनों ही ओर से उसे अपने शिष्यों के ध्वज दिखलाई दे। भीष्म बोला, यह दुर्भाग्य नहीं हो भरद्वाज पुत्र। इस परिस्थिति के उत्तरदायी हम ही हैं। हम जो इस युद्ध को नहीं रोक पाये।

विदुर आता है और बोला प्रणाम तातश्री। प्रणाम आचार्य द्रोण। प्रणाम कुलगुरु कृपाचार्य। भीष्म बोले, आओ विदुर आओ। तुम ही कुछ बोलो हम लोग तो अपने भीतर के सन्नाटे से डरे बैठे हैं। कुछ कहो विदुर। विदुर बोला, वास्तव में इस समय मैं कुछ कहने ही आया था। कृपाचार्य बोले, इनके पास तो कहने योग्य बात सदैव होती है। भीष्म बोले, क्या कहने आये थे? विदुर बोले, अब जब युद्ध की ठहर ही गई तातश्री। इसलिये मैं महामन्त्री का पद त्याग रहा हूं। द्रोण बोले, आप बहुत भाग्यशाली हैं महात्मा विदुर। कुछ त्यागने का अधिकार तो आपके पास है। विदुर बोला, त्यागने का अधिकार सबके पास होता है आचार्य वर। भीष्म बोले, किन्तु मैं क्या त्यागूं? दो-दो प्रतिज्ञाओं के जाल में जकडा हुआ यह वृद्ध क्या त्यागे? विदुर और कैसे त्यागे ? विदुर बोला, आपकी प्रतिज्ञायें आपकी समस्यायें हैं तातश्री। किन्तु उन प्रतिज्ञाओं की सीमा रेखा के बाहर खडा जो मैं देख रहा हूं वो बिल्कुल वैसा ही नहीं है जो आप देख रहे हैं। कदाचित आप अपनी प्रतिज्ञाओं के बहुत निकट खडे हैं। इसलिये सन्दर्श बिगड गया है। भीष्म बोले, मेरा सन्दर्श बिगड गया है मेरा। क्या मेरे परिक्षेप में खोट है। विदुर बोले, मैंने कदाचित कहा था तातश्री। द्रोण बोले, आप कदाचित शब्द का प्रयोग कब से करने लगे महात्मा विदुर? विदुर बोले, ये शब्द मेरी ढाल नहीं है आचार्यवर, मेरी स्थिति है। मैं पूर्ण विश्वास के साथ यह कैसे कह सकता हूं कि तातश्री अपनी प्रतिज्ञाओं में क्या देख रहे हैं? वे अवश्य अपनी प्रतिज्ञाओं के विषय में मुझसे अधिक जानते होंगे। जो वचन इन्होंने दादीश्री सत्यवती के पिता दासराज को दिया था वो तो ये पूरा कर चुके किन्तु दूसरा वचन उन्होंने हस्तिनापुर को दिया था। इन्होंने उसे सुरक्षित रखने का वचन दिया था। भीष्म बोले, इसी वचन की दलदल में तो खडा हूं महात्मा विदुर। विदुर बोले, तो क्या हस्तिनापुर की सुरक्षा इसमें नहीं है तातश्री? कि महाराज पांडवों को उनका इन्द्रप्रस्थ लौटा दे। भीष्म बोले, हां तो क्या इन्द्रप्रस्थ मेरे इस भवन की कोई पेटिका में रखा हुआ है कि उसे निकाल के पांडवों को दे दूं और फिर उनसे कहुं कि वो इन्द्रप्रस्थ चले जाये और सुख से रहे। विदुर बोले, इसका तात्पर्य यह नहीं कि उसकी सुरक्षा का वचन देने के उपरान्त आप उसकी असुरक्षा का पक्ष ले रहे हैं। जब हस्तिनापुर ढहेगा तातश्री तो उसकी धूल उड़कर आपके श्वेत वस्त्रों पर अवश्य गिरेगी। भीष्म बोले, मैं जानता हूं विदुर भलीभांति जानता हूं। परन्तु तुम यह कैसे भूल गये कि मैंने हस्तिनापुर से यह भी कहा था कि मैं उसके सिंहासन पर बैठेनवालों में अपने पिताश्री की छवि देखूंगा और उनकी सेवा करना मेरे जीवन भर का धर्म होगा। पर यह कहते समय मैं यह नहीं जानता था कि धृतराष्ट्र में मुझे अपने पिताश्री की छवि देखनी पडेगी। इसलिये अपने विवश और वृद्ध तात को छोड़कर मत जाओ पुत्र। मत जाओ। भगवान किसी यौद्धा को ऐसे युद्ध में न डाले, जिस युद्ध में भाग लेने मैं जा रहा हूं। मुझे बताओ विदुर यदि तुम मेरे स्थान पर होते तो क्या करते? विदुर बोला, मैं आप पर कोई आरोप नहीं लगा रहा हूं तातश्री किन्तु मेरे इस हृदय में जो नरक दहक रहा है उसकी आंच तो मेरे वश में नहीं है। मेरी दशा तो उस डूबते हुये व्यक्ति जैसी है जो इस आशा में चारो ओर देख रहा है कि कदाचित कोई हाथ बढे और उसे डूबने से बचाये। भीष्म बोले, तुम्हे कौन बचायेगा पुत्र? तुम्हारे चारों ओर जो लोग है वो तो स्वयं ही डूब रहे है किन्तु पुत्र तुमने जो निर्णय लिया है वह ठीक ही लिया है। जो जा सकते हैं उन्हें तो चले ही जाना चाहिये। इसलिये जाओ पुत्र। हस्तिनापुर के शव पर रोने के लिये कुलीन आंखों की एक जोडी तो रह जायेगी। किन्तु जाते जाते अपने इस हस्तिनापुर नगरी को जी भर के देख लेना। जब तुम लौटोगे तो यह नगरी तुम्हें ऐसी नहीं मिलेगी।

इतने में ही परिचारिका ने निकट आकर प्रणाम किया, पितामह। युवराज दुर्योधन आपके दर्शन करने आए हैं।

भीष्म चौंके, कैसी विचित्र बात है, वे इधर दुर्योधन के विषय में चिंतन कर रहे हैं और उधर दुर्योधन उनके विषय में ही सोच रहा होगा। भीष्म बोले, भेजो। दुर्योधन ने आकर प्रणाम किया। भीष्म ने आशीर्वाद देने के पश्चात् पूछा, कैसे आए वत्स?

दुर्योधन बोला, पितामह। युद्ध हस्तिनापुर के द्वार पर खड़ा है। अब समय नहीं है कि यह विश्लेषण किया जाए कि इसके लिए उत्तरदायी कौन है। न ही अब उसको टालने अथवा रोकने के उपाय करने का समय है। शत्रुओं से संधि हो नहीं सकती, क्योंकि उनकी जो मांग है, वह मैं पूरी कर नहीं सकता। मैंने जैसे भी पाया है, किंतु हस्तिनापुर का राज्य अब मेरा है और इंद्रप्रस्थ, हस्तिनापुर राज्य का ही अंग है। खांडवप्रस्थ के रूप में जब पांडवों को पृथक् राज्य दिया गया था, मैं तब भी कौरव राज्य के विभाजन का समर्थक नहीं था। अब संयोग से अथवा भगवान की कृपा से यदि कौरवों का राज्य अखंड हो गया है, तो मैं उसका पुनर्विभाजन नहीं होने दूंगा। कौरवों के राज्य को बाँटकर उन्हें निर्बल करने का पांचालों और मत्स्यों का षडयंत्र मैं सफल नहीं होने दूँगा। द्वार पर खड़े शत्रुओं से युद्ध तो करना ही पड़ेगा। क्षत्रिय होकर हम लोग घुटने नहीं टेक सकते। हस्तिनापुर की सेना कुरुक्षेत्र पहुँच चुकी है। आप से निवेदन करने आया हूँ कि आप हमें आश्रय दें। हमारी रक्षा करें। कौरवों के महासेनापति के रूप में आप पांचालों को रोकें।

दुर्योधन बोला, कितनी ही बड़ी सेना हो, यदि उसका कोई अध्यक्ष नहीं होता तो वह युद्धके मैदानमें आकर चींटियोंके समान तितर-बितर हो जाती है। सुना जाता है, एक बार हैहय वीरोंपर ब्राह्मणोंने चढ़ाई की थी। उस समय वैश्य और शूद्रोंने भी ब्राह्मणोंका साथ दिया था। इस प्रकार एक ओर तीनों वर्णोंके पुरुष थे और दूसरी ओर हैहय क्षत्रिय थे। जब युद्ध आरम्भ हुआ तो तीनों वर्णोंमें फूट पड़ गयी और उनकी सेना बहुत बड़ी होनेपर भी क्षत्रियोंने उसे जीत लिया। तब ब्राह्मणोंने क्षत्रियोंसे ही अपनी हारका कारण पूछा। धर्मज्ञ क्षत्रियोंने उसका कारण बताते हुए कहा, हम युद्ध करते समय एक ही परम बुद्धिमान् पुरुषकी आज्ञा मानकर लड़ते थे और तुम सब-के-सब अलग अलग अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार काम करते थे। तब ब्राह्मणोंने अपनेमेंसे एक युद्धनीतिमें कुशल शूरवीरको अपना सेनापति बनाया और क्षत्रियोंको परास्त कर दिया। इसी प्रकार जो युद्ध-सञ्चालनमें कुशल, हितकारी, निष्कपट शूरवीरको अपना सेनापति बनाते हैं, वे ही संग्राममें शत्रुओंको जीतते हैं। आप शुक्राचार्यके समान नीतिकुशल और मेरे हितैषी हैं, काल भी आपका कुछ बिगाड़ नहीं सकता तथा धर्ममें आपकी अविचल स्थिति है। अत: आप ही हमारे सेनाध्यक्ष बनें। जिस प्रकार स्वामिकार्तिकेय देवताओंके आगे रहते हैं, उसी प्रकार आप हमारे आगे चलें।

भीष्म सुन रहे थे और मन ही मन मुस्करा रहे थे। दुर्योधन यह नहीं कह रहा कि वह पांडवों से अपहृत राज्य उनको वापस नहीं करेगा क्योंकि वह स्वयं उस पर अपना आधिपत्य चाहता है। वह यह भी नहीं कह रहा कि वह पांडवों से युद्ध करना चाहता है, वह तो कौरवों के राज्य की रक्षा के लिए आक्रमणकारी पांचालों से युद्ध करने की बात कह रहा है। पांचालों से तो भीष्म को युद्ध करना ही चाहिए। उनके मन में आया कि वे दुर्योधन से पूछें कि उसने यह तो उनसे पूछा ही नहीं कि वे युद्ध में सम्मिलित भी होना चाहते हैं कि नहीं, अपने आप ही निर्णय कर लिया कि वे युद्ध करेंगे और उसके पक्ष से ही करेंगे। पर सहसा वे रुक गए। उन्हें कुरुक्षेत्र में से अपने लिए एक मार्ग बनता दिखाई दे रहा था।

दुर्योधन ने शकुनि, कर्ण और दु:शासन के साथ पितामह के पास आकर प्रणाम किया। भीष्म बोले, इस समय कैसे आना हुआ पुत्र। दुर्योधन बोला, मैं आपके पास एक निवेदन लेकर आया हूं पितामह। भीष्म बोले, अब और क्या चाहते हो वत्स। दुर्योधन बोला, यह तो आप जानते ही है पितामह युद्ध की तो ठहर चुकी है इसलिये मैं आपसे अनुरोध करने आया हूं कि

आप हस्तिनापुर सेना का प्रधान सेनापति बनना स्वीकार करे। भीष्म बोले, इस सम्मान के लिये अपने गुरु द्रोण को आमंत्रित क्यों नहीं करते पुत्र? शकुनि बोला, आपके होते हुये भला पुत्र दुर्योधन किसी और के विषय में कैसे सोच सकता है तातश्री? दुर्योधन भीष्म को पकडकर बैठ गया और बोला जब तक आप स्वीकृति नहीं देंगे तब तक मैं आपके चरणों को नहीं छोडूंगा।

भीष्म ने दुर्योधन को उठाया और बोले, तुम जानते हो पुत्र कि मैं तुम्हारे समान पांडवों को अपना शत्रु नहीं मानता। मैं तो उन्हें भी तुम्हारे ही समान अपने पुत्र मानता हूँ। उनसे प्रेम करता हूँ। मैं उनका और तुम्हारा युद्ध नहीं चाहता...।

जहाँ तक तुम्हारा और युधिष्ठिर का प्रश्न है, मैं मध्यस्थ हूँ। मैं भी बलराम के समान तटस्थ रहने की घोषणा कर सकता था; किंतु क्षत्रिय होने के नाते युद्ध से विमुख होना नहीं चाहता।

दुर्योधन अपनी प्रसन्नता छिपा नहीं पा रहा था और बोला, तो फिर बात क्या है?

भीष्म बोले, मैं मध्यस्थ हूँ, यह जानकर भी तुम अपनी सेना का नेतृत्व मुझे सौंपना चाहते हो? यह सोच लो। बाद में तुम्हें पश्चाताप न हो। युद्ध में आदेश सेनापति का माना जाएगा, युवराज का नहीं।

दुर्योधन बोला, इसमें मुझे किसी प्रकार की कोई आपत्ति नहीं है। आदेश आपका ही माना जाएगा।

भीष्म बोले, व्यूह की रचना मैं अपनी इच्छा से करूँगा। दुर्योधन चाटुकार स्वर में बोला, आपके समान व्यूह-रचना का ज्ञान और किसको है। इस संदर्भ में कोई आपको परामर्श भी नहीं दे सकता, आदेश की तो बात ही क्या।

भीष्म बोले, किस योद्धा के वध का विशेष प्रयत्न किया जाएगा और कब, इसका निर्णय भी मैं करूँगा। दुर्योधन बोला, हाँ। पितामह। आप ही करेंगे। भीष्म पितामह ने स्वीकृति दे दी।

मुझे यह उत्तरदायित्व स्वीकार है। शकुनि बोला, अब तो तुम्हारी विजय में सन्देह ही नहीं है भान्जे दुर्योधन। भीष्म बोले, मेरी एक बात ध्यान से सुन लो पुत्र दुर्योधन। पांडव मुझे तुमसे कम प्रिय नहीं है फिर भी इस युद्ध में मै तुम्हारे साथ हूं। मैं प्रतिदिन पाण्डवों के दस हजार यौद्धा और सैनिकों का वध भी करूंगा किन्तु अर्जुन फिर भी अर्जुन है वत्स वो मुझे पराजित भी कर सकता है और मेरी मृत्यु का कारण भी बन सकता है। कर्ण बोला, आप अर्जुन की चिन्ता मत कीजिये गंगापुत्र। उसके शव पर मेरा अधिकार है। भीष्म बोले, मैं अपनी शस्त्रशक्तिसे एक क्षणमें ही देवता और असुरोंसे युक्त इस सारे संसारको मनुष्यहीन कर सकता हूँ। तुम्हारे सेनापतित्वको मैं एक शर्तके साथ स्वीकार कर सकता हूँ। इस युद्धमें या तो पहले कर्ण लड़ ले या मैं लड़ लूँ; क्योंकि संग्राममें यह सूतपुत्र सदा ही मुझसे बड़ी लाग-डाँट रखता है। तो सेनापति बनने के लिए, मेरी प्रतिज्ञाएँ सुन लो। मैं किसी भी स्थिति में पांडवों में से किसी का वध नहीं करूँगा। जब तक वे ही मुझे मार नहीं डालते, तब तक मैं उनकी सेना का संहार करूँगा। स्वीकार है?

दुर्योधन बोला, स्वीकार है पितामह। भीष्म बोले, मैं किसी स्त्री पर अथवा उस पुरुष पर, जो पहले स्त्री रह चुका हो शस्त्र नहीं उठाऊँगा। कर्ण ने चौंक कर दुर्योधन की ओर देखा, वे स्पष्ट कह रहे हैं कि वे शिखंडी पर शस्त्र नहीं उठाएंगे।

भीष्म बोले, और दुर्योधन। तुम्हारा यह मित्र कर्ण युद्ध में मेरी स्पर्धा करता है, इसलिए या तो यह ही पहले युद्ध कर ले, या फिर मैं ही कर लूँ। यह मेरे सेनापति रहते युद्ध में भाग नहीं ले सकेगा।

कर्ण बोला, मैं तो पहले ही प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि पितामह के उपस्थित रहते हैं शस्त्र नहीं उठाऊँगा। मैं इनके युद्धक्षेत्र से हट जाने के पश्चात ही वहाँ पग रखूँगा। भीष्म बोले, तो ठीक है दुर्योधन। मैं तुम्हारा सेनापतित्व स्वीकार करता हूँ।

भीष्म बोले, मुझे अपनी बात समाप्त करने दो अंगराज कि जिस सेना का सेनापति मैं हूं दुर्योधन उस सेना में अंगराज कर्ण के लिये कोई स्थान नहीं हो सकता है। वैसे भी हमारे बीच कडवाहटों की एक नदी है। मैं नहीं चाहता कि इस नदी का

पाट और बढे। दुर्योधन बोला, मैं तो... कर्ण बोला मन मैला मत करो मित्र। मैं तो स्वयं ही गंगापुत्र भीष्म के ध्वज तले युद्ध नहीं कर सकता। इनके होते हुये तुम्हे मेरी आवश्यकता नहीं पडेगी मित्र। क्योंकि ये तो मेरे गुरु के सर्वश्रेष्ठ शिष्य हैं परन्तु मैं तुम्हें यह वचन अवश्य देता हूं यदि ये वीरगति को प्राप्त हो गये तो मैं अपना धनुष लेकर रणभूमि में आ जाऊंगा। दुर्योधन बोला, मुझे भी आज्ञा दें पितामह। भीष्म बोले, अभी मेरी बात पूरी नहीं हुई है वत्स। शकुनि बोला, अभी भी कुछ कहने को रह गया है तातश्री। भीष्म बोले, हां गान्धार नरेश अभी भी कुछ कहने को रह गया है। मैं पांडु पुत्रों के प्राण नहीं लूंगा। कर्ण बोला, ये तो बडे आश्चर्य का विषय है गंगापुत्र। क्या आप सेनापति होंगे और शत्रुओं के प्राण नहीं लेंगे। दुर्योधन के शत्रु वे नहीं है जो युधिष्ठिर के तले ध्वज कर रहे हैं। दुर्योधन के शत्रु वे राजा महाराजा और वे यौद्धा भी नहीं होंगे जो युधिष्ठिर की ओर से युद्ध करने आयेंगे। दुर्योधन के शत्रु पांच पांडव है और आप उन्हीं पर बाण नहीं चलायेंगे। कर्ण बोला, मान लो मित्र दुर्योधन पितामह की यह बात भी मान लो। परन्तु मुझे आज्ञा दो गंगापुत्र। मुझसे तो इस कक्ष में सांस भी नहीं लिया जा रहा है। कर्ण प्रणाम करके चला गया।

**कौरव सेनापति बनु अगर शर्त लो मान, पांडव धर्म प्रतीक है, हरू न उनसे प्राण।**

दुर्योधन, पितामह के भवन से बाहर निकला तो अत्यंत प्रसन्न था। बोला, कर्ण मैं आज इतना ही प्रसन्न हूँ, जितना कृष्ण के भवन से उसकी नारायणी सेना लेकर निकलते समय था।

कर्ण चिंतित स्वर में बोला, वह तो ठीक है युवराज। किंतु एक बात की ओर तुम्हारा ध्यान नहीं गया? तुम्हारे इस धूर्त पितामह ने मुझे युद्ध से निष्कासित कर दिया और सारी सेना अपने नियंत्रण में ले ली है। वह पांडवों को मारेगा नहीं और पांडव शिखंडी को सामने कर पहले ही दिन इस का वध कर देंगे।

दुर्योधन मुस्कराया और बोला, पितामह पांडवों का वध नहीं करेंगे, पांचालों और मत्स्यों का करेंगे और हम पांडवो से निबट लेंगे। दुर्योधन मुस्कराया, पांचाल शिखंडी को सामने कर पितामह का वध कर देंगे। पितामह का पांडवों से जा मिलने का संकट सदा के लिए समाप्त हो जाएगा और तुम युद्ध में सम्मिलित हो सकोगे।

तो तुम चाहते हो कि पितामह जब तक जीवित रहे, तुम्हारे रहें या फिर वे न ही रहें।

कर्ण समझ नहीं पा रहा था कि पितामह और पौत्र में किसकी इच्छा पूर्ण हुई है।

इस प्रकार निश्चय हो जानेपर दुर्योधनने विधिपूर्वक़ भीष्मको सेनापतिके पदपर अभिषिक्त किया। उस समय राजाज्ञासे बाजे बजानेवाले शान्तभावसे सैकड़ों-हजारों भेरियाँ और शफबजाने लगे। अभिषेकके समय अनेकों भीषण अपशकुन भी हुए। भीष्मको सेनापति बनाकर दुर्योधनने बहुत-सी गाय और मुहरें दक्षिणामें देकर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराया। फिर उनके जययुक्त आशीर्वादोंसे उत्साहित हो वह भीष्मको आगे कर अन्य सब सेनानायक और भाइयोंके साथ कुरुक्षेत्रको चला। वहाँ पहुँचकर उसने कर्णके साथ सब ओर घूम-फिरकर एक समतल भूमिमें, जहाँ घास और ईंधनकी अधिकता थी, सेनाकी छावनी डाली। वह छावनी दूसरे हस्तिनापुरके समान ही जान पड़ती थी।

**२६) विदुर का मन्त्रीपद से त्याग-** हस्तिनापुर के सारे आदरणीय यौद्धा निष्ठा की किसी न किसी डोरी से बन्धे हुये थे। कर्ण जानता है कि वह कुन्ती पुत्र है किन्तु वह दुर्योधन के प्रति अपनी कृतज्ञता की डोरी से बन्धा हुआ था। गंगापुत्र भीष्म, आचार्य द्रोण और आचार्य कृप हस्तिनापुर से बन्धे हुये थे। बस एक विदुर ऐसे थे जो बन्धे हुये नहीं थे और हस्तिनापुर से मुक्त थे। इसीलिये युद्ध रेखा खींच जाने के पश्चात उन्होंने हस्तिनापुर को त्यागने का निर्णय तो नहीं लिया

लेकिन यह निर्णय अवश्य ले लिया कि वो धर्म और अधर्म के इस महायुद्ध में हस्तिनापुर के महामन्त्री के पद पर तो नहीं रह सकते क्योंकि वर्तमान हस्तिनापुर अधर्म के ध्वज तले खडा है।

विदुर धृतराष्ट्र के कक्ष में आता है। धृतराष्ट्र बोले, विदुर? विदुर बोले, प्रणाम महाराज आपने मेरे नाम के आगे प्रश्न चिन्ह क्यों लगा दिया। क्या मेरी आहट बदल गई है? धृतराष्ट्र बोले, तुम्हारी आहट तो नहीं बदली होगी विदुर किन्तु लगता है मुझे आहटों की पहिचान पर पहिले जैसे विश्वास नहीं रह गया है। कदाचित धीरे-धीरे आहटों को पहचान लेनेवाली मेरी शक्ति भी नेत्रहीन होती जा रही है। हे विदुर तुम महात्मा हो, नीतिज्ञान में निपुण हो, प्रिय अनुज मेरा मार्गदर्शन कराओ। विदुर बोला, हे महाराज जब युद्ध रेखा खींच चुकी हो तो राजा को दुविधा में नहीं रहना चाहिये। इसलिये अपनी चेतना के द्वारपालों को आदेश दीजिये कि वो आपकी दुविधा के सारे द्वार बन्द कर दे। धृतराष्ट्र बोले, ये द्वार ही तो बन्द नहीं होते। मैं जब भी यह द्वार बन्द करता हूं अनुज तो तुम आकर ये द्वार खोल देते हो। विदुर बोला, तो इसी समस्या का समाधान लेकर आज आया हूं महाराज। हे राजन आर्युविद्या कहती है कि यदि कोई अंग कष्ट दे रहा हो तो शल्य चिकित्सक को चाहिये कि वो उस अंग को काट दे इसलिये यदि मैं आपकी राजनीति का रोगी अंग हूं तो स्वयं मैं शल्य चिकित्सक बनकर अपने को काटकर फेंक देने तो तैयार हूं महाराज। धृतराष्ट्र बोला, विदुर, नहीं क्या तुम मुझे त्यागने की बात कर रहे हो? क्या अन्धकार इतना फैल चुका है कि मेरा प्रिय अनुज विदुर जो मेरी परछाई था वो मुझे त्याग रहा है? विदुर बोला, मैं आपको तो कभी त्याग ही नहीं सकता भ्राताश्री। परन्तु आपके प्रति अपनी निष्ठा के आगे विवश हूं। और महामन्त्री पद की यह पगडी त्याग रहा हूं महाराज। और पगडी उतारकर धृतराष्ट्र के चरणों में रख देते है। धृतराष्ट्र बोला, अर्थात आज मैं बिल्कुल अकेला हो गया अनुज। बिल्कुल अकेला हो गया। मुझे तुम्हारे वाक्य कड़वे लगते थे परन्तु तुम्हारे होने का अनुभव करवाते थे। प्रिय पांडु तो स्वर्ग लोक चला गया किन्तु मेरे साथ तुम थे और अब तुम भी मुझे इस कक्ष से युद्ध के भयंकर परिणाम के साथ अकेला छोडे जा रहे हो। विदुर बोला, मैं क्या करूं भ्राताश्री? क्या करूं? मैं युद्ध के पक्ष में नहीं हूं। इसलिये मैं किसी की ओर से युद्ध भूमि में खडा नहीं हो सकता। मैं घर जा रहा हूं भ्राताश्री। और घर के द्वार बन्द करके बैठ जाऊंगा। धृतराष्ट्र बोला, नंगे सिर मत जाओ अनुज। लो यह पगडी पहन कर जाओ। विदुर पगडी पहन कर प्रणाम कर वहां से घर चला जाता है।

**विदुर धर्म के साथ चुका रहा है मोल, अपने पद को त्यागता अपनी आंखे खोल।**

दुर्योधन कुन्ती के पास आकर चरण स्पर्श करता और कहता है प्रणाम छोटी मां। मैं आपसे आशीर्वाद लेने आया हूं। कुन्ती बोली, आयुष्मान भव। दुर्योधन यह क्या छोटी मां। मैं आपसे विजय का आशीर्वाद लेने आया हूं। कुन्ती क्या दीदी से यह आशीर्वाद ले चुके हो वत्स। दुर्योधन बोला, नहीं छोटी मां। वे आपके आशीर्वाद देने से पहिले यह आशीर्वाद कभी नहीं देगी। कुन्ती बोली, तो क्या आपने पितामह से यह आशीर्वाद ले लिया पुत्र। दुर्योधन बोला, वे तो मेरी सेना के प्रधान सेनापति है छोटी मां। मैं उसी को उनका आशीर्वाद समझता हूं। कुन्ती बोली, और आचार्य द्रोण और कुलगुरु। दुर्योधन बोला, ये दोनों भी मेरी सेना के सेनापतियों में से ही है। कुन्ती बोली, और विदुर से पुत्र। दुर्योधन बोला, वे मुझे यह आशीर्वाद कभी नहीं देंगे छोटी मां क्योंकि वे मेरी विजय चाहते ही नहीं। महामन्त्री विदुर मेरे हितैषी नहीं है। कुन्ती बोली, किन्तु वे हस्तिनापुर के हितैषी हैं और तुम्हारे भी हितैषी हैं। तुम्हारे शुभचिन्तक भी हैं पुत्र। बडे यदि किसी भूल पर टोंके तो उनकी ओर से कभी मन मैला नहीं करना चाहिये। उनके शुभ चिन्तन पर कभी सन्देह भी नहीं करना चाहिये। हां यदि तुम हस्तिनापुर के विरोधी हो तो विदुर तुम्हारे कभी हितैषी नहीं हो सकते। तो क्या तुम हस्तिनापुर के विरोधी हो दुर्योधन?

दुर्योधन बोला, हस्तिनापुर तो हमारे राज्य की राजधानी है छोटी मां तो भला मैं उसका विरोधी कैसे हो सकता हूँ? कुन्ती बोली, हस्तिनापुर राजधानी नहीं है वत्स। हस्तिनापुर भरत वंश के अस्तित्व का केन्द्रबिन्दु है। भरतवंश के इतिहास का मेरूदंड है यह नगरी तुम्हारी ज्येष्ठ माता है दुर्योधन उसे केवल राजधानी समझने की भूल न करो। ये नगरी कुरुवंश के सिर पर लगा हुआ तिलक है। यदि यह तिलक मिट गया तो कुरुवंश के पास कुछ भी नहीं बचेगा। यह नगरी तुम्हारी पहिचान है दुर्योधन पहिचान। इस पहचान की केवल रक्षा ही करो इसका आदर करो। इस नगर के द्वार पर माथा टेक कर विजय श्री का आशीर्वाद मांगो दुर्योधन। तुम्हारी छोटी मां के पास तुम्हारे लिये यह आशीर्वाद नहीं है। दुर्योधन बोला, तो इसका तात्पर्य यह निकालूं कि आप मेरी विजय नहीं चाहती। कुन्ती बोली, मैं तो विजय और पराजय के बीच में खडी हुई हूं अपनी आंखों में आंसुओं को रोके हुये। पराजय चाहे किसी की भी हो पुत्र मुझे तो रोना ही है। मैं तुमसे प्रसन्न नहीं हूँ किन्तु तुम्हारा शव भी तो नहीं देखना चाहती इसलिये लम्बी आयु का आशीर्वाद दिया था। दुर्योधन यदि युद्ध करने की ठान ही ली है तो इस आशीर्वाद की कवच को पहिन लेना परन्तु मैं यह नहीं जानती वत्स कि मेरे इस आशीर्वाद के कवच अर्जुन के बाण या भीम की गदा को रोक पायेगा या नहीं रोक पायेगा।

**बडा धर्म संकट खड़ा कुन्ती का मन रोये, किसे विजय आशीष दे किसे मौत का शोक,**
**दोनों अपने बाहों, दोनों अपनी शान, किसे बिठाऊ हृदय, किस पर डालुं राख।**

संसार के इतिहास में माताओं पर ऐसा कड़ा वक्त कभी नहीं पडा था। यदि ऐसा न होता तो आज यह सम्भव था कि दुर्योधन कोई आशीर्वाद मांगे और कुन्ती जैसी बड़ी दिलवाली माँ न दे। किन्तु दुर्योधन को लम्बी आयु का आशीर्वाद देकर भी ममता का प्रतिबिम्ब अवश्य बन गई, चूंकि वो माँ थी। इसलिये वो गान्धारी की पीड़ा को समझ सकती थी। और इसीलिये वो यह नहीं चाहती थी कि गान्धारी की गोद उजड़ेगी लेकिन युद्ध के फैसले तो माँओं के आंचल की छावों में बैठकर किये नहीं जाते।

## २७) धृष्टद्युम्न को पांडवों की सेना का सेनापति बनाना

युधिष्ठिर व अन्य पाँचों भाई कृष्ण के साथ बैठे हुये हैं। कृष्ण बोले, तुम्हारे साथ कोई और भी है पार्थ और उसी के कारण मैं तुम्हारे साथ हूँ। तुम्हारे साथ धर्म है। दुर्योधन पाँच ग्राम देने को प्रस्तुत नहीं है। भीम बोला, मैं भी पाँच ग्रामों पर संतोष करने के लिए प्रस्तुत नहीं हूँ। यह तो अच्छा हुआ कि दुर्योधन ने ही हमारा तिरस्कार कर दिया, नहीं तो मेरे लिए शांत रहना कठिन होता। युधिष्ठिर बोले, तो युद्ध अनिवार्य है। कृष्ण बोले, इसे युद्ध न कहें धर्मराज यह तो दण्ड है। पाप और अधर्म का विस्तार और प्रसार तभी होता है जब दुष्ट लोग दण्डित नहीं किये जाते। जब क्षत्रिय भी अपनी कोमलता, भीरुता, दया अथवा करुणा के वश में होकर दंड का त्याग कर देते हैं। यदि भीष्म कुरुकुल के प्रति अपने मोह के कारण अपने क्षत्रिय धर्म की उपेक्षा न करते और दुर्योधन को आरंभ में ही उसके पापों के लिए दंडित करते, तो न वह और धृतराष्ट्र राक्षस बनते और न इस युद्ध का अवसर आता। यह शांति और संधि की आतुरता ही थी, जिसने अधर्म को इस सीमा तक पैर पसारने के अवसर दिए और इस भयंकर युद्ध की आवश्यकता आ पड़ी। अब संवाद, संदेश और दूतों की संधिवार्ता का अवसर समाप्त हुआ। युद्ध निश्चित ही नहीं, अनिवार्य है उसके अतिरिक्त और कोई उपाय भी नहीं है। युधिष्ठिर बोले, जिसे बचने के लिए मैंने वनवास का कष्ट स्वीकार किया और एक-से-एक भयंकर यातनाएं सहन की, वह अनर्थ मेरी सारी सद्भावना और सारे प्रयत्नों से भी टल नहीं सका। युद्ध हमारे द्वार पर आया खड़ा है, किंतु वंदनीय और अवध्य गुरुजनों से युद्ध करने में क्या औचित्य है?

कृष्ण बोले, भीष्म और द्रोण भी दुर्योधन को समय-समय पर समझाते रहे हैं। किंतु वे भी सदा उचित बात नहीं कहते। एक महात्मा विदुर को छोड़कर हस्तिनापुर में अन्य सब लोग, दुर्योधन का ही अनुसरण करते हैं। और दुर्योधन को जानते हुए भी आप नहीं जानते। आपकी सेना में सम्मिलित सारे राजाओं को मिलाकर भी उतना पाप और अमंगलकारक भाव नहीं है, जितना अकेले दुर्योधन में विद्यमान है। इसलिये यह सोचिये बड़े भैय्या गंगापुत्र भीष्म के सामने आप किसे प्रधान सेनापति बनायेंगे? कृष्ण बोले, आप राजा हैं। आप जिसे चाहें प्रधान सेनापति नियुक्त कर सकते हैं।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय, श्रीकृष्णका कथन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने उनके सामने ही अपने भाइयोंसे कहा कौरवोंकी सभामें जो कुछ हुआ वह सब तो हमने सुन लिया और श्रीकृष्णने जो बात कही है, वह भी समझ ही ली होगी। अत: अब मेरी इस सेनाका विभाग करो। हमारी विजयके लिये यह सात अक्षौहिणी सेना इकट्ठी हुई है। इसके ये सात सेनाध्यक्ष हैं- द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि, चेकितान और भीम। ये सभी वीर प्राणान्त युद्ध करनेवाले हैं तथा लज्जाशील, नीतिमान् और युद्धकुशल हैं। किंतु सहदेव। यह तो बताओ- इन सातोंका भी नेता कौन हो, जो कि रणभूमिमें भीष्मरूप अग्निका सामना कर सके?

सहदेवने कहा, मेरे विचारसे तो महाराज विराट इस पदके योग्य हैं। फिर नकुलने कहा, मैं तो आयु, शास्त्रज्ञान, कुलीनता और धैर्यकी दृष्टिसे महाराज द्रुपदको इस पदके योग्य समझता हूँ। इस प्रकार माद्रीकुमारोंके कह चुकनेपर अर्जुनने कहा, मैं धृष्टद्युम्नको प्रधान सेनापति होनेयोग्य समझता हूँ। ये धनुष, कवच और तलवार धारण किये रथपर चढ़े हुए ही अग्निकुण्डसे प्रकट हुए हैं। इनके सिवा मुझे ऐसा कोई वीर दिखायी नहीं देता, जो महाव्रती भीष्मके सामने डट सके। भीम बोले, द्रुपदपुत्र शिखण्डीका जन्म भीष्मके वधके लिये ही हुआ है। अत: मेरे विचारसे ये ही प्रधान सेनापति होने चाहिये।

कृष्ण बोले, क्यों शिखण्डी को क्यों? उसमें ऐसी क्या विशेषता है? भीम बोला, नहीं। मैंने शिखण्डी का नाम इसलिए प्रस्तावित नहीं किया है कि वे हमसे अधिक शूरवीर अथवा बलवान हैं; इसलिए भी नहीं कि वे हमसे अधिक रणकुशल हैं, अथवा उनका सैनिक अनुभव हमसे कुछ अधिक है। मैं इसलिए कह रहा हूँ कि हम पाँचों भाई अपना मन कितना भी कठोर बना लें, कौरवों के प्रति हमारे मन में वह भाव आ ही नहीं सकता, जो कुमार शिखंडी के मन में है। उन्होंने भीष्म का वध करने की प्रतिज्ञा की है जबकि हम सब अपने पितामह से इतना प्रेम करते है कि उनके वध की कल्पना भी नहीं कर सकते, कामना कैसे करेंगे, और कर्म का तो कहना ही क्या? फिर हमारी सेना का मुख्य भाग पांचाल सेना का ही है। शिखंडी सेनापति होंगे तो उनके सैनिकों में अधिक उत्साह रहेगा और उनको यह अपना ही युद्ध लगेगा। महाराज द्रुपद और धृष्टद्युम्न को भी इससे कोई विरोध नहीं होगा।

अर्जुन बोले, वैसे तो सबसे पहले महाराज द्रुपद का नाम होना चाहिए। किंतु समर्थ होने पर भी वे वृद्ध हैं। उनपर इतने बड़े युद्ध का भार नहीं डालना चाहिये। यह उनके लिये कष्टकर हो सकता है। हम अपनी विजय के लिए उनके प्राणों को दाँव पर लगाना नहीं चाहेंगे। इसलिये मैं प्रधान सेनापति के पद के लिये धृष्टद्युम्न का नाम प्रस्तावित करता हूँ। धृष्टद्युम्न अभी युवक है, समर्थ है। आचार्य द्रोण के वध के लक्ष्य से ही अग्निकुंड में से जन्में हैं। प्रतिशोध की भावना भी उनमें कम नहीं है। नकुल बोले, मैं भी समझता हूँ कि सबसे पहले यह अधिकार महाराज द्रुपद का ही है। वे हमारे में बुजुर्ग है, अवस्था में बड़े हैं, वीर और अनुभवी है। सहदेव बोले, हम लोग मत्स्यराज विराट की भूमि पर स्थित हैं तथा उनकी सेना तथा परिवार की हमें पूरी सहायता है। वे युद्ध में कुशल और वीर हैं। हमें उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। हम उनके बारे में

क्यों नहीं विचार करें। भीम बोले, महाराज विराट के प्रति मेरे मन में पूर्ण सम्मान है। मत्स्य सेना की सारी वीरता कीचक के कारण थी। भावना अपने स्थान पर है, किंतु हमको यह युद्ध जीतना है मात्र अपनी कृतज्ञता का प्रदर्शन नहीं करना है। युधिष्ठिर बोले, हमारे पास अभी तीन नाम और हैं सात्यकि, चेकितान और भीम। इनके बारे में आप लोगों का क्या मत है। कृष्ण बोले, मैं चाहता हूँ कि भीम प्रधान सेनापति का भी अनुशासन करें। सात्यकि के शौर्य के विषय में मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है। किन्तु वह अवस्था में छोटा है और उसमें धैर्य का अभाव है। उसके गुरु उसकी आज्ञा के अधीन होकर लड़ें, यह बहुत न्यायसंगत व्यवस्था नहीं है। फिर उसके सेनापति बनने से यादवों की राजनीति आपके लिए घातक हो सकती है। चेकितान के पास भी व्यक्तिगत शौर्य ही है, जो पाण्डवों की सेना का प्रधान सेनापति बनाने के लिये पर्याप्त नहीं है।

युधिष्ठिर बोले, महाराज द्रुपद के विषय में क्या विचार है मधुसूदन। वे भार्गव शिष्य है। वे गुरु श्रेष्ठ द्रोण और पितामह दोनों के सामने खडे हो सकते है। अर्जुन बोला- पितामह और गुरु श्रेष्ठ द्रोणाचार्य की ही भांति पांचाल नरेश भी बीते हुये युग के ही प्रतीक हैं किन्तु यह युद्ध हमारे युग का है और इस युग के नियमानुसार ही लडा जायेगा इसलिये मेरे विचार में अग्निकुंड से उत्पन्न हुआ यौद्धा द्यृष्टद्युम्न इस दायित्व के लिये उचित रहेगा महाराज। युधिष्ठिर बोले, वाद विवाद से तो कोई लाभ नहीं होगा अनुज। हे मधुसूदन आप चाहे युद्ध करें या ना करें, हमारे प्रधान तो आप ही है। आप बताये ये दायित्व किसे दिया जाये? धर्ममूर्ति श्रीकृष्ण सारे संसारके सारासार और बलाबलको जानते हैं। अत: जिसके लिये ये सम्मति दें, उसीको सेनापति बनाया जाय। भले ही वह शस्त्रसञ्चालनमें कुशल हो अथवा न हो, तथा वृद्ध हो या युवा हो। हमारी जय या पराजयके कारण एकमात्र ये ही हैं। हमारे प्राण, राज्य, भाव-अभाव और सुख-दु:ख इन्हींपर अवलम्बित हैं। ये ही सबके कर्ता-धर्ता हैं और इन्हींके अधीन सब कामोंकी सिद्धि है। धर्मराज युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर कृष्णने अर्जुनकी ओर देखते हुए कहा- महाराज। आपकी सेनाके नेतृत्वके लिये जिन-जिन वीरोंके नाम लिये गये हैं, इन सभीको मैं इस पदके योग्य मानता हूँ। ये सभी बड़े पराक्रमी योद्धा हैं और आपके शत्रुओंको परास्त कर सकते हैं। किंतु फिर भी मेरे विचारसे धृष्टद्युम्नको ही प्रधान सेनापति बनाना उचित होगा। मैं समझता हूँ कि प्रधान सेनापति पद के लिए धृष्टद्युम्न ही सर्वश्रेष्ठ योद्धा हैं। प्रधान सेनापति में जितने गुण आप चाहते हैं, वे सब उनमें हैं। और उनके प्रधान सेनापति बनने से आपकी सेना और सेनानायकों में किसी प्रकार का रोष भी नहीं जागेगा तथा कुरुवंशियों के मन में उतना ही आतंक उत्पन्न होगा, जितना भीम के नाम से दु:शासन के मन में हो सकता है। हे राजन मेरे विचार में तो पार्थ ही का प्रस्ताव स्वीकारणीय है। युवराज धृष्टद्युम्न के कन्धे इस दायित्व का भार सम्हाले तो उत्तम होगा। द्यृष्टद्युम्न ने उठकर प्रणाम किया।

युधिष्ठिर बोले, तो हमारा सर्वमान्य निर्णय है कि धृष्टद्युम्न हमारे प्रधान सेनापति होंगे। कृष्ण बोले, दुर्योधन की सेनायें कुरुक्षेत्र में अपना स्कंधावार बना रहीं है। भीम बोला, मेरे लिये ठीक है मुझे वहीं दुर्योधन की जंघा तोड़नी है। युधिष्ठिर बोले, धृष्टद्युम्न पीछे उपप्लव्य के दुर्ग की रक्षा के लिए खाइयों, परकोटों और रक्षक प्रहरियों की समुचित व्यवस्था करो, ताकि हमारी अनुपस्थिति में उपप्लव्य के दुर्ग में रहनेवाली स्त्रियों, बालकों तथा धन को लूटने का कोई प्रयत्न न कर सके। युधिष्ठिर बोले, रथों, अश्वों तथा हाथियों को चलने के लिए तैयार करें। सबके आगे भीम, फिर प्रधान सेनापति द्यृष्टद्युम्न के साथ चलेंगे, उनके साथ नकुल, सहदेव और अभिमन्यु और पाँचों द्रौपदेय जायेंगे। उनके पश्चात शकट, हाट, डेरे, तंबू इत्यादि चलेंगे। कोष को विश्वस्त योद्धाओं की रक्षा में सावधानी से ले जाया जाए। शस्त्रास्त्रों का परिवहन भी कुशल योद्धाओं के संरक्षण में हों। चिकित्साकुशल वैद्य साथ चलें। उसके पश्चात मेरे साथ पाँचों कैकेय कुमार, धृष्टकेतु, अभिभू, श्रेणिमान,वसुदान और शिखंडी चलेंगे। सेना के पिछले भाग में मत्स्यराज विराट, पांचाल राज द्रुपद, महाराज

कुंतीभोज, सुधर्मा और धृष्टद्युम्न के पुत्र चलेंगे। श्रीकृष्ण और अर्जुन सबकी देखभाल करते हुए, स्वेच्छा से चलेंगे और उनकी रक्षा के लिए अनाधृष्टि, चेकितान तथा सात्यकि उनको घेरकर चलेंगे। शिबिर स्थापन करने के लिए हिरण्यवती नदी के तट पर कोई समतल प्रदेश देखना, जहाँ घास और ईंधन का बाहुल्य हो। हमारे पशुओं और सैनिकों को खाद्य और जल का अभाव न हो। जल तो हिरण्यवती से मिल जायेगा किन्तु अन्न का पर्याप्त भंडार साथ लेकर चलें। वहाँ घास मिल जाए तो ठीक है अन्यथा हमारे पास घास और भूसी का पर्याप्त भंडार होना चाहिए। विभिन्न शिबिरों के मध्य आवागमन के लिए सुरक्षित मार्ग हों। युद्ध करना है तो शिबिर का निर्माण करना ही होगा। सुरक्षित तथा सुविधाजनक शिबिर का अर्थ है विजय की अधिक संभावना अत: सैनिकों के लिए उचित व्यवस्था करो।

पाञ्चालकुमारी द्रौपदी अन्य राजमहिलाओं और दासदासियों सहित उपप्लव्य-शिबिरमें थी। द्रौपदी अपने कक्ष में अपने साथ हुए अत्याचार का स्मरण करती है। मैं अग्निशिखा की तरह भभक उठी। भीम यह अपमान किसी भी तरह सह नहीं पाये। हुंकार भरकर कहा- तेरी मृत्यु बुला रही है दु:शासन। महासमर होकर रहेगा। याज्ञसेनी की इस लांछना और अपमान के कारण ही कौरवों का नाश होगा। आर्यावर्त के लाखों क्षत्रियों का निधन होगा। याज्ञसेनी के जन्मलग्न के समय हुई आकाशवाणी बहुत शीघ्र सच होगी।

नारी का धर्म है एक पति ग्रहण। यदि प्रथम पति की मृत्यु हो जाय तो कुछ परिस्थितियों में द्वितीय पति की अनुमति है। पर एक समय में पांच पति की अंकशायिनी बनने का दृष्टांत कहीं नहीं। न था, और शायद ही भविष्य में कभी हो। ऐसी नारी वरनारी होते हुए भी वारनारी के रूप में ही मानी जाती है। उसके हाथ का जलस्पर्श करने पर भी धर्म नष्ट होता है। राजरानी याज्ञसेनी होने के कारण पंचपति वरण कर भी सतीत्व की महिमा में मण्डित हो सकती हैं। पर साधारण नारी इस बात में असती ही कहलाती है।

फाल्गुनी ही नहीं, पांचों पांडव चिर परोपकारी हैं। विलास, व्यसन, सुख, ऐश्वर्य उनके लिए एकदम जरूरी नहीं। राजा होने पर भी दीन-दुखी, दलित-पतित का दु:ख वे बांटते हैं। इसी कारण प्रजा का हृदय जीत सके हैं। पता नहीं असमय प्रजा पर कैसी विपद आ गई। फाल्गुनी उस विपद को दूर करने ही गए होंगे। पराये के लिए आग में भी कूद पड़े- यही तो फाल्गुनी का गुण है। अर्जुन तीन अन्य पत्नियां और ले आया और मेरे हृदय को आहत किया। उसने कृष्ण बहन सुभद्रा का पाणिग्रहण किया। क्या आवश्यकता थी अर्जुन को इतनी पत्नियां करने की? राजा-महाराजा एकाधिक नारी से प्रेम करते हैं। विवाह कर सकते हैं, उन्हें ठुकरा भी सकते हैं शोक के अनुसार। इसके लिए पूर्व पत्नी की अनुमति नहीं चाहिए। अत: अर्जुन ने जो किया है, वह राजोचित है, पुरुषोचित है। पर मैं दुखी हूं अपने अहंकार के कारण- लज्जा और ग्लानि में गड़ी जा रही हूं अपने बड़प्पन के कारण।

फाल्गुनी ने आहत स्वर में कहा- ऐसा न कहो कृष्णा। आगे अनेक तूफान-झंझावातों का सामना करना होगा। सुभद्रा का पाणिग्रहण कर सारे यदुवंश की सहायता और समर्थन हमारे पीछे रहेगा। कृष्ण तो सदा हमारे हैं। पर बड़े भैया बलराम को वश में करने का एकमात्र उपाय था सुभद्रा से मेरा विवाह। यह सब विचार कर कृष्ण के परामर्श से ही मैंने सुभद्रा के साथ विवाह किया। कृष्ण आये। मेरे मान और रोष पर वे आनन्द ले रहे थे। मृदु मुस्कान में कहा- तीन कारणों से मैंने फाल्गुनी का सुभद्रा से विवाह कराया। पहला कारण है- पांडवों के पक्ष में यदुकुल का समर्थन रहेगा। दूसरा कारण है- सखी कृष्णा का मन समझने लायक सहेली मिलेगी। सहेली ही क्या सुभद्रा कृष्णा की दासी बनने को भी प्रस्तुत है। तीसरा कारण है- फाल्गुनी ने सुभद्रा से विवाह किया इससे इंद्रप्रस्थ में सुभद्रा के साथ युग्मजीवन बिताने पर कृष्णा का उनके प्रति

ध्यान कुछ तो कम होगा। फाल्गुनी कृष्णा के विरह में अरण्यवासी नहीं बनेंगे।

कितनी ही विदुषी या विज्ञ हो, प्रेमिका के पास कोई विचार-बुद्धि काम नहीं करती। प्रेम पाने के लिए प्रेमिका संसार में क्या नहीं-कर सकती?

फाल्गुनी मेरे हृदय की व्याकुलता मापने के लिए कल रातभर कृष्ण के पास बैठे रहे। सुनकर मुझे लगा फाल्गुनी मेरे हैं। उलूपी, चित्रांगदा, आर्या, सुभद्रा फाल्गुनि की पत्नी हो सकती हैं, पर मैं उनकी प्रेयसी, मानसी, प्राणप्रिया हूं। फाल्गुनी बहुपत्नी ग्रहण कर लेने के बाद भी मेरे लिए जो थे, वहीं हैं। अब यदि फाल्गुनी निन्यानवे पत्नियां इंद्रप्रस्थ के रनिवास में रखें तो भी मुझे कोई दु:ख न होगा। फाल्गुनी का पौरुष समुद्र की तरह विशाल है, उदार है। सारे संसार की स्रोतस्विनी वहां आश्रय ढूंढे तो भी मेरे लिए स्थान की कमी नहीं रहेगी।

धृतराष्ट्र बोले, कृष्णा तुम वधूगणों में प्रथम और सर्वश्रेष्ठ हो। अपना सतीत्व और भक्ति आज तुम्हें सम्मानित कर रहा है। तुमने अपनी महिमा प्रकट कर दी है। तुम्हारी निष्ठा पर मैं अत्यंत प्रसन्न हूँ। कोई वर माँगो। मैंने ज्येष्ठ पिताश्री धृतराष्ट्र से कहा था कि युधिष्ठिर को दासत्व से मुक्त करें। कम से कम मेरा ज्येष्ठ पुत्र प्रतिविन्ध्य किसीका कृतदास पुत्र न कहलाये।

कर्ण ने परिहास किया- वाह। कितनी निस्वार्थ पतिभक्ति है। अपनी बात भूलकर पांडवों जैसे वीर पतियों का अथाह समुद्र से उद्धार कर रही हैं पंचपति की नायिका याज्ञसेनी। शायद पुन: पांडवों के स्वामित्व के अधिकार में लौट जाने को उनकी घोर अनिच्छा है। अत: अपनी मुक्ति के अवसर की वे चतुरता से उपेक्षा कर गईं।

दुर्योधन आज हस्तिनापुर और इन्द्रप्रस्थ का अधीश्वर है। पर प्रजा के मंगल में यदि उसका ध्यान नहीं तो उस सिंहासन से क्या लाभ? हम बारह वर्ष के वनवास में थे, हमें जो शिक्षा मिली, वह अब तक की सारी विद्या से बढ़कर थी। आनन्ददायी थी। ईश्वर ने मंगल करने ही वन में भेज दिया।

विजनता का मोहन मन्त्र सबको मुग्ध किए है। युधिष्ठिर दार्शनिक हो गये हैं। अर्जुन कवित्वमय आंखों में विभोर दिख रहे हैं। भीम सोच रहे हैं- यहां के अधीश्वर हम ही हैं। नकुल झरने के जल में अपनी शोभा निरख रहे हैं। सहदेव वन में दिशा खोजने, आगामी कर्मपथ तय करने में लगे हैं। युधिष्ठिर ने मुझसे कहा था, काम्यक वन में उच्च, नीच, जाति का कोई भेदभाव नहीं है। तो मैंने कहाँ था एकलव्य के साथ जो अन्याय हुआ उसका प्रायश्चित यहाँ करना होगा।

किरातों का आर्यों से द्वेष यथार्थ है। पर उन्हें सख्य के बन्धन से श्रृंखला पहना आर्य और आर्येतर का महामिलन करना होगा। मेरे हाथ में अक्षयपात्र है। प्रतिदिन काम्यक वन में किरात एवं पांडव एक साथ बैठकर भोजन करें। मैं स्वयं भोजन कराऊंगी। युधिष्ठिर ने शांत स्वर में कहा- पृथ्वी जब बनी, आदमी-आदमी में कोई भेद न था। मानव प्रकृति की संतान है। इसी पृथ्वी पर जीने का सबको समान अधिकार है। चंद्र, सूर्य, वर्षा, मरुत, शीत, हेमंत, हर आदमी को समान रूप में स्पर्श करते हैं। आदमी-आदमी के बीच भेद उसने खुद पैदा किया है। समाज की सुरक्षा, सभ्यता के प्रसार, एक परिवार की शक्ति-सामर्थ्य के अनुसार पति-पत्नी एवं अन्य सदस्यों में दायित्व बंटे होते हैं। वैसे समाज चलाने के लिए विभिन्न जातियां बनी थीं। परिवार में कभी अस्पृश्या नहीं होती, जब कि वह सबका उच्छिष्ट उठाती है, घर-बार बुहारी करती है, बच्चों की गंदगी धोती है। तो फिर वही काम करनेवाले अन्य लोग अस्पृश्य कैसे हुए? मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने शबरी का जूठा खाया था, उनकी तो मर्यादा कहीं नहीं घटी। उन्होंने तो प्रभु होते हुए भी आदिम अदिवासी गुह से मित्रता की थी। जो आदमी-आदमी में भेदभाव करता है, वह सृष्टिकर्ता का विरोध करता है। हमें अपराधी न बनाना। मित्रता का दान कर कृतार्थ करो। देखना-इस वन में ऋषि-मुनि पधारेंगे। यहां के लोगों का खूब कल्याण होगा उनके आशीर्वाद से।

पारस्परिक भावविनिमय से सभ्यता का विकास होगा।

नारद ने कहा था- कर्ण ने इंद्र से शत्रुघातिनी शक्ति प्राप्त कर ली है अत: कर्ण के बारे में दु:ख की बात नहीं।

आदमी का मन लकड़ी या पत्थर का बना तो होता नहीं। नारी हृदय सहज ही कोमल होता है। मां में जिसके लिए इतनी ममता, सहानुभूति है, वे कितने ही बड़े शत्रु हों उनकी मृत्यु मुझे सुख नहीं देगी। मृत्यु शायद शत्रु के लिए उचित दंड नहीं। जन्म-मृत्यु आदमी के हाथ में नहीं होते। आदमी वह दायित्व क्यों ले अपने हाथ में? भेद, द्वेष, विराग का समाधान मृत्यु हो सकती। अत: कर्ण के लिए मेरे मन में सहानुभूति जागना स्वाभाविक है। फिर उसे शत्रुघातिनी शक्ति पाने की बात पर अर्जुन के प्रति दुश्चिन्ता में डालना और भी स्वाभाविक है।

अकृतज्ञता आदमी को पशु बना देती है। अर्जुन की चिन्ता नहीं करो। कर्ण उस शक्ति को सिर्फ एक बार प्रयोग कर सकेगा। फिर वह शक्ति लौट जायेगी इंद्र के पास। उस एक बार में कर्ण यदि लक्ष्यभ्रष्ट हो जाये, तो?

कृष्ण ने गहरी दृष्टि से देखकर कहा- गलत समझ रही हो सखी। तुम्हारे पति कर्ण के शत्रु नहीं हैं। कर्ण तुम्हारे पतियों का शत्रु है। कर्ण चाहे तो पांडवों का परमबंधु बन सकता है। बस अर्जुन के प्रति असूया के कारण उसने कौरवों से हाथ मिलाया है। अहंकार को पौरुष मानकर अपनी मृत्यु को बुला रहा है। कभी उसका जीवन-मृत्यु तुम्हारे हाथ में सौंप दिया जाये तो वह मृत्यु ही वरण करेगा, तुम्हारी दया, अनुकंपा को ठोकर मारने में पीछे नहीं हटेगा। अहंकार ही कर्ण का बड़ा शत्रु है। अहंकारी पुरुष के पास ऋणभार मृत्यु से अधिक यंत्रणादायक होता है।

मन की बात भीम समझ गए- कर्ण का अर्जुन पर रोष सिर्फ द्रौपदी को लेकर है। हालांकि बचपन से ईर्ष्या थी। परन्तु द्रौपदी जीतने के बाद ईर्ष्या बदल गई हिंसा में। जहां एक नारी, वहां नरक पैदा हो गया। द्रौपदी को पाने के बाद से सब हमारे शत्रु बन गए। मैं गुस्से में जल उठी भीम के बेमतलब दोषरोप पर। मैं नारी हूं, इसमें मेरा कोई दोष नहीं। मैं सुंदर हूं, इसमें मेरा क्या कसूर? मुझे अर्जुन ने जीता, इसमें मेरा क्या अपराध? कर्ण जीते नहीं, तो मैं दोषशून्य हूं? इस बात का उत्तर मैं भी नहीं जानती। सारे दोष इस अन्तिम प्रश्न पर ही आकर मुझपर झर जाते। फिर भी जीवन भर मुझे जलाना क्या कर्ण का अन्याय नहीं? कर्ण-वध में क्या मुश्किल है? केवल शत्रु घातिनी के कारण तुम्हारे मन में सन्देह होना स्वाभाविक है। द्रौपदी को लेकर उसके मन में इतना क्रोध है, तो मैं भी पवित्र वनभूमि को साक्षी मानकर सबके सामने शपथ करता हूं कि कर्णवध न करने तक मद्य, मांस और द्रौपदी से दूर रहूंगा। कर्ण को उचित शिक्षा देने के बाद ही मैं द्रौपदी को पत्नी के लायक सम्मान दे सकूँगा। मैं स्तब्ध खड़ी सुनती रही। सोच रही थी- नारी शक्तिदायिनी, प्रेरणादायिनी, कल्याणी होती है। पर कर्ण हो या अर्जुन, अभीष्ट पूरा न होने तक सब नारी से दूर रहने की प्रतिज्ञा क्यों करते हैं? नारी का सख्य क्या पुरुष की शक्ति हर लेता है? यह पुरुष की अपनी चारित्रिक दृढ़ता पर अनास्था है या नारी की मनोहारी शक्ति से भय? सिद्धि-पथ पर नारी को दूर रखकर पुरुष अपनी दुर्बलता का या दृढ़ता का परिचय देता है? आर्यावर्त्त के श्रेष्ठ पुरुष कृष्ण की सिद्धि-पथ में तो नारी को दूर रखने का कोई दृष्टांत नहीं। जबकि आर्यावर्त्त में अनेक असाध्य कार्य किए हैं बहु नारी-नायक प्रेमिक-शिरोमणि कृष्ण ने। इतनी बड़ी प्रतिज्ञा करने से पहले अर्जुन ने एक बार मुझसे पूछा तक नहीं?

आदमी सब जानकर भी अनजान की तरह काम करता है। यही संसार की माया है। हम जानते हैं कि पांडव कृष्ण के हैं, यह संसार कृष्ण का है। कृष्णा भी कृष्ण की है। फिर भी माया में पड़ कर कभी-कभी कृष्णा के लिए कृष्ण से ईर्ष्या हो जाती है। यह सोच सोचकर द्रौपदी की आँखों में आँसू आ गये। उसी समय द्रौपदी के पास द्यृष्टद्युम्न आता है। द्यृष्टद्युम्न बोले, बहिन द्रौपदी। द्रौपदी बोली मैं अपने केशों को समझा रही थी भैया कि उनके वनवास समाप्त होने के दिन आ गये।

उन सर्पों ने मुझे १३ वर्षों का दंश दिया। १३ वर्षों का हर दिन शताब्दियों से बडा था। धृष्टद्युम्न बोले, उसका विष हम सबने पीया है कल्याणी। द्रौपदी बोली, मुझे दुशासन की छाती का लहू चाहिये धृष्टद्युम्न। धृष्टद्युम्न बोला दुशासन की छाती का लहू तुम्हे अवश्य मिलेगा। द्रौपदी बोली, तब मैं पांडव सेना के प्रधान सेनापति धृष्टद्युम्न को सादर प्रणाम करती हूँ।

**दुशासन के रक्त से जब तक ना हो स्नान, तब तक करती द्रौपदी महाप्रलय का ध्यान।**

धृतराष्ट्र चिंतित अवस्था में बैठा है। गान्धारी आती है। गान्धारी बोली, आर्यपुत्र। धृतराष्ट्र बोले, कहो प्रिये। गान्धारी बोली, इस युद्ध को न होने दीजिये आर्यपुत्र। धृतराष्ट्र बोले, क्या हमारा पुत्र दुर्योधन हमारी बात सुनेगा प्रिये? क्या मैं अनुज पुत्रों को यह आदेश देने का अधिकार रखता हूं कि वे युद्ध न करे? गान्धारी बोली, वे तो युद्ध कर भी नहीं रहे है वे तो इन्द्रप्रस्थ लेने का हठ भी नहीं कर रहे, वे तो केवल ५ गांव मांग रहे थे केवल पांच गांव। इतिहास आप ही को इसके लिये उत्तरदायी ठहरायेगा। धृतराष्ट्र बोला, मुझे इतिहास की चिन्ता नहीं है गान्धारी। मुझे वर्तमान की चिन्ता है। वर्तमान जो कुन्ती के रूप में विदुर के घर ठहरा हुआ है। गान्धारी वो अपने पुत्रों के पास क्यों नहीं चली जाती। वो चाहती क्या है? क्या उसके यहां ठहरे रहने से उसके पुत्रों को न्याय मिल जायेगा? पर फिर उस अन्याय का क्या होगा जो स्वयं मेरे साथ हुआ?

मैं युद्ध नहीं चाहता गान्धारी किन्तु यदि युद्ध मेरा द्वार खटखटा रहा है तो क्षत्रिय होने के नाते मेरा उठकर द्वार खोलना आवश्यक है। गान्धारी बोली, मेरी मानिये युद्ध अभी आरम्भ नहीं हुआ है, अब भी उसे रोका जा सकता है। धृतराष्ट्र बोले, कैसे? गान्धारी बोली, राजभवन से निकल रथपर बैठकर संजय को आदेश दीजिये कि वे आपके रथ को देवकीनन्दन के द्वार पर ले जाये। उनसे विनती कीजिये, एक वही है जो इस युद्ध को रोक सकते है और कुरुक्षेत्र की ओर चलनेवाली सेनाओं को लौटा सकते हैं। धृतराष्ट्र बोले, नहीं गान्धारी अब यह नहीं हो सकता। वासुदेव निष्पक्ष नहीं है। यादव सेना हमारे पक्ष में है और वो यदुशिरोमणि पांडवों के पक्ष में है। रोओ मत गान्धारी और चिन्ता भी मत करो। तुम सौ पुत्रों की मां होकर भी घबरा रही हो जब कि कुन्ती केवल पांच पुत्रों की मां है। किस विश्वास के साथ यहां बैठी हुई है। गान्धारी बोली- एक ही वृक्ष की दो शाखायें आपस में उलझना उस वृक्ष के लिये शुभ नहीं होता आर्यपुत्र। शुभ नहीं हो सकता। चाहे आपकी दाहिनी आंख रोये या बांयी आंख परन्तु रो तो आप ही रहोगे। चाहे गदा दुर्योधन उठाये या भीम। चोट तो मुझे ही लगेगी। हे नरेश मुझे चोट से बचाइये। मैं यह पीडा सहन नहीं कर पाऊंगी।

## २८) बलराम का युद्ध से तटस्थ हो तीर्थयात्राके लिये प्रस्थान

वैशम्पायन बोले, जनमेजय, पाण्डवोंके शिबिर में द्वारपाल ने आकर सूचना दी, कि महाराज वासुदेव बलराम पधार रहे हैं। उनके साथ कुछ अन्य यादव वीर भी हैं। युधिष्ठिर ने कृष्ण से पूछा, क्या बलराम आनेवाले थे? कृष्ण बोले, ऐसी कोई सूचना तो नहीं थी। किन्तु उनको कहीं आने जाने का बन्धन तो है नहीं। अर्जुन बोले, दुर्योधन चाहे अपने पिता की आज्ञा की उपेक्षा कर दे किन्तु वह दाऊ भैया के आदेश को चुनौती नहीं दे सकता। उनका एक आदेश दुर्योधन को युद्ध से भी रिक्त कर सकता है। इसी समय इस घोर संहारकारी युद्धको समीप आया जान बलराम, अक्रूर, गद, साम्ब, उद्धव, प्रद्युम्न और चारुदेष्ण आदि मुख्य-मुख्य यदुवंशियोंको साथ लिये पाण्डवोंके शिबिरमें आये। उन्हें देखकर धर्मराज युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीम और उस स्थानपर जो दूसरे राजा थे, वे सब खड़े हो गये। उन सबने समागत बलरामजीका सत्कार किया। श्रीकृष्णादिने उन्हें प्रणाम किया और बूढ़े राजा विराट एवं द्रुपदको उन्होंने प्रणाम किया। फिर वे राजा युधिष्ठिरके साथ सिंहासनपर विराजमान हुए। उनके बैठनेपर जब और सब लोग भी बैठ गये तो उन्होंने श्रीकृष्णकी ओर देखकर कहा,

अब यह महाभयंकर नरसंहार होगा ही। इस दैवी लीलाको मैं अनिवार्य ही समझता हूँ, अब इसे हटाया नहीं जा सकता। मेरी इच्छा है कि अपने सुहृद् आप सब लोगोंको इस युद्धकी समाप्तिपर भी मैं नीरोग देख सकूँ। इसमें संदेह नहीं, यहाँ जो राजा एकत्रित हुए हैं उनका तो काल ही आ गया है।

कृष्ण बोले, मुझे प्रसन्नता है कि द्वारिका में मेरी अनुपस्थिति में भी आप मेरे पुत्रों के साथ हैं या वे आपके साथ हैं। बलराम बोले, इनसे बड़ा हूँ न तो इनको संरक्षण देना मेरा धर्म है। कान्हा सब तुम्हारे समान तो नहीं होते कि बड़ों की आज्ञा के अधीन न रहे। कृष्ण बोले, दाऊ मैं कब आपकी आज्ञा से बाहर रहा। हाँ ठीक कहते हो कान्हा। तुम कभी मेरी आज्ञा से बाहर नहीं गये किन्तु कभी मेरी इच्छा के अधीन भी नहीं रहे। कृष्ण बोले दाऊ आप भी कैसी आज्ञायें देते हैं जिनसे आपकी अपनी ही इच्छा पूरी नहीं होती। बलराम बोले, मेरी आज्ञाओं में ही कोई ऐसा दोष रहा होगा जिनसे मेरी कामनायें पूर्ण नहीं होती। कृष्ण बोले, दोष आज्ञाओं में नहीं इच्छाओं में खोजा जाना चाहिए। बलराम बोले, दोष मेरी इच्छाओं का ही सहीं किन्तु तुम्हें अपने बड़े भाई की इच्छाओं का सम्मान करना चाहिए। श्रीराम को उनके पिता ने वनवास की आज्ञा नहीं दी थी। पर वो संकेत से ही समझ गये थे कि उनके वन जाने से ही कैकयी को दिया गया वचन पूरा होगा। वे अपना धर्म समझते थे। कृष्ण बोले, मैं भी अपना धर्म समझता हूँ यदि नियम यह हो कि छोटों को बड़ों की इच्छा का सम्मान करना चाहिये तो फिर आपको भी पिताश्री की इच्छा का सम्मान करना चाहिये। वे नहीं चाहते कि हमें दुर्योधन को किसी प्रकार की सहायता करनी चाहिये। मेरे इन पुत्रों को भी मेरी इच्छा का सम्मान करना चाहिये। बलराम बोले, मैंने कान्हा तुम्हें कितनी बार समझाया कि हम मध्यस्थ हैं, हमारे लिये कौरव और पाण्डव एक समान हैं। दोनों से हमारा एकजैसा ही सम्बन्ध है। महाराज युधिष्ठिर दुर्योधन मेरे पास इतने दिनों से चक्कर काट रहा था, वह मेरे पास भी आया था सहायता माँगने किन्तु मैंने उसकी सहायता करने से मना कर दिया। और अर्जुन को भी सहायता नहीं दी। पर यह जब अपने सखा अर्जुन को देखता है तो इसकी मति ही स्थिर नहीं रहती एकदम बौरा जाता है। किसी तरह भी अर्जुन की इच्छा पूरी होनी चाहिये फिर चाहे सारा संसार कट मरे। पर मैं इससे इतना प्रेम करता हूँ कि मैं इसके विरुद्ध जा नहीं सकता। अब मैं यहाँ रूकना नहीं चाहता मैं सरस्वती नदी के तट पर बसे पूरे भारत के तीर्थं दर्शन करने जा रहा हूँ और अपने साथ अपने इन वीर यादवों को भी ले जा रहा हूँ कि कहीं युद्ध के परिणामों को देखते हुए इनका मन विचलित न हो जाए।

श्रीकृष्ण सोच रहे है इस उद्धव को क्या हुआ वह दाऊ के साथ क्यों भाग रहा है। श्रीकृष्ण के शान्तिदूत बनकर हस्तिनापुर जाने के पहले तक तो ऐसी कोई बात नहीं थी। उद्धव उनके आह्वान पर द्वारिका से उपप्लव्य आया था पर यह बलराम से आतंक से तो नहीं जा रहा है। और श्रीकृष्ण के स्वयं के अपने पुत्र प्रद्युम्न, सांब, चारुदेष्ण इन सबको क्या हो गया। वे लोग तो क्षत्रिय हैं, युद्ध निष्णात हैं, धर्म को जाननेवाले है फिर ये क्यों मेरे साथ नहीं है। श्रीकृष्ण तो जैसा धर्म का साक्षात रूप। पुत्रों को तो पिता के अनुरूप ही होना चाहिए। उनकी आत्मा के अपने संस्कार है। पर धर्म के प्रति उनमें ललक नहीं है। यादवों को धर्म का आह्वान क्यों नहीं सुनाई पड़ता। कदाचित यादवों को अपनी संपन्नता रास नहीं आई। वह उनके धर्म को खा गई? पता नहीं वे क्यों समझ नहीं पायें कि जीवन का भोग धर्मपूर्वक भी हो सकता है। क्या वे सब लोग अपनी इच्छा से तीर्थाटन करने जा रहे है? तीर्थ किसके लिये। तीर्थ तो वह हैं, जिसे देखकर प्रभु का ध्यान आए, धर्म में रुचि दृढ़ हो, इनकी यदि धर्म में रुचि होती तो वे कृष्ण के साथ ही न आए होते, दुर्योधन से युद्ध करने के लिए। अथवा बलराम ही उन्हें इस भय से अपने साथ घसीट कर कृष्ण से दूर लिए जा रहे हैं कि कहीं किसी समय उन पर कृष्ण का जादू ही न चल जाए। कहीं वे कृष्ण से सहमत न हो जाएँ, कहीं यादव वीर पांडवों की सहायता ही न करने लगें। बलराम के मन

में पाण्डवों के लिये तो कभी इतनी सहानुभूति नहीं जगीं। वे स्वयं को तो कहते हैं कि वे मध्यस्थ हैं। भीम और दुर्योधन उन्हे समान रूप से प्रिय है पर वे सदा दुर्योधन का ही पक्ष प्रस्तुत करते दिखाई पड़े। कौरवों से इतने स्नेह का कारण? पांडवों के विनाश के विषय में कोई चिंता प्रकट नहीं कर रहे हैं। क्या वे मानते हैं कि पांडवों पर किसी प्रकार का कोई संकट ही नहीं है? पांडवों को कौरवों से अधिक शक्तिशाली समझते हैं? क्या वे कृष्ण के कारण कौरवों को संकटग्रस्त मानते है? उधर वह गद भी है। रोहिणीपुत्र होने के कारण वह कृष्ण की अपेक्षा बलराम को अपने अधिक निकट मानता होगा। पर मेरे इस प्रद्युम्न को क्या हो गया? वह क्यों कृष्ण से रूठा-रूठा घूम रहा है? क्या ताऊ अपने पिता से अधिक प्रिय हो गए? प्रद्युम्न आरम्भ से विद्रोही रहा है। शम्बरासुर के घर से लौटा था तब से विद्रोही था। कृष्ण और रूक्मिणी दोनों ही उसकी पत्नी माया को पाकर बहुत प्रसन्न नहीं थे। कृष्ण तो फिर भी किसी प्रकार मान गये थे। किन्तु रुक्मिणी का विरोध कदाचित कभी शांत नहीं हुआ। अपनी पुत्रवधू के रूप में अपने पुत्र से अवस्था में बारह वर्ष बड़ी स्त्री को वे स्वीकार नहीं कर पाईं। पुत्र भी कैसे कैसे अपने पिता के लिए पराए हो जाते हैं। साम्ब का कृष्ण के प्रति विरोध तो उसी दिन होने लग गया था जिस दिन दुर्योधन ने उसे जामाता स्वीकार किया और लक्ष्मणा उसके जीवन में आई। वह आज तक नहीं समझ पाया कि कृष्ण और दुर्योधन में कभी कोई मैत्री नहीं हो सकती। और वह जितना ही दुर्योधन की ओर प्रवृत्त होता जायेगा वह उतना ही अपने पिता से दूर होता जाएगा। और यह चारुदेष्ण? उसके विषय में तो कुछ भी नहीं समझमें आता है। हो सकता है उसका भी कोई कारण हो। युधिष्ठिर बोले, बलराम भैया। इस युद्ध शिबिर में आपका सम्यक सत्कार तो नहीं हो सकता किन्तु आप हमारे साथ भोजन तो अवश्य करेंगे। बलराम अपने आक्रोश प्रवाह में ही बोले, भोजन से क्या विरोध है मेरा। यह तो कृष्ण ही है, जो सब जगह नापते-तोलते फिरता है कि किसके घर भोजन करेगा किसके घर नहीं।

अर्जुन के मन में एक प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि बलराम ने मध्यस्थ का स्थान ग्रहण किया हैं तो मध्यस्थ ही रहें। वे युद्ध न करना चाहते तो न करें। वे तीर्थाटन करने जा रहे थे, तो जावे किन्तु ये यहाँ इस युद्ध शिबिर में क्या करने आये हैं? क्या प्रयोजन है इनका? क्या वे कृष्ण का क्रोध जगाने का प्रयत्न कर रहे हैं? क्या यादवों में अपनी प्रतिष्ठा जगा रहे हैं?

कृष्ण बोले, प्रद्युम्न तुम अपने भाइयों से मिलना नहीं चाहोगे। सब के सब इस युद्ध शिबिर में ही हैं। वे तुम्हारे शिष्य भी रहे है। प्रद्युम्न बोला, क्या अभिमन्यु यहीं है? वह तो इतना छोटा है। वह भी युद्ध क्षेत्र में आ गया? उसका तो अभी-अभी विवाह हुआ है। कृष्ण बोले, तुम अपने विवाह को कदाचित भूल गये हो। तुम्हारी अवस्था क्या रही होगी जब तुम अपनी इच्छा से विवाह कर अपनी पत्नी को साथ लेकर घर लौटे थे। प्रद्युम्न बोला, मेरा जिन परिस्थितियों में पालन-पोषण हुआ था क्या अभिमन्यु भी उन्हीं परिस्थितियों में बड़ा हुआ है? कृष्ण बोले, नहीं तुम्हारी परिस्थितियां भिन्न थी। माता-पिता के घर से तुम्हारा अपहरण हो गया था। तुम स्वयं भी पूरी तरह नहीं जानते थे कि तुम कौन हो? तुम अपने ही शत्रु के घर में अज्ञात रूप से पल रहे थे। तुम कामदेव के अवतार हो। तुममें कामभाव बहुत अधिक है। इसलिये तुम शम्बरासुर के राजप्रासाद में अपने साथ सेवा करने वाली एक दासी से प्रेम कर बैठे, जो तुमसे उम्र में कम-से-कम बारह वर्ष बड़ी थी प्रद्युम्न बोला, उसने मेरा पालन-पोषण किया था पिताश्री। कृष्ण बोले, पालन-पोषण करनेवाली तो माता होती है पुत्र। विवाह की अपनी बाध्यताएँ होती है। वैसे अभिमन्यु का विवाह अपने पिता की इच्छा से हुआ था। उसने प्रेम के नाम पर नहीं कर्त्तव्य के नाम पर विवाह किया है।

भोजन के समय तुम्हारी भेंट अभिमन्यु से ही नहीं तुम्हारे अन्य भाई प्रतिविंध्य, सुतसोम, श्रुतकर्मा, शतानीक और श्रुतसेन से भी हो जाएगी। वहीं पर यौद्धेय, सर्वंग, निरमित्र और सहोत्र भी होंगे। भीम बोला, वहीं पर इरावान और घटोत्कच भी मिल जाएंगे। कृष्ण सांब से बोले, पुत्र तुम तीर्थाटन क्यों करने जा रहे हो। तुम्हारी रूचि कुछ अध्यात्म की ओर मुड़ी

है क्या? बलराम बोले, कान्हा तुम इन बच्चों को उनके ताऊ के विरुद्ध क्यों भडका रहे हो?

कृष्ण बोले, नहीं दाऊ। मैं तो उन्हें तीर्थों का महत्व समझा रहा हूँ। यह ना हो कहीं कि वे पर्यटन और तीर्थ का अन्तर ही न जाने। सृष्टि तो ब्रह्म का ही रूप है। उससे प्रेम का तात्पर्य ब्रह्म से प्रेम करना है। सृष्टि को जानना भी ब्रह्म को ही जानना है। जिस स्थान को देखकर मन का मल विगलित हो, मन में पवित्रता आए, सात्विक भाव जागें, और सृष्टा का स्मरण हो आयें वहीं तो तीर्थ हैं। मन में यह भाव लेकर तीर्थ करने मत जाना कि तुम क्षत्रिय होकर भी एक धर्मसंगत युद्ध से पलायन करने के लिए तीर्थ का बहाना कर रहे हो। बलराम बोले, न तो यह धर्मसंगत युद्ध है, और न ही हम तीर्थ के नाम से इस युद्ध से पलायन कर रहे है। मैं तो इस पारस्परिक विनाश को रोकने के लिये प्रयत्नशील हूँ।

कृष्णसे तो मैंने बार-बार कहा था कि भैया। अपने सम्बन्धियोंके प्रति एक-सा बर्ताव करो; क्योंकि हमारे लिये जैसे पाण्डव हैं, वैसा ही राजा दुर्योधन है। किंतु ये तो अर्जुनको देखकर सब प्रकार उसीपर मुग्ध है। राजन्। मेरा निश्चित विचार है कि जीत पाण्डवोंकी ही होगी और ऐसा ही संकल्प श्रीकृष्णका भी है। मैं तो श्रीकृष्णके बिना इस लोकपर दृष्टि भी नहीं डाल सकता; अत: ये जो कुछ करना चाहते है, उसीका अनुवर्तन किया करता हूँ। भीम और दुर्योधन ये दोनों वीर मेरे शिष्य हैं और गदायुद्धमें कुशल हैं। अत: इनपर मेरा समान स्नेह है। यह विवाद देखकर युधिष्ठिर बोले, आइये आप लोग सब हमारे साथ भोजन करें। हम सब की अपनी-अपनी मान्यतायें और धारणाएँ हैं। उनका समाधान तर्क से नहीं हो पायेगा। यह तो महाकाल ही अपनी यात्रा में निश्चित करेगा कि सत्य क्या है और सत्यपक्ष कौनसा है? महाबाहु बलराम पाण्डवोंसे विदा होकर तीर्थयात्राके लिये चले गये।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय। इसी समय राजा भीष्मकका पुत्र रुक्मी एक अक्षौहिणी सेना लेकर पाण्डवोंके पास आया। उसने श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये सूर्यके समान तेजस्विनी ध्वजा लिये पाण्डवोंके शिबिरमें प्रवेश किया। पाण्डव उससे परिचित तो थे ही। राजा युधिष्ठिरने उसका आगे बढ़कर स्वागत किया। रुक्मीने भी उन सबका यथायोग्य आदर किया और फिर कुछ देर ठहरकर सब वीरोंके सामने अर्जुनसे कहा, अर्जुन। यदि तुम्हें किसी प्रकारका भय हो तो मैं तुमलोगोंकी सहायताके लिये आ गया हूँ। मैं युद्धमें तुम्हारी ऐसी सहायता करूँगा कि शत्रु उसे सह नहीं सकेंगे। संसारमें मेरे समान पराक्रमी काई दूसरा मनुष्य नहीं है। तुम युद्धमें मुझे जिस सेनासे मोर्चा लेनेका भार सौंपोगे, उसीको मैं तहस-नहस कर दूँगा। द्रोण, कृप, भीष्म, कर्ण- कोई भी वीर क्यों न हो, अथवा ये सभी राजा इकट्ठे होकर मेरे सामने आवें, मैं इन शत्रुओंको मारकर तुम्हें ही पृथ्वीका राज्य सौंप दूँगा।

तब अर्जुन श्रीकृष्ण और धर्मराजकी ओर देखकर हँसे और शान्तभावसे कहने लगे, मैंने कुरुवंशमें जन्म लिया है; तिसपर भी मैं महाराज पाण्डुका पुत्र और द्रोणाचार्यका शिष्य कहलाता हूँ, श्रीकृष्ण मेरे सहायक हैं और गाण्डीव धनुष मेरे पास है। फिर मैं यह कैसे कह सकता हूँ कि मैं डर गया हूँ। वीरवर। जिस समय कौरवोंकी घोषयात्राके अवसरपर मैंने गन्धर्वोंके साथ युद्ध किया था, उस समय मेरी सहायता करने कौन आया था? तथा विराटनगरमें बहुत-से कौरवोंके साथ अकेले ही युद्ध करते समय मुझे किसने सहायता दी थी? मैंने युद्धके लिये ही भगवान शंकर, इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, अग्नि, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और श्रीकृष्णकी उपासना की है। अत: मैं युद्धसे डरता हूँ ऐसी यशका नाश करनेवाली बात तो मुझ-जैसा पुरुष साक्षात् इन्द्रके सामने भी नहीं कह सकता। इसलिये महाबाहो। मुझे किसी प्रकारका भय नहीं है और न किसीकी सहायताकी ही आवश्यकता है। तुम अपनी इच्छाके अनुसार जहाँ जाना चाहो, वहाँ जा सकते हो और रहना चाहो तो आनन्दसे रहो।

इसके बाद रुक्मी अपनी समुद्रके समान विशाल वाहिनी को लौटाकर दुर्योधनके पास आया और वहाँ भी उसने वैसी ही

बातें कीं। दुर्योधनको भी अपने वीरत्वका अभिमान था, इसलिये उसने भी उससे सहायता लेना स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार बलराम और रूक्मी ये दो वीर उस युद्धसे निकलकर चले गये।

जब दोनों सेनाओंका संगठन हो गया और उनकी व्यूहरचनाका भी निश्चय हो गया तो राजा धृतराष्ट्रने सञ्जयसे पूछा, सञ्जय। अब तुम मुझे यह बताओ कि कौरव और पाण्डवोंकी सेनाका पड़ाव पड़ जानेपर फिर वहाँ क्या हुआ। मैं तो समझता हूँ होनहार ही बलवान है, पुरुषार्थसे कुछ नहीं होता। मेरी बुद्धि दोषोंको अच्छी तरह समझ लेती है, किंतु दुर्योधनसे मिलनेपर फिर बदल जाती है। अत: अब जो कुछ होना है, वह होकर ही रहेगा।

## २९) दुर्योधनका शकुनि पुत्र उलूक को पांडवों के पास अपना सन्देश भेजना

भीष्म के पास महर्षि व्यास आते हैं। व्यास बोले हे गंगापुत्र कर तो कोई कुछ नहीं सकता, यही काल का नियम है। यही भाग्य है। जो होनेवाला होता है उसकी आधारशिला तो बहुत पहिले रखी जा चुकी होती है। फिर अवस्थायें सबको उसी चरम सीमा की ओर ले जाती है और अवस्था का दायित्व केवल मनुष्य पर होता है। यही भाग्य है गंगा पुत्र और यही दुर्भाग्य। भीष्म बोले, कहो मैं क्या करू ऋषिवर मैं क्या करूं? मेरी माता तो मुझे मिली नहीं, ये हस्तिनापुर ही मेरी माता है। मैं इसे उजडता नहीं देख सकता ऋषिवर। व्यास बोले, देखना तो पडेगा पुरुष शिरोमणि। कभी कभी कर्त्तव्य मनुष्य की सहनशक्ति से बाहर चल पडता है। यह वही घडी है। इसलिये अपनी वृद्ध आंखों को रोने के लिये उद्धत रखे। भीष्म बोले, मुझसे कहने के लिये आपके पास यही रह गया है ऋषिवर। व्यास बोले, आप धृतराष्ट्र नहीं है जो आपसे कुछ कहने की आवश्यकता हो। कहने की हर बात आप स्वयं अपने आप से कह सकते हैं। इस मास की तेरस को ग्रहण है गंगापुत्र और इससे पहिले ऐसा कभी नहीं हुआ। यह ग्रहण सर्वनाश का प्रतिबिम्ब है। भीष्म बोले, जानता हूं ऋषिवर, अच्छी तरह जानता हूं पर मैं एक ऐसी सेना का प्रधान सेनापति हूं जिसकी हार सुनिश्चित है यह भी जानता हूं किन्तु आप भी यह जानते होंगे ऋषिवर कि गंगापुत्र भीष्म बेबस है। विवश है ऋषिवर।

धृतराष्ट्र के पास संजय बैठा हुआ है। ऋषि व्यास आते हैं। धृतराष्ट्र बोले, प्रणाम तातश्री। महर्षि व्यास बोले, आयु तो तुम्हारी यो भी बड़ी लम्बी हैं, क्या आशीर्वाद दूं? किन्तु आयु का लम्बा होना सदैव अच्छा नहीं। यदि कोई होगा ही नहीं तो जीवित रह क्या करोगे? धृतराष्ट्र बोला, ऋषिवर। व्यास बोले, ऋषि मोह से मुक्त होते हैं राजन उनके लिये हंसना रोना समान है इसीलिये वे कडवे सत्य बोल सकते हैं। मैं तुम्हारे पास एक कडवा सत्य बोलने ही आया हूं। धृतराष्ट्र बोले, आदेश दीजिये। व्यास बोले, आदेश नहीं राजन, परामर्श, उपदेश। राजन द्वारपर खडे हुये इस महायुद्ध को भीतर आने की आज्ञा मत दीजिये। धृतराष्ट्र बोले, मैं स्वयं भी युद्ध नहीं चाहता ऋषिवर परन्तु क्या करूं? मेरे पुत्र मेरे वश में नहीं है। व्यास बोले, तो ठीक है राजन। मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि दिये देता हूँ ताकि तुम स्वयं अपना सर्वनाश देख सको। धृतराष्ट्र बोले, नहीं, नहीं। मैं दिव्य दृष्टि लेकर क्या करूंगा? मैंने जिन्हें घुटनों चलते नहीं देखा मैंने जिनकी तरुणाई नहीं देखी, मैं उनके शव देखकर क्या करूंगा। और देखकर भी क्या कर लूंगा। मैं तो उन शवों को पहिचान भी नहीं पाऊंगा। यह शव मेरे प्रिय भीम का है या दुर्योधन का? मैं तो केवल सुनना चाहता हूँ ऋषिवर। तो हे ऋषिवर संजय को यह दिव्य दृष्टि प्रदान कीजिये कि मैं इससे सुन सकूं कि कौन वीरगति को प्राप्त हुआ? व्यास बोले- जैसी तुम्हारी इच्छा राजन। संजय को व्यास ने दिव्य दृष्टि प्रदान की। संजय अब तुम भूत, भविष्य और वर्तमान सब कुछ देख सकोगे। धृतराष्ट्र बोला, हे ऋषिवर यदि आप इस महायुद्ध का परिणाम बताने की कृपा करें तो मैं आपका कृतघ्न हूंगा। व्यास बोले, हे राजन वृक्ष केवल छाया ही नहीं देते वो ईन्धन भी देते है और जिन वृक्षों के पास छाया न हो उनका कट जाना ही उचित है ताकि उनके रिक्त किये हुये स्थान पर छाया देनेवाले वृक्ष उग सके। धृतराष्ट्र बोले, कटेगा कौन ऋषिवर? व्यास बोले,

इस प्रश्न का उत्तर तुम्हे संजय देंगे। यह कहकर व्यास चले जाते हैं।

धृतराष्ट्र संजय से पूछते हैं ऋषिवर क्या कह गये। उनकी इस बात का क्या अर्थ है संजय। धृतराष्ट्र बोला हम युद्ध क्यों करते हैं। भूमि के एक छोटे या बडे टुकडे में ऐसा क्या है संजय कि हम अपने नातों तक को भूल जाते। संजय बोला वो शक्ति का प्रतिबिम्ब है महाराज। शक्ति का मापदंड है इसीलिये लोग उसे पाने के लिये अपना जीवन तक दांव पर लगा देते है। धृतराष्ट्र बोले, शक्ति बिना क्षत्रिय का जीवन ही अर्थहीन हो जाता है संजय इसलिये अपनी दिव्यदृष्टि का प्रयोग करो और मुझे बताओ कि इस समय मेरा पुत्र दुर्योधन कहाँ है? और क्या कर रहा है? संजय बोला महाराज, गान्धारीनन्दन दुर्योधन अपने मामाश्री शकुनि, अपने अनुज दु:शासन, मित्र कर्ण तथा शकुनि पुत्र उलूक के साथ मन्त्रणा कर रहे हैं।

अपने कक्ष में दुर्योधन बोला, मैं तो यही उचित समझता हूं कि युधिष्ठिर के पास यह सन्देश भेज देना चाहिये कि हम उस मायावी वासुदेव कृष्ण की माया से भयभीत नहीं हुये। स्वयं हम भी वह सब कुछ कर सकते हैं जो उसने करके दिखाया है। हम भी रूप बदल सकते हैं। हम भी माया द्वारा आकाश में उड सकते है। रसातल में जा सकते हैं। इन्द्रपुरी में प्रवेश कर सकते है। यदि हम चाहे तो शकुनि बोला, हां भान्जे पहला दूत उनकी ओर से आया था। अन्तिम दूत हमारी ओर से ही जाना चाहिये। कर्ण बोला, इन बातों में क्या रखा है मामाश्री? अब तो हम रणभूमि की ओर कूच करने ही वाले हैं और वही उनकी ओर हमारे बाहुबल की परिक्षण भी हो जायेगी। शकुनि बोले, हास्य रस तो तुम्हे छू ही नहीं गया अंगराज। परन्तु मेरे विचार में तो यही ठीक रहेगा। दुशासन बोला, मामाश्री आपके विचार से वहां किसे भेजा जाये? दुर्योधन बोला, कर्ण को भेजा जाये तो कैसा रहेगा। शकुनि बोले, अरे ऐसा तो सोचना भी नही भान्जे। क्योंकि यदि अंगराज को वहां भेजा गया और इनको उनकी कही हुई कोई बात बुरी लग गई तो ये तो वहीं युद्ध आरम्भ कर देंगे। तब तक नहीं लौटेंगे जब तक ये विजय हासिल न कर ले। आह-आह फिर तुम्हारी और मेरी प्यास का क्या होगा? क्या होगा तुम्हारी और मेरी प्यास का। इसलिये दुर्योधन मेरे विचार में पुत्र उलूक को उनके पास भेजना चाहिये। ताकि युद्ध से पहिले यह भी उन्हे देख ले। दुर्योधन बोला, यही उचित रहेगा मामाश्री। क्योंकि युद्ध के उपरान्त तो वे भी देखने योग्य नहीं रह जायेंगे। शकुनि तुमने ठीक कहा भान्जे।

सञ्जयने कहा- महाराज। महात्मा पाण्डवोंने तो हिरण्यवती नदीके तीरपर पड़ाव किया और कौरवोंने एक दूसरे स्थानपर शास्त्रोक्त विधिसे अपनी छावनी डाली। वहाँ राजा दुर्योधनने बड़े उत्साहसे अपनी सेना ठहरायी और भिन्न-भिन्न टुकड़ियोंके लिये अलग-अलग स्थान नियुक्त करके सब राजाओंका बड़ा सम्मान किया। फिर उन्होंने कर्ण, शकुनि और दु:शासनके साथ कुछ गुप्त परामर्श करके उलूकको बुलाकर कहा, उलूक। तुम पाण्डवोंके पास जाओ और श्रीकृष्णके सामने ही पाण्डवोंसे यह संदेश कहो। जिसके लिये वर्षोंसे विचार हो रहा था, वह कौरव और पाण्डवोंका भयमर युद्ध अब होनेवाला है। अर्जुन। तुमने कृष्ण और अपने भाइयोंने सञ्जयसे जो गर्ज-गर्जकर बड़ी शेखीकी बातें कही थीं, वे उसने कौरवोंकी सभामें सुनायी थीं। अब उन्हें कर दिखानेका समय आ गया है। राजन्। तुम तो बड़े धार्मिक कहे जाते हो। अब तुमने अधर्ममें मन क्यों लगाया है? इसीको तो विडालव्रत कहते हैं। एक बार नारदजीने मेरे पिताजीसे इस प्रसङ्गमें एक आख्यान कहा था। वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ। एक बार एक बिलाव शक्तिहीन हो जानेके कारण गङ्गाजीके तटपर ऊर्ध्वबाहु होकर खड़ा हो गया और सब प्राणियोंको अपना विश्वास दिलानेके लिये मैं धर्माचरण कर रहा हूँ ऐसी घोषणा करने लगा। इस प्रकार बहुत समय बीत जानेपर पक्षियोंको उसपर विश्वास हो गया और वे उसका सम्मान करने लगे। उसने भी समझा कि मेरी तपस्या सफल तो हो गयी। फिर बहुत दिनों बाद वहां चूहे भी आये और उस तपस्वीको देखकर सोचने लगे कि हमारे शत्रु बहुत हैं; इसलिये हमारा मामा बनकर यह बिलाव हममेंसे जो बूढ़े और बालक हैं, उनकी रक्षा किया करे। तब उन सबने उस विडालके पास जाकर कहा, आप हमारे उत्तम आश्रय

और परम सुहृद् हैं। अत: हम सब आपकी शरणमें आये हैं। आप सर्वदा धर्ममें तत्पर रहते हैं। अत: वज्रधर इन्द्र जैसे देवताओंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप हमारी रक्षा करें।

चूहोंके इस प्रकार कहनेपर उन्हें भक्षण करनेवाले विडालने कहा- मैं तप भी करूँ और तुम सबकी रक्षा भी करूँ ये दोनों काम होनेका तो मुझे कोई ढंग नहीं दिखायी देता। फिर भी तुम्हारा हित करनेके लिये मुझे तुम्हारी बात माननी चाहिये। तुम्हें भी नित्यप्रति मेरा एक काम करना होगा। मैं कठोर नियमोंका पालन करते-करते बहुत थक गया हूँ। मुझे अपनेमें चलने-फिरनेकी तनिक भी शक्ति दिखायी नहीं देती। अत: आजसे मुझे तुम नित्यप्रति नदीके तीरतक पहुँचा दिया करो। चूहोंने बहुत अच्छा कहकर उसकी बात स्वीकार कर ली और सब बूढ़े-बालक उसीको सौंप दिये।

फिर तो वह पापी बिलाव उन चूहोंको खा-खाकर मोटा हो गया। इधर चूहोंकी संख्या दिनोंदिन कम होने लगी। तब उन सबने आपसमें मिलकर कहा, क्यों जी। मामा तो रोज-रोज फूलता जा रहा है और हम बहुत घट गये हैं। इसका क्या कारण है? तब उनमें कोलिक नामका जो सबसे बूढ़ा चूहा था, उसने कहा- मामाको धर्मकी परवाह थोड़े ही है। उसने तो ढोंग रचकर ही हमसे मेल-जोल बढ़ा लिया है। जो प्राणी केवल फल-मूलादि ही खाता है, उसकी विष्ठामें बाल नहीं होते। इसके अङ्ग बराबर पुष्ट होते जा रहे हैं और हमलोग घट रहे हैं। आठ-सात दिनसे डिंडिक चूहा भी दिखायी नहीं दे रहा है। कोलिककी यह बात सुनकर सब चूहे भाग गये और वह दुष्ट बिलाव भी अपना-सा मुँह लेकर चला गया।

दुष्टात्मन्। इस प्रकार तुमने भी विडालव्रत धारण कर रक्खा है। जैसे चूहोंमें विडालने धर्माचरणका ढोंग रच रक्खा था, उसी प्रकार तुम अपने सगे-सम्बन्धियोंमें धर्माचारी बने हुए हो। तुम्हारी बातें तो और प्रकारकी हैं और कर्म दूसरे ढंगका है। तुमने दुनियाको ठगनेके लिये ही वेदाभ्यास और शान्तिका स्वाँग बना रक्खा है। तुम यह पाखण्ड छोड़कर क्षात्रधर्मका आश्रय लो। तुम्हारी माता वर्षोंसे दु:ख भोग रही है। उसके आँसू पोंछो और संग्राममें शत्रुओंको परास्त करके सम्मान प्राप्त करो। तुमने हमसे पाँच गाँव माँगे थे। किंतु यह सोचकर कि किसी प्रकार पाण्डवोंको कुपित करके उनसे संग्रामभूमिमें दो-दो हाथ करें, हमने तुम्हारी माँग मंजूर नहीं की। तुम्हारे लिये ही मैंने दुष्टचित्त विदुरको त्यागा था। मैंने तुम्हें लाक्षाभवनमें जलानेका प्रयत्न किया था- इस बातको याद करके तो एक बार मर्द बन जाओ। तुम जाति और बलमें मेरे समान ही हो। फिर भी कृष्णका आश्रय लिये क्यों बैठे हो?

उलूक। फिर पाण्डवोंके पास ही कृष्णसे कहना कि तुम अपनी और पाण्डवोंकी रक्षा करनेके लिये अब तैयार होकर हमारे साथ युद्ध करो। तुमने मायासे सभामें जो भयमर रूप धारण किया था, वैसा ही फिर धारण करके अर्जुनके सहित हमपर चढ़ाई करो। इन्द्रजाल, माया अथवा कपट भयजनक तो होते हैं; किंतु जो रणाङ्गणमें शस्त्र धारण किये हुए हैं, उनका वे कुछ नहीं बिगाड़ सकते। वे तो उनके कारण रोषमें भरकर गरजने लगते हैं। हम भी यदि चाहें तो आकाशमें चढ़ सकते हैं, रसातलमें घुस सकते हैं और इन्द्रलोकमें जा सकते हैं। किंतु इससे न तो अपना स्वार्थ सिद्ध हो सकता है और न अपने प्रतिपक्षीको डराया ही जा सकता है। और तुमने जो कहा था कि रणभूमिमें धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मरवाकर पाण्डवोंको उनका राज्य दिलाऊँगा, सो तुम्हारा यह संदेश भी सञ्जयने मुझे सुना दिया था। अब तुम सत्यप्रतिज्ञ होकर पाण्डवोंके लिये पराक्रमपूर्वक कमर कसके युद्ध करो। हम भी तुम्हारा पौरुष देखें। संसारमें अकस्मात् ही तुम्हारा बड़ा यश फैल गया है। किंतु आज मुझे मालूम हुआ कि जिन लोगोंने तुम्हें सिरपर चढ़ा रक्खा है, वे वास्तवमें पुरुष-चिन्ह धारण करनेवाले हिजड़े ही हैं। तुम कंसके एक सेवक ही तो हो। मेरे-जैसे राजा-महाराजाओंको तो तुम्हारे साथ युद्ध करनेके लिये संग्राम भूमिमें आना भी उचित नहीं है।

उस बिना मूँछोंके मर्द, बहुभोजी, अज्ञानकी मूर्ति, मूर्ख भीमसे तुम बार-बार कहना कि तुम कौरवोंकी सभामें पहले जो

प्रतिज्ञा कर चुके हो, उसे मिथ्या मत कर देना। यदि शक्ति रखते हो तो दु:शासनका खून पीना। और तुमने जो कहा था कि मैं रणभूमिमें एक साथ सब धृतराष्ट्र पुत्रोंको मार डालूँगा, सो उसका समय भी अब आ गया है। फिर तुम मेरी ओरसे नकुलसे कह ना कि अब डटकर युद्ध करो। हम तो तुम्हारा पुरुषार्थ देखें। अब तुम युधिष्ठिरके अनुराग, मेरे प्रति द्वेष और द्रौपदीके क्लेशको अच्छी तरह याद कर लो। इसी तरह सब राजाओंके बीचमें सहदेवसे भी कहना कि तुम्हें जो दु:ख सहने पड़े हैं, उन्हें याद करके अब सावधानीसे युद्ध करो।

विराट और द्रुपदसे मेरी ओरसे कहना कि तुम सब इकट्ठे होकर मुझे मारनेके लिये आओ और अपने तथा पाण्डवोंके लिये मेरे साथ संग्राम करो। धृष्टद्युम्नसे कहना कि जब तुम द्रोणाचार्यके सामने आओगे, तब तुम्हें मालूम होगा कि तुम्हारा हित किस बातमें है। अब तुम अपने सुहृदोंके सहित मैदानमें आ जाओ। फिर शिखण्डीसे कहना कि महाबाहु भीष्म तुम्हें स्त्री समझकर नहीं मारेंगे। इसलिये तुम निर्भय होकर युद्ध करना।

इसके बाद राजा दुर्योधन खूब हँसा और उलूकसे कहने लगा- तुम कृष्णके सामने ही अर्जुनसे एक बार फिर कहना कि तुम या तो हमें परास्त करके इस पृथ्वीका शासन करो, नहीं तो हमारे हाथसे हारकर तुम्हें पृथ्वीपर शयन करना होगा। जिस कामके लिये क्षत्राणी पुत्र प्रसव करती है, उसका समय आ गया है। अब तुम संग्रामभूमिमें बल, वीर्य, शौर्य, अस्त्रलाघव और पुरुषार्थ दिखाकर अपने क्रोधको ठंडा कर लो। हमने तुम्हें जूएमें हराया था, तुम्हारे सामने ही हम द्रौपदीको सभामें घसीट लाये थे, फिर हमींने बारह वर्षके लिये घरसे निकालकर तुम्हें वनमें रक्खा और एक वर्षतक विराटके घरमें रहकर उनकी गुलामी करनेके लिये मजबूर किया। इन देशनिकाले, वनवास और द्रौपदीके क्लेशोंको याद करके जरा मर्द बन जाओ और कृष्णको साथ लेकर युद्धके मैदानमें आ जाओ। तुम बहुत बढ़-बढ़कर बातें बनाया करते हो, सो यह व्यर्थ बकवाद छोड़कर जरा पुरुषार्थ दिखाओ। भला, तुम पितामह भीष्म, दुर्धर्ष कर्ण, महाबली शल्य और आचार्य द्रोणको युद्धमें परास्त किये बिना कैसे राज्य पाना चाहते हो? पृथ्वीपर पैर रखनेवाला ऐसा कौन जीव है, जिसे मारनेका भीष्म और द्रोण संकल्प करें तथा जिसे इनके दारुण शस्त्रोंका स्पर्श भी हो जाय और फिर भी वह जीता रहे। यह मैं जानता हूँ कि श्रीकृष्ण तुम्हारे सहायक हैं और तुम्हारे पास गाण्डीव धनुष भी है। तथा तुम्हारे समान कोई योद्धा नहीं है- यह बात भी मुझसे छिपी नहीं है। किंतु लो, यह सब जानकर भी मैं तुम्हारा राज्य छीन रहा हूँ। पिछले तेरह वर्षतक तुमने तो विलाप किया है और मैंने राज्य भोगा है। अब आगे भी बन्धु-बान्धवोंसहित तुम्हें मारकर मैं ही राज्यशासन करूँगा। अर्जुन। जिस समय दासत्वके दाँवपर मैंने तुम्हें जूएमें जीता था, उस समय तुम्हारा गाण्डीव कहाँ था और भीमका बल कहाँ चला गया था? उस समय तो अनिन्दिता कृष्णाकी कृपाके बिना गदाधारी भीम और गाण्डीवधारी अर्जुन भी उस दासत्वसे मुक्त नहीं हो सके थे। देखो, यह भी मेरा ही पुरुषार्थ था कि विराटनगरमें भीमको तो रसोई पकाते-पकाते चैन नहीं थी और तुम तो बृहन्नला बने हुए विराटपुत्री को नृत्य सिखा रहे थे। मैं तुम्हारे या कृष्णके भयसे राज्य नहीं दूँगा। अब तुम और कृष्ण दोनों मिलकर युद्ध करो। जिस समय मेरे अमोघ बाण छूटेंगे, उस समय हजारों कृष्ण और सैकड़ों अर्जुन दसों दिशाओंमें भागते फिरेंगे। फिर तुम्हारे सभी सगे-सम्बन्धी युद्धमें मारे जायेंगे। उस समय तुम्हें बड़ा संताप होगा और जिस प्रकार पुण्यहीन पुरुष स्वर्गप्राप्तिकी आशा छोड़ बैठता है, उसी प्रकार तुम्हारी पृथ्वीका राज्य पानेकी आशा टूट जायगी। इसलिये तुम शान्त हो जाओ। सञ्जय कहते हैं महाराज। इस प्रकार दुर्योधनका संदेश लेकर उलूक पाण्डवोंके शिबिर में आया।

अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, युधिष्ठिर कृष्ण के पास बैठे मन्त्रणा कर रहे थे कि इतने में सन्देश आया कुमार उलूक हस्तिनापुर युवराज दुर्योधन का सन्देश लेकर आये हैं। अर्जुन बोला, केशव यह समझ में नहीं आ रहा कि अब कौनसा

सन्देश देकर दुर्योधन ने अपने दूत को भेजा है? कृष्ण मुस्करा कर बोले, दुर्योधन की बात समझने योग्य तो होती ही नहीं पार्थ फिर भी दूत भेजा है तो सुन लेना चाहिये। उलूक मन्त्रणा कक्ष में आकर अभिवादन करता है। युधिष्ठिर बोले, स्वागत है शकुनि पुत्र उलूक, कृपया अपना स्थान ग्रहण कीजिये और कृपया अब यह बताईये कि प्रिय दुर्योधन ने क्या सन्देश भेजा है? कहिये गान्धार राजकुमार आप क्या सन्देश लाये है?

उलूक बोला, आप दूतके वचनोंसे परिचित ही हैं। इसलिये जिस प्रकार मुझसे कहा गया है, उसी प्रकार दुर्योधनका संदेश सुनानेपर आप क्रोध न करें। युधिष्ठिरने कहा- उलूक। तुम्हारे लिये कोई भयकी बात नहीं है। तुम बिना भयके अदूरदर्शी दुर्योधनका विचार सुनाओ।

दूसरी ओर राजा भगदत्तने एक अक्षौहिणी सेना देकर कौरवोंका हर्ष बढ़ाया। उनकी सेनामें चीन और किरात देशोंके वीर थे। इसी प्रकार दुर्योधनके पक्षमें और भी कई राजा एक-एक अक्षौहिणी सेना लेकर आये। हृदीकके पुत्र कृतवर्मा भोज, अन्धक और कुकुरवंशीय यादव वीरोंके सहित एक अक्षौहिणी सेना लेकर दुर्योधनके पास उपस्थित हुए। सिन्धुसौवीर देशके जयद्रथ और राजाओंके साथ भी कई अक्षौहिणी सेना आयी। काम्बोजनरेश सुदक्षिण शक और यवन वीरोंके सहित आया। उसके साथ भी एक अक्षौहिणी सेना थी। इसी प्रकार माहिष्मती पुरीका राजा नील दक्षिण देशके महाबली वीरोंके सहित आया। अवन्ति देशके राजा विन्द और अनुविन्द भी एक-एक अक्षौहिणी सेना लेकर दुर्योधनकी सेवामें उपस्थित हुए। केकय देशके राजा पाँच सहोदर भाई थे। उन्होंने भी एक अक्षौहिणी सेनाके साथ उपस्थित होकर कुरुराजको प्रसन्न किया। इसके सिवा जहाँ-तहाँसे आये हुए अन्य राजाओंकी तीन अक्षौहिणी सेना और भी हो गयी। इस प्रकार दुर्योधनके पक्षमें कुल ग्यारह अक्षौहिणी सेना एकत्रित हुई। वह तरह-तरहकी ध्वजाओंसे सुशोभित और पाण्डवोंसे भिड़नेके लिये उत्सुक थी। पञ्चनद, कुरुजाङ्गल, रोहितवन, मारवाड़, अहिच्छत्र, कालकूट, गङ्गातट, वारण, वटधान और यमुनातटका पर्वतीय प्रदेश- यह सारा धन-धान्यपूर्ण विस्तृत क्षेत्र कौरवोंकी सेनासे भरा हुआ था। महाराज द्रुपदने अपने जिस पुरोहितको दूत बनाकर भेजा था, उसने इस प्रकार एकत्रित हुई वह कौरव-सेना देखी।

हे राजेन्द्र, हे भरत नन्दन, हे नरश्रेष्ठ मैं दूत हूं मुझे विश्वास है आप दूत की सुरक्षा के मर्म पर ध्यान दें। हे राजन जो सन्देश मैं देने जा रहा हूं वो सन्देश भी उनका है और शब्दावली भी उन्ही की है। युधिष्ठिर बोले, भय का कोई कारण नहीं उलूक, जो कहने भेजे गये हो वह कह डालो। उलूक ने हाथ जोडकर कहा जो आज्ञा। महाराज महामाना धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन ने यह सन्देश भेजा है कि तुम द्यूत में अपना राज्य, अपने भाई और अपनी पत्नी तक को हार गये। तुम्हारी पत्नी घसीटकर राजसभा में लाई गई पर तुम कायरों की भांति यह अपमान सहन करते रहे। उसके बाद तुम १२ वर्षों के वनवास में रहे और अज्ञातवास का एक वर्ष विराटराज के दासत्व में बिताया। तुम कायर हो और कभी क्षत्रिय रहे हो तो रहे हो, पर आज तो तुम क्षत्रिय भी नहीं हो। फिर किस मुंह से इन्द्रप्रस्थ मांग रहे हो? प्रण के अनुसार अज्ञातवास भंग होने के उपरान्त १२ वर्ष के वनवास के लिये चले जाना चाहिये था। इसलिये पहिले १२ वर्ष के वनवास को जाओ और फिर हमारे सामने आकर हाथ फैलाकर पांच गांव की भिक्षा मांगो। सम्भवत: तब हम तुम्हे इन्द्रप्रस्थ भी दे देंगे। किन्तु यदि तुम ऐसा नहीं कर सकते तो धर्मात्मा होने का स्वांग छोड़ो। तुम्हारे शान्तिदूत वासुदेव कृष्ण ने तुम्हरे लिये पांच गांव मांगे थे। मैंने वे पांच गांव देना भी स्वीकार नही किया क्योंकि तुम कपटी और अधर्मी हो। तुम्हे अपनी पत्नी के मान सम्मान में भी अधिक अपने राजमुकुट से प्रेम है। यदि ऐसा न होता तो तुम शान्तिदूत नहीं भेजते बल्कि हस्तिनापुर पर चढ़ आये होते। फिर चाहे तुम्हे इन्द्रप्रस्थ मिलता या ना मिलता। चाहे तुम क्षत्रियों की भांति युद्ध करते करते वीर गति को प्राप्त हो गये होते किन्तु

तुम्हारा पहिला कर्त्तव्य प्रतिशोध ही था, राजमुकुट पहिनना नहीं था। तुम तो राज्य के लोभी निकले चाहे वो मांग कर ही क्यों न प्राप्त किया गया हो? जो व्यक्ति अपनी पत्नी के मान-सम्मान की रक्षा नहीं कर सकता वो क्षत्रिय तो क्या मनुष्य मात्र भी नहीं है। सन्देश यह है कि युद्ध को ध्यान से निकाल दो। जिस मायावी श्रीकृष्ण की मायावी शक्तियों पर उछल रहे हो, उन शक्तियों का हम पर कोई प्रभाव नहीं होगा। मायावी शक्तियां हमारे पास भी है। और युद्ध में मायावी की नहीं बाहुबल की आवश्यकता होती है। हे अल्पबुद्धि मूढ़ युधिष्ठिर युद्ध को ध्यान से निकाल दे और विराट राज के दासत्व में अपना जीवन व्यतीत कर और कुन्ती पुत्र अर्जुन तुम्हारे लिये यह सन्देश है कि जिव्हा नहीं बाण चलाओ। यदि इस जगत में अपनी झूठी प्रशंसा से ही कार्यों की सिद्धि हो जाती तो सभी सिद्ध काम हो जाते क्योंकि स्वयं अपनी प्रशंसा करने में भला कौन दरिद्र होगा? तुम्हारे साथ वासुदेव कृष्ण है, तुम्हारे हाथ में चार हाथ लम्बा गांडीव है, सब जानते हैं कि तुमसे बडा यौद्धा कोई और नहीं फिर भी मैंने तुम्हारे राज्य का अपहरण किया और तुम रोते बिलखते रह गये। मैंने १३ वर्षों तक तुम्हारे राज्य को भोगा है और आगे भी मैं ही तुम्हारे राज्य को भोगूंगा। उसके पश्चात मेरे पुत्र और उन मेरे पुत्रों के पुत्र तुम्हारे राज्य को भोगेंगे। यदि युद्ध हुआ तो मैं तुम्हारे भाइयों सहित तुम्हारा वध अवश्य करूंगा। हे दास अर्जुन जिस दिन द्रौपदी का वस्त्राहरण हो रहा था उस दिन भी तुम्हारा गांडीव तुम्हारे पास था। और भीम से पूछो उस दिन उसका बल कहां गया था? तुम लोग नपुंसक हो नपुंसक। इसलिये कुरु महावीरों को ललकारने की मूर्खता मत दिखाओ, जहां हो वही पडे रहो।

पाण्डव। तुम राज्यहरण, वनवास और द्रौपदीके उत्पीड़नकी बात याद करके जरा मर्द बन जाओ। भीमने सामर्थ्य न होनेपर भी जो ऐसी शर्त की थी कि मैं दु:शासनका रक्त पीऊँगा, सो यदि इनकी ताब हो तो पी लें। अस्त्र-शस्त्रोंमें मन्त्रोंद्वारा देवताओंका आह्वान हो चुका है, कुरुक्षेत्रकी कीचड़ सूख गयी है और मार्ग चौरस हो गये हैं; इसलिये अब कृष्णके साथ संग्रामभूमिमें आ जाओ। तुम पितामह भीष्म, दुर्धर्ष कर्ण, महाबली शल्य और आचार्य द्रोणको युद्धमें परास्त किये बिना किस प्रकार राज्य लेना चाहते हो? भला, पृथ्वीपर पैर रखनेवाला ऐसा कौन प्राणी है, जिसे मारनेका भीष्म और द्रोण संकल्प कर लें तथा जिसे उनके दारुण शस्त्रोंका स्पर्श भी हो जाय और फिर भी वह जीता रहे।

महाराज युधिष्ठिरसे ऐसा कह उलूकने अर्जुनकी ओर मुख करके कहा- अर्जुन। आपसे महाराज दुर्योधन कहते हैं कि तुम बहुत बकवाद क्यों करते हो? ये व्यर्थ बातें बनाना छोड़कर युद्धमें सामने आ जाओ। अब तो युद्ध करनेसे ही कोई काम बन सकता है, बातें बनानेसे कुछ नहीं होगा। मैं जानता हूँ कि कृष्ण तुम्हारे सहायक हैं और तुम्हारे पास गाण्डीव धनुष भी है। तथा तुम्हारे समान कोई योद्धा नहीं है यह सब जानकर भी मैं तुम्हारा राज्य छीन रहा हूँ। द्यूतक्रीडाके समय जब तुम दासत्वमें बँध गये थे तो उस समय अनिन्दिता द्रौपदीकी कृपाके बिना गदाधारी भीम और गाण्डीवधारी अर्जुन तो उस दासत्वसे अपना छुटकारा भी नहीं करा सके थे। मैं तुम्हारे या कृष्णके भयसे राज्य नहीं दूँगा। इस प्रकार जब तुम्हारे सभी सगे-सम्बन्धी युद्धमें मारे जायँगे तो तुम्हें बड़ा संताप होगा और जिस प्रकार पुण्यहीन पुरुष स्वर्गप्राप्तिकी आशा छोड़ बैठता है, उसी प्रकार तुम्हारी पृथ्वीका राज्य पानेकी आशा टूट जायगी। इसलिये तुम शान्त हो जाओ।

पाण्डवलोग तो पहलेहीसे क्रोधमें भरे बैठे थे। उलूककी ये बातें सुनकर वे और भी गर्म हो गये और विषधर सर्पोंके समान एक-दूसरेकी ओर देखने लगे। तब श्रीकृष्णने कुछ मुसकराकर उलूकसे कहा, उलूक। तुम जल्दी ही दुर्योधनके पास जाओ और उससे कहो कि हमने तुम्हारी बातें सुन ली हैं। तुम्हारा जैसा विचार है, वैसा ही होगा।

भीम कौरवोंके संकेत और भाव को समझकर क्रोधसे आगबबूला हो गये और दाँत पीसकर उलूकसे कहने लगे, मूर्ख। दुर्योधनने तुमसे जो-जो बातें कही हैं, वे सब हमने सुन लीं। अब मैं जो कुछ कहता हूँ, सुनो। तुम सब क्षत्रियोंके सामने

सूतपुत्र कर्ण और अपने पिता दुरात्मा शकुनिके सुनते हुए दुर्योधनसे यह कहना कि रे दुरात्मन्। हम जो अपने ज्येष्ठ भ्राता धर्मराज युधिष्ठिरकी प्रसन्नताके लिये सदासे तेरे अपराधोंको सहते रहे हैं, मालूम होता है हमारे उन उपकारोंका तेरे हृदयमें कुछ भी आदर नहीं है। धर्मराज अपने कुलके कल्याणके लिये ही आपसमें मेल कराना चाहते थे। इसीसे उन्होंने श्रीकृष्णको कौरवोंके पास भेजा था। किंतु अवश्य ही तेरे सिरपर काल नाच रहा है, इसीसे तू यमराजके घर जाना चाहता है। अच्छा तो, अब निश्चय कल हमारे साथ तेरा संग्राम होगा। मैंने भी तुझे और तेरे भाइयोंको मारनेकी प्रतिज्ञा कर ली है और ऐसा ही होगा भी। समुद्र भले ही अपनी मर्यादाको तोड़ दे और पहाड़ोंके भले ही टुकड़े-टुकड़े उड़ जायँ, किंतु मेरा कथन झूठा नहीं होगा। अरे दुर्बुद्धे। साक्षात् यम कुबेर और रुद्र भी तेरी सहायता करें तो भी पाण्डवलोग अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे। मैं खूब जी भरकर दु:शासनका खून पीऊँगा। इस युद्धमें स्वयं भीष्मको आगे रखकर भी कोई क्षत्रिय मेरे सामने आवेगा तो उसे तुरंत यमराजके घर भेज दूँगा। इस क्षत्रियोंकी सभामें मैंने ये जितनी बातें कहीं हैं, वे सभी सत्य होंगी- यह मैं अपने आत्माकी शपथ करके कहता हूँ।

भीमकी बातें सुनकर सहदेव भी क्रोधमें भर गये और इस प्रकार कहने लगे, पापी उलूक। मेरी बात सुनो। तुम अपने पितासे जाकर कहना कि यदि राजा धृतराष्ट्रसे तुम्हारा सम्बन्ध न होता तो हममें यह फूट ही न पड़ती। तुमने तो धृतराष्ट्रके वंश और सब लोगोंका नाश करानेके लिये ही जन्म लिया है। तुम साक्षात् शत्रुताकी मूर्ति, अपने कुलका उच्छेद करानेवाले और बड़े पापी हो। उलूक। याद रक्खो, इस संग्राममें मैं पहले तुम्हें मारूँगा और फिर तुम्हारे पिता शकुनि के प्राण लूँगा। भीम और सहदेवकी बात सुनकर अर्जुनने मुसकराकर भीमसे कहा, आपके साथ जिन लोगोंका वैर है, उनके सम्बन्धमें तो आप यही समझिये कि वे संसारमें हैं ही नहीं। किंतु उलूकसे आपको कोई कड़वी बात नहीं कहनी चाहिये। दूत बेचारे क्या अपराध करते हैं; उनसे तो जैसा कहनेको कहा जाता है, वैसा ही वे सुना देते हैं। भीमसे ऐसा कहकर फिर उन्होंने धृष्टद्युम्नादि अपने सम्बन्धियोंसे कहा, आप लोगोंने पापी दुर्योधनकी बातें सुन लीं? इनमें विशेषरूपसे मेरी और श्रीकृष्णकी ही निन्दा की गयी है। इन बातोंको सुनकर आप हमारे ही हितकी दृष्टिसे रोषमें भर गये हैं। किंतु आप लोगोंकी सहायता और श्रीकृष्णके प्रतापसे मैं सम्पूर्ण क्षत्रिय राजाओंको भी कुछ नहीं समझता। अत: आप सब आज्ञा दें तो मैं उलूकको इन बातोंका उत्तर दे दूँ। नहीं तो कल अपनी सेनाके मुहानेपर धनुषसे ही इस बकवादका जवाब दूँगा। बातोंमें तो नपुंसकलोग ही जवाब दिया करते हैं। अर्जुनकी यह बात सुनकर राजालोग उनकी प्रशंसा करने लगे।

फिर महाराज युधिष्ठिरने उन सबका उनके सम्मान और आयुके अनुसार सत्कार किया और दुर्योधनको संदेश रूपसे सुनानेके लिये उलूकसे कहा- उलूक। तुम जाओ और शत्रुताकी मूर्ति कुलकलंक दुर्योधनसे कहो कि भाई। तुम्हारी बड़ी पापबुद्धि है। अब तुमने हमें युद्धके लिये आमन्त्रित तो कर ही लिया है। किंतु तुम क्षत्रिय हो, इसलिये हमारे माननीय भीष्मादिको और स्नेहास्पद लक्ष्मणादिको आगे रखकर हमसे युद्ध मत करना। बल्कि अपने और अपने सेवकोंके पराक्रमके भरोसे ही पाण्डवोंको युद्धमें बुलाना। देखो, पूरा-पूरा क्षत्रियत्व निभाना। जो पुरुष दूसरोंके पराक्रमका आश्रय लेकर शत्रुओंको संग्रामके लिये बुलाता है और स्वयं उससे लोहा लेनेकी शक्ति नहीं रखता, उसीको नपुंसक कहते हैं।

श्रीकृष्णने कहा, उलूक। इसके बाद तुम दुर्योधनसे मेरा संदेश कहना कि अब कल ही तुम रणभूमिमें आ जाओ और अपनी मर्दानगी दिखाओ। तुम जो ऐसा समझते हो कि कृष्ण युद्ध नहीं करेगा; क्योंकि पाण्डवोंने इससे अर्जुनका सारथी बननेके लिये कहा है- क्या इसीसे तुम्हें मेरा डर नहीं है? सो याद रक्खो, युद्धके अन्तमें कोई भी नहीं बचेगा; आग जैसे घास-फूसको जला देती है, उसी प्रकार अपने क्रोधसे मैं सबको भस्म कर दूँगा। इस समय तो महाराज युधिष्ठिरकी

आज्ञासे मैं युद्ध करते हुए अर्जुनका सारथ्य ही करूँगा। अब कल तो तुम तीनों लोकोंमें यदि कहीं उड़कर जाना चाहोगे अथवा भूमिके भीतर घुसनेका प्रयत्न करोगे, तो भी वहीं तुम्हें अर्जुनका रथ दिखायी देगा और तुम जो भीमकी प्रतिज्ञाको मिथ्या समझते हो, सो तुम समझ लो कि दु:शासनका खून तो उन्होंने आज ही पी लिया। तुम व्यर्थ ऐसी उल्टी-उल्टी बातें बनाते हो; महाराज युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन और नकुल-सहदेव तो तुम्हें कुछ भी नहीं समझते।

कृष्ण उठे और बोले हे द्यूत कुशल कपटी शकुनि के पुत्र उलूक तुमने सन्देश देकर अपने कर्त्तव्य का पालन कर लिया और हमने सुनकर अपने कर्त्तव्य का। अब तुम जाओ और गान्धारी नन्दन से कहो हे दुर्योधन तुम क्षत्रिय की भांति जी तो नहीं सके किन्तु क्षत्रिय की भांति वीर गति को प्राप्त होने का प्रयत्न तो करो। क्योंकि क्षत्रिय की भांति मृत्यु को गले लगाना सहज नहीं बहुत कठिन कार्य है।

इसके बाद महायशस्वी अर्जुन उलूकसे कहने लगे- जो पुरुष अपने पराक्रमके भरोसे शत्रुओंको संग्रामके लिये ललकारता है और फिर डटकर उनका मुकाबला करता है, मर्द तो वही है। जाओ, तुम दुर्योधनसे कहना कि सव्यसाची अर्जुनने तुम्हारी चुनौती स्वीकार कर ली है, अब आजकी रात बीतते ही युद्ध आरम्भ हो जायगा। मैं तुम्हारे सामने सबसे पहले कुरुवृद्ध पितामह भीष्मका ही संहार करूँगा। तुम्हारे अधर्मी भाई दु:शासनसे भीमने क्रोधमें भरकर सभामें जो बात कही थी, उसे भी तुम थोड़े ही दिनोंमें सत्य हुई देखोगे। दुर्योधन। अभिमान, दर्प, क्रोध, कटुता, निष्ठुरता, अहंकार, क्रूरता, तीक्ष्णता, धर्मविद्वेष, गुरुजनोंकी बात न मानने और अधर्मपर तुले रहनेका दुष्परिणाम बहुत जल्द तुम्हारे सामने आ जायगा। भीष्म, द्रोण और कर्णके युद्धस्थलमें काम आते ही तुम अपने जीवन, राज्य और पुत्रोंकी आशा छोड़ बैठोगे। जब तुम अपने भाई और पुत्रोंकी मृत्युका संवाद सुनोगे और भीम तुम्हें मारने लगेंगे, तभी तुम्हें अपने कुकर्मोंकी याद आवेगी। मैं तुमसे सच-सच कहता हूँ, ये सभी बातें सत्य होकर रहेंगी।

तब युधिष्ठिर बोले, उलूक। तुम दुर्योधनसे जाकर मेरी यह बात कहना कि मैं तो कीड़े-मकोड़ोंको भी कष्ट पहुँचाना नहीं चाहता, फिर अपने सगे-सम्बन्धियोंके नाशकी इच्छा कैसे कर सकता हूँ? इसीसे मैंने पहले ही केवल पाँच गाँव माँगे थे। किंतु तुम्हारा मन तृष्णामें डूबा हुआ है और तुम मूर्खतासे ही व्यर्थ बकवाद किया करते हो। देखो, तुमने श्रीकृष्णकी भी हितकारिणी शिक्षा ग्रहण नहीं की। अब अधिक कहने-सुननेमें क्या रक्खा है, तुम अपने बन्धु-बान्धवोंके सहित मैदानमें आ जाओ। इसके बाद भीमने कहा- उलूक। दुर्योधन बड़ा ही दुर्बुद्धि, पापी, शठ, क्रूर, कुटिल और दुराचारी है। तुम मेरी ओरसे उससे कहना कि मैंने सभाके बीचमें जो प्रतिज्ञा की थी उसे, मैं सत्यकी शपथ करके कहता हूँ, अवश्य सत्य करूँगा। मैं रणभूमिमें दु:शासनको पछाड़कर उसका लहू पीऊँगा तथा तेरी जंघाको तोड़ूँगा और तेरे भाइयोंको नष्ट कर डालूँगा। सच मान, मैं धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंका काल हूँ। एक बात और भी सुन- मैं भाइयोंके सहित तुझे मारकर धर्मराजके सामने ही तेरे सिरपर पैर रक्खूंगा। फिर नकुलने कहा- उलूक। तुम धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनसे कहना कि मैंने तुम्हारी सब बातें अच्छी तरह सुन ली हैं। तुम मुझे जैसा करनेके लिये कह रहे हो, मैं वैसा ही करूँगा। सहदेव बोले, दुर्योधन। तुम्हारा जो विचार है, वह सब वृथा हो जायगा और महाराज धृतराष्ट्रको तुम्हारे लिये शोक करना पड़ेगा। इसके पश्चात् शिखण्डीने कहा, नि:संदेह विधाताने मुझे पितामह भीष्मके वधके लिये ही उत्पन्न किया है। इसलिये मैं सब धनुर्धरोंके देखते-देखते उन्हें धराशायी कर दूँगा। फिर धृष्टद्युम्नने भी कहा, मेरी ओरसे तुम दुर्योधनसे कहना कि मैं द्रोणाचार्यको उनके साथी और सम्बन्धियोंके सहित मार डालूंगा। अन्तमें महाराज युधिष्ठिरने करुणावश फिर कहा, मैं तो किसी भी प्रकार अपने कुटुम्बियोंका वध नहीं कराना चाहता। यह सब नौबत तो तुम्हारे ही दोषसे आयी है। और उलूक। अब तुम या तो जाओ

या रहनेकी इच्छा हो तो यहीं रहो। हम भी तुम्हारे सम्बन्धी ही हैं।

तब उलूक महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञा पा राजा दुर्योधनके पास आया और उसे अर्जुनका संदेश ज्यों-का-त्यों सुना दिया तथा श्रीकृष्ण, भीम और धर्मराज युधिष्ठिरके पुरुषार्थका वर्णन कर नकुल, विराट, द्रुपद, सहदेव, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनने जो-जो बातें कही थीं, वे सब उसी प्रकार सुना दीं। उलूककी बातें सुनकर राजा दुर्योधनने दु:शासन, कर्ण और शकुनिसे कहा कि सब राजाओंको तथा अपनी और अपने मित्रोंकी सेनाको आज्ञा दे दो कि कल सूर्योदय होनेसे पहले ही सब सेनापति तैयार हो जायँ। तब कर्णकी आज्ञासे दूतोंने सम्पूर्ण सेना और राजाओंको दुर्योधनका यह आदेश सुना दिया।

इधर उलूककी बातें सुनकर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने भी धृष्टद्युम्नके नेतृत्वमें अपनी चतुरङ्गिणी सेनाको प्रस्थान करने के लिये तैयार किया। महारथी भीम और अर्जुन आदि सब ओरसे उसकी देखभाल करते चलते थे। उसके आगे महान् धनुर्धर धृष्टद्युम्न थे। उन्होंने जिस वीरका जैसा बल और जैसा उत्साह था, उसे उसी कोटिके प्रतिपक्षीसे युद्ध करनेकी आज्ञा दी। अर्जुनको कर्णके साथ, उत्तमौजाको कृपाचार्यके साथ, नकुलको अश्वत्थामाके साथ, शैव्यको कृतवर्माके साथ, सात्यकिको जयद्रथके साथ और शिखण्डीको भीष्मके साथ युद्ध करनेके लिये नियुक्त किया। इसी प्रकार सहदेवको शकुनिसे, चेकितानको शलसे, द्रौपदीके पाँच पुत्रोंको त्रिगर्तवीरोंसे और अभिमन्युको वृषसेन तथा अन्यान्य राजाओंसे भिड़नेका आदेश दिया; क्योंकि वे उसे संग्रामभूमिमें अर्जुनकी अपेक्षा भी अधिक शक्तिशाली समझते थे। इस प्रकार सब योद्धाओंका विभाग कर उन्होंने अपने भागमें द्रोणाचार्यको रक्खा और फिर पाण्डवोंकी विजयके लिये रणाङ्गणमें सुसज्जित होकर खड़े हो गये। संजय धृतराष्ट्र को यह सब बता रहा है और वासुदेव कृष्ण ने जो कुछ कहा वह सब बताया। धृतराष्ट्र बोला बस करो संजय बस। अब मुझे और कुछ नहीं सुनना है। संजय बोला, जो आज्ञा महाराज। धृतराष्ट्र बोले, संजय विदुर ने तो मेरे पास आना ही छोड़ दिया है, तुम्हारे अतिरिक्त मेरे पास कोई नहीं है। मुझे बताओ मैं दुर्योधन को आदेश दूं या उससे विनती करूं? संजय बोला, यह युद्ध तो अब न तो आपके आदेश से रोके रूकेगा महाराज और ना ही आपकी विनती से। काल लहू की नदी में स्नान करने का निर्णय ले चुका है। अब आप केवल यह कर सकते है महाराज कि आप सिंहासन त्यागकर वन की ओर प्रस्थान करें।

गान्धारी के कक्ष में दुर्योधन आता है। दुर्योधन बोला माताश्री। गान्धारी बोली, आओ। दुर्योधन बोला, प्रणाम माताश्री। गान्धारी बोली, आयुष्मान भव। दुर्योधन बोला, आज मैं कुरुक्षेत्र की ओर प्रस्थान कर रहा हूं। गान्धारी बोली, क्या इस युद्ध का होना आवश्यक है पुत्र? दुर्योधन बोला, यदि यह युद्ध आवश्यक न होता माताश्री तो मैं युद्धभूमि की ओर प्रस्थान ही क्यों करता? अब आप एक क्षत्राणी माता की भांति मेरे माथे पर विजयश्री का तिलक लगावे। मुझे विजयश्री का आशीर्वाद दे। गान्धारी बोली, यदि मैं तुम्हे यह आशीर्वाद दे भी दूं तब भी इस आशीर्वाद का कवच तुम्हारे काम नहीं आयेगा पुत्र। क्योंकि यह समझ लो जहां धर्म है वहीं वासुदेव कृष्ण हैं और जहां वासुदेव कृष्ण हैं वही विजयश्री भी है और आज वासुदेव कृष्ण पांडु पुत्रों के शिबिर में है। नेत्रहीन ममता तुम्हे चाहे जो आशीर्वाद दे दे किन्तु विजय तो धर्म की ही होनी है। इसलिये युद्ध करना है पुत्र तो वासुदेव कृष्ण से नहीं स्वयं से युद्ध करो। उस युद्ध के लिये मैं स्वयं तुम्हे विजयश्री का आशीर्वाद दूंगी। दुर्योधन बोला, मुझे यही आशीर्वाद इसी युद्ध के लिये चाहिये माताश्री। यदि आप मुझे यह आशीर्वाद नही देगी तब भी मैं इस अन्तिम युद्ध के लिये कुरुक्षेत्र की ओर प्रस्थान अवश्य करूंगा। अब आप मुझे यह बताइये कि आप आशीर्वाद देगी या नहीं। गान्धारी बोली, नहीं। मैं तुम्हे यह आशीर्वाद कभी नही दूंगी। दुर्योधन बोला, ठीक है मैं आपके चरणों के स्पर्श किये बिना ही कुरुक्षेत्र की ओर प्रस्थान करता हूँ। प्रणाम माताश्री और यह कहकर दुर्योधन चला

जाता है। गान्धारी रोने लगती है और महादेव को पुकारती है।

**माता ने सुत को दिया नहीं विजय वरदान, चला हठी सुत युद्ध पर फिर भी सीना तान।**

## ३०) मद्र नरेश शल्य का दुर्योधन के साथ युद्ध में कर्ण का सारथी बनने का पद ग्रहण करना

यदि मैं समय न रहा होता तो जो यौद्धा, जो महारथी आज कुरुक्षेत्र की ओर जाते दिखाई दे रहे है उन्हें देखते ही मैं भाग गया होता। कृष्ण के दाऊ बलराम और रूक्मिणि के भाई रूक्मी के अतिरिक्त आज कोई ऐसा यौद्धा नहीं है जो पांडवों या कौरवों के पक्ष में युद्ध करने के लिये रणभूमि की ओर न जा रहा हो। मानव इतिहास में आगे चलकर भी बहुत से महायुद्ध होंगे किन्तु जिस महायुद्ध की दुन्दभि बज रही है वैसा महायुद्ध न पहिले कभी हुआ और न आगे कभी होगा। समय के रास्ते में लहू का एक महासागर पडनेवाला है और उसे पार किये बिना समय भी आगे नहीं जा सकता। ध्वजों की तेज हवा चल रही है, रथों के घोडे हिन हिना रहे हैं, मस्त हाथी हौदों को अपनी पीठ पर बिठलाये चिंघाड रहे हैं। पेड सन्नाटे में खडे हैं। हवा रूककर सेनाओं का जाना देख रही है। दोनों ओर की सेनायें कुरुक्षेत्र की ओर प्रस्थान कर रही हैं। सेनाओं ने कुरुक्षेत्र में अपने अपने शिबिर स्थापित किये।

**आज अन्धकार है भारत तेरे भाग, कुरुवंशी करने चले लगी धरा पे आग।**

**ये महायुद्ध है यह धर्मयुद्ध है।**

वैशम्पायन कहते हैं, राजन्। दूतोंके मुखसे पाण्डवोंका संदेश सुनकर राजा शल्य बड़ी भारी सेना और अपने महारथी पुत्रोंके सहित पाण्डवोंकी सहायताके लिये चले। उनके पास इतनी बड़ी सेना थी कि उसका पड़ाव दो कोसके बीचमें पड़ता था। वे एक अक्षौहिणी सेनाके स्वामी थे तथा उनकी सेनाके सैकड़ों-हजारों क्षत्रिय वीर सञ्चालक थे। इस विशाल सेनाके सहित वे बीच-बीचमें विश्राम करते धीरे-धीरे पाण्डवोंके पास चले।

दुर्योधनने जब महारथी शल्यको पाण्डवोंकी सहायताके लिये आते सुना तो उसने स्वयं जाकर उनके सत्कारका प्रबन्ध किया। उनके सत्कारके लिये उसने शिल्पियोंद्वारा रास्तेके रमणीय प्रदेशोंमें सुन्दर-सुन्दर रत्नजटित सभाभवन बनवा दिये और उनमें तरह-तरहकी क्रीड़ाओंकी सामग्रियाँ रख दीं। जब शल्य उन सभाओंमें पहुँचते तो दुर्योधनके मन्त्री उनका देवताओंके समान सत्कार करते। एकके बाद वे दूसरी सभामें पहुँचे, वह भी देवभवनके समान कान्तिमयी थी। वहाँ उन्होंने अनेकों अलौकिक विषयोंका सेवन किया।

मद्र नरेश शल्य अपनी सेना के साथ युधिष्ठिर की सेना में सम्मिलित होने के लिये युधिष्ठिर के शिबिर की ओर आ रहे हैं। शल्य बोले, सेनापति तुमने देखा। सेनापति बोला, हम तो महाराज युधिष्ठिर के पक्ष में कब और किधर से युद्ध करने आ रहे है। किन्तु उन्हे समाचार मिल ही गया होगा। और वो देखो सामने स्वागत द्वार सिर झुकाये हाथों को बांधे खडा है। वास्तव में वह दुर्योधन का शिबिर था। द्वारपाल ने कहा, मद्र नरेश की जय हो। हम हमारे महाराज की ओर से आपका स्वागत है। शल्य बोले, तुमने यह कैसे जान लिया कि हम इधर से आ रहे है? स्वागत सेनापति बोले, हम यह जानते नही थे इसके लिये मद्र देश की ओर से आनेवाले हर मार्गपर आपके स्वागत का प्रबन्ध किया गया है। महाराज के किसी पैदल सैनिक तक को भी किसी प्रकार का कष्ट ना हो। महाराज की आज्ञा हो तो स्वागत शिबिर की ओर ले चले। मद्रनरेश शल्य बोले, अवश्य चलो। मद्र नरेश ने रात्रि विश्राम व भोजन अन्जाने में दुर्योधन के शिबिर में किया। सैनिकोंने मद्र नरेश की जय करभ। प्रात: सूर्योदय होनेपर मद्र नरेश आगे की ओर प्रस्थान करने के लिये निकलते हैं और बोले हम महाराज युधिष्ठिर से

तुम्हारी बहुत प्रशंसा करेंगे। हम स्वयं तो तुम्हे पारितोषिक देंगे ही पर युधिष्ठिर वो तो तुम्हे मणियों से लाद ही देंगे। स्वागताध्यक्ष बोले, महाराज का आनन्द ही हमारा पारितोषिक है। शल्य अपने सेनापति से बोला, तुमने सुना सेनापति। इसे कहते है स्वागत की सभ्यता। हमसे कोई पारितोषिक लिया भी नहीं और यह कहकर नकार भी दिया हमारा आनन्द ही उसका पारितोषिक है। वाह। वहां से निकलकर रास्ते में सायंकल दूसरे पडाव पर पहुंचे। वहां भी दुर्योधन का ही प्रबन्ध था। उसे युधिष्ठिर का ही प्रबन्ध समझकर मद्र नरेश ने वहां पर विश्राम किया।

दुर्योधन के शिबिर कक्ष में, शकुनि, कर्ण, दु:शासन बैठे हैं। शकुनि बोला, ध्यान से सुनो भान्जों। यदि हम योजना के अनुसार चलते रहे तो सारे कार्य... दुर्योधन के शिबिर का स्वागताध्यक्ष आया और प्रणाम किया। दुर्योधन बोला, महाराज शल्य आ गये। दूत ने कहा जी महाराज। वो हमारी सेवा से इतने प्रसन्न हुये कि ज्येष्ठ पांडु पुत्र युधिष्ठिर से हमारी प्रशंसा करनेवाले हैं। दुर्योधन बोला, ज्येष्ठ पांडु पुत्रों से। चर बोला जी युवराज। दुर्योधन बोला, सुना आपने मामाश्री। मामा शल्य कुन्ती पुत्रों से इन सबकी प्रशंसा करनेवाले है। शकुनि बोले, प्रिय दुर्योधन जैसे भान्जे वैसा मामा। यदि तुम इस मामा को तोड लो तो पांडवों के मुख पर निश्चित ही कालिख पुत जायेगी और वो इतनी पक्की कालिख छुडाये कभी नहीं छुडेगी भान्जे। दुर्योधन ने प्रसन्न हो गले का हार शिबिर के स्वागताध्यक्ष को दिया और पकड बोला, हम तुम पर अतिप्रसन्न है वत्स। बहुमूल्य पारितोषिक तो युद्ध में लडने के पश्चात ही मिलेगा। तुम नहीं जानते कि तुमने हस्तिनापुर की कितनी उत्तम सेवा की है। स्वागताध्यक्ष बोला, युवराज की जय हो।

युधिष्ठिर के शिबिर में सभी चिंतित हो बैठै किसी प्रतीक्षा में है। अर्जुन बोला, केशव तनिक बडे भैया से पूछे हम लोग यहां किसकी प्रतीक्षा में ठहरे हैं। कृष्ण बोले, तुम क्यों नही पूछते? अर्जुन बोला, मैं कैसे पूछूं अनुज हूं ना। कृष्ण बोले, अच्छा बडे भैया यह धनुर्धर आपसे कुछ पूछना चाहता है। युधिष्ठिर बोले, तो पूछते क्यों नहीं अनुज? अर्जुन बोला, यदि हम यहां ठहरे हुये ही है तो किसी न किसी की प्रतीक्षा ही कर रहे हैं ना? युधिष्ठिर बोले, मैं मामा शल्य की प्रतीक्षा कर रहा हूं। कृष्ण बोले, उनकी प्रतीक्षा तो अवश्य करनी चाहिये क्योंकि इस महायुद्ध में अति महत्वपूर्ण कार्य करनेवाले हैं। नकुल बोला, वे किसका वध करेंगे। कृष्ण बोले, युद्ध में केवल वध नहीं होते प्रिय नकुल। नकुल बोला, आपके वाक्य अधिकतर मेरी समझ में नहीं आते। सहदेव बोला, अपनी समझ का दोष इनके वाक्यों की ओर क्यों सरका रहे हो। यदि वासुदेव ये कह रहे है कि मामाश्री कोई अति महत्वपूर्ण कार्य करनेवाले है तो ऐसा अवश्य होगा। कृष्ण बोले, बाण पहले प्रतिद्वन्दी की छाती भेदता है नकुल या उसका कवच? नकुल बोला, जो बाण छाती भेदता है वह पहिले कवच भी भेदता है। कृष्ण बोले, कोई आवश्यक नहीं नकुल। कुछ छातियां भी विशेष होती है नकुल और कुछ कवच भी। हमें मद्र नरेश की प्रतीक्षा कर ही लेनी चाहिये। नकुल बोला, यदि आप जानते हैं तो बताते क्यों नहीं। कृष्ण बोले, शब्दों का प्रयोग बहुत सोच समझकर करना चाहिये नकुल। ये बडे दायित्ववाला शब्द है, कोमल भी और तीव्र भी। ये विकल्पों के द्वार खोलता है और रणभूमि की ओर जानेवाले हर यौद्धा के लिये आवश्यक है कि वो विकल्पों के सारे द्वार स्वयं उठकर बन्द कर ले। मद्र नरेश को हम सब भली भांति जानते हैं और उनसे आपका गहरा सम्बन्ध भी है। उधर एक मामाश्री तो हैं ही तो फिर इधर चाहे मामाश्री हो या ना हो परन्तु एक मामा को तो होना ही चाहिये।

शल्यने अत्यन्त प्रसन्न होकर शिबिर के सेवकोंसे पूछा, इन सभाओंको युधिष्ठिरके किन आदमियोंने तैयार किया है? उन्हें मेरे सामने लाओ, उन्हें तो कुछ इनाम मिलना चाहिये। मैं उन्हें कुछ पारितोषिक दूँगा। युधिष्ठिरको भी इस बातमें मेरा समर्थन करना चाहिये। सेवकोंने चकित होकर यह सब समाचार दुर्योधनको सुनाया। दुर्योधनने जब देखा कि इस समय

शल्य अत्यन्त प्रसन्न हैं और अपने प्राण देनेको भी तैयार हैं तो वह उनके पास जानेको तैयार हुआ।

मद्र नरेश दूसरे शिबिर में आते हैं। महाराज आज्ञा हो तो पडाव डालने का आदेश दिया जाय महाराज। शल्य नरेश बोले, पिछले सप्ताह में एक दिन भी पडाव डालने दिया है युधिष्ठिर ने। हम अपना पडाव डालकर उनके अतिथि सम्मान का अपमान नहीं कर सकते। आगे बढो। थोडी दूर चलने पर एक विश्राम स्थल शिबिर आता है। जहां बहुत सी परिचारिकायें नृत्य कर रही हैं और मद्र नरेश को मदिरा पिला रही हैं। चर ने आकर सूचना दी महाराज की जय हो। हस्तिनापुर युवराज गान्धारी नन्दन शिरोमणि महारथी दुर्योधन उपस्थित होने की आज्ञा चाहते हैं। शल्य बोले, दुर्योधन। वो हमसे क्यों मिलना चाहता है। मैं तो उसी के विरुद्ध युद्ध करने के लिये मद्र देश से निकला हुआ हूँ फिर भी यदि आ ही गया है तो युधिष्ठिर के उस अनुज को आदर सहित लिवा लाया जाये। एकान्त। परिचारिकायें चली जाती हैं। दुर्योधन, कर्ण, शकुनि, दु:शासन के साथ शिबिर में आता है। दुर्योधन बोला प्रणाम मामाश्री। शल्य बोले, आओ वत्स। धर्मराज युधिष्ठिर के इस शिबिर में तुम्हारा स्वागत है। दुर्योधन बोला, मामाश्री ये धर्मराज युधिष्ठिर का शिबिर। शल्य बोले, उन्होंने तो हमारा पडाव डालने ही नहीं दिया। जहां दिन ढलने लगता है वही उनके सेवकों की एक सेना आ खडी होती है। मैंने तो आज तक ऐसा अतिथि सत्कार देखा ही नहीं। कर्ण बोला, यह तो बहुत बडा अनर्थ हो गया मद्र नरेश। शल्य बोले, क्यों, अनर्थ क्यों हो गया अंगराज? कर्ण बोला, अनर्थ यों हुआ है मद्र नरेश सेवा का वृक्ष लगाये युवराज दुर्योधन और उसका फल मिल रहा है धर्मराज युधिष्ठिर को। शकुनि बोले, यह आप क्या कह रहे हैं अंगराज? सेवा कोई फल की लालसा में तो नहीं की जाती न अंगराज और फिर प्रिय दुर्योधन की सेवा का फल परिवार से बाहर थोडे ही जा रहा है। अरे जैसे ये नकुल और सहदेव के मामा, वैसे मेरे भान्जे दुर्योधन के मामा, है कि नहीं। महाराज आप किस चिन्ता में डुब गये? घी का क्या, खिचड़ी में ही ना और फिर युद्ध का यह तात्पर्य तो नहीं महाराज पांडव हम पराये हो गये, नहीं नहीं। अरे लाठी मारने से पानी अलग तो नहीं हो सकता न महाराज, नहीं हो सकता न। शल्य बोले, फिर भी तुम्हारे सेवकों को मुझे यह बता देना चाहिये था दुर्योधन कि वे तुम्हारे सेवक है। दुर्योधन बोला, परन्तु आपने उनसे कभी यह तो पूछा ही नहीं श्री श्री। आप तो हर पडाव पर उनसे यही कहते रहे कि आप उनकी सेवा से अति प्रसन्न है। और आप ज्येष्ठ भ्राताश्री से उनकी प्रशंसा करेंगे। शल्य बोले, लेकिन मैं तो पांडवों के पक्ष से युद्ध करने को निकला हूं वत्स। दुर्योधन बोला, लेकिन मैं आपको उनके पक्ष में युद्ध करने से कहां रोक रहा हूँ श्री श्री। आपकी सेवा करना तो मेरा कर्त्तव्य था। मैं तो केवल अपने कर्तव्य का पालन कर रहा हूँ। शल्य बोले, किन्तु चाहे अनजाने में हुआ हो मैंने तुम्हारा अतिथि सत्कार स्वीकार किया है और इसीलिये मैं तुम्हे आशीर्वाद दिये बिना तो जा ही नहीं सकता। कुछ मांग लो। मद्रराजने दुर्योधनको देखकर और वह सारा प्रयत्न उसीका जानकर उसे प्रसन्नतासे गले लगा लिया और कहा कि तुम्हारी जो इच्छा हो, वह माँग लो।

दुर्योधन बोला, मैं आपसे क्षमा चाहता हूं परन्तु मैं अतिथि सत्कार का व्यापारी नहीं हूँ और मैं उस सत्कार का कोई मूल्य भी नहीं ले सकता। चाहे वो मूल्य आप अपनी आशीर्वाद की मुद्राओं से ही क्यों न चुकाना चाहते हैं? शल्य बोले, तो फिर युद्ध करो क्योंकि मैं तुम्हारे उपकार के भार का बोझ लेकर रणभूमि में नहीं उतर सकता। दुर्योधन बोला, मैं आपसे एक बार और क्षमा चाहता हूँ श्री श्री। आप मेरे अतिथि हैं और मैं आपसे अपने ही शिबिर में युद्ध करके आतिथेय की मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर सकता। शल्य बोले, तब तो तुमको मुझसे कुछ मांगना ही पडेगा वत्स। मांगना ही पडेगा। शकुनि बोले, अरे दुर्योधन यह आदेश है आदेश। अपनों से बडों का आदेश न मानना असभ्यता का प्रदर्शन है। अरे अब तो तुम्हे कुछ मांगना ही पडेगा। चिन्ता न करो भान्जे। जैसे मैं तुम्हारा मामा हूँ वैसे ये भी तुम्हारे मामाश्री है। मांग लो मांग लो भान्जे।

दुर्योधनने कहा, महानुभाव। आपका वाक्य सत्य हो। आप मुझे अवश्य वर दीजिये। मेरी इच्छा है कि आप मेरी सम्पूर्ण सेनाके नायक हों। शल्यने कहा, अच्छा मैंने तुम्हारी बात स्वीकार की। बताओ, तुम्हारा और क्या काम करूँ? तब दुर्योधनने बार-बार यही कहा कि मेरा तो आपने सब काम पूरा कर दिया।

यदि आप मुझे कुछ देना ही चाहते हैं तो आप अपने आशीर्वाद के रूप में हस्तिनापुर सेना के प्रधान सेनापति बनकर मुझे सम्मानित करें। शल्य बोले, मैं गंगापुत्र भीष्म के होते हुये यह पद स्वीकार नहीं कर सकता युवराज। कर्ण बोला तो फिर आप मेरे सारथी बनकर मुझे सम्मानित कीजिये। अर्जुन के सारथी वासुदेव होंगे महारथी शल्य। मुझे भी उच्च कोटि का सारथी चाहिये। तो फिर ऐसा सारथी संसार में आपके अतिरिक्त और कौन है? उधर से अर्जुन, इधर से मैं, उधर से वासुदेव, इधर से आप, सारा संसार साक्षी है। इस युद्ध में मुझे गुरु श्रेष्ठ परशुराम की लाज रखनी है महाराज। मैं यह नहीं चाहता कि इतिहास यह कह सके कि आचार्य द्रोण का शिष्य अर्जुन धनुर्विद्या में परशुराम शिष्य कर्ण से श्रेष्ठ है। धनुष मेरे पास भी है राजन और धनुष अर्जुन के पास भी है। बाण मेरे तुणीर में भी है और बाण उसके तुणीर में भी है। सन्धान में वो भी निपुण है और मैं भी किन्तु उसके पास वासुदेव जैसा सारथी और वैसा सारथी मेरे पास नहीं। शल्य बोले, ठीक है अंगराज ठीक है। मैं तुम्हारा सारथी बनूंगा क्योंकि अकेले तुम्ही एक ऐसे योद्धा हो जो रणभूमि में अपने शत्रु के घरवाले के हाथ में अपने रथ के घोड़ों की लगाम देने का साहस कर सकता है। मैं तुम्हारी विनती को अस्वीकार कर तुम्हे अपमानित नहीं कर सकता।

इसके पश्चात् शल्यने कहा- दुर्योधन। तुम अपनी राजधानीको जाओ, मुझे अभी युधिष्ठिरसे मिलना है। उनसे मिलकर मैं शीघ्र ही तुम्हारे पास आ जाऊँगा। दुर्योधनने कहा, राजन्। युधिष्ठिरसे मिलकर आप शीघ्र ही आवें, हम तो अब आपके ही अधीन हैं; हमारे वरदानकी बात याद रक्खें। फिर शल्य और दुर्योधन परस्पर गले मिले। दुर्योधन शल्यकी आज्ञा लेकर अपने नगरमें चला आया और शल्य दुर्योधनकी यह सब बात सुनानेके लिये युधिष्ठिरके पास आये। विराटनगरके उपप्लव्य प्रदेशमें पहुँचकर वे पाण्डवोंकी शिबिर में आये। वहाँ उन्होंने सभी पाण्डवोंके देखा और उनके दिये हुए अर्घ्य-पाद्यादिको ग्रहण किया। फिर मद्रराजने कुशलप्रश्नके पश्चात् युधिष्ठिर का आलिङ्गन किया तथा भीम अर्जुन और अपने भान्जे नकुल-सहदेवको हृदयसे लगाकर जब वे आसनपर बैठ गये तो उन्होंने राजा युधिष्ठिरसे कहा, कुरुश्रेष्ठ। तुम कुशलसे तो हो? यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि तुम वनवासके बन्धनसे छूट गये। तुमने द्रौपदी और भाइयोंके सहित निर्जन वनमें रहकर सचमुच बड़ा दुष्कर कार्य किया है। उससे भी कठिन अज्ञातवासको भी तुमने अच्छा निभा दिया। सच है, राज्यच्युत होनेपर तो दु:ख ही भोगना पड़ता है; फिर सुख कहाँ? राजन्। क्षमा, दम, सत्य, अहिंसा और अद्भुत सद्गति- ये तुममें स्वभावत: विद्यमान हैं। तुम बड़े ही मृदुलस्वभाव, उदार, ब्राह्मणसेवी, दानी और धर्मनिष्ठ हो। तुम्हें इस महान् दु:खसे मुक्त हुआ देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है।

पुत्र युधिष्ठिर, वे बोले, तुम्हारा यश दिग-दिगंत में फैल रहा है। मैं कितना प्रसन्न हूँ कि तुम लोग वनवास और अज्ञातवास की परीक्षा में से इस प्रकार सफलतापूर्वक उत्तीर्ण होकर निकले हो। यह तो तुम ही हो पुत्र। जो धैर्यपूर्वक इस प्रकार के कष्ट सह लेते हो, अन्यथा दुर्योधन के अत्याचारों को इस प्रकार शांत मन से सह लेना और किसी के वश का तो है नहीं। तुम साक्षात् धर्मराज हो पुत्र। क्षमा, दया, करुणा के तो तुम अवतार ही हो। तुम अपना धर्म कभी मत छोड़ना।

अर्जुन ने धीरे से सहदेव के कान में कहा, मेरा विचार है कि मद्रराज अपने किसी आकस्मिक निर्णय की भूमिका बना रहे हैं। व्यक्ति को आवश्यकता उस वस्तु की होती है, जो उसके पास नहीं है। पांडवों के पास राज्य नहीं है और दुर्योधन के पास धर्म नहीं है। शल्य को चाहिए कि वे दुर्योधन को थोड़ा धर्म दे आएँ और पांडवों से तो केवल राज्य-प्राप्ति की चर्चा

करें। शल्य बोले, जीवन का लक्ष्य तो धर्म ही है पुत्र। और तुम सौभाग्यशाली हो कि अपना मार्ग देख पा रहे हो और दृढ़तापूर्वक उस पर चल रहे हो। अब भीष्म हस्तिनापुर की रक्षा को अपना धर्म समझ बैठे हैं तो उनसे कोई क्या कहे। धर्म के भी तो अनेक रूप हैं। ठीक कह रहे हो पुत्र। जिसे जो धर्म दिखाई दे, वह उसी पर तो चलेगा। शीत ऋतु में हिमवान की जिन नदियों का जल जम जाता है, उनपर चलनेवाले पशु-पक्षियों को कहाँ मालूम होता है कि जिस हिम पर वे चल रहे हैं, वह केवल ऊपरी आवरण है। उसके नीचे धरती नहीं, जल है। यदि किसी कारण आवरण हट जाए तो वे गहरे ठंडे जल में जा गिरेंगे और उनकी मृत्यु हो जाएगी। धरती समझकर नदी की धारा पर चलनेवाले पशु को क्या तुम उसके लिए दोषी ठहराओगे पुत्र? और उसके लिए उसे तुम दंडित करना चाहोगे?

धर्मराज बोले, नहीं मातुल। वह पशु तो न नदी पर चल रहा है, न धरती पर। वह तो अपने सत्य पर चल रहा है। और सत्य पर चलनेवाले को हम दोषी कैसे ठहरा सकते हैं। शल्य धीरे से बोले, ठीक कहते हो पुत्र। मैं जानता था कि तुम मेरी बात समझोगे और मुझे अपने धर्म पर चलने के लिए अपराधी नहीं ठहराओगे। मैं तुम्हें एक सूचना देना चाहता हूँ।

मैंने तुम्हें सैनिक सहायता का वचन दिया था। मैं और मेरा पुत्र रुक्मरथ, अपनी सेना लेकर निकले थे। तुम जानते ही हो कि मार्ग लंबा भी है और कष्टप्रद भी। और जब सेना के साथ चलना हो तो अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ बढ़ जाती हैं। दिन में यात्रा का समय तो व्यतीत हो जाता था; पर रात को विभिन्न असुविधाओं के कारण नींद नहीं आती थी। उससे यात्रा बड़ी दु:खदायी हो गई थी। कष्ट के उस समय में हमें मार्ग में बने हुए कुछ मंडप मिले, वहाँ हमारा स्वागत हुआ। हमारा राजसी सत्कार हुआ। मैंने मान लिया कि वे मंडप तुमने मेरी सुविधा के लिए बनवाए हैं। मैं वहां की सेवा और सत्कार से इतना प्रसन्न हुआ कि मैंने तुम्हें मनचाहा वर देना चाहा। मैंने सेवकों को अपने स्वामी को बुलाने का आदेश दिया तो वहां के स्वामी के रूप में प्रकट हुआ दुर्योधन।

युधिष्ठिर ने पूछा, फिर क्या हुआ मातुल? शल्य बोले, क्या होना था पुत्र। मैं वचन हार चुका था। मैंने उसे वरदान माँगने को कहा और उसने माँगा कि मैं आसन्न युद्ध में उसकी सम्मत सेनाओं का अधिपति हो जाऊँ। नकुल ने पूछा, और आपने उसे यह वरदान दे दिया? शल्य बोले, और क्या करता पुत्र? मैं अपने वचन में बँधा था। सहदेव बोला, उसके सम्मुख आने से पूर्व आप वचन में कैसे बँध गए? उसे सम्मुख देखकर आपने उसे वर माँगने के लिए कहा। इसका अर्थ है कि उस समय तक आप जान चुके थे कि आप धरती पर नहीं जमी हुई नदी पर चल रहे हैं। शल्य ने कुछ धृष्ट होकर कहा, मैं उसके सेवकों को ही कह चुका था कि मैं उसे वर देना चाहता हूँ।

युधिष्ठिर के शिबिर में शल्य व अन्य भाई तथा कृष्ण बैठे हुये है। कृष्ण बोले, आप पांडवों को अपना बाहुबल चाहे न दे नरेश परन्तु अपना आशीर्वाद तो अवश्य देंगे। या यह आशीर्वाद भी दुर्योधन को ही दे आये? शल्य बोले, मैं तो यह सोच भी नहीं सकता था वासुदेव कि वो कपटी दुर्योधन मुझसे यह मांग बैठेगा। वो तो भलीभांति यह जानता था कि मैं पांडवों के पक्ष में युद्ध करने निकला हूँ। उसने मेरे साथ खुला कपट किया। अतिथि की मर्यादा का उल्लंघन किया परन्तु मेरा आशीर्वाद तो पांडु पुत्रों के साथ है। हे प्रियवर युधिष्ठिर तुम्हारा मंगल हो। मेरे हाथ उनके साथ हैं, मेरे अस्त्र शस्त्र उनके साथ है, मेरी सेना भी उनके साथ है परन्तु मेरा आशीर्वाद तो तुम्हारे साथ है। मेरी जिव्हा भी तुम्हारे लिये है, केवल तुम्हारे लिये। सहदेव उठ खड़ा हो बोला, आपने हमें मुंह दिखाने योग्य नहीं छोड़ा। युधिष्ठिर बोले, सहदेव अपनी सहनशीलता का मार्ग न त्यागो प्रिय अनुज। सहदेव बोला, मैं परिवाद नहीं कर रहा हूं भ्राताश्री परन्तु मैं उन दिनों को कैसे भूलूं जब हमारे वनवास के निकलने के तनिक पहिले वहीं मां कुन्ती ने कल्याणी द्रौपदी से कहा हे द्रौपदी मेरे सहदेव का ध्यान रखना। अपने पुत्रों

में सबसे प्रिय मुझे यही है। मैं यह कैसे भूलूं कि जब हम लोग छोटे थे तो बडी मां अपनी गोदी में मुझे बिठला कर आप लोगों से पहिले भोजन करवाया करती थी। क्या आपको याद नहीं लाक्ष्यागृह से निकलते समय उन्होंने सबसे पहिले मुझे निकाला था और मामा युद्ध में आपका विरोध करेंगे। छोटे भैया से द्वन्द्व युद्ध में उस सूतपुत्र कर्ण का रथ हांककर इनके रथ के सामने ले जायेंगे। हे मद्र नरेश उस सूतपुत्र का सारथी बनने से पहिले, हस्तिनापुर जाइये और हमारी माता कुन्ती से क्षमा मांगिये या उनसे कहिये की आप उनके आभारी नहीं। हे मद्र नरेश आज आपने हमें अपने ज्येष्ठ भ्राताओं का सौतेला भाई बना दिया। अर्जुन उठकर खड़ा हो बोला, तुम तो सबों से भी अधिक प्रिय हो सहदेव। अधिक सग्गे। तुमने सौतेले शब्द का प्रयोग करके आज अपनी दोनों माताओं का अपमान किया है। सहदेव हम पांचों भाई तो वो भाग्यशाली पुत्र हैं जिन पर दोनों माताओं ने अपनी ममताओं का सावन बरसाया है। हमारी आत्माओं के सरोवर दोनों माताओं की ममता से छलक रहे हैं। माताओं की ओर से मन मैला मत करो। उन्होंने तो वही किया जो एक महारथी को करना चाहिये। मैं तुमसे एक प्रश्न पूछता हूं सहदेव क्या तुम अपनी सेनाओं के महारथियों के साथ एक ऐसे महारथी के रथ को चलने दोगे जो दुर्योधन का आभारी हो बोलो सहदेव? वो अगर कुछ भी दिये बिना चले आते तो ऋणी होते। हमारे पितामह भी तो उधर है तो क्या उन्हें दुर्योधन हमसे अधिक प्रिय है? गुरुवर द्रोणाचार्य भी तो उधर है तो क्या उनके हृदय में हमारे लिये कोई स्थान नहीं रह गया? मामा के लिये ऐसे कठोर शब्दों का प्रयोग तुम्हे शोभा नहीं देता प्रिय सहदेव। जाओ और मामा से क्षमा मांग लो। उसके उपरान्त अपने आपको कभी सौतेला मत कहना वत्स और अर्जुन भाव विभोर सहदेव से गले मिला। सहदेव ने शल्य से क्षमा मांगी और बोला मुझसे घोर अपराध हुआ है। मुझे क्षमा कर दीजिये मामाश्री क्योंकि बड़ी मां को इस बात की सूचना मिल गई तो वे क्रोध में आकर अपने स्नेह की छाया मेरे सिर से हटा देंगी।

**तोड़े नाता या वचन है द्विविधा में प्राण, वीर गले मिल सोचते किसको दे सम्मान।**

युधिष्ठिर बोले, ठीक है मातुल। आपने जो सत्य देखा मामाश्री उसका पालन किया। जिसे धर्म समझा उसका आचरण किया। हमें आपको उपालंभ देनेका कोई अधिकार नहीं है। यह आपका धर्म न होकर आपकी इच्छा भी होती तो हम आपका विरोध नहीं करते। नकुल का स्वर कुछ उग्र हो गया था और बोला, मातुल। लोगों में धर्म का कम मात्रा में और लोभ ही अधिक मात्रा में होता है। आपने दुर्योधन की सेनाओं का महासेनापति होने के लोभ में तो उसे वर नहीं दे दिया?

युधिष्ठिर ने कहा, कारण कुछ भी रहा हो और परिणाम चाहे कुछ भी हो। इतना तो स्पष्ट है कि वह युद्ध में हमसे अधिक चतुर प्रमाणित हो रहा है। फिर भी मैं नहीं चाहूँगा कि जो योद्धा अपने मन से हमारे साथ न हो, उसे हम उसकी इच्छा के विरुद्ध अपने पक्ष से लड़ने को बाध्य करें। शल्य बोले, मैं मन से तुम्हारे साथ हूँ युधिष्ठिर। युधिष्ठिर ने शल्य को और कुछ कहने का अवसर नहीं दिया, मैं आपका विश्वास करता हूँ मातुल। इसलिए आपको हमारा एक काम करना होगा।

शल्य बोले, क्या पुत्र। युधिष्ठिर बोले, मैं जानता हूँ, योद्धाओं के करने योग्य कार्य नहीं है यह। फिर भी आप यह कार्य मेरे लिए करें। शल्य बोले, क्या पुत्र। युधिष्ठिर बोले, मेरा विचार है कि युद्ध में जब कर्ण और अर्जुन का द्वैरथ युद्ध होगा, तो दुर्योधन कर्ण के लिए एक असाधारण प्रतिभाशाली सारथी की खोज करेगा, क्योंकि अर्जुन के सारथी स्वयं श्रीकृष्ण हैं। और तब उसकी दृष्टि आप पर पड़ेगी। अर्जुन ने कहा, जहाँ तक मैं समझता हूँ, दुर्योधन ने मातुल का अपहरण इसी काम के लिए किया है। मेरा सारथ्य श्रीकृष्ण करेंगे, यह सुनकर उसे कर्ण के लिए कोई ऐसा ही सारथी चाहिए होगा।

शल्य बोले, कर्ण ने एक बार कहा था कि वह युद्ध-सारथ्य में मुझे श्रीकृष्ण के समकक्ष मानता है।

युधिष्ठिर बोले, ऐसे अवसर पर आप कर्ण का उत्साह-वर्द्धन न कर, उसे हतोत्साहित करें। सारथी की दृष्टि में सम्मान न

हो तो योद्धा का बल आधा ही रह जाता है। आपने अपनी सेना दुर्योधन को दे दी है, तो अपना भाव और प्रेम हमें दें। इसे भी अपना धर्म ही समझें। शल्य ने कहा, मैं तुम्हें वचन देता हूँ पुत्र कि यदि ऐसा अवसर आया तो मेरा व्यवहार तुम्हारे मनोनुकूल ही होगा। कर्ण का अहंकार वैसे भी मुझे कभी प्रिय नहीं रहा। बातें कर रहे हैं आदर्शों की, धर्म में बँध जाने की और तनिक सा धन और पद का लोभ सम्मुख आ जाए तो क्षणभर भी टिके नहीं रह सकते। बस स्वार्थ ही स्वार्थ रह जाता है। दया आती है मुझे तो ऐसे लोगोंपर। जीव की इंद्रियाँ और मन तो लोभ, मोह, स्वार्थ, अहंकार, मद, मात्सर्य जैसे तत्त्वों से ही बनाए गए हैं। जीव के लिए वैसा ही व्यवहार स्वाभाविक है। सारा खेल ही इन तत्वों से मुक्त होने का है। इनसे मुक्त होने का प्रयत्न करने के लिए ही तो यह मानव तन मिला है हमें। जिसमें ये सारे तत्व जितनी कम मात्रा में हैं, वह मनुष्य विकास के उतने ही ऊँचे सोपान पर पहुँचा हुआ है।

इसके बाद राजा शल्यने जिस प्रकार दुर्योधनके साथ उनका समागम हुआ था, वह सब और उसकी सेवा-सुश्रूषा तथा अपने वर देनेकी बात भी युधिष्ठिरको सुना दी। यह सुनकर राजा युधिष्ठिरने कहा, महाराज।

शल्यने कहा, युधिष्ठिर। सुनो, तुम्हारा मङ्गल हो। मैं संग्रामभूमिमें कर्णका सारथी अवश्य बनूँगा, क्योंकि वह मुझे सर्वदा श्रीकृष्णके समान ही समझता है। उस समय मैं अवश्य उससे टेढ़े और अप्रिय वचन कहूँगा। इससे उसका गर्व और तेज नष्ट हो जायगा और फिर उसको मारना सहज हो जायगा। राजन्। तुमने और द्रौपदीने जूएके समय बड़ा दु:ख सहन किया था। सूतपुत्र कर्णने तुम्हें बड़े कटु वचन सुनाये थे। सो तुम इसके लिये अपने चित्तमें क्षोभ मत करो। दु:ख तो बड़े-बड़े महापुरुषोंको भी उठाने पड़ते हैं। देखो इन्द्राणीके सहित स्वयं इन्द्रको भी महान् दु:ख उठाना पड़ा था। इसके पश्चात् मद्रराज युधिष्ठिर से अनुमति लेकर अपनी सेनाके सहित दुर्योधनके पास चले आये।

दु:शासन कुलगुरु कृपाचार्य के पास आता है। कृपाचार्य बोले मद्र नरेश शल्य अंगराज कर्ण के सारथी बनने को तैयार हो गये। दु:शासन बोला, जी हां कुलगुरु। मेरे सामने उन्होंने यह प्रस्ताव स्वीकार करके कर्ण को सम्मानित किया था। द्रोणाचार्य बोले, उनके सारथी बनने से तो अर्जुन और कर्ण के द्वन्द्व युद्ध की रूपरेखा बदल जायेगी। वासुदेव कृष्ण के अतिरिक्त उन जैसा सारथी आज तक संसार में नहीं है। कृपाचार्य बोले कदाचित कल भी नहीं था। दु:शासन बोले, मैं तो आप दोनों को यही सुखद समाचार देने आया था। द्रोण बोले, और मद्र नरेश है कहां? दु:शासन बोला, वे भ्राताश्री युधिष्ठिर से यह कहने गये है कि वो हमारे ही पक्ष में युद्ध करेंगे। मुझे तो लगता है कि भ्राताश्री के सारे महारथी टूट कर इधर आ जायेंगे और वे अपने चार अनुजों के साथ लड़ते रणभूमि में खडे रह जायेंगे। प्रणाम मैं चलने की आज्ञा चाहता हूँ।

गान्धारी के पास कुन्ती आती है। दासी ने आकर सूचना दी महारानी कुन्ती पधार रही हैं। सुनकर गान्धारी कुन्ती से मिलने तेजी से दौडकर गले मिलने चली वह गिरते गिरते बची और कुन्ती ने उसे सम्भाला। गान्धारी डांटकर बोली, यह ना समझाना कि तुम मुझसे मिलने आई हो तो मैं प्रसन्न होकर तुम्हारी सारी पिछली कठोरता पर क्षमा कर दूंगी। जाओ मैं तुमसे बात नहीं करती। तुम अपने आप को समझती क्या हो? क्या बडी हो गई हो मुझसे? कुन्ती बोली, दीदी। गान्धारी बोली, सामने पड गई तो दीदी दीदी करने लग गई। वैसे तो तुम्हे दीदी का कभी ध्यान ही नहीं आया। तुम्हारा भी क्या न्याय है? अपराध करे यह राजभवन, अपराध करे तुम्हारे ज्येष्ठश्री, अपराध करे तुम्हारा पुत्र दुर्योधन और दंड भुगते ये गान्धारी। कुन्ती बोली, क्षमा कर दीजिये दीदी क्षमा। गान्धारी बोली, जा नहीं क्षमा करती तुम्हे। कुन्ती बोली, बडों की क्षमा पर छोटों का अधिकार होता है दीदी। गान्धारी बोली, तो द्रौपदी से कहो कुन्ती कि वो दुर्योधन और दु:शासन को क्षमा कर दे, वो बडी है ना। कुन्ती बोली, सबसे बडी तो आप हैं दीदी। क्या आपने उन दोनों को क्षमा कर दिया? गान्धारी बोली, नहीं।

मैं तो उन दोनों को कदाचित क्षमा भी कर दूं परन्तु उस सूतपुत्र कर्ण और भ्राता शकुनि को कभी क्षमा नहीं करूंगी। ये दोनों तो दिन रात दुर्योधन को भडकाते रहते है। कुन्ती बोली, कर्ण तो पुत्र दुर्योधन का ऋणी है दीदी। वो तो केवल उसके आभार का ऋण चुकाने में लगा हुआ है। गान्धारी बोली, तुम उसकी प्रशंसा क्यों कर रही हो कुन्ती। कुन्ती बोली, सत्य को अनुशंसा न कहिये दीदी। उसके लिये उसका जीवन प्रिय दुर्योधन के ऋणों का व्याज है, केवल व्याज है। गान्धारी बोली, छोड़ो उसे और उसके ऋणों को। हम दोनों मातायें स्वयं भंवर में फंसी हुई है। ना ही हम उन्हे विजय का आशीर्वाद दे सकती है और ना ही पराजय का श्राप। हां कुन्ती हम दोनों चुपचाप बैठ कर शोक मनाये। आदरणीय भरतवंश के इस पतन का। किन्तु तुम मुझे एक वचन दो कि मेरे पुत्रों को कभी श्राप न दोगी। कुन्ती बोली, माता की झोली में श्राप होता कहां है दीदी? माता केवल आशा कर सकती है और आशीर्वाद दे सकती है। किन्तु आज जी बहुत घबरा रहा था दीदी। वहां विदुर की पत्नी के पास भक्ति बहुत है दीदी, ढाढ़स तनिक भर भी नहीं तो आपके पास चली आई कि केवल आप ही मेरे आंसुओं की भाषा समझ सकती है दीदी। आप ही। गान्धारी बोली, इस आंख की पट्टी के नीचे मेरी आंखों में भी वो ही आंसू है कुन्ती। मेरी और तुम्हारी आंखे नि:सन्देह अलग है किन्तु लगता है हमारी इन आंखों में आसुओं का एक ही परिवार रहता है। कुन्ती बोली, दीदी रणभूमि की ओर कूच करने से पहिले दुर्योधन मेरे पास विजय का आंशीर्वाद लेने आया था। गान्धारी बोली, तुमने दिया तो नहीं कुन्ती। कुन्ती बोली, इसीलिये तो आपसे क्षमा मांगने आई हूं दीदी कि प्रिय दुर्योधन ने पहिली बार जीवन में मुझसे कुछ मांगा। गान्धारी बोली, तो तुमने यह आशीर्वाद दे दिया होता कुन्ती तो अनर्थ हो गया होता, अनर्थ हो जाता। कुन्ती बोली, मैंने उसे लम्बी आयु होने का आशीर्वाद दिया है। गान्धारी बोली, आज मेरी ममता तुम्हारी ऋणी हो गयी कुन्ती।

धृतराष्ट्र गान्धारी के पास आता है। गान्धारी बोली, आर्यपुत्र। धृतराष्ट्र बोले, ये कुन्ती क्यों आई थी आज तुम्हारे पास? गान्धारी बोली, क्षमा मांगने। धृतराष्ट्र बोले क्षमा। क्षमा किसलिये? गान्धारी बोली, अपने इस अपराध की क्षमा चाहने आई थी कि जब दुर्योधन उसके पास विजय का आशीर्वाद मांगने गया तो वो उसे यह आशीर्वाद न दे पाई। आर्यपुत्र विधाता हमारी ममता की इतनी कडी परीक्षा क्यों ले रहा है? धृतराष्ट्र बोले, विधाता मुझे अपने मन की बात नहीं बताता गान्धारी? गान्धारी बोली, आर्यपुत्र यदि आप आज्ञा दें तो मैं वासुदेव के पास जाकर उनसे विनती करूं और कहूं कि हे कुन्ती की कोख की रक्षा करनेवाले मेरी कोख की भी रक्षा कर। हे यशोदानन्दन, हे नन्दकिशोर मैं तुझसे शान्ति की भीख मांगने आई हूं। भरतवंश को लहू के समुद्र में डूबने से बचा लो। धृतराष्ट्र बोले, क्षत्राणियों के हाथ भिक्षा देने के लिये बढ़ते है, लेने के लिये नहीं। और ये भी ना भूलो प्रिये कि वो तो शान्तिदूत बनकर हमारे पास आये थे किन्तु हमी ने उनका सत्कार नहीं किया। अपने भाग्य में यह महायुद्ध हमने ही लिखा है। इसलिये जीवन में पहली बार मैं अपने भाग्य को स्वीकार करते हुये उसे सादर प्रणाम करता हूँ।

**दोष भाग्य पर क्यों मढ़े, दोष कर्म का जान, छल करता क्यों आपसे, अपने को पहिचान।**

## ३१) युद्धकी प्रस्तुति और दोनों सेनाओंका युद्धभूमि कुरुक्षेत्र के लिये प्रस्थान

कौरवोंने पुष्य नक्षत्र में कुरुक्षेत्र के लिए अपनी सेना को कूच किया। श्रीकृष्णकी बात सुनकर युधिष्ठिरने भाइयोंसे सेनाके विभाग किये। सात अक्षौहिणी सेना पाण्डवोंके पक्षमें एकत्र हुई थी। उसके सात सेनापति नियुक्त किये गये- १) महाराज द्रुपद, २) महाराज विराट, ३) धृष्टद्युम्न, ४) शिखण्डी, ५) सात्यकि, ६) चेकितान और ७) भीम।

जैसा होना होता है, वैसे ही संयोग बन जाते हैं। समय आनेपर शत्रु मित्र बन जाते हैं, मित्र शत्रु हो जाते हैं। काल की महिमा अपार है। समस्त संसार के नियम को काल चला रहा है। बिना काल के असमय में कोई कुछ नहीं कर सकता। जिस समय जो काम करने का जिसका काल होगा, वह उसी समय उस कार्य को करेगा। प्रयत्न करने पर भी, इच्छा रहने

पर भी, उससे पहिले वह नहीं कर सकता।

धर्मराज युधिष्ठिर युद्ध को शक्ति भर टालना चाहते थे। धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, नारद, परशुराम, विदुर तथा अन्यान्य ऋषि महर्षियों ने दुर्योधन को बहुत समझाया था, किन्तु युद्ध का काल आ गया। युद्ध किसी तरह न रुका। नियमित समय पर दोनों पक्ष के वीर अपनी-अपनी सेना को सजाकर कुरुक्षेत्र के मैदान में आ गये। कौरवों की सेना ११ अक्षौहिणी थी और पांडवों की सात अक्षौहिणी। लाखों करोड़ों रथ, हाथी, घोड़े, पैदल सवार हों उस एक सेना को अक्षौहिणी कहते हैं। पाण्डवों ने अपना सेनापति द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न को बनाया। उन्हें तो नाम का बनाया था, क्योंकि आचार्य द्रोण की मृत्यु उनके ही हाथों होनी थी। असल में तो उनके सेनापति भीम थे। सेनापति का पद बहुत ही गौरव का समझा जाता है। कभी-कभी पदों के चुनाव में कार्यकर्त्ता बड़े धर्मसंकट में पड़ जाते हैं। कुछ पूज्य और वृद्ध बीच में ऐसे होते हैं, जिनका प्रभाव और सम्मान तो सर्वव्यापी होता है, किन्तु वे मनमानी करते हैं। साथ ही वे सब कार्य से अलग भी नहीं होते। इसीलिये कार्यकर्ताओं के सामने एक कठिन समस्या आ जाती है। न तो उन्हें छोड़ सकते हैं और न पद से वञ्चित ही कर सकते हैं। पद तो उन्हें देना ही पड़ता है, किन्तु पग-पग पर उन्हें मनमानी करते देखकर नवीन उत्साही कार्यकर्ताओं का उत्साह हीन हो जाता है। बड़ों के गुण और अनुभव तो होते ही हैं, उनमें यही एक बड़ा दोष आ जाता है कि वे अपने सामने दूसरे को कुछ समझते ही नहीं। वे अपने अनुभव को इतना ऊँचा समझते हैं कि दूसरों की बात उन्हें जँचती ही नहीं।

इसपर युधिष्ठिरने कहा, समस्त संसारके सारासार तथा बलाबल को श्रीकृष्ण ही ठीक ठीक जानते हैं। अत: ये जिसके लिए सम्मति दें, उसीको सेनापति बनाया जाय। भले वह शस्त्र संचालनमें कुशल हो या न हो। वह वृद्ध हो या युवा हो। हमारी जय पराजयके एकमात्र कारण ये वासुदेव ही हैं। हमारे प्राण, राज्य, भाव-अभाव सब इन्हींपर अवलम्बित हैं। सबके कर्त्ता-धर्त्ता यही हैं, इन्हींपर सब कामोंकी सिद्धि है। हम सब तो इनके इशारे के अनुवर्ती हैं।

इस समर्पणमें पाण्डवोंमें दो मत नहीं था, संभव ही नहीं था और समर्पणके साथ ही विजय तो सुनिश्चित हो गयी। श्रीकृष्णके प्रति सम्पूर्ण समर्पण करनेवालोंको पराभव देनेवाली शक्ति तो न कभी उत्पन्न हुई, न होगी।

श्रीकृष्णकी सम्मतिसे पाण्डवोंने युद्धकी यादव पद्धति अपनायी। सर्वत्र प्रचलित पद्धति यही थी कि प्रधान सेनापति ही युद्धका प्रधान होता था। उसीको सेनाका संचालन, संरक्षण तथा स्वयं आगे रहकर समरका प्रधान भाग सम्हालना था। यादवोंने इसमें एक संशोधन किया था। उनके प्रधान सेनापति, द्वारिकामें अनाधृष्ट थे किन्तु प्रधान योधा सात्यकि थे। कौरव पक्ष सर्वत्र प्रचलित परिपाटीके अनुसार प्रधान सेनापति चुनकर चला। जब एक सेनापति मारा गया तो दूसरेको प्रधान सेनापति बनाया गया। भीष्म, द्रोण, कर्ण और शल्य ये क्रमश: चार प्रधान सेनापति दुर्योधनके दलके बने।

यादव-युद्ध पद्धति अपनाकर पाण्डवोंने प्रधान सेनापति धृष्टद्युम्नको बनाया और प्रधान योधा अर्जुनको चुना। इस पद्धतिमें प्रधान सेनापतिका दायित्व सेनाका संचालन, सरंक्षण, उसे व्यूह बद्ध करना तथा उसकी व्यवस्था करना था। प्रधान योधा सेनाके निरीक्षण, संरक्षण आदि दायित्वसे मुक्त था और सेनाके साथ प्रधान सेनापतिको उसीकी सहायता करना था। प्रधान योधाको ही युद्धका प्रधान भाग सम्भालना था और कहाँ किससे युद्ध करना है, कहाँ आघात करना है आदि निर्णयमें वह स्वतंत्र था। वह सेनाका संचालक तो नहीं था किन्तु स्वयं चाहे जहाँ-जैसे संग्राम करनेको स्वतन्त्र था और सेना उसकी सहायक थी। इस पद्धतिका एक परिणाम इस युद्धमें प्रकट हुआ कि प्रधान सेनापति अन्तिम विजय तक एक ही बना रहा। वह कभी विपत्तिमें नहीं पड़ा। सब बड़े आघात प्रधान योधाको ही सम्हालने पड़े। वह समर्थ न भी होता तो भी सेनाकी संचालन व्यवस्था सेनापतिके परिवर्तनके कारण बदलना नहीं पड़ता।

उत्तम विजय मुहूर्तमें श्रीकृष्णकी सम्मतिसे पाण्डवोंने भी प्रस्थान किया। वस्तुओंको बैलगाड़ियोंसे भेजनेकी व्यवस्था हुई। डेरे-तम्बू, सवारियाँ, यंत्र, कोष, व्यवसायियोंका समूह, चिकित्सक सभी साथ थे। वहीं परकोटे तथा पहरेदारों द्वारा स्त्रियों तथा कोषकी सुरक्षा व्यवस्था थी। सबकी सम्मति लेकर दुर्योधन ने पितामह भीष्म को अपनी सेना का प्रधान सेनापति बनाया। ११ अक्षौहिणी सेना जिसके इशारे पर नाचे, राजा भी जिसके अधीन रहे उसके सम्मान और पद का कहना ही क्या? पितामह भीष्म बड़े प्रसन्न हुए किन्तु उन्होंने दुर्योधन से स्पष्ट कह दिया- देखो दुर्योधन। मेरे लिये तुम और पांडव दोनों समान हो। युद्ध तो मैं तुम्हारे पक्ष में करूंगा, किन्तु पांडव मुझसे सम्मति माँगे तो उचित सम्मति मैं उन्हें भी दूँगा। यद्यपि ये बातें सेनापति के योग्य नहीं थी। शत्रु को सम्मति देना तो अपनी स्पष्ट पराजय है। शत्रु अपने छिद्र न जान सके, यही प्रयत्न सेनापति को करनी चाहिये। किन्तु उन कुरुकुल-वृद्ध पितामह से कह कौन सकता है? दुर्योधन ने उसे स्वीकार कर लिया। उसका तो अन्त ही आ गया था, तभी तो उसके सभी प्रधान सेनापति शरीर से इधर थे और मन से पांडवों की ओर थे। जिसका नायक ही बेमन से लड़े उसकी सेना क्या कर्त्तव्य दिखायेगी?

पितामह ने कहा- दुर्योधन। एक शर्त मेरी और है। मैं इस सूत-पुत्र कर्ण के साथ लड़ना नहीं चाहता। यह नीच मुझे कुछ समझता ही नहीं, इसलिये चाहे पहिले यह लड़ ले, चाहे मैं लड़ लूँ। न तो मैं इसे अपने साथ रखना चाहता हूँ, न अपने अधीन बनाना चाहता हूँ। व्यूहबद्ध होकर, ब्राह्मणोंको दान करके यह पाण्डव सेना कुरुक्षेत्र पहुँची। श्मशान, देवमन्दिर, तीर्थ तथा ऋषियोंके आश्रमोंसे दूर, जल, घास तथा ईंधनकी सुविधा देखकर चौरस समतल प्रशस्त भूमिमें शिबिर स्थापित हुआ। श्रीकृष्णने पाण्डवोंके समान ही सुन्दर, सुविधापूर्व शिबिर सब सहायक नरेशोंके लिए बनवाये। सहस्त्रों वैद्य, शिल्पी आदिसे परिपूर्ण वह पूरा नगर बन गया जिसमें व्यवसायियोंने भव्य बाजार बना लिया था।

दुर्योधनने कुरुक्षेत्र में अपना शिबिर स्थापित किया। अपना शिबिर कैसी राजसी ठाट-बाट से बनाया था। इसका अर्थ था कि वह दीर्घकालीन युद्ध की तैयारी में था। वह स्वयं, उसके भाई और मित्र राजा समरभूमि में भी सारी सुविधाओंके साथ रहेंगे। शिबिर क्या था, पूरा नगर ही बसाया गया था। सम्मुख-युद्ध के लिए पाँच योजनों का एक क्षेत्र छोड़कर शेष में सौ-सौ की संख्या में सैनिकों के लिए श्रेणीबद्ध छावनियों का निर्माण किया गया था। सारे राजाओं के मंडपों में उनकी आवश्यकतानुसार अन्न, जल, ईंधन, सुरा, पशुओं के चारे तथा अन्य पदार्थों की नियमित आपूर्ति की व्यवस्था थी। वहाँ सैनिकों के अतिरिक्त वणिकों की भी अच्छी-खासी संख्या थी। गणिकाएँ भी पर्याप्त संख्या में थीं। गुप्तचर और दर्शक भी थे। अभी युद्ध आरंभ नहीं हुआ था, इसलिए एक समारोह का सा वातावरण था, किंतु एक बार रक्त-क्रीड़ा आरंभ हो जाएगी तो इनमें से शायद ही कोई यहाँ दिखाई पड़े।

जिस युद्ध को वर्षों से टाला था, अंतत: वह सिर पर आ ही गया था। पर भीष्म देख रहे थे कि जहाँ वे आशंकित थे कि कहीं वस्तुत: युद्ध आरंभ ही न हो जाए, इसलिए वे चाहते थे कि कोई ऐसा मार्ग मिल जाए, जिससे संधि हो सके और यह युद्ध टाला जा सके, वहीं दुर्योधन युद्ध को आरंभ करने को अत्यंत व्यग्र था। वह इस संभावना से आशंकित लगता था कि कहीं किसी प्रकार की कोई संधि न हो जाए और युद्ध टल न जाए। दोनों पक्षों की सेनाएँ अपने-अपने शिबिर में आ गई थी और युद्ध के टलने का कोई कारण दिखाई नहीं दे रहा था, पर दुर्योधन अब भी व्याकुल था कि युद्धारंभ में इतना विलंब क्यों हो रहा है। वह कुछ ऐसा करना चाहता था कि युद्ध तत्काल आरंभ हो जाए।

उलूक का संदेश क्या था, पांडवों को उनके प्रत्येक कष्ट और प्रत्येक अपमान का स्मरण अत्यंत भोंडे ढंग से कराया गया था। उसने एक-एक कर बार बार युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव को ही नहीं, श्रीकृष्ण को भी अभद्र भाषा में

उनके अपमान का स्मरण करा कर कहा था कि यदि पुरुष हो तो कल प्रात: ही युद्धक्षेत्र में आ जाओ। उसने उन्हें बार-बार द्रौपदी के अपमान का स्मरण कराया था और कहा था कि यदि तुम नपुंसक न होते तो कोई तुम्हारी पत्नी को इस प्रकार अपमानित कैसे कर लेता। नपुंसक नहीं हो तो कल प्रात: ही समरभूमि में आ जाओ।

भीष्म चिंतित थे और सोच रहे थे वे तटस्थ नहीं रह सकते तो वे पांडवों के पक्ष से युद्ध क्यों नहीं करते? इस पापी दुर्योधन को उसके पापों का दंड क्यों नहीं देते? पर नहीं। कौरवों की रक्षा की प्रतिज्ञा का अर्थ दुर्योधन का वध तो नहीं है। पांडवों के पक्ष से वे युद्ध कैसे कर सकते हैं। उनके शत्रु द्रुपद उस ओर हैं। उन की हत्या का संकल्प कर युद्ध में आने वाला शिखंडी उस ओर है। दुर्योधन के पक्ष में कोई उनके वध की प्रतिज्ञा कर नहीं आया है। कोई उनका शत्रु नहीं है। नहीं हैं? स्वयं दुर्योधन ही कुरुकुल का शत्रु होने के कारण उनका शत्रु नहीं है? भीष्म कुछ समझ नहीं पाते हैं। निर्णय नहीं कर पाते हैं। इसलिए कौरव उसी दिशा में बढ़ते जा रहे हैं, जिधर दुर्योधन उनको ले जाना चाहता है। दुर्योधन चाहता है अथवा स्वयं महाकाल की भी यही इच्छा है? राजाओं की यह फसल पक गई लगती है।

राजा धृतराष्ट्रने पूछा, संजय। जब अर्जुनने रणभूमिमें भीष्मका वध करनेके लिये प्रतिज्ञा की तो मेरे मूर्ख पुत्र दुर्योधनादिने क्या किया? मुझे तो अब ऐसा जान पड़ता है मानो श्रीकृष्णके साथी अर्जुनने संग्राममें हमारे काका भीष्मको मार ही डाला हो। इसके सिवा यह भी सुनाओ कि महापराक्रमी भीष्मने प्रधान सेनापतिका पद पाकर फिर क्या किया।

संजय कहने लगे- महाराज। सेनाध्यक्षका पद पाकर शान्तनुनन्दन भीष्मने दुर्योधनकी प्रसन्नता बढ़ाते हुए कहा, मैं शक्तिपाणि भगवान् स्वामिकार्तिकेयको नमस्कार कर आज तुम्हारा सेनापति पद स्वीकार करता हूँ। अब इसमें तुम किसी प्रकारका संदेह मत करो। मैं सेनासम्बन्धी कार्यों और तरह-तरहकी व्यूहरचनाओंमें कुशल हूँ। मुझे देवता, गन्धर्व और मनुष्य-तीनोंहीकी व्यूहरचनाका ज्ञान है; अब तुम सब प्रकारकी मानसिक चिन्ता छोड़ दो। मैं शास्त्रानुसार तुम्हारी सेनाकी यथोचित रक्षा करते हुए निष्कपटभावसे पाण्डवोंके साथ युद्ध करूँगा।

दुर्योधनने कहा- पितामह। भय तो मुझे देवता और असुरोंसे युद्ध करनेमें भी नहीं लगता। फिर जब आप सेनापति हों और पुरुषसिंह आचार्य द्रोण हमारी रक्षाके लिये खड़े हों, तब तो कहना ही क्या है? आप अपने और विपक्षियोंके सभी रथी और अतिरथियोंको अच्छी तरह जानते हैं।

भीष्मने कहा- राजन्। तुम्हारी सेनामें जितने रथी और महारथी हैं, उनका विवरण सुनो। तुम्हारे पक्षमें करोड़ों और अरबों रथी हैं। उनमें जो प्रधान-प्रधान हैं, उनके नाम सुनो। सबसे पहले तो दु:शासन आदि अपने सौ भाइयोंके सहित तुम ही बहुत बड़े रथी हो। तुम सभी छेदन-भेदनमें कुशल और गदा, प्रास तथा ढाल-तलवारके युद्धमें पारङ्गत हो। मैं तुम्हारा प्रधान सेनापति हूँ। मेरी कोई बात तुमसे छिपी नहीं है; अपने मुँहसे मैं अपने गुणोंका वर्णन करूँ, यह उचित नहीं समझता। शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कृतवर्मा भी तुम्हारी सेनामें एक अतिरथी है। महान् धनुर्धर मद्रराज शल्यको भी मैं अतिरथी मानता हूँ। ये अपने भानजे नकुल और सहदेवको छोड़कर शेष सब पाण्डवोंसे युद्ध करेंगे। रथयूथपतियोंके अधिपति भूरिश्रवा भी शत्रुओंकी सेनाका बड़ा भीषण संहार करेंगे। सिन्धुराज जयद्रथको मैं दो रथियोंके बराबर समझता हूँ। ये अपने दुसत्यज प्राणोंकी भी बाजी लगाकर पाण्डवोंके साथ संग्राम करेंगे। काम्बोजनरेश सुदक्षिण एक रथीके बराबर हैं। माहिष्मतीपुरीका राजा नील भी रथी कहा जा सकता है। इसका पहलेसे ही सहदेवसे वैर बँधा हुआ है। इसलिये यह तुम्हारे लिये पाण्डवोंके साथ बराबर युद्ध करता रहेगा। अवन्तिनरेश विन्द और अनुविन्द बड़े अच्छे रथी माने जाते हैं। ये दोनों युद्धके बड़े प्रेमी हैं, इसलिये ये शत्रुसेनामें खेल-सा करते हुए कालके समान विचरेंगे। मेरे मतसे त्रिगर्तदेशके पाँच भाई भी बहुत अच्छे रथी

हैं। उनमें भी सत्यरथ प्रधान है। तुम्हारा पुत्र लक्ष्मण और दु:शासनका लड़का- ये दोनों यद्यपि तरुण अवस्थाके और सुकुमार हैं, तो भी मैं इन्हें अच्छा रथी समझता हूँ। राजा दण्डधार भी एक रथी है, अपनी सेनाके साथ वह भी संग्राममें अच्छा हाथ दिखायेगा। मेरे मतसे बृहदल और कौसल्य भी अच्छे रथी हैं। कृपाचार्य तो रथयूथपतियोंके अध्यक्ष ही हैं। वे अपने प्यारे प्राणोंकी भी बाजी लगाकर तुम्हारे शत्रुओंका दमन करेंगे। ये साक्षात् स्वामिकार्तिकेयके समान अजेय हैं।

तुम्हारे मामा शकुनि भी एक रथी हैं। इन्होंने पाण्डवोंसे वैर ठाना है, इसलिये नि:संदेह ये उनसे घोर युद्ध करेंगे। द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामा तो बहुत बड़े महारथी हैं। किंतु इन्हें अपने प्राण बहुत प्यारे हैं। यदि इनमें यह दोष न होता तो इनके समान योद्धा दोनों पक्षकी सेनाओंमें कोई नहीं था। इनके पिता द्रोणाचार्य तो बूढ़े होनेपर भी जवानोंसे अच्छे हैं। वे संग्राममें बहुत बड़ा काम करेंगे- इसमें मुझे संदेह नहीं है। किंतु अर्जुनपर इनका बड़ा स्नेह है। इसलिये अपने आचार्यत्वकी ओर देखकर ये उसे कभी नहीं मारेंगे; क्योंकि उसे तो ये अपने पुत्रसे भी बढ़कर समझते हैं। यों तो सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व और मनुष्य मिलकर भी इनके सामने आवें तो ये अकेले ही रथपर सवार होकर अपने दिव्य अस्त्रोंसे उन्हें तहस-नहस कर सकते हैं। इनके सिवा महाराज पौरवको भी मैं महारथी समझता हूँ। ये पाञ्चाल वीरोंका संहार करेंगे। राजपुत्र बृहदल भी एक सच्चा रथी है। वह कालके समान तुम्हारे शत्रुओंकी सेनामें घूमेगा। मेरे मतसे मधुवंशी राजा जलसन्ध भी रथी है। अपनी सेनाके सहित वह भी प्राणोंका मोह त्यागकर युद्ध करेगा। महाराज बाह्लीक तो अतिरथी हैं, उन्हें मैं संग्राममें साक्षात् यमराजके समान समझता हूँ। वे एक बार युद्धमें आकर फिर पीछे नहीं हटते। सेनापति सत्यवान भी एक महारथी है। उसके हाथसे बड़े अद्भुत कर्म होंगे। राक्षसराज अलम्बुष तो महारथी है ही। यह सारी राक्षस-सेनामें सर्वोत्तम रथी और मायावी है तथा पाण्डवोंसे इसकी बड़ी कट्टर शत्रुता है। प्राग्ज्योतिषपुरके राजा भगदत्त बड़े ही वीर और प्रतापी हैं। वे हाथीपर चढ़कर युद्ध करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं और रथयुद्धमें भी कुशल हैं। इनके सिवा गान्धारोंमें श्रेष्ठ अचल और वृषक- ये दो भाई भी अच्छे रथी हैं। ये दोनों मिलकर शत्रुओंका संहार करेंगे।

हाथ जोड़कर रूखी शिष्टता के साथ, अपने रोष को रोकते हुए कर्ण ने कहा- पितामह। पहिले आप ही अपनी करतूत दिखा दीजिये। आपके जीते जी मैं शस्त्र ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा कर ही चुका हूँ। आपके मरने पर ही मैं शस्त्र उठाऊँगा।

बात समाप्त हुई। अब दुर्योधन ने वीरों का उत्साह बढ़ाने के लिये अपना बलाबल जानने के लिये बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, कुरुकुल पूज्य पितामह से पूछा- पितामह। मैं अपने पक्ष के वीरों का बल जानना चाहता हूँ। मेरे पक्ष में कितने रथी हैं, कितने अतिरथी हैं और कितने महारथी हैं। जो एक सहस्त्र वीरों के साथ अकेला ही युद्ध कर सके उसे रथी कहते हैं और जो दस सहस्त्र रथियों के साथ अकेला युद्ध कर सके उसे महारथी कहते हैं तथा जो दस सहस्त्र महारथियों से युद्ध कर सके उसे अतिरथी कहते हैं। पितामह ने एक-एक करके समस्त देशों के वीर योद्धाओं के नाम गिनाये- अमुक रथी है, अमुक महारथी है और अमुक अतिरथी है। यहाँ तक कि कर्ण के पुत्रों को भी रथी महरथी गणना में लाये।

अब आई कर्ण की बारी। भीष्म की दृष्टि सहज ही उसके दोषों पर गई। उन्होंने दुर्योधन से कहा, कर्ण रणक्षेत्र में वीरता का नहीं, क्रूरता का परिचय देता है। वह कटुभाषी, आत्मप्रशंसक और नीच है। दुर्योधन। यह तुम्हारा मंत्री, नेता और बंधु बना हुआ है। वह अभिमानी तो है ही, तुम्हारा आश्रय पाकर कुछ अधिक ही ऊँचा चढ़ गया है। यह अतिरथि तो क्या महारथी भी नहीं है, यह अर्द्धरथी है। जिस अर्जुन को पराजित करने का लक्ष्य लेकर यह जी रहा है, उस अर्जुन से भिड़ने पर यह कदापि जीवित नहीं बच सकता।

कर्ण को देखकर पितामह बोले, देखो। यह नीच, जो तुम्हारे सामने बैठा है, जिसके बल भरोसे पर तुम अपने को सबसे

अधिक बली समझते हो, जो इस महाभारत का प्रधान कारण है, जो हत्या की जड़ है, जो मूर्ख, निन्दक, कर्कश, कठोर, आत्मश्लाघी, अभिमानी, दुष्ट, दुरात्मा और पापी है, जिसे तुम अपना भाई, मित्र, सखा, सुहृद् और सब कुछ समझते हो, जिसके इशारे पर तुम नाचते हो, जो अपने बल की सदा व्यर्थ डींग मारता रहता है, जो निर्बल होकर भी अपने को बली बताता है, इसे मैं न महारथी समझता हूँ न अतिरथी और न रथी ही। इस नीच को ब्राह्मण का शाप है। झूठ बोलकर इसने मेरे गुरु परशुराम को ठगा है। उन्होंने इसे शाप दिया है, तू युद्ध के समय दिव्यास्त्रों को भूल जायगा। इसलिये यह तो बेकार ही हुआ। इसलिये यदि गणना करनी ही हो तो इसे अर्धरथी कह सकते हैं।

**एष नैव रथ: कर्णो न चाप्यतिरथो रणे। कर्णानां वियोगाच्च तेन मेऽर्धरथोमत: ।।**

ब्राह्मण और परशुराम के शाप बताते हुए भीष्मने कहा- मैं इस सूत-पुत्र को न रथी कहता हूँ न महारथी। वह अपने दिव्य कवच कुण्डल भी खो बैठा है, अब मैं इसे अर्धरथी मानता हूँ।

यह कर्ण, जो तुम्हारा प्यारा मित्र, सलाहकार और नेता है तथा तुम्हे सर्वदा ही पाण्डवोंसे झगड़ा करनेके लिये उभारा करता है, बड़ा ही अभिमानी, बकवादी और नीच प्रकृतिका है। यह न तो रथी है और न अतिरथी ही है। मैं इसे अर्धरथी समझता हूँ। यह यदि एक बार अर्जुनके सामने चला गया तो उसके हाथसे जीवित बच नहीं सकता।

इसी समय द्रोणाचार्य बोले- भीष्म ठीक कह रहे हैं। इनका कथन कभी मिथ्या नहीं हो सकता। हमने भी प्रत्येक युद्धमें इसे शेखी बघारते और फिर वहाँसे भागते ही देखा है। यह प्रमादी है, इसलिये मैं भी इसे अर्धरथी ही मानता हूँ।

भीष्म और द्रोणकी ये बातें सुनकर कर्णकी त्यौरी चढ़ गयी और वह क्रोधमें आकर कहने लगा, पितामह। मेरा कोई अपराध न होनेपर भी आप द्वेषवश इसी प्रकार बात-बातमें मुझपर व्यंग कसते हैं। मैं केवल राजा दुर्योधनके कारण ही आपकी ये सारी बातें सह लेता हूँ। आप यदि मुझे अर्धरथी मानेंगे तो सारा संसार भी यह समझकर कि भीष्म झूठ नहीं बोलते मुझे अर्धरथी ही समझेगा। किंतु कुरूनन्दन। अधिक आयु होनेसे, बाल सफेद हो जानेसे अथवा धन या बहुत-सा कुटुम्ब होनेसे किसी क्षत्रियको महारथी नहीं कहा जाता। क्षत्रिय तो बलके कारण ही श्रेष्ठ माना जाता है। इसी प्रकार ब्राह्मण वेदमन्त्रोंके ज्ञानसे वैश्य अधिक धनसे और शूद्र अधिक आयु होनेसे श्रेष्ठ समझे जाते हैं। आप राग-द्वेषसे भरे हैं, इसलिये मोहवश मनमाने रूपसे रथी-अतिरथियोंका विभाग किया करते हैं। मित्र दुर्योधन। आप विचार कर देखें कि पितामह भीष्मका भाव बड़ा दूषित है और ये आपका अहित करनेवाले हैं, इसलिये आप इन्हें त्याग दीजिये। कहाँ तो रथी और अतिरथियोंका विचार और कहाँ ये अल्पबुद्धिवाले भीष्म। इन्हें भला, इसका क्या विवेक हो सकता है। मैं तो अकेला ही सारी पाण्डवसेनाके मुँह फेर दूँगा। पितामह भीष्मकी आयु बीत चुकी है। इसलिये कालकी प्रेरणासे इनकी बुद्धि भी मोटी हो गयी है। ये भला युद्ध, मार-काट और सत्परामर्शकी बातें क्या समझें? शास्त्रने केवल वृद्धोंकी बातपर ध्यान देनेको ही कहा है, अतिवृद्धोंकी बातपर नहीं; क्योंकि वे तो फिर बालकोंके समान ही माने जाते हैं। यद्यपि मैं अकेला ही पाण्डवोंकी इस सेनाको नष्ट कर दूँगा, किंतु सेनापति होनेके कारण उसका यश तो भीष्मको ही मिलेगा। इसलिये जबतक ये जीते हैं, तबतक तो मैं किसी प्रकार युद्ध नहीं करूँगा। इनके मरनेपर तो मैं सभी महारथियोंके साथ लड़कर दिखा दूँगा।

यह अपमान सचमुच असह्य था। समस्त देश के राजाओं के सामने, जो दुर्योधन की नाक का बाल बना था, समस्त जय, पराजय की आशा जिस पर निर्भर थी उसे रथी भी न बताना, यह कर्ण का घोर अपमान था। क्रोध के मारे कर्ण के ओठ फड़कने लगे। आँखे लाल हो गयीं। दाँतों से ओठों को चबाते हुए वे बोले, ये पितामह, सदा अकारण मुझसे द्वेष करते रहते हैं, दुर्योधन तुम्ही बताओ इन बूढ़े का मैंने क्या बिगाड़ा है? मैं इनका जितना ही सम्मान करता हूँ ये उतना ही

बलबलाते है। अपने आगे ये किसी को कुछ समझते ही नहीं। अभी तक इनकी ऐंठ नहीं गई। अब मैं क्या करूँ? मैं तुम्हारी ओर देखकर सब सह लेता हूँ, नहीं तो अभी इन्हें बता देता कि मैं रथी हूँ या महारथी।

भीष्म बोले, इस सूतपुत्र को शान्त करो दुर्योधन। पितामह ने सूखी हँसी हँसते हुए कहा- अरे सूत पुत्र। तुझे मैं बता देता कि इन बूढ़े हाड़ों में कितना बल है। तेरा तेल निकाल सकता हूँ। हाथ से मच्छर की तरह मसल दूँगा। सम्हलकर बातें करो। २१ बार समस्त पृथ्वी के क्षत्रियों का नाश करनेवाले अपने गुरु परशुराम को मैंने युद्ध में छकाया है। वे संसार में मेरे ही युद्ध से सन्तुष्ट हुए हैं। तेरा तो तब जन्म भी न हुआ होगा। थोड़ा जीभ में लगाम लगाकर बातें कर। बड़ा ग्रास खाना अच्छा है, बड़ी बातें करना ठीक नहीं।

कर्ण ने दुर्योधन को लक्ष्य करके कहा- बहुत बूढ़े होने से मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। इसी तरह इन पितामह की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। इन्हें तो सेनापति बनाना ही नहीं चाहिये था। नहीं तो ये घर के शत्रु की तरह हमारा सर्वनाश कर देंगे। इनको अब विदा देना ही ठीक है। पड़े रहें और बड़बड़ाते रहें। बूढ़े किसी को कुछ समझते ही नहीं। आपने जो किया होगा, तब किया होगा जब कर्ण नहीं था। अब वे बातें पुरानी हो गयी। अब तो मैं आपको दिखा सकता हूँ, किन्तु दुर्योधन ने तो मेरे हाथ काट दिये हैं। आपसे कुछ कहता हूँ तो उनका अनिष्ट होता है, नहीं कहता हूँ तो आप दिनों दिन अधिकाधिक सिर पर चढ़ते जाते हैं। सब लोग समझते हैं कि भीष्म धर्मात्मा और सत्यवादी हैं। वे कभी झूठ नहीं बोलते। यदि आप सबके सामने मुझे अर्धरथी कहेंगे तो सभी लोग अर्धरथी कहकर मेरी हँसी उड़ावेंगे। इसलिये आपको ऐसी झूठी बात नहीं कहनी चाहिये। यह निर्णय तो अभी हो सकता है कि मैं रथी हूँ या अतिरथी। कर्ण ने कहा मैं सूतपुत्र नहीं हूँ। मैं किसी क्षत्रिय से कम वीर नहीं हूँ। यह भीष्म, दुर्भाव से दूषित होकर तुम्हारी मेरी निन्दा कर रहा है। अपना हित चाहते हो तो इसे अभी त्याग दो। कहाँ रथियों और महारथियों को समझना और कहाँ अल्पबुद्धि भीष्म। अतिवृद्ध है यह। इस की बातें श्रवणीय नहीं हैं। वृद्धावस्था के अतिरेक के कारण इसका मस्तिष्क जड़ हो गया है। इसका त्याग करो।

अश्वत्थामा बोला, जब तुम पांडवों का विनाश करना चाहते हो तो कर क्यों नहीं देते? तुम तो युद्ध न करने की प्रतिज्ञा किये बैठे हो। कर्ण बोला, सेना की विजय का यश सेनापति को मिलता है। सेनापति भीष्म है। पांडवों का विनाश मैं करूँगा और उसका सारा यश भीष्म को मिलेगा। भीष्म के जीते जी मैं कोई युद्ध नहीं करूँगा। भीष्म की मृत्यु के पश्चात मैं सारे महारथियों के साथ अकेला ही युद्ध करूँगा।

भीष्म सोचते रहे। वे देख रहे थे, युद्ध सिर पर था। इस समय यदि किसी भी कारण कौरवों की सेना दुर्बल हुई तो पांडवों की विजय होगी और युधिष्ठिर के न चाहने पर भी वह होगा, जो तनिक भी शुभ नहीं है। उनकी हत्या तो होगी, द्रोणाचार्य को धृष्टद्युम्न कदापि जीवित नहीं छोड़ेगा। वे इस समय कौरव सेना को दुर्बल नहीं कर सकते थे। पर यह कर्ण।

भीष्मने कहा, सूतपुत्र। मैं आपसमें फूट डलवाना नहीं चाहता, इसीसे अबतक तू जीवित है। मैं बूढ़ा हूँ तो क्या हुआ, तू तो अभी बच्चा ही है। फिर भी मैं तेरी युद्धकी लालसा और जीवनकी आशाको नहीं काट रहा हूँ। परशुराम भी बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र बरसाकर मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सके तो तू भला, क्या कर लेगा? अरे कुलकलंक। यद्यपि भले आदमी अपने बलकी अपने ही मुँहसे बड़ाई नहीं किया करते, तो भी तेरी करतूतोंसे कुढ़कर मुझे ये बातें कहनी ही पड़ती हैं। देख, जब काशीराजके यहाँ स्वयंवर हुआ था तो मैंने वहाँ इकट्ठे हुए सब राजाओंको जीतकर काशीराजकी कन्याओंको हर लिया था। उस समय ऐसे-ऐसे हजारों राजाओंको मैंने अकेले ही युद्धभूमिमें परास्त कर दिया था।

पितामह ने फिर गम्भीरता के साथ कहा- साक्षात् वैर का स्वरूप है। युद्ध का बीज तू ही है। मैं तो तुझे अभी मार सकता

हूँ किन्तु मैं घर में विरोधभाव नहीं चाहता। तेरी मृत्यु तो सिर पर नाच रही है। जहाँ तेरा अर्जुन से सामना हुआ कि औंधा सिर करके कुत्ते की मौत मरेगा। तू अर्जुन से किसी तरह बच नहीं सकता। तू नीच, कुलांगार दुर्बुद्धि होकर भी अपने को श्रेष्ठ समझता है इसी पाप का फल भोगेगा। तू वैर का मूर्तिमान स्वरूप है। तेरा सहारा पाकर कुरुकुल के विनाश के लिए यह भयंकर अन्याय उपस्थित हो गया है। दुमर्ते। जिससे तू स्पर्धा करता है उस अर्जुन से समर भूमि में युद्ध कर। मैं देखता हूँ तू संग्राम में किसप्रकार बच पाता है।

यह विवाद होता देखकर राजा दुर्योधनने भीष्मसे कहा, पितामह। आपके सिरपर बड़ा भारी दायित्व आ पड़ा है। अब आप एकमात्र मेरे हितपर ही दृष्टि रक्खें। मेरे विचारसे तो आप दोनोंहीसे मेरा बड़ा भारी उपकार होगा। बात को बढ़ते देख, दुर्योधन ने देखा यहाँ तो घर में ही युद्ध होना चाहता है। इसलिये उसने दोनों के हाथ पैर जोड़कर अनुनय-विनय करके दोनों को शान्त किया। कर्ण का मन उदास हो गया। अब मैं शत्रुओंकी सेनामें भी जो रथी और अतिरथी हैं, उनका विवरण सुनना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि मैं शत्रुओंके बलाबलके विषयमें जानकारी प्राप्त कर लूँ; क्योंकि आजकी रात बीतते ही उनसे हमारा युद्ध छिड़ जायगा।

भीष्मने कहा, दुर्योधन तुम अपने इस यंत्र को नियंत्रण में रखो। ऐसा न हो कि वह अपने ही लोगों को रौंदने लगे। अपना हाथी मदांध होकर अपनी सेना को कुचलने लगे तो उसका भी वध करना पड़ता है। वह तुम्हारा मित्र है और अकेला ही सारे महारथियों से टक्कर ले सकता है। पर मैंने तुम्हें पहले ही बता दिया है कि मैं पांडवों का वध नहीं करूँगा। वे मेरे लिए अवध्य हैं। तुम चाहो तो अपना सेनापति बदल सकते हो। तुम्हारे पास मुझसे भी श्रेष्ठ सेनापति है।

राजन्। मैंने तुम्हारे पक्षके रथी, अतिरथी और अर्धरथी तो सुना दिये; अब यदि तुम्हें पाण्डवपक्षके रथी आदि सुननेकी उत्सुकता है, तो वह भी सुनो। प्रथम तो राजा युधिष्ठिर ही बहुत अच्छे रथी हैं। भीम तो आठ रथियोंके बराबर है। बाण और गदाके युद्धमें उसके समान दूसरा कोई योद्धा नहीं है। उसमें दस हजार हाथियोंका बल है तथा वह बड़ा ही मानी और तेजस्वी है। माद्रीके पुत्र नकुल-सहदेव भी अच्छे रथी हैं। ये सब पाण्डव बाल्यावस्थामें ही तुम लोगोंकी अपेक्षा तेजीसे दौड़ने, लक्ष्य बेधने, मर्मस्थानोंको पीड़ित करने और पृथ्वीपर डालकर घसीटनेमें बढ़े-चढ़े थे। ये लोग रणभूमिमें हमारी सेनाको नष्ट कर डालेंगे, तुम इनसे युद्ध मत ठानो। अर्जुनको तो साक्षात् श्रीनारायणकी सहायता प्राप्त है। दोनों पक्षकी सेनाओंमें अर्जुन-जैसा रथी कोई भी नहीं है। इस समय ही नहीं, मैंने तो भूतकालमें भी ऐसा कोई रथी नहीं सुना। वह यदि क्रोध करेगा तो तुम्हारी सारी सेनाको विध्वंस कर डालेगा। अर्जुनका सामना या तो मैं कर सकता हूँ या आचार्य द्रोण। हमारे सिवा दोनों सेनाओंमें तीसरा कोई भी वीर उसके आगे नहीं टिक सकता। किंतु हम दोनों भी अब बूढ़े हो गये हैं, अर्जुन तो युवा और सब प्रकार कार्यकुशल है।

इनके सिवा द्रौपदीके पाँचों पुत्र महारथी हैं। विराटके पुत्र उत्तरको भी मैं अच्छा रथी मानता हूँ। महाबाहु अभिमन्यु तो रथयूथपोंके यूथोंका भी अध्यक्ष है। वह युद्ध करनेमें स्वयं अर्जुन और श्रीकृष्णके समान है। वृष्णिवंशी वीरोंमें परम शूरवीर सात्यकि भी रथयूथपोंका यूथप है। वह बड़ा ही असहनशील और निर्भय है। उत्तमौजाको भी मैं अच्छा रथी मानता हूँ तथा मेरे विचारसे युधामन्यु भी उत्तम रथी है। विराट और द्रुपद बूढ़े होनेपर भी युद्धमें अजेय हैं; मैं इन्हें बड़ा पराक्रमी और महारथी समझता हूँ। द्रुपदका पुत्र शिखण्डी भी उस सेनामें एक प्रधान रथी है। द्रोणाचार्यका शिष्य धृष्टद्युम्न तो उस सारी सेनाका अध्यक्ष है। उसे भी मैं महारथी और अतिरथी मानता हूँ। धृष्टद्युम्नका पुत्र क्षत्रधर्मा अर्धरथी है; क्योंकि बालक होनेके कारण अभी उसने विशेष परिश्रम नहीं किया। शिशुपालका पुत्र चेदिराज धृष्टकेतु बड़ा ही वीर और धनुर्धर है। वह पाण्डवोंका सम्बन्धी और महारथी है। इनके सिवा क्षत्रदेव, जयन्त, अमितौजा, सत्यजित, अज और भोज भी पाण्डवोंके

पक्षमें महान् पराक्रमी और महारथी हैं।

केकय देशके पाँच सहोदर राजकुमार बड़े ही दृढपराक्रमी, तरह-तरहके शस्त्रोंसे युद्ध करनेवाले और उच्च कोटिके रथी हैं। कौशिक, सुकुमार, नील, सूर्यदत्त, शंख और मदिराश्व- ये सभी बड़े अच्छे रथी और युद्धकलामें निष्णात हैं। महाराज वार्द्धक्षेमिको भी मैं महारथी मानता हूँ। राजा चित्रायुध भी रथियोंमें श्रेष्ठ और अर्जुनका भक्त है। चेकितान, सत्यधृति, व्याघ्रदत्त और चन्द्रसेन- ये पाण्डवसेनामें बड़े अच्छे रथी हैं। सेनाबिन्दु या क्रोधहन्ता नामका जो वीर है, वह तो श्रीकृष्ण और अर्जुनके समान ही बलवान है। उसे भी एक उत्तम रथी मानना चाहिये। काशिराज शस्त्र चलानेमें बड़ा फुर्तीला और शत्रुओंका संहार करनेवाला है। वह भी एक रथीके बराबर है। द्रुपदका युवा पुत्र सत्यजित तो आठ रथियोंके बराबर है। उसे धृष्टद्युम्नके समान अतिरथी कहा जा सकता है। राजा पाण्ड्य भी पाण्डवसेनामें एक महारथी है। वह बड़ा ही पराक्रमी और महान धनुर्धर है। इनके सिवा श्रोणिमान् और राजा वसुदानको भी मैं अतिरथी मानता हूँ।

पाण्डवोंकी ओर रोचमान भी एक महारथी है। पुरुजित कुन्तिभोज बड़ा ही धनुर्धर और महाबली है। वह भीमका मामा है। मेरे विचारसे वह अतिरथी है। भीमका पुत्र राक्षसराज घटोत्कच बड़ा ही मायावी है। उसे मैं रथयूथपतियोंका भी अधिपति समझता हूँ। राजन्। मैंने तुम्हें ये पाण्डवसेनाके प्रधान-प्रधान रथी, अतिरथी और अर्धरथी सुनाये। मुझे श्रीकृष्ण, अर्जुन या दूसरे राजाओंमेंसे जो कोई जहाँ भी मिलेगा उसे मैं वहीं रोकनेका प्रयत्न करूँगा। परंतु यदि द्रुपदपुत्र शिखण्डी मेरे सामने आकर युद्ध करेगा तो उसे मैं नहीं मारूँगा; क्योंकि मैंने सब राजाओंके सामने आजन्म ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा की है। अत: किसी स्त्रीको अथवा जो पहले स्त्री रहा हो, उस पुरुषको मैं कभी नहीं मार सकता। शायद तुमने सुना हो, यह शिखण्डी पहले स्त्री था। यह कन्यारूपसे उत्पन्न होकर पीछे पुरुष हो गया है। इसलिये इससे मैं युद्ध नहीं करूँगा। इसके सिवा रणभूमिमें और जो-जो राजा मेरे सामने आवेंगे उन सबको मारूँगा, किंतु कुन्तीपुत्रोंके प्राण नहीं लूँगा।

दुर्योधन बोला, नहीं पितामह। ऐसी कोई बात नहीं है आप शांत रहें। कर्ण आपके सम्मुख भी नहीं पड़ेगा। कर्ण दुर्योधन का अभिप्राय समझकर उस सभा मंडप से बाहर निकल गया।

संजयने कहा, महाराज। वह रात बीतनेपर जब प्रात:काल हुआ तो आपके पुत्र दुर्योधनने पितामह भीष्मसे पूछा, पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरकी जो यह असंख्य पैदल, हाथी, घोड़े और महारथियोंसे पूर्ण प्रबल वाहिनी हमलोगोंसे युद्ध करनेके लिये तैयार हो रही है, इसे आप कितने दिनों में नष्ट कर सकते हैं? तथा आचार्य द्रोण, कृप, कर्ण और अश्वत्थामाको इसका नाश करनेमें कितना समय लगेगा? कृपया बतलाइये।

भीष्म बोले, राजन्। तुम जो शत्रुओंके बलाबलके विषयमें पूछ रहे हो, सो उचित ही है। युद्धमें मेरा जो अधिक-से-अधिक पराक्रम, शस्त्रबल और भुजाओंका सामर्थ्य है वह तुम्हें बताता हूं। धर्मयुद्धके लिये ऐसा निश्चय है सरल योद्धाके साथ सरलतापूर्वक और मायायुद्ध करनेवालेके साथ मायापूर्वक युद्ध करना चाहिये। इस प्रकार युद्ध करके मैं प्रतिदिन पाण्डवसेनाके दस हजार योद्धा और एक हजार रथियोंका संहार कर सकता हूँ। अत: यदि मैं अपने महान् अस्त्रोंका प्रयोग करूँ तो एक महीनेमें समस्त पाण्डवसेनाका संहार हो सकता है।

द्रोणाचार्यने कहा, राजन। मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ, तो भी भीष्मके समान मैं भी एक महीनेमें ही अपनी शस्त्राग्निसे पाण्डवसेनाको भस्म कर सकता हूँ। मेरी बड़ी-से-बड़ी शक्ति इतनी ही है।

कृपाचार्यजीने दो महीनेमें और अश्वत्थामाने दस दिनमें सम्पूर्ण पाण्डवदलका संहार करनेकी अपनी शक्ति बतायी। किंतु कर्णने कहा, मैं पाँच दिनमें ही सारी सेनाका संहार कर दूँगा। कर्णकी यह बात सुनकर भीष्म खिलखिलाकर हँस पड़े

और कहा, राधापुत्र। जबतक रणभूमिमें तेरे सामने श्रीकृष्णके सहित अर्जुन रथमें बैठकर नहीं आता, तभीतक तू इस प्रकार अभिमानमें भरा हुआ है; उसका सामना होनेपर क्या तू इस प्रकार मनमाना बकवाद कर सकेगा?

जब कुन्तीनन्दन महाराज युधिष्ठिरने यह समाचार सुना तो उन्होंने भी अपने भाइयोंको बुलाकर कहा- भाइयो। आज कौरवोंकी सेनामें मेरे जो गुप्तचर हैं, उन्होंने वहाँका सबेरेका ही यह समाचार भेजा है। दुर्योधनने पितामह भीष्मसे पूछा था कि आप पाण्डवोंकी सेनाका कितने दिनोंमें संहार कर सकते हैं? इसपर उन्होंने कहा, एक महीनेमें। द्रोणाचार्यने भी उतने ही समयमें नाश करनेकी अपनी शक्ति बतायी। कृपाचार्यने अपने लिये इससे दूना समय बताया। अश्वत्थामाने कहा, मैं दस दिनमें यह काम कर सकता हूँ। तथा जब कर्णसे पूछा गया तो उसने पाँच दिनमें सारी सेनाका संहार कर सकनेकी बात कही। अत: अर्जुन। अब मैं भी इस विषयमें तुम्हारी बात सुनना चाहता हूँ। तुम कितने समयमें सब शत्रुओंका संहार कर सकते हो?

युधिष्ठिरके इस प्रकार पूछनेपर अर्जुनने श्रीकृष्णकी ओर देखकर कहा- मेरा तो ऐसा विचार है कि श्रीकृष्णकी सहायतासे मैं अकेला ही केवल एक रथपर चढ़कर क्षणभरमें देवताओंके सहित तीनों लोक और भूत, भविष्य, वर्तमान- सभी जीवोंका प्रलय कर सकता हूँ। पहले किरातवेषधारी भगवान् शंकरके साथ युद्ध होते समय उन्होंने मुझे जो अत्यन्त प्रचण्ड पाशुपतास्त्र दिया था, वह मेरे ही पास है। भगवान् शंकर प्रलयकालमें सम्पूर्ण जीवोंका संहार करनेके लिये इसी अस्त्रका प्रयोग करते हैं। इसे मेरे सिवा न तो भीष्म जानते हैं और न द्रोण, कृप या अश्वत्थामाको ही इसका ज्ञान है; फिर कर्णकी तो बात ही क्या है? तथापि इन दिव्यास्त्रोंसे संग्रामभूमिमें मनुष्योंको मारना उचित नहीं है; हम तो सीधे-सीधे युद्धसे ही शत्रुओं को जीत लेंगे। इसी प्रकार आपके सहायक ये अन्यान्य वीर भी पुरुषोंमें सिंहके समान हैं। ये सभी दिव्य अस्त्रोंके ज्ञाता और युद्धके लिये उत्सुक हैं। इन्हें कोई जीत नहीं सकता। ये रणाङ्गणमें देवताओंकी सेनाका भी संहार कर सकते हैं। शिखण्डी, युयुधान, धृष्टद्युम्न, भीम, नकुल, सहदेव, युधामन्यु, उत्तमौजा, विराट, द्रुपद, शंख, घटोत्कच, उसका पुत्र अञ्जनपर्वा, अभिमन्यु और द्रौपदीके पाँच पुत्र तथा स्वयं आप भी तीनों लोकोंको नष्ट करनेमें समर्थ हैं। इसमें संदेह नहीं कि यदि आप क्रोधपूर्वक किसीकी ओर देख भी देंगे तो वह तत्काल नष्ट हो जायगा।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय, आरम्भमें अवन्तिदेशके राजा विन्द और अनुविन्द, केकय देशके राजा और बाह्लीक ये सब द्रोणाचार्यके नेतृत्वमें चले। उनके बाद अश्वत्थामा, भीष्म, जयद्रथ, गान्धारराज शकुनि, दक्षिण, पश्चिम, पूर्व और उत्तरकी ओरके राजा, पर्वतीय नृपतिगण तथाशक, किरात, यवन, शिबि और वसाति जातिके राजालोग अपनी-अपनी सेनो सहित दूसरा दल बनाकर चल दिये। उनके पीछे सेनाके सहित कृतवर्मा, त्रिगर्त्तराज, अपने भाईयोंसहित दुर्योधन, शल, भूरिश्रवा, शल्य और कोसलराज बृहद्रथ इन सबने कूच किया। महाबली धृतराष्ट्रपुत्र कवच धारण कर कुरुक्षेत्रके पिछले आधे भागमें ठीक-ठीक व्यवस्थापूर्वक खड़े हो गये। दुर्योधनने अपने शिबिरको इस प्रकार सुसज्जित कराया था कि वह दूसरे हस्तिनापुरके समान ही जान पड़ता था। इसलिये बहुत चतुर नागरिकोंको भी उसमें और नगरमें कोई भेद नहीं जान पड़ता था और सब राजाओंके लिये भी उसने वैसे ही सैकड़ों, हजारों डेरे डलवाये थे। उस पाँच योजन घेरेके रणाङ्गणमें उसने सैकड़ों छावनियाँ डाली थीं। उन छावनियोंमें राजालोग अपने-अपने बल और उत्साहके अनुसार ठहरे हुए थे। राजा दुर्योधनने उन आये हुए राजाओंको उनकी सेनाके सहित सब प्रकारकी उत्तम-उत्तम भक्ष्य और भोज्य सामग्री देनेका प्रबन्ध किया था। वहाँ जो व्यापारी और दर्शकलोग आये थे, उन सबकी भी वह विधिवत् देखभाल करता था।

इसी प्रकार महाराज युधिष्ठिरने भी धृष्टद्युम्न आदि वीरोंको रणभूमिमें चलनेकी आज्ञा दी। उन्होंने राजाओंके हाथी, घोड़े, पैदल और वाहनोंके सेवक तथा शिल्पियोंके लिये अच्छी-से-अच्छी भोजनसामग्री देनेका आदेश दिया। फिर धृष्टद्युम्नके

नेतृत्वमें अभिमन्यु, बृहत् और द्रौपदीके पाँच पुत्रोंको रणाङ्गणमें भेजा। इसके बाद भीम, सात्यकि और अर्जुनको दूसरे सैन्यसमुदायके साथ चलनेको कहा। इन उत्साही वीरोंका हर्षनाद आकाशमें गूँजने लगा। इन सबके पीछे विराट, द्रुपद तथा दूसरे राजाओंके साथ वे स्वयं चले। उस समय धृष्टद्युम्नकी अध्यक्षतामें चलती हुई वह पाण्डवसेना भरी हुई गङ्गाके समान मन्दगतिसे चलती दिखायी देती थी।

थोड़ी दूर जाकर राजा युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रके पुत्रोंको भ्रममें डालनेके लिये अपनी सेनाका दुबारा सङ्गठन किया। उन्होंने द्रौपदीके पुत्र, अभिमन्यु, नकुल, सहदेव और समस्त प्रभद्रक वीरोंको दस हजार घुड़सवार, दो हजार गजारोही, दस हजार पैदल और पाँच सौ रथियोंके साथ भीमके नेतृत्वमें पहला दल बनाकर चलनेकी आज्ञा दी। बीचके दलमें विराट, जयत्सेन तथा पाञ्चालराजकुमार युधामन्यु और उत्तमौजाको रक्खा। इसके पीछे मध्यभागमें ही श्रीकृष्ण और अर्जुन चले। उनके आगे-पीछे सब ओर बीस हजार घुड़सवार, पाँच हजार गजारोही तथा अनेकों रथी और पैदल धनुष, खड्ग, गदा एवं तरह-तरहके अस्त्र लिये चल रहे थे। जिस सैन्यसमुद्रके बीचमें स्वयं राजा युधिष्ठिर थे, उसमें अनेकों राजालोग उन्हें चारों ओरसे घेरे हुए थे। महाबली सात्यकि भी लाखों रथियोंके साथ सेनाको आगे बढ़ाये ले जा रहा था। पुरुषश्रेष्ठ क्षत्रदेव और ब्रह्मदेव सेनाके जघनस्थानकी रक्षा करते हुए पिछले भागमें चल रहे थे। इनके सिवा और भी बहुत-से छकड़े, दूकानें, सवारियाँ तथा हाथी-घोड़े आदि सेनाके साथ थे। उस समय उस रणक्षेत्रमें लाखों वीर बड़ी उमंगसे भेरी और शर्फेकी ध्वनि कर रहे थे।

धर्मराज युधिष्ठिरने कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें भीष्म द्वारा व्यूहबद्ध कौरव सेनाको देखा। कौरवोंके पास पाण्डवोंसे ड़ेढ़ गुनीसे भी अधिक सेना थी, ग्यारह अक्षौहिणी सेना। उसे देखकर युधिष्ठिर उदास होकर अर्जुनसे बोले- धनंजय। महातेजस्वी भीष्मने शास्त्रोक्त विधिसे जिस व्यूहका निर्माण किया है इसका भेजन मुझे तो असम्भव लगता है। इसने तो और हमारी सेनाको संशयमें डाल दिया है। इस व्यूहसे हमारी रक्षा कैसे हो सकेगी?

अर्जुन हँसकर बोले- राजन्। संग्राममें केवल संख्या बल, शस्त्र बल और युद्ध कौशलसे विजय नहीं होती। थोड़ेसे मनुष्य भी बुद्धि, गुण, संख्यामें अपनेसे अधिक वीरोंको जीत सकते हैं, यदि सत्य, दया, धर्म और उद्यम उनके साथ हों। देवताओंका कहना है कि जहाँ धर्म होता है उसी पक्षकी विजय होती है। अत: इस युद्धमें हमारी विजय निश्चित है।

देवर्षि नारदका कहना है- जहाँ कृष्ण है, वहाँ विजय है। विजय सदा श्रीकृष्णकी अनुगामिनी है। विश्वम्भर श्रीकृष्ण हमारे साथ हैं। वे आपकी विजय कामना करते हैं। उन सनातन पुरुष गोविन्दका तेज अनन्त है अत: मुझे तो आपके विषादका कोई कारण दीखता नहीं। हमारी विजय असन्दिग्ध है। अब युधिष्ठिरने अपनी व्यूहाकारमें अवस्थित सेनाको आगे बढ़नेकी आज्ञा दी। ब्राह्मणोंको दान करके, स्वस्तिवाचन पूर्वक धर्मराज अपने रथपर आरूढ़ हुए।

युद्धस्थलमें सैनिकोंके दोनों पक्ष इतनी दूर आ गये कि वे एक दूसरेको स्पष्ट देख सकें तब श्रीकृष्णने भीष्मकी ओर संकेत करके अर्जुनसे कहा- कुरुकुलकी ध्वजा फहरानेवाले ये भीष्म प्रधान सेनापति हैं। इनको घेरकर जो बहुत बड़ी सेना इनकी सुरक्षाके लिए खड़ी है उसका पहिले संहार करके तब तुम भीष्मसे युद्धकी इच्छा करना।

कौरवोंका एक बड़ा दुर्भाग्य था कि उनके पक्षके सब अपनी ही शक्तिको मुख्य मानते थे जबकि भारतीय सनातन धर्म सब कार्योंमें आधिदैविक सहायताको प्रमुख मानता है। जिस वस्तु या क्रियाका जो अधिदेवता है उसकी अनुकूलता प्राप्त हो तो कर्म सुगम हो जाता है; अन्यथा शक्ति तथा कर्म- कौशल होनेपर भी कार्यमें अनेक विघ्न आते हैं और उसकी सफलता सन्दिग्ध हो जाती है। श्रीकृष्णकी छाया भी प्रमाद नहीं छूती। वे किसी ओरसे असावधान नहीं होते। अत: युद्धका समय उपस्थित हुआ देखकर उन्होंने अर्जुनसे कहा- महाबाहो। युद्धारम्भसे पूर्व शत्रुओंको पराजित करनेकी

कामनासे तुम पवित्र होकर दुर्ग विनाशिनी सिंहवाहिनी दुर्गाका स्तवन करो।

अपने सखाकी आज्ञा मिलते ही अर्जुनने धनुष रथमें रख दिया। वे रथसे नीचे उतर गये। जलसे आचमन करके हाथ जोड़कर शक्तिकी स्तुति करने लगे-

सिद्ध सेनानृत, मन्दराचल वासिनी, अष्टभुजे, सिद्धदायनी, तुम्हें नमस्कार।

कुमारी, काली, कापाली, कृष्णपिंगले, भद्रकाली, महाकाली, विजये, तुम्हें पुन: प्रणाम।

दुष्ट दलनी, चण्ड-मुण्ड विनाशिनी चामुण्डे, चण्डी भगवती दुर्गे, तुम्हें नमस्कार।

तारिणी, कात्यायनी, अम्बिके, मयूरपिच्छकी ध्वजाधारिणी, नन्दात्मजे, कृष्णानुजे, महिषमर्दिनी, कौशिकी, नृमुण्डमालिके तुम्हें बारम्बार प्रणाम। उमा, शाकम्भरी, श्वेता, गौरी, कृष्णा, कैटभनाशिनी, हिरण्याक्षी, विरूपाक्षी, धूम्राक्षी, प्रलयंकरी, शकरी तुम्हें शतश: प्रणाम। माता, महादेवि, वरदायिनी। मैं आपका आह्वान करता हूँ। इस युद्धमें विजयका वरदान दो मुझे। वनमें, रणमें, दुर्गममें, घरमें, नभमें, पातालमें, भूमिपर, जलमें सर्वत्र तुम्हीं रक्षिका हो, मुझे अपने आशीर्वाद और अभयकरोंकी छायासे कृतार्थ करो।

सहसा आकाश असीम प्रकाशसे परिपूर्ण हो गया। यद्यपि उसे केवल अर्जुन और श्रीकृष्णने ही देखा। सायुधाष्ट महाभुजा सिंहवाहिनी दुर्गा उस प्रकाशके मध्य प्रकट हुई। वरद मुद्रामें दाहिना नीचेका हाथ उठाकर बोलीं- अर्जुन। तुम शीघ्र शत्रुओंपर विजय प्राप्त करोगे। मैं जिनकी आज्ञाकारिणी हूँ, अनुगामिनी हूँ, अनुजा हूँ वे स्वयं तुम्हारे रथपर उपस्थित हैं। वे जहाँ हैं, मेरी समस्त सहानुभूति और सेवा वहीं है। आशीर्वाद देकर देवी अन्तर्हित हो गयीं।

सेनाएँ विदा हो रही थीं। भयंकर निनाद था। रथचक्रों की तुमुल गड़गड़ाहट। गजराजों की चिंघाड़। युद्धोन्मत्त तुरंगों की हर्षध्वनि। घण्टे-घड़ियालों का घनघोर रव। विराट शंखों के प्रयलंकारी उद्घोष से वीरों के तन-मन रोमांचित हो उठे थे। लौह-शिरस्त्राण, अभेद्य कवचों एवं विविध आयुधों से सुसज्जित सेनानियों के ललाटों पर रमणियाँ विजयतिलक अंकित कर रही थीं। उन पर लाजा-अक्षत एवं पुष्पों की वर्षा कर रही थीं। तरुण हृदयों में भविष्य के लिए अनिश्चितता तथा वर्तमान के लिए उल्लास का अनोखा संगम मचल रहा था। पाण्डवों के भाल पर अभिषेक करते पांचाली सुस्थिर थी।

## इति उद्योगपर्व

*इतिहास कभी मिटाया नहीं जाता इसे अगली पीढ़ी के लिये सम्भालकर रखना पड़ता है।*

*दौलत की आड में खुशियां रूठ जाती है और जिसका खामियाजा भविष्य में अवसाद, अशान्ति, घुटन, कलह, परिवार टूटन, पछतावे आदि के रूप में सामने आता है।*

*उपनिषद् हमारी युग-युग की सबसे मूल्यवान धरोहर और पहचान है।*

*जो सरकार स्वयं के गुणों का गुणगान करे वह जनता का भला कभी नहीं कर सकती।*

*समय बदलने पर मान्यतायें बदल जाती है और नैतिकता की परिभाषा भी बदल जाती है।*

*कुरीतियों के अधीन होना कायरता है, उसका विरोध करना पुरुषार्थ है।*

# भीष्म पर्व (युद्ध पर्व)

## * विषय उपक्रम *


१) भीष्म का वध करने के लिए अम्बा की तपस्या व शिखण्डी को पुरुषत्वप्राप्ति ५५७
२) कुरुक्षेत्र युद्ध भूमिमें भीष्मद्वारा युद्ध के नियमोंका निर्णय ५६१
३) पाण्डव और कौरव युद्धक्षेत्र-कुरुक्षेत्र में और दोनों सेनाओंकी व्यूहरचना ५७१
४) बर्बरीक वध ५७६
५) गीतोपदेश ५७७-६५२
१) अर्जुन विषादयोग ५७७
२) सांख्ययोग ५८७
३) कर्मयोग ६०४
४) ज्ञान-कर्म-संन्यासयोग ६०९
५) कर्म-संन्यासयोग ६१४
६) आत्मसंयम योग ६१७
७) ज्ञान-विज्ञानयोग ६२१
८) अक्षरब्रह्मयोग ६२४
९) राजविद्या-राजगुह्ययोग ६२६
१०) विभूतियोग ६२९
११) विश्वरूप दर्शन (कृष्ण के विराट स्वरूप का दर्शन) ६३२
१२) भक्तियोग ६३६
१३) क्षेत्र-क्षेत्रज्ञविभागयोग ६३७
१४) गुणत्रयविभाग योग ६४०
१५) पुरुषोत्तमयोग ६४२

१६) दैवासुरसम्पद्विभागयोग ६४३
१७) श्रद्धात्रयविभागयोग ६४५
१८) मोक्षसंन्यासयोग ६४६
६) युद्ध का प्रारम्भ ६५२
७) महाभारत का युद्ध (प्रथम दिन) ६५७
(विराट पुत्र उत्तर और श्वेत का वध)
८) महाभारत का युद्ध (दूसरा दिन) ६८०
(कलिंग राज्य के पुत्रों का वध)
९) महाभारत का युद्ध (तीसरा दिन) ६९३
(भीष्म का मान रखने के लिये कृष्ण की अस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा भंग)
१०) महाभारत का युद्ध (चौथा दिन) ७०३
(सांयमनिपुत्र और धृतराष्ट्र के दस पुत्रोंका वध तथा गजसंहार)
११) महाभारत का युद्ध (पाँचवा दिन) ७१४
(सात्यकि के दस पुत्रोंका वध)
१२) महाभारत का युद्ध (छठा दिन) ७२२
(विराट कुमार शंख का वध)
१३) महाभारत का युद्ध (सातवाँ दिन) ७३०
(धृतराष्ट्र के अन्य आठ पुत्रोंका वध व घटोत्कच का युद्ध)
१४) महाभारत का युद्ध (आठवाँ दिन) ७३६
(इरावन का वध तथा भगदत्त का पाण्डवोंसे युद्ध,
भीष्मकी पाण्डवों के संहार की प्रतिज्ञा करना)
१५) महाभारत का युद्ध (नवाँ दिन) ७४५
(भीष्म का पांचालों और अर्जुन के साथ युद्ध)
१६) महाभारत का युद्ध (दसवाँ दिन) ७६४
(भीष्म और अर्जुन का युद्ध, भीष्म का पतन और
अर्जुन के बाणों से भीष्म का धराशायी होना)

# भीष्म पर्व (युद्ध पर्व)

## १) भीष्म का वध करने के लिए अम्बा की तपस्या व शिखण्डी को पुरुषत्वप्राप्ति

पितामह भीष्म को प्रधान सेनापति नियुक्त कर कौरवों की इच्छा पूर्ण हुई पर दुर्योधन चिंतित था कारण पितामह भीष्म ने सेनापति बनने के लिये जो शर्तें की थी इसलिये दुर्योधन शंकित हुआ कि विजयश्री उसे मिलेगी या नहीं? भीष्म अपने कक्ष में चिंतित थे कि शर्तोंद्वारा उन्होंने दुर्योधन की सेना का प्रधान सेनापति पद स्वीकार कर लिया। शरीर से तो वे अधर्म के पक्ष से युद्ध लडेंगे पर उनका मन धर्म के पक्ष की ओर था पितामह भीष्म के राजप्रासाद में कोई न था, एकान्त था पर अपनी की हुई प्रतिज्ञायें व शर्तें बार-बार भीष्म के मन में कचोट रही थी और सोच-सोच कर भीष्म की दृष्टि भी भिन्न हो रही थी।

गुरु परशुराम के बुलाने पर भीष्म ऋषि होत्र वाहन के आश्रम पर गये जो अम्बा के नाना थे। वहां पर गुरु परशुराम, अम्बा, ऋक्षिवर होत्रवाहन थे। भीष्म ने जाकर उन सबको प्रणाम किया। परशुराम ने भीष्म को आशीर्वाद देकर पूछा जब तुम्हे राजकुमारी अम्बा से विवाह नहीं करना था तो फिर तुमने उसका हरण क्यों किया? उसका हरण करने से शाल्व नरेश सौभ ने भी उसे स्वीकार नहीं किया और तुम्हारे भी अस्वीकार कर देने से वो बेचारी अकेली असहाय हो गई। अब तुम क्षत्रिय धर्म का पालन करो और अग्नि को साक्षी मानकर अम्बा के साथ पाणिग्रहण करो। तब भीष्म ने विनयपूर्वक गुरु परशुराम से कहा मैंने अम्बा का हरण मेरे अनुज विचित्रवीर्य के लिये किया था परन्तु उस समय स्वयं अम्बा ने ही कहा था कि वह पहिले ही मन से शाल्व नरेश सौभ को अपना पति मान चुकी है तब मेरा तो प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि मैं तो आजन्म ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा बद्ध हूँ पर महाराज विचित्रवीर्य के लिये भी उसे स्वीकार करना सम्भव नहीं था।

भीष्म के इसप्रकार कहने पर परशुराम संतप्त हो बोले गंगापुत्र यदि तुमने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया तो तुम्हे मेरे साथ युद्ध करना होगा। भीष्म बोले इसके लिये गुरु को अपने शिष्य से युद्ध करने की लालसा क्यों हैं? तब परशुराम भीष्म से बोले शिष्य के असभ्य बर्ताव से कठोर अनुशासन करना गुरु का परम कर्त्तव्य है इसलिये तुम अम्बा के साथ पाणिग्रहण करो। भीष्म बोले, पृथ्वी पर सर्व क्षत्रियों का संहार करनेवाले गुरुश्रेष्ठ भीष्म के लिये यह कभी भी सम्भव नहीं और यदि गुरु का आदेश युद्ध करने का ही है तो न चाहते हुये मुझे आपकी आज्ञा से अस्त्र उठाना पडेगा। भीष्म को अपने सामर्थ्य पर इतना भरोसा था कि उन्होंने गुरु के आह्वान को स्वीकार किया। अपने परम तेजस्वी शिष्य देवव्रत ने अपने गुरु से कौनसा ज्ञान ग्रहण किया है देखने के लिये गुरु परशुराम ने तत्काल कुरुक्षेत्र भूमि में आने के लिये आदेश दिया। गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर भीष्म श्वेत वस्त्र, श्वेत चांदी के रथ पर जिसमें श्वेत घोडे जुते हुये थे चढ़कर कुरुक्षेत्र मैदान में आये और एक-दूसरे के सामने आकर ठहरे। गुरु शिष्य का यह अपूर्व संग्राम देखने के लिये आकाश में देवराज इन्द्र सहित अन्य सभी देवगण एकत्रित हुये। शंख फूंककर युद्ध आरम्भ करने की घोषणा भीष्म ने की। फिर अपने गुरु को सादर प्रणाम कर गुरु को भूमिपर स्थित युद्ध के लिये सज्जित देख उनसे कवच धारण करने की विनती करी। गुरु परशुराम बोले गंगापुत्र यह भूमि मेरा रथ है, ये मेघ मेरे रथ के अश्व हैं, पवन मेरे रथ का सारथी है और वेद माता गायत्री, सावित्री और सरस्वती मेरा कवच है।

भीष्म अपने रथ से नीचे उतर कर गुरु परशुराम के पास गये और युद्ध आरम्भ करने की आज्ञा मांगी तथा युद्ध में शिष्य की जय हो ऐसा आशीर्वाद मांगा। भीष्म के इस बर्ताव से प्रसन्न हो, भीष्म का अभ्युदय हो, सदा विनम्री बने रहो और बोले जब कभी युद्ध का प्रसंग आ जाये तब अपने विवेक से प्रतिपक्ष के वृद्ध जनों से आशीर्वाद लेना क्षत्रिय धर्म है। यदि गंगापुत्र तुमने इस धर्म का पालन नहीं किया होता तो अवश्य ही मैं तुम्हे श्राप दे देता पर तुमने क्षत्रिय धर्म का पालन कर

अपने गुरु का मान बढ़ाया है। महर्षि परशुराम भी अपने रथ पर सवार हुये। दोनों ओर से सावधान होने की सूचना हो गई और धनुष पर बाण चलाने के लिये उद्यत हुये और परस्पर युद्ध करने लगे। गुरु और शिष्य के बीच यह युद्ध २३ दिन चला कभी भीष्म गुरु पर प्रहार कर उन्हे घायल करते तो कभी गुरु परशुराम भीष्म के धनुष तोड डालते। वे परस्पर एक-दूसरे पर दिव्यास्त्रों से प्रहार कर रहे थे पर किसी की भी पराजय नहीं हो रही थी इसलिये युद्ध का कोई निर्णय नहीं हो रहा था। अन्त में भीष्म ने अपने पास प्रस्वाप नाम का अस्त्र प्रयोग करने का निश्चय किया। जिसकी जानकारी व उपलब्धि केवल वसुओं के पास ही है। देवलोक में भी अन्य देवताओं के पास नहीं है। इस अस्त्र के प्रयोग से यह परशुरामजी को भी चिर काल तक प्रगाढ़ निद्रा में ले जा सकता है तथा दीर्घ काल तक निश्चेष्ट कर सकता है। उस शस्त्र का स्मरण करते ही प्रस्वाप अस्त्र भीष्म के दायें हाथ में प्रस्तुत हो गया। युद्धभूमि में उपस्थित खड़े ऋषि, अम्बा, होत्रवाहन सभी यह अस्त्र देखकर भयभीत हो गये। होत्रवाहन ऋषि अम्बा से बोले यह एक अमोघ अस्त्र है भीष्म ने यदि इसका प्रयोग किया तो इस पृथ्वी पर इसके प्रयोग व संहार का ज्ञान किसको भी नहीं है तथा परशुरामजी की पराजय निश्चित है। यह सुनकर अम्बा भयभीत हुई। दायें हाथ में प्रस्वाप अस्त्र लेकर उसको छोडने के लिये आंखे बन्द कर प्रार्थना करी इतने में ही आकाशवाणी हुई ठहरो। हे कुरुनन्दन। हे भरतश्रेष्ठ यह तुम क्या कर रहे हो? प्रस्वाप अस्त्र का प्रयोग मत करो। इसके प्रयोग करने से तुम्हारे अपने गुरु का पराभव होगा, उनका अपमान होगा। भीष्म ने आकाश की ओर देखा। वहां पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश अन्य देवताओंसहित स्थित थे। आकाशवाणी सुनकर भीष्म ने प्रस्वाप अस्त्र का प्रयोग नहीं किया। देवताओं ने प्रसन्न हो भीष्म पर पुष्पवृष्टि की।

यह सब देखकर आनंदित हो परशुराम बोले मेरे शिष्य भीष्म ने आज मुझे जीत लिया। अपने शिष्य को सर्वश्रेष्ठ शिष्य अधिरथी की उपाधि दी और बोले आज तूने अपने गुरु को जीत लिया है। इस जग में किसी भी गुरु को ढूंढने पर भी तेरे समान शिष्य नहीं मिलेगा पर तू अब रणभूमि से ऐसे ही वापिस लौटकर नहीं जा सकता इसलिये मेरा वध कर या फिर यहां से चले जा। केवल गुरु की वापिस लौट जाने की आज्ञा पालन करने के लिये गुरु परशुराम को नमस्कार कर भीष्म हस्तिनापुर लौट गये।

अम्बा भीष्म को श्राप देकर कि वह भीष्मके मृत्युका कारण बनेगी, यमुनातटपर एक आश्रममें गयी और वहाँ बड़ा अलौकिक तप करने लगी। वह एक सालतक निराहार रहकर यमुना जलमें रही। फिर एक वर्षतक अपने-आप झड़कर गिरा हुआ पत्ता खाकर पैरके अँगूठेपर खड़ी रही। इस प्रकार बारह वर्ष तपस्या करके उसने आकाश और पृथ्वीको संतप्त कर दिया। इसके पश्चात् वह आठवें या दसवें महीने जल पीकर निर्वाह करने लगी। फिर तीर्थसेवनके लोभसे इधर-उधर घूमती वह वत्सदेश (गया) में पहुँची। वहाँ अपने तपके प्रभावसे वह आधे शरीरसे तो अम्बा नामकी नदी हो गयी और आधे अंगसे वत्सदेशके राजाकी कन्या होकर उत्पन्न हुई।

इस जन्ममें भी उसे तपका आग्रह करते देख समस्त तपस्वियोंने उसे रोका और कहा कि तुझे क्या करना है? तब उस कन्याने उन तपोवृद्ध ऋषियोंसे कहा, भीष्मने मेरा निरादर किया है और मुझे पतिधर्मसे भ्रष्ट कर दिया है। अत: मैंने कोई दिव्य लोक पानेके लिये नहीं, प्रत्युत भीष्मका वध करनेके लिये तपका संकल्प किया है। मेरा यह निश्चय है कि भीष्मके मारे जानेपर मुझे शान्ति मिल जायगी। मैं तो भीष्मसे बदला लेनेके लिये ही तप कर रही हूँ, अत: आपलोग मुझे इससे रोकें नहीं। तब उन सब महर्षियोंके बीचमें उमापति भगवान शंकरने उस तपस्विनीको दर्शन दिया और वर माँगनेको कहा। उस कन्याने भीष्मकी पराजय करनेका वर माँगा। इसपर शंकरने वरदान दिया और कहा, तू भीष्मका नाश कर सकेगी। तब अम्बा बोली, भगवन्। मैं तो स्त्री हूँ, इसलिये मेरा हृदय भी अत्यन्त शौर्यहीन है; फिर मैं युद्धमें भीष्मको कैसे जीत सकूँगी?

आप ऐसी कृपा कीजिये, जिससे मैं संग्राममें शान्तनुनन्दन भीष्मको मार सकूँ। भगवान शंकर बोले, मेरी बात असत्य नहीं हो सकती; इसलिये तू अवश्य ही भीष्मका वध करेगी, पुरुषत्व प्राप्त करेगी और दूसरी देह धारण करनेपर भी इन सब बातोंको याद रक्खेगी। तू द्रुपदके यहाँ जन्म लेकर एक चित्रयोधी, वीरसम्मत महारथी बनेगी। मैंने जो कुछ कहा है, वह सब वैसे ही होगा। तू कन्यारूपसे जन्म लेकर भी कुछ समय बीतनेपर पुरुष हो जायगी। ऐसा कहकर भगवान शंकर अन्तर्धान हो गये। उस कन्याने एक बड़ी चिता बनाकर अग्नि प्रज्वलित की और मैं भीष्मका वध करनेके लिये अग्निमें प्रवेश करती हूँ ऐसा कहकर उसमें प्रवेश कर गयी।

महाराज द्रुपदकी रानीके पहले कोई पुत्र नहीं था। तब द्रुपदने संतान प्राप्तिके लिये तपस्या करके भगवान शिवको प्रसन्न किया। तब शंकरने कहा, तुम्हारे एक ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा, जो पहले स्त्री होनेपर भी पीछे पुरुष हो जायगा। अब तुम तप करना बंद करो; मैंने जो कुछ कहा है, वह कभी अन्यथा नहीं होगा। तब राजाने नगरमें जाकर रानीको अपनी तपस्या और श्रीमहादेवजीके वरकी बात सुना दी। ऋतुकाल आनेपर रानीने गर्भ धारण किया और यथासमय एक रूपवती कन्याको जन्म दिया। किंतु लोगोंमें प्रसिद्ध यह किया कि रानीके पुत्र उत्पन्न हुआ है। राजाने उसे छिपी रखकर पुत्रके समान ही सब संस्कार किये। उस नगरमें द्रुपदके सिवा इस रहस्यको और कोई नहीं जानता था। उन्हें महादेवजीकी बातमें पूर्ण विश्वास था, इसलिये उस कन्याको छिपी रखकर वे उसे पुत्र ही बताते थे। लोगोंमें वह शिखण्डी नामसे विख्यात हुई। नारदजीके कथन, देवताओंके वाक्य और अम्बाकी तपस्याके कारण यह रहस्य सबको मालूम हो गया था।

फिर राजा द्रुपद अपनी कन्याको लिखना-पढ़ना तथा शिल्पकला आदि सब विद्याएँ सिखानेका प्रयत्न करने लगे। बाणविद्याके लिये वह द्रोणाचार्यजीके शिष्यत्वमें रही। एक बार रानीने कहा, महाराज। महादेवजीकी बात किसी भी प्रकार मिथ्या तो हो नहीं सकती। इसलिये मैं जो बात कहती हूँ, आपको भी यदि वह उचित जान पड़े तो कीजिये। आप विधिपूर्वक इसका किसी कन्यासे विवाह कर दीजिये। महादेवजीकी बात सत्य होकर तो रहेगी ही, इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है। उन दोनोंने वैसा ही निश्चय कर दशार्ण देशके राजाकी कन्याको वरण किया। तब दशार्णराज हिरण्यवर्माने शिखण्डीके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया। विवाहके बाद शिखण्डी काम्पिल्यनगरमें आकर रहा। वहाँ हिरण्यवर्माकी कन्याको मालूम हुआ कि यह तो स्त्री है। तब उसने अपनी धाइयों और सखियोंके सामने बड़े संकोचसे यह बात खोल दी। यह सुनकर उन्हें बड़ा दु:ख हुआ और उन्होंने राजाको यह समाचार सुनानेके लिये अपनी दूतियाँ भेजीं। उन्होंने यह सब वृत्तान्त दशार्णराजको सुनाया। सुनते ही राजा बड़े क्रोधमें भर गया और उसने द्रुपदके पास अपना दूत भेजा।

दूतने राजा द्रुपदके पास आकर उन्हें एकान्तमें ले जाकर कहा- राजन्। आपने दशार्णराजको धोखा दिया है, इसलिये उन्होंने बड़े क्रोधमें भरकर कहा है कि तुमने मोहवश अपनी कन्याके साथ मेरी कन्याका विवाह कराकर मेरा बड़ा अपमान किया है। तुम्हारा यह विचार बड़ा ही खोटा था। इसलिये अब तुम इस धोखेका फल भोगनेको तैयार हो जाओ। अब तुम्हारे कुटुम्ब और मन्त्रियोंके सहित तुम्हें नष्ट कर दूँगा।

दूतकी यह बात सुनकर पकड़े हुए चोरके समान द्रुपदका मुँह बंद हो गया। उन्होंने ऐसी बात नहीं है यह कहकर उस दूतके द्वारा अपने समधिको मनानेके लिये बड़ा प्रयत्न किया। किंतु हिरण्यवर्माने फिर भी पक्का पता लगा लिया कि वह पञ्चालराजकी पुत्री ही है। इसलिये वह तुरंत ही पञ्चालदेशपर चढ़ाई करनेके लिये नगरसे बाहर निकल पड़ा। उस समय उसके साथी राजाओंने यही निश्चय किया कि यदि शिखण्डी कन्या हो तो हमलोग पञ्चालराजको कैद करके अपने नगरमें ले आयेंगे तथा पञ्चालदेशमें दूसरे राजाको गद्दीपर बैठा देंगे। फिर द्रुपद और शिखण्डीको मार डालेंगे।

दशार्णराजके पास दूत भेजकर शोकाकुल द्रुपदने एकान्तमें ले जाकर अपनी स्त्रीसे कहा, इस कन्याके विषयमें तो हमसे बड़ी मूर्खता हो गयी। अब हम क्या करेंगे? शिखण्डीके विषयमें अब सबको शमा हो रही है कि यह कन्या है। यही सोचकर दशार्णराजने भी ऐसा समझा है कि मुझे धोखा दिया गया। इसलिये अब वह अपने मित्र और सेनाके साथ मेरा नाश करनेके लिये आ रहा है। अब तुम्हें जिसमें हित दिखायी देता हो, वह बात बताओ; मैं वैसा ही करूँगा।

तब रानीने कहा- सत्पुरुषोंने देवताओंका पूजन करना सम्पत्तिशालियोंके लिये भी श्रेयस्कर माना है। फिर जो दुःखके समुद्रमें गोते खा रहा हो, उसकी तो बात ही क्या है? इसलिये आप देवाराधनके लिये ही ब्राह्मणोंका पूजन करें और मनमें ऐसा संकल्प करें कि दशार्णराज युद्ध किये बिना ही लौट जाय। फिर देवताओंके अनुग्रहसे यह सब काम ठीक हो जायगा। देवताओंकी कृपा और मनुष्यका उद्योग ये दोनों जब मिल जाते हैं तो कार्य पूर्णतया सिद्ध हो जाता है और यदि इनमें आपसमें विरोध रहता है तो सफलता नहीं मिलती। अत: आप मन्त्रियोंके द्वारा नगरके शासनका सुप्रबन्ध कर देवताओंका यथेष्ट पूजन कीजिये।

अपने माता-पिताको इस प्रकार बात करते और शोकाकुल होते देखकर शिखण्डिनी भी लज्जित-सी होकर सोचने लगी कि ये दोनों मेरे ही कारण दुखी है। इसलिये उसने अपने प्राण त्यागनेका निश्चय किया। यह सोचकर वह घरसे भागकर एक निर्जन वनमें चली गयी। इस वनकी रक्षा स्थूणाकर्ण नामका एक समृद्धिशाली यक्ष करता थां वहाँ उसका एक भवन भी बना हुआ था। शिखण्डिनी उसी वनमें चली गयी। उसने बहुत समयतक निराहार रहकर अपने शरीरको सुखा डाला। एक दिन स्थूणाकर्णने उसे दर्शन देकर पूछा, कन्ये। तेरा यह अनुष्ठान किस उद्देश्यसे है? तू मुझे अभी बता, मैं तेरा काम कर दूँगा। शिखण्डिनी ने बार-बार कहा कि तुमसे मेरा काम नहीं हो सकेगा, किंतु यक्षने यही कहा कि मैं उसे बहुत जल्द कर दूँगा। मैं कुबेरका अनुचर हूँ और वर देनेके लिये ही आया हूँ। तुझे जो कहना हो, वह कह दे; मैं तुझे न देने योग्य वस्तु भी दे दूँगा। तब शिखण्डीनीने अपना सारा वृत्तान्त स्थूणाकर्णसे कह दिया और कहा कि तुमने मेरा दु:ख दूर करनेकी प्रतिज्ञा की है, अत: ऐसा करो कि मैं तुम्हारी कृपासे एक सुन्दर पुरुष बन जाऊँ। जबतक दशार्णराज मेरे नगरतक पहुँचे, उससे पहले ही तुम मुझपर यह कृपा कर दो। यक्षने कहा, तुम्हारा यह काम तो हो जायगा। किंतु इसमें एक शर्त है। मैं कुछ समयके लिये तुम्हें अपना पुरुषत्व दे दूँगा। किंतु यह सत्य प्रतिज्ञा कर जाओ कि फिर उसे लौटानेके लिये तुम यहाँ आ जाओगी। इतने दिनतक मैं तुम्हारे स्त्रीत्वको धारण करूँगा।

शिखण्डीने कहा- ठीक है, मैं तुम्हारा पुरुषत्व लौटा दूँगी; थोड़े दिनोंके लिये ही तुम मेरा स्त्रीत्व ग्रहण कर लो। जिस समय राजा हिरण्यवर्मा दशार्णदेशको लौट जायगा, उस समय मैं फिर कन्या हो जाऊँगी और तुम पुरुष हो जाना।

इस प्रकार जब उन दोनोंने प्रतिज्ञा कर ली तो उन्होंने आपसमें शरीर बदल लिया। स्थूणाकर्ण यक्षने स्त्रीत्व धारण कर लिया और शिखण्डीको यक्षका देदीप्यमान रूप प्राप्त हो गया। इस प्रकार पुरुषत्व पाकर शिखण्डी बड़ा प्रसन्न हुआ और पाञ्चाल नगरमें अपने पिताके पास चला आया। यह घटना जैसे-जैसे हुई थी, वह सब वृत्तान्त उसने द्रुपदको सुना दिया। इससे द्रुपदको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्हें और उनकी स्त्रीको भगवान शंकरकी बात याद हो आयी। तब उन्होंने दशार्णराजके पास दूत भेजकर कहलाया, आप स्वयं मेरे यहाँ आइये और देख लीजिये कि मेरा पुत्र पुरुष ही है। किसी व्यक्तिने आपसे जो झूठी बात कही है, वह मानने योग्य नहीं है। राजा द्रुपदका संदेश पाकर दशार्णराजने शिखण्डीकी परीक्षाके लिये कुछ युवतियोंको भेजा। उन्होंने उसके वास्तविक स्वरूपको जानकर बड़ी प्रसन्नतासे सब बातें हिरण्यवर्माको सुना दीं और कह दिया कि राजकुमार शिखण्डी पुरुष ही है। तब राजा हिरण्यवर्मा बड़ी प्रसन्नतासे द्रुपदके नगरमें आया और अपने समधिसे मिलकर बड़े हर्षसे कुछ दिन वहाँ रहा। उसने शिखण्डीको हाथी, घोड़े, गौ और बहुत-सी दासियाँ भेट कीं। द्रुपदने भी उसका अच्छा सत्कार किया। इस प्रकार

संदेह दूर हो जानेसे वह बहुत प्रसन्न हुआ और अपनी पुत्रीको झिड़ककर अपनी राजधानीको चला गया।

इसी बीचमें किसी दिन यक्षराज कुबेर घूमते-घूमते स्थूणाकर्णके स्थानपर पहुँच गये। स्थूणाकर्णका घर रंगबिरंगे सुगन्धित पुष्पोंसे सजा हुआ था। उसे देखकर यक्षराजने अपने अनुचरोंसे कहा, यह सजा हुआ भवन स्थूणाकर्णका ही है किंतु यह मन्दमति मेरे पास उपस्थित होनेके लिये क्यों नहीं आया? यक्षोंने कहा, महाराज। राजा द्रुपदकी शिखण्डिनी नामकी एक कन्या है, उसे किसी कारणसे स्थूणाकर्णने अपना पुरुषत्व दे दिया है और उसका स्त्रीत्व ग्रहण कर लिया है। अब वह स्त्री रूपमें ही घरमें रहता है। अत: संकोचके कारण ही वह आपकी सेवामें उपस्थित नहीं हुआ। यह सुनकर आप जैसा उचित समझें, वैसा करें। तब कुबेरने कहा, अच्छा, तुम स्थूणको मेरे सामने हाजिर करो, मैं उसे दण्ड दूँगा। इस प्रकार बुलाये जानेपर स्थूणाकर्ण स्त्रीरूपमें ही बड़े संकोचसे कुबेरके पास आकर खड़ा हो गया। उसपर क्रुद्ध होकर कुबेरने शाप दिया कि अब यह पापी यक्ष इसी प्रकार स्त्रीरूपमें ही रहेगा। तब दूसरे यक्षोंने स्थूणाकर्णकी ओरसे प्रार्थना की कि महाराज। आप इस शापकी कोई अवधि निश्चित कर दें। इसपर कुबेरने कहा, अच्छा, जब शिखण्डी युद्धमें मारा जायगा तो इसे फिर अपना स्वरूप प्राप्त हो जायगा। ऐसा कहकर भगवान कुबेर सब यक्षोंके साथ अलकापुरीको चले गये।

इधर, प्रतिज्ञाका समय पूरा होनेपर शिखण्डी स्थूणाकर्णके पास पहुँचा और कहा कि भगवन्। मैं आ गया हूँ। स्थूणाकर्णने शिखण्डीको अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार समयपर उपस्थित हुआ देख बार-बार अपनी प्रसन्नता प्रकट की और उसे सारा वृत्तान्त सुना दिया। उसकी बात सुनकर शिखण्डीको बड़ी प्रसन्नता हुई और वह अपने नगरको लौट आया। शिखण्डीका इस प्रकार काम बना देख राजा द्रुपद और सब बन्धु-बान्धवोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके बाद द्रुपदने उसे धनुर्विद्या सीखनेके लिये द्रोणाचार्यजीको सौंप दिया। फिर शिखण्डी और धृष्टद्युम्नने साथ ही ग्रहण, धारण, प्रयोग और प्रतीकार इन चार अङ्गोंके सहित धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त की।

इस प्रकार यह द्रुपदका पुत्र महारथी शिखण्डी पहले स्त्री था और पीछे पुरुष हो गया है। यह यदि हाथमें धनुष लेकर भीष्म के सामने युद्ध करनेके लिये आवेगा तो न तो एक क्षण भी भीष्म इसकी ओर देखेंगे और न ही इसपर शस्त्र प्रहार करेंगे। यदि भीष्म स्त्रीकी हत्या करेगा तो साधुजन उसकी निन्दा करेंगे। इसलिये इसे रणमें उपस्थित देखकर भी भीष्म इसपर हाथ नहीं उठायेंगे।

## २) कुरुक्षेत्र युद्ध भूमिमें भीष्मद्वारा युद्ध के नियमोंका निर्णय

जनमेजयने कहा- मुने। अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि कौरव, पाण्डव, सोमक तथा नाना देशोंसे आये हुए अन्यान्य राजाओंने किस प्रकार युद्ध किया। वैशम्पायन बोले, राजन्। कौरव, पाण्डव और सोमवंशी वीरोंने कुरुक्षेत्रमें जिस प्रकार युद्ध किया, वह बताता हूँ। कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिरने वहाँ समन्तपञ्चक तीर्थसे बाहरके मैदानमें हजारों खेमे खड़े करवाये। वहाँ इतनी सेना इकट्ठी हो गयी थी कि कुरुक्षेत्रके सिवा सारी पृथ्वी सूनी लगती थी। केवल बालक और वृद्ध ही बच गये थे, तरुण पुरुष और घोड़ोंका नाम नहीं था तथा रथ और हाथी भी कहीं नहीं बचे थे। पृथ्वीके सब देशोंसे कुरुक्षेत्रमें सेना आयी थी। सभी वर्णों के लोग वहाँ एकत्रित हुये थे। सबने अनेकों योजनके मण्डलमें घेरा डाल रक्खा था। उनके घेरेमें देश, नदी, पर्वत और वन भी थे। राजा युधिष्ठिरने सबके भोजन-पानका उत्तम प्रबन्ध किया था। जब युद्धका समय उपस्थित हुआ तो उन्होंने इस पहचानके लिये कि यह पाण्डव-पक्षका योद्धा है सबके नाम, आभूषण और संकेत निश्चित किये।

भीष्म पितामह अपने कक्ष में एकान्त में भूतकाल की स्मृतियों में खोये हुये थे। रात बीत रही थी। प्रात: हो गई थी इतने में ही सेवकों ने आकर सूचना दी कि महर्षि व्यास पधारे हैं। बिना कोई पूर्वसूचना दिये महर्षि व्यास का आना पितामह भीष्म को आश्चर्यमय लगा। भीष्म उठकर महर्षि के सामने गये तो महर्षि बोले मैं तो इधर ऐसे ही आ गया तुम्हारे साथ

बातचीत करने। व्यास बोले पुत्र जो दैव है उसे बदला नहीं जा सकता। पिछले जन्मों के संचित कर्मों का फल मनुष्य को उसके अगले जन्म में मिलता है और वह उसे भोगना ही पडता है। इसलिये जो कुछ घट रहा है उसी स्वीकार करना पडता ही है यही नियति का नियम और आज्ञा है कर्म करते रहना ही मनुष्य के हाथ में है। पर इन परिस्थितियों को देखकर भीष्म को जिसने अपनी मातृभूमि हस्तिनापुर को तन-मन अर्पण कर सेवा की थी उसका विनाश होता देख भीष्म के मन में अपार दु:ख हो रहा था। भीष्म का मातृभूमि की आयु भर सेवा करने का और कोई दूसरा लक्ष्य नहीं था और अब वही मातृभूमि युद्ध भूमि में सज्ज हो रही है। भीष्म ने महर्षि व्यास से पूछा ऋषिवर मैं क्या करूँ? व्यास बोले कर्त्तव्य करते रहना यही शाश्वत और अटल नियम है और देखने की तैयारी रखो। भीष्म तुम्हारी आंखों में आंसू बहने का समय आ गया है। अपने संचित कर्मों के परिणाम का सामना करने की तैयारी करो। भीष्म को महर्षि व्यास के ये शब्द अत्यन्त कठोर लगे। भीष्म बोले, आपको मुझे बताने के लिये सिर्फ क्या यही बचा है ऋषिवर? तब महर्षि व्यास बोले मेरा तुम्हे कुछ भी बताना आवश्यक नहीं है क्योंकि तुम स्वयं सब कुछ जानते हो फिर भी मैं जो कुछ आज कह रहा हूँ वो तुम भी जानते हो कि भविष्य ने क्या लिख रखा है? सदैव सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, अमावस्या और पूर्णिमा को ही होते है पर इस बार तो इस मास की तेरस के दिन ही सूर्यग्रहण है। इससे पहिले ऐसा कभी नहीं हुआ। यह ग्रहण अर्थात सर्वनाश की पूर्वसूचना दे रहा है क्या इसकी जानकारी भीष्म को है क्या जो जिस सेना का प्रधान सेनापति है उस सेना की पराजय निश्चित है। यह कहकर महर्षि व्यास भीष्म के कक्ष से निकलकर धृतराष्ट्र के महल में गये।

वैशम्पायनने कहा, राजन्। तदनन्तर पूर्व और पश्चिम दिशामें आमने-सामने खड़ी हुई दोनों ओरकी सेनाओंको देखकर भूत, भविष्य और वर्तमान- तीनों कालोंका ज्ञान रखनेवाले भगवान् व्यासने एकान्तमें बैठे हुए राजा धृतराष्ट्रके पास आकर कहा, राजन्। तुम्हारे पुत्रों तथा अन्य राजाओंका काल आ पहुँचा है; वे युद्धमें एक दूसरेका संहार करनेको तैयार है। पुत्र। यदि तुम इन्हें संग्राममें देखना चाहो तो मैं तुम्हें दिव्यदृष्टि प्रदान करूँ। इससे तुम वहाँका युद्ध भलीभाँति देख सकोगे।

धृतराष्ट्रने कहा, ब्रह्मर्षिवर। मैं तो नेत्रहीन हूँ, मैं दिव्यदृष्टि लेकर क्या करूँगा। युद्धमें मैं अपने ही कुटुम्बका वध नहीं देखना चाहता; किंतु आपके प्रभावसे युद्धका पूरा समाचार सुन सकूँ, ऐसी कृपा अवश्य कीजिये। इसलिये कृपया आप मेरे सारथी संजय को दिव्यदृष्टि प्रदान करने की कृपा करें जो मुझे युद्ध का पूरा वृत्तान्त सुनाता रहेगा।

धृतराष्ट्र युद्धका समाचार सुनना चाहता है- यह जानकर व्यासने संजयको दिव्यदृष्टिका वरदान दिया। वे धृतराष्ट्रसे बोले, राजन्। यह संजय तुम्हें युद्धका वृत्तान्त सुनायेगा। सम्पूर्ण युद्धक्षेत्रमें कोई भी बात ऐसी न होगी, जो इससे छिपी रहे। यह दिव्यदृष्टिसे सम्पन्न और सर्वज्ञ हो जायगा। सामने हो या परोक्षमें, दिनमें हो या रातमें, अथवा मनमें सोची हुई ही क्यों न हो, वह बात भी संजयको मालूम हो जायगी। इसे शस्त्र नहीं काट सकेंगे, परिश्रम कष्ट नहीं पहुँचा सकेगा तथा यह इस युद्धसे जीता-जागता निकल आयेगा। मैं इन कौरवों और पाण्डवोंकी कीर्तिका विस्तार करूँगा, तुम इनके लिये शोक न करना। यह दैवका विधान है, इसे टाला नहीं जा सकता। युद्धमें जिस ओर धर्म होगा, उसी पक्षकी जीत होगी। महाराज। इस संग्राममें बड़ा भारी संहार होगा; क्योंकि ऐसे ही भयसूचक अपशकुन दिखायी देते हैं। दोनों संध्याओंकी वेलामें बिजली चमकती है और सूर्यको तिरंगे बादल ढक देते हैं, ये ऊपर-नीचे श्वेत और लाल तथा मध्यमें काले होते हैं। सूर्य, चन्द्रमा और तारे जलते हुए-से दीखते हैं। दिन-रातमें कोई अन्तर नहीं जान पड़ता; यह लक्षण भय उत्पन्न करनेवाला है। कार्तिककी पूर्णिमाको नीलकमलके समान रंगवाले आकाशमें चन्द्रमा प्रभाहीन होनेके कारण कम दीखता था, उसका रंग अग्निके समान था। इससे यह सूचित होता है कि अनेकों शूरवीर राजा और राजकुमार युद्धमें प्राणत्याग कर पृथ्वीपर शयन करेंगे। प्रतिदिन सूअर और बिलाव लड़ते हैं और

उनका भयंकर नाद सुनायी पड़ता है। देवमूर्तियाँ काँपती, हँसती और रक्त वमन करती हैं तथा अकस्मात् पसीनेसे तर हो जाती और गिर पड़ती हैं। जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है, उस परम साध्वी अरुन्धतीने इस समय वसिष्ठको आगेसे पीछे कर लिया है। शनैश्चर रोहिणीको पीडा दे रहा है, चन्द्रमाका मृगचिन्ह मिट-सा गया है; इससे बड़ा भारी भय होनेवाला है। आजकल गौओंके पेटसे गधे उत्पन्न होते हैं। घोड़ीसे गौके बछड़ेकी उत्पत्ति होती है और कुत्ते गीदड़ पैदा कर रहे हैं। चारों ओर बड़े जोरकी आँधी चलती है, धूलका उड़ना बंद ही नहीं होता। बारंबार भूकम्प होता है। राहु सूर्यपर आक्रमण करता है, केतु चित्रापर स्थित है, धूमकेतु पुष्य-नक्षत्रमें स्थित है, यह महान् ग्रह दोनों सेनाओंका घोर अमङ्गल करेगा। मङ्गल वक्री होकर मघा-नक्षत्रपर स्थित है। बृहस्पति श्रवण नक्षत्रपर है और शुक्र पूर्वाभाद्रपदापर स्थित है। पहले चौदह, पंद्रह और सोलह दिनोंपर अमावस्या हो चुकी है; किंतु कभी पक्षके तेरहवें दिन ही अमावस्या हुई हो- यह अभी तक नहीं हुआ है। इस बार तो एक ही महीनेके दोनों पक्षोंमे त्रयोदशीको ही सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण हो गये हैं। इस प्रकार बिना पर्वका ग्रहण होनेसे ये दोनों ग्रह अवश्य ही प्रजाका संहार करेंगे। पृथ्वी हजारों राजाओंका रक्तपान करेगी। कैलास, मन्दराचल और हिमालय-जैसे पर्वतोंसे हजारों बार घोर शब्द होते हैं, उनके शिखर टूट-टूटकर गिर रहे हैं और चारों महासागर अलग-अलग उफनाते तथा पृथ्वीपर हलचल पैदा करते हुए बढ़कर मानो अपनी सीमाका उल्लंघन कर रहे हैं।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय, धृतराष्ट्रसे ऐसा कहकर मुनिवर व्यास क्षणभरके लिये समाधिस्थित हो बोले राजन, इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि काल सारे जगत्का संहार करता रहता है। यहाँ सदा रहनेवाला कुछ भी नहीं है। इसलिये तुम अपने कुटुम्बी कौरवों, सम्बन्धियों और हितैषी मित्रोंको इस क्रूर कर्मसे रोको, उन्हें धर्मयुक्त मार्गका उपदेश करो; अपने बन्धुबान्धवोंका वध करना बड़ा नीच काम है, इसे न होने दो। चुप रहकर मेरा अप्रिय न करो। किसीके वधको वेदमें अच्छा नहीं कहा गया है, इससे अपना भला भी नहीं होता। कुलधर्म अपने शरीरके समान है; जो उसका नाश करता है, वह कुलधर्म भी उस मनुष्यका नाश कर देता है। इस कुलधर्मकी रक्षा तुम कर सकते हो, तो भी कालसे प्रेरित होकर आपत्तिकालके समान अधर्म-पथमें प्रवृत्त हो रहे हो। तुम्हें राज्यके रूपमें बहुत बड़ा अनर्थ प्राप्त हुआ है; क्योंकि यह समस्त कुलके तथा अनेकों राजाओंके विनाशका कारण बन गया है। यद्यपि तुम धर्मका बहुत लोप कर चुके हो, तो भी मेरे कहनेसे अपने पुत्रोंको धर्मका मार्ग दिखाओ। ऐसे राज्यसे तुम्हें क्या लाभ है, जिससे पापका भागी होना पड़े। धर्मकी रक्षा करनेसे तुम्हें यश, कीर्ति और स्वर्ग मिलेगा। अब ऐसा करो, जिससे पाण्डव अपना राज्य पा सकें और कौरव भी सुख-शान्तिका अनुभव करें।

धृतराष्ट्रने कहा- तात। सारा संसार स्वार्थसे मोहित हो रहा है, मुझे भी सर्वसाधारणकी ही भाँति समझिये। मेरी बुद्धि भी अधर्म करना नहीं चाहती, परंतु क्या करूँ? मेरे पुत्र मेरे वशमें नहीं हैं। महर्षि व्यासने कहा- अच्छा, तुम्हारे मनमें यदि मुझसे कुछ पूछनेकी बात हो तो कहो; मैं तुम्हारे सभी संदेहोंको दूर कर दूँगा।

धृतराष्ट्रने कहा, भगवन्। संग्राममें विजय पानेवालोंको जो शुभ शकुन दृष्टिगोचर होते हैं, उन सबको मैं सुनना चाहता हूँ।

व्यास बोले- हवनीय अग्निकी प्रभा निर्मल हो, उसकी लपटें ऊपर उठती हों अथवा प्रदक्षिणक्रमसे घूमती हों, उनसे धुआँ न निकले, आहुति डालनेपर उसमेंसे पवित्र गन्ध फैलने लगे, तो इसे भावी विजयका चिन्ह जानना। भारत। जिस पक्षमें योद्धाओंके मुखसे हर्षभरे वचन निकलते हों, उनका धैर्य बना रहता हो, पहनी हुई मालाएँ कुम्हलाती न हों, वे ही युद्धरूपी महासागरको पार करते हैं। सेना थोड़ी हो या बहुत, योद्धाओंका उत्साहपूर्ण हर्ष ही विजय का प्रधान लक्षण माना गया है। एक-दूसरेको अच्छी तरह जाननेवाले, उत्साही, स्त्री आदिमें अनासक्त तथा दृढ़निश्चयी पचास वीर भी बहुत बड़ी सेनाको रौंद डालते हैं। यदि युद्धसे पीछे पैर न हटानेवाले पाँच-ही-सात योद्धा हों, तो वे भी विजय प्राप्त कर सकते हैं।

अत: सदा सेना अधिक होनेसे ही विजय होती हो, ऐसी बात नहीं है।

इस प्रकार कहकर महर्षि वेदव्यास चले गये और यह सब सुनकर राजा धृतराष्ट्र विचारमें पड़ गये। थोड़ी देरतक सोचकर उन्होंने संजयसे पूछा, संजय। ये युद्धप्रेमी राजालोग पृथ्वीके लोभसे जीवनका मोह छोड़कर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा जो एक दूसरेकी हत्या करते हैं, पृथ्वीके ऐश्वर्यकी इच्छासे परस्पर प्रहार करते हुए यमलोककी जन-संख्या बढ़ाते हैं और शान्त नहीं होते, इससे मैं समझता हूँ कि पृथ्वीमें बहुत-से गुण हैं। तभी तो इसके लिये यह नर-संहार होता है। अत: तुम मुझसे इस पृथ्वीका ही वर्णन करो।

संजय बोला, भरतश्रेष्ठ। आपको नमस्कार है। मैं आपकी आज्ञाके अनुसार पृथ्वीके गुणोंका वर्णन करता हूँ। इस पृथ्वीपर दो प्रकारके प्राणी हैं- चर और अचर। चरोंके तीन भेद हैं- अण्डज, स्वेदज और जरायुज। इन तीनोंमें जरायुज श्रेष्ठ हैं तथा जरायुजोंमें मनुष्य और पशु प्रधान हैं। इनमेंसे कुछ ग्रामवासी और कुछ वनवासी होते हैं। ग्रामवासियोंमें मनुष्य श्रेष्ठ हैं और वनवासियोंमें सिंह। अचर या स्थावरोंको उद्भिज्ज भी कहते हैं। इनकी पाँच जातियाँ हैं- वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली और त्वक्सार (बाँस आदि)। ये तृण जातिके अन्तर्गत हैं।

यह सम्पूर्ण जगत् इस पृथ्वीपर ही उत्पन्न होता और इसीमें नष्ट हो जाता है। भूमि ही सम्पूर्ण भूतोंकी प्रतिष्ठा है, भूमि ही अधिक कालतक स्थिर रहनेवाली है। जिसका भूमिपर अधिकार है, उसीके वशमें सम्पूर्ण चराचर जगत् है। इसीलिये इस भूमिमें अत्यन्त लोभ रखकर सब राजा एक दूसरेका प्राणघात करते हैं।

आखिर वो क्षण आ ही गया जिस क्षण को, प्रसंग को होनेवाले अनर्थ को वृद्ध बुजुर्ग टालने के लिये प्रयत्नशील हो रहे थे, वो युद्ध का क्षण जिसके लिये कुरुक्षेत्र सज्ज गया था। इस महायुद्ध में किसका कितना रक्त बहा यह विशेष महत्व का नहीं था। धर्म और अधर्म के बीच संघर्ष में जय किसकी होती है प्रकाश और अन्धकार तथा सत्य और असत्य के बीच निर्णय करनेवाला यह युद्ध था। युद्धभूमि में कौरव और पांडवों के शिबिर स्थापित हो चुके थे। दो-तीन दिन में युद्ध आरम्भ होनेवाला था। युद्ध की तैयारियां हो चुकी थी। कुरुक्षेत्र में अपने शिबिर में भीष्म को नींद नहीं आ रही थी। बन्द आंखों में अतीत की स्मृतियां घूम रही थी। भीष्म का मन उड़कर गंगा किनारे जा पहुंचा और उन्हे अपनी माता गंगा की अन्तिम भेंट स्मरण हो आई। पहिले एकबार संकट की घडी उपस्थित होनेपर भीष्म समाधान के लिये माता गंगा के पास गये थे। प्रार्थना करने पर माता गंगा प्रकट हुई थी पर पितामह भीष्म से कुछ नहीं बोली तब गंगापुत्र भीष्म ने अपनी माता से पूछा था कि मेरे से ऐसा कौनसा अपराध बन गया है? आज तक आपने मुझे कभी नाराज नहीं किया है तो फिर आज भी आप मुझसे रूष्ट न हो, मुझसे बोलो। गंगापुत्र की व्याकुलता देखकर गंगा इतना ही बोली बार-बार अपने प्रश्न लेकर मेरे पास मत आओ भीष्म क्योंकि जिस समय तुमने प्रतिज्ञायें की थी वो मुझसे पूछे बिना ही की थी। मुझसे पूछे बिना की हुई प्रतिज्ञाओं का परिणाम भी अब तू ही भोग। भीष्म को गंगा का अपने पुत्रपर किया हुआ एक प्रहार लगा था और उसे सहन करते हुये भीष्म गंगा से बोले जब कभी आपकी अपने पुत्र भीष्म से मिलने की इच्छा हो तो फिर आपको ही मेरे पास आना पडेगा कारण अब इसके पश्चात् मैं कभी आपके पास नहीं आऊंगा। इस अतीत के स्मरण में पितामह भीष्म खोये हुये थे कि इतने में सेवक ने सूचना दी कि गुरु द्रोणाचार्य पधार रहे हैं। सेवक की आवाज सुनकर भीष्म अपनी अतीत की स्मृति से बाहर निकले।

द्रोणाचार्य ने भीष्म के शिबिर में प्रवेश किया और परस्पर एक-दूसरे को प्रणाम कर भीष्म बोले आपको देखकर लगता है मेरी तरह आपको भी नींद नहीं आ रही है आचार्य? द्रोणाचार्य बोले, गंगापुत्र हस्तिनापुर के हित के किसी भी शुभ चिन्तक को निद्रा आना सम्भव नहीं। जब भी थोडी नींद लगती है कि पांडवों के शैशवकाल की याद आंखों के सामने

घूमने लगती है और लगता है कि वो पूछते हैं कि गुरुदेव क्या आप हमसे युद्ध करेंगे? कर्त्तव्य से बद्ध भीष्म और द्रोण पूर्णत: मन से पांडवों के पक्ष में थे। पांडवों का विषय छिड जाने पर पितामह भीष्म के सामने उस बालक अर्जुन का अतीत स्मरण हो आया वही अर्जुन आज कितना बडा हो गया। आज अर्जुन अपने पितामह से युद्ध करने के लिये सामने खडा है। भीष्म बोले, आचार्य इस वृद्ध पितामह की छाती अर्जुन के बाणों से नहीं बल्कि उसके पूर्व प्रेम को स्मरण कर बींध रही है ऐसा तुम्हे नहीं लगता क्या आचार्य? इस भाग्य को भी ऐसा नसीब चाहिये आचार्य। अर्जुन की अतीत की स्मृतियों का स्मरण कर पितामह भीष्म वर्तमान परिस्थितियों का विचार कर फिर एक बार अस्वस्थ हो गये। गुरु द्रोण बोले, यह युद्ध अर्थात अर्जुन की एक प्रकार की परीक्षा ही है गंगापुत्र। इस परीक्षा में द्रोण शिष्य अर्जुन ने कितनी धनुर्विद्या ग्रहण की है, कितनी दक्षता अर्जित की है? कितना निपुण हो गया है? यह तो उसके धनुष से छूटा प्रत्येक बाण ही बतायेगा। मैंने अर्जुन से एक बार कहा था कि अर्जुन मेरे साथ कभी युद्ध करने का समय आ जाये तो मैं गुरु हूं ऐसा समझकर उपराम मत हो जाना। मुझे शत्रु समझकर आगे-पीछे विचार न कर मुझपर प्रहार करना। गंगापुत्र अब कुरुक्षेत्र युद्ध मैदान में मैं उसका गुरु हूं इस भाव को देखकर युद्ध में प्रहार नहीं करेगा तो मैं उसी क्षण कह दूंगा कि अर्जुन तू मेरा शिष्य होने योग्य नहीं है। अपने पौत्र पर पूर्ण विश्वास जताते हुये पितामह आचार्य द्रोण से बोले हे आचार्य ऐसा कहने का अर्जुन आपको कभी अवसर ही नहीं देगा इसके लिये आप निश्चित रहो। अर्जुन के प्रेम, विश्वास व पांडवों के शौर्य से आश्वत, प्रसन्न हो द्रोण और पितामह भीष्म के आशीर्वाद के पलडे पांडवों की ओर झुके थे।

आज युद्ध के दिन के पहिले के दिन की रात्रि है। दुर्योधन, दु:शासन, आचार्य द्रोण, कुलगुरु कृपाचार्य, शकुनि, अश्वत्थामा ऐसे सभी प्रधान सेनापति भीष्म के शिबिर में एकत्रित हुये थे और पांडवों के आने की बाट देख रहे थे क्योंकि दोनों ओर से युद्ध के नियम निश्चित करने थे। थोडी ही देर में कृष्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, महाराज द्रुपद, कुमार शिखंडी ये सब जन भीष्म के शिबिर में प्रवेश कर यथायोग्य अभिवादन कर बैठे। वासुदेव श्रीकृष्ण को आया देख पितामह भीष्म उठ कर खडे हो स्वागत किये तब श्रीकृष्ण बोले स्वयं भरतश्रेष्ठ गंगापुत्र भीष्म को उठकर खडा होने की आवश्यकता नहीं पितामह। तब दुर्योधन बोला युद्धभूमि में कोई छोटा या बडा नहीं होता वासुदेव। युद्धभूमि में तो बलाबल पर विचार किया जाता है और जिसकी भुजाओं में जितनी अधिक ताकत है, दम है विजय उसी की होती है और अपनी बाहुओं को दिखा-दिखाकर अप्रत्यक्ष रूप से युद्धपूर्व ही घोषणा कर रहा था कि विजय तो कौरवों की ही होगी।

दुर्योधन बोला कृष्ण माया के चमत्कारों से कभी युद्ध नहीं जीता जाता। दुर्योधन कृष्ण को यह बताना चाहता था कि तुम मायावी हो। कृष्ण ने दुर्योधन के बोलने का मन में कुछ भी विचार नहीं किया और बिना बुरा माने वे दुर्योधन से बोले अपने बाहुबल की बात मुझे बताकर इसका कोई लाभ नहीं क्योंकि मैं भी इस युद्ध में सिर्फ अर्जुन का सारथी हूं। मैं हाथ में शस्त्र नहीं उठाऊंगा ऐसी मेरी प्रतिज्ञा है और मैं युद्ध भी नहीं करूंगा। श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर भीष्म मुस्कुराकर बोले अगर ऐसी बात है मधुसूदन तो मैं भी तुम्हारे हाथ में शस्त्र उठवाये बिना नही रहूंगा।

**आज जो हरिकर शस्त्र न गहाऊं तो लाजो गंगा जननी नो नाही शान्तनु सुत कहाऊ।**

भीष्म का ऐसा बोलना सुनकर कृष्ण मधुर स्मित मुस्कान हास्य करने लगे।

कृष्ण और भीष्म के इस गूढ़ भाषा वार्तालाप के बाद युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, द्रुपद, अर्जुन ने पितामह भीष्म की चरण वन्दना की। भीष्म ने अर्जुन का चुम्बन किया। दोनों के नेत्रों से अश्रु बह निकले। अपनी भावनाओं को एक तरफ रख पितामह भीष्म कौरव सेना के प्रधान सेनापति होने से पांडव सेना के प्रधान सेनापति धृष्टद्युम्न का स्वागत

कर सबको बैठने के लिये आसन ग्रहण करने का आग्रह किया। उसी समय शिखंडी व भीष्म की दृष्टि एक-दूसरे पर पडी। चमत्कारिक हंसी हंसते हुये शिखंडी ने पितामह भीष्म से पूछा, मुझे भी यहां बैठने की आपकी इजाजत है? मना करने पर अतिथि का अपमान होगा यह मन में विचार कर भीष्म पितामह शिखंडी से बोले यह पुरुषों की सभा है। शिखंडी बोला मैं गंगापुत्र भीष्म जैसे महापुरुषों के दर्शनों के लिये यहां आया हूं। वाद-विवाद न बढ़ जाये इसका विचार कर इच्छा न होते हुये भी भीष्म ने शिखंडी को बैठने की आज्ञा दी।

सभी लोगों के आसन ग्रहण करने पर भीष्म ने बोलना शुरू किया। अपने व्यक्तिगत राग-द्वेष की लेन-देन निमित्त हम सब लोग यहां एकत्रित नहीं हुये है, ऐसा मेरा मत है। दुर्भाग्य कि कौरव-पांडवों के बीच अब युद्ध भूमि के सिवा अब अन्य कुछ शेष नहीं रह गया है इसलिये युद्ध अवश्यम्भावी हो गया है और प्रारम्भ होनेवाला है। इसके लिये हम सब लोग मिलकर युद्ध के प्रस्तावित नियम निश्चित कर लें। पांडवों के प्रधान सेनापति धृष्टद्युम्न के आंखों के इशारे मात्र से ही कृष्ण उठ खडे हो भीष्म से बोले हे पितामह कौरव और पांडव ये दोनों ही आपके पौत्र हैं और आपको समान रूप से प्रिय है फिर बिना चर्चा किये ही आप जो नियम निश्चित कर देंगे वो पांडव शिरोधार्य कर मान कर उसके अनुसार ही युद्ध करेंगे। पर भीष्म पितामह ने यह भार अपने सिर पर न रख कृष्ण से विनती कर बोले मधुसूदन यह नियम आप निश्चित करेंगे तो सर्वमान्य होगा कारण मेरे द्वारा बनाये गये नियम कदाचित यह समझा जा सकता है कि मैं हस्तिनापुर के पक्ष का होकर भी मेरी निष्ठा पांडवों के पक्ष में अधिक है इस प्रकार की समझ कौरव पक्ष के कई लोगों में हो सकती है। इसलिये यह कार्य आप ही के योग्य है मधुसूदन। श्रीकृष्ण ने फिर से पितामह भीष्म से आग्रह किया और बोले गंगापुत्र पितामह कुरुश्रेष्ठ भीष्म आप महावीर हैं। कौरव सेना के प्रधान सेनापति हैं और सर्वदृष्टि से आप पांडवों के वन्दनीय हैं इसलिये नियम निश्चित करने के दायित्व से आप छुटकारा नहीं पा सकते यह उत्तरदायित्व तो आपका है। तब भीष्म ने यह धर्म युद्ध है, इसमें मर्यादा पालन कर युद्ध करना चाहिये इसलिये इस युद्ध में ये नियम बनाये है जिनका पालन कर युद्ध किया जाये।

इसके बाद कौरव, पाण्डव और सोमवंशी वीरोंने मिलकर युद्धके कुछ नियम बनाये और उन युद्धसम्बन्धी धार्मिक नियमोंका पालन सबके लिये अनिवार्य कर दिया। वे नियम इस प्रकार थे- १) प्रतिदिन युद्ध समाप्त होनेपर सबलोग पहलेकी ही भाँति आपसमें प्रेमपूर्ण व्यवहार करें और कोई किसीके साथ छल-कपट न करे। २) जो वाग्युद्ध कर रहे हों, उनका मुकाबला वाग्युद्धसे ही किया जाय। ३) जो सेनासे बाहर निकल गये हों, उनके ऊपर प्रहार न किया जाय। ४) सम्पूर्ण युद्ध का स्वरूप द्वन्द्वयुक्त का रहेगा। द्वन्द्वयुद्ध अर्थात धर्मानुसार रथी रथीके साथ, हाथी-सवार हाथी- सवारके साथ, घुड़सवार घुड़सवार के साथ और पैदल पैदलके ही साथ युद्ध करे। जो जिसके योग्य हो, जिसके साथ युद्ध करनेकी उसकी इच्छा हो, वह उसीके साथ युद्ध करे। जिसका जैसा उत्साह और बल हो, उसके अनुसार ही वह लड़े। विपक्षीको पुकारकर सावधान करके प्रहार किया जाय। जो प्रहार न होनेका विश्वास करके बेखबर हो, अथवा भयभीत हो, उसपर आघात न किया जाय। ५) जो किसी एकके साथ युद्ध कर रहा हो, उसपर दूसरा कोई शस्त्र न छोड़े। जो शरणमें आया हो या युद्ध छोड़कर भाग रहा हो, अथवा जिसके अस्त्र-शस्त्र और कवच नष्ट हो गये हों- ऐसे निहत्थोंका वध न किया जाय। निःशस्त्र योद्धा पर अथवा सारथी पर कोई अस्त्र प्रहार नहीं करेगा। ६) सूत, भार ढोनेवाले, शस्त्र पहुँचानेवाले तथा भेरी और शफबजानेवालोंपर भी किसी तरह प्रहार न किया जाय। ७) जख्मी सैनिक व उनकी सहायताकरनेवाले लोगोंका वध न किया जाए। ८) धर्मानुसार अनेक योद्धा मिलकर किसी एक योद्धा को पकड़कर उसका वध न करे। ९) धर्मानुसार सूर्योदय होने पर ही युद्ध शुरू किया जाये व सूर्यास्त होते ही युद्ध बन्द किया जाए। १०) रात्रि में दोनों पक्षोंके सैनिक परस्पर एक-दूसरे से मैत्रीपूर्ण व्यवहार करें और परस्पर मिलनेपर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। वे एक-

दूसरे के शिबिर में मिलने को आ-जा सकते हैं। ११) अपनी सुरक्षा के लिए शरणागत की देखरेख करनी चाहिए। १२) संकुल युद्ध का अर्थ होगा जहाँ एक ही प्रकार का युद्ध कई योद्धा कर रहे होंगे उस युद्ध को उस शस्त्रप्रकार का संकुल युद्ध माना जायेगा। यदि एक पक्ष के रथी दूसरे पक्ष के रथियों से युद्ध कर रहे होंगे तो वह रथियों का संकुल युद्ध होगा। अनेक अश्वारोही यदि अश्वारोहियों से लड़ रहे होंगे तो वह अश्वारोहियों का संकुल युद्ध होगा। इसी प्रकार गदा, खड्ग, अग्निकंकण, मूसल आदि शस्त्रों के संकुल युद्ध होंगे। १३) एक योद्धा को प्रतिपक्ष के अनेक योद्धाओं का घेरना निषिद्ध होगा। यह अधर्मयुद्ध माना जाएगा। १४) वीर योद्धाओं के इस युद्ध में नारी का शामिल होना वर्जित है यदि कोई नारी आ ही जाए तो उसका अस्त्र-शस्त्र उठाना वर्जित होगा और उसे अवध्य माना जाए। भीष्म पितामह बोले युद्धके नियम पाण्डव सेनापति को यदि स्वीकार न हो तो वे नये नियमोंका सुझाव दें। इस प्रकारके नियम बनाकर वे सभी राजालोग अपने सैनिकोंके साथ बहुत प्रसन्न हुए।

युद्ध के नियम बताये जानेपर भीष्म बोले यदि पांडव सेना के प्रधान सेनापति को इसमें से कोई नियम मान्य नहीं हो तो और कोई नये नियम हो तो अवश्य बताये। कोई समय वृद्ध महावीर व्यक्ति से भी बोलने में चूक हो सकती है। तब धृष्टद्युम्न पितामह भीष्म से बोले हम लोगों को ये सब नियम मान्य हैं और ऐसी आशा है कि सभी कौरव इन नियमों का कठोरता से पालन करेंगे।

द्यृष्टद्युम्न बोला हे पितामह जब तक आपकी सेना के रथी-महारथी इन नियमों का पालन करते रहेंगे तब तक हमारे सभी सैनिक इन नियमोंकी मर्यादा में रहकर उनका पालन करेंगे। यदि प्रतिपक्ष ने ही नियमभंग किये हैं हमारे सैनिक नियम पालन की मर्यादा भंग कर सकते है। इसप्रकार धृष्टद्युम्न ने अपना स्पष्टीकरण किया और पाण्डवोंने उठकर भीष्म का वंदन किया और उनके शिबिर से निकल गये।

दूसरे दिन से युद्ध आरम्भ होनेवाला है पर युधिष्ठिर के मन में खटका बना हुआ है कि दुर्योधन की सेना सागर समान है। पितामह भीष्म कौरवों के सेना के प्रधान सेनापति इस सेना के सामने पाण्डवोंकी सेना कितनी ठहर पायेगी इस विचार से युधिष्ठिर शंकित थे। उन्होंने अर्जुन से पूछा, हे अर्जुन। पितामह ने अपनी सेना के चक्रव्यूह की रचना जिस प्रकार की है हममें से कोई उस चक्रव्यूह का भेदन कर सकेगा क्या? देवासुर संग्राम में भीष्म ने इन्द्र को जो बोला उस सत्य का अर्जुन ने पुनर्उच्चारण किया। युद्ध के समय भीष्म बोले थे जहाँ सत्य, दया, धर्म और पौरुष के ये चार साधन हो विजयश्री का यश उसे मिलता है। बल और शौर्य के योग से नहीं। धर्म और अधर्म इसका विचार कर-कर ही युद्ध करो जहाँ धर्म होगा वहीं विजयश्री होगी यह त्रिकालबाधित सत्य है। अपने पक्ष में धर्म है, हमारी सेना प्रत्यक्ष धर्मव्यूह में खड़ी है। हमारी सेना का व्यूहभंग प्रत्यक्ष रूप में पितामह भीष्म और द्रोणाचार्य से भी सम्भव नहीं है। आप मन से शंकित है कि कौरवसेना रथी और महारथियों से भरी हुई है वह मैं दिव्यास्त्रों की सहायता से एक क्षण में उसका नाश कर सकता हूँ पर मैं नहीं चाहता कि दिव्यास्त्रों के जोर पर यह युद्ध जीता जाए। हम लोग यह युद्ध अपने बाहुबल और पराक्रम से जीतना चाहते है। ऐसा हमारा निर्णय है। कारण इतिहास सदा यही कहे कि पाण्डवों ने अपने पराक्रम से विजयश्री प्राप्त की। इस तरह की अपनी इच्छा अर्जुन ने व्यक्त की। इसके लिये अपने ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर का भाला भीम की कमौदकी गदा, नकुल-सहदेव के तलवार, अर्जुन का गाण्डीव धनुष और श्रीकृष्ण सारथी हमारे साथ है इसलिए कल प्रात: ही हम सूर्योदय होते ही युद्ध आरम्भ करेंगे और युद्ध के दिन की प्रतीक्षा करने लगे।

युद्ध प्रारम्भ होने की तैयारीयां होने लगी। चारों ओर युद्ध की रणभेरियाँ बज उठीं। शंखनाद होने लगें। धूल उड़ने लगी। अश्वखुरों से, रथचक्रों से। प्रयाणवेला आ गयी। द्रौपदी रोमांचित हो उठी और कृष्ण से बोली, माधव। पार्थ भावुक हैं। कृष्ण बोले, जानता हूँ कृष्णे। द्रौपदी बोली, मुझे भय है जनार्दन। कहीं वे दूसरे पक्ष की सेना में अपने गुरुजनों एवं

बन्धुजनों को देखकर विचलित न हो उठें। कृष्ण बोले, हाँ कृष्णे। इसकी सम्भावना मुझे भी प्रबल रूप से दिखायी दे रही है। अर्जुन अत्यन्त निष्कपट, सरलहृदय एवं भावुक हैं और उसके हृदय में करुणा का अपार सागर है। पर तू अभी से विचलित मत हो सब मुझपर छोड़ दे। द्रौपदी बोली, मधुसूदन। मेरा मन स्थिर नहीं हो पा रहा है। मैं पार्थ की सुरक्षा का भार आप पर ही डाले बैठी हूं। कृष्ण बोले, तुम चिंता न करो। मैं हर क्षण, हर पल पार्थ के साथ रहूँगा क्योंकि मैं उसका सारथी बनूँगा। पार्थ का रथ संचालन मैं स्वयं करनेवाला हूँ। उसके रथ की रास अब मेरे हाथों में होगी अब वह समरभूमि से भाग नहीं सकेगा कोई बृहन्नला की शरण में। अब उसे युद्ध करना ही पड़ेगा और कृष्ण हँसने लगे। द्रौपदी बोली, मैं धन्य हो गयीं हे माधव, हे पार्थ सारथी। आज से कृष्ण का एक और नाम पार्थ-सारथी हो गया। पार्थ अजेय होंगे अब मैं निश्चिन्त हूँ जनार्दन, कृतार्थ हूँ। कृष्ण बोले, तू अब तक तो मेरी योगमाया देखती थी अब अपनी स्वयं की योगशक्ति देख। अब मुझे सारथी बनाकर कैसे गद्‌गद हो रही है। द्रौपदी ने कृष्ण और अर्जुन को विजयश्री का तिलक किया।

द्रौपदी चाहती थी कि कर्ण ने पाण्डवों का पक्ष न लिया तो न सही पर अधर्म का पक्ष न लें। कम से कम कौरवों के पक्ष से तो न लड़ें। कोई ना कोई बहाना दिखाकर वह युद्धक्षेत्र से दूर रहें। यदि कर्ण गोविन्द से पूछ लें तो वह उपाय भी बता देंगे। द्रौपदी चाहती थी कि वह स्वयं कर्ण के शिबिर में जाकर उससे कुछ कहे। वह शिबिर में कर्ण के कक्ष में गयी और कर्ण को प्रणाम किया। द्रौपदी को देखकर कर्ण अपना सारा अनुताप, पश्चात्ताप भूल गये और बोले समग्र आर्यावर्त की भावी राजरानी कृष्णा अब सूतपुत्र कर्ण को कौनसा अनुरोध कर अपराधी करना चाहती है? युद्ध में मेरी मृत्यु निश्चित जानकर भी कृष्णा मुझे युद्ध से उपराम करने के लिये प्रवर्तित कर रही है। आत्महत्या करना तो का-पुरुष का कर्म है। आज जीवन के आखिरी समय में मुझे वीरोचित काया त्याग के सुअवसर से कृष्णा मुझे वंचित करना चाहती है। क्यों? द्रौपदी ने सोचा युद्ध से निवृत होने का अर्थ है संसार में दीर्घजीवी होकर जीना। युद्ध सदा नहीं रहता। युद्ध के अन्त में पृथ्वी पर धर्म और शांति की पुन: प्रतिष्ठा होगी। तब पांडव और कर्ण आपस में मिलकर राज्य चलाने में कोई बाधा नहीं रहेगी। सुपुरुष एक मन होकर शासन करें तो समग्र मानव जाति का कल्याण हो जाये। इसे कर्ण आत्महत्या कैसे मान रहे है।

कर्ण गम्भीर स्वर में बोले, सुना था कृष्णा आर्यावर्त की एक विदुषी एवं शास्त्रज्ञ महिला है। परन्तु दीर्घ जीवन का उसके पास अर्थ है जीवित रहने की उम्र। जीवन के लोभ में कोई बहाना कर युद्ध क्षेत्र से दूर भीरु या कापुरुष रहते हैं। ऐसा जीना तो मृत्यु से भी बदतर है। जो जानबूझ कर युद्ध-क्षेत्र से दूर रहने का प्रयास करता है, वह तो आत्महत्या ही है। कर्ण कम से कम ऐसा कापुरुष नहीं है। कर्ण तो समग्र पुरुवंश को ध्वंस कर हस्तिनापुर का राजा बन सकता है। परन्तु राजसिंहासन का मोह कर्ण को नहीं है। कर्ण विरोचित मृत्यु को श्रेष्ठ मानता है। द्रौपदी कर्ण का अहंकार नहीं सह पा रही थी। वह तो अनुरोध करने आ रही थी। पर यहाँ तो कर्ण सारे पुरुवंश को ध्वसं करने की डींग हाँक रहा है। कर्ण क्या अर्जुन की वीरता नहीं जानता। वीरता और शौर्य पुरुष के गौरव हैं, पर माता-पिता, गुरुजनों की उचित श्रद्धा भक्ति करना भी सफल व्यक्तित्व का अंग है। फाल्गुनी ने अपनी माँ की बात रखकर अन्य चारों भाइयों के साथ अपनी पत्नी के साथ विवाह में अंशीदार बनाया। तो अर्जुन क्या वीर पुरुष नहीं है?

कर्ण बोला भद्रे, आपके पति वीर है मैं मानता हूँ पर वह कैसे पुरुष है मैं आज तक यह नहीं समझ पाया। मैं यदि अर्जुन के स्थान पर होता और स्वयम्वर में जीती वरनारी को भाइयों के साथ मिलकर भोग करने का माँ आदेश देती तो भी मैं उस आज्ञा का उल्लंघन कर देता। अपनी प्राणप्रिया को लेकर राज्य त्याग देता। उचित बात पर मां के लिए मेरे प्राण हाजिर हैं। पर अनुचित बात को अंधे होकर मान लेने को मैं पौरुष का परिचायक नहीं मानता। अर्जुन में और मुझमें बस यही अन्तर है। द्रौपदी अहंकार और पौरुष की ऊंची उठती शिखाओं में झड़सी खड़ी रही और कर्ण को पुन: प्रणाम कर लौट रही थी

तब कर्ण ने नम्र एवं कोमल स्वर में कहा भद्रे, तुम मेरे अनुज की पत्नी हो, पुत्रवधू सदृश हो इसलिये सौभाग्यवती भव का आशीर्वाद दिया। ये अभिशप्त राजा पुत्र तुम्हे प्रणाम करता है और इस धर्म के अपने सारे अपराधों के लिये क्षमा याचना करता है। परजन्म में प्रायश्चित्त के अवसर की प्रतीक्षा करूँगा। कर्ण ने दोनों हाथ जोड़ प्रणाम किया और सिक्त नेत्रों से विदा माँगी। नारी मन भी कैसा अजीब है पल भर पहले कर्ण के अहंकार को घृणा कर रही थी और अब कर्ण के सजल नेत्र और दर्दीले शब्द द्रौपदी के मन के दंभ के दुर्ग को तहस-नहस कर रहे थे। द्रौपदी ने कहा, मेरे भ्राता धृष्टद्युम्न के समझ में हुयी गलती के कारण स्वयंवर सभा में जो अपमान और ग्लानि आपको भोगनी पड़ी उसके लिये पुत्रवधू के रूप में मैं आपसे क्षमा माँगती हूँ। कर्ण बोला, इस जन्म में यह आखिरी भेंट है तुमसे। पुत्रवधू सदा ही क्षमा की पात्र होती है और यह कहकर कर्ण अपने शिबिर से पक्ष के बाहर चले गये मुड़ कर देखा तक नहीं और रथ में बैठ गये।

पाण्डव और कृष्ण द्रौपदीसहित युद्ध की पहली रात्रि में अपनी शिबिर में बैठे हुये आपस में वार्तालाप कर रहे थे। द्रौपदी बोली, मैं क्षत्रियाणी हूँ और मेरे पतियों का मंगल ही होगा, क्या यह विश्वास रखना अनुचित है? विश्वास ही तो सफलता की कुंजी है। कृष्ण बोले, तो कल क्या युद्ध अवश्यम्भावी है? मैंने यद्यपि पांडवों की ओर से अर्जुन का रथ चलाने का वचन दिया था परन्तु मैं अन्तिम क्षणों में मना कर रहा हूँ तो उन्हें तो कोई असुविधा नहीं होगी उन्हें डर क्या है? अनेक वीर उनकी ओर है। उनके पास है तुम जैसी प्रेरणादायिनी सती-साध्वी पत्नी कृष्णा। कृष्ण की बात सुनकर पाण्डव शिबिर में आतंक और नैराश्य छा गया। शोक से अर्जुन ने हाथ जोड़कर पूछा, हे केशव। इस अधम का क्या अपराध है? अन्तिम पर्व में ऐसी आकाशवाणी क्यों? आप युद्ध नहीं करेंगे यह जानते हुये भी हमने आपका आश्रय लिया है। अगर आप हमारे पक्ष में नहीं है फिर युद्ध का प्रश्न ही कहाँ? मेरा कोई दोष हो तो बतायें। कृष्ण बोले, पार्थ। तुम्हारा कोई दोष नहीं है दोष मेरी नीति का है। मैं सदा सत्य और धर्म के पक्ष में रहा हूँ। असत्य का विनाश मेरा धर्म है। निर्मल हृदय ही मेरा आसन है। पर मुझे लग रहा है हम जो यहां युद्ध के लिये प्रस्तुत हो रहे है हमारे मन में कुछ न कुछ एक-दूसरे से गोपनीयता रह गयी है। वह हमारी दुर्बलता है। सत्य के आगे मैं सदा निष्ठुर हूँ। अत: मुझे बाध्य होकर निष्ठुर बनकर कल सुबह वापिस द्वारिका लौटना पड़ेगा।

तब युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर कहा हे वासुदेव। यह कैसा छल? मझधार में नौका छोड़ चले जाना कैसा बन्धुत्व है। वास्तव में आप हमसे क्या चाहते है? कृष्ण ने गम्भीर हो कहा, यह धर्मयुद्ध है धर्मराज। अत: युद्ध से पहले अपने मन को निर्मल, पवित्र, उन्मुक्त करना होगा। तब जाकर मैं अर्जुन के रथ का सारथी बनूंगा वरना मुझे यहां से विदा दें। भीम खीझ उठे और बोले, जरा-सी बात पर आपने तो तूफान खड़ा कर दिया। अब हम खुले मन सब अपने मन की दुर्बलता सबके सामने कह देंगे। और सबसे पहले युधिष्ठिर ने कहा, मैं अभी भी यहीं चाहता हूँ कि यह युद्ध न हो। युद्ध के बिना ही समस्या का हल निकल आये तो मुझे स्वीकार्य होगा। युद्ध टालने के लिये ही तो पांसे खेलने में पत्नी को दाँव पर लगा हारने को प्रस्तुत हो गया। तब वनवास न जाते तो कौरव युद्ध कर इंद्रप्रस्थ पर अधिकार करने का प्रयास करते। क्षत्रिय कुल में जन्म लेकर भी युद्ध के प्रति घोर वितृष्णा मेरे चरित्र की दुर्बलता है। अर्जुन बोला, माँ के वचन रखने के लिये मैंने कृष्णा के साथ भाइयों से मिलकर विवाह किया, इस बात पर मुझे मन में क्षोभ होता है। मन करता है कृष्णा सिर्फ मेरी ही होती। यह सोचना मेरे चरित्र की दुर्बलता है। भीम बोले, भोजन में सदा मेरा ज्यादा भाग रहा है। कृष्णा के भोग में भी मेरा भाग सर्वाधिक रहा है। ऐसा न करने के कारण मेरे मन में कृष्ण और कृष्णा पर क्षोभ हो आता है। मैं कुछ अधिक ही भोजन करता हूँ अत: सदा विपद के मुंह में धकेला जाता हूँ। मुझे सदैव अपने भाइयों और माँ पर मान होता है। नकुल ने शरमाते हुए कहा, कृष्णा रूप में मुझसे भी श्रेष्ठ और सुन्दर है, अनिन्द्य है, अत: उससे मुझे ईर्ष्या होती है। रूपमें वे मुझसे कुछ कम

होती तो मुझे अच्छा लगता। सहदेव का स्वर उदासी भरा था- मेरी दुर्बलता मेरी मां हैं। कुंतीपुत्र के रूप में परिचय देकर हम गर्व करते हैं। कुंती के मातृस्नेह की भी कोई तुलना नहीं। परन्तु हमारी जन्मदात्री पांडुपत्नी माद्री का नाम धीरे-धीरे विस्मृत होता जायेगा, कभी इतिहास से लोप हो जायेगा। यही दु:ख कभी-कभी होता है। पिता-माता की स्मृति को अमर रखना पुत्रों का कर्तव्य है। अत: मेरी यह दुर्बलता क्या स्वाभाविक नहीं?

कृष्ण बोले, नि:संकोच सबने अपना-अपना सत्य कह दिया मैं प्रसन्न हूँ। भीम ने पूछा तब तो वासुदेव आपको अर्जुन का सारथी बनने में कोई आपत्ति तो नहीं। कृष्ण बोले, अभी कैसे कह सकता हूं। आपकी प्रतिप्राणा द्रौपदी जो चुप है। औरतों के मन में कब क्या आता है इसका कोई ठिकाना नहीं। क्या हर भावना सबके सामने कहीं जा सकती है? फिर पति के आगे कोई स्त्री कभी कुछ कह पायेगी क्या? कृष्णा क्या साधारण नारी है? वे जैसी रूपमती, वैसी विदुषी और सती साध्वी भी है। सती नारी का मन सूर्य के प्रकाश की तरह निर्मल होता है। सती नारी के मन दर्पण तो पति के अलावा दूसरे किसी पुरुष की छाया भी नहीं पड़ती। फिर अपना मन खोलने में कृष्णा को कुंठा क्यों होगी वरन् उसका तो गौरव ही बढ़ेगा। पतियों का मन स्थिर में रखना भी तो द्रौपदी का कर्तव्य है। अपने मन की दुर्बलता कह डालने में कोई कुंठा नहीं है। कृष्ण ने हंसकर कहा, कृष्णा चुप क्यों रह गयी? तुम्हारे मन की दुर्बलता क्या अत्यन्त महत्वपूर्ण है कह डालो। कृष्ण के आगे तो सबकी बात खुली है। वो तो गर्वभंजक है। किसीका गर्व और अहंकार टिकने ही नहीं देती। कृष्णा का मन कृष्ण से छुपा नहीं है। द्रौपदी अपने पतियों को निर्मल हृदय स्नेहपूर्व दृष्टि से देखती रही और बोली, मेरे मन में अनेक दुर्बलतायें है क्योंकि मैं देवी नहीं मानवी हूँ। यदि अपनी एक-एक दुर्बलता को कहने लगूं तो इस महासमर का मुहूर्त ही टल जायेगा। मेरी हृदय की पहली दुर्बलता है मेरे प्रिय सखा मधुसूदन। मेरे जन्म के समय नामकरण की घडी से ही मुझे लगता था कि किसी अलौकिक पुरुष कृष्ण के साथ कृष्णा का अदृश्य अपार्थिव एवं अविच्छेद्य सम्पर्क होगा। उस सम्पर्क की संज्ञा को मैं नहीं जानती। शायद कृष्ण ही जानते होंगे।

मेरे हृदय की दूसरी दुर्बलता है माँ कुन्ती की दुर्बलता भी वही है। वह है कुन्तीपुत्र ही मेरी द्वितीय दुर्बलता है। मेरी यह दुर्बलता है कि मेरे नारी हृदय की संवेदनशीलता कुंतीपुत्रों को पार नहीं कर सकी। माँ कुन्ती का दु:ख और दुर्बलता है उनके पुत्र। पुत्रोंके कारण वो जीवनभर दुखीयारी है। मैं भी माता कुन्ती के दु:ख में अपना दु:ख मिला देती हूँ। ज्येष्ठ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर से लेकर कनिष्ठ पांडुपुत्र सहदेव तक सबके प्रति मेरे मन में आकर्षण है। प्रचण्ड पौरुष के पीछे कौन नारी भला दुर्बल नहीं हो पाती। परन्तु उस दुर्बलता में कोई आशा, प्रत्याशा, विचलता का स्पर्श अभाव नहीं है। द्रौपदी की तृतीय दुर्बलता है तृतीय पाण्डव अर्जुन। वे वीर हैं और नम्र हैं। आज जब पाण्डव संसार का सारा दायित्व उन्ही पर लाद दिया जाता है। उनके गौरव में उनके अन्य चारों भाई भी अंशीदार हो जाते है। इस बात पर कभी कभी मन में क्षोभ भी हो जाता है। पाँचो पाण्डवों को बाँध रखने के लिये मैंने जीवन को उत्सर्ग किया है। अर्जुन के प्रेम में अन्धी होकर कभी उनके बीच भेद पैदा होनेकी बात सोचती भी हूँ तो भी अगले क्षण ही पश्चात्ताप कर संकीर्णता धोकर स्वयं को धिक्कारती हूँ। मेरे परम प्रिय अर्जुन के नेत्र भी सजल हो रहे थे। अपनी दुर्बलता प्रकट कर मेरा जीवन धन्य हो गया। मैं मन-ही-मन कृष्ण के प्रति कृतज्ञता प्रकट कर रही थी। कृष्ण भी बोले, धन्य हो कृष्णा। बातों में तो तुम कृष्ण को भी पार कर गयी हो। ज्येष्ठ कुन्तीपुत्र से कनिष्ठ कुन्तीपुत्र में तुम्हारा अधिक आकर्षण है यह कहकर तुमने अपने निर्मल हृदय को खोल दिया। द्रौपदीने कृष्ण से पूछा, कृष्ण। क्या सबकी दुर्बलता ढूँढने में ही उत्सर्गीकृत हो रहे हो। तुम्हारी अपनी कोई दुर्बलता नहीं।

भीम ताली बजाकर हँसकर बोले, कृष्णको साध्य करने की शक्ति कृष्णा में ही है। कृष्ण बोले, मेरी दुर्बलता तो स्वर्ग,

मर्त्य, पाताल सर्वत्र व्याप्त है। अनन्त विश्वब्रह्माण्ड के साथ खेलना मेरी दुर्बलता है। मुझे जो अति प्रेम करता है उसे ही अधिक परेशान करता हूँ। मैं जिसे चाहता हूँ उसे विपद में डालता हूँ। जो सोचता है कृष्ण मेरे है मैं उसका बन जाता हूँ। जो सोचता है मैं कृष्ण का हूँ मैं उसका बन्धक बन जाता हूँ। जिसे गढ़ता हूँ उसे तोड़ता भी हूँ और इसीमें आनन्द मनाता हूँ। भीम बोला, हम आपको चाहते हैं आपही से हमारा संसार बना है। पाण्डव खुशी-खुशी उन्हें प्रणाम कर रहे थे। पाण्डवोंकी मन की शान्ति, मन का उद्वेग लीन हो गया।

## ३) पाण्डव और कौरव युद्धक्षेत्र-कुरुक्षेत्र में और दोनों सेनाओंकी व्यूहरचना

कृष्ण चतुर्दशी की अंधेरी रात। पांच योजन व्यापी गोलाकार विराट प्रांतर में कुरुक्षेत्र युद्धभूमि। यहां हिरण्यवती नदी के दोनों ओर कौरव एवं पांडव के सैनिक शिबिर हैं। झड़ से पहले की बोझिल नीरवता चारों ओर छायी है।

रात्रि के बाद भोर की किरण फूटेगी कुरूक्षेत्र पर। महासमर प्रारंभ होगा। पांडवों के सेनापति द्रौपदी के प्रिय भ्राता धृष्टद्युम्न बने हैं। कौरवों के प्रधान सेनापति हैं पितामह भीष्म।

कुरुक्षेत्र में कौरवों और पांडवों की सेनाएँ आमने-सामने डट गईं। दुर्योधन अपने रथ में खड़ा चारों ओर देखता रहा। अपनी ओर से वह अपनी सेना का एक सर्वेक्षण भी कर आया था। सेना के प्रयाण के समय तक उसके मन में उल्लास का पारावार उमड़ रहा था। पितामह भीष्म का रथ रणक्षेत्र में आ गया तो जैसे उसे विजय अपने सामने खड़ी दिखाई दी थी। किंतु कुछ क्षणों के पश्चात् उल्लास के उस ज्वार का भाटा भी आया। कभी-कभी वह स्वयं अपने-आप से रुष्ट हो जाया करता था। उसका सुख, सुख के रूप में ही क्यों नहीं आता। वह सागर के ज्वार-भाटा जैसा क्यों होता है। वह सुख के पर्वत पर क्यों नहीं चढ़ता, जहाँ वह स्थिर रह सके। वह सागर की तरंग के रूप में क्यों आता है, जिसका ऊपर जाकर नीचे आना अनिवार्य है। कदाचित् यह प्रवृत्ति उसे अपने पिता से उत्तराधिकार में मिली थी। वे भी उत्साह में आते हैं तो इतने दुस्साहसी हो जाते हैं, जैसे सिंह की भी ग्रीवा मरोड़ देंगे; और जब उत्साह का ज्वार, उतार पर होता है, तो वे एक मूषक से भी डर जाते हैं। उसके साथ भी तो यही होता है। मद के समान उत्साह चढ़ता है और जब अवसाद घिरता है तो उसे सँभालने के लिये सुरापान ही एक मात्र सहारा दिखाई पड़ता है।

दुर्योधन को लग रहा था कि पांडव युद्ध करने नहीं आए। पितामह और आचार्य सेना को नष्ट भी कर लें तो दुर्योधन पितामह को हटा, कर्ण को बुला लाएगा। अर्जुन के शरीर के गिरते ही पांडवों के ध्वज का पतन आरंभ हो जाएगा। उस भीम को तो वह अपने हाथों से मारना चाहता है। उसकी गदा के प्रहार से जब वह धराशायी होगा तो इंद्रप्रस्थ और हस्तिनापुर का राज्य स्थायी रूप से दुर्योधन का हो जाएगा। युधिष्ठिर और उसके उन दो छोटे भाइयों नकुल और सहदेव को मारना कोई कठिन नहीं है। वे तो स्वयं ही मर जाएँगे। पर यह कर्ण ने क्या किया। दुर्योधन को लगा कि उसके मन में प्रतिज्ञाओं में बंधनेवाले इन मूर्खों के लिए कोई सहानुभूति नहीं है। भीष्म और युधिष्ठिर ही क्या कम थे प्रतिज्ञाओं में बँधने के लिए कि कर्ण ने भी प्रतिज्ञा कर डाली कि पितामह उसे सभा और युद्धक्षेत्र में नहीं देखेंगे। वह उनके पतन के पश्चात् ही युद्धक्षेत्र में प्रवेश करेगा। उसने यह नहीं सोचा कि यह युद्ध पितामह का नहीं, दुर्योधन का है। यदि वह युद्ध नहीं करेगा तो उससे पितामह की कोई हानि नहीं होगी, हानि तो दुर्योधन की है। पर इस समय कोई उसकी नहीं सुन रहा है। युद्धकाल उपस्थित है, इसलिए दुर्योधन किसी को रुष्ट भी नहीं कर सकता। कर्ण ने कह दिया कि वह पितामह के होते नहीं लड़ेगा और पितामह ने प्रतिज्ञा कर ली कि वे न पांडवों का वध करेंगे न किसी स्त्री अथवा पहले स्त्री रह चुके पुरुष पर शस्त्र उठाएँगे। पता नहीं ये सारी मूर्खतापूर्ण प्रतिज्ञाएँ उसके ही पक्ष के लोग क्यों कर रहे हैं।

भीष्म की दृष्टि दुर्योधन पर पड़ी। वे देख रहे थे कि पहले तो वह जैसे अपनी और पांडवों की सेना का निरीक्षण-सा कर रहा था, उसके पश्चात् वह उनके निकट न आ कर, द्रोण के पास चला गया था और बहुत दीन बनकर उसकी चाटुकारिता कर रहा था। यह निर्लज्ज किसी पर भी विश्वास नहीं करता। उनके सम्मुख प्रधान सेनापति बन जाने की प्रार्थना लेकर नाक रगड़ता रहा और कर्ण तथा द्रोण को उनके विरुद्ध उकसाता रहा। यह समझता है कि उसे सेनापति के ऊपर भी सेनापति रखने हैं। भीष्म नहीं लड़ना चाहेंगे तो द्रोण उन्हें बाध्य कर लेंगे अथवा कर्ण उनके संकल्प को बदल देगा? यदि वे यहाँ खड़े हैं तो अपनी इच्छा से खड़े हैं। युद्धक्षेत्र में आकर क्षत्रिय युद्ध न करे, यह कैसे हो सकता है? वह एक ओर तो उनको प्रधान सेनापति का दायित्व सौंपता है और दूसरी ओर उन पर विश्वास भी नहीं करता। उन्हें पांडवों के विरुद्ध व्यूह रचने को कहता है और स्वयं उनके विरुद्ध व्यूह की रचना करता फिरता है। दुर्योधन कोई पहली बार तो ऐसा कर नहीं रहा है। वे उसे उसके शैशव से जानते हैं। उन्होंने एक प्रकार से उसका लालन-पालन किया है। तो फिर आज उसके व्यवहार को लेकर चिंता का क्या लाभ? वे युद्ध करने आए हैं तो अपने धर्म का निर्वाह करेंगे ही।

धृतराष्ट्र संजय से बोले, संजय। मैं दुर्योधनके किये हुए दु:खदायी कर्मोंको सुनना चाहता हूँ। उस घोर संग्राममें जो-जो घटनाएँ हुई हों, वे सब सुनाओ। मन्दबुद्धि दुर्योधनकी मूर्खताके कारण जो भी अन्याय अथवा न्यायपूर्ण घटनाएँ हुई हों तथा विजयकी इच्छासे भीष्मने जो-जो तेजस्वितापूर्ण कार्य किये हों, वे सब मुझे सुनाओ। साथ ही यह भी बताओ कि कौरव और पाण्डवोंकी सेनाओंमें किस तरह युद्ध हुआ? तथा किस क्रमसे किस समय कौन-कौन-सा कार्य किस प्रकार घटित हुआ?

संजय बोला, महाराज। आपका यह प्रश्न आपके योग्य ही है; परंतु यह सारा दोष आप दुर्योधनके सिर नहीं मढ़ सकते। जो मनुष्य अपने ही दुष्कर्मोंके कारण अशुभ फल भोग रहा है, उसे उस पापका बोझा दूसरेपर नहीं डालना चाहिये। बुद्धिमान् पाण्डव अपने साथ किये गये कपट एवं अपमानको अच्छी तरह समझते थे, तो भी उन्होंने केवल आपकी ओर देखकर अपने मन्त्रियोंसहित चिरकालतक वनमें रहकर सब कुछ सहन किया। अब जिनकी कृपासे मुझे भूत-भविष्यत्-वर्तमानका ज्ञान तथा आकाशमें विचरना और दिव्यदृष्टि आदि प्राप्त हुए हैं, उन पराशरनन्दन भगवान व्यासको प्रणाम करके भरतवंशियोंके रोमाञ्चकारी और अद्भुत संग्रामका विस्तारसे वर्णन करता हूँ।

जब दोनों ओरकी सेनाएँ तैयार होकर व्यूहके आकारमें खड़ी हो गयी; तब दुर्योधनने दु:शासनसे कहा- दु:शासन। भीष्मकी रक्षाके लिये जो रथ नियत हैं, उन्हें तैयार कराओ। इस युद्धमें भीष्मकी रक्षासे बढ़कर हमलोगोंके लिये दूसरा कोई काम नहीं है। शुद्ध हृदयवाले पितामहने पहलेसे ही कह रखा है कि वो शिखण्डीको नहीं मारेंगे; क्योंकि वह पहले स्त्रीरूपमें उत्पन्न हुआ था। अत: मेरा विचार है कि शिखण्डीके हाथसे भीष्मको बचानेका विशेष प्रयत्न होना चाहिये। मेरे सभी सैनिक शिखण्डीका वध करनेके लिये तैयार रहें। पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिणके जो वीर सब प्रकारके अस्त्रसंचालनमें कुशल हों, वे पितामहकी रक्षामें रहें। देखो, अर्जुनके रथके बायें चक्रकी युधामन्यु रक्षा कर रहा है और दाहिने चक्रकी उत्तमौजा। अर्जुनको ये दो रक्षक प्राप्त हैं और अर्जुन स्वयं शिखण्डीकी रक्षा करता है। अत: तुम ऐसा प्रयत्न करो, जिससे अर्जुनके द्वारा सुरक्षित और भीष्मसे उपेक्षित शिखण्डी पितामहका वध न कर सके।

तदनन्तर, जब रात बीती और सूर्योदय हुआ तो आपके पुत्रों और पाण्डवोंकी सेनाएँ अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित दिखायी देने लगीं। खड़े हुए योद्धाओंके हाथमें धनुष, ऋष्टि, तलवार, गदा, शक्ति, तोमर तथा और भी बहुत-से चमकीले शस्त्र शोभा पा रहे थे। सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें हाथी, पैदल, रथी और घोड़े शत्रुओंको फंदेमें फँसानेके लिये व्यूहबद्ध होकर खड़े थे। शकुनि, शल्य, जयद्रथ, अवन्तिराज विन्द और अनुविन्द, केकयनरेश, कम्बोजराज सुदक्षिण, कलिङ्गनरेश श्रुतायुध,

राजा जयत्सेन, बृहद्बल और कृतवर्मा- ये दस वीर एक-एक अक्षौहिणी सेनाके नायक थे। इनके सिवा और भी बहुत-से महारथी राजा और राजकुमार दुर्योधनके अधीन हो युद्धमें अपनी-अपनी सेनाओंके साथ खड़े दिखायी देते थे। इनके अतिरिक्त ग्यारहवीं महासेना दुर्योधनकी थी। यह सब सेनाओंके आगे थी, इसके अधिनायक थे शान्तनुनन्दन भीष्म। महाराज। उनके सिरपर सफेद पगड़ी थी, शरीरपर सफेद कवच था और रथके घोड़े भी सफेद थे। उस समय अपनी श्वेत कान्तिसे वे चन्द्रमाके समान शोभा पा रहे थे। उन्हें देखकर बड़े-बड़े धनुष धारण करनेवाले सृंजयवशंके वीर तथा धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चाल वीर भी भयभीत हो उठे। इस प्रकार ये ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ आपकी ओरसे खड़ी थीं। राजन। कौरवोंकी इतनी बड़ी सेनाका ऐसा संगठन न मैंने कभी देखा था, न सुना था।

भीष्म और द्रोणाचार्य प्रतिदिन सबेरे उठकर यही मनाया करते थे कि पाण्डवोंकी जय हो; तो भी अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार वे युद्ध आपके ही लिये करते थे। उस दिन भीष्मने सब राजाओंको अपने पास बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा- क्षत्रियों। आपलोगोंके लिये स्वर्गमें जानेका यह युद्धरूपी महान् दरवाजा खुल गया है, इसके द्वारा आप इन्द्रलोक और ब्रह्मलोकमें जा सकते हैं। यही आपका सनातन मार्ग है, इसीका आपके पूर्वपुरुषोंने भी अनुसरण किया है। रोगसे घरमें पड़े-पड़े प्राण त्यागना क्षत्रियके लिये अधर्म माना गया है। युद्धमें जो इसकी मृत्यु होती है- वही इसका सनातन धर्म है।

भीष्मकी यह बात सुनकर सभी राजा बढ़िया-बढ़िया रथोंसे अपनी सेनाकी शोभा बढ़ाते हुए युद्धके लिये आगे बढ़े। केवल कर्ण अपने मन्त्री और बन्धु-बान्धवोंके सहित रह गया; भीष्मने उसके अस्त्र-शस्त्र रखवा दिये थे। समस्त कौरवसेनाके सेनापति भीष्म रथपर बैठे हुए सूर्यके समान सुशोभित हो रहे थे, उनके रथकी ध्वजापर विशाल ताड़ और पाँच तारोंके चिन्ह बने हुए थे। आपके पक्षमें जितने महान् धनुर्धर राजा थे, वे सब शान्तनुनन्दन भीष्मकी आज्ञाके अनुसार युद्धके लिये तैयार हो गये। आचार्य द्रोणकी जो ध्वजा फहरा रही थी, उसमें सोनेकी वेदी, कमण्डलु और धनुषके चिन्ह थे। कृपाचार्य अपने बहुमूल्य रथपर बैठकर वृषभके चिन्हवाली ध्वजा फहराते चल रहे थे। राजन्। इस प्रकार आपके पुत्रोंकी ग्यारह अक्षौहिणी सेना यमुनामें मिली हुई गङ्गाके समान दिखायी देती थी।

धृतराष्ट्रने पूछा- संजय। भीष्म तो मनुष्य, देवता, गन्धर्व और असुरोंद्वारा की जानेवाली व्यूहरचना भी जानते थे। जब उन्होंने मेरी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाकी व्यूहरचना की, तब पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने अपनी थोड़ी-सी सेनासे किस प्रकारका व्यूह बनाया?

संजयने कहा- महाराज। आपकी सेनाको व्यूहरचनापूर्वक सुसज्जित देख धर्मराज युधिष्ठिरने अर्जुनसे कहा- तात। महर्षि बृहस्पतिके वचनसे यह बात ज्ञात होती है कि यदि शत्रुकी अपेक्षा अपनी सेना थोड़ी हो तो उसे समेटकर थोड़ी ही दूरमें रखकर युद्ध करना चाहिये और यदि अपनी सेना अधिक हो तो उसे इच्छानुसार फैलाकर लड़ना चाहिये। जब थोड़ी सेनाको अधिक सेनाके साथ युद्ध करना पड़े तो उसे सूचीमुख नामक व्यूहकी रचना करनी चाहिये। हमलोगोंकी यह सेना शत्रुओंके मुकाबलेमें बहुत थोड़ी है, इसलिये तुम व्यूहरचना करो।

यह सुनकर अर्जुनने युधिष्ठिरसे कहा- महाराज। मैं आपके लिये वज्रनामक दुर्भेद्य व्यूहकी रचना करता हूँ; यह इन्द्रका बताया हुआ दुर्जय व्यूह है। जिनका वेग वायुके समान प्रबल और शत्रुओंके लिये दु:सह है, वे योद्धाओंमें अग्रगण्य भीम इस व्यूहमें हमलोगोंके आगे रहकर युद्ध करेंगे। उन्हें देखते ही दुर्योधन आदि कौरव भयभीत होकर इस तरह भागेंगे, जैसे सिंहको देखकर क्षुद्र मृग भाग जाते हैं।

ऐसा कहकर धनंजयने वज्रव्यूहकी रचना की। सेनाको व्यूहाकारमें खड़ी करके अर्जुन शीघ्र ही शत्रुओंकी ओर बढ़ा। कौरवोंको अपनी ओर आते देख पाण्डवसेना भी जलसे भरी हुई गङ्गाके समान धीरे-धीरे आगे बढ़ती दिखायी देने लगी।

भीम, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव और धृष्टकेतु- ये उस सेनाके आगे चल रहे थे। इनके पीछे रहकर राजा विराट अपने भाई, पुत्र और एक अक्षौहिणी सेनाके साथ रक्षा कर रहे थे। नकुल और सहदेव भीमके दायें-बायें रहकर उनके रथके पहियोंकी रक्षा करते थे। द्रौपदीके पाँचों पुत्र और अभिमन्यु उनके पृष्ठभागके रक्षक थे। इन सबके पीछे शिखण्डी चलता था, जो अर्जुनकी रक्षामें रहकर भीष्मका विनाश करनेके लिये तैयार था। अर्जुनके पीछे महाबली सात्यकि था तथा युधामन्यु और उत्तमौजा उनके चक्रोंकी रक्षा करते थे। कैकेय धृष्टकेतु और बलवान चेकितान भी अर्जुनकी ही रक्षामें थे।

अर्जुनने जिसकी रचना की थी वह वज्रव्यूह भयकी आशमासे शून्य था। उसके सब ओर मुख थे, देखनेमें बड़ा भयानक था। वीरोंके धनुष इसमें बिजलीके समान चमक रहे थे और स्वयं अर्जुन गाण्डीव धनुष हाथमें लेकर उसकी रक्षा कर रहे थे। उसीका आश्रय लेकर पाण्डवलोग तुम्हारे सेनाके मुकाबलेमें डटे हुए थे। पाण्डवोंसे सुरक्षित वह व्यूह मानव-जगत्के लिये सर्वथा अजेय था। इतनेमें सूर्योदय होते देख समस्त सैनिक संध्या-वन्दन करने लगे। उस समय यद्यपि आकाशमें बादल नहीं थे, तो भी मेघकी-सी गर्जना हुई और हवाके साथ बूँदें पड़ने लगीं। फिर चारों ओरसे प्रचण्ड आँधी उठी और नीचेकी ओर कंकड़ बरसाने लगी। इतनी धूल उड़ी कि सारे जगत्में अँधेरा-सा छा गया। पूर्व दिशाकी ओर बड़ा भारी उल्कापात हुआ। वह उल्का उदय होते हुए सूर्यसे टकराकर गिरी और बड़े जोरकी आवाज करती हुई पृथ्वीमें विलीन हो गयी।

संध्या-वन्दनके पश्चात् जब सब सैनिक तैयार होने लगे तो सूर्यकी प्रभा फीकी पड़ गयी तथा पृथ्वी भयानक शब्द करती हुई काँपने और फटने लगी। सब दिशाओंमें बारंबार वज्रपात होने लगे। इस प्रकार युद्धका अभिनन्दन करनेवाले पाण्डव आपके पुत्र दुर्योधनकी सेनाका सामना करनेके लिये व्यूह-रचना करके भीमको आगे किये खड़े थे। उस समय गदाधारी भीमको सामने देखकर हमारे योद्धाओंकी मज्जा सूख रही थी।

धृतराष्ट्रने पूछा- संजय। सूर्योदय होनेपर भीष्मकी अधिनायकतामें रहनेवाले मेरे पक्षके वीरों और भीमके सेनापतित्वमें उपस्थित हुए पाण्डवपक्षके सैनिकोंमें पहले किन्होंने युद्धकी इच्छासे हर्ष प्रकट किया था। संजयने कहा- नरेन्द्र। दोनों ही सेनाओंकी समान अवस्था थी। जब दोनों एक दूसरेके पास आ गयीं तो दोनों ही प्रसन्न दिखायी पड़ीं। हाथी, घोड़े और रथोंसे भरी हुई दोनों ही सेनाओंकी विचित्र शोभा हो रही थी। कौरवसेनाका मुख पश्चिमकी ओर था और पाण्डव पूर्वाभिमुख होकर खड़े थे। कौरवोंकी सेना दैत्यराजकी सेनाके समान जान पड़ती थी और पाण्डवोंकी सेना देवराज इन्द्रकी सेनाके समान शोभा पा रही थी। पाण्डवोंके पीछे हवा चलने लगी और कौरवोंके पृष्ठभागमें मांसाहारी पशु कोलाहल करने लगे।

भारत। आपकी सेनाके व्यूहमें एक लाखसे अधिक हाथी थे, प्रत्येक हाथीके साथ सौ-सौ रथ खड़े थे, एक-एक रथके साथ सौ-सौ घोड़े थे, प्रत्येक घोड़ेके साथ दस-दस धनुर्धर सैनिक थे और एक-एक धनुर्धर के साथ दस-दस ढालवाले थे। इस प्रकार भीष्मने आपकी सेनाका व्यूह बनाया था। वे प्रतिदिन व्यूह बदलते रहते थे। किसी दिन मानव-व्यूह रचते थे तो किसी दिन दैव-व्यूह तथा किसी दिन गान्धर्व-व्यूह बनाते थे तो किसी दिन आसुर-व्यूह। आपकी सेनाके व्यूहमें महारथी सैनिकोंकी भरमार थी। वह समुद्रके समान गर्जना करता था। राजन्। कौरव-सेना यद्यपि असंख्य और भयंकर है तथा पाण्डवोंकी सेना ऐसी नहीं है, तो भी मेरा यह विश्वास है कि वास्तवमें वही सेना दुर्धर्ष और बड़ी है जिसके नेता भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं।

संजय कहते हैं- कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने जब भीष्मके रचे हुए अभेद्य व्यूहको देखा तो उदास होकर अर्जुन से कहने लगे, धनञ्जय। जिनके सेनापति पितामह भीष्म हैं, उन कौरवोंके साथ हमलोग कैसे युद्ध कर सकते हैं? महातेजस्वी भीष्मने शास्त्रोक्त विधिसे जिस व्यूहका निर्माण किया है, इसका भेदन करना असम्भव है। इसने तो हमें और हमारी सेनाको संशयमें डाल दिया है, इस महाव्यूहसे हमारी रक्षा कैसे हो सकेगी?

तब अर्जुनने युधिष्ठिरसे कहा- राजन्। जिस युक्तिसे थोड़े-से मनुष्य भी बुद्धि, गुण और संख्यामें अपनेसे अधिक वीरोंको जीत लेते हैं, वह आपको बताता हूँ। पूर्वकालमें देवासुर-संग्रामके अवसरपर ब्रह्माजीने इन्द्रादि देवताओंसे कहा था- देवताओं। विजयकी इच्छा रखनेवाले वीर बल और पराक्रमसे भी वैसी विजय नहीं पा सकते जैसी कि सत्य, दया, धर्म और उद्यमके द्वारा प्राप्त करते हैं। इसलिये धर्म, अधर्म और लोभको अच्छी तरह जानकर अभिमान-शून्य हो उत्साहके साथ युद्ध करो। जहाँ धर्म होता है, उसी पक्षकी जीत होती है। राजन्। इसी प्रकार आप भी जान लें कि इस युद्धमें हमारी विजय निश्चित है। नारदजीका कहना है- जहाँ कृष्ण हैं, वहाँ विजय है विजय श्रीकृष्णका एक गुण है, वह सदा इनके पीछे-पीछे चलता है। गोविन्दका तेज अनन्त है, ये साक्षात् सनातन पुरुष हैं; इसलिये ये श्रीकृष्ण जहाँ हैं, उसी पक्षकी विजय है। राजन्। मुझे तो आपके विषादका कोई कारण दिखायी नहीं देता; क्योंकि ये विश्वम्भर श्रीकृष्ण भी आपकी विजयकी शुभ कामना करते हैं।

तदनन्तर, राजा युधिष्ठिरने भीष्मका मुकाबला करनेके लिये व्यूहाकारमें खड़ी हुई अपनी सेनाको आगे बढ़नेकी आज्ञा दी। उनका रथ इन्द्रके रथके समान सुन्दर था तथा उसपर युद्धकी सामग्री रक्खी हुई थी। जब वे उसपर सवार हुए तो उनके पुरोहित शत्रुओंका नाश हो- ऐसा कहकर आशीर्वाद देने लगे तथा ब्रह्मर्षि और क्षोत्रिय विद्वान् जप, मन्त्र एवं औषधियोंके द्वारा सब ओरसे स्वस्तिवाचन करने लगे। राजा युधिष्ठिरने भी वस्त्र, गौ, फल, फूल और स्वर्णमुद्राएँ ब्राह्मणोंको दान करके फिर युद्धके लिये यात्रा की। भीमने आपके पुत्रोंका संहार करनेके लिये बड़ा भयानक रूप धारण किया था, उन्हें देखकर आपके योद्धा घबरा उठे और भयके मारे उनका साहस जाता रहा।

इधर भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा- नरश्रेष्ठ। ये जो अपनी सेनाके मध्यभागमें खड़े हो सिंहके समान हमारे सैनिकोंकी ओर देख रहे हैं, ये ही कुरुकुलकी ध्वजा फहरानेवाले भीष्म हैं। जैसे मेघ सूर्यको ढक देता है, उसी प्रकार ये सेनाएँ इन महानुभावको घेरे खड़ी हैं। तुम पहले इन सेनाओंको मारकर फिर भीष्मके साथ युद्धकी इच्छा करना।

वैशम्पायन कहते हैं, राजन। एक दिनकी बात है, राजा धृतराष्ट्र चिन्तामें निमग्न होकर बैठे थे। इसी समय सहसा संग्रामभूमिसे लौटकर सञ्जय उनके पास आया और बहुत दुखी होकर बोला, महाराज। मैं सञ्जय हूँ, आपको प्रणाम करता हूँ। शान्तनुनन्दन भीष्म युद्धमें मारे गये? जो समस्त योद्धाओंके शिरोमणि और धनुर्धारियोंके सहारे थे, वे कौरवोंके पितामह आज बाण-शय्यापर सो रहे हैं। जिन महारथीने काशीपुरीमें अकेले ही एकमात्र रथकी सहायतासे वहाँ जुटे हुए समस्त राजाओंको युद्धमें परास्त कर दिया था, जो निडर होकर युद्धके लिये परशुरामके साथ भी भिड़ गये थे और साक्षात् परशुराम भी जिन्हें मार नहीं सके थे, वे ही आज शिखण्डीके हाथसे मारे गये। जो शूरतामें इन्द्रके समान, स्थिरतामें हिमालयके सदृश, गम्भीरतामें समुद्रके समान और सहनशीलतामें पृथ्वीके तुल्य थे, जिन्होंने हजारों बाणोंकी वर्षा करते हुए दस दिनोंमें एक अरब सेनाका संहार किया था, वे ही इस समय आँधीके उखाड़े हुए वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर पड़े हैं। राजन्। यह सब आपकी कुमन्त्रणाका फल है; भीष्म कदापि ऐसी दशाके योग्य नहीं थे।

धृतराष्ट्र बोले, संजय। कौरवोंमें श्रेष्ठ और इन्द्रके समान पराक्रमी पितृवर भीष्म शिखण्डीके हाथसे कैसे मारे गये? उनकी मृत्युका समाचार सुनकर मेरे हृदयमें बड़ी पीड़ा हो रही है। जिस समय वे युद्धके लिये अग्रसर हुए थे, उस समय उनके पीछे कौन गये थे तथा आगे कौन थे? उनके धनुष और बाण तो बड़े ही उग्र थे, रथ भी बहुत उत्तम था, वे अपने बाणोंसे प्रतिदिन शत्रुओंके मस्तक काटते थे तथा कालाग्निके समान दुर्धर्ष थे। उन्हें युद्धके लिये उद्यत देखकर पाण्डवोंकी बहुत बड़ी सेना काँप उठती थी। वे दस दिनसे लगातार पाण्डव-सेनाका संहार कर रहे थे। हाय। ऐसा दुष्कर कार्य करके वे आज सूर्यके समान अस्त हो गये। कृपाचार्य और द्रोणाचार्य भी उनके पास ही थे, तो भी उनकी मृत्यु कैसे हो गयी? जिन्हें

देवता भी नहीं दबा सकते थे और जो अतिरथी वीर थे, उन्हें पञ्चालदेशीय शिखण्डीने कैसे मार गिराया? मेरे पक्षके किन-किन वीरोंने अन्ततक उनका साथ नहीं छोड़ा? दुर्योधनकी आज्ञासे कौन-कौन वीर उन्हें चारों ओर से घेरे हुए थे?

संजय। सचमुच ही मेरा हृदय पत्थरका बना है, बड़ा ही कठोर है; तभी तो भीष्मकी मृत्युका समाचार सुनकर भी यह नहीं फटता। भीष्मके सत्य, बुद्धि तथा नीति आदि सद्गुणोंकी तो थाह ही नहीं थी; वे युद्धमें कैसे मारे गये? संजय। बताओ उस समय पाण्डवोंके साथ भीष्मका कैसा युद्ध हुआ? हाय। उनके मरनेसे मेरे पुत्रोंकी सेना पति और पुत्रसे हीन स्त्रीके समान असहाय हो गयी। हमारे पिता भीष्म संसारमें प्रसिद्ध धर्मात्मा और महापराक्रमी थे, उन्हें मरवाकर अब हमारे जीनेके लिये भी कौन-सा सहारा रह गया है? मैं समझता हूँ नदीके पार जानेकी इच्छावाले मनुष्य नावको पानीमें डूबी देखकर जैसे व्याकुल हो जाते हैं, उसी प्रकार भीष्मकी मृत्युसे मेरे पुत्र भी शोकमें डूब गये होंगे। जान पड़ता है धैर्य अथवा त्यागके बलसे किसीका मृत्युसे छुटकारा नहीं हो सकता। अवश्य ही काल बड़ा बलवान है, सम्पूर्ण जगत्में कोई भी इसका उल्लंघन नहीं कर सकता। मुझे तो भीष्मसे ही अपनी रक्षाकी बड़ी आशा थी। उनको रणभूमिमें गिरा देख दुर्योधनने क्या विचार किया? तथा कर्ण, शकुनि और दु:शासन ने क्या कहा? भीष्मके अतिरिक्त और किन-किन राजाओंकी हार-जीत हुई? तथा कौन-कौन बाणोंके निशाने बनाकर मार गिराये गये?

संजय कहते हैं - राजन्। अर्जुनकी भक्ति देख मनुष्योंपर दया करनेवाली देवी भगवान् श्रीकृष्णके सामने आकाशमें प्रकट हुई और बोलीं, पाण्डुनन्दन। तुम थोड़े ही दिनोंमें शत्रुओंपर विजय प्राप्त करोगे। तुम साक्षात् नर हो, नारायण तुम्हारे सहायक हैं; तुम्हें कोई पराजित नहीं कर सकता। शत्रुओंकी तो बात ही क्या है, तुम युद्धमें वज्रधारी इन्द्रके लिये भी अजेय हो।

वह वरदायिनी देवी इस प्रकार कहकर क्षणभरमें अन्तर्धान हो गयी। वरदान पाकर अर्जुनको अपनी विजयका विश्वास हो गया। फिर वे अपने रथपर आ बैठे। कृष्ण और अर्जुन एक ही रथपर बैठे हुए अपने दिव्य शफबजाने लगे। राजन्। जहाँ धर्म है, वहाँ ही द्युति और कान्ति है; जहाँ लज्जा है, वहाँ ही लक्ष्मी और सुबुद्धि है। इसी प्रकार जहाँ धर्म है, वहाँ ही श्रीकृष्ण हैं और जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहाँ ही जय है।

**४) बर्बरीक वध-** अचानक भीमका पौत्र घटोत्कच पुत्र बर्बरीक युद्धक्षेत्रमें उपस्थित हुआ। यह राक्षस आकारमें अपने पितासे भी प्रचण्ड था और एकाकी ही रहता था। उसके समीप धनुष था और कुछ थोड़ेसे बाण थे। उसने चर्म वस्त्र धारण किये थे और अभी अपनी तप:स्थली पश्चिम समुद्र तटसे सीधे ही आया था। प्रसिद्ध था कि इसने अत्युग्र तप करके आश्चर्यजनक सिद्धियाँ प्राप्त की थी। बर्बरीकने श्रीकृष्ण तथा सभी पाण्डवोंकी वन्दना की और सबकी प्रदक्षिणा करके बोला- युद्धके इस इतने बड़े आयोजनकी क्या आवश्यकता है? प्राणियोंकी मृत्युका समय उनके जन्मके समय ही निश्चित हो जाता है। मृत्युका निमित्त भी निश्चित रहता है। अत: उस निमित्तको उपस्थित कर देना मात्र उन्हें मार देगा। जिनकी मृत्यु इस समय नहीं होनी है और शस्त्रसे नहीं होनी है, उन्हें कोई आयोजन मार नहीं सकता।

युधिष्ठिरने कहा- वत्स। तुम्हारी बात ठीक है। संग्राममें जिनकी शस्त्रसे मृत्यु निश्चित है उन्हींके मरणका निमित्त यह युद्ध बनेगा। बर्बरीकने हँसकर कहा- इसके लिए इतना श्रम तथा इतना आयोजन व्यर्थ है। यह निमित्त तो मेरे दो शर उपस्थित कर सकते हैं। आश्चर्यसे युधिष्ठिरने कहा- तुम यह कैसे कर सकते हो? बर्बरीक बोला, आप देखें। यह कहकर बर्बरीकने एक लाल रंगकी भस्म निकाली और अपने एक पोले वाणमें भर दी। धनुषकी प्रत्यंचा चढ़ाकर उसने उस बाणको चढ़ाया और बिना किसी लक्ष्यके कोई मन्त्र पढ़कर आकाशकी ओर छोड़ दिया। वह मुट्ठी भर भस्म इतनी बढ़ गयी कि उससे

वहाँका पूरा आकाश अरुण हो उठा। क्षणोंमें ही वह धूलि नीचे उतरी और दोनों सेनाके सैनिकों, अश्वों, गजों आदि सबकी छातीपर नन्हे बिन्दुके रूपमें जम गयी।

बर्बरीक हँसकर बोला, आप देख लें। इस समय जिनकी भी शस्त्रसे मृत्यु होनेवाली है उन्हें मैंने चिन्हाकिंत कर दिया है। उन सबके वक्षपर लाल बिन्दु बन गया है। अब मैं दूसरा बाण सन्धान करता हूँ। उससे शत, सहस्त्र शर प्रकट होंगे और इन सबके वक्षको विदीण करके इनको मृत्युके मुखमें फेंक देंगे।

बर्बरीक दूसरा बाण हाथमें लेकर धनुषपर चढ़ाये इससे पूर्व ही श्रीकृष्णका दाहिना हाथ ऊपर उठा। उनके स्मरण करते ही उनकी अमोघ चक्र उनकी उठी तर्जनीमें घूमने लगा। कोई कुछ समझे इससे पहिले ही चक्रने बर्बरीकका मस्तक उसके धड़से काट दिया। वह सिर श्रीकृष्णके चरणोंपर ही गिरा।

आश्चर्य, शोक, भयसे सब स्तब्ध रह गये किन्तु उस कटे सिरसे शब्द गूंजा- सर्व समर्थ पुरुषोत्तम। आपके करोंसे मरकर मैं धन्य हो गया। देव जनार्दन। एक ही कामना अपूर्ण रह जाती है वह यह कि मैं इस युद्धको देखना चाहता था।

श्रीकृष्णने झुककर दोनों हाथोंमें अपने पदोंके समीपसे वह सिर उठा लिया और उसकी ओर देखकर बोले, तुम सप्राण रहोगे और यह संग्राम सम्पूर्ण देखोगे। भगवान रुद्र तुम्हें अपनी मुण्ड मालामें स्थान देंगे।

वह मस्तक श्रीकृष्णने स्वयं वहाँ समीप बहुत ऊँचे वृक्षके शिखरकी डालीपर स्थापित कर दिया।

भीम और अर्जुनने एक शब्द नहीं कहा। यद्यपि उनके नेत्रोंसे टपकते अश्रु उनकी व्यथा सूचित करनेको प्रयाप्त थे। घटोत्कचने आकर मधुसूदनके पदोंमें मस्तक रखा। वह मनस्वी प्रसन्न स्वरमें बोला, आपने इसे कृतार्थ कर दिया। इसका जन्म लेना सफल हो गया। युधिष्ठिरने वेदनापूर्ण स्वरमें कहा- जनार्दन। अपने पक्षके इतने अनुपम वीरका वध किया आपने? श्रीकृष्णने गम्भीर वाणीमें उत्तर दिया- धर्मराज। मेरा न कोई प्रिय है, न अप्रिय। धर्मकी मर्यादाका ध्यान रखकर जो चलता है वह मेरा रक्ष्य है और जो उसे नष्ट करना चाहता है मैं उसके दमनमें संकोच नहीं करता। दोनो सेनाओंमें अनेक लोगोंने विविध वरदान पाये हैं। सबकी मर्यादा नष्ट करके जो उन्हें मार देनेको उद्यत हो गया, उसकी इतनी बड़ी शक्ति विश्वमें कितना अनर्थ उपस्थित कर सकती थी? दूसरा कोई इसे मारनेमें समर्थ नहीं था।

# ५) गीतोपदेश

**महाभारत का युद्ध १३ नवम्बर शुक्रवार- ३१४३ ईसा सम्वत् ३०८६ पूर्व विक्रम सम्वत् यानि कि ५१५२ वर्ष पहिले पौष कृष्ण पक्ष द्वितीया से शुरू हुआ और उसी दिन श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीताउपदेश दिया। यह तारीख और तिथि पूना पुलिस आयुक्त सत्यपाल शर्माद्वारा अन्वेषण करके बतायी हुई है। यह युद्ध मलमास, धनुर्मास एवं कठिनमास कहकर पुकारा जाता है। सभी शुभ कार्य इस मास में वर्जित हैं। गीता विश्व धर्म का सर्वश्रेष्ठ राष्ट्रीय ग्रन्थ है जो हमारे लिये सद्गुरु है, माता स्वरूप है।**

**१) अर्जुन विषादयोग-** हस्तिनापुर नरेश शान्तनु के राज्यकाल में जो रणभूमि सजना शुरू हुई थी, उस रणभूमि के सजने का आज पूरा हो रहा है। दोनों ओर की सेनायें आमने-सामने आ गई। सभी महारथी अपने-अपने रथों पर सज्ज कर युद्धक्षेत्र में आ गये है। कृष्ण पार्थ के सारथी बने है अब न कभी ऐसी रणभूमि सजेगी न ऐसी सेना ही बनेगी और न ही ऐसे महान यौद्धा एकत्र होंगे। इस महायुद्ध, इस धर्मयुद्ध के वृक्ष की जड़ हस्तिनापुर नरेश धृतराष्ट्र के हृदय में है। धृतराष्ट्र व्याकुल है। संजय से कुछ बोल रहे है किन्तु कुछ कह नहीं पा रहे जैसे कुरुक्षेत्र के विषय में जानने की उत्कंठा

के लिये हिम्मत नहीं हो रही। संजय से अपने राजा की दशा छिपी हुई नहीं थी। वो दु:खी है अपने हस्तिनापुर के लिये भी और कदाचित अपने नरेश के लिये भी। समय यह सब देख रहा है और स्वयं समय भी गहरे सोच में है कि यह कथा आज उस स्थान पर है जहां स्वयं शब्द भी फूंक-फूंक कर पाव धरेंगे ये कथा गीता की सीमा रेखा पर खडी है। इसका तात्पर्य यह है कि जब तक गीता का उपदेश होगा तब तक समय भी सुन ही सकता है; पर बोल कर अभिव्यक्त नहीं कर सकता। हां बस सिर्फ यह कह सकता है कि आनेवाले कुछ क्षण संसार को सदैव के लिये धृतराष्ट्र का ऋणी बना देंगे क्योंकि आनेवाले कुछ क्षणों में धृतराष्ट्र संजय से पूछनेवाले है कि हे संजय धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में युद्ध में इकट्ठे होनेवाले मेरे और पांडु के पुत्रों ने इस समय क्या किया।

आज मैं समय नहीं हूं क्योंकि समय तो किसी के लिये ठहरता ही नहीं पर आज समय किसी शिष्य की भांति हाथ जोडे रणभूमि कुरूक्षेत्र के बीच में खडा हुआ नारायण की बातें सुन रहा है। नारायण समय और कुन्ती पुत्र अर्जुन के बीच में है। वैसे तो उनका सम्बोधित कुन्ती पुत्र अर्जुन ही है किन्तु वास्तव में वो बात हरेक के लिये हर समय के लिये कह रहे है क्योंकि समय बीता हुआ कल भी है, आज भी है और भविष्य भी है। अर्जुन के प्रश्न केवल अर्जुन के ही नहीं वो प्रश्न तो पिछले युगों के लिये भी प्रासंगिक थे। इस युग के लिये भी प्रासंगिक है और आनेवाले युगों के लिये भी प्रासंगिक रहेंगे। जब तक काल है मानव जाति को इन प्रश्नों का सामना करता रहना पडेगा इसलिये कोई यह न समझ ले कि ये प्रश्न केवल द्रोण शिष्य अर्जुन ही कर रहा है। उसके कंठ से समय बोल रहा है क्योंकि हर दिन हर युग के भीतर उसका अपना कुरुक्षेत्र होता है और होता रहेगा। इसलिये हे मानव यदि अपने वर्तमान और भविष्य का सामना करना है तो कुरुक्षेत्र की ओर मुंह करके खडा हो और स्वयं नारायण से अपने उन प्रश्नों के उत्तर सुन सदैव से तुम्हे परेशान करते चले आ रहे है।

अपनी दुर्भाग्यपीड़ित लाड़ली पुत्री द्रौपदी की अनुनय पर पांचाल-नरेश महाराज द्रुपद ने अपने कुछ गुप्तचर उसकी सेवा में सौंप दिये थे। द्रुपदनन्दिनी ने समरांगण से महत्त्वपूर्ण समाचार अविलम्ब पाने हेतु उन्हें नियुक्त कर दिया। उनका कार्य था- युद्ध की गति-प्रगति, जय-पराजय आदि से यथाशीघ्र पांचालराजपुत्री को अवगत कराना।

सञ्जय बोले, उस समय राजा दुर्योधनने व्यूहरचनायुक्त पाण्डवोंकी सेनाको देखकर और द्रोणाचार्यके पास जाकर यह वचन कहा- आचार्य। आपके बुद्धिमान् शिष्य द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नद्वारा व्यूहाकार खड़ी की हुई पाण्डुपुत्रोंकी इस बड़ी भारी सेनाको देखिये। इस सेनामें बड़े-बड़े धनुषोंवाले तथा युद्धमें भीम और अर्जुनके समान शूरवीर सात्यकि और विराट तथा महारथी राजा द्रुपद, धृष्टकेतु और चेकितान तथा बलवान काशिराज, पुरूजित्, कुन्तिभोज और मनुष्योंमें श्रेष्ठ शैव्य, पराक्रमी युधामन्यु तथा बलवान् उत्तमौजा, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु एवं द्रौपदीके पाँचों पुत्र ये सभी महारथी हैं। ब्राह्मणश्रेष्ठ। अपने पक्षमें भी जो प्रधान हैं, उनको आप समझ लीजिये। आपकी जानकारीके लिये मेरी सेनाके जो-जो सेनापति हैं, उनको बतलाता हूँ। आप- द्रोणाचार्य और पितामह भीष्म तथा कर्ण और संग्रामविजयी कृपाचार्य तथा वैसे ही अश्वत्थामा, विकर्ण और सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा; और भी मेरे लिये जीवनकी आशा त्याग देनेवाले बहुत-से शूरवीर अनेक प्रकारके शास्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित और सब-के-सब युद्धमें चतुर हैं। भीष्मपितामहद्वारा रक्षित हमारी वह सेना सब प्रकारसे अजेय है और भीमद्वारा रक्षित इन लोगोंकी यह सेना जीतनेमें सुगम है। इसलिये सब मोर्चोंपर अपनी-अपनी जगह स्थित रहते हुए आपलोग सभी नि:संदेह भीष्म पितामहकी ही सब ओरसे रक्षा करें।

संजय बोला महाराज हे नरेश दोनों ओर की सेनायें कुरुक्षेत्र में आ पहुंची है। गंगापुत्र भीष्म और युवराज धृष्टद्युम्न अपनी-अपनी सेनाओं का नेतृत्व कर रहे है। दुर्योधन अपने रथ से उतर द्रोणाचार्य के पास आया और बोला हे आचार्य आपने पांडवों की यह विशाल सेना देखी जिसमें आपके मित्र द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न ने व्यूह बनाकर आपकी सेनाके सामने

खडा किया है। और इस महान सेना में कैसे-कैसे योद्धा, कैसे धनुर्धर और कैसे-कैसे शूरवीर सात्यकि, विराट, महारथी द्रुपद, काशिराज, कुन्तीभोज और लम्बी अजान भुजावाले सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु और उस द्रौपदी के पांचो पुत्र। हे गुरुश्रेष्ठ अब हमारी सेना की ओर देखिये जिसे लेकर आप इन पराक्रमी पांडवों से युद्ध करने के लिये इस रणभूमि में आये है। कौन है इस सेना में स्वयं मै, आप, पितामह भीष्म, कुलगुरु कृपाचार्य और ऐसी ही कुछ महान योद्धा। कहते हैं ये सब युद्ध कला में निपुण है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मण हमारी सैन्य शक्ति के सामने इन पांडवों की सैन्य शक्ति शून्य है। हे गुरुवर इनसे युद्ध जीतने के लिये तो अकेले पितामह भीष्म ही बहुत हैं। मैं आप सब लोगों से निवेदन कर कहता हूँ कि आप सब लोग पितामह भीष्म की सुरक्षा की ओर विशेष ध्यान दें। मैं यह सब इसलिये कह रहा हूँ क्योंकि वे इस रणभूमि में अपने पौत्रों का वध नहीं करेंगे। भीष्म चिंतित हो रहे है। दोनों सेनाओंको व्यूहबद्ध देखकर दुर्योधन आचार्य द्रोणके समीप गया। उसने दोनों सेनाओंके प्रधान प्रधान वीरोंका परिचय देकर कहा, पाण्डवोंकी सेना परिमित है। यद्यपि उन्होंने आपके शिष्य धृष्टद्युम्नको प्रधान सेनापति बनाया है किन्तु अपनी सेनाका संरक्षक भीमको और प्रधान योधा अर्जुनको नियत किया है। यह रणनीति किसी एकपर पूरा दायित्व ही नहीं डालती। इससे अव्यवस्था उत्पन्न हो सकती है। अपनी सेना अपार है और उसका पूरा दायित्व अपने प्रधान सेनापति भीष्मपर है। अमित पराक्रम पितामह अकेले ही शत्रुको पराजित करनेमें समर्थ हैं।

किसी के भी मन में यह विचार नहीं आया कि यह युद्ध कितने दिन चलेगा? इसका आरम्भ तो अमावस्या पक्ष में होगा, किन्तु समाप्ति किस तिथि पर होगी? अन्तत: लाखों सैनिकों को जिसकी प्रतीक्षा थी, वह पौष बदी द्वितीया का महान दिवस उदित हुआ। सभी प्रकार के शस्त्रों से नन्दिघोष रथ सुसज्जित था। ध्वजदण्ड पर लगाया गया कपिध्वज दृष्टद्वती नदी की ओर से आती हुई वायु के लहरों से फड़फड़ा रहा था। उस पर अंकित कपि अज्ञात के वक्ष पर धड़ाधड़ छलाँगें लगा रहा था। रथ के पीछे पत्ती, सेनामुख, गुल्म, गण, वाहिनी, पृतना, चमू, अनाकिनी-आदि विभागों में सुरचित सात अक्षौहिणी सेना का समुद्र फैला हुआ था। आगे उसी रचना में ग्यारह अक्षौहिणी सशस्त्र कौरव-सेना का प्रचण्ड महासागर लहरा रहा था। उस महासागर के मुख पर कौरव-सेनापति के पद पर अभिषिक्त पितामह भीष्म का गंगौघ रथ स्पष्ट दिखाई दे रहा था। उनके दाहिने हाथ, रथदल के अग्रस्थान पर रथारूढ़, शुभ्र दाढ़ीधारी गुरुदेव द्रोण दिख रहे थे। गुरुदेव की दाहिणी ओर आचार्य कृप थे। पितामह की बायीं ओर गुरुपुत्र अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, विकर्ण दिख रहे थे। दुर्योधन अपने रथ पर चढ़ गया।

कर्ण युद्ध शिबिर में सोच रहा है कि गंगापुत्र भीष्म आपने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया है किन्तु फिर भी आप मेरे बाणों से अपने प्रिय अर्जुन को नहीं बचा पायेंगे।

कौरवोंमें वृद्ध बड़े प्रतापी पितामह भीष्मने उस दुर्योधनके हृदयमें हर्ष उत्पन्न करते हुए उच्च स्वरसे सिंहकी दहाड़के समान गरजकर अपना गंगनाभ शफफूँका। इसके पश्चात् शफऔर नगारे तथा ढोल-मृदङ्ग और नरसिंगे आदि बाजे एक साथ ही बज उठे। उनका वह शब्द बड़ा भयंकर हुआ। इसके अनन्तर सफेद घोड़ोंसे युक्त उत्तम रथमें बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनने भी अलौकिक शफबजाये। श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य नामक शंख, अर्जुनने देवदत्त नामक और भयानक कर्मवाले भीमसेनने पौण्ड्र नामक महाशफबजाया। कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने अनन्तविजय नामक और नकुल तथा सहदेवने सुघोष और मणिपुष्पक नामक शफबजाये। श्रेष्ठ धनुषवाले काशिराज और महारथी शिखण्डी एवं धृष्टद्युम्नने जैत्र नामक शंख तथा राजा विराट और अजेय, सात्यकि का नन्दिवर्धन शंख, राजा द्रुपद एवं द्रौपदीके पाँचों पुत्र और बड़ी भुजावाले सुभद्रापुत्र अभिमन्यु- इन सभीने, राजन। अलग-अलग शफबजाये। उसके पीछे-पीछे आचार्य द्रोण, कृपाचार्य ने भी अपने-अपने शंख फूँके। कुरु सेना में रणवाद्यों का प्रचण्ड कोलाहल हुआ। अर्जुन के मन में उलट-पुलट विचारों के असंख्य शंख गूँजने लगे।

जब तक नायक अपना शंख बजाकर युद्ध का आदेश नहीं देता, सैनिक युद्ध करने की स्थिति में नहीं आ सकते। और तब अर्जुन ने देखा कि अभिमन्यु ने अपना शंख बजाया। पांडवों के पुत्रों में सबसे छोटा था अभिमन्यु। उसके पश्चात् उसके बड़े भाइयों ने अपने-अपने शंख उठा लिए। इस बार जो नाद उठा, वह पांडवों के अपने पुत्रों के शौर्य की घोषणा कर रहा था। अर्जुन कब से इस दिन की प्रतीक्षा में था कि उनके पुत्र अपना प्रशिक्षण पूर्ण कर युद्धक्षेत्र में उतरें। गर्व से उसका वक्ष जैसे कुछ और स्फीत हो आया, पर अर्जुन से यह छिपा नहीं रहा कि उस स्फीत वक्ष के भीतर कीं एक भावुक तथा प्रेम से परिपूर्ण हृदय भी था, जो थोड़ा-सा आशंकित भी था। ये पांडवों के पुत्र थे, वीर योद्धा थे किंतु अभी बालक ही थे। उन्होंने युद्ध का प्रशिक्षण ही पाया था, वास्तविक युद्ध का अनुभव नहीं था उन्हें। पर सिंह-शावकों को अंतत: सिंह तो बनना ही था।

अर्जुन का मन जानता है कि पितामह और आचार्य दुर्योधन की प्रसन्नता के लिए पांडवों का वध नहीं कर सकते। पितामह का धनुष क्या अर्जुन पर बाण बरसा सकता है? आचार्य का धनुष क्या अपने शिष्य की हत्या के लिए उठ सकता है? पर अर्जुन समझता है कि धन और सत्ता के सामने मानवीय संबंधों का और मूल्यों का कोई अस्तित्व नहीं रहता।

जिन पितामह की गोद में खेला-पला, क्या उन्हीं पितामह को अर्जुन अपने बाणों का लक्ष्य बनायेगा? दुर्योधनको उत्साहित करनेके लिए पितामह भीष्मने उच्च स्वरसे सिंह गर्जन किया और शंख ध्वनि करने लगे। प्रधान सेनापतिका शंख बजाना युद्धारम्भके लिए सावधान होनेका संकेत था। अत: दूसरे कौरव पक्षके महारथियोंने भी अपने अधरोंसे शंख लगा लिये। नगाड़े, भेरी, शृंगे आदि सभी रणवाद्य एक साथ बजने लगे। बहुतसे कौरव पक्षके सैनिक इसे अपने विपक्षमें अपशकुन मानकर भयभीत हो गये।

भीम बोला, यह अर्जुन क्या कर रहा है? युधिष्ठिर बोले, चिन्ता न करो अनुज। अर्जुन के साथ ही वासुदेव कृष्ण है। अर्जुन का रथ तो भटक ही नहीं सकता। दुर्योधन बोला, यह सुनकर भीष्म पितामह इन भाइयों के प्राण नहीं लेंगे अर्जुन का साहस इतना बढ़ गया है कि वो अकेला ही आगे चला आ रहा है जैसे कौरवों की सेना में कोई योद्धा ही नहीं हो। भीष्म बोले, ये अर्जुन कहां चला आ रहा है आचार्य? द्रोणाचार्य बोले, मुझे तो यह किसी द्विविधा में लग रहा है किन्तु वासुदेव के होते हुये द्विविधा कैसी गंगापुत्र? भीष्म बोले, द्विविधा में तो मैं पड़ गया हूँ आचार्य। जिस योद्धा ने विराट युद्ध में अकेले ही हम सबको पराजित कर दिया था। वही योद्धा अपना रथ लिये उस सेना की ओर बढ़ा चला आ रहा है। जिस सेना का प्रधान सेनापति होना मेरा दुर्भाग्य है आचार्य किन्तु क्या कुन्तीपुत्र अर्जुन यह भूल गया है कि अभी युद्ध के आरम्भ का शंख नहीं बजा। द्रोण बोले, वासुदेव ने रथ रोक लिया है गंगापुत्र। भीष्म बोले, यह क्या पहेलिका है आचार्य?

भीष्मके शंखने भयानक शब्दसे आकाश और पृथ्वीको भी गुँजाते हुए धृतराष्ट्रपुत्रों-आपके पुत्रोंके हृदय विदीर्ण कर दिये। राजन्। इसके बाद कपिध्वज अर्जुनने मोर्चा बाँधकर डटे हुए धृतराष्ट्र-पुत्रोंको देखकर, शस्त्र चलनेकी तैयारीके समय धनुष उठाकर तब हृषीकेश श्रीकृष्णसे यह वचन कहा- हे अच्युत। मेरे रथको दोनों सेनाओंके बीचमें खड़ा कीजिये और जबतक कि मैं युद्धक्षेत्रमें डटे हुए युद्धके अभिलाषी इन विपक्षी योद्धाओंको भली प्रकार देख लूँ कि इस युद्धरूप व्यापारमें मुझे किन-किनके साथ युद्ध करना योग्य है, तबतक उसे खड़ा रखिये। युद्धमें दुर्बुद्धि दुर्योधनका कल्याण चाहनेवाले जो-जो राजालोग इस सेनामें आये हैं, उन युद्ध करनेवालोंको मैं देखूँगा। दुर्योधन का पक्ष लेकर हमसे युद्ध करने किस किस ने दुस्साहस किया है। किस किस का सिर यमराज ने माँग लिया है।

चरने आकर द्रौपदी को सूचना दी, देवी। पार्थ-सारथि युद्ध-व्याकुल थे दुर्भाग्यवश पार्थ स्वयं युद्धविमुख हो रहे है। आर्य अर्जुन मोहग्रस्त हो रहे है। पार्थ-सारथी नारायण स्वयं अज्ञानरूपी अंधकार मिटाकर धर्म के प्रकाश में उनके भ्रमित मन

को पुनर्भासित करना चाहते हैं। द्रौपदी बोली, पार्थ मोहग्रस्त है? आर्य अर्जुन मोहग्रस्त कैसे हो गये? क्यों हो गये?

चर ने बोला, देवी जब दोनों पक्षों की विशाल अक्षौहिणी चतुरंगिणी सेनाएँ अपने नियत स्थान पर एकत्रित हो गयीं, तब पाण्डुनन्दन अर्जुन ने अपने परम सम्पादित सारथी वार्ष्णेय श्रीकृष्ण से अनुरोध किया कि वे उनके रथ को पाण्डवमेदिनी एवं कुरुमेदिनी के मध्य ले चलें ताकि वे उस विहंगम सैन्यसिन्धु पर दृष्टिपात कर सकें तथा दोनों पक्षों की सामरिक तैयारियों का आकलन कर सकें। तदुपरान्त देवी। पार्थ-सारथी ने अपने स्वभाव के अनुरूप हँसते हुए, श्वेतवाहन के कपिध्वज सुशोभित रथ को पाण्डवसेना से बहुत आगे ले जाकर तथा कुरुसेना के समक्ष कुछ दूर पर ही खड़ा कर दिया। पाण्डुनन्दन अर्जुन ने जब पाण्डव चतुरंगिणी के दीर्घ आकार एवं असंख्य युद्धोन्मत्त गजराजों, युद्धातुर विशालाश्वोंख फेनमाल्य-सी लहराती रथ-पताकाओं एवं युद्धोद्यत महारथियों को देखा तो वे हर्ष एवं उत्साह से विभोर हो गये।

तत्पश्चात् देवी। उन्होंने कुरुसैन्य सागर पर विहंगम दृष्टिपात किया। एक-एक महारथी को पहचानने का प्रयास किया। और वे देखते रहे देवी। वे उस ओर देखते ही रहे... देखते रह गये.... खोये-से। पाण्डव-पक्ष के मेरुदण्ड, प्रचण्ड वीर अर्जुन कुरुसेना को अपलक निहारते रह गये। और फिर... सहसा उनके विशाल नेत्र आर्द्र हो आये। उन मूल्यवान अश्रुओं ने नयनों में डबडबाते हुए उनके कोमल अन्तस्तल तक को भिगो दिया। उस जगत्विख्यात पराक्रमी महारथी को भाव-विगलित कर दिया। और फिर देवी... उनके विशाल वृषभस्कन्ध धीरे से शिथिल पड़ गये। उनकी सांगद आजानुबाहुओं ने धीमे से गाण्डीव एक ओर फिसलने लगा।

कृष्ण बोले, क्या देख रहे हो पार्थ? अर्जुन बोला, पितामह, प्रियजनों, पितामहो, आचार्यों, मित्रों और पुत्रों को देख रहा हूं केशव। कृष्ण बोले, इन्हें देखना क्या है पार्थ? क्या तुम इन्हें पहली बार तो नहीं देख रहे हो। अर्जुन बोला, हां पहिली बार तो नहीं देख रहा हूं। कृष्ण बोले, और ये भी जानते थे कि ये सारे सग्गे सम्बन्धी इस रणभूमि में किसी न किसी ओर खडे अवश्य दिखाई देंगे। अर्जुन बोला, तो क्या जानने और देखने में कोई अन्तर नहीं केशव? हे माधव आप मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच ले चलिये मेरा परिदृश्य ठीक रहे। कुरु सेनाओं को बराबर की दूरी से देखना चाहता हूं केशव, मुझे ले चलिये वहां। कृष्ण बोले, ले चलता हूं पार्थ परन्तु हे कुन्ती पुत्र यह बात तुमने शंख फूंकने से पहिले क्यों नहीं कहीं। अर्जुन बोला, शंख के बजने के पश्चात युद्ध होने में अब कोई सन्देह नहीं रह गया केशव। कृष्ण रथ को हांककर दोनो सेनाओं के मध्य ले गये। सब खडे देखते रह गये।

संजय बोले, धृतराष्ट्र। अर्जुनद्वारा इस प्रकार कहे हुए श्रीकृष्णने दोनों सेनाओंके बीचमें भीष्म और द्रोणाचार्यके सामने तथा सम्पूर्ण राजाओंके सामने उत्तम रथको खड़ा करके इस प्रकार कहा कि पार्थ। युद्धके लिये जुटे हुए इन कौरवोंको देख। इसके बाद पृथापुत्र अर्जुनने उन दोनों ही सेनाओंमें स्थित अपने ताऊ-चाचाओंको, दादा-परदादाओंको, आचार्य गुरुजनोंको, मामाओंको, भाइयोंको, पुत्रोंको, पौत्रोंको तथा मित्रोंको, ससुरोंको और सालोंको, सुहृदोंको भी देखा। उन उपस्थित सम्पूर्ण बन्धुओंको देखकर वे कुन्तीपुत्र अर्जुन अत्यन्त करुणासे युक्त होकर शोक करते हुए यह वचन बोले।

अर्जुनने श्रीकृष्ण से कहा, अच्युत। मैं देखना चाहता हूँ कि दुर्बुद्धि धृतराष्ट्रके पुत्रोंका प्रिय करनेकी इच्छासे कौन-कौन इस युद्धमें उनकी सहायता करने आये हैं। श्रीकृष्णने रथ बढ़ाकर दोनों दलोंके ठीक मध्यमें कौरव महासेनापति भीष्मके रथके सम्मुख खड़ा किया और कहा- विजय इन कौरव पक्षीय लोगोंको देख लो।

अर्जुनने शत्रुपक्षीय सैनिकोंको देखना प्रारम्भ किया और उनकी मुखश्री मलिन होती चली गयी। उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा गिरने लगी। उनका शरीर काँपने लगा। पूरा शरीर पसीनेसे भीग गया। वे बहुत व्यथा भरे स्वरमें बोले, श्रीकृष्ण। यहां शत्रु

कहाँ हैं? ये हमारे पूज्य पितामह भीष्म, ये हमारे शस्त्र-गुरु आचार्य द्रोण, ये कुलाचार्य कृप और ये मामा शल्य। इस सम्मुखके समाजमें मुझे तो अपना शत्रु कोई दीखता नहीं है। हमारे भाई हैं, भतीजे हैं, साले हैं, श्वसुर हैं, सम्बन्धी ही सम्बन्धी सम्मुख हैं सब मेरे सामने।

फिर उसकी दृष्टि जाकर आचार्य द्रोण पर टिक गई। विराटनगर के बाहर अर्जुन ने पितामह से भी युद्ध किया था और आचार्य से भी; किंतु वहां पितामह और आचार्य का लक्ष्य था दुर्योधन की रक्षा; और अर्जुन का लक्ष्य था विराट के गोधन को सुरक्षित लौटाना। न वह किसी का वध करने आया था और न ही आचार्य और पितामह उसके वध के इच्छुक थे किंतु यहाँ तो ऐसी बात नहीं थी। क्षत्रिय को अपने धर्म का निर्वाह करना होगा। विजय अथवा मृत्यु की आकांक्षा लेकर लड़ना होगा। उसे अपनी क्षमता भर दुर्योधन के ही नहीं, पितामह और आचार्य के वध का भी प्रयत्न करना होगा। पितामह उसका और उसके भाइयों का वध नहीं करेंगे, किंतु उसके ससुर और सालों का वध तो करेंगे अभिमन्यु तो कुंतीपुत्र नहीं है, उसका वध तो करेंगे पांडवपुत्रों प्रतिविंध्य, सुतसोम, शतानीक, श्रुतसेन और श्रुतकर्मा का शिरोच्छेदन तो करेंगे यौद्धेय, सर्वग, निरमित्र और सुहोत्र के वक्ष पर तो बाण का प्रहार करेंगे इरावान और घटोत्कच की तो निश्चित हत्या करेंगे ये सब तो कुंती के पुत्र नहीं हैं, चाहे उनके पुत्रों के पुत्र हों। उनमें से पाँच तो भीष्म और द्रोण के समान रूप से शत्रु-द्रुपद के दौहित्र हैं। उनका वध न करने की प्रतिज्ञा पितामह ने नहीं की है, पर अर्जुन पितामह का वध नहीं कर सकता।

वह द्रोण का वध भी नहीं कर सकता पर आचार्य ने तो यह भी नहीं कहा है कि वे कुंती के पुत्रों का वध नहीं करेंगे।

अर्जुन का मन शिथिल होता जा रहा था। आज तक उसने जब कभी युद्ध के विषय में सोचा था, तो अपने भाइयों और दुर्योधन तथा उसके भाइयों में ही युद्ध की कल्पना की थी। उनके बीच द्रोण और भीष्म कहाँ से आ गए। अर्जुन की पीढ़ी के युद्ध में इन वृद्धों का क्या काम। और उसके अपने पुत्रों को इस प्रकार युद्धक्षेत्र में पितामह और आचार्य का सामना करना होगा, यह तो उसकी कल्पना में भी नहीं आया था। कैसे करेंगे वे इन जगत्विश्रुत योद्धाओं का सामना। जब कि अर्जुन के अपने हाथ भी बँधे हुए थे। वह भीष्म और द्रोण का वध नहीं कर सकता था। उनके रक्त में भीगा साम्राज्य नहीं चाहिए उसे। और तभी उसकी दृष्टि दूर खड़े अभिमन्यु पर जा टिकी। यदि वह भी जीवित न रहा तो अर्जुन को राज्य किसके लिए चाहिए? अपने पुत्रों के शवों पर खड़े होकर वे पांचों भाई राज्य का भोग करेंगे?

उमड़ते आवेग को हृदय में रोक भावारुद्ध कण्ठ से तब आर्य पार्थ वृष्णिशिरोमणि से कहने लगे, शत्रुसेना की ओर दृष्टिपात करने से मुझे कोई शत्रु तो दिखता ही नहीं नारायण। यहाँ से वहाँ तक, केवल अपने गुरुजन, बन्धु-बान्धव, मित्र एवं सखा ही दिख रहे हैं। अपने स्नेहशील पितृव्य चक्षुहीन महाराज धृतराष्ट्र के पुत्रों... अर्थात् अपने ही बन्धुओं का वध करने का विचार कितना घृणास्पद है। केशव। ये समस्त वीर भारतगण मेरी ओर कैसी आग्नेय दृष्टि से देख रहे हैं? ये मेरे स्वजन हैं महाभाग। ये भरतवंशी मेरे पितृव्य के ही तो संतान हैं। मेरे स्वर्गीय पिता के अग्रज के ही तो पुत्र हैं। नारायण। अपने वृद्ध चक्षुहीन पितृव्य की वृद्धावस्था में सेवा न करके उनको दारुण दु:ख दूँगा? ये तो समस्त भारत मेरे बन्धु हैं। कैसी मर्मान्तक पीड़ा दे रही है उनकी यह दृष्टि। हृदय क्षोभ से भरा जा रहा है। मैं इन वीर भारतों का हन्ता नहीं बनूँगा बन्धुघाती होने का अपयश नहीं लूँगा। मैं इस उज्ज्वल कुरुवंश को नष्ट नहीं करूँगा, वासुदेव। इस गौरवशाली भरतवंश को कदापि नष्ट न करूँगा।

कृष्ण बोले, लो पार्थ रणभूमि का मध्य तो आ गया। अर्जुन बोला, ये दो सेनामें ही नहीं है केशव ये तो दो महासागर है। अर्जुन को अतीत याद आ रहा है। कृष्ण बोले, इन्हें कब तक देखते रहोगे पार्थ? अर्जुन बोला, देखने दीजिये केशव, क्या पता इस युद्ध के उपरान्त कौन देखने को मिलेगा और कौन देखने को नहीं मिलेगा। माधव। मैं किन लोगोंसे युद्ध करने

आया हूँ। युद्ध से विजय प्राप्त करने के लिये मैं किन लोगों को दांव पर लगा रहा हूं? दोनों ओर तो एक ही वंश के लोग खडे है। एक ही वृक्ष की डालियां। वो जो सामने श्वेत वस्त्र पहिने श्वेत रथ पर सवार खडे है वो सारों के लिये गंगापुत्र होंगे पर मेरे लिये वो स्नेह की गंगा है। मैं अपने मैले धूल से सने वस्त्र पहिनकर श्वेत गोद में घुस जाया करता था और वो जब मुझे अपने हृदय से लगा लिया करते थे वो मेरे पितामह हैं केशव। वो आचार्य द्रोण हैं जिन्होने मेरी आत्मा को नहला दिया अपने ज्ञानसागर से और इस शिष्य की झोली में अपना सारा ज्ञान उंडेल दिया। उन्होंने जितना मुझे दिया है केशव उतना तो उन्होंने अपने पुत्र अश्वत्थामा को भी नहीं दिया केशव। नहीं। मैं इनसे युद्ध करने आया हूं। क्या मैं इनके प्राण लेने का प्रयत्न करूंगा? जिनके चरण छूकर आया हूँ, उन्हीं का वध करूँ? जिन आचार्य द्रोण, आचार्य कृप ने शिष्य के नाते मुझसे अपार प्रेम किया, उनके प्राण ले लूँ? यह सब किसलिए? केवल राज्य की प्राप्ति के लिए? उसकी अपेक्षा संजय के सुनाये सन्देश के अनुसार भिक्षा माँगकर उदर-निर्वाह करने में क्या बुराई है? गुरुहत्या ज्येष्ठ पिता की हत्या? राज्य? हस्तिनापुर का या इन्द्रप्रस्थ का? भिक्षा- तीर्थक्षेत्र में माँगी हुई? राज्य या कि भिक्षा? युद्ध या कि शान्ति? लाखों की बलि लेने की अपेक्षा क्या लाखों प्राणों को बचानेवाला वनवास अच्छा नहीं है? अर्जुन की आँखों के सामने अपने ही बाणों से गतप्राण हुए पितामह, गुरु द्रोण, आचार्य कृप दिखने लगे। जग में मैं- केवल मैं ही घोर पापी हो जाऊँगा।

उसे लगा कि उसके अधर सूखते जा रहे थे और उसका मन एक प्रकार की वितृष्णापूर्ण उदासीनता से भरता जा रहा था। राज्य उसके लिए पहले भी कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण नहीं था, जिसके लिए युद्ध किया जाए; किंतु अब तो जैसे वह सर्वथा ही सारहीन दिखाई दे रहा था। इस युद्ध से जो प्राप्य था, उसका कोई मूल्य नहीं था और युद्ध का जो मूल्य था, उससे अधिक मूल्य किसी पदार्थ का हो नहीं सकता था।

श्रीकृष्ण की दृष्टि अर्जुन के मुख पर जा ठहरी, क्या बात है अर्जुन। तुम्हारे चेहरे पर वह उत्साह दिखाई नहीं दे रहा?

कुछ क्षण के लिए कृपा के आगार राजपुत्र अर्जुन की वाणी अवरुद्ध हो गयी और वे बोल न सके। कुछ संयत होकर फिर वे नारायण को सम्बोधित करके बोले, परम पूज्य पितामह के तपोनिष्ठ शरीर को इस वृद्धावस्था में भी लौह-शिरस्त्राण एवं कवच से मण्डित तथा विभिन्न आयुधों से सुसज्जित देख मेरे मन में ग्लानि उमड़ पड़ रही है केशव। जिन महापुरुष की छत्रच्छाया में हम लोग पोषित हुए, सुशिक्षित हुए, मनुष्य बने, उन ही स्नेहमूर्ति वयोवृद्ध पितामह पर मैं वार करूँगा? कैसा क्षुद्र विचार है। कैसा क्षुद्र मैं स्वयं हो गया हूँ। और मधुसूदन। गुरुवर आचार्य द्रोण ने मुझे सर्वप्रथम धनुष उठाना सिखाया था, अत्यन्त स्नेह से उस पर शर-सन्धान करना सिखाया। शस्त्र एवं अस्त्र में क्या विभेद है, यह बताया। जब-जब मैंने उत्तम शस्त्रकौशल प्रदर्शित किया, गुरुवर ने हर्षविभोर हो, आल्हादित हो मुझे हृदय से लगा लिया नहीं माधव। मैं गुरुघात नहीं करूँगा। नहीं। नहीं। अच्युत। मुझे स्मरण आता है मेरी प्रशंसा करते तात द्रोणाचार्य कभी न थके। मैं जो उनका सर्वाधिक प्रिय शिष्य रहने का गौरव पा चुका हूँ, आज उन देवतुल्य गुरु पर ही शस्त्रकौशल दिखाने जा रहा था। हा शोक। हा शोक। धिक्कार है मुझे। धिक्कार है मेरी मूढ़ता को। शरद्वानपुत्र गुरुवर कृपाचार्य पर मैं वार करनेवाला था और किस प्रयोजन से? राज्य-प्राप्ति। सुख-लाभ। धिक्कार है। धिक्कार है। मेरी मति मारी गयी वासुदेव। इन गुरुजनों ने मुझे पुत्रवत् अपार स्नेह दिया है। मैं ऐसा कृतघ्न हो गया कि इन ही महात्माओं के विरुद्ध शस्त्र उठाकर जगत् में गुरुघाती होने का अपयश उठाता। नहीं। नहीं। मधुसूदन। नहीं। यह सम्भव नहीं। मेरे हाथ काँप रहे हैं.. मेरे पाँव शिथिल पड़ रहे हैं... मैं गुरुहन्ता नहीं। मैं बन्धुघाती नहीं। मैं स्वयं भी भारत हूँ मैं भारतघाती नहीं।

केशव। कह नहीं सकता कि क्या हो रहा है मुझे। मन पर एक प्रकार की उदासीनता छा रही है। हताशा ही कह लो।

अर्जुन ने धीरे से कहा, मैं अपने पितामह और गुरु का वध कर कृतघ्नता जैसा जघन्य पाप नहीं कर सकता। इन लोगों के रक्त में डूबा राज्य नहीं चाहिए मुझे। उससे तो कहीं अच्छा है कि हम वन में रह लें। भिक्षा पर निर्वाह कर लें। उसकी दृष्टि सामने खड़े भीष्म और द्रोण के रथों पर जमी थी।

क्या यहाँ आने से पहले तुम नहीं जानते थे कि भीष्म और द्रोण, दुर्योधन के पक्ष से युद्ध करने आ रहे हैं? कृष्ण के स्वर में हल्का-सा कटाक्ष था। क्या यह तुम्हारे ही सम्बन्धी है, तुम्हारे ही कुछ लगते है? हे पार्थ, इनका तू भी कुछ लगता होगा? तू भी इनका कोई रिश्ते-नातेदार होगा? ये तो सब तेरा वध करने को उद्यत है और तू अभी तक इसी सोच में है कि ये तेरे रिश्ते-नातेदार, सगे-सम्बन्धी है। कैसी मूढ़ता?

कृष्ण उसके मन को समझ रहे थे। वह पितामह और आचार्य को मार नहीं सकता और उनको मारे बिना अपने पक्ष के लोगों की रक्षा नहीं कर सकता। अपने पक्ष में मित्रों और संबंधियों के अतिरिक्त उसके अपने भाई भी हैं और पुत्र भी। वह उनको बचाकर यह युद्ध करना चाहता है। पता नहीं वे कैसे लोग हैं, जो युद्ध भी करना चाहते हैं और हताहत भी नहीं होना चाहते। कितना अबोध है अर्जुन का मन। वह यह समझता है कि उसके भाई और पुत्र युद्ध नहीं करेंगे तो उनका अंत नहीं आएगा? और यदि अर्जुन, भीष्म और द्रोण का वध नहीं करेगा तो वे अजर अमर हो जाएँगे?

इस सोच से तो मेरा अंग-अंग शिथिल होते जा रहा है। मेरा मुंह सूखा जा रहा है। गांडीव पकडने वाले ये हाथ सुन्न हुये जा रहे हैं; मेरे शरीर में वो कम्प कम्पी है केशव जो मैंने कभी शिशिर ऋतु में भी कभी अनुभव नहीं की थी। मेरा गांडीव मेरे हाथ से गिर रहा है केशव। मैं इन पर बाण क्या चलाऊँगा केशव जिनके सत्कार के लिये मेरे रोंगटे खडे हो जाते है। मैं इस रणभूमि कुरुक्षेत्र को अपने ही वंश की श्मशान भूमि नहीं बना सकता केशव। आप कुछ कहते भी नहीं केशव? कृष्ण बोले, अभी तो मैं सुन रहा हूं पार्थ। पहिले तुम कह लो। अर्जुन बोला, अब कहने को क्या है केशव? मैं अपने कुल के शवों पर अपना राजभवन खडा नहीं कर सकता। मैं उस राजसुख का क्या करूंगा। जिसके ध्वज पर लहू की महक आ रही होगी। जिन गुरुजनों के चरणों में सिर रखा उन्ही के सिर काट लूंगा। जिससे धनुष पर बाण लगाना सीखा उसी पर बाण चलाऊं केशव। मुझे इन मूल्यों पर विजय नहीं चाहिये केशव। मुझे इन मूल्यों पर कभी भी विजय नहीं चाहिये।

अर्जुन बोला, कृष्ण। हाथसे गाण्डीव धनुष गिर रहा है और मेरी त्वचा भी बहुत जल रही है तथा मेरा मन भ्रमित-सा हो रहा है, इसलिये मैं खड़ा रहनेको भी समर्थ नहीं हूँ। केशव। मैं लक्षणोंको भी विपरीत ही देख रहा हूँ तथा युद्धमें स्वजन-समुदायको मारकर कल्याण भी नहीं देखता। कृष्ण। मैं न तो विजय चाहता हूँ और न राज्य तथा सुखोंको ही। गोविन्द। हमें ऐसे राज्यसे क्या प्रयोजन है अथवा ऐसे भोगोंसे और जीवनसे भी क्या लाभ है? हमें जिनके लिये राज्य, भोग और सुखादि अभीष्ट हैं, वे ही ये सब धन और जीवनकी आशाको त्यागकर युद्धमें खड़े हैं। गुरुजन, ताऊ-चाचे, लड़के और उसी प्रकार दादे, मामे, ससुर, नाती, साले तथा और भी सम्बन्धीलोग है। मधुसूदन। मुझे मारनेपर भी अथवा तीनों लोकोंके राज्यके लिये भी मैं इन सबको मारना नहीं चाहता; फिर पृथ्वीके राज्यके लिये तो कहना ही क्या है? जनार्दन। धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारकर हमें क्या प्रसन्नता होगी? इन आततायियोंको मारकर तो हमें पाप ही लगेगा। अतएव माधव। अपने ही बान्धव धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारनेके लिये हम योग्य नहीं हैं; क्योंकि अपने ही कुटुम्बको मारकर हम कैसे सुखी होंगे? हमको अपने लिए तो राज्य, सुख, भोग चाहिए नहीं था। यह सब चाहिए था अपने स्वजनों, सम्बन्धियोंके लिए और वे सब हमारे पक्ष या विपक्षमें प्राण त्याग करने आ खड़े हुए हैं। ये नहीं रहेंगे तो राज्य, सम्पत्ति, ऐश्वर्यका हम क्या करेंगे? इससे हमें क्या सुख मिलेगा? जिनकी पुष्प-चन्दनसे हमें पूजा करनी चाहिए उन गुरुजनोंपर अब मुझे घातक प्रहार करना

पड़ेगा? हम विजयी भी हो गये तो इनके रक्तसे सनी सम्पत्ति ही तो हमें प्राप्त होगी। वह हमें सदा जलाती रहेगी या सुख देगी? जनार्दन। मैं कैसा मूर्ख हो गया था कि इस बातको पहिले समझ नहीं सका।

धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्बुद्धि है। लोभने उनकी मतिको मलिन कर दिया है। वे प्रत्यक्ष परिणामको भी नहीं देख पाते हैं और मरने आ खड़े हुए हैं किन्तु हम तो अन्धे नहीं हुए हैं। हमें तो अपने कुलका सम्पूर्ण विनाश प्रत्यक्ष दीख रहा है। अत: हमें इससे क्यों नहीं बचना चाहिए। पृथ्वी का राज्य तो फिर भी पृथ्वी का राज्य है, मुझे इन्द्रलोक त्रिभुवन का राज्य भी नहीं चाहिये दुर्योधन है भी तो मेरा ही भाई ना। माना की उसने हमारे साथ कपट किया है। उसने पांचाली का अपमान कर सारे भरतवंश का अपमान किया है किन्तु है तो वो ज्येष्ठ पिताश्री का ज्येष्ठपुत्र ही यह तो बडे खेद की बात है एक भूमि के टुकड़े के लिये हम लाशे बनने को तैयार हो गये। हे शान्तिदेव यदि सब कुछ खोकर भी मुझे शान्ति मिले और मैं कुल के नाश के पाप से बच जाऊं तो यह शान्ति बहुत सस्ती है मेरे लिये बहुत सस्ती है केशव?

यद्यपि लोभसे भ्रष्टचित्त हुए ये लोग कुलके नाशसे उत्पन्न दोषको और मित्रोंसे विरोध करनेमें पापको नहीं देखते, तो भी जनार्दन। कुलके नाशसे उत्पन्न दोषको जाननेवाले हमलोगोंको इस पापसे हटनेके लिये क्यों नहीं प्रयत्न करना चाहिये? कुलके नाशसे सनातन कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं, धर्मके नाश हो जानेपर सम्पूर्ण कुलको पाप भी बहुत दबा लेता है। कृष्ण। पापके अधिक बढ़ जानेसे कुलकी स्त्रियाँ अत्यन्त दूषित हो जाती हैं और वार्ष्णेय। स्त्रियोंके अत्यन्त दूषित हो जानेपर वर्णसंकर उत्पन्न होता है। वर्णसंकर कुलघातियोंको और कुलको नरकमें ले जानेके लिये ही होता है। लुप्त हुई पिण्ड और जलकी क्रियावाले अर्थात श्राद्ध और तर्पणसे वञ्चित इनके पितरलोग भी अधोगतिको प्राप्त होते हैं। इन वर्णसंकरकारक दोषोंसे कुलघातियोंके सनातन कुल-धर्म और जाति-धर्म नष्ट हो जाते हैं। जनार्दन। जिनका कुल-धर्म नष्ट हो गया है, ऐसे मनुष्योंका अनिश्चित कालतक नरकमें वास होता है, ऐसा हम सुनते आये हैं। हा शोक। हमलोग बुद्धिमान होकर भी महान् पाप करनेको तैयार हो गये हैं, जो राज्य और सुखके लोभसे अपने स्वजनोंको मारनेके लिये उद्यत हैं। इससे तो, यदि मुझ शस्त्ररहित एवं सामना न करनेवालेको शस्त्र हाथमें लिये हुए धृतराष्ट्रके पुत्र रणमें मार डालें तो वह मरना भी मेरे लिये अधिक कल्याणकारक होगा।

कुलमें कोई नहीं रहेगा तो श्राद्ध पिण्डदानकी परम्परा कैसे चलेगी? सुना है कि श्राद्धका लोप पितरोंके नरक-पतनका हेतु होता है। यह युद्ध तो हमारे कुलका ही उच्छेद कर देगा। सब युवा-वृद्ध यदि युद्धमें मारे गये तो उनकी स्त्रियाँ या तो सती हो जायँगी अथवा आचार भ्रष्ट बनेगी।

अनाथ शिशुओंका रुदन, विधवाओंका क्रन्दन, सतियोंका शाप और कुलवधुओंको कुलटा बनानेका कुकर्म- यह युद्ध हमें यही तो देनेवाला है। हम इसीके लिय यहाँ इतने उत्साहसे एकत्र हुए हैं? मैं इस अल्प भूमिखण्डके लिए तो क्या समस्त पृथ्वी अथवा त्रिलोकीके राज्यके लिए भी ऐसा युद्ध करना नहीं चाहता।

इस युद्धकी अपेक्षा तो संजयकी वह सम्मति ही श्रेष्ठ है कि हम पाण्डवोंको कहीं भिक्षा माँगकर अपना जीवन व्यतीत कर देना चाहिए। पहिले भी तो हम प्रथम वनवासके समय भिक्षाजीवी रहे हैं। मुझे उस जीवनमें कोई दोष नहीं दीखता। यह युद्ध करके स्वजनोंका संहार करनेसे वह कहीं श्रेयस्कर है। मैं युद्ध करनेमें सक्षम नहीं हूँ। मेरा शरीर काँप रहा है। शरीरमें रोमांच हो रहा है। हृदय बैठा जा रहा है। नेत्रोंके आगे अन्धकार छा रहा है। मैं अपने हाथों पूज्य गुरुजनोंपर शर-सन्धान करूँ इससे तो कहीं कल्याणप्रद है कि मुझ शस्त्रहीनपर ये शस्त्रसज्ज कौरव टूट पड़ें और मुझे मार डालें। मैं इनका कोई प्रतिकार नहीं करूंगा। मेरी आँखों के आगे अन्धेरा छा रहा है, मेरा कण्ठ शुष्क हो गया, मेरा शरीर थरथरा रहा है। मेरी देह स्वेद से सराबोर हो रही है। मेरी

आत्मा पीड़ित हो रही है। मेरी आँखे आँसुओं से भर रही है। जीवन में पहली बार गाण्डीव मेरे हाथसे छूट रहा है।

कृष्ण बोले, तो क्या सोचा है पार्थ? अर्जुन बोले, सोचना क्या है केशव। मेरा मन कुछ सोचने की स्थिति में नहीं है। हाथों से गांडीव जैसे छूटा जा रहा है। संभवत: मैं युद्ध नहीं करना चाहता।

कृष्ण मौन रहे। मन-ही-मन वे हंस रहे थे। यदि पितामह और आचार्य का वध न करने की ही बात होती, तो जैसे पितामह ने प्रतिज्ञा की थी कि वे शिखंडी और पांडवों का वध नहीं करेंगे, वैसे ही अर्जुन भी प्रतिज्ञा कर सकता था कि वह पितामह और आचार्यका वध नहीं करेगा। वह भी उनका उसी प्रकार प्रतिकार कर सकता था, जैसे वे पांडवों की सेना का करना चाहते थे। कृष्ण स्वयं भी तो शस्त्र ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा कर युद्धक्षेत्र में आये है। अर्जुन तो इस प्रकार ऊर्जाशून्य हो रहा है, जैसे अभी धरती पर गिर पड़ेगा। ये शारीरिक लक्षण ही नहीं हैं। यह तो उसका मोहग्रस्त मन है, जो उसके शरीर को सर्वथा अक्षम किए दे रहा है।

कृष्ण देख रहे थे कि यह वह अर्जुन था, जो अपनी तपस्या के बल पर निर्विकल्प समाधि तक जा चुका था; किंतु उसके पश्चात् भी तो वह अपने मोह से मुक्त नहीं हो पाया था। उसके संस्कार अभ्यासवश पुन: लौट आए थे। जिसके अपने भीतर का यह महासमर अभी समाप्त नहीं हुआ था, वह बाहर का यह समर कैसे लड़ेगा। मन अपनी ध्यानभूमि से नीचे उतर आया था, और अब संसार का ही हो गया था। लौट आया था उसका मोह। उसका मन उस उच्च धरातल पर स्थिर नहीं रह पाया था। तो क्या उसकी युद्धक्षेत्र में आते ही यह स्थिति होती। क्या यह उसकी कायरता है? दुर्योधन ने भी तो खड़े किए हैं अपने भाई और पुत्र युद्धक्षेत्र में। वह तो विचलित दिखाई नहीं देता। क्या उसे अपनी संतान से प्रेम नहीं है, अथवा वह अर्जुन के समान कायर नहीं है। नहीं। कायर तो अर्जुन भी नहीं है। दुर्योधन को भी अपने पुत्रों से प्रेम है, किंतु कदाचित उसे उनसे भी अधिक स्वयं अपने-आप से प्रेम है। वह हस्तिनापुर के राज्य के लिए किसी के भी प्राण ले सकता है। वह अर्जुन के समान संवेदनशील नहीं है, अत: परिणाम के विषय में सोचता ही नहीं है। अपने कर्म को जानता है, उसके परिणाम को नहीं। तामसिक कर्म है उसका। अर्जुन चिंतन करता है। परिणाम की कल्पना करता है। उसका मोह है, जो उसे कायर बना रहा है। कृष्ण यदि अर्जुन को उसके भाइयों, पुत्रों और निकट संबंधियों की रक्षा का आश्वासन दे दें तो क्या वह इस स्थिति से उबर सकेगा? नहीं शायद नहीं। तब वह अपने और संबंधियों की रक्षा की कामना करेगा। अपने पक्ष के लोगों को बचाना चाहेगा। विपक्ष में भी ऐसे बहुत से लोग हैं, जिनकी रक्षा करना चाहेगा। ऐसे तो युद्ध नहीं हो सकता। युद्ध का परिणाम तो अनिश्चित ही होना चाहिए। अर्जुन का मन किसी चंचल और भीत मृगशावक के समान छलाँगें लगा रहा था। वह भयंकर से भयंकर विध्वंसकारी कल्पनाएँ कर रहा था। युद्धक्षेत्र में खड़े ये सारे व्यक्ति मारे जाएँगे। वंश के वंश ही समाप्त हो जाएँगे। जिन वंशों के सारे पुरुष वीरगति को प्राप्त हो जाएँगे, उनकी स्त्रियां क्या करेंगी? उन स्त्रियों की रक्षा कौन करेगा और उन्हें धर्मभ्रष्ट होने से कौन बचाएगा। जाने वे किन पुरुषों के आधिपत्य में चली जाएँगी। जाने किस वर्ण, व्यवसाय और प्रकृति के पुरुषों के पल्ले जा पड़ेंगी। उन अभागी स्त्रियों को अपनी इच्छा, प्रकृति तथा संस्कारों के प्रतिकूल उन पुरुषों के साथ रहना होगा तो उनसे उत्पन्न संतान अंत:विभाजित और विक्षिप्त नहीं होगी क्या? अर्जुन का मन इस दुष्कल्पना को ही सहन नहीं कर पा रहा था, तो इस वास्तविकता का सामना वह कैसे करेगा?

अर्जुन ने बोला, हे अच्युत। इस समय मेरी स्वाभाविक क्षात्रवृत्ति नष्ट हो गयी। इस क्षण मेरे लिए क्या उचित और अनुचित है। क्या धर्म है और क्या अधर्म के भ्रम में फँस गया हूँ अत: मुझे निश्चयपूर्वक बतायें कि सत्य क्या है?

अर्जुन ने अनायास ही गांडीव त्याग दिया और रथ के पृष्ठभाग में जाकर हताश-सा बैठ गया। कृष्ण ने पूछा, यह क्या है

अर्जुन? अर्जुन ने कहा, मैं युद्ध नहीं करूँगा केशव। अपने गुरुओं को मार, कृतघ्नता जैसा पाप नहीं कर सकता मैं। कृतघ्नता अधर्म है। किंतु मेरे मन पर तो इस समय जैसे महानाश का आतंक छा गया है। ये सारे लोग, जो इस युद्धक्षेत्र में एकत्रित हुए हैं, इनमें से कोई भी बचेगा अथवा नहीं, कह नहीं सकता। और इस महानाश का सूत्रपात मैं करूँ। यह नहीं हो सकता।

मेरी बुद्धि मोहित हो रही है। मैं कर्त्तव्यका निर्णय करनेमें असमर्थ हो रहा हूँ। माधव। मैं आपका शिष्य हूँ। आपकी शरण हूँ। ज्ञानधन गोविन्द। आप मुझे मार्गदर्शन करावें। मुझे क्या करना चाहिए, इसको आप ही समझावें। मेरा उग्र क्षत्रिय स्वभाव तो स्वजनोंकी मृत्यु सम्मुख देखकर सो गया है। धर्मका निर्णय करनेमें मैं असमर्थ हो गया हूँ। विश्वके परमगुरु। मैं आपके पद-पंकजोंमें प्रपन्न हूँ। मेरी रक्षा करो। अर्जुनने अन्तमें कहा- अच्युत। मैं युद्ध नहीं करूँगा। यह कहकर उसने धनुष हाथसे नीचे डाल दिया। त्रोण उतार दिये और रथके पिछले भागमें सिर झुकाकर बैठ गया।

कान्तिहीन, मस्तक झुकाये, रुदन करते, काँपते स्वरसे रोमांचित की भाँति शक्ति, साहस, शौर्य शून्य अर्जुनकी अवस्था शोचनीय हो गयी थी। कोई अत्यन्त शुद्ध हृदय, स्वार्थ शून्य, सहृदय व्यक्ति ही सम्मुख संहार देखकर इतना कातर हो सकता है। शुद्धान्तकरण, परदु:खकातर, स्वयंके समस्त सुख, स्वार्थसे सर्वथा विरक्त, अत्यन्त द्रवित हृदय अर्जुनसा उत्तम अधिकारी गीताके ज्ञानोपदेशका सृष्टिमें दूसरा मिलना सम्भव नहीं था। अत: विश्वैक गुरुकी वाणीको उस अलौकिक ज्ञान-गंगाके आविर्भावकी भूमिका प्राप्त हो गयी।

सञ्जय बोले, रणभूमिमें शोकसे उद्विग्न मनवाला अर्जुन इस प्रकार कहकर, बाणसहित धनुषको त्यागकर रथके पिछले भाग में बैठ गया। मैं युद्ध नहीं करूँगा इतना कहकर आकुलप्राण अर्जुन साश्रुनयन रथ के पृष्ठभाग में हाथों से मुख ढाँककर बैठ गये। उन भीषण पराक्रमी पुरुष-सिंह को इस प्रकार रणक्षेत्र में विचलित होते देख महापुरुष श्रीकृष्ण उनके मोह निवारण हेतु गुरुगम्भीर स्वर में धर्माधर्म की विवेचना करने लगे और ओजमयी वाग्धारा के रूप में, देवदुर्लभ छन्दमंजरी गीतामृत-सी उनके पद्ममुख से झरने लगी।

**२) सांख्ययोग-** वैशम्पायन बोले, जनमेजय संजय धृतराष्ट्र को युद्ध का आँखों देखा विवरण सुना रहा था। धृतराष्ट्र से सञ्जय बोले, उस प्रकार करुणासे व्याप्त और आँसुओंसे पूर्ण तथा व्याकुल नेत्रोंवाले शोकयुक्त उन अर्जुनके प्रति मधुसूदनने इसप्रकार कहा। कृष्ण बोले, अर्जुन। तुझे इस असमयमें यह मोह किस हेतुसे प्राप्त हुआ? क्योंकि न तो यह श्रेष्ठ पुरुषोंद्वारा आचरित है, न स्वर्गको देनेवाला है और न कीर्तिको करनेवाला ही है। इसलिये हे अर्जुन। नपुंसकताको मत प्राप्त हो, तुझमें यह उचित नहीं जान पड़ती। परंतप। हृदयकी तुच्छ दुर्बलताको त्यागकर युद्धके लिये खड़ा हो जा।

अर्जुन बोले, मधुसूदन। मैं रणभूमिमें किस प्रकार बाणोंसे भीष्म पितामह और द्रोणाचार्यके विरुद्ध लड़ूँगा? क्योंकि अरिसूदन। वे दोनों ही पूजनीय हैं। इसलिये इन महानुभाव गुरुजनोंको न मारकर मैं इस लोकमें भिक्षाका अन्न भी खाना कल्याणकारक समझता हूँ; क्योंकि गुरुजनोंको मारकर भी इस लोकमें रुधिरसे सने हुए अर्थ और कामरूप भोगोंहीको तो भोगूँगा। हम यह भी नहीं जानते कि हमारे लिये युद्ध करना और न करना- इन दोनोंमेंसे कौन-सा श्रेष्ठ है, अथवा यह भी नहीं जानते कि उन्हें हम जीतेंगे या हमको वे जीतेंगे और जिनको मारकर हम जीना भी नहीं चाहते, वे ही हमारे आत्मीय धृतराष्ट्रके पुत्र हमारे मुकाबलेमें खड़े हैं। इसलिये कायरतारूप दोषसे उपहृत हुए स्वभाववाला तथा धर्मके विषयमें मोहिचित्त हुआ मैं आपसे पूछता हूँ कि जो साधन निश्चय ही कल्याणकारक हो, वह मेरे लिये बताये; मैं आपकी शरणागति हूं। क्योंकि भूमिमें निष्कण्टक, धन-धान्यसम्पन्न राज्यको और देवताओंके स्वामीपनेको प्राप्त होकर भी मैं उस उपायको नहीं देखता हूँ, जो मेरी इन्द्रियोंके सुखानेवाले शोकको दूर कर सके।

सञ्जय बोले, राजन्। निद्राको जीतनेवाले अर्जुन अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराजके प्रति इस प्रकार कहकर फिर श्रीकृष्ण से युद्ध नहीं करूँगा यह स्पष्ट कहकर चुप हो गये। अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराज दोनों सेनाओंके बीचमें शोक करते हुए उन अर्जुनको हँसते हुए इसप्रकार बोले।

मेरा नाम लेकर पुकारने से पहिले मुझे यह बताओ पार्थ कि इस समय विनाश के बादल जब चारों तरफ से उमड आये है और धर्म रक्षा और विजय की आस लिये तुम्हारी ओर देख रहा है, इस संकट की घड़ी में तुमने कायरता के इन भावों को हृदय में आने कैसे दिया? श्रेष्ठ पुरुष तो यों विशाद में डूबा नहीं करते। धर्म और अधर्म के बीच इस संघर्षमय निर्णायक घडी में नपुंसक मत बनो पार्थ। हे परन्तप, हे शत्रु संघारक, हे धनंजय तुम्हारे ये भाव अनार्य है। ये तुम्हारा स्वर्ग से पतन करा देंगे और कीर्ति से भी। और तुम स्वयं ही अपने तिरस्कार का कारण बन कर रह जावोगे इसलिये हे पार्थ हृदय की इस दुर्बलता का त्याग करो और युद्ध के लिये खड़े हो जाओ। अर्जुन बोले, खडा कैसे हो जाऊ मधुसूदन? पितामह का वध करने के लिये खड़ा कैसे हो जाऊं? गुरुश्रेष्ठ पर प्रहार करने के लिये कैसे खडा हो जाऊं। जो मेरे लिये पूजनीय है उनसे युद्ध कैसे करू? जिन गुरुओं ने मुझे विजय का मन्त्र सिखाया उन्हे पराजित करने के लिये कैसे खडा हो जाऊं? इन महापुरुषों पर हाथ उठाने से तो कहीं अच्छा है कि मैं यह हाथ भिक्षा के लिये फैलाऊं। भिक्षा में मिली हुई रोटी इन महापुरुषों के रक्त से सनी हुई भी नहीं होगी। हे हृषीकेश मैं तो यह भी नहीं समझ पा रहा हूं कि इस युद्ध में विजय श्रेष्ठ है या पराजय। धृतराष्ट्र पुत्र शत्रुओं की भांति मेरे सामने खडे है। मैं यह भलीभांति जानता हूं कि उनका वध किये बिना जीना सम्भव नहीं है। किन्तु हे केशव उनका वध करने के उपरान्त भी जीना सहज नहीं होगा। क्या वो मेरे भाई नहीं है केशव? कृष्ण बोले अवश्य है। अर्जुन बोला, बस केवल इतना ही कहना है आपको। कृष्ण बोले, तुमने केवल यही तो पूछा था पार्थ किन्तु यह युद्ध सम्बन्धों और रिश्ते नातों की स्थापना के लिये नहीं है पार्थ। अपने कर्त्तव्य को पहचानो, तब निर्णय लो क्योंकि निर्णय तो तुम्ही को लेना पडेगा। यदि तुम कही यह चाहते हो कि निर्णय मैं लू और तुम इस युद्ध के उत्तरदायित्व से बच जाओ तो यह नहीं होगा पार्थ, कदापि नहीं होगा क्योंकि यह युद्ध भी तुम्हारा है और इस युद्ध का परिणाम भी तुम्हारा ही होगा। अर्जुन बोला, मुझे अपने कर्तव्य का मार्ग ठीक से दिखाइये केशव। इसलिये हे वासुदेव आप मेरी आत्मा के भी सारथी बन जाइये। मैं जानता हूँ कि मैं धर्म और अधर्म के बीच में खडा हूं किन्तु यह निर्णय नहीं ले पा रहा हूं कि धर्म किस ओर है और अधर्म किस ओर? मेरा मार्गदर्शन कीजिये केशव। इन्द्रियों को सुखा देने वाले शोक से बचने का उपाय दिखलाइये मुझे। अपनी इस मानसिक अवस्था में मैं युद्ध नहीं कर सकता गोविन्द। मैं युद्ध नहीं कर सकता। यह कहकर कुन्ती पुत्र अर्जुन चुप हो गये।

महाराज धृतराष्ट्र बोले, किन्तु संजय प्रिय अर्जुन ने प्रश्न तो नितान्त अत्यन्त मौलिक उठाये है। वो भला अपने तातश्री और आचार्यों से कैसे युद्ध कर सकता है? क्षत्रिय सभ्यता के भी तो कुछ लक्षण होते है। संजय बोला, इस विषय में भला मैं क्या कह सकता हूं महाराज। मैं तो क्षत्रिय हूं ही नहीं। धृतराष्ट्र बोले, किन्तु क्षत्रिय की भांति सोच तो सकते हो। हे संजय मुझे तो प्रिय अर्जुन की बातों से ऐसे लगता है कि वो इन्द्रप्रस्थ नहीं मांगेगा और यदि ऐसा हुआ तो दुर्योधन के दुराग्रह की प्यास भी बुझ जायेगी और तब मैं उसे प्रिय पांडवों को पांच ग्राम देने को भी मना लूंगा। युद्ध तो यू समझो कि अब होगा ही नहीं क्योंकि यदि अर्जुन युद्ध नहीं करेगा तो वहां से फिर युद्ध करेगा कौन? वो तो अब गांडीव उठानेवाला नहीं है संजय क्योंकि जब तक उसे अपने प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलते तब तक वो युद्ध के लिये तैयार नहीं होगा। उसके प्रश्नों के उत्तर तो स्वयं देवकीनन्दन के पास भी नहीं हो सकते। हे संजय तनिक देखो तो देवकीनन्दन इस समय उसे क्या कह रहे है? संजय बोला, जो आज्ञा।

हे भरत वंशज हृषीकेश तो निद्रा को जीतनेवाले गुडाकेश को देखकर मुस्कुरा रहे हैं। कृष्ण बोले, हां पार्थ जो चले गये सो चले गये और ज्ञानी तो न जानेवालों का शोक करते हैं और न ही उनका जो नहीं गये। वे न तो विगत के लिये शोक करते और न अगत के लिये। तुम्हारी शैली तो ज्ञानियों की ही जैसी है पर बात तो तुम मूर्खों जैसी कर रहे हो। शोक करने से पहिले तुम यह तो देखो जिनके लिये तुम शोक कर रहे हो वे तो शोक के योग्य ही नहीं है। अर्जुन बोला, तो क्या पितामह, गुरुश्रेष्ठ आचार्य शोक के योग्य नहीं है केशव? कृष्ण बोले, यदि वे शोक के योग्य होते तो मैं यह कहता ही क्यों पार्थ? तुम सत्य को समझो पार्थ कि मूल तत्व शरीर नहीं आत्मा है और मृत्यु उसकी यात्रा का अन्त भी नहीं है क्योंकि उसकी यात्रा तो अनन्त है। मृत्यु तो केवल एक पडाव है पार्थ, सांस का अन्त पवन का अन्त नहीं है। यो समझो पार्थ प्राणी तो पहिले बालक होता है, फिर वह बालक युवा हो जाता है और वही बाद में वृद्ध और फिर मृत्यु किन्तु ये यात्रा तो शरीर की है, आत्मा तो इससे भी आगे जाता है। वो एक शरीर को त्यागकर दूसरा अन्य शरीर धारण कर लेता है इसलिये जो यात्रा मृत्यु पर समाप्त हो जाये वो तो केवल शरीर की यात्रा है पार्थ। आत्मा की यात्रा तो अनन्त है पार्थ और उसकी यात्रा के एक बिन्दु पर शरीर पीछे छूट जाता है और यात्री आगे निकल जाता है और वो बिल्कुल वैसे ही नया शरीर धारण कर लेता है जैसे हम पुराना वस्त्र उतारकर नया वस्त्र पहिन लेते है। हे पार्थ विनाश तो आत्मा को छू ही नहीं सकता तो फिर शोक कैसा? शोक किसके विनाश का, क्या वस्त्र के विनाश का? किन्तु वस्त्र तो अमर नहीं होता वो तो त्यागे जाने के लिये ही होता है और आत्मा मरता नहीं, कभी नहीं मरता।

महाराज धृतराष्ट्र ने संजय को दायित्व सौंपा की वे दिन-प्रतिदिन भारतों के इस महायुद्ध का वृत्तान्त सविस्तार में सुनाएँ क्योंकि नेत्र ज्योतिहीन वृद्ध महाराज भी भारत-युद्ध की स्थिति से अवगत रहें। सूतनन्दन संजय कितनी बार विह्वल हो उठते थे, नेत्र छलछला जाते थे।

व्यक्तिका अहंकार ही है कि वह कर्ता है। प्रत्येक प्राणी अपने ही प्रारब्धके अनुसार सुख दु:खका भोग करता है और सबकी मृत्यु एवं मृत्युका हेतु भी निश्चित है। जगतका संचालक एक समर्थ, सर्वज्ञ, ईश्वर है। इसे मानकर भी हम जब अपने या अन्यके पाप-पुण्यका करणीय अकरणीय का विचार करते है तो इसके मूलमें कर्तृत्वाभिमान अथ च अज्ञान ही होता है। पश्यतान् कुरुनीति, श्रीकृष्णने कहा, इन कुरुओंको करनेवालोंको, कर्तृत्वके अभिमानियोंको देखो।

अर्जुन स्वयं भी अभी उसी भूमिकामें था अत: उसे वहाँ सब अपने सगे सम्बन्धी ही दिखाई पड़े। वह उनके संहारकी कल्पनासे ही अत्यन्त अवसन्न हो उठा। अर्जुनने कहा- कार्पण्य दोपोपहत स्वभाव: कृपणताके दोषसे मेरा स्वभाव उपहृत हो गया। श्रीकृष्णने इसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने प्रारम्भ ही किया- क्लैव्यं मास्म गम: पार्थ अर्जुन। नपुंसक मत बनो। यह तुम्हारा कार्पण्य नहीं, नपुंसकता है। पुरुषको देश, काल परिस्थिति तथा अपनी योग्यताके अनुसार प्राप्त कर्त्तव्यका पालन अहंकार रहित होकर करना चाहिए। इसमें जब अपने अथवा दूसरोंका मोह मध्यमें आ जाता है तो व्यक्तिकी बुद्धि समूढ़ हो जाती है। यह क्षुद्रं हृदय दौर्बल्य ही है।

कृष्ण बोले, अर्जुन। तू न शोक करनेयोग्य मनुष्योंके लिये शोक करता है और पण्डितोंके-से वचनोंको कहता है। परंतु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिये भी पण्डितजन शोक नहीं करते। न तो ऐसा ही है कि मैं किसी कालमें नहीं था या तू नहीं था अथवा ये राजालोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे। जैसे जीवात्माकी इस देहमें बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है; उस विषयमें धीर पुरुष मोहित नहीं होता। कुन्तीपुत्र। सर्दी, गर्मी और सुख-दु:खको देनेवाले इन्द्रिय और विषयोंके संयोग तो

उत्पत्ति-विनाशशील और अनित्य हैं; इसलिये भारत। उनको तू सहन कर; क्योंकि पुरुषश्रेष्ठ। दु:ख-सुखको समान समझनेवाले जिस धीर पुरुषको ये इन्द्रिय और विषयोंके संयोग व्याकुल नहीं करते, वह मोक्षके योग्य होता है। असत् वस्तुकी तो सत्ता नहीं है और सत्का अभाव नहीं है। इस प्रकार इन दोनोंका ही तत्व ज्ञानी पुरुषोंद्वारा देखा गया है। नाशरहित तो तू उसको जान, जिससे यह सम्पूर्ण जगत्- दृश्यवर्ग व्याप्त है। इस अविनाशीका विनाश करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है। इस नाशरहित, अप्रमेय, नित्यस्वरूप जीवात्माके ये सब शरीर नाशवान् कहे गये हैं। इसलिये भरतवंशी अर्जुन। तू युद्ध कर। जो इस आत्माको मारनेवाला समझता है तथा जो इसको मरा मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते क्योंकि यह आत्मा वास्तवमें न तो किसीको मारता है और न किसीके द्वारा मारा जाता है। यह आत्मा किसी कालमें भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला ही है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है; शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता।

यह तो मोह के एक ही आघात से सारा ज्ञान भूल गया। इसे स्मरण नहीं है कि जो पंचभूत संघटित होकर शरीर को आकार देते हैं, वे ही विघटित होकर उस आकार का रूपांतरण कर देते हैं। उसे नाश मानता है यह। संघटन और विघटन के संबंध को नहीं जानता। संघटन को सत्य मानता है, विघटन को नहीं। क्या तुम बाण नहीं चलाओगे तो भीष्म और द्रोण मरेंगे नहीं? यह सारा विनाश रुक जाएगा? अर्जुन बोला, कह नहीं सकता। कदाचित् नहीं रूकेगा।

कृष्ण ने उसकी ओर देखा, आततायी अपने पाप से मारा जाता है। किसी और के मारे नहीं। देहधारी की मृत्यु उसके अपने शरीर में ही निवास करती है। अर्जुन बोला, जानता हूं।

कृष्ण बोले, जानते हो किंतु मानते नहीं हो। जो मरता है, वह शरीर है। हम शरीर नहीं हैं, आत्मा हैं। आत्मा का न संघटन होता है, न विघटन। वह अविकारी है। वह पंचभूतों से संघटित नहीं हुई, इसलिए उसका विघटन भी संभव नहीं है। हम में से ऐसा कोई नहीं है, जिसका अस्तित्व आत्मा के रूप में किसी काल में नहीं था, अथवा भविष्य में किसी काल में नहीं होगा। और शरीर का क्या है, वह तो ऋतु में आए पुष्प के समान खिलता और मुरझा जाता है। कोई नहीं भी तोड़ता तो भी मुरझा कर टहनी से गिर जाता है। जिन राजाओं ने युद्ध नहीं किए, क्या उनका देहांत नहीं हुआ? जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है और जो मरता है, उसका पुनर्जन्म निश्चित है। आत्मा पुराना शरीर त्याग उसी प्रकार नया शरीर धारण करती है, जैसे शरीर पुराना वस्त्र त्याग नया वस्त्र धारण करता है। असत् की सत्ता नहीं हो सकती और सत् का अभाव नहीं हो सकता।

अर्जुन बोला, मैं क्या करूं केशव? हमारा शरीर वस्त्र के समान ही सही, किंतु जिन्हें जीवित देखना चाहता हूँ, जिन्हें इसी शरीर के रूप में जानता हूँ, उनके प्राण हरण करने का कर्म कैसे कर सकता हूँ? कृष्ण ने मुस्कराकर उसकी ओर देखा और पूछा, यदि युद्ध विनाश है तो भी क्या यह तुम्हारी इच्छा से प्रस्तुत हुआ है? तुमने चाहा था कि युद्ध हो? अर्जुन ने उत्तर दिया, नहीं। कृष्ण बोले, जब विनाश तुम्हारी इच्छा से प्रस्तुत नहीं होता। जब विनाश तुम्हारी इच्छा से रुकता नहीं। तो तुमने यह कैसे मान लिया कि यह तुम्हारे ही कर्मों का फल है? तुम कर्म नहीं करोगे तो भावी यह नहीं होगी, कुछ और होगी?

अर्जुन कुछ चौंका। ऐसा नहीं लग रहा था कि वे लोग युद्धक्षेत्र में खड़े हैं और कृष्ण उसे युद्ध के लिए प्रेरित कर रहे हैं। कृष्ण तो कुछ और ही कह रहे हैं। वे युद्ध संबंधी बात नहीं कर रहे। वे उससे भिन्न कोई सत्य बता रहे हैं उसको। कह रहे हैं कि वह कर्म नहीं करेगा तो भी भावी वही रहेगी। पर तब कौन करेगा वह कर्म। अर्जुन युद्ध नहीं करेगा, उसका कोई भाई युद्ध नहीं करेगा, उसके शत्रु युद्ध नहीं करेंगे, तो भी भावी वही रहेगी? तो कर्म कौन करेगा?

अर्जुन बोला, किन्तु वे जो सामने खडे है, वो सबके सब होंगे ना केशव इस युद्ध के पश्चात्। कृष्ण बोले, ये होना और ना होना

क्या है पार्थ क्योंकि वो समय तो कभी था ही नहीं जब मैं न था, तुम ना थे या ये सारे लोग नहीं थे और न ही वो समय कभी होगा जब मैं नही होऊंगा, या तुम नहीं होंगे या ये सारे लोग नहीं होंगे। तो फिर तुम यह किस भ्रम में पड रहे हो पार्थ कि वर्तमान जीवन ही सम्पूर्ण जीवन है? वर्तमान जीवन सम्पूर्ण जीवन नहीं है पार्थ। हम थे भी, है भी और हम होंगे भी। अब रहे ये सुख-दु:ख। इनका क्या है? ये तो ऋतुओं की भांति है जो आते-जाते रहते है। हे कुन्तीपुत्र जो सुख और दु:ख दोनों ही को समान समझे और उनसे प्रभावित हुये बिना ही उन्हे झेल जाये वो ही स्थितप्रज्ञ है और वही मोक्ष का अधिकारी भी है।

हे भारत मारने या मरने की आशंका से युक्त हो जाओ क्योंकि मृत्यु तो केवल उसी की हो सकती है ना जिसका जन्म हुआ हो। आत्मा तो कालातीत है। काल से भी परे है पार्थ। जन्म तो जीव का होता है। आत्मा का नहीं और यदि आत्मा जन्म ही नहीं लेता तो फिर उसकी मृत्यु कैसे हो सकती है? आत्मा तो बस है पार्थ। वो काल के दोनों तटों पर भी है और काल की धारा में भी। वो अजन्मा है और नित्य भी, सनातन है, अविकारी है, अविनाशी है। इसलिये मरने और मारने के प्रश्न को लेकर चिंतित होना व्यर्थ है पार्थ। मृत्यु तो केवल शरीर की होती है और उसकी मृत्यु के पश्चात भी आत्मा नहीं मरता। शरीरमें जैसे शैशवसे कौमारावस्था, यौवन तथा वार्धक्यके परिवर्तन होते हैं, इनमें व्यक्ति स्वयं भी कुछ नहीं कर सकता ये कर्मानुसार नैसर्गिक ही होते हैं, वैसे देहान्तर प्राप्ति भी कर्मानुसार प्राप्त होनेवाली नैसर्गिक अवस्था ही है। इसमें भी व्यक्ति स्वयं अथवा दूसरे कुछ कर नहीं सकते।

अब प्रश्न रहता है सुख-दु:खका। ये सुख-दु:ख भी व्यक्तिको उसके कर्मानुसार ही प्राप्त होते है। इनमें दूसरे केवल निमित्त बनते हैं, वस्तुत: कारण नहीं होते और सुख-दु:ख केवल मात्र स्पर्श हैं, शरीर तथा शरीरके हेतुभूत तन्मात्राओंमें तादात्म्यके कारण हैं। इनमें न सुख स्थायी है, न दु:ख। ये आने-जानेवाले वेग हैं। जब इन्हें रोका नहीं जा सकता, कर्मानुसार इन्हें आना जाना ही है तो इन्हें सहन करनेका अभ्यास कर लिया जाना चाहिए। यह सुख-दु:ख जिसे विचलित नहीं करते, व्यथित नहीं करते, वह अमृतत्वको प्राप्त होता है। शरीरमें जो चेतना है वह एक है, सर्वव्यापी है, सर्वकारण कारण है। वह अविनाशी है। उसे कोई किसी प्रकार मार नहीं सकता और शरीर मरणधर्मा है। उसकी मृत्यु टाली नहीं जा सकती। अत: अनिवार्य मृत्युके लिए शोक करना अनुचित है।

पृथापुत्र अर्जुन। जो पुरुष इस आत्माको नाशरहित, नित्य, अजन्मा और अव्यय जानता है, वह पुरुष कैसे किसको मरवाता है और कैसे किसको मारता है? जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्रोंको ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरोंको त्यागकर दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होता है। इस आत्माको शस्त्र नहीं काट सकते, इसको आग नहीं जला सकती, इसको जल नहीं गला सकता और वायु नहीं सुखा सकता; क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य है; यह आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य और नि:संदेह अशोष्य है तथा यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, अचल, स्थिर रहनेवाला और सनातन है। यह आत्मा अव्यक्त है, यह आत्मा अचिन्त्य है और यह आत्मा विकाररहित कहा जाता है। इससे अर्जुन। इस आत्माको उपर्युक्त प्रकारसे जानकर तू शोक करनेके योग्य नहीं है और यदि तू इस आत्माको सदा जन्मनेवाला तथा सदा मरनेवाला मानता हो, तो भी महाबाहो। तू इस प्रकार शोक करनेके योग्य नहीं हैं; क्योंकि इस मान्यताके अनुसार जन्मे हुएकी मृत्यु निश्चित है और मरे हुएका जन्म निश्चित है। इससे भी इस बिना उपायवाले विषयमें तू शोक करनेके योग्य नहीं है। अर्जुन। सम्पूर्ण प्राणी जन्मसे पहले अप्रकट थे और मरनेके बाद भी अप्रकट हो जानेवाले हैं, केवल बीचमें ही प्रकट हैं; फिर ऐसी स्थितिमें क्या शोक करना है? कोई एक महापुरुष ही इस आत्माको आश्चर्यकी भाँति देखता है और वैसे ही दूसरा कोई महापुरुष ही इसके तत्वका आश्चर्यकी भाँति वर्णन करता है तथा दूसरा कोई अधिकारी पुरुष ही इसे आश्चर्यकी

भाँति सुनता है और कोई-कोई तो सुनकर भी इसको नहीं जानता। अर्जुन। यह आत्मा सबके शरीरोंमें सदा ही अवध्य है। इसलिये सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये तू शोक करनेको योग्य नहीं है।

तथा अपने धर्मको देखकर भी तू भय करनेयोग्य नहीं है; क्योंकि क्षत्रियके लिये धर्मयुक्त युद्धसे बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्त्तव्य नहीं है। पार्थ। अपने-आप प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्गके द्वाररूप इस प्रकारके युद्धको भाग्यवान क्षत्रियलोग ही पाते हैं; और यदि तू इस धर्मयुक्त युद्धको नहीं करेगा तो स्वधर्म और कीर्तिको खोकर पापको प्राप्त होगा; तथा सब लोग तेरी बहुत कालतक रहनेवाली अपकीर्तिका भी कथन करेंगे; और माननीय पुरुषके लिये अपकीर्ति मरणसे भी बढ़कर है, और जिनकी दृष्टिमें तू पहले बहुत सम्मानित होकर अब लघुताको प्राप्त होगा, वे महारथीलोग तुझे भयके कारण युद्धसे विरत हुआ मानेंगे; और तेरे वैरीलोग तेरे सामर्थ्यकी निन्दा करते हुए तुझे बहुत-से न कहनेयोग्य वचन कहेंगे; उससे अधिक दु:ख और क्या होगा? या तो तू युद्धमें मारा जाकर स्वर्गको प्राप्त होगा अथवा संग्राममें जीतकर पृथ्वीका राज्य भोगेगा। इस कारण अर्जुन। तू युद्धके लिये निश्चय करके खड़ा हो जा। जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दु:ख समान समझकर, उसके बाद युद्धके लिये तैयार हो जा; इस प्रकार युद्ध करनेसे तू पापको नहीं प्राप्त होगा।

शस्त्र जिसे काट नहीं सकता, अग्नि उसे जला नहीं सकती, जल उसे आर्द्र नहीं कर सकता और वायु उसे सुखा नहीं सकती। अब किस चिन्ता में हो पार्थ? अर्जुन बोला, हे जनार्दन क्या मैं केवल एक आत्मा को पितामह कहता हूँ? मैं अपने धूल में सने वस्त्र पहिनकर एक आत्मा की गोद में घुस जाया करता था? वो मुझे श्वेत वस्त्रवाले प्रतियोद्धा सामने खडे है, क्या वो केवल एक आत्मा है? क्या उनके उस शरीर में आप जिसे आत्मा का एक वस्त्र कह रहे है, अनेक बार मुझे आशीर्वाद देने के लिये मेरे शीश पर हाथ नहीं धरा था? क्या वो वृद्ध ब्राह्मण श्रेष्ठ आत्मा है, जिन्होंने मुझे धनुर्विद्या सिखाई है? केशव मैं आत्मा के नित्य होने, पुरातन होने, के अविनाशी होने को ना नहीं कहता पर जिन शरीरों की बात मैं कर रहा हूं वो शरीर भी तो मेरे कुछ लगते है न। आत्मा तो जन्म नहीं लेता केशव किन्तु लोग तो जन्म लेते है केशव। कृष्ण बोले, हां लोग जन्म तो अवश्य लेते है पार्थ किन्तु इस तर्क से आगे बढ़ो महाबाहो। जो जन्म लेगा उसकी मृत्यु तो अवश्यम्भावी है फिर निश्चित का शोक क्यों? जन्म लेनेवाले को एक न एक दिन तो अवश्य मरना ही है और ये मृत्यु भी अन्त नहीं है क्योंकि मरनेवाला फिर जन्म भी लेगा। ये तो एक अटल सत्य है पार्थ और इस अटल सत्य को कोई टाल भी नहीं सकता न तुम, न मैं न कोई और। गंगापुत्र भीष्म के पास तो इच्छा मृत्यु का वरदान है किन्तु मृत्यु तो फिर भी अटल है न पार्थ। जन्म-मृत्यु-फिर जन्म की इस शृंखला में शोक का स्थान कहां है पार्थ? जिन लोगों को तुम सामने खडा देख रहे हो ना पार्थ वो इस जन्म से पहिले भी थे पर क्या थे ये सब तुम नहीं जानते? वो इस जन्म के उपरान्त भी होंगे पर क्या होंगे ये भी तुम नहीं जानते? उनका अस्तित्व तो इस जन्म और मरण के दो बिन्दुओं के इधर या उधर है ही नहीं और यदि है भी तो अज्ञात है, अव्यक्त है अर्थात इस जन्म से पूर्व भी वो तुम्हारे लिये नहीं थे पार्थ। इस जन्म के उपरान्त भी नहीं होंगे। तो हे पार्थ जिनके जीवन का अनिवार्य भी मृत्यु हो और उनके जीवन के इस अनिवार्य अन्त को तुम न टाल सकते हो और न ही बदल सकते हो तो फिर शोक कैसा? और शोक क्यों? ये पितामह, ये गुरुजन ये सब सम्बन्धी, इनमें से किसी को भी इस जन्म के पूर्व से भी नहीं जानते थे पार्थ और न ही इस जन्म के उपरान्त जानोगे। तब तो फिर इनके लिये शोक करना व्यर्थ होगा ना पार्थ।

अर्जुनको युद्धका निमित्त इसलिए बनना चाहिए क्योंकि वह क्षत्रिय है। युद्ध उसको स्वधर्मके अनुसार प्राप्त है। उसने स्वयंको इसके लिए पहिलेसे प्रस्तुत किया। प्रसिद्ध किया है। उसके स्वजन उसीपर निर्भर है। अब यदि वह युद्ध त्याग

करता है तो उसकी अपकीर्ति होगी। स्वजनोंके साथ विश्वासघात होगा। शत्रु उसे कायर कहकर उसकी निन्दा करेंगे। यह निन्दा सह लेना उसके स्वभावमें नहीं है। तब वह अपने स्वभाव विवश क्रोधावेशमें युद्ध करेगा ही। वह क्रोधावेश अनर्थकारी होगा। अत: सोच-समझकर, मोह और क्रोधसे रहित होकर उसे कर्त्तव्यपालनके लिए युद्ध करना चाहिए। युद्धमें विजयी होनेपर प्रत्यक्ष लाभ है और मारे जानेपर परलोकमें कल्याणका शास्त्र आश्वासन देते हैं। अत: अर्जुनका जैसा अधिकार है, उसके अनुसार युद्ध करना ही उसका आवश्यक कर्तव्य इस समय है। उसे सुख-दु:ख, हानि-लाभ, जय-पराजयकी चिन्ता त्यागकर कर्त्तव्य पालनके रूपमें युद्ध करना चाहिए। इसमें उसे कोई पापस्पर्श नहीं करेगा।

कृष्ण ने जो उपदेश अर्जुन को दिया उसमें जीवन का सार समाया था। कृष्ण बोले, हे अर्जुन जिसका शोक नहीं करना चाहिए, उसका तू व्यर्थ ही शोक कर रहा है। बड़े दिव्य ज्ञान की बातें कर रहा है। हे पार्थ, किसीके प्राण गयें अथवा चलें जाएँ ज्ञानी पुरुष उसका शोक नहीं करते। ऐसा नहीं था कि तू मैं अथवा ये सभी योद्धा पहले कभी नहीं थे। भविष्य में भी हम नहीं होंगे ऐसा भी नहीं है। जिससे यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त है वह मूल आत्मतत्व अविनाशी है, अमर है। इस तत्व का नाश करने में कोई समर्थ नहीं है। हे कौन्तेय, इस आत्मतत्व को माननेवाला मैं हूँ ऐसा जो समझता है अथवा उसे मारा जा सकता है, ऐसा जो सोचता है वे दोनों ही अज्ञानी है। हे भारत यह आत्मा न किसी को मारती है, न स्वयं किसी के हाथों मारी जाती है। वह न कभी जन्म लेती है, न कभी मरती है। ऐसा भी नहीं है कि यह एक बार होकर पुन: नहीं होगी, ये अजन्मा, अविनाशी, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। जिस प्रकार मनुष्य अपने पुराने वस्त्र त्यागकर नयें वस्त्र धारण कर लेता है उसी प्रकार आत्मा पुराना शरीर त्यागकर नया शरीर धारण कर लेता है। यह आत्मा न टूटनेवाली है, न जलनेवाली, न भीगनेवाली, न सुखनेवाली है। यह आत्मा स्थिर, शाश्वत, अचल, सनातन तथा चिरन्तन है। हे पराक्रमी पार्थ, आत्मा अव्यक्त है वह मानवी इन्द्रियों को वह सरलता से दिखाई नहीं देती। उसे केवल मन से, बुद्धि से जाना जा सकता है। हे महाबाहु पार्थ, यदि तू समझता है कि आत्मा जन्म लेती है, मरती है, तब भी शोक करना उचित नहीं है। क्योंकि जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु निश्चित है और जिसकी मृत्यु हो गयी उसका जन्म भी निश्चित है। अत: जिस बात पर तेरा वश नहीं है, उसके लिए शोक करना क्या उचित है? हे संयमी गुड़ाकेश, तू क्षत्रिय है, और क्षत्रिय के लिये धर्मयुद्ध से श्रेयस्कर कुछ भी नहीं है। इस समय धीरज छोड़कर यदि तू रणभूमि छोड़ देगा तो पीढ़ियों तक भगोड़े भीरू के नाम से तेरी दुष्कीर्ति होती रहेगी। अर्जुन, किसी भी सज्जन को दुष्कीर्ति मृत्यु से भी अधिक दाहक प्रतीत होती है। तेरे विरुद्ध खड़े हुए सभी महारथी यही समझेंगे कि भयभीत होकर तू इस धर्मभूमि से भाग खड़ा हुआ। तेरे सामर्थ्य की वे असहनीय हँसी उड़ायेंगे, नींदा करेंगे, तेरे शत्रु तेरे विषय में अकथनीय बातें करेंगे। यदि इस युद्ध में तू मारा गया, तो क्षत्रियोचित स्वर्ग को प्राप्त करेगा और यदि विजयी हो गया तो सम्मानपूर्वक पृथ्वीका राज्य भोगेगा अत: हे अजेय अर्जुन, उठ- युद्ध का निश्चय कर। सुख-दु:ख, हानि-लाभ और जय-पराजय सबको समान मानकर युद्ध के लिये तत्पर हो जा। ऐसा करने से तुझे कोई पाप नहीं लगेगा। हे सव्यसाची जैसे सर्वत्र बाढ़ आने पर जल, तालाब, सरोवर का कोई मूल्य नहीं रहता, वैसे ही ज्ञान की प्राप्ति होने पर कर्म पर कोई अधिकार नहीं रह जाता।

धृतराष्ट्र क्रोधित हो बोले, यह देवकीनन्दन मेरे पुत्र अर्जुन को समझा रहा है या भड़का रहा है? क्या अर्जुन यह मान जायेगा संजय कि अपने ज्येष्ठ पिता की ओर उसका कोई दायित्व नहीं है? वंश और सम्बन्धों के महत्वों को वो क्या नकार देगा? और अपने दिव्यास्त्र लेकर मेरे पुत्रों पर टूट पडेगा? संजय बोला, मैं इन प्रश्नों का उत्तर कैसे दूं महाराज। इनके उत्तर या तो देवकीनन्दन कृष्ण या फिर कुन्ती पुत्र अर्जुन ही दे सकते हैं। धृतराष्ट्र बोले, किन्तु मुझे इन प्रश्नों के उत्तर चाहिये संजय इसलिये ध्यान से कान लगाकर सुनो और देखो। संजय बोला, जो आज्ञा।

**दुविधा में धृतराष्ट्र है, युद्ध सका नहीं रोक, योगेश्वर समझा रहे अर्जुन करो ना शोक।**

कृष्ण बोले, हे पार्थ इसमें आश्चर्य की क्या बात है? जैसे वस्त्र का फटना अन्तिम सत्य है वैसे ही मृत्यु शरीर का अन्तिम सत्य है तो फिर सत्य का शोक किसलिये? मनुष्य शरीर और आत्मा नश्वर और अनश्वर का मिश्रण नहीं है। शरीर तो केवल आत्मा का एक साधन है इसलिये शरीर की चिन्ता में पडे बिना ही अपने धर्म का पालन करते रहना चाहिये पार्थ किन्तु यदि तुम अपने क्षत्रिय धर्म के पालन के विषय में सोच रहे हो पार्थ तब भी तुम्हे युद्ध ही करना चाहिये क्योंकि अधर्म के विरुद्ध अस्त्र-शस्त्र उठाना ही क्षत्रिय का धर्म है और आज अधर्म धर्म के विरुद्ध शस्त्र उठाये खडा है इसलिये हे पार्थ अपने क्षत्रिय धर्म का पालन करो। अर्जुन बोला, हे केशव आपसे यही पूछने तो मैं आपको यहां लाया हूं कि मेरा कर्त्तव्य क्या है? मेरा धर्म क्या है केशव? कृष्ण बोले, और स्वयं तुम क्या हो पार्थ, तुम कौन हो? अर्जुन बोला, मैं द्रोण शिष्य अर्जुन। कृष्ण मुस्कराये और बोले और इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हो? अर्जुन बोला, मैं कुन्ती पुत्र अर्जुन हूँ। कृष्ण बोले और ? अर्जुन बोला, मैं क्षत्रिय हूं केशव। कृष्ण बोले, यदि तुम क्षत्रिय न रहे होते पार्थ तो द्रोण शिष्य भी नहीं होते और हे कौन्तेय कुन्ती पुत्र होने के नाते भी तुम क्षत्रिय ही हो तो फिर तुम्हारी तीनों पहिचाने क्षत्रिय पहिचान ही है इसलिये क्षत्रिय धर्म ही तुम्हारा धर्म है। उस धर्म का पालन करो। अधर्म के विरुद्ध शस्त्र उठाना ही क्षत्रिय धर्म है। अन्याय और अनीति के विरुद्ध शस्त्र उठाना ही धर्म है। और यदि इस निर्णायक घडी में तुमने सत्य के पक्ष और असत्य के विरोध में शस्त्र नहीं उठाये पार्थ तो तुम्हारे धर्म के साथ-साथ तुम्हारी उज्ज्वल कीर्ति भी नष्ट हो जायेगी और यदि ऐसा हुआ पार्थ तो केवल तुम्हारे विरोधी ही नहीं सम्पूर्ण समाज तुम्हे कलंकित और का-पुरुष कहेगा और आनेवाली पीढ़ियां तुम्हे कायर और पापी मानेगी इसलिये हे महाबाहो विजय और पराजय, जन्म और मृत्यु, सुख और दु:ख के प्रश्नों में मत उलझो। युद्ध करो। यदि इस युद्ध में तुम्हारी विजय हुई तो पृथ्वी का राज्य और यश भोगेंगे और यदि वीरगति को प्राप्त हुये तो भी यश के साथ-साथ स्वर्ग की प्राप्ति होगी। इसलिये हे कौन्तेय उठो, सुख-दु:ख, लाभ-हानि, जय-पराजय सबको समान समझो और युद्ध करो। यही तुम्हारा क्षत्रिय कर्त्तव्य भी है और धर्म भी।

**आत्मा तो मरता नहीं, मर जाती है देह, मन में तुम रखो नहीं द्विविधा या सन्देह।**

अर्जुन बोला, मेरा हाथ तो अब भी गांडीव की ओर नहीं बढ रहा है केशव मेरी समझ में तो अभी भी यह नहीं आ रहा है कि इस युद्ध से लाभ क्या होगा? कृष्ण बोले, लाभ, हानि ये दोनों ही सापेक्ष शब्द है धनंजय। मैं जानता हूँ कि तुम्हे पृथ्वी या स्वर्ग के सुख भोग की कामना नहीं है इसलिये हे कौन्तेय सुख-दु:ख, लाभ-हानि, जय पराजय के द्वन्द्वों से उपर उठो पार्थ। अर्जुन बोला, मुझसे तो अब भी नहीं उठा जा रहा है केशव। कृष्ण बोले, अब तक मैं तुम्हे ज्ञान और विवेक की दृष्टि से समझा रहा था पार्थ। जो जीवन के आर-पार देख सकती है और रूप की गहराई में झांककर उसकी अन्तरात्मा का स्वर समझ लेती है किन्तु कदाचित तुम उसकी अमोल तुला में उलझ गये तो व्यावहारिक कर्म की तुला में तौलकर देखो पार्थ। व्यवहारिक कर्म की दृष्टि से अपने कर्त्तव्य की दृष्टि से निर्णय लो तब भी तुम इसी निर्णय पर पहुंचोगे कि तुम्हारे लिये इस युद्ध में भाग लेना आवश्यक है। अर्जुन बोला, यही निर्णय तो मैं नहीं ले पा रहा हूं केशव। कृष्ण बोले, यह निर्णय तुम केवल इसलिये नहीं ले पा रहे हो पार्थ कि तुम इस क्षण को व्यक्तिगत लाभ और व्यक्तिगत हानि की तुला में तौल रहे हो। यही तो मोह का बन्धन है और यही तुम्हारे शोक की जड़ है और इसीलिये तुम्हारा कायर पलायन और कलंक में डुबोनेवाला शोक न तुम्हारे हित में है और न ही समाज के हित में। ये शोक न वर्तमान के लिये शुभ है और न भविष्य के लिये। लाभ और हानि की इस राह में मत भटको पार्थ।

पार्थ। यह बुद्धि तेरे लिये ज्ञानयोगके विषयमें कही गयी और अब तू इसको कर्मयोग के विषयमें सुन-जिस बुद्धिसे युक्त हुआ तू कर्मोंके बन्धनको भलीभाँति त्याग देगा। इस कर्मयोगमें आरम्भका- बीजका नाश नहीं है और उल्टा फलरूप दोष भी नहीं है। बल्कि इस कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा-सा भी साधन जन्म-मृत्युरूप महान् भयसे उबार लेता है। अर्जुन। इस कर्मयोग में निश्चयात्मिका बुद्धि एक ही होती है; किंतु अस्थिर विचारवाले विवेकहीन सकाम मनुष्योंकी बुद्धियाँ निश्चय ही बहुत भेदोंवाली और अनन्त होती हैं। अर्जुन। जो भोगोंमें तन्मय हो रहे हैं, जो कर्मफलके प्रशंसक वेदवाक्योंमें ही प्रीति रखनेवाले हैं, जिनकी बुद्धिमें स्वर्ग ही परम प्राप्य वस्तु है और जो स्वर्गसे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु ही नहीं है- ऐसा कहनेवाले हैं, वे अविवेकीजन भोग तथा ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये नाना प्रकारकी बहुत-सी क्रियाओंका वर्णन करनेवाली और जन्मरूप कर्मफल देनेवाली इस प्रकारकी जिस पुष्पित यानी दिखाऊ शोभायुक्त वाणीको कहा करते हैं, उस वाणीद्वारा हरे हुए चित्तवाले जो भोग और ऐश्वर्यमें अत्यन्त आसक्त हैं, उन पुरुषोंकी परमात्माके स्वरूपमें निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती। अर्जुन। सब वेद उपर्युक्त प्रकारसे तीनों गुणोंके कार्यरूप समस्त भोगों एवं उनके साधनोंका प्रतिपादन करनेवाले हैं; इसलिये तू उन भोगों एवं उनके साधनोंमें आसक्तिहीन, हर्षशोकादि द्वन्द्वोंसे रहित, नित्यवस्तु परमात्मामें स्थित, योगक्षेमको न चाहनेवाला और जीते हुए मनवाला हो। सब ओरसे परिपूर्ण जलाशयके प्राप्त हो जानेपर छोटे जलाशयमें मनुष्य का जितना प्रयोजन रहता है, ब्रह्मको तत्त्वसे जाननेवाले ब्राह्मणका समस्त वेदोंमें उतना ही प्रयोजन रह जाता है।

केवल कर्म करो। कर्म तो अपने आप से ही पुण्य है और समाज के लिये कल्याणकारी भी है। कर्म तो स्वयं ही अपना फल भी है पार्थ परन्तु यदि समाज कल्याण के कार्य में यदि तुम अपना हित मिला लोगे तो तुम्हारा वो कर्म अशुद्ध और अशुभ हो जायेगा और इसलिये हे पार्थ निष्काम कर्म के मार्ग पर चलो क्योंकि कर्म फल तो तुम्हारे वश में है ही नहीं इसलिये केवल कर्म करो, कर्मफल की इच्छा मत करो। अर्जुन बोला, किन्तु निष्काम कर्म कैसे सम्भव है वासुदेव? फल का ज्ञान ही तो कर्म करवाता है। और यदि दृष्टि फल से ही हट जाये तो फिर कोई कर्म करेगा ही क्यों? कृष्ण बोले, वो कर्म इसलिये करेगा पार्थ कि कर्म के बिना तो जीवन सम्भव ही नहीं। कुछ तो अवश्य करोगे ही। या भोजन करोगे या नहीं करोगे। या भूखे को भोजन करवाओगे या नहीं। या युद्ध करोगे या नहीं करोगे। तुम्हारे पास तो यही विकल्प है कि तुम क्या करो या तुम क्या नहीं करो परन्तु परिणाम तुम्हारे वश में नहीं है पार्थ। कर्मफल तुम्हारे वश में नहीं है। तुम्हारे अधिकार की सीमा इस विकल्प पर समाप्त हो जाती है कि तुम युद्ध करोगे या नहीं करोगे। किन्तु युद्ध का परिणाम तुम्हारे हाथ में नहीं है। यदि तुम विजय चाहोगे तो यह आवश्यक नहीं कि विजय तुम्हारी हो जाये, तुम्हारी पराजय भी हो जाये। किन्तु यदि तुम विजय से मोहित नहीं होंगे तो पराजय से भी नहीं घबराओगे। यदि तुम यह सोचो पार्थ चाहे विजय हो चाहे पराजय तुम तो केवल इसीलिये युद्ध कर रहे हो कि युद्ध करना तुम्हारा कर्त्तव्य है तो विजय के सुख या पराजय के दु:ख का प्रश्न ही नहीं उठता। और जो विजय से ना सुखी हो तथा पराजय से ना दु:खी हो वही स्थितप्रज्ञ कहा गया है इसलिये हे पार्थ कर्म के प्रति फल की चेष्टा मत करो। तुम तो केवल वही करो जो तुम्हारे वश में है अर्थात तुम्हारे धर्म का पालन करो। यही कर्मयोग है। इस रहस्य को समझो पार्थ कि तुम्हारे पास तो करने या न करने का विकल्प है किन्तु कर्म के अन्त पर मनुष्य के अधिकारों की सीमा समाप्त हो जाती है। कर्म का परिणाम मनुष्य के वश में नहीं है। तुम सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर हो परन्तु यदि तुम्हारा आखेट तनिक भी इधर से उधर हो जाये तो तुम चूक जाओगे। तुम्हारा अधिकार तुम्हारे बाण सन्धान पर है, तुम्हारा अधिकार तुम्हारी दृष्टि पर है परन्तु उस मृग पर तुम्हारा कोई अधिकार या वश नहीं है जिस पर तुम बाण चला रहे हो। हे धनंजय सत्पुरुष कभी भी अपने अधिकारों की सीमा का उल्लंघन नहीं करते अर्थात अपने कर्म में स्थिर रहो पार्थ। क्योंकि कर्म की कुशलता का ही नाम योग है।

तेरा कर्म करनेमें ही अधिकार है, उसके फलोंमें कभी नहीं। इसलिये तू कर्मोंके फलका हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो। धनञ्जय। तू आसक्तिको त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धिमें समान बुद्धिवाला होकर योगमें स्थित हुआ कर्त्तव्यकर्मोंको कर; समत्व ही योग कहलाता है। इस समत्वरूप बुद्धियोगसे सकाम कर्म अत्यन्त ही निम्न श्रेणीका है। इसलिये धनञ्जय। तू समत्वबुद्धिमें ही रक्षाका उपाय ढूँढ़; क्योंकि फलके हेतु बननेवाले अत्यन्त दीन हैं। समत्वबुद्धियुक्त पुरुष पुण्य और पाप दोनोंको इसी लोकमें त्याग देता है। इससे तू समत्वरूप योगके लिये ही प्रयत्न कर; यह समत्वरूप योग ही कर्मोंमें कुशलता है; क्योंकि समत्वबुद्धिसे युक्त ज्ञानीजन कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले फलको त्यागकर जन्मरूप बन्धनसे मुक्त हो निर्विकार परमपदको प्राप्त हो जाते हैं। जिस कालमें तेरी बुद्धि मोहरूप दलदलको भलीभाँति पार कर जायगी, उस समय तू सुनी हुई और सुननेमें आनेवाली इस लोक और परलोक सम्बन्धी सभी बातोंसे वैराग्यको प्राप्त हो जायगा। भाँति-भाँतिके वचनोंको सुननेसे विचलित हुई तेरी बुद्धि जब परमात्माके स्वरूपमें अचल और स्थिर होकर ठहर जायगी, तब तू भगवत्प्राप्तिरूप योगको प्राप्त हो जायगा।

प्रकाण्ड तत्त्वज्ञानी श्रीनारायण ने नरशार्दूल अर्जुन से कर्त्तव्यपथ से किंचित् भी विचलित न होने को कहा। कर्त्तव्यपथ ही सर्वोत्तम पथ है, सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। कर्त्तव्यपथ ही कर्मपथ है। यह पथ भावनिरपेक्षता का है, अत: परिणाम पर बिना विचार किये कर्मरत रहना ज्ञानी पुरुष के लिए उत्तम है। उन्होंने पाण्डुनन्दन का भ्रम दूर करते हुए कहा, पितामह आदि गुरुजनों की मृत्यु तुम्हारे कारण नहीं होगी। तुम कारण नहीं सव्यसाची। कारण तो पूर्वजन्मों के संस्कार हैं। जीवन में सुख-दुख और जरा-मृत्यु आदि मनुष्य अपने साथ लेकर ही जन्मता है। मनुष्य ने जो कुछ कर्म किये हैं, उसके परिणामस्वरूप ही वह कष्ट उठाता है, मृत्यु को प्राप्त होता है। पार्थ। तुम न ही किसी की मृत्यु का कारण हो सकते हो, न ही किसी के दु:ख का कारण। महाराज धृतराष्ट्र एवं महारानी गान्धारी के भी दुख का कारण तुम नहीं हो सकते। कारण उनका स्वयं का मोह होगा। उनका पुत्रमोह उनकी पीड़ा का कारण है जिससे यह विशाल रण-संरचना हुई है। अर्जुन। यह मार्ग योगियों का मार्ग है। योगी की भाँति तटस्थ रहकर, निरपेक्ष एवं निर्विकार तथा निष्काम भाव से कर्म करो। यह चिन्ता न करो कि तुम गुरुघाती अथवा बन्धुघाती होगे। मृत्यु सबकी होती है एवं अपने-अपने कर्मों के स्वरूप के अनुसार होती है। वे उसी प्रकार मृत्यु वरण करेंगे जिस प्रकार विधाता ने उनके पूर्व कर्मों के अनुसार नियत कर दी है। इसे कोई टाल नहीं सकता। ब्रह्मा भी नहीं। तुम सोचते हो कि यदि तुम न वध करो तो वे दीर्घायु पाएँगे? नहीं पार्थ, नहीं। यह तुम्हारा भ्रम है। यदि कोई विधि-नियत आयु पूर्ण कर चुका है तो उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है।

तुम्हें केवल कर्म करना है। तुम्हारा प्रयोजन केवल कर्म से है। उसके उपरान्त क्या होगा, यह तुम्हारा प्रयोजन नहीं। कौन जीवित रहेगा और कौन मृत्यु को प्राप्त होगा- यह भी तुम्हारा प्रयोजन नहीं। कौन विजयी होगा और कौन पराजित होगा पार्थ- तुम्हारा यह भी प्रयोजन नहीं। फल को न विचारो अर्जुन। कर्म पर ध्यान केन्द्रित करो। तुम पुरुष हो नरश्रेष्ठ। तुम क्षत्रिय हो। पाण्डवश्रेष्ठ। यह असमय भावुकता उचित नहीं। कर्त्तव्य जब सम्मुख हो तब हृदय की दुर्बलता से विचलित होना तुम्हारे लिए कदापि शोभनीय नहीं। यदि संग्राम में विजयश्री पाते हो तो राजलक्ष्मी तुम्हें वरेगी और यदि संग्रामरत रहकर वीरगति पाते हो तो खेद कैसा? तुम्हारा जैसा शूरवीर यदि अपने पराक्रमी गुरु अथवा महावीर बन्धु के हाथों गौरवपूर्ण वीरगति पाए तो क्षत्रिय के लिए इससे श्रेष्ठ गति क्या होगी पार्थ? ऐसे महान् ज्ञानी पुरुष होकर आज तुम कर्त्तव्यशिला पर खड़े होकर कैसे किंकर्तव्यविमूढ़ हो उठे?

सखे। यदि कुरुक्षेत्र में उपस्थित समस्त सेनानी भी मृत्यु को प्राप्त हो जाएँ तो भी तुम्हारे ऊपर पाप नहीं आएगा। तुम

युद्ध में क्या नाश करोगे? वही न, जो नाशवान है ही। जो नश्वर ही है, उसे कौन रोक सकता है? और जो चिरस्थायी है, चिरन्तन है, उसे कौन नाश कर सकता है? नरश्रेष्ठ। तुम मात्र नाशवान् शरीर को ही विनष्ट करने के निमित्त रहोगे। आत्मा अमर है। यह तो शरीर है जो साथ छोड़ता है। आत्मा शाश्वत है। तुम्हारे द्वारा वध किये जाने से भी सब अमर रहेंगे। सबकी आत्मा अमर रहेगी। हाँ। तुम्हारे हाथों वध होकर, वीरगति पाने का यश इन समस्त वीरों को प्राप्त होगा। उससे इनका ही सम्मान बढ़ेगा, प्रतिष्ठा बढ़ेगी कि इन्होंने क्षत्रिय-धर्म का निर्वाह किया और तुम यदि विजयी हुए तो तुम एक महान् पुनीत कर्म करोगे कि अधर्मियों के दुराचार से वेदनाकुल पृथ्वी का उद्धार कर दोगे। पूर्ण साजसज्जा के साथ रणक्षेत्र में आकर तुम निढाल बैठे हो? और बिना युद्ध किये, बिना कर्त्तव्य पूर्ण किये ही लौट जाना चाहते हो? यह समूचा चराचर जगत् तुम पर हँसेगा। ये अक्षौहिणी सेनाएँ तुम पर हँसेंगी। तुम्हारे गुरु, तुम्हारे बन्धु सब तुम्हारा उपहास करेंगे। कायर एवं दुर्बल होने की अपकीर्ति सह सकोगे पार्थ?

मनुष्यका अधिकार कर्म करनेमें ही है। फल पाने, न पानेमें उसका कोई वश नहीं है। कर्म करनेपर उसका फल आवे तो भी वह मेरे पौरुषका ही फल है इस अभिमानमें नहीं आना चाहिए तथा कर्मका ही त्याग देनेका दुराग्रह भी नहीं करना चाहिए। कर्म करनेका उत्तम मार्ग है कि सफलता-असफलतामें समान भाव रखकर, आसक्तिका त्याग कर कर्म किया जाय। न फलासक्ति हो, न कर्मासक्ति हो। इस प्रकार समत्वमें बुद्धिको स्थित करके जो कर्म करता है वह पाप-पुण्य दोनोंके स्पर्श से अस्पृष्ट रहकर जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। अविनाशी पद पाता है।

अर्जुन बोला, तुम्हीं तो कहते हो कि हमें अपने कर्मों का फल मिलता है। अर्जुन ने जैसे कृष्ण को उपालंभ दिया।

कृष्ण ने बात आरम्भ की, मैं कहता हूँ कि कर्म का फल मिलता है। किंतु क्या मैंने कभी कहा कि तुम्हें अपने कर्म का फल तुम्हारी इच्छानुसार मिलेगा। क्या मैंने कहा कि कर्म करो न करो, इच्छा करो और अपना मनोवांछित फल पा लो।

अर्जुन बोला, नहीं। तुमने कहा कि हमें अपने कर्मों का फल प्रकृति के नियमों के अधीन मिलता है।

कृष्ण बोले, और वे नियम हमारी, किसी एक मनुष्य अथवा मनुष्यों के किसी एक समूह की इच्छा से नहीं बने हैं।

अर्जुन ने पूछा, तो फिर मैं क्या करूँ? कृष्ण बोले, अपना स्वधर्म। पूर्ण सत्य को पाने के लिए तो पूर्ण पर ही विचार करना होगा। स्वधर्म को जानना है तो पहले प्रकृति के धर्म को जानो, जिससे तुम्हारा निर्माण हुआ है, जिसने तुम्हारा निर्माण किया है। कितने गुण है प्रकृति के? तीन। सत्व, रज और तम। प्रकृति इन तीन गुणों से बाहर नहीं जाती तो मनुष्य कैसे जाएगा। मनुष्य को अपना धर्म इन तीन गुणों में ही खोजना पड़ेगा। अर्जुन स्वयं को जितना जानता-पहचानता था, उससे कह सकता था कि उसे वंश-परंपरा में रजोगुण मिला था। प्रशिक्षण और साधना ने उस रजोगुण को सत्वोन्मुखी बनाया था। उसका व्यवसाय और अभ्यास रजोगुणी ही था। उसने उस तेज की साधना की थी, जो अधर्म और अन्याय सहन नहीं करता। इसलिए अन्याय और अधर्म का विरोध करने की क्षमता अर्जित की थी उसने।

अर्जुन ने कहा, मैं रजोगुणी क्षत्रिय हूँ कृष्ण। कृष्ण बोले, तो तुम भिक्षा माँग कर नहीं रह सकते। तुम्हें शासन करना होगा। समाज का अनुशासन करना होगा। दुष्ट-दलन करना होगा। तुम राजनीति से नहीं भाग सकते। राजनीति में रहकर न युद्ध से बच सकते हो न वध से। आज अपने मोह के कारण तुम राज्य के लिए युद्ध करने से श्रेष्ठ भीख माँगना बता रहे हो; किंतु क्षत्रिय का तेज अन्याय सहन नहीं कर सकता। तुम राज्य के लिए नहीं न्याय के लिए लड़ोगे। तुम्हारा स्वधर्म लड़वाएगा। तुम्हारी प्रकृति लड़वाएगी।

अर्जुन बोला, यदि मैं न लड़ना चाहूँ तो? कृष्ण मुस्कराए और बोले, तुम्हारा मैं क्या है अर्जुन? यह शरीर? यह तो

पंचभूतों से बना है। इसे प्रकृति ने बनाया है। इसे इस प्रकार समझो कि प्रकृति तुम्हारे माध्यम से अन्याय के विरुद्ध लड़ना चाहती है, इसलिए उसने तुम्हारे इस शरीर और मन का निर्माण करते हुए उसमें रजोगुण को स्थापित किया। अब यदि तुम अपने मोह के कारण तमोगुणी व्यवहार करना चाहते हो, तो तुम अपने स्वधर्म के विरुद्ध ही नहीं जा रहे, अपने विरुद्ध लड़ रहे हो; और अपने आप से लड़कर, कोई क्या उपलब्ध करेगा। मोहग्रस्त होकर तुम प्रकृति की इच्छा का विरोध कर रहे हो। स्वधर्म के विरुद्ध चलना अधर्म है धनंजय।

अर्जुन का मन जैसे कृष्ण की बात पर अटक गया। कर्म और फल की चर्चा होती है तो कृष्ण कहते हैं कि प्रकृति कर्म का फल तो देती है, किंतु अपने नियमों के अधीन। आम्र के वृक्ष को पोषित करने पर प्रकृति आम्रफल ही देगी। हम उससे द्राक्ष नहीं पा सकते। इसलिए कृष्ण कहते हैं कि हमें कर्म की स्वतंत्रता है। उसके फल पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं है। किंतु यदि प्रकृति त्रिगुणात्मक है और सब कुछ प्रकृति ही कर रही है, तो मनुष्य क्या कर रहा है?

तुम कह रहे थे केशव कि कर्म के फल पर मेरा कोई नियंत्रण नहीं है। अब तुम कह रहे हो कि मेरा अपने कर्म पर भी कोई नियंत्रण नहीं है? कर्म भी प्रकृति ही करती है।

कृष्ण बोले, कर्म तो प्रकृति ही करती है धनंजय। कृष्ण वल्गा छोड़कर अर्जुन के पास आ बैठे, मधुमक्खी यदि पुष्पों के रस से मधु बनाती है, तो तुम समझते हो कि वह उसके अपने वश का काम है? वह अपनी इच्छा से कर रही है मधुसंचय? गाय अपनी इच्छा से, अपने सामर्थ्य से घास को दूध में परिणत कर लेती है। तुम अपने भोजन पर नियंत्रण कर अपनी इच्छानुसार उसका रक्त, मल अथवा मांस बना सकते हो? अर्जुन बोला, नहीं। कृष्ण बोले, तो कौन कर रहा है यह सब? प्रकृति ही तो करती है। प्रकृति का यंत्र है मधुमक्खी, गाय अथवा मनुष्य का शरीर। उन शरीरों में अपनी इच्छानुसार यंत्रों का निर्माण करती है वह। अर्जुन बोले, तो अपनी वीरता का अहंकार व्यर्थ है? अपनी क्षमता का गर्व तर्कहीन है?

कृष्ण बोले, व्यर्थ। पूर्णत: व्यर्थ और तर्कहीन। क्योंकि यह भ्रम है, अज्ञान है। इसलिए कहता हूँ कि जब तक ज्ञान नहीं है, स्वधर्म पर टिक कर निष्काम कर्म करो। ज्ञान होने पर अपने स्वरूप को पहचानो। आत्मस्थ होने का प्रयत्न करो। आत्मस्थ हो जाओगे तो अपनी आत्मा और परमात्मा की समानता पहचानोगे। उससे तादात्म्य करना चाहोगे।

अर्जुन बैठा नहीं रह सका। उसके सम्मुख ये वे कृष्ण नहीं थे, जो उसका रथ हाँक रहे थे, ये तो उनमें से कोई और ही कृष्ण प्रकट हुए थे। उसे कई बार लगता था कि वह जिस कृष्ण को जानता है, वह संपूर्ण कृष्ण नहीं है, वह उनका एक अंश मात्र है। उस एक कृष्ण में से जैसे प्रतिक्षण एक नए कृष्ण प्रकट होते हैं। संपूर्ण कृष्ण को जाना भी जा सकता है क्या? वह उठा और कृष्ण के सम्मुख हाथ जोड़कर खड़ा हो गया, हम दोनों मित्र रहे हैं। पर मैंने सदा तुम्हें अपना गुरु ही माना है। तुम मुझे बहुत कुछ समझाते रहे हो। बताते रहे हो। तुमने मुझे कर्मयोग के विषय में पहले भी बताया है। तुमने सांख्य और योग की भी चर्चा की है। पर वह सब जैसे सूचनाओं के रूप में मेरे मस्तिष्क के किसी कोने में पड़ा रहता है। जीवन में उसके व्यवहार का समय आते ही मैं वह सब भूल जाता हूँ। प्रकृति मुझसे क्या करवाना चाहती है, मैं नहीं जानता, किंतु मैं अपने पितामह और गुरु का वध करने के लिए उनपर बाण तो नहीं चला सकता।

कृष्ण बोले, मैंने कंस को किसलिए मारा था? जरासंध का वध किसलिए किया था? राजसूय यज्ञ का आयोजन क्यों हुआ था? अर्जुन बोला, अन्याय और अत्याचार को समाप्त करने के लिए। कृष्ण बोले, आज युद्धक्षेत्र में क्या करने आए हो? अर्जुन बोला, अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध युद्ध करने। कृष्ण बोले, तो फिर युद्ध करते क्यों नहीं? अर्जुन बोला, कैसे करूँ। चारों ओर मेरे अपने संबंधी हैं। कृष्ण बोले, यह तो अच्छी परिभाषा है अर्जुन। कोई और करे तो अधर्म। और

यदि वही कृत्य तुम्हारे पितामह करें तो वह अधर्म नहीं है। अर्जुन बोला, मेरे पितामह अधर्मी नहीं है।

कृष्ण बोले, तो दुर्योधन अधर्मी है? अर्जुन बोला, है। कृष्ण बोले, तो फिर तुम दुर्योधन का वध क्यों नहीं करते? अर्जुन बोला, नहीं कर सकता। मार्ग में पितामह खड़े हैं। कृष्ण बोले, पितामह के संरक्षण में अधर्म पोषित हो रहा है? अर्जुन बोला, नहीं। पितामह अधर्म नहीं कर सकते। कृष्ण बोले, दुर्योधन अधर्मी है। वह भीष्म द्वारा संरक्षित है। भीष्म का वध किए बिना यदि दुर्योधन मारा नहीं जा सकता, तो पहले दंडित किसे होना चाहिए? एक अधर्मी तुम्हारे परिवार से बाहर जन्म लेकर अधर्मी होगा और तुम्हारे परिवार में जन्म लेने के कारण वह अधर्मी नहीं रहेगा? जीवन का सत्य यह है धनंजय कि अधर्म के विरुद्ध शस्त्र उठाओगे तो सबसे पहले, तुम्हारे अपने परिजन और प्रियजन ही तुम्हारा हाथ पकड़ेंगे।

अर्जुन बोला, किंतु वे मेरे पितामह हैं। कृष्ण बोले प्रकृति तो केवल अश्वत्थ अथवा नागफनी ही उत्पन्न करती है। इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि वह किस दीवार के भीतर और किस दीवार के बाहर है। तुमने परिवार की एक दीवार बनाकर किसी को अपना और किसी को पराया मान लिया है। अर्जुन ने जैसे प्रतिवाद किया और बोला, तो क्या परिवार का कोई अर्थ नहीं है? वंश कुछ नहीं होता? हमारा अपना-पराया कुछ नहीं है? कृष्ण बोले, तुम मनुष्य की नहीं, मात्र व्यक्ति की दृष्टि से देख रहे हो, इसलिए किसी को अपना और किसी को पराया मानते हो। खंड की नहीं, संपूर्ण की दृष्टि से देखो। ईश्वर की दृष्टि से देखो। जो संबंध सृष्टा से तुम्हारा है, वही पितामह का भी है। तुम दोनों ईश्वर के हो। एक-दूसरे के नहीं। अर्जुन ने पूछा, तो हम क्या हैं?

कृष्ण बोले, ईश्वर की शक्ति है- प्रकृति। तुम्हारा यह शरीर प्रकृति ने पंचभूतों से निर्मित किया है; इसलिए यह प्रकृति की संपत्ति है। प्रकृति अपने-आप में पूर्ण है। उसका विभाजन अथवा सीमांकन, मनुष्य की अपनी सीमा है, प्रकृति की नहीं। यह मनुष्य का अपना भ्रम है। उसका मोह है। इसी मोह के कारण तुममें दृष्टिदोष आ गया है; और तुम अपना धर्म देख नहीं पा रहे हो। कृष्ण की आंखों में ही दिव्य भाव नहीं झलका, उनका स्वर भी जैसे कुछ अलौकिक हो आया था, आसक्ति किसी को सत्य के दर्शन करने नहीं देती। स्वधर्म के निर्वाह के लिए आसक्ति को त्यागना होगा।

अर्जुन जैसे अपने द्वंद्व से लड़ रहा था और बोला, हे केशव मैं तुम्हारा शिष्य हूँ। तुम्हारे आदेश का पालन करना चाहता हूँ; किंतु मैं पितामह का पौत्र भी हूँ। उनके प्रति भी मेरा कोई धर्म है। कृष्ण बोले, अर्जुन। ऐसा कोई काल नहीं था, जब तुम नहीं थे अथवा मैं नहीं था। तुम मोह के कारण अपने स्वरूप को भूल गए हो।

मानव शरीर की इस सांतता में भी मुझे अपनी अनंतता का बोध है। मैंने प्रकृतिद्वारा निर्मित यह शरीर धारण अवश्य किया है; किंतु मैं इस शरीर में नहीं, आत्मा में निवास करता हूँ। संसार के सारे भोग प्रकृति द्वारा निर्मित मेरा यह शरीर भोगता है, मैं इससे मुक्त हूँ, क्योंकि मैं यह शरीर नहीं हूँ। अर्जुन का मन कृष्ण की विराटता देखता रहा और मुग्ध होता गया। उसे लगा, उसका प्रेम, श्रद्धा में बदलता जा रहा है; और उसकी श्रद्धा भक्ति में परिणत होती जा रही है। अर्जुन बोला, तुम महामानव हो कृष्ण। तुम मानव से आरोह कर चुके हो... ऊपर उठ गए हो।

कृष्ण बोले, नहीं। मनुष्य का आरोह नहीं होता। जब होता है तो ईश्वर का अवरोह ही होता है। मनुष्य का विकास ईश्वर नहीं होता, ईश्वर का अवतरण ही मनुष्य होता है। अर्जुन का मन जैसे बौरा-सा गया था, मैं क्या हूँ कृष्ण?

कृष्ण बोले, तुम भी वही हो, जो मैं हूँ। अर्जुन बोला, तो मैं अपने स्वरूप को देख क्यों नहीं पा रहा? कृष्ण बोले, अपने मोह के कारण। मोह बाधक है, विश्वात्मा से तादात्म्य के मार्ग में। अर्जुन मुग्ध भाव से कृष्ण की ओर देखता रहा और फिर धीरे से बोला, मेरे माध्यम से भी वही प्रकृति कार्य कर रही है, और दुर्योधन के माध्यम से भी। तो इस का अर्थ यह है केशव कि प्रकृति ही प्रकृति के विरुद्ध लड़ रही है। प्रकृति ही प्रकृति को मार रही है। कृष्ण बोले, इसीलिए तो कहता हूँ कि जो

मार रहा है, वह भी मैं हूँ और जो मर रहा है, वह भी मैं ही हूँ।

हे बीभत्सु। एक बात जीवन-भर ध्यान रखना, केवल कर्म पर तेरा अधिकार है, उसके फल पर नहीं। अत: फल की आशा रखकर कर्म मत कर और कर्म न करने का, निष्क्रिय रहने का हठ भी मत कर। निद्रित अवस्था में भी प्राणी के लिये कर्म अटल है। अटल कर्म करने की कुशलता को ही कर्मयोग कहते हैं। सन्तुलित बुद्धि से, स्थितप्रज्ञ होकर उसकी साधना करनी पड़ती है। हे गुड़ाकेश, तेरे भ्रमित स्थिति के विषाद-योग पर एकमात्र उपाय ज्ञानी पुरुषों द्वारा बताया गया सांख्ययोग ही है- अन्य कोई नहीं। अर्जुन का मन का क्षोभ कुछ कम हुआ। अर्जुन ने पूछा हे केशव, हे हृषीकेश, स्थितप्रज्ञ किसे कहते हैं? उसका बोलना, बैठना-उठना आचरण कैसा होता है? कृष्ण बोले, हे जिष्णु, तू जिसे जानना चाहता हैं वे स्थितप्रज्ञ के चिन्ह शांति से सुन। मन की कामभावना से अर्थात वासनाओंसे अलिप्त होकर जो अपने-आपने सन्तुष्ट रहता है उसे स्थितप्रज्ञ कहते हैं। हे फाल्गुनी, जो दु:खसे व्यथित नहीं होता, जिसे सुख की आसक्ति नहीं होती, जो प्रीति, भय, क्रोध आदि भावनाओं से परे होता है, उसको स्थितप्रज्ञ कहते हैं। हे किरीटिन, जिस प्रकार कछुआ सभी ओर से अपने अंगों को समेट लेता है, उसी प्रकार जो अपनी इन्द्रियों को विषयों से लिप्त नहीं होने देता, उसको स्थितप्रज्ञ कहते है। हे जयिष्णु पाण्डव जो अच्छा अथवा बुरा घटित होने से आनन्दित अथवा क्रुद्ध नहीं होता, जिसकी प्रज्ञा स्थिर हो गयी है, उसको स्थितप्रज्ञ कहते हैं। निराहार पुरुष की विषय-वासनाएँ तो छूट जाती हैं, किन्तु उनके प्रति रुचि नहीं छूटती। जिसने परब्रह्म की प्रतीति की ओर जो इन दोनों से मुक्त हो गया, उसको स्थितप्रज्ञ कहते हैं। हे धनुर्धर धनंजय, इन्द्रिय-दमन का प्रयत्न करनेवाले विद्वान पुरुष के चित्त को भी प्रबल इन्द्रियाँ बलात् अनुचित मार्ग पर खींच ले जाती हैं। अत: इन्द्रियों को संयमित करके अपने अधीन करते हुए जो अपनी बुद्धि को स्थिर रखता है, उसको स्थितप्रज्ञ कहते हैं।

अर्जुन बोला, और योग क्या है केशव? कृष्ण बोले, वही तो बता रहा हूँ पार्थ। योग कर्म का कौशल है, मोह का त्याग कर्म का कौशल है। मोह से मुक्त होकर अपने कर्त्तव्य का पालन करना कर्म का कौशल है। सफलता और असफलता दोनों में समान रहना ही कर्म कौशलता है। धृतराष्ट्र उत्तेजित हो बोला, संजय। संजय बोला, जो आज्ञा महाराज। धृतराष्ट्र बोले, यदि तुम्हारी वाणी वहां तक पहुंच सके तो चिल्लाकर कहो हे अर्जुन वासुदेव के पुत्र की बात मत सुनो। वो तुम्हे भड़का रहा है, उकसा रहा है तनिक सोचो संजय। यही कृष्ण कल शान्तिदूत बनकर यहां आया था, आज वो शान्ति के विषय में एक शब्द नहीं बोल रहा है। इसका अर्थ तो यही हुआ ना कि वो यहां शान्ति की स्थापना के लिये आया ही नहीं। वो केवल यही चाहता था कि इतिहास मेरी दाढी पकड़कर मुझसे कहे धृतराष्ट्र शान्ति के द्वार तुमने बन्द किये थे। देवकी का यह पुत्र न जाने कब का वैर निकाल रहा है संजय? संजय बोला, वो बैर की बात नहीं कर रहे हैं महाराज, वे तो कुन्तीपुत्र को धर्म और कर्म का रहस्य समझा रहे हैं महाराज। धृतराष्ट्र बोले, तुम भी उसके जैसी बातें करने लगे। क्या मेरे प्रति तुम्हारी निष्ठा भी अपने स्थान से सरक गई है? हे संजय तुम भी अपनी निष्ठा में स्थिर नहीं रहोगे। संजय बोला, मैं तो केवल वाचक हूं महाराज और मेरा विवरण मेरी निष्ठा की कर्म भूमि नहीं है। अभी तो मैं केवल वाचक का दायित्व निभा रहा हूं। धृतराष्ट्र बोले, निभाओ वाचक का दायित्व। मुझे कृपया कृष्ण के कर्मयोग का अर्थ मत समझाओ। तुम केवल दोनों पर दृष्टि जमाये रखो और बताये जाओ वहां पर क्या हो रहा है?

अर्जुन बोले, केशव। समाधिमें स्थित स्थितप्रज्ञ पुरुषका क्या लक्षण है? वह स्थिरबुद्धि पुरुष कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है? श्रीकृष्ण बोले- अर्जुन। जिस कालमें यह पुरुष मनमें स्थित सम्पूर्ण कामनाओंको भलीभाँति त्याग देता है और आत्मासे आत्मामें ही संतुष्ट रहता है, उस कालमें वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। दु:खोंकी प्राप्ति होनेपर जिसके मनमें उद्वेग नहीं होता, सुखोंकी प्राप्तिमें जो सर्वथा नि:स्पृह है तथा जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसा मुनि

स्थिरबुद्धि कहा जाता है। जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित हुआ उस-उस शुभ या अशुभ वस्तुको प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है और कछुआ सब ओरसे अपने अङ्गोंको जैसे समेट लेता है, वैसे ही जब यह पुरुष इन्द्रियोंके विषयोंसे इन्द्रियोंको सब प्रकारसे हटा लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर होती है। इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंको ग्रहण न करनेवाले पुरुषके भी केवल विषय तो निवृत्ति हो जाते हैं, परंतु उनमें रहनेवाली आसक्ति निवृत्ति नहीं होती। इस स्थितप्रज्ञ पुरुषकी तो आसक्ति भी परमात्माका साक्षात्कार करके निवृत्ति हो जाती है। अर्जुन। क्योंकि आसक्तिका नाश न होनेके कारण ये प्रमथनस्वभाववाली इन्द्रियाँ यत्न करते हुए बुद्धिमान् पुरुषके मनको भी बलात्कारसे हर लेती हैं, इसलिये साधकको चाहिये कि वह उन सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें करके समाहितचित्त हुआ मेरे परायण होकर ध्यानमें बैठे; क्योंकि जिस पुरुषकी इन्द्रियाँ वशमें होती हैं, उसीकी बुद्धि स्थिर होती है।

अर्जुनने यहां पूछा- ऐसे स्थितपज्ञ प्राप्त हुए पुरुषकी पहिचान क्या है?

स्पष्ट है कि प्रज्ञा स्थित है, इसकी पहिचान शरीर नहीं बन सकता। प्रज्ञा अन्त:करणमें होती है अत: अन्त:करणकी अवस्थाओंसे ही स्थितप्रज्ञको जाना जा सकता है। प्रज्ञाकी चंचलता, अस्त-व्यस्तताका कारण कामनाएँ ही हैं। बाह्य वस्तुओं, व्यक्तियोंकी प्राप्ति-अप्राप्तिकी इच्छा ही बुद्धिको अस्त-व्यस्त करती है। समस्त कामनाओंको त्यागकर जो अपने आपमें सन्तुष्ट है, वह स्थितप्रज्ञ है। वह दु:खमें उद्विग्न नहीं होता। सुख की स्पृहा नहीं करता। राग, द्वेष और भय उसे प्रभावित नहीं करते। शुभ और अशुभ चाहे जो आवें दोनोंमें वह समान है और अपनी इन्द्रियोंको बाह्य विषयोंसे उसने समेट लिया है। इन्द्रियोंका विषयोंसे सर्वथा संयोग न हो यह असंभव है। कर्ण, नेत्र, नासिका, त्वचाको इनके विषय प्राप्त होते ही रहेंगे और आवश्यक आहार भी लेना ही पड़ेगा किन्तु विषयोंके प्रति राग-द्वेष रहित होकर जो इन्द्रिय-व्यवहार करता है, मनको अपने वशमें रखता है उसकी बुद्धि व्यवस्थित रहती है।

अमुक विषय चाहिए ही अथवा अमुकसे दूर ही होना है, यह आग्रह होगा या किसी इन्द्रियको अमुक सेवनका व्यसन होगा तो बुद्धि स्वस्थ निर्णय नहीं कर सकेगी। तब बुद्धिका निर्णय, तर्क अपने व्यसन एवं राग-द्वेषसे प्रभावित होगा। इसलिए दो ही मार्ग हैं- समस्त कामनाएँ, पदार्थ आवें, न आवें, उनसे उदासीन होकर प्रारब्ध प्राप्त परिस्थितिमें सन्तुष्ट रहा जाय अथवा ममता और अहंताके साथ कामनाओंका, भोगोंका भी सर्वथा त्याग करके विरक्त जीवन व्यतीत किया जाय। स्थितप्रज्ञ होनेका यही उपाय है।

अर्जुन बोला, हे केशव मैं मुनि या स्थित प्रज्ञ को कैसे पहचानूंगा। कैसे? वो उठता-बैठता कैसे है, उसके बोलने की शैली कैसी है? कृष्ण बोले, उसे पहिचानने में तो कोई कठिनाई ही नहीं है पार्थ। उसीकी भांति तुम अपनी कामनाओं का त्याग करो। अपनी व्यक्तिगत अभिलाषाओं से मुक्त हो जाओ। सुख-दु:ख से परे होकर अपने स्वयं में सन्तुष्ट हो जाओ पार्थ तो ना तुम्हे दु:ख की अग्नि जला सकेगी और ना सुख की वर्षा तुम्हे भिगा सकेगी। हे पार्थ। स्थितप्रज्ञ वो मुनि है जो सुख और दु:ख में समान भाव रखता है और कोई उसका यह सन्तुलन बिगाड भी नहीं सकता। जब उससे शब्द बाहर निकलते हैं, मन में तैरते सुख और दु:ख से बाहर नहीं निकलते बल्कि आत्मा की अथाह गहराइयों से बाहर निकलते है। वो मोह की भाषा नहीं बोलता। वो निष्काम कर्म की भाषा बोलता है। वो जब बैठता है तो कछुये की भांति अपने में सिमट कर बैठता है और अपने को स्वयं ही दुर्ग बना लेता है अर्थात उसकी इन्द्रियां उसके वश में होती है और अपनी इन्द्रियों को केवल वही वश में कर सकता है जिसका अपना मन अपने वश में हो। हे पार्थ सामान्य पुरुष विषयों का ध्यान करता है और विषय का ध्यान उसे आसक्त बना देता है।

विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुषकी उन विषयोंमें आसक्ति हो जाती है, आसक्तिसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न होती

है और कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है। तथा क्रोधसे अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है मूढ़भावसे स्मृतिमें भ्रम हो जाता है, स्मृतिमें भ्रम हो जानेसे बुद्धिका नाश हो जाता है और बुद्धिका नाश हो जानेसे यह पुरुष अपनी स्थितिसे गिर जाता है। परंतु अपने अधीन किये हुए अन्त:करणवाला साधक वशमें की हुई, राग-द्वेषसे रहित इन्द्रियोंद्वारा विषयोंमें विचरण करता हुआ अन्त:करणकी प्रसन्नताको प्राप्त होता है। अन्त:करणकी प्रसन्नता होनेपर इसके सम्पूर्ण दु:खोंका अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित्तवाले कर्मयोगीकी बुद्धि शीघ्र ही सब ओरसे हटकर एक परमात्मामें ही भलीभाँति स्थिर हो जाती है। न जीते हुए मन और इन्द्रियोंवाले पुरुषमें निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती; और उस अयुक्त मनुष्यके अन्त:करणमें भावना भी नहीं होती; तथा भावनाहीन मनुष्यको शान्ति नहीं मिलती और शान्तिरहित मनुष्यको सुख कैसे मिल सकता है? क्योंकि वायु जलमें चलनेवाली नावको जैसे हर लेती है, वैसे ही विषयोंमें विचरती हुई इन्द्रियोंमेंसे मन जिस इन्द्रियके साथ रहता है, वह एक ही इन्द्रिय इस अयुक्त पुरुषकी बुद्धिको हर लेती है। इसलिये महाबाहो। जिस पुरुषकी इन्द्रियाँ इन्द्रियोंके विषयोंसे सब प्रकार निग्रह की हुई हैं, उसीकी बुद्धि स्थिर है। सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये जो रात्रिके समान है, उस नित्य ज्ञानस्वरूप परमानन्दकी प्राप्तिमें स्थितप्रज्ञ योगी जागता है; और जिस नाशवान सांसारिक सुखकी प्राप्तिमें सब प्राणी जागते हैं, परमात्माके तत्त्वको जाननेवाले मुनिके लिये वह रात्रिके समान है। जैसे नाना नदियोंके जल सब ओरसे परिपूर्ण, अचल प्रतिष्ठावाले समुद्रमें उसको विचलित न करते हुए ही समा जाते हैं, वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुषमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं वही पुरुष परम शान्तिको प्राप्त होता है, भोगोंको चाहनेवाला नहीं। जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर ममतारहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है। अर्जुन यह ब्रह्मको प्राप्त हुए पुरुषकी स्थिति है; इसको प्राप्त होकर योगी कभी मोहित नहीं होता और अन्तकालमें भी इस ब्राह्मी स्थितिमें स्थित होकर ब्रह्मानन्दको प्राप्त हो जाता है।

आसक्ति या लगाव से काम का जन्म होता है। जब कामना की पूर्ति नहीं होती तो क्रोध उत्पन्न होता है। जब क्रोध उत्पन्न होता है तो विषय के प्रति मोह और बढ़ जाता है और जब मोह और बढ़ जाता है पार्थ तो सोचने की शक्ति भटक जाती है। जब सोचने की शक्ति भटक जाती है तो बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि का नाश होने पर मनुष्य का सर्वनाश हो जाता है। इसलिये हे कुन्तीपुत्र तुम्हारा यह मोह तुम्हे बुद्धि के नाश की ओर ले जा रहा है। तनिक सोचो पार्थ जिसके पास बुद्धि ही नहीं होगी उसे शान्ति कैसे मिल सकती है। वो तो शान्ति और अशान्ति में अन्तर ही नहीं कर सकता और जो शान्ति को अशान्ति से अलग नहीं कर सकता वो भला कैसे सुखी हो सकता है। हे पार्थ जैसे पवन के झौंके नाव को भटका देते हैं वैसे ही कामनायें बुद्धि को भटका देती हैं। इसलिये हे महाबाहो अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रखो। स्वयं उनके वश में मत हो जाओ। पार्थ यह बात ध्यान से सुनो और समझो। जब संसार सोता है तब मुनि जागता है और जब संसार जागता है तब मुनि सोता है। अर्जुन बोला, यह सोना-जागना क्या है केशव? ये रात-दिन कैसे हैं? कृष्ण बोला- रात और दिन की तो मैंने बात ही नहीं की थी मैंने तो केवल सोने और जागने के विषय में बात की थी। सामान्य पुरुष की चाह हर क्षण कुछ पाने और भोगने में व्यतीत होती है। यही उसकी चेतना का लक्ष्य है। यदि उसे भूख लगे तो उसे भोजन चाहिये, यदि उसे प्यास लगे तो उसे जल चाहिये। यदि उसे ऋतुओं से अपना बचाव करना है तो उसे घर चाहिये। सोच आत्मनिष्ठ है परन्तु मुनि अर्थात स्थितप्रज्ञ की सोच निष्ठ है। वो व्यक्तिगत भूख और व्यक्तिगत तृष्णा के परे देखता है। वो वृक्ष के गिरे हुये फल के विषय में नहीं सोचता, वो वृक्ष के विषय में सोचता है। सामान्य मनुष्य को ईन्धन के लिये लकडी चाहिये तो वो वृक्षों को तब तक काटते चला जायेगा जब तक वन नष्ट न हो जाये परन्तु मुनि प्रकृति में वनों के महत्व के विषय में सोचता है। प्रकृति के सन्तुलन के विषय में सोचता है। वनों और ऋतुओं के सम्बन्धों के विषय में सोचता है इसलिये हे

पार्थ सामान्य मनुष्य की इन्द्रियों के लिये जो दिन है वो मुनि के लिये रात है क्योंकि वो तो इन्द्रियों की सीमा को पार कर चुका है और जो सामान्य पुरुष की इन्द्रियों के लिये रात है मुनि के लिये दिन है क्योंकि उसके सन्नाटे में मुनि की चेतना का उदय होता है। मुनि की रूचि सामने की समस्याओं के साथ-साथ उनके समाधान में भी है। और यही उसे सामान्य पुरुष से अलग करती है पार्थ। हे पार्थ सत्य इन्द्रियों की पहुंच के बाहर है। ऐसा नहीं कि मुनि को भूख नहीं लगती परन्तु वो अपनी भूख के परे देखता है और यह सोचता है कि भूख का उपचार क्या है? इसलिये सामान्य मनुष्य का दिन मुनि के लिये रात है और जो सामान्य मनुष्य की इस रात से अपने को बचा ले वही स्थितप्रज्ञ है। सामान्य मनुष्य तो उन नदियों की भांति है जिन्हे व्याकुलता बहा ले जाती है परन्तु उन्हे अपने मार्ग का ज्ञान नहीं होता। वो तो अन्धाधुंध बही जाती है क्योंकि वो बहने को ही अपना कर्म समझती है। और वो अपना सारा जल और सारी उथल-पुथल सागर में उंडेल देती है। किन्तु सागर फिर भी अपने तटों की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता। इसी प्रकार कामनाओं की नदियां सामान्य मनुष्य को तो बहा ले जाती है परन्तु जब वो मुनि तक आती है तो मुनि उन्हे समेट लेता है और अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता। हे पार्थ तुम भी सागर बनो। सागर मुनि है, सागर ज्ञानी है। तुम भी ज्ञानी बनो पार्थ क्योंकि ज्ञान ही उत्तम है।

हे गुड़ाकेश, विषयों का चिन्तन करनेवाले पुरुष का विषयों के साथ सम्बन्ध बढ़ता जाता है। उससे विषय-प्राप्ति की वासना उत्पन्न हो जाती है। और जब वासना-तृप्ति में बाधा होती है, तब काम से ही क्रोध का उद्भव हो जाता है।

हे सखा, क्रोध से ही सम्मोह उपजता है, सम्मोह से स्मृति-भ्रम होता है, स्मृति-भ्रम से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से सर्वस्व का विनाश होता है। जब क्रोध और द्वेष नष्ट हो जाते हैं, सभी इन्द्रियाँ मनुष्य के अधीन हो जाती हैं और विषयों के बीच रहते हुए भी वह प्रसन्नचित्त रहता है। हे सव्यसाची धनुर्धर, जब चित्त प्रसन्न हो जाता है, तब सभी दु:खों का विनाश होता है। अत: जो प्रसन्नचित्त है, उसीको स्थितप्रज्ञ कहते हैं।

हे दिग्विजयी कौन्तेय, जो पुरुष योग से युक्त नहीं होता उसके पास दृढ़ बुद्धि और निष्ठा की भावना नहीं होती। जिसके पास भावना नहीं है, उसको शान्ति कैसे प्राप्त होगी? जिसको शान्ति प्राप्त नहीं है, उसको सुख कैसे मिलेगा?

हे महारथी अर्जुन, जिस प्रकार प्रबल पवन के कारण नौका जल में खिंच जाती है, उसी प्रकार विषय-सुखों में विहार करनेवाले पुरुषों का मन भी इन्द्रियों के पीछे-पीछे चला जाता है। हे महाबाहु, इन्द्रियजन्य सुखों से जो अपनी इन्द्रियों को लिप्त नहीं होने देता, उसको स्थितप्रज्ञ कहते हैं। हे गुड़ाकेश, संसारियों के लिए जब रात्रि होती है तब संयमी स्थितप्रज्ञ जाग्रत रहता है, और जब संसार के लोग जाग्रत अवस्था में होते हैं तब योगी सो जाता है।

हे किरीटिन्, जिस प्रकार चारों ओर से जल के आते रहने से भी समुद्र कभी विचलित नहीं होता, उसी प्रकार जिस पुरुष में शान्तिभंग न करते हुए विषय प्रविष्ट हो जाते हैं, उसको स्थितप्रज्ञ कहते हैं। विषयों की इच्छा करनेवाले को शान्ति प्राप्त हो, यह सम्भव नहीं है। जीवन में पुरुष जब निर्मोह, निरहंकार, अनासक्त, नि:स्पृह हो जाता है, तभी उसको शान्ति प्राप्त हो जाती है। हे धनंजय, यही स्थितप्रज्ञ की ब्रह्मत्व को प्राप्त होने की स्थिति होती है। अन्त समय भी वह अविचल रहकर मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। इसतरह इस स्थितप्रज्ञ के विषय में कृष्णने मनोयोग से समझाया कि कृष्ण स्वयं जीवनभर स्थितप्रज्ञ की भाषा आचरण करते आया है। अर्जुन के मन पर छाये शंकाओं के बादल छँटने लगे। अर्जुन को एक सामान्य नर के नाते अपनी मर्यादायें स्पष्ट होने लगीं कि वह एक सम्भ्रमित नर है वह आधा ही सत्य जान पाया, किन्तु शेष आधा सत्य श्रीकृष्ण कौन है, वह अब तक समझ नहीं पाया।

**३) कर्मयोग-** अर्जुन बोले, जनार्दन। यदि आपको कर्मोंकी अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ मान्य है तो फिर केशव। मुझे भयंकर कर्ममें क्यों लगाते हो? आप मिले हुए-से वचनोंसे मानो मेरी बुद्धिको मोहित कर रहे हैं। इसलिये उस एक बातको निश्चित करके कहिये, जिससे मैं कल्याणको प्राप्त हो जाऊँ। अर्जुनने प्रश्न किया- यदि प्रज्ञाका ही महत्त्व है तो उसे युद्ध जैसे घोर हिंसाके काममें क्यों लगानेको कहा जा रहा है?

हे जनार्दन यदि आपका कहना है कि कर्म से समतोल बुद्धि ही श्रेष्ठ होती है। तो फिर युद्ध के घोर कर्म के लिए मुझे क्यों प्रवृत्त कर रहे हो? हे अच्युत, इन द्वयर्थक वचनों से मेरी बुद्धि भ्रमित हो रही है। हे माधव, कृपा करके मेरे लिए क्या श्रेयस्कर है, क्या कल्याणकारक है यह बतायें। हे हृषीकेश, हे केशव, हे ज्ञानमूर्ति यदि ज्ञान कर्म से उत्तम है तो आप मुझे फिर लहूलुहान कर्म में क्यों लगा रहे है? हे केशव आपने तो मुझे उलझा दिया। यदि ज्ञान कर्म में उत्तम है तो फिर मैं यह भयानक घोर कर्म करूं क्यों? क्यों युद्ध करूं केशव? क्यों न मुनि बनकर मौन समाधि में चला जाऊं? मैं कल्याण का मार्ग पूछ रहा हूं केशव। कृपया मेरा मार्ग प्रशस्त कीजिये केशव।

कृष्ण बोले, हे निष्पाप। इस लोकमें दो प्रकारकी निष्ठा मेरेद्वारा पहले कही गयी है। उनमेंसे सांख्ययोगियोंकी निष्ठा तो ज्ञानयोगसे होती है और योगियोंकी निष्ठा कर्मयोगसे होती है। मनुष्य न तो कर्मोंका आरम्भ किये बिना निष्कर्मताको-योगनिष्ठाको प्राप्त होता है और न केवल कर्मोंका स्वरूपसे त्याग करनेसे सिद्धिको-साख्यनिष्ठाको ही प्राप्त होता है। नि:संदेह कोई भी मनुष्य किसी भी कालमें क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रहता; क्योंकि सारा मनुष्यसमुदाय प्रकृतिजनित गुणोंद्वारा परवश हुआ कर्म करनेके लिये बाध्य किया जाता है। जो मूढबुद्धि मनुष्य समस्त इन्द्रियोंको हठपूर्वक ऊपरसे रोककर मनसे उन इन्द्रियोंके विषयोंका चिन्तन करता रहता है, वह मिथ्याचारी कहा जाता है। किंतु अर्जुन। जो पुरुष मनसे इन्द्रियोंको वशमें करके अनासक्त हुआ दसों इन्द्रियोंद्वारा कर्मयोगका आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है। तू शास्त्रविहित कर्त्तव्यकर्म कर; क्योंकि कर्म न करनेकी अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करनेसे तेरा शरीर-निर्वाह भी नहीं सिद्ध होगा। यज्ञके निमित्त किये जानेवाले कर्मोंसे अतिरिक्त दूसरे कर्मोंमें लगा हुआ ही यह मनुष्यसमुदाय कर्मोंसे बँधता है। इसलिये अर्जुन। तू आसक्तिसे रहित होकर उस यज्ञके निमित्त ही भलीभाँति कर्त्तव्यकर्म कर। श्रीकृष्णने समझाया कि लोकमें जो पारमार्थिक सत्य पाना चाहते हैं, उनमें भी दो प्रकृतिके लोग होते हैं। एक निवृत्ति प्रधान बौद्धिक प्रखरता रखनेवाले और दूसरे प्रवृत्ति प्रधान। इनमें भी केवल निवृत्ति वैराग्यसे ही किसीका उद्धार नहीं होता। उसमें भी साधन तो होना चाहिए। केवल इन्द्रियोंद्वारा बलपूर्वक विषयोंका त्याग तो त्याग नहीं है, यदि मनमें भोगोंका चिन्तन तथा उनकी लिप्सा है। अत: इन्द्रिय संयमके साथ मनका संयम आवश्यक है। मनको संयमित करके आवश्यक कर्त्तव्य एवं भोगका सेवन लोकादर्शकी स्थापनाके लिए भी आवश्यक है। अर्जुन प्रवृत्ति प्रधान व्यक्ति है, अत: उसे अपने कर्मके द्वारा देवताओंको सन्तुष्ट करना चाहिए। उसका मार्ग कर्म योगका मार्ग है।

हे निष्पाप अर्जुन, किसी भी कार्य को आरम्भ ही न करने का यह अर्थ नहीं है कि उससे छुटकारा मिल गया। कर्म का त्याग करने से सिद्धि प्राप्त नहीं होती। कोई भी मनुष्य क्षण-भर भी कर्म किये बिना रह नहीं सकता। प्रकृति प्रत्येक प्राणी को हर क्षण कोई-न-कोई कर्म करते रहने को विवश कर देती है। जो ऊपर से पंचेन्द्रियों को समेटकर मन-ही-मन विषय-सुखों का चिन्तन करता रहता है, उसको ढोंगी कहते हैं, दाम्भिक कहते हैं। हे अर्जुन, जो पंचेन्द्रियों के कार्य का ज्ञान प्राप्त करके अनासक्त बुद्धि से उनको निरन्तर कार्यरत रखता है, उसकी योग्यता विशेष होती है। हे निद्राजयी पार्थ, जो दिन-रात अपनी आत्मा में ही तल्लीन, आत्मा ही के प्रति सन्तुष्ट होता है, उसका अपना और कुछ शेष नहीं रह जाता।

हे निष्पाप अर्जुन, संसार में दो प्रकार के लोग होते हैं अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी। जो अन्तर्मुखी होते है वो स्वयं के भीतर

जाकर ईश्वर देखते हैं यही ज्ञानयोग है और जो बहिर्मुखी होते हैं वे स्वयं से बाहर निकलकर उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु कर्म से छुटकारा नहीं। क्योंकि कर्म के भीतर जाकर उसे खोजना भी तो कर्म ही है। हे कुन्तीपुत्र मार्ग तो यही दो हैं। एक ज्ञान योग का और दूसरा कर्मयोग का। अर्जुन बोला, हे केशव फिर मैं ज्ञानियों के मार्ग पर ही क्यों न चलूं? कृष्ण बोला, हे पार्थ ज्ञानयोग भी कर्म के त्यागने का मार्ग नहीं है, सिद्धि का मार्ग नहीं है क्योंकि कर्म के बिना तो जीवन सम्भव ही नहीं। आंखे हैं तो वे अवश्य देखेंगी। पलके हैं तो वे अवश्य झपकेंगी। कर्ण हैं तो वे अवश्य सुनेंगे। जो कर्मेन्द्रियों के आडे आये उन्हें बलपूर्वक रोक कर उन्हें दमन कर के विषयों का चिन्तन करे वो योगी नहीं, ज्ञानी नहीं वो तो मिथ्याचारी है। सिद्ध पुरुष इन्द्रियों को अपने वश में करता है, दमन नहीं करता पार्थ। वो आंखे बन्द करके नहीं जीता पार्थ। कर्म किये बिना तो शरीर की जीवन यात्रा सम्भव ही नहीं। व्यक्ति सांस तो लेगा ही पार्थ यदि वातावरण में कोई सुगन्ध या दुर्गन्ध है तो उसका अनुभव करने को विवश है। यदि उसके आस-पास कोई ध्वनि है, नाद है, कोलाहल है तो उसे सुनने के लिये उसके कान आदेश की प्रतीक्षा तो नहीं करेंगे पार्थ। इसलिये जो कोई अपनी इन्द्रियों को नियंत्रित रखे, जो अपनी चेतना का उन पर अंकुश लगाकर उन्हे कर्म की दिशा दिखाये वो ही श्रेष्ठ है। वो अपने विकल्पों को समझता है पार्थ और अपनी संकल्प शक्ति का प्रयोग करता है और हे पार्थ अपने नियत कर्म करना कुछ न करने से अच्छा है। अब यह भी ठीक है पार्थ कि आंखे देखती है तो भी क्या देखे और क्या ना देखे इसका निर्णय तो ज्ञानी स्वयं ही लेता है। वो आंखों को देखने की, कर्णों को सुनने की तथा पैरों को चलने की खुली छूट नहीं देता। विकल्प के इसी मोड पर ज्ञानी और अज्ञानी के अन्तर का भेद खुलता है पार्थ इसलिये कर्म तो आवश्यक है क्योंकि इसके बिना वो शरीर का निर्माण सम्भव ही नहीं किन्तु हे पार्थ ज्ञानी पुरुष की भांति कर्म करो। हे कौन्तेय कर्म ऐसे करो जैसे यज्ञ किया जाता है क्योंकि कर्म यज्ञ है और इसका स्त्रोत स्वयं महर्षि ब्रह्मा है, इसलिये कर्म का मार्ग सीधा ब्रह्मा तक जाता है और इसलिये जो व्यक्ति सृष्टि चक्र चलाने में योगदान नहीं करता उसका जीवन मूल्यहीन हो जाता है। तुम इस मूल्य हीनता की ओर मत जाओ पार्थ।

प्रजापति ब्रह्माने कल्पके आदिमें यज्ञसहित प्रजाओंको रचकर उनसे कहा कि तुमलोग इस यज्ञके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होओ और यह यज्ञ तुमलोगोंको इच्छित भोग प्रदान करनेवाला हो। तुमलोग इस यज्ञके द्वारा देवताओंको उन्नत करो और वे देवता तुम लोगोंको उन्नत करें। इस प्रकार नि:स्वार्थभावसे एक-दूसरेको उन्नत करते हुए तुमलोग परम कल्याणको प्राप्त हो जाओगे। यज्ञके द्वारा बढ़ाये हुए देवता तुमलोगोंको बिना माँगे ही इच्छित भोग निश्चय ही देते रहेंगे। इस प्रकार उन देवताओंके द्वारा दिये हुए भोगोंको जो पुरुष उनको बिन दिये स्वयं भोगता है, वह चोर ही है। यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। और जो पापीलोग अपना शरीरपोषण करनेके लिये ही अन्न पकाते हैं, वे तो पापको ही खाते हैं। सम्पूर्ण प्राणी अन्नसे उत्पन्न होते हैं, अन्नकी उत्पत्ति वृष्टिसे होती है, वृष्टि यज्ञसे होती है और यज्ञ विहित कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाला है। कर्मसमुदायको तू वेदसे उत्पन्न और वेदको अविनाशी परमात्मासे उत्पन्न हुआ जान। इससे सिद्ध होता है कि सर्वव्यापी परम अक्षर परमात्मा सदा ही यज्ञमें प्रतिष्ठित है। पार्थ। जो पुरुष इस लोकमें इस प्रकार परम्परासे प्रचलित सृष्टिचक्रके अनुकूल नहीं बरतता- अपने कर्त्तव्यका पालन नहीं करता, वह इन्द्रियोंके द्वारा भोगोंमें रमण करनेवाला पापायु पुरुष व्यर्थ ही जीता है। परंतु जो मनुष्य आत्मामें ही रमण करनेवाला और आत्मामें ही तृप्त तथा आत्मामें ही संतुष्ट हो, उसके लिये कोई कर्त्तव्य नहीं है। उस महापुरुषका इस विश्वमें न तो कर्म करनेसे कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मोंके न करने से ही कोई प्रयोजन रहता है। तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें भी इसका किञ्चिनमात्र भी स्वार्थका सम्बन्ध नहीं रहता। इसलिये तू आसक्तिसे रहित होकर सदा कर्त्तव्यकर्मको भलीभाँति करता रह; क्योंकि आसक्तिसे रहित

होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

कर्म की महत्ता कर्म नहीं है। समस्त संसार चक्र कर्मपर निर्भर है। यह तो जो आत्माराम आप्तकाम पुरुष है उसके लिए कोई कर्त्तव्य नहीं है, क्योंकि उसे कुछ प्राप्त नहीं करना है और उसकी कोई हानि भी होनेवाली नहीं है।

ऐसे आत्माराम महापुरुष भी लोकसंग्रहके लिए कर्म करते हैं। भगवानका तो अवतार ही लोकादर्शकी स्थापनाके लिए होता है। अत: विद्वान पुरुषको भी लोकादर्शके लिए अनासक्त रहते हुए वैसे ही कर्म करना चाहिए जैसे अज्ञानी लोग आसक्ति पूर्वक कर्म करते हैं।

स्वयं कर्ममें कोई दोष नहीं है। कर्म तो प्रकृति कराती है अर्थात् अपने अपने स्वभावानुसार सब कर्म करनेको बाध्य ही हैं। केवल अहंकारसे मूढ़ मनुष्य मानता है कि मैं कर्ता हूँ।

सात्विक, राजस, तामस इन गुणोंके कारण प्राणीका स्वभाव बन जाता है। इन सत्व, रज, तम गुणोंकी प्रेरणासे कर्म होते हैं। अत: तत्त्वदर्शी अपने देहेन्द्रियोंसे होनेवाले कर्मोंमें अहंकार नहीं करता, फलत: कर्मके संस्कार उसे नहीं सटते किन्तु प्रकृतिके गुणोंको अपना मानकर अज्ञानीजन गुण और कर्ममें संसक्त होकर कर्म बन्धनमें पड़ते हैं।

जो व्यक्ति केवल अपने ही समस्याओं के विषय में सोचता है वो पापी है। इसलिये तुम अपने इस मोह जाल से निकलकर अपने कर्त्तव्यों को पहिचानो पार्थ, पालन करो। हे पार्थ कर्म फल की इच्छा ही इस मार्ग की बाधा है। कर्मफल की इच्छा ही तो व्यक्ति के गले में बन्धा हुआ वो पत्थर है जो उसे स्वयं की तपों से ऊपर उठने ही नहीं देता। यही तो व्यक्ति को समाज से काट देता है। व्यक्तिगत लाभ और व्यक्तिगत हानि के दल-दल में धकेल देता है। समाज तुम में नहीं है पार्थ, तुम समाज में हो इसलिये लोक संग्रह और लोककल्याण को ही अपना परम कर्त्तव्य मानो। क्योंकि जो समाज के लिये कल्याणकारी होगा वो ही तुम्हारे लिये भी कल्याणकारी होगा। जो कर्म लोकसंग्रह के लिये होगा पार्थ उसके द्वारा तुम्हे सिद्धि प्राप्त होगी। व्यक्तिगत लाभ से तो पाप की गली निकलती है क्योंकि वो तो स्वार्थ सिद्धि के लिये व्यक्ति को भटका देता है और हे पार्थ तुम यह भी न भूलो कि तुम एक महान पुरुष हो और लोग तुम्हे दृष्टान्त मानकर तुम्हारे पीछे-पीछे काम और स्वार्थ पर चल पडेंगे क्योंकि एक श्रेष्ठ व्यक्ति का आचरण तो दूसरे के लिये दृष्टान्त बन ही जाता है।

जनकादि ज्ञानीजन भी आसक्तिरहित कर्मद्वारा ही परम सिद्धिको प्राप्त हुए थे। इसलिये तथा लोकसंग्रहको देखते हुए भी तू कर्म करनेको ही योग्य है। श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, समस्त मनुष्य समुदाय उसीके अनुसार बरतने लग जाता है। अर्जुन। मुझे इन तीनों लोकोंमें न तो कुछ कर्त्तव्य है और न कोई भी प्राप्त करनेयोग्य वस्तु अप्राप्त है, तो भी मैं कर्ममें ही बरतता हूँ; क्योंकि पार्थ। यदि कदाचित् मैं सावधान होकर कर्मोंमें न बरतूँ तो बड़ी हानि हो जाय; क्योंकि मनुष्यमात्र सब प्रकारसे मेरे ही मार्गका अनुसरण करते हैं। इसलिये यदि मैं कर्म न करूँ तो ये सब मनुष्य नष्ट-भ्रष्ट हो जायँ और मैं संकरताके करनेवाला होऊँ तथा इस समस्त प्रजाको नष्ट करनेवाला बनूँ। भारत। कर्ममें आसक्त हुए अज्ञानीजन जिस प्रकार कर्म करते हैं, आसक्तिरहित विद्वान भी लोकसंग्रह करना चाहता हुआ उसी प्रकार कर्म करे।

हे पार्थ, यद्यपि त्रिभुवन में मेरा कोई कार्य शेष नहीं है। मेरे लिय कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं है और यदि मैं आलस को छोड़कर यदि कर्म नहीं करूँगा तो सभी लोग मेरा ही अनुसरण करेंगे, सभी लोग निष्क्रिय आलसी हो जायेंगे। हे पार्थ, सत्व, रज तम इन त्रिगुणों से घिरी प्रकृति दिन-रात अपना कार्य करती है। किन्तु मूढ़, अहंकारी मनुष्य समझता है कि यह मैंने किया और अपने को कर्ता मान लेता है। अत: जिस मनुष्य ने अहंकार को जान लिया, जीत लिया, वह सर्वश्रेष्ठ है। मुझे

ही लो त्रिलोक में मेरे लिये कुछ भी कामना आवश्यक नहीं है पार्थ और त्रिलोक में ऐसा भी कुछ नहीं जिसे मैं प्राप्त करना चाहूं और प्राप्त नहीं कर सकूं फिर भी मैं तुम्हारे सामने कर्म कर रहा हूं पार्थ। यह दिखला रहा हूं, ये सिद्ध कर रहा हूं कि निष्काम कर्म के मार्ग पर चलते हुये जीवन व्यतीत करना सम्भव है।

धृतराष्ट्र बोले, हे संजय वासुदेव ने यह क्या कहा? संजय बोला, महाराज यहां तो वासुदेव कृष्ण के स्वर ही बदले हुये हैं। जैसे वो स्वयं नहीं और ही कोई बोल रहा है। धृतराष्ट्र बोले, और कौन? संजय बोला, महाराज कुन्तीपुत्र अर्जुन क्या समझे यह तो मैं नहीं जानता किन्तु स्वयं नारायण के अतिरिक्त तो उस शैली में कोई बोल ही नहीं सकता। कोई और यह कह ही नहीं सकता कि त्रिलोक में कोई ऐसी वस्तु है ही नहीं जिसे वो प्राप्त करना चाहे और वो प्राप्त नहीं कर सके। वो कह रहे हैं कि त्रिलोक में उनके करने योग्य कुछ है ही नहीं फिर भी वो कर्म कर रहे है। कि यदि वो कर्म नहीं करेंगे तो संसार तो उनको दृष्टान्त मानकर कर्म को त्याग देगा। और कर्म चक्र ठहर जायेगा। और उसके ठहर जाने से समाज नष्ट हो जायेगा। और इस सर्वनाश का कारण उन्हे ठहराया जायेगा। धृतराष्ट्र बोले, संजय यह तो कोई साधारण या असाधारण पुरुष कह ही नहीं सकता। ये वाक्य तो किसी ब्रह्म ऋषि के भी हो तब भी यह अहंकार का ही प्रदर्शन माना जायेगा। संजय बोला, किन्तु वासुदेव के उच्चारण में तो अहंकार की झलक भी नहीं थी महाराज। धृतराष्ट्र बोले, इसीलिये तो इसने मुझे भी भयभीत कर दिया है संजय। यदि इस स्वर में वे मुझसे भी धनुष उठाने को कहे तो अपनी नेत्रहीनता भूलकर मैं भी धनुष उठा लूंगा। संजय तो क्या अर्जुन गांडीव उठायेगा? संजय बोला, इस प्रश्न का उत्तर मैं दे सकता हूँ महाराज किन्तु भविष्यवाणी मेरे कर्मक्षेत्र के बाहर है। यदि भगवान यह चाहते कि मनुष्य को भविष्य का ज्ञान होना चाहिये तो स्वयं उसे यह ज्ञान दे देते। इसलिये अपने भविष्य को अपने वर्तमान से होकर निकलने का समय दीजिये महाराज। यह प्रतीक्षा ही आपके कर्मक्षेत्र के भीतर है। धृतराष्ट्र बोले कदाचित तुम ठीक ही कह रहे हो संजय और कदाचित मैं यह जानता भी हूं कि इस युद्ध का परिणाम क्या होगा? फिर भी चाहता यह हूं कि इस युद्ध का परिणाम हो ना हो जो होनेवाला हे। कल तक मैं यह सोचा करता था कि मैं शतपुत्रों का पिता हूँ इसलिये मैं कभी अकेला हो ही नहीं सकता। किन्तु अब लगता है कि मैं अकेला हो जाऊंगा। इसलिये मुझे अपने आंखों की अंगुली पकडाकर कुरुक्षेत्र ले चलो।

कृष्ण हे भारत कर्म तो अज्ञानी भी करता है परन्तु केवल अपने निहित स्वार्थ की दृष्टि से। ज्ञानी का कर्म तो नि:स्वार्थ होता है। संसार सन्तुलन को स्थिर बनाये रखने के लिये होता है, कल्याण के लिए होता है। इसलिये हे पार्थ अपने मन पर कोई बोझ मत लो। अपना कर्म मुझे अर्पण कर दो और यह धर्म युद्ध करो। कर्त्तव्य पालन के मार्ग पर मृत्यु भी कल्याणकारी हो जाती है। यदि पितामह, गुरुजनों, सग्गे सम्बन्धियों का तुम्हे वध भी करना पडे तो तुम्हे पाप नहीं लगेंगे क्योंकि कर्त्तव्य पालन पाप रहित होता है पार्थ। यदि वे भी वीरगति को प्राप्त हुये, उनकी मृत्यु कल्याणकारी हो जायेगी और यदि तुम वीरगति को प्राप्त हुये तो तुम्हारी मृत्यु भी। इसलिये हे पार्थ युद्ध करो क्योंकि धर्म का मार्ग कभी पाप का मार्ग नहीं हो सकता। अर्जुन बोला, पाप की बात निकल आई है तो यह बतलाइये केशव कभी-कभी मनुष्य पाप करने के लिये इतना विवश क्यों हो जाता है? उसे कौन विवश करता है?

परमात्माके स्वरूपमें अटल स्थित हुए ज्ञानी पुरुषको चाहिये कि वह शास्त्रविहित कर्मोंमें आसक्तिवाले अज्ञानियोंकी बुद्धिमें भ्रम-कर्मोंमें अश्रद्धा उत्पन्न न करे। किंतु स्वयं शास्त्रविहित समस्त कर्म भलीभाँति करता हुआ उनसे भी वैसे ही करवावे। वास्तवमें सम्पूर्ण कर्म सब प्रकारसे प्रकृतिके गुणोंद्वारा किये जाते हैं। तो भी जिसका अन्त:करण अहंकारसे मोहित हो रहा है, ऐसा अज्ञानी मैं कर्ता हूँ, ऐसा मानता है। परंतु महाबाहो। गुणविभाग और कर्मविभागके तत्त्वको

भलीभाँति जाननेवाला ज्ञानयोगी सम्पूर्ण गुण ही गुणोंमें बरत रहे हैं, ऐसा समझकर उनमें आसक्त नहीं होता। प्रकृतिके गुणोंसे अत्यन्त मोहित हुए मनुष्य गुणोंमें और कर्मोंमें आसक्त रहते हैं, उन पूर्णतया न समझनेवाले मन्दबुद्धि अज्ञानियोंको पूर्णतया जाननेवाला ज्ञानयोगी विचलित न करे। मुझ अन्तर्यामी परमात्मामें लगे हुए चित्तद्वारा सम्पूर्ण कर्मोंको मुझमें अर्पण करके आशारहित, ममतारहित और संतापरहित होकर युद्ध कर। जो कोई मनुष्य दोषदृष्टिसे रहित और श्रद्धायुक्त होकर मेरे इस मतका सदा अनुसरण करते हैं, वे भी सम्पूर्ण कर्मोंसे छूट जाते हैं। परंतु जो मनुष्य मुझमें दोषारोपण करते हुए मेरे इस मतके अनुसार नहीं चलते उन मूर्खोंको तू सम्पूर्ण ज्ञानोंमें मोहित और नष्ट हुआ ही समझ। सभी प्राणी अपने स्वभाव के परवश हुए कर्म करते हैं। ज्ञानवान भी अपनी प्रकृतिके अनुसार चेष्टा करता है। फिर इसमें किसीका हठ क्या करेगा। प्रत्येक इन्द्रियके भोगमें राग और द्वेष छिपे हुए स्थित हैं। मनुष्यको उन दोनोंके वशमें नहीं होना चाहिये; क्योंकि वे दोनों ही इसके कल्याणमार्गमें विघ्न करनेवाले महान् शत्रु हैं। अच्छी प्रकार आचरणमें लाये हुए दूसरेके धर्मसे गुणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्ममें तो मरना भी कल्याणकारक है और दूसरेका धर्म भयको देनेवाला है।

अर्जुन बोले- कृष्ण। यह मनुष्य स्वयं न चाहता हुआ भी बलात्कारसे लगाये हुएकी भाँति किससे प्रेरित होकर पापका आचरण करता है?

विवेकवान पुरुषको चाहिए कि अज्ञानियोंकी प्रवृत्तिका विरोध करके उनमें बुद्धि भेद उत्पन्न न करे क्योंकि इससे उनमें ठीक ज्ञानोदय तो होगा नहीं, बुद्धि भ्रम होनेसे वे पथभ्रष्ट हो जायँगे। अत: उनको तो वे जो कर रहे हैं, करने दें किन्तु स्वयं समस्त कर्म अन्तर्यामी परमात्माको अर्पित करके एवं फलाशा त्यागकर, ममतारहित होकर कर्त्तव्यका पालन करें।

सब प्राणी अपने स्वभावके अनुसार व्यवहार करनेको विवश है। स्वभावके विपरीत नियन्त्रणका प्रयत्न सफल नहीं होता। अर्जुनका स्वभाव क्षत्रियका है। वह शत्रुके व्यंग सहकर, भिक्षा माँगकर जीवन यापन नहीं कर सकता अत: उसे कर्त्तव्य प्राप्त युद्ध करना चाहिए। लेकिन इन्द्रियोंका अपने विषयोंमें जो राग है, उसीको स्वभाव मानकर विषयासक्त होना अनर्थकारी है। इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिके वशमें तो नहीं होना चाहिए। उनका नियन्त्रण करना चाहिए। वैसे तो सभी परकीय धर्म अच्छे दिखाई देते हैं किन्तु स्वधर्म का आचरण करते हुए यदि मृत्यु भी आ जाए, वह श्रेयस्कर है। कितना भी अच्छा हो परधर्म सदा भयावह होता है। अर्जुन ने पूछा, हे वार्ष्णेय, हे कृष्ण न  चाहते हुए भी कभी-कभी मनुष्य बलात् पाप कर ही बैठता है, वह किसकी प्रेरणा से? कृष्ण बोले, हे धनंजय यह जान लो कि इस सन्दर्भ में काम और प्रबल यही सत्य है।

रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है; यह बहुत खानेवाला और बड़ा पापी है, इसको ही तू विषयमें वैरी जान। जिस प्रकार धुंएँसे अग्नि और मैलसे दर्पण ढका जाता है तथा जिस प्रकार जेरसे गर्भ ढका रहता है, वैसे ही उस कामके द्वारा यह ज्ञान ढका रहता है। इस अग्निके समान कभी न पूर्ण होनेवाले कामरूप ज्ञानियोंके नित्य वैरीके द्वारा मनुष्यका ज्ञान ढका हुआ है। इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि- ये सब इसके वासस्थान कहे जाते हैं। यह काम इन मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके द्वारा ही ज्ञानको आच्छादित करके जीवात्माको मोहित करता है। इसलिये अर्जुन। तू पहले इन्द्रियोंको वशमें करके इस ज्ञान और विज्ञानका नाश करनेवाले महान पापी कामको अवश्य ही बलपूर्वक मार डाल। इन्द्रियोंको स्थूल शरीरसे पर श्रेष्ठ, बलवान और सूक्ष्म कहते हैं; इन इन्द्रियोंसे पर मन है, मनसे भी पर बुद्धि है और जो बुद्धिसे भी अत्यन्त पर है वह आत्मा है। इस प्रकार बुद्धिसे पर-सूक्ष्म, बलवान और अत्यन्त श्रेष्ठ आत्माको जानकर और बुद्धिके द्वारा मनको वशमें करके महाबाहो। तू इस कामरूप दुर्जय शत्रुको मार डाल। दुर्योधन न चाहते हुए पापकर्मोंमे क्यों प्रवृत्त हो रहा है केशव?

कृष्ण बोले, उसे विवश करती है उसकी वासना, उसे विवश करता है उसका निहित स्वार्थ। उससे पाप करवाता है

उसका क्रोध, उसका मोह। इन शत्रुओं को पहिचानो पार्थ। जैसे धुआं अग्नि को ढक देता है, जैसे धूल दर्पण को, जेर गर्भ को वैसे ही ढक देता है काम, वासना, मोह ज्ञान को। काम और मोह की अग्नि ज्ञान को नष्ट कर देती है और इसीलिये ज्ञानी के बैरी है। इसलिये हे कौन्तेय अग्नि को स्वच्छ बनाओ दर्पण को परिशुद्ध करो और अपनी इन्द्रियों को सौम्य बनाकर ज्ञान और विवेक के इन नाशकों का वध करो। हे पार्थ जड पदार्थ से इन्द्रियां श्रेष्ठ है, इन्द्रियों से श्रेष्ठ है मन। मन से श्रेष्ठ है बुद्धि और बुद्धि से भी श्रेष्ठ है आत्मा। तो आत्मा की चिन्ता करो तुम पार्थ। देह, इन्द्रियों, मन और बुद्धिसे ऊपर उठाने का प्रयत्न करो। काम और क्रोध रजोगुणके, प्रवृत्तिके पुत्र हैं। ये सदा अतृप्त रहते हैं और पापमें ही प्राणीको प्रवृत्त करते हैं। अत: इनको अपना शत्रु समझना चाहिए। इन्द्रियोंमें, मनमें और बुद्धिमें भी काम, विषयोंकी भोगेच्छाका निवास है। अत: पहिले इन्द्रियोंको बलपूर्वक नियन्त्रित करके कामनाका त्याग कर दो। वैसे जो बुद्धिसे भी परे परम तत्व है, उसके साक्षात्कारसे काम समूल नष्ट हो जाता है। ये काम और क्रोध दोनों सत्य को उलझायें रखते हैं। इन्द्रियों के दुर्ग में बैठकर काम विवेक को, भले-बुरे की पहिचान करानेवाली बुद्धि को धुँधला कर देता है। अत: हे किरीटिन् जैसे दुर्दमनीय शत्रु को तू पहले मार। इसतरह से श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्मयोग के अज्ञात विषय में दर्शन कराया।

**४) ज्ञान-कर्म-संन्यासयोग-** कृष्ण बोले, मैंने इस अविनाशी योगको सूर्यसे कहा था, सूर्यने अपने पुत्र वैवस्वत् मनुसे कहा और मनुने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकुसे कहा। परंतप अर्जुन। इस प्रकार परम्परासे प्राप्त इस योगको राजर्षियोंने जाना, किंतु उसके बाद वह योग बहुत कालसे इस पृथ्वीलोकमें लुप्तप्राय हो गया। तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इसलिये वही यह पुरातन योग आज मैंने तुझको कहा है; क्योंकि यह योग बड़ा ही उत्तम रहस्य है। इस प्रकार राजर्षियोंकी परम्परामें आता यह ज्ञान कालयोगसे नष्ट हो गया था। हे पार्थ तुम तो मेरे भक्त भी हो और सखा भी हो। इसलिये अब मैं तुम्हे वह योग बताने जा रहा हूं जो बहुत समय से लुप्त है। परन्तु सृष्टि के आरम्भ में मैंने ही इसे सूर्य को दिया था और सूर्य से यह मनु को प्राप्त हुआ और मनु से इक्ष्वाकु तक पहुंचा। अर्जुन बोला, आपने यह योग सूर्य को दिया था परन्तु हे केशव आपने तो अभी जन्म लिया है और सूर्य तो प्राचीन है तो मैं यह कैसे मान लूं कि आरम्भ में यह योग आपने सूर्य को दिया होगा केशव।

अर्जुन बोले- आपका जन्म तो अर्वाचीन-अभी हाल ही का है और सूर्यका जन्म तो बहुत पहले कल्पके आदिमें हो चुका था; तब मैं इस बातको कैसे समझूँ कि आपहीने कल्पके आदिमें सूर्यसे यह योग कहा था? कृष्ण बोले- परंतप अर्जुन। मेरे और तेरे बहुतसे जन्म हो चुके हैं। उन सबको तू नहीं जानता, किंतु मैं जानता हूँ। मैं अजन्मा और अविनाशीस्वरूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियोंका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ। भारत। जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्ध होती है, तब-तब ही मैं अपने रूपको रचता हूँ, साधु पुरुषोंका उद्धार करनेके लिये, पाप-कर्म करनेवालोंका विनाश करनेके लिये और धर्मकी अच्छी तरहसे स्थापना करनेके लिये मैं युगयुगमें प्रकट हुआ करता हूँ। अर्जुन। मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं- इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्वसे जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्म ग्रहण नहीं करता किंतु मुझे ही प्राप्त होता है। पहले भी, जिनके राग, भय और क्रोध सर्वथा नष्ट हो गये थे और जो मुझमें अनन्यप्रेमपूर्वक स्थित रहते थे, ऐसे मेरे आश्रित रहनेवाले बहुत-से भक्त उपर्युक्त ज्ञानरूप तपसे पवित्र होकर मेरे स्वरूपको प्राप्त हो चुके हैं। अर्जुन। जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ; क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकारसे मेरे ही मार्गका अनुसरण करते हैं। इस मनुष्यलोकमें कर्मोंके फलको चाहनेवाले लोग देवताओंका पूजन किया करते हैं; क्योंकि उनको कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाली सिद्धि शीघ्र मिल जाती है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र- इन चार वर्णोंका समूह, गुण और कर्मोंके विभागपूर्वक मेरे द्वारा रचा गया है। इस प्रकार उस सृष्टिरचनादि कर्मका कर्त्ता होनेपर भी मुझ अविनाशी परमेश्वरको तू वास्तवमें अकर्त्ता ही जान। कर्मोंके फलमें मेरी स्पृहा नहीं है; इसलिये मुझे कर्म लिप्त नहीं करते- इस प्रकार जो मुझे तत्त्वसे जान लेता है, वह भी कर्मोंसे नहीं बँधता। पूर्वकालके मुमुक्षुओंने भी इस प्रकार जानकर ही कर्म किये हैं। इसलिये तू भी पूर्वजोंद्वारा सदासे किये जानेवाले कर्मोंको ही कर।

हां पार्थ मेरे और तुम्हारे बहुत से जन्म हो चुके हैं। मुझे वो सारे जन्म याद है परन्तु तुम उन्हे नहीं जानते हो। हे परन्तप, वैसे तो मैं अजन्मा हूँ, अविनाशी हूँ, समस्त प्राणियों का स्वामी हूं परन्तु मैं अपनी प्रकृति को अधीन कर अपनी ही योगमाया से प्रकट होते रहता हूं। जब-जब धर्म की हानि होती है तब-तब मैं आता हूं। जब जब अधर्म बढ़ता है तब तब मैं आता हूं। सज्जन पुरुषों की रक्षा के लिये मैं आता हूँ। दुष्टों का विनाश करने के लिये मैं आता हूं। धर्म की संस्थापना के लिये आता हूँ। और बार-बार युग-युग में जन्म लेता हूं। अर्जुन बोला, परन्तु हे केशव धर्म की हानि होती ही क्यों है? कृष्ण बोले, धर्म की हानि इसलिये होती है पार्थ कि मनुष्य मोह के बन्धन को नहीं तोड़ पाता। वो अपने स्वयं से नाता तोडकर समाज से नाता नहीं जोड पाता। हे पार्थ यदि ऐसा ना हुआ होता तो लाक्ष्यागृह दुर्घटना ना हुई होती, द्रौपदी वस्त्राहरण नहीं हुआ होता। कौरव और पांडव सेना यों आज एक-दूसरे के सामने नहीं खडी हुई होती। अर्जुन बोला, तो क्या द्रौपदी वस्त्रहरण पर मुझे क्रोध नहीं आना चाहिये था केशव? कृष्ण बोले, यह निर्णय तो तुम्हे स्वयं लेना था पार्थ लेकिन द्रौपदी वस्त्राहरण केवल तुम्हारी व्यक्तिगत समस्या नहीं है। जो समाज इन्द्रप्रस्थ की पट्टरानी, महाराज द्रुपद की पुत्री पांडवों की पत्नी के वस्त्राहरण पर चुप रह गया वो समाज किसी साधारण नारी के मान-सम्मान की क्या रक्षा करेगा? द्रौपदी वस्त्राहरण एक सामाजिक समस्या है पार्थ और यह तुम्हारा कर्त्तव्य है उन शक्तियों को नष्ट करने के लिये युद्ध करो जो किसी द्रौपदी का वस्त्रहरण कर सकती है। ये शक्तियां समाज की शत्रु है पार्थ और जो महापुरुष इस युद्धमें उन शक्तियों के पक्ष में है, जो उनके पक्ष में युद्ध करने आये है उनसे युद्ध करने में भी संकोच मत करो। अपने व्यक्तिगत क्रोध और अपने व्यक्तिगत मोह के बन्धनों से मुक्त होकर लोककल्याण के लिये युद्ध करो पार्थ यही तुम्हारा परम कर्त्तव्य है। मुझे देखो पार्थ इस समाज और उसके वर्णों के गुणों और कर्मों के आधार पर मैंने स्वयं रच तो दिया परन्तु इस समाज रचना का फल मैंने कभी नहीं चाहा। इसीलिये कर्त्ता होते हुये भी मैं अकर्त्ता हूं और जो कोई इस रहस्य को समझे पार्थ वो कभी अपने कर्मों में लिप्त नहीं होगा। मुझे कर्म फल की इच्छा नहीं है तभी तो कर्म मुझे दूषित नहीं कर पाते। तुम भी निष्काम कर्म करो पार्थ और उस पर अपने निहित स्वार्थ की छाया मत पडने दो। हे पार्थ, कर्म, अकर्म और विकर्म के अन्तर को समझो।

जीव अपने जन्मोंको नहीं जानता क्योंकि वह अविद्यासे आवृत है। कर्म परतन्त्र है; किन्तु मैं योगमायाका आश्रय करके युग-युगमें धर्मकी रक्षा, दुष्कर्मियोंके विनाश तथा साधु परित्राणके लिए अवतार लेता हूँ। अविद्या-संस्पर्श शून्य होनेसे मुझे सबका ज्ञान है। अवतार-चरित सदा जीवोंके लिए मंगलकारी हैं। जो उसका दिव्यतत्व जानते हैं वे तो जन्म-मरणसे मुक्त ही हो जाते हैं। जो जिस भावसे भगवानकी शरण लेते हैं, भगवान भी उसी भावसे उन्हें अपनाते हैं। कर्मके द्वारा सिद्धि चाहनेवाले देवताओंकी आराधना करते हैं। इस प्रकारकी कर्मज सिद्धि कर्मके ठीक-ठीक होनेपर शीघ्र होती है।

अवतार लेनेपर भी भगवान कर्मकेद्वारा लिप्त नहीं होते क्योंकि किसी कर्मफलकी उनमें स्पृहा नहीं है। इस रहस्यको जान लेनेवाले कर्मफलसे निस्पृह हो जाते हैं, अत: कर्मबन्धनमें नहीं आते।

इस प्रकार आसक्ति स्पृहा त्यागकर सदासे मुमुक्षुजन कर्म करते आये हैं। अत: कर्मका रहस्य जानने योग्य है। कर्मकी गति बहुत गूढ़ है। यह कर्मका मूल रहस्य है कि जो कामनाके संकल्पको त्यागकर निष्काम भावसे सब कर्म करता है

उसके सब कर्म ज्ञानाग्निमें भस्म हो जाते हैं। कर्म फल तथा कर्मकी आसक्ति त्यागकर जो अपनेमें ही तृप्त है तृप्तिके लिए अन्य कोई आश्रय नहीं लेता, वह कर्ममें लगनेपर भी वस्तुत: कुछ नहीं करता।

कृष्ण बोले, अर्जुन मैं तुझे अपने स्तर पर उठाना चाहता हूँ। तू यह जान ले कि मैं समस्त भूतों का स्वामी हूँ, अजन्मा हूँ। हे भारत जब-जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म प्रबल हो जाता है, तब-तब मैं जन्म लेता हूँ। सज्जनों की रक्षा और दुष्टों के विनाश हेतु, प्रत्येक युग में धर्म को स्थापित करने के लिए मैं जन्म लेता हूँ- अवतार लेता हूँ। इनमें धर्म और अवतार इन शब्दों को उनकी गहराइयों सहित समझ लो। धृ-धारयति इति धर्म:- किसी भी प्राणी के निर्दोष विकास के लिए जिस संस्कार-प्रणाली का उपयोग किया जाता है, वही धर्म है। शुष्क कर्मकाण्ड का अर्थ धर्म नहीं है। मनुष्यों को तारने के लिए मैं धरती पर अवतरित होता हूँ। इस भ्रम में न रहना कि मैं अनन्त हस्तों नेत्रों और मुखों सहित सदेह अवतार धारण करता हूँ। अन्याय का प्रतिकार करनेवाले किसी भी मनुष्य के रूप में अंशमात्र से मैं ही अवतरित होता हूँ। हे अर्जुन, तेरे रूप में भी मैंने ही अवतार लिया है। हे बीभत्सु, जाना हुआ सब-कुछ ध्यान में रखने योग्य नहीं होता। अत: जीवन के लिए जो आवश्यक ज्ञान ध्यान में रखा जाता है, वही सच्चा ज्ञान है। इन तीनों लोकों में ज्ञान के समान पवित्र कुछ भी नहीं है। जो श्रद्धावान पुरुष अपनी प्रमाथी इन्द्रियों का दमन करके, ज्ञान-प्राप्ति के लिए उसके पीछे ही पड़ जाता है, उसीको ज्ञान प्राप्त होता है। हे पार्थ, विशुद्ध ज्ञान-प्राप्ति से जो शान्ति मिलती है, वह अन्य किसी से नहीं मिलती। विनय से ही विद्या की शोभा होती है। ज्ञानी मनुष्य ब्राह्मण, गाय, हाथी, श्वान और चाण्डाल- सभी को समान दृष्टि से देखता है।

जिसके चित्तमें कुछ पानेकी आशा नहीं है, मन संयमित हैं, जो निष्परिग्रह है, वह केवल शरीर निर्वाहके लिए कर्म करनेपर पापका भागी नहीं होता। जो प्राप्त होता है उसीमें सन्तुष्ट, सुख-दु:खादि द्वन्द्वोंमें समान, मत्सरहीन, आसक्तिरहित, ज्ञानमें ही स्थित मुक्तपुरुष लोकहितार्थ जो कर्म करता है, उसका फल समष्टिमें लीन हो जाता है।

कई प्रकारके यज्ञों, संयमोंका वर्णन करके कृष्णने बतलाया कि सभी यज्ञ कर्मसे ही होते हैं। इन सबमें ज्ञानयज्ञ ही सर्वोत्तम तथा श्रेयस्कर है क्योंकि सब कर्मोंकी परिसमाप्ति ज्ञानमें ही होती है।

कृष्ण बोले, कर्म क्या है? और अकर्म क्या है? इस प्रकार इसका निर्णय करनेमें बुद्धिमान् पुरुष भी मोहित हो जाते हैं। इसलिये वह कर्मतत्त्व मैं तुझे भली-भाँति समझाकर कहूँगा, जिसे जानकर तू अशुभसे-कर्मबन्धनसे मुक्त हो जायगा। कर्मका स्वरूप भी जानना चाहिये और अकर्मका स्वरूप भी जानना चाहिये तथा विकर्मका स्वरूप भी जानना चाहिये; क्योंकि कर्मकी गति गहन है। जो मनुष्य कर्ममें अकर्म देखता है और जो अकर्ममें कर्म देखता है, वह मनुष्योंमें बुद्धिमान है और वह योगी समस्त कर्मोंको करनेवाला है। जिसके सम्पूर्ण शास्त्रसम्मत कर्म बिना कामना और संकल्पके होते हैं तथा जिसके समस्त कर्म ज्ञानरूप अग्निके द्वारा भस्म हो गये हैं, उस महापुरुषको ज्ञानीजन भी पण्डित कहते हैं। जो पुरुष समस्त कर्मोंमें और उनके फलमें आसक्तिका सर्वथा त्याग करके संसारके आश्रयसे रहित हो गया है और परमात्मामें नित्यतृप्त है, वह कर्मोंमें भली-भाँति बर्तता हुआ भी वास्तवमें कुछ भी नहीं करता। जिसका अन्त:करण और इन्द्रियोंके सहित शरीर जीता हुआ है और जिसने समस्त भोगोंकी सामग्रीका परित्याग कर दिया है, ऐसा अशारहित पुरुष केवल शरीर सम्बन्धी कर्म करता हुआ भी पापको नहीं प्राप्त होता। जो बिना इच्छाके अपने-आप प्राप्त हुए पदार्थमें सदा संतुष्ट रहता है, जिसमें ईर्ष्याका सर्वथा अभाव हो गया है, जो हर्ष शोक आदि द्वन्द्वोंसे सर्वथा अतीत हो गया है- ऐसा सिद्धि और असिद्धिमें सम रहनेवाला कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी उनसे नहीं बँधता। जिसकी आसक्ति सर्वथा नष्ट हो गयी है, जो देहाभिमान और ममतासे रहित हो गया है, जिसका चित्त निरन्तर परमात्माके ज्ञानमें स्थित रहता है, ऐसे केवल यज्ञसम्पादनके

लिये कर्म करनेवाले मनुष्यके सम्पूर्ण कर्म भली-भाँति विलीन हो जाते हैं।

अर्जुन बोला, कर्म, विकर्म, अकर्म में क्या अन्तर है केशव? कृष्ण बोले, कर्म तो कर्म है ही किन्तु जो कर्म कर्मफल की आशा से मुक्त होकर किया जाये वो अकर्म है और जो कर्म व्यक्ति और समाज के हित में न हो वो विकर्म है, निषिद्ध है। कर्म अकर्म से श्रेष्ठ है, कर्त्ता अकर्त्ता से श्रेष्ठ है और हे पार्थ जो अकर्त्ता है और कर्मफल की इच्छा से मुक्त है वही ज्ञानी है, वही बुद्धिवान है और वही कर्मयोगी भी है। उसके लिये उसका कर्म ही कर्मफल भी है। और इसीलिये वो अपने एक कर्म के पालन के उपरान्त उसके फल की प्रतीक्षा में नहीं ठहरता बल्कि दूसरे कर्म की ओर बढ़ जाता है। उसके ज्ञान की अग्नि क्रोध, मोह, द्वेष, आकांक्षा, लाभ, हानि, सुख और दु:ख के मैल को जलाकर उसके कर्म को शुद्ध कर देती है और उसका कर्म अकर्म बन जाता है और वो कर्त्ता से अकर्त्ता। और यह अकर्ता यह ज्ञानी जीवन के आवश्यक साधन जुटाने के अतिरिक्त अपने लिये और कुछ नहीं करता। उसके शेष कर्म समाज कल्याण के लिये होते है। यह मनुष्य कर्म करते हुये भी पाप से दूषित नहीं होता। उसका जीवन तो स्वयं ही समाज के लिये कल्याणकारी हो जाता है। हे निष्पाप अर्जुन ऐसे ही व्यक्ति का जीवन यज्ञ है तुम भी अपने जीवन को यज्ञ बना लो और उसके हवन कुंड में अपने कर्मफल की इच्छा मोह और क्रोध को आहुतियों की तरह डालो। अर्जुन बोला, और यह यज्ञ क्या है केशव?

जिस यज्ञमें अर्पण-स्रुवा अदि भी ब्रह्म है और हवन किये जानेयोग्य द्रव्य भी ब्रह्म है तथा ब्रह्मरूप कर्ताके द्वारा ब्रह्मरूप अग्निमें आहुति देना रूप क्रिया भी ब्रह्म है, उस ब्रह्मकर्ममें स्थित रहनेवाले पुरुषद्वारा प्राप्त किये जानेयोग्य फल भी ब्रह्म ही है। दूसरे योगीजन देवताओंके पूजनरूप यज्ञका ही भलीभाँति अनुष्ठान किया करते हैं और अन्य योगीजन परब्रह्म परमात्मारूप अग्निमें अभेददर्शनरूप यज्ञके द्वारा ही आत्मारूप यज्ञका हवन किया करते हैं। अन्य योगीजन श्रोत्र आदि समस्त इन्द्रियोंको संयमरूप अग्नियोंमें हवन किया करते हैं और दूसरे योगीलोग शब्दादि समस्त विषयोंको इन्द्रियरूप अग्नियोंमें हवन किया करते हैं। दूसरे योगीजन इन्द्रियोंकी सम्पूर्ण क्रियाओंको और प्राणोंकी समस्त क्रियाओंको ज्ञानसे प्रकाशित आत्मसंयमयोगरूप अग्निमें हवन किया करते हैं। कई पुरुष द्रव्यसम्बन्धी यज्ञ करनेवाले हैं, कितने ही तपस्यारूप यज्ञ करनेवाले हैं तथा दूसरे कितने ही योगरूप यज्ञ करनेवाले हैं और कितने ही अहिंसादि तीक्ष्ण व्रतोंसे युक्त यत्नशील पुरुष स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ करनेवाले हैं। दूसरे कितने ही योगीजन अपानवायुमें प्राणवायुको हवन करते हैं, वैसे ही अन्य योगीजन प्राणवायुमें अपानवायुको हवन करते हैं तथा अन्य कितने ही नियमित आहार करनेवाले प्राणायामपरायण पुरुष प्राण और अपानकी गतिको रोककर प्राणोंको प्राणोंमें ही हवन किया करते हैं। ये सभी साधक यज्ञोंद्वारा पापोंका नाश कर देनेवाले और यज्ञोंको जाननेवाले हैं। कुरुश्रेष्ठ अर्जुन। यज्ञसे बचे हुए प्रसादरूप अमृतको खानेवाले योगीजन सनातन परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होते हैं और यज्ञ न करनेवाले पुरुषके लिये तो यह मनुष्यलोक भी सुखदायक नहीं है, फिर परलोक कैसे सुखदायक हो सकता है? इसी प्रकार और भी बहुत तरहके यज्ञ वेदकी वाणीमें विस्तारसे कहे गये हैं। उन सबको तू मन, इन्द्रिय और शरीरकी क्रियाद्वारा सम्पन्न होनेवाले जान; इस प्रकार तत्त्वसे जानकर उनके अनुष्ठानद्वारा तू कर्मबन्धनसे सर्वथा मुक्त हो जायगा।

कृष्ण बोले, अलग-अलग लोग यज्ञ की परिभाषा भी अलग-अलग करते हैं पार्थ। कुछ लोगों के लिये यज्ञ भ्रम का स्वरूप है। उनके लिये सब कुछ ब्रह्म है। कुछ लोग देवताओं को प्रसन्न करने के लिये यज्ञ करते हैं तो उनके लिये पूजा ही यज्ञ है। कुछ साधक आत्मा को परमात्मा से मिलाने की साधना को यज्ञ कहते हैं। इन्ही यज्ञों की भांति इन्ही में दी जानेवाली आहुतियां भी अलग प्रकार की है। कोई धन की आहुति देता है तो कोई कर्म की। किन्तु वास्तव में यज्ञ चार प्रकार के हैं। १) द्रव्य यज्ञ- इसमें अर्जित द्रव्य को समाज के कल्याण के कार्यों में लगाया जाता है अर्थात यह लोकसेवा

भी यज्ञ है। २) तपोयज्ञ- जब कोई अपने कर्म को तपस्या बना लेता है तो उसका जीवन तपो यज्ञ बन जाता है। हे पार्थ अपने धर्म का पालन भी यज्ञ है किन्तु ये धर्म साम्प्रदायिक नहीं सनातन है। यह व्यक्ति और समाज दोनों ही के लिये कल्याणकारी है। ३) योग यज्ञ- इसमें अष्टांग योग की साधना की जाती है। इसमें लोग ध्यान और समाधि का मार्ग अवलम्बन करते हैं। प्राणों का प्राणों में हवन किया जाता है। ४) ज्ञान यज्ञ- यों तो चारों ही यज्ञ महत्वपूर्ण हैं परन्तु श्रेष्ठतम है ज्ञानयज्ञ क्योंकि ज्ञान ही तो अच्छे और बुरे में अन्तर करता है। अपनी अग्नि में तपाकर कर्म को शुद्ध करता है, शुभ बनाता है। ज्ञान ही तो कर्म के उत्कर्ष का चरम बिन्दु है और ज्ञान ही तो तुम्हे मोह बन्धनों से मुक्त करायेगा पार्थ। हे पार्थ पाप के सागर को केवल ज्ञान की नौका ही पार कर सकती है।

**कर्म करो तुम ज्ञान से श्रेष्ठज्ञान है धर्म, कर्मयोग ही धर्म है धर्म योग ही कर्म।**

परंतप अर्जुन। द्रव्यमय यज्ञकी अपेक्षा ज्ञानयज्ञ अत्यन्त श्रेष्ठ है; क्योंकि यावन्मात्र सम्पूर्ण कर्म ज्ञानमें समाप्त हो जाते हैं। उस ज्ञानको तू समझ; श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्यके पास जाकर उनको भलीभाँति दण्डवत् प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेसे और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे परमात्वतत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले वे ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे, जिसको जानकर फिर तू इस प्रकार मोहको नहीं प्राप्त होगा तथा अर्जुन। जिस ज्ञानके द्वारा तू सम्पूर्ण भूतोंको नि:शेषभावसे पहले अपनेमें और पीछे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मामें देखेगा। यदि तू अन्य सब पापियोंसे भी अधिक पाप करनेवाला है, तो भी तू ज्ञानरूप नौकाद्वारा नि:संदेह सम्पूर्ण पापोंको भलीभाँति लाँघ जायगा; क्योंकि अर्जुन। जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनको भस्ममय कर देता है, वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मोंको भस्ममय कर देता है। इस संसारमें ज्ञानके समान पवित्र करनेवाला नि:संदेह कुछ भी नहीं है। उस ज्ञानको कितने ही कालसे कर्मयोगके द्वारा शुद्धान्त:करण हुआ मनुष्य अपने-आप ही आत्मामें पा लेता है। जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान मनुष्य ज्ञानको प्राप्त होता है तथा ज्ञानको प्राप्त होकर वह बिना विलम्बके-तत्काल ही भगवत्प्राप्ति रूप परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है। विवेकहीन तथा श्रद्धारहित और संशययुक्त पुरुष परमार्थसे भ्रष्ट हो जाता है। उनमें भी संशययुक्त पुरुषके लिये तो न यह लोक है, न परलोक है और न सुख ही है। धनञ्जय। जिसने कर्मयोगकी विधिसे समस्त कर्मोंका परमात्मामें अर्पण कर दिया है और जिसने विवेकद्वारा समस्त संशयोंका नाश कर दिया है, ऐसे स्वाधीन अन्त:करणवाले पुरुषको कर्म नहीं बाँधते। इसलिये भरतवंशी अर्जुन। तू हृदयमें स्थित इस अज्ञानजनित अपने संशयका विवेकज्ञानरूप तलवारद्वारा छेदन करके समत्वरूप कर्मयोगमें स्थित हो जा और युद्धके लिये खड़ा हो जा।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा और हे मानव समय तुझसे कह रहा है कि संसार तेरी कर्मभूमि है और तू अपने कर्मों के मापदण्ड से नापा जायेगा इसलिये तू कर्मों से भागने का यत्न मत कर क्योंकि मनुष्य का निष्काम कर्म ही उसका कर्त्तव्य है और उसका कर्त्तव्य ही उसका धर्म है किन्तु यदि उसका कर्म उसके हित के लिये है तो वो कर्म पाप की ओर जानेवाला मार्ग है इसलिये हे मानव अपने से मुक्त होकर समाज के हित कल्याण के लिये कर्म कर यही मोक्ष का मार्ग है। दूसरे सारे कर्म तो मोह, माया और क्रोध के बन्दी है और जो स्वयं ही बन्दी है वो तुम्हे मोक्ष के मार्ग पर क्या ले जायेंगे? यदि समाज सुखी नहीं तो व्यक्ति भी सुखी नहीं रह सकता। यदि समाज की आंखों में आंसू है तो समझ ले कि तेरी आंखे भी सूखी नहीं रह सकती। यदि वृक्ष कट जायेंगे तो तुझे फल भी प्राप्त नहीं हो सकेंगे क्योंकि फल देना और छाया देना तो वृक्ष का कर्म है। तू तो समाज का एक भाग है। अपने को भाग समझ, स्वयं न समझ, इसी में तेरा कल्याण है और यह ज्ञान श्रेष्ठ है। और जिसमें यह ज्ञान है उसका जीवन ही यज्ञ है। कृष्ण बोले, तुम भी ज्ञान की नौका में बैठकर पाप के सागर को पार कर जावोगे। यह समझ लो पार्थ जैसे अग्नि सब कुछ

जलाकर भस्म कर देती है वैसी ही यह ज्ञान की अग्नि कर्मफल की इच्छा, कर्म फल की प्राप्ति न होने पर आनेवाले क्रोध और उस क्रोध के सहारे आनेवाले उस मोह को जला कर भस्म कर देती है। हे पार्थ इस मन्त्र को सदैव याद रखो कि संसार में ज्ञान के समान पवित्र करनेवाली न कोई वस्तु है और न ही कोई तत्व, ज्ञान ही सर्वोत्तम है। जो अज्ञानी है जिनमें श्रद्धा भाव नहीं है, जो बात-बात पर शंका सन्देह करते हैं संशय युक्त हैं उन्हें तो नष्ट हुआ ही जानो और उन्हे न तो इस लोक में सुख मिलता है और न ही परलोक में इसलिये हे भारत संशय को त्यागो और तुम्हारे भीतर जो मुनि बैठा है उसे जगाओ। ज्ञान योगी बनो पार्थ ज्ञान योगी और समझ लो ज्ञान की चरम सीमा ही कर्म सन्यास है।

ज्ञानियोंके समीप जाकर विनम्र होकर उनकी सेवा करते हुए बार-बार जिज्ञासा करनेसे ही ज्ञानकी प्राप्ति होती है। वह ज्ञान स्वत: के चिन्तनसे नहीं मिलता, तत्त्वदर्शी ज्ञानीकी शरणागतिसे ही मिलता है और वह है सम्पूर्ण प्राणियोंमें तथा अपनेमें भी एकात्म्य दर्शन। यह ज्ञान बड़ेसे बड़े पापीके भी उद्धारका कारण हैं क्योंकि यह ज्ञानाग्नि सूखे काष्ठके समान सब कर्मोंको भस्म कर देती है। इन ज्ञानके समान और कुछ पवित्र नहीं है। श्रद्धावान, तत्पर, संयतेन्द्रिय साधक ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है। प्राप्त करके वह परमशान्ति पा लेता है। जो अज्ञानी होनेपर भी अश्रद्धालु, संशयशील है उसका विनाश निश्चित है। संशयीको इस लोक परलोकमें कहीं सुख नहीं मिल सकता। इसलिए अर्जुन। तुम्हें अज्ञानसे उत्पन्न मोहको ज्ञानके द्वारा काटकर, संशयरहित होकर कर्त्तव्यपालनके लिए उठ खड़ा होना चाहिए।

**५) कर्म-संन्यासयोग-** अर्जुन बोले, कृष्ण। आप कर्मोंके संन्यासकी और फिर कर्मयोगकी प्रशंसा करते हैं। इसलिये इन दोनोंमेंसे एक जो निश्चित किया हुआ कल्याणकारक हो, उसको मेरे लिये कहिये।

कृष्ण बोले- कर्मसंन्यास और कर्मयोग- ये दोनों ही परम कल्याणके करनेवाले हैं, परंतु उन दोनोंमें भी कर्मसंन्याससे कर्मयोग साधनमें सुगम होनेसे श्रेष्ठ है। अर्जुन। जो पुरुष न किसीसे द्वेष करता है और न किसीकी आकांक्षा करता है, वह कर्मयोगी सदा संन्यासी ही समझने योग्य है; क्योंकि राग-द्वेषादि द्वन्द्वोंसे रहित पुरुष सुखपूर्वक संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है। उपर्युक्त संन्यास और कर्मयोगको मूर्खलोग पृथक-पृथक फल देनेवाले कहते हैं, न कि पण्डितजन; क्योंकि दोनोंमेंसे एकमें भी सम्यक् प्रकारसे स्थित पुरुष दोनोंके फलरूप परमात्माको ही प्राप्त होता है। ज्ञानयोगियोंद्वारा जो परमधाम प्राप्त किया जाता है, कर्मयोगियोंद्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है। इसलिये जो पुरुष ज्ञानयोग और कर्मयोगको फलरूपमें एक देखता है, वही यथार्थ देखता है। परंतु अर्जुन। कर्मयोगके बिना संन्यास-मन, इन्द्रिय और शरीरद्वारा होनेवाले सम्पूर्ण कर्मोंमें कर्त्तापनका त्याग प्राप्त होना कठिन हैं और भगवत्स्वरूप को मनन करनेवाला कर्मयोगी परब्रह्म परमात्माको शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है। जिसका मन अपने वशमें है, जो जितेन्द्रिय एवं विशुद्ध अन्त:करणवाला है और सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मरूप परमात्मा ही जिसका आत्मा है, ऐसा कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी लिप्त नहीं होता। तत्त्वको जाननेवाला सांख्ययोगी तो देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूँघता हुआ, भोजन करता हुआ, गमन करता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुआ, बोलता हुआ, त्यागता हुआ, ग्रहण करता हुआ तथा आँखोंको खोलता और मूँदता हुआ भी, सब इन्द्रियाँ अपने-अपने अर्थोंमें बरत रह हैं- इस प्रकार समझकर नि:संदेह ऐसा माने कि मैं कुछ भी नहीं करता। जो पुरुष सब कर्मोंको परमात्मामें अर्पण करके और आसक्तिको त्यागकर कर्म करता है, वह पुरुष जलसे कमलके पत्तेकी भाँति पापसे लिप्त नहीं होता। कर्मयोगी ममत्वबुद्धिरहित केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीरद्वारा भी आसक्तिको त्यागकर अन्त:करणकी शुद्धिके लिये कर्म करते हैं। कर्मयोगी कर्मोंके फलको परमेश्वरको अर्पण करके भगवत्प्राप्तिरूप शान्तिको प्राप्त होता है और सकाम पुरुष कामनाकी प्रेरणासे फलमें आसक्त होकर बँधता है।

अर्जुन बोला, कर्म सन्यास और कर्म योग दोनों ही की प्रशंसा कैसे कर सकते हैं? कृष्ण बोले, ये दोनों ही एक-दूसरे को काटते नहीं बन्धु और कल्याणकारी तो ये दोनों ही हैं किन्तु इन दोनों में श्रेष्ठ है कर्मयोग। अर्जुन बोला, क्यों और वो कैसे? कृष्ण बोले, जो द्वेष और ईर्ष्या से ऊपर उठकर कर्म करता है वो तो नित्य सन्यासी है ही और वो द्वन्द्वों से रहित होकर संसार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है इसलिये जो कर्म सन्यास को कर्म योग से अलग समझता है वो तो मूढ़ है ही। ज्ञानी ऐसा कभी नहीं समझते। कर्म त्याग तो वास्तव में निहित स्वार्थ का नाम है पार्थ इसलिये कर्मयोग के बिना कर्म सन्यास की प्राप्ति हो ही नहीं सकती। कर्मयोगी को तत्वों का ज्ञान होता है और उसका देखना न देखना, सुनना न सुनना, चखना न चखना, जागना न जागना, लेना न लेना, छोडना न छोडना और उसका हर कर्म लोककल्याण के लिये होता है और इसीलिये वो पाप से बिल्कुल वैसे ही अलग रहता है जैसे कमल जल में रहकर भी जल से अलग रहता है।

अन्त:करण जिसके वशमें हैं, ऐसा सांख्ययोगका आचरण करनेवाला पुरुष न करता हुआ और न करवाता हुआ ही नवद्वारोंवाले शरीररूप घरमें सब कर्मोंको मनसे त्यागकर आनन्दपूर्वक सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें स्थित रहता है। परमेश्वर भी न तो भूतप्राणियोंके कर्त्तापनको, न कर्मोंको और न कर्मोंके फलके संयोगको ही वास्तवमें रचता है; किंतु परमात्माके सकाशसे प्रकृति ही बरतती है। सर्वव्यापी परमात्मा न किसीके पापकर्मको और न किसीके शुभकर्मको ही ग्रहण करता है; अज्ञानके द्वारा ज्ञान ढका हुआ है, उसीसे सब जीव मोहित हो रहे हैं। परंतु जिनका वह अज्ञान परमात्माके ज्ञानद्वारा नष्ट कर दिया गया है, उनका वह ज्ञान सूर्यके सदृश उस सच्चिदानन्दघन परमात्माको प्रकाशित कर देता है। जिनका मन तद्रूप है, जिनकी बुद्धि तद्रूप है और सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही जिनकी निरन्तर एकीभावसे स्थिति है, ऐसे तत्परायण पुरुष ज्ञानके द्वारा पापरहित होकर अपुनरावृत्तिको प्राप्त होते हैं। वे ज्ञानीजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मणमें तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालमें भी समदर्शी ही होते हैं। जिनका मन समत्वभावमें स्थित है, उनके द्वारा इस जीवित अवस्थामें ही सम्पूर्ण संसार जीत लिया गया है; क्योंकि सच्चिदानन्दघन परमात्मा निर्दोष और सम है, इससे वे सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही स्थित हैं। जो पुरुष प्रियको प्राप्त होकर हर्षित नहीं हो और अप्रियको प्राप्त होकर उद्विग्न न हो, वह स्थिरबुद्धि संशयरहित ब्रह्मवेत्ता पुरुष सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मामें एकीभावसे नित्य स्थित है।

हे धनंजय, कर्मयोगी कर्मफल को त्यागकर परम शक्ति को प्राप्त होता है और नौ द्वारोंवाले शरीर रूपी घर में सुखी रहता है। धृतराष्ट्र बोले, शरीर में ये नौ द्वार कहां से आ गये? संजय बोला, महाराज वासुदेव कृष्ण दो आँखों, दो कर्णों, दो घ्राण, एक मुंह और उपस्थ और प्रजनन की एक-एक इन्द्रिय की बात कर रहे हैं। उनके कहने का तात्पर्य यह है कि केवल निष्काम कर्म करनेवाले का आत्मा उसके शरीर में सुखी रह सकता है क्योंकि आत्मा मोह के धुंधले वातावरण में सुखी नहीं रह सकता। धृतराष्ट्र बोले, इस ओर तो मेरा ध्यान कभी गया ही नहीं था संजय। संजय बोला, मनुष्य ने यह सोचना छोड न दिया होता महाराज तो वासुदेव कृष्ण को यह बताने की आवश्यकता ही क्यों होती?

कृष्ण बोले, मनुष्य के भ्रमित होने का कारण यह है पार्थ कि उसका अज्ञान उसके ज्ञान को ढक देता है और जब आत्मज्ञान अज्ञान को नष्ट कर देता है तो ज्ञान उस परम तत्व को सूर्य की भांति प्रकाश कर देता है और ज्ञानी इस नश्वर जीवन ही में परम सत्य प्राप्त कर लेते हैं। उन्हे जन्म पर जन्म नहीं लेना पडता वो इसी नश्वर जीवन में मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। तो हे पार्थ यह नश्वर जीवन बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके उपरान्त तुम्हारा आत्मा तो अवश्य होगा किन्तु तुम नही होंगे। तो इस नश्वर जीवन को अर्थपूर्ण और समाज के लिये कल्याणकारी बनाओ पार्थ। ज्ञान प्रकाश है तो इस प्रकाश को प्राप्त करो। और यदि तुमने ऐसा कर लिया तो भ्रमो में भटकने से बच जाओगे जिनमें आज भटक रहे हो। और

यदि भटकने से बच जाओगे पार्थ तो तुम्हे शांति मिलेगी। हे धनंजय शान्ति का सीधा मार्ग मैं हूं। जो मुझे हर यज्ञ का लक्ष्य हर लोक का स्वामी, और प्राणी का हितैषी मानते है वे शान्ति प्राप्त करते है। यदि तुम मुझे अपना हितैषी मानते हो पार्थ तो मेरा कहा मानो और युद्ध करो क्योंकि ये युद्ध किये बिना तुम्हे शान्ति नहीं मिल सकती। अपने धर्म से भागने का मार्ग शान्ति की प्राप्ति करने का मार्ग नहीं है पार्थ। यह युद्ध तुम्हारा धर्म है तो फिर अपने इस धर्म का पालन करो पार्थ और इसके परिणाम के विषय में मत सोचो। कौन मरेगा या कौन जियेगा यह तुम्हारी समस्या नहीं है।

अर्जुनने कहा, कृष्ण। तुम कभी कर्म-संन्यासकी प्रशंसा करते हो और कभी कर्मयोगकी। इन दोनोंमें मेरे लिये जो श्रेयस्कर हो उसको निश्चित करके मुझे बताओ। कृष्णने स्पष्टीकरण किया- कर्मसंन्यास और कर्मयोग दोनों परम कल्याणकारी हैं किन्तु कर्म-संन्याससे कर्मयोग विशिष्ट है। जो किसीसे द्वेष नहीं करता, कुछ नहीं चाहता, द्वन्द्वोंकी परवाह नहीं करता, उसे सदा संन्यासी ही समझो। वह सुखपूर्वक कर्म-बन्धनसे टूट जाता है।

कर्म संन्यास और कर्मयोगमें पार्थक्य बच्चे मानते हैं, विद्वान नहीं। इनमें किसी एकका भी सम्यक् पालन दोनोंका फल दे देता है क्योंकि दोनोंका प्राप्तव्य एक ही है। लेकिन जो कर्मफलासक्ति नहीं छोड़ सकता उसके लिए कर्म संन्यास बहुत कष्टकारी है। कर्म-फलासक्तिका त्यागी उस स्थितिको शीघ्र पा लेता है।

परमात्मामें चित्तको लगाये, विशुद्ध हृदय, मनको वशमें रखनेवाला जितेन्द्रिय पुरुष तो सब प्राणियोंसे अपना आत्मैक्य देखता है अत: वह कर्म करता हुआ भी उससे लिप्त नहीं होता। वह सभी इन्द्रियोंके द्वारा व्यवहार करता हुआ भी इन्द्रियोंको ही अपने विषयोंमें क्रियाशील समझता है, स्वयंको कर्त्ता-भोक्ता नहीं समझता। इस प्रकार सब कर्मोंको व्यापक तत्वमें मानकर आसक्ति हीन होकर जो कर्म करता है, वह जलमें कलमपत्रवत् कर्मसे असंस्पृष्ट रहता है।

योगी केवल देहसे, मनसे अथवा केवल इन्द्रियोंसे अनासक्त रहकर अन्त:करणकी शुद्धिके लिए कर्म करते हैं। इस प्रकार संयमित होकर कर्मफलासक्ति त्यागकर कर्म करनेसे वे परम शान्ति पाते हैं। लेकिन असंयत चित्त सकाम लोग फलेच्छासे कर्म करके बन्धनमें पड़ते हैं। इस शरीरमें जो देही है वह इसमें रहता हुआ भी मनसे सब कर्मोंकी आसक्ति त्याग दे और इन्द्रियोंको वशमें रखे तो न कुछ करता, न कराता। परमात्मा तो किसीके लिए न कर्तृत्व बनाता, न कर्म और न कर्मफल सुख-दु:खादिका संयोग। यह तो प्राणी अपने स्वभावसे इनमें लगता है। ईश्वर न किसीके पुण्य लेता, न पाप। अज्ञानके कारण जीवका ज्ञान ढक गया है अत: वह मोहमें पड़ा है।

ज्ञानके द्वारा जिनका अज्ञान नष्ट हो गया है उनमें सूर्यके समान ज्ञान प्रकाशित है। उसीमें उनकी बुद्धि तथा मन लगा रहता है। उसीमें निष्ठा तथा परायणता होती है। ऐसे ज्ञानसे निर्धूत कल्मष फिर जन्म नहीं लेते। ये समदर्शी सबमें एक ही सम सत्यका दर्शन करते है। इन्होंने इसी जीवनमें संसरणपर विजय प्राप्त कर ली, जीवनमुक्त हो गये क्योंकि समत्व निर्दोष ब्रह्म है। वे ब्रह्ममें स्थित हैं। कृष्णने अर्जुन को समझाया, हे गुड़ाकेश यह मानवशरीर नौ द्वारोंवाला नगर है। आत्मा उसमें प्रसन्नतापूर्वक विराजमान है। इन्द्रिय, बुद्धि और मन को संयमित करके जो योगी निश्चयपूर्वक आत्मा तक पहुँच जाता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है।

बाहरके विषयोंमें आसक्तिरहित अन्त:करणवाला साधक आत्मामें स्थित जो ध्यानजनित सात्त्विक आनन्द है, उसको प्राप्त होता है; तदनन्तर वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके ध्यानरूप योगमें अभिन्नभावसे स्थित पुरुष अक्षय आनन्दका अनुभव करता है। जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप लगते हैं तो भी दु:खके ही हेतु हैं और आदि-अन्तवाले हैं। इसलिये अर्जुन। बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं

रमता। जो साधक इस मनुष्य शरीरमें, शरीरका नाश होनेसे पहले-पहले ही काम-क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले वेगको सहन करनेमें समर्थ हो जाता है, वही पुरुष योगी है और वही सुखी है। जो पुरुष निश्चयपूर्वक अन्तरात्मामें ही सुखवाला है, आत्मामें ही रमण करनेवाला है तथा जो आत्मामें ही ज्ञानवाला है, वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके साथ एकीभावको प्राप्त सांख्ययोगी शान्त ब्रह्मको प्राप्त होता है। जिनके सब पाप नष्ट हो गये हैं, जिनके सब संशय ज्ञानके द्वारा निवृत्त हो गये हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रत हैं और जिनका मन निश्चलभावसे परमात्मामें स्थित है, वे ब्रह्मवेत्ता पुरुष शान्त ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। काम-क्रोधसे रहित, जीते हुए चित्तवाले, परब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार किये हुए ज्ञानी पुरुषोंके लिए सब ओरसे शान्त परब्रह्म परमात्मा ही परिपूर्ण हैं। बाहरके विषयभोगोंको न चिन्तन करता हुआ बाहर ही निकालकर और नेत्रोंकी दृष्टिको भृकुटिके बीचमें स्थित करके तथा नासिकामें विचरनेवाले प्राण और अपान वायुको सम करके, जिसकी इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि जीती हुई हैं- ऐसा जो मोक्षपरायण मुनि इच्छा, भय और क्रोधसे रहित हो गया है, वह सदा मुक्त ही है। मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपोंका भोगनेवाला, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंका सुहृद् अर्थात् स्वार्थ-रहित दयालु और प्रेमी- ऐसा तत्त्वसे जानकर शान्तिको प्राप्त होता है।

बाह्य विषयोंके स्पर्शसे अनासक्त चित्त अपने आपमें जो सुख पाता है, वही अक्षय ब्रह्मात्मैक्य सुख है, उसका वह उपभोग करता है। ये जो बाह्य विषयोंके स्पर्शसे होनेवाला सुख है, वह तो दु:खका ही जनक है। आदि-अन्तवाला है। अत: बुद्धिमान उसमें रमण नहीं करते। शरीरसे बाहर काम-क्रोधका वेग प्रकट हो इससे पूर्व ही जो उसे सह लेता है वही युक्त और सुखी है। जो अपने भीतर ही सुखी है, आत्माराम है, आत्मप्रकाश है वह ब्रह्मभूत, ब्रह्मनिर्वाणको प्राप्त करता है। यह बह्मनिर्वाण निष्कल्मष, द्विधा-संशयहीन, संयतात्मा, सर्वभूत हितमें रत पुरुष प्राप्त करते हैं। काम-क्रोध रहित, संयतचित्त, तत्त्वज्ञ पुरुषको तो सर्वत्र सदा ब्रह्मनिर्वाण प्राप्त है। विषयोंको बाहर ही छोड़कर, नेत्रको भ्रूमध्यमें स्थिर करके, प्राणापानको समान करके जो मोक्षपरायण साधक इच्छा, राग, द्वेष, भयसे छूट गया है वह सदा मुक्त ही है। जो समस्त यज्ञ क्रियामात्र तथा तप श्रम मात्रका भोक्ता, सर्वलोक महेश्वर मुझे सब प्राणियोंका सुहृद समझ लेता है, उसे शान्ति मिल जाती है।

**६) आत्मसंयम योग-** श्रीकृष्ण बोले, जो पुरुष कर्मफलका आश्रय न लेकर करनेयोग्य कर्म करता है, वह संन्यासी तथा योगी है; और केवल अग्निका त्याग करनेवाला संन्यासी नहीं है तथा केवल क्रियाओंका त्याग करनेवाला योगी नहीं है। अर्जुन। जिसको संन्यास ऐसा कहते हैं उसीको तू योग जान; क्योंकि संकल्पोंका त्याग न करनेवाला कोई भी पुरुष योगी नहीं होता। समत्वबुद्धिरूप कर्मयोगमें आरूढ होनेकी इच्छावाले मननशील पुरुषके लिये योगकी प्राप्तिमें निष्कामभावसे कर्म करना ही हेतु कहा जाता है और योगारूढ़ हो जानेपर उस योगारूढ़ पुरुषके लिये सर्वसंकल्पोंका अभाव ही कल्याणमें हेतु कहा जाता है। जिस कालमें न तो इन्द्रियोंके भोगोंमें और न कर्मोंमें ही आसक्त होता है, उस कालमें सर्वसंकल्पोंका त्यागी पुरुष योगारूढ़ कहा जाता है। अपने द्वारा अपना संसार-समुद्रसे उद्धार करे और अपनेको अधोगतिमें न डाले; क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है। और आप ही अपना शत्रु है। जिस जीवात्माद्वारा मन और इन्द्रियोंसहित शरीर जीता हुआ है, उस जीवात्माका तो वह आप ही मित्र है; और जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियोंसहित शरीर नहीं जीता गया है, उसके लिये वह आप ही शत्रुके सदृश शत्रुतामें बर्तता है। सरदी-गरमी और सुख-दु:खादिमें तथा मान और अपमान में जिसके अन्त:करणकी वृत्तियाँ भली-भाँति शान्त हैं, ऐसे स्वाधीन आत्मावाले पुरुषके ज्ञानमें सच्चिदानन्दघन परमात्मा सम्यक् प्रकारसे स्थित हैं- उसके ज्ञानमें परमात्माके सिवा अन्य कुछ है ही नहीं। जिसका अन्त:करण ज्ञान-विज्ञानसे तृप्त है, जिसकी स्थिति विकाररहित है, जिसकी इन्द्रियाँ भलीभाँति जीती हुई हैं और जिसके लिये मिट्टी, पत्थर

और सुवर्ण समान हैं, वह योगी युक्त भगवत्-प्राप्त है, ऐसा कहा जाता है। सुहृद्, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य और बन्धुगणोंमें, धर्मात्माओंमें और पापियोंमें भी समानभाव रखनेवाला अत्यन्त श्रेष्ठ है।

केवल अग्नि अथवा क्रियाके त्यागसे कोई संन्यासी नहीं होता। कर्मफलका आश्रय लिये बिना जो कर्त्तव्यका पालन करता है, वही सन्यासी तथा योगी है क्योंकि योग और सन्यास दो तथ्य नहीं हैं। संकल्प-कामनाका सन्यास किये बिना कोई योगी नहीं होता। यह कामनाका त्याग करके कर्म करना साधकको सफलता देनेका हेतु होता है और सिद्ध पुरुषको शान्ति देता है। जब पुरुष ऐन्द्रियक भोगोंमें और कर्ममें भी आसक्त नहीं होता, सब संकल्पोंको छोड़ देता है तब उसे योगारूढ़ कहते हैं। अत: अपने आपसे ही अपना उद्धार करें। अपनेको अध:पतित या निराश न करें। यह अन्त:करण ही व्यक्तिका शत्रु भी है और मित्र भी। जिसने इसे वशमें किया उसका मित्र है और जो इसके वशमें हो गया उसके लिए शत्रुके समान व्यवहार करता है। अन्त:करण वशमें है और शान्त है तो परमात्मामें ही सम्यक् स्थिति है। अतएव सर्दी-गर्मी, सुख-दु:ख, मान-अपमानमें समान रहे। ज्ञान-विज्ञानसे तृप्त मानस सब द्वन्द्वोंसे तटस्थ, जितेन्द्रिय पुरुष, जिसके लिए लोहा, सोना, पत्थर समान है, युक्त कहा जाता है। सुहृद्, मित्र, उदासीन, शत्रु आदि सबके प्रति जिसकी बुद्धि समान है वह विशिष्ट पुरुष है जो साधु और पापी दोनोंके प्रति समबुद्धि रखता है।

कृष्ण बोले हे पाण्डव, लोग जिसे सन्यास कहते हैं उसे तुम योग मानो और संशय, द्वेष और आकांक्षा से रहित होकर युद्ध करो क्योंकि इन्हे त्यागे बिना तो कोई योगी हो ही नहीं सकता। मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि वो अपना पतन न होने दे और स्वयं ही अपना उद्धार करे। मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र भी है और शत्रु भी। जिसने अपने अहं, मन और इन्द्रियों को अपने वश में कर लिया हो वो स्वयं ही अपना मित्र है और जो इनके वश में हो गया पार्थ वो स्वयं ही अपना शत्रु है। जो शीत और ग्रीष्म, सुख और दु:ख, मान और अपमान में सम रहे और सन्तुष्ट रहे वो जितेन्द्रिय पुरुष सदैव परमात्मा में लीन रहता है किन्तु हे पार्थ बहुत खानेवाले और या बिल्कुल भी नहीं खानेवाले, निराहार रहनेवाले, या बहुत सोनेवाले, या बिल्कुल नहीं सोनेवाले को यह योग सिद्ध नहीं होता जीवन सन्तुलन का नाम है पार्थ और सन्तुलन में जीनेवाले का योग उसके दु:खों को हर लेता है।

मनुष्य को कभी निराश नहीं होना चाहिये। हमें ही स्वयं अपना उद्धार करना चाहिये। हम अपनी सहायता करनेवाले भ्राता मित्र होते हैं अथवा स्वयं को हानि पहुँचानेवाले शत्रु भी हम ही होते हैं। यह जानने के लिए ध्यान-योग के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं है। ध्यान-योग की साधना करने के लिए प्रत्येक को कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है। अर्जुन, अति खानेवाला अथवा तनिक भी न खानेवाला ध्यान-योग की साधना नहीं कर पाता। अत्यन्त निद्रालु अथवा रात-रात न सोनेवाला भी ध्यान-योग की साधना नहीं कर सकता। जिसका खाना-पीना सन्तुलित हैं, जिसका सोना और जागना जागृत रहना परिमित है तथा जो आवश्यकतानुसार ही कर्म करता है, उसीको ध्यान-योग की प्राप्ति होती है। यह योग निष्ठावान शिष्य के लिये दु:खनाशक और सुखकारक होता है।

ध्यान-योग का अवलम्बन करनेवाला पुरुषश्रेष्ठ मुझे चराचर जगत् में सर्वत्र देख पाता है। वह सबको मुझमें और मुझे सबमें देखता है। ऐसा पुरुषश्रेष्ठ कभी भी मुझसे अलग नहीं हो सकता, न मैं उसे अपने से अलग होने देता हूँ।

मन और इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें रखनेवाला, आशारहित और संग्रहरहित योगी अकेला ही एकान्त स्थान में स्थित होकर आत्माको निरंतर परमेश्वरके ध्यानमें लगावे। शुद्ध भूमिमें जिसके ऊपर क्रमश: कुशा, मृगछाला और वस्त्र बिछे हैं- ऐसे अपने आसनको, न बहुत ऊँचा और न बहुत नीचा, स्थिर स्थापन करके- उस आसनपर बैठकर, चित्त और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको वशमें करके तथा मनको एकाग्र करके अन्त:करणकी शुद्धिके लिये योगका अभ्यास करे। काया, सिर और गलेको समान एवं

अचल धारण करके और स्थिर होकर, अपनी नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाकर, अन्य दिशाओंको न देखता हुआ- ब्राह्मचारीके व्रतमें स्थित, भयरहित तथा भलीभाँति शान्त अन्त:करणवाला सावधान योगी मनको वशमें करके मुझमें चित्तवाला और मेरे परायण होकर स्थित होवे। वशमें किये हुए मनवाला योगी इस प्रकार आत्माको निरन्तर मुझ परमेश्वरके स्वरूपमें लगाता हुआ मुझमें रहनेवाली परमात्मानन्दकी पराकाष्ठारूप शान्तिको प्राप्त होता है। अर्जुन। यह योग न तो बहुत खानेवालेका, न बिल्कुल न खानेवालेका, न बहुत शयन करनेके स्वभाववालेका और न बहुत जागनेवालेका ही सिद्ध होता है। दु:खोंका नाश करनेवाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करनेवालेका, कर्मोंमें यथायोग्य चेष्टा करनेवालेका और यथायोग्य सोने तथा जागनेवालेका ही सिद्ध होता है। अत्यन्त वशमें किया हुआ चित्त जिस कालमें परमात्मामें ही भलीभाँति स्थित हो जाता है, उस कालमें सम्पूर्ण भोगोंसे स्पृहारहित पुरुष योगयुक्त है, ऐसा कहा जाता है। जिस प्रकार वायुरहित स्थानमें स्थित दीपक चलायमान नहीं होता, वैसी ही उपमा परमात्माके ध्यानमें लगे हुए योगीके जीते हुए चित्तकी कही गयी है। योगके अभ्याससे विरुद्ध चित्त जिस अवस्थामें उपराम हो जाता है, और जिस अवस्थामें परमात्माके ध्यानसे शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा परमात्माको साक्षात् करता हुआ सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही संतुष्ट रहता है; इन्द्रियोंसे अतीत, केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा ग्रहण करनेयोग्य जो अनन्त आनन्द है, उसको जिस अवस्थामें अनुभव करता है और जिस अवस्थामें स्थित यह योगी परमात्माके स्वरूपसे विचलित होता ही नहीं; परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्मप्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े भारी दु:खसे भी चलायमान नहीं होता; जो दु:खरूप संसारके संयोगसे रहित है तथा जिसका नाम योग है, उसको जान। वह योग न उकताये हुए- धैर्य और उत्साहयुक्त चित्तसे निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है। संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली सम्पूर्ण कामनाओंको नि:शेषरूपसे त्यागकर और मनके द्वारा इन्द्रियोंके समुदायको सभी ओरसे भलीभाँति रोककर- क्रम-क्रमसे अभ्यास करता हुआ उपरामताको प्राप्त हो तथा धैर्ययुक्त बुद्धिके द्वारा मनको परमात्मामें स्थित करके परमात्माके सिवा और कुछ भी चिन्तन न करे। यह स्थिर न रहनेवाला और चञ्चल मन जिस-जिस शब्दादि विषयके निमित्तसे संसारमें विचरता है, उस-उस-विषयसे रोककर इसे बार-बार परमात्मामें ही अवरुद्ध करे; क्योंकि जिसका मन भली प्रकार शान्त है, जो पापसे रहित है और जिसका रजोगुण शान्त हो गया है, ऐसे इस सच्चिदानन्दघन ब्रह्मके साथ एकीभाव हुए योगीको उत्तम आनन्द प्राप्त होता है। वह पापरहित योगी इस प्रकार निरन्तर आत्माको परमात्मामें लगाता हुआ सुखपूर्वक परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिरूप अनन्त आनन्दको अनुभव करता है। सर्वव्यापी अनन्त चेतनमें एकीभावसे स्थितिरूप योगसे युक्त आत्मावाला तथा सबमें समभावसे देखनेवाला योगी आत्माको सम्पूर्ण भूतोंमें और सम्पूर्ण भूतोंको आत्मामें देखता है। जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता। जो पुरुष एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है। अर्जुन। जो योगी अपनी भाँति सम्पूर्ण भूतोंमें सम देखता है और सुख अथवा दु:खको भी सबमें सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।

जैसे वायु रहित स्थान पर ज्योति निश्चल रहती है वैसे ही मोहरहित योगी भी निश्चल रहता है। चंचल मन को मनमानी मत करने दो पार्थ उसे रोको और उसे अपनी आत्मा के अधीन बनाओ। तुम्हारी उलझनों का यही उपचार है। मेरी ओर देखो पार्थ जिसे हर वस्तु और दिशा में मैं ही दिखाई दूं वो तो कभी भटक ही नहीं सकता। जो मुझे नहीं भूलता पार्थ मैं भी उसे नहीं भूलता। वो तो सांसारिक जीवन व्यतीत करते हुये भी संसार से अलग मेरे भीतर ही रहता है। हे अर्जुन जो योगी

सबके सुख-दु:ख को अपना माने जो परमश्रेष्ठ हो। इस अवस्थाकी प्राप्तिके लिए साधकको पवित्र देशमें कैसा आसन बनाकर कैसे बैठना तथा अभ्यास करना चाहिए, यह उपदेश करते हुए कृष्णने सावधान किया कि बहुत भोजन करनेवाले या सर्वथा उपवास करनेवाले साधकको सफलता नहीं मिलती। शरीरके लिए आवश्यक सात्विक आहार, व्यवहार, जागरण और निद्राके त्यागका दुराग्रह नहीं करना चाहिए, इनका उपयुक्त सेवन करना चाहिए।

इसप्रकार साधन करते हुए जब चित्त सब कामनाओंसे निस्पृह हो जाय और अपने आपमें स्थित रहे तब उस साधकको युक्त कहा जाता है। इस स्थितिमें पहुँचकर वह पूर्णकाम, आत्माराम हो जाता है। यह बुद्धिग्राह्य अतीन्द्रिय आत्यन्तिक सुखकी उपलब्धि है, जहाँ पहुँचकर फिर तत्त्वत: विचलित नहीं होता। इसे प्राप्त कर इससे बड़ा लाभ दूसरा नहीं रह जाता और बड़े-से-बड़ा दु:ख यहाँसे विचलित नहीं कर पाता। दु:खके होनेपर भी उसके संयोगका वियोग हो जानेवाली यह अवस्था योग कहीं जाती है। दृढ़ निश्चयतापूर्वक विरक्त चित्तसे इसे उपलब्ध करना चाहिए।

संकल्पसे उठनेवाली समस्त कामनाओंको त्याग दे, चारों ओरसे इन्द्रियोंको मनके द्वारा नियंत्रित कर ले। इस प्रकार धैर्यशालिनी बुद्धिसे धीरे-धीरे उपराम हो। चंचल मन जहां-जहां जाय वहाँ-वहाँसे उसे नियंत्रित करके अपने वशमें ले आवे और अपने में स्थित करके कुछ भी न सोचे। इस प्रकार प्रशान्त, निष्कल्मष, विक्षेपरहित योगी ब्रह्मभूत होकर सर्वोत्तम आनन्द उपलब्ध करता है। जो सब प्राणियोंमें अपनेको और अपनेमें सबको देखता है वह सर्वत्र समदर्शी भोग प्राप्त हैं। जो मुझे सर्वत्र और मुझमें सबको देखता है वह मुझसे कभी पृथक नहीं होता और न मैं उससे पृथक होता।

जो समस्त प्राणियोंमें इस एकत्वमें स्थित होकर भजन करता है वह सब प्रकार व्यवहार करता हुआ भी मुझमें ही स्थित है। वह परम योगी है जो सुख-दु:ख दोनोंमें सर्वत्र अपने समान ही सबमें समत्व देखता है।

अर्जुन बोला- मधुसूदन। जो यह योग आपने समत्वभावसे कहा है, मनके चञ्चल होनेसे मैं इसकी नित्य स्थितिको नहीं देखता हूँ; क्योंकि श्रीकृष्ण। यह मन बड़ा चञ्चल, प्रमथन स्वभाववाला, बड़ा दृढ़ और बलवान है। इसलिये उसका वशमें करना मैं वायुके रोकनेकी भाँति अत्यन्त दुष्कर मानता हूँ। परन्तु योग मार्ग पर चलते चलते मन भटक तो सकता है।

कृष्ण बोले, भटक क्यों नहीं सकता? अवश्य भटक सकता है। अर्जुन बोला, केशव तो फिर ब्रह्म प्राप्ति के मार्ग में इस भटकन का परिणाम क्या होता है? अर्जुनने साधककी जो सदाकी कठिनाई है, उसे प्रकट किया- मन चंचल है। यह स्थिर स्थितिमें रहे यह लगता नहीं। यह मन तो मंथन करनेवाला, बहुत बलवान और चंचल है। इसका निग्रह तो वायुको निश्चल करनेके समान अत्यन्त दुष्कर लगता है। हे योग योगेश्वर, मुझे नहीं लगता है कि आपका बताया कर्मयोग मन की चंचलता के आगे टिक पायेगा क्या? इस चंचल और प्रबल मनको मोड़ देना कठिन है जिसप्रकार पवन को रोकना दुष्कर है उसी प्रकार मन का गमन करना भी सम्भव नहीं हैं। कृष्ण बोले, महाबाहो। नि:संदेह मन चञ्चल और कठिनतासे वशमें होनेवाला है; परंतु कुन्तीपुत्र अर्जुन। यह अभ्यास और वैराग्यसे वशमें होता है। जिसका मन वशमें किया हुआ नहीं है, ऐसे पुरुषद्वारा योग दुष्प्राप्य है और वशमें किये हुए मनवाले प्रयत्नशील पुरुषद्वारा साधन करनेसे उसका प्राप्त होना सहज है- ऐसा यह मेरा मत है। जो असंयत मानस हैं उन्हें तो योग दुष्प्राप्य है किन्तु उपायके द्वारा प्रयत्न करनेवालेके यह वशमें हो जाता है। अभ्यास का अर्थ है कोई बात का प्रयत्न बार-बार करना। जिससे बात की त्रुटियाँ धीरे-धीरे कम हो जाती है। और इससे मन दृढ़ हो जाता है।

केशव तो फिर ब्रह्म की प्राप्ति के मार्ग में इस भटकन् का परिणाम क्या होता है। भटक जानेवाला बादल की भांति छिन्न-भिन्न होकर कहीं नष्ट तो नहीं हो जाता केशव। श्रीकृष्ण। जो योगमें श्रद्धा रखनेवाला है, किंतु संयमी नहीं है, इस कारण जिसका मन अन्तकालमें योगसे विचलित हो गया है- ऐसा साधक योगकी सिद्धिको न प्राप्त होकर किस गतिको प्राप्त होता

है? महाबाहो। क्या वह भगवत्प्राप्तिके मार्गमें मोहित और आश्रयरहित पुरुष छिन्न-भिन्न बादलकी भाँति दोनों ओरसे भ्रष्ट होकर नष्ट तो नहीं हो जाता? मेरे इस संशयको सम्पूर्ण रूपसे निकालने के लिये आप ही योग्य हैं; क्योंकि आपके सिवा दूसरा इस संशयका भ्रम नहीं मिटा सकता। यह अभ्यास तो समयकी अपेक्षा करता है। अब कोई अभ्यासी श्रद्धासहित साधनामें लगा और फिर किसी कारण सफलतापूर्व ही साधन छूट गया तो उसका क्या होता है? सिद्ध स्थिति तो उसने प्राप्त नहीं की ओर साधन छोड़ ही चुका था तो क्या उभय भ्रष्ट होकर नष्ट हो जाता है?

कृष्ण बोले, पार्थ। उस पुरुषका न तो इस लोकमें नाश होता है और न परलोकोमें ही; क्योंकि आत्मोद्धारके लिये कर्म करनेवाला कोई भी मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता। योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानोंके लोकोंको प्राप्त होकर, उनमें बहुत वर्षोंतक निवास करके फिर शुद्ध आचरणवाले श्रीमान् पुरुषोंके घरमें जन्म लेता है। अथवा वैराग्यवान पुरुष उन लोकोंमें न जाकर ज्ञानवान् योगियोंके ही कुलमें जन्म लेता है। परंतु इस प्रकारका जो यह जन्म है, वो संसारमें नि:संदेह अत्यन्त दुर्लभ है। वहाँ उस पहले शरीरमें संग्रह किये हुए बुद्धि-संयोगको समत्वबुद्धियोगके संस्कारोंको अनायास ही प्राप्त हो जाता है और कुरुनन्दन। उसके प्रभावसे वह फिर परमात्माकी प्राप्तिरूप सिद्धिके लिए पहलेसे भी बढ़कर प्रयत्न करता है। वह श्रीमानोंके घरमें जन्म लेनेवाला योगभ्रष्ट पराधीन हुआ भी उस पहलेके अभ्याससे ही नि:संदेह भगवान्‌की ओर आकर्षित किया जाता है, तथा समत्वबुद्धिरूप योगका जिज्ञासु भी वेदमें कहे हुए सकामकर्मोंके फलको उल्लंघन कर जाता है। परंतु प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करनेवाला योगी तो पिछले अनेक जन्मोंके संस्कारबलसे इसी जन्ममें संसिद्ध होकर सम्पूर्ण पापोंसे रहित हो तत्काल ही परमगतिको प्राप्त हो जाता है। योगी तपस्वियोंसे श्रेष्ठ है, शास्त्रज्ञानियोंसे भी श्रेष्ठ माना गया है और सकामकर्म करनेवालोंसे भी योगी श्रेष्ठ है; इससे अर्जुन। तू योगी हो। सम्पूर्ण योगियोंमें भी जो श्रद्धावान योगी मुझमें लगे हुए अन्तरात्मासे मुझको निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परमश्रेष्ठ मान्य है। वो चाहे लोक हो या परलोक कल्याणकारी कार्यों के करनेवालों की दुर्गति तो हो ही नहीं सकती। हे कुन्तीपुत्र मुझ में मन लगाओ और निर्भय होकर योग करो तुम्हे संशय रहित पूर्ण ज्ञान मिल जायेगा।

साधनके मार्गमें आना तो दूर इसकी जिज्ञासा करनेवाला भी नष्ट नहीं होता। इस पथमें पीछे लौटना है ही नहीं। यहाँ जिसने पद रखा, उसकी दुर्गति सम्भव नहीं। इस जन्ममें सफलता नहीं पा सकेगा तो आगामी जन्ममें उसका वह पूर्वकृत साधन उसे साधनमें लगनेको विवश कर देगा। वह पवित्र सम्पन्न कुलमें या सिद्ध योगीके घर उत्पन्न होगा। उपर्युक्त परिस्थिति पावेगा और जहाँसे साधन छूटा था वहींसे पुन: आगे बढ़ेगा। योगकी जिज्ञासा उदित होनेपर जीवको पूर्वत्व प्रदान करके ही शान्ति होती है। इस प्रकार अनेक जन्मोंमें प्रयत्नकी परम्परा बनी रहती है। अनेक जन्मोंके प्रयत्नसे प्राणी शुद्ध कल्मष होकर परम गति पाता है। ऐसे योगियोमें भी जो श्रद्धापूर्वक मेरा भजन करते हैं मुझमें मन लगाये हैं वे युक्ततम हैं।

**७) ज्ञान-विज्ञानयोग-** कृष्ण बोले- पार्थ। अनन्यप्रेमसे मुझमें आसक्तचित्त तथा अनन्यभावसे मेरे परायण होकर योगमें लगा हुआ तू जिस प्रकारसे सम्पूर्ण विभूति-बल-ऐश्वर्यादि गुणोंसे युक्त, सबके आत्मरूप मुझको संशयरहित जानेगा, उसको सुन। मैं तेरे लिये इस विज्ञानसहित तत्त्वज्ञानको सम्पूर्णतया कहूँगा, जिसको जानकर संसारमें फिर और कुछ भी जाननेयोग्य शेष नहीं रह जाता। हजारों मनुष्योंमें कोई एक मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझको तत्त्वसे जानता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार भी- इस प्रकार यह आठ प्रकारसे विभाजित मेरी प्रकृति है। यह आठ प्रकारके भेदोंवाली तो अपरा-मेरी जड प्रकृति है और महाबाहो। इससे दूसरीको, जिससे कि यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है, मेरी जीवरूपा परा-चेतन प्रकृति जान। अर्जुन। तू ऐसा समझ कि सम्पूर्ण भूत इन दोनों प्रकृतियोंसे ही उत्पन्न होते है। और मैं सम्पूर्ण

जगत्का उत्पन्न करनेवाला तथा लीन करनेवाला प्रलय हूँ। धनञ्जय। मेरे सिवा दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें सूत्रके मणियोंके सदृश मुझमें पिरोया हुआ है। अर्जुन। मैं जलमें रस हूँ, चन्द्रमा और सूर्यमें प्रकाश हूँ सम्पूर्ण वेदोंमें ओमार हूँ, आकाशमें शब्द और पुरुषोंमें पुरुषत्व हूँ। मैं पृथ्वीमें पवित्र गन्ध और अग्निमें तेज हूँ तथा सम्पूर्ण भूतोंमें उनका जीवन हूँ और तपस्वियोंमें तेज हूँ। भरतश्रेष्ठ। मैं बलवानोंका आसक्ति और कामनाओंसे रहित बल हूँ और सब भूतोंमें धर्मके अनुकूल काम हूँ और भी जो सत्त्वगुणसे उत्पन्न होनेवाले भाव हैं और जो रजोगुणसे तथा तमोगुणसे होनेवाले भाव हैं, उन सबको तू मुझसे ही होनेवाले हैं ऐसा जान। परंतु वास्तवमें उनमें मैं और वे मुझमें नहीं हैं।

गुणोंके कार्यरूप सात्त्विक, राजस और तामस इन तीनों प्रकारके भावोंसे यह सब संसार मोहित हो रहा है, इसीलिये इन तीनों गुणोंसे परे मुझ अविनाशीको नहीं जानता; क्योंकि यह अलौकिक त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है; परंतु जो पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं, वे इस मायाका उल्लंघन कर जाते हैं। मायाके द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है- ऐसे आसुर-स्वभावको धारण किये हुए, मनुष्योंमें नीच, दूषित कर्म करनेवाले मूढ़लोग मुझको नहीं भजते। भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन। उत्तम कर्म करनेवाले अर्थार्थी, आर्त्त, जिज्ञासु और ज्ञानी-ऐसे चार प्रकारके भक्तजन मुझको भजते हैं। उनमें नित्य मुझमें एकीभावसे स्थित अनन्य प्रेमभक्तिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है; क्योंकि मुझको तत्त्वसे जाननेवाले ज्ञानीको मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है। ये सभी उदार हैं, परंतु ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही है- ऐसा मेरा मत है; क्योंकि वह मद्गत मन-बुद्धिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम गतिस्वरूप मुझमें ही अच्छी प्रकार से स्थित है। बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही है- इस प्रकार मुझको भजता है; वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है। अपने स्वभावसे प्रेरित और उन-उन भोगोंकी कामनाद्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है, वे लोग उस-उस नियमको धारण करके अन्य देवताओंको भजते हैं। जो-जो सकाम भक्त जिस-जिस देवताके स्वरूपको श्रद्धासे पूजना चाहता है, उस-उस भक्तकी मैं उसी देवताके प्रति श्रद्धाको स्थिर करता हूँ। वह पुरुष उस श्रद्धासे युक्त होकर उस देवताका पूजन करता है और उस देवतासे मेरे द्वारा ही विधान किये हुए उन इच्छित भोगोंको नि:संदेह प्राप्त करता है। परंतु उन अल्पबुद्धिवालोंका वह फल नाशवान है तथा वह देवताओंको पूजनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त चाहे जैसे ही भजें, अन्तमें वे मुझको ही प्राप्त होते हैं। बुद्धिहीन पुरुष मेरे अनुत्तम अविनाशी परम भावको न जानते हुए मन-इन्द्रियोंसे परे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्माको मनुष्यकी भाँति जन्मकर व्यक्तिभावको प्राप्त हुआ मानते हैं।

ऐसे युक्ततम पुरुष दुर्लभ हैं। सहस्त्रों मनुष्योंमें कोई एक साधन करनेका प्रयत्न करता है और ऐसे सहस्त्रों प्रयत्न करनेवालोंमें कोई एक मुझे तत्त्वत: जान पाता है। यह तत्त्वत: जानना क्या? पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश ये पंच महाभूत, मन, बुद्धि तथा अहंकार ये आठ मेरी अपरा प्रकृति हैं और जीव परा प्रकृति है। यह जीव ही जगतका धारक है। सब प्राणी इन दोनों प्रकृतियोंसे ही प्रादुर्भूत होते हैं। इस प्रकार सबकी सृष्टि-प्रलय मैं ही हूँ। मुझसे परे कुछ नहीं है। मुझसे ही सब व्याप्त है। सबका सार तत्व मैं ही हूँ।

यह जगत, जगतके सब जीव त्रिगुणसे मोहित हैं। अत: इन गुणोंसे परे मुझ अविनाशीको जान नहीं पाते। यह त्रिगुणमयी माया पार करनेमें बहुत कठिनाई है। जो मेरी ही शरण लेते हैं, वे इस मायाको पार कर जाते हैं। जो पापी हैं, मूर्ख हैं, नराधम हैं या आसुर भावापन्न हैं उनका ज्ञान मायाने हरण कर लिया है। वे मेरी शरण नहीं लेते। जो पुण्यात्मा हैं, समझदार हैं, दैवी सम्पत्ति सम्पन्न हैं, सत्पुरुष हैं, वे मेरी शरण लेते हैं। ये शरण लेनेवाले भी चार प्रकारके होते हैं-आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। ये चारों ही उदार है, किन्तु इनमें ज्ञानी तो मेरी आत्मा ही है। ऐसा ज्ञानी जो सबको मेरा स्वरूप देखता है,

सुदुर्लभ है। कामनाओंने जिनका ज्ञानापहरण कर लिया है वे विभिन्न देवताओंकी अपनी कामनाके अनुसार शरण लेते हैं। अपनी प्रकृति एवं आराध्यके अनुसार विभिन्न नियमोंका पालन करते हैं। जो जहां श्रद्धा करता है, मैं वहीं उसकी श्रद्धा दृढ़ कर देता हूँ क्योंकि मैं ही सर्वरूप हूँ। सबकी आराधनाका फल भी मैं ही देता हूँ किन्तु जो मुझे कोई देवता मानकर आराधना करते हैं, वे अपूर्णकी, अविधिपूर्वक आराधना करने वाले हैं अत: उनको प्राप्त होनेवाला फल अन्तवान विनाशी होता है। देवताओंके भक्त देवताओंको और मेरे भक्त मुझे प्राप्त करते हैं क्योंकि व्यक्ति वही होता है जिस प्रकारकी उसकी श्रद्धा होती है। जो भूत-प्रेतमें श्रद्धा करेगा वह उनको पावेगा। जो मुझमें श्रद्धा करेगा वह मुझको पावेगा।

हे भरतश्रेष्ठ, चार प्रकार के पुण्यवान लोग मेरा स्मरण, मेरी भक्ति करते हैं- आर्त अर्थात् कष्टों से पीड़ित, जिज्ञासु अर्थात् ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा रखनेवाले, अर्थार्थी अर्थात् धन-प्राप्ति की इच्छा रखेनवाले और ज्ञानी अर्थात् परमात्मा का ज्ञान होने से कृतार्थ होकर निष्काम बुद्धि से भक्ति करनेवाले। मानव-देह बहत्तर सहस्त्र धमनियों पर चलनेवाला एक यन्त्र ही है। उस यन्त्र को चलानेवाले वाहक को जिसने जान लिया, समझ लो, उसको समग्र जीवन का ज्ञान प्राप्त हो गया। जो भक्त उस वाहक को जानने के लिए जिस प्रकार की श्रद्धा से उसकी उपासना करता है, मैं उसकी उसी श्रद्धा को स्थिर कर देता हूँ।

श्रद्धा का अर्थ है अटल विश्वास। वह कभी आँखोंवाली अथवा अन्धी नहीं हो सकती। वह बस, होती है। तृषित मनुष्य को पानी पीने से जो समाधान मिलता है, उसे केवल वही अनुभव कर पाता है। किसी अन्य के कहने से उसकी प्रतीति नहीं होती। मैं श्रद्धा पर विश्वास नहीं करता कहनेवाले की वास्तव में, बुद्धि-प्रामाण्य पर श्रद्धा ही होती है। अत: नास्तिक मनुष्य को हम समझ सकते हैं, श्रद्धाहीन को नहीं। श्रद्धा में परिवर्तन सम्भव है। स्वयं को श्रद्धाहीन कहनेवाले का अहंकार बड़ा होता है। हे धनंजय सबसे बडा सत्य तो मैं ही हूं। मैं ही वो धागा हूं जिसमें ये सारी प्रकृति मणियों की भांति पिरोई हुई है। हे कौन्तेय जल में रस मैं हूँ, सूर्य और चन्द्रमा में प्रकाश मैं हूँ। वेदों में ओंकार मैं हूँ। आकाश में शब्द भी मैं ही हूँ। मैं ही पृथ्वी में पवित्र गन्ध हूं मैं ही अग्नि में तेज हूँ, प्राणियों में जीवन शक्ति चेतना भी मैं हूँ।

अपनी योगमायासे छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिये यह अज्ञानी जनसमुदाय मुझे जन्मरहित अविनाशी परमात्मा नहीं जानता। अर्जुन। पूर्वमें व्यतीत हुए और वर्तमानमें स्थित तथा आगे होनेवाले सब भूतोंको मैं जानता हूँ, परंतु मुझको कोई भी श्रद्धाभक्तिरहित पुरुष नहीं जानता। भरतवंशी अर्जुन। संसारमें इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न सुख -दु:खादि द्वन्द्वरूप मोहसे सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त अज्ञताको प्राप्त हो रहे हैं। परंतु निष्कामभावसे श्रेष्ठ कर्मोंका आचरण करनेवाले जिन पुरुषोंका पाप नष्ट हो गया है, वे राग-द्वेषजनित द्वन्द्वरूप मोहसे मुक्त दृढ़निश्चयी भक्त मुझको सब प्रकारसे भजते हैं। जो मेरे शरण होकर जरा और मरणसे छूटनेके लिये यत्न करते हैं वे पुरुष उस ब्रह्मको, सम्पूर्ण अध्यात्मको, सम्पूर्ण कर्मको और अधिभूत-अधिदैवके सहित एवं अधियज्ञके सहित मुझ समग्र को जानते हैं; और जो युक्तचित्तवाले पुरुष इस प्रकार अन्तकालमें भी जानते हैं, वे भी मुझको ही जानते हैं।

मैं अव्यक्त हूँ, अव्यय और सर्वोपरि हूँ। मूर्खजन मुझे व्यक्ति बना समझते हैं। योगमायासे समावृत होनेके कारण सब मुझे जान नहीं पाते। राग-द्वेषसे उत्पन्न सुख-दु:खादि द्वन्द्वोंके मोहमें पड़कर प्राणी जन्म-मरणके चक्रमें पड़ा है। जिनका पाप नष्ट हो गया है, जन्म-जन्मका पुण्योदय हुआ है, वे द्वन्द्वोंके मोहको छोड़कर जन्म-मरण जरा के बन्धनसे मुक्त होनेके लिए मेरा आश्रय लेते हैं और दृढ़ व्रत होकर मेरा भजन करते हैं। ऐसे लोग ब्रह्मके सम्यक् स्वरूपको अधिभूत, अधिदैव, अध्यात्म सहित जानते हैं। मेरी विविध गुणोंसे युक्त दिव्यमाया को पार करना कठिन है। अत: जो मेरी ही शरण में आते हैं, वे माया के पार हो जाते हैं। हे धनंजय, अनेकानेक जन्मों के पश्चात् अनुभव होता है कि विश्व में जो कुछ भी है वह

वासुदेव ही है। यह अनुभव करनेवाला महात्मा अत्यन्त दुर्लभ होता है। हे जयिष्णु, ज्ञानपिपासु कौन्तेय, भूतकाल में हो चुके, वर्तमान में हुये और भविष्य में होनेवाले सभी प्राणियों को जानता हूँ किन्तु मुझे कोई नहीं जानता। जो ब्रह्म को जानता है, उसीको ब्राह्मण कहते हैं। उसके लिए किसी भी कुल, जाति अथवा वर्ण की आवश्यकता नहीं होती।

**८) अक्षरब्रह्मयोग-** अर्जुनने पूछा- हे पुरुषोत्तम। वह ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है? कर्म क्या है? अधिभूत नामसे क्या कहा गया है और अधिदैव किसको कहते हैं? मधुसूदन। यहाँ अधियज्ञ कौन है? और वह इस शरीरमें कैसे है? तथा युक्तचित्तवाले पुरुषोंद्वारा अन्तसमयमें आप किस प्रकार जाननेमे आते हैं?

कृष्णने कहा- परम अक्षर ब्रह्म है, जीवात्मा अध्यात्म नामसे कहा जाता है तथा भूतोंके भावको उत्पन्न करनेवाला जो त्याग है, वह कर्म नामसे कहा गया है। उत्पत्ति-विनाशधर्मवाले सब पदार्थ अधिभूत हैं, हिरण्यमय पुरुष अधिदैव है और देहधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन। इस शरीरमें मैं वासुदेव ही अन्तर्यामीरूपसे अधियज्ञ हूँ। जो पुरुष अन्तकालमें भी मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको प्राप्त होता हैं- इसमें कुछ भी संशय नहीं है। कुन्तीपुत्र अर्जुन। यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीरका त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा उसी भावसे भावित रहा है। यह नियम है कि मनुष्य अपने जीवनमें सदा जिस भावका अधिक चिन्तन करता है, अन्तकालमें उसे प्राय: उसीका स्मरण होता है और अन्तकालके स्मरण के अनुसार ही उसकी गति होती है। इसलिये अर्जुन। तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निस्संदेह मुझको ही प्राप्त होगा।

पार्थ। यह नियम है कि परमेश्वरके ध्यानके अभ्यासरूप योगसे युक्त, दूसरी ओर न जानेवाले चित्तसे निरन्तर चिन्तन करता हुआ पुरुष परम प्रकाशस्वरूप परमेश्वरको ही प्राप्त होता है। जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियन्ता सूक्ष्मसे, भी अति सूक्ष्म, सबके धारण-पोषण करनेवाले, अचिन्त्यस्वरूप, सूर्यके सदृश नित्य चेतन प्रकाशरूप और अविद्यासे अति परे, शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमेश्वरका स्मरण करता है, वह भक्तियुक्त पुरुष अन्तकालमें भी योगबलसे भृकुटिके मध्यमें प्राणको अच्छी प्रकार स्थापित करके, फिर निश्चल मनसे स्मरण करता हुआ उस दिव्यस्वरूप परम पुरुष परमात्माको ही प्राप्त होता है। वेदके जाननेवाले विद्वान जिस सच्चिदानन्दनघनरूप परमपदको अविनाशी कहते हैं, आसक्तिरहित यत्नशील संन्यासी महात्माजन जिसमें प्रवेश करते हैं और जिस परमपदको चाहनेवाले ब्रह्मचारीलोग ब्रह्मचर्यका आचरण करते हैं, उस परमपदको मैं तेरे लिये संक्षेपमें कहूँगा। सब इन्द्रियोंके द्वारोंको रोककर तथा मनको हृदय प्रदेशमें स्थिर करके, फिर उस जीते हुए मनके द्वारा प्राणको मस्तकमें स्थापित करके, परमात्मासम्बन्धी योगधारणामें स्थित होकर जो पुरुष ॐ इस एक अक्षररूप ब्रह्मको उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मुझ निर्गुण ब्रह्मका चिन्तन करता हुआ शरीरको त्याग कर जाता है, वह पुरुष परम गतिको प्राप्त होता है।

हे अर्जुन। जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्यनिरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ। परम सिद्धिको प्राप्त महात्माजन मुझको प्राप्त होकर दु:खोंके घर एवं क्षणभङ्गुर पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होते। अर्जुन। ब्रह्मलोकपर्यंत सब लोक पुनरावर्ती है, परंतु कुन्तीपुत्र। मुझको प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता; क्योंकि मैं कालातीत हूँ और ये सब ब्रह्मादिके लोक कालके द्वारा सीमित होनेसे अनित्य हैं। ब्रह्माका जो एक दिन है, उसको एक हजार चतुर्युगीतककी अवधिवाला और रात्रिको भी एक हजार चतुर्युगीतककी अवधिवाली जो पुरुष तत्त्वसे जानते हैं, वे योगीजन कालके तत्त्वको जाननेवाले हैं। सम्पूर्ण चराचर भूतगण ब्रह्माके दिनके प्रवेशकालमें ब्रह्माके सूक्ष्मशरीरसे उत्पन्न होते हैं और

ब्रह्माकी रात्रिके प्रवेशकालमें उस अव्यक्तनामक ब्रह्माके सूक्ष्म शरीरमें ही लीन हो जाते हैं। पार्थ। वही यह भूतसमुदाय उत्पन्न हो-होकर प्रकृतिके वशमें हुआ रात्रिके प्रवेशकालमें लीन होता है और दिनके प्रवेशकालमें फिर उत्पन्न होता है। उस अव्यक्तसे भी अति परे दूसरा-विलक्षण जो सनातन अव्यक्तभाव है, वह परम दिव्य पुरुष सब भूतोंके नष्ट होनेपर भी नष्ट नहीं होता। जो अव्यक्त अक्षर इस नामसे कहा गया है, उसी अक्षरनामक अव्यक्तभावको परम गति कहते हैं तथा जिस सनातन अव्यक्तभावको प्राप्त होकर पुरुष वापस नहीं आते, वह मेरा परमधाम है। पार्थ। जिस परमात्माके अन्तर्गत सर्वभूत हैं और जिस सच्चिदानन्दघन परमात्मासे यह सब जगत् परिपूर्ण है, वह सनातन अव्यक्त परम पुरुष तो अनन्यभक्तिसे ही प्राप्त होने योग्य है।

और अर्जुन। जिस कालमें शरीर त्यागकर गये हुए योगीजन वापस न लौटनेवाली गतिको और जिस कालमें गये हुए वापस लौटनेवाली गतिको ही प्राप्त होते हैं, उस कालको- उन दोनों मार्गोंको बताता हूं। उन दो प्रकारके मार्गोंमेंसे जिस मार्गमें ज्योतिर्मय अग्नि अभिमानी देवता है, दिनका अभिमानी देवता है, शुक्लपक्षका अभिमानी देवता है और उत्तरायणके छ: महीनोंका अभिमानी देवता है, उस मार्गमें मरकर गये हुए ब्रह्मवेत्ता योगीजन उपर्युक्त देवताओंद्वारा क्रमसे ले जाये जाकर ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। जिस मार्गमें धूमाभिमानी देवता है, रात्रि-अभिमानी देवता है तथा कृष्णपक्षका अभिमानी देवता है और दक्षिणायनके छ: महीनोंका अभिमानी देवता है, उस मार्गमें मरकर गया हुआ सकामकर्म करनेवाला योगी उपर्युक्त देवताओंद्वारा क्रमसे ले गया हुआ चन्द्रमाकी ज्योतिको प्राप्त होकर स्वर्गमें अपने शुभकर्मोंका फल भोगकर वापस आता है; क्योंकि जगत्के ये दो प्रकारके- शुक्ल और कृष्ण मार्ग सनातन माने गये हैं। इनमें एकके द्वारा गया हुआ- जिससे वापस नहीं लौटना पड़ता, उस परम गतिको प्राप्त होता है और दूसरेके द्वारा गया हुआ फिर वापस आता है। पार्थ। इस प्रकार इन दोनों मार्गोंको तत्त्वसे जानकर कोई भी योगी मोहित नहीं होता। इस कारण अर्जुन। तू सब कालमें समत्वबुद्धिरूप योगसे युक्त हो। योगी पुरुष इस रहस्यको तत्त्वसे जानकर वेदोंके पढ़नेमें तथा यज्ञ, तप और दानादिके करनेमें जो पुण्यफल कहा है, उस सबको नि:संदेह उल्लंघन कर जाता है और सनातन परम पदको प्राप्त होता है।

अविनाशी तत्व परम ब्रह्म है। स्वभाव प्रकृति अध्यात्म है और प्राणियोंके जन्म-मृत्युका कारण कर्म है। जितने विनाशी भाव हैं, वे अधिभूत हैं। इनमें स्थित पुरुष चेतन अधिदैव है। इसी अधिभूत देहमें यहीं मैं अधियज्ञ अन्तर्यामी रूपसे स्थित हूँ। प्राणत्यागके समय जो मेरा स्मरण करते देहसे विदा होता है, वह मेरे स्वरूपको प्राप्त करता है।

नियम यह है कि जिस-जिस भावको स्मरण करते मनुष्य मरता है, उस-उस भावको ही प्राप्त करता है। अतएव सर्वदा मेरा स्मरण करो तथा कर्त्तव्य पालन करो। इस प्रकार मुझमें मन एवं बुद्धिको लगाकर मुझे प्राप्त कर लोगे।

अभ्यासके द्वारा संयमित चित्तको अन्यत्र न जाने देकर जो दिव्य परमपुरुषका ही चिन्तन करता है वह उस पुराण-पुरुष, सर्वसंचालक, सर्वज्ञ, सबके पालक, अचिन्त्य स्वरूप, प्रकाशमय, तमससे परे अत्यन्त सूक्ष्म परमतत्वको मरते समय स्थिर मनसे, भक्तियुक्त तथा योगबलसे चिन्तन कर पाता है। भूमध्यमें भली प्रकार प्राणोंको प्रविष्ट करके, सब इन्द्रियोंके द्वार अवरुद्ध करके, मनको हृदयमें स्थिर करके प्राणको मूर्धामें योगधारणासे पहुँचाकर जो प्रणवका उच्चारण करता देह त्याग करता है वह परमगति पाता है।

जो मेरे अतिरिक्त और कोई आश्रय नहीं लेता, मेरा नित्य स्मरण करता है वह तो नित्ययुक्त योगी है। उसे मैं सदा सुलभ हूँ। जो इस प्रकार नित्य युक्त है अथवा ऊपर कहीं विधिसे देह-त्याग करके मुझे पाता है वह फिर दु:खालय, विनाशी देहोंमें जन्म नहीं लेता। यह सम्पूर्ण लोक, ब्रह्मलोक तक पुनरावर्तनके स्थान हैं। केवल मुझे प्राप्त करके पुनर्जन्म नहीं होता। एक सहस्त्र युग (चतुर्युगी-महायुग) का ब्रह्माका एक दिन होता है। इतनी ही बड़ी उनकी रात्रि होती है। ब्रह्माके दिनके प्रारम्भमें

अव्यक्त प्रकृतिसे व्यक्त सृष्टि होती है और उनके सायंकालमें सब उसी अव्यक्तमें लीन हो जाते हैं। इस रीतिसे सब जीव बार-बार जन्मते-मरते हैं। इस अव्यक्त प्रकृतिसे परे सनातन परम तत्व है जो सब प्राणियोंके विनष्ट होते रहनेपर भी अविनाशी है। उस अक्षरको ही परमगति कहते हैं। वही मेरा धाम है। उसे प्राप्त करके फिर लौटना नहीं पड़ता। वह परमपुरुष जिसमें सब प्राणी हैं और जो सबमें व्याप्त है, वह अनन्य भक्तिके द्वारा ही प्राप्त होता है।

हे धनंजय अक्षयब्रह्म के जानने की विद्या को अध्यात्म कहते है। यह सब जानकर अन्त समय मेरा स्मरण करते हुए जो देहत्याग करता हैं, वह मुझसे एकरूप हो जाता है। इसी का अर्थ है कि जीवनभर मेरे ही स्मरण में तल्लीन रहनेवाला अन्त समय में मेरे ही स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। शत्, त्रेता, द्वापर और कलि इन चारों युगों से एक महायुग होता है। ऐसे सहस्त्र युगों से ब्रह्मका एक दिन होता है और ऐसे शस्त्र ब्रह्मकी एक रात्रि होती है। ब्रह्मके दिनके समय अव्यक्त से व्यक्त पदार्थोंका निर्माण होता है और ब्रह्मकी रात्रि के समय वे सब अव्यक्त में लीन हो जाते है। प्राणियोंके उद्गम और विलय का यह संसार चक्र निरन्तर घूमते रहता है। जगत् की शुक्ल और कृष्ण पक्ष (प्रकाशमय और अं:धकारमय) इस प्रकार की दो शाश्वत गतियाँ मानी यगी हैं। जिस मार्ग से हम जाते हैं, उसी मार्ग से लौट नहीं सकते। यह समस्त विश्व गोलाकार है अत: यह एक मार्ग से जानेपर दूसरे मार्ग से लौटना पड़ता है। हे गुड़ाकेश, दोनों मार्गों को भलीभाँति जाननेवाला कर्मयोगी कभी मोह को प्राप्त नहीं होता। अत: हे अर्जुन, तू सर्वकाल अनासक्त योगी बन जा।

कृष्णने कहा, बुद्धि, ज्ञान, सम्मोह-असम्मोह, क्षमा, सत्य, दम-शम, सुख-दु:ख, भाव-अभाव, भय-अभय, अहिंसा, समता, सन्तोष, तप, दान, यश-अपयश आदि प्राणी मात्र के भाव-विभाव मुझसे ही उत्पन्न होते हैं।

**९) राजविद्या-राजगुह्ययोग-** श्रीकृष्ण बोले हे पार्थ, तुझ दोषदृष्टिरहित भक्तके लिये इस परम गोपनीय विज्ञानसहित ज्ञानको भलीभाँति कहूँगा, जिसको जानकर तू दुखरूप संसारसे मुक्त हो जायगा। यह विज्ञानसहित ज्ञान सब विद्याओंका राजा, सब गोपनीयोंका राजा, अति पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फलरूप, धर्मयुक्त, साधन करनेमें बड़ा सुगम और अविनाशी है। परंतप। इस उपर्युक्त धर्ममें श्रद्धारहित पुरुष मुझको न प्राप्त होकर मृत्युरूप संसारचक्रमें भ्रमण करते रहते हैं। मुझ निराकार परमात्मासे यह सब जगत् जलसे बरफके सदृश परिपूर्ण है और सब भूत मेरे अन्तर्गत संकल्पके आधार स्थित हैं, इसलिये वास्तवमें मैं उनमें स्थित नहीं हूँ और वे सब भूत मुझमें स्थित नहीं हैं; किंतु मेरी ईश्वरीय योगशक्तिको देख कि भूतोंका धारण-पोषण करनेवाला और भूतोंको उत्पन्न करनेवाला भी मेरा आत्मा वास्तवमें भूतोंमें स्थित नहीं है। जैसे आकाशसे उत्पन्न सर्वत्र विचरनेवाला महान् वायु सदा आकाशमें ही स्थित है, वैसे ही मेरे संकल्पद्वारा उत्पन्न होनेसे सम्पूर्ण भूत मुझमें स्थित हैं- ऐसा जान। अर्जुन। कल्पोंके अन्तमें सब भूत मेरी प्रकृतिको प्राप्त होते हैं और कल्पोंके आदिमें उनको मैं फिर से रचता हूँ। अपनी प्रकृतिके स्वभावके बलसे परतन्त्र हुए इस सम्पूर्ण भूतसमुदायको बार-बार उनके कर्मोंके अनुसार रचता हूँ। अर्जुन। उन कर्मोंमें आसक्तिरहित और उदासीनताके सदृश स्थित हुए मुझ परमात्माको वे कर्म नहीं बाँधते। अर्जुन। मुझ अधिष्ठाताके सकाशसे प्रकृति चराचरसहित सर्वजगत्को रचती है और इस हेतुसे ही यह संसारचक्र घूम रहा है।

मेरे परम भावको न जाननेवाले मूढ़ लोग मनुष्यका शरीर धारण करनेवाले मुझ सम्पूर्ण भूतोंके महान् ईश्वरको तुच्छ समझते हैं। वे व्यर्थ आशा, व्यर्थ कर्म और व्यर्थ ज्ञानवाले विक्षिप्तचित्त अज्ञानीजन राक्षसी, आसुरी और मोहिनी प्रकृतिको ही धारण किये हुए हैं। परंतु कुन्तीपुत्र। दैवी प्रकृतिके आश्रित महात्माजन मुझको सब भूतोंका सनातन कारण और नाशरहित अक्षरस्वरूप जानकर अनन्य मनसे युक्त होकर निरन्तर भजते हैं। वे दृढ़ निश्चयवाले भक्तजन निरन्तर मेरे नाम और गुणोंका कीर्तन करते हुए तथा मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करते हुए और मुझको बार-बार प्रणाम करते हुए सदा मेरे

ध्यानमें युक्त होकर अनन्य प्रेमसे मेरी उपासना करते हैं। दूसरे ज्ञानयोगी मुझ निर्गुण निराकार ब्रह्मका ज्ञानयज्ञके द्वारा अभिन्नभावसे पूजन करते हुए मेरी उपासना करते हैं और दूसरे मनुष्य भी देवताओंके रूपमें स्थित मुझको भिन्न-भिन्न समझकर नाना प्रकारसे मुझ विराटस्वरूप परमेश्वर की उपासना करते हैं।

मुझ अव्यक्त मूर्तिके द्वारा यह सम्पूर्ण विश्व व्याप्त है। सब प्राणि पदार्थ मुझमें ही स्थित हैं किन्तु मैं उनमें नहीं हूँ। मुझमें प्राणि-पदार्थ तत्त्वत: नहीं हैं। यही मेरा योगेश्वर्य है कि सबका धारक-पोषक होकर भी मैं सबमें नहीं हूँ। सबकी मुझ आत्मामें भावना होती है। जैसे आकाशमें वायु सर्वत्र है किन्तु आकाशकी दृष्टिसे वायुकी सत्ता ही नहीं है वैसे ही सब प्राणियोंकी मुझमें स्थिति है।

सब प्राणी मेरी प्रकृतिको ही प्राप्त होते हैं। मैं अपनी प्रकृतिके द्वारा कल्पके आदिमें सबकी सृष्टि करता हूँ और कल्पान्तमें प्रलय करता हूँ। यह क्रम बराबर चलता रहता है। सम्पूर्ण प्राणिसमूह प्रकृतिके वशमें है। यह सृष्टि प्रलय रूप कर्म मेरे लिए बन्धनकारी नहीं है क्योंकि मैं इस कर्ममें उदासीन हूँ, असंसक्त हूँ। प्रकृति मेरी अध्यक्षतामें चराचर जगत उत्पन्न करती है। मूर्ख लोग इस मानव देहमें अवतीर्ण मेरी अवगणना करते हैं क्योंकि मैं सब प्राणियोंका महेश्वर हूँ, यह मेरा परस्वरूप वे नहीं जानते। इन राक्षसी, आसुरी एवं मोहिनी प्रकृतिके आश्रित लोगोंकी आशा, कर्म तथा ज्ञान व्यर्थ जाता है। वे अज्ञानी हैं। जो दैवी प्रकृतिके आश्रित महात्मा हैं वे मुझे सर्वकारण अविनाशी जानकर अनन्य भावसे मेरा भजन करते हैं। वे मेरा ही सतत कीर्तन करते हैं दृढ़ व्रतपूर्वक मुझे पानेका प्रयत्न करते हैं। भक्तिपूर्वक मुझे नमस्कार करते हैं। नित्य मुझमें लगे रहकर मेरी उपासना करते हैं। जो यह सब जान लेता है अन्त समय में मेरा स्मरण करते हुये जो देहत्याग करता है, वह मुझसे एकरूप हो जाता है। जीवन-भर मेरे ही स्मरण में तल्लीन रहनेवाला अन्त समय में मेरे ही स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

ऋतु मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, स्वधा मैं हूँ, औषधि मैं हूँ,, मन्त्र मैं हूँ, घृत मैं हूँ, अग्नि मैं हूँ और हवनरूप क्रिया भी मैं ही हूँ। इस सम्पूर्ण जगत्का धारण करनेवाला एवं कर्मोंके फलको देनेवाला, पिता, माता, पितामह, जाननेयोग्य, पवित्र, ओमार तथा ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूँ। प्राप्त होने योग्य परमधाम, भरण-पोषण करनेवाला, सबका स्वामी, शुभशुभका देखनेवाला, सबका वासस्थान, शरण लेनेयोग्य, प्रत्युपकार न चाहकर हित करनेवाला, उत्पत्ति-प्रलयरूप, सबकी स्थितिका कारण, निधान और अविनाशी कारण भी मैं ही हूँ। मैं ही सूर्यरूपसे तपता हूँ, वर्षाको आकर्षण करता हूँ और उसे बरसाता हूँ। अर्जुन मैं ही अमृत और मृत्यु हूँ और सत्-असत् भी मैं ही हूँ। तीनों वेदोंमें विधान किये हुए सकामकर्मोंको करनेवाले, सोमरसको पीनेवाले, पापोंके नाशसे पवित्र हुए पुरुष मुझको यज्ञोंके द्वारा पूजकर स्वर्गकी प्राप्ति चाहते हैं; वे पुरुष अपने पुण्योंके फलरूप स्वर्गलोकको प्राप्त होकर स्वर्गमें दिव्य देवताओंके भोगोंको भोगते हैं। वे उस विशाल स्वर्गलोकको भोगकर पुण्य क्षीण होनेपर मृत्युलोकको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार स्वर्गके साधनरूप तीनों वेदोंमें कहे हुए सकाम-कर्मका आश्रय लेनेवाले और भोगोंकी कामनावाले पुरुष बार-बार आवागमन को प्राप्त होते हैं।

जो अनन्य प्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ। अर्जुन। यद्यपि श्रद्धासे युक्त जो सकाम भक्त दूसरे देवताओंको पूजते हैं, वे भी मुझको ही पूजते हैं; किंतु उनका वह पूजन अज्ञानपूर्वक है; क्योंकि सम्पूर्ण यज्ञोंका भोक्ता और स्वामी भी मैं ही हूँ; परंतु वे मुझ अधियज्ञस्वरूप परमेश्वरको तत्त्वसे नहीं जानते, इसीसे गिरते हैं। देवताओंको पूजनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं, पितरोंको पूजनेवाले पितरोंको प्राप्त होते हैं, भूतोंको पूजनेवाले भूतोंको प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त मुझको ही प्राप्त होते हैं। इसीलिये मेरे भक्तोंका पुनर्जन्म नहीं होता। जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल

आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ। अर्जुन। तू जो कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दान देता है और जो तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर। इस प्रकार, जिसमें समस्त कर्म मुझ भगवान्‌के अर्पण होते हैं- ऐसे संन्यासयोगसे युक्त चित्तवाला तू शुभाशुभ फलरूप कर्मबन्धनसे मुक्त हो जायगा और उनसे मुक्त होकर मुझको ही प्राप्त होगा। मैं सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है; परंतु जो भक्त मुझको प्रेमसे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ। यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। अर्जुन। तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता। अर्जुन। स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि-चाण्डालादि जो कोई भी हों, वे भी मेरे शरण होकर परम गतिको-ही प्राप्त होते हैं। फिर इसमें तो कहना ही क्या है, जो पुण्यशील ब्राह्मण तथा राजर्षि भक्तजन परम गतिको प्राप्त होते हैं। इसलिये तू सुखरहित और क्षणभङ्गुर इस मनुष्यशरीरको प्राप्त होकर निरन्तर मेरा ही भजन कर। मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो, मुझको प्रणाम कर। इस प्रकार आत्माको मुझमें नियुक्त करके मेरे परायण होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा।

मैं सर्वरूप, सर्वाधार हूँ। अत: एकत्वसे अथवा पृथक्त्वकी भावना से मुझ विश्वरूपकी उपासना होती है। मैं ही यज्ञ, क्रिया, मन्त्र, औषधि आदि सब हूँ। सम्पूर्ण विश्वकी गति, पालक, स्वामी, दृष्टा, अधिष्ठान, शरण, सुहृद, उत्पत्ति एवं प्रलय स्थान एवं अविनाशी बीज मैं ही हूँ। मैं ही अमृत स्वरूप हूँ, सत् हूँ और मैं ही मृत्यु हूँ, असत् हूँ।

वेदज्ञ लोग यज्ञमें सोमपान करके पवित्र होकर यज्ञोंके द्वारा मेरा ही यजन करते हैं किन्तु वे सकाम स्वर्गकामी होते हैं, अत: स्वर्ग जाकर वहाँ दिव्य भोग प्राप्त करके पुण्य समाप्त होनेपर फिर मर्त्यलोकमें जन्म लेते हैं। अर्थ, धर्म, काममें लगे लोग इसी प्रकार बार-बार जन्म लेते हैं। जो लोग मेरा अनन्य भावसे चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते हैं उन्हें अपने त्रिवर्गकी चिन्ता नहीं करनी पड़ती। उनके योग-क्षेमका मैं वहन करता हूँ। भक्तिपूर्वक पत्र, पुष्प, फल, जल जो भी कोई मुझे अर्पण करता है, वह मैं संयत होकर स्वीकार करता हूँ। अत: जो भी कर्म करो, भोग भोगो, यज्ञ, दान या तप करो वह मेरे अर्पण कर दो। इस प्रकार तुम शुभ-अशुभ कर्मके बन्धनसे छूट जाओगे। इस त्याग तथा योगसे युक्त होकर मुझे प्राप्त कर लोगे। मैं सब प्राणियोंके प्रति सम हूँ। न कोई मेरा द्वेष्य है, न प्रिय किन्तु जो भक्तिपूर्वक मेरा भजन करते हैं वे मुझमें स्थित हैं और मैं उनमें हूँ। भले कोई अत्यन्त अनाचारी हो, किन्तु यदि वह अनन्य भावसे मेरा भजन करता है तो उसे साधु ही मानना चाहिए क्योंकि उसका निश्चय निभ्रन्ति है। वह शीघ्र धर्मात्मा हो जायगा और शाश्वत शान्ति प्राप्त करेगा। मेरे भक्तका कभी विनाश नहीं होता।

मेरा आश्रय लेकर तो स्त्रियाँ, वैश्य, शूद्र तथा पाप योनिमें उत्पन्न पशु पक्षी तक परम गतिको प्राप्त हुए हैं फिर पुण्यात्मा ब्राह्मण एवं भक्त क्षत्रियोंकी तो चर्चा ही क्या। अत: इस अनित्य, दु:खस्वरूप संसारमें आकर मेरा भजन करो। मुझमें मन लगाओ, मेरे प्रति विनम्र रहो, मुझमें प्रीति रखो, मेरे लिए यज्ञ, कर्म करो। इससे तुम्हारा अन्त:करण मुझमें लगा रहेगा। मेरे परायण रहोगे तो मुझे प्राप्त करोगे। देवता, महर्षि तथा इनके भी स्वामी प्रजापति तक मुझे नहीं जानते क्योंकि मैं इन सबका भी आदि कारण हूँ। जो मुझे अजन्मा, अनादि, सर्वलोक महेश्वर जान लेता है, वह मनुष्योंमें ज्ञानवान है। वह सब पापोंसे छूट जाता है। तपस्वियों का तप भी मैं हूँ। हे पार्थ प्रारम्भिक बीज मैं हूं। बुद्धिमानों की बुद्धि भी मैं, तेजस्वियों का तेज मैं। बलवानों में काम रहित बल भी मैं हूँ और प्राणियों में धर्म के विरुद्ध न जानेवाला काम भी मैं ही हूँ। मैं सब में हूं पार्थ किन्तु सबसे अलग भी हूं। मैं अविनाशी हूं, मैं निर्गुण हूँ। हे पार्थ मैं बीते हुये सारे कालों और इस बीतते हुये आधुनिक काल और आनेवाले सारे कालों के सारे

प्राणियों को जानता हूं परन्तु मुझे कोई नहीं जानता। मैं ही इस जगत का पिता भी, माता भी और पोषक भी मैं ही ऋग्वेद हूँ और मैं ही सामवेद। मैं ही स्वामी हूं और मैं ही शरण, मैं ही सृजन हूं और मैं ही विलोपन, मैं ही इन सबका आधार हूं पार्थ, मैं ही सब कुछ हूं। ग्रीष्म भी मैं और वर्षा भी मैं और हे पार्थ इस संसार का अविनाशी बीज भी हूं। मैं सबका अतिप्रिय मित्र हूं किन्तु सबके लिये एक जैसा हूं। न कोई मुझे प्रिय है और न कोई अप्रिय परन्तु जो मुझे श्रद्धा से पूजते है मित्र वे मुझमें है और मैं उनमें हूं।

**१०) विभूतियोग-** कृष्ण बोले, हे महाबाहो। फिर भी मेरे परम रहस्य और प्रभावयुक्त वचनको सुन, जिसे मैं तुझ अतिशय प्रेम रखनेवालेके लिये हितकी इच्छासे कहूँगा। मेरी उत्पत्तिको न देवतालोग जानते हैं और न महर्षिजन ही जानते हैं; क्योंकि मैं सब प्रकारसे देवताओंका और महर्षियोंका भी आदिकारण हूँ। जो मुझको अजन्मा, अनादि और लोकोंका महान् ईश्वर तत्त्वसे जानता है, वह मनुष्योंमें ज्ञानवान पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। निश्चय करनेकी शक्ति, यथार्थ ज्ञान, असमूढ़ता, क्षमा, सत्य, इन्द्रियोंको वशमें करना, मनका निग्रह तथा सुख-दु:ख, उत्पत्ति-प्रलय और भय-अभय तथा अहिंसा, समता, संतोष, तप, दान, कीर्ति और अपर्कीति- ऐसे ये प्राणियोंके नाना प्रकारके भाव मुझसे ही होते हैं। सात महर्षिजन, चार उनसे भी पूर्वमें होनेवाले सनकादि तथा स्वायम्भुव आदि चौदह मनु- ये मुझमें भाववाले सब-के-सब मेरे संकल्पसे उत्पन्न हुए हैं, जिनकी संसारमें यह सम्पूर्ण प्रजा है। जो पुरुष मेरी इस परमैश्वर्यरूप विभूतिको और योगशक्तिको तत्वसे जानता है, वह निश्चल भक्तियोगके द्वारा मुझमें ही स्थित होता है- इसमें कुछ भी संशय नहीं है। मैं वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिका कारण हूँ और मुझसे ही सब जगत् चेष्टा करता है- इस प्रकार समझकर श्रद्धा और भक्तिसे युक्त बुद्धिमान् भक्तजन मुझ परमेश्वरको ही निरन्तर भजते हैं। निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जानते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर संतुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं। उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं। और अर्जुन। उनके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये उनके अन्त:करणमें स्थित हुआ मैं स्वयं ही अज्ञानसे उत्पन्न हुए अन्धकारको प्रकाशमय तत्त्वज्ञानरूप दीपकके द्वारा नष्ट कर देता हूँ।

कृष्णने यहाँ अपनी विभूतियोंका वर्णन करके कहा- जो मेरी इस विभूति और योगको तत्त्वत: जानता है, वह अविचल होकर मुझसे युक्त होता है। मैं ही सबका उत्पत्ति स्थान एवं संचालक हूँ ऐसा समझकर बुद्धिमान भावपूर्वक मेरा भजन करते हैं। वे मुझमें चित्त, प्राण अर्थात भावना तथा क्रिया लगायें परस्पर मेरी ही चर्चा करते हैं, मुझमें ही सन्तुष्ट रहते हैं, मुझसे ही सुखी होते हैं। उन प्रीतिपूर्वक सतत चित्त लगाकर भजन करनेवालोंको मैं वह बुद्धयोग देता हूँ जिससे वे मुझे प्राप्त कर लेते हैं। उनपर कृपा करनेके लिए उनके आत्मभावमें स्थित मैं ज्ञानदीपकसे उनके अज्ञानान्धकारको नष्ट कर देता हूँ।

अर्जुन बोले, आप परम ब्रह्म, परम धाम और परम पवित्र हैं; क्योंकि आपको सब ऋषिगण सनातन दिव्य पुरुष एवं देवोंका भी आदिदेव, अजन्मा और सर्वव्यापी कहते हैं। वैसे ही देवर्षि नारद तथा ऋषि असित और देवल तथा महर्षि व्यास भी कहते हैं और स्वयं आप भी मेरे प्रति कहते हैं। केशव। जो कुछ भी मेरे प्रति आप कहते हैं, इस सबको मैं सत्य मानता हूँ। भगवन्। आपके लीलामय स्वरूपको न तो दानव जानते हैं और न देवता ही। हे भूतोंको उत्पन्न करनेवाले। हे भूतोंके ईश्वर। हे देवोंके देव। हे जगत्के स्वामी। हे पुरुषोत्तम। आप स्वयं ही अपनेसे अपनेको जानते हैं। इसलिये आप ही उन अपनी दिव्य विभूतियोंको सम्पूर्णतासे कहनेमें समर्थ हैं, जिन विभूतियोंके द्वारा आप इन सब लोकोंको व्याप्त करके स्थित हैं। योगेश्वर। मैं किस प्रकार निरन्तर चिन्तन करता हुआ आपको जानूँ और भगवन। आप किन-किन भावोंमें मेरे द्वारा

चिन्तन करने योग्य हैं। जनार्दन। अपनी योगशक्तिको और विभूतिको फिर भी विस्तारपूर्वक कहिये; क्योंकि आपके अमृतमय वचनोंको सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती।

हे कृष्ण आप परब्रह्म हैं परम शोधक हैं, आप शाश्वत हैं, तत्वज्ञ हैं, आप ईश्वर हैं, आप अजन्मा हैं, हे गिरिधर केवल आपही को आपका ज्ञान है। तो हे योगेश्वर, हे ज्ञानमूर्ति मैं आपको जानूं कैसे आपको पहचानु कैसे कृपया विस्तार से मुझे बताइये माधव। अर्जुनने भगवानसे विस्तारपूर्वक उनकी विभूतियोंका वर्णन पूछा। प्रधान प्रधान विभूतियोंका वर्णन करके कृष्णने कह दिया- इनका विस्तृत वर्णन सम्भव नहीं और व्यर्थ है क्योंकि समस्त जगत मेरी ही विभूति है। मैं अपने एकांशसे जगतरूपमें स्थित हूँ।

अर्जुन बोले, हे वासुदेव आप ही परब्रह्म हैं। दिव्य और शाश्वत सर्वव्यापी तत्त्व भी आप ही हैं। देवर्षि नारद, असित-देवल और महर्षि व्यास भी यही कहते है। और अब आप स्वयं भी मुझसे यही कह रहे हैं। हे केशव, आप मुझसे जो कुछ कह रहे हैं, उसे मैं सत्य मानता हूँ। सभी भूतों का निर्माण करनेवाले हे भूतेश, हे जगत्पते आप स्वयं ही अपने आपको पूर्णत: जानते हैं। हे नारायण जिन दिव्य विभूतियों से तीनों लोगों को व्याप्त करके आप दशांगुल शेष हैं, उन विभूतियोंको विस्तार से मुझे बतायें। हे नारायण, मैं अज्ञानी नर हूँ। सामान्य जीवन में आपको किस-किस रूपसे देखूँ और आपकी आराधना करूँ यह मुझे समझायें। मुझे आपपर पूरा विश्वास है। वहाँ मेरे भाई युद्ध के मुहाने पर खड़े हैं और मैं जैसे युद्ध से भागकर यहाँ आ गया हूँ। वे क्या सोचते होंगे? मेरे शत्रु क्या सोचते होंगे? मुझे क्षत्रिय धर्म भी पुकार रहा है, और भाई का धर्म भी, शिष्य का धर्म भी और पौत्र का धर्म भी और वे सब धर्म परस्पर विरोधी है कृष्ण।

कृष्ण बोले, कुरुश्रेष्ठ। अब मैं जो मेरी दिव्य विभूतियाँ हैं, उनको तेरे लिये प्रधानतासे कहूँगा; क्योंकि मेरे विस्तारका अन्त नहीं है। अर्जुन। मैं सब भूतोंके हृदयमें स्थित सबका आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतोंका आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ। मैं अदितिके बारह पुत्रोंमें विष्णु और ज्योतियोंमें किरणोंवाला सूर्य हूँ तथा मैं उन्चास वायुदेवताओंका तेज और नक्षत्रोंका अधिपति चन्द्रमा हूँ। मैं वेदोंमें सामवेद हूँ, देवोंमें इन्द्र हूँ, इन्द्रियोंमें मन हूँ और भूतप्राणियोंकी चेतना हूँ। मैं एकादश रुद्रोंमें शंकर हूँ और यक्ष तथा राक्षसोंमें धनका स्वामी कुबेर हूँ। मैं आठ वसुओंमें अग्नि हूँ और शिखरवाले पर्वतोंमें सुमेरु पर्वत हूँ। पुरोहितोंमें उनके मुखिया बृहस्पति मुझको जान। पार्थ। मैं सेनापतियोंमें स्कन्द और जलाशयोंमें समुद्र हूँ। मैं महर्षियोंमें भृगु और शब्दोंमें ओमार हूँ। सब प्रकारके यज्ञोंमें जपयज्ञ और स्थिर रहनेवालोंमें हिमालय पहाड़ हूँ। मैं सब वृक्षोंमें पीपलका वृक्ष, देवर्षियोंमें नारद मुनि, गन्धर्वोंमें चित्ररथ और सिद्धोंमें कपिल मुनि हूँ। घोड़ोंमें अमृतके साथ उत्पन्न होनेवाला उच्चै:श्रवा नामक घोड़ा, श्रेष्ठ हाथियोंमें ऐरावत नामक हाथी और मनुष्योंमें राजा मुझको जान। मैं शस्त्रोंमें वज्र और गौओंमें कामधेनु हूँ। शास्त्रोंक्त रीतिसे संतानकी उत्पत्तिका हेतु कामदेव हूँ और सर्पोंमें सर्पराज वासुकि हूँ। मैं नागोंमें शेषनाग, जलचरों और जलदेवताओंमें उनका अधिपति वरुण देवता हूँ और पितरोंमें अर्यमा नामक पितरोंका ईश्वर तथा शासन करनेवालोंमें यमराज मैं हूँ। मैं दैत्योंमें प्रल्हाद और गणना करनेवाले ज्योतिषियोंका समय हूँ तथा पशुओंमें मृगराज सिंह और पक्षियोंमें मैं गरुड़ हूँ। मैं पवित्र करनेवालोंमें वायु और शस्त्रधारियोंमें श्रीराम हूँ तथा मछलियोंमें मगर हूँ और नदियोंमें श्रीभागीरथी गङ्गाजी हूँ। अर्जुन। सृष्टियोंका आदि और अन्त तथा मध्य भी मैं ही हूँ। मैं विद्याओंमें अध्यात्मविद्या और परस्पर विवाद करनेवालोंका तत्त्वनिर्णयके लिये किया जानेवाला वाद हूँ। मैं अक्षरोंमें अकार हूँ और समासोंमें द्वन्द्व नामक समास हूँ। अक्षयकाल- कालका भी महाकाल तथा सब ओर मुखवाला- विराट्स्वरूप सबका धारण-पोषण करनेवाला भी मैं ही हूँ। मैं सबका नाश करनेवाला मृत्यु और भविष्यमें होनेवालोंका उत्पत्तिस्थान हूँ तथा स्त्रियोंमें कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा,

धृति और क्षमा हूँ एवं गायन करनेयोग्य श्रुतियोंमें मैं बृहत्साम और छन्दोंमें गायत्री छन्द हूँ तथा महीनोंमें मार्गशीर्ष और ऋतुओंमें वसन्त मैं हूँ। मैं छल करनेवालोंमें जूआ और प्रभावशाली पुरुषोंका प्रभाव हूँ। मैं जीतनेवालोंका विजय हूँ, निश्चय करनेवालोंका निश्चय और सात्त्विक पुरुषोंका सात्त्विक भाव हूँ। वृष्णिवंशियोंमें मैं स्वयं तेरा सखा, पाण्डवोंमें तू, मुनियोंमें वेदव्यास और कवियोंमें शुक्राचार्य कवि भी मैं ही हूँ। मैं दमन करनेवालोंका दण्ड हूँ, जीतनेकी इच्छावालोंकी नीति हूँ, गुप्त रखनेयोग्य भावोंका रक्षक मौन हूँ और ज्ञान-वानोंका तत्त्वज्ञान मैं ही हूँ। अर्जुन। जो सब भूतोंकी उत्पत्तिका कारण है, वह भी मैं ही हूँ; क्योंकि ऐसा चर और अचर कोई भी भूत नहीं है, जो मुझसे रहित हो। परंतप। मेरी दिव्य विभूतियोंका अन्त नहीं हैं, मैंने अपनी विभूतियोंका यह विस्तार तो तेरे लिये संक्षेपसे कहा है। जो-जो भी विभूतियुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उसको तू मेरे तेजके अंशकी ही अभिव्यक्ति जान। अथवा अर्जुन। इस बहुत जाननेसे तेरा क्या प्रयोजन है। मैं इस सम्पूर्ण जगत्को अपनी योगशक्तिके एक अंशमात्रसे धारण करके स्थित हूँ।

हे पार्थ, तू यह जान ले कि जो भी पदार्थ वैभव और तेज से युक्त है वह सब मेरे अंश से ही निर्मित है। मैं कभी भी समाप्त न होनेवाला समय हूं। मैं चहुंमुखी सृष्टा हूं पार्थ। मैं ही मृत्यु हूं पार्थ और मैं ही उन सबका आरम्भ हूं जो आनेवाले कालों में जन्म लेनेवाले है और अभी जिनके आरम्भ का आरम्भ ही नहीं हुआ है। मैं ऋतुओं में ऋतुराज हूं, तेजस्वियों का तेज हूं। मैं गुण हूं, विजय हूं, मैं प्रयत्न हूं। मैं ही इन सबकी उत्पत्ति का बीज हूं पार्थ वो चाहे चर हो चाहे अचर। मेरे बिना तो कुछ हो ही नहीं सकता। मैं प्राणों का प्राण हूं और जीवन का जीव हूं। अर्जुन बोला, हे कमलनयन अब मेरी आंखे खुल चुकी है, द्विविधा और आशंका के बादल छंट चुके है आपने जो कहा वो ही सत्य है और उसके अतिरिक्त कोई सत्य नहीं। हे अर्जुन, मैं प्रत्यक्ष स्वयं काल ही हूँ। हे पार्थ, कीड़े-मकोड़ों से मनुष्य तक सभी प्राणी तीन मितियों में जीते हैं। लम्बाई, चौड़ाई और गहराई- यही वे तीन मितियाँ हैं। प्रत्येक मिति का आरम्भ और अन्त होता है। इससे अलग चौथी मिति है काल-जिसका न आरम्भ होता है- न अन्त। वह अखण्ड है। वही इस युद्धभूमिपर उपस्थित लाखों योद्धाओं का अन्त करने को उद्यत-प्रत्यक्ष काल मैं ही हूँ। शस्त्र धारण किये बिना ही मैं यह कार्य करनेवाला हूँ। इसके लिए शस्त्र धारण कर तुझे निमित्त-मात्र बनना है। इन योद्धाओं का वध करने से तेरे हाथों कोई पाप नहीं होगा, तुझे कोई दोष नहीं लगेगा। जिस प्रकार निरन्तर जल में रहते हुए भी कमल का पत्ता कभी भीगता नहीं है, उसी प्रकार तू भी सभी दोषों से मुक्त रहेगा। अत: हे किरीटिन्, नीचे रखे गाण्डीव को उठाकर युद्ध करने को तत्पर हो जा।

ये वही कृष्ण हैं, जिन्हें सबसे पहले यादवों ने त्याग दिया। फिर जैसे उनके परिवार ने उन्हें स्वयं से विलग कर दिया। भाइयों ने... पुत्रों ने... संबंधियों ने... कृष्ण ने स्वेच्छा से अपनी सेना का परित्याग कर दिया और संकल्पपूर्वक नि:शस्त्र हो गए। दूसरी ओर पाँचों पांडव एक साथ हैं। उनके पुत्र तथा अन्य संबंधी उनके साथ हैं। उनके पास सात अक्षौहिणी सेना है। उनके पास शस्त्रास्त्र, दिव्यास्त्र और देवास्त्र हैं किंतु युद्ध कौन कर रहा है? युधिष्ठिर लड़ना नहीं चाहते, अर्जुन ने शस्त्र त्याग दिए। उनकी ओर देखकर भीम का उत्साह भी भंग हो जाता है। पांडव शस्त्र ग्रहण न करें तो कौरव भी क्यों लड़ेंगे। तो लड़ कौन रहा है? अकेले, नितांत एकाकी नि:शस्त्र कृष्ण का उत्साह ही तो। अर्जुन को लगा कि सारे युद्धक्षेत्र में एक कृष्ण ही हैं, जो लड़ रहे हैं। कृष्ण केवल कृष्ण। अर्जुन ने पूछा, तुम कौन हो कृष्ण। कृष्ण हँसे और बोले, इस भेद-दृष्टि को त्याग कर देखो अर्जुन। मैं ही हूँ, और है ही क्या। यहाँ और कोई नहीं है, बस मैं ही मैं हूँ।

अर्जुन ने कृष्ण को देखा, उसे लगा कि कृष्ण ही नहीं बदले, वह स्वयं भी बदल गया है और चारों ओर का संसार कुछ विचित्र-सा हो गया है। सब कुछ यथावत् है, किंतु क्यों लगता है कि आकार का सारा भेद होने पर भी कहीं कोई भेद नहीं

है। यह कैसा तो तादात्म्य है कि उसे सबमें एक ही पदार्थ दिखाई दे रहा है- उसमें, कृष्ण में, वृक्षों में, रथ के अश्वों में।

कृष्ण बोले, इस समय मैं महाकाल के रूप में उपस्थित हुआ हूँ अर्जुन। जो कुछ दिखाई देता है, वह सब मुझमें से ही प्रकट हुआ है और इसको लौटकर मुझमें ही विलीन हो जाना है।

अर्जुन के मन में एक बिंब जन्म ले रहा था; मनुष्य पिता के वीर्य और माँ के रज से जन्म लेता है। वह छोटा-सा शरीर पृथ्वी से अन्न, सरिता से जल, वायुमंडल से वायु और सूर्य से प्रकाश लेता है। वह विकसित होकर पूर्ण मनुष्य बनता है। विकास के पूर्ण होते ही उसका क्षरण आरंभ हो जाता है और अंत में वह शरीर क्षार होकर पंचभूतों में समा जाता है। वही सूर्य है, वही जल है, वही पवन है, वहीं धरती और उसका उत्पन्न किया हुआ अन्न हैं; किंतु कोई उसके शरीर का पोषण नहीं करता। वे ही तत्त्व, जिन्होंने उसके शरीर का निर्माण किया था, अब उसका क्षय करने आ गए हैं। महामाया उसे जन्म दे रही थी, महामाया ही उसका पालन कर रही थी और महामाया ही उसका भक्षण कर रही थी।

## ११) विश्वरूप दर्शन (कृष्ण के विराट स्वरूप का दर्शन)

अर्जुन बोले, मुझपर अनुग्रह करनेके लिये आपने जो परम गोपनीय अध्यात्मविषयक वचन कहा, उससे मेरा यह अज्ञान नष्ट हो गया है; क्योंकि कमलनेत्र। मैंने आपसे भूतोंकी उत्पत्ति और प्रलय विस्तारपूर्वक सुने हैं तथा आपकी अविनाशी महिमा भी सुनी है। परमेश्वर। आप अपनेको जैसा कहते हैं, यह ठीक ऐसा ही है; परंतु पुरुषोत्तम। आपके ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेजसे युक्त ऐश्वर-रूपको मैं प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ। प्रभु यदि मेरे द्वारा आपका वह रूप देखा जाना सम्भव है- ऐसा अगर आप मानते हैं, तो योगेश्वर। उस अविनाशी स्वरूपका मुझे दर्शन कराइये।

अर्जुन बोले हे कमलनयन, अब मेरी आँखे खुल चुकी है। द्विविधा और आशंका के बादल छँट चुके है। आपने जो कहाँ वही सत्य है और उसके व्यक्तिरिक्त कोई सत्य नहीं। हे परमेश्वर मैं आपके ईश्वरीय रूप को देखना चाहता हूं। कृष्ण बोले, हे निष्पाप अर्जुन अपनी इन आँखों से मेरा वो स्वरूप नहीं देख सकते। इसके लिये तुम्हे दिव्य दृष्टि की आवश्यकता होगी। कृष्ण ने अर्जुन को दिव्य दृष्टि देकर अपना विराट स्वरूप दिखाया।

अर्जुन को लगा, यह किसी मनुष्य का साधारण स्वर नहीं था। यह तो जैसे ब्राह्मी आदेश हुआ था उसे। इस आदेश का उल्लंघन नहीं हो सकता था। इस पर संशय नहीं किया जा सकता था वह जैसे चेतना के किसी दिव्य सागर में तैर रहा था। जो कुछ सामने घटित हो रहा था, वह तो उसका द्रष्टा मात्र था। कर्त्ता कोई और था। या कर्त्ता कोई भी नहीं था? सब कुछ स्वत: ही घटित हो रहा था? उसके सामने खड़े कृष्ण का स्वरूप कुछ वायवीय हो गया था, और क्रमश: आलोकमय होता जा रहा था।

अर्जुन के मन का बिंब जैसे साक्षात् प्रकट हो रहा था। कृष्ण एक अद्‌भुत प्रकाशपुंज में परिणत हो गए थे, जैसे सहस्त्रों सूर्य एक साथ आकाश पर उदित हो गए हों। उस प्रचंड सूर्य की ऊर्जा से वायु का जन्म हुआ। वायु ने जल का सृजन किया। ताप, वायु और जल ने मिलकर वनस्पति को जन्म दिया। वनस्पति को जीव-जंतुओं और मनुष्यों ने खाया। उन विराट जीव-जंतुओं, वृक्षों और मनुष्यों को सूक्ष्म कीटाणुओं ने खाया। और सारा कुछ लौटकर उसी सूर्य में समा गया। उस सूर्य का स्वरूप अति भयंकर हो गया था। उसके सहस्त्रों मुख प्रकट हो गए थे। बड़ी-बड़ी सेनाएँ, उसे श्वासों से खिंची चली आ रही थीं और उसकी दाढ़ों में कुचली जा रही थीं। उन्हीं दाढ़ों में भीष्म भी दबे हुए थे और द्रोण भी। दुर्योधन और उसके भाई भी। अर्जुन ने स्वयं को भी उन श्वासों से खिंचकर उन दाढ़ों में दबते देखा। उस भयंकर आकृति के मुख से निकलती ज्वाला में जलते देखा। कृष्ण बोले, हे पार्थ। अब तू मेरे सैंकड़ों-हजारों नाना प्रकारके और नाना वर्ण तथा नाना आकृतिवाले अलौकिक रूपोंको देख। भरतवंशी अर्जुन। मुझमें अदितिके द्वादश पुत्रोंको, आठ वसुओंको, एकादश रुद्रोंको, दोनों अश्विनीकुमारोंको और उन्चास

मरुद्गणोंको देख तथा और भी बहुत-से पहले न देखे हुए आश्चर्यमय रूपोंको देख। अर्जुन। अब इस मेरे शरीरमें एक जगह स्थित चराचर-सहित सम्पूर्ण जगत्को देख तथा और भी जो कुछ देखना चाहता हो, सो देख। परंतु मुझको तू इन अपने प्राकृत नेत्रोंद्वारा देखनेमें नि:संदेह समर्थ नहीं है; इसीसे मैं तुझे दिव्य चक्षु देता हूँ; उससे तू मेरी ईश्वरीय योगशक्तिको देख।

संजय धृतराष्ट्र से बोले, राजन्। महायोगेश्वर और सब पापोंके नाश करनेवाले वासुदेवने इस प्रकार कहकर उसके पश्चात् अर्जुनको परम ऐश्वर्ययुक्त दिव्य स्वरूप दिखलाया। अनेक मुख और नेत्रोंसे युक्त, अनेक अद्भुत दर्शनोंवाले, बहुत-से दिव्य भूषणोंसे युक्त और बहुत-से दिव्य शस्त्रोंको हाथोंमें उठाये हुए, दिव्य माला और वस्त्रोंको धारण किये हुए और दिव्य गन्धका सारे शरीरमें लेप किये हुए, सब प्रकारके आश्चर्योंसे युक्त, सीमारहित और सब ओर मुख किये हुए विराट्स्वरूप परमदेव परमेश्वरको अर्जुनने देखा। आकाशमें हजार सूर्योंके एक साथ उदय होनेसे उत्पन्न जो प्रकाश हो, वह भी उस विश्वरूप परमात्माके प्रकाशके समान कदाचित ही हो। पाण्डुपुत्र अर्जुनने उस समय अनेक प्रकारसे विभक्त सम्पूर्ण जगत्को देवोंके देव श्रीकृष्णभगवान्के उस शरीरमें एक जगह स्थित देखा। उसके अनन्तर वह आश्चर्यसे चकित और पुलकित शरीर अर्जुन प्रकाशमय विश्वरूप परमात्माको श्रद्धा-भक्तिसहित सिरसे प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोला-

अर्जुन बोले, हे देव। मैं आपके शरीरमें सम्पूर्ण देवोंको तथा अनेक भूतोंके समुदायोंको, कमलके आसनपर विराजित ब्रह्माको, महादेवको और सम्पूर्ण ऋषियोंको तथा दिव्य सर्पोंको देखता हूँ। सम्पूर्ण विश्वके स्वामिन्। आपको अनेक भुजा, पेट, मुख और नेत्रोंसे युक्त तथा सब ओरसे अनन्त रूपोंवाला देखता हूँ। हे विश्वरूप। मैं आपके न अन्तको देखता हूँ न मध्यको और न आदिको ही। आपको मैं मुकुटयुक्त, गदायुक्त और चक्रयुक्त तथा सब ओरसे प्रकाशमान तेजके पुञ्ज, प्रज्वलित अग्नि और सूर्यके सदृश ज्योतियुक्त, कठिनतासे देखे जानेयोग्य और सब ओरसे अप्रमेयस्वरूप देखता हूँ। आप ही जाननेयोग्य परब्रह्म परमात्मा हैं, आप ही इस जगत्के परम आश्रय हैं, आप ही अनादि धर्मके रक्षक हैं और आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं। ऐसा मेरा मत है। आपको आदि, अन्त और मध्यसे रहित, अनन्त सामर्थ्यसे युक्त, अनन्त भुजावाले, चन्द्र-सूर्यरूप नेत्रोंवाले, प्रज्वलित अग्निरूप मुखवाले और अपने तेजसे इस जगत्को संतप्त करते हुए देखता हूँ। महात्मन। यह स्वर्ग और पृथ्वीके बीचका सम्पूर्ण आकाश तथा सब दिशाएँ एक आपसे ही परिपूर्ण हैं; तथा आपके इस अलौकिक और भयंकर रूपको देखकर तीनों लोक अति व्यथाको प्राप्त हो रहे हैं। वे ही सब देवताओंके समूह आपमें प्रवेश करते हैं और कुछ भयभीत होकर हाथ जोड़े आपके नाम और गुणोंका उच्चारण करते हैं तथा महर्षि और सिद्धोंके समुदाय कल्याण हो ऐसा कहकर उत्तम-उत्तम स्तोत्रोंद्वारा आपकी स्तुति करते हैं। जो ग्यारह रुद्र और बारह आदित्य तथा आठ वसु, साध्यगण, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार तथा मरुद्गण और पितरोंका समुदाय तथा गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्धोंके समुदाय हैं- वे सब ही विस्मित होकर आपको देखते हैं। हे महाबाहो। आपके बहुत मुख और नेत्रोंवाले, बहुत हाथ, जङ्घा और पैरोंवाले, बहुत उदरोंवाले और बहुत-सी दाढ़ोंवाले, अतएव विकराल महान् रूपको देखकर सब लोक व्याकुल हो रहे हैं तथा मैं भी व्याकुल हो रहा हूँ; क्योंकि विष्णो, आकाशको स्पर्श करनेवाले, देदीप्यमान, अनेक वर्णोंसे युक्त तथा फैलाये हुए मुख और प्रकाशमान विशाल नेत्रोंसे युक्त आपको देखकर भयभीत अन्त:करणवाला मैं धीरज और शान्ति नहीं पाता हूँ। आपके दाढ़ोंके कारण विकराल और प्रलयकालकी अग्निके समान प्रज्वलित मुखोंको देखकर मैं दिशाओंको नहीं जान पा रहा हूँऔर सुख भी नहीं पाता हूँ। इसलिये हे देवेश। हे जगन्निवास। आप प्रसन्न हों। वे सभी धृतराष्ट्रके पुत्र राजाओंके समुदायसहित आपमें प्रवेश कर रहे हैं और भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य तथा वह कर्ण और हमारे पक्षके भी प्रधान योद्धाओंके सहित सब-के-सब बड़े वेगसे दौड़ते हुए आपके विकराल दाढ़ोंवाले

भयानक मुखोंमें प्रवेश कर रहे हैं और कई एक चूर्ण हुए सिरोंसहित आपके दाँतोंके बीचमें लगे हुए दीख रहे हैं। जैसे नदियोंके बहुत-से जलके प्रवाह स्वाभाविक ही समुद्रके ही सम्मुख दौड़ते हैं, वैसे ही वे नरलोकके वीर भी आपके प्रज्वलित मुखोंमें प्रवेश कर रहे हैं। जैसे पतंग मोहवश नष्ट होनेके लिये प्रज्वलित अग्निमें अति वेगसे दौड़ते हुए प्रवेश करते हैं, वैसे ही यह सब लोग भी अपने नाशके लिये आपके मुखोंमें अति वेगसे दौड़ते हुए प्रवेश कर रहे हैं। आप उन सम्पूर्ण लोकोंको प्रज्वलित मुखोंद्वारा ग्रास करते हुए सब ओरसे चाट रहे हैं। हे विष्णो। आपका उग्र प्रकाश सम्पूर्ण जगत्को तेजके द्वारा परिपूर्ण करके तपा रहा है। मुझे बतलाइये कि आप उग्ररूपवाले कौन हैं? देवोंमें श्रेष्ठ। आपको नमस्कार हो। आप प्रसन्न होइये। आदिपुरुष आपको मैं विशेषरूपसे जानना चाहता हूँ; क्योंकि मैं आपकी प्रवृत्तिको नहीं जानता।

कृष्ण बोले, मैं लोकोंका नाश करनेवाला बढ़ा हुआ महाकाल हूँ। इस समय इन लोगोंको नष्ट करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। इसलिये जो प्रतिपक्षियोंकी सेनामें स्थित योद्धालोग हैं, वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे। अतएव तू उठ। यश प्राप्त कर और शत्रुओंको जीतकर धन-धान्यसे सम्पन्न राज्यको भोग। ये सब शूरवीर पहलेहीसे मेरेही द्वारा मारे हुए हैं। सव्यसाचिन्। तू तो केवल निमित्तमात्र बन जा। द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह तथा जयद्रथ और कर्ण तथा और भी बहुत-से मेरेद्वारा मारे हुए शूरवीर योद्धाओंको तू मार। भय मत कर। नि:संदेह तू युद्धमें वैरियोंको जीतेगा। इसलिये युद्ध कर।

संजय बोले, केशवभगवान्के इस वचनको सुनकर मुकुटधारी अर्जुन हाथ जोड़कर काँपता हुआ नमस्कार करके, फिर भी अत्यन्त भयभीत होकर प्रणाम करके श्रीकृष्णके प्रति गद्गद वाणीसे बोला-

अर्जुन बोले- अन्तर्यामिन्। यह योग्य ही है कि आपके नाम, गुण और प्रभावके कीर्तनसे जगत् अति हर्षित हो रहा है और अनुरागको भी प्राप्त हो रहा है। तथा भयभीत राक्षसलोग दिशाओंमें भाग रहे हैं और सब सिद्धगणोंके समुदाय नमस्कार कर रहे हैं। महात्मन्। ब्रह्माके भी आदिकर्त्ता और सबसे बड़े आपके लिये वे कैसे नमस्कार न करें; क्योंकि हे अनन्त। हे देवेश। हे जगन्निवास। जो सत्, असत् और उनसे परे सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है, वह आप ही हैं। आप आदिदेव और सनातन पुरुष हैं, आप इस जगत्के परम आश्रय और जाननेवाले तथा जानने योग्य और परम धाम हैं। अनन्तरूप। आपसे यह सब जगत् व्याप्त है। आप वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजाके स्वमाी ब्रह्मा और ब्रह्माके भी पिता हैं। आपके लिये हजारोंबार नमस्कार। नमस्कार हो। आपके लिये फिर भी बार-बार नमस्कार। नमस्कार। हे अनन्त सामर्थ्यवाले। आपके लिये आगेसे और पीछेसे भी नमस्कार। सर्वात्मन्। आपके लिये सब ओरसे ही नमस्कार हो; क्योंकि अनन्त पराक्रमशाली आप सब संसारको व्याप्त किये हुए हैं; इससे आप ही सर्वरूप हैं। आपके इस प्रभाव को न जानते हुए, किआप मेरे सखा हैं- ऐसा मानकर प्रेमसे अथवा प्रमादसे भी मैंने कृष्ण। यादव। सखे। इस प्रकार जो कुछ हठपूर्वक कहा है और अच्युत। आप जो मेरे द्वारा विनोदके लिये विहार, शय्या, आसन और भोजनादिमें अकेले अथवा उन सखाओंके सामने भी कभी अपमानित किये गये हैं- वह सब अपराध अचिन्त्य प्रभाववाले आपसे मैं क्षमा करवाता हूँ। आप इस चराचर जगत्के पिता और सबसे बड़े गुरु एवं अति पूजनीय हैं। हे अनुपम प्रभाववाले। तीनों लोकोंमें आपके समान भी दूसरा कोई नहीं है, फिर अधिक तो कैसे हो सकता है।

हे नाथ पहले ना देखे हुये आपके इस अद्भुत विराट रूप के दर्शन से मैं हर्षित हो रहा हूं किन्तु मेरा चित्त भय से व्याकुल हो रहा है इसलिये हे देवेश, हे जगन्नाथ मुझपर प्रसन्न होकर अपने उसी दिव्य मनुष्य रूप को फिर से प्रगट कीजिये।

धृतराष्ट्र बोले, ये कैसा रूप है संजय? संजय बोला, मैं आपके लिये उनके विराट स्वरूप का वर्णन नहीं कर सकता महाराज। ये रूप तो केवल दिव्य दृष्टि वालों के लिये है। हे राजन यदि आपने महर्षि व्यास से दिव्य दृष्टि ले ली होती तो आप भी विराट रूप देखकर धन्य हो गये होते। धृतराष्ट्र बोले, मुझे मेरे दुर्भाग्य के आंकडे बताने की आवश्यकता नहीं है

संजय। यह बताओ कि वहां क्या हो रहा है? संजय बोला, जो आज्ञा महाराज।

अर्जुन बोला, अतएव प्रभो। मैं शरीरको भलीभाँति चरणोंमें निवेदित कर, प्रणाम करके, स्तुति करनेयोग्य आप ईश्वरको प्रसन्न होनेके लिये प्रार्थना करता हूँ। देव। पिता जैसे पुत्रके, सखा जैसे सखाके और पति जैसे प्रियतमा पत्नीके अपराध सहन करते हैं, वैसे ही आप भी मेरे अपराधको सहन करने योग्य हैं। मैं पहले न देखे हुए आपके इस आश्चर्यमय रूपको देखकर हर्षित हो रहा हूँ और मेरा मन भयसे अति व्याकुल भी हो रहा है; इसलिये आप उस अपने चतुर्भुज विष्णुरूपको ही मुझे दिखलाइये। हे देवेश। हे जगन्निवास। प्रसन्न होइये। मैं वैसे ही आपको मुकुट धारण किये हुए तथा गदा और चक्र हाथमें लिये हुए देखना चाहता हूँ। इसलिये हे विश्वस्वरूप। हे सहस्त्रबाहो। आप उसी चतुर्भुज रूपसे प्रकट होइये।

कृष्ण बोले, अर्जुन। अनुग्रहपूर्वक मैंने अपनी योगशक्तिके प्रभावसे यह मेरा परम तेजोमय, सबका आदि और सीमारहित विराट् रूप तुझको दिखलाया है, जिसे तेरे अतिरिक्त दूसरे किसीने पहले नहीं देखा था। अर्जुन। मनुष्यलोकमें इस प्रकार विश्वरूपवाला मैं न वेद और यज्ञोंके अध्ययनसे, न दानसे, न क्रियाओंसे और न उग्र तपोंसे ही तेरे अतिरिक्त दूसरेके द्वारा देखा जा सकता हूँ। मेरे इस प्रकारके इस विकराल रूपको देखकर तुझको व्याकुलता नहीं होनी चाहिये और मूढ़भाव भी नहीं होना चाहिये। तू भयरहित और प्रीतियुक्त मनवाला उसी मेरे इस शफ-चक्र-गदा-पद्मयुक्त चतुर्भुज रूपको फिर देख।

कृष्ण ने अपने विराट स्वरूप का संवरण किया। अर्जुन बोला, हे देवेश क्षमा करो, हे विश्वमूर्ति, हे आनन्दघन, हे नारायण, हे दया सागर जैसे मित्र-मित्र को, पिता पुत्र को और भगवान अने भक्त को क्षमा करते है प्रभु वैसे ही आप मुझे क्षमा कीजिये। कृष्ण बोले, हे कुन्तीनन्दन मित्र और मित्र, पिता और पुत्र, भगवान और भक्त के बीच क्षमा का तो कोई स्थान ही नहीं है। इन सम्बन्धों का आधार है स्नेह, श्रद्धा और भक्ति। जो मेरा भक्त है, जो मुझी में ध्यान भी लगाता है और मन भी, जो सदैव मुझ में ही लीन रहता है और जो पूरी श्रद्धा के साथ मेरी उपासना करता है वो ही उत्तम योगी है। इसलिये हे पार्थ तेरी भक्ति श्रेष्ठ है। अर्जुन ने अपनी हथेलियों से अपनी आँखें ढाँप रखी थी। आँखें खोलीं, तो सब कुछ यथावत् ही था। वह अपने रथ पर बैठा था और कृष्ण उसके निकट खड़े मुस्करा रहे थे। अर्जुन ने पूछा, यह सब क्या था केशव? कृष्ण बोले, सृष्टि का सत्य। अर्जुन बोले, क्या तुमने मुझे सम्मोहित किया ? कृष्ण बोले,नहीं। माया का आवरण हटा दिया। सत्य प्रकट हो गया। अर्जुन का मन पवन वेग से दौड़ रहा था। क्या यह सब कृष्ण की योगमाया थी? कृष्ण का तांत्रिक रूप था? कृष्ण ने अपनी कोई सिद्धि दिखाई थी? और उसका अपना मन ही चीत्कार कर रहा था- नहीं। ऐसा कुछ नहीं था। यह उपलब्धि कुछ और ही थी। अब अर्जुन का न तन शिथिल था, न मन। उसे युद्ध से भय नहीं लग रहा था। वह विनाश की कल्पना से त्रस्त नहीं था। वह जान रहा था कि न निर्माण कुछ होता है, न विनाश। न जन्म कुछ है, न मृत्यु।

मेरे प्रेमभाव से किये उपदेश का जो निष्ठापूर्वक पालन करते हैं, वे श्रद्धावान भक्त मेरे अत्यन्त प्रिय हो जाते हैं। हे फाल्गुनी, मानव-देह किसी खेत की भाँति होती है और जाग्रत आत्मा उस खेत का ध्यान रखनेवाले कृषक की भाँति होती है। जिसने यह जान लिया समझ ले- उसे जीवन का ज्ञान हो गया।

कृष्णके इस विभूति स्वरूपको देखनेकी इच्छा अर्जुनने की। उन योगेश्वरेश्वरने दिव्य दृष्टि देकर अपना विराट रूप दिखलाया। उस तेजोमय विश्वतोमुख कालस्वरूपको देखनेमें असमर्थ व्याकुल होकर अर्जुनने उसके उपसंहारकी प्रार्थना स्तुति करके की। अत: वह रूप उन समर्थने उपसंहृत कर लिया।

कृष्णने कहा- अर्जुन। तुमने जिस विराट् रूपमें मुझे देखा है उसका दर्शन वेदाध्ययन, तपस्या, दान, यज्ञ आदिसे नहीं हो सकता। केवल अनन्य भक्तिसे ही इसका ज्ञान, दर्शन तथा तत्त्वत: इसमें प्रवेश शक्य है। अत: मेरे परायण रहकर मेरे लिए ही कर्म करो। जो मेरा भक्त है, अनासक्त है और समस्त प्राणियोंसे शत्रुताहीन है, वह मुझे ही प्राप्त करता है।

सञ्जय बोले- वासुदेवने अर्जुनके प्रति इस प्रकार कहकर फिर वैसे ही अपने चतुर्भुज रूपको दिखलाया और फिर महात्मा श्रीकृष्णने सौम्यमूर्ति होकर इस भयभीत अर्जुनको धीरज दिया। अर्जुन बोले- जनार्दन। आपके इस अति शान्त मनुष्यरूपको देखकर अब मैं स्थिरचित्त हो गया हूँ और अपनी स्वाभाविक स्थितिको प्राप्त हो गया हूँ।

कृष्ण बोले- मेरा जो चतुर्भुज रूप तुमने देखा है, इसके दर्शन बड़े ही दुर्लभ हैं। देवता भी सदा इस रूपके दर्शनकी आकाङ्क्षा करते रहते हैं। जिस प्रकार तुमने मुझको देखा है, इस प्रकार चतुर्भुज रूपवाला मैं न वेदोंसे, न तपसे, न दानसे और न यज्ञसे ही देखा जा सकता हूँ। परंतु परंतप अर्जुन। अनन्य भक्तिके द्वारा इस प्रकार चतुर्भुज रूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये, तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये- एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी सम्भव हूँ। अर्जुन। जो पुरुष केवल मेरे ही लिये सम्पूर्ण कर्त्तव्यकर्मोंको करनेवाला है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिरहित है और सम्पूर्ण भूतप्राणियोंमें वैरभावसे रहित है- वह अनन्य-भक्तियुक्त पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है।

**१२) भक्तियोग-** अर्जुन बोले, जो अनन्य प्रेमी भक्तजन पूर्वोक्त प्रकारसे निरन्तर आपके भजन-ध्यानमें लगे रहकर आप सगुणरूप परमेश्वरको और दूसरे जो केवल अविनाशी सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्मको ही अतिश्रेष्ठ भावसे भजते हैं, उन दोनों प्रकारके उपासकोंमें अति उत्तम योगवेत्ता कौन हैं?

कृष्ण बोले, मुझमें मनको एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन-ध्यानमें लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धासे युक्त होकर मुझ सगुणरूप परमेश्वरको भजते हैं, वे मुझको योगियोंमें अति उत्तम योगी मान्य हैं। परंतु जो पुरुष इन्द्रियोंके समुदायको भली प्रकार वशमें करके मनबुद्धिसे परे, सर्वव्यापी, अकथनीयस्वरूप और सदा एकरस रहनेवाले नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी, सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको निरन्तर एकीभावसे ध्यान करते हुए भजते हैं, वे सम्पूर्ण भूतोंके हितमें रत और सबमें समान भाववाले योगी मुझको ही प्राप्त होते हैं। उन सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्ममें आसक्त चित्तवाले पुरुषोंके साधनमें क्लेश विशेष हैं; क्योंकि देहाभिमानियोंके द्वारा अव्यक्तविषयक गति दु:खपूर्वक प्राप्त की जाती है। परंतु जो मेरे परायण रहनेवाले भक्तजन सम्पूर्ण कर्मोंको मुझमें अर्पण करके मुझ सगुणरूप परमेश्वरको ही अनन्य भक्तियोगसे निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं; अर्जुन। उन मुझमें चित्त लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार-समुद्रसे उद्धार करनेवाला होता हूँ। मुझमें मनको लगा और मुझमें ही बुद्धिको लगा; इसके उपरान्त तू मुझमें ही निवास करेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। यदि तू मनको मुझमें अचल स्थापन करनेके लिये समर्थ नहीं है तो अर्जुन। अभ्यासरूप योगके द्वारा मुझको प्राप्त होनेके लिये इच्छा कर। यदि तू उपर्युक्त अभ्यासमें भी असमर्थ है तो केवल मेरे लिये कर्म करनेके ही परायण हो जा। इस प्रकार मेरे निमित्त कर्मोंको करता हुआ भी मेरी प्राप्तिरूप सिद्धिको ही प्राप्त होगा। यदि मेरी प्राप्तिरूप योगके आश्रित होकर उपर्युक्त साधनको करनेमें भी तू असमर्थ है तो मन-बुद्धि आदिपर विजय प्राप्त करनेवाला होकर सब कर्मोंके फलका त्याग कर। मर्मको न जानकर किये हुए अभ्याससे ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञानसे मुझ परमेश्वरके स्वरूपका ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यानसे भी सब कर्मोंके फलका त्याग श्रेष्ठ है; क्योंकि त्यागसे तत्काल ही परम शान्ति होती है।

जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित, स्वार्थरहित सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित, अहंकारसे रहित, सुख-दु:खोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है; तथा जो योगी निरन्तर संतुष्ट है, मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए है और मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है, वह मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है। जिससे कोई भी जीव उद्वेगको नहीं प्राप्त होता और जो स्वयं भी किसी जीवसे उद्वेगको

नहीं प्राप्त होता; तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादिसे रहित है, वह भक्त मुझको प्रिय है। जो पुरुष आकाङ्क्षासे रहित, बाहर-भीतरसे शुद्ध, चतुर, पक्षपातसे रहित और दु:खोंसे छूटा हुआ है, वह सब आरम्भोंका त्यागी मेरा भक्त मुझको प्रिय है। जो न कभी हर्षित होता है न द्वेष करता है, न शोक करता है न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मोंका त्यागी है, वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है। जो शत्रु-मित्रमें और मान-अपमानमें सम है तथा सरदी, गरमी और सुख-दु:खादि द्वन्द्वोंमें सम है और आसक्तिसे रहित है, जो निन्दा-स्तुतिको समान समझनेवाला, मननशील और जिस किसी प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमें सदा ही संतुष्ट है और रहनेके स्थानमें ममता और आसक्तिसे रहित है, वह स्थिरबुद्धि भक्तिमान पुरुष मुझको प्रिय है। परंतु जो श्रद्धायुक्त पुरुष मेरे परायण होकर इस धर्ममय अमृतको निष्काम प्रेमभावसे सेवन करते हैं, वे भक्त मुझको अतिशय प्रिय हैं।

अर्जुनने पूछा- जो इस प्रकार सतत आपमें ही लगे रहकर सर्वत्र आपकी उपासना करनेवाले भक्त हैं और जो अविनाशी अव्यक्तकी उपासना करते हैं इनमें योगवित्तम- योगको जाननेवालोंमें श्रेष्ठ कौन है?

श्रीकृष्णने कहा- जो मुझमें मनको आविष्ट करके सदा मुझमें लगकर मेरी उपासना परम श्रद्धा सहित करते हैं, मेरे मतमें वे युक्ततम है। जो इन्द्रिय समूहको संयमित करके सर्वत्र समबुद्धि रखकर अविनाशी, अनिर्देश्य, सर्वव्यापी, अचिन्त्य, कूटस्थ, अचल, ध्रुव, अव्यक्तकी पर्युपासना करते हैं, वे सर्वभूत हितमें लगे रहनेवाले भी मुझे ही प्राप्त करते हैं किन्तु उन अव्यक्त में आसक्त चित्त लोगोंको बहुत अधिक क्लेश होता है क्योंकि शरीरधारीकी गति अव्यक्तमें बहुत दु:खसे ही होती है। जो सब कर्मोंको मुझे देकर, मेरे परायण हो गये और अनन्य योगसे मेरा ध्यान करते हुए मेरी उपासना करते हैं उन अपनेमें आविष्ट चित्त लोगोंका मृत्यु रूप संसार सागरसे मैं अविलम्ब उद्धार करता हूँ। इसलिए मुझमें ही मन तथा बुद्धि लगा। इसके पश्चात् नि:सन्देह मुझमें ही निवास करोगे।

मुझमें स्थिर चित्त लगाये रहना संभव न हो तो इसका अभ्यास करना चाहिए। वह अभ्यास भी संभव न हो तो मेरे लिए ही कर्म करना चाहिए। मेरे लिए ही सब कर्म करनेसे भी अन्त:करण शुद्ध हो जायगा। यदि यह भी संभव न हो, कर्म करते समय अपना कर्तृत्व न छूटे तो कर्मोंका फल मेरे अर्पण करते रहो और चित्तको संयमित रखो।

जो किसी प्राणीसे द्वेष नहीं करता, सबका मित्र है, सबपर दया करता है, ममता अहंता रहित है, सुख-दु:खमें समान है, क्षमाशील है, सदा सन्तुष्ट रहता है, संयतचित्त है, दृढ़ निश्चय करके मुझमें मन-बुद्धि अर्पित कर चुका है वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है। जो किसीसे उद्विग्न नहीं होता और कोई जिससे उद्विग्न नहीं होता वह हर्ष, अमर्ष, भय, उद्वेगसे मुक्त पुरुष मुझे प्रिय है। जो निरपेक्ष, पवित्र, दक्ष, उदासीन है, जिसे कभी व्यथा नहीं होती वह सर्वारम्भ परित्यागी, मेरा भक्त मुझे प्रिय है। शत्रु-मित्र, मान-अपमान, शीत-उष्णता, सुख-दु:खमें जो समान है, आसक्ति रहित है, निन्दा-स्तुतिमें समान रहता है, मननशील है, जो प्राप्त हो उसीमें सन्तुष्ट हैं, वह अनिकेत, स्थिर बुद्धि भक्तिमान मनुष्य मुझे प्रिय है। यह धर्मस्वरूप अमृतोपदेश जो श्रद्धापूर्वक ठीक-ठीक धारण करके मेरे परायण रहते हैं वे भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय हैं।

**१३) क्षेत्र-क्षेत्रज्ञविभागयोग-** कृष्ण बोले- अर्जुन। यह शरीर क्षेत्र इस नामसे कहा जाता है; और इसको जो जानता है, उसको क्षेत्रज्ञ इस नामसे उनको तत्त्वसे जाननेवाले ज्ञानीजन कहते हैं। अर्जुन। तू सब क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ-जीवात्मा भी मुझे ही जान और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञका-विकारसहित प्रकृतिका और पुरुषका जो तत्त्वसे जानना है, वह ज्ञान है- ऐसा मेरा मत है। वह क्षेत्र जो और जैसा है तथा जिन विकारोंवाला है और जिस कारणसे जो हुआ है तथा वह क्षेत्रज्ञ भी जो और जिस प्रभाववाला है- वह सब मुझसे सुन। यह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका तत्त्व ऋषियोंद्वारा बहुत प्रकारसे कहा गया है और

विविध वेद मन्त्रोंद्वारा बहुत प्रकारसे कहा गया है और विविध वेद मन्त्रोंद्वारा भी विभागपूर्वक कहा गया है तथा भलीभाँति निश्चय किये हुए युक्तियुक्त ब्रह्मसूत्रके पदोंद्वारा भी कहा गया है। पाँच महाभूत, अहंकार, बुद्धि और मूल प्रकृति भी; तथा दस इन्द्रियाँ, एक मन और पाँच इन्द्रियोंके विषय-शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध तथा इच्छा, द्वेष, सुख, दु:ख, स्थूल देहका पिण्ड, चेतना और धृति- इस प्रकार विकारोंके सहित यह क्षेत्र संक्षेपमें कहा गया। श्रेष्ठताके अभिमानका अभाव, दम्भाचरणका अभाव, किसीभी प्राणीको किसी प्रकार भी न सताना, क्षमाभाव, मन-वाणी आदिकी सरलता, श्रद्धा-भक्तिसहित गुरुकी सेवा, बाहर-भीतरकी शुद्धि, अन्त:करणकी स्थिरता और मन इन्द्रियोंसहित शरीरका निग्रह इस लोक और परलोकके सम्पूर्ण भोगोंमें आसक्तिका अभाव और अहंकारका भी अभाव; जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदिमें दु:ख-दोषोंका बार-बार विचार करना; पुत्र, स्त्री, घर और धन आदिमें आसक्तिका अभाव, ममताका न होना तथा प्रिय और अप्रियकी प्राप्तिमें सदा ही चित्तका सम रहना, मुझ परमेश्वरमें अनन्य योगके द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति तथा एकान्त और शुद्ध देशमें रहनेका स्वभाव और विषयासक्त मनुष्योंके समुदायमें प्रेमका न होना, अध्यात्मज्ञानमें नित्य स्थिति और तत्त्वज्ञानके अर्थरूप परमात्माको ही देखना यह सब ज्ञान है और जो इससे विपरीत है, वह अज्ञान है- ऐसा कहा है। जो जाननेयोग्य है तथा जिसको जानकर मनुष्य परमानन्दको प्राप्त होता है, उसे ही बताऊंगा। वह आदिरहित परम ब्रह्म न सत् ही कहा जाता है, न असत् ही। वह सब ओर हाथ-पैरवाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाला और सब ओर कानवाला है; क्योंकि वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है। वह सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाला है, परंतु वास्तवमें सब इन्द्रियोंसे रहित है तथा आसक्तिरहित और निर्गुण होनेपर भी अपनी योगमायासे सबका धारण-पोषण करनेवाला और गुणोंको भोगनेवाला है। वह चराचर सब भूतोंके बाहर-भीतर परिपूर्ण है और चर-अचररूप भी वही है। और वह सूक्ष्म होनेसे अविज्ञेय है तथा अति समीपमें और दूरमें भी स्थित वही है। और वह विभागरहित एकरूपसे आकाशके सदृश परिपूर्ण होनेपर भी चराचर सम्पूर्ण भूतोंमें विभक्त-सा स्थित प्रतीत होता है। वह जाननेयोग्य परमात्मा विष्णुरूपसे भूतोंको धारण-पोषण करनेवाला और रूद्ररूपसे संहार करनेवाला तथा ब्रह्मारूपसे सबको उत्पन्न करनेवाला है। वह ब्रह्म ज्योतियोंका भी ज्योति एवं मायासे अत्यन्त परे कहा जाता है। वह परमात्मा बोधस्वरूप, जाननेके योग्य एवं तत्त्वज्ञानसे प्राप्त करनेयोग्य है और सबके हृदयमें विशेषरूपसे स्थित है। इस प्रकार क्षेत्र तथा ज्ञान और जाननेयोग्य परमात्माका स्वरूप संक्षेपसे कहा गया। मेरा भक्त इसको तत्त्वसे जानकर मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है।

प्रकृति और पुरुष, इन दोनोंको ही तू अनादि जान और राग-द्वेषादि विकारोंको तथा त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण पदार्थोंको भी प्रकृतिसे ही उत्पन्न जान। कार्य और करणकी उत्पत्तिमें हेतु प्रकृति कही जाती है और जीवात्मा सुख-दु:खोंके भोगनेमें हेतु कहा जाता है। प्रकृतिमें स्थित ही पुरुष प्रकृतिसे उत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थोंको भोगता है और इन गुणोंका सङ्ग ही इस जीवात्माके अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेनेका कारण है। यह पुरुष इस देहमें स्थित होनेपर भी पर ही है। केवल साक्षी होनेसे उपद्रष्टा और यथार्थ सम्मति देनेवाला होनेसे अनुमन्ता, सबको धारण-पोषण करनेवाला होनेसे भर्ता, जीवरूपसे भोक्ता, ब्रह्मा आदिका भी स्वामी होनेसे महेश्वर और शुद्ध सच्चिदानन्दघन होनेसे परमात्मा-ऐसा कहा गया है। इस प्रकार पुरुषको और गुणोंके सहित प्रकृतिको जो मनुष्य तत्त्वसे जानता है, वह सब प्रकारसे कर्त्तव्यकर्म करता हुआ भी फिर नहीं जन्मता। उस परमात्माको कितने ही मनुष्य तो शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिसे ध्यानके द्वारा हृदयमें देखते हैं; अन्य कितने ही ज्ञानयोगके द्वारा और दूसरे कितने ही कर्मयोगके द्वारा देखते हैं। परंतु इनसे दूसरे स्वयं इस प्रकार न जानते हुए दूसरोंसे सुनकर ही तदनुसार उपासना करते हैं और वे श्रवणपरायण पुरुष भी मृत्युरूप संसारसागरको नि:संदेह तर जाते हैं। अर्जुन। जितने भी स्थावर जङ्गम प्राणी उत्पन्न होते हैं, उन सबको तू क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके संयोगसे ही उत्पन्न जान। जो पुरुष नष्ट

होते हुए सब चराचर भूतोंमें परमेश्वरको नाशरहित और समभावसे स्थित देखता है, वही यथार्थ देखता है; क्योंकि वह पुरुष सबमें समभावसे स्थित परमेश्वरको समान देखता हुआ अपनेद्वारा अपनेको नष्ट नहीं करता, इससे वह परम गतिको प्राप्त होता है और जो पुरुष सम्पूर्ण कर्मोंको सब प्रकारसे प्रकृतिके द्वारा ही किये जाते हुए देखता है और आत्माको अकर्त्ता देखता है, वही यथार्थ देखता है। जिस क्षण यह पुरुष भूतोंके पृथक-पृथक् भावको एक परमात्मामें ही स्थित तथा उस परमात्मासे ही सम्पूर्ण भूतोंका विस्तार देखता है, उसी क्षण वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। अर्जुन। अनादि होनेसे और निर्गुण होनेसे यह अविनाशी परमात्मा शरीरमें स्थित होनेपर भी वास्तवमें न तो कुछ करता है और न लिप्त ही होता है। जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त आकाश सूक्ष्म होनेके कारण लिप्त नहीं होता, वैसे ही देहमें सर्वत्र स्थित आत्मा निर्गुण होनेके कारण देहके गुणोंसे लिप्त नहीं होता। अर्जुन। जिस प्रकार एक ही सूर्य इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा सम्पूर्ण क्षेत्रको प्रकाशित करता है। इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके भेदको तथा कार्यसहित प्रकृतिके अभावको जो पुरुष ज्ञान-नेत्रोंद्वारा तत्त्वसे जानते हैं, वे महात्माजन परम ब्रह्म परमात्माको प्राप्त होते हैं।

यह शरीर क्षेत्र है- कर्म, धर्म, ज्ञान, भक्ति सब इसीमें उत्पन्न होती हैं। इसे जो जाननेवाला है वह क्षेत्रज्ञ है। क्षेत्र अनेक है किन्तु सब क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ एक मैं ही हूँ। यह क्षेत्र-क्षेत्रज्ञका ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है।

पंचमहाभूत, अहंकार, महत्तत्त्व, प्रकृति, दस इन्द्रियां, मन, शब्द, स्पर्श, रूप-रस, गन्ध, राग-द्वेष, सुख-दु:ख, इन सबके संघातमें उत्पन्न चेतना, इनको धारण करनेकी शक्ति- इसे क्षेत्र कहा गया है। यह क्षेत्र विकारवान है।

मान तथा दम्भ न करना, अहिंसा, क्षमा, सरलता, गुरुसेवा, पवित्रता, स्थिरता, मनोनिग्रह, भोगोंमें वैराग्य, अहंकारहीनता, जन्म-मृत्यु, जरा, रोगादि दोषोंका बराबर विचार, अनासक्ति, स्त्री-पुरुष गृहादिमें असंसक्ति, अभीष्ट-अनभीष्टकी प्राप्तिमें सदा समचित्तता, अनन्य निष्ठासे मेरी स्थिर भक्ति, एकान्त सेवन, भीड़-भाड़में अरुचि, अध्यात्म ज्ञानमें स्थिति, तत्व विचार- ये ज्ञानके साधन हैं। इनके विपरीत जाना अज्ञान है।

जिसे जानकर अमृतत्त्व प्राप्त होता है वह अनादि ब्रह्म मेरा स्वरूप है। उसे सत् या असत नहीं कहा जा सकता। वह सर्वरूप, सर्वसे रहित, विभु, सबसे असंसक्त होनेपर भी सबका आधार- निमित्तोपादान, गुणभोक्ता होकर भी निर्गुण है। वह सर्वव्यापक, सूक्ष्म होनेसे अविज्ञेय, दूर और समीप भी है, सब भेदोंमें वह अभिन्न, अद्वय, सर्वावभासक, स्वत: प्रकाश, तमसके पार परम ज्योति, सबके हृदयमें स्थित ज्ञान, ज्ञेय तथा ज्ञान गम्य भी है। इस प्रकार थोड़ेमें यह क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ एवं ज्ञानका वर्णन किया गया। मेरा भक्त इसे जानकर मेरे भावको प्राप्त हो जाता है।

प्रकृति और पुरुष दोनोंको अनादि समझो। सब विकार और गुण प्रकृतिसे उत्पन्न होते हैं। कार्य, करण-इन्द्रिय तथा कर्तृत्वका कारण प्रकृति कही जाती है। पुरुष केवल सुख-दु:ख भोक्तृत्वमें कारण कहलाता है। यह पुरुष जीव प्रकृतिमें स्थित होकर प्रकृतिके गुणोंको भोगता है, यह गुणोंमें पुरुषकी आसक्ति ही जीवके अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्मका कारण है। इस शरीरमें ही जीवमें कर्मोंका उपदृष्टा, अनुमोदक, उसका पालक, भोक्ता, सब समर्थ संचालक, परमात्मा कहा गया है। वह जीवसे परे है। इस प्रकार जो पुरुषको तथा गुणोंके साथ प्रकृतिको जान लेता है वह सर्वथा व्यवहार करता हुआ भी फिर जन्म नहीं लेता। कुछ लोग ध्यान करके तथा कुछ विचार अथवा योग या निष्काम कर्मयोगसे अपने स्वरूपको जानते हैं। कुछ लोग दूसरोंसे सुनकर वैसी भावना करते हैं। ये भावना करनेवाले भी मृत्युको पार कर जाते हैं।

जितने भी चर-अचर प्राणी हैं वे क्षेत्र या तथा क्षेत्रज्ञके योगसे ही उत्पन्न हैं। इन सब प्राणियोंमें समान रूपसे स्थित, सबके नाश होते रहनेपर भी अविनाशी परमात्माको जो देखता है, वही ठीक देखता है। सर्वत्र समान रूपमें स्थित परमेश्वरको सर्वत्र देखनेवाला अपनेको स्वयं परिच्छिन्न बनकर, मानकर मारता नहीं, अत: परमगति प्राप्त करता है।

सभी कर्म प्रकृति ही करती है। आत्मा अकर्त्ता है, यह जो देखता है, वह सब पृथक-पृथक प्राणियोंमें एकत्वको देखता है। उसी एकका सब विस्तार है, यह देखता है तब ब्रह्मत्व प्राप्त करता है।

यह परमात्मा अनादि तथा निर्गुण होनेसे शरीरमें रहता हुआ भी न कुछ करता, न कर्मसे लिप्त होता। यह अविनाशी है। यह सूर्यके समान एक होकर भी सब क्षेत्रोंका प्रकाशक है। इस प्रकार क्षेत्र क्षेत्रज्ञका अन्तर, प्राणियोंकी प्रकृति तथा उनका मोक्ष जाननेवाले परमतत्वको प्राप्त करते हैं।

**१४) गुणत्रयविभाग योग-** कृष्ण बोले- ज्ञानोंमें भी अति उत्तम उस परम ज्ञानको मैं फिर कहूँगा, जिसको जानकर सब मुनिजन इस संसारसे मुक्त होकर परम सिद्धिको प्राप्त हो गये हैं। इस ज्ञानको आश्रय करके मेरे स्वरूपको प्राप्त हुए पुरुष सृष्टिके आदिमें पुन: उत्पन्न नहीं होते और प्रलयकालमें भी व्याकुल नहीं होते। अर्जुन। मेरी महत्ब्रह्मरूप प्रकृति- अव्याकृत माया सम्पूर्ण भूतोंकी योनि है और मैं उस योनिमें चेतनसमुदायरूप गर्भको स्थापन करता हूँ। उस जड़-चेतनके संयोगसे सब भूतोंकी उत्पत्ति होती है। अर्जुन। नाना प्रकारकी सब योनियोंमें जितने शरीरधारी प्राणी उत्पन्न होते हैं, अव्याकृत माया तो उन सबकी गर्भ धारण करनेवाली माता है और मैं बीजको स्थापन करनेवाला पिता हूँ।

हे अर्जुन। सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण- ये प्रकृतिसे उत्पन्न तीनों गुण अविनाशी जीवात्माको शरीरमें बाँधते हैं। हे निष्पाप। उन तीनों गुणोंमें सत्त्वगुण तो निर्मल होनेके कारण प्रकाश करनेवाला और विकाररहित है, वह सुखके सम्बन्धसे और ज्ञानके अभिमानसे बाँधता है। अर्जुन। रागरूप रजोगुणको कामना और आसक्तिसे उत्पन्न जान। वह इस जीवात्माको कर्मोंके और उनके फलके सम्बन्धसे बाँधता है और अर्जुन। सब देहाभिमानियोंको मोहित करनेवाले तमोगुणको अज्ञानसे उत्पन्न जान। वह इस जीवात्माको प्रमाद, आलस्य और निद्राके द्वारा बाँधता है। अर्जुन। सत्त्वगुण सुखमें लगाता है और रजोगुण कर्ममें तथा तमोगुण तो ज्ञानको ढककर प्रमादमें भी लगाता है। अर्जुन। रजोगुण और तमोगुणको दबाकर सत्त्वगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणको दबाकर रजोगुण वैसे ही सत्वगुण और रजोगुण को दबाकर तमोगुण स्थित होता है। जिस समय इस देहमें तथा अन्त:करण और इन्द्रियोंमें चेतना और विवेकशक्ति उत्पन्न होती है, उस समय ऐसा जानना चाहिये कि सत्त्वगुण बढ़ा है। अर्जुन। रजोगुणके बढ़नेपर लोभ, प्रवृत्ति, सब प्रकारके कर्मोंका सकामभावसे आरम्भ, अशान्ति और विषयभोगोंकी लालसा- ये सब उत्पन्न होते हैं। अर्जुन। तमोगुणके बढ़नेपर अन्त:करण और इन्द्रियोंमें अप्रकाश, कर्त्तव्य-कर्मोंमें अप्रवृत्ति और प्रमाद तथा निद्रादि अन्त:करणकी मोहिनी वृत्तियाँ- ये सब ही उत्पन्न होते हैं। जब यह जीवात्मा सत्त्वगुणकी वृद्धिमें मृत्युको प्राप्त होता है, तब तो उत्तम कर्म करनेवालोंके निर्मल दिव्य स्वर्गादि लोकोंको प्राप्त होता है। रजोगुणके बढ़नेपर मृत्युको प्राप्त होकर मनुष्य कर्मोंके आसक्तिवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होता है तथा तमोगुणके बढ़नेपर मरा हुआ पुरुष कीट, पशु आदि मूढ़योनियोंमें उत्पन्न होता है। सात्त्विक कर्मका तो सात्त्विक- सुख, ज्ञान और वैराग्यादि निर्मल फल कहा है; राजस कर्मका फल दु:ख एवं तामस कर्मका फल अज्ञान कहा है। सत्त्वगुणसे ज्ञान उत्पन्न होता है और रजोगुणसे नि:संदेह लोभ तथा तमोगुणसे प्रमाद और मोह उत्पन्न होते हैं और अज्ञान भी होता है। सत्त्वगुणमें स्थित पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकोंको जाते हैं, रजोगुणमें स्थित राजस पुरुष मध्यमें- मनुष्य लोकमें ही रहते हैं और तमोगुणके कार्यरूप निद्रा, प्रमाद और आलस्यादिमें स्थित तामस पुरुष अधोगतिको- कीट, पशु आदि नीच योनियोंको तथा नरकादिको प्राप्त होते हैं। जिस समय द्रष्टा तीनों गुणोंके अतिरिक्त अन्य किसीको कर्त्ता नहीं देखता और तीनों गुणोंसे अत्यन्त परे सच्चिदानन्दघनस्वरूप मुझ परमात्माको तत्त्वसे जानता है, उस समय वह मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है। यह पुरुष स्थूलशरीरकी उत्पत्तिके कारणरूप इन तीनों गुणोंको उल्लंघन करके जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकारके दु:खोंसे मुक्त होकर परमानन्दको प्राप्त होता है। अर्जुन बोले- इन तीनों गुणोंसे अतीत पुरुष किन-किन लक्षणोंसे

युक्त होता है और किस प्रकारके आचरणोंवाला होता है तथा प्रभो। मनुष्य किस उपायसे इन तीनों गुणोंसे अतीत होता है?

कृष्ण बोले, अर्जुन। जो पुरुष सत्त्वगुणके कार्यरूप प्रकाशको और रजोगुणके कार्यरूप प्रवृत्तिको तथा तमोगुणके कार्यरूप मोहको भी न तो प्रवृत्त होनेपर बुरा समझता है और न निवृत्त होनेपर उनकी आकांक्षा करता है; जो साक्षीके सदृश स्थित हुआ गुणोंके द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता और गुण ही गुणोंमें बरतते हैं- ऐसा समझता हुआ जो सच्चिदानन्दघन परमात्मामें एकीभावसे स्थित रहता है एवं उस स्थितिसे कभी विचलित नहीं होता; और जो निरन्तर आत्मभावमें स्थित, दु:ख-सुखको समान समझनेवाला, मिट्टी, पत्थर और स्वर्णमें समान भाववाला, ज्ञानी, प्रिय तथा अप्रियको एक-सा माननेवाला और अपनी निन्दा-स्तुतिमें भी समान भाववाला है; जो मान और अपमानमें सम है एवं मित्र और वैरीके पक्षमें भी सम है, सम्पूर्ण आरम्भोंमें कर्त्तापनमें अभिमानसे रहित वह पुरुष गुणातीत कहा जाता है और जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तियोगके द्वारा मुझको निरन्तर भजता है, वह इन तीनों गुणोंको भलीभाँति लाँघकर सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको प्राप्त होनेके लिये योग्य बन जाता है; क्योंकि उस अविनाशी परब्रह्मका और अमृतका तथा नित्यधर्मका और अखण्ड एकरस आनन्दका आश्रय मैं हूँ।

प्रकृति माता है और मैं पिता हूँ। मेरे सान्निध्यसे प्रकृति चराचर जगतको उत्पन्न करती है। सत्व, रज तम ये प्रकृतिके तीन गुण हैं जो अविकारी जीवको शरीरमें बाँधते हैं। इनमें सत्वगुण निर्मल, प्रकाशक, स्वस्थ है। यह सुख तथा ज्ञानमें अभिमान कराके बाँधता है। रजोगुण रागात्मक है, यह तृष्णा तथा आसक्ति एवं कर्ममें रुचि उत्पन्न करता है। तमोगुण अज्ञान तथा मोहमें डालनेवाला होनेसे निद्रा, आलस्य, प्रमाद उत्पन्न करता है।

ये गुण एकसाथ बढ़ते नहीं। इनमें एक प्रबल रहता है तो शेष दो दब जाते हैं। सत्वगुणकी वृद्धिके समय मृत्यु होनेपर स्वर्गादि पुण्यात्माओंके उत्तमलोक रजोगुणकी वृद्धिमें मरनेपर कर्मासक्त लोगोंके यहीं जन्म और तमोगुणकी वृद्धिमें मरनेपर वृक्षादि मूढ़ योनियाँ मिलती हैं।

पुण्य कर्मोंका निर्मल सात्विक फल, राजस कर्मोंका फल दु:ख और तामस कर्मोंका फल अज्ञान हैं। सत्वगुणी उर्ध्वलोकोंमें, रजोगुणी मध्यके लोकमें और तमोगुणी अधोलोकोंमें जाते हैं।

जब यह दृष्टि प्राप्त हो जाती है कि गुणोंके अतिरिक्त कोई कर्त्ता नहीं है तब पुरुष गुणातीत होकर मेरे भावको प्राप्त कर लेता है। देहसे उत्पन्न जन्म-मृत्यु जरा आदि दु:खोंसे विमुक्त होकर अमृतत्व उसे प्राप्त होता है जो तीनों गुणोंसे अतीत हो चुका है। अर्जुनने पूछा, गुणातीत कैसे हुआ जाता है? वह कैसे रहता है? उसके चिन्ह क्या है?

कृष्णने बतलाया- प्रकाश, प्रवृत्ति या मोहमें-से कोई आवे, रहे या चला जाय- इन सबसे उदासीन जो स्थित है, गुणोंसे जो विचलित नहीं होता, सुख-दु:खमें समान रहता है, लोहा-सोना-पत्थर जिसे समान है, प्रिय-अप्रिय, निन्दा-स्तुति, मान-अपमान, मित्र-शत्रु सबके प्रति जो समान है, धीर है, तथा अपनी ओरसे जो कोई आरम्भ नहीं करता, वह गुणातीत कहा जाता है। जो अव्यभिचारी भक्तियोगसे मेरी उपासना करता है वह इन गुणोंको पार करके ब्रह्मीभूत हो जाता है क्योंकि अमृत, अव्यय, शाश्वत ब्रह्मकी, धर्मकी तथा ऐकान्तिक सुखकी मैं ही प्रतिष्ठा-आधार हूँ।

हे पार्थ, जिस प्रकार भिन्न-भिन्न ऋतु खेत की उपज पर प्रभाव डालते हैं, उसी प्रकार यह तीन प्रमुख गुण सत्त्व, रज, तमस आत्मा को प्रभावित करते हैं। इन गुणोंसे प्रभावित व्यक्तियोंको अपने-अपने गुणोंके अनुकूल आहार, बुद्धि, वृत्ति व्यक्ति को प्राप्त होते हैं। सभी योगोंका ज्ञान प्राप्त करते सर्वव्यापकत्व को जान लेता है, वही पुरुषोत्तम योग है। सात्विक व्यक्ति को पुण्यकर्मों का निर्मल फल प्राप्त होता है। राजस व्यक्ति को राजस कर्मोंका सुख-दु:ख युक्त फल प्राप्त होता है। तामस व्यक्ति को अपने तामस कर्मों का फल अज्ञान से पूर्ण दु:ख के रूप में मिलता है। जिस प्रकार कर्त्तव्यदक्ष, कुशल कृषक अपने खेत की अच्छी देखभाल करता है उसी प्रकार सात्त्विक आत्मा जीवन के क्षेत्र को निर्दोष-निर्मल रखती है।

**१५) पुरुषोत्तमयोग-** कृष्ण बोले, आदिपुरुष परमेश्वररूप मूलवाले और ब्रह्मारूप मुख्य शाखावाले जिस संसाररूप पीपलके वृक्षको अविनाशी कहते हैं तथा वेद जिसके पत्ते कहे गये हैं- उस संसाररूप वृक्षको जो पुरुष मूलसहित तत्त्वसे जानता है, वह वेदके तात्पर्यको जाननेवाला है। उस संसारवृक्षकी तीनों गुणोंरूप जलके द्वारा बढ़ी हुई एवं विषयभोगरूप कोंपलोंवाली देव, मनुष्य और तिर्यक् आदि योनिरूप शाखाएँ नीचे और ऊपर सर्वत्र फैली हुई हैं तथा मनुष्ययोनिमें कर्मोंके अनुसार बाँधनेवाली अहंता, ममता और वासनारूप जड़ें भी नीचे और ऊपर सभी लोकोंमें व्याप्त हो रही हैं। इस संसारवृक्षका स्वरूप जैसा कहा है, वैसा यहाँ विचारकालमें नहीं पाया जाता; क्योंकि न तो इसका आदि है, न अन्त है तथा न इसकी अच्छी प्रकारसे स्थिति ही है। इसलिये इस अहंता, ममता और वासनारूप अति दृढ़मूलोंवाले संसाररूप पीपलके वृक्षको दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्रद्वारा काटकर, उसके पश्चात् उस परम पदरूप परमेश्वरको भलीभाँति खोजना चाहिये, जिसमें गये हुए पुरुष फिर लौटकर संसारमें नहीं आते; और जिस परमेश्वरसे इस पुरातन संसारवृक्षकी प्रवृत्ति विस्तारको प्राप्त हुई है, उसी आदिपुरुष नारायणके मैं शरण हूँ- इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके उस परमेश्वरका मनन और निध्यासन करना चाहिये। जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है, जिन्होंने आसक्तिरूप दोषको जीत लिया है, जिनकी परमात्माके स्वरूपमें नित्य स्थिति है और जिनकी कामनाएँ पूर्णरूपसे नष्ट हो गयी हैं- वे सुख-दु:खनामक द्वन्द्वोंसे विमुक्त ज्ञानीजन उस अविनाशी परम पदको प्राप्त होते हैं। जिस परम पदको प्राप्त होकर मनुष्य लौटकर संसारमें नहीं आते- उस स्वयंप्रकाश परम पदको न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा और न अग्नि ही; हे पार्थ वही मेरा परम धाम है।

इस देहमें यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है और वही इन त्रिगुणमयी मायामें स्थित मन और पाँचों इन्द्रियोंको आकर्षण करता है। वायु गन्धके स्थानसे गन्धको जैसे ग्रहण करके ले जाता है, वैसे ही देहादिका स्वामी जीवात्मा भी जिस शरीरको त्याग करता है उससे इन मनसहित इन्द्रियोंको ग्रहण करके फिर जिस शरीरको प्राप्त होता है उसमें जाता है। यह जीवात्मा श्रोत्र, चक्षु और त्वचाको तथा रसना, घ्राण और मनको आश्रय करके विषयोंका सेवन करता है। शरीरको छोड़कर जाते हुएको अथवा शरीरमें स्थित हुएको और विषयोंको भोगते हुएको अथवा तीनों गुणोंसे युक्त हुएको भी अज्ञानीजन नहीं जानते, केवल ज्ञानरूप नेत्रोंवाले ज्ञानीजन ही तत्त्वसे जानते हैं। यत्न करनेवाले योगीजन भी अपने हृदयमें स्थित इस आत्माको तत्त्वसे जानते हैं। किंतु जिन्होंने अपने अन्त:करणको शुद्ध नहीं किया है, ऐसे अज्ञानीजन तो यत्न करते रहनेपर भी इस आत्माको नहीं जानते।

सूर्यमें स्थित जो तेज सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चन्द्रमामें है और जो अग्निमें हैं, उसको तू मेरा ही तेज जान। मैं ही पृथ्वीमें प्रवेश करके अपनी शक्तिसे सब भूतोंको धारण करता हूँ और रसस्वरूप- अमृतमय चन्द्रमा होकर सम्पूर्ण औषधियोंका-वनस्पतियोंका पोषण करता हूँ। मैं ही सब प्राणियोंके शरीरमें स्थित रहनेवाला प्राण और अपानसे संयुक्त वैश्वानर अग्निरूप होकर चार प्रकारके अन्नको पचाता हूँ और मैं ही सब प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित हूँ तथा मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन होता है और सब वेदोंद्वारा मैं ही जाननेके योग्य हूँ तथा वेदान्तका कर्त्ता और वेदोंको जाननेवाला भी मैं ही हूँ। इस संसारमें नाशवान और अविनाशी भी, ये दो प्रकारके पुरुष हैं। इनमें सम्पूर्ण भूतप्राणियोंके शरीर तो नाशवान् और जीवात्मा अविनाशी कहा जाता है। इन दोनोंसे उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जो तीनों लोकोंमें प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है एवं अविनाशी परमेश्वर और परमात्मा- इस प्रकार कहा गया है; क्योंकि मैं नाशवान् जडवर्ग क्षेत्रसे तो सर्वथा अतीत हूँ और मायामें स्थित अविनाशी जीवात्मासे भी उत्तम हूँ, इसलिये लोकमें और वेदमें भी पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध हूँ। भारत। इस प्रकार तत्त्वसे जो ज्ञानी पुरुष मुझको पुरुषोत्तम जानता है, वह

सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वर को ही भजता है। हे निष्पाप अर्जुन। इस प्रकार यह अति रहस्ययुक्त गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया, इसको तत्त्वसे जानकर मनुष्य ज्ञानवान और कृतार्थ हो जाता है।

जो भक्त है वे इस संसार में नहीं उलझते क्योंकि हे पार्थ ये संसार तो मानो पीपल का वृक्ष है जिसकी जड़े ऊपर की ओर है, शाखायें नीचे की ओर, वेद इसी वृक्ष के पत्ते हैं जो यह जानता है यह समझो पार्थ वो वेदों का अर्थ भी जानता है। इस वृक्ष की शाखायें ऊपर नीचे चारों तरफ सब ओर फैली हुई है जिनका परिपोषण किया है प्रकृति के तीनो गुणों ने सतो गुण, रजो गुण और तमोगुण। इसकी जड़ें मानव समाज में बहुत गहराई तक फैली हुई है। इस वृक्ष के वास्तविक रूप के अनुभूति इस संसार में सम्भव नहीं क्योंकि ये तो कोई देख ही नहीं सकता इस वृक्ष का आदि, अन्त और आधार कहां है? किन्तु मनुष्य इस संसार रूपी वृक्ष को वैराग्य की कुल्हाड़ी से काट कर परम पद को प्राप्त कर सकता है जहां पहुंच कर उसे फिर लौटना नहीं पडता और हे पार्थ वैराग्य निहित स्वार्थ के त्याग का नाम है। इसलिये सोचना हो तो केवल मेरे विषय में सोचो। पूजना हो तो केवल मुझे पूजो।

यह संसार वृक्ष ऊर्ध्वमूल, अध:शाख अव्यय है। वेद इसके पत्ते हैं। यह त्रिगुणोंसे बढ़ा है। कर्मके द्वारा ही इसका विस्तार बढ़ा है। इसका कोई सुनिश्चित रूप नहीं है। यह अनादि, अनन्त है किन्तु परिवर्तनशील है।

इस अतिशय दृढ़ मूल अश्वत्थको अनासक्तिके शस्त्रसे काटकर उस पदका अन्वेषण करना चाहिए जहाँ जाकर फिर संसारमें आना नहीं पड़ता। वह आदिपुरुष है और उसीसे यह सब प्रवृत्ति अनादिकालसे फैली है। मान, मोह तथा आसक्ति त्यागकर, कामनाओंसे रहित सदा अध्यात्ममें स्थित, सुख-दु:खके द्वन्द्वसे मुक्त ज्ञानी पुरुष उस अविनाशी पदको प्राप्त करते हैं। वह स्वयं प्रकाश पद मेरा परमधाम है, जहाँ जाकर फिर लौटना नहीं पड़ता।

जीव मेरा ही सनातन अंश है। पाँच ज्ञानेन्द्रिय एवं मन ये इसे प्रकृतिमें खींचकर लगाते हैं। इनको साथ लेकर ही यह एक शरीरसे दूसरेमें जाता है। इन इन्द्रियोंका आश्रय लेकर ही यह विषयोंका उपभोग करता है।

शरीरसे निकलता या शरीरमें स्थित गुणोंके साथ भोग भोगते अज्ञानी इसे नहीं देख पाते किन्तु ज्ञानसे देखा जा सकता है। योगी इसे प्रयत्न करके अपनेमें स्थित देख लेते हैं किन्तु प्रयत्न करके भी असंयत चित्त इसे नहीं देख सकते।

सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदिमें मेरा ही प्रकाश है। मैं ही सबका प्रकाशक, धारक एवं पोषक हूँ। सबके हृदयमें मैं अन्तर्यामी रूपसे स्थित हूँ। मुझसे ही स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति भी होती है। सब वेदोंके द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ और वेदोंको मैं ही जानता हूँ। संसारमें दो पुरुष हैं- क्षर तथा अक्षर। इनमें क्षर विनाशी सब प्राणी हैं और इनमें जो कूटस्थ रूपसे स्थित है, वह अक्षर है। मैं क्षरसे अतीत हूँ और अक्षरसे भी उत्तम हूँ। जो असंमूढ़ मुझे ऐसा पुरुषोत्तम जान लेता है, वही सर्वविद् है और सर्वभावसे मेरा भजन करता है।

**१६) दैवासुरसम्पद्विभागयोग-** कृष्ण बोले भयका सर्वथा अभाव अन्त:करणकी पूर्ण निर्मलता, तत्त्वज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ़ स्थिति और सात्त्विक दान, इन्द्रियोंका दमन, भगवान्, देवता और गुरुजनोंकी पूजा तथा अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्मोंका आचरण एवं वेदशास्त्रोंका पठन-पाठन तथा भगवान्के नाम और गुणोंका कीर्त्तन, स्वधर्मपालनके लिये कष्टसहन और शरीर तथा इन्द्रियोंके सहित अन्त:करणकी सरलता, मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भाषण, अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधका न होना, कर्मोंमें कर्त्तापनके अभिमानका त्याग, अन्त:करणकी उपरति, किसीकी भी निन्दादि न करना, सब भूतप्राणियोंमें हेतुरहित दया, इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर उनमें आसक्तिका न होना, कोमलता, लोक और शास्त्रसे विरुद्ध आचरणमें लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, बाहरकी शुद्धि एवं किसीमें भी शत्रुभावका न होना और अपनेमें पूज्यताके

अभिमानका अभाव- ये सब तो अर्जुन। दैवी सम्पदाको प्राप्त पुरुषके लक्षण हैं। पार्थ। दम्भ, घमंड और अभिमान तथा क्रोध, कठोरता और अज्ञान भी- ये सब आसुरी सम्पदाको लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं। दैवी सम्पदा मुक्तिके लिये और आसुरी सम्पदा बाँधनेके लिये मानी गयी है। इसलिये अर्जुन। तू शोक मत कर; क्योंकि तू दैवी-सम्पदाको प्राप्त है।

हे अर्जुन। इस लोकमें मनुष्यसमुदाय दो ही प्रकारका है, एक तो दैवी प्रकृतिवाला और दूसरा आसुरी प्रकृतिवाला। उनमेंसे दैवी प्रकृतिवाला तो विस्तारपूर्वक कहा गया, अब तू आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्य समुदायको भी विस्तारपूर्वक मुझसे सुन। आसुर-स्वभाववाले मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति- इन दोनोंको ही नहीं जानते। इसलिये उनमें न तो बाहर-भीतरकी शुद्धि है, न श्रेष्ठ आचरण है और न सत्यभाषण ही है। वे आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्य कहा करते हैं कि जगत् आश्रयरहित, सर्वथा असत्य और बिना ईश्वरके, अपने-आप केवल स्त्री-पुरुषके संयोगसे उत्पन्न है, अतएव केवल भोगोंके लिये ही है। इसके सिवा और क्या है? इस मिथ्या ज्ञानको अवलम्बन करके- जिनका स्वभाव नष्ट हो गया है तथा जिनकी बुद्धि मन्द है, वे सबका अपकार करनेवाले क्रूरकर्मी मनुष्य केवल जगत्के नाशके लिये ही उत्पन्न होते हैं। वे दम्भ, मान और मदसे युक्त मनुष्य किसी प्रकार भी पूर्ण न होनेवाली कामनाओंका आश्रय लेकर, अज्ञानसे मिथ्या सिद्धान्तोंको ग्रहण कर और भ्रष्ट आचरणोंको धारण करके संसारमें विचरते हैं तथा वे मृत्युपर्यन्त रहनेवाली असंख्य चिन्ताओंका आश्रय लेनेवाले, विषयभोगोंके भोगनेमें तत्पर रहनेवाले और इतना ही आनन्द है इस प्रकार माननेवाले होते हैं। वे आशाकी सैकड़ों पाँसियोंसे बँधे हुए मनुष्य काम-क्रोधके परायण होकर विषयभोगोंके लिये अन्यायपूर्वक धनादि पदार्थोंको संग्रह करनेकी चेष्टा करते रहते हैं। वे सोचा करते हैं कि मैंने आज यह प्राप्त कर लिया है और अब इस मनोरथको प्राप्त कर लूँगा। मेरे पास यह इतना धन है और फिर भी यह हो जायगा। वह शत्रु मेरेद्वारा मारा गया और उन दूसरे शत्रुओंको भी मैं मार डालूँगा। मैं ईश्वर हूँ, ऐश्वर्यको भोगनेवाला हूँ। मैं सब सिद्धियोंसे युक्त हूँ और बलवान तथा सुखी हूँ। मैं बड़ा धनी और बड़े कुटुम्बवाला हूँ। मेरे समान दूसरा कौन है? मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा और आमोद-प्रमोद करूँगा। इस प्रकार अज्ञानसे मोहित रहनेवाले तथा अनेक प्रकारसे भ्रमित चित्तवाले, मोहरूप जालसे समावृत और विषयभोगोंमें अत्यन्त आसक्त आसुरलोग महान् अपवित्र नरकमें गिरते हैं। वे अपने-आपको ही श्रेष्ठ माननेवाले घमंडी पुरुष धन और मानके मदसे युक्त होकर केवल नाममात्रके यज्ञोंद्वारा पाखण्डसे शास्त्रविधिसे रहित यजन करते हैं। वे अहंकार, बल, घमंड, कामना और क्रोधादिके परायण और दूसरोंकी निन्दा करनेवाले पुरुष अपने और दूसरोंके शरीरमें स्थित मुझ अन्तर्यामीसे द्वेष करनेवाले होते हैं। उन द्वेष करनेवाले पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमोंको मैं संसारमें बार-बार आसुरी योनियोंमें ही डालता हूँ। अर्जुन। जन्म-जन्ममें आसुरी योनिको प्राप्त वे मूढ़ मुझको न प्राप्त होकर, उससे भी अति नीच गतिको ही प्राप्त होते हैं- घोर नरकोंमें पड़ते हैं। काम, क्रोध तथा लोभ- ये आत्माका नाश करनेवाले- उसको अधोगतिमें ले जानेवाले तीन प्रकारके नरकके द्वार हैं। अतएव इन तीनोंको त्याग देना चाहिए। अर्जुन। इन तीनों नरकके द्वारोंसे मुक्त पुरुष अपने कल्याणका आचरण करता है, इससे वह परमगतिको जाता है- मुझको प्राप्त हो जाता है। जो पुरुष शास्त्रविधिको त्यागकर अपनी इच्छासे मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धिको प्राप्त होता है, न परमगतिको और न सुखको ही। इससे तेरे लिये इस कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यकी व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण है। ऐसा जानकर तू शास्त्रविधिसे नियत कर्म ही करनेयोग्य है।

दैवी सम्पत्तिके सद्गुण तथा आसुरी सम्पत्तिका वर्णन करके आसुरी सम्पत्तिवानके लक्षण कृष्णने बतलाये। अन्त में कह दिया कि आसुरी सम्पत्तिवाले मूर्ख बार-बार आसुरी योनियोंमें जन्म लेते हैं। मुझे प्राप्त न करके अन्तमें अधोगतिको ही प्राप्त करते हैं। काम, क्रोध और लोभ ये तीनों तमोद्वार हैं। इन तीनोंको छोड़ देनेपर ही मनुष्य अपने कल्याणका उपाय

करके परमगति पा सकता है। संसार में दो प्रवृत्ति के लोग होते है, दैवी सम्पत्ति, और आसुरी सम्पत्ति। दैवी सम्पत्ति गुणों से युक्त पुरुष तेजस्विता, क्षमा, शुचिर्भूतता, धृति, औदार्य, तप, शुद्ध-सात्त्विक वृत्ति आदि गुणों के स्वामी होते हैं। आसुरी वृत्ति के लोगों में दम्भ, दर्प, क्रोध, निष्ठुरता, अज्ञान आदि दुर्गुण होते हैं। दैवी गुणसम्पत्ति का परिणाम मोक्षप्रद होता है, तो आसुरी दुर्गुणों का परिणाम संसार के बन्धनों से युक्त होता है।

**१७) श्रद्धात्रयविभागयोग-** अर्जुन बोले- कृष्ण। जो श्रद्धायुक्त पुरुष शास्त्रविधिको त्यागकर देवादिका पूजन करते हैं, उनकी स्थिति फिर कौन-सी है? सात्त्विकी है अथवा राजसी किंवा तामसी?

कृष्ण बोले, मनुष्योंकी वह शास्त्रीय संस्कारोंसे रहित केवल स्वभावसे उत्पन्न श्रद्धा सात्त्विकी और राजसी तथा तामसी- ऐसे तीनों प्रकारकी ही होती है। उसको तू मुझसे सुन। भारत। सभी मनुष्योंकी श्रद्धा उनके अन्त:करणके अनुरूप होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है; इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है, वह स्वयं भी वही है। सात्त्विक पुरुष देवोंको पूजते हैं, राजस पुरुष यक्ष और राक्षसोंको तथा अन्य जो तामस मनुष्य हैं, वे प्रेत और भूतगणोंको पूजते हैं। जो मनुष्य शास्त्रविधिसे रहित केवल मन:कल्पित घोर तपको तपते हैं तथा दम्भ और अहंकारसे युक्त एवं कामना, आसक्ति और बलके अभिमानसे भी युक्त हैं, जो शरीररूपसे स्थित भूतसमुदायको और अन्त:करणमें स्थित मुझ अन्तर्यामीको भी कृश करनेवाले हैं, उन अज्ञानियोंको तू आसुर-स्वभाववाले जान। भोजन भी सबको अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार तीन प्रकारका प्रिय होता है और वैसे ही यज्ञ, तप और दान भी तीन-तीन प्रकारके होते हैं। उनके इस पृथक्-पृथक् भेदको तू मुझसे जान।

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले, रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहनेवाले तथा स्वभावसे ही मनको प्रिय- ऐसे आहार सात्त्विक पुरुषको प्रिय होते हैं। कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त, बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक और दु:ख, चिन्ता तथा रोगोंको उत्पन्न करनेवाले आहार राजस पुरुषको प्रिय होते हैं। जो भोजन अधपका, रसरहित, दुर्गंधयुक्त, बासी और उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी है, वह भोजन तामस पुरुषको प्रिय होता है। जो शास्त्रविधिसे नियत यज्ञ, करना ही कर्त्तव्य है- इस प्रकार मनको समाधान करके, फल न चाहनेवाले पुरुषोंद्वारा किया जाता है, वह सात्त्विक है। परंतु अर्जुन। जो यज्ञ केवल दम्भाचरणके लिये अथवा फलको भी दृष्टिमें रखकर किया जाता है, उस यज्ञको तू राजस जान। शास्त्रविधिसे हीन, अन्नदानसे रहित, बिना मन्त्रोंके, बिना दक्षिणाके और बिना श्रद्धा किये जानेवाले यज्ञको तामस यज्ञ कहते हैं। देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनोंका पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा- यह शरीरसम्बन्धी तप कहा जाता है। जो उद्वेगको न करनेवाला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है तथा जो वेद-शास्त्रोंके पठन एवं परमेश्वरके नाम-जपका अभ्यास है, वही वाणीसम्बन्धी तप कहा जाता है। मनकी प्रसन्नता, शान्तभाव, भगवच्चिन्तन करनेका स्वभाव, मनका निग्रह और अन्त:करणकी पवित्रता- इस प्रकार यह मनसम्बन्धी तप कहा जाता है। फलको न चाहनेवाले योगी पुरुषोंद्वारा परम श्रद्धासे किये हुए उस पूर्वोक्त तीन प्रकारके तपको सात्त्विक कहते हैं। जो तप सत्कार, मान और पूजाके लिये अथवा केवल पाखण्डसे ही किया जाता है, वह अनिश्चित एवं क्षणिक फलवाला तप यहाँ राजस कहा गया है। दान देना ही कर्त्तव्य है- ऐसे भावसे जो दान देश, काल और पात्रके प्राप्त होनेपर उपकार न करनेवालेके प्रति दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहा गया है। किंतु जो दान क्लेशपूर्वक तथा प्रत्युपकारके प्रयोजनसे अथवा फलको दृष्टिमें रखकर फिर दिया जाता है, वह दान राजस कहा गया है। जो दान बिना सत्कारके अथवा तिरस्कारपूर्वक अयोग्य देश-कालमें और कुपात्रके प्रति दिया जाता है, वह दान तामस कहा गया है।

ॐ, तत्, सत्- ऐसे यह तीन प्रकारका सच्चिदानन्दघन ब्रह्मका नाम कहा है; उसीसे सृष्टिके आदिकालमें ब्राह्मण और

वेद तथा यज्ञादि रचे गये। इसलिये वेदमन्त्रोंका उच्चारण करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंकी शास्त्रविधिसे नियत यज्ञ, दान और तपरूप क्रियाएँ सदा ॐ इस परमात्माके नामको उच्चारण करके ही आरम्भ होती हैं। तत् नामसे कहे जानेवाले परमात्माका ही यह सब है- इस भावसे फलको न चाहकर नाना प्रकारकी यज्ञ-तपरूप क्रियाएँ तथा दानरूप क्रियाएँ कल्याणकी इच्छावाले पुरुषोंद्वारा की जाती हैं। सत् यह परमात्माका नाम सत्यभावमें और श्रेष्ठभावमें प्रयोग किया जाता है तथा पार्थ। उत्तम कर्ममें भी सत् शब्दका प्रयोग किया जाता है तथा यज्ञ, तप और दानमें जो स्थिति है, वह भी सत् इस प्रकार कही जाती है और उस परमात्माके लिये किया हुआ कर्म निश्चयपूर्वक सत् ऐसे कहा जाता है। अर्जुन। बिना श्रद्धाके किया हुआ हवन, दिया हुआ दान एवं तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ कर्म है, वह समस्त असत् इस प्रकार कहा जाता है; इसलिये वह न तो इस लोकमें लाभदायक है और न मरनेके बाद ही।

कृष्णने, शास्त्रीय विधिका त्याग करके कर्म करनेवालेको सिद्धि, सुख तथा परमगति नहीं मिलती, यह कहा तो अर्जुनने पूछ लिया- जो शास्त्र-विधिका तो पालन नहीं करते किन्तु श्रद्धापूर्वक यजन करते हैं, वे सात्विक, राजस या तामस कौन-सी गति पाते हैं? इसके उत्तरमें भगवानने सात्विक, राजस, तामस श्रद्धाका वर्णन किया। इसी क्रममें त्रिविध आहार त्रिविध कर्ता, तीन प्रकारके भेदयुक्त यज्ञ, तप, दानका वर्णन किया।

**१८) मोक्षसंन्यासयोग-** अर्जुन बोले, हे महाबाहो। हे अन्तर्यामिन्। हे वासुदेव। मैं संन्यास और त्यागके तत्त्वको पृथक्- पृथक् जानना चाहता हूँ। कृष्ण बोले, कितने ही पण्डितजन तो काम्यकर्मोंके त्यागको संन्यास समझते हैं तथा दूसरे विचारकुशल पुरुष सब कर्मोंके फलके त्यागको त्याग कहते हैं। कई एक विद्वान ऐसा कहते हैं कि कर्ममात्र दोषयुक्त हैं, इसलिये त्यागनेके योग्य हैं और दूसरे विद्वान यह कहते हैं कि यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्यागनेयोग्य नहीं है। हे पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन। संन्यास और त्याग, इन दोनोंमेंसे पहले त्यागके विषयमें तू मेरा निश्चय सुन; क्योंकि त्याग सात्त्विक, राजस और तामस भेदसे तीन प्रकारका कहा गया है। यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्याग करनेके योग्य नहीं है, बल्कि वह तो अवश्यकर्त्तव्य है; क्योंकि बुद्धिमान् पुरुषोंके यज्ञ, दान और तप- ये तीनों ही कर्म अन्त:करणको पवित्र करनेवाले हैं। इसलिये पार्थ। इन यज्ञ, दान और तपरूप कर्मोंको तथा और भी सम्पूर्ण कर्त्तव्यकर्मोंको आसक्ति और फलोंका त्याग करके अवश्य करना चाहिये- यह मेरा निश्चय किया हुआ उत्तम मत है। निषिद्ध और काम्यकर्मोंका तो स्वरूपसे त्याग करना उचित ही है, परंतु नियत कर्मका स्वरूपसे त्याग उचित नहीं है। इसलिये मोहके कारण उसका त्याग कर देना तामस त्याग कहा गया है। जो कुछ कर्म है, वह सब दु:खरूप ही है- ऐसा समझकर यदि कोई शारीरिक क्लेशके भयसे कर्त्तव्यकर्मोंका त्याग कर दे, तो वह ऐसा राजस त्याग करके त्यागके फलको किसी प्रकार भी नहीं पाता। अर्जुन। जो शास्त्रविहित कर्म करना कर्तव्य है- इसी भावसे आसक्ति और फलका त्याग करके किया जाता है, वही सात्त्विक त्याग माना गया है। जो मनुष्य अकुशल कर्मसे तो द्वेष नहीं करता और कुशल कर्ममें आसक्त नहीं होता, वह शुद्ध सत्त्वगुणसे युक्त पुरुष संशयरहित, ज्ञानवान और सच्चा त्यागी है; क्योंकि शरीरधारी किसी भी मनुष्यके द्वारा सम्पूर्णतासे सब कर्मोंको त्याग देना सम्भव नहीं है; इसलिये जो कर्मफलका त्यागी है, वही त्यागी है- यह कहा जाता है। कर्मफलका त्याग न करनेवाले मनुष्योंके कर्मोंका तो अच्छा, बुरा और मिला हुआ- ऐसे तीन प्रकारका फल मरनेके पश्चात् अवश्य होता है; किंतु कर्मफलका त्याग कर देनेवाले मनुष्योंके कर्मोंका फल किसी कालमें भी नहीं होता।

अर्जुनने संन्यास तथा त्यागका तत्त्व जानना चाहा। कृष्णने बतलाया कि काम्य कर्मोंका त्याग संन्यास है और सर्व कर्म फलका त्याग त्याग कहा गया है। यज्ञ, दान तथा तपका त्याग नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि ये बुद्धिमान व्यक्तिको

पवित्र करनेवाले हैं। इसी विवरणमें सात्विक, राजस, तामस त्यागका वर्णन करके कहा कि देहधारी समस्त कर्मोंका स्वरूपत: त्याग कर ही नहीं सकता अत: कर्म-फलका त्याग ही श्रेष्ठ है।

हे महाबाहो। सम्पूर्ण कर्मोंकी सिद्धिके ये पाँच हेतु कर्मोंका अन्त करनेके लिये उपाय बतलानेवाले सांख्यशास्त्रमें कहे गये हैं, उनको तू मुझसे भलीभाँति जान। कर्मोंकी सिद्धिमें अधिष्ठान और कर्त्ता तथा भिन्न-भिन्न प्रकारके करण एवं नाना प्रकारकी अलग-अलग चेष्टाएँ और वैसे ही पाँचवाँ हेतु दैव है। मनुष्य मन, वाणी और शरीरसे शास्त्रानुकूल अथवा विपरीत जो कुछ भी कर्म करता है, उसके ये पाँचों कारण हैं। परंतु ऐसा होनेपर भी जो मनुष्य अशुद्धबुद्धि होनेके कारण कर्मोंके होनेमें केवल- शुद्धस्वरूप आत्माको कर्त्ता समझता है। वह मलिन बुद्धिवाला अज्ञानी यथार्थ नहीं समझता। जिस पुरुषके अन्त:करणमें मैं कर्त्ता हूँ ऐसा भाव नहीं है तथा जिसकी बुद्धि सांसारिक पदार्थोंमें और कर्मोंमें लिपायमान नहीं होती, वह पुरुष इन सब लोकोंको मारकर भी वास्तवमें न तो मारता है और न पापसे बँधता है। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय यह तीन प्रकारकी कर्म-प्रेरणा है और कर्त्ता, करण तथा क्रिया यह तीन प्रकारका कर्मसंग्रह है।

शरीर, मन तथा वाणीसे उचित, अनुचित जो भी कर्म होता है उसमें पाँच कारण होते हैं- अधिष्ठान देह, कर्त्ता, इन्द्रियाँ, चेष्टा और प्रारब्ध। इसमें जो केवल अपनेको ही हेतु मानता है वह अज्ञानी है, दुर्बुद्धि है।

गुणोंकी संख्या करनेवाले शास्त्रमें ज्ञान और कर्म तथा कर्त्ता भी गुणोंके भेदसे तीन-तीन प्रकारके कहे गये हैं, उनको भी तू मुझसे भलीभाँति सुन। जिस ज्ञानसे मनुष्य पृथक-पृथक् सब भूतोंमें एक अविनाशी परमात्मभावको विभागरहित समभावसे स्थित देखता है, उस ज्ञानको तो तू सात्त्विक जान और जिस ज्ञानके द्वारा मनुष्य सम्पूर्ण भूतोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके नाना भावोंको अलग-अलग जानता है, उस ज्ञानको तू राजस जान और जो ज्ञान एक कार्यरूप शरीरमें ही सम्पूर्णके सदृश आसक्त है तथा जो बिना युक्तिवाला, तात्त्विक अर्थसे रहित और तुच्छ है- वह तामस कहा गया है। जो कर्म शास्त्रविधिसे नियत किया हुआ और कर्त्तापनके अभिमानसे रहित हो तथा फल न चाहनेवाले पुरुषद्वारा बिना राग-द्वेषके किया गया हो, वह सात्त्विक कहा जाता है और जो कर्म बहुत परिश्रमसे युक्त होता है तथा भोगोंको चाहनेवाले पुरुषद्वारा या अहंकारयुक्त पुरुषद्वारा किया जाता है, वह कर्म राजस कहा गया है। जो कर्म, परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्यको न विचारकर केवल अज्ञानसे आरम्भ किया जाता है, वह तामस कहा जाता है। जो कर्त्ता आसक्तिसे रहित, अहंकारके वचन न बोलनेवाला, धैर्य और उत्साहसे युक्त तथा कार्यके सिद्ध होने और न होनेमें हर्ष-शोकादि विकारोंसे रहित है, वह सात्त्विक कहा जाता है। जो कर्त्ता आसक्तिसे युक्त, कर्मोंके फलको चाहनेवाला और लोभी है तथा दूसरोंको कष्ट देनेके स्वभाववाला, अशुद्धाचारी और हर्ष-शोकसे लिपायमान है, वह राजस कहा गया है। जो कर्ता अयुक्त, शिक्षासे रहित, घमंडी, धूर्त और दूसरोंकी जीविकाका नाश करनेवाला तथा शोक करनेवाला, आलसी और दीर्घसूत्री है, वह तामस कहा जाता है। हे धनञ्जय। अब तू बुद्धिका और धृतिका भी गुणोंके अनुसार तीन प्रकारका भेद मेरेद्वारा सम्पूर्णतासे विभागपूर्वक कहा जानेवाला सुन। पार्थ। जो बुद्धि प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्गको, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यको, भय और अभयको तथा बन्धन और मोक्षको यथार्थ जानती है वह बुद्धि सात्त्विकी है। पार्थ। मनुष्य जिस बुद्धिके द्वारा धर्म और अधर्मको तथा कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यको भी यथार्थ नहीं जानता, वह बुद्धि राजसी है। अर्जुन। जो तमोगुणसे घिरी हुई बुद्धि अधर्मको भी यह धर्म है ऐसा मान लेती है तथा इसी प्रकार अन्य सम्पूर्ण पदार्थोंको भी विपरीत मान लेती है, वह बुद्धि तामसी है। पार्थ। जिस अव्यभिचारिणी धारणशक्तिसे मनुष्य ध्यानयोगके द्वारा मन, प्राण और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको धारण करता है, वह धृति सात्त्विकी है और पृथापुत्र अर्जुन। फलकी इच्छावाला मनुष्य जिस धारणशक्तिके द्वारा अत्यन्त

आसक्तिसे धर्म, अर्थ और कामोंको धारण किये रहता है, वह धारणशक्ति राजसी है। पार्थ। दुष्ट बुद्धिवाला मनुष्य जिस धारणशक्तिके द्वारा निद्रा, भय, चिन्ता और दु:खको तथा उन्मत्तताको भी नहीं छोड़ता वह धारणशक्ति तामसी है। भरतश्रेष्ठ। अब तीन प्रकारके सुखको भी तू मुझसे सुन। जिस सुखमें साधक मनुष्य भजन, ध्यान और सेवादिके अभ्याससे रमण करता है और जिससे दु:खोंके अन्तको प्राप्त हो जाता है- जो ऐसा सुख है, वह प्रथम यद्यपि विषके तुल्य प्रतीत होता है, परंतु परिणाममें अमृतके तुल्य है; इसलिये वह परमात्मविषयक बुद्धिके प्रसादसे उत्पन्न होनेवाला सुख सात्त्विक कहा गया है। जो सुख विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे होता है, वह पहले- भोगकालमें अमृतके तुल्य प्रतीत होनेपर भी परिणाममें विषके तुल्य है; इसलिये वह सुख राजस कहा गया है। जो भोगकालमें तथा परिणाममें भी आत्माको मोहित करनेवाला है, वह निद्रा, आलस्य और प्रमादसे उत्पन्न हुआ सुख तामस कहा गया है। पृथ्वीमें या आकाशमें अथवा देवताओंमें तथा इनके सिवा और कहीं भी ऐसा कोई भी सत्त्व नहीं हैं, जो प्रकृतिसे उत्पन्न इन तीनों गुणोंसे रहित हो।

जिसमें मैंने किया यह कर्तृत्वाभिमान नहीं है और बुद्धि कर्मसे लिप्त नहीं होती, वह समस्त लोकोंका वध कर दे तो भी हत्याका दोषी नहीं होता। सात्विक, राजस, तामस कर्त्ता तीनों प्रकारके कर्म, त्रिविध बुद्धि, त्रिविध धुति, त्रिविध सुखका वर्णन करके श्रीकृष्णने चारों वर्णोंके सहज स्वभावका वर्णन किया। अन्तमें कहा- अपने-अपने स्वभाव विहित कर्ममें लगकर ही मनुष्य अन्त:करणको शुद्ध कर पाता है। अपने स्वधर्माचरणसे ही ईश्वरार्चन उचित है। अपना सदोष विगुण धर्म भी अपने लिए परधर्मसे अधिक श्रेयस्कर है क्योंकि कर्म सभी सदोष ही होते हैं। सर्वथा निर्दोष कोई कर्म नहीं होता। अत: सर्वत्र अनासक्त बुद्धि रखकर इन्द्रियोंको वशमें रखकर, स्पृहा छोड़कर कर्म करनेसे परम नैष्कर्म्यकी सिद्धि प्राप्त हो जाती है। विशुद्ध बुद्धि युक्त होकर, धैर्यसे चित्तको संयमित करके, शब्द स्पर्शादि विषयोंमें राग-द्वेष त्याग दे, एकान्तमें रहे, थोड़ा आहार ले, मन, वाणी, शरीरको संयममें रखे, सदा वैराग्यवान होकर ध्यान करता रहे। इस प्रकार अहंकार, बल का दर्प, काम-क्रोध और परिग्रहको त्यागकर ममताहीन, शान्त होनेपर ब्रह्मभूत होता है।

हे परंतप। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके तथा शूद्रोंके कर्म स्वभावसे उत्पन्न गुणोंद्वारा विभक्त किये गये हैं। अन्त:करणका निग्रह करना; इन्द्रियोंका दमन करना; धर्मपालनके लिये कष्ट सहना; बाहर-भीतरसे शुद्ध रहना; दूसरोंके अपराधोंको क्षमा करना; मन, इन्द्रिय और शरीरको सरल रखना; वेद, शास्त्र, ईश्वर और परलोक आदिमें श्रद्धा रखना; वेद-शास्त्रोंका अध्ययन-अध्यापन करना और परमात्माके तत्त्वका अनुभव करना- ये सब-के-सब ही ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म हैं। शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता और युद्धमें न भागना, दान देना और स्वामिभाव- ये सब-के-सब ही क्षत्रियके स्वाभाविक कर्म हैं। खेती, गोपालन और क्रय-विक्रयरूप सत्य व्यवहार- ये वैश्यके स्वाभाविक कर्म हैं तथा सब वर्णोंकी सेवा करना शूद्रका भी स्वाभाविक कर्म है। अपने-अपने स्वाभाविक कर्मोंमें तत्परतासे लगा हुआ मनुष्य भगवत्प्राप्तिरूप परम सिद्धिको प्राप्त हो जाता है। अपने स्वाभाविक कर्ममें लगा हुआ मनुष्य जिस प्रकारसे कर्म करके परम सिद्धिको प्रात होता है, उस विधिको तू सुन। जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धिको प्राप्त हो जाता है। अच्छी प्रकार आचरण किये हुए दूसरेके धर्मसे गुणरहित भी अपना धर्म श्रेष्ठ है; क्योंकि स्वभावसे नियत किये हुए स्वधर्मरूप कर्मको करता हुआ मनुष्य पापको नहीं प्राप्त होता। अतएव कुन्तीपुत्र। दोषयुक्त होनेपर भी सहज कर्मको नहीं त्यागना चाहिये; क्योंकि धुएँसे अग्निकी भाँति सभी कर्म किसी-न-किसी दोषसे ढके हुए हैं।

सर्वत्र आसक्तिरहित बुद्धिवाला, स्पृहारहित और जीते हुए अन्त:करणवाला पुरुष सांख्ययोगके द्वारा भी परम नैष्कर्म्यसिद्धिको

प्राप्त होता है। कुन्तीपुत्र। अन्त:करणकी शुद्धिरूप सिद्धिको प्राप्त हुआ मनुष्य जिस प्रकारसे सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको प्राप्त होता है, जो ज्ञानयोगकी परा निष्ठा है, उसको तू मुझसे संक्षेपमें ही जान। विशुद्ध बुद्धिसे युक्त तथा हल्का, सात्त्विक और नियमित भोजन करनेवाला, शब्दादि विषयोंका त्याग करके एकान्त और शुद्ध देशका सेवन करनेवाला, सात्त्विक धारणशक्तिके द्वारा अन्त:करण और इन्द्रियोंका संयम करके मन, वाणी और शरीरको वशमें कर लेनेवाला, राग-द्वेषको सर्वथा नष्ट करके भलीभाँति दृढ़ वैराग्यका आश्रय लेनेवाला तथा अहंकार, बल, घमंड, काम, क्रोध और परिग्रहका त्याग करके निरन्तर ध्यानयोगके परायण रहनेवाला, ममतारहित और शान्तियुक्त पुरुष सच्चिदानन्द ब्रह्ममें अभिन्नभावसे स्थित होनेका पात्र होता है। फिर वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकीभावसे स्थित, प्रसन्न मनवाला योगी न तो किसीके लिये शोक करता है और न किसीकी आकांक्षा ही करता है। ऐसा समस्त प्राणियोंमें समभाववाला योगी मेरी परा भक्तिको प्राप्त हो जाता है। उस परा भक्तिके द्वारा वह मुझ परमात्माको, मैं जो हूँ और जितना हूँ, ठीक वैसा-का-वैसा तत्त्वसे जान लेता है तथा उस भक्तिसे मुझको तत्त्वसे जानकर तत्काल ही मुझमें प्रविष्ट हो जाता है।

मेरे परायण हुआ कर्मयोगी तो सम्पूर्ण कर्मोंको सदा करता हुआ भी मेरी कृपासे सनातन अविनाशी परमपदको प्राप्त हो जाता है। सब कर्मोंको मनसे मुझमें अर्पण करके तथा समत्वबुद्धिरूप योगको अवलम्बन करके मेरे परायण और निरन्तर मुझमें चित्तवाला हो। उपर्युक्त प्रकारसे मुझमें चित्तवाला होकर तू मेरी कृपासे समस्त संकटोंको अनायास ही पार कर जायगा और यदि अहमारके कारण मेरे वचनोंको न सुनेगा तो नष्ट हो जायगा। जो तू अहंकारका आश्रय लेकर यह मान रहा है कि मैं युद्ध नहीं करूँगा, तेरा यह निश्चय मिथ्या है; क्योंकि तेरा स्वभाव तुझे जबर्दस्ती युद्धमें लगा देगा। कुन्तीपुत्र। जिस कर्मको तू मोहके कारण करना नहीं चाहता, उसको भी अपने पूर्वकृत स्वाभाविक कर्मसे बँधा हुआ परवश होकर करेगा। अर्जुन। शरीररूप यन्त्रमें आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियोंको अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी मायासे उनके कर्मोंके अनुसार भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित है। हे भारत। तू सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही शरणमें जा। उस परमात्माकी कृपासे ही तू परम शान्तिको तथा सनातन परम धामको प्राप्त होगा। इस प्रकार यह गोपनीयसे भी अति गोपनीय ज्ञान मैंने तुझसे कह दिया। अब तू इस रहस्ययुक्त ज्ञान को पूर्णतया भलीभाँति विचारकर जैसे चाहता है वैसे ही कर। सम्पूर्ण गोपनीयोंसे अति गोपनीय मेरे परम रहस्ययुक्त वचनको तू फिर भी सुन। तू मेरा अतिशय प्रिय है, इससे यह परम हितकारक वचन मैं तुझसे कहूँगा। अर्जुन। तू मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो और मुझको प्रणाम कर। ऐसा करनेसे तू मुझे ही प्राप्त होगा, यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ; क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है। सम्पूर्ण कर्त्तव्यकर्मोंको मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान, सर्वाधार परमेश्वरकी ही शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।

ब्रह्मभूतका चित्त निर्मल होता है। वह न शोक करता, न कामना। समस्त प्राणियोंके प्रति समान हो जाता है। तब मेरी परम भक्ति पाता है। उस भक्तिके द्वारा मेरा तत्त्वज्ञान प्राप्त करके मुझमें ही प्रविष्ट हो जाता है। मेरे आश्रयमें रहकर जो सब कर्म करता है वह भी मेरी कृपासे शाश्वत अविनाशी पद प्राप्त कर लेता है। अत: चित्तसे सब कर्मोंका आश्रय त्यागकर मेरे परायण हो जा। बुद्धियोगका आश्रय लेकर सदा मुझमें चित्त लगाओ। मुझमें चित्त लगाये रहनेपर मेरी कृपासे समस्त संकटोंको पार कर जाओगे। यदि अहंकारवश मेरी बात नहीं सुनोगे तो विनाश होगा। यह जो अहंकारवश मानते हो कि युद्ध नहीं करूँगा, यह उद्यम झूठा है। तुम्हारी प्रकृति तुम्हें युद्धमें लगावेगी ही। अपने पूर्वकृत कर्मसे बने स्वभावसे तुम भली प्रकार बँधे हो। अत: मोहवश जिसे नहीं करना चाहते हो, उसे विवश होकर करोगे।

ईश्वर सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित होकर सबको यन्त्रपर चढ़ेकी भाँति अपनी मायासे चला रहा है। अत: स्वभावसे उसीकी शरण लो। उसीकी कृपासे परम शान्ति और शाश्वत पद प्राप्त करोगे। सबसे अधिक गोपनीय बात सुनो। यह मेरी परमवाणी है और तुम मेरे भक्त तथा सखा हो इसलिए तुम्हारे हितकी बात कहता हूँ। वह अन्तर्यामी ईश्वर और कोई नहीं, मैं ही हूँ। मुझमें मन लगाओ, मेरी भक्ति करो, मेरे लिए कर्म करो, मुझे नमस्कार करो। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम मुझे ही प्राप्त करोगे। दूसरे सब धर्मोंका आश्रय त्याग कर केवल मेरी ही शरण लो। मैं तुम्हें समस्त पापोंसे मुक्त कर दूँगा, शोक मत करो। कृष्णने कहा, जीवन का अर्थ जानकर तुझे क्या करना है? क्या करना है तुझे सत्य और असत्य में अन्तर जानकर? तू अपने मन को मेरे चरणों में स्थिर कर। मेरा भक्त हो, मेरी वन्दना कर। सब कुछ छोड़के मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सभी पापों से मुक्त कर दूँगा। हे कौन्तेय उठो और अपना देवदत्त शंख फूँको। युद्ध का निश्चय कर पाण्डव सेना को प्रेरित करो। अपने भीतर क्षत्रियत्व को जगाओ पार्थ। तू सब धर्मों को त्याग कर मेरी शरण में आ जा अर्जुन। मैं तुझे सारे संशयों और पापों से मुक्त कर दूँगा।

तो क्या कृष्ण ने उसे युद्ध के लिए सहमत कर लिया था? उसे युद्धार्थ प्रेरित कर दिया था? अब वह संतुष्ट था कि विजय उनकी ही होगी इसलिए वह युद्ध के लिए प्रस्तुत था? वह अपना कर्त्तव्य समझ गया था और अब स्वधर्म के अनुसार युद्ध का इच्छुक था? कृष्ण ने पूछा, चलें? युद्ध की ओर? अर्जुन ने गांडीव उठा लिया, चलो केशव।

उसे लगा कि उसके मन में अनेक प्रश्न हैं, किंतु सारे प्रश्नों का समाधान भी हो चुका है। उसे जो दिव्य अनुभूति हुई है, वह अत्यंत व्यापक चित्र के समान है, जिसमें वह छोटी-छोटी रेखाएँ और रंग भरना चाहेगा।

अपने आपको मुझे अर्पण कर दो श्रेष्ठ धनुर्धर। मेरी शरण में आ जाओ। मैं तुम्हे पाप रहित कर दूंगा। हे पार्थ मुझे नमस्कार करो। यदि तुम ऐसा करोगे तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम सम्पूर्ण रूप से मुझे प्राप्त कर लोगे। सारे धर्मों को त्यागो पार्थ और मेरी शरण में आ जाओ। मैं तुम्हे सारे पापों से मुक्त कर दूंगा। इसलिये शोक न करो धनंजय। हे प्रिय, हे भक्त मैं ही कर्म, योग, भक्ति और ज्ञान का चरम बिन्दु और परम लक्ष्य हूं इसलिये योगी की भांति निष्काम कर्म करो। चिन्ता न करो पार्थ। मुझ पर विश्वास रखो। हे महाबाहो अपना गांडीव उठाओ और युद्ध करो। अर्जुन ने कृष्ण के चरण स्पर्श किये।

तुझे यह गीतारूप रहस्यमय उपदेश किसी भी कालमें न तो तपरहित मनुष्यसे कहना चाहिये, न भक्तिरहितसे और न बिना सुननेकी इच्छावालेसे ही कहना चाहिये तथा जो मुझमें दोषदृष्टि रखता है, उससे भी कभी नहीं कहना चाहिये। जो पुरुष मुझमें परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमें कहेगा, वह मुझको ही प्राप्त होगा- इसमें कोई सन्देह नहीं है। मेरा उससे बढ़कर प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई भी नहीं है तथा मेरा पृथ्वीभरमें उससे बढ़कर प्रिय दूसरा कोई भविष्यमें होगा भी नहीं तथा जो पुरुष इस धर्ममय हम दोनोंके संवादरूप गीताशास्त्रको पढ़ेगा, उसके द्वारा मैं ज्ञानयज्ञसे पूजित होऊँगा- ऐसा मेरा मत है। जो पुरुष श्रद्धायुक्त और दोषदृष्टिसे रहित होकर इस गीताशास्त्रका श्रवण भी करेगा, वह भी पापोंसे मुक्त होकर उत्तम कर्म करनेवालोंके श्रेष्ठ लोकोंको प्राप्त होगा। पार्थ। क्या मेरे द्वारा कहे हुए इस उपदेशको तूने एकाग्र चित्तसे श्रवण किया? और धनञ्जय। क्या तेरा अज्ञानजनित मोह नष्ट हो गया?

अर्जुन बोले, अच्युत। आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है; अब मैं संशयरहित होकर स्थित हूँ; अत: आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। श्रीकृष्णका यह परमोपदेश सुनकर अर्जुनने स्वीकार किया- मेरा मोह नष्ट हो गया। मुझे आपकी कृपासे स्मृति प्राप्त हो गयी। अब मुझे कोई सन्देह नहीं है। मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। अर्जुन उठ खड़ा हुआ। उसने त्रोण बाँध लिये। गाण्डीव उठाकर रथके मुख्य भागमें आ गया। उसका उत्साह लौट आया

था। उसके मुखपर पुन: कान्ति तथा युद्धोत्साह आ गया था।

संजय बोला, कुन्तीपुत्र अर्जुन ने गांडीव उठा लिया महाराज। धृतराष्ट्र बोले, अर्थात युद्ध अब होकर ही रहेगा और हे संजय मैं इस युद्ध का परिणाम भी जान गया इसलिये अब यदि तुम चाहो तो मुझे छोडकर जा सकते हो। जब रथ ही न होगा तो सारथी रखकर क्या करूंगा? संजय बोला, यदि यह महाराज का आदेश है तो मैं अवश्य इसका पालन करूंगा किन्तु मैं महाराज को त्यागना नहीं चाहता। धृतराष्ट्र बोले, निष्काम सेवा करना चाहते हो, करो ना जाओ। यह बताने के लिये ठहर जाओ कि अर्जुनका पहिला बाण किसे लगा? मुझे यह सूचना देने के लिये ठहरे रहो कि मेरे शूरवीर पुत्र वीरगति को कैसे प्राप्त हुये? क्या युद्ध आरम्भ हो गया संजय? मेरा प्रिय दुर्योधन तो युद्ध के लिये बड़ा व्याकुल हो रहा होगा संजय। संजय बोला, जी महाराज। वे व्याकुल इसलिये हो रहे हैं कि उन्हे युद्ध के परिणाम का ज्ञान नहीं। धृतराष्ट्र बोले, नही संजय। यदि उसे इस युद्ध के परिणाम का ज्ञान होता तब भी वो युद्ध के लिये व्याकुल होता। वो क्षत्रिय है और क्षत्रिय युद्ध के परिणाम से प्रभावित नहीं होते। संजय बोला, यदि आप नेत्रहीन न रहे होते तो क्या आप इस युद्ध में भाग लेते महाराज। धृतराष्ट्र बोले, तुम्हे यह निर्दयी प्रश्न नहीं करना चाहिये संजय। मेरा प्रिय दुर्योधन मेरी ही महत्वाकांक्षाओं के वृक्ष का फल है किन्तु मैं कदाचित यह युद्ध नहीं होने देता और यदि युद्ध न टाला जाता तो इसका यह प्रयत्न करता कि युद्ध के लिये पांडु पुत्र आगे आये किन्तु वासुदेव ने मेरी एक न चलने दी। तुम इस धोखे में ना रहना संजय कि यह युद्ध मेरे पुत्र और मेरे अनुज पुत्रों के बीच हो रहा है। बिल्कुल नहीं। ये युद्ध मेरे और वासुदेव कृष्ण के बीच हो रहा है। संजय बोला, यदि आप ये भी जानते हैं महाराज तो युद्ध रोक क्यों नहीं देते। धृतराष्ट्र बोले, मैं क्षत्रिय हूं संजय। रणभूमि में पीठ नहीं दिखा सकता। मेरी वास्तविकता से यह मेरा अन्तिम और निर्णायक युद्ध है। होने दो इस युद्ध को। संजय बोला, हस्तिनापुर के विषय में सोचिये महाराज। धृतराष्ट्र बोले, हस्तिनापुर के विषय में क्यों सोचू मैं? हस्तिनापुर ने मेरे विषय में कब सोचा है? उसने तो मेरा यह अपमान चुपचाप देख लिया कि मैं राजा बनकर राज नहीं कर रहा हूं। अपने अनुज पुत्रों का प्रतिनिधि बनकर राज्य कर रहा हूँ। क्या तुम्हे अपने किसी ऐसे ज्येष्ठ भ्राता का अपमान याद है? हस्तिनापुर को भी तो मेरे साथ होनेवाले इस अन्याय का कुछ मोल तो चुकाना चाहिये। ये सौदा सबको महंगा पडेगा संजय मुझे भी और वासुदेव को भी। पांडवों को जितने भी घाव लगेंगे, वो उन्ही को लगेंगे। यदि विदुर होता इस समय तो अपनी नीति का कोई अचूक बाण अवश्य ही मेरी ओर चला देता परन्तु युद्ध में अब इतना विलम्ब क्यों हो रहा है? संजय बोला, महाराज कुमार दुर्योधन भी गंगापुत्र भीष्म से यही प्रश्न कर रहे हैं?

इस प्रकार मैंने श्रीवासुदेवके और महात्मा अर्जुनके इस अद्‌भुत रहस्ययुक्त, रोमाञ्चकारक संवादको सुना। श्रीव्यासजीकी कृपासे दिव्य दृष्टि पाकर मैंने इस परम गोपनीय योगको अर्जुनके प्रति कहते हुए स्वयं योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णसे प्रत्यक्ष सुना है। राजन्। श्रीकृष्ण और अर्जुनके इस रहस्ययुक्त, कल्याणकारक और अद्‌भुत संवादको पुन: पुन: स्मरण करके मैं बारंबार हर्षित हो रहा हूँ। राजन्। श्रीहरिके उस अत्यन्त विलक्षण रूपको भी पुन: पुन: स्मरण करके मेरे चित्तमें महान् आश्चर्य होता है और मैं बारंबार हर्षित हो रहा हूँ। राजन्। जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान् हैं और जहाँ गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन हैं, वहींपर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है- ऐसा मेरा मत है।

अर्जुन ने अपना गाण्डीव सम्भाल लिया और देवदत्त शंख फूँक दिया। कृष्णने अपना शुभ्र-धवल पांचजन्य शंख फूँका और युद्ध की घोषणा कर दी।

अचानक सहस्त्रों महाशंखों के भयंकर महाघोष से पृथ्वी कम्पायमान हो उठी। असंख्य तूर्यनाद, रणभेरी एवं पणव आदि

के रोमहर्षक नाद से अन्तरिक्ष व्याप्त हो उठा। चराचर सृष्टि को विकल कर देनेवाला महायुद्ध प्रारम्भ हो गया।

चरों ने आकर द्रौपदी को सूचित किया, धन्य हैं आर्य अर्जुन जिन्होंने वचनामृत पाया। जिन्होंने ज्ञान को अर्जित ही नहीं किया, उसे गुण भी लिया। धन्य हैं वासुदेव जिन्होंने पार्थ का मोह हर लिया।

अश्रु-गद्‌गद स्वर में खोयी हुई-सी द्रौपदी बोली, वासुदेव महायोगी हैं, मुझे प्रतीत हो रहा है कि यह युद्ध केवल मनुष्यों के ही मध्य नहीं हो रहा। मानव-दानव-देव का यह त्रिकोणी संघर्ष है। कुरुवंशियों से अधिक दानवी मनोविकार और किसके हैं धरा पर? वे दानव हैं। दूसरी ओर पाण्डव हैं- उच्च मानवीय गुणों से परिपूर्ण। हम मानव हैं। दानवीय प्रवृत्तियों द्वारा मानवता का उत्पीड़न एवं शोषण जब लाजहरण पर पहुँच गया तो देव ने ही मेरी रक्षा की। वसुदेवनन्दन देव हैं।

सब ऐसा कहते है कि वे भगवत अवतार हैं। कई उन्हें अवतार नहीं मानते ईर्ष्या करते हैं पर तर्क यह कहती है।

किन्तु क्या इतनी शक्ति किसी में थी कि आर्य अर्जुन के दृढ़ निश्चय को बदलवा दे। इतना ज्ञान किसी में है, जो तर्क के ही आधार पर विचलित हृदय को आलोकित करके उसे शक्तिमान बना दे। द्वारिका में बैठे-बैठे जिन्होंने मेरा चीर-विस्तार कर दिया था, वे भला भगवदावतार नहीं, तो कौन हो सकते हैं? एक स्थान पर बैठे-बैठे सुदूर घटना देख लेते हैं। मैं मूढ़बुद्धि तो भी उन्हें भगवान न मान पाती थी। जो सुदूर भविष्य भी जानते हैं, जो त्रिकालदर्शी हैं, उन ज्ञानपुंज योग-योगेश्वर के भगवदावतार होने पर मैं क्यों शंकालु रहूँ? कितना ज्ञान भरा है, कितनी शक्ति भरी है। कितना विशाल, विराट मन है उनका। कितना महान् व्यक्तित्व। कहीं क्षुद्रता नहीं। वे क्या हमारे-तुम्हारे जैसे हैं? वे असाधारण हैं। वे क्या मानव हैं? नहीं। नहीं। ऐसा व्यक्तित्व धारण करके भगवान् ही पृथ्वी पर अवतरित होता है, मनुष्य नहीं।

दु:ख-सुख, आशा-निराशा पलक झपकने की तरह आते-जाते हैं। युद्ध का हर दिन उत्तेजना का चरम होता है। हर पल सुख की खबर आती, फिर अगले क्षण दु:संवाद। मैं जानती थी- धर्म जहां, कृष्ण वहीं। कृष्ण जहां हैं, विजय वहीं है। विजय मुझसे आंख मिचौनी खेल रही है। फिर भी जानती थी कि विजय मेरी होगी। सुख-समृद्धि, सम्मान सब मेरा होगा, क्योंकि धर्मवंत पंचपांडवों की पत्नी, धृष्टद्युम्न की बहन, अभिमन्यु की जननी और कृष्ण की सखी हूं। पर विजय भी यों सर्वस्वहीन कर देती है। युद्ध के निमित्त मैंने पांडवों को उत्साहित किया था, परन्तु राज्य-धन-ऐश्वर्य मेरा काम्य न था। अपमान का प्रतिशोध लेना और दोषी को सजा देना ही मेरा लक्ष्य था। अपमान का प्रतिशोध लिया, दोषी को दंड भी मिला। पर मुझे क्या मिला? धर्मयुद्ध में दोषी दंड पाता है, लेकिन निर्दोष दंड नहीं पाता, यह कहां लिखा है?

**६) युद्ध का प्रारम्भ-** वैशम्पायन कहते हैं- राजन्। गीता स्वयं भगवान् कमलनाभके मुखकमलसे निकली है, इसलिये इसीका अच्छी तरह स्वाध्याय करना चाहिये। अन्य बहुत-से शास्त्रोंका संग्रह करनेसे क्या लाभ है? गीतामें सब शास्त्रोंका समावेश हो जाता है, भगवान् सर्वदेवमय हैं, गङ्गामें सब तीर्थोंका वास है तथा मनुजी सकलवेदस्वरूप हैं। गीता, गङ्गा, गायत्री और गोविन्द- इन गकारयुक्त चार नामोंके हृदयमें स्थित होनेपर फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेना पड़ता। श्रीकृष्णने भारतामृतके सारभूत गीताको बिलोकर उसे अर्जुनके मुखमें होमा है।

संजयने कहा- तब अर्जुनको बाण और गाण्डीव धनुष धारण किये देखकर महारथियोंने फिर सिंहनाद किया। उस समय पाण्डव, सोमक और उनके अनुयायी दूसरे राजालोग प्रसन्न होकर शफबजाने लगे तथा भेरी, पेशी, क्रकच और नरसिंगोंके अकस्मात् बज उठनेसे वहाँ बड़ा शब्द होने लगा।

दुर्योधन बोला, यह युद्ध कब शुरू होगा पितामह। भीष्म बोले, जब तक मैं युद्ध के आरम्भ का शंख न बजाऊं तब तक। दुर्योधन बोला, तो फिर आप किसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं? बजाते क्यों नहीं युद्ध के आरम्भ का शंख। भीष्म बोले, जब दोनों ओर

की सेनायें आमने-सामने खडी हो गई हैं पुत्र तो युद्ध तो निश्चित ही है। जब क्षत्रिय रणभूमि में आ जाते हैं या तो वे विजयश्री का प्रसाद पाते हैं या फिर वीरगति को प्राप्त हो जाते हैं। इस रणभूमि में भी यही होगा पुत्र परन्तु अभी आंखें झपकाये बिना भूमि के मध्य में निहारते रहो पुत्र। ये हमारी आंखों का सौभाग्य है जो यह दृश्य देख पा रही है। कृष्ण जैसा सारथी और अर्जुन जैसा महारथी, यह हमारे कर्मों का दुर्भाग्य है पुत्र कि हमें उस वार्तालाप का एक शब्द भी सुनाई नहीं दिया। हे पुत्र यदि पवन का एक झौंका, उस वार्तालाप का एक शब्द भी लाकर सुना दे तो मैं अपने सारे शुभ कर्मों का फल उसे दे दूं। मुझे आज पहली बार अपने गंगापुत्र भीष्म होने का दु:ख हो रहा है। मेरा जी चाह रहा है कि मैं विधाता से पुछूं हे विधाता मैं गंगापुत्र भीष्म क्यों हूं, मैं कुन्ती पुत्र अर्जुन क्यों नहीं हूं। दुर्योधन बोला, हे पितामह यह ग्वाला तो अर्जुन से यह ही कह रहा होगा कि इस युद्ध से बचने का कोई उपाय सोचो। क्योंकि आपके ध्वज के तले जो सेना है उसके सामने भला इनकी सेना क्या टिकेगी? और वासुदेव कोई मूर्ख थोडे ही है जो मृत्यु और आत्महत्या का अन्तर नहीं जानता और पितामह इस ग्वाले ने मेरे साथ भोजन न करके मेरा जो अपमान किया था मैं उसे अभी तक भूला नहीं हूं। यह लीजिये पितामह इन्होंने अपना रथ अपने शिबिर की ओर मोड दिया है। अब तो बजाइये युद्ध का शंख। भीष्म बोले, मैं किसी की प्रतीक्षा कर रहा हूं पुत्र। दुर्योधन बोला, प्रतीक्षा, किसकी प्रतीक्षा? भीष्म बोले, यह समझलो कि मैं अपनी प्रतीक्षा कर रहा हूं। यह मत भूलो वत्स यह युद्ध मेरे लिये युद्ध कम और धर्मसंकट अधिक इसलिये मुझे युद्ध के आरम्भ के मुहूर्त की प्रतीक्षा करने दो। दुर्योधन बोला, शुभ मुहूर्त क्यों नहीं कहा पितामह? भीष्म बोले, मैं जहां खडा हूं पुत्र वहां से इस युद्ध का शुभ मुहूर्त दिखाई ही नहीं दे रहा।

**महायुद्ध आगे खडा काल बढाये हाथ, भीष्म विवश हो दे रहे दुर्योधन का साथ।**

इस महायुद्ध में इसका कोई महत्व नहीं कि किसका लहू कितना बहेगा? क्योंकि ये धर्म और अधर्म, प्रकाश और अन्ध:कार, सत्य और असत्य के बीच होनेवाला निर्णायक युद्ध है। इसीलिये इस युद्ध में सत्य प्रकाश और धर्म का दायित्व भी बढ़ जाता है और इसीलिये ये युद्ध साधारण युद्धों की भांति आरम्भ नहीं हो सकता। इस युद्ध के आरम्भ से पहिले इतिहास एक ऐसा दृश्य देखेगा जो उसने आज तक नहीं देखा। तो स्थिति यह है कि गीतोपदेश के उपरान्त अर्जुन का रथ अपनी सेना की ओर लौट चुका है और भीष्म पितामह किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इतने में युधिष्ठिर भाला रखकर कवच उतारकर हाथ जोडकर रथ से नीचे उतरकर अकेले ही युद्धभूमि की और पैदल पैदल चल पड़े। पांडवों को समझ में नहीं आया कि युधिष्ठिर क्या कर रहा है? दुर्योधन प्रसन्न होकर बोला, पितामह लगता है कि धर्मराज युधिष्ठिर का युद्ध आरम्भ होने से पहिले ही समाप्त हो गया है। वो देखिये सन्धि की भिक्षा मांगने दौडा चला आ रहा है। दुर्योधन के बोलने से सन्तप्त होकर द्रोणाचार्य बोले, क्या मैंने और कृपाचार्य ने तुम दोनों को सन्धि की भिक्षा मांगने की शिक्षा दी थी राजकुमार? कृपाचार्य बोले, युद्ध का अर्थ यह नहीं है राजकुमार कि तुम अपनी जीभ के बाण से सभ्यता की छाती भेद दो। द्रोणाचार्य बोले, युधिष्ठिर तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता हैं उसका अपमान तुम्हारा अपमान है। भीष्म बोले, यह इस प्रकार की सारी सीमायें पार कर चुका है आचार्य। पुत्र दुर्योधन वो सन्धि की भिक्षा मांगने नहीं आ रहा है। दुर्योधन बोला, तो फिर क्यों आ रहा है? आप माने चाहे ना माने पितामह किन्तु बात यही है कि वो पुरु महासागर की सेना में डूबने से पहिले ही उतर गया है और यदि वो सन्धि की भिक्षा मांगने नहीं आ रहा है तो वो अवश्य अपने जीवन की भिक्षा मांगने आ रहा होगा। भीष्म बोले, प्रतीक्षा करना सीखो पुत्र प्रतीक्षा।

इस प्रकार दोनों ओरकी सेनाको युद्धके लिये तैयार देख महाराज युधिष्ठिर अपने कवच और शास्त्रोंको छोड़कर रथ से उतर पड़े और हाथ जोड़े हुए बड़ी तेजीसे पूर्वकी ओर, जहाँ शत्रुकी सेना खड़ी थी, पितामह भीष्मकी ओर देखते हुए पैदल ही चल दिये। उन्हें इस प्रकार जाते देख अर्जुन भी रथसे कूद पड़े और सब भाइयोंके साथ उनके पीछे-पीछे चल दिये। कृष्ण तथा दूसरे

मुख्य-मुख्य राजा भी बड़ी उत्सुकतासे उनके पीछे हो लिये। तब अर्जुनने कहा, राजन्। आपका क्या विचार है? आप हमें छोड़कर पैदल ही शत्रुकी सेनामें क्यों जा रहे हैं? भीम बोले, राजन्। शत्रुपक्षकेसैनिक कवच धारण किये युद्धके लिये तैयार खड़े हैं। ऐसी स्थितिमें आप भाइयोंको छोड़कर तथा कवच और शस्त्र डालकर कहाँ जाना चाहते हैं? नकुलने कहा, महाराज। आप हमारे बड़े भाई हैं, आपके इस प्रकार जानेसे हमारे हृदयमें बड़ा भय हो रहा है। बताइये तो सही, आप कहाँ जायेंगे? सहदेवने पूछा, राजन्। इस महाभयावनी रणस्थलीमें आ जानेपर अब आप हमें छोड़कर इन शत्रुओंकी ओर कहाँ जा रहे हैं?

भाइयोंके इस प्रकार पूछनेपर भी महाराज युधिष्ठिरने कोई उत्तर नहीं दिया। वे चुपचाप चलते ही गये तब चतुरचूड़ामणि श्रीकृष्णने हँसकर कहा, मैं इनका अभिप्राय समय गया हूँ। ये भीष्म, द्रोण, कृप और शल्य आदि सब गुरुजनोंसे आज्ञा लेकर शत्रुओंके साथ युद्ध करेंगे। मेरा ऐसा मत है कि जो पुरुष अपने गुरुजनोंकी आज्ञा लिये बिना ही उनसे युद्ध करने लगता है उसे वे स्पष्ट ही शाप दे देते हैं और जो शास्त्रानुसार उनका अभिवादन करके और उनसे आज्ञा लेकर संग्राम करता है, उसकी अवश्य विजय होती है।

इधर जब श्रीकृष्ण ऐसा कह रहे थे तो कौरवोंकी सेनामें बड़ा कोलाहल होने लगा और कुछ लोग दंग-से रहकर चुपचाप खड़े रहे। दुर्योधनके सैनिकोंने राजा युधिष्ठिरको आते देखा तो वे आपसमें कहने लगे, ओहो। यही कुलकलंक युधिष्ठिर है। देखो, अब यह डरकर अपने भाइयोंके सहित शरण पानेकी इच्छासे भीष्मके पास आ रहा है। अरे। इसकी पीठपर तो अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव-जैसे वीर हैं; फिर भी इसे भयने कैसे दबा लिया। ऐसा कहकर फिर वे सैनिक कौरवोंकी प्रशंसा करने लगे और प्रसन्न होकर अपनी ध्वजाएँ फहराने लगे। इस प्रकार युधिष्ठिरको धिक्कार कर वे सब वीर यह सुननेके लिये कि देखें यह भीष्मसे क्या कहता है और रणबाँकुरे भीमसेन तथा कृष्ण और अर्जुन इस मामलेमें क्या बोलते हैं- चुप हो गये। इस समय महाराज युधिष्ठिरकी इस चेष्टासे दोनों ही पक्षोंकी सेनाएँ बड़े संदेहमें पड़ गयीं।

दुर्योधन पर किसी भी रूप में विश्वास नहीं किया जा सकता। अधर्मी के लिये नियम तोड़ना कोई इतनी बड़ी बात नहीं है। जिसने आज तक कोई मर्यादा नहीं मानी, आज वह युद्ध के नियम न माने तो क्या आश्चर्य?

जयद्रथ ने हँसकर कहा, देखो इस नपुंसक को। अब अंत समय में घबराकर शस्त्र त्यागकर कौरवों के सेनापति की शरण में जा रहा है। त्रिगर्तराज सुशर्मा बोले, मैं तो पहले ही जानता था सिंन्धुराज कि वह युद्ध नहीं करेगा। अरे जो अपने अपमानित होती हुई पत्नी की सहायता के लिये शस्त्र नहीं उठा सकता। जो अपनी पत्नी का अपहरण करनेवालों को बन्दी बनाकर भी दंडित नहीं कर सकता वह युद्ध क्या करेगा? युधिष्ठिर चाहे लड़े ना लड़े हम तो लड़ेंगे ही। जयद्रथ बोला, मुझे तो भीम और अर्जुन दोनों से निपटना है। महाराज युधिष्ठिर शत्रुओंकी सेनाके बीचमें होकर भीष्मके पास पहुँचे और दोनों हाथोंसे उनके चरण स्पर्श कहने लगे, अजेय पितामह।

युधिष्ठिर ने पितामह भीष्म के पास आकर कहा प्रणाम पितामह और बोला मैं आपसे युद्ध की आज्ञा लेने आया हूं पितामह। भीष्म बोले, पुत्र युधिष्ठिर और विजयी भव का आशीर्वाद दिया। यदि तुम मुझसे आज्ञा लेने न आये होते पुत्र तो मैं तुम्हे पराजय का श्राप दे देता। युधिष्ठिर बोला, आप की आज्ञा बिना तो मैं शत्रुओं से भी युद्ध नहीं करूंगा पितामह और ये युद्ध तो स्वयं आपसे है। भीष्म बोले, अपनी प्रतिज्ञा की रस्सी में जकड़ा हुआ तुम्हारा यह पितामह तुम्हारे विरुद्ध युद्ध करने के लिये विवश है। इसीलिये मैं तुम्हे आज विजयश्री का आशीर्वाद देने के अतिरिक्त केवल तुम्हे घाव ही दे सकता हूं। युधिष्ठिर बोले मैं उन घावों को भी आपका आशीर्वाद ही समझूंगा पितामह। भीष्म बोले, सुखी रहो पुत्र। युधिष्ठिर बोले, प्रणाम पितामह। भीष्म बोले, मैं तुम्हारे विरोध में शस्त्रबद्ध होकर खड़ा हूं। मैं संशय में था कदाचित तुम मुझे पितामह नहीं मानोगे, विरोधी पक्ष का सेनापति ही

मानोगे और उनकी आँखों में आँसू बह गये बोले, विजयी होवो पुत्रों। अपनी स्थिति और अपने कारणों से मैं तुम्हारे पक्ष युद्ध नहीं कर सकता। तुमने शस्त्रोंसे नहीं अपने व्यवहार से मुझे जय कर लिया। युद्ध में विजय तुम्हारी ही होगी। युधिष्ठिर बोले, पितामह आप अपने स्थान पर दृढ़ रहकर युद्ध करें बस हमें हमारा हित बतातें रहें हमें परामर्श देते रहें। भीष्म बोले वह तो तुम्हारा अधिकार है पुत्रों। बीच में भीम बोल उठा। हमें जीवनभर अपना अधिकार ही तो नहीं मिला पितामह। भीष्म बोले, जानता हूँ पुत्रों। इसीलिए तो तुमसे यह नहीं कह रहा कि शस्त्र त्याग दो और अपने भाइयों का रक्त मत बहाओ। जाओ अपने धर्मपर अड़िग रहो। जहाँ धर्म है वहीं कृष्ण है, और जहाँ कृष्ण हैं वहीं विजय है। युधिष्ठिर। यदि इस समय तुम मेरे पास न आते तो मैं तुम्हारी पराजयके लिये तुम्हें शाप दे देता। किंतु अब मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम युद्ध करो, तुम्हारी जय होगी और इस युद्धमें तुम्हारी और सब इच्छाएँ भी पूरी होंगी। इसके सिवा तुम्हें कोई वर माँगनेकी इच्छा हो तो माँग लो; क्योंकि ऐसा होनेपर फिर तुम्हारी पराजय नहीं हो सकेगी। राजन्। यह पुरुष अर्थका दास है, अर्थ किसीका भी दास नहीं है- यही सत्य है और इस अर्थसे ही कौरवोंने मुझे बाँध रक्खा है। इसीसे मैं तुम्हारे साथ नपुंसकोंकी-सी बातें कर रहा हूँ। पुत्र। युद्ध तो मुझे कौरवोंकी ओरसे ही करना पड़ेगा। हाँ, इसके सिवा तुम और जो कुछ कहना चाहो, वह कहो।

युधिष्ठिर पितामह को प्रणाम कर आचार्य द्रोण की ओर बढ़ गये और जाकर प्रणाम किया और बोले, मैं आपका आशीर्वाद लेने आया हूँ गुरुदेव। द्रोणाचार्य ने विजयी भव का आशीर्वाद दिया और बोले, हे कुन्तीनन्दन। जब युद्ध आरम्भ हो जाये तो यह मत सोचना कि मैं तुम्हारा गुरु हूं क्योंकि मैं भी यह नहीं सोचूंगा कि तुम मेरे शिष्य हो। क्योंकि युद्ध गुरु और शिष्य के बीच नहीं होता। युद्ध सदैव प्रतिद्वंद्वियोंके बीच होता है। एक अन्तिम पाठ रह गया है वो भी पढ़ा देता हूं। वो योद्धा यौद्धा नहीं है जो अपने शस्त्र बेच देता है, एक मृतक है; एक चाकर है, एक स्वार्थी है, धन के लिये युद्ध करता है धन का दास है। इसलिये ऐसा योद्धा आदरणीय नहीं है। हे कुन्तीनन्दन युद्ध में अपना पराया कोई नहीं होता। इस रणभूमि में हम प्रतिद्वन्द्वी हैं इसलिये मुझसे युद्ध करना तुम्हारा कर्त्तव्य है और मैं आशा करता हूं कि तुम पांचो भाई भी अपने इस गुरु की शिक्षा का अपमान नहीं होने दोगे और अर्जुन से कह देना यदि मेरी छाती को भेदने वाले बाण मुझे उसके बाण नहीं लगे तो मैं उसकी गुरु दक्षिणा लौटा दूंगा। विधाता की लीला समझ में नहीं आती। कौन सोच सकता था कि मैं और अर्जुन एक-दूसरे के विरोधी होकर युद्ध करेंगे। पर नियति अबूझ है। युधिष्ठिर बोले, गुरु को पराजित करना शिष्य की मर्यादा नहीं है। द्रोण बोले, जय तो धर्म की होती है पुत्र और धर्म वहाँ हैं जहाँ कृष्ण है और कृष्ण वही होंगे जहाँ धर्म है।

युधिष्ठिरने पूछा- आचार्य। आपको प्रणाम करके मैं यही पूछता हूँ कि आपके वधका क्या उपाय है।

द्रोणाचार्य बोले- राजन्। संग्रामभूमिमें रथपर आरूढ हो जब मैं क्रोधमें भरकर बाणोंकी वर्षा करूँगा, उस समय मुझे मार सके- ऐसा तो कोई शत्रु दिखायी नहीं देता। जब किसी विश्वासपात्र व्यक्तिके मुखसे मुझे कोई अत्यन्त अप्रिय बात सुनायी देती है तो मैं संग्रामभूमिमें अस्त्र त्याग देता हूँ। युधिष्ठिर ने कहा प्रणाम गुरुदेव और फिर कुलगुरु कृपाचार्य के पास आकर प्रणाम किया। कृपाचार्य ने आयुष्मान भव, विजयी भव का आशीर्वाद दिया और बोले क्या तुम्हारे पास थोडी शिक्षा के लिये समय है ज्येष्ठ पांडुपुत्र? युधिष्ठिर बोले, यह तो मेरा सौभाग्य होगा कुलगुरु। कृपाचार्य बोले, हे ज्येष्ठपांडु पुत्र ये अन्तिम पाठ है। मनुष्य को अर्थ और धन के अधीन नहीं होना चाहिये। युधिष्ठिर बोले, क्या मुझे आपसे युद्ध करने की आज्ञा है कुलगुरु। कृपाचार्य बोले, यह युद्ध तुम्हारा धर्म है कुन्तीनन्दन। मुझे कोई भी मार नहीं सकता। किंतु कोई चिंता नहीं; तुम युद्ध करो, जीत तुम्हारी ही होगी। तुम्हारे इस समय यहाँ आनेसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। मैं नित्यप्रति उठकर तुम्हारी विजयकामना करता हूँ। मैं दुर्योधन के साथ नहीं हूँ धर्मराज। मैं अश्वत्थामा के साथ हूं। अश्वत्थामा उसके पिता

के साथ है। जीवन बड़ी विचित्र क्रीड़ा है। हम नहीं जानते कि हम किसके साथ हैं और किसके विरोधी हैं। कुलगुरु को प्रणाम कर युधिष्ठिर मामा शल्य के पास आये और प्रणाम किया। शल्य बोले आयुष्मान भव। मेरे सारे अस्त्र-शस्त्र तो दुर्योधन के लिये है परन्तु मेरे सारे आशीर्वाद तुम्हारे लिये है केवल तुम्हारे लिये विजयी भव पुत्र। युधिष्ठिर प्रणाम कर वापिस अपनी सेना में चला गया। युधिष्ठिरने कहा- मामाश्री। मैंने सैन्यसंग्रहका उद्योग करते समय आपसे जो प्रार्थना की थी, वही मेरा वर है। कर्णसे हमारा युद्ध होते समय आप उसके तेजका नाश करते रहें। शल्य बोले- कुन्तीनन्दन। तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण होगी। जाओ, निश्चिन्त होकर युद्ध करो। मैं तुम्हारी बात पूरी करनेकी प्रतिज्ञा करता हूँ।

संजय कहते हैं- राजन्। मद्रराज शल्यसे आज्ञा लेकर राजा युधिष्ठिर अपने भाइयोंसहित उस विशाल वाहिनीसे बाहर आ गये। इस बीचमें श्रीकृष्ण कर्णके पास गये और उससे कहा कि मैंने सुना है, भीष्मसे द्वेष होनेके कारण तुम युद्ध नहीं करोगे। यदि ऐसा है तो जबतक भीष्म नहीं मारे जाते, तबतक तुम हमारी ओर आ जाओ। उनके मारे जानेपर फिर तुम्हें दुर्योधनकी सहायता करनी ही उचित जान पड़े तो फिर हमारे मुकाबलेमें आकर युद्ध करना।

कर्णने कहा- केशव। मैं दुर्योधनका अप्रिय कभी नहीं करूँगा। आप मुझे प्राणपणसे दुर्योधनका हितैषी समझें। कर्णकी यह बात सुनकर श्रीकृष्ण वहाँसे लौट आये और पाण्डवोंमें आ मिले।

अर्जुन ने चकित होकर कृष्ण की ओर देखा और पूछा, आप कहाँ चले गये थे केशव। कृष्ण बोले, मैं कर्ण से कहने गया था कि पितामह भीष्मने तो उसके सहयोगियोंके शस्त्र रखवा दिये हैं तो वह पितामह के जीवित रहने तक पांडवों की ओर से युद्ध क्यों नहीं करता। अर्जुन ने पूछा ऐसा कुछ सम्भव है क्या केशव? कृष्ण बोले, क्यों नहीं। यदि धर्मराज कौरवसेनाके योद्धाओंको खुले आम पाण्डवोंकी ओरसे युद्ध करने का निमन्त्रण दे सकते हैं तो कर्ण के सम्मुख ऐसा प्रस्ताव रखने में क्या हानि है। अर्जुन बोले, मैं हानि की नहीं सम्भावनाओं की बात कर रहा हूँ। कृष्ण बोले, संभावनाओंकी कोई सीमा नहीं होती अर्जुन। मैं तो यह चाहता भी नहीं हूँ कि कर्ण पाण्डवोंकी ओरसे युद्ध करें। मैं तो केवल इतना ही चाहता हूँ कि वो दुर्योधन की ओर से न लड़ें। सचमुच सम्भावनाओंकी कोई सीमा नहीं होती। दुर्योधन चिल्लाकर बोला, मैं तो आप सबको अपनी सेना में पाकर धन्य हो गया हूं जिनसे युद्ध करने आये है उन्हीको विजयश्री का आशीर्वाद दे रहे हैं।

भीष्म बोले, यदि तुमने युधिष्ठिर के चरण स्पर्श किये होते पुत्र तो वो भी तुम्हे विजयश्री का आशीर्वाद अवश्य देता किन्तु तुम्हारा अभिमान तुम्हारे आडे आया है और यदि पुत्र तुम्हारा कोई चरण स्पर्श करेगा तो तुम्हारा हाथ तुम्हारी आज्ञा की प्रतीक्षा किये बिना ही उसके सिर पर चला जायेगा। यदि युधिष्ठिर तुम्हारे मामाश्री गान्धार नरेश शकुनि के भी चरण स्पर्श करता तो चाहे मन से नहीं परन्तु वे भी विजयश्री का आशीर्वाद देने के लिये विवश होते। हे पुत्र प्रणाम का परिणाम आशीर्वाद ही है। युधिष्ठिर ने हाथ जोडकर कहा, हे पवनदेव बीच में खडे इस पांडुपुत्र की ध्वनि इस रणभूमि में एकत्रित सारे रथियों, महारथियों के और अतिरथियों और सारे सैनिकों के पास पहुंचाने की कृपा कीजिये। मेरा नाद जहां तक पहुंच रहा है वे सारे यौद्धा और सैनिक सुनें कि यह कुरुक्षेत्र एक धर्मक्षेत्र है और यहां एक धर्म युद्ध आरम्भ होने ही वाला है इसलिये मेरी सेना में ऐसा कोई हो जो यह समझता हो कि धर्म हमारे प्रतिद्वंद्वियों के साथ है तो निष्ठायें बदलने का यही समय है। वे लोग हमें छोडकर अनुज दुर्योधन की ओर स्वेच्छा से जा सकते हैं और यदि अनुज दुर्योधन की सेना में कोई ऐसा हो जो यह समझता हो कि धर्म हमारे साथ है तो मैं उसे अपने शिबिर में आमंत्रित करता हूं इससे पहिले कि पितामह भीष्म युद्ध का शंख फूंकें, जिसे आना हो आ जाये और जिसे जाना हो चला जाये।

कोलाहल भरे वातावरण में युयुत्सु बोला, सारथी हमारा रथ भ्राता युधिष्ठिर के शिबिर में ले चलो।

**बदला पक्ष युयुत्सु ने धर प्रकाश की डोर, भाई-भाई लड रहे माता हो किस ओर?**

युयुत्सु ने उच्च स्वर में कहा धर्मराज। मैं इस युद्ध में आपके पक्ष से लड़ना चाहता हूँ। मैं युवराज दुर्योधन का भाई व महाराज धृतराष्ट्र का पुत्र हूँ। मेरा प्रश्न है कि आप मुझे स्वीकार करेंगे? युधिष्ठिर के इस आह्वान पर कुरुक्षेत्र में कई देर तक शान्तता का वातावरण छाया रहा। युधिष्ठिर ने युयुत्सु के निर्णय का स्वागत किया। युधिष्ठिर उच्च स्वर में बोले, तुम दुर्योधन के नहीं मेरे भी भाई हो। मैं तुम्हें स्वीकार करता हूँ। मालूम होता है महाराज धृतराष्ट्रका वंश भी तुमसे ही चलेगा और तुमसे ही उन्हें पिण्ड मिलेगा।

दुर्योधन बोला, देख लिया पितामह सौतेला-सौतेला ही होता है। मद्र नरेश बोले, यह न भूलो गान्धारी नन्दन कि दो सौतेले भाई उधर भी हैं। वे दोनों भी यह सुनकर मैं तुम्हारे पक्ष में युद्ध करनेवाला हूं मेरे वध करने के लिये खड़े हो गये थे। भीष्म बोले, मद्र नरेश ठीक कह रहे हैं वत्स और फिर यह इस धर्म युद्ध में हर यौद्धा को धर्म के प्रति अपना व्यक्तिगत निर्णय लेने का अधिकार है। दुर्योधन बोले, यदि धर्म उस शिबिर में है पितामह तो फिर आप यहां क्या कर रहे है? भीष्म बोले, कहा ना कि ये व्यक्तिगत निर्णय लेने की घडी है पुत्र क्योंकि धर्म का सम्बन्ध सेना से नहीं सेनाई से होता है, व्यक्ति से होता है। दुर्योधन बोला, तो आपके कहने का तात्पर्य यह है पितामह कि धर्म केवल युधिष्ठिर के ही शिबिर में है? भीष्म बोले, यह प्रश्न मुझसे ना करो पुत्र, यह प्रश्न करो अपने आपसे, यह प्रश्न करो अपनी अन्तरात्मा से। अपनी आंखों से अपने अभिमान और महत्वकांक्षा की पट्टी हटा कर देखो पुत्र तो तुम्हे तुम्हारी आंखें दिखला देंगी कि धर्म किस शिबिर में है? संजय बोला, राजन्। फिर युयुत्सु दुन्दुभिघोषके साथ तुम्हारे पुत्रोंको छोड़कर पाण्डवोंकी सेनामें चला गया। तब धर्मराज युधिष्ठिरने अपने भाइयोंके सहित प्रसन्नतापूर्वक पुन: कवच धारण किया। सब लोग अपने-अपने रथोंपर चढ़ गये और फिर सैकड़ों दुन्दुभियोंका घोष होने लगा और योद्धालोग तरह-तरहसे सिंहनाद करने लगे। पाण्डवोंको रथमें बैठे देखकर धृष्टद्युम्नादि सब राजाओंको बड़ा हर्ष हुआ। पाण्डवोंने माननीयोंका मान करनेका गौरव प्राप्त किया है- यह देखकर राजाओंने उनका बड़ा सत्कार किया तथा अपने बन्धु-बान्धवोंके प्रति उनकी सुहृदता, कृपा और दयाकी बड़ी चर्चा करने लगे। धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र पर भारतीय महायुद्ध का यज्ञकुण्ड धड़धड़ाता हुआ प्रदीप्त हो गया। कौरव और पाण्डव-सेना के लाखों सैनिक शस्त्रों को खनखनाते हुए आपस में ऐसे टकरा गये, जैसे ज्वार के समय के दो समुद्र आपस में टकरा जाएँ।

## ७) महाभारत का युद्ध (प्रथम दिन) विराट पुत्र उत्तर और श्वेत का वध

हस्तिनापुर राज्य में सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति थे पितामह भीष्म। हस्तिनापुर में सत्य का ज्ञान और सत्य की चिंता जिन्हें है वे हैं अकेले पितामह भीष्म। किन्तु वृद्धत्व के कारण वे हताश हो गये हैं। राख से ढँका हुआ होनेपर भी अंगार बुझा हुआ नहीं होता। आज भी पितामह भीष्म अतुलनीय पराक्रमी हैं।

सबसे कठिन और जटिल मानसिकता है महाराज धृतराष्ट्र की। उनके अंदर दो भिन्न-भिन्न धृतराष्ट्र वास कर रहे हैं। एक है, अन्ध होते हुए भी पुत्रप्रेम के कारण दुर्योधन के राज्याभिषेक के स्वप्न देखनेवाला लालची पिता, और दूसरा है ऊपर-ऊपर राजशिष्टाचार का ढोंग रचनेवाला कपटी राजा। कौरवों की द्यूतसभा में एक और अन्त:पुर में दूसरा-इस प्रकार धृतराष्ट्र के दो रूप हैं। राजसभा के अन्तर्गत उसके व्यवहार पर शकुनि पूर्णत: छाया हुआ है। अन्त:पुर के उसके जीवन को महत्त्वाकांक्षी दुर्योधन ने घेर लिया है। हस्तिनापुर के वैभवशाली राज्य के स्वामी धृतराष्ट्र की दो कठपुतलियाँ बन गयी हैं- एक है शकुनि के हाथ में और दूसरी है दुर्योधन के। भीष्म पितामह के बाद विचारणीय है अंगराज कर्ण। वह सूतपुत्र अभेद्य कवच-कुण्डलों से युक्त दिग्विजयी और दानवीर है। जिसे सूतपुत्र कहकर सम्बोधित किया जाता है। दुर्योधन,

शकुनि वे सब अंगराज कर्ण को कर्मजाल में फाँसना चाहते हैं? कर्ण को तो अपनी सामर्थ्य पर पूरा विश्वास है। कौरव द्यूतसभा में द्रौपदी चीरहरण की विपत्ति के समय इन सबके मनोभाव पूर्णत: उद्घाटित हो चुके थे।

दुर्योधन-शकुनि की कुटिल राजनीति की धार कुरु-मन्त्री कर्णिक की बुद्धिमत्ता के कारण और भी पैनी हो गयी है। इस त्रिकूट की साँठ-गाँठ में निश्चित हुई राजनीति को क्रियाशील करने के लिए दु:शासन और उसके दस भ्राता तत्पर हैं। साथ ही गान्धार देश से आये, हस्तिनापुर में ही बसे शकुनि के दस भ्राता भी उनकी सहायता कर रहे हैं।

ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिर कई भले-बुरे गुणों का एक जटिल मिश्रण था। वह वीर थे, पर कोई ऐसा पराक्रम उन्होंने नहीं किया जो सराहने योग्य हो। वे त्यागी थे और अभिलाषी थे। वे जन्म से ज्येष्ठ थे पर कर्मोंके ज्येष्ठ नहीं थे। उनके ज्ञानी होने के कारण वे युधिष्ठिर से धर्मराज कहलाये। यदि युधिष्ठिर को द्यूत का व्यसन न होता तो शायद यह महाभारत न होता। युधिष्ठिर समझौतावादी था। युधिष्ठिर का सबसे अधित अमूल्य गुण था उनकी अविचल मातृभक्ति।

द्वितीय पाण्डव भीम में छटपटाहट थी, आकुलता थी। भीम केवल पराक्रमी ही नहीं था वह विचारक और बुद्धिमान भी था समय-समय पर उसने जिस प्रकार अपने शरीर-सामर्थ्य को उद्घाटित किया उसी प्रकार बुद्धि सामर्थ्य को भी किया। लाक्षागृह में, वनवास में भीम ने कुन्ती से जो-जो कहा था वह उसकी बुद्धिमत्ता की प्रतीति थी। पाण्डवोंके सम्पूर्ण जीवनयात्रा में भीम के पराक्रम का दृढ़ कवच वास्तव में एक अत्यंत अमूल्य वस्तु थी। भीम के पराक्रम के बिना पाण्डव कई बार प्राणघाती विपत्ति मे फँस गये होते। उसने कई बार महाबलिओं को चुनौती दी थी किन्तु उसने अपने आप अपने मुँह से अपने सामर्थ्य की बड़ाई कभी नहीं करीं। आवश्यकता से अधिक स्पष्ट बोलता था। द्रौपदी को सदैव भीमपर ही भरोसा था। कृष्ण ने भी कहा था किसी भी सेनाका सेनापति बनने के लिये भीम पूर्णत: योग्य है पर फिर भी कभी अवसर होने पर मैं उसे सेनापति नही बनाऊंगा क्योंकि भीमके पराक्रम को उत्तेजित करना जितना कठिन है उससे भी अधिक कठिन है उत्तेजित हुये भीम को नियंत्रण में लाना। सेनापति को तो अपने साथ सेना का भी खयाल करना पड़ता है। केवल अधिक से अधिक सैनिकों का वध करना कोई पराक्रम नहीं होता। भीम का पराक्रम रणभूमि में अत्यन्त प्रबल और निरंकुश हो जाता है। उसका दमित मनोभाव विकराल रूप धारण कर लेता है। भीम का सबसे बड़ा गुण है उसकी मातृभक्ति। युधिष्ठिर की मातृभक्ति में आज्ञाकारिता की सूक्ष्म झाँकी है जबकि भीम का मातृभक्ति प्रेम सहज, असीम है। कुन्तीके रूक जा कहनेपर वो कभी आगे नहीं बढ़ेगा या तो वह कृष्ण से नियंत्रण में आ सकता है या फिर द्रौपदी के कहनेपर। भीम का भ्रातृप्रेम और पत्नीप्रेम भी निरपेक्ष, अद्वितीय है।

अर्जुन कृष्ण को सबसे अधिक प्रिय है। वह रणभूमि में उनका सखा है। वह अपने नाम के अनुकूल सव्यसाची कुशलतापूर्वक शस्त्र चलानेवाला योद्धा ही नहीं है बल्कि बुद्धि का सर्वश्रेष्ठ शस्त्र चलानेवाला, सदैव सावधान और नम्र, कृष्ण का शिष्य भी है। अर्जुन को जो ज्ञान प्राप्त होता है उसे वह स्वार्थपरता से अपने ही पास नहीं रख लेता बल्कि बाँटता है। बाँटने से ज्ञान बढ़ता है। यह समझनेवाला वह नरोत्तम है। वह अत्यन्त नम्र और विनयशील भी है। अर्जुन आयु में छोटा होते हुए भी कृष्ण की इच्छा को स्वीकार कर उसने धनुर्विद्या में सात्यकि को अपना शिष्य बनाया। अर्जुन कृष्ण की छाया ही था। यादव, पाण्डव और कौरवों का दोषरहित सेनापत्य केवल धनुर्धर अर्जुन ही कर सकता था। कृष्ण ने अर्जुन को सर्वोत्तम नर माना था। कृष्ण ने माद्री पुत्र नकुल और सहदेव के विषय में कहा था कि वे माद्रेय भी नहीं कौन्तेय भी है। वे दोनों यमज भ्राता हैं। इन दोनोंका संयुक्त अस्तित्व है।

कुन्ती तो कृष्ण की भावमाता ही थी। कुन्ती द्रौपदी के स्वयंवर के पश्चात् ही कृष्ण के जीवन में अधिक निकट आयी। कृष्ण कुन्ती के भतीजे थे पर कुन्ती स्वयं कृष्ण की निरपेक्ष भक्त थी। वो हमेशा कृष्ण से प्रार्थना करती थी हे कृष्ण, मुझे कभी भी संकटमुक्त मत रखना, मुझे सदैव दु:ख देते रहना। जब मैं संकट में होती हूँ तो तेरा स्मरण बना रहता है और तू भी हमारे पास आते रहता है। मैं तुम्हे भूल नहीं सकती। सारा जग हमारे विरुद्ध हो जाये तो भी मुझे कोई चिन्ता नहीं। पर मुझपर और मेरे पुत्रोंपर आपकी कृपा बनी रहनी चाहिए। कौरव-पाण्डव दोनो कुलोंके श्रेयस की पुण्याई का दूसरा नाम ही था कुन्ती। पाँचों पुत्रों को कौन्तेय बनानेवाली दूरदर्शी राजमाता का नाम था कुन्तीदेवी।

द्रौपदी कृष्ण की मानी हुई केवल बहन ही नहीं थी परमप्रिय सखी भी थी। जो सौभाग्य अन्य किसी स्त्री को प्राप्त नहीं हुआ था वो उसको प्राप्त हुआ था। पाँच वीर नरश्रेष्ठों की प्रिय पत्नी और एक नारायण की प्रिय सखी बहन होने का। लाखों नर-नारी उसका आदर करते थे। इन्द्रप्रस्थवासियों की तो महाराज्ञी ही थी। इसमें कोई आश्चर्य नहीं था कि उनके जीवित रहते ही हस्तिनापुर के कुछ नर-नारी नगरजन और इन्द्रप्रस्थ तथा द्वारिका के भी नगरजन उनको प्रात:स्मरणीय पंच-पतिव्रताओं में से एक मानकर उनका स्मरण करने लगे थे। पाँच पतियों की पत्नी, कौरवों की द्यूतसभा में हुआ घोर अपमान, बारह वर्षों का वनवास, जयद्रथ-कीचक द्वारा किया गया घोर अपमान-सब कुछ सहकर द्रौपदी अपने गुणों के बल पर इस पद पर पहुँची थीं। उन पर जो-जो विपदाएँ आयी थीं, उनमें क्या कोई अन्य नारी टिक पाती? कृष्ण की मन की तुला पर तुलकर क्या अन्य किसी नारी को उनकी प्रिय सखी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ होता?

कृष्ण पश्चिम सागर के तट पर द्वारिका में बैठे उसके ज्वार की फेनिल लहरों की ओर एकटक देखते रहते और सोचते रहते। मानव जीवन इस सागर के समान ही है। जिस तरह यह सागर क्षण-भर भी स्थिर नहीं रह सकता उसीप्रकार जीवन भी होता है। हर क्षण परिवर्तन ही जीवन का गुणधर्म है। कृष्ण सर्वान्तर्यामी है और क्षुद्र से क्षुद्र जीव की रक्षा का स्वयंभार वहन करता है। एक बार की बात है, कुरुक्षेत्रकी उस रणभूमिमें जहाँ कौरव-पाण्डवोंकी सेनाएँ युद्धके लिए एकत्र हुई थीं, टिटिहरी (भार्दूल) पक्षीने अण्डे दे रखे थे। यह पक्षी भूमिपर, रेतमें अथवा घासपर यों ही अण्डे धर देता है। कोई पक्षी, पशु या मनुष्य इसके अण्डोंके समीप पहुँचे तो बहुत चिल्लाता है। उसके ऊपर, आसपास मंडराता है और कौओंपर तो आक्रमण करके उन्हें भगा भी देता है।

इतनी विशाल सेनाएँ एकत्र हुईं। असंख्य गज, अश्व, पैदल, रथ आये। इनके अपार कोलाहलमें दो पक्षी भी व्याकुल चिल्लाते घूमते, उड़ते हैं- इसकी ओर किसीका भी ध्यान भला कैसे जाता। यही दैवकी कम कृपा नहीं थी कि अबतक उनके अण्डे किसी प्राणीके पदके अथवा पहियेके नीचे आकर फूट नहीं गये थे। उस मिट्टीके रंगसे मिलते कुछ भूरे अण्डोंको देखनेका अवकाश किसे था। वे मनुष्यके पैरके नीचे भी रौंदे जाते तो वह उनके लिए पश्चात्ताप करनेवाला नहीं था। जहाँ लोग स्वयं ही मरने या मारने आये हैं, वहाँ इतनी तुच्छ बातोंपर कौन ध्यान देता।

मनुष्य अपनी चिन्तामें, अपने गर्वमें भले नन्हें प्राणियोंकी उपेक्षा कर दे किन्तु उन प्राणियोंमें भी तो अपने अण्डे, अपने शिशुओंका उतना ही मोह, उतनी ही प्रियता होती है जितनी मनुष्यकी अपने तथा अपनोंके प्रति। किसी सम्राटके लिए अपना शिशु युवराज जितना ममतास्पद तथा महत्वपूर्ण है, किसी पक्षीके लिए अपने अण्डे उससे कम प्रिय तथा महत्त्वपूर्ण तो नहीं होते हैं। वह टिटिहरी पक्षीका जोड़ा- बहुत अल्प शक्ति, दुर्बल पक्षी है यह। इतनी बड़ी भीड़-भाड़में वह व्याकुल चिल्लाता उड़ता रह सकता था। उसे अपने रहने, रात्रि विश्रामके लिए भी दूर जाना पड़ता था किन्तु अण्डोंका मोह उन्हें बार-बार वहाँ खींच लाता था।

सेनाएँ व्यूहबद्ध खड़ी हो गयीं। शंखों और वाद्योंका गगनभेदी निनाद गूँजने लगा तो दोनों पक्षी भयके कारण दूर, बहुत दूर चले गये किन्तु उनके अण्डे- यह मोह कहीं उन्हें बैठने नहीं देता। वे फिर लौटे तो वहाँ थोड़ी शान्ति हो गयी थी। अर्जुनका नन्दिघोष रथ दोनों सेनाओंके मध्य खड़ा हो गया था और उसके नब जलधर सुन्दर सारथी अपने सखासे कुछ कह रहे थे। पक्षियोंको अपने अण्डोंके समीप उतरनेका एकबार और संभवत: अन्तिम बार अवकाश मिला।

सहसा यह शान्ति फिर भंग हो गयी। शंख, वाद्य, लोगोंका जयघोष, बाणोंकी सनसनाहट, शतघ्नियोंका भयंकर गर्जन- यह सब प्रारम्भ होते ही वे बेचारे अल्पप्राण पक्षी भयके मारे चिल्लाते हुए उड़ गये।

केवल मनुष्य योनि ही कर्म योनि है और इसीमें साधनका श्रीगणेश संभव है किन्तु मनुष्यके कर्म ही जब समस्त भोग योनियोमें जीवको ले जाते हैं तो कौन कह सकता है कि कोई पथ भ्रान्त साधक शरीर त्यागकर अमुक योनिमें नहीं जा सकता और साधन तो शरीर-नाशसे समाप्त नहीं होता। उलटे मृत्यु साधनमें बाधा डालनेवाले अपकर्मोंके संस्कारको संचितके संग्रहमें डालकर जीवके पथको ही प्रशस्त करती है। पूर्वजन्मके किन्हीं सत्कर्मोंसे, भगवद्भजनके प्रभावसे उन टिटहरी पक्षियोंके अन्त:करणमें भी उस विपत्तिजन्य व्याकुलताने भगवत्स्मृतिका उदय कर दिया।

वे दोनों पक्षी उस वानरध्वज रथके ऊपर मंडराते कई क्षण चीखते रहे प्राण भयसे उस समय भूमिसे भाग जानेके पूर्व- बचा लो। सर्व समर्थ, सर्वाधार, सर्वाश्रय। अनाथनाथ। अशरण शरण। हम अनाथ, असहाय पक्षियोंके अण्डोंको बचा लो। उनकी रक्षा कर लो कृपा सिन्धु। तुम्हीं, केवल तुम्हीं इस विपत्तिके मुख फाड़कर आ पहुँचे महादानवसे उन निश्चेष्ट, निरुपाय, सुकुमार अण्डोंकी रक्षा कर सकते हो इसप्रकार प्रार्थना की।

पक्षियोंने नन्दिघोष रथकी परिक्रमा की ओर प्राण भयसे भाग गये। उन्हें युद्धके पूरे अठारह दिन वहाँ फिर लौटनेका अवसर नहीं मिलना था। उन्हें पता भी नहीं लगना था कि उनकी प्रार्थनाका कोई परिणाम हुआ भी या नहीं। उनको तो वहाँ से निराश ही जाना था और वे चले गये। केवल रात्रिमें प्रात:के धुँधलकेमें वे एकाधबार आ सकते थे; किन्तु अब उन्हें अपने अण्डे वहाँ देखनेको मिलें, यह संभव नहीं था।

जो सर्वेश्वरेश्वर है, सर्वाधार, सबका पालक है उसके लिए छुद्रतम प्राणी भी कभी उपेक्षणीय कैसे हो सकता है। वह सृष्टिकर्ताका श्रुतिसूक्तोंसे किया गया स्तवन जितनी सावधानीसे सुनता है, उतनी ही सावधानी, सहृदयतासे अत्यल्प कीटकी अलक्षित किट-किट न सुन सके तो सर्वात्मा, सर्वाश्रय कैसा। उस नन्दिघोष रथके मयूर मुकुटी, पीताम्बर परिधान, नवघन सुन्दर सारथीमें जितनी सावधानी अर्जुनकी रक्षा एवं रथ संचालनके प्रति थी, पक्षियोंकी क्रन्दन ध्वनि सुननेमें भी उसके श्रवण उससे कम सतर्क नहीं थे। उसने तनिक दृष्टि उठाकर उन पक्षियोंकी ओर देख लिया था। उसकी यह दृष्टि ही जीवके लिए अनन्त आश्वासन है। कोई आर्त होकर- विपत्तिमें पड़नेपर भी उस परमाश्रयको न पुकारे- यह उस जीवका अभाग्य, क्योंकि उसका स्वभाव ही यह है कि वह स्वरूपत: निर्गुण है। बिना पुकारे स्वयं उसे कुछ करनेकी नहीं सूझती किन्तु कोई प्राणी व्याकुल होकर पुकारे और वह वासुदेव न सुने यह सम्भव नहीं है। वह किसीकी आर्त-प्राणोंकी पुकार सुनकर रक्षाकी व्यवस्था न करे यह भी असम्भव है। वह सबका अपना है। अनन्तकर वरुणालय हैं और सर्वसमर्थ है। उसके सुदीर्घबाहु सहायताको न पहुँच सकें, ऐसा स्थान तो सृष्टिमें कहीं है ही नहीं।

युद्ध प्रारम्भ हो गया। अर्जुनका धनुष मृत्युवर्षा कर रहा था। श्रीकृष्णके कर, नेत्र सब अत्यन्त व्यस्त थे। सहसा भगदत्तका महागज सम्मुख दौड़ता आता दीख पड़ा। जनार्दनने कहा- अर्जुन सावधान। गजके कण्ठमें लटकती स्वर्ण श्रृंखलाको लक्ष्य करो। वाम घण्ट काट दो।

सव्यसाचीके लिए इतना पर्याप्त था। उस समय क्यों पूछनेका अवकाश नहीं था। गाण्डीवसे तत्काल बाण छूटा और श्रृंखला काटनेसे वाम घण्ट कटकर धपूसे भूमिपर गिर पड़ा। उस विशाल स्वर्ण घण्टके नीचे पक्षीके अण्डे सुरक्षित हो गये। जो इतनी व्यवस्था कर सकता है उसके लिए यह कहाँ कठिन है कि अण्डे फोड़कर शावक युद्धान्तमें निकलें और तब किसी पशुकी ठोकरसे वह घण्ट हट जाय। उसी समय पक्षी आकर अपने शावकको सम्हाल लें। शरणागत रक्षक सदा सावधान है तो चिन्ता कैसी।

कौरवों के परिवार में सारी पुण्याई केवल राजमाता गान्धारीदेवी में ही सिमटकर रह गयी है। आज तक उन्होंने अपने कठोर वचनोंसे महत्त्वाकांक्षी दुर्योधन को जैसे-तैसे रोक रखा था। महात्मा विदुर और संजय दोनों हस्तिनापुर में ही है और महत्त्वपूर्ण पदों पर प्रतिष्ठित है। वे दो पाण्डवों को न्याय दिलाने के लिए वे ही आशा की किरणे हैं। यदि वे दोनों नहीं हो तभी उनके होने का महत्व ज्ञात होगा।

गान्धारी ने दासी को पूछा रणभूमि से कोई समाचार आया है? दासी बोली, जी महारानी, हस्तिनापुर के लिये तो अशुभ ही समाचार है। गान्धारी बोली, क्या समाचार लाई हो? दासी बोली राजकुमार युयुत्सु कुन्तीनन्दन के पक्ष में चले गये। गान्धारी बोली, वो कोई शत्रुओं में थोडे ही जा मिला है जो यह समाचार हस्तिनापुर के लिये अशुभ हो जाये। वो तो केवल एक भाई का शिबिर छोडकर दूसरे भाई के शिबिर में गया है। दासी बोली, किन्तु महाराज तो बहुत दु:खी हैं। गान्धारी बोली, इस युद्ध में चाहे किसी की हार हो या जीत हो दासी परन्तु भरतवंश के वृद्ध प्राणियों के भाग में दु:ख ही आयेगा। मैं तो यह चाहती हूं कि यदि अब यह युद्ध टल नहीं सकता तो हो और समाप्त हो जाये।

भीष्म ने युद्ध आरम्भ करने का अपना शंख फूंक दिया और दोनों ओर की सेनाओं ने एक-दूसरे पर आक्रमण करना शुरू कर दिया। यह युद्ध पौष कृष्ण पक्ष द्वितीया को शुरू हुआ।

राजा धृतराष्ट्रने कहा- संजय। इस प्रकार जब मेरे पुत्र और पाण्डवोंकी सेनाओंकी व्यूहरचना हो गयी तो उन दोनोंमेंसे पहले किसने प्रहार किया? संजय युद्ध का दृश्य देखकर धृतराष्ट्र को बताते जा रहा है। धृतराष्ट्र बोले, रणभूमि पर आंखे जमाये रहो संजय। मेरे लिये यह जानना आवश्यक है कि पहल किसने की? पहला बाण किसने चलाया? संजय बोला, अभी युद्ध आरम्भ नहीं हुआ महाराज। सेनायें एक-दूसरे के सामने आगे बढ रही है। धृतराष्ट्र बोले, जैसे ही पहला बाण चले मुझे तुरन्त बताना संजय। मैं युद्ध के परिणाम से नहीं डरता किन्तु इतिहास से अवश्य डरता हूं। मैं यह नहीं चाहता कि इतिहास यह कहे कि मेरी सेनाओं ने अनुज पुत्रों के विरोध में युद्ध आरम्भ किया है। संजय बोला, आप इतिहास की जीभ कहां कहां पकडेंगे महाराज? यह कथा बहुत लम्बी है। इतिहास के पास आपसे करने के लिये कई असुविधाजनक प्रश्न हैं और उनसे कतराना सम्भव नहीं है। लाक्षागृह, देश का विभाजन, द्यूतक्रीडा, कुलवधू का वस्त्राहरण फिर आपका दूत बनकर तो मैं ही गया था महाराज। आप किस-किस बात को नकार देंगे। धृतराष्ट्र बोले, मुझे मेरा इतिहास मत बताओ संजय वो तो मुझे याद है। ये सारे आरोप तो मैं भ्राता शकुनि और अंगराज कर्ण की ओर सरका सकता हूं। पर इस युद्ध का मेरी ओर से आरम्भ होने का कोई औचित्य नहीं है। इसलिये रणभूमि की ओर देखते रहो। संजय बोला, जो आज्ञा।

संजयने कहा- राजन्। तब भाइयोंके सहित आपका पुत्र दुर्योधन भीष्मको आगे रखकर सेनासहित बढ़ा। इसी प्रकार भीमके नेतृत्वमें सब पाण्डवलोग भी भीष्मसे युद्ध करनेके लिये प्रसन्नतासे आगे आये। इस प्रकार दोनों सेनाओंमें घोर युद्ध होने लगा। पाण्डवोंने हमारी सेनापर आक्रमण किया और हमने उनपर धावा बोल दिया। दोनों ओरसे ऐसा भीषण शब्द हो रहा था कि सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते थे। उस समय महाबाहु भीम तो साँड़की तरह गरज रहे थे। उनकी दहाड़से आपकी

सेनाका हृदय हिल उठा तथा सिंहकी दहाड़ सुन कर जैसे दूसरे जंगली जानवरोंका मल-मूत्र निकल जाता है, उसी प्रकार आपकी सेनाके हाथी-घोड़े आदि वाहन भी मल-मूत्र त्यागने लगे। भीम विकट रूप धारण करके आगे बढ़ने लगे। यह देखकर आपके पुत्रोंने उन्हें बाणोंसे इस प्रकार ढक दिया, जैसे मेघ सूर्यको छिपा लेते हैं। इस समय दुर्योधन, दुर्मुख, दु:सह, शल, दु:शासन, दुर्मर्षण, विविंशति, चित्रसेन, विकर्ण, पुरुमित्र, जय, भोज और सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा- ये सभी बड़े-बड़े धनुष चढ़ाकर विषधर सर्पोंके समान बाण छोड़ रहे थे। दूसरी ओरसे द्रौपदीके पुत्र, अभिमन्यु, नकुल, सहदेव और धृष्टद्युम्न अपने बाणोंसे आपके पुत्रोंको पीड़ित करते हुए बढ़ रहे थे। इस प्रकार प्रत्यञ्चाओंकी भीषण टंकारके साथ यह पहला संग्राम हुआ। इसमें दोनों पक्षोंके वीरोंमेंसे किसीने पीछे पैर नहीं रक्खा। दोनों ओर के सैनिकों, शस्त्रों, वाद्यों, उत्तेजक घोषणाओं और पशुओं की विभिन्न ध्वनियों का सम्मिश्र तुमुल रणनाद कुरुक्षेत्र के परिवेश में व्याप्त हो गया।

पितामह भीष्म और धृष्टद्युम्न के रथ अपने ध्वजदण्डों पर लगी ध्वजाओं को फहराते हुए एक-दूसरे पर झपट पड़े।

कुरुक्षेत्र की पावन समरभूमि पर कृष्ण द्वारा आरम्भ किया गया- न्याय-अन्याय का निर्णय करनेवाला, मानव के ज्ञान-अज्ञान के अन्तर को स्पष्ट करनेवाला, सत्य-असत्य का प्रत्यय दिलानेवाला न भूतो न भविष्यति महायुद्ध का यज्ञकुण्ड धधकने लगा। प्राणियों को निष्पक्ष न्याय दिलानेवाला महायज्ञ धू-धू करता हुआ प्रज्वलित हुआ।

इस महायज्ञ का अन्त क्या होनेवाला था और इसका निर्णय क्या होनेवाला था, यह तो केवल श्रीकृष्ण ही जानते थे। ऐसे कौन-से जीवन-मूल्य इसमें से उभरनेवाले थे, जिसका पालन मानव-जाति पीढ़ियों तक करती रहेगी- यह भी वासुदेव ही जानते थे। इस महायुद्ध में भाग लेनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को इतना अवश्य ज्ञात हुआ था कि यह युद्ध केवल कौरव-पाण्डवों के राज्याधिकार के लिए, या नारी-अवमान के प्रतिशोध के लिए अथवा दुष्ट-निर्दलन के लिए नहीं लड़ा जा रहा था। वह इससे बढ़कर कुछ और था।

प्रलयकाल के दो प्रचण्ड, विकराल, गरजते हुए कालमेघ एक-दूसरे से टकरा जाएँ, उसी प्रकार दोनों शस्त्र-सज्ज सेनाएँ आपस में टकरा गयी थीं। उस प्रचण्ड कोलाहल में भी अपनी भारी गदा कुरुक्षेत्र के आकाश में नचाते हुए भीम का भेदक दहाड़ना स्पष्ट सुनाई देने लगा। उसकी दहाड़ का पहला ही आघात इतना असह्य था कि उसी का सारथी विशोक ही चौंककर काँप उठा और उसी आवेग के साथ भीम के शस्त्रों से भरे प्रचण्ड रथ को वह झपटे के साथ सबके आगे निकाल ले गया। सबसे पहले दुर्योधन और भीम के बीच ही, सूर्य को भी आच्छादित कर देनेवाला घोर द्वैरथ धनुर्युद्ध छिड़ गया।

शान्तनुनन्दन भीष्म अपना कालदण्डके समान भीषण धनुष लेकर अर्जुनके ऊपर झपटे और परम तेजस्वी अर्जुन भी अपना जगद्विख्यात गाण्डीव धनुष चढ़ाकर भीष्मपर टूट पड़े। वे दोनों कुरुवीर एक-दूसरेको मारनेकी इच्छासे युद्ध करने लगे। भीष्मने अर्जुनको बींध डाला, फिर भी वे टस-से-मस न हुए। इसी प्रकार अर्जुन भी भीष्मको संग्रामसे विचलित नहीं कर सके। गदायें टकराने लगी। हाथी चिंघाडने लगे। दोनों पक्ष की सेनाओं में घोर युद्ध होने लगा। दोनों पक्ष की सेनाओं के वीर कट-कट कर मरने लगे।

अर्जुन ने भीष्म पितामह के चरणों में बाण मारकर विजयी भव का आशीर्वाद लिया। भीष्म पितामह ने पांडवों के पहिले ही दिन दस हजार सैनिकों का सफाया कर दिया। युधिष्ठिर अभिमन्यु से बोले, जब पितामह अर्जुन के बाणों से रोके नहीं रुक रहे है तो फिर हम में से उन्हें कौन रोक पायेगा। अभिमन्यु बोला मुझे आज्ञा दीजिये ज्येष्ठ पिताश्री।

अर्जुन के मन में बड़ी चिंता थी। युद्ध आरंभ हो गया था और भीम ने बिना कोई और विचार किए सीधे दुर्योधन पर आक्रमण कर दिया था। मध्यम पांडव को अपनी प्रतिज्ञा को यथार्थ में परिणित करना था और अपने मन की साध भी पूरी

करनी थी। पर यह प्रक्रिया केवल भीम तक ही सीमित नहीं थी। सारे ही योद्धा, युद्ध में कुछ और करने से पहले अपने मन की ज्वाला को अपने शत्रु के रक्त से शांत कर लेना चाहते थे। सात्यकि ने भी पहले ही दिन में पहले ही क्षण कृतवर्मा से निबट लेना आवश्यक समझा था। धृष्टद्युम्न सीधा आचार्य द्रोण पर जा कूदा था और शिखंडी ने अश्वत्थामा को घेरना अपनी प्राथमिकता में रखा था। उन्हें भी अपनी और अपने पिता की प्रतिज्ञा पूरी करनी थी। द्रुपद ने अपने पुत्रों को द्रोण और अश्वत्थामा से युद्ध करते देख अपना ध्यान जयद्रथ पर केंद्रित किया था। उन्हें कदाचित् वनवास में हुए द्रौपदी के हरण का स्मरण हो आया था। जयद्रथ को अभी तक उसका कोई उचित दंड नहीं मिला था। अर्जुन मन-ही-मन कहीं विस्मित था कि वे सब लोग धर्मराज को उनका राज्य दिलाने के लिए एक धर्मयुद्ध करने आए थे; किंतु सबको अपने वैर-विरोध स्मरण हो आए थे और एक सच्चे क्षत्रिय के रूप में पांडवों का धर्मयुद्ध लड़ने के स्थान पर वे अपना-अपना युद्ध लड़ रहे थे। इसका अर्थ कहीं यह भी था कि धर्मराज यह युद्ध लड़ते न लड़ते, इन लोगों को तो युद्ध करना ही था।

युधिष्ठिर ने युद्ध के लिए शल्य को चुना था। उनका शल्य से कोई व्यक्तिगत विरोध नहीं था; किंतु पांडव यह नहीं भूलते थे कि उनके मातुल होते हुए भी शल्य ने आज तक उनकी सहायता तो नहीं ही की थी, सदा उनके आड़े आए थे। उनसे युद्ध तो करना ही था। सारे क्षत्रिय काल के गाल में समा चुके है यह कृष्ण जानता था। वे किसी-न-किसी बहाने से मारे ही जाएंगे। किसी को कोई मारेगा और किसीको कोई। पर मरेंगे तो सब ही।

कृष्ण ने अर्जुन से पूछा, क्या सोच रहे हो अर्जुन? अर्जुन बोला, सोच रहा हूँ कि इस युद्धक्षेत्र में भी लोग धर्म का नहीं, पांडवों का भी नहीं, अपना ही युद्ध लड़ रहे हैं। ये सात्यकि और कृतवर्मा द्वारिका में न लड़कर यहाँ लड़ रहे हैं, किंतु लड़ वे अपना ही युद्ध रहे हैं। कृष्ण बोले, वे अपना युद्ध भी नहीं लड़ रहे, वे त्रिगुणात्मक प्रकृति का युद्ध लड़ रहे हैं। यहाँ सात्यकि और कृतवर्मा नहीं लड़ रहे। घृणा लड़ रही है। भय लड़ रहा है। लोभ लड़ रहा है। अहंकार लड़ रहा है।

अर्जुन बोला, वे घृणा से क्यों नहीं लड़ते? भय और क्रोध से क्यों नहीं लड़ते? अपने अहंकार से क्यों नहीं लड़ते? कृष्ण बोले, जैसे तुम अपने मोह से लड़ रहे हो? अर्जुन बोला, आप कैसे जान गए कि मैं अपने मोह से लड़ रहा हूँ? आपने सत्य ही कहा मधुसूदन। आप निकट रहेंगे तो मोह क्या, मैं किसी को भी जीत लूँगा। पर इस समय तो सोच रहा हूँ कि कृतवर्मा आप का समधि होकर भी आपके विरोधी पक्ष में क्यों है?

कृष्ण बोले, दुर्योधन मेरा समधि होकर यदि स्वयं मेरा विरोधी पक्ष हो सकता है तो कृतवर्मा मेरा समधि होकर मेरे विरुद्ध क्यों नहीं जा सकता। तुम यही समझो कि संसार में संबंधों से पक्ष निश्चित नहीं होते। मेरा पक्ष तो तब ही हो सकता है, जब वह धर्म का पक्ष हो। वे लोग धर्म के पक्ष में खड़े होंगे, तो उन्हें संसार का बहुत कुछ त्यागना पड़ेगा। त्याग से तो किसी का भी मन स्वच्छ होता है, किसी की भी आत्मा पवित्र होती है, पर कौन तत्पर है त्याग के लिए?

अर्जुन ने कहा, मैं धन संपत्ति और सुख भोग के त्याग की बात नहीं कर रहा, मैं तो घृणा और द्वेष के त्याग के विषय में कह रहा हूँ। कृष्ण बोले, धन संपत्ति भी मल है, सुख-भोग भी और घृणा-द्वेष भी। अब यह तो अपनी स्वच्छ दृष्टि की बात है कि किसको किसमें स्वच्छता दिखाई देती है। दुर्योधन ने भी तो पांडवों के प्रति ईष्या, द्वेष और घृणा को अपनी सबसे मूल्यवान निधि मानकर ही हृदय से लगा रखा है। उसे कहा जाए कि वह पांडवों से उसी प्रकार प्रेम करे, जैसे आज भी युधिष्ठिर उससे करते हैं तो उसके प्राण ही निकल जाएँगे। कुछ लोगों के जीवन का लक्ष्य ही मल एकत्रित करना है और वही उनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि होती है।

इसी समय सात्यकिने कृतवर्मापर आक्रमण किया। उनका भी बड़ा भीषण और रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। महान्

धनुर्धर कोसलराज बृहद्बलसे अभिमन्यु भिड़ा हुआ थां उसने अभिमन्युके रथकी ध्वजाको काट दिया और सारथीको भी मार डाला। इससे अभिमन्युको बड़ा क्रोध हुआ। उसने बाण छोड़कर बृहद्बलको बींध दिया तथा बाण छोड़कर उसकी ध्वजा काट दी और सारथी और चक्ररक्षकको मार गिराया। भीमका आपके पुत्र दुर्योधनसे संग्राम हो रहा था। ये दोनों महाबली योद्धा रणाङ्गणमें एक-दूसरेपर बाणोंकी वर्षा कर रहे थे। उन चित्रयोधी वीरोंको देखकर सभीको बड़ा विस्मय होता था। इसी समय दु:शासन महाबली नकुलसे भिड़ गया और दुर्मुख सहदेवपर चढ़ आया और बाणोंकी वर्षा करके उसे व्यथित करने लगा। तब सहदेवने एक बहुत ही तीखा बाण छोड़कर उसके सारथीको मार डाला। फिर वे दोनों वीर आपसमें बदला लेनेके विचारसे एक दूसरेको भयंकर बाणोंसें पीडित करने लगे।

स्वयं महाराज युधिष्ठिर शल्यके सामने आये। मद्रराज शल्यने उनके धनुषके दो टुकड़े कर दिये। धर्मराजने तुरंत ही दूसरा धनुष लेकर मद्रराजको बाणोंसे आच्छादित कर दिया। धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके सामने आया। द्रोणाचार्यने कुपित होकर उसके धनुषके टुकड़े कर दिये और फिर कालदण्डके समान बड़ा भीषण बाण मारा, जो उसके शरीरमें घुस गया। तब धृष्टद्युम्नने दूसरा धनुष लेकर बाण छोड़ना शुरू किया और द्रोणाचार्यजीको बींध दिया। इस प्रकार वे दोनों वीर क्रोधमें भरकर बड़ा तुमुल युद्ध करने लगे। विराट पुत्र शंखने बड़े वेगसे सोमदत्तके पुत्र भूरिश्रवापर धावा किया और ललकारा। फिर उसने उसकी दाहिनी भुजा काट डाली। तब भूरिश्रवाने शंखकी गले और कंधेके बीचकी हड्डीपर प्रहार किया। इस प्रकार उन रणोन्मत्त वीरोंका बड़ा भीषण युद्ध होने लगा। राजा बाह्लीकको संग्राममें देखकर चेदिराज धृष्टकेतु सामने आया और सिंहके समान गरजकर उनपर बाण बरसाने लगा। उसने राजा बाल्हीक को बींध दिया। फिर वे दोनों वीर क्रोधमें भरकर गर्जना करते हुए एक-दूसरेसे लड़ने लगे। राक्षसराज अलम्बुषके साथ क्रूरकर्मा घटोत्कच भिड़ गया। घटोत्कचने बाणोंसे अलम्बुषको छेद डाला तथा अलम्बुषने भी भीमपुत्र घटोत्कचको झुकी नोकवाले बाणोंसे छलनी-छलनी कर दिया। महाबली शिखण्डीने द्रोणपुत्र अश्वत्थामापर आक्रमण किया। तब अश्वत्थामाने तीखे तीरोंसे बींधकर शिखण्डीको अधीर कर दिया। फिर शिखण्डीने भी एक अत्यन्त तीखे बाणसे द्रोणपुत्रपर चोट की। इस प्रकार वे संग्रामभूमिमें एक-दूसरेपर तरह-तरहके बाणोंसे प्रहार करने लगे।

यौवनसम्पन्न और अब तक अपने पराक्रम के प्रदर्शन का अवसर न पानेवाले द्रौपदी के पाँचों पुत्र निश्चयपूर्वक कौरव-सेना को चीरते हुए आगे बढ़ रहे थे। प्रतिविन्ध्य सुतसोम, श्रुतकीर्ति, शतानीक और श्रुतसेन- इन पाँचों पाण्डव-पुत्रों की पाँच पर्वत-श्रेणियों की भाँति संलग्न पंक्ति एक-दूसरे को संरक्षण देते हुए, शत्रु सैनिकों के सिर उड़ाते और उत्तेजक रणघोष करते हुए, क्षण-क्षण आगे बढ़ने लगी। सुतसोम के हाथ में अपने पिता की ही भाँति भारी प्रचण्ड गदा थी। गदायुद्ध में उसे कोई हरा नहीं पा रहा था। श्रुतकीर्ति इतनी कुशलता से धनुष-बाण का प्रयोग कर रहा था कि अँगुलियों के केवल स्पर्श से बाणों को पहचानकर एक ही समय पाँच-पाँच बाणों को वह कैसे प्रक्षेपित कर रहा था, यही समझ में नहीं आ रहा था। अपनी उलटी दिशा में भी वह अचूक लक्ष्यभेद कर रहा था।

भीष्म के गंगौघ रथ पर से उनके जितने ही ऊँचे पुष्पमण्डित धनुष से एक के बाद एक सैकड़ों बाण सूँकारते हुए छूटने लगे। उनका लक्ष था केवल धनुर्धर अर्जुन। अर्जुन ने सर्वप्रथम दूर से ही उनको नम्र अभिवादन किया। क्षण-भर उसने अपने नेत्रों को मूँद लिया। अब उसने शुभ्र-धवल, प्रफुल्लित पुष्पमालाओं से मण्डित अपने अपराजित गाण्डीव धनुष को तोलते हुए उसकी सुदृढ़ प्रत्यंचा की टंकार की। पितामह भीष्म के धनुष से छूटकर आनेवाले बाणों को उसने कभी ग्रीवा टेढ़ी करके तो कभी झुककर निष्फल कर दिया था। मानो बचपन में अपनी गोद में खिलानेवाले पितामह भीष्म के प्रारम्भिक बाणों को उसने आदरपूर्वक अभिवादन ही किया हो। सचमुच वह अर्जुन था- किसी भी ज्ञान, गुण का अर्जन

करनेवाला। उसने अभिजात नम्रता का भी अर्जन किया था। पितामह भीष्म को शोभा देनेवाला ही वह पौत्र- अर्जुन था।

अब एक बार उठाया हुआ उसका अपराजेय गाण्डीव धनुष युद्ध का स्पष्ट निर्णय होने तक रुकनेवाला नहीं था। पहली अर्द्ध घटिका में उसने भीष्म के भिन्न-भिन्न अरोध्य बाणों को केवल प्रतिकार करते हुए रोककर निष्प्रभ कर दिया।

सूर्य सिर पर आ गया। दोपहर का समय हो गया। दोनों ओर के अठारह सेनानायकों के प्रेरक सिंहनादों से पृथ्वी और अन्तरिक्ष गूँज उठे। ध्वजदण्डों से टकरानेवाले सूँकारते बाणों, हाथियों के मद झरते गण्डस्थलों में उनकी गोल-मोटी गरदनों और हिलती सूँड़ों में तड़ाक् से घुसनेवाले बाणों से, एक-दूसरे से टकराते हुए ठनठनाते गदा-प्रहारों से, एक-दूसरे से भिड़नेवाले खड्गों की खनखनाहट से, पदातियों के पदाघातों से, अश्वों के हिनहिनाने, गज-घण्टाओं की छनछनाहट और उनमें मिले हुए शंखों तथा रणवद्यों की ध्वनि से संचारित होकर कुरुक्षेत्र की रणभूमि गूँजने लगी।

सर्वप्रथम कौरवोंके महारथी कृतवर्मा ने नन्दिघोष पर ही धावा बोल दिया। सात्यकि ने अपने रथदल सहित आगे बढ़कर उसे अपने ऊपर ले लिया। कृतवर्मा और सात्यकि में द्वारिका में यदुवंशी होते हुए भी कुरुक्षेत्र में तुमुल युद्ध छिड़ गया। क्या वह कौरव-पाण्डवों के लिए था? द्रौपदी के लिए था? क्या वह युधिष्ठिर द्वारा अपनी सुविधा के अनुकूल प्रयोग किये गये धर्म के लिए था? नहीं। क्या सात्यकि और कृतवर्मा कृष्ण के अनेक अभियानों में कन्धे-से-कन्धा मिलाकर एक साथ नहीं लड़े थे? आज एक-दूसरे से लड़ रहे थे। तनिक भी त्रुटि न करते हुए सात्यकी ने कृतवर्मा द्वारा अर्जुन पर किये गये आक्रमण को कड़े प्रतिकार से विफल कर दिया। कृतवर्मा जब रथ सहित पीछे हट गया, तब कृष्णने सात्यकि पर जो दृष्टि डाली, उसे वह कभी भूल नहीं पाया। वे आँखें ही अलग थीं।

कई वर्षों से मन में व्यक्तिगत क्रोध सँजोये हुए दुर्योधन ने भीम पर आक्रमण किया। जिस प्रकार ज्वार के समय का सागर अपनी ओर आते नदी-नालों को दूर फेंक देता है, उसी प्रकार भीम ने उस आक्रमण को विफल कर दिया। युवा अभिमन्यु अनुभवी कोसलाधिपति से अथक लड़ता रहा। किन्तु दु:शासन ने सुन्दर नकुल को अपनी बाणवर्षा से त्रस्त किया। आरक्तवर्णी नकुल शरीर में घुसे हुए दु:शासन के बाणों से ग्रीष्म ऋतु में खिले पलाश-वृक्ष की भाँति दिखने लगा। कृष्ण अत्यन्त चपलता से नन्दिघोष को उसकी दृष्टि-कक्षा में ले गये। आहत नकुल को उसके स्वत्व का भान दिलाते हुए नन्दिघोष पर से ही कृष्णने कहा, नकुल, तुम तो अपने नाम के अनुकूल दिख रहे हो- अभी-अभी सर्प को क्षत-विक्षत किये नकुल की भाँति। द्रौपदी को डसनेवाला यह सर्प-दु:शासन तुम्हें भी डसने जा रहा है। अधीर मत हो नकुल। कृष्ण के उन बोलों से चमत्कार हुआ। आहत नकुल ने अपना धनुष उठाकर आनन-फानन में ही दु:शासन के मस्तक पर विराजित मुकुट को कुरुक्षेत्र की भूमि पर गिरा दिया। भयभीत हुआ दु:शासन अपने विस्फारित नेत्रों से उस शिरोभूषण को देखते हुए नकुल के आगे से हट गया।

सेनानायक विराट महावीर भगदत्तसे भिड़ गये और उनका घोर युद्ध होने लगा। मेघ जिस प्रकार पर्वतपर जल बरसाता है, उसी प्रकार विराटने भगदत्तपर बाणोंकी वर्षा की और मेघ जैसे सूर्यको ढक लेता है, वैसे ही भगदत्तने राजा विराटको अपने बाणोंसे आच्छादित कर दिया। आचार्य कृपने केकयराज बृहत्क्षत्रपर धावा किया और अपने बाणोंसे उसे बिल्कुल ढक दिया। इसी प्रकार केकयराजने कृपाचार्यको बाणोंमें विलीन कर दिया। उन दोनोंने एक-दूसरेके घोड़ोंको मारकर धनुष काट डाले। इस प्रकार रथहीन होकर वे खड्गयुद्ध करनेके लिये आमने-सामने आ गये। उस समय उनका बड़ा ही भीषण और कठोर युद्ध हुआ। राजा द्रुपदने जयद्रथपर आक्रमण किया। जयद्रथने बाण छोड़कर द्रुपदको घायल कर दिया और द्रुपदने जयद्रथको बाणोंसे बींध दिया। धृष्टराष्ट्र पुत्र विकर्ण ने सुतसोमपर धावा बोल दिया। दोनों में युद्ध ठहर गया। उन

दोनोंने एक-दूसरोंके बाणोंसे बींध दिया, परंतु उनमेंसे किसीने भी पीछे पैर नहीं रक्खा। महारथी चेकितान सुशर्मापर चढ़ आया, किंतु सुशर्माने भीषण बाणवर्षा करके उसे आगे बढ़नेसे रोक दिया। तब चेकितानने भी क्रोधमें भरकर अपने बाणोंसे सुशर्माको आच्छादित कर दिया। शकुनिने परमपराक्रमी प्रतिविन्ध्यपर आक्रमण किया। किंतु युधिष्ठिरकुमार प्रतिविन्ध्यने अपने पैने बाणोंसे उसे छिन्न-भिन्न कर दिया। सहदेवके पुत्र श्रुतकर्माने काम्बोज महारथी सुदक्षिणपर धावा किया। सुदक्षिणने उसे अपने बाणोंसे बींध दिया, फिर भी वह युद्धसे डिगा नहीं। फिर वह क्रोधमें भरकर अनेकों बाणोंसे सुदक्षिणको विदीर्ण-सा करता हुआ घोर युद्ध करने लगा। अर्जुनका पुत्र इरावान् श्रुतायुके सामने आया और उसके घोड़ोंको मार डाला। इसपर श्रुतायुने कुपित होकर अपनी गदासे इरावान्के घोड़ोंको नष्ट कर दिया। फिर उन दोनोंका घोर युद्ध होने लगा। महारथी कुन्तिभोजसे अवन्तिराज विन्द और अनुविन्द-का संघर्ष हुआ। वे अपनी-अपनी विशाल वाहिनियोंके सहित संग्राम करने लगे। अनुविन्दने कुन्तिभोजपर गदा चलायी और कुन्तिभोजने तुरंत ही उसे अपने बाणोंसे ढक दिया। कुन्तिभोजके पुत्रने बाण बरसाकर विन्दको व्यथित कर दिया और विन्दने उसे अपने बाणोंसे विदीर्ण कर दिया। इस प्रकार उनमें बड़ा अद्भुत युद्ध होने लगा। केकयदेशके पाँच सहोदर राजपुत्र गन्धारदेशके पाँच राजकुमारोंसे युद्ध करने लगे। साथ ही उन दोनों देशोंकी सेनाएँ भी भिड़ गयीं। धृतराष्ट्र पुत्र वीरबाहु राजा विराटके पुत्र उत्तरसे लड़ने लगा और उसे अपने पैने बाणोंसे बींध दिया। इसी प्रकार उत्तरने भी तीखे-तीखें तीर छोड़कर उस वीरको व्यथित कर दिया। चेदिराजने उलूकपर धावा किया और बाणोंकी वर्षा करके उसे पीडित करने लगा तथा उलूकने भी उसे तीखे-तीखे बाणोंसे बींधना आरम्भ किया। इस प्रकार एक-दूसरेको विदीर्ण करते हुए उनका बड़ा भीषण युद्ध होने लगा।

उस समय सब वीर ऐसे उन्मत्त हो रहे थे कि कोई किसी को पहचान नहीं पाता था। हाथी हाथीके साथ, रथी रथीके साथ, घुड़सवार घुड़सवारके साथ और पैदल पैदलके साथ भिड़े हुए थे। इस प्रकार एक दूसरेसे भिड़कर उन योद्धाओंका बड़ा दुर्धर्ष और घमासान युद्ध होने लगा। उस समय देवता, ऋषि, सिद्ध और चारण भी वहाँ आकर उस देवासुर संग्रामके समान घोर युद्धको देखने लगे। राजन्। उस संग्रामभूमिमें लाखों पदाति मर्यादा छोड़कर युद्ध कर रहे थे। वहाँ पिता पुत्रकी ओर नहीं देखता था और पुत्र पिताको नहीं गिनता था। इसी प्रकार भाई भाईकी, भानजा मामाकी, मामा भानजेकी और मित्र मित्रकी परवा नहीं करता था। ऐसा जान पड़ता था मानो वे भूतोंसे आविष्ट होकर युद्ध कर रहे थे। इस प्रकार जब वह संग्राम मर्यादाहीन और अत्यन्त भयानक हो गया तो भीष्मके सामने पड़ते ही पाण्डवोंकी सेना थर्रा उठी।

युद्ध के पहले दिन का दूसरा प्रहर ढलने लगा। कृतवर्मा, कृप, दुर्मुख, शल्य और विविंशती का प्रबल समर्थन प्राप्त किये सेनापति भीष्म आँखों के आगे पाण्डवोंकी सेना का कभी भी क्षतिपूर्ति न होनेवाला विध्वंस करने लगे। मृग नक्षत्र की पवन जिस प्रकार अपने तीव्र झोकों से डेरेदार आम्र-वृक्ष को झकझोरकर सैकड़ों आम्र-फलों को धरती पर गिराती है, उसी प्रकार क्रुद्ध हुए पितामह भीष्म अपने अमोघ बाणों से पाण्डवोंके सैनिकों को धरती पर गिराने लगे। उनका गंगौघ रथ हिमालय की कन्दराओं से मुक्त रूप में बहती गंगा की धारा के समान पाण्डवोंकी सेना में कहीं भी भ्रमण करने लगा। यह देखकर युधिष्ठिर की आज्ञा से क्रुद्ध हुआ अभिमन्यु अग्रसर हुआ। पितामह के लिए संरक्षक रूप में घेरा डाले हुए कृतवर्मा के ध्वज को एक ही बाण में उसने ध्वस्त कर दिया। बाण मारकर शल्य को जकड़ डाला। एक सन्नतपर्व बाण से दुर्मुख के सारथी का सिर उड़ा दिया। फिर उसने एक जिह्म बाण छोड़कर कृपाचार्य के धनुष को अचूक तोड़ डाला। अब तक पितामह का संरक्षक पंचक शिथिल हो गया था।

युवा अभिमन्यु का वह चकित कर देनेवाला पराक्रम देखकर पितामह अपने गंगौघ रथ में क्षण-भर स्थिर हो गये।

युधिष्ठिर की आज्ञा ले अभिमन्यु पितामह भीष्म के सामने आया और बाणों से प्रहार करने लगा। अभिमन्यु ने भीष्म पितामह के बाणों को काटना आरम्भ कर उन्हें प्रणाम किया। भीष्म अभिमन्यु की वीरता से आश्चर्यचकित हो प्रसन्न हो अभिमन्यु से बोले अपना परिचय दो बालक। अभिमन्यु बोला, मैं वासुदेव शिष्य और गंगापुत्र भीष्म का ज्येष्ठ पौत्र और महावीर अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु हूं। भीष्म बोले, यह वीरगति को प्राप्त होने की आयु नहीं है आयुष्मान। अभिमन्यु बोला, वीरगति को प्राप्त होने की कोई आयु नहीं होती पितामह और यदि होती है तो कदाचित मैं उस आयु तक नहीं पहुंचा हूं किन्तु आप तो उस आयु की सीमा को पार कर चुके है पितामह और फिर यह तो किसी यौद्धा के लिये बडे सौभाग्य का अवसर है कि उसे अपने जीवन का पहिला युद्ध आपसे करना पडे। इसलिये मुझे आज्ञा के साथ-साथ आशीर्वाद भी दे दीजिये पितामह। भीष्म बोले, हे विधाता तूं किस-किस को मेरा प्रतिद्वंद्वी बना रहा है? सावधान वत्स और भीष्म ने बाण छोडना प्रारम्भ कर दिया।

अभिमन्यु की ओर एक भावभीनी, प्रशंसायुक्त दृष्टि डालते हुए उन्होंने कहा, जय हो पार्थ-पुत्र, धन्य हो तुम। विजयी भव, वीर अभिमन्यु। इस अन्तराल में कहाँ-कहाँ से अपने ऊपर फेंके गये बाणों को उन्होंने वक्ष पर धारण किये लौहत्राण पर झेलते हुए निष्प्रभ कर डाला था।

सञ्जयने कहा, राजन्। इस दारुण दिवसका पहला भाग बीतते-बीतते जब अनेकों बाँकुरे वीरोंका भीषण संहार हो गया, अब आपके पुत्र दुर्योधनकी प्रेरणासे दुर्मुख, कृतवर्मा, कृप, शल्य और विविंशति पितामह भीष्मके पास चले आये। इन पाँच अतिरथियोंसे सुरक्षित होकर वे पाण्डवोंकी सेनामें घुसने लगे। यह देखकर क्रोधातुर अभिमन्यु अपने रथपर चढ़ा हुआ भीष्म और उन पाँचों महारथियोंके सामने आकर डट गया। उसने एक पैने बाणसे भीष्मकी ताड़के चिह्नवाली ध्वजा काट दी और फिर उन सबके साथ संग्राम छेड़ दिया। उसने कृतवर्माको, शल्यको और पितामहको बाणोंसे बींध दिया। इस प्रकार रणभूमिमें नृत्य-सा करते हुए उसने बड़े तीखे बाणोंसे सभी वीरोंपर वार किया। उसका ऐसा हस्तलाघव देखकर देवतालोग भी प्रसन्न हो गये तथा भीष्मादि महारथियोंने भी उसे साक्षात् अर्जुनके समान ही समझा। फिर कृतवर्मा, कृप और शल्यने भी अभिमन्युको बाणोंसे बींध दिया। परंतु वह मैनाक पर्वतके समान रणभूमिसे तनिक भी विचलित नहीं हुआ तथा कौरव वीरोंसे घिरे होनेपर भी उस वीर महारथीने उन पाँचों अतिरथियोंपर बाणोंकी झड़ी लगा दी और उनके हजारों बाणोंको रोककर भीष्मपर बाण छोड़ते हुए वह भीषण सिंहनाद करने लगा।

राजन्। फिर महाबली भीष्मने बड़े ही अद्भुत और भयानक दिव्यास्त्र प्रकट किये और अभिमन्युपर हजारों बाण छोड़कर उसे बिल्कुल ढक दिया। यह उनका बड़ा ही अद्भुत व्यापार हुआ। तब विराट, धृष्टद्युम्न, द्रुपद, भीम, सात्यकि और पांच केकयदेशीय राजकुमार- ये पाण्डवपक्षके दस महारथी बड़ी तेजीसे अभिमन्युकी रक्षाके लिये दौड़े। उन्होंने जैसे ही धावा किया कि शान्तनुनन्दन भीष्मने पाञ्चालराज द्रुपदको और सात्यकिको बाण मारे तथा भीमके रथकी ध्वजा काट डाली। तब भीमने बाणोंसे भीष्मको, कृपाचार्यको और कृतवर्माको बींध दिया।

संजय बोला- हे महाराज मुझसे यह युद्ध देखा नहीं जा रहा। धृतराष्ट्र बोले, क्यों, क्या हमारी सेनाओं के पांव अभी से उखडने लगे? संजय बोला, महाराज। धृतराष्ट्र बोले, मेरे पुत्र तो सुरक्षित है ना। संजय बोला, जी महाराज। धृतराष्ट्र बोले, यदि मेरी सेनाओं के पांव भी नहीं उखड रहे हैं और मेरे पुत्र भी सुरक्षित हैं तो फिर क्या नहीं देखा जा रहा है तुमसे? तातश्री तो कहीं वीरगति को प्राप्त नहीं हो गये? संजय बोला, वे कैसे वीरगति को प्राप्त होंगे? उनके पास तो इच्छा मृत्यु का वरदान

है। जब तक वे हस्तिनापुर को चहुं ओर से सुरक्षित नहीं देख लेंगे तब तक वे प्राण त्याग ही नहीं सकते किन्तु हे महाराज वहां अर्जुन पुत्र अभिमन्यु पितामह से युद्ध कर रहा है। जिन हाथों को पितामह के चरणों की ओर जाना चाहिये था वे ही धनुष पकडे हुये है और जिन हाथों को आशीर्वाद के लिये उठना चाहिये था वे ही बाण चला रहे है। भरतवंश के सारे वृद्ध और सारे तरुण और बालक घायल है किन्तु लहू तो भरतवंश का ही बह रहा है महाराज। धृतराष्ट्र बोले, शूरवीरों का लहू तो बहने के लिये ही होता है संजय। वीरों के लिये घाव तो पारितोषिक की भांति होते है। जैसे-जैसे घाव बढते जाते है वैसे ही वैसे उत्साह भी बढ़ते जाता है। कुरुक्षेत्र की दिशा में देखते रहो और मुझे मेरे पुत्रों का समाचार देते रहो। मेरे पुत्र दु:शासन के बारे में बताओ क्योंकि मेरे कान में कुन्तीपुत्र भीम की प्रतिज्ञा अभी तक गूंज रही है। संजय बोला, जो आज्ञा। इस समय तो दु:शासन का युद्ध माद्रीनन्दन नकुल से हो रहा है महाराज।

नकुल बोला, यदि मुझे मझले भैया की प्रतिज्ञा का ज्ञान नहीं होता तो मैं तुम्हे जीवित नहीं छोडता। जाओ अपने शिबिर में जाओ अपने घाव पर स्नेह लेप लगाओ भ्राता दु:शासन। यह कहकर नकुल ने दु:शासन को छोड़ दिया। अभिमन्यु और भीष्म का घोर युद्ध हुआ। भीष्म बोले, आयुष्मान भव वत्स। यह भरतवंश अर्जुन की भांति तुम पर भी गर्व करता रहेगा। तुम्हारे बाणों ने मेरी वृद्ध आंखों की ज्योति बढ़ा दी है। धन्य है वो वंश जिसमें तुम जैसे यौद्धा ने जन्म लिया है किन्तु मेरे और तुम्हारे बीच इस युद्ध का कोई परिणाम नहीं निकल सकता वत्स। क्योंकि मैं तुम्हारे प्राण लूंगा नहीं और तुम मेरे प्राण ले नहीं सकते इसलिये अपना रथ कहीं और ले जाओ वत्स। अभिमन्यु बोला, क्षमा चाहता हूं पितामह। मेरा रथ अब दूसरी ओर नहीं जा सकता। मैं आपको रोकने के लिये आया हूं। भीष्म बोले, मैं तुमसे रोका नहीं जाऊंगा वत्स। सारथी रथ आगे बढ़ाओ। अभिमन्यु ने अपने बाणों की दीवाल खडी करके भीष्म पितामह को रोक दिया। भीष्म चिल्लाकर बोले अर्जुन अपने पुत्र को ले जाओ वो मेरा मार्ग रोक रहा है। दुर्योधन क्रोधित हो बोला पितामह आप मेरे प्रधान सेनापति है या उन पांडवों के। सारथी रथ पितामह की ओर ले चलो। भीष्म बोले, वत्स बस कर रुक जा। मैं तेरी मृत्यु का कारण नहीं बनना चाहूंगा। महादेव की सौगन्ध यदि मैं आज यह देख रहा होता हस्तिनापुर सुरक्षित है तो आज तेरी इस वीरता पर मैं अपने प्राण तेरी विजय का पारितोषिक मानकर तेरे किसी बाण की नौक पर रख देता वत्स। दुर्योधन बोला, पितामह हस्तिनापुर की सुरक्षा के लिये मैं इस असभ्य बालक के प्राण अपने बाण की नोक पर रखकर आपको भेंट किये देता हूं। अभिमन्यु बोला, मैं आपही को ढूंढ रहा था ताऊश्री किन्तु आप मेरे बडों के ऋणी है इसलिये आपका वध करके अपने बडों का अपमान नहीं करना चाहता।

**बली भीम के वचन का रखने को सन्मान, झुका दिये अभिमन्यु ने अपने तीर कमान।**

कुरुक्षेत्र में जो युद्ध हो रहा है वो इतना भयानक है कि सूरज तो अपनी आंखे बन्द कर लेगा। समय क्या करेगा? आंखें बन्द कर लेना तो समय के वश में नहीं है। यदि न भी देखना चाहे तब भी देखने के लिये विवश है। समय ने पिता को पुत्र से, भाई को भाई, दादा को पोते, मित्र को मित्र से युद्ध करते देखा। कोई ऐसा रिश्ता नाता नहीं जो कुरुक्षेत्र में घायल न हो रहा हो, लहूलूहान न हो रहा हो। कोई ऐसा निष्ठा नहीं जो बाण न चला रहे हो और कोई ऐसा नाता नहीं जो वीरगति को प्राप्त न हो रहा हो। समय लहू की नदी में खडा है और लहू के कई दरिया पार किये है किन्तु समय के रास्ते में आज तक लहू का ऐसा दरिया कहीं नहीं आया था। पता नहीं लहू की यह नदी कब उतरेगी और द्रौपदी के खुले हुये केश कब बन्धेगे?

द्रौपदी अपने शिबिर में। द्रौपदी को अतीत स्मरण होता है उसी समय रानी सुदेष्णा आती है और बोली बधाई हो महारानी। द्रौपदी बोली मुझे द्रौपदी कहा कीजिये महारानी। सुदेष्णा बोली, नहीं महारानी मैं तुम्हे सैरन्ध्री मानने की भूल कर चुकी हूं। द्रौपदी बोली, वो कोई भूल नहीं थी। वो तो उन दिनों की कठोर वास्तविकता थी और महारानी उन दिनों को भूल

ही जाना ठीक है किन्तु आप मुझे बधाई किस बात की दे रही थी? सुदेष्णा बोली, मैं बधाई इसलिये दे रही थी सुभद्रानन्दन अभिमन्यु ने गंगापुत्र भीष्म का ध्वज काट दिया। गंगापुत्र भीष्म ने प्रसन्न होकर अभिमन्यु को आशीर्वाद दिया। द्रौपदी बोली, पितामह के पास देने के लिये आशीर्वाद और घावों के अतिरिक्त है ही क्या? कुरु वृद्धजनों के लिये ये दिन बडे ही काले हैं महारानी। उनके दिन के सूर्यग्रहण में हैं और उनके कोष रिक्त हो चुके हैं और उनके पास आशीर्वाद की कुछ मुद्राओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह गया। सुदेष्णा बोली, अपनी कडवाहट कुछ कम करो महारानी द्रौपदी। द्रौपदी बोली, प्रयत्न तो बहुत करती हूं किन्तु ये कड़वाहट कम होती ही नहीं। कभी भूल से भी मेरे ये हाथ केशों की ओर चले जाते हैं तो जल जाते हैं। ऐसा नहीं कि पितामह के लिये मेरा हृदय दुखता न हो। बहुत दुखता है। मुझे उनकी उलझन से और विवशता से भरी आंखे याद हैं। जिनसे उन्होंने कुरु राज्यसभा में वस्त्राहरण के समय मेरी ओर देखा था। उन लज्जित वृद्ध आखों ने उस अपमान के घाव पर स्नेह का लेप लगाने का प्रयत्न भी किया था। मैं आज भी उन आंखों का आदर भी करती हूं और उन्हें प्रणाम भी करती हूं। किन्तु महारानी क्या वो सचमुच यह नहीं जानते कि उनकी प्रतिज्ञा कर्त्तव्य और धर्म से बडी तो नहीं हो सकती। अवश्य जानते होंगे किन्तु आज हस्तिनापुर में हवा ही ऐसी चल रही है। जो धर्म के बडे-बडे छतनर वृक्षों को धर्म के मार्ग में उखाड़ कर फेंके दे रही है। आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, पितामह इन सब महात्माओं को युद्ध में किधर होना चाहिये था और वो किधर दिखाई दे रहे हैं? मैं इनमें से किसी को भी वीरगति को प्राप्त होने की सूचना की प्रतीक्षा नहीं करना चाहती। किन्तु मैं उनकी वीरगति को प्राप्त होने की सूचना की प्रतीक्षा कर भी रही हूँ कि वे तब तक मेरे उन केशों के लिये दु:शासन की छाती का लहू मिलना सम्भव ही नहीं। हे महारानी उन्होंने प्रिय अभिमन्यु के लिये जो आशीर्वाद दिया है वो वास्तव में आशीर्वाद ही नहीं वो उनके अपराध बोध से दबी हुई अन्तरात्मा का प्रतिबिम्ब भी है।

कुरुक्षेत्र रणभूमि में दुर्योधन बोला, दु:शासन जाकर कुलगुरु कृपाचार्य, गुरु द्रोणाचार्य, सारे यौद्धाओं से कहो कि वे सब पितामह भीष्म की सुरक्षा की ओर विशेष ध्यान दे। क्योंकि इस युद्ध में अकेले वे ही हैं हम सबको विजयश्री का प्रसाद देने इसलिये उनका सुरक्षित रहना बहुत आवश्यक है जाओ। मैं तो उस युयुत्सु को ढूंढ रहा हूं। मूर्ख उधर क्यों चला गया? परन्तु उसको उसके विश्वासघात के लिये दंड तो मिलना ही चाहिये। सारथी रथ युयुत्सु की ओर चले चलो।

युधिष्ठिर बोले, लगता है आज सूर्य अस्त नहीं होंगे। बाणों के वार हमारी सेना को यों काट कर रहे हैं जैसे कोई कृषक अपना खेत काट रहा है। शिखंडी बोला, चिन्ता न करे महाराज। जीत सदैव धर्म की ही होती है। आपके पितामह यौद्धा नहीं कायर है। यदि वे यौद्धा होते तो इच्छा मृत्यु के कवच को उतारकर रणभूमि में आये होते। अर्जुन के पास दिव्यास्त्र है पर वो उनका प्रयोग नहीं कर रहा इस रणभूमि में केवल एक कायर है महाराज और वो कायर है गंगापुत्र भीष्म। वे जानते हैं कि वीर गति की प्राप्ति की ओर आनेवाला मार्ग तो बन्द है किन्तु आप चिन्ता न करे महाराज। वासुदेव गंगापुत्र के कवच को कोई न कोई काट तो सोच ही लेंगे। युधिष्ठिर बोले, उधर बडा जमाव है। विराट पुत्र उत्तर और मद्र नरेश शल्य में युद्ध हो रहा है।

पितामह के बायीं ओर के रणक्षेत्र पर विराट-पुत्र उत्तर और मद्रराज शल्य के बीच घमासान युद्ध हो रहा था। उत्तर एक ऊँचे, बलाढ्य हाथी की अम्बारी में बैठा था। उसके पीछे विराटों की एक अक्षौहिणी सेना युद्धरत थी। उत्तर ने अपने हाथी को शल्य के रथ से भिड़ाने का महावत को आदेश दिया। महावत निष्णात था। उसने हाथी के कानों के पीछे अंकुश चुभो-चुभोकर हाथी को सीधे बाण-वर्षा करनेवाले शल्य के रथ से जा भिड़ाया। उस प्रचण्ड हाथी ने शल्य के रथ के अश्वों पर अपनी सूँड़ से बलशाली प्रहार किये। उसके सारथी को अपनी सूँड़ में उठाकर गोल-गोल घुमाकर दूर फेंक दिया। राजा विराटके पुत्र उत्तरने हाथीपर चढ़कर बड़े वेगसे शल्यपर धावा किया। हाथीको अपने रथकी ओर बड़ी तेजीसे आता देखकर मद्रराज शल्यने बाणोंद्वारा

उसका वेग रोक दिया। इससे वह हाथी चिढ़ गया और उसने रथके जुएपर पैर रखकर उसके चारों घोड़ोंको मार डाला। घोड़ोंके मारे जानेपर खाली रथमें ही बैठे हुए शल्यने उत्तरके ऊपर एक भीषण शक्ति छोड़ी। उससे उत्तरका कवच फट गया, उसके हाथसे अंकुश और तोमर आदि गिर गये और वह अचेत होकर हाथीसे नीचे गिर गया।

शल्य बोला, तुम कौन हो बालक। उत्तर बोला, मैं मत्स्य नरेश का पुत्र उत्तर हूं महारथी शल्य। किन्तु मेरा यह आधा परिचय है महारथी शल्य। शल्य बोला, और तुम्हारा पूरा परिचय क्या है? उत्तर बोला, मेरी आयु न देखिये मद्र नरेश। अपने शरीर में मेरे बाणों से लगाये हुये घावों की गहराई देखिये। शल्य बोला, उन घावों की गहराई को नापने के उपरान्त ही तो तुम्हे जानने को जी चाहा है बालक। अपना पूरा परिचय दो। उत्तर बोला, जिस यौद्धा के सारथी आज स्वयं वासुदेव कृष्ण हैं महारथी शल्य विराट युद्ध में मैं उस यौद्धा का सारथी था। शल्य बोला, अपनी जिह्वा को अपने आकार से लम्बा न होने दो बालक। और अब ये सम्भालो। दोनों में भयंकर युद्ध हो रहा है। शल्य ने गदा के रूप में शक्ति उठाकर फेंकी। उत्तर बोला, ये मेरी जिह्वा नहीं बाण है मद्र नरेश। शल्य ने भाला फेंककर उत्तर की ओर फेंक दिया। उत्तर मर गया। शल्य बोला, हे बालक महारथी मैं तेरी मृत्यु को सादर प्रणाम करता हूं।

फिर शल्य तलवार लिये रथसे कूद पड़े और उस हाथीकी सूँड़ काट दी। इससे वह भयंकर चीत्कार करता मर गया। यह पराक्रम करके राजा शल्य कृतवर्माके रथपर चढ़ गये।

यह देखकर उत्तर के बन्धु श्वेत ने तेजी से शल्य पर आक्रमण कर दिया। जयत्सेन, रुक्मरथ और अनुविन्द ने उसका मार्ग रोका। शल्य की सहायता के लिए आये पितामह भीष्म और श्वेत के बीच युद्ध छिड़ गया।

श्वेत बाणोंकी वर्षा करता हुआ शल्यके रथकी ओर चला। इस समय मद्रराजको मृत्युके मुँहमें पड़ा देखकर आपके पक्षके सात महारथियोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। कोसलराम, बृहद्बल, मगधराज जयत्सेन, शल्यपुत्र रूक्मरथ, काम्बोजनरेश सुदक्षिण, विन्द, अनुविन्द और जयद्रथ- ये सातों वीर श्वेतके सिरपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। सेनापति श्वेतने सात बाणोंसे उन सातोंके धनुष काट डाले। उन्होंने आधे निमिषमें ही दूसरे धनुष लेकर श्वेतपर सात बाण छोड़े। किंतु महामना श्वेतने सात बाण छोड़कर फिर उनके धनुष काट दिये। तब उन महारथियोंने शक्तियाँ लेकर भीषण गर्जना करते हुए उन्हें श्वेतपर छोड़ा। परंतु अस्त्रविद्याके पारगामी श्वेतने सात ही बाणोंसे उन्हे भी काट दिया। फिर उसने एक भीषण बाण लेकर उसे रुक्मरथपर छोड़ा। उसकी गहरी चोट लगनेसे रुक्मरथ अचेत होकर रथके पिछले भागमें बैठ गया। उसे अचेत देखकर उसका सारथी तुरंत ही सब लोगोंके देखते-देखते रणभूमिसे अलग ले गया। फिर श्वेतकुमारने अपने बाणोंसे उन छहों महारथियोंकी ध्वजाओंके अग्रभाग काट दिये उनके घोड़े तथा सारथियोंको मार डाला। और उसके पश्चात स्वयं शल्यके रथकी ओर चला। इससे आपकी सेनामें बड़ा कोलाहल होने लगा। तब सेनापति श्वेतको शल्यकी ओर जाते देख आपका पुत्र दुर्योधन भीष्मको आगे कर सारी सेनाके सहित श्वेतके रथके सामने आया और मृत्युके मुखमें पड़े हुए राजा शल्यको उससे मुक्त किया। बस, बड़ा ही घोर और रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा तथा पितामह भीष्म अभिमन्यु, भीम, सात्यकि, केकयराजकुमार, धृष्टद्युम्न, द्रुपद और चेदि तथा मत्स्यदेशके राजाओंपर बाणोंकी वर्षा करने लगे।

राजा धृतराष्ट्रने पूछा, संजय। जब राजकुमार श्वेत शल्यके रथके सामने पहुँचा तो कौरव, पाण्डव और शान्तनुनन्दन भीष्मने क्या किया- यह मुझे बताओ।

सञ्जयने कहा- राजन। इस समय लाखों क्षत्रिय वीर राजकुमार श्वेतकी रक्षा कर रहे थे। उन्होंने पितामह भीष्मके रथको घेर लिया। बड़ा ही घनघोर युद्ध होने लगा। भीष्मने मारकाट मचाकर अनेकों रथोंको सूना कर दिया। उस समय उनका

पराक्रम बड़ा ही अद्‌भुत था। इधर राजकुमार श्वेतने भी हजारों रथियोंका सफाया कर दिया और अपने पैने बाणोंसे उनके सिर उड़ा दिये। इस भीषण कटा-कटीके समय एकमात्र भीष्मही सुमेरुके समान अचल खड़े हुए थे। वे अपने दुस्त्यज प्राणोंका मोह छोड़कर निर्भीकभावसे पाण्डवोंकी सेनाका संहार कर रहे थे। जब उन्होंने देखा कि श्वेत बड़ी तेजीसे कौरवसेनाको नष्ट कर रहा है, तो वे झटपट उसके सामने आ गये। किंतु श्वेतने भीषण बाणवर्षा करके उन्हें बिल्कुल ढक दिया। भीष्मने भी श्वेतपर बड़ी भारी बाणवर्षा की। उस समय यदि श्वेतने रक्षा न की होती तो भीष्म एक दिनमें ही सारी पाण्डवसेनाको नष्ट-भ्रष्ट कर देते। जब पाण्डवोंने देखा कि श्वेतने भीष्मका भी मुँह फेर दिया है तो वे बड़े प्रसन्न हुए। पर आपका पुत्र दुर्योधन उदास हो गया। वह अत्यन्त क्रोधमें भरकर अनेकों अन्य राजाओंके सहित सारी सेना लेकर पाण्डवोंपर टूट पड़ा। उसीकी प्रेरणासे दुर्मुख, कृतवर्मा, कृपाचार्य और शल्य भीष्मकी रक्षा कर रहे थे।

श्वेतने जब देखा कि दुर्योधन तथा कई अन्य राजा मिलकर पाण्डवोंकी सेनाका संहार कर रहे हैं तो वह भीष्मको छोड़कर कौरवोंकी सेनाका विध्वंस करने लगा। इस प्रकार आपकी सेनाको तितर-बितर करके वह फिर भीष्मके सामने आकर डट गया। फिर वे दोनों वीर इन्द्र और वृत्रासुरके समान एक-दूसरेके प्राणोंके ग्राहक होकर लड़ने लगे। श्वेतने खिलखिलाकर हँसते हुए बाण छोड़कर भीष्मके धनुषके टुकडे-टुकड़े कर दिये और उनकी रथकी ध्वजा काट डाली। यह देखकर आपके पुत्रोंने समझा कि अब श्वेतके पंजेमें पड़कर भीष्म मारे जायँगे तथा पाण्डवलोग प्रसन्न होकर शंख बजाने लगे।

तब दुर्योधनने क्रोधित होकर अपनी सेनाको आदेश दिया, अरे। सब लोग सावधान होकर सब ओर से भीष्मकी रक्षा करो। देखो, ऐसा न हो हमारे सामने ही वे श्वेतके हाथसे मारे जायँ। राजाका आदेश सुनकर सब महारथी बड़ी फुर्तीसे चतुरङ्गिणी सेनाको साथ लेकर भीष्मकी रक्षा करने लगे। बाह्लीक, कृतवर्मा, शल, शल्य, जलसन्ध, विकर्ण, चित्रसेन और विशिति ये सब महारथी बड़ी शीघ्रतासे भीष्मको चारों ओरसे घेरकर श्वेतके ऊपर बड़ी भारी बाणवर्षा करने लगे। किंतु महामना श्वेतने अपने हाथकी सफाई दिखाते हुए उन सब बाणोंको रोक दिया। फिर सिंह जैसे हाथियोंको पीछे हटा देता है, वैसे ही उन सब वीरोंको रोककर उसने अपने बाणोंसे भीष्मका धनुष काट दिया। तब भीष्मने दूसरा धनुष लेकर उसे बड़े तीखे बाणोंसे बींध डाला। इससे सेनापति श्वेतने क्रोधमें भरकर सबके देखते-देखते अनेकों लोहेके बाणोंसे बींधकर भीष्मको व्याकुल कर दिया। इससे राजा दुर्योधनको बड़ी व्यथा हुई और आपकी सेनामें हाहाकार होने लगा। श्वेतके बाणोंसे घायल होकर भीष्मको पीछे हटे देखकर बहुत लोग तो यही समझने लगे कि अब श्वेतके हाथमें पड़कर भीष्म मारे ही जायँगे। भीष्मने जब देखा कि मेरे रथकी ध्वजा काट दी गयी है और सेनाके भी पैर उखड़ गये हैं तो उन्होंने क्रोधमें भरकर बाणोंसे श्वेतके चारों घोड़ोंको मार डाला, और उसकी ध्वजा काट डाली और सारथीका सिर काट दिया। सूत और घोड़ोंके मारे जानेपर श्वेत रथसे कूद पड़ा और वह क्रोधसे तिलमिला उठा। श्वेतको रथहीन देखकर भीष्मने उसपर सब ओरसे पैने बाणोंकी बौछार की। तब उसने धनुषको अपने रथमें फेंककर एक कालदण्डके समान प्रचण्ड शक्ति ली और जरा पुरुषत्व धारण करके खड़े रहो; मेरा पराक्रम देखो ऐसा कहकर उसे भीष्मपर छोड़ दिया। उस भीषण शक्तिको आती देख आपके पुत्र हाहाकार करने लगे। किंतु भीष्म तनिक भी नहीं घबराये। उन्होंने बाण मारकर उसे बीचहीमें काट दिया। यह देखकर आपकी ओरके सब लोग जय-जयकार करने लगे।

तब विराटपुत्र श्वेतने क्रोधकी हँसी हँसते हुए भीष्मका प्राणान्त करनेके लिये गदा उठायी और बड़े वेगसे उनकी ओर दौड़ा। भीष्मने देखा कि उसके वेगको रोका नहीं जा सकता, अत: वे उसका वार बचानेके लिये पृथ्वीपर कूद पड़े। श्वेतने उसे घुमाकर भीष्मके रथपर छोड़ा और उसके लगते ही उनका रथ सारथी, ध्वजा और घोड़ोंके सहित चूर-चूर हो गया। भीष्मको रथहीन देखकर शल्य आदि दूसरे रथी अपने-अपने रथ लेकर दौड़े। तब वे दूसरे रथपर चढ़कर हँसते हुए श्वेतकी

ओर बढ़े। इसी समय भीष्मको प्रेरणा हुई- महाबाहु भीष्म। शीघ्र ही इसे मारनेका उपाय करो। विश्वकर्ता विधाताने यही इसके वधका समय निश्चित किया है। इस समय श्वेतको रथहीन देखकर सात्यकि, भीम, धृष्टद्युम्न, द्रुपद, केकयराजकुमार, धृष्टकेतु और अभिमन्यु एक साथही अपने रथ लेकर चले। किंतु द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और शल्यके सहित भीष्मने उन्हें रोक दिया। इसी समय श्वेतने तलवार खींचकर भीष्मका धनुष काट डाला। भीष्मने तुरंत ही दूसरा धनुष उठा लिया और बड़ी तेजीसे श्वेतकी ओर चले। बीचमें सामने आनेपर उन्होंने भीमको, अभिमन्युको, सात्यकिको, धृष्टद्युम्नको और केकयराजको बाण मारकर रोक दिया। फिर वे सीधे श्वेतके सामने पहुँचे और अपने धनुषपर एक मृत्युके समान बाण चढ़ाकर उसे ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित करके छोड़ा। वह बाण श्वेतके कवचको फोड़कर उसकी छातीमें घुस गया और फिर बिजलीके समान चमककर पृथ्वीमें प्रवेश कर गया। इस प्रकार उसने श्वेतका प्राणान्त कर दिया। उसे पृथ्वीपर गिरते देख पाण्डव और उनके पक्षके क्षत्रियलोग बड़ा शोक करने लगे तथा आपके पुत्र और अन्य कौरवलोग बड़े प्रसन्न हुए। दु:शासन तो बाजा बजाता हुआ इधर-उधर नाचने लगा।

वीर श्वेत ने आज पाण्डवों की ओर से पहला स्मरणीय ध्यानाकर्षक पराक्रम किया। उसने सर्वप्रथम अजेय धनुर्धर परशुराम शिष्य भीष्म का धनुष तोड़ डाला। यह देखकर उत्तेजित हुए पाण्डव-सैनिकों ने जयघोष किया- विराटपुत्र श्वेत जयतु... जयतु। उससे देवव्रत भीष्म सन्तप्त हुए।

अब सन्ध्या होने को थी। सूर्य का तेज पश्चिमी क्षितिज पर आ रुका था। पहले दिन के युद्ध के कुछ ही क्षणों के शेष रहते पितामह भीष्म ने ब्रह्ममन्त्र से अभिमन्त्रित एक चमकता हुआ बाण श्वेत पर फेंका। वह श्वेत का वक्ष भेदकर पार चला गया। गतप्राण होकर श्वेत अपने रथ में ही गिर गया। इतने में सूर्य डूब गया। युद्ध रुक गया। सूर्यास्त होनेपर युद्ध समाप्ति का शंख फूंका गया।

मत्स्य नरेश विराट अपने शिबिर में रानी सुदेष्णा के पास आते हैं। सुदेष्णा बोली, आर्य आप। समझ गई नि:सन्देह मेरे पुत्र उत्तर ने कोई उत्तम कार्य किया होगा। आप मुझे शायद उसीकी बधाई देने आये है। यही कारण है तो हैना। विराट बोला, हां तुम्हारे पुत्र ने बडा उत्तम कार्य किया है सुदेष्णा। हम दोनों उस पर जितना भी गर्व करे उतना ही कम है। पांडवसेना की बात छोडो उसकी प्रशंसा तो कौरव सेना भी कर रही है। जानती हो महारथी शल्य ने उसे सादर प्रणाम किया। हार्दिक बधाई हो सुदेष्णा। मैंने विराट नगर की ओर सवार दौडा दिये है कि वे उत्तरा को ले आये। सुदेष्णा बोली, यह क्या किया आपने? यह क्या उसके यात्रा करने के दिन है? वो तो पूरे दिनों से है। विराट बोला, तो क्या हुआ? अच्छा है महारथी मामा के भान्जे महारथी पिता के पुत्र, महारथी पितामहों के पौत्र को रणभूमि में ही जन्म लेने दो। सुदेष्णा बोली, आपने पहिले उसके महारथी मामा का नाम क्यों लिया? वो तो सबसे छोटा है। विराट बोला, आज की रात वो सबसे छोटा नहीं है। आज की रात उसीकी रात है महारानी सुदेष्णा। आज वो किसी से भी छोटा नहीं है। रणभूमि कुरुक्षेत्र में किसी महारथी का आकार उससे ऊंचा नहीं। सुदेष्णा बोली, सच आर्य तनिक उसके युद्ध के बारे में विस्तार से सुनाइये आर्य। विराट बोला, जब शल्य से उसका सामना हुआ तो शल्य ने उससे पूछा तुम कौन हो बालक? तो उसने कहा मैं मत्स्य नरेश का पुत्र उत्तर हूं किन्तु यह मेरा आधा परिचय है। आप मेरी आयु न देखिये अपने शरीर पर लगे हुये बाणों से घावों की गहराई को देखिये। हे महारथी शल्य जिस महारथी के सारथी स्वयं वासुदेव कृष्ण है, विराट के युद्ध में उस यौद्धा का सारथी मै था। फिर द्वन्द्व युद्ध आरम्भ हुआ। तुम्हारे पुत्र ने शल्य की छाती भेदी। शल्य ने तुम्हारे पुत्र की छाती छेदी। दोनों लहुलुहान। हर यौद्धा कुरुक्षेत्र में इस द्वन्द्व युद्ध को रूककर देख रहा था और सबकी आंखों से ऐसा लग रहा था मानो कह

रहे हो धन्य है वो माता जिसने इस वीर बालक को जन्म दिया। सुदेष्णा बोली, किन्तु आप रो क्यों रहे है? विराट बोला, ये आंसू गौरव के है सुदेष्णा, ये आंसू आनन्द के हैं। ये आंसू सम्मान की लेखनी है जो आज उत्तर का पिता होने के कारण मिली है। यह आंसू तुम भी बहा लो सुदेष्णा। सुदेष्णा बोली, आप मुझसे कुछ छिपा रहे हैं आर्यपुत्र। विराट बोले, सम्मान कभी छिपाया नहीं जाता सुदेष्णा। मैं तो चिल्ला-चिल्ला कर यह कहना चाहता हूं कि हे संसार देख मैं महारथी उत्तर का पिता हूं। कल तक का उसका परिचय यह था कि वो मेरा पुत्र है किन्तु आज से मेरा परिचय यह है कि मैं महारथी उत्तर का पिता हूँ। और तुम्हारा परिचय यह है कि तुम महारथी उत्तर की माता हो। हम तो धन्य हो गये सुदेष्णा। जानती हो रणभूमि कुरुक्षेत्र में क्या हुआ। महारथी शल्य अपने रथ से उतर कर तुम्हारे पुत्र के शव को प्रणाम कर बोले, हे बालक महारथी मैं तेरी मृत्यु को सादर प्रणाम करता हूँ। सुदेष्णा बोली, उन्होंने किससे कहा? मेरे उत्तर के शव से। विराट बोला, हां सुदेष्णा। मैं तुम्हारे पुत्र के वीरगति को प्राप्त होने पर शोक प्रकट नहीं कर सकता। यह उसकी मृत्यु का अपमान होगा। मेरी बधाई स्वीकार करो उत्तर की माता और यह कहकर सुदेष्णा और विराट रोने लगे।

मृत्यु वृद्धावस्था की प्रतीक्षा नहीं करती, उसका ग्रास कोई भी, कभी भी बन सकता है। रानी ने अपनी सिसकी बड़ी कठिनाई से रोकी। उनका हृदय फटा जा रहा था, किंतु वे जानती थीं कि पुत्र के वीरगति पाने पर क्षत्राणियाँ अश्रु नहीं बहातीं। कुमार उत्तर। अंतत: उनके मुख से निकला, क्यों? वह अनाथ था क्या? उसका कोई रक्षक नहीं था? कोई सहायक नहीं था? श्वेत तो उसका सौतेला है, किंतु शंख तो उसका सहोदर है। उसके पिता तो वीर हैं और मत्स्यों की सेना उनके साथ है। अपने अज्ञातवास में अर्जुन को उसकी आवश्यकता थी तो वह उसे भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण और दुर्योधन से भी बचा लाया था। पांडवों को अब उसकी आवश्यकता नहीं थी क्या कि उन्होंने उसकी रक्षा का कोई प्रयत्न नहीं किया? वे भूल गए कि वह उनके पुत्र अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा का भाई है?

युद्ध के आरंभ में पांडव सेनाएँ, मध्यम पांडव भीम के नेतृत्व में आगे बढ़ीं। वे दुर्योधन से लड़ना चाहते थे और उनके मन में दुर्योधन के वे सारे अपराध सजीव हो उठे थे, जो शैशव से अब तक उनके प्रति उसने किए थे। कौरवों की ओर से दुर्योधन, दुर्मख, दु:शल, शल, दु:शासन, दुर्मर्षण, विविंशति, चित्रसेन, विकर्ण, पुरुमित्र, जय, भोज, भूरिश्रवा इत्यादि ने मिलकर भीम को घेरा। वे दुर्योधन को भी बचाना चाहते थे और अपने प्रधान सेनापति भीष्म की भी रक्षा करना चाहते थे। भीम को इतने योद्धाओं में घिरा देखकर द्रौपदीपुत्र प्रतिविंध्य, सर्वग, श्रुतकर्मा, शतानीक और श्रुतसेन उनकी रक्षा को आए। दूसरी ओर से वीर अभिमन्यु, नकुल, सहदेव और धृष्टद्युम्न अपने-अपने युद्ध छोड़कर, उनकी सहायता को पहुँचे।

स्वयं दुर्योधन और कुरुवृद्ध भीष्म को लगा कि आज शल्य राजकुमार श्वेत के हाथों नहीं बच पाएँगे। वे दोनों ही अपनी पूरी शक्ति से राजकुमार श्वेत पर टूट पड़े। राजकुमार को इस प्रकार घिरा देखकर, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु, स्वयं प्रधान सेनापति धृष्टद्युम्न, मध्यम पांडव भीम, सात्यकि, महाराज विराट तथा कैकय राजकुमार उनकी रक्षा को दौड़े। शिखंडी ने तो ऐसा भयंकर आक्रमण किया कि दुर्योधन तक भीष्म की मृत्यु के भय से थर्रा उठे। राजकुमार श्वेत को जैसे साँस लेने का अवसर मिल गया। उन्होंने अविलंब कुरुवृद्ध भीष्म पर ऐसा भयंकर आक्रमण किया कि उनकी रक्षा को आए सारे महारथी भीष्म को अकेला छोड़कर भाग गए। किसी ने कभी कल्पना भी नहीं की होगी कि विराटपुत्र राजकुमार श्वेत के आक्रमण से शल्य, कृपाचार्य और कृतवर्मा जैसे क्षत्रिय योद्धा समरभूमि छोड़कर भाग जाएंगे। राजकुमार श्वेत ने भीष्म को स्तब्ध ही नहीं कर दिया, उन्होंने उनका ध्वज भी काटकर फेंक दिया। कौरवों ने यही माना कि कौरवों के प्रधान सेनापति भीष्म को राजकुमार श्वेत के हाथों वीरगति प्राप्त हो गई है। दुर्योधन, बाह्लीक, कृतवर्मा, कृपाचार्य, शल,

जलसंध, विकर्ण, चित्रसेन, विविंशति तथा शल्य पुन: लौटे। भीष्म तब तक पर्याप्त क्षतविक्षत हो चुके थे। वे धनुष उठाते थे और राजकुमार श्वेत तत्काल उनका धनुष काट देते थे। तीन बार उनके धनुष की प्रत्यंचा कट चुकी थी। अंतत: भीष्म स्वयं को राजकुमार के सम्मुख पूर्णत: असहाय पाकर अपने क्रोध में उनके अश्वों पर प्रहार कर बैठे। उन्होंने राजकुमार के रथ के सारथी और अश्वों को मार दिया। रथहीन राजकुमार को कौरव योद्धाओं ने दूसरा रथ नहीं लेने दिया। महारानी सुदेष्णा युद्ध के पहले ही दिन युद्ध के नियम टूटने लगे। कौरवों ने यह विचार नहीं किया कि श्वेत रथहीन हैं और अभी युद्धके लिए तैयार नहीं हैं। उन्होंने यह भी विचार नहीं किया कि वे अकेले हैं और उनको घेरे हुए अनेक महारथी खड़े हैं। पर राजकुमार श्वेत कहाँ माननेवाले थे। उन्होंने एक शक्ति उठाकर भीष्म पर फेंकी और कहा, भीष्म। युद्ध ही करना है तो पुरुष बनो। भीष्म ने वह शक्ति अपने बाणों से काट दी। राजकुमार धनुष-बाण की दूर से प्रहारक शक्ति और रथ की सुरक्षा, दोनों ही से वंचित हो चुके थे। उन्होंने एक भारी गदा उठाकर भीष्म के रथ पर दे मारी। कौरवों के प्रधान सेनापति का रथ भंग हो गया और वे धरती पर आ रहे। अब वे दोनों ही विरोधी थे। पर वे कौरव योद्धाओं में घिरे थे। शल्य ने तत्काल भीष्म को रथ उपलब्ध करा दिया। भीष्म पुन: रथारूढ़ हो चुके थे। राजकुमार की सहायता के लिए सात्यकि, भीम, धृष्टद्युम्न, कैकय राजकुमार, धृष्टकेतु तथा अभिमन्यु, सब ही दौड़े। कौरव नहीं चाहते थे कि उनके मध्य घिरे श्वेत को किसी प्रकार की कोई सहायता पहुँच सके। अत: स्वयं भीष्म, द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्य ने राजकुमार श्वेत की सहायता के लिए आनेवाले पांडव पक्ष के वीरों को रोक दिया। राजकुमार उनके बाणों के सम्मुख असहाय थे। उन्होंने अंतिम उपाय के रूप में धनुर्धारी भीष्म के अत्यंत निकट जाकर अपने खड्ग से उनका धनुष काट डाला। भीष्म ने तत्काल नया धनुष उठाकर भीम को रोका और अभिमन्यु पर भीषण प्रहार किया। सात्यकि और धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्य से पार नहीं पा रहे थे। वे आगे बढ़ने का कोई मार्ग खोज नहीं पा रहे थे। भीष्म नहीं चाहते थे कि पांडवों को और समय मिले और वे उनके हाथ में आए राजकुमार श्वेत को सुरक्षित निकाल ले जाएँ। उन्होंने तत्काल ब्रह्मास्त्र द्वारा अभिमंत्रित बाण राजकुमार श्वेत पर चला दिया। ब्रह्मास्त्र अभिमंत्रित वह बाण, हाथ में खड्ग लिए, असहाय से भूमि पर खड़े, राजकुमार का कवच काटकर उनके हृदय को छेद गया।

महारानी। राजकुमार श्वेत धराशायी हो गए, किंतु सारी समरभूमि में उनकी यशोगाथा गूँज रही थी। स्वयं श्रीकृष्ण और अर्जुन आए और उन्होंने पांडव सेना को पीछे हटा लिया। राजकुमार श्वेत के देहांत के पश्चात् पांडवों में युद्ध का उत्साह नहीं रह गया था। महारानी। युद्ध के पहले ही दिन मत्स्यराज विराट के दो-दो पुत्रों ने अपने श्रेष्ठ क्षत्रिय होने का प्रमाण दिया है और संसार के श्रेष्ठतम योद्धाओं के मन पर अपनी क्षमता और वीरता की धाक जमाई है। श्रीकृष्ण और अर्जुन, मेरे सम्मुख नतमस्तक थे और स्वयं सम्राट युधिष्ठिर आकर मुझे अपनी भुजाओं में भर कर युद्धक्षेत्र से शिबिर तक ले आए।

और शंख? सुदेष्णा का कंठ रूँध गया। वे आगे बोल नहीं पाईं।

तो शंख सुरक्षित है? मेरा एक पुत्र तो अभी तक जीवित है? महाराज विराट ने उत्तर दिया, हाँ महारानी। वीरवर अर्जुन स्वयं अपने रथ में राजकुमार को सुरक्षित अपने स्कंधावार में लौटा लाए थे।

इतिहास इन सैनिकों के नाम तक नहीं बतायेगा क्योंकि ये बेनाम लोग नहीं है। इनके माता-पिता ने बडे चाव से इनके नाम चुने होंगे। ये जो एक-दूसरे को मारकर मर गये ये न एक-दूसरे के मित्र थे और न ही शत्रु। यदि ये रणभूमि के सिवा कहीं और मिलते तो शायद एक-दूसरे की तरफ देख कर मुस्कुराते। शायद एक-दूसरे से पूछते कि वो कौन है और कहां का रहनेवाला है? शायद एक-दूसरे को बताते कि उनके घर में कौन कौन है? इन शवों पर यमराज के सिवा किसी और का हस्ताक्षर ही नहीं है। कौन किससे लडा और किस तरह से मरा? अब ये कोई नहीं बता सकता है? अपने घरों में दूर लाशों

की इस भीड में लाश अकेली पड़ी है। इसलिये समय का यहां ठहरने का कोई अर्थ नहीं।

पौष वद्य द्वितीया सन्ध्या की लम्बी-लम्बी छायाएँ कुरुक्षेत्र पर फैल गयीं। सरोवरों से युक्त इस रम्य, हरे-भरे प्रदेश के प्रतिदिन चहचहानेवाले अनेक पक्षी आज सवेरे थर्रा देनेवाला रणघोष सुनकर जाने कहाँ चले गये थे। कहीं-कहीं घोंसलों में उनके छोटे बच्चे चोंच खोलकर किकियाते हुए माता-पिता की प्रतीक्षा कर-कर के थक गये थे। सब निढाल होकर निश्चेष्ट पड़े थे। सूर्यग्रहण के दिन कुरुक्षेत्र के सूर्यकुण्ड में स्नान कर याचकों को दान देने को क्षत्रियों ने कई वर्षों से पवित्र माना था। प्रत्येक वर्ष सूर्यग्रहण के दिन इस सरोवर-तट पर अनगिनत दान-वेदियाँ खड़ी की जाती थीं। उसी स्थान पर आज दोनों सेनाओं के व्यवस्थापन पथकों ने आम्र, चन्दन बिल्व आदि पवित्र काष्ठों की चिताओं की पंक्तियाँ रची थीं। राजा विराट ने राजकुमार उत्तर और श्वेत के लिए सबसे ऊँची चन्दन की लकड़ियों की चिताएँ रचवायी थीं। वृद्ध मत्स्यराज विराट को अपने पुत्रों की चिता में अग्नि देनी पड़ी थी। अनेक सैनिकों के शव उनके दलों ने लम्बी-लम्बी सामूहिक चिताओं पर रख दिये थे। दूर-दूर से आये अन्त्यक्रिया करनेवाले पुरोहित उनके लिए अन्तिम संस्कार के मन्त्रों का पठन कर रहे थे। तट पर जलती चिताओं के प्रतिबिम्ब सूर्य सरोवर में पड़ने से, अपना नाम सार्थक करता हुआ वह प्रज्वलित-सा दिख रहा था।

कुन्ती विदुर के घर में चिन्तामग्न उदास है। दासी ने सूचना दी महारानी गान्धारी पधार रही है। कुन्ती ने उठ गान्धारी के चरण स्पर्श किये और प्रणाम कर बोली आइये दीदी और बैठिये। कैसी हैं आप। गान्धारी बोली, जिस माता के पुत्रों के बीच घमासान युद्ध चल रहा हो वो माता कैसी हो सकती है कुन्ती। तुम्हारा अपनी दीदी के प्रति स्नेह भी अनूठा है। दीदी सामने आ जाती है तभी तुम्हे उसकी याद आती है। कुन्ती बोली, ऐसा न कहो दीदी। आप तो जानती है कि मैं वहां आकर ज्येष्ठश्री को...। गान्धारी बोली, यह सब दिखावे की बातें है चाहे तुम्हारे साथ कैसा भी अन्याय क्यों न हुआ हो कुन्ती। किन्तु वो ही तुम्हारा घर है और जब कि विदुर भी अपनी पत्नी समेत बाहर गये हुये है तब तो तुम्हारे यहां रहने का कोई औचित्य ही नहीं। मैं तुम्हें लेने आई हूं। हमारे हृदय कोई राज्य नहीं है जहां सुख और दु:ख का विभाजन हो। रणभूमि से चाहे कैसा भी समाचार क्यों न आये, वो हम दोनों का है। हम दोनों के लिये है। कुन्ती प्रतीक्षा के इन कठोर दिन और रातों में मैं अकेली नहीं रह सकती। मेरी आंखों पर बन्धी यह पट्टी मेरे आंसू तो नहीं पोंछ सकती। कुन्ती बोली, मैं क्षमा चाहती हूं दीदी किन्तु हम केवल दो मातायें ही नहीं है, हम दो क्षत्राणियां भी हैं दीदी जिनके पुत्र आपस में युद्ध कर रहे हैं। मैंने विजय का आशीर्वाद न ही दुर्योधन को दिया और न ही अपने पुत्रों को। किन्तु वासुदेव के साथ युधिष्ठिर को मैंने यह सन्देश अवश्य भिजवाया था कि जिस दिन के लिये क्षत्राणियां पुत्रों को जन्म देती है वो दिन आ गया है। राजभवन में तो मेरे लिये बहुत जगह है दीदी और मैं यह जानती भी हूं किन्तु हस्तिनापुर के राजभवन में मेरे इस सन्देश के लिये तो कोई जगह नहीं हो सकती दीदी और इस सन्देश को मैं यहां विदुर के घर में अकेला भी नहीं छोड़ सकती। गान्धारी बोली, विजयश्री का आशीर्वाद मैंने भी दुर्योधन को नहीं दिया था। वो तो मेरे आशीर्वाद का कवच पहिने बिना ही कुरुक्षेत्र की ओर कूचकर गया था। मैंने तो उससे यह भी नहीं कहा था कि जिस दिन के लिये क्षत्राणियां अपने पुत्र को जन्म देती है वो दिन आ गया है। लाक्षागृह द्यूतक्रीडा और द्रौपदी के अपमान की यादों ने मेरी जिव्हा में काट डाल दी। कुन्ती हो सके तो मेरे पुत्रों को क्षमा कर देना। दुर्योधन मन का मैला नहीं परन्तु उसकी आंखों पर उसके अहं और हठ की पट्टी बंधी हुई है। वो अपने पिताश्री की नेत्रहीनता का उत्तराधिकारी है। कुन्ती बोली, पितामह, आचार्य द्रोण, और कृपाचार्य ये सब तो ज्येष्ठश्री की नेत्रहीनता के उत्तराधिकारी तो नहीं है न दीदी। द्रौपदी वस्त्राहरण का आदेश दुर्योधन ने तो नहीं दिया था, हस्तिनापुर की रोगी और लांछित राजनीति और उसके निहित स्वार्थ ने दिया था दीदी। दुर्योधन तो उस कलंकित

राजनीति का केवल एक प्रतिबिम्ब है। तो किसका दोष है। इस मैली राजनीति को धोने के लिये रणभूमि में रक्त का एक सरोवर बनाना पडेगा और हे दीदी यह सरोवर मेरे और आपके पुत्रों के लहू का होगा। गान्धारी बोली, मैं आज तुम्हे यह समाचार देने आयी थी जो आज वहां बडा रण हुआ। हजारों हजार यौद्धा सैनिक मारे गये। बडे-बडे राजनैतिक ध्वज कटे किन्तु उस युद्ध में तुम्हारे पुत्र भी सुरक्षित रहे और मेरे पुत्र भी। कुन्ती बोली, किन्तु इस युद्ध के हर दिन के उपरान्त आनेवाली सांझ में आपके पास मुझे देने के लिये यह सूचना नहीं होगी। भगवान आपके पुत्रों को लम्बी आयु दे दे। गान्धारी बोली, भगवान तुम्हारे पुत्रों को भी लम्बी आयु दे। अब देखना यह है कि भगवान अब किसके आशीर्वाद की लाज रखते हैं।

धृतराष्ट्रने पूछा संजय। सेनापति श्वेत जब युद्धमें शत्रुओंके हाथसे मारा गया तो उसके पश्चात् महान् धनुर्धर पाञ्चालवीरोंने पाण्डवोंके साथ मिलकर क्या किया? सञ्जयने कहा- महाराज। उस भयंकर दिनके पूर्वाह्नका अधिकांश भाग बीत जानेपर लगभग दोपहरके समय आपकी तथा शत्रुकी सेनाओंमें पुन: युद्ध होने लगा। विराटके सेनापति श्वेतको मरा हुआ और कृतवर्माके साथ शल्यको युद्धके लिये तैयार देखकर आहुति पड़नेसे प्रज्ज्वलित हुई अग्निके समान राजकुमार शंख क्रोधसे जल उठा। उस बलवान वीरने अपना महान् धनुष चढ़ाकर मद्रराज शल्यको मार डालनेकी इच्छासे उनपर आक्रमण किया। उस समय बहुत-से रथ चारों ओरसे शंखकी रक्षा कर रहे थे। वह बाणोंकी वर्षा करता हुआ शल्यके रथके पास पहुँच गया। तब मौतके मुखमें पड़े हुए मद्रराज शल्यको बचानेके लिये आपकी सेनाके सात महारथी बृहद्बल, जयत्सेन, रूक्मरथ, विन्द, अनुविन्द, सुदक्षिण और जयद्रथ उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये और शंखके मस्तकपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। उन सातोंको एक साथ प्रहार करते देख सेनापति शंख क्रोधमें भर गया और भल्ल नामके तीखे बाणोंसे उनके धनुष काटकर सिंहनाद करने लगा। तब महाबाहु भीष्म मेघके समान गर्जना करते हुए विशाल धनुष हाथमें लेकर शंखपर चढ़ आये। उन्हें आते देख पाण्डवी सेना भयसे थर्रा उठी। इतनेहीमें भीष्मसे शंखकी रक्षा करनेके लिये अर्जुन उसके आगे आकर खड़े हो गये; फिर तो भीष्मके साथ इन्हींका युद्ध छिड़ गया।

इधर, शल्यने हाथमें गदा ले अपने रथसे उतरकर शंखके चारों घोड़ोंको मार डाला। जब घोड़े मर गये तो शंख भी तलवार हाथमें लेकर तुरंत रथसे कूद पड़ा और अर्जुनके रथपर जा बैठा। वहाँ जानेपर ही उसे कुछ शान्ति मिली। अब भीष्म पञ्चाल, मत्स्य, केकय और प्रभद्रकदेशीय योद्धाओंको बाणोंसे मार-मारकर गिराने लगे। फिर, उन्होंने अर्जुनका सामना छोड़कर पञ्चालराज द्रुपदपर धावा किया और उनकी सेना भीष्मके बाणोंसे दग्ध होती दिखायी देने लगी। वे पाण्डव-पक्षके महारथियोंको ललकार-ललकारकर मारने लगे। सारी सेना उन्मथित हो उठी, उसका व्यूह भङ्ग हो गया। इसी बीचमें सूर्य भी अस्त हो गया; अत: अँधेरेमे कुछ सूझ नहीं पड़ता था और भीष्म बड़े वेगसे बढ़ रहे थे- यह देखकर पाण्डवोंने अपनी सेनाको पीछे हटा लिया।

प्रथम दिनके युद्धमें जब पाण्डव-सेना पीछे हटा ली गयी और कुपित हुए भीष्मका पराक्रम देखकर दुर्योधन खुशी मनाने लगा, उस समय धर्मराज युधिष्ठिर अपने सभी भाइयों और सम्पूर्ण राजाओंको साथ लेकर तुरंत कृष्णके पास गये और अपनी पराजयकी चिन्तासे बहुत दुखी होकर कहने लगे- श्रीकृष्ण। देखते हो न? गर्मीकी मौसममें सूखे हुए तिनकेकी ढेरीको जैसे आग क्षणभरमें जला डालती है, उसी प्रकार भयानक पराक्रम दिखानेवाले भीष्म अपने बाणोंसे मेरी सेनाको भस्मसात् कर रहे हैं। क्रोधमें भरे हुए यमराज, वज्रधर इन्द्र, पाशधारी वरुण और गदाधारी कुबेरको तो कदाचित् युद्धमें जीता जा सकता है; किंतु इन महान् तेजस्वी भीष्मको जीतना असम्भव है। ऐसी दशामें मैं तो अपनी बुद्धिकी दुर्बलताके कारण भीष्मरूपी अगाध जलमें नावके बिना डूब रहा हूँ। अब इन राजाओंको मैं भीष्मरूपी कालके मुखमें नहीं डालना चाहता। भीष्म बड़े भारी अस्त्रवेत्ता हैं; उनके पास जाकर मेरे सैनिक उसी प्रकार नष्ट हो जायँगे, जैसे

प्रज्ज्वलित अग्निमें गिरकर पतंगे। केशव। अब मेरे जीवनके जितने दिन शेष हैं, उनमें वनमें रहकर कठोर तपस्या करूँगा; किंतु इन मित्रोंको युद्धमें मरने न दूँगा। भीष्म प्रतिदिन मेरे हजारों महारथियों और श्रेष्ठ योद्धाओंका संहार कर रहे हैं। माधव। तुम्हीं बताओ, अब क्या करनेसे हमारा हित होगा?

पांडव और कृष्ण रातमें युद्ध शिबिर में सभी घायलों सैनिकों का उपचार करते हैं और उनकी व्यथा पीडा पूछने आये हैं। कृष्ण बोले, बडे भैया। युधिष्ठिर बोले, शवों की गिनती घायलों की गिनती से बडी है तो कल क्या होगा वासुदेव? कृष्ण बोले, राजवंशों और राष्ट्रों को साधारण दिनों के माप से नहीं मापना चाहिये। इतिहास के दिन इन दिनों में बहुत बडे होते हैं। इसलिये कल की बात न कीजिये और युद्ध में न घाव गिनिये और न ही शव।

युधिष्ठिर रात्रि भर चिंता करते रहे थे। स्वयं को बहुत सांत्वना देते रहने पर भी वे किसी प्रकार आश्वस्त नहीं हो पाए थे। समरभूमि में आज उन्होंने जो कुछ भी देखा था, वह उनकी नींद उड़ा देने के लिए पर्याप्त था। वे पहले ही जानते थे कि संख्या में उनकी सेना, दुर्योधन की सेना से बहुत कम थी, उस पर यदि पितामह एक-एक दिन में इस प्रकार उनकी इतनी सेना का संहार करते जाएँगे तो पांडव क्या कर पाएँगे। युधिष्ठिर का मन बार-बार पीछे लौट जाता है और उन्हें स्मरण कराता है कि वे कभी भी युद्ध के पक्ष में नहीं थे।

कृष्ण ने युधिष्ठिर की चिंतित मुद्रा देखी तो मुस्कराए और बोले, धर्मराज किस बात से चिंतित हैं? युधिष्ठिर बोला, चिंतित धर्मराज नहीं हैं श्रीकृष्ण। चिंतित तो राजा युधिष्ठिर हैं। कृष्ण बोले, पर कारण क्या है? मैं तो राजा के लिए चिंता का कोई कारण नहीं देखता। युधिष्ठिर बोले, मेरी चिंता हैं पितामह भीष्म। आपने कल समरभूमि में देखा ही था। पितामह को देखकर, उनके बाणों से आहत होकर, मेरी सारी सेना भागने लगती है। उनके सम्मुख कोई ठहर ही नहीं पाता। कृष्ण बोले, सेना का यह भागना-दौड़ना तो आपके लिए राज्यप्राप्ति का व्यायाम है धर्मराज। इसमें चिंता के लिए अवकाश कहाँ हैं? युधिष्ठिर बोले, राज्य के लिए पराक्रम कर मैं क्षीण होता जा रहा हूँ। मेरे वीर भाई बाणों से पीड़ित होकर कितने कृश हो रहे हैं। एक ही दिन में उनके घावों से इतना रक्त बहा है कि राज्य के लिए मेरी आकांक्षा ही नहीं, उसके लिए मेरी सारी आशा भी बह गई है। राज्य की तो बात ही क्या, अब तो हमारा जीवन भी दुर्लभ होता जा रहा है। मेरे लिए अपने भाइयों का जीवन ही पर्याप्त है। भीष्म दिव्यास्त्रों के ज्ञाता हैं। वे हमारी सेना का संहार कर डालेंगे। अपने मित्रों, संबंधियों और इन भूपालों को भीष्म रूपी मृत्यु को परोसने से तो अच्छा है कि मैं वन में चला जाऊँ और दुष्कर तपस्या करूँ। रणक्षेत्र में अपने मित्रों की व्यर्थ हत्याएँ क्यों करवाऊं?

कृष्ण बोले, आप तो एक ही दिन के युद्ध से इतने विचलित हो गए धर्मराज। ठीक है कि कल भीष्म ने अपना पराक्रम प्रकट किया है और मत्स्यराज के दो-दो पुत्र एक ही दिन में वीरगति को प्राप्त हो गए हैं। पर आनेवाला प्रत्येक नया दिन पिछले दिन से भिन्न होता है। किसी भी सूर्यास्त का अर्थ यह तो नहीं होता कि अगले दिन का सूर्योदय नहीं होगा।

युधिष्ठिर बोले, आप ठीक कह रहे हैं मधुसूदन। किंतु सूर्यास्त के पश्चात भी सूर्योदय का विश्वास हमें इसलिए रहता है, क्योंकि हम मध्याह्न के सूर्य को भी देख चुके हैं। अंधकार से उसका प्रचंड संघर्ष हमें उसकी इच्छा का बल दर्शाता है। किंतु मुझे तो अपना कोई योद्धा मार्तंड बनकर भीष्म से लड़ता हुआ दिखाई नहीं दिया, मैं अब किसके विश्वास पर सूर्योदय की प्रतीक्षा करूं? कृष्ण बोले, क्यों आपको अपने भाइयों के शौर्य पर विश्वास नहीं हैं? अर्जुन को पराजित करनेवाला कौन है कौरवों की सेना में? भीम के बल की थाह कौन पा सकता है, उनके सेनापतियों में से? जिसके साथ भीम, नकुल, अर्जुन और सहदेव जैसे भाई हों, जिसके ध्वज के तले अभिमन्यु जैसा पुत्र युद्ध कर रहा हो, जिसे सात्यकि, मत्स्य नरेश, महाराज द्रुपद और महारथी शिखंडी का सहयोग प्राप्त हो और जिसकी सेना का प्रधान सेनापति धृष्टद्युम्न

जैसा महारथी हो उस सम्राट को उदास और युद्ध के परिणाम से चिंतित होने का कोई अधिकार नहीं है। आज यह युद्ध कोई समाप्त नहीं हुआ है। आज तो यह युद्ध आरम्भ हुआ है, आज युद्ध का पहिला दिन है। एक दिन यह युद्ध समाप्त भी होगा परन्तु ये निश्चित है कि यह युद्ध आप ही की विजय पर समाप्त होगा बडे भैया। आपकी ही विजय पर समाप्त होगा इसलिये चिन्ता मत कीजिये और सूर्य के उदय होने की प्रतीक्षा कीजिये।

युधिष्ठिर बोले, एक भीम ही तो क्षत्रिय धर्म का विचार करता हुआ, केवल अपने बाहुबल के भरोसे, अपनी पूर्ण शक्ति से युद्ध कर रहा है। पर भीम दिव्यास्त्रों का ज्ञाता नहीं है। उसके धनुष पर साधारण बाण होते हैं। वह अपनी गदा और खड्ग से लड़ता है। वह एक-एक कर सैनिकों का संहार करता है। अकेला भीम कई वर्षों में भी शत्रु सेना का संहार नहीं कर सकता। युधिष्ठिर के मन में कहीं कोई आशा जाग ही नहीं रही थी।

कृष्ण ने पूछा, अर्जुन तो दिव्यास्त्रों का ज्ञाता है। उस पर आपको विश्वास क्यों नहीं है? युधिष्ठिर ने अर्जुन पर दृष्टिपात करते हुए कहा, अर्जुन दिव्यास्त्रों का ज्ञाता है, पर मैं सव्यसाची अर्जुन को इस युद्ध में मध्यस्थ का-सा व्यवहार करते देख रहा हूँ। वह आपका मित्र और शिष्य है। आप उसके मन को मुझसे कहीं अधिक जानते हैं। कृष्ण ने भी मुस्कराकर अर्जुन की ओर देखा और बोला, वह अपने भाइयों और दुर्योधन में मध्यस्थ कैसे हो सकता है। युधिष्ठिर बोले, मैं भी यही सोचता हूँ कि उसे मध्यस्थ नहीं होना चाहिए, किंतु कल के युद्ध से मुझे लगा कि दिव्यास्त्रों का ज्ञाता होते हुए भी वह भीष्म और द्रोणाचार्य से दग्ध होते हुए हम लोगों की उपेक्षा कर रहा है। आप स्वयं अर्जुन से पूछें कि क्या ऐसा नहीं है?

कृष्ण ने युधिष्ठिर की ओर देखा और बोला, धर्मराज। आप तनिक भी चिंतित न हों। भीष्म अमरता लेकर नहीं आए हैं। उनके मोह के कारण ही युद्ध की स्थिति आई है। जहाँ और इतने लोगों के प्राण जाएँगे, वहीं भीष्म भी अपने प्राणों से ही अपने मोह का मूल्य चुकाएंगे। प्राण तो उनके जाएँगे ही। अर्जुन चाहे, न चाहे। अर्जुन नहीं करेगा तो शिखंडी उनका वध करेगा। अपनी वीरता के कारण भी, अपने वैर के कारण भी, अपने संकल्प के कारण भी। कृष्ण ने गंभीर होकर कहा, अर्जुन। अपने शत्रुओं से प्रेम करना सबसे बड़ा पातक है। अर्जुन के मुख से अनायास ही निकल गया, पितामह हमारे शत्रु नहीं हैं।

कृष्ण का स्वर कुछ अलौकिक होता जा रहा था, अर्जुन। व्यक्ति को उसकी निश्चयात्मिका बुद्धि ही अपने लक्ष्य तक ले जाती है। उस निश्चयात्मिका बुद्धि के लिए सारे मोहों से मुक्त होना पड़ता है। तुम पितामह का मोह भी नहीं छोड़ोगे और दुर्योधन से लड़कर विजयी होना भी चाहोगे, तो ये दोनों काम नहीं होंगे। व्यवसायात्मिका बुद्धि का केवल एक निश्चय होता है। सहस्त्रों शाखाएँ तो संकल्परहित अनिश्चयात्मिका बुद्धि में होती हैं, और उसका परिणाम केवल दु:ख और पराजय है। यह कहकर युधिष्ठिर शोकसे बेसुध हो बहुत देरतक आँखें बन्द किये मन-ही-मन कुछ सोचते रहे। तब श्रीकृष्ण उन्हें शोकसे पीडित जान समस्त पाण्डवोंको आनन्दित करते हुए बोले- भारत। तुम्हें इस प्रकार शोक नहीं करना चाहिए। तुम्हारे भाई कैसे शूरवीर और विश्वविख्यात धनुर्धर हैं। मैं और महान् यशस्वी सात्यकि तुम्हारा प्रिय कार्य करनेमें लगे हैं। ये विराट, द्रुपद, धृष्टद्युम्न तथा अन्यान्य महाबली राजालोग तुम्हारे कृपाकांक्षी और भक्त हैं। महाबली धृष्टद्युम्न तो सदा ही तुम्हारा हितचिन्तक और प्रिय कार्य करनेवाला है, इसने सेनापतित्वका भार लिया है और यह शिखण्डी तो निश्चय ही भीष्मका काल है।

प्रथम दिनके युद्धमें पाण्डव सेनाको पीछे हटा लेना पड़ा। पितामह भीष्मको ऐसा प्रचण्ड पराक्रम प्रकट हुआ उस दिन कि दुर्योधन प्रसन्न हो गया। धर्मराज युधिष्ठिर घबड़ा गये। सब भाइयों और सहायक राजाओंके साथ कृष्णके समीप जाकर वे भीष्मको अजेय बतलाते हुए बोले- महान तेजस्वी भीष्मको जीतना असम्भव है। भीष्म रूपी अगाध जलमें तो नावके बिना डूब रहा हूं। इन राजाओंको मैं भीष्मरूपी कालके मुखमें नहीं डालना चाहता। मैं वनमें जाकर तप करके जीवन काट

दूँगा, किन्तु इन मित्रोंको मरने नहीं दूँगा। भीष्मने प्रथम दिन ही मेरे बहुतसे महारथियों तथा सहस्त्रों योधाओंको मार दिया है। हे कृष्ण अब आप ही बतलाओ कि हमारा हित क्या करनेसे होगा। श्रीकृष्णने चिन्तित शोक संतप्त राजा युधिष्ठिरको आश्वासन दिया- आपको इस प्रकार शोक नहीं करना चाहिए। आपके भाई शूरवीर तथा विश्वविख्यात धनुर्धर हैं। आपके सहायक भी प्रख्यात महारथी हैं। युद्धमें तात्कालिक विजय-पराजयका महत्व नहीं है।

ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिर ने म्लान, उदास मुख से कृष्ण से कहा, यदि पितामह इसी प्रकार पाण्डव-सेना का संहार करते रहे तो हमारी पराजय तो निश्चित ही है। कृष्णने युधिष्ठिर से कहा हे धर्मराज, धैर्य रखो, घबराओ मत। कुछ लड़ाइयों में हमारी हार होगी ही। किन्तु युद्ध में अन्तिम विजय निश्चित हमारी ही है। हमारी सेना में महारथी सात्यकि, पराक्रमी विराट, धैर्यशील धृष्टद्युम्न जैसे वीर हैं। प्रलयंकर ताण्डव करनेवाला प्रत्यक्ष शिवशंकर से युद्ध करनेवाला तुम्हारा भ्राता, गाण्डीवधारी पार्थ हमारी सेना में है। महाबली, पराक्रमी भीम हमारी सेना में है। चिन्तित मत हो। विजयश्री अन्ततः तुम्हें ही वरण करेगी। मेरे भक्तों का विनाश कभी नही होता। कृष्ण का वचन सुनकर निर्भय हुये सभी योद्धाओंने उन्हे प्रणाम किया। युधिष्ठिर ने पूछा, क्या कल के युद्ध में भी हमारा सेनापत्य पांचाल युवराज धृष्टद्युम्न युद्ध करनेवाले है? कृष्ण बोले, जबतक रणभूमि में सेनापति का पत्तन नहीं होता तबतक सेनापति बदला नहीं जाता और मेरा अनुमान है कि कौरव भी इसी नीति को अपनायेंगे। पितामह भीष्म में केवल संचित पराक्रम ही नहीं है, उनमें अनुभव का योग भी है। आज के युग में दो महत्त्वपूर्ण और कई साधारण साथी मारे गये थे।

कृष्णकी ये बातें सुनकर युधिष्ठिरने महारथी धृष्टद्युम्नसे कहा, धृष्टद्युम्न। तुम हमारे सेनापति हो। वासुदेवने तुम्हें यह सम्मान दिया है। पूर्वकालमें जैसे कार्तिकेय देवताओंके सेनापति हुए थे, उसी प्रकार तुम भी पाण्डवोंके सेनानायक हो। पुरुषसिंह। अब अपना पराक्रम दिखाओ और कौरवोंका संहार करो। मैं, भीम, अर्जुन, नकुल-सहदेव और द्रौपदीके सभी पुत्र तथा और भी जो प्रधान-प्रधान राजा हैं, सब तुम्हारे पीछे चलेंगे।

यह सुनकर धृष्टद्युम्नने वहाँ उपस्थित सभी लोगोंको प्रसन्न करते हुए कहा, कुन्तीनन्दन। भगवान शंकरने मुझे पहलेसे ही द्रोणाचार्यका काल बनाया है। आज मैं भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, शल्य और जयद्रथ इन सभी अभिमानी वीरोंका मुकाबला करूँगा। शत्रुहन्ता धृष्टद्युम्न जब इस प्रकार युद्धके लिये तैयार हुआ तो रणोन्मत्त पाण्डव वीर जय-जयकार करने लगे। तत्पश्चात् युधिष्ठिरने सेनापति धृष्टद्युम्नसे कहा, देवासुर-संग्राममें बृहस्पतिने इन्द्रके लिये जिस क्रौञ्चारण नामक व्यूहका उपदेश दिया था, उसीकी रचना हमलोग करें।

दूसरे दिन युधिष्ठिरकी आज्ञाके अनुसार धृष्टद्युम्नने अर्जुनको सम्पूर्ण सेनाके आगे रक्खा। रथपर बैठे हुए अर्जुन अपनी रत्नजटित ध्वजा और गाण्डीव धनुषसे ऐसी शोभा पा रहे थे, जैसे सूर्यकी किरणोंसे सुमेरुपर्वत। राजा द्रुपद बहुत बड़ी सेनाको साथ लिये उस क्रौञ्चव्यूहके शिरोभागमें स्थित हुए। कुन्तिभोज और चेदिराज- ये दोनों नेत्रोंके स्थानपर रक्खे गये। दार्शाणक, प्रभद्रक, अनूपक और किरातोंका समूह ग्रीवाके स्थानपर था। पटच्चर, पौण्ड्र, पौरवक और निषादोंके साथ राजा युधिष्ठिर उसके पृष्ठभाग में खड़े हुए। उसके दोनों पंखोंके स्थानमें भीम और धृष्टद्युम्न थे। द्रौपदीके पुत्र, अभिमन्यु, महारथी सात्यकि तथा पिशाच, दरद, पुण्ड्र, कुन्डीविष, मारुत, धेनुक तङ्गण, परतङ्गण, बालक, तित्तिर, चोल और पाण्डय देशोंके वीर दक्षिण पक्षमें स्थित हुए और अग्निवेश्य, हुण्ड, मालव, दानभारि, शबर, उद्भस, वत्स तथा नाकुलदेशीय वीरोंके साथ नकुल और सहदेव वाम पक्षमें स्थित हुए। इस व्यूहके दोनों पक्षोंमें दस हजार, शिरोभागमें एक लाख, पृष्ठभागमें एक अरब बीस हजार और ग्रीवामें एक लाख सत्तर हजार रथ खड़े किये गये थे। दोनों पक्षोंके आगे, पीछे

और सब किनारोंपर पर्वतके समान ऊँचे गजराजोंकी कतारें थीं। विराट, केकय, काशिराज जौर शैव्य ये उसके जंघास्थानकी रक्षा करते थे। इस प्रकार उस महाव्यूहकी रचना करके पाण्डव अस्त्र-शस्त्र और कवच आदिसे सुसज्जित हो युद्धके लिये सूर्योदयकी प्रतीक्षा करने लगे। आप आज के युद्ध की तैयारी करें धर्मराज। आज आपको निराशा हाथ नहीं लगेगी। कृष्ण की मुस्कान युधिष्ठिर के लिए आश्वस्तकारिणी थी। युधिष्ठिर बोले, तुम्हारी वाणी सत्य हो वासुदेव। कृष्ण बोले, मुझे प्रसन्नता है महाराज कि आप भी युद्ध के प्रति इतने सतर्क हो गए हैं। धृष्टद्युम्न आज तुम्हारे कौशल की परीक्षा है।

## ८) महाभारत का युद्ध (दूसरा दिन) कलिंग राज्य के पुत्रों का वध

पितामह भीष्म ने कुरु-सेना को बाण के आकार में खड़ा किया था। बाण के त्रिकोणी अग्रभाग पर सेनापति भीष्म के दायीं और दुर्मुख, दु:शासन, दुर्धर्ष, दु:सह आदि अपने दस भ्राताओं सहित स्वयं दुर्योधन खड़ा था।

अपनी मोटी और टेढ़ी भौंहें तानकर पाण्डवों की सेना के क्रौंच पक्षी को देखते हुए वह तिरस्कारपूर्वक गरजा, हे कुरुवीरो, पितामह को साक्षी रखकर आज हम पाण्डवों के इस क्रौंच का हृदय बेध डालेंगे। अपने कण्ठ की धमनियों को पूर्णत: फुलाकर उसने अपने विदारक नामक शंख को पूरी प्राणशक्ति से फूँका। उसकी लसोड़ा जैसी बड़ी-बड़ी आँखों की नसों में रक्त उतर आया। सेनापति पितामह के गंगनाभ शंख बजाते ही अपने कन्धे पर रखी भारी गदा को हवा में नचाते हुए दुर्योधन अपनी सेना को उत्साहित करने के लिए जोर से चिल्लाया- आरो S... आक्रमण...आक्रमण आखेट पर झपट पड़नेवाले व्याघ्र की भाँति कौरव-सेना पाण्डव-सेना पर टूट पड़ी। रण-गर्जनाओं के कोलाहल में खड्ग, गदा, मूसल आदि शस्त्र एक-दूसरे से टकराने लगे। भीम, अभिमन्यु, धृष्टद्युम्न, विराट सभी ने पितामह पर धावा बोल दिया।

दुर्योधन ने पांडवों का व्यूह देखा तो पिछले दिन के युद्ध की विजय का मद जैसे उतर गया। वह देख रहा था कि पांडवों ने कदाचित् सारी योजना भीष्म के वध की दृष्टि से बनाई थी। भीष्म नहीं रहे तो उनके दिव्यास्त्रों का रक्षा-कवच समाप्त हो जाएगा। तब तो अकेला भीम ही उसकी सेना को कुचल डालेगा।

उसने शत्रुंजय, दु:शासन, विकर्ण, नन्द, उपनन्द तथा चित्रसेन को आज्ञा दी, संस्थान, शूरसेन, वेत्रिक, कुकुर, आरोचक, त्रिगर्त, भद्रक, यवन तथा पारिभद्रक सेनाओं के साथ जाकर महासेनापति भीष्म की रक्षा करो। एक क्षण को भी यह मत भूलना कि भीष्म की रक्षा अपनी विजय की रक्षा है।

दुर्योधन ने देखा कि भीष्म की बाण-वर्षा ने पांडवों का व्यूह भंग कर दिया था। अभी युद्ध का आरंभ ही था और पांडवों की रथसेना का पलायन आरंभ हो गया था। दुर्योधन के अधरों पर मुस्कान प्रकट हुई पितामह के इसी गुण के कारण ही तो उसने उनको अपना सेनापति बनाया था।

संजयने कहा, राजन्। दुर्योधनने जब उस दुर्भेद्य क्रौञ्चव्यूहकी रचना देखी और अत्यन्त तेजस्वी अर्जुनको उसकी रक्षा करते पाया तो द्रोणाचार्यके पास जाकर वहाँ उपस्थित सभी शूरवीरोंसे कहा- वीरों। आप सब लोग नाना प्रकारके अस्त्रसंचालनकी विद्या जानते हैं और युद्धकी कलामें प्रवीण हैं। आपमेंसे एक-एक वीर भी युद्धमें पाण्डवोंको मारनेकी शक्ति रखता है; फिर यदि सभी महारथी एक साथ मिलकर उद्योग करें, तब तो कहना ही क्या है?

उसके इस प्रकार कहनेसे भीष्म, द्रोण और आपके सभी पुत्र मिलकर पाण्डवोंके मुकाबलेमें एक महान् व्यूहकी रचना करने लगे। भीष्म बहुत बड़ी सेना साथ लेकर सबसे आगे चले। उनके पीछे कुन्तल, दशार्ण, मगध, विदर्भ, मेकल तथा कर्णप्रावरण आदि देशोंके वीरोंको साथ लेकर महाप्रतापी द्रोणाचार्य चले। गान्धार, सिन्धुसौवीर, शिबि और वसाति वीरोंके साथ शकुनि

द्रोणाचार्यकी रक्षामें नियुक्त हुआ। इनके पीछे अपने सभी भाइयोंके साथ दुर्योधन था। उसके साथ अश्वातक, विकर्ण, अम्बष्ठ, कोसल, दरद, शक, क्षुद्रक और मालव देशके योद्धा थे। इन सबके साथ वह शकुनिकी सेनाकी रक्षा कर रहा था। भूरिश्रवा, शल, शल्य, भगदत्त और विन्द-अनुविन्द ये व्यूहके वाम भागकी रक्षा करने लगे। सोमदत्तका पुत्र, सुशर्मा, कम्बोजराज सुदक्षिण, श्रुतायु और अच्युतायु- ये दक्षिण भागके रक्षक हुए। अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ये बहुत बड़ी सेनाके साथ व्यूहके पृष्ठभागमें खड़े हुए। इनके पृष्ठपोषक थे केतुमान, वसुदान, काशिराजके पुत्र तथा और दूसरे-दूसरे देशोंके राजालोग।

राजन। तदनन्तर, आपके पक्षके सब योद्धा युद्धके लिये तैयार हो गये और बड़े आनन्दके साथ शफबजाते हुए सिंहनाद करने लगे। हर्षमें भरे हुए सैनिकोंके सिंहनाद सुनकर कौरवोंके पितामह भीष्मने भी सिंहके समान दहाड़कर उच्च स्वरसे शफबजाया। तदुपरान्त शत्रुओंने भी अनेकों प्रकारके शफ, भेरी, पेशी और आनक आदि बाजे बजाये; उनकी तुमुल ध्वनि सब ओर गूँजने लगी। श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेवने भी अपने-अपने शफबजाये। तथा काशिराज, शैव्य, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, विराट, सात्यकि, पञ्चालदेशीय वीर और द्रौपदीके पुत्र भी बड़े-बड़े शफबजाकर सिंहोंके समान दहाड़ने लगे। उनके शफ्नादकी ऊँची आवाज पृथ्वीसे लेकर आकाशतक गूँज उठी। इस प्रकार कौरव और पाण्डव एक दूसरे को पीड़ा पहुँचाते हुए युद्धके लिये आमने-सामने खड़े हो गये।

धृतराष्ट्रने पूछा- जब दोनों ओरकी सेना व्यूहरचनापूर्वक खड़ी हो गयी तो योद्धाओंने किस प्रकार एक-दूसरेपर प्रहार करना शुरू किया? सञ्जयने कहा, जब दोनों ओर समानरूपसे सेनाओंकी व्यूह-रचना हो गयी और सब ओर सुन्दर ध्वजाएँ फहराने लगीं, तब दुर्योधनने अपने योद्धाओंको युद्ध आरम्भ करनेकी आज्ञा दी। कौरव वीरोंने जीवनका मोह छोड़कर पाण्डवोंपर आक्रमण किया। फिर तो दोनों ओरकी सेनाओंमें रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। रथसे रथ और हाथीसे हाथी भिड़ गये। हाथी और घोड़ोंके शरीरोंमें असंख्य बाण घुसने लगे। इस प्रकार घमासान युद्ध आरम्भ हो जानेपर पितामह भीष्म अपना धनुष उठाकर अभिमन्यु, भीम, सात्यकि, कैकेय, विराट और धृष्टद्युम्न आदि वीरोंपर तथा चेदि और मत्स्य देशके राजाओंपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। उनकी मारसे पाण्डवोंका व्यूह टूट गया, सारी सेना तितर-बितर हो गयी। कितने ही सवार और घोड़े मारे गये, रथियोंके झुंड-के-झुंड भाग चले।

अर्जुन महारथी भीष्मके ऐसे पराक्रमको देखकर क्रोधमें भर गये और कृष्णसे बोले, जनार्दन। अब पितामह भीष्मके पास रथ ले चलिये, नहीं तो ये हमारी सेनाका अवश्य ही संहार कर डालेंगे। सेनाको बचानेके लिये आज मैं भीष्मका वध करूँगा। श्रीकृष्णने कहा- अच्छा, धनञ्जय। अब सावधान हो जाओ। यह देखो, मैं अभी तुम्हें पितामहके रथके पास पहुँचाये देता हूँ। ऐसा कहकर श्रीकृष्ण अर्जुनके रथको भीष्मके पास ले चले। भीष्मने जब देखा अर्जुन अपने बाणोंसे शूरवीरोंका मर्दन करते हुए बड़े वेगसे आ रहे हैं, तो आगे बढ़कर उनका सामना किया।

दूसरे दिन का युद्ध आरम्भ हुआ। हाथी चिंघाड़ रहे है। धृष्टद्युम्न व द्रोणाचार्यमें घमासान युद्ध हो रहा है। धृतराष्ट्र बोला, क्या द्रुपद पुत्र वीरगति को प्राप्त हो गया संजय? संजय बोला, लगता तो यही था महाराज लेकिन कुन्ती पुत्र भीम बचाकर उसे बाहर निकाल ले गये। धृतराष्ट्र बोले, तातश्री को देखा इस युद्ध में केवल उनकी प्रतिज्ञा भाग ले रही है। वे स्वयं रणभूमि में नहीं है फिर भी वे जब तक है ढाढ़स है। वे अनुज पुत्रों के भांति ही मेरे पुत्रों पर आंच नहीं आने देंगे। हे संजय सर्वनाश और हमारे बीच उनके आशीर्वाद के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। आगे देखो संजय।

अर्जुन बोला, हे गिरिधर पितामह को नहीं रोका गया तो हमारी विजय असम्भव है और यदि विजय मिली भी तो हम शवों के भयंकर वन में अकेले खडे होंगे। उनका कोई न कोई उपाय तो करना ही पडेगा। कृष्ण बोले, हे महाबाहो तुम्हारे ध्यान

में कौनसा उपाय है? अर्जुन बोला, विजय के लिये पितामह का वध आवश्यक है। रथ उनकी ओर ले चलिये। कृष्ण बोले, जैसी तुम्हारी इच्छा। अर्जुन बोला, इच्छा नहीं गिरिधर, कर्त्तव्य पालन। कृष्ण बोले, लो पार्थ इस बाणद्वारा पितामह ने तुम्हे आशीर्वाद भी दिया और तुम्हारा स्वागत भी किया है। अर्जुन ने बाण भीष्म की ओर चलाया। भीष्म ने विजयी भव का आशीर्वाद दिया। अर्जुन बोला, हे भरतवंशी, हे पितामह मेरा युद्ध आपसे नहीं है, अत्याचार से है, अज्ञान से है, अन्धकार से है, अन्याय से है, असत्य और अधर्म से है। तो क्या आप अधर्म के पक्ष में युद्ध करने आये हैं पितामह? भीष्म बोले, दोनों सेनाये वाद-विवाद के सारे सागर पार कर इस रणभूमि में पहुंची है। वैसे भी वाद-विवाद के लिये रणभूमि उचित स्थान नहीं है। इसलिये जो कुछ भी कहना है अपने बाणों की भाषा में कहो पुत्र। मैं तुम्हे उसी भाषा में उत्तर दूंगा। अर्जुन बोला, जो आज्ञा। अर्जुन ने शंख फूंक दिया और भयंकर घमासान भीष्म और अर्जुन के बीच युद्ध होने लगा।

दूत दुर्योधन के पास समाचार लाया युवराज। पांडवों के रथारोही भाग रहे हैं और अर्जुन उससे बहुत पीड़ित हैं। वे कह रहे हैं कि भीष्म चेदि और मत्स्य सेना का संहार कर रहे हैं और उनसे सुरक्षित होकर, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शल्य, विकर्ण और आप मिलकर पांचाल सेना को समाप्त किए दे रहे हैं। अपनी सेना की रक्षा के लिए भीष्म का वध आवश्यक हो गया है। उन्होंने श्रीकृष्ण से अपना रथ भीष्म के सम्मुख ले चलने के लिए कहा है।

दुर्योधन के अधरों की मुस्कान तत्काल विलीन हो गई। उसने संकेत से धावक को जाने के लिए कहा और पूर्वदेशीय, सौवीर और केकय सेनाओं को भीष्म के सम्मुख खड़े हो, उनकी रक्षा करने का संकेत किया और जयद्रथ, द्रोणाचार्य, शल्य, शकुनि और विकर्ण को भीष्म के निकट जाने का आदेश दिया।

अर्जुन पितामह के सम्मुख खड़ा था और भीष्म उनके योद्धाओं से घिरे उसे देख रहे थे। दोनों ओर से निरंतर बाण चल रहे थे। दुर्योधन के मन में बहुत स्पष्ट था कि यदि भीष्म इसी प्रकार अड़े रहें तो वे अर्जुन को सर्वथा असहाय कर सकते हैं। ऐसे में दुर्योधन और उसके साथी योद्धा अर्जुन को घेरकर उसका वध भी कर सकते हैं।

दुर्योधन भीष्म के पास जाकर बोला, पितामह। कृष्ण के साथ आकर अर्जुन, हमारे समस्त सैनिकों के सक्रिय होने पर भी, हम लोगों का मूलोच्छेद कर रहा है। आप के और आचार्य द्रोण के वर्तमान होते हुए भी हमारे सैनिक मारे जा रहे हैं।

भीष्म बोले, युद्धों में सैनिक मारे ही जाते हैं युवराज। दुर्योधन बोला, आप ही के कारण कर्ण ने अपने शस्त्र डाल दिए हैं और उसके समान उत्कट योद्धा दर्शक के समान एक किनारे बैठा हुआ यह युद्ध देख रहा है। नहीं तो इस समय वह समरभूमि में अर्जुन से युद्ध कर रहा होता और मुझे आपसे इस प्रकार अर्जुन को मारने की प्रार्थना नहीं करनी पड़ती। हे गंगानंदन। ऐसा कुछ कीजिए, जिससे अर्जुन को मार डाला जाए। उसे मरना ही होगा, क्योंकि उसके जीते जी हमारी विजय नहीं हो सकती। भीष्म क्रोधित हो बोले, क्षत्रिय धर्म को धिक्कार है। दुर्योधन जानता था कि भीष्म की नीति पांडवों को मारने की नहीं थी और दुर्योधन का एक मात्र लक्ष्य पांडवों का वध करना ही था। दुर्योधन और भीष्म-दोनों एक ही सेना के अंग थे। तो वह सेना क्या करेगी? भीष्म पांडवों के आस-पास लड़ना चाहते थे और दुर्योधन पांडवों से लड़ना चाहता था। दुर्योधन को लगा कि भीष्म को अर्जुन का वध करने को कहकर स्वयं यहीं रुके रहना कदाचित् बुद्धिमत्ता नहीं थी। इससे उसका लक्ष्य पूरा नहीं होगा। उसे भीष्म को बाध्य करना चाहिए कि वे अर्जुन से युद्ध करें। उसे स्वयं न भी मारें तो उसे इतना असमर्थ तो कर ही दें कि कोई और योद्धा उसकी हत्या कर सके।

दुर्योधन ने विकर्ण और अश्वत्थामा को संकेत किया। वे लोग उसके निकट आ गए तो वे तीनों भीष्म को घेरकर आगे बढ़े। वस्तुत: वे भीष्म को तीन दिशाओं से घेरकर चौथी दिशा की ओर धकेल रहे थे और चौथी दिशा अर्जुन की ओर जाती

थी। भीष्म और अर्जुन को आमने-सामने पड़ने में अधिक देर नहीं लगी। सामने पड़ते ही उनका युद्ध आरंभ हो गया था। वे एक-दूसरे पर बाण बरसा रहे थे।

और सहसा भीष्म ने वह काम किया, जिसकी दुर्योधन को कभी आशा नहीं थी। उन्होंने खींचकर एक के पश्चात् एक, तीन बाण कृष्ण को दे मारे। दुर्योधन के नेत्र जैसे फटे रह गए। वह सोच भी नहीं सकता था कि भीष्म इस प्रकार अर्जुन को छोड़कर कृष्ण को घायल कर देंगे। पर अर्जुन को न मारकर कृष्ण को मारने का क्या लाभ? और सहसा दुर्योधन के मन में प्रसन्नता की एक लहर प्रवाहित हो गई। भीष्म ने पांडवों को न मारने की प्रतिज्ञा की थी। उन्होंने कृष्ण के संबंध में ऐसी कोई प्रतिज्ञा नहीं की थी। आज यदि वे कृष्ण का वध कर देते हैं तो पांडव तो अपने आप ही मारे जाएंगे। यह कृष्ण ही है, जो पांडवों का बल है। इसी ने उन्हें युद्ध के लिए उकसाया हे। यही उनसे युद्ध करवा रहा है। यही नहीं रहेगा तो पांडव युद्ध में समक्ष नहीं रहेंगे। पितामह ने यह अच्छी युक्ति सोच निकली है। इस प्रकार वे अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा भी कर लेंगे और पांडवों का अंत भी कर देंगे। कृष्ण के शरीर से रक्त बह रहा था।

कृष्ण को आहत देखकर अर्जुन जैसे आपे से बाहर हो गया था। उसका रौद्र रूप प्रकट हो रहा था। कहीं पितामह ने अर्जुन को उत्तेजित करने के लिए ही तो कृष्ण को आहत नहीं किया? पितामह अर्जुन का वध नहीं करेंगे, इसलिए अर्जुन भी उनके प्रति कठोर नहीं होता था। अर्जुन और भीष्म में जो युद्ध चल रहा था, उसे देखकर दुर्योधन पितामह को किसी प्रकार का कोई दोष नहीं दे सकता था; वहाँ भयंकर युद्ध चल रहा था। उन दोनों के बाणों के गलियारों में किसी और योद्धा को प्रवेश का साहस भी नहीं हो सकता था, किंतु उसका क्या लाभ? वह एक प्रकार से दोनों ही पक्षों की ओर से अपनी प्रहारक शक्ति का प्रदर्शन मात्र था। उनमें से घातक प्रहार कोई भी नहीं कर रहा था।

शिबिर में द्रौपदी के कक्ष में महारानी सुदेष्णा आती और बोली लगता है यह तो धनंजय का शंख बज रहा है। द्रौपदी बोली, हां। लगता है कोई भयंकर द्वन्द्व युद्ध होनेवाला है। सुदेष्णा बोली, कदाचित दुर्योधन और अर्जुन में... द्रौपदी बोली नहीं महारानी। वो असभ्य महारथी भले मेरे महारथी का कैसे सामना करेगा? सुदेष्णा बोली, तो फिर अंगराज कर्ण। द्रौपदी बोली, पितामह ने उस सूतपुत्र को युद्ध करने की आज्ञा ही नहीं दी है। वो भी नारियों की भांति अपने शिबिर में बैठकर कोलाहल सुन रहा होगा।

कर्ण अपने शिबिर में बैठा बोला, हे भगवन सारे अन्याय मेरे ही साथ क्यों? और मेरी विवशता देखिये कि मैं भीष्म पितामह जैसे शूरवीर की वीरगति को प्राप्त होने की प्रार्थना भी नहीं कर सकता। किन्तु मैं उनके वीरगति को प्राप्त होने की प्रतीक्षा कर रहा हूं। मैं यह पाप कर रहा हूं महादेव। मेरे और इस युद्ध के बीच वो ही खडे हैं और यदि मैंने इस युद्ध में भाग नहीं लिया तो चाहे मैं हजार बार जन्म ले लूं फिर भी मैं दुर्योधन का ऋण नहीं चुका पाऊंगा। हे महादेव मुझे इस दल-दल से निकालो। गंगा पुत्र से कहो कि वो मुझे इस युद्ध में भाग लेने के लिये आमंत्रित करें।

युद्ध को आरंभ हुए दो दिन हो चुके थे। कर्ण लगातार युद्ध को देख रहा था, उसके समाचार सुन रहा था। उसका रक्त खौल-खौल जाता था और दाँत भिंच-भिंच जाते थे। इतना बड़ा युद्ध हो रहा था और वह द्रष्टा बना बैठा उसे देख रहा था, जैसे युद्धकर्म से उसका कुछ लेना-देना ही न हो। पर, वह कर ही क्या सकता था।

कभी-कभी तो उसकी बुद्धि उस पर सहस्त्र-सहस्त्र धिक्कार बरसाने लगती थी। उसने ऐसी शपथ ही क्यों ली? अब भीष्म यदि युद्ध की समाप्ति तक जीवित रहे और समरभूमि से नहीं हटे तो कर्ण इसी प्रकार शून्य में अपना खड्ग भाँजता रहेगा। उसे स्वयं को श्रेष्ठ क्षत्रिय प्रमाणित करने का कोई अवसर नहीं मिलेगा? क्या इस संसार में कभी कोई नहीं जान

पाएगा कि वह भी कुंती का ही पुत्र है और इस नाते वह पांडुपुत्र है? हस्तिनापुर के सम्राट का ज्येष्ठ पुत्र।

और उसका मन काँपकर रह गया। कैसी विचित्र स्थिति है उसकी। एक ओर तो वह संसार को यह बताने को तड़प रहा है कि वह श्रेष्ठ क्षत्रिय है, वह कुंती का पुत्र है। हस्तिनापुर के महाराज पांडु का पुत्र है और दूसरी ओर वह इसी सूचना के सार्वजनिक हो जाने के भय से इतना भयभीत था। यह सूचना एक बार किसी एक व्यक्ति के कानों में पड़ जाए तो कौरवों और पांडवों का युद्ध तत्काल बंद हो जाएगा। तो फिर कर्ण अर्जुन का वध कैसे करेगा? कर्ण के मन की चिर तृष्णा कैसे शांत होगी? कभी-कभी कर्ण के मन में कहीं बहुत नीचे दबा हुआ एक दुर्बल-सा स्वर जाग उठता था वह, उसे अपने भाइयों का विरोध छोड़ देने का परामर्श देता था। क्यों व्यर्थ ही वह उस विरोध को पाले हुए है? जिस अर्जुन का वध करने को वह इतना आतुर था, उस अर्जुन को ज्ञात हो जाए कि कर्ण उसका भाई है, तो वह तत्काल अपना गांडीव उसके चरणों में धर देगा। अपना सारा विरोध भूल जाएगा। उसके मन में कर्ण के लिए तनिक भी द्वेष नहीं रहेगा।

पर जाने कर्ण का मन कैसा था कि वह अर्जुन के प्रति अपना विरोध छोड़ नहीं पा रहा था। धर्मराज को वह क्षमा कर सकता था। उस भीम की भी उपेक्षा कर सकता था। पर वह अर्जुन को क्षमा नहीं कर सकता था। क्षमा? उसका चिंतन रुक गया। अर्जुन ने उसका कोई अपराध किया है क्या, जो वह उसे क्षमा करने की बात सोच रहा था? नहीं। अर्जुन का अपराध क्या? यह तो प्रतिस्पर्धा थी... नहीं। कदाचित् ईर्ष्या थी। संभव है कि यह द्वेष ही हो। अर्जुन उसके यश के मार्ग में खड़ा था। वह उसके मार्ग की बाधा था। अर्जुन के जीवित रहते, कर्ण कभी संसार का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर नहीं हो सकता था। अर्जुन उसके यश का दस्यु था। तो कर्ण उस दस्यु को कैसे क्षमा कर दे?

और कर्ण को लगा कि वह कभी भी युधिष्ठिर नहीं हो सकता। युधिष्ठिर को राज्य का कोई मोह नहीं था। वह सम्राट होकर भी वनवास करने चला गया था और कर्ण प्रसादों में रहकर भी निर्धनता से भयभीत था। युधिष्ठिर क्षत्रिय होकर भी युद्ध करना नहीं चाहता था और यह लांछन सहने को भी प्रस्तुत था कि उसका चारित्र्य क्षत्रियों जैसा नहीं है; और कर्ण क्षत्रिय कहलाने मात्र के लिए तड़प रहा था। उसके लिए वह कुछ भी करने को प्रस्तुत था। उसे यश चाहिए था, सम्मान चाहिए था। राजसी सम्मान। तापसों का सा सम्मान उसे नहीं चाहिए था। वह उन सब लोगों को दंडित करना चाहता था, जो उसे श्रेष्ठ क्षत्रिय नहीं मानते थे। युधिष्ठिर को इसकी चिंता ही नहीं थी कि कौन उसे क्या कहता है।

कर्ण को युधिष्ठिर नहीं बनना है। उसे कर्ण ही रहना है। इसलिए उसे दुर्योधन की मित्रता चाहिए उसे युद्धकी आवश्यकता है, जिसमें वह अर्जुन का वध कर सके और संसार का श्रेष्ठतम धनुर्धर कहला सके और कर्ण को लगा कि उसके मन का वह दबा हुआ मंद स्वर फिर कुछ बल पकड़ रहा था। वह मिमियाकर धीरे-धीरे कह रहा था कि कर्ण अहंकारी है। उसे अपने अहंकार की तुष्टि चाहिए। उसके लिए वह कुछ भी कर सकता है।

**युद्ध खडा हो सामने और विवश हो वीर, पल-पल यौद्धा सोचता, होता और अधीर।**

पितामह भीष्म और अर्जुन का घनघोर धनुर्युद्ध आरम्भ हुआ। दुर्योधन, शल्य, जयद्रथ और शकुनि भी पितामह की सहायता के लिए दौड़ पड़े। पितामह के युद्धक्षेत्र में द्वैरथ युद्धों की भीड़ मच गयी। कुरुक्षेत्र की भूमि पर सैकड़ों बाणों के ढेर लग गये। दोनों ओर के आहत और मृत सैनिक भी वहीं अस्वस्थ पड़े थे। महाधनुर्धर धनंजय पितामह सहित चार महायोद्धाओं का एक के बाद एक सामना करता हुआ अचल पर्वत की भांति लड़ता रहा।

भारत वर्ष पर यह दिन बहुत भारी है। समय ने तो शवों को गिनना भी छोड़ दिया है। समय अब घाव और घायलों की तरफ नहीं देखता और समय अब कभी किसी की प्रतीक्षा ही नहीं करता। इस युद्ध के अन्त की प्रतीक्षा कर रहा है। दिन

गिन रहा है दिन भर युद्ध होता है, तीर बरसते है, छातियां ढूंढते भाले हवा में तैरते हैं। गदाओं के टकराने में चिनगारियां निकलती है और अधमरे लोग किसी महारथी के रथ को अपनी ओर आता देखते हैं लेकिन अपने आप को आते हुये रथ के रास्ते से हटने की ताकत नहीं पाते। रथ के पहियों की घडघडाहड़ में उनकी आखिरी चीख गुम हो जाती है। पलभर जो मनुष्य था वो पलभर बाद उसी मनुष्य का शव बन जाता है फिर सूरज डूब जाता है और यौद्धा सूर्योदय की प्रतीक्षा करने लगते हैं लेकिन समय उदय होनेवाले सूरज अस्त होनेवाले सूरज की तरह लहूलुहान ही दिखाई देता है और फिर तीरों की वर्षा शुरू हो जाती है। अर्जुन और भीष्म का भयंकर युद्ध हो रहा है। एक दूसरे पर बाण चला रहे हैं। अर्जुन और द्रोणाचार्य का परस्पर युद्ध हो रहा है। दुर्योधन रोष भरा बोला, पितामह वासुदेव और अर्जुन के संयोजन का सामना जब आप और द्रोण तक नहीं कर पाये है ये किसके रोके रूकेंगे और जिस योद्धा में इन्हें रोकने की क्षमता है उसे आप अपने ध्वज की छाया तक देने को तैयार नहीं है। हे कुरुश्रेष्ठ हमारी विजय के लिये अर्जुन वध आवश्यक है और आप अर्जुन वध करेंगे नहीं तो फिर कर्ण के अतिरिक्त और कौन ऐसा यौद्धा है जो अर्जुन को रोक सके। भीष्म बोले, वो यौद्धा मेरे ध्वज तले युद्ध नहीं करेगा। यदि हस्तिनापुर के प्रति मेरी निष्ठा पर तुम्हे विश्वास नहीं तो बनालो किसी और को अपना प्रधान सेनापति। दुर्योधन बोला, मैंने ऐसा नहीं कहा है पितामह और ना ही ऐसा सोच सकता हूं। भीष्म बोले, तुम्हारा सबसे बडा दोष यही है पुत्र कि तुम सोच सकते ही नहीं। यदि सोचते, या सोच सकते तो वासुदेव की बात मानकर पांडवों को पांच ग्राम दे देते। शवों के इस खलिहान के उत्तरदायी तुम्ही हो पुत्र तुम्ही और जाओ यहां से मुझे युद्ध करने दो अब। विश्वास रखो जब तक मेरे हाथ में धनुष है मैं तुम्हारी सेना को पराजित नहीं होने दूंगा। फिर से अर्जुन और भीष्म में युद्ध होने लगा। नकुल और दु:शासन परस्पर युद्ध करने लगे। भीम और दुर्योधन में युद्ध होने लगा। कृपाचार्य और युधिष्ठिर में भी युद्ध होने लगा। सहदेव और शकुनि आपस में भिड़ रहे है। भीष्म ने कृष्ण को बाण मार दिया। अर्जुन ने बाण उठाकर भीष्म पर चला दिया। एक-दूसरे के बाणों को काटने लगे। भीष्म के सारथी को मार दिया। बीच में ही भीम और दुर्योधन आगये।

उस समय अर्जुनके ऊपर भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, दुर्योधन, शल्य और जयद्रथ, शकुनि, विकर्णने बाण मारे। इस प्रकार चारों ओरसे तीखे बाणोंसे बिंध जानेपर भी महाबाहु अर्जुन तनिक भी व्यथित या विचलित नहीं हुए। उन्होंने भीष्मको, कृपाचार्यको, द्रोणाचार्यको, विकर्णको, शल्यको, दुर्योधनको बाणोंसे बींधकर तुरंत बदला चुकाया। इतनेहीमें सात्यकि, विराट, धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पाँच पुत्र और अभिमन्यु अर्जुनकी सहायताके लिये आ पहुँचे और उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। तब भीष्मने बाण मारकर अर्जुनको बींध दिया। यह देख कौरवपक्षके योद्धा हर्षके मारे कोलाहल मचाने लगे। उन महारथी वीरोंका हर्षनाद सुनकर प्रतापी अर्जुन उनके बीचमें घुस गया और महारथियोंको निशाना बनाकर अपने धनुषके खेल दिखाने लगा। अपनी सेनाको अर्जुनसे पीड़ित देख दुर्योधन भीष्मके पास जाकर बोला, तात। श्रीकृष्णके साथ यह बलवान अर्जुन हमारी सेनाकी जड़ काट रहा है। आप और आचार्य द्रोणके जीते-जी यह दशा हो रही है।

दुर्योधनके ऐसा कहनेपर भीष्म क्षत्रियधर्मको धिक्कार है यह कहकर अर्जुनके रथकी ओर बढ़े। अश्वत्थामा, दुर्योधन और विकर्णने भीष्मका साथ दिया। उधर, पाण्डव भी अर्जुनको घेरकर खड़े थे। फिर संग्राम छिड़ा। अर्जुनने बाणोंका जाल फैलाकर भीष्मको सब ओरसे ढक दिया। भीष्मने भी बाण मारकर उस जालको तोड़ डाला। इस प्रकार दोनों एक दूसरेके प्रहारको विफल करते हुए बड़े उत्साहसे लड़ने लगे। भीष्मके धनुषसे छूटे हुए बाणोंके समूह अर्जुनके बाणोंसे छिन्न-भिन्न होते दिखायी देते थे। इसी प्रकार अर्जुनके छोड़े हुए बाण भी भीष्मके सायकोंसे कटकर पृथ्वीपर गिर जाते थे। दोनों ही बलवान् थे, दोनों ही अजेय। दोनों एक दूसरेके योग्य प्रतिद्वन्द्वी थे। उस समय कौरव भीष्मको और पाण्डव अर्जुनको

उनके ध्वजा आदि चिन्होंसे ही पहचान पाते थे। उन दोनों वीरोंके पराक्रमको देखकर सभी प्राणी आश्चर्य करते थे। जैसे धर्ममें स्थित रहकर बर्ताव करनेवाले पुरुषमें कोई दोष नहीं निकाला जा सकता, उसी प्रकार उनकी रणकुशलतामें कोई भूल नहीं दीखती थी। उस समय कौरव और पाण्डवपक्षोंके योद्धा तीखी धारवाली तलवारों, फरसों, बाणों तथा नाना प्रकारके दूसरे अस्त्र-शस्त्रोंसे आपसमें मारकाट मचा रहे थे। इस प्रकार जब वह दारुण संग्राम चल रहा था, उसी समय दूसरी ओर पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न और द्रोणाचार्यमें गहरी मुठभेड़ हो रही थी।

धृतराष्ट्रने पूछा-संजय। महान् धनुर्धर द्रोणाचार्य और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नमें किस प्रकार युद्ध हुआ?

संजयने कहा, राजन्। पहले द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नको तीखे बाणोंसे बींध दिया। तब धृष्टद्युम्नने भी हँसकर द्रोणको बाणोंसे बींध डाला। यह देख द्रोणने पुन: बाणोंकी वर्षा करके द्रुपदकुमारको ढक दिया और उसको प्राणान्त करनेके लिये द्वितीय कालदण्डके समान एक भयंकर बाण हाथमें लिया। उसे धनुषपर चढ़ाते देख सारी सेनामें हाहाकार मच गया। महाराज। उस समय वहाँपर धृष्टद्युम्नका अद्भुत पुरुषार्थ मैंने अपनी आँखों देखा। उसने मृत्युके समान भयंकर उस बाणको आते ही काट दिया। फिर द्रोणके प्राण लेनेकी इच्छासे उसने बड़े वेगसे शक्तिका प्रहार किया। उस शक्तिको द्रोणाचार्यने हँसते-हँसते काट दिया और उसके टुकड़े कर डाले। यह देख उसने पुन: बाणोंसे द्रोणको घायल किया। तब द्रोणने द्रुपदकुमारका धनुष काट दिया, फिर सारथीको रथसे मार गिराया और उसके चारों घोड़ोको भी मार डाला। सारथी और घोड़ोंके मर जानेसे जब वह रथहीन हो गया तो हाथमें गदा लेकर रणमें कूद पड़ा और अपना पौरुष दिखाने लगा। इसी समय द्रोणने एक अद्भुत काम किया; धृष्टद्युम्न अभी रथसे उतरा भी नहीं था कि उन्होंने अनेकों बाण मारकर उसके हाथसे गदा गिरा दी। तब वह ढाल और तलवार लेकर बड़े वेगसे द्रोणके ऊपर झपटा, किंतु आचार्यने बाणोंकी झड़ी लगाकर उसे आगे बढ़नेसे रोक दिया। यद्यपि उसकी गति रुक गयी, तो भी वह बड़ी फुर्तीके साथ द्रोणके छोड़े हुए बाणोंको ढालसे पीछे हटाने लगा। इतनेमें महाबली भीम सहसा उसकी सहायताके लिये आ पहुँचे।

उधर द्रोणाचार्य और सेनापति धृष्टद्युम्न में घमासान युद्ध मचा था। द्रोण ने एक कालदण्ड के समान भयंकर बाण धनुष में लगाया। आँखें बन्द करते हुए कुछ मन्त्र अभिषिक्त कर उन्होंने उसे धृष्टद्युम्न पर प्रक्षेपित किया। उसकी ध्वनि इतनी भेदक और कर्कश थी कि दोनों ओर के सैनिक साँस रोककर उसे देखते ही रहे। सावधान धृष्टद्युम्न ने उस बाण को पहचानकर प्रत्याघात करनेवाली शक्ति उस पर फेंकी। उस शक्ति ने द्रोणाचार्य के कड़कड़ाते बाण के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। अब बौखला उठे द्रोणाचार्य ने अविरत बाण-वर्षा करते हुए धृष्टद्युम्न को घेर लिया। तब अपने सेनापति की रक्षा हेतु महाबाहु भीम अग्रसर हुआ। भीमने आते ही तीखे बाण मारकर द्रोणाचार्यको बींध डाला और धृष्टद्युम्नको तुरंत अपने रथपर बिठा लिया। तब दुर्योधनने भी द्रोणाचार्यकी रक्षाके लिये कलिङ्गराज भानुमान्को बहुत बड़ी सेनाके साथ भेजा। महाराज। आपके पुत्रकी आज्ञाके अनुसार कलिङ्गोंकी वह महती सेना भीमके ऊपर चढ़ आयी। द्रोणाचार्य तो विराट और द्रुपदके सामने जा डटे और धृष्टद्युम्न राजा युधिष्ठिरकी सहायताके लिये चला गया। तदनन्तर, भीम और कलिङ्गोंमे महाभयानक रोमाञ्चकारी युद्ध छिड़ गया।

भीम अपने ही बाहुबलके भरोसे धनुष टंकारते हुए कलिङ्गराजके साथ युद्ध करने लगे। कलिङ्गराजका एक पुत्र था, उसका नाम था शक्रदेव। उसने अनेकों बाणोंका प्रहार कर भीमके घोड़ोंको मार डाला। भीम बिना रथके हो गये- यह देखकर उसने जोरदार हमला किया और उनपर वर्षाकालके मेघकी भाँति बाणोंकी झड़ी लगा दी। तब भीमने उसके ऊपर एक लोहेकी गदा फेंकी। उस गदाकी चोट खाकर वह सारथीके साथ ही जमीनपर लुढ़क गया। अपने पुत्रको मरते देख

कलिङ्गराजने हजारों रथियोंकी सेना लेकर भीमको चारों ओरसे घेर लिया। भीमने वह गदा फेंककर हाथोंमें ढाल और तलवार ले ली। यह देख कलिङ्गराज क्रोधमें भर गया और उसने भीमके प्राण लेनेकी इच्छासे उनपर एक सर्पके समान विषैला बाण छोड़ा। भीमने अपनी तलवारसे उस तीखे बाणके दो टुकड़े कर दिये और उसकी सेनाको भयभीत करते हुए बड़े जोरसे हर्षनाद किया। अब तो कलिङ्गराजके क्रोधकी सीमा न रही। उसने पत्थरपर रगड़कर तीखे किये हुए तोमर भीमके ऊपर फेंके। भीमने तुरंत तलवारसे उनके टुकड़े-टुकड़े कर दिये और फिर भानुमानपर धावा किया। भानुमान्‌ने बाणोंकी वर्षासे भीमको ढक दिया और उच्चस्वरसे सिंहनाद किया। भीम भी बड़े जोरसे सिंहके समान दहाड़ने लगे। उनका विकट नाद सुनकर कलिङ्गसेना बहुत डर गयी। उसने समझ लिया कि भीम कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं, देवता हैं। इतनेमें भीम पुन: भयंकर सिंहनाद करके हाथमें तलवार ले अपने रथसे कूद पड़े और भानुमान्‌के हाथीके दोनों दाँत पकड़कर उसके मस्तकपर चढ़ गये। उन्हें चढ़ते देख भानुमान्‌ने शक्तिका प्रहार किया; पर भीमने अपनी तलवारसे उसके दो टुकड़े कर दिये और भानुमान्‌की कमरमें तलवारका एक ऐसा हाथ मारा कि उसके दो टुकड़े हो गये।

कलिंगराज और उसकी प्रचण्ड सेना भीम के मार्ग में बाधा बनकर आयी। उन्होंने उस महाबली वीर पुरुष को चारों ओर से घेर लिया। जिस प्रकार बन्द कक्ष में घिरा हुआ वनबिलाव क्रुद्ध होकर गुर्राता हुआ जिस किसी पर झपट पड़ता है, उसी प्रकार भीम रथ से उतरकर दहाड़ता हुआ कलिंगों पर टूट पड़ा।

भीम ने गदायुद्ध में कलिंग-पुत्र का वध किया। अपने पुत्र को धराशायी हुआ देखकर सन्तप्त कलिंगराज गदा उठाकर रथ से उतर आया। भीम का और उसका गदाओं का खनखनाते हुए भयंकर गदायुद्ध हुआ। दोनों ओर के सैनिक भयचकित होकर उसे देखते रहे। अन्तत: भीमने अत्यन्त चपलतापूर्वक अपनी भारी गदा का उसके पुष्ट वक्ष पर अचूक प्रहार किया। उस प्रहार से कलिंगराज का लौहत्राण टूट गया। और उसके वक्ष से अविरल रक्तधारा बहने लगी। कलिंगराज मारा गया। भीमकी गदा से भयभीत कलिंग-सेना में भगदड़ मच गयी।

फिर भीमने उसी तलवारसे उस हाथीके भी कंधेपर प्रहार किया। कंधा कट जानेसे हाथी चिंघाड़ता हुआ जमीनपर गिर पड़ा। साथ ही भीम भी कूदकर तलवार लिये पृथ्वीपर खड़े हो गये। अब वे बड़े-बड़े हाथियों को मारते-गिराते चारों ओर घूमने लगे। वे हाथीसवारोंकी सेनामें घुस जाते और तीखी धारवाली तलवारसे उनके शरीर तथा मस्तक काट डालते थे। भीम उस समय पैदल और अकेले थे, तो भी क्रोधमें भरे हुए प्रलयकालीन यमराजके समान वे शत्रुओंका भय बढ़ा रहे थे। युद्धभूमिमें विचरते समय वे नाना प्रकारके पैंतरे दिखाते थे- कभी मण्डलाकार चक्कर लगाते, कभी धक्के सहते हुए सब ओर घूमते, कभी ऊँचाईसे चलते, कभी कूदकर आगे बढ़ते, कभी सब दिशाओंमें समान गतिसे अग्रसर होते, कभी एक ही दिशामें बढ़ते जाते, कभी किसीपर बड़े वेगसे धावा करते और कभी सबके ऊपर एक साथ ही चढ़ाई कर देते थे। वे कूदकर रथोंपर पहुँच जाते और कितने ही रथियोंके मस्तक तलवारसे काटकर रथकी ध्वजाके साथ ही जमीनपर गिरा देते थे। उन्होंने कितने ही योद्धाओंको पैरोंतले कुचलकर मार डाला, कितनों को ऊपर उछालकर पटक दिया। कितनोंको तलवारके घाट उतारा, कितनोंको अपनी गर्जनासे डराकर भगाया और कितने ही वीरोंको अपने असह्य वेगसे धराशायी कर दिया। कितनोंहीने तो इन्हें देखते ही भयके मारे प्राण त्याग दिये।

यह सब होनेपर भी कलिङ्गोंकी बहुत बड़ी सेना भीमको चारों ओरसे घेरकर चढ़ आयी। उसके मुहानेपर श्रुतायुको खड़े देख भीम उसका सामना करनेको बढ़े। उन्हें आते देख श्रुतायुने भीमकी छातीमें बाण मारे। भीम क्रोधसे जल उठे। इतनेहीमें अशोक भीमका सारथी भीमके लिये एक सुन्दर रथ ले आया। उसपर आरूढ़ होकर उन्होंने तुरंत कलिङ्गवीर

श्रुतायुपर धावा किया। श्रुतायुने पुन: भीमपर बाण बरसाना आरम्भ कर दिया। उसके छोड़े हुए तीखे बाणोंसे घायल होकर भीम चोट खाये हुए साँपकी भाँति फुफकारने लगे। महाबली भीमने भी धनुष चढ़ाया और लोहेके बाणोंसे श्रुतायुको बींध डाला। साथ ही बाणोंसे उसके पहियोंकी रक्षा करनेवाले सत्य और सत्यदेवको यमलोक भेज दिया। फिर बाण चलाकर केतुमान्‌के प्राण ले लिये। यह देखकर कलिङ्गवीर श्रुतायुको बड़ा क्रोध आया और उसकी सेनाके हजारों क्षत्रियोंने भीमको घेर लिया। फिर तो चारों ओरसे भीमपर शक्ति, गदा, तलवार, तोमर, ऋष्टि और फरसोंकी वर्षा होने लगी। भीम अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षाका निवारण करके हाथमें गदा ले बड़े वेगसे कलिङ्गसेनापर पिल पड़े और सात सौ योद्धाओंको यमराजके घर भेज दिया। इसके बाद पुन: दो हजार कलिङ्ग वीरोंको उन्होंने मौतके घाट उतार दिया। भीमका यह पराक्रम अद्‌भुत था। इसी प्रकार वे बारंबार कलिङ्गोंका संहार करने लगे। महाराज। उस समय उन्हें देखकर आपके पक्षके योद्धा बारंबार यही कहते थे कि साक्षात् काल ही भीमका रूप धारण कर कलिङ्गोंके साथ युद्ध कर रहा है।

तदनन्दर, भीष्मने अपने बाणोंसे भीमके घोड़ोंको मार डाला। तब भीम गदा हाथमें लेकर रथसे कूद पड़े। इधर, सात्यकिने भीमका प्रिय करनेके लिये भीष्मके सारथीको मार गिराया। सारथीके गिरते ही घोड़े हवासे बातें करते हुए भीष्मको रणभूमिसे बाहर भगा ले गये। भीम कलिङ्गोंका संहार करके अकेले ही सेनाके बीचमें खड़े थे, तो भी कौरवपक्षके किसी भी वीरकी उनके पास जानेकी हिम्मत नहीं हुई। इतनेमें धृष्टद्युम्न वहाँ आया और उन्हें अपने रथपर बिठाकर सबके देखते-देखते अपने दलमें ले गया। भीम पाञ्चाल और मत्स्यदेशीय वीरोंसे मिले। सात्यकिने भीमकी प्रशंसा करते हुए कहा- बड़े सौभाग्यकी बात है जो आपने कलिङ्गराज भानुमान, राजकुमार केतुमान्, शक्रदेव तथा अन्य बहुत-से कलिङ्ग वीरोंका संहार किया। कलिङ्गसेनाका व्यूह बहुत बड़ा था; इसमें असंख्य हाथी, घोड़े और रथ थे और बड़े-बड़े धीर, वीर उसकी रक्षा करते थे। परंतु आपने अकेले ही अपने बाहुबलसे उसका नाश कर दिया। इतना कहकर सात्यकिने भीमको छातीसे लगा लिया और उन्हें अपने रथमें बैठाकर उनका साहस बढ़ाता हुआ वह पुन: कौरव वीरोंका संहार करने लगा।

सञ्जयने कहा- उस दिन जब पूर्वाह्णका अधिक भाग व्यतीत हो गया और बहुत-से रथ, हाथी, घोड़े, पैदल और सवार मारे जा चुके तो पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न अकेला ही अश्वत्थामा, शल्य और कृपाचार्य- इन तीन महारथियोंके साथ युद्ध करने लगा। उसने अश्वत्थामाके विश्वविख्यात घोड़ोंको बाणोंसे मार डाला। वाहनोंके मारे जानेपर अश्वत्थामा शल्यके रथपर चढ़ गया और वहींसे धृष्टद्युम्नपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। धृष्टद्युम्नको अश्वत्थामाके साथ भिड़े हुए देख सुभद्रानन्दन अभिमन्यु भी तीखे बाणोंकी वर्षा करता हुआ शीघ्र ही आ पहुँचा। उसने शल्यको, कृपाचार्यको और अश्वत्थामाको बाणोंसे बींध डाला। तब अश्वत्थामाने, शल्यने और कृपाचार्यने तीखे बाणोंसे अभिमन्युको बींध दिया।

महाराज। इतनेहीमें आपका पौत्र कुमार लक्ष्मण अभिमन्युको युद्ध करते देख उसका सामना करनेको आ गया। फिर इन दोनोंमें युद्ध होने लगा। क्रोधमें भरे हुए लक्ष्मणने अभिमन्युको अनेकों बाणोंसे बींधकर अद्‌भुत पराक्रम दिखाया। इससे अभिमन्युको बड़ा क्रोध हुआ और उसने अपने हाथकी फूर्ति दिखाते हुए बाणोंसे लक्ष्मणको बींध डाला। लक्ष्मणने बाण मारकर अभिमन्युके धनुष को काट दिया; यह देख कौरवपक्षके वीरोंने बड़ा हर्षनाद किया। अभिमन्युने एक दूसरा अत्यन्त सुदृढ़ धनुष हाथमें लिया। फिर वे दोनों एक दूसरेका वार बचाते और मारते हुए परस्पर तीक्ष्ण बाणोंका प्रहार करने लगे।

तदनन्तर, अपने महारथी पुत्रको अभिमन्युके बाणोंसे पीड़ित देख दुर्योधन उसकी सहायताके लिये आ पहुँचा। यह देख अर्जुन भी पुत्रकी रक्षाके लिये बड़े वेगसे दौड़े। तब भीष्म और द्रोणाचार्य आदि भी अर्जुनका सामना करनेको बढ़ आये। उस समय सभी प्राणी कोलाहल करने लगे। अर्जुनने इतने बाण बरसाये कि अन्तरिक्ष, दिशाएँ, पृथ्वी और सूर्य भी ढक

गये, कुछ भी नहीं सूझता था। इस घमासान युद्धमें कितने ही रथ, हाथी और घोड़े मारे गये। रथीलोग रथ छोड़-छोड़कर भागने लगे। महाराज। उस समय आपकी सेनामें एक भी योद्धा ऐसा नहीं दिखायी देता था, जो शूरवीर अर्जुनका सामना कर सके। जो-जो सामने जाता, वही-वही उनके तीखे बाणोंका निशाना होकर परलोकका अतिथि बन जाता था।

जब आपकी सेनाके वीर चारों ओर भागने लगे, तो श्रीकृष्ण और अर्जुनने अपने- अपने उत्तम शफबजाये। उस समय भीष्मने द्रोणाचार्यसे मुसकराते हुए कहा, कृष्णके साथ यह महाबली अर्जुन अकेले ही सारी सेनाका संहार कर रहा है। युद्धमें किसी तरह भी इसे जीतना असम्भव है। इस समय तो इसका रूप प्रलयकालीन यमराज के समान भयंकर दिखायी दे रहा है। देखते हैं न, हमारी यह बहुत बड़ी सेना किस तरह एक-दूसरेकी देखादेखी तेजीके साथ भागी जा रही है; अब इसे लौटा लाना बड़ा मुश्किल है। इधर, सूर्य भी अस्ताचलको जा रहा है; अत: इस समय तो सेनाको समेटकर युद्ध बंद करना ही मुझे ठीक जान पड़ता है। हमारे योद्धा थके और डरे हुए हैं, अत: अब उत्साहके साथ युद्ध नहीं कर सकेंगे। महाराज। आचार्य द्रोणसे यह कहकर भीष्मने आपकी सेनाको युद्धभूमिसे लौटाने के लिये कहा। भीष्म ने द्रोण की ओर देखा और बोला, अभिमन्यु को घेरना महँगा पड़ा है। कौरवसेना को लौटाना अब संभव नहीं है। संध्या भी हो ही रही है। मेरा विचार है कि आज युद्ध समाप्ति की घोषणा कर अब सेना को हटा ही लेना चाहिए। द्रोण बोले, जैसा आप उचित समझें। अब युद्ध के लिए कोई बहुत समय शेष भी नहीं बचा है।

इसी बीच दुर्योधन सहित अनेक ने वीर अभिमन्यु को घेर लिया। उसको संकट में फँसा देखकर कृष्ण अपने अश्वों को ललकारते हुए नन्दिघोष को अभिमन्यु के पास ले आये। अनेक वीरों से घिरे अपने पुत्र को मुक्त करने हेतु अर्जुन ने गाण्डीव से बाणों की वर्षा की। उसने दुर्योधन और उसके सहायकों को तितर-बितर कर दिया। भान्जे की सहायता के लिए पहुँचनेवाले मामा- कृष्णदेव का वन्दन करते हुए, युद्ध के दूसरे दिन का सूर्य कुरुक्षेत्र के क्षितिज के पीछे चला गया।

दुर्योधन बोला, ये सूर्य अस्त क्यों नहीं हो रहा है जब मैं चाहता हूं कि अस्त न हो तो अस्त हो गया था और जब मैं चाहता हूं कि अस्त हो तो अस्त क्यों नहीं हो रहा? द्रोणाचार्य बोले, तुम्हारे लिये भला सूर्यदेव अपनी गति क्यों बदले गान्धारीनन्दन। तुम एक शूरवीर हो, सूर्य की ओर मत देखो, शत्रुओं की ओर देखो। सूर्यास्त हो गया युद्ध बन्द होनेका शंख फूंक दिया। इस बैठकमें ही यह निश्चय हो गया कि पाण्डव सेना क्रौंचव्यूह बनायेगी। अर्जुन सबसे आगे रखे गये। कौरव सेनाने भी विशाल व्यूह बनाया। दूसरे दिनके युद्धमें भीष्मके प्रबल आघातसे पाण्डव सेनाका व्यूह छिन्न-भिन्न हो गया। सेना इधर-उधर भागने लगी। तब अर्जुनके कहनेसे श्रीकृष्ण रथको भीष्मके सम्मुख ले आये। अर्जुन और भीष्मका युद्ध अतिशय भयंकर था। युद्धका यह क्रम चलता रहा। दूसरे दिन भी पाण्डव पक्ष प्रबल पड़ता गया।

**युद्ध में किस किसका लहू गिरेगा, पहचानेगा कौन? लहू लहू में मिल जायेगा, मौत रहेगी मौन।**

रणभेरी और रण-दुन्दुभियों की ध्वनियों से दिन-भर निनादित होकर, गूँजनेवाली कुरुक्षेत्र की रणभूमि, पितामह के द्वारा दिन समाप्ति का शंख फूँकते ही एकदम नीरव हो गयी। श्रान्त-क्लान्त योद्धा अपने-अपने शिबिर को लौटने लगे। इस प्रकार सूर्यास्तके समय आपकी और पाण्डवोंकी भी सेनाएँ लौट आयीं।

आज का युद्ध समाप्त हो चुका था। सैनिक अपने शिबिरों में चले गए थे। कोई विश्राम कर रहा था, कोई अपने घावों की देख-भाल कर रहा था, कोई शल्य चिकित्सक के शिबिर में बैठा अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहा था। संभवत: कुछ लोग कल के युद्ध की तैयारी भी कर रहे थे। दुर्योधन अपने मंडप में अपने सेनापतियों से विचार-विमर्श कर रहा था और प्रधान सेनापति थे, भीष्म। कर्ण भीष्म के सामने जाना नहीं चाहता था। वह जानता था कि भीष्म के मन में उसके लिए कोई

सम्मान नहीं था। कर्ण को अपने सम्मुख देखकर वे कुछ न कुछ ऐसा अवश्य कह देंगे, जिससे उसके मन का सुषुप्त आक्रोश जाग उठेगा। उसने बार-बार प्रयत्न किया था कि उसके और कुरुवृद्ध भीष्म के मध्य की यह दूरी कम हो जाए। उन दोनों के स्वार्थों में कहीं टकराहट नहीं थी। भीष्म की वीरता के प्रति उसके मन में कहीं सम्मान भी था, पर उसका यह प्रयत्न कभी सफल नहीं हुआ था। उसके स्थान पर कुछ न कुछ ऐसा हो जाता था कि उनके मध्य की कटुता बढ़ जाती थी। तो क्या वह भीष्म को बता दे कि वह भी कुंती का ही पुत्र है। उन्हें युधिष्ठिर प्रिय है, तो कर्ण भी प्रिय होना चाहिए। पर नहीं, उन्हें यह ज्ञात हो गया तो सारा खेल ही बिगड़ जायगा।

दुर्योधन, शकुनि, दु:शासन अपने शिबिर में कर्ण के पास आते हैं। कर्ण बोला प्रणाम मामाश्री। क्या बात है मित्र। मैं तो सारे दिन युद्ध का कोलाहल सुनता रहा और सोचता रहा कि विजय किसकी हुई होगी? फिर सोचा तुम्हारे प्रधान सेनापति ने तो इच्छा मृत्यु का कवच पहिन रखा है तो विजय नि:सन्देह तुम्हारी ही हो रही होगी। शकुनि बोला, इसी इच्छा मृत्यु के कवच ने ही तो समस्या खडी कर दी है अंगराज। वे तो पांडवों का वध नहीं करेंगे। कोई और उनका वध नहीं कर सकता। यदि यह इच्छा मृत्यु का वरदान न रहा होता तो मैं कबका किसी और को प्रधान सेनापति बनवा चुका होता? यह तुम्हारे गंगापुत्र भरत शिरोमणि ये हमें हारने तो अवश्य नहीं देंगे भान्जे किन्तु यह भी सिद्ध है वो जीतने भी नहीं देंगे। दुशासन बोला, मामाश्री तो फिर ऐसे प्रधान सेनापति का अर्थ ही क्या जो न वो हारने देगा और न जीतने? दुर्योधन बोला, मैं तो उन्हें प्रधान सेनापति बनाना ही नहीं चाहता था किन्तु आप हैं कि... शकुनि बोला, कभी-कभी ये किन्तु जैसे शब्द सामने आ ही जाते हैं और इन शब्दों का सामना भी करना पडता है। यदि तुम अपने मित्र अंगराज को प्रधान सेनापति बनवा भी देते तो रणभूमि में अपने भाइयों, अपने मित्र और मामाश्री के साथ अकेले खडे दिखाई देते भान्जे। ये भारतवर्ष के इतने सारे ध्वज तुम्हारे ध्वज के साथ दिखाई दे रहे हैं वो दिखाई नहीं देते भान्जे। दुर्योधन बोला, तो मैं क्या करू मामाश्री? हमारी विजय के लिये अर्जुन वध आवश्यक है और पितामह भीष्म यह वध करेंगे नहीं और उस अर्जुन ने हमारी सेना के यौद्धाओं के शवों के ढेर लगा दिये हैं। यदि यह सम्भव होता तो किसी और को प्रधान सेनापति बनाने के लिये तो स्वयं मैं पितामह भीष्म का वध कर देता। मुझे यह युद्ध किसी भांति जीतना है। मैं यह युद्ध अपने मित्र कर्ण की सहायता के बिना नहीं जीत सकता। यदि अर्जुन प्रश्न है तो उसका उत्तर मेरा ही मित्र कर्ण है। यदि अर्जुन का उत्तर चाहते हो मामाश्री तो पितामह भीष्म के स्थान पर किसी और को प्रधान सेनापति कैसे नियुक्त किया जाये इस पर विचार करो। शकुनि बोला, इस विषय पर तो तुम्हारे मामाश्री को विचार करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यदि पांडव ये युद्ध जीतना चाहते हैं तो उन्हे भी गंगापुत्र भीष्म को रणभूमि में हटाने का कोई उपाय सोचना पडेगा तो फिर उनका कार्य हम क्यों करे भान्जे? फिर उनके साथ तो वासुदेव कृष्ण भी है। अब यह तो उन्हे सोचने दो उनका उपचार। ये कांटा तो उनके भी कंठों में अटका हुआ है। गंगापुत्र भीष्म का कांटा।

दुर्योधन कर्ण को बोला, मित्र की उपस्थिति किसी विश्राम से कम होती है। कर्ण बोला, इस भयंकर युद्ध में तुमसे दूर और युद्ध से बाहर रहकर मैं एक प्रकार की व्याकुलता का, घुटन सी अनुभव कर रहा हूँ। दुर्योधन बोला, कठिनाई तो मुझे भी हो रही है। कर्ण बोला, मैं तुम्हारी वह कठिनाई दूर करना चाहता हूँ; पर मैंने वह मूर्खतापूर्ण शपथ जो ले रखी है। विशेष बात इतनी-सी है कि तुम्हारे प्रधान सेनापति का मन अपने शत्रुओं से प्रेम करता है। ऐसे में वह उनका नाश कैसे कर सकता है? मैं देखता रहता हूँ, सुनता रहता हूँ, अनुभव करता रहता हूँ और अपना रक्त पीता रहता हूँ।

पहले दिन पांडवों की सेना पराजित हुई, उन्हें समरभूमि में हटना पड़ा, पर पांडवों का एक भी मुख्य योद्धा धराशायी नहीं हुआ। दूसरे दिन पांडवों की विजय हुई, पर तब भी उन्हें अपनी विजय का कोई मूल्य चुकाना नहीं पड़ा। उन का कोई

प्रधान योद्धा मारा नहीं गया। जो मरे वे सब साधारण सैनिक थे, जिनकी अनुपस्थिति से उनकी सेना तनिक भी दुर्बल नहीं होगी। इसका क्या अर्थ है? जब वे घिर जाते हैं, असहाय हो जाते हैं, पराजित होते हैं, पलायन करते हैं, तब भी हमारी सेना उनके किसी प्रधान योद्धा का वध नहीं करती और जब वे विजयी होते हैं तो भी उनको अपनी विजय के शुल्क स्वरूप किसी अतिरथी का बलिदान नहीं करना पड़ता। दुर्योधन बोला, क्यों? पहले दिन युधिष्ठिर के मुख्य सहायक और अर्जुन के समधी मत्स्यराज विराट के दो-दो पुत्र खेत रहे। दूसरे दिन पांडव विजयी रहे तो उस दिन हमारे योद्धा मरने चाहिए थे, किंतु हमने उन्हें बचा लिया। वे हमारे किसी महत्वपूर्ण योद्धा का वध नहीं कर पाए।

कर्ण बोला, युवराज ठीक ही कहते हैं। मत्स्यराज के पुत्र तो अपनी मूर्खता में मारे गए अथवा पांडव उनकी सुरक्षा का प्रबंध नहीं कर पाए। पर कभी आपने सोचा कि पांडवों के परिवार का एक भी योद्धा क्यों मारा नहीं गया? नकुल, सहदेव को मार गिराने में क्या कठिनाई थी? पांडवों के छोटे-छोटे बच्चे युद्ध में उन्मुक्त विचर रहे थे। वह लड़का अभिमन्यु तुम्हारे प्रधान सेनापति भीष्म से भिड़ गया था, किंतु वे सब युद्धभूमि से जीवित लौट गए। क्योंकि तुम्हारे प्रधान सेनापति उनका वध करना नहीं चाहते। वे पांचालों और मत्स्यों को तो मार गिराएँगे, किंतु पांडवों का बाल भी बाँका नहीं होने देंगे।

दुर्योधन बोला, मैंने भी इस विषय में सोचा था, मुझे लगता है कि भीष्म हों अथवा द्रोण, वे लोग पांचालों और मत्स्यों को अपना व्यक्तिगत शत्रु मानते हैं। उनका वध करने में उन्हें तनिक भी पीड़ा नहीं होती, क्योंकि वे युवराज दुर्योधन के शत्रुओं को नहीं अपने शत्रुओं को मार रहे होते हैं। पर उससे भी पांडवों की सेना तो दुर्बल होती ही है।

कर्ण बोला, यदि सारे पांचाल और मत्स्य मारे जाएँ, तो भी पांडव उतने ही शक्तिशाली रहेंगे। किंतु यदि पांडवों में से एक भीम और अर्जुन मार दिए जाएं तो सारे पांचाल और मत्स्य रोते हुए अपने घर लौट जाएँगे। भीष्म को सेना से हटा दीजिए। मैं युद्धभूमि में आ जाऊँगा और आप जानते ही हैं कि मेरा आखेट कौन है। मेरा वचन है कि मैं अर्जुन को मार गिराऊँगा और पांडव सेना तत्काल अपने शिबिर में लौट जाएगी। अर्जुन की अनुपस्थिति में युद्ध करने का उनका साहस ही नहीं होगा। मेरा यह सुविचारित मत है कि पांडवों की सेना में केवल एक योद्धा है- अर्जुन। उसका वध कर दिया जाए तो विजय आपकी है युवराज। दुर्योधन बोला, मैं पितामह से बात करूँगा। यह नहीं हो सकता कि वे प्रधान सेनापति भी हों और हमारे शत्रुओं की रक्षा भी करते रहें। वह भीष्म के मंडप में पहुँचा तो वे युद्धवेश धारण कर रहे थे।

आओ दुर्योधन। उन्होंने कहा, कुछ चिंतित लगते हो। युद्धक्षेत्र में खड़ा राजा चिंतित नहीं होगा क्या? भीष्म बोले, चिंतित तो सेनापति को होना चाहिए। दुर्योधन बोला, सेनापति तो केवल युद्ध को हारता है या जीतता है। किंतु राजा का तो राज्य भी छीन जाता है। भीष्म बोले, तो राजा दूसरों के राज्य का मोह छोड़े और अपने राज्य से ही संतुष्ट रहे। उसे न तो युद्ध करना होगा और न युद्ध हारने की आशंका ही सतायेगी। राज्य का मोह ही तो है जो राजा को चिंतित करता है। और असंख्य लोगोंकी मृत्युका कारण बनता है। दुर्योधन बोला, मेरी चिंता यही है पितामह कि मेरे सेनापति इस युद्ध के औचित्य को स्वीकार नहीं करते। यदि वे युद्ध को आवश्यक और उचित नहीं मानते तो वे उसे जीतेंगे कैसे? भीष्म बोले, मैं युद्ध का औचित्य स्वीकार नहीं करता। क्योंकि मैं कौरवोंकी रक्षा करना चाहता हूं। मैं तो आज भी कहता हूँ पुत्र कि अपने भाइयों से संधि कर लो और युधिष्ठिर का राज्य उसे लौटा दो। दुर्योधन बोला, सेनापति का कर्त्तव्य युद्ध है संधि या विग्रह का निर्णय नहीं पितामह। आपको व्यूह का निर्माण करना है और शत्रु के रूप में सामने खड़े योद्धाओं का नाश करना है। मैं अपने सैनिकों को मरते हुए नहीं देख सकता। भीष्म बोले, मैं भी अपने स्वजनों का रक्त बहते नहीं देख सकता। दुर्योधन बोला, आपके साथ विडंबना यह है कि युद्ध में दोनों ओर आपके स्वजन हैं और दोनों ओर ही आपके शत्रु हैं। कोई

पक्ष हारे अथवा जीते, आपको अपने स्वजनों का रक्त बहते देखना ही होगा। पर मैं स्वजन केवल उन्हें मानता हूँ जो मेरी विजय के लिये मेरे पक्ष में युद्ध करें और मेरे विरोध में खड़े हुये शत्रुओं का वध करें। आप मेरे प्रधान सेनापति हैं फिर भी पांडव सेना अभी तक परास्त नहीं हुई है। शत्रुओं का कोई भी महत्वपूर्ण योद्धा मारा नहीं गया। आप अपनी सेना के शत्रुओं की रक्षा कर रहे हैं। भीष्म बोले, दुर्योधन तुम गलत समझ रहे हो। समरभूमि में मैंने कोई दुर्बलता नहीं दिखाई है। अवश्य ही परसों के युद्ध में हमारी सेनाने मार खायी किंतु कल तो हम विजयी हुए हैं। मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था दुर्योधन की पाण्डव मेरे लिये अवद्य हैं। और पाण्डव तुम्हारे किसी भी योद्धा के लिये अवद्य है। अर्जुन का वध तो द्रोण और कृपाचार्य भी नहीं कर सकते। तुम्हारा यह मित्र कर्ण तो उसका पासंग भी नहीं है। इसलिये पुत्र संधि कर लो।

दुर्योधन बोला, यह असंभव है पितामह। आपको पाण्डवोंका नाश करना है। अपने दिव्यास्त्र-देवास्त्रोंका प्रयोग कीजिए। चाहे सारी सृष्टि नष्ट हो जाए किन्तु पाण्डवोंका नाश होना ही चाहिए। भीष्म बोले, मैं भी अपनी क्षमताभर यही कर रहा हूँ। तुम्हें यदि मुझपर विश्वास न हो तो मैं सेनापति का पद त्याग देता हूँ। दुर्योधन बोला, आपकी कोई भी आज्ञा का उल्लंघन नहीं हुआ है पितामह और मैं आपके सिवाय मैं किसी और को सेनापति भी नहीं बना सकता। आपकी प्रसन्नता के लिये मैंने कर्ण को युद्ध के बाहर रखा है। यदि आप पांडवों का वध नहीं कर सकते तो कम से कम उनके पुत्रोंका वध कीजिये उनके सहायकोंका और मित्रोंका वध कीजिये, उनके सेनापतियों का वध कीजिये। भीष्म बोले, मैं अपने क्षात्र धर्म का पालन कर रहा हूँ पुत्र। तुम आश्वस्त रहो। न मैं क्षात्र धर्म से द्रोह करूँगा और न अपने कर्त्तव्य से। दुर्योधन वहाँ से चला गया।

भीष्म बैठे अपने शिबिर में और सोच रहे हैं मन में तनिक भी उत्साह नहीं है। क्यों वे पाण्डवोंके विरुद्ध धनुष बाण लेकर खड़े हो गये हैं? नहीं। उन्होंने पांडवों के वध के लिए धनुष नहीं उठाया है। और कोई जाने या न जाने, वे जानते हैं कि वे समरभूमि में खड़े अपने पौत्रों के मध्य केवल आ अड़े हैं। वे मानते हैं कि वे बीच से हट जाएँगे तो दुर्योधन ओर उसके सारे मित्र मिलकर भीम और अर्जुन का नाश न भी कर सकें तो शेष पांडवों और उनके पुत्रों को मार देंगे और द्रुपद तथा उसके पुत्र द्रोण और दुर्योधन को समाप्त कर देंगे। भीष्म हैं कि बीच में खड़े हैं, इसलिए न पांडवों में से कोई मरा और न दुर्योधन अथवा हस्तिनापुर की कोई क्षति हुई। दुर्योधन नहीं समझ सकता कि भीष्म किस-किसको बचाने के लिए युद्धभूमि में खड़े हैं। वे कौरवों की रक्षा के लिए खड़े हैं। वे कौरवों के गौरव की रक्षा के लिए खड़े हैं। वे हस्तिनापुर की रक्षा के लिए खड़े हैं। वे द्रोण की रक्षा के लिए खड़े हैं दुर्योधन को यह सब कुछ दिखाई नहीं देता। वे तो जो कुछ स्वयं देख रहा है, उसी को सृष्टि का अंत मान लेता है। वह क्या जाने कि वे आजीवन किस-किसकी रक्षा के लिए खड़े रहे हैं। किस-किस धर्म की रक्षा करते रहे हैं वे...

दुर्योधन आज भी संधि के लिए सहमत नहीं है। उसकी इच्छा के विरुद्ध भीष्म किसी की रक्षा नहीं कर पा रहे हैं। नहीं कर पाएंगे। तो फिर क्यों खड़े हैं वे वहाँ? इसलिए कि कौरवों की सेना उनके नियंत्रण में रहे। वे विनाश को यथाशक्ति रोक रखें। सेना किसी और के नियंत्रण में होती तो कदाचित युद्ध का स्वरूप कुछ और होता।

पर अब भीष्म बीच से हट ही क्यों नहीं जाते? श्रीकृष्ण धर्म की स्थापना करना चाहते हैं, तो वे क्यों नहीं उन्हें धर्म-संस्थापना कर लेने देते? पर श्रीकृष्ण के मन में किसी के लिए भी मोह नहीं है। वे धर्म-संस्थापना करेंगे तो अपना-पराया नहीं देखेंगे। कौरव मारे जाएँगे। पर वे श्रीकृष्ण की इच्छा का विरोध कर भी कैसे पाएँगे? अंतत: तो उन्हें मध्य से हटना ही पड़ेगा। अकेला बूढ़ा भीष्म इन दोनों के विरुद्ध कैसे लड़ सकता है?

कौरव-शिबिर में दुर्योधन ने सेनापति भीष्म से अत्यन्त कठोर वचन कहे थे- दो दिन में लाखों कौरव-सैनिक धराशायी हुए हैं। आप वृद्ध और अनुभवी हैं, इसलिए हमने आपको सेनापति पद पर अभिषिक्त किया। किन्तु आपसे तो कोई विशेष

पराक्रम हो ही नहीं रहा है। आप पाण्डवों के पक्षधर हैं। जानबूझकर उनसे सौम्य युद्ध कर रहे हैं। उसने सबके समक्ष वन्दनीय पितामह पर चुभनेवाला कठोर आरोप लगाया।

अपमानित हुए प्रक्षुब्ध भीष्म ने प्रतिज्ञा की है कि कल नि:शस्त्र कहलानेवाले द्वारकाधीश श्रीकृष्ण को मैं शस्त्र उठाने पर विवश करूँगा। अन्यथा वीरगति को प्राप्त हो जाऊँगा।

द्वारिकाधीश के शस्त्र उठाते ही- युद्ध-नियमों का भंग हुआ है। युद्ध में नि:शस्त्र उतरने की प्रतिज्ञा किये कृष्ण ने शस्त्र धारण किया है। वह रणभूमि पर पैर रखने के योग्य नहीं रहा है। उसे अर्जुन के सारथी के स्थान से हटाया जाए और जिस प्रकार उसने रुक्मि को रणभूमि से वापस भिजवा दिया, उसी प्रकार उसको भी द्वारिका भिजवा दिया जाए। इस प्रकार का वितण्डावाद खड़ा करने की योजना में हैं कौरवपक्ष की सेना।

## ९) महाभारत का युद्ध (तीसरा दिन)

### भीष्म का मान रखने के लिये कृष्ण की अस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा भंग

यद्यपि दिन उगना शेष था। द्रोणाचार्य, दुर्योधन और उसके पाँच भ्राता, कृप, अश्वत्थामा, जयद्रथ, कृतवर्मा आदि से दोनों ओर से घिरे हुए कौरव सेनापति गांगेय भीष्म सहस्त्ररश्मि सूर्यदेव के सदृश दिख रहे थे। निश्चय का तेज उनके मुख से छलक रहा था। सभी योद्धाओं के समूह के साथ अपने सेना की सुनियन्त्रित रचना देखने हेतु वे चलते हुए ही रणभूमि पर आये। दो दिन में दोनों पक्षों को मिलाकर कुल दो अक्षौहिणी सेना वीरगति को प्राप्त हुई थी। उनमें पाण्डव सैनिकों की संख्या अधिक थी। पितामह के आदेश से लगभग दस अक्षौहिणी शस्त्र-सज्ज कौरव-सेना की व्यूह रचना पक्षिराज गरुड़ के आकार की की गयी थी। इस व्यूह-रचना में महत्त्वपूर्ण था उसका अग्रभाग गरुड़ की चोंच। उस चोंच के आकार में अग्रस्थान पर रहनेवाले थे स्वयं भगवान परशुराम-शिष्य, ब्रह्मास्त्र के अधिकारी, महापराक्रमी भीष्म। चोंच के पीछे गरुड़ की ग्रीवा थी। कैकेय और गान्धार-वीर पुरुष उसकी रचना करनेवाले थे। गरुड़ के फैलाये दायें पंख में यादव कृतवर्मा और सिन्धुनरेश जयद्रथ ससैन्य खड़े रहनेवाले थे। गरुड़ के बायें पंख का संरक्षण भगदत्त और भूरिश्रवा करनेवाले थे। गरुड़ के उदर में सुदक्षिण, नील आदि राजा दुर्योधन के संरक्षक बननेवाले थे। कौरव-सेना के विशालकाय गरुड़ की पूँछ के स्थान पर मद्रराज शल्य और अवन्ती के विन्द-अनुविन्द रहनेवाले थे।

पितामह की यह गरुड़ व्यूह की रचना पाण्डव-सैनिकों को सर्पों की भाँति नोचनेवाली थी। उनकी बाण-वर्षा से आहत हुए पाण्डव-सैनिकों को संशप्तक, बर्बर और निषाद अचानक झपट्टा मारकर दबोचनेवाले थे।

पितामह की यह सैन्य-रचना अत्यन्त चातुर्यपूर्वक, अभेद्य और आक्रामक थी।

अब कुरुक्षेत्र के इस युद्ध नाटक में कल्पना से भी अधिक रंग भरने लगे। उसमें कई सर्ग, आख्यान, उपाख्यान जोडे गये थे। पाण्डवों की सबसे बड़ी शक्ति थी- कृष्ण। दूसरी शक्ति थी पाण्डवों की एकता। भीम-अर्जुन के पराक्रम पर पाण्डव पक्ष के सभी राजा और योद्धाओं को पूर्ण और अडिग विश्वास था।

दुर्योधन की कौरव-सेना में छिपे मतभेद की ऊपर से ढँकी हुई कई खाइयाँ थी। कृष्ण उन्हीं खाइयों का सावधानी से लाभ उठानेवाले थे, इसमें किसीको भी तिल-मात्र शंका नहीं थीं। शस्त्र-अस्त्रों से ठसाठस भरे अर्जुन के नन्दिघोष को कृष्णने पाण्डवों की सेना के मध्य लाकर खड़ा कर दिया। आज पाण्डवोंने सैन्य की अर्धचन्द्राकार रचना की थी। सात्यकिने अपने रथ से आगे बढ़कर कृष्ण का स्वागत किया। वे अर्जुन के साथ नन्दिघोष रथ से नीचे उतरे। प्रथम उन्होंने अपने चारों अश्वों से अन्य किसी

को भी समझ न आनेवाली भाषा में बात की। किसी की पीठ को तो किसी के अयालों को थपथपाया। किसी के अयालों को प्रेम से सहलाया। दूसरे ही क्षण वे सात्यकि, भीम और उसके पुत्र घटोत्कच, पांचालराज द्रुपद, मत्स्यराज विराट, युधिष्ठिर, नकुल-सहदेव और धृष्टकेतु के साथ पैदल ही सेना का निरीक्षण करने के लिए निकले।

तेजस्वी सूर्य-बिम्ब के क्षितिज पर आते ही नन्दिघोष में खड़े कृष्ण ने अपनी ग्रीवा ऊँची कर दुग्ध-धवल दिव्य पांचजन्य शंख को फूँका। दोनों ओर के सेनापतियों ने भी शंख फूँकें। उनके पीछे-पीछे पाँचों पाण्डव-भ्राताओं के शंख गूँज उठे। कई शंखों के नाद आपस में मिश्रित हो गये। शीतल पवन-झकोरों से रथों पर लगी ध्वजा-पताकाएँ फहराने लगीं। रथदल और अश्वदल के अश्व हिनहिनाने लगे। गजदल के सहस्त्रों हाथी चिंघाड़ते हुए सूँड़ें हिलाने लगे। आरोऽ ह... आ ऽ क्र ऽ मण ऽ की प्रेरक ललकारों के साथ दोनों ओर के सैनिक आपस में टकरा गये।

संजयने धृतराष्ट्र से कहा राजन, जब रात बीती और सबेरा हुआ तो भीष्मने अपनी सेनाको रणभूमिमें चलनेकी आज्ञा दी। वहाँ जाकर उन्होंने सेनाका गरुड-व्यूह रचा और उस व्यूहके अग्रभागमें चोंचके स्थानपर वे स्वयं ही खड़े हुए। दोनों नेत्रोंकी जगह द्रोणाचार्य और कृतवर्मा थे। शिरोभागमें अश्वत्थामा और कृपाचार्य खड़े हुए। इनके साथ त्रैगर्त, कैकेय और वाटधान भी थे। मद्रक, सिन्धुसौवीर और पञ्चनददेशीय वीरोंके साथ भूरिश्रवा, शल, शल्य, भगदत्त और जयद्रथ- ये कण्ठकी जगह खड़े किये गये थे। अपने भाइयों और अनुचरोंके साथ दुर्योधन पृष्ठभागमें स्थित हुआ। कम्बोज, शक और शूरसेनदेशीय योद्धाओंको साथ लेकर विन्द तथा अनुविन्द उस व्यूहके पुच्छभागमें स्थित हुए। मगध और कलिङ्गदेशकी सेना तथा दासेरकगण उसके दायें पंखकी जगह खड़े हुए तथा कारुष, विकुञ्ज, मुण्ड, कुण्डीवृष आदि योद्धा बृहद्बलके साथ बायें पंखके स्थानपर स्थित हुआ।

अर्जुनने कौरवसेनाकी वह व्यूह-रचना देखी तो धृष्टद्युम्नको साथ लेकर उन्होंने अपनी सेनाका अर्धचन्द्राकार व्यूह बनाया। उसके दक्षिण शिखरपर भीम सुशोभित हुए, उनके साथ अनेकों अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न भिन्न-भिन्न देशोंके राजा थे। भीमके पीछे महारथी विराट और द्रुपद खड़े हुए। उनके बाद नील और नीलके बाद धृष्टकेतु थे। धृष्टकेतुके साथ चेदि, काशि और करुष आदि देशोंके सैनिक थे। धृष्टद्युम्न और शिखण्डी पञ्चाल एवं प्रभद्रक देशीय योद्धाओंके साथ सेनाके मध्यभागमें स्थित हुए। हाथियोंकी सेनाके साथ धर्मराज युधिष्ठिर भी वहाँ ही थे। उनके बाद सात्यकि और द्रौपदीके पाँच पुत्र थे। फिर अभिमन्यु और इरावान् थे। इसके पश्चात् कैकेयवीरोंके साथ घटोत्कच था। अन्तमें व्यूहके वाम शिखरपर अर्जुन स्थित हुए, जिनके रक्षक श्रीकृष्ण थे। इस प्रकार पाण्डवोंने इस महाव्यूहकी रचना की।

तदनन्तर युद्ध आरम्भ हो गया। रथसे रथ और हाथी से हाथी भिड़ गये। रथोंकी घरघराहट के साथ मिला हुआ दुन्दुभियोंका स्वर आकाशमें गूँज रहा था। उभयपक्षके नरवीरोंमें घमासान युद्ध छिड़ा हुआ था। इसी समय अर्जुन कौरव-पक्षके रथियोंकी सेनाका संहार करने लगे। कौरव वीर भी प्राणोंकी परवा न करके पाण्डवोंके मुकाबलेमें डटे रहे। उन्होंने एकाग्र चित्तसे इतना घोर युद्ध किया कि पाण्डवसेनाके पैर उखड़ गये, उसमें भगदड़ मच गयी। तब भीम, घटोत्कच, सात्यकि, चेकितान और द्रौपदीके पाँचों पुत्र भी आपके पुत्रोंकी सेनाको इस प्रकार भगाने लगे, जैसे देवता दानवोंको। इस प्रकार आपसमें मार-काट करते हुए वे खूनसे लथपथ क्षत्रिय वीर बड़े भयंकर दिखायी देते थे।

महाराज। इसी समय दुर्योधन एक हजार रथियोंकी सेना लेकर घटोत्कचके सामने आया। इसी प्रकार पाण्डव भी बहुत बड़ी सेनाके साथ भीष्म और द्रोणाचार्यके मुकाबलेमें जा डटे। अर्जुन भी क्रोधमें भरकर समस्त राजाओं पर चढ़ आये। उन्हें आते देख राजाओंने हजारों रथोंके द्वारा चारों ओरसे घेर लिया और वे उनके रथ पर शक्ति, गदा, परिघ, प्रास, फरसा एवं मूसल आदि अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। किंतु अर्जुनने टिड्डियोंकी दलके समान आती हुई शस्त्रोंकी उस वृष्टिको अपने बाणोंसे बीचमें ही रोक दिया। उनके इस अलौकिक हस्तलाघवको देखकर देव, दानव, गन्धर्व, पिशाच, सर्प और

राक्षस-सभी धन्य-धन्य कहने लगे।

अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर कौरव-सेना विषाद और भयसे काँपती हुई भागने लगी। उसे भागती देख क्रोधमें भरे हुए भीष्म और द्रोणाचार्यने रोका। दुर्योधनको देखकर कुछ योद्धा लौटने लगे। उन्हें लौटते देख दूसरे भी संकोचवश लौट आये। सबके लौट आनेपर दुर्योधनने भीष्मके पास जाकर कहा, पितामह। मैं जो निवेदन करता हूँ, उसपर ध्यान दीजिये। जबतक आप और आचार्य द्रोण जीवित हैं, अश्वत्थामा, सुहृद्वर्ग तथा कृपाचार्य जबतक मौजूद हैं, तबतक हमारी सेनाका इस तरह भागना आपलोगोंके लिये गौरवकी बात नहीं है। मैं यह कभी नहीं मान सकता कि पाण्डव आपलोगोंके समान योद्धा हैं। अवश्य ही आप उनपर कृपादृष्टि रखते हैं, तभी तो हमारी सेना मारी जा रही है और आप क्षमा किये बैठे हैं। यदि यही बात थी, तो मुझे पहले ही बता देना उचित था कि मैं पाण्डवोंसे, धृष्टद्युम्नसे और सात्यकिसे युद्ध नहीं करूँगा। उस समय आपकी, आचार्यकी तथा कृप महाराजकी बात सुनकर मैं कर्णके साथ अपने कर्त्तव्यपर विचार कर लेता और यदि वास्तवमें आप इस युद्धरूप संकटके समय मुझे त्यागनेयोग्य न समझते हों तो आपलोगोंको अपने पराक्रमके अनुरूप युद्ध करना चाहिये।

दुर्योधनकी यह बात सुनकर भीष्म बारंबार हँसते हुए क्रोधसे आँखें फिराकर बोले- राजन्। एक-दो बार नहीं, अनेकों बार मैंने तुमसे यह सत्य और हितकर बात बतायी है कि इन्द्रके सहित सम्पूर्ण देवता भी पाण्डवोंको युद्धमें नहीं जीत सकते। अब मैं बूढ़ा हो गया; इस अवस्थामें जो कुछ कर सकता हूँ, उसके लिये अपनी शक्तिभर उठा न रक्खूँगा। तुम अपने भाइयोंके साथ देखो, आज मैं अकेला ही सबके सामने पाण्डवोंको सेनासहित पीछे हटा दूँगा।

जब भीष्मने इस प्रकार कहा तो आपके पुत्र प्रसन्न होकर भेरी और शफआदि बाजे बजाने लगे। उनकी आवाज सुनकर पाण्डव भी शफ, भेरी और ढोलका तुमुल नाद करने लगे।

आज भीष्म और द्रोण दोनों हठ पर उतर आये थे। पाण्डव-सेना के अर्धचन्द्राकार व्यूह को तोड़ने के लिए उन्होंने पूरी शक्ति लगाकर आक्रमण किया। भीम और घटोत्कच ने उन आक्रमणों को चुटकियों में विफल कर दिया। इससे क्षुब्ध होकर दुर्योधन अग्रसर हुआ। बाण-वर्षा से उसने घटोत्कच को आच्छादित कर दिया। अपने पुत्र को आँखों से ओझल होते देख भीमने बड़े आवेश से एक तेजस्वी बाण दुर्योधन के वक्ष पर चलाया। उसके लौहत्राण को भेदकर वह बाण उसके वक्ष में घुस गया। आहत दुर्योधन के हाथ से उसका पुष्पमण्डित धनुष नीचे गिर गया। स्वयं दुर्योधन भी मूर्च्छित होकर रथ में गिर पड़ा। अपने सेनानायक को मूर्च्छित हुआ देखकर भयभीत कौरव-सेना इधर-उधर भागने लगी। दोनों हाथ ऊपर उठाकर चिल्लाता हुआ दु:शासन अपने सैनिकों को रोकने का असफल प्रयास करने लगा। मूर्च्छित दुर्योधन के भव्य रथ को उसका सारथी सेना से बाहर ले गया।

पाण्डव सेनापति, धृष्टद्युम्न और ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिर ने भीष्म और द्रोण के सामने कौरव-सेना पर प्रलयकाल के पर्जन्य के समान भयावह बाण-वर्षा करी। दुर्योधन मूर्च्छित हुआ। सारथी दुर्योधन को रथ के बाहर ले गया। थोड़ी देर में दुर्योधन की मूर्च्छा जागी और वो बोला, कहाँ है पाण्डवोंका भीम? हमारे सैनिक इसप्रकार भाग क्यों रहे है? सारथी रथ को कौरवोंकी सेना में घुमाता हुआ दिखा रहा था। दु:शासन बोला, अरे ओ भीम कहाँ भागे जा रहे हो मैं तुम्हारा स्वामी हूँ। सैनिक भयभीत हो युद्धभूमि में लौटने लगे यह देखकर दुर्योधन के प्राणों में प्राण आयें। उसने अपने सारथी को रथ पितामह और आचार्य द्रोण के समीप ले जाने को आदेश दिया और जानकर पितामह से बोला आप दिग्गज धनुर्धरों के ज्ञाता होते हुए हमारे सैनिकों में खलबली मची है। क्या यह उचित है? आप मेरे लिए सचमुच युद्ध कर रहे है, या युद्ध करने का नाटक रच रहे है? मेरे इन सैनिकों को युद्धभूमि से भागते देखकर मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि आप मेरे शत्रुओं-पाण्डवों के पक्षधर हैं। आप दोनों आज मन:पूर्वक युद्ध नहीं कर रहे हैं। आपका शरीर मेरी सेना में और मन पाण्डवों की ओर है। यदि

हे पितामह आप पहले ही मुझे स्पष्ट कह देते तो मैं दिग्विजयी, अजेय धनुर्धर, अंगराज कर्ण को ही सेनापति पद पर अभिषिक्त कर देता। तब अपकीर्ति की यह विपत्ति मुझ पर नहीं आती।

दुर्योधन का यह कठोर व्यंग सुनकर पितामह भीष्म बोले, हे गान्धारीनन्दन आधा राज्य तुम पाण्डवोंको दे दो। किसी भी अन्याय के अधिकारी मत बनो। पाण्डव अजेय है। वे श्रीकृष्ण वासुदेव की कृपाछाया में है। मैं बार-बार तुमसे यह बात कहता हूँ पर तुमने किसी की कोई बात नहीं सुनी। मैं शान्तनुपुत्र भीष्म वही कर्म करूँगा जो धर्मके अनुरूप होगा। मैं अपने उन गुरुदेव परशुराम के शिष्यत्व के गौरव के अनुकूल ही व्यवहार करूँगा। अपनी बक-बक बन्द करो और आँखे खोलकर देखो भीष्म किस सत्य का नाम है और जिसकी प्रतिज्ञा काल के भी काले पत्थर पर खिंची कैसी धवल रेखा है।

धृतराष्ट्रने पूछा- संजय। जब मेरे दुखी पुत्रने उकसाकर भीष्मको क्रोध दिलाया और उन्होंने भयंकर युद्ध की प्रतिज्ञा कर ली, तब भीष्मने पाण्डवोंके साथ और पाञ्चालवीरोंने भीष्मके साथ किस प्रकार युद्ध किया?

संजय कहने लगे- उस दिन जब दिनका प्रथम भाग बीत गया और सूर्यनारायण पश्चिम दिशाकी ओर जाने लगे तथा विजयी पाण्डव अपनी विजयकी खुशी मना रहे थे, उसी समय पितामह भीष्म तेज चलनेवाले घोड़ोंसे जुते हुए रथपर बैठकर पाण्डव-सेनाकी ओर बढ़े। उनके साथमें बहुत बड़ी सेना थी और आपके पुत्र सब ओरसे घेरकर उनकी रक्षा कर रहे थे। उस समय आपके पुत्रोंमें और पाण्डवोंमें रोमाञ्चकारी संग्राम छिड़ गया। थोड़ी ही देरमें योद्धाओंके हजारों मस्तक और हाथ कट-कटकर जमीनपर गिरने और तडपने लगे। कितनोंहीके सिर तो कटकर गिर गये, मगर धड़ धनुष-बाण लिये खड़े ही रह गये। खूनकी नदी बह चली। उस समय कौरव और पाण्डवोंमें जैसा भयानक युद्ध हुआ, वैसा न कभी देखा गया और न सुना ही गया है।

नन्दिघोष- नन्दिघोष। उनकी दृष्टि में साक्षात् काल को भी थर्रा देनेवाला आतंक लबालब भरा हुआ था। आसपास के रथों पर आरूढ़ योद्धा और सारथी भयभीत होकर अपने शस्त्र ही नीचे रख दें- इस प्रकार वे गरज उठे और बोले, हे मूढ़ कौरव, यदि आज मैं साक्षात् वसुदेव-पुत्र वासुदेव को, जीवन-भर जिसने यश के अतिरिक्त कुछ नहीं पाया, उस यशोदानन्दन को शस्त्र उठाने पर विवश न कर दूँ तो मेरा भी नाम गंगापुत्र भीष्म नहीं।

अपना धनुष ऊँचा उठाकर उन्होंने आवेशपूर्ण घोषणा की- आक्रमण गरगर घूमते अग्निकंकण की भाँति उनका तेजस्वी गंगौघ रथ पाण्डवोंकी सेना में अविरुद्ध गति से भ्रमण करने लगा। कई रथियों को उन्होंने विरथ किया, महावीर महारथियों को मार गिराया। जय गंगा गरजते हुए उनके चलाये गये बाण चारों दिशाओं में हाहाकार मचाने लगे। पाण्डवोंके पदातियों के पथक रणभूमि को पीठ दिखाकर भागने लगे।

उस समय भीष्म अपने धनुषको मण्डलाकार करके विषधर साँपोंके समान बाण बरसा रहे थे। रणभूमिमें वे इतनी शीघ्रतासे सब ओर विचर रहे थे कि पाण्डव उन्हें हजारों रूपोंमें देखने लगे। मानो भीष्मने मायासे अपने अनेकों रूप बना लिये हों। जिन लोगोंने उन्हें पूर्वमें देखा, उन्होंने ही उसी समय आँख फेरते ही पश्चिममें भी देखा। एक ही क्षणमें वे उत्तर और दक्षिणमें भी दिखायी पड़े। इस प्रकार उस युद्धमें सर्वत्र वे-ही-वे दिखायी देने लगे। पाण्डवोंमेंसे कोई भीष्मको नहीं देख पाता था, उनके धनुषसे छूटे हुए असंख्य बाण ही दिखायी पड़ते थे। लोगोंमें हाहाकार मच गया। भीष्म वहाँ अमानवरूपसे विचर रहे थे; उनके पास हजारों राजा अपने विनाशके लिये उसी प्रकार आते थे, जैसे आगके पास पतिंगे। उनका एक भी वार खाली नहीं जाता था।

इस प्रकार अतुल पराक्रमी भीष्मकी मार खाकर युधिष्ठिरकी सेना हजारों टुकड़ोंमें बँट गयी। उनकी बाणवर्षासे पीडित होकर वह काँप उठी और इस तरह उसमें पलायन करने लगी कि दो आदमी भी एक साथ नहीं भाग सके। इस युद्धमें दैववश पिताने पुत्रको पुत्रने पिताको मार डाला तथा मित्र मित्रके हाथसे मारा गया। पाण्डवोंके सैनिक अपने कवच

उतारकर बाल खोले हुए रणभूमिसे भागते दिखायी देने लगे।

पाण्डवसेनाको इस प्रकार बिखरी देख श्रीकृष्ण ने रथको रोककर अर्जुनसे कहा, पार्थ। जिसके लिये तुम्हारी बहुत दिनोंसे अभिलाषा थी, वह समय अब आ गया है। अब जोरदार प्रहार करो, नहीं तो मोहवश प्राणोंसे हाथ धो बैठोगे। पहले तुमने जो राजाओंके समाजमें कहा था कि दुर्योधनकी सेनाके भीष्म-द्रोण आदि जो कोई भी वीर मुझसे युद्ध करने आयेंगे, उन सबको मार डालूंगा, अब उस प्रतिज्ञाको सच्ची करके दिखाओ। अर्जुन। देखो तो अपनी सेना किस तरह तितर-बितर हो गयी है और ये राजालोग कालके समान भीष्मको देखकर ऐसे भाग रहे हैं, जैसे सिंहके डरसे छोटे-छोटे जंगली जीव भागते हों।

श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुन बोले, अच्छा, अब आप घोड़ोंको हाँकिये और इस सैन्यसागरके बीचसे होकर भीष्मके पास रथ ले चलिये, मैं अभी उन्हें युद्धमें मार गिराता हूँ। तब माधवने घोड़ोंको हाँक दिया और जहाँ भीष्मका रथ खड़ा था, उधर ही बढ़ने लगे। अर्जुनको भीष्मके साथ युद्ध करनेके लिये तैयार देख युधिष्ठिरकी भागी हुई सेना लौट आयी। अर्जुनको आते देख भीष्मने सिंहनाद किया और उनके रथपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। एक ही क्षणमें अर्जुनका रथ घोड़ों और सारथीके साथ बाणोंसे छिप गया, दिखायी नहीं देता था। परंतु श्रीकृष्ण तो बड़े धैर्यवान थे, वे जरा भी विचलित नहीं हुए, घोड़ोंको बराबर आगे बढ़ाये ही चले गये। इसी समय अर्जुनने अपना दिव्य धनुष उठाया और बाणोंसे भीष्मका धनुष काटकर गिरा दिया। भीष्मने पलक मारते ही दूसरा महान् धनुष लेकर उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ा ली। किंतु उसे भी उन्होंने ज्यों ही खींचा अर्जुनने काट दिया। अर्जुनकी यह फूर्ति देखकर भीष्मने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा, महाबाहो। तुमने खूब किया, यह महान् पराक्रम तुम्हारे ही योग्य है। पुत्र। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ; करो मेरे साथ युद्ध। इस प्रकार पार्थकी बड़ाई करके दूसरा महान् धनुष हाथमें ले वे उनके रथपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। श्रीकृष्णने भी अपने अश्व-संचालनकी पूरी प्रवीणता दिखायी। वे रथको शीघ्रतापूर्वक मण्डलाकार चलाते हुए भीष्मके बाणोंको प्राय: विफल कर देते थे। यह देख भीष्मने तीखे बाणोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुनको खूब घायल किया। फिर उनकी आज्ञासे द्रोण, विकर्ण, जयद्रथ, भूरिश्रवा, कृतवर्मा, कृपाचार्य श्रुतायु, अम्बष्ठपति, विन्द, अनुविन्द और सुदक्षिण आदि वीर तथा प्राच्य, सौवीर, बसाति, क्षुद्रक और मालवदेशीय योद्धा तुरंत ही अर्जुनपर चढ़ आये। वे हजारों घोड़े, पैदल, रथ और हाथियोंके झुंड़से घिर गये। उन्हें उस अवस्थामें देख वीर सात्यकि सहसा उस स्थानपर आ पहुँचा और अर्जुनकी सहायतामें जुट गया। उसने युधिष्ठिरकी सेनाको पुन: भागती देखकर कहा, क्षत्रियों। तुम कहाँ चले? यह सत्पुरुषोंका धर्म नहीं है। वीरो। अपनी प्रतिज्ञा न छोड़ो, वीरधर्मका पालन करो।

श्रीकृष्णने देखा कि पाण्डवसेनाके प्रधान-प्रधान राजा भाग रहे हैं, अर्जुन युद्धमें ठंडे पड़ रहे हैं और भीष्म प्रचण्ड होते जा रहे हैं। यह बात उनसे सही नहीं गयी। उन्होंने सात्यकिकी प्रशंसा करते हुए कहा- हे सात्यक्य पुत्र शिनिवंशके वीर। जो भाग रहे हैं, उनको भागने दो; जो खड़े हैं; वे भी चले जायँ। मैं इन लोगोंका विश्वास नहीं करता। मैं अभी भीष्म और द्रोणाचार्यको रथसे मार गिराता हूँ। कौरवसेनाका एक भी रथी मेरे हाथसे बचने नहीं पायेगा। अब मैं स्वयं अपना उग्र चक्र उठाकर महाव्रती भीष्म और द्रोणके प्राण लूँगा तथा धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंको मारकर पाण्डवोंको प्रसन्न करूँगा। कौरवपक्षके सभी राजाओंका वध करके आज मैं अजातशत्रु युधिष्ठिरको राजा बनाऊँगा।

निरंकुश हुए भीष्म के सनसनाते गतिमान बाणों ने सबको अचूक लक्ष्य बनाया। भ्रमचित्त हुए धनुर्धर अर्जुन ने कृष्ण से कहा, हे यादवश्रेष्ठ, ऐसा कौन है जो मुझसे युद्ध कर सके? मैंने अतुल प्रतापी राक्षसों का वध किया है। तुम रथ को आगे बढ़ाओ, और भीष्म पर शरवर्षा करने लगा।

अर्जुन का वह आक्रामक शरसन्धान भीष्म को क्षुब्ध करने लगा। गांगेय भीष्म अत्यधिक क्रुद्ध हुए। सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन उनकी दृष्टि में तो बालक था। उनका मुखमण्डल प्रलयकाल के महोदधि सदृश दिखने लगा। रणोन्मत्त होने के

कारण वे अर्जुन से भी अधिक युवा योद्धा लग रहे थे। वे अर्जुन के सैनिकों के मस्तक कन्दुक की भाँति आकाश में उड़ाने लगे। उनके टंकारते हुए धनुष से मघा मेघ के सदृश बाण-वर्षा होने लगी और उनके समक्ष आनेवाले योद्धाओं को आहत करने लगी। उनके अंजलिक, सर्पमुख, भल्ल, नाराच आदि बाणों ने पाण्डवोंकी सेना के हाथियों के मदरस से सने गण्डस्थलों को बेध डाला। उनके चन्द्रमुख, बस्तिक, कंकपत्र, गजास्थि, शिलिमुख बाणों ने पाण्डवों के अश्वदल के पुष्ट अश्वोंको आहत कर दिया। पितामह के जिह्म, सूची आदि बाणों से त्रस्त हुए ऊँट इधर-उधर अस्त-व्यस्त होकर दौड़ते हुए अपने ही सैनिकों को पैरों-तले कुचलने लगे। अपनी भीष्म अर्थात् भयावह उपाधि को वह सेनापति प्रभावशाली ढंग से प्रमाणित कर रहा था।

नन्दिघोष के सारथी कृष्ण सारथ्य-कर्म की अपनी पूरी कुशलता दाँव पर लगा रहे थे। रथ के चारों अश्व उनकी वल्गाओं के संकेत पर कभी अगले खुर उठाकर उछल रहे थे तो कभी पैर मोड़कर अचानक नीचे झुक रहे थे। उससे भीष्म के बाण व्यर्थ हो रहे थे। फिर भी उनका चतुर सारथी इस कौशल्य से अपने रथ को नन्दिघोष के चारों ओर घूमा रहा था कि अर्जुन को क्षण में आगे, क्षण में पीछे, इस प्रकार सभी दिशाओं में पितामह-ही-पितामह दिखाई देने लगे। वह भ्रमित हो गया। उसके हाथ का गाण्डीव क्षण-भर रुक गया। यह अवसर पाकर भीष्मने बाणवर्षा से उसके गाण्डीव को रथ में ही गिरा दिया। शरीर में स्थान-स्थान पर घुसे अनेक बाणों से आहत हुआ अर्जुन नन्दिघोष के ध्वजदण्ड को थामकर फिसलता हुआ अचेत हो गया। उसके सैन्यदल में प्रचण्ड हाहाकार मच गया। अपने शस्त्रों को जैसे-तैसे सँभालते हुए सैनिक अपनी प्राणशक्ति एकत्रित कर कृष्ण से याचना करने लगे- रक्षा कीजिए द्वारिकाधीश पितामह के बाणों से हमारी रक्षा कीजिए। हमें प्राणदान दीजिए।

भीष्म पितामहके नेत्र लाल हो गये। वे क्रोधसे अट्टहास करके बोले- मैंने अनेक-अनेक बार तुमसे कहा है कि इन्द्रके साथ सब देवता मिलकर भी पाण्डवोंको युद्धमें जीत नहीं सकते। अब मैं वृद्ध हो चुका हूँ किन्तु आज यदि श्रीकृष्णने प्रण-भंग करके शस्त्र न उठाया तो मैं अकेला पाण्डवोंको पराजित कर दूँगा। दुर्योधन प्रसन्न हो गया। उसने उसी समय शंख अधरोंसे लगाया और उस संकेतपर सेनामें विजयोत्साह-सूचक वाद्य बजने लगे। एक पराजित होकर भागती सेनाका यह उत्साह वाद्य पाण्डवोंने भी सुना। वे सशंक हो गये।

तीसरे दिनके दूसरे प्रहरका समय था। विजयी पाण्डव प्रसन्न हो रहे थे। सहसा कौरव सेना लौट पड़ी। अत्यन्त भयंकर संग्राम प्रारम्भ हो गया। भीष्मने इस समय जो पराक्रम प्रकट किया, वह कल्पनासे परे है। वे इतने वेगसे युद्धभूमिमें विचरण करने लगे कि लगा मानो अनेक रूप उन्होंने बना लिये हो। युद्धमें सर्वत्र वे ही दीखने लगे। पाण्डव पक्षमें हा-हाकार मच गया। भीष्मके धनुषसे असंख्य बाण छूट रहे थे। सहस्त्र-सहस्त्र वीर मरकर गिरने लगे, पाण्डव सेना इधर-उधर भागने लगी।

श्रीकृष्णने अर्जुनको उत्साहित किया- अब समय आ गया है कि पूरा उत्साह प्रकट करो। तुमने भीष्म, द्रोणादिको मारनेकी सबके सामने प्रतिज्ञा की है। उसे सत्य करो। अपनी भागती सेनाको भीष्मका वेग रोककर बचाओ। मोहवश शिथिलताका त्याग नहीं करोगे तो प्राणोंपर आ बनेगी।

अर्जुनने-भीष्मके सम्मुख रथ पहुँचानेको कह दिया था किन्तु पितामहपर प्रहार करनेके लिए वह अन्त:करणसे उद्यत नहीं था। भीष्मने तो प्रतिज्ञा कर रखी थी- आज श्रीकृष्णको प्रण-भंग करके शस्त्र उठानेपर विवश न कर दूँ तो माता गंगाकी कुक्षि लज्जित हो और मैं अपने पिता शान्तनुका पुत्र नहीं।

**जो आज हरि कर शस्त्र न गहाऊँ, तो लाजो गंगा जननी नों ना ही शान्तनुसुत कहाऊँ।**

अर्जुनने भीष्मकी बाण वर्षाका उचित उत्तर दिया। उनके धनुष भी काट दिये, किन्तु पितामह आज अत्यन्त प्रचण्ड हो रहे थे। उन्होंने अर्जुन तथा श्रीकृष्णको भी आहत कर दिया। पाण्डव सेना उनकी मारसे व्याकुल होकर भागने लगी।

अकेले सात्यकि अर्जुनकी सहायतामें खड़े थे। उन्होंने भागते लोगोंको ललकारा- युद्धमें भागना क्षत्रियका धर्म नहीं है। वीर धर्मका पालन करो। कायर मत बनो।

अर्जुन शिथिल हो रहे थे। वे केवल प्रतिकारका प्रयत्न कर रहे थे। पितामहपर प्रहार वे अब नहीं कर रहे थे। यह देखकर श्रीकृष्ण क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने सात्यकिसे कहा- महावीर सात्यकि। जो भाग रहे हैं, उन्हें भाग जाने दो। जो खड़े हैं, वे भी चाहें तो चले जायें। मैं इनमें किसीका भरोसा नहीं करता। तुम धन्य हो। तुम्हारा शौर्य श्लाघ्य है, मैं भीष्म और द्रोण को मार दूँगा। कोई कौरव महारथी मेरे हाथसे बच नहीं सकता। आज ही कौरवोंका संहार करके मैं अजातशत्रु युधिष्ठिरका अभिषेक करूँगा। युयुधान यह पार्थ तो सम्मुख अपने पितामह को खड़े देखकर सहज कोमलता से युद्ध कर रहा है और भीष्म प्रचंड होते जा रहे हैं। अर्जुन को न अपनी सेना प्रिय है, न अपने भाई। उसे तो अपने गुरु और पितामह ही प्रिय है किन्तु मुझे केवल धर्म प्रिय है। मैं अधर्म को विजयी नहीं होने दूँगा।

युद्ध का तीसरा दिन। अर्जुन और भीष्म का भयंकर युद्ध हो रहा है। अर्जुन भीष्म पर बाण नहीं चला रहा है। कृष्ण बोले, लगता है तुम यह युद्ध हारने का निर्णय ले चुके हो। मैं तुमसे बार-बार यही कह रहा हूं कि ये जो सामने खड़े हो इनमें अपने पितामह को न देखो। इनमें अपने शत्रु को देखो। इस धर्म युद्ध में जो भी अधर्म के पक्ष में युद्ध कर रहा है वो तुम्हारा शत्रु है, मानव समाज का शत्रु है, वो मेरा शत्रु है। जानते हो अकेले गंगापुत्र ने तुम्हारे कितने सैनिकों का, कितने यौद्धाओं का और कितने महारथियों का वध किया है। तुम वीर गति को प्राप्त होनेवाले सारे सेनानियों के ऋणी हो कुन्तीपुत्र और यदि गंगा पुत्र का वध करके तुम वो ऋण न चुकाओगे तो उनका वध करके वो ऋण मैं उतारूंगा। कृष्ण रथ से उतरकर सुदर्शन चक्र हाथ में लेकर भीष्म के सामने पैदल ही दौड़कर गये।

श्रीकृष्णने अश्वोंका रश्मि छोड़ दी और अपना अमोघ सुदर्शनचक्र उठाये रथसे कूद पड़े। सहस्त्र-सहस्त्र सूर्योंके समान वह प्रकाशघन महाचक्र घूम रहा था। परात्पर परमतत्त्वके दौड़नेके वेगसे धरा काँपने लगी। दोनों ही पक्षके लोगोंके नेत्र उस प्रचण्ड तेजसे बन्द हो गये। भयके कारण अस्त्र-शस्त्र हाथोंसे छूट गये। गज, अश्व चीत्कार करते भाग खड़े हुए। सर्वत्र लोग हाथ उठाकर हा-हाकार करने लगे। शरीर स्वेद लथपथ कांपने लगे। किसीको कुछ सूझता नहीं था। भयके कारण पूरी सेना स्तब्ध जड़ बन गयी। ऐसे हो गये लोग जैसे उनके शरीरमें रक्त ही न रह गया हो।

घनश्याम श्रीअंगपर स्थान-स्थानपर शराघातके व्रण और उनसे झलकता रक्त। स्वेदके बिन्दु मुख और भालपर। अरुण नेत्र, क्रोधसे लाल मुख, प्रयलंकर चक्र घर्र-घर्र उठे करमें घूम रहा। पीतपट फहरा रहा और श्रीकृष्ण दौड़ रहे- दौड़ते जा रहे हैं भीष्मके रथकी ओर। युद्धभूमि है- शवोंसे, शस्त्र खण्डोंसे पटी संग्राम भूमि रक्तकी कीचके सनी और उसमें बिना नीचे देखे पद्मारुण सुकुमार चरण श्रीकृष्ण दौड़ रहे हैं। उनके प्रत्येक पदाघातसे पृथ्वी काँप रही है। भूकम्प आ रहा है। जैसे विदीर्ण होकर धरा खण्ड-खण्ड हो जायेगी।

क्रुद्ध कैटभारिकी भयंकर भृकुटिकी ओर देख सके इतना साहस महाकालमें भी नहीं, इस समय शत्रु सैनिक ही नहीं, साक्षात् मृत्युको भी पता है कि सम्मुख जानेपर सुदर्शनकी महाज्वाला रूईके समान भस्म कर देगी। लोग भयसे काँप रहे हैं। कातर कण्ठसे कोई स्पष्ट पुकार भी नहीं उठती। भीष्मके बचावके प्रयत्नकी बात व्यर्थ किसी को भी अपने ही प्राण बचेंगे, इसका विश्वास नहीं रहा। सबके हृदय धक्से रह गये- श्रीकृष्णने प्रण भंग करके चक्र उठा लिया। अब भला क्या बचा। उस चक्रका प्रकाश सूर्यके समान और प्रभाव वज्रके सदृश अमोघ था। उसके किनारेका भाग छूरेके समान तीक्ष्ण था। कृष्ण बड़े वेगसे भीष्मकी ओर झपटे, उनके पैरोंकी धमकसे पृथ्वी काँपने लगी। जैसे सिंह मदान्ध गजराजकी ओर दौड़े, उसी प्रकार वे भीष्मकी ओर बढ़े। उनके श्याम विग्रहपर हवाके वेगसे फहराता हुआ पीताम्बरका छोर ऐसा शोभित

होता था, मानो मेघकी काली घटामें बिजली चमक रही हो। हाथमें चक्र उठाये वे बड़े जोरसे गरज रहे थे। उन्हें क्रोधमें भरा देख कौरवोंके संहारका विचार कर सभी प्राणी हाहाकार करने लगे। चक्रके साथ उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो प्रलयकालीन संवर्तक नामक अग्नि सम्पूर्ण जगत्का संहार करनेको उद्यत हो।

चारों दिशाओं से यह आक्रोश आरम्भ देख निरुपाय होकर कृष्ण नन्दिघोष से नीचे उतरे। अर्जुन ने प्रश्न पूछा, कृष्ण कहाँ हैं? और उसकी दृष्टि रणभूमि पर घूमने लगी। धनुष को त्यागकर भीष्मने शरसन्धान रोक दिया था।

भीष्म बोले, तुम्हारा स्वागत है वासुदेव स्वागत। मुझे मुक्ति दिलाने के लिये स्वयं तुमने अपनी प्रतिज्ञा तोड दी। हे गोविन्द, स्वयं मुझे मारने आकर तुमने तीनो लोकों में मेरा गौरव बढ़ा दिया। देखो मैंने भी अपना धनुष रख दिया है। बाण भी रख दिये हैं। युद्धस्थल में आपके हाथों मारे जाने से तीनों लोकों में मेरा कल्याण होगा। हे गिरधर सुदर्शन चक्र को अपना दूत बनाकर मेरी मुक्ति का सन्देश भेजो।

उन्हें चक्र लिये अपनी ओर आते देख भीष्मको तनिक भी भय नहीं हुआ। वे दोनों हाथोंसे अपने महान् धनुषका टंकार करते हुए कृष्णसे बोले, आइये, आइये, देवेश्वर। आइये जगदाधार। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। चक्रधारी माधव। आज बलपूर्वक मुझे इस रथसे मार गिराइये। आप सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं, सबको शरण देनेवाले हैं; आपके हाथसे आज यदि मैं मारा जाऊँगा, तो इहलोक और परलोकमें भी मेरा कल्याण होगा। भगवन्। स्वयं मुझे मारने आकर आपने तीनों लोकोंमें मेरा गौरव बढ़ा दिया। हे देवेश्वर, हे जगन्निवास आपको नमस्कार है। सबको सुख देनेवाले लोकनाथ आज इस रणभूमि में मुझे आप मार डालिये। आपके हाथों मरने से तीनों लोकों में मेरा गौरव बढ़ जायेगा।

उन्होंने रणभूमि में पड़ा एक रथचक्र उठाकर दोनों हथेलियों पर उसे आवेश से गरगर कर घुमाया। क्षण-भर उसे आकाश में उड़ाकर फिर दोनों हाथों पर तोल दिया। अत्यन्त आवेश से वे भीष्म की ओर दौड़ने लगे।

हाथ जोड़कर, आँखें बन्द करते हुए, शुभ्र दाढ़ीधारी पितामह कृष्ण के आगे निश्चल, शान्त खड़े थे। सम्भवत: यही सोचते हुए कि- हे माधव, यदि तुम ही मुझे मारना चाहोगे तो कौन बचा पाएगा मुझे? हे मधुसूदन, मेरा सौभाग्य है कि चक्रधारी रूप में मुझे तुम्हारे दर्शन हुए। अब तनिक भी विलम्ब न करते हुए अपने हाथ के चक्र से मेरा मस्तक इस प्रकार उड़ा दो कि वह तुम्हारे ही चरणों में आ गिरे। अपने आगे निश्चल खड़े भीष्म की ओर देखकर कृष्ण भी मुस्कराये।

भीष्म निर्भय थे। जिन भीष्म के ऊपर क्रुद्ध होकर श्रीकृष्ण चक्र उठाये उन्हींकी ओर दौड़े जा रहे थे वे निर्भय धनुष उठाये, उसकी प्रत्यञ्चाकी टंकार करते हर्ष विह्वल स्वरमें बोल रहे थे-

भक्तवत्सल भगवानकी जय हो। प्रणत प्रणपाल पुरुषोत्तमकी जय हो। पधारो चक्रपाणि प्रभु। आप आओ और अपने चक्रसे इस दुर्विनीतका मस्तक काटकर इसे धन्य कर दो। आओ और आज अपने हाथसे मारकर भीष्मको सदाके लिए भव-भ्रमणसे मुक्त कर दो। स्वयं मुझे मारने आकर आपने मुझे त्रिभुवनमें गौरवान्वित कर दिया। आपके हाथों मारा जाकर मैं परमपावन हो जाऊँगा। मुझे मार गिराओ मेरे माधव।

भीष्म स्तवन कर रहे थे। उनके शरीरमें रोमांच हो रहा था। उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा झर रही थी और श्रीकृष्ण क्रोधसे अरुण सुकुमार अधरोंको दांतोंसे दबाये, पीताम्बर फहराते चक्र उठाये दौड़े जा रहे थे।

यह क्या था? कोई पूछे कि आपको इससे पूर्व भी कभी चक्र उठाकर दौड़ना पड़ा है? चक्र भी कोई तलवार है कि उससे पास जाकर प्रहार करना आवश्यक हो। चक्र तो जहाँ आप हैं, वहींसे चलाया जानेवाला अस्त्र है। जब चक्र ही उठा लिया तो फिर यह दौड़ना क्यों? इस दौड़नेका क्या अर्थ?

इस दौड़नेका अर्थ है। इसका अर्थ है कि चक्र चलाना नहीं है। चक्र उठाये दौड़ते श्रीकृष्ण सबको दिखला रहे हैं- सब

देखो। कोई धोखेमें मत रहो। मेरा भक्त बड़ा है, भगवान बड़ा नहीं है। भक्त प्रतिज्ञा कर लेता है तो रथपर बैठे-बैठे उसकी प्रतिज्ञा पूरी हो जाती है। उसे पूरी करनेके लिए उसे कहीं जाना नहीं पड़ता। उसके सम्मुख, उसके विरुद्ध प्रतिज्ञा पड़े तो भगवानकी भी तो वह प्रतिज्ञा टूटती है। भगवान अपनी प्रतिज्ञा जीतने के लिए चिंता नहीं करते। कृष्ण अपने भक्तकी प्रतिज्ञाकी रक्षा अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर भी करता है।

**प्रबल प्रेम के पाले पड़कर प्रभुको नियम बदलते देखा।**
**अपना मान भले टल जाये पर भक्त का मान कभी न टलने पाये।**

अर्जुनने दौड़ते चक्र उठाये श्रीकृष्णको देखा तो रथसे कूदकर दौड़े। पीछेसे जाकर उन्होंने सखाकी दोनों भुजाएँ पकड़ लीं। कृष्ण रोषमें भरे हुए थे, अर्जुनके पकड़नेपर भी वे रुक न सके। जैसे आँधी किसी वृक्षको खींचे लिये चली जाय, उसी प्रकार वे अर्जुनको घसीटते हुए आगे बढ़ने लगे। तब अर्जुन उनकी बाहें छोड़कर पैरोंमें पड़ गये। उन्होंने खूब बल लगाकर उनके चरण पकड़ लिये और दसवें कदमपर पहुँचते-पहुँचते किसी प्रकार उन्हें रोका। जब वे खड़े हो गये तो अर्जुनने प्रसन्न होकर उन्हें प्रणाम किया और कहा, केशव। अपना क्रोध शान्त कीजिये, आप ही पाण्डवोंके सहारे हैं। अर्जुन आगे छलाँग लगाकर उनके चरणों में लिपट गया और उनसे प्रार्थना करने लगा, हे अच्युत, मत चलाओ इस चक्र को। दोनों हाथों से उठाये रथचक्रों को सँभालते हुए कृष्णने मुस्कराकर अर्जुन की ओर देखा। अर्जुन बोला, अब मैं भाइयों और पुत्रोंकी शपथ खाकर कहता हूं, अब मेरे काममें शिथिलता नहीं करूँगा और प्रतिज्ञाके अनुसार युद्ध करूँगा।

अर्जुन ने चिल्लाकर दौड़कर पीछे से आकर कृष्ण को पकड़ लिया था और बोला, हे केशव मुझे क्षमा करो। हे गिरधर गोपाल आप वचनबद्ध है कि आप इस युद्ध में शस्त्र नही उठायेंगे। यदि आपने इस युद्ध में शस्त्र उठा लिया तो आपका यह मित्र, यह सखा, आपका यह भक्त इतिहास को मुंह दिखाने योग्य नहीं रहेगा केशव। हे कृपालु मुझे इस कलंक से बचा लीजिये अब मेरे बाण किसी को प्रणाम नहीं करेंगे केशव। हे केशव। अपना क्रोध आप शान्त करें। अर्जुनने कातर कण्ठसे कहा- आप अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दें, यह मेरे लिए अत्यन्त लज्जाकी बात है। मैं भाइयों और पुत्रोंकी शपथ करके कहता हूँ कि अब सच्चे मनसे युद्ध करूँगा।

कृष्णने मुस्कराते हुए वह रथचक्र धरती पर फेंक दिया। दोनों भुजाओं को फैलाकर, उनको सर्वप्रथम वासुदेव की उपाधि देकर पहचाननेवाले पितामह भीष्म को उन्होंने आलिंगन में कसकर ले लिया। कृष्ण बोले, उठो पार्थ। अपना धनुष उठा लीजिये गंगापुत्र। भीष्म ने कृष्ण को प्रणाम किया। अर्जुन बोला, हे कालेश्वर यदि यह सूर्य थोडी देर और ठहर जाये तो महादेव की सौगन्ध मैं यह युद्ध आज ही समाप्त कर दूंगा केशव।

कृष्ण बोले, यह युद्ध मानव समाज के कल्याण के लिये हो रहा है पार्थ और मानव समाज का कल्याण प्रकृति के नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकता। इसलिये सूर्य को स्वयं अपने ही समय पर अस्त होने दो और अपने ही समय पर उदय होने दो। लगता है तुमने मेरी बातों पर ध्यान नहीं दिया पार्थ। तुम केवल अपने धर्म का पालन करो। युद्ध करना तुम्हारे वश में है किन्तु युद्ध का परिणाम तुम्हारे वश में नहीं है इसलिये केवल तुम युद्ध करो पार्थ और युद्ध का परिणाम मुझपर छोड़ दो और सूर्य की ओर मत देखो। युद्ध करो। अर्जुन बोला, जो आज्ञा केशव।

श्रीकृष्णने चक्र उठाया था, क्रोधसे नेत्र लाल कर लिये थे, भृकुटि कठोर हो गयी थी। वे हुंकार करते दौड़ रहे थे किन्तु भीष्मकी ओर उन्होंने अबतक देखा नहीं था। वे केवल सामने गगनमें ही देखते बढ़े जा रहे थे। अर्जुनकी बात सुनकर शान्त हुए। सामने भीष्मपर दृष्टि पड़ते ही चक्रकी ज्वाला शीतल हो गयी। श्रीकृष्ण मुस्कुराने लगे और लौटकर रथपर बैठ गये। रथकी रश्मि उन्होंने हाथोंमें ले ली।

कौरवोंके प्रारब्धमें इसदिन भी पराजय ही थी। धनंजय पूरे उत्साहमें आ गये थे। अब कौन उनके सम्मुख रुकता। उन्होंने महेन्द्रास्त्रका प्रयोग किया और शत्रु सेना समाप्त ही हो जाती यदि सूर्यास्त होनेसे युद्ध विरमित न हो गया होता।

अर्जुनकी यह प्रतिज्ञा सुनकर श्रीकृष्ण प्रसन्न हो गये और उनका प्रिय करनेके लिये पुन: चक्रसहित रथपर जा बैठे। उन्होंने अपने पाञ्चजन्य शफ्की ध्वनिसे दिशाओंको निनादित कर दिया। उस समय कौरवोंकी सेनामें कोलाहल मच गया और अर्जुनके गाण्डीव धनुषसे सब दिशाओंमें तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा होने लगी।

तब भूरिश्रवाने अर्जुनपर बाण, दुर्योधनने तोमर, शल्यने गदा और भीष्मने शक्तिका प्रहार किया। अर्जुनने भी बाण मारकर भूरिश्रवाके बाणोंको काट दिया, क्षुरसे दुर्योधनका तोमर काट डाला तथा बाणोंसे शल्यकी गदा और भीष्मकी शक्तिको भी टूक-टूक कर दिया। इसके बाद उन्होंने दोनों हाथोंसे गाण्डीव धनुषको खींचकर आकाशमें महेन्द्र नामक अस्त्र प्रकट किया, देखनेमें वह बड़ा ही अद्भुत और भयानक था। उस दिव्य अस्त्रके प्रभावसे अर्जुनने सम्पूर्ण कौरव-सेनाकी गति रोक दी। उस अस्त्रसे अग्निके समान प्रज्वलित बाणोंकी वृष्टि हो रही थी और शत्रुओंके रथ, ध्वजा, धनुष तथा बाहुओंको काटकर वे बाण राजाओं, हाथियों और घोड़ोंके शरीरोंमें घुस जाते थे। इस प्रकार तेज धारवाले बाणोंका जाल बिछाकर अर्जुनने सम्पूर्ण दिशाओं और उपदिशाओंको आच्छन्न कर दिया और गाण्डीव धनुषकी टंकारसे शत्रुओंके मनमें अत्यन्त पीड़ा भर दी। रक्तकी नदी बहने लगी। कौरव-सेनाके प्रमुख वीरोंका नाश हुआ देखकर चेदि, पञ्चाल, करुष और मत्स्यदेशीय योद्धा तथा समस्त पाण्डव हर्षनाद करने लगे। अर्जुन और श्रीकृष्णने भी हर्ष प्रकट किया।

श्रीकृष्ण के अपने रथपर वापस लौटते ही जैसे दुर्योधन इत्यादि जाग उठे। दुर्योधन, भीष्म, भूरिश्रवा इत्यादि योद्धा आगे बढ़े और शल्य भी उनसे आ मिले। उन लोगों ने एक साथ मिलकर एक प्रबल प्रहार राजकुमार अर्जुन पर किया और तब वीरवर धनंजय ने अपना महेन्द्रास्त्र प्रकट कर दिया। महेन्द्रास्त्र का आना था कि धनंजय ने बाणों का ऐसा जाल बिछा दिया कि कौरवों के रथ ही नहीं गज भी रुक गए। कौरवों को ऐसे स्तब्ध देखकर विराट और द्रुपद भी लौट आए। उनकी सेनाएँ अपने स्थान पर पैर जमाने लगीं। धनंजय उस समय ऐसे प्रबल हो गए थे कि कौरवों के सैनिकों ने जैसे उनके सम्मुख अपना मस्तक ही टेक दिया, जैसे मृतप्राय गज धरती पर गिरने से पहले करता है। उनके यंत्र कट गए, ध्वज गिर गए। दुर्योधन दाँत पीसता रह गया किंतु भीष्म, द्रोण, बाह्लीकइत्यादि योद्धा पीछे हट गए। प्राच्य, सौवीर, क्षुद्रक और मालव क्षत्रिय प्राय: नष्ट हो गए। श्रुतायु, अंबष्ठपति, दुर्मर्षण, चित्रसेन, द्रोण, कृप, जयद्रथ, बाह्लीक, भूरिश्रवा, शल्य, शल और पितामह भीष्म राजकुमार अर्जुन द्वारा पराजित किए गए।

भीष्म और अर्जुन मे भयंकर युद्ध हुआ। सूर्यास्त हो गया और तीसरे दिन की युद्ध की समाप्ति की घोषणा हो गई। भीष्म को उस दिन बहुत गहरे घाव लगे। इसी समय सूर्य कुरुक्षेत्र के पश्चिम क्षितिज पर डूब गया। युद्ध रुक गया। दोनों महापुरुष शान्तिपूर्वक अपने-अपने शिबिर में चल पड़े।

तदनन्तर, सूर्यदेव अपनी किरणोंको समेटने लगे। इधर कौरव-वीरोंके शरीर अस्त्र-शस्त्रोंसे क्षत-विक्षत हो रहे थे, युगान्तकालके समान सब ओर फैला हुआ अर्जुनका ऐन्द्र अस्त्र भी अब सबके लिये असह्य हो चुका था- इन सब बातोंका विचार करके संध्याकाल उपस्थित देख भीष्म, द्रोण, दुर्योधन और बाल्हीक आदि कौरव वीर सेनासहित शिबिरको लौट आये। अर्जुन भी शत्रुओंपर विजय और यश पाकर भाइयों और राजाओंके साथ छावनीमें चले गये। कौरवोंके सैनिक शिबिरमें लौटते समय एक-दूसरे-से कहने लगे- अहो। आज अर्जुनने बहुत बड़ा पराक्रम दिखाया है, दूसरा कोई ऐसा नहीं कर सकता। अपने ही बाहुबलसे उन्होंने अम्बष्ठपति, श्रुतायु, दुर्मर्षण, चित्रसेन, द्रोण, कृप, जयद्रथ, बाल्हीक, भूरिश्रवा, शल, शल्य और भीष्मसहित अनेकों योद्धाओंपर विजय पायी है।

दुर्योधन भी पितामह के शिबिर में आया और भीष्म से बोला, उस ग्वाले ने आज प्रतिज्ञा भंग की है। तब भीष्म बोले, दुर्योधन अपनी बक-बक को बन्द करो और उसके कन्धों को थपथपाते हुए बोले, दुर्योधन। अब भी समय है, इस विनाशकारी महाभयानक युद्ध को रोक दो। न तो तुम और न तुम्हारे भ्राताओं में से कोई भी, इतना ही नहीं- ग्यारह अक्षौहिणियों से बची हमारी सेना में भी कोई ऐसा नहीं है जो श्रीकृष्ण के आसपास भी खड़ा रह सके। उसे पहचानने में तुम भूल कर रहे हो। सँभालो अपने-आप को। श्रीकृष्ण ने किसी भी प्रकार नियम भंग नहीं किया। उसने जो अपने हाथों में उठाया था, वह रथचक्र था- शस्त्र नहीं। वह भी क्यों उठाया था उसने? वह भी क्यों उठाया था उसने? इसे केवल मैं ही जान सकता हूँ। रथचक्र को उठाकर उसने मेरी प्रतिज्ञा को पूरा होने दिया- बिना अपनी प्रतिज्ञा को भंग किये। अत: ज्येष्ठ होने के नाते मैं तुमसे कह रहा हूँ, रोक दो इस युद्ध को। पाण्डवों को उनका इन्द्रप्रस्थ लौटा दो। तब हमें हस्तिनापुर और पाण्डवों को इन्द्रप्रस्थ भेजकर वह ग्वाला द्वारिका चला जाए। दुर्योधन को यह स्वीकार होना सम्भव ही नहीं था।

## १०) महाभारत का युद्ध (चौथा दिन)

### सांयमनिपुत्र और धृतराष्ट्र के दस पुत्रोंका वध तथा गजसंहार

सायंकाल अपने शिबिर में भीष्म घाव पर लेप लगा रहे हैं उनके पास शकुनि, दुर्योधन, दु:शासन आते हैं। शकुनि बोला, प्रणाम तातश्री। घाव अति गहरे तो नहीं है तातश्री? भीष्म बोले, जो सबसे अधिक गहरा घाव है गान्धार नरेश वो तुम्हे दिखाई नहीं देगा। भरत वंश के जिस छतनार वृक्ष के नीचे बैठे हो गान्धार नरेश यदि वो ही नहीं रहा तो तुम कहां जाओगे? हटाओ इस स्नेह लेप को। घावों का कोई महत्त्व नहीं। अब भी कुछ नहीं बिगडा है पुत्र। उनसे सन्धि कर लो लौटा दो पांडवों को उनका इन्द्रप्रस्थ। दुर्योधन बोला, चाहे हस्तिनापुर मैं हार ही क्यों न जाऊं पितामह किन्तु पांडवों को तो मैं सूई की नोंक जितनी भूमि भी नहीं दूंगा पितामह और अब तो मुझे यकीन हो गया पितामह कि आप, आचार्य द्रोण और कृपाचार्य के होते मैं यह युद्ध जीत ही नहीं सकता। शकुनि बोला, ये क्या कह रहे हो भान्जे दुर्योधन? यदि ये तीनों महापुरुष नहीं होते तो तुम यह युद्ध कल ही हार गये होते। दुर्योधन बोला, कदाचित आप ठीक कह रहे हैं मामाश्री। यदि कल इन तीनों महापुरुषों ने चाहा होता तो मैं यह युद्ध अवश्य जीत रहा होता। मेरी सेना यह जानती है कि जिनसे वो युद्ध कर रही है उनमें से किसी एक का भी वध प्रधान सेनापति के हाथों नहीं होगा। भीष्म बोले, कोई वृक्ष स्वयं अपनी शाखायें नहीं काटता पुत्र। तुम भी मुझे पांडवों से कम प्रिय नहीं हो पुत्र। ऐसा नहीं होता तो तुमने अभी-अभी जो असभ्यता का मेरे सामने प्रदर्शन किया है, महादेव की सौगन्ध तुम अभी जीवित खड़े दिखाई नहीं देते परन्तु तुमने भी मेरे स्नेह का वो ही कवच पहिन रखा है जो मेरे प्रिय पांडवों ने पहिन रखा है और मेरा कोई बाण उस कवच को नहीं भेद सकता पुत्र। इसलिये मुझसे अपनी लम्बी आयु का आशीर्वाद लो और जाओ विश्राम करो कल फिर युद्ध करना है। दुर्योधन बोला, क्या मैं एक प्रार्थना कर सकता हूँ। भीष्म बोले, नहीं। जब तक कि इस सेना का प्रधान सेनापति मैं हूं वो अंगराज कर्ण इस युद्ध में भाग नहीं लेगा। दुर्योधन क्या मैं पूछ सकता हूँ पितामह आप उस परशुराम शिष्य कर्ण को किस अपराध का दंड दे रहे है? भीष्म बोले, उसने मेरे गुरु परशुराम का अपमान किया है। उनका कोई शिष्य असभ्य नहीं हो सकता और उसने भरी राज सभा में कुलवधू द्रौपदी को वेश्या कहकर उसका घोर अपमान किया है। जो नर किसी नारी की मर्यादा की रक्षा नहीं कर सके वो मेरे ध्वज तले युद्ध नहीं कर सकता। दुर्योधन बोला, अगर वो अपराध है तो वो अपराध हम सभी ने किया है। मैंने किया है आपने किया है। शकुनि बोला, परन्तु भान्जे के कहने का यह तात्पर्य नहीं है तातश्री। भीष्म बोले, गान्धार नरेश आप कृपया मुझे तातश्री मत कहा कीजिये। इस युग में अब नातों का कोई अर्थ नहीं रह गया है। यह किन्तु शब्द है जो

पत्थरों की भांति उठाकर अपने से बडों को मारने के काम आते हैं और दुर्योधन ने जो अभी कुछ कहा है उसका तात्पर्य वही था जो मैंने निकाला है, और मैंने समझा है और वत्स उस अपराध का क्या यह दंड नहीं है जो मैं तुम्हारे पक्ष में युद्ध कर रहा हूं। जाओ और मुझे अपने इस अपराध बोध के साथ अकेला छोड दो। दुशासन बोला, परन्तु पितामह आप... भीष्म बोले, यही तो मेरा दुर्भाग्य है दु:शासन कि मैं तुम जैसों का पितामह हूं और यदि माता सत्यवती ने तुम सबको मुझे न सौंपा होता तो मैं तुम सबको कब का त्याग चुका होता। तुम सबने जगह-जगह पर बार-बार मेरे श्वेत केशों का अपमान किया है किन्तु याद रखो पुत्र मैं इस अपमान का विष पीकर केवल हस्तिनापुर के लिये जी रहा हूं। तुममें से कोई एक भी ऐसा नहीं है जिसके लिये कोई व्यक्ति जीना चाहे यदि तुम्हे मेरी निष्ठा पर भरोसा नहीं रहा तो किसी और को अपना प्रधान सेनापति बनालो। दुर्योधन बोला, मैं किसी और को अपना प्रधान सेनापति बना लूं इसलिये कि आप पांडवों के पक्ष में युद्ध कर सके। नहीं पितामह यह नहीं हो सकता, कदापि नहीं हो सकता। आपकी निष्ठा, आपका विश्वास, आपकी अन्तरात्मा चाहे उन पांडवों के पक्ष में हो परन्तु आपको युद्ध तो मेरे ही पक्ष से करना पडेगा। प्रणाम। शकुनि बोला, प्रणाम तातश्री और सब चले गये। सेवक लेप लेकर आता है। भीष्म ने उसे जाने का संकेत कर कहा क्या आप भी मेरी आज्ञा का पालन नहीं करेंगे। इस घाव को छोडिये। ये स्वयं भर जानेवाले घाव हैं। सेवक बोला, जो आज्ञा।

संजयने कहा, राजन्। रात बीतनेपर चौथे दिन प्रात:काल ही भीष्म बड़े क्रोधमें भरकर सारी सेनाके सहित शत्रुओंके सामने आये। उस समय द्रोणाचार्य, दुर्योधन, बाल्हीक, दुर्मर्षण, चित्रसेन, जयद्रथ तथा अनेकों दूसरे राजालोग उनके साथ-साथ चल रहे थे। भीष्मने सीधे अर्जुनपर ही धावा किया तथा उनके साथ द्रोणाचार्यादि सभी वीर एवं कृपाचार्य, शल्य, विविशति, दुर्योधन और भूरिश्रवा भी उन्हींपर टूट पड़े। यह देखते ही सर्वशस्त्रज्ञ अभिमन्यु उनके सामने आया। उसने उन महारथियोंके सब अस्त्र-शस्त्र काट डाले और रणाङ्गणमें शत्रुओंके खूनकी नदी बहा दी। भीष्मने अभिमन्युको छोड़कर अर्जुनपर आक्रमण किया। किंतु किरीटीने मुसकराकर अपने गाण्डीव धनुषद्वारा छोड़े हुए बाणोंसे उनके शस्त्रसमूहको नष्ट कर दिया और उनपर बड़ी फुर्तीसे बाण बरसाना आरम्भ किया। तब भीष्मने अपने बाणोंसे अर्जुनके शस्त्र-समूहको नष्ट कर दिया। इस प्रकार कुरु और सञ्जय वीरोंने भीष्म और अर्जुनका वह अद्‌भुत द्वन्द्वयुद्ध देखा।

कुरुक्षेत्र के स्थितप्रज्ञ और शाश्वत क्षितिज पर युद्ध के चौथे दिन की तेजस्वी आकाशवाणी चमकने लगी। सेनापति भीष्म की अचूक सूचनाओं के अनुसार कौरव-योद्धाओंने आज अपनी सेना को आक्रमण के लिए तैयार करते हुए वृषभ के आकार में रचा था। सेना के सँकरे मुख पर स्वयं भीष्म, द्रोण, कृप, दुर्योधन, अश्वत्थामा आदि योद्धाओं सहित शस्त्र-सज्ज होकर खड़े हुए थे। वृषभ के विस्फारित नासापुटों के स्थान अवन्ती के विन्द-अनुविन्द ने ले लिये। वृषभ के ऊपर उठाये हुए सींगों में राजा चल और शल्य ने अपने सैनिकों को स्थापित कर दिया। वृषभ के पुष्ट कन्धों के स्थान पर राजा सुदक्षिण और नील थे। वृषभ के दायीं ओर झुके पुष्ट ककुद के स्थान पर कैकेयों ने अपने सैनिकों की पंक्तियाँ खड़ी कीं। वृषभ के विशाल उदर में भगदत्त, भूरिश्रवा और जयद्रथ खड़े हो गये। यादव-प्रमुख महारथी कृतवर्मा ने वृषभ की वृत्ताकार उठायी पूँछ के आकार में अपनी सेना की रचना की और स्वयं उसके अग्रस्थान पर रहा। इन यादव-सैनिकों को पितामह ने आज विश्राम ही दिया था, किन्तु आगे वे इसकी पूर्ति करनेवाले थे। उस विशालकाय वृषभ के अगले दो और पिछले दोनों पैरों के स्थान पर मुख्यत: लड़ाकू वन्य जातियों के सैनिक थे। अगले दो पैरों में थे दरद और यवन-सैनिक तथा पिछले दो पैरों में थे बर्बर और निषाद-सैनिक।

नित्य की भाँति आज भी पहला शंख पाण्डव सेना से कृष्णने बजाया। उनके पीछे-पीछे पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, पाँचों पाण्डव, अश्वत्थामा, कृपाचार्य के शंख गूँज उठे। तुमुल रणघोष के साथ चौथे दिन के भयंकर युद्ध का आरम्भ हुआ। द्रोण, दुर्योधन सहित बाह्लीक, दुर्मर्षण, जयद्रथ आदि के रथों से घिरा हुआ पितामह भीष्म का सात शुभ्र-धवल

अश्वोंवाला गंगौघ रथ झपट्टा मारकर अग्रसर हुआ। उन सबने अर्जुन पर चढ़ाई की। पाण्डवों की सेना के दायीं ओर लड़नेवाले वीर अभिमन्यु को पाँच वीरों ने घेर लिया था। दोनों पिता-पुत्र बड़े धैर्य से, निश्चयपूर्वक अपने युद्ध-कौशल से इन सामूहिक आक्रमणों का प्रतिकार करते रहे। अर्जुन का दिव्य गाण्डीव धनुष कड़कड़ाती सौदामिनी की भाँति चमकने लगा। तभी धृष्टद्युम्न ने चल राजा के पुत्र का वध कर दिया। इससे कौरवों की ओर कोलाहल मच गया। चल और शल्य ने एक साथ धृष्टद्युम्न को घेरकर उसका धनुष तोड़ डाला। धृष्टद्युम्न को शस्त्रहीन हुआ देख वीर अभिमन्यु चपलता से उसकी सहायता करने हेतु दौड़ा। अपने अनिवार्य बाणों से उसने शल्य को ऐसे जकड़ दिया कि उसके सैनिक सहायता के लिए दुर्योधन को पुकारने लगे। उनका आक्रोश सुनकर दुर्योधन ने सबसे पहले क्रोधित होते हुए अपने विदारक शंख को फूँका। उसके बाद अपने रथ से ही चपल गतिविधियाँ करते हुए जयद्रथ के सैन्धव पथक के प्रचण्ड हाथियों को उसने शल्य की सहायता के लिए उसकी ओर घूमाया। सूँड़ उठाकर चीत्कार करते हाथियों की चिंघाड़ में दुर्योधन की घोषणाएँ मिलने लगीं। आक्रमण, कुचल कर उद्ध्वस्त कर डालो अभिमन्यु और धृष्टद्युम्न की सेनाओं को।

इधर अभिमन्युको द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, शल्य, चित्रसेन और सांयमनिके पुत्रने घेर लिया। उन पाँच पुरुषसिंहोंके साथ अकेला युद्ध करता हुआ अभिमन्यु ऐसा जान पड़ता था मानो कोई शेरका बच्चा पाँच हाथियोंसे लड़ रहा हो। निशाना लगानेकी सफाई, शूरवीरता, पराक्रम और फुर्तीमें कोई भी वीर अभिमन्युकी बराबरी नहीं कर सकता था। राजन्। जब आपके पुत्रोंने देखा कि सेना बड़ी तंग आ गयी है तो उन्होंने अभिमन्युको चारों ओरसे घेर लिया। परंतु अपने तेज और बलके कारण अभिमन्युने तनिक भी हिम्मत नहीं हारी। वह निर्भय होकर कौरवोंकी सेनाके सामने आकर डट गया। उसने अपने बाणसे अश्वत्थामाको और शल्यको घायल कर अपने बाणों द्वारा सांयमनिके पुत्रकी ध्वजा काट दी। फिर भूरिश्रवाकी छोड़ी हुई सर्पके समान प्रचण्ड शक्तिको अपनी ओर आती देख उसे भी पैने बाणसे काट डाला। इस समय शल्य बड़े वेगसे बाण-वर्षा कर रहे थे। अभिमन्युने उसे रोककर उनके घोड़े मार डाले। इस प्रकार भूरिश्रवा, शल्य, अश्वत्थामा, सांयमनि और शल- इनमेंसे कोई भी अभिमन्युके बाहुबलके आगे नहीं टिक पाया।

तब दिव्यरूप श्रीभगवानने अत्यन्त मधुर और गम्भीर वाणीमें कहा, तात। तुम्हारी जो इच्छा है, वह मुझे योगबलसे मालूम हो गयी हैं; वह पूर्ण होगी। ऐसा कहकर वे वहीं अन्तर्धान हो गये। यह देखकर देवता, गन्धर्व और ऋषियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने बड़े कौतूहलसे ब्रह्माजीसे पूछा, भगवन्। आपने जिनकी ऐसे श्रेष्ठ शब्दोंमें स्तुति की, वे कौन थे? उनके विषयमें हम कुछ सुनना चाहते हैं। तब भगवान् ब्रह्माने मधुर वाणीमें कहा, ये स्वयं परब्रह्म थे, जो समस्त भूतोंके आत्मा, प्रभु और परमपदस्वरूप हैं। मैंने संसारके कल्याणके लिये उनसे प्रार्थना की है कि आपने जिन दैत्य, दानव और राक्षसोंका संग्राममें वध किया था, वे इस समय मनुष्ययोनिमें उत्पन्न हुए हैं; अत: आप उनके वधके लिये नरके सहित मनुष्य रूपमें उत्पन्न होइये। सो अब वे नर-नारायण दोनों ही मनुष्यलोकमें जन्म लेंगे, किंतु मूढ़ पुरुष इन्हें पहचान नहीं सकेंगे। ये शफ-चक्र-गदाधारी वासुदेव सम्पूर्ण लोकोंके महेश्वर हैं। ये मनुष्य हैं- ऐसा समझकर इनका तिरस्कार नहीं करना चाहिये। ये ही परम गुह्य हैं, ये ही परमपद हैं, ये ही परब्रह्म हैं, ये ही परम यश हैं और ये ही अक्षर, अव्यक्त एवं सनातन तेज हैं। ये ही पुरुष नामसे प्रसिद्ध हैं तथा ये ही परम सुख और परम सत्य हैं। अत: अपने सुहृदोंको अभय करनेवाले इन किरीट-कौस्तुभधारी श्रीहरिका जो तिरस्कार करेगा, वह भयंकर अन्धकारमें पड़ेगा।

भीष्म कहते हैं- देवता और ऋषियोंसे ऐसा कहकर श्रीब्रह्माजी उन्हें विदा करके अपने लोकको चले गये और वे सब स्वर्गमें चले आये। एक बार कुछ पवित्रात्मा मुनिगण श्रीकृष्णके विषयमें चर्चा कर रहे थे; उन्हींके मुखसे मैंने यह प्राचीन प्रसङ्ग सुना था। यही बात मैंने जमदग्निनन्दन परशुराम, मतिमान् मार्कण्डेय और व्यास तथा नारदजीसे भी सुनी है। यह

सब जानकर भी हमारे लिये श्रीकृष्ण वन्दनीय और पूजनीय क्यों नहीं हैं। हमें तो अवश्य ही इनका पूजन करना चाहिये। मैंने और अनेकों वेदवेत्ता मुनियोंने तो तुम्हें बार-बार श्रीकृष्ण और पाण्डवोंके साथ युद्ध ठाननेसे रोका था; किंतु मोहवश तुमने इसका कोई तत्व ही नहीं समझा। तुम श्रीकृष्ण और अर्जुनसे द्वेष करते हो। भला, इन साक्षात् नर और नारायणसे कोई दूसरा मनुष्य कैसे द्वेष कर सकता है? मैं तुमसे ठीक-ठीक कहता हूँ- ये सनातन, अविनाशी, सर्वलोकमय, नित्य, जगदीश्वर, जगद्धर्ता और अविकारी हैं। ये ही युद्ध करनेवाले हैं, ये ही जय हैं और ये ही जीतनेवाले हैं। जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं धर्म है और जहाँ धर्म हैं, वहीं जय है। श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी रक्षा करते हैं, इसलिये उन्हींकी जय भी होगी।

दुर्योधनने पूछा- पितामह। इन वसुदेवपुत्रको सम्पूर्ण लोकोंमें महान् बताया जाता है। अत: मैं इनकी उत्पत्ति और स्थितिके विषयमें जानना चाहता हूँ।

भीष्म बोले, भरतश्रेष्ठ। वसुदेवनन्दन नि:संदेह महान् हैं। ये सब देवताओंके भी देवता हैं। कमलनयन श्रीकृष्णसे बड़ा और कोई भी नहीं है। मार्कण्डेय इनके विषय में बड़ी अद्‌भुत बातें कहते हैं। ये सर्वभूतमय और पुरुषोत्तम हैं। सर्गके आरम्भमें इन्हींने सम्पूर्ण देवता और ऋषियोंको रचा था तथा ये ही सबकी उत्पत्ति और प्रलयके स्थान हैं। ये स्वयं धर्मस्वरूप तथा धर्मज्ञ, वरदायक और सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले हैं। ये ही कर्त्ता, कार्य, आदिदेव और स्वयंप्रभु हैं। भूत, भविष्य और वर्तमानकी भी इन्हींने कल्पना की है तथा इन्हींने दोनों संध्याओं, दिशाओं, आकाश और नियमोंको रचा है। अधिक क्या, ये अविनाशी प्रभु ही सम्पूर्ण जगत्‌की रचना करनेवाले हैं। इन परम तेजस्वी प्रभुको केवल ध्यानयोगसे ही जाना जा सकता है। ये श्रीहरि ही वराह, नृसिंह और भगवान् त्रिविक्रम हैं। ये ही समस्त प्राणियोंके माता-पिता हैं। इन श्रीकमलनयन श्रीकृष्णसे बढ़कर कोई दूसरा तत्त्व न कभी था, न होगा ही। इन्होंने अपने मुखसे ब्राह्मणोंको, भुजाओंसे क्षत्रियोंको, जङ्घाओंसे वैश्योंको और पैरोंसे शूद्रोंको उत्पन्न किया है। ये ही सम्पूर्ण भूतोंके आश्रय हैं। जो पुरुष पूर्णिमा और अमावस्याके दिन इनका पूजन करता है, वह परमपद प्राप्त करता है। ये परम तेज:स्वरूप और समस्त लोकोंके पितामह हैं। मुनिजन इन्हें हृषीकेश कहते हैं। ये ही सबके सच्चे आचार्य, पिता और गुरु हैं। जिसपर ये प्रसन्न हैं, उसने मानो सभी अक्षयलोक जीत लिये हैं। जो पुरुष भयके समय श्रीकृष्णकी शरण लेता है और सर्वदा इस स्तुतिका पाठ करता है, वह कुशलसे रहता है और सुख पाता है। उसे कभी मोह नहीं होता। इन्हें यथावत् रूपसे सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी और समस्त योगोंके प्रभु जानकर ही राजा युधिष्ठिरने इनकी शरण ली है।

राजन्। पूर्वकालमें ब्रह्मर्षि और देवताओंने इनका जो ब्रह्ममय स्तोत्र कहा है, वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ; नारदजीने कहा है- आप साध्यगण और देवताओंके भी देवाधिदेव हैं तथा सम्पूर्ण लोकोंका पालन करनेवाले और उनके अन्त:करणके साक्षी हैं। मार्कण्डेयने कहा है- आप ही भूत, भविष्य और वर्तमान हैं तथा आप यज्ञोंके यज्ञ और तपोंके तप हैं। भृगुजी कहते हैं- आप देवोंके देव हैं तथा भगवान् विष्णुका जो पुरातन परमरूप है, वह भी आप ही हैं। महर्षि द्वैपायनका कथन है- आप वसुओंमें वासुदेव, इन्द्रको भी स्थापित करनेवाले और देवताओंके परमदेव हैं। अङ्गिरा कहते हैं- आप पहले प्रजापतिसर्गमें दक्ष थे तथा आप ही समस्त लोकोंकी रचना करनेवाले हैं। देवल मुनि कहते हैं- अव्यक्त आपके शरीरसे हुआ है, व्यक्त आपके मनमें स्थित है तथा सब देवता भी आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। असित मुनिका कथन है- आपके सिरसे स्वर्गलोक व्याप्त है और भुजाओंसे पृथ्वी तथा आपके उदरमें तीनों लोक हैं। आप सनातन पुरुष हैं। तप:शुद्ध महात्मालोग आपको ऐसे ही समझते हैं तथा आत्मतृप्त ऋषियोंकी दृष्टिमें भी आप सर्वोत्कृष्ट सत्य हैं। मधुसूदन। जो सम्पूर्ण धर्मोंमें अग्रगण्य और संग्रामसे पीछे हटनेवाले नहीं हैं, उन उदारहृदय राजर्षियोंके परमाश्रय भी आप ही हैं। योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सनत्कुमारादि इसी प्रकार श्रीपुरुषोत्तम भगवान्‌का सर्वदा पूजन और स्तवन करते हैं। राजन्। इस तरह विस्तार और संक्षेपसे मैंने तुम्हें

श्रीकृष्णका स्वरूप सुना दिया। अब तुम प्रसन्न चित्तसे उनका भजन करो।

अब दुर्योधनकी आज्ञासे त्रिगर्त्त, मद्र और केकय देशके पच्चीस हजार वीरोंने अर्जुन और अभिमन्यु दोनोंको घेर लिया। यह देखकर पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न अपनी सेना लेकर बड़े क्रोधसे मद्र और केकय देशके वीरोंपर टूट पड़ा। उसने अपने बाणोंसे दस मद्रदेशीय वीरोंको, कृतवर्माके पृष्ठरक्षकको और कौरवके पुत्र दमनको मार डाला। इतनेहीमें सायंमनिके पुत्रने अपने बाणोंसे धृष्टद्युम्नको और उसके सारथीको बींध दिया। तब धृष्टद्युम्नने अत्यन्त पीडित होकर अपने बाणसे सायंमनिपुत्रका धनुष काट डाला तथा घोड़ोंको और रथके सारथियोंको मार गिराया। सायंमनिपुत्र तलवार लेकर रथसे कूद पड़ा और बड़ी तेजीसे पैदल ही रथमें बैठे हुए अपने शत्रुके पास पहुँचा। यह देखकर धृष्टद्युम्नने क्रोधमें भरकर गदाके प्रहारसे उसका सिर फोड़ दिया। गदाकी चोटसे ज्यों ही वह पृथ्वीमें गिरा कि उसके हाथसे वह तलवार और ढाल भी छूटकर दूर जा पड़ी।

इस प्रकार उस महारथी राजकुमारके मारे जानेसे कौरवों की सेनामें बड़ा हाहाकार होने लगा। जब सायंमनिने अपने पुत्रको मरा हुआ देखा तो वह अत्यन्त क्रोधमें भरकर धृष्टद्युम्नकी ओर चला। वे दोनों वीर आमने-सामने आकर रणाङ्गणमें भिड़ गये तथा कौरव, पाण्डव और समस्त राजालोग उनका युद्ध देखने लगे। सायंमनिने क्रोधमें भरकर धृष्टद्युम्नको बाण मारे तथा दूसरी ओरसे शल्यने भी उसपर प्रहार किया। शल्यके बाण लगनेसे धृष्टद्युम्नको बड़ी व्यथा हुई, तब उसने क्रोधमें भरकर फौलादके बाणोंसे मद्रराजकी नाकमें दम कर दिया। कुछ देरतक उन दोनों महारथियोंका युद्ध समानरूपमें चलता रहा; उनमें किसीकी भी न्यूनाधिकता मालूम नहीं हुई। इतनेहीमें महाराज शल्यने अपने बाणसे धृष्टद्युम्नका धनुष काट डाला तथा उसे बाणोंसे आच्छादित कर दिया।

भीमने धृतराष्ट्र पुत्रों को देखा और बोला, तुम्हारा स्वागत है अनुजों। मैं तो दुर्योधन और दु:शासन को खोज रहा था किन्तु तुम भी तो नागफणि के काँटे ही हो। तुम सबको भी तो काटना ही होगा। भीम रथ से उतरकर गदाओं से युद्ध करने लगा और दुर्योधन के भाइयों को मारने लगा। धृतराष्ट्र बोला, संजय लगता है तुम्हारी इन आंखों को अच्छी घटनायें दिखाई ही नहीं देती। तुम तो केवल मेरी सेना की पराजय ही देख सकते हो। क्या अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, युधिष्ठिर, अभिमन्यु आदि के अतिरिक्त तुम्हे और कोई युद्ध करता दिखाई नहीं देता? क्या मेरे पुत्र युद्ध कला भूल चुके हैं? तातश्री, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शल्य, अश्वत्थामा ये महारथी क्या कर रहे हैं? संजय बोला, ये सब युद्ध कर रहे है महाराज किन्तु... धृतराष्ट्र बोले, किन्तु... अपनी किन्तु को मेरे कक्ष से बाहर फेंको। ये शब्द भी मेरे विरोध में खडे हो जाता है। मुझे गान्धारी के पास ले चलो।

परिणाम सोचे बिना अनावश्यक रूप से संकट को आमंत्रित करना विजय को पराजय में परिणत कर, वीरता को मूर्खता भी सिद्ध कर सकता है। द्रुपद आचार्य द्रोण से उलझे हुये थे। धृष्टद्युम्न महाराज द्रुपद की सहायता के लिए उनकी ओर बढ़ ही रहा था कि उसकी दृष्टि रणभूमि में खड़े शकुनि पर पड़ी। राजनीति और द्यूत के पाँसे फेंकनेवाला शकुनि भी युद्ध कर रहा था। धृष्टद्युम्न को लगा कि न तो वह व्यूह की चिंता कर सकता है न कहीं से और सहायता आने अथवा सहायता पहुँचाने की। उसे तो बस शकुनि को पाठ पढ़ाना है। यही वह बिच्छू है, जो आज तक बार-बार पाण्डवोंको डसता रहा है। यही है, जिसने द्यूत में सब कुछ हार जाने पर भी, धर्मराज को यह कहकर उठने नहीं दिया कि अभी तो पांचाली बची हुई है। इसी ने द्रौपदी को दाँव पर लगवाया, इसी ने उसे दासी बनाया, इसी ने उसे अपमानित करवाया। इसे मारे बिना धृष्टद्युम्न की न तो शपथ पूरी हो सकती है और न ही उसके मन की धधकती ज्वाला शांत हो सकती है। आज शकुनि सामने पड़ गया था, नहीं तो सर्प के समान जाने कहाँ अपनी बिल में छिपा रहता था। पाँसे फेंकनेवाले इस विषधर को आज धृष्टद्युम्न अपने बाणों का विष भी चटा ही दे।

यह देखकर अभिमन्यु बड़े क्रोधमें भरकर मद्रराजके रथकी ओर दौड़ा और बड़े तीखे बाणोंसे उन्हें बींधने लगा। तब दुर्योधन, विकर्ण, दु:शासन, विविंशति, दुर्मर्षण, दु:सह, मित्रसेन, दुर्मुख, सत्यव्रत और पुरुमित्र- ये सब योद्धा मद्रराजकी

रक्षा करने लगे। किंतु भीम, धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पाँच पुत्र, अभिमन्यु और नकुल-सहदेवने इन्हें रोक दिया। ये सब वीर बड़े उत्साहसे आपसमें युद्ध करने लगे। इन दोनों पक्षोंके दस-दस रथियोंका भयंकर युद्ध आरम्भ होनेपर उसे दुर्योधनके और पाण्डवोंके पक्षके दूसरे रथी दर्शकोंकी तरह देखने लगे। दुर्योधनने अत्यन्त क्रोधमें भरकर अपने तीखे बाणोंसे धृष्टद्युम्नको बींध दिया तथा दुर्मर्षणने, चित्रसेनने, दुर्मुखने, दु:सहने, विविंशतिने और दु:शासनने बाण छोड़कर उसे घायल किया। तब धृष्टद्युम्नने भी अपने हस्तलाघव से बाण मारे तथा अभिमन्युने सत्यव्रत और पुरुमित्र को बाणोंसे बींध दिया। नकुल और सहदेवने अचरज-सा दिखाते हुए अपने मामा शल्यपर तीखे-तीखे बाण चलाये। तब शल्यने भी अपने भानजोंपर अनेकों बाण छोड़े, किंतु माद्रीकुमार नकुल और सहदेव बाणोंसे बिल्कुल ढक जानेपर भी अपने स्थानसे तिलभर नहीं डिगे।

भीमने जब दुर्योधनको अपने सामने देखा तो सारे झगड़ेका अन्त कर देनेके लिऐ एक गदा उठायी। भीमको गदा धारण किये देख आपके सब पुत्र डरकर भाग गये। तब दुर्योधनने क्रोधमें भरकर मगधराजको उसकी दस हजार गजारोही सेनाके सहित आगे करके भीमपर धावा किया। बस, भीम रथसे कूदकर अपनी गदासे हाथियोंको कुचलते हुए रणक्षेत्रमें विचरने लगे। उस समय भीमकी दिलको दहलानेवाली दहाड़ सुनकर सब हाथी सुन्न-से हो गये। तब द्रौपदीके पुत्र, अभिमन्यु, नकुल, सहदेव और धृष्टद्युम्न- ये पाण्डवपक्षके वीर भीमकी पीछेसे रक्षा करते हुए अपने पैने बाणोंसे मागधीसेनाके गजरोही वीरोंके सिर काटने लगे। यह देखकर मगधराजने अपने ऐरावतके समान विशालकाय हाथीको अभिमन्युके रथकी ओर पेल दिया। किंतु वीर अभिमन्युने एक ही बाणमें उस हाथीका काम तमाम कर दिया और एक ही बाणसे वाहनहीन मगधराजका सिर उड़ा दिया। भीम भी उस गजारोही सेनामें घूम-घूमकर हाथियोंको मारने लगे। उस समय भीमके एक-एक प्रहारसे ही हाथियोंको लोट-पोट होते देखा था। क्रोधातुर भीमकी चोट खाकर वे हाथी भयसे इधर-उधर भागकर कौरवों की ही सेना को रौंदे डालते थे। उस समय अपनी गदाको सब ओर घूमाते हुए भीम ऐसे जान पड़ते थे, मानों साक्षात् शंकर ही रणाङ्गणमें नृत्य कर रहे हों।

इसी समय हजारों रथियोंके सहित आपके पुत्र नन्दकने अत्यन्त कुपित होकर भीमपर आक्रमण किया। उसने भीमपर बाण छोड़े तथा दूसरी ओरसे दुर्योधनने बाणोंसे उनके वक्ष:स्थलपर वार किया। तब महाबाहु भीम अपने रथपर चढ़ गये और अपने सारथी विशोकसे बोले, देखो, ये महारथी धृतराष्ट्रपुत्र मेरे प्राणोंके ग्राहक होकर आये हैं, सो मैं तुम्हारे सामने ही इनका अन्त कर दूँगा। इसलिये मेरे रथ को इनके सामने ले चलो। सारथीसे ऐसा कहकर उन्होंने नन्दककी छातीमें बाण मारे। इधर दुर्योधनने भी बाणोंसे भीमको और उनके सारथीको घायल कर दिया। फिर बाण छोड़कर उसने हँसते-हँसते उनका धनुष भी काट डाला। तब भीमने एक दूसरा दिव्य धनुष लिया और उससे एक भयंकर बाण छोड़कर दुर्योधनका धनुष काट डाला। दुर्योधन ने भी तुरन्त ही दूसरा धनुष लिया उसने भीमकी छातीपर चोट की। उस बाणसे व्यथित होकर भीम रथके पिछले भागमें बैठ गये और उन्हें मूर्च्छा हो गयी।

भीमको मूर्च्छित देखकर अभिमन्यु आदि पाण्डवपक्षके महारथी असहिष्णु हो उठे और दुर्योधनके सिरपर पैने-पैने शस्त्रोंकी भीषण वर्षा करने लगे। इतनेहीमें भीमको चेत हो गया। उन्होंने दुर्योधनपर बाण छोड़े। इसके बाद राजा शल्यपर बाण चलाये। उनसे घायल होकर मद्रराज मैदान छोड़कर चले गये। तब आपके चौदह पुत्र सेनापति, सुषेण, जलसन्ध, सुलोचन, उग्र, भीमरथ, भीम, वीरबाहु, अलोलुप, दुर्मुख, दुष्प्रधर्ष, विवित्सु, विकट और सम भीमके ऊपर चढ़ आये। उनके नेत्र क्रोधसे लाल हो रहे थे। उन्होंने एक साथ ही बहुत-से बाण छोड़कर भीमको घायल कर दिया। आपके पुत्रोंको अपने सामने देखकर महाबली भीम उनपर इस प्रकार टूट पड़े, जैसे भेड़िया पशुओंपर टूटता है। फिर उन्होंने गरुड़के समान लपककर एक पैने बाणसे सेनापतिका सिर काट डाला, अपने तीखे बाणोंसे जलसन्धको घायल करके यमपुर भेज दिया, सुषेणको मारकर मृत्युके हवाले कर दिया, उग्रका मुकुट और कुण्डलोंसे विभूषित सिर काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया तथा वीरबाहुको उसके घोड़े, ध्वजा और

सारथिके सहित धराशायी कर दिया। इसी तरह उन्होंने भीम, भीमरथ और सुलोचनको भी सब सेनानियोंके देखते-देखते यमराजके घर भेज दिया। भीमका ऐसा प्रबल पराक्रम देखकर आपके शेष पुत्र डरके मारे इधर-उधर भाग गये।

स्वयं उसे रोकने के लिए धृतराष्ट्र के आठ रथारूढ़ पुत्रों को आते हुए भीम ने दूर से देखा। वह झट से पुन: रथारूढ़ हुआ और चिल्लाया- विशोक, वल्गाओं को खुली छोड़ दो। केवल संकेत से ही अपने रथ को उस अष्टक के आगे ले लो। दृष्टिपथ में दुर्योधन के आठों भ्राताओं के आते ही भीमने विद्युत्-गति से उन पर अविरत बाण-वर्षा की। प्रबल वायु के झोंके जिस प्रकार पके फलों को वृक्ष से धरती पर गिरा देते हैं, वैसे ही भीमने दुर्योधन के आठों भ्राताओं को धरती पर गिरा दिया।

मध्य पाण्डव भीमने आक्रोशपूर्वक रौद्ररूप धरे हुए कौरव सेना रूपी सागर में प्रवेश किया तो सचमुच वे उनको मथ ही रहे थे। उनकी गदा के प्रहार से कौरवों के विशालकाय गजों के कुंभस्थल फट गए, पृष्ठभाग विदीर्ण हो गए, गजारोही धराशायी हो गए, रथ टूट गए, अश्वारोही नष्ट हो गए।

धृष्टद्युम्न आगे बढ़ा तो उस रण का कोलाहल ही सुनाई नहीं पड़ने लगा, युद्ध के प्रत्यक्ष प्रमाण भी मिलने लगे। अकेले पदाति भीम केवल एक गदा लिए हुए कौरवों के मध्य खड़े उनकी सेना को मथ रहे थे। कौरव सेना सागर की लहरों के समान बार-बार लौटकर भीम रूपी शिला से टकराती थी और फिर कठोर प्रतिरोध पाकर बिखर जाती थी। यह सत्य था कि भीम उनका भयंकर संहार कर रहे थे। कौरव सेना उस समय भीम के बल को रोकने के लिये पर्याप्त नहीं थी। धृष्टद्युम्न ने अपना रथ भीम तथा कौरव सेना के मध्य खड़ा कर दिया। भीम पदाति थे और वीरता, कौशल, शस्त्र दक्षता इन सबसे अधिक थे । क्रोध का विष ही उगल रहे थे। न तो भीम की भुजाएँ रूक रही थी और न कौरवों का संहार। भीम उस समय प्रलयकालीन यमराज की प्रतिमूर्ति लग रहे थे। धृष्टद्युम्न ने भी को अपने रथ पर खींच लिया। भीम ने इस समय तक अत्यंत भयंकर कर्म किया और कौरवोंकी पर्याप्त क्षति की। धृष्टद्युम्न ने सारथी को अपना रथ इस क्षेत्र से बाहर निकाल, पांडव सेना के निकट ले चलने का संकेत किया।

दुर्योधन ने यह सब देखा। जिस भीम को वह अपना बंदी मान बैठा था, उसे उसके हाथों से छीन कर धृष्टद्युम्न जीवित लिए जा रहा था। यह भीम नहीं जा रहा था, दुर्योधन के हाथों से हस्तिनापुर का राज्य निकला जा रहा था। यदि इस समय भीम सुरक्षित निकल गया तो इतना संकट उठाकर, अपने कितने ही सैनिकों की बलि देकर, भीम के शरीर पर लगाए गए इतने सारे घाव, कौरवों के किस काम आएँगे। वे घाव तो उपचार से थोड़ी ही देर में भर जाएँगे। यमराज के उपकरण सरीखी अपनी इस भयंकर गदा के साथ भीम कल फिर युद्ध में आ खड़ा होगा। कौरवों का यह सारा परिश्रम व्यर्थ चला जाएगा। भाग्य से मिला यह अवसर पुन: लौटकर कभी नहीं आयेगा।

धृष्टद्युम्न और भीम का परस्पर मिल जाना उन्हें कौरव सेना के लिए बहुत घातक लग रहा था। उनके मन में अकस्मात् ही बहुत जल्दी मच गई। उन्होंने एक के पश्चात् एक बाण मारकर द्रुपद को निष्ठुरता से आहत कर दिया। वे कोई घातक अस्त्र मारकर द्रुपद का वध ही कर देना चाहते थे कि द्रुपद को अपनी असहायता का बोध हो गया। उनको कहीं से कोई सहायता मिलती दिखाई नहीं दे रही थी और द्रोण को वे अकेले संभाल नहीं सकते थे। वे समझ गए थे कि उनसे द्रोण नहीं लड़ रहे थे, द्रोण का पुरातन संचित आक्रोश लड़ रहा था। द्रुपद ने रथ अपने लिए सुरक्षित क्षेत्र की ओर मोड़ लिया और द्रोण से दूर चले गए। तभी द्रोण ने देखा भीम और धृष्टद्युम्न युद्ध में ऐसे निर्भय विचर रहे थे, जैसे कोई माली अपने उद्यान में विचरता है और जिस पौधे को अनावश्यक मानता है, उसे उखाड़कर फेंक देता है। दुर्योधन और उसके भाइयों को अचेत कर उन्हें जैसे किसी का कोई भय ही नहीं रह गया था। क्या यह मान लिया कि दुर्योधन की मृत्यु हो गई है, अथवा अचेत शत्रु पर प्रहार करना उन्होंने नीति विरुद्ध-समझा? इतने वीर हैं ये लोग? या भीम को आहत मान, धृष्टद्युम्न ने उसे

कौरव सेना से दूर रखना ही उचित माना है? क्या भीम इस अवस्था में भी युद्धक्षेत्र छोड़ना नहीं चाहता? आदर्शवादी, बलिदानी वीरता किसीके मन में भी नहीं होती है। द्रोण ने प्रज्ञास्त्र का प्रयोग किया। लगा युद्धक्षेत्र की कुहेलिका छँट गई। दुर्योधन ने आँखें खोलते ही भीम को खोजना आरंभ किया।

युधिष्ठिरने अपने पाँचों पुत्र अभिमन्यु को, धृष्टकेतु को खोजना आरम्भ किया। भीम अपने रथ पर आ गया था और स्वतंत्र रूप से युद्ध कर रहा था। धृष्टद्युम्न धृतराष्ट्रपुत्रों से लड़ने का मोह छोड़ द्रोण की ओर पलटा। द्रोण द्रुपद को छोड़कर आये थे। धृष्टद्युम्न को सामने देखा तो अपना सारा क्रम उसी पर उंडेल दिया। धृष्टद्युम्न ने अपना रथ छोड़ दिया। द्रोण ने उसके अश्वों को मार दिया। धृष्टद्युम्न अपना रथ छोड़कर अभिमन्यु के रथ पर आरूढ़ हो गया। द्रोण का आक्रमण इतना प्रबल था कि पाण्डवोंका व्यूह भंग हो गया और उनकी सेना में भगदड़ मच गयी। भीम अपनी सेना को रोकने का प्रयत्न कर रहा था। उसने देखा दुर्योधन उसका मार्ग रोककर खड़ा है। दुर्योधन ने भीमपर बाण चलाये और उसे जीवित बंदी करने के प्रयत्न में लगा। दुर्योधन तो उसे कोई वन्य पशु समझता है जो जीवित पकड़नेका प्रयत्न कर रहा है। भीमने अपना रथ दुर्योधन की ओर मोडा और द्वैरथ युद्ध की मुद्रा में आ गया। दोनों ओर से बाण चले भीम ने दुर्योधन को घायल किया और दुर्योधन ने भीम को। तब तक अभिमन्यु ने आपके ११ महारथियोंपर आक्रमण कर दिया। धृतराष्ट्रपुत्रों ने भीम को छोड़ दिया और अभिमन्यु से लड़ने लगे क्योंकि भीम से निपटना उनके लिये कठिन हो रहा था पर भीम ने उन्हें नहीं छोड़ा। द्रोण धृष्टद्युम्न से उलझे हुए थे। द्रोण तो दुर्योधन का नहीं अपना युद्ध लड़ रहे थे उसी समय पितामह भीष्म का रथ वहाँ आ पहुँचा।

तब भीष्मने सब महारथियोंसे कहा, देखो, यह भीम धृतराष्ट्रके महारथी पुत्रोंको मारे डालता है। अरे। इसे फौरन पकड़ लो, देरी मत करो। भीष्मका ऐसा आदेश पाकर कौरव पक्षके सभी सैनिक क्रोधमें भरकर महाबली भीमके ऊपर टूट पड़े। उनमेंसे भगदत्त अपने मदोन्मत्त हाथीपर चढ़े हुए सहसा भीमके पास पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने बाणोंकी वर्षा करके भीमको बिल्कुल ढक दिया। अभिमन्यु आदि वीर यह सब नहीं देख सके। उन्होंने भी बाण बरसाकर भगदत्तको चारों ओरसे आच्छादित कर दिया और उनके हाथीको घायल कर डाला। किंतु भगदत्तके हाँकनेपर वह हाथी उन महारथियोंके ऊपर ऐसे वेगसे दौड़ा, मानो कालसे प्रेरित यमराज ही हो। उसके उस भीषण रूपको देखकर सब महारथियोंका साहस ठंडा पड़ गया और उन्हें वह असह्य-सा जान पड़ा। इसी समय भगदत्तने क्रोधमें भरकर एक बाण भीमकी छातीमें मारा। उससे घायल होकर भीम अचेत-से हो गये और अपने रथकी ध्वजाके झंडेका सहारा लेकर बैठ गये। यह देखकर महाप्रतापी भगदत्त बड़े जोरसे सिंहनाद करने लगे।

भीमको ऐसी स्थितिमें देखकर घटोत्कचको बड़ा क्रोध हुआ और वह वहीं अन्तर्धान हो गया। फिर उसने ऐसी भीषण माया फैलायी, जिसे देखकर कच्चे-पक्के लोगोंका तो हृदय बैठ गया। आधे ही क्षणमें वह बड़ा भयंकर रूप धारण किये अपनी ही मायासे रचे हुए ऐरावत हाथीपर चढ़कर प्रकट हुआ। उसने भगदत्तको उनके हाथीसहित मार डालनेके विचार से उनपर अपना हाथी छोड़ दिया। वह चतुर्दन्त गजराज भगदत्तके हाथीको बहुत पीड़ित करने लगा, जिससे कि वह अत्यन्त आतुर होकर वज्रपातके समान बड़े जोरसे चिंघाड़ने लगा। उसका वह भीषड़ नाद सुनकर भीष्मने आचार्य द्रोण और राजा दुर्योधनसे कहा, इस समय महान् धनुर्धर राजा भगदत्त हिडिम्बाके पुत्र घटोत्कचसे युद्ध करते-करते बड़ी आपत्तिमें फँस गये हैं। इसीसे पाण्डवोंकी हर्षध्वनि और अत्यन्त डरे हुए हाथीका रोदनशब्द सुनायी दे रहा है। इसलिये चलो, हम सब राजा भगदत्तकी रक्षा करनेके लिये चलें। यदि उनकी रक्षा न की गयी तो वे बहुत जल्द प्राण त्याग देंगे। देखो, वहाँ बड़ा ही भीषण और रोमाञ्चकारी संग्राम हो रहा है। अत: वीरो। शीघ्रता करो, देरी मत करो।

भीष्मकी बात सुनकर सभी वीर भगदत्तकी रक्षाके लिये भीष्म और द्रोणके नेतृत्वमें चले। उस सेनाको देखकर प्रतापी घटोत्कच बिजलीकी कड़कके समान बड़े जोरसे गरजा। उसकी वह गर्जना सुनकर भीष्मने द्रोणाचार्यसे कहा, मुझे इस

समय दुरात्मा घटोत्कचके साथ संग्राम करना अच्छा नहीं जान पड़ता; क्योंकि यह बड़ा बल-वीर्यसम्पन्न है और इसे अन्य वीरोंसे सहायता भी मिल रही है। इस समय तो वज्रधर इन्द्र भी इसे नहीं जीत सकेगा।

अपने एक नहीं- आठ भ्राताओं का पतन हुआ देखकर क्रुद्ध दुर्योधन गर्जना करता हुआ भीमकी ओर दौड़ा। उसने एक अमोघ शक्ति भीम पर प्रक्षेपित की। उससे भीम को चक्कर आने लगा। ध्वजस्तम्भ को टेककर वह रथ में ही बैठ गया। अपने पिता-भीम को पहली बार मूर्च्छित होते देख घटोत्कच उसकी सहायता करने दौड़ा। उसने अपने राक्षसी, मायावी युद्ध से दुर्योधन की सेना को भयभीत कर दिया।

अभिमन्यु उत्साहित होकर भीष्म की ओर मुड़ गया और दुर्योधन पुन: भीम का सामना करने के लिए आ खड़ा हुआ। भीम को लगा कि उसकी कोई चिर प्रतीक्षित मनोकामना पूरी हुई है। बोला, दुर्योधन। मैं वर्षों से जिसकी अभिलाषा और प्रतीक्षा कर रहा था, वह अवसर मुझे आज प्राप्त हुआ है। यदि तू युद्ध छोड़कर भाग नहीं गया, तो आज अवश्य ही तुझे मार डालूँगा। माता कुंती को जो क्लेश उठाना पड़ा है, हमने बनवास में जो कष्ट भोगा है, और सभा में पांचाली को जो अपमान सहना पड़ा है, उन सबका प्रतिशोध मैं आज तुझसे लूँगा। हमारे तिरस्कार का जो पाप तू करता आया है, आज उसका फल भोग। उलूक के माध्यम से जो संदेश तूने भिजवाया था कि तुम्हें और तुम्हारे भाइयों को मारकर हम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करें, उसके अनुसार मैं आज तुझे और तेरे भाइयों को मारूँगा। और भीम के धनुष से बाण छूटने लगे, दुर्योधन का धनुष कटा उसका सारथी घायल हुआ, घोड़े मारे गये। जयद्रथ ने आकर दुर्योधन के पृष्ठभाग की रक्षा की और उसे बाहर निकालकर अपने रथपर चढ़ाया। दुर्योधन के महारथी चित्रसेन, सुचित्र, चित्रांगद, चित्रदश, चारुमित्र, सुचारु, नंद, उपनन्द इत्यादि ने अभिमन्यु को घेरा। अभिमन्यु ने दिव्यास्त्रों का ज्ञान प्रकट किया। अभिमन्यु ने विकर्ण के रथ, ध्वज दण्ड सारथी और घोड़ोंको बींध डाला।

भीष्म बोले, अत: अब पाण्डवोंके साथ युद्ध करना ठीक नहीं होगा; बस, आज यहीं युद्ध बंद करनेकी घोषणा कर दी जाय। अब शत्रुओंके साथ हमारा कल संग्राम होगा।

कौरवलोग घटोत्कचके आतमसे घबराये हुए थे ही। इसलिये भीष्मकी बात सुनकर उन्होंने युक्तिपूर्वक युद्ध बंद करने की घोषणा कर दी। सायंकाल हो रहा था। आज कौरवलोग पाण्डवोंसे पराजित होनेके कारण लज्जित होकर अपने डेरेपर लौटे। पाण्डवलोग तो भीम और घटोत्कचको आगे करके प्रसन्नतासे शफ्ध्वनिके साथ सिंहनाद करते हुए अपने शिबिरपर आये; किंतु भाइयोंका वध होनेके कारण राजा दुर्योधन बहुत ही चिंतित और शोकाकुल हो रहा था।

भीष्म दुर्योधन से बोले, हे कौरव, सन्ध्या के समय राक्षस अधिक बलवान होते हैं। घटोत्कच राक्षस-कुलोत्पन्न है। अब सूर्यास्त हो रहा है। युद्ध को रोक दो। पितामह की आज्ञा से दुर्योधन रुक गया। सूर्य डूब गया। चौथे दिन का युद्ध समाप्त हुआ। सूर्यास्त हो चुका था। पर युद्ध थम नहीं रहा था। सारे योद्धा आज अपने मन की कर लेना चाहते थे। भीष्म ने पांडवों की हानि तो की, किंतु धृष्टद्युम्न की सेना की ही अधिक क्षति हुई थी। सूर्यास्त से दो घड़ी पश्चात् अंधकार आया देख, भीष्म अपनी सेना को सुरक्षित लौटाकर अपने शिबिर में चले गए। पांडव सेना भी लौटी। युधिष्ठिर ने गर्व और स्नेह से भीम और धृष्टद्युम्न का मस्तक सूँघा और उन्हें अपने शिबिर में ले गए।

गान्धारी के कक्ष में धृतराष्ट्र आता है। गान्धारी बोली, आर्यपुत्र क्या हुआ आज युद्ध में? धृतराष्ट्र बोले, आज युद्ध में हमारे दस पुत्र वीरगति को प्राप्त हो गये। गान्धारी चीत्कार कर उठी। धृतराष्ट्र की आंखों में भी आंसूं बह निकले। गान्धारी बोली, महायुद्ध के अन्त में घटाना आरम्भ कर दिया मैंने रात को एक स्वप्न देखा था। मैं वन में अकेली खडी हूं और मेरे चारों ओर हरे-भरे वृक्ष कटे पडे हैं। आप आये और बोले यहां से चलो गान्धारी। मैंने आपसे पूछा ये हरे-भरे वृक्ष किसने काटे हैं? तो आपने कहा ये सब वृक्ष मैंने काटे हैं। मैंने पूछा कुल कितने वृक्ष काटे हैं? तो आपने बताया सौ। यह सुनकर

मैं डर गई। मैंने डर कर आपका कन्धा पकड़ा और कहा कि आपने मेरे वृक्ष काटे हैं या मेरे पुत्रों के शव। मेरे प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया आपने आर्यपुत्र और मेरी आंखें खुल गई। धृतराष्ट्र बोले, क्या तुम यह कह रही हो कि मैं अपने पुत्रों का हत्यारा हूं? गान्धारी बोली, नहीं मैं यह तो नहीं कह रही मैंने तो केवल एक सपना सुनाया था। धृतराष्ट्र बोले संजय से भागकर मैं तुम्हारे पास आया था कि तुम मेरी पीडा को समझो और मुझे ढाढ़स बन्धाओ यदि मैं तुम्हारे कक्ष में भी अकेला ही हूँ तब तो इसका अर्थ यही निकला ना कि मैं सचमुच अकेला रह गया। सो जाओ और कोई एक दूसरा सपना देखो। मैं सुनने के लिये आ जाऊंगा। गान्धारी बोली, अकेले तो हम दोनों ही हैं और दु:खी भी हम दोनों ही है। युद्ध में १० पुत्रों के वीरगति को प्राप्त होने का समाचार जिसको मिला हो उसे अपने कक्ष में अकेला नहीं होना चाहिये। कक्ष आपके आंसुओं की भाषा नहीं समझ पायेगा आर्यपुत्र। इसलिये कुछ देर के लिये बैठिये। रोना तो हम दोनों को ही है।

**भरनी पडती है सदा अपनी करनी आप, बोया जिसने पाप है, काटेगा वह पाप।**

धृतराष्ट्र अपने कक्ष में आता है और संजय से पूछता है, सञ्जय। पाण्डवोंका ऐसा पराक्रम सुनकर मुझे बड़ा ही भय और विस्मय हो रहा है। सब ओरसे मेरे पुत्रोंका ही पराभव हो रहा है- यह सुनकर मुझे बड़ी चिन्ता होती है कि अब मेरे पक्षकी जीत कैसे होगी। निश्चय ही, विदुरके वाक्य मेरे हृदयको भस्म कर डालेंगे। भीम अवश्य ही मेरे सब पुत्रोंको मार डालेगा। मुझे ऐसा कोई वीर दिखायी नहीं देता, जो संग्रामभूमिमें उनकी रक्षा कर सके। संजय। मुझे बताओ, पण्डवोंमें ऐसी शक्ति कहांसे आ गयी? सञ्जय बोला- राजन्। इस समय जो कुछ हो रहा है, वह किसी भी मन्त्र या मायाके कारण नहीं है। बात यह है कि महाबली पाण्डवलोग सर्वदा धर्ममें तत्पर रहते हैं और जहाँ धर्म होता है, वहीं जय हुआ करती है। इसीसे युद्धमें वे अवध्य हो रहे हैं और उन्हींकी जीत भी हो रही है। आपके पुत्र दुष्टचित्त, पापपरायण, निष्ठुर और कुकर्मी हैं; इसलिये वे युद्धमें नष्ट हो रहे हैं। इन्होंने नीच पुरुषोंके समान पाण्डवोंके प्रति अनेकों क्रूरताएँ की हैं। अब उन्हें उन निरन्तर किये हुए पापकर्मोंका भयंकर फल प्राप्त होनेका समय आया है। इसलिये पुत्रोंके साथ अब आप भी उसे भोगिये। आपके सुहृद् विदुर, भीष्म, द्रोण और मैंने भी आपको बार-बार रोका; किंतु आपने हमारी बातपर कुछ ध्यान ही नहीं दिया। जिस प्रकार मरणासन्न पुरुषको औषध और पथ्य अच्छे नहीं लगते, वैसे ही आपको अपने हितकी बात अच्छी नहीं मालूम हुई। अब आप जो मुझसे पाण्डवोंकी विजयका कारण पूछते हैं, सो इस विषयमें मैंने जैसा सुना है वह बताता हूँ।

उस दिन अपने भाइयोंको युद्धमें पराजित हुआ देखकर राजा दुर्योधनने रात्रिके समय पितामह भीष्मसे पूछा, पितामह। मैं समझता हूँ कि आप, द्रोणाचार्य, शल्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा, सुदक्षिण, भूरिश्रवा, विकर्ण और भगदत्त आदि महारथी तीनों लोकोंके साथ संग्राम करनेमें समर्थ हैं। किंतु आप सब मिलकर भी पाण्डवोंके पराक्रमके सामने नहीं टिक पाये। यह देखकर मुझे बड़ा संदेह हो रहा है। कृपया बताइये, पाण्डवोंमें ऐसी क्या विशेषता है जिसके कारण वे हमें क्षण-क्षणमें जीत रहे हैं?

दुर्योधन इस पराजयसे खिन्न होकर रात्रिके समय भीष्मके समीप गया और उसने पूछा- पितामह मैं समझता हूँ कि आप, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा प्रभृति महारथी मिलकर तीनों लोकोंको संग्राममें पराजित कर सकते हैं किन्तु पाण्डवोंके पराक्रमके सम्मुख आप सब भी टिक नहीं पा रहे हैं, इसका कारण क्या है? पाण्डवोंमें ऐसी क्या विशेषता है? भीष्म पितामह स्वस्थ बैठ गये। उन्होंने कहा- सुयोधन। अनेक बार अनेक सम्मान्य ऋषियोंने तुम्हें वह कारण सुनाया है; किन्तु तुम समझनेको तयार नहीं। दुर्योधनने उसदिन पूछ लिया- ये वसुदेवपुत्र सम्पूर्ण लोकोंमें महान् कहे जाते हैं। मैं इनकी उत्पत्ति स्थितिके विषयमें जानना चाहता हूँ।

भीष्मने कहा- राजन्। इन उदारकर्मा पाण्डवोंकी अवध्यताका एक कारण है; तीनों लोकोंमें ऐसा कोई भी पुरुष न तो है, न हुआ और न होगा ही जो श्रीकृष्णसे सुरक्षित इन पाण्डवोंको परास्त कर सके। इस विषयमें पवित्रात्मा मुनियोंने मुझे एक

इतिहास सुनाया है, पूर्वकालमें गन्धमादन पर्वतपर समस्त देवता और मुनिगण पितामह ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित थे। उस समय उन सबके बीचमें बैठे हुए ब्रह्माजीने आकाशमें एक तेजोमय विमान देखा। तब उन्होंने ध्यानद्वारा सब रहस्य जानकर प्रसन्न चित्तसे परमपुरुष परमेश्वरको प्रणाम किया। ब्रह्माजीको खड़े होते देख सब देवता और ऋषि भी हाथ जोड़े खड़े हो गये और वह अद्भुत प्रसङ्ग देखने लगे। जगत्स्रष्टा ब्रह्माने बड़े विधि-विधानसे भगवान्‌का पूजन किया और स्तुति करी- प्रभो। आप सम्पूर्ण विश्वको आच्छादित करनेवाले, विश्वस्वरूप और विश्वके स्वामी हैं। विश्वमें सब ओर आपकी सेना है। यह विश्व आपका कार्य है। आप सबको अपने वशमें रखनेवाले हैं। इसीलिये आपको विश्वेश्वर और वासुदेव कहते हैं। आप योगस्वरूप देवता हैं, मैं आपकी शरणमें आया हूँ। विश्वरूप महादेव। आपकी जय हो; लोकहितमें लगे रहनेवाले परमेश्वर। आपकी जय हो। सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले योगीश्वर। आपकी जय हो। योगके आदि और अन्त। आपकी जय हो। आपकी नाभिसे लोककमलकी उत्पत्ति हुई है, आपके नेत्र विशाल हैं, आप लोकेश्वरोंके भी ईश्वर हैं; आपकी जय हो। भूत, भविष्य और वर्तमानके स्वामी आपकी जय हो। आपका स्वरूप सौम्य है, मैं स्वयम्भू ब्रह्मा आपका पुत्र हूँ। आप असंख्य गुणोंके आधार और सबको शरण देनेवाले हैं, आपकी जय हो। शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले नारायण। आपकी महिमाका पार पाना बहुत ही कठिन है, आपकी जय हो। आप समस्त कल्याणमय गुणोंसे सम्पन्न, विश्वमूर्ति और निरामय हैं; आपकी जय हो। जगत् का अभीष्टसाधन करनेवाले महाबाहु विश्वेश्वर। आपकी जय हो। आप महान् शेषनाग और महावराह-रूप धारण करनेवाले हैं, सबके आदि कारण हैं, किरणें ही आपके केश हैं। प्रभो। आपकी जय हो, जय हो। आप किरणोंके धाम, दिशाओंके स्वामी, विश्वके आधार, अप्रमेय और अविनाशी हैं। व्यक्त और अव्यक्त सब आपहीका स्वरूप है, आपके रहनेका स्थान असीम- अनन्त है। आप इन्द्रियोंके नियन्ता हैं, आपके सभी कर्म शुभ-ही-शुभ हैं। आपकी कोई इयत्ता नहीं है, आप सम्भावत: गम्भीर और भक्तोंकी कामनाएँ पूर्ण करनेवाले हैं; आपकी जय हो। ब्रह्मन् आप अनन्त बोधस्वरूप हैं, नित्य हैं और सम्पूर्ण भूतोंको उत्पन्न करनेवाले हैं। आपको कुछ करना बाकी नहीं है, आपकी बुद्धि पवित्र है। आप धर्मका तत्त्व जाननेवाले और विजयप्रदाता है। पूर्णयोगस्वरूप परमात्मन्। आपका स्वरूप गूढ़ होता हुआ भी स्पष्ट है। अबतक जो हो चुका है और जो हो रहा है, सब आपका ही स्वरूप है। आप सम्पूर्ण भूतोंके आदि कारण और लोकतत्त्वके स्वामी हैं। भूतभावन। आपकी जय हो। आप स्वयंभू हैं, आपका सौभाग्य महान् है। आप इस कल्पका संहार करनेवाले एवं विशुद्ध परब्रह्म हैं। ध्यान करनेसे अन्त:करणमें आपका आविर्भाव होता है, आप जीवमात्रके प्रियतम परब्रह्म हैं; आपकी जय हो। आप स्वभावत: संसारकी सृष्टिमें प्रवृत्त रहते हैं, आपही सम्पूर्ण कामनाओंके स्वामी परमेश्वर हैं। अमृतकी उत्पत्तिके स्थान, सत्स्वरूप, मुक्तात्मा और विजय देनेवाले आप ही हैं। देव। आप ही प्रजापतियोंके भी पति, पद्मनाभ और महाबली हैं। आत्मा और महाभूत भी आप ही हैं। सत्त्वस्वरूप परमेश्वर। आपकी जय हो। पृथ्वीदेवी आपके चरण हैं, दिशाएँ बाहु हैं और द्युलोक मस्तक है। अहमार आपकी मूर्ति, देवता शरीर और चन्द्रमा तथा सूर्य नेत्र हैं। तप और सत्य आपका बल है तथा धर्म और कर्म आपका स्वरूप है। अग्नि आपका तेज, वायु साँस और जल पसीना है। अश्विनीकुमार आपके कान और सरस्वतीदेवी आपकी जिह्वा हैं। वेद आपकी संस्कारनिष्ठा हैं। यह जगत् आपहीके आधारपर टिका हुआ है। योग-योगीश्वर। हम न तो आपकी संख्या जानते हैं, न परिणाम। आपके तेज, पराक्रम और बलका भी हमें पता नहीं है। देव। हम तो आपके भजनमें लगे रहते हैं। आपके नियमोंका पालन करते हुए आपकी ही शरणमें पड़े रहते हैं। विष्णो। सदा आप परमेश्वर एवं महेश्वरका पूजन ही हमारा काम है। आपहीकी कृपासे हमने पृथ्वीपर ऋषि, देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, पिशाच, मनुष्य, मृग, पक्षी तथा कीड़े-मकोड़े आदिकी सृष्टि की है। हे पद्मनाभ। हे विशाललोचन। हे दु:खहारी श्रीकृष्ण। आपही सम्पूर्ण

प्राणियोंके आश्रय और नेता हैं, आपही संसारके गुरु हैं। आपकी कृपादृष्टि होनेसे ही सब देवता सदा सुखी रहते हैं। देव। आपके ही प्रसादसे पृथ्वी सदा निर्भय रही है, इसलिये विशाललोचन। आप पुन: पृथ्वीपर यदुवंशमें अवतार लेकर उसकी कीर्ति बढ़ाइये। प्रभो। धर्मकी स्थापना, दैत्योंके वध और जगत्की रक्षाके लिये हमारी प्रार्थना अवश्य स्वीकार कीजियें। भगवन् वासुदेव। आपका जो परम गुह्य स्वरूप है, उसका इस समय आपकी ही कृपासे हमने कीर्तन किया है।

भीष्म जैसे भक्तको तो भगवद् गुणगानका निमित्त मिलना चाहिए। वे प्रसन्न होकर बोले- भगवान वासुदेव देवताओंके भी देवता हैं। कमल लोचन श्रीकृष्णसे बड़ा कोई नहीं है। वे पुरुषोत्तम सर्वभूतमय हैं। वे ही सबकी उत्पत्ति और प्रलयके स्थान हैं। देश, काल तथा वस्तु मात्रको उन्होंने ही कल्पना की है। नृसिंह, वाराह, त्रिविक्रमादि अवतार इन्होंने ही लिया है। ये सम्पूर्ण भूतोंके आश्रय हैं। मुनिजन इन्हें हृषीकेश कहते हैं। इनका पूजन, ध्यान, स्मरण करनेवाला परमपद पाता है। ये जिसपर प्रसन्न हैं, उन्होंने अक्षय लोक जीत लिये हैं। श्रीकृष्णकी शरण लेनेवाला सब भयोंसे सुरक्षित रहता है तथा सुख पाता है।

देवर्षि नारद, मार्कण्डेय मुनि, महर्षि भृगु, भगवान व्यास, अंगिराजी, देवल, असित प्रभृति महामुनि, महर्षिगण श्रीकृष्णको सर्वकारण कारण, सर्वलोकेश्वरेश्वर, परब्रह्म कहकर उनकी स्तुति करते हैं। ब्रह्माजीके पुत्र सनत्कुमारादि इन भगवान पुरुषोत्तमका सदा पूजन-स्तवन करते हैं। श्रीकृष्णकी महिमाका पार नहीं है। मैंने उनका तथा अर्जुनका वास्तविक स्वरूप तुम्हें बतला दिया। ये युद्धमें अजेय तथा अवध्य हैं। दूसरे भी पाण्डवोंपर श्रीकृष्णका अनुराग है, अत: वे किसीके द्वारा मारे नहीं जा सकते। तुम पाण्डवोंसे सन्धि करके अपने भाइयोंके साथ सुखपूर्वक अब भी राज्य भोग सकते हो। यह बात दुर्योधनको अच्छी नहीं लगी। वह वहाँसे चुपचाप उठकर अपने शिबिरमें चला आया। युद्धको बन्द नहीं होना था, नहीं हुआ।

संजय कहते हैं- महाराज। फिर उससे पितामह कहने लगे, राजन्। तुमने महात्मा श्रीकृष्णकी महिमा सुनी तथा नररूप अर्जुनका वास्तविक स्वरूप भी जान लिया। तुम्हें यह भी मालूम हो ही गया कि इन नर-नारायण ऋषियोंने किस उद्देश्यसे अवतार लिया है। ये युद्धमें अजेय और अवध्य हैं तथा पाण्डवलोग भी युद्धमें किसीके द्वारा मारे नहीं जा सकते; क्योंकि श्रीकृष्णका इनपर बड़ा सुदृढ़ अनुराग है। इसलिए मेरा तो यही कहना है कि तुम्हें पाण्डवोंके साथ संधि कर लेनी चाहिये। ऐसा करके तुम आनन्दसे अपने भाइयोंके सहित राज्य भोगो। नहीं तो इन नर-नारायण भगवान्की अवज्ञा करके तुम जीवित नहीं रह सकोगे। राजन्। ऐसा कहकर आपके पितृव्य भीष्म मौन हो गये और दुर्योधनको विदा करके शय्यापर लेट गये। दुर्योधन भी उन्हें प्रणाम करके अपने शिबिरमें चला आया और अपनी शुभ्र शय्यापर सो गया।

चतुर्थ दिवसका युद्ध भी कोई उत्साह कौरवोंको नहीं दे सका। भीमने धृतराष्ट्रके अनेक पुत्रोंको मार दिया था और घटोत्कचके पराक्रमसे तो महासेनापति भीष्म भी आतंकित हो उठे थे। उन्होंने उसे अजेय समझकर सूर्यास्तसे कुछ पहिले ही युद्ध बन्द करनेकी घोषणा करके अपने पक्षको बचाया।

## ११) महाभारत का युद्ध (पाँचवा दिन) सात्यकि के दस पुत्रोंका वध

अब तक दोनों पक्षों की अठारह अक्षौहिणी सेना में से छह अक्षौहिणी सेना धराशायी हो चुकी थी। कुरुक्षेत्र के सभी सरोवरों के तट पर शवों के ढेर-के-ढेर प्रज्वलित चिताओं में जलकर अनन्त में विलीन हो रहे थे। निष्णात वैद्य सेवाकक्ष में आहत सैनिकों की चिकित्सा कर रहे थे।

दोनों सेनाओं में से छह अक्षौहिणी अर्थात् लगभग पन्द्रह लाख योद्धा वीरगति को प्राप्त हो चुके हैं। कैसा लगता होगा उनके सम्बन्धियों को? दुर्योधन को हर प्रकार से कृष्ण समझा-समझाकर थक गया और कृष्ण सात्यकि से बोले, सखा सात्यकि, युद्ध में अपने वश में कुछ भी नहीं होता। अनादि और अनन्त काल को जो स्वीकार हो, वही युद्ध का निर्णय होता

है। कल यादव-सेनापति को जमकर युद्ध करना है, सात्यकि।

पौष वद्य षष्ठी का दिन उदित हुआ। कृष्ण के पांचजन्य शंखनाद के साथ पाण्डव की सेना का श्येन पक्षी रणघोषणा का गगनभेदी चीत्कार करता हुआ कौरव सेना के मकर पर टूट पड़ा। शिखण्डी अपनी सेना के साथ पितामह और चित्रसेन से भिड़ गया। सेना के मध्य आचार्य द्रोण और शिष्य धनंजय के बीच घनघोर संग्राम छिड़ गया। कृष्ण के सारथ्य में अर्जुन ने अपने रथदल, गजदल, अश्वदल और पदातियोंसहित ऐसी चपल चाल चली कि गुरुदेव द्रोण चारों ओर से घिर गये। तब कौरव-सेनापति भीष्म ने अपने शंख संकेत से कलिंग, जयद्रथ और शकुनि को अपनी सेनाओं सहित अर्जुन पर टूट पड़ने का आदेश दिया। भीम ने जयद्रथ पर आक्रमण किया। युधिष्ठिर मद्रराज शल्य से लड़ने लगा। श्येन पक्षी के एक पंख पर से सहदेव विकर्ण पर टूट पड़ा। दूसरे पंख पर से पाण्डव सेनापति धृष्टद्युम्न नकुल के साथ कृपाचार्य की सेना से भिड़ गया।

संजयने कहा- महाराज। वह रात बीतनेपर जब सूर्योदय हुआ तो दोनों ओरकी सेनाएँ युद्धके लिये आमने-सामने आकर डट गयीं। पाण्डव और कौरव दोनों ही अपनी-अपनी सेनाओंकी व्यूहरचना कर परस्पर प्रहार करने लगे। भीष्मने मकरव्यूहकी रचना की और उसकी सब ओरसे स्वयं ही रक्षा करने लगे। फिर वे बहुत बड़ी सेना लेकर आगे बढ़े। उनकी सेनाके रथी, पैदल, गजारोही और अश्वारोही अपने-अपने स्थानपर रहकर एक-दूसरेके पीछे चलने लगे। पाण्डवोंने उन्हें इस प्रकार युद्धके लिये तैयार देख अपनी सेनाको श्येनव्यूहके क्रमसे खड़ा किया। उसकी चोंचके स्थानपर भीम, नेत्रोंकी जगह धृष्टद्युम्न और शिखण्डी, शिरोभागमें सात्यकि, गरदनकी जगह अर्जुन, वामपक्षमें अक्षौहिणी सेनाके सहित द्रुपद, दक्षिणपक्षमें अक्षौहिणीनायक केकयराज तथा पृष्ठभागमें द्रौपदीके पाँच पुत्र, अभिमन्यु, राजा युधिष्ठिर और नकुल-सहदेव खड़े हुए।

संजय बोले, राजन्। पाण्डव-सेनाकी व्यूह-रचना देखकर भीष्मने उसके मुकाबलेमें बहुत बड़े क्रौञ्चव्यूहका निर्माण किया। उसकी चोंचके स्थानपर महान् धनुर्धर द्रोणाचार्य सुशोभित हुए। अश्वत्थामा और कृपाचार्य उसके नेत्रस्थानमें थे। कम्बोज और बाह्लिकोंके साथ कृतवर्मा व्यूहके शिरोभागमें स्थित हुआ। शूरसेन और अनेकों राजाओंके साथ दुर्योधन कण्ठस्थानमें थे। मद्र, सौवीर तथा केकयोंके साथ प्राग्ज्योतिषपुरका राजा बगदद छातीके स्थानपर खड़ा हुआ। अपनी सेनासहित सुशर्मा व्यूहके वाम भागमें और तुषार, यवन तथा शकदेशीय योद्धा चूचुपोंको साथ लेकर दक्षिण भागमें खड़े हुए। श्रुतायु, शतायु और भूरिश्रवा ये उस व्यूहकी जङ्घाओंके स्थानमें थे।

इस प्रकार व्यूह-निर्माण हो जानेपर सूर्योदयके पश्चात् दोनों सेनाओंमें युद्ध आरम्भ हो गया।

तब भीमने मुख-स्थानसे मकरव्यूहमें घुसकर भीष्मके ऊपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। भीष्म भी भीषण बाणवर्षा करके पाण्डवोंकी व्यूहबद्ध सेनाको चक्करमें डालने लगे। अपनी सेनाको घबराहटमें पड़ी देख अर्जुन झटपट आगे आ गये और हजारों बाण बरसाकर भीष्मको बींधने लगे। उन्होंने भीष्मके बाणोंको रोक दिया और इससे प्रसन्न हुई अपनी सेनाके सहित युद्ध करनेके लिये आगे आ गये।

तब राजा दुर्योधनने अपने भाइयोंके भयंकर संहारकी बात याद करके आचार्य द्रोणसे कहा, आचार्य। आप सदा ही मेरा हित चाहते हैं और इसमें संदेह नहीं, हम भी आपका और पितामह भीष्मका आश्रय लेकर संग्राममें परास्त करनेके लिए देवताओंतकको ललकारनेका साहस रखते हैं; फिर इन हीनपराक्रम पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है? अत: आप ऐसा कुछ करे, जिससे ये पाण्डवलोग शीघ्रही मारे जायँ। दुर्योधनके ऐसा कहने पर आचार्य द्रोण सात्यकिके देखते-देखते पाण्डवोंका व्यूह तोड़ने लगे। तब सात्यकिने उन्हें रोका और फिर उन दोनोंका बड़ा ही भीषण घोर युद्ध होने लगा। आचार्यने क्रोधमें भरकर पैने-पैने बाणोंसे सात्यकिपर प्रहार किया। इससे भीमको बड़ा क्रोध आया और वे सात्यकिकी रक्षा करते हुए आचार्यको बींधने लगे। तब द्रोण, भीष्म और शल्यने भीषण बाणवर्षा करके भीमको ढक दिया। यह देखकर अभिमन्यु

और द्रौपदीके पुत्रोंने उन सब पर वार करना आरम्भ किया।

दिन चढ़ते-चढ़ते युद्धने बड़ा भयंकर रूप धारण किया। उसमें कौरव और पाण्डव दोनों ही पक्षोंके अनेकों प्रधान-प्रधान वीर काम आये। इस घमासान भीषण युद्धमें बड़ा ही घोर गगनभेदी शब्द होने लगा। इस समय अपने भाइयोंको तथा दूसरे राजाओंको भी भीष्मसे ही उलझा हुआ देखकर अर्जुन बाण चढ़ाकर उनकी ओर दौड़े। उनके पाञ्चजन्य शफऔर गाण्डीव धनुषका शब्द सुनकर तथा वानरी ध्वजाको देखकर कौरवोंके सब सैनिकोंके छक्के छूट गये। जिस समय अर्जुनने अपना भयानक अस्त्र लेकर भीष्मपर आक्रमण किया, उस समय कौरवोंके सैनिकोंको दिशाओंका भी ज्ञान नहीं रहा। आपके पुत्रोंके सहित वे सब घबराकर भीष्मकी ही शरणमें जाने लगे। उस समय एकमात्र वे ही उनके आश्रय थे। सभी लोग ऐसे भयभीत हो गये कि रथी रथमेंसे और घुड़सवार घोड़ोंकी पीठसे गिरने लगे तथा पैदल भी पृथ्वीपर लोट-पोट हो गये।

भीष्मने तोमर, प्रास और नाराच आदि धारण करनेवाले योद्धाओंकी विशाल वाहिनीके सहित अर्जुनका सामना किया। इसी प्रकार अवन्तिनरेश काशिराजके साथ, भीम जयद्रथके साथ, युधिष्ठिर शल्यके साथ, विकर्ण सहदेवके साथ, चित्रसेन शिखण्डीके साथ, मत्स्यराज विराट और उनके साथी दुर्योधन और शकुनिके साथ, द्रुपद, चेकितान और सात्यकि आचार्य द्रोण एवं अश्वत्थामाके साथ तथा कृपाचार्य और कृतवर्मा धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध करने लगे। इस प्रकार घोड़ोंको आगे बढ़ाकर तथा हाथी और रथोंको घुमाकर सब योद्धा आपसमें भिड़ गये। युद्ध होते-होते मध्याह्न हो गया। सूर्यके तापसे आकाश जलने लगा। उस समय कौरव और पाण्डवोंमें आपसमें बड़ी भीषण मार-काट होने लगी। भीष्मने सब सेनाके देखते-देखते भीमका आगे बढ़ना रोक दिया। उनके धनुषसे दो टुकड़े कर दिये। इतनेहीमें सात्यकिने बड़ी फुर्तीसे सामने आकर भीष्मके ऊपर बाण बरसाना आरम्भ किया। तब भीष्मने एक भीषण बाण चढ़ाकर सात्यकिके सारथीको रथसे गिरा दिया। उसके मारे जानेसे सात्यकिके घोड़े इधर-उधर भागने लगे। इससे सारी सेनामें बड़ा कोलाहल होने लगा।

अब भीष्मने पाण्डवसेनाका विध्वंस आरम्भ किया। यह देखकर धृष्टद्युम्नादि पाण्डवपक्षके वीर आपके पुत्रोंकी सेनापर टूट पड़े। इस प्रकार दोनों ओरसे बड़ा घोर संग्राम होने लगा। महारथी विराटने भीष्मपर बाणवर्षा करी और उनके घोड़ोंको घायल कर दिया। तब भीष्मने अपने बाणोंसे विराटको बींध दिया। इसी समय अश्वत्थामाने दूसरा धनुष लेकर बाणोंसे अर्जुनकी छातीपर प्रहार किया और अर्जुनने अश्वत्थामा के धनुष को कांट डाला। अर्जुनने बड़े भयंकर बाण चढ़ाये और बड़ी फुर्तीसे अश्वत्थामाको बींध दिया। वे बाण अश्वत्थामाका कवच भेदकर उनका रक्त पीने लगे। किंतु इस प्रकर घायल होनेपर भी उनमें व्यथाका कोई चिह्न दिखायी नहीं दिया। वे पूर्वतत भीष्मकी रक्षाके लिये डटे रहे।

इसी बीचमें दुर्योधनने अपने बाणोंसे भीमको बींध दिया। तब भीमने बड़े तीखे बाण छोड़कर कुरुराजकी छातीको बींध दिया। अभिमन्युने अपने बाणोंसे चित्रसेनको और पुरुमित्रपर चोट की तथा सत्यव्रत भीष्मको अपने बाणोंसे घायल करके वह रणाङ्गणमें नृत्य-सा करने लगा। यह देखकर उसपर चित्रसेनने अपने बाणोंसे, पुरुमित्रने और भीष्मने बाणोंसे वार किया। वीर अभिमन्युने इस प्रकार घायल होकर चित्रसेनके धनुषको काट डाला तथा उसके कवचको काटकर छातीपर बाण छोड़ा। अभिमन्युका ऐसा पराक्रम देखकर आपका पौत्र लक्ष्मण उसके सामने आया और बड़े तीखे-तीखे बाण छोड़कर उसे घायल करने लगा। तब सुभद्रानन्दनने उसके चारों घोड़ों और सारथीको मारकर अपने पैने बाणोंसे उसपर आक्रमण किया। इससे लक्ष्मणने अत्यन्त क्रोधमें भरकर अभिमन्युके रथपर एक शक्ति छोड़ी। उसे आती देखकर अभिमन्युने अपने पैने बाणोंसे उसके टूक-टूक कर दिये। तब कृपाचार्य लक्ष्मणको अपने रथमें बैठाकर रणक्षेत्रसे बाहर ले गये।

इस प्रकार जब संग्राम बहुत भयंकर हो गया तो आपके पुत्र और पाण्डवलोग अपने प्राणोंको संकटमें डालकर एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे। महाबली भीष्मने अत्यन्त क्रोधमें भरकर अपने दिव्य अस्त्रोंसे पाण्डवोंकी सेनाका अन्त करना

आरम्भ कर दिया। दूसरी ओर रणोन्मत्त सात्यकि अपना हस्तलाघव दिखलाते हुए शत्रुओंपर बाणवर्षा करने लगा। उसे बढ़ते देखकर दुर्योधनने उसके मुकाबलेमें दस हजार रथोंको भेजा। परंतु सत्यपराक्रमी सात्यकिने उन सभी धनुर्धर वीरोंको दिव्य अस्त्रोंसे मार डाला। इस प्रकार दारुण पराक्रम करके वह वीर हाथमें धनुष लिये भूरिश्रवाके सामने आया। भूरिश्रवाने देखा कि सात्यकिने कौरवोंकी सेनाको मार गिराया, तो वह क्रोधमें भरकर दौड़ा और अपने महान् धनुषसे वज्रके समान बाणोंकी वृष्टि करने लगा। वे बाण क्या थे, साक्षात् मृत्यु थे। सात्यकिके पीछे चलनेवाले योद्धा उन बाणोंकी मार न सह सके; अतएव उसका साथ छोड़कर इधर-उधर भाग गये। सात्यकिके दस महारथी पुत्रोंने भूरिश्रवाका यह पराक्रम देखा तो वे क्रोधमें भरे हुए उसके सामने आये और उसके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। उनके छोड़े हुए बाण यमदण्ड और वज्रके समान भयंकर थे। किंतु महारथी भूरिश्रवाको उनसे तनिक भी भय नहीं हुआ। उसने अपने पास पहुँचनेसे पहले ही उन्हें काटकर गिरा दिया। वह अकेला ही निर्भय होकर दस महारथियोंके साथ युद्ध कर रहा था। उन दसों महारथियोंने बाणवृष्टि करते हुए भूरिश्रवाको चारों ओरसे घेर लिया और वे उसे मार डालनेका उपक्रम करने लगे। यह देख भूरिश्रवा भी क्रोधमें भर गया और उनके साथ युद्ध करते-करते ही उसने उन सबके धनुष काट दिये।

भूरिश्रवा सोमदत्त का पुत्र था। कुरुश्रेष्ठ बाह्लीक का प्रपौत्र और प्रत्यक्ष पितामह भीष्म का चचेरा भतीजा था। वह अत्यन्त पराक्रमी और खड्गयुद्ध में अजेय योद्धा था। भूरिश्रवा ने पहले ही आघात में अपने स्वर्णिम सर्पमुख बाणों से सात्यकि की सेना के अग्रभाग को तितर-बितर कर दिया। सात्यकि के दस पितृभक्त पुत्र सात्यकि को संरक्षण देते हुए लड़ते-लड़ते आगे बढ़ते रहे। भूरिश्रवा तथा सात्यकि के पुत्रों के बीच घोर धनुर्युद्ध छिड़ गया। दोनों ओर की बाण वर्षा से समरभूमि धुंधला गयी। सात्यकि के रथ को बीच में रखकर दसों शूर धनुर्धर पुत्र एक प्रहर तक अथक लड़ते रहे। शीघ्र ही उन्होंने भूरिश्रवा को घेर लिया। सात्यकि के पुत्रों ने अपने बाणों से भूरिश्रवा का वध करने का निश्चय किया था। किन्तु उसके कुशल धनुर्धर भ्राता भूरि और शल उसका दृढ़ कवच बन गये थे। तीसरे प्रहर में क्षुब्ध हुए भूरिश्रवा ने अपने भ्राताओं को पीछे हटने की आज्ञा देकर सागर से उछल पड़नेवाले मगरमच्छ की भाँति उछलकर अपने रथ को कौरव-सेना के आगे ले लिया। जैसे वह एक अजेय खड्ग योद्धा था, वैसा ही साक्षात् पितामह से धनुर्वेद प्राप्त किया धनुर्धर भी था। गंगापुत्र भीष्म की जयकार करते हुए भूरिश्रवा ने वेगवान सर्पमुख बाण एक के बाद एक सात्यकिके पुत्रों पर अचूक रूप से प्रक्षेपित किये। वे किसी के वक्ष में, किसी के कण्ठनाल में तो किसी के सीधे मस्तक में घुस गये। वृक्ष से गिरनेवाले कटहल के पके फलों की भाँति सात्यकिके दसों पुत्र एक के बाद एक नीचे गिरे कोई रथ में तो कोई रणभूमि में। इस प्रकार धनुष कट जानेपर भूरिश्रवा ने अपने तीखे बाणोंसे उनके मस्तक भी काट डाले।

<u>पिता के समक्ष पुत्र के देहान्त का मानसिक आघात बड़ा ही भयंकर होता है</u>। एक के बाद एक दस पराक्रमी पुत्रों का गतप्राण होना तो सात्यकिपर वज्राघात ही था। क्रोध से सात्यकि नख-शिख तक जल उठा। अब भूरिश्रवा का वध किये बिना सात्यकि को क्षणभर भी विश्राम मिलनेवाला नहीं था।

अपने महाबली पुत्रोंको मरा देख सात्यकि गरजता हुआ भूरिश्रवासे आकर भिड़ गया। दोनों महाबली एक दूसरेके रथपर प्रहार करने लगे। दोनोंने दोनोंके रथके घोड़ोंको मार डाला और रथहीन होकर हाथोंमें तलवार एवं ढाल ले उछलते-कूदते आमने-सामने आ युद्धके लिये खड़े हो गये। इतनेमें भीमने आकर सात्यकिको अपने रथपर चढ़ा लिया। तब दुर्योधनने भी सबके देखते-देखते भूरिश्रवाको रथपर बिठा लिया।

भूरिश्रवा और सात्यकि के बीच खड्ग युद्ध आरम्भ हुआ और यह युद्ध अविराम चलता रहा। दोनों पक्षोंके सैनिक यह प्राणघात खड्ग युद्ध देखते रहे। न भूरिश्रवा पीछे हट रहा था और न ही सात्यकि। इसी बीच भीम अपनी विशाल गदा लिये

दोनोंके बीच पर्वत की भाँति खड़े हो गये।

इस प्रकार इधर यह युद्ध चल रहा था और दूसरी ओर पाण्डवलोग क्रुद्ध होकर महारथी भीष्मसे भिड़े हुए थे। संध्याकाल आते-आते अर्जुनने बड़ी तेजीके साथ पच्चीस हजार महारथियोंको मार डाला। वे महारथी दुर्योधनकी आज्ञासे पार्थके प्राण लेनेको गये थे; परंतु जैसे अग्निके पास जाकर पतिंगे जल जाते हैं, उसी प्रकार वे अर्जुनके पास जाकर नष्ट हो गये।

कुन्तीनन्दन भीमने द्रोणाचार्यकी सेनापर धावा किया। द्रोणाचार्य उन्हें देखते ही क्रोधमें भर गये और लोहेके बने हुए अपने बाणोंसे उन्होंने भीमके मर्मस्थलमें आघात किया। इससे पीड़ित होकर भीमने आचार्यके सारथीको यमलोक भेज दिया। सारथीके मरनेपर द्रोणाचार्यने स्वयं ही घोड़ोंकी रास सँभाली और जैसे आग रुईकी ढेरीको जलाती है, उसी प्रकार वे पाण्डवसेनाका विध्वंस करने लगे। एक ओरसे भीष्मने भी मारना शुरू किया। उन दोनोंकी मार पड़नेसे सृञ्जय और कैकयवीर भाग चले। इसी प्रकार भीम तथा अर्जुनने भी आपकी सेनाका संहार आरम्भ किया, उनके प्रहारसे क्षत-विक्षत हो कौरवपक्षीय योद्धा मूर्च्छित होने लगे। दोनों दलोंके व्यूह टूट गये और उभय-पक्षके योद्धाओंका परस्पर घोल-मेल सा हो गया।

धृतराष्ट्रने कहा- संजय। हमारी सेनामें अनेकों गुण हैं, अनेकों प्रकारके योद्धा हैं और शास्त्रीय रीतिसे उसके व्यूहका निर्माण भी हुआ है। हमारे सैनिक अत्यन्त प्रसन्न और हमारे इच्छानुसार चलनेवाले हैं; वे नम्र हैं, उनमें किसी भी प्रकारका दुर्व्यसन नहीं है। साथ ही हमारी सेनामें न अत्यन्त बूढ़े लोग हैं और न बालक ही। बहुत मोटे और बहुत दुर्बल लोग भी नहीं हैं। सभी काम करनेमें फुर्तीले और नीरोग हैं। वे कवच और अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हैं, शस्त्रोंका संग्रह भी उनके पास पर्याप्त हैं। प्राय: सभी तलवार चलाने, मल्लयुद्ध और गदायुद्ध करनेमें प्रवीण हैं। प्रास, ऋष्टि, तोमर, परिघ, भिन्दिपाल, शक्ति और मूसल आदि शस्त्रोंका संचालन भी अच्छी तरह जानते हैं। इनकी रक्षाका भार उन क्षत्रियोंके हाथमें है, जो संसारभरमें सम्मानकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। वे स्वेच्छासे ही अपने सेवकोंसहित हमारी सहायता करने आये हैं। द्रोणाचार्य, भीष्म, कृतवर्मा, कृपाचार्य, दु:शासन, जयद्रथ, भगदत्त, विकर्ण, अश्वत्थामा, शकुनि और बाल्हीक आदि महान् वीरोंसे हमारी सेना सुरक्षित है; तो भी यदि वह मारी जा रही है, तो इसमें हमलोगोंका पुरातन प्रारब्ध ही कारण है। पहलेके मनुष्यों अथवा प्राचीन ऋषियोंने भी युद्धका इतना बड़ा उद्योग कभी नहीं देखा होगा। विदुर मुझसे नित्य ही हितकी और लाभकी बातें कहा करते थे, किंतु मूर्ख दुर्योधनने उन्हें नहीं माना। वे सर्वज्ञ हैं, उनकी बुद्धिमें आजका यह परिणाम अवश्य आया होगा; तभी तो उन्होंने मना किया था। अथवा किसीका दोष नहीं, ऐसी ही होनहार थी। विधाताने पहलेसे जैसा लिख दिया है, वैसा ही होगा; उसे कोई टाल नहीं सकता।

संजय बोले, राजन। अपने ही अपराधसे आपको यह संकटका सामना करना पड़ता है। पहले जो जूएका खेल हुआ था और आज जो पाण्डवोंके साथ युद्ध छेड़ा गया है- इन दोनोंमें आपका ही दोष है। इस लोकमें या परलोकमें मनुष्यको अपना किया हुआ कर्म स्वयं ही भोगना पड़ता है। आपको भी यह कर्मानुसार उचित ही फल मिला है। इस महान् संकटको धैर्यपूर्वक सहन कीजिये।

भीम तीखे बाणोंसे कौरवोंकी महासेनाका व्यूह तोड़कर दुर्योधनके भाइयोंके पास जा पहुँचे। यद्यपि भीष्म उस सेनाकी सब ओरसे रक्षा कर रहे थे, तो भी दु:शासन, दुर्विषह, दु:सह, दुर्मद, जय, जयत्सेन, विकर्ण, चित्रसेन, सुदर्शन, चारुचित्र, सुवर्मा, दुष्कर्ण और कर्ण आदि आपके महारथी पुत्रोंको वहाँ पास ही देखकर वे उस महासेनाके भीतर घुस गये तथा हाथी, घोड़े और रथोंपर चढ़े हुए पांडव-सेनाके प्रधान-प्रधान वीरोंको मार डाला। कौरव उन्हें पकड़ना चाहते थे। उनका यह निश्चय भीमको मालूम हो गया। तब उन्होंने वहाँ उपस्थित हुए आपके पुत्रोंको मार डालनेका विचार किया। बस, उन्होंने गदा उठायी और अपना रथ छोड़ उस महासागरके समान सेनामें कूदकर उसका संहार करने लगे।

उसी समय धृष्टद्युम्न भीमके रथके पास आ पहुँचा। उसने देखा रथ खाली है और केवल भीमका सारथी विशोक वहाँ पर है। धृष्टद्युम्न मन-ही-मन बहुत दुखी हुआ, उसकी चेतना लुप्त होने लगी, आँखोंसे आँसू छलक पड़े और उच्छ्वास लेते हुए उसने गद्गद कण्ठसे पूछा- विशोक मेरे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय भीम कहाँ हैं?

विशोकने हाथ जोड़कर कहा- मुझे यहाँ ही खड़ा करके वे इस सैन्य-सागरमें घुसे हुए हैं। यहां से जाते समय उन्होंने मुझसे यही कहा था, सूत। तुम यहीं विश्राम करो और मेरी प्रतीक्षा करो।

तदनन्तर, भीमको सम्पूर्ण सेनाके भीतर गदा लिये दौड़ते देख धृष्टद्युम्नको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने विशोकसे कहा- महाबली भीम मेरे सखा और सम्बन्धी हैं। मेरा उनपर प्रेम है और उनका मुझपर। इसलिये जहाँ वे गये हैं, वहाँ ही मैं भी जाता हूँ। यह कहकर धृष्टद्युम्न वहाँ से चला गया और भीमने गदासे हाथियोंको कुचलकर जो मार्ग बना दिया था, उसीसे वह भी सेनाके भीतर प्रवेश कर गया। धृष्टद्युम्नने देखा- जैसे आँधी वृक्षोंको तोड़ डालती है, उसी प्रकार भीम भी शत्रु-सेनाका संहार कर रहे हैं तथा उनकी गदाकी चोटसे आहत होकर रथी, घुड़सवार, पैदल और हाथीसवार आर्तनाद कर रहे हैं। तत्पश्चात् उनके पास पहुँचकर धृष्टद्युम्नने उन्हें अपने रथपर बिठा लिया।

तब आपके पुत्र धृष्टद्युम्नपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। धृष्टद्युम्न अद्भुत प्रकारसे युद्ध करनेवाला था, शत्रुओंकी बाणवर्षासे उसे तनिक भी व्यथा नहीं हुई; उसने सब योद्धाओंको अपने बाणोंसे बींध डाला। इसके बाद भी आपके पुत्रोंको बढ़ते देख महारथी द्रुपदकुमारने प्रमोहनास्त्र का प्रयोग किया। उसके प्रभावसे वे सभी नरवीर मूर्छित हो गये। द्रोणाचार्यने जब यह समाचार सुना तो शीघ्र ही उस स्थानपर आये। देखा तो भीम और धृष्टद्युम्न रणमें विचर रहे हैं और आपके सभी पुत्र अचेत पड़े हुए हैं। तब आचार्यने प्रज्ञास्त्रका प्रयोग करके मोहनास्त्रका निवारण किया। इससे उनमें पुन: प्राण-शक्ति आ गयी और वे महारथी उठकर भीम और धृष्टद्युम्नके सामने पुन: युद्धके लिये जा डटे।

इधर राजा युधिष्ठिरने अपने सैनिकोंको बुलाकर कहा, अभिमन्यु आदि बारह महारथी वीर कवच आदिसे सुसज्जित होकर अपनी शक्तिभर प्रयत्न करके भीम और धृष्टद्युम्नके पास जायँ और उनका समाचार जानें, मेरा मन शंकित हो रहा है।

युधिष्ठिरकी आज्ञा सुनकर सभी पराक्रमी योद्धा चले गये। धृष्टकेतु, द्रौपदीके पुत्र तथा केकयदेशीय वीर अभिमन्युको आगे करके बड़ी भारी सेनाके साथ चले। उन्होंने सूचीमुख नामक व्यूह बनाकर कौरव सेनाका भेदन किया और भीतर चले गये। कौरव-योद्धाओंको भीम और धृष्टद्युम्नने पहलेसे ही भयभीत कर रक्खा था, इसीलिये वे इन लोगोंको रोकनेमें असमर्थ रहे।

भीम और धृष्टद्युम्नने जब अभिमन्यु आदि वीरोंको अपने पास आया देखा तो वे बहुत प्रसन्न हुए और बड़े उत्साहसे आपकी सेनाका संहार करने लगे। इतनेमें द्रुपदकुमारने अपने गुरु द्रोणाचार्यको सहसा वहाँ आते देखा। तब उसने आपके पुत्रोंको मारनेका विचार त्याग दिया और भीमको केकयके रथमें बिठाकर अस्त्रोंके पारगामी द्रोणाचार्यपर धावा किया। उसे अपनी ओर आते देख आचार्यने एक बाण मारकर उसका धनुष काट दिया और चार बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको मारकर सारथीको भी यमराजके घर भेज दिया। तब महाबाहु धृष्टद्युम्न उस रथसे कूदकर अभिमन्युके रथपर जा बैठा। उस समय पाण्डवसेना काँप उठी, आचार्य द्रोणने अपने तीखे बाणोंसे मारकर उसे क्षुब्ध कर दिया। दूसरी ओरसे महाबली भीष्म भी पाण्डवसेनाका संहार करने लगे।

संजयने कहा, तदनन्तर जब सूर्यदेवपर संध्याकी लाली छाने लगी, तो दुर्योधनने भीमका वध करनेकी इच्छासे उनपर धावा किया। अपने महाबली शत्रुओंको आते देख भीमके क्रोधकी सीमा न रही। वे दुर्योधनसे बोले, आज मुझे वह अवसर मिला है, जिसकी बहुत वर्षोंसे प्रतीक्षा कर रहा था। यदि तू युद्ध छोड़कर भाग नहीं गया, तो अवश्य ही इस समय तेरा वध कर डालूँगा। माता कुन्तीको जो कष्ट उठाने पड़े हैं, हमलोगोंने जो वनवास भोगा है तथा द्रौपदीको जो अपमानका

दु:ख सहना पड़ा है, उन सबका बदला आज तुझे मारकर चुका लूँगा। यह कहकर भीमने धनुष चढ़ाया और दुर्योधनपर जलती हुई अग्निकी शिखाके समान बाण छोड़े। फिर बाणोंसे उसका धनुष काट दिया, और उसके सारथीको मार डाला तथा घोड़ोंको यमलोक भेज दिया और रथकी ध्वजाको काट डाला और उच्च स्वरसे सिंहनाद करने लगे।

इतनेमें कृपाचार्यने आकर दुर्योधनको अपने रथपर चढ़ा लिया। भीमने उसे बहुत ही घायल और व्यथित कर दिया था, इसलिये वह रथके पिछले भागमें बैठकर विश्राम करने लगा। तत्पश्चात् भीमको जीतनेके लिये कई हजार रथोंके साथ जयद्रथने आ घेरा। धृष्टकेतु, अभिमन्यु, द्रौपदीके पुत्र और केकयदेशीय राजकुमार आपके पुत्रोंसे युद्ध करने लगे। इसी समय चित्रसेन, सुचित्र, चित्राङ्गद, चित्रदर्शन, चारुचित्र, सुचारू, नन्दक और उपनन्दक- इन आठ यशस्वी वीरोंने अभिमन्युके रथको चारों ओरसे घेर लिया। यह देख अभिमन्युने प्रत्येकको बाण मारे। अभिमन्युके इस पराक्रमको वे नहीं सह सके, अत: उसपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे। फिर तो अभिमन्युने वह पराक्रम दिखाया, जिससे आपके सैनिक काँप उठे। मानो देवासुर-संग्राममें वज्रपाणि इन्द्र असुरोंको भयभीत कर रहे हों। इसके बाद उसने विकर्णपर तेज बाणोंका प्रहार कर रथसे ध्वजा काट गिरायी और सारथी तथा घोड़ोंको मार डाला। फिर सानपर चढ़ाये हुए कई तीखे बाण विकर्णको लक्ष्य करके छोड़े और वे उसके शरीरको छेदकर पृथ्वीपर जा गिरे। विकर्णको घायल देखकर उसके दूसरे-दूसरे भाई अभिमन्यु आदि महारथियोंपर टूट पड़े।

दुर्मुखने अपने बाण मारकर श्रुतकर्माको बींध डाला और उसके रथ की ध्वजा काट दी, तथा उसके रथके सारथी और घोड़ोंको मार गिराया। इससे श्रुतकर्माको बड़ा क्रोध हुआ और बिना घोड़ेके रथपर ही खड़े होकर उसने दुर्मुखके ऊपर प्रज्वलित उल्काके समान शक्ति छोड़ी। वह दुर्मुखका कवच भेदकर शरीरको छेदती हुई पृथ्वीमें समा गयी। इधर श्रुतकर्माको रथहीन देखकर महारथी सुतसोमने उसे अपने रथपर बिठा लिया। राजन्। इसके बाद आपके यशस्वी पुत्र जयत्सेनको मार डालनेकी इच्छासे श्रुतकीर्ति उसके सामने आया। जयत्सेनने श्रुतकीर्तिके धनुषको काट दिया। अपने भाईका धनुष कटा देखकर शतानीक बारंबार सिंहनाद करता हुआ वहाँ पहुँचा। उसने अपने सुदृढ़ धनुषको तानकर बाणोंसे जयत्सेनको घायला किया। जयत्सेनके पास उसका भाई दुष्कर्ण भी मौजूद था, उसने नकुलपुत्र शतानीकके धनुषको काट दिया। शतानीकने दूसरा धनुष लेकर उसपर बाणोंका संधान किया और उन्हें दुष्कर्णको लक्ष्य करके छोड़ दिया। इसके बाद उसके धनुषको काटकर, सारथी और घोड़ोंको मार डाला। साथ ही उसे बाणोंसे घायल किया। इसके पश्चात एक भल्ल नामक बाणसे दुष्कर्णकी छातीमें प्रहार किया, उसकी चोट खाकर वह बिजलीके आघातसे टूटे हुए वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा। दुष्कर्णको व्यथित देखकर पाँच महारथियोंने शतानीकको चारों ओरसे घेर लिया और उसे बाणोंके समूहसे आच्छादित करने लगे। यह देख पाँचों केकयराजकुमार क्रोधमें भरे हुए शतानीककी सहायताके लिए दौड़े। उन्हें आक्रमण करते देख दुर्मुख, दुर्जय, दुर्मर्षण, शत्रुञ्जय और शत्रुसह आदि आपके महारथी पुत्र उनके मुकाबले में आ डटे। एक-दूसरेको अपना दुश्मन माननेवाले इन राजाओंने सूर्यास्तके बाद दो घड़ीतक अपना भयंकर संग्राम जारी रक्खा। हजारों रथियों और घुड़सवारोंकी लाशें बिछ गयीं। तब शान्तनुनन्दन भीष्म भी महात्मा पाण्डवों और पाञ्चालोंकी सेनाको यमलोक पहुंचाने लगे। इस प्रकार पाण्डवसेनाका संहार करके भीष्मने अपने योद्धाओंको पीछे लौटाया और स्वयं अपने शिबिरमें चले गये। इधर धर्मराज युधिष्ठिर भी भीम और धृष्टद्युम्नको देखकर बड़े प्रसन्न हुए।

इसी समय सूर्य अस्त होने लगा, सारी सेना व्याकुल हो रही थी। भीष्मके रथके घोड़े भी थक गये थे; इसलिये उन्होंने सेनाको युद्ध बंद करनेकी आज्ञा दी। अत्यन्त घबरायी हुई दोनों सेनाएँ अपने-अपने शिबिरमें चली गयीं। पांचालोंके साथ पाण्डव और कौरव भी अपने-अपने शिबिरमें जाकर विश्राम करने लगे। पाँचवे दिन भी युद्धका पलड़ा पाण्डवोंके पक्षमें ही भारी रहा।

दुर्योधन भीष्म पितामह के शिबिर में आया। भीष्म ने बोला, दुर्योधन बड़े क्लान्त लग रहे हो। स्वस्थ हो ना पुत्र।

दुर्योधन बोला मैं आपको यह बताना चाहता हूँ यदि मैं अपने स्वास्थ्य की रक्षा करता रहूँगा तो कौरवोंके साम्राज्य का स्वास्थ्य संकट में पड़ जायगा। भीष्म बोले, तुम मुझे क्या बताना चाहते हो? दुर्योधन बोला, संसार में सबसे बड़ी शक्तिशाली सेना हमारे पास है। उसके सैनिक भयंकर जुझारू योद्धा है। उनकी व्यूहरचना भी संसार में अद्वितीय है। उनमें सम्मिलित ध्वजोंकी गणना भी असंख्य है। फिर भी पांडव महारथी उसमें निर्विघ्न प्रवेश कर हमारे सैनिकोंको मार देते है, पीड़ा देते और विदीर्ण कर देते है और फिर भी सुरक्षित लौट जाते हैं। ऐसे में मुझे तनिक भी शांति नहीं मिलती है। हे सत्यप्रतिज्ञ पितामह, मैं आपकी कृपा से पाण्डवोंको मारना और मैं उनपर विजय प्राप्त करना चाहता हूँ।

भीष्मने सबकुछ सुना और दुर्योधन की ओर देखते हुए उन्हें लगा कि वह दुर्योधन इन्हे स्मरण करा रहा है कि वे उसके सेनापति है और उन्हें अपनी पूर्णक्षमता से युद्ध करना चाहिए। भीष्म बोले, दुर्योधन विपक्षियों के शस्त्रोंसे पीड़ित होकर भागते हुए तुम्हारे सैनिक जब तुम्हे खोजते हैं तब तुम रणभूमि में दिखायी नहीं पड़ते हो। कहाँ होते हो तुम? मैं तो अपनी पूरी शक्ति से भयंकर प्रयत्न कर पाण्डवोंकी सेना में उनका संहार करता हूँ या नहीं यह तो तुम भी जानते हो। मैं स्वयं को छिपाकर तो नहीं रखता। या मैं दूसरोंको युद्ध का आदेश देकर स्वयं मैं कहीं शिबिर में छिप तो नहीं जाता। मैं अपने प्राणों की चिंता लिये हुए शत्रुदल से अपनी आँखें तो नहीं चुराता? दुर्योधन बोला मैं यह नहीं कह रहा हूं पितामह। भीष्म बोले, तुम तो कुछ कह रहे हो वह सब मैं अच्छी तरह से समझ रहा हूँ। मैं तुम्हे विजय दिलाना चाहता हूँ किन्तु पाण्डवोंका वध करना नहीं चाहता हूं। मैं तुम्हें सुख देना चाहता हूं परन्तु पाण्डवोंको दु:ख देना नही चाहता। दुर्योधन बोला, यह दोनों बातें एक साथ कैसे सम्भव है पितामह। भीष्मने दुर्योधन को घूरकर देखा और बोले, यह तो तुम्हे पहले सोचना चाहिए था। अधर्म की कहीं विजय नहीं होती, असत्य की विजय नहीं होती, तुम तो अधर्म पर चलकर असत्य जीवन व्यतीत कर विजय पाना चाहते हो। यह दोनो बातें भी तो सम्भव नहीं है दुर्योधन। दुर्योधन बोला, मैं आपसे धर्मसंबंधी विवाद करना नहीं चाहता। मैं तो आपसे केवल यह जानना चाहता हूँ कि हमारी सेना को युद्ध में विजय क्यों प्राप्त नहीं हो रही? भीष्म बोले, पाण्डवोंके सहायक अत्यन्त भयंकर, परमशौर्य, सम्पन्न, शस्त्रोंके ज्ञाता और यशस्वी हैं। वे धर्म, सत्य और अपने अधिकारों के लिये लड़ रहे हैं इसलिए वे विजयश्री को वर्णन करेंगे। वे युद्ध से थकते नहीं। उनका रोष उन्हें युद्धसे विरत नहीं होने देता। वे हमपर बाण नहीं बरसाते पर अपना रोषरूपी विष उगलते हैं। दुर्योधन बोला, हम भी तो अपने अधिकारों के लिये ही लड़ रहे हैं पितामह। भीष्म बोले, तुम लोभ से लड़ रहे हो, पराये धन का अपहरण करने के लिए लड़ रहे हो, दूसरोंको वंचित करने के लिए लड़ रहे हो। तुम्हारे पक्ष में सत्य और धर्म नहीं है। फिर तुम्हारी विजय कैसे हो सकती है। विजय तो उसीकी होती है जिसके पक्ष में धर्म होता है। इसिलिये तुमसे कहता हूँ तुम धर्मको स्वीकार करो। धर्म तुम्हारा पक्ष न भी ले तुम तो धर्म का पक्ष लो ताकि तुम विजय प्राप्त कर सको। दुर्योधन ऐसे स्वर में बोला, पितामह मैं धर्म और सत्य को अच्छी तरह जानता हूं लेकिन उसमें मेरी कोई निष्ठा नहीं है। मैं तो अपने शत्रु पाण्डवोंका संहार करना चाहता हूं उनका नाश आप क्यों नहीं कर पा रहे हैं?

भीष्म बोले, वह तुम्हारे वैरी पाण्डव बलपराक्रम में प्रचण्ड हैं। वे तो तभी मरेंगे जब उनका बैर मरेगा। उन्हें तुम्हारी इच्छा से पराजित नहीं किया जा सकता। फिर भी मैं प्रयत्न करूँगा कि तुम्हारे शत्रुओं का नाश कर सकूँ। मैं तुम्हारी मनोकामना पूरी करने का प्रयत्न करूंगा। परन्तु यदि तुम्हे विजय चाहिये तो पाण्डवोंसे सन्धि कर लो। जिनके सहायक श्रीकृष्ण हैं और जिनके पास भीम, अभिमन्यु, अर्जुन, सात्यकि, घटोत्कच जैसा योद्धा है उन्हें तो युद्ध में देवराज इन्द्र भी पराजित नहीं कर सकते। दुर्योधन बोला, मैं कुछ समझा नहीं पितामह। भीष्म बोले, तुम जानकर समझ नहीं पा रहे हो। क्योंकि तुम्हारा अहंकार तुम्हे उन्मादि बनाये हुये है तुम्हारे आड़े आ खड़ा है, तुम्हारे स्वार्थ ने तुम्हें अन्धा कर रखा है। यह सुनकर दुर्योधन वहाँसे चला गया।

भीष्म अपने स्थान पर आकर बैठे और अपनी उक्तियोंका विश्लेषण करने लगे। भीष्म चाहते थे कि सारा कुरुवंश बचा रहे, पाण्डवोंकी रक्षाके माध्यमसे धर्म की रक्षा भी कर पायेंगे। पर दुर्योधन तो प्रतिदिन पहलेसे कहीं अधिक उग्र होते जा रहा है। वह प्रतिक्षण माँग करने लग गया कि भीष्म पाण्डवोंका वध करे। जब तक भीष्म धराशायी नहीं होंगे तब तक दुर्योधन उन्हें दिन-प्रतिदिन निरन्तर पांडवोंके वध के लिये उकसाता रहेगा और भीष्म पाण्डवोंका वध करेंगे नहीं उनके रहते कर्ण रणक्षेत्र में आ नहीं सकता और कर्ण को रणभूमि में लाना दुर्योधन की परम इच्छा है। भीष्म युद्ध से हट क्यों नहीं जाते ताकि दुर्योधन अपना बल परीक्षण कर ले।

## १२) महाभारत का युद्ध (छठा दिन) विराट कुमार शंख का वध

संजयने कहा- महाराज। तब सब योद्धा अपने-अपने शिबिरोंमें चले आये। रात्रिमें सबने विश्राम किया और एकदूसरेका यथायोग्य सत्कार किया तथा दूसरे दिन फिर युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये। इस समय आपके पुत्र दुर्योधनने अत्यन्त चिन्ताग्रस्त होकर पितामह भीष्मसे पूछा, पितामह। आपकी सेना बड़ी भयानक है। इसकी व्यूहरचना भी बड़ी सावधानीसे की जाती है। फिर भी पाण्डवपक्षके महारथी उसे तोड़कर हमारे वीरोंको मार डालते हैं। वे हमारे वीरोंको चक्करमें डालकर बड़ी कीर्ति पा रहे हैं। उन्होंने वज्रके समान सुदृढ़ मकरव्यूहको भी तोड़ डाला और उसके भीतर घुसकर भीमने अपने मृत्युदण्डके समान प्रचण्ड बाणोंसे मुझे घायल कर दिया। भीमकी रोषपूर्ण मूर्तिको देखकर मैं अपनी सुधबुध भूल गया। अभीतक मेरा चित्त शान्त नहीं हो पाया है। महात्मन्। आपकी सहायतासे मैं तो युद्धमें जय प्राप्त करके पाण्डवोंका नाश कर देना चाहता हूँ।

दुर्योधनकी यह बात सुनकर महात्मा भीष्म मुसकराये और बोले, राजकुमार। मैं तो अधिक-से-अधिक प्रयत्न करके पाण्डवोंकी सेनामें घुसता हूँ। आगे भी मैं अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर सारी शक्तिसे पाण्डवसेनाके साथ संग्राम करूँगा। तुम्हारे लिये मैं, यह शत्रुसेना तो क्या, सारे देवता और दैत्योंको मारनेमें भी पीछे नहीं हटूँगा। मैं पूरी शक्तिसे पाण्डवोंके साथ युद्ध करूँगा और तुम्हारा सब प्रकार प्रिय करूँगा।

पितामहकी यह बात सुनकर दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ। प्रात:काल होते ही भीष्मने स्वयं ही व्यूहरचना की। उन्होंने तरह-तरहके शस्त्रोंसे सुसज्जित कौरव-सेनाको मण्डलव्यूहकी विधिसे खड़ा किया। उसमें प्रधान-प्रधान वीर, गजारोही, पदाति और रथियोंको यथास्थान नियुक्त किया। इस प्रकार भीष्मकी अध्यक्षतामें मोर्चेबंदीसे खड़ी होकर आपकी सेना युद्धके लिये तैयार हो गयी। वे युद्धोत्सुक राजालोग ऐसे जान पड़ते थे, मानो सब-के-सब भीष्मकी ही रक्षा कर रहे हैं और भीष्म उनकी रक्षामें तत्पर हैं। यह मण्डलव्यूह बड़ा ही दुर्भेद्य था और इसका मुख पश्चिमकी ओर रक्खा गया था।

इस परम दुर्जय मण्डलव्यूहको देखकर राजा युधिष्ठिरने अपनी सेनाका वज्रव्यूह बनाया। इस प्रकार जब व्यूहबद्ध होकर दोनों सेनाएँ अपने-अपने स्थानोंपर खड़ी हो गयीं तो समस्त रथी और अश्वारोही सिंहनाद करने लगे और युद्धके लिये तत्पर होकर व्यूह तोड़नेके लिये आगे बढ़े। द्रोणाचार्य विराटके सामने, अश्वत्थामा शिखण्डीके आगे और स्वयं राजा दुर्योधन धृष्टद्युम्नके सामने आये। नकुल और सहदेवने मद्रराज शल्यपर और अवन्तिनरेश विन्द और अनुविन्दने उलूपी पुत्र इरावान्पर धावा किया और सब अन्य राजा अर्जुनसे युद्ध करने लगे। भीमने युद्धके लिये बढ़ते हुए कृतवर्माको तथा चित्रसेन, विकर्ण और दुर्मर्षणको रोका।

पौष वद्य सप्तमी को युद्ध के छठे दिन कुरु सेनापति पितामह भीष्म ने अपनी सेना को क्रौंचव्यूह की तरह संयोजित किया। उसके प्रत्युत्तर में धृष्टद्युम्न ने भीम की सहायता से अपने सैन्य की बाणाकार व्यूह-रचना की। आकाशमण्डल में सूर्य की लालिमा के दर्शन होते ही कृष्ण और पितामह ने युद्धारम्भदर्शक शंख फूँके। आज दुर्योधन ने अपने बीस भ्राताओं का वध करनेवाले, कौरव-सेना के पैरों में चुभनेवाले भीम के काँटे को जड़ सहित उखाड़ने का हठ पकड़ा था। देखते-

देखते उसने भीम के रक्तवर्णी सात अश्वोंवाले रथ को अपने दस भ्राताओं-दु:शासन, दुर्विषह, दु:सह, दुर्मद, जय, जयसेन, विकर्ण, चारुमित्र, दुर्धर्ष और सुवर्मा के साथ घेर लिया। ये सभी रथी थे। रणोन्मत्त हुआ भीम भी दौड़ते रथ में ही कुम्भ से अपने कण्ठ में मैरेयक मद्य उँडेलकर, गुंजा के समान लाल आँखों से, अपनी विशाल गदा को उठाये रथ से रणभूमि में कूद पड़ा। वास्तव में मद्य की अपेक्षा दस धृतराष्ट्र-पुत्रों को अपने आगे देखकर उसका रणोन्माद तीव्र हुआ। उसने कुन्ती माता की जयकार की। आसपास के सभी योद्धाओं को भयभीत करते हुए उसने भयावह गर्जना की-आक्रऽमणऽ। धृतराष्ट्र-पुत्रों का और उसका हृदय को थर्रा देनेवाला संकुल गदायुद्ध आरम्भ हुआ।

अर्जुनका पुत्र अभिमन्यु आपके पुत्रोंसे भिड़ गया, प्राग्ज्योतिषनरेश भगदत्तने घटोत्कचपर आक्रमण किया, राक्षस अलम्बुष रणोन्मत्त सात्यकि और उसकी सेनापर टूट पड़ा तथा भूरिश्रवा धृष्टकेतुके साथ युद्ध करने लगा। धर्मपुत्र युधिष्ठिर राजा श्रुतायुसे, चेकितान कृपाचार्यसे तथा अन्य सब वीर भीष्मसे ही लड़ने लगे।

आपके पक्षके कई राजाओंने तरह-तरहके शस्त्र लेकर चारों ओरसे अर्जुनको घेर लिया। तब अर्जुनने उनपर बाण बरसाना आरम्भ किया। दूसरी ओरसे राजालोग भी अर्जुनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। इस समय श्रीकृष्ण और अर्जुनकी ऐसी स्थिति देखकर देवता, देवर्षि, गन्धर्व और नागोंको बड़ा विस्मय हुआ। तब अर्जुनने क्रोधमें भरकर ऐन्द्रास्त्र छोड़ा और अपने बाणोंसे शत्रुओंकी सारी बाणवर्षाको रोक दिया। अर्जुनके इस पराक्रमने सभीको चकित कर दिया। उनके सामने जितने राजा, घुड़सवार और गजारोही आये उनमेंसे कोई भी घायल हुए बिना न रहा। तब उन सबने भीष्मकी शरण ली। उस समय अर्जुनके बलरूपी अगाध जलमें डूबते हुए उन वीरोंके भीष्म ही जहाज हुए। उनके इस प्रकार भाग आनेसे आपकी सेना छिन्न-भिन्न हो गयी और आँधी चलनेसे जैसे समुद्रमें क्षोभ होने लगता है, उसी प्रकार उसमें खलबली पड़ गयी।

अब भीष्म बड़ी फुर्तीसे अर्जुनके सामने आये और उनसे युद्ध करने लगे। इधर द्रोणाचार्यने बाणोंसे मत्स्यराज विराटको घायल कर दिया तथा उनकी ध्वजाको और धनुषको काट डाला। सेनानायक विराटने तुरंत ही दूसरा धनुष ले लिया और कई चमचमाते हुए बाण लिये। फिर उन्होंने अपने बाणोंसे आचार्यको बींध दिया, उनके घोड़ोंको मार डाला और ध्वजा काट डाली, तथा सारथीको मार गिराया। इससे द्रोणाचार्य बड़े कुपित हुए।

उन्हें सूचना मिली कि द्रोण ने फिर से विराट को घेर लिया है और अपने तीखे बाणों से उन्हें आहत कर दिया है। विराट ने भी द्रोण को बींध दिया। द्रोण क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने विराट का रथ ध्वस्त कर दिया। विराट अपने रथ से कूदकर अपने पुत्र शंख के रथ पर जा चढ़े। पिता और पुत्र दोनों ने मिलकर द्रोण का मार्ग अवरुद्ध कर दिया। द्रोण इस समय किसी के रोके रुक नहीं सकते थे। उन्होंने बाणोंसे विराटके घोड़ोंको नष्ट कर दिया और उनके सारथीको मार डाला। तब विराट रथसे कूद पड़े और अपने पुत्रके रथपर चढ़ गये। तब वे पिता-पुत्र दोनों ही भीषण बाणवर्षा करके बलात्कारसे आचार्यको रोकनेका प्रयत्न करने लगे। इससे चिढ़कर आचार्यने राजकुमार शंखपर एक सर्पके समान विषैला बाण छोड़ा। वह बाण शंखके हृदयको वेधकर उसके खूनमें लथपथ होकर पृथ्वीपर जा पड़ा। शंखके हाथका धनुष उसके पिताके ही पास गिर गया और वह स्वयं रणभूमिमें लोट गया। उहोंने तत्काल शंख का वध कर दिया। विराट ने अपने तीसरे पुत्र का वध अपनी आँखों से देखा। वे समझ रहे थे कि अब उनके भी प्राण नहीं बचेंगे। वे क्या कर सकते थे। आस-पास कोई सहायक भी नहीं था। वे समरभूमि छोड़कर भाग गए। पुत्रको मरा हुआ देखकर राजा विराट भयभीत हुए और द्रोणाचार्यको छोड़कर युद्धक्षेत्रसे विरत हो गये।

भीष्म को विराट पर दया आई। बेचारे के तीनों पुत्र मारे गए थे। पर युद्ध में क्षत्रिय अपने प्राण देने ही तो आते हैं यहाँ अपने पक्षवालों के प्रति ही संवेदना प्रकट करने का अवसर नहीं आता, शत्रुओं के प्रति कोई क्या सहानुभूति दिखाए।

तब आचार्य द्रोण और पांचालराज द्रुपद के बीच आज घमासान युद्ध हुआ। भीम की सहायता करने हेतु धृष्टद्युम्न मार्ग में पड़े मृत हाथियों के शरीरों को लाँघता हुआ अपने रथ सहित उसके समीप पहुँच गया। भीम धृतराष्ट्र-पुत्रों से घिरा हुआ था। वह दृढ़ता से उनसे गदायुद्ध कर रहा था। लाल चीटियों की भाँति क्षुब्ध हुए दुर्योधन-बन्धु भीम पर घात करेंगे, यह जानकर धृष्टद्युम्न ने आज युद्ध में पहले अस्त्र-प्रमोहनास्त्र का प्रयोग किया।

जिससे कौरव-सैनिक अपने अश्व, हाथी, ऊँट और रथोंसहित भाग खड़े हुए। द्रोणाचार्य पर आज ऐसा रणोन्माद सवार था कि उनसे टकराना दुष्कर हुआ था। महाबली गदावीर भीम और धृष्टद्युम्न भी उनके आगे टिक नहीं पा रहे थे। उन्होंने शंखनाद के विशिष्ट संकेत से युवा अभिमन्यु को सहायता के लिए पुकारा। अभिमन्यु बारह रथियों के घेरे के साथ उनकी सहायता करने दौड़ा। उसने पहले रणभूमि पर उतरकर, गदायुद्ध में आत्मविस्मृत हुए भीम को हाथ जोड़कर प्रार्थना कर अपने रथ में ले लिया। अन्य रथियों ने धृष्टद्युम्न को उसके रथ पर चढ़ाया। अब संध्या होने को आयी थी।ण्डवोंकी विशाल वाहिनीको सैकड़ों-हजारों भागोंमें विभक्त कर दिया।

शिखण्डीने अपने बाणोंसे अश्वत्थामाकी भृकुटिमें प्रहार किया। इससे क्रोधमें भरकर अश्वत्थामाने बहुत-से बाण बरसाकर क्षणभर में ही शिखण्डीकी ध्वजा, सारथी, घोड़ों और हथियारोंको काट गिरा दिया। घोड़ोंके मारे जानेपर वह रथसे कूद पड़ा और हाथमें ढाल-तलवार लेकर बाजके समान बड़े क्रोधसे झपटा। रणाङ्गणमें तलवार लेकर घूमते हुए शिखण्डीपर वार करनेका अश्वत्थामाको अवसरतक नहीं मिला। फिर उन्होंने उसपर सहस्त्रों बाण छोड़े। शिखण्डीने उस सारी बाणवर्षाको अपनी तलवारसे काँट दिया। तब अश्वत्थामा ने उसकी ढाल और तलवार को ही टुकड़े-टुकड़े कर दिया और अनेकों फौलादी बाणोंसे शिखण्डीको भी बींध दिया।

विराट से मुक्त हो द्रोण पांडव सेना के दूसरे भाग की ओर बढ़े। अश्वत्थामा पिता की सहायता को न आ सके, इसलिए शिखंडी ने अश्वत्थामा पर आक्रमण किया। उसके निकट पहुँचकर उसकी त्रिकुटी पर बाण मारा। अश्वत्थामा अपने ओज में था। उसने क्षणभर में ही शिखंडी का सारथी, ध्वज, अश्व सब कुछ नष्ट कर दिया। शिखंडी अपने हाथ में खड्ग लेकर रथ से नीचे कूद गया। वह कुपित श्येन के समान समरभूमि में विचर रहा था कि अश्वत्थामा ने बाण मारकर उसका खड्ग भी खंडित कर दिया। शिंखडी ने अपने हाथ में रह गया खड्ग का वह खंड घूमाकर अश्वत्थामा को दे मारा। अश्वत्थामा ने उसे भी काट दिया और शिखंडी को आहत कर दिया। पर शिखंडी अश्वत्थामा के साथ इस युद्ध में अपने प्राण त्यागना नहीं चाहता था। वह उसे भीष्म के वध के लिए बचाए हुए था। भीष्म जानते थे। शिखंडी सात्यकि के रथ पर आरूढ़ हो सुरक्षित हो गया।

इधर वीरवर सात्यकिने अपने पैने बाणोंसे राक्षस बकासुर के भाई अलम्बुषको घायल कर दिया। इसपर अलम्बुषने भी अर्धचन्द्राकार बाण छोड़कर सात्यकिका धनुष काट दिया और उसे भी अनेकों बाणोंसे घायल कर दिया। फिर उसने राक्षसी माया करके उसपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। इस समय सात्यकिका बड़ा ही अद्भुत पराक्रम देखनेमें आया; क्योंकि ऐसे तीखे-तीखे बाणोंकी चोट खानेपर भी उसे रणभूमिमें तनिक भी घबराहट नहीं हुई। उसने अर्जुनसे मिला हुआ ऐन्द्रास्त्र चढ़ाया, उससे वह राक्षसी माया तत्काल भस्म हो गयी। फिर उसने अनेकों बाण बरसाकर अलम्बुषको ढक दिया। इस प्रकार सात्यकिके द्वारा पीड़ित होनेपर वह राक्षस उसका सामना छोड़कर रणभूमिसे भाग गया। सत्यपराक्रमी सात्यकिने अपने तीखे बाणोंसे आपके पुत्रोंपर भी प्रहार किया और वे भी भयभीत होकर भाग गये। सात्यकि ने सिंहनाद किया।

इसी समय द्रुपदके पुत्र पाण्डवोंके प्रधान सेनापति महाबली धृष्टद्युम्नने अपने तीखे तीरोंसे आपके पुत्र राजा दुर्योधनको ढक दिया। किंतु इससे दुर्योधनको कोई घबराहट नहीं हुई और बड़ी फूर्तिसे उसने अनेक बाण छोड़कर धृष्टद्युम्नको बींध दिया। तब धृष्टद्युम्नने कुपित होकर उसका धनुष काट डाला, चारों घोड़ोंको मार गिराया और तीखे बाणोंसे स्वयं उसे भी घायल कर दिया।

धृष्टद्युम्न ने दुर्योधन के अश्व मार दिए। दुर्योधन अपने रथ से कूदकर हाथ में तलवार लेकर धृष्टद्युम्न की ओर दौड़ा। शकुनि ने आकर दुर्योधन को अपने रथ पर चढ़ा लिया, नहीं तो दुर्योधन व्यर्थ ही धृष्टद्युम्न के हाथों अपने प्राण गँवाता। यह युद्ध की कोई रीति नहीं थी। द्यूत के खिलाड़ी शकुनि ने दुर्योधन को ऐसा द्यूत खेलने नहीं दिया। वे दोनों तो धृष्टद्युम्न के सामने से हट गए, पर कौरव सेना धृष्टद्युम्न से बच नहीं पाई। उसने सामने खड़ी कौरव वाहिनियों का विनाश कर डाला।

इस प्रकार दुर्योधनको परास्त कर धृष्टद्युम्नने आपकी सेनाका संहार करना आरम्भ किया। इसी समय महारथी कृतवर्माने भीमको बाणोंसे आच्छादित कर दिया। तब भीमने भी हँसकर कृतवर्मापर बाणोंकी झड़ी लगा दी। उन्होंने उसके चारों घोड़ोंको मारकर ध्वजा और सारथीको भी गिरा दिया तथा कृतवर्माको भी बहुत-से बाणोंसे घायल कर दिया। घोड़ोंके मारे जानेपर कृतवर्मा बड़ी फुर्तीसे आपके साले वृषकके रथपर चढ़ गया। फिर भीम अत्यन्त क्रोधमें भरकर दण्डपाणि यमराजके समान आपकी सेनाका संहार करने लगा।

महाराज। अभी दोपहर नहीं हुआ था कि अवन्तिनरेश विन्द और अनुविन्द इरावान्‌को आते देखकर उसके सामने आ गये। बस, उनका बड़ा रोमाञ्चकारी युद्ध छिड़ गया। इरावान्‌ने क्रोधमें भरकर उन दोनों भाइयोंको अपने तीखे बाणोंसे बींध दिया। बदलेमें उन्होंने भी इरावान्‌को अपने बाणोंसे घायल कर दिया। फिर इरावान्‌ने अनुविन्दके घोड़ोंको धराशायी कर दिया तथाउनके धनुष और ध्वजाको काट गिराया। तब अनुविन्द अपने रथसे उतरकर विन्दके रथपर चढ़ गया। फिर उन दोनों वीरोंने एक ही रथपर बैठकर इरावान्‌पर बड़ी फूर्तिसे बाण बरसाना आरम्भ किया। इसी प्रकार इरावान्‌ने भी क्रोधमें भरकर उन दोनों भाइयोंपर बाणोंकी झड़ी लगा दी तथा उनके सारथीको मारकर गिरा दिया। तब उनके घोड़े भयसे चौंककर उनके रथको लेकर इधर-उधर भागने लगे। इस प्रकार उन दोनों वीरोंको जीतकर इरावान् अपना पुरुषार्थ दिखाते हुए बड़ी तेजीसे आपकी सेनाको ध्वंस करने लगा।

इस समय राक्षसराज घटोत्कच रथपर चढ़कर भगदत्तके साथ युद्ध कर रहा था। उसने बाणोंकी झड़ी लगाकर भगदत्तको बिल्कुल ढक दिया। तब उन्होंने उन सब बाणोंको काटकर बड़ी फुर्तीसे घटोत्कचके मर्मस्थानोंपर वार किया। किन्तु अनेकों बाणोंसे घायल होनेपर भी वह घबराया नहीं। इससे कुपित होकर प्राग्ज्योतिषनरेशने तोमर छोड़े, किंतु घटोत्कचने उन्हें तत्काल काट डाला और अपने बाणोंसे भगदत्तपर वार किया। तब भगदत्तने उसके घोड़ोंको मार डाला। घटोत्कचने अश्वहीन रथमेंसे ही उनपर बड़े वेगसे शक्ति छोड़ी। किंतु भगदत्तने उसके टुकडे-टुकड़े कर दिये और वह बीचहीमें पृथ्वीपर गिर गयी। शक्तिको व्यर्थ हुई देखकर घटोत्कच भयभीत होकर रणाङ्गणसे भाग गया। घटोत्कचका बल-पराक्रम सर्वत्र विख्यात था, उसे संग्रामभूमिमें सहसा यमराज और वरुण भी नहीं जीत सकते थे। उसीको इस प्रकार परास्त करके राजा भगदत्त अपने हाथीपर चढ़े पाण्डवोंकी सेनाका संहार करने लगे। भीष्म ने यह भी सुना कि गजारूढ़ भगदत्त से त्रस्त होकर पांडव सेना भाग चली। घटोत्कच पांडव सेना को लौटा लाया। घटोत्कच ने भगदत्त को पीड़ित किया तो भगदत्त ने उसे घायल कर दिया। घटोत्कच पहले तो विचलित नहीं हुआ किंतु जब युद्ध अपने चरम पर पहुँचा तो वह भगदत्त का तेज सँभाल नहीं पाया। अंतत: घटोत्कच भगदत्त से पीडित होकर युद्धभूमि छोड़कर कहीं विलुप्त हो गया और भगदत्त पांडव सेना का मर्दन करने लगा।

इधर मद्रराज शल्य अपनी बहिनके युगल पुत्र नकुल और सहदेवसे युद्ध कर रहे थे। उन्होंने उन दोनोंको अपने बाणोंसे एकदम ढक दिया। तब सहदेवने भी बाण बरसाकर उनकी प्रगतिको रोक दिया। सहदेवके बाणोंसे आच्छादित होनेपर शल्य उसके पराक्रमसे बड़े प्रसन्न हुए तथा अपनी माताके सम्बन्धसे उन दोनों भाइयोंको भी अपने मामाका जौहर देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। इतनेहीमें महारथी शल्यने बाण छोड़कर नकुलके चारों घोड़ोंको यमराजके घर भेज दिया। नकुल तुरंत ही रथसे

कूदकर अपने भाईके रथपर चढ़ गया। इस प्रकार उन दोनों भाइयोंने एक ही रथमें बैठकर बड़ी फूर्तिसे बाण बरसाकर मद्रराजको ढक दिया। इसी समय सहदेवने कुपित होकर मद्रराजपर बाण छोड़ा। वह उनके शरीरको छेदकर पृथ्वीपर जा पड़ा। उसकी चोटसे मद्रराज व्याकुल होकर रथके पिछले भागमें बैठ गये और उसकी वेदनासे अचेत हो गये। उन्हें संज्ञाशून्य देखकर सारथी रथको रणक्षेत्रसे बाहर ले गया। यह देखकर आपकी सेनाके सब वीर उदास हो गये तथा महारथी नकुल और सहदेव अपने मामाको परास्त करके हर्षध्वनि और शफ्नाद करने लगे। नकुल और सहदेव ने शल्य को इतना क्षत-विक्षत किया कि वे रथ के पिछले भाग में जा बैठे और मूर्च्छित हो गए। उनका सारथी तत्काल ही उनका रथ समरभूमि से हटाकर बाहर ले गया। भीष्म ने यह सब समरभूमि में ही सुना, किंतु आज कोई भी सूचना उन्हें उत्तेजित नहीं कर रही थी। उन्हें किसी विजय में लाभ और किसी पराजय में हानि का अनुभव नहीं हो रहा था। युद्ध जैसे मात्र युद्ध के लिए हो रहा था, उसका कोई प्रयोजन नहीं था।

सञ्जयने कहा- महाराज। जब सूर्यदेव आकाशके बीचोंबीच आ गये तो राजा युधिष्ठिरने श्रुतायुको देखकर उसकी ओर अपने घोड़े बढ़ा दिये तथा अपने बाण छोड़कर उसे घायल कर दिया। श्रुतायुने उन बाणोंको हटाकर युधिष्ठिरपर बाण छोड़े। वे उनके कवचको फोड़कर उनका रक्त पीने लगे। इससे राजा युधिष्ठिर बहुत बिगड़े। उस समय उनका क्रोध देखकर सब जीवोंको ऐसा जान पड़ने लगा मानो ये तीनों लोकोंको भस्म कर देंगे। यह देखकर देवता और ऋषिलोग सब लोकोंकी शान्तिके लिये स्वस्तिवाचन करने लगे। आपकी सेनाने तो अपने जीवनकी आशा ही छोड़ दी। किंतु यशस्वी युधिष्ठिरने धैर्य धारणकर अपने क्रोधको दबा दिया और श्रुतायुके धनुषको काटकर उसकी छातीको बींध दिया। फिर शीघ्र ही उसके सारथी और घोड़ोंको भी मार डाला। राजा युधिष्ठिरका ऐसा पुरुषार्थ देखकर श्रुतायु अपना अश्वहीन रथ छोड़कर भाग गया। इस प्रकार जब धर्मपुत्र युधिष्ठिरने श्रुतायुको परास्त कर दिया तो राजा दुर्योधनकी सारी सेना पीठ दिखाकर भागने लगी।

दूसरी ओर चेकितान महारथी कृपाचार्यको बाणोंसे आच्छादित करने लगा। तब कृपाचार्यने उन सब बाणोंको रोककर स्वयं अपने बाणोंसे चेकितानको घायल कर दिया। फिर उन्होंने उसके धनुषको काट डाला, सारथीको मार गिराया तथा घोड़ों और दोनों पार्श्वरक्षकोंको भी धराशायी कर दिया। तब चेकितानने रथसे कूदकर हाथमें गदा ले ली। उस गदासे उसने कृपाचार्यके घोड़ों और सारथीको मार डाला। कृपाचार्यने पृथ्वीपर खड़े-खड़े ही उसपर बाण छोड़े। वे बाण चेकितानको घायल करके धरतीमें घुस गये। इससे उसका क्रोध बढ़ गया और उसने अपनी गदा कृपाचार्यपर छोड़ी। कुलगुरुने उसे अपने ऊपर आती देखकर अपने सहस्त्रों बाणोंसे रोक दिया। तब चेकितान हाथमें तलवार लेकर उनके सामने आया। इधर कुलगुरु ने भी तलवार लेकर उसपर बड़े वेगसे धावा किया। अब वे दोनों वीर एक दूसरेपर तीखी तलवारोंके वार करते हुए पृथ्वीपर लोट-पोट हो गये। युद्धमें अत्यन्त परिश्रम पड़नेके कारण उन दोनोंहीको मूर्च्छा आ गयी। इतनेहीमें सौहार्दवश वहाँ करकर्ष दौड़ा आया और चेकितानकी ऐसी दशा देखकर उसे अपने रथमें चढ़ा लिया। इसी प्रकार शकुनिने बड़ी फूर्तिसे कृपाचार्यको अपने रथमें बैठा लिया।

धृष्टकेतुने बाणोंसे भूरिश्रवाको घायल कर दिया। इसपर भूरिश्रवाने अपने श्रेष्ठ बाणोंसे महारथी धृष्टकेतुके सारथी और घोड़ोंको मार डाला। आज दिन-भर सात्यकि और भूरिश्रवा का भिन्न-भिन्न प्रकार से युद्ध होता रहा। सन्ध्या होने को है यह देखकर भूरिश्रवा अपना विशिष्ट चौड़ा नग्न खड्ग उठाकर रथ से नीचे उतरा। उसने सात्यकि को खड्गयुद्ध के लिए ललकारा। दोनों वीरों की खड्गों की थर्रा देनेवाली खनखनाहट सुनकर आसपास के योद्धा अपना युद्ध रोककर दर्शक बन गये। सात्यकि अत्यन्त निश्चयपूर्वक गर्जना करते हुए भूरिश्रवा से लड़ने लगा। दोनों में से कोई किसी से हार नहीं मान रहा था। न कोई आत्मसमर्पण ही कर रहा था। खड्ग के प्रहारों से दोनों के शरीर से रक्त की धाराएँ बहने लगी थीं। दोनों को इसका भान ही नहीं था कि स्वेद में मिला उनका रक्त कुरुक्षेत्र की रणभूमि पर अर्घ्य की भाँति अर्पित हो रहा है।

सात्यकि के नि:शस्त्र होते हुए भी भूरिश्रवा ने आँखें विस्फारित कर सात्यकि का शिरच्छेद करने हेतु अपना रक्तसे चौड़ा खड्ग उठाया। उसी बीच अर्जुन और कृष्ण आ गये। अर्जुन ने अपने अमोघ चंद्रमुख बाण से भूरिश्रवा का हाथ काटकर आकाश में उड़ा दिया। तब महामना धृष्टकेतु उस रथको छोड़कर शतानीकके रथपर चढ़ गया। इसी समय चित्रसेन, विकर्ण और दुर्मर्षणने अभिमन्युपर धावा किया। अभिमन्युने आपके इन सब पुत्रोंको रथहीन तो कर दिया, किंतु भीमकी प्रतिज्ञा याद करके उनका वध नहीं किया। पर अभिमन्यु एक दक्ष योद्धा के समान निर्भीक होकर लड़ रहा था। उसकी युद्ध-शैली में कहीं अर्जुन और कहीं श्रीकृष्ण का प्रभाव दिखाई पड़ता था। अभिमन्यु असहाय नहीं था, उन धार्तराष्ट्रों के सामने। उसने उनके धनुष काटकर उनके रथ नष्ट कर दिए थे। विरथी होकर उन धार्तराष्ट्रों का सारा शौर्य कहीं विलुप्त हो गया था। वे असहाय गोवत्स के समान इधर-उधर कूद-फाँद कर रहे थे। अभिमन्यु अब सरलता से उनका वध कर सकता था। भीष्म को उनके प्राण बचाने होंगे। धृतराष्ट्र के पुत्र मरते जा रहे हैं। युद्ध के चौथे ही दिन अकेले भीम ने ही दुर्योधन के आठ भाइयों- सेनापति, जलसंध, सुषेण, उग्र, वीरबाहु, भीम, भीमरथ और सुलोचन- को मार गिराया था। उन आठों को तो भीष्म नहीं बचा सके थे, किंतु आज इन्हें तो बचाना होगा। भीष्म उनकी रक्षा के लिए बढ़े। पर अभिमन्यु तो उन्हें वहीं छोड़ कर किसी दूसरी दिशा में मुड़ गया। क्यों नहीं वध किया उसने उनका? क्या वह उन्हें भीम का आखेट मान, उसकी प्रतिज्ञा का स्मरण कर उन्हें छोड़ गया अथवा उनका वध उसे अपने शौर्य के अनुकूल नहीं लगा?

सामने से अर्जुन का रथ आ रहा था। कदाचित् उसे अपने पुत्र पर धार्तराष्ट्रों के इस आक्रमण की सूचना मिल गई होगी। पर अभिमन्यु तो अपने शत्रुओं को पराजित कर वहाँ से जा चुका था। संभव है कि सुशर्मा भी अभिमन्यु के लिए ही वहाँ आया हो, पर उसे अर्जुन सामने से आता मिल गया। उसने अर्जुन को रोक लिया। अर्जुन ने भी देखा, अभिमन्यु वहाँ नहीं था। इस समय संभवत: वह अभिमन्यु की खोज में जाना चाहता था, किंतु सुशर्मा उसे रोक रहा था।

अर्जुन क्रुद्ध हो उठा, तुम योद्धाओं में अति उत्तम हो किंतु पांडवों के पूर्व वैरी हो। तुम लोगों ने जो अन्याय किया है, यह उसी का अति भयंकर फल है। अच्छा है कि तुम मुझे यहीं मिल गए। आज मैं तुम्हें तुम्हारे दिवंगत पूर्वजों के दर्शन करा देता हूँ। अर्जुन को सुशर्मा द्वारा अपना इस प्रकार रोका जाना बहुत दुस्साहसपूर्ण लगा। वह चकित था कि सुशर्मा ने यह क्यों नहीं सोचा कि उसे अर्जुन से दूर रहना चाहिए। अर्जुन उसे खोजे तो सुशर्मा को छिप जाना चाहिए और सुशर्मा स्वयं ही अर्जुन के सम्मुख आ खड़ा ही नहीं हुआ, उसे घेरने का साहस भी कर रहा है। क्षणभर को अर्जुन के मन में उसके प्रति करुणा जागी। वह मूर्ख नहीं जानता कि वह क्या कर रहा है। उसने अपने सारे कुटुंब को एक ही स्थान पर एकत्रित कर लिया है। अपने सारे पुत्रों और भाइयों को लेकर स्वयं ही मृत्यु के मुख में आ गया है।

फिर सेनाके सहित पितामह भीष्मको अकेले बालक अभिमन्युकी ओर जाते देख अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा हृषीकेश। जिधर ये बहुत-से रथ दिखायी दे रहे हैं, उधर ही आप अपने घोड़ोंको भी बढ़ाइये।

अर्जुनके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णने जहां संग्राम हो रहा था, उस ओर रथ हाँका। अर्जुनको आपके वीरोंकी ओर बढ़ते देखकर आपकी सेना बहुत घबरा गयी। अर्जुनने भीष्मकी रक्षा करनेवाले राजाओंके पास पहुँचकर उनमेंसे सुशर्मासे कहा, मैं जानता हूँ कि तुम बड़े उत्तम योद्धा हो और हमारे पुराने शत्रु हो। किंतु देखो, आज तुम्हें तुम्हारी अनीतिका कठोर फल मिलनेवाला है। आज मैं तुम्हारे परलोकवासी पितामहोंका दर्शन करा दूँगा। सुशर्माने अर्जुनके ऐसे कठोर वचन सुनकर भी भला-बुरा कुछ नहीं कहा। बल्कि बहुत-से राजाओंके सहित अर्जुनके आगे आकर उन्हें सब ओरसे घेरकर बाण बरसाना आरम्भ कर दिया। अर्जुनने एक क्षणमें ही उन सबके धनुष काट डाले और उन्हें नि:शेष करनेके लिये एक साथही सबको अपने बाणोंसे बींध दिया। अर्जुनकी मारसे वे खूनमें लथपथ हो गये, उनके अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये।

अपने साथी राजाओंको इस प्रकार मारा गया देखकर त्रिगर्त्तराज सुशर्मा बड़ी फूर्तिसे बचे हुए राजाओंको साथ लेकर आगे आया। जब शिखण्डी आदि वीरोंने देखा कि अर्जुनपर शत्रुओंने धावा किया है तो वे उनके रथकी रक्षाके लिये तरह-तरहके अस्त्र-शस्त्र लेकर उनकी ओर चले। अर्जुनने भी त्रिगर्त्तराजके साथ अनेकों राजाओंको आते देख अपने गाण्डीव धनुषसे अनेकों तीखे बाण छोड़कर उन सभीका सफाया कर दिया। अर्जुन ने उन सबके धनुष काट दिए और फिर एक-एक कर उनका वध करना आरंभ किया। कहां सुशर्मा सोच रहा था कि वह अर्जुन को घेर कर उसको बंदी कर लेगा अथवा उसका वध कर देगा। जो सफलता भीष्म, द्रोण और दुर्योधन को नहीं मिली, वह सुशर्मा प्राप्त कर लेगा; और कहाँ उसकी आँखों के सम्मुख एक-एक कर उसके सारे पुत्र और भाई मारे गए। वह असहाय खड़ा देखता रहा। किंतु वे अपने पुत्रों के वध को देखकर, विराट के समान अपने प्राण बचाकर नहीं भागेगा। वह प्रतिशोध लेगा वह अर्जुन का वध करेगा।

अंतत: अर्जुन से प्रतिशोध लेने का संकल्प दुहराता और भीष्म की रक्षा को विस्मृत करता हुआ सुशर्मा कौरवों की विशाल सेना के पीछे कहीं विलीन हो गया। अर्जुन का रथ भीष्म की ओर बढ़ा।

इस मूर्ख सुशर्मा को क्या हुआ था केशव। अकारण ही अपने पुत्रों और भाइयों को गँवा बैठा। अर्जुन बोला, क्या वह इतनी-सी बात नहीं समझ सकता था कि यह कोई ऐसा व्यूह नहीं था, जहाँ उसे अपने पुत्रों की बलि देने की कोई अनिवार्यता हो। वह अपनी सीमा नहीं जानता क्या?

मनुष्य को आजीवन स्वयं को शांत रखना चाहिए। पर मनुष्य के समस्त ज्ञान की शत्रु उसकी कामनाएँ हैं। कामनाएँ व्यक्ति के ज्ञान को पूर्णत: ढँक देती हैं।

फिर दुर्योधन और जयद्रथ आदि राजाओंको भी खदेड़कर वे भीष्मके पास पहुँच गये। महाराज युधिष्ठिर भी मद्रराज शल्य को छोड़कर भीम तथा नकुल-सहदेवके सहित भीष्मसे ही युद्ध करनेके लिये आ गये। किंतु भीष्म समस्त पाण्डुपुत्रोंके सामने आ जानेपर भी घबराये नहीं। इस समय शिखण्डी तो पितामहका वध करनेपर ही उतारू हो गया। उसे इस प्रकार बड़े वेगसे धावा करते देख राजा शल्य अपने भीषण शस्त्रोंसे रोकने लगे। किंतु इससे शिखण्डीकी गतिमें कोई अन्तर नहीं पड़ा। उसने वारुणास्त्र लेकर शल्यके सब अस्त्रोंको छिन्न-भिन्न कर दिया।

युधिष्ठिर को भय से पीड़ित देखकर भीम गदा लेकर पदाति ही जयद्रथ पर टूट पड़ा। जयद्रथ ने भीम पर भयंकर बाण चलाकर उसे घायल तो कर दिया किंतु भीम ने अपनी गदा के प्रहार से उसके रथ के अश्वों को मार गिराया। जयद्रथ को संकट में देख दुर्योधन उसकी सहायता को भागा आया। भीम की विकराल मूर्ति देख जयद्रथ का युद्ध करने का सारा उत्साह समाप्त हो गया था। उसकी आँखों के सम्मुख भीम की एक ही मुद्रा नाचती रहती थी यदि वह भीम की पकड़ में आ गया तो संभव है कि भीम इस बार उसे दास बनाकर ही संतोष न करे। वह दु:शासन के समान उसके वक्ष का भी रक्त पीना चाहेगा। जयद्रथ ने भी तो द्रौपदी के हरण का प्रयत्न किया था।

भीम गदा लेकर पैदल ही जयद्रथकी ओर दौड़े। उन्हें अपनी ओर बड़े वेगसे आते देख जयद्रथने तीखे बाण छोड़कर सब ओरसे घायल कर दिया। किंतु भीमने उनकी कुछ भी परवा नहीं की। वे और भी क्रोधमें भर गये और उन्होंने सिन्धुराज जयद्रथ के घोड़ोंको मार गिराया। यह देखकर आपका पुत्र चित्रसेन भीमको काबूमें करनेके लिये झपटा और इधरसे भीम भी गरजकर गदा घूमाते हुए उसपर टूटे। भीमकी वह यमदण्डके समान प्रचण्ड गदा देखकर सब कौरव उसके प्रहारसे बचनेके लिये आपके पुत्रको छोड़कर भाग गये। गदाको अपनी ओर आती देखकर भी चित्रसेन घबराया नहीं। व ढाल-तलवार लेकर अपने रथसे कूद पड़ा और एक दूसरे स्थानपर चला गया। उस गदाने चित्रसेनके रथपर गिरकर उसे सारथी और घोड़ोंके सहित चूर-चूर कर दिया। इतनेहीमें चित्रसेनको रथहीन देखकर विकर्णने उसे अपने रथपर चढ़ा लिया।

भीम ने जयद्रथ को दुर्योधन की काँख में दुबका देखा तो वह अपनी भयंकर गदा लेकर उसकी ओर चला। भीम के उस विकराल रूप को देख दुर्योधन और उसके भाई भयभीत होकर भाग गए। एक चित्रसेन ही था, जो अपने स्थान पर अडिग खड़ा रहा। भीम ने अपनी भयंकर गदा खींचकर उसे मारी। चित्रसेन का रथ टूट गया। वह खंग लेकर भीम के सम्मुख जाने की सोच ही रहा था कि विकर्ण ने उसे अपने रथ पर चढ़ा लिया।

इसप्रकार जब संग्राम बहुत घोर होने लगा तो भीष्म राजा युधिष्ठिरके सामने आये। उस समय पाण्डवपक्षके सब वीर काँपने लगे और उन्हें ऐसा मालूम हुआ मानो अब युधिष्ठिर मृत्युके मुँहमें पड़ना ही चाहते हैं। इधर महाराज युधिष्ठिर भी नकुल-सहदेवके सहित भीष्मपर टूट पड़े। उन्होंने भीष्मपर सहस्त्रों बाण छोड़कर उन्हें बिल्कुल ढक दिया। किन्तु भीष्मने उन सबको सहकर आधे निमेषमें ही अपने बाणसमुदायसे युधिष्ठिरको अदृश्य कर दिया। राजा युधिष्ठिरने क्रोधमें भरकर भीष्मपर नाराच बाण छोड़ा, पर पितामहने बीचहीमें उसे काटकर युधिष्ठिरके घोड़े भी मार डाले। धर्मपुत्र युधिष्ठिर तुरंत ही नकुलके रथपर चढ़ गये। भीष्मने सामने आनेपर नकुल और सहदेवको भी बाणोंसे आच्छादित कर दिया। तब राजा युधिष्ठिर भीष्मका वध करनेके लिये बहुत विचार करने लगे। उन्होंने अपने पक्षके सब राजाओं और सुहृदोंसे कहा कि सब लोग मिलकर भीष्मको मारो। यह सुनकर सब राजाओंने भीष्मको घेर लिया। किंतु भीष्म सब ओरसे घिर जानेपर भी अपने धनुषसे अनेकों महारथियोंको धराशायी करते हुए क्रीडा करने लगे।

अब फिर धृतराष्ट्र के पुत्र संकट में थे। भीम उनका काल था। दुर्योधन और उसके भाइयों की ओर से भीम का ध्यान हटाने का एक ही मार्ग था। भीष्म ने युधिष्ठिर पर आक्रमण कर दिया। युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव ने मिलकर भीष्म का सामना किया। उन्होंने भीष्म को अपने असंख्य बाणों से आच्छादित कर दिया; किंतु भीष्म अपने स्थान पर निर्भीक खड़े रहे। उन्होंने युधिष्ठिर के अश्व मार दिए और युधिष्ठिर के रथ को एक ही स्थान पर कीलित कर दिया। युधिष्ठिर ने भीष्म पर एक शक्ति चलाई। भीष्म ने उसे बड़ी सरलता से काट दिया। युधिष्ठिर तत्काल नकुल के रथ पर आ गए। किंतु भीष्म का आक्रमण रुका नहीं। उनके बाण निरंतर चलते रहे। पांडवों को यदि यह युद्ध जीतना है तो उन्हें सबसे पहले पितामह को ही मार्ग से हटाना होगा। पितामह दुर्योधन के सबसे बड़े रक्षक हैं। वे हिमालय के समान उसके सामने डट जाते हैं तो कोई दुर्योधन का क्या बिगाड़ सकता है? पितामह को हटाना ही होगा। पांडवों की विजय और पितामह का जीवन दोनों एक साथ संभव नहीं हैं। पांडवों को यह युद्ध जीतना ही है। पितामह को मरना ही होगा। वे पांडवों को कितने भी प्रिय क्यों न हों, उन्हें धर्म की जय के लिए मरना होगा।

जब यह घनघोर युद्ध बहुत ही भयानक हो गया तो दोनों ही ओरकी सेनाओंमें बड़ी खलबली मची। दोनों ओरकी व्यूहरचना टूट गयी। इस समय शिखण्डी बड़े वेगसे पितामहके सामने आया। किंतु भीष्म उसके पूर्व स्त्रीत्वका विचार करके उसकी ओर कुछ भी ध्यान न दे सृञ्जय वीरोंकी ओर चले गये। भीष्मको अपने सामने देखकर वे सब बड़े हर्षसे सिंहनाद और शफ्ब्वनि करने लगे। अब सूर्यदेव अस्ताचलकी ओर जा रहे थे। इस समय युद्धने ऐसा घमासान रूप धारणकिया कि दोनों ओरके रथी और गजारोही एक-दूसरेमें मिल गये। पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न और महारथी सात्यकि शक्ति और तोमरादिकी वर्षा करके कौरवोंकी सेनाको पीडित करने लगे। इससे आपके योद्धाओंमें बड़ा हाहाकार होने लगा। उनका आर्त्तनाद सुनकर अवन्तिदेशीय विन्द और अनुविन्द धृष्टद्युम्नके सामने आये। उन दोनोंने उसके घोड़ोंको मारकर उसे बाणोंकी वर्षासे बिल्कुल ढक दिया। पाञ्चालकुमार तुरंत ही अपने रथसे कूदकर सात्यकिके रथपर चढ़ गया। तब महाराज युधिष्ठिर बड़ी भारी सेना लेकर उन दोनों राजकुमारोंपर टूट पड़े। इसी प्रकार आपका पुत्र दुर्योधन भी पूरी तैयारीके साथ विन्द और अनुविन्दको घेरकर खड़ा हो गया।

HHH(७२९)HHH

अब सूर्यदेव अस्ताचलके शिखरपर पहुँचकर प्रभाहीन हो रहे थे। इधर युद्धभूमिमें रक्तकी भीषण नदी बहने लगी थी तथा सब ओर राक्षस, पिशाच एवं अन्य मांसाहारी जीव दीखने लगे थे। इसी समय अर्जुन सुशर्मा आदि राजाओंको परास्त कर अपने शिबिरको लौटे। इधर दुर्योधन, भीष्म, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शल्य और कृतवर्मा आदि कौरव वीर भी अपनी-अपनी सेनाके सहित अपने-अपने डेरोंपर चले गये। इस प्रकार रात होनेपर कौरव और पाण्डव दोनोंही अपनी-अपनी शिबिरोंमें चले आये। वहाँ दोनों पक्षोंके वीर एक-दूसरेकी वीरताकी बड़ाई करने लगे। उन्होंने अपने शरीरोंमेंसे बाण निकालकर तरह-तरहके जलोंसे स्नान किया तथा घावों का उपचार करने लगे। इस तरह छठे दिन का युद्ध समाप्त हुआ।

सैनिक परस्पर अपने-अपने शिबिर में बातें करने लगे। भीष्म कवच सज्जित हुए और युद्ध क्षेत्र में गए। उन्होंने मंडल व्यूह बनाया। वे युद्ध करते रहे और उन्हें सूचनाएँ मिलती रहीं। युधिष्ठिर ने वज्र नामक व्यूह का निर्माण किया था। द्रोण ने विराट पर और अश्वत्थामा ने शिखंडी पर धावा किया। दुर्योधन द्रुपद पर चढ़ दौड़ा। नकुल तथा सहदेव अपने मातुल शल्य से जूझ रहे थे। विंद-अनुविंद, अर्जुन का कुछ नहीं बिगाड़ सके तो इरावान पर ही शक्ति परीक्षण करने लगे। अनेक नरेशों ने आगे बढ़ते अर्जुन को रोका और भीम ने कृतवर्मा को अवरुद्ध किए रखा। अभिमन्यु ने चित्रसेन, विकर्ण तथा दुर्मर्षण के साथ युद्ध किया, भगदत्त घटोत्कच को पाठ पढ़ाने का प्रयत्न करता रहा। अलंबुश सात्यकि से जूझता रहा, भूरिश्रवा और धृष्टकेतु परस्पर उलझे रहे। युधिष्ठिर और श्रुतायु लड़े। चेकितान ने कृपाचार्य को रोके रखा।

## १३) महाभारत का युद्ध (सातवाँ दिन)

### धृतराष्ट्र के अन्य आठ पुत्रोंका वध व घटोत्कच का युद्ध

संजयने कहा- रात्रिमें सुखपूर्वक विश्राम करके सबेरा होनेपर कौरव और पाण्डवपक्षके राजालोग पुन: युद्धके लिये छावनीसे बाहर निकले। जब दोनों सेनाएँ युद्धभूमिकी ओर चलीं, उस समय महासागरकी गम्भीर गर्जनाके समान महान् कोलाहल होने लगा। तदनन्तर दुर्योधन, चित्रसेन, विविंशति, भीष्म और द्रोणाचार्यने एकत्र होकर बड़े यत्नसे कौरवसेनाका व्यूह निर्माण किया। वह महाव्यूह सागरके समान था, हाथी-घोड़े आदि वाहन ही उसकी तरङ्गमालाएँ थे। समस्त सेनाके आगे-आगे भीष्म चले; उनके साथ मालवा, दक्षिण भारत तथा उज्जैनके योद्धा थे। इनके पीछे कुलिन्द, पारद, क्षुद्रक तथा मालवदेशीय वीरोंके साथ आचार्य द्रोण थे। द्रोणके पीछे मगध और कलिङ्ग आदि देशोंके योद्धाओंको साथ लेकर राजा भगदत्त चले। उनके बाद राजा बृहद्बल था, उसके साथ मेकल तथा कुरुविन्द आदि देशोंके योद्धा थे। बृहद्बलके पीछे त्रिगर्तराज चल रहा था। उसके पीछे अश्वत्थामा था और उसके बाद शेष सेनाओंके साथ भाइयोंसहित दुर्योधन था और सबके पीछे कृपाचार्य चल रहे थे।

महाराज। आपके योद्धाओंका वह महाव्यूह देखकर धृष्टद्युम्नने श्रृङ्गाटक नामके व्यूहकी रचना की। वह देखनेमें अत्यन्त भयानक और शत्रुके व्यूहको नष्ट करनेवाला था। उसके दोनों श्रृङ्गोंके स्थानपर भीम तथा सात्यकि स्थित हुए। उनके साथ कई हजार रथ, घोड़े और पैदलोंकी सेना थी। उन दोनोंके मध्यमें अर्जुन, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव थे। इनके बाद दूसरे-दूसरे महान् धनुर्धर राजाओंने अपनी सेनाओंके साथ उस व्यूहको पूर्ण किया। उनके पीछे अभिमन्यु, महारथी विराट, द्रौपदीके पुत्र और घटोत्कच आदि थे। इस प्रकार व्यूह-निर्माण कर पाण्डव भी विजयकी अभिलाषासे युद्ध करनेके लिये डट गये। रणभेरी बज उठी, शफ्नाद होने लगा। सबके अपने-अपने शंख फूँके गये। ललकारने, ताल ठोंकने और जोर-जोरसे पुकारनेकी आवाज आने लगी। इस तुमुल नादसे सारी दिशाएँ गूँज उठीं। कौरव और पाण्डव दोनों दलोंके योद्धा परस्पर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार कर एक-दूसरेको यमलोक भेजने लगे। इतनेहीमें अपने रथकी घरघराहटसे

दिशाओंको गुँजाते और धनुषकी टंकारसे लोगोंको मूर्च्छित करते हुए भीष्म आ पहुँचे। यह देख धृष्टद्युम्न आदि महारथी भी भैरवनाद करते हुए उनका सामना करनेको दौड़े। फिर तो दोनों सेनाओंमें भयंकर संग्राम छिड़ गया। पैदलसे पैदल, घोड़ेसे घोड़े, रथसे रथ और हाथीसे हाथी भिड़ गये।

युद्ध और प्रचंड हो गया। कौरव सेना आगे बढ़ी तो पांडवों की ओर से भी प्रबल आक्रमण हुआ। धृष्टद्युम्न, शिखंडी और सात्यकि ने एक ओर से भीष्म पर आक्रमण किया; विराट तथा सोमक योद्धाओं के साथ द्रुपद ने दूसरी ओर से; कैकेय, धृष्टकेतु तथा कुंतिभोज ने तीसरी ओर से। अर्जुन, पाँचों द्रौपदेयों तथा चेकितान ने, दुर्योधन की रक्षा कर रहे राजाओं पर आक्रमण किया और अभिमन्यु, घटोत्कच तथा भीम स्वयं दुर्योधन की ओर बढ़े।

जैसे तपते हुए सूर्यकी ओर देखना मुश्किल होता है, उसी प्रकार जब उस समरमें भीष्म क्रुद्ध होकर अपना प्रताप प्रकट करने लगे तो पाण्डवोंका उनकी ओर देखना कठिन हो गया। भीष्म सोमक, सृञ्जय और पाञ्चाल राजाओंको बाणोंसे रणभूमिमें गिराने लगे। वे भी मृत्युका भय छोड़कर भीष्मपर ही टूट पड़े। भीष्मने बड़ी शीघ्रतासे उन महारथी वीरोंकी भुजाएँ काट डालीं, सिर उड़ा दिये और रथियोंको रथसे गिरा दिया। घोड़ोंपर घुड़सवारोंके मस्तक कटकर गिरने लगे। पर्वतके समान ऊँचे-ऊँचे गजराज रणभूमिमें मरकर पड़े दिखायी देने लगे। उस समय महाबली भीमके सिवा पाण्डवपक्षका कोई भी वीर भीष्मके सामने नहीं ठहर सका। केवल भीम ही उनपर लगातार प्रहार कर रहे थे। भीष्म और भीममें युद्ध होते समय सम्पूर्ण सेनाओंमें भयंकर कोलाहल मच गया। पाण्डव भी प्रसन्नतापूर्वक सिंहनाद करने लगे।

जिस समय वह नर-संहार मचा हुआ था, दुर्योधन अपने भाइयोंके साथ भीष्मकी रक्षाके लिये आ पहुँचा। इतनेमें महारथी भीमने भीष्मके सारथीको मार डाला। सारथीके गिरते ही घोड़े रथ लेकर भाग गये। भीम रणभूमिमें सब ओर विचरने लगे। उन्होंने एक तीक्ष्ण बाणसे आपके पुत्र सुनाभका सिर काट दिया। इसपर उसके भाइयोंमेंसे सात, जो वहाँ उपस्थित थे, अमर्षमें भर गये और भीमके ऊपर टूट पड़े। महोदरने, आदित्यकेतुने, बह्वाशने, कुण्डधारने, विशालाक्षने, पण्डितकने और अपराजितने अनेकों बाण मारकर महाबली भीमको घायल कर दिया। शत्रुओंकी यह चोट भीम नहीं सह सके। उन्होंने बायें हाथमें धनुषको दबाकर एक तीखे बाणसे अपराजितका सुन्दर मस्तक काट डाला। दूसरे बाणसे कुण्डधारको यमलोक भेज दिया। एक बाण पण्डितकके ऊपर छोड़ा, जो उसका प्राण लेकर पृथ्वीमें समा गया। फिर विशालाक्षका मस्तक काट गिराया। एक बाण महोदरकी छातीमें मारा। छाती फट गयी और वह प्राणशून्य होकर जमीनपर गिर पड़ा। इसके बाद एक बाणसे आदित्यकेतुकी ध्वजा काटकर दूसरेसे उसका सिर भी उड़ा दिया। फिर क्रोधमें भरे हुए भीमने बह्वाशीको भी यमलोकका अतिथि बनाया।

तदनन्तर आपके अन्य पुत्र रणभूमिसे भाग गये। उनके मनमें यह भय समा गया कि भीमने जो सभामें कौरवोंको मारनेकी प्रतिज्ञा की थी, उसे आज ही पूर्ण कर डालेगा। भाइयोंके मरनेसे दुर्योधनको बड़ा क्लेश हुआ। उसने अपने सैनिकोंको आज्ञा दी कि सब लोग मिलकर इस भीमको मार डालो। इस प्रकार अपने बन्धुओंकी मृत्यु देखकर आपके पुत्रोंको विदुरकी बात याद आ गयी। वे मन-ही-मन सोचने लगे- विदुर बड़े बुद्धिमान और दिव्यदर्शी हैं; उन्होंने हमारे हितकी दृष्टिसे जो कुछ कहा था, वह इस समय सत्य हो रहा है।

इसके बाद दुर्योधन भीष्मपितामहके पास आया और बड़े दु:खके साथ फूट-फूटकर रोते हुये बोला- मेरे भाई बड़ी तत्परताके साथ लड़ रहे थे, उन्हें भीमने मार डाला तथा दूसरे योद्धाओंका भी वह संहार कर रहा है। आप तो मध्यस्थ बने बैठे हैं और हमलोगोंकी बराबर उपेक्षा करते जा रहे हैं। देखिये, मेरा प्रारब्ध कितना खोटा है। सचमुच मैं बड़े बुरे रास्तेपर आ गया। यद्यपि दुर्योधनकी बातें कठोर थीं, तो भी उन्हें सुनकर भीष्मकी आँखोंमें आँसू भर आये। वे कहने लगे- पुत्र। मैंने, आचार्य द्रोणने, विदुरने तथा तुम्हारी माता यशस्विनी गान्धारीने भी यह परिणाम सुझाया था; किंतु उस समय तुम नहीं समझे। मैंने यह भी कहा

था कि मुझे और आचार्य द्रोणको युद्धमें न लगाना, पर तुमने ध्यान नहीं दिया। अब मैं तुमसे यह सच्ची बात बता रहा हूँ। धृतराष्ट्रके पुत्रोंमेंसे जिस-जिसको भीम अपने सम्मुख देखेगा, अवश्य मार डालेगा। इस संग्रामका चरम फल स्वर्गकी प्राप्ति ही मानकर स्थिर भावसे युद्ध करो। पाण्डवोंको तो इन्द्र आदि देवता और असुर भी नहीं जीत सकते।

धृतराष्ट्रने पूछा- सञ्जय। अकेले भीमने मेरे बहुत-से पुत्रोंको मार डाला- यह देखकर भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्यने क्या किया? तात। मैंने, भीष्मने तथा विदुरने भी दुर्योधनको बहुत मना किया; गान्धारीने भी बहुत समझाया; मगर उस मूर्खने मोहवश हमारी एक बात न मानी। उसीका फल आज भोगना पड़ रहा है।

सञ्जयने कहा- महाराज। आपने भी उस समय विदुरकी बात नहीं मानी थी। हितैषियोंने बारंबार कहा- अपने पुत्रोंको जूआ खेलने से रोकिये, पाण्डवोंसे द्रोह न कीजिये। किंतु आप कुछ भी सुनना नहीं चाहते थे। जैसे मरनेवाले मनुष्यको दवा लेना बुरा लगता है, वैसे ही आपको वे बातें अच्छी नहीं लगीं। यही कारण है कि आज कौरवोंका विनाश हो रहा है।

उस दिन दोपहरके समय भयंकर संग्राम छिड़ा। बड़ा भारी जन-संहार हुआ। धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे उनकी सारी सेना क्रोधमें भरकर भीष्मके ऊपर चढ़ आयी। धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि, समस्त सोमक योद्धाओंके साथ राजा द्रुपद और विराट केकयराजकुमार, धृष्टकेतु और कुन्तिभोजने एक साथ भीष्मपर ही चढ़ाई कर दी। अर्जुन, द्रौपदीके पाँच पुत्र तथा चेकितान- ये दुर्योधनके भेजे हुए राजाओंका सामना करने लगे तथा अभिमन्यु, घटोत्कच और भीमने कौरवोंपर आक्रमण किया। इस प्रकार तीन भागोंमें विभक्त होकर पाण्डवलोग कौरव-सेनाका संहार करने लगे। इसी प्रकार कौरवोंने भी अपने शत्रुओंका विनाश आरम्भ कर दिया।

द्रोणाचार्यने क्रुद्ध होकर सोमक और सृञ्जयोंपर आक्रमण किया और उन्हें यमलोक भेजने लगे। उस समय सृञ्जयोंमें हाहाकार मच गया। द्रोण सृजयों पर टूट पड़े। कृतवर्मा तथा शकुनि अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर पांडव सेना से जूझने लगे। दूसरी ओर महाबली भीमने कौरवोंका संहार आरम्भ किया। दोनों ओरके सैनिक एक दूसरेको मारने और मरने लगे। खूनकी नदी बह चली। वह घोर संग्राम यमलोककी वृद्धि कर रहा था। भीम हाथी सवारोंकी सेनामें पहुँचकर उन्हें मृत्युकी भेंट कर रहे थे। नकुल और सहदेव आपके घुड़सवारोंपर टूट पड़े थे। उनके मारे हुए सैकड़ों-हजारों घोड़ोंकी लाशोंसे रणभूमि पट गयी। अर्जुनने भी बहुत-से राजाओंको मार गिराया था, उनके कारण वहाँकी भूमि बड़ी भयंकर दीख पड़ती थी। जिस समय भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा और कृतवर्मा आदि क्रोधमें भरकर युद्ध करने लगते थे तो पाण्डवी सेनाका संहार होने लगता था और पाण्डवोंके कुपित होनेपर आपके पक्षवाले वीरोंका विनाश आरम्भ हो जाता था। इस प्रकार दोनों सेनाओंका संहार जारी रहा।

तब दुर्योधन भी अपने प्राणोंका भय छोड़कर राक्षसोंपर टूट पड़ा और उनके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगा। उसके हाथसे प्रधान-प्रधान राक्षस मारे जाने लगे। उसने चार बाणोंसे महावेग, महारौद्र, विद्युज्जिव्ह और प्रमाथी- इन चार राक्षसोंको मार डाला। तत्पश्चात् वह पुन: राक्षससेनापर बाण बरसाने लगा। आपके पुत्रका यह पराक्रम देखकर घटोत्कच क्रोधसे जल उठा और बड़े वेगसे दुर्योधनके पास पहुँचकर क्रोधसे लाल-लाल आँखें किये कहने लगा- अरे नृशंस। जिन्हें तुमने दीर्घकालतक वनोंमें भटकाया है, उन माता-पिताके ऋणसे आज तुझे मारकर उऋण होऊँगा। ऐसा कहकर घटोत्कचने दाँतोंसे ओठ दबाकर अपने विशाल धनुषसे बाणोंकी वर्षा करके दुर्योधनको ढक दिया। तब दुर्योधनने भी बाण मारकर उस राक्षसको घायल किया। राक्षसने पर्वतोंको भी विदीर्ण करनेवाली एक महाशक्ति हाथमें लेकर आपके पुत्रको मार डालनेका विचार किया। यह देख बंगालके राजाने बड़ी उतावलीके साथ अपना हाथी उसके आगे बढ़ा दिया। दुर्योधनका रथ हाथीके ओटमें हो गया और प्रहारका मार्ग रुक गया। इससे अत्यन्त कुपित होकर घटोत्कचने हाथीपर ही शक्तिका प्रहार किया। उसके लगते ही हाथी भूमिपर गिरा और मर गया तथा बंगालका राजा उसपरसे कूदकर पृथ्वीपर आ गया।

हाथी मरा और सेना भाग चली- यह देख दुर्योधनको बड़ा कष्ट हुआ; किंतु क्षत्रियधर्म का खयाल करके वह पीछे नहीं हटा, अपनी जगह पर पर्वतके समान स्थिरभावसे खड़ा रहा। फिर उसने राक्षसपर कालाग्निके समान तीक्ष्ण बाणका प्रहार किया। किंतु वह उसे बचा गया और पुन: बड़ी भयंकर गर्जना करके सम्पूर्ण सेनाको डराने लगा।

भीष्मको सूचना मिली। उन्होंने द्रोण को संदेश भिजवाया, यह दुर्योधन मूर्खोंके समान कहीं भी जा भिड़ता है। अब वह घटोत्कच से उलझा हुआ है। उसके प्राण संकट में हैं। जाइए और जाकर उसकी रक्षा कीजिए। द्रोणने तत्काल उस दिशा में प्रस्थान किया। राजा के प्राण संकट में हैं और आचार्य द्रोण उनकी रक्षा के लिए जा रहे हैं।

उसका भैरवनाद सुनकर भीष्मपितामहने अन्य महारथियोंको दुर्योधनकी सहायताके लिये भेजा। द्रोण, सोमदत्त, बाह्लीक, जयद्रथ, कृपाचार्य, भूरिश्रवा, शल्य, उज्जैनके राजकुमार विन्द-अनुविन्द, बृहद्बल, अश्वत्थामा, विकर्ण, चित्रसेन, विविंशति और इनके पीछे चलनेवाले कई हजार रथी- ये सब दुर्योधनकी रक्षाके लिये आ पहुँचे। घटोत्कच भी मैनाक पर्वतकी भाँति निर्भीक खड़ा रहा, उसके भाई-बन्धु उसकी रक्षा कर रहे थे। फिर दोनों दलोंमें रोमाञ्चकारी संग्राम शुरू हुआ। घटोत्कचने अर्धचन्द्राकार बाण छोड़कर द्रोणाचार्यका धनुष काट दिया, एक बाणसे सोमदत्तकी ध्वजा खण्डित कर दी और अपने बाणोंसे बाल्हीककी छाती छेद डाली। फिर कृपाचार्यको और चित्रसेनको बाणोंसे घायल किया। एक बाण विकर्णके गलेमें मारा, विकर्ण खूनसे लथपथ होकर रथके पिछले भागमें जा बैठा। फिर भूरिश्रवाको बाण मारे; वे बाण उसका कवच भेदन कर जमीनमें घुस गये। इसके बाद उसने अश्वत्थामा और विविंशतिके सारथियोंपर प्रहार किया। वे दोनों अपने-अपने घोड़ोंकी बागडोर छोड़कर रथकी बैठकमें जा गिरे। फिर जयद्रथकी ध्वजा और धनुष काट डाले। अवन्तिराजके चारों घोड़े मार दिये। एक तीखे बाणसे राजकुमार बृहद्बलको घायल किया और कई बाण मारकर राजा शल्यको भी बींध डाला।

इस प्रकार कौरवपक्षके सभी वीरोंको विमुख करके वह दुर्योधनकी ओर बढ़ा। यह देख कौरव वीर भी उसको मारनेकी इच्छासे आगे बढ़े। घटोत्कच पर चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा होने लगी। जब वह बहुत ही घायल और पीडित हो गया तो गरुडकी भाँति आकाशमें उड़ गया तथा अपनी भैरवगर्जनासे अन्तरिक्ष और दिशाओंको गुँजाने लगा। उसकी आवाज सुनकर युधिष्ठिरने भीमसे कहा, घटोत्कचके प्राण संकटमें हैं, जाकर उसकी रक्षा करो। भाईकी आज्ञा मानकर भीम अपने सिंहनादसे राजाओंको भयभीत करते हुए बड़े वेगसे चले। उनके पीछे सत्यधृति, सौचित्ति, श्रेणिमान्, वसुदान, काशिराजका पुत्र अभिभू, अभिमन्यु, द्रौपदीके पाँच पुत्र, क्षत्रदेव, क्षत्रधर्मा तथा अपनी सेनाओं सहित अनूपदेशका राजा नील आदि महारथी भी चल दिये। ये सभी वीर वहाँ पहुँचकर घटोत्कचकी रक्षा करने लगे।

इनके आनेका कोलाहल सुनकर भीमके भयसे कौरव सैनिकोंका मुख उदास हो गया। वे घटोत्कचको छोड़कर पीछे लौट पड़े। फिर दोनों ओरकी सेनाओंमें घोर युद्ध होने लगा और कुछ ही देरमें कौरवोंकी बहुत बड़ी सेना प्राय: भाग खड़ी हुई। यह देख दुर्योधन बहुत कुपित हुआ और भीमके सम्मुख जाकर उसने एक अर्धचन्द्राकार बाणसे उनका धनुष काट दिया। फिर बड़ी शीघ्रता के साथ उनकी छातीमें बाण मारा। उससे भीमको बड़ी पीडा हुई और अचेत होनेके कारण उन्हें अपनी ध्वजाका सहारा लेना पड़ा। उनकी यह दशा देख घटोत्कच क्रोधसे जल उठा और अभिमन्यु आदि महारथियोंके साथ वह दुर्योधनपर टूट पड़ा। तब द्रोणाचार्यने कौरव-पक्षके महारथियोंसे कहा- वीरो। राजा दुर्योधन संकटके समुद्रमें डूब रहा है, शीघ्र जाकर उसकी रक्षा करो।

आचार्यकी बात सुनकर कृपाचार्य, भूरिश्रवा, शल्य, अश्वत्थामा, विविंशति, चित्रसेन, विकर्ण, जयद्रथ, बृहद्बल तथा अवन्तिके राजकुमार ये सभी दुर्योधनको घेरकर खड़े हो गये। द्रोणाचाार्यने अपना महान् धनुष चढ़ाकर भीमको बाण मारे, फिर बाणोंकी झड़ी लगाकर उन्हें आच्छादित कर दिया। तब भीमने भी आचार्यकी बायीं पसली पर बाण मारे। इनकी

करारी चोट पड़नेसे वयोवृद्ध आचार्य सहसा बेहोश होकर रथके पिछले भागमें लुढ़क गये। यह देख दुर्योधन और अश्वत्थामा दोनों क्रोधमें भरकर भीमकी ओर दौड़े। उन्हें आते देख भीम भी हाथमें कालदण्डके समान गदा लेकर रथसे कूद पड़े और उन दोनोंका सामना करनेको खड़े हो गये। तदनन्तर, कौरव महारथी भीमको मार डालनेकी इच्छासे उनकी छातीपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। तब अभिमन्यु आदि पाण्डव महारथी भी भीमकी रक्षाके लिये जीवनका मोह छोड़कर दौड़े। अनूपदेशका राजा नील भीमका प्रिय मित्र था, उसने अश्वत्थामापर एक बाण छोड़ा। वह बाण उसके शरीरमें धँस गया, उससे खून बहने लगा और उसे बड़ी पीड़ा हुई। तब अश्वत्थामाने भी क्रुद्ध होकर नीलके चारों घोड़ोंको मार डाला, ध्वजा काटकर गिरा दी और एक भल्ल नामक बाणसे उसकी छाती छेद डाली। उसकी वेदनासे मूर्छित होकर नील अपने रथके पिछले भागमें जा बैठा। उसकी यह दशा देखकर घटोत्कचने अपने भाई-बन्धुओंके साथ अश्वत्थामापर धावा किया। उसे आते देख अश्वत्थामा भी शीघ्रतासे आगे बढ़ा। बहुतसे राक्षस घटोत्कचके आगे-आगे आ रहे थे, अश्वत्थामाने उन सबको मार डाला। द्रोणकुमारके बाणोंसे राक्षसोंको मरते देख घटोत्कचने भयंकर माया प्रकट की। उससे अश्वत्थामा भी मोहित हो गया। कौरवपक्षके सभी योद्धा मायाके प्रभावसे युद्ध छोड़कर भागने लगे। उन्हें ऐसा दीखता था कि मेरे सिवा सभी सैनिक शस्त्रोंसे छिन्न-भिन्न हो खूनमें डूबे हुए पृथ्वीपर छटपटा रहे हैं। द्रोणाचार्य, दुर्योधन, शल्य, अश्वत्थामा आदि महान् धनुर्धर, प्रधान-प्रधान कौरव तथा अन्य राजालोग भी मारे जा चुके हैं तथा हजारों घोड़े और घुड़सवार धराशायी हो रहे हैं। यह सब देखकर आपकी सेना छावनीकी ओर भागने लगी। यद्यपि उस समय हम और भीष्म भी पुकार-पुकारकर कह रहे थे, वीरों। युद्ध करो, भागो मत; यह तो राक्षसी माया है, इसपर विश्वास न करो, तो भी वे हमलोगोंकी बातपर विश्वास न कर सके। शत्रुकी सेनाको भागती देख विजयी पाण्डव घटोत्कचके साथ सिंहनाद करने लगे। चारों ओर शङ्खध्वनि होने लगी। दुन्दुभि बजी। इन सबकी तुमुल ध्वनिसे रणभूमि गूँज उठी। इस प्रकार सूर्यास्त होते-होते दुरात्मा घटोत्कचने आपकी सेनाको चारों ओर भगा दिया। सूर्यास्त हो गया और युद्ध समाप्ति की घोषणा हो गयी।

भीष्म कवच सज्जित हुए और युद्ध क्षेत्र में गए। उन्होंने मंडल व्यूह बनाया। वे युद्ध करते रहे और उन्हें सूचनाएँ मिलती रहीं। युधिष्ठिर ने वज्र नामक व्यूह का निर्माण किया था। द्रोण ने विराट पर और अश्वत्थामा ने शिखंडी पर धावा किया। दुर्योधन द्रुपद पर चढ़ दौड़ा। नकुल तथा सहदेव अपने मातुल शल्य से जूझ रहे थे। विंद-अनुविंद, अर्जुन का कुछ नहीं बिगाड़ सके तो इरावान पर ही शक्ति परीक्षण करने लगे। अनेक नरेशों ने आगे बढ़ते अर्जुन को रोका और भीम ने कृतवर्मा को अवरुद्ध किए रखा। अभिमन्यु ने चित्रसेन, विकर्ण तथा दुर्मर्षण के साथ युद्ध किया, भगदत्त घटोत्कच को पाठ पढ़ाने का प्रयत्न करता रहा। अलंबुश सात्यकि से जूझता रहा, भूरिश्रवा और धृष्टकेतु परस्पर उलझे रहे। युधिष्ठिर और श्रुतायु लड़े। चेकितान ने कृपाचार्य को रोके रखा।

सञ्जयने कहा- उस महासंग्राममें राजा दुर्योधन भीष्मके पास गया और बड़ी विनयके साथ उन्हें प्रणाम करके उसने घटोत्कचकी विजय और अपनी पराजयका समाचार सुनाया। फिर कहा पितामह। पाण्डवोंने जैसे श्रीकृष्णका सहारा लिया है, उसी प्रकार हमलोगोंने आपका आश्रय लेकर शत्रुओंके साथ घोर युद्ध ठाना है। मेरे साथ ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ सदा आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिये तैयार रहती हैं। तो भी आज घटोत्कचकी सहायता पाकर पाण्डवोंने मुझे युद्धमें हरा दिया। इस अपमानकी आगमें मैं जल रहा हूँ और चाहता हूँ आपकी सहायता लेकर उस अधम राक्षसका स्वयं ही वध करूँ। अत: आप कृपा करके मेरे इस मनोरथको पूर्ण कीजिये।

आप जानते हैं मेरे भाई सुनाभ, अपराजित, कुंडधार, पंडितक, विशालाक्ष, महोदर, आदित्यकेतु तथा बह्वाशी इन मेरे भाइयोंके आज भीम ने प्राण लिये हैं। आप यह भी जानते है कि युद्ध के चौथे दिन भी उसी भीम ने मेरे आठ भाइयोंका वध

किया था। भीष्म बोले, भलीभाँति जानता हूँ। दुर्योधन ऊँचे स्वर से बोला, तो फिर आप यहाँ शान्ति से बैठे क्या कर रहे हैं? आप हमारे प्रधान सेनापति हैं और आप ही हम लोगोंकी उपेक्षा करते हैं। मेरे सहोदर भाई काल के गाल में समाते जा रहे हैं और आप अपने प्रिय पाण्डवों का वध करना नहीं चाहते। खातें हमारा है और प्रेम उनसे करते हैं। दुर्योधन आपेसे बाहर होते जा रहा था और बोला हे पितामह, मैं एक ऐसे विनाशकारी मार्ग पर इतनी दूर चला आया हूँ जहाँसे वापिस लौटना मेरे लिये मुमकिन नहीं है। विनाश तो शत्रुओंका होना चाहिए हमारा नहीं। पाण्डव तो पूर्णत: सुरक्षित होकर लड़ रहे हैं और हम प्रतिदिन मारे जा रहे हैं। अब इस समय अगर मैं अपना सेनापति बदल भी दूँ तो भी मेरे सोलह भाई तो जीवित नहीं हो जाएँगे। सात दिनोंसे सतत यह युद्ध चलते आ रहा है। फिर भी आपने कुछ नहीं किया। मैंने तो अपने विश्वविजयी वीर पितामह को प्रधान सेनापति बनाया था। भीष्म जानते थे कि दुर्योधन कटुभाषी है। परन्तु वे इस सीमा तक बोलने लग जायेगा यह भीष्मने कभी नहीं सोचा था। वह तो भीष्म के सम्मुख प्रतिदिन विजय का याचक बना खड़ा रहता है। इस मूर्ख को कुछ पता तो है नहीं कि वह किससे क्या कह रहा है। यह मूर्ख दुर्योधन स्वयं अपने पापोंका भोग भोग रहा है और दोष दे रहा है मुझे। जिन्होंने सदा कुरुकुल की रक्षा के लिये अपने प्राण निछावर किये। दुर्योधन अपनी मर्यादा नहीं पहचानता।

भीष्म सोचते हैं इसने मुझे सेनापति बनाकर मुझपर कोई कृपा तो नहीं की। उसने मुझे सेनापति अपने स्वार्थ के लिए बनाया है ताकि वे पाण्डवोंका वध कर हस्तिनापुर का राज्य सदा के लिए उसे दे दे। वह समझता है कि भीष्म उसका दिया खाते हैं पर उसे पता नहीं वह जो कुछ खा रहा है वह सब भीष्म का ही है। वो जिस किसी को सेनापति बनाना चाहे बना लें। भीष्म सम्भलकर बोले, तुने मुझे और द्रोण को युद्ध के लिये बाध्य नहीं करना चाहिए। हम लोग मध्यस्थ हैं। तुमने भीम और उसके भाइयों तथा उसकी पत्नी के प्रति जो व्यवहार किया है वह तुम भी जानते हो। भीम ने जो प्रतिज्ञायें की है उसका तुम्हें ठीक से ज्ञान भी है। तुम यह भी जानते हो कि तुम्हारा जो कोई भाई भीम के सम्मुख आयेगा वह मारा जायेगा। तुम अपने मन को स्थिर कर युद्ध के विषय में अपना निश्चय कर लो और स्वर्ग को ही अपना अंतिम आश्रय मानकर पाण्डवोंके साथ युद्ध करो। भीष्म अपना कर्म तो करेंगे ही अपने कुल तथा उसकी गौरव की रक्षा भी करेंगे। वे मूर्ख दुर्योधन द्वारा प्रेरित उत्तेजना के कारण अपना छात्रधर्म छोड़कर युद्धसे भाग नहीं सकते। युद्ध तो उन्हें करना ही पड़ेगा। भीष्म बोले, राजन्। तुम्हें राजधर्म का खयाल करके सदा युधिष्ठिर, भीम, नकुल, अर्जुन और सहदेव के साथ युद्ध करना चाहिए। क्योंकि राजा को राजा के साथ युद्ध करना ही उचित है और लोगोंसे लड़ने के लिए तो अन्य लोग हैं। तुम युद्ध में सदा अपनी रक्षा का ध्यान रखो हस्तिनापुर के राजा दुर्योधन। तुमसे किसने कहा कि युद्ध में जिस-तिस से भिड़ते रहो।

युद्ध के सातवें दिन युधिष्ठिर ने धृष्टद्युम्न की सहायता से पाण्डव सेना की वज्रनामक व्यूह-रचना की। यह रचना देवराज इन्द्र के विख्यात शस्त्र वज्र के आकार की थी। इसके प्रत्युत्तर में पितामह ने कौरव-सेना को मण्डल नामक व्यूह के आकार में रचा। अपने वज्रव्यूह के काँटेदार उग्रस्थान पर सात्यकि और घटोत्कच थे। पाण्डवोंकी सेनामे पीछे-वज्र के मध्यस्थान पर अर्जुन सहित मत्स्यराज विराट और पांचालराज द्रुपद ससैन्य खड़े थे। वज्र की पूँछ के भाग को अर्जुन-पुत्र इरावान और चेकितान, नकुल-सहदेव आदि वीरों ने सँभाला था। आज भीम अपने रथ पर आरूढ़ होकर सारथी विशोक की सहायता से वज्र के छोर सँभालता हुआ सेना में मण्डलाकार घूमने लगा।

कौरवमण्डल के अग्रस्थान पर नियुक्त बकासुर-बन्धु-राक्षस अलम्बुष सात्यकि और घटोत्कच से भिड़ गया। वह मायावी युद्ध में प्रवीण था। वह एक क्षण अपने रथ सहित सेना की पूर्व दिशा में दिखाई देता था, तो दूसरे क्षण पश्चिम दिशा में। लड़ते-लड़ते वह अपना रथ दक्षिण से उत्तर तक दौड़ाता रहा। दोपहर तक सात्यकि और अलम्बुष में घनघोर द्वैरथयुद्ध चलता रहा। अलम्बुष ने बड़ी कुशलता से भगदत्त की सेना को आगे की ओर ढकेल दिया।

एक-दूसरे में मिल गयी दोनों सेनाओं के मध्य द्रोण और विराट, विन्द-अनुविन्द और इरावान, पितामह भीष्म और अर्जुन के बीच घमासान युद्ध छिड़ गया। युद्ध करते नरकासुर पुत्र भगदत्त को अनियन्त्रित होते देखकर सन्ध्या के समय घटोत्कच ने उस पर एक राक्षसी मायावी शक्ति चलायी। भगदत्त ने उस शक्ति के टुकड़े-टुकड़े कर धरती पर गिरा दिया। भयभीत होकर घटोत्कच रणभूमि से भाग खड़ा हुआ। भगदत्त चीनी और ककिरात जाति के योद्धाओं को लेकर कौरवों की ओर से युद्ध करने लगा। समरभूमि से भागते हुए घटोत्कच को देखते-देखते सातवें दिन का सूर्य अस्त हो गया और युद्ध रुक गया था।

अब तक कुरुक्षेत्र के भिन्न-भिन्न रणक्षेत्रों पर यह युद्ध लड़ा गया था। पिछले सात दिनों में प्रतिदिन बदलते रणक्षेत्र पर घटित हुई छोटी-मोटी घटनाओं का समाचार गुप्तचरों द्वारा हस्तिनापुर, द्वारिका और आसपास के गणराज्यों के राजनगरों में पहुँचता था। हस्तिनापुर में यह सूचना सर्वप्रथम सारथी-प्रमुख संजय को प्राप्त होती थी। वे उन घटनाओं का चित्रवत् वर्णन अन्धे महाराज धृतराष्ट्र और गान्धारीदेवी के समक्ष करते थे। अब तक लगभग चालीस धृतराष्ट्र-पुत्र मारे गये थे। उनमें से कई को तो अकेले भीम ने ही मारा था। उनके नाम और पूरा समाचार सुनते समय भीम के प्रति क्रोध से धृतराष्ट्र महाराज थरथर काँप रहे थे।

## १४) महाभारत का युद्ध (आठवाँ दिन)

### इरावन का वध तथा भगदत्त का पाण्डवोंसे युद्ध, भीष्मकी पाण्डवों के संहार की प्रतिज्ञा करना

संजयने कहा- जिस समय बड़े-बड़े वीरोंका विनाश करनेवाला वह भयंकर संग्राम चल रहा था, शकुनिने पाण्डवोंपर धावा किया। उसके साथ ही बहुत बड़ी सेनाके साथ कृतवर्मा भी था। इनका मुकाबला करनेके लिये अर्जुन का पुत्र इरावान् आया। इरावान्का जन्म नागकन्य उलूपी के गर्भसे हुआ था। वह बहुत ही बलवान था। जब शकुनि तथा गान्धार देशके अन्यान्य वीर पाण्डवसेनाका व्यूह तोड़कर उसके भीतर घुस गये तो इरावान्ने अपने योद्धाओंसे कहा- वीरो। ऐसी युक्तिसे काम लो, जिससे ये कौरव योद्धा आज अपने सहायक और वाहनोंसहित मार डाले जायँ। इरावान्के सैनिक बहुत अच्छा कहकर कौरवोंकी दुर्जय सेनापर टूट पड़े और उसके योद्धाओंको मार-मारकर गिराने लगे। अपनी सेनाका यह विध्वंस सुबलके पुत्रोंसे नहीं सहा गया। उन्होंने दौड़कर इरावान्को चारों ओरसे घेर लिया और उसपर तीखे बाणोंका प्रहार करने लगे। इरावान्के शरीरपर आगे-पीछे अनेकों घाव हो गये, सारा बदन लोहूसे भीग गया। वह अकेला था और उसके ऊपर चारों ओरसे बहुतोंकी मार पड़ रही थी, तो भी न तो वह अधीर हुआ और न व्यथासे व्याकुल ही। उसने अपने तीखे बाणोंसे सबको बींधकर मूर्च्छित कर दिया। फिर अपने शरीरमें धँसे हुए प्रासोंको खींचकर निकाला और उन्हींसे सुबल-पुत्रोंपर बड़े वेगसे प्रहार किया। इसके बाद उसने अपने हाथमें चमकती हुई तलवार और ढाल ली तथा सुबलके पुत्रोंको मार डालनेकी इच्छासे वह पैदल ही आगे बढ़ा। इतनेमें उनकी मूर्च्छा दूर हो गयी और वे क्रोधमें भरकर इरावान्पर टूट पड़े। साथ ही वे उसे बन्दी बनानेका उद्योग करने लगे। परंतु ज्यों ही वे निकट आये, इरावान्ने तलवारका ऐसा हाथ मारा कि उनके शरीरके टुकड़े-टुकड़े हो गये। अस्त्र-शस्त्र, बाहु तथा अन्य अङ्गोंके कट जानेसे वे प्राणहीन होकर गिर पड़े। उनमेंसे केवल वृषभ नामक राजकुमार ही जीवित बचा।

कांबोज, मही, सिंधु, वनायु, आरट्ट, तित्तिर तथा पर्वतप्रदेशीय अश्वों की सेना लेकर इरावान ने कौरवों के अश्वारोहियों की सेना पर धावा बोला। शकुनि के भाई- गज, गवाक्ष, वृषभ, चर्मवान, आर्जव तथा शुक अपनी अश्वारोही वाहिनियाँ लेकर इरावान से लड़ने आगे आए। इरावान अकेला था और उस पर आक्रमण करनेवाले अनेक। इरावान रक्त से नहा गया, किंतु उसका मन भय से परिचित नहीं था। वह गांधार योद्धाओं द्वारा मारे गए प्रासों से ही उन पर प्रहार करता जा रहा था।

अंतत: एक-एक कर, उस युद्ध में शकुनि के ये सारे भाई मारे गए। उन सबको गिरा देख दुर्योधनको बड़ा क्रोध आया और वह अलम्बुष नामक राक्षसके पास पहुँचा। वह राक्षस देखनेमें बड़ा भयानक और मायावी था तथा बकासुरका वध करनेके कारण भीमसे वैर मानता था। उससे दुर्योधनने कहा- वीरवर। हमारी रक्षा करो, राक्षसराज। नागकन्या उलूपी के पुत्र इरावान ने हमारी अश्वसेना नष्ट कर दी है। देखो, यह अर्जुनका पुत्र इरावान् बहुत बलवान तथा मायावी है; ऐसा कोई उपाय करो, जिससे यह मेरी सेनाका संहार न कर सके। तुम इच्छानुसार जहाँ चाहो जा सकते हो, मायास्त्रमें भी प्रवीण हो; अत: जैसे बने, इस इरावान्को तुम युद्धमें मार डालो। तुम्हारा तो प्रतिशोध हो जायेगा और हमारी सेना विनाश से बच जायगी।

वह भयंकर राक्षस बहुत अच्छा कहकर सिंहके समान गरजता हुआ इरावान्के पास आया और उसे मारनेके लिये आगे बढ़ा। इरावान्ने भी वध करनेकी इच्छासे आगे बढ़कर उसे रोका। उसे अपनी ओर आते देख राक्षसने मायाका प्रयोग आरम्भ किया। वे सवार भी राक्षस थे और हाथोंमें शूल तथा पट्टिश लिये हुए थे। उन मायामय राक्षसोंका इरावान्की सेनाके साथ युद्ध होने लगा और दोनों ओरके योद्धा परस्पर प्रहार कर एक दूसरेको यमलोक भेजने लगे।

सेनाके मारे जानेपर दोनों रणोन्मत्त वही द्वन्द्वयुद्ध करने लगे। राक्षस इरावान्पर आक्रमण करता था और वह उसका वार बचा जाता था। एक बार जब राक्षस बहुत निकट आ गया तो इरावान्ने उसके धनुष और भालेको काट डाला। तब वह इरावान्को अपनी मायासे मोहित-सा करता हुआ आकाशमें उड़ गया। यह देख इरावान् भी अन्तरिक्षमें उड़ा और राक्षसको अपनी मायासे मोहित कर उसे अङ्गोंको बाणोंसे बींधने लगा। महाराज। बाणोंसे बारंबार काटनेपर भी वह राक्षस नवीनरूपमें प्रकट हो जाता और नौजवान ही बना रहता था; क्योंकि राक्षसोंमें माया स्वाभाविक ही होती है और उनका रूप भी उनके इच्छानुसार हुआ करता है। इस प्रकार उसका जो-जो अङ्ग कटताथा, वही पुन: उत्पन्न हो जाता था। इरावान् भी क्रोधमें भरा हुआ था, अत: वह उसपर फरसेसे बारंबार प्रहार कर रहा था। उससे छिदनेके कारण अलम्बुषके शरीरसे बहुत रक्त बहने लगा और वह घोर चीत्कार करने लगा। शत्रुको इस प्रकार प्रबल होते देख अलम्बुषके क्रोधकी सीमा न रही। उसने महाभयानक रूप बनाकर इरावान्को पकड़नेका प्रयत्न किया। उस राक्षसी मायाको देखकर इरावान्ने भी मायाका प्रयोग किया। इतनेमें इरावान्की माताके कुलका एक नाग बहुत-से नागोंको साथ लेकर वहाँ आ पहुँचा और इरावान्को सब ओरसे घेरकर उसकी रक्षा करने लगा। इरावान्ने शेषनागके समान विराटरूप धारण करके अनेकों नागोंसे उस राक्षसको ढक दिया। तब अलम्बुष गरुडका रूप धारण करके उन नागोंको खाने लगा। उसने इरावान्के मातृकुलके सब नागोंको भक्षण कर लिया और उसे अपनी मायासे मोहित करके तलवारका वार किया। इरावान्का चन्द्रमाके समान सुन्दर मस्तक कटकर पृथ्वीपर जा गिरा। इस प्रकार अब अलम्बुषने उस वीर अर्जुनकुमारको मार डाला तो समस्त राजाओंके साथ कौरवोंको बड़ी प्रसन्नता हुई।

अर्जुनको अपने पुत्र इरावान्के मरनेकी खबर नहीं थी, वे भीष्मकी रक्षा करनेवाले राजाओंका संहार कर रहे थे तथा भीष्म भी मर्मभेदी बाणोंसे पाण्डवोंके महारथियोंको कम्पित करते हुए उनके प्राण ले रहे थे। इसी प्रकार भीम, धृष्टद्युम्न और सात्यकिने भी बड़ा भयानक युद्ध किया था। द्रोणाचार्यका पराक्रम देखकर तो पाण्डवोंके मनमें बहुत भय समा गया। वे कहने लगे, अकेले द्रोणाचार्य ही सम्पूर्ण सैनिकोंको मार डालनेकी शक्ति रखते हैं; फिर जब इनके साथ पृथ्वीके प्रसिद्ध शूरवीर भी हैं, तो इनकी विजयके लिये क्या कहना है? उस दारुण संग्राममें दोनों ओरके सैनिक एक-दूसरेका उत्कर्ष नहीं सह सके और आविष्ट-से होकर बड़ी कठोरताके साथ लड़ने लगे।

धृतराष्ट्रने कहा- संजय। इरावान्को मरा हुआ देखकर महारथी पाण्डवोंने उस युद्धमें क्या किया?

संजयने कहा, राजन्। इरावान् मारा गया, यह देख भीमके पुत्र घटोत्कचने बड़ी विकट गर्जना की। उसकी आवाजसे समुद्र, पर्वत और वनोंके साथ सारी पृथ्वी डगमगाने लगी। आकाश और दिशाएँ गूँज उठीं। उस भयंकर नादको सुनकर

आपके सैनिकोंके पैरोंमें काठ मार गया, वे थर-थर काँपने लगे और वे शिथिल पड़ गये। सभीकी दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी थी। घटोत्कच क्रोधके मारे प्रलयकालीन यमराजके समान हो उठा। उसकी आकृति बड़ी भयंकर हो गयी। उसके हाथमें जलता हुआ त्रिशूल था तथा साथमें तरह-तरहके हथियारोंसे लैस राक्षसोंकी सेना चल रही थी। दुर्योधनने देखा भयंकर राक्षस आ रहा है और मेरी सेना उसके डरसे पीठ दिखाकर भाग रही है, तो उसे बड़ा क्रोध हुआ। बस, हाथमें एक विशाल धनुष ले बारंबार सिंहनाद करते हुए उसने घटोत्कचपर धावा किया। उसके पीछे दस हजार हाथियोंकी सेना लेकर बंगालका राजा सहायताके लिये चला। आपके पुत्रको हाथियोंकी सेनाके साथ आते देख घटोत्कच भी बहुत कुपित हुआ। फिर तो राक्षसोंकी और दुर्योधनकी सेनाओंमें रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। राक्षस बाण, शक्ति और ऋष्टि आदिसे योद्धाओंका संहार करने लगे।

भीष्म बोले, मैं, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा, शल्य, भूरिश्रवा तथा विकर्ण-दु:शासन आदि तुम्हारे भाई- ये सब तुम्हारे लिये उस महाबली राक्षससे युद्ध करेंगे अथवा उस दुष्ट घटोत्कच के साथ लड़नेके लिये ये इन्द्रके समान पराक्रमी राजा भगदत्त चले जायें। यह कहकर भीष्म राजा भगदत्तसे बोले- महाराज। आप ही जाकर घटोत्कचका मुकाबला कीजिये।

सेनापतिकी आज्ञा पाकर राजा भगदत्त सिंहनाद करते हुए बड़े वेगसे शत्रुओंकी ओर चले। उन्हें आते देख पाण्डवोंके महारथी भीम, अभिमन्यु, घटोत्कच, द्रौपदीके पुत्र, सत्यधृति, सहदेव, चेदिराज, वसुदान और दशार्णराज क्रोधमें भरकर उनके सामने आ गये। भगदत्तने भी सुप्रतीक हाथीपर आरूढ हो उन सब महारथियोंपर धावा किया। तदनन्तर, पाण्डवोंका भगदत्तके साथ भयंकर युद्ध छिड़ गया। महान् धनुर्धर भगदत्तने भीमपर धावा किया और उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। भीमने भी क्रोधमें भरकर भगदत्तके हाथीके पैरोंकी रक्षा करनेवाले सौसे भी अधिक वीरोंको मार डाला। तब भगदत्तने अपने उस गजराजको भीमके रथकी ओर बढ़ाया। यह देख पाण्डवोंके कई महारथियोंने बाणोंकी वर्षा करते हुए उस हाथीको चारों ओरसे घेर लिया। किंतु भगदत्तको इससे तनिक भी भय नहीं हुआ। उसने अमर्षपूर्वक अपने हाथीको पुन: आगेकी ओर चलाया। अंकुश और अँगूठेका इशारा पाकर वह मत्त गजराज उस समय प्रलयकालीन अग्निके समान भयानक हो उठा। उसने क्रोधमें भरकर अनेकों रथों, हाथियों और घोड़ोंको उनके सवारोंसहित रौंद डाला। सैकड़ों-हजारों पैदलोंको कुचल दिया। यह देख राक्षस घटोत्कचने कुपित होकर उस हाथीको मार डालनेके लिऐ एक चमकता हुआ त्रिशूल चलाया; किंतु भगदत्तने अपने अर्धचन्द्राकार बाणसे उसे काट दिया और अग्निशिखाके समान प्रज्ज्वलित एक महाशक्ति घटोत्कचके ऊपर फेंकी। अभी वह शक्ति आकाशमें ही थी कि घटोत्कचने उछलकर उसे हाथमें पकड़ लिया और दोनों घुटनोंके बीचमें दबाकर तोड़ डाला। यह एक अद्‌भुत बात हुई। आकाशमें खड़े हुए देवता, गन्धर्व और मुनियोंको भी यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। पाण्डवलोग उसे शाबाशी देते हुए रणभूमिमें अपनी हर्षध्वनि फैलाने लगे। भगदत्तसे यह नहीं सहा गया। उसने अपना धनुष खींचकर पाण्डव महारथियोंपर बाण बरसाना आरम्भ किया तथा भीमको, घटोत्कचको, अभिमन्युको और केकयराजकुमारोंको बाणोंसे बींध डाला। फिर दूसरे बाणसे क्षत्रदेवकी दाहिनी बाँह काट डाली, द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको घायल किया तथा भीमके घोड़ोंको मार गिराया, ध्वजा काट दी और सारथीको भी यमलोक भेज दिया। इसके बाद भीमको भी बींध डाला। इससे पीड़ित होकर वे कुछ देरतक रथके पिछले भागमें बैठे रह गये। फिर हाथमें गदा लेकर वेगपूर्वक रथसे कूद पड़े। उन्हें गदा लिये आते देख कौरव सैनिकोंको बड़ा भय हुआ। इतनेहीमें अर्जुन भी शत्रुओंका संहार करते हुए वहाँ आ पहुँचे और कौरवोंपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। इसी समय भीमने भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनको इरावान्‌के वधका समाचार सुनाया।

संजयने कहा, राजन्। अपने पुत्र इरावान्‌के मारे जानेका समाचार पाकर अर्जुनको बड़ा खेद हुआ और वे ठंडी-ठंडी साँसें भरने लगे। तब उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा, महामति विदुरको तो यह कौरव और पाण्डवोंके भीषण संहारकी बात पहले ही मालूम थी।

इसीसे उन्होंने राजा धृतराष्ट्रको रोका भी था। मधुसूदन। इस युद्धमें कौरवोंके हाथसे हमारे और भी बहुत-से वीर मारे जा चुके हैं। तथा हमने भी कौरवोंके कई वीरोंको नष्ट कर दिया है। यह सब कुकर्म हम धनके लिये ही तो कर रहे हैं। धिक्कार है ऐसे धनको, जिसके लिये इस प्रकार बन्धु-बान्धवोंका विनाश किया जा रहा है। भला, यहाँ एकत्रित हुए अपने भाइयोंको मारकर हमें मिलेगा भी क्या? हाय। आज दुर्योधनके अपराध और शकुनि तथा कर्णके कुमन्त्रसे ही यह क्षत्रियोंका विध्वंस हो रहा है। मधुसूदन। मुझे तो अपने सम्बन्धियोंके साथ युद्ध करना अच्छा नहीं लगता, परंतु ये क्षत्रियलोग मुझे युद्धमें असमर्थ समझेंगे। इसलिये शीघ्र ही अपने घोड़े कौरवोंकी सेनाकी ओर बढ़ाइये, अब विलम्ब करनेका अवसर नहीं है।

अर्जुनके ऐसा कहते ही श्रीकृष्णने शीघ्रता से रथ आगे बढ़ाया। यह देखकर आपकी सेनामें बड़ा कोलाहल होने लगा। तुरंत ही भीष्म, कृप, भगदत्त और सुशर्मा अर्जुनके सामने आ गये। कृतवर्मा और बाह्लीकने सात्यकिका सामना किया तथा राजा अम्बष्ठ अभिमन्युके आगे आकर डट गया। इनके सिवा अन्य महारथी दूसरे योद्धाओंसे भिड़ गये। बस, अब अत्यन्त भीषण युद्ध छिड़ गया। भीमने युद्धक्षेत्रमें आपके पुत्रोंको देखा तो क्रोधसे उनका अङ्गप्रत्यङ्ग जलने लगा। इधर आपके पुत्रोंने भी बाणोंकी वर्षा करके उन्हें बिल्कुल ढक दिया। इससे उनका रोष और भी भड़क उठा और वे सिंहके समान अपने ओठ चबाने लगे। तुरंत ही एक तीखे बाणसे उन्होंने व्यूढोरस्कपर वार किया और वह तत्काल निष्प्राण होकर गिर गया। एक दूसरे तीखे तीरसे उन्होंने कुण्डलीको धराशायी कर दिया। फिर उन्होंने अनेकों पैने बाण लिये और उन्हें बड़ी तेजीसे आपके पुत्रोंपर छोड़ने लगे। भीमके दुर्दण्ड धनुषसे छूटे हुए वे बाण आपके महारथी पुत्रोंको रथसे नीचे गिराने लगे। अनाधृष्टि, कुण्डभेदी, वैराट, दीर्घलोचन, दीर्घबाहु, सुबाहु और कनकध्वज- ये आपके वीर पुत्र पृथ्वीपर गिरकर ऐसे जान पड़ते थे मानो वसन्तऋतुमें अनेकों पुष्पित आम्रवृक्ष कटकर गिर गये हों। आपके शेष पुत्र भीमको कालके समान समझकर रणक्षेत्रसे भाग निकले।

जिस समय भीम आपके पुत्रोंका नाश करनेमें लगे हुए थे, उसी समय द्रोणाचार्य उनपर सब ओरसे बाण बरसा रहे थे। इन अवसरपर भीमने यह बड़ा ही अद्भुत कार्य किया कि एक ओर द्रोणाचार्यके बाणोंको रोकते हुए भी उन्होंने आपके उक्त पुत्रोंको मार डाला। इसी समय भीष्म, भगदत्त और कृपाचार्यने अर्जुनको रोका। किंतु अतिरथी अर्जुनने अपने अस्त्रोंसे उन सबके अस्त्रोंको व्यर्थ करके आपके सेनाके कई प्रधान वीरोंको मृत्युके हवाले कर दिया। अभिमन्युने राजा अम्बष्ठको रथहीन कर दिया। तब उसने रथसे कूदकर अभिमन्युपर तलवारका वार किया और शीघ्रतासे कृतवर्माके रथपर चढ़ गया। युद्धकुशल अभिमन्युने तलवारको आती देख बड़ी तत्परता से उसका वार बचा दिया। यह देखकर सारी सेनामें वाह वाह का शब्द होने लगा। इसी प्रकार धृष्टद्युम्नादि दूसरे महारथी भी आपकी सेनासे संग्राम कर रहे थे तथा आपके सैनिक पाण्डवोंकी सेनासे भिड़े हुए थे। उस समय आपसमें मार-काट करते हुए दोनों ही पक्षोंके वीरोंका बड़ा कोलाहल हो रहा था। दोनों ओरके गर्वीले वीर आपसमें केश पकड़कर, नख और दाँतोंसे काटकर तथा लात और घूँसोंसे प्रहार करके युद्ध कर रहे थे। अवसर मिलनेपर वे थप्पड़, तलवार और कोहनियोंकी चोटसे भी अपने प्रतिपक्षियोंको यमराजके घर भेज देते थे। पिता पुत्रपर और पुत्र पितापर वार कर रहा था, वीरोंके अङ्ग-अङ्गमें उत्तेजना भरी हुई थी। इस प्रकार बड़ा ही घमासान युद्ध हो रहा था। आपसके घोर संघर्षके कारण दोनों ओरके वीर थक गये। उनमेंसे अनेकों भाग गये और अनेकों धराशायी हो गये। इतनेहीमें सूर्यास्त हो गया। तब कौरव-पाण्डव दोनोंहीने अपनी-अपनी सेनाओंको लौटाया और यथासमय अपने-अपने शिबिरों में जाकर विश्राम किया।

भीष्म पितामह ने आठवें दिन अपनी सेना को महाव्यूह नामक रचना में उपस्थित किया था। उसके प्रत्युत्तर में पाण्डवोंके सेनापति धृष्टद्युम्न ने श्रृंगाटक नामक जटिल रचना की थी। सेनापति भीष्म की रक्षा के लिए उनके आसपास बिखेरे, सुनाभ, आदित्यकेतु, पण्डितक, महोदर, अपराजित, विशालाक्ष और बव्हाशी- दुर्योधन के इन आठ भ्राताओं का

भीमने आठवें दिन के पहले ही प्रहर में वध कर डाला। आठवें दिन उलूपी और अर्जुन के पुत्र इरावान ने युद्धभूमि पर अपनी धाक जमायी थी। संजयने कहा- महाराज। शिबिरमें पहुँचकर राजा दुर्योधन, शकुनि, दु:शासन और कर्ण आपसमें मिलकर विचार करने लगे कि पाण्डवोंको उनके साथियोंके सहित किस प्रकार जीता जाय। राजा दुर्योधनने कहा, द्रोणाचार्य, भीष्म, कृपाचार्य, शल्य और भूरिश्रवा पाण्डवों की प्रगतिको रोक नहीं रहे हैं। इसका क्या कारण है, कुछ समझमें नहीं आता। इस प्रकार पाण्डवोंका तो वध हो नहीं पाता, किंतु वे मेरी सेनाको तहस-नहस किये देते हैं। कर्ण। इसीसे मेरी सेना और शस्त्रोंमें बहुत कमी हो गयी हैं। इस समय पाण्डववीर तो देवताओंके लिये भी अवध्य हो गये हैं। इनसे तंग आकर मुझे तो बड़ा संदेह होने लगा है कि मैं किस प्रकार इनसे युद्ध करूँ।

कर्णने कहा- भरतश्रेष्ठ। चिन्ता न कीजिये, मैं आपका काम करूँगा; अब पितामह भीष्मको जल्दी ही इन संग्रामसे हट जाना चाहिये। यदि ये युद्धसे हट जायें और अपने शस्त्र रख दें तो मैं भीष्मके सामने ही पाण्डवोंको समस्त सोमक वीरोंके सहित नष्ट कर दूंगा- यह सत्यकी शपथ करके कहता हूँ। भीष्म तो पाण्डवोंके प्रिय हैं और उनमें इन महारथियोंको संग्राममें जीतनेकी शक्ति भी नहीं है। अत: अब आप शीघ्र ही भीष्मके शिबिरपर जाइये और उनसे अस्त्र-शस्त्र रखवाने का प्रबन्ध कीजिये। दुर्योधन बोला, मित्र। मैं अभी भीष्मसे प्रार्थना करके तुम्हारे पास आता हूँ। भीष्मके हट जानेपर फिर तुम ही युद्ध करना।

इसके बाद दुर्योधन अपने भाइयोंके सहित भीष्मके शिबिर में पहुँच गया और पितामह भीष्मको प्रणाम कर उसने नेत्रोंमें आँसू भर हाथ जोड़कर बोला, पितामह। आपका आश्रय पाकर तो हम इन्द्रके सहित समस्त देवताओंको जीतनेका भी साहस रखते हैं, फिर अपने मित्र और बन्धु-बान्धवोंके सहित इन पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है? इसलिये अब आपको मेरे ऊपर कृपा करनी चाहिये। आप पाण्डवोंको और सोमक वीरोंको मारकर अपने वचनोंको सत्य कीजिये और यदि पाण्डवोंपर दया एवं मेरे प्रति द्वेष होनेसे अथवा मेरे मन्दभाग्यसे आप पाण्डवोंकी रक्षा कर रहे हों तो अपने स्थानपर कर्णको युद्ध करनेकी आज्ञा दीजिये। वह अवश्य ही पाण्डवोंको उनके सुहृद् और बन्धु-बान्धवोंके सहित परास्त कर देगा।

सायं-सन्ध्या से निवृत्त होकर शिबिर के भीतरी कक्ष में ध्यानस्थ बैठे पितामह को अशिष्टता से सेवक द्वारा जगाकर उसने बाहर बुलवा लिया। दुर्योधनने अपने उद्धत शब्दों में पितामह से कहा, हे पितामह, यह युद्ध हो रहा है कि मनोरंजन करनेवाले कुक्कुटों की टक्कर? आठ दिन हो गये। हमारी आधी से भी अधिक सेना को भीमार्जुन ने धराशायी कर दिया। मेरे लगभग पचास भ्राता वीरगति को प्राप्त हुए, जबकि एक भी पाण्डव के शरीर पर बाणों की खरोंच तक नहीं आयी। यह सब क्या हो रहा है? क्या पाण्डवों के प्रेम के मोह में फँसकर आप सेनापति के कर्त्तव्य को भूल गये हैं? या फिर यह मेरे दुर्भाग्य का आघात है? यदि आप अपने पाण्डव-प्रेम का त्याग नहीं कर सकते, तो आप सेनापति पद का त्याग कीजिए। यही प्रार्थना करने हेतु मैं आया हूँ। तब हम दिग्विजयी अंगराज कर्ण को आमन्त्रित करेंगे और उसे सेनापति पद पर प्रतिष्ठित करेंगे। मुझे विश्वास है कि वह हमें अवश्य विजयश्री दिलवाएगा। भीष्मसे इतना कहकर दुर्योधन मौन हो गया।

यह सुनकर पितामह मन-ही-मन क्षुब्ध हुए। फिर भी उन्होंने शान्ति से, जिस प्रकार कृष्ण ने अर्जुन को हितोपदेश दिया था उसी प्रकार दुर्योधन को हितोपदेश दिया- हे दुर्योधन, कृष्णार्जुन को पहचानने में तुम भूल कर रहे हो। तुम भूल गये हो कि मैंने सोच-समझकर ही कृष्ण को वासुदेव कहा है। अपने जीवन-भर के अनुभव से मैं तुम्हें कह रहा हूँ, पाण्डवों को उनका राज्यभाग-इन्द्रप्रस्थ दे दो। इसी में सबका हित है।

ज्वार के समय का सागर गंगा के जल को पीछे फेंक देता है, उसी प्रकार पितामह के अनुभवी बोलों को ठुकराते हुए दुर्योधन ने कहा, वह समय कब का पीछे छूट चुका है। मेरी छह अक्षौहिणी से भी अधिक सेना युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुई है। आप इतना ही बताइए कि आप सेनापति पद का त्याग करेंगे कि कौरवों की असन्दिग्ध विजय के निष्पक्ष होकर

पाण्डवों से युद्ध करेंगे? उस अहंकारी दुर्योधन ने पितामह को अपराधी के कठघरे में ही खड़ा कर दिया।

महामना भीष्म आपके पुत्रके वाग्बाणोंसे विद्ध होकर बहुत ही व्यथित हुए। उसके बाद उन्होंने क्रोधसे त्यौरी बदलकर दुर्योधनको समझाते हुए कहा, पुत्र दुर्योधन। ऐसे वाग्बाणोंसे तुम मेरे हृदयको क्यों विदीर्ण कर रहे हो? मैं तो अपनी सारी शक्ति लगाकर युद्ध कर रहा हूँ और तुम्हारा हित करना चाहता हूँ। तुम्हारा प्रिय करनेके लिये मैं अपने प्राणतक होमनेको तैयार हूँ। इस वीर अर्जुनने इन्द्रको भी परास्त करके खाण्डववनमें अग्निको तृप्त किया था- यही इसकी अजेयताका पूरा प्रमाण है। जिस समय गन्धर्वलोग तुम्हें बलात्कारसे पकड़कर ले गये थे, उस समय भी तो इसीने तुम्हें छुड़ाया था। तब तुम्हारे ये शूरवीर भाई और कर्ण तो मैदान छोड़कर भाग गये थे। यह क्या उसकी अद्भुत शक्तिका परिचायक नहीं है। विराटनगरमें इस अकेलेने ही हम सबके छक्के छुड़ा दिये थे तथा मुझे और द्रोणाचार्यको भी परास्त करके योद्धाओंके वस्त्र छीन लिये थे। इसी प्रकार अश्वत्थामा, कृपाचार्य और अपने पुरुषार्थकी डींग हाँकनेवाले उस कर्णको भी नीचा दिखाकर उत्तराको उनके वस्त्र दिये थे। यह भी उसकी वीरताका ही पूरा प्रमाण है। जिसके रक्षक जगत्की रक्षा करनेवाले शंख-चक्र-गदाधारी श्रीकृष्ण हैं उस अर्जुनको संग्राममें कौन जीत सकता है? ये श्रीवसुदेवनन्दन अनन्तशक्ति हैं; संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और अन्त करनेवाले हैं; सबके ईश्वर हैं, देवताओंके भी पूज्य हैं और स्वयं सनातन परमात्मा हैं। यह बात नारदादि महर्षि कई बार तुमसे कह चुके हैं। किंतु तुम मोहवश कुछ समझने को तैयार नहीं हो। एक शिखण्डीको छोड़कर मैं और सब सोमक तथा पाञ्चाल वीरोंको मारूँगा। अब या तो मैं ही उनके हाथसे मारा जाऊँगा या उन्हें ही संग्राममें मारकर तुम्हें प्रसन्न करूँगा। यह शिखण्डी राजा द्रुपदके घरमें पहले स्त्री-रूपसे ही उत्पन्न हुआ था, पीछे वरके प्रभावसे यह पुरुष हो गया है। इसलिये मेरी दृष्टिमें तो यह शिखण्डिनी स्त्री ही है। अत: इसपर तो मेरे प्राणोंपर आ बनेगी तो भी मैं हाथ नहीं उठाऊँगा। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि कल मेरा बड़ा भीषण संग्राम होगा। उसमें मैं पाडवों के प्राण हरने का प्रयत्न करूँगा और तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कल सूर्यास्त के पहले अर्जुन का वध करूँगा और मेरे इस युद्धकी लोग तबतक चर्चा करेंगे, जबतक कि यह पृथ्वी रहेगी।

सत्यप्रतिज्ञ, आजन्म ब्रह्मचारी, ब्रह्मास्त्रधारी परशुराम-शिष्य के लिए यह असहनीय था। दुर्योधन वहाँ से शीघ्रातिशीघ्र अपना मुँह काला करे, इस हेतु पितामह ने निश्चयपूर्वक, धीमे-से कहा, कल मैं इस पृथ्वी को निष्पाण्डव करूँगा। अन्यथा अपनी देह की समिधा को रणयज्ञ में अर्पित कर दूँगा।

यदि ऐसा न हो सका तो? सहसा दुर्योधनके मुखसे निकल गया। भीष्म पितामहकी प्रतिज्ञा सुनकर वह अत्यन्त उत्साहावेशमें आ गया था और उस प्रतिज्ञाको पुन: पुष्ट करा लेना चाहता था।

भीष्मकी प्रतिज्ञापर भी सन्देह? पितामहका आवेश शान्त हो गया। वे बहुत शान्त शिथिल स्वरमें बोले- सुयोधन। यह सन्देह कहता है कि श्रीकृष्णका विधान कुछ और है। उनके विधानको कोई अन्यथा नहीं कर सकता। ऐसा न होता तो तुम्हारे मनमें मेरी प्रतिज्ञाके सम्बन्धमें भला सन्देह उठता। मैं प्रतिज्ञामें अपवाद स्वीकार करता हूँ। यदि ऐसा न हो सका तो स्वयं श्रीकृष्णको कल फिर अपनी प्रतिज्ञा तोड़नी पड़ेगी और पाण्डवोंकी रक्षाके लिये अधिक सचिन्त होना पड़ेगा। अब तुम जाओ। दुर्योधन बहुत उत्साहित होकर लौटा। उसने अपनी सेनामें सर्वत्र घोषणा करा दी- पितामहने कल पाँचों पाण्डवोंको मार देनेकी प्रतिज्ञा कर ली है। पितामह भीष्म ने अगले दिन पांडव-विनाश की प्रतिज्ञा की थी। पांडव-शिबिर में खलबली मच गई थी। जीवन जब विपन्न होता है फिर नींद किसे आती है।

दुर्योधनने प्रतिज्ञामें जो अपवाद पितामहने स्वीकार किया था, उसकी किसीसे चर्चा नहीं की। वह प्रतिज्ञाका पुष्ट कर देना चाहता था। उसकी सेनामें सर्वत्र उत्साह छा गया। सब एक-दूसरे से इसी प्रतिज्ञाकी चर्चा करने लगे। लेकिन

भीष्मको इस प्रचारका कोई पता नहीं था। वे आवेशमें प्रतिज्ञा तो कर गये थे; किन्तु स्वयं उससे अत्यन्त दु:खी हुए। अपवाद स्वीकार करके मानो उन्होंने अपने आपको ही वरदान दिया था। दुर्योधनके जाते ही वे ध्यान करने बैठ गये और श्रीकृष्णका चिन्तन करते हुए मन ही मन प्रार्थना करने लगे- भक्तवत्सल। दयामय। पाण्डवोंकी रक्षा तो आप करोगे ही। इस अपने धृष्ट सेवककी इस धृष्टताको क्षमा कर देना मेरे परमोदार स्वामी।

राजन्। भीष्मके इस प्रकार कहनेपर दुर्योधनने उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया। फिर वह अपने शिबिरपर चला आया। और युद्धक्षेत्र में चारों तरफ घोषणा करा दी कि कल भीष्म पितामह अर्जुन का वध करेंगे।

वह भीष्म-प्रतिज्ञा थी। उसका गुप्त रहना सम्भव नहीं था। वायु पर आरूढ़ होकर वह कृष्ण के शिबिर तक पहुँच गयी। उसे सुनते ही वे अत्यन्त चिन्तित हुए। उनको इतना विचलित होते हुए कभी नहीं देखा था। उनकी आँखों के आगे अब एकमात्र प्रश्न था- अर्जुन सहित सभी पाण्डवों का संरक्षण कैसे किया जाए? उसके लिए आवश्यकता पड़ी तो पितामह भीष्म का भी वध करना पड़ेगा।

आठवें दिन यद्यपि अर्जुनका पुत्र इरावान मारा गया; किन्तु धृतराष्ट्रके आठ पुत्र और शकुनिके सब भाई खेत रहे। घटोत्कचके आक्रमणसे दुर्योधनकी प्राण रक्षा बड़ी कठिनाईसे हुई। आठवें दिन भी भीमने दुर्योधनके अनेक भाइयोंको यमलोक भेज दिया। यद्यपि भीष्म अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार प्रतिदिन प्रतिपक्षके दस सहस्त्र शूरोंका वध कर देते थे किन्तु अर्जुन, भीम, घटोत्कच आदिके द्वारा कौरवपक्षका संहार इससे कई गुना अधिक हो रहा था। इस संहार तथा अपने भाइयोंके मारे जानेसे व्याकुल दुर्योधनने कर्णसे मन्त्रणा की।

दुर्योधनके द्वारा प्रचारित पितामह भीष्मकी प्रतिज्ञाका समाचार गुप्तचरोंने पाण्डव-शिबिरमें भी पहुँचाया।

पितामह भीष्मकी यह प्रतिज्ञा सभी पाण्डवोंको भी मालूम पड़ गयी। धर्मराज युधिष्ठिर व उनके सभी भाई पितामह भीष्म की प्रतिज्ञा सुनकर अत्यन्त चिंतित हुए।

सुनते ही युधिष्ठिर, अर्जुन, भीमसेनादिके मुख सूख गये। धर्मराज सबको लेकर श्रीकृष्णके समीप पहुँचे किन्तु वहाँसे भी कोई आश्वासन नहीं मिला। उन मधुसूदनने भी मुख लटकाकर कह दिया- पितामहने प्रतिज्ञा कर ली है तो वह मिथ्या नहीं हो सकती। क्षत्रियके लिए सम्मुख संग्राममें शरीर-त्याग विजयसे कम वरेण्य नहीं है। अत: कल मरणका महापर्व मनानेके लिए सबको सन्नद्ध ही रहना है। मैं भी सबका साथ दूँगा। जो दान, जप, ध्यान करना हो, आज रात्रिमें ही सब कर लें। पाण्डवोंके लिए जब श्रीकृष्ण ही आश्वासन न दें तो और क्या आशा। लेकिन उन्होंने सचमुच शोक त्यागकर उत्साहसे मृत्युका स्वागत करना निश्चित किया। उसी समय ब्राह्मण बुलाये गये। उन्हें अपार दान मिलने लगा। वे आशीर्वाद देने लगे- विजयी भव।

आप सब अब यह आशीर्वाद क्यों देते हैं? अर्जुनने ब्राह्मणोंको भीष्मकी प्रतिज्ञा सुना दी।

अनेक तपोधन, तेजस्वी एक साथ बोले- भीष्म ब्रह्मचारी हैं; किन्तु तपस्वी ब्राह्मणके मुखसे स्वयं श्रीहरि बोलते हैं। भीष्मकी प्रतिज्ञा असत्य नहीं होती तो हम ब्राह्मणोंकी वाणी भी अन्यथा करनेवाली शक्ति सृष्टिमें नही है।

पाण्डवोंमें-से किसीको कोई जप, ध्यान नहीं करना था। उनके आराध्य, इष्ट, आश्रय श्रीकृष्ण उनके मध्य थे। वे उनको आज्ञा मानकर दान कर रहे थे। सबने निश्चय कर लिया था कि कलके युद्धमें वे श्रीकृष्णके समीप ही रहेंगे और उनके पावन पदोंका दर्शन करते ही देहत्याग करेंगे।

आठवें दिन के युद्ध के समाप्ति के पश्चात् सन्ध्या समय अर्जुन अपने शिबिर में लौट आया। युद्ध करते-करते उस दिन अर्जुन बहुत क्लान्त हो चुका था। इसलिये आकर अपने शिबिर में विश्राम के लिये निद्राधीन हो गया और सो गया। जब

श्रीकृष्ण को पितामह भीष्म की इस प्रतिज्ञा का मालूम पड़ा तो कृष्ण अर्जुन के शिबिर में आये और बाहर से अर्जुन को पुकारा। द्रौपदी अन्दर से आयी, दरवाजा खोला और पूछा, हे सखा आप इस समय? कृष्ण बोले, मेरा प्रिय सखा अर्जुन कहाँ है? द्रौपदी बोली, आज वो युद्ध में अत्यधिक क्लान्त हो गये इसलिये विश्राम कर रहे हैं। अभी-अभी उनकी आँख लगी है और वो निद्रा में सो रहे है। कृष्ण द्रौपदी से बोले, आज पितामह ने कल पाण्डवोंका वध करने की या अर्जुन का वध करने की प्रतिज्ञा की है क्या यह अर्जुन को ज्ञात है? द्रौपदी बोली, हाँ। उन्हें यह मालूम है कृष्ण। यह सुनकर भी अर्जुन कल के युद्ध के लिए चिंतित नहीं है? द्रौपदी बोली, नहीं वासुदेव। वे तो निश्चिन्त होकर विश्राम कर रहे है। क्योंकि उनकी चिंताका भार तो आपपर है। इसलिए वे निश्चिन्त हैं।

कृष्ण समझ गये कि अर्जुन की सुरक्षा का भार तो मुझपर है। वे द्रौपदी से बोले मैं अभी थोड़ी देर में आता हूँ तुम्हें कल के इस भीषण युद्ध के लिये मेरे साथ चलना है। आज सायंकाल सूर्यास्त के बाद पितामह भीष्म ने दुर्योधन पत्नी भानुमती को अपने शिबिर में अखण्ड सौभाग्यवती होनेका आशीर्वाद देनेके लिये बुलाया था। जब शाम ढल गयी तो दुर्योधन पत्नी भानुमती भीष्म पितामह के शिबिर की ओर चलीं जहाँ पितामह एक पेड़ की ओट में बैठे सन्ध्यावन्दन कर रहे थे। रास्ते में भानुमती की भेंट श्रीकृष्ण से हो गयी। श्रीकृष्णने दुर्योधन पत्नी भानुमती से पूछा हे कल्याणि। इस सन्ध्या समय कहाँ जा रही हो? भानुमति ने कहा, वासुदेव मुझे पितामह भीष्मने अखण्ड सौभाग्यवती होनेका आशीर्वाद देनेके लिये अपने शिबिर में बुलाया है। इसलिए उनका आशीर्वाद प्राप्त करने उन्हींके पास जा रही हूँ। कृष्ण समझ गये ओर बोले हे देवी, यदि तुम बुरा नहीं मानो तो मैं तुम्हें एक बात सुझाता हूँ। सन्ध्या समय या रात्रि के समय कभी भी किसी ब्रह्मचारी के पास अकेली नारी को कभी नहीं जाना चाहिए क्योंकि ऐसे लोगोंका कुछ भरोसा, विश्वास नहीं रहता। कब उनका मन विचलित हो जाए। इसलिए मेरी समझ से तो तुम अभी न जाकर कल प्रात: ही सूर्योदय के समय जाकर उनसे यह आशीर्वाद ले लेना। अभी जानेमें और प्रात: जानेमें आशीर्वाद में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। दुर्योधन पत्नी भानुमती को कृष्ण की बात समझमें आ गयी और बोली वासुदेव यहीं ठीक होगा कि मैं कल प्रात: ही पितामह भीष्म से यह आशीर्वाद लूँगी और यह कहकर भानुमती दुर्योधन के शिबिर में लौट गयी।

कृष्ण भानुमती को वापिस लौटाकर सीधे अर्जुन के शिबिर पर आये और द्रौपदीसे बोले, चलो कृष्णा मेरे साथ। द्रौपदी बोली, इतनी रात हो गयी आपके साथ कहाँ जाना है? कृष्ण बोले, जैसे मैं कहता हूँ वैसा करो। बिल्कुल मौन रहना है। मुँहपर साड़ी के छोर का अवगुंठन कर लो ताकि रणभूमि में तुम्हें कोई देखे नहीं। अपने पादत्राण उतारो और मुझे दो। उत्साहपूर्वक केशव बोले- मैं आगे-आगे चलता हूँ। तुम मेरे पीछे-पीछे चलती रहो। अब इसे अस्वीकार करनेका कारण नहीं था। द्रौपदीने कह दिया- चलो। कृष्ण अन्धेरेमें मेरा हाथ पकड़ मुझे ले चले और बोले धीरे चलना ताकि पदध्वनि भी न हो। न ही किसी की नींद टूटे। कुछ दूर चलकर श्रीकृष्ण बोले, तुम्हारे पैरोंमें पांचालके बने पादत्राण हैं। इनको देखकर कोई भी तुम्हें पहिचान लेगा। इधर युद्धभूमिमें लोगोंके शिबिर हैं। अत: इन्हें उतार दो। कौरव जाग जायेंगे तो विपद आ जायेगी। बनवास जैसे कठिन समस्याओं का सामना करते-करते द्रौपदी धैर्यशालिनी हो गयी थी। आनेवाली किसी भी समस्या से टकराने का निश्चय सदैव तैयार रहता था।

द्रौपदी धीरे-धीरे बढ़ती रही। द्रौपदी के पादत्राणोंसे आवाजें हो रही थी। द्रौपदीने अपने पादत्राण उतार दिये। कृष्णाने अपने सखा कृष्ण के कहनेपर पादत्राण कृष्ण को दे दिये। उन्हें उठाकर उन अखिलेश्वरने अपने पटुकेमें लपेटा और कक्षमें दबा लिया। वे आगे-आगे चलते रहे। उनके पीछे-पीछे द्रौपदी नंगे पाँव चलती गयी। कितनी देर, कितनी दूर चलना पड़ेगा- यह पूछना व्यर्थ था। युद्धभूमि है तो वहाँ प्राणियोंके, मनुष्योंके शव तथा रथ एवं शस्त्रोंके खण्ड भी पटे पड़े

होंगे। श्रृंगालादि मांस भक्षी भी रात्रिमें झुंडके झुंड मिलेंगे। कुरुक्षेत्र की रणभूमि को परिव्याप्त करनेवाले झींगुरों की ध्वनि गूँज रही थी। कहीं-कहीं से उल्लुओं का घुघुआना सुनाई दे रहा था। मानवी शरीर के अंगों को नोचने के लिए ललचाये भेड़ियों और श्रृगालों का हुआँना सुनाई दे रहा था। द्रौपदीको अपने पैरोंकी ओर ही देखते चलना था। शीघ्र भी चलना था किन्तु जो प्राणत्यागका ही निर्णय करके चलने लगी है, उसे शरीरके कष्ट, श्रमकी अब कहाँ चिन्ता है।

द्रौपदीने पूछा, हे कृष्ण मुझे कहां ले जा रहे हो। कृष्ण बोले, देखो मैं तुम्हें पितामह भीष्मसे आशीर्वाद दिलाने ले जा रहा हूँ। पितामह को प्रणाम करते समय तुम्हें अपना मुख घूँघट से आच्छादित रखना होगा। भीष्म अपने वृद्धत्व के कारण अग्निके प्रलीतों के धुँधले प्रकाश में तुम्हें देख नहीं पायेंगे। जबतक वे कुछ नहीं कहते तबतक तुम अपने मुख से एक शब्द भी नहीं निकालोगी। तुम वहाँ भीष्म पितामह के पास जानेतक कुछ भी नहीं बोलोगी, मौन रहोगी और सीधे जाकर उनके चरण स्पर्श कर पकड़े रहना। उनको प्रणाम करते हुए तुम्हारी स्वर्णकंकणों की ध्वनि स्पष्ट सुनाई देनी चाहिए, यह बात मत भूलना। अपने कंगनों की खनखनाहट करते रहना, जब तक पितामह तुम्हें अखण्ड सौभाग्यवती होनेका आशीर्वाद न दे तब तक तुम कोई शब्द भी मत बोलना। उनका यह आशीर्वाद प्राप्त होनेपर ही उनके पूछनेपर अपना परिचय देना। द्रौपदीने कृष्ण की बात स्वीकार की और कृष्ण के पीछे-पीछे चल दी। थोड़ीही देरमें कृष्ण द्रौपदी को लेकर वहाँ पहुँचे जहाँ भीष्म पितामह सन्ध्या कर रहे थे।

सहसा श्रीकृष्ण एक शिबिरके सम्मुख खड़े होकर बहुत स्नेहपूर्ण स्वरमें बोले- सखी। यह तुम्हारे कुलके सबसे वृद्ध पूज्य पितामह भीष्मका शिबिर है। तुम यहाँ तक आ ही गयी हो तो मेरा इतना अनुरोध मान लो कि शिबिरमें जाकर उन्हें प्रणाम कर आओ। सौभाग्यवती स्त्री तथा ब्राह्मणोंके प्रवेशपर इस शिबिरमें कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

द्रौपदीने अब अनुमान कर लिया कि उसके ये लीलामय साथी उसे यहाँ तक किसी अभिप्रायसे ही ले आये हैं। वह शिबिरकी ओर बढ़ी तो श्रीकृष्णने उसे सावधान किया- पितामह इस समय ध्यान करते बैठे होंगे। तुम इतनी सावधानी रखना कि प्रणाम करते समय तुम्हारे आभूषणोंकी झंकार अवश्य हो। इससे उन्हें पता लग जायगा कि कोई नारी प्रणाम कर रही है। औरतों की जूती भीष्म के द्वार पर देख संदेह हो सकता है और इससे सारा काम बिगड़ सकता है। द्रौपदी ने देखा उसके सखा उसके जूते लिए खड़े हैं। द्रौपदी लज्जा और संकोच में पड़ गई। ऐसे संकट की घड़ी में भी कृष्ण रसिकता से बोले, तुम्हारे पांवों में पड़ी इन जूतियों को हाथ क्या हृदय या मस्तक से लगाकर आर्यावत: का कोई शौर्यवान राजपुत्र सौभाग्य मानेगा। वह सौभाग्य आज द्रौपदीने कृष्ण के हाथ में थमा दिया।

कृष्ण वहाँ जाकर स्वयं एक पेड़ की झुरमुटों में छिप गये और द्रौपदीको पितामह भीष्म से आशीर्वाद लेने के लिये उनके निकट भेज दिया। कृष्ण बोले, देर न करो आगे बढ़ो। द्रौपदी अपने अंशुक से मुख ढँककर शिबिर में चली गयीं। भव्य शरीरवाले, शुभ्र दाढ़ीधारी सत्त्वशील सेनापति भीष्म का दर्शन करने कोई स्त्री आयी हैं यह सोच रहे थे। इतनेमें द्रौपदी ने जाकर शीघ्रता से आगे बढ़कर परशुराम शिष्य भीष्म पितामह के चरणों में भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया और अपने कंगनों की आवाज से खनखनाहट की। मंद प्रकाश में भीष्म पितामह द्रौपदी को पहचान नहीं पाए।

द्रौपदी शिबिरमें भीतर चली गयी। श्रीकृष्ण पेड़के समीप ही छिपे खड़े रहे। पांचालीने प्रणाम करते समय शरीर हिलाकर आभूषण झंकृत कर दिये। नेत्र बन्द करके ध्यानस्थ पितामहको लगा कि कलके युद्धमें सम्मिलित होनेवाले किसी शूरकी पत्नी उनसे आशीर्वाद लेने आयी है। सत्यव्रत आजन्म ब्रह्मचारी पितामह के तपस्वी होठोंसे आशीर्वाद निकला उन्होंने कह दिया- पुत्री। अखण्ड सौभाग्यवती भव, आयुष्मती भव।

अब द्रौपदी स्पष्ट शब्दोंमें बोल उठी- हे पितामह। आज ही आपने पृथ्वी को निष्पाण्डव करने की प्रतिज्ञा की है और

अभी-अभी आपने मुझे सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया है। मुझे क्षमा करें। इन दोनों में से पितामह का सत्वचन कौनसा है? जिसके सौभाग्यको कल ही समाप्त कर देनेकी आपने प्रतिज्ञा कर ली है उसे आपका यह आशीर्वाद सत्य कैसे होगा? आपके वचन सत्य ही होंगे यही प्रार्थना है। भीष्मने चौंककर नेत्र खोल दिये- याज्ञसेनि तुम? तुम इस रात्रिमें यहाँ कैसे? इतनी रात कौरव शिबिर में आनेकी बुद्धि किसने सुझायी? यह कृष्ण के सिवा और कौन हो सकता है? पुत्री, तुम्हें दिया आशीर्वाद ही सत्य होगा। यह भीष्म प्रतिज्ञा है कि तुम अखण्ड सौभाग्यवती ही रहोगी।

भीष्म पितामह ने समझा दुर्योधन पत्नी भानुमती आयी हैं क्योंकि उसी समय उसे अखण्ड सौभाग्यवती होनेका आशीर्वाद देने के लिये बुलाया था यह समझकर पितामह भीष्मने अखण्ड सौभाग्यवती भव ऐसा आशीर्वाद दिया। अब द्रौपदीने अपने कंगनोंकी जोर से खनखनाहट की। पितामह भीष्म ने पूछा कौन? द्रौपदीने कहाँ पितामह मैं पाण्डव पत्नी पांचाली हूँ। पितामह ने आश्चर्यसे पूछा पुत्री तुम यहाँ कैसे? तुझे यहाँ कौन लेकर आया। तुम्हें लानेवाला कहाँ हैं? पुत्री। वह छलिया जिसकी रक्षा करनेवाला है, उसे कौन मार सकता है। भीष्मकी प्रतिज्ञाका क्या अर्थ। उसका आशीर्वाद ही सत्य होनेवाला है किन्तु मुझे उसके दर्शन करा दो। इतनेमें ही कृष्ण उस पेड़ की ओट से निकलकर बाहर आये और पितामह को प्रणाम करकर बोले, प्रणाम पितामह। भीष्म बोले, अरे नटखट, मधुसूदन आप। यह तो मैं पहले ही समझ गया कि आपके सिवा यहाँ द्रौपदीको मेरे पास कौन ला सकता है। कृष्ण बोले, अब बताइये पितामह आपकी आज की हुई प्रतिज्ञा अब सत्य होगी या पांचाली को भी दिया हुआ अखण्ड सौभाग्यवती का आशीर्वाद? बहू को सुहागिन रहने का आशीर्वाद आज दिया है, फिर पांडवों का विनाश किस न्याय से करेंगे?

भीष्म उठकर लगभग दौड़ते हुए शिबिरके बाहर आये और श्रीकृष्णके चरणोंपर गिर पड़े- भक्तवत्सल। मैं आपको ही पुकार रहा था और आप इस रात्रिमें यहाँ। भीष्म इतना अधम है कि उसके शिबिर-द्वारपर आपको प्रतीक्षा करनी पड़ी।

पितामह हंस उठे और बोले कृष्ण, तुम्हारी लीला सुनी थी परन्तु आज अपने आँखों से देख भी ली। हस्तिनापुर में अपनी सखी कृष्णा की जूतियां उठाए फिर रहे हो? नारियों की पादसेवा में तुम्हें क्या आनन्द मिलता है? आजन्म ब्रह्मचारी भीष्म के लिए इसे समझना कठिन है। कृष्ण पांडवों के लिए निश्चिंत रहो। कृष्ण हंसकर बोले, इसमें कष्ट कैसा? आपकी प्रतिज्ञा के कारण ही तो द्रौपदी की जूतियां उठाने का अवसर मिला। इस कार्य में तो बहुत आनन्द मिलता है।

भीष्म पितामह का आशीर्वाद सुनकर गद्‌गद् हुई नि:शब्द द्रौपदीदेवी ऊँचे कुरु-सेनापति के आगे प्रणाम कर पुन: नतमस्तक हो गयी। द्रौपदी लज्जा से गड़ी जा रही थी। कृष्ण ने द्रौपदी के लिए क्या नहीं किया। उसका जूठा खाया, जूतियां उठायीं। द्रौपदी के पति के सारथी बने। रथ हाँका। वे अपने भक्त के लिए क्या कुछ नहीं कर सकते। श्रीकृष्ण पाण्डव शिबिरमें लौटे तो सबको मानों प्राणदान मिला। द्रौपदी उसी समय रथमें बैठकर उपप्लव्य शिबिरमें सब स्त्रियोंको आश्वस्त करने चली गयी। सूर्योदयसे पर्याप्त पहिले ही यह सब करके श्रीकृष्ण सुप्रसन्न अपने शिबिरमें विश्राम करने लगे थे।

## १५) महाभारत का युद्ध (नवां दिन) भीष्म का पांचालों और अर्जुन के साथ युद्ध

नौंवे दिन अपनी सेना की सर्वतोभद्र व्यूह-रचना करते हुए उसके अग्रस्थान पर खड़े रहकर सेनापति पितामह भीष्म ने अपने दिव्य गंगनाभ शंख को फूँका। पिछले आठ दिन उन्होंने अतुल पराक्रम किया था और पाण्डवों की तीन अक्षौहिणी सेना को यमसदन पहुँचाया था। किन्तु पहले दिन के विराटपुत्र उत्तर और श्वेत के पतन के अतिरिक्त कोई भी विख्यात पाण्डव योद्धा धराशायी नहीं हुआ था। इस कारण अपने ही नेतृत्व से असन्तुष्ट भीष्म के शंख का नाद आज इतना भेदक

था कि उसने पांचजन्य के नाद को भी धीमा कर दिया। जिस आवेश से पितामह ने शंख फूँका था, उससे कृष्ण भाँप गये थे कि आज भीष्म को कोई भी रोक नहीं पाएगा। वैसा ही हुआ। द्रोणाचार्य, दुर्योधन, सुशर्मा, भगदत्त आदि महारथियों की सहायता से पितामह ने एक ही दिन में सन्ध्या होने तक पाण्डवों की एक अक्षौहिणी सेना को धराशायी कर दिया। पितामह को रोका नहीं गया तो सम्पूर्ण पाण्डव-सेना नष्ट हो जाएगी, इस भय-आशंका से अर्जुन के चारों भ्राता अपने रथोंसहित नन्दिघोष के पास एकत्रित हुए। पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने अपना धनुष नीचे रख, दोनों हाथ जोड़कर कृष्णसे प्रार्थना की- हे यादवश्रेष्ठ, अब आप ही पाण्डवसेना की रक्षा कीजिए। उसके सभी भ्राताओं ने अपने रथों को सँभालते हुए अपने ज्येष्ठ भ्राता की ही प्रार्थना को दुहराया।

पितामह भीष्म के रौद्रावतार से भयभीत हुए पाण्डव-सेनापति धृष्टद्युम्न को नन्दिघोष की ओर आते देख कृष्ण अपने नन्दिघोष को पितामह के रथ के आगे ले आये।

पिछले आठ दिनों में कृष्ण ने भूलकर भी कोई प्रेरक घोषणा नहीं की थी, किन्तु इस क्षण पितामह के आगे आनेपर भी धनुर्धर धनंजय को क्रियाशून्य देखकर कृष्ण चकरा गये। अपने हाथ की आठों वल्गाओं को झटककर नन्दिघोष को पितामह के रथ के चतुर्दिक् घूमाते हुए आज पहली बार उन्होंने रणघोष किया। तब भी अर्जुन निष्क्रिय ही रहा। अपने प्रिय अश्वों को सँभालते हुए कृष्णने अर्जुन को स्मरण दिलाया- हे पार्थ, युद्ध के आरम्भ में मैंने तुम्हें जो हितोपदेश दिया था उसे क्या इतने में ही भूल गये? पितामह के अमोघ बाणों से डर गये हो क्या?

सूरज अपने समय पर निकलता और डूबता रहा और धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में सत्य और असत्य के बीच घमासान युद्ध चलता रहा। एक दिन के बाद दूसरा दिन आता रहा। कहानी वही है कि लोग मर रहे है। युद्ध चल रहा है।

दूसरे दिन सबेरे उठते ही दुर्योधनने सब राजाओंको आज्ञा दी कि आपलोग अपनी-अपनी सेना तैयार करें, आज भीष्म कुपित होकर सोमक वीरोंका संहार करेंगे। फिर दु:शासनसे कहा, तुम शीघ्र ही भीष्मकी रक्षाके लिये कई रथ तैयार करो। आज शकुनि, शल्य, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और विविंशति खूब सावधानीसे भीष्मकी रक्षा करें; क्योंकि उनके सुरक्षित रहने पर हमारी अवश्य जय होगी। दुर्योधनकी यह बात सुनकर सब योद्धाओंने अनेकों रथोंसे भीष्मको सब ओरसे घेर लिया।

सञ्जयने कहा- राजन। अब भीष्म अपनी विशाल वाहिनी लेकर चले और उन्होंने उसका सर्वतोभद्र नामक व्यूह बनाया। कृपाचार्य, कृतवर्मा, शैव्य, शकुनि, जयद्रथ, सुदक्षिण और आपके सभी पुत्र भीष्मके साथ सारी सेनाके आगे खड़े हुए। द्रोणाचार्य, भूरिश्रवा, शल्य और भगदत्त व्यूहके दाहिनी ओर रहे। अश्वत्थामा, सोमदत्त और दोनों अवन्तिराजकुमार अपनी विशाल सेनाके सहित बायीं ओर खड़े हुए। त्रिगर्त्तवीरोंसे घिरा हुआ राजा दुर्योधन व्यूहके मध्यभागमें रहा तथा महारथी अलम्बुष और श्रुतायु सारी व्यूहबद्ध सेनाके पीछे खड़े हुए। इस प्रकार आपकी सेनाके सभी वीर व्यूहरचनाकी रीतिसे खड़े होकर युद्धके लिये तैयार हो गये।

दूसरी ओर राजा युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव- ये सारी सेनाके व्यूहके मुहानेपर खड़े हुए तथा धृष्टद्युम्न, विराट, सात्यकि, शिखण्डी, अर्जुन, घटोत्कच, चेकितान, कुन्तिभोज, अभिमन्यु, द्रुपद, युधामन्यु और केकयराजकुमार- ये सब वीर भी कौरवोंके मुकाबलेपर अपनी सेनाका व्यूह बनाकर खड़े हो गये। अब आपके पक्षके वीर भीष्मको आगे करके पाण्डवोंकी ओर बढ़े। इसी प्रकार भीम आदि पाण्डव योद्धा भी संग्राममें विजय पानेकी लालसासे भीष्मके साथ युद्ध करनेके लिये आगे आये। दोनों ओरसे घमासान युद्ध होने लगा। दोनों ओरके वीर एक-दूसरेकी ओर दौड़कर प्रहार करने लगे। उस भीषण शब्दसे पृथ्वी कँपाने लगी। धूलके कारण देदीप्यमान सूर्य भी प्रभाहीन मालूम पड़ने लगा। उस समय भारी भयकी सूचना देता हुआ

बड़ा प्रचण्ड पवन चलने लगा। गीदड़ियाँ बड़ा भयंकर चीत्कार करने लगी। इससे ऐसा जान पड़ता था मानो बड़ा भारी संहारकाल समीप आ गया है। कुत्ते तरह-तरहके शब्द करके रोने लगे। आकाशसे जलती हुई उल्काएँ पृथ्वीकी ओर गिरने लगीं। इस अशुभ मुहूर्तमें आकर खड़ी हुई हाथी, घोड़ों और राजाओंसे युक्त उन दोनों सेनाओंका शब्द बड़ा ही भयंकर हो उठा।

सबसे पहले महारथी अभिमन्युने दुर्योधनकी सेनापर आक्रमण किया। जिस समय वह उस अनन्त सैन्यसमुद्रमें घुसने लगा, आपके बड़े-बड़े वीर भी उसे रोक न सके। उसके छोड़े हुए बाणोंने अनेकों क्षत्रिय वीरोंको यमलोक भेज दिया। वह क्रोधपूर्वक यमदण्डके समान भयंकर बाण बरसाकर अनेकों रथ, रथी, घोड़े, घुड़सवार तथा हाथी और गजारोहियोंको विदीर्ण करने लगा। अभिमन्युका ऐसा अद्भुत पराक्रम देखकर राजालोग प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा करने लगे। इस समय वह कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, बृहदल और जयद्रथ आदि वीरोंको भी चक्करमें डालता हुआ बड़ी सफाई और शीघ्रताके साथ रणभूमिमें विचर रहा था। उसे अपने प्रतापसे शत्रुओंको संतप्त करते देखकर क्षत्रिय वीरोंको ऐसा जान पड़ता था मानो इस लोकमें दो अर्जुन प्रकट हो गये हैं। इस प्रकार अभिमन्युने आपकी विशाल वाहिनीके पैर उखाड़ दिये और बड़े-बड़े महारथियोंको कम्पित कर दिया। इससे उसके सुहृदोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। अभिमन्युके द्वारा भगायी हुई आपकी सेना अत्यन्त आतुर होकर डकराने लगी।

अपनी सेनाका वह घोर आर्त्तनाद सुनकर राजा दुर्योधनने राक्षस अलम्बुषसे कहा, महाबाहो। वृत्रासुरने जैसे देवताओंकी सेनाको तितर-बितर कर दिया था, उसी प्रकार यह अर्जुनका पुत्र हमारी सेनाको भगा रहा है। संग्राममें इसे रोकनेवाला मुझे तुम्हारे सिवा और कोई दिखायी नहीं देता; क्योंकि तुम सब विद्याओंमें पारंगत हो। इसलिये अब तुम शीघ्र ही जाकर इसका वध कर दो। इस समय हम भीष्म-द्रोणादि योद्धा अर्जुनका वध करेंगे।

दुर्योधनके ऐसा कहनेपर वह महाबली राक्षसराज वर्षाकालीन मेघके समान महान् गर्जना करता हुआ अभिमन्युकी ओर चला। उसका भीषण शब्द सुनकर पाण्डवोंकी सारी सेनामें खलबली मच गयी। उस समय कई योद्धा तो डरके मारे अपने प्यारे प्राणोंसे हाथ धो बैठे। अभिमन्यु तुरंत ही धनुष-बाण लेकर उसके सामने आ गया। उस राक्षसने अभिमन्युके पास पहुंचकर उससे थोड़ी ही दूरीपर खड़ी हुई उसकी सेनाको भगा दिया। वह एक साथ पाण्डवोंकी विशाल वाहिनीपर टूट पड़ा और उस राक्षसके प्रहारसे उस सेनामें बड़ा भीषण संहार होने लगा। फिर वह राक्षस पाँचों द्रौपदीपुत्रोंके सामने आया। उन पाँचोंने भी क्रोधमें भरकर उसपर बड़े वेगसे धावा किया। प्रतिविन्ध्यने भयंकर तीर छोड़कर उसे घायल कर दिया। बाणोंकी बौछारसे उसके कवचके भी टुकड़े-टुकड़े हो गये। अब उन पाँचों भाइयोंने उसे बींधना आरम्भ किया। इस प्रकार अत्यन्त बाणविद्ध होनेसे उसे मूर्च्छा हो गयी। किंतु थोड़ी ही देरमें चेतना आनेपर क्रोधके कारण उसमें अधिक शक्ति आ गयी। उसने शीघ्र ही उनके धनुष, बाण और ध्वजाओंको काट डाला। फिर उसने मुसकराते हुए बाण मारे तथा उनके सारथी और घोड़ोंको भी मार गिराया। इस प्रकार उन्हे रथहीन करके उस राक्षसने मार डालनेकी इच्छासे उनपर बड़े वेगसे आक्रमण किया। उन्हें कष्टमें पड़ा देखकर तुरंत ही अभिमन्यु उसकी ओर दौड़ा। उन दोनोंका इन्द्र और वृत्रासुरके समान बड़ा भयंकर संग्राम हुआ। दोनों ही क्रोधसे तमतमाकर आपसमें जूझ पड़े और एक-दूसरेकी ओर प्रलयाग्निके समान घूरने लगे।

अभिमन्युने अपने बाणोंसे अलम्बुषको बींध दिया। इससे क्रोधमें भरकर अलम्बुषने अभिमन्युकी छातीमें बाण मारे। इसके बाद उसने हजारों बाण छोड़कर अभिमन्युको तंग कर दिया। तब अभिमन्युने कुपित होकर बाणोंसे उसकी छातीको छेद दिया। वे उसके शरीरको भेदकर मर्मस्थानोंमें घुस गये। इस प्रकार अपने शत्रुसे मार खाकर उस राक्षसने रणक्षेत्रमें बड़ी तामसी माया फैलायी। उससे सब योद्धाओंके आगे अन्धकार छा गया। उन्हें न तो अभिमन्यु ही दिखायी देता था और न अपने या शत्रुके

पक्षके वीर ही दीखते थे। उस भीषण अन्धकारको देखकर अभिमन्युने भास्कर नामका प्रचण्ड अस्त्र छोड़ा। उससे सब ओर उजाला हो गया। इसी प्रकार उसने और भी कई प्रकारकी मायाओंका प्रयोग किया, किंतु अभिमन्युने उन सभीको नष्ट कर दिया। मायाका नाश होनेपर जब वह अभिमन्युके बाणोंसे बहुत व्यथित होने लगा तो भयके मारे अपने रथको रणक्षेत्रमें ही छोड़कर भाग गया। उस मायायुद्ध करनेवाले राक्षसको इस प्रकार परास्त करके अभिमन्यु आपकी सेनाको कुचलने लगा।

तब अपनी सेनाको भागते देखकर भीष्म और अनेकों कौरव महारथी उस अकेले बालकको चारों ओरसे घेरकर बाणोंसे बींधने लगे। किंतु वीर अभिमन्यु बल और पराक्रममें अपने पिता अर्जुन और मामा श्रीकृष्णके समान था और उसने रणभूमिमें उन दोनोंके ही समान पराक्रम दिखलाया। इतनेहीमें वीरवर अर्जुन अपने पुत्रकी रक्षाके लिये आपके सैनिकोंका संहार करते भीष्मके पास पहुँच गये। इसी तरह आपके पितृव्य भीष्म भी रणभूमिमें अर्जुनके सामने आकर डट गये। तब आपके पुत्र रथ, हाथी और घोड़ोंके द्वारा सब ओरसे घेरकर भीष्मकी रक्षा करने लगे। इसी प्रकार पांडवलोग भी अर्जुनके आस-पास रहकर भीषण संग्रामके लिये तैयार हो गये। अब सबसे पहले कृपाचार्यने अर्जुनपर बाण छोड़े। इसके उत्तरमें सात्यकिने आगे बढ़कर अपने पैने बाणोंसे कृपाचार्यको घायल कर दिया। फिर उसने उन्हें छोड़कर अश्वत्थामापर आक्रमण किया। इसपर अश्वत्थामाने सात्यकिके धनुषके दो टुकड़े कर दिये और फिर उसे भी बाणोंसे बींध दिया। सात्यकिने तुरंत ही दूसरा धनुष लेकर अश्वत्थामाकी छाती और भुजाओंमें बाण मारे। उनसे अत्यन्त घायल और व्यथित होनेसे उन्हें मूर्च्छा आ गयी और वे अपनी ध्वजाके डंडेका सहारा लेकर रथके पिछले भागमें बैठ गया। कुछ देरमें होश आनेपर प्रतापी अश्वत्थामाने कुपित होकर सात्यकिपर एक नाराच छोड़ा। वह उसे घायल करके पृथ्वीमें घुस गया। फिर एक दूसरे बाणसे उन्होंने उसकी ध्वजा काट डाली और बड़ी गर्जना करने लगे। इसके बाद वे उसपर बड़े प्रचण्ड बाणोंकी वर्षा करने लगे। सात्यकिने भी उस सारे शरसमूहको काट डाला और तुरंत ही अनेक प्रकारके बाण बरसाकर अश्वत्थामाको आच्छादित कर दिया।

तब महाप्रतापी द्रोणाचार्य पुत्रकी रक्षाके लिये सात्यकिके सामने आये और अपने तीखे बाणोंसे उसे छलनी कर दिया। सात्यकिने भी अश्वत्थामाको छोड़कर अपने बाणोंसे आचार्यको बींध दिया। इसी समय परम साहसी अर्जुनने क्रोधमें भरकर द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया। उन्होंने बाण छोड़कर द्रोणाचार्यको घायल किया और फिर बाणोंकी वर्षा करके उन्हें ढक दिया। इससे आचार्यकी क्रोधाग्नि एकदम भड़क उठी और उन्होंने बात-की-बातमें अर्जुनको बाणोंसे छा दिया। तब दुर्योधनने सुशर्माको संग्राममें द्रोणाचार्यकी सहायता करनेकी आज्ञा दी। इसलिये त्रिगर्त्तराजने भी अपना धनुष चढ़ाकर अर्जुनको लोहेकी नोकवाले बाणोंसे आच्छादित कर दिया। तब अर्जुनने भी भीषण सिंहनाद करके सुशर्मा और उसके पुत्रको अपने बाणोंसे बींध दिया तथा वे दोनों भी मरनेका निश्चय करके उनपर टूट पड़े और उनके रथपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। अर्जुनने उस बाणवर्षाको अपने बाणोंसे रोक दिया। उनका ऐसा हस्तलाघव देखकर देवता और दानव भी प्रसन्न हो गये। फिर अर्जुनने कुपित होकर कौरवसेनाके अग्रभागमें खड़े हुए त्रिगर्त्त-वीरोंपर वायव्यास्त्र छोड़ा। उससे आकाशमें खलबली पैदा करता हुआ बड़ा प्रचण्ड पवन प्रकट हुआ, जिसके कारण अनेकों वृक्ष उखड़कर गिर गये तथा बहुत-से वीर धराशायी हो गये। तब द्रोणाचार्यने शैलास्त्र छोड़ा। उससे वायु रुक गयी और सब दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं। इस प्रकार पाण्डुपुत्र अर्जुनने त्रिगर्त्त-रथियोंका उत्साह ठंडा कर दिया और उन्हें पराक्रमहीन करके युद्धके मैदानसे भगा दिया।

राजन्। इस प्रकार युद्ध होते-होते जब मध्याह्न हो गया तो गङ्गानन्दन भीष्म अपने पैने बाणोंसे पाण्डवपक्षके सैकड़ों-हजारों सैनिकोंका संहार करने लगे। तब धृष्टद्युम्न, शिखंडी, विराट और द्रुपद भीष्मके सामने आकर उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। भीष्मने धृष्टद्युम्नको बींधकर बाणोंसे विराटको घायल किया और एक बाण राजा द्रुपदपर छोड़ा। इस प्रकार भीष्मके हाथसे

घायल होकर वे धनुर्धर वीर बड़े क्रोधमें भर गये। इतनेहीमें शिखण्डीने पितामहको बींध दिया। किंतु उसे स्त्री समझकर उन्होंने उसपर वार नहीं किया। फिर धृष्टद्युम्नने उनकी छाती और भुजाओंमें बाण मारे तथा द्रुपदने, विराटने, शिखण्डीने बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया। भीष्मने बाणोंसे तीनों वीरोंको बींध दिया और द्रुपदका धनुष काट डाला। उन्होंने तत्काल दूसरा धनुष लेकर बाणोंसे भीष्मको और उनके सारथीको बींध दिया। अब द्रुपदकी रक्षा करनेके लिये भीम, द्रौपदीके पाँच पुत्र, केकयदेशीय पाँच भाई, सात्यकि, राजा युधिष्ठिर और धृष्टद्युम्न भीष्मकी ओर दौड़े। इसी प्रकार आपकी ओरके सब वीर भी भीष्मकी रक्षाके लिये पाण्डवोंकी सेनापर टूट पड़े। अब आपके और पाण्डवोंके सेनानियोंका बड़ा घमासान युद्ध होने लगा। रथी रथियोंसे भिड़ गये तथा पैदल, गजारोही और अश्वारोही भी आपसमें मिलकर एक-दूसरेको यमराजके घर भेजने लगे।

दूसरी ओर अर्जुनने अपने तीखे बाणोंसे सुशर्माके साथी राजाओंको यमराजके घर भेज दिया। तब सुशर्मा भी अपने बाणोंसे अर्जुनको घायल करने लगा। उसने अपने बाणोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुनपर प्रहार किया। किंतु अर्जुनने उन्हें अपने बाणोंसे रोककर सुशर्माके कई वीरोंको मार डाला। इस प्रकार कल्पान्तकारी कालके समान अर्जुनकी मारसे भयभीत होकर वे महारथी मैदान छोड़कर भागने लगे। उनमेंसे कोई घोड़ोंको, कोई रथोंको और कोई हाथियोंको छोड़कर जहाँ-तहाँ भाग गये। त्रिगर्तराज सुशर्मा तथा दूसरे राजाओंने उन्हें रोकनेका बहुत प्रयत्न किया, परंतु फिर युद्धक्षेत्रमें उनके पैर नहीं जमे। सेनाको इस प्रकार भागती देखकर आपका पुत्र दुर्योधन त्रिगर्त्तराजकी रक्षाके लिये सारी सेनाके सहित भीष्मको आगे करके अर्जुनकी ओर चला। इसी प्रकार पाण्डवलोग भी अर्जुनकी रक्षाके लिये पूरी तैयारीके साथ भीष्मकी ओर चले।

अब भीष्मने अपने बाणोंसे पाण्डवोंकी सेनाको आच्छादित करना आरम्भ किया। दूसरी ओरसे सात्यकिने अपने बाणोंसे कृतवर्माको बींधा और फिर सहस्त्रों बाणोंकी वर्षा करते हुए युद्धमें डटकर खड़ा हो गया। इसी प्रकार राजा द्रुपदने अपने पैने तीरोंसे द्रोणाचार्यको बींधकर बाण उनपर और उनके सारथीपर छोड़े। भीम अपने परदादा राजा बाह्लीकको घायल करके बड़ा भीषण सिंहनाद करने लगे। अभिमन्युको यद्यपि चित्रसेनने बहुत-से बाणोंसे घायल कर दिया था, तो भी वह सहस्त्रों बाणोंकी वर्षा करता हुआ युद्धके मैदानमें डटा रहा। उसने अपने बाणोंसे चित्रसेनको बहुत ही घायल कर दिया और फिरउसके चारों घोड़ोंको मारकर बड़े जोरसे सिंहनाद किया।

उधर आचार्य द्रोणने राजा द्रुपदको बींधकर उनके सारथीको भी घायल कर दिया। इस प्रकार अत्यन्त व्यथित होनेसे वे संग्रामभूमिसे अलग चले गये। भीमने बात-की-बातमें सारी सेनाके सामने ही राजा बाह्लीकके घोड़े, सारथी और रथको नष्ट कर दिया। इसलिये वे तुरंत ही दुर्योधन पुत्र लक्ष्मणके रथपर चढ़ गये। फिर सात्यकि अनेकों बाणोंसे कृतवर्माको रोककर पितामह भीष्मके सामने आया और उसने अपने विशाल धनुषसे तीखे बाण छोड़कर उन्हें घायल कर दिया। तब पितामहने उसके ऊपर एक लोहेकी शक्ति फेंकी। उस कालके समान कराल शक्तिको आती देख उसने बड़ी फूर्तिसे उसका वार बचा दिया, इसलिये वह शक्ति सात्यकितक न पहुँचकर पृथ्वीपर गिर गयी। अब सात्यकिने अपनी शक्ति भीष्मपर छोड़ी। भीष्मने भी पैने बाणोंसे उसके दो टुकड़े कर दिये और वह भी पृथ्वीपर जा पड़ी। इस प्रकार शक्तिको काटकर भीष्मने बाणोंसे सात्यकिकी छातीपर प्रहार किया। तब रथ, हाथी और घोड़ोंकी सेनाके सहित सब पाण्डवोंने सात्यकिकी रक्षा करनेके लिये भीष्मको चारों ओरसे घेर लिया। अब कौरव और पाण्डवोंमें बड़ा ही घोर और रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा।

यह देखकर राजा दुर्योधनने दु:शासनसे कहा, वीरवर। इस समय पाण्डवोंने पितामहको चारों ओरसे घेर लिया है, इसलिये तुम्हें उनकी रक्षा करनी चाहिये। दुर्योधनका ऐसा आदेश पाकर आपका पुत्र दु:शासन अपनी विशाल वाहिनीसे भीष्मको घेरकर खड़ा हो गया। शकुनि एक लाख सुशिक्षित घुड़सवारोंको लेकर नकुल, सहदेव और राजा युधिष्ठिरको

रोकने लगा तथा दुर्योधनने भी पाण्डवोंको रोकनेके लिये दस हजार घुड़सवारोंकी एक कुमुक भेजी। तब राजा युधिष्ठिर और नकुल-सहदेव बड़ी फुर्तीसे घुड़सवारोंका वेग रोकने लगे तथा अपने तीखे बाणोंसे उनके सिर काटने लगे। उनके धड़ाधड़ गिरते हुए सिर ऐसे जान पड़ते थे मानो वृक्षोंसे फल गिर रहे हों। इस प्रकार उस महासमरमें अपने शत्रुओंको परास्त कर पाण्डवलोग शफ और भेरियोंके नाद करने लगे।

अपनी सेनाको पराजित देखकर दुर्योधन बहुत उदास हुआ। तब उसने मद्रराजसे कहा, राजन्। देखिये, नकुल-सहदेवके सहित ये ज्येष्ठ पाण्डुपुत्र आपकी सेनाको भगाये देते हैं; आप इन्हें रोकनेकी कृपा करें। आपके बल और पराक्रमको हर कोई सहन नहीं कर सकता। दुर्योधनकी यह बात सुनकर मद्रराज शल्य रथसेना लेकर राजा युधिष्ठिरके सामने आये। उनकी सारी विशाल वाहिनी एक साथ युधिष्ठिरके ऊपर टूट पड़ी। किंतु धर्मराजने उस सैन्यप्रवाहको तुरंत रोक दिया और बाण राजा शल्यकी छातीमें मारे। इसी प्रकार नकुल और सहदेवने भी बाण मारे। मद्रराजने भी बाण मारे। फिर बाणोंसे राजा युधिष्ठिरको घायल किया और माद्रीपुत्रोंपर भी बाण छोड़े। दोनों ओरसे बड़ा ही घोर और कठोर युद्ध होने लगा।

अब सूर्यदेव पश्चिमकी ओर ढलने लगे, सूर्यास्त होनेका समय हो गया। अत: आपके पितृव्य भीष्मने अत्यन्त कुपित होकर बड़े तीखे बाणोंसे पाण्डव और उनकी सेनापर वार किया। उन्होंने बाणोंसे भीमको, सात्यकिको, नकुलको, सहदेवको और राजा युधिष्ठिरके वक्ष:स्थलको बींधकर बड़ा सिंहनाद किया। तब उन्हें बदलेमें नकुलने, सात्यकिने, धृष्टद्युम्नने, भीमने और युधिष्ठिरने बाणोंसे घायल किया। इसी समय द्रोणाचार्यने बाणोंसे सात्यकि और भीमपर चोट की तथा भीम और सात्यकिने भी उनपर बाण चलायें।

इसके बाद पाण्डवोंने फिर पितामहको ही घेर लिया। किंतु उनसे घिरकर भी अजेय भीष्म वनमें लगी हुई आगके समान अपने तेजसे शत्रुओंको जलाते रहे। उन्होंने अनेकों रथ, हाथी और घोड़ोंको मनुष्यहीन कर दिया। उनकी प्रत्यञ्चाकी बिजलीकी कड़कके समान टंकार सुनकर सब प्राणी काँप उठे और उनके अमोघ बाण चलने लगे। भीष्मके धनुषसे छूटे हुए बाण योद्धाओंके कवचोंमें नहीं लगते थे, वे सीधे उनके शरीरको फोड़कर निकल जाते थे। चेदि, काशी और करूष देशके चौदह हजार महारथी, जो संग्राममें प्राण देनेको तैयार और कभी पीछे पैर नहीं रखनेवाले थे, भीष्मके सामने आकर अपने हाथी, घोड़े और रथोंके सहित नष्ट होकर परलोकमें चले गये।

अब पाण्डवोंकी सेना इस भीषण मार-काटसे आर्तनाद करती पलायन करने लगी। यह देखकर श्रीकृष्णने अपना रथ रोककर अर्जुनसे कहा, कुन्तीनन्दन। तुम जिसकी प्रतीक्षामें थे, वह समय अब आ गया है। इस समय यदि तुम मोहग्रस्त नहीं हो तो भीष्मपर वार करो। तुमने विराटनगरमें राजाओंके एकत्रित होनेपर सञ्जयके सामने जो कहा था कि मुझसे संग्रामभूमिमें भीष्म-द्रोणादि जो भी धृतराष्ट्रके सैनिक युद्ध करेंगे, उन सभीको मैं उनके अनुयायियोंसहित मार डालूँगा, उस बातको अब सच करके दिखा दो। तुम क्षात्रधर्मका विचार करके निर्भय हो युद्ध करो। इसपर अर्जुनने कुछ बेमनसे कहा, अच्छा, जिधर भीष्म हैं, उधर घोड़ोंको हाँक दीजिये; मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा और अजेय भीष्मको पृथ्वीपर गिरा दूँगा। तब श्रीकृष्णने अर्जुनके रथको भीष्मकी ओर हाँका। अर्जुनको युद्धके लिये भीष्मके सामने आते देख युधिष्ठिरकी विशाल वाहिनी फिर लौट आयी।

भीष्मने तुरंत ही बाणोंकी वर्षा करके अर्जुनके रथको सारथी और घोड़ोंके सहित ढक दिया। उनकी घनघोर बाणवर्षाके कारण उनका दीखना बिल्कुल बंद हो गया। किंतु श्रीकृष्ण इससे तनिक भी विचलित न हुए, वे भीष्मके बाणोंसे बिंधे हुए घोड़ोंको बराबर हाँकते रहे। तब अर्जुनने अपना दिव्य धनुष उठाकर अपने पैने बाणोंसे भीष्मका धनुष काटकर गिरा दिया। भीष्मने एक क्षणमें ही दूसरा धनुष लेकर चढ़ाया। किंतु अर्जुनने क्रोधमें भरकर उसे भी काट डाला। अर्जुनकी इस फुर्तीकी

भीष्म भी बड़ाई करने लगे और कहने लगे, वाह। महाबाहु अर्जुन, शाबाश। कुन्तीके वीर पुत्र शाबाश। ऐसा कहकर उन्होंने एक दूसरा धनुष लिया और अर्जुनपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। इस समय घोड़ोंकी चक्करदार चालसे भीष्मके बाणोंको व्यर्थ करके श्रीकृष्णने घोड़े हाँकनेकी कलामें अपना अद्भुत कौशल प्रदर्शित किया। किंतु युद्ध करनेमें अर्जुनकी शिथिलता और भीष्मको युधिष्ठिरकी सेनाके मुख्य-मुख्य वीरोंका संहार करके प्रलय-सी मचाते देखकर उन्हें सहन नहीं हुआ। वे झट घोड़ोंकी रास छोड़कर कूद पड़े और सिंहके समान गरजते हुए पैदल ही प्रतोद (चाबुक) लेकर भीष्मकी ओर दौड़ पड़े। उनके पैरोंकी धमकसे मानो पृथ्वी फटने लगी और क्रोधसे आँखें लाल हो गयीं। उस समय आपकी ओरके वीरोंके हृदय तो सुन्न-से हो गये और सब ओर यही कोलाहल होने लगा कि भीष्म अब मरे।

अर्जुन अवसर पाकर भी भीष्मपर प्रहार नहीं कर रहे थे और भीष्म अर्जुनको व्यस्त रखकर भी पाण्डव सेनाके वीरोंको चुन-चुनकर मारते चले जा रहे थे। वे इस समय प्रलयंकर बने हुए थे। यह श्रीकृण सहन नहीं कर सके। उन्होंने रथ-रश्मि छोड़ दी और कशा (चाबुक) ही लिये सिंहके समान गर्जना करते पैदल ही भीष्मकी ओर दौड़े।

अर्जुन ने केवल नकारदर्शी ग्रीवा हिलायी, किन्तु गाण्डीव धनुष को उठाया नहीं। वह पुन: सम्भ्रमित हो गया था- मोहग्रसित हो गया था। अब बिना कोई हितोपदेश दिये, प्रत्यक्ष कृति से ही उसके पुरुषार्थ को जगाना आवश्यक था। कृष्णने बलपूर्वक उससे कहा- ठीक है। एक बार मैंने पितामह के लिए शस्त्र न धारण करने की प्रतिज्ञा को तोड़ा था। अब तुम्हारे लिए भी मुझे प्रतिज्ञा भंग करनी पड़ेगी। वल्गाओं को नन्दिघोष के रथनीड़ पर रखकर प्रतोद (चाबुक) उठाते हुए कृष्ण कुरुक्षेत्र की रणभूमि पर कूद पड़े।

श्रीकृष्ण रेशमी पीताम्बर धारण किये थे। उससे उनका नीलमणिके समान श्यामसुन्दर शरीर विद्युल्लतासे सुशोभित श्याममेघके समान जान पड़ता था। सिंह जिस प्रकार हाथीपर टूटता है, उसी प्रकार वे गरजते हुए बड़े वेगसे भीष्मकी ओर दौड़े। मयूर मुकुट लहरा रहा था। पीतपट उड़ने लगा था। बार-बार हुंकार करते, कुटिल भृकुटि, अरुण नेत्र पुरुषोत्तम ऐसे भीष्मपर टूटे थे मानो सिंह मदमत्त गजराजपर टूट पड़ा हो। पृथ्वी उनके पदाघातसे मानो विदीर्ण हो जायगी।

जिनके भ्रू भंग मात्रसे कोटि-कोटि ब्रह्मास्त्र प्रलयके गर्भमें विलीन हो जाते हैं, उन सर्वलोकेश्वरेश्वरके करोंमें चक्र है या चाबुक, इसका कोई अर्थ नहीं था। वे क्रुद्ध हैं तो उनके सम्मुख जानेका साहस करते ही महाकाल भी सत्ताशून्य हो जायगा, सुर-असुर, दैत्य, गन्धर्वोंकी गणना क्या और मनुष्य तो बहुत अल्पप्राण है। कौरव सेनामें मरनेकी इतनी शीघ्रता किसीको नहीं थी।

बार-बार दुर्योधनने अपने प्रधान शूरोंको सावधान किया था कि सब मिलकर भीष्मकी रक्षा करे। आज प्रात:काल यह बात विशेष रूपसे कही थी किन्तु दूसरे तो दूर दुर्योधनमें भी आगे आनेका साहस नहीं था। सम्पूर्ण कौरव पक्षके लोग सामान्य सैनिकसे लेकर आचार्य द्रोण तक शस्त्र त्यागकर दोनों हाथ उठाकर चिल्ला रहे थे- भीष्म मारे गये। भीष्म मारे गये।

भीष्मको बचाओ। यह पुकार किसी एक कण्ठसे भी नहीं निकल सकी। आतंकके कारण सब काँपने लगे थे। श्रीकृष्ण भले शस्त्रहीन हैं, उन क्रुद्ध सर्वशक्तिमानका सामना भी किया जा सकता है- यह सोचनेका साहस करना स्वयं अपनी मृत्युको निमन्त्रण देना थां सब कौरव पक्षके वीरोंके हृदय सुन्नसे हो गये थे। वे उस समय भागनेकी शक्ति भी खो चुके थे।

कमलनयन कृष्णको अपनी ओर आते देखकर पितामहने अपना विशाल धनुष चढ़ाया और तनिक भी न घबराते हुए उनसे बोले, हे कमललोचन। आइये; देव। आपको नमस्कार है। यदुश्रेष्ठ। अवश्य आज संग्राममें मेरा वध कीजिये। युद्धस्थलमें आपके हाथसे मारे जानेसे मेरा सब प्रकार कल्याण ही होगा। गोविन्द। आज आपके युद्धक्षेत्रमें उतरनेसे मैं तीनों लोकोंमें सम्मानित हो गया हूँ। आप इच्छानुसार मेरे ऊपर प्रहार कीजिये, मैं तो आपका दास हूँ।

श्रीकृष्णने अर्जुनको ललकारा- मोहग्रस्त मत बनो। भीष्मपर प्रहार करो। तुमने भीष्म, द्रोणादिको उनके अनुयायियों सहित मार देनेका अपने पक्षको आश्वासन दिया है। क्षात्रधर्मका विचार करके पूरी शक्तिसे संग्राम करो।

अर्जुनने अनिच्छापूर्वक कहा- अच्छा, पितामहके सम्मुख मेरा रथ पहुँचाइये। मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।

अर्जुनका कपिध्वज रथ भीष्मके सामने पहुँच रहा है, यह देखकर पाण्डव पक्षकी भागती सेना लौट पड़ी। भीष्मने बाणोंकी झड़ी लगाकर अर्जुनके रथको आच्छादित कर दिया किन्तु श्रीकृष्णने अपने अद्भुत अश्व चालन कौशलसे रथको उस शर-पंजरसे निकाल लिया।

इसी समय अर्जुनने पीछेसे जाकर कृष्णको अपनी भुजाओंमें भर पकड़ लिया। किंतु इसपर भी वे अर्जुनको घसीटते हुए बड़ी तेजीसे आगे ही बढ़े चले गये। तब अर्जुनने बड़े प्रेमसे दीनतापूर्वक कहा, महाबाहो। लौटिये; आप जो पहले कह चुके हैं कि मैं युद्ध नहीं करूँगा, उसे मिथ्या न कीजिये। यदि आप ऐसा करेंगे तो लोग आपको मिथ्यावादी कहेंगे। यह सारा भार मेरे ही ऊपर रहने दीजिये, मैं पितामहका वध करूँगा। यह बात मैं शस्त्रकी, सत्यकी और पुण्यकी शपथ करके कहता हूँ।

श्रीकृष्णके रथसे कूदते ही अर्जुन चौंके। गाण्डीव रथमें ही फेंककर वे भी कूदे और दौड़कर पीछेसे उन्होंने अपने सखाको भुजाओंमें भर लिया। इतनेपर भी श्रीकृष्ण रोके नहीं जा सके। वे अर्जुनको घसीटते हुए बढ़े जा रहे थे।

अर्जुनने आगे आकर चरण पकड़े और बहुत दीनतापूर्वक बोले- आप लौटिये। युद्ध न करनेके अपने प्रणकी रक्षा कीजिये। मैं बहुत ही लज्जित हूँ। मेरे दोषसे आपको अपना प्रण भंग करनेको बाध्य होना पड़ा। अब मैं शस्त्रोंकी तथा सत्यकी शपथ करके कहता हूँ कि पूरी शक्तिसे युद्ध करूँगा। युद्धका भार मुझपर ही रहने दीजिए।

अब अर्जुन सचमुच हड़बड़ा गया। गाण्डीव धनुष को रथ में रखते हुए वह भी रथ से कूद पड़ा। आवेश से पितामह की ओर दौड़नेवाले आर्यश्रेष्ठ कृष्ण के आड़े आकर, दोनों भुजाएँ फैलाकर उसने व्याकुलता से कहा, रुक जाओ हृषीकेश। तुम अपनी प्रतिज्ञा मत भंग करो। कल मैं पितामह से निश्चयपूर्वक युद्ध करूँगा- हनिष्यामि पितामहम्।

अर्जुनकी बात सुनकर श्रीकृष्ण कुछ भी न कहकर क्रोधमें भरे हुए ही फिर रथपर बैठ गये। शान्तनुनन्दन भीष्म फिर इन दोनों पुरुषश्रेष्ठोंपर बाणवर्षा करने लगे। उन्होंने फिर अन्यान्य योद्धाओंके प्राण लेने आरम्भ कर दिये। पहले जिस प्रकार कौरवोंकी सेना भाग रही थी, उसी प्रकार अब आपके पितृव्य भीष्मने पाण्डवोंके दलमें भगदड़ डाल दी। उस समय पाण्डवपक्षके वीर सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें मारे जा रहे थे। वे ऐसे निरुत्साह हो गये थे कि मध्याह्नकालीन सूर्यके समान तेजस्वी भीष्मकी ओर देख भी नहीं सकते थे। पाण्डवलोग भौंचक्के-से होकर भीष्म का वह अमानवीय पराक्रम देखने लगे। उस समय दलदलमें फँसी हुई गायके समान भागती हुई पाण्डवसेनाको अपना कोई भी रक्षक दिखायी नहीं देता था। इस प्रकार बलवान् भीष्म पाण्डवोंके बलहीन वीरोंको चींटीकी तरह मसल रहे थे। इसी समय भगवान् सूर्यास्त हो गया और इसलिये दिनभरके युद्धमें थकी हुई सेनाओंका युद्ध बंद हो गया।

श्रीकृष्ण एक शब्द भी बोले नहीं। वे वैसे ही क्रोधमें भरे लौटे और आकर रथपर बैठ गये। उन्हें अर्जुनका शैथिल्य अच्छा नहीं लगा था और अब भी अर्जुन अपनी शपथपर स्थिर रह सकेगा, इसका भरोसा नहीं था। युद्धमें जय-पराजय पाण्डवोंकी ही होनेवाली थी किन्तु श्रीकृष्णका स्वभाव है कि जिसे अपना स्वीकार कर लेते हैं, उसका हित उनका अपना हित हो जाता है और उसकी चिन्ता वे उससे अधिक करने लगते हैं। वह प्रमाद करें, उदासीन हो जाय किन्तु श्रीकृष्ण न उदासीन होते, न प्रमाद करते। वे आश्रितजनपाल कृपालु तो सदा आश्रितके श्रेयके लिए सावधान ही रहते हैं।

भीष्म पितामहने फिर बाणवर्षा प्रारम्भ कर दी। अद्भुत भक्त भीष्म। धनुष ही उनका सर्वस्व। उनके लिए शराघात ही

आराध्यका अर्चन था। वे पूरी शक्तिसे श्रीकृष्ण तथा अर्जुनपर शर वर्षा करनेमें तत्काल जुट गये। यह तो उनके हृदयमें पूजा थी। पाण्डवोंके दलमें फिर भगदड़ पड़ गयी। भीष्मके बाण आज मृत्युका संदेश लिये आते थे। शत सहस्त्र सैनिक प्रतिक्षण समरकी गोदमें सदाको सोते जा रहे थे। ग्रीष्मके प्रचण्ड मार्तण्डके समान भीष्मका तेज असह्य था। आज वे अमानवीय पराक्रम प्रकट कर रहे थे। पाण्डव सेनाको आज कहीं कोई अपना रक्षक नहीं दीखता था। ऐसे समयमें सूर्यास्तका हो जाना पाण्डवोंके लिए वरदान सिद्ध हुआ। युद्ध विरामका शंखघोष स्वयं युधिष्ठिरने सर्वप्रथम उसदिन किया।

नवम् दिनके प्रात:काल भीष्मने अपनी विशाल वाहिनीका सर्वतोभद्र व्यूह बनाया। पाण्डवोंके लिए उनका क्रौञ्च व्यूह वरदान सिद्ध हो रहा था। इस दिन भी तृतीय प्रहार तक पाण्डव पक्ष प्रबल ही रहा।

चतुर्थ प्रहर प्रारम्भ होते ही पितामह भीष्म क्रोधमें भरकर प्रचण्ड हो उठे। यद्यपि पाण्डव वीरोंने उन्हें घेर लिया था किन्तु वे दावाग्निके समान प्रतिपक्षको भस्म कर रहे थे। उनके सम्मुख जाकर चेदि और करुष देशके चौदह सहस्त्र महारथी परलोक चले गये। इससे पाण्डव सेना आर्तनाद करती भागने लगी।

अर्जुनमें पितामह भीष्मपर आघात करनेका उत्साह नहीं था। वे केवल भीष्मका प्रतिकार कर रहे थे और उनके वेगको कम करनेका प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने भीष्मका धनुष काट दिया। उन्होंने दूसरा धनुष उठाया तो उसे भी काट दिया। भीष्मने अर्जुनके इस पौरुषकी प्रशंसा की।

भीष्मने अपना विशाल धनुष उठा रखा था और उसका जयघोष इस प्रकार कर रहे थे मानो वह भी कोई वाद्य हो। वे पुकार रहे थे- आओ केशव। जनार्दन पधारो। कैटभारि, मुझे मारकर आज कृतार्थ कर दो। आपने आक्रमण करके मुझे त्रिभुवनमें गौरवशाली बना दिया। अब अपने हाथसे मारकर मुझे जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त कर दो पुरुषोत्तम। अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर आप भक्तवत्सलने आज पुन: मेरी प्रण-रक्षा की। मैंने बहुत धृष्टता की है। मुझे दण्ड दीजिये। आइये। आइये मधुसूदन। पधारिये और मुझे मारकर अपने श्रीचरणोंमें स्थान दीजिये। मैं तो आपका दास हूँ, इच्छानुसार मुझपर प्रहार कीजिये।

उन उद्‌गारों को सुनते हुए युद्ध के नौवें दिन का सूर्य अस्त हो गया। यद्यपि अर्जुन ने हनिष्यामि पितामहम् की प्रतिज्ञा की थी, किन्तु रणनीतिकुशल कृष्ण पूर्णत: जानते थे कि वह सम्भव नहीं था।

संजयने कहा, दोनों सेनाओंमें अभी युद्ध हो ही रहा था कि सूर्यदेव अस्ताचलपर जा पहुँचे। संध्याके समय लड़ाई बंद हो गयी। भीष्मके बाणोंकी मार खाकर पाण्डवसेना भयसे व्याकुल हो हथियार फेंककर पलायन कर गयी। इधर भीष्म क्रोधमें भरकर महारथियोंका संहार करते ही जा रहे थे तथा सोमक क्षत्रिय हारकर अपना उत्साह खो बैठे थे- यह सब देख और सोचकर राजा युधिष्ठिरने सेनाको पीछे लौटा लेनेका विचार किया और युद्ध बंद करनेकी आज्ञा दे दी। इसके बाद आपकी सेना भी लौटा ली गयी। भीष्मके बाणोंसे पीड़ित हुए पांडव जब उनके पराक्रमकी याद करते थे, तो उन्हें तनिक भी शान्ति नहीं मिलती थी। भीष्म भी सृञ्जय और पाण्डवोंको जीतकर कौरवोंके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनते हुए शिबिरमें चले गये थे।

दुर्योधन अपने शिबिर में दु:शासन, कर्ण और शकुनि के साथ बैठा था। वह दुखी ही नहीं, बहुत हताश भी था। अपना क्षोभ उससे सँभाला नहीं जा रहा था। मनुष्य का असली रूप एकान्त में, अन्त समय या विपत्ति में प्रकट होता है। धन-ऐश्वर्य में या सबके सम्मुख तो सभी अपने भावों को छिपा सकते हैं। प्रेम एक ऐसी चीज है जो क्रोध में भी नहीं छिप सकता। आन्तरिक भाव थोड़ी देर भले ही छिपा लिये जायँ, किन्तु समय पर वे अवश्य प्रकट हो जायँगे।

अपनी प्रतिज्ञानुसार युद्ध में अभी तक कर्ण ने अस्त्र ग्रहण नहीं किया। वे अपने शिबिर में एक तटस्थ पुरुष की भाँति बैठे रहते थे। कभी दर्शनार्थी की भाँति इधर-उधर घूम फिर कर युद्ध के मैदान को देख आते, नहीं तो मन मसोसे पड़े रहते।

गानेवाले को ताल स्वर से युद्ध में वाद्यों के रहने पर गाने को न मिले, भूखे को व्यंजन रहने पर भी खाने को न मिले, प्यासे को पिपासित अवस्था में गङ्गातट पर भी जल पीने की आज्ञा न हो, जिस प्रकार इन सबको दुख होता है, उसी प्रकार रणभैरवी बजते रहने पर भी शूरवीर, पराक्रमी, आत्माभिमानी योद्धा को लड़ाई का अवसर न दिया जाय तो उसे महान् दु:ख होता है। कर्ण अपने भावों को रोके हुए थे। उन्हें अपनी समस्त इच्छाओं के विरुद्ध लड़ाई करनी थी। उनका निश्चय था कि मेरा चाहे मान हो अपमान मैं हर तरह दुर्योधन का भला करूँगा। मैं अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी उसका प्रिय कार्य करूँगा। इसीसे उन्होंने भीष्म, द्रोण आदि के इतने अपमानों को चुपचाप सह लिया।

दुर्योधन बोला, भीष्म और द्रोण के विषय में तो मैं जानता ही था, पर आज मैं देख रहा हूँ कि जाने क्यों कृपाचार्य, शल्य और भूरिश्रवा भी पांडवों को कोई बाधा नहीं पहुँचाते। ये कैसे योद्धा हैं? हम इनकी गिनती महारथियों और अतिरथियों में करते रहें और ये लोग अपने शत्रुओं का बचाव करते रहें, तो हम जीत कैसे सकते हैं? जिस सेना में इतना आंतरिक विरोध हो और शत्रुओं के प्रति सहानुभूति हो, वह विजय कैसे प्राप्त कर सकती है। पांडव स्वयं को अवध्य समझकर मेरी सेना का संहार कर रहे हैं। सहसा वह कर्ण की ओर मुड़ा, और राधेय। तुम युद्ध से मुँह मोड़कर रूठी प्रियतमा के समान अपने शिबिर में बैठे हो। तुम नहीं देख रहे कि पांडव मुझे परास्त कर रहे हैं? द्रोण देखते रहते हैं और भीम मेरे भाइयों का वध करता रहता है। आज तक मेरे पच्चीस भाइयों का वध कर चुका है वह। और तुम पितामह के प्रति अपने विरोध पर अड़े हो। इधर मेरा अपना जीवन संदिग्ध हो उठा है। ऐसे में मैं युद्ध कैसे कर सकता हूँ। ग्यारह अक्षौहिणी सेना का स्वामी मैं और मेरा जीवन भी सुरक्षित नहीं है, क्योंकि मैं परायों को अपना समझकर उनसे घिरा हुआ युद्ध कर रहा हूँ। तुम तो कहते थे कि तुम मेरे मित्र हो। लगा, दुर्योधन अभी रो देगा। कर्ण बोला, मैं तुमको पूरे विश्वास के साथ बता रहा हूँ कि भीष्म पांडवों का वध तो नहीं ही करेंगे, वे उनकी कोई गंभीर क्षति भी नहीं करेंगे। वे उनपर दया करते हैं, उनसे प्रेम करते हैं। वे उनका वध कैसे कर सकते हैं। तुम अपने उस पूजनीय वृद्ध पितामह से उनके शस्त्र रखवा लो और फिर मेरे द्वारा पांडवों को मारा गया ही समझो। उसी समय दुर्योधन पितामह भीष्म के पास गया और बोला, पितामह। यदि आप मेरे प्रति द्वेष के कारण पांडवों की रक्षा कर रहे हैं, तो कर्ण को युद्धक्षेत्र में आने और युद्ध करने की अनुमति दीजिए। पितामह। आज एक दिन और बीत गया है। भीष्म बोले, मुझे ज्ञात है पुत्र। दुर्योधन बोला, यदि आपको मालूम है तो आपको ज्ञात होगा कि सैनिक क्षति की दृष्टि से एक दिन के युद्ध का क्या महत्त्व होता है। सैनिक पांडवों के ही नहीं हमारे भी मारे जाते है?

दुर्योधन का स्वर स्वामी का अधिकार लिए हुए था। प्रतिदिन दुर्योधन भीष्म के सम्मुख आकर खड़ा हो जाता है- स्वामी के समान, राजा के समान और अपने सेनापति से इस बात का स्पष्टीकरण माँगता है कि आज का युद्ध उसकी अपेक्षानुसार क्यों नहीं लड़ा गया। युद्ध का परिणाम उसकी इच्छानुसार क्यों नहीं हुआ?

भीष्म तत्काल कुछ नहीं बोले... यह दुर्योधन क्या समझता है? जो इससे प्रेम करता है, वह किसी और से प्रेम कर ही नहीं सकता? इसकी रक्षा करनी है तो अन्य सब राजकुमारों को मार डालें? यह मूढ़ दुर्योधन कब समझेगा कि किसी भी मनुष्य को अधिक से अधिक लोगों से प्रेम करने की स्वतंत्रता है... वरन् जो जितना सात्विक व्यक्ति होगा, वह उतने ही अधिक लोगों से प्रेम करेगा, उसका परिवार उतना ही बड़ा होगा। यह तो केवल अपने-आप से ही प्रेम करना जानता है और अब चाहता है कि अन्य लोग भी केवल इससे ही प्रेम करें।

भीष्म बोले, ऐसा तो कोई युद्ध नहीं पुत्र जिसमें क्षति केवल एक ही पक्ष की हो। पाण्डव युद्ध करने आए हैं, अपनी सेना ध्वस्त करवाने नहीं। निश्चय ही वे भी तुम्हारी सेना का संहार करेंगे ही। पर क्या तुम आज के युद्ध से असंतुष्ट हो? क्या

सेनापति को तुम उसकी त्रुटियाँ बताने आए हो? दुर्योधन बोला, पितामह आप रूष्ट न हों। मैं तो केवल यह कहने आया हूँ कि युद्ध के नौ दिन व्यतीत हो गए हैं, हमारे असंख्य सैनिक मारे गए हैं; किंतु पांडवों के पक्ष का एक भी प्रमुख योद्धा मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ, न ही उनकी शक्ति कम हो रही। क्या हमें अपनी सेनामें किसी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन की आवश्यकता नहीं हैं? भीष्म बोले, तुम कैसा परिवर्तन चाहते हो? युद्ध में प्रतिदिन परिवर्तन हो रहे हैं। व्यूह बदले जा रहे हैं। प्रतिदिन योद्धाओं के द्वंद्व बदले जाते हैं। दुर्योधन बोला मैं व्यूह परिवर्तन की नहीं, रण-नीति के परिवर्तन की बात कह रहा हूँ पितामह। अब तक तो हम साधारण सैनिकों का नाश कर रहे हैं, जिनसे हमारी कोई शत्रुता नहीं है। ये सारे सैनिक मारे जाएँगे तो भी युद्ध समाप्त नहीं होगा और जिनसे हमारी शत्रुता है, जिनके पतन से हमारी विजय होगी तथा युद्ध समाप्त होगा, उन योद्धाओंमे से तो अभी तक किसीका भी वध नहीं हुआ। भीष्म बोले, योद्धा तो क्षात्रधर्म में प्रवृत्त हैं। वह तो पूर्ण एकाग्रता और दक्षता से अपने कौशल का प्रदर्शन करता है। उसमें व्यक्तिगत शत्रुता और राग-द्वेष कहाँ है? दुर्योधन बोला, मैं चाहता हूँ कि यह युद्ध शीघ्र समाप्त हो। पितामह भीष्म बोले, पुत्र पाण्डवों से संधि कर लो। उनका राज्य लौटा दो। वे इंद्रप्रस्थ का राज्य लेकर ही संतुष्ट हो जाएँगे और हस्तिनापुर का राज्य फिर भी तुम्हारे पास ही रहेगा। दुर्योधन बोला, क्या उससे युद्ध रुक जाएगा पितामह। तब भी युद्ध समाप्त नहीं होगा। क्योंकि युद्ध का कारण शेष रहेगा। पाण्डवों को हस्तिनापुर का राज्य चाहे अपेक्षित न हो, किंतु मुझे इंद्रप्रस्थ का राज्य चाहिए और जब तक एक भी पांडव जीवित होगा, वे इंद्रप्रस्थ का राज्य नहीं छोड़ेंगे। इसलिए जब तक पांडवों का वध नहीं होगा तब तक यह युद्ध समाप्त नहीं हो सकता।

भीष्म बोले, तो क्या अब तुम यह चाहते हो कि मैं पाण्डवों का वध कर दूँ। यह मेरे लिये सम्भव नहीं है दुर्योधन। दुर्योधन बोला, यह तो युद्ध है पितामह। जहाँ कुछ भी हो सकता है। सेनापति का दायित्व राजा की इच्छाओं को पूर्ण करना होता है और मैं चाहता हूँ कि आप पाण्डवोंके महारथियोंका वध करने को प्राथमिकता दें। प्रतिदिन एक पाण्डव तो मरना ही चाहिए- चाहे हमारी सारी सेना एक भाई को ही घेरकर क्यों न लड़े। चाहे हमारा युद्ध, धर्मयुद्ध के नियमों के विरुद्ध ही क्यों न हो। मुझे धर्म नहीं विजय चाहिए समझे महासेनापति। यदि कल से इस नीति का पालन नहीं हुआ तो स्मरण रहे कि राजा को अधिकार है कि वह एक सेनापति को निरस्त कर दूसरा सेनापति नियुक्त कर सकता है। राजा जब युद्ध ठानता है तो उसका एक ही लक्ष्य होता है विजय, शत्रु चाहे कोई भी हो।

भीष्म बोले, प्रत्येक राजा जानता है कि युद्ध का एक समाधान संधि भी है। दुर्योधन बोला, दुर्योधन मर जाएगा, किंतु पांडवों से सन्धि नहीं करेगा। इस विषय को आप यहीं छोड़ दें पितामह और देख लें कि कल के युद्ध में किसी न किसी महानायक को धराशायी होना ही है।

भीष्म ने व्यथित स्वर में दुर्योधन से कहा, तुम प्रतिदिन देखते हो कि मैं युद्ध में क्या करता हूँ। फिर भी दिनभर में जितने बाण मेरे शरीर पर लगते हैं, उससे अधिक वाग्बाण तुम मुझे मेरे शिबिर में आकर मारते हो। तुम्हें विजय चाहिए और तुम्हें लगता है कि वह तुम्हें कर्ण के माध्यम से मिलेगी। कर्ण समरभूमि में आए, उसके लिए मुझे वहाँ से हटना होगा। मैं क्षत्रिय हूँ। जीते जी युद्धक्षेत्र से हट नहीं सकता। इसलिए कर्ण को समरभूमि में आने देने के लिए मुझे मरना होगा। कर्ण के माध्यम से तुम्हारी जय के लिए मैं अपने प्राण देने को प्रस्तुत हूँ। जब गंधर्वों ने तुम्हें बाँध लिया था तो कर्ण भागनेवालों में सबसे पहला व्यक्ति था। तब अर्जुन ने ही तुम्हें गंधर्वों से मुक्त कराया था। विराटनगर में अर्जुन ने हम सबको पराजित किया था- कर्ण को भी। यह वहीं अर्जुन है। तुमने पांडवों और सृंजयों से वैर ठाना है। तुमने उन्हें वंचित किया है। तुमने उन्हें अकारण अपमानित किया है। तुमने उनके वध का प्रयत्न किया है बार-बार। अब स्वयं ही उनसे युद्ध क्यों नहीं करते? भागे-भागे, कभी इधर और कभी उधर जाते हो।

कभी अपने पुरुषत्व का भी परिचय दो। मैं तुम्हें फिर बताना चाहता हूँ कि इंद्र सहित सारे देवता मिलकर भी अर्जुन को नहीं जीत सकते। वहाँ क्रुद्ध दुर्योधन शकुनि और दु:शासन सहित कुरु-सेनापति भीष्म के शिबिर में घुस गया था- यही पूछने के लिए कि आज हाथ में आये सम्भ्रमित अर्जुन को उन्होंने जीवित कैसे छोड़ दिया?

भीष्म ने और कुछ चाहा हो या न चाहा हो, गृहकलह कभी नहीं चाहीं, कुरुवंश को नाश से बचाने के लिए उन्होंने क्या नहीं किया। बाहरी आक्रमणों से भीष्म को कोई भय नहीं था। भीष्म जानते थे कि उनके जीवित रहते कोई बड़े से बड़ा योद्धा भी हस्तिनापुर की ओर आँख उठाकर नहीं देख सकता किन्तु गृहकलह का दमन तो भीष्म के शौर्य से नहीं हो सकता था। वे क्या जानते थे कि पिता की एक इच्छा पूरी करने के लिए अपने संपूर्ण जीवन दे देनेवाले पुत्रों के स्थान पर पिता और पितामह को वध की धमकी देनेवाले पुत्र और पौत्र जन्म लेंगे।

धृतराष्ट्र की धूर्तता और लोभ को वे भलीभाँति पहचानते थे। भोग, सत्ता और अधिकार के लिए उसकी लपलपाती जिव्हा को कौन देख नहीं सकता था। गांधारी की शालीनता और पति-भक्ति जैसे लोक-विश्रुत गुणों के पीछे छिपी उसकी प्रकृति भी भीष्म से छिपी हुई नहीं थी। राजसत्ता और स्त्री-भोग के प्रति पांडु में भी कम दुर्बलता नहीं थी। भीष्म सब कुछ देखते रहे थे और केवल एक ही प्रयत्न करते रहे थे कि किसी प्रकार कुरुकुल के भीतर शांति बनी रहे।

जब पांडवों को उनका पैतृक राज्य न देकर धृतराष्ट्र ने उन्हें खांडव वन और खांडवप्रस्थ के खंडहर तथा प्रजा के रूप में बर्बर क्रूर हिंस्र जातियाँ, इस अपेक्षा से सौंप दी थीं कि पांडव उनसे लड़ते-भिड़ते ही समाप्त हो जाएँगे, तो भी भीष्म ने सोचा था कि यह क्रूर धृतराष्ट्र इन अबोध लड़कों को हिंस्र पशुओं के सम्मुख डाले दे रहा है। किंतु पांडवों ने कितनी शांति से उसी भूखंड को चुपचाप स्वीकार कर लिया था और गृह-युद्ध फिर से टल गया था, कुरुवंश विनाश से बच गया था। माता सत्यवती को उन्होंने कुरुवंश की रक्षा का वचन दिया था पर दुर्योधन की अधर्मपूर्ण इच्छाओं को संरक्षण देने का नहीं। कुरुवंश की रक्षा के लिए, पांडवों की रक्षा भी आवश्यक थी। कुरुकुल का धर्म तो उन्हीं में स्थित था। दुर्योधन तो कुरुकुल का संचित पाप ही था। पर दुर्योधन का नियमन कैसे होता? उसे कौन समझाता? उसका शासन कौन करता?

पांचालराज द्रुपद, धृष्टद्युम्न युधिष्ठिर के शिबिर में आए वहाँ कृष्ण और अर्जुन पहले से ही विद्यमान थे। युधिष्ठिर ने उनका स्वागत किया और बोले, आइये पांचालराज। आपसे युद्ध विषयक नीतिके ऊपर चर्चा करनी है। उसी समय नकुल और सहदेव भी वहाँ आ गये। द्रुपद युधिष्ठिर से बोले, आपसे पहले मैं आपको कुछ कहना चाहता हूँ। राजन। क्या आपको नहीं लगता कि आज हमारी पांचालोंकी असाधारण क्षति हुई है। क्षति तो प्रतिदिन ही हो रही है। आज युद्ध का नौवाँ दिन था पर हम आज भी भीष्म का कुछ नहीं बिगाड़ पाएं। युधिष्ठिर बोले, मैं भी इन्हीं बातों से चिंतित हूँ महाराज द्रुपद। आपकी चिन्ता और मेरी चिन्ता में कोई विशेष अन्तर नहीं है। द्रुपद बोले, अधिक नहीं तो थोड़ा अन्तर तो है ही। मैं यह मानता हूँ कि वैसे तो भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य सारे ही पाण्डवसेना का विकट संहार कर रहे है। किन्तु उनका पांचालोंसे विशेष बैर है। वे पाण्डवों और यादवों के सेना के प्रति इतने क्रूर नहीं है जितने पांचालो, सृंजयों, सोमकों और प्रभद्रकों के प्रति हैं। वे प्रतिदिन हमारा भयंकर विनाश कर रहे हैं।

सहदेव बोला, पांचालराज। क्या आप अपनी सेनाको हमारी सेना से अलग मानते हैं? द्रुपद बोले, नहीं सहदेव। सेना तो एक ही है। मेरी बात तो समझने का प्रयास करो। भीष्म और द्रोण पाण्डवोंके शत्रु नहीं हैं। लेकिन वे पांचालों के शत्रु हैं। भीष्म ने तो पाण्डवोंका वध नहीं करने की प्रतिज्ञा कर रखी है। किन्तु पांचाल, सोमक, सृंजय और प्रभद्रक उनके लिए अवध्य नहीं है। इसलिए वे प्रतिदिन हमारा भयंकर संहार कर रहे है। नकुल बोला, पांचाल नरेश, युद्धमें संहार तो होता ही

है। महाराजा विराट के तीन पुत्र मारे गए। उलूपीपुत्र इरावान मारा गया। द्रुपद बोले, मानता हूँ। किन्तु भीष्म जैसे योद्धा से अपने सैनिकों को बचाना हमारा दायित्व है और वहीं आप नहीं कर रहे है। मैं देख रहा हूँ कि शत्रु से कोई युद्ध ही नहीं कर रहा है। भीम बोला, यह आप कैसे कह सकते हैं ? आज पाँचों द्रौपदेयों और अभिमन्यु ने राक्षस अलंबुश के साथ कैसा भयंकर युद्ध किया। उस स्थान पर लड़ रही कौरवसेना पलायन कर गई। अलंबुश आज अभिमन्यु से पराजित हुआ। अर्जुन ने पितामह भीष्म से भीषण युद्ध किया। द्रोण, अश्वत्थामा तथा कृपाचार्य ने सात्यकि से भयंकर युद्ध किया। अर्जुन ने तो त्रिगर्तों का एक प्रकार से सर्वनाश ही कर दिया। मैंने स्वयं कौरवों की सेना को प्राय: नष्ट कर दिया था। अभिमन्यु ने चित्रसेन को भी पराजित किया। धर्मराज, नकुल और सहदेव ने शकुनि की अश्वसेना को भूमिसात् कर दिया है।

धृष्टद्युम्न बोला, यह हम सब जानते हैं मझले भैया। पर आप यह भूल रहे कि आचार्य द्रोण ने आज फिर एक बार पिताश्री को नीचा दिखाया है। वृद्ध भीष्म पितामह द्वारा पांडव सेना इतनी पीडित हुई कि वो समरभूमि छोड़कर ही भाग गयी। भीष्म की क्रूरता और उनके सम्मुख धनंजय की कोमलता को देखकर स्वयं श्रीकृष्ण भी आहत हुए और धनंजय से बोले, यदि तुम अपने पितामह के मोह से मोहित नहीं हो रहे हो तो भीष्मपर प्रहार करो। जिस अवसर की अभिलाषा और प्रतीक्षा थी वह आ गया है। धनंजय को उनकी प्रतिज्ञा स्मरण करायी और उन्हें क्षत्रियधर्म की कठोरता का स्मरण कराया।

यह सुनकर कृष्ण मुस्कराकर बोले, यह युद्ध कोई ऐसा कठिन नहीं है धर्मराज। यदि अर्जुन भीष्म का वध नहीं करना चाहता तो आप मुझे आज्ञा दीजिये मैं उनका वध करूँगा। मैंने पहले भी कहा हैं जो पाण्डवों के शत्रु हैं मेरे भी शत्रु हैं और जो उनके मित्र हैं वे मेरे भी सुहृद हैं। मैं पार्थ की प्रतिज्ञा पूरी करूँगा। अपने मित्र के वचन का पालन मेरे लिए उतना ही आवश्यक है, जितना उसके लिए। युधिष्ठिर बोले, नहीं वासुदेव। मैं आपको असत्यवादी नहीं बना सकता। पितामह ने हमारे पक्ष से युद्ध करना स्वीकार नहीं किया था किन्तु उन्होंने हमें उचित परामर्श देने का वचन अवश्य दिया था। यदि हम उनसे पूछे कि ऐसे धर्मसंकट में हमारे लिए वे क्या परामर्श देते हैं?

द्रुपद बोले, धर्मराज मैं जानता हूँ कि अर्जुन के साथ तुम्हारे मन में भी पितामह भीष्म के लिए कम मोह नहीं है। हमारा आरोप तो इतना ही है कि जब भी पांचालों ने भीष्म की ओर कदम बढ़ाए, तब-तब सारे कौरव महारथी और अतिरथी भीष्म की रक्षा को दौड़े आए, किंतु जब-जब भीष्म अथवा द्रोण के हाथों पांचालों, सोमकों, सृंजयों और प्रभद्रकों का संहार हुआ, पाण्डवोंने उनकी रक्षा का वैसा गंभीर प्रयत्न कभी नहीं किया। द्रुपद के इस खुले आरोप ने पांडवों को जैसे अवाक्र कर दिया। कोई कुछ नहीं बोला। युधिष्ठिर बोले, क्षत्रियत्व को धिक्कार है। अब मैं भी भीष्म को मार्ग से हटाना चाहता हूँ क्योंकि बिना भीष्म को युद्ध से हटाये हमें न्याय नहीं मिल सकता। हम भीष्म से ही इसके लिए परामर्श करें। धृष्टद्युम्न ने पूछा, यदि पितामह की परामर्श से हमारी समस्या का समाधान न हुआ तो? युधिष्ठिर बोले, तो फिर जैसा श्रीकृष्ण कहेंगे वैसा मैं करने को प्रस्तुत हूँ।

बहुत देरतक सोचने-विचारनेके बाद राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्णकी ओर देखकर कहा- श्रीकृष्ण। आप महात्मा भीष्मका भयंकर पराक्रम देखते हैं न? जैसे हाथी नरकुलके वनको रौंद डालता है, उसी प्रकार ये हमारी सेनाको कुचल रहे हैं। धधकती हुई आगके समान इन भीष्मकी ओर हमें आँख उठाकर देखनेतकका साहस नहीं होता। क्रोधमें भरे हुए यमराज, वज्रधारी इन्द्र, पाशधारी वरुण और गदाधारी कुबेरको भी युद्धमें जीता जा सकता है; परंतु कुपित हुए भीष्मपर विजय पाना असम्भव जान पड़ता है। ऐसी स्थितिमें अपनी बुद्धिकी दुर्बलताके कारण भीष्मके साथ युद्ध ठानकर मैं शोकके समुद्रमें डूब रहा हूँ। कृष्ण। अब मेरा विचार है, वनमें चला जाऊँ। वहाँ जानेमें ही अपना कल्याण दिखायी देता है। युद्धकी तो बिल्कुल इच्छा नहीं है; क्योंकि भीष्म निरन्तर हमारी सेनाका संहार कर रहे हैं। जैसे जलती हुई आगकी ओर दौड़नेवाला पतंग मृत्युके ही मुखमें जाता

है, उसी प्रकार भीष्मके पास जानेपर हमलोगोंकी दशा होती है। वासुदेव। हमारा पक्ष क्षीण हो चला है, हमारे भाई बाणोंकी चोटसे बेहद कष्ट पा रहे हैं; भ्रातृस्नेहके ही कारण हमारे साथ ये भी राज्यसे भ्रष्ट हुए, इन्हें भी वन-वन भटकना पड़ा तथा हमारे ही कारण द्रौपदीने भी कष्ट भोगा। मधुसूदन। मैं जीवनको बहुत मूल्यवान मानता हूँ और वही इस समय दुर्लभ हो रहा है। इसलिये चाहता हूँ, अब जिंदगीके जितने दिन बाकी हैं उनमें उत्तम धर्मका आचरण करूँ। केशव। यदि आप हमलोगोंको अपना कृपापात्र समझते हों तो ऐसा कोई उपाय बताइये, जिससे हमारा हित हो और धर्ममें भी बाधा न आवे।

समय रणभूमि में वीरों से छलनी खड़ा है। सोच रहा है कि ये धर्मयुद्ध कब खत्म होगा। युद्ध के ढंग से तो लगता है कि यह युद्ध कभी समाप्त ही नहीं होगा। कभी कौरवों का पलडा भारी हो जाता है तो कभी पांडवों का। किन्तु हर दिन के साथ गान्धारी पुत्र गिनती में कम होते जा रहे है। नौवा दिन समाप्त हुआ। गान्धारी केवल ७४ पुत्रों की मां रह गयी। हे सूर्यदेव प्रणाम। अब समय भी अपने घावों पर रात के अन्धकार का मृदुल स्नेह लेप लगायेगा और सूर्य के उदय होने की प्रतीक्षा कर रहा है किन्तु यह रात जागने की रात है। विचार करने की रात है। आदरणीय है ये रात क्योंकि यह ऐसा दृश्य देखनेवाली है जो आज से पहिले न किसी रात ने देखा और न ही उसके बाद कोई रात देखेगी। यह दृश्य शिबिर में बैठे सोच रहे हैं और यह सोच आज के रात की भूमिका है।

पांडवों के शिबिर में कृष्ण के साथ बैठे हैं युधिष्ठिर बोला, हे मत्स्य नरेश आपके विचार में यह युद्ध जीतने का क्या उपाय है? विराट बोला, गंगापुत्र के रहते तो यह युद्ध कोई जीत ही नहीं सकता महाराज। द्रुपद बोले, किन्तु उनके पास तो इच्छा मृत्यु का वरदान है मत्स्य नरेश। धृष्टद्युम्न बोला, यही तो कठिनाई है नहीं तो मैं अब तक उनके जीवन वृक्ष को कितनी बार काट चुका होता। अर्जुन बोला, उनके विषय में इतने कठोर स्वरों का उपयोग मत करो। धृष्टद्युम्न बोला, तो क्या उनके चरण स्पर्श करूं और यह कहूं कि हम आपके बहुत आभारी हैं। आप ही के कारण जो यह युद्ध एक दिन में जीत सकते उसे हम नौ दिन में भी जीत ना पाये। कृष्ण बोले, ये तो बडा ही क्षत्रिय विचार है भ्राता धृष्टद्युम्न। धृष्टद्युम्न बोला, तो क्या आप यह कहना चाहते हैं कि मैं जाकर उनके चरण स्पर्श करूं? कृष्ण बोले, उन जैसे महात्मा का चरण स्पर्श तो बडे सौभाग्य की बात है राजकुमार। इस धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र में उनके आशीर्वाद के अतिरिक्त तो और कोई प्रसाद है ही नहीं।

युधिष्ठिरकी यह करुणाभरी बात सुनकर श्रीकृष्णने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा, धर्मराज। आप विषाद न करें। आपके भाई बड़े ही शूरवीर, दुर्जय और शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं। अर्जुन और भीम तो वायु तथा अग्निके समान तेजस्वी हैं। नकुल-सहदेव भी बड़े पराक्रमी हैं। आप चाहें तो मुझे भी युद्धमें लगा दें, आपके स्नेहसे मैं भी भीष्मसे युद्ध कर सकता हूँ। भला, आपके कहनेसे मैं युद्धमें क्या नहीं कर सकता? यदि अर्जुनकी इच्छा नहीं है, तो मैं स्वयं भीष्मको ललकारकर कौरवोंके देखते-देखते मार डालूँगा। भीष्मके मारे जानेपर ही यदि आपको अपनी विजय दिखायी देती है, तो मैं अकेले ही उन्हें मार सकता हूँ। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि जो पाण्डवोंका शत्रु है, वह मेरा भी शत्रु ही है। जो आपके हैं, वे मेरे हैं और जो मेरे हैं, वे आपके भी हैं। आपके भाई अर्जुन मेरे सखा, सम्बन्धी तथा शिष्य हैं; आवश्यकता हो तो मैं इनके लिये अपने शरीर की बलि भी दे सकता हूँ और ये भी मेरे लिये प्राण त्याग सकते हैं। हमलोगोंने प्रतिज्ञा की है कि एक-दूसरेको संकटसे बचायेंगे। अत: आप आज्ञा दीजिये, आजसे मैं भी युद्ध करूँगा। अर्जुनने उपप्लव्यमें जो सब लोगोंके सामने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं भीष्मका वध करूँगा, उसका मुझे हर तरहसे पालन करना है। जिस कामके लिये अर्जुनकी आज्ञा हो, वह मुझे अवश्य पूर्ण करना चाहिये। अथवा भीष्मको मारना कौन बड़ी बात है? राजन्। यदि अर्जुन तैयार हो जायें तो असम्भव कार्य भी कर सकते हैं। दैत्य और दानवोंके साथ सम्पूर्ण देवता भी युद्ध करने आ जायें तो अर्जुन उन्हें भी मार सकते हैं; फिर भीष्मकी तो बिसात ही क्या है?

युधिष्ठिरने कहा- माधव आप जो कहते हैं, वह सब ठीक है। कौरवपक्षके सभी योद्धा मिलकर भी आपका वेग नहीं सह सकते। जिसके पक्षमें आप-जैसे सहायक मौजूद हैं, उसके मनोरथ पूर्ण होनेमें क्या संदेह हैं? गोविन्द। जब आप रक्षाके लिये तैयार हैं तो मैं इन्द्र आदि देवताओंको भी जीत सकता हूँ; भीष्मकी तो बात ही क्या है? किंतु अपने गौरवकी रक्षाके लिये मैं आपको अपना वचन मिथ्या करनेके लिये नहीं कह सकता। आप अपनी पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार बिना युद्ध किये ही मेरी सहायता करें। भीष्म भी मेरे साथ शर्त कर चुके हैं कि मैं तुम्हारे लिये युद्ध तो नहीं करूँगा, पर तुम्हें हितकी सलाह दिया करूँगा। वे मुझे राज्य भी देनेवाले हैं और अच्छी सम्मति भी। वे अवश्य ही हमारे हितकी बात बतायेंगे। जैसा कहेंगे, उसीके अनुसार कार्य किया जायगा; क्योंकि जब हमारे पिता मर गये और हम लोग जब छोटे बालक थे, उस समय उन्होंने ही हमें पाल-पोसकर बड़ा किया था। माधव। वे हमारे पिताके पिता हैं, वृद्ध हैं तो भी हम उन्हें मारना चाहते हैं। हमें धिक्कार है क्षत्रियोंकी ऐसी वृत्तिको।

भीम बोला, पर धनंजय ने पितामह से युद्ध तो किया। धृष्टद्युम्न बोला, क्या आप लोगोंको पता नहीं है धनंजय के भीष्म संबंधी कोमलता देखकर भीष्म पाण्डवोंके उत्तमोत्तम वीरों का वध करते जा रहे हैं। बीच ही में अर्जुन बोला, मैंने स्वयं को बहुत साधा किंतु मैं पितामह के वक्ष में बाण मार नहीं सकता। सहसा युधिष्ठिर बोले, मैं तुम्हारी बात समझता हूँ धृष्टद्युम्न। युद्ध तो मुझे भी अच्छा नहीं लगता इसलिए नहीं कि मैं लड़ना नहीं चाहता। वे हमारी सेना का संहार कर रहे है और हम कुछ नहीं कर पा रहे है। मुझे भी यह पीड़ा कोंच रही है कि मेरे ही कारण मेरे भाई भी राज्य से वंचित होकर बैठे हैं। मेरे ही कारण भरी सभा में पांचाली का अपमान हुआ। मैंने सोचा था कि इस युद्ध से मैं इन सबका सम्मान और वैभव लौटा लाऊँगा। किन्तु अब लगता है कि प्राण ही बच जाएं तो बड़ी बात होगी। यदि मैं वन में चला जाऊँ तो किसीको इस युद्ध की आवश्यकता ही नहीं होगी। न पितामह के हाथों पांचालों का विनाश होगा और न ही धनंजय को पितामह के वध की कोई बाध्यता होगी।

तदनन्तर श्रीकृष्णने युधिष्ठिरसे कहा- महाराज। आपकी राय मुझे पसंद है। आपके पितामह देवव्रत बड़े ही पुण्यात्मा हैं। वे केवल दृष्टिमात्रसे सबको भस्म कर सकते हैं। अत: उनके पास वधका उपाय पूछनेके लिये अवश्य चलना चाहिये। विशेषत: आपके पूछनेपर वे सच्ची ही बात बतायेंगे। उनकी जैसी सम्मति होगी, उसीके अनुसार हमलोग युद्ध करेंगे।

बडे भैय्या को जाना चाहिये और गंगापुत्र ने जो विजयी होने का आशीर्वाद दिया था वो वापिस लौटा आये। युधिष्ठिर बोला, क्या उनका आशीर्वाद लौटाऊं वासुदेव? कृष्ण बोले, हां बडे भैय्या। यदि उनके आशीर्वाद और आपकी विजय के बीच वो स्वयं धनुष बाण लेकर खड़े है तो फिर उनके उस आशीर्वाद का क्या अर्थ? भूखे के सामने सोने की थाली किन्तु रिक्त। भूखा क्या थाली खायेगा? यदि उन्होंने विजयी होने का आशीर्वाद दिया है तो उनके उस आशीर्वाद की रक्षा भी वे ही करेंगे ना। युधिष्ठिर बोले, किन्तु माधव... कृष्ण बोले, किसी किन्तु का तो प्रश्न ही नहीं उठता। वे जानते थे कि इस धर्मयुद्ध में तुम्हारे विरोध में युद्ध करेंगे। वे ये भी जानते थे कि उन्होंने इच्छा मृत्यु का कवच पहिन रखा है। वे ये भी जानते थे कि कौरव सेना के प्रधान सेनापति वे ही हैं जब तक वे वीरगति को प्राप्त नहीं होंगे तब तक पांडव सेना की विजय सम्भव नहीं तो फिर उन्होने विजयी होने का आशीर्वाद दिया ही क्यों? अभिमन्यु बोला, क्या आप इस प्रश्न का उत्तर नहीं जानते मामाश्री? कृष्ण बोले, मैं क्या जानता हूँ इसे छोडो वत्स परन्तु बड़े भैया और पितामह के बीच में मैं क्यों पडूं? ये तो पौत्र और पितामह की अपनी व्यक्तिगत समस्या है। तो यह तो बडे भैया जाने और पितामह जाने। बडे भैया आप चाहे तो पार्थ को भी अपने साथ लेते जाये। इस प्रकार सलाह करके पाण्डव और अर्जुन भीष्मके शिबिरमें गये। उस समय उन लोगोंने अपने अस्त्र-शस्त्र और कवच उतार दिये थे। वहाँ पहुँचकर पाण्डवोंने भीष्मके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम किया और

कहा कि हम आपकी शरण हैं। तब भीष्मने उन सबको देखकर कहा, मैं आपका स्वागत करता हूँ।

भीष्म बोले, आओ पुत्र, विजयी भव। अर्जुन बोला, हम यह आशीर्वाद लेने नहीं आये पितामह। अब तो आपको हमारी ओर से यह आभार प्रकट करने आये है कि हमें रणभूमि में परशुराम शिष्य भीष्म के होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हम तो अपनी ओर से आभार प्रकट करने आये है कि हमारे शरीर को आपके बाणों से घावों का प्रसाद मिला किन्तु हमें कोई आशीर्वाद मत कीजिये पितामह। भीष्म बोले, ये तुम क्या कह रहे हो वत्स? क्या कह रहे हो? मुझसे आशीर्वाद न लेने का यह अर्थ है वत्स क्या तुम मेरी गिनती शत्रुओं में करने लगे? युधिष्ठिर बोला, हम यह पाप कभी नहीं कर सकते पितामह किन्तु हम आपसे विजयश्री का आशीर्वाद भी नहीं लेना चाहते। भीष्म बोले, क्यों पुत्र? युधिष्ठिर बोला, हम अब यह नहीं चाहते पितामह की आपका आशीर्वाद अपराधियों की भांति हमारे सामने सिर झुकाये खड़ा हो। क्योंकि हमारी विजय और हमारे बीच में आप खडे है पितामह, केवल आप। भीष्म बोले, यह तो तुमने ठीक कहा है। तुम्हारे और तुम्हारी विजय के बीच खड़ा हूं अवश्य पर विवश हूं पुत्र। बीच से हट नहीं सकता। न तो मेरी पराजय सम्भव है, और न ही वध।

मैं तुमलोगोंका कौन-सा कार्य करूँ, जिससे तुम्हें प्रसन्नता हो? यदि कोई कठिन-से-कठिन काम हो तो भी बताओ, मैं उसे सर्वथा पूर्ण करनेका यत्न करूँगा। भीष्म प्रसन्नताके साथ जब बारंबार इस प्रकार कहने लगे, तो राजा युधिष्ठिरने दीनतापूर्वक कहा- प्रभो। जिस उपायसे यह प्रजाका संहार बंद हो जाय, वह बताइये। वीरवर। इस युद्धमें आपका वेग हमलोग कैसे सह सकते हैं? हमें तो आपमें तनिक भी असावधानी नहीं दिखायी देती। जब आप रथ, घोड़े, हाथी और मनुष्योंका विनाश करने लगते हैं, उस समय कौन मनुष्य आपपर विजय पानेका साहस कर सकता है? पितामह हमारी बहुत बड़ी सेना नष्ट हो गयी। अब बतलाइये, कैसे हम आपको जीत सकते हैं? और किस प्रकार अपना राज्य पा सकते हैं?

तब भीष्मने कहा- कुन्तीनन्दन। मैं सच्ची बात कहता हूँ, जबतक मैं जीवित हूँ, तुम्हारी विजय किसी तरह नहीं हो सकती। मेरे परास्त होनेपर ही तुमलोग विजयी होंगे। अत: यदि वास्तवमें जीतनेकी इच्छा है, तो जितनी जल्दी हो सके मुझे मार डालो। मैं अपने ऊपर प्रहार करनेकी आज्ञा देता हूँ। इससे तुम्हें पुण्य होगा। मेरे मर जानेपर सबको मरा हुआ ही समझो; इसलिये पहले मुझे ही मारनेका उद्योग करो।

युधिष्ठिर बोले, पितामह। तब आप ही वह उपाय बतलाइये, जिससे आपको हमलोग जीत सकें। युद्धमें जब आप क्रोध करते हैं, तो दण्डधारी यमराजके समान जान पड़ते हैं। इन्द्र, वरूण और यमको भी जीता जा सकता है; पर आपको तो इन्द्र आदि देवता तथा असुर भी नहीं जीत सकते। युधिष्ठिर बोला, इसीलिये तो वासुदेव ने कहा कि युद्ध के पहिले दिन जो आशीर्वाद दिया था वो आशीर्वाद मैं आपको लौटा दूं।

भीष्म बोले, अच्छा, अच्छा। तो यह वासुदेव ने कहा है। उनसे कहना पुत्र मैं दी हुई वस्तु वापिस नहीं ले सकता। चाहे वो आशीर्वाद ही क्यों न हो? मेरा बाण काटो पुत्र, मेरा धनुष काटो इससे मैं अतिप्रसन्न होऊंगा। मेरी बात ना काटो। यह काम दुर्योधन के लिये छोड़ दो। युधिष्ठिर बोला, क्षमा चाहता हूं पितामह। भीष्म बोले, आयुष्मान भव, वासुदेव से जाकर कहना दी हुई वस्तु मैं वापिस नहीं ले सकता। उससे जाकर यह भी कहना वो भलीभांति जानते है कि अन्त में जीत तो उन्ही की होगी क्योंकि वही आरम्भ है और अन्त भी वो ही और मध्य भी वो ही। वो यह भी जानते है कि तुम्हारी और तुम्हारे विजय के बीच से इस गंगापुत्र भीष्म को हटाने का उपाय क्या है? यदि कोई नारी सामने आजाये तो यह परशुराम शिष्य अस्त्र को हाथ नहीं लगाता फिर इस निहत्थे को रणभूमि से हटाने में कोई कठिनाई तो नहीं होगी प्रिय अर्जुन।

पाण्डुनन्दन। तुम्हारा कहना सत्य है; पर जब मैं हथियार रख दूँ, उस समय तुम्हारे महारथी मुझे मार सकते हैं। जो हथियार

डाल दे, गिर जाय, कवच उतार दे, ध्वजा नीची कर दे, भाग जाय, डरा हो, मैं आपका हूँ यह कहकर शरणमें आ जाय, स्त्री हो या स्त्रीके समान जिसका नाम हो, जो व्याकुल हो, जिसको एक ही पुत्र हो और जो लोकमें निन्दित हो- ऐसे लोगोंके साथ मैं युद्ध नहीं करता। संसारमें श्रीकृष्ण और अर्जुनके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं दिखायी देता, जो मुझे सावधान रहते मार सके। ऐसा करनेसे निश्चय ही तुम्हारी विजय होगी। जैसा मैंने बताया है वैसा ही करो, तभी धृतराष्ट्रके समस्त पुत्रोंको मार सकोगे।

पितामह भीष्म बोले, मैं सारा जीवन ऐसा ही रहा हूँ पुत्र। मेरी इच्छाएँ, कामनाएँ, मेरा चिंतन- इन सबके विरुद्ध रहा है मेरा कर्म। आजीवन मन में वीतराग बना रहा और एक बड़ी गृहस्थी ढोता रहा। स्नेह किसी से करता रहा, और कंधे पर किसी और को उठाए रखा। जिनकी पूजा करता था, उनसे युद्ध करना पड़ा। जिनसे प्रेम करता था, उनको ठुकराता रहा। मेरा जीवन तो द्वंद्वों का पुंज रहा है पुत्र। किंतु अब द्वंद्व अधिक दिन नहीं चलेंगे। तुम्हारी विजय की कामना करता हूँ अब तुम्हारे मार्ग में खड़ा भी नहीं रहूँगा। क्षत्रिय युद्ध से निरस्त नहीं होता पार्थ। जीवन से निरस्त होता है। जीवन भी एक युद्ध है और युद्ध में कभी-कभी बड़ी विकट परिस्थितियाँ आती हैं। दुर्योधन वीषबीज है। वह इस वंश का नाश करके रहेगा। अब कोई आशा शेष नहीं रही। इतनी बड़ी सेना का सेनापति कैसा असमर्थ और असहाय। मैं अब कुरुवंश का नाश रोक नहीं सकता, तो इस जीवन रूपी बंधन में बँधे रहने का प्रयोजन ही क्या। इसलिये मैं स्वेच्छा से इससे मुक्त होना चाहता हूँ। मुझे वीरों की सम्मानजनक मृत्यु चाहिए पुत्र अर्जुन। मैं साधारण सैनिक की मृत्यु नहीं मरना चाहता। कल के युद्ध में अंबा को उसके प्रतिशोध ताप से मुक्ति मिले और संसार में धर्म की स्थापना हो।

युधिष्ठिर बोले, किन्तु रणभूमि में कोई नारी कैसे आ सकती है पितामह? यह तो क्षत्रिय मर्यादा का उल्लंघन हो जायेगा। भीष्म बोले, वासुदेव ने तुम्हे जो कुछ पूछने को कहा था वो मैंने बता दिया। अब मर्यादा का यह प्रश्न लेकर उसी के पास जाओ। प्रणाम पितामह। भीष्म बोले, आयुष्मान भव, विजयी भव।

इस प्रकार भीष्मके मुखसे उनके मरणका उपाय जानकर पाण्डवोंने उन्हें प्रणाम किया और अपने शिबिरको लौट गये। भीष्मकी बात याद करके अर्जुन बहुत दुखी हुए और संकोचके साथ श्रीकृष्णसे बोले- माधव। भीष्म कुरुवंशके वृद्ध पुरुष हैं, गुरु हैं और हमारे दादा हैं; इनके साथ मैं कैसे युद्ध कर सकूँगा। बचपनमें मैं इनकी गोदमें खेला था। अपने धूलधूसरित शरीरसे न जाने कितनी बार इनके शरीरको मैला कर चुका हूँ। यद्यपि ये हमारे पिताके पिता हैं, तो भी इनकी गोदमें बैठकर मैं इन्हींको पिता कहकर पुकारता था। उस समय ये समझाते पुत्र। मैं तुम्हारा नहीं, तुम्हारे पिताका पिता हूँ। जिन्होंने इतने ममत्वसे पाला, उन्हींका वध मैं कैसे कर सकता हूँ? ये भले ही मेरी सेनाका नाश कर डालें, मेरी विजय हो या विनाश; किंतु मैं तो इनके साथ युद्ध नहीं करूँगा। अच्छा, कृष्ण। इसमें आपका क्या विचार है?

कृष्ण पांडवों के शिबिर में बैठे अमरूद खा रहे थे। कृष्ण बोले, अमरुद खाओगे नकुल। नकुल बोला, इच्छा नहीं है। कृष्ण बोले बडे मीठे है। तुम खाओ पार्थ। अर्जुन बोला, बडे भैया के प्रश्न का उत्तर दीजिये पितामह से युद्ध करने के लिये नारी कहां से लायी जाये? द्रौपदी बोली, क्या यहां पर किसी को मैं दिखाई नहीं दे रही हूँ? कल मैं पितामह का सामना करूंगी। कृष्ण बोले, तुम्हारी समस्या का समाधान तो मिल गया। कल्याणी गंगापुत्र का सामना करेगी। युधिष्ठिर बोले, ऐसा करने से क्षत्रिय मर्यादा का उल्लंघन नहीं हो जायेगा वासुदेव? पुरुषों के होते हुये यदि नारी को रणभूमि में आना पडे तो यह पुरुषों के लिये मरने की बात है। कृष्ण बोले, बात तो बडे भैय्या ठीक ही कर रहे है कि पुरुषों के रहते नारी भला रण में क्यों जावे? द्रौपदी बोली, मुझसे पुरुषों की बात मत कीजिये वासुदेव। कुछ पुरुषों को मैं भी जानती हूं। ये पांच महापुरुष चाहते यही है कि कोई ऐसा मार्ग निकल आये कि ये गान्धारी पुत्रों का वध करने से बच जाये। वे इन महापुरुषों

के सग्गे है और मैं तो पराई हूं। मेरा अपमान भी हो गया तो कौनसा आकाश गिर पड़ा? कौनसा पहाड़ टूट पड़ा? कृष्ण बोले, यह तो तुम इनके साथ खुला अन्याय कर रही हो कल्याणी। ये महापुरुष है जब तो साधारण मनुष्यों की भांति प्रत्याक्रमण नहीं करते। तुम भी एक असाधारण नारी हो द्रौपदी और एक असाधारण नारी की भांति प्रत्याक्रमण करना सीखो। क्या तुम यह चाहोगी कि कल इतिहास यह कहे कि तुम्हारे इन खुले हुये केशों के लिये लाखों लोग कट गये। क्या तुम्हारे ये केश रणभूमि में पडे हुये लाखों शवों का बोझ उठा सकेंगे? तुम केवल एक नारी नहीं हो कल्याणी। तुम समस्त नारी जाति के स्वाभिमान का प्रतीक हो। इसलिये जहां मूल प्रश्नों पर वाद-विवाद चल रहा हो वहां अपने ये अपमानित खुले हुये केश ना दिखलाया करो। आपका कहना उचित है बडे भैया। आपके होते हुये कल्याणी रणभूमि में नहीं जा सकती किन्तु भ्राता शिखंडी को तो कोई मर्यादा रोक नहीं सकती। अर्जुन बोला, भ्राता शिखंडी वे महारथी अवश्य है केशव किन्तु वे पितामह का सामना नहीं कर सकते। पितामह ने तो नारी की बात बोली। वे अर्धपुरुष ही सही किन्तु है तो पुरुष ही ना। कृष्ण बोले, वे तुम्हारे लिये अर्ध पुरुष होंगे पार्थ परन्तु पितामह उन्हे देखते ही धनुष रख देंगे। सहदेव बोला, ऐसा क्यों वासुदेव? कृष्ण बोले, ऐसा इसलिये कि गंगापुत्र भीष्म के लिये महारथी शिखंडी नारी ही है। गंगापुत्र उनमें काशी की राजकुमारी अम्बा को अवश्य पहिचान लेंगे। यह ठीक है कि गंगापुत्र भीष्म ने काशी की राजकुमारी का जाने या अनजाने में तनिक भी अपमान नहीं किया था किन्तु अपमान के नर्क में जलनेवाली अम्बा यह देख नहीं पायेगी और उसने हस्तिनापुर की राजसभा में यह प्रतिज्ञा की थी कि चाहे उसे जन्म पर जन्म लेने पड़े किन्तु वही गंगापुत्र भीष्म की मृत्यु का कारण बनेगी। तो उसने जन्म पर जन्म लिया और आज शिखंडी बनकर कुरुक्षेत्र में उपस्थित है। युधिष्ठिर बोले, तो क्या पितामह उनको पहिचान लेंगे वासुदेव। कृष्ण बोले, यदि वे गंगापुत्र भीष्म न होते तो कदाचित न पहिचान पाते किन्तु वे गंगापुत्र भीष्म है और इसीलिये शिखंडी के रूप में सामने खडी अम्बा को अवश्य पहिचानेंगे।

अर्जुन। पहले तुम भीष्मके वधकी प्रतिज्ञा कर चुके हो, फिर क्षत्रियधर्ममें स्थित रहते हुए अब उन्हें नहीं मारनेकी बात कैसे कह रहे हो? मेरी तो यही सम्मति है, उन्हें रथ से मार गिराओ; ऐसा किये बिना तुम्हारी विजय असम्भव है। देवताओंकी दृष्टिमें यह बात पहलेसे ही आ चुकी है, भीष्मके परलोक-गमनका समय निकट है। नियतिका विधान पूरा होकर ही रहेगा, इसमें उलट-फेर नहीं हो सकता। मेरी एक बात सुनो- कोई अपनेसे बड़ा हो, बूढ़ा हो और अनेकों गुणोंसे सम्पन्न हो; तो भी यदि वह आततायी बनकर मारनेके लिये आ रहा हो तो उसे अवश्य मार डालना चाहिये। युद्ध, प्रजाका पालन और यज्ञका अनुष्ठान- यह क्षत्रियोंका सनातन धर्म है।

अर्जुनने कहा- श्रीकृष्ण। यह निश्चय जान पड़ता है कि शिखण्डी भीष्मकी मृत्युका कारण होगा; क्योंकि उसे देखते ही भीष्म दूसरी ओर लौट जाते हैं। अत: शिखण्डीको उनके सामने करके ही हमलोग उन्हें रणभूमिमें गिरा सकेंगे। मैं दूसरे धनुर्धारियोंको बाणोंसे मारकर रोक रक्खूँगा। भीष्मकी सहायताके लिए किसीको आने न दूँगा और शिखण्डी उनसे युद्ध करेगा।

भीष्म अपने शिबिर से बाहर निकल गंगा किनारे जा रहे हैं वहां पर भूमि के टुकड़े को साफ करती हुई माता गंगा दिखाई देती है। भीष्म बोले, माते आप, प्रणाम। गंगा बोली, अब क्या आशीर्वाद दूं पुत्र। भीष्म बोला, मोक्ष का आशीर्वाद दीजिये माते। गंगा बोली, किन्तु तुम इस समय यहां कैसे आ गये पुत्र। भीष्म बोला, मैं सोच रहा था माते। बीते दिनों को तौल रहा था माते। तुला की दंडी बना स्वयं मैं यह देखने का प्रयत्न कर रहा था कि मेरा जीवन घाटे का सौदा निकला या लाभ का? गंगा बोली, जिसने अपने लिये कभी कुछ किया ही नहीं हो पुत्र तो उसका जीवन तो कभी घाटे का सौदा हो ही नहीं सकता। भीष्म बोले, बस, अम्बा का एक ऋण रह गया है और जब आज वासुदेव ने युधिष्ठिर को इसलिये भेजा कि वो मेरा दिया हुआ आशीर्वाद लौटा

दे तो मैं समझ गया कि अम्बा का ऋण चुकाने की घड़ी आ गई है। मैं शिखण्डी में छिपी हुई अम्बा को पहिले ही दिन पहिचान गया था माते किन्तु आप यहां क्या कर रही है? गंगा बोली, भूमि के इस टुकड़े को बुहार रही थी पुत्र। भीष्म बोले, भूमि के इस टुकड़े की क्या विशेषता है माते? गंगा बोली, कल यहीं तुम्हारी शैया बिछेगी पुत्र। तुम बहुत थक गये हो। अब विश्राम पर तुम्हारा अधिकार है। भीष्म का इस रणभूमि से हट जाने का समय आ गया है। उन्हें ज्ञात हो गया है कि प्रत्येक मनुष्य की इच्छा की एक सीमा है। वे प्रकृति के निर्णय को अपनी इच्छा से नहीं पलट सकते। अपने किसी मोह के कारण भीष्म अपना धर्म नहीं निभा पाए तो प्रकृति उनकी इच्छा पूर्ण क्यों करती। अब वे पिता के वरदान से अपनी इच्छा से मुक्त होना चाहते है। शायद यही प्रभु की इच्छा है कि जिसका कर्म समाप्त हो गया हो उसे जीवन की रंगभूमि से हट जाना चाहिए।

भीष्म के शिबिर में सेवक उन्हें युद्ध के लिये तैयार कर रहे हैं। भीष्म बोले, तुम लोगों ने मेरी सेवा ऐसे की है जैसे पुत्र पिता की करते हैं। मैं तुम दोनों की सेवा से अति प्रसन्न हूँ। सेवक बोला, हम तो यही चाहते है कि अगले जन्म में भी आपकी सेवा करने का गौरव प्राप्त हो। भीष्म बोले, अगले जन्म की बात न करो। मैं आज से तुम्हे दासत्व से मुक्त करता हूँ। तुम इसी क्षण से हस्तिनापुर के दास नहीं नागरिक हो। सेवक बोला, हमसे ऐसा कौनसा अपराध हुआ है जो आप हमें अपने से अलग कर रहे हो। भीष्म बोले, मनुष्य के लिये दासत्व से बढ़कर कोई कलंक नहीं बन्धु। वो तो स्वतन्त्र ही जन्म लेता है और स्वतन्त्र ही मरना भी चाहिये। भीष्म ने अपनी सारी सम्पत्ति उनको बांट दी और बोले जाओ अपना स्वतन्त्र जीवन आरम्भ करो। सेवक बोला, किन्तु जब आप सन्ध्या के पश्चात लौटेंगे तो आपके ये शस्त्र अस्त्र कौन उतरवायेगा? आपके लिये धोये हुये वस्त्र कौन लायेगा? भीष्म बोले, मेरी चिन्ता न करो नागरिक। अब जाओ मुझे एकान्त की आवश्यकता है। विधाता तुम्हे किसी जन्म में भी किसी का दास ना बनाये।

**मुक्त करी दासत्व से भीष्म पितामह ने दास, अब ना कहीं दासत्व का हो भारत में वास।**

अर्जुन शिखंडी के कक्ष में आता है। अर्जुन बोला, प्रणाम भ्राताश्री। शिखंडी बोला, मेरे पास तुम्हारे योग्य कोई आशीर्वाद नहीं है कुन्तीपुत्र। तुम्हारा आकार इतना बढ़ गया है कि आशीर्वाद का कोई हाथ तुम्हारे शीश पर नहीं पहुंच सकता। तुम तो आकार में विजय के आशीर्वाद से ऊंचे निकल चुके हो। विजय तुम्हारी छाया बन चुकी है कुन्तीपुत्र। अर्जुन बोला, यदि आशीर्वाद न देना है तो मत दीजिये किन्तु मेरी एक प्रार्थना तो माननी ही पड़ेगी। शिखंडी बोला, सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर भला मुझसे क्या प्रार्थना करेगा। मेरे पास ऐसा क्या है जो मैं तुम्हे दे सकूँ? अर्जुन बोला, है आपके पास श्री श्री। आज के युद्ध में मुझे आपका साथ चाहिये। आज मैं पितामह से अन्तिम युद्ध करना चाहता हूं और यह युद्ध मैं आपके सहायता के बिना जीत नहीं सकता। क्या आज आप मेरे साथ मेरे ही रथ पर चलने की कृपा करेंगे भ्राताश्री। बोलिये श्री श्री। शिखंडी बोला, अवश्य कुन्ती पुत्र अवश्य। तुम नहीं जानते तुम्हारे पितामह के साथ युद्ध करने के लिये मैं कितना व्याकुल हूं।

द्रोणाचार्य के शिबिर में अश्वत्थामा ने आकर प्रणाम पिताश्री किया। द्रोण बोले, आयुष्मान भव पुत्र। अश्वत्थामा बोला, इस रणभूमि में विजयी भव का आशीर्वाद आपके मुख से सुनने के लिये मेरे कान तरस गये हैं पिताश्री। द्रोण बोले, जो आशीर्वाद मिल जाये उसे स्वीकार कर लेना चाहिये पुत्र। प्रश्न करके देनेवाले को लज्जित नहीं करना चाहिये। तुम क्या जानो कि तुम जो मांग रहे हो वो देनेवाले के पास है भी या नहीं और यदि है तो कदाचित वो देना नहीं चाहता। और यदि नहीं तो वो लज्जित होगा। मांगने और देनेवाले की अपनी अपनी मर्यादा होती है पुत्र। अश्वत्थामा बोला, किन्तु आपका पुत्र होने के नाते मैं यह जानना चाहता हूं कि आपके पास यह आशीर्वाद है नहीं या आप मुझे यह आशीर्वाद देना नहीं चाहते।

द्रोण बोले, पितासे प्रश्न कर रहे हो पुत्र? अश्वत्थामा बोला, आप आज्ञा दीजिये की मैं दुर्योधन का सिर काटकर आपके

चरणों में डाल दूं मुझसे उसके व्यंग सहे नहीं जाते। कहता है कि कौरवों की सेना में होते हुये भी आप और गंगापुत्र भीष्म दोनों भी पांडवों की सेना के पक्ष में युद्ध कर रहे हैं। द्रोण बोले, यह वो मुझसे भी कह चुका है पुत्र। दुर्योधन तो उस बालक की भांति है पुत्र जो चन्द्रमा और अंगारे में अन्तर ही नहीं कर सकता। उसके कहने पर ध्यान मत दो। अश्वत्थामा बोला, ध्यान दूं कैसे नहीं पिताश्री जब वो कहता है तो कर्ण मुस्कुराता है। उसकी मुस्कान किसी कटार की भांति मेरे सीने के आर-पार हो जाती है और इसीलिये मैं आज आपसे यह असभ्य प्रश्न कर रहा हूं। मुझे बताइये पिताश्री की आप किसके पक्ष में है? द्रोण बोले, कदाचित मैं तुम्हारे पक्ष में हूँ पुत्र। किन्तु तुम मेरी और गंगापुत्र की पीड़ा को नहीं समझ सकते। हम अस्त हुये सूर्य हैं पुत्र और जब तक हम अस्त नहीं हो जाते, नया सूर्य उदय नहीं हो सकता इसलिये तुम हम लोगों की चिन्ता मत करो। हमें अस्त हो जाने दो। यही हमारी नियति है और यही हमारा ऐतिहासिक कर्त्तव्य है। कर्त्तव्य मार्ग पर नाते साथ नहीं चलते हैं पुत्र। इस मार्ग पर हर व्यक्ति अकेला ही रहता है। जो मैं कर रहा हूं उसका उत्तरदायित्व मुझपर है और जो तुम कर रहे हो उसका उत्तरदायित्व तुम पर है इसलिये मुझसे अब यह न पूछो कि विजयश्री का आशीर्वाद तुम्हे क्यों नहीं दे रहा हूं। जो आशीर्वाद दे रहा हूं उसे प्रणाम करके स्वीकार करो और यदि ये युद्ध जीतना चाहते हो तो अपने बलपर जीतो क्योंकि यह युद्ध आशीर्वादों के बल पर नहीं जीता जा सकता।

## १६) महाभारत का युद्ध (दसवाँ दिन)

### भीष्म और अर्जुन का युद्ध, भीष्म का पतन और अर्जुन के बाणों से भीष्म का धराशायी होना

धृतराष्ट्र बोले, आचार्य द्रोण ने यह क्या कहा संजय? संजय बोला, ठीक ही तो कहा महाराज। कुरुक्षेत्र आप ही के कहने के अनुसार धर्मक्षेत्र है तो यह युद्ध आशीर्वादों का कवच पहिन कर नहीं जीता जा सकता। ऐसे लोग तो बहुत कम है महाराज जो आशीर्वाद की मर्यादा जानते हैं। आशीर्वाद देना भी बडा दायित्व का काम है। स्वयं महारानी ने युवराज को विजयश्री का आशीर्वाद नहीं दिया था। आशीर्वाद कोई पूजा का प्रसाद नहीं है महाराज जो कोई भी हाथ फैलाये उसे दे दिया जाये। धृतराष्ट्र बोले, मैं देख रहा हूं संजय कि तुम्हारे स्वर भी विदुर के स्वर की भांति कडवे होते जा रहे है संजय। संजय बोला- कड़वाहट स्वरों में नहीं होती राजन। कड़वाहट तो कहनेवाले के हृदय में होती है और कुछ सुननेवालों के हृदय में। यदि आप हस्तिनापुर नरेश न रहे होते और यदि आप युवराज दुर्योधन के पिता न रहे होते तो हे भरतश्रेष्ठ आप इस युद्ध में विजयश्री का यह आशीर्वाद किसे देते?

धृतराष्ट्र बोले, किन्तु मैं हस्तिनापुर नरेश भी हूं और दुर्योधन का पिता भी ओर मैं जो हूँ वो ही रहूंगा। यह तो सम्भव है कि मैं हस्तिनापुर नरेश ना रहूं किन्तु दुर्योधन का पिता फिर भी रहूंगा। इसलिये अपनी कडवाहटें समेटो संजय और मुझे अपनी कड़वाहटों के साथ जीने दो। तनिक सोचो संजय। तनिक मेरे दुर्भाग्य का फैलाव देखने का प्रयत्न करो संजय कि मेरे पुत्र दुर्योधन को किसी ने भी विजयश्री का आशीर्वाद नहीं दिया और उधरवाले विजयश्री के आशीवार्दों की मालाये पहने खड़े है और मेरे पुत्र की वीरता देखो की वो अकेला ही इन आशीर्वादों से जूझ रहा है। युद्ध का आज कौनसा दिन है। संजय बोला, आज यह दसवां दिन है महाराज। धृतराष्ट्र बोले, इतिहास मुझे क्या कहेगा संजय? संजय बोला, यह प्रश्न न कीजिये महाराज क्योंकि सत्य को आप सह नहीं पायेंगे और असत्य मैं कहूंगा नहीं। धृतराष्ट्र बोले, तुम तो न कहकर भी सब कुछ कह गये मित्र किन्तु धर्म अमूर्त है मेरा काल है संजय। दृष्टिकोण महत्वपूर्ण होता है तो फूल के मापदंड से धूल को मापना धूल के साथ अन्याय होगा। मैं मानता हूं कि वासुदेव धर्मयुद्ध कर रहे हैं किन्तु मैं भी धर्मयुद्ध ही कर रहा हूं संजय।

द्रोणाचार्य अपने पुत्र को विजयश्री का आशीर्वाद चाहे दे या ना दे, गान्धारी अपने पुत्र को विजयश्री का आशीर्वाद दे या ना दे किन्तु दुर्योधन इस धर्मयुद्ध में मेरा प्रतिनिधित्व करता रहेगा। संजय बोला, किन्तु पवन का व्यवहार तो धूल और फूल के साथ समान ही होता है महाराज, पर फूल के पास पराग होता है और धूल के हाथ में रेत। फूल टहनी से जुडा होता है, टहनी तने में और तना जडों की अंगुलियों से धरती को पकडे रहता है किन्तु धूल के पास कोई जड नहीं तो उडकर वह आंखों में पड जाती है जैसे कि आप युवराज की आंखों में पड गये।

धृतराष्ट्रने पूछा, संजय। शिखण्डीने किस प्रकार भीष्मका सामना किया तथा भीष्मने किस प्रकार पाण्डवोंके साथ युद्ध किया? रात्रिको कदाचित ही पाण्डव शिबिरमें प्रधान व्यक्तियोंमें कोई सोया हो। दसवें दिनका युद्ध प्रात:काल होते ही प्रारम्भ हो गया। भीष्म प्रतिदिन अपनी सेनाका व्यूह बदल देते थे। वे आसुर, पैशाच आदि सभी पद्धतिके व्यूह निर्माणको जानते थे। इस ज्ञानका उपयोग करते थे। शिखण्डी इस दिन सप्रयत्न भीष्मके सम्मुख रहे- यह पाण्डवोंने पहिले ही निश्चय कर लिया था। पीछे तो अर्जुनने उसे अपने ही रथपर बैठा लिया। कौरव पक्ष भी पूरे प्रयत्नसे भीष्मकी रक्षामें लगा था किन्तु शिखण्डी और पाण्डवोंने आज भीष्मको समर शैय्या देनेका दृढ़ निश्चय कर लिया था।

संजयने कहा, जब सूर्योदय हुआ भेरी, मृदङ्ग और नगारे बजने लगे, चारों ओर शफ्ध्वनि होने लगी, उस समय समस्त पाण्डव शिखण्डीको आगे करके युद्धके लिये निकले। सेनाका व्यूह निर्माण करके शिखण्डी सबके आगे स्थित हुआ। भीम और अर्जुन उसके रथके पहियोंकी रक्षा करने लगे। उसके पिछले भागकी रक्षाके लिये द्रौपदीके पुत्र और अभिमन्यु खड़े हुए। इनके पीछे सात्यकि और चेकितान थे। इन दोनोंके पीछे पञ्चालदेशीय योद्धाओं के साथ धृष्टद्युम्न था। उसके पीछे नकुल-सहदेवसहित राजा युधिष्ठिर खड़े हुए। इनके पीछे अपनी सेनाके साथ राजा विराट थे। इनके बाद द्रुपद, केकय-राजकुमार और धृष्टकेतु थे। ये लोग पाण्डवसेनाके मध्यभागकी रक्षा करते थे। इस प्रकार सेनाकी व्यूह रचना करके पाण्डवोंने अपने जीवनका मोह छोड़कर आपकी सेनापर आक्रमण किया।

पौष वद्य एकादशी का युद्ध का दसवाँ दिन कुरुक्षेत्र के पूर्व क्षितिज पर सावधानी से खड़ा हो गया। आज पितामह ने कृष्ण को उनका विख्यात प्रणवोद्गार निकालनेवाला पांचजन्य शंख प्रसन्नता से फूँकने दिया। उन्होंने उसका रोमहर्षक नाद ध्यान से सुना। बीच में उन्होंने अपने गंगनाभ शंख की ध्वनि नहीं उठायी।

पाचजन्य की रोमहर्षक स्वर-लहरियाँ एक के बाद एक उठने लगीं। युद्ध के नौ दिन बाद आज पहली बार पांचजन्य के नाद से कुरुक्षेत्र की रणभूमि इस प्रकार गूँज उठी। पांचजन्य को फूँक-फूँककर कृष्ण की नीलवर्णी मुद्रा आरक्त हो गयी। इसके पहले कुरुक्षेत्र पर ऐसा कभी घटित नहीं हुआ था।

बहुत देर बाद पितामह ने पांचजन्य के प्रत्युत्तर में कौरव-सैनिकों को सुनाई दे-न-दे इस प्रकार अस्पष्ट शंखनाद किया। आज उनको संरक्षण देते हुए द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, दुर्योधन, अश्वत्थामा, जयद्रथ, भगदत्त आदि विशिष्ट कौरव-योद्धाओं ने पाण्डव-सेना पर चढ़ाई की। पाण्डव सेना के अग्रस्थान पर आज कृष्ण और धनुर्धर धनंजय के बीच धनुष तोलकर खड़ा शिखण्डी दिखाई दे रहा था। सात्यकि द्रोणपुत्र अश्वत्थामा को सँभाले, पितामह की बायीं ओर के सेना-पंख पर जा पहुँचा। अभिमन्यु दुर्योधन पर टूट पड़ा। रणभूमि में विराट और जयद्रथ, युधिष्ठिर और शल्य, धृष्टद्युम्न और शकुनि के बीच थर्रा देनेवाला युद्ध आरम्भ हुआ। विकराल गर्जना करते हुए भीम ने कौरवों के गजदल पर आक्रमण किया।

इसी प्रकार कौरव भी महारथी भीष्मको आगे करके पाण्डवोंकी ओर बढ़े। पीछेसे आपके पुत्र उनकी रक्षा करते थे।

इनके पीछे द्रोण और अश्वत्थामा थे। इन दोनोंके पीछे हाथियोंकी सेनाके साथ राजा भगदत्त चलता था। कृपाचार्य और कृतवर्मा भगदत्तके पीछे चल रहे थे। इनके अनन्तर कम्बोजराज सुदक्षिण, मगधराज जयत्सेन, बृहद्बल तथा सुशर्मा आदि धनुर्धर थे। ये आपकी सेनाके मध्यभागकी रक्षा करते थे। भीष्म प्रत्येक दिन अपना व्यूह बदलते रहते थे; वे कभी असुरोंकी ओर कभी पिशाचोंकी रीतिसे व्यूहका निर्माण करते थें।

राजन्। तदनन्तर आपकी और पाण्डवोंकी सेनाओंमें युद्ध छिड़ गया। दोनों पक्षके योद्धा एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे। अर्जुन आदि पाण्डव शिखण्डीको आगे करके बाणोंकी वर्षा करते हुए भीष्मके सामने आ डटे। महाराज। उस समय आपके सैनिक भीमके बाणोंसे आहत हो परलोक सिधार गये। नकुल, सहदेव और महारथी सात्यकि भी अपने पराक्रमसे आपकी सेनाको कष्ट पहुँचाने लगे। आपके योद्धा बराबर मार पड़नेके कारण पाण्डवोंकी विशाल सेनाको रोक न सके। इस प्रकार जब पाण्डव महारथी आपकी सेनाको कालका ग्रास बनाने लगे, तो वह सब दिशाओंकी ओर भाग चली। उसे कोई रक्षा करनेवाला नहीं मिला। शत्रुओंके द्वारा अपनी सेनाका यह संहार भीष्मसे नहीं सहा गया। वे प्राणोंका लोभ छोड़कर पाण्डव, पाञ्चाल और सृञ्जयोंपर बाण वर्षा करने लगे। उन्होंने पाण्डवोंके पाँच प्रधान महारथियोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया और हजारों हाथी तथा घोड़ोंको मार डाला। युद्धका दसवाँ दिन चल रहा था। जैसे दावानल सम्पूर्ण वनको जला डालता है, उसी प्रकार भीष्म शिखण्डीकी सेनाको भस्मसात् करने लगे। तब शिखण्डीने भीष्मकी छातीमें बाण मारना प्रारम्भ किया। भीष्मको उन बाणोंसे अधिक चोट पहुँची, तो भी शिखण्डीके साथ युद्ध करनेकी इच्छा न होनेके कारण वे उससे हँसते हुए बोले- तेरी जैसी इच्छा हो, मुझपर बाणोंका प्रहार कर या न कर; परंतु मैं तुझसे किसी तरह युद्ध नही करूँगा। विधाताने तुझे जिस स्त्री-शरीरमें पैदा किया है, आज भी वही तेरा शरीर है; इसलिये मैं तुझे शिखण्डिनी ही मानता हूँ।

उनकी यह बात सुनकर शिखण्डी क्रोधसे मूर्च्छित होकर बोला- महाबाहो। मैं आपका प्रभाव जानता हूँ, तो भी पाण्डवोंका प्रिय करनेके लिये आज तुमसे युद्ध करूँगा। मैं सत्य कहता हूँ, निश्चय ही आपका वध करूँगा। मेरी यह बात सुनकर आप जो उचित समझो, करो। आपकी जैसी इच्छा हो, बाणोंका प्रहार करो या ना करो; पर मैं आपको जीवित नहीं छोड़ सकता। जीवनकी अन्तिम घड़ीमें एक बार इस संसारको अच्छी तरह देख लो।

ऐसा कहकर शिखण्डीने भीष्मको बाणोंसे बींध डाला। अर्जुनने भी शिखण्डीकी बातें सुनी और यही अवसर है, ऐसा सोचकर उन्होंने उसे उत्तेजित किया। वे बोले, वीरवर। तुम भीष्मके साथ युद्ध करो। मैं भी शत्रुओंको दबाता हुआ बराबर तुम्हारे साथ रहकर लड़ूँगा। यदि भीष्मका वध किये बिना ही लौटोगे, तो लोग तुम्हारी और मेरी भी हँसी करेंगे। अत: पूरा प्रयत्न करके पितामहको मार डालो, जिससे हमलोगोंकी हँसी न होने पावे।

धृतराष्ट्रने पूछा- शिखण्डीने भीष्मपर कैसे धावा किया? पाण्डवसेनाके कौन-कौन महारथी उसकी रक्षा कर रहे थे? तथा दसवें दिनके युद्धमें भीष्मने पाण्डवों और सृञ्जयोंके साथ किस प्रकार युद्ध किया था?

सञ्जयने कहा- राजन्। भीष्म प्रतिदिनकी भाँति उस दिन भी युद्धमें शत्रुओंका संहार कर रहे थे। अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार उन्होंने पाण्डवोंकी सेनाका विध्वंस आरम्भ किया। उस समय पांडव और पाञ्चाल मिलकर भी उनका वेग नहीं रोक सके। सैकड़ों और हजारों बाणोंकी वर्षा करके उन्होंने शत्रु-सेनाको तहस-नहस कर डाला। इतनेमें वहाँ अर्जुन आ पहुँचे, उन्हें देखते ही कौरवसेनाके रथी भयसे थर्रा उठे। अर्जुन जोर-जोरसे धनुष टंकारते हुए बारंबार सिंहनाद कर रहे थे और बाणोंकी वर्षा करते हुए रणभूमिमें कालके समान विचरते थे। जैसे सिंहकी आवाज सुनकर हिरन भागते हैं, उसी प्रकार

अर्जुनकी सिंहगर्जनासे भयभीत हो आपकी सेनाके योद्धा भाग चले। यह देख दुर्योधनने भयसे व्याकुल होकर भीष्मसे कहा- यह पाण्डुनन्दन अर्जुन मेरी सेनाको भस्म कर रहा है। सभी योद्धा इधर-उधर भाग रहे हैं। भीमके कारण भी सेनामें भगदड़ मची हुई है। सात्यकि, चेकितान, नकुल, सहदेव, अभिमन्यु, धृष्टद्युम्न और घटोत्कच ये सभी मेरे सैनिकोंको खदेड़ रहे हैं। अब आपके सिवा कोई इन्हें सहारा देनेवाला नहीं है। आप ही इन पीडितोंकी प्रारणक्षा कीजिये।

आपके पुत्रके ऐसा कहनेपर भीष्मने थोड़ी देरतक सोचकर मन-ही-मन कुछ निश्चय किया। इसके बाद उसे आश्वासन देते हुए कहा- दुर्योधन। मैंने तुमसे प्रतिज्ञा की है कि दस हजार महाबली क्षत्रियोंका संहार करके ही रणसे लौटूँगा। यह मेरा प्रतिदिनका काम होगा। इसको अबतक निभाता आया हूँ और आज भी वह महान् कार्य पूर्ण करूँगा। आज या तो मैं ही मरकर रणभूमिमें शयन करूँगा या पाण्डवोंको ही मार डालूँगा।

यह कहकर भीष्म पाण्डव-सेनाके पास पहुँचे और अपने बाणोंसे क्षत्रियोंको गिराने लगे। उस दिन पाण्डवलोग देखते ही रह गये और भीष्मने अपनी अद्भुत शक्तिका परिचय देते हुए एक लाख योद्धाओंका संहार कर डाला। पाञ्चालोंमें जो श्रेष्ठ महारथी थे, उन सबका तेज हर लिया। कुल दस हजार हाथी और सवारोंसहित दस हजार घोड़ों तथा पूरे दो लाख पैदल सैनिकोंका विनाश करके वे धूमरहित अग्निके समान देदीप्यमान हो रहे थे। उस दिन भीष्म उत्तरायणके सूर्यकी भाँति तप रहे थे, पाण्डव उनकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सके।

तदनन्तर पितामहके उस पराक्रमको देखकर अर्जुनने शिखण्डीसे कहा- अब तुम भीष्मका सामना करो, उनसे तनिक भी डरनेकी जरूरत नहीं है; मैं साथ हूँ, बाणोंसे मारकर उन्हें रथसे नीचे गिरा दूँगा। अर्जुनकी बात सुनकर शिखण्डीने भीष्मपर धावा किया। साथ ही धृष्टद्युम्न और अभिमन्युने भी उनपर चढ़ाई की। फिर विराट, द्रुपद, कुन्तिभोज, नकुल, सहदेव, युधिष्ठिर तथा उनकी सेनाके समस्त योद्धाओंने भीष्मपर आक्रमण किया। तब आपके सैनिक भी इन महारथियोंका मुकाबला करनेको आगे बढ़े। जिनकी जैसी शक्ति और उत्साह था, उसके अनुसार उन्होंने अपना प्रतिद्वन्द्वी चुन लिया। चित्रसेन चेकितानसे जा भिड़ा। धृष्टद्युम्नको कृतवर्माने रोक लिया। भीमको भूरिश्रवाने अटकाया। विकर्णने नकुलका मुकाबला किया। सहदेवको कृपाचार्यने रोका। इसी प्रकार घटोत्कचको दुर्मुखने, सात्यकिको दुर्योधनने, अभिमन्युको सुदक्षिणने, द्रुपदको अश्वत्थामाने, युधिष्ठिरको द्रोणाचार्यने तथा शिखण्डी और अर्जुनको दु:शासनने रोक लिया। इनके अतिरिक्त आपके अन्य योद्धाओंने भी भीष्मकी ओर बढ़नेवाले पाण्डवमहारथियोंको रोका।

इनमेंसे केवल महारथी धृष्टद्युम्न ही अपने विपक्षीको दबाकर आगे बढ़ा और सैनिकोंसे पुकार-पुकार कर कहने लगा- वीरो। क्या देखते हो; ये पाण्डुनन्दन अर्जुन भीष्मपर धावा कर रहे हैं, तुमलोग भी इनके साथ बढ़ो। डरो मत, भीष्म तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। इन्द्र भी अर्जुनका मुकाबला नहीं कर सकते, फिर भीष्मकी तो बात ही क्या है? सेनापतिके ये वचन सुनकर पाण्डवोंके महारथी बड़े उल्लासके साथ भीष्मके रथकी ओर बढ़े। यह देख पितामहके जीवनकी रक्षाके लिये दु:शासनने अपने प्राणोंका भय छोड़कर अर्जुनपर धावा किया और उन्हें बाणोंसे घायल करके श्रीकृष्णके ऊपर बाणोंका प्रहार किया। तब अर्जुनने दु:शासनपर बाण छोड़े, वे उसका कवच भेदकर शरीरका रक्त पीने लगे। इससे दु:शासनको बहुत क्रोध आया और उसने अर्जुनके ललाटमें बाण मारे। अर्जुनने उसका धनुष काटकर अपने बाणोंसे रथ तोड़ दिया और फिर तीखे बाणोंसे उसे भी बींध डाला। दु:शासनने दूसरा धनुष लेकर बाणोंसे अर्जुनकी भुजाओं और छातीपर प्रहार किया। तब अर्जुन क्रोधमें भर गये और दु:शासनके ऊपर यमदण्डके समान भयंकर बाणोंका प्रहार करने लगे। उस समय दु:शासनने अद्भुत पराक्रम दिखाया।

अर्जुनके बाण उसके पास पहुँचने भी नहीं पाते कि वह उन्हें काटकर गिरा देता था। इतना ही नहीं, उसने तीक्ष्ण बाण छोड़कर अर्जुनको भी घायल कर दिया। तब अर्जुनने सानपर रगड़कर तीखे किये हुए अनेकों बाण चलाये, वे दु:शासनके शरीरमें धँस गये। इससे उसको बड़ी पीड़ा हुई और वह अर्जुनका सामना छोड़कर भीष्मके रथके पीछे छिप गया। दु:शासन अर्जुनरूपी अगाध महासागरमें डूब रहा था, भीष्म उसके लिये द्वीपके समान आश्रयदाता हुए।

कुरुक्षेत्र में सैनिक ने दुर्योधन को आकर सूचना दी कि राजकुमार अर्जुन के रथ पर राजकुमार शिखंडी भी है। दुर्योधन बोला, अर्जुन के रथपर शिखंडी मामाश्री। शिखंडी अर्जुन के रथ पर क्या कर रहा है मामाश्री? दु:शासन बोला, रथ पर जब वो अकेला था तो उसने क्या कर लिया था भ्राताश्री कि आप उस नपुंसक के आने से किस चिन्ता में पड गये है। अश्वत्थामा बोला, और यो भी एक रथ पर दो महारथी किसलिये? शकुनि बोला, फिर भी तुम स्वयं जाकर गंगापुत्र भीष्म से पूछो प्रिय दुर्योधन? कल रात युधिष्ठिर उनसे मिलने आया था और आज अर्जुन के रथ पर शिखंडी दिखायी दे रहा है। मुझे तो दाल में काला दिख रहा है अवश्य भान्जे। जाओ शीघ्र और देखो क्या बात है? दुर्योधन बोला, रथ पितामह की ओर ले चलो। दुर्योधन ने रथ से नीचे उतरकर पितामह भीष्म के पास आकर प्रणाम किया और पूछा कलरात युधिष्ठिर आपको क्यों मिलने आया था? भीष्म बोले, वो मुझसे यह कहने नहीं आया था कि मैं तुम्हे त्याग दूं और यदि यह कहता तो भी मैं स्वीकार नहीं करता। दुर्योधन बोला, फिर भी वो आपसे कुछ न कुछ कहने अवश्य आया होगा। भीष्म बोले, वो कुछ कहने नहीं आया था, कुछ लौटाने आया था, वो मेरा एक दिया हुआ आशीर्वाद लौटाने... दुर्योधन बोला, कौनसा आशीर्वाद? भीष्म बोले, वो आशीर्वाद जो मैंने युद्ध आरम्भ होने से पहिले उसे दिया था। जिस पर तुमने अपना असन्तोष भी प्रकट किया था। वो विजयश्री का आशीर्वाद लौटाने आया था पुत्र और सच पूछो तो मेरे होते हुये वो विजयश्री का आशीर्वाद व्यर्थ ही था क्योंकि मेरी पराजय तो हो नहीं सकती। और यदि मेरी पराजय नहीं हो सकती तो उनकी विजय भी नहीं हो सकती। दुर्योधन बोला, तो फिर आपने क्या कहा? भीष्म बोले, दिया हुआ आशीर्वाद वापिस लौटा तो नहीं सकता पुत्र इसलिये मुझे अपने आप को हटाने का उपाय उसे बताना ही पडा। दुर्योधन बोला, तो क्या आपने उसे सामने से हटाने का उपाय बता दिया? भीष्म बोले, तो क्या करता? अपने ही दिये हुये आशीर्वाद की लाज तो रखनी थी ना पुत्र। दुर्योधन बोला, मेरी समझ में यह नहीं आ रहा पितामह आप किसके पक्ष में युद्ध कर रहे है, मेरे या उनके। भीष्म बोला, मैं न तो तुम्हारे पक्ष में युद्ध कर रहा हूं और न उनके। मैं हस्तिनापुर के पक्ष में युद्ध कर रहा हूँ। हे पुत्र मातृभूमि से अधिक आदरणीय कोई नहीं होता। यदि भगवान मुझसे पूछे कि हे गंगापुत्र भीष्म स्वर्ग चाहिये या हस्तिनापुर तो मैं उससे हस्तिनापुर ही मांगूंगा। यदि हजार बार भी वो मुझसे पूछे की क्या चाहिये तो हजार बार हस्तिनापुर ही मांगूंगा पुत्र हस्तिनापुर। दुर्योधन बोला, मैं भी हस्तिनापुर ही मांग रहा हूं पितामह किन्तु आपको उनके और हस्तिनापुर के बीच से हटने का कोई अधिकार ही नहीं है। पितामह मैं हस्तिनापुर नरेश कुरुश्रेष्ठ धृतराष्ट्र के प्रतिनिधि होने के नाते आपको यह आदेश देता हूं की रणभूमि को छोडकर नहीं जायेंगे। भीष्म बोले, मैं तुम्हे वचन देता हूँ युवराज कि युद्ध के समाप्त होने से पहिले मैं रणभूमि नही छोडुंगा। दुर्योधन बोला, आपने उन्हे अपने सामने से हटाने का क्या उपाय बताया पितामह? भीष्म बोले, वह कोई विशेष उपाय नहीं था युवराज। वो उपाय तो किसी भी क्षत्रिय को रणभूमि से हटा सकता है। मैंने युधिष्ठिर से यह कहा कि यदि कोई नारी मेरे सामने आ जाये तो मैं शस्त्र रख दूंगा और यह तो तुम्हारे मामाश्री को भी करना पडेगा दुर्योधन। दुर्योधन बोला, तो फिर अर्जुन के रथ पर शिखंडी क्या कर रहा है? भीष्म बोले, तो क्या आज अर्जुन के रथपर शिखंडी भी है।

दुर्योधन बोला, जी हां पितामह। भीष्म बोले, तब तुम अगर यह चाहते हो कि मैं युद्ध करता रहूं तो शिखंडी को मेरे सामने ना आने देना। दुर्योधन बोला, किन्तु अर्जुन ने अपने रथपर शिखंडी को क्यों रखा है पितामह? भीष्म बोले, क्योंकि वो एक नारी भी है। दुर्योधन बोला, नारी, यह कैसा? दोनों ओर की सेना युद्ध के लिये आगे बढ़ी। शकुनि बोला, क्या समाचार लाये भान्जे? दुर्योधन बोला, समाचार यह है कि पितामह शिखंडी से युद्ध नही करेंगे। शिखंडी के सामने आते ही पितामह शस्त्र रख देंगे और उनके शस्त्र रखते ही शिखंडी के पीछे से वो कायर अर्जुन पितामह पर बाणों की वर्षा करेगा। शकुनि बोला, अर्थात आज अर्जुन के रथ को पितामह के रथ के आसपास नहीं भटक देना चाहिये। भान्जे तुम अपने सारे योद्धाओं और महारथियों को आदेश दो कि वो गंगापुत्र और अर्जुन के बीच में दीवार बन कर खडे हो जाये।

**भीष्म शिखंडी पर कभी नहीं करेंगे वार, किन्तु पितामह की करे रक्षा करे किसी प्रकार,**
**सब शकुनि संग सोचते कोई उचित उपाय, सब मिल घेरे तात को उनके प्राण बचाये।**

इतिहास अब इस युद्ध के एक निर्णायक मोड पर आ चुका है और जब इतिहास कोई मोड लेना चाहता है तो उसे कोई सैनिक शक्ति वो मोड लेने से रोक नहीं सकती और इतिहास आज गंगापुत्र को पार करके आगे जाने का निर्णय ले चुका है। कौरव महारथी भी ये जानते हैं और उस रथ कि दिशा बदलने के प्रयत्न में लगे हुये है जिस पर अर्जुन और शिखंडी के साथ-साथ इतिहास भी है और जिसके सारथी स्वयं वासुदेव कृष्ण हैं। जो गंगापुत्र भीष्म की ओर जाने का मार्ग बना रहा है। भयंकर युद्ध छिड गया। अर्जुन भीष्म का रथ ढूंढता हुआ कृष्ण से बोला रथ को पितामह की ओर ले चलिये केशव। द्रोणाचार्य, शकुनि, शल्य सभी वहांपर भीष्म पितामह के रथ को घेरे हुये है। अर्जुन का रथ भीष्म के सामने आ गया। और बाण वर्षा करने लगा। भीष्म बोले, आयुष्मान भव। भीष्म की छाती भेदने लगा।

संजय कहते हैं, तदनन्तर, सात्यकिको भीष्मकी ओर जाते देख अलम्बुष राक्षसने रोका। यह देख सात्यकिने क्रुद्ध होकर उसे बाण मारे। तब राक्षस भी क्रोधमें भर गया और बाण मारकर उसने उन्हें बड़ी पीड़ा पहुँचायी। फिर तो सात्यकिके क्रोधकी भी सीमा न रही, उसने उस राक्षसपर बाणसमूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। तब राक्षस भी सिंहनाद करता हुआ तीक्ष्ण बाणोंसे सात्यकिको बींधने लगा। साथ ही राजा भगदत्तने भी उसपर तीखे बाण बरसाने आरम्भ कर दिये। इसपर सात्यकिने अलम्बुषको छोड़कर भगदत्तको ही अपने बाणोंका निशाना बनाया। भगदत्तने सात्यकिका धनुष काट दिया, किंतु वह पुन: दूसरा धनुष लेकर उन्हें तीखे बाणोंसे बींधने लगा। यह देखकर भगदत्तने सात्यकिपर एक भयंकर शक्तिका प्रहार किया, किंतु सात्यकिने बाण मारकर उस शक्तिके दो टुकड़े कर दिये।

इतनेमें महारथी राजा विराट और द्रुपद कौरव-सैनिकोंको पीछे हटाते हुए भीष्मके ऊपर चढ़ आये। इधरसे अश्वत्थामा आगे बढ़कर उन दोनोंसे युद्ध करने लगा। विराटने और द्रुपदने बाण मारकर द्रोणकुमार अश्वत्थामाको घायल कर दिया। अश्वत्थामाने भी इन दोनोंपर बहुत-से बाण बरसाये, परंतु वहाँ इन दोनों बूढ़ोंने अद्‌भुत पराक्रम दिखाया। अश्वत्थामाके भयंकर बाणोंको इन्होंने प्रत्येक बार पीछे लौटा दिया। एक ओर सहदेवके साथ कृपाचार्य भिड़े हुए थे। उन्होंने सहदेवको बाण मारे। तब सहदेवने उनका धनुष काट दिया और बाणोंसे उन्हें बींध डाला। कृपाचार्यने दूसरा धनुष लेकर सहदेवकी छातीमें बाण मारे। सहदेवने भी कृपाचार्यकी छातीमें बाणोंका प्रहार किया। इस प्रकार इन दोनोंमें भयंकर संग्राम हो रहा था।

इसके अनन्तर, द्रोणाचार्य महान् धनुष लिये पाण्डवोंकी सेनामें घुसकर उसे चारों ओर भगाने लगे। उन्होंने कुछ अशुभसूचक निमित्त देखकर अपने पुत्रसे कहा, पुत्र। आज ही वह दिन है, जबकि अर्जुन भीष्मको मार डालनेके लिये

अपनी पूरी शक्ति लगा देगा; क्योंकि मेरे बाण उछल रहे हैं, धनुष फड़क उठता है, अस्त्र अपनेआप धनुषसे संयुक्त हो जाते हैं और मेरे मनमें क्रूर कर्म करनेका संकल्प हो रहा है। चन्द्रमा और सूर्यके चारों ओर घेरा पड़ने लगा है। यह क्षत्रियोंके भयंकर विनाशकी सूचना देनेवाला है। इसके सिवा दोनों ही सेनाओंमें पाञ्चजन्य शफ्फी ध्वनि और गाण्डीव धनुषकी टंकार सुनायी पड़ती है। इससे यह निश्चय जान पड़ता है कि आज अर्जुन समस्त योद्धाओंको पीछे हटाकर भीष्मतक पहुँच जायगा। भीष्म और अर्जुनके संग्रामका विचार आते ही मेरे रोएँ खड़े हो जाते हैं और हृदयका उत्साह जाता रहता है। देखता हूँ, शिखण्डीको आगे करके अर्जुन भीष्मके साथ युद्ध करनेको बढ़ता चला जा रहा है। युधिष्ठिरका क्रोध, भीष्म और अर्जुनका संघर्ष तथा मेरा शस्त्र छोड़नेका उद्योग- ये तीनों बातें प्रजाके लिये अमङ्गलकी सूचना देनेवाली हैं। अर्जुन मनस्वी, बलवान, शूर, अस्त्रविद्यामें प्रवीण, शीघ्रतासे पराक्रम दिखानेवाला, दूरतकका निशाना बेधनेवाला तथा शुभाशुभ निमित्तोंको जाननेवाला है। इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी इसे युद्धमें नहीं जीत सकते। पुत्र। तुम अर्जुनका रास्ता छोड़कर शीघ्र ही भीष्मकी रक्षाके लिये जाओ। इस भयानक संग्राममें कैसा महान् संहार मचा हुआ है। अर्जुनके तीखे बाणोंसे राजाओंके कवच छिन्न-भिन्न हो रहे हैं। ध्वजा, पताका, तोमर, धनुष और शक्तियोंके टुकड़े-टुकड़े किये जा रहे हैं। हमलोग भीष्मके आश्रयमें रहकर जीविका चलाते हैं; उनपर संकट आया है, अत: तुम विजय और यशकी प्राप्तिके लिये जाओ। ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति, इन्द्रियसंयम, तप और सदाचार आदि सद्गुण केवल युधिष्ठिरमें ही दिखायी देते हैं; तभी तो इन्हें अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव-जैसे भाई मिले हैं। वासुदेवने अपनी सहायतासे इन्हें सनाथ किया है। दुर्बुद्धि दुर्योधनपर जो युधिष्ठिरका कोप हुआ है, वही समस्त भारतकी प्रजाको दग्ध कर रहा है। श्रीकृष्णकी शरणमें रहनेवाला अर्जुन कौरवोंकी सेनाको चीरता हुआ इधर ही आ रहा है। मैं युधिष्ठिरके सामने जा रहा हूँ, यद्यपि उनके व्यूहके भीतर घुसना समुद्रके अंदर प्रवेश करनेके समान कठिन है; क्योंकि युधिष्ठिरके चारों ओर अतिरथी योद्धा खड़े हैं। सात्यकि, अभिमन्यु, धृष्टद्युम्न, भीम और नकुल-सहदेव उनकी रक्षा कर रहे हैं। अभिमन्यु दूसरे अर्जुनके समान सेनाके आगे-आगे चल रहा है। तुम अपने उत्तम अस्त्रोंको धारण करो और धृष्टद्युम्न तथा भीमसे युद्ध करने जाओ। अपने प्यारे पुत्रका सदा ही जीवित रहना कौन नहीं चाहता, तो भी इस समय क्षत्रियधर्मका खयाल करके तुम्हें अपनेसे अलग करता हूँ।

संजयने कहा, इस समय भगदत्त, कृपाचार्य, शल्य, कृतवर्मा, विन्द, अनुविन्द, जयद्रथ, चित्रसेन, दुर्मर्षण और विकर्ण- ये दस योद्धा भीमके साथ युद्ध कर रहे थे। भीमपर शल्यने, कृतवर्माने, कृपाचार्यने तथा चित्रसेन, विकर्ण और भगदत्तने बाणोंका प्रहार किया। साथ ही जयद्रथने, विन्द-अनुविन्दने तथा दुर्मर्षणने बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया। भीमने भी इन सब महारथियोंको अलग-अलग अपने बाणोंसे बींध डाला। उन्होंने शल्यको और कृतवर्माको बाणोंसे बींधकर कृपाचार्यके धनुषको बीचसे काट दिया; इसके बाद उन्हें बाणोंसे घायल किया। फिर विन्द और अनुविन्दको, दुर्मर्षणको, चित्रसेनको, विकर्णको तथा जयद्रथको बाण मारे। कृपाचार्यने दूसरा धनुष लेकर भीमपर बाणोंसे चोट की। तब भीमने क्रोधमें भरकर उनपर बहुत-से बाणोंकी वर्षा कर डाली। फिर जयद्रथके सारथी और घोड़ोंको बाणोंसे यमलोक भेज दिया। इसके बाद उसका धनुष काट दिया। तब वह अपने रथसे कूदकर चित्रसेनके रथपर जा बैठा।

तदनन्तर, महारथी भगदत्तने भीमपर एक शक्तिका प्रहार किया, जयद्रथने पट्टिश और तोमर चलाये, कृपाचार्यने शतघ्नीका प्रयोग किया तथा शल्यने एक बाण मारा। इनके सिवा दूसरे धनुर्धर वीरोंने भी भीमको बाण मारे। तब भीमने एक तेज बाणसे तोमरके टुकड़े-टुकड़े कर दिये, पट्टिशको तिलके डंठलके समान काट डाला, शतघ्नी तोड़ डाली तथा शल्यके बाण

और भगदत्तकी शक्तिको भी काट दिया। साथ ही दूसरे योद्धाओंके बाणोंके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले और उन सबको बाणोंसे घायल कर दिया। इतनेहीमें वहाँ अर्जुन भी आ पहुँचे। भीम और अर्जुन दोनोंको वहाँ एकत्रित देख आपके योद्धाओंको विजयकी आशा नहीं रही। तब दुर्योधनने सुशर्मासे कहा, तुम अपनी सेनाके साथ शीघ्र जाकर भीम और अर्जुनका वध करो। यह सुनकर सुशर्माने हजारों रथियोंको साथ ले उन दोनों पाण्डवोंको चारों ओरसे घेर लिया। यह देख अर्जुनने पहले राजा शल्यको अपने बाणोंसे ढक दिया। इसके बाद सुशर्मा और कृपाचार्यको बाणोंसे बींध दिया। फिर भगदत्त, जयद्रथ, चित्रसेन, विकर्ण, कृतवर्मा, दुर्मर्षण, विन्द और अनुविन्द- इन महारथियोंमेंसे प्रत्येकको बाण मारे। जयद्रथ चित्रसेनके रथपर स्थित था, उसने अपने बाणोंसे अर्जुन और भीम दोनोंको घायल किया। शल्य और कृपाचार्यने भी अर्जुनपर मर्मवेधी बाणोंका प्रहार किया तथा चित्रसेन आदि कौरवोंने भी दोनों पाण्डवोंको बाण मारे। इस प्रकार आहत होनेपर भी वे दोनों पाण्डव त्रिगर्त्तोंकी सेनाका संहार करने लगे। तब सुशर्माने बाणोंसे अर्जुनको पीड़ित कर बड़े जोरसे सिंहनाद किया। उसकी सेनाके दूसरे रथी भी इन दोनों भाइयोंको बींधने लगे। उस समय भीम और अर्जुन दोनोंने सैकड़ों वीरोंके धनुष और मस्तक काटकर उन्हें रणभूमिमें सुला दिया। अर्जुन अपने बाणोंसे योद्धाओंकी गति रोककर मार डालते थे। उनका यह पराक्रम अद्‌भुत था। यद्यपि कृपाचार्य, कृतवर्मा, जयद्रथ तथा विन्द-अनुविन्द आदि वीर भीम और अर्जुनका डटकर मुकाबला कर रहे थे, तो भी इन दोनोंने कौरवोंकी महासेनामें भगदड़ मचा दी। तब कौरवसेनाके राजाओंने अर्जुनपर असंख्य बाणोंकी वर्षा आरम्भ की, किंतु अर्जुनने उन सबको अपने बाणोंसे रोककर मृत्युके मुखमें पहुँचा दिया। नन्दिघोष पर आरुढ़ अर्जुन, शिखण्डी और कृष्ण के त्रिदल की चपल, अतर्क्य गतिविधियाँ आरम्भ हो गयीं। पितामह भीष्म और अर्जुन के बीच प्रलय मचानेवाला घनघोर युद्ध छिड़ गया। उन दोनों की बाण-वर्षा से कुरुक्षेत्र के आकाश में तपता सूर्य भी धुँधला गया। अदृश्य हो गया। पितामह की फेंकी बाण-पंक्तियाँ अर्जुन का मर्मभेद करने आ रही हैं, यह देखते ही लौहत्राणधारी शिखण्डी अर्जुन को आच्छादित करता हुआ दोनों के बीच आ जाता था। अपने लक्ष्य के बीच आये शिखण्डी को देखते ही पितामह बाण-वर्षा को रोककर नीचा कर लेते थे। पौरुषहीन शिखंडी ने पौरुषसम्पन्न पितामह के धनुष को छिन्न-भिन्न कर डाला। अर्जुनने अलग-अलग दबाव से फेंके जानेवाले सूचि, जिह्म, चन्द्रमुख आदि बाण चढ़ाये। रथ के अग्रभाग के उठाये जाने से अर्जुन और शिखण्डी पितामह की दृष्टि से ओझल हुए और दिखाई देते रहे केवल कृष्ण। वे तो नि:शस्त्र। आज दिनभर भीष्मार्जुन का प्रहर-प्रहर तक चलता घनघोर युद्ध इतना विस्मित कर देनेवाला था कि जयद्रथ, शल्य, भगदत्त जैसे महारथी भी अपने युद्ध को रोक, अवाक् होकर उनके उग्र युद्ध को देखते रहें।

संजयने कहा- राजन्। जब कौरवोंके सहित भीष्म और पांचाल-वीरोंके सहित अर्जुन आपसमें युद्ध करने लगे तो कोई भी यह निश्चय नहीं कर सकता था कि उनमें कौन जीतेगा। उस दसवें दिन तो इन दोनोंका समागम होनेपर बहुत ही सैन्य-संहार हुआ। भीष्मने उस संग्राममें हजारों वीरोंको धराशायी कर दिया। धर्मात्मा भीष्म दस दिनतक पाण्डवोंकी सेनाको संतप्त कर अब अपने जीवनसे उदासीन हो गये। उन्होंने युद्ध करते हुए प्राणत्याग करनेकी इच्छासे यह विचार किया कि अब मैं बहुत वीरोंको नहीं मारूँगा और पास ही खड़े हुए राजा युधिष्ठिरसे कहा, पुत्र युधिष्ठिर। मैं तुमसे एक धर्मानुकूल बात कहता हूँ, सुनो। इस शरीरसे मैं बहुत उदासीन हो गया हूँ। इस संग्राममें बहुत-से प्राणियोंका संहार करते-करते मेरा समय बीता है। इसलिये अर्जुन और पाञ्चाल तथा सृञ्जयवीरोंको आगे करके मेरे वधका प्रयत्न करो।

स्वयं भीष्मने युधिष्ठिरसे कहा, पुत्र। मैं अब इस शरीरसे बहुत उदासीन हो गया हूँ। मैंने संग्राममें बहुत प्राणियोंकी हत्या

की है। तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो सृञ्जय वीरों तथा अर्जुनको आगे करके मेरे वधका प्रयत्न करो। मैं भगवान अच्युतका दर्शन करते हुए आज ही गिरना चाहता हूँ।

भीष्मका ऐसा आशय समझकर सत्यदर्शी युधिष्ठिरने सृञ्जयवीरोंको साथ लेकर उनपर आक्रमण किया और अपनी सेनाको आज्ञा दी आगे बढ़ो, युद्धमें डट जाओ; आज शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेवाले वीर अर्जुनसे सुरक्षित होकर भीष्मको परास्त कर दो। महान् धनुर्धर सेनापति धृष्टद्युम्न और भीम भी अवश्य तुम्हारी रक्षा करेंगे। सृञ्जयवीरो। आज तुम भीष्मसे तनिक भी मत घबराना, हम शिखंडीको आगे करके उन्हें अवश्य परास्त कर देंगे।

युधिष्ठिरने यह आदेश स्वीकार कर लिया। सेनाके शूरोंको प्रोत्साहित किया। श्रीकृण बराबर अर्जुनको उकसा रहे थे। वृद्ध पितामह भीष्मने इस दिन भी भयंकर महासंहार प्रारम्भ कर रखा था। कौरव प्राणपणसे उनकी रक्षामें जुटे थे। भीष्मको वरदान था कि वे इच्छा करनेपर ही मरेंगे। उन्होंने स्वयं मरणकी इच्छा की। तीक्ष्ण बाण वर्षा उनपर हो रही थी परन्तु उन्होंने आघात करना बन्द कर दिया। अर्जुन उनके अनेक धनुष कांट चुके थे।

अब सब योद्धा क्रोधातुर होकर रणक्षेत्रमें कदम बढ़ाने लगे और शिखण्डी तथा अर्जुनको आगे रखकर भीष्मको धराशायी करनेका पूरा प्रयत्न करने लगे। इधर आपके पुत्रकी आज्ञासे देश-देशके राजा, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा तथा अपने सब भाइयोंके सहित दु:शासन बहुतसी सेना लेकर भीष्मकी रक्षा करने लगे। इस प्रकार भीष्मको आगे रखकर आपके अनेकों वीर शिखण्डी आदि पाण्डवोंके योद्धाओंसे लड़ने लगे। चेदि और पाञ्चालवीरोंके सहित अर्जुन शिखण्डीको आगे रखकर भीष्मके सामने आये। इसी प्रकार सात्यकि अश्वत्थामासे, धृष्टकेतु पौरवसे, अभिमन्यु दुर्योधन और उसके मन्त्रियोंसे, सेनाके सहित विराट जयद्रथसे, राजा युधिष्ठिर राजा शल्यसे और भीम आपकी गजारोही सेनासे संग्राम करने लगे। आपके पुत्र और अनेकों राजा अर्जुन और शिखण्डीको मारनेके लिये टूट पड़े। इस भयानक मुठभेड़में दोनों सेनाओंके इधर-उधर दौड़नेसे पृथ्वी डगमगाने लगी और उनका भीषण शब्द सब ओर गूँजने लगा। रथी रथियोंसे लड़ने लगे, घुड़सवार घुड़सवारोंपर टूट पड़े, गजारोही गजारोहियोंसे भिड़ गये और पैदल पैदलोंसे लोहा लेने लगे। दोनों ही पक्ष विजयके लिये उतावले हो रहे थे, अत: एक-दूसरेको तहस-नहस करनेके लिये उनकी बड़ी करारी मुठभेड़ हुई।

राजन्। अब महापराक्रमी अभिमन्यु सेनाके सहित आपके पुत्र दुर्योधनके साथ युद्ध करने लगा। दुर्योधनने क्रोधमें भरकर बाणोंसे अभिमन्युकी छाती पर वार किया। तब अभिमन्युने बड़े रोषसे उसपर एक भयंकर शक्तिका वार किया। उसे आती देखकर आपके पुत्रने एक तेज बाणसे उसके दो टुकड़े कर दिये। यह देखकर अभिमन्युने उसकी छाती और भुजाओंमें बाण मारे। फिर उसकी छातीपर वार किया। यह दुर्योधन और अभिमन्युका युद्ध बड़ा ही भयंकर और विचित्र हुआ। उसे देखकर सब राजा उनकी बड़ाई करने लगे।

अश्वत्थामाने सात्यकिपर बाण छोड़कर उसकी छाती और भुजाओंको घायल कर दिया। इस तरह अत्यत बाणविद्ध होकर यशस्वी सात्यकिने अश्वत्थामापर तीर छोड़े। महारथी पौरवने धनुर्धर धृष्टकेतुको बाणोंसे आच्छादित कर बहुत ही घायल कर दिया तथा धृष्टकेतुने तीखे तीरोंसे पौरवको बींध दिया। फिर दोनोंने दोनोंके धनुष काट डाले और एक-दूसरेके घोड़ोंको मारकर दोनों ही रथहीन होकर तलवारोंसे युद्ध करने लगे। दोनोंने गेंडेके चमड़ेकी ढाल और तीखी तलवारें ले लीं तथा एक-दूसरेके सामने आकर तरह-तरहसे पैंतरे बदलते हुए युद्धके लिये ललकारने लगे। पौरवने बड़े रोषसे धृष्टकेतुके ललाट पर प्रहार किया तथा धृष्टकेतुने अपनी तीखी तलवारसे पौरवकी गलेपर चोट की। इस प्रकार एक-दूसरेके वेगसे

अभिहत होकर वे पृथ्वीपर लोटने लगे। इसी समय आपका पुत्र जयत्सेन पौरवको और माद्रीनन्दन सहदेव धृष्टकेतुको रथमें डालकर युद्धक्षेत्रसे बाहर ले गये।

दूसरी ओर द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नका धनुष काटकर उसे अपने बाणोंसे बींध दिया। तब शत्रुदमन धृष्टद्युम्नने दूसरा धनुष लेकर आचार्यके देखते-देखते बाणोंकी झड़ी लगा दी। किंतु महारथी द्रोणने अपने बाणोंकी बौछारसे उन्हें काटकर उसे बाणोंसे बींध दिया। किंतु महारथी द्रोणने अपने बाणोंकी बौछारसे उन्हें काटकर धृष्टद्युम्नपर तीर छोड़े। तब धृष्टद्युम्नने क्रोधमें भरकर आचार्यपर एक गदा छोड़ी। उसे आचार्यने बाण छोड़कर बीचहीमें गिरा दिया। यह देखकर धृष्टद्युम्नने एक शक्ति फेंकी। उसे द्रोणाचार्यने बाणोंसे काट डाला और फिर संग्रामभूमिमें धृष्टद्युम्नको पराजित किया। इस प्रकार यह द्रोण और धृष्टद्युम्नका बड़ा ही भीषण और घमासान युद्ध हुआ।

इधर अर्जुन भीष्मके सामने आकर उन्हें अपने तीखे बाणोंसे व्यथित करने लगे। यह देखकर राजा भगदत्त अपने मतवाले हाथीपर बैठकर उनके सामने आ गये। उन्होंने अपनी बाणवर्षासे अर्जुनकी गति रोक दी। तब अर्जुनने अपने तीखे तीरोंसे भगदत्तके हाथीको घायल कर दिया और शिखण्डीको आदेश दिया कि आगे बढ़ो, आगे बढ़ो भीष्मके पास पहुँचकर उनका अन्त कर दो। ऐसा कहकर अर्जुन शिखण्डीको आगे रखकर बड़े वेगसे भीष्मकी ओर चले। दोनों ओरसे बड़ा घोर युद्ध होने लगा। आपके शूरवीर कोलाहल करते हुए बड़ी तेजीसे अर्जुनकी ओर दौड़े। किंतु अर्जुनने आपकी उस विचित्र वाहिनीको बात-की-बातमें कुचल डाला। शिखण्डी झटपट भीष्म पितामहके सामने आया और बड़े उत्साहसे उनपर बाण बरसाने लगा। भीष्मने भी अनेकों दिव्य अस्त्र छोड़कर शत्रुओंको भस्म करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने अर्जुनके अनुयायी अनेकों सोमक वीरोंको मार डाला और पाण्डवोंकी उस सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया। बात-की-बातमें अनेकों रथ, हाथी और घोड़े बिना सवारोंके हो गये। इस समय भीष्मका एक भी बाण खाली नहीं जाता था। वे विश्वभक्षी कालके समान हो रहे थे। अत: उनकी चपेटमें आकर चेदि, काशी और करूष देशके चौदह हजार वीर अपने हाथी, घोड़े और रथोंके सहित रणक्षेत्रमें धराशायी हो गये। सोमकोंमेंसे ऐसा एक भी महारथी नहीं था, जो उस समय संग्रामभूमिमें भीष्मके सामने आकर अपने जीवनकी आशा रखता हो। इसलिये उनके मुकाबलेपर जानेकी किसीकी भी हिम्मत नहीं होती थी। केवल वीराग्रणी अर्जुन और अतुलित तेजस्वी शिखण्डी ही उनके आगे टिकनेका साहस रखते थे।

शिखण्डीने भीष्मके सामने आकर उनकी छातीमें बाण मारे। किंतु भीष्मने उसके स्त्रीत्वका विचार करके उसपर वार नहीं किया। पर शिखण्डी इस बातको नहीं समझ सका। तब उससे अर्जुनने कहा, वीर। झटपट आगे बढ़कर भीष्मका वध करो। तुम महारथी भीष्मको तुरन्त मार डालो। मैं सच कहता हूँ, युधिष्ठिरकी सेनामें मुझे तुम्हारे सिवा और ऐसा कोई वीर दिखायी नहीं देता जो संग्राममें भीष्मके आगे ठहर सके। अर्जुनके ऐसा कहनेपर शिखण्डीने तुरंत ही तरह-तरहके तीरोंसे पितामहको बींध दिया। परंतु उन्होंने उन बाणोंकी कुछ भी परवा न कर अपने बाणोंसे अर्जुनको रोक दिया। इसी प्रकार उन्होंने बाणोंकी बौछारसे बहुत-सी पाण्डवसेनाको भी परलोक भेज दिया। दूसरी ओरसे पाण्डवोंने भी अपने तीरोंसे पितामहको बिल्कुल आच्छादित कर दिया।

उस समय दु:शासनका भी बड़ा अद्भुत पराक्रम था। वह एक ओर तो अर्जुनके साथ युद्ध कर रहा था और दूसरी ओर पितामहकी रक्षा करनेमें भी तत्पर था। इस संग्राममें उसने अनेकों रथियोंको रथहीन कर दिया तथा अनेकों अश्वारोही और गजारोही उसके पैने बाणोंसे कटकर पृथ्वीपर लोटने लगे। यही नहीं, बहुतसे हाथी भी उसके बाणोंसे व्यथित होकर इधर-

उधर भाग निकले। इस समय दु:शासनको जीतने या उसके सामने जानेका किसी भी महारथीको साहस नहीं हुआ। केवल अर्जुन ही उसके सामने आ सके। उन्होंने उसे परास्त करके फिर भीष्मपर ही धावा किया। इधर शिखण्डी तो अपने वज्रतुल्य बाणोंसे पितामहपर प्रहार कर ही रहा था। उनसे पितामह भीष्म को कुछ भी कष्ट नहीं जान पड़ता था। वे उन्हें हँसते हुए झेल रहे थे। तब दु:शासन ने अपने समस्त योद्धाओंसे कहा- वीरो। तुमलोग अर्जुनपर चारों ओरसे धावा करो। डरो मत, धर्मात्मा भीष्म तुम सब लोगोंकी रक्षा करेंगे। यदि सम्पूर्ण देवता भी एकत्र होकर आवें तो वे भीष्मके सामने नहीं टिक सकते, फिर पाण्डवोंकी तो बिसात ही क्या है। इसलिये अर्जुनको सामने आते देख पीछे न भागो।

दु:शासनकी जोशभरी बातें सुनकर सभी योद्धा आवेशमें भर गये। इनमें विदेह, कलिङ्ग, दासेरक, निषाद, सौवीर, बाह्लिक, दरद, प्रतीच्य, मालव, अभीषाह, शूरसेन, शिबि, बसाति, शाल्व, शक, त्रिगर्त्त, अम्बठ और केकय आदि देशोंके राजा थे। ये सब-के-सब एक साथ ही अर्जुन पर टूट पड़े। तब अर्जुनने दिव्य बाणोंका स्मरण करके धनुषपर उनका संधान किया और जैसे अग्नि पतंगोंको जला डालती है, उसी प्रकार वे इन राजाओंको भस्म करने लगे। महाराज। उस समय अर्जुनके बाणोंसे घायल होकर रथकी ध्वजाके साथ रथी, घुड़सवारोंके साथ घोड़े और हाथीसवारोंके साथ हाथी गिरने लगे। सारी पृथ्वी बाणोंसे ढक गयी। आपकी सेना चारों ओर भागने लगी। इस प्रकार सेनाको भगाकर अर्जुनने दु:शासनके ऊपर प्रहार करना शुरु किया, उनके बाण दु:शासनके शरीरको छेदकर पृथ्वीमें समा जाते थे। थोड़ी देरमें उन्होंने उसके घोड़ों और सारथिको मार गिराया। फिर बाण मारकर विविंशतिके रथको तोड़ डाला और उसे भी घायल किया। तत्पश्चात् कृपाचार्य, विकर्ण और शल्यको भी बींधकर उन्हें रथहीन कर दिया। तब तो वे सभी महारथी पराजित होकर भाग चले। दोपहरके पहले-पहले इन सब योद्धाओंको हराकर अर्जुन धूम्ररहित अग्निके समान देदीप्यमान होने लगे। प्रखर किरणोंसे जगत्को तपानेवाले सूर्यकी भाँति वे अपने बाणोंसे अन्यान्य राजाओंको भी ताप देने लगे। सायकोंकी वर्षासे समस्त महारथियोंको भगाकर उन्होंने संग्राममें कौरव-पाडवोंके बीच रक्तकी एक बहुत बड़ी नदी बहा दी। इतनेहीमें अपने दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करते हुए भीष्म अर्जुनके ऊपर चढ़ आये। यह देखकर शिखण्डीने उनपर धावा किया। उसे देखते ही भीष्मने अपने अग्निके समान तेजस्वी अस्त्रोंको समेट लिया। तब अर्जुन पितामहको मूर्छित करके आपकी सेनाका संहार करने लगे।

तदनन्तर शल्य, कृपाचार्य, चित्रसेन, दु:शासन और विकर्ण, देदीप्यमान रथोंपर बैठकर पाण्डवोंपर चढ़ आये और उनकी सेनाको कँपाने लगे। इन शूरवीरोंके हाथसे मारी जाती हुई वह सेना सब ओर भागने लगी। इधर, पितामह भीष्म भी सजग होकर पाण्डवोंके मर्मपर आघात करने लगे। इसी प्रकार अर्जुनने कौरवोंकी सेनाके बहुत-से हाथियोंको मार गिराया। उनके बाणोंकी मारसे हजारों मनुष्योंकी लाशें गिरती दिखायी देती थीं, योद्धाओंके कुण्डलोंसहित मस्तकसे रणभूमि आच्छादित हो गयी थी। उस वीरविनाशक संग्राममें भीष्म और अर्जुन दोनों ही अपना पराक्रम दिखा रहे थे। इसी बीचमें पाण्डवोंका सेनापति महारथी धृष्टद्युम्न वहाँ आकर अपने सैनिकोंसे बोला, सोमको। तुमलोग सृञ्जयोंके साथ युद्ध करने लगे। पूर्वकालमें परशुरामने जो उन्हें शत्रुसंहारिणी अस्त्रविद्या सिखायी थी, उसका उपयोग करके भीष्मने शत्रुसेनाका संहार आरम्भ किया। वे प्रतिदिन पाण्डवोंके दस हजार योद्धाओंका संहार करते थे। उस दसवें दिन भी भीष्मने अकेले ही मत्स्य और पञ्चाल देशके असंख्य हाथी-घोड़े मार डाले तथा उनके साथ महारथियोंको यमलोक भेज दिया। इसके बाद उन्होंने पाँच हजार रथियोंका संहार किया; फिर चौदह हजार पैदल, एक हजार हाथी और दस हजार घोड़े मार डाले। इस प्रकार समस्त राजाओंकी सेनाका संहार करके भीष्मने विराटके भाई शतानीकको मार गिराया। इसके बाद एक हजार और

राजाओंको मृत्युका ग्रास बनाया। पाण्डवसेनाके जो-जो वीर अर्जुनके पीछे गये थे, वे सभी भीष्मके सामने जाते ही यमलोकके अतिथि बन गये। भीष्म यह महान् पराक्रम करके हाथमें धनुष लिये दोनों सेनाओंके बीचमें खड़े हो गये। उस समय कोई राजा उनकी ओर आँख उठाकर देखनेका भी साहस न कर सका।

भीष्मके उस पराक्रमको देखकर श्रीकृष्णने धनञ्जयसे कहा- अर्जुन। देखो, ये शान्तनुनन्दन भीष्म दोनों सेनाओंके बीचमें खड़े हैं; अब तुम जोर लगाकर इनका वध करो, तभी तुम्हारी विजय होगी। जहाँ ये सेनाका संहार कर रहे हैं, वहाँ पहुँचकर जबर्दस्ती इनकी गति रोक दो। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई वीर ऐसा नहीं है, जो भीष्मके बाणोंका आघात सह सके। कृष्णकी प्रेरणासे अर्जुनने उस समय इतनी बाणवर्षा की कि भीष्म का रथ, ध्वजा और घोड़ोंके साथ उससे आच्छादित हो गये। परंतु पितामहने अपने बाण छोड़कर अर्जुनके बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तब शिखण्डी अपने उत्तम अस्त्र-शस्त्रोंको लेकर बड़े वेगसे भीष्मकी ओर दौड़ा, उस समय अर्जुन उसकी रक्षा कर रहे थे। भीष्मके पीछे चलनेवाले जितने योद्धा थे, उन सबको अर्जुनने मार गिराया और स्वयं भी भीष्मपर धावा किया। इनके साथ सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, नकुल, सहदेव, अभिमन्यु और द्रौपदीके पाँच पुत्र भी थे। ये सब लोग एक साथ भीष्मपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। किंतु इससे उन्हें तनिक भी घबराहट नहीं हुई। उपर्युक्त योद्धाओंके बाणोंको पीछे लौटाकर वे पाण्डव-सेनामें घुस गये और मानो खेल कर रहे हों, इस प्रकार उनके अस्त्र-शस्त्रोंका उच्छेद करने लगे। शिखण्डीके स्त्री-भावका स्मरण करके वे बारंबार मुसकराकर रह जाते, उसपर बाण नहीं मारते थे। जब उन्होंने द्रुपदकी सेनाके सात महारथियोंको मार डाला, तब रणभूमिमें महान् कोलाहल होने लगा। इसी समय अर्जुन शिखण्डीको आगे करके भीष्मके निकट पहुँच गये।

इस प्रकार शिखण्डीको आगे रखकर सभी पाण्डवोंने भीष्मको चारों ओरसे घेर लिया और उन्हें बाणोंसे बींधना आरम्भ कर दिया। शतघ्नी, परिघ, फरसा, मुग्दर, मूसल, प्रास, बाण शक्ति, तोमर, कम्पन, नाराच, वत्सदन्त और भुशुण्डी आदि अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार होने लगा। उस समय भीष्म तो अकेले थे और उन्हें मारनेवालोंकी संख्या बहुत थी। इससे उसका कवच छिन्न-भिन्न हो गया। उन्हें विशेष कष्ट पहुँचा तथा उनके मर्मस्थानोंमें गहरी चोट लगी; तो भी वे विचलित नहीं हुए। वे एक ही क्षणमें रथकी पंक्ति तोड़कर बाहर निकल आते और पुन: सेनाके मध्यमें प्रवेश कर जाते थे। द्रुपद और धृष्टकेतुकी कुछ भी परवा न करके वे पाण्डवसेनामें घुस आये और अपने पैने बाणोंसे भीम, सात्यकि, अर्जुन, द्रुपद, विराट और धृष्टद्युम्न इन छ: महारथियोंको बींधने लगे। इन महारथियोंने भी उनके बाणोंका निवारण करके पृथक्-पृथक् बाणोंसे भीष्मको बींध दिया। महारथी शिखण्डीने बाणोंका प्रबल प्रहार किया, किंतु उससे उन्हें तनिक भी कष्ट नहीं हुआ। तब अर्जुनने कुपित होकर भीष्मके धनुषको काट दिया। उनके धनुषका काटना कौरव महारथियोंसे नहीं सहा गया। उस समय आचार्य द्रोण, कृतवर्मा, जयद्रथ, भूरिश्रवा, शल, शल्य तथा भगदत्त ये सात वीर क्रोधमें भरकर धनंजयपर टूट पड़े और अपने दिव्य अस्त्रोंका कौशल दिखाते हुए उन्हें बाणोंसे आच्छादित करने लगे। अर्जुनपर धावा करनेवाले इन कौरव वीरोंने महान् कोलाहल मचाया। उस समय उनके रथके पास, मारो, यहाँ लाओ, पकड़ो, छेद डालो, टुकड़े-टुकड़े कर दो आदिकी आवाज सुनायी देने लगी।

वह आवाज सुनकर पाण्डवोंके महारथी भी अर्जुनकी रक्षाके लिये दौड़े। सात्यकि, भीम, धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, घटोत्कच और अभिमन्यु ये सात वीर अपने-अपने विचित्र धनुष लिये क्रोधमें भरे हुए कौरवोंके सामने आ डटे। फिर तो दोनों दलोंमें रोमाञ्चकारी तुमुल युद्ध छिड़ गया। मानो देवता और दानव लड़ रहे हों। भीष्मका धनुष कट गया था, उसी अवस्थामें शिखण्डीने उन्हें बाणोंसे बींध दिया। फिर उनके सारथीको मारकर एकसे रथकी ध्वजा काट डाली। तब भीष्मने

दूसरा धनुष हाथमें लिया, किंतु अर्जुनने उसे भी काट दिया। इस प्रकार भीष्मने अनेकों धनुष लिये, पर अर्जुन सबको काटते गये। बारंबार धनुष कटनेसे भीष्मको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने पर्वतोंको भी विदीर्ण करनेवाली एक बहुत बड़ी शक्ति अर्जुनके रथपर फेंकी। यह देख अर्जुनने बाण मारकर उस शक्तिके टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

शक्तिको कटी हुई देख भीष्म मन-ही-मन विचारने लगे- यदि श्रीकृष्ण रक्षा न करते होते, तो मैं एक ही धनुषसे सम्पूर्ण पाण्डवोंका वध कर सकता था। इस समय मेरे सामने पाण्डवोंके साथ युद्ध न करनेके दो कारण उपस्थित हैं- एक तो ये पाण्डुकी संतान होनेके कारण मेरे लिये अवध्य हैं; दूसरे मेरे समक्ष शिखण्डी आ गया है, जो पहले स्त्री था। जिस समय मेरे पिताने माता सत्यवतीसे विवाह किया, उस समय उन्होंने संतुष्ट होकर मुझे दो वर दिये थे- जब तुम्हारी इच्छा होगी, तभी मरोगे तथा युद्धमें कोई भी तुम्हें मार न सकेगा। जब ऐसी बात है, तो मैं इस समय अपनी स्वच्छन्द मृत्यु ही क्यों न स्वीकार कर लूं; क्योंकि अब उसका भी अवसर आ गया है।

भीष्मके इस निश्चयको आकाशमें स्थित ऋषिगण और वसु देवता जान गये। उन्होंने भीष्मको सम्बोधित करके कहा- तात। तुमने जो विचार किया है, वह हमलोगोंको भी बहुत प्रिय है। अब वही करो, युद्धकी ओरसे चित्तवृत्ति हटा लो। उनकी बात पूरी होते ही शीतल मन्द-सुगन्ध वायु चलने लगी, जलकी फुहारें पड़ने लगीं, देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। वसुओंकी उपर्युक्त बात सुनकर पितामहने अपने ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा होती रहनेपर भी अर्जुन पर हाथ नहीं उठाया।

उस समय शिखण्डीने कुपित होकर भीष्मकी छातीमें बाण मारे, किंतु वे तनिक भी विचलित नहीं हुए। तब अर्जुनने मुसकराकर पितामहके ऊपर बाण मारे, फिर शीघ्रतापूर्वक उनके सारे अङ्गों तथा मर्मस्थानोंको बींध डाला। इसी प्रकार दूसरे राजा भी भीष्मपर सहस्त्रों बाणोंका प्रहार करने लगे। भीष्म भी अपने बाणोंसे उन राजाओंके अस्त्रोंका निवारण कर उन्हें बींधने लगे। तत्पश्चात् अर्जुनने पुन: भीष्मके धनुषको काट दिया और बाणोंसे उन्हें बींधकर एकसे उनके रथकी ध्वजा काट दी, फिर बाण मारकर उनके सारथीको पीड़ित किया। जब भीष्मने दूसरा धनुष लिया तो अर्जुनने उसे भी काट दिया। एक-एक क्षणमें वे धनुष उठाते और अर्जुन उसे काट देते थे। इस प्रकार जब बहुत-से धनुष कट गये तो भीष्मने अर्जुनके साथ युद्ध बंद कर दिया। तब अर्जुनने शिखण्डीको आगे करके पितामहको पुन: बाण मारे। उनसे अत्यन्त आहत होकर पितामहने दु:शासनसे कहा- देखो, यह महारथी अर्जुन आज क्रोधमें भरकर मुझे हजारों बाणोंसे बींध चुका है। इसके बाण मेरे कवचको छेदकर शरीरमें घुस जाते हैं और मूसलके समान चोट करते हैं। ये शिखण्डीके बाण नहीं हैं। वज्रके समान इन बाणोंका स्पर्श होते ही शरीरमें बिजली-सी दौड़ जाती है। ये ब्रह्मदण्डके समान भयंकर और वज्रके समान दुर्दम्य हैं तथा मेरे मर्मस्थानोंको विदीर्ण किये डालते हैं। अर्जुनके सिवा और किसीके बाण मुझे इतनी पीडा नहीं दे सकते।

ऐसा कहकर भीष्म, मानो पाण्डवोंको भस्म कर डालेंगे, इस प्रकार क्रोधमें भर गये और अर्जुनके ऊपर उन्होंने पुन: एक शक्ति छोड़ी; किंतु अर्जुनने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तब भीष्म ढाल और तलवार हाथमें लेकर रथसे उतरने लगे, अभी ऊपर ही थे कि अर्जुनने बाण मारकर उनकी ढालके सैकड़ों टुकड़े कर डाले। यह देखकर सबको बड़ा विस्मय हुआ। अर्जुनने पैने बाणोंसे भीष्मका रोम-रोम बींध डाला था। उनके शरीरमें दो अङ्गुल भी ऐसा स्थान नहीं बचा था, जहाँ बाण न लगा हो। इस प्रकार कौरवोंके देखते-देखते बाणोंसे छलनी होकर पितामह भीष्म सूर्यास्तके समय रथसे गिर पड़े। सन्ध्या होने को आयी। अरावली पर्वत की ढलान पर ग्रीष्म ऋतु में रक्तवर्णी पुष्पों से लहलहाये पलाश-वृक्ष की भाँति पितामह भीष्म दिखने लगे। नन्दिघोष का सारथी और शिखण्डी- दोनों सुरक्षित थे। परन्तु कुछ एक बाण अर्जुन के शरीर में घुसे थे। अवसर मिलते ही शिखण्डी ने उन्हें

निकालकर रणभूमि में फेंक दिया था। कुलवधू द्रौपदी का सुहाग अक्षय और अखण्ड ही था।

शिखंडी सामने आ जाने के कारण भीष्म ने प्रतिवार नहीं किया और धनुष बाण रख दिया। बाण चला चला कर भीष्म की छाती छलनी कर दी। भीष्म बोले, विजयी भव अर्जुन। मैं जानता हूँ जो बाण मेरी छाती का लहू पी रहे है वो तेरे बाण हैं अर्जुन। बधाई हो आचार्य द्रोण। तुम्हारे शिष्य ने मेरी छाती छलनी कर दी। अर्जुन की आंखों में आंसू बहने लगे। रोते-रोते अर्जुन ने भीष्म को पराजित किया और रथ से गिराया। उठकर ढाल से अपना बचाव करने लगे तो अर्जुन ने बाण से ढाल काटकर गिरा दी और बाणों से बींध दिया। सूर्य-बिम्ब पश्चिम क्षितिज को छू रहा था, तभी अर्जुन ने पितामह पर एक साथ सर्पमुख, सूचि, कंकपत्र, बस्तिक, नाराच, शिलिमुख आदि दस-दस बाणों की, एक के बाद एक, दो बार वर्षा की। उनमें से कुछ सूचिबाण लौहत्राण को भेदकर उनके वक्ष में घुस गये। वीर देह में स्थान-स्थान पर बाण लगे। अस्त होते तेजस्वी सूर्य-बिम्ब सदृश रक्तवर्णी दिखते पितामह रथ से रणभूमि पर गिर गये। भीष्म छाती से बाण लगे भूमि पर गिर पड़े। वह जहाँ गिरे वहाँ शर नामक रक्तरंजित तृण फैला हुआ था। अस्ताचल सूर्य की छाया में पितामह का पतन होते ही कौरव-सेना में समाचार फैल गया- सेनापति पितामह भीष्म शरशायी हो गये।

उस समय उनका मस्तक पूर्व दिशाकी ओर था। उनके गिरते ही देवताओं और राजाओंमें हाहाकार मच गया। महात्मा भीष्मको उस अवस्थामें देख सभी का दिल बैठ गया। पृथ्वीपर वज्रपातके समान शब्द हुआ। उनके शरीरमें सब ओर बाण बिंधे हुए थे; इसलिये वे शरशय्यापर ही लेटे रह गये। धरतीसे उनका स्पर्श नहीं हुआ। बाण-शय्यापर सोये हुए भीष्मके शरीरमें दिव्यभावका आवेश हुआ। गिरते-गिरते उन्होंने देखा कि सूर्य तो अभी दक्षिणायनमें हैं, यह मरणका उत्तम काल नहीं हैं; इसलिये अपने प्राणोंका त्याग नहीं किया, होश-हवास ठीक रक्खा।

हिमालयकी पुत्री श्रीगङ्गाको जब यह मालूम हुआ कि कौरवोंके पितामह भीष्म पृथ्वीपर गिरकर भी अभी प्राणोंको बचाये हुए उत्तरायणकी बाट देख रहे हैं, तो उन्होंने महर्षियोंको हंसके रूपमें उनके पास भेजा। उन्होंने आकर शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मका दर्शन करके उनकी प्रदक्षिणा की। फिर परस्पर कहने लगे भीष्म तो बड़े महात्मा हैं। ये दक्षिणायनमें भला, अपना शरीर क्यों छोड़ेंगे? यों कहकर जब वे जाने लगे तो भीष्मने उनसे कहा, हंसगण। आपसे सत्य कहता हूँ, मैं दक्षिणायनमें देह-त्याग नहीं करूँगा। उत्तरायण होनेपर ही अपने धामकी यात्रा करूँगा- यह मेरे मनमें पहलेसे ही निश्चित है। पिताके वरदानसे मृत्यु मेरे अधीन है; इसलिये नियत समयतक प्राण धारण करनेमें मुझे विशेष कठिनाई नहीं होगी।

यह कहकर वे पूर्ववत् शर-शय्यापर सोये रहे और हंसगण चले गये। उस समय कौरव शोकसे मूर्च्छित हो रहे थे। कृपाचार्य और दुर्योधन आदि आह भर-भरकर रो रहे थे। कितनोंको विषादके मारे बेहाल हो गये। कुछ लोग गहरी चिन्तामें डूबे हुए थे। युद्धमें किसीका भी मन नहीं लगता था। कोई भी पाण्डवोंपर धावा न कर सका, मानो किसी महान् ग्राहने उनके पैर पकड़ लिये हों। उस समय सब लोग यही अनुमान लगाते थे, अब कौरवोंके विनाश होनेमें अधिक विलम्ब नहीं है।

पाण्डव विजयी हुए थे, अत: उनके दलमें शफ्फाद होने लगा। सृञ्जय और सोमक खुशीके मारे फूल उठे। भीम ताल ठोंकते हुए सिंहके समान दहाड़ने लगे। कौरव-सेनामें कुछ लोग बेहोश थे और कुछ फूट-फूटकर रो रहे थे। कितने ही पछाड़ खा-खाकर गिर रहे थे। कुछ लोग क्षत्रियधर्मकी निन्दा करते थे और कुछ भीष्मकी प्रशंसा। भीष्म उपनिषदोंमें बतायी हुई योगधारणाका आश्रय ले प्रणवका जप करते हुए उत्तरायणकालकी प्रतीक्षा करने लगे।

धृतराष्ट्रने कहा- सञ्जय। भीष्म महाबली और देवताके समान थे, उन्होंने अपने पिताके लिये आजीवन ब्रह्मचर्यका

पालन किया था। उस समय रणभूमिमें उनके गिर जानेसे हमारे योद्धाओंकी क्या गति हुई होगी? भीष्मने अपनी दयालुताके कारण जब शिखण्डीपर बाणोंका प्रहार नहीं करनेका निश्चय किया, तभी यह समझ में आ गया कि अब पाण्डवोंके हाथसे कौरव अवश्य मारे जायेंगे। इससे बढ़कर दु:खकी बात क्या होगी, जो आज पितामहके मरणका समाचार सुन रहा हूँ। वास्तवमें मेरा हृदय वज्रका बना हुआ है, तभी तो तात् भीष्मकी मृत्युकी बात सुनकर भी इसके सैकड़ों टुकड़े नहीं हो जाते। संजय। कुरुश्रेष्ठ भीष्म जिस समय मारे गये, उसके बाद क्या हुआ वह मुझे बताओ।

सञ्जय बोला- सायंकालमें जब भीष्म रणभूमिमें गिरे, उस समय कौरवोंको बड़ा दु:ख हुआ और पाञ्चालदेशीय योद्धा आनन्द मनाने लगे। भीष्म बाणोंकी शय्यापर सोये हुए थे। उस समय आपका पुत्र दु:शासन बड़े वेगसे द्रोणाचार्यकी सेनामें गया। उसे आते देख कौरव-सैनिक मन-ही-मन यह सोचकर कि देखें, यह क्या कहता है? उसे चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। दु:शासनने द्रोणाचार्यको भीष्मकी मृत्युका समाचार सुनाया। यह अप्रिय संवाद सुनते ही आचार्य मूर्च्छित हो गये। थोड़ी देरमें जब सचेत हुए तो उन्होंने अपनी सेनाको युद्ध बंद करनेकी आज्ञा दी। कौरवोंको लौटते देख पाण्डवोंने भी घुड़सवार दूतोंके द्वारा सब ओर फैली हुई अपनी सेनाको युद्धसे रोक दिया। क्रमश: सब सेनाके लौट जानेपर राजा अपने-अपने कवच और अस्त्र-शस्त्र उतारकर भीष्मके पास पहुंचे। कौरव और पाण्डव दोनों ही पक्षके लोग भीष्मको प्रणाम करके वहाँ खड़े हो गये। कौरव-सेना के पहले सेनापति का पतन होते ही सेना में हाहाकार मच गया। अपने शस्त्रों को नीचे रखकर दोनों सेनाओं के योद्धा वृद्ध, वीर सेनापति के दर्शन के लिए दौड़ पड़े।

भीष्मके गिरते ही श्रीकृष्ण रथ-रश्मि त्यागकर रथसे कूदे और पितामहके समीप आ खड़े हुए। उनके कमल लोचन भर आये थे। भीष्मने देखा वे बोले अभी नहीं और ऐसे भी नहीं। वासुदेव देह त्यागने लगूँ तो अवश्य दर्शन देना और सम्मित मुख सम्मुख रहना। भक्तवत्लसने मौन स्वीकृति दी।

उस समय धर्मात्मा भीष्मने अपने सामने खड़े हुए राजाओंको सम्बोधित करके कहा- महान् सौभाग्यशाली महारथियों। मैं आपलोगोंका स्वागत करता हूँ। देवोपम वीरों। इस समय आपके दर्शनसे मुझे बड़ा संतोष हुआ है। इस तरह सबका अभिनन्दन करके भीष्मने पुन: कहा- मेरा सिर नीचे लटक रहा है, आपलोग इसके लिये कोई तकिया ला दीजिये। यह सुनकर राजालोग बहुत कोमल और उत्तम-उत्तम तकिये ले आये, परंतु पितामहको वे पसंद नहीं आये। उन्होंने हँसकर कहा- राजाओं। ये तकिये वीरशय्याके योग्य नहीं है। इसके बाद उन्होंने अर्जुनकी ओर देखकर कहा- पुत्र धनञ्जय। मेरा सिर लटक रहा है, इसके लिये शीघ्र ही इस बिछौनेके अनुरूप एक तकिया ला दो। तुम सब धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ और शक्तिशाली हो। तुम्हें क्षत्रियधर्मका ज्ञान है और तुम्हारी बुद्धि निर्मल है, अत: तुम्हीं यह कार्य कर सकते हो।

भीष्मका बलिष्ठ वृद्ध-तन बाणों से बिंधा हुआ था। अर्जुन के गाण्डीव से छूटे इतने तीक्ष्ण शर शरीर के पृष्ठ भाग में बिंधे हुए थे कि भूमि पर न गिरकर उनका तप-तेजस्वी कुन्दन-तन बाणों पर ही अटक गया था। पितामह के मुख पर अपूर्व शान्ति विराज रही थी। शर-शय्या पर जैसे वह महातपस्वी केवल विश्रामरत हो।

उन्होंने पूछा, मेरे समग्र तन को तुमने अपूर्व सुख दिया है पार्थ, जो अन्तिम वेला में भूमि से ऊपर ही इस वीर-शय्या का निर्माण कर दिया। किन्तु वत्स। मेरा शीश झूल गया है, क्योंकि उसमें कोई बाण तुमने नहीं मारा। मेरे शिर के लिए उपधान लाओ। बिना समझे कौरव राजपुत्र दौड़ पड़े। पलक झपकते कोमलतम उपधान उनके शीश के लिए आ गये।

भीष्म बोले, नहीं। यह वीरोचित उपधान नहीं। जैसी मेरी शय्या है, वैसा ही शिरोपधान हो। पार्थ ही यह कार्य कर सकता

है। क्यों ऐसे विह्वल खड़े हो धनंजय? मेरे झूलते हुए शीश को अवलम्ब चाहिए, अविलम्ब चाहिए। वे स्नेहपूरित नेत्रों से पार्थ को निहार रहे थे।

छलछलाते नेत्रों से अर्जुन ने गाण्डीव से तीन बाण छोड़े, जो भीष्म पितामह के शीश में बिंध गये और उनका झूलता हुआ सिर अनुगृहीत हो स्थिर हो गया।

भीष्म बोले, सव्यसाचिन्। एक अन्तिम इच्छा और वत्स। इस वेदनार्थ तन की अन्तिम पिपासा भी तुम ही बुझा सकते हो। शीतल जल से मेरे पीड़ातप्त कण्ठ को तृप्त करो।

हृदय का आवेग किसी प्रकार संयमित किये प्रत्यंचा चढ़ाकर सव्यसाची ने पितामह की परिक्रमा की और मन्त्रोच्चारण करते हुए बाण सन्धान कर उनके दक्षिण पार्श्ववाली भूमि पर छोड़ा। वारुणास्त्र तड़ित् गति से भूमि में बिंधा, और तत्क्षण उस स्थल से एक विलक्षण अमृतजल-स्त्रोत फूट पड़ा।

शीतल फेनिल ऊर्ध्वमुखी जलधारा सीधे गंगानन्दन के मुख में जा रही थी। जनसमूह रोमांचित हो साधु-साधु कह उठा। पितामह परमतृप्ति की अनुभूति कर रहे थे।

वे क्षत्रियशिरोमणि महात्मा अपनी उस विलक्षण शय्या पर विश्रामरत थे। चारों ओर कौरव, पाण्डव, पांचाल, अन्धक, वृष्णि, कैकेय, मत्स्य, संशप्तक आदि की अक्षौहिणी सेनाएँ खड़ी थीं। विराट जनसमूह महाप्रतापी पितामह के अन्तिम दर्शनों को उमड़ पड़ा था, किन्तु कितनी स्तब्धता थी। वीर पुरुषों की पलकें अश्रुसिंचित थीं। सबके मस्तक झुके हुए थे। उनके स्वर्णकिरीटों को अस्ताचलगामी भगवान् भास्कर की स्वर्णिम रश्मियाँ प्रदीप्त कर रही थीं। वे सब कवच एवं अस्त्र-शस्त्र से विहीन हो अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे थे। वह जनसभा एक विचित्र विराट दीप्तिशालिनी महाभारती थी जिसमें आबाल वृद्ध, और समस्त नर-नारी, महाभीष्म शान्तनुकुमार के सम्मान में मौन खड़े थे। कौन नहीं था वहाँ उस क्षण? शिल्पी, कलाकार, नर्तक, नट, वादक, व्यवसायी, योद्धा- सभी तो थे। सहस्त्रों राजकन्याएँ उस महान् राजपुरुष पर चन्दन, अगुरु, लाजा इत्यादि बिखेर रही थीं।

कैसा दिव्य दृश्य था। ऐसा कभी इतिहास में न हुआ, न होगा। पितामह कौरव-पाण्डव कुलों को घेरनेवाली पुरातन प्राचीर थे। दोनों के मध्य एकता के सूत्र थे। वह सूत्र आज छिन्न-भिन्न हो चुका था। दोनों पर अपनी सघन छाँह फैलाये वे विशाल आदिवट थे। कुरुवंश के प्राचीनतम राजछत्र थे जिसकी छत्रच्छाया में ये असंख्य नव-योद्धा प्रशिक्षित हुए थे। आज छत्र-भंग का योग था। कुरुकुल अनाथ हो गया था। उसका सर्वश्रेष्ठ परामर्शक और संरक्षक, योगशक्ति से अपने प्राण रोके हुए प्रतीक्षा कर रहा था कि जब सूर्यदेव उत्तरायण होंगे, तभी वे प्राण त्यागेंगे। पृथानन्दन महावीर धनंजय से एक बार अपने शिरोपधान की अद्भुत व्यवस्था कराके, एवं दूसरी बार उनसे उतने ही अद्भुत ढंग से भूमि से जलस्त्रोत नि:सृत करवाकर गंगानन्दन भीष्म ने धृतराष्ट्र-पुत्रों को सावधान करना चाहा था। उन्हें सचेत करना चाहा- अभी भी समय है। अर्जुन के समान विलक्षण धनुर्धर कौरवों में नहीं है। पृथ्वी पर नहीं है। देखा, तीक्ष्ण बाणों से उनके तपोनिष्ठ तन के लिए कैसी अनोखी वीर-शय्या निर्माण कर दी अर्जुन ने। कौरवों को अर्जुन के कौशल से चमत्कृत कर पितामह ने उन्हें अन्तिम चेतावनी दे दी थी। वे अन्तिम कर्तव्य कौरवों के प्रति पूर्ण कर चुके थे। अब वे बन्धनमुक्त थे। स्वतन्त्र थे। स्वच्छन्द थे।

सभी वीर अपने-अपने रथों पर उसे उतरकर भूमिपर गिरे पितामह भीष्म के पास आते है और आंसू बहाकर खड़े है।

भीष्म घायल अवस्था में बोले, मेरे सिर को सहारा चाहिये। दुर्योधन बोला दु:शासन तकिया लेकर आओ। दु:शासन तकिया लेकर भीष्म के सिरहाने लगाया। भीष्म बोले, यह सिरहाना वीर शैया के योग्य नहीं है। जिसने मुझे यह शय्या दी है वो ही मुझे सिरहाना देगा। अर्जुन को बुलाओ। अर्जुन आया और गांडीव चलाकर तीन तीरों से तकिया बनाकर भीष्म का सिर उसपर रक्खा। अर्जुनने भी बहुत अच्छा कहकर इस आज्ञाको स्वीकार किया और भीष्मकी अनुमति ले अपना गाण्डीव धनुष उठाया। उसपर अभिमन्त्रित बाणोंको रखकर उन्होंने उन्हें मारकर भीष्मका मस्तक ऊँचा कर दिया। इससे भीष्म बड़े प्रसन्न हुए। उनके दिये हुए इस वीरोचित तकियेको पाकर भीष्मने अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए कहा- पाण्डुनन्दन। तुमने इस शय्याके योग्य तकिया लगा दिया। हे महाबाहो। अपने धर्ममें स्थित रहनेवाले क्षत्रियको संग्रामभूमिमें इसी प्रकार शर-शय्यापर शयन करना चाहिए। अन्तमें सूर्यास्तके समय वह कुरुकुलका सूर्य भी रथसे गिर पड़ा। उस समय उनके शरीरमें दो अंगुल स्थान भी ऐसा नहीं था जहाँ बाण न लगा हो। उनका शरीर उन बाणोंपर ही पृथ्वीसे ऊपर टँगा रह गया। अर्जुनने ही उनके आदेशसे सिरमें तीन बाण मारकर मस्तकको तकिया दिया।

बाणोंके घावसे भीष्मका शरीर जल रहा था, पीडासे उन्हें मूर्च्छा आ जाती थी; उन्होंने बड़ी कठिनाईसे राजाओंकी ओर देखकर कहा पानी चाहिये। सुनते ही क्षत्रियलोग उठे और चारों ओरसे उत्तमोत्तम भोजनकी सामग्री तथा ठंडे जलसे भरे हुए घड़े लाकर उन्होंने भीष्मको अर्पण किये। यह देख भीष्म बोले, अब मैं पहले भोगे हुए किसी मानवीय भोगको स्वीकार नहीं करूँगा; क्योंकि अब मैं मानवलोकसे अलग होकर बाणशय्यापर शयन कर रहा हूँ। यह कहकर वे राजाओंकी बुद्धिकी निन्दा करते हुए बोले- इस समय अर्जुनको देखना चाहता हूँ। यह सुनकर अर्जुन तुरंत उनके निकट पहुँचे और प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़े हुए विनीत भावसे खड़े होकर बोले- पितामह। मेरे लिये क्या आज्ञा है? अर्जुनको सामने खड़े देख धर्मात्मा भीष्मने प्रसन्न होकर कहा- पुत्र। तुम्हारे बाणोंसे मेरा शरीर जल रहा है। मर्मस्थानोंमें बड़ी पीड़ा हो रही है। मुँह सूखा जाता है। मुझे प्यास भी लगी है पुत्र। तुम समर्थ हो, तुम्हीं मुझे विधिवत् जल पिला सकते हो। अर्जुनने बहुत अच्छा कहकर पितामहकी आज्ञा स्वीकार की और अपने रथपर बैठकर उन्होंने गाण्डीव धनुष चढ़ाया। उस धनुषकी टंकार सुनकर सभी प्राणी थर्रा उठे और राजाओंको भी बड़ा भय हुआ। अर्जुनने रथके द्वारा ही पितामहकी परिक्रमा की और एक दमकता हुआ बाण निकाला, फिर मन्त्र पढ़कर उसे पार्जन्य-अस्त्रसे संयोजित किया। इसके बाद सबके देखते-देखते उन्होंने भीष्मके निकटवाली भूमिपर वह बाण मारा। उसके लगते ही पृथ्वीसे अमृतके समान मधुर तथा दिव्य गन्ध और दिव्य रससे युक्त शीतल जलकी निर्मल धारा निकलने लगी। उससे अर्जुनने दिव्य कर्म करनेवाले पितामह भीष्मको तृप्त किया।

**गंगा आशीश दे आकर सुत के पास, आज गिरा वो भूमिपर जैसे कोई आकाश।**

अर्जुनका यह अलौकिक कर्म देखकर वहाँ बैठे हुए राजाओंको बड़ा विस्मय हुआ। वे सब-के-सब भयसे काँपने लगे। उस समय चारों ओर शफ और दुन्दुभियोंकी तुमुल ध्वनि गूँज उठी। भीष्मने तृप्त होकर सबके सामने अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए कहा- हे महाबाहो। तुममें ऐसा पराक्रम होना आश्चर्यकी बात नहीं है। मुझे नारदने पहलेसे ही बता दिया है कि तुम पुरातन ऋषि नर हो और इन भगवान् नारायणकी सहायतासे बड़े-बड़े कार्य करोगे, जिन्हें इन्द्र आदि देवता भी करनेका साहस नहीं कर सकते। तुम इस भूमण्डलमें एकमात्र सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर हो। इस युद्धको रोकनेके लिये मैंने तथा विदुर, द्रोणाचार्य, परशुराम, श्रीकृष्ण और सञ्जयने भी बार-बार कहा; किंतु दुर्योधनने किसीकी नहीं मानी। उसकी बुद्धि विपरीत हो गयी है; वह बेसुधसा रहता है, किसीकी बातपर विश्वास ही नहीं करता। सदा शास्त्रके प्रतिकूल आचरण करता है।

इसका फल तो इसे मिलेगा ही; भीमके बलसे अपमानित होकर यह मारा जायगा और सदाके लिये रणभूमिमें सो जायेगा।

भीष्मकी यह बात सुनकर दुर्योधनका मन बहुत दुखी हो गया। उसे देखकर पितामहने कहा- राजन्। क्रोध छोड़ दो और मेरी बात पर ध्यान दो। यह तो तुमने देखा न, अर्जुनने किस तरह शीतल, मधुर एवं सुगन्धित जलकी धारा प्रकट की है? ऐसा पराक्रम करनेवाला इस जगत्में दूसरा कोई नहीं है। आग्नेय, वारुण, सौम्य, वायव्य, वैष्णव, ऐन्द्र, पाशुपत, ब्राह्म, पारमेष्ठ्य, प्राजापत्य, धात्र, त्वाष्ट्र, सावित्र और वैवस्वत इत्यादि अस्त्रोंको इस संसारमें अर्जुन या श्रीकृष्ण ही जानते हैं। तीसरा कोई भी इनका ज्ञाता नहीं है। अत: अर्जुनको किसी प्रकार भी युद्धमें जीतना असम्भव है, इनके सभी कर्म अलौकिक हैं। इसलिये मेरी सहमति है कि तुम इनके साथ शीघ्र ही संधि कर लो। जबतक श्रीकृष्ण कोप नहीं करते, जबतक भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव तुम्हारी सेनाका सर्वनाश नहीं कर डालते, उसके पहले ही तुम्हारा पाण्डवोंके साथ मित्रभाव हो जाना अच्छा है। हे पुत्र। मेरे मरनेके साथ ही इस युद्धकी समाप्ति कर दो, शान्त हो जाओ। मेरा कहा मानो, इसीमें तुम्हारा और तुम्हारे कुलका कल्याण है। अर्जुनने जो पराक्रम दिखाया है, यह तुम्हें सचेत करनेके लिये काफी है। अब तुमलोगोंमें परस्पर प्रेमभाव बढ़े और बचे हुए राजाओंके जीवनकी रक्षा हो। पाण्डवोंको आधा राज्य दे दो और युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थ लेकर चले जायँ। सभी राजा प्रेमपूर्वक एक-दूसरेसे मिलें। पिता पुत्रसे, मामा भानजेसे और भाई भाईके साथ मिलकर रहें। यदि मोहवश या मूर्खताके कारण तुम मेरी इस समयोचित बात नहीं मानोगे तो अन्तमें पछताना पड़ेगा, सर्वनाश हो जायगा- यह तुम्हारे हित की बात है। भीष्म सुहृद्भावसे यह बात कहकर चुप हो गये।

भीष्म ने अन्य राजा और राजकुमार से कहा अब मैं जबतक सूर्य उत्तरायण में नहीं आते तब तक इसी शरशय्या पर पड़ा रहूँगा। उस समय जो लोग मेरे पास आयेंगे, वे मेरी परलोक-यात्रा देख सकेंगे। मेरे आसपासकी भूमिमें खाई खुदवा देनी चाहिये। इन सैकड़ों बाणोंसे बिंधा हुआ ही मैं सूर्यदेवकी उपासना करूँगा। राजाओं। अन्तमें मेरी प्रार्थना यह है कि आपलोग अब आपसका वैर छोड़कर युद्ध बंद कर दीजिये।

तदनन्तर, शरीरसे बाण निकालनेमें कुशल सुशिक्षित वैद्य अपने साज-सामानके साथ भीष्मकी चिकित्साके लिये वहाँ उपस्थित हुए। उन्हें देखकर भीष्मने दुर्योधन से कहा- दुर्योधन। इन चिकित्सकोंको धन देकर सम्मानके साथ विदा कर दो। इस अवस्थाको पहुँच जानेपर अब मुझे वैद्योंसे क्या काम है? क्षत्रियधर्ममें जो सर्वोत्तम गति है, वह मुझे प्राप्त हुई है; बाणशय्यापर शयन करनेके पश्चात् अब चिकित्सा कराना मेरा धर्म नहीं है। इन बाणोंके साथ ही मेरा दाह-संस्कार होना चाहिये। पितामहकी बात सुनकर दुर्योधनने वैद्योंको धन आदिसे सम्मानित करके विदा कर दिया। नाना देशोंके राजा वहाँ जुटे हुए थे, वे भीष्मकी यह धर्म-निष्ठा और साहस देखकर बहुत विस्मित हुए। इसके बाद कौरव और पाण्डवोंने बाणशय्यापर सोये हुए भीष्मकी तीन बार प्रदक्षिणा करके उन्हें प्रणाम किया और उनकी रक्षाका प्रबन्ध करके वे सब लोग अपने-अपने शिबिरमें लौट आये।

तब गंगा भी वहाँ प्रकट हुई। भीष्म बोले, प्रणाम माते। कृष्ण बोले, मेरे विचार से गंगापुत्र को अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में अकेला छोडना चाहिए। दुर्योधन बोला, इन्हें छोड़ कैसे दें वासुदेव। ये हमारे पितामह हैं। भीष्म बोले, पितामह तो मैं पांडवों का भी हूँ दुर्योधन। मुझे अकेला छोड़ दो। जीवनभर मैंने तुमसे या तुम्हारे पिता से कुछ भी नहीं मांगा। आज एकान्त मांग रहा हूँ। दुर्योधन बोला, जो आज्ञा पितामह लेकिन हम लोग आपको देखने के लिये आते जाते रहेंगे।

**आज धराशायी हुये कुरुकुल के सरताज, उनको अभिवादन करे सारा वीर समाज।**

**श्वेत आत्मा, श्वेत युग, श्वेत केश या वेष, कहां दिखे इस लोक में ऐसे वीर विशेष।**
**रक्त सना हर तीर है, आंसू भरा हर नयन, रूंधा रूंधा हर कंठ है, रूंधा रूंधा हर बैन।**
**अर्जुन ने स्पर्श किये चरण, दिये हृदय में घाव, कृष्ण खड़े कर बद्ध हो, ऐसा पुण्य प्रभाव।**

सभी प्रणाम कर परिक्रमा कर चले गये। कृष्ण और गंगा वहीं हैं। भीष्म बोले, तुम्हारे अतिरिक्त मेरी विवशता कौन समझ सकता है गिरिधर? कृष्ण बोले, तो क्या मेरा समझलेना पर्याप्त नहीं है गंगापुत्र? आप सत्य और निष्ठा का प्रतिबिम्ब बनकर सदैव जीवित रहेंगे। हर युग में मानव जाति आपको प्रणाम करती रहेगी।

सभी पाण्डवों सहित सात्यकि भी कृष्ण के पीछे-पीछे पितामह के दर्शन करने गया। वे शर शैया पर शान्त लेटे हुए थे। कृष्ण को देखते ही उन्होंने अत्यन्त ममता से क्षीण स्वर में कहा- आओ वासुदेव। मुझे और पाँचों पाण्डवों को साथ लिये कृष्ण उनके निकट शर-तृण पर वीरासन में बैठ गये। सात्यकि और अन्य सभी खड़े ही रहे। उन दो महापुरुषों की बातें सुनने को सभी अत्यन्त उत्सुक थे। गंगापुत्र भीष्म ने यमुनापति कृष्ण से कहा, हे वासुदेव, जो तुम्हारे मन में होगा, वही होगा। चिन्ता मत करो। मैं अभी देह को नहीं त्याग रहा हूँ। तुम्हारी ही भाँति पितृकृपा से मैं भी इच्छामरणी हूँ। तुम्हारे जैसा मैं भी सूर्य-भक्त हूँ। जब तक सूर्यदेव दक्षिणायन से उत्तरायण में प्रवेश नहीं करते, मैं देहत्याग नहीं करूँगा।

सूर्यदेव दक्षिणायन से उत्तरायण कब आएँगे? अब तक शरीर में घुसे बाणों की वेदनाओं को पितामह क्या ऐसे ही सहते रहेंगे? किसी वीर की मृत्यु का गगनमण्डल के सूर्य-भ्रमण से सम्बन्ध ही क्या है? पितामह ने अपनी रुकी दृष्टि को कृष्ण पर गड़ा दिया। पितामह भीष्म के सभी प्रश्नों के उत्तर कृष्ण ने दिये। सूर्य को उत्तरायण में आने में अभी छप्पन दिन शेष हैं। हे महाबाहु गांगेय, आप उसके उत्तरायण में आगमन की क्यों प्रतीक्षा कर रहे हैं, यह मैं जान गया हूँ। आपके दर्शनार्थ यहाँ इकट्ठे हुए इन समस्त वीरों को उसका ज्ञान होना आवश्यक है। आप ही इसका अभिप्राय सबको स्पष्ट करें।

कृष्ण ने कहा, हे पितामह, आपके ही नहीं, प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में दो अयन होते हैं- दक्षिण और उत्तर। दक्षिण का अयन कटि के निचले भाग में होता है- मलमूत्र का विसर्जन करने का अपवित्र लगनेवाला किन्तु आवश्यक कार्य करनेवाला। देह के उत्तरायण में बहत्तर सहस्त्र धमनियों का मूल केन्द्र धारण करनेवाला मस्तक होता है- पवित्र माना गया बुद्धि का निवास-स्थान। यद्यपि मानव की बुद्धि दशमांश ही प्रकट हुई है, नब्बे से अधिक अंशों से वह अब तक अप्रकट ही है। इस उत्तरायण में ही योगी और तपस्वियों का परमपवित्र माना गया- अनुभव किया गया- ब्रह्मरन्ध्र है।

पितामह को अपनी देह की जीवनी-शक्ति को दक्षिणायन में स्थित पैरों की अँगुलियों से खींचकर उत्तरायण में स्थित ब्रह्मरन्ध्र से सूर्य-केन्द्र में विलीन करना है- वह भी सूर्य के पवित्र उत्तरायण में प्रवेश करने के पश्चात्। क्यों, परशुराम शिष्य, ठीक है ना? भीष्म बोले, हे सुदर्शन, तुम कैसे कुछ अनुचित कह सकते हो? अब एक काम करो। मेरे अर्धरथी कहने से पिछले दस दिन से रुष्ट होकर अपने ही शिबिर में निष्क्रिय बैठे कर्ण से कहो कि वह आकर मुझसे मिले। मुझे उससे कुछ विशेष कहना है। कृष्ण अभिवादन कर चला गया।

श्रुतिने परमात्माको जीवका सखा कहा है और श्रुति तो उसी परमेश्वरकी वाणी है। श्रुतिका अर्थ ही है परमात्माकी स्वयं स्वीकृति। वह स्वीकृति है कि वह सर्वाधार, सर्वनियामक ही सर्वरूप है और अपने सुहृद सखा जीवसे अभिन्न है। जीव और ईश्वर परस्पर सदा एक ही हुए रहते हैं। वह अन्तर्यामी हृदयमें जीवको, देहाभिमानीको अपने अंकमे ही लिये बैठा रहता है। श्रीकृष्ण उसके हैं जो उन्हें अपना स्वीकार कर ले। वे जिसके हो गये, उसके सर्वथा हो गये। अपनोंसे अपनेको

अभिन्न ही रचना इनका स्वभाव है। फिर भीष्मने अपना मन परमात्मामें लगाया। दुर्योधनको वह बात ठीक उसी तरह पसंद नहीं आयी, जैसे मरनेवाले मनुष्यको दवा पीना अच्छा नहीं लगता। तदनन्तर, भीष्मके मौन हो जाने पर सभी राजा अपने-अपने शिबिरमें चले आये। महारथी पाण्डव अपनी शिबिरमें प्रसन्न होकर बैठे थे, इसी समय श्रीकृष्णने आकर युधिष्ठिरसे कहा- राजन्। बड़े सौभाग्यकी बात है, जो आपकी जीत हो रही है। धन्य भाग, भीष्म धराशायी हुए। ये महारथी सम्पूर्ण शास्त्रोंके पारगामी थे। मनुष्योंसे तो ये अवध्य थे ही, देवता भी इन्हें नहीं जीत सकते थे। किंतु आपके तेजसे ये दग्ध हो गये। युधिष्ठिरने कहा- कृष्ण। विजय तो आपकी कृपाका फल है। आप भक्तोंका भय दूर करनेवाले हैं और हमलोग आपकी ही शरणमें पड़े हैं। जिनकी रक्षा आप करते हैं, उनकी यदि विजय हो तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। मेरा तो ऐसा विश्वास है, जिसने सर्वथा आपका आश्रय लिया है उसके लिये कोई भी बात आश्चर्यजनक नहीं है। उनके ऐसा कहनेपर कृष्ण मुसकराते हुए बोले- महाराज। यह कथन आपके ही अनुरूप है।

गंगा बोली, पुत्र अब चलो। भीष्म बोले, अभी कैसे चलूं माते? मैंने पिताश्री को वचन दिया था कि जब तक हस्तिनापुर को चहुं ओर से सुरक्षित न देख लूं, प्राण नही त्यागूंगा। गंगा बोली, किन्तु पुत्र यह पीड़ा? भीष्म बोले, मेरा तो जीवन ही पीड़ा की परिभाषा है माते। फिर भी यदि हस्तिनापुर जीवित और सुरक्षित हो जाये तो मैं समझूंगा कि मेरा जीवन सफल हुआ। यह रात बड़ी भयानक है। कुरुक्षेत्र में तीरों की शैया पर लेटे हुये भीष्म के सिवा कोई चैन से नहीं है। ऐसा बिस्तर तो आजतक किसी योद्धा को मिला ही नहीं था। कदाचित और मिलेगा भी नहीं क्योंकि ऐसे महानपुरुष बार-बार जन्म नहीं लेते। हे भारतवर्ष तू धन्य है कि तेरे सपूतों में भीष्म जैसे महापुरुष का नाम भी आता है। इनकी महानता के सामने तो महान शब्द भी छोटा दिखाई देता है। समय भी इनके स्पर्श से धन्य हो गया। ये तीर नहीं है, पदक है, सम्मान पदक है और इनकी हर आती, जाती श्वास विधाता की ओर से दिया हुआ मानपत्र है। यदि कोई व्यक्ति कोई ऐसी एक सांस भी ले ले तो अमर हो जाये।

रात में अर्जुन भीष्म के पास आता है और चरणों में पड़कर प्रणाम करता है। सिसकियां भरता है। भीष्म बोले, हे भरतवंश की गरिमा के प्रतीक, हे कुन्तीपुत्र अर्जुन आज रणभूमि में तुमने मेरे स्नेह और अपनी वीरता के प्रति मेरे अटल विश्वास के सारे ऋण चुका दिये। अर्जुन बोला, यह वीरता नहीं कायरता थी पितामह। कायरता थी कि मैंने शिखंडी के पीछे खड़े होकर आप पर वार किया। धिक्कार है मुझपर धिक्कार है मेरे गांडीव पर। ये सारे बाण जो आपके शरीर पर जौं के भांति चिपके हुये आपका लहू पी रहे हैं, ये मेरे हैं पितामह। मैं इस अपराध के लिये कभी अपने आपको क्षमा नहीं करूंगा पितामह। भीष्म बोले, बालकों जैसी बातें ना करो पुत्र। शिखंडी मेरा भाग्य और तुम्हारा व्यूह था। क्या योद्धा ढाल का प्रयोग नहीं करते पुत्र? शिखंडी तुम्हारी ढाल बन गया और मैं उस ढाल को तोडने में सफल नहीं हो सका। अर्जुन बोले, इन मूल्यों पर तो हमें विजय बहुत महंगी पडेगी पितामह। भीष्म बोले, विजय जिन दामों में भी मिले सस्ती होती है पुत्र और इन आंसुओं को बचाओ पुत्र अर्जुन, युद्ध अभी समाप्त नहीं हुआ है। अरे वत्स यह भी तो सोचो मैं भी तो स्वयं इच्छा मृत्यु का कवच पहिनकर इस रणभूमि में उतरा। क्या किसी योद्धा को ऐसा कवच पहिनकर रणभूमि में उतरना शोभा देता है? किन्तु मैं इस कवच को उतारकर फेंक भी तो नहीं सकता था अर्जुन। मेरा यह कवच हस्तिनापुर के भविष्य से जुडा हुआ है। इसलिये तो कल रात मैंने यह बताया कि शिखंडी को ढाल बनाकर मुझसे युद्ध करो कि हम दोनों का पलडा बराबर हो जाये। मेरे पास इच्छा मृत्यु का कवच और तुम्हारे हाथ शिंखडी की ढाल और जब पलडा बराबर हो गया तो तुमने मुझे परास्त कर दिया पर मैं यह पराजय पाकर धन्य हो गया हूँ पुत्र क्योंकि मेरी पराजय ने हस्तिनापुर की

सुरक्षा का मार्ग खोल दिया है पुत्र। अर्जुन बोले नहीं पितामह। भीष्म बोले, इसलिये रोकर अपनी विजय का अपमान मत करो। अपने शिबिर में जाओ पुत्र और विश्राम करो कल फिर युद्ध करना है। मैं यहां पर तुम्हारी दी हुयी शैयापर लेटा-लेटा विजयश्री की ओर जाता देखकर हर्षित होता रहूंगा पुत्र। आज तक तो तुम अपने पितामह से युद्ध करते थे कल से तुम्हे अपने गुरु से युद्ध करना है। उनसे भी इतना जी लगाकर युद्ध करना पुत्र। वे भी यह सोचने लगे कि तुम्हारा जैसा शिष्य पाकर वे धन्य हो गये। तुमसे परास्त होकर वे भी तुम्हे विजयश्री का आशीर्वाद देंगे जैसे तुमसे परास्त होकर मैंने दिया। अपने हाथों से कहो पुत्र मेरे हाथों से तुम्हारी आंखों के आंसू पोंछ दे। आयुष्मानभव, विजयीभव। अर्जुन प्रणाम कर वहां से चला जाता है।

विदुर के घर में पारसंवी विदुर के आनेपर पूछती है कहाँ से आ रहे हो? तो विदुर बोला, संजय के घर से आ रहा हूँ। पारसंवी बोली, क्या हुआ संजय को? विदुर बोले, संजय को कुछ नहीं हुआ भाग्यवान। हस्तिनापुर बाणों की शैया पर पडा हुआ है अपने लहू का वस्त्र पहिने तातश्री। इतने ही कुन्ती वहाँ आ गयी और बोली क्या हुआ तातश्री को? बोलो विदुर तातश्री को क्या हुआ। विदुर बोला, नीति यह कहती है भाभीश्री कि जो राज सिंहासन पर बैठा हो उसीको देखना चाहिये। वर्तमान में अतीत की छवि को देखना ठीक नहीं है। तातश्री ने वर्तमान में हस्तिनापुर नरेश में अपने पिताश्री की छवि को देखने की भूल की है। परिणाम यह हुआ कि अर्जुन ने उन्हे अपने बाणों की शैया पर लेटा दिया। कुन्ती बोली, तो क्या तातश्री... विदुर बोले, नहीं, उन्होंने प्राण नहीं त्यागे क्योंकि वे तब तक जीवित रहने को वचनबद्ध हैं जब तक हस्तिनापुर चहुं ओर से सुरक्षित न हो जाये। उन्हे कुरुवंश के हरे-भरे वृक्षों के कट के गिरना देखना पडेगा और कदाचित यही उनका प्रायश्चित भी है। कुन्ती बोली, क्या तुम उन्हे प्रणाम करने जाओगे विदुर? विदुर बोले, मुझसे उनके घाव नहीं गिने जायेंगे भाभीश्री। मेरे ध्यान में उनकी जो छवि है, मैं उसे बदलना नहीं चाहता। श्वेतवस्त्र, श्वेतकेश, श्वेत आत्मा। हे भाभीश्री उनका अन्त भरतवंश के जीवन का अन्त है।

श्वेतकाल का अन्त है। उजले चरित्रवाला महापुरुष अब कदाचित ही जन्म ले। इसलिये हे भाभीश्री आइये हम और आप हस्तिनापुर की ओर से तातश्री का शोक मनाये। विदुर विचलित होकर रोते-रोते गिर पडा।

धृतराष्ट्र अपने कक्ष में चिंतित रो रहा है। पास में गान्धारी बैठी है। कुन्ती आती है। धृतराष्ट्र बोले कुन्ती। कुन्ती बोली, ज्येष्ठश्री प्रणाम। धृतराष्ट्र बोले, आयुष्मती भव, कुन्ती बोली- प्रणाम दीदी और दोनों विलाप करती है। गान्धारी बोली, बैठो कुन्ती। धृतराष्ट्र बोले, आज इतने दिनों के पश्चात मेरी याद कैसे आ गई ? कभी आती भी हो तो केवल गान्धारी से मिलकर चली जाती हो। तुम्हे यह सोचने का पूरा अधिकार है कि मैंने तुम्हारे पुत्रों केसाथ घोर अन्याय किया है किन्तु क्या तुम्हारे पुत्र मेरे कुछ नहीं लगते? जो अन्याय उनके साथ हुआ उसपर मैं बहुत दु:खी हूँ। किन्तु जो अन्याय मेरे साथ हुआ उस पर कोई दु:खी नहीं है। गान्धारी बोली, ये कैसी बातें आप कर रहे हैं आर्यपुत्र? कुन्ती बोली, यदि मैं न्याय और अन्याय के विषय में सोच रही होती तो आज मैं अपने पुत्रों के शिबिर में होती ज्येष्ठश्री। आप उनके ज्येष्ठ पिताश्री है और वे आपके अनुज पुत्र हैं। मैं तो बीच में हूं ही नहीं। यदि होती तो आपसे कोई न कोई प्रश्न अवश्य कर लेती। मैंने तो कभी आपसे यह भी नहीं पूछा कि आप कुलवधू द्रौपदी के वस्त्राहरण पर चुप कैसे रह गये? मां होने के नाते मेरे पास अपनी ही बहुत सारी समस्यायें है ज्येष्ठश्री। इस समय तो मैं आपकी सेना में भरतवंश की मर्यादा के सबसे घने और वृद्ध वृक्ष के गिर जाने पर शोक प्रकट करने आई हूं। धृतराष्ट्र बोले, किन्तु यह वृक्ष गिराया किसने? तुम्हारे पुत्र अर्जुन ने। कुन्ती बोली यदि अर्जुन के स्थान पर आप होते ज्येष्ठश्री तो आप क्या करते? धृतराष्ट्र बोले, मुझसे प्रश्न ना करो कुन्ती। भूमि के दो अंगुल टुकड़े के लिये गंगापुत्र भीष्म का वध करना उचित

है क्या? नहीं। प्रिय अर्जुन तो युद्ध के लिये तैयार ही नहीं था। किन्तु तुम्हारे भतीजे कृष्ण ने उसे उकसाया और भड़काया। इसका परिणाम यह निकला कि आज अर्जुन के कन्धे पर उसके पितामह का शव है। गान्धारी बोली, यह निर्णय तो भविष्य लेगा आर्यपुत्र कि तातश्री का शव किसके कन्धे पर है? धृतराष्ट्र चिल्लाकर बोला गान्धारी। गान्धारी बोली, मैंनें आपसे बार-बार कहा आर्यपुत्र कि आप धृतराष्ट्र हैं। आप राष्ट्र को पकड़िये। उसे मरने न दीजिये किन्तु आप राष्ट्र और सिंहासन में अन्तर न कर पाये। परिणाम यह है कि मेरी कोख उजड रही है और आपका हस्तिनापुर उजड़ रहा है। हे आर्यपुत्र अब भी जाइये और तातश्री को बीच में डालकर सन्धि कर लीजिये। धृतराष्ट्र बोले, तातश्री तो सदैव से ही पांडु पुत्रों का पक्ष लेते आये हैं और यह भी समझ लो गान्धारी कि सन्धि की सीमा पार करने के उपरान्त ही युद्ध आरम्भ होता है और जब युद्ध आरम्भ होता है तब फिर सन्धि नहीं होती। तब केवल विजय या पराजय होती है। फिर भी यदि तुम तातश्री के पास जाना चाहती हो तो अवश्य जाओ। मेरी ओर से भी उन्हें प्रणाम कहना और ये भी कहना कि युद्ध के दिनों में यदि राजा का राजधानी से निकलना उचित होता तो मैं उन्हें प्रणाम करने अवश्य आता।

संजयने कहा- राजन् जब रात बीती और सबेरा हुआ, तो कौरव और पाण्डव पितामह भीष्मके निकट उपस्थित हुए। उन्होंने वीर-शय्यापर सोये हुए पितामहको प्रणाम किया और सभी उनके पास खड़े हो गये। हजारों कन्याओंने वहाँ आकर भीष्मके शरीरपर चन्दन, रोली, खचील और फूलकी मालाएँ चढ़ाकर उनकी पूजा की। दर्शकोंमें स्त्री, बूढ़े, बालक, ढोल पीटनेवाले, नट, नर्तक और शिल्पी आदि सभी श्रेणीके लोग थे। सभी बड़ी श्रद्धासे उनका दर्शन करने आये थे। कौरव और पाण्डव भी युद्ध बंद करके कवच तथा हथियार अलग रखकर परस्पर प्रेमके साथ अपनी-अपनी अवस्थाके क्रमसे पितामहके पास बैठे थे।

## भीष्मपर्व समाप्त

*सत्य कभी बदलता नहीं, सत्य का कोई भूतकाल या वर्तमान काल नहीं होता।*

*मनुष्य को भाषा, जाति, क्षेत्र और मजहब के नाम पर बांटना सरासर गलत है और अन्याय है।*

*महत्वाकांक्षाओं की कोई सीमा नहीं होती।*

*व्यक्ति की आवश्यकतायें पूरी हो सकती है इच्छायें नहीं।*

*दुनिया में कोई हंस के मरा कोई रो के मरा परन्तु जीवन उसी का सफल है जो कुछ होकर मरा।*

*बहुमत की आवाज न्याय की द्योतक नहीं है।*

*आषाढ का चूका किसान, डाली से छूटा बन्दर कही का नहीं रहता है।*

*आदमी जब ऊपर चढे तो उसे नीचे देखते रहना चाहिये ताकि जब वह नीचे गिरे तो चोट कम लगे।*

*मनुष्य खुद तो लम्बा पूरा है लेकिन चरित्र उसका ओछा है।*

*नयी सोचवाले व्यक्ति ही इतिहास का सृजन करते हैं।*

HHH(७८५)HHH

# श्याम-खाटू

जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब परात्पर प्रभु किसी न किसी रूप में इस धरा पर अवतार ग्रहण करते हैं। इन्हीं भगवद्भक्तों की श्रेणी में हुए हैं श्री बाबा खाटूश्याम जो अपने भक्तोंकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं। ये घटोत्कच के पुत्र बर्बरीक ही हैं जो खाटूश्यामके नामसे जाने जाते हैं। उन्होंने ही महाभारत युद्ध का निर्णायक फैसला किया था। ये ही नीले घोड़े का सवार, हारे का साथी, शीश के दानी के नाम से जाने जाते हैं।

जब पाण्डव लाक्षागृह से बचकर निकलकर हिडिम्बवन में पहुँचे तब वहाँ पहुँचकर भीमने हिडिम्ब राक्षस की बहन हिडिम्बा से शादी करी। भीम से उसे एक पुत्र हुआ। उसका नाम घटोत्कच था। उसका सिर बालरहित था और सिर घट के समान था इसलिये उसका नाम घटोत्कच रखा गया। घटोत्कच अपने ताऊ चाचाओंको वनमें आकर मिला और कृष्णसे मिला। तभी युधिष्ठिर ने कृष्णसे कहा कि भगवान इसका विवाह करना है। तब कृष्णने कहा इसका विवाह मणिपुर में मुरदैत्य रहता है उसकी लड़की कामकंटकता से होगी जो मौरवी के नाम से जानी जाती है। घटोत्कच मणिपुर में गया और कामकंटकता से गन्धर्व विवाह कर लिया। उन्हें घटोत्कचसे दो पुत्र उत्पन्न हुए। एक का नाम अंजनपर्वा जो अश्वत्थामा के द्वारा महाभारत युद्ध में मारा गया और दूसरा पुत्र बर्बरीक हुआ। उसके शरीरमें शेर के भाँति बालोंको देखकर उसका नाम बर्बरीक रखा गया। वह जन्मत: ही बलवान व युवक हो गया। बर्बरीक बड़ा धर्मात्मा और विनयी था। घटोत्कच कृष्णके पास जाकर बोला, हे पुरुषोत्तम। कोई ऐसा उपाय बतायें जिसमें जीवका कल्याण किसप्रकार हो। कोई दान को, कोई तप को, कोई धन को तथा कोई मोक्ष को, कोई भोग को श्रेष्ठ बताते है किंतु मेरे लिये जो निश्चित श्रेयकर हो वह उपाय बतायें।

कृष्णने कहा, पुत्र। प्रत्येक वर्ण के लिए पृथक्-पृथक् उत्तम श्रेय बताया गया है। ब्राह्मणों के कल्याण का मूल है- तप, इन्द्रिय-संयम तथा स्वाध्याय। मनिषी पुरुषों ने धर्म के स्वरूप का निरूपण भी ब्राह्मणों के लिये कल्याण की बात बतायी है। क्षत्रियों के लिये सर्वप्रथम बल ही साध्य है, यह बात पहले ही बतायी गयी है। दुष्टों का दमन और साधुओं का संरक्षण भी क्षत्रियों के लिए श्रेयस्कर है। वैश्यों के श्रेय का साधन है- पशु-पालन और कृषि विज्ञान। शूद्र के लिये द्विजों की सेवा ही श्रेयस्कर है, उसके द्वारा जीवन-निर्वाह करनेवाला शूद्र सुखी होता है अथवा शूद्र भाँति-भाँति के शिल्प-कर्मों द्वारा जीविका चलावे और द्विजातियों के हित में लगा रहे। तुम क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए हो, अत: अपना कर्त्तव्य सुनो-पहले बल की प्राप्ति के लिये तुम्हें शक्तिरूप देवीकी आराधना करनी चाहिये। तुम महिसागर संगम की तीर्थ पर जाओ और वहाँ जाकर दुर्गाओंकी तपस्या करो। कुछ वर्ष निरन्तर तपस्या करनेपर देवियों ने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया और उन्हें दुर्लभ अतुलनीय बल प्राप्त होनेका वर दिया और बोली, पुत्र। तुम कुछ समय तक यहां रहो। यहाँ पर विजय नामके ब्राह्मण आयेंगे और उनकी संगतिसे तुम्हारा कल्याण होगा। देवोंकी आज्ञा मानकर बर्बरीक वहीं रहने लगे। थोड़े दिनोंमें मगधदेशके विजयी ब्राह्मण वहाँपर पहुँचे और सात शिवलिंगोंका पूजन किया और सफलता के लिये देवियोंकी आराधना की। तब सिद्ध माता ने प्रकट होकर उसे कहा तुम सम्पूर्ण विद्याओंकी प्रार्थना करो यह बर्बरीक तुम्हारा इसमें सहायता करेगा।

विजय ने बर्बरीक से कहा, जब मैं विद्याओंका साधन करूं तब कोई विघ्न न होने पाये। तब पाताल से आये हुए दैत्यों को बर्बरीकने यमलोक भेज दिया। उन असुरोंके मारे जानेपर नागोंके राजा वासुकि वहाँपर आये और बर्बरीक को दान माँगने के लिये कहा। तब बर्बरीक ने विजय की निर्विघ्न तपस्या सफल हो यहीं वर माँगा। उस समय वहाँ कई नागकन्याओं ने बर्बरीक का रूप

व वीरता देखकर उससे शादी करने का प्रस्ताव रखा पर बर्बरीक ने ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर रखा है कहकर उन्हें टाल दिया।

सम्पूर्ण नागों के राजा महात्मा शेष ने तपस्या करके यहाँ इस महालिङ्ग की स्थापना की है। यह दर्शन, स्पर्श, ध्यान और पूजन से सब सिद्धियों को देनेवाला है। इस लिङ्ग से पूर्व दिशा की ओर जानेवाला यह मार्ग भू-लोक में श्री पर्वत तक चला गया है। नाग लोक सुविधापूर्वक़ वहाँ तक पहुँच सकें, इसके लिए इलापत्र नाग ने उस मार्ग का निर्माण किया है। दक्षिण से जानेवाला यह मार्ग पृथ्वी पर शूपरिक क्षेत्र में पहुँचाता है, उसे कर्कोटक नाग ने वहाँ जाने के लिए बनवाया है। पश्चिम का यह मार्ग अतिशय प्रकाशमान प्रभास तीर्थ को जाता है, इसे ऐरावत ने नागों की यात्रा के लिए बनवाया है। इस प्रकार उत्तर से होकर निकला हुआ यह मार्ग पृथ्वी पर कुरुक्षेत्र मेंजाता है, महात्मा तक्षक ने वहां जाने के लिए यह मार्ग तैयार किया है। लिङ्ग से ऊपर की ओर जो मार्ग जाता है, जिससे जाने के लिए आप खड़े हैं, यह गुप्तक्षेत्र में सिद्ध लिङ्ग के पास गया है। यह मार्ग स्वामी स्कन्द ने अपनी शक्ति के प्रभाव से बनाया है। वीर। ये सब बातें हमने बता दी अब आप हमारा निवेदन सुनिये। पहले तो यह बताइये कि आप कौन हैं? अभी-अभी आप दैत्य के पीछे गये थे और अब अकेले ही लौट रहे हैं? इसका क्या कारण है, हम सब आपकी दासियाँ हैं और पतिरूप में आपका वरण करती हैं। आप हमारे साथ यहाँ से विविध स्थानों में क्रीड़ा कीजिये।

विजय ने कहा, मेरे यज्ञ होमकुण्ड में सिन्दूर के समान लाल रंग का सात्विक एवं अत्यन्त पवित्र भस्म है, इसे युद्धभूमि में छोड़ देने पर जिस शत्रु की यदि मृत्यु होनी है तो यह उसको अंकित करेगा। देवियों ने उसे सिद्धैश्वर्य प्रदान किया।

उन नागकन्याओंने बर्बरीक को युद्ध में विजय होनेका वरदान दिया। तत्पश्चात् विजय को देवताओंने सिद्धेश्वर्य प्रदान किया। बर्बरीक वहीं बैठे रह गये। द्यूतक्रीडा हारने के बाद वनों और तीर्थों में घूमते हुए पाण्डव उस स्थान पर पहुँचे। भीमने उस स्थान पर बिना हाथ-पैर धोएही जलमें प्रवेश दिया। यह देख बर्बरिक से नहीं रहा गया और कहा, आप तीर्थस्थान में घूम रहे हो, पर आपको मालूम नहीं है कि अशौच की अवस्था में ही आप जलमें स्नान कर रहे हो। यह निन्दनीय कर्म है। जो जल में मल, मूत्र, विष्ठा, कफ, थूंक और कुल्ला करते हैं, वे ब्रह्महत्यारों के समान हैं। पर भीमने उसकी बात नहीं मानी और क्रोधित होकर दोनों आपसमें लड़ भिड़े। भीमको पराजित कर बर्बरीक उन्हें मारने चले। तभी शंकरजीने वहाँ प्रकट होकर उन्हें छुड़ाकर बोले, यह भीम तुम्हारे दादा हैं, तब बर्बरीक ने भी नाना प्रकारसे अपनी भूलकी क्षमा माँगी और अपने पितामह के साथ किये गये अत्याचार का प्रायश्चित्त करने लगे। तभी भीम बोले, पुत्र तुम शोक न करो। तुम्हारा इसमें तनिक भी दोष नहीं है, क्योंकि कुमार्ग पर चलनेवाला कोई भी क्यों न हो, क्षत्रिय के लिए दण्डनीय ही है।

बर्बरीक बोला, पितामह। मैं पापी हूँ, ब्रह्महत्यारे से भी अधिक घृणा का पात्र हूँ, प्रशंसा के योग्य कदापि नहीं हूँ। जो माता-पिता का भक्त नहीं है उसके उद्धार का कोई उपाय नहीं है। तदनन्तर सिद्धाम्बिका तथा चारों दिशाओं की देवियां रुद्र के साथ वहाँ आयी और बर्बरीक से बोली, वीरेन्द्र। अनजान में किये हुए पाप से दोष नहीं लगता। थोड़े समय में ही देवकीनन्दन श्रीकृष्ण तुम्हारा शीश दान माँगेंगे। उनको शीश दान देना बहुत उत्तम और मुक्तिदायक होगा। उसे वरदान देकर सब देवियाँ अन्तर्धान हो गयी।

पाण्डवोंके वनवास का १३ वां वर्ष व्यतीत हो जाने पर उपप्लव्य में सब राजा युद्ध के लिए एकत्रित हो गये। सभी पाण्डव युद्ध के लिए कुरुक्षेत्र में आकर स्थित हुए। भीष्म पितामह ने रथि और महारथियों का वर्णन किया। उस समय भीष्म पितामह और कृपाचार्य ने अपने शत्रुओंको एक मास में मारने की प्रतिज्ञा की। द्रोणाचार्य ने पंद्रह दिन में, अश्वत्थामा ने दस दिन में, कर्ण ने छ: दिनों में सभी पाण्डवोंको मारने की घोषणा की। बर्बरीक को पूछा कौन कितने समय में सेनासहित कौरवोंको मार सकता है। अर्जुनने कहा, कि मैं अकेला ही युद्ध में सेना सहित कौरवों को एक दिन में नष्ट कर

सकता हूँ। तब बर्बरीक बोला, अर्जुनने जो प्रतिज्ञा की है वह मुझसे सही नहीं जाती। मैं एक ही मुहूर्त में भीष्म इत्यादि को यमलोक में पहुँचा सकता हूँ। मेरे पास दिव्यास्त्र है। मैं सबको जीत सकता हूँ।

तत्पश्चात् श्रीकृष्णने बर्बरिक से पूछा, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण और दुर्योधन इत्यादि महारथियोंद्वारा सुरक्षित कौरव सेना को, जितना शंकरजीके लिये भी कठिन है, तुम उसे इतनी शीघ्रता से कैसे मार सकते हो? तब बर्बरीक ने एक बाण चढ़ाया और उसमें लाल रंग का भस्म जो यज्ञकुण्ड से लिया था भर दिया और उस बाण को छोड़ दिया। वह बाण दोनों सेनाओं के सैनिकों के मर्मस्थलों पर गिरा। वह लाल भस्म उड़कर उन सैनिकों पर पड़ा। केवल पाँच पाण्डव कृष्ण, सात्यकि, कृपाचार्य और अश्वत्थामा के शरीर से उसका स्पर्श नहीं हुआ। तब बर्बरीक ने कहा, इन सबको छोड़कर जिनपर लाल रंग का स्पर्श हुआ है वह सभी योद्धा मृत्यु को प्राप्त हो जाएंगे। बर्बरीक ने निकटस्थ पीपल वृक्ष के पत्ते एक ही बाण से छेद दिये। कृष्ण ने एक पत्ता पहले ही तोड़के पैर के तले दबा लिया। फिर भी वह पत्ता बिंध चुका था कृष्ण के पैर को क्षति नहीं हुई। कृष्ण ने बर्बरीक से पूछा, वीर तुम किस पक्ष की ओर से युद्ध करोगे। तब बर्बरीक ने कहा मैं माता की आज्ञानुसार हारनेवाले पक्ष की ओर से युद्ध करूँगा। मैं हारनेवाले का साथी हूँ। कृष्ण ने पाण्डवों की विजय संदिग्ध जान कर कूटनीति का सहारा लेते हुए बर्बरीक से युद्धभूमि को बलि देने हेतु उसके शीश का दान मांग लिया। इसलिये बर्बरीक शीश का दानी कहलाया। कृष्ण की इच्छा से महाबलि बर्बरीक ने अपनी तलवार से ही अपना शीश काटकर कृष्ण को अर्पण कर दिया। यह देख सबको आश्चर्य हुआ। तब पाण्डव और अन्य सब राजा आँसू बहाने लगे। बर्बरीक का सिर कृष्ण के भक्त का मस्तक है। कृष्णने देवियों से कहा इसे अमृत से सीचों और इसे अजर-अमर बना दो। बर्बरीक ने कृष्णको प्रणाम किया और कहा मैं युद्ध देखना चाहता हूँ इसके लिये मुझे आज्ञा दो। तब कृष्णने वरदान दिया, वत्स। **जब तक पृथ्वी नक्षत्र चन्द्रमा तथा सूर्य रहेंगे तब तक तुम सब लोगों के द्वारा मेरे श्रीश्याम रूप से पूजनीय होओगे। अब तुम इस पर्वत शिखर पर चढ़कर यहाँ रहो। यहाँ से होनेवाले युद्ध को देखो।** कृष्णने महाबली बर्बरीक का मस्तक पर्वत के शिखर पर स्थापित किया। उसके मस्तक का कोई संस्कार नहीं हुआ पर शरीर का संस्कार कर दिया।

बर्बरीक को चौदह देवियों सिद्धाम्बिका, तारा, कपाली, सुवर्णा, त्रिलोक नेत्री, चण्डिका, प्राणेश्वरी, भूतम्बिका, क्रोडमातृ, हरसिद्धिश्चिपुरा, चर्चिका, योगेश्वरी व चैकवीरा देवियों ने वरदान दिया। महाभारत का युद्ध अठारह दिन चला और बड़ी मुश्किल से हार जीत का निर्णय हुआ। कृष्ण की कृपा से पाण्डव की विजय हुई तथा सब अपने-अपने जीत पर व्यक्तिगत अभिमान करने लगे। वहाँ सैनिकों के दो दल हो गये। कोई सैनिक अर्जुन को जीत का श्रेय दे रहा था तो कोई भीम को। इस तरह विवाद खड़ा हो गया कि यह विजय अर्जुन या भीम के कारण हुई। संसारका यही नियम है कि वह सत्तारुढ़को स्वामी मानकर उसीकी स्तुति करता है। उसीके सामने सिर झुकाता है। जो सत्ताच्युत हो गया, संसार उसे भूलनेमें दो क्षणकी भी देर नहीं करता। अब इन सेवकोंके लिए कौरव-पक्षमें कहीं कोई स्मरणीय ही नहीं रहा।

ये बिचारे तो क्षुद्र सेवक हैं। बड़े-बड़े विद्वान और मानधनी भी प्राय: यही करते हैं। अनजानमें ही मनुष्यकी ऐसी प्रवृत्ति हो जाती है, ऐसा कहना भी अनुचित नहीं होगा।

सेवकोंका यह स्वर बार-बार श्रवणोंमें पड़ते-पड़ते बड़ोंमें भी संस्कार बनने लगा। उनमें किसीने कुछ कहा तो नहीं; किन्तु मन्थन सबके मनमें होने लगा कि युद्धमें विजयका श्रेय सर्वाधिक किसे दिया जाना चाहिये। इसमें दो ही नाम थे- भीम और अर्जुन और दोनोंके मध्य यह निर्णय कर देना सरल नहीं था। क्योंकि अर्जुनने यदि भीष्म और कर्णको मारा था तो दुर्योधन, दु:शासनादि सभी धृतराष्ट्र पुत्रोंको भीमसेनने ही समरशय्या दी थी।

नियम यह है कि सेनामें किसीके भी पौरुषसे विजय प्राप्त हो, सेनापतिकी विजय मानी जाती है; किन्तु पाण्डवपक्षके प्रधान सेनापति धृष्टद्युम्न तो अब जीवित नहीं थे। युद्धकालमें भी प्राधान्य उनका नहीं था। प्रधानता तो भीम तथा अर्जुन की ही रही थी। इन दोनोंमेंसे ही किसी एकने अथवा दोनोंने मिलकर विरोधीके बड़े आक्रमणोंको विफल किया था और भीष्म, द्रोण, कर्णादिके बनाये विकट व्यूहोंको विध्वस्त किया था।

दूसरों तक ही यह चर्चा-चिन्तन चलकर शान्त हो जाता तो कोई बात नहीं थी; किंतु इसका प्रभाव भीम और अर्जुनके भी मनपर पड़ने लगा है, यह श्रीकृष्णने देख लिया। वे स्वजनोंकी सदा सावधान-सम्हाल रखनेवाले कृपासिन्धु समझ गये कि भले यह अहमारका बीज अभी अल्प दीख रहा हो; किन्तु अवसर मिलने पर अनर्थकारी महातरु बन सकता है। इसमें-से स्पर्धा, द्वेष जैसे विषफल फलेंगे। अत: इसका उन्मूलन ही उत्तम है।

श्रीकृष्णने स्वयं सहदेवसे कहा- ये सेवक बहुत देरसे यह चर्चा कर रहे हैं कि युद्धमें विजयका श्रेय भीम या अर्जुनमें-से किसको है। सहदेवने पूछ लिया, आपकी क्या सम्मति है? श्रीकृष्णने कहा, इसमें किसीकी सम्मतिकी क्या आवश्यकता है? सम्पूर्ण युद्धका एक तटस्थ दर्शक है। दूसरे, हम सब युद्धमें व्यस्त रहते थे। हमें कहाँ अवकाश था कि दूसरेके पराक्रमकी ओर उस समय ध्यान देते। अत: हममें-से कोई भी ठीक निर्णय करनेकी स्थितिमें नहीं है; किंतु वह द्रष्टा ठीक निर्णय कर सकता है। सहदेवने पूछा, कौन है वह? अबतक सब पाण्डव श्रीकृष्णके समीप आ गये थे। सबकी रुचि इस विषयमें जाग गयी थी। श्रीकृष्णने युद्ध-क्षेत्रसे कुछ दूर ऊँचेपर टँगे सिरकी ओर संकेत किया। बर्बरीकका वह मस्तक। अब सबको स्मरण आ गया कि युद्धारम्भमें इस सिरने उनके सामने ही युद्ध देखनेकी इच्छा प्रकट की थी और उसे जीवित रहनेका वरदान देकर श्रीकृष्णने ही अपने हाथों वहाँ टाँगा था।

हम सब उसके पास चलकर उसीसे पूछ लें। श्रीकृष्णके यह कहनेपर सब उनके साथ चल पड़े। वह भले भीमके पौत्रका मस्तक हो, अब इस अवस्थामें पहुँचकर वह असत्य बोलेगा या पक्षपात करेगा, ऐसी कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। सब उस मस्तकके समीप पहुँचे तो श्रीकृष्णने ही उससे पूछा- तुमने युद्ध देख लिया। क्या देखा इस युद्धमें? युद्धमें विजय-प्राप्त करनेका श्रेय तुम किसके पराक्रमको देते हो?

तब बर्बरीक का मस्तक बोला, मैंने युद्ध कहाँ देखा। कोई युद्ध हुआ ही कहाँ। एक बालकों-जैसी क्रीड़ा हुई। कुछ लोगोंने मरे लोगोंको मारा और मानने लगे कि वे महापराक्रमी हैं। उन्होंने बहुत वीरता प्रकट की है।

भीमने चिल्लाकर पूछा- मुर्दोंको मारा हम लोगोंने? तुमने क्या देखा? अपनी पहेली स्पष्ट करके समझाओ।

मस्तकने नम्रतापूर्वक कहा- आप मेरी अवज्ञा क्षमा करें। मैंने देखा कि श्रीकृष्णका सहस्त्रार चक्र अनवरत चल रहा है। वह दोनों दलोंमें जिसको भी मार देता है, उसी प्राणहीनको आपमें-से या परपक्षमें-से किसीका अस्त्र-शस्त्र लगकर टुकड़े काटता है। देवी द्रौपदी केश खोले खप्पर लिए दौड़ती रहती थी और चक्र जिसे भी मारता था, उसका रक्त खप्परमें भरती जाती थी। उनका अद्भुत खप्पर अबतक भी अपूर्ण ही है। वह मस्तक इतना कहकर सहसा अपने स्थानसे उछला और अदृश्य हो गया। उसे तो अब भगवान मुण्डमालीकी मालामें अपना स्थान लेना था। वहाँ उपस्थित सबके मस्तक झुक गये। सबने श्रीकृष्णको प्रणाम किया। उनका गर्व गलित हो चुका था।

द्रौपदी महाकाली हैं। पाण्डवोंने उस दिनसे कभी द्रौपदीको पत्नी नहीं माना और न उसने सेवा लेनेका साहस किया।

तब बर्बरीक के सिर ने जिसने युद्ध देखा था सिर उठाकर कहा, हे पाण्डवों। आपका घमंड करना व्यर्थ है। इस युद्ध के वास्तविक विजेता तो श्रीकृष्ण है। इन्होंने अपनी बुद्धि और नीति के सहारे इस युद्ध को जीता है। मुझे तो चारों तरफ सुदर्शन

चक्र ही चलता नजर आ रहा था और द्रौपदी खप्पर भर कर लहू पी रही थी। तब कृष्णने बर्बरीक को वरदान दिया कि तुम कलियुग में मेरे ही नाम से पूजनीय होंगे और तुम्हारा स्मरण करने पर सर्वसाधारण की इच्छा पूरी होगी। यही श्यामजी का सिर खाटू की पावनभूमि के अन्तर्गत समा गया। कलियुग में वरदान के अनुसार जब इनका प्रकट होनेका समय आया उस समय वहाँ एक गाय प्रति दिन दूध देती थी। वह गाय उस खाटू में कुण्ड की जगह खडी हो गई और दूध की धार भूमि में प्रवेश करने लगी। तब गाय के मालिक ने देखा कि यहाँ रोज दूध पीनेवाला कोई न कोई है। उसने जमीन की खुदाई शुरू की। तब वहाँ पर श्यामजी की मूर्ति उसे प्राप्त हुई और श्यामजी प्रकट हुए। वहाँ के राजा ने एक मन्दिर बनवाया और उस मूर्ति की स्थापना की। तभी से श्याम महाराज की पूजा होने लगी। जिस जगह से श्यामजी की मूर्ति निकली थी वहाँ एक कुण्ड बनाया। उस कुण्ड में स्नान करने का विशेष महत्त्व है। मार्गशीर्ष शुक्ला १२ को बर्बरीक ने श्रीकृष्ण को अपना शीशदान दिया।

श्रीमद् भागवत पुराण में राजा खट्वांग का वृत्तांत है। जो अपनी दानशीलता और धर्म परायणता के लिए सुविख्यात थे। यह नगर उन्ही पुरुष श्रेष्ठ राजा की राजधानी थी। इसका प्राचीन नाम खट्वांगनगर था। इनका साम्राज्य अरावली की उपत्यकायें, गोविन्दगढ़ के पास स्थित गाँव धोबलाई भी इसी राज्य में बहनेवाली रूपावती नामक पवित्र नदी का धोबीघाट था। खट्वांग नगर का ही नाम बदलकर आज खाटू पड़ा। आज जो वहाँ पर मन्दिर है वह जोधपुर महाराजा द्वारा बनाया गया है और शेखावाटी अंचल में स्थित है। भक्त शिरोमणि आलूसिंहजी ने इस प्रभु श्याम की बड़ी सेवा की। श्याम बाग में उनकी समाधि हैं और अब उनका परिवार ही इस मन्दिर में सेवा देता है। यह मन्दिर उत्तर पश्चिम में पलसाना रोड पर स्थित है। खाटू धाम में रहने के लिए लगभग १२० धर्मशालायें हैं। श्री श्याम प्रभु का मेला फाल्गुन शुक्ला एकादशी को लगता है। कार्तिक शुक्ला एकादशी को श्री श्याम प्रभु का जन्मोत्सव मनाया जाता है। श्याम बाबा के यहाँ केसरिया निशान शिखर पर चढ़ाया जाता है। श्याम प्रभु को लखदातार के नाम से पुकारा जाता है। यह सर्वसामान्य को आनन्द मंगल धन वैभव और सुख से सम्पन्न करते हैं। खाटू मन्दिर में बर्बरीक के शीश की पूजा होती है। खाटू धाम रींगस से सतरह किलोमीटर दूर है। दातारामगढ़ जानेवाली मुख्य सड़क पर  बायें ग्राम में स्थित है।

*अभ्यास ही प्रगति की आधारशिला है।*

*ज्ञान की किताब का पहला पाठ ईमानदारी है।*

*जब तक किसी के पास धन नहीं होता तब तक उसका कोई मित्र नहीं होता।*

*वस्तुओं का परिमाण बढ़ता जा रहा है, पर गुणवत्ता नहीं।*

*जीवन यापन के दौरान अपने कदम धरातल पर ही रखना बेहत्तर है बजाय आकाश में उड़ने के।*

*सभी मनुष्यों में परमात्मा की ज्योति है।*

*किसी की जाति मत पूछो क्योंकि आगे भगवान के यहां कोई जाति नहीं है।*

*अभावों की कमी सुविधाओं के सृजन का रास्ता बनाता है।*

# कर्मयोगी

## कर्मणे वा अधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्

**कभी लुहार से काम पड़ता है, कभी सुनार से काम पड़ता है।**
**कभी नकद से काम पड़ता है, कभी उधार से काम पड़ता है।**

कर्म फल के रूप में अवश्य प्राप्त होता है। बीज बोने के बाद उसका रूप वृक्ष में होता है। उसी तरह हमारा कर्म भी सुख-दु:ख के फल देता है। कोई व्यक्ति दु:खी, दरिद्र या रोगी हो तो वर्तमान में या भूतकाल में उसने पाप का बीज बोया होगा जबकि कोई व्यक्ति स्वस्थ सुखी और सम्पन्न हो तो उसने भूतकाल में या अब पुण्य कर्म के बीज बोये होंगे। इसलिये कर्म चाहे कितने ही चोरी छिपे किये गये हो फल के स्वरूप में सामने आये बिना नहीं रह सकते। कर्म फल तो अवश्य प्राप्त होगा।

सूर्य नारायण, ग्रह, नक्षत्र, तारा प्राणिमात्र रात दिन कर्म करते रहते हैं। जो प्राप्त कर्म से घबराता है और कर्म में आलस्य करता है उसके पीछे जन्म, मरण, काल का धोखा लगा ही रहता है। सूर्य उगते ही जगत को पुकार कर कहते हैं- कर्म करो। उस समय जब कर्म के फल में चित्त नही लगा रहता है तो वह स्वस्थ होता है और स्वस्थ चित्त से नियमित और अच्छी से अच्छी पद्धति से कर्म बनते हैं। भोगमात्र ही कर्मफल है। कर्म फल की लालसा चित्त में निकल जाने पर कर्म करते हुये भी चित्त शान्ति का अनुभव करता है। कर्म फल की लालसा, भोग की लालसा एक मनोरथ है। आवेशपूर्वक जल्दी-जल्दी कर्म करना, कर्म न करना, बैठे रहना, आलस्य और दुष्कर्म करना ये सभी कर्मफल की लालसा को लेकर, भोग की वासना को लेकर ही होते हैं। जिसका चित्त मनोरथ से दूषित नहीं होता, उससे कर्म बहुत अच्छी तरह होते हैं। जैसे नदी का बहता हुआ जल जहाँ-जहाँ ढाल होती है वहाँ-वहाँ उस प्रदेश को लांघता हुआ स्वाभाविक ही सागर में जा मिलता है, उसी प्रकार कर्म फल न चाह कर सतत कर्म रुपी गति मे संलग्न पुरुष अन्त में मुक्ति पाता है।

कर्म किये बिना तो जीता-जागता कोई प्राणी रह सकता ही नहीं, उसके लिये प्रकृति व स्वभाव से कर्म करना अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु यदि वह मनोरथ का, भोग वासना का त्याग नहीं करता तो उसे अशान्ति, दु:ख और क्लेश ही मिलते हैं इसलिये प्राप्त उद्यम को करते रहना चाहिये, पर उसमें कभी आसक्त नहीं होना चाहिये।

मनुष्य का जीवन कर्म प्रधान है। कर्म किये बिना तो वह एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। कर्मठ व्यक्ति किस्मत की लकीरें बदल सकता है। अपने जीवन को नई दिशा दे सकता है। जो भाग्य के भरोसे रहता है वो तो पिछडा हुआ ही रह जाता है। अकर्मण्यता इन्सान के व्यक्तित्व को जंग लगा देती है। अकर्मण्य व्यक्ति का पतन होता है। समाज व परिवार तक उसका बहिष्कार कर देते हैं। उसका स्वभाव, प्रकृति उसको कर्म करने के लिये बाध्य करते हैं। वह न चाहकर भी यन्त्र में लगे हुये से कर्म करने को बाध्य है। प्राणी मात्र को कर्त्तव्य परायण होना चाहिये। श्रम करना श्रेष्ठ पुरुषों की श्रेष्ठता का मूलमन्त्र है और समाज, परिवार, राष्ट्र के लिये उत्तरदायी है। निकम्मापन जिन्दगी को रिक्त कर देता है। कठोर श्रम परिश्रम करने पर भी यदि सफलता दूर रहे तो उसे ईश्वर की मर्जी ही समझनी चाहिये। कर्मठ व्यक्ति के तो सफलता पांव चूमती है। कर्म करने में मनुष्य स्वतन्त्र है। कर्म करने में उसका अधिकार है। कर्म करते समय उसे फल की अपेक्षा नहीं करनी चाहिये क्योंकि सत्कर्मों का फल तो अच्छा ही होता है। यह प्रकृति सिद्ध विधान है। कर्मफल पर व्यक्ति का अधिकार नहीं है। कर्म न करने से तो मनुष्य आलसी बन जाता है और आलस्य में दरिद्रता का वास होता है।

मनुष्य के कर्म भी विभिन्न प्रकार के होते हैं उसकी बुद्धि और वृत्ति के अनुसार। जो कोई प्रतिस्पर्धात्मक कर्मों को सम्मान देता है वही मनुष्य हर स्पर्धा में विजेता होता है। मनुष्य को उचित कार्य को समय में ही निपटाने का संकल्प करना चाहिये। अधिक कार्य अधिक समय तक करने से उसकी कार्यक्षमता और महत्व घटता है इसलिये समय रहते ही आवश्यक कार्य कर लेना चाहिये। जैसे कहते हैं **का वर्षा जब कृषि सुखाने।** कोई भी काम कमतर या नीचे की श्रेणी का या हीन वृत्ति नहीं होता है। हर काम अपना उत्तरदायी और श्रेष्ठ समझकर सम्मानपूर्वक करना चाहिये। काम करनेवाला आदरणीय और सम्माननीय होता है। कोई भी काम में व्यक्ति को झिझक और शर्मसार महसूस नहीं करना चाहिये। ऐसा भी कोई कर्म नहीं करना चाहिये जिससे किसी का दिल दुखे या ऐसा कर्म जो प्राणी मात्र के हित में, या समाज, परिवार या राष्ट्र कल्याण के हित में ना हो।

कर्त्तव्य को अपना उत्तरदायित्व समझकर निभाना चाहिये। कर्त्तव्य मनुष्य को कर्मयोगी बनाता है और उसके खयालों को बुलन्द रखता है तथा आगे की राह प्रशस्त करता है, साथ-साथ उसकी सुरक्षा और हिफाजत भी करता है। कर्त्तव्य हर नामुमकिन बात को सम्भव बनाता है। कर्त्तव्य पथ पर अडिग रहना यह हमें चींटी के जीवन से सीखना चाहिये जो सतत चलती रहती है, कभी सोती नहीं, जागती रहती है। बार-बार चढती है, फिसलती है, गिरती है फिर भी चलकर अपनी मंजिल तक पहुंच जाती है। असफलता से कभी भी निराश होकर अपना लक्ष्य और कर्त्तव्य बीच में ही नहीं छोड़ देना चाहिये। यदि लक्ष्य निश्चित हो जाये तो कर्म स्वयं अपनी यात्रा की दिशा में चल देता है क्योंकि कर्म मनुष्य के स्वभाव के वशीभूत है। प्रत्येक प्राणी के जीवन में ऐसे अवसर आते हैं जब भाग्य उसे कुछ कर्त्तव्य करने का अवसर देता है, कुछ बनने का अवसर मिलता है और वही अवसर उसके भविष्य बनने का, भाग्य बनने का, जीवन का मोड पलटने का निर्णय कर देता है। यह सच है कि कर्म भाग्य रेखायें बदल सकता है।

शुभ और सत्कर्मों के बिना हासिल किया हुआ ज्ञान पाप कर्म भी बन सकता है। जब प्रकृति को कोई कार्य मनुष्य से कराना होता है तो वह उसके अनुकूल परिस्थितियां निर्माण करती है और उसे प्रवृत्त करती है, बाध्य करती है और आवश्यक प्रतिभा, कला कौशल का निर्माण करती है। इसकी परीक्षायें तब तक कठिन मालूम पडती है जब तक परिश्रम से और आत्मविश्वास से जी जान लगाकर उसका मुकाबला नहीं किया जाये। जो व्यक्ति अपने गाढे खून पसीने की कमाई से रोजी रोटी कमाता है उसके किये हुये कर्म उसे ईमानदार बनाते हैं। जिन व्यक्तियों में समय पर कर्त्तव्य के साहस का संचार नहीं है वे भयभीत हो उठते हैं और अपने कर्तव्य से डिगकर असफल हो जाते हैं। कर्म के साथ सदा ही संयम जुडा हुआ है। दोनों एक-दूसरे के पूरक है। दोनों एक-दूसरे के बिना अलग-अलग है, अधूरे है और इसीसे अन्धेरे में भटकने की सम्भावना अधिक बनी रहती है। जो पुरुषार्थ नहीं करते वे धन, मित्र, ऐश्वर्य, कुल तथा दुर्लभ लक्ष्मी इत्यादि गंवा बैठते हैं।

जीवन एक बाजी के समान है जिसमें हार-जीत तो हमारे हाथ में नहीं है पर बाजी खेलना हमारे वश में है, यह जीवन का खेल ताश के पत्तों से खेलना जैसा खेल है। मनुष्य को काम की अधिकता नहीं अनियमितता मार डालती है। कर्म रहस्य बडा ही कडवा वृक्ष है पर उसका फल बडा ही मधुर और हितकर होता है। कर्त्तव्य का दायित्व निभानेवाला व्यक्ति कदाचित ही गलती करता है। परिश्रमी व्यक्ति के लिये इस जगत में कोई वस्तु अलभ्य नहीं है। जो कायर है जिसमें पुरुषार्थ, पराक्रम का नाम नहीं, आलसी है और कर्म नहीं करता वो ही दैव, दैव (भाग्य, नसीब के भरोसे) पुकारते रहता है। स्वयं के कर्म से ही मनुष्य बहुगुणित और बहु आयामी हो जाता है। अपने काम के प्रति अच्छी लगन भी आत्मविश्वास में रूचि बढाती है और मन को सन्तुष्टि प्रदान करती है। कर्म से अभ्यास होता है और अभ्यास न करने पर अर्जित विद्या भी

कुंठित हो जाती है। भिक्षु हो या राजा मनुष्य कर्म करता हुआ ही शोभा पाता है। किसी का भी अनुग्रह परतन्त्र बनाता है जब कि अपना किया हुआ कर्म मनुष्य को स्वतन्त्र बनाता है। कर्म से दौलत प्राप्त की जा सकती है पर दौलत के दम पर प्रतिभा, कला कौशल नहीं मिलता वो तो कर्म करने से ही हासिल होती है। जो निष्काम कर्म करने की राह पर चलते हैं वे कभी मुडकर भी यह नहीं देखते ना ही परवाह करते कि किसने उनका अहित साधने का प्रयत्न किया या किसने उनके लिये क्या कहा? कर्मशील पुरुष आपत्ति के समय दृढ़ बन जाता है और हर मुसीबतों को झेलने, उनका सामना करने तैयार रहता है। वो इनसे जरा भी न घबराता है और न हिचकिचाता है। बाधाओं पर विजय पाना और अवसर देखकर कर्म करना ही पुरुषार्थ है, कर्मठ योगी का यही कर्त्तव्य है।

यदि सही कार्य करने के लिए वक्त अभी नहीं मिला तो फिर कभी नहीं मिलेगा, क्योंकि सत्कर्मों के द्वार कभी बन्द नहीं होते। जीवन में कर्मशीलता ही विविध रंग भरती है। निरंतर अथक परिश्रम करनेवाले भाग्य को भी परास्त कर देते हैं। निवृत्ति का स्थान प्रवृत्ति से काफी दूर है। परिश्रम का प्रमुख अंग विवेक है। परिश्रम भुजाओं में होता है, वाणी में नहीं। गलतियों की सम्भावना तभी शून्य हो सकती है जब वह कोई काम ही न करे। जिस घड़ी मनुष्य ने काम करने से अपना हाथ रोक लिया उसी घड़ी से समझ लेना चाहिये कि उसका जीवन ही थम गया और उसका पतन आरम्भ हो गया। काम करने से मनुष्य जीवन पथ पर चलते रहता है, निष्काम होकर कर्म करनेवाले की गोद में नित्य ही उत्सुक होकर सफलता आती है। साहस हीन पुरुष ही दैव, नसीब के भरोसे बैठे रहता है और कोई श्रम, पुरुषार्थ या कर्म नहीं करता। मेहनत कश आदमी समय से नहीं हारा है इसीलिये वो समय से बड़ा है। जीवन में किये गये हर गलत कार्य के परिणाम हमें भोगने पडते हैं।

हर काम के लिये एक समय और अवसर होता है जिसका सही ढंग से इस्तेमाल करना चाहिये। पुरुषार्थ परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने का नाम है। भाग्य और पुरुषार्थ दोनों एक-दूसरे से ही फलीभूत होते हैं। कोई भी कुकर्म बहुत से गुणोंको दूषित करने के लिये पर्याप्त है। यह वसुन्धरा हमारे कर्मों की भूमि है। हमारे कर्म ही हमारा धर्म और हमारी पूजा है और कर्म ही जीवन है। कर्म किये बिना जीवन का वास्तविक आनन्द उठाना सम्भव नहीं। कर्म की ध्वनि शब्दों से ऊंची होती है। बुराई से असहयोग करना ही मानव का परम कर्त्तव्य है। कर्म के बिना प्रार्थना एक ऐसा शरीर है जो आत्मा विहीन है और आत्मरहित शरीर की हैसियत एक शव के समान है जो किसी काम नहीं आता। बिना कर्म के अच्छा विचार दिन में स्वप्न की भांति है जब कि बिना विचार के किया गया कर्म दु:स्वप्न की भांति। केवल कर्म करके ही कोई कर्मयोगी नहीं बन सकता उसके लिये निष्काम कर्म वृत्ति आवश्यक है। कर्मों का त्याग करने से कोई सन्याासी नहीं बन जाता। सन्यासी को कर्मफल त्यागना पडता है तो ही वह सन्यासी है। आदमी उसी काम में सफल होता है जिस कार्य में उसका मन लगा रहता है। सफलता का सिद्धान्त है अनवरत काम। भाग्य भी कर्म करनेवाले की ही सहायता करता है। पुण्यकर्मों से जीवन पवित्र होता है और पाप कर्म से मनुष्य पापात्मा बन जाता है। पाप कर्म स्वच्छ दूध के समान तत्काल विकार नहीं लाता वो तो राख से ढकी अग्नि के समान शनै: शनै: जलते हुये मूर्ख आदमी का पीछा करता है। बिना कर्म के लक्ष्य तो खोखले सपने की तरह होते हैं। कर्म का दूसरा कोई भी विकल्प हो ही नहीं सकता।

श्रम धरती का देवता है और कर्म मनुष्य का आभूषण। कर्मठ व्यक्ति के लिये कुछ भी असाध्य और कुछ भी अलभ्य नहीं। कठिन श्रम का कोई पर्याय नहीं, तकनीक नहीं। काम करने की शक्ति और निर्णय की क्षमता पर ही सफलता की गाडी चलती है। कल्याणकारी कर्म करनेवालों की कभी दुर्गति नहीं होती। दुष्कर्म से सफलता प्राप्त करने की अपेक्षा सत्कर्म करते हुये मर

जाना अच्छा है। लगातार कर्म करते रहने से निर्माण होता है सफलता के सारे रास्ते आपकी बाहों की शक्ति के दायरे में होते है। कर्म से सब प्राणियों के प्रति अद्रोह और अनुग्रह ही धर्म है। मनुष्य को ऐसे सुख की कामना कभी नहीं करनी चाहिये जो उसे अपने कर्त्तव्य से विमुख कर दे। जिस काम से अन्तरात्मा को परितोष प्राप्त हो वो काम अवश्य करते रहना चाहिये और इसके विपरीत जो कर्म हो उसे न करे। यदि कोई मनुष्य बलात या हठात कार्य करेगा ही नहीं तो फिर वह अपनी जीवन यात्रा भी किस प्रकार निर्वाह कर पायेगा? किस प्रकार अपने जीवन में सफल होगा? किस प्रकार संघर्षों में विजय प्राप्त करेगा? इसलिये इन सबके लिये जीवन में कर्म करना आवश्यक है। नैराश्य के सन्ताप से व्यक्ति अपने कर्त्तव्य कर्म पर ध्यान नहीं दे पाता। कर्त्तव्य का पर्यायवाची दूसरा कुछ नहीं है। इसके आगे-पीछे ऊपर नीचे कुछ और तो लिखा ही नहीं जा सकता। कामनाये करते रहने से मनुष्य का आलस्यपन जाता है और वह अधिक काम करता है। श्रम करनेवाले कभी थकते नहीं। जो काम दूसरे श्रेष्ठ लोग कर सकते हैं वो आप भी कर सकते हैं। हमारे राष्ट्र में धीरू भाई अम्बानी, राहुल बजाज, रतन टाटा (इन श्रेष्ठ व्यक्तियों ने) उद्योग, श्रम कर ही तो आज इस महानता के शिखर पर पहुंचे है। बस काम करने की सोच और उसे क्रियान्वित करना इसी से तो निश्चय ही सफलता मिलती है। सोच और विचार ही तो कर्म का मूल है। जो समय को विचारकर कर्म करता है वो हर प्रकार सफल व्यक्ति है। भविष्य में भाग्य उसके द्वार पर हाथ जोडे खडा रहता है। भय से उत्पन्न दुष्प्रवृत्तियां सब तरह के पुरुषार्थ को नष्ट कर देती है। कर्म का बदला या प्रतिशोध कोई नहीं होता।

ज्ञान बिना कर्म बेकार है और कर्म बिना ज्ञान के बीमार हो जाता है। सबसे बेहतरीन कर्त्तव्य यही है कि नाजायज कामों से बचो। जिन्दगी का हर कोना, श्रम, कर्म और आवश्यकताओं से भरा पडा है बस जरूरत है मन के संकल्प की। आत्मविश्वास जिस हृदय में हो वह व्यक्ति अपना जटिल से जटिल कार्य पूरा करके ही रहता है। उचित युक्ति से किया गया कार्य सब कुछ हासिल करा देता है, उपलब्धियां मिल जाती है। पुरुषार्थहीन व्यक्ति तो जीवित ही मृत समान है। मनुष्यों के कर्म उसके विचारों की सर्वोत्तम व्याख्या है। यह प्रमाणित सिद्ध नियम है कि अच्छे कर्मों का फल अच्छा ही मिलता है। हमें कडवा फल चखना है या मीठा यह तो हमारे ऊपर निर्भर है। मनस्वी व्यक्ति अपने संकल्पों को कर्त्तव्यरूप में परिणित कर लेता है। कार्य कुशल व्यक्ति के पास सफलता और धन की कभी कोई कमी नहीं रहती। हर कार्य में निपुणता, कला-कौशल प्रतिभा का महत्व है, हर कार्य के लिये एक उपयुक्त अवसर और समय होता है।

पुरुष को देश, काल, परिस्थिति तथा अपनी योग्यता के अनुसार प्राप्त कर्त्तव्य का पालन अहंकार रहित होकर करना चाहिये। मनुष्य को सुख, दु:ख भी जीवन में अपने कर्मानुसार ही प्राप्त होते है। सबको स्वधर्मानुसार कर्म करने चाहिये। महाभारत में अर्जुन के लिये युद्ध करना समय की मांग थी। नैराश्य अर्जुन को कृष्ण के गीता उपदेश ने उसे क्षात्र धर्म का ज्ञान देकर युद्ध कर्म में प्रवृत्त कर दिया। कर्म का त्याग करने का दुराग्रह कभी नहीं करना चाहिये। कर्म करने का उत्तम मार्ग है कि द्वन्द्वों से ऊपर उठकर सफलता-असफलता में समान भाव रखकर कर्मफल में आसक्ति त्यागकर ही कर्म करने चाहिये। इस प्रकार जो समत्व बुद्धि से कर्म करता है वह पाप-पुण्य से परे होकर जन्म-मरण के बन्धनों से छुट जाता है और अविनाशी पद प्राप्त करता है। समस्त संसार चक्र कर्म पर ही निर्भर है। अज्ञानी लोग आसक्ति से कर्म करते हैं जबकि ज्ञानी विद्वानों को लोककल्याण के लिये कर्म करने चाहिये। स्व-कर्म कोई दोष नहीं है। कर्म तो प्रकृति कराती है। प्रकृति के गुणों को स्वीकार कर अज्ञानी कर्मबन्धन में पडता है। कर्म का रहस्य जाननेयोग्य है। कर्म की गति अत्यन्त गहन व गूढ है। कर्म का मूल रहस्य है कि जो कोई कामना के संकल्प को

त्यागकर निष्काम भाव से सब कर्म करता है, कर्मफल तथा कर्म की आसक्ति त्यागकर जो अपने में ही तृप्त है वह कर्म करते हुये भी कुछ नहीं करता। केवल शरीर निर्वाह के लिये कर्म करनेवाला कभी पाप का भागी नहीं होता। लोक हितार्थ कर्म करनेवाले का फल समष्टि में लीन हो जाता है। सकाम कर्म अत्यन्त ही निम्न श्रेणी का है। कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। अपने अमूल्य समय का एक-एक क्षण परिश्रम में ही व्यतीत करने में आनन्द है।

लक्ष्य पूरा करने में अपनी समस्त शक्तियों द्वारा परिश्रम करना ही परम पुरुषार्थ है। यश तो हमारे कर्मों का ही परिणाम है न कि प्रेरणा। सतत कर्मठता आपके व्यवसाय उद्योग को नुकसान से बचाती है। घुट घुट कर जीने की बजाय मेहनती बनकर जीओ। जो लोग डरपोक और आलसी होते है, पुरुषार्थ नहीं करते बल्कि भाग्य के भरोसे पडे रहते है उनका जीवन निर्वाह तो अत्यन्त दुष्कर है। गलत कार्य मनुष्य को सदा भयभीत बनाये रखते हैं इससे आदमी न चैन से जी सकता है और न ही सुख से मर पाता है। सदैव मनुष्य को शास्त्र सम्मत कर्म ही करने चाहिये नहीं तो बुरी आदतें उसका पीछा नहीं छोडती। कर्मक्षेत्र व पारिवारिक क्षेत्र में सन्तुलन रखना चाहिये क्योंकि परिवार को भी आपके समय की जरूरत है। जो पराक्रम का अवसर उपस्थित हो जानेपर विषादग्रस्त हो जाता है, उसका तो सारा तेज ही नष्ट हो जाता है फिर उससे पुरुषार्थ नहीं होता। इन सब उपर्युक्त बातों को समझकर मनुष्य को अपने कर्त्तव्य पथ पर बढते रहना चाहिये जो जीवन का यशस्वी मार्ग है और सभी महापुरुषों ने इसी मार्ग का अनुसरण किया है।

कर्म का प्रहार अपूर्णता पर होता है। विनम्रता, सतर्कता, मन की एकाग्रता, उद्यमता, ऐसे अनेक गुणों का आधार लेकर व्यक्ति जब अपना काम प्रामाणिकता से करता है तब कर्म उस व्यक्ति के ऊपर सद्गुणों की शाल ओढाता है। लेकिन मनुष्य जब चालाकी, फिजूल खर्ची, असतकर्ता, चंचलता, आलस का आधार लेकर काम करता है, तब अपूर्णता उत्पन्न होती है। कर्म से ही पूर्णता आती है। अपूर्णता से दु:ख, अपमान, नुकसान होता है। इस तरह जैसे कर्म ही अपूर्णता पर आघात करता है। पूर्णता के कर्म में आनन्द और अपूर्णता में आनन्द्र प्राप्त होता है। जीवन अस्तित्व से अधिक कर्म है। उन्नति, प्रगति, परिवर्तन आदि इसी जीवन की परिपूर्णता के अंग है। कर्म को बोओ और आदत को काटो, आदत को बोओ और चरित्र को काटो, चरित्र को बोओ और भाग्य को काटो। मनुष्य दूसरे के लिये जिस कर्म की निन्दा करे उसको स्वयं भी न करे। जो दूसरे की निन्दा करता है किन्तु स्वयं उसी निन्दनीय कर्म को करता है वह उपहास का पात्र होता है। अचल निष्ठा ही महान कार्य की जननी है। कर्त्तव्य कभी आग और पानी की परवाह नहींकरता। कर्त्तव्य पालन ही चित्त की शान्ति का मूलमन्त्र है। कर्म एक निरन्तर साधन है उसमें संयोग या अकस्मात उपलब्धि का कोई स्थान नहीं। कर्म से हीन बन जाना सन्यास नहीं है। कर्म के समुद्र को पार कर जाना सन्यास है। जीवन में अपने किये हुये कर्म को परिवर्तित करने की पूर्ण असम्भव्यता से अधिक दु:खमय और कुछ नहीं है। भाग्यवान वह है जिसे अपना कार्य मिल गया है फिर उसे अन्य सौभाग्यों की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए। संसार में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो उच्च, सरल, सत्य एवं कर्मण्य जीवन के प्रभाव को कम कर दे। किसी भी कार्य को सम्पादित करते समय अपने मन को बेहद शान्त रखना जरूरी है। बिना कर्म के निष्ठा का कोई मोल नहीं। ज्ञानयुक्त कर्म से ही मनुष्य स्थितप्रज्ञ होता है। पापकर्म से दूर रहना, लगातार पुण्य में लगे रहना, अच्छी मनोवृत्ति रखना और सदैव शुभ आचरण करना यह कल्याण का सबसे बड़ा साधन है। इस संसार में बहुत कम लोग है जो उन कामों को करते हैं जिन्हे वे करते हैं और जो काम वे करते हैं उन्हें वे कहते नहीं। मनुष्य को अपनी करनी का फल तो भोगना ही पड़ता है। सत्कर्मों को करने से जीवन का सही उपयोग होता

है। मिट्टी को सोना बनाना इन्सान की मेहनत और किस्मत पर निर्भर है। कल्याणकारी कर्म करनेवाले मनुष्यों की कभी दुर्गति नहीं होती। जो निष्काम कर्म की राह पर चलता है उसे इसकी परवाह नहीं होती कि किसने उसका हित साधा और किसने अहित किया। यद्यपि सभी कर्म देवाधीन है तथापि मनुष्य को अपने कर्म करते रहना ही चाहिये। उद्यमी व्यक्ति अगर योग्य न हो तो भी सिद्धि पा जाता है। कर्म से केवल मन की शुद्धि होती है, तत्व वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती, उसका मुख्य उपाय ध्यान है। कार्य की अधिकता से उकतानेवाला व्यक्ति कभी कोई बडा कार्य नहीं कर सकता। एक-दूसरे के लिये कुछ करने का जज्बा दिल में तडफ पैदा करता है और इन्सान की यही तडफ एक दूसरे की जिन्दगी को आसान बनाती है। किसी के द्वारा न किया गया असाधारण कार्य ही मनुष्य के लिये यश का कारण बनता है। मनुष्य की प्रगति उसकी उपलब्धियों से नहीं आंकी जाती है बल्कि उसके कार्योंद्वारा। कर्मशील व्यक्ति शायद ही उदास रहते हैं, क्योंकि कर्मशीलता और उदासीनता दोनों साथ-साथ नहीं रहती है। एक कर्त्तव्य पूर्ति का पुरस्कार है दूसरे कर्त्तव्य को पूर्ण करने की योग्यता। उद्योग परायण पुरुष को ही लक्ष्मी कृपा प्राप्त होती है। भाग्य कुछ भी नहीं करता वह तो केवल कल्पना है, हमें सूर्य, अग्नि की तरह कर्त्तव्य कर्म परायण होना चाहिये। जंगल के राजा शेर को भी शिकार पकडने के लिये अपनी गुफा से बाहर आकर पुरुषार्थ करना पडता है। कर्म में रहकर ही हम कर्म से महान हो सकते हैं। परित्याग करके या पलायन करके किसी प्रकार भी यह सम्भव नहीं है। व्यस्त आदमी के पास आंसू बहाने का भी समय नहीं होता है। उद्यम ही सफलता की कुंजी है। बिना उद्यम किये थाली की रोटी भी अपने आप मुंह में नहीं जाती। जिसने दीनता को ठुकरा दिया है और जो आत्म सन्तुष्ट रहता है वह वही कर्मों को निर्मूल करता है। कर्म हर मनुष्य का प्राणरक्षक है। किसी भी कार्य को पूरा करने के प्रति उसकी लगन होना आवश्यक है, लगन ही सफलता प्रदान करती है। अतीत में जैसा कुछ भी कर्म किया गया है, भविष्य में वह उसी रूप में उपस्थित होता है। सत्यता और निष्ठा के साथ कर्त्तव्य का पालन करनेवाले मनुष्यों को यह जग सदैव अच्छा लगता है। संसार का रहस्य कर्म में ही निहित है। अपने कर्म से बढ़कर कोई सद्धर्म नहीं है। जीवन की किसी भी मुश्किल को अपना कर्त्तव्य समझाकर ईमानदारी से हल करने में ही जीवन की सार्थकता है। बुरे तथा अपने लिये अहितकर कार्यों का करना सहज है लेकिन अच्छे और हितकारी कार्यों का करना परम कठिन है।

**- महेन्द्रकुमार पाटोदिया**

*लोगों के बीच पुल बनाइये दीवार नहीं।*

*पुरुषार्थ पर कभी-कभी प्रारब्ध हावी हो जाता है।*

*अधिकारों के साथ दायित्व का पालन भी आवश्यक है।*

*व्यक्ति पहले पैसा कमाने के लिये शरीर बिगाड़ता है फिर शरीर सुधारने के लिये पैसा बिगाडता है।*

*आपत्ति मनुष्य को मानव बनाती है और सम्पत्ति दानव।*

*रास्ता सभी जानते हैं, बहुत कम उसपर चलते हैं।*

# अध्यात्म और ईश्वर

अध्यात्म, तत्त्वज्ञान, दर्शनशास्त्र, ग्रन्थ, मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर, गुरुद्वारा, कोई पंथ और सम्प्रदाय, ध्यान-धारणा और समाधि ईश्वर से नहीं मिला सकते बल्कि ईश्वर के होने का एहसास कराते हैं। ईश्वर एक सम्पूर्ण शक्ति है और यह अपने आपका परिचय कराते हैं। तत्वज्ञान जीवन का अर्थ नहीं बतला सकता बल्कि यह ज्ञान जीवन बदलने को प्रवृत्त करता है। जिन कार्यों से मानव जाति का कल्याण होता है वही अध्यात्म जाना जाता है। ईश्वर न तो काष्ठ में है न धातु में, न पाषाण में और न ही मिट्टी की मूर्ति में विद्यमान रहता है। वो तो भावों में निवास करता है। तत्वज्ञान वह विज्ञान है जो सत्य का विचार करता है। तत्वज्ञान की प्राप्ति सिर्फ सोचने मात्र से नहीं होती बल्कि इसके लिये कठिन साधना करनी पडती है। ईश्वर की कोई वैज्ञानिक परिभाषा नहीं की जा सकती है पर आत्मा के सहारे उसका अनुभव किया जा सकता है। ईश्वर अनुभव गम्य है। ब्रह्म को जाननेवाला स्वयं ब्रह्म हो जाता है। ध्यान धारणायें मनुष्य को जीवनयापन की ऊर्जा प्रदान करती है। बिना आध्यात्मिक पतन हुये किसी राष्ट्र का किसी भी दृष्टि से पतन नहीं हो सकता। आत्मिक उत्थान के लिये हर पल का उपयोग आवश्यक है। मन की सच्ची दवा दर्शनशास्त्र है। शिक्षा चाहे भौतिक हो या आध्यात्मिक जीवन के लिये हर हाल में जरूरी है। आकाश, पृथ्वी, दिशायें, जल, तेज, तथा काल ये जिनके रूप है वह महेश्वर सर्वदा वन्दनीय है। नापाक से नापाक मन्दिरों में भी पाक दिल से जानेवाले भक्तों को ईश्वर के दर्शन जरूर होते है। यही उसकी अजीब कुदरत है या यों कहिये कि यही उसकी माया है।

ईश्वर न जप से, न व्रत से, न तप से, न दान से, न यज्ञ से जाना जाता है। इसको जाननेवाले जिज्ञासु कोई लाखों-करोड़ों में से एक होते है। उन हजारों-लाखों जिज्ञासुओं में कोई एक साधन करता है। उन सैकड़ों-हजारों में जिस किसीपर ईश्वर की कृपा होती है वह उसको प्राप्त होता है। आत्म दर्शन अपने को ईश्वर के हाथों सौंप देने पर है। वित्त से अमृत तत्त्व की आशा करना बेकार है।

सत्य, अच्छाई और सौन्दर्य उसी एक परमात्मा के विभिन्न रूप है। जो ईश्वर को जानता है वह अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं करता है। ईश्वर दैवी सत्ता है, जिससे सत्य, स्नेह और पूर्णता अथवा ज्ञान, सौन्दर्य और शक्ति के तीनों गुण वर्तमान है। ईश्वर का शुक्र मनाओ कि यह दुनिया हमें बनी बनाई मिली है। प्रभु है और सर्वत्र है इस तथ्य का हमारे ज्ञान में अभाव नहीं है किन्तु हम अपने दैनिक जीवन में इस तरह आचरण करते है जैसे वह कहीं है ही नहीं। भगवान दु:खियों से अत्यन्त स्नेह करते हैं। दु:ख भगवान का सात्विक दान है, मंगलमय उपहार है। ईश्वर ही हमारा आश्रयदाता है और शक्तिदाता भी। वही आपत काल की सबसे बडी सहायता है। किसी भी धर्म में ईश्वर पर आस्था एक अनमोल शक्ति है। ईश्वर की समस्त सृष्टि से इसके कण-कण से प्रेम करो। बिना विश्वास के कोई सिद्धि प्राप्त नहीं होती और भगवान के भजन के बिना संसार का कष्ट नहीं कटता। प्रभु का नाम ही सत्य है बाकी अन्य तो सब सपना है। प्रेम मनुष्य, पशु-पक्षी को ही नहीं परमात्मा तक को भी अच्छा लगता है। परमात्मा की प्राप्ति अनुग्रह से होती है, आग्रह से नहीं। देवता प्रसन्न होनेपर और कुछ नहीं देते पर सद्बुद्धि प्रदान करते हैं। देवता भी मानव जीवन, आर्य क्षेत्र में जन्म और कुल प्राप्ति की इच्छा करते हैं। ईश्वर प्रकृति का प्राणमात्र ही नहीं है वह तो उसके परे उसका सृष्टा, उसका स्वामी भी है। वह न सत् है, न असत् है, न दोनों के मध्य है। वह कुछ भी नहीं है। तब भी सब कुछ है। वह आंख, कान और नासिका से अग्राह्य है। वह शून्य है। यही

परमानन्द है। ऐश्वर्य ईश्वर का विशेष गुण है। परमार्थियों का प्रधान आहार सत्संग है। नेक कामों की कोशिश में लगे रहना ईश्वर की याद में रहना है। हम ईश्वर के शुक्र गुजार हैं कि जिसने हमें देखने, सुनने, सोचने और महसूस करने की नेमते दी है। कितना आश्चर्य है कि जो ब्रह्मसत्य है उसे ही मनुष्य भूल गया है। ईश्वर से डरनेवाले को और किसी से डर नहीं रहता। सृष्टि की रचना करके ईश्वर स्वयं अपने को ही प्रगट करता है। ईश्वर सम्पत्ति उन्ही मूर्खों को प्रदान करता है जिन्हे वह इसके अतिरिक्त और कोई अच्छी वस्तु प्रदान नहीं करता। ईश्वर पर विश्वास करने से कई बन्द द्वार भी खुल जाते है। ईश्वर एक बार एक ही क्षण देता है और दूसरा क्षण देने से पूर्व उस क्षण को ले लेता है। सारे दरिया अगर स्याही बन जाये और सारे दरख्त कलम तो भी उस खुदा का पूरा-पूरा बयान नहीं हो सकता, इतना असीम है वो।

जीवन की असंख्य चिन्ताओं के संतुलन स्वरूप ईश्वर ने आशायें और निद्रा प्रदान की है। जीवन सौभाग्य है, जीवन अलभ्य है। ईश्वर का दर्शन आंख से नहीं होता है। ईश्वर के शरीर नहीं है इसलिये उसका दर्शन श्रद्धा से ही होता है। ममता भगवान से करो, समता संसार से करो। भगवान पर अविश्वास करना सबसे बडा महापाप है। जहां अहंकार होता है वहां ईश्वर नहीं रहता है। भगवान से डरनेवाले को और किसी से कोई डर नहीं होता है।

सन्तोष ही प्रत्येक प्राणी को ईश्वरद्वारा दिया गया सच्चा व अनमोल उपहार है। ईश्वर की सत्य और पवित्रता के साथ ऐसी सेवा करना और जीवन की सभी घटनाओं में उसकी आज्ञाओं का श्रद्धापूर्वक पालन करना ही यथार्थ धर्म है। भगवान के विरुद्ध आचरण करनेवाला बडे से बडा वीर भी विजयी नहीं हो सकता। खुदा जिसको बडा बनाता है उसको खूबियां भी बहुत देता है। परमेश्वर विद्वानों की संगति से प्राप्त होता है। भगवान जिसको कठोर दु:ख देते हैं, उसकी बुद्धि का पहिले ही विनाश कर देते हैं। परमार्थ का उपयोग केवल दूसरों को उपदेश देने के लिये नहीं बल्कि स्वयं को उसी पर ढालने के लिये होना चाहिये। जो ईश्वर के कामों में लग जाता है, ईश्वर उसके कामों में लग जाता है। देवता भाव का भूखा है न कि पूजा सामग्री का। नियम से ईश्वर को भी आपकी बात माननी पडती है। ईश्वर से डरो ताकि कभी इन्सान से नहीं डरना पडे। परमात्मा की देने की सीमा नहीं होती, उसकी रक्षा में कभी क्षीणता नहीं आती। चिन्ता करना माने भगवान का भरोसा खोना है। प्रसन्नता परमात्मा की दी हुई औषधि या दवा है। रूहानी ताकतें इन्सान को सम्भाले रखती है और बगैर अदीकत यानि आस्था के बगैर ये रूहानी ताकते हासिल नहीं होती।

यह संसार बजार है और यहां सभी आदमी व्यापारी हैं। जो जैसा व्यापार करेगा वैसा ही फल पायेगा। इस संसाररूपी रंगमंच पर हम सब अभिनेता हैं और अपनी अपनी अदाकारी दिखाते हैं। जीवन की यह परिभाषा कितनी सच और सही है। परिवर्तन का चक्र घूमते रहता है, जो नीचे थे ऊपर आ जाते हैं और जो ऊपर थे वे नीचे गिर जाते हैं। सदा स्थिर कुछ भी नहीं रहता। एक मनुष्य के लिये संसार बंजर है, नीरस है, व्यर्थ है, जबकि दूसरे मनुष्य के लिये संसार ऐश्वर्य, मनोरंजन और अर्थ से भरपूर होता है। यह संसार नश्वर है इसमें कुछ भी स्थिर नहीं है। सब लोग थोडे समय के लिये अपनी शान दिखाकर शेखी बघारकर चले जाते हैं। सदैव कोई जीवित नहीं रहता जो पैदा होता है वह मरता अवश्य है। यह संसार धूप-छाँव की तरह है, इसमें आशा के साथ निराशा घुली रहती है। यहां राग द्वेष तथा सुख-दु:ख के साथ अमिट अभिलाषा बन्धी रहती है। विरह मिलन तथा संघर्ष शान्ति को ही जग कहते हैं। हम संसार को गलत पढते हैं और फिर कहते हैं कि वह हमें धोखा देता है। सम्पूर्ण संसार में जिनकी आसक्ति नष्ट हो गई है, जिनका अज्ञान नष्ट हो चुका है और जो कल्याण रूप परमात्मा तत्व में स्थिर है, वही महात्मा है।

मनुष्य जिन्दगी भर दूसरों में उलझा रहता है पर खुद को कभी जानने की कोशिश नहीं करता। जब चन्द्रमा और सूर्य यहां अस्त हो जाते है तो भला यहां अन्य कौन स्थिर रह सकता है। मौत तो मनुष्य को बहुत बाद में मारती है। मनुष्य की नासमझी ही उसे बहुत पहिले ही मार डालती है। मौत को टाला नहीं जा सकता पर सुधारा तो जा सकता है। जब कभी एक रास्ता बन्द हो जाता है तब कई अन्य रास्ते अपने आप खुल जाते हैं। आदमी सदा दु:खी ही रहेगा क्योंकि उसे पता ही नहीं कि वह चाहता क्या है। जिसकी बुद्धि ने विश्व के व्यापार में नियम को नहीं पहचाना वह जीवन के हर विषय में अशक्त अकृतार्थ और पराभूत है। जीवन के अज्ञात पथ में मनुष्य के साथ मनुष्य का गहरा परिचय कब किस दिन, किस माध्यम से, कैसे हो जाति है, यह कोई नहीं जानता। जीवात्मा का परमात्मा से संयोग ही योग कहा जाता है। जो माया, ईश्वर तथा अपने आप को नहीं जानता उसे जीव कहते हैं। पत्थर को ईश्वर बनानेवाला मनुष्य आज खुद पत्थर बन रहा है। जब पत्थर में संवेदना जागती है तब वह ईश्वर हो जाता है। मनुष्य से देवत्व के लिये विकासोन्मुख होने के लिये सद्विचार, सत्संग, सत्कर्म व सद्ग्रन्थ इनमें से किसी की साधना अन्य साधनों की प्राप्ति का सहज साधन है। मनुष्य अपनी गलतियों से संसार की विषम परिस्थितियों में फंस जाता है इसलिये उसमे समझदारी और सूझबूझ होना आवश्यक है। प्रत्येक मनुष्य वास्तव में ईश्वर है परन्तु मूर्खों जैसा अभिनय कर रहा है। सबसे अधिक निर्लज्ज वही है जो ईश्वर को नहीं मानता। जो मानव सेवा करते हैं, वे ईश्वर की सबसे अच्छी सेवा करते हैं। जिन्दगी क्या है जब तक हम ये जानते हैं जिन्दगी आधी बीत जाती है। परमात्मा की झलक की जो पहली किरण इस धरा पर आती है उसीका नाम प्रेम है। शान्ति ईश्वर प्रदत्त नहीं होती यह वह भेंट उपहार है जिसे मनुष्य एक-दूसरे को देते हैं। कोई कोई ही जानता है कि भगवान की माया और छाया एक जैसी ही है। वे भागते के पीछे पडती है और जो उनके पीछे पडता है उसके आगे वे भागती है। अपने जीवन का लक्ष्य बनाइये और इसके पश्चात अपने पूरे शारीरिक और मानसिक बल से अपना काम करे जो ईश्वर ने आपको दिया है। एक नियोजित, निर्धारित व निश्चित लक्ष्य का चयन आपको उस सही दिशा में सोचने के लिये प्रेरित व विवश करेगा। परमेश्वर सब कुछ देखता है और छिपाता है। पडोसी अपनी आंखों से देखता भी नहीं तो भी चिल्लाता है। निरोग रहना, ऋणी न होना, परदेश में न रहना, अच्छे लोगों से मेल होना, अपनी वृत्ति से जीविका चलाना और निर्भय होकर रहना, यही सब मनुष्य के लिये इस लोक के सुख हैं। मनुष्य तो केवल वचन ही दे सकता है पर उसे सफल करना जिसके हाथ है, उसी पर भरोसा करना ठीक है। ज्ञानी अविनाशी भगवान को जानने में लगा रहता है जबकि अज्ञानी विनाशी वस्तुओं को जानने में व्यस्त रहता है। परमात्मा को खोजनेवाला स्वयं अपने आप में समा जाता है जैसे आत्मा परमात्मा में समा जाती है। जो वास्तव में पूर्णतया प्रभु के शरणागत हो जाता है वही एक समस्यारहित उस परमशान्ति का अनुभव करता है। मनुष्य की जिन्दगी एक सुन्दर पक्षी की भांति है, जो किसी डाल पर बैठा हुआ थोडी देर चहचहाता और फिर उड जाता है। प्रत्येक प्राणी में भगवान का वास है इसलिये किसीसे भी कटु वचन नहीं कहे। कुछ भी चाह न रखनेवाला भगवान के करीब रहता है और भगवान के साथ रहनेवाला सभी से प्रेम करता है। मानव शरीर ईश्वर की अनुभूति कराने का अन्तिम अवसर है। मनुष्य सृष्टिकर्ता के प्रतिबिम्ब में ईश्वर तुल्य कार्य करने के लिये बनाया गया है। सिर्फ एक धर्म का साथ रहने से इन्द्र और देवता भी सेवा करते हैं और धर्मरहित व्यक्ति के घर में तो चांडाल भी पैर नहीं रखता। ईश्वर के रंगमंच का कलाकार बन पाता है या नहीं यह उसकी परवरिश पर निर्भर करता है। परवरिश का अर्थ मां-बाप, परिवार, स्कूल, समाज और आसपास का पडौस, वातावरण उसे जीने की सीख और संस्कार देता है। भगवान के लाडले हम हैं

जिन्हे यह जग खेलने के लिये दिया है, इसमें हम अपनी प्रतिभा के बल पर सब ओर सहज विचरते हैं। इन्सान को रहमत बनाकर जमीन पर भेजा गया, यही इन्सान जब दूसरे इन्सान पर जुल्म ढाता है, गाली देता है तो खुदा की खुदाई हाहाकार कर उठती है। जो मनुष्य जाति की सेवा करता है वह ईश्वर की सेवा करता है। ब्रह्मज्ञान हो जाने पर मनुष्य शीघ्र ही परमानन्द का अधिकारी होता है। मनुष्य के भीतर ईश्वरीय उपस्थिति ही अन्त:करण है। हम आगे जा रहे हैं या पीछे जा रहे हैं या बीच ही में त्रिशंकु की तरह बीच ही में लटके हुये है। दूसरे की पीठ पर पैर रखकर आगे बढना चाहते है और दूसरे के पेट पर लात मार कर सम्पन्न होना चाहते हैं। हम लेना तो चाहते हैं पर देना नहीं चाहते लेकिन फिर भी दानवीर कहलाना चाहते हैं। हम ग्रहण करना चाहते हैं पर त्याग नहीं लेकिन त्यागी कहलाना पसन्द करते हैं।

प्रकृति नियमितता को पसन्द करती है आलस्य को नहीं। मनुष्य अपनी भूलों से संसार की विचित्र स्थिति में फंस जाता है। मनुष्य ही परमात्मा का सर्वोच्च साक्षात मन्दिर है इसलिये साकार देवता की पूजा करो। भक्ति ईश्वर तक पहुंचने का सुखद राजपथ है। प्रकृति ईश्वर की शक्ति का क्षेत्र है और जीवात्मा उनके प्रेम का क्षेत्र है। धर्म कुछ संकुचित सम्प्रदाय नहीं है, केवल बाह्याचार नहीं है। व्यापक धर्म है ईश्वरत्व के बारे में हमारी अचल श्रद्धा और अहिंसा के प्रति सम्मान। आकाश में उडनेवाले प्रसन्नचित्त पक्षी, जल में विहार करनेवाली मछली, वन में विचरनेवाले स्वतन्त्र पशु व अन्य उपजीव इस भगवान के अविश्वासी मानव की हंसी मजाक उडा रहे हैं। ईश्वर जिस पर कृपा करना चाहता है उनकी कभी-कभी इन्तहाई परीक्षा भी लेता है। ईश्वर किसी भी कार्य को नकारात्मक मोड पर नहीं छोडता व हमेशा सुखद अन्त करता है। हमारे यहां के मजदूर, चित्रकार, लकडी और पत्थर का काम करनेवाले भूखों मरते हैं तो मन्दिरों में बैठी हुई प्रतिमायें (मूर्तियां) कैसे सुन्दर हो सकती है। प्रकृति ईश्वर का विराट स्वरूप है, कला मानव का। प्रकृति के उस ओर ईश्वर और ईश्वर के इस ओर है प्रकृति।

अध्यात्म जीवन को विकसित करता है, उन्नत करता है, अभ्युदय करता है और सोच में बदलाव लाता है। जीवनयापन का स्तर ऊंचा उठाता है। संकीर्णता और अन्धविश्वासों का उन्मूलन करता है। अध्यात्म है संकुचित विचारधारा से विशालता में आ जाना। प्रत्येक परिस्थिति को उसकी विशालता, उसके विस्तृत रूप को देखना। तत्वज्ञान के प्रकाश में अज्ञान का अन्धेरा नहीं टिकता।

**- महेन्द्रकुमार पाटोदिया**

*वासना ही मनुष्य को दासता के लिये विवश करती है।*

*प्रतिष्ठा की आंच पर धन का खजाना कभी निर्मित न करें।*

*अन्धश्रद्धा मनुष्य की प्रगति में रुकावट है।*

*व्यक्ति की भाँति राष्ट्र भी जीवित रहते और मरते हैं, किन्तु सभ्यता का पतन कभी नहीं होता।*

*अपने दु:ख से दु:खी कम लोग है परन्तु दूसरों के सुख से दु:खी बहुत लोग हैं।*

*ईर्ष्या और द्वेष यह मनुष्य की पहचान नहीं यह तो पशुता की निशानी है।*

HHH(८००)HHH